टॉड लिखित
राजस्थान का इतिहास

ANNALS & ANTIQUITIES OF RAJASTHAN

का सम्पूर्ण हिन्दी अनुवाद

●

भूमिका लेखक

डॉ० ईश्वरी प्रसाद

एम० ए० ; एल्-एल० बी ; डी-लिट्० ; एम० एल० सी० ;

इतिहास शिरोमणि (नेपाल) तथा भारत धर्म महामण्डल काशी

भूतपूर्व प्रोफेसर , इतिहास एवं राजनीति तथा अध्यक्ष

राजनीति विभाग , प्रयाग विश्वविद्यालय ।

●

अनुवादक

श्री केशव कुमार ठाकुर

प्रकाशक

आदर्श हिन्दी पुस्तकालय

इलाहाबाद

पहला संस्करण } जनवरी सन् १९६२ { मूल्य २५) रुपये

प्रकाशक
गिरिधर शुक्ल
आदर्श हिन्दी पुस्तकालय
४१९ अहियापुर
इलाहाबाद

मुद्रक
मोहनलाल जायसवाल
मनमोहन मुद्रणालय
७०६ मुट्ठी गञ्ज
इलाहाबाद

प्रकाशक की ओर से

हजारों वर्ष पहले से भारत में विदेशियों का आवागमन होता रहा है। मुसलमानी तथा अंग्रेजी शासन काल में उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक भारत में मध्य एशिया तथा यूरोप से जो लोग समय-समय पर भ्रमण के हेतु अथवा शासक की हैसियत से यहाँ आये, उनमें अनेक ऐसे पढ़े-लिखे विद्वान भी थे, जिन्होंने यहाँ वर्षों रह कर भारत की प्राचीन सभ्यता, संस्कृति, धर्म आदि विषयों का अध्ययन करके अनेक विषयों पर ऐसे महत्वपूर्ण ग्रन्थ लिखे, जिनको संसार में प्रतिष्ठा एवं मान्यता प्राप्त हुई और जो आज भी संसार के बड़े-बड़े प्रसिद्ध पुस्तकालयों में आदर और प्रतिष्ठापूर्वक स्थान पाकर सुरक्षित रखे दिखाई देते हैं।

इन्हीं विद्वान लेखकों में सुप्रसिद्ध इतिहासकार कर्नल जेम्स टॉड भी थे, जो सन् १८०६ में ईस्ट इन्डिया कम्पनी द्वारा राजपूताने में पोलिटिकल एजेन्ट के पद पर नियुक्त करके भेजे गये थे और जिन्होंने अपने स्वाभाविक गुणों के द्वारा राजपूतों के सम्पर्क में एक दीर्घकाल तक रह कर वहाँ की बाहरी-भीतरी सभी बातों का अध्ययन और ज्ञान प्राप्त करके, २५ साल के कठिन परिश्रम और लगन से जो यह अपूर्व ग्रन्थ लिख गये हैं, वास्तव में भारत उसके लिए सदा ही उनका कृतज्ञ और ऋणी रहेगा।

टॉड साहब की इस पुस्तक "Annals and Antiquities of Rajasthan" के पढ़ने का अवसर मुझे अपने विद्यार्थी जीवन में प्राप्त हुआ था। इसमें सन्देह नहीं कि जेम्स टाड महोदय ने भारतवर्ष की इस वीर राजपूत जाति के सम्बन्ध में उसके स्वाभाविक गुणों, उसके शौर्य, वीरता एवं आत्म बलिदान का जैसा सुन्दर और सजीव वर्णन अपने इस पुस्तक में किया है, उसे देखकर उनकी प्रतिभा का चमत्कार स्पष्ट दिखाई देता है।

ऐसे महत्वपूर्ण ग्रन्थ का हिन्दी में अनुवाद प्रकाशित करने का संकल्प मेरा बहुत पुराना था पर इतने बड़े ग्रन्थ को प्रकाशित करके पाठकों के समक्ष उपस्थित करने में मुझे अपने सामने अनेक कठिनाइयाँ प्रतीत हुईं। आर्थिक समस्या, समय का अभाव और गृहस्थी की अनेक प्रकार की झंझटें विशेष रूप से मेरे सामने बाधक थीं। फिर भी मैं अपने संकल्प में निराश नहीं हुआ। दृढ़ता एवं साहसपूर्वक अपनी इस योजना को सफल बनाने के लिए चिन्ताग्रस्त रहा।

सर्व प्रथम इस कार्य के लिये अपने परम हितैषी श्रद्धेय राजर्षि टन्डन जी एवं प्रसिद्ध इतिहासकार डा० ईश्वरी प्रसाद जी से उनकी शुभ सम्मति और आशीर्वाद प्राप्त होने से मेरा बल बढ़ गया और इससे मुझे जो प्रोत्साहन और साहस प्राप्त हुआ, उससे मेरे आगे का मार्ग सुगम और सरल हो गया। वास्तव में मेरे अपने इस कठिन कार्य में श्रद्धेय टण्डन जी एवं डा० ईश्वरी प्रसाद जी से जो सहारा प्राप्त हुआ है उसके लिये मैं इन दोनों महानुभावों का चिरकृतज्ञ और आभारी हूँ। आदरणीय डा० ईश्वरी प्रसाद जी का मैं इसलिये और भी विशेष रूप से आभारी हूँ कि, उन्होंने मेरे विशेष आग्रह और अनुरोध पर इस पुस्तक की भूमिका लिखना स्वीकार करके मुझे अनुगृहीत किया।

टॉड साहब लिखित अंग्रेजी में यह पुस्तक लगभग तेरह सौ पृष्ठों के दो भागों में है। लेकिन हिन्दी में मैंने इसे अलग-अलग दो भागों में न रखकर सम्पूर्ण दोनों भागों को अंग्रेजी पुस्तक से कुछ

बड़े साइज में करके एवं सुन्दर मोनों टाइप में एक हजार पृष्ठों में छाप कर एक ही जिल्द में सम्पूर्ण पुस्तक को समाप्त किया है। ऐसा मैंने इसलिए किया कि बहुधा दो या अधिक भाग वाली पुस्तकों के कोई न कोई भाग प्राय: खंडित हो जाते हैं या खो जाते हैं और ऐसी अवस्था में खंडित भागों का पुन: मिलना प्राय: दूकानदारों के यहाँ भी कठिन हो जाता है। इन्हीं कठिनाइयों से बचने के लिये एवं ग्राहकों की सुविधा का ख्याल करके मैंने मूल ग्रन्थ के दोनों भागों को एक ही जिल्द में समाप्त किया, जो आपके सामने है।

इस महान ग्रन्थ के प्रकाशित होने के पहले हमारे आदरणीय राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद जी; उप-राष्ट्रपति डा० राधा कृष्णन जी; गृह मंत्री श्री लाल बहादुर जी शास्त्री; बम्बई के राज्य पाल डा० श्री प्रकाश जी; श्री मोहन लाल जी सुखाड़िया मुख्य मंत्री राजस्थान, श्री चन्द्रभानु जी गुप्त मुख्य मंत्री उत्तर प्रदेश; डा० सम्पूर्णानन्द जी भूतपूर्व मुख्य मंत्री उत्तर प्रदेश; पं० जनार्दन जी भट्ट दिल्ली; डा० वृन्दावन लाल जी वर्मा; डा० रामविलास शर्मा आगरा एवं अपने सह-योगी मित्र श्री रामलाल जी पुरी व्यवस्थापक आत्मा राम एन्ड सन्स दिल्ली; श्री विश्वनाथ जी व्यवथापक राजपाल एन्ड सन्स दिल्ली; श्री ओम प्रकाश जी डाइरेक्टर इन्चार्ज राजकमल प्रकाशन दिल्ली तथा श्री कृष्णचन्द्र जी बेरी व्यवस्थापक हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय वाराणसी इत्यादि महानुभावों ने जो अपने आशीर्वाद और शुभ कामनायें भेजकर मुझे प्रोत्साहित किया है, उनके इस सहृदयता और सद्भावनापूर्ण कार्य के लिये मैं उनका चिरकृतज्ञ और आभारी हूँ।

इस पुस्तक के अनुवादक प्रसिद्ध इतिहासकार श्री केशव कुमार ठाकुर का मैं विशेष रूप से कृतज्ञ और आभारी हूँ, जिन्होंने अपने ऐतिहासिक ज्ञान और अध्ययन से इतने बड़े ग्रन्थ का अंग्रेजी से हिन्दी में अत्यन्त सुबोध और सरल भाषा में अनुवाद करके अल्प समय में ही पांडुलिपि को प्रकाशनार्थ मेरे सामने प्रस्तुत किया। साथ ही इसके मैं केशव कुमार की धर्मपत्नी श्रीमती ज्योति-र्मयी ठाकुर का भी विशेषरूप से इसलिये आभारी हूँ कि उन्होंने अनेक कार्यों में व्यस्त रहने पर भी इस महान ग्रंथ की पाण्डुलिपि को तैयार करने में मेरी बड़ी सहायता की है।

इतने बड़े ग्रंथ के लिये इतनी बड़ी तादाद में एक साथ अच्छे कागज का मिलना बिलकुल असम्भव था। ऐसे अवसर पर यदि प्रयाग के प्रतिष्ठित फर्म मेसर्स कृष्णा पेपर हाउस के मालिक श्री रामकृष्ण जी माहेश्वरी ने सीधे मिल से मेरे लिये कागज का प्रबन्ध न किया होता तो शायद इस महत्वपूर्ण ग्रंथ का प्रकाशित होना असम्भव था। मैं उनकी इस कृपा और सहयोग के लिये उनका अत्यन्त कृतज्ञ और आभारी हूँ।

भारत के सम्बन्ध में विदेशी लेखकों के इतिहास भरे पड़े हैं, पर अब वे बिलकुल अप्राप्य और विलुप्त हो गये हैं। हमारे यहाँ के इतिहासकारों ने उनकी लिखी कृतियों का अध्ययन और मनन कर खोज के साथ अनेक उत्तमोत्तम इतिहास के ग्रंथों की रचना की है और जिनको उन्होंने Authority माना है। ऐसे लेखकों के ग्रंथों का अनुवाद प्रकाशित होना बहुत आवश्यक है। पाठकों की तरफ से मुझे यदि उनकी प्रेरणा और प्रोत्साहन प्राप्त होगा तो मैं ऐसे विलुप्त और अप्राप्य ग्रन्थों के अनुवादों को प्रकाशित करने की चेष्टा करूँगा।

गिरिधर शुक्ल

*

वक्तव्य

भारतवर्ष के समस्त इतिहासों में कर्नल जेम्स टॉड का लिखा हुआ 'एनल्ज एण्ड ऐण्टीक्विवटीज ऑफ राजस्थान' बहुत प्रसिद्ध और प्रामाणिक माना जाता है। राजस्थान का इतिहास उसी का अनुवाद है। इस ऐतिहासिक ग्रंथ को तैयार करने में टॉड साहब ने जिस प्रकार अथक परिश्रम और प्रयत्न किया था, उसको लिखकर अथवा कहकर व्यक्त नहीं किया जा सकता। भारतवर्ष में आने पर और यहाँ के अनेक प्रकार के वैभव देखकर वह अत्यन्त प्रभावित हुआ था। उसने इस देश की बहुत-सी अच्छाइयाँ देखीं, जिनका उसे पहले से कुछ ज्ञान न था। इस इतिहास को लिखने के पहले ही उसने इस बात को मंजूर किया है कि भारतवर्ष के सम्बन्ध में योरप के लोगों को कुछ जानकारी नहीं है। इस प्रसिद्ध देश से योरप के लोग अपरिचित रहें, जेम्स टॉड की समझ में यह अच्छा न था। इसलिए उसने योरप के इस अभाव को दूर करने का अपने मन में निश्चय कर लिया और उस महान कार्य को पूरा करने के लिये उसने सभी प्रकार के साधन जुटाने का कार्य आरम्भ कर दिया।

सन् १८०६ के जून महीने की बात है, उस समय जेम्स टॉड एक अंगरेजी राजपूत के साथ उदयपुर में था। राजपूताना के राज्यों में उसको भ्रमण करने का अवसर मिला। वह राजपूतों की बहादुरी को सुनकर और देखकर बहुत प्रसन्न हुआ। उसने उनकी भीतरी और बाहरी-सभी परिस्थितियों की जानकारी प्राप्त करने के साथ-साथ उनके प्राचीन इतिहास की खोज का कार्य आरम्भ कर दिया। इस इतिहास को लिखने के लिये जिस सामग्री की आवश्यकता थी, आसानी के साथ उसका मिल सकना उन दिनों में किसी प्रकार सम्भव न था। इसलिए राजस्थान में जहाँ कहीं वह जाता, अपने इस इतिहास की सामग्री को प्राप्त करने की वह कोशिश करता। उसने अपना अधिक से अधिक समय इस कार्य में खर्च करना आरम्भ किया। उसने जनश्रुतियों, शिला लेखों और ऐतिहासिक ग्रंथों की बहुत-सी सामग्री अपने पास एकत्रित कर ली। लेकिन केवल इतनी ही सामग्री से राजस्थान का पूर्ण इतिहास तैयार नहीं हो सकता था। इसलिए विस्तार के साथ उसने इस कार्य को आरम्भ किया और अपने स्वास्थ्य का मोह छोड़ कर इस कार्य की सफलता के लिए उसने अपनी सम्पूर्ण शक्तियों का उपयोग किया। राजस्थान के राज्यों में लगातार घूमने और राजपूतों से मिलने के कारण, उनके साथ उसका स्नेह बढ़ने लगा। उन दिनों में राजपूतों के आपसी द्वेष और वैमनस्य के कारण उनकी शक्तियाँ बहुत निर्बल पड़ गयी थीं। उनके फलस्वरूप बाहरी लुटेरों के राजस्थान में अत्याचार बहुत बढ़ रहे थे। जेम्स टाड राजपूतों पर होने वाले उन अत्याचारों को सहन न कर सका और उसने राजपूतों की सहायता करने का निश्चय कर लिया। इसके लिए उसने जो प्रयत्न किये, उनके कारण वहाँ के राजपूतों पर टाड साहब का बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा। उसने राजस्थान के सभी प्रमुख स्थानों का भ्रमण किया और स्थान-स्थान पर जाकर उसने शिला लेखों, ताम्रपत्रों, हस्तलिखित पुस्तकों और बहुत से सिक्कों को प्राप्त किया। इस अनवरत परिश्रम के कारण उसकी तिल्ली बढ़ गयी और वह एक भयानक बीमारी का रोगी बन गया। लेकिन उसने अपने कार्य में किसी प्रकार की शिथिलता और कमजोरी नहीं आने दी। सरकारी काम करते हुए उसने अपना अधिक से अधिक समय इस ग्रन्थ की सामग्री जुटाने में खर्च किया।

जेम्स टॉड एक चरित्रवान, साहसी और वीर पुरुष था। इसीलिए वह राजपूतों की वीरता को सुनकर और अपने नेत्रों से देखकर बहुत प्रसन्न हुआ। इस कार्य के लिए उसने बहुत से योग्य कार्यकर्त्ता नियुक्त किये थे, जो स्थान-स्थान पर घूमकर उसके बताए हुए तरीकों पर सामग्री एकत्रित करने का काम करते थे। टॉड साहब ने इस इतिहास की सामग्री जुटाने के लिए किस प्रकार के काम किये थे, कितना अधिक परिश्रम किया था और कितने साधनों से उसने काम लिया था, इन सब बातों का वर्णन इस ग्रंथ के आरम्भ में किया गया है। इसलिए उसके यहाँ पर लिखने की आवश्यता नहीं है। पच्चीस वर्ष तक लगातार परिश्रम करने के बाद सन् १८२६ ईसवी में इस इतिहास का प्रथम भाग और सन् १८३२ ईसवी में इसका दूसरा भाग वह प्रकाशित कर सका। इस इतिहास के प्रकाशित होते ही योरप के देशों में टॉड साहब की बड़ी प्रशंसा हुई और उसके लिखे हुए इस इतिहास से संसार में राजस्थान को बड़ी ख्याति प्राप्त हुई।

इस इतिहास में केवल राजस्थान की ही नहीं, बल्कि भारतवर्ष के प्राचीन इतिहास की बहुत-सी ऐसी ऐतिहासिक सामग्री पढ़ने को मिलती है, जो यहाँ के किसी दूसरे इतिहास में नहीं है। देश के सभी प्रतिष्ठित इतिहासकार इस बात को स्वीकार करते हैं कि जेम्स टॉड का लिखा हुआ राजस्थान का इतिहास एक प्रमाणिक इतिहास है।

टॉड साहब के इस ऐतिहासिक ग्रंथ का अनुवाद बड़ी सावधानी के साथ मैंने करने की कोशिश की है। फिर भी अपनी भूलों के लिए मैं क्षमा चाहता हूँ। मैं इस बात पर विश्वास करता हूँ कि भारत के प्राचीन काल की सामग्री का संकलन करके टॉड साहब ने उसकी ऐतिहासिक सामग्री निकालने और इस इतिहास के तैयार करने में जो सफलता पायी है, वह किसी दूसरे के द्वारा सम्भव नहीं थी। यदि टॉड साहब के द्वारा यह इतिहास न लिखा गया होता और किसी दूसरे विद्वान ने इसको लिखा होता तो कदाचित यह इतिहास कुछ और ही होता और राजस्थान के इस प्राचीन और प्रसिद्ध इतिहास से न केवल भारतवर्ष बल्कि सम्पूर्ण संसार वञ्चित रहता। इस महत्वपूर्ण अभाव की पूर्ति करके टॉड साहब ने जो महान कार्य किया है, उसकी प्रशंसा नहीं की जा सकती।

अनुवाद में मूल लेखक के विचारों को सुरक्षित रखना एक कठिन कार्य है। ऐतिहासिक ग्रंथ के अनुवाद में यह जिम्मेदारी और भी अधिक बढ़ जाती है। अनुवादक को मूल ग्रंथ में कुछ भी परिवर्तन करने अथवा उसकी आलोचना करने का अधिकार नहीं होता, इसको सभी स्वीकार करेंगे। कहीं कुछ मतभेद होने पर अनुवादक अपने वक्तव्य में प्रकाश डाल सकता है और अपने विचारों का उल्लेख कर सकता है। एक विदेशी विद्वान से इस प्रकार के ग्रंथ में जो भूलें हुई हैं और जिनका होना अत्यन्त स्वाभाविक है, उनके सम्बन्ध में अपने ऐतिहासिक विद्वानों के उल्लेखों से सहायता लेकर मैंने उनके उचित स्थानों पर फुटनोट देकर स्पष्टीकरण करने की चेष्टा की है। जिन विद्वानों के उल्लेखों से मैंने यह सहायता प्राप्त की है, उनके प्रति मैं अपनी कृतज्ञता प्रकट करता हूँ।

अनुवाद के बाद और प्रेस में देने के पहले मुझे पाण्डुलिपि के देखने का मौका नहीं मिला। उस समय उसका देख लेना बहुत जरूरी था। लेकिन कुछ असुविधाओं के कारण ऐसा हो नहीं सका। श्रद्धेय गिरिधर जी शुक्ल ने सदा की भांति मेरी इस पाण्डुलिपि को देखकर और आवश्यकतानुसार भूलों का संशोधन करके मेरी बड़ी सहायता की है। इसके लिए मैं शुक्ल जी के प्रति अपना आभार प्रकट करता हूँ।

केशव कुमार ठाकुर

भूमिका

पं० गिरिधर शुक्ल ने टाड के प्रसिद्ध ग्रंथ राजस्थान का हिन्दी संस्करण निकाल कर हिन्दी जगत का ही नहीं बल्कि ऐतिहासिक जगत का भी बड़ा उपकार किया है। कौन ऐसा भारतीय इतिहास का विद्वान है जो टाड के अनुपम ग्रंथ के महत्व को नहीं स्वीकार करता। आधुनिक दृष्टि से यह वैज्ञानिक रूपेण लिखित इतिहास का ग्रंथ न हो परन्तु इसमें जरा भी सन्देह नहीं कि यह ऐतिहासिक सामग्री का अपूर्व भांडार है। आधुनिक काल में प्रशस्तियों, साहित्यिक ग्रंथों, मुद्राओं, प्राचीन लेखों तथा भग्नावशेषों के आधार पर जो अन्वेषण हुए हैं, उन्होंने ऐतिहासिक घटनाओं पर नूतन प्रकाश डाला है और अशुद्धियों को दूर करने में हमारी सहायता की है। जिस समय कर्नल टाड ने अपना ग्रंथ लिखा था इतनी सामग्री उपलब्ध नहीं थी। वे राजस्थान में एक उच्च पद पर थे, उनकी लेखनी में ओज था, शक्ति थी, अपनी भाषा पर उनका पूर्ण अधिकार था, राज्यों से उन्हें सहायता मिलती थी। इसलिए इस ग्रंथ को तैयार करने में उन्हें सफलता प्राप्त हुई। चारणों से उन्हें बहुत-सी सामग्री उपलब्ध हुई। जनश्रुति का भी, जो इतिहास का एक अमूल्य साधन है, उन्होंने उपयोग किया।

टाड के ग्रंथ में राजपूतों के राजवंशों का इतिहास है। मुख्य घटनाओं का वर्णन जिस भाषा में किया गया है वह आज भी हमें प्रभावित करती है और हमारे हृदय में एक नई स्फूर्ति का संचार करती है। राजस्थान की भूमि वीरों की जननी है! उसने अनेक महापुरुषों तथा वीरांगनाओं को जन्म दिया है, जिन्होंने भीषण संकटापन्न अवस्थाओं में निर्दय शत्रुओं से युद्ध कर अपनी मान-मर्यादा की रक्षा की। उन्होंने अनेक बार अपने प्राणों की आहुति देकर भयंकर, आततायी एवं नृशंस आक्रमणकारियों को मार भगाया और अपनी वीरता का परिचय दिया। मेवाड़ के दुर्ग, राजप्रासाद; मन्दिर, शिलायें, पहाड़ों की चोटियाँ इसके साक्षी हैं। इस प्रकार के पराक्रम केवल योद्धाओं तक ही सीमित न थे, राजपूतनियों ने भी वीरता, त्याग, आत्मसम्मान, तथा देश-प्रेम के उज्ज्वल उदाहरण समय समय पर उपस्थित किये। 'जौहर व्रत' राजपूत समाज की वीराङ्गनाओं के सामूहिक बलिदान की एक विशेषता थी। उसे देखकर उनके शत्रु भी चकित रह जाते थे। एक बार नहीं अनेक बार भयंकर परिस्थियों में क्षत्रिय वीराङ्गनाओं ने इसी प्रकार प्रचण्ड अग्नि ज्वाला में भस्म होकर अपने सतीत्व की रक्षा की। इस तरह के ज्वलन्त उदाहरण किसी देश के इतिहास में नहीं मिलते।

शुक्ल जी ने इस महान ग्रन्थ को सुसंस्कृत तथा परिमार्जित आधुनिक हिन्दी में प्रकाशित करने का श्लाध्य प्रयास किया है। यों तो संक्षिप्त हिन्दी संस्करण टाड के निकल चुके हैं, राजपूताना के इतिहास पर भी बहुत कुछ लिखा गया है। परन्तु टाड का ग्रंथ अब भी अद्वितीय हैं। एक विदेशी होते हुए उन्होंने राजपूत-समाज, नीति-नियम, शासन-व्यवस्था, रस्म-रिवाज आदि के बारे में पूर्ण जानकारी प्राप्त की थी। इससे उनके परिश्रम, सहिष्णुता प्रखर बुद्धि एवं अदम्य साहस का पता लगता है। उनकी अलौकिक प्रतिभा का स्मरण कर प्रत्येक इतिहासकार को नतमस्तक होना पड़ता है। शुक्ल जी ने भी ऐसा ही साहस दिखाया है। हमारे

सम्मुख टाड के पूर्ण ग्रंथ को हिन्दी भाषा में प्रस्तुत कर उन्होंने अपने उत्साह एवं साहित्य-प्रेम का परिचय दिया है। आर्थिक स्थिति संतोषजनक न होते हुए भी, किसी धनाढ्य व्यक्ति का आश्रय बिना प्राप्त किये, उन्होंने इस महान-कार्य में अपना हाथ लगाया और उसे पूरा किया है। यह सब देखकर मेरा हृदय गद्गद् हो जाता है। अनुवादक का परिश्रम प्रशंसनीय है। भाषा सुन्दर है, जोशीली है और मूल लेखक की तरह लेख शैली भी लालित्य पूर्ण एवं हृदयग्राही है।

टाड के ग्रंथ का केवल ऐतिहासिक महत्व ही नहीं है, उसमें अनेक समाज-सम्बन्धी विषय भी हैं, जिनसे हमें राजपूत-समाज के बारे में बहुत कुछ ज्ञान प्राप्त होता है। राजपूत जातियों का टाड का परिचय अब अपूर्ण समझा जाता है। उसकी बहुत-सी भूलें आधुनिक अन्वेषण द्वारा सुधार की गई है। राज्यों के इतिहासों में भी बहुत-सी त्रुटियां थीं, जिनका अब संशोधन किया गया है। इसके अतिरिक्त इन अन्वेषणों ने हमारे ज्ञान में पर्याप्त अभिवृद्धि की है। परन्तु राजपूत-समाज के बारे में जितनी सामग्री टाड के ग्रन्थ में है, वह अन्यत्र नहीं उपलब्ध होती। न कहीं राजपूत सामन्तशाही का ऐसा विस्तृत वर्णन मिलता है जैसा कि टाड लिखित राजस्थान के इतिहास में है। ग्यारहवें परिच्छेद से मेवाड़ का इतिहास प्रारम्भ होता है। घटनाओं का वर्णन मार्मिक तथा ओजस्वी भाषा में किया गया है। कोई मेवाड़ निवासी ऐसा न होगा, जो इसे पढ़ कर प्रभावित न हो। इसके पश्चात् मारवाड़, जैसलमेर, जयपुर, शेखावाटी आदि राज्यों का इतिहास है। यह सब अंशों में सत्य नहीं है, पर फिर भी वैज्ञानिक अन्वेषकों के लिये एक अद्भुत मौलिक सामग्री है।

मुझे आशा है शुक्ल जी के उत्साह तथा प्रयास का विद्वानों में सम्मान होगा। विशेषत: इतिहास के विद्यार्थी हिन्दी भाषा में टाड के पूर्ण ग्रन्थ को पायेंगे और उसमें मूल ग्रंथ की झलक एवं प्रतिभा को देखेंगे। आधुनिक अन्वेषकों द्वारा बहुत-सी सामग्री उपलब्ध हुई है उसका भी उपयोग होना आवश्यक प्रतीत होता है। आशा करता हूँ, हमारे विश्व विद्यालयों के इतिहास विभाग शुक्ल जी को इस कार्य में सहयोग प्रदान करेंगें।

प्रयाग
२३-१२-१९६१

ईश्वरी प्रसाद

टॉड साहब की जीवनी के लेखक
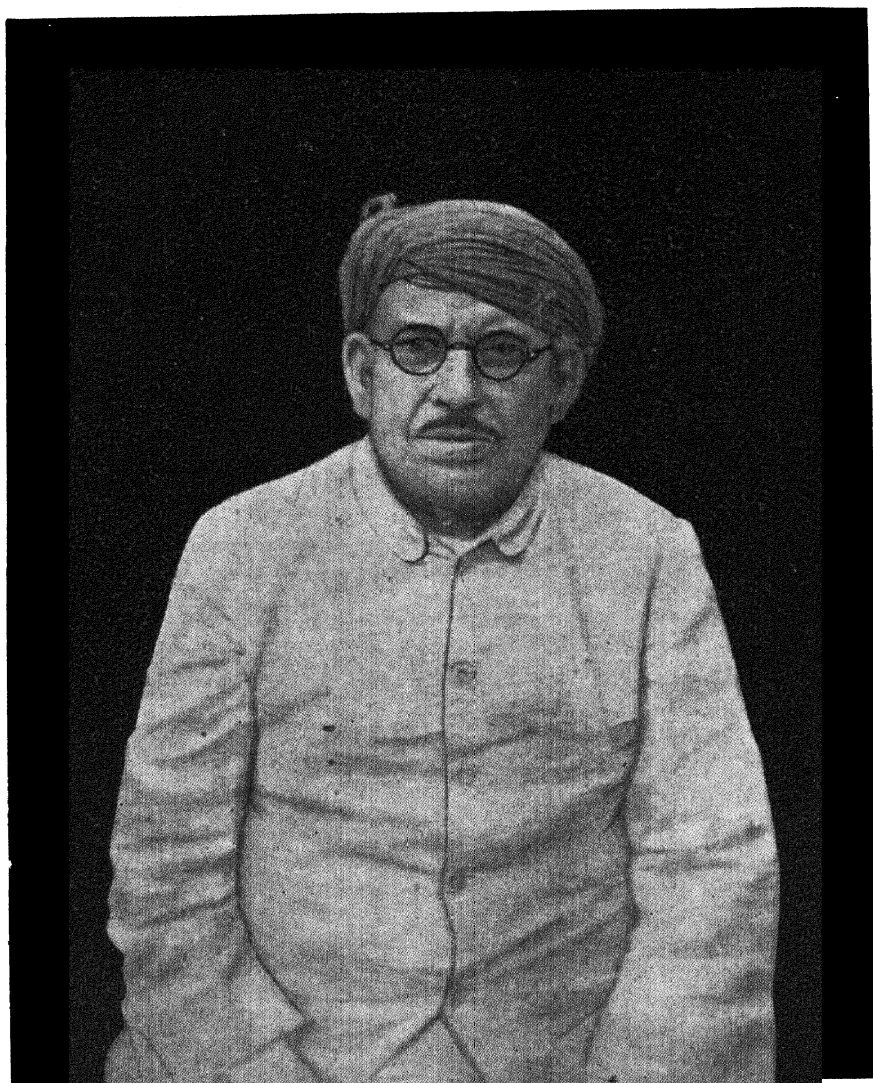
स्व० महा महोपाध्याय डा० श्री गौरी शंकर ओझा

टॉड साहब का जीवन चरित्र

भारतवर्ष में प्राचीन काल से ही इतिहास लिखने की प्रथा न होने के कारण सन् इसवी की उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ काल तक प्रसिद्ध राजपूत जाति एवम् राजपूताने का इतिहास जानने के लिए कुछ भी योग्य साधन न थे। राजपूत जाति के परम हितैषी कर्नेल जेम्स टॉड ने जब से राजपूताने में अपना कदम रखा, तब से ही उनके चित्त में राजपूत जाति के इतिहास के अभाव को दूर करने का विचार उत्पन्न हुआ, जिससे पच्चीस वर्षों के सतत परिश्रम से उन्होंने पूर्ण कर राजपूतों की कीर्ति के जय-स्तम्भ रूप राजस्थान के इतिहास को प्रकट किया। उन्होंने अपना यह अपूर्व ग्रंथ ऐसे समय में लिखा था, जब कि कुछ भी सामग्री कहीं से तैयार मिलने की सम्भावना ही नहीं थी। × × टॉड साहब की इस पुस्तक में कई स्थानों पर परिवर्तन करने की आवश्यकता अवश्य रही। फिर भी, उनका यह ग्रंथ अब तक राजपूत जाति तथा राजपूताना के लिए प्रमाण रूप माना जाता है।

कर्नेल जेम्स टॉड, स्कॉटलैण्ड के निवासी मिस्टर जेम्स टॉड के दूसरे पुत्र और हेनरी टाड के पौत्र थे। उनका जन्म २० मार्च १७८२ ईसवी को इंगलैण्ड के इस्लिंगटन नामक स्थान में हुआ था। टॉड साहब के मामा मिस्टर पेट्रिक हेटली ने, जो बंगाल के सिविलियन थे, उनको ईस्ट इण्डिया कम्पनी के सैनिक उम्मेदवारों में भरती करा दिया था और वे सत्रह वर्ष की अवस्था में बंगाल भेज दिये गये थे। उसके बाद उनकी बदली मुहिम में जाने वाली जल-सेना में हो गयी थी। उस मौके पर कुछ समय तक उनको एक जहाज की जल-सेना में काम करना पड़ा था। उसके बाद कलकत्ता, हरिद्वार होते हुए उनका तबादला देहली के लिए हो गया था।

इञ्जीनियरिंग के काम में कुशल होने के कारण सन् १८०१ ईसवी में देहली के पास पुरानी नहर की पैमाइश करने का काम उनको सौंप दिया गया। इसके बाद वे मिस्टर मर्सर के साथ रहने वाली अँगरेजी सेना के एक अधिकारी बना दिये गये। उस समय तक योरोपियन विद्वानों को राजपूताना और उसके आस-पास के प्रदेशों का भूगोल सम्बन्धी ज्ञान बहुत ही कम था और उनके बनाये हुए नकशों में प्रमुख स्थानों के स्थान भी सही-सही न थे। मिस्टर रेनल ने उन भूलों के संशोधन का कुछ काम किया था, परंतु वे नकशे सही न बन पाये थे। × × टाड साहब पैमाइश का काम करते हुए १८०६ ईसवी के जून महीने में एक अँगरेजी राजदूत के साथ उदय पुर पहुँच गये। इसी समय उनके मन में यह भाव पैदा हुआ कि राजपूताना और उसके आस-पास के प्रदेशों का एक उत्तम नकशा तैयार किया जाय। इसी विचार से उनको जहाँ कहीं राजपूताना में जाने का अवसर मिला, वे अपना बहुत-सा समय इसी काम में खर्च करने लगे और उन प्रदेशों के इतिहास, जनश्रुति और शिला-लेखों का भी वे यथासाध्य संग्रह करने जाते थे। इस इतिहास की सामग्री के संग्रह का कार्य यहीं से आरम्भ हुआ।

थोड़े अरसे में टाड साहब ने इस विस्तृत प्रदेशों के इतने नकशे तैयार किये कि उनकी ग्यारह जिल्दें बन गयीं। उस समय राजपूताना में मराहठों का जोर बढ़ा हुआ था और यहाँ के रईसों तथा सरदारों में भी परस्पर फूट फैली हुई थी। मराठों के आतंक और सरदारों की फूट

के कारण देश की दुर्दशा हो रही थी। होलकर और सींधिया की लूट से मुल्क वीरान हो रहा था। टाड साहब ने यह देखकर मुल्क की रक्षा करने का संकल्प दिया। सन् १८०७ से १८१३ ईसवी तक लार्ड मिन्टो हिन्दुस्तान के गवर्नर-जनरल रहे। उन्होंने देशी रियासतों के मामलों में किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं किया। फल-स्वरूप, राजपूताना लुटेरों का घर बन गया। टाड के दिल में राजपूताना की अशान्ति मिटाने की प्रबल इच्छा थी। इसलिए अपनी सरकार की आज्ञा लेकर वे एक अंगरेजी सेना के अधिकारी बन गये और अनेक लड़ाइयों में उन्होंने अत्याचार करने वाली देशी रियासतों की फौजों को पराजित किया। पिंडारों और मराठों के उपद्रव मिटाने पर सरकार ने राजपूताना के राज्यों के साथ संधि करना आरम्भ किया और टाड साहब को कई देशों की रियाशतों का पोलिटिकल एजेण्ट बना दिया।

सन् १८१९ ईसवी के अक्टूबर महीने में टाड साहब जोधपुर को रवाना हुए और नाथद्वारा कुम्भलगढ़, घाणेराव, नाडोल में होते हुए वहाँ पहुँच गये। वहाँ पर उन्होंने दो शिला-लेखों की खोज की और ताम्र पत्रों, हस्तलिखित पुस्तकों तथा सिक्कों को प्राप्त किया। इसी प्रकार का कार्य पुष्कर और अजमेर में भी उनका हुआ। इन्हीं दिनों में टाड साहब तिल्ली के बढ़ जाने बीमार पड़े। लेकिन इस इतिहास की सामग्री जुटाने का काम बराबर काम करते रहे। एक दिन जब उनकी तिल्ली में साठ जोंके लगी हुई खून पी रही थीं, उस समय भी वे चारपाई पर लेटे हुए ब्राह्मणों और पटेलों से बातें करते हुए प्राचीन ऐतिहासिक घटनाओं को सुन कर लिखने का काम करते रहे। सरकारी काम करते हुए टाड साहब उस खोज में बरावर लगे रहे, जो इस इतिहास के लिए जरूरी थी। स्थान-स्थान पर उनको शिला लेख, सिक्के और इस प्रकार की दूसरी चीजें मिलीं, जो 'राजस्थान का इतिहास' लिखने के लिए बहुत काम की साबित हुई। उन्होंने गुफाओं और खण्डहरों के भीतर जाकर बहुत कुछ खोज की और चट्टानों पर खुदे हुए लेखों को प्राप्त किया।

टाड साहब को स्वदेश छोड़े हुये बाईस वर्ष बीत चुके थे। अपने सौजन्य के कारण वे सब के इस देश में प्रिय बन गये थे। राजपूताना में पहुँच कर उन्होंने सब से पहले वहाँ के भूगोल और नकशों के काम को पूरा किया और उसके बाद वे राजस्थान के इतिहास की सामग्री जुटाने में लग गये थे। उनको क्षत्रीत्व से प्रेम था और इस देश के राजपूतों की वीरता को सुनकर वे बहुत प्रभावित हुए थे। राजपूताना के बहुत-से भागों में पहुँचकर उन्होंने इस प्रदेश के पुराने इतिहास की सामग्री एकत्रित की। वे जहाँ कहीं पहुँचते, बड़े, बूढ़ों और जानकारों के साथ बैठकर बातें करते और जो काम की बातें मालूम होतीं, उन्हे वे उसी समय लिख लेते। प्राचीन सिक्कों, शिला लेखों और इस प्रकार की दूसरी सामग्री को खोजने तथा एकत्रित करने के लिए उन्होंने बहुत-से बड़े-बड़े नगरों में अपने एजेन्ट नियत किये थे, जो ग्रीक, शक और दूसरे प्राचीन राजवंशियों के सिक्के एकत्र कर उनके पास पहुँचाया करते थे। जैन मंदिरों, राजाओं और प्रतिष्ठित पण्डितों की प्राचीन हस्तलिखित पुस्तकों के संग्रह वे बड़ी रुचि से देखते और उनकी उपयोगी सामग्री लेने का काम करते थे। महाराणा भीमसिंह ने इतिहास सम्बन्धी सामग्री एकत्र करने में टाड साहब को बड़ी सहयता दी। उन्हीं के द्वारा पुराणों, महाभारत, रामायण, पृथ्वीराज रासो आदि अनेक पुस्तकों की सामग्री टाड साहब को प्राप्त हुई थी। राजपूताना के राजवंशियों की ख्याति, पृथ्वीराज रासो, खुम्भाण रासो, हम्मीर रासो, रतन रासो, विजय विलास, सूर्य प्रकाश, जगत विलास, जय विलास, राज प्रकाश, राज प्रशस्ति, नवसाह सौक चरित्र, कुमार पाल चरित्र, मान चरित्र, हमीर काब्य, राजावली, राजतरंगिणी, जयसिंह

कल्पद्रुम, राजवंशों की वंशावली आदि अनेक प्रकार की बहुत सी सामग्री बड़े परिश्रम के साथ, टाड ने एकत्रित की थी। अनेक प्रकार के काव्यग्रंथ, नाटक, व्याकरण, कोष, ज्योतिष, शिल्प, माहात्म्य और जैन धर्म सम्बन्धी अनेक पुस्तकें तथा अर्बी, फारसी भाषा की कई हस्तलिखित ऐतिहासिक किताबों का भी उत्तम संग्रह उन्होंने किया था। बहुत से स्थलों के शिला-लेखों, ताम्रपत्रों की प्रतियाँ, बहुत सी प्राचीन मूर्तियां और बीस हजार के करीब प्राचीन सिक्के अपने इस इतिहास की सहायता के लिए उन्होंने प्राप्त किये थे।

सन् १८२२ ईसवी की १ जून को अपने देश के लिए टाड साहब ने उदयपुर से प्रस्थान किया था। उसके पहले ही उन्होंने अपने इस ग्रंथ 'राजस्थान' का ढाँचा तैयार कर लिया था। X X टाड साहब ने राजपूताना का खूब भ्रमण किया और कोई भी प्रसिद्ध नगर और स्थान उन्होंने बाकी नहीं रखा। इन यात्राओं में आश्चर्य जनक सामग्री उनको प्राप्त हुई। वेरावल स्थान के एक छोटे-से मंदिर में गुजरात के राजा अर्जुन देब के समय का एक बड़ा ही उपयोगी लेख उन्हें मिला। सोमनाथ घूमते हुए वे जूनागढ़ पहुँच कर प्रसिद्ध प्राचीन बौद्ध गुफाओं के गिरनार के पास एक बड़ी चट्टान पर अशोक की धर्म आज्ञाओं के पास अनेक प्राचीन राजाओं के प्राचीन लेख देखे। परन्तु इन मिले हुए लेखों का पढ़ने वाला उन्हें कोई न मिला। १४ जनवरी १८२३ ई० को वे बम्बई पहुँच गये। अपनी इस सम्पूर्ण यात्रा का संग्रह उन्होंने "ट्रेवल्स इन वेस्टर्न इंडिया" नामक अपनी पुस्तक में प्रकाशित किया।

बम्बई से रवाना होकर वे इंगलैण्ड चले गये। वहाँ पर सन् १८२३ ईसवी के मार्च महीने में 'एशियाटिक सोसाइटी' नामक सभा की स्थापना हुई थी। वहाँ जाकर आप उसके सदस्य हो गये और कुछ दिनों के बाद वे उसके पुस्तकाध्यक्ष बना दिये गये। उस सभा उन्होंने अपने इस संग्रह का एक निबंध पढ़ा। उसे लोगों ने बहुत पसंद किया। इसलिए कि उस समय तक योरप के विद्वान राजपूत जाति के इतिहास से अपरिचित थे।

१६ नवम्बर १८२६ ईसवी को टाड साहब ने अपनी चवालीस वर्ष की अवस्था में लण्डन नगर के डाक्टर क्लटर वक की पुत्री से विवाह किया और उसके कुछ दिनों के बाद दोनों योरप के देशों के भ्रमण को चले गये। सन् १७२७ के मई मास के जनरल एशियाटिक में उनका एक लेख प्रकाशित हुआ और सन् १८२८ में उन्होंने अपने दो निबंध रायल एशियाटिक सोसाइटी नामक सभा में पढ़े।

सन् १८२६ ईसवी में टाड साहब ने 'राजस्थान' के इतिहास की पहली जिल्द अपने व्यय से छपवा कर प्रकाशित की और सन् १८३२ में उन्होंने उसकी दूसरी जिल्द प्रकाशित की। इस इतिहास से योरप, अमेरिका और हिन्दुस्तान के पढ़े-लिखे लोगों में उनकी बहुत ही प्रशंसा हुई और राजपूत जाति की कीर्ति सर्व भूमण्डल में फैल गयी। इंगलैण्ड में रहने के समय टाड साहब का स्वास्थ्य ठीक न रहने पर भी वे अपना समय विद्यानुराग में ही व्यतीत करते रहे। 'राजस्थान का इतिहास' छप जाने के बाद, उन्होंने चंद बरदाई के 'पृथ्वीराज रासो' का अंगरेजी अनुवाद छपवाने के लिए नमूने के तौर पर संयोगिता के कथानक को अंगरेजी कविताओं में लिखा और उसे छपवाकर प्रकाशित किया, जिसे वहाँ के लोगों ने बहुत पसंद किया।

टाड साहब का स्वास्थ्य बिगड़ने के बाद फिर सम्हल न सका। १६ नवम्बर सन् १८३५ को लण्डन की लाम्बर्ट स्ट्रीट के साहूकार के यहाँ उनकी एकाएक मिर्गी का आक्रमण हुआ। उसमें २७ घटे तक मूर्छित रहने के बाद १७ नवम्बर सन् १५३५ को ५३ वर्ष की अवस्था में अपनी स्त्री, दो पुत्रों और एक पुत्री को छोड़कर टाड साहब ने इस संसार से प्रयाण किया। उनका कद मध्यम

दर्जे का और शरीर पुष्ट था। वे सदा प्रसन्न चित्त रहा करते थे। उनके जीवन में सादगी थी। राजपूताना के लोगों के बीच बैठ कर जाड़े में वे घंटों आग तापते और उन लोगों की बातें सुनते थे। रास्ते में किसी दुखिया को देखकर उसकी सहायता करते। वे अपनी ख्याति के लिए कोई काम न करते थे। पिंडारों के साथ लड़ाई में विजय के बाद लूट के माल से कोटा से छै मील पूर्व एक पुल बनवाया गया था। उस पुल का नाम लोग 'टॉड साहब का पुल' रखना चाहते थे। लेकिन टॉड ने इसको पसंद न किया और उनकी सलाह से उस पुल का नाम 'हेस्टिंग्स ब्रिज' रखा गया। इसी प्रकार उजड़े हुए भीलवाड़े के फिर बसाये जाने पर लोगों ने उसका नाम टॉडगंज रखना चाहा तो टॉड साहब ने इनकार कर दिया और कहा कि उसका उद्धार महाराणा भीमसिंह की उदारता से हुआ है। इसलिए उसका श्रेय राणा को ही मिलना चाहिए। टाड साहब राजपूतों की वीरता की प्रशंसा करते थे। लेकिन उनके अधिक विवाहों, उनकी अफीम खाने की आदतों और आलस्य में पड़े रहने के उनके स्वाभावों के सम्बन्ध में वे उनको उपदेश दिया करते थे। टाड साहब वीर और चरित्रवान थे और इसीलिए वे पराक्रम तथा चरित्र बल के समर्थक थे।

टॉड साहब का जीवन चरित्र बहुत बड़ा है और वह पढ़ने ही नहीं बल्कि समझने के योग्य है। उन्होंने इस इतिहास के लिखने के साथ-साथ अपनी इस मनुष्यता का परिचय दिया है, वह संसार में बहुत कम मिलता है। टॉडसाहब भारतवर्ष में राजस्थान का इतिहास लिखने के लिए नहीं आये थे। लेकिन उन्होंने यहाँ आकर जो कुछ देखा, उससे उन्हें मालूम हुआ कि योरप के लोगों को भारतवर्ष के सम्बन्ध में और विशेषकर इस देश के राजपूतों के सम्बन्ध में बहुत बड़ी गलतफहमी है। उस गलतफहमी के कारण योरप के लोगों ने इस देश की उपेक्षा कर रखी है। उसको दूर करने के लिए टॉड साहबने इतिहास का यह महान ग्रंथ लिखा और लिखा इतिहास की बहुत बड़ी योग्यता के साथ नही, बल्कि उस मनुष्यता के साथ जो आराधना के योग्य है। उसकी यह योग्यता इस ऐतिहासिक ग्रंथ के प्रत्येक पन्ने में है।

'टॉड साहब का जीवन चरित्र तो पाठक इतिहास के इस ग्रंथ में पढ़ेंगे ही। यहाँ पर थोड़ी-सी पंक्तियों के साथ हम टाड साहब का परिचय देने के लिए इतना ही लिखना चाहते हैं कि वे गरीबों से प्रेम करते थे। पीड़ितों के साथ बैठकर अपनी सहानुभूति प्रकट करते थें। राजपूतों की कमजोरियों पर अफसोस करते थे और उनको समझा-बुझाकर अच्छी जिन्दगी बनाने के लिए आदेश करते थे। राजपूत अफीम का सेवन करते थे। उससेउनकी शक्तियां नष्ट हो रही थीं। इसलिए अफीम का सेवन छोड़ देने के लिए वे राजपूतों से प्रतिज्ञायें करवाते थे। टॉड साहब की मनुष्यता और कर्त्तव्य परायणता की प्रशंसा नहीं की जा सकती। वे कहा करते थे: मैं इस देश के महलों से नहीं—मिट्टी से प्रेम करता हूँ, वृक्षों और उनकी शाखाओं से स्नेह रखता हूँ। एवम् इस देश के स्त्री-पुरुषों के साथ मैं अपना आत्मिक सम्बन्ध रखता हूँ। टॉड साहब की इन बातों ने उनको इस देश के रहने वालों के साथ सदा के लिए स्नेह की मजबूत जंजीर में बांध दिया था, संसार में इतिहासकार बहुत मिलेंगे लेकिन किसी विद्वान इतिहासकार में यह मनुष्यता न मिलेगी।

—गौरीशंकर हीराचंद ओझा

इस ग्रन्थ के मूल लेखक

कर्नल जेम्स टॉड

प्रस्तावना

इस बात पर सभी लोग आमतौर पर विश्वास करते हैं कि भारतवर्ष का कोई इतिहास नहीं है। लेकिन यह बात सही नहीं है। क्योंकि अबुल फजल ने अपनी ऐतिहासिक पुस्तकों में हिन्दुओं के प्राचीन इतिहास का वर्णन किया है। यदि हिन्दुओं का कोई इतिहास नहीं था तो उसे वह सामग्री कहाँ से मिली। मिस्टर विलसन ने 'राजतरंगिणी' नामक काश्मीर के इतिहास का अनुवाद करके लोगों के भ्रम को बहुत-कुछ मिटाने का काम किया है। हिन्दुओं के इस प्रकार के ग्रंथ इस बात का प्रमाण देते हैं कि इतिहास लिखने की परिपाटी से प्राचीन काल में हिन्दू अपरिचित न थे। खोजने के बाद इस बात का भी पता चलता है कि प्राचीनकाल में हिन्दुओं के पास आज की अपेक्षा ऐसी अधिक पुस्तकें थीं, जो प्राचीन काल के हिन्दुओं के इतिहास को संग्रह करने में मदद कर सकती थीं। कोलब्रुक, विलकिन्सन, बिलसन और दूसरे विद्वानों ने भारतवर्ष के ऐतिहासिक साहित्य को संसार के सामने लाने का बहुत कुछ काम किया है। फिर भी संसार का कोई भी विद्वान इस बात का दावा नहीं कर सकता कि वह भारत के ऐतिहासिक विज्ञान के दरवाजे तक पहुँचने के सिवा कुछ अधिक काम कर सका है। भारत के अनेक भागों में विशाल पुस्तकालय जो मुसलमान आक्रमणकारियों के विध्वंस से बच गये हैं, अब तक मौजूद हैं और उनके हजारों ग्रंथ आज भी देखने को मिलते हैं।

इतना सब होने पर भी, इस देश में ऐतिहासिक ग्रंथों का यदि अभाव है तो उसका कारण है। यह मानना पड़ेगा कि प्राचीन काल में हिन्दू एक सभ्य और शिक्षित जाति थी। उसने साहित्य, संगीत, शिल्प और अनेक दूसरी कलाओं में बड़ी योग्यता प्राप्त की थी। फिर यह कैसे माना जा सकता है कि उसको अपनी ऐतिहासिक घटनाओं, राजाओं के व्यवहारों और राज्य-शासन के कार्यों के लिखने का ज्ञान न रहा हो। महमूद गजनवी के आक्रमण से लेकर आठ सौ वर्षों तक भारत की अवस्था जिस प्रकार संकट में रही, जिस प्रकार इस देश के प्रमुख नगर निर्दयी आक्रमणकारियों के द्वारा लूटे गये और जिस प्रकार उसके साहित्य की होलियाँ जलायी गयीं, उन पर एक बार नजर डालने के बाद, हमारे सामने वे सब दृश्य अपने आप आकर उपस्थित हो जाते हैं जब इस देश के राजा-महाराजा अपनी राजधानियों से भगाये जाते थे और वे अरक्षित अवस्था में एक दुर्ग से दूसरे दुर्ग में जाकर साँस लेते थे। वे निर्जन बनों में जाकर अपने परिवारों और प्राणों की रक्षा करते थे, क्या यह समय ऐसा था, जब इस देश के लोग उस समय की ऐतिहाहिक घटनाओं के लिखने का काम कर सकते?

रोम और यूनान के ऐतिहासिक ग्रंथों की तरह हिन्दुओं के ग्रंथों की आशा करना एक बड़ी भूल है। हिन्दुओं के समस्त ग्रंथ जीवन का ऐसा स्रोत प्रवाहित करते हैं, जो बाकी संसार के साहित्य से बिल्कुल भिन्न है। इस अवस्था में हिन्दुओं का इतिहास भी कुछ इसी प्रकार का होना चाहिए। हिन्दुओं का साहित्य और उनकी संस्कृति संसार के दूसरे देशों से भिन्न है। हिन्दुओं के दर्शन-शास्त्र, उनकी कविता तथा उनके अन्यान्य ग्रंथ उनकी स्वतंत्रता का परिचय देते हैं। यही मौलिकता और स्वतंत्रता उनके इतिहास में भी अधिक सम्भव है। क्योंकि उनके इतिहास की रचना की सम्भावना किसी अन्य प्रेरणा के आधार पर नहीं की जा सकती। हिन्दुओं के ग्रंथों में

धर्म की घनिष्टता अधिक है। इसके साथ ही हमें यह स्वीकार करना चाहिए कि इंगलैण्ड और फ्रांस के साहित्य की गतिविधि जब तक योरप के प्राचीन साहित्य की पुस्तकों के अध्ययन से ठीक नहीं की गयी थी, उस समय तक इन दोनों देशों की इतिहास ही नहीं, बल्कि समस्त योरप की सभ्य जातियों के इतिहास भी वैसे ही अव्यवस्थित और नीरस थे, जैसे कि प्राचीन राजपूत जाति के।

भारत में ऐतिहासिक सामाग्री का अभाव होने पर भी यहाँ बहुत-से ऐसे ग्रंथ पाये जाते हैं, जिनके मंथन और संशोधन करने से इतिहास का सामग्री बहुत-कुछ एकत्रित की जा सकती है। इन ग्रंथों में पुराण हैं, जिनमें राजवंशों के वर्णन हैं, लेकिन कथाओं, रूपकों और बहुत-सी असम्भव बातों के साथ मिल जाने से वे वर्णन अस्पष्ट हो गये हैं। उनके मंथन का कार्य आसान नहीं है। भारत की ऐतिहासिक सामग्री के लिए उसके युद्ध सम्बन्धी काव्य भी, सहायता करते हैं। लेकिन कविता और इतिहास दो चीजें हैं। साहित्य में दोनों की शैली अलग-अलग हैं। राजा और कवि के बीच स्वार्थ का एक समझौता रहता है। उसके फल-स्वरूप, कवि प्रशंसा के पुरस्कार में धन प्राप्त करता है और उसके ऐसा करने से ऐतिहासिक तत्वों की ईमानदारी में अन्तर आ जाता है।

कवि का पक्षपात और विद्रोह— दोनों ही इतिहास के लिए घातक हैं। वह अपनी दोनों अवस्थाओं में सत्य से दूर निकल जाता है। युद्ध-सम्बन्धी काव्यों में इस प्रकार के दोष स्वाभाविक रूप से आते हैं। काव्य-ग्रथों में राजपूतों के इतिहास को इन दोषों से मुक्त नहीं समझा जा सकता। इस लिए ऐसे ग्रंन्थों में मंथन और संशोधन की आवश्यकता अधिक है। इस प्रकार के दोषों के होने पर भी भारतीय भाटों की पुस्तकों से इतिहास की बहुत-सी सामग्री प्राप्त की जा सकती है। मंदिरों के दान, भेंट और उनके निर्माण सुधार के सम्बन्ध में जो लेख मिलते हैं, उनमें भी इतिहास की बहुत-सी चीजें मिलती हैं। इसी प्रकार की खोज करने से धार्मिक स्थानों और कथाओं में भी बहुत-सी चीजें ऐसी पायी जाती हैं, जो इतिहास लिखने में सहायता करती हैं। जैनियों की धार्मिक पुस्तकों में कुछ ऐतिहासिक चीजें पायी जाती हैं। इस देश की धार्मिक पुस्तकों में आडम्बर अधिक है। लेकिन एक चतुर अन्वेषक अपने गम्भीर मंथन से काम की सामग्री प्राप्त कर सकता है। इन ग्रंथों में ब्राह्मणों ने अपनी प्रधानता जिस प्रकार समाज पर कायम कर रखी है, उसमें देशवाशियों के अज्ञान के सिवा और कुछ नहीं है। प्राचीन काल में मिश्र की भी यही अवस्था थी। इन दोनों देशों में राजाओं और धार्मिक नेताओं के बीच एक ऐसा समझौता काम करता था, जिससे अप्रकट रूप में देश के सर्व-साधारण को अज्ञान के अंधकार में रखकर सदा अधीनता में रखा जा सके।

भारतवर्ष में युद्ध सम्बन्धी जो काव्य ग्रंथ हैं, वे इस देश के इतिहास की सामग्री देने में सहायता करते हैं। कवि मनुष्य जाति के प्राचीन इतिहासकार माने जाते हैं। साहित्य में इतिहास का एक अलग स्थान बनने के समय तक कवि सही घटनाओं के लिखने का काम करते रहे। भारत वर्ष में व्यास के समय से लेकर मेवाड़ के प्रसिद्ध इतिहास लेखक बेनीदास के समय तक सरस्वती देवी की पूजा होती रही। पश्चिमी भारत में अन्य लेखकों के साथ-साथ कवि इतिहास के प्रधान लेखक रहे हैं। लेकिन उनकी कविता की भाषा एक अजीब होती है और जब तक उनकी कविताओं का अर्थ न किया जाय अथवा कोई उनका अर्थ करने वाला न हो तो वे कवितायें समझ में नहीं आती। उन कवियों में एक बात और भी है। उनमें अतिशयोक्ति अधिक रहती है और उनकी इस अतिशयोक्ति से इतिहास का सही अंश नष्ट हो जाता है। इस दशा में प्राचीन काल में जिन कवियों ने ऐतिहासिक घटनाओं का उल्लेख अपने काव्यों में किया है, उनके ग्रंथो से ऐतिहासिक सामग्री

लेने का कार्य बड़ी सावधानी का होता है। अगर ऐसा न किया गया तो इतिहास, इतिहास न हो कर कविताओं और कहानियों के रूप में रह जाता हैं।

प्राचीन काल में कवियों ने इतिहासकारों के स्थान की पूर्ति की थी। परन्तु उनमें कुछ त्रुटियाँ थी। वे त्रुटियाँ अतिशयोक्ति तक ही सीमित न थीं। उनमें खुशामद की मनोवृत्ति भी थी और कवि की प्रसन्नता एवम् अप्रसन्नता—दोनों ही इतिहास के लिए जरूरी नहीं है। इतिहासकार मित्र और शत्रु—दोनों के लिए एक-सा रहता है और अपने इस कार्य में वह जितना ही ईमानदार रहता है, उतना ही वह श्रेष्ठ इतिहासकार होता है। खुशामद से इतिहास की मर्यादा नष्ट हो जाती है और वही परिस्थिति उसकी अप्रसन्नता में पैदा होती है।

प्राचीन काल में राजा और नरेश अपनी प्रशंसा चाहते थे और इसके लिए वे कवियों को अपनी सम्पत्ति से खुश करते थे। कवि को भी अधिकांश अवसरों पर सम्पत्ति के सामने आत्म-समर्पण करना पड़ता था। यह मनोवृत्ति कवि और इतिहासकार के लिए अत्यन्त भयानक है। यद्यपि इस प्रकार का अपराध प्राचीन काल के सभी कवियों को नहीं लगाया जा सकता। उस समय के अनेक कवियो ने अपनी कविताओं में इतिहास की सही घटनाओं का उल्लेख किया है। लेकिन पक्षपात अधिक देखने को मिलता है। इसके अपराधी इस देश के कवि ही नहीं माने जा सकते। दूसरे देशों में भी इतिहास के सम्बन्ध में कुछ इसी प्रकार के पक्षपात देखने को मिलते हैं। यहाँ पर इस विषय में अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं है।

ऐतिहासिक सामग्री के लिए इस देश में दूसरे साधन भी हैं। भौगोलिक वृत्तान्त, काव्यमय राजाओं के चरित्र, घटनाओं को लेकर लिखे गये लेख, विभिन्न प्रकार की धार्मिक पुस्तकें भी इस कार्य में सहायता करती हैं। ऐतिहासिक काव्य ग्रंथ, स्मृति पुराण, टिप्पणियाँ, जनश्रुतियाँ शिलालेख सिक्के और ताम्रपत्र—जिनमें बहुत-सी ऐतिहासिक बातों के उल्लेख मिलते हैं—इस कार्य में सहायक साबित होते हैं। परन्तु इस प्रकार के सभी साधन इतिहास के अन्वेषक से बहुत सावधानी चाहते हैं। इस बात को कभी न भूलना चाहिए कि आज का इतिहास , साहित्य में अपना अलग से स्थान रखता है।

भारतवर्ष में पैर रखते ही मैंने इस बात का निर्णय कर लिया था कि एक ऐसी जाति के सम्बन्ध में, जिसका ज्ञान योरप के लोगों को बिल्कुल नहीं के बराबर है, मैं ऐतिहासिक खोज का काम अवश्य करूँगा। अपने इस निर्णय के अनुसार, यहाँ आते ही मैंने अपना कार्य आरम्भ कर दिया था। पूरे दस वर्षों तक एक जैन विद्वान की सहायता लेकर उन पुस्तकों की सामग्री लेने का काम करता रहा, जिनमें राजपूतों के इतिहास की कोई भी घटना मिल सकती थी। यह कार्य साधारण न था और उसके लिए अधिक-से-अधिक परिश्रम की आवश्यकता थी। इस कार्य और परिश्रम में मुझे सुख मिलता था। लेकिन मेरे स्वास्थ्य ने अधिक साथ न दिया और रूग्नावस्था ने इस देश से लौट जाने के लिए मुझे मजबूर किया।

यदि यह स्वीकार करना पड़े कि कवियों ने अपने वर्णन में अतिशयोक्ति से काम लिया है तो उसके साथ यह भी स्वीकार करना पड़ेगा कि उस समय राजपूत जाति का वैभव निश्चित रूप तरक्की पर रहा होगा। अनेक शताब्दियों तक एक वीर जाति का अपनी स्वतंत्रता के लिए लगातार युद्ध करते रहना , अपने पूर्वजों के सिद्धान्तों की रक्षा के लिए प्राणोत्सर्ग करना और अपनी मान-मर्यादा के लिए बलिदान हो जाने की भावना रखना, मनुष्य के जीवन की ऐसी अवस्था है , जिसको देखकर और सुनकर शरीर रोमाञ्च हो जाता है। इस देश के ऐतिहासिक स्थानों में पहुँच कर जो कुछ मैंने सुना और समझा है,यदि उसका सही-सही चित्र खींचकर मैं अपने पाठकों के सामने

रख सकूं तो मुझे विश्वास है कि मैं अपने देश वालों की उदासीनता को दूर कर सकूंगा, जिसके कारण वे इस देश के इतिहास को जानने और खोजने की चेष्टा नहीं करते ।

इस देश के प्राचीन नगरों के खंडहरो के बीच में बैठ कर मैंने उनके विध्वंस होने की कहानियाँ ध्यान देकर सुनी हैं और उनकी रक्षा करने के लिए इस देश के जिन राजपूत वीरों ने अपने जीवन की आहुतियाँ दी हैं, उनको सुनकर मैं अवाक होकर रह गया हूँ । इस देश के इतिहास को समझने के लिए मैंने यहाँ के उन स्थानों को स्वयं जाकर देखा है, जहाँ पर युद्ध हुए हैं अथवा किसी विदेशी शत्रु ने यहाँ पर आक्रमण किया है । घटननास्थलों को देखकर और उस समय की बहुत-सी बातों को सुनकर भी मैंने इतिहास की सामग्री जुटाने का काम किया है ।

राजस्थान का इतिहास लिखते हुए मैंने इस बात को स्वीकार किया है कि राजस्थान और योरप की वीर जातियों का जन्म-स्थान एक ही था । मैंने भारत में जागीरदारी की प्रथा ठीक वैसी ही पायी है, जैसी कि प्राचीन योरप में प्रचलित थी और उसके टूटे-फूटे अंश आज भी हमारे देश के राज्य शासन में पाये जाते हैं । अपने जीवन में मैंने जो ऐतिहासिक खोज की है, वह मुझे इस सत्य को स्वीकार करने के लिए बाध्य करती है । लेकिन सभी लोग मेरी इस विचारधारा के साथ सहमत न होंगे, यह भी मैं जानता हूँ । यद्यपि इसको स्वीकार करने में मैंने पक्षपात अथवा हठधर्मी से काम नहीं लिया । अब पुराना संसार बदल चुका है और नया संसार ऐतिहासिक खोजों पर अधिक विश्वास करने लगा है । अब अधिक समय तक उसे अंधकार में नहीं रखा जा सकता । जो लोग इतिहास की उस सच्चाई पर विश्वास नहीं करना चाहते, उनके समझने के लिए मैंने बहुत-सी बातें प्रमाण-स्वरूप इस पुस्तक में लिखी है । संदेह और विवाद की बहुत-सी बातें पैदा की जा सकती है । लेकिन नवीन खोजों पर विश्वास करने वाले निश्चित रूप से इन बातों को महत्व देंगे, ऐसा मैं विश्वास करता हूँ । ऐसा करने पर ही पाठक ग्रंथकार के अनुसंधान और परिश्रम की प्रशंसा करेंगे ।

इस इतिहास में अनेक कमजोरियाँ और त्रुटियां है, उन्हें मैं जानता हूँ । उनके लिए मैं सर्व साधारण से क्षमा माँगता हूँ । इन त्रुटियों के लिए मैं और कोई बात नहीं कहना चाहता, सिवा इस के कि मेरा स्वास्थ्य अधिक समय तक काम न कर सका, जैसा कि मैंने पहले भी लिखा है । इसका परिणाम यह हुआ है कि वर्तमान अवस्था में भी इस पुस्तक का सर्वसाधारण के सामने लाने का कार्य मेरे लिए बहुत कुछ कठिन और असाध्य हो गया था । मैं यह साफ बताना चाहता हूँ कि मैं इस इतिहास को ऐसे साँचे में नहीं ढालना चाहता था कि जिससे उसकी बहुत सी काम की बातें पाठकों के निकट अप्रकट रूप में रह जायँ । मैं इस ऐतिहासिक ग्रंथ को परिपूर्ण नहीं समझता । इसलिए भविष्य में जो विद्वान इस इतिहास के लिखने का काम करेंगे, मैं उनको अपने इस इतिहास की सामग्री भेंट करता हूँ । मुझे इस बात की चिन्ता नहीं है कि पुस्तक बहुत बढ़ गयी है, बल्कि चिन्ता है कि उसकी कोई उपयोगी सामग्री एकत्रित करने में रह तो नहीं गयी ।

—जेम्स टॉड

विषय-सूची

भूगोल सम्बन्धी परिचय पृष्ठ ३३—३६

राजपूत जातियों का ऐतिहासिक परिचय

पहला परिच्छेद

पुराणों की सामग्री—ऐतिहासिक सामग्री देनेवाले ग्रन्थ—पौराणिक ग्रन्थों की सहायता—राजाओं के नामों में मतभेद—सृष्टि की उत्पत्ति—सभी जातियों का वर्णन—विभिन्न जातियों का विश्वास—मनुष्य जाति का इतिहास—भविष्य पुराण का वर्णन—मनुष्य जातिके इतिहासमें हिन्दुओं और यूनानियों का विश्वास—राजपूत और सीथियन लोग—उनका एक सा जीवन। पृष्ठ ३७—३६

दूसरा परिच्छेद

राजपूतों की वंशावली—उसकी खोज का काम—हिन्दू ग्रन्थो की सहायता—पुराणों की मिश्रित सामग्री—भाष्यकारों की मनमानी—उसका प्रधान कारण—बैबिलोनिया की अवस्था—भाष्यकारों के पहले भारतीय पुराण—अनुसन्धान करने वालों पर आपत्ति—भारत का प्राचीन धार्मिक नेतृत्व—ब्राह्मण और राजपूत—दोनों अधिकारी थे—हिन्दू ग्रन्थों के प्रमाण—वैवाहिक विधान—भारतीय शासन में ब्राह्मणों का स्थान—उसके उदाहरण—वर्ण व्यवस्था। पृष्ठ ३६—४१

तीसरा परिच्छेद

सूर्यवंश और चन्द्रवंश के राजाओं का वर्णन—मिश्र देश के ग्रन्थों के साथ मतभेद—प्रयाग की प्रतिष्ठा—अयोध्या के सत्तावन राजा—चन्द्रवंश का आदि पुरुष ययाति—सूर्यवंशी और चन्द्रवंशी शाखाओं का अन्तर—विदेशी लेखकों के वर्णन में राजपूतों की वंशावलियाँ—रामचन्द्र और कृष्णके बीच का समय—वंशावलीके लिए खोज का कार्य—देशी और विदेशी ग्रन्थों का अध्ययन—राजवंशों के प्राचीन समय का निर्णय—राजा हरिश्चन्द्र और परशुराम—परशुराम के द्वारा क्षत्रियों का विनाश—सूर्यवंशी और चन्द्रवंशी राजाओं के लगातार युद्ध—सूर्यवंश और चन्द्रवंश की प्रतिष्ठा का समय। पृष्ठ ४२—४४

चौथा परिच्छेद

अयोध्या और मिथिलापुरी की स्थापना—चन्द्रवंशियों के द्वारा राज्यों की प्रतिष्ठा—उनकी पहली राजधानी—कृष्ण की राजधानी कुशस्थली—कृष्ण का शत्रु शिशुपाल—सूरसेन नाम के राजा चन्द्रवंश का प्रसिद्ध राजा हस्ती—भारत में सिकन्दर के आक्रमण का समय—सिकन्दर और पोरस—पाञ्चालिक प्रदेश—कम्पिल नगर नामक राजधानी का प्रतिष्ठाता कम्पिल—कन्नौज के प्राचीन नाम—शहाबुद्दीन गोरी के आक्रमण के समय का कन्नौज—कन्नौज का सर्वनाश—इन्द्रप्रस्थ की प्रतिष्ठा—राजा दुष्यन्त और शकुन्तला। पृष्ठ ४४—४६

पाँचवाँ परिच्छेद

राजवंश का वर्णन—रामचन्द्र के वंशज—बाल्मीकि और व्यास समकालीन थे—सूर्य और चन्द्रवंश के तीन राजा—लव और कुश के वंशज सूर्यवंशी राजपूत—भागवत और पुराणों के अनुसार राजवंश—रामचन्द्र और युधिष्ठिर के बीच का समय—राजवंशों की प्रसिद्ध पुस्तके राजतरंगणी और राजावली—राजवंशों की उत्पत्ति लिखने में कल्पनाओं का आधार—षड्यन्त्रकारी

दुर्योधन की कूटनीति—राजा द्रुपद के आश्रय में पाँचों भाई पाण्डव—द्रौपदी का स्वयम्बर—प्राचीन काल में एक स्त्री के कई पतियों के होने की प्रथा—इन्द्रप्रस्थ की राजधानी युधिष्ठिर के द्वारा राजसूर्य यज्ञ का निर्णय—दुर्योधन के साथ युधिष्ठिर का जुआ और उसका परिणाम—महाभारत का समय—भील के द्वारा कृष्ण के प्राणों की हत्या—युधिष्ठिर के संवत का समय। पृष्ठ ४७—५१

छठवाँ परिच्छेद

राजस्थान के छत्तीस राजवंश—संसार की समस्त प्राचीन जातियों के जीवन की समानता—भारत में बाहर से आने वाली जातियाँ—उनका मूल स्थान—उनकी उत्पत्ति—पुराणों का वर्णन—तातारी और जर्मन लोगों का देवता—प्रसिद्ध प्राचीन राजवंशों के पूर्वज—संसार की प्राचीन जातियों के देवता एक थे—चीनी लोगों का सबसे पहला राजा—उसका जन्म और वर्णन—तातारियों, चीनियों और हिन्दुओं का आदि पुरुष एक था—उस आदि पुरुष की उत्पत्ति—शकजाति की उत्पत्ति—कास्पियन सागर के पूर्व में रहने वाली जातियाँ—उनके रहने के स्थान—संगठित होकर आक्रमण करने का अभ्यास—एशिया में भी उन जातियों के आक्रमण—प्राचीन काल में राजपूतों और योरप की जातियों के पूर्वज किसी एक ही स्थान के निवासी थे—उसके सही होने के प्रमाण—एशिया माइनर और रोमन लोगों पर आक्रमण—संसार की सभी जातियाँ प्राचीन काल में एक थीं—जिट लोगों की आबादी—प्राचीन जातियों के नामों में परिवर्तन—राजपूतों और संसार की प्राचीन जातियों की एक सी प्रथायें—बुद्ध के जन्म का समय—सभी जातियों की मूल उत्पत्ति एक थी। पृष्ठ ५२—६१

सातवाँ परिच्छेद

राजस्थान के राजवंशों का विभाजन—उनकी नामावली—राजवंशों की शाखायें—चौरासी व्यावसायिक जातियों की मौलिक उत्पत्ति—आदि काल में दो ही वंश थे, सूर्यवंश और चन्द्रवंश—गहिलोत वंशियों का सूर्यवंशी होने का दावा—सीसोदिया नाम की उत्पत्ति—गहिलोत वंश की शाखायें—कृष्ण की मृत्यु के बाद उसके बेटे और यदुवंश के लोग—यदुवंश की शाखा—कृष्ण के वंशज—युधिष्ठिर के द्वारा इन्द्रप्रस्थ की प्रतिष्ठा—बाद में दिल्ली के नाम से उसकी ख्याति—प्रसिद्ध राठौर वंश—राठौरों का प्राचीन स्थान—राठौर वंश की शाखायें—रामचन्द्र के पुत्र कुश के वंशज कुशवाहा लोग—राजपूतों के वंश और उनकी शाखायें। पृष्ठ ६२—७७

राजस्थान में जागीरदारी प्रथा

आठवाँ परिच्छेद

कानूनों का अभाव—सामन्त प्रथा में योरप और राजस्थान—असभ्य जातियाँ—जागीरदारी प्रथा का जन्म—शासन में राजपूतों की योग्यता—राजपूतों का आराध्य देव—सामन्त होने का अधिकार—वेतन के स्थान पर भूमि—राज्यों के झगड़े—कर और उसका प्रभाव—राज्यों के संघर्षों में सामन्तोंके कार्य—आपसी शत्रुता—अन्तला दुर्गकी विजय—राजा और सामन्त। पृष्ठ ७८—९८

नवाँ परिच्छेद

जागीरदारी प्रथा की घटनायें—सामन्त की नियुक्ति—मेवाड़ में भूमि के अधिकारी—सामन्तों के पट्टों का समय—किसी सामन्त के विद्रोह करने पर—भूमिया राजपूत—योरप के साथ तुलना—भूमिया सामन्तों की सुविधायें—जागीरों में पैतृक अधिकार—सामन्तों की नियुक्ति में राणा की निर्बलता जागीरों का विभाजन और परिणाम—राजपूतों के स्वभाव में राजभक्ति। पृष्ठ ९८—११३

दसवाँ परिच्छेद

राजस्थान में कर—भूमिया सामन्तों की स्वतन्त्रता—गुलामी की प्रथा में योरोप और राजस्थान—भूमि के निर्बल अधिकारी—गुलामों की जातियाँ—जर्मनी और राजस्थान में जुआ का प्रचार—बसी लोगों की गणना—राजपूतों का चरित्र—उनमें कृतज्ञता की भावना—बदला लेने की प्रवृत्ति ! पृष्ठ ११४—१२५

मेवाड़ का इतिहास

ग्यारहवाँ परिच्छेद

मेवाड़ की श्रेष्ठता—राजस्थान के राज्य—मेवाड़ के इतिहास का आधार—मेवाड़ राज्य का प्रतिष्ठाता—वहाँ के राजाओं की उपाधि राणा—राणा का वंश—मेवाड़ का सुरक्षित गौरव—लगातार आक्रमण—बल्लभीपुर का विनाश—आक्रमणकारी जातियाँ—राम के बेटे—लव का वंशज राणा का वंश—अयोध्या राम की राजधानी थी—मेवाड़ के राजवंश का प्रारम्भ—म्लेच्छों के आक्रमण के समय वहाँ पर जैन-धर्म का प्रचार—सीथिक लोगों का निवास-स्थान—भारत में अनेक जातियों का प्रवेश—हूणों का सरदार—सीथिक लोगों की राजधानी—बल्लभीपुर में म्लेच्छों के साथ राजा शिलादित्य का युद्ध—उसकी पराजय। पृष्ठ १२६—१२८

बारहवाँ परिच्छेद

राजा शिलादित्य के मारे जाने पर उसकी गर्भवती रानी पुष्पावती—पुष्पावती सती न हो सकी—उससे बालक का जन्म—कमलावती ब्राह्मणी को बालक सौंप कर रानी पुष्पावती का सती होना—ब्राह्मणी के द्वारा बालक का पालन पोषण—बालक गोह का प्रारम्भिक जीवन—बालक गोह को माण्डलीक का राज्य—गोह के नाम पर गहिलोत वंश की उत्पत्ति—नागादित्य राजा की भीलों के द्वारा मृत्यु—राजा नागादित्य के बप्पा नाम का एक तीन वर्षीय बालक—उसकी रक्षा का उत्तरदायित्व—बप्पा का बचपन—उसका स्वाभिमानी जीवन—राजकुमारी के साथ विवाह का रहस्य—उसका परिणाम—चित्तौर पर आक्रमण—बप्पा के द्वारा आक्रमणकारी की पराजय—बप्पा की ख्याति—उसका अन्तिम जीवन। पृष्ठ १२६—१३४

तेरहवाँ परिच्छेद

चित्तौर से बप्पा के चले जाने के बाद वहाँ पर एक नये युग का प्रारम्भ—मेवाड़ में राणा खुमान का शासन—भारतवर्ष की निर्बल परिस्थितियाँ—सूरत देश में जाकर वहाँ के राजा की लड़की के साथ विवाह किया—उस लड़की से बालक का जन्म—चित्तौर पर मुसलमानों का आक्रमण—वहाँ के राजा खुमान ने युद्ध करके मुस्लिम सेनापति महमूद को गिरफ्तार किया—यह महमूद कौन था—गहिलोत राजा और उनके समकालीन मुस्लिम बादशाह—सेनापति महमूद के बाद बीस वर्ष तक मुसलमानों के आक्रमण से भारतवर्ष सुरक्षित रहा—उसके बाद भारत में फिर से मुस्लिम आक्रमण। पृष्ठ १३५—१४१

चौदहवाँ परिच्छेद

तेरहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में इस देश की राजनीतिक परिस्थितियाँ—दिल्ली में तोंअर शासन का अन्त—मेवाड़ में समरसिंह के वंशजों का शासन—मरुभूमि में नाहुर का और दिल्ली में अनङ्गपाल का राज्य—जावालिस्तान से भाटी लोगों का भारत में चला आना—उनके शासन का विस्तार—दिल्ली के सिंहासन पर पृथ्वीराज—भारत का चक्रवर्ती राजा अनङ्गपाल—कन्नौज के राठौरों के साथ युद्ध में सोमेश्वर के द्वारा अनङ्गपाल की सहायता—उसका परिणाम—पृथ्वीराज को

दिल्ली के राज्य का अधिकार—राठौरों और चौहानों में भयानक ईर्ष्या—पृथ्वीराज के साथ मन्दोर के राजा की शत्रुता—चित्तौर का राजा समरसिंह पृथ्वीराज का बहनोई—भारत में शहाबुद्दीन गोरी का आक्रमण—गोरी की पराजय—उसका दूसरा आक्रमण—पृथ्वीराज की पराजय—देशद्रोही जयचन्द पर गोरी का आक्रमण—जयचन्द की मृत्यु—कन्नौज का पतन। पृष्ठ १४३—१४६

पन्द्रहवाँ परिच्छेद

चित्तौर में राणा लक्ष्मण सिंह—उसकी छोटी अवस्था में चाचा भीमसिंह का शासन—भीमसिंह की स्त्री पद्मिनी के सौन्दर्य की ख्याति—अलाउद्दीन का चित्तौर पर आक्रमण—बादशाह अलाउद्दीन ने पद्मिनी की माँग की—उसकी राजनीतिक चालें—दर्पण में पद्मिनी को देख कर लौट जाने की घोषणा—बादशाह का षड्यन्त्र—राणा भीमसिंह की गिरफ्तारी—वह शत्रु के शिविर में—पद्मिनी की योजना—बादशाह को खुशी—उसके शामियाने में चित्तौर की पालकियाँ—राणा भीम की छूट—शिविर में भयानक युद्ध—गोरा की बहादुरी—बादशाह का दूसरा आक्रमण—भयानक संग्राम—चित्तौर में युद्ध की अन्तिम तैयारी—महलों में जौहर व्रत की योजना—अन्त में चित्तौर की पराजय—राजपूत बालाओं के जीवन की होली—अरिसिंह और एक युवती—चित्तौर पर अलाउद्दीन का अधिकार। पृष्ठ १४६—१६०

सोलहवाँ परिच्छेद

राजपूतों में स्त्री का सम्मान—राणा लाखा का बुढ़ापा-बेटे के विवाह के परिहास का परिणाम—चित्तौर के शासन में खेल—राजवंश की धात्री का कर्तव्य—चित्तौर के राज्याधिकार पर राठौरों के दाँत—धात्री की स्पष्ट बातें—रानी को अपनी मूर्खता का ज्ञान—राजमाता की बढ़ती हुई शंकायें—रणमल्ल की विलासिता—राजकुमार चन्द्र की योजना—रणमल्ल का पतन—अपने निर्भीक सवारोंके साथ राजकुमार चन्द्र—राठौरोंसे चित्तौरकी रक्षा—राणा मुकुलकी हत्या। पृष्ठ १६०—१६४

सत्रहवाँ परिच्छेद

चित्तौर के सिंहासन पर राणा कुम्भ—राणा मुकुल के मरने के बाद मेवाड़-राज्य की दुरवस्था—असहाय अवस्था में मारवाड़ के राजा से कुम्भ ने सहायता की माँग—मारवाड़ के राजा की सैनिक सहायता—चित्तौर के सिंहासन पर कुम्भ का बैठना—उसके साहसपूर्ण कार्य—मेवाड़-राज्य में सार्वजनिक उन्नति—मालवा और गुजरात के नवाबों का मेवाड़ पर आक्रमण—शत्रुओं के साथ राणा कुम्भ का संग्राम—राणा कुम्भ की विजय—मालवा का नवाब-मोहम्मद खिजली चित्तौर के कारागार में—मोहम्मद खिजली की मुक्ति में राणा कुम्भ की उदारता—खिजली और राणा कुम्भ में मित्रता—मेवाड़-राज्य के चौरासी दुर्ग—राणा कुम्भ के बनवाये हुए किले—राणा कुम्भ का अयोग्य लड़का—राणा ऊदा के पतन की पराकाष्ठा—साँगा के बचपन का सङ्घर्ष। पृष्ठ १६५—१७२

अट्ठारहवाँ परिच्छेद

चित्तौर के सिंहासन पर राणा संग्रामसिंह—राज्य की कमजोरियों में सुधार—आपसी झगड़ों का अन्त—संग्रामसिंह में दूरदर्शिता, वीरता और योग्यता—मेवाड़ राज्य का विस्तार—दिल्ली का राज्य छोटे-छोटे टुकड़ों में—चित्तौर में सैनिक सङ्गठन का कार्य—सैनिकों की युद्ध की शिक्षा—दिल्ली के बादशाह इब्राहीम लोदी के साथ राणा संग्रामसिंह के दो बार युद्ध—दोनों बार लोदी की पराजय—मेवाड़-राज्य की बढ़ी हुई सीमा—मध्य एशिया की जातियों के भारत में लगातार आक्रमण—अगणित राज्यों में इस देश के शासन का विभाजन—आपसी द्वेष—राजपूतों का आज भी

प्राचीन जीवन—भारत में बाबर का आक्रमण—दिल्ली का पतन—बाबर और संग्रामसिंह का युद्ध—संग्रामसिंह की पराजय—चित्तौर पर बादशाह बहादुर का आक्रमण। पृष्ठ १७३—१८२

उन्नीसवाँ परिच्छेद

चित्तौर के सिंहासन पर अनधिकारी बनबीर—राज्य के उत्तराधिकारी के प्रति उसके हृदय में ईर्षा का भाव—उसकी बढ़ती हुई चिन्तनाएँ—वह सदा के लिए अधिकारी बनना चाहता था—राज्य का उत्तराधिकारी—उसने काँटों को निर्मूल करने का निर्णय किया—विक्रमाजीत की हत्या का समाचार—पन्ना दाई की दूरदर्शिता—उसकी अद्भुत राजभक्ति—दाई ने उदयसिंह की रक्षा करने की प्रतिज्ञा की—बारी की सहायता—पन्ना दाई के पुत्र का संहार—बालक उदयसिंह के प्राणों की रक्षा का प्रयत्न—निराशा का जीवन—विपद् में कोई किसी का सहायक नहीं होता—भीलों की सहायता—पर्वत के भयानक पहाड़ी रास्तों में राजकुमार उदयसिंह को लिए हुए पन्ना दाई—सुरक्षित स्थान की खोज में पन्ना दाई—कमलमीर में आश्रय मिला—मेवाड़-राज्य में राजकुमार के जीवन की चिन्ता—कमलमीर में दरबार—राजकुमार उदयसिंह का विवाह—चित्तौर के सिंहासन पर उदयसिंह—उसकी कायरता—पराजित बादशाह हुमायूँ—राजपूतों के साथ बादशाह अकबर के सङ्घर्ष—अकबर और उदयसिंह। पृष्ठ १८२—१९२

बीसवाँ परिच्छेद

राणा प्रताप को मेवाड़ राज्य का अधिकार—राज्य की निर्बल अवस्था—उन अभावों में राणा प्रताप का साहस—बादशाह अकबर की दूरदर्शिता—उसके चारों ओर कठिनाइयाँ—विरोधी परिस्थितियों का राणा प्रताप पर कोई प्रभाव न पड़ा—उसने चित्तौर की स्वाधीनता प्राप्त करने का निर्णय किया—राज्य की अधोगति से राणा प्रताप के हृदय में वेदना—बादशाह अकबर की महान शक्तियाँ—सरदारों के साथ राणा प्रताप का परामर्श—युद्ध का निर्णय—सेना और सम्पत्ति का अभाव—राणा प्रताप की योजना—राज्य में राणा की घोषणा—उसकी कठोर नीति—सम्पूर्ण मेवाड़-राज्य सूनसान हो गया—मुगल बादशाह की क्षति—राजपूत राजाओं की निर्बलता—राणा के विरुद्ध बादशाह अकबर के युद्ध की तैयारी—उदय सागर में राजा मानसिंह—मानसहिं और राणा प्रताप—प्रताप के साथ युद्ध करने के लिए मुगल बादशाह की तैयारी—राणा प्रताप की युद्ध की तैयारी—हलदीघाटी में राजपूत सैनिक—युद्ध का प्रारम्भ—राणा प्रताप की वीरता—युद्ध का भयानक दृश्य—मुगल-सरदारों का प्रताप पर आक्रमण—राणा शत्रुओं के घेरे में—राजपूत सरदार मन्ना जी का साहस—युद्ध-क्षेत्र से राणा प्रताप बाहर—शक्त सिंह और राणा प्रताप—हलदीघाटी के युद्ध में चौदह हजार राजपूतों का संहार—भीषण कठिनाइयों में राणा प्रताप का परिवार—हलदी-घाटी के युद्ध का परिणाम। पृष्ठ १९२—२०६

इक्कीसवाँ परिच्छेद

राणा प्रताप के लड़के—बड़ा लड़का अमरसिंह—राजा मानसिंह और बादशाह अकबर—बादशाह अकबर के साथ मानसिंह के जीवन का संघर्ष—मानसिंह को विष देकर मार डालने की अकबर की चेष्टा—दिल्ली के सिंहासन पर जहाँगीर—मुगल-सेना का मेवाड़ पर आक्रमण—अमर-सिंह की निर्बलता—मेवाड़ के सरदारों का असन्तोष—सरदारों का निर्णय—देवीर में मुगल-सेना के साथ राजपूतों का युद्ध—दोनों ओर के सैनिकों का भयानक सङ्हार—देवीर और रणपुर के युद्धों में मुगलों की पराजय—बादशाह जहाँगीर की चिन्तनायें—चित्तौर के सिंहासन पर सागर जी को बिठाकर बादशाह जहाँगीर ने क्या समझा था?—सागर जी से मेवाड़ के लोगों की घृणा—चित्तौर के सिंहासन पर सागर जी के सात वर्ष—उसके जीवन का असन्तोष—अपमान के अनुभव से सागर

जी को राज्य से विरक्ति—अमरसिंह को चित्तौर के अधिकार की प्राप्ति—राणा अमरसिंह के सामन्तों में हीरोल का सङ्घर्ष—अन्तला के दुर्ग पर मेवाड़ के सामन्तों की परीक्षा—चन्दावत और शक्तावत सामन्त—राणा प्रतापसिंह के साथ शक्तसिंह के विरोध की घटना—राजपूतों से मुगलों की लगातार पराजय—युद्ध में शाहजादा खुर्रम—अमर सिंह और मुगल बादशाह। पृष्ठ २०७—२१६

बाईसवाँ परिच्छेद

अमरसिंह की मृत्यु—उसका लड़का कर्ण राज्य के सिंहासन पर—मेवाड़-राज्य की दशा—आर्थिक दशा का सुधार—राणा कर्ण के जीवन में साहस और पुरुषार्थ—प्रजा को सभी प्रकार की सुविधायें—राज्य की आर्थिक निर्बलता को दूर करने के लिए राणा कर्ण का प्रयास—बादशाह जहाँगीर के दरबार में राणा कर्ण को सम्मान—मुगल-दरबार में स्वाभिमानी राजपूतों का सम्मान—राणा कर्ण के द्वारा मेवाड़-राज्य की उन्नति—राणा कर्ण का छोटा भाई भीम—भीम और शाहजादा खुर्रम—भीम और खुर्रम में स्नेहपूर्ण व्यवहार—मुगल-शासन का अधिकारी शाहजादा परवेज—भीम शाहजादा खुर्रम का पक्षपाती था—भीम पर बादशाह जहाँगीर का अविश्वास—शाहजादा खुर्रम की प्रसिद्धि बादशाह शाहजहाँ के नाम से—वह जोधाबाई (जगत गोसाईं) का पुत्र था—भीम और मुगल-सेना—पराजय के बाद भीम का सङ्हार—राणा कर्ण के महल में शाहजादा खुर्रम—उदयपुर में शाहजादा खुर्रम को सम्मान—मेवाड़ के सिंहासन पर राणा जगतसिंह—राणा जगतसिंह में शासन की योग्यता—बादशाह शाहजहाँ के बुढ़ापे में उसके लड़कों का विद्रोह—राजसिंह के द्वारा दारा शिकोह का समर्थन—मुगलों के घरेलू सङ्घर्ष में राजस्थान के राजाओं ने राजसिंह का समर्थन किया—दारा के समर्थक राजपूत राजाओं के साथ औरंगजेब की शत्रुता—बादशाह औरंगजेब और प्रभावती—औरंगजेब के साथ राणा राजसिंह का सङ्घर्ष। पृष्ठ २१६—२३३

तेईसवाँ परिच्छेद

बहु-विवाह की प्रथा का परिणाम—राजसिंह और औरंगजेब—राणा जयसिंह की सन्धि—राणा की विलासिता—औरंगजेब की नीति—मुगल-साम्राज्य में विद्रोह—बादशाह मुअज्जम—मुगलों के प्रति सिक्खों का विद्रोह—बादशाह शाहआलम की मृत्यु—मुगल-राज्य में घरेलू झगड़े—सैयद बन्धुओं का जाल—देशभक्त हेमिल्टन ! पृष्ठ २३३—२४१

चौबीसवाँ परिच्छेद

मेवाड़ और दिल्ली के राज्य—परसिया, यूनान और मुगल शासन के पतन के रहस्य—मुगलों के विनाश की जड़ में सैयद बन्धु—राजस्थान के राजाओं की सूझ—सीसोदिया वंश की सिद्धान्त प्रियता—मराठों और पठानों के मेवाड़ में आक्रमण—मराठों का आतङ्क—दिल्ली में नादिरशाह का आक्रमण—लूट-मार, रक्तपात और भयानक नर सङ्हार ! पृष्ठ २४१—२५२

पच्चीसवाँ परिच्छेद

मेवाड़ की निर्बलता—राज्य का आर्थिक पतन—राणा अरिसिंह की अयोग्यता—शत्रुओं के आक्रमण—मेवाड़ में सरदारों के विद्रोह—बाजीराव की सन्धि—राणा के सिर पर सन्धियों का बोझ—घरेलू विद्रोह—माधव जी सींधिया के साथ युद्ध—अमरचन्द बरवा की राज्य-भक्ति—सींधिया का आक्रमण सींधिया के साथ सन्धि—मराठों में फूट—लूट और अत्याचार—अयोग्यता का लाभ शत्रुओं को मिलता है ! पृष्ठ २५२—२६५

छब्बीसवाँ परिच्छेद

राणा के पद पर बालक भीमसिंह—चन्दावत सरदारों की प्रधानता—पतन और आपस की फूट—सींधिया के विरुद्ध मारवाड़ और जयपुर—घरेलू फूट का परिणाम—अराजकता की वृद्धि—

राणा की असमर्थता—मराठा सेना के अत्याचार--सींधिया और राणा की भेंट— मेवाड़ में शत्रुओं की सहायता—राज्य में लुटेरों के दल—सींधिया और होलकर के सङ्घर्ष—मेवाड़ में लूट—मेवाड़ के राजपुरुष गिरवी रखे गये—मराठों और अङ्गरेजों में तनातनी। पृष्ठ २६५—२६१

सत्ताईसवाँ परिच्छेद

मेवाड़ की उजड़ी हुई अवस्था में मराठों की लूट—देश में आपसी फूट की आग—अङ्गरेजों के द्वारा राजस्थान के निर्बल राज्यों का सङ्गठन—राणा को अङ्गरेजों का आश्वासन—अङ्गरेजों के साथ राणा की सन्धि—मेवाड़ में अङ्गरेजी एजेण्ट का स्वागत। राज्य का सुधार—राणा पर कर्ज का बोझ—मेवाड़ में शांति के प्रयत्न—अत्याचारों का अन्त—भूमि पर किसानों का अधिकार—मेवाड़ में राजकर की व्यवस्था! पृष्ठ २६२—३०१

अट्ठाईसवाँ परिच्छेद

मेवाड़ में धार्मिक प्रवृत्ति—लोगों के विश्वासों का आधार—महादेव के भक्त राजपूत—राज्य में गुसाईं लोगों का सम्मान—जैनियों का प्रभाव—ब्राह्मणों-सन्यासियों का प्रभुत्व—उनको राज्य की सहायता—प्रजा का अन्धविश्वास— पृष्ठ ३०१—३०६

उन्तीसवाँ परिच्छेद

राजपूतों का नैतिक जीवन—मनुष्य के जीवन में धर्म का प्रभाव—राजपूतों का पतन हुआ है—स्त्रियों का सम्मान—स्त्रियों के सम्बन्ध में मनु के आदेश—राजपूत की बात का महत्व—राजपूत बालायें—वे युद्ध के लिए सन्तान उत्पन्न करती हैं—माता का प्रोत्साहन—राजपूत स्त्री का शौर्य प्रेम—स्त्री का परामर्श—विवाह के बाद चिता की होली! पृष्ठ ३०६—३३०

तीसवाँ परिच्छेद

राजपूतों का जीवन, वलिदानों का जीवन है—युद्ध के लिए राजपूतों का जन्म—सती प्रथा—कन्याओं के बध की प्रथा—उसका मूल कारण—सामाजिक जीवन की खराबियाँ—राजपूत लड़कियों के विवाहों में भीषण दृश्य—राजपूत स्त्रियों में जौहर व्रत—युद्ध में बन्दी स्त्रियाँ—राजपूतों में अफीम का सेवन। पृष्ठ ३३०—३४४

मारवाड़ का इतिहास

इकतीसवाँ परिच्छेद

मारवाड़ का राज्य और उसका विस्तार—राठौर वंश—कन्नौज की विजय—इतिहास की महानता—कन्नौज का पतन—जयचन्द के वंशजों की मरुभूमि में प्रतिष्ठा—मारवाड़ राज्य को ऐतिहासिक आधार—मरुभूमि में सियाजी का आश्रय—मारवाड़-राज्य के इतिहास की सामग्री—राठौर वंश की शाखायें—राठौर राजाओं की पदवी—उत्थान के दिनों का कन्नौज—राठौरों और चौहानों की शत्रुता—दिल्ली और कन्नौज। पृष्ठ ३४५—३५२

बत्तीसवाँ परिच्छेद

सियाजी के मरुभूमि में जाने का कारण—मरुभूमि में सियाजी के आश्रय का प्रथम स्थान—मोहिली राजधानी—मरुभूमि की प्राचीन जातियाँ—मरुस्थल का सोलंकी राजा और सियाजी—लाखा फूलाणी के साथ सियाजी का युद्ध—लाखा की पराजय—पहाड़ी जातियों का पतन—मरुभूमि में राठौर वंश की उन्नति—राठौरों का विस्तार। पृष्ठ ३५२—३५८

तेंतीसवाँ परिच्छेद

जोधा का जन्म—जोधपुर का निर्माण-जोधपुर में जल का अभाव—मरुभूमि में सिया जी के

वंशजों का विस्तार और शासन—जोधा की संतानें—मेरतिया वंश की उत्पत्ति—पीपार नगर का उत्सव—ऊदावत वंश का प्रतिष्ठाता ऊदा—मारवाड़ के सिंहासन पर मालदेव—मारवाड़ राज्य का उत्थान और विस्तार। पृष्ठ ३५९—३६९

चौंतीसवाँ परिच्छेद

राजा मालदेव की मृत्यु के बाद का मारवाड़ राज्य—मारवाड़ की परिस्थितियाँ—राठौरों का ऐतिहासिक जीवन और उसकी आलोचना—राज्य में जागीरों की व्यवस्था—मारवाड़ राज्य का विधान और उसका पालन—उदयसिंह की अयोग्यता—मोटा शरीर मोटी बुद्धि—बादशाह अकबर और उदयसिंह—उदयसिंह को मुगलों से सुविधायें। पृष्ठ ३७०—३७४

पैंतीसवाँ परिच्छेद

मारवाड़ के सिंहासन पर शूरसिंह—शूरसिंह की रण कुशलता—बादशाह अकबर की तरफ से शूरसिंह का सिरोही पर आक्रमण—सिरोही का पतन—शाह मुजफ्फर के साथ शूरसिंह का युद्ध—शूरसिंह की विजय—जोधपुर की उन्नति—अमर बलेचा पर आक्रमण—अकबर की मृत्यु—गजसिंह को राज सिंहासन—जहाँगीर के लड़कों में संघर्ष। पृष्ठ ३७५—३८१

छत्तीसवाँ परिच्छेद

राजा गजसिंह के बाद जसवंत सिंह को सिंहासन—शाहजहाँ के लड़कों में विद्रोह—राजपूत राजाओं की सहायता—फतेहाबाद का संग्राम—युद्ध के लौटकर जसवंत सिंह अपनी राजधानी में—औरङ्गजेब की सफलता—शाहजहाँ की कैद—औरङ्गजेब के साथ शुजा का विद्रोह—औरङ्गजेब और दारा—जसवंत सिंह और औरङ्गजेब—शिवाजी की बंदी अवस्था—औरङ्गजेब के षड़यंत्र—जसन्वत सिंह के विनाश की चेष्टा—मारवाड़ का राठौर वंश। पृष्ठ ३८२—३९३

सैंतीसवाँ परिच्छेद

जसवंत सिंह की गर्भवती विधवा रानी—अजित का जन्म—औरङ्गजेब की राक्षसी चेष्टा—मारवाड़ के सामन्तों और सरदारों के द्वारा अजित की सहायता—राठौरों और मुगलों में संघर्ष—सामन्तों की दूरदर्शिता—सामन्तों की तैयारी—अजित की रक्षा—अजित का एकान्त जीवन—जोधपुर में मुगल सेना का आक्रमण—युद्ध के लिए राणा राजसिंह की तैयारी—मुगलों के लगातार आक्रमण—नाडोल का संग्राम—शान्ति के लिए चेष्टा—अकबर और दुर्गादास में मेल—औरङ्गजेब का षड़यंत्र—मेवाड़ और मारवाड़ का विनाश—मुगलों पर आक्रमण। पृष्ठ ३९४—४०८

अट्ठतीसवाँ परिच्छेद

अजित का गुप्त रूप से पालन—राज्य में चर्चा और उत्सुकता—अजित की खोज में राज्य के सामन्त—अजित के गुप्तवास का अन्त—राज्य में स्वागत्—औरङ्गजेब की चिन्तायें—उसके षड़यंत्रों का जाल—मुगलों पर आक्रमण—दुर्गादास की विजय—औरङ्गजेब के प्रलोभन—अजित को फँसाने की चेष्टा—मेवाड़ में घरेलू विद्रोह—संधि के नाम पर विश्वासघात—राजकुमार अजित पर आक्रमण—मुगलों का पराजय—युद्ध की फिर से तैयारियाँ—दुर्गादास के आश्रय में शाहजादा अकबर की लड़की—औरङ्गजेब की चिन्ता—उसके नवीन षड़यंत्र—राजपूतों के चरित्र की प्रशंसा—मुगलों के फिर अत्याचार—औरङ्गजेब की धूर्तनीति। पृष्ठ ४०८—४१९

उन्तालीसवाँ परिच्छेद

मुगल सिंहासन पर बहादुरशाह—मुगलों में आपसी विद्रोह—जोधपुर में मुगलों का आक्रमण—दिल्ली-दरबार में अभयसिंह—बादशाह के साथ अजितसिंह का मेल—मारवाड़ की उन्नति—अजितसिंह का वैभव—सैयद बन्धुओं की घबराहट—अजितसिंह की गुप्त सन्धि—बाद-

शाह के द्वारा अजितसिंह का सम्मान—दिल्ली की अस्थिर अवस्था—मुगलों के महलों पर संकट—मुगल-राज्य में अजितसिंह के अधिकार—मुगल दरबार में कलह—अजमेर के दुर्ग पर राठौर पताका—मुगलों को लगातार पराजय – साहसी अभयसिंह—अजितसिंह की मृत्यु—अजितसिंह और दुर्गादास। पृष्ठ ४२०—४३२

चालीसवाँ परिच्छेद

अजित सिंह की हत्या—मारवाड़ का पतन--अभय-सिंह का राजतिलक – अभय सिंह का स्वागत—नागौर का पतन – भूमिया लोगों का दमन – अभय सिंह का सम्मान – सेनापति का विद्रोह – मुगल साम्राज्य का पतन – अभय सिंह का साहस – अभय सिंह और जयसिंह का परामर्श – सिरोही पर आक्रमण – अभय सिंह की विजय--सरबुलन्द खाँ के साथ अभय सिंह का युद्ध – सरबुलन्द खाँ की पराजय – अभय सिंह का शासन। पृष्ठ ४३२ – ४४०

इकतालीसवाँ परिच्छेद

जोधपुर की उन्नति – बख्तसिंह का विद्रोह – बीकानेर की स्वतंत्रता – अभय सिंह का आक्रमण – राजा जयसिंह की अयोग्यता – राजदूत की चाल – आमेर राज्य में युद्ध की तैयारी—कुशवाहा और राठौरों का संघर्ष – आमेर की सेनाके साथ बख्तसिंह का युद्ध – जयसिंह की पराजय – अभयसिंह की मृत्यु – जयसिंहकी योग्यता – अभयसिंहका अद्भुत साहस – बादशाहका आश्चर्य। पृष्ठ ४४० - ४४७

बयालीसवाँ परिच्छेद

जोधपुर के सिंहासन पर रामसिंह – रामसिंह की निर्बलता – बख्तसिंह के साथ युद्ध की तैयारी – अहंकारी रामसिंह – बख्तसिंह की विजय -- रामसिंह की चालें – मराठों की सहायता – बख्तसिंह के साथ विश्वासघात – उसकी मृत्यु – बख्त सिंह का शासन प्रबन्ध। पृष्ठ ४४७ – ४५१

तेंतालीसवाँ परिच्छेद

मुगलों की कमजोरी – अधीन राजाओं के विद्रोह – जोधपुर में मराठों की सहायता – मेरता में मराठों के साथ युद्ध – विजय सिंह की पराजय – मराठों के साथ सधि – मराठों के अत्याचार – राठौरों में आपसी विद्रोह – मारवाड़ में अशान्ति – सामन्तों का विरोध – राजगुरू का अन्तिम संस्कार – सामन्तों के साथ विश्वासघात – मराठों के साथ सघर्प – अन्त में मराठों की विजय – विजय सिंह का पतन। पृष्ठ ४५१ – ४६८

चौवालीसवाँ परिच्छेद

जोधपुर के सिंहासन पर भीमसिंह का अधिकार—जालिमसिंह की योग्यता—भीमसिंह के साथ मानसिंह का सङ्घर्ष—मानसिंह ये पक्ष में सामन्त -- सिंहासन पर मानसिंह—राजा जयपुर के साथ शत्रुता—राज्य के सामन्त जयपुर के साथ—राज्य में मानसिंह का विरोध—सामन्त सवाई सिंह का षड्यंत्र – मराठा होलकर को रिश्वत – मानसिंह के विरुद्ध राजाओं और सामन्तों का सङ्गठन – मानसिंह के शिविर में लूट—जयपुर की सेना का जोधपुर में आक्रमण—मारवाड़-राज्य में मराठों और पठानों की लूट – मानसिंह के भाग्य का परिवर्तन—जगतसिंह के सामने प्राणों का सङ्कट। पृष्ठ ४६८—४८२

पैंतालीसवाँ परिच्छेद

अमीर खाँ के साथ मानसिंह की मैत्री—रुपये का लोभी अमीर खाँ—षड्यंत्रों की सफलता—रुपये की लूट—बीकानेर पर आक्रमण—मानसिंह के सङ्कटों का अन्त—अमीर खाँ का मारवाड़ राज्य में विस्तार—राज्य से सामन्तों की कठिनाइयाँ—मानसिंह का वैराग्य—जोधपुर की दुर्व्यवस्था —मानसिंह से सामन्तों की प्रार्थना—मानसिंह की योग्यता—जोधपुर का शासन फिर

से मानसिंह के अधिकार में —अङ्गरेज प्रतिनिधियों की चेष्टा— राज्य के सामन्तों को मिटाने की चेष्टा—ईस्ट इण्डिया कम्पनी के द्वारा राज्य की सहायता। पृष्ठ ४८२—४६८

छियालीसवाँ परिच्छेद

जोधपुर का परिचय—मारवाड़ के निवासी और उनकी जन-संख्या—राज्य के प्रसिद्ध नगर—सैनिक अवस्था—मारवाड़ राज्य की विशेषतायें—राज्य में आय के साधन—शिल्प कला और व्यवसाय—राज्य के व्यवसायी जैन धर्मावलम्बी—पुत्रों के अधिकार—राज्य के व्यावसायिक नगर—मारवाड़ में अपराध और न्याय—अपराधों की वृद्धि का कारण—पञ्चायतों के द्वारा न्याय का कार्य—राज्य की आय—किसानों की पैदावार और राज्य की मालगुजारी—विभिन्न प्रकार के कर—राठौरों की सैनिक शक्ति—राज्य का नैतिक पतन—मारवाड़-राज्य के सामन्त। पृष्ठ ४६८—५१०

बीकानेर का इतिहास

सैंतालीसवाँ परिच्छेद

बीकानेर राज्य और उसका प्रतिष्ठाता—बीका की प्रतिज्ञा—उसके आक्रमण—लगातार उसकी विजय—मरुभूमि के निवासी जाट—बीकानेर का विभाजन—बीका का रण कौशल—जाटों का आत्म समर्पण—बादशाह अकबर—अकबर का मारवाड़ पर आक्रमण—रायसिंह और बादशाह अकबर—अकबर के दरबार में राठौरों की मर्यादा—राजा सूरतसिंह के साथ सामन्तों का विद्रोह—सामन्तों का दमन—प्रजा का असन्तोष—भावलपुर से युद्ध। पृष्ठ ५११—५२६

अड़तालीसवाँ परिच्छेद

योरप के लोगों को बीकानेर का जानकारी—राज्य की परिस्थितियों में परिवर्तन—उसके कारण—शासन की क्रूरता—राज्य की पूर्व अवस्था—आर्थिक पतन—राज्य में लूट-मार—राज्य के बाहर नगरों के घर और जन—जाटोंकी संख्या—राज्यकी अन्य जातियाँ—राठौर राजपूत—राज्यकी अन्य परिस्थितियाँ—खेती और वर्षा—नमककी झीलें—खानें और राज्य-व्यवस्था। पृष्ठ ५२६—५४०

उन्चासवाँ परिच्छेद

जाटों का प्रसिद्ध स्थान भटनेर—जाटों की मर्यादा—भटनेर पर तैमूर का आक्रमण—लगातार सङ्घर्ष—भटनेर का राजा बैरसी—उसके बाद का भटनेर—भटनेर पर राजा सूरत सिंह का आक्रमण। पृष्ठ ५४०—५४२

जैसलमेर का इतिहास

पचासवाँ परिच्छेद

मरुभूमि में जैसलमेर—उसका प्राचीन नाम—राज्य की भाटी जाति—भाटी वंश यदुवंश की शाखा है—भाटी लोगों का क्रमहीन इतिहास—प्राचीन काल का जैसलमेर—हिन्दुओं में संकीर्ण विचारों का जन्म—मध्य एशिया के लोगों को म्लेच्छ कहना—यदुवंशी श्रीकृष्ण—कृष्ण के वंशज—यदुवंशियों के अत्याचार—कृष्ण के बाद यदुवंशियों का इतिहास—म्लेच्छों के साथ युद्ध। पृष्ठ ५४३—५५२

इक्यावनवाँ परिच्छेद

भट्टी वंश का सही इतिहास—यादवों के साथ हुसेन शाह का युद्ध—विजयराव पर आक्रमण—विजयी विजयराव—बाराहों और लंगा लोगों का षड़यंत्र—बुरे दिनों का प्रभाव—देवराज की शक्तियाँ—लंगा जाति के लोग राजपूत थे—लोद्र राजपूत—देवराज की प्रतिज्ञा—राजा की आज्ञा और वंशकी मर्यादा—प्रमार सैनिकोंके बलिदान—जैसलमेरकी राजधानी। पृष्ठ ५५३—५६२

बावनवाँ परिच्छेद

राजा के साथ मन्त्री का विरोध – युद्ध में राजा जगभानु की पराजय – रावल शालिवाहन के साथ षड्यन्त्र – प्रजा का विरोध – जैसलमेर का सूना राज-सिंहासन – खडाल राज्य पर खिजर खाँ का आक्रमण—चन्ना राजपूतों के साथ युद्ध – नागौर में मुजफ्फर खाँ के अत्याचार – राजा लाखन की मूर्खता– राज्याधिकार के लिए संघर्ष – अलाउद्दीन का आक्रमण। पृष्ठ ५६२ – ५७०

तिरपनवाँ परिच्छेद

जैसलमेर का संघर्ष – पराक्रमी तिलोकसी - फीरोजशाह का आक्रमण – दिल्ली में बादशाह तैमूर – जैसलमेर का उत्तराधिकार – राजकुमार जेतसी का विवाह—मोमन लोग – अमीर कुराई का आक्रमण – लूट की सम्पत्ति से जैसलमेर का निर्माण – पीलबंग के राजा के साथ युद्ध – युद्ध की मृत्यु का महत्व। पृष्ठ ५७१ – ५७८

चौवनवाँ परिच्छेद

जैसलमेर के सिंहासन पर गोद लिया हुआ बालक – दिल्ली - सम्राट और सबल सिंह – जैसलमेर – राज्य के पतन का श्री गणेश—जैसलमेर और बीकानेर के सामन्तों का संघर्ष - अफगानी दाऊद खाँ के जैसलमेर में अत्याचार – राज मंत्री स्वरूप सिंह के काले कारनामे – राज्य की दुरवस्था – निर्वासित रायसिंह और उसका परिवार – जैन धर्मावलम्बी के पैशाचिक कार्य। पृष्ठ ५७८ – ५८६

पचपनवाँ परिच्छेद

यदुवंशी के वंशजों का इतिहास – पिशाच मन्त्री के बेटे की पैशाचिकता – राज्य का विध्वंस और विनाश - रावल गजसिंह मन्त्री के हाथ का खिलौना – कम्पनी के साथ संधि। पृष्ठ ५८६ - ५९४

छप्पनवाँ परिच्छेद

जैसलमेर की अन्य परिस्थितियाँ – वहाँ की प्रकृति – खेती की पैदावार – शिल्प, वाणिज्य और राज्य के कर – कर वसूल करने में कठोरता – राजा का पारिवारिक व्यय। पृष्ठ ५९४ – ६००

मरुभूमि का इतिहास

सत्तावनवाँ परिच्छेद

मन्दोर नगर – ऐतिहासिक खोज – मरुभूमि का वर्णन – विस्तार और दृश्य – मरुभूमि का प्राचीन काल - उसके प्रसिद्ध नगर—उसका वालुकामय मार्ग – गाँवों का अस्तित्व - जनहीन विस्तृत मैदान – नदियाँ, झीलें और झरने – प्राचीन राजवंश - राज्य और जागीरें – आपस की फूट और उसका परिणाम। पृष्ठ ६०१ – ६०७

अट्ठावनवाँ परिच्छेद

चौहान राज्य – चौहानों की उत्पत्ति – प्राचीन काल में चौहान-राज्य का विस्तार – उसके प्रसिद्ध नगर - चौहान राज्य की आकृति – पानी और पैदावार – निवासी – रहने वालों के लुटेरा होने का कारण – जल का कष्ट -- अमर कोट – संघर्ष और परिणाम – बीमारियाँ – उनका प्रधान कारण - दुर्भिक्ष और उसके प्रति लोगों का विश्वास। पृष्ठ ६०८ – ६२६

जयपुर का इतिहास

उनसठवाँ परिच्छेद

जयपुर राज्य-उसका प्राचीन जीवन और नाम – राजधानी अयोध्या – रानी का भिखारी जीवन – भिखारिणी के बालक का भविष्य – उसके शासन का विस्तार – मीना लोगों का स्वतंत्र

जीवन — मीना जाति की शाखायें — राजा पजून का शौर्य — पृथ्वीराज चौहान का सहायक पजून — शेखावाटी राज्य की स्थापना — राजा भगवानदास और मुगल बादशाह — दूरदर्शी और राजनीतिज्ञ — बादशाह अकबर — राजपूत राजाओं के साथ अकबर की नीति — सलीम के साथ राजा भगवानदास की लड़की का विवाह — मुगल-दरबार में घरेलू संघर्ष । पृष्ठ ६२७ — ६३७

साठवाँ परिच्छेद

राजा सवाई जयसिंह की ख्याति — ज्योतिष, विज्ञान और इतिहास का विशेषज्ञ सवाई जयसिंह — अम्बेर-राज्य की उन्नति - सौतेले पन का दुष्परिणाम — राज्य के लिए भाई की हत्या — आमेर-राज्य । पृष्ठ ६३७ — ६४६

इकसठवाँ परिच्छेद

जयपुर का शक्तिशाली राज्य — मेवाड़ की राजकुमारी के विवाह की शर्त — राजा ईश्वरीसिंह का शासन — जाटों का सरदार चूड़ामणि — प्रधानमन्त्री खुशहाली रामकी चालें । पृष्ठ ६४६ — ६५८

बासठवाँ परिच्छेद

आमेर के सिंहासन पर जगत सिंह — राजपूत-राज्यों की अवनति — अँगरेजों के साथ जगत सिंह की संधि — राजा जगत सिंह पर अङ्गरेज लेखकों का झूठा दोषारोपण — स्वार्थ के मौके पर अङ्गरेजों की तरफ से संधि की अवहेलना — राजा जगत सिंह की अयोग्यता — पतन की ओर आमेर का राज्य — जगत सिंह की रखेल रानी — राज्य में नाजिर मोहन के षड़यन्त्रों का जाल ।

पृष्ठ ६५६ — ६६७

शेखावाटी का इतिहास

तिरसठवाँ परिच्छेद

शेखावत वंश — जयपुर राज्य का एक भाग शेखावाटी राज्य — शेखावत वंश का आदि पुरुष बालोजी — फकीर का चमत्कार — शेखावत वन्श में फकीर का प्रभाव — शेख का बढ़ता हुआ प्रभाव — आमेर के शासक के साथ संघर्ष - राजा रायसाल के बेटे — मुगल दरबार के अमीर का रोष — द्वारिकादास का आश्चर्य जनक पौरुष - शेर के साथ युद्ध — राजा बहादुर सिंह और मुगल बादशाह का सेनापति । पृष्ठ ६६८ — ६८२

चौंसठवाँ परिच्छेद

आमेर - राज्य में गृह - युद्ध — खण्डेला-राज्य पर उसका प्रभाव — वृन्दाबन दास की सहायता में आमेर के राजा माधव सिंह — पीड़ित ब्राह्मणों का प्रकोप — राजा माधव सिंह की कूटनीति — खण्डेला-राज्य में भीषण गृह-युद्ध — मुगल सेना का खण्डेला पर आक्रमण — शेखावटी में विपद — भीषण अकाल — मराठों का आक्रमण — प्रसिद्ध सामन्त देवसिंह । पृष्ठ ६८२ - ६६४

पैंसठवाँ परिच्छेद

जयपुर — राज्य में प्रधानमन्त्री का बोलबाला - सिद्धानी के सामन्तों का असंतोष - आमेर की सेना की पराजय — जयपुर में फिर से युद्ध की तैयारी - अन्याय के विरुद्ध खण्डेला-राज्य की स्त्रियाँ — जयपुर की कारागार में खण्डेला के अधिकारी नरसिंह और प्रतापसिंह - जयपुर-राज्य के विरुद्ध शेखावत सामन्त — युद्ध और उसका परिणाम — विद्रोही सामन्तों का नेता संग्राम सिंह । पृष्ठ ६६५ — ७११

छाछठवाँ परिच्छेद

अम्बेर-राज्य और उसकी जागीरों का विस्तार — जयपुर-राज्य की आबादी - जातियों का विभाजन -- मालगुजारी और अयान्य कर -- विदेशी सेना -- जयपुर -- राज्य के प्राचीन नगर । पृष्ठ ७१२ — ७८

बूँदी का इतिहास

सरसठवाँ परिच्छेद

बूँदी कोटा के राज्य—हाड़ा वंश की शाखा—उस वंश का आदि पुरुष—परशुराम के द्वारा क्षत्रियों का संहार—ब्राह्मणों का शासन—अराजकता की वृद्धि—विश्वामित्र की चिंता—यज्ञ का अनुष्ठान—क्षत्रियों की उत्पत्ति—असुरों के साथ क्षत्रियों का युद्ध—कुल देवियों की सहायता—अग्निवंश में उत्पन्न होने वाले क्षत्रियों की श्रेष्ठता—वे क्षत्री कौन थे? चौहन, परिहार, सोलंकी और प्रमार अग्निवंश में राजपूत—चौहानों का विस्तृत राज्य—अहीर वंश के लोगों का विस्तार—चक्रवर्ती राजा अजय पाल—राजपूताना में मुसलमानों का प्रवेश—इस्लाम धर्म प्रचारक रोशन अली—सिंध में मुसलमानों की फौज—माणिक राय का संकट—शाकम्भरी देवी का आशीर्वाद—राजस्थान की प्रसिद्ध नमक की झील—साँभर का प्राचीन नाम—चम्बल नदी के किनारे भदौरिया राजपूत—मरुभूमि में माणिक राय के वंशज—सुलतान महमूद का आक्रमण। पृष्ठ ७१६--७३५

अरसठवाँ परिच्छेद

बूँदी-राजधानी की प्रतिष्ठा—मीना लोगों की स्वतन्त्र भावनायें—मीना लोगों की पराजय—राजपूतों की एक पुरानी प्रथा—बूँदी के सिंहासन पर नापाजी—भीलों की पराजय—कोटा के नाम की उत्पत्ति—ससुर और दामाद में असन्तोष—ससुर के अपराध का बदला पत्नी से—अपमानित पत्नी की पिता से शिकायत—उसका परिणाम—सामन्त की राजभक्ति—अलाउद्दीन के आक्रमण के कारण चित्तौर की निर्बल शक्तियाँ—चित्तौर राज्य के अवसरवादी सामन्त—हामा जी और चित्तौर के राणा में सङ्घर्ष—बूँदी-राज्य को अधीनता में लाने का चेष्टा—बूँदी राज्य पर आक्रमण—राणा की पराजय—उसके मन्त्रियों की चिन्ता—हाड़ा राजपूतों में जातीय स्वाभिमान—चित्तौर पर पठानों का आक्रमण। पृष्ठ ७३६—७४८

उनहत्तरवाँ परिच्छेद

बूँदी-राज्य में परिवर्तन—बैदला के चौहान सामन्त के साथ सामन्त सिंह का मेल—बादशाह अकबर के द्वारा रण-थम्भोर के दुर्ग का घेरा—मानसिंह की राजनीति—बादशाह के प्रलोभन दोनों पक्षों में सन्धि—दिल्ली की राजधानी आगरा में—अकबर की लोकप्रिय राजनीति—राजपूत राजाओं की अधीनता—बादशाह की सेना के साथ चन्दा बेगम का युद्ध—बूँदी का राव राजा भोज और बादशाह अकबर—राजा मानसिंह—विष से बादशाह अकबर की मृत्यु—खुर्रम और परवेज में विद्रोह—जहाँगीर का सङ्कट—राव रतनसिंह की सहायता—शाहजहाँ के लड़कों में विद्रोह—औरङ्गजेब और छत्रसाल--दिल्ली में आपसी सङ्घर्ष। पृष्ठ ७४८—७६४

सत्तरवाँ परिच्छेद

जयपुर के राजा जयसिंह की मृत्यु -राजा बुधसिंह का लड़का उम्मेद सिंह--कोटा-राज्य पर राजा ईश्वरी सिंह का आक्रमण- उम्मेद सिंह का संकट--जयपुर की सेना पर हाड़ा राजपूतों की विजय--युद्ध की फिर से तैयारी--उम्मेद सिंह की प्रतिज्ञा--उसकी सेना की परिजय—सामन्तों का परामर्श--युद्ध के बाद उम्मेद सिंह के जीवन की घटनायें--दुर्दिन और दुर्व्यवहार--हाड़ौती के एक श्रेष्ठ कवि के साथ उम्मेद सिंह की भेंट--कवि की सहायता--बूँदी के सिंहासन पर दलेल सिंह--उम्मेद सिंह के विरुद्ध जयपुर की सेना--उम्मेद सिंह और उसकी सौतेली माता--मराठा सेनापति होलकर की सहायता--जयपुर में होलकर का आक्रमण--होलकर की सहायता से उम्मेद सिंह बूँदी के सिंहासन पर--इन्द्रगढ़ के सामन्त देव सिंह का सर्वनाश। पृष्ठ ७६५—७७६

कोटा-राज्य का इतिहास

इकहत्तरवाँ परिच्छेद

कोटा और बूंदी के हाड़ाराजवंश – कोटा का शासक माधवसिंह – कोट-राज्य का विस्तार – कोटिया भील का शासन – माधव सिंह के पहले कोटा के प्राचीन मकान – कोटा की उन्नति – वहाँ के राज सिंहासन पर राजा मुकुन्द सिंह – बादशाह औरङ्गजेब के बाद दिल्ली में फिर आपसी विद्रोह – बादशाह के यहाँ भीमसिंह को मनसबदार का पद – भीलों का राजा चक्रसेन – भीमसिंह के मरन के बाद कोटा-राज्य – कुलीचखाँ पर राजा गजसिंह का आक्रमण – मित्रता और कर्त्तव्य परायणता का अन्तर – कुलीचखाँ के साथ युद्ध – युद्ध में कुलीचखाँ की विजय – कोटा राजवंश के इष्ट देव की मूर्ति – बूंदी के राजा बुधसिंह के साथ कोटा के राजा रामसिंह का युद्ध – पहरेदार की कर्त्तव्य परायणता – अपराधी पहरेदार को पुरस्कार – सिंहासन के लिए भाइयों में युद्ध।

पृष्ठ ७८०—७८६

बहत्तरवाँ परिच्छेद

राजस्थान में मराठों के आक्रमण – कोटा-राज्य के साथ जालिम सिंह का सम्बन्ध – जालिम सिंह के एक ही नेत्र था – उसके पूर्वज साधारण सामन्त थे – दिल्ली में आपसी विद्रोह का भयानक दृश्य – कोटा में भावसिंह का लड़का माधव सिंह – अर्जुन सिंह के साथ माधवसिंह की बहन का विवाह – माधव-सिंह को कोटा के एक दुर्ग का अधिकार – कोटा-राज्य का सेनपति हिम्मतसिंह – उसका साहस और शौर्य – मेवाड़-राज्य में जालिम सिंह – उदयपुर में मराठों का आक्रमण – कोटा-राज्य में फिर जालिम सिंह का आगमन – कोटा पर होलकर का आक्रमण – जालिम सिंह के द्वारा सन्धि – कोटा के सिंहासन पर बालक उम्मेद सिंह – उसके संरक्षण का प्रश्न – कोटा-राज्य के शासन का भार जालिम सिंह पर।

पृष्ठ ७६०—७६६

तिहत्तरवाँ परिच्छेद

कोटा-राज्य में जालिमसिंह का प्रभुत्व – जालिम सिंह की राजनीतिक कुशलता और योग्यता – उसके शासन में किसानों की हानि – प्रजा पर कर के बोझ – जालिम सिंह के शासन में राज कर्मचारियों के अत्याचार – किसानों में जन्म भूमि के छोड़ देने का इरादा – शासन के प्रबन्ध की कठोरता – प्रजा की बढ़ती हुई गरीबी – मेवाड़ में जालिम सिंह की चेष्टा – मराठा सेनापति इंगले के साथ उसकी मित्रता – जालिम सिंह का राजधानी से हटकर रहने का विचार – उसका उद्देश्य – किसानों की दशा में सुधार करने की योजना – राजधानी से बाहर उसकी छावनी – पुराने नियमों में परिवर्तन।

पृष्ठ ७६६—८०५

चौहत्तरवाँ परिच्छेद

जालिम सिंह के द्वारा प्रचलित नयी व्यवस्था पर किसानों का सन्तोष – पटेलों की कूटनीति का दुष्परिणाम – जालिम सिंह की चेष्टा – पटेलों का लगातार विश्वासघात – राज्य के नियंत्रण हीन पटेल – किसानों की बढ़ी हुई गरीबी – प्रजा के भयानक कष्ट – जालिम सिंह के अधिकार में विस्तृत भूमि – राज्य की अच्छी भूमि जालिमसिंह के अधिकार में – कोटा-राज्य की उपजाऊ भूमि – हलों और बैलों का प्रबन्ध – खेती की पैदावार – अनाज रखने की व्यवस्था – अनाज पर कर – जालिमसिंह की वार्षिक आमदनी।

पृष्ठ ८०५—८११

पछत्तरवाँ परिच्छेद

जालिम सिंह की शासन-नीति – लुटेरे मराठों से बहुत दिनों तक सुरक्षित कोटा-राज्य –

राज्य में जालिम सिंह का शासन-प्रबन्ध--अन्य राजाओं के साथ जालिम सिंह का व्यवहार – उसकी व्यवहारिक कुशलता – जालिम सिंह का स्वभाव – वह सब को प्रसन्न रखना जानता था – अङ्गरेजी सेनापति के साथ जालिम सिंह का व्यवहार—अङ्गरेज सेनापति का असन्तोष – अङ्गरेजी सेना की सहायता में जालिम सिंह – होलकर की कैद में सेनापति बख्शी – कोटा में होलकर का आक्रमण – कोटा की उन्नति – उम्मेद सिंह के साथ जालिम सिंह का व्यवहार। पृष्ठ ८११ – ८१७

छियत्तरवाँ परिच्छेद

अङ्गरेजी-सरकार और कोटा-राज्य – पिण्डारी लोगों के विरुद्ध युद्ध की घोषणा – राजस्थान के साथ अङ्गरेज-सरकार का सहयोग – मित्रता के लिए आमन्त्रण – सहयोग की शर्तों की घोषणा – कोटा-राज्य के साथ अङ्गरेजों की मैत्री – हाड़ौती-राज्य पर लुटेरों के आक्रमण की सम्भावना – कोटा में युद्ध की तैयारी – राजस्थान में अङ्गरेजों की नीति – विरोधियों की पराजय – राजस्थान के राजाओं की परिस्थितियाँ – लुटेरों के लगातार अत्याचार और उनकी लूट – एक केन्द्रीय शक्ति की स्थापना – जालिम सिंह की राजनीतिक सूझ – उसने लुटेरों और आक्रमणकारियों के विरुद्ध आवाज उठाई – अङ्गरेजी-सरकार के साथ कोटा की सन्धि – उम्मेद सिंह की मृत्यु – सन्धि का विरोध – कोटा में विद्रोह – उसका परिणाम। पृष्ठ ८१८ – ८२६

सतहत्तरवाँ परिच्छेद

कोटा-राज्य के षड़यंत्रों का मूल कारण – हड़ौती-राज्य से निर्वासित गोवर्धनदास – दिल्ली में रह कर गोवर्धन दास का षड़यंत्र – विवाह के बहाने मालवा जाने की स्वीकृति – कोटा राज्य में फिर से अशान्ति के बादल – कोटा और बूँदी के राज्यों में विद्रोहात्मक उत्तेजना – सेनापति सैफ-अली के द्वारा महाराव का समर्थन – जालिम सिंह की सूझ – राजधानी में युद्ध की तैयारी—आपसी विद्रोह का परिणाम—महाराव की असफलता—सन्धि के अनुसार राज्य में कार्य—गोवर्धनदास को कैद करने के लिए अङ्गरेजी सेना को आदेश—महाराव की तीर्थ यात्रा – महारावके पास सामन्तोंके पत्र—तीर्थ-यात्रा में महाराव का अनुभव – युद्ध की फिर से तैयारी सन्धि के लिए महाराव का पत्र—युद्ध के बाद राज सिंहासन पर महाराव। पृष्ठ ८२६ – ८४०

ऐतिहासिक यात्रा

अठत्तरवाँ परिच्छेद

मारवाड़ की तरफ

रोमाञ्चकारी उदयपुर राज्य – ऐतिहासिक खोज का कार्य – सामन्तों के साथ भेंट – विचार-परामर्श – सामन्तों के द्वारा सम्मान और सुविधायें – मेवाड़ से मारवाड़ जाने की तैयारी—उदय-पुर राज्य का बरसाती जीवन--जल का कष्ट – कुओं के जल का सुधार--प्रातःकाल महल में बजने वाले नगाड़े का अभिप्राय--राजा की ओर से मार्ग में सहायक सेना--तेरह मील के बाद मुकाम--बारीश नदी का दृश्य--राणा की परिस्थितियाँ और उसका अनुरोध--मारवाड़ के सैकड़ों जंगली ऊँटों का एक साथ बोलना--आठ वर्ष के हाथी का बच्चा--वृक्षों और जल से भरा हुआ रास्ता--कठिनाइयों के साथ प्रकृति का सौन्दर्य--देवपुर ग्राम--राणा का भानैज जालिम सिंह--जालिम सिंह और यती ज्ञान चन्द--पुलानों का दृश्य--राजस्थान में ओमी जाति के लोग--माणिक चन्द और रामसिंह--माणिकचन्द के षड़यंत्र--नाथद्वारा का शिखर--चलने के मार्ग में भीषण दलदल--मन्दिर के अधि-कार में चालीस हजार दूध देने वाली गायें--सुराट का वैश्य--मन्दिर का प्रधान पुजारी--फतेहचन्द

नामक हाथी कीं नाराजगी — बूनाश नदी की देवी--संन्यासी के द्वारा अङ्गरेजों की प्रशंसा--पहाड़ी स्थानों में प्रकृति की शोभा--पहाड़ों के ऊपर खेती--राणा कुम्भ के वंशज — सती मन्दिर--राजा दौलत सिंह से भेंट--सैनिकोंकी संकीर्ण मनोवृत्ति--जैन मन्दिर की विशेषता--स्वाभिमानिनी ताराबाई — बिदनोर का उद्धार — पृथ्वीराज की बहन — संकटपूर्ण रास्ता — स्मारकों के दर्शन । पृष्ठ ८४१ — ८६१

उन्नासीवाँ परिच्छेद

माहीर जाति के लोग — हिन्दू से मुसलमान होने वाला दाऊद खाँ — चौहान के साथ प्रमार राजपूतों का युद्ध — लड़ाकू मीना लोग- राजपूतों की बरबादी का मुख्य कारण— मेवाड़ के ब्राह्मणों में विधवा विवाह का प्रचार — मीना लोगों का सामाजिक जीवन--देवगढ़ का सामन्त--गोदवारा के रास्ते में गानोरा का सामन्त--गोदवारा सामन्त का निमन्त्रण--रूपनगर के सामन्त का पद--राणा रायमल के लड़कों की आपसी फूट--चौहान राजा चण्ड--गोदवारा प्रदेश का अधिकार—-सीसोदिया और चौहान राजपूतों के स्वास्थ्य की तुलना--लगातार यात्रा और उसकी कठिनाइयाँ--राणा के दूत कृष्णदास के साथ मुलाकात--दूत के साथ बातचीत--मेवाड़ और मारवाड़ राज्यों की सीमा--राणा के दूत निर्भीक बातचीत--मारवाड़ राज्य की विस्तृत रेतीली भूमि--मेवाड़-राज्य की भूमि की पहचान--मारवाड़ की भूमि में वृक्षों का अभाव--मन्दोर का प्रदेश--मन्दोर के सम्बन्ध में राणा की नीति--मन्दोर पर जोधा का आक्रमण--मन्दोर पर जोधा का अधिकार--मन्दोर और मेवाड़ की सीमा का निर्णय - अरावली पर्वत से निकलने वाली छोटी-छोटी नदियाँ--मेवाड़ और मारवाड़ की प्रजा का अन्तर— सोनीगुरा वंश के राजपूतों का साहस--चौहानो की वीरता के प्रमाण--गोगा चौहान की कीर्ति--महावीर का प्रसिद्ध मन्दिर--मान राजा का होम--नदोल की यात्रा--पाली का प्रसिद्ध नगर--शिवा जी और पाली के ब्राह्मण--चारण और भाट लोगो का भय–भाटों की आत्म हत्या का भय–पोकर्ण का सामन्त–सामन्त सुरतान सिंह पर आक्रमण । पृष्ठ ८६२—८८६

अस्सीवाँ परिच्छेद

लूनी नदी के पार बालू के विस्तृत मैदान — राजा जोधा का बसाया हुआ जोधपुर — जोधपुर का दुर्ग —राजधानी में जाने के मार्ग - जोधपुर के राजा के स्वागत का वैभव — मारवाड़ के राज महल -- राज दरबार का दृश्य — स्वाभिमानी राजा मानसिंह — मानसिंह के मनोभावों में परिवर्तन— राजा के द्वारा उपहार — राजा अजित सिंह — औरङ्गजेब के साथ अजित सिंह का संघर्ष—भीमसिंह और राजा मानसिंह — राठौर राजपूतों के गुरुदेव के कार्य — गुरुदेव के द्वारा भीमसिंह को विष दिया गया — राजा मानसिंह और गुरुदेव — राज्य में गुरुदेव के आधिपत्य — गुरुदेव के शिष्यों की सेना— गुरुदेव और राज्य के निवासी — राज्य के सामन्तों की चिन्तनायें — अमीरखाँ के सिपाहियों के द्वारा गुरुदेव की हत्या —मारवाड़ राज्य का उत्तराधिकारी बालक धौंकल सिंह — मारवाड़-राज्य में परिवर्तन — राजनीतिक सत्ता की निर्बलता — विरोधी लोगों को राजा मानसिंह के द्वारा दण्ड — राजा मानसिंह का उन्माद — राजसिंहासन पर छत्रसिंह — छत्रसिंह की मृत्यु — मानसिंह और राज्य के सामन्त—मानसिंह की राजनीति — मन्त्री अक्षयचन्द की सहायता और उसका परिणाम — प्राचीन राजधानी मन्दोर — मारवाड़ राज्य के वीरों के स्मारक — अभयसिंह और भक्तसिंह -- राजा अजित सिंह और राजा बुधसिंह की रानियाँ - परिहार राजपूतों का इतिहास–राजा नाहरराव--नाहरराव के स्मारक की देखभाल का कार्य--मारवाड़ के वीरों की प्रतिमायें--तेंतीस कोटि देवताओं का स्थान--राजा अजित सिंह का बाग--बाग में विभिन्न प्रकार के फल-फूल वाले वृक्ष--बाग की रमणीकता--मानसिंह के महल में भोजन--राजा के साथ भेंट--मारवाड़ से बिदा का दिन । पृष्ठ ८९०--९१३

इक्यासीवाँ परिच्छेद

नन्दोला का रास्ता--शेखावती तालाब – नन्दोला ग्राम और उसके स्मारक—इन्दुरा ग्राम का कोट – पाँचकुल्ला नामक स्थान--पठानों के आक्रमण--पीपल नगर--जैनियों की आबादी--व्यवसायी ओसवाल और महेश्वरी वैश्य--पीपल नगर के छींट के कपड़े--पीपल नगर में निमाज के सामन्त का अधिकार--पीपल नगर का प्रसिद्ध स्मारक--मराठों का आक्रमण--प्रमार वन्शी गन्धर्व सेन--लक्ष्मी देवी का मन्दिर--शिला लेख में ऐतिहासिक विवरण--साँपू सरोवर और उसके सम्बन्ध की जनश्रुति--साँप का धन--लक्खफुलानी का कुण्ड--भुण्ड ग्राम--कुचामन का सामन्त गुमान सिंह--स्वतन्त्रता की रक्षा में बदन सिंह का बलिदान--राजा विजय सिंह और बदन सिंह--राजा विजय सिंह की सहायता--मराठों का आक्रमण--बदन सिंह का स्मारक--मैरता के दृश्य--खुशामत का परिणाम--मैरता का प्रतिष्ठाता--जयमल का अपराध -मैरता के स्मारक--सैयद--बन्धुओं का अजित सिंह के प्रति षड्यन्त्र--अजित सिंह की हत्या--हत्याकारी बख्त सिंह--अभय सिंह और बख्त सिंह--रामसिंह का अभिषेक--रामसिंह की अशिष्ठता--सामन्तों के साथ विरोध और उसका परिणाम--रामसिंह और बख्त सिंह का युद्ध--मराठों की सहायता--साला और बहनोई – ईश्वरी सिंह का षण्यन्त्र विजय सिंह और ईश्वरी सिंह—सेनापति सींधिया की मृत्यु – हत्याकारी राजपूत और अफगानी सैनिक को पकड़ने के लिए मराठा सैनिकों की दौड़ – राजपूत सैनिक की बुद्धिमानी – अफगानी सैनिक मारा गया – अनाश्रित रामसिंह – उसके जीवन के अन्तिम दिन। ६१४—६४१

बयासीवाँ परिच्छेद

जयअप्पा सींधिया के स्थान पर माधव जी सींधिया – माधव जी सींधिया को राजपूतों की परिस्थितियों का ज्ञान – राजपूतों का जातीय द्रोह – जयपुर का राजा प्रताप सिंह—मराठों के साथ युद्ध—मराठों का दूसरा आक्रमण—कविता का भयानक परिणाम—जयपुर सेना का विश्वासघात—मराठों की विजय—मारवाड़ पर मराठों का आक्रमण— दूरदर्शी विजय सिंह—आपसी द्वेष के कारण शत्रु की सहायता—मेरता क मैदानों में मराठों के साथ युद्ध—जोधपुर राजधानी में मन्त्रियों की फूट का परिणाम—सामन्त महीदास की प्रतिज्ञा—राठौर सेना की पराजय का कारण फ्रांसीसी सेनापति डीं वाइन—बिना युद्ध के मराठों की विजय—आसोप का अफीमची सामन्त— युद्ध की फिर से तैयारी—जवान सिंह की उत्तेजनापूर्ण बातें—मराठों की तोपों के गोलों के सामने राजपूतों के बलिदान—युद्धक्षेत्र में घायलों की दशा—शिविर में अहवा के सामन्त की चिकित्सा--अहवा के सामन्त की मृत्यु – विष खाकर मन्त्री भीमराज की आत्महत्या—मैरता के युद्ध में मराठों का सर्वनाश—बहादुर राजपूतों की दुरवस्था का कारण – राजपूतों के साथ सच्ची सहानुभूति का परिणाम - कोटा के जालिम सिंह की स्पष्ट बातचीत—अङ्गरेजों की सफलता का कारण भारतवर्ष की आपसी फूट—झारो का सम्पन्न ग्राम और उसका स्मारक—माहीर लोगों के आक्रमण पुष्कर का प्रसिद्ध स्थान—अजमेर की यात्रा। पृष्ठ ६४१ – ६५६

तिरासीवाँ परिच्छेद

अजमेर की ऐतिहासिक विशेषता—मुस्लिम शासकों के अत्याचार—जैनियों का प्राचीन मन्दिर—फैली हुई जनश्रुति—अजमेर का विस्तृत तालाब—उस तालाब का निर्माता—अजमेर का अन्नसागर—उस सागर की विशेषता—पठानों के द्वारा महल का विनाश—पराक्रमी जयमल की ख्याति—तीन सौ साठ ग्रामों का प्रदेश बिदनौर—राणा भीम के साथ मुलाकात—बिदनौर के सामन्त के साथ राणा का विवाद —राणा भीम के साथ मेरी मित्रता का सम्बन्ध—सामन्त के साथ राणा के झगड़े का निर्णय राणा के बहुमूल्य उपहार—भीलवाड़ा का प्रसिद्ध नगर—वहाँ के

राजपूतों का आपसी झगड़ा—भीलवाड़ा में मेरा आतिथ्य—भीलवाड़ा जाने में मेरी अस्वीकृति—राजपूतों के साथ मेरा स्नेह—राजपूतों के झगड़े कानिर्णय—भीलवाड़ा के राजपूतों का सामन्त—टाडगंज नाम रखने का प्रस्ताव—मेरी नामन्जूरी—भीलवाड़ा के साथ मेरा स्नेहभाव—ग्रामीण किसानों के द्वारा स्वागत—मेवाड़ राज्य में स्वागत की प्रणाली—मरुभूमि की यात्रा से होने वाली थकावट—यात्रा से लौटने पर राणा का पत्र—देवारी नामक स्थान पर मुकाम—राणा का स्नेहपूर्ण सन्देश—मेवाड़ की राजधानी की रमणीकता—राजधानी के दुर्ग—आहर नामक स्थान के स्मारकों के निर्माण में संगमरमर पत्थर के प्रयोग—आहर नामक स्थान के पुराने नाम—साथ में पथ-प्रदर्शक की सहायता—ज्योतिषी का परामर्श मेवाड़ के नागरिकों का प्रेम। पृष्ठ ६५७—६६१

चौरासीवाँ पपिच्छेद

उदयपुर की वापसी—सूरजपुरा की सराय में आगे का एक प्रसिद्ध दलदल—नगर के चारों ओर की विस्तृत भूमि में जल—एक साधारण नगर में सात सौ पचास जैनियों के मन्दिर—उनकी बिगड़ी हुई अवस्था—खरोदा का प्रसिद्ध स्थान और दुर्ग—उसकी उपयोगिता और विशेषता—अमरपुरा नामक स्थान पर हम लोगों का मुकाम—ब्राह्मणों को दान में मिला हुआ नगर—अनधिकारी और अकर्मण्य ब्राह्मण—राजा पर ब्राह्मणों का निमन्त्रण—राजा को ब्रह्म-हत्या का भय—राणा के सामने मेरा प्रस्ताव—राणा के दरबार में ब्राह्मण ज्योतिषी के द्वारा ब्राह्मणों के अधिकारों का समर्थन—मेवाड़-राज्य में मराठों और पठानों के अधिकार—वर्त्तमान राजपूतों की निर्बलता—मेवाड़ के बच्चे-बच्चे के साथ मेरा स्नेह—राजस्थान के साथ मेरा सम्बन्ध—राजपूतों की बुराइयों को दूर करने की चेष्टा! पृष्ठ ६६२—६७०

पचासीवाँ परिच्छेद

हिन्ता का सामन्त—स्वागत की व्यवस्था—मेवाड़ राज्य का आपसी विद्रोह—हिन्ता को उससे छीन लेने का प्रस्ताव—मानसिंह की नियुक्ति—हिन्ता का विवाद—राणा के साथ नथारा के सामन्त का असन्तोष—लावा के दुर्ग पर शक्तावत संग्रामसिंह का अधिकार—दूदिया संग्राम सिंह—दूदिया राजपूतों का परिचय—चन्द्रभानु किसान और राणा जगतसिंस—चन्द्रभानु को कोआरिओ के शासन का सनद—मेवाड़ के राजसिंहासन पर राजसिंह—राणा राजसिंह और सामन्त सरदार सिंह—सरदारसिंह पर राजसिंह का क्रोध—मन्दिर के देवता की मध्यस्थता—मेवाड़-राज्य पर सामन्त का तीन दिन का शासन—राज्य के खजाने पर सामन्त का आधिपत्य—लावा में शानदार महल—राजधानी के खजाने से नौ लाख रुपये—अपने प्रदेश में सामन्त का वैभव—तेजस्वी नाहरसिंह—जयसिंह और मानसिंह—मानसिंह की प्रार्थनायें—अपने अधिकार की माँग—मानसिंह को आस्वासन—मानसिंह की सफलता के लिए नेक सलाह।

पृष्ठ ६७०—१०००

———

राजस्थान का सही नकशा
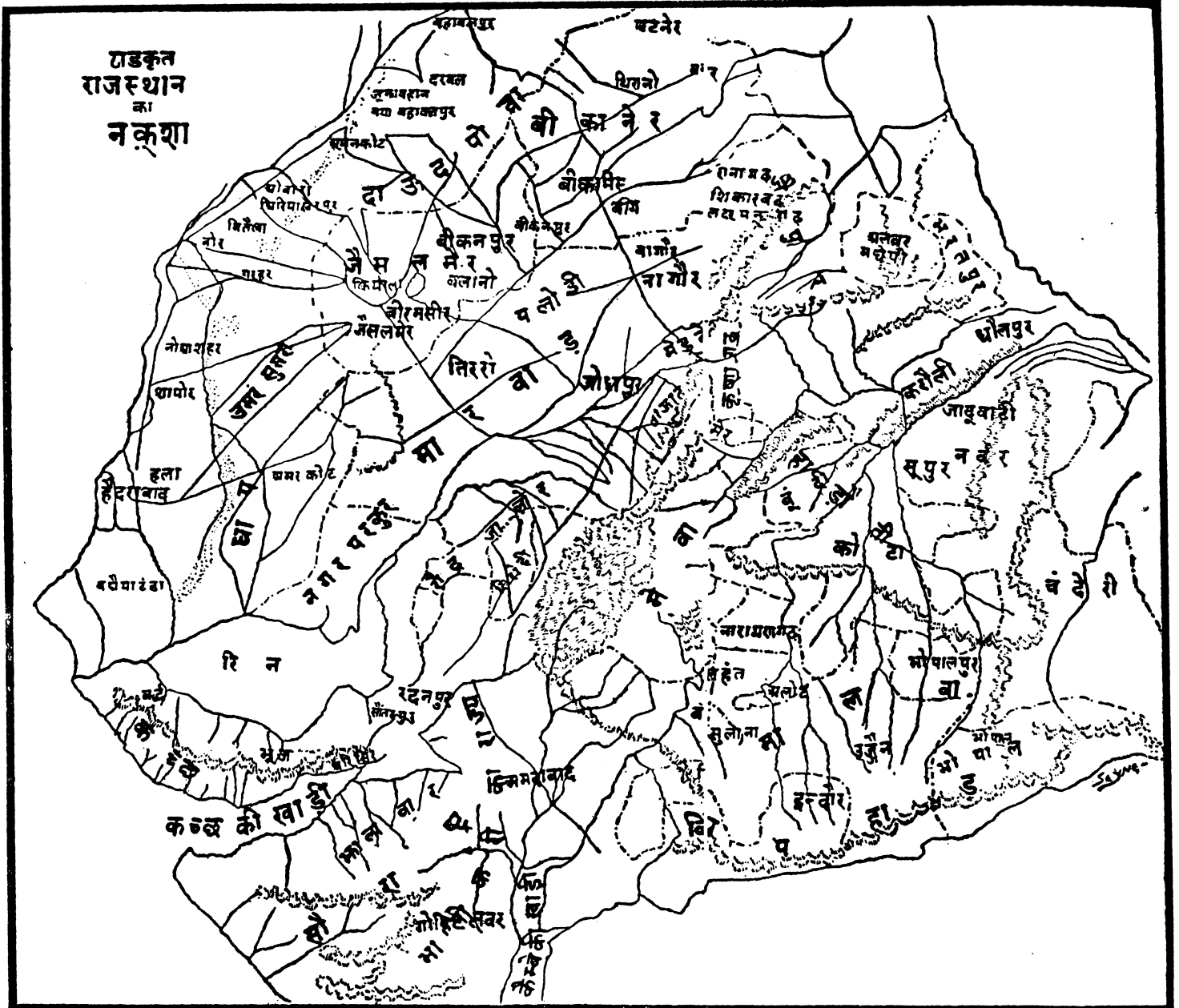
जेम्स टॉड महोदय ने सारे राजस्थान का भ्रमण करके सन् १८१५ में यह नकशा स्वयं तैयार किया था

राजस्थान का इतिहास

भूगोल सम्बन्धी परिचय

भारतवर्ष में राजपूत राजाओं के रहने वाले प्रदेश का नाम राजस्थान है। इसको रजवाड़ा, रायथाना और राजपूताना भी कहा जाता है। शहाबुद्दीन गोरी के आक्रमण के पहले राजस्थान का विस्तार कितना था, यह नहीं कहा जा सकता। हो सकता है कि उस समय उसका विस्तार गंगा, यमुना को पार कर हिमालय के करीब तक पहुँच गया हो। इस समय हमारे सामने उतना ही राजस्थान है, जिसके अन्तर्गत अनेक जातियों के लोग रहते हैं और जिसे राजस्थान अथवा राजपूताना कहा जाता है। इसके पश्चिम में सिन्धु नदी का कछार, पूर्व में बुंदेलखण्ड, उत्तर में सतलज नदी के दक्षिण का मरुस्थल भाग, जो जंगल देश कहलाता है और दक्षिण में विन्ध्याचल पर्वत है। इसका क्षेत्रफल तीन लाख पचास हजार वर्गमील है। इस इतिहास में उसके राज्यों के वर्णन का जो क्रम रखा गया है, वह इस प्रकार है : (१) मेवाड़ अथवा उदयपुर, (२) मारवाड़ अथवा जोधपुर, (३) बीकानेर और कृष्णगढ़, (४) कोटा, (५) बूंदी, (६) आम्बेर अथवा जयपुर, उसके स्वतंत्र और परतंत्र भाग, (७) जैसलमेर, (८) हिन्दुस्तान का मरुस्थल भाग, जो सिन्धु नदी के कछार तक चला गया है।

सन् १८०६ ईसवी में, ईस्ट इन्डिया कम्पनी की तरफ से जो राजदूत सेंधिया-दरबार में भेजा गया था, उसके साथ मेरी नियुक्ति हो गयी थी। उसी समय से इस इतिहास की सामग्री जुटाने का काम मैंने आरम्भ कर दिया था। उस समय के पहले बने हुए राजस्थान के नक्शे सही न थे। मैंने उसे सही तौर पर तैयार करने का काम किया और सन् १८१५ ईसवी में यहाँ का भूगोल नक्शों के रूप में तैयार करके मारक्विस आफ हेस्टिंग्स को मैंने भेंट किया, वह बहुत काम का साबित हुआ।

सेंधिया की सेना उन दिनों में मेवाड़ में थी। इस स्थान से ही नहीं, बल्कि राजस्थान की वास्तविक स्थिति से योरप के लोग पूर्ण रूप से अपरिचित थे। उस समय तक यहाँ के जो नकशे बने थे, उनमें यहाँ का कोई भी प्रसिद्ध स्थान तक नकशों में सही स्थानों पर न था। यहाँ तक कि मेवाड़ के उदयपुर और चित्तौर की दोनों राजधानियाँ भी नकशों में गलत स्थानों पर दिखायी गई थीं और वह गलती इस प्रकार थी कि चित्तौर उदयपुर के पूर्व और ईशान के मध्य में होने के बजाय, अग्निकोण में दिखाया गया था। इसका साफ अर्थ यह है कि राजस्थान के भूगोल का बिल्कुल ज्ञान नकशा बनाने वालों को न था। जो नकशे उस समय तक बने थे, उनमें अन्य बातों का कोई वर्णन नहीं था। जो नकशे सन् १८०६ ईसवी तक के बने हुये थे, उनमें राजस्थान के बहुत से पश्चिमी और मध्य के राज्यों का पता न था। उस समय तक लोग यह समझते थे कि राजस्थान की समस्त नदियां दक्षिण की ओर बढ़ती हुई नर्बदा में जाकर मिलती हैं। इस प्रकार की भूल को संशोधन करने का कार्य भारतवर्ष के भूगोल तैयार करने वाले मिस्टर रेनल ने किया था। उसके

बाद उसमें जो त्रुटियाँ रह गई थीं, उनको दूर करने का काम मेरे द्वारा हुआ। यहाँ पर यह लिखना अनुचित न होगा कि मेरे बाद जो नकशे बने हैं, उनका आधार मेरा तैयार किया हुआ नकशा रहा।

उदयपुर जाने के लिये अंगरेजी दूत का रास्ता आगरे से जयपुर की दक्षिणी सीमा में होकर था। इस रास्ते के कुछ अंश की पैमाइश डाक्टर डबल्यू हण्टर ने की थी। मैंने अपनी पैमाइश में उसको आधार मान लिया। डाक्टर हण्टर का तैयार किया हुआ नकशा उस रेजीडेण्ट के पास मौजूद था, जो सेंधिया दरबार को भेजा गया था और जिससे होकर सन् १७९१ ईसवी में राजदूत कर्नल पामर गया था। उतने भाग का वह नकशा सही था। इसलिये अपनी पिछली पैमाइश में मैंने उसी का आधार लिया। उस नकशे में मध्य भारत के समस्त सीमा के स्थान दिखाये गये थे। उस नकशे में आगरा, नर्बर, दतिया, झाँसी, भोपाल, सारंगपुर, उज्जैन और वहाँ से लौटने पर कोटा, बूंदी, रामपुरा और बयाना से लेकर आगरा तक सभी स्थानों को प्रकट किया गया था। इस प्रकार डाक्टर हण्टर का जो नकशा था, वह रामपुरा तक ही मेरे लिये सहायक रहा। उसके पश्चात् रामपुरा से उदयपुर तक मुझे नयी पैमाइश करनी पड़ी।

जिस सेना के साथ मैं था, उदयपुर से चित्तौर के करीब से गुजरती हुई वह सेना मालवा के मध्य में पहुँचकर विन्ध्याचल से निकलने वाली अनेक नदियों को पार करती हुई बुंदेलखण्ड की सीमा पर खिमलासा में जाकर रुकी और कुछ दिनों तक वहाँ पर उसने मुकाम किया। सेंधिया के दरबार में रहकर मैं इस प्रदेश के विभिन्न स्थानों में घूमता रहा और पैमाइश का काम करता रहा। सन् १८१० और ११ में पैमाइश करने वालों की मैंने दो टोलियाँ नियुक्त कीं और आवश्यकता के अनुसार मैं उनसे काम लेने लगा। अपने इस काम के लिये मैंने और भी साधन जुटाये थे। पारितोषिक देकर मैंने इस देश के अनेक जानकारों से काम लिया। प्राचीन हिन्दू राज्यों में एक नगर से दूसरे नगर की दूरी का हिसाब रहता था। ※

जिन लोगों को मैंने इस काम में लगा रखा था, उनके कामों को मैं देख सुनकर सही समझने का काम करता था। इन तरीकों से कई एक वर्षों में मैंने यहाँ के रास्तों का नकशा तैयार कर लिया और फिर उनकी सहायता से एक साधारण नकशा तैयार किया। उसके बाद बने हुए नकशों की त्रुटियों को समझने का काम किया। पैमाइश के काम में मैंने बड़ी सावधानी से काम लिया। सन् १८१५ ईसवी में जो मैंने नकशा तैयार करके गवर्नर जनरल को दिया था, उससे भारत में ईस्ट इण्डिया कम्पनी को काम करने में बड़ी सहायता मिली। पिंडारों के युद्ध में उस नकशे ने बहुत काम किया और बाद में पेशवा के राज्य को अङ्ग-भङ्ग करने में उसने विशेष सहायता पहुँचायी।

सन् १८१७ से १८२२ ईसवी तक पैमाइश करके मैंने रेखायें तैयार कीं। इस स्थान पर मैं कप्तान पी० टी० वाघ के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करता हूँ, जिसकी सहायता से मेरे कार्य में बहुत कुछ सुधार का काम हुआ। उसको पैमाइस से चित्तौर, माण्डलगढ़, जहाजपुर, राजमहल, भिणाय, बदनौर और देवगढ़ की तरह के अनेक स्थानों का कार्य सरल हो गया। सन् १८२० ईसवी में मैंने अर्बली को पारकर एक यात्रा की और उसमें मैं कुम्भलमेर और पाली होता हुआ।

※ पाटलिपुत्र (पटना) के मौर्यवंशी राजा चन्द्रगुप्त के दरबार में सिरिया के राजा सेल्युकस क एलची मैगस्थनीज ईसा से ३०६ वर्ष पूर्व आया था, उसने लिखा है कि भारतवर्ष में प्रत्येक दस स्टेडियम के फासिले पर कासों के पत्थर लगे हुए हैं। एक स्टेडियम ६०६ फीट ९ इञ्च का होता है।

मारवाड़ की राजधानी जोधपुर और मेड़ता होकर लूनी नदी की खोज करता हुआ अजमेर तक पहुँच गया। उसके बाद घूमता हुआ उदयपुर लौटकर आ गया।

राजस्थान के राज्यों की भौगोलिक स्थिति बहुत-सी बातों में एक दूसरे से भिन्न है। इसीलिये उसका संक्षेप में यहाँ पर कुछ वर्णन आवश्यक है। आबू पहाड़ के सबसे ऊँचे शिखर पर खड़े होकर देखने से अर्बली पहाड़ की १५०० फीट नीची श्रेणी को पार करती हुई दृष्टि मेवाड़ के मैदानों तक पहुँचेगी। चित्तौड़ के करीब ऊँची भूमि पर खड़े होकर देखने से यदि रतनगढ़ और सींगोली होकर कोटा की ओर जाने वाले रास्ते पर दृष्टिपात किया जाय तो रूसी तातार के छोटे छोटे मैदानों की तरह के तीन मैदान दिखायी देंगे।

अर्बली पर्वत विन्ध्याचल से मिला हुआ है। इसी आधार पर यह कहा जा सकता है कि अर्बली विन्ध्याचल से निकला है। यद्यपि दोनों पहाड़ों की ऊँचाइयों को लेकर अनेक प्रकार की इस विषय में शंकायें भी की जा सकती हैं। आबू पर खड़े होकर मालवा की भूमि पर दृष्टिपात करने से मालवा के काले मैदान दिखाई देते हैं। विन्ध्याचल के शिखरों से निकलकर उत्तर की ओर बहने वाली अनेक जल की धारायें देखने में आती हैं। उनमें कुछ धारायें ऊँचे टीलों से घाटियों पर गिरती हैं और कुछ पहाड़ी रास्तों को पार करती हुई चम्बल नदी में जाकर मिल जाती हैं।

कुम्भलमेर से अजमेर तक का सम्पूर्ण भाग मेरवाड़ा के नाम से प्रसिद्ध है। वहाँ पर मेर नाम की एक पहाड़ी जाति के लोग रहा करते हैं। इस प्रकार के स्थानों की ऐतिहासिक बातें, आगामी पृष्ठों में इतिहास के साथ लिखी गयी हैं। इस पहाड़ी स्थान की चौड़ाई लगभग ६ से १५ मील तक है। उस स्थान में करीब डेढ़ सौ गाँवों की आबादी है। यहाँ पर खेती का काम अधिक होता है। इस पर्वतमाला पर खड़े होकर देखने से इसकी चोटियों पर कई एक किले दिखाई देते हैं। अर्बली और उसके साथ सम्बन्ध रखने वाली पहाड़ियों पर खनिज और धातु सम्बन्धी अनेक पदार्थ पाये जाते है। वहाँ पर जो खाने हैं, उनमें राजाओं का अधिकार रहता है। कुछ पहले मेवाड़ में राँगे की खानें थीं। यहाँ के लोगों का कहना है कि यहाँ पर खानों से चाँदी निकाली जाती थी। लेकिन मुगल शासन काल में उन खानों की बरबादी हो गई। उसके पहले यहाँ पर ताँबे की खानें भी थीं, जिनसे पैसे बनाये जाते थे। इसके पश्चिमी भाग में सुरमा भी मिलता था। तामड़ा, नीलमणि, बिल्लौर और साधारण श्रेणी के पन्ने भी मेवाड़ में पाये जाते थे।

अर्बली के ऊँचे स्थानों के बाद इस प्रदेश के पठार और मध्य हिन्द की ऊँची और बराबर जमीन कुछ बातों में विशेषता रखती है। इसीलिये उसके सम्बन्ध में थोड़ा-सा यहाँ प्रकाश डालना आवश्यक है। इस जमीन की ऊँचाई और विषमता पश्चिम से पूर्व की तरफ मैदानों को पार करने पर साफ साफ दिखायी देती है। रणथंभोर के करीब यह ऊँची जमीन अनेक पंक्तियों में बदलती हुई दिखायी देती है। सूर्य की धूप में उसके शिखर श्वेत रंग के मालूम होते हैं। ये स्थान पहाड़ियों से पृथक होने के बाद अपनी बनावट पहाड़ी बनाये रखते हैं। यहाँ की नदियों का प्रवाह बड़ी तेजी के साथ बहता हुआ दिखायी देता है। उनमें चार नदियाँ अपनी तेज धारा के लिए अधिक प्रसिद्ध हैं। इस ऊँची और बराबर जमीन का धरातल दूसरे ही प्रकार का है। कोटा के आगे की विस्तृत चट्टान पर बनस्पति का पूर्ण अभाव है। परन्तु उसका कुछ भाग उपजाऊ होने के लिये अधिक प्रसिद्ध है और भारत में कृषि के लिये अधिक उपयोगी माना जाता है। यहाँ की जमीन खनिज पदार्थों के लिये अच्छी नहीं समझी जाती। यहाँ पर शीशा और लोहा पाया जाता है। जिन स्थानों में खनिज पदार्थों की खानें हैं, उनका लाभ यहाँ के लोग बहुत कम उठाते हैं। यहां पर शीशा,

राँगा और तांबा अधिक तादाद में प्राप्त किया जा सकता है। लेकिन इस प्रकार की चीजों के लिये भी यहाँ के लोग दूसरे देशों पर आश्रित रहते हैं।

मध्य हिन्द की नदियों में चम्बल नदी सबसे बड़ी है। उसके बहुत से सोते विन्ध्याचल पर्वत के बीच में हैं। इस नदी की लम्बाई पाँच सौ मील से अधिक है। उसके किनारे बहुत-सी, जातियों के लोग रहा करते हैं। सोंधिया, चन्द्रावत, सीसोदिया, हाड़ा, गौड़, जादूँ, सीकरवाल, गूजर, जाट, तोंवर, चौहान, भदौरिया, कछवाहा, सेंगर और बुँदेला आदि अनेक जातियों के निवास स्थान चम्बल और कुँवारी नदियों के बीच में हैं। लूनी नदी के मार्ग की लम्बाई उसके प्रारम्भ से लेकर आखीर तक ३०० मील से अधिक है। दक्षिण की तरफ लूनी नदी के उत्तर तरफ से और पूर्व की ओर शेखावाटी की सीमा से रेतीले भाग की शुरूआत होती है। बीकानेर, जोधपुर, जैसलमेर आदि सभी रेतीली जमीन पर हैं। जैसलमेर मरुस्थल से घिरा हुआ है। यहाँ का दुर्ग एक पहाड़ी पर कई सौ फीट की ऊँचाई पर बना है। कहा जाता है कि यहाँ पर किसी समय हापा नाम के किसी राजा का अधिकार था। लेकिन उसका अब कोई अस्तित्व वहाँ पर नहीं है। राजस्थान के जो प्रदेश इस मरुस्थली भूमि पर हैं, उनको मरुभूमि के नाम से ही लोग अधिक मानते हैं। वास्तव में यह नाम उसी भाग के लिये अधिक उपयोगी मालूम होता है, जो राठौर राजाओं के अधिकार में है।

लूनी नदी के बालोतरा स्थान से लेकर उसके समस्त घाट और उमरसुमरा तथा जैसलमेर के पश्चिमी हिस्से बिल्कुल सुनसान तथा उजाड़ हैं। लेकिन सतलज नदी से लेकर पाँच सौ मील की लम्बाई और लगभग पचास मील की चौड़ाई तक की सभी भूमि अनेक प्रकार की चीजों के लिये उपयोगी है। वहाँ पर सिन्धु नदी के कछार और उसकी सूखी जमीन पर रहने वाले गड़रिए अपनी भेड़ें चराया करते हैं। इन स्थानों पर जल के बहुत से झरने हैं। उनके आसपास राजड़, सोढा, माँगलिया और सहराई लोग प्रायः दिखायी देते हैं।

यहाँ पर विस्तार के भय से झीलों, सज्जी क्षेत्रों एवं मरुस्थल की अन्यान्य पैदावारों का वर्णन नहीं किया जाता और न वनस्पति तथा खनिज पदार्थों का ही वर्णन करने की आवश्यकता है। यद्यपि जैसलमेर के निकट एक पहाड़ी है, जिसमें पीले पत्थर अधिक पाये जाते हैं और जिसके खूबसूरत पत्थर इस देश से अरब देश तक की अच्छी इमारतों में लगाये गये हैं।

———

राजपूत जातियों का ऐतिहासिक परिचय

पहला परिच्छेद

पुराणों की सामग्री–ऐतिहासिक सामग्री देनेवाले ग्रन्थ–पौराणिक ग्रन्थों की सहायता–राजाओं के नामों में मतभेद–सृष्टि की उत्पत्ति–सभी जातियों का वर्णन–विभिन्न जातियों का विश्वास–मनुष्य जाति का इतिहास–भविष्य पुराण का वर्णन–मनुष्य जाति के इतिहास में हिन्दुओं और यूनानियों का विश्वास–राजपूत और सीथियन लोग–उनका एक-सा जीवन।

मध्य और पश्चिमी भारत की वीर राजपूत जातियों का इतिहास लिखने के समय सब से पहले यह जरूरी मालूम होता है कि उनकी उत्पत्ति कहाँ से हुई, इस पर सावधानी के साथ खोजकर लिखा जाय। इस छानबीन के लिए मैंने हिन्दुओं के पौराणिक ग्रंथों को प्राप्त किया और एक पण्डित मण्डली के द्वारा उनको समझने का काम किया : उस मण्डली का प्रधान यती ज्ञान चन्द्र नामक एक व्यक्ति था। इन पुराणों में इस देश के ऐतिहासिक और भौगोलिक वर्णन पाये जाते हैं। लेकिन इस प्रकार की सामग्री के जुटाने में भागवत, स्कन्द, अग्नि और भविष्य पुराण अधिक सहायता करते हैं। इन पौराणिक ग्रंथों में इतिहास और भूगोल की जो सामग्री मिलती है, वह एक-सी नहीं है। कुछ बातों में इन ग्रन्थों के वर्णन, एक दूसरे के विरोधी हो जाते हैं। परन्तु इस प्रकार के विरोध राजाओं के नामों और उनकी संख्या के सम्बन्ध में ही अधिक पाये जाते हैं। ऐतिहासिक वर्णन में कोई मतभेद नहीं है।

सृष्टि की उत्पत्ति के सम्बन्ध में हिन्दुओं के ग्रन्थों का वर्णन बहुत कुछ उसी प्रकार का है, जिस प्रकार संसार की अन्य जातियों ने इसके सम्बन्ध में वर्णन किया है। सभी जातियों के ग्रंथों के अनुसार, सृष्टि की उत्पत्ति महाप्रलय के बाद से आरम्भ होती है। इस उत्पत्ति के सम्बन्ध में हिन्दुओं के ग्रंथ अग्नि पुराण में लिखा है :

ब्रह्मा की आज्ञा से समुद्र ने समस्त संसार को नष्ट कर दिया। उस समय वैवस्वतमनु (नूह) जो कि हिमालय पर्वत के पास रहा करता था, कृतमाला नदी में देवताओं को जलाञ्जलि दे रहा था। अकस्मात उस समय उसके हाथ में एक छोटी-सी मछली आ गयी। उसी समय वैवस्वतमनु को सुनायी पड़ा—'इसकी रक्षा करो।' मछली ने बढ़ना आरम्भ किया और उसने विशाल काया धारण कर ली। वैवस्वत मनु अपने पुत्रों, स्त्रियों और तपस्वियों के साथ समस्त जीवधारियों का वीर्य अपने साथ लेकर उस नाव पर बैठ गया, जो उस मछली के सींग में बँधी थी। इस प्रकार वे सब बच गये। यहाँ पर उत्तर की एक विशाल पर्वत श्रेणी का वर्णन मिलता है, जिसके करीब वैवस्वत मनु रहा करता था, जिससे संसार के समस्त मनुष्यों की उत्पत्ति हुई है। उस मनुष्य को हिन्दुओं के ग्रंथों में वैवस्वतमनु जिसे हिन्दू सूर्य का पुत्र मानते हैं और ईसाई लोग उसको नूह के नाम से मानते हैं, लिखा गया है। उन लोगों का विश्वास है कि महाप्रलय मे नूह बच गया था और उसी के बाद से संसार के मनुष्यों की उत्पत्ति हुई है। भविष्य पुराण में लिखा है :

"वैवस्वतमनु, जो सूर्य का पुत्र था, सुमेरु पहाड़ पर राज्य करता था। उसके वंश में ककुत्स्थ नामक राजा की उत्पत्ति हुई। उसने अयोध्या के राज्य पर अधिकार किया और उसके वंशज धीरे-धीरे संसार में फैल गये।"

इस सुमेरु पर्वत को ब्राह्मण महादेव, आदीश्वर और बाघेश का निवास स्थान मानते हैं और जैनियों का कहना है कि आदिनाथ अर्थात प्रथम जिनेश्वर के रहने का स्थान सुमेर पर्वत पर था। उनके अनुसार यह भी मालूम होता है कि वहीं पर मनुष्यों को खेती और सभ्यता की शिक्षा दी गयी थी। यूनानी लोग सुमेरु पर्वत को बैकस का निवासस्थान मानते हैं। उन लोगों में एक प्रचलित कथा का सार इस प्रकार है "बैकस जुपीटर की रान से उत्पन्न हुआ था।"

मनुष्य जाति के इतिहास के सम्बन्ध में हिन्दुओं और यूनानी लोगों का एक ही विश्वास है। दोनों जातियों के प्राचीन ग्रंथ एक ही प्रकार का निर्णय करते हैं। उनके ग्रंथों से मालूम होता है कि संसार के समस्त मनुष्यों की उत्पत्ति एक ही आदमी से हुई है और उस आदमी के नाम भिन्न-भिन्न जातियों ने अलग अलग लिखे हैं। वास्तव में आदीश्वर, असिरीश, बाघेश, बैकस, वैवस्वत मनु और मीनस आदि सभी नाम उस आदि पुरुष नूह के ही नाम हैं, जिससे मनुष्य जाति की उत्पत्ति हुई। हिन्दुओं के ग्रंथ मनुष्य की उत्पत्ति का स्थान पश्चिम में काकेशस पर्वत के मध्य में स्वीकार करते हैं। वैवस्दतमनु, जो उनके अनुसार इस सृष्टि का आदि पुरुष था, वहीं पर रहा करता था। उसके वंशज वहाँ से चल कर पूर्व की ओर सिन्धु नदी और गंगा के किनारे आये और कौशल में अयोध्या को अपनी राजधानी बनाया, जो अब अवध के नाम से प्रसिद्ध है। उस समय हिन्दू और ग्रीक जाति में कोई भेद न था। सब मिल कर एक ही स्थान में रहते थे और एक-सा जीवन व्यतीत करते थे।

मध्य एशिया के जिस भाग से आमू, आक्सस, जेहून और दूसरी नदियाँ प्रवाहित हुई है, उसी पार्वतीय स्थान को सूर्य और चन्द्रवंशी लोगों ने अपना आदि स्थान स्वीकार किया है। ❀ इन सब बातों से साबित होता है कि संसार के सभी मनुष्यों का मूल स्थान एक ही था और बाद में वहीं से लोग पूर्व की तरफ आये। संसार की सभी जातियां उसे अपना जन्म-स्थान स्वीकार करती हैं।

राजपूतों के स्वभावों और उनकी आदतों से भी इस बात का साफ-साफ पता चलता है कि वे और शक लोग किसी समय एक थे और ठंडे प्रदेश में एक साथ रहा करते थे। इसका प्रमाण यह है कि शक लोगों की सभी बातें राजपूत जातियों में पायी जाती हैं। शीत प्रधान देश के रहने वाले शकों के स्वभाव और उनकी आदतों को अपना लेना गर्म देश के निवासियों के लिए सम्भव न था। शक लोगों की वीरता, उनकी आदतें और उनके विश्वास राजपूतों में पूर्ण रूप से देखने को मिलते हैं। अनेक प्रकार की सामाजिक प्रथाओं के साथ-साथ, अश्वमेध यज्ञ की प्रथा भी राजपूतों में वही है, जो शक लोगों में पायी गई है। इन सब बातों का साफ अर्थ यह है कि

❀ प्रसिद्ध इतिहासकार सर वाल्टर रेले ने अपने ग्रंथ 'हिस्ट्री ऑफ दि वर्ल्ड' में लिखा है—जल प्रलय के बाद सबसे पहले भारत में ही वृक्षों और लताओं की उत्पत्ति हुई और मनुष्यों की आबादी शुरू हुई। इसका सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि मूसा ने जिस अरारट पर्वत का जिक्र किया है उसका अर्थ जर्मनी भाषा में पर्वत माला है। वह स्थान काकेशस (कोहकाफ) की पर्वतमाला के हिस्से में रहा होगा। वह स्थान उस पर्वत माला की पूर्व दिशा में होना चाहिए। सर वाल्टर रेले के अनुसार, मनु का निवास स्थान भारत और शाकद्वीप के बीच में होना चाहिये।

आरम्भ में बहुत थोड़े से मनुष्य संसार में थे और वे बिना किसी भेद और विचार के एक ही स्थान पर रहकर अपना जीवन व्यतीत करते थे।

दूसरा परिच्छेद

राजपूतों की वंशावली–उसकी खोज का काम–हिन्दू ग्रन्थों की सहायता–पुराणों की मिश्रित सामग्री–भाष्यकारों की मनमानी–उसका प्रधान कारण–बैबिलोनिया की अवस्था–भाष्यकारों के पहले भारतीय पुराण–अनुसंधान करने वालों पर आपत्ति–भारत का प्राचीन धार्मिक नेतृत्व–ब्राह्मण और राजपूत–दोनों अधिकारी थे–हिन्दू ग्रन्थों के प्रमाण–वैवाहिक विधान–भारतीय शासन में ब्राह्मणों का स्थान–उसके उदाहरण–वर्ण व्यवस्था।

सूर्य और चन्द्रवंशी राजपूतों की वंशावली का वर्णन करने के लिए यहाँ पर हमने भागवत और अग्निपुराण से सामग्री लेने की चेष्टा की है। इन वंशावलियों का कुछ हिस्सा सर विलियम जोन्स, मिस्टर बेंटले और कर्नल विल्फर्ड के द्वारा एशियाटिक रिसर्चेज की पुस्तकों में प्रकाशित हो चुका है। फिर भी हिन्दुओं के ग्रन्थों का अवलोकन करना हमारे लिए जरूरी है। हमें यह कहने का कोई अधिकार नहीं है कि भारत के इन वंशों की वंशावलियाँ गलत हैं। इसलिए कि उनकी गलतियों में भी उनके इतिहासों का सत्य है और हिन्दुओं के प्रसिद्ध ग्रंथ ही अपने इतिहास को बताने के अधिकारी हैं।

यह बात सही है कि पुराणों में ऐतिहासिक वर्णन हैं। लेकिन उनके भाष्यकारों ने उनकी ऐतिहासिक सामग्री में जिस प्रकार की निकृष्ट मिलावट की है, उससे उनके ऐतिहासिक तत्वों का अनुसंधान करना बहुत कठिन हो गया है। हिन्दुओं ने बौद्धिक उन्नति की थी, इसका प्रमाण आज भी उनकी टूटी इमारतों और पौराणिक चित्रों से मिलता है। उन्नति के बाद पतन का समय आया और उस समय नयी रचनाओं के अभाव में पुरानी रचनाओं के केवल भाष्य किये गये। उस समय भाष्यकारों को नियंत्रण में रखने के लिए, ऐसा मालूम होता है कि सच्चे समालोचकों की यहाँ पर बहुत कमी थी। इस अभाव में भाष्यकारों ने मनमानी की और किसी प्रकार का भय न होने के कारण प्रत्येक ब्राह्मण भाष्यकार ने यह समझ लिया कि हम इन प्राचीन ग्रन्थों में जितनी आश्चर्यजनक बातों की मिलावट करेंगे, उतनी ही हमारी प्रशंसा होगी। परिणाम यह हुआ कि उस भयानक मिश्रण में पुराणों की ऐतिहासिक सच्ची सामग्री विलीन हो गयी और जो पुराण ऐतिहासिक सामग्री के लिए आधार थे, असत्त और आश्चर्य में डाल देने वाली कहानियों के रूप में रह गये। यही अवस्था बैबिलोनिया देश की हुई थी। ईसा से तीन शताब्दी पहले उसके इतिहास लेखक बेरोसस ने अपनी कल्पनाओं के द्वारा उस देश के पुराने इतिहास को आश्चर्यमय बना दिया था। लेकिन उस देश की कोई बड़ी क्षति इसलिए नहीं हुई कि उस देश के पुराने इतिहास लेखकों के लेखों द्वारा इतिहास के सही तत्वों का छिप जाना सम्भव न हो सका। परन्तु भारतवर्ष की परिस्थिति इससे बिलकुल भिन्न है।

भाष्यकारों के पहले इस देश के पुराण कुछ और थे। यदि आरम्भ से ही वे इसी प्रकार अस्पष्ट होते जैसे कि वे आज हैं तब तो इस बात पर विश्वास करना ही कठिन हो जाता कि

भारतवर्ष ने विद्या और बुद्धि में बहुत बड़ी उन्नति की थी। परन्तु ऐसा न था। पतन के आरम्भ होते ही इस देश में नयी रचनायें नहीं लिखी गयीं। बल्कि पुराने ग्रन्थों को रहस्यपूर्ण बनाने के लिए भाष्य लिखे गये और उन भाष्यों के अगणित भाष्य तैयार कर डाले गये। इसका नतीजा यह हुआ कि उन ग्रन्थों की मूल सामग्री विलीन हो गयी और उनके रहस्यमय भाष्य लोगों के सामने आ गये। आज की परिस्थिति यह है कि उनमें सुधार और परिवर्तन के नाम पर कोई खोज का काम नहीं कर सकता। अगर कोई ऐसा करने का साहस करे भी तो वह अधर्मी और विरोधी समझा जाय।

संसार की अन्य जातियों की तरह हिन्दुओं ने भी धीरे धीरे अपनी उन्नति की होगी। उस समय संसार की जो जातियाँ उत्थान के मार्ग में आगे बढ़ रही थीं, उनके साथ हिन्दुओं ने मिलकर कुछ न कुछ अवश्य ही एक दूसरे से लिया होगा, यह स्वाभाविक है। लेकिन यदि किसी देश ने ऐसा नहीं किया तो यह मानी हुई बात है कि उसकी उन्नति स्थायी रूप से अधिक समय तक नहीं चल सकती।

इस देश के आरम्भ काल में धार्मिक नेतृत्व आजकल की तरह कुछ लोगों के लिए पैतृक नहीं था। बल्कि उस पर सब का समान रूप से अधिकार था। यह बात मैं हिन्दुओं के ग्रन्थों के आधार पर ही लिखने का साहस कर रहा हूँ। इक्ष्वाकु के दस लड़के थे। उनमें तीन धार्मिक हो गये थे और उन तीन में एक ने अग्निहोत्र लेकर अग्नि की पूजा की थी। उसका एक पुत्र व्यवसायी हो गया था। चंद्रवंशी राजपूत पूर्तवा के छै पुत्रों में चौथे का नाम रेह था। उसकी पन्द्रहवीं पीढ़ी में हारीत हुआ और वह अपने आठ भाइयों के साथ धार्मिक हो गया था। उसी ने कौशिक गोत्र की प्रतिष्ठा की थी; जो ब्राह्मणों की एक शाखा है।

राजा ययाति की चौबीसवीं पीढ़ी में भारद्वाज नाम का एक राजा हुआ। उसके नाम पर एक गोत्र की प्रतिष्ठा हुई और उस गोत्र वाले आज तक पुरोहिती का काम करते हैं। राजा मनु के दो पुत्रों ने धार्मिक वृत्ति लेकर गोत्रों की प्रतिष्ठा की थी। महावीर्य से उत्पन्न होने वाला पुष्कर अपनी धार्मिक वृत्ति के कारण ब्राह्मण हो गया और एक ब्राह्मण के नाम से प्रसिद्ध हुआ। आज बहुत से काम ब्राह्मणों तक ही सीमित हैं। लेकिन पहले ऐसा न था। हिन्दुओं के ग्रन्थों में इस बात के प्रमाण मिलते हैं कि अनेक सूर्यवंशी राजा शासन करते हुए भी ब्राह्मणों के काम करते थे। रामचंन्द्र के पहले और बाद तक राज्य वंश में उत्पन्न होने वाले धर्मावलम्बी होकर धार्मिक वृत्ति के कार्य करते रहे। उनके सिर के बाल जोगियों की तरह के होते थे। उन्हीं ग्रन्थों में इस बात के प्रमाण भी मिलते हैं कि राजपूत राजाओं की लड़कियों के विवाह राजर्षियों के साथ होते थे। शूरवीर पाँचालिक की लड़की अहिल्या का विवाह गौतम ऋषि के साथ हुआ था और यदुकुल की एक शाखा हैहयवंश में उत्पन्न होने वाले राजा सहस्त्रार्जुन की लड़की जमदग्नि को व्याही गयी थी। परशुराम के पिता का नाम जमदग्नि था। शासन और धर्म का अधिकार क्षत्रियों और ब्राह्मणों को था। दोनों को शासन और धर्म में बराबर के अधिकार थे। यही अवस्था प्राचीन काल में मिश्र और रोम की थी। रोमन और मिश्र के लोग अपनी रुचि के अनुसार शासन और धर्माधिकार स्वीकार कर सकते थे। यही अवस्था उस समय भारत के राजाओं और ब्राह्मणों की थी। समाज का कोई विधान इसका विरोधी न था। हेरोडॉटस ने लिखा है कि मिश्र के शासन का अधिकार धर्म के आचार्यों और वीर पुरुषों को ही दिया जाता था। शासन का अधिकारी कोई तीसरा नहीं हो सकता था।

भारत के शासन में ब्राह्मणों का स्थान कम नहीं रहा। जमदग्नि से लेकर महाराष्ट्र के पेशवा तक में इस बात के प्रमाण बराबर मिलते हैं कि ब्राह्मण इस देश में शासन करते रहे। शासकों पर

ब्राह्मणों का आधिपत्य था। मिथिला का राजा जनक राजर्षि विश्वामित्र और वशिष्ठ से हाथ जोड़कर प्रार्थना किया करता था। बहुत से ब्राह्मणों ने भारत में राज्य किया। रावण ब्राह्मण था और लंका में राज्य करता था। उसने अयोध्या के राजा राम से युद्ध किया था।

विश्वामित्र गाधिपुरा में कौशिक वंशी राजा गाधी का लड़का था। वह इक्ष्वाकु के वंशज अयोध्या के राजा अम्बरीष का समकालीन था और रामचंद्र से दो सौ वर्ष पहले हुआ था। उस समय जाति व्यवस्था समाज में मजबूती के साथ कायम हो रही थी। इसलिए यह अनुमान किया जा सकता है कि भारत में जिस समय जाति व्यवस्था कायम हुई, वह समय ईसा से लगभग चौदह सौ वर्ष पहले का था। महाभारत महाकाव्य का लिखने वाला व्यास दिल्ली के राजा शान्तनु का बेटा था और योजनगन्धा नाम की मल्लाह जाति की लड़की से उसकी अविवाहित अवस्था में उत्पन्न हुआ था। व्यास के उत्पन्न होने के बाद योजनगन्धा का विवाह शान्तनु के साथ हुआ और उससे विचित्रवीर नामक पुत्र पैदा हुआ। विचित्रवीर्य के तीन लड़कियाँ पैदा हुई। उनमें एक का नाम पाण्डया था* शान्तनु के वंश में कोई अन्य पुरुष पैदा न होने के कारण व्यास अपनी भतीजियों का धर्म पिता हुआ और बाद में अपनी धर्मपुत्री पाण्डया के साथ उसने विवाह कर लिया। यूनानी इतिहासकार ऐरियन ने इस कथा का कुछ परिवर्तन के साथ उल्लेख किया है, जिसके लिखने की यहाँ पर आवश्यकता नहीं है।

उस लड़की के वंशजों ने इकतीस पीढ़ी तक ईसा से पूर्व ११२० वें वर्ष से लेकर ६१० वें वर्ष तक राज्य किया और पाण्डुवंश के अंतिम राजा का शासन अयोग्य होने के कारण, राज्य के सरदारों ने विद्रोह किया और उसी वंश के सैनिक मंत्री को राजा बनाया गया। उसके बाद विक्रमादित्य तक दूसरे दो वंशों ने राज्य किया। भारत की राजधानी उत्तर से उठकर दक्षिण में चली जाने के कारण विक्रम सम्वत् की चौथी शताब्दी और कुछ अधिकारी लेखकों के अनुसार आठवीं शताब्दी तक इन्द्रप्रस्थ में कोई शासक न रहा। उसके पश्चात् तोंवर जाति के राजपूतों ने, जो अपने-आप को पाण्डु के वंशज कहते थे, इन्द्रप्रस्थ पर शासन किया और उस राजधानी का नाम दिल्ली रखा गया। तोंवर जाति के जिस राजा ने दिल्ली में राज्य किया, उसका नाम अनंगपाल प्रथम था। बारहवीं शताब्दी तक उसका वंश चलता रहा। उसने दिल्ली की राजगद्दी अपनी लड़की के पुत्र पृथ्वीराज को दे दी, जो भारत का अंतिम राजपूत सम्राट हुआ और मुसलमानों के द्वारा, उसके पराजित होने पर भारत में मुस्लिम शासन का प्रारम्भ हुआ।

---

* इन तीन लड़कियों में एक लड़की विचित्रवीर्य के द्वारा एक दासी से पैदा हुई थी। वह दासी भी विचित्रवीर्य के राजमहल में रहा करती थी और रानियों की तरह उसके साथ व्यवहार किया जाता था। इसलिए यह निर्णय करना बहुत कठिन था कि इन तीन कन्याओं में दासी से उत्पन्न होने वाली पुत्री कौन है। इसके लिए व्यास पर निर्णय करना रखा गया। व्यास ने आज्ञा दी कि तीनों राज कन्यायें मेरे सामने नग्न होकर निकलें। उस अवस्था में बड़ी लड़की लज्जा के कारण नेत्र बंद करके व्यास के सामने से निकल गई। उस लड़की से हस्तिनापुर के राजा धृतराष्ट्र का जन्म हुआ। दूसरी लड़की लज्जा से अपने शरीर में पीली मिट्टी लपेट कर निकली, इसीलिए उसका नाम पाण्डु मिट्टी के कारण पाण्डया पड़ा और उसका पुत्र पाण्डु कहलाया। तीसरी लड़की बिना संकोच के उसके सामने से निकल गयी। इसीलिए वह दासी मानी गयी और उससे विदुर नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ।

तीसरा परिच्छेद

सूर्यवंश और चन्द्रवंश के राजाओं का वर्णन-मिश्र देश के ग्रंथों के साथ मतभेद-प्रयाग की प्रतिष्ठा-अयोध्या के सत्तावन राजा-चन्द्रवंश का आदि पुरुष ययाति-सूर्यवंशी और चन्द्रवंशी शाखाओं का अन्तर-विदेशी लेखकों के वर्णन में राजपूतों की वंशावलियाँ-रामचन्द्र और कृष्ण के बीच का समय-वंशावली के लिए खोज का कार्य-देशी और विदेशी ग्रंथों का अध्ययन-राजवंशों के प्राचीन समय का निर्णय-राजा हरिश्चन्द्र और परशुराम-परशुराम के द्वारा क्षत्रियों का विनाश-सूर्यवंशी और चन्द्रवंशी राजाओं के लगातार युद्ध-सूर्यवंश और चन्द्रवंश की प्रतिष्ठा का समय।

व्यास ने सूर्यपुत्र वैवस्वतमनु से लेकर रामचंद्र तक सूर्य वंश के सत्तावन राजाओं के नामों का उल्लेख किया है और अट्ठावन नामों से अधिक राजाओं की वंशावली चन्द्र वंश के सम्बन्ध में मुझे देखने को नहीं मिली। इस संख्या में और मिश्र वालों की दी हुई संख्या में बहुत अन्तर है। मिश्र के ग्रंथों में हेरोडॉटस के अनुसार, अपने आदि पुरुष सूर्य पुत्र मीनस से लेकर ऊपर दिये गये समय तक तीन सौ तीस राजाओं के नाम लिखे हैं। इक्ष्वाकु मनु का बेटा पहला राजा था, जिसने पूर्व की तरफ जाकर अयोध्या का निर्माण किया था। बुद्ध चंद्रवंशियों का आदि पुरुष माना जाता है। "जैसलमेर की कथा" नामक ग्रंथ में लिखा है कि महाभारत के पहले प्रयाग,मथुरा, कुशस्थली और द्वारिका में क्रमशः चंद्रवंशी राजाओं की राजधानियाँ रहीं। लेकिन इस बात के निर्णय करने की हमें कोई सामग्री नहीं मिली कि उनकी प्रथम राजधानी प्रयाग की प्रतिष्ठा किसने की। फिर भी जो कुछ पढ़ने को मिला है, उसके आधार पर यह लिखा जा सकता है कि बुद्ध से छठी पीढ़ी में पुरु ने उसकी स्थापना की थी।

इक्ष्वाकु से लेकर राम तक सत्तावन राजा अयोध्या के राज-सिंहासन पर बैठे। ययाति से चन्द्रवंश आरम्भ होता है। उसकी शाखा यदुवंश में ययाति से लेकर कहीं पर सत्तावन और कहीं उनसठ पीढ़ियों का उल्लेख किया गया है। युधिष्ठिर, शल्य, जरासंध और बहुरथ तक, जो कृष्ण और कंस के समकालीन थे, उनके पूर्वज ययाति से क्रमशः ५१,४६ और ४७ पीढ़ियों का उल्लेख मिलता है। सूर्यवंशी शाखाओं और चंद्रवंश की यदुवंशी शाखाओं में बहुत अन्तर पाया जाता है। उनके सम्बन्ध में विभिन्न लेखकों ने भिन्न भिन्न संख्याओं का उल्लेख किया है। हमने यहाँ पर वही संख्यायें दी हैं, जो अधिक सही मालूम हुई हैं।

इन वंशावलियों का उल्लेख मिस्टर बेंटले, सर विलियम जोन्स और कर्नल विल्फर्ड ने अपने लेखों में किया है। मिस्टर बेंटले और सर विलियम जोन्स की दी हुई संख्याओं में कोई अन्तर नहीं है। उन दोनों ने सूर्य और चंद्रवंशों की क्रमशः ५६ और पीढ़ियों का जिक्र किया है। कर्नल विल्फर्ड की संख्या सूर्य वंशियों के सम्बन्ध में सही नहीं मालूम होती। लेकिन चन्द्रवंश के सम्बन्ध में पुरु और यदु दोनों वंशों की नामावली सही मालूम होती है। रामचंद्र का समय कृष्ण से बहुत पूर्व महाभारत युद्ध से चार पीढ़ी पहले का था। चंद्रवंशी प्रमुख शाखायों में पुरु, हस्ती, अजामीढ़, कुरु, शान्तनु और युधिष्ठिर बड़े प्रतापशाली हुए। इनकी वंशावली जो मिलती है, वह बहुत कुछ सही

मालूम होती है। कर्नल विल्फर्ड ने इस प्रकार की खोज के लिए अधिक सामग्री एकत्रित की थी और इसीलिए वह हस्ती और कुरु दोनों ही वंशों की अधिक शाखाओं का उल्लेख कर सका। इन दोनों वंशावलियों में भीमसेन के बाद दिलीप का नाम है। इस प्रकार के नामों के सम्बन्ध में हिन्दुओं के सभी ग्रंथों का मत एक नहीं है।

इन वंशावलियों के सम्बन्ध में सही बातों की खोज करने के लिए मैंने कुछ बाकी नहीं रखा। हिन्दुओं के ग्रंथों के साथ-साथ, विदेशी लेखकों के ग्रंथों को भी मैंने भली प्रकार देखा है और छान-बीन के बाद जो बात सही मालूम हुई है, उसी को मैंने लिखने का प्रयास किया है। ऐसे स्थानों पर सब से बड़ी कठिनाई यह पैदा हो जाती है कि हिन्दुओं के ग्रंथ स्वयं कहीं कहीं पर एक दूसरे के प्रतिकूल हो जाते हैं। इस विषय में कोई भी ग्रंथ ऐसा नहीं है, जिसे प्रामाणिक माना जा सके और सही वंशावली प्राप्त की जा सके। इक्ष्वाकु की चौथी पीढ़ी के सम्बन्ध में बड़ा मतभेद है। मैंने विश्वस्त ग्रंथों के आधार पर उसकी चौथी पीढ़ी में अनपृथु का नाम लिखा है। लेकिन उसके स्थान पर दो नाम अनयास और पृथु के भी उल्लेख मिलते हैं। मैंने अपनी वंशावली में त्रिशंकु को तेईसवीं पीढ़ी में रखा है। परंतु विलियम जोन्स ने छब्बीसवीं में उसको लिखा है। कुछ नाम ऐसे भी हैं, जिनको विभिन्न रूप में लिखा गया है। उनमें अक्षरों और मात्राओं की भूलें हो सकती हैं।

राजवंशों के प्राचीन समय का निर्णय रामायण, पुराणों और अन्य पुराने ग्रंथों के द्वारा ही किया गया है, जिससे किसी प्रकार की भूल न हो सके। सूर्यवंश का प्रसिद्ध राजा हरिश्चन्द्र त्रिशंकु का बेटा था, अपने सत्य वचन के लिये इस देश में वह आज तक विख्यात है। अपने वंश का वह चौबीसवाँ राजा था और वह उस परशुराम का समकालीन था, जिसने नर्वदा नदी के तीर-वर्त्ती माहिष्मती के हैहय अर्थात् चंद्रवंशी राजा सहस्त्रार्जुन का बध किया था। परशुराम की कथा रामायण में लिखते हुए बताया गया है कि उसने क्षत्रियों का नाश किया था। सूर्यवंश का बत्तीसवाँ राजा सागर चंद्रवंशी सहस्त्रार्जुन की छठी पीढ़ी के तालजंघ का समकालीन था। परशुराम ने जब क्षत्रियों का विध्वंश किया था, उस समय सहस्त्रार्जुन के पाँच बेटे बच गये थे। भविष्य पुराण में उन पाँचों बेटों के नाम लिखे गये हैं। सूर्यवंशी और चंद्रवंशी राजाओं के बीच लगातार युद्ध हुए थे, जिनके विवरण रामायण और पुराणों में मिलते हैं। सगर और तालजंघ में होने वाली लड़ाई का वर्णन भविष्य पुराण में किया गया है। हस्तिनापुर के राजा हस्ती और अंगदिश, अंगवंश की प्रतिष्ठा करने वाले बुध के वंशज अंग का समाकालीन माना गया है। रामायण से प्रकट होता है कि सूर्यवंश का चालीसवाँ वंशज अयोध्या का राजा अम्बरीष कन्नौज की प्रतिष्ठा करने वाले राजा गाधी और अंगदेश ❀ के राजा लोमपाद का समकालीन था। कृष्ण और युधिष्ठिर की समकालीनता महाभारत से सिद्ध है। उसके बाद द्वापर युग का अन्त होता है और कलियुग का आरम्भ होता है। सूर्यवंशी राम और चंद्रवंशी कृष्ण के बीच के समय का निर्णय करने के लिए हमें किसी ग्रंथ में कोई सामग्री नहीं मिली।

कोष्टावंशी मथुरा का राजा कंस बुध से उनसठवाँ और उसका भाञा कृष्ण अट्ठावनवाँ वंशज था। पुरु के वंश में अजमीढ और देवमीढ के वंश में शल्य, जरासंघ और युधिष्ठिर क्रमशः इक्यावनवें, त्रेपनवें और चौवनवें वंशज थे। महाभारत के युद्ध में लड़ने वाला अंगवंशी पृथुसेन बुध से तिरपनवाँ था। इस प्रकार बुध से लेकर कृष्ण और युधिष्ठिर तक पचपन पीढ़ियों का होना

❀ अंगदेश तिब्बत के करीब है। उसके निवासी अपने को हुंगी कहते हैं। मालूम होता है कि चीनी ग्रंथों में वर्णन किये गये होंगनू हूण लोग थे और ये लोग चन्द्रवंश से सम्बन्ध रखते थे।

ाबित होता है । उनमें प्रत्येक राजा के शासन का औसत बीस वर्ष रखने से यह समझ में आता है कि पचपन पीढ़ियों में उसके सभी राजाओं ने ११०० वर्ष शासन किया। यह समय यदि विक्रमादित्य तक सभी राजाओं के शासन काल में जोड़ दिया जाय, जो ईसा से ५६ वर्ष पूर्व तक रहा तो भारत में सूर्यवंशी और चंद्रवंशी प्रतिष्ठा का समय ईशा से २२५६ वर्ष पहले का माना जा सकता है। क्योंकि उससे कुछ ही दिनों के बाद मिश्र, चीन और असीरिया के राज्यों की प्रतिष्ठा का समय माना जाता है और वह समय महाप्रलय के लगभग डेढ़ सौ वर्ष बाद माना जाता है।

अग्निपुराण में यह भी लिखा है कि मध्य एशिया से जो लोग भारत में आकर बसे, उनमें इक्ष्वाकु के वंशज सूर्यवंशी सबसे पहले आये थे। इस लेख के आधार पर यह स्वीकार करना पड़ेगा कि चंद्रवंश के आदि पुरुष बुध उनका समकालीन था। इस प्रकार की धारणा का एक अभिप्राय यह भी है कि बुध ने इस भारत देश में आकर इक्ष्वाकु की बहन इला से विवाह किया था।

चंद्रवंशी कृष्ण और अर्जुन के तथा सूर्यवंशी रामचन्द्र और उनके पुत्र कुश और लव के वंशजों के सम्बन्ध में अधिक लिखने के पहले, उनके पूर्वजों पर आगामी प्रकरण में आवश्यकता के अनुसार प्रकाश डालना जरूरी है।

चौथा परिच्छेद

अयोध्या और मिथिलापुरी की स्थापना–चन्द्रवंशियों के द्वारा राज्यों की प्रतिष्ठा–उनकी पहली राजधानी–कृष्ण की राजधानी कुशस्थली–कृष्ण का शत्रु शिशुपाल–सूर्यसेन नाम के राजा चन्द्रवंश का प्रसिद्ध राजा हस्ती–भारत में सिकन्दर के आक्रमण का समय सिकंदर और पारस–पांचालिक प्रदेश-कम्पिल नगर नामक राजधानी का प्रतिष्ठाता कम्पिल–कन्नौज के प्राचीन नाम–शहाबुद्दीन गोरी के आक्रमण के समय का कन्नौज–कन्नौज का सर्वनाश–इन्द्रप्रस्थ की प्रतिष्ठा–राजा दुष्यन्त और शकुन्तला।

सूर्यवंशियों ने सब से पहले अयोध्या की स्थापना की थी और लगभग उसी समय इक्ष्वाकु के प्रपौत्र मिथिल ने मिथिला देश की राजधानी मिथिलापुरी बसायी। जनक मिथिल का बेटा था। उसी के नाम से सूर्यवंश की इस शाखा का नाम प्रसिद्ध हुआ। अयोध्या और मिथिलापुरी दोनों को प्राचीन काल में अधिक प्रसिद्धि मिली। यद्यपि रामचंद्र के पहले रोहतास और चम्पापुर की तरह के कई एक नगरों की स्थापना हो चुकी थी।

बुध से चलने वाले चंद्रवंशियों के द्वारा अनेक राज्यों की स्थापना हुई थी। उनमें प्रयाग की प्राचीनता अब तक प्रसिद्ध है। अनुभव से जाहिर होता है कि चंद्रवंशियों की पहली राजधानी हैहयवंश के सहस्त्रार्जुन के द्वारा हुई। उसका नाम माहिषमती था और वह नर्मदा नदी के किनारे पर बसी थी। सूर्यवंशियों और चंद्रवंशियों का परस्पर विरोध बहुत दिनों तक चला था। उस विरोध में ब्राह्मणों ने सूर्यवंशियों की सहायता की थी और सहस्त्रार्जुन को माहिषमती सेनिकाल दिया था।

कृष्ण की राजधानी कुशस्थली द्वारका में थी, जो प्रयाग, सूरपुर और मथुरा के पूर्व में थी। भागवत के अनुसार, सूर्यवंशी इक्ष्वाकु के बंधु आनर्त के द्वारा बसी थी। परंतु वह यादवों के अधिकार में कैसे पहुँच गई, इसका कोई उल्लेख नहीं मिला। जैसलमेर के पुराने इतिहास से मालूम होता है

कि सब से पहले प्रयाग, उसके बाद मथुरा और फिर द्वारका की स्थापना हुई। ये तीनों नगर आरम्भ से ही प्रसिद्ध रहे हैं। शकुन्तला का बेटा भरत प्रयाग में ही रहा करता था। रामायण के अनुसार, सूर्यवंशी लोगों के साथ हैहय वंशियों की लड़ाई में शशविंधी लोग, ॐ जो यदुवंशियों की एक शाखा थी, हैहयवंश वालों के साथ शामिल हो जाते थे। चेदी राज्य को कायम करने वाला शिशुपाल इसी शशविंधी वंश का था, जो कृष्ण का शत्रु था। यूनानी इतिहासकारों के अनुसार, सिकंदर के आक्रमण के समय मथुरा के आसपास के निवासी सूरसेनी कहे जाते थे। सूरसेन नाम के दो राजाओं के नामों का उल्लेख मिलता है। उनमें एक तो कृष्ण का पितामह और दूसरा आठ शताब्दी पहले हुआ था। उन्हीं में से किसी के द्वारा सूरपुर नामक राजधानी की प्रतिष्ठा हुई थी।

हस्तिनापुर राजा हस्ती का बसाया हुआ था, जो एक प्रसिद्ध चन्द्रवंशी राजा था। महाभारत के बाद हस्तिनापुर का अस्तित्व बहुत समय तक कायम रहा। फिर सिकंदर के आक्रमण का इतिहास लिखने वाले यूनान के लेखकों ने इस प्राचीन नगरी का उल्लेख क्यों नहीं किया, यह समझ में नहीं आता। भारत में सिकंदर के आक्रमण का समय महाभारत के बाद अनुमानतः आठ सौ वर्षों के बाद का था। सिकंदर के साथ युद्ध करने वाला पोरस राजा था। पोरस नाम के दो राजा हुए हैं। एक तो पुरुवंशी था और दूसरा पंजाब की सीमा पर रहता था। इस दशा में यह बात समझ में आती है कि सिकंदर के आक्रमण के समय पोरी लोग चंद्रवंशी थे। अजमीढ, देवमीढ और पुरमीढ नाम की शाखायें राजा हस्ती से सम्बन्ध रखती हैं। अजमीढ से उत्पन्न होने वाले भारत के उत्तरी भागों में पहुँच गये थे। वह समय ईसा से १६०० वर्ष पहले का मालूम होता है। अजमीढ के पश्चात् चौथी पीढ़ी में बाजस्व नामक राजा हुआ। उसने सिंधु नदी के समीपवर्ती सम्पूर्ण प्रदेश में अधिकार कर लिया था। उसके पाँच बेटे हुए और उन पाँचों के नाम से उस प्रदेश का नाम पाञ्चालिक × पड़ा। उनमें छोटे भाई कम्पिल ने कम्पिल नगर नाम की राजधानी कायम की थी। अजमीढ की दूसरी स्त्री केशनी थी। उसके बेटों ने एक नया राज्य कायम किया और एक वंश चलाया। उसका नाम कुशिक वंश है। कुश के चार बेटे पैदा हुए। उसके एक पुत्र कुशनाभ ने गंगा किनारे महोदय नाम का एक नगर बसाया था। उसका नाम बाद में कान्यकुब्ज और फिर कन्नौज हो गया। सन् ११९३ ईसवी में शहाबुद्दीन गोरी के आक्रमण के समय यह एक प्रतिष्ठित नगर था और उस समय गाधीपुर अथवा गाधी नगर कहलाता था। इतिहासकार फरिश्ता ने लिखा है कि प्राचीन काल में यह नगर पच्चीस कोस अर्थात् पैंतीस मील के घेरे में बसा था और इन नगर में तीस हजार केवल तंबोलियों की दूकानें मौजूद थीं। उसकी यह अवस्था छठी शताब्दी तक बराबर कायम रही। बारहवीं शताब्दी में जयचंद के बाद उस नगर का भी सर्वनाश हुआ। कुश के दूसरे पुत्र कुशाम्ब ने भी कौशाम्बी नामक नगर को प्रतिष्ठा की थी। ग्यारहवीं शताब्दी तक यह नगर बराबर कायम रहा। गंगा के किनारे कन्नौज से दक्षिण की तरफ उस नगर के खण्डहर अब भी पाये जाते हैं। कुश के बाकी दो बेटों ने भी नगरों की स्थापना की थी। परंतु उनके कोई विवरण नहीं मिलते।

ॐ शशविंधी शब्द शशक से सम्बन्ध रखता है। सीसोदिया वंश की उत्पत्ति इसी वंश से मानी जाती है। सीसोदाग्राम में रहने के कारण वहाँ के लोग सीसोदिया अथवा शीशोदिया कहलाये, ऐसा भी कहा जाता है।

× विष्णुपुराण के अध्याय १६ के अनुसार पञ्चाल अथवा पाञ्चालिक एक भिन्न देश था और उसका पंजाब के साथ कोई सम्बन्ध न था। अधिकारी लेखकों का कुछ इस प्रकार कहना है।

कुश से सुधन्वा और परीक्षित नामक दो पुत्र पैदा हुए। प्रथम पुत्र का वंश जरासंध के समय तक चला। उसकी राजधानी बिहार प्रान्त में गंगा के किनारे राजगृह में थी। परीक्षित के वंश में शान्तनु और बलिक अथवा बाल्हीक राजा हुए। युधिष्ठिर और दुर्योधन शान्तनु के वंशज थे और बाल्हीक राजा से जो पैदा हुए, वे बाल्हीक पुत्र कहलाये। कुरु की राजगद्दी का उत्तराधिकारी दुर्योधन प्राचीन राजधानी हस्तिनापुर में रहा करता था। लेकिन युधिष्ठिर ने जमुना के किनारे इन्द्रप्रस्थ नामक एक नगर बसाया था। उसका नाम बाद में बदल कर आठवीं शताब्दी में दिल्ली हो गया।

बाल्हीक के पुत्रों ने पालिपोत्र और आरोड़ नामक दो राज्य स्थापित किये थे। पहला गंगा के किनारे और दूसरा सिन्धु नदी के किनारे था।

चन्द्रवंश के सभी राजा ययाति के प्रथम और छोटे बेटे यदु और पुरू के वंशज थे। ययाति के बाकी लड़कों के सम्बन्ध में कोई विवरण नहीं पाया जाता। उरु अथवा उरवसु, जिसे कुछ विद्वानों ने तुरवसु लिखा है, ययाति के वंश की एक प्रसिद्ध शाखा है। उरु अपने राजवंश का मूल पुरुष था। उसके वँशजों ने अनेक राज्यों की स्थापना की थी। उससे आठवाँ राजा विरुत हुआ। उसके आठ पुत्र पैदा हुए, लेकिन द्रुह्यु और बभ्रु नामक दो पुत्रों के सिवा बाकी का कोई विवरण नहीं मिलता, इन दो पुत्रों से दो वंशों की शाखायें निकलीं। द्रुह्यु के वंश में गान्धार और प्रचेता नाम के दो राजा हुए। उनके द्वारा भी एक-एक राज्य की स्थापना हुई।

दुष्यन्त ने शकुन्तला के साथ ब्याह किया था और भरत शकुन्तला का बेटा था। कालिंजर, केरल, पाण्ड्य और चोल नामक चार प्रपौत्र राजा दुष्यन्त के पैदा हुए थे और उन्होंने अपने-अपने नाम से राज्यों की स्थापना की थी। बुन्देलखण्ड में कालिंजर का प्रसिद्ध किला है और आज तक अपनी अनेक बातों के लिए प्रसिद्ध है। केरल द्वारा स्थापित केरल देश मलाबार से मिला हुआ है। इसी को कोचीन कहते हैं। पाण्ड्य का स्थापित किया हुआ राज्य मलाबार के दूसरे किनारे पर है, जो पाण्ड्य मण्डल अथवा पाण्ड्य राज्य के नाम से प्रसिद्ध है। चोल सौराष्ट्र प्रदेश में प्रसिद्ध द्वारका के पास बसा हुआ है।

बभ्रु से एक दूसरे वंश की शाखा निकली और उसके चौतीसवें राजा अंग ने अंगदेश की स्थापाना की। उसकी राजधानी चम्पामालिनी थी। इसकी स्थापना कन्नौज के साथ-साथ ईसा से १५०० वर्ष पहले हुई थी। राजा अंग के नाम से उसका वंश चला और प्राचीन हिन्दुओं के इतिहास में अंगवंश को बड़ी ख्याति मिली। इस वंश का अंत पृथुसेन के साथ हुआ।

मनु तथा बुध से लेकर राम, कृष्ण, युधिष्ठिर एवम् जरासंध तक सूर्य और चन्द्रवंश के सम्बन्ध में ऊपर संक्षेप में लिखा गया है। इन प्रसिद्ध दोनों वंशों के सम्बन्ध में बहुत-सी काम की बातों का स्पष्टीकरण हो गया है, इस बात की आशा करना चाहिए।

———

की राजधानी में आस-पास के अनेक राजा द्रुपद की पुत्री द्रौपदी के स्वयंवर में आये हुए थे। उस स्वयंवर में द्रौपदी ने अर्जुन के गले में बरमाला पहनायी। उस पर उपस्थित राजाओं ने अर्जुन के साथ युद्ध किया। लेकिन अर्जुन के साथ युद्ध में सभी पराजित हुए और द्रौपदी अर्जुन के साथ जाकर पाँचों भाइयों की स्त्री ❀ हुई। विवाह का इस प्रकार का रस्म शक लोगों में पाया जाता है।

हस्तिनापुर से पाण्डवों का निकल जाना धृतराष्ट्र को असह्य हो रहा था। उसकी कोशिश से पाण्डव बुलाये गये और राज्य का बंटवारा किया गया। हस्तिनापुर का अधिकार दुर्योधन को मिला। इसलिए युधिष्ठिर को इन्द्रप्रस्थ नामक एक नई राजधानी कायम करनी पड़ी। महाभारत के बाद युधिष्ठिर ने अपने नाम का एक सम्वत् निकाला और अपने भतीजे के पुत्र परीक्षित को राज्य का अधिकारी बना दिया। युधिष्ठिर का चलाया हुआ सम्वत् ११०० वर्ष तक प्रचलित रहा। हुआ यह कि उसी वंश के उज्जैन के तोंअर राजा विक्रमादित्य ने इन्द्रप्रस्थ को पराजित कर अपने अधिकार में ले लिया और अपने नाम का एक नया सम्वत् चलाया, जिसके कारण युधिष्ठिर का चलाया हुआ सम्वत् समाप्त हो गया।

इन्द्रप्रस्थ की राजधानी कायम हो जाने के बाद हस्तिनापुर का वैभव क्षीण हो गया और आस-पास के समस्त राज्यों में पाचों पाण्डवों का वैभव बहुत बढ़ गया था। उन सभी राजाओं ने पाण्डवों की अधीनता को स्वीकार कर लिया था। ऐसे समय पर युधिष्ठिर ने राजसूय यज्ञ करने का निर्णय किया। इस यज्ञ में अर्जुन के संरक्षण में यज्ञ का घोड़ा छोड़ा गया। वह बारह महीने तक बराबर घूमता रहा और किसी ने उसको पकड़ा नहीं। इसके बाद इन्द्रप्रस्थ में राजसूय यज्ञ हुआ। इस प्रकार के यज्ञ में सभी कार्य राजाओं को ही अपने हाथ से स्वयं करने पड़ते थे। इसमें भी ऐसा ही हुआ और हस्तिनापुर के राजा को प्रसाद बाँटने का काम दिया गया। दुर्योधन और उसके बन्धुओं ने इसे अपना अपमान समझा। इसमें कौरवों :-: और पाण्डवों के बीच ईर्षा बढ़ी। दुर्योधन ने युधिष्ठिर के विरुद्ध जितने षड़यंत्र किये थे, उनमें उसे कोई सफलता न मिली थी। युधिष्ठिर की धर्मनीति से सभी लोग प्रसन्न थे। इसलिये दुर्योधन ने जुआ खेलने का एक नया षड़यंत्र युधिष्ठिर के साथ रचा। यह जुआ खेलने की प्रथा भी सीथियन ·|· (शक लोगों) की है, जो राजपूतों में अब तक चली जा रही है।

❀ एक स्त्री के एक से अधिक पतियों का होना प्राचीन काल में एक साधारण रस्म था। जैसा कि हेरोडॉटस ने शक जाति के सम्बन्ध में लिखा है और सीथियन लोगों की बहुत-सी इस प्रकार की बातों का उल्लेख किया है। विवाह का एक रस्म यह भी उस समय पाया जाता था। परन्तु हिन्दू टीकाकारों ने इस ऐतिहासिक सत्य पर धूलि डाल कर द्रौपदी के पाच पतियों के सम्बन्ध में अर्थहीन बातों की जनश्रुति पैदा करने में सहायता की है।

:-: दुर्योधन और युधिष्ठिर के राज्य अलग हो जाने पर उनके वंश अलग-अलग चले। दुर्योधन ने अपने आदि पुरुष कुरु के नाम से कौरव वंश और युधिष्ठिर ने अपने पिता पाण्डु के नाम से पाण्डव वंश चलाया। जिस स्थान पर महाभारत हुआ, उसका नाम भी कुरु के नाम पर कुरुक्षेत्र रखा गया।

·|· शक लोगों में जुआ खेलने की पुरानी प्रथा थी। उन्हीं से राजपूतों में यह प्रथा आयी। इसका वर्णन हेरोडॉटस ने किया है। टैसीटस ने लिखा है कि जर्मनी के लोग जुआ में अपने शरीरको भी दाँव में लगाते थे। हार जाने पर दाँव पर रखा हुआ आदमी गुलाम की तरह, गुलामों की बिक्री होने वाले बाजारों में बेचा जाता था।

दुर्योधन के साथ जुआ के जाल में युधिष्ठिर फंस गया। फलस्वरूप, वह अपना राज्य खो बैठा और अपने शरीर के साथ-साथ अपने भाइयों तथा स्त्री द्रौपदी को भी हार गया। इससे वह अपने परियार के साथ बारह वर्ष के लिए अपने राज्य से चला गया। उसके बाद कौरवों और पाण्डवों में जो युद्ध हुआ, वह महाभारत के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस युद्ध में कांकेशस से लेकर समुद्र तक सभी राजा अपनी अपनी सेनाओं के साथ आकर लड़े। यह युद्ध अठारह दिनों तक चला और हजारों की संख्या में लोग रोजाना मारे गये।

अंत में युधिष्ठिर की विजय हुई। लेकिन उसके हृदय पर इसका घातक प्रभाव पड़ा। वह सांसारिक जीवन से उदासीन हो गया। युद्ध में युधिष्ठिर के भाई भीम के द्वारा दुर्योधन मारा गया था। इसलिये हस्तिनापुर में युधिष्ठिर ने दुर्योधन का अंतिम संस्कार किया। इसके बाद अपने प्रपौत्र परीक्षित को राजसिंहासन पर बिठाकर वह कृष्ण और बलदेव के साथ द्वारका चला गया। सन् १७४० ईसवी तक महाभारत के ४६३६ वर्ष बीत चुके थे। महाभारत में जो लोग बच गये थे, वे सब युधिष्ठिर के साथ द्वारका चले गये थे। वहां पर एक भील के द्वारा कृष्ण के प्राणों का अंत हुआ। महाभारत में युद्ध करके वे लोग शरीर और मन से इतने थक गये थे कि युधिष्ठिर के साथ के लोग अब युद्ध करने के योग्य नहीं रह गये थे। कृष्ण के मारे जाने के बाद बल्देव और साथ के कुछ आदमियों को लेकर युधिष्ठिर भारत के बाहर, सिन्ध के रास्ते से उत्तर में हिमालय पर्वत पर चला गया। इसके बाद उनमें से किसी का फिर कोई समाचार नहीं मिला। इसलिए यह अनुमान किया गया कि वे सब हिमालय की बर्फ में गल गये। ❀

युधिष्ठिर के वंश में परीक्षित से लेकर विक्रमादित्य तक चार वंशों के बिवरण दिये गये हैं। उनमें राजपाल तक ६६ राजाओं के नाम आते हैं। कुमाऊं के आक्रमण में वह शुकवंत के द्वारा मारा गया था और आक्रमणकारी विजयी राजा ने दिल्ली पर अधिकार कर लिया था। लेकिन उसके बाद बिक्रमादित्य ने उसको पराजित किया और गये हुए राज्य को वापिस ले कर इन्द्रप्रस्थ से राजधानी हटाकर अवन्ती (उज्जैन) में कायम की थी। आठ सौ वर्षों तक इन्द्रप्रस्थ में राजधानी नहीं रही। उसके पश्चात् तोंवर वंश के प्रतिष्ठाता अनंगपाल ने उसे फिर राजधानी बनायी। वह अपने आपको पाण्डवों का वंशज कहता था। उस समय से इन्द्रप्रस्थ का नाम बदल कर दिल्ली हो गया।

❀ हिमालय पर्वत पर चले जाने के बाद युधिष्ठिर और बल्देवके सम्बन्ध में हिन्दुओं के ग्रन्थों में कोई विवरण नहीं मिलते। यहां पर यूनान के पुराने ग्रन्थों से बहुत-कुछ समझने में मदद मिलती है। पाँचालिक में जब सिकंदर ने पूजा के स्थानों की प्रतिष्ठा की थी, उस समय वहां पर पुरु और हरिकुलियों के वंशज रहते थे। यहां पर यह अनुमान किया जा सकता है कि उन वंशों के बहुत से लोग युधिष्ठिर और बल्देव के साथ चल कर यूनान में जाकर बस गये थे और उन्होंने उस समय यूनानियों पर विजय पायी थी। जब सिकंदर ने वहां पर आक्रमण किया तो पुरुवंशियो और हरिकुलियों ने हरक्यूलीज के चित्र का प्रदर्शन किया। हिन्दुओं और यूनानियों के पुराने ग्रन्थों को अवलोकन करने से साफ-साफ समझ में आता है कि वे दोनो एक ही स्थान पर उत्पन्न हुए थे। प्लेटो (अफलातून) भी इस बात को स्वीकार करते हुए कहता है कि यूनानी और पूर्वी देशों की प्राचीन बातों में कोई अन्तर नहीं है। वे एक ही हैं। यह भी समझ में आता है कि हरिकुलियों का यह दल हिराक्लाइडी लोगों का समूह था जो बॉलने के लिखने के अनुसार, ईसा से १०७८ वर्ष पहले पेलोपोनेसस में जाकर बसा था। यह समय महाभारत के समय के बहुत करीब साबित होता है।

शुकवन्त राजा ने कुमाऊं के उत्तरी पर्वतों से आकर चौदह वर्ष राज्य किया था। उसके बाद बिक्रमादित्य ने उसे मार डाला था। युधिष्ठिर से लेकर पृथ्वीराज तक जो क्षत्रिय राजा दिल्ली के राजसिंहासन पर बैठे, उनकी संख्या में अनेक मतभेद हैं। उनके विवाद में यहाँ पर अधिक लिखना आवश्यक नहीं मालूम होता। जरासंध राजगृह अर्थात् बिहार का राजा था। उसका पुत्र सहदेव और पौत्र मार्जारी महाभारत के समकालीन माने गये है। इस दशा में, वे दिल्ली के सम्राट परीक्षित के समकालीन थे।

जरासंध के वंश में तेईस राजा हुए। उनमें अंतिम रिपुञ्जय था। उसके मंत्री सुनकने उसे मार कर राज्य का अधिकार छीन लिया था। सुनक का वंश पाँच पीढ़ी तक चला। उसके वंश के अंतिम राजा का नाम नन्दीवर्धन था। सुनक वंश के राज्य का समय १३८ वर्ष माना जाता है। शेषनाग नामक एक विजेता को अधीनता में शेषनाग देश के लोग भारत में आये और वे पाण्डु की गद्दी पर बैठे। उनका वंश दस पीढ़ी तक चल कर अंतिम राजा महानन्द के साथ—जो अनौरस था—समाप्त हो गया। इन दस राजाओं का राज्य काल ३६० वर्ष का लिखा गया है। चौथी वंशावली इसी तक्षक ❀ वंश के चन्द्रगुप्त मौर्य से आरम्भ हुई। इस वंश में दस राजा हुए और उनका अंत १३७ वर्ष में ही हो गया। भृंगी नामक देश से आकर पांचवें वंश के आठ राजाओं ने ११२ वर्ष तक यहाँ पर राज्य किया। उसके अंतिम राजा को काण्व देश के एक राजा ने आकर पराजित किया और उसे मारकर उसका राज्य छीन लिया। इन आठ राजाओं में चार शुद्र वंश के थे। उसके बाद शुद्राणी से उत्पन्न होने वाला कृष्ण राजा हुआ। काण्व देश से आया यह हुआ वंश २३ पीढ़ी तक चला। उसके अंतिम राजा का नाम सुलोमधी था। इस तरह से महाभारत के पश्चात् छै वंशावलियाँ दीं गयी हैं। उनमें जरासंध के वंशज सहदेव से सलोमधी तक बयासी राजाओं का लगातार क्रम चला है। कुछ छोटी-छोटी वंशावलियाँ भी दी गयी हैं। उनके बिवरण यहाँ पर देने की जरूरत नहीं है। संसार के बाकी हिस्से में भी राजाओं का शासन चला है। उनके विस्तार में में हम यहाँ नहीं जाना चाहते। संसार के बाकी शासकों का शासन यहूदियों, स्पार्टावालों और एथीनियन लोगों से सम्बन्ध रखता है। उनका प्रारम्भ ईसा से करीब ग्यारह सौ वर्ष पहले हुआ था। यह समय महाभारत से आधी शताब्दी भी दूर नहीं मालूम होता। इनके साथ-साथ बैबिलन, असीरिया और मीडिया के शासन भी है। उनका प्रारम्भ ईसा से आठ सौ वर्ष पहिले और यहूदी राजाओं के शासन का अंत छै सौ वर्ष पहले हुआ। सम्पूर्ण संसार के प्राचीन इतिहास की खोज गम्भीरता के साथ करके एक सही निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है।

अपने इस प्रकार के निर्णय में हमने हिन्दू ग्रन्थों के साथ-साथ संसार की अन्य प्राचीन जातियों के ग्रन्थों और उनके इतिहासों को भी पूर्ण रूप से समझने की कोशिश की है। इसके साथ ही बेन्टले साहब की तरह के प्रसिद्ध विद्वान लेखकों के निर्णय देखकर अपना निर्णय करने की भी हमने चेष्टा की है। इस प्रकार की छानबीन के साथ युधिष्ठिर के सम्बत का समय संसार की उत्पति से २८२५ वर्ष बाद निकलता है। इस हिसाब से अगर ४००४ में से अर्थात् संसार की उत्पति से लेकर ईसा के जन्म के समय तक का समय निकाला जावे तो युधिष्ठिर के सम्वत् का प्रारम्भ ईसा के ११७९ वर्ष और विक्रमादित्य से ११२३ वर्ष पहिले साबित होता है।

———

❀ मोरी वंश का अभिप्राय मौर्य वंश से है। बौद्ध और जैन लेखकों ने इस वंश को सूर्यवंशी माना है। तक्षक वंशी नहीं। ऐसा कुछ अन्य विद्वानों का कहना है।—अनुवादक

छठा परिच्छेद

राजस्थान के छत्तीस राजवंश–संसार की समस्त प्राचीन जातियों के जीवन की समानता–भारत में बाहर से आने वाली जातियाँ–उनका मूल स्थान–उनकी उत्पत्ति–पुराणों का वर्णन–तातारी और जर्मन लोगों का देवता–प्रसिद्ध प्राचीन राजवंशों के पूर्वज–संसार की प्राचीन जातियों के देवता एक थे–चीनी लोगोंका सबसे पहला राजा–उसका जन्म और वर्णन–तातारियों, चीनियों और हिन्दुओं का आदि पुरुष एक था–उस आदि पुरुष की उत्पत्ति–शक जाति की उत्पत्ति–कास्पियन सागर के पूर्व में रहने वाली जातियाँ–उनके रहने के स्थान–संगठित होकर आक्रमण करने का अभ्यास–एशिया में भी उन जातियों के आक्रमण–प्राचीन काल में राजपूतों और यूरप की जातियों के पूर्वज किसी एक ही स्थान के निवासी थे–उसके सही होने के प्रमाण–एशिया माइनर और रोमन लोगों पर आक्रमण–संसार की सभी जातियाँ प्राचीन काल में एक थीं–जिट लोगों की आबादी–प्राचीन जातियों के नामों में परिवर्तन–राजपूतों और संसार की प्राचीन जातियों की एक सी प्रथायें–बुद्ध के जन्म का समय–सभी जातियों की मूल उत्पत्ति एक थी ।

पिछले पृष्ठों में राजपूत जाति की वंशावली और उसका इतिहास जो लिखा गया है, उसके बाद यहाँ पर उन जातियों के सम्बन्ध में हम प्रकाश डालने की चेष्टा करेंगे, जिन्होंने समय-समय पर भारत में आकर आक्रमण किया और बाद में वे राजस्थान के छत्तीस राजवंशों में मानी गयीं ।

जिन जातियों का यहाँ पर हम उल्लेख करने जा रहे हैं, वे हय अथवा अश्व, तक्षक, जिट अथवा जिटी के नाम से प्रसिद्ध थीं । उनके देवताओं, विचारों, आचारों और नामों का सामञ्जस्य अन्य जातियों के साथ इतना अधिक था, जिससे बिना किसी विवाद के इस बात को स्वीकार करना पड़ता है कि वे और चीनी, तातारी, मुगल, हिन्दू और शक जातियाँ अपने प्रारम्भिक जीवन में एकही थीं, उन सब का मूल एक था । भारत में जिन बाहरी जातियों ने आ कर आक्रमण किये, उनके आने और आक्रमण करने का समय निश्चित रूप में नहीं लिखा जा सकता । लेकिन जिन प्रदेशों से वे भारत में आयीं, उनको आसानी के साथ समझा जा सकता है ।

सबसे पहले हमें तातारियों और मुगलों की उत्पत्ति को देखना है । उनका वर्णन, उनके इतिहास–लेखक अबुलगाजी ने किया है और उनकी उत्पत्ति के सम्बन्ध में पुराणों में भी उल्लेख मिलते हैं । तातारियों के आदि पुरुष का नाम मुगल था । उसके पुत्र का नाम ओगज था । वह उन सब जातियों का आदि पुरुष माना गया, जो उत्तरी प्रदेशों में रहती थीं और तातारी एवं मुगल कहलाती थीं ।

ओगज के छै बेटे थे + । पहला बेटा किऊन × था, उसका नाम पुराणों में सूर्य लिखा गया है । दूसरा अय था, उसका नाम पुराणों में चन्द्र अथवा इन्द्र लिखा गया । अंतिम नाम

+इनमें चार पुत्रों के नाम चार तत्वों पर हैं । इन छै बेटों से ततार की छै जातियाँ चलीं । बहुत समय तक हिन्दुओं ने उनकी दो ही जातियाँ मानीं । बाद में चार को मिलाकर छै और उसके अंत में वे छत्तीस हो गयीं ।

× अबुलगाजी के अनुसार, किऊन का अर्थ तातारी भाषा में सूर्य और चन्द्र होता है ।

आयु, जिसको पुराणों ने चन्द्रबंश के एक पूर्वज का नाम माना है। सभी तातारी लोग अपने-आप को आयु अथवा पुराणों में वर्णित चन्द्र का वंशज मानते हैं और इसी आधार पर, जर्मन लोगों की तरह वे चन्द्रमा को अपना देवता मानते हैं।

अय नाम का जो तातारी था, जुन्डज नाम का उसके एक बेटा था और उसके बेटे का नाम ह्यू था। उसके वंशजों से चीन का सब से पहला राजबँश चला।

पुराणों में लिखे हुए आयु के यदु नाम का एक बेटा था। इसका नाम कहीं-कहीं जदु भी कहा गया है। यदु और जदु में उच्चारण के सिवा और कोई अंतर नहीं है उसके तीसरे पुत्र ह्यू से किसी संतान का होना हिन्दू लेखक नहीं मानते। परन्तु चीन के लोग उसके वंशमें अपने आप को इन्दु की संतान मानते हैं ※।

अय की नवीं पीढ़ी में एलखा के दो बेटे थे। पहले का नाम काइयान और दूसरे का नगष था। सम्पूर्ण तातार में फैले हुए लोग दूसरे बेटे के वंशज हैं। प्रसिद्ध चंगेज खाँ अपने को काइयन का वंशज मानता था। यह भी माना जा सकता है कि पुराणों और तातारी ग्रन्थों में तक्षक और नागवंश + का जिक्र किया है, उनका संस्थापक नगस रहा हो। डी गिगनीस ने उसका नाम तकियुक मुगल लिखा है।

इन तीनों जातियों की उत्पत्ति जिस प्रकार एक दूसरे से मिलती है, उसका वर्णन ऊपर किया जा चुका है। अब इन जातियों के देवताओं की उत्पत्ति पर थोड़ा-सा प्रकाश डालने की आवश्यकता है। पुराणों के मत से इला (पृथ्वी) जो सूर्य पुत्र इक्ष्वाकु की पुत्री थी, किसी समय जंगल में घूम रही थी। बुध ने उसे पकड़कर उसके साथ बलात्कार किया। उससे जो संतान पैदा हुई, उससे इन्दुवंश की उत्पत्ति हुई।

चीनी लोगों का सब से पहला राजा यू (अयू) था। उसकी उत्पत्ति चीनी ग्रन्थों के अनुसार इस प्रकार है—यात्रा में एक तारे का उसकी माता के साथ समागम हो गया। उसके गर्भ रह गया और उससे यू की उत्पत्ति हुई। चीनीयों का प्रथम राजवंश इसी यू से आरम्भ हुआ। यू ने चीन को नौ भागों में बाँटा। उसने ईसा से २२०७ वर्ष :-: पहले राज्य करना आरम्भ किया था।

इस प्रकार तातारियों का अय, चीनियों का यू और पुराणों का आयु—ये तीनों नाम इस बात को साफ-साफ सिद्ध करते हैं कि इन तीनों जातियों का आदि पुरुष—जिसके वंशजों से इन तीनों का विस्तार हुआ—कोई एक था और उसकी उत्पत्ति चन्द्रमा से हुई थी।

इन्दु अथवा चन्द्र का बेटा बुध पहला पुरुष था, जिसे हिन्दुओं में वही स्थान मिला, जो चीन में फो को मिला। अब हमें सीथियन अर्थात् शक जाति की उत्पत्ति पर विचार करना है और देखना है कि उस जाति का इन जातियों के साथ क्या सम्बन्ध था।

※ चीनी ग्रन्थों के आधार पर सर विलियम जोन्स ने लिखा है कि चीनी लोग अपने-आप को हिन्दुओं की एक शाखा मानते हैं। लेकिन प्राचीन तथ्यों पर यह स्वीकार करना पड़ता है कि हिन्दू और चीनी-दोनों चन्द्रवंशी जातियाँ हैं और दोनों जातियों के पूर्वज सीथियन (शक) थे।

+ संस्कृत में नाग और तक्षक का साँप कहते हैं। इसको बुध का चिन्ह माना जाता है। भारतमें प्रसिद्ध नाग जाति के लोग सीथिया के निवासी तक्षक और तकयुक हैं। इन लोगों ने ईसा से छै शताब्दी पहले भारत में आक्रमण किया था।

:-: यह समय और पुराणों में स्वीकार किया गया समय लगभग एक ही है।

सीथियन लोग सब से पहले अरेक्सीज नदी पर रहते थे। उनकी मूल उत्पत्ति इला अर्थात् पृथ्वी से हुई, जिसके कमर से ऊपर का भाग एक स्त्री के रूप में था और नीचे का भाग एक साँप की तरह था। जूपीटर (वृहस्पति) से उसके एक बेटा पैदा हुआ उसका नाम था सीथीस ※।

उसके वंशजों ने उसी के नाम से अपनी जाति का नाम रखा। सीथीस के दो पुत्र पैदा हुए। एक का नाम था पालास और दूसरे का नाम था नापास। यहाँ पर यह शंका होती है कि यह वंश तातारियों का नागवंश तो नहीं है, जिसने अपने अनेक कामों के लिये बड़ी ख्याति पायी थी। उन लोगों ने अपनी सेना के बल पर बहुत सी जातियों पर अधिकार कर लिया था और सीथियन साम्राज्य को पूर्वी महासागर, कास्पियन समुद्र और मोइटिस झील तक पहुँचा दिया था। उस जाति के बहुत से राजा थे, जिनके वंश में सैकेन्स अथवा, सैंकी, मैसेजेटी अथवा जट या जिट, एरीअस्पियन और दूसरी बहुत सी जातियां हैं। उन्होंने असीरिया और मीडिया ·|· को जीतकर वहाँ के राज्य का सर्वनाश किया था। सकी, जट, और तक्षक आदि नाम की अनेक शाखायें उस जाति की थीं। वे सभी जातियाँ और उपजातियाँ राजस्थान के छत्तीस राजवंशों में आ गयीं। इनके नाम योरप की अन्यान्य जातियों के प्रचीन इतिहास में भी मिलते हैं। अब देखना यह है कि उन जातियों का मूल निवास कहाँ पर था।

स्ट्रैबो ने लिखा है कि कास्पियन सागर के पूर्व में रहने वाली सभी जातियाँ सीथिक कही जाती हैं। उन सबके रहने के स्थान अलग-अलग हैं। यह भी पता चलता है कि ये जातियाँ अधिकतर भ्रमण किया करती थी और आवश्यकता के अनुसार अपने रहने का स्थान बना लेती थीं। बहुत बड़ी संख्या में अपने स्थान से चलकर इन जातियों के लोग किसी देश के लोगों पर आक्रमण करती थीं। शक जाति के इन लोगों ने एशिया में भी आकर आक्रमण किया था। हमें इस बात का भी प्रमाण मिलता है कि इन लोगों के आक्रमण भारत में उस समय हुए, जब उस जाति के समूह ने योरप में प्रवेश किया। इसी आधार पर यह मानने के लिये बाध्य होना पड़ता है कि राजपूतों और योरप की प्राचीन जातियाँ प्राचीन काल में किसी एक ही स्थान पर रहा करती थीं और उनकी मूल उत्पत्ति एक थी। इस बात का सब से बड़ा प्रमाण यह है कि इन सभी जातियों के देवी-देवता एक थे। उनमें प्रचलित कहानियाँ भी एक थीं। उनमें प्रचलित रीति और रस्में भी एक ही थीं। उनमें एक-सी आदतें पायी जाती थीं। आक्रमण करने की आदतें भी उन सब की एक-सी थीं। उनकी भाषा में कोई अंतर न था। वे एक-से गाने गाते थे। जिस प्रकार की बातों को वे पसंद करते थे, वे सब एक ही प्रकार की थीं। पुराणों के अनुसार, इन्दु, सीथिक, जेटी, तक्षक और असी जातियों का आरम्भ में भारत में आने तथा शेशनाग (तक्षक) का शेशनाग देश से आने का समय ईसा से छै शताब्दी पहिले साबित होता है। इस बात का भी पता चलता है कि लगभग इसी समय इन जातियों ने एशिया माइनर पर आक्रमण करके उसको पराजित किया था। उसके बाद स्कैण्डीनेविया तथा

※ सीथीस साथि से बना है, सीथ+ईश, सीथ=शाकद्वीप और ईस अर्थात् स्वामी, इस प्रकार सीथीस=सीथियन का स्वामी।

·|· चन्द्रवंश की अश्व जाति अथवा वाजस्व जाति मीड के नाम से प्रसिद्ध है, जैसे, पुरमीड, अजमीड और देवमीड। इस जाति के लाग वाजस्व के पुत्र थे। उनका मूल निवास पाँचालिक देश था। वहाँ से वे लोग असीरिया और मीडिया पर आक्रमण करने के लिये आये थे।

बाक्ट्रिया के यूनानी राज्य पर हमला करके उसको विध्वंस किया था। इसके कुछ दिनों के बाद असी, काठी और किम्बरी जातियों ने रोमन लोगों पर बाल्टिक सागर के किनारे से आक्रमण किया था।

यहाँ पर यदि यह साबित किया जा सके कि आदि काल में जर्मनी के लोग सीथियन थे अथवा गाँथ या जेटी जाति से सम्बन्ध रखते थे तो जिस निष्कर्ष पर हम पहुँचना चाहते हैं, उसके लिये बहुत कुछ रास्ता साफ हो जायेगा। हेरोडॉटस के अनुसार, शक लोगों ने ईसा से पाँच सौ वर्ष पहले स्कैण्डीनेविया पर अधिकार कर लिया था। ये शक लोग मर्कयूरी अर्थात् बुध, ओडन अर्थात् ओडिन की अराधना करते थे और अपने आप को उन्हीं की संतान कहते थे। यूनानियों और गाँथ लोगों के देवता एक ही थे और उनके विश्वास भी एक ही प्रकार के थे। उनके देवता केलस और टेरा बुध और पृथ्वी के पुत्र थे। देवी-देवताओं और इस प्रकार की सभी बातें स्कैन्डीनेविया वालों की ठीक वह हैं, जो यूनान और रोम की हैं। इस प्रकार की अनेक प्राचीन जातियों की सभी बातें एक दूसरे से बिल्कुल मिलती-जुलती हैं। उनके परस्पर विचारों और विश्वासों में कोई अन्तर नहीं था। प्राचीन योरप की जातियों, राजपूतों और सीथियन अर्थात् शकों की उत्पत्ति एक ही थी। इस पर यहाँ थोड़ा-सा विचार कर लेना चाहिए।

एक विद्वान लेखक ने लिखा है—"तातारियों के साथ हम लोग घृणा करते हैं। लेकिन यदि हम इन तातारियों और अपने पूर्वजों के सम्बन्ध में थोड़ा-सा विचार करें तो हमें मालूम होगा कि हम में और उनमें कोई अन्तर नहीं है। हम दोनों के पूर्वज एक ही थे और वे एशिया के उत्तर से आये थे। हमारे और उनके जीवन की सभी बातें एक-सी हैं। इस प्रकार की बातों को समझ लेने पर उनके प्रति हमारी घृणा की भावना समाप्त हो जायगी।

वे सब तातार से आने वाले ही थे, जिन्होंने किम्म्रियन,केल्ट और गाँथ के नाम से योरप का समस्त उत्तरी भाग अपने अधिकार में कर लिया था। गाँथ, हूण, एलन, स्वीड, वांडल, फ्रैंक आदि जातियों के लोग वास्तव में एक ही थे। स्वीडन के इतिहास के अनुसार स्वीड लोग काशगर से आये थे, और सैक्सन तथा किपचक भाषाओं में कोई विशेष अन्तर नहीं। ब्रिटनी और वेलस में अब तक बोली जाने वाली केल्टिक भाषा इस बात का प्रमाण है कि वहाँ के निवासी तातारियों के वंशज हैं।

प्राचीन काल में अनेक प्रदेशों ने सभ्यता में उन्नति की थी। एशिया की ऊँची जमीन पर बसने वाली जातियों का जीवन केवल देहाती नहीं था, बल्कि सू लोगों ने जब वहाँ के यूची और जिट लोगों पर आक्रमण किया तो आक्रमणकारियों को वहाँ पर एक सौ से अधिक ऐसे नगर मिले, जिनमें भारत की तैयार की हुई बहुत-सी व्यावसायिक चीजों की बिक्री होती थी और उनमें यहाँ के राजाओं के चित्रों के साथ सिक्कों का प्रचार था। मध्य एशिया की यह अवस्था ईसा से बहुत पहले थी। उसके बाद इन देशों में ऐसी लड़ाइयाँ हुईं, जिन्होंने उन देशों का सर्वनाश किया। इस प्रकार की लड़ाइयाँ योरप में कभी नहीं हुई। उस समय से यह देश बरबाद हो गया।

जेटी, जोट अथवा जिट और तक्षक जातियाँ जो आज भारत के छत्तीस राजवंशों में शामिल हैं, सब की सब सीथिया प्रदेश से आई हैं। पूर्वकाल में उनके स्थान छोड़ने का कारण हमें पुराणों में खोजना चाहिए। परन्तु उनके हमलों के सम्बन्ध में बहुत-सी बातों की जानकारी महमूद गजनवी और तैमूर के इतिहास से होती है।

जोऊद के पर्वतों से लेकर मकरान के किनारे और गंगा के समीपवर्ती स्थानों में जिट लोग ❀ बहुत बड़ी तादाद में रहते हैं। प्राचीन ग्रन्थों और शिला लेखों में तक्षक जाति का उल्लेख मिलता है।

इन प्राचीन जातियों के नामों में भी अब परिवर्त्तन हो गये हैं। जेटी लोग बहुत समय तक स्वतंत्र बने रहे। लेकिन उनको पराजित करने के लिये जब साइरस ने उन पर आक्रमण किया तो टोमिरिस ने उनका सामना किया। कई लड़ाइयों के बाद वे सतलज नदी के पार भागकर चले गये और लाहौर के जिट सरदार की मातहती में रंगरूटों की तरह भर्ती होकर एवम् बीकानेर के समीप मरुभूमि में चरवाहों की तरह रहने लगे। बाद में चरवाहों का काम छोड़कर वे लोग काश्तकारी का काम करने लगे।

इन इन्दु-सीथिक जातियों अर्थात् जेटी, तक्षक, असी कट्टी, राजपाली, हूण, कैमेरी लोगों के आक्रमणों के बाद इस देश में इन्दुवंश (चंद्रवंश) के संस्थापक बुधकी पूजा का श्री गणेश हुआ। अश्व अथवा वाजस्व का इन्दुवंश सिन्धु नदी के दोनों किनारों के प्रवेशों में आबाद हो गया। अश्व लोग इन्दुवंशी थे। लेकिन यही नाम सूर्यवंशी की एक शाखा का भी पाया जाता है। उनके सम्बन्ध में लिखा गया है कि वे लोग घोड़ों की सवारी करते थे और घोड़ों की पूजा भी करते थे और सूर्य देवता को घोड़े की बलि भी देते थे। जेटिक जाति में प्रचलित अश्वमेध यज्ञ इस बात का एक प्रधान प्रमाण है कि इस जाति के लोगों की उत्पत्ति सीथियन लोगों से हुई, क्योंकि यह प्रथा सीथियन लोगों की बहुत पुरानी है।

ईसा से १२०० सौ वर्ष पहले, सूर्यवंशी राजाओं में गंगा और सरयू के तट पर अश्वमेध यज्ञ किया जाता था। इसी प्रकार की प्रथा जेटी लोगों में साइरस के में समय थी। घोड़े की पूजा और उसका बलिदान देना राजपूतों में आज तक पाया जाता है। स्कैण्डीनेविया में घोड़े की पूजा की प्रथा का प्रचार जेटी जाति में असी लोगों द्वारा हुआ और सू, सुएवी, कट्टी, सुकिम्ब्री और जेटी नामक समस्त प्राचीन जर्मन जातियों ने इस प्रथा का प्रचार जर्मनी के जंगलों और एल्ब तथा वेजर नदियों के आस-पास किया। दूध के समान सफेद घोड़े को लोग ईश्वर का अंश मानते थे और उसकी हिनहिनाहट से भविष्य में होने वाली घटनाओं का अनुमान लगाते थे। इस प्रकार का विश्वास गंगा और जमुना के समीप रहने वालों में उस समय से फैला हुआ था, जब स्कैण्डीनेविया के पर्वतों और वाल्टिक समुद्र के किनारे तक कोई मनुष्य कभी पहुँचा भी न था।

चीन और तातार के इतिहास लेखकों के अनुसार, बुद्ध और फो ईसा से १०२७ वर्ष पहले हुए थे। वाक्ट्रिया और जेहून नदी के किनारे बसने वाले यूची लोग बाद में जेटा अथवा जेटन के नाम से प्रसिद्ध हुए। उनका साम्राज्य एशियाई भाग में बहुत समय चला और वह भारतवर्ष में भी फैला हुआ था। यूनानी लोग इनसे इन्डोसीथी के नामसे परिचित थे। उनके जीवन की बहुत-सी बातें तुर्कों की तरह की थीं। शेषनाग देश से तक्षक जाति के आने का समय छठी शताब्दी माना गया है।

मूल उत्पत्ति एक होने का सब से बड़ा प्रमाण भाषा की अपेक्षा भी धर्म है। इसलिये कि भाषा में हमेशा परिवर्तन होता रहता है। लेकिन रीति-रिवाज और धार्मिक विश्वास सदा एक रहते हैं। टैसिटस अपने लेखों में स्वीकार करता है कि जर्मन का प्रत्येक मनुष्य प्रातःकाल

❀ बलूचिस्तान की नूमरी अथवा लोमड़ी जाति के लोग जिट हैं। इन्हीं लोगों को केनेले ने गोमार्डी नाम देकर अपने लेखों में उल्लेख किया है।

उठने पर सब से पहले स्नान करता था। इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि जर्मनी के प्राचीन निवासियों की उत्पत्ति जर्मनी की तरह के किसी शीत प्रधान देश की नहीं हो सकती। निश्चित रूप से उनकी उत्पति का स्थान पूर्वी देशों में कहीं पर था। सीथियन, किम्ब्री, जट, कट्टी और सुएबी लोगों की बहुत-सी बातें दूसरी जातियों के साथ मिलती हैं और वे राजपूतों में अब तक पायी जाती हैं।

धर्मिक विश्वासों की समानता पूर्ण रूप से इस बात को साबित करती है कि सभी जातियों की मूल उत्पत्ति एक थी। जर्मनी के प्राचीन लोग टुइस्टो (मर्क्यूरी अर्थात बुध) और अर्था (पृथ्वी) को अपना मुख्य देवता मानते थे। स्केण्डीनेविया की जेटी जतियों में सुयोनीज अथवा सुएबी एक प्रसिद्ध जाति थी। वह बाद में अनेक जातियों में विभाजित हो गयी थी। उन जातियों के लोग पृथ्वी की पूजा करते थे और उसे प्रसन्न करने के लिये मनुष्य की बलि देते थे।

सुएबी लोग ईसिस (ईश, गौरी) की पूजा करते थे। उदयपुर में अब तक गौरी का त्योहार मनाया जाता है और उसके मानने का तरीका ठीक वैसा ही है, जैसा कि ऊपर लिखी हुई जातियाँ प्राचीन काल में मनाया करती थीं। इस प्रकार के वर्णन हेरोडॉटस ने अपने ग्रन्थों में किये हैं।

संसार की सभी प्राचीन जातियों के युद्ध के तरीके एक-से थे। उन सब के देवता एक थे। भाषा की विभिन्नता के कारण आज उनके नामों में अन्तर आ गये हैं। सभी जातियाँ युद्ध में जाने के पहले अपने देवताओं का स्मरण करती है और अपने आदि पुरुषों से प्रेरणा प्राप्त करती हैं। यह पहले ही लिखा जा चुका है कि संसार की सभी जातियों का आदि पुरुष एक ही था। प्राचीन काल में युद्ध में जाने वाले लोग अपने-अपने देवता की मूर्त्तियाँ ले जाते थे। युद्ध में लड़ने की कलाएं उन सभी की एक-सी थीं। सभी जातियों के लोग हथियारों में बर्छी और भालों का प्रयोग करते थे। सुएबी अथवा सुयेनीज लोगों ने उपसाला का प्रसिद्ध मन्दिर बनवाया और उसमें थोर वोडेन और फ्रेमा नामक अपने देवताओं की मूर्त्तियाँ रखीं। स्कैंडीनेविया की अती जाति के लोग भी इन्हीं तीनों को अपना आराध्य देवता मानते हैं। सूर्यवंशी और चन्द्रवंशी राजपूतों में भी ये तीन देवता माने जाते हैं। थोर अर्थात् युद्ध का देवता महादेव अर्थात् शत्रु का नाश करने वाला देवता, दूसरा वोडेन अर्थात् बुध जो रक्षा करता है और तीसरा फ्रेमा अर्थात् उमा जो शक्ति उत्पन्न करने वाली देवी है। बसंत ऋटतु में फ्रेमा का उत्सव मनाने की प्रसिद्ध प्रथा थी। उस उत्सव में स्कैण्डीनेवियन लोग सुअर का बलिदान करते थे।

इसी बसंत में राजपूत लोग सब से बड़ा उत्सव मनाते हैं और बसंत के प्रारम्भ में राजपूत राजा सुअर का शिकार करने के लिये अपने सरदारों के साथ जाता है। यदि राजा को सुअर के शिकार में सफलता न हो तो उसके लिये वह वर्ष अशकुन का माना जाता है।

पिंकर्टन टॉलेमी के अनुसंधान के आधार पर जटलैंड की जिन छै जातियों का जिक्र किया गया है, उनके देवता और उनके धार्मिक विश्वास उसी प्रकार के थे, जैसे कि ऊपर अनेक प्राचीन जातियों के सम्बन्ध में लिखा गया है। सैमीज ने भी इन बातों का समर्थन किया है।

जटलैण्ड की छै जातियों में किम्ब्री का नाम बहुत प्रसिद्ध है। उस जाति के लोग अपने जीवन में वीरता को सब से प्रधान मानते थे। भारत के राजपूतों में जितने भी अच्छे गुण थे और आज भी हैं, उनमें उनकी वीरता प्रमुख है। कोई भी ऐसा राजपूत न मिलेगा, जिसमें इस गुण का अभाव हो।

इस प्रकार की और भी बहुत-सी बातें मिलती हैं, जो संसार की विभिन्न प्राचीन जातियों का आदिकाल में एक होना साबित करतीं हैं। कुमार को राजपूत युद्ध का देवता मानते हैं। हिन्दुओं के ग्रन्थों में और उनकी देव-कथाओं में उस देवता के सात सिर बताये गये हैं। सैक्सन लोग अपने युद्ध के देवता के छै सिर मानते थे।

किम्ब्री चेर्सोनीज़ का मार्स छै सिर वाला माना गया था और वेज़र नदी के तट पर उसके नाम का इर्मन स्योल बनाया गया था। सैकेसनी, कट्टी, सीबी अथवा सुएबी, जोटी अथवा जेटी और किम्ब्री जाति के लोग उसकी पूजा किया करते थे।

राजपूतों के धर्म और सिद्धान्त बाकी उन हिन्दुओं के धर्म और सिद्धान्तों से नहीं मिलते, जो लोग फलों, पत्तियों और पौदों को खाकर जीवन निर्वाह करते हैं और गाय की पूजा करते हैं। राजपूत लोग युद्ध करना और शत्रु का नाश करना पसंद करते हैं, अपने युद्ध के देवता पर वे रक्त और मदिरा चढ़ाते हैं और जिस पात्र में वे अपने देवता का अर्घ्य देते हैं, वह मनुष्य की खोपड़ी का होता है। उनका देवता इन चीजों को पसन्द करता है और इसीलिये उनको भी प्रिय है। राजपूतों की ये सभी बातें, उनके कार्य, बिश्वास और सिद्धान्त ठीक उसी प्रकार के हैं, जिस प्रकार स्कैंण्डीनेवियन वीरों के।

राजपूत भैंसों की हिंसा करते हैं, सुअर और हरिन का शिकार करके उनके मांस को भोजन के रूप में खाते हैं। + अपने* घोड़े, तलवार और सूर्य की वे पूजा करते हैं और ब्राह्मणों के मन्त्रों मुकाबिले में वे वीर रस से भरे हुए भाटों की कविताओं को अधिक पसन्द करते हैं। ठीक इसी प्रकार का स्वभाव स्कैण्डीनेविया के लोगों का पाया जाता है। उनकी देव–कथाओं में वीरता के कथानक पाये जाते हैं और उनकी किताबों में वीररस पूर्ण कवितायें मिलती हैं। पूर्व और पश्चिम की इन जातियों की आलोचना करने से पता चलता है कि इन जातियों के आदि पुरुष एक ही थे और उनकी उत्पत्ति एक दूसरे से भिन्न नहीं है।

भाट कवि राजपूतों को अपनी कवितायें सुनाकर जिस प्रकार युद्ध के लिये तैयार करते थे, उसी प्रकार प्राचीन काल में सैक्सन लोगों में भी इस प्रकार की प्रथा थी और उनके यहाँ भी कुछ लोग भाट कवियों की तरह का ही काम करते थे। टैसीटस ने उनके संबन्ध में लिखा है—युद्ध में जाने के समय वे लोग जोशीली कवितायें सुनाकर सैक्सन लोगों को युद्ध के लिये तैयार करते थे। राजपूत आज भी रामायण, गीता और अन्य हिन्दू ग्रन्थों की अपेक्षा महाभारत और आल्हा अधिक पढ़ते और गाते हैं।

राजपूत और संसार की अनेक प्राचीन जातियाँ आदि काल में एक थीं। उनकी उत्पत्ति एक थी। वे सब एक ही वृक्ष के फल हैं जो संसार में आज चारों तरफ फैले हुए हैं। इस बात को साबित करने के लिये प्राचीन काल की सामग्री इतनी अधिक है कि उन सब को एकत्रित करके एक बहुत बड़ा ग्रन्थ लिखा जा सकता है। इसलिये यहाँ पर उन सब का लिख सकना सम्भव नहीं है।

महाभारत के समय से लेकर भारत में आक्रमण करने वाले मुसलमानों की विजय तक इण्डो-सीथीक जातियों में रथ की सवारी खूब मिलती है। उसके बाद रथ की सवारी की प्रथा धीरे-धीरे कम होती गई। इसके पहले संसार की प्राचीन जातियाँ लड़ाई में रथों का अधिक प्रयोग करती थीं। रथ की सवारी का प्रचार दक्षिण-पश्चिम भारत में अभी कुछ दिन पहले भी बहुत पाया जाता था और सौराष्ट्र की काठी, कोमानी और कोमारी जातियों की रहन-सहन, उनके स्वभाव विश्वास और जिन्दगी की बहुत-सी बातें अब तक बिल्कुल सीथियन लोगों की तरह की पायी जाती हैं।

प्राचीन जर्मनी और स्कैण्डीनेविया की जातियों, जेटी लोगों और राजपूतों के आचारों, सिद्धान्तों और विश्वासों में सब से अधिक समानता स्त्रियों के प्रति व्यवहारों में मिलती है। वे सभी लोग स्त्रियों के प्रति शिष्टता कुछ इस प्रकार प्रकट करते हैं, मानों उन सभी ने इस विषय में किसी एक ही स्कूल से और एक ही गुरू से शिक्षा प्राप्त की है।

टैसीटस ने लिखा है कि जर्मनी के लोग अपनी स्त्रियों पर बहुत विश्वास करते हैं और उनके परामर्श को भविष्यवाणी के रूप में मानते हैं। राजपूतों की भी यही अवस्था है। वे अपनी स्त्रियों का सम्मान करते हैं और उनके मान-सम्मान में वे अपने प्राणों को उत्सर्ग कर देते हैं।

प्राचीन काल में जुआ खेलने की आदतें सीथियन लोगों में पायी जाती थीं और उन्हीं के द्वारा जर्मनी के लोगों में इस आदत का प्रचार हुआ। राजपूतों में भी जुआ खेलने की आदतें खूब पायी जाती हैं। जुआ में अपना शरीर, अपनी रियासत और अपने अधिकृत लोगों को दाँव में लगा देने और हारने-जीतने की प्रथा सीथियन और जर्मनी के लोगों में थी। भारत में इसी दुर्व्यसन के कारण पाण्डवों ने अपना राज्य और शारीरिक स्वतंत्रता जुए में हारकर खो दी थी। समस्त हिन्दु जातियों में अब तक इस प्रकार के जुए का प्रचार है, उनके धर्म में भी इस कुप्रथा को स्थान दिया गया और वर्ष में एक दिवाली के अवसर पर जुआ खेलने की आज्ञा दी गई है। वे लोग ऐसा लक्ष्मी को प्रसन्न करने के लिये करते हैं।

शकुन और आपशकुन पर इन जातियों का विश्वात बहुत पुराना चला आता है। जेटी जातियों और जर्मन जातियों के लोग प्राचीन काल में शकुन और अपशकुन को बहुत मानते थे। इनको समझने के लिए उनके पास बहुत-सी बातें थीं। चिट्ठियाँ डालने और पक्षियों को उड़ते देखकर इस प्रकार की बहुत-सी बातों का वे लोग अनुमान लगाकर विश्वास करते थे।

स्कैण्डोनेविया की असी जाति और जर्मन जातियों में मदिरा पीने का प्रचार प्राचीन काल में अधिक था। मदिरा सेवन में भी राजपूत जातियों के लोग सीथिया और योरप के लोगों से किसी प्रकार कम नहीं हैं। मदिरा और मादक द्रव्यों के सेवन की आदत भारत में दूसरे देशों से आयी है।

राजपूत लोग अपने अतिथि का सत्कार करना खूब जानते हैं। यहाँ तक कि शत्रुओं के साथ भी जब वे एक बार खा-पी लेते हैं तो उनकी शत्रुत्रा के भाव मिट जाते हैं। इस प्रकार की आदतें भी सीथियन तथा जर्मनों के पुराने लोगों में पायी जाती थीं।

युद्ध के देवता थोर की पूजा करने वाले स्कैण्डीनेविया के लोग मनुष्य की, विशेषकर शत्रु की खोपड़ी का प्याला बनाकर रक्त का पान करते थे। उनकी इस प्रथा की समता बहुत-कुछ राजपूतों के देवता महादेव के साथ होती है। महादेव के सम्बन्ध में इस प्रकार की बातें पढ़ने और सुनने को मिली हैं। महादेव उन सब का रक्षक है, जो सुरा और संग्राम से प्रेम करते हैं। राजपूतों की विशेष श्रद्धा महादेव पर रहती है और इसी आधार पर अपने प्रधान देवता को अर्घ्य देने के लिये रक्त और मदिरा को वे मुख्य पदार्थ मानते हैं।

मनुष्य के मरने के बाद मृतक की जो अन्तिम क्रिया होती है, उसके सम्बन्ध में भी प्राचीन जातियों की एकता और समानता मिलती है। इसके सम्बन्ध में स्कैण्डीनेविया में दो प्रकार की प्रथायें पायी जाती थीं। एक तो मृत शरीर को आग में जलाकर भस्म कर देने की और दूसरी उसको पृथ्वी में गाड़ देने की।

ओडिन (बुध) ने मृत शरीर को पृथ्वी में गाड़ देने की प्रथा का प्रचार किया और वहाँ पर समाधि बनाने की रस्म भी उसके द्वारा चालू हो गयी। उसी समय मृत पति के साथ उसकी

पत्नी के जल जाने की प्रथा का भी प्रचार हुआ। इस प्रकार की बातों का प्रचार भारत में शक द्वीप से अथवा शक-सीथिया से आकर हुआ। हेरोडॉटस ने लिखा है—सीथिया में लोग मरने पर चिता में जलाये जाते थे और उनके साथ उनकी पत्नी जीवित जला दी जाती थी।

स्कैण्डीनेविया के जेटी, सीबी अथवा सुएबी लोगों में मृत-व्यक्ति के यदि एक से अधिक स्त्रियाँ होती थीं, तो उसकी बड़ी स्त्री को ही अपने पति के साथ जलने का अधिकार था। पति के साथ चिता बनाकर पत्नी के जलने की प्रथा राजपूतों में ठीक उसी प्रकार की है जिस प्रकार उसकी प्रथायें अन्य जातियों के सम्बन्ध में ऊपर लिखी गई हैं। इसका साफ साफ अर्थ यह है कि आदि काल में सीथिक, स्कैण्डीनेबियन और राजपूत जातियाँ एक थीं।

हेरोडॉटस लिखता है—'सीथियन जेटी लोगों की चिता पर उनके घोड़े जीवित जलाकर उनका बलिदान किया जाता था और स्कैण्डीनेविया के जेटी लोगों के मृत शरीर के साथ उनके घोड़े और उनके अस्त्र-शस्त्र जमीन में गड़वा दिये जाते थे। उन लोगों का विश्वास था कि मरने पर मृतक अपने घोड़े पर बैठकर और अपने शस्त्रों से सुसज्जित होकर अपने प्रभु के पास पहुँचेगा, अन्यथा उसे स्वर्ग में पहुँचने के लिए पैदल ही चलना पड़ेगा। राजपूतों में भी उनके घोड़ों के वलिदान की प्रथा भी इससे मिलती-जुलती है। राजपूत का मृत शरीर शस्त्रों से सुसज्जित चिता पर रखा जाता है और उसका घोड़ा उसके साथ जलाया नहीं जाता, बल्कि उसके देवता के नाम पर उसके किसी पुजारी को अर्पण कर दिया जाता है।

जो राजपूत युद्ध में मारे जाते हैं, उनके चबूतरे, स्तम्भ और किसी अन्य प्रकार के स्मारक बनवाये जाते हैं और इस प्रकार के स्मारक अथवा उनके चिन्ह सम्पूर्ण राजस्थान में अब तक पाये जाते हैं, जिन पर मृतक को घोड़े पर सवार और सभी प्रकार के शस्त्रों से सुसज्जित दिखाया जाता है। उसके उस स्मारक में उसकी सती स्त्री और सूर्य-चन्द्र की आकृति भी पत्थर पर खुदी हुई देखने को मिलती है।

सौराष्ट्र प्रदेश में काठी, कोमानी, बल्ला और दूसरे सीथिक वंश के लोगों में भी इसी प्रकार की प्रथायें प्रचलित थीं। तातार के कोमानी लोगों में उसी प्रकार के पत्थरों को प्रयोग में लाया जाता था, जिस प्रकार के पत्थरों के प्रयोग केल्ट लोगों में होते थे। मृत्यु के बाद इस प्रकार के स्मारक बनाने की प्रणाली प्राचीन जातियों में लगभग एक-सी थी और वह प्रणाली उन सबके एक होने की साक्षी देती है।

राजपूत अपने घोड़े के भक्त होते हैं और शस्त्रों की पूजा करते हैं। तलवार, ढाल, बर्छा, और कटार उनके विशेष हथियारों में रहे हैं और आज भी वे लोग अपने शस्त्रों को प्रणाम करते हैं एवम् आवश्यकता पड़ने पर वे उनकी शपथ लेते हैं। प्रसिद्ध इतिहास लेखक हेरोडॉटस ने सीथियन जेटी लोगों के सम्बन्ध में इसी प्रकार की अनेक बातें लिखी हैं।

सैनिक शिक्षा प्राप्त करने के लिये जर्मनी के युवकों में जो प्रणाली काम में लायी जाती थी, ठीक वही राजपूतों में भी चलती थी। अपने देवता को प्रसन्न करने के लिये प्रचीन जातियों में वलि देने की जो प्रथायें थीं वे एक दूसरे से बहुत भिन्न न थीं। वलिदान की प्रथा एक ही थी, वलि दिये जाने वाले पशुओं में भिन्नता थोड़ी बहुत मिलती है। हेरोडॉटस ने लिखा है कि स्कैण्डी-नेविया के लोगों में संक्रान्ति का त्योहार बड़ी धूमधाम के साथ मनाया जाता था। राजपूतों और हिन्दुओं में भी यह त्योहार मनाया जाता है।

मनुष्य जाति की उत्पत्ति होने के बाद भी, जब उनकी संख्या बढ़ी, उस समय उनके द्वारा अलग-अलग नामों से जातियों की उत्पत्ति हुई। आरम्भ में उनकी भाषा एक थी, लेकिन

वे लोग एक दूसरे से जितने ही दूर होते गये, उनकी भाषाओं में अन्तर शुरू हुआ और धीरे-धीरे उनकी भाषायें भी अलग-अलग बन गयीं। उन प्राचीन भाषाओं का मिलान करने से साफ-साफ जाहिर होता है कि उन सब की उत्पत्ति किसी एक ही भाषा से हुई है, क्योंकि उन सब की भाषाओं में अनेक बातों की समता और एकता मिलती है। पशुओं, विभिन्न प्रकार के जीवों और अगणित चीजों के नाम उन भाषाओं में बहुत मामूली अन्तर के साथ पाये जाते हैं। प्राचीन जातियों में जो त्योहार मनाये जाते थे, उनके संस्कार अब तक अनेक बातों में समता रखते हैं। इसी प्रकार अश्वमेध यज्ञ की प्रथा भी बहुत पुरानी है। इस यज्ञ में भयानक रूप से व्यय किया जाता था और उसका परिणाम विनाश की ओर ले जाता था। भारतीय इतिहास में उसके अनेक उदाहरण मिलते हैं। विस्तार भय से उन पर यहाँ अधिक नहीं लिखा जा सकता। इस यज्ञ में बहुत-से पक्षियों और जीवों के साथ-साथ, घोड़े का वध किया जाता था। इस प्रकार के बध के समय ब्राह्मण वेद-मंत्रों का उच्चारण करते थे। एक अपार भीड़ के बीच में यज्ञ करने वाला राजा यज्ञ के समीप बैठकर वलि दिये जाने वाले जीवों के वलिदानों को देखता था। उन जीवों के हृदयों को जब अग्नि के सुपुर्द किया जाता था तो राजा उसकी सुगंध लेता था, इस यज्ञ में ब्राह्मणों को बहुमूल्य सुवर्ण दान में दिया जाता था। इस प्रकार की प्रथायें संसार की प्राचीन जातियों में बहुत कुछ मिलती-जुलती पायी जाती थीं और उनके सम्बन्ध में प्राचीन धर्मों का विश्वास एक-सा था।

धर्म के नाम पर इस प्रकार न केवल पशुओं के वलिदानों की प्रथायें थीं, बल्कि पशुओं की तरह देवता को प्रसन्न करने के लिए मनुष्यों की वलि भी दी जाती थी, जैसा कि केल्टिक ड्रूइन्ड लोगों के सम्बन्ध में प्राचीन इतिहासकारों ने लिखा है।

विश्व की प्राचीन जातियों के सम्बन्ध में इस प्रकार जितने भी अनुसंधान किये जा सकते हैं, वे सभी इस बात का सुबूत देते हैं कि आरम्भ में वे सभी एक थीं और उनकी उत्पत्ति भी एक दूसरे से किसी प्रकार की भिन्नता नहीं रखती। धार्मिक विश्वास देवताओं की पूजा, युद्ध की प्रणाली, शिकार करने की आदत, लड़ने के तरीके, युद्ध के गीत, युद्ध के हथियार, उनमें काम आने वाली सवारियाँ, स्त्रियों का सम्मान, जुआ खेलना, मादक चीजों का सेवन, आतिथि-सत्कार, पति के साथ पत्नी के जलने की प्रथा, मृत्यु के बाद के संस्कार और शस्त्र पूजा आदि जीवन की सैकड़ों बातें आदि काल में उनके एक होने का प्रमाण देती हैं। जीवन की मोटी-मोटी बातों पर यहाँ प्रकाश डाला गया है। खोज करने के बाद और भी बहुत-सी ऐसी बातें उनके जीवन की मिल सकती हैं, जो हमारे इस अनुसंधान का समर्थन करती हैं कि संसार की सभी जातियों की उत्पत्ति का मूल आधार एक ही है। इसलिए इसके सम्बन्ध में हमें अब अधिक लिखने और खोज करने की आवश्यकता नहीं है। संसार की प्राचीन जातियों का प्रत्येक इतिहास-लेखक इसी सिद्धान्त का समर्थन करता है। इसके विरोधमें हमें कोई सामग्री नहीं मिली।

———

सातवाँ परिच्छेद

राजस्थान के राजवंशों का विभाजन–उनकी नामावली–राजवंशों की शाखायें–चौरासी व्यावसायिक जातियों की मौलिक उत्पत्ति–आदि काल में दो ही वंश थे, सूर्यवंश और चंद्रवंश–गहिलोत वंशियों का सूर्यवंशी होने का दावा–सीसोदिया नाम की उत्पत्ति–गहिलोत वंश की शाखायें–कृष्ण की मृत्यु के बाद उसके बेटे और यदुवंश के लोग–यदुवंश की शाखा–कृष्ण के वंशज–युधिष्ठिर के द्वारा इन्द्रप्रस्थ की प्रतिष्ठा–बाद में दिल्ली के नाम से उसकी ख्याति–प्रसिद्ध राठौर वंश–राठौरों का प्राचीन स्थान–राठौर ंश की शाखायें–रामचंद्र के पुत्र कुश के वंशज कुशवाहा लोग–राजपूतों के वंश और उनकी शाखायें।

राजस्थान के सभी राजवंश छत्तीस भागों में विभाजित माने जाते हैं। इन वंशों की नामावली और उनके विवरण उन साधनों के द्वारा प्राप्त किये गये हैं, जिनके सम्बन्ध में अधिक से अधिक विश्वास किया जा सकता है और उनसे अधिक विश्वस्त साधन कोई दूसरा सम्भव नहीं हो सका।

राजस्थान के जिन छत्तीस राजवंशों का हम इतिहास लिखने जा रहे हैं, वे बहुत-सी शाखाओं अर्थात् उपवंशों में विभाजित हैं और ये शाखायें अगणित प्रशाखाओं अर्थात गोत्रों में बदल गयी हैं। उनकी संख्या बहुत अधिक है, इसलिये जो अधिक प्रसिद्ध है, उन्हीं के विवरण यहां पर दिये गये हैं।

इन राजवंशों में कुछ वंश ऐसे भी हैं, जिनकी शाखायें नहीं हैं और उनकी संख्या लगभग एक तिहाई के है। उन सब के साथ-साथ चौरासी व्यावसायिक जातियों की नामावली भी यहाँ पर दी गयी है, जो विशेषकर राजपूतों की ही शाखायें हैं और इस सूची में उन जातियों के भी विवरण हैं, जो आदि काल में खेती का काम करती थीं अथवा पशुओं के द्वारा अपना जीवन-निर्वाह करती थीं।

आरम्भ में सूर्य और चन्द्र–दो ही वंश थे। बाद में चार अग्निवंश वालों के मिल जाने से उनकी संख्या छै हो गयी। इनके सिवा अन्य जितने भी वंश हैं, वे सब सूर्यवंश और चन्द्रवंश की शाखायें हैं। अथवा उनकी उत्पत्ति इण्डो-सीथियन जाति से हुई है, जिनकी गणना भारत में मुस्लिम शासन के पहले, राजस्थान के छत्तीस राजवंशों में की जाती थी।

गहिलोत अथवा गहलोत–छत्तीस वंशों के आभूषण और चित्तौर के स्वामी सूर्यवंशी राणा की वंशावली। सभी की सम्मति के अनुसार जैसा कि इस जाति के गोत्र से भी साबित होता है, उपरोक्त वंश के सभी राजा सूर्यवंशी रामचन्द्र के वंशज माने जाते हैं। यह वंश रामचन्द्र से निकला है और पुराणों में लिखी हुई वंशावली के अंतिम राजा सुमित्र के साथ इस वंश का सम्बन्ध है। इस वंश की अधिक बातें मेवाड़ के इतिहास में लिखी गयी हैं। यहाँ पर संक्षेप में उनकी उन्हीं बातों का उल्लेख किया गया है, जो उनके गोत्र और प्रदेशों से सम्बन्ध रखती हैं अर्थात् जिस गोत्र के लोग कनक सेन के समय से उनके आधीन रहे हैं और जिन्होंने दूसरी शताब्दी में अपना राज्य कोशल को छोड़कर सौराष्ट्र में सूर्यवंश की स्थापना की। विराट के स्थान पर जो

पाण्डवों के वनवास के समय उनके रहने का मशहूर स्थान था, इक्ष्वाकु के उस वंशज ने अपने वंश की प्रतिष्ठा की और उसके वंशज विजय ने कई पीढ़ियों के पश्चात् विजयपुर ❀ बसाया।

इस वंश के लोगों के द्वारा बल्लभी राज्य की प्रतिष्ठा नहीं हुई। लेकिन वे बल्लभी के राजा कहलाये। वहाँ का एक सम्बत भी चला और उसका आरम्भ विक्रम सम्बत ३७५ में हुआ।

ग़ज़नी अथवा गपनी, बल्लभी राज की दूसरी राजधानी थी। उसका अंतिम राजा शिलादित्य मारा गया था और छठी शताब्दी में उसका परिवार वहाँ से निकाल दिया गया था। गुहादित्य, शिलादित्य का लड़का था, जो उसके मरने के बाद पैदा हुआ था। उसने ईडर नामक छोटे से राज्य पर अधिकार कर लिया और उसी के नाम पर उसका वंश चला। उस समय से यह सूर्यवंशी कुल गहिलौत कहलाने लगा। उसके कुछ समय बाद गहिलौत वंश अहाड़िया वंश कहलाया और बारहवीं शताब्दी तक इसी नाम से वह प्रसिद्ध रहा। इस वंश के राहप नामक व्यक्ति ने चित्तौर की गद्दी का अपना अधिकार छोड़कर डूंगरपुर में एक अलग राज्य बसाया। उस राज्य के लोग अब तक अपने आप को अहाड़िया के वंशवाले बतलाते हैं।

राहप के छोटे भाई माहप ने अपने राज्य की राजधानी सीसोदा में क़ायम की और उस समय से उसके वंशज सीसोदा नामक स्थान के नाम पर सीसोदिया कहलाये। उस समय से यह वंश अब तक इसी नाम से विख्यात है। लेकिन यह सीसोदिया उपवंश गहिलौत की शाखा मना जाता है।

गहिलौत वंश चौबीस शाखाओं में विभक्त हो गया था और उनमें थोड़ी शाखायें अब अपना अस्तित्व रखती हैं। वे चौबीस शाखायें इस प्रकार हैं :

(१) अहाड़िया डूंगरपुर में (२) माङ्गलिया मरुभूमि में (३) सीसोदिया मेवाड़ में (४) पीपाड़ा मारवाड़ में (५) कैलावा (६) गद्दोर (७) धोरणिया (८) गोंधा (९) मगरोपा (१०) भीमला (११) कंकोटक (१२) कोटेचा (१३) सोरा (१४) ऊडड़ (१५) ऊसेवा (१६) निरूप [ये ५ से १७ तक बहुत कम संख्या में थे और अब उनके अस्तित्व नहीं मिलते] (१७) नादोडया (१८) नाधोता (१९) भोजकरा (२०) कुचेरा (२१) दसोद (२२) भटेवरा (२३) पाहा और (२४) पूरोत। इनमें १७ से २४ तक वंश बहुत पहले से समाप्त हो गये हैं।

यदु जिससे यादव वंश चला, सभी वंशों में अधिक प्रसिद्ध था और चन्द्रवंश के आदि पुरुष बुध के वंशजों का यही वंश बाद में प्रसिद्ध हुआ।

कृष्ण का देहान्त हो जाने पर युधिष्ठिर और बलदेव के दिल्ली और द्वारका से चले जाने पर यदुवंशी लोग मुल्तान के रास्ते से सिन्धु के उस पार चले गये। उनके साथ कृष्ण के पुत्र भी गये, उन्होंने जाबुलिस्तान पहुँच कर गजनी नगर की प्रतिष्ठा की और समरकन्द तक अपना विस्तार किया।

यादवों ने सिन्धु के पार जाकर पंजाब में अधिकार कर लिया और सलभनपुर को स्थापित
किया। लेकिन उसके कुछ बाद वे वहाँ से चलकर भारत की मरुभूमि में पहुँच गये और उ
जोहिया और मोहिल आदि लोगों को भगाकर तनोट, देरावल तथा सम्बत् १२१२
प्रतिष्ठा की। यही जैसलमेर कृष्ण के वंशजों भट्टी अथवा भाटी लोगों की अ
यहाँ पर भट्टी नाम का एक वंश चला; जिसे भट्टी ने चलाया। इन लोगों ने

❀ यह स्थान विराट के साथ मिलाकर व्यवहार में आता है, अर्थात

ओर के सभी देशों पर अधिकार कर लिया। लेकिन उनके प्रभाव को राठौर लोगों ने पहुँचकर कम कर दिया।

यदुवंश से जाड़ेजा * नाम की एक शाखा चली और उसे भी बहुत ख्याति मिली। वे लोग भी कृष्ण के ही वंशधर माने गये। श्याम अथवा सांवले होने के कारण कृष्ण का नाम श्याम भी पड़ा और उन्हीं के वंशज होने के कारण जाड़ेजा वंश के लोग अपने आपको श्याम पुत्र अथवा सामपुत्र कहते थे। इस जाति लोगों में जो राजा हुए, उनकी उपाधि सम्मा थी। इन श्याम पुत्रों के सम्बन्ध में अनेक प्रकार की बातें लिखी हुई मिलती हैं। उनमें यह भी उल्लेख पाया जाता है कि बहुत समय के बाद श्याम वंशियों ने अपने सम्बन्ध में स्वीकार किया कि हम लोग शाम अथवा सीरिया से आये हैं और ईरान के जमशेद वंशी हैं। इसी आधार पर शाम के स्थान पर जाम हो गया। इस जाम के नाम पर ही जाम राज्य की भी प्रतिष्ठा हुई।

यदुवंश की आठ शाखायें है—[१] यदु करौली के राजा, [२] भाटी जैसलमेर के राजा, [३] जाड़ेजा कच्छ भुज के राजा, [४] समैचा सिंध के मुसलमान, [५] मुड़ैचा, [६] बिदमन, [७] बद्दा और [८] सोहा। अंत की इन तीनों शाखाओं का कोई विवरण नहीं मिलता।

तोंअरवंश वास्तव में यदुवंश की एक शाखा है, परन्तु उसे छत्तीस वंशों में स्थान दिया गया है। युधिष्ठिर ने इन्द्रप्रस्थ की स्थापना की थी, जिसका नाम बाद में दिल्ली पड़ा। आठवीं शताब्दी तक वह सुनसान रहा। सवम्त् ८४८ और सन् ७४२ ईसवी में अनंगपाल तोंअर ने फिर से उसके निर्माण का काम किया। उसके बाद उसके बीस वंशज वहाँ के राजसिंहासन पर बैठे। इन बीस में अन्तिम राजा का नाम भी अनंगलपाल ही था, जिसने पुत्रहीन होने के कारण सम्वत १२२० और सन् ११६४ ई में अपनी लड़की के पुत्र पृथ्वीराज को अपने राज्य का अधिकारी बनाया।

राजपूतों में राठौर वंश बहुत प्रसिद्ध हुआ। लेकिन उसकी उत्पत्ति के सम्बन्धमें कई प्रकार के उल्लेख मिलते हैं। राठौर वंश के लोग अपनी उत्पत्ति रामचन्द्र के पुत्र कुश से बतलाते हैं। इस आधार पर वे लोग सूर्यवंशी होने चाहिये। लेकिन उस वंश के भाट लोग इस बात को स्वीकार नहीं करते। उनका कहना कुछ और है, जिनके लिखने की यहाँ पर आवश्यकता नहीं मालूम होती।

राठौरों का प्राचीन स्थान गाधीपुर अर्थात् कन्नौज है। वहाँ पर इस वंश के लोग पाँचवीं शताब्दी में राज्य करते थे और तातारियों ने जब भारत को बिजय किया है, उसके कुछ पहले उन लोगों ने दिल्ली के अन्तिम तोंअर राजा और फिर चौहान राजाओं के साथ युद्ध किया था। आपसी ईर्षा के कारण दिल्ली का चौहान राजा मारा गया और उसकी पराजय से उत्तर-पश्चिम की सीमा की रक्षा का फाटक खुल जाने से कन्नौज का नाश हुआ। कन्नौज के उस सर्वनाश में वहाँ का अन्तिम राजा जयचन्द जब गंगा में डूब कर मर गया तो उसके पुत्र ने मारवाड़ की मरुभूमि में जाकर अपनी जान बचायी। जयचन्द के इस लड़के का नाम सियाजी था। उसने मारवाड़ में राठौर वंश की प्रतिष्ठा की।

...र राजपूतों की चौबिस शाखायें हैं—धाँधला, भडेल, चकित, धूहड़िया, खोखरा, बद्रा, ...र, कबरिया, हटदिया, मालावत, सुण्डू, कटेचा, मुहोली, गोगादेवा, महेचा, जयसिंहा, ... जोरा, आदि।

...तों के सम्बन्ध में अनेक भ्रामक बातों का उल्लेख मिलता है। जाड़ेजा जाडा ...ंशज थे। वे लोग शाम अथवा सीरिया से न आये थे। यदुवंशी कृष्ण से इन ...धिकारियों का इस प्रकार कहना है।—अनुवादक

कुशवाहा—रामचन्द्र के पुत्र कुश के वंशज कुशवाहा कहलाते हैं। इस वंश का नाम कुशवंशी भी है, जैसे मेवाड़ के राजपूत लववंशी माने जाते हैं।

दो शाखायें कोशल देश से निकली हैं। उनमें से एक ने सोन नदी के किनारे रोहतास की स्थापना की और दूसरी लाहर के पास जाकर कोहारी के दरों में रहने लगी। दसवीं शताब्दी में एक शाखा ने अपने स्थान से चलकर बड़गूजर जाति के राजपूतों से राजोर और उसके आस-पास के इलाकों को लेकर आँबेर की स्थापना की। बारहवीं शताब्दी के अन्त में भी कुशवाहा वंश के लोग दिल्ली राज्य के सामन्तों में थे। राजस्थान के दूसरे वंशों का जब पतन आरम्भ हुआ, उस समय से कुशवाहा वंश की उन्नति आरम्भ हुई।

कुशवाहा वंश भी बारह भागों में विभाजित हुआ और ये भाग कोठारियों के नाम से प्रसिद्ध हुए, उनका वर्णन आगे किया जायगा।

अग्निकुल अथवा वंश—राजपूतों में चार वंश ऐसे हैं, जिनकी उत्पत्ति अग्नि से बतायी जाती है। परमार, परिहार, चालुक्—अथवा सोलंकी और चौहान—इस प्रकार चार वंश अग्निवंशी कहे जाते हैं। अग्निवंशी राजपूतों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में अनेक प्रकार की कथाओं के उल्लेख मिलते हैं। उनका ऐतिहासिक सत्य इतना ही है कि जिस समय ब्राह्मणों के द्वारा अगणित देवी-देवताओं की पूजा का प्रचार बढ़ रहा था, बौद्धधर्म ने उसका विरोध किया और एक ईश्वर की आराधना का प्रचार किया। उस समय ब्राह्मणों ने बौद्धधर्मी लोगों के विरोध का निर्णय किया और इसके लिये आबू की चोटी पर अग्निकुण्ड बनाकर जिनको संस्कार करके बौद्ध धर्म के विरुद्ध युद्ध करने के लिये तैयार किया, उन राजपूतों की उत्पत्ति अग्नि से मानी गयी और उसी समय से वे और उनके वंशज अग्निवंशी कहलाये।

परमार वंश से पैंतीस शाखाओं की उत्पत्ति हुई और बहुत बड़े विस्तार में उन लोगों ने राज्य किया। उनके विस्तार के कारण ही अब तक लोग कहा करते हैं कि पृथ्वी परमारों की है। परमारों के द्वारा जो राज्य जीते गये अथवा बसाये गये, उनमें माहेश्वर, धार, माण्डू, उज्जैन, चन्द्रभागा, चित्तौर, आबू, चन्द्रावती, मऊमैदाना, परमावती, उमरकोट, बेखर, लोद्रवा और पट्टन अधिक प्रसिद्ध हैं। परमार वंश के लोग सम्पत्ति में अनहिलवाड़ा के समान और प्रताप में राजपूतों की तरह के न थे, परन्तु राज्य के विस्तार में उनकी ख्याति अधिक थी।

ऐसा मालूम होता है कि हय अथवा हैहयवंश के राजाओं की प्रचीन राजधानी माहेश्वर, परमार राजपूतों की पहली राजधानी थी। परमार राजपूतों के राज्य की सीमा नर्मदा ही तक न थी, बल्कि राम नामक परमार राजा का राज्य तिलङ्गाना में भी था और चौहान राजाओं का भाट चन्द उसे भारत के सम्राट होने की पदवी देता था। लेकिन राम के उत्तराधिकारी अपने अधिकारों की रक्षा के लिये काफी न थे। इसीलिये उनसे चित्तौर का राज्य गहलोत राजपूतों के द्वारा छीन लिया गया था।

परमार राजपूतों में राजा भोज का नाम बहुत प्रसिद्ध है। भारत में भोज नाम के कई राजा हुए हैं। लेकिन, परमारों में इस नाम का एक ही राजा हुआ है, जिसने बहुत ख्याति प्राप्त की थी।

सिकन्दर का प्रतिद्वन्दी चन्द्रगुप्त मौर्य वंश का था। पुराणों में उसको तक्षक वंशी लिखा गया है। परमारों की अनेक शाखायें हैं, मोरीवंश उसकी एक मुख्य शाखा है। इस वंश को तुष्टा अथवा तक्षक भी लिखा गया है।

विक्रमादित्य को पराजित करने वाला शालिवाहन तक्षकवंशी था। परमार राजपूतों के महत्व को प्रकट करने वाले अब उनके खँडहर ही बाकी रह गये हैं। इस देश की मरुभूमि में धाट का राजा इस वंश का अन्तिम राजा था। वह सोडा कुल में पैदा हुआ था, यह कुल परमार राजपूतों की एक प्रसिद्ध शाखा थी। इसी धाट के राजा के एक वंशज ने हुमायूं को अपनी राजधानी अमरकोट में उस समय शरण दी थी, जब वह तैमूर के राजसिंहासन से निकाला गया था और भारत में उसे कोई राजा शरण देने को तैयार न था। इसी अमरकोट में हुमायूं का पुत्र अकबर पैदा हुआ था।

परमार वंश में कुल पैंतीस शाखायें थीं और उनमें विहल नाम की शाखा अधिक प्रसिद्ध हुई। इस शाखा के राजाओं का राज्य चन्द्रावती में था, जो अर्बली पहाड़ के बिल्कुल नीचे था। बोजोल्यां का सरदार राणा के दरबार में सम्मानित स्थान पर था, वह प्राचीन धार शाखा का परमार राजपूत था।

परमारों की पैंतीस शाखायें इस प्रकार हैं :

मोरी—इस शाखा में चन्द्रगुप्त और गहिलोतों से पहले के चित्तौर के राजा हुए।

सोडा—सिकंदर के समय के सोगडी जो भारत की मरुभूमि में धाट के राजा थे।

साँखला—पूंगल के जागीरदार और मारवाड़ में।

खैर—इनकी राजधानी खेरालू थी।

ऊमरा और सूमरा—पहले ये लोग मरुभूमि में रहते थे और अब इस शाखा के लोग मुसलमान हैं।

वेहिल अथवा बिहिल—चन्द्रावती के राजा।

मैंयावत—मेवाड़ में बोजोल्यां के आधुनिक जागीरदार।

बुल्हर—मरुभूमि के उत्तरी भाग में।

काबा—पहले सौराष्ट्र देश में रहते थे और आजकल उनमें से कुछ लोग सिरोही में पाये जाते हैं।

ऊमट—मालवा में ऊमटवाड़ा के राजा। वहाँ पर इस शाखा के लोग बारह पीढ़ी से रहते हैं। परमार राजपूतों के अधिकार में जितने भी प्रदेश हैं, ऊमटवाड़ा सबसे बड़ा है।

रेहवर, ढुण्ढा, सोरटिया, हरैर—मालवा में इन शाखाओं के लोग छोटे-छोटे जागीरदार हैं।

इनके सिवा अन्य शाखायें बहुत साधारण हैं, जैसे चौंदा, खेचड़, सुगडा, बरकोटा, पूनी, सम्पल, भीवा, कालपुसर, कालमोह, कोहिला, पूया, कहोरिया, धुन्ध, देवा, बरहर, जीप्रा, पोसरा, घूंता, रिकमवा, ढीका आदि। इनमें से कई शाखाओं के लोगों ने इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया है।

चौहान—चौहान वंश को चाहुमान ❀ भी लिखा गया है। चौहान समस्त राजपूतों में शूरवीर रहे हैं। इनके सम्बन्ध में किसी को विरोध नहीं हो सकता। इस वंश की शाखाओं के लोगों में भी बहादुरी के कार्य सदा रहे हैं। चौहानों की चौबीस शाखायें हैं, उनमें हाड़ा, खीची, देवड़ा, सोनगरा शाखायें अपनी वीरता के लिये प्रसिद्ध रही हैं।

❀ कुछ विद्वानों की धारणा है कि चाहुमान चौहान वंश का आदि पुरुष था और उसी के नाम से चौहान वंश चला।

चौहान का अर्थ है, चार बाँहवाला अर्थात् चतुर्भुज। पुराणों की कथाओं के अनुसार, दैत्यों से लड़ने के लिये जिनको ब्राह्मणों ने भेजा था, उनमें चौहान के सिवा दैत्यों से सभी पराजित हुए थे। चौहानों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में हिन्दुओं की जो पौराणिक कथा है, उसको यहाँ पर संक्षेप में लिखना आवश्यक मालूम होता है। वह इस प्रकार है :

आबू पर्वत को-जिसे संस्कृत में अर्बुटगिरि कहा जाता है—हिन्दू ग्रन्थों में बहुत पवित्र माना गया है। उसके सम्बन्ध में लिखा गया है कि उसको चोटी पर केवल एक दिन का व्रत करने से मनुष्य के सारे पाप मुक्त हो जाते हैं।

किसी समय इस आबू गिरि पर कुछ मुनि तपस्या कर रहे थे। दैत्यों ने उनको तंग करना शुरू कर दिया। वे मुनियों के तप और यज्ञ को भंग करने लगे। यह देखकर ब्राह्मणों ने दैत्यों को रोकने के लिये एक अग्निकुण्ड खोदा। लेकिन दैत्यों ने ऐसी आँधियां उठायीं कि जिससे चारों दिशायें अंधकार पूर्ण हो गयीं और वहां पर मुनियों तथा ब्राह्मणों के द्वारा जो यज्ञ हो रहे थे, उनमें विष्ठा, रक्त, अस्थि और मांस की वर्षा होने लगी। इससे मुनि और ब्राह्मण बहुत घबराये। अन्त में मुनियों और ब्राह्मणों ने अग्नि कुण्ड को प्रज्वलित किया और दैत्यों के विनाश के लिए महादेव से प्रार्थना की। उस प्रार्थना के बाद अग्नि कुण्ड से एक पुरुष निकला। परन्तु वह देखने में योद्धा नहीं मालूम होता था। इसलिये ब्राह्मणों ने उसे द्वारपाल बनाकर वहीं पर बिठा दिया। उसका जो नाम रखा गया, उसका अर्थ पृथिहार अथवा परिहार होता है। उसके बाद दूसरा पुरुष निकला, उसका नाम चालुक़ हुआ। तीसरा पुरुष जो निकला, उसका नाम परमार रखा गया। वह दैत्यों से युद्ध करने गया, लेकिन वह पराजित हुआ। इसके बाद देवताओं से फिर प्रार्थना की गयी तो अग्नि-कुण्ड से एक दीर्घकाय और उन्नत ललाट का पुरुष निकला। उसके सम्पूर्ण शरीर में युद्ध के वस्त्र थे। वह एक हाथ में धनुष और दूसरे में तलवार लिये था। उसका नाम चौहान रखा गया। चौहान को दैत्यों से लड़ने को भेजा गया तो उसने दैत्यों को पराजित किया। कुछ मारे गये और कुछ भाग गये। दैत्यों के सर्वनाश से मुनि और ब्राह्मण बहुत प्रसन्न हुए। उस चौहान के नाम से उसके वंश का नाम चौहान वंश चला और उसी वंश में पृथ्वीराज चौहान पैदा हुआ।

चौहानों के वंश-वृक्ष से पता चलता है कि चौहानों का आदि पुरुष अनहिल नाम का था। उससे लेकर पृथ्वीराज तक-जो भारत का अन्तिम सम्राट था--सब मिलाकर उनतालीस राजा चौहानों में हुए। चौहानों के इतिहास के अनुसार, अजयपाल चौहान ने अजमेर के दुर्ग का निर्माण किया था। चौहानों की राजधानियों में उनकी वहाँ पर भी एक राजधानी थी।

चौहानों की चौबीस शाखायें हैं। उनमें बूंदी और कोटा के वर्तमान राजवंश अधिक प्रसिद्ध हैं। वे राजवंश हाड़ौती की शाखा में हैं और युद्ध में बहादुर रहे हैं। गागरोन और राघोगढ़ के खीची, सिरोही के देवड़े, जालौर के सोनगरे, सूयेबाह और साँचोर के चौहान, पावागढ़ के पावेचे लोग अपनी वीरता के लिये प्रसिद्ध रहे। चौहान वंश के सरदारों ने अपनी जन्म-भूमि के सम्मान के लिए अपना सर्वस्व त्याग किया। इनमें कायमखानी, सुरवानी, लोवानी, कुरुरवानी और बेदवान लोग जो शेखावाटी में रहते हैं, बहुत प्रसिद्ध हैं।

चौहानों की चौबीस शाखायें इस प्रकार हैं— चौहान, हाड़ा, खीची, सोनगरा, देवड़ा, पाबिया, संचोरा, गोएल वाल भदौरिया, निर्वाण मालानी, पूर्बिया, सूरा, मादड़ेचा, संक्रेचा, भूरेचा, बालेचा, तस्सेरा, चाचेरा, टोसिया, चाँदू, नुकुम्प, भावर और बंकट।

चालुक् अथवा सोलंकी—इस वंश की ख्याति के सम्बन्ध में हमें ऐतिहासिक सामग्री अधिक नहीं मिली। भाटों की कथाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि सोलंकियों का राज्य उस समय गंगा के किनारे सोरूं में था, जब राठौर राजपूतों ने कन्नौज में अधिकार प्राप्त नहीं किया था। वंशावली के आधार पर उनके रहने का स्थान लोहकोट में था, जो लाहौर का पुराना नाम है। चौहानों और सोलंकियों की मूल शाखा एक ही है। सोलंकीवंश का एक राजकुमार कल्यान से लाकर, अनहिलवाड़ा पट्टन के चावड़ा राजपरिवार का उत्तराधिकारी बनाया गया।

उस समय अनहिलवाड़ा का स्थान भारत में ठीक उसी प्रकार का था, जिस प्रकार योरप में वेनिस का। अनहिलवाड़ा भारत में अपनी उपज के लिये केन्द्र हो रहा था। चामुण्डराय के शासन काल में महमूद गज़नवी अपनी सेना अनहिलवाड़ा में ले गया और उसने वहाँ पर अपरिमित सम्पत्ति की लूट की। चौहानों का एक वंशज कुमारपाल सोलंकियों के वंश का उत्तराधिकारी बना और फिर वह उसी वंश का हो गया।

सोलंकीवंश सोलह शाखाओं में इस प्रकार विभाजित है :

(१) बघेल—बघेलखण्ड के राजा, जिसकी राजधानी बाँधूगढ़ थी, पीथापुर, थराद और अदलज आदि के सरदार।

(२) बीरपुरा—लूणावाड़ा के सरदार।

(३) बेहिल—मेवाड़ के अन्तर्गत कल्याणपुर के जागीरदार।

(४) भूरता, (५) कालेचा–जयसलमेर के अन्तर्गत बारू टेकरा और चाहिर में।

(६) लंघा—मुल्तान के निकट रहने वाले मुसलमान।

(७) तोगरू—पञ्चनद प्रदेश के निवासी मुसलमान।

(८) ब्रिकू—पञ्चनद प्रदेश के निवासी मुसलमान।

(९) सोलके—दक्षिण में पाये जाते हैं।

(१०) सिखरिया—सौराष्ट्र प्रदेश के अन्तर्गत गिरनार में रहते हैं।

(११) राओका—जयपुर के अन्तर्गत टोडा के हलके में रहते हैं।

(१२) राणकरा—मेवाड़ के अन्तर्गत देसूरी में रहते हैं।

(१३) खरूरा—मालवा देश में आलोट और जावरा के रहने वाले हैं।

(१४) तौतिया—चन्दभूड सकुनबरी।

(१५) अलमेचा—इनका कोई स्थान नहीं।

(१६) कुलमोर—गुजरात के रहनेवाले हैं।

प्रथिहार अथवा परिहार—अग्निवंश का यह वंश है, जिसके सम्बन्ध की ऐतिहासिक सामग्री बहुत कम प्राप्त हो सकी है। राजस्थान के इतिहास में परिहारों का कोई भी ख्यातिपूर्ण कार्य नहीं है और दिल्ली तोमर राजपूतों तथा अजमेर के चौहानों के यहाँ इस वंश के लोग सदा जागीरदार होकर रहे हैं।

मंडोवर—जिसे संस्कृत में मन्दोद्री कहते हैं—परिहार राजपूतों की राजधानी थी। मारवाड़ का यह एक प्रसिद्ध नगर था। इस नगर में, राठौर राजपूतों के आक्रमण के पहले, इस वंश के लोगों का अधिकार था। यह नगर आधुनिक जोधपुर की ओर पांच मील की दूरी पर बसा हुआ है।

कन्नौज के राठौर राजा, कन्नौज से भागकर परिहारों के यहाँ आये और शरण पायी। लेकिन इस उपकार का बदला उन लोगों ने विश्वासघात के द्वारा दिया और चूड़ा नाम के एक राठौर राजा ने परिहारों के अंतिम राजा का राज्य छीन कर अपना अधिकार कर लिया। उसके बाद उसने मंडोवर के किले पर राठौर वंश का झण्डा लगा दिया।

परिहार वंश के लोग सम्पूर्ण राजस्थान में फैले हुए हैं। परन्तु उनके अधिकार में किसी स्वतंत्र जागीर का कहीं उल्लेख नहीं मिला। कोहारी, सिन्धु और चम्बल नदियों का जहाँ पर संगम होता है, वहाँ पर इस वंश वालों की आबादी है और करीब के छोटे-बड़े अनेक गाँव उनसे बसे हुए हैं। परिहारों की बारह शाखायें थीं; इनमें ईदा और सिन्धल नाम की दो प्रमुख शाखायें थीं। इन दोनों शाखाओं के कुछ लोग लूनी नदी के दोनों किनारों पर पाये जाते हैं।

चावड़ा अथवा चावरा वंश के लोग किसी समय इस देश में प्रसिद्ध थे। लेकिन अब उनका अस्तित्व मिटता जा रहा है। उनकी उत्पत्ति का कोई उल्लेख हमें नहीं मिला। सूर्यवंश और चन्द्रवंश के साथ उनका कोई सम्बन्ध नहीं है। ऐसी दशा में सीथियन लोगों से उनकी उत्पत्ति का अनुमान किया जा सकता है।

इस वंश के लोगों का उत्तरी भारत में कोई स्थान नहीं है। यह भी हो सकता है कि ये लोग बाहर से इस देश में आये हों। यदि ऐसा है तो भी उनके आने का समय बहुत पहले-प्राचीन काल में नहीं होना चाहिए। इसलिये कि मेवाड़ के सूर्यवंशी वर्तमान राज-परिवारों के साथ इस वंश के लोगो के सामाजिक और वैवाहिक सम्बन्ध बहुत समय से देखने में आते हैं।

चावड़ों की राजधानी सौराष्ट्र के समुद्री किनारे के पास दीव बंदर के टापू में थी। इस बात के उल्लेख पाये जाते हैं कि दीव के राजा ने सम्वत ८०२ सन् ७४६ ईसवी में अनहिलवाड़ा पट्टन की नीव डाली, जो उस समय भारत के इस हिस्से का एक प्रमुख नगर बना। चावड़ा वंश के कुछ उल्लेख पुराने ग्रन्थों में मिलते हैं। मेवाड़ के इतिहास में बताया गया है कि मुसलमानों के पहले आक्रमण से चित्तौर को बचाने के लिये चतनसी नाम का एक चावड़ा सरदार एक सेना के साथ युद्ध के लिये गया था।

महमूद गज़नवी ने जब सौराष्ट्र पर आक्रमण करके उसकी राजधानी अनहिलवाड़ा को अपने अधिकार में कर लिया तो उसने वहाँ के राजा को गद्दी से उतार दिया और उसके स्थान पर वहाँ के एक प्राचीन परिवार के राजा को सिंहासन पर बिठाया, जिसका नाम दाबशिलिम था। मिले हुए लेखों से यह भी मालूम होता है कि डाबी एक वंश की शाखा थी, जिसको बहुत से लोग चावड़ा के अन्तर्गत मानते हैं।

सूर्यवंशी राजाओं और सौराष्ट्र के चावड़ों तथा सौरों का सम्बन्ध एक हजार वर्ष बीत जाने के बाद भी कायम है। राणा-परिवार राजस्थान में बहुत सम्मानपूर्ण माना जाता है और चावड़ा वंश गिरी हुई अवस्था में है। फिर भी इस वंश की कन्यायें राणा परिवारों में जाती हैं। राजकुमार जवान सिंह गुजरात के एक छोटे चावड़ा सरदार की लड़की से पैदा हुआ। इस प्रकार के और भी उदाहरण हैं।

टाँक अथवा तक्षक—बहुत खोजने के बाद जाहिर होता है कि तक्षकवंश उस जाति का नाम है, जिससे प्राचीन काल में भारत के आक्रमणकारी विभिन्न सीथियन वंशों की उत्पत्ति हुई थी। तक्षकवंश, जेटी जाति की अपेक्षा—जिससे अगणित शाखाओं की उत्पत्ति हुई—अधिक

प्राचीन है। इन दोनों जातियों के सम्बन्ध एक-दूसरे के इतने नजदीक हैं कि दोनों को एक दूसरे से अलग करना बहुत कठिन है।

अबुलगाजी ने तांनक को तुर्क और तर्गताई का बेटा माना है, जो कि पुराणों में तुरुष्क के नाम से लिखा गया है और चीनी ग्रंथों में उसी को तक्युक्स नाम दिया गया है, जो टोचरी जाति से उत्पन्न हुआ मालूम होता है, जिसने यूनान के अन्तर्गत वाकट्रिया के राज्य का सर्वनाश करने में मदद पहुंचायी थी। इस टोचरी जाति के नाम से ही एशिया के एक विशाल भाग का नाम टोचरिस्तान पड़ा। यही आगे चलकर तुर्किस्तान बना। ताजक जाति-जिसका वर्णन एल-फिन्स्टन साहब ने अपनी पुस्तक काबुल-राज के वृतान्त में खूब किया है--वास्तव में तक्षक-वंशी थी ऐसा मालूम होता है कि ये दो नाम एक ही जाति के हैं।

इस बात का वर्णन पहले किया जा चुका है कि राजस्थान के अनेक भागों में तुस्टा, तक्षक और टाँक जाति के पाली अथवा बौद्ध अक्षरों में प्राचीन शिला लेख मिले हैं, जो मोरी, परमार और उनके वंशजों से सम्बन्ध रखते हैं। नाग और तक्षक को संस्कृत में सर्प कहते हैं और तक्षक वह वंश है, जिसका वर्णन नागवंश के नाम से भारत के ऐतिहासिक वीरकाव्य-ग्रन्थों में किया गया है। महाभारत में इन्द्रप्रस्थ के पाण्डु-वंशियों और उत्तर के तक्षक लोगों के युद्ध का वर्णन किया गया है। तक्षक के हाथ से परीक्षित का मारा जाना और उसके पुत्र एवं उत्तराधिकारी जनमेजय का तक्षकों के विनाश के लिये युद्ध करना सभी कुछ उस वर्णन में आया है। जैसलमेर के भाटी राजाओं के प्राचीन इतिहास में लिखा गया है कि जब वे लोग जावुलिस्तान से निकाल दिये गये तो उन लोगों ने टांक जाति के लोगों से सिंधु नदी के किनारे के देशों का राज्य छीन लिया और फिर वे वहीं पर रहने लगे। वहाँ की राजधानी शालमनपुर थी। इतिहास की इस घटना का समय युधिष्ठर के सम्वत का ३००८ वाँ वर्ष माना गया है। इस दशा में यह निश्चित है कि तोमर वंशी विक्रम को विजय करने वाला शालिवाहन अथवा सालवाहन-जो कि तक्षक जाति का था-उसी वंश का था, जिसको भाटी लोगों ने पराजित करके दक्षिण की ओर चले जाने के लिए विवश किया था।

शेषनाग की अधीनता में तक्षक अथवा नागवंश के आक्रमण का समय ईसवी सन् लगभग छै अथवा सात शताब्दी पहले माना गया है। आबू माहात्म्य में तक्षकों को हिमाचल का पुत्र माना गया है। इस प्रकार की सभी बातों से साबित होता है कि वे लोग सीथियन जाति से सम्बन्ध रखते थे और उन्हीं के वंशजों में थे। यह पहले लिखा जा चुका है कि तक्षक मोरी वंश के लोग अत्यन्त प्राचीन काल से ही चित्तौर के अधिकारी रहे थे। लेकिन कुछ पीढ़ियों के बाद जब गहिलोतों ने मोरी लोगों को चित्तौर से निकाल दिया तो हिन्दुओं के इस स्वतंत्र और सुरक्षित स्थान पर मुसलमानों का आक्रमण हुआ। उस समय जिन राजपूत राजाओं ने चित्तौर की रक्षा करने के लिए मुसलमानों के साथ युद्ध किया, उनमें आसेरगढ़ के टाँक लोग भी थे, जिन्होंने इस घटना के पश्चात् लगभग दो शताब्दी तक आसेरगढ़ पर अपना अधिकार रखा। इसका प्रमाण यह है कि वहाँ का सरदार पृथ्वीराज की सेना में एक शक्तिशाली सेनापति था और उसका उल्लेख चन्द कवि ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थमें किया है और उसे झण्डा बरदार आसेर का टाँक करके लिखा है।

यह पुराना वंश जनमेजय का शत्रु और सिकन्दर का मित्र था। इस वंश का सेहारन नामक एक पुरुष था, जिसने अपना धर्म-परिवर्तन किया और अपनी उत्पत्ति टाँक जाति को छिपा कर

उसने अपनी जाति का नाम वजेहउलतुल्क जाहिर किया। उसका बेटा ज़फर खाँ गुजरात के सिंहासन पर उस समय बैठा, जब तैमूर ने भारत पर आक्रमण किया था। जफर के पहले गुजरात का अधिकारी फीरोज़ था। परन्तु उसकी निर्बलता का लाभ उठा कर ज़फर ने उसका अधिकार छीन लिया और मुजफ्फर के नाम से वह गुजरात का शासक बन गया। उसके पोते ने उसे मार डाला और अनहिलवाड़ा की प्राचीन राजधानी हटाकर उसने अपने बसाये हुए नगर अहमदाबाद में क़ायम की।

टाँक—इस जाति के लोगों का धर्म परिवर्तन के बाद टाँक जाति का अस्तित्व राजस्थान में ख़त्म हो गया।

जिट अथवा जाट—राजस्थान के छत्तीस राजवंशों में जिट अथवा जाट का भी स्थान है। परन्तु इस जाति को लोग राजपूत नहीं मानते और न राजपूतों के साथ उनके कहीं वैवाहिक सम्बन्ध ही पाये जाते हैं। लेकिन इस जाति के लोग भारत में सभी जगह पाये जाते हैं। ये लोग आमतौर पर खेती का काम करते हैं। पंजाब में इन लोगों को प्राय: जिट कहा जाता है। लेकिन गंगा और जमुना के किनारे वे जाट के नाम से संबोधन किये जाते हैं। इन लोगों में भरतपुर का राजा बड़ा सम्मान रखता है। सिंधु नदी के किनारे और सौराष्ट्र में इन लोगों को जट कहा जाता हैं। राजस्थान में जिन लोगों के द्वारा खेती होती है, उनमें अधिक इसी जाति के लोग हैं। सिन्धु नदी के उस पार जो जातियाँ आबाद हैं और जो मुसलमान हो गई हैं, वे सभी पहले जाटवंश की थीं।

एक समय था, जब जेटी का राज्य बहुत प्रसिद्ध था और साइरस के समय से लेकर चौदह शताब्दी तक उसकी बहुत ख्याति रही। उसकी राजधानी जग जार्टीज नदी के किनारे थी। इस जाति ने इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया था। चीनी ग्रन्थकारों के अनुसार, इस जाति के लोग बहुत पहले बौद्धधर्म के अनुयायी थे।

जिट जाति के समम्बन्ध में अनेक प्रकार की बातें हैं। उनके रहने के स्थान सिन्धु नदी के पश्चिम ओर के देश माने जाते हैं और यदुवंश से उनकी उत्पत्ति मानी जाती है। यह पहले ही लिखा जा चुका है कि जिट और तक्षक वे जातियाँ हैं, जिनसे होनेवाली विभिन्न उपजातियों ने भारत में आक्रमण किया था। इसके साथ-साथ पाँचवीं शताब्दी का एक शिलालेख मिला है। उससे मालूम होता है कि एक ही जाति के ये नाम हैं। उस शिलालेख से यह भी मालूम होता है कि इस जाति का राजा सूर्य की उपासना करता था, जैसे कि सीथियन लोग करते थे। उसमें यह भी लिखा है कि जिट वंशी राजा की माता यदुवंश में पैदा हुई थी। इससे ज़ाहिर होता है कि इस जाति के यदुवंशी होने का दावा सही है।

डिगिग्निोज़ ग्रन्थकार का कहना है कि यूची अथवा जिट लोग पाँचवीं और छठवीं शताब्दी में पंजाब में रहते थे और इस वंश के जिस राजा का ऊपर उल्लेख किया गया है, उसकी राजधानी सालिन्द्रपुर के नाम से मशहूर थी। इससे जाहिर होता है कि सालिबाहनपुर का ही नाम किसी समय सालिन्द्रपुर था, जहाँ यदुबंशी भाटियों ने टाँक लोगों को पराजित करके अपना अधिकार कर लिया था।

इसके कितने पहले जिट लोगों ने राजस्थान में प्रवेश किया था, इसका निर्णय शिलालेखों के आधार पर ही किया जा सकता है। यह तो मानी हुई बात है कि सन् ४४० ईसवी में उनका शासन चल रहा था।

जब यादव जाति के लोग सालिबाहन से भागे तो उन लोगों ने सतलज नदी पार करके भारत की मरुभूमि में दहिया और जोहिया राजपूतों के यहाँ शरण ली और वहाँ पर उन्हों ने अपनी पहली राजधानी देरावल में स्थापित की। उनमें से बहुत से लोगों ने इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया। इस समय से वे लोग जाट कहे गये, जिसकी बीस से अधिक शाखाओं का उल्लेख यदुवंश के इतिहास में किया गया है।

जिट लोगों के सम्बन्ध में बहुत-सी काम की बातें भारत के विजेता महमूद के इतिहास में पढ़ने को मिलती हैं। महमूद की सेना सन् १०२६ ईसवी में आक्रमण करने के लिए भारत की तरफ बढ़ी। उस समय जिटलोगों ने उसे रोक कर उसके साथ युद्ध किया। वह वर्णन इस प्रकार है :

जिट लोग मुलतान की सीमा के नजदीक उस नदी के किनारे रहते थे, जो जौद के पहाड़ों के निकट से होकर प्रवाहित होती है। जब महमूद मुल्तान में पहुँचा तो उसने कई विशाल नदियों से सुरक्षित जिट लोगों के प्रदेश का अध्ययन किया। उसने पन्द्रह सौ नावें तैयार कीं। उन नावों में प्रत्येक के आगे नोकदार लोहे के मजबूत और मोटे ऐसे डन्डे लगे हुए थे, जिनसे शत्रु नावों के निकट आकर आक्रमण न कर सके। क्योंकि इस प्रकार की लड़ाई में जिट लोग बहुत होशियार थे। प्रत्येक नाव पर बीस धनुष बाण लिए हुए सैनिकों को खड़ा कर दिया और महमूद की सेना परिणाम देखने के लिए इंतजार करने लगी। जिट लोगों ने अपनी स्त्रियों, बाल-बच्चों और सामान को सिंध सागर * भेज दिया और चार हजार तथा कुछ लेखों के आधार पर, आठ हजार नावें गजनी की सेना से लड़ने के लिए तैयार थीं। इन नावों ने जल में प्रवेश किया। दोनों ओर। से युद्ध प्रारम्भ हुआ। जिट लोगों की अनेक नावें डुबों दी गयीं और कुछ में आग लगा दी गयी जिसके लिए गजनी की नावों पर पहले से व्यवस्था थी। फल यह हुआ कि जिट लोग युद्ध से भागे।८ उनमें बहुत-से कैद कर लिये गये। जो लोग बचे, उनके द्वारा बीकानेर की स्थापना हुई।

इस घटना के थोड़े ही दिनों के पश्चात् जिट लोगों का जो असली राज्य था, वह भी नष्ट हो गया और बहुत-से जिट लोगों ने भागकर भारत में शरण ली। सन् १३६० ईसवी में तोगलताश तैमूर जेटी जाति का प्रधान था। १३६९ ईसवी में उसकी मृत्यु हो गयी तो जेटी लोगों की प्रधानता की पदवी बड़े खान के नाम से चागताई तैमूर को मिली। सन् १३७० ईसवी में उसने एक जेटी जाति की राजकन्या के साथ अपना विवाह किया। उसके बाद जेटी लोगों की भयानक लड़ाई हुई और जेटी लोगों की पराजय हुई। इसके बाद जेटी लोग पंजाब में क़ायम रहे और आज तक लाहौर का प्रतापी राजा जिट वंशी है। उसका अधिकार उन सभी प्रदेशों में है, जहाँ पर पाँचवीं शताब्दी में यूची लोग रहते थे और जहाँ पर गजनी से भागने पर यदुवंशी लोगों ने टाँक लोगों के मिट जाने पर अपना अधिकार कर लिया था। जिट लोगों के घुड़सवारों और सीथियन लोगों के तरीके बहुत-कुछ मिलते-जुलते हैं।

हूण जाति—राजस्थान के छत्तीस राजवंशों में जिन सीथियन जातियों को स्थान मिला है, उनमें हूण लोग भी हैं। इस जाति के लोग योरप में उत्पात और उपद्रव के लिए बहुत मशहूर रहे हैं। किसी भी उल्लेख से इस बात का निर्णय नहीं होता कि हूणों ने भारत में कब आक्रमण किया लेकिन यह तो निश्चित ही है कि जिन जातियों ने भारत में आक्रमण किया था, उनमें एक यह

---

* सिंध सागर पंजाब के दोआबों में से एक है।

जाति भी है और इस जाति के लोग आज भी सौराष्ट्र के प्रायद्वीप में पाये जाते हैं। इस देश के पुराने इतिहासों में और यहाँ के शिला लेखों में हूणों के सम्बन्ध में लगातार उल्लेख मिलते हैं।

एक शिला लेख से पता चला है कि बिहार के एक राजा ने अनेक युद्धों में विजय प्राप्त करने के साथ-साथ इन हूणों को भी पराजित करके उनके अभिमान को नष्ट किया था। भारत में जब पहले-पहल मुसलमानों का आक्रमण हुआ था और मुसलमानों ने चित्तौर पर चढ़ाई की थी, उसमें उनकी सेना के साथ अंगतसी नाम का एक हूण सरदार भी था। डिगिग्नीज ने लिखा है कि अंगत हूणों और मुग़लों के एक विशाल दल का नाम था और अबुलगाजी का कहना है कि चीन की विशाल दीवार जिस तातार जाति के लोगों के संरक्षण में थी; उसी का नाम अंगती था। उसका अपना एक राजा था और उस राजा की बहुत प्रतिष्ठा थी। जिन देशों में हियागनों और ओह ओन अर्थात तुर्क और मुगल जाति के लोग रहते थे उन्हीं का नाम तातार था। तातार नाम तातान देश से सम्बन्ध रखता है। इस देश का विस्तार इर्टिश नदी के पास से लेकर अल्ताई पहाड़ों के बराबर पीत सागर के किनारे तक चला गया था। इन देशों के सम्बन्ध में हूण जाति के इतिहास-लेखक ने बहुत-सी बातों का वर्णन किया है। रोम के पतन का इतिहास लिखनेवाले गिबन ने हूणों के उस समय का इतिहास लिखा है, जब उन लोगों ने यूरोप पर चढ़ाई की थी।

कास्मस नामक यात्री के ग्रन्थ के आधार पर डिएन्विल ने लिखा है कि भारत के उत्तरी भाग में श्वेत हूणों का अधिकार था। इसी आधार पर यह अनुमान किया जाना अनुचित न होगा कि इस जाति के कुछ लोग सौराष्ट्र और मेवाड़ में भी रहते हों।

जनश्रुति के आधार पर कुछ लोगों का विश्वास है कि हूणों का निवास स्थान चम्बल नदी के पूर्वी किनारे बाडोली नामक स्थान में था। वहाँ पर अन्यान्य प्रसिद्ध मन्दिरों में एक मन्दिर इस जाति के राजा का वैवाहिक स्थान है जिसका नाम है, सेनगर चाओरी। उस राजा का अधिकार चम्बल नदी के दूसरे किनारे तक फैला हुआ था। यह जाति अभी तक नष्ट नहीं हुई और अभी तक वे इस देश में मौजूद हैं। यद्यपि उनमें अब बहुत परिवर्तन हो गया है और वे इस देश की अन्य जातियों के साथ बहुत कुछ मिल गये हैं।

कट्टी अथवा काठी—इस जाति के सम्बन्ध में पहले ही लिखा जा चुका है और राजस्थान तथा सौराष्ट्र के वंशावली लिखने वाले उनको राजवंशों में स्वीकार करते हैं। पश्चिमी प्रायदीप में जो जातियाँ प्रसिद्ध मानी जाती हैं, उनमें यह एक जाति है। इस जाति के लोगों ने सौराष्ट्र का नाम बदल कर काठियावाड़ कर दिया है।

काठियावाड़ में जो जातियाँ रहती हैं, उनमें इसी कट्टी अथवा काठी ने अपना अस्तित्व कायम रखा है। इस जाति की धार्मिक और सामाजिक रस्में तथा उनके शरीर की बनावट और मुखाकृति उनके सीथियन होने का प्रमाण देती हैं। सिकन्दर के समय इस जाति के लोग पंजाब के उस कोने में अपना अधिकार जमाये थे, जो स्थान पाँचों नदियों के संगम के पास है। इसी जाति के लोगों से सिकन्दर ने युद्ध किया, जिसमें वह किसी प्रकार बच गया था। कट्टी लोगों का निर्णय इनके इन स्थानों से लेकर उनके उन स्थानों तक किया जा सकता है, जहाँ पर वे आज कल रहते हैं। जैसलमेर के इतिहास में वहाँ के लोगों ने कट्टी लोगों के साथ जो युद्ध किया था, उसका वर्णन किया गया है।

बारहवीं शताब्दी में उनके अस्तित्व के और भी प्रमाण हैं। उस समय इस जाति के अनेक सरदार पृथ्वीराज और कन्नौज की सेना में मौजूद थे। कट्टी लोग अब तक सूर्य की पूजा करते हैं

और युद्ध तथा आक्रमण उनको सहज ही प्रिय है। वे इसी प्रकार के काम कर सकते हैं। कप्तान मैक्समर्डो ने इस जाति के सम्बन्ध में लिखा है :

कट्टी जाति के लोग अनेक बातों में राजपूतों से भिन्न हैं। वे स्वाभाविक रूप से निर्दयी हैं और बहादुरी में वे राजपूतों से भी अधिक हैं। शारीरिक शक्ति में उनका स्थान ऊँचा है। कद में वे साधारण आदमी की अपेक्षा लम्बे होते हैं। उनका कद प्राय: छै फीट से अधिक होता है। उनके शरीर मजबूत और मेहनत से भरे होते हैं। उनके मुख पर सुन्दरता नहीं होती। लेकिन उनकी मुखाकृति में कट्टरता पायी जाती है। उनके जीवन में कोमलता किसी प्रकार की भी नहीं होती।

बल्ला और बाला—राजपूत वंशावली लेखकों ने बल्ला जाति को राजवंशों में माना है। भाटों के आधार पर इस जाति के लोगों का निवास-स्थान सिंधु नदी के किनारे पाया जाता है। ये लोग अपने आप को सूर्य वंशी राजपूत कहते हैं, उनका कहना है कि हमारे पूर्वज रामचन्द्र के बड़े पुत्र लव के वंशज थे। उनकी प्राचीन बस्ती सोराष्ट्र के टाँक में थी। यह स्थान बहुत प्राचीन काल में मोंगी-पट्टन कहा जाता था। इन लोगों ने वहाँ के आस-पास के प्रदेशों को जीत कर अपने देश का नाम बल्ल क्षेत्र रखा और राजधानी का नाम बल्लभीपुर हुआ। इन लोगों ने बल्लाराय की उपाधि का प्रयोग किया। वे गोहलोत राजपूतों की बराबरी का अपने आपको समझते हैं। यह भी सम्भव हो सकता है कि बल्ला गोहलोतों की शाखा हो। इनका मुख्य देवता सूर्य था। इस प्रकार की अनेक बातें इनकी सीथियन लोगों से मिलती हैं।

कट्टी—इस वंश के लोग अपनी शाखा बल्ला भी मानते हैं। तेरहवीं शताब्दी में बल्ला लोग मेवाड़ पर हमला करने के लिए शक्तिशाली थे। राणा हमीर ने चोटीला के बल्ला सरदार को मारा था। टाँक का मौजूदा राजा बल्ला है।

झालामकवाणा जाति के लोग भी सौराष्ट्र के प्रायद्वीप में रहते हैं। इस जाति के लोग राजपूत कहे जाते हैं। लेकिन उनके सूर्यवंशी, चन्द्रवंशी अथवा अग्निवंशी होने का कोई प्रमाण हमारे पास नहीं है। इस जाति के लोग भारत में और विशेषकर राजस्थान में भी बहुत ही कम प्रसिद्ध हैं।

सौराष्ट्र के बड़े भागों में झालावाड़ एक बड़ा हिस्सा है। उसमें झालामकवाणा के ही लोगों की विशेषता है। झालावाड़ में बाँकानेर तलवद और ध्राँगदरा नाम के बड़े-बड़े नगर हैं। यहाँ पर झाला कब आये और उनका पुराना इतिहास क्या है, इसके निर्णय के लिए हमारे पास कोई विशेष सामग्री नहीं है। परन्तु इतिहास की कुछ घटनायें इस के निर्णय में सहायता करती हैं। भारत में मुसलमानों के पहले आक्रमण के समय राणा को झाला जाति की ओर से युद्ध के लिए सैनिक सहायता प्राप्त हुई थी और पृथ्वीराज के इतिहास में झाला सरदारों के वर्णन आये हैं। झाला जाति की कई शाखायें हैं, उनमें मकवाणा प्रधान है।

जेठवा, जेटवा अथवा कमरी – यह एक प्राचीन जाति है और इतिहास लेखकों ने इसे राजपूत माना है, यद्यपि झाला लोगों की तरह सोराष्ट्र के बाहर ये लोग भी बहुत कम प्रसिद्ध हैं। इस जाति के राजा का स्थान पोरबन्दर है और वह राणा कहलाता है। प्राचीन काल में उसकी राजधानी गूमली थी। उसकी टूटी इमारतों में उस राज्य के वैभव का परिचय मिलता है। वहाँ की शिल्पकला योरप के शिल्प की बराबरी करती थी। जेठवों से भाटों से वहाँ के एक सौ तीस राजाओं की जानकारी होती है, जो वहाँ के सिंहासन पर बैठे। मिले हुए लेखों से जाहिर होता है कि आठवीं शताब्दी में यहाँ के एक राजा का विवाह दिल्ली की फिर प्रतिष्ठा करने वाले और उसको नया जीवन देने

से उनकी उत्पति के और भी प्रमाण मिलते हैं । राजपाली नाम से जाहिर होता है कि यह वंश प्राचीन पालिजाति की एक शाखा के सिवा और कुछ न था ।

दाहिरिया—कुमारपाल चरित्र के आधार पर इस वंश की गणना छत्तिस राजवंशों में की जा सकती है । इसके सम्बन्ध में अधिक कोई उल्लेख नहीं मिलता, सिवा इसके कि पहले पहल मुस्लिम सेना के चित्तौर में आक्रमण करने पर जो लोग उसकी रक्षा के लिए युद्ध में गये थे, उनमें देबिल का राजा दाहिर सरदार भी था । यह दाहिर दाहिरिया वंश का ही जाहिर होता है ।

दाहिमा—यह जाति कभी अपनी बहादुरी के लिए विख्यात हुई थी । लेकिन उस ख्याति का अब कहीं पता नहीं है । दाहिमा बयाने का अधिकारी था और चौहान सम्राट पृथ्वीराज के शक्तिशाली सामन्तों में से था । इस वंश के तीन भाई सम्राट पृथ्वीराज के यहाँ उच्च अधिकारी थे और उनमें बड़ा भाई पृथ्वीराज का मंत्री था । लेकिन किसी ईर्षा के कारण मारा गया था । दूसरा भाई पुण्डीर लाहौर में एक सैनिक अधिकारी था । तीसरा भाई चावण्डराय उस अंतिम युद्ध में प्रधान सेना पति था, जब पृथ्वीराज कग्गर के किनारे मारा गया था । शहाबुद्दीन के इतिहास लेखकों ने वीर दाहिमा चावण्डराय की बहादुरी की प्रशंसा की है और इस बात को स्वीकार किया है कि उसी की बहादुरी के कारण शहाबुद्दीन युद्ध में मारे जाने की स्थिति में पहुँच गया था । इस बात के उल्लेख भी पाये जाते हैं कि पृथ्वीराज का एकलौता बेटा रेणसी चावण्डराय की बहन से पैदा हुआ था । परंतु वह दिल्ली में मुसलमानों का अधिकारी होने के पहले ही मर गया था ।

जंगलों में रहने वाली जातियाँ—बागरी, मेर, काबा, मीना, भील, सेरिया, थोरी, खाँगर, गौंड़ ,भड़, जंवर और सरूद ।

कृषक और चरवाहा जातियाँ—अभीर अथवा अहीर, ग्वाला, कुर्मी, कुलम्बी, गूजर और जाट ।

व्यवसायिक चौरासी जातियाँ—श्री श्रीमाल, श्रीमाल, ओसवाल, बगैरवाल, डींडू, पुष्करवाल, मेरतावाल, हर्सोरूह, सुरूरवाल, पल्लीवाल, भम्बू, खंडेलवाल, केदरवाल, डीसावाल, गूजरवाल, सोहरवाल, अग्गरवाल, जाइलवाल, मानतवाल, कजोटीवाल, कोर्टवाल, चेत्रवाल, सोनी, सोजतवाल, नागर, मोड, जल्हेरा, लाड, कपोल, खेरता, दसोरा, बरूड़ी, बम्बरवाल, नागद्रा, करबेरा, भटेवरा, मेवाड़ा, नरसिंहपुरा, खतरेवाल, पंचमवाल, हुनरवाल, सरकैरा, वैश्य, स्तुखी, कम्बोवाल, जीरागवाल, भगेलवाल, ओरचितवाल, बामणवाल, श्रीगौड़, ठाकुरवाल, बालमीवाल, टिपोरा, टीलोना, अतबर्गी, लादिसका, बदनोरा, खीचा, गुसोरा, बाम्रोसर, जाइमा, पदमोरा, मेहेरिया, ढाकरवाल, मंगोरा, गोयलवाल, चीतोड़ा, मोहरवाल, काकलिया, भारेजा, अन्दोरा, साचोरा, भूंगरवाल, मन्दइलू, ब्रामणिया, बागड़िया, डींजोरिया, बोरवाल, सोरबिया, ओरवाल, नफाग और नागोरा एक नाम अज्ञात ।

राजस्थान में जागीरदारी प्रथा

आठवाँ परिच्छेद

कानूनों का अभाव–सामन्त प्रथा में योरप और राजस्थान–असभ्य जातियाँ–जागीरदारी प्रथा का जन्म–शासन में राजपूतों की योग्यता–राजपूतों का आराध्य देव–सामन्त होने का अधिकार –वेतन के स्थान पर भूमि–राज्यों के झगड़े–कर और उनका प्रभाव–राज्यों के संघर्षों में सामन्तों के कार्य–आपसी शत्रुता–अन्तला दुर्ग की विजय–राजा और सामन्त ।

राजस्थान के किसी भी हिस्से में दीवानी और फौजदारी के मामलों का कोई विधान था, निश्चित रूप से यह नहीं कहा जा सकता । परन्तु इस समय यहाँ पर इस प्रकार का कोई विधान नहीं है, यह बात निश्चित है । यह बात जरूर है कि इन राजपूत राज्यों में फौजी कानून इस प्रकार काम करता है कि उसके द्वारा यहाँ पर शासन की पूरी व्यवस्था हो जाती है । राजस्थान की जागीरदारी प्रथा, प्राचीन योरप के इस प्रथा के बिल्कुल समान थी । परन्तु उसके बाद वहाँ की यह प्रथा ऐसी बिगड़ गयी कि उसके साथ राजस्थान की जागीरदारी प्रथा की तुलना करने का मैं साहस नहीं कर सकता । राजस्थान की इस प्रथा के सम्बन्ध में मैं जो कुछ इन पृष्ठों में लिखने जा रहा हूँ, उसको समझने, जानने, अध्ययन और अनुशीलन करने में मैंने अपना बहुत समय व्यतीत किया है और बहुत परिश्रम के बाद मैंने जो कुछ पाया है, उसको यहाँ पर लिखने का मैं प्रयास करूँगा । इस प्रथा के सम्बन्ध में सही बातों को जानने की मैंने कोशिश की है, परन्तु लिखी हुई सामग्री मुझे बहुत कम मिली है । फिर भी जो लोग इस विषय के जानकार थे, मैंने पूरी तौर पर उनसे लाभ उठाने की कोशिश की है और उन लोगों ने भी मेरी सहायता की है । इस प्रकार मुझे जो सामग्री मिल सकी है, उससे मेरा अनुमान है कि राजस्थान की यह प्रथा प्राचीन काल में निश्चित रूप से अत्यन्त परिपूर्ण और उपयोगी रही होगी ।

अंगरेजों के साथ राजस्थान के राजाओं का सम्पर्क स्थापित होने के पहले, इस देश की ऐतिहासिक और भौगोलिक जानकारी बहुत कम हम लोगों को थी । उन दिनों में केवल मनोरञ्जन के लिए मैं यहाँ के राज्यों में घूमा करता था और उस समय मुझे यहाँ के इतिहास और भूगोल के सम्बन्ध में जो जानकारी होती थी, उसे मैं लिखकर अपनी सरकार के पास भेज देता था । योरप और राजस्थान की इन प्रथाओं को तुलनात्मक दृष्टि से देखने और समझने के लिए मेरे पास काफी अच्छे साधन थे । जागीरदारी प्रथा के सम्बन्ध में माञ्टेस्की, ह्यूम, मिलर और गिबन आदि प्रसिद्ध इतिहासकारों के लिखे हुए ग्रंथों का मैंने अध्ययन किया और दोनों देशों की प्रथाओं को तुलना करते हुए अपना निष्कर्ष निकालने की कोशिश की । इन्हीं दिनों में प्रसिद्ध इतिहासकार हालम का इस विषय पर लिखा हुआ ग्रंथ मुझे पढ़ने को मिला ।

इसमें जागीरदारी प्रथा के अनेक छिपे हुए उन पहलुओं पर विद्वान लेखक ने प्रकाश डाला था, जो उस समय तक स्पष्ट न हुए थे। मैंने इतिहासकार हालम के निर्णय के साथ राजपूतों की इस प्रथा का मिलान किया। मेरा विश्वास है कि जो लोग यहाँ की इस प्रथा को योरप से अलग समझते थे, उनको संतोष मिलेगा। मै अनुमान के खतरों से अपरचित नहीं हूँ। इसलिए मैं उस पर विश्वास नहीं करता और जो प्रमाण निर्विवाद हैं, उन्हीं का आधार लेकर लिखना चाहता हूँ।

जो असभ्य जातियाँ किसी एक स्थान पर न रहकर सदा जंगलो में इधर उधर घूमा करती हैं, उनमें भी कुछ शासन सम्बन्धी बातें होती हैं और उनके शासन की अनेक बातें सभ्य जातियों के शासन के साथ मिलती जुलती हैं। संसार के सभी देशों के मनुष्यों का जीवन किसी समय एक सा रहा है और समस्त प्राचीन जातियों में प्रचलित शासन की मूल बातों में अभिन्नता रही है। योरप के सभी देशों में जागीरदारी प्रथा का प्रचार किसी समय था और काकेशस पर्वत से लेकर हिन्द महासागर तक वह प्रथा फैली हुई थी। बर्बर, तातारों, जर्मन और कलीडोनिअन जातियों, भारिजा लोगों और राजपूतों में जागीरदारी प्रथा का प्रचार था। उसकी प्रमुख बातें एक दूसरे के साथ बिल्कुल मिलती थीं। युगों के बाद इन प्रथाओं में कहाँ क्या अंतर पड़ा इसके अनुसंधान के लिए बहुत परिश्रम की आवश्यकता है। लगातार आक्रमणों और अत्याचारोंने राजस्थान की परिस्थितियों को बहुत बिगाड़ दिया है, फिर भी उसकी प्राचीनता और मौलिकता की खोज की जा सकती है। वह इस प्रथा के इतिहास में बहुत महत्वपूर्ण साबित होगी।

मराठों की लूटमार और मुस्लिम अत्याचारों ने राजपूत राज्यों का बहुत विनाश किया है। उनकी राष्ट्रीय भावनायें मिट गयी हैं और उनके पुराने संग्रह इन दिनों में अप्राप्य अवस्था में हैं। राजपूत राज्यों का फिर से संगठन होने की आवश्यकता है और उनकी सभी बातों का नया निर्माण होना चाहिए। राजपूत फिर शक्तिशाली बनाये जा सकते हैं। उनका सामाजिक जीवन परिवर्तन चाहता है। राजस्थान की इस समय अवस्था अच्छी नहीं हैं, उसकी शृङ्खला टूट गयी है। शासन की उपयोगिता खतम हो गयी है। उस के वर्तमान शृङ्खलाहीन सामाजिक और राजनीतिक जीवन को देखकर कोई आज प्रभावित नहीं हो सकता। विदेशी लोग उसकी आलोचना कर सकते हैं, क्योंकि उनको यहां की प्राचीन शासन-व्यवस्था के समझने और जानने का अवसर नहीं मिला। बाहरी लोगों की इन आलोचनाओं से इस देश के प्राचीन इतिहास का अनुमान नहीं लगाया जा सकता। एक इतिहासकार को किसी देश का इतिहास जानने के लिए बड़ी ईमानदारो से काम लेना चाहिए और गम्भीर नेत्रों से उसकी प्राचीनता की खोज करना चाहिए। बाहरी जातियों के भीषण आक्रमणों और अत्याचारों में जिस देश ने एक हजार वर्ष व्यतीत किये हैं, वह देश किस प्रकार जर्जरित और नष्ट प्राय हो सकता है; इसका अनुमान एक विद्वान इतिहासकार आसानी के साथ लगा सकता है। राजस्थान की शासन-व्यवस्था का आधार, उसकी जागीरदारी प्रथा थी और यह प्रथा प्राचीन काल में योरप की जागीरदारी प्रथा के समान थी। उसकी श्रेष्ठता बहुत समय तक कायम रही और बाहरी संगठित जातियों के लगातार अत्याचारों तक छिन्न-भिन्न नहीं हो सकी। भारत का प्राचीन गौरव इस शासन-व्यवस्था की श्रेष्ठता का ऐसा प्रमाण है, जिससे कोई निष्पक्ष और बुद्धिमान इनकार नहीं कर सकता।

मध्यकालीन युग के योरप के साथ राजस्थान की तुलना करके यह लिखना आवश्यक नहीं है कि आचारों, विचारों और जीवन के सिद्धान्तों में किस देश ने किस देश से क्या सीखा। आवश्यकता

के अनुसार सभी देशों को एक दूसरे से अच्छी बातें लेनी पड़ी और ऐसा होना ही स्वाभाविक है। जो व्यवस्था किसी एक देश में आरम्भ होती है, वह निश्चित रूप से दूसरे देशों में फैलती हैं और अनुकूल वातावरण पाकर विकसित होती हैं।

जागीरदारी की प्रथा इंगलैंड में नार्मन लोगों से पहुँची थी और नार्मन लोगों ने इस प्रथा को स्कैण्डीनेविया से पाया था। स्कैण्डीनेविया ने दूसरी जातियों से इसको प्राप्त किया था।

एशिया की जातियों से यह प्रथा अन्य देशों की जातियों में फैली और कुछ जातियों ने तातारी लोगों से इसको प्राप्त किया। यह तो निश्चित है कि प्राचीनकाल में इस प्रकार की शासन प्रणाली संसार के अनेक देशों में फैली हुई थी। प्रत्येक अवस्था में यह स्वीकार करना पड़ता है कि संसार के पूर्वी देशों में इस प्रथा की उत्पत्ति हुई और एशिया प्रधान के असी, कैटी, किम्ब्रिक और लोम्बर्ड से स्कैण्डीनेविया, फ्रीजलैण्ड और इटली में यह प्रथा फैली।

'मध्यकालीन युग में जागीरदारी प्रथा' के प्रसिद्ध लेखक हालम के शब्दों में, सामन्तों की उत्पत्ति का अनुसंधान करना अथवा संसार के विभिन्न देशों में प्रचलित जागीरदारी प्रथा की तुलनात्मक आलोचना करना बहुत कठिन नहीं है। मौलिक बातों में वे एक दूसरे की छाया हैं। उनकी शासन-व्यवस्था एक ही प्रणाली का अनुकरण करती है। इस प्रथा को एक देश ने दूसरे देश से और एक जाति ने दूसरी जाति से पाया है। समय और परिस्थितियों ने उनके व्यावहारिक रूप में अन्तर पैदा कर दिया है। फिर भी उनमें बहुत सी बातों की समानता मिलती है और उनसे जागीरदारी प्रथा के मौलिक सिद्धान्तों का समर्थन होता है।

रोम की रिपब्लिक गवर्नमेंट की शासन प्रणाली और जागीरदारी प्रथा में कोई अन्तर नहीं है। उन दिनों में जंगली जातियों और सभ्य जातियों के संगठन अलग अलग चलते थे। दोनों ही जातियाँ अपने-अपने क्षेत्रों में जिस प्रकार की शासन-प्रणाली की व्यवस्था रखती थीं, उनका रूप जागीरदारी प्रथा से भिन्न न था। उनकी प्रणाली एक थी और उन जातियों के लोग संगठित होकर अपने राज्यों के प्रति राजभक्त होकर रहते थे। यही अवस्था हिन्दुस्तान के जमींदारों और टर्की के तीमारियों लोगों की थी। संक्षेप में इन आलोचनाओं के आधार पर यह कहना अनावश्यक नहीं मालूम होता कि प्राचीन काल में जो शासन प्रणाली चलती थी, वह जागीरदारी प्रथा से ही अनुप्राणित होती थी।

यहाँ पर राजस्थान के राज्यों में प्रचलित जगीरदारी प्रथा को आवश्यकतानुसार विस्तार से लिखना मेरा उद्देश्य है। परन्तु इसके लिखने के समय उस समय की शासन-प्रणालियाँ जो दूसरे देशों में चल रही थीं, मेरे सामने आ जाती हैं। मुझे यहाँ की जागीरदारी प्रथा में वहाँ की शासन-प्रथाओं में कोई मौलिक अन्तर दिखाई नहीं देता। यहाँ के राज्यों के सम्बन्ध में जो कुछ मैंने लिखा है, उसका समर्थन यहाँ की बहुत-सी बातों के द्वारा होता है। ग्रंथों में वही व्यवस्था मिलती है, जो जनश्रुति के द्वारा मालूम होता है। जो सनदें मुझे मिली हैं, अथवा उनकी जो नकलें प्राप्त हुई हैं, उनके द्वारा भी वही सामग्री मुझे प्राप्त होती है।

उत्तरी भारत में रहने वाली जातियों में जागीरदारी की प्रथा प्रचलित थी, उसके समर्थन में मेरे पास बहुत सामग्री है और उस सामग्री के आधार पर मैं यह भी कह सकता हूँ कि यह प्रथा उत्तरी भारत से राजस्थान में आकर प्रचलित हुई।

ईसा की सातवीं शताब्दी तक मुगलों और पठानों के द्वारा राजपूतों का भयानक रूप से विध्वंस हुआ। फिर भी उनमें जो प्रथा प्रचलित हुई थी, वह निर्जीव नहीं हुई। राजस्थान के जिन-जिन राज्यों में इस शासन-प्रणाली ने स्थान पाया था, उन राज्यों में वह प्रथा अब तक वर्तमान है। इस प्रथा के सम्बन्ध में मैंने मेवाड़ में प्रचलित शासन नीति का प्रमुख रूप से आश्रय लिया है। इसका कारण है। जहाँ तक मैंने समझा है, राजस्थान में मेवाड़ राज्य की जागीरदारी प्रथा शक्तिशाली थी, इस राज्य का मस्तक अन्य राज्यों की अपेक्षा ऊँचा था और मेवाड़ राज्य पर आक्रमणकारियों के जितने अत्याचार हुए थे, उतने राजस्थान के किसी दूसरे राज्य पर नहीं हुए थे। इतना सब होने पर भी मेवाड़ राज्य की सामन्त शासन-प्रणाली सदा सजीव और शक्तिशाली होकर रही। जिन दिनों में दिल्ली राजधानी के मुग़ल-सम्राट का शासन शिथिल और निर्बल पड़ गया था, मेवाड़ राज्य की सामन्त शासन-प्रणाली उस समय भी दृढ़ता के साथ चल रही थी।

योरप के राज्यों में जिस प्रकार भूमि के अधिकार का निर्णय होता था, उसी प्रकार का निर्णय राजस्थान के राज्यों में मिलता है। उसके आधार पर यह मान लेना पड़ता है कि उन दिनों में भूमि का विधान पूर्व से लेकर पश्चिम तक—संसार के राज्यों में एक ही था। शासन-प्रणाली का आधार यही भूमि थी। प्राचीन प्रथाओं में समय के अनुसार थोड़ा बहुत परिवर्तन हो जाना अत्यन्त स्वाभाविक होता है। मेवाड़-राज्य में राणा लोगों के द्वारा जागीरदारी प्रथा के पुरानी प्रथा में कुछ परिवर्तन किये गये थे। ये परिवर्तन यहाँ के बहुत-से शिलालेखों के द्वारा मालूम होते हैं। दीवारों में लगे हुए बहुत से पाषाणों में राणा की खुदी हुई आज्ञायें पढ़ने को मिलती हैं।

जागीरदारी प्रथा के पुराने विधान में मेवाड़ राज्य ने जो परिवर्तन किये थे, वे अनावश्यक न थे। इस प्रथा का पुराना विधान जब तैयार किया गया था, उस समय को बीते हुए बहुत दिन हो गये थे। मनुष्य जीवन की परिस्थितियों में भूमि आकाश का अन्तर पड़ गया था। शासन-प्रणाली में आवश्यकता के अनुसार परिवर्तन करना अस्वाभाविक नहीं है। जिस प्रणाली में कभी परिवर्तन नही होता, वह निर्जीव पड़ जाती है।

राजपूतों ने अनेक शताब्दियाँ आक्रमणकारियों के अत्याचारों में व्यतीत की थी। इन दिनों में भयानक रूप से उनका विनाश हुआ था। विनाश और संहार के दिनों में किसी भी राज्य का विकास नहीं हो सकता। फिर भी राजपूतों ने अपने प्राचीन गौरव की रक्षा की थी। मुग़लों में जब बादशाह अकबर का व्यापक साम्राज्य चल रहा था, उन दिनों में भी मेवाड़ राज्य में राणा प्रताप के गौरव की पताका फहरा रही थी।

शासन व्यवस्था में राजपूतों को मैंने बहुत योग्य पाया है। अपने जीवन में वे जिस प्रकार शूरवीर होते थे, उसी प्रकार नीति कुशल भी होते थे। समाज की जो मर्यादा उनके द्वारा कायम हुई थी, निश्चित रूप से वह प्रशंसनीय थी। व्यवसायियों और कृषकों को राज्य में सम्मानपूर्ण स्थान मिला था और उनको ऐसी सुविधाएं प्राप्त थी, जिनसे वे अपनी उन्नति कर सकते थे। प्राचीन शिलालेखों के पढ़ने से पता चलता है कि जागीरदारी प्रथा में यहाँ पर शासन की एक अच्छी प्रणाली काम करती थी।

राजपूत जाति की उत्पत्ति—राजस्थान के राज्यों में जिन राजाओं ने राज्य किया है, और जो अब तक कर रहे हैं, यदि उनकी तुलना हम योरप के राजवंश के लोगों के साथ करें तो राजपूतों की श्रेष्ठता हमें स्वीकार करनी पड़ेगी। राजपूतों का प्राचीन इतिहास पढ़ने के बाद यह स्वीकार करना पड़ता है कि इनकी उत्पत्ति साधारण वंशों में नहीं हुई है। यह बात सही है कि उनके प्राचीन काल का गौरव आज मिट चुका है। उनके राज्य इन दिनों में बहुत गिरी हुई

अवस्था में हैं और उनके स्वाभिमान की मर्यादा का पतन हो चुका है। परन्तु उनके जीवन की वर्तमान परिस्थितियाँ आज भी उनके प्राचीन गौरव का परिचय दे रही हैं।

लगातार अनेक शताब्दियों तक अत्याचारों से पीड़ित रहकर भी राजपूतों ने अपने स्वाभिमान को बहुत अंशों में अब तक सुरक्षित रखा है। मेरी आँखों के सामने राणा का वंश है। इस वंश ने अपनी स्वाधीनता और मर्यादा की रक्षा के लिये कितने भीषण अत्याचारों को लगातार सैकड़ों वर्षों तक सहन किया है, इसको सोचकर शरीर रोमाञ्च हो उठता है। मुगल सम्राट जहाँगीर ने सीसोदिया वंश का इतिहास लिखा है। × मेवाड़ के राणा को राजनीतिक परिस्थितियों के वश में होकर मुग़लों की आधीनता स्वीकार करनी पड़ी थी। मुग़ल सम्राट बाबर राजपूतों के विरुद्ध जो न कर सका था, हुमायूँ और अकबर को जिसमें सफलता न मिली थी, सम्राट जहाँगीर ने उसमें सफलता प्राप्त की थी। उस जहाँगीर ने मेवाड़ के सीसोदिया वंश की प्रशंसा लिखी है। इंगलैण्ड की महारानी एलिजाबेथ के शासन काल में सर टामसरो भारत में दूत बनकर आया था। उसने यहाँ के राजपूतों की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है।

मारवाड़ के राठौर—राजपूत जातियों में राठौरों का सम्मानपूर्ण स्थान है। लेकिन सीसोदिया वंश के लोगों के सम्बन्ध में जितनी आज़ादी के साथ मैं लिख सकता हूँ, उतनी आज़ादी के साथ राठौर राजपूतों के सम्बन्ध में लिखने का मैं अधिकारी नहीं हूँ। फिर भी मैं इतना तो जानता ही हूँ कि जिन दिनों में फ्राँस के लोग भारत में अपना स्थान बना रहे थे, यहाँ के राठौर राजपूत उन दिनों में अत्यन्त शक्तिशाली थे। और उनका शासन बहुत दूर तक फैला हुआ था। बारहवीं शताब्दी में उनके विस्तृत राज्य का पतन हुआ और उसके बाद इस वंश का शासन मारवाड़ में केन्द्रित होकर रहा।

अम्बेर के कछवाहे—प्राचीन काल में निषेध नामक राजपूतों का जो एक प्रसिद्ध राज्य था और जो आजकल नरवर के नाम से मशहूर है, राजा नल और रानी दमयन्ती ने जिनकी कथायें सर्वसाधारण में बहुत प्रचलित हैं—इसी वंश में जन्म लिया था। बाहरी आक्रमणों के कारण इस वंश के लोगों को अपना पैतृक राज्य छोड़ना पड़ा था। उस समय भारतवर्ष में चार प्रधान राज्य थे। अरब के प्रसिद्ध यात्री ने उन चारों राज्यों के सम्बन्ध में जो कुछ लिखा है, उसके द्वारा उन राज्यों का हमको परिचय मिलता है।

मेवाड़ का सीसोदिया वंश—राजस्थान के राज्यों में मेवाड़ का स्थान अधिक सम्मानपूर्ण है और सम्पूर्ण राजपूत जातियों में सीसोदिया वंश का स्थान ऊँचा है। मेवाड़ की राजनीति, समाजनीति और शासन व्यवस्था यहाँ के अन्यान्य राज्यों से बिल्कुल भिन्न है। राजस्थान के दूसरे राज्य जब कोई विशेष स्थान न रखते थे, मेवाड़ का राज्य उस समय इस देश में विख्यात हो रहा था। सीसोदिया वंश के स्वाभिमानी राणा लोगों ने आक्रमणकारियों के साथ बहुत समय तक युद्ध किया। उन्होंने जीवन की भयानक कठिनाइयों का सामना किया परन्तु वे अपनी स्वाधीनता को नष्ट करने के लिए तैयार न हुए। सीसोदिया वंश की सब से बड़ी प्रशंसा यह थी कि इस वंश का कोई भी राणा अवसरवादी न था।

× मेवाड़ की राजपूत जाति में सीसोदिया वंश का बहुत ऊँचा स्थान है। इस वंश ने घटनाओं और परिस्थितियों के अनुसार अपने नामों में परिवर्तन किया है। पहले ये लोग सूर्यवंशी नाम से विख्यात थे। उसके बाद इस वंश के लोग गहिलोत कहलाये। बाद में आटेरिया और उसके उपरान्त सीसोदिया के नाम से प्रसिद्ध हुए।

मुगल साम्राज्य के पतन के दिनों में उसके बहुत से अधीन राज्यों ने लाभ उठाया था। साम्राज्य के छोटे-छोटे राजा और सामन्त विद्रोह करके स्वतंत्र हो गये थे। मारवाड़, अम्बेर और राजस्थान के दूसरे राज्यों ने भी उस मौके का लाभ उठाया था। उन्होंने अपने राज्यों की सीमा बढ़ा ली थी और मुग़लों के साथ विद्रोह करके अपनी स्वाधीनता की घोषणा की थी। परन्तु मेवाड़ के सीसोदिया वंश ने इस अवसर का कोई लाभ नहीं उठाया था।

परिवर्तन और पतन के दिनों में भी राजपूतों ने अपने पूर्वजों के गौरव को नहीं भुलाया। उन्होंने जिस प्रकार श्रेष्ठ वंशों में जन्म लिया है, अनेक विपदाओं में आकर भी उन्होंने उनकी श्रेष्ठता की रक्षा की है। उनके मनोभावों में कोई परिवर्तन नहीं हुआ, यद्यपि उनके जीवन की परिस्थियों में भयानक अन्तर आ चुका है। मेवाड़ राज्य के प्राचीन पुरुष, जिस प्रकार का जीवन व्यतीत करते थे, और भयानक विपदाओं के समय भी वे अपना मस्तक नीचा न करते थे; उनके वंशजों में पूर्वजों के वे गुण और स्वभाव आज भी देखने को मिलते हैं।

मेवाड़ की राजपताका लाल रंग की है और उस पताका पर सूर्य की आकृति अंकित रहती है। मेवाड़ के सामन्तों की पताकायें, मेवाड़ की पताका से भिन्न रहती है। अम्बेर की राज पताका पाँच रंग की होती है। चन्देरी नाम के एक छोटे राज्य की पताका पर प्रमत्त सिंह की आकृति अङ्कित रहती है। ×

ईसा के जन्म से बहुत पहले भारत में महाभारत हुआ था। उस समय अर्जुन की पताका में हनुमान की मूर्ति अंकित रहती थी। इसका समर्थन हिन्दुओं के प्रसिद्ध ग्रन्थ महाभारत के द्वारा होता है।

राजपूतों के महलों में उनके वंश के देवता की मूर्ति रहा करती है। राजपूत लोग अपने वंश के उस देवता की मूर्ति को साथ में लेकर युद्ध में जाते थे। राजा उस मूर्ति को अपने साथ लेकर घोड़े पर सवार होता था। कोटा के राजा भीमहर ने युद्ध के समय अपने देवता के साथ-साथ अपने प्राणों को बलिदान किया था। खीची जाति के सरदार स्वर्गीय जयसिंह की भी यही दशा थी। अपने देवता को साथ लेकर ही वह युद्ध में जाता था।*

युद्ध में अपने वंश के देवता के ले जाने का आम रिवाज हिन्दू राजाओं में था। यूनान के बादशाह सिकन्दर ने जब भारत में आक्रमण किया था, उन दिनों में जितने भी इस देश के राजा उस के साथ युद्ध करने गये थे, सभी अपने-अपने साथ अपने वंश के देवता को ले गये थे। कुछ राजाओं ने अपनी सेना के आगे कुल देवता को रखकर युद्ध आरम्भ किया था।

यूनान का प्रसिद्ध इतिहासकार एरियन ने लिखा है कि सामन्तों के सम्बन्ध में बहुत-सी बातें यूनान के लोगों ने सिंध नदी के निकटवर्ती राज्यों से सीखीं।

यूनान का बादशाह सिकन्दर आक्रमण करके और विजय करके पराजित राजाओं को अपना अधीन बना लेता था और उन राजाओं की पताकायें सिकन्दर की पसंद के अनुसार होती थीं।

× इस राज्य का सम्पूर्ण भाग जंगलों से घिरा हुआ है। योरप के लोगों में से सबसे पहले मैं ही सन् १८०७ ईसवीं में वहाँ गया था। उस यात्रा में मुझे भयानक संकट भोगने पड़े थे। उन दिनों में यह राज्य स्वतंत्र था उसके तीन वर्ष बाद इस राज्य पर सेंधिया ने अपना अधिकार कर लिया था।

* खीची चौहान राजपूत वंश की एक शाखा है। हाड़ावती के पूर्व की तरफ इस वंश के लोगों का राज्य था।

सिंध नदी के पश्चिमी पहाड़ी प्रदेश में जिस समय युद्ध हुआ था, उसके बहुत पहले युधिष्ठिर की राजपताका के नीचे बहुत से मुसलमान एकत्रित हुए थे। पराक्रमी विशाल देव का नाम दिल्ली के विजय स्तम्भों पर खुदा हुआ है। यह यवन सेना के साथ युद्ध करने के लिये जो अपनी सेना ले गया था, उसमें चौरासी हिन्दू राजाओं की पताकायें थीं। इस युद्ध में शामिल होने के लिए विशाल देव ने बहुत से राजाओं को निमंत्रण पत्र भेजा था। प्रसिद्ध चण्ड कवि ने अपने ग्रंथ में उस युद्ध की बहुत-सी बातें लिखी हैं। कवि चण्ड ने अपने ग्रंथ में पृथ्वीराज के शासन की सामन्त-प्रणाली का खूब वर्णन किया है।

राजस्थान में प्रचलित सामाजिक नियमों के अनुसार जिनका जन्म विशुद्ध राजपूत वंश में हुआ है, उन्हीं को मेवाड़ राज्य के सामान्त होने का अधिकार है। इस राज्य के जितने भी सामन्त अब तक बने थे, सभी के साथ इस नियम की पाबंदी की गयी थी। मेवाड़ राज्य में वंश की श्रेष्ठता को बहुत महत्व दिया जाता था। राज्य के कार्यों में राजपूतों के सिवा दूसरे लोग भी नियुक्त किये जाते थे और उसमें जिनको गुज़ारे के लिए भूमि दी जाती थी, उस पर उनका पैतृक अधिकार नहीं होता था। पाने वाला जब तक राज्य का काम करता था, उस समय तक वह उस भूमि का अधिकारी माना जाता था।

योरप के देशों में राज्य के प्रमुख कर्मचारियों को भूमि अथवा कुछ गाँवों का इलाका दिया जाता था। उसी प्रकार राजस्थान के राज्यों में भी राज्य के प्रधान कर्मचारियों को भूमि अथवा इलाका देने की परिपाटी थी। इस परिपाटी का एक कारण था। उन दिनों में सिक्के का प्रचार न हुआ था। उस दशा में वेतन देने में बड़ी असुविधा होती थी। इस उलझन से बचने के लिये प्राचीनकाल में राजकर्मचारियों को उनके पदों के अनुसार भूमि अथवा इलाका दिया जाता था।

मेवाड़ के मंत्री लोग वेतन के स्थान पर भूमि अथवा इलाका अधिक सम्मानपूर्ण समझते थे। योरप के अनेक देशों में भी उस युग में इसी प्रकार के प्रचार पाये जाते थे। फ्रांस के राजा सार्लमन के यहाँ राज कर्मचारियों की अलग-अलग श्रेणियाँ बनी थीं। उनमें छोटे और बड़े सभी प्रकार के कर्मचारी थे। मंत्रियों और अध्यक्ष लोगों की भी श्रेणियाँ थी। राजपूत राज्यों में भी हमको बहुत कुछ उसी प्रकार की बातें देखने को मिलती हैं।

मेवाड़ के राज्य में वेतन के स्थान पर भूमि पाने वाले सभी प्रकार के लोग देखे जाते हैं। प्रासाद निर्माता, चित्रकार, चिकित्सक, दूत और मंत्री लोग भूमि पाने के अधिकारी माने जाते हैं। राज्य के कर्मचारियों में उनके वंश की श्रेष्ठता को अधिक महत्व दिया जाता है। राज्य के कार्यों में आमतौर पर पैतृक अधिकार चलता है। इसका अर्थ यह है कि जिस पद पर जो आदमी काम करता है, उस पद पर उसी का पुत्र, प्रपौत्र और उत्तराधिकारी का काम कर सकता है। ऐसे लोगों को राज्य की तरफ से उपाधियाँ भी दी जाती हैं।

यदि किसी कारण से किसी को दी गई भूमि वापस ले ली जाती है तो जिसकी वापस ली जाती है, उसे अपने अधिकार के लिए लड़ने का मौका मिलता है। भूमि अथवा गुज़ारा पाये हुए राज कर्मचारियों को राज्य के प्रति अपना कर्त्तव्य पालन करना पड़ता है। किसी भी अवस्था में वे अपने राजा के भक्त होते हैं और राज्य के प्रति उनको शुभचिंतक होकर रहना पड़ता : कर्त्तव्यपरायणता के विरुद्ध कोई काम करने पर अथवा अपने आचरणों से राज्य के प्रति विश्वास-घात का परिचय देने पर उसे जो भूमि अथवा इलाका दिया गया था, वह वापस ले लिया जाता है। यदि इसके सम्बन्ध में कोई प्रार्थना करता है तो उस पर फिर से निर्णय किया जाता है।

मेवाड़-राज्य की व्यवस्था सभी प्रकार सुरक्षित रखने की चेष्टा की गई है। राज्य की दक्षिणी, पूर्वीय और पश्चिमी सीमाओं पर लड़ाकू और लुटेरे भील, मीरा और मीना जाति के लोग रहते हैं। राज्य के चारों तरफ सामन्तों का शासन है। राज्य की मध्यवर्ती भूमि खालसा है। यह भूमि अधिक उपजाऊ है। इस प्रकार की व्यवस्था के द्वारा मेवाड़ राज्य साधारण परिस्थितियों में सुरक्षित समझा जाता है।

मेवाड़ में सामन्तों को जितनी भूमि दी गई है, खालसा भूमि उसकी चौथाई भी नहीं है। इस खालसा भूमि की आमदनी से ही राज्य का कार्य चलता है। किसी उत्तम कार्य के लिये इसी आय से राणा, लोगों को पारितोषिक देता है। राजधानी के निकट किसी भी सामन्त को भूमि नहीं दी जाती। इस नियम को राणा भीमसिंह ने पहले से भी अधिक कठोर बना दिया है।

सामन्तों को राज्य की भूमि का जो इलाका दिया जाता है, उसके बदले में उनको राज्य की रक्षा के लिए शत्रुओं से युद्ध करना पड़ता है। मेवाड़ के सामन्तों के सामने, उनके सीमा पर होने के कारण, एक न एक लड़ाई बनी ही रहती है। कभी पहाड़ों पर रहने वाली जंगली जातियों के उपद्रव होते हैं, तो उस दशा में सामन्तों को उनका सामना करना पड़ता है और कभी आक्रमण-कारियों के आने पर, उनके साथ उनको संग्राम करना पड़ता हैं। इस प्रकार के जितने भी संघर्ष पैदा होते हैं, उनका सामना करने के लिये अपनी सेनाओं के साथ राणा की सहायता के लिए युद्ध-स्थल में जाना पड़ता है।

शासन के सुभीते के लिए राज्य का विभाजन होता है। राज्य में बड़े-बड़े जिले होते हैं और प्रत्येक जिले में पचास से लेकर सौ तक ग्राम रखे जाते हैं। कहीं-कहीं इन ग्रामों की संख्या और भी अधिक हो जाती है। सम्पूर्ण राज्य चौरासी भागों में विभाजित किया जाता है। जिन दिनों में जागीरदारी की प्रथा इंगलैण्ड में थी, उन दिनों में वहाँ पर भी इसी प्रकार का विभाजन होता था।

मेवाड़-राज्य की रक्षा के लिए बहुत से स्थानों पर सीमा रक्षक सरदार रहा करते हैं। उनके अधिकार में सैनिकों की एक संख्या रहती है। यह संख्या सभी सीमा-रक्षकों की एक-सी नहीं होती। जहाँ जैसी आवश्यकता होती है, वहाँ उतने ही कम और अधिक सैनिक रखे जाते हैं। आवश्यकता पड़ने पर कोई भी सीमा-रक्षक सरदार अपने निकटवर्ती सामन्त की सेना को सहायता के लिए बुला सकता है। इन सीमा रक्षकों की नियुक्ति बड़े उत्तरदायित्व के साथ की जाती है। जो लोग इस कार्य के लिये राज्य के अधिकारियों के पास प्रार्थना पत्र भेजते हैं। उनका अन्तिम निर्णय राणा के द्वारा होता है। इन रक्षकों के अधिकार में राज्य की पताका की अनेक चीजें होती हैं।

राज्य के जो सामन्त ऊँची श्रेणी के होते हैं, वे साधारण अवस्था में सीमा के संघर्ष में जाकर भाग नहीं लेते। बल्कि अपनी सेना के किसी अधिकारी के नेतृत्व में वे लोग अपनी सेना भेज देते हैं।

राज्य के विभाजन में प्रत्येक जिले में मामले-मुकदमों का निर्णय करने के लिए एक दीवानी का अधिकारी और दूसरा एक सैनिक रहा करता है। इन लोगों का कार्यालय किसी दुर्ग में रहता है और वहीं पर रहकर वे लोग अपना कार्य करते हैं।

विभाजित राज्य की सुव्यवस्था उसके सामन्तों के द्वारा होती है। जो सामन्त इस प्रकार का कार्य करते हैं, राज्य की तरफ से वे चार श्रेणियों में विभाजित हैं और वे इस प्रकार हैं :—

पहली श्रेणी—इस श्रेणी में सोलह सामन्त हैं। राज्य की तरफ से मिले हुये इलाकों के द्वारा इन सामन्तों की आमदनी पचास हजार रुपये से लेकर एक लाख रुपये तक है। इस श्रेणी के सामन्त राणा के द्वारा आमन्त्रित होने पर किसी भी कार्य के समय राजभवन में जाते हैं। वंशों की मर्यादा के अनुसार इस श्रेणी के सामन्तों को राणा के मंत्री होने का पद मिलता है। यह मेवाड़ में बहुत दिनों से चला आ रहा है।

दूसरी श्रेणी—इस श्रेणी के सामन्तों की वार्षिक आय पाँच हजार रुपये से लेकर पचास हजार रुपये तक है। इन सामन्तों को नियमित रूप से राज-भवन में रहना पड़ता है। इन्हीं सामन्तों में से प्रायः सीमा-रक्षक चुने जाते हैं। उनको फौजदार कहते हैं। उनके अधिकार में सैनिकों की एक छोटी सेना रहती है।

तीसरी श्रेणी—सामन्तों की यह तीसरी श्रेणी गोल नाम से प्रसिद्ध है। इनकी वार्षिक आय पाँच हजार रुपये होती है। राणा उनमें से किसी को भी उसके कार्यों से प्रसन्न होकर अधिक भूमि देने का अधिकार रखता है। इन सामन्तों को राज्य के जो कार्य करने पड़ते हैं, वे राणा पर निर्भर होते हैं। इन्हीं के द्वारा राणा राज्य की व्यवस्था करता है। प्रत्येक अवस्था में इन सामन्तों को राणा के अधिकार में रहना पड़ता है। यदि ऊँची श्रेणी के सामन्त राणा के साथ विद्रोह करें तो इस श्रेणी के सामन्त उस समय राणा की सहायता करते हैं और विरोधी सामन्तों को विद्रोही समझकर राणा के आदेश के अनुसार उनके साथ युद्ध करते हैं।

चौथी श्रेणी—राणा के परिवार में उत्पन्न होने वाले राजकुमार एक निश्चित अवस्था तक बाबा कहे जाते हैं। उनके पालन-पोषण के लिए राज्य की तरफ से एक निश्चित भूमि होती है। ये लोग चौथी श्रेणी के सामन्त माने जाते हैं। इस श्रेणी में शाहपुरा और बनेड़ा के सामन्त अधिक शक्तिशाली हैं। इन सामन्तों को राणा के आधीन होकर चलना पड़ता है।

राज्य के दीवानी के मामलों का निर्णय करने के लिये जैसा कि ऊपर लिखा गया है—दीवानी का एक अधिकारी रहता है। यह अधिकारी सामन्तों में ही नियुक्त होता है। फ़ौजदारी के अपराधों का निर्णय करने के लिये राणा के परामर्श की आवश्यकता होती है। इस प्रकार के निर्णय जिनके द्वारा होते हैं, वे पञ्चायतें कहलाती हैं।

मालगुजारी और राणा के अधिकार—इस विषय में यहाँ हम अधिक विस्तार में नहीं जाना चाहते। आवश्यकतानुसार, उन्हें आगामी पृष्ठों में विस्तार के साथ लिखा जायगा। मेवाड़ राज्य में जो खालसा भूमि है राणा की आय का साधन वही है। उसके द्वारा राज्य के कर की आय होती है। इसी खालसा भूमि पर राज्य का व्यवसाय और दूसरे कार्य निर्भर हैं। इन करों के द्वारा पहले राज्य की अच्छी आमदनी हो जाती थी और राणा लोग इन करों पर अधिक ध्यान देते थे। यह कर अधिक संख्या में राज्य के व्यवसायियों से वसूल होता था। इन व्यापारियों के साथ राज्य की तरफ से उदारता पूर्ण व्यवहार रहता था और राज्य के व्यवसायी भी निर्धारित कर राज्य को देकर अपना कर्तव्य पालन करते थे।

मेवाड़-राज्य की राजनीतिक परिस्थितियाँ जितनी ही बिगड़ती गयीं और बाहरी आक्रमणकारियों के अत्याचार जितने ही राज्य में अधिक होते गये, राज्य के व्यवसायियों की परिस्थितियाँ भी उतनी ही खराब होती गयीं। आक्रमणकारियों की लूट मार के कारण राज्य की प्रजा बहुत ग़रीब हो गयी। साथ ही राज्य की तरफ से प्रजा की रक्षा की कोई व्यवस्था न हो सकने के कारण प्रजा की राज-भक्ति में भी बहुत अन्तर पड़ गया। इसका परिणाम यह हुआ कि व्यापारियों को जो कर देना पड़ता था, उसकी वसूलयाबी में बहुत कठिनाइयाँ होने लगीं।

अनेक अवसरों पर मेवाड़ के राणा ने आक्रमणकारियों को अपरिमित सम्पत्ति देकर अपना खजाना खाली कर दिया था। और इस दशा में राज्य की तरफ़ से जो कर व्यवसायियों पर बढ़ाये गये थे, वे पहले की अपेक्षा अधिक थे। इन करों के बढ़ने से प्रजा पीड़ित हो रही थी और व्यवसायियों के मनोभावों में बहुत अन्तर पड़ गया था। यही कारण था कि एक व्यापारी ने राज्य के इन अधिक करों के सम्बन्ध में मुझसे कहा था : "राज्य की प्रजा जितनी ही निर्धन होती जाती है, राज्य की तरफ़ से कर उतने ही बढ़ते जाते हैं।" ×

इसमें सन्देह नहीं कि राज्य की तरफ से जो कर बढ़े थे, उनका प्रभाव राज्य की प्रजा पर अच्छा नहीं पड़ा था। मेवाड़ के पतन के पहले राणा के साथ प्रजा का जितना शुद्ध और सम्मानपूर्ण व्यवहार था उसको फिर से कायम करने के लिए बहुत समय लगेगा।

प्राचीन काल में मेवाड़ राज्य में बहुत सी खानें थीं। उन खानों से राज्य को लाखों रुपये की आय होती थी। इस राज्य में केवल जावरा की खान से जो चाँदी पायी जाती थी, वह कई लाख रुपये की होती थी। चम्बल नाम के स्थान में जो खानें थीं, उनसे लोहा, ताँबा और शीशा की उत्पत्ति होती थी। इस राज्य में कुछ खानों से कीमती पत्थर पाया जाता था। परन्तु राज्य की परिस्थितियाँ बिगड़ जाने से ये खानें नष्ट हो गयी हैं और अब उनसे लाभ उठाने के लिए असाधारण परिश्रम और सम्पत्ति के खर्च करने की जरूरत है।*

बरार—बरार का अर्थ कर है। इस राज्य में साधारण तौर पर प्रजा से जो कर वसूल किये जाते हैं, वे इस प्रकार हैं : 'गनीमबरार' अर्थात् युद्ध सम्बन्धी कर, 'घरगुंती बरार' अर्थात् घर का कर। 'हल बरार' अर्थात् खेती का कर। 'न्योता बरार' अर्थात् विवाह कर। इस प्रकार के कई एक कर इस राज्य में लगाये जाते हैं। इन दिनों में युद्ध का कर प्रजा से वसूल नहीं किया जाता। इसके पहले इस राज्य में एक न एक युद्ध का कर चलता ही रहता था। इसका कारण यह था कि उन दिनों में इस राज्य को लगातार बहुत दिनों तक युद्ध करने पड़े थे।

कृषकों पर जो खेती का कर लगता था, उसका निश्चय खेती में पैदा होने वाले अनाजों के अनुमान पर होता था। खेती में जिसकी जैसी पैदावार होती थी, उसको उसी हिसाब से कर देना पड़ता था। पिछले दिनों में युद्ध कर की भी यही हालत हो गयी थी। खेतों की पैदावार के हिसाब से ही युद्ध कर भी लिया जाता था। राज्य के पहाड़ी स्थानों पर कर वसूल करने की दूसरी व्यवस्था है। क्योंकि वहाँ की भूमि में जो खेती होती है, उसका कोई अनुमान नहीं लगाया जा सकता। इसीलिए भूमि के हिसाब से पहाड़ी कृषकों पर कर लगा दिया जाता है।

राज्य में कुछ और भी ऐसे अवसर आते हैं, जिससे राणा को आर्थिक लाभ होता है। ऐसे अवसरों में, किसी सामन्त अथवा सरदार का नया अभिषेक अथवा इस तरह के कोई भी दूसरे कार्य जब कभी राज्य में होते हैं तो उन अवसरों पर राणा को नजर दी जाती है। इस भेंट में

× व्यापार के माल को एक स्थान से दूसरे स्थानपर ले जाने के लिए बैलगाड़ियों को काम में लाया जाता है। दूसरे देशों में इस काम के लिए ऊँटों का प्रयोग होता है।

* मेवाड़-राज्य में सिक्का निर्माण कराने का अधिकार राणा के सिवा किसी दूसरे को नहीं है। शालुम्ब्रू का सामन्त ताँबे का पैसा बनवा सकता है। परन्तु सोने अथवा चाँदी का मुद्रा निर्माण कराने का अधिकार उसको भी नहीं है। प्राचीन काल में इस राज्य के टकसाल घर से राणा को बहुत अधिक आय होती थी। इस प्रकार की व्यवस्था मेवाड़-राज्य में अब उसी समय हो सकती है, जब राज्य में पूरी तौर पर शांति कायम हो।

मिलने वाली सम्पत्ति का कोई मूल्याङ्कन नहीं हो सकता। समय और परिस्थितियों के अनुसार मिलने वाली सम्पत्ति कम और अधिक हो सकती है। भूमिया सरदारों से वार्षिक अथवा त्रैवार्षिक राणा को एक निश्चित आय होती है। नियमों को भङ्ग करने वालों और दूसरे अपराधियों को जो दण्ड दिया जाता है, उससे भी आर्थिक आय होती है।

मेवाड़ राज्य में अपराधियों को अधिक कठोर दण्ड नहीं दिया जाता। प्राण-दण्ड के स्थान पर उनको आर्थिक दण्ड देकर छोड़ दिया जाता है। इसका कारण यह भी है कि पहाड़ों पर रहने वाले जंगली लोग प्राय: अधिक अपराधी होते हैं और वे शारीरिक दण्ड की अपेक्षा आर्थिक दण्ड से अधिक घबराते हैं।

खड लकड—यह भी एक प्रकार का कर है। इसके द्वारा राज्य को अच्छी आय होती है। यह कर बहुत पहले से चला आ रहा है। जिस समय राणा अपनी सेना के साथ युद्ध के लिए रवाना होता था, उस समय राज्य का प्रत्येक मनुष्य अथवा उसका परिवार राज्य की सेना के लिए काष्ठ और खड दिया करता था। कुछ दिनों के बाद यह कर बिना किसी युद्ध के ही लिया जाने लगा। खड़ लकड़ का अभिप्राय रसद से है। युद्ध के दिनों में सेनाओं के लिये रसद राज्य के प्रत्येक ग्राम और नगर में वसूल किया जाता था। इस रसद में खाने के पदार्थों के सिवा और भी बहुत-सी चीजें वसूल की जाती थीं।

यह प्रथा अब भी प्रचलित है फ्राँस में जब सामन्त शासन-प्रणाली चल रही थी तो प्रजा से इसी प्रकार रसद ली जाती थी। वह प्रणाली बिगड़ कर कुछ और हो गयी और रसद के नाम पर खाने-पीने के पदार्थों के अतिरिक्त राज्य के अधिकारी धन वसूल करने लगे थे। फ्राँस की इन बातों का उल्लेख इतिहासकार हालम ने अपने ग्रंथ में किया है। उसने लिखा है कि फ्राँस का राजा जब राज्य में घूमने के लिए निकलता था तो उसके सामन्त उसके पास जाकर भेंट करते थे और सम्मानपूर्वक वे लोग सम्पत्ति के साथ घोड़ा और बहुमूल्य पदार्थ राजा को उपहार में देते थे। इस सम्मान में सामन्त जो कुछ खर्च करता था, उसे वह अपने कृषकों और व्यवसायियों से वसूल कर लेता था। मेवाड़ में मदिरा, अफ़ीम और दूसरे मादक पदार्थों पर कर लिया जाता है इन करों के द्वारा राज्य को आर्थिक लाभ होता है।

मेवाड़ राज्य के अच्छे दिनों में राणा दीवानी के अधिकारियों, चार मंत्रियों और उनके सहायक मंत्रियों के साथ राज भवन में बैठकर परामर्श करता था और राज्य की वर्तमान समस्याओं को सुलझाने के लिए चेष्टा करता था। राज्य के सामन्त और सरदार इन वैधानिक कार्यों से कोई सम्बन्ध न रखते थे।

जिन दिनों में राज्य की दशा बिगड़ रही थी, शासन की व्यवस्था क्षत-विक्षत हो रही थी, सर्वत्र अशान्ति फैल रही थी, राज्य की शक्तियाँ दुर्बल हो गई थीं, उन दिनों में राज्य का वैधानिक कार्य बहुत निर्बल हो गया था। यद्यपि उन दिनों में राणा की अवस्था अच्छी न रही थी और आक्रमणकारियों के अत्याचारों से राज्य बहुत पीड़ित हो रहा था, फिर भी राज्य की पंचायतें अपना कार्य नियमित रूप से कर रही थीं। अशान्ति के इन दिनों में भी राज्य का प्रत्येक विभाग अपना कार्य कर रहा था। सीमा पर जो छावनी बनी हुई थीं, उनमें अधिकारी बैठकर अपना काम करते थे और सीमा की रक्षा के लिए वे सदा सावधान रहते थे।

राज्य में कर वसूल करने का कार्य सावधानी के साथ चल रहा था। कहीं पर राज्य की तरफ से कोई उत्पात न हो, सबल निर्बलों को सता न सकें, नीच और उद्दण्ड अनुचित कार्य न कर सकें, इन सभी बातों के प्रति राज्य के अधिकारी सदा सतर्क रहते थे। राज्य के बहुत से

कार्य प्रजा के प्रतिनिधियों के द्वारा हुआ करते थे। प्रत्येक नगर और ग्राम से प्रजा अपने प्रतिनिधि चुनकर भेजा करती थी और वे लोग एकत्रित होकर राज्य की समस्याओं का बहुमत से निर्णय किया करते थे।

राजस्थान के सभी बड़े-बड़े नगरों में निर्णायक समितियाँ बनी हुई थीं। उन समितियों का जो प्रधान चुना जाता था, वह नगर सेठ कहलाता था। इस पद के लिए नगर और ग्राम के श्रेष्ठ पुरुषों का चुनाव होता था। प्रजा के प्रतिनिधियों के साथ नगर सेठ बैठकर राज्य की समस्याओं का निर्णय किया करता था। सामान्त शासन-प्रणाली के दिनों में फ्राँस में भी यही होता था। वहाँ पर भी प्रजा के प्रतिनिधि एकत्रित होकर अपना प्रधान चुनते थे और वह प्रधान प्रतिनिधियों की सहायता से राज्य के कार्यों की व्यवस्था करता था। इस प्रकार की संस्थाओं के द्वारा राज्य के कार्यों का संचालन होता था। उनके बनाये हुए नियमों के आधार पर राज्य के बड़े-बड़े ग्रामों में पंचायतें काम करती थीं और उनके कार्यकर्त्ताओं का भी चुनाव हुआ करता था।

प्राचीनकाल में राज्य की संस्थायें अपना कार्य करने के लिए चबूतरों पर बैठकें करती थीं। इस प्रकार के कार्यों के लिये जो चबूतरे चुने जाते थे, वे खालसा भूमि की सीमा के भीतर होते थे, जिन पर राणा का अधिकार होता था। किसी सामन्त के अधिकृत क्षेत्र में इस प्रकार के स्थान नहीं चुने जाते थे। सामन्त लोग अपने अधिकार की भूमि का स्वतंत्र रूप से उपभोग करते थे। उसमें राजा का हस्तक्षेप वे नहीं पसन्द करते थे। वे स्वयं राजा की अधीनता में रहते थे। फिर भी अपने अधिकार के क्षेत्र को वे स्वतंत्र मानते थे।

सामन्तों की यह स्वतंत्रता कई बातों में थी। शत्रु के आक्रमण को व्यर्थ करने के लिये राजा किसी सामान्त के क्षेत्र में अपना शिविर नहीं बना सकता था और न वह अपनी पताका ही फहरा सकता था। सामन्त के क्षेत्र और उनके दुर्ग राणा के हस्तक्षेप से बिलकुल अलग रहते थे।

रोज़ाना—सामन्तों में किसी के अपराधी होने पर, राणा की आज्ञा का अनादर करने पर राणा के द्वारा बुलाये जाने पर देर में उपस्थित होने पर अथवा इस प्रकार के किसी कार्य के करने पर राणा का दूत अपने साथ कुछ अश्वारोही अथवा पैदल सेना लेकर उस सामान्त के पास जाता है और राणा का आदेश पत्र उसकी मोहर के साथ सामन्त को दिखाकर दूत उससे रसद माँगता है। इसी रसद को रोज़ाना कहते हैं।

अपराधी सामन्त जब तक राणा की आज्ञा का पालन न करे, उस समय तक राणा का दूत अपनी सेना के साथ सामान्त के यहाँ रहने का अधिकारी है और उसके लिये उस सामन्त को रसद देनी पड़ती है। राजभवन पहुँचने में सामान्त प्रायः देर कर देते हैं। उस दशा में उनके विरुद्ध राणा को यही करना पड़ता है। परन्तु इसके परिणाम कभी-कभी बहुत भयानक हो जाते हैं।

सामन्तों के क्षेत्रों में राणा को अथवा राज्य के किसी विभाग के अधिकारियों को हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं है। सामन्त अपने-अपने क्षेत्रों की व्यवस्था स्वयं करते हैं। सामन्तों के क्षेत्रों में भी पंचायतों की प्रथा काम करती है। देवगढ़ के सामन्त ने अपने आधीन सरदारों के सामने एक बार प्रतिज्ञा की थी : "आप सब के परामर्श के बिना हम किसी प्रकार के कार्य का अनुष्ठान न करेंगे।"

राज्य में किसी प्रकार की अशान्ति पैदा होने पर अथवा किसी बाहरी शक्ति के आक्रमण करने पर अथवा आक्रमण की सम्भावना होने पर मेवाड़ के सभी सामन्त राणा की सभा में आकर एकत्रित होते हैं। राणा उनके साथ परामर्श करता है। उस समय इस बात का निर्णय किया

जाता है कि ऐसे समय पर क्या होना चाहिये। सामन्तों के परामर्श के बिना अथवा उनके निर्णय के विरुद्ध राणा को ऐसे अवसरों पर कुछ भी करने का अधिकार नहीं है।

मेवाड़ राज्य पर जब कोई राजनीतिक विपद आती है, तो राणा के पास पहुँचने के पहले ही सामन्त लोग आपस में परामर्श कर लेते हैं कि उनको राणा की सभा में जाकर क्या निर्णय करना चाहिए। अधिकांश अवसरों पर सामन्त यही करते हैं और उसके बाद राणा की सभा में जाते हैं।

ऐसे अवसरों पर यदि राणा की तरफ से किसी सामन्त को निमंत्रण नहीं मिलता अथवा वह बुलाया नहीं जाता, तो वह सामन्त अपना अपमान अनुभव करता है। राणा अपने राज्य में शासन की जिस व्यवस्था को काम में लाता है, सामन्त लोग भी उसी प्रथा का अनुकरण करके अपने क्षेत्रों में राज्य का प्रबन्ध करते हैं।

प्रत्येक सामन्त की अधीनता में कुछ सरदार रहते हैं, उसके कुछ प्रमुख कर्मचारी होते हैं। ये सरदार और प्रमुख कर्मचारी अपने सामन्त के दरबारी होते हैं। उसके दरबार में पंडित, कवि और प्रजा की तरफ से कुछ प्रतिष्ठित व्यक्ति रहा करते हैं। ये सभी लोग अनेक अवसरों पर सामन्त को अपना परामर्श देते हैं। जिस प्रकार राणा अपने मंत्रियों और सदस्यों के साथ बैठकर किसी समस्या का निर्णय करता है, ठीक उसी प्रकार सामन्तों को भी अपने-अपने क्षेत्र में करना पड़ता है। इस प्रकार के परामर्शों में राणा के विचारों को प्राय: महत्व दिया जाता है और राज्य की समस्याओं को राणा के दरबार में एकत्रित होकर सभी सामन्त सुलझाते थे।

सैनिक कार्य—सुख और संतोष के दिनों में मेवाड़ में पन्द्रह हजार अश्वारोही सेना राज्य के प्रत्येक भाग से आकर एकत्रित होती और युद्ध भूमि में राणा के साथ जाती थी। इन सैनिकों को राज्य की तरफ से केवल भूमि दी जाती थी। जिसके बदले उनको राज्य की यह सेवा करनी पड़ती थी। सैनिकों की इस संख्या में प्रत्येक सामन्त अपने सरदारों के साथ उस सेना को लेकर जो उसके अधिकार से रहती थी, राणा के पास उपस्थित होता था।

सामन्तों को भूमि अथवा इलाका जो दिया जाता था, वह सब के लिये एक-सा नहीं था और वे लोग अपने अधिकार में जो सेनायें रखते थे, वे भी एक-सी न थीं। उनके सैनिकों की संख्या अलग-अलग थी। जिस सामन्त की आय जैसी होती थी, उसी हिसाब से वह अपने अधिकार में सेना रख सकता था। एक हजार रुपये की वार्षिक आय पर कम-से-कम दो और आमतौर से तीन सैनिक सवारों के रखने का नियम था। कभी-कभी भूमि दी जाने के समय आय के प्रत्येक एक हजार रुपये पर किसी-किसी को तीन अश्वारोही और तीन पैदल सैनिक रख सकने का अधिकार दे दिया जाता है। इंगलैण्ड के राजा विलियम ने जिस समय अपना राज्य साठ हजार भागों में विभाजित किया था, उस समय उसके प्रत्येक भाग को दो सौ रुपये सेना के लिये देने पड़ते थे। जो भाग सेना नहीं दे सकता था, वह रुपये देता था।

इधर बहुत दिनों से इंगलैण्ड में जागीरदारी प्रथा का अंत हो गया है। इसके पहले जब यह प्रथा वहाँ पर जारी थी, उस समय सामन्तों की सेना पर राजा के अधिकार निर्धारित थे। प्रत्येक सैनिक वर्ष में केवल चालीस दिन राज्य का काम करता था। इन दिनों में राजा सैनिकों से कोई भी कार्य ले सकता था। इन सैनिकों को राज्य के भीतर अथवा बाहर राजा के आदेश पर युद्ध करना पड़ता था।

राजा के प्रति राजस्थान में सामन्तों को कुछ नियम पालन करने पड़ते हैं। मेवाड़ के सामन्तों को वर्ष में कुछ दिन राणा की राजधानी उदयपुर में रहना पड़ता है। सभी सामन्त

को एक साथ ऐसा नहीं करना पड़ता । सामन्तों का विभाजन हो जाता है। एक बार आये हुये सामन्तों का जब समय समाप्त हो जाता है तो वे चले जाते हैं और उनके स्थान पर दूसरे सामन्त आ जाते हैं। कुछ युद्ध सम्बन्धी उत्सव हुआ करते हैं। ऐसे अवसरों पर सभी सामन्तों को सेना और रसद के साथ राजधानी में आकर उपस्थित होना पड़ता है। लेकिन राज से बाहर जब कभी सैनिक युद्ध के लिये जाते हैं तो सामन्तों की सेनाओं के लिये कुछ रसद राणा की तरफ से भी दी जाती है।

सामन्तों को दण्ड—जिन दिनों योरप में जागीरदारी प्रथा के अनुसार राज्य का शासन होता था, उन दिनों में राजा की आज्ञा पालन न करने पर सामन्तों को दण्ड दिया जाता था। इसी प्रकार की प्रणाली मेवाड़ में भी चलती है। यहाँ पर सामन्तों को भूमि देकर जो इकरारनामा लिखा जाता है, उसमें साफ-साफ इस बात का उल्लेख कर दिया जाता है। उसके अनुसार किसी सामन्त के अनुशासन भङ्ग करने पर अथवा अशिष्ट व्यवहार करने पर सामन्त को राजा के दण्ड देने पर रुपये देने पड़ते हैं। राजा को यह भी अधिकार होता है कि सामन्त के कर्त्तव्य-पालन न करने पर वह उसके अधिकार की भूमि को जब्त करले।

राजस्थान के राजा ऐसे अवसरों पर सामन्तों के अधिकार की भूमि को वापस ले लेने की अधिक चेष्टा करते हैं और उनको पदच्युत कर देते हैं। सामन्त लोग इस प्रकार का दण्ड पाने पर भूमि छोड़ने की अपेक्षा रुपया देना अधिक पसन्द करते हैं। जब कोई सामन्त पैतृक अधिकारों पर अपनी नियुक्ति पाता है और उस दशा में जब उसकी भूमि उससे वापस ली जाती है तो वह किसी प्रकार छोड़ने के लिये तैयार नहीं होता और कभी-कभी राणा के साथ विद्रोह करके वह लड़ने के लिये तैयार हो जाता है।

जागीरदारी प्रथा की अयोग्यता—सम्पूर्ण राजस्थान में लोगों का भाग्य और दुर्भाग्य एक राजा के ऊपर निर्भर है। यदि वह अच्छा है तो राज्य की उन्नति हो सकती है और यदि वह अच्छा नहीं है तो राज्य के लाखों मनुष्यों का भाग्य पतित हो जाता है। इस प्रथा के अनुसार केवल एक ही मनुष्य लाखों मनुष्यों के भाग्य का सञ्चालन करता है। यदि वह अपने कर्त्तव्य का पालन न कर सके अथवा उसके चरित्र में निर्बलता हो तो उसके राज्य का पतन निश्चित हो जाता है। फल-स्वरूप अशान्ति, उपद्रव और अत्याचार पैदा होते हैं। इस प्रथा की यह सबसे बड़ी निर्बलता है। इस प्रथा में इस प्रकार की अनेक त्रुटियाँ हैं। इसके द्वारा कभी कोई राज्य अपनी उन्नति नहीं कर सका। जो कमजोरियाँ राजस्थान के राज्यों में इन प्रथा के सम्बन्ध की पायी जाती हैं; वही योरप के राज्यों में भी रही हैं।

मेवाड़ में चन्दावत और शक्तावत बहुत समय तक एक दूसरे के शत्रु बने रहे। उनके बैर विरोध के कारण राणा की शक्तियाँ दुर्बल होती गयीं। उन पर राणा का आतंक काम न कर सका। दोनों ही वंशों के सरदार समय समय पर राणा की आज्ञाओं का उलङ्घन कर देते थे। इन दोनों वंशों की आपसी शत्रुता के कारण राणा निर्बल होता गया और वह बाहरी शत्रुओं का सामना कर सकने में असफल रहा।

जिस समय मुग़ल-सम्राट जहाँगीर ने मेवाड़ की प्राचीन राजधानी चित्तौर पर अधिकार कर लिया था और राणा को वहाँ से भाग जाना पड़ा था, उस समय राणा ने सब सामन्तों को एकत्रित करके परामर्श किया। युद्ध में चन्दावत वंश के सरदार अपनी सेना लेकर आगे-आगे चला करते थे। वहाँ पर इस अधिकार को बहुत महानता दी जाती थी। इस अधिकार को मेवाड़ में हिरोल कहा जाता था। इसका अर्थ होता है, सेना के आगे चलने का अधिकार। यह बहुत

सम्मानपूर्ण समझा जाता है। शक्तावर सरदार युद्ध में किसी प्रकार चन्दावतों से निर्बल न थे। इसीलिये शक्तावत सरदारों ने इस सम्मान को प्राप्त करने के लिये कोशिश की।

चन्दावत सरदारों ने शक्तावतों का विरोध किया। उनका कहना था कि ये अधिकार और सम्मान सदा से हमको मिला है। इसलिए इस अधिकार को प्राप्त करने वाला कोई दूसरा नहीं हो सकता। यह विवाद दोनों वंशों के सरदारों में बढ़ने लगा और अंत में वे दोनों अपनी-अपनी तलवारें लेकर एक दूसरे पर आक्रमण कर बैठे। जब इस अधिकार का निर्णय वे स्वयं दोनों करने लगे और एक दूसरे के सर्वनाश के लिए तैयार हो गये तो राणा के सामने बड़ा असमञ्जस पैदा हुआ।

उस भयानक परिस्थिति को नियंत्रण में लाने के लिए राणा ने दोनों वंशों के सरदारों से कहा: "इस अधिकार के लिए आप लोग आपस में युद्ध न करें। हमारे सामने अन्तला नामक स्थान को अधिकार में लाने का प्रश्न है जो वंश अन्तला के दुर्ग में पहले प्रवेश कर सकेगा, वही सम्प्रदाय हीरोल प्राप्त करने का अधिकारी माना जायगा।"

राणा के इस निर्णय को दोनों वंशों के लोगों ने स्वीकार कर लिया और उसी समय दोनों के सरदार अपने-अपने सैनिकों के साथ अन्तला दुर्ग की तरफ़ रवाना हो गये। राजधानी उदयपुर से पूर्व की तरफ अन्तला दुर्ग नौ कोस की दूरी पर है। वहाँ से चित्तौर की तरफ एक पुराना रास्ता गया है। यह दुर्ग जमीन की सतह से कुछ ऊँचाई पर बना हुआ है। उसकी रक्षा के लिए पत्थर का बना हुआ उसका घेरा बहुत मजबूत है। उसके भीतर अनेक महल बने हुए हैं। दुर्ग के नीचे एक नदी प्रवाहित होती है।× दुर्ग के भीतर उसके शासक के रहने का जो महल बना है, उसकी दीवारें भी बहुत मजबूत बनी हुई हैं। इस दुर्ग में प्रवेश करने के लिए केवल एक ही द्वार है।

शक्तावत सरदारों ने बहुत तेजी के साथ दुर्ग के पास पहुँचने की चेष्टा की। वे लोग सूर्य निकलने के पहले ही वहाँ पहुँच गये। उनके पहुँचने का समाचार किसी प्रकार दुर्ग के मुसलमान सैनिकों को मिल गया। वे युद्ध के लिए तैयार होकर दुर्ग के ऊपर एक सुरक्षित स्थान पर एकत्रित हो गये।

दुर्ग में पहुँचने के लिए यद्यपि चंदावत सरदारों ने कम सावधानी से काम नहीं लिया था परन्तु वे एक दूसरे रास्ते से रवाना हुए थे। उस रास्ते का बहुत बड़ा भाग पानी से भरा हुआ था। इसलिए वे लोग उस रास्ते से लौटने लगे। संयोग से उसी समय अन्तला का रहने वाला एक गड़रिया उनको मिला। उससे उनको अन्तला पहुँचने का सही रस्ता मालूम हुआ। उसी समय चंदावत लोग बड़ी तेजी के साथ अन्तला दुर्ग की तरफ बढ़े। शक्तावतों की अपेक्षा चंदावत लोग युद्ध में अधिक कुशल थे। दुर्ग पर आक्रमण करने के लिए उनके पास अच्छे साधन थे। वे अपने साथ ऊँची और मजबूत सीढ़ियाँ भी ले गये थे।

जिस समय शक्तावत लोग दुर्ग में प्रवेश करने की चेष्टा कर रहे थे, चंदावत लोग वहाँ पहुँच गये और उन लोगों ने दुर्ग पर आक्रमण करने के लिए अपने साथ के लोगों को ललकारा। चंदावत लोगों के अधिकारी ने सीढ़ी लगाकर उस पर चढ़ना आरम्भ किया और अपने साथ के आदमियों को उसने सीढ़ी पर आने के लिए आदेश दिया। उसी समय शत्रु का एक गोला आकर

× यह दुर्ग इन दिनों में बिलकुल नष्ट हो गया है। लेकिन उस दुर्ग के ऊँची चोटी के महल और दुर्ग के कुछ हिस्से अब भी टूटी-फूटी दशा में पाये जाते हैं। उनको देखकर इस बात का अनुमान किया जा सकता है कि यह दुर्ग किसी समय बहुत मजबूत बना हुआ था।

उस पर गिरा। उसके लगते ही चन्दावतों का अधिकारी सीढ़ी से गिरते ही मर गया।

दुर्ग के नीचे से चंदावत और शक्तावत उसमें प्रवेश करने की कोशिश कर रहे थे और दुर्ग के ऊपर जो मुस्लिम सेना मौजूद थी, वह उन दोनों को असफल करने की चेष्टा कर रही थी। जिस समय चन्दावतों का नेता शत्रु के गोले से नीचे गिरा, उस समय शक्तावत अपनी पूरी शक्ति लगाकर दुर्ग के ऊपर पहुँचने के लिए प्रयास कर रहे थे। शक्तावतों का नेता अपने ऊँचे हाथी के ऊपर चढ़ गया और उसने दुर्ग के मजबूत फाटक को तोड़ने की कोशिश की। उसने अपने हाथी को आगे बढ़ाया। फाटक के मजबूत किवाड़ों में लोहे की मोटी-मोटी कीलें लगी हुई थीं। इसलिए हाथी उसके किवाड़ों को तोड़ने में सफल न हो सका। इस समय मुस्लिम सैनिकों की गोलियों से शक्तावत सैनिक बड़ी तेजी के साथ घायल हो रहे थे। इसी समय चंदावत सैनिक भीषण रूप से गरजते हुए आगे बढ़े। उस गर्जना को सुनकर शक्तावत नेता को अपनी जीत में संदेह मालूम होने लगा। वह किसी प्रकार हिरोल प्राप्त करना चाहता था। उसने अपने प्राणों का भय छोड़कर फाटक की कीलों पर अपना शरीर लगा दिया और महावत को ललकार कर हाथी को उसके शरीर पर जोर से टक्कर मारने का आदेश दिया। महावत ने यही किया। हाथी के जोरदार टक्कर से दुर्ग का फाटक टूट गया। शक्तावत नेता हाथी की ठोकर से और लोहे की मजबूत नोकीली कीलों के लगने से क्षत:विक्षत हो कर मर गया। उसके मृत शरीर पर पैर रखते हुए शक्तावत सैनिक ने दुर्ग में प्रवेश करके मुस्लिम सैनिकों का संहार करना आरम्भ किया। इस अपूर्व बलिदान के बाद भी शक्तावतों को हिरोल प्राप्त नहीं हुआ। इसलिए कि इसके पहले जिस समय चंदावत सैनिकों की भीषण गर्जना सुनायी पड़ी थी, उसी समय चंदावत सैनिकों ने अपने नेता का मृत शरीर दुर्ग के ऊपर फेंक दिया था और उसके बाद बचे हुए सभी चंदावत सैनिक दुर्ग के ऊपर पहुँच गये थे।

जिस समय गोला लगने से चंदावतों का नेता सीढ़ी से गिर कर मर गया था, उसी समय उस वंश के एक दूसरे शूरबीर सैनिक ने—जो मरे हुए नेता का निकटवर्ती आत्मीय था उसका स्थान ग्रहण किया। चंदावतों का यह नया नेता देवगढ़ का सामन्त था। वह जितना साहसी था, भीषण अवसरों पर वह उतना ही निर्भीक भी था। चन्दावत नेता के सीढ़ी से गिरते ही देवगढ़ के सामन्त ने उसके मृत शरीर को चादर में बाँध कर अपनी पीठ पर रखा और हाथ में भाला लेकर वह सीढ़ी पर चढ़ गया। दुर्ग के ऊपर जाकर उसने बड़े पराक्रम के साथ युद्ध किया और मुस्लिम सैनिकों का संहार करके उसने अपने स्वामी का शव दुर्ग के ऊपर रखा। उसी समय समस्त चंदावत सैनिकों की एक साथ आवाज हुई थी: "अन्तला दुर्ग के विजयी चंदावत—हिरोल के अधिकारी चन्दावत।" ×

वंशगत संगठन किसी भी देश और राज्य के लिए कल्याणकारी नहीं होते। इस प्रकार की

× चंदावत वंश की महाबली शाखा संगावत का एक कवि अमर मेरा मित्र था। संगावत लोग देवगढ़ के सामन्त के अधिकार में रहा करते थे। देवगढ़ का सामन्त दो हजार सैनिकों का मालिक था। संगावत अमर में अन्तला दुर्ग की विजय के सम्बन्ध में एक बड़ी अच्छी घटना मुझे सुनायी थी। उसने बताया था कि जिस समय राजपूत सेना अन्तला ने दुर्ग पर आक्रमण किया है मुस्लिम सेना के दो अधिकारी दुर्ग के भीतर जुआ खेल रहे थे। उन्होंने सुना कि दुर्ग पर राजपूतों ने आक्रमण किया है लेकिन उन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। यह समझकर कि विजय तो हम लोगों की होगी ही, वे दोनों जुआ खेलने में दत्तचित्त बने रहे। उनका ध्यान युद्ध की तरफ नहीं गया। जिस समय राजपूत दुर्ग के ऊपर पहुँच गये, तब उनका जुआ बन्द हुआ। उसी

प्रतिद्वन्दिता से सदा राज्यों का पतन हुआ है। शक्तावतों और चंदावतों के आपसी द्वेष की घटना का जो उदाहरण ऊपर दिया गया है, राजस्थान के इतिहास में यह घटना अकेली नहीं है। बल्कि सम्पूर्ण राजस्थान का इतिहास इस प्रकार की घटनाओं से भरा हुआ है। मेवाड़ का इतिहास पढ़कर कोई भी व्यक्ति यह कह सकता है कि अगर वहाँ पर शक्तावतों और चंदावत लोगों में आपस की यह प्रतिद्वन्दिता न होती तो मेवाड़ राज्य का इतने बुरे तरीके से पतन न होता, जिस तरीके से हुआ। चंदावत लोगों की अपेक्षा शक्तावत लोग संख्या में बहुत कम हैं। परन्तु वे अधिक साहसी और पराक्रमी हैं। दोनों वंश के लोग मेवाड़-राज्य के प्रमुख योद्धा थे। उनकी पारस्परिक ईर्षा ने राज्य को निर्बल बना दिया था।

यह बात सही है कि भारत के विभिन्न राज्यों में बहुत समय पहले से सामन्त शासन-प्रणाली रही है। इस प्रणाली की अच्छाइयाँ सहज ही बिगड़ जाती हैं। इस देश में जब तक यह प्रणाली सही रूप में चली और राज्य में एक केन्द्रीय शक्ति काम करती रही। उस समय तक उस राज्य का शासन कार्य उत्तम तरीके से चलता रहा। लेकिन केन्द्रीय शक्ति के शिथिल पड़ने पर अथवा सामन्तों के अनुशासन भंग करने पर सामन्त शासन-प्रणाली का मूल सिद्धान्त निर्बल पड़ जाता है। उस दशा में यह प्रणाली किसी भी राज्य के लिए कल्याणकारी साबित नहीं होती।

सामन्त शासन-प्रणाली में एक त्रुटि और भी भयानक है। जहाँ पर एक व्यक्ति का स्वेच्छाचार लाखों और करोड़ों स्त्री-पुरुषों की पराधीनता का कारण बन जाता है, वहाँ पर शासन की वह प्रणाली निश्चित रूप से किसी समय भयानक साबित होती है। इस प्रकार की एक-दो नहीं; बहुत त्रुटियाँ हैं, जो सामन्त शासन-प्रणाली अथवा जागीरदारी प्रथा को अयोग्य बनाने का कार्य करती रहती हैं।

राजस्थान के राजाओं को मुगल शासन की अधीनता स्वीकार करनी पड़ी थी, जो बहुत साधारण थी। मुगल सम्राट की दी हुई सनद के बाद अधीन राजा अपने राज्य का कार्य सञ्चालन करते थे। जितने राजाओं ने मुगलों की अधीनता स्वीकार की थी, सभी को यही करना पड़ा था। दिल्ली के सम्राट ने सभी को सनद दिये थे। सनद प्राप्त करने वाले राजाओं ने मुगल सम्राट को अपना स्वामी स्वीकार कर लिया था। सनद देने के समय सम्राट राजाओं को हाथी, घोड़ा, मूल्यवान वस्त्र और बहुमूल्य आभूषण भेंट में देकर उनका सम्मान करता था। अधीन राजा लोग सम्राट को अपने राज्य की तरफ से एक निश्चित सम्पत्ति नजराने के तौर पर दिया करते थे।

इस अधीनता के लिए सम्राट और राजाओं के बीच एक संधि-पत्र लिखा जाता था और उसके अनुसार सम्राट के बुलाने पर अधीन राजाओं को एक निर्धारित संख्या में सेना को लेकर सम्राट के यहाँ उपस्थित होना पड़ता था। मुगल सम्राट अपने प्रत्येक अधीन राजा को राजपताका, राजचिन्ह और कुछ दूसरी चीजें दिया करता था। राजा लोग उन चीजों को अपनी सेना में प्रयोग करते थे। ×अधीन राजाओं के साथ सम्राट का यह व्यवहार साबित करता है कि मुगल शासन काल में सामन्त शासन-प्रणाली इस देश में प्रचलित थी।

समय कुछ राजपूतों ने कमरे में घुसकर खेलने वाले दोनों मुस्लिम सरदारों को घेर लिया। इस दशा में भी एक मुस्लिम सरदार ने प्रार्थना की कि हमारा खेल खतम होने वाला है। परन्तु उसकी प्रार्थना पर राजपूतों ने ध्यान नहीं दिया। दोनों वंशों के नेता मारे जा चुके थे। इसलिए राजपूतों ने उन दोनों को वहीं पर मार डाला।

× सन १८७७ ईसवी में दिल्ली के दरबार में ब्रिटिश महारानी के भारतेश्वरी उपाधि

सम्राट हुमायूँ ने कई एक राजपूत राजाओं को अपना अधीन बना लिया था। परन्तु बादशाह अकबर की तरह उसको सफलता न मिली थी। शासन और राजनीति में अकबर बहुत बुद्धिमान और दूरदर्शी था। अपनी सूझ-बूझ के बल पर ही उसने लगभग समस्त राजस्थान के राजाओं को अपनी अधीनता स्वीकार करने के लिए विवश किया था। उसने हिन्दू और मुसलमानों का भेद मिटा दिया था। इस कार्य में उसे सफलता भी मिली थी और उसके व्यावहारिक कुशलता का ही यह परिणाम था कि बहुत से हिन्दू राजाओं ने उसको अपना सम्राट मान लिया था। अम्बेर राज्य दिल्ली के समीप है। उन दिनों में अम्बेर का शासन बहुत निर्बल था। अपनी निर्बलता के कारण ही और दिल्ली के निकट होने से अम्बेर के राजा को मुगल सम्राट के सामने आत्म-समर्पण करना पड़ा था। सबसे पहले अम्बेरके राजा बिहारीमलने अकबरके साथ अपनी लड़की का विवाह किया था। उसके बाद मुगल सम्राट को ब्याह में अपनी लड़की के देने की बात राजपूत राजाओं के लिए एक बहुत साधारण हो गयी। और उन राजपूत बालाओंसे कई एक मुगल सम्राटों का जन्म हुआ।

सम्राट जहाँगीर का जन्म भी एक राजपूत बाला से हुआ था। उसका बेटा खुसरु, शाहजहाँ,* कामबख्श और औरंगजेब का बेटा अकबर राजपूत राजकुमारी से पैदा हुआ था। औरंगजेब के व्यवहारों से सभी हिन्दू राजा अप्रसन्न थे। इसलिए औरंगजेब को सिंहासन से उतार कर राजपूत राजाओं ने उसके लड़के अकबर को सिंहासन पर बिठाने की चेष्टा की थी। मुगल सम्राटों का राजपूतों के साथ जो वैवाहिक सम्बन्ध शुरू हुआ था, वह अंत तक चलता रहा। जिस समय मुगलों की शक्तियाँ शिथिल हो गयी थीं, उन दिनों में भी सम्राट फर्रुखसियर ने मारवाड़ के राजा अजितसिंह की लड़की के साथ विवाह किया था। ×

जिन राजपूत राजाओं ने अपनी लड़कियाँ मुगल सम्राटों को व्याही थीं, उन राजपूत बालाओं से जो लड़के पैदा हुए, उनकी नाबालिग अवस्था में वही राजा उनके संरक्षक बने और उन दिनों में उन राजाओं ने अपने राज्यों की वृद्धि की।

बादशाह अकबर के समय मुगल साम्राज्य में अबुल-फजल के अनुसार, चार सौ सोलह सेनापति थे, जो दो सौ से दस हजार तक अश्वारोही सैनिकों पर अधिकार रखते थे और इन सेनापतियों में सैंतालीस राजपूत सेनापति थे, जिनके अधिकार वे तिरपन हजार अश्वारोही सेना थी। मुगल साम्राज्य के समस्त सेनापतियों के आधिकार में पाँच लाख तीस हजार अश्वारोही सैनिक थे। सम्राट के अधिकार में चालीस लाख पैदल सेना थी।

धारण करने की घोषणा लार्ड लिटिन ने की थी। उस समय सभी हिन्दू-मुस्लिम राजाओं को एक-एक पताका दी गयी थी। जय घोषणा के बाजे के साथ-साथ एक-एक सोने का पदक भी दिया गया था। यह प्रणाली ठीक उसी प्रकार की थी, जैसी की प्राचीन काल में सम्राट अपने अधीन राजाओं को सनद देने के समय काम में लाया करता था। ऐसा मालूम होता है कि इस दिल्ली दरबार में हिन्दुस्तान की पुरातन प्रणाली अनुकरण करके अंगरेजी सरकार ने यहाँ के राजाओं के साथ व्यवहार किया था।

* सम्राट शाहजहाँ जोधा बाई के पेट से पैदा हुआ था। आगरे के पास सिकन्दरा में जोधा बाई का प्रसिद्ध समाधि मन्दिर अब तक बना है।

× इस विवाह से अंगरेजों की शक्तियाँ हिन्दुस्तान में मजबूत हुई थीं। विवाह के दिनों में सम्राट फर्रुखसियर बीमार हो गया था। उस समय अंगरेज कम्पनी सूरत में व्यवसाय करती थी, और सूरत से जो दूत सम्राट के पास दिल्ली भेजे गये थे, उनके साथ हेमिलटन नाम का एक

सैंतालीस राजपूत सेनापतियों में सत्रह के अधिकार में एक हजार से पाँच हजार तक अश्वारोही और शेष तीस के अधिकार में पाँच सौ से एक हजार तक अश्वारोही थे। अम्बेर, मारवाड़, बीकानेर, बूँदी, जयसलमेर, बुन्देल खण्ड और सिखावत के राजा एक हजार से अधिक अश्वारोही सैनिकों के सेनापति थे। मुगलों के साथ वैवाहिक सम्बन्ध होने के कारण अम्बेर के राजा को पाँच हजार अश्वारोही सैनिकों के सेनापति होने का अधिकार मिला था।

मारवाड़ का राठौर राजा उदयसिंह एक हजार अश्वारोहियों का सेनापति था। परन्तु मारवाड़ के राजवंश की शाखा में उत्पन्न होने वाले बीकानेर के रायसिंह को केवल चालीस हजार अश्वारोहियों का सेनापतित्व मिला था। चन्देरी, करौली, दतिया के स्वतंत्र राजा और कुछ दूसरे राजा लोग तथा सिखावत के राजा नीची श्रेणी के सेनापति थे और वे चार सौ से सात सौ तक अश्वारोहियों के सेनापति थे। इन्हीं लोगों में शक्तावत वंश के लोग भी थे। जिनके अपने भाई राणा प्रताप के साथ झगड़ा करने के बाद सम्राट अकबर ने लगभग सभी राजपूत राजाओं को अपनी अधीनता में ला कर उन्हें अपने यहाँ सेनापति बना लिया था।

बादशाह अकबर ने अपनी दूरदर्शिता और राजनीति से दो लाभ उठाये। राजपूतों के साथ वैवाहिक सम्बन्ध कायम करके उसने उनको अपनी तरफ आकर्षित किया। उसके परिणाम स्वरूप राजपूतों के मनोभावों से उसके विदेशी होने का भाव दूर हो गया। दूसरा लाभ उसने यह उठाया कि जिन राजाओं की स्वाधीनता का उसने अपहरण किया, वे उसके विद्रोही होने के बजाय साम्राज्य के सेनापति बनकर सदा उसके शासन को सुदृढ़ बनाते रहे।

अकबर, जहाँगीर और शाहजहाँ ने मुगल सिंहासन पर बैठकर जिस उदार नीति का आश्रय लिया था, औरंगजेब उस नीति का अनुयायी न बन सका। बादशाह शाहजहाँ के समय तक मुगलों की जो नीति रही थी, औरंगजेब ने अपने शासन काल में उसे बिलकुल मिटा दिया और खुलकर उसने पक्षपातपूर्ण शासन आरम्भ किया, इसके फलस्वरूप हिन्दू लोग उसके विरोधी होने लगे। राजपूत राजाओं के साथ शत्रुता का भाव पैदा हुआ। इसके पहले तक देशी राजाओं की जो भावना मुगल साम्राज्य के प्रति थी, वह एक साथ तिरोहित हो गयी। समय-समय पर राजपूतों ने औरंगजेब का विरोध किया और उसके लड़के अकबर का समर्थन करके औरंगजेब को सिंहासन से उतारने की चेष्टा की। औरंगजेब की मृत्यु हो जाने के बाद फर्रूखसियर सिंहासन पर बैठा। वह अयोग्य और निर्बल था। उसके शासन काल में तैमूर के वंशजों का सुदृढ़ और अचल साम्राज्य क्षत-विक्षत हो गया।

इस समय किस प्रकार की शासन-प्रणाली राजस्थान में श्रेष्ठ मानी जा सकती है, इसकी सही कल्पना करना इस समय सम्भव नहीं है। बहुत समय से इन राज्यों में सामन्त शासन-प्रणाली रही है, उसने न जाने कितनी शताब्दियों तक सफलतापूर्वक शासन किया है। इस दशा में

डाक्टर भी था। हेमिल्टन ने सम्राट की इलाज किया और उसकी औषधियों से वह सेहत हो गया। इसके बाद विवाह हुआ अंत में सम्राट ने डाक्टर से उसके पुरस्कार का प्रश्न किया। सम्राट को उत्तर देते हुए डाक्टर ने कहा : "मेरे साथ में व्यवसाय के लिए जो अंगरेज आये हैं, उनको अपनी कोठी बनाने के लिए हुगली में थोड़ी-सी भूमि की जरूरत है।" सम्राट ने डाक्टर की बात को स्वीकार कर लिया। अंगरेजों को हुगली में कोठी बनाने के लिए आवश्यकतानुसार भूमि मिल गयी। कोठी बन जाने से अंगरेजों को रहने, व्यवसाय के माल को रखने तथा व्यापार करने के सुभीते पैदा हो गये।

आसानी के साथ इस बात का निर्णय नहीं किया जा सकता कि इन राज्यों के लिए शासन की कौन-सी प्रणाली सर्वोत्तम हो सकती है। लगभग आठ सौ वर्षों तक इस देश में मुग़लों, पठानों और बीच-बीच में थोड़ा-बहुत अन्य लोगों का शासन चला है। उनके समय में भी जो प्रणाली काम करती रही, उसमें भी बहुत कुछ आधार सामन्त शासन-प्रणाली का था।

इस देश में राजपूतों का जो शासन चल रहा था, वह आपसी प्रतिद्वन्दिता के कारण यदि निर्बल न पड़ गया होता और बाहर से आयी हुई लुटेरी जातियों के आक्रमण को उन लोगों ने यदि मुँह-तोड़ जबाब दिया होता, यदि यहाँ के राज्यों ने सामन्त शासन-प्रणाली की श्रेष्ठता को कायम रखा होता और यदि यहाँ के राज्यों के सामान्तों ने शासन-प्रणाली के अनुसार अपने कर्त्तव्यों का पालन किया होता तो यहाँ के राज्यों में प्रचलित सामन्त शासन-प्रणाली का पतन न हुआ होता।

योरप में जिस समय फ्रांस के राजा सप्तम चार्ल्स ने अपनी स्थायी सेना रखकर टेल नामक कर लगाया, उस समय उसके सामन्त विद्रोही हो उठे। इसके पहले योरप के किसी राज्य में राजा की अलग से कोई स्थायी सेना न थी। सामन्तों की सेनाओं के द्वारा राज्य के सभी काम होते थे। इसी प्रकार की परिस्थितियाँ राजस्थान के राज्यों में समय-समय पर पैदा हुईं। कोटा के राजा के द्वारा शासन की पुरानी प्रथा में परिर्वतन करने पर भयानक काण्ड पैदा हुआ था। साठ वर्ष पहले मेवाड़ के कुछ सामन्तों के विद्रोही हो जाने पर अवसरवादी जातियों ने मेवाड़ पर आक्रमण किये। उस समय मेवाड़ के राणा को अर्थ लोभी सिंधी सेना की सहायता लेनी पड़ी। उसका परिणाम राज्य के लिये और भयानक साबित हुआ। राज्य के सामन्त आपस में लड़ रहे थे। उन लोगों का विश्वास अब राणा पर न रह गया था। राज्य में कोई ऐसी शक्ति न थी जो सब को एक कर सकती। इसलिये मेवाड़ राज्य का पतन भयानक रूप से आरम्भ हुआ।

उन दिनों में मारवाड़ राज्य की दशा अच्छी चल रही थी। वहाँ के सामन्तों में ईर्षा का कोई भाव न था। इसलिये वहाँ के राजा को आक्रमणकारी जातियों की सहायता लेने की आवश्यकता न पड़ी। उन्हीं दिनों में पठानों की सेना ने मारवाड़ में प्रवेश करके बुरे तरीके से राज्य का विध्वंस किया। इस प्रकार की परिस्थितियाँ समय-समय पर यहाँ के राज्यों के सामने आयीं और उनके परिणाम स्वरूप न केवल राजस्थान के राज्य निर्बल और असमर्थ हो गये, बल्कि उनमें प्रचलित सामन्त शासन-प्रणाली क्षत-विक्षत होकर मृतप्राय हो गयी।

राजा स्वेछाचार से काम न ले और राज्य के सामन्त राजभक्त बने रहने के साथ-साथ अपने कर्त्तव्यों का पालन करें तो इतिहासकार हालम के अनुसार सामन्त शासन प्रणाली, शासन की एक अच्छी प्रणाली साबित हो सकती है। इस प्रणाली का मूल उद्देश्य देश-भक्ति अथवा राजभक्ति होना चाहिये। अधिकार पाने के बाद स्वेच्छाचार से मनुष्य का पतन होता है। यदि राजा और सामन्तों में देशभक्ति अथवा राजभक्ति की अटूट भावना न हो तो सामन्त शासन प्रणाली कभी भी अच्छी साबित न होगी।

जागीरदारी प्रथा के अनुसार राजा और सामन्तों के कर्त्तव्यों का निश्चय होता है और वे लिखे हुये राजाओं और सामन्तों के पास रहा करते हैं। राजस्थान के राज्यों में भी ऐसा ही रहा है। मारवाड़ के राजा और सामन्तों के कर्त्तव्यों के निर्णय में दोनों को महत्व दिया गया है। उसके अनुसार यदि वहाँ का राजा स्वेच्छाचार से काम लेता है अथवा सामन्तों के परामर्श की उपेक्षा करता है तो वहाँ के सामन्तों को अधिकार होता है कि वे मिलकर अपने स्वेच्छाचारी राजा के विरुद्ध विद्रोह करें और उसको सिंहासन से उतारकर किसी दूसरे को सिंहासन पर बिठावें।

राजा और सामन्तों का सबसे बड़ा कर्त्तव्य यह है कि वे एक दूसरे का सम्मान करें। राजा का कर्त्तव्य है कि वह सामन्तों को सम्मान दे और सामन्तों का कर्त्तव्य है कि वे अपने राजा के प्रति सदा राज-भक्त बने रहें। इस प्रकार राजा और सामन्त मिलकर अपने राज्य के कल्याण की बात सदा सोचें। सामन्त शासन-प्रणाली का सब से श्रेष्ठ उद्देश्य यही है।

सरदारों का संगठन—सामन्त शासन प्रणाली में राजा और सामन्तों के कर्त्तव्य जितना महत्व रखते हैं, उनसे कम महत्व राज्य के सरदारों का नहीं होता। वे सामन्तों के दरबारों के प्रमुख व्यक्ति होते हैं। उनके जीवन के कार्य सामन्तों के कार्यों के साथ बंधे रहते हैं। शिकार के लिये जाना, राज दरबार में उपस्थित होना, युद्ध स्थल में पहुँच कर युद्ध करना और शत्रुओं का संहार करना राज्य के सरदारों का मुख्य कार्य होता है। सरदार प्रमुख रूप से सामन्तों के दरबार से सम्बन्ध रखते हैं। वहाँ पर उनकी उपस्थिति अनिवार्य रूप से आवश्यक होती है। उपस्थिति न हो सकने वाले दिनों के लिये सरदारों को नियमानुसार छुट्टी लेनी पड़ती है। राज्य का बहुत बड़ा उत्तरदायित्व सरदारों पर होता है।

जहाँ राजा सामन्त लोग और सरदार अपने-अपने कर्त्तव्यों का भली प्रकार पालन करते हैं, वहाँ पर सामन्त शासन-प्रणाली कभी असफल नहीं हो सकती।

नवाँ परिच्छेद

जागीरदारी प्रथा की घटनायें—सामन्त की नियुक्ति—मेवाड़ में भूमि के अधिकारी—सामन्तों के पट्टों का समय—किसी सामन्त के विद्रोह करने पर—भूमिया राजपूत—योरप के साथ तुलना—भूमिया सामन्तों की सुविधायें—जागीरों में पैतृक अधिकार—सामन्तों की नियुक्ति में राणा की निर्बलता जागीरों का विभाजन और परिणाम—राजपूतों के स्वभाव में राजभक्ति।

इस परिच्छेद में जागीरदारी प्रथा के सम्बन्ध में उन घटनाओं और परिस्थितियों का विस्तार में उल्लेख किया जायगा, जिन पर अभी तक कुछ नहीं लिखा गया। साथ ही हम इस बात पर भी प्रकाश डालेंगे कि उनके सम्बन्ध में योरप के राज्यों में किस प्रकार की प्रथा थी और राजस्थान के राज्यों के साथ उनकी कहाँ तक समानता है।

जिन घटनाओं के सम्बन्ध में हम यहाँ पर लिखने जा रहे हैं, उनमें छै प्रमुख हैं और वे इस प्रकार हैं : (१) नजराना (२) जागीर का हस्तान्तरित होना (३) पुत्रहीन सामन्त के मरने पर उसकी जागीर का अधिकार (४) धन की सहायता (५) नाबालिग सामन्त की रक्षा (६) विवाह।

नजराना—जागीरदारी प्रथा की उपयोगिता और श्रेष्ठता नजराना पर निर्भर होती है। नजराना ही राजा की शक्ति है। सामन्त की राजभक्ति है। जिस राज्य में इसका भली प्रकार पालन होता है, उस राज्य की शासन-व्यवस्था सुचारू रूप से चलना चाहिए। इस प्रथा के अनुसार राज्य की तरफ से सामन्त को भूमि दी जाती है और उसके बदले में अपने अन्यान्य कर्त्तव्यों के पालन के साथ-साथ, सामन्त अपने राजा को एक निर्धारित नजराना देता रहता है।

यदि संयोग से किसी सामन्त की मृत्यु हो जाती है तो उसका उत्तराधिकारी राजा के सामने प्रार्थना पत्र उपस्थित करके और उतना ही नजराना देने की प्रतिज्ञा करके सामन्त का पद प्राप्त करता है ।

मेवाड़ राज्य में नियम यह है कि जब एक स्वत्वाधिकारी का अधिकार समाप्त हो जाता है तो उस जागीर पर दूसरा अधिकारी स्वीकार करना राजा के अधिकार में होता है । योरप की प्रथा के अनुसार सामन्त का पुत्र, पिता का नजराना राजा को देकर जागीर का अधिकारी हो जाता है । उसका पूर्ण वयस्क होना आवश्यक होता है । नजराना पाकर राजा उसे सामन्त का पद दे देता है । वास्तव में नजराना निर्धारित करना राजा के अधिकार में नहीं था । वह सामन्त की इच्छा पर निर्भर होता था । जिसके लिए राजा, योरप के राज्यों में सामन्त को विवश नहीं कर सकता था और वहाँ की जागीरदारी प्रथा का यही विधान भी था । लेकिन जब राजा नजराना निर्धारित करके उसकी अदायगी के लिए सामन्त को वाध्य करने लगा तो वहाँ पर भीषण असन्तोष पैदा हुआ ।

सामन्त शासन-प्रणाली में नजराना का बन्धन योरप के राज्यों में नहीं था । उसे सामन्तों की इच्छा पर छोड़ दिया गया था । नजराना निर्धारित करने का अर्थ उसे एक प्रकार का कर बना देना होता है और यह नजराना किसी कर के रूप में नहीं माना गया था । इसलिए उसके विरोध में जब असंतोष पैदा हुआ तो प्राचीन विधान का संशोधन किया गया और नजराना को निर्धारित करके उसके देने का एक नियम बना दिया गया । उसका निर्णय सामन्त का पद प्राप्त करने वाले की मर्यादा के अनुसार किया गया ।×

फ्रांस में अभिषेक हो जाने के बाद सामन्त को प्राचीन विधान के अनुसार अपने इलाके की एक वर्ष की पूरी मालगुजारी राजा को देनी पड़ती थी । यही अवस्था मेवाड़ राज्य की भी थी । सामन्त अपनी भूमि की एक वर्ष की मालगुजारी राणा को देता था । यह नियम उस राज्य में बहुत दिनों तक चलता रहा ।

मेवाड़ राज्य में जब किसी सामन्त की मृत्यु हो जाती है तो राणा उस सामन्त के स्थान पर काम करने के लिए राणा जुबती लोगों को भेजा करता है । *

जुबती लोगों का अध्यक्ष उस सामन्त के क्षेत्र में पहुँचकर राणा की तरफ से अधिकार कर लेते हैं । उस अध्यक्ष के साथ दीवानी का एक अधिकारी और कुछ सैनिक रहा करते हैं । राणा के आदमियों के द्वारा वहाँ पर अधिकार हो जाने पर जिस सामन्त की मृत्यु हो जाती है, उसका उत्तराधिकारी उस पद को प्राप्त करने के लिए राणा के पास प्रार्थना-पत्र भेजता है । उस प्रार्थना पत्र में नजराना देने की प्रतिज्ञा को साफ-साफ लिखना पड़ता है

प्रार्थना-पत्र के बाद नजराना राणा के पास पहुँच जाता है । उसके पश्चात् प्रार्थी राज दरबार में बुलाया जाता है । वह राणा के पास पहुँचकर अपने प्रार्थना-पत्र के अनुसार उस इलाके का, जिसके लिए उसने प्रार्थना पत्र भेजा है, सामन्त बनाये जाने के लिए निवेदन करता है । राणा

× अर्ल लोगों का उत्तराधिकारी, पिता का पद और उसकी जागीर को प्राप्त करने के लिए एक सौ पौण्ड देता था । बैरन लोगों का उत्तराधिकारी एक सौ मार्क और नाइट लोगों का उत्तराधिकारी एक सौ शिलिंग नजराने में देता था ।

* किसी सामन्त के मर जाने पर उसके अधिकृत क्षेत्र पर राणा का अधिकार कायम करने के लिए जो लोग जाते हैं, उनको जुबती कहा जाता है ।

उसे सनद देता है और पुरानी प्रथा के अनुसार उसका अभिषेक कार्य आरम्भ होता है। नवीन सामन्त की कमर में एक तलवार बाँधी जाती है। मेवाड़ में यह अभिषेक बड़े उत्साह के साथ मनाया जाता है। उस उत्सव में राज्य के सभी सामन्त एकत्रित होते हैं। इस अभिषेक में नजराना पाने के बाद राणा उस नवीन सामन्त को घोड़ा, दुशाला और अन्य बहुमूल्य चीजें देकर सम्मानित करता है।

जब इस अभिषेक का कार्य समाप्त हो जाता है तो जुबती लोग उस इलाके से लौटकर राजधानी में आ जाते हैं और नवीन सामन्त वहाँ का अधिकारी बन जाता है। उस दशा में वह सब से पहले अपने यहाँ के गुरुजनों का आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए उनके पास जाता है। इस के पश्चात् अभिषेक का कार्य समाप्त होता है।

अभिषेक के समय नवीन सामन्त की कमर में तलवार बाँधने का उल्लेख ऊपर किया है। अभिषेक की प्रथा का यह एक नियम है। इस नियम का पालन राजपूतों में अन्य अवसरों पर भी होता है। जब कोई राजपूत बालक अस्त्र धारण करने योग्य हो जाता है, उस समय इसी प्रकार उसकी कमर में तलवार बाँध कर इस नियम का पालन किया जाता है और उत्सव मनाया जाता है। उस उत्सव का उद्देश्य यह होता है कि आज से यह राजपूत बालक अस्त्र धारण करने का अधिकारी समझा जाता है। राजपूतों में इस नियम को खड्गबन्धी प्रथा के नाम से पुकारा जाता है।

यह प्रथा राजपूतों का एक वीरोचित कार्य है। इस प्रकार के उत्सव के द्वारा राजपूत लोग अपनी संतान में शौर्य का सञ्चार करते हैं। प्राचीन जर्मन लोगों में इसी प्रकार की प्रथा थी। वयस्क अवस्था में प्रवेश करते ही उनके बालक भाला धारण करते थे। रोम के नवयुवकों में इसी प्रकार की प्रथा बहुत पहले पायी जाती थी। उनके बालकों को अस्त्रों से विभूषित किया जाता था।

मेवाड़-राज्य में नजराना देने की प्रथा बहुत पहले से चली आ रही है। लेकिन राज्य के पतन के दिनों में उसके बहुत से सामन्तों ने नजराना देना बंद कर दिया था। उन दिनों में राणा की शक्तियाँ क्षीण हो गयी थीं। राज्य पर बाहरी आक्रमण लगातार हो रहे थे और आक्रमणकारियों के साथ संधि कर के राणा ने अपना खाजना खाली कर दिया था। उन्हीं दिनों में कुछ सामन्तों ने नजराना देना बन्द किया। इसके फलस्वरूप वहाँ की मूल प्रणाली में परिवर्तन हो गया और नजराना की प्रथा अनुचित समझी जाने लगी।

जागीर का हस्तान्तरित होना—जागीरदारी प्रथा में जब किसी सामन्त को राज्य की ओर से एक जागीर मिल जाती है तो उसके हस्तान्तरित होने का कोई नियम उसके विधान में नहीं है। अपनी जागीर को सामंत न तो बेच सकता है और न किसी दूसरे को वह दे सकता है। सामन्त को इस प्रकार का साधारण परिस्थितियों में कोई अधिकार नहीं है। धार्मिक बातों में सामन्त को इसके लिए कुछ अधिकार दिये गये हैं। परन्तु उस अधिकार में भी वह स्वतंत्र नहीं है। उसको राजा की आज्ञा लेनी पड़ती है। यदि राजा आदेश नहीं देता तो धार्मिक मामलों में भी अपने अधिकार को हस्तान्तरित करने का उसे कोई हक नहीं होता।

देवगढ़ के सामन्त ने राणा की आज्ञा के बिना और अपने सरदारों से बिना परामर्श किये किसी समय अपनी जागीर के अधिकार को दूसरे के नाम कर दिया था। उसके ऐसा करने पर राणा ने उसके अधिकार का सम्पूर्ण इलाका उससे छीन लिया और जब देवगढ़ के सामन्त ने अपने यहाँ पहले की व्यवस्था फिर से कायम कर ली तो राणा की तरफ से उसकी भूमि उसको फिर वापस दे दी गयी।

जो लोग खेती का काम करते हैं, वे रुपये देकर राज्य से अपने खेतों का पट्टा लिखा

लेते हैं और वे उसके अधिकारी बन जाते हैं। पट्टा हो जाने के बाद राजा केवल उनसे निर्धारित कर वसूल कर सकता है।

पुत्रहीन सामन्त के मरने पर उसकी जागीर का अधिकार—जिन सामन्तों को राज्य की तरफ के इलाका मिलता है, जागीरदारी प्रथा के विधान के अनुसार उनका उस पर अधिकार होता है और उनकी मृत्यु के बाद उनके उत्तराधिकारी उसके अधिकारी माने जाते हैं। लेकिन दत्तक पुत्रों का उस पर कोई अधिकार नहीं होता। इस लिए जब कोई सामन्त पुत्रहीन रह कर मरता है तो उसकी भूमि को राणा अपने अधिकार में ले लेता है। मेवाड़ राज्य की यह पुरानी प्रथा है और राणा को अनेक अवसरों पर ऐसा करना पड़ा है।

सामन्त के किसी प्रकार अपराध करने पर भी राणा को उसकी भूमि वापस लेने का अधिकार है। अपराध के अनुसार सामन्त को दण्ड दिया जाता है और उसके लिए उसके अधिकार की पूरी भूमि अथवा सम्पूर्ण भूमि उससे ले ली जाती है। प्राचीन काल में इसी प्रकार का नियम योरप के राज्यों में भी था।

मारवाड़ में आजकल लगभग सभी प्रथम श्रेणी के सामन्त अपना राज्य छोड़कर दूसरे राज्यों में निर्वासित देखे जाते हैं। अपने राजा के तरफ से निकाले गये हैं। ईदर के राजा ने भी अपने सामन्तों के साथ ऐसा ही किया होता, यदि बम्बई के गवर्नर एलफिन्स्टन ने उसका विरोध न किया होता।

जो राजपूत अपने परिश्रम, त्याग और पुरुषार्थ से राज्य का उपकार करते हैं, राणा की तरफ से उनको जीवन भर अधिकार में रखने के लिए राज्य की भूमि दी जाती है। जिस प्रथा के द्वारा मेवाड़ राज्य में ऐसा होता है, उसका नाम चारुत्तर है। अर्थात् यह नियम चारुत्तर प्रथा के नाम से प्रसिद्ध है। जिसको इस प्रकार की भूमि दी जाती है, उसके मर जाने के बाद राणा उस भूमि पर अधिकार कर लेता है। जिन लोगों को इस प्रकार की भूमि इस अधिकार के साथ दी जाती है कि उनकी मृत्यु के बाद, उनकी संतान अधिकारिणी होगी, ऐसे लोगों की भूमि को, बिना किसी विशेष कारण के वापस नहीं लिया जाता। भूमि के अधिकारी की मृत्यु हो जाने पर उसके उत्तराधिकारी का हक होता है।

आर्थिक सहायता— राज्य में कितने ही ऐसे अवसर ही आते हैं, जब राजा को धन की आवश्यकता होती है। इस प्रकार के अवसरों पर राजा साधारण प्रजा से उसकी आय का दसवाँ भाग लेने का अधिकारी होता है। अपने-अपने क्षेत्रों में सामन्त लोग भी ऐसा ही करते हैं।

इस प्रकार के अवसरों में राजा की लड़की का विवाह भी एक है। उसके व्यय के लिए साधारण प्रजा से सहायता ली जाती है। कई वर्ष पहले राणा की दो लड़कियों और एक लड़के का विवाह हुआ था। उन विवाहों के खर्च के लिये राणा ने सर्व साधारण से उनकी आय का छठा भाग वसूल किया था। लेकिन प्रायः देखा जाता है कि ऐसे अवसरों पर सभी लोगों से धन एकत्रित नहीं हो पाता और अंत में राज्य के बहुत से लोग उससे छूट जाते हैं।

ऐसे अवसरों पर निर्धन और धनी-सभी प्रकार के लोगों से धन संग्रह किया जाता है। वैवाहिक कार्यों से सम्बन्ध रखने वाले अवसर प्रजा के सामने बार-बार नहीं आते, अथवा बहुत देर में आते हैं। इसीलिये प्रजा इच्छापूर्वक उसके लिये तैयार रहती है।

प्राचीन काल में सामन्त शासन-प्रणाली का जो विधान था, वह आज से अनेक बातों में भिन्न था। प्रसिद्ध इतिहासकार हालम ने लिखा है कि प्राचीन काल में किसी प्रकार का कर नहीं

लिया जाता था। आवश्यकता के समय राजा लोग धन एकत्रित कर लिया करते थे। परन्तु प्राचीन काल का वह विधान अब मिट गया है और राजा सामन्तों से कर लेने लगा है।

राजाओं की तरह सामन्त लोग भी अपनी लड़कियों के विवाहों में प्रजा से धन लेकर व्यय करते हैं। प्रजा को ऐसे अवसरों पर आर्थिक सहायता देनी पड़ती है। लड़कियों के विवाह में आर्थिक सहायता करना प्राय: लोग परमार्थ समझते हैं। फ्रांस की प्राचीन सामन्त शासन-प्रणाली में भी इसी प्रकार के नियम धन संग्रह करने के लिये काम में लाये जाते थे।

धन संग्रह करने के अवसर और भी कितने ही राज्य के सामने आते थे। युद्ध के लिये भी धन संग्रह किया जाता है। शत्रुओं के आक्रमण करने पर अथवा संधि करके रुपये देने पर प्रजा से धन एकत्रित किया जाता है, शत्रुओं के द्वारा बंदी हो जाने पर, दण्ड स्वरूप धन देकर छुटकारा पाने के लिये राज्य में धन संग्रह किया जाता है। राजस्थान के राज्यों में ऐसे अवसर बार-बार आते थे, जब राज्य के सामन्त शत्रुओं के द्वारा बंदी हो जाते थे और उनके छुटकारे के लिए धन एकत्रित किया जाता था।

जागीरदारी प्रथा का यह नियम प्राचीन काल में कदाचित योरप के राज्यों में न था, नहीं तो इङ्गलैंड के राजा रिचर्ड को बहुत दिनों तक बन्दी अवस्था में आस्ट्रिया में न रहना पड़ता।

नाबालिग़ सामन्त का संरक्षण—किसी सामन्त की मृत्यु के बाद जब उसका उत्तराधिकारी नाबालिग़ होता है तो सामन्त शासन-प्रणाली के विधान के अनुसार उस नाबालिग़ को अधिकारी घोषित कर दिया जाता है। परन्तु उसकी नाबालिग़ी में राणा को रक्षा का प्रबन्ध करना पड़ता है और उसके बालिग़ हो जाने पर राणा अपना प्रबन्ध वापस ले लेता है।

नाबालिग़ सामन्त की रक्षा के लिये जो प्रबन्ध राणा को करना पड़ता है, वह कभी-कभी बुरे परिणाम लेकर सामने आता है। ऐसे अवसरों पर राणा उन लोगों को नाबालिग़ का संरक्षक बना देता हैं, जो लोग उसके निकटवर्ती सम्बन्धी होते हैं। ऐसे लोगों के संरक्षक बनने से मेवाड़ में कभी कल्याण होता हुआ नहीं देखा गया। प्राय: जाति और वंश के लोग या तो किसी ईर्षा के कारण अथवा अपने छिपे हुये किसी स्वार्थ के कारण नाबालिग़ सामन्त का हित साधन करने में सफल नहीं होते।

ऐसे अवसरों पर योरप के राज्यों में भी यही होता था। यद्यपि ऐसे मौकों पर किसी निकटवर्ती व्यक्ति का खोजना ही आवश्यक मालूम होता है। परन्तु उसका परिणाम कहीं पर भी अच्छा साबित नहीं हुआ। मेवाड़ राज्य में राणा ने ऐसे अवसरों पर जब कभी इस प्रकार की व्यवस्था की है तो उसके लिए बाद में उसे पश्चात्ताप करना पड़ा है।

इस दशा में जब कोई सामन्त नाबालिग़ होता है तो उसका प्रबन्ध राणा को अपने हाथों में लेना पड़ता है। यद्यपि अपने नाबालिग़ बच्चे के लिये माता आमतौर पर स्वाभाविक रूप से संरक्षक मानी जाती है। कोई भी दूसरे अपने अलग से स्वार्थ रख सकते हैं। परन्तु अपने पुत्र से भिन्न माता का कोई स्वार्थ नहीं हो सकता। इसीलिए माता को नाबालिग़ बच्चे का संरक्षक मानना ही सर्वथा उचित होता है। इसलिये ऐसे अवसरों पर उस नाबालिग़ की रक्षा का भार माता को सौंप देने से कभी किसी प्रकार की अवान्छनीय परिस्थिति नहीं उत्पन्न हो सकती।

विवाह—प्रत्येक सामन्त वैवाहिक कार्यों के सम्बन्ध में अपने राजा के साथ परामर्श करता है। ऐसा करना राजा के प्रति उसकी शिष्टता और सद्भावना का परिचय देता है। उसके लिए यह कोई बन्धन नहीं है लेकिन कर्त्तव्य पालन के नाम पर आवश्यक है। राजा का इससे प्रभुत्व बढ़ता है और इस प्रकार की शिष्टता के प्रदर्शन से सामन्त की मर्यादा का विस्तार होता है। इस

प्रकार के अवसरों के परामर्श पर राजा सामन्त के सम्मान में मूल्यवान वस्तुयें भेंट में देता है।

कोई राजपूत अपने वंश की लड़की के साथ विवाह नहीं कर सकता। इसी प्रकार का नियम नार्मन लोगों में भी था। नार्मन लोग भी अपने वंश की लड़की के साथ विवाह नहीं करते थे इसके साथ-साथ उन लोगों में शत्रु के साथ वैवाहिक सम्बन्ध जोड़ने का नियम न था। विवाह के इन नियमों का प्रचार सबसे पहले नार्मन लोगों में हुआ।

सामन्त का समय—राज्य की तरफ से जो लोग भूमि पाते हैं, जागीरदारी प्रथा में उनके लिए क्या नियम हैं और उनकी भूमि की व्यवस्था, उस प्रथा में किस प्रकार होती है, उसको यहां पर स्पष्ट करना हमारा उद्देश्य है। प्राचीन काल की शासन-प्रणाली जागीरदारी प्रथा की थी और सर्वत्र एक से मौलिक सिद्धान्तों को लेकर बहुत समय तक चलती रही। समय और परिस्थितियों के अनुसार उसमें परिवर्तन हुये और शासन के विभिन्न नामों से समय-समय पर उसे सम्बोधन किया गया। जिसे आज डेमोक्रेसी अथवा प्रजातन्त्र शासन कहा जाता है, यह इसी सामन्त शासन-प्रणाली का संशोधित और परिवर्तित रूप है।

मेवाड़ राज्य में दो प्रकार के भूमि के अधिकारी राजपूत थे। इन दोनों में पहला, दूसरे की अपेक्षा संख्या में अधिक था। पहला है ग्रास्य ठाकुर अर्थात् स्वामी और दूसरा भूमिया। ग्रास्य सामन्त वह कहलाता है जो राजा को पट्टा लिखकर भूमि का अधिकारी होता है और उसके लिए अपने घर पर रह कर वह राज्य के काम आता है। उसकी सेवायें राज्य के भीतर और बाहर सर्वत्र मानी जाती हैं। उसका पट्टा स्थायी नहीं होता। एक निश्चित समय के बाद वह फिर लिखा जाता है और पुराना रद्द कर दिया जाता है। इसके लिए ग्रास्य ठाकुर अथवा सामन्त को निर्धारित नियमों का पालन करना पड़ता है और राजा को नजराना देना पड़ता है।

भूमिया सामन्त को इसी प्रकार पट्टा पर भूमि मिलती है। लेकिन उसके पट्टे के नियम दूसरे होते हैं, उसका पट्टा बिना किसी कारण के रद्द नहीं होता और उसे नया नहीं कराना पड़ता। भूमिया अपने पट्टे का दीर्घकाल तक प्रयोग करता है। उसके लिए उसे कोई नजराना नहीं देना पड़ता है। लेकिन उसका साधारण किराया वार्षिक उसे अदा करना पड़ता है। इसके साथ ही उसको आवश्यकता पड़ने पर राज्य में या बाहर निश्चित समय के लिए काम करना पड़ता है। मेवाड़ राज्य में ये भूमिया राजपूत ठीक उसी प्रकार के सामन्त पाये जाते हैं, जिस प्रकार के योरप के राज्यों में बिना किसी शर्त के भूमि के अधिकारी सामन्त होते थे। परसिया में इस प्रकार के सामन्तों को जमीदार कहा जाता था। उन जमीदारों और मेवाड़ के भूमिया राजपूतों में कोई अन्तर नहीं है।

ग्रास्य—यह शब्द ग्रास से बना है। इस शब्द की उत्पत्ति केल्टिक भाषा के ग्वास शब्द से मालूम होती है। केल्टिक भाषा में ग्वास का अर्थ नौकर अथवा दास होता है। हमारा यह अनुमान कहां तक सही है, हम ठीक नहीं कह सकते। किसी शब्द की उत्पत्ति का उत्तरदायित्व उस विषय के अधिकारियों पर हो सकता है और उन्हीं पर मैं इसका निर्णय छोड़कर आगे लिखना चाहता हूं। जो अधिकारी हैं, इस शब्द के सम्बन्ध में अपना निर्णय करते रहेंगे और जो लोग शब्दों के विवाद में पड़ना चाहते हैं, वे उनके निर्णय का लाभ उठावेंगे।

परिवर्तनशील—जो सामन्त मेवाड़ राज्य में बहुत दिनों से भूमि के अधिकारी रहे हैं, उनकी भूमि पर अपनी इच्छा से अथवा किसी कारण के पैदा होने पर राणा अपना अधिकार कर सकता है अथवा नहीं, यह प्रश्न सदा से विवादपूर्ण रहा है।

प्राचीनकाल में योरप के राज्यों में शासन की जो प्रणाली प्रचलित थी, उसके विधान के

अनुसार वहाँ पर सामन्त लोग अपने जीवन-भर मिली हुई भूमि के अधिकारी रहते थे और वहाँ का नियम आज भी वैसा ही है। किसी सामन्त की मृत्यु के बाद उसका अधिकृत क्षेत्र राजा के अधिकार में आ जाता है। योरप की यह प्रणाली अनेक अंशों में मेवाड़ की प्रथा से भिन्न है। यहाँ पर जिस सामन्त को सनद देकर भूमि दी जाती है, उसका निर्णय उसकी सनद अथवा उसके पट्टे में ही कर दिया जाता है। इस प्रकार का निर्णय मेवाड़ में प्रचलित विधान के अनुसार होता है।

मेवाड़-राज्य में किसी सामन्त के मरने पर उसका उत्तराधिकारी राणा के सम्मान में नजराना देकर और राणा के द्वारा अभिषिक्त होकर सामन्त होने का पद प्राप्त करता है। इसका साफ अर्थ यह है कि मृत सामन्त के उत्तराधिकारी को उसके स्थान पर स्वीकार करना और न करना राणा के अधिकार में है। परन्तु मेवाड़ के राणा उत्तराधिकारियों को सदा से स्वीकार करते चले आ रहे हैं। इसलिए उनका यह अधिकार प्रयोग में न लाये जाने के कारण विवादपूर्ण बन गया है।

इसके सम्बन्ध में अनुसंधान करने के बाद स्वीकार करना पड़ता है कि मृत सामन्त के उत्तराधिकारी की प्रार्थना को स्वीकार करना और न करना राणा के अधिकार में रहा है। राणा संग्रामसिंह के शासनकाल में इस प्रकार की परिस्थितियाँ उत्पन्न हुई थीं और उस समय भी उत्तराधिकारियों को स्वीकार किया गया था। लेकिन लगभग दो शताब्दी से यह प्रथा मेवाड़ में बन्द हो गई है। इसके पहले सामन्तों का अधिकृत राज्य, निर्धारित समय के पश्चात् मेवाड़ के राणा किसी दूसरे सामन्त को दे देता था और वह सामन्त जिसकी सनद का निर्धारित समय खतम हो जाता था, अपना परिवार लेकर पशुओं और नौकरों के साथ चुप्पान × की जंगली भूमि में रहने के लिए चला जाता था।

इन्हीं परिस्थितियों में कितने ही शक्तावत सामन्त अरावली के पहाड़ी स्थानों में जाकर रहने लगे थे और चंदावत सामन्त चम्बल नदी के निकटवर्ती स्थानों को छोड़कर मेवाड़ के पूर्व सीमा के निकट पहाड़ी स्थानों में रहने के लिये चले गये थे। उन दिनों में सामन्त का पट्टा एक निश्चित् समय के लिए होता था। उस समय के बीत जाने पर न केवल सामन्त का पट्टा रद्द हो जाता था, बल्कि सामन्त राज्य के उस क्षेत्र को छोड़कर किसी दूरवर्ती स्थान पर अथवा दूसरे राज्य में रहनेके लिए चला जाता था और वहाँ पर भूमि देकर उसे सामन्त स्वीकार कर लिया जाता था।

उन दिनों में सामन्तों के पट्टे आम तौर पर तीन वर्ष के लिए स्वीकार किये जाते थे। उसके बाद उनको किसी नये स्थान में भेज दिया जाता था और वहाँ पर पहुँचकर वे सामन्त बना लिये जाते थे। सभी सामन्त इन नियमों के साथ बँधे हुए थे। किसी को राज्य की इस व्यवस्था पर असंतोष करने का मौका न था।

सामन्त के पट्टे को एक निश्चित समय के लिए निर्धारित कर देना और उसके बाद उस सामन्त को किसी नये स्थान में भेजकर सामन्त बनाने की नीति मेवाड़ राज्य में कुछ विशेष अर्थ रखती थी। इसका सम्बन्ध राजनीति के साथ है। किसी एक ही स्थान पर अधिक समय तक सामन्त वहाँ के स्त्री-पुरुषों पर अपना एकाधिकार स्थापित कर लेता है। इसका वह किसी समय दुरुपयोग कर सकता है और राणा के विरुद्ध उसके विद्रोह करने पर वहाँ की प्रजा राणा के विरुद्ध

× मेवाड़ और गुजरात के बीच का एक पहाड़ी और जंगली देश है। वह मेवाड़ के दक्षिण-पश्चिम में है। उसी देश को चुप्पान कहा जाता है।

तलवार उठा सकती है। अपनी प्रजा के साथ इस उत्पन्न होने वाली अवांछनीय परिस्थिति को बचाने के लिए मेवाड़-राज्य के राणाओं ने इस प्रकार की नीति का आश्रय लिया था। राणा की इस राजनीतिक सूझ को हमें स्वीकार करना चाहिए।

एक निर्धारित समय के पश्चात् सामन्त के परिवर्तन की प्रथा जब तक मेवाड़ राज्य में प्रचलित रही, उस समय तक राज्य का कोई भी सामन्त राणा के साथ विद्रोह करने का साहस न कर सका। परिवर्तन की उस प्रथा ने राणा और सामन्त के सम्बन्ध को अटूट बना दिया था। राज्य पर आयी हुई विपदाओं के समय सभी सामन्त शत्रुओं के आक्रमण का जवाब देने में अपनी कोई शक्ति उठा न रखते थे और राज्य की रक्षा में शत्रुओं से लड़ते हुए बलिदान हो जाने में अपना गौरव समझते थे।

मेवाड़ की इस परिवर्तनशील प्रथा का—जिसमें सामन्त अपनी भूमि का स्थायी रूप से पट्टा पाते थे—समर्थन करते हुए विद्वान इतिहासकार गिबन लिखता है : "प्राचीन काल में इसी प्रकार की प्रथा का प्रचार फ्रांस में भी था। सामन्तों को जो भूमि दी जाती थी, उसका एक निश्चित समय रहता था।" जागीरदारी प्रथा का अनुसंधान करते हुए प्राचीन इतिहासकार काङ्कटेस्की ने भी इसी प्रथा का उल्लेख किया है, जिसका समर्थन गिबन ने अपने ग्रंथ में किया है।

सामन्तों को भूमि देने के सम्बन्ध में तीन प्रकार के नियम प्रचलित हैं। (१) मियादी सामन्त, (२) चिरस्थायी सामन्त और (३) वंशगत सामन्त।

किसी सामन्त की मृत्यु हो जाने के पश्चात्, उसके पुत्र प्रपौत्र उत्तराधिकारी होकर क्रम से उस जागीर का अधिकार प्राप्त करते हैं। लेकिन उनके इस अधिकार की स्वीकृति राणा पर निर्भर है। वह उनको अनधिकारी घोषित कर सकता है। जागीरदारी प्रथा का यह नियम बहुत पुराना है।

राणा के सामन्तों में राठौर, चौहान, प्रमार, सोलंकी और भट्ट आदि सभी राजवंशों के लोग थे। सब के साथ राणा के वैवाहिक कार्य होते थे। इन सम्बन्धों ने उन सबके बीच के भेद-भाव मिटा दिये थे। राठौर और चौहान सामन्तों के वंश दिल्ली और अनहिलवाड़ा नगर से सम्बन्ध रखते हैं। उन वंशों की लड़कियाँ विवाहित होकर राणा के वंश में आती हैं। राणा वंश के सामन्त भी, राणा का अनुकरण करके अपने लड़कों के विवाह उन्हीं राजपूत वंशों में करते हैं, जिनके साथ राणा के विवाह सम्बन्ध होते हैं।

वैवाहिक सम्बन्धों के कारण राजपूतों के कई एक वंशों में पारस्परिक स्नेह की वृद्धि हुई है। इन सम्बन्धों के फलस्वरूप मेवाड़ पर आने वाली विपदाओं में दूसरे वंश के राजपूतों ने न केवल सहानुभूति प्रकट की है, बल्कि आवश्यकता पड़ने पर उन लोगों ने सभी प्रकार के उत्सर्ग किये हैं।

मेवाड़ की एकता और मित्रता बहुत दिनों तक शक्ति-सम्पन्न होकर रही। लेकिन समय का प्रहार होने पर छिन्न-भिन्न हो गयी और उस एकता के टुकड़े-टुकड़े होते ही आक्रमणकारी लोगों को अत्याचार करने और लूटने का अवसर मिला। संगठित मराठा दलों ने मेवाड़ मे क्या नहीं किया? दिल्ली के मुगल सम्राट की शक्तियाँ जब तक मजबूत बनी रहीं, मराठों के अत्याचार नहीं हुए और न उनको मेवाड़ के विध्वंस करने का अवसर मिला।

मेवाड़-राज्य का पतन और मुगलों की शक्तियों का विनाश लगभग एक साथ हुआ। उन्हीं दिनों में मेवाड़ पर संगठित जातियों के आक्रमण आरम्भ हुए और उसके प्राचीन गौरव को बड़ी निर्दयता के साथ छिन्न-भिन्न करके राज्य की मर्यादा को मिट्टी में मिला दिया।

राजपूतों के विभिन्न वंशों ने जब मेवाड़-राज्य की जागीरदारी का आश्रय लिया और सामन्त

होने के पश्चात् उन लोगों ने अपने वैवाहिक सम्बन्ध राणा वंश के साथ कायम किये, उन दिनों में राणा ने जिन विभिन्न जागीरों की स्वीकृतियाँ दीं, उन पर हम नीचे प्रकाश डालने की चेष्टा करेंगे।

काला पट्टा—यह पहले लिखा जा चुका है कि राणा रायमल और उदयसिंह के वंशजों ने जो प्रधान राजपूत शाखायें कायम की थीं, उनके वंशजों ने अन्यान्य राजपूतों की उप शाखायें पैदा की और उन शाखाओं तथा उपशाखाओं में जो पैदा हुए, वे मेवाड़ के श्रेष्ठ सामन्तों और सरदारों में माने गये।

चंदावत और शक्तावत राजपूतों की दो प्रधान शाखायें हैं। चंदावत दस और शक्तावत छै शाखाओं में विभाजित हैं। राजपूतों में प्रचलित प्रणाली के अनुसार वे अपने वंश वालों की लड़कियों के साथ विवाह करने के अधिकारी नहीं हैं। इन शाखाओं और उप-शाखाओं में जितने भी राजपूत विभाजित हैं, वे सभी सीसोदिया कुल के नाम से विख्यात हैं। इस कुल का लडका, इस कुल की लड़की के साथ विवाह नहीं कर सकता, यह निश्चित है।

मेवाड़ की जागीरों पर जो प्रभाव सीसोदिया वंश के राजपूतों का है, वह राठौरों, प्रमारों और चौहानों का नहीं है, यद्यपि ये सभी मेवाड़ के सामन्त हैं और बहुत दिनों से इस राज्य की जागीरों के अधिकारी होते चले आये हैं। इनका प्रभाव निर्बल है, इसका कारण है। सीसोदिया वंश के सभी सामन्त राणा वंश के साथ सम्पर्क रखते हैं। इसीलिए उनके अधिकार श्रेष्ठ माने जाते हैं। सीसोदिया सामन्तों की जागीरें यद्यपि स्थायी पट्टों के अनुसार नहीं हैं, फिर भी उनका अधिकार स्थायी रूप से चला करता है। प्रमार, चौहान और राठौर सामन्तों के साथ ऐसा नहीं है। उनको यह कहने का अधिकार नहीं है कि जागीरों पर हमारा स्वत्व स्थायी हो गया है। सीसोदिया सामन्तों के अतिरिक्त प्रमार, राठौर और चौहान आदि वंश के सामन्तों को जो पट्टा दिया जाता है, वह काला पट्टा के नाम से प्रसिद्ध है। जिनको इस प्रकार का पट्टा प्राप्त होता है, वे स्वयं कहा करते हैं, हम काला पट्टा धारी हैं।

काला पट्टा का अर्थ यह है कि उसके अनुसार जो भूमि अथवा जागीर किसी सामन्त को दी गयी है, वह राणा के द्वारा कभी किसी समय पर वापस ली जा सकती है। लेकिन यह परिस्थिति सीसोदिया सामन्तों की नहीं है। अन्य वंश वालों की अपेक्षा सीसोदिया वंशी सामन्तों को सुविधायें भी अधिक प्राप्त हैं।

राणा भीमसिंह के समय मेवाड़ की अवस्था बहुत शोचनीय हो गयी थी। कितने ही सामन्तों ने पट्टे में मिली हुई जागीर के अतिरिक्त राज्य के स्थानों पर अधिकार कर लिया था। इस अराजकता को मिटाने के लिए आवश्यक समझा गया कि सभी सामन्तों को बुलाकर नये पट्टे दिये जायं और इन नवीन पट्टों पर राणा भीमसिंह के हस्ताक्षर हों। इसके पहले के सभी पट्टे रद्द कर दिये जाँय।

इसके लिए राणा का प्रधान मंत्री चंदावतों के सरदार शालुम्बा के सामन्त के पास गया और उसने पट्टा दिखाने के लिए उससे प्रार्थना की। उसने राणा को निर्बल समझकर राज्य के अनेक अच्छे ग्रामों पर अधिकार कर रखा था। इसलिए प्रधान मंत्री की प्रार्थना को सुनकर उसने उत्तर दिया : "मेरा पट्टा राणा के महल की नीव में है।"

राणा के प्रति उसके एक सामन्त का यह उत्तर कितने बड़े विद्रोह से भरा हुआ है, इसका सहज ही अनुमान किया जा सकता है। इसी प्रकार का उत्तर अर्लवारेन ने इसी प्रकार की परिस्थिति में इंगलैण्ड के एडवर्ड के प्रतिनिधि को देते हुए कहा था : "मेरे पूर्वजों ने तलवार के बल से इस

[मि पर अधिकार किया था और मैं भी अपनी तलवार के बल से इस भूमि की रक्षा करूंगा।

ऊपर हमने जिस पट्टे का उल्लेख किया है, जागीरदारी प्रथा के पुराने विधान के साथ सका सम्बन्ध है। अब नये नियमों के अनुसार अपने जीवन-भर के लिए सामन्त लोग जागीर का ट्टा पाते हैं। किसी भी विधान में दत्तक पुत्र को उत्तराधिकारी होना स्वीकार नहीं किया गया। किन नये नियमों में सामन्त राणा परामर्श लेकर यदि किसी बालक को गोद लेता है तो वह बालक [मि अथवा जागीर का उत्तराधिकारी मान लिया जाता है।

सामन्त के जीवन की कुछ ऐसी परिस्थितियाँ भी हैं, जिनके कारण उसकी जागीर पर ाणा अधिकार कर सकता है। इसके लिए सामन्त का कोई अपराध होना चाहिए। अनुशासन भंग रना, किसी अवसर पर अपने कर्त्तव्य का पालन न करना अथवा राणा के विरुद्ध विद्रोह करना, स प्रकार के किसी भी अपराध में सामन्त की जागीर राणा के द्वारा वापस ली जा सकती है।

राणा के परामर्श के अनुसार गोद लिए बालकों को उत्तराधिकारी मान लेने पर जब उनकी ार्थनायें राणा के सामने आती हैं तो उनके अभिषेक के समय सामन्त प्रणाली के साधारण नियम योग में लाये जाते हैं। उत्तराधिकारी को नजराना देना पड़ता है। उसके पश्चात् राणा उसका ट्टा स्वीकार करता है।

कुछ परिस्थितियों में, जिनका ऊपर वर्णन किया गया है, राणा को अधिकार है कि वह किसी सामन्त को पदच्युत कर दे और उसके अधिकार की जागीर को उससे वापस ले ले। परन्तु इस अधिकार को प्रयोग में लाना राणा के लिए साधारण कार्य नहीं होता। उसके सामने भीषण विपदायें पैदा होती हैं और उसे भयानक संकटों का सामना करना पड़ता है। इसीलिए अधिकार रखते हुए भी राणा ऐसा करने का सहज ही साहस नहीं करता है।

सामन्त लोग दो प्रकार के मिलते हैं। कुछ तो राणा के अंशगत हैं और दूसरे राजपूतों के अन्य वंशों और उनकी शाखाओं से सम्बन्ध रखते हैं। किसी सामन्त को पदच्युत करने पर राणा का सार्वजनिक विरोध होता है और सभी सामन्त राणा के साथ विद्रोह करने के लिए तैयार हो जाते हैं।

इस प्रकार के विघ्नों को बचाने के लिए, जब कोई सामन्त अक्षम्य अपराध करता है तो राणा उसको पदच्युत करके उसी वंश के किसी राजपूत को उसकी जागीर पर स्वीकार कर लेता है।

भूमिया——मेवाड़ के इतिहास में लिखा गया है कि प्राचीन काल में राणा के वंशज भूमिया नाम से प्रसिद्ध थे और राज्य में वे विशेष रूप से सम्मान पाते थे। उनकी मर्यादा बादशाह बाबर और राणा संग्रामसिंह के समय तक बराबर कायम रही। उनकी मर्यादा में उस समय तक कोई अन्तर नहीं पड़ा। सीसोदिया राजपूतों के वंशज होने के कारण उनको यह मर्यादा प्राप्त हुई थी। उनकी इसी मर्यादा के कारण उनको भूमिया पद प्राप्त करने का अवसर मिला था।

इस राज्य में जिनके ऊपर युद्ध का उत्तरदायित्व था, उनमें यही भूमिया लोग प्रमुख माने जाते थे। उनका भूमिया नाम स्वयं उनकी श्रेष्ठता का परिचय देता था। मुस्लिम काल में राज्य के ये लोग जमीदार नाम से पुकारे गये। यद्यपि जमीदार और भूमिया के शाब्दिक अर्थों में कोई अन्तर नहीं है। फिर भी उन दिनों में लोग भूमिया पद को अधिक महत्व देते थे। प्राचीनकाल में भूमिया लोगों का ही राज्य में प्रभुत्व था और वे राज्य के अधिकांश भाग में शासन करते थे। भूमिया लोग कमलमीर और मण्डलगढ़ के मैदानों में विशेष रूप से रहा करते थे। उनके नियंत्रण में कृषि कार्य होता था।

कृषिकार्य भूमिया लोगों के पूर्वजों का कार्य था। इस व्यवसाय में रहकर भी उन्होंने

कभी अपनी युद्ध कला को नहीं छोड़ा। वे सदा तलवार, भाला और धनुष बाण धारण करते थे। कृषिकार्य में रहकर भी वे स्वाभिमानी लड़ाकू लोगों में माने जाते थे।

भूमिया लोगों के पूर्वजों और उनकी आज की संतानों के जीवन में बहुत अन्तर पड़ गया है। पूर्वजों को अपेक्षा वे आज अधिक शिक्षित और सभ्य हो गए हैं। राजपूतों में जो लोग उनसे कम मर्यादा रखते थे, उनकी लड़कियों के साथ इनके विवाह कार्य होते थे और आज तक होते हैं।

इन भूमिया लोगों में सभी प्रकार के लोग हैं। उनकी जागीरें बराबर नहीं हैं। कुछ लोग तो इतनी छोटी जागीर रखते हैं कि उनके अधिकार में एक ग्राम से अधिक नहीं आता। अपनी जागीर के लिए वे लोग राणा को बहुत कम कर देते हैं। आवश्यकता पड़ने पर राज्य की तरफ से सैनिक होकर उनको युद्ध के लिये जाना पड़ता है। युद्ध के दिनों में उनके खाने-पीने का खर्च राणा की तरफ से किया जाता है। भूमिया होने के साथ-साथ ये लोग राज्य की प्रजा में गिने जाते हैं और युद्ध के दिनों में वे राज्य के सैनिक समझे जाते हैं। युद्ध के सभी अस्त्र-शस्त्र रखने के वे अधिकारी हैं। अपने साधारण जीवन में, वे युद्ध के सभी अस्त्रों को प्रयोग में लाया करते हैं।

मेवाड़ के इन भूमिया लोगों की बहुत सी बातें योरप के भूमि के अधिकारियों के साथ मिलती हैं।× भूमिया राजपूत मेवाड़ के अश्वारोही सैनिक हैं। वे किसी शत्रु के आक्रमण करने पर बड़ी-से-बड़ी संख्या में युद्ध के लिए तैयार होकर राजधानी में आ जाते हैं। मेवाड़ में मंडलगढ़ एक विशाल प्रान्त है। उसमें तीन सौ साठ नगरों और ग्रामों की संख्या है। प्राचीन काल में मंडलगढ़ सोलंकी राजपूतों के अधिकार में था। वही लोग अधिक संख्या में इस राज्य में रहते भी थे।

जब मेवाड़ राज्य पर कोई बाहरी शक्ति आकर आक्रमण करती है तो उसके साथ युद्ध करने के लिए राणा युद्ध की घोषणा करता है। उस घोषणा को सुनते ही प्रत्येक भूमिया राजपूत को अपना घर छोड़कर युद्ध के लिए चला जाना पड़ता है। इस सैनिक कार्य के लिए राज्य की तरफ से उनको किसी प्रकार का वेतन नहीं दिया जाता। इस दशा में भूमिया राजपूतों का कहना है कि राणा को हम लोगों से भूमि का कोई भी कर न लेना चाहिए। उनका यह भी कहना है कि कर के नाम पर जो कुछ हम राणा को देते हैं, राणा उसके लेने का अधिकारी नहीं है।

भूमिया राजपूत राज्य की जितनी भूमि पर अधिकार कर लेते हैं, उसके लिए वे लोग राणा से कोई पट्टा मंजूर नहीं करवाते। बिना पट्टा के भूमि के अधिकारी बनने में वे लोग अपना गौरव समझते हैं। अपने अधिकार की भूमि के सम्बन्ध में भूमिया राजपूत बड़े स्वाभिमान के साथ कहा करते हैं : "यह मेरी भूमि है और हम इसके स्वामी हैं।"

प्राचीन काल में भूमिया राजपूत बनने के लिए बड़े-बड़े प्रयत्न करने पड़ते थे और उसके बाद भी अक्सर सफलता नहीं मिलती थी। देवला के राठौर सरदार ने बनेड़ा के राजा से पट्टा मंजूर कराके कुछ ग्रामों पर अधिकार कर लिया था। उस अधिकार के बदले राठौर सरदार राजा को

× मेवाड़ के भूमिया लोगों के साथ योरप के भूमि अधिकारियों की तुलना करते हुए इतिहासकार हालम ने लिखा है : जागीरदारी प्रथा में भूमि के ये अधिकारी लोग शांति के दिनों में अपने घर पर रहकर जीवन व्यतीत करते हैं और आवश्यकता पड़ने पर उनको राज्य की सेना में पहुंच जाना पड़ता है। इससे वे इनकार नहीं कर सकते, परन्तु वे लोग अपने अधिकार की भूमि के बदले में राजा को किसी प्रकार का कर नहीं देते। भूमिया लोगों के साथ राज्य के जो नियम चलते हैं, वे सभी राज्यों में समान रूप से नहीं माने जाते। मेवाड़ में उनके उत्तराधिकारियों को स्वीकार किया जाता है, परन्तु कच्छ में ऐसा नहीं है। उनके स्वत्वों की मर्यादा अलग-अलग मानी जाती है।

निर्धारित कर दिया करता था। जागीरदारी प्रथा के अनुसार राठौर सरदार को राजा के दरबार में उपस्थित रहना चाहिए। लेकिन इस नियम के पालन में उसने अत्यन्त शिथिलता से काम लिया। पट्टा के अनुसार किसी भी युद्ध के समय सरदार को पैंतीस सवार देने चाहिए थे। जब उस प्रकार का समय उपस्थित हुआ तो वह सरदार इस नियम का भी पालन न कर सका। उन दिनों में बनेड़ा का राजा युद्ध में फँसा हुआ था। जब युद्ध समाप्त हुआ तो उसने राठौर सरदार को अपने यहाँ बुलाकर कहा : "तुम्हारा जो पट्टा स्वीकार किया गया था, उसे तुम लौटा दो।"

सरदार ने उस समय कुछ न कहा और वहाँ से लौट कर उसने राजा के पास संदेश भेजा : "मेरा मस्तक और देवला की जागीर एक साथ है। जागीर को मेरे मस्तक से और मस्तक को इस जागीर से अलग नहीं किया जा सकता।"

इस अभिमान के कारण राठौर सरदार के अधिकार की भूमि छीन ली गयी। सरदार के नियम विरुद्ध कार्यों के कारण उसका पट्टा रद्द कर दिया गया।

भूमिया राजपूतों का पद सामन्त शासन-प्रणाली में इतना सम्मानपूर्ण माना जाता है कि उस पद के लिए प्रधान श्रेणी के सामन्त भी चेष्टा किया करते हैं। इसकी सब से बड़ी विशेषता यह है कि इसके लिए कोई पट्टा नहीं होता और सभी सामन्तों में इस प्रकार के अधिकारी को अनेक बाधाओं से मुक्त समझा जाता है।

बनेड़ा और शाहपुर के राजा—मेवाड़ राज्य में बनेड़ा और शाहपुर के सामन्त स्वतंत्र रूप के राजा माने जाते हैं। उन दिनों सामन्तों को राजा की उपाधियाँ मिली हैं। ये दोनों राजा, राणा के वंश के हैं। बनेड़ा का राजा राणा जयसिंह के वंश में और शाहपुर का राजा राणा उदयसिंह के वंश में उत्पन्न हुआ है। इन दोनों राज्यों की एक-सी व्यवस्था है। यदि इन राज्य का राजा मर जाता है तो उसका उत्तराधिकारी राणा से सनद अथवा पट्टा प्राप्त कर लेता है। नियमानुसार उसका अभिषेक कार्य होता है और राणा धन और बहुमूल्य वस्त्र उसे भेंट में देता है।

सामन्त शासन-प्रणाली को यहाँ भली भाँति समझ लेने की आवश्यकता है। जिस प्रकार एक राज्य छोटे और बड़े बहुत-से राजाओं में विभाजित होता है और वे सभी राजा एक प्रधान राजा की अधीनता में कार्य करते हैं। वह प्रधान छोटे-बड़े समस्त राजाओं की केन्द्रीय शक्ति है। उसके और अधीन राजाओं के बीच का एक विधान होता है। उसी विधान के अनुसार राज्य का शासन चलता है। ठीक यही अवस्था राजा और सामन्तों के बीच की है।

छोटे बड़े—सभी सामन्त एक राजा की अधीनता में कार्य करते हैं। इन सामन्तों की एक जागीर होती है। वह छोटी-से-छोटी हो सकती है और बड़ी-से-बड़ी हो सकती है। ये सभी सामन्त राज्याधिकारी होते हैं। परन्तु वे सभी एक बड़े राजा के नियंत्रण में काम करते हैं। राजा और सामन्तों के बीच एक निर्धारित विधान कार्य करता है। जागीरदारी प्रथा का यही शासन है। शासन के इस प्रणाली की उत्पत्ति बहुत प्राचीन काल में हुई थी और वह फैलकर संसार के सभी देशों में पहुँच गयी थी। यहाँ पर यह लिखना अतिशयोक्ति नहीं है कि प्राचीन काल में शासन की यही प्रणाली काम करती थी। यह प्रणाली किसी एक देश से दूसरे में पहुँची थी, जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है और फिर उसके बाद समय और सुविधाओं के अनुसार अलग-अलग देशों में विकसित हुई थी। सामन्त शासन-प्रणाली अथवा जागीरदारी प्रथा इसके सिवा और कुछ नहीं है। शासन की इस प्रथा के सम्बन्ध में सभी बातें यथा सम्भव विस्तार के साथ इन पृष्ठों में हम लिखने की चेष्टा कर रहे हैं और आवश्यकतानुसार, अन्य देशों की शासन-प्रणाली के साथ उसकी तुलनात्मक आलोचना करने का भी हम यथासाध्य प्रयास कर रहे हैं।

बनेड़ा और शाहपुर के राजा यद्यपि मेवाड़ के श्रेष्ठ सामन्तों में से थे, परंतु वे अन्य सामन्तों की अपेक्षा कितने ही नियमों में स्वतन्त्र माने जाते थे। दूसरे सामन्तों की तरह उनके राज्य के किसी अभिषेक में राणा के दरबार में नियमानुसार आना पड़ता है। ये दोनों राज्य अपने निकटवर्ती जिले में होने वाले राणा के किसी कार्य में भाग लेने के लिए नियमबद्ध हैं।

सामन्त शासन-प्रणाली के अनुसार जो नियम सामन्तों को पालन करने पड़ते हैं, उनमें से कुछ का पालन बनेड़ा और शाहपुर के दोनों राजाओं के लिए आवश्यक हैं। लेकिन इधर बहुत दिनों से ये दोनों राजा अपने कर्त्तव्य पालन में बहुत शिथिल पाये जाते हैं। मेवाड़ राज्य की शक्तियाँ बाहरी आक्रमणों के कारण जिस प्रकार शिथिल होती जाती हैं, उनका प्रभाव राज्य से अन्य सामन्तों के साथ-साथ, इन दोनों राज्यों पर भी पड़ रहा है, ऐसा होना स्वाभाविक है।

दिल्ली मुगल शासकों की राजधानी है। अजमेर मुगलों की आधीनता में है। बनेड़ा और शाहपुर अजमेर के निकटवर्ती हैं। इस दशा में मुगलों का प्रभाव इन दोनों राज्यों पर पड़ना स्वाभाविक है। इतने निकट रह कर शक्तिशाली मुगलों के विरुद्ध बना रहना इन दोनों के लिए सम्भव नहीं था। इस दशा में इन दोनों का खिंचाव दिल्ली की तरफ हुआ। वहाँ से इनको राजा की उपाधियाँ मिलीं। शाहपुर के राजा ने मुगलों की मेहरबानी का कुछ और भी लाभ उठाया।

पट्टा—राणा की ओर से सामन्तों को जो भूमि अथवा जागीर दी जाती है, उसकी लिखा-पढ़ी पट्टा के नाम पर होती है। इसी पट्टा को राणा की सनद के नाम से भी लिखा गया है। यों तो सामन्त शासन-प्रणाली का एक विधान होता है और प्रत्येक सामन्त को राजा के साथ-साथ उस विधान का पालन करना पड़ता है। फिर भी, प्रत्येक पट्टा में राणा और सामन्त के बीच निर्धारित होने वाली बातें लिखी जाती हैं। इस शासन-व्यवस्था में सर्वत्र लगभग यही होता है और मेवाड़-राज्य में भी बहुत प्राचीन काल से यही होता चला आया है।

राजस्थान के अन्य राज्यों के मुकाबले में मेवाड़ राज्य शासन की नीति में सदा आगे रहा है, और इसीलिए राजस्थान में यह राज्य सदा श्रेष्ठ माना गया है। परन्तु बाहरी आक्रमणों के दिनों से मेवाड़ का राजनीतिक पतन आरम्भ हुआ और फिर इस राज्य की परिस्थितियाँ लगातार शिथिल होती गयीं। इसी शिथिलता के फलस्वरूप मेवाड़ के राणा की राजनीतिक नीति निर्बल पड़ गयी। उस निर्बलता में राणा ने अपने आपको शक्तिहीन बनाने का कार्य किया।

पतन के इन दिनों में राणा की शक्तियाँ इस योग्य भी न रह गयीं कि वे सामन्तों को नियमानुसार चलाने के लिए काफ़ी होतीं। अभिषेक में नये आने वाले सामन्तों ने उसकी इस निर्बलता का लाभ उठाया। अपनी दुरवस्था में राणा ने मिलने वाले नजराना पर ही संतोष करना आरम्भ किया। उसके इस संतोष का प्रभाव और भी बुरा पड़ा। हुआ यह कि इन दिनों में सामन्तों के जो पट्टे लिखे गये और स्वीकार किये गये, उनमें विधान के अनुसार सभी नियमों की पाबन्दी नहीं करायी गयी और राणा उतने ही नियमों पर संतुष्ट हो गया, जितने नियमों को नवीन सामन्त ने स्वीकार किया।

इस प्रकार की परिस्थितियों में नये सामन्तों के अभिषेक निर्बल पड़ते गये। कुछ पट्टे तो ऐसे भी लिखे गये, जिनमें नजराने का भी कोई उल्लेख न था। इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि राणा ने कुछ सामन्तों को नजराने से भी मुक्त कर दिया था। इसी प्रकार विधान के और भी नियम हैं, जिनका पालन नये पट्टों में ठीक-ठीक न होने लगा। इस प्रकार नियम और विधान के विरुद्ध चलने से राणा की शक्तियाँ क्षीण पड़ गयीं और सामन्त लोग मनमानी करने लगे। सिक्का चलाने का जो

अधिकार सामन्तों को न था, उसका भी दुरुपयोग हुआ। कुछ इस प्रकार की बातों के कारण राणा की जो आर्थिक आय होती थी, वह भी नष्ट हो गयी।

राज्य के प्रधान सामन्त अपनी व्यवस्था में राजा का अनुकरण करते हैं। जिस प्रकार मंत्री से लेकर पनवाडी तक राजा के यहाँ कर्मचारी रहते हैं, उसी प्रकार प्रधान सामन्तों के यहां भी मंत्री से लेकर छोटे-छोटे कर्मचारी पाये जाते हैं। राजा की तरह उनके भी महल होते हैं और पूजा करने के लिए राजा की भाँति उन सामन्तों के अपने-अपने मंदिर होते हैं। राजा का अनुकरण करके जिस प्रकार श्रेष्ठ सामन्त दौरीशाला में प्रवेश करते हैं, गाने-बजाने वाले तुरंत खड़े होकर सामन्तों का अभिवादन करते हैं और उनकी जै-जैकार करते हैं।

सामन्त के सिंहासन पर बैठ जाने के बाद सभी लोग अपनी-अपनी मर्यादा के अनुसार वहाँ पर बैठते हैं। सब से पहले सामन्त के स्वास्थ्य के लिए ईश्वर से प्रार्थना की जाती है। बैठे हुए लोगों की ढालें जब परस्पर टकराती हैं तो उनके आघात से उठने वाली आवाज सामन्त के राज-दरबार में गूंज उठती है।

राजपूत—योरप के राज्यों की तरह मेवाड़ में सामन्तों के द्वारा राजा का हाथ चुम्बन करने अथवा राज्य-भक्ति प्रदर्शित करने के लिए शपथ ग्रहण करने की प्रथा नहीं है। बल्कि जब कोई सामन्त नियुक्त किया जाता है तो राजा के प्रति अपनी श्रद्धा प्रकट करने के लिए उसका यह कहना अथवा लिखना ही काफ़ी होता है : "मैं आपका बालक हूँ। मेरा सिर और मेरी तलवार आपकी है और मेरी सेवायें आपके आदेश पर निर्भर हैं।" राजपूतों के प्रति विश्वासघात की कल्पना नही की जा सकती। उनके त्याग और बलिदान की घटनायें अगणित हैं। उनमें से कुछ इन पृष्ठों में लिखी गयी हैं। राजपूतों के जीवन में अराजकता की भावना नहीं है। उनका सम्पूर्ण इतिहास राजभक्ति और देशभक्ति से भरा हुआ है। राजपूत जिन ग्रंथों का अध्ययन करते हैं, उनमें राजभक्ति को बहुत अधिक प्रोत्साहन दिया गया है। कवि चंद ने स्वयं अपने प्रसिद्ध काव्य ग्रन्थ में राजभक्ति की श्रेष्ठता का अद्‌भुत वर्णन किया है। स्वाधीनता, राजभक्ति और वीरता, राजपूतों का गौरव होकर रही है। राजपूतों को राजभक्ति की शिक्षा शैशवकाल से ही मिलती है। प्रत्येक राजपूत के जीवन में सबसे पहले राजभक्ति की भावना है, उसके बाद उसके जीवन का दूसरा सुख है। सामन्त जिस प्रकार अपनी राजभक्ति का परिचय अपने राजा को देते हैं। उनके सरदार उसी भावना से प्रेरित होकर अपना व्यवहार सामन्तों के प्रति प्रकट करते हैं।

राजपूतों के साथ किसी दूसरी जाति की तुलना नहीं की जा सकती। इन राजपूतों ने भीषण दुर्भाग्य और अत्याचारों में अनेक शताब्दियों अपने जीवन को व्यतीत की हैं। परन्तु उनकी स्वाधीनता और स्वाभिमान की भावना में आज तक कोई अन्तर नहीं पड़ा। राजपूतों ने अपना सब कुछ खोया है परन्तु अपने स्वाभिमान को नष्ट नहीं होने दिया। उनको अपना सम्मान बहुत प्रिय है। अपमान को अनुभव करने की उनमें अद्‌भुत शक्ति पायी जाती है जहाँ तक सम्मान का प्रश्न है, उसकी रक्षा के लिए आज भी एक राजपूत जीवन की छोटी-मोटी भूलों में युद्ध का एक मोर्चा कायम कर देता है और प्राण लेने और देने के लिए तैयार हो जाता है। एक राजपूत का यह चरित्र है, जो अनादि काल से उसके साथ चला आ रहा है।

संसार में बड़े-से-बड़े परिवर्तन हुए। न जाने कितनी जातियाँ मिट गयी और न जाने कितनी जातियाँ नयी उत्पन्न हो गयीं। स्वभाव और चरित्र के भयानक परिवर्तन इस संसार में देखने को मिले। परंतु राजपूतों के जीवन का कोई भी परिवर्तन आज तक आँखों के सामने नहीं आया। इस जाति के लोग हजारों वर्ष पहले जैसे थे, आज भी उनकी संतानें हजारों वर्षों के बाद

वैसी ही हैं। राजपूत राजवंश की एक जाति है, जिसकी शाखाओं और उपशाखाओं ने थोड़े से राजपूतों को लाखों और करोड़ों की संख्या में पहुँचा दिया है। राजवंश के नाम पर राजपूत शब्द उनके साथ रह गया है। राज्यों के स्थान पर उनके जीवन की विवशता और दरिद्रता, उनके साथ रह गयी है। लेकिन उनके चरित्र की स्वतंत्र प्रियता में कोई अन्तर नहीं आया। एक राजपूत अपने सम्मान की रक्षा में आज भी जिस प्रकार अपने प्राणों को बलिदान करने के लिए तैयार हो जाता है, उसको देखकर इस बात का अनुमान किया जा सकता है कि प्राचीन काल में स्वाभिमान की भावना ने इनके अन्तरात्माओं में कितनी गहराई तक प्रवेश किया था।

मेवाड़ में जितनी भी बड़ी-बड़ी जागीरें हैं, उनका अधिकारी प्रत्येक श्रेष्ठ सामन्त अपने बेटों और भाइयों की व्यवस्था अपनी मर्यादा के अनुसार करता है। जिस जागीर की वार्षिक मालगुजारी साठ हजार से अस्सी हजार रुपये तक होती है, उस जागीर के अधिकारी का दूसरा भाई तीन हजार से पाँच हजार रुपये वार्षिक मालगुजारी का इलाका पाने का अधिकारी होता है। यह उसका बपौता है अर्थात् उसका पैतृक अधिकार है। इसके सिवा वह अपने राजा के यहाँ अथवा बाहर कोई भी कार्य कर सकता है। उससे जो छोटे भाई होते हैं, उनको भी जागीर में निर्धारित भाग मिलता है। इसी प्रकार का निर्णय सामन्तों के पुत्रों के लिए होता है। सब से पहले बड़ा बेटा अधिकारी होता है। लेकिन उससे जो छोटे बेटे होते हैं, उनके भी निर्धारित भाग होते हैं। उनके इन अधिकारों को न कोई बदल सकता है और न कम कर सकता है।

जागीर में भाइयों और बेटों के जो पैतृक अधिकार होते हैं, उनका क्रम पुत्रों के साथ प्रपौत्रों में बराबर चला जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि विभाजन होते-होते एक दिन किसी अच्छी जागीर के भी सैकड़ों और हजारों टुकड़े हो जाते हैं और उस जागीर का महत्व नष्ट हो जाता है।

चरसा—चरसा शब्द का अर्थ चर्म होता है। भूमि की नाप के लिए इस चरसा शब्द का प्रयोग किया जाता है। अंग्रेजी में इसको हाइड कहते हैं। एक अश्वारोही सैनिक के भरण-पोषण और सैनिक जीवन व्यतीत करने के लिये जितनी भूमि उसे दी जाती है, मेवाड़ में उसकी नाप चरसा के नाम पर की जाती है। जागीरदारी प्रथा के अनुसार, नीची श्रेणी के सैनिक मेवाड़ में जितनी भूमि पाते हैं, इंगलैण्ड में भी उस श्रेणी के सैनिक को उतनी ही भूमि इस प्रथा के अनुसार मिलती है। राजस्थान में भूमि की नाप में चरसा शब्द प्रयोग किया जाता है और इंगलैण्ड में हाइड के द्वारा भूमि की नाप होती है। दोनों का अर्थ एक ही है। दोनों का उपयोग भी एक ही अर्थ में होता है।

इंगलैण्ड में ऐङ्गलो सेक्शन शासन का आरम्भ भूमि की इसी नाप के द्वारा हुआ था। मेवाड़ में एक चरसा भूमि एक अश्वारोही सैनिक को दिये जाने का नियम है। इंगलैण्ड में नाइट उपाधि के फौजी आदमी को चार हाइड भूमि देने का नियम था। इस भूमि का परिणाम चालीस एकड़ के बराबर है। मेवाड़ में एक चरसा भूमि का अर्थ पच्चीस से तीस बीघा तक का होता है।

एक सामन्त के नाम जितनी भूमि का पट्टा होता है, वह भूमि उसके परिवार में पैतृक अधिकारों के नाम पर विभाजित होती होती किसी समय इतनी छोटी रह जाती है कि उससे एक छोटे से परिवार का भी जीवन-निर्वाह कठिन हो जाता है। पैतृक अधिकार का यह नियम जागीरदारी प्रथा में महत्व रखता है परन्तु जागीर की रक्षा के लिए वह किसी प्रकार महत्वपूर्ण नहीं माना जा सकता।

राजपूतों के सगे भाइयों और परिवार के लोगों में जो प्राय: संघर्ष पैदा होते हैं, उनका कारण यही पैतृक अधिकार है। यह अधिकार सुनने में बड़ा अच्छा मालूम होता है। लेकिन इसका परिणाम भयानक होता है। पैतृक अधिकारों ने अधिक संख्या में राजपूतों को न केवल अकर्मण्य बना दिया है, बल्कि बाप-दादों और सगे भाइयों का सर्वनाश करने के लिए अनेक अवसरों पर प्रोत्साहन देता है।

इस पैतृक अधिकार के दुष्परिणामों को प्राचीनकाल के फ्राँसीसी लोग जानते थे। इसीलिये अपने यहाँ की सामन्त शासन-प्रणाली के विधान में उन लोगों ने इस अधिकार को स्थान नहीं दिया था। वहाँ पर ऐसा कोई नियम नहीं है, जिसके अनुसार किसी सामन्त की जागीर अथवा भूमि उसके क्रमश: उत्तराधिकारियों में बाँटी जा सके। सामन्त का बड़ा लड़का ही केवल उसका उत्तराधिकारी होता है। × उत्तराधिकारियों में जागीर के बाँटने का प्रश्न बहुत भयानक है और न बाँटने की अवस्था में सामन्त के भाइयों और बेटों के लिए क्या होना चाहिए, इसका निर्णय भी आसानी के साथ नहीं किया जा सकता। जागीर में पैतृक अधिकार होने के कारण सामन्त के परिवार का कोई भी एक-चाहे वह भाई हो अथवा बेटा-सहज ही अपना अधिकार चाहता है। इसी अधिकार के नाम पर फ्रांस में फिरोज का प्रश्न पैदा हुआ था और उस समय वहाँ के अधिकारियों ने सामन्त के परिवार के सम्मान और जागीर के अविभाजन पर एक निर्णय कर लिया था। इसी प्रकार की व्यवस्था इंगलैण्ड में प्रथम एडवर्ड के शासन काल में हुई थी। उस समय फ्रांस और इंगलैण्ड में विभाजन को सीमित बनाकर यह निश्चय कर लिया गया था कि इस निर्णय के विरुद्ध यदि किसी जागीर में किया गया तो वह जागीर जब्त कर ली जायगी।

जागीर के विभाजन के सम्बन्ध में इस प्रकार का नियम होना अत्यन्त आवश्यक है। जो व्यवस्था हो, उसका उद्देश्य होना चाहिए कि न तो उत्तराधिकारियों के अधिकारों की अवहेलना की जाय और न जागीर को छिन्न-भिन्न होने दिया जाय। इसके लिए क्या होना चाहिए, यह प्रश्न तो अधिकारियों के निर्णय से सम्बन्ध रखता है। यदि जागीर का विभाजन सीमित कर दिया जाय तो उसके द्वारा राष्ट्र के हितों की बहुत कुछ रक्षा हो सकती है।

जागीर के विभाजन की प्रथा ने इस देश के राजपूतों को मटियामेट कर दिया है। भीषण संघर्षों की उत्पत्ति हुई है और आपस के द्वेष भावों ने भयानक रूप से उनका सर्वनाश किया है। जागीरों के विभाजन के कारण कच्छ और काठियावाड़ में राजपूतों का भयानक पतन हुआ है। उनमें मुकदमें बाजी की वृद्धि हुई है और उसके फलस्वरूप, अपराधों और अत्याचारों को लज्जापूर्ण सृष्टि करके वे अपने सर्वनाश के स्वयं कारण बन गये है। जहाँ पर जागीरों का विभाजन सीमित कर दिया गया है, वहाँ पर बहुत लाभ हुआ है और उत्तराधिकारियों के साथ-साथ जागीरें सुरक्षित हो गयी हैं। मेवाड़ में जागीरों का विभाजन उत्तराधिकार की प्रथा के कारण कितना अधिक हुआ है और अब भी हो रहा है, उसे लिख सकने में हम असमर्थ हैं। अपनी खोज में हम इस निष्कर्ष में पहुँचे हैं कि जागीरों के विभाजन और लड़कियों के विवाहों में दहेज की प्रथा के कारण राजपूतों में शिशु हत्या की सृष्टि हुई हैं।

× अन्य देशों की तरह इंगलैण्ड में भी सामन्त शासन-प्रणाली के द्वारा शासन चलता था। सामन्तों को उन्हीं तरीकों से वहाँ भी भूमि दी जाती थी, जिन तरीकों से दूसरे देश के राज्यों में। परंतु इंगलैण्ड के प्रथम एडवर्ड ने यह नियम बना दिया था कि किसी सामन्त की जागीर उत्तराधिकारियों में बाँटी नहीं जा सकती।

दसवाँ परिच्छेद

राजस्थान में कर-भूमिया सामन्तों की स्वतंत्रता-गुलामी की प्रथा में योरप और राजस्थान-भूमि के निर्बल अधिकारी-गुलामों की जातियाँ-जर्मनी और राजस्थान में जुआ का प्रचार-बसी लोगों की गणना-राजपूतों का चरित्र-उनमें कृतज्ञता की भावना-बदला लेने की प्रवृत्ति !

रखवाली—सामन्त शासन-प्रणाली में पूर्वी और पश्चिमी राज्यों के जो नियम एक, दूसरे के साथ बहुत कुछ समानता रखते हैं, उन पर हम इस परिच्छेद में प्रकाश डालने की कोशिश करेंगे । बढ़ती हुई अशान्ति, अरक्षा और अराजकता में प्रजा के धन और प्राणों की रक्षा करने के लिए जिस प्रकार के कर को जन्म दिया गया, वह रखवाली के नाम से प्रसिद्ध हुआ । इसी प्रकार की अशान्ति और अरक्षा के दिनों में योरप के राज्यों में सैलवामेन्टा नाम का कर लगाया गया था । रखवाली का अर्थ रक्षा करना है । यह कर राजस्थान के राज्यों में थोड़ा-बहुत हमेशा रहा है । परन्तु पिछले पचास वर्षों से यह कर भयानक हो उठा है ।

रक्षा की आवश्यकता होने पर इस कर की सृष्टि हुई । आवश्यकता पर संरक्षक खोजे गये अथवा वे अवसर देखकर स्वयं पैदा हो गये । जिन लोगों ने रक्षा करने का कार्य किया, उनको उसका मूल्य अदा किया गया । यह अदायगी कई तरीकों से की गयी । उस रक्षा का मूल्य अधिकतर सम्पत्ति के द्वारा किया गया और कभी-कभी खेतों की पैदावार से उस रक्षा की कीमत चुकाई गयी । अनेक अवसरों पर रक्षा करने वालों ने बिना किसी नियम और व्यवस्था के भूमि पर अधिकार कर लिया और मनमाना उसका लाभ उठाया ।

जिन लोगों ने रक्षा करने का व्यवसाय आरम्भ किया, उनका मुख्य उद्देश्य भूमि पर अधिकार करना रहा । भूमिया सामन्तों की तुलना हम योरप के उन सामन्तों के साथ कर चुके हैं, जो किसी प्रकार का कर अपने राजा को न देते थे । वे सामन्त जिस भूमि पर अधिकार पा जाते थे, उसके वे सदा के लिए स्वामी बन जाते थे, और उसमें फिर किसी प्रकार का कोई संशोधन और परिवर्तन नहीं होता था ।

अरक्षित अवस्था में प्रथा ने जिन लोगों का आश्रय ग्रहण किया, उन्होंने प्रजा की रक्षा करके अपनी रक्षा के मूल्य में प्रजा के भूमिया स्वत्व पर अधिकार करना आरम्भ किया । यह पहले लिखा जा चुका है कि राज्य की कुछ भूमि, जो सामन्तों को नहीं दी जाती थी, वह मेवाड़ में राणा के अधिकार में रहती थी । बाहरी अत्याचारों के दिनों में जब राणा की शक्तियाँ बहुत निर्बल पड़ गयी थीं, उन दिनों में राणा की आश्रित प्रजा के सामने अधिक संकट उपस्थित हो गये थे । प्रजा को अपने समीपवर्ती सामन्त का आश्रय लेना पड़ा । उस रक्षा के बदले में प्रजा को अपने संरक्षक की दासता स्वीकार करनी पड़ी । जिन लोगों ने अपनी अरक्षित अवस्था में सहायता प्राप्त की, उनको वर्ष में कई-कई महीने सामन्तों के यहाँ जाकर खेती का कार्य करना पड़ा । यह अवस्था मेवाड़-राज्य में अपने आप फैली और उसके कारण प्रजा के सामने भीषण संकट पैदा हो गये । सन् १८१८ ईसवी में राणा के साथ राज्य के सामन्तों ने जो नयी संधि की, उससे राज्य की यह दुरवस्था दूर हुई ।

योरप के देशों में बहुत समय तक गुलामी की प्रथा चली है । उन दिनों में वहाँ पर जिस प्रकार के गुलाम पाये जाते थे, उनकी बहुत कुछ अवस्था यहाँ के राज्यों के उन लोगों से मिलती

मुलती है, जो अपनी अरक्षित अवस्था में सामन्तों की सहायता खरीदा करते थे और उसका मूल्य चुकाने के स्थान पर वर्ष में कुछ दिनों तक उनके यहाँ रहकर उनकी खेती का काम किया करते थे। इन लोगों की परिस्थितियाँ बहुत-कुछ योरप के गुलामों के तरह की थीं। यद्यपि दोनों को एक सा गुलाम नहीं कहा जा सकता। परन्तु दोनों की दासता विवशता के अनेक अर्थों में एक-सी थी। इन दासों के सम्बन्ध में इतिहासकार हालम ने बहुत-कुछ खोज करने के बाद जो कुछ अपने ग्रंथ में लिखा है, उसके पढ़ने से मालूम होता है कि इन दासों की विवशता बिलकुल दासता का रूप रखती है।

मेवाड़ राज्य की बढ़ती हुई दुरवस्था मे अवसरवादी सामन्तों ने प्रजा के साथ रक्षा करने के नाम पर जो व्यवसाय शुरू किया था, उसके फलस्वरूप अगणित संख्या में राज्य के कृषक और दूसरे लोग सामन्तों की ऐसी दासता में आ गये थे कि जिनसे उनका उद्धार हो सकना असम्भव हो गया था। इन दिनों में अवसरवादी सामन्तों ने संरक्षक बन कर उन लोगों की भूमि पर अधिकार कर लिया था, जो राज्य के भूमिया राजपूत कहलाते थे और वे बहुत समय तक अत्याचारों में रहकर निर्बल हो गये थे। अरावली के बहुत से किसान इसी प्रकार के दास हो गये थे। उनके अधिकार में जितनी भी भूमि थी, उस पर सामन्तों ने कब्जा कर लिया था और उन लोगों ने भूमि के असली मालिकों को दास बनाकर अपने यहाँ रखा था। वे कृषक अपने स्वामी सामन्तों के यहाँ रह कर उनकी खेती का काम किया करते थे।

भूमिके छोटे-छोटे मालिकों की दुरवस्था को अनुभव करते हुए विद्वान हालम ने लिखा है : "लूट मार और अत्याचार के दिनों में भूमि के निर्बल अधिकारियों की स्वतंत्रता नष्ट हो गयी है। उनकी भूमि पर दूसरे लोग स्वामी बन बैठे हैं और जो असली मालिक थे, वे दासता का जीवनों बिता रहे हैं।"

हारावली प्रान्त के हाली लोगों की दशा पर दृष्टिपात करने की आवश्यकता है। सामन्तों का आश्रय लेने पर भूमि के छोटे-छोटे अधिकारी दासता में आ गये हों, यह पूरे तौर पर सही नह है। बल्कि राज्य के भीतर बहुत दिनों से जिस प्रकार भीषण अत्याचार हो रहे हैं, उनके कारण विशेष रूपसे जिस श्रेणी की दासता उत्पन्न हुई है, वह बसी के नाम से प्रसिद्ध है। कोटा राज्य के हाली लोग भी यद्यपि दासता का भोग कर रहे हैं, परन्तु उनमें और बसी दासों में बहुत अंतर है। बसी लोगों की दशा, उनकी अपेक्षा अधिक शोचनीय है। इसका कारण यह है कि अपनी भूमि पर अब उनका कोई अधिकार नहीं रह गया और जो भूमि उनके अधिकार में पहले थी, उसके सर्वेसर्वा मालिक सामन्त बन गये हैं। उन सामन्तों के ऋण के जाल में ये लोग इस प्रकार फँसे हुए हैं कि उनका उससे कभी छुटकारा नहीं हो सकता। वे जीवन-भर उनकी दासता स्वीकार करने के लिए प्रत्येक अवस्था में बाध्य हैं। यद्यपि उनको उस अवस्था में अब बड़ा परिवर्तन हो गया है। ×

गोला—गोला का अर्थ दास अथवा गुलाम होता है। भीषण दुर्भिक्षों के कारण राजस्थान

× राजस्थान में प्रचलित रखवाली कर के समान इंगलैण्ड में भी किसी समय इसी प्रकार का एक कर प्रचलित हुआ था। सन् १७२४ ईसवी में लार्ड लोवेट ने इंगलैण्ड के जार्ज प्रथम से प्रार्थना की थी कि हाइलैण्ड की दशा इन दिनों में बहुत शोचनीय हो गई है। चोरों और लुटेरों के अत्याचारों से प्रजा का सर्वस्व नष्ट हो गया है। इन संगठित लुटेरों ने प्रजा के सामने एक प्रस्ताव रखा था कि यदि आप लोग वर्ष में एक निश्चित रकम कर के रूप में देना पसंद करें तो कुछ लोगों को सशस्त्र सैनिक बनाकर आपकी यह रक्षा की जा सकती है। प्रजा के द्वारा इस कर के स्वीकार करते ही लूट-मार बंद हो गयी। लेकिन जो लोग इस कर को अदा न करते, वे लूट लिए जाते हैं।

में गुलामों की उत्पत्ति हुई थी। इन अकालों के दिनों में हजारों की संख्या में मनुष्य बाजारों में दास बना कर बेचे जाते थे। पहाड़ों पर रहने वाली पिण्डारी और दूसरी जंगली जातियों के अत्याचार बहुत दिनों तक चलते रहे और उन्हीं जातियों के लोगों के द्वारा बाजारों में दासों की बिक्री होती थी, वे लोग असहाय राजपूतों को पकड़कर अपने यहाँ ले जाते थे और उसके बाद बाजारों में उनको बेच आते थे।

इस प्रकार जो निर्धन और असहाय राजपूत खरीदे और बेचे जाते थे, उनकी संख्या राजस्थान में बहुत अधिक हो गयी थी और उन लोगों की जो संतान पैदा होती थी, वह गोला के नाम से प्रसिद्ध हुई। इन गुलाम राजपूतों को गोला और उनकी स्त्रियों तथा लड़कियों को गोली कहा जाता था। योरप में इसी प्रकार के सेक्सन दास होते थे। गोला लोग अपने बायें हाथ में चाँदी का खड़वा पहना करते हैं। अच्छा व्यवहार किये जाने पर ये लोग बड़े लड़ाकू सिद्ध होते हैं।

ये गोला लोग अपनी माता के वंश के अनुसार ख्याति पाते हैं। इन गोला लोगों में राजपूतानी, मुसलमानी और अनेक दूसरी जातियों के लोग पाये जाते हैं। बाजारों में उन सब का क्रय और विक्रय होता है। बहुत से राजपूत सामन्त इन गोला लोगों की अच्छी लड़कियों को अपनी उपपत्नी बना लेते हैं और उनसे जो लड़के पैदा होते हैं, वे सामन्तों के राज्य में अच्छे पदों पर काम करने के लिए नियुक्त कर दिये जाते हैं। देवगढ़ का स्वर्गीय सामन्त जब उदयपुर राजधानी में आया करता था तो उसके साथ तीन सौ अश्वारोही गोला सैनिक आया करते थे। उन सैनिकों के बायें हाथों में एक-एक सोने का खड़वा होता था।

प्राचीन जर्मन जातियों में जुआ खेलने का बहुत प्रचार था। टैसीटस नामक रोमन इतिहासकार ने उन जातियों के जुए का वर्णन करते हुए लिखा है कि "वहाँ पर जुआ खेलते हुए अंत में जिनकी हार होती थी, उनको गुलामों के बाजार में ले जाकर बेचा जाता था।" जर्मन जातियों की तरह जुआ खेलने का प्रचार राजपूतों में बहुत प्राचीन काल से चला आ रहा है। भारतवर्ष के प्राचीन ग्रंथों से साफ़ जाहिर होता है कि जुआ के कारण इस देश के प्राचीन वंशों का किस प्रकार सर्वनाश हुआ है। इस देश के कुरुक्षेत्र का महाभारत न होता, यदि पाण्डवों और कौरवों में जुआ खेलने की आदतें न होतीं और उस महाभारत के भीषण युद्ध में अगणित वीरों ने अपनी आहुतियाँ न दी होती। संक्षेप में यहाँ पर यह कहना अनुचित नहीं है कि जुआ खेलने की आदतों के ही कारण उन्नति के शिखर पर पहुँचा हुआ भारतवर्ष मेटियामेट हो गया। जुआ खेलने की आदत के ही कारण युधिष्ठिर को अपना राज-सिंहासन खोना पड़ा था और जुआ खेलने की आदतों के ही कारण प्रतापी पाण्डवों को द्रौपदी का असह्य अपमान अपने नेत्रों से देखकर भी चुपचाप रहना पड़ा था। जुआ खेलने के दुष्परिणामों का बहुत बड़ा इतिहास हिन्दुओं के ग्रंथों में है। आश्चर्य यह है कि जिस गंदी और अनैतिक आदत के कारण इस देश का सर्वनाश हुआ है, उस आदत का उसकी अनैतिकता का आज तक अंत नहीं हुआ। सब-कुछ खोने के बाद भी राजपूतों ने अपने जीवन में जुआ खेलने की आदतों को आज तक कायम रखा है। राजस्थान के राज्यों में आज भी जुआ खेलने का प्रचार बहुत अधिक है।

ऊपर गोला लोगों का वर्णन किया गया है। जो राजपूतानी गोली लड़कियाँ मेवाड़ के सामन्तों से पुत्र उत्पन्न करती हैं और जो राणा के सम्पर्क से लड़के पैदा करती हैं, वे सभी दासों के नाम से पुकारे जाते हैं। इन दासों को सामन्तों के अथवा राणा के राज्य से जीवन निर्वाह के लिए भूमि मिलती है। परन्तु समाज में उनको कोई प्रतिष्ठा नहीं दी जाती।

बती और गोला गुलामों के नाम हैं। ये लोग स्वयं अपने आप को दास अथवा गुलाम कहते

हैं। गोला, गोली लड़कियों के साथ, बसी, बसी लड़कियों के साथ और इसी प्रकार दूसरे गुलाम अपने वंश क्रम के अनुसार वैवाहिक सम्बन्ध करते हैं। दासता अथवा गुलामी इन लोगों के मनोभावों में अधिकार रखती है। जो दास जिस श्रेणी का हो चुका है, वह अब उसीमें रहना चाहता है। इसे वह जन्म गत मानता है। उसको बदलने और दासता के जीवन से निकलने की वह कभी अभिलाषा नहीं करता। किसीके समझने से उसकी समझमें नहीं आता। वह अपने जीवन की दासता में रहना चाहता है और उससे निकल कर वह दासता से अपनी मुक्ति नहीं चाहता। वह जिस अवस्था में है, उसी में वह संतोष करता है। उनमें से बहुतों की यह भी धारणा है कि इस दासता से मुक्ति प्राप्त करने के लिए समाज और राज्य से जो सुविधायें प्राप्त हैं, उनसे वञ्चित होना पड़ेगा। इसलिए उन संकटों का सामना करने के लिए ये दास न तो इच्छुक हैं और न तैयार हैं।

राजस्थान में बसी दूसरी श्रेणी का राजवंश पाया जाता है। शत्रुओं के द्वारा जो लोग युद्ध में कैदी हो जाते थे, वे जब किसी सामन्त अथवा अन्य किसी के द्वारा बंदी जीवन से उद्धार पाते थे तो वे कैदी लोग मुक्ति दिलाने वालों के दास हो जाते थे। बसी लोगों का इस प्रकार इतिहास राजस्थान में पाया जाता है। राजपूतों में सदा से कृतज्ञता का भाव अधिक रहा है और अपनी इस कृतज्ञता को सार्थक बनाने के लिए वे अपने उपकारी की दासता स्वीकार लेते थे। बसी लोगों का कुछ इसी प्रकार का इतिहास है। उनके इस इतिहास के सही होने के बहुत से प्रमाण और उदाहरण मिलते हैं। बिजौली के रहनेवाले बहुत-से लोग प्रमार सामन्तों के बसी कहे जाते हैं। बारह वर्ष पहले प्रमार सामन्त के साथ बहुत से बसी लोग मेवाड़ में आये थे और राणा ने उनके साथ सम्मान पूर्ण व्यवहार करके अपने राज्य का एक बड़ा हिस्सा उन बसी लोगों के रहने के लिए दिया था।

गोला लोग जिस प्रकार अपने बायें हाथ में दासता का चिन्ह स्वरूप खड़वा पहनते हैं, बसी लोग अपनी दासता का परिचायक बालों का एक गुच्छा रखते हैं। राजस्थान में बसी लोग गुलामों की एक जाति में माने जाते हैं। परन्तु उनमें और गोला लोगों मे अन्तर समझा जाता है। बसी लोग गोला लोगों की तरह नीच नहीं माने जाते। बसना अर्थात् कहीं पर रहना अथवा बस्ती शब्द से बसी शब्द की उत्पत्ति हुई है। बसी शब्द का अर्थ वास्तव में उपनिवेशी होता है अर्थात् कुछ दिनों से निवास करने वाला। प्राचीन काल में बहुत-से सामन्त किसी कारणवश अपने पूर्वजों का स्थान छोड़कर दूसरे राज्य में चले जाते थे और वहीं पर रहने लगते थे। जहाँ पर वे रहने लगते थे, उन स्थानों को लोग बसी नाम से मशहूर कर देते थे और फिर वही नाम सदा के लिए उनके विख्यात हो जाते थे।

रामपुरा राज्य में टोंक के समीप बसी नाम का एक प्रसिद्ध नगर है। इस नाम की उत्पत्ति इसी प्रकार हुई थी। सोलंकी राजा ने किसी आक्रमणकारी के अत्याचार से अपने पूर्वजों का राज्य गुजरात छोड़ दिया था और उसने टोंक के पास पहुँचकर जिस नगर की स्थापना की थी, उसे लोगों ने बसी नाम दिया था। सोलंकी राजा के चले आने पर गुजरात की बहुत-सी प्रजा उसके पास पहुँच गयी थी और उसके बसाये हुए बसी नगर में रहने लगी थी। परन्तु इस बसी नगर के निवासियों को अब तक लोग भ्रमवश बसी गुलाम मानते हैं। आश्चर्य की बात यह है कि बहुत समय के बाद लोगों के कहने के अनुसार उस नगर के निवासी अपने आपको बसी लोगों में मानने लगे और अब तक मानते हैं। ×

× युद्ध का कर न दे सकने के अपराध में मराठा सैनिकों ने कुछ राजपूत युवकों को कैद कर लिया था। जो लोग पकड़े गये थे, उनमें पूरावत सरदार का छोटा भाई भी था। उन्हीं दिनों में उसकी

राजपूतों के स्वभाव में बदला लेने की भावना—राजपूतों का जिस प्रकार सर्वनाश और पतन हुआ है, उसका कारण बाहरी आक्रमणकारियों के अत्याचार की अपेक्षा, उनका आपस का वैमनस्य अधिक है। इस जाति में बदला लेने की भावना बहुत प्रबल है और इस भावना ने ही मेवाड़ को श्मशान बना दिया है।

जीवन की साधारण बातों में राजपूतों का उन्मत्त हो जाना और भयानक संघर्ष पैदा कर देना उनके स्वभाव की एक मामूली बात है। राजस्थान के राज्यों का सम्पूर्ण इतिहास उन घटनाओं से भरा हुआ है, जिनसे हमारे इस विश्वास का समर्थन होता है। यद्यपि इस समय मेवाड़ की परिस्थितियाँ बदल गयी हैं। राजस्थान का परम रमणीक राज्य मेवाड़ अब फिर से सुख और शांति का जीवन व्यतीत करने लगा है। मेवाड़ राज्य के विध्वंस होने में कुछ बाकी न रह गया था। भयानक बाघ और जंगली शूकर राजधानी उदयपुर के भीतर रात-दिन घूमा करते थे। राज प्रासाद के भीतर उसके रमणीक कमरों में गीदड़ बसेरा लेते थे। प्रासाद के जिस विशाल प्राङ्गण में सामन्त लोग अपनी सेनाओं के साथ आकर शोभा की वृद्धि करते थे, वह रमणीक स्थान बड़ी-बड़ी घासों से भरा था और राणा स्वयं उस घास को पार करता हुआ अपनी राजधानी में प्रवेश करता था। वह समय मेवाड़ के जीवन से अब तिरोहित हो चुका है और सम्पूर्ण राज्य अब फिर से शांतिपूर्ण जीवन का अनुभव करने लगा है, यह प्रसन्नता की बात है।

बदला लेने की भावना राजपूतों में इतनी अधिक है कि उससे एक भी राजपूत को अलग समझना कठिन मालूम होता है। एक निर्बल राजपूत भी अपना बदला लेना चाहता है। वह सब कुछ कर सकता है। लेकिन बदला लिए बिना वह नहीं रह सकता है। राजपूत आत्म सम्मान को बहुत अधिक महत्व देते हैं। किसी भी दशा में यदि वे अपने अपमान का बदला न ले सकें तो वे अपने आपको बहुत घृणित और पतित समझते हैं।

स्वाभिमान की यही भावना प्राचीन सेक्शन लोगों में मौजूद थी। परन्तु राजपूत उनसे बहुत आगे हैं और सदा आगे रहे हैं। सेक्शन लोगों में यह पुरानी प्रथा थी कि जब कोई एक किसी को क्षति पहुँचाता था, अथवा अपमानित करता था तो उस अपराध के दण्ड में कुछ निर्धारित नियमों के अनुसार उसे धन देना पड़ता था। उँगली, अँगूठा और इस प्रकार के शारीरिक छोटे-छोटे-अंगों को क्षति पहुँचने से अपराधी को अर्थ—दण्ड देने की व्यवस्था थी। किस अंग के कट जाने से अथवा आघात पहुँचाने से अपराधी को क्या देना पड़ेगा, इसका सेक्शन लोगों में एक विधान था। परन्तु राजपूतों की अवस्था ऐसी नहीं है। वे रक्त के बदले में रक्त चाहते हैं। इस प्रकार के अपराधी को अर्थ दण्ड दिये जाने पर राजपूत को संतोष नहीं हो सकता।

जीवन की छोटी-मोटी बातों में स्वाभिमान के नाम पर उन्मत्त हो जाना अच्छा नहीं होता। राजपूतों में यह एक स्वाभाविक कमजोरी है, जो बहुत प्राचीन काल से उनमें चली आ रही है।

माता बीमार हो गयी और उसकी मृत्यु का समय बहुत समीप आ गया। किसी प्रकार उसके बचने की आशा न रही। उस समय मृत्यु शैया पर पड़ी हुई माता ने अपने छोटे पुत्र के देखने की लालसा प्रकट की। ऐसे अवसर पर मराठा लोगों से मिलकर मैंने उन राजपूत युवकों को कैद से छुड़वा दिया। बंदी अवस्था से छूटकर पूरावत सरदार के छोटे भाई को अपनी माता के पास पहुंचकर उसके अंतिम दर्शन करना चाहिए था। परन्तु उसे जब मालूम हुआ कि मेरे द्वारा उसको मुक्ति मिली है तो वह अपनी कृतज्ञता प्रकट करने के लिए मेरे पास पहुंचा। मैं बहुत उससे प्रभावित हुआ और उसको तुरंत उसकी माता के पास भेज दिया।

इस कमजोरी के कारण राजपूतों ने दूसरों की अपेक्षा अपना विनाश अधिक किया है। उनके इस स्वभाव के कारण जीवन में जिस प्रकार की घटनायें पैदा होती हैं, यद्यपि उनसे प्रत्येक राजपूत की जिन्दगी भरी हुई हैं, फिर भी संक्षेप में, कुछ उदाहरण देकर हम यहाँ पर उन की स्वाभाविक कमजोरी को समझने की चेष्टा करेंगे। उसके पहले हमारे सामने एक प्रश्न पैदा होता है कि राजपूतों में फैली हुई इस भीषण कलह को क्या रोका नहीं जा सकता ?

यदि ऐसा किया जा सके तो न केवल इस विशाल और प्राचीन जाति को मिटने से बचाया जा सकता है बल्कि इस प्राचीन भारतवर्ष को फिर एक बार कल्याण के मार्ग पर लाया जा सकता है। इसके इनकार नहीं किया जा सकता कि राजपूतों का पतन इस देश का पतन है और राजपूतों का उत्थान इस देश का उत्थान है। यदि राजपूतों के इस पतन के मार्ग को सदा के लिए बंद नहीं किया जा सकता तो यह निश्चित है इस देश के उत्थान का कोई रास्ता नहीं बन सकता।

अब प्रश्न यह है कि राजपूतों के इस पतन के मार्ग को कैसे बन्द किया जाय ? यह प्रश्न आसान नहीं है। अत्यन्त प्राचीन काल से लेकर जिस मार्ग पर चलने के लिए राजपूत चिर अभ्यासी हो चुके है, उनके उस अभ्यास को कैसे तोड़ा जाय ? यह कार्य निश्चित रूप से कठोर है। परन्तु असम्भव नहीं है। यद्यपि राजपूतों के इतिहास में इसका निर्णय नहीं कर सकते फिर भी हमारा एक सुझाव है। जो लोग इस देश के और राजपूतों के शुभचिंतक हैं, वे राजपूतों की मनोवृत्तियों को बदलने का कार्य कर सकते हैं। एक अपराधी राजपूत, जिसके प्रति अपराध करता है, यदि वह अपने अपराध के लिए क्षमा माँग लेना सीख ले और जिसका अपमान किया है, वह राजपूत यदि उसके अपराध को क्षमा करना अपना धर्म और कर्त्तव्य समझ ले तो इस विशाल और श्रेष्ठ जाति में फैली हुई भयानक कलह का—जिसके द्वारा प्राचीन काल से लेकर अब तक, इस देश का सर्वनाश होता हुआ चला आ रहा है—अंत हो सकता है। यह कार्य जितना ही महत्वपूर्ण है, उतना ही गम्भीर और कठोर भी है।

शाहपुरा का राजा मेवाड़ के सामन्तों में अत्यन्त शक्तिशाली था। वह राणा के वंश में उत्पन्न हुआ था। अमरगढ़ का भूमिया राणावत सामन्त राजा शाहपुरा का एक सरदार था। शाहपुरा के राजा उम्मेदसिंह की दो जागीरें थीं। एक जागीर उसको मेवाड़ के राणा से मिली थी और दूसरी उसने दिल्ली के बादशाह से पायी थी। उन दोनों जागीरों से उसको बीस हजार पौंड की वार्षिक आय थी। चुंगी आदि की जो आमदनी होती थी, वह इससे अलग थी। मेवाड़ की जागीर मंडलगढ़ जिले में थी और उसी जिले में भूमिया सामन्त दिलील भी रहता था। उसकी शक्तियाँ बहुत साधारण थीं, उसके अधिकार में केवल दस ग्राम थे। उसकी आय वार्षिक बारह सौ पौण्ड से अधिक न थी। राजा उम्मेदसिंह के जागीर की सीमा सामन्त दिलील के ग्रामों के पास तक पहुँच गयी थी। दोनों के बीच की भूमि प्रायः झगड़े का कारण बन जाती थी। राजा शाहपुरा के जागीर के किसान अक्सर सामन्त के किसानों के साथ झगड़ा कर देते थे और उस झगड़े का प्रभाव राजा उम्मेदसिंह और सामन्त दिलील पर पड़ता था।

राजा उम्मेदसिंह की शक्तियाँ विशाल थीं। परन्तु उसमें लोकप्रियता न थी। स्वभाव की कठोरता के कारण वह सर्वसाधारण में अप्रिय हो रहा था। सामन्त दिलील का जीवन दूसरी तरह का था। वह प्रजा के साथ अच्छा व्यवहार करता था। उसके न्याय से सभी लोग प्रसन्न रहते थे। आवश्यकता पड़ने पर वह अपने कृषकों का सहायक था। इसीलिए उसकी प्रजा उसका आदर करती थी और आवश्यकता पड़ने पर सभी प्रकार तैयार रहती थी।

सामन्त दिलील का एक अच्छा परिवार था। उसके भाई-भतीजे और पुत्र सभी प्रकार योग्य

थे। वे तलवार चलाना खूब जानते थे। परिवार के लोग सामन्त से प्रसन्न रहते थे। दिलील का दुर्ग और महल एक शिखर पर बना हुआ था। उसके पश्चिमी भाग में ऊँची चोटी के महल के ऊपर कई तोपें लगी रहती थीं। उसके दुर्ग और महल के आस-पास घना जंगल है। उसी जंगल से होकर प्रासाद में जाने के लिए रास्ता गया है। दुर्ग और महल की परिस्थितियाँ कुछ ऐसी हैं कि उन पर शत्रु का आक्रमण आसानी के साथ नहीं हो सकता। यदि ऐसा न होता तो प्रबल पराक्रमी शाहपुरा के राजा उम्मेदसिंह ने कभी भी सामन्त दिलील पर आक्रमण किया होता और अपनी शक्तियों के द्वारा उसने उसको मिटा दिया होता।

सामन्त दिलील अपनी शक्तियों में बहुत निर्बल था। परन्तु वह स्वाभिमानी था और राजा उम्मेदसिंह से वह किसी प्रकार डरता न था। दोनों सीमाओं के बीच की भूमि के कारण अनेक बार राणा और सामन्त के बीच झगड़ा पैदा हो चुके थे। उनमें सामन्त ने सदा बड़ी निर्भीकता से काम लिया था। राजा उम्मेदसिंह कठोर और अहंकारी होने के बाद भी वह सामन्त को कोई क्षति नहीं पहुँचा सका था। लेकिन सामन्त दिलील ने अक्सर राजा की जागीर में प्रवेश करके और आक्रमण करके लूट मार की थी। अनेक अवसरों पर राजा के धनिकों को कैद करके वह अमरगढ़ ले गया था और उन कैदियों को उसने कारागार में बंद कर दिया था।

सामन्त के इन व्यवहारों से राजा उम्मेदसिंह बहुत चिढ़ा हुआ था। उसके जिन आदमियों को कैद करके सामन्त कारागार में रखता था, कई बार उन लोगों को कारागार से मुक्ति दिलाने के लिए राजा उम्मेदसिंह को रुपये देने पड़े थे। ये सब बातें ऐसी थीं, जो बहुत दिनों से राजा और सामन्त के बीच में चल रही थीं। राजा इनका बदला लेना चाहता था। लेकिन इसके लिए उसको कोई रास्ता न मिलता था।

राजा और सामन्त के बीच बढ़ते हुए द्वेष के कारण जागीर के किसानों को बहुत हानि पहुँची थी। झगड़ों के कारण जो भूमि दोनों सीमाओं के बीच में पड़ती थी, उसमें खेती न हो पाती थी। विरोधियों के द्वारा वह उजाड़ कर नष्ट कर दी जाती थी। इस प्रकार की लगातार हानि के कारण जागीर के बहुत से किसान अपने घरों और गावों को छोड़ कर चले गये थे। राजा उम्मेदसिंह से आसपास के दूसरे भूमिया सामन्त भी प्रसन्न न थे। इसका कारण राजा का अहंकार था।

शाहपुरा का राजा उम्मेदसिंह न केवल बाहरी आदमियों के लिए अप्रिय था: बल्कि वह अपने राज्य और परिवार के लिए भी बहुत कठोर था। एक बार उसने अपने लड़के की कमर में रस्सी बाँधकर उसको शाहपुरा के मंदिर की ऊपरी छत से लटका दिया था और उसकी माता को बुलाकर उस भयानक दृश्य को देखने के लिए विवश किया था।

राजा उम्मेदसिंह घोड़े पर बैठकर प्राय: इधर-उधर घूमा करता था और कभी-कभी कई-कई दिनों तक लौटकर वह अपने महल में नहीं आया था। एक दिन घूमता हुआ वह सामन्त दिलील के यहाँ अमरगढ़ में पहुँच गया। वहाँ पर सामन्त के साथ उसकी भेंट हो गयी। एक राजा को अपने यहाँ आया हुआ देखकर साधारण भूमिया सामन्त दिलील ने नम्रता के साथ उसको प्रणाम किया और अत्यन्त सम्मान के साथ वह राजा को अपने महल में लिवा गया।

सामन्त ने राजा के सत्कार में कोई कमी न रखी। दोनों ने एक स्थान में बैठकर अफ़ीम का सेवन किया। × उसके बाद दोनों ने मिलकर एक साथ भोजन किया और अन्त में आपस की

× अतिथि सत्कार के समय राजपूत लोग एक साथ बैठकर बड़े स्नेह के साथ अफीम का सेवन किया करते थे।

शत्रुता को सदा के लिए मिटा देने की दोनों ने प्रतिज्ञायें की। इसके पश्चात् सामन्त ने बड़े सम्मान के साथ अपने यहाँ से राजा को बिदा किया।

राजा और सामन्त में इस प्रकार जो मित्रता कायम हुई, वह सभी लोगों को मालूम हो गयी। मेवाड़ के राणा ने उसे सुनकर सुख का अनुभव किया। उन्हीं दिनों में मेवाड़ के सभी सामन्त किसी अवसर पर उदयपुर में एकत्रित हुए। राजा उम्मेदसिंह और सामन्त दिलील भी वहाँ पहुँचा। वहाँ से लौटने के समय उम्मेदसिंह ने दिलील को शाहपुरा में आने के लिए निमंत्रण दिया। सामन्त ने हर्ष के साथ उसको स्वीकार किया और निश्चित् दिन में वह शाहपुरा पहुँचने के लिए अपने बीस अश्वारोही सैनिकों के साथ रवाना हुआ।

सामन्त के शाहपुरा पहुँचने पर राजा उम्मेद ने उसका बड़ा आदर-सत्कार किया और अपनी राजधानी में ले जाकर उसने उसको रखा। दोनों ने एक साथ बैठकर भोजन किया। × सामन्त को प्रसन्न करने के लिए राजा के दरबार में बहुत-सी बातें की गयीं। नाच और गाना भी हुआ। पिछली शत्रुता को भुला देने के लिए दोनों मंदिर में गये और प्रतिज्ञायें कीं। मंदिर से लौटते समय, जब सामन्त सीढ़ियों से उतर रहा था, राजा उम्मेदसिंह की तलवार से सामन्त का सिर नीचे गिरा और सामन्त के गिरते ही मंदिर की सीढ़ियाँ रक्त से सराबोर हो उठीं।

राजा उम्मेदसिंह ने अपने हृदय में छिपी हुई बहुत दिनों की शत्रुता का अंत किया। उसने सामन्त के जीवन को खत्म करके संतोष पाया। सामन्त के कटे हुए सिर को अपने पैर की ठोकर मारकर उसने अनेक प्रकार की कड़वी और गंदी बातें कहीं। यह समाचार सामन्त के पुत्र ने जब सुना तो वह अपने पिता का बदला लेने के लिए तैयार हो गया। यह समाचार राणा के पास उदयपुर पहुँचा। सामन्त दिलील के इस प्रकार मारे जाने की घटना को सुनकर वह बहुत दुखी हुआ। राजा उम्मेदसिंह के साथ सामन्त के पुत्र का जो झगड़ा होने जा रहा था, उसको रोकने के लिए राणा ने शक्ति भर कोशिश की। वह मध्यस्थ बना। उम्मेदसिंह ने सामन्त को मारकर उसके आभूषणों के साथ-साथ जो कुछ लेकर अधिकार में कर लिया था, राणा ने वह सब सामन्त के पुत्र को दिलवा दिया। दिलील का घोड़ा भी उसके पुत्र को दिलाया गया। भविष्य के झगड़े को रोकने के लिए राणा ने उम्मेदसिंह के पाँच प्रसिद्ध ग्राम सामन्त के बेटे को उसके पिता के साथ होने वाले विश्वासघात के बदले में दिये। राणा ने इतना ही नहीं किया बल्कि जो जागीर मेवाड़ की तरफ से उम्मीदसिंह को दी गयी थी, उसके पाँच ग्राम—जो सामन्त के पुत्र को दिये गये—छोड़कर बाकी सम्पूर्ण जागीर पर राणा ने अपना अधिकार करवा लिया।

न्यायपूर्ण आचरण न करके राजपूत जिस प्रकार आपस में कलह पैदा करते थे और आज भी करते हैं, उनके उदाहरण प्राचीन काल से लेकर अब तक इतने अधिक हैं कि वे लिखे नहीं जा सकते। ऐसे अवसरों पर राजपूत लोग यदि क्षमा माँगना और क्षमा करना सीख लें तो उनकी कलह आसानी से खत्म हो सकती है। प्राचीन इतिहास के पढ़ने से मालूम होता है कि न केवल अन्य देशों के राजाओं में, बल्कि राजपूत राजाओं में भी कलह को मिटाने के लिए और शत्रुता के स्थान पर मित्रता कायम करने के लिए कई प्रकार की प्रथायें थीं। उन प्रथाओं में एक वैवाहिक प्रथा भी थी। अपराधी पक्ष दूसरे पक्ष के राजा के साथ-शत्रुता मिटाने के लिए अपनी लड़की अथवा बहन का विवाह कर देता था। इस सत्य के प्रमाण में सभी देशों के ऐतिहासिक उदाहरण दिये जा सकते

× एक साथ बैठकर भोजन करना राजपूतों में स्नेह का परिचायक माना जाता है।

हैं। राजपूत भी यदि ऐसा करने लगें अथवा इस प्रकार के कोई भी दूसरे साधन काम में लाये जा सकें तो उनका परिणाम अत्यन्त कल्याण पूर्ण हो सकता है।

राजपूतों में आपसी कलह के अनेक कारण हैं। सीमा-विवाद भी उनमें से एक है। सीमा पर के अनेक झगड़ों ने सामन्तों और राजाओं को प्राय: युद्ध के लिए तैयार कर दिया हैं। जैसलमेर और बीकानेर राज्यों के सीमान्तवर्ती झगड़े अपना प्रमुख स्थान रखते हैं। लेकिन सीमा पर के झगड़ों का अब अंत हो चुका है और भविष्य में राज्यों और सामन्तों के बीच इनके कारण कोई उत्पात पैदा न होंगे, इसकी पूरी आशा की जाती है। इसी आधार पर इन दिनों राज्यों में शांति दिखायी देती है।

राजा और मन्त्री—राजाओं और सामन्तों के कार्यों के सम्बन्ध में अनेक बातें लिखी जा चुकी हैं। राज्य में ऐसे कितने ही अवसर आते हैं, जिनमें सामन्तों को अपने परिवार के साथ राजधानी में आकर रहना पड़ता है। वहाँ पर उनके रहने का समय निर्धारित रहता है। राजधानी के कार्य से जब सामन्त वहाँ आते हैं तो परिवार के साथ-साथ उनकी सेना और नौकर-चाकर भी साथ में आते हैं और निश्चित दिनों तक वहीं रहते हैं।

मेवाड़ में जागीरदारी का यह नियम सभी सामन्तों के लिए ऐसा नहीं है। यहाँ के श्रेष्ठ सामन्त अधिक स्वतन्त्रता का लाभ उठाते हैं। राजस्थान के अन्य राज्यों के सामन्त जिस प्रकार शृङ्खलाबद्ध और राजा की आज्ञा में तत्पर पाये जाते हैं, मेवाड़ के ऊँची श्रेणी के सामन्त उतने नहीं। अन्य राज्यों की भांति धार्मिक उत्सवों में मेवाड़ के प्रधान सामन्त अपनी सेनायें लेकर राजधानी में नहीं आते।

राज्य के सामने युद्ध की तरह का जब कोई गम्भीर प्रश्न उपस्थित होता है तो मेवाड़ के समस्त सामन्त राजधानी में आकर अपना-अपना परामर्श देते हैं। राणा उनके परामर्शों की अवहेलना नहीं कर सकता। कुछ ऐसे अवसर भी राणा के सामने आते हैं, जिनका निर्णय करने के लिए राणा अपने प्रधान सामन्तों से परामर्श करता है और उनके समर्थन के आधार पर वह किसी निर्णय पर पहुँचता है।

सामन्त शासन प्रणाली में राजा और सामन्तों का सम्बन्ध बहुत सम्मानपूर्ण और निकटवर्ती माना जाता है। सामन्त के प्रासाद के सामने आने का समाचार पाकर राणा सम्मानपूर्वक उसका अभिवादन स्वीकार करता है। उसके बाद सामन्त अपने अनुचरों के साथ राणा के दरबार में जाता है। वहाँ पर सामन्तों के बैठने के लिए बहुमूल्य गलीचों के साथ स्थान सजाये जाते हैं। भोजन के समय राणा भोजनशाला में सामन्त के साथ बैठकर भोजन करता है। राणा के दरबार में मर्यादा के अनुसार सामन्तों को स्थान मिलता है।

राजस्थान के सभी राज्यों में मन्त्री पद उन्ही सामन्तों को मिलता है, जो बुद्धिमान, वीर और साहसी होने के साथ-साथ राजा को अपनी ओर आकर्षित कर लेता है। राजा की प्रसन्नता ही मन्त्री होने वाले सामन्त की योग्यता समझी जाती है। इन मन्त्रियों को दीवानी के मामलों में हस्तक्षेप करने का कोई अधिकार नहीं होता। एक स्वतंत्र मन्त्री दीवानी के कार्यों का निर्णय किया करता है। राजपूत मन्त्री साधारण तौर युद्ध मन्त्री माने जाते हैं। दीवानी विभाग के मन्त्री पद पर राजपूत जाति का कोई भी मनुष्य नियुक्त नहीं किया जाता। कार्यों के अनुसार मंत्रियो को उपाधियाँ दी जाती हैं।

यहाँ के राज्यों में मन्त्री पद पर पैतृक अधिकार चला करता है। यह प्रथा बहुत पुरानी हैं। कुछ अर्थों में यह प्रथा अच्छी कही जा सकती है। लेकिन आमतौर से इस प्रकार की प्रथाओं

का परिणाम अच्छा नहीं हुआ करता। सबसे बड़ी हानि यह होती है कि इन पुरानी प्रथाओं के कारण मन्त्री पद के लिए श्रेष्ठ व्यक्ति नहीं मिला करते।

कोटा और जैसलमेर के राज्यों में मंत्रियों के अधिकार अधिक हैं। फ्रांस के प्रसिद्ध इतिहास-कार माङ्टेस्की ने अपने यहाँ के मंत्रियों के सम्बन्ध में लिखा है: "यहाँ के मन्त्री अपने राजाओं को महलों में बन्दी बना कर रखा करते थे और वे राजाओं को वर्ष में एक बार प्रजा के सामने आने का मौका देते थे। प्रजा को दर्शन देने के समय मन्त्री लोग राजाओं को जितना सिखाते थे, वे प्रजा के सामने उतना ही बोलते थे।" माङ्टेस्की के ये शब्द कोटा और जैसलमेर के मंत्रियों के कार्यों का चित्र हमारे सामने उपस्थित करते हैं।

गोद लेने की प्रथा—पुत्र के अभाव में गोद लेने की प्रथा, राजपूतों में बहुत पहले से चली आ रही हैं। यह प्रथा पैतृक अधिकारों को सुरक्षित रखने के लिए राजाओं में उत्पन्न हुई थी। इसके द्वारा उत्तराधिकारियों का कभी अभाव नहीं हो सकता। पुत्र के अभाव को पूरा करने के लिए यह एक सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्था है। राजपूतों की तरह यह प्रथा पारसी और अन्य जातियों के लोगों में भी पायी जाती है। इस प्रथा के प्रभाव से, मेवाड़ के राजा और सामन्त के सामने उत्तराधिकारी का अभाव नहीं रहता। यह प्रथा उसके सम्मान और अधिकार को सुरक्षित बनाती है। यद्यपि इसके प्राय: भयानक दुष्परिणाम देखे जाते हैं। पुत्र न होने पर गोद लेने का का कार्य प्राय: जीवन काल में ही होता है। सामन्त अपनी स्त्री के साथ पहले स्वयं गोद लिये जाने वाले लड़के का निर्णय करता है। उसके बाद वह अपना इरादा राजा के सामने रखता है, राजा अधिकतर उसे स्वीकार कर लेता है। जिस बालक को गोद लिया जाता है, वह वंश का सबसे अधिक समीपवर्ती होना चाहिए। यदि ऐसा न हुआ और किसी निकटवर्ती अधिकारी को छोड़कर किसी दूसरे को गोद लिया गया, तो निकटवर्ती अधिकारी विद्रोह करता है; उस समय राजा उसका निर्णय करता है, विधान के अनुसार, निकटवर्ती वंशज को गोद लेने के लिए राजा अपना निर्णय देता है और उसके कारण जो झगड़ा पैदा होने वाला होता है, उसको वह रोकने की चेष्टा करता है।

यदि अकस्मात पुत्रहीन अवस्था में किसी सामन्त की मृत्यु हो जाती है तो प्रथा के अनुसार, उसकी स्त्री को गोद लेने का अधिकार होता है। वह वंश के किसी निकटवर्ती बालक को गोद लेने का निर्णय कर लेती है और जब तक वह बालक नाबालिग रहता है, उसकी माता, उसके स्थान पर जागीर का प्रबन्ध करती है।

मेवाड़ के सोलह प्रधान सामन्तों में देवगढ़ का सामन्त भी एक था। पुत्रहीन अवस्था में उसकी मृत्यु हो गयी। मरने के पहले उसने अपनी स्त्री और अपने सरदारों को परामर्श देते हुए कहा था कि यदि मैं मर जाऊँ तो नाहरसिंह को गोद लिया जाय।

नाहरसिंह संग्रामगढ़ के स्वतंत्र सामन्त का लड़का था। उसके साथ देवगढ़ के सामन्त का सम्बन्ध ग्यारह पीढ़ी पहले का था। कुछ दूसरे लोग ऐसे भी थे, जिनके साथ देवगढ़ के सामन्त के सम्बन्ध सात और आठ पीढ़ी से अधिक दूरी के न थे। इसलिए ये लोग अधिक निकटवर्ती थे। परन्तु इनकी मर्यादा देवगढ़ के सामन्त की अपेक्षा बहुत साधारण थी और वे लोग या तो राणा की अश्वारोही सेना में थे अथवा राज्य के साधारण कर्मचारी थे। इन निकटवर्ती लोगों में दो परिवार ऐसे थे, जिनका कोई बालक देवगढ़ के सामन्त की स्त्री के द्वारा गोद लिया जा सकता था। परन्तु मर्यादा में कम होने के कारण उनके लिए देवगढ़ के सामन्त ने अपनी स्त्री और अपने सरदारों को परामर्श नहीं दिया था।

मेवाड़ के राणा के सामने जब देवगढ़ के लिए गोद लेने का प्रश्न उपस्थित हुआ तो उसने

अपने मंत्रियों के परामर्श से इन्हीं दो परिवारों के किसी एक लड़के को गोद लिए जाने का निर्णय दिया, जो अधिक समीपवर्ती होते थे। देवगढ़ के सामन्त ने मरने के पहले अपने जिन सरदारों को गोद लेने के सम्बन्ध में अपना परामर्श दिया था, उनसे सलाह लेकर सामन्त की स्त्री ने नाहरसिंह को गोद लेने का निर्णय कर लिया। इसके लिए राणा के दरबार में जो होने जा रहा था, उसकी उपेक्षा करके, सामन्त की स्त्री ने नाहरसिंह के सिर पर सामन्त की पगड़ी बाँध दी और उसको गोद लेने की उसने घोषणा कर दी।

राणा ने जब उस घोषणा को सुना तो वह बहुत अप्रसन्न हुआ। सम्वत् १८४८ सन् १७९२ ईसवी में जो विद्रोह मेवाड़ में पैदा हुआ था, देवगढ़ का स्वर्गीय सामन्त भी उस समय विद्रोहियों में एक था। परन्तु अन्त में राणा ने उसको क्षमा कर दिया था। इस समय उस सामन्त की स्त्री और उसके सरदारों का विद्रोहात्मक व्यवहार देखकर राणा ने निर्वाचित नाहरसिंह के विरोध का निर्णय किया। उसने देवगढ़ की जागीर पर अपना अधिकार करवा लिया और आदेश दिया कि देवगढ़ जागीर में जो खेती की गयी, वह सब कटवा ली जावे।

राणा का यह आदेश देवगढ़ के सरदारों ने सुना। वे समझदार और दूरदर्शी थे। गोद लेने की समस्या पर वे राणा के पास पहुँचे और बड़ी बुद्धिमानी के साथ उन सरदारों ने प्रार्थना करते हुए राणा से कहा : "हम लोगों ने अब तक गोद लेने के सम्बन्ध में कोई निर्णय नहीं किया। मृत्यु के पहले आपके योग्य सामन्त ने नाहरसिंह के सम्बन्ध में अपनी इच्छा जाहिर की थी और यह भी कहा था कि इसका अंतिम निर्णय हमारे राणा के द्वारा होगा। इसका निर्णय किसी दूसरे के अधिकार में नहीं है।"

सरदारों के मुख से इस सम्मानपूर्ण बात को सुनकर राणा का क्रोध तिरोहित हो गया। सरदारों ने उसके मनोभावों को अनुकूल समझकर कहा : "स्वर्गीय सामन्त ने हम सब को आपके पास आने और नाहरसिंह की योग्यता आपको बताने की आज्ञा दी थी। अभी तक हम लोग आप के पास पहुँच नहीं पाये थे। देवगढ़ के सम्बन्ध में किसी ने असत्य समाचार सुनाकर आप को भ्रम में डाल दिया है।"

सरदारों की इन बातों से राणा बहुत प्रभावित हुआ। इसी समय उन सरदारों ने नाहरसिंह की प्रशंसा में कुछ बातें राणा से कहीं : "अपने स्वर्गीय सामन्त की आज्ञानुसार हम आपसे इतनी ही प्रार्थना करना चाहते है कि मेवाड़ में राजपूतों की मर्यादा को सदा सम्मान दिया गया है। नाहरसिंह अभी से इतना योग्य मालूम होता है कि वह न केवल देवगढ़ जागीर के लोगों का वह नेतृत्व कर सकेगा, बल्कि वह आपका अत्यन्त आज्ञाकारी सामन्त साबित होगा।"

राणा ने सरदारों की प्रार्थना को स्वीकार कर लिया। देवगढ़ के विरुद्ध उसने जो आदेश दिया था, उसे वापस ले लिया और नाहरसिंह को उसने गोद लिये जाने के सम्बन्ध में स्वीकार कर लिया।

यदि राजपूतों ने प्राचीन काल की तरह अपनी उन्नति की होती तो उनके राज्यों के सम्बन्ध में हमें कुछ भी कहने की आवश्यकता न थी। प्राचीन काल से लेकर अबतक उनके इतिहास का गम्भीर अध्ययन करने के पश्चात् स्वीकार करना पड़ता है कि राजपूत कभी भी संगठित होकर नहीं रह सके। वे आपस में ऐसे अवसरों पर भी संगठित न हो सके, जब उनके सामने जीवन और मरण का प्रश्न उपस्थित हुआ है। राजपूत राज्यों ने कभी भी राष्ट्रीय शक्ति का निर्माण नहीं किया और उनमें मराठों की तरह कभी केन्द्रीय शक्ति नही रही। प्रत्येक राजा अपने राज्य का स्वयं अधिकारी था और उसकी रक्षा के लिए वह अपनी सेना रखता था। उसकी

कमजोरियों में कोई शक्ति सहायक हो सके, इस प्रकार का निर्माण राजपूतों ने कभी नहीं किया।

सामन्त शासन प्रणाली में प्रत्येक राज्य अपने पड़ोसी के लिए जितना घातक सिद्ध होता है, उतना वह किसी दूरवर्ती राज्य के लिए नहीं। इस प्रकार के शासन में कोई भी राज्य अपनी रक्षा नहीं कर पाता और किसी के आक्रमण पर उसकी शक्तियाँ निर्बल साबित होती हैं। इस प्रकार की अनेक घातक त्रुटियाँ शासन की इस प्रणाली में पायी जाती हैं।

उन साधनों की कमी नहीं है, जिनके द्वारा राजपूतों के चरित्र और स्वभाव का अध्ययन किया जा सकता है। बहुत-कुछ उकसाये जाने के बाद भी इन राजपूतों में कोई परिवर्तन दिखाई नहीं देता। उनके गुणों में कृतज्ञता, राजभक्ति और सम्मानप्रियता प्रमुख थी और आज भी है। इन्हीं गुणों पर एक राजपूत के जीवन का निर्माण हुआ है। वह आज भी इन्हीं गुणों पर आसक्ति रखता है। लेकिन समय के परिवर्तन से उसके इन गुणों का महत्व अब बहुत घट गया है। जिन गुणों के द्वारा प्राचीन काल में राजपूतों ने ख्याति पायी थी, उन्हीं के कारण राजपूतों का सम्मान आज घटता जा रहा है।

यदि किसी राजपूत से पूछा जाय कि मनुष्य के जीवन का सबसे बड़ा अपराध क्या है? इस प्रश्न को सुनकर उत्तर देते हुए वह तुरन्त कहेगा : "उपकारी के प्रति कृतघ्न होना।" उसके इस उत्तर से साफ जाहिर है कि जो कृतघ्नता मनुष्य के जीवन की सबसे बड़ी बुरी चीज हैं, उससे इन राजपूतों को कितनी बड़ी घृणा है। वास्तव में राजपूत कृतज्ञता को जितना अधिक महत्व देते है, कृतघ्नता से उतना ही वे घृणा करते हैं।

राजभक्ति राजपूतों का प्रधान गुण है। वे अपने राजा के लिए जीते हैं और उसी के लिए वे मरते हैं। इन राजपूतों के जीवन में राष्ट्र प्रेम अथवा देश प्रेम के स्थान पर हम को राजभक्ति मिलती है। वे अपने राजा के साथ कभी विश्वासघात नहीं कर सकते। एक राजपूत के साथ जब कभी कोई उपकार करता है तो वह राजपूत अपने जीवन-भर उनके प्रति कृतज्ञ होकर रहता है। उसका विश्वास है कि उपकारी के प्रति कृतघ्नता करने से अथवा उसके उपकारों को भूल जाने से दूसरे जन्म में साठ हजार वर्ष तक नर्क में रहना पड़ता है। राजपूत लोग जिन धार्मिक पुस्तकों को पढ़ते हैं, उनमें इस प्रकार के वर्णन बहुत स्पष्ट और विस्तार में किए गये हैं।

राजपूतों के चरित्र की श्रेष्ठता का बहुत कुछ ज्ञान हम को उन प्रसिद्ध इतिहासकारों के ग्रंथों से होता है, जिन्होंने सम्राट अकबर, जहाँगीर और औरंगजेब के राज्यों का इतिहास लिखा है। उन इतिहासकारों ने साफ-साफ इस बात को स्वीकार किया है कि साम्राज्य के निर्माण में मुग़लों की असीम सफलता का कारण राजपूतों के साथ उनकी मित्रता थी। राजपूतों के द्वारा मुग़ल बादशाहों को बहुत से युद्धों में विजय मिली थी। जिस आसाम को पराजित करने के लिए आजकल अँगरेजी सेना युद्ध कर रही है, उसे किसी समय जैपुर के राजा मानसिंह ने पराजित किया था और अराकान तथा उड़ीसा को जीतकर वहाँ पर उसने अपनी विजय की पताका फहराई थी। कोटा का राजा रामसिंह मुग़ल बादशाह के लिए कई युद्धों में लड़ा था और सफलता प्राप्त की थी। उन युद्धों में उसके पाँच भाइयों के साथ, उसका प्यारा पौत्र ईश्वरीसिंह लड़ते हुए मारा गया था।

मेवाड़ का इतिहास

ग्यारहवाँ परिच्छेद

मेवाड़ की श्रेष्ठता–राजस्थान के राज्य–मेवाड़ के इतिहास का आधार–मेवाड़-राज्य का प्रतिष्ठाता–वहाँ के राजाओं की उपाधि राणा–राणा का वंश–मेवाड़ का सुरक्षित गौरव–लगातार आक्रमण–बल्लभीपुर का बिनाश–आक्रमणकारी जातियाँ–राम के बेटे–लव का वंशज राणा का वंश–अयोध्या राम की राजधानी थी–मेवाड़ के राजवंश का प्रारम्भ–म्लेच्छों के आक्रमण के समय वहाँ पर जैन-धर्म का प्रचार–सीथिक लोगों का निवास-स्थान–भारत में अनेक जातियों का प्रवेश-हूणों का सरदार–सीथिक लोगों की राजधानी–बल्लभीपुर में म्लेच्छों के साथ राजा शिलादित्य का युद्ध–उसकी पराजय।

यहाँ से राजस्थान के राज्यों का इतिहास आरम्भ होता है और उसका श्री गणेश मेवाड़ से किया जायगा। राणा यहाँ के राजाओं की पदवी है और उनका वंश सूर्य वंश की बड़ी शाखा है। छत्तीस राजवंशों में इस वंश का सब से श्रेष्ठ स्थान है और उसकी पवित्रता एवम् निर्मलता में कभी किसी को कुछ कहने का साहस नहीं हो सकता।

सम्पूर्ण राजस्थान आठ भागों में विभाजित है। और वे आठों भाग इस प्रकार हैं : पहला मेवाड़ अथवा उदयपुर दूसरा मारवाड़ अथवा जोधपुर, तीसरा बीकानेर अथवा किशनगढ़, चौथा कोटा, पाँचवाँ बूँदी, ये दोनों हड़ावती के नाम से भी प्रसिद्ध हैं, छठा आमेर अथवा जयपुर, सातवाँ जैसलमेर और आठवाँ भारतवर्ष की मरुभूमि।

इन आठों में मेवाड़ और जैसलमेर अपनी प्राचीनता के लिए अधिक प्रसिद्ध हैं। भारतवर्ष की स्वाधीनता पर आक्रमण होते हुए लगभग आठ सौ वर्ष बीत चुके हैं परन्तु मेवाड़ का गौरव अब तक सुरक्षित है। समय के प्रभाव से उसके बहुत-से स्थानों का विनाश हुआ है, परन्तु उसका विस्तार और आकार—प्रकार आज भी ज्यों का त्यों है। जिन प्राचीन पुस्तकों में मेवाड़-राज्य के ऐतिहासिक विवरण मिलते हैं, उनमें जयविलास, राजरत्नाकर और राज विलास अधिक महत्वपूर्ण हैं। इनके अतिरिक्त खुमान रापसा, मामदेव परिशिष्ट और कितने ही जैन तथा भट्ट ग्रंथों में मेवाड़ के विवरण पाये जाते हैं। इन ग्रंथों में बहुत-से मतभेद भी हैं। फिर भी सावधानी के साथ अध्ययन करने से उनके ऐतिहासिक सत्य को खोज कर निकाला जा सकता है और हमने यही किया भी है।

भट्ट ग्रन्थों में कनकसेन को मेवाड़ का प्रतिष्ठाता माना गया है। उन ग्रन्थों के अनुसार, कनकसेन का मूल स्थान भारत के उत्तर में था और वहाँ से वह सम्बत २०१ और सन् १४५ ईसवी में सौराष्ट्र में आ गया था। अयोध्या—जिसे आज अवध कहा जाता है—प्रसिद्ध राम की राजधानी थी। राम के दो बेटे थे लव और कुश। राणा का वंश अपने आपको लव का वंशज मानता है। कहा जाता है कि लव ने लोटकोट नामक नगर बसाया था, जिसे अब लाहौर कहा जाता है। इस लोटकोट में मेवाड़-राज्य के पूर्वज उस समय रहते रहे, जब तक कनकसेन उसे छोड़कर द्वारका

नहीं चला आया। लोटकोट से चल कर वे किस रास्ते से सौराष्ट्र पहुँचे, इसका कोई विवरण नहीं मिलता। कनकसेन ने प्रमार राजा को पराजित करके उसके राज्य को अपने अधिकार में कर लिया था और उसके बाद दूसरी शताब्दी सन् १४४ ईसवी में उसने बीर नगर की प्रतिष्ठा की थी। चार पीढ़ी के बाद कनकसेन के वंश में राजा विजयसेन ने—जिसको आमेर के राजा जयसिंह ने नौ शेरवाँ लिखा है—विजयपुर बसाया था। समय के प्रभाव के विजय पुर उजड़ गया और उस स्थान पर वर्तमान धोलका नगरी बसी हुई है। भट्ट ग्रंथों में लिखा है कि विजयसेन ने बल्लभीपुर और बिदर्भ नामक दो अन्य नगर भी बसाये थे। इन दोनों में बल्लभी पुर ही अधिक प्रसिद्ध है। लेकिन यह बल्लभीपुर कहाँ है, निश्चित रूप से यह नहीं बताया जा सकता। परन्तु अनुसंधान के बाद यह स्वीकार किया गया है कि वर्तमान भावनगर के पाँच कोस उत्तर पश्चिम की ओर बल्लभी नामक जो नगर बसा हुआ है, वही प्राचीन बल्लभीपुर है।

अनेक लोगों के मत से ऊपर लिखे हुए बल्लभी पुर से मेवाड़ का राजवंश आरम्भ हुआ है। लेकिन इसके सम्बन्ध में लोगों का परस्पर मतभेद है। अभी कुछ दिन पहले की बात है कि राणा के राज्य के पूर्व की ओर एक गिरे हुए शिवालय में एक शिला लेख पाया गया है, उसमें मेवाड़ राजवंश का प्राचीन वर्णन संक्षेप में लिखा है। इसके सिवा, राणा राजसिंह के समय की बातों का आधार लेकर जो पुस्तक लिखी गयी है, उसमें इस बात का उल्लेख मिलता कि पश्चिम में सौराष्ट्र नाम का एक देश है। म्लेच्छों ने उस देश पर चढ़ाई की थी और वहाँ के बालकनाथों को पराजित किया था, इस पराजय के समय बालक नाथराज की पुत्री के सिवा और कोई बाकी न रहा था। एक दूसरे ग्रंथ में लिखा है कि बल्लभीपुर विध्वंस हो जाने के बाद वहाँ के निवासी मद्रदेश अर्थात् मारवाड़ में भाग कर चले गये और वहाँ उन लोगों ने बल्ली, सन्देरी और नदोल नाम के तीन नगर बसाये। वे तीनों नगर अब तक मौजूद हैं। छठी शताब्दी के आरम्भ में जब म्लेच्छों ने बल्लभीपुर का विनाश किया था, उस समय वहाँ जैन धर्म का प्राचर था और आज उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम दिनों में भी वहाँ पर जैन धर्म का प्रचार बराबर पाया है। इन तीन नगरों के सिवा, गायनी × नामक नगर का भी उल्लेख पाया जाता है। यह भी पता चलता है कि बल्लभी पुर का राजा शिलादित्य अपने परिवार के साथ सौराष्ट्र से भाग कर गायनीनगर में पहुँचा था। भट ग्रंथों में यह भी लिखा हुआ है म्लेच्छों ने राजा शिलादित्य के गायनी राज्य पर आक्रमण किया और उसे पराजित किया। उस लड़ाई में राजा शिलादित्य के बहुत से योद्धा मारे गये। उसका वंश समाप्त हो गया। केवल उसका नाम बाकी रह गया।

जिन म्लेच्छों + ने गायनी में आक्रमण किया था, वे कौन थे, इसको निश्चित रूप से बता

× गायनी अथवा गजनी वर्तमान काम्बे का प्राचीन नाम है। इस नगर के दक्षिण दिशा में तीन मील की दूरी पर इसके खंडहर अब तक मौजूद है। भट्टग्रन्थों में इस प्रकार के और भी नगरों के खंडहर पाये जाते है। उनके सम्बन्ध में अध्ययन करने से जाहिर होता है कि बालक रायगण भारतवर्ष के दक्षिण में शासन करते थे। इन ग्रन्थों में लिखा है कि देवगढ़ प्राचीन काल में त्रिलविलपुर पट्टन के नाम से प्रसिद्ध था। इस विलविलपुर पटटन में मेवाड़ राज्य के अधिकारियो के पूर्वज राज्य करते थे। इससे पता चलता है कि विलविलपुर पट्न सौराष्ट्र देश में ही है।

+ इन म्लेच्छों के सम्बन्ध में कई प्रकार के मतभेद पाये जाते हैं, कई लेखकों ने इनके सम्बन्ध में अपनी-अपनी खोज के अनुसार उल्लेख किया है। प्रसिद्ध इतिहासकार एलफिन्स्टन ने इन म्लेच्छों को पारसीक बतलाया है। इसके लिए उसने जो प्रमाण दिये हैं, वे अधिक विश्वस्त मालूम

सकना कठिन है। फिर भी जो ऐतिहासिक आधार मिलता है, उससे यह मानना पड़ता है कि जिनको यहाँ पर म्लेच्छ लिखा गया है, वे सीथिक लोग थे और वे लोगपारथियन राज्य से आये थे। उन्होंने दूसरी शताब्दी में सिंधु के किनारे अपना राज्य कायम किया और श्याम नगर को अपनी राजधानी बनाई, जहाँ पर प्राचीन यदु लोगों ने बहुत समय तक राज्य किया था। विद्वान एरियन ने इस श्याम नगर को मीनगढ़ T और अरब के भूगोल-विशारदों ने मनकर नाम देकर लिखा है।

सिन्धु नदी के किनारे एक विशाल और विस्तृत देश में सीथिक लोग रहते थे। उनके कारण उस तरफ से भारत में आने वालों का रास्ता बहुत आसान हो गया था। इसलिए अनेक आक्रमणकारी जातियों ने उस तरफ से आकर इस देश में हमला किया और उसको विनाश किया। जिट, हूण, कामारी, काठी, मकवाहन, बल्ल और अश्वारियाँ नाम की अनेक जातियों ने उस तरफ से भारत में प्रवेश किया और सूरत में पहुँचकर अपनी शक्तियों का प्रदर्शन किया था। ये सभी जातियाँ इस देश में उसी तरफ से आयी थीं और उनका सुभीता यह था कि भारत की वह दिशा उस समय बहुत अरक्षित अवस्था में थी। यही कारण था कि मध्य एशिया की सभी संगठित आक्रमणकारी जातियो ने इस देश की निर्बलता का लाभ उठाया। प्रसिद्ध यात्री परिव्राजक कासमस चीन के राजा जस्टीनियम के शासन काल में भारत में मौजूद था और वल्लभी राज्य का कल्यान नगर देखने गया था। उसने अपनी यात्रा सम्बन्धी पुस्तक में लिखा है : जब वल्लभीपुर नष्ट हुआ है, उस समय बहुत-से हूण सिन्धु नदी के किनारे आबाद हो गये थे। उस समय उनके सरदार का नाम गोल्लास था। लेकिन इतिहासकार एरियन ने इसके सम्बन्ध में एक दुसरी ही बात का उल्लेख किया है। उसने लिखा है कि सिंधु और नर्मदा के बीच के विस्तृत देश में अगणित संख्या में सीथिक लोग रहते थे। मीनगढ़ उनकी राजधानी थी। यहाँ पर यह नहीं कहा जा सकता कि इन दोनों में क्या सही है। सम्भव है कि चीनी परिव्राजक कासमस ने सीथिकों को ही हूण लिखा हो और यह भी हो सकता है कि पहले वहाँ पर सीथिक लोग रहते रहे हों। उसके बाद हूणों ने आक्रमण करके उनको वहाँ से भगा दिया हो और अपना अधिपत्य कायम कर लिया हो। कुछ भी हो, यह तो निश्चित ही है कि इन्हीं दोनों जातियों में किसी एक ने वल्लभीपुर राज्य का विनाश किया था।

सूर्यबंशी राजा कनकसेन से आठवीं पीढ़ी में शिलादित्य नाम का एक राजा हुआ और उसी के शासन काल में म्लेच्छों ने वल्लभीपुर में आक्रमण करके उसको नष्ट किया। आक्रमणकारियों की संख्या बहुत अधिक थी। राजा शिलादित्य अपनी सेना के साथ उनसे लड़ा और शक्तिभर उनके साथ युद्ध किया। परन्तु अंत में उसकी पराजय हुई और अपनी सेना के साथ वह मारा गया। उसकी मृत्यु के साथ ही उसका सभी प्रकार सर्वनाश हुआ, उसके बाद उसके वंश में कोई न रह गया।

होते है। इसलिए यह मान लेना ही सही मालूम होता है कि आक्रमणकारी म्लेच्छ पारसी लोग थे। परसियन ऐतहासिक ग्रन्थों में लिखा है कि सन् ६०० ईसवी के प्रारम्भ में बादशाह नौशेरवाँ ने सिंध देश पर आक्रमण किया था, परन्तु उसका परिणाम क्या हुआ, यह कुछ नहीं लिखा।

T मीनगढ़ के सम्बन्ध में विदेशी लेखकों ने अनेक बातें लिखी है। डेनविल से लेकर सर हेनरी पोटिञ्जर तक कई विद्वानों ने इसके सम्बन्ध में अनुसंधान किया था। उसमें कुछ को सफलता भी मिली थी। लेकिन उसके सम्बन्ध में कोई एक निर्णय नहीं हो सका। टॉड साहब ने इसके सम्बन्ध में बड़े परिश्रम के साथ खोज की और कई विद्वानों के आधार पर इस बात को स्वीकार किया कि मीनगढ़ सिन्धु नदी के किनारे सिवाने पर है : अनुवादक।

बारहवाँ परिच्छेद

राजा शिलादित्य के मारे जाने पर उसकी गर्भवती रानी पुष्पावती-पुष्पावती सती न हो सकी-उससे बालक का जन्म-कमलावती ब्राह्मणी को बालक सौंप कर रानी पुष्पावती का सती होना-ब्राह्मणी के द्वारा बालक का पालन पोषण-बालक गोह का प्रारम्भिक जीवन-बालक गोह को माण्डलीक का राज्य-गोह के नाम पर गहिलोत वंश की उत्पत्ति-नागादित्य राजा की भीलों के द्वारा मृत्यु-राजा नागादित्य के बप्पा नाम का एक तीन वर्षीय बालक-उसकी रक्षा का उत्तरदायित्व-बप्पा का बचपन—उसका स्वाभिमानी जीवन-राजकुमारी के साथ विवाह का रहस्य-उसका परिणाम-चित्तौर पर आक्रमण-बप्पा के द्वारा आक्रमणकारी की पराजय-बप्पा की ख्याति-उसका अंतिम जीवन।

म्लेच्छों के आक्रमण से वल्लभीपुर का विनाश हुआ और उसका राजा सेना के साथ मारा गया। उसकी बहुत-सी रानियाँ थी। रानी पुष्पावती के सिवा सभी रानियाँ राजा शिलादित्य के साथ सती हुईं। विन्ध्य पर्वत के नीचे की भूमि में चन्द्रावती नाम का एक राज्य है, उसमें प्रमार वंश में वह उत्पन्न हुई थी और राजा शिलादित्य के साथ उसका विवाह हुआ था। राजा के मारे जाने के कुछ पहले ही से रानी गर्भवती थी और म्लेच्छों के आक्रमण के पहले वह अपने पिता के यहाँ चली गई थी।

जिस दिन राजा शिलादित्य का अंत हुआ, रानी पुष्पावती अपने पिता के यहाँ किसी देवी के मन्दिर में पूजा करने गयी थी। जब वह पूजा करके लौटी तो रास्ते में उसने वल्लभीपुर के विनाश और राजा के मारे जाने का समाचार सुना, रानी को असह्य आघात पहुँचा। उसके साथ में अनेक सहेलियाँ थीं। उस समय उन्होंने उसकी सहायता की। रानी गर्भवती होने के कारण उस समय सती होने का निर्णय न कर सकी और तपस्वी जीवन व्यतीत करने के लिए मलिया नाम की एक गुफ़ा में वह चली गयी। उसी गुफ़ा में उसके पुत्र उत्पन्न हुआ।

मलिया शैलमाला के पास वीर नगर नाम की एक बस्ती थी। उसमें कमलावती नामक एक ब्राह्मणी रहती थी। रानी ने उस ब्राह्मणी को बुलाकर अपना पुत्र सौंपा और चिता बनाकर उसमें वह जलकर खाक हो गयी। चिता पर बैठने के पहले उसने जब कमलावती ब्राह्मणी को अपना पुत्र सौंपा तो उससे उसने कहा : कमला, यह पुत्र तुम्हारा है और तुम इसकी माता हो। अपना पुत्र समझकर तुम उसका पालन-पोषण करना और ब्राह्मणोचित शिक्षा देकर इसके बड़े होने पर किसी राजपूत कन्या के साथ इसका विवाह कर देना।

कमलावती स्त्री थी। पुत्र का प्यार करना वह जानती थी। रानी के सती हो जाने के बाद कमला ने बालक का पालन अपना पुत्र समझकर किया। बालक गुफा में पैदा हुआ था और गुफा को वहाँ के लोग गुहा कहते थे। इसलिये कमला ने उस पुत्र का नाम गोह रक्खा। गोह अपने जीवन के आरम्भ से ही चञ्चल और ढीठ स्वभाव का था। बड़े होने पर उसकी ये आदतें बढ़ने लगीं। उसका मन खेल-कूद में अधिक लगता और कमला के रोकने की वह कुछ परवाह न करता। उसे जो बातें सिखायी जाती थीं, उनको भी वह सुनता न था। उसे जो शिक्षा दी जाती, उसकी तरफ़ उसका ध्यान न लाता। आरम्भ से ही चिड़ियों का पकड़ना और उनको मार डालना उसके लिए साधारण बात थी। कुछ दिनों के बाद घने जंगलों में जाकर वह शिकार

खेलता और बड़ी स्वतन्त्रता से काम लेता। ऐसे मौकों पर कमला की एक न चलती। उसकी ये आदतें स्वतंत्र रूप से उसमें बढ़ने लगीं।

मेवाड़ के दक्षिण तरफ शैलमाला के भीतर ईडर नाम का एक भीलों का राज्य है। मण्डलीक नामक एक भील उस समय वहाँ का राजा था। गोह उस राज्य के भीलों के साथ वहाँ के जङ्गलों में घूमा करता और वहाँ के जानवरों का पीछा किया करता। वहाँ पर जो ब्राह्मण रहते थे, उनके साथ न तो वह रहता और न उनकी बातों को पसन्द करता। वहाँ के भील गोह का बहुत आदर करते और उसे बहुत सम्मान देते। अब्बुलफजल और भट्ट कवियों ने वहाँ के एक वर्णन को इस प्रकार लिखा है :

एक दिन भीलों के लड़के गोह के साथ खेल रहे थे। सभी लड़कों ने मिलकर गोह को अपना राजा बनाया और एक भील बालक ने अपनी उँगली काटकर उसके खून से गोह के माथे पर राज तिलक किया। किस घटना का भविष्य में क्या परिणाम होता है, इसको पहले से कोई नहीं जानता। ईडर राज्य के माण्डलीक राजा ने यह घटना सुनी कि यहाँ के भील लड़कों ने गोह को अपना राजा बनाया है तो वह बहुत प्रसन्न हुआ और एक दिन उसने अपना राज्य गोह को सौंप कर राज्य से छुट्टी ले ली। राजा माण्डलीक के पुत्र थे। परन्तु उसने अपना राज्य अपने पुत्रों को न दिया था और गोह को सौंप दिया था। परन्तु गोह ने इसके बदले में राजा माण्डलीक को एक दिन मार डाला। उसने ऐसा क्यों किया, इसके सम्बन्ध में कहीं पर कोई उल्लेख नहीं मिलता। आगे चलकर गोह का वंश उसी के नाम से चला और उसके वंशधर गहलोत अथवा गहलोत के नाम से प्रसिद्ध हुए।

इस समय के बाद फिर कोई विशेष उल्लेख ग्रन्थों में नहीं मिलता। जो कुछ मिलता है, उसके आधार पर इतना ही जाहिर होता है कि गोह के बाद आठवीं पीढ़ी तक ईडर राज्य में गोह-लोतों का राज्य रहा और वहाँ के भील राजपूतों के सभी प्रकार काम आते रहे। गोह की आठवीं पीढ़ी में नागादित्य नाम का एक राजा हुआ। उसके व्यवहारों से बहुत-से भील अप्रसन्न थे। इसलिए एक दिन जब नागादित्य जंगल में शिकार खेलने गया था, भीलों ने उसे घेर लिया और उसे मार-कर ईडर राज्य में भीलों का राज्य कायम किया।

वहाँ पर जो लोग रहते थे, सभी भील थे और उनका आतंक वहाँ पर पहले से फैला हुआ था। नागादित्य के मारे जाने के बाद वह आतंक और भी बढ़ गया। भीलों का मुकाबिला करने में राजपूत घबरा उठे थे। उनके सामने भविष्य के लिए कोई आशा न रह गयी थी। नागादित्य के बप्पा नाम का एक तीन वर्ष का बालक था। उस बालक की रक्षा का कोई उपाय दिखाई न देता था। इसलिए कि भीलों का आतंक लगातार बढ़ता जाता था। लेकिन उसकी रक्षा का उपाय निकला, बीरनगर की जिस कमलावती ब्राह्मणी ने शिशु गोह के जीवन की रक्षा की थी, उसी के वंशजों ने शिलादित्य के राजवंश की रक्षा करने का काम किया। उन लोगों ने राजकुमार बप्पा की रक्षा करने का निश्चय किया। उन दिनों में भीलों के आतंक भयानक हो रहे थे और बप्पा के प्राणों की आशंकायें लोगों की समझ में आती थीं। इसलिए वहाँ के ब्राह्मण बप्पा को लेकर भाँडेर नाम के किले में चले गये। उस किले में एक भील ने उन ब्राह्मणों की सहायता की। परन्तु वह स्थान भी अधिक सुरक्षित न था। इसलिए बप्पा को लेकर जो ब्राह्मण गये थे। वे उस किले से पराशर नाम के एक स्थान में चले गये। यह स्थान सभी प्रकार के वृक्षों से भरा हुआ था। वहीं पर त्रिकुट पर्वत है और उसके नीचे नागेन्द्र नाम का—जिसे साधारण तौरपर नागदा कहते हैं और जो उदयपुर से दस मील उत्तर की तरफ है—एक स्थान है। वहाँ पर शिवजी की उपासना करने वाले बहुत-से

ब्राह्मण रहा करते थे। उन्हीं ब्राह्मणों को बप्पा सौंपा गया और उस समय से बप्पा वहाँ के स्वतंत्र वातावरण में रहने लगा।

बप्पा के बचपन के सम्बन्ध में अनेक प्रकार की किम्बदन्तियाँ सुनने और जानने को मिलती हैं, जैसी की आमतौर पर अन्यान्य प्रसिद्ध पुरुषों के सम्बन्ध में कही जाती हैं। जिन ब्राह्मणों के संरक्षण में बप्पा दिया गया था। वह उन ब्राह्मणों के पशुओं को चराया करता और प्रसन्न रहता। भट्ट ग्रन्थों में लिखा है कि राजपूतों में शरद ऋतु के दिनों में झूलों का उत्सव बड़े उत्साह और आनन्द के साथ मनाया जाता है। इस उत्सव में सभी लड़के और लड़कियाँ शामिल होती हैं। उन दिनों में नागेन्द्र नगर में सोलंकी राजपूतों का राज्य था। उस वर्ष के झूला उत्सव में भाग लेने के लिए राजा की लड़की अपनी अनेक सखियों और सहेलियों के साथ गयी। वहाँ पहुँचने पर मालूम हुआ कि झूला डालने की रस्सी नहीं है। इसलिए अपनी सखियों के साथ राजकुमारी इधर-उधर देखने लगी। उसी समय बप्पा वहाँ पर घूमता हुआ पहुँच गया। राजकुमारी ने बप्पा से झूले के लिए रस्सी ला देने की बात कही। बप्पा ने उत्तर देते हुए कहा : 'यदि तुम मुझसे विवाह कर लो तो मैं रस्सी ला दूँगा।' उपस्थित लड़कियाँ झूलने के लिये उत्सुक हो रही थीं। राजकुमारी ने अपनी सखियों की तरफ देखा और सभी ने हँसकर बप्पा की बात को स्वीकार कर लिया। उसी समय वहाँ पर विवाह की रचना होने लगी। राजकुमारी के दुपट्टे से बप्पा के पहने हुए कपड़ों की गाँठ बाँध दी गयी और सभी सखियाँ एक दूसरे के हाथ पकड़ कर घेरा बनाकर खड़ी हो गयीं। जहाँ पर वे खड़ी थीं, बीच में एक आम का वृक्ष था। घेरा बनाये हुए लड़कियाँ उस वृक्ष के आस पास घूमने लगीं और राजकुमारी के साथ बप्पा का विवाह हो गया। उसके बाद झूला उत्सव आरम्भ हुआ और उत्सव के बाद सखियों के साथ राजकुमारी अपने महल चली गयी। सभी लड़कियाँ इसके बाद विवाह की इस घटना को भूल गयीं।

राजकुमारी विवाह के योग्य हो चुकी थी। इसलिए उसके पिता ने उसके विवाह की तैयारी शुरू कर दी। इसी अवसर पर एक दिन राजा के एक ज्योतिषी ने राजकुमारी का हाथ देखकर बताया कि राजकुमारी का विवाह तो हो चुका है। इस बात को सुनते ही सबको बड़ा आश्चर्य हुआ। लेकिन कुछ देर के लिए सभी लोग चुप हो गये। विवाह के इस रहस्य को जानने के लिए राजा ने अपने मंत्रियों से कहा और इस रहस्य का पता लगाने के लिए राज्य के गुप्तचरों को आदेश किया गया।

यह सम्वाद बप्पा ने भी सुना। भविष्य में आने वाले संकट का अनुमान लगाकर उसने अपने साथियों से बातें की। उसके सभी साथी उससे बहुत प्रेम करते थे। इसलिए उनके द्वारा किसी आशंका की सम्भावना न थी। फिर भी बप्पा ने उनसे एक प्रतिज्ञा कराने के लिए एक छोटा-सा गढ़ा खोदा और पत्थर का एक टुकड़ा लेकर उसने अपने साथियों से कहा : तुम सभी लोग यह शपथ लो कि सुख-दुख में तुम लोग हमारे साथ रहोगे और प्राण जाने की घड़ी आ जाने पर भी तुम लोग, मेरी किसी बात को किसी से भी प्रकट न करोगे। लेकिन अन्य लोगों की जो बातें मालूम होंगी वे तुम सभी मुझसे कहोगे। शपथ लेने के बाद भी यदि तुम लोग मेरे साथ विश्वासघात करोगे तो तुम सभी के पूर्वजों के पुण्य प्रताप इस पत्थर की तरह धोबी के गढ़े में मिलकर नष्ट हो जायँगे। ×

इतना कह कर बप्पा ने हाथ में लिए पत्थर के टुकड़े को उस गढ़े में डाल दिया। उसके

× राजपूत लोग धोबी के गढ़े को बहुत अपवित्र मानते हैं और इस प्रकार के गढ़े नदियों के किनारे खोदे जाते हैं।

बाद बप्पा के सभी साथियों ने उसके कहने के अनुसार शपथ ली और कभी अपनी शपथ के विरुद्ध कोई काम नहीं किया। लेकिन बप्पा के साथ सोलंकी राजकुमारी के विवाह की बात उसके पिता से छिपी न रही और यह जाहिर हो गया कि राजकुमारी के विवाह की घटना जिसके साथ हुई है, वह बप्पा ही है।

इस बात को बप्पा ने भी अपने साथियों के द्वारा सुना। उसको आने वाली विपत्ति की आशंका होने लगी। इसलिए वह पर्वत के एक गुप्त स्थान में जा कर रहने लगा। यह स्थान बिलकुल निर्जन था। इस स्थान पर पहले बप्पा के वंशधर कई बार आकर शरण ले चुके थे। बप्पा के साथ वलीय और देव नाम के दो भीलों के लड़के भी थे। वलीय उन्द्रीका का और देव अगुन पानोर नाम के स्थानों का रहने वाला था। इन दोनों लड़कों ने बप्पा का साथ नहीं छोड़ा और दोनों ने बप्पा के किसी भी संकट में साथ देने का निश्चय कर लिया था। इसलिए वे दोनों उसके साथ बराबर बने रहे।

बप्पा ने अपनी माँ से सुना था कि मैं चित्तौर के मोरी राजा का भाञ्जा हूँ। इस आधार पर उसने चित्तौर जाने का विचार किया। इस समय उसके बहुत से साथी हो गये थे। उनको लेकर वह चित्तौर पहुँचा। उन दिनों में वहाँ पर मौर्य वंश का मानसिंह नामक एक राजा राज्य करता था। उसने बप्पा को भाञ्जे के रूप में पाकर बहुत आदर किया और उसने उसको अपने राज्य का ए सामन्त बनाया और उसके लिए एक अच्छी जागीर का प्रबंध कर दिया। मौर्यवंश प्रमार वंश की शाखा है। मौर्य वंशी पहले मालव के राजा थे और इन दिनों में यह वंश चित्तौर के सिंहासन पर था।

उन दिनों में राजस्थान में सामन्त प्रथा चल रही थी। इस प्रथा के अनुसार युद्ध प्रिय लड़ाकू सरदारों को राज्य की ओर से एक जागीर दी जाती थी और इसके बदले में वे सरदार आवश्यकता पड़ने पर अपने राजा की ओर से शत्रु से युद्ध करते थे। राजा मानसिंह के बहुत-से सरदार थे और वे राजा के साथ बड़ी श्रद्धा के साथ व्यवहार रखते थे। लेकिन बप्पा के पहुँचने पर सामन्तों के उस व्यवहार में अन्तर पड़ना आरम्भ हुआ। इसका कारण यह था कि राजा मानसिंह बप्पा का बहुत आदर करने लगा था और उसके सामन्त इसे पसन्द न करते थे।

इन्हीं दिनों की बात है। किसी विदेशी ने अपनी सेना के साथ चित्तौर पर आक्रमण किया राजा मानसिंह ने उस शत्रु से लड़ने के लिए अपने सामन्तों को आदेश भेजा। सामन्त इसके लिए तैयार न हुए। उनके हृदयों में पहले से ही अन्तर पड़ गया था। वे लोग बप्पा से ईर्षा रखते थे।

आने वाले शत्रु से सामन्तों के युद्ध न करने पर बप्पा स्वयं युद्ध के लिए तैयार हुआ और चित्तौर की सेना लेकर वह शत्रु से लड़ने के लिए चला गया। उस समय ईर्षा रखने वाले सामन्त भी शत्रु से लड़ने के लिए गये। दोनों ओर से खूब युद्ध हुआ और शत्रु की पराजय हुई। इस युद्ध में बप्पा ने अपने जिस पराक्रम का प्रदर्शन किया, उसको देखकर राजा मानसिंह के सामन्त आश्चर्य में आ गये।

शत्रु को पराजित कर के बप्पा लौटकर चित्तौर नहीं गया। बल्कि चित्तौर की सेना और सामन्तों के साथ वह अपने पूर्वजों की राजधानी गजनी नगर में पहुँचा। उस समय गजनी में सलीम नाम का एक राजा राज्य करता था। बप्पा ने उस पर आक्रमण किया और गजनी का राज्य अपने अधिकार में लेकर म्लेच्छ राजा सलीम की लड़की के साथ विवाह किया इसके बाद गजनी के राज्य को अपने एक सरदार को सौंपकर वह अपनी सेना के साथ चित्तौर आया।

राज मानसिंह के सामन्त बप्पा के कारण असन्तुष्ट थे और उनकी समझ में बप्पा अत्यन्त

पराक्रमी था । इस लिए उन लोगों ने बप्पा के साथ अपना मेल-जोल बढ़ाया और बप्पा ने भी परिस्थितियों का लाभ उठाकर राजा मानसिंह को सिंहासन से उतार कर चित्तौर राज्य का वह अधिकारी बन गया । चित्तौर के सिंहासन पर बैठने के बाद बप्पा ने 'हिन्दू-सूर्य', 'राजगुरु' और 'चक्कवै' नाम की तीन उपाधियाँ धारण कीं ।

महाराज बप्पा ने बहुत-से विवाह किये थे । उनसे जो लड़के पैदा हुए थे, उनमें से कुछ सौराष्ट्र चले गये थे और उसके पाँच बेटे मारवाड़ चले गये थे । अपनी पचास वर्ष की आयु में महाराज बप्पा खुरासान राज्य में चले गये और वहाँ के राज्यों को जीत कर उन्होंने बहुत सी म्लेच्छ स्त्रियों के साथ विवाह किया, उन स्त्रियों से भी बप्पा के अनेक पुत्र और कन्यायें पैदा हुईं । ×

एक सौ वर्ष तक जीवित रहने के बाद बप्पा की मृत्यु हुई । देलवाड़ा नरेश के एक प्राचीन ग्रंथ से पता चलता है कि महाराज बप्पा ने इस्फनहान कन्धार, काश्मीर, ईराक, ईरान, तूरान और काफरिस्ता आदि अनेक पश्चिम के देशों को जीत कर उन राजाओं की बेटियों से विवाह किया था और अंत में साधु जीवन व्यतीत किया । सब मिला कर बप्पा के एक सौ तीस संतानें पैदा हुई थीं और उससे पैदा हुए बेटे नौशेरा पठानों के नाम से इतिहास में प्रसिद्ध हुए । उनके पुत्रों ने अलग-अलग वंशों की प्रतिष्ठा की । हिन्दू स्त्रियों से अट्ठानवे पुत्र पैदा हुए थे, जो अग्नि ओपासी और सूर्यवंशी नाम से विख्यात हुए । भट्ट ग्रंथों में लिखा है कि बप्पा के मरने पर मुसलमान उसके नृतक शरीर को जमीन में गाड़ना चाहते थे और हिन्दू दाह क्रिया करना चाहते थे । इस बात को लेकर हिन्दू और मुसलमानों में बहुत बिवाद बढ़ा । अंत में बप्पा के मृत शरीर पर ढका हुआ कपड़ा हटा कर देखा गया तो शव पर श्वेत रंग के फूले हुए कमल थे । उन फूलों को लेकर मान रोवर पर लगाया गया । फारस के नौशेरवाँ बादशाह के सम्बन्ध में भी इसी प्रकार की बातें कही जाती हैं ।

मेवाड़ के राजवंश के मूल प्रतिष्ठाता बप्पा रावल का यहाँ पर संक्षेप में जीवन चरित लिखा गया है । अब उसके जन्म के सम्बन्ध में कुछ प्रकाश डालना आवश्यक है । पहले लिखा जा चुका है के राजा शिलादित्य के शासनकाल में सम्बत् २०५ में बल्लभीपुर का विनाश हुआ था और उसको वीं पीढ़ी में बप्पारावल का जन्म हुआ । लेकिन राणा के महलों में जो ग्रंथ पाये जाते है, उनसे ाहिर होता कि सम्बत् १९१ में और सन् १३५ ईसवी में बप्पा रावल ने जन्म लिया था । एक ला लेख से मालूम होता है कि सम्बत् ७७० और सन् ७१४ ईसवी में चित्तौर का राजा मानसिंह ौर्य वंशी था और बप्पारावल उस वंश का भांजा था । राजा मानसिंह ने बप्पारावल को पन्द्रह र्ष की अवस्था में अपने राज्य का सामन्त बनाया था । उसके बाद चित्तौर राज्य के सामन्तों की हायता से बप्पा ने वहाँ का राज्य अपने अधिकार में कर लिया । इस मतभेद में सही बात का र्णय करना बहुत कठिन मालूम होता है लेकिन इसका निर्णय करने में सौराष्ट्र के सोमनाथ दिर में मिले हुए एक शिला लेख से सहायता मिलती है, उसमें बल्लभीपुर नाम के एक सम्बत् ा उल्लेख है जो विक्रम सम्बत् के ३७५ वर्ष बाद आरम्भ होता है । ऊपर सम्बत् २०५ बल्लभी र के विनाश का सम्बत् लिखा गया है । यह सम्बत् २०५ बल्लभीपुर सम्बत् जो विक्रम सम्बत ३७५

× इस सत्य को सभी लोग स्वीकार नहीं करते । कुछ ऐसे भी उल्लेख मिलते हैं जिनसे पता लता है कि सम्बत् ८१० में बप्पा ने सन्यास ले लिया था, यह बात मेवाड़ के इतिहास में भी खी गयी है ।

के बाद आरम्भ होता है, सम्बत् ३७५ में सम्बत् २०५ जोड़ देने से ५८० विक्रम सम्बत् आता है। इसी सम्बत् और सन् ५२४ ईसवी में म्लेच्छों ने वल्लभीपुर का विध्वंस किया था।

मौर्य-राजाओं के समय के शिला-लेख से जाहिर होता है कि बप्पा का जन्म सम्वत् ७७० में हुआ। अगर इस ७७० में ५८० घटा दिये जायें तो १९० बाकी रहते हैं। इस १९० में १ वर्ष जोड़ देने से भट्ट कवियों का उल्लेख सही हो जाता है, जिसमें बताया गया है कि सम्वत् १९१ में बप्पा का जन्म हुआ था। यहाँ पर समस्त मतभेद नष्ट हो जाता है और एक वर्ष के अन्तर को भुलाकर, इस बात को सही मान लेना पड़ता है। इस हिसाब से चित्तौर का राज्याधिकार प्राप्त करने के समय बप्पा की अवस्था पन्द्रह वर्ष की थी। इससे यह भी जाहिर है कि बप्पा ने सन् ७२८ ईसवी में चित्तौर का राज्य प्राप्त किया था। इसी समय से गहिलोत का उत्थान आरम्भ होता है। इस समय से ११०० वर्ष के भीतर ५९ राजा मेवाड़ राज्य के सिंहासन पर बैठे।

विद्वान ह्यूम ने लिखा है, "कवि जब किसी ऐतिहासिक कथानक को काव्य में वर्णन करते हैं तो इतिहास के सही अंशों को तोड़-मरोड़कर कुछ का कुछ कर देते हैं और ऐतिहासिक सत्य के प्रतिपादन में कल्पनाओं से भरी हुई अपनी पूर्ण स्वतंत्रता से काम लेते हैं।" ह्यूम का कवियों के सम्बन्ध में इस प्रकार कहना यहां पर पूरी तोर पर प्रकाश डालता है। राजस्थान का प्राचीन इतिहास बहुत-कुछ वहाँ के भट्ट कवियों के काव्य ग्रन्थों पर निर्भर है।

बप्पा के जीवन काल में ही आक्रमणकारी मुसलमानों ने भारत में प्रवेश किया था और वे लोग सिन्धु नदी को पार करके इस देश में आये थे। हिजरी सम्वत् ९५ में खलीफा वलीद का सेनापति मोहम्मद बिनकासिम सिन्ध देश को पराजित करके गंगा के तट तक आया था, जैसा कि अरब वालों की तवारीखों में लिखा हुआ है। एलमेकिन के ग्रंथ में भी इस बात का वर्णन है कि मुसलमानों ने सिंध देश पर आक्रमण किया था और इस आक्रमण से इस देश के राजा भयभीत हो गये थे। अजमेर के राजा माणिकराय का राज्य आठवीं शताब्दी के मध्य में आक्रमणकारियों के द्वारा विध्वंस किया गया था। शत्रु लोग नावों पर सवार होकर आये थे और वे लोग अझर नामक स्थान में उतरे थे। सिन्ध के राजा दाहिर का इतिहास पढ़ने से इस बात का सन्देह नहीं रह जाता कि अजमेर पर आक्रमण करने वाला कासिम था ×। अब्दुल फजल ने लिखा है कि हिजरी सम्वत् ९५ में और सन् ७१३ ईसवी में कासिम ने राजा दाहिर को मारा और उसके राज्य को नष्ट किया। राजा दाहिर का बेटा अपने राज्य से भागकर चित्तौर के मौर्य राजा के पास चला गया था। बप्पा से लेकर शक्तिकुमार तक, दो शताब्दियों के भीतर चित्तौर के सिंहासन पर नौ राजा बैठे। इनमें चार महान प्रतापी हुए, जो इस प्रकार हैं: पहला कनकसेन सन् १४४ ईसवी में, दूसरा शिलादित्य सन् ५२४ ईसवी में, तीसरा बप्पा सन् ७२८ ईसवी में और चौथा शक्तिकुमार सन् १०६८ ईसवी में।

× मोहम्मद बिन कासिम भारत में आकर चित्तौर की तरफ बढ़ा था उसके वहाँ पहुंचने पर बप्पा ने उसके साथ युद्ध करके उसको पराजित किया था।

तेरहवाँ परिच्छेद

चित्तौर से बप्पा के चले जाने के बाद वहां पर एक नये युग का प्रारम्भ—मेवाड़ में राणा खुमान का शासन—भारतवर्ष की निर्बल परिस्थितियाँ—सूरत देश में जाकर वहाँ के राजा की लड़की के साथ विवाह किया—उस लड़की से बालक का जन्म—चित्तौर पर मुसलमानों का आक्रमण—वहाँ के राजा खुमान ने युद्ध करके मुस्लिम सेनापति महमूद को गिरफ्तार किया—यह महमूद कौन था—गहिलोत राजा और उनके समकालीन मुस्लिम बादशाह—सेनापति महमूद के बाद बीस वर्ष तक मुसलमानों के आक्रमण से भारतवर्ष सुरक्षित रहा—उसके बाद भारत में फिर से मुस्लिम आक्रमण।

यह लिखा जा चुका है कि बप्पा सम्वत् ७८४ और सन् ७२८ में चित्तौर के राज सिंहासन पर बैठे थे। उनके चित्तौर से ईरान चले जाने के बाद से लेकर राजा समर सिंह के समय तक का वर्णन इस परिच्छेद में लिखने की हम चेष्टा करेंगे। चित्तौर से बप्पा के चले जाने के बाद इस देश में एक नये युग का आरम्भ होता है। बप्पा रावल से लेकर समरसिंह तक चार शताब्दियाँ व्यतीत होती हैं। इन चार सौ वर्षों के भीतर मेवाड़ के सिंहासन पर सब मिलाकर अठारह राजा बैठे। उनके सम्बन्ध में भट्ट ग्रंथों में कुछ ऐतिहासिक सामग्री नहीं मिलती। कहीं-कहीं पर जो थोड़ा-बहुत उल्लेख मिलता है, उससे यह जाहिर होता है कि वे राजा बप्पा रावल के योग्य वंसज थे और उनकी कीर्ति आज भी राजस्थान में मौजूद है।

आयतपुर की एक शिला के लेख से जाहिर होता है कि बप्पा रावल और समरसिंह के बीच में शक्तिकुमार नाम का एक राजा हुआ और वह सम्वत् १०२४, सन् ६६८ ईसवी में मेवाड़ का अधिकारी था। जैनियों के लेखों से पता चलता है कि राजा शक्तिकुमार से चार पीढ़ी पहले सम्वत् ६२२, सन् ८६६ ईसवी में अल्लट नाम का एक राजा चित्तौर के राज सिंहासन पर बैठा था। खुमान रासा नाम के एक प्राचीन काव्य ग्रंथ से जाहिर होता है कि बप्पा और समरसिंह के मध्यवर्ती समय में मेवाड़ राज्य पर एक बार मुसलमानों का आक्रमण हुआ था और यह आक्रमण राणा खुमान के समय में हुआ था। राणा खुमान ने सन् ८१२ ईसवी से लेकर सन् ८३६ ईसवी तक राज्य किया था।

भारतवर्ष में इस समय भयानक अंधकार फैला हुआ था और उस अंधकार के दिनों का ऐतिहासिक वर्णन खोजना बहुत कठिन मालूम होता है, जब कि उसके सम्बन्ध में ऐतिहासिक बातों का स्पष्ट प्रतिपादन किया गया हो। फिर भी, भट्ट कवियों, आईन अकबरी और फरिश्ता आदि ग्रन्थों की सहायता से जो सामग्री हमें मिल सकी है, उसकी सहायता से हम यहाँ पर कुछ लिखने का प्रयास करेंगे।

गहिलोत वंश की चौबीस शाखाओं का वर्णन पहले किया जा चुका है। इन शाखाओं में से कुछ शाखायें बप्पा के द्वारा उत्पन्न हुईं। चित्तौर पर अधिकार कर लेने के बाद बप्पा सूरत देश में गये। उसके पास के बन्दर द्वीप पर इस्फगुल नाम का राजा राज्य करता था।

इस्फगुल को कुछ अधिकारियों ने वाण राजा का पिता होना स्वीकार किया है। राजा इस्फगुल के एक बेटी थी। बप्पा ने उसके साथ विवाह किया और उसे लेकर वे चित्तौर चले आये। इस स्त्री के गर्भ से बप्पा के अपराजित नाम का एक लड़का उत्पन्न हुआ। इसके पहले बप्पा ने द्वारिका के समीप कालीबाव नगर के परमार राजा की बेटी से भी विवाह किया था। उसके गर्भ से जो लड़का उत्पन्न हुआ था, उसका असिल नाम था। यह सब से बड़ा था। परन्तु अपने मामा के यहाँ रहने के कारण वह अपने पिता के राज्य का अधिकारी न हो सका और उसका छोटा भाई अपराजित सिंहासन पर बैठा। ×

असिल ने सौराष्ट्र में अपना एक राज्य स्थापित किया और अपने वंश की एक शाखा की प्रतिष्ठा की। इसलिए उसके वंश के लोग असिल गहिलोत के नाम से प्रसिद्ध हुए। अपराजित के दो बेटे हुए। एक का नाम खलभोज और दूसरे का नन्दकुमार। उसका बड़ा बेटा खलभोज सिंहासन पर बैठा। छोटे बेटे नन्दकुमार ने दोदा वंश के राजा भीमसेन को मार कर दक्षिण के देवगढ़ नाम के राज्य को अपने अधिकार में कर लिया।

खलभोज के मरने के बाद—जिसका दूसरा नाम कर्ण था—खुमान चित्तौर के राजसिंहासन पर बैठा। मेवाड़ के इतिहास में राजा खुमान का नाम बहुत प्रसिद्ध है। उसी के शासन काल में मुसलमानों ने चित्तौर पर आक्रमण किया और आक्रमणकारियों ने चित्तौर को घेर लिया। चित्तौर की रक्षा करने के लिये अनेक राजपूत राजा युद्ध करने के लिये गये। राजा खुमान ने आक्रमणकारी सेना का मुकाबिला बड़ी बुद्धिमानी के साथ किया। मुस्लिम सेना की पराजय हुई। उसके बहुत से सिपाही मारे गये और जो बाकी रहे, वे युद्ध से भागे। राजा खुमान ने अपनी सेना के साथ उनका पीछा किया और शत्रु-सेना के सेनापति महमूद को गिरफ्तार कर लिया। उसके बाद उसे राजपूत सैनिक चित्तौर ले गये।

यहाँ पर महमूद के नाम पर सन्देह पैदा होता है। इसलिए कि इस युद्ध के दो शताब्दी बाद गजनी की सेना लेकर जिस मुसलमान ने भारत में आक्रमण किया था, उसका नाम भी महमूद था। यह सन्देह उस विवरण से जो नीचे लिखा जायगा, दूर हो जायगा। जिस समय खलीफा अमर बगदाद के सिंहासन पर था, उस समय आक्रमणकारी मुसलमान पहले पहल भारतवर्ष में आये। उन दिनों में गुजरात और सिन्धु नाम के दो नगर इस देश में वाणिज्य के लिए प्रसिद्ध हो रहे थे। इन नगरों को अपने अधिकार में लेने के उद्देश्य से खलीफ़ा उमर ने टाइग्रेस नदी के किनारे बसोरा नाम का एक शहर बसाया और उसके बाद अब्बुलआयास नाम के सेनापति के अधिकार में एक बड़ी सेना देकर उसे भारतवर्ष की ओर भेजा गया। अब्बुलआयास अपनी सेना के साथ सिंध देश तक आया और आरोर नामक स्थान पर भारत के लोगों ने उसके साथ युद्ध किया। उस युद्ध में अबुलआयास मारा गया।

उमर के मरने के बाद खलीफ़ा ओसमान उस सिंहासन का अधिकारी हुआ। उसने भारत पर आक्रमण करने के लिए बहुत सी तैयारियाँ कीं, परन्तु वह कुछ कर न सका। उसके बाद खलीफ़ा अलीबुग़दाद वहाँ के सिंहासन पर बैठा। उसके सेनापति ने सिंध देश पर आक्रमण किया और वह विजयी हुआ। परन्तु उसका अधिकार सिंध देश में अधिक समय तक न रह

× जिस लेख से इस घटना का यहाँ पर उल्लेख किया गया है, उसके एक स्थान पर लिखा है कि असिल ने अपने नाम पर एक किले का नाम असिलगढ़ रखा था। असलि के बेटे का नाम विजय पाल था। वह युद्ध में मारा गया था।

सका। अली बुग़दाद के मर जाने पर ख़लीफ़ा अब्बुल मलिक और खुरासान के बादशाह इजीद के समय में भी भारत में आक्रमण करने के लिए तैयारियाँ होती रहीं। परन्तु कोई आक्रमण न हुआ।

इस बीच में कुछ समय बीत गया। ख़लीफ़ा वलीद अपने पिता के स्थान पर सिंहासन पर बैठा और राज्य का अधिकारी होने के बाद उसने एक विशाल सेना को साथ में लेकर भारत पर आक्रमण किया। उसने सिंध राज्य और करीब के कई नगरों पर अधिकार कर लिया। कुछ लेखों से पता चलता है कि गंगा के पश्चिमी किनारों पर जो छोटे-छोटे राजा रहते थे, उन्होंने कर देना मंजूर कर लिया था। उस समय इस्लाम की तलवार तेजी पकड़ रही थी और कोई राजा युद्ध करने के लिए सहज ही साहस न करता था। जो युद्ध में गया, उसी का सर्वनाश हुआ। उस समय इस्लामी सेना के आक्रमण से यह दशा हो गई थी। इसी मौके पर दाहिर के सिन्ध राज्य का पतन हुआ और राजा दाहिर मारा गया। राजा रोडरिक के के अण्डलूस राज्य पर इस्लामी झण्डा फहराने लगा। इस प्रकार के सैकड़ों संघर्ष हुए और इस्लामी सेना का आतंक भयानक हो उठा। इस प्रकार के आक्रमण संवत् ७७४ सन् ७१८ ईसवी में सेनापति मोहम्मद विनकासिम के द्वारा भारत में हुए। सिंध के राजा दाहिर को मारकर कासिम दाहिर की दो युवती लड़कियों को अपने साथ ले गया और ख़लीफ़ा की भेंट में भेजीं। इन्हीं दोनों लड़कियों के द्वारा सेनापति मोहम्मद विनकासिम का सर्वनाश हुआ। आईन अकबरी और फरिश्ता इतिहास में इस घटना के सम्बन्ध में लिखा है कि राजा दाहिर की दोनों युवती लड़कियाँ जब ख़लीफ़ा के पास भेजी गयीं तो उन दोनों ने कासिम के अश्लील व्यवहार को ख़लीफ़ा से जाहिर किया। उसे सुनते ही ख़लीफ़ा को बहुत क्रोध आया और उसने आदेश दिया कि सेनापति कासिम को कच्ची खाल में भर कर मेरे सामने पेश किया जाय। यही हुआ। उस समय कासिम कन्नौज के राजा हरचन्द के साथ युद्ध करने के लिए जा रहा था। आदेश के अनुसार वह ख़लीफ़ा की अदालत में लाया गया और उसका अंत किया गया।

अलमंसूर जब खलीफा अब्बास का सेनापति था, उस समय सिंध और हिन्दुस्तान उसके अधिकार में थे। सिंध की पुरानी राजधानी अरौर का नाम जो बक्खर के उत्तर में सात मील की दूरी पर है—बदल कर मंसूर रखा और उसको अपने रहने का स्थान बनाया। यह वही समय था, जब बप्पारावल चित्तौर छोड़कर ईरान चले गये थे।

हारूँ अलरशीद ने खलीफा होने पर अपने विशाल राज्य को अपने बेटों में बाँटा और उसने दूसरे पुत्र अलमानून को खुरासान जबूलिस्तान, काबुलिस्तान, सिंध और हिन्दुस्तानी राज्य दिये। हारूँ की मृत्यु के बाद अलमानून अपने भाई को पदच्युत करके हिजरी १७८ सन् ८१३ ईसवी में खलीफा बन गया। यह वही समय था, जब खुमान चित्तौर का राजा था। उसी के शासन काल में अलमानून ने जबूलिस्तान से आकर चित्तौर पर आक्रमण किया था। ऊपर चित्तोर के आक्रमण में जिस महमूद का नाम लिखा गया है और जिसे चित्तौर के राजा खुमान ने पराजित करके कैद कर लिया था, वह यही मामून था, जिसका नाम लिखने वालों की भूल से महमूद लिखा गया है।

इसके बाद बीस वर्ष तक मुसलमानों ने भारत में कहीं पर आक्रमण नहीं किया। उनका प्रभाव इन दिनों में कमजोर पड़ रहा था और भारत वर्ष के जिन देशों में उन्होंने अधिकार कर लिया था, सिंध को छोड़कर बाकी सभी देश उनके अधिकार से निकल गये थे। इन्हीं दिनों में हारूँ रशीद का पोता मोताविकेल बगदाद के सिंहासन पर बैठा। यह समय सन् ८५० ईसवी का था।

मोताविकेल के बाद उसका पैतृक राज्य निर्बल पड़ने लगा और समय के पश्चात् बगदाद सौदागरों के एक बाजार के सिवा और कुछ न रह गया।

बगदाद के अध:पतन के इन दिनों में उसके खलीफों का भारत के साथ जो सम्बन्ध था, वह भी टूट गया और मुस्लिम आतंक कुछ समय के लिए इस देश में समाप्त हो गया। परन्तु सुबुक्तगीन के सिंहासन पर बैठते ही खुरासान में हिज्री संवत् ३६५, सन् ९७५ ईसवी में भारत पर आक्रमण करने के लिए तैयारियाँ होने लगीं और इसी वर्ष सुबुक्तगीन ने अपनी विशाल सेना लेकर सिंध नदी को पार किया और उसके पश्चात् भारत में पहुँच कर उसने आक्रमण किया। उसकी विशाल सेना के सामने भारत के कितने ही राजाओं का पतन हुआ और अगणित संख्या में हिन्दू अपना धर्म छोड़कर मुसलमान हो गये।

इसी शताब्दी के अंत में सुबुक्तगीन ने भारत पर दूसरा आक्रमण किया और हिन्दुओं के साथ उसने बड़ी निर्दयता का व्यवहार किया। उसके इस दूसरे आक्रमण में उसका बेटा महमूद भी उसके साथ आया था और उसने अपने पिता से भी अधिक निर्दय व्यवहार इस देश के लोगों के साथ किये थे। सुबुक्तगीन के बाद उसका बेटा महमूद सिंहासन पर बैठा और उसने बारह बार भारत में भयानक आक्रमण किये। अपनी इन चढ़ाइयों में उसने उपस्थिति सम्पत्ति की लूट की, नगरों का विनाश किया और मंदिरों को तोड़कर उनका सर्वनाश किया। अपने अमानुशिक अत्याचारों के द्वारा उसने हिन्दुओं को अपने पूर्वजों का धर्म छोड़ने और कुरान पढ़ने के लिए मजबूर किया।

हिज्री सम्वत् की पहली शताब्दी से लेकर चौथी शताब्दी के अन्त तक खलीफा लोगों का जो व्यवहार भारतवर्ष के साथ रहा, उसका संक्षेप में यहाँ पर वर्णन किया गया है। इसके पहले जो विवरण चल रहा था, वहाँ का इतिहास मिली हुई सामग्री के अनुसार हम आगे लिखने की चेष्टा करते हैं। चित्तौर के राजा मानसिंह के शासन काल में म्लेच्छों ने चित्तौर पर आक्रमण किया था और बप्पारावल ने उनको पराजित किया था। कदाचित्त इजीद उन म्लेच्छों का नेता था और मोहम्मद बिन कासिम की सेना में सिंध देश से आकर उसने चित्तौर पर आक्रमण किया था। परन्तु ऐतिहासिक ग्रंथों में इस बात का स्पष्टी कारण नहीं होता कि राजा मानसिंह के समय जो सेना आक्रमण करने के लिए चित्तौर में आयी थी, उसका प्रधान कौन था। हिन्दू ग्रन्थों में इस स्थल के वर्णन भिन्न-भिन्न तरीकों से किये गये हे उन ग्रन्थों में इन आक्रमणकारी म्लेच्छों को कहीं पर यवन, कहीं पर राक्षस, कहीं पर दैत्य और कहीं पर दूसरे नामों से लिखा गया है।

गहिलोतों, चौहानों और यदु लोगों के ऐतिहासिक ग्रन्थों में लिखा है कि सम्बत् ७५० से ७८० तक, सन् ६९४ से ७२४ ईसवी तक आक्रमणकारियों के द्वारा एक भयानक आतंक की वृद्धि हुई थी। इन ग्रन्थों में साफ-साफ यह बात नहीं लिखी गयी कि वे आक्रमणकारी कौन थे। इस बात का भी उल्लेख पाया जाता है कि हिज्री ७५ सम्बत् ७५० में एक यदुवंशी राजा ने अपनी राजधानी शालपुर से निकल कर शतद्रु नदी के पूर्व की मरुभूमि में जाकर आश्रय लिया था। जिस शत्रु के कारण इस राजा को अपनी राजधानी से भागना पड़ा था, भट्ट ग्रंथों में उसका नाम फरीद लिखा है। इसी समय अजमेर के चौहान राजा माणिकराय पर भी शत्रुओं का आक्रमण हुआ था और युद्ध में माणिकराय मारा गया था।

इन दिनों में पंजाब का सिन्ध सागर दुआबा खींची वंश के पूर्ववर्ती राजाओं के अधिकार में था और हारस वंश के पूर्वज गोल कुण्डा में रहते थे। इन दोनों वंशों के राजा एक ही समय में अपने राज्यों से निकाले गये थे। जिन शत्रुओं ने उन पर आक्रमण किये थे भट्ट लोगों ने अपने ग्रन्थों में दानव लिखा है। मूस्लिम तवारीखों में लिखा है कि ठीक इसी समय में इजीद खलीफा

की ओर से खुरासान में राज्य करता था और खलीफा वलीद की सेना भारत में आक्रमण करने के लिए गंगा के किनारे तक आ गयी थी। इसके आगे इन तवारीखों में भी कुछ नहीं लिखा गया। इस प्रकार के उल्लेखों से जाहिर होता है कि इन दिनों में जिन आक्रमणकारियों ने भारत में आकर उधम मचाया था, उनमें इजीद, कासिम अथवा वलीद के किसी अन्य अधिकारी का होना सम्भव मालूम होता है। यह भी सम्भव है कि इन्हीं दो में से किसी की ओर से किसी ने अधिकारी बन कर उन दिनों ने भारत में आक्रमण किया हो। क्योंकि मुस्लिम तवारीखों में भारत पर होने वाले आक्रमणों के जो वर्णन लिखे गये हैं, उनमें इन्हीं दोनों का नाम पाया जाता है। इनके आक्रमण भारत के उस समय हुए थे, जब राजा मानसिंह चित्तौर में राज्य करता था। उस समय म्लेच्छों के आक्रमण से चित्तौर की रक्षा करने के लिए जो राजा युद्ध में गये थे, उनके नाम इस प्रकार हैं :

अजमेर, कोटा, सौराष्ट्र और गुजरात के राजाओं के अतिरिक्त हूणों का सरदार अंगुत्सी उत्तर देश का राजा बूसा, जारीजा का राजा शिव, जंगल देश का राजा जोहिया, शिवपत, कुल्हर मालून, ओहिर और हूल। इनके सिवा और बहुत से राजाओं तथा सरदारों ने अपनी सेना के साथ चित्तौर आकर म्लेच्छों के साथ युद्ध किया था। उस युद्ध में मानसिंह की तरफ से और भी अनेक राजाओं ने आकर भाग लिया था जिनके नामों के उल्लेख भट्ट ग्रंथों में नहीं पाये जाते। सिंध देश का राजा दाहिर जब कासिम के द्वारा मारा गया था, उस समय उसका लड़का अपने राज्य से भाग कर चित्तौर चला गया था और इस समय मानसिंहकी तरफ से उसने भी शत्रुओं के साथ युद्ध किया था

राजा मानसिंह—जैसा कि पहले लिखा जा चुका है—मौर्यवंशी था और मौर्य वंश की प्रमुख शाखा प्रमार वंश के राजा उस समय भारतवर्ष के चक्रवर्ती राजा थे। × राजा मानसिंह की ओर से जिन राजाओं और सरदारों ने उस लड़ाई में युद्ध किया था, उनमें बप्पा रावल ने युद्ध में अधिक बहादुरी दिखायी थी और उसी के कारण शत्रु लोग पराजित होकर सिंध देश की तरफ चले गये थे। उनका पीछा करता हुआ बप्पा रावल अपने पूर्वजों के राज्य गजनी पहुँच गया था। उस समय वहाँ का राजा सलीम था। उसको पराजित करके उसने अपने भाञ्जे को वहाँ के सिंहासन पर बिठाया था और राजा सलीम की बेटी से ब्याह कर के वह अपने साथ उसे लेकर चित्तौर चला आया था।

सन् ८१२ से ८३६ ईसवी तक राजा खुमान ने चित्तौर में राज्य किया। उसके शासनकाल में जिस महमूद ने आकर चित्तौर पर आक्रमण किया था, उसके सम्बन्ध में ऐतिहासिक ग्रंथों के आधार पर यह लिखा जा चुका है कि उस आक्रमणकारी का नाम महमूद भूल से लिखा गया है वास्तव में वह मामून था, जिसने अपने पिता के राज्य का अधिकारी हुआ था और उसके बाद उसने लगातार भारत पर आक्रमण किये थे। राजा खुमान के समय में चित्तौर पर जो आक्रमण किये थे राजा खुमान के समय में चित्तौर पर जो आक्रमण हुआ था, उसकी दो शताब्दी के बाद सुबुक्तगीन के बेटे महमूद के आक्रमण प्रारम्भ होते हैं। इसलिए यह साफ जाहिर है कि राजा खुमान के समय खुरासान के बादशाह मामून ने अपनी सेना लेकर चित्तौर पर आक्रमण किया था। राजा खुमान के समय के ऐतिहासिक विवरण भट्ट ग्रंथों में बहुत कम पाये जाते हैं। इसलिए जो सामग्री मिलती

× चित्तौर के राज्य दरबारमें बहुत से सामन्त रहा करते थे। उनका वर्णन चन्द्र भट्टने अपने ग्रन्थ में किया है। यूनान के इतिहासकारों ने लिखा है कि मौर्य वंशी चन्द्रगुप्त के साथ युद्ध में पराजित होने पर सिल्यूकस ने अपनी लड़की चन्द्रगुप्त के साथ ब्याह दी थी और उसके साथ उसने मित्रता करली थी। उन्होंने यह भी लिखा है कि उन दिनों में चन्द्रगुप्त की सेना में बहुत-से ग्रीक सैनिक काम करते थे

है, उसके आधार पर उस समय का वर्णन हम लिखने की यहाँ कोशिश करेंगे। चित्तौर पर आक्रमण होने पर राजा खुमान की तरफ से जो नरेश युद्ध में लड़े थे, उनके नाम इस प्रकार पाये जाते हैं।

गजनी के गहिलोत, असीर के टॉक, नादोल के चौहान, रहिरगढ़ के चालुक्य, [1]सेतबंदर के जीरकेड़ा, [2]मन्दोर के खैरावी, मगरोल के मकवाना, जेतगढ़ के जोड़िया।

तारागढ़ के रीवर, नीरवड़ के कछवाहे, सञ्जोर के कालुम, [3]जूनागढ़ के यादव, अजमेर के के गौड़, लोहादुरगढ़ के चन्दाना, कसौंदी के डोर, [4]दिल्ली के तोंवर, [5]पाटन के चावड़ा, झालौर सोनगढ़े, [6]सिरोही के देवड़ा, गागरोने के खीची, पाटरी के झाला, जोयनगढ़ के दुसाना। [7]लाहौर के बूसा, कन्नौज के राठौर, छोटियाला के बल्ला, पीरनगढ़ के गोहिल, जैसलगढ़ के भाटी, [8]रोनिजा के संकल, [9]खैरलीगढ़ के सीहुर, मण्डेलगढ़ के निकुम्प, राजौड़ के बड़गूजर, [10]कुरनगढ़ के चन्देल।

सिकर के सिकरवार, ओमरगढ़ के जेनवा, पल्ली के पीरगोटा खुनतरगढ़ के जारीजा जरिगाँह के खेरवर और काश्मीर के परिहार *।

चित्तौर पर खुरासान के बादशाह के आक्रमण करने पर इन सभी राजाओं ने अपनी सेनाओं के साथ आकर शत्रु सेना से युद्ध किया था और चित्तौर की रक्षा की थी। राजा खुमान को चौबीस बार शत्रुओं के युद्ध करना पड़ा था। उन युद्धो में राजा खुमान ने अपनी जिस बहादुरी का परिचय दिया था, वह रोम सम्राट सीजर की तरह राजपूतों के लिए अत्यन्त गौरवपूर्ण है। उसके शौर्य और प्रताप ने भारत के इतिहास में राजपूतों का नाम अमर कर दिया है।

राजा खुमान का प्रताप उसके जीवन काल में ही बहुत बढ़ गया था और उसका प्रभाव अब तक यह है कि उदयपुर में जब कभी कोई किसी विपत्ति में आ जाता है अथवा ठोकर खाकर गिर जाता है तो लोगों के मुँह से निकलता है—खुमान तुम्हारी रक्षा करें। लोगों की इन भावनाओं का अर्थ यह है कि सर्वसाधारण का राजा खुमान पर बहुत विश्वास बढ़ गया था।

राजा खुमान ने अपने राज्य का अधिकार छोटे पुत्र जगराज को दे दिया। लेकिन कुछ ही दिनों के बाद उसका बिचार बदल गया और राज्यधिकार फिर वापस लेकर सिंहासन पर बैठ

---

[1]सेतबंदर मालवार के पास है। [2]मन्दोर से आने वाले खैरावी प्रमार वंश की शाखा के वंशज थे। [3]जूनागढ़ (गिरनार) से जो यादव आये थे, उनके वंशजों ने उस देश में बहुत समय तक राज्य किया था। [4]यह नगर गंगा के किनारे दक्षिण में बसा है। [5]इसके संबंध में भट्ट ग्रन्थों में कोई विशेष बात नहीं मिलती। [6]सोनगढ़े चौहानों की एक शाखा के वंशज थे। [7]फरिस्ता इतिहास में लिखा है कि जिस समय पहले पहल मुसलमानों ने भारत पर चढ़ाई की, उस समय लाहौर में हिन्दू राजा का राज्य था। सन् ७६१ ईसवी में अफ़गानों ने लाहौर के हिन्दू राजा के अनेक नगरों पर अधिकार कर लिया था। उस समय तक अफ़गानों ने इसलाम धर्म स्वीकार नहीं किया था। लाहौर के हिन्दू राजा को पाँच महीने के भीतर सत्ताइस बार युद्ध करना पड़ा। अन्त में अफ़गानों ने सधि कर ली। [8]यह प्रमार कुल की शाखा है और यह राज्य मारवाड़ में है।

[9]खैरलीगढ़ के सीहुर सिंध नदी के किनारे राज्य करते थे। भट्ट ग्रन्थों में इनके सम्बन्ध में बहुत विस्तार के साथ लिखा गया है।

[10]कुरनगढ़ से जो चंदेल अपनी सेना के साथ युद्ध में गये थे, उनके देश का वर्तमान नाम बुंदेलखण्ड है।

* जिन राजाओं ने अपनी सेनाओं के साथ आकर चित्तौर को सुरक्षित रखने के लिए शत्रुओं के साथ संग्राम किया था, उनके नाम यहाँ पर लिख दिए गये हैं।

गया। इस प्रकार की घटना के फलस्वरूप पुत्रों के साथ उसका संघर्ष बढ़ गया और एक दिन उसके मंगल नामक बेटे ने उसको जान से मार डाला और वह स्वयं राजा बन बैठा।

राज्य के सामन्तों और सरदारों ने इसको सहन न किया। सब ने मिलकर मंगल को राज्य से निकाल दिया। वह अपने पिता के राज्य से उत्तर मरुस्थली के मैदान में चला गया और वहाँ पर जाकर उसने लोदड़वा नामक नगर बसाया और मंगली गोत्र की प्रतिष्ठा की।

मंगल के निकाले जाने पर मातृभाट चित्तौर के सिंहासन पर बैठा। उसके और उसके उत्तराधिकारियों के शासन काल में चित्तौर के राज्य की सीमा की बहुत वृद्धि हुई। महानदी के किनारे और आबू पर्वत के नीचे के विस्तृत मैदानों में जो असभ्य और जंगली जातियों के लोग रहते थे, वे सभी चित्तौर की अधीनता में आ गये थे। यहाँ के दो प्रसिद्ध किले धरनगड़ और अजरगढ़ अब तक मौजूद हैं।

राजा भातृंभाट ने मालव और गुजरातमे तेरह स्वतंत्र राज्यों की स्थापना × की थी। उस समय से उसके पुत्र गाटेरा गहिलोत के नाम से प्रसिद्ध हुए। राजा खुमान के बाद पन्द्रह पीढ़ी तक चित्तौर के सिंहासन पर जो राजा बैठे, उनके शासन काल में ऐसी घटनायें नहीं हुई, जिनको ऐतिहासिक महत्व मिलता। इसीलिए प्राचीन ग्रंथो में उनके सम्बन्ध में कुछ अधिक नहीं लिखा गया।

उन दिनों में चित्तौर के गहिलोत राजाओं और अजमेर के चौहानों में कभी एक-सा व्यहार नहीं रहा। वे कभी घनिष्ठ मित्रों के रूप में हो जाते थे और कभी एक दूसरे के भयानक शत्रु हो जाते थे। वे कभी एक दूसरे का सर्वनाश करने के लिए तैयार हो जाते और कभी देश की रक्षा करने के लिए मिलकर शत्रुओं के साथ संग्राम करते।

चित्तौर के वीरसिंह ने चौहान राजा दुर्लभ को मार डाला था। लेकिन दुर्लभ के बेटे वीसल देव ने वीरसिंह के उत्तराधिकारी रावल तेजसिंह के साथ अटूट मित्रता की थी और दोनों ने मिलकर मुस्लिम सेनाओं के साथ युद्ध किया था। राजपूतों के इस प्रकार के गुण भट्ट ग्रंथों में और प्राचीन काल के शिला-लेखों में पढ़ने को मिलते हैं। उन सब में यह भी पढ़ने को मिलता है कि राजपूतों के जीवन में आरम्भ से ही हथियार, घोड़ा और शिकार का प्रेम मिलता है। उनके जीवन में इन तीन बातों के सिवा और कुछ न रहता था और इन्हीं तीनों बातों के द्वारा उनके जीवन में जिस शौर्य का सञ्चार होता था, उसका परिचय वे अपने जीवन की अंतिम घड़ी तक दिया करते थे।

× जिन तेरह राज्यों की स्थापना हुई थी, उनमें ग्यारह के नाम इस प्रकार हैं—कुलानागर, चम्पानेर, चौरेता, भोजपुर, लुनार, नीमखोर, सोदारू जंधगढ़, मन्दपुर, आइतपुर और गंगाभाव।

गहिलोत राजा और उनके समकालीन मुस्लिम बादशाह

गहिलोत राजा	राज्य का समय		बगदाद के खलीफ़ा और गजनी के बादशाह	राज्य का समय		विवरण
	सम्वत्	ईसवी		हिज्री	ईसवी	
			बगदाद के खलीफा			
बप्पा का जन्म	७६९	७१३	वलीद ११ वाँ	८६ से ९६	७०५ से ७१५	भारत में गंगा के किनारे तक विजय पायी।
चित्तौर पर बप्पा का अधिकार	७८४	७२८	दूसरा उमर १३ वाँ	९९ से १००	७१८ से ७२१	सिन्ध देश को पराजित किया। चित्तौर के मोरी राजा पर मोहम्मद कासिम के पुत्र महमूद के सेनापतित्व में आक्रमण।
मेवाड़ पर बप्पा का शासन	—	—	हसन १५ वाँ	१०४ से १२५	७२३ से ७४२	७३२ ईसवी में युद्ध—चार्लेस मारटेल के द्वारा खलीफा की सेना की पराजय।
बप्पा का चित्तौर छोड़ना	८२०	७६४	अलमंसूर २१ वाँ	१३६ से १५८	७५४ से ७७५	सिंध राज्य की अंतिम विजय उसकी राजधानी अरोर का नाम मंसूर पड़ा। चित्तौर से बप्पा का ईरान जाना।
अपराजित } खलभोज }	—	—	हारूँरशीद २४ वाँ	१७० से १९३	७६६ से ८०९	खलीफा हारूँ के बेटों में उसके राज्य का बटवारा द्वितीय अलमामून को जबूलिस्तान, सिंध और भारत मिला। उसने सन् १८१३ ईसवी तक वहाँ राज्य किया। खलीफा होने पर।
खुमान	८६८ से ८९२	८१२ से ८३६	अलमानून २६ वाँ	१९८ से २१८	८१३ से ८३३	जबूलिस्तान से आकर चित्तौर पर आक्रमण किया।
भतृभाट सिंह जी						
उल्लूट						
नरवाहन						
शालिवाहन			गजनी के बादशाह			
शक्तिकुमार	१०२४	९६८	अप्तगीन	३५०	९५७	आयतपुर के खण्डहरों से शक्ति कुमार के सम्बन्ध में लेख।
अम्बाप्रसाद						
नरवर्मा	—	—	सुबुक्तगीन	३६७	९७७	भारत में आक्रमण।
यशोवर्मा	—	—	महमूद	३८७ से ४१८	९९७से१०२७	भारत में आक्रमण—आयतपुर का विध्वंस।

चौदहवाँ परिच्छेद

तेरहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में इस देश की राजनीतिक परिस्थितियाँ–दिल्ली में तोंअर शासन का अंत–मेवाड़ में समरसिंह के वंशजों का शासन–मरुभूमि में नाहुर का और दिल्ली में अनंगपाल का राज्य–जावालिस्तान से भाटी लोगों का भारत में चला आना–उनके शासन का विस्तार–दिल्ली के सिंहासन पर पृथ्वीराज–भारत का चक्रवर्ती राजा अनंगपाल–कन्नौज के राठौरों के साथ युद्ध में सोमेश्वर के द्वारा अनंगपाल की सहायता–उसका परिणाम–पृथ्वीराज को दिल्ली के राज्य का अधिकार–राठौरों और चौहानों में भयानक ईर्ष्या–पृथ्वीराज के साथ मन्दोर के राजा की शत्रुता–चित्तौर का राजा समरसिंह पृथ्वीराज का बहनोई–भारत में शहाबुद्दीन गोरी का आक्रमण–गोरी का पराजय–उसका दूसरा आक्रमण–पृथ्वीराज की पराजय–देशद्रोही जयचंद पर गोरी का आक्रमण–जयचंद की मृत्यु–कन्नौज का पतन।

दूसरी शताब्दी में कनकसेन और चौथी शताब्दी में बल्लभी के प्रतिष्ठाता विजय से लेकर, तेरहवीं शताब्दी में समरसिंह तक वंश का शृङ्खलाबद्ध वर्णन ऐतिहासिक तथ्य के साथ हमारे सामने नहीं है। इसलिए यहाँ पर हम जो वर्णन करने जा रहे हैं, उसका प्रारम्भ तेरहवीं शताब्दी के समरसिंह से होता है।

समरसिंह का जन्म सवंत् १२०६ में हुआ था। उस समय देश की राजनीतिक परिस्थिति क्या थी, इस पर संक्षेप में कुछ प्रकाश डालना आवश्यक है। दिल्ली में तोवँर राजवंश का लोप हो गया था। पाटन नगर में भोला भीम चालुक्य वंश का राज्य था। आबू पर्वत पर प्रमारवंशी जित लोग अधिकारी थे। मेवाड़ में समरसिंह के वंशज शासन कर रहे थे। मरुभूमि में नाहुर का आतंक चल रहा था और दिल्ली में राजा अनंगपाल का राज्य था। मंदोर, नागोर, सिंध, जलावत और इनके निकटवर्ती देश पेशावर, लाहौर, काँगड़ा, पहाड़ी राजा लोग तथा प्रयाग, काशी और देवगिरि के राजा दिल्ली की अधीनता में चल रहे थे।

जावालिस्तान से भागकर भाटी लोग भारतवर्ष में आ गये थे और उन्होंने पंजाब के शालिवाहन तन्नोट और मारवाड़ के लोदड़वा को अपने अधिकार में कर लिया था। उसके बाद बरावल नगरी को बसाकर उन लोगों ने जैसलमेर के प्रतिष्ठा का कार्य आरम्भ कर दिया था। यह वही समय था, जब पृथ्वीराज दिल्ली के सिंहासन पर बैठे थे। जैसलमेर के निर्माण के बहुत पहले अरोर में रहने वाले खलीफा के सेनापतियों के साथ भाटी लोगों के युद्ध हुए थे और कई बार उनकी विजय हुई थी।

भाटी लोग पहले बहुत साधारण अवस्था में रहे। पृथ्वीराज के समय उनकी उन्नति हुई। अचलेश नाम का एक भाटी सरदार पृथ्वीराज की सेना में सेनापति था और वह भाटी राजा का भाई था।

राजा अनंगपाल अपने शासनकाल में भारत के चक्रवती राजा थे। वे तोवँर राजा विहलन देव से उन्नीसवीं पीढ़ी में हुए थे। राजा विक्रमादित्य ने जब भारतवर्ष की राजधानी उज्जैन में

कायम की थी, उस समय दिल्ली का महत्व बिलकुल क्षीण हो गया था। उसके बाद राजा विहलन देव ने दिल्ली की फिर उन्नति की थी और अनंगपाल के नाम से वह दिल्ली के सिंहासन पर बैठा था। उसके उत्ताराधिकारियों के शासन काल में अजमेर के चौहान दिल्ली की अधीनता में रहते थे और उनका स्थान दिल्ली राज्य के सामन्तों में था। विहलन देव के शासन काल में अजमेर के चौहानों को अधिक श्रेष्ठता मिल गयी थी और उस समय से उनकी उन्नति आरम्भ हुई थी।

जिन दिनों में दिल्ली के राजा अनंगपाल के साथ कन्नौज के राठौर राजा का युद्ध हुआ, उन दिनों में सोमेश्वर नाम का एक चौहान राजा अजमेर के सिंहासन पर था। सोमेश्वर ने उस युद्ध में राजा अनंगपाल की सहायता की। उससे प्रसन्न होकर अनंगपाल ने सोमेश्वर के साथ अपनी लड़की का विवाह कर दिया। इसी लड़की से पृथ्वीराज का जन्म हुआ। इसके कुछ दिन पूर्व राजा अनंगपाल ने अपनी एक लड़की का विवाह कन्नोज के राजा विजय पाल के साथ किया था। उस लड़की से जयचंद का जन्म हुआ था। जयचंद पृथ्वीराज से बड़ा था। अनंगपाल के कोई बेटा न था, इसलिए उसने पृथ्वीराज को अपने राज्य का अधिकारी बना दिया। उस समय पृथ्वीराज की अवस्था आठ वर्ष की थी। इसके परिणाम स्वरूप राठौरों और चौहानों में भयानक ईर्षा हो गई और वह ईर्षा दोनों वंशों के सर्वनाश का कारण बन गई। पृथ्वीराज जब दिल्ली के सिंहासन पर बैठा, जयचंद ने न केवल उसकी प्रधानता को मानने से इनकार कर दिया, बल्कि उसने अपनी श्रेष्ठता की घोषणा की। इस अवसर पर अनहिलवाड़ा पट्टन के राजा ने—जो चौहानों का पुराना शत्रु था—जयचंद का समर्थन किया और मंदोर के परिहार राजा ने उसका साथ दिया।

पृथ्वीराज के साथ मंदोर के परिहार राजा की शत्रुता का कारण लगभग इन्हीं दिनों का था। मंदोर के राजा ने पृथ्वीराज के साथ अपनी लड़की के विवाह का निश्चय किया था। परन्तु सब कुछ तय हो जाने के बाद राजा मंदोर ने विवाह करने से इन्कार कर दिया। पृथ्वीराज और उसके बीच की यह घटना एक वैमनस्य के रूप में बदल गयी और उसके कुछ ही दिनों के बाद दोनों राजाओं के बीच जो युद्ध हुआ, उससे शत्रुओं को पृथ्वीराज के पराक्रम का पूरा परिचय मिला।

इस प्रकार की घटनाओं से जयचंद के हृदय में पृथ्वीराज के प्रति ईर्षा की वृद्धि होती गई। पट्टन और मंदोर के राजा इसके सम्बन्ध में जयचंद के पूरे साथी बन गये। इस आपसी अशान्ति और ईर्षा का लाभ मोहम्मद गोरी ने उठाया।

पृथ्वीराज की बहन पृथा का विवाह चित्तौर के राजा समरसिंह के साथ हुआ था। इस सम्बन्ध ने पृथ्वीराज और समरसिंह को मित्रता की एक ऐसी जञ्जीर में बाँध दिया कि वे दोनों अपने जीवन काल में एक दूसरे से फिर अलग न हो सके।

समरसिंह—जैसा कि ऊपर लिखा गया है—पृथ्वीराज का बहनाई था और अनहिलवाड़ा पट्टन के राजा के साथ भी समरसिंह का वैवाहिक सम्बन्ध था। फिर भी पृथ्वीराज के साथ समरसिंह की जो घनिष्टता और मित्रता थी, वह पट्टन के राजा के साथ उसकी न थी। यही कारण था कि अनहिल वाड़ा पट्टन का राजा समरसिंह से प्रसन्न न था। समरसिंह ने कई बार पृथ्वीराज की सहायता की थी और सबसे पहला अवसर वह था, जब उसकी सहायता से नागोर में सात करोड़ रुपये का सोना पृथ्वीराज को मिला था। यह खज़ाना प्राचीनकाल से नागोर के उस स्थान में रखा हुआ था। इससे कन्नौज और अनहिलवाड़ा पट्टन के राजाओं के हृदयों में

पृथ्वीराज के प्रति और भी अधिक ईर्षा की वृद्धि हुई। वे किसी प्रकार पृथ्वीराज के सर्वनाश के लिए उपाय ढूंढ़ने लगे और इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन दोनों ने गजनी के शहाबुद्दीन को भारत में आने के लिए आमंत्रित किया।

जयचंद ने कई एक छोटे राजाओं को मिलाकर, अनहिलवाड़ा पट्टन, मन्दोर और धार के राजाओं के परामर्श से एक योजना तैयार की और उस योजना के अनुसार शहाबुद्दीन के द्वारा वह पृथ्वीराज का सर्वनाश करना चाहता था। पृथ्वीराज को इन सब बातों का पता हो गया और उसे यह भी मालूम हो गया कि दिल्ली पर आक्रमण करने के लिये गजनी की एक विशाल सेना लेकर शहाबुद्दीन आ रहा है। उसने इस अवसर पर समरसिंह को बुलाने के लिए अपने सामन्त चण्डपुण्डीर को चित्तौर भेजा। चण्डपुण्डीर युद्ध में कुशल, पराक्रमी और पृथ्वीराज का अत्यन्त विश्वासी सामन्त था। उसने चित्तौर पहुँचकर समरसिंह से सारा वृत्तान्त कहा। इसके बाद समरसिंह राजपूतों की शक्तिशाली सेना को लेकर दिल्ली के लिए रवाना हुआ।

पृथ्वीराज अनहिलवाड़ा पट्टन के राजा पर आक्रमण करके उसको शिकस्त देना चाहता था। पट्टन के राजा के साथ सम्बन्ध होने के कारण समरसिंह ने वहाँ जाना अपने लिए उचित न समझा। इसलिए पृथ्वीराज अपनी सेना के साथ पट्टन राज्य की तरफ रवाना हुआ और समरसिंह को उसकी सेना के साथ शहाबुद्दीन से युद्ध करने के लिए चित्तौर में छोड़ दिया।

जिस समय शहाबुद्दीन अपनी विशाल सेना के साथ भारतवर्ष में पहुँचा, समरसिंह ने अपनी राजपूत सेना के साथ रावी नदी के तट पर उसका मुकाबला किया। दोनों ओर से भयानक युद्ध आरम्भ हुआ और कई दिनों के भीषण संग्राम के बाद भी कोई निर्णय न हुआ। समरसिंह की राजपूत सेना ने गजनी की सेना को आगे बढ़ने न दिया। इसी बीच में अनहिलवाड़ा पट्टन के राजा को पराजित करके पृथ्वीराज अपनी विजयी सेना के साथ चित्तौर लौट आया और शहाबुद्दीन के साथ युद्ध करने के लिए वह युद्ध क्षेत्र में पहुँच गया। समरसिंह और पृथ्वीराज के राजपूत सैनिकों ने गजनी की सेना के साथ भयंकर युद्ध किया। अंत में गजनी की सेना की पराजय हुई। शहाबुद्दीन अपने प्राण लेकर युद्ध से भागा। राजपूतों ने उसके सेनापति को गिरफ्तार कर लिया। इस तरह से शाहबुद्दीन के अनेक आक्रमणों को विफल किया गया।

नागोर में जो सम्पत्ति पृथ्वीराज को मिली थी, उसे उसने समरसिंह को देना चाहा। परन्तु समरसिंह ने उसमें से कुछ भी लेने से इन्कार कर दिया और पृथ्वीराज के बहुत आग्रह करने पर समरसिंह ने अपने सरदारों को आदेश दिया कि वे पृथ्वीराज से मिलने वाली सम्पत्ति को स्वीकार कर लें।

इसके बाद कई वर्ष बीत गये। गजनी की सेना के पराजय से जयचंद और उसके साथी राजाओं ने अपना बहुत अपमान अनुभव किया। वे लोग पृथ्वीराज को पराजित करने के लिये अनेक प्रकार के मार्ग ढूंढ़ने लगे। परिणाम यह हुआ कि इस बार शहाबुद्दीन पहले से अधिक विशाल सेना लेकर भारतवर्ष की ओर फिर रवाना हुआ। उसके इस आक्रमण का समाचार पाकर पृथ्वी-राज ने चित्तौर सम्वाद भेजा। राजा समरसिंह ने अपनी पूरी शक्तियों के साथ युद्ध की तैयारी की। राज्य का भार अपने छोटे पुत्र कर्णसिंह को सौंपकर वह दिल्ली की तरफ रवाना हुआ। × गजनी

× कर्णसिंह समरसिंह का छोटा लड़का था। राज्य का अधिकार पाने का अधिकारी बड़ा पुत्र कुम्भकर्ण था। लेकिन समरसिंह के द्वारा राज्याधिकार छोटे भाई को मिलने से बड़ा भाई बहुत अप्रसन्न

की सेना भारतवर्ष में पहुँच चुकी थी। उसके साथ युद्ध करने के लिए दिल्ली से पृथ्वीराज और समरसिंह की राजपूत सेनायें रवाना हुईं। कग्गर के किनारे पर दोनों ओर की सेनाओं का सामना हुआ। तीन दिन तक भीषण मारकाट हुई। तीसरे दिन समरसिंह अपने पुत्र कल्याण और तेरह हजार राजपूत सैनिकों तथा सरदारों के साथ युद्ध में मारा गया। उसकी रानी पृथा ने अपने पुत्र और पति के मारे जाने का समाचार सुना। उसने यह भी सुना कि उसका भाई पृथ्वीराज शत्रुओं के द्वारा कैद कर लिया गया है और दिल्ली तथा चित्तौर के राजपूत सैनिकों और सरदारों का संहार हुआ है। उसने बिना किसी बात की प्रतीक्षा के चिता तैयार करवाई और उसमें अपने पति के साथ जलकर भस्म हो गयी।

इसके बाद गजनी की विजयी सेना ने दिल्ली में प्रवेश किया और उसको अपने अधिकार में लेने के बाद शहाबुद्दीन की सेना ने देशद्रोही जयचंद के राज्य कन्नौज पर आक्रमण किया। जयचंद घबराकर कन्नौज से भागा और नाव पर बैठकर वह गंगा नदी को पार कर रहा था। दुर्भाग्य के प्रकोप से नाव गंगा में डूब गयी और जयचंद का वहीं पर अंत हो गया।

पृथ्वी पर ऐसी कौन-सी जाति है जो शौर्य, धैर्य, पराक्रम और जीवन के ऊँचे सिद्धान्तों में राजपूत जाति की बराबरी कर सके? सैकड़ों वर्ष तक विदेशी आक्रमणकारियों के अत्याचारों को सहकर और भीषण सर्वनाश को पाकर राजपूत जाति ने जिस प्रकार अपने पूर्वजों की सभ्यता को अपने जीवन में सुरक्षित रखा है, उसकी समता विश्व की कोई भी जाति नहीं कर सकती, इस बात को तो मानना ही पड़ेगा। यह बात जरूर है कि राजपूत स्वभावत: निडर और स्वाभिमानी होते हैं। अपने सम्मान और गौरव की रक्षा करने में प्राणों का उत्सर्ग करना उनके साधारण स्वभाव की बात होती है। वास्तव में एक वीर जाति के लिए इस प्रकार की बातें उसके गौरव की वृद्धि करने वाली होती है। राजपूत शत्रु के साथ युद्ध करने में पराजित होकर भागने की अपेक्षा मृत्यु का सामना करने में अपने जीवन का महत्व समझते हैं, उनकी समता संसार की वे जातियाँ नहीं कर सकतीं, जो अवसरवादी होने का लाभ उठाती हैं। राजपूत किसी प्रकार अवसरवादी नहीं कहे जा सकते। इसका प्रमाण उनके हजारों वर्षों का इतिहास है। प्रत्येक राजपूत शरण में आये हुए शत्रु की रक्षा करना अपना कर्त्तव्य समझता है, जीवन के इस महत्वपूर्ण सिद्धान्त की श्रेष्ठता कौन स्वीकार न करेगा?

राजस्थान के इतिहास की सभी घटनायें अपने जीवन की अलग-अलग मर्यादा रखती हैं। कन्नौज के राठौर राजपूतों ने कुछ दूसरे राजाओं के साथ मिलकर जाति द्रोह और देशद्रोह किया। उसका परिणाम उनके सिर पर आया। कन्नौज का पतन हुआ। अनहिलवाड़ा पट्टन का केवल नाम बाकी रह गया और जिन दूसरे राज्यों ने जातिद्रोह करके विदेशी शत्रु का साथ दिया, उनके नाम पर अनन्तकाल के लिए देशद्रोह का कलंक लगा। पृथ्वीराज की युद्ध में पराजय हुई। परन्तु उसका नाम सदा-सर्वदा के लिए इस देश के इतिहास में अमर हो गया। समरसिंह के जीवन का अंत हुआ परन्तु उसका यश और प्रताप इतिहास के पन्नों में अमिट अक्षरों से लिखा गया। राजस्थान के इस प्रकार के अगणित उदाहरण इस बात की शिक्षा देते हैं कि देश और धर्म पर बलिदान होने वालों की सदा पूजा होती है।

हुआ और वह अपने पिता के राज्य से निकल कर दक्षिण की ओर चला गया। वहाँ पर बिदौर नाम एक हवशी बादशाह के साथ रहकर उसने एक नये राज्य की प्रतिष्ठा की।

समरसिंह के युद्ध में मारे जाने पर उसकी रानी पृथा उसके साथ सती हो गयी थी और उसका बेटा कर्णसिंह उस समय नाबालिग था। समरसिंह के कई छोटे बेटे थे। लेकिन कर्णसिंह ही उसका उत्तराधिकारी था। उसके नाबालिग होने के कारण समरसिंह की दूसरी रानी कर्मदेवी ने—जो विधवा हो चुकी थी—राज्य का प्रबन्ध अपने हाथ में लिया और बड़ी योग्यता के साथ उसने अपने राज्य में शासन किया। उसके शासन काल में कुतुबुद्दीन ने मेवाड़ पर आक्रमण किया। रानी कर्मदेवी ने शत्रु का मुकाबला करने के लिए युद्धकी तैयारी की और स्वयं घोड़ेपर सवार होकर अपनी सेना के साथ युद्ध करने के लिए गयी। उसके साथ नौ राजा और ग्यारह शूरवीर सामन्त अपनी सेनाओं के साथ कर्मदेवी की सहायता के लिए युद्ध करने के लिए गये। अम्बेर के पास दोनों ओर की सेनाओं का आमना-समाना हुआ और युद्ध आरम्भ हो गया। उस संग्राम के कुतुबुद्दीन की पराजय हुई। वह घायल होकर भागा। रानी कर्मदेवी की विजयी सेना शत्रु को भगाकर लौट आयी।

राजकुमार कर्णसिंह सम्बत् १२४६ सन् ११६३ ईसवी में अपने पिता के सिंहासन पर बैठा। भट्ट ग्रंथों में लिखा है कि कर्णसिंह के माहुप और राहुप नाम के दो बेटे उत्पन्न हुए थे। लेकिन दूसरे उल्लेखों और आगे को घटनाओ से पता चलता है कि भट्ट ग्रंथों में यह बात भूल से लिख गयी है। राजा समरसिंह के सूर्यमल नाम का एक भाई था। उससे जो लड़का पैदा हुआ था, भरत उसका नाम था। समरसिंह के पुत्र कर्णसिंह का विवाह चौहान वंश के एक राजकुमारी के साथ हुआ था। उस राजकुमारी से माहुप का जन्म हुआ था। कर्णसिंह के मेवाड़ के राज सिंहासन पर बैठने के बाद राज्य के सरदारों ने भरत के विरुद्ध एक षड़यंत्र रचा और उसे मेवाड़-राज्य से निकाल दिया।

भरत मेवाड़ से निकलकर सिंध देश की तरफ चला गया। वहाँ के अरोर नामक नगर में एक मुसलमान का शासन था। भरत ने अरोर नगर पर अधिकार कर लिया। कुछ दिनों के बाद उसने पूगल के भाटी सरदार की लड़की के साथ विवाह कर लिया। उससे राहुप नाम का लड़का पैदा हुआ। कर्णसिंह अपने भतीजे भरत को बहुत प्यार करता था। राज्य से उसके चले जाने के बाद वह बहुत दुखी रहने लगा। उसके हृदय में एक संताप इस बात का और था कि उसका बेटा माहुप अयोग्य और निकम्मा था। वह मेवाड़ को छोड़कर अपने ननिहाल में रहा करता था। इन्हीं दोनों बातों के कारण कुछ समय तक दुखी रहने से कर्णसिंह की मृत्यु हो गयी।

राजा कर्णसिंह के एक लड़की थी। उसका विवाह जालौर के सोनगढ़े वंशी सरदार के साथ हुआ था। उस लड़की से रणधोल नाम का एक लड़का उत्पन्न हुआ। कर्णसिंह की मृत्यु हो चुकी थी। उसका बेटा माहुप बिलकुल अयोग्य था और भरत मेवाड़ राज्य से चला गया था। इसलिए चित्तौर के सिंहासन पर रणधोल को बिठाने के लिए सोनगढ़े का सरदार कोशिश करने लगा। समय पाकर उसने चित्तौर राज्य के सरदारों पर आक्रमण किया और भयानक विश्वासघात के साथ उसने चित्तौर के सिंहासन पर अपने बेटे रणधोल को बिठाने में सफलता पायी।

रणधोल के सिंहासन पर बैठने से चित्तौर के राज-परिवार में बड़ा असंतोष पैदा हुआ। उस असंतोष के फलस्वरूप राज्य परिवार का एक पुराना भट्ट भरत के पास भेजा गया। उसने वहाँ पहुँच कर भरत को सब वृत्तान्त सुनाया। भरत ने अपनी सेना के साथ अपने पुत्र राहुप को चित्तौर की तरफ रवाना किया। यह समाचार जब सोनगढ़े के सरदार को मिला तो वह अपनी सेना लेकर राहुप के साथ युद्ध करने को रवाना हुआ। पल्ली नामक स्थान पर दोनों सेनाओं की मुठभेड़ हुई। उस लड़ाई में राहुप की विजय हुई और सोनगढ़ी सरदार पराजित होकर भाग गया।

राहुप की इस विजय को सुनकर चित्तौर के सरदार और सामन्त बहुत प्रसन्न हुए। वे यह न चाहते थे कि बप्पा रावल के वंशजों के राज्य-सिंहासन पर सोनगढ़े का सरदार बैठे और बप्पा रावल के वंश का अंत हो जाय। चित्तौर के सरदारों और सामन्तों ने राहुप का स्वागत किया और बड़े सम्मान के साथ उसे चित्तौर के सिंहासन पर बिठाया। इस प्रकार सम्वत् १२९७ सन् १२०१ ईसवी में राहुप चित्तौर के राज्य का अधिकारी हुआ।

इसके कुछ ही दिनों के बाद चित्तौर के राजा राहुप ने मुस्लिम सेनापति शमसुद्दीन के साथ युद्ध किया। यह युद्ध नगरकोट के मैदान में हुआ। उस युद्ध में शमसुद्दीन को पराजित करके राहुप विजयी हुआ।

राहुप के शासन काल में मेवाड़ में दो परिवर्तन हुए। इन परिवर्तनों का सम्बन्ध गहिलोत वंश के साथ था। पहला परिवर्तन यह हुआ कि मेवाड़ का राजवंश अब तक गहिलोत वंश के नाम से प्रसिद्ध था। राजा राहुप के समय से यह वंश सीसोदिया वंश के नाम से प्रसिद्ध हुआ। दूसरा परिवर्तन यह हुआ कि गहिलोत वंश के राजाओं की उपाधि अब तक रावल थी। राजा राहुप के समय से वहाँ के राजा राणा के नाम से प्रसिद्ध हुए।

राणा उपाधि का रहस्य यह है कि राजा राहुप के शत्रुओं में मंदोर का परिहार राजा मुकुल भी एक था। राणा उसकी उपाधि थी और वह राणा मुकुल के नाम से पुकारा जाता था। राजा राहुप ने अपनी सेना लेकर मन्दोर पर आक्रमण किया और मुकुल को पराजित करके एवम् उसकी राजधानी में उसे कैद करके उसे सीसोदिया में ले आया। उसके बाद उसका जोदवाड़ नामक नगर तथा उसकी राणा की उपाधि लेकर उसको छोड़ दिया और राहुप ने स्वयं उस समय से राणा की उपाधि धारण की।

अड़तीस वर्ष तक बड़ी योग्यता के साथ राहुप ने राज्य किया। उस के बाद उसकी मृत्यु हो गयी। राहुप के सिंहासन पर बैठने के समय मेवाड़ की परिस्थिति अच्छी नहीं थी। राजा की राजनीतिक शक्तियाँ बहुत कुछ छिन्न-भिन्न हो गयी थीं। राहुप ने बड़ी बुद्धिमानी के साथ बिखरी हुई निर्बल शक्तियों को शक्तिशाली बनाया और मेवाड़ के प्राचीन गौरव की रक्षा की। उसके उत्तराधिकारियों की अपेक्षा उसका शासन अनेक अच्छाइयों के लिये प्रसिद्ध हुआ।

राजा राहुप से लेकर लक्षमण सिंह तक अर्द्ध शताब्दी में नौ राजा चित्तौर के सिंहासन पर बैठे उनका शासन काल लगभग एक दूसरे के बराबर रहा। उनमें छै राजा युद्ध में मारे गये। म्लेच्छों ने गया में आक्रमण किया था और अपने तीर्थ स्थान गया की रक्षा करते हुए उन छै राजाओं ने अपने प्राणों की आहुतियाँ दीं। उन छै राजाओं में पृथ्वीमल का नाम अधिक विख्यात है। उसके बाद अलाउद्दीन के समय तक फिर वहाँ कोई अशान्ति नहीं पैदा हुई। परन्तु इस बीच में एक बार चित्तौर कुछ दिनों के लिये राजपूतों के हाथ से निकल कर शत्रुओं के अधिकार में चला गया था और फिर सीसोदिया वंश के भानुसिंह ने अपने शासन काल में चित्तौर का उद्धार कर राणा की उपाधि धारण की थी। भानुसिंह के दूसरे बेटे का नाम चन्द्र था। उसके वंश के लोग चन्द्रावत नाम से प्रसिद्ध हैं। यह वंश मेवाड़ के सामन्तों में बहुत पराक्रमी समझा जाता है।

राजा राहुप और लक्ष्मणसिंह के मध्यवर्ती समय में जो राजा हुए थे, उनके शासन काल में आक्रमणकारियों के उपद्रव अधिक बढ़ गये थे और बाहरी शक्तियों ने समय-समय पर आक्रमण करके अच्छे-अच्छे नगरों और तीर्थ स्थानों का सर्वनाश किया था।

लेकिन उस समय के विवरण भट्ट ग्रंथों में जो पढ़ने को मिलते हैं, उनमें कोई ऐतिहासिक

सामग्री नहीं पायी जाती। उस समय के विवरण कुछ ऐसे ढंग से लिखे गये हैं, जिनको पढ़ कर कई प्रकार के संशय उत्पन्न होते हैं और एक ही प्रकार के उल्लेख उस समय के उन ग्रंथों में बार-बार लिखे गये हैं। इसलिए उनके सम्बन्ध में यहाँ पर कुछ अधिक नहीं लिखा गया।

पन्द्रहवाँ परिच्छेद

चित्तौर में राणा लक्ष्मण सिंह–उसकी छोटी अवस्था में चाचा भीमसिंह का शासन–भीमसिंह की स्त्री पद्मिनी के सौन्दर्य की ख्याति–अलाउद्दीन का चित्तौर पर आक्रमण–बादशाह अलाउद्दीन ने पद्मिनी की माँग की–उसकी राजनीतिक चालें–दर्पण में पद्मिनी को देखकर लौट जाने की घोषणा–बादशाह का षड़यंत्र–राणा भीमसिंह की गिरफ्तारी–वह शत्रु के शिविर में–पद्मिनी की योजना–बादशाह की खुशी–उसके शामियाने में चित्तौर की पालकियाँ–राणा भीम की छूट–शिविर में भयानक युद्ध–गोरा की बहादुरी–बादशाह का दूसरा आक्रमण–भयानक संग्राम–चित्तौर में युद्ध की अंतिम तैयारी–महलों में जौहर व्रत की योजना--अंत में चित्तौर की पराजय--राजपूत बालाओं के जीवन की होली--अरिसिंह और एक युवती--चित्तौर पर अलाउद्दीन का अधिकार।

सम्वत् १३३१, सन् १२७५ ईसवी में लक्ष्मणसिंह चित्तौर के सिंहासन पर बैठा। उस समय उसकी अवस्था छोटी थी। इसलिए उसके चाचा भीमसिंह ने उसके संरक्षण का काम किया और शासन का उत्तरदायित्व अपने हाथों में रखा। राणा भीमसिंह ने सिंहल द्वीप के निवासी चौहान बंसी हमीरशंख की लड़की पद्मिनी के साथ विवाह किया था। पद्मिनी अपने रूप-यौवन के लिए बहुत प्रसिद्ध थी और उसके सौन्दर्य की प्रशंसा बहुत दूर-दूर तक फैली हुई थी।

राणा भीमसिंह के शासन काल में अलाउद्दीन ने अपनी तातार सेना को लेकर चित्तौर पर आक्रमण किया। भट्ट ग्रंथो ने इस बात को स्वीकार किया है कि अलाउद्दीन ने पद्मिनी के कारण ही चित्तौर पर आक्रमण किया था। अपनी शक्तिशाली सेना के द्वारा चित्तौर को घेर कर अलाउद्दीन ने इस बात को जाहिर किया कि पद्मिमी को पा जाने के बाद मैं चित्तौर से वापस लौट जाऊँगा। दूसरे ऐतिहासिक ग्रंथों से मालूम होता है कि अपने इस उद्देश्य के लिए वह बहुत दिनों तक चित्तौर को घेरे रहा।

बहुत समय बीत जाने के बाद जब अलाउद्दीन को अपने उद्देश्य की सफलता न मिली तो उसने यह जाहिर किया कि दर्पण में पद्मिनी के दर्शन करके मैं चित्तौर से लौट जाऊँगा।

बादशाह अलाउद्दीन की इस प्रकार की बातों को सुनकर राजपूतों का खून उबल रहा था। किसी प्रकार इस तरह की बातों को सुनने और सहन करने के लिए वे तैयार न थे। परन्तु वे सब के सब खामोश थे। बादशाह अलाउद्दीन के उद्देश्यों को सुनकर राणा भीमसिंह के राज-दरबार में कब क्या निर्णय हुआ, इस का कोई उल्लेख किसी ग्रंथ में नहीं मिलता और जो कुछ मिलता है वह यह है कि बादशाह अलाउद्दीन ने दर्पण में रानी पद्मिनी को देखने के लिए अपने कुछ शरीर रक्षकों के साथ चित्तौर में प्रवेश किया। वहाँ पर इसकी व्यवस्था थी। अलाउद्दीन ने पद्मिनी को दर्पण में देखा और उसके बाद वहाँ से वह लौट पड़ा।

इस अवसर पर चित्तौर में बादशाह अलाउद्दीन का स्वागत सत्कार हुआ और उसके लौटने पर राणा भीमसिंह स्वयं कुछ दूर तक उसे भेजने गया। दोनों ही बातें करते हुये महलों से दूर निकल गए। अचानक समय और संयोग पाकर कुछ सशस्त्र बादशाह के सैनिकों ने राणा पर आक्रमण किया और भीमसिंह को कैद करके अपने शिविर में ले गये। उसके बाद बादशाह की तरफ से चित्तौर के राजपूत सरदारों को संदेश मिला कि पद्मिनी को पाने पर ही राणा भीमसिंह को छोड़ा जा सकता है, अन्यथा नहीं। बादशाह का यह सन्देश वायु के समान सम्पूर्ण चित्तौर नगरी में फैल गया।

रानी पद्मिनी को भी यह संदेश सुनने को मिला। उसने बड़े धैर्य और साहस से काम लिया। चित्तौर में उसके साथ उसका चाचा गोरा और बादल नाम का उसका एक बन्धु रहता था। दोनों ही राजपूत शूरवीर और लड़ाकू थे। रानी पद्मिनी ने दोनों को बुलाकर परामर्श किया और जो निर्णय हुआ, उसपर चित्तौर के प्रमुख सामन्तों के साथ बातचीत हुई। उसके आधार पर, बादशाह के पास संदेश भेजा गया कि जिस समय तातारी सेना घेरा तोड़ कर चित्तौर से जाने को तैयार होगी, पद्मिनी बादशाह के पास पहुँच जायगी। बादशाह अलाउद्दीन ने इस बात को स्वीकार कर लिया। उसके स्वीकार कर लेने पर चित्तौर की तरफ से उससे यह भी कहा गया कि पद्मिनी के साथ जो राजपूत सहेलियाँ रहा करती हैं, वे सभी पद्मिनी को यहाँ तक भेजने आवेंगी। वे सभी पालकियों पर परदों के भीतर होंगी। उन सहेलियों में थोड़ी-सी रानी की सखियाँ साथ साथ दिल्ली जायेंगी और बाकी चित्तौर वापस लौट जाएंगी। बादशाह ने इन सब बातों को स्वीकार कर लिया।

इसके लिए दिन और समय निश्चय हो गया और निर्णय के आधार पर सात सौ बन्द पालकियाँ चित्तौर से निकलकर बादशाह के शिविर की तरफ रवाना हुईं। प्रत्येक पालकी में छै-छै कहार थे और वे अपने वस्त्रों में लड़ने के हथियार छिपाये थे। उन पालकियों में चित्तोर के शूरवीर सशस्त्र राजपूत बैठे थे। चित्तौर से निकल कर ये पालकियाँ बादशाह के शिविर के सामने पहुँच गयीं। बादशाह ने शिविर में आने के लिए एक बड़ा शामियाना लगा दिया था और उस शामियाने के चारों तरफ़ एक दरवाज़ा बनाकर कनातें लगा दी गयी थीं। एक-एक करके सभी पालकियाँ उस सामियाने के भीतर पहुँच गयीं।

तातार सेना चित्तौर से दिल्ली जाने के लिए तैयार हो चुकी थीं और बादशाह को पद्मिनी के दिल्ली ले जाने में कोई संदेह नहीं रह गया था। उसने राणा भीमसिंह को पद्मिनी से अंतिम भेंट करने के लिये आध घन्टे का समय दिया था। भीमसिंह सामियाने के भीतर पहुँचा। उसी समय एक पालकी में बैठे हुए राजपूत ने उसकी तरफ देखा और कुछ संकेतों के साथ राणा को अपनी पालकी में बिठा लिया। इस कार्य का सम्पादन बड़ी सावधानी और तत्परता के साथ हुआ। उसके बाद ही वह पालकी शामियाने से निकलकर चित्तौर की तरफ रवाना हुई। उसके पीछे चित्तौर की कुछ अन्य पालकियाँ भी वहाँ से लौटीं। बाकी पालकियाँ शामियाने के भीतर मौजूद रहीं। राणा को जो आधे घन्टे का समय दिया गया था, उसके बीत जाने पर और राणा के शामियाने से न लौटने पर बादशाह को बहुत क्रोध आया। आवेश में आकर वह अपने स्थान से रवाना हुआ और सहज ही शामियाने के भीतर पहुँच गया। उसके साथ बहुत से सैनिक भी शामियाने के भीतर गये। बादशाह को देखते ही कहारों ने—जो पालकियों के साथ थे, आपस में कुछ संकेत किये और उसके बाद ही पालकियों के भीतर से सशस्त्र राजपूतों ने निकलकर बादशाह पर आक्रमण किया।

दोनों ओर से मारकाट आरम्भ हो गयी। बादशाह के सैनिकों ने अलाउद्दीन की रक्षा बड़ी तेजी के साथ की। उसकी सेना को राजपूतों का कपट मालूम हो गया। उसी समय तातारी सेना का एक सैनिक दल भीमसिंह को पकड़ने के लिए चित्तौर की तरफ रवाना हुआ। शिविर से लौटी हुई पालकियाँ अभी तक चित्तौर से दूर थीं। बादशाह के सैनिकों के आ जाने पर पालकियों में बैठे हुए राजपूतों ने कूद कर उनका सामना किया। कुछ देर तक भयानक मारकाट हुई और उन राजपूतों ने भीमसिंह की सभी प्रकार से रक्षा की। इसी अवसर पर चित्तौर से आया हुआ एक तैयार घोड़ा मिला और उस पर बैठकर भीमसिंह सुरक्षित अवस्था में चित्तौर चला गया। बादशाह के सैनिकों ने उसका पीछा करते हुए दुर्ग के समीप सिंह द्वार पर आक्रमण किया।

दुर्ग के करीब चित्तौर के राजपूतों ने बादशाह के सैनिकों के साथ बड़ी वीरता के साथ संग्राम किया। वहाँ पर गोरा और बादल ने अपनी अद्भुत वीरता का प्रदर्शन किया। बादल की अवस्था केवल बारह वर्ष की थी। उसकी तलवार की मार से बादशाह के सैनिकों के छक्के छूट गये। बालक बादल ने बहुत से यवन सैनिकों का संहार किया। युद्ध करते हुये सिंह द्वार पर गोरा मारा गया। बादशाह के सैनिकों की संख्या अधिक थी। बहुत से राजपूत मारे गये। युद्ध बन्द हुआ कुछ थोड़े से बचे हुये राजपूतों के साथ बादल चित्तौर लौटकर वापस आया।

शिविर और सिंह द्वार पर युद्ध का जो दृश्य उपस्थित हुआ, उसे देखकर बादशाह अलाउद्दीन का साहस टूट गया। इस दृश्य के पहले उसने कुछ और ही समझ रखा था और हुआ कुछ और। पद्मिनी को पाने के स्थान पर उसने जो पाया, उससे वह युद्ध को रोक कर अपनी सेना के साथ दिल्ली की तरफ़ रवाना हो गया। सिंह द्वार के युद्ध से रुधिर से नहाये हुए और सैकड़ों जख्मों से क्षत-विक्षत बालक बादल चित्तौर पहुँचा। उसके साथ गोरा न था। यह देखते ही गोरा की पत्नी युद्ध के परिणाम को समझ गयी। उसने अपने गम्भीर नेत्रों से बादल की ओर देखा। उसकी साँसों की गति तीव्र हो उठी थी। वह बादल के मुँह से तुरंत सुनना चाहती थी कि बादशाह के सैनिकों के साथ उसके पति गोरा ने किस प्रकार बहादुरी से युद्ध किया और शत्रुओं का संहार किया। वह बादल के कुछ कहने की प्रतीक्षा न कर सकी और उतावली के साथ उससे पूछ बैठी—"बादल युद्ध का समाचार सुनाओ। प्राणनाथ ने आज शत्रुओं के साथ किस प्रकार का युद्ध किया ?" बादल में साहस था, उसमें बहादुरी थी। अपनी चाची को उत्तर देते हुए उसने कहा—"चाचा की तलवार से आज शत्रुओं का खूब संहार हुआ। सिंह द्वार पर डटकर संग्राम हुआ। चाचा की मार से शत्रुओं का साहस टूट गया। बादशाह के सैनिक खूब मारे गये।। सीसोदिया वंश की कीर्ति को अमर बनाने के लिए शत्रुओं का संहार करते हुए चाचा ने अपने प्राणों की आहुति दी।"

बादल के मुँह से इन शब्दों को सुनकर गोरा की स्त्री को संतोष मिला। क्षण-भर चुप रहकर और बादल के आगे कुछ न कहने पर उसने तेजी के साथ कहा—"अब मेरे लिए देर करने का समय नहीं हैं। प्राणनाथ को अधिक समय तक मेरी प्रतीक्षा करनी पड़ेगी।" यह देख कर वीरबाला गोरा की पत्नी ने जलती हुई चिता की होली में कूद कर अपने प्राणों का अन्त कर दिया।

बादशाह अलाउद्दीन चित्तौर से लौटकर दिल्ली चला गया। उसके दिल में जो आग पैदा हुई थी, वह किसी प्रकार बुझ न सकी। दिल्ली लौटने के कुछ दिनों के बाद, उसने फिर चित्तौर पर आक्रमण करने का निर्णय किया और अपनी सफलता के लिए उसने इस बार अधिक शक्तिशाली सेना का संगठन किया। अपनी पूरी शक्तियों का सञ्चय करके वह फिर दिल्ली से रवाना हुआ और सम्वत १३४६ सन् १२६० ईसवी में उसने चित्तौर पर अपना दूसरा आक्रमण किया। इस आक्रमण का समय फरिश्ता ग्रंथ में तेरह वर्ष बाद का लिखा गया है। दक्षिण ओर के

पहाड़ी हिस्से पर बादशाही सेना ने मुकाम किया और उसके नीचे उसने खाई खुदवादी। दूसरी बार तातारी सेना के चित्तौर में पहुँचते ही एक भयानक आतंक वहाँ पर फैल गया। पहले आक्रमण में जिस प्रकार चित्तौर के राजपूतों का संहार हुआ था, उनकी पूर्ति न हो सकी थी। वहाँ के शूरवीर राजपूत पहले ही चित्तौर की रक्षा में बलिदान हो चुके थे। इस समय चित्तौर की अवस्था अच्छी न थी। लेकिन बादशाह की फौज के आते ही चित्तौर के सामन्त और सरदार युद्ध की तैयारियाँ करने लगे और अपने-अपने राज्यों से आकर वे सभी चित्तौर में पहुँच गये। बड़ी तेजी के साथ युद्ध की तैयारियाँ हुईं और राणा के बड़े पुत्र अरिसिंह ने चित्तौर की सेना लेकर बादशाह की फौज का सामना किया।

तीन दिनों तक यवनों और राजपूतों का भयानक संग्राम हुआ। चौथे दिन अरिसिंह मारा गया। उसके बाद अरिसिंह का छोटा भाई अजयसिंह युद्ध के लिए तैयार हुआ। परन्तु राणा भीमसिंह का प्रेम उसके साथ अधिक था, इसलिए अजयसिंह को युद्ध में जाने से रोका गया। इस अवस्था में अजय सिंह के जो छोटे भाई थे, एक-एक करके वे युद्ध में गये और सब मिलाकर राणा भीमसिंह के ग्यारह लड़के युद्ध में मारे गये। केवल अजयसिंह बाकी रहा। राणा का इरादा उसको युद्ध में भेजने का किसी प्रकार न था। इस लिए उसे रोक कर भीमसिंह ने निश्चय किया कि अब मैं स्वयं युद्ध में लड़ने के लिए जाऊँगा।

राणा भीमसिंह चित्तौर में एक ओर युद्ध में जाने की तैयारी कर रहे थे और दूसरी ओर महलों की ओर से जौहर व्रत पालन की व्यवस्था हो रही थी। रानियों और राजपूत बालाओं ने इस बात को समझ लिया था कि चित्तौर पर भयंकर समय आ गया है और चित्तौर की स्वतंत्रता के नष्ट होने के समय राजपूत रमणियों को अपने सतीत्व एवम् स्वातंत्र्य को सुरक्षित रखने के लिए जौहर व्रत का पालन करना है। चित्तौर की पुरानी प्रणाली के अनुसार शत्रु के आक्रमण करने पर जब राज्य की रक्षा का कोई उपाय न रह जाता था तो राजपूत बालायें सहस्त्रों की संख्या में जौहर व्रत का पालन करती हुई एक साथ आग की होली में बैठ कर अपने प्राणों का उत्सर्ग करती थीं। उसी जौहरव्रत की तैयारी इस समय आरम्भ हुई। राजप्रासाद के बीच में पृथ्वी के नीचे भीषण अंधकार में एक लम्बी सुरंग थी। दिन में भी उस सुरंग में भयानक अंधकार रहता था। इस सुरंग में बहुत सी लकड़ी पहुँचा कर चिता जलायी गयी। उसी समय चित्तौर की रानियाँ, राजपूत बालायें और सुन्दरी युवतियाँ अगणित संख्या में प्राणोत्सर्ग करने के लिए तैयार हुईं। सुरंग के भीतर आग की लपटें तेज होने पर वे सभी बालायें अपने बीच में पद्मिनी को लेकर सत्य, सतीत्व और स्वाधीनता के महत्व के गीत गाती हुई सुरंग की तरफ चलीं। सुरंग में प्रवेश करने के लिए सीढ़ियाँ बनी हुई थीं, उन सीढ़ियों से होकर वे सुरंग के भीतर प्रवेश करने के लिए नीचे उतरने लगीं। सीढ़ियों के भीतर उतर जाने पर भयानक आवाज के साथ लोहे का बना हुआ सुरंग का मजबूत दरवाजा बन्द हुआ और कुछ क्षणों के भीतर सहस्त्रों राजपूत बालाओं के शरीर सुरंग की प्रज्वलित आग में जलकर ढेर हो गये।

चित्तौर की स्वाधीनता की कोई आशा न रह गयी थी। सुरंग का लौह द्वार बंद होते ही राणा भीमसिंह की सेना युद्ध के लिए चित्तौर से निकली। बचे हुए सभी सामन्त और सरदार अपनी सेनाओं के साथ युद्ध में पहुँचे। बादशाह अलाउद्दीन की विशाल सेना के साथ चित्तौर का यह अंतिम युद्ध था।

युद्ध-स्थल पर चित्तौर की सेना के पहुँचते ही दोनों ओर से संग्राम आरम्भ हो गया। बादशाह के साथ दिल्ली से जो विशाल सेना आयी थी, वह एक साथ युद्ध में कूद पड़ी। चित्तौर

के राजपूत इस संग्राम को अपने जीवन का अन्तिम युद्ध समझते थे। इसलिए उन्होंने शत्रुओं के साथ युद्ध करने में कुछ उठा न रखा। भयानक रूप से दोनों सेनाओं में मारकाट हुई। राजपूत सेना के मुकाबले में बादशाह की सेना बहुत बड़ी थी। इसलिए भीषण युद्ध के बाद चित्तौर की सेना की पराजय हुई, अगणित संख्या में उसके सैनिक और सरदार मारे गये और चित्तौर की शक्ति का पूर्ण रूप से क्षय हुआ। युद्ध के कारण युद्ध का स्थल स्मशान बन गया। चारो ओर दूर तक मारे गये सैनिकों के शरीरों से जमीन पटी पड़ी थी और रक्त बह रहा था।

चित्तौर की सेना का संहार करके बादशाह अलाउद्दीन ने अपनी बची हुई सेना के साथ चित्तौर में प्रवेश किया। नगर की अवस्था युद्ध स्थल से भी भयानक हो रही थी। चित्तौर की रानियों, राजपूत बालाओं और सुन्दरी युवतियों के साथ रानी पद्मिनी ने सुरंग की होली में जिस प्रकार अपने प्राणोत्सर्ग किये, चित्तौर के भीतर पहुँच कर बादशाह को यह सब सुनने को मिला।

सन् १३०३ ईसवी में अलाउद्दीन ने चित्तौर पर अधिकार किया और वहाँ पर कुछ दिनों तक रह कर वहाँ का शासन झालौर के शोनगढ़े वंश के माल देव नामक एक सरदार को दे कर वह दिल्ली चला गया। अलाउद्दीन ने सिंहासन पर बैठते ही 'सिकन्दर सानी' अर्थात् दूसरा सिकन्दर की उपाधि धारण की थी। उसके अत्याचारों से राजस्थान के सैकड़ों नगर मिट्टी में मिल गये थे। अनहिलवाड़ा, प्राचीन धार, अवन्ती और देवगढ़ आदि राज्यों में जहाँ सोलंकी, परमार, परिहार और तक्षक राजाओं के शासन थे— अलाउद्दीन ने आक्रमण करके भयानक अत्याचार किये और उनके साथ-साथ, जयसलमेर, गागरौन तथा बूँदी राज्यों को उजाड़कर नष्ट कर दिया। जिस समय अलाउद्दीन ने भयानक अत्याचारों से राजस्थान के राज्यों का इस प्रकार सर्वनाश हो रहा था, मारवाड़ के राठौर और अम्बेर के कुशवाहा लोग किसी प्रकार अपना अस्तित्व कायम किये थे। ये राठौर उस समय परिहार राजाओं के सामन्त थे और स्वतंत्र हो जाने की चेष्टा में थे। लेकिन कुशवाहा लोगों की शक्तियां बहुत क्षीण अवस्था में थीं। चित्तौर पर अधिकार करने के बाद अलाउद्दीन ने रानी पद्मिनी के महल को छोड़कर बाकी सभी महलों, शिवालों और मंदिरों का विध्वंस करा दिया था।

चित्तौर के पतन के बाद राणा भीमसिंह का लड़का अजयसिंह चित्तौर छोड़कर कैलवाड़ा चला गया था। यह कैलवाला मेवाड़ के पश्चिम की तरफ अरावली पर्वत के ऊपर बसा हुआ एक नगर है। वहाँ पर रहकर अजयसिंह चित्तौर के भविष्य की चिंता करने लगे। चित्तौर के पतन के पहले अजयसिंह ने अपने पिता के मुँह से सुना था कि तुम्हारे बाद अरिसिंह का बेटा चित्तौर के सिंहासन पर बैठेगा। पिता की इस बात को वह भूल न सका। लेकिन उस समय अरिसिंह के बेटे का कहीं पता न था। अरिसिंह का बड़ा बेटा था और उसके लड़के का नाम हमीर था। इसी हमीर को चित्तौर के सिंहासन पर बिठाने के लिए राणा भीमसिंह ने अजयसिंह को आदेश दिया था। इस हमीर के जन्म का वृतान्त भट्ट ग्रंथों में इस प्रकार लिखा गया है :

राणा भीमसिंह का सबसे बड़ा लड़का अरिसिंह अपने कुछ सरदारों के साथ अन्दवा नामक एक जंगल में शिकार खेलने गया था। वहाँ पर उसने एक शूकर को मारने के लिए बाण चलाया। पर शूकर भाग कर एक जुआर के खेत में चला गया। अपने साथियों के साथ अरिसिंह ने उसका पीछा किया। खेत के मचान पर बैठी हुई एक युवती यह सब देख रही थी। अरिसिंह और उसके साथियों को अपने खेत के करीब देख कर उस युवती ने कहा—आप थोड़ा-सा रुकें, इस शूकर को मैं आपके पास लाये देती हूँ।

अरिसिंह और उसके साथी अपने स्थान पर रुक कर खड़े हो गये। युवती मचान से उतरी और अपने खेत से उसने जुआर का एक पेड़ उखाड़ लिया। जो पेड़ जुआर के खड़े थे, वे दस-बारह फीट लम्बे थे। युवती ने उखाड़े हुए पेड़ के एक सिरे को नोकीला बनाया और अपने मचान पर चढ़कर उसने उसको अपने धनुष में चढ़ाकर छिपे हुए शूकर को मारा, जिससे घायल होकर वह मर गया। युवती ने उसे घसीट कर अरि सिंह के पास पहुँचा दिया और फिर वह अपने खेत में लौट आयी।

युवती के इस पराक्रम को देखकर अरिसिंह और उसके सरदार आश्चर्य में आ गये। सभी उस युवती की प्रशंसा करने लगे और फिर धीरे-धीरे वहाँ से चल कर वे पास ही नदी के किनारे पहुँच गये। वहाँ पर खाने की सामग्री तैयार की गयी। जहाँ पर वे लोग बैठे थे, कुछ फासिले पर अरिसिंह का घोड़ा बँधा था। आकस्मात् मिट्टी का एक बड़ा सा ढेला खेत की तरफ से आकर अरिसिंह के घोड़े को लगा। वह तुरन्त गिर गया। यह देख कर अरिसिंह और उसके साथियोंने युवती के खेत की तरफ देखा। वह मिट्टी के ढेले फेंक-फेंक कर खेत में आने वाले पक्षियों को उड़ा रही थी। सभी ने समझ लिया कि इसी युवती के ढेले से घोड़े के चोट लगी है। इसी समय उस युवती को भी यह मालूम हो गया कि मेरे एक फेके हुए ढेले से शिकारियों के एक घोड़े को चोट आ गयी है। इस लिए अपने मचान से उतरकर वह युवती उन लोगों के पास पहुँची और उसने जो बातें कीं, उनसे उसकी निर्भीकता और सभ्यता को देखकर अरिसिंह और उसके सरदार आश्चर्य करने लगे। बातें करके युवती फिर अपने खेत में चली गयी। अरिसिंह और उसके साथी सरदार भी शिकार से लौट कर चले आये।

लौट आने के बाद भी अरिसिंह को उस युवती का स्मरण न भूला। उसने उसका पता लगवाया तो मालूम हुआ कि वह युवती चौहान वंश से एक साधारण राजपूत की लड़की है। सहज ही अरिसिंह के हृदय में उसके साथ विवाह करने की भावना पैदा हुई। उसने अपने मित्रों से अपने विचार को जाहिर किया और साथ के कई आदमियों को लेकर वह युवती के पिता के पास गया। युवती का बाप बुड्ढा आदमी था। उससे अरिसिंह का प्रस्ताव कहा गया। लेकिन उस वृद्ध पुरुष ने ऐसा करने से इनकार कर दिया। परन्तु युवती की माता ने अपने पति को उस प्रस्ताव को स्वीकार करने के लिए वाध्य किया। इस प्रकार उस युवती का विवाह अरिसिंह के साथ हो गया और उस युवती से जो लड़का पैदा हुआ, उसका नाम हमीर था। चित्तौर पर अलाउद्दीन के अधिकार करने के समय हमीर की अवस्था केवल बारह वर्ष की थी और उस समय तक वह अपने ननिहाल में ही रहता रहा। इसलिए चित्तौर में उसे कोई नही जानता था।

चित्तौर पर अलाउद्दीन का अधिकार होने के पहले ही अजयसिंह कैलवाड़ा के पहाड़ी स्थान पर चला गया था। उसके सामने चित्तौर के उद्धार की समस्या थी। इस समस्या को सुलझाने के लिए उसके पास कोई साधन न था। अजयसिंह जहाँ पर जा कर रहा था, वहाँ के पहाड़ी सरदारों में मुंजाबलैचा नाम का एक सरदार अत्यन्त शूर वीर था। उसके साथ अजयसिंह की शत्रुता हो चुकी थी। कैलवाड़ा शेरो मल्ल प्रान्त का एक हिस्सा था। यहाँ पर मुंजावलैचा ने आक्रमण किया था और अजयसिंह ने उसके साथ युद्ध करके भाले से उसको घायल किया था। उस समय से मुंजा अजयसिंह के लिए बड़ा घातक सिद्ध हो रहा था और उसे पराजित करना अजयसिंह के लिए बहुत आवश्यक हो गया था। ऐसे समय पर अजयसिंह की सहायता उसके पुत्रों के द्वारा होनी चाहिए थी। सुजानसिंह और अजीमसिंह नाम के दो बेटे अजयसिंह के थे। अजीमसिंह बड़ा था, उसकी अवस्था उस समय १६ वर्ष की और सुजानसिंह की १५ वर्ष की थी। इस अवस्था में राज-

पूत बालक युद्ध में बहुत-कुछ काम करते हैं। लेकिन अपने दोनों बेटों से अजयसिंह को मुंजा की शत्रुता में कोई सहायता न मिली। इस अवस्था में अजयसिंह ने हमीर की खोज की और उसे उसको मुंजा पर आक्रमण करने को भेजा। अजयसिंह के इस आदेश को लेकर हमीर मुंजा पर आक्रमण करने को गया और कुछ ही दिनों मे वह उसको मार कर लौटा। उस समय कैलवाड़ा के लोगों ने देखा कि अपने घोड़े पर बैठा हुआ और भाले की नोक पर मुंजा का सिर लिए हुए हमीर आ रहा।

हमीर ने मुंजा का सिर लाकर अजयसिंह के सामने रख दिया। अजयसिंह ने हमीर को देख कर अत्यन्त प्रसन्नता और संतोष अनुभव किया। उसकी समझ में आ गया कि अगर कोई समय आया तो चित्तौर के राज्य का वास्तव में अधिकारी हमीर ही हो सकता है। अजयसिंह ने संतोष और प्रसन्नता को अनुभव करते हुए हमीर के मुख का चुम्बन किया और मुंजा के कटे हुए सिर के रुधिर से हमीर के ललाट पर राजतिलक किया।

अजयसिंह के दोनों लड़को ने यह सब अपनी आँखों से देखा। उनके ऊपर इन बातों का प्रभाव अच्छा न पड़ा। कुछ दिनों के बाद कैलवाड़ा में अजीमसिंह की मृत्यु हो गयी और सुजान सिंह अपने पिता से असंतुष्ट होकर दक्षिण की तरफ चला गया और वहाँ पर उसने एक नये वंश की प्रतिष्ठा की। उसी वंश में शिवा जी नाम का एक बालक उत्पन्न हुआ, जिसने-अपने प्रताप से भारत वर्ष में अमिट कीर्ति प्राप्त की और इस देश में मुगलों के शासन को मिटाकर अपना एक विशाल राज्य कायम किया। ×

सम्वत् १३५७ सन् १३०१ ईसवी में हमीर को मेवाड़ राज्य का अधिकारी बनाया गया। परन्तु उस समय हमीर के हाथ में कुछ न था और चारों ओर शत्रुओं का आधिपत्य था। हमीर साहसी और शूरवीर था। अजयसिंह के राजतिलक करने के बाद उसने अपनी शक्तियों का संचय करना आरम्भ किया। सब से पहले उसने मुंजाबलैचा के राज्य पर आक्रमण किया और सेलिओ नाम के उसके पहाड़ी किले पर अधिकार कर लिया।

बादशाह अलाउद्दीन ने चित्तौर पर अधिकार करके वहाँ का राज्य प्रबंध सरदार मालदेव को सौंप दिया था और मालदेव दिल्ली की सेना के साथ चित्तौर में रहा करता था। इस बात को हमीर जानता था। वह किसी प्रकार चित्तौर का उद्धार करना चाहता था। परन्तु इसके लिए उसके पास न तो सैनिक शक्ति थी और न धन-शक्ति। परन्तु हमीर के हृदय में साहस और विश्वास था। उसने चित्तौर के उद्धार के लिए एक योजना बना डाली और उसमें सफलता प्राप्त के करने के लिए उसने छोटे-छोटे स्थानों पर आक्रमण करना आरम्भ कर दिया। इस प्रकार उसने अपने अधिकार में कुछ धन शक्ति और जन-शक्ति कर डाली। इसके बाद उसने मेवाड़ राज्य में घोषणा की कि जो लोग राणा हमीर को अपना शासक मानने के लिए तैयार हों, वे अपने स्थानों को छोड़कर पश्चिमी भाग के पहाड़ पर आ जायँ। जो ऐसा न करेंगे, उनको शत्रुओं में मान लिया जायगा।

इस घोषणा के होते ही लोगों ने अपने घर द्वार छोड़े और आरावली पर्वत के पहाड़ी स्थानों

× भट्ट ग्रन्थों में बिस्तार के साथ इस बात का उल्लेख किया गया है कि सुजानसिंह ने दक्षिण में जा कर जो अपना नया वंश चलाया था, शिवाजी उसी का वंशज था। उस वंश को भट्ट ग्रन्थों में अजयसिंह से आरम्भ किया गया है और शिवाजी तक जो नाम आये है, वे इस प्रकार है—अजयसिंह, सुजानसिंह, दिलीप जी, शिवजी, तैरव जी, देवराज, उग्रसेन माहुल जी, खैल जी, जनक जी, सत्य जी, शम्भू जी और शिवा जी।

पर पहुँच कर रहना आरम्भ किया। इसके पश्चात् राणा हमीर ने मेवाड़ के नगरों और गावों पर आक्रमण करके उनको उजाड़ना शुरू किया। मेवाड़ की प्रजा पहले से ही घोषणा को सुनकर पहाड़ों पर चली गयी थी। इसलिए मेवाड़ के नगर और ग्राम अपने आप उजड़े हुए दिखायी देते थे। सम्पूर्ण रास्ते बिगड़ कर भयानक हो गये। उन नगरों और ग्रामों में जब शत्रु की ओर से कोई आता तो राणा हमीर के सैनिक उन पर हमला करते और उनको लूट कर उन्हें जान से मार डालते।

हमीर की इस नीति से शत्रुओं का संहार आरम्भ हुआ। चित्तौर में दिल्ली की जो सेना रहती थी। उसने इन आक्रमणकारियों से बदला देने के लिए बहुत-कुछ प्रयत्न किया, परन्तु उसे कुछ सफलता न मिली। हमीर की ओर से इस प्रकार के जो व्यवहार किये गये, उनसे न केवल शत्रुओं को आघात पहुँचा, बल्कि मेवाड़ के बहुत से स्थान निर्जन हो गये। जो भूमि हरे-भरे खेतों से शोभायमान रहा करती थी, वह जंगलों के रूप में बदल गयी। समस्त रास्ते अरक्षित हो गये और वाणिज्य व्यवसाय के स्थान सूने मैदानों के रूप में दिखायी देने लगे।

राणा हमीर ने चित्तौर के उद्धार के लिए जो योजना बनायी थी, उसके कारण इस प्रकार मेवाड़ का विनाश हुआ। परंतु इसके सिवा शत्रु को निर्बल करने के लिए उसके पास और कोई साधन न था। वह साहस से काम ले रहा था और अपनी शक्तियों को मजबूत बनाने के लिए बहुत समय तक वह इसी प्रकार के कार्य करता रहा।

राणा हमीर ने कैलवाड़ा में ही अपने रहने का स्थान बनाया। वहाँ पर उसने एक विशाल तालाब तैयार करवाया। उसका नाम हमीर का तालाब रखा गया। राणा हमीर के उस स्थान पर रहने के कारण कैलवाड़ा का पहाड़ी स्थान मनुष्यों से भर गया। वहाँ के जो स्थान जंगली, पहाड़ी और सुनसान थे वे अब मनुष्यों के कोलाहल से प्रत्येक समय भरे रहने लगे। कैलवाड़ा के इस नये निर्माण में राणा हमीर ने बड़ी बुद्धिमानी से काम लिया। वहाँ पर उसने अनेक ऐसे गुप्त मार्ग भी बनवाये; जहाँ पर शत्रु की सेना आकर कभी कोई हानि न पहुचा सकती थी। लेकिन उसका स्वयं सुरक्षित अवस्था में वहाँ से लौटना बहुत-कुछ कठिन था। कैलवाड़ा अरावली पर्वत के शिखर पर बसा हुआ है और उस शिखर पर ही बहुत दिनों के बाद कमलमेर का प्रसिद्ध दुर्ग बना।

इन दिनों में कैलवाड़ा की शोभा बहुत बढ़ गयी। वहाँ के जंगली वृक्षों ने इस शोभा को बढ़ाने में बहुत-कुछ सहायता की। उसके स्थान-स्थान पर पहाड़ी नदियाँ प्रवाहित हो रही थीं और उनके द्वारा प्रकृति का सौन्दर्य कई गुना बढ़ गया था। वहाँ पर खाने के लिए अनेक प्रकार के फलों की अधिकता थी। इस बीच में बसे हुए लोगों ने वहाँ पर खेती का कार्य भी आरम्भ कर दिया था। यहाँ का विस्तार भट्ट ग्रंथों में पचीस कोस लिखा गया है। यह स्थान पृथ्वी से आठ सौ और समुद्र की सतह से दो हजार हाथ ऊँचाई पर है। इस विशाल पर्वत में अगणित ऐसे गुप्त मार्ग हैं, जिनमें शत्रुओं का प्रवेश बहुत-कुछ असम्भवी है। परन्तु इस समय वहाँ पर जो लोग रहते थे, वे सब वहाँ के गुप्त मार्गों से निकल कर भीलों के राज्य में आते जाते और उनके साथ सहयोग रख कर आवश्यकता के अनुसार उससे लाभ उठाते। अगुनापानीर के भील लोग गहलोत राजपूतों के सदा भक्त रहे। उनकी सेवायें सदा मेवाड़ के राजपूतों को प्राप्त हुईं और आवश्यकता पड़ने पर उन भील लोगों ने अपने प्राणों को उत्सर्ग किया। उनकी इन बातों ने मेवाड़ के राजपूतों को उनके समर्थक बनने का अवसर दिया था। परन्तु बादशाह अलाउद्दीन ने चित्तौर का सर्वनाश करने के साथ-साथ इन भीलों के विनाश का भी काम किया था।

राणा हमीर जिन दिनों में चित्तौर के उद्धार के लिए चिंतित हो रहा था, चित्तौर के राजा मालदेव के यहाँ से उन्हीं दिनों में एक समाचार आया और उसके द्वारा मालदेव ने हमीर के

साथ अपनी लड़की का विवाह करने के सम्बन्ध में विचार प्रकट किया। राणा हमीर और उसके शुभचिंतक राजा मालदेव के इस प्रस्ताव का रहस्य समझ न सके। राणा हमीर के मंत्रियों ने उस प्रस्ताव पर अनेक प्रकार के संदेह किये और उन लोगों ने चाहा कि राणा हमीर राजा मालदेव की प्रार्थना को अस्वीकार कर दे।

मंत्रियों ने राणा हमीर से सभी प्रकार की बातें कीं। परन्तु मंत्रियों के अनुसार हमीर विवाह के प्रस्ताव को अस्वीकार न कर सका। उसने अपने शुभचिंतक मंत्रियों को समझाते हुए कहा—"मैं भी इस बात को समझता हूँ कि राजा माल देव के साथ मेरे सम्बन्ध अच्छे नहीं हैं वह हमारे शत्रु बादशाह अलाउद्दीन की तरफ हमारे पूर्वजों के से राज्य चित्तौर पर शासन कर रहा है। इस दशा में हमारा और मालदेव का एक होना अथवा सम्बन्धी होना कैसे सम्भव हो सकता है। इसलिए सहज ही इस बात को समझा जा सकता है कि राजा मालदेव ने मेरे मिटाने के लिए किसी प्रकार का षड़यंत्र रचा हो। परन्तु उससे सब को घबराने और चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है। कभी-कभी भयानक विपदाओं में उज्जवल भविष्य का संदेश छिपा रहता है। मालदेव का कुछ भी अभिप्राय हो, हमें उससे घबराने की आवश्यकता नहीं है। घबराना निर्बलों का कार्य है। कठिनाइयों का स्वागत करना और हँस-हँसकर विपदाओं का सामना करना शूरवीरों का कार्य होता है। महान सफलताओं की प्राप्ति भीषण कठिनाइयों को पार करने के बाद होती है। इस सत्य के आधार पर राजा मालतेव के प्रस्ताव को स्वीकार करना ही उचित हैं।"

राणा हमीर के मुख से इन साहसपूर्ण बातों को सुनकर उसके मंत्री कुछ विरोध न कर सके। विवाह का निश्चय हो गया। उसकी तैयारियाँ भी हो चुकीं। राणा हमीर पाँच सौ शूरवीर सैनिक सवारों के साथ में लेकर विवाह के लिए चित्तौर की तरफ रवाना हुआ। चित्तौर के निकट आने पर नगर का विशाल फाटक दिखाई पड़ा। पास पहुँचने पर मालदेव की तरफ से पाँच आदमियों ने स्वागत किया। ये पाँचों मालदेव के बेटे थे। परन्तु वहाँ पर राणा हमीर को विवाह की कोई तैयारी दिखायी न पड़ी।

राणा हमीर अपने सैनिकों के साथ चित्तौर के भीतर पहुँच गया। उसने वहाँ पहुँचकर अपने गम्भीर नेत्रों से इधर-उधर देखा, अपने जीवन में चित्तौर के उसने पहले पहल दर्शन किए थे। उसने वहाँ के विशाल भवनों और राजमहलों को देखा। उसी समय अपने पुत्र बनवीर के साथ मालदेव ने आकर राणा हमीर का सत्कार किया। उसके बाद हमीर राज प्रासाद के भीतर उस स्थान पर पहुँच गया जो विवाह का मण्डप बनाया गया था। परन्तु वहाँ पर भी विवाह की तैयारी उसे दिखाई न पड़ी। इस समय उसके हृदय में आशंकायें उत्पन्न हुईं। परन्तु सचेत और सावधान होकर उसने साहस से काम लिया।

इसी समय राजा मालदेव ने अपनी लड़की को लाकर हमीर के सामने खड़ाकर दिया। इस समय भी किसी वैवाहिक प्रणाली का सम्पादन न हुआ। हमीर ने लड़की का हाथ पकड़ा। दोनों की गाँठे बाँधी गयीं और विवाह का कार्य सम्पन्न हो गया। पुरानी प्रथा के अनुसार वर और कन्या—दोनों को प्रासाद के एकान्त में पहुँचाया गया। मालदेव की लड़की सयानी थी। उसने राणा हमीर की तरफ देखकर उसकी चिन्ताओं को अनुभव किया। इकके बाद उसने नम्रता के साथ कहा—

"आप किसी प्रकार की चिंता न करें। वास्तव में मैं विधवा हूँ। छोटी अवस्था में मेरा विवाह हुआ था। अपने उस विवाह की कोई बात मैं नहीं जानती। अपने पति को मैंने देखा भी

नहीं था। जिसके साथ मेरा विवाह हुआ था, कुछ ही दिनों के बाद वह लड़ाई में मारा गया था और उसके बाद मैं विधवा मानी गयी।"

मालदेव की लड़की के मुख से इन बातों को सुनकर राणा हमीर ने उसकी तरफ देखा और इस बात को अनुभव किया कि राजा मालदेव ने अपनी विधवा लड़की के साथ विवाह करके मेरा अपमान किया है। इसी समय उसने लड़की के नेत्रों में आँसू देखे। वह सब कुछ भूल गया और उसको संतोष देने के लिए हमीर ने कुछ बातें उससे कहीं। उन बातों में यह भी कहा कि तुम्हारे साथ विवाह होने से मैं किसी प्रकार का खेद नहीं करता। मेरे सामने चित्तौर की गुलामी का प्रश्न है, जिसके लिए मैं बहुत दिनों से चिन्तित हूँ।

राणा हमीर के मुख से इस बात को सुनकर उसका मुख मण्डल प्रसन्न हो सठा। उसने गम्भीरता के साथ कहा—"मैं समझती हूँ। मैं इस विषय में आपकी शायद कुछ सहायता कर सकूँगी।"

यह कहकर उसने संक्षेप में राणा हमीर के साथ कुछ परामर्श किया और उसी के आधार पर हमीर ने मालदेव से दहेज में जलधर नाम का सरदार माँगा। मालदेव ने इसे स्वीकार किया। विवाह कार्य सम्पन्न हो जाने के बाद हमीर अपनी पत्नी के साथ जलधर को लेकर कैलवाड़ा लौट आया।

कुछ दिनों तक हमीर अपनी पत्नी के साथ चित्तौर के सम्बन्ध में अनेक प्रकार के परामर्श करता रहा। इन्हीं दिनों में उसकी पत्नी गर्भवती हुई। उससे लड़का पैदा हुआ, उसका नाम क्षेत्रसिंह रखा गया। इसकी प्रसन्नता में राजा मालदेव ने राणा हमीर को अपना सम्पूर्ण पहाड़ी इलाका दे दिया। अपनी अवस्था के बारह महीने बीत जाने पर क्षेत्रसिंह अपनी माता के साथ चित्तोर आया। उन दिनों में मालदेव अपनी सेना लेकर मादेरिया के मीर लोगों का दमन करने के लिए चित्तौर से चला गया था। क्षेत्रसिंह की माँ ने राणा हमीर के परामर्श के अनुसार अवसर पाकर चित्तोर के सरदारों के साथ बातें कीं और हमीर के पास संदेशा भेजा। तुरन्त राणा हमीर चित्तौर के लिए रवाना हुआ। वहाँ पहुँचते ही उसका विरोध किया गया। परन्तु राणा हमीर को कोई रोक न सका। राणा हमीर ने अपने सैनिकों के बल से चित्तौर पर अधिकार कर लिया।

मालदेव मीर लोगों पर विजय प्राप्त करके अपनी सेना के साथ चित्तौर वापस आया। वहाँ पर उसने आकर सब हाल सुना। चित्तौर के सामन्त और सरदार राणा हमीर के साथ मिल गये थे। इस अवस्था में निराश होकर वह दिल्ली की तरफ़ रवाना हुआ। बादशाह अलाउद्दीन के बाद मोहम्मद खिलजी दिल्ली के सिंहासन पर बैठा था। मालदेव ने चित्तौर का सब हाल उसको सुनाया। मोहम्मद खिलजी अपनी फौज देकर मालदेव के साथ चित्तौर की तरफ चला। राणा हमीर ने अपनी सेना लेकर दिल्ली की फौज का सामना किया। दोनों ओर से भीषण संग्राम हुआ। युद्ध में मालदेव का लड़का हरीसिंह मारा गया। अंत में राणा हमीर की विजय हुई। मोहम्मद खिलजी कैद करके चित्तौर में रखा गया। तीन महीने के बाद बादशाह ने अजमेर, रणथम्भोर, नागौर, शुआ और शिवपुर के इलाकों के साथ एक सौ हाथी और पचास लाख रुपये देकर चित्तौर की जेल से मुक्ति पायी।

राजा मालदेव की एक न चली। यह देखकर उसके बड़े लड़के बनबीर ने राणा हमीर की अधीनता को स्वीकार कर लिया। राणा हमीर ने नीमच, जीरण, रतनपुर और केवारा के इलाके बनबीर को दे दिये और उससे कहा—जो इलाके तुमको दिये गये हैं, उनसे तुम अपना

और अपने परिवार का जीवन निर्वाह करो। अभी तक तुम यवनों की दासता में थे, अब अपने ही देश और वंश वालों की दासता में तुमको रहना पड़ेगा।

राणा हमीर की इन बातों को सुनकर बनवीर प्रभावित हुआ। मेवाड़ राज्य का भक्त बनकर रहने के लिए उसने निश्चय किया। इसके कुछ ही दिनों बाद भिनसोर पर आक्रमण किया और उसे जीतकर मेवाड़ राज्य में उसने उसको मिला दिया। यहीं से बनवीर पर राणा हमीर का विश्वास कायम हुआ। यवनों की अधीनता से चित्तौर का उद्धार हुआ और राजस्थान के सभी राजा राणा हमीर का सम्मान करने लगे।

राणा हमीर ने इसके बाद लगातार उन्नति की और थोड़े ही दिनों में वह भारतवर्ष का एक पराक्रमी राजा बन गया। मुसलिम सेनाओं के आक्रमण से जो नगर और ग्राम बरबाद हो गये थे, राणा हमीर ने उनका फिर से निर्माण किया। उसका प्रभाव सम्पूर्ण राजस्थान में काम करने लगा और मारवाड़, जयपूर, बूँदी, ग्वालियर, चन्देरी, रायसीन, सीकरी, कालपी तथा आबू आदि राज्यों के राजाओं ने राणा हमीर की अधीनता स्वीकार की। राणा हमीर ने बड़ी बुद्धिमानी के साथ मेवाड़ राज्य का फिर से निर्माण किया।

राणा हमीर की मृत्यु के बाद उसका बड़ा लड़का क्षेत्रसिंह सम्वत् १४२१ सन् १३६५ ईसवी में चित्तौर के सिंहासन पर बैठा। वह अपने पिता के समान सुयोग्य और बुद्धिमान था। अपने शासन काल में उसने अजमेर और जहाजपुर में आक्रमण करके विजय प्राप्त की और मण्डल गढ़, दूसरी एवम् चम्पन को अपने राज्य में शामिल कर लिया। दिल्ली के बादशाह हुमायूँ के साथ बकरौल नामक स्थान पर उसने एक युद्ध किया और दिल्ली की विशाल सेना को उसने पराजित किया। ×

मेवाड़ के अन्तर्गत बनोदा नामक एक स्थान है। उसके हाड़ा वंशीय एक सरदार की लड़की से क्षेत्रसिंह की सगाई हुई थी। परन्तु विवाह के पहले ही उस सरदार ने चोरी से क्षेत्रसिंह को मार डाला। क्यों मार डाला, इसका कोई उल्लेख नहीं मिलता। क्षेत्र सिंह की मृत्यु के बाद राणा लाक्ष सम्बत् १३३६ सन् १३७३ ईसवी में चित्तौर के सिंहासन पर बैठा। इसके कुछ ही समय के बाद मेवाड़ पर आक्रमण कर उसने उसको पराजित किया और उसके प्रसिद्ध दुर्ग विराट गढ़ को बरबाद करके उसके ध्यान पर विदनौर के मशहूर दुर्ग की स्थापना की। उसके शासन काल में मेवाड़ की बहुत उन्नति हुई। राणा लाक्ष ने शंकला वंश के बहुत-से राजपूतों को—जो अम्बेर के अन्तर्गत नगराचल नामक स्थान में रहते थे—पराजित किया था। दिल्ली के बादशाह मोहम्मदशाह लोदी के साथ भी उसने युद्ध किया और विदनौर नामक स्थान पर उसने बादशाह की सेना को पराजित किया। उसके शासन काल में म्लेच्छों ने गया पर चढ़ाई की थ। उनसे युद्ध करने के लिए अपनों

× इस हुमायूँ के सम्बन्ध में पाठक संदेह कर सकते है। इसलिए कि भारतवर्ष के इतिहास में सन् १३६५ ईसवी से लेकर सन् १३८३ ईसवी तक किसी हुमायूँ का नाम नहीं पाया जाता। बाबर का वशंज हिमायूँ सोलहवीं शताब्दी में हुआ है। एलफिन्स्टन ने अपने लिखे हुए भारत के इतिहास में दिल्ली के बादशाह नसीरुद्दीन तुगलक के बेटे हुमायूँ का उल्लेख किया है। वह अपने पिता के बाद सन् १३६४ ईसवी में सिंहासन पर बैठा था। जहाँ तक सम्भव है, टॉड साहब ने यहाँ पर उसी हिमायूँ का उल्लेख किया है। यद्यपि उसके शासन काल का समय भी क्षेत्रसिंह के शासन काल से दूर पड़ जाता है। परन्तु सिंहासन पर बैठने के पहले उसका युद्ध में आना सम्भव हो सकता है।

सेना लेकर राणा लाक्ष वहाँ पहुचा था और युद्ध करते हुए वह मारा गया। उसके शासन काल में मेवाड़ में शिल्प की बहुत उन्नति हुई। कितने ही सुन्दर तालाबों को बनवा कर उसने अपने राज्य की शोभा बढ़ाई थी। इनके सिवा उसने कितने ही मन्दिरों का निर्माण करवाया, जिनमें ब्रह्मा जी का मंदिर आज तक प्रसिद्ध है। राणा लाक्ष के बहुत-से लड़के पैदा हुए, जिन्होंने राजस्थान के भिन्न-भिन्न स्थानों पर जाकर अपने नये-नये वंश चलाये। उनमें लूनावत और दूलावत नाम के वंश अधिक प्रसिद्ध हैं। राणा लाक्ष के बड़े लड़के का नाम चन्द्र था। अपने पिता के राज्य का वही अधिकारी था। लेकिन वह सिंहासन पर नहीं बैठा। इसका कारण और वर्णन आगामी परिच्छेद में किया जायगा।

सोलहवाँ परिच्छेद

राजपूतों में स्त्री का सम्मान–राणा लाक्ष का बुढ़ापा बेटे के विवाह के समय के परिहास का परिणाम–चित्तौर के शासन में खेल–राजवंश की धात्री का कर्तव्य–चित्तौर के राज्याधिकार पर राठौरों के दाँत–धात्री की स्पष्ट बातें–रानी को अपनी मूर्खता का ज्ञान–राजमाता की बढ़ती हुई शंकायें–रणमल्ल की विलसिता–राजकुमार चन्द्र की योजना–रणमल्ल का पतन–अपने निर्भीक सवारों के साथ राजकुमार चन्द्र–राठौरों से चित्तौर की रक्षा–राणा मुकुल ही हत्या।

यदि स्त्री के प्रति पुरुष की भक्ति और उसके सम्मान की कसौटी मानी जाय तो एक राजपूत का स्थान सबसे श्रेष्ठ माना जायगा। वह स्त्री के प्रति किये गये असम्मान को कभी सहन नहीं कर सकता और इस प्रकार का संयोग उपस्थित होने पर वह अपने प्राणों को बलिदान कर देना अपना कर्त्तव्य समझता है। जिन उदाहरणों से इस प्रकार का निर्णय करना पड़ता है, उनसे राजपूतों का सम्पूर्ण इतिहास ओत-प्रोत है।

जीवन की परिस्थितियों को पार करते हुए राणा लक्ष का बुढ़ापा आ गया था। इन्हीं दिनों में मारवाड़ के राजा रणमल्ल ने चित्तौर राज्य के उत्तराधिकारी राजकुमार चन्द्र के साथ अपनी लड़की का विवाह करने के लिए राणा लाक्ष के पास अपना दूत भेजा। दूत की बात को सुनकर राणा लाक्ष ने कहा—"राजकुमार चन्द्र कुछ समय में यहाँ पर आने-वाला है। इसके सम्बन्ध में वह स्वयं आकर अपनी स्वीकृत देगा।" इसके बाद अपनी दाढ़ी पर हाथ रखते हुए राणा ने दूत से फिर कहा—"मैं इस प्रकार की कल्पना नहीं करता कि तुम मेरे जैसे सफेद दाढ़ी मूछ वाले आदमी के लिए इस प्रकार की खेल की सामग्री लाये हो।"

इसी समय राजकुमार चन्द्र दरबार में आया और दूत के प्रस्ताव को सुनकर उसने कहा—"यद्यपि पिता ने परिहास में इस सम्बन्ध को अपने लिए माना है, फिर भी मेरे लिए यह कैसे सम्भव है कि मैं उस सम्बन्ध को स्वीकार कर लूं। चन्द्र के इस जबाब को राणा ने सुना और उसने उसको समझाना आरम्भ किया। परन्तु राजकुमार की समझ में एक भी बात न आयी। इस दशा में राणा के सामने भयानक संकट पैदा हो गया। राजकुमार विवाह को स्वीकार करने के लिए किसी प्रकार

तैयार न था और सगाई के लिए आया हुआ नारियल लौटा देने से मारवाड़ के राजा रणमल्ल का अपमान होता था। राणा ने राजकुमार को फिर समझाने की चेष्टा की। लेकिन राजकुमार तैयार न हुआ। इस परिस्थिति में राजा रणमल्ल को अपमान से बचाने के लिए राणा ने स्वयं अपने साथ विवाह करना मंजूर किया और राजकुमार चन्द्र से कहा—"तुम्हारे मंजूर न करने पर मैं स्वयं यह विवाह करूँगा। लेकिन इस बात को याद रखो कि उससे यदि लड़का पैदा हुआ तो वह इस राज्य का उत्तराधिकारी होगा और उस दशा में तुम्हारा कोई अधिकार न रहेगा।" राजकुमार चन्द्र ने पिता की इस बात को स्वीकार किया।

राजा रणमल्ल की बारह वर्षीय लड़की के साथ पचास वर्ष की अवस्था में राणा ने विवाह किया और उससे जो लड़का पैदा हुआ, उसका नाम मुकुल रखा गया। मुकुल की पाँच वर्ष की अवस्था में राणा लाक्ष गया में उस समय अपनी सेना लेकर युद्ध करने गया था, जब वहाँ पर म्लेच्छों ने आक्रमण किया था, उस युद्ध में वह मारा गया। गया के संग्राम में जाने के पहले राणा को अपने लौटकर आने में संदेह उत्पन्न हुआ, इसलिए पाँच वर्ष के बालक मुकुल को राजतिलक करने का उसने विचार किया। सारी व्यवस्था की गयी और अभिषेक के समय राजकुमार चन्द्र ने स्वयं मुकुल के माथे पर राजतिलक किया। उस दिन से राणा मुकुल चित्तौर के सिंहासन का अधिकारी बना।

राजकुमार चन्द्र के मनोभावों में मुकुल के प्रति सत्यता और उदारता थी। मुकुल की अवस्था बहुत छोटी थी। इसलिए चन्द्र स्वयं राज्य का प्रबंध देखने लगा। उसके इस कार्य में उसकी सहानुभूति के सिवा और कुछ न था। परंतु मुकुल की माँ इस बात से ईर्षा करने लगी। राज्य का प्रबंध वह स्वयं अपने हाथों में रखना चाहती थी। इसलिए उसने समय-समय पर चित्तौर के लोगों से कहना आरम्भ किया कि राजकुमार चन्द्र स्वयं राणा बनना चाहता है। उसकी इन बातों को चन्द्र ने भी सुना। उसके हृदय को आघात पहुँचा। उसने मुकुल की माँ को इस बात का विश्वास दिलाने की चेष्टा की कि मैं राज्य पाने की अभिलाषा नहीं रखता। मुकुल के प्रति मैं प्रेम करता हूँ और राज्य का भविष्य उज्वल देखना चाहता हूँ। इस समय मुकुल की अवस्था बहुत छोटी है। इसलिए मैं राज्य की देख भाल करता हूँ। लेकिन यदि आप को मेरा यह कार्य पसन्द नहीं है तो मैं चित्तौर छोड़कर चले जाने के लिए तैयार हूँ।

राजकुमार चन्द्र की बातों से मुकुल की माता को संतोष न मिला। इसलिए राजकुमार चन्द्र चित्तौर छोड़कर मान्दू राज्य चला गया। वहाँ के राजा ने उसका बहुत सम्मान किया और अपने राज्य का हल्लर नामक इलाका उसको दे दिया। राजकुमार चन्द्र वहीं पर रहने लगा।

चित्तौर के राजसिंहासन पर पाँच वर्ष का बालक मुकुल था और राज्य के अधिकार उसकी माता के अधिकार में थे। चन्द्र के चले जाने के बाद मुकुल के ननिहाल के लोगों का चित्तौर में आना आरम्भ हुआ और एक-एक करके वहाँ के आदमियों से चित्तौर के समस्त स्थान भरे दिखाई देने लगे। उन सब के साथ मुकुल का मामा जोधा और उसका नाना राठौर राजपूत रणमल्ल भी मारवाड़ छोड़कर चित्तौर में आ गया था। इक प्रकार मन्दोर राज्य के लोगों का चित्तौर में बढ़ता हुआ आधिपत्य और अधिकार देख कर सीसोदिया वंश की एक बूढ़ी धात्री को बहुत दुख हो रहा था। राजकुमार चन्द्र का पालन-पोषण उसी ने किया था। इस समय के दृश्य देखकर वह धात्री सोचा करती थी कि मेवाड़ राज्य के भविष्य में क्या परिवर्तन होने वाला है। क्या बप्पा रावल के सिंहासन पर राठौर लोगों का अधिकार होगा? क्या सीसोदिया वंश अब मिटने वाला है? इस प्रकार की बहुत सी बातों को सोच कर वह धात्री मन-ही-मन बहुत चिन्तित रहने लगी।

एक दिन बहुत-कुछ सोच-समझकर वह धात्री मुकुल की माता के पास गयी और अत्यंत नम्र शब्दों में उसने कहना आरम्भ किया—"तुम राजमाता हो। तुम्हारा छोटा बालक मुकुल इस राज्य का स्वामी है। मैं तुम्हारी एक दासी हूँ और जीवन भर मैंने इस सीसोदिया वंश के कल्याण के लिए भगवान से प्रार्थना की है। इस समय चित्तौर में जो कुछ हो रहा है, उसको देखकर मेरे प्राण कांप रहे हैं। मैं नहीं जानती कि तुम कुछ समझती हो या नहीं। परन्तु मुझे साफ-साफ दिखाई देता है कि अब चित्तौर में सीसोदिया वंश के स्थान पर राठौर वंश की जड़ मजबूत हो रही है।"

धात्री के मुँह से इन बातों को सुनकर मुकुल की माता सन्नाटे में आ गयी। उसको स्वयं अब इन बातों पर संदेह होने लगा और वह गम्भीरता के साथ धात्री की कही हुई बातों पर विचार करने लगी। धात्री की बातें उसे सही मालूम हुई। उसने बड़ी देर तक धात्री के साथ बातें कीं। अब उसकी समझ में आया कि चित्तौर से राजकुमार चन्द्र को हटाकर मैंने बहुत बड़ी भूल की है। इन बातों पर जितना ही उसका ध्यान गया, उतना ही उसको धात्री की बातों पर विश्वास होने लगा।

उसने गम्भीरता के साथ चित्तौर की परिस्थिति को समझने की कोशिश की। उसको इन्हीं दिनों में मालूम हुआ कि रणमल्ल की आखें चित्तौर के शासन पर लगी हैं। मुकुल के प्रति भी रण मल्ल के विचार अच्छे नहीं है। उसे यह भी मालूम हुआ कि चन्द्र के दूसरे भाई रघुदेव को रण मल्ल ने ही चोरी से मरवा डाला था।

राज माता की शंकायें अब बढ़ने लगीं। चिन्ताओं के मारे वह घबराने लगी। वह सोचने लगी कि जिसने रघुदेव की हत्या करायी है, वह राज्य के लोभ में मुकुल का भी बध करा सकता है। राजकुमार चन्द्र के प्रति उसके हृदय में ईर्षा पैदा कराने का कार्य भी रणमल्ल ने ही किया था, इसका स्मरण अब उसे बार-बार होने लगा। वह जितना ही सोचती थी, उतना ही उसे संकटों से घिरा हुआ चित्तौर दिखायी देता था। उसकी समझ में आ गया कि सम्पूर्ण मेवाड़ के शसान को मेरे पिता ने अपने अधिकार में कर रखा है। राज्य में छोटे और बड़े जितने भी कर्मचारी हैं, वे मेरे पिता के द्वारा मारवाड़ से आये हैं और राज्य के ऊँचे पदों पर सभी राठौर राजपूत हैं। उन स्थानों पर मेवाड़ के लोग जो काम करते थे, उनको नौकरियों से अलग कर दिया गया है और चित्तौर के सब से बड़े पद पर जयसलमेर का एक भट्टी राजपूत है।

राजमाता को अब धात्री की बातों पर पूर्ण विश्वास हो गया। वह सोचने लगी कि इस संकट से चित्तौर को बचाने का अब उपाय क्या है। यदि सावधानी के साथ कोई उपाय न किया गया तो चित्तौर का राज्य सिंहासन राठौरों के हाथ में चला जायगा। बड़ी चिन्ता और घबराहट के साथ इस संकट के समय उसने राजकुमार चन्द्र की याद की और उसे बुलाने के लिए उसने अपना दूत भेजा। जिस समय चंद्र चित्तौर छोड़ कर मान्दू राज्य में गया था, उसके साथ चित्तौर के दो सौ भील अपने परिवारों को चित्तौर में छोड़ कर उसके साथ गये थे।

राजकुमार चन्द्र ने अपनी विमाता का पत्र पाकर चित्तौर के भीलों से परामर्श किया और अपने आने के पहले उसने उन भीलों को चित्तौर भेज दिया। उनके द्वारा उसने विमाता के पास अपना एक संदेश भी भेजा। उसे सुन कर मुकुल की माता को बहुत संतोष मिला। भीलों ने आकर उसको जो बातें समझायीं, उसने उन्हीं के अनुसार सब कुछ करने का निश्चय किया। उन्हीं दिनों में दिवाली का त्योहार था। उसके उत्सव को मनाने के लिए मुकुल अपने आदमियों और माता के साथ गोसुण्डा नामक नगर में गया। राजामाता ने वहाँ पर दिन भर गरीबों को भोजन कराया।

शाम हो जाने पर अँधेरा होने के साथ-साथ राजकुमार चंद्र भेष बदले हुए घोड़े पर अपने निर्भीक चालीस सवारों के साथ वहाँ पर आ गया। उन सब के आगे राजकुमार चन्द्र था। राजमाता ने उसे पहचान लिया। चन्द्र ने आते ही राणा मुकुल को अभिवादन किया। सब के सब चित्तौर की तरफ चले और सिंह द्वार पर पहुँच गये। उनके साथ पूर्व निश्चय के अनुसार और उसके साथ के सभी लोग थे। रामपोल नामक द्वार चित्तौर के द्वारपालों ने रोका। उनको उत्तर देते हुए चन्द्र ने कहा हम लोग चित्तौर-राज्य के हैं और धीरे गाँव में रहते हैं, राणा के साथ गोमुण्डा गये थे। और राणा को दुर्ग में पहुँचाने क लिए हम लोग यहाँ आये है।

इसके बाद द्वारपालों के विरोध न करने पर सभी के साथ चन्द्र दुर्ग की तरफ बढ़ा। उस समय द्वारपालों को फिर संदेह पैदा हुआ और वे सब के सब अपने हाथों में तलवारें लेकर राज कुमार और उसके साथ के सवारों पर टूट पड़े। कुछ देर तक खूब मार-काट हुई। राजकुमार चन्द्र ने दुर्ग के सरदार भट्टी को कैद कर लिया। बहुत-से द्वारपाल मारे गये। इसके बाद राजकुमार चन्द्र सब के साथ आगे बढ़ा।

राठौर राजपूत रणमल्ल को इस घटना का कुछ पता न था। मारवाड़ से चित्तौर आकर वह अनेक प्रकार की विलासिता में पड़ा रहता था। चित्तौर के राज्य पर अब वह अपना ही अधिकार समझता था। महलों में एक राजपूत बाला दासी के रूप में रहा करती थी। वह युवती अत्यन्त सुन्दरी थी। रणमल्ल ने इन्हीं दिनों में उसका सतीत्व नष्ट किथा था। इससे अप्रसन्न होकर वह राजपूत बाला रणमल्ल से बदला लेने के लिए मौका ढूढ़ रही थी। जिस दिन रात को मुकुल और राजमाता के साथ चित्तौर में राजकुमार चन्द्र ने प्रवेश किया और द्वारपालों के साथ मारकाट की, उस समय रणमल्ल महल के एक स्थान पर लेटा हुआ सो रहा था। राजपूत बाला ने मौका पाकर रणमल्ल की लम्बी पगड़ी से उसको चारपाई में कसकर बाँध दिया। वह अब भी सोता ही रहा। उसे बाँधकर राजपूत बाला चुपके से वहाँ से चली गयी। चन्द्र के साथी सैनिक राजप्रासाद के भीतर आ गये थे। उनमें से एक ने रणमल्ल का बध किया। उसका लड़का जोधाराव उस समय चित्तौर के बाहर दक्षिण की तरफ था। वहाँ पर चित्तौर का हाल सुनकर वह घबड़ा उठा और अपने घोड़े पर बैठकर वहाँ से भागा। राजकुमार चन्द्र को उसके भागने का समाचार मिला। वह उसको कैद करने के लिये चित्तौट से रवाना हुआ।

जोधाराव अपने राज्य के मन्दोर नगर में पहुँच गया था। चन्द्र से घबराकर वह हरवाशंकल नामक एक राजपूत के यहाँ जाकर छिप गया। राजकुमार चन्द्र ने मन्दोर नगर पर अधिकार कर लिया। यह नगर बारह वर्ष तक चित्तौर राज्य में शामिल रहा। रणमल्ल को उसके विश्वासघात का पूरी तौर पर बदला मिला। वह मन्दोर नगर चला गया और उस राज्य के बहुत-से आदमी मारे गये। जोधाराव छिप गया था। उसके दोनों लड़कों ने चित्तौर की अधीनता स्वीकार कर ली, जिससे उनके साथ शत्रुता का अंत हो गया। मन्दोर राज्य का प्रबन्ध करके राजकुमार चंद्र चित्तौर लौट गया।

जोधराव के मन में मन्दोर के उद्धार की बात बराबर उठती रही। अवसर पाकर कुछ सैनिक को अपने साथ में ले कर उसने मन्दोर पर आक्रमण किया। कुछ समय तक चित्तौर की सेना ने युद्ध किया। अंत में उसकी पराजय हुई और जोधाराव ने मन्दोर नगर पर अधिकार कर लिया।

इसके बाद भी जोधराव को शाँति न मिली। उसको भय था कि चित्तौर की सेना किसी भी समय आक्रमण कर सकती है और वह समय भयानक हो सकता है। इसलिए उसने अपने

दूत को संधि के लिए चन्द्र के पास भेजा और अंत में दोनों के बीच संधि हो गयी।

राज्य के अधिकारियों को चन्द्र के समर्पण करने के बाद मुकुल चित्तौर के सिंहासन का अधिकारी बना था। परंतु अधिक समय तक वह इस अधिकार का भोग न कर सका। यद्यपि युवा अवस्था प्राप्त करने पर उसने अपनी योग्यता और क्षमता का परिचय दिया था। सम्वत् १४५४ सन् १३९८ ईसवी में वह चित्तौर के सिंहासन पर बैठा था। यह समय भारतवर्ष के इतिहास मे बहुत महत्व रखता है। इन्हीं दिनों में तैमूर ने अपनी विशाल सेना लेकर भारत में आक्रमण किया था। परन्तु उसके आक्रमण से मेवाड़ को कोई क्षति न पहुँची थी।

राणा मुकुल में क्षत्रियोचित कोई अभाव न था। उसके जीवन का असमय अन्त हुआ। क्षेत्र-सिंह का पहले उल्लेख किया जा चुका है। उससे एक दासी के गर्भ से दो पुत्र उत्पन्न हुए थे। उनमें एक का नाम था चच्चा और दूसरे का मैरा। दोनों ही राजमहलों में रहने वाली एक दासी के गर्भ से पैदा हुए थे। इसीलिये वे राज्य के अधिकारी न थे चित्तौर के सरदार और सामन्त घृणा की दृष्टि से उनको देखते थे। चित्तौर के लोगों का यह व्यवहार देखकर वे दोनों भाई असंतुष्ट रहते थे और मुकुल से ईर्षा रखते थे।

राणा मुकुल सब कुछ जानते और समझते हुए भी उन दोनों भाइयों के साथ कोई अनुचित व्यवहार नहीं करना चाहता था। इसीलिए दरबार की तरफ से उन दोनों भाइयों को सेना में अच्छे स्थान दिये गये थे। जिस समय मादेरिया के लोगों ने चित्तौर राज्य के विरुद्ध विद्रोह किया था तो उनको दमन करने के लिए राणा मुकुल अपनी सेना लेकर वहाँ पर गया था। उस सेना में चच्चा और मैरा भी गए थे।

इन दोनों भाइयों की भावनायें राणा मुकुल के प्रति पहले ही कलुषित हो रही थीं। वे अपने आप को चित्तौर का राज्य पाने का अधिकारी समझते थे और इसकी बाधा में वे राणा मुकुल को प्रमुख समझते थे। मादेरिया में पहुँच कर दोनों भाई आपस में कुछ परामर्श करते रहे और एक दिन अवसर पाकर उन दोनों ने धोखे से मौका पाकर मुकुल को जान से मार डाला।

राणा मुकुल का बड़ा बेटा कुम्भ चित्तौर में था। उसने जब यह समाचार सुना तो उसे बहुत दुख हुआ। उसने समझ लिया कि चच्चा और मैरा मादेरिया से लौटकर चित्तौर पर आक्रमण करेंगे। इस लिए उसने मारवाड़ के राजा से सहायता माँगी और वहाँ के राजा ने अपने लड़के के सेनापतित्व में चित्तोर की सहायता के लिए मारवाड़ की एक सेना भेजी। चच्चा और मैरा उस समय चित्तौर के पास एक दुर्ग में आ गये थे। मारवाड़ की सेना के पहुँचाते ही वे दोनों उस दुर्ग से भाग कर आरावली पर्वत के पाई नामक स्थान पर चले गये और कुछ दिनों के बाद वहाँ पर वे दोनों राठौरों और सीसोदिया राजपूत के द्वारा मार डाले गये।

सत्रहवाँ परिच्छेद

चित्तौर के सिंहासन पर राणा कुम्भ–राणा मुकुल के मरने के बाद मेवाड़-राज्य की दुरवस्था–असहाय अवस्था में मारवाड़ के राजा से कुम्भ ने सहायता की माँग की–मारवाड़ के राजा की सैनिक सहायता–चित्तौर के सिंहासन पर कुम्भ का बैठना–उसके साहसपूर्ण कार्य–मेवाड़-राज्य में सार्वजनिक उन्नति–मालवा और गुजरात के नवाबों का मेवाड़ पर आक्रमण–शत्रुओं के साथ राणा कुम्भ का संग्राम–राणा कुम्भ की विजय–मालवा का नवाब मोहम्मद खिलजी चित्तौर के कारागार में–मोहम्मद खिलजी की मुक्ति में राणाकुम्भ की उदारता–खिलजी और राणा कुम्भ में मित्रता–मेवाड़-राज्य के चौरासी दुर्ग-राणा कुम्भ के बनवाये हुए किले–राणा कुम्भ का अयोग्य लड़का–राणा ऊदा के पतन की पराकाष्ठा–साँगा के बचपन का संघर्ष।

सम्बत् १४७५ सन् १४१६ ईसवी में राणा मुकुल का बड़ा लड़का कुम्भ चित्तौर के सिंहासन पर बैठा। उसे लोग कुम्भा जी के नाम से भी सम्बोधन करते थे, राणा मुकुल के मरने के बाद एक साथ मेवाड़ राज्य की परिस्थितियाँ बिगड़ गयी थीं। इसीलिए पिता के मारे जाने पर अपनी असहाय अवस्था में कुम्भ को मारवाड़ के राजा से सहायता माँगनी पड़ी थी। वह मारवाड़ के राजा का भाञ्जा होता था। मुकुल की छोटी अवस्था में मेवाड़ और मारवाड़ के सम्बन्ध बहुत बिगड़ गये थे और राजकुमार चन्द्र ने मारवाड़ पर आक्रमण करके मन्दोर नगर पर अधिकार कर लिया था। लेकिन उसके कुछ समय के बाद दोनों राज्यों के बीच में संधि हो गयी थी।

कुम्भ के सहायता माँगने पर मारवाड़ के राजा ने अपनी एक सेना भेजी थी और उसने आकर चित्तौर की पूरी सहायता की थी। उसके बाद कुम्भ चित्तौर के सिंहासन पर बैठा। वह अपनी छोटी अवस्था से ही शूरवीर और प्रतापी था। राज्य में अनेक कमजोरियों के रहते हुए भी उसने बड़े साहस से काम लिया विरोधी परिस्थितियों की उसने कुछ परवा न की और बड़ी योग्यता के साथ उसने चित्तौर की शक्तियों का संगठन किया। उसकी शक्तियों का ही यह परिणाम निकला कि उसके शासन काल में मेवाड़ राज्य ने बड़ी तेजी के साथ उन्नति की। थोड़े ही दिनों के भीतर मेवाड़ की निर्बल शक्तियाँ शक्तिशाली बन गयीं। जो विरोधी राज्य चित्तौर को खा जाने के लिए तैयार थे, वे सब राणा कुम्भ को सम्मान की दृष्टि से देखने लगे।

राणा कुम्भ से सौ वर्ष पहले आक्रमणकारी मुस्लिम सेना ने चित्तौर में आकर जिस प्रकार सर्वनाश किया था और मेवाड़ के राजपूतों को निर्बल बना दिया था, इस समय वहाँ के लोग उस सर्वनाश की बातों को भूल गये थे। इसी चित्तौर राज्य के राजा समरसिंह ने शहाबुद्दीन की प्रचंड सेना का सामना किया था और भारत की स्वाधीनता के लिए उसने अपने प्राणों का बलिदान किया था। वह समय अब बदल गया था और मेवाड़ राज्य में एक नया युग आरम्भ हुआ था। शाहबुद्दीन के आक्रमण से लेकर राणा कुम्भ के समय तक दो सौ छब्बीस वर्षों का समय बीता है और इस लम्बे समय में राजस्थान की भूमि पर अनेक प्रकार के परिवर्तन हुए हैं।

खिलजी वंश के पिछले बादशाह के समय विजयपुर, गोलकुण्डा, मालवा, गुजरात, जौनपुर और कालपी जैसे कितने ही राज्यों के राजा लोग दिल्ली के सिंहासन को निर्बल समझकर

अपनी-अपनी स्वतंत्रता का निर्माण करने लगे थे। राणा कुम्भ जिस समय चित्तौर के सिंहासन पर बैठा, उसी वर्ष मालवा और गुजरात के नवाबों ने मेवाड़ पर आक्रमण करने का निश्चय किया और दोनों ही अपनी अपनी विशाल सेनायें लेकर सम्बत् १४६६ सन् १४४० ईसवी में मेवाड़ की तरफ रवाना हुए।

नवाबों के इस होने वाले आक्रमण का समाचार पाते ही राणा कुम्भ ने बड़ी तत्परता के साथ चित्तौर में युद्ध की तैयारियाँ की और अपने साथ एक लाख सिपाहियों की सेना लेकर—जिसमें चौदह सौ केवल हाथी थे—राणा कुम्भ नवावो की विशाल सेनाओं का सामना करने के लिए चित्तौर से रवाना हुआ और अपने राज्य की सीमा के आगे मालवा के मैदानों में पहुँच कर उसने प्रवल सेनाओं के साथ संग्राम आरम्भ कर दिया। दोनों ओर से भीषण युद्ध हुआ। अंत में राणा कुम्भ की विजय हुई और मालवा के नवाब मोहम्मद खिलजी को कैद करके राजपूत चित्तौर ले आये।

मोहम्मद खिलजी पूरे छै महीने तक चित्तौर की जेल में रहा। भट्ट ग्रंथों के अनुसार, राणा कुम्भ ने मोहम्मद खिलजी के ताज को अपनी विजय के प्रमाण में अपने पास रखकर उसको छोड़ दिया था। इसी प्रकार की बात का उल्लेख मुगल बादशाह बाबर ने अपनी आत्म कथा में किया है, जिसमें राणा साँगा के लड़के ने अपना मुकुट बादशाह बाबर को भेंट में दिया था। अबुल फजल ने भी अपने लिखे हुए इतिहास में राणा कुम्भ की उदारता की प्रशंसा की है। उसने लिखा है कि 'राणा कुम्भ ने बिना किसी जुर्माने के अपने शत्रु मोहम्मद खिलजी को कैद से छोड़कर अपने श्रेष्ठ चरित्र का परिचय दिया था।' मोहम्मद खिलजी ने राणा कुम्भ की कृतज्ञता को स्वीकार किया और उसके बाद वह राणा कुम्भ का मित्र बन गया। इसके बाद दिल्ली के बादशाह की सेना के साथ झूंझू नामक स्थान पर राणा ने चित्तौर की सेना लेकर भयानक युद्ध किया। उसमें राणा कुम्भ की विजय हुई थी। इस युद्ध में मोहम्मद खिलजी अपनी फौज लेकर राणा की सहायता करने के लिए आया था और उसने दिल्ली के बादशाह की फौज के साथ युद्ध किया था।

मेवाड़ राज्य में चौरासी दुर्ग हैं। उनमें बत्तीस राणा कुम्भ ने बनवाये थे और इन बत्तीस किलों में कमल मीर का दुर्ग सबसे अधिक प्रसिद्ध है। इसका निर्माण बड़ी मजबूती से किया गया है। यह दुर्ग राणा कुम्भ के बाद कुम्भ मीर के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस कुम्भमीर दुर्ग के प्रधान द्वार का नाम हनुमान द्वार है। उसके द्वार पर महाबीर की एक बहुत बड़ी मूर्ति है। यह मूर्ति राणा कुम्भ नरकोट से उसको जीत कर अपने साथ लाया था। आबू पहाड़ की एक चोटी पर परमार राजपूतों का एक विशाल दुर्ग बना हुआ था। उसमें वह और उसका परिवार प्रायः रहा करता था। राणा कुम्भ में लोकप्रियता का गुण था। मेवाड़ की प्रजा उस पर बहुत श्रद्धा रखती थी। राणा ने प्रजा की सुविधाओं और राज्य के हितों के लिए बहुत से अच्छे कार्य किये थे और उन्हीं कारण सम्पूर्ण राजस्थान में उसे बहुत ख्याति मिली।

मारवाड़ के मैरता निवासी एक राठौर सरदार की बेटी मीराबाई के साथ राणा कुम्भ का का विवाह हुआ था। × मीराबाई बहुत सुन्दरी थी और धर्म में बहुत श्रद्धा रखती थी। कृष्ण की

× जोधपुर के मुन्सिफ बाबू देवी प्रसाद ने मीरा बाई का जीवन चरित्र लिखा है। उसमें उन्होंने टॉड साहब की इस बात का विरोध किया है। उनका कहना है कि जिस मीरा बाई को यहाँ पर राणा कुम्भ की रानी लिखा गया है, वह जोधपुर के राठौर वंश में पैदा हुई थी और उदयपुर के सीसोदिया वंश में राणा साँगा के पुत्र भोज के साथ व्याही गयी थी। उसका विवाह सम्वत् १५७३ में हुआ था।

स्तुति के सम्बन्ध में उसने कविता के बहुत से छन्द बनाये थे। राणा कुम्भ को भी कविता करने का शौक था। मीराबाई ने कविता करने का ज्ञान किससे प्राप्त किया, इसका उल्लेख किसी ग्रंथ में नहीं मिलता। मीराबाई ने भगवान के बहुत से मंदिरों के दर्शन किये थे।

झालावाड़ नरेश की लड़की का विवाह एक राठौर राजकुमार के साथ होना निश्चय हुआ था। परन्तु राणा कुम्भ ने उस राजकुमारी का अपहरण किया और चित्तौर में लाकर उसने उसको अपनी रानी बनाकर रखा। इसका परिणाम यह हुआ कि राठौर राजपूतों के साथ सीसोदिया वंश की जो मैत्री कायम हुई थी, वह राणा कुम्भ के इस व्यवहार से समाप्त हो गयी और दोनों वंशों के बीच फिर शत्रुता चलने लगी।

राणा कुम्भ ने बड़ी योग्यता के साथ पचास वर्ष तक मेवाड़-राज्य पर शासन किया। अब उसका बुढ़ापा चल रहा था। इस बुढ़ापे में उसके लड़के ने उसका बध किया। जिस लड़के ने अपने पिता के प्रति यह अधर्म किया, उसका ऊदा नाम था। कुछ लोग उसे उदयसिंह भी कहते थे। भट्ट ग्रंथो में उस ऊदा की बड़ी निंदा लिखी गयी है। इस प्रकार सम्बत् १५२५ सन् १४६९ ईसवी में राणा कुम्भ की मृत्यु हुई। ऊदा के इस व्यवहार से सम्पूर्ण मेवाड़ के लोग उससे घृणा करने लगे।

ऊदा प्रसिद्ध राणा कुम्भ का बेटा था। परन्तु उसका कोई अच्छा साथी न था। पिता की हत्या करने के कारण उससे अब और भी अधिक लोग घृणा करने लगे। वह पहले से ही अयोग्य और अकर्मण्य था। राणा कुम्भ के बाद उसने खुल कर अपनी अयोग्यता का परिचय दिया। आबू पर्वत पर देवड़ा नामक एक सरदार रहता था। वह मेवाड़ राज्य का सामन्त था। ऊदा ने उसके साथ मित्रता की और उसको प्रसन्न करने के लिए ऊदा ने उस सामन्त को अपनी अधीनता से स्वतंत्र कर दिया।

ऊदा ने इस प्रकार के और भी कार्य किये। उसने जोधपुर के राजा को साँभर, अजमेर और कुछ अन्य इलाके उसकी मित्रता की कीमत में दे दिये। अपने पिता की हत्या करके उसने जो अक्षम्य अपराध किया था, उससे वह सदा भयभीत बना रहता और किसी प्रकार की आपत्ति आने पर सहायता प्राप्त करने के लिए ही उसने देवड़ा तथा जोधपुर के राजा के साथ मैत्री पैदा करने की कोशिश की थी। × ऊदा के इन कार्यों से मेवाड़ राज्य का पतन आरम्भ हुआ। राणा कुम्भ ने अपने जीवन भर के प्रयत्नों से मेवाड़ राज्य की जो उन्नति की थी, ऊदा ने पाँच वर्षो के भीतर ही उसका सत्यानाश कर दिया।

मित्रता धन से खरीदी नहीं जाती। परन्तु ऊदा को इस बात का ज्ञान न था। उसने अपने राज्य का सत्यानाश कर के जिनको मित्र बनाने की कोशिश की थी, वे कभी उसके काम न आये और न कभी उसका सम्मान किया। इस दशा में निराश होकर वह दिल्ली के मुसलमान बादशाह के पास गया और उसके साथ अपनी लड़की का विवाह कर देने का वादा करके उसने उससे सहायता माँगी।

दिल्ली के बादशाह से मिलकर जब ऊदा दीवानखाने से बाहर आ रहा था, उसके मस्तक पर अचानक बिजली गिरी, जिससे वह जमीन पर गिर गया और उसका प्राणान्त हो गया। बप्पा रावल के वंश के सम्मान की रक्षा भगवान ने की और हत्यारे ऊदा को जो फल मिलना चाहिए था, वही उसे मिला।

× जिस समय ऊदा ने जोधपुर के राजा को अपने ये इलाके दिये थे, उसके दस वर्ष पहले सम्वत् १५१५ में जोधराव ने जोधपुर की प्रतिष्ठा की थी।

राणा कुम्भ के सिंहासन का राजकुमार रायमल उत्तराधिकारी था, परन्तु राणा कुम्भ ने अपने जीवन काल में उसे राज्य से निकाल दिया था, जिससे रायमल ईदर चला गया था। राणा कुम्भ की मृत्यु के पाँच वर्ष बाद सम्बत् १५३० सन् १४७४ ईसवी में रायमल चित्तौर के सिंहासन पर बैठा और उसके बाद उसने ऊदा के अपराध का दंड देना अत्यन्त आवश्यक समझा। रायमल के इस निर्णय को जान कर ऊदा भयभीत हुआ और अपनी सहायता के लिए वह दिल्ली के बादशाह के पास गया था, जहाँ पर बिजली के गिरने से उसकी मृत्यु हो गयी।

सिंहेशमल और सूरजमल नाम के ऊदा के दो बेटे थे। दिल्ली के बादशाह ने अपने वादे के अनुसार ऊदा के दोनों लड़कों को साथ में लेकर मेवाड़ पर आक्रमण किया। इस समाचार को पा कर चित्तौर में संग्राम की तैयारी होने लगी। मेवाड़ राज्य के सरदार और सामन्त अपनी-अपनी सेनायें लेकर चित्तौर में आ गये। इसी समय आबू और गिरनार के नरेश भी चित्तौर में अपनी सेनाओं के साथ पहुँचे। उन सब के साथ ग्यारह हजार पैदल और अट्ठावन हजार सवारों की सेना लेकर राणा रायमल दिल्ली के बादशाह के साथ युद्ध करने के लिए चित्तौर से रवाना हुआ। घासा नामक स्थान पर दोनों ओर की सेनाओं का मुकाबला हुआ। तुरन्त युद्ध आरम्भ हो गया और थोड़ी ही देर में वह संग्राम भयानक हो उठा। बहुत समय तक मार काट होने के बाद बादशाह की फौज पराजित हुई। इसके बाद ऊदा के दोनों लड़कों ने राणा रायमल की आधीनता स्वीकार कर ली और राणा ने उनके अपराधों को क्षमा कर दिया। बादशाह की बची हुई फौज वहाँ से लौटकर दिल्ली की तरफ चली गयी।

राणा रायमल के पाँच संतानें हुई थीं, दो लड़कियाँ और तीन लड़के उसकी एक लड़की गिरनार के यदुवंशी राजा शूर जी को ब्याही गयी और दूसरी का विवाह सिरोही के देवरा राज्य के जयमल के साथ हुआ था। दूसरी लड़की के दहेज में राणा ने अपना आबू पर्वत का इलाका दे दिया। अपने जीवन के अंत तक राणा ने मेवाड़ की ख्याति को बढ़ाने की चेष्टा की और अपने पूर्वजों के गौरव को कायम रखा। मालवा के बादशाह गयासुद्दीन के साथ राणा की शत्रुता चल रही थी। इसी कारण उसके साथ राणा को कई बार युद्ध करना पड़ा और प्रत्येक युद्ध में राणा रायमल की विजय हुई। अंत में गयासुद्दीन ने संधि के लिए राणा से प्रार्थना की। राणा ने उसे स्वीकार कर लिया। इसके बाद राणा ने सुख और शान्ति का जीवन बिताना आरम्भ किया। इसके कुछ ही दिनों बाद लोदी वंश दिल्ली के सिंहासन पर बैठा। मेवाड़ के उत्तरी इलाकों के सम्बन्ध में दिल्ली वालों से झगड़ा पैदा हुआ और कई बार राणा रायमल को लोदी बादशाह के साथ युद्ध करना पड़ा।

सांगा, पृथ्वीराज और जयमल नाम के तीन लड़के रायमल के थे। ये तीनों अपने जीवन के आरम्भ से तेजस्वी और अत्यन्त शूरवीर मालूम होते थे। इन तीनों में सांगा और पृथ्वीराज के नाम अधिक प्रसिद्ध हुए। बल और पराक्रम में तीनों एक दूसरे से बढ़कर थे। परन्तु छोटी अवस्था से ही तीनों आपस में लड़ने-झगड़नें लगे थे। वे जितने ही बड़े होते गये, उनके आपस के झगड़े उतने ही बढ़ते गये। सांगा और पृथ्वीराज—दोनों एक ही माता से पैदा हुए थे और उनकी माता झाला वंश की लड़की थी। जयमल सौतेला भाई था।

तीनों भाइयों में कोई अन्तर न था। राणा तीनों को बहुत प्यार करता था। उनके प्रति पिता का यह प्यार स्वाभाविक था। तीनों ही बालक जन्म के बाद बहुत होनहार मालूम होने लगे थे। उनको देखकर और उनके भविष्य का अनुमान लगाकर राणा को बड़ी प्रसन्नता होती थी। लेकिन लड़कों के किशोर अवस्था में पहुँचते-पहुचते राणा का वह सुख और संतोष धीरे-धीरे

कम होने लगा। राणा ने लगातार देखा कि इन तीनों भाइयों के झगड़े आपस में बढ़ते जाते हैं। इन झगड़ों का कारण क्या है, राणा की समझ में यह न आया। बहुत समझाये-बुझाये जाने के बाद भी तीनों लड़कों के आपसी झगड़े में कोई अन्तर न आया। लगातार उनके बढ़ते हुए झगड़ों को देखकर राणा को बहुत असंतोष होने लगा और जब उसको कोई दूसरा उपाय दिखायी न पड़ा तो उसने अपने लड़कों को राज्य से निकाल देने का विचार किया। क्योंकि वह अब बहुत दुखी रहने लगा था।

उन तीनों लड़कों में साँगा बड़ा था और राणा का वह पहला पुत्र था और वही राणा का उत्तराधिकारी था। उस छोटी अवस्था में लड़कों का झगड़ा इस बात पर था कि चित्तौर का अधिकारी कौन है। प्रत्येक अपने आप को उस राज्य का अधिकारी समझता था। इस झगड़े के फलस्वरूप, साँगा को राज्य छोड़कर भागना पड़ा। पृथ्वीराज को राणा ने अपने यहाँ से निकाल दिया और जयमल जान से मारा गया। भाइयों के आपस के झगड़े का यह परिणाम निकला। इस दुष्परिणाम को रोकने के लिए राणा रायमल के पास कोई उपाय बाकी न रह गया था। राजपूतों के इस प्रकार के चरित्र को देखकर सहज ही यह स्वीकार करना पड़ता है कि शत्रुओं से युद्ध न करने के दिनों में वे स्वयं एक दूसरे के शत्रु बन जाते हैं।

तीनों भाई एकदिन चाचा सूरजमल के पास एकान्त में बैठकर मेवाड़ के उत्तराधिकार के सम्बन्ध में बातें करने लगे। सूरजमल ने दोनों की बातों को सुना और समझा कि इनमें दोनों ही अपने आप को अधिकारी समझते हैं। बातचीत के सिलसिले में राणा ने कहा—"अपने पिता का मैं बड़ा लड़का हूँ और न्याय से मैं ही अपने पिता का उत्तराधिकारी हूँ।"

पृथ्वीराज ने साँगा की इस बात को मंजूर नहीं किया। दोनों में विवाद बढ़ने लगा। सूरजमल किसी प्रकार का निर्णय करने में अपने आपको असमर्थ पाता था। वह दोनों की सुन रहा था। परन्तु साफ-साफ कुछ कह न सकता था। पृथ्वीराज और साँगा का विवाद बढ़ गया और उसका परिणाम यह हुआ कि पृथ्वीराज ने अपनी तलवार निकालकर तेजीके साथ साँगा पर आक्रमण किया। यह देखते है सूरजमल दौड़ पड़ा और उसने किसी प्रकार रोक-थाम की। परन्तु उससे झगड़ा रुका नहीं। साँगा पृथ्वीराज की तलवार से जब बच गया तो पृथ्वीराज ने सूरजमल को ललकारा। उस समम भी सूरजमल ने दोनों को रोकने की कोशिश की, परन्तु सब बेकार हुआ। दोनों एक दूसरे का सर्वनाश करने के लिए चेष्टा करने लगे। दोनों के शरीर में तलवारों के बहुत-से जख्म आये। साँगा के शरीर में तलवार के पाँच आधात जोरदार लगे। वह तुरन्त भागा। उसकी एक आँख भीषण आघात से सदा के लिए नष्ट हो गयी।

साँगा भागकर शिवान्ती नामक स्थान पर पहुँचा। वहाँ पर उसे वीदा नाम का एक राजपूत मिला। वह राजपूत उदावत वंश में पैदा हुआ था और इस समय अपने घर से निकल कर कहीं बाहर जाने को तैयार था। अकस्मात अपने सामने रक्त से डूबे हुए साँगा को देखकर वह घबरा उठा। उसी समय जयमल ने वहाँ पहुँच कर साँगा पर अपनी तलवार का वार किया। साँगा की रक्षा करने के लिए वीदा राजपूत ने जयमल का सामना किया। वह जयमल की तलवार से मारा गया। इसके बाद साँगा वहाँ से चला गया।

पृथ्वीराज के शरीर में बहुत से जख्म हो गये थे। उनके सेहत हो जाने पर वह साँगा को खोज करने लगा। यह समाचार साँगा को मिला। वह पृथ्वीराज से बचकर राज्य से दूर निकल गया। इस दुर्घटना का समाचर राणा रायमल ने भी सुना। उसे बहुत क्रोध आया। उसने पृथ्वी-

राज को बुला कर राज्य से निकल जाने का आदेश दिया। अपने पाँच सदारों के साथ पृथ्वीराज गोदवार राज्य के बालिओ नामक स्थान पर चला गया।

राणा रायमल की अब वृद्धावस्था थी। गोदवार अरावली पर्वत पर बसा हुआ है। इस मौके पर जंगली मीन लोग वहाँ पर आकर तरह-तरह के उपद्रव करने लगे और वहाँ के निवासियों को लूटने लगे। गोदवार की राजधानी नादौल में थी। मीन लोगों ने वहाँ के सिपाहियों की कोई परवा नहीं की। उपद्रव करने वाले मीनों की संख्या इतनी बढ़ गयी थी, जो नादौल के सैनिकों के रोके न रुकी। उस समय पृथ्वीराज बालियों में उपस्थित था। उसने मीनों के उपद्रवों को सुना। बालियों में रहकर उसने अपने कुछ साथी बना लिए थे। उसने मन ही मन उपद्रव करने वाले मीनों के दमन करने का निश्चय किया। उन मीनों का एक राजा था और उस राजा के यहाँ बहुत से राजपूत नौकरी करते थे। किसी प्रकार पृथ्वीराज उन राजपूतों से मिला और उनको भड़काकर मीनों पर उसने राजपूतों का आक्रमण करवा दिया।

राजपूतों और मीनों की लड़ाई ने भयानक रूप धारण किया। मीनों का राजा घबराकर अपने राज से भागा। पृथ्वीराज ने उसको पकड़ लिया और अपने भाले से उसको मार डाला। इससे बाद पृथ्वीराज ने अपने साथ के सैनिकों और मीनों के राजा के यहाँ रहने वाले राजपूतों की सहायता से पहाड़ी मीनों पर भयानक अत्याचार किये और बड़ी निर्दयता के साथ उनका सर्वनाश करने लगा। बहुत से मीन लोग मारे गये और जो बाकी रहे, उनमें भी कुछ भाग गये। इसके बाद पृथ्वीराज ने मीनों के सभी पहाड़ी इलाकों पर, तेसौड़ी नामक दुर्ग को छोड़कर अधिकार कर लिया। उन दिनों में उस दुर्ग पर चौहान माद्रैचा लोगों का शासन था।

मीनों के राज्य पर अधिकार करके पृथ्वीराज ने वहाँ का अधिकार सद्दा नामक एक सोलंकी राजपूत को सौंप दिया। उस सोलंकी राजपूत ने उसके बाद सोदगढ़ पर भी अपना अधिकार कर लिया। सद्दा का विवाह माद्रैचा चौहान की लड़की के साथ हुआ था। वह अंत में पृथ्वीराज से मिल गया। मीनों के राज्य पर जो कुछ पृथ्वीराज ने किया, उसका समाचार राणा रायमल ने सुना। उसने प्रसन्न होकर पृथ्वीराज को चित्तौर में बुला लिया।

राज्य में लौट आने पर जयमल के मारे जाने की घटना को उसने सुना, जो इस प्रकार थी, अरावली पर्वत के नीचे बेदनौर नामक नगर में शूरथान राव रहा करता था। ताराबाई नाम की उसकी एक सुन्दरी लड़की थी। वह अपनी लड़की को बहुत प्यार करता था। किसी समय वह अपने राज्य का अधिकारी था परन्तु उसके वे दिन अब न रहे थे। उसके राज्य पर मुसलमानों का शासन हो गया था। शूरथान ने इस बात की घोषणा की कि जो हमारे राज्य का उद्धार करेगा, उसी के साथ मैं अपनी लड़की का विवाह करूँगा।

राजकुमार जयमल ने भी शूरथान की घोषणा को सुना और वह ताराबाई के साथ विवाह की अभिलाषा से बेदनौर आया। उसने ताराबाई के साथ अशिष्ट और असंगत व्यवहार किया, जिससे क्रोध में आकर शूरथान ने जयमल को मार डाला।

चित्तौर में आकर और कुछ दिनों तक रह कर पृथ्वीराज ने ताराबाई के सौन्दर्य की प्रशंसा सुनी। उसके मन में सहज ही उसको देखने की अभिलाषा पैदा हुई। वह बेदनौर के लिए रवाना हुआ और वहाँ जाकर उसने ताराबाई के पिता शूरथान से भेंट की। मीनों के राज्य को जीत कर अधिकार कर लेने के बाद पृथ्वीराज का नाम आस-पास दूर तक प्रसिद्ध हो गया था। शूरथान ने उसका बड़ा सम्मान किया। पृथ्वीराज ने तोड़ातंक के अफगानों को पराजित करके शूरथान के

राज्य का उद्धार करने की प्रतिज्ञा की और इसी आधार पर शूरथान ने पृथ्वीराज के साथ ताराबाई के विवाह का निश्चय किया ।

पृथ्वीराज ने अपने निश्चय के अनुसार चुने हुए पाँच सौ सवार सैनिकों को तैयार किया और उनको साथ में लेकर वह तोड़ातंक की तरफ चला । साथ में ताराबाई को लेकर शूरथान भी रवाना हुआ । तोड़ातंक में पहुँचकर पृथ्वीराज ने देखा, मोहर्रम के दिन हैं । बादशाह के महल के पास ताजिया पहुँचा था और बादशाह उसमें शामिल होने के लिए तैयार हो रहा था । इसी समय पृथ्वीराज ने अपने बाण से उसको मारा । वह गिर गया ।

बादशाह के गिरते ही वहाँ के मुसलमानों में हाहाकार मच गया । पृथ्वीराज के सैनिकों ने मार-काट आरम्भ कर दी । लड़ाकू मुसलमानों ने एक साथ पृथ्वीराज पर आक्रमण किया । कुछ समय तक दोनों तरफ से भीषण संग्राम हुआ । अंत में मुसलमानों का साहस छूट गया । राजपूतों के द्वारा बड़ी संख्या में मुसलमान मारे गये और अंत में तोड़ातंक से अफगान बादशाह का शासन हट गया । राज्य का उद्धार होने से शूरथान को बड़ी प्रसन्नता हुई । उसने अपनी लड़की ताराबाई का विवाह पृथ्वीराज के साथ कर दिया ।

पृथ्वीराज शांतिपूर्वक चित्तौर में रहने लगा । जयमल मर चुका था और साँगा का कुछ पता न था । पृथ्वीराज जब अपने पिता के राज्य से चला गया था तो सूरजमल आराम के साथ चित्तोर में रहा करता था । पृथ्वीराज के लौट आने पर उसके मन के भाव बिगड़ने लगे । चित्तौर लौटकर आ जाने पर इस बात का रहस्य खुला कि राणा रायमल के तीनों लड़कों को आपस में लड़ाने वाला यही सूरजमल था । वह स्वयं मेवाड़ राज्य का उत्तराधिकारी बनना चाहता था और साँगा के रहते हुए इस बात की किसी प्रकार सम्भावना न थी । इसके लिए उसने एक भयानक षड़यँत्र की रचना की थी और उस षड़यंत्र के द्वारा उसने राणा के तीनों पुत्रों को अलग-अलग ऐसा समझा दिया, जिससे वे तीनों ही एक दूसरे के प्राण घातक हो गये थे ।

पृथ्वीराज के लौटकर चित्तौर में आ जाने पर सूरजमल की आशायें फिर नष्ट हो गयीं । वह समझता था कि साँगा और पृथ्वीराज के लौटकर आने की उम्मीद नहीं है और, जयमल की मृत्यु हो चुकी है । ऐसी दशा में राणा रायमल के मर जाने पर चित्तौर के राज्य का अधिकारी मेरे सिवा और कोई नहीं हो सकता । पृथ्वीराज के आ जाने पर उसका यह विश्वास समाप्त हो गया ।

सूरजमल अब फिर किसी नये षड़यंत्र की खोज में रहने लगा और जब उसे कुछ न सूझा तो वह सारंग देव नाम के एक राजपूत के पास गया । दोनों में खूब बातें हुईं । इसके बाद दोनों मिलकर मालवा के बादशाह मुजफ्फर के पास पहुँचे और दोनों ने मिलकर चित्तौर पर आक्रमण करने के लिए उससे फौजी सहायता माँगी । मालवा के बादशाह ने इस प्रार्थना को स्वीकार कर लिया और चित्तौर पर आक्रमण करने के लिए अपनी फौज भेजी । उस फौज को लेकर सूरजमल और सारंगदेव ने मेवाड़ के दक्षिणी इलाकों पर आक्रमण किया और वहाँ के साद्री, बाटुरो, और नाई से लेकर नीमच तक के सभी स्थानों पर अधिकार करके चित्तौर की तरफ बढ़ने की कोशिश करने लगे ।

इस आक्रमण का समाचार राणा रायमल को मिला । वह चित्तौर की एक सेना लेकर निकला और राज्य के समीप बहती हुई गम्भीरी नदी के तट पर राणा ने बादशाह की फौज का सामना किया । युद्ध आरम्भ हो गया । कुछ समय तक लगातार युद्ध होने के कारण राणा के शरीर में बाईस घाव लगे । उनसे अविरल रक्त प्रवाहित होने लगा ।

राणा की बुढ़ापे की अवस्था थी। लगातार युद्ध करने और जख्मी हो जाने के कारण अब उसका शरीर शिथिल पड़ने लगा। वह युद्ध में निराश हो रहा था। इसी समय अपने एक हजार सवार सैनिकों के साथ पृथ्वीराज युद्ध क्षेत्र में आ गया और राणा को युद्ध से बाहर निकाल कर वह स्वयं युद्ध करने लगा। पृथ्वीराज की मार से बादशाह की फौज के बहुत-से आदमी मारे गये और सूरजमल स्वयं भयानक रूप से जख्मी हुआ। इसके बाद युद्ध बन्द हुआ और दोनों सेनायें अपने-अपने शिविरों में पहुँच गयीं।

दूसरे दिन सवेरे फिर युद्ध आरम्भ हुआ और दोनों तरफ से भीषण मार काट हुई। सारंग देव की मार से चित्तौर के बहुत-से राजपूत मारे गये। परन्तु वह स्वयं जख्मी हुआ। पृथ्वीराज की तलवार से सारंगदेव के शरीरमें पैंतीस जख्म हो गये। पृथ्वीराज के शरीर में भी बहुत-सी चोट लगीं। अंत में मालवा की फौज युद्ध से हट कर भागी और पृथ्वीराज विजयी होकर चित्तौर वापस लौटा।

पराजित होने के बाद भी सूरजमल निराश नहीं हुआ। मेवाड़ का राज्य प्राप्त करने के लिए वह फिर भी युद्ध की तैयारी करता रहा। परन्तु उसकी आशा पूर्ण नहीं हुई। उसने कई बार चित्तौर की सेना के साथ युद्ध किया और अंत तक पराजित होता रहा।

मालवा की फौज के साथ सारंगदेव और सूरजमल को पराजित करके पृथ्वीराज कुछ दिनों तक चित्तौर में रहा। उसके बाद वह अपनी पत्नी ताराबाई के साथ रहने के लिए कमलमीर के दुर्ग में चला गया। सूरजमल के षड़यंत्र को अब वह खूब समझ गया था। साँगा को देखने की उसकी इच्छा हो रही थी। इस लिए कमलमीर के दुर्ग में रह कर उसने साँगा का पता लगाना आरम्भ किया।

इन्हीं दिनों में पृथ्वीराज के पास उसकी बहन का एक पत्र आया। उसकी यह बहन सिरोही के राजा को ब्याही गयी थी। उसकी बहन के साथ उसके पति का व्यवहार अच्छा न था। वह प्रत्येक समय मदिरा पीकर नशे में रहा करता था और अपनी स्त्री को बुरी तरह से तकलीफें दिया करता था। पृथ्वीराज की बहन अपने पति के व्यवहारों से बहुत ऊब गयी थी। उस दशा में उसने यह पत्र पृथ्वीराज के पास भेजा था।

पत्र को पाने और पढ़ने के बाद पृथ्वीराज अपनी बहन के पास गया। उसने अपने नेत्रों से अपनी बहन का बुरा हाल देखा। जिन परिस्थितियों में उसने अपनी बहन को पाया, उनसे उसको बहुत वेदना पहुँची। अपने बहनोई सिरोही के राजा के साथ उसने बड़ी कठोरता के साथ बातें कीं और अंत में उसके क्षमा माँगने पर पृथ्वीराज ने अपना व्यवहार उसके साथ बदल दिया। उसके बाद पृथ्वीराज वहाँ पर पाँच दिन तक बना रहा। छठे दिन चलने के समय पृथ्वीराज का बहनोई बड़े प्रेम से पृथ्वीराज से मिला और रास्ते में खाने के लिए उसने कुछ लड्डू दिये। बहनाई से बिदा होकर पृथ्वीराज लौट आया। कमलमीर के निकट पहुँच कर भूख के कारण बहनोई के दिये हुए उसने लड्डू खाये। खाते ही उसका सिर घूमने लगा। एकाएक उसका हृदय छटपटाने लगा। ताराबाई उस समय कमलमीर के दुर्ग में थी। पृथ्वीराज को वह इस समय देख भी न सकी और उसके पहुँचने के पहले ही पृथ्वीराज की मृत्यु हो गयी। ताराबाई उसके मृत शरीर को लेकर चिता पर बैठी।

पृथ्वीराज की मृत्यु से रायमल पर बज्रपात हुआ। साँगा के अभाव में पृथ्वीराज को पाकर उसको संतोष मिला था। पृथ्वीराज की मृत्यु को वह सह न सका। पृथ्वीराज के मरने के बाद राणा रायमल की भी मृत्यु हो गयी।

अट्ठारहवाँ परिच्छेद

चित्तौर के सिंहासन पर राणा संग्रामसिंह–राज्य की कमजोरियों में सुधार–आपसी झगड़ों का अंत–संग्रामसिंह में दूरदर्शिता, वीरता और योग्यता–मेवाड़-राज्य का विस्तार–दिल्ली का राज्य छोटे-छोटे टुकड़ों में–चित्तौर में सैनिक संगठन का कार्य–सैनिकों को युद्ध की शिक्षा–दिल्ली के बादशाह इब्राहीम लोदी के साथ राणा संग्रामसिंह के दो बार युद्ध–दोनों बार लोदी की पराजय–मेवाड़-राज्य की बढ़ी हुई सीमा–मध्य एशिया की जातियों के भारत में लगातार आक्रमण–अगणित राज्यों में इस देश के शासन का विभाजन–आपसी द्वेष–राजपूतों का आज भी प्राचीन जीवन–भारत में बाबर का आक्रमण–दिल्ली का पतन–बाबर और संग्रामसिंह का युद्ध–संग्रामसिंह की पराजय–चित्तौर पर बादशाह बहादुर का आक्रमण।

सम्बत् १५६५ सन् १५०६ ईसवी में साँगा, संग्रामसिंह के नाम से चित्तोर के सिंहासन पर बैठा। इसके पहले मेवाड़ राज्य की कमजोरियाँ पैदा हो गयी थीं और राणा रायमल के अंतिम दिनों में जो आपसी झगड़े पैदा हो गये थे, वे सब के सब राणा संग्रामसिंह के सिंहसन पर बैठते ही दूर हो गये। संग्रामसिंह न केवल शूरवीर और दूरदर्शी था, बल्कि वह एक सुयोग्य शासक भी था। राणा कुम्भ के बाद मेवाड़-राज्य ने जो कुछ खोया था, राणा संग्रामसिंह के अधिकार पाते ही राज्य ने उसे फिर प्राप्त किया।

दिल्ली का जो राज-सिंहासन किसी समय पाण्डवोंके द्वारा विभूषित हुआ था और उनके बाद जिसपर तोंवर तथा चौहान राजपूतों ने बैठ कर भारतवर्ष में चक्रवर्ती राजा की ख्याति पायी थी, समय के परिवर्तन से दिल्ली के उसी सिंहासन पर गोरी, खिलजी और लोदी वंशके बादशाहों ने बैठकर इस देश में शासन किया। समय के प्रभाव से आज उसी दिल्ली का राज्य सैकड़ों टुकड़ों में विभाजित हो गया है और उन छोटे-छोटे टुकड़ों में सैकड़ों राजा और नवाब आज शासन करते हैं। इन दिनों में दिल्ली और बनारसके मध्य दिल्ली, बीना, कालपी और जौनपुरके नामसे चार स्वतंत्र राज्य अपना शासन चला रहे थे। परन्तु संग्रामसिंह के निकट उन राज्यों का कोई महत्व न था। एक समय था, जब मेवाड़-राज्य में आपसी झगड़े पैदा हो गये थे, उस समय गुजरात और मालवाके दोनों शासक मेवाड़-राज्य के विरोधियों से मिल गये थे। परन्तु वे मेवाड़-राज्य को कोई हानि नहीं पहुँचा सके। संग्रामसिंह के सिंहासन पर पैर रखते ही मेवाड़-राज्य ने अपनी उन्नति आरम्भ की और कुछ समय के बाद वह भारतवर्ष का चक्रवर्ती राजा माना गया। मारवाड़ और आम्बेर के राजाओं ने मेवाड़ की ख्याति बढ़ाई। ग्वालियर, अजमेर, सीकरी राईसीन, कालपी, चन्देरी, बूँदी, गोगरौन, रामपुर और आबू आदि कितने ही राज्यों के राजा और नरेश मेवाड़-राज्य के सामन्त होकर चल रहे थे और आवश्यकता पड़ने पर सभी अधीन राजा और सामन्त अपनी-अपनी सेनायें लेकर मेवाड़-राज्य की तरफ से शत्रुओं के साथ युद्ध करते थे। राज्य का अधिकार पाने के बाद राणा संग्रामसिंह ने अपनी सेना का संगठन बड़ी बुद्धिमानी के साथ किया था और अपने सैनिकों को युद्ध की शिक्षा देकर उनको शक्तिशाली बनाया था। यही कारण था कि दिल्ली और मालवा के बादशाहों के साथ

युद्ध में विजय प्राप्त करके शत्रुओं की सेना को पराजित किया। दिल्ली के बादशाह इब्राहीम लोदी ने दो बार संग्रामसिंह के साथ युद्ध किया और दोनों बार वह पराजित हुआ।

राणा संग्रामसिंह के शासन काल में मेवाड़ राज्य की सीमा बहुत दूर तक फैल गयी थी। उत्तर में बीना× प्रान्त में बहने वाली पीलखाल, पूर्व में सिंध नदी, दक्षिण में मालवा और पश्चिम में मेवाड़ की दुर्गम शैलमाला उसकी सीमा बन गयी थी। मेवाड़ राज्य की यह उन्नति राणा संग्राम सिंह की योग्यता, गम्भीरता और दूरदर्शिता का परिचय देती है। उसके सिंहासन पर आने के पहले जिन शत्रुओं ने चित्तौर को अधिकार में प्राप्त करने के सपने देखे थे, राणा संग्रामसिंह के आते ही उनका और उनके सहायकों का फिर कभी नाम सुनने को नहीं मिला। इन सब बातों का कारण यह था कि राणा संग्रामसिंह प्रतापी और बहादुर राजा था।

मध्य एशिया की रहने वाली जातियों ने बारम्बार आक्रमण करके भारतवर्ष में लूट मार की थी, इस देश का प्राचीन इतिहास स्वयं इस बात का प्रमाण है। इन हमलों और लगातार लूटों का कारण यह था कि इस विशाल देश का शासन प्राचीन काल से अगणित छोटे-छोटे राजाओं और नरेशों के अधिकारों में चला आ रहा था। उन पर किसी का कोई नियंत्रण नहीं था, जैसा कि इस देश में आज भी है। ये छोटे-छोटे सभी राजा और नरेश एक दूसरे से ईर्षा करते थे। उनमें परस्पर मित्रता और सहानुभूति का सम्बन्ध न था।

यूनान के इतिहासकारों ने भी इस बात को स्वीकार किया है कि जिस समय सिकन्दर ने भारत पर आक्रमण किया था, केवल पंजाब में छोटे-छोटे बहुत से राजा थे। सिकंदर के बाद ईरान के लोगों ने भारत पर आक्रमण किया। सम्राट डैरियस ने अपने अधिकृत राज्यों में भारत को सब से अधिक सम्पन्न और समृद्ध शाली पाया था। तक्षक, जित, पारद, हूण, यूनानी, गोरी और चगताई आदि अनेक जातियों ने समय-समय पर इस देश में आक्रमण किये थे और यहाँ की अपरिमित सम्पत्ति लूट कर अपने देश को ले गये थे। प्राचीन काल से लेकर बहुत समय तक लगातार इस देश के लूटे जाने के दो ही कारण थे। एक तो यह कि यह देश अत्यधिक सम्पत्तिशाली था और दूसरा कारण यह था कि इस देश में अगणित राजा और नरेश थे और उनमें परस्पर खूब फूट चल रही थी। उस फूट और ईर्षा के कारण ही बाहरी आक्रमणकारी और लुटेरी जातियों को इस देश में आने और आक्रमण करने का मौका मिला। गोरी से लेकर बाबर तक पाँच आक्रमण इस देश में ऐसे हुए जिनमें प्रत्येक ने यहाँ आकर और इस देश के राज्यों को पराजित कर के अपने शासन कायम किये। संग्रामसिंह के समय में जिसने इस देश में आकर आक्रमण किया था, वह इन पाँचों में अंतिम था। उसने यहाँ पर अपना जो राज्य कायम किया, उसमें उसके वँशजों ने अंगरेजी शासन के आरम्भ तक बादशाहत की।

इस विशाल देश में कहीं से भी थोड़े से आदमियों का आना, आक्रमण करना और फिर राज्य कायम कर लेना कम आश्चर्य की बात नहीं है। यह और भी आश्चर्य की बात है, जब यह देश उस समय जितना सम्पत्तिशाली रहा हो, उतना ही शक्तिशाली भी रहा हो, संसार को देखते हुए इस देश की परिस्थितियाँ सदा भिन्न रही हैं और आज भी भिन्न हैं। विश्व के सभी देशों में प्राचीन काल के बाद लगातार परिवर्तन हुए, उनके जीवन के उद्देश्यों और विधानों में महान क्रान्तियाँ हुईं; विभिन्न जातियों के बीच की दीवारें टूट गयीं और उनमें एक दूसरे के साथ निकटवर्ती सम्बन्ध कायम हो गये। संसार में और भी परिवर्तन हुए। उन परिवर्तनों के उल्लेख यहाँ नहीं

× आगरे से दक्षिण की तरफ पाँच मील की दूरी पर बीना बसा हुआ है।

किये जा सकते। परिवर्तनों के नाम पर ही देश के नाम बदल गये, नदियों, पहाड़ों और बहुत से स्थानों के नाम कुछ दूसरे हो हो गये। मनुष्य स्वयं बदल कर पहले की अपेक्षा कुछ और हो गया। जातियाँ नयी पैदा हो गयीं और सैकड़ों के नाम इतिहास के पन्नों से मिट गये। परन्तु सभ्यता के इस कोने में हमको इस प्रकार का कोई परिवर्तन प्राचीन काल से लेकर अब तक दिखायी नहीं पड़ा।

यहाँ के राजपूत आज भी वैसे ही हैं जैसे कई हजार वर्ष पहले उनके पूर्वज थे। उनके जीवन की नैतिकता और सामाजिकता आज भी वही दीन-दुर्बल—पुरानी दिखायी देती है, जो बहुत प्राचीन काल में इस वंश के लोगों में पायी जाती थी। आपस की फूट और ईर्षा हजारों वर्ष पहले इनके पूर्वजों के जीवन में जो काम कर रही थी, वह आज भी उनमें मौजूद है। संसार एक तरफ है और यहाँ के लोग दूसरी तरफ हैं। विश्व में किसी के साथ इस देश का सम्बन्ध और सम्पर्क नहीं है। सिकन्दर से लेकर बाबर तक कितने ही भयानक तूफान इस देश में आये। उनसे देश बार बार उजड़ा और सभी बातों में उसका सर्वनाश हुआ। परन्तु यहाँ के लोगों ने किसी प्रकार के परिवर्तन की आवश्यकता नहीं समझी। जीवन के इस सिद्धान्त की यहाँ पर आलोचना करने की जरूरत नहीं है। इस प्राकर की बातें सही हैं अथवा गलत, इसका निर्णय तत्ववेत्ताओं के दृष्टिकोण से सम्बन्ध रखता है। लेकिन यहाँ पर हम इतना ही कह सकते हैं कि जीवन के जिस पहलू का अभाव ऐसे अवसरों पर बार-बार खटकता है, उसके भीतर शक्तियों का सामञ्जस्य छिपा रहता है और उसके ऊपर ही पूर्ण रूप से सार्वजनिक जीवन का विकास और विनाश निर्भर होता है।

बाबर इन दिनों में मध्य एशिया के फरगना× का राजा था। फरगना का राज्य जक्सतरसीस नदी के दोनों किनारों पर फैला हुआ था। वहाँ पर जिन लोगों की आबादी थी। उस समय वे लोग बड़े शक्तिशाली थे और उन लोगों की तलवारों से किसी समय योरप तथा एशिया के अनेक राज्य बरबाद हो गये थे। उन दिनों में इन लोगों ने अपने रहने के पुराने स्थानों को छोड़ दिया था और संसार में सब जगह इस जाति के लोग फैल गये थे। जिन लोगों के एटिला और एलारिक जैसे पराक्रमी वीरों ने संसार के बहुत देशों को भयभीत कर दिया था। उस जाति के लोगों में परस्पर संगठन था और उनमें बहादुरी भी थी। उनके इन गुणों से इनकार नहीं किया जा सकता। यही लोग दो हजार की संख्या में भारत वर्ष में आये थे और दिल्ली में अधिकार कर लिया था।

फरगना के बादशाह बाबर की और संग्रामसिंह के जीवन की अनेक बातें मिलती-जुलती हैं। संग्रामसिंह के बचपन का उल्लेख पिछले पृष्ठों में किया जा चुका है। उन बातों को यहाँ पर फिर से लिखने की आवश्यकता नहीं है। केवल इतना ही लिखना काफी है कि उसने लड़कपन से ले कर मेवाड़ के सिंहासन पर बैठने के समय तक जीवन की भयानक कठिनाइयों का सामना किया था। जब छोटा था, भाइयों के साथ उसका झगड़ा आरम्भ हुआ था और उस झगड़े में अपने प्राण ले कर वह राज्य से भाग गया था। कहाँ गया और किस प्रकार उसने अपना जीवन निर्वाह किया, इसको लिखकर यहाँ पर विस्तार देने की आवश्यकता नहीं है। राणा रायमल के मर जाने पर जब वह चित्तौर के सिंहासन पर बैठा, उस समय से उसकी जिन्दगी के अच्छे दिन आरम्भ होते हैं।

बादशाह बाबर की जिन्दगी की शुरुआत भी बड़ी भयानक रही थी। सन् १४६४ ईसवी में वह फरगना के सिंहासन पर बैठा। उस समय उसकी अवस्था बारह वर्ष की थी। इसके चार वर्ष

× फरगना को आजकल कोकन कहा जाता है। यह जक्सतरत्तीस नदी के किनारे पर बसा हुआ है।

बाद, सोलह वर्ष की अवस्था में उसने अपने आस-पास के कई राजाओं के साथ युद्ध किया और दो वर्षों के बाद उसने समरकन्द पर अधिकार कर लिया। परन्तु उसके बाद वह फिर अधिकार से निकल गया। इन दिनों में उसका जीवन बड़ी विचित्र गति से चल रहा. था। पड़ोसी राज्यों के साथ उसके रोज़ के संघर्ष थे। उनमें कभी उसकी हार होती थी और कभी वह विजयी होता था। कभी पराजित होने पर अपना राज्य छोड़कर उसे दूर भाग जाना पड़ता था और उसके बाद अपनी शक्तियों का संगठन कर के वह फिर शत्रु के साथ युद्ध करता था। यह अपने जीवन के आरम्भ से साहसी था और अपनी सफलता तक विश्वास करता था। वह कभी घबराता न था।

इन दिनों में उसके शत्रुओं की संख्या बढ़ गयी थी इस लिए अपना राज्य छोड़कर वह हिन्दुकुश की तरफ रवाना हुआ और सन् १५१६ ईसवी में सिंध नदी के पास पहुँच गया। इस समय वह बहुत निर्बल अवस्था में था। काबुल और पंजाब के बीच में रहकर उसने किसी प्रकार सात वर्ष व्यतीत किये। इन दिनों में अपनी सफलता के नये-नये रास्ते वह खोजता रहा।

इसके बाद बाबर ने दिल्ली के बादशाह इब्राहीम लोदी पर चढ़ाई की। उसके भाग्य ने उसका साथ दिया। इब्राहीम मारा गया। उसकी सेना युद्ध से भागकर तितर-बितर हो गयी। दिल्ली और आगरा के लोगों ने बाबर का स्वागत किया। अपनी सफलता को देख कर बाबर ने भगवान को धन्यवाद दिया।

दिल्ली विजय करने के बाद एक वर्ष तक बाबर ने दिल्ली में विश्राम किया। इन दिनों में उसने भारतवर्ष के राजाओं का अध्ययन किया। चित्तौर के सिंहासन पर उस समय राणा संग्रामसिंह था। वह स्वयं शूरवीर था और मेवाड़ राज्य की शक्तियाँ इन दिनों में विशाल हो चुकी थीं। लेकिन इस देश के राजाओं की फूट और ईर्षा उन दिनों में भी अपना काम कर रही थीं। बाबर ने भारत की इस राजनीतिक अवस्था का भली प्रकार अध्ययन किया और उसके बाद उसने राणा संग्रामसिंह के साथ युद्ध करने का निश्चय किया।

बाबर दिल्ली का राज्य प्राप्त करके बड़ी बुद्धिमानी के साथ सैनिक शक्तियों का संगठन करता रहा और उसके बाद पन्द्रह सौ सैनिकों की एक सेना लेकर संग्रामसिंह से युद्ध करने के लिए वह आगरा और सीकरी से रवाना हुआ। यह समाचार पाते ही राणा संग्रामसिंह ने युद्ध की की तैयारी आरम्भ कर दी। राजस्थान के लगभग सभी राजा और मेवाड़ राज्य के सामन्त अपनी सेनायें लेकर चित्तोर में पहुँच गये। सब के साथ राणा संग्रामसिंह बाबर से युद्ध करने के लिए चित्तौर से आगे बढ़ा। कार्तिक महीने की पंचमी सम्वत् १५८४ सन् १५२८ ईसवी को राजपूत सेना ने बियाना पहुँच कर बाबर की सेना का रास्ता रोका और कनवा नामक स्थान के मैदान में संग्रामसिंह की सेना ने बादशाह बाबर को फौज का सामना किया। × दोनों ओर से संग्राम आरम्भ हो गया। राजपूतों की विशाल सेना के द्वारा बाबर की फौज करीब-करीब सब काट डाली गयी। यह अवस्था बाबर के लिए बड़ी भयंकर हो उठी लेकिन बाबर जरा भी हतोत्साह न हुआ। उसकी सहायता के लिए एक दूसरी नयी फौज युद्ध के मैदान में पहुँच गयी। राजपूतों के साथ उसने भी युद्ध किया। बाबर की इस नयी फौज के भी बहुत-से सैनिक मारे गये। यह देख कर अपने बचे हुए सिपाहियों के साथ बाबर उस स्थान को लौट गया, जहाँ पर उसने अपनी फौज का शिविर कायम किया था।

राजपूतों की शक्तिशाली सेना के सामने बाबर की फौज बुरी तरह से पराजित हुई। परन्तु

× बाबर नामा नामक ग्रंथ में इस युद्ध का समय ११ फरवरी सन् १५२७ ईसवी लिखा गया है।

इन अच्छे गुणों की प्रशंसा बाबर ने स्वयं अपने संस्मरण में की है। वह संग्रामसिंह की बहादुरी और उदारता की प्रशंसा किया करता था।

संग्रामसिंह के मरने पर सम्पूर्ण राजस्थान में शोक मनाया गया। मेवाड़ पर्वत पर जहाँ उसकी मृत्यु हुई थी, एक प्रसिद्ध मंदिर बनवाया गया। राणा के सात लड़के थे। उनमें सबसे बड़ा और उससे छोटा—दोनों की छोटी आयु में ही मृत्यु हो गयी थी। इस दशा में उसका तीसरा लड़का उसकी मृत्यु के बाद राज्य का अधिकारी हुआ।

सम्वत् १५८६ सन् १५३० ईसवी में राणा रत्नसिंह चित्तौर के सिंहासन पर बैठा। धीरता और वीरता के अनेक गुणों में वह अपने पिता राणा संग्रामसिंह की तरह का था। सिंहासन पर बैठते ही उसने प्रतिज्ञा की थी कि मैं मेवाड़ राज्य के सम्मान और उत्थान के लिए जब तक जीवित रहूँगा, कोशिश करूँगा। उसके इन शब्दों को सुनकर मेवाड़ राज्य के मंत्रियों और सरदारों को बड़ी प्रसन्नता हुई।

सिंहासन पर बैठने के पहले रत्नसिंह के जो मनोभाव थे, वे बाद में कायम न रहे और वह धीरे-धीरे बदलने लगा। सिंहासन पर बैठने के पहले और जब उसके दोनों बड़े भाइयों की मृत्यु नहीं हुई थी, उसने चुपके से—सब की आँखें छिपा कर अम्बेर के राजा पृथ्वीराज की लड़की से विवाह कर लिया। उसके और उस लड़के के सिवा तीसरा कोई भी इस विवाह के रहस्य को नहीं जानता था। पृथ्वीराज के परिवार में किसी को इस विवाह का पता न था।

लड़की के बड़े होने पर पृथ्वीराज ने उसके विवाह की तैयारियाँ कीं और बूँदी के हाड़ा वंशीय राजा सूरजमल के साथ उसका विवाह कर दिया। इस विवाह से रत्नसिंह को बहुत आघात पहुँचा। उसने सूरजमल को—जो उसका एक नजदीकी रिश्तेदार था और उसकी एक बहन राणा को ब्याही थी—अपना शत्रु मान लिया और उसको दण्ड देने के लिए वह अवसर की खोज में रहने लगा। कुछ दिनों में अहेरिया का उत्सव आया। राणा रत्नसिंह अपने सरदारों और सामन्तों को लेकर उस उत्सव को मनाने के लिए शिकार खेलने के उद्देश्य से जंगल की तरफ रवाना हुआ। बूँदी का राजा सूरजमल भी उसके साथ चला।

सब के साथ राणा एक भयानक जंगल में पहुँच गया और उस के बाद आगे बढ़कर वह एक ऐसे स्थान पहुँच गया, जहाँ पर सूरजमल को छोड़कर उसके साथ का कोई दूसरा आदमी न पहुँचा। राणा रत्नसिंह के मन में सूरजमल के प्रति ईर्षा का भाव तो था ही, अवसर पाकर और तलवार निकाल कर उसने सूरजमल पर आक्रमण किया। तलवार के लगते ही सूरजमल अपने घोड़े से गिर गया और सम्हल कर उसने अपनी तलवार का वार राणा पर किया। दोनों में कुछ देर तक लड़ाई हुई। जो लोग चित्तौर से साथ गये थे, वे सब के सब उस समय उन दोनों के पास न थे। राणा रत्नसिंह लड़ता हुआ सूरजमल के द्वारा मारा गया।

रत्नसिंह ने चित्तौर के सिंहासन पर बैठकर पाँच वर्ष तक मेवाड़ का राज्य किया और कई बातों में उसने अपने राज्य की उन्नति की। वह होनहार था और उसके द्वारा मेवाड़-राज्य की उन्नति के सम्बन्ध में राज्य के मंत्रियों ने बड़ी-बड़ी आशायें की थीं। परन्तु अपने ही आचरण के कारण उसकी अकाल मृत्यु हुई। उसके शासन काल में मेवाड़ राज्य पर पर किसी शत्रु ने आक्रमण नहीं किया।

सम्वत् १५९१ सन् १५३५ ईसवी में विक्रमाजीत चित्तौर के सिंहासन पर बैठा। राणा संग्रामसिंह और राणा रत्नसिंह में जितने गुण थे, विक्रमाजीत में उतने ही अवगुण थे। उसमें अयोग्यता थी, अदूरदर्शिता थी। उसके इस प्रकार के अवगुण सिंहासन पर बैठने के बाद इतने बढ़े

कि राज्य के सभी मन्त्री और सरदार उससे असंतुष्ट रहने लगे। राणा विक्रमाजीत ने भी मन्त्रियों और सरदारों की कुछ परवा न की और शासन के सम्बन्ध में अपनी मनमानी करता रहा। राज्य के जिन आदमियों के साथ उसकी मैत्री का अधिक सम्बन्ध रहता, वे राज्य के छोटे आदमी थे और उनके अधिक सम्पर्क से राणा के सम्मान को आघात पहुँच रहा था। मन्त्रियों और सरदारों की अप्रसन्नता का यह भी एक बड़ा कारण था। उसके इस प्रकार के व्यवहारों से मंत्री और सरदार अपना अपमान अनुभव करते थे। इस प्रकार की बातों का परिणाम यह हुआ कि राणा के साथ सरदारों को कोई सहानुभूति न रह गयी।

दूसरे अनेक अवगुणों के साथ साथ राणा विक्रमाजीत आलसी और अकर्मण्य भी था। राज्य का शासन ठीक न होने के कारण सम्पूर्ण राज्य में अराजकता फैल रही थी। पर्वत पर रहने वाले जंगली लोग राज्य के सिपाहियों की परवा न करते थे और राज्य को वे लोग तरह-तरह की हानि पहुँचाने लगे। सरदार और मन्त्री इस प्रकार के मामलों में खामोश हो रहे थे।

राणा विक्रमाजीत की इस अयोग्यता के कारण मेवाड़-राज्य निर्बल पड़ने लगा। इस प्रकार की निर्बलता और राज्य में फैली हुई अराजकता अच्छी नहीं होती। शत्रु लोग मेवाड़-राज्य की इन परिस्थितियों का जिन दिनों में दूर से अध्ययन कर रहे थे, गुजरात का बादशाह बहादुर अपने राज्य में बैठा हुआ चित्तौर से अपना पुराना बदला लेने की तैयारी कर रहा था। सीसोदिया वंश के राजकुमार पृथ्वीराज ने गुजरात के बादशाह मुजफ्फर को पराजित किया था और उसे कैद करके राजपूत चित्तौर ले गये थे गुजरात के लोग अपने इस अपमान को भूले न थे। इन दिनों में बादशाह बहादुर गुजरात के सिंहासन पर था। विक्रमाजीत की अयोग्यता के कारण चित्तौर से बदला लेने का उसे मौका मिला। इसलिए गुजरात और मालवा में जितनी सेना थी, सब को ले कर बादशाह बहादुर ने राणा पर आक्रमण किया।

बादशाह बहादुर के द्वारा होने वाले आक्रमण का समाचार पाकर राणा विक्रमाजीत ने चित्तौर में युद्ध की तैयारी की और अपनी सेना लेकर उसने बादशाह की फौज का सामना किया। दोनों ओर से युद्ध आरम्भ हो गया। अपनी अयोग्यता के कारण राणा विक्रमाजीत ने अपने सैनिकों की सहानुभूति को खो दिया था। उसका फल यह हुआ कि गुजरात के बादशाह के साथ युद्ध करता हुआ विक्रमाजीत संकट में पड़ गया। जिस स्थान पर यह युद्ध हो रहा था वह बूँदी राज्य के अंतर्गत लैचा नामक मुकाम का विस्तृत मैदान था।

राणा विक्रमाजीत बादशाह की फौज के सामने ठहर न सका। उसको पराजित करके बादशाह बहादुर ने अपनी फौज के साथ चित्तौर पर आक्रमण किया। उस समय मेवाड़ राज्य के सरदारों और सामन्तों ने युद्ध की तैयारी की और अपनी सेनाओं को लेकर उन लोगों ने चित्तौर के बाहर गुजरात की फौज का सामना किया। दोनों ओर से घमासान संग्राम आरम्भ हुआ।

पिछले पृष्ठों में राणा रायमल के शासन काल में सूरजमल की लड़ाई लिखी जा चुकी है। सूरजमल ने चित्तौर को प्राप्त करने के उद्देश्य से मुसलमान बादशाह की फौज लेकर यह युद्ध किया था। राणा रायमल के लड़के पृथ्वीराज ने उसको कई बार पराजित किया था, उस समय सूरजमल ने चित्तौर से निराश होकर मेवाड़-राज्य के बाहर देवल नगर बसाया था। आज कल सूरजमल का वंशधर देवल नगर का राजा था। चित्तौर पर बादशाह बहादुर के आक्रमण करने पर उसका खून खौला। चित्तौर का यह अपमान उसके पूर्वजों का अपमान था। अपनी सेना लेकर चित्तौर की रक्षा करने के लिए वह बादशाह बहादुर की फ़ौज के सामने आया। उसके साथ-साथ बूँदी का राजकुमार अपने साथ पाँच सौ सैनिकों को लेकर चित्तौर पहुँच गया। शोनगढ़े, देवर और

दूसरे स्थानों के राजपूत भी मेवाड़ राज्य की रक्षा करने के लिए युद्ध में आये। मुसलमान बादशाहों ने जितने आक्रमण अब तक चित्तौर पर किये थे, बादशाह बहादूर का आक्रमण उन सब में भयानक था। उसकी फौज में एक योरोपियन गोलन्दाज भी था। उसका नाम लाब्री खाँ था। उसी की सहायता से बादशाह बहादूर ने चित्तौर का विध्वंस किया।

चित्तौर के बाहर भयानक संग्राम हुआ। राजपूतों ने चित्तौर को बचाने के लिए अपनी कोई शक्ति उठा न रखी। लाब्री खाँ होशियार गोलन्दाज था। युद्ध स्थल के करीब बीका पहाड़ी के नीचे उसने एक विशाल सुरंग खोदी और उसमें बारूद भरकर उसमें आग लगादी। आग लगते ही उस बारूद में भयानक आवाज हुई। जहाँ पर राजपूत खड़े हुए बादशाह की फौज के साथ युद्ध कर रहे थे, वहाँ पर बारूद से बहुत दूर तक की जमीन उड़ गयी। जिसके कारण राजपूत सेना के बहुत-से सैनिक जलकर खाक हो गये। चित्तौर के दुर्ग के कई हिस्से टूट गये। राजपूत सेना में जो लोग बचे, वे इधर-उधर भागने लगे। बादशाह की फौज आगे बढ़ने लगी। इस समय दुर्गाराव ने अपने शक्तिशाली सैनिकों के साथ आगे बढ़कर भयानक मारकाट की। बादशाह की फौज एक साथ दुर्गाराव पर टूट पड़ी। जिस समय यह भीषण मारकाट हो रही थी, सीसोदिया वंश की रानी जवाहर बाई ने युद्ध में प्रवेश किया और उसने अपने भाले से बादशाह के बहुत-से सैनिकों का संहार किया। अंत में वह मारी गयी। उसके मरने के बाद सूरजमल के वंशज बाघ जी ने अपने सैनिकों के साथ गुजरात की फौज से भीषण युद्ध किया। लेकिन युद्ध की गति भयानक होती गयी। चित्तौर की तरफ से लड़ने वाले शूरवीर बहुत-से मारे गये। उसके बाद राजपूत सेना निर्बल पड़ने लगी।

चित्तौर के सामने इस समय भयानक संकट था। बहादूर की फौज को रोक सकने का अब कोई उपाय मेवाड़ के राजपूतों में न रह गया था। चित्तौर का पतन होने में देर न थी। इस दशा में चित्तौर के दरबार में जो लोग बाकी रह गये थे, उनके परामर्श से चित्तौर में बड़ी तेजी के साथ जौहरव्रत की व्यवस्था की गयी। रानी कर्णवती तेरह हजार राजपूत बालाओं के साथ जौहरव्रत के लिए सुरंग में पहुँच गयी। उसके बाद तुरंत सुरंग में आग लगाई गयी और चित्तौर की तेरह हजार राजपूत ललनायें उस आग में जलकर क्षार हो गयीं।

इसी समय युद्ध में राजपूतों को पराजय हुई। बत्तीस हजार की संख्या में शूरबीर राजपूतों के मारे जाने पर चित्तौर का पतन हुआ और बादशाह बहादुर ने अपनी विजयी सेना के साथ चित्तौर में प्रवेश किया। पन्द्रह दिनों तक वहाँ रहकर उसने और उसकी फौज के सिपाहियों ने खुशियाँ मनायीं।

जिस समय बादशाह बहादुर की फौज से युद्ध करते हुए चित्तौर की रानी जवाहर बाई मारी गयी थी, रानी कर्णवती को चित्तौर के बचने की कोई आशा न रही थी। वह किसी प्रकार अपने छोटे बालक की रक्षा करना चाहती थी। इसलिए बहुत सोच समझकर उसने दिल्ली के बादशाह बाबर के लड़के हुमायूँ से सहायता लेने का विचार किया।

इन्हीं दिनों मे रक्षा बन्धन का त्योहार था। राजस्थान में यह त्योहार बड़ी धूम-धाम के साथ मनाया जाता है। हिन्दू स्त्रियाँ अपने भाइयों के हाथों में राखियाँ बाँधकर इस त्योहार की खुशियाँ मनाती हैं। रानी कर्णवती ने दिल्ली में हुमायूँ के पास रक्षा-बंधन के त्योहार पर अपनी राखी भेजी। हुमायूँ ने उस राखी के बदले में बादशाह बहादुर से चित्तौर की रक्षा करके रानी कर्णवती की सहायता करने का निश्चय किया और इसी आधार पर अपनी एक फौज लेकर वह दिल्ली से चित्तौर की तरफ रवाना हुआ और जैसे ही वह चित्तौर के करीब पहुँचा, बादशाह बहादुर भयभीत होकर चित्तौर छोड़कर चला गया।

राणा विक्रमाजीत हुमायूँ की सहायता से फिर चित्तौर के सिंहासन पर बैठा। उसने इन दिनों में अनेक प्रकार की विपदाओं का सामना किया परन्तु उसके जीवन में कोई परिवर्तन न हुआ। सिंहासन पर बैठते ही उसने फिर उसी प्रकार के अपने काम और व्यवहार आरम्भ कर कर दिये, जिनसे पिछले दिनों में मेवाड़ राज्य के मंत्री और सरदार रूठ कर उसके विरोधी बन गये थे। अब राणा विक्रमाजीत के सुधार की कोई आशा वहाँ के सरदारों के मन में न रह गयी थी।

इसी बीच में राणा विक्रमाजीत ने उस वृद्ध कर्मसिंह के साथ अपमानजनक व्यवहार चित्तौर के दरबार में किया, जिसने संग्रामसिंह की उस समय सहायता की थी, जब वह अपने भाई पृथ्वीराज से लड़कर और भयभीत होकर अपने पिता के राज्य से भाग गया था। बूढ़े कर्मसिंह के साथ राणा विक्रमाजीत का अनुचित व्यवहार देखकर दरबार के सरदारों ने बहुत बुरा माना और वे राणा विक्रमाजीत को इसका बदला देने के लिए आपस में परामर्श करने लगे।

राजपूत देवता की भाँति अपने राजा का सम्मान करना अपना धर्म समझते हैं। इस स्वाभाविक गुण के कारण चित्तौर के सरदार लोग राणा विक्रमाजीत के अनुचित कार्यों और अपमान जनक व्यवहारों को सहन करते रहे। परन्तु कर्मसिंह के साथ राणा का गंदा व्यवहार वे सहन न कर सके और आपस में सलाह करके राणा को सिंहासन से उतार देने का उन लोगों ने निश्चय किया। इस निर्णय के अनुसार चित्तौर के सरदारों ने पृथ्वीराज से उत्पन्न होने वाले बनबीर की खोज की और उसके पास पहुँचकर सरदारों ने चित्तौर का सब समाचार सुनाया। बनबीर को यह अच्छा न मालूम हुआ कि राणा विक्रमाजीत को सिंहासन से उतारा जाय और उसके बाद मुझे उस पर बिठाया जाय : परन्तु सरदारों के आग्रह के उसे स्वीकार करना पड़ा।

सरदार लोग बनबीर को चित्तौर ले आये और राणा विक्रमाजीत को सिंहासन से उतार कर बनबीर को उस सिंहासन पर बिठाया। उस समय मेवाड़ राज्य के उन सभी लोगों को प्रसन्नता हुई, जो राणा से असंतुष्ट थे।

उन्नीसवाँ परिच्छेद

चित्तौर के सिंहासन पर अनधिकारी बनबीर–राज्य के उत्तराधिकारी के प्रति उसके हृदय में ईर्षा का भाव–उसकी बढ़ती हुई चिन्तनाएँ–वह सदा के लिए अधिकारी बनना चाहता था–राज्य का उत्तराधिकारी–उसने काँटों को निर्मूल करने का निर्णय किया–विक्रमाजीत की हत्या का समाचार–पन्ना दाई की दूरदर्शिता–उसकी अद्भुत राजभक्ति–दाई ने उदयसिंह की रक्षा करने की प्रतिज्ञा की–बारी की सहायता–पन्ना दाई के पुत्र का संहार–बालक उदयसिंह के प्राणों की रक्षा का प्रयत्न–निराशा का जीवन–विपद में कोई किसी का सहायक नहीं होता–भीलों की सहायता–पर्वत के भयानक पहाड़ी रास्तों में राजकुमार उदयसिंह को लिए हुए पन्ना दाई–सुरक्षित स्थान की खोज में पन्ना दाई–कमलमीर में आश्रय मिला–मेवाड़-राज्य में राजकुमार के जीवन की चिंता–कमलमीर में दरबार–राजकुमार उदयसिंह का विवाह–चित्तौर के सिंहासन पर उदयसिंह–उसकी कायरता–पराजित बादशाह हुमायूँ – राजपूतों के साथ बादशाह अकबर के संघर्ष–अकबर और उदयसिंह।

चित्तौर के सिंहासन पर बैठने के कुछ ही समय बाद बनबीर के मनोभावों में परिवर्तन होने लगा। उसे मालूम था कि राणा विक्रमाजीत अभी जीवित है। इस राज्य का वास्तव में वही

अधिकारी है और उसके बाद राणा संग्रामसिंह का छै वर्ष का बालक उदयसिंह इस राज्य का उत्तराधिकारी है। राज्य के सरदारों के असंतोष से विक्रमाजीत इस सिंहासन से उतारा गया है। वह कभी भी इस सिंहासन पर फिर बैठ सकता है। यदि ऐसा कोई समय मेरे सामने पैदा हुआ और मुझे सिंहासन से हटना पड़ा तो वह मेरा एक असह्य अपमान होगा। इस प्रकार के विचार बनवीर के अंत:करण में सिंहासन पर बैठने के बाद बारबार उठने लगे।

असलियत यह थी कि बनवीर चित्तौर के राज्य पर सदा के लिए अपना अधिकार चाहता था। वह समझता था कि यदि विक्रमाजीत के लिए मैं सिंहासन से न भी उतारा गया तो संग्रामसिंह का छै वर्ष का बेटा कुछ वर्षों के बाद समर्थ हो जायगा और उस दशा में वह स्वयं अपने पिता के इस सिंहासन पर बैठेगा। उस समय इस पर मेरा कोई अधिकार न रहेगा। इस प्रकार की भावनाओं से बनबीर निरंतर चिन्तित रहने लगा। उसके जीवन में विक्रमाजीत और उदय-सिंह—दोनों ही काँटे थे। उसने इन दोनो काँटों को निर्मूल करने का निश्चय किया और समय की प्रतीक्षा करने लगा।

एक दिन सायंकाल उदयसिंह भोजन करके सो गया था। उसका पालन करने वाली पन्ना दाई उसके पास बैठी थी। कुछ समय के बाद महलों में काम करने वाला घबराया हुआ बारी यहाँ आया। उसने पन्ना दाई से कहा—"बनबीर ने विक्रमाजीत को मार डाला।" बारी के मुँह से इस बात को सुनकर यह काँप उठी। उसने समझ लिया कि बनबीर का यह आक्रमण सीसोदिया वंश के लिए अच्छा नहीं है। बनबीर का यह आक्रमण यहीं से खतम न होगा। वह संग्रामसिंह के इस छोटे बालक उदयसिंह को भी निश्चित रूप से अपना शत्रु समझता है। विक्रमाजीत पर होने वाला आक्रमण उदयसिंह के सर्वनाश का संदेश है।

पन्ना दाई खीची वंश के राजपूत परिवार में पैदा हुई थी और जीवन भर उसने चित्तौर के महलों में रहकर सीसोदिया वंश की सेवा की थी। वह सदा से इस राजपंश की शुभचिंतक रही थी। उसने किसी भी दशा में छै वर्ष के बालक उदयसिंह के प्राणों को बचाने की चेष्टा की। फलों और तरकारियों के रखने का एक बड़ा झाबा उसे मिल गया। तेजी के साथ उसने उसमें कपड़ा बिछाकर सोते हुए राजकुमार उदयसिंह को उसमें उसने लेटा दिया और अनेक प्रकार के पत्तों से उसने उस झाबे को ढँक दिया। इसके बाद उस झाबे को दुर्ग से बाहर ले जाने के लिए उसने उस बारी से कहा।

बारी ने तुरंत आज्ञा का पालन किया। वह झाबे को सिर पर रख कर दुर्ग से बाहर हुआ। उसके हटते ही पन्ना दाई ने उदयसिंह के स्थान पर अपने छोटे बालक को सुला दिया। बारी झाबे को ले कर वहाँ से चला गया। उसके थोड़ी ही देर बाद बनबीर वहाँ आ पहुँचा। उसके हाथ में तल-वार थी। उसको देखते ही पन्ना दाई का कलेजा धक-धक करने लगा।

इसी समय बनबीर ने पन्ना दाई की तरफ देखा और पूछा—"उदयसिंह कहाँ है?" दाई के मुख से कुछ न निकला। घबराहट के साथ उसने अपने सोते हुए बालक की तरफ संकेत किया। बनबीर ने उस बालक की तरफ देखा और बात की बात में उसने अपनी तलवार से उसके टुकड़े कर डाले। पन्ना दाई ने अपने बालक का यह दृश्य अपने नेत्रों से देखा। उसका कलेजा अस्थिर हो रहा था, उसके प्राण काँप रहे थे। उसके नेत्रों से आँसुओं की धारा बह निकली। परन्तु उसके मुँह से किसी प्रकार की आवाज न निकली। महल में रानियों और दूसरी दासियों को इस दुर्घटना का कोई समाचार उस समय न मिला।

बनवीर वहाँ से चला गया। पन्ना दाई ने उसके जाने के बाद अपने बालक के मृत शरीर

की तरफ़ एक बार देखा और अपने आञ्चल से बहते हुए आँसुओं को पोंछती हुई वह धीरे-धीरे दुर्ग के बाहर निकली। चित्तौर के पश्चिम तरफ बेरिस नदी बहती थी। उसके किनारे पर एक जन-हीन स्थान पर रात के समय वह बारी अपने निकट राजकुमार के झाबा को रखे हुए चुपचाप खड़ा था। उदयसिंह अब भी सो रहा था। पन्ना दाई वहाँ पर आगयी और राजकुमार को सुरक्षित रखने के लिए वह बाघ जी.के लड़के सिंहाराव के पास पहुँचकर प्रार्थना करते हुए उसने सब समाचार कहा। सिंहराव ने दाई की बातों को सुनकर और घबराकर अपनी असमर्थता प्रकट की।

पन्ना दाई वहाँ से निराश हो कर डूँगरपुर की तरफ चली और वहाँ के रावल यशकरण के पास जाकर उसने अपनी विपद सुनायी। परन्तु बनबीर के भय से वह भी राजकुमार को अपने यहाँ रखने का साहस न कर सका। इस समय पन्ना दाई के सामने बड़ा संकट था। रात का समय था और भय के कारण कोई भी राजकुमार को अपने यहाँ रखने के लिए राजी नहीं होता था। इसी समय कुछ भीलों ने उसका साथ दिया। इस अवस्था में अरावली के भीषण पहाड़ी रास्तों को पार करती हुई और ईदर के कठिन रास्तों से हो कर वह राजकुमार को लिए हुए कमलमीर के दुर्ग में पहुँची। दीप्रा के वणिक वंश में पैदा होने वाला आशाशाह नामक एक आदमी उस समय कमलमीर में राज्य करता था। पन्ना ने उससे मिलकर और उसकी गोद में राजकुमार को दे कर नम्रता के साथ उसने उसकी रक्षा करने के लिए उससे प्रार्थना की। पन्ना दाई की बातों को सुनकर आशाशाह ने राजकुमार की रक्षा करने में भय को अनुभव किया। परन्तु अपनी माता के मुख से इसके सम्बन्ध में कुछ उपदेश भरी बातों को सुन कर वह राजकुमार को अपने यहाँ रखने के लिए तैयार हो गया। राजकुमार को इस प्रकार संरक्षण में देकर पन्ना दाई वहाँ से चली आयी। आशाशाह ने राजकुमार को अपना भतीजा कह कर लोगों से जाहिर किया। बालक उदयसिंह उसके बाद वहीं रहने लगा।

कुछ दिनों के बाद आशाशाह के यहाँ कई एक राजपूत गये। उन सरदारों ने राजकुमार उदय सिंह को देखा। उसे देख कर सरदारों को इस बात का विश्वास नहीं हुआ कि वह आशाशाह का भतीजा है। वे सरदार कमलमीर के दुर्ग से चले गये। परन्तु उदयसिंह के सम्बन्ध में मेवाड़ के सरदारों और सामन्तों में एक अफवाह फैलने लगी। जो बातें लोगों में इधर-उधर फैलीं, उनको सही-सही समझने के लिए मेवाड़-राज्य के कितने ही लोगों का कमलमीर के दुर्ग में आना आरम्भ हुआ। शालुम्ब्रा के राजा साहीदास, कैलवा के नरेश जग्गो और गौरवनाथ साँगा इत्यादि चन्दावत कुल के अनेक सामन्त, कोटोरिया और बेदला के चौहान, बिजौली के परमार राजपूत, संचोर के राजा पृथ्वीराज और जैतावत लूनकरन आदि सभी लोग उदयसिंह को देखने के लिए कमलमीर में आये। उस मौके पर पन्ना दाई और राजकुमार को झाबे में लाने वाला बारी भी वहाँ पर बुलाया गया।

सब की मौजूदगी में कमलमीर में आये हुए राजाओं और सामन्तों का एक दरबार हुआ। आशशाह ने सब के सामने बताया कि राजकुमार उदयसिंह आश्रय पाने के लिए पन्ना दाई के द्वारा किस प्रकार उसके पास लाया था। पन्ना दाई ने भी सबके सामने आशा की बातों का समर्थन किया। संग्रामसिंह के पुत्र उदयसिंह को जीवित पाकर सभी लोगों को अपार हर्ष हुआ। क्योंकि अब तक सब को यह मालूम था कि बनबीर ने राणा विक्रामजीत और राजकुमार उदयसिंह को मार डाला है।

यह समाचार इसके बाद बड़ी तेजी के साथ मेवाड़-राज्य में फैल गया। बनबीर को भी मालूम हुआ कि राजकुमार उदयसिंह अभी जीवित है। वह मरा नहीं। उसे यह सब सुनकर बहुत आश्चर्य

विक्रमाजीत और उदयसिंह का संहार करके मेवाड़ का राज्य सदा के लिए सुरक्षित बना लिया था।

बनबीरका जन्म शीतल सनी नामक एक दासी के गर्भ से हुआ था। इसलिए वह मेवाड़-राज्य का अधिकारी न था। राणा विक्रमाजीत चित्तौर से सिंहासन पर बैठ कर अयोग्य साबित हो चुका था और राणा संग्रामसिंह के पुत्र उदयसिंह की अवस्था उस समय बहुत कम थी। मेवाड़ राज्य के सभी सरदार रणा विक्रमाजीत से बहुत असंतुष्ट थे और किसी प्रकार वे उसको चित्तौर के सिंहासन पर नहीं देखना चाहते थे। इसलिए इस विवशता में, यह सोच कर कि जब तक राजकुमार उदयसिंह समर्थ नहीं हो जाता, विक्रमाजीत के स्थान पर बनबीर को राज्याधिकारी बनाने के लिए सरदार लोग उसे चित्तौर ले आये थे। इस दशा मे बनबीर चित्तौर के सिंहासन पर बैठा था।

सिंहासन का अधिकारी होने के बाद बनवीर ने जो कुछ किया था, उससे चित्तौर के मन्त्री और सरदार बहुत दुखी थे। उन्हें क्या मालूम था कि जिस बनवीर को लाकर वे कुछ दिनों तक मेवाड़ के राज्य का कार्य सम्हालेंगे, वह बनवीर सीसोदिया वंश का सर्वनाश करेगा। जिस समय चित्तौर के सरदारों को मालूम हुआ कि राणा संग्रामसिंह का बेटा उदयसिंह अभी जीवित है और वह कमलमीर दुर्ग में मौजूद है तो उन लोगों को बहुत प्रसन्नता हुई और उदयसिंह को कमलमीर से लाने के लिए सरदार लोग चित्तौर से रवाना हुए।

जिस समय चित्तौर के सरदार कमलमीर पहुचने के लिए अरावली पर्वत के पहाड़ी रास्ते रास्ते से गुजर रहे थे, सामने पाँच सौ घोड़े और सामान से लदे हुए दस हजार बैल दिखायी दिये। पूछने पर मालूम हुआ कि एक हजार गहरवाल राजपूतों के संरक्षण में यह सब सामग्री कच्छ प्रदेश की तरफ से बनवीर की लड़की को देने के लिए जा रही है।

बनवीर का नाम सुनते ही चित्तौर के सरदारों के हृदय में आग लग गयी। वे सब के सब एक साथ गहरवाल राजपूतों पर टूट पड़े और उनके संरक्षण में जाने वाली सम्पत्ति पर उन्होंने अपना अधिकार कर लिया। लूटी हुई सामग्री को लाकर सरदारों ने झालौर के शोनगढ़े सरदार की बेटी के साथ उदयसिंह का विवाह किया और विवाह का कार्य झालौर के अन्तर्गत वन्हि नामक स्थान पर सम्पन्न हुआ। इस विवाह में मेवाड़ राज्य के राजाओं और सामन्तों के सिवा और भी अनेक राजा और सामन्त शामिल हुए। लेकिन दो सरदार उसमें नहीं आये। उनमें एक का नाम था मालवजी और दूसरा सोलंकी राजपूत था।

इन दोनों सरदारों के सम्मिलित न होने से चित्तौर के सरदार उन पर बहुत अप्रसन्न हुए और उनको इसका बदला देने के लिए चित्तौर के सरदारों ने उन पर आक्रमण किया। जो सरदार विवाह में शामिल नहीं हुए थे, घबरा कर बनवीर की शरण में पहुँचे। बनवीर उनकी सहायता करने के लिए अपनी सेना लेकर रवाना हुआ। परन्तु वह चित्तौर के सरदारों से उन दोनों की रक्षा न कर सका। मालव जी मारा गया और सोलंकी राजपूत सरदार ने भागकर उदयसिंह की अधीनता स्वीकर कर ली।

बनवीर अपनी सेना के साथ लौटकर चित्तौर पहुँच गया और उदयसिंह का विरोध करने की तैयारी करने लगा। उदयसिंह का विवाह कर के चित्तौर के सरदार अपनी पूरी शक्ति के साथ चित्तौर लौटे। वहाँ पर बनवीर अपनी सेना लेकर उनके मुकाबिले में पहुँचा। एक साधारण लड़ाई के बाद बनवीर की पराजय हुई। वह अपने परिवार के लोगों को लेकर दक्षिण की तरफ चला गया। वहाँ पर उसकी संतानों से नागपुर भोंसले वंश की सृष्टि हुई।

संबत् १५६७ सन् १५४१-४२ ईसवी में सरदारों ने उदयसिंह को चित्तौर के सिंहासन पर बिठाया और बड़े समारोह के साथ उसका अभिषेक किया गया। सम्पूर्ण राज्य में खुशियाँ

मनायी गयीं। चित्तौर के सिंहासन पर राणा उदयसिंह के बैठने के कुछ दिनों के बाद मालूम हुआ कि उदयसिंह बहुत अकर्मण्य और अयोग्य है। उसमें एक राजपूत के गुणों का पूर्ण रूप में अभाव था। उसमें विलासिता अधिक थी और रात दिन वह अपने महलों में पड़ा रहता था। उसकी इस दिनचर्या ने उसको आलसी और निकम्मा बना दिया।

उदयसिंह के इस प्रकार जीवन को देखकर चित्तौर के सरदारों और मन्त्रियों को बड़ी निराशा हुई। सब के सब चित्तौर के भविष्य की चिन्ता करने लगे। एक तरफ चित्तौर के राज्य-दरबार की यह निराशा बढ़ रही थी और दूसरी तरफ उदयसिंह की विलासिता बढ़ती जाती थी।

चित्तौर के सिंहासन पर उदयसिंह के बैठने के पहले दिल्ली के बादशाह बाबर का लड़का हुमायूँ दिल्ली के सिंहासन पर था। वह अपने पिता बाबर के विशाल राज्य का अधिकारी हुआ था। परंतु दिल्ली के सिंहासन पर बैठने के बाद उसके जीवन में भयंकर संघर्ष पैदा हो गये थे। इस संघर्ष के कारण उसके भाई थे। वे सब अलग-अलग राज्यों के अधिकारी थे। परंतु उनको अपने राज्यों पर संतोष न था और वे दिल्ली के सिंहासन पर अधिकार करने की अभिलाषा से बादशाह हुमायूँ के साथ अनेक प्रकार के उपद्रव कर रहे थे। भाइयों के इन झगड़ों के कारण सिंहासन पर बैठने के बाद दस वर्ष तक बादशाह हुमायूँ ने भयानक संकटों का मुकाबिला किया। इन्हीं दिनों में पठान बादशाह शेरशाह ने अपनी प्रचण्ड सेना लेकर कन्नौज के विस्तृत मैदानों में हुमायूँ की फौज के साथ युद्ध किया और उसको पराजित करके शेरशाह ने दिल्ली के राज्य पर अपना अधिकार कर लिया।

बादशाह हुमायूँ ने पराजित होने के बाद अपने परिवार के साथ दिल्ली छोड़ दिया। उसके साथ कुछ दास दासियों के अतिरिक्त दिल्ली के सैनिक भी थे। दिल्ली से भागने के बाद भी हुमायूँ सुरक्षित न हो सका। उसके शत्रु बराबर उसका पीछा कर रहे थे और हुमायूँ सब को अपने साथ लिए हुए एक स्थान से दूसरे स्थान में भाग रहा था। दिल्ली छोड़कर वह आगरा चला गया और वहाँ से वह लाहौर की तरफ रवाना हुआ। लाहौर पहुँचकर भी वह शांति से रह न सका। शत्रु उसका बराबर पीछा कर रहे थे। इसलिए अपने साथ के सब लोगों को लेकर वह सिंध के राज्य में पहुँचा। इन दिनों में उसके और उसके साथ के लोगों के खाने-पीने की कोई व्यवस्था न थी। उसके साथ उसकी बेगमें भी थीं। वे कई-कई दिन तक भूखी रहकर बादशाह के साथ सफर करती थीं। कोई राजा हुमायूँ को शरण देने के लिए तैयार न था। हुमायूँ जहाँ पहुँचता था, वहीं का राजा एक-दो दिन के बाद शेरशाह के डर से हुमायूँ को अपने यहाँ से निकाल देता था। इन दिनों में अपनी इस दुर्दशा के कारण हुमायूँ बहुत घबरा गया था। इन संकटों के दिनों में अपने प्राणों की रक्षा के लिए उसके पास कोई उपाय न था। उसके साथ इन दिनों में जो सैनिक थे, इन विपदाओं के कारण उन सैनिको ने भी उसका साथ छोड़ दिया था और भाग कर वे इधर-उधर चले गये थे। उसके साथ के कितने ही लोग भूख से तड़पकर मर गये थे और कुछ लोगों ने हिन्दू राजाओं के यहाँ जाकर नौकरी कर ली थी।

इन दिनों में हुमायूँ के जीवन पर भयंकर संकट था। वह किसी समय भारतवर्ष का बादशाह था और कुछ वर्षों के बाद उसके सामने इतने भीषण संकट आये कि उसका जिन्दा रहना असम्भव मालूम होने लगा। बहुत निराश अवस्था में हुमायूँ ने आश्रय पाने के लिए जैसलमेर और जोधपुर के राजा से प्रार्थना की। परंतु दोनों ने इनकार कर दिया। मुस्लिम तवारीखों में लिखा गया है कि आश्रय देने के बजाय जोधपुर के राजा मालदेव ने हुमायूँ को कैद करने की कोशिश की थी। तवारीख फरिश्ता का यह उल्लेख कहाँ तक सही है, इस पर कुछ नहीं

कहा जा सकता। क्योंकि हिन्दू ग्रंथों में इस बात का कोई उल्लेख नहीं पाया जाता।

इन दिनों में हुमायूँ की विपदायें सीमा के बाहर पहुँच गयी थी। उसकी बेगमों को इन दिनों में जो मुसीबतें मिल रही थीं, उनको देखकर हुमायूँ कभी-कभी घबरा उठता था। बेगमों के संकटों को देखकर कभी-कभी उसका धैर्य छूट जाता था। जब वह दिल्ली के राजमहलों में रहने वाली बेगमों को जलती हुई रेतीली भूमि में भयानक कष्टों के साथ चलता हुआ देखता था, तो उसका धैर्य साथ न देता था। फिर भी बड़ी बुद्धिमानी और धीरता से उसने काम लिया। इन भयंकर संकटों के समय वह अपनी बेगमों को प्राय: समझाने की चेष्टा करता था। तवारीख़ फरिश्ता में हुमायूँ के संकटों का रोमाञ्चकारी वर्णन किया गया है और उसमें लिखा गया है कि हुमायूँ की इन विपदाओं को देख कर अमरकोट के राजा सोदा ने उसके साथ सहानुभूति प्रकट की और उसने हुमायूँ को अपने यहाँ आश्रय दिया।

भारतवर्ष की विशाल मरुभूमि के बीच में अमरकोट बसा हुआ है। कुछ इतिहासकारों ने लिखा है कि इसी अमरकोट में शक लोगों ने भारत में आकर अपने रहने का स्थान बनाया था। इसी अमरकोट में सन् १५४२ ईसवी में अकबर का जन्म हुआ। उसके पैदा होने के कुछ ही दिनों बाद अमरकोट के राजा सोदा का आश्रय छोड़कर हुमायूँ ईरान चला गया और भारत से निकल कर बारह वर्ष तक वह विभिन्न देशों में मारा-मारा फिरता रहा। कभी वह ईरान में होता, कभी अपने पूर्वजों के राज्य में पहुँच जाता। कभी कन्धार के पहाड़ी इलाकों में मुसीबत के दिनों को काटता हुआ वह घूमा करता और कभी काश्मीर में पहुँच जाता।

इन दिनों में भारत में पठानों का राज्य चल रहा था। उनके उत्तराधिकारियों में भी बहुत से आपसी झगड़े पैदा हो गये थे। यही कारण था कि थोड़े दिनों के भीतर दिल्ली के सिंहासन पर छै पठान बादशाह बैठे और वे अधिक समय तक राज्य सत्ता का भोग न कर सके। जिस समय दिल्ली के सिंहासन पर सिकन्दर का अधिकार था और वह अपने भाइयों के साथ भीषण झगड़ों में पड़ा हुआ था, हुमायूँ काश्मीर में आ गया था। उस समय उसने दिल्ली के आपसी झगड़ों को देखकर अपनी शक्तियों का संगठन किया और एक सेना लेकर उसने सिंध नदी को पार किया और सिकन्दर से युद्ध करने के लिए पहुँच गया। उस समय अकबर की अवस्था बारह वर्ष थी। पठान बादशाह की फौज से युद्ध करने के लिए हुमायूँ ने अपनी सेना देकर अकबर को रवाना किया। सरहिन्द नामक स्थान पर दोनों तरफ की फौजों का सामना हुआ और भयानक संग्राम आरम्भ हो गया। उस लड़ाई में दोनों तरफ के बहुत-से आदमी मारे गये। अंत में अकबर की विजय हुई। हुमायूँ ने इस विजय के बाद अपनी फौज लेकर दिल्ली के सिंहासन पर अधिकार कर लिया। इसके कुछ दिनों के बाद हुमायूँ के जीवन में एक दुर्घटना घटी। किसी समय वह अपने पुस्तकालय की सीढ़ियों पर से गुजर रहा था, अचानक वह गिर गया और उसकी मृत्यु हो गयी।

हुमायूँ के मर जाने के बाद सन् १५५५ ईसवी में अकबर दिल्ली के सिंहासन पर बैठा। इसके थोड़े ही दिनों बाद उसके शत्रुओं ने आक्रमण किया और दिल्ली तथा आगरा को लेकर शत्रुओं ने अपने अधिकार में कर लिया। इस दशा में अकबर पंजाब के किसी स्थान पर चला गया। इस अवसर पर बैरामखाँ ने उसकी बड़ी सहायता की उसकी बुद्धिमत्ता और बहादुरी से अकबर ने अपने खोये हुए अधिकार को फिर प्राप्त किया और इस बार सिंहासन पर बैठने के पश्चात् थोड़े ही दिनों में, कालपी, चन्देरी, कालिञ्जर, समस्त बुन्देलखण्ड और मालवा पर अकबर ने कब्जा कर लिया। इस समय उसकी अवस्था अठारह वर्ष की थी।

अकबर ने थोड़े ही दिनों के बाद राजपूतों के साथ युद्ध करने का निर्णय किया और सब से पहले वह अपनी सेना लेकर मारवाड़ की तरफ रवाना हुआ। बादशाह हुमायूँ अपने दुर्भाग्य के दिनों में अन्यान्य राजाओं के साथ-साथ जोधपुर के राजा मालदेव से भी उसने आश्रय देने की प्रार्थना की थी। कुछ उन्हीं दिनों की शत्रुता का बदला लेने के लिए हुमायूँ का लड़का अकबर दिल्ली से रवाना हुआ।

मारवाड़ में मेरता नामक नगर उन दिनों में अधिक सम्पत्तिशाली था और धन-सम्पत्ति के नाम पर मारवाड़ राज्य में उसकी दूसरी संख्या थी। अकबर ने वहाँ पहुँचकर उस नगर को विध्वंस किया। वहाँ के होने वाले विनाश को देखकर अम्बेर का राजा भारमल (बिहारीमल) घबरा उठा और अपने लड़के भगवानदास को लेकर उसने अकबर की अधीनता स्वीकार करली और मुगल सम्राट को प्रसन्न करने के लिए उसने अपनी लड़की का ब्याह अकबर के साथ कर दिया।

इसके बाद अकबर राजस्थान के दूसरे राज्यों पर आक्रमण करने वाला था। परन्तु इसी अवसर पर उसके उजबक सरदारों ने विद्रोह किया। इसलिए उसने विद्रोही सरदारों को दमन करने की चेष्टा की और जब उसे उसमें सफलता मिल गयी तो अपनी विशाल सेना लेकर उसने चित्तौर पर आक्रमण किया।

जिस अवस्था में अकबर दिल्ली के सिंहासन पर बैठा था, ठीक उसी अवस्था में उसका पितामह बाबर अपने पूर्वजों के फरगना राज्य का अधिकारी हुआ था। उसके पहले बाबर ने भयंकर संघर्षों का सामना किया था और यही अवस्था अकबर के सिंहासन पर बैठने के पहले रही थी दोनों ने अपने जीवन की शिक्षा कठोर विपदाओं के द्वारा पायी थी। जीवन के उन संघर्षों ने दोनों को शक्तिशाली और महान बना दिया। प्रकृति का यह सत्य विश्व के समस्त महान पुरुषों में देखने को मिलता है। प्रकृति के इस सत्य के द्वारा जिसके जीवन का निर्माण नहीं होता, वह अपने जीवन में निर्बल, अयोग्य और कायर रहा करता है। इस सत्य का प्रमाण सम्पूर्ण विश्व का इतिहास है और संसार का प्रत्येक महान पुरुष अपने जीवन के तवस्वी दिनों का चित्र उपस्थित कर इस सत्य को स्वीकार करता है।

सिंहासन पर बैठने के समय अकबर और उदयसिंह की अवस्था भी एक ही थी। दोनों तेरह वर्ष की अवस्था में सिंहासन पर बैठे थे। अकबर के जीवन की विपदायें उसके जन्म लेने के पहले से आरम्भ हुई थीं और उदयसिंह के जीवन में उनकी शुरुआत उसकी छै वर्ष की अवस्था में हुई थी। विद्वानों और इतिहासकारों के अनुसार अकबर और उदयसिंह—दोनों के जीवन निर्माण एक से होने चाहिए थे। परन्तु ऐसा नहीं हुआ। उदयसिंह जब चित्तौर के सिंहासन पर बैठा, उस समय वह अकबर के जीवन के बिलकुल विपरीत साबित हुआ। अकबर ने सिंहासन पर बैठने के बाद अपनी योग्यता और महानता का परिचय दिया। परन्तु उदयसिंह ने उसके बिलकुल विपरीत अपनी अयोग्यता और कायरता का परिचय दिया। इन दोनों के जीवन चरित्रों का अध्ययन करने से ऊपर प्रकृति के जिस सत्य का उल्लेख किया गया है, उसमें संदेह पैदा होता है। परन्तु वास्तव में ऐसी बात नहीं है। सही बात यह है कि उदयसिंह के जीवन-चरित्र के अध्ययन करने और उसको समझने में भूल की जाती है। सच बात यह है कि उदयसिंह ने अपने जीवन में न तो कठिनाइयों को देखा था और न कभी जीवन के संघर्षों का सामना करने की नौबत उसके जीवन में आयी थी। छै वर्ष तक वह चित्तौर के सुरक्षित दुर्ग में रहा था और उसके बाद बनबीर के आक्रमण से बचाने के लिए वह जैसलमेर के दुर्ग में पहुँचा दिया गया था। वहाँ पर भी उसने एक राजभवन में ही अपना जीवन व्यतीत किया और उसके बाद अपने आप वह चित्तौर के सिंहा-

सन पर पहुँच गया। जीवन की सरलता और कोमलता ने उसको कोमल और भीरु बना दिया था।

जकसरतीस नदी के तट पर बसे हुए अपने फरगना राज्य को छोड़ कर और वहाँ से भाग कर काबुल होता हुआ बाबर भारत में पहुँचा था और दिल्ली के सिंहासन पर बैठकर उसने जिस राज्य की नींव डाली थी, उसको साम्राज्य बना देने का कार्य अकबर ने किया। वह न केवल एक चतुर शासक था बल्कि दूसरे के हृदयों पर अधिकार करने का मन्त्र भी वह जानता था। शासन की योग्यता के द्वारा उसने अपने छोटे-से राज्य को विस्तृत बनाया और जिनके राज्यों को लेकर उसने अपने राज्य में मिला लिया था, उनके हृदयों पर अपने उस मन्त्र के द्वारा अधिकार किया था। इसी का यह परिणाम था कि जो हिन्दू राजा और नरेश उसके द्वारा पराजित हुए उन्होंने भी उसको जगद्गुरु, दिल्लीश्वरो और जगदीश्वरो कह कर समबोधन किया था।

भट्ट ग्रंथों के अनुसार अकबर ने दो बार चित्तौर पर आक्रमण किया था। लेकिन तवारीख फरिश्ता में अकबर के एक ही आक्रमण का वर्णन पाया जाता है। भट्ट ग्रंथों के अनुसार चित्तौर के पहले आक्रमण में अकबर को सफलता नहीं मिली थी। चित्तौर के सरदारों और मेवाड़ राज्य के सामन्तों ने अपनी-अपनी सेनायें लेकर चित्तौर की रक्षा करने के लिए अकबर की फौज के साथ युद्ध किया था और मुगल बादशाह को पराजित किया। उस युद्ध में राणा उदयसिंह की अविवाहिता एक उपपत्नी ने भी चित्तौर की सेना के साथ युद्ध-स्थल में जाकर दिल्ली की फौज पर आक्रमण किया था। उस मौके पर अकबर की फोज पीछे हट गयी थी और युद्ध बन्द हो गया था।

उसके बाद भट्ट ग्रंथों के अनुसार अकबर ने अपनी पूरी तैयारी के साथ दूसरी बार चित्तौर पर आक्रमण किया। उस समय उसकी अवस्था पच्चीस वर्ष की थी। फरिश्ता इतिहास में केवल इसी युद्ध का वर्णन किया गया है। दिल्ली से मुगल सेना सन् १५६७ ईसवी में चित्तौर की तरफ रवाना हुई और पण्डौली नामक स्थान से वश्शी जाने का जो मार्ग है, वहाँ पहुँचकर मुगल फौज ने अपनी छावनी डाली। जिस स्थान पर बादशाह की फौज आकर रुकी थी, वहाँ पर संगमरमर का एक स्तम्भ बना हुआ है। यह स्तम्भ 'अकबर का दीपक' के नाम से प्रसिद्ध है।

भट्ट ग्रंथों के अनुसार, आक्रमण के लिए आयी हुई मुगल बादशाह की फौज का समाचार सुनकर राणा उदयसिंह चित्तौर से भाग गया। लेकिन चित्तौर के सरदार इससे भयभीत न हुए और अकबर का मुकाबिला करने के लिए उन लोगों ने चित्तौर में युद्ध की तैयारी आरम्भ कर दी। मेवाड़ राज्य के सभी सामन्त और राजा अपनी सेनायें लेकर चित्तौर की तरफ रवाना हो गये। शूरबीर सहीदास चन्दावत वंश की सेना को लेकर पहुँच गया और वहाँ के सर्पद्वार पर उसने अपनी सेना लगा दी। मरेरिया के राजा दूदा की सेना भी चित्तौर की रक्षा के लिए आ गयी। बैदला और कटोरिया नामक नगरों के सामन्त भी अपने सैनिकों के साथ वहाँ पहुँचे। बिजौली के परमारों और मादी के झाला नरेश की सेनायें भी युद्ध के लिए आ गयीं। इनके साथ-साथ मेवाड़-राज्य के अन्य सरदार और सामान्त भी युद्ध करने के लिए चित्तौर में आ गये। इनके अतिरिक्त और भी जो सामन्त अपनी सेनाओं के साथ आये, उनमें देवल के राजा बाघ जी के वंशज झालौर नरेश शोनगढ़े का राव, ईश्वरदास राठौर, करमचन्द कछवाहा और ग्वालियर के तोंवर राजा के नाम प्रमुख हैं। इन सब राजाओं और सामन्तों ने अपनी सेनाओं के साथ चित्तौर आकर अकबर की फौज के साथ युद्ध करने की तैयारी की।

अकबर बादशाह की फौज ने जहाँ पर छावनी बनायी थी, वहाँ से चित्तौर की तरफ आगे बढ़ी और वह सिंह द्वार पर पहुँच गयी। राजपूतों की सेना ने उसी समय आगे बढ़कर उसका मुकाबिला किया। दोनों ओर से तेजी के साथ मारकाट आरम्भ हो गयी। चन्दावत वीर सरदार सहीदास ने मुगल सेना पर बाणों की वर्षा आरम्भ की।

थोड़ी देर के युद्ध के बाद मुगल सेना चित्तौर में प्रवेश करने के लिए आगे बढ़ने लगी। उस समय मुगलों की बन्दूकों की गोलियों से बहुत से राजपूत मारे गये। इसी समय सहीदास के सैनिकों का भयानक रूप से संहार हुआ। परन्तु सहीदास अपनी पूरी शक्ति के साथ मुगलों से युद्ध करता रहा। उसकी इस बहादुरी से राजपूतों में उत्साह की वृद्धि हुई और चित्तौर की रक्षा करने वाले सभी राजपूत सरदारों ने मुगल सेना के साथ भयानक मारकाट की। इन वीर सरदारों में सरदार जयमल और पत्ता के पराक्रम को देखकर एक बार मुगल सेना भयभीत हो उठी।

जयमल बिजनौर का राजा था। मारवाड़ के शूरवीर सामन्तों में उसका नाम बहुत प्रसिद्ध था। उसका जन्म राठौर वंश की मैरतिया शाखा में हुआ था। पत्ता कैलवाड़े का राजा था। वह चन्दावत वंश की शाखा में पैदा हुआ था। उसका गोत्र जगवत था। उस युद्ध में जयमल और पत्ता ने अपनी भयानक मारकाट के द्वारा जिस प्रकार शत्रुओं का संहार किया, उसकी प्रशंसा अकबर बादशाह ने स्वयं की और इन दोनों वीरों की प्रशंसा में आज तक राजस्थान में गाने गाये जाते हैं।

जयमल और पत्ता—दोनों शूरवीर राजपूत थे। दोनों ही राजपूतों की शान को कायम रखने के लिए लड़ना और मरना जानते थे। अकबर के आक्रमण करने पर दोनों ही सामन्त चित्तौर की रक्षा करने के लिए युद्ध में आये थे और उन दोनों ने मुगल सेना को पराजित करने के लिए अपनी अद्भुत वीरता का परिचय दिया। यह युद्ध चित्तौर के सामने और मेवाड़ राज्य के वीर राजपूतों के निकट मरने-जीने की समस्या को लेकर आया था। किसी प्रकार अकबर की विशाल और लड़ाकू सेना चित्तौर का सर्वनाश करना चाहती थी और चित्तौर की रक्षा करते हुए मेवाड़ राज्य के एकत्रित राजपूत सरदार और सामन्त अपने प्राणों को उत्सर्ग करना चाहते थे। मेवाड़ के इतिहास में यह भयंकर संग्राम था। इस युद्ध में राजपूतों के साथ-साथ, चित्तौर के अन्तःपुर से निकलकर राजपूत वीरांगनाओं ने भी आक्रमणकारी मुगलों के साथ युद्ध किया था और अपने प्राणों की आहुतियाँ दी थीं।

चित्तौर का यह संग्राम क्रमशः भयानक होता गया। शालुम्ब्रा का राजा शूरवीर चन्दावत सहीदास युद्ध करता हुआ मारा गया। उसके गिरते ही पत्ता ने आगे बढ़कर मुगलों की फौज को रोका और अपने प्राणों का भय छोड़कर उसने शत्रुओं पर मार की। उस समय पत्ता की अवस्था सोलह वर्ष की थी। चित्तौर के पहले युद्ध में उसका पिता मारा गया था। पत्ता की अवस्था छोटी होने के कारण ही उसकी माँ अपने पति के साथ सती न हो सकी थी और अपने इकलौते पुत्र का पालन करने के लिए वह जीवित रही थी। इस बार चित्तौर पर विशाल मुगल सेना के आक्रमण करने पर विधवा माता ने अपने इकलौते बेटे पत्ता को युद्ध में भेजा था।

सहीदास के मारे जाने के बाद और युद्ध में पत्ता के आगे बढ़ते ही संग्राम की अवस्था भयंकर हो उठी। इसी अवसर पर चित्तौर के महलों से निकल कर रानियाँ और राजपूत बालायें युद्ध में गयी थीं और शत्रुओं के साथ मारकाट की थीं। उस समय मेवाड़-राज्य के राजपूतों की अवस्था देखने के योग्य थी। वे अब जीवित रहकर चित्तौर का पतन देखना नहीं चाहते थे। उस भयंकर युद्ध में राजपूत रमणियाँ मारी गयीं। अगणित संख्या में राजपूतों का संहार हुआ। मुगलों की तोपों और बंदूकों से राजपूतों का भीषण रूप से सर्वनाश हो रहा था। शत्रु की तोपों और बंदूकों

चुका था, दिल्ली के मुगल बादशाह अकबर ने आक्रमण करके चित्तौर की शक्तियों का विध्वंस कर डाला था। इस प्रकार के विनाश के पश्चात् राणा प्रताप को मेवाड़-राज्य का अधिकार प्राप्त हुआ था।

राज्य की इन दुर्बल परिस्थितियों में भी राणा प्रताप का हृदय निर्बल न पड़ा। उसमें स्वाभिमान था, राजपूती गौरव था और साहस तथा पुरुषार्थ था। राज्य का अधिकार प्राप्त करने के बाद वह चित्तौर के उद्धार का उपाय सोचने लगा। किसी प्रकार वह अपने पूर्वजों के गौरव की प्रतिष्ठा करना चाहता था। लेकिन इसके लिए उसके अधिकार में कोई साधन न थे।

बादशाह अकबर अत्यन्त दूरदर्शी और राजनीतिज्ञ था। चित्तौर को पराजित करने के बाद और राज्य से उदयसिंह के चले जाने के पश्चात् भी वह चुपचाप न बैठा। उसने राजस्थान के एक-एक राजा और नरेश को अपनी अधीनता में लाने का कार्य आरम्भ कर दिया था और उसके इस प्रयत्न के फलस्वरूप मारवाड़, अम्बेर, बीकानेर और बूँदी के राजा उसके प्रलोभन में आ गये। इन राज्यों ने न केवल मुगल-सम्राट के सामने अपना मस्तक नीचा किया था, बल्कि जो राजपूत नरेश अकबर की अधीनता को मानने के लिए तैयार न थे, उनके साथ ये लोग लड़ने के लिए तैयार थे। इन सब बातों का कारण अकबर की राजनीतिक चाल थी।

अपने अभावों के साथ-साथ राणा प्रताप के सामने इतनी ही कठिनाई न थी, बल्कि इससे भी अधिक दुर्भाग्य की बात यह थी कि राणा प्रताप का सगा भाई सागर जी शत्रुओं के साथ मिल गया और अकबर बादशाह ने उसको अपनी तरफ से चित्तौर का अधिकारी बना दिया। राणा प्रताप के जीवन में इस समय ये सभी परिस्थितियाँ भयानक हो गयी थीं।

राणा प्रताप ने इन विरोधी परिस्थितियों की परवा न की और वह चित्तौर के उद्धार की उपाय लगातार सोचता रहा। उसने धीरे-धीरे अपनी शक्तियों का संगठन आरम्भ किया। सबसे पहले उसने अपने जीवन की विलासिता का अंत कर दिया। सोने-चाँदी के बरतनों में भोजन करने का तरीका उसने मिटा दिया और उन बरतनों के स्थान पर भोजन करने में वृक्षों के पत्तों का प्रयोग आरम्भ कर दिया। सोने के समय कोमल शैया के स्थान पर उसने कठोर भूमि का प्रयोग किया। विलासिता का यह परित्याग राणा प्रताप ने न केवल अपने जीवन में किया, बल्कि उसने अपने परिवार और वंश वालों के लिए भी इस प्रकार के कुछ कठोर नियम बना दिये और आदेश दिया कि जब तक हम लोग चित्तौर को स्वाधीन न कर लेंगे, सीसोदिया वंश का कोई भी व्यक्ति—स्त्री अथवा पुरुष सुख और विलासिता के जीवन से कोई सम्बन्ध न रखेगा।

चित्तौर की स्वाधीनता प्राप्त करने के लिए राणा प्रताप ने अपने और अपने वंश वालों के लिए जो कठोर आदेश निकाले, उनका पालन पूर्ण रूप से होने लगा। इस समय के पहले जो युद्ध के बाजे सेना के आगे बजा करते थे, वे आदेश के अनुसार सेना के पीछे बजने लगे। राजपूतों ने अपनी दाढ़ी-मूछों के बालों का बनवाना बंद कर दिया। भोजन के बरतनों के स्थान पर बड़े-बड़े वृक्षों के पत्तों का प्रयोग होने लगा। भूमि पर सोना आरम्भ किया गया। उस समय के उन आदेशों की कितनी ही बातें आज तक राजस्थान के राजपूतों में पायी जाती हैं। वे लोग दाढ़ी-मूछों के बाल नहीं बनवाते और भोजन के समय अपने बरतनों के नीचे किसी न किसी वृक्ष की पत्ती रख लेते हैं।

इन दिनों में मेवाड़-राज्य की जो अधोगति हो गयी थी, उसे देखकर प्रताप के हृदय में एक असह्य वेदना उठा करती थी और उसके कारण वह प्रायः कह उठता: "अच्छा होता यदि

सीसोदिया वंश में उदयसिंह का जन्म न हुआ होता अथवा राणा संग्रामसिंह के बाद सीसोदिया वंश का कोई व्यक्ति चित्तौर के सिंहासन पर न बैठता।"

राणा संग्रामसिंह के शासन काल में मेवाड़-राज्य ने बड़ी उन्नति की थी। अम्बेर और और मारवाड़ के राज्य मेवाड़-राज्य में शामिल हो गये थे और इन दोनों राज्यों के राजा उस समय इतने शक्तिशाली थे कि मारवाड़ के राजा ने दिल्ली के बादशाह शेरशाह के विरुद्ध युद्ध की तैयारी की थी। चम्बल नदी के किनारे पर बसे हुए बहुत-से छोटे-छोटे राज्यों ने अपनी शक्तियाँ बना ली थीं। इन सब उन्नतियों का कारण मेवाड़-राज्य पर राणा संग्रामसिंह का शासन था। उसने अपने साथ-साथ सभी राजपूत राजाओं और सामन्तों को उन्नति करने का अवसर दिया था। सम्पूर्ण भारतवर्ष में राणा संग्रामसिंह ने सम्मान प्राप्त किया था। यदि बादशाह बाबर के साथ युद्ध करने के पश्चात् उसकी आकस्मिक मृत्यु न हुई होती तो उसके बाद इस देश की राजनीतिक परिस्थितियाँ कदाचित इतनी पतित न होती, जितनी कि हुई। राणा संग्रामसिंह के बाद कोई योग्य शासक चित्तौर से सिंहासन पर न बैठा। राणा उदयसिंह ने अपने शासन-काल में मेवाड़-राज्य की बची हुई राजपूती मर्यादा का अंत कर दिया।

बादशाह अकबर की महान शक्तियों का अध्ययन करने के बाद राणा प्रताप ने चित्तौर के उद्धार करने के सम्बन्ध में अपने योग्य सरदारों को बुलाकर परामर्श किया और किसी भी दशा में मुगलों की पराधीनता से चित्तौर को निकालने का उसने निर्णय किया। मेवाड़-राज्य के सामन्तों को प्रतापसिंह ने नयी-नयी जागीरें दीं और बादशाह अकबर के साथ युद्ध करने के लिए उसने कमलमीर को केन्द्र बनाया। इन्हीं दिनों में उसने कमलमीर, गोगुण्डा और दूसरे पहाड़ी दुर्गों की मरम्मत करायी। राजपूतों की उसने भरती आरम्भ की और बड़ी तेजी के साथ उसने अपनी शक्तियों का संगठन आरम्भ किया।

इन सब कार्यों के लिए धन और जन—दोनों का प्रतापसिंह के पास अभाव था। सबसे बड़े दुर्भाग्य की बात यह थी कि बादशाह अकबर के साथ युद्ध करके मेवाड़-राज्य के सभी शक्तिशाली सामन्त और सरदार मारे जा चुके थे और उसके बाद राज्य की परिस्थितियाँ बहुत दुर्बल अवस्था में चल रही थीं परन्तु साहसी प्रताप ने इन परिस्थितियों की परवा न की और उसने अपने सरदारों के साथ बैठकर चित्तौर को स्वाधीन बनाने की प्रतिज्ञा की। अपने इस निर्णय के साथ उसने मेवाड़ राज्य में घोषणा की—"जिनको हमारी अधीनता में रहना स्वीकार हो, वे सभी अपने परिवारों के साथ अपने घर-द्वार छोड़ कर इस पर्वत पर आ जाँय। जो लोग ऐसा न करेंगे, वे शत्रु समझे जायँगे।"

इस घोषणा के होते ही मेवाड़-राज्य की प्रजा अपने-अपने स्थानों को छोड़ कर परिवारों के साथ मेवाड़ के पर्वत की तरफ रवाना हुई और थोड़े ही दिनों में सम्पूर्ण मेवाड़ का राज्य सुनसान दिखायी देने लगा। बूनस और बैरिस नदियों के द्वारा सींची जाने वाली राज्य की उपजाऊ भूमि बरबाद हो गयी और वहाँ की सम्पूर्ण खेती सूख गयी।

राणा प्रताप ने अपनी घोषणा के सम्बन्ध में बड़ी कठोरता का प्रयोग किया। अपने आदेश के अनुसार वह मेवाड़-राज्य में किसी को देखना नहीं चाहता था। उसने अपने सैनिकों को राज्य में इधर-उधर भेजना शुरू किया, यह देखने के लिए कि प्रजा ने उसके आदेश का पालन कहाँ तक किया है। उसके भेजे हुए सवारों ने राज्य में पहुँच कर देखा कि राज्य के जो स्थान आदमियों के कोलाहल से प्रत्येक समय शोभायमान रहते थे, वे अब सुनसान पड़े हैं। जो नगर और कस्बे सदा प्रकाशमान रहते थे, उनमें अब सायंकाल के आरम्भ से ही अंधकार रहता है। जो खेत सदा-

हरे-भरे और फूले रहते थे, वे सब सूख गये हैं और खेतों में जंगली घास के सिवा और कुछ दिखायी नहीं देता। राज्य के जो मार्ग सदा साफ सुथरे रहते थे, उनमें काँटेदार घास बढ़ गयी है। बबूल की तरह के वृक्षों से वे सब मार्ग अब चलने के योग्य नहीं रह गये। राज्य के बाजारों में अब कोई कहीं दिखायी नहीं पड़ता। इस प्रकार राणा के आदेश के बाद मेवाड़-राज्य के जीवन में भयानक परिवर्तन हो गये। राणा के भेजे हुए सैनिक अपने अपने घोड़ों पर बैठ कर और पर्वत से निकल कर राज्य में जाते और लौटकर इस प्रकार के सब दृश्य राणा को बताते।

अपने इसी उद्देश्य से बनास नदी के किनारे अन्तल्ला नामक स्थान पर राणा के सैनिक घोड़ों पर बैठे हुए घूम रहे थे। उन्होंने देखा, एक आदमी बिना किसी भय के जंगल में अपनी बकरियाँ चरा रहा है। सैनिकों ने समझा कि राणा के आदेश का इसके ऊपर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। क्षण-भर यह सोचकर सैनिकों ने उस चरवाहे को मार डाला और उसके मृत शरीर को एक वृक्ष पर टाँग दिया। उसके बाद वे सैनिक घूमते हुए दूसरी तरफ चले गये।

राणा प्रताप की उस घोषणा के कारण सम्पूर्ण मेवाड़-राज्य उजड़ गया और उसकी इस अवस्था के कारण मुगल साम्राज्य की इस राज्य से होने वाली सम्पूर्ण आमदनी मारी गयी। बादशाह अकबर को जब मेवाड़ की ये बातें मालूम हुई तो उसे बहुत क्रोध आया और वह प्रताप को इसका दण्ड देने की व्यवस्था करने लगा। उन दिनों में योरप का व्यवसाय मुगल-राज्ज के साथ चल रहा था और व्यवसायी सम्पत्ति और सामग्री लेकर मेवाड़ राज्य के भीतर से होकर सूरत अथवा दूसरे बन्दरों पर जाया करते थे। राणा प्रताप के सरदारों ने आक्रमण करके उन व्यवसायियों को लूटना आरम्भ कर दिया। इस लूट की सम्पत्ति और सामग्री से राणा के धन के अभाव की पूर्ति होने लगी।

इस प्रकार के समाचार भी मुगल सम्राट अकबर को मिलने लगे। राणा प्रताप का दमन करना अब उसके लिए अनिवार्य आवश्यक हो गया। लूट की सम्पत्ति और सामग्री से प्रताप ने अपनी आर्थिक अवस्था को कुछ सम्हाल लिया और उस धन से उसने अपनी सेना में सैनिकों की संख्या बढ़ा ली। जो राजपूत उसके साथ आये, उनको उसने उत्तेजित करना आरम्भ किया और वे मुगलों के साथ युद्ध करने के लिए तैयार हो गये।

इन्हीं दिनो में अकबर अपनी एक मुगल सेना लेकर अजमेर पहुँच गया। उसकी प्रचंड शक्ति को देखकर इन्ही दिनों में मारवाड़ का राजा मालदेव और अम्बेर का राजा भगवान दास मुगलों की शरण में आ गये। राजा भगवान दास ने भेंट में बहुमूल्य सम्पत्ति और सामग्री देने के लिए अपने बेटे उदयसिंह को अकबर के पास भेजा। वह अजमेर के रास्ते में नागौर नामक स्थान पर बादशाह से मिला और पिता के द्वारा भेजी हुई सम्पूर्ण सम्पत्ति उसने अकबर को भेंट में दी। उससे प्रसन्न होकर अकबर ने मारवाड़ के राजा को राजा की उपाधि दी। इसके पहले वहाँ के राजा राव की उपाधि रखते थे। राजा भगवान दास ने जोधाबाई नामक अपनी बहिन का विवाह अकबर के साथ कर दिया। × जिन हिन्दू राजाओं ने अपनी लड़कियाँ और बहनें मुसलमान बादशाहों को दी थीं, उनमें भगवान दास सब से पहला था।

बादशाह अकबर ने उदयसिंह को जोधाबाई के विवाह के बदले में चार बड़े-बड़े इलाके

× इसी जोधाबाई से सलीम (जहाँगीर) का जन्म हुआ। जोधाबाई का मकबरा आगरे के समीप सिकन्दरा में बना हुआ है। कुछ लोग इस बात में संदेह करते हैं और उनका कहना है कि राजपूत राजाओं ने मुसलमानों को अपनी लड़कियों के स्थान पर दासियाँ दी थीं।

दिये। उन चारों इलाकों की वार्षिक आय लगभग सोलह लाख रुपये की थी। इन चारों इलाकों में गोढ्वार अथवा गदवाड़ की आय नौ लाख, उज्जयिनी की ढाई लाख, देवलपुर की एक लाख बयासी हजार पाँच सौ और बुदनाबर की ढाई लाख रुपये थी। इन इलाकों के मिल जाने से मारवाड़ राज्य की आमदनी पहले से दूनी हो गयी। अम्बेर और मारवाड़ के राज्यों की देखा-देखी राजस्थान के दूसरे राजा लोग भी अकबर की शरण में आये और अपनी स्वतंत्रता को दे कर उन लोगों ने अकबर का आश्रय प्राप्त किया।

अकबर बादशाह ने जब राणा प्रताप के विरुद्ध युद्ध की तैयारियाँ कीं तो जो राजपूत राजा उसकी अधीनता स्वीकार कर चुके थे, सभी ने अकबर का साथ देने के लिए बचन दिया। इन राजाओं के साथ देने का कुछ और भी कारण था। जो राजा मुगल साम्राज्य की अधीनता स्वीकार कर चुके थे और अकबर से मिल गये थे, राणा प्रताप ने उनको पतित समझ कर न केवल उनका सम्बन्ध उसने स्वयं छोड़ दिया था, बल्कि उनसे कोई सम्बन्ध न रखने के लिए उसने दूसरे राजपूतों को भी उत्तेजित किया। अवस्था उस समय यह थी कि राजस्थान के लगभग सभी राजपूत राजा मुगल साम्राज्य से भयभीत हो चुके थे और इसी लिए उन्होंने अकबर की अधीनता स्वीकार की थी। बूँदी का हाड़ा राजा किसी प्रकार अपनी मर्यादा को सुरक्षित रख सका था।

जातीयता और वंश का सम्बन्ध तोड़ देने के कारण जितने भी राजा अकबर के आश्रय में गये थे, सब के सब राणा प्रताप से रुष्ट हो गये। इन राजाओं में अम्बेर का कछवाहा राजा मानसिंह भी था। उसके पिता ने अपनी बहन का विवाह अकबर के साथ कर दिया था। इस प्रकार मानसिंह का अकबर फूफा हुआ। इसके बदले में अकबर ने मानसिंह को अपनी सेना में सेनापति का ऊँचा आसन दिया। राजपूत राजाओं को अकबर की अधीनता में लाने के लिए मानसिंह ने बहुत बड़ा काम किया था। उसकी सहायता से अकबर के साम्राज्य की बहुत वृद्धि हुई।

शोलापुर के युद्ध में विजयी होकर राजा मानसिंह अकबर बादशाह की राजधानी को लौट रहा था। रास्ते में प्रताप का अतिथि बनने के लिए उसके मन में विचार पैदा हुआ। उसने राणा प्रताप के पास इस का समाचार भेजा। राणा प्रताप कमलमीर में रहता था। प्रताप ने उदय सागर पहुँच कर उससे मिलने का प्रबन्ध किया और मानसिंह के भोजन की तैयारी वहीं पर की गयी। भोजन तैयार होने पर प्रताप के पुत्र राजकुमार अमरसिंह ने मानसिंह का स्वागत कर भोजन के लिए बुलाया। उसने आकर भोजन स्थल पर प्रताप को न देखा तो उसने अमरसिंह से पूछा। राजकुमार ने उत्तर देते हुए कहा कि 'सिर पीड़ा के कारण पिता जी नहीं आ सकते'। यह सुन कर उसने रोष पूर्ण स्वर में कहा—"मैं उस पीड़ा को समझता हूँ। उस शूल की अब कोई औषधि नहीं हो सकती।" राणा प्रताप ने जिसने उपस्थित होने में अपनी असमर्थता प्रकट की थी, भीतर से मानसिंह की इस बात को सुन उसके सामने आकर आवेशपूर्ण शब्दों में कहा—"मैं उस राजपूत के साथ कभी भोजन नहीं कर सकता, जो अपनी बहन बेटियों का विवाह एक तुर्क के साथ कर सकता है।" राणा के इस उत्तर को सुन कर मानसिंह ने अपना अपमान अनुभव किया। उसने भोजन नहीं किया। भोजन के स्थान से उठते हुए मानसिंह ने प्रतापसिंह की तरफ देख कर कहा—"आप के सम्मान की रक्षा करने के लिए ही मुझे अपनी बेटियाँ और बहनें तुर्क को देनी पड़ी हैं। अगर आप इसका लाभ नहीं उठाना चाहते तो इसका अर्थ यह है कि आप स्वयं खतरों को अपने ऊपर ला रहे हैं। यह मेवाड़ का राज्य अब आप का होकर न रहेगा।" यह कह कर वह अपने घोड़े पर बैठने लगा और उस समय प्रताप की तरफ देख कर उसने कहा—"अगर मैंने आपके इस अपमान का बदला रण क्षेत्र में न लिया तो मेरा

नाम मानसिंह नहीं है।" उसकी इस बात का उत्तर देते हुए प्रतापसिंह ने कहा—
उसके लिए तैयार हूँ।"

जिस समय इस प्रकार की बातें राणा के साथ मानसिंह की हो रही थीं, उस समय स्थान पर खड़े किसी राजपूत सरदार ने कुछ असम्मानपूर्ण शब्दों में मानसिंह से कहा—"उस समय अपने फूफा अकबर को भी साथ में लेते आना। उसे लाना भूल न जाना।" अत्यन्त अपमान के साथ मानसिंह ने इन अंतिम शब्दों को सुना और अपने घोड़े पर बैठकर वह तेजी के साथ चला गया।

जो स्थान मानसिंह के भोजन के लिए तैयार किया गया था, उसके चले जाने के बाद उसे खोद डाला गया और उस पर गंगाजल छिड़क दिया गया। जो पात्र मानसिंह को खाने और पीने के लिए दिये गये थे, उनको अपवित्र समझ कर नष्ट कर दिया गया। जिन लोगों ने मानसिंह को अपनी आँखों से देखा था, उन्होंने उसके जाने के बाद स्नान किया और अपने वस्त्रों को धो कर दूसरे कपड़े पहने।

मानसिंह ने राजधानी में पहुँच कर अकबर बादशाह से प्रतापसिंह के सम्बन्ध की सभी बातें कहीं। अकबर ने मानसिंह के अपमान का बदला लेने के लिए राणा प्रताप के साथ युद्ध करने का निश्चय किया।

सलीम (जहाँगीर) अकबर का उत्तराधिकारी था। अकबर के निर्णय के अनुसार प्रताप से युद्ध करने के लिए सलीम ने अपनी विशाल सेना तैयार की और राजा मानसिंह तथा मोहब्बत खाँ को साथ में लेकर युद्ध के लिए रवाना हुआ। राणा प्रताप को मानसिंह के जाते ही यह मालूम हो गया कि अब मुगल फौज के आक्रमण में देर नहीं हो सकती। इसलिए अपने सरदारों को बुलाकर कमलमीर में उसने परामर्श किया और सम्राट अकबर की सेना के साथ युद्ध करने के लिए उसने बाईस हजार राजपूतों को तैयार किया। इन दिनों में पहाड़ पर रहने वाले बहुत-से लड़ाकू भील प्रताप के साथी बन गये थे। इसलिए वे सब के सब इस समय युद्ध के लिए तैयार हो गये। अपनी इस सेना को लेकर राणा प्रताप अरावली पर्वत के सब से बड़े मार्ग पर पहुँच गया।

जिस स्थान पर जा कर अपनी सेना के साथ प्रताप मुगल फौज के आने का रास्ता देखने लगा, वह नवानगर और उदयपुर के पश्चिम दिशा में था। यह पहाड़ी स्थान घने जंगलों से घिरा हुआ था। उस विस्तृत स्थान पर कुछ छोटे-छोटे नाले व नदियाँ बह रही थीं। उदय पुर से उस स्थान के लिए जाने वाला मार्ग बहुत तंग, कठोर और भयानक था। मार्ग की चौड़ाई बहुत कम थी और उस स्थान से बहुत-से आदमियों का एक साथ निकलना बहुत मुश्किल था। वहाँ पर खड़े होकर देखने से पहाड़ी वृक्षों और जंगलों के सिवा कुछ दिखायी न देता था। इसी स्थान का नाम हलदीघाटी है। उस हलदीघाटी के ऊँचे शिखरों पर खड़े होकर राणा प्रताप के समस्त राजपूत और भील युद्ध के लिए तैयार हो गये। ऊँचे शिखरों पर एक ओर भील थे और दूसरी ओर राजपूत। उन सब के हाथों में धनुषबाण थे।

हलदीघाटी के उस भयंकर पहाड़ी स्थान पर खड़े हो कर अपने शूरवीर सरदारों के साथ प्रताप शत्रुओं के आने का रास्ता देखने लगा। सम्वत् १६३२ सन् १५७६ ईसवी के जुलाई महीने में दोनों ओर की सेनाओं का सामना हुआ और भीषण रूप से युद्ध आरम्भ हो गया। दोनों तरफ के सैनिकों और सरदारों ने जिस प्रकार की मार शुरू की, उससे दोनों ही तरफ के शूरवीर योद्धा घायल होकर जमीन पर गिरने लगे। बहुत समय तक भीषण मार काट के बाद भी किसी प्रकार की निर्बलता किसी तरफ न आयी। अपने राजपूतों और भीलों के साथ मार करता हुआ प्रताप आगे

. मुगलों की विशाल सेना को पीछे हटाना और आगे बढ़ना अत्यन्त कठिन हो .. णों की वर्षा समाप्त हो चुकी थी और दोनों ओर के सैनिक एक दूसरे के समीप पहुँच .वारों और भालों की भयानक मार कर रहे थे।

हलदीघाटी के पहाड़ी मैदान में मार काट करते हुए सैनिक कट-कट कर पृथ्वी पर गिर रहे थे। मुगलों का बढ़ता हुआ जोर देख कर प्रतापसिंह अपने घोड़े पर प्रचंड गति के साथ शत्रु सेना के भीतर पहुँच गया और वह मानसिंह को खोजने लगा। इसी समय हाथी पर बैठा हुआ अकबर का लड़का सलीम सामने दिखाई पड़ा। उसने अपने चेतक घोड़े को आगे बढ़ाया और सलीम के ऊपर उसने जोरदार अपना वार किया। उसकी तलवार से सलीम के कई एक रक्षक मारे गये। प्रताप की वार का जवाब देते हुए सलीम ने भी राणा पर वार किया। प्रताप ने उससे बचकर फिर अपने घोड़े को बढ़ाया और सलीम पर जोर दार भाले का आघात किया। उस भाले से सलीम का लोहे की मोटी चद्दर से मढ़ा हुआ हौदा टकराया। शाहजादा सलीम बच गया और पूरा आघात उसके हौदे को पहुँचा। उसी समय सलीम का महावत प्रताप की तलवार से मारा गया। उसके गिरते ही सलीम का हाथी पीछे की तरफ हटने लगा। यह देख कर प्रताप सलीम की तरफ आगे बढ़ा और उसके हाथी को घेर कर प्रताप ने सलीम को मारने की चेष्टा की।

इस समय युद्ध अत्यन्त भयानक हो उठा था। सलीम पर प्रताप का आक्रमण देखकर मुगल सेना आगे बढ़ी और उसके बहुत से सैनिक और सरदारों ने प्रताप पर आक्रमण किया। राणा प्रताप ने भी अपनी पूरी शक्ति का प्रयोग किया। उसकी शक्तिशाली तलवार से इस समय बहुत-से शत्रु के सैनिक मारे गये। लेकिन मुगल सेना ने राणा प्रताप को घेर लिया। युद्ध में राजपूत अधिक मारे गये। प्रताप की सेना कमजोर पड़ने लगी। राणा शत्रुओं के बीच में घिरा हुआ था और मुगलों ने जोरदार हमला उस पर किया था।

प्रताप के मस्तक पर मेवाड़ का मुकुट लगा था। उसी मुकुट को निशाना बनाकर शत्रु प्रताप पर मार कर रहे थे। राणा के आस-पास राजपूतों की संख्या बहुत कम हो गयी थी। इस बात को समझते हुए भी राणा ने निर्भीकता से काम लिया और अपनी तलवार से उसने लगातार शत्रुओं का संहार किया। परन्तु युद्ध की परिस्थिति बिगड़ती जा रही थी और कुछ देर के बाद शत्रु की विशाल सेना ने राणा प्रताप को चारों ओर से घेर लिया। उस समय राजपूत सरदार और सैनिक दूर पड़ गये थे। उन सब ने प्रताप को शत्रुओं के बीच में घिरा हुआ देखा। मुगलों की सेना भयंकर मार करती हुई आगे बढ़ रही थी। राजपूतों ने प्राणों का भय छोड़कर शत्रुओं पर मार की। उस समय बहुत से मुगल मारे गये। लेकिन राणा प्रताप शत्रुओं के बीच घिरता जा रहा था और मुगलों के जोर के कारण राजपूत प्रताप की तरफ बढ़ न पाते थे।

इस समय प्रताप बिलकुल शत्रुओं के बीच में था। उसके शरीर में बहुत-से जख्म हो गये थे और उनसे लगातार खून बह रहा था। रक्त से उसके कपड़े बिलकुल भीग गये थे। प्रताप ने अपनी इस परिस्थिति को अनुभव किया। उसको कुछ सोचने का मौका न था। उसी समय एक स्वर उसे सुनायी पड़ा—"राणा प्रताप की जय!" इसके बाद तुरंत झाला का शूरवीर सामन्त मन्नाजी तेजी के साथ बढ़ता हुआ प्रताप के समीप पहुँच गया और बड़ी सावधानी के साथ राणा प्रताप के सिर पर रखे हुए राजमुकुट को उतार कर उसने अपने सिर पर रख लिया और तेजी के साथ वह प्रताप के आगे पहुँच गया। शत्रु इस रहस्य को समझ न सके। राजमुकुट पहने हुए मन्ना जी को प्रताप समझ कर वे लोग उसको मारने की चेष्टा में लगे रहे। मन्ना जी अपनी सेना के साथ शत्रुओं के सामने पहुँच कर भीषण मार करने लगा।

इस समय मन्ना जी के आगे आते ही प्रताप पीछे हट गया और बाहर निकल कर क्षण-भर उसने होते हुए युद्ध की तरफ देखा। उसके देखते-देखते शत्रुओं के बीच में मन्ना जी घिर गया और वह मारा गया। अपने नेत्रों से राणा प्रताप ने यह देखा और उसके बाद वह अपने घोड़े पर बैठा हुआ पर्वत की तरफ आगे बढ़ा। कुछ दूर निकल जाने के बाद प्रताप ने देखा कि उसका पीछा करते हुए दो मुगल सैनिक तेजी के साथ आ रहे हैं। इनमें एक मुलतानी और दूसरा खुरासानी था। प्रतापसिंह के आगे एक नदी पड़ गयी। प्रताप अपने घोड़े पर बैठा हुआ उसे पार करके निकल गया। अभी तक दोनों मुगल सैनिक नदी के किनारे पर थे और वे उसको पार करने की कोशिश कर रहे थे।

राणा प्रताप के साथ उसका शक्तिशाली चेतक घोड़ा भी जख्मी हुआ। इसलिए उसकी गति धीरे-धीरे कम हो रही थी। मुगल सैनिक प्रताप का पीछा करते हुए तेजी के साथ आगे बढ़ रहे थे, उसी समय पीछे की तरफ राजस्थानी बोली में उसे सुनायी पड़ा—"हो नीलघोराड़ा असवार!"

प्रताप ने चौंक कर पीछे की तरफ देखा। उसी समय उसे मालूम हुआ कि पीछा करते हुए मेरा भाई शक्तसिंह आ रहा है। शक्तसिंह प्रताप से लड़कर मेवाड़ राज्य से चला गया था और बादशाह अकबर से मिल गया था। हलदीघाटी के युद्ध में बादशाह की तरफ से वह भी सलीम के साथ युद्ध में आया था। जिस समय मुगल सेना ने राणा प्रताप को घेर लिया और उसके बाद झाला के सामन्त मन्ना जी के आ जाने पर प्रताप युद्ध से निकल कर चला आया था, शक्तसिंह ने मुगल सेना के बीच से यह सब अपने नेत्रों से देखा। शत्रुओं के द्वारा राजपूतों की पराजय वह देख न सका। वह एक राजपूत था और उसके प्राणों में राजपूती स्वाभिमान था। उसने राणा प्रताप को युद्ध क्षेत्र से निकलते हुए देखा और यह भी देखा कि दो मुगल सैनिक राणा का पीछा कर रहे हैं। अब वह अपने आपको रोक न सका और युद्ध-क्षेत्र से निकल कर अपने घोड़े पर वह तेजी के साथ पीछा करने वाले दोनों मुगल सैनिकों की तरफ बढ़ा।

शत्रु से मिले हुए, विरोधी भाई शक्तसिंह को अपने पीछे आता हुआ देखकर राणा को शंका उत्पन्न हुई। वह समझ गया कि शक्तसिंह अपने बैर का बदला लेने के लिए मेरे पीछे आ रहा है। राणा प्रताप के हृदय का स्वाभिमान जाग्रत हो उठा। खड़े होकर साहस और क्रोध के साथ वह शक्तसिंह के आने की प्रतीक्षा करने लगा। शक्तसिंह के कुछ निकट पहुँचने पर राणा ने उसके मुख-मण्डल पर उदासी और निराशा के भाव देखे। उसके मन का भाव बदलने लगा। इसी समय शक्तसिंह निकट पहुँच कर प्रताप के चरणों पर गिर पड़ा और फूट-फूट कर रोने लगा। प्रतापसिंह ने शक्तसिंह को उठाकर छाती से लगाया। कुछ देर तक दोनों के नेत्रों से आँसू बहते रहे।

इसी समय प्रताप ने अपने घोड़े की तरफ देखा। वह गिर गया था और उसके प्राण इस संसार से विदा हो चुके थे। प्रताप के हृदय में अपने घोड़े के लिए बहुत स्नेह था। उसके बल पर ही राणा ने मुगलों के साथ भयंकर युद्ध किया था और संग्राम के कई अवसरों पर चेतक ने राणा के प्राण बचाये थे। घोड़े के मर जाने पर राणा को अत्यन्त दुख हुआ।

शक्तसिंह ने राणा को चढ़ने के लिए अपना घोड़ा दे दिया। प्रतापसिंह के रवाना होने के पहले शक्तसिंह ने राणा से कहा—"अवसर मिलने पर मैं चला आऊँगा और आपसे मिलूँगा।" शक्तसिंह के मुँह से प्रताप ने इन शब्दों को सुना। इसके बाद वह चला गया। प्रतापसिंह का पीछा करते हुए जो मुगल सैनिक आ रहे थे, शक्तसिंह ने उन दोनों को मार डाला था और प्रतापसिंह से मिलकर वह खुरासानी सैनिक के घोड़े पर बैठकर वहाँ से लौटा। युद्ध बन्द हो

जाने के बाद सलीम प्रसन्नता के साथ अपनी विजयी सेना को लेकर राजधानी लौट गया।

शक्तसिंह के पहुँचने पर सलीम को उस पर उस समय संदेह पैदा हुआ जब शक्तसिंह ने कहा कि प्रतापसिंह ने न केवल पीछा करने वाले दोनों मुगल सैनिकों को मार डाला, बल्कि उसने मेरे घोड़े को भी खत्म कर दिया। इस दशा में मुझे खुरासानी सैनिक के घोड़े पर बैठकर यहाँ आना पड़ा। सलीम ने प्रतिज्ञा करते हुए कहा कि अगर तुम सही-सही बात कह दोगे तो मैं तुम्हें क्षमा कर दूँगा। सलीम की इस बात पर शक्तसिंह ने उत्तर दिया—"मेवाड़-राज्य का उत्तरदायित्व मेरे भाई के कंधों पर है। इस संकट के समय उसकी बिना सहायता किये हुए मैं कैसे रह सकता था।" सलीम ने अपनी प्रतिज्ञा का पालन किया और शक्तसिंह को चले जाने की उसने आज्ञा दी।

उदयपुर पहुँकर शक्तसिंह ने अपने भाई प्रतापसिंह से भेंट की। उदयपुर पहुँचने के पहले रास्ते में शक्तसिंह ने भिनसोर नामक दुर्ग पर आक्रमण किया और उसको अपने अधिकार में ले लिया था। उदयपुर पहुँचकर उस दुर्ग को भेंट में देते हुए शक्तसिंह ने राणा का अभिवादन किया। प्रतापसिंह ने प्रसन्न होकर वह दुर्ग शक्तसिंह को पुरस्कार में दे दिया। यह दुर्ग बहुत दिनों तक शक्तसिंह के वंश वालों के अधिकार में रहा।

हलदीघाटी के इस युद्ध में राणा प्रताप के बाइस हजार राजपूतों में चौदह हजार राजपूत मारे गये और आठ हजार राजपूत बचकर उदयपुर वापस आये। इस युद्ध में राणा प्रताप के अत्यन्त निकटवर्ती पाँच सौ कुटुम्बी और सम्बन्धी, ग्वालियर का भूत पूर्व राजा रामशाह और साढ़े तीन सौ तोंवर वीरों के साथ रामशाह का बेटा खाण्डेराव मारा गया। राणा प्रतापसिंह के प्राणों की रक्षा करके झाला के वीर सामन्त मन्ना जी ने अपने प्राणों की आहुति दी। इन महान बलिदानों के बाद भी मुगल सेना के बहुत बड़ी होने के कारण राणा प्रतापसिंह को पराजय हुई।

इन दिनों में उदयपुर को राणा प्रताप ने रहने का स्थान बनाया। हलदीघाटी के युद्ध के बाद शत्रुओं के आक्रमण करने पर राणा प्रताप ने कमलमीर में पहुँच कर छावनी बनायी। मुगल सेना के सेनापति कोकाशाह बाज खाँ ने उसके बाद कमलमीर के पहाड़ी स्थान को घेर लिया। उस समय राणा प्रताप ने कुछ दिनों तक उसका मुकाबिला किया। इन्हीं दिनों में देवराज नाम के एक राजपूत ने प्रताप के साथ विश्वासघात किया। कमलमीर में नागन नाम का एक बड़ा कुआँ था। कमलमीर के लोग उसी कुएँ का पानी पीते थे। यह रहस्य देवराज से शत्रुओं को मालूम हुआ। उस कुएँ का पानी किसी प्रकार विषाक्त बना दिया गया। इस दशा में राणा के सामने पानी का भयंकर कष्ट पैदा हो गया। इसलिए वह अपने परिवार और सैनिकों के साथ कमलमीर से चौंड नामक पहाड़ी दुर्ग पर चला गया।

कमलमीर पर आक्रमण करने पर राजा मानसिंह ने धरमेती और गौगुण्डा नामक दोनों पहाड़ी दुर्गों पर अधिकार कर लिया। इसी अवसर पर सागर जी के बेटे मोहब्बत खाँ ने उदयपुर पर अधिकार किया। अमीशाह नाम के एक मुगल शाहजादा ने चौंड और अगुणापानोर के बीच पहुँच कर भीलों के साथ ऐसा उत्पात किया, जिससे उनके साथ राणा प्रताप के जो सम्बन्ध थे, वे छिन्न-भिन्न हो गये। फरीद खाँ नाम के एक मुगल सेनापति ने चप्पन को घेर लिया और चौंड के दुर्ग तक—जहाँ राणा प्रताप और उसके राजपूत पहुँच गये थे—आतंक पैदा कर दिया। राणा के रहने का स्थान चोंड शत्रुओं से घिर गया। मेवाड़ के जितने पहाड़ी स्थान और दुर्ग थे, सब के सब बादशाह की फौज के आतंक में आ गये। शत्रु के सैनिक बड़ी संख्या में प्रताप की खोज में रहने लगे। राणा अपने परिवार और राजपूतों के साथ पर्वत के घने जंगलों में छिपा रहता और मौका पाते ही वह शत्रुओं पर आक्रमण कर देता।

इन दिनों में राणा प्रताप के सामने भयानक कठिनाइयाँ पैदा हो गयी थीं। शत्रु की अनेक छोटी-छोटी सेनायें पहाड़ पर घूम रही थीं और वे प्रताप को कैद करने की पूरी कोशिश में थीं। इस बीच में कई पहाड़ी स्थानों पर अचानक प्रताप ने बादशाह के सैनिकों पर आक्रमण किया और उनका संहार किया। अब बरसात के दिन आ गये थे। नदी और नाले पानी से खूब भर गये थे। सभी रास्ते बरसात के कारण चलने के योग्य न रहे। इस दशा में शत्रु सेना के आक्रमण बन्द हो गये। इसलिए राणा को कुछ विश्राम मिला।

जीवन की इन परिस्थितियों में राणा ने कई वर्ष व्यतीत किये। पर्वत के जितने भी पहाड़ी स्थान राणा और उसके परिवार को आश्रय दे सकते थे, वे सभी बादशाह के अधिकार में चले गये। इस अवस्था में प्रताप की कठिनाइयाँ अत्यन्त भयानक हो गयीं। उसकी इन विपदाओं का सब से बड़ा कारण उसका परिवार था। राणा को अपने जीवन की चिंता न थी। परन्तु परिवार के साथ में होने के कारण राणा का चित्त प्रत्येक समय चिन्तित और दुखी रहा करता। उसके परिवार में छोटे-छोटे बच्चे थे। इस समय उनके सामने भयानक कष्ट था।

अपने परिवार के कारण ही राणा कई बार शत्रुओं के हाथों में पड़ते-पड़ते बचा था। एक बार तो अपने परिवार के साथ शत्रुओं के पंजे में पहुँच गया था, परन्तु गहिलोत वंश के विश्वासी भीलों ने उस समय उसकी बड़ी सहायता की थी। शत्रुओं के राजपूतों को घेर लिया था और राणा के परिवार के बचने की कोई आशा न रही। उस समय उन भीलों ने राणा के परिवार के बच्चों को टोकरों में छिपा कर जावरा की खान में जाकर छिपा दिया था।

ये भील उन दिनों में राणा प्रताप के बड़े सहायक सिद्ध हुए। वे साहसी थे, लड़ने में शूरवीर थे और अत्यन्त विश्वासी थे। वे स्वयं भूखे रहते थे, लेकिन खाने की जो सामग्री वे इधर-उधर से एकत्रित करते थे, उसे वे राणा और उसके परिवार को खिला देते थे। जावरा और चोंड के निर्जन जंगलों के वृक्षों पर लोहे के बड़े-बड़े कीले अब तक गड़े हुए मिलते हैं। उन वृक्षों की इन्हीं कीलों में बेतों के बड़े-बड़े टोकरे टाँग कर और उनमें राणा के बच्चों को छिपा कर वे भील राणा की सहायता किया करते थे। उनके ऐसा करने से प्रताप के परिवार के छोटे बच्चों की रक्षा पहाड़ी भीषण जानवरों से हो सकी थी। उन छोटे बच्चों के खाने-पीने का कोई सुभीता न था। इसलिए पहाड़ी जंगली स्थानों में जो फल मिलते थे, उन्हीं को खा कर वे बच्चे किसी प्रकार अपना पेट भर लेते थे, कभी-कभी इस प्रकार के भोजन से भी उन बच्चों को निराश होना पड़ता था। उनकी देख-रेख जंगली जानवरों से भरे हुए उन पहाड़ी स्थानों पर भीलों के द्वारा होती थी।

बादशाह की सेना प्रतापसिंह की खोज में दौड़ते-दौड़ते थक गयी। परन्तु वह राणा को कैद न कर सकी। इन बातों को बादशाह अकबर ने खूब सुना था। प्रताप के इन दिनों का रहस्य जानने के लिए उसने एक बार छिपे तौर पर अपना एक विश्वासी सिपाही भेजा। वह किसी प्रकार छिपे तौर पर वहाँ पहुँचा, जहाँ प्रताप और उसके सभी सरदार एक घने जंगल के बीच वृक्ष के नीचे घास पर बैठे हुए भोजन कर रहे थे। खाने के चीजों में जंगली फल, पत्तियाँ और जड़े थीं। उस समय उन सबको एक साथ बैठ कर खाते हुए बादशाह के सिपाही ने देखा, उसने देखा कि राणा और उसके सरदार इस प्रकार की सामग्री उसी उत्साह, महत्व और हर्ष के साथ खाकर प्रसन्न हैं, जिस प्रकार कोई राजप्रासाद में बने हुए भोजनों के द्वारा प्रसन्न होता है। उसने सरदारों, राजपूतों और राणा के मुख मण्डल पर किसी प्रकार की उदासी और चिंतना नहीं देखी। उसने लौटकर राणा के जीवन की इन सब बातों का वर्णन बादशाह से किया।

अकबर ने अपने सिपाही के मुख से राणा प्रताप के इन दिनों का हाल सुना। उसका कठो

हृदय कांप उठा । प्रताप के प्रति उसके हृदय का मनुष्यत्व जागरित हुआ । उसने मन ही मन राणा की कठिनाइयों का अनुमान लगाया और अपने दरबार के अनेक लोगों से उसने राणा प्रताप के त्याग, तप और बलिदान की प्रशंसायें की । अकबर के प्रसिद्ध सामन्त खानखाना × ने अकबर के मुख से प्रताप की प्रशंसा सुनी । वह अत्यधिक प्रभावित हुआ और उसने उसी समय कहा—"इस संसार में सभी कुछ नाशवान है । राज्य और धन किसी भी समय नष्ट हो सकता है, लेकिन महान पुरुषों की ख्याति कभी नष्ट नहीं होती ।"

भयानक से भयानक विपत्तियों के आने पर भी राणा प्रतापसिंह का उत्साह कभी शिथिल न पड़ा । परन्तु अपने परिवार और छोटे-छोटे बच्चों के जीवन में इस समय जो कठिनाई चल रह थी, उससे कभी-कभी वह भयभीत हो उठता था । प्राय: उसकी स्त्री और उसके बच्चों के खाने-पीने की कोई व्यवस्था न हो पाती थी, जो कन्द मूल फल खाकर वे अपने दिन काट रहे थे, जब उनका भी कोई सुभीता न हो पाता तो राणा का हृदय कभी-कभी अधीर हो उठता था । मुगल सैनिक इस प्रकार उसके पीछे पड़ गये थे कि भोजन तैयार होने पर कभी-कभी खाने का अवसर न मिलता था और अचानक शत्रुओं का आक्रमण हो जाने पर भोजन छोड़कर सब को भागना पड़ता था । एक दिन तो यहाँ तक हुआ कि पाँच बार भोजन पकाया गया और पाँचों बार शत्रुओं के आ जाने से सब को भागना पड़ता । भोजन वहीं का वहीं पड़ा रह गया ।

एक दिन की घटना है । परिवार के लोगों के साथ एक पहाड़ी सूनसान स्थान पर राणा जी की कुछ बातें हो रही थीं । घास के बीजों को पीस कर प्रताप की रानी और उसकी पुत्र-बधू ने कई एक रोटियाँ बनायीं । वे काफी न थीं । इसलिए बनी हुई रोटियाँ आधी बच्चों को खाने के लिए वे दी गयीं और आधी इसलिए उठा कर रख दी गयीं कि वे भूखे होने पर बच्चे को फिर दी जायँगी । इसी समय राणा को अपनी लड़की का चिल्लाहट सुनायीं पड़ा । राणा ने दौड़ कर देखा तो मालूम हुआ कि लड़की को खाने के लिए उसके हिस्से में जो रोटी मिली थी, उसका आधा भाग लड़की के हाथ से बनबिलाव लेकर भाग गया । जीवन की इस दुरवस्था को देख कर राणा का हृदय एक बार काँप उठा । अधीर होकर उसने अनेक प्रकार की बातें सोच डाली । ऐसे संकटों के समय वह कह उठा : "उस राज्याधिकार को धिक्कार है, जिसके लिए जीवन में इस प्रकार के दृश्य देखने पड़ें ।" अपनी कठिनाइयों को दूर करने के लिए एक पत्र के द्वारा राणा प्रताप ने अकबर से माँग की ।

प्रतापसिंह का भेजा हुआ यह पत्र बादशाह अकबर को मिला । उसकी प्रसन्नता का ठिकाना न रहा । अकबर की समझ में आया कि प्रताप का स्वाभिमान अब खत्म हो गया । इस लिए इस प्रसन्नता में अकबर ने अनेक प्रकार के सार्वजानिक उत्सव किये । प्रताप के उस पत्र को बादशाह ने पृथ्वीराज नामक एक श्रेष्ठ राजपूत सरदार को भी दिखाया । पृथ्वीराज बीकानेर के राजा का छोटा भाई था और वह इन दिनों में अकबर बादशाह के यहाँ कैदी था । उसके कैदी होने का कारण यह था कि उसमें राजपूती स्वाभिमान था । दूसरे अन्य राजाओं और नरेशों वह की तरह अकबर की अधीनता स्वीकार करने के लिए तैयार न था इसीलिए वह कैद किया गया था और बन्दी अवस्था में वह बादशाह के यहाँ जीवन व्यतीत कर रहा था ।

अकबर ने प्रताप का वह पत्र बड़े अभिमान के साथ पृथ्वीराज को दिखाया । इसका

× बैरामखाँ के लड़के मिर्जाखाँ को खानखाना का खिताब मिला था । इस खिताब से मनुष्य की ख्याति और प्रसिद्धि बढ़ती है ।

कारण था। अकबर समझता था कि पृथ्वीराज भी अत्यन्त स्वाभिमानी है और उस स्वाभिमान के कारण ही वह कैदी बना है। इसीलिए उसने पृथ्वीराज को वह पत्र पढ़ने को दिया। पृथ्वीराज सदा से राणा प्रताप का सम्मान करता था और राणा ने मुगल बादशाह के मुकाबिले में जिस स्वाभिमान का प्रदर्शन किया था, पृथ्वीराज उसकी आराधना करता था। राजपूतों के पतन के दिनों में राणा प्रताप ने जिस राजपूतो गौरव की रक्षा की है, उससे प्रसन्न होकर पृथ्वीराज बड़े स्वाभिमान के साथ बातें किया करता था।

पृथ्वीराज एक अच्छा कवि था और स्वाभाविक रूप से भावुक था। बादशाह के हाथ से उस पत्र को पा कर पृथ्वीराज ने पढ़ा। उसका मस्तक चकराने लगा। उसके हृदय में भीषण पीड़ा की अनुभूति हुई। अपनी बढ़ती हुई अधीरता को सम्हाल कर अपने स्वाभाविक स्वाभिमान के साथ निर्भीकता-पूर्वक उसने बादशाह से कहा : "यह पत्र प्रतापसिंह का नहीं है। मैं उसे भली प्रकार जानता हूँ। किसी शत्रु ने राणा प्रतापसिंह के यश के साथ यह जाल साजी की है और आपको धोखा दिया है। आप के सम्पूर्ण साम्रज्य को पाने के लालच में भी वह ऐसा नहीं कर सकता।"

पत्र पढ़ कर पृथ्वीराज ने ऊपर लिखे हुए शब्दों में बादशाह को उत्तर दिया और अकबर का आदेश लेकर दरबार के एक दूत के हाथ पृथ्वीराज ने अपना पत्र प्रताप के पास भेजा। उस पत्र का अभिप्राय—जैसा कि अकबर ने समझा—प्रताप की असलियत जानने की थी। परन्तु पृथ्वी राज ने अपने पत्र के द्वारा प्रताप को उसके उस स्वाभिमान का स्मरण कराया था, जिसके लिए उसने अपने परिवार और साथ के राजपूतों के साथ भयानक विपदाओं का सामना किया था पृथ्वीराज ने यह पत्र राजस्थानी भाषा की कविता में लिखा था। वह पूरा पत्र कहीं पर भी प्राप्त होने की अवस्था में नहीं रहा। इसलिए उसका जो अंश पाया जाता है, उसका अर्थ संक्षेप में इस प्रकार है :

"हिन्दुओं का सम्पूर्ण भरोसा एक हिन्दू पर ही निर्भर करता है। राणा ने सब-कुछ छोड़ दिया है और इसी से आज भी राजपूतों का गौरव बहुत-कुछ सुरक्षित रह सका है। यदि प्रातप ने ऐसा न किया होता तो आज राजपूतों की बची हुई मर्यादा भी सुरक्षित न रह सकती थी। राजपूतों पर आज भयानक संकट है। हमारे घरों की स्त्रियों की मर्यादा छिन्न-भिन्न हो गयी है और बाजार में वह मर्यादा बेची जा रही है। उसका खरीदार अकेला अकबर है। बादशाह ने सीसोदिया वंश के एक स्वाभिमानी पुत्र को छोड़कर सब को मोल ले लिया है। परन्तु वह प्रताप को खरीद नहीं सका। वह राजपूत नहीं है, जो नौरोजा के लिए अपनी मर्यादा का परित्याग कर सकता है। फिर भी कितने ही राजपूतों ने अपनी मर्यादा भंग कर दी है। इस बिक्री में राजपूतों के बहुमूल्य पदार्थ बिक चुके हैं। क्या अब चित्तौर का स्वाभिमान भी इस बाजार में बिकेगा? प्रताप ने अपना सर्वस्व त्याग किया है, क्या अब वह अपने स्वाभिमानी गौरव को बेचना चाहता है। जो अब तक बिके हैं और जिनकी मर्यादा बाजार में खरीदी गयी है, वे साहसहीन थे—उन्होंने अपने आपको शक्तिहीन समझा था। इसीलिए उनके जीवन का यह उपहास हुआ। क्या अब हमीर के वंश का भी यही दृश्य होने वाला है? आज तक संसार राणा प्रताप के स्वाभिमान, पुरुषार्थ और साहस को देख कर चकित है। क्या संसार का वह आश्चर्य समाप्त होने वाला है? इस जीवन में कुछ भी अनित्य नहीं है। सब का नाश होने वाला है। बाजार में जिसने राजपूतों के गौरव की खरीद की है, वह भी एक दिन मिटनेवाला है। उस दशा में हमारे वंश का गौरव राणा प्रताप के द्वारा ही फिर सम्मान प्राप्त करेगा। उस दिन की प्रतीक्षा में राजस्थान के सम्पूर्ण राजपूतों की आँखें लगी हुई हैं।"

राठौर पृथ्वीराज की इस ओजस्वी कविता को पढ़ कर प्रताप के अंतरतर में उत्साह की

अटूट लहरें उठने लगीं। उसे एकाएक मालूम हुआ, मानो मेरे शरीर में दस हजार राजपूतों की शक्ति ने एक साथ प्रवेश किया है। वह तुरंत अपने मन में कह उठा : "मैं कभी भी अपने स्वाभिमान को नष्ट न करूँगा।"

पृथ्वीराज ने अपने पत्र में नौरोजा का उल्लेख किया है। उसके सम्बन्ध में कुछ स्पष्टीकरण यहाँ पर आवश्यक है। नौरोजा का अर्थ वर्ष का नया दिन होता है। यह मुसलमानों का धार्मिक त्योहार है। अकबर ने इसकी प्रतिष्ठा करके इसका नाम खुशरोज रखा था। इसका अर्थ होता है खुशी का दिन। इसकी प्रतिष्ठा अकबर बादशाह ने स्वयं की। उसके साम्राज्य में सभी हिन्दू और मुसलमान इस उत्सव को मनाने लगे। राज-दरबार में इसके लिए बड़े-बड़े आनन्द किये जाते। त्योहार समझ कर सभी को उसमें शामिल होने का अधिकार था। दरबार में एक प्रकार से सार्वजनिक सम्मेलन होता था। प्रतिष्ठित मुसलमानों और राजपूतों की स्त्रियाँ भी उस दिन दरबार में आती थीं इस खुशरोज के उत्सव में एक बात और भी की जाती थी। इस दिन एक बड़े स्थान में मेला लगता था, उस मेले में केवल स्त्रियाँ जाती थीं और उस मेले में बाजार लगता था, उसमें हिन्दू और मुसलमान स्त्रियाँ अपनी चीजों को बेचने के लिए दूकानें रखती थीं।

स्त्रियों के उस मेले में राज-परिवारों की स्त्रियाँ जाकर सौदा खरीदा करती थीं। किसी पुरुष के वहाँ जाने की पूर्ण रूप में मनाही थी और इसके लिए बादशाह की तरफ से कड़ा प्रबंध भी था। राठौर पृथ्वीराज की स्त्री भी इस उत्सव में एक बार शामिल हुई थी और वह स्त्रियों के मेले में भी गयी थी। उस मेले में न जाने कितनी स्त्रियों की मर्यादा नष्ट हो चुकी थी। केवल पृथ्वीराज की स्त्री ने बड़े साहस और शौर्य के साथ अपनी मर्यादा की रक्षा की। वह शक्तावत वंश की लड़की थी और मेवाड़ में ब्याही गयी थी। उस मेले में मुगल बादशाह का ध्यान पृथ्वीराज की स्त्री की तरफ गया और उसकी सुन्दरता को देखकर वह बहुत प्रभावित हुआ। उसकी भावनायें दूषित हुईं। किसी प्रकार उस मेले में उसने पृथ्वीराज की स्त्री को अलग लाने की चेष्टा की। उस मौके पर बादशाह की दूषित भावनाओं को समझकर पृथ्वीराज की स्त्री ने आवेश में आकर और अपने वस्त्रों से छिपी हुई कटार को निकालकर कहा: "खबदार, अगर इस प्रकार की तू ने हिम्मत की। कसम खा कि आज से कभी किसी स्त्री के साथ मैं ऐसा व्यवहार न करूँगा।" ऐसा कहकर पृथ्वीराज की स्त्री उस मेले से चली गयी।

पृथ्वीराज का पत्र पढ़ने के बाद राणा प्रताप ने अपने स्वाभिमान की रक्षा करने का फिर से निर्णय कर लिया। परन्तु उसके सामने जो कठिनाइयाँ थीं, इतनी भयानक हो गयी थीं कि उनमें रह कर भविष्य का कोई कार्यक्रम बनाना और उसमें सफलता पाना दुस्साध्य मालूम हो रहा था। ऐसे समय पर क्या करना चाहिए, यह बात बार-बार राणा सोचने लगा। वह किसी प्रकार अब मुगल बादशाह का आश्रय नहीं चाहता था। इसलिए अपनी स्वाधीनता की रक्षा के लिए उसने पहाड़ी स्थानों को छोड़कर किसी दूरवर्ती स्थान पर चले जाने का विचार किया। उसने अपनी सभी तैयारियाँ की। उसके साथ के सरदार भी उसके साथ चलने के लिए तैयार हो गये। सब के साथ प्रतापसिंह ने अरावली पर्वत के शिखर पर चढ़ना शुरू किया। चित्तौर के उद्धार की आशा अब उसके हृदय से जाती रही थी और वह सिंध नदी के किनारे पर बसे हुए सोगदी राज्य में चले जाने के लिए बिलकुल तैयार था। इसी समय मेवाड़ राज्य का वृद्ध मंत्री भामाशाह राणा प्रतापसिंह से आ कर मिला और अपने जीवन-भर में जो सम्पत्ति उसने एकत्रित की थी, वह सब उसने राणा प्रताप को ला कर सौंप दी। यह सम्पत्ति इतनी अधिक थी कि उससे बारह वर्ष तक पच्चीस हजार सैनिकों का खर्च पूरा किया जा सकता था।

भामाशाह से इस सम्पत्ति को पाकर प्रताप की शक्तियाँ फिर जागृत हो उठीं। उसने पर्वत छोड़कर चले जाने का विचार तोड़ दिया और अपने सरदारों तथा सामन्तों के साथ बैठकर चित्तौर के उद्धार का फिर से नया कार्यक्रम बनाने के लिए विचार करने लगा। थोड़े ही दिनों में उसने राजपूतों की एक अच्छी सेना बना ली। इन दिनों में मुगल सेना को राणा प्रताप के किसी आक्रमण का भय न रह गया था। ऐसे मौके पर प्रतापसिंह ने मुगल सेनापति शहबाजखाँ पर एकाएक आक्रमण कर दिया। उसके सैनिक मारवाड़ की तरफ भाग गये। उस समय देवीर नामक स्थान पर सेनापति शहबाज खाँ अपनी फौज के साथ मौजूद था। राणा प्रताप ने वहाँ पहुँचकर मुगल सेनाओं को घेर लिया।

देवीर के मैदानों में दोनों ओर की सेनाओं का भीषण संग्राम हुआ। अंत में शहबाज खाँ प्रतापसिंह के हाथ से मारा गया। उसके बहुत से सैनिकों का राजपूतों ने संहार किया। शहबाज खाँ के मारे जाने पर मुगल सैनिक इधर-उधर भाग गये। वहाँ से थोड़ी ही दूर पर मुगलों की दूसरी सेना पड़ी हुई थी। अपने विजयी राजपूतों को लेकर प्रताप वहाँ पहुँचा और वहाँ पर मुगलों की जो सेना थी, भयानक रूप से उसका संहार किया।

मुगलों की इन दोनों सेनाओं के मारे जाने पर मुगलों में बहुत घबराहट पैदा हो गयी। राणा प्रताप पर आक्रमण करने से लिए एक तीसरी मुगल सेना वहाँ पर आ गयी। उसका सेनापति अब्दुल्ला खाँ था। यह पहले से कमलमोर में मौजूद था। राजपूतों ने अब्दुल्ला खाँ की फौज पर आक्रमण किया। सेनापति अब्दुल्ला मारा गया।

राणा प्रताप ने थोड़े दिनों के भीतर ही तीन मुगल सेनाओं का संहार किया और बत्तीस दुर्गों को मुगलों से छीन कर अपने अधिकार में कर लिया। उन दुर्गों में जो मुसलमान सैनिक और उनके सेनापति थे, सभी मारे गये और सम्वत् १५८६ सन् १५३० ईसवी में चित्तौर, अजमेर और मण्डलगढ़ को छोड़ कर सम्पूर्ण मेवाड़ को राणा प्रताप ने जीत कर राजा मानसिंह का स्मरण किया, जिसके कारण उनको इन विपदाओं का सामना करना पड़ा। राणा मानसिंह को उसके देश द्रोह का बदला देने के लिए राणा प्रताप ने अम्बेर राज्य पर आक्रमण किया और वहाँ के प्रसिद्ध नगर मालपुर को लूट कर बरबाद कर दिया। इसके बाद अपनी सेना के साथ प्रताप उदयपुर की तरफ रवाना हुआ। उदयपुर में भी शत्रुओं का अधिकार हो गया था। परन्तु इस बीच में जब कई स्थानों पर मुगल सेनाओं की पराजय हुई और राणा प्रतापसिंह की राजपूत सेना आगे बढ़ी, उस मय उदय पुर से बिना युद्ध किये चली गयी। इसके बाद अकबर ने राणा प्रताप के साथ युद्ध बन्द कर दिया।

राणा प्रतापसिंह का अब बुढ़ापा आ गया था। सम्पूर्ण जीवन युद्ध करके और भयानक कठिनाइयों का सामना करके जिस प्रकार राणा ने अपना जीवन व्यतीत किया, उसकी प्रशंसा कभी इस संसार से मिट न सकेगी। अपने जीवन में राणा ने जो प्रतिज्ञा की थी, अंत तक उसको निभाया। राजप्रासाद को छोड़कर पेशोला सरोवर के समीप प्रतापसिंह ने कुछ झोपड़ियाँ बनवायी थीं कि जिनसे जाड़े की सरदी में और बरसात के पानी में रक्षा हो सके। इन्हीं झोपड़ियों में अपने परिवार को लेकर राणा ने जीवन व्यतीत किया। अब जीवन के अंतिम दिन थे। राणा ने चित्तौर के उद्धार की प्रतिज्ञा की थी। उसमें सफलता न मिली। परन्तु बादशाह की विशाल मुगल सेना को थोड़े से राजपूतों के द्वारा इतना छकाया कि अंत में अकबर को युद्ध बन्द कर देना पड़ा।

राणा के शौर्य, स्वाभिमान और कष्ट सहन से मेवाड़ का प्रत्येक राजपूत शूरवीर और त्यागी बन गया। युद्ध बन्द होने के पहले तक राणा ने बहादुरी के साथ मुगल बादशाह से

मोर्चा लिया और कभी अपना मस्तक नीचा न किया। अब वृद्धावस्था के दिन थे। एक दिन अपनी झोपड़ी में राणा थकान और बेबसी की दशा में लेटे हुए अपने सरदारों के साथ बातें कर रहा था। अचानक उसके नेत्रों से आँसू गिरते हुए देख कर सरदारों ने इसका कारण पूछा। उनको उत्तर देते हुए राणा ने कहा : "अब मेरा अन्तिम समय है। लेकिन एक ही कारण है जिससे मेरे प्राण नहीं निकल रहे है "

इतना कह कर राणा ने सरदारों की तरफ देखा और फिर कहा : "आप लोग मेरे सामने प्रतिज्ञा करें कि अपने प्राणों के रहते हुए आप लोग मेवाड़ की भूमि पर शत्रुओं को अधिकार न करने देंगे। आपके मुँह से इस प्रकार का आश्वसन पा कर मैं सदा के लिए आँखें बन्द कर लूँगा। मेरा लड़का अमरसिंह अपने पूर्वजों के गौरव की रक्षा न कर सकेगा, इस बात को मैं जानता हूँ। वह शत्रुओं से अपनी मातृ भूमि को सुरिक्षत नहीं रख सकता। अमरसिंह स्वभाव से विलासी है। जो कष्टों का सामना नहीं कर सकता, वह अपने जीवन में कभी कोई बड़ा काम नहीं कर सकता।" इतना कहने के बाद राणा का गला भर आया। कुछ रुक कर उसने फिर कहना आरम्भ किया : "एक दिन इस झोपड़ी में प्रवेश करने के समय अमरसिंह अपने सिर की पगड़ी उतारना भूल गया था। इसलिए झोपड़ी के दरवाजे पर लगे हुए बाँस से टकरा कर उसकी पगड़ी नीचे गिर गयी। अमरसिंह को यह देख कर बुरा लगा। उसने दूसरे दिन मुझसे कहा, रहने के लिए ऐसा महल बनवा दीजिए, जिससे इस प्रकार का फिर कोई कष्ट न हो।"

यह कहते-कहते राणा गम्भीर हो उठा उसके बाद एक ठण्डी साँस लेकर प्रतापसिंह ने आगे कहा : "मेरे मरने के बाद इन झोपड़ियों के स्थान पर राज महल बनेंगे और अमरसिंह उनमें रहा करेगा। राज महलों में रहने वाला जीवन के कठोर व्रत का पालन नहीं कर सकता। सुख की अभिलाषा रखने वाला कभी कोई महान कार्य करने के योग्य नहीं होता। अमरसिंह विलासी है। उसके द्वारा पूर्वजों के गौरव की रक्षा का विश्वास करना बिलकुल व्यर्थ है। मेवाड़-राज्य को मिली हुए स्वतंत्रता, अमरसिंह के समय फिर चली जायगी और जिस स्वतंत्रता के लिए मेवाड़-राज्य के अगणित शूरवीर राजपूतों ने अपने प्राणों को बलिदान किया, वह स्वतंत्रता फिर शत्रुओं के अधिकार में चली जायगी। जिस स्वतंत्रता के लिए अपने प्यारे राजपूतो सैनिकों और सरदारों के साथ काँटों से भरे हुए पहाड़ी जंगलों में मैने पूरे पच्चीस वर्ष बिताये हैं और मेरे परिवार के लोगों ने भूखे-प्यासे रह कर दिन काटे हैं, वह स्वाभिमान और गौरव मेरे मरने के बाद सुरक्षित न रहेगा, इस समय मेरे हृदय की यही पीड़ा है।"

प्रतापसिंह के मुख से इन बातों को सुनकर सरदारों ने विश्वास दिलाते हुए राणा से कहा: "हम लोग बप्पा रावल के सिंहासन की शपथ खाकर आपको विश्वास दिलाते हैं कि हम लोगों में जब तक एक भी जीवित रहेगा, मेवाड़ की भूमि पर शत्रुओं का अधिकार नहीं हो सकता। हम लोग शक्ति भर राजकुमार अमरसिंह को भी ऐसा कोई काम न करने देंगे, जिससे स्वर्ग में आपके आत्मा को कष्ट पहुँचे। जब तक मेवाड़-राज्य की पूरी स्वतंत्रता हम लोग प्राप्त न कर लेंगे, उस समय तक हम लोग इन्हीं झोपड़ियों में रहेंगे।"

सरदारों के मुख से राणा प्रताप ने इन शब्दों को सुना और उसके बाद अपनी आँखें बन्द कर लीं। फिर राणा के नेत्र न खुले। सम्वत् १६५३ सन् १५६७ ईसवी में राणा प्रताप ने इस संसार को छोड़कर स्वर्ग की यात्रा की।

इक्कीसवाँ परिच्छेद

राणा प्रताप के लड़के—बड़ा लड़का अमरसिंह—राजा मानसिंह और बादशाह अकबर—बादशाह अकबर के साथ मानसिंह के जीवन का संघर्ष—मानसिंह को विष देकर मार डालने की अकबर की चेष्टा—दिल्ली के सिंहासन पर जहाँगीर—मुगल-सेना का मेवाड़ पर आक्रमण—अमरसिंह की निर्बलता—मेवाड़ के सरदारों का असंतोष—सरदारों का निर्णय—देवीर में मुगल-सेना के साथ राजपूतों का युद्ध—दोनों ओर के सैनिकों का भयानक संहार—देवीर और रणपुर के युद्धों में मुगलों की पराजय—बादशाह जहाँगीर की चिन्तनायें—चित्तौर के सिंहासन पर सागर जी को बिठाकर बादशाह जहाँगीर ने क्या समझा था ?—सागर जी से मेवाड़ के लोगों की घृणा—चित्तौर के सिंहासन पर सागर जी के सात वर्ष—उसके जीवन का असंतोष—अपमान के अनुभव से सागर जी को राज्य से विरक्ति—अमरसिंह को चित्तौर के अधिकार की प्राप्ति—राणा अमरसिंह के सामन्तों में हीरोल का संघर्ष—अन्तला के दुर्ग पर मेवाड़ के सामन्तों की परीक्षा—चन्द्रावत और शक्तावत सामन्त—राणा प्रतापसिंह के साथ शक्तसिंह के विरोध की घटना—राजपूतों से मुगलों की लगातार पराजय—युद्ध में शाहजादा खुर्रम—अमरसिंह और मुगल बादशाह ।

राणा प्रतापसिंह के सत्रह लड़के थे । अमरसिंह सबसे बड़ा था । इसलिए प्रतापसिंह के मरने के बाद सम्वत् १६५३ सन् १५९७ ईसवी में वह सिंहासन पर बैठा । आठ वर्ष की आयु से लेकर प्रताप के मरने के समय तक अमरसिंह अपने पिता के पास रहा और जीवन के भयानक संकटों में उसने अपने दिन बिताये थे । इस समय उसके कई लड़के थे । प्रतापसिंह के मरने के बाद आठ वर्ष तक बादशाह अकबर जिन्दा रहा । उसके बाद उसकी भी मृत्यु हो गयी । अर्द्ध शताब्दी से अधिक समय तक उसने सफलता पूर्वक शासन किया । अपनी बुद्धिमानी और राजनीति के द्वारा उसने अपने राज्य को बहुत विस्तृत बना लिया था । यूरोप के बादशाहों में फ्रांस का चौथा हेनरी, स्पेन का पाँचवाँ चार्ल्स और इंगलैण्ड की रानी एलिजाबेथ को अकबर की समानता दी जाती है । रानी एलिजाबेथ और बादशाह अकबर में पत्र व्यवहार भी होते रहे थे । हेनरी और एलिजाबेथ के मंत्रियों की तरह अकबर के मंत्री भी सुयोग्य और राजनीतिज्ञ थे । फ्रांस के राजमंत्री सूली की तरह मुगल साम्राज्य का मंत्री बहराम खाँ समझदार और बहादुर था । उसी की योग्यता के द्वारा मुगल साम्राज्य की बहुत वृद्धि हुई । अकबर की उन्नति के इस प्रकार कई कारण थे ।

राजा मानसिंह बादशाह अकबर से मिलकर और सभी प्रकार मुगल साम्राज्य की सहायता करके अकबर का दाहिना हाथ बन गया था । बादशाह की सेना में वह एक प्रसिद्ध सेनापति था और राजपूत राजाओं को अकबर की अधीनता में लाने के लिए उसने बहुत बड़ा काम किया । अपने इन कार्यों के द्वारा वह बादशाह का अत्यन्त विश्वास पात्र बन गया था । उसी के कारनामों के कारण राणा प्रताप और बादशाह अकबर को जीवन भर युद्ध करना पड़ा ।

राणा प्रताप के साथ युद्ध बन्द कर देने के बाद सम्राट अकबर और राजा मानसिंह के बीच जीवन का एक संघर्ष पैदा हुआ । राजा मानसिंह की जो बहन सलीम मानबाई को ब्याही थी, उससे लड़का पैदा हुआ और उसका नाम खुशरो था । वह मानसिंह का भांजा था । मानसिंह अपने भांजे को दिल्ली के सिंहासन पर बिठाने की कोशिश में था । उसकी इस कोशिश का रहस्य अकबर को

मालूम हो गया। अकबर को इससे बहुत आघात पहुँचा और उसने मानसिंह को किसी प्रकार मार डालने का निश्चय किया। उसने माजूम बनवाई और उस माजूम के आधे हिस्से में उसने विष मिलवा दिया। होनहार को कोई नहीं जानता। अकबर ने विष मिली हुई माजून को खिलाकर मानसिंह को मार डालने की बात सोची थी। परन्तु इसका उलटा हुआ। संयोग से विष मिली हुई माजूम अकबर स्वयं खा गया। जिससे मानसिंह तो बच गया लेकिन अकबर की मृत्यु हो गयी। ×

सिंहासन पर बैठकर अमरसिंह ने अपने राज्य की उन्नति के कई एक कार्य किये। खेतों में सुधार करवाया। भूमि के अनुसार उन पर कर लगाया गया। जिन सामन्त और सरदारों ने राणा प्रताप की सहायता करके कठिनाइयों का सामना किया था, उनको नयी-नयी जागीरें दी गयीं। इन दिनों में अमरसिंह के सामने जीवन का कोई संघर्ष न था। वह शांति और विश्राम से अपना जीवन बिता रहा था। पेशोला झील के किनारे प्रताप ने अपने रहने के लिए झोपड़ियाँ बनवाई थीं, अमरसिंह ने वहाँ पर अपने लिए एक छोटा-सा राजमहल बनवाया।

दिल्ली के सिंहासन पर बैठे हुए अभी चार वर्ष भी न बीते थे, जहाँगीर ने अपने घरेलू झगड़ों को दूर किया और अमरसिंह पर आक्रमण करने की बात वह सोचने लगा। उसे मालूम था कि अमरसिंह शाँतिपूर्वक बैठा हुआ है। उसके पास युद्ध को कोई तैयारी नहीं है। इस प्रकार का अवसर पाकर दिल्ली की मुगल सेना मेवाड़ की तरफ रवाना हुई। इस समाचार के मिलते ही अमरसिंह घबरा उठा। उसने इस प्रकार के आक्रमण का कोई अनुमान न किया था। अपने महल में रहकर वह संतोष का जीवन बिता रहा था। इन दिनों में उसकी विलासिता बढ़ गयी थी। शांति और संतोष के दिनों में अकर्मण्यता का पैदा होना स्वाभाविक होता है। अमरसिंह आलसी हो गया था। अनेक खुशामदी लोगों के पास रहने और उनकी झूठी प्रशंसाओं को सुनते-सुनते वह इस प्रकार की बातों के सुनने का अभ्यासी हो गया था।

मुगल सेना के आक्रमण का समाचार सुनकर अमरसिंह संकट में पड़ गया। इस समय क्या करना चाहिए, इसका वह कुछ निर्णय न कर सका। जो खुशामदी लोग उसके पास रहा करते थे, वे अमरसिंह को उसकी निर्बल शक्तियों का आभास करा कर उत्साहहीन करने लगे। अमरसिंह को स्वयं अपने चारों ओर निर्बलता दिखायी देने लगी।

आक्रमण के लिये आने वाली मुगल सेना का समाचार पाकर मेवाड़ के सरदार अमरसिंह के पास पहुँचे। वह जिस महल में रहा करता था और जिसको उसने स्वयं बनवाया था, उसका नाम उसने 'अमर-महल' रखा था। उसी अमर महल में चित्तौर के सरदार एकत्रित हुए। उन्होंने देखा कि अमरसिंह के पास मुगलों के होने वाले आक्रमण को रोकने के लिए कोई तैयारी नहीं है। अमरसिंह को शांत देखकर सरदारों ने मुगल सेना के आक्रमण की बात कही। परन्तु अमरसिंह ने उसके सम्बन्ध में कुछ सही उत्तर न दिया।

अमरसिंह की यह अवस्था देखकर सरदारों को बड़ा असंतोष हुआ। इसी समय शालुम्बा

× बुढ़ापे के दिनों में अकबर और मानसिंह के बीच वैमनस्य पैदा हो गया था। यह वैमनस्य था बादशाह के उत्तराधिकार के सम्बन्ध में। मानसिंह ने अकबर की बड़ी सहायता की थी और उसी के कारण अकबर के आधे राज्य की वृद्धि हुई थी। अकबर भी इसीलिए उसका बहुत आदर करता था। उत्ताधिकार के सम्बन्ध में अकबर और मानसिंह का वैमनस्य बढ़ता चला गया। उसने मानसिंह को विष देकर मारने की कोशिश की थी। परन्तु वह विष अकबर के लिए प्राणघातक हो गया। अकबर ने जो कुछ सोचा था, नैतिकता की दृष्टि से वह एक अपराध था। उस अपराध का बदला उसे मिला।

सरदार ने उत्तेजना पैदा करने वाली बातें अमरसिंह से कही और अपने असंतोष में उसने यह भी कहा कि आप राणा प्रतापसिंह के बड़े लड़के हैं। आप सीसोदिया वंश के वंशज है। इस वंश ने अपनी स्वाधीनता की रक्षा के लिए किस प्रकार के बलिदान किये हैं, यह बहुत कुछ आपने अपने नेत्रों से देखा है। आक्रमण करने के लिये मुगल सेना सिर पर आ गयी है। ऐसे संकट के समय आपका चुपचाप बैठे रहना हम सबके निकट भय और असंतोष पैदा कर रहा है। आपको तुरंत युद्ध की तैयारी करना चाहिए।

अमरसिंह इन बातों को चुपचाप सुनता रहा। यह देखकर शालुम्ब्रा सरदार को बहुत क्रोध आया। उसने दाहिना हाथ पकड़कर अमरसिंह को सिंहासन के नीचे की तरफ खींचा और कहा: "सरदारों, राणा प्रतापसिंह के पुत्र को घोड़े पर बिठाकर मेवाड़ के कलंक की रक्षा करो।"

शालुम्ब्रा सरदार के इस व्यवहार से अमरसिंह ने अपना अपमान अनुभव किया। परन्तु शालुम्ब्रा सरदार ने उसकी कुछ भी परवा न की। पास खड़े हुये अन्य सरदार लोग यह सब देख थे। सबके आग्रह करने पर अमरसिंह सिंहासन से उतरा और घोड़े पर सवार हुआ। सभी सरदार अमरसिंह के साथ उस स्थान से रवाना हुए और पर्वत के नीचे की तरफ चलने लगे। रास्ते में सरदारोंके साथ बहुत-सी बातें हुई। उनको सुनकर अमरसिंह में उत्साह पैदा हुआ। सरदारों के मुँह से उसने सुना कि जिस गौरव की रक्षा करने के लिए राणा प्रताप ने अपने जीवन के अंतिम दिनों तक भीषण संकटों का सामना किया था, आज उस गौरव को नष्ट करने के लिए फिर मुगल सेना ने आक्रमण किया है। सरदारों ने कहा, हम लोग जब तक जीवित हैं, उस गौरव को कभी भी नष्ट न होने देंगे।

अमरसिंह की समझ में सब बातें आ गयीं। उसने प्रसन्न होकर और उत्साह में आकर सरदारों के साथ परामर्श किया। उसने समझा कि हम लोगों के पास विशाल सेना नहीं है, परन्तु जितने भी राजपूत हैं, और शूरवीर हैं अपनी स्वाधीनता की रक्षा के लिए प्राणों का बलिदान देने को तैयार हैं। अमरसिंह के हृदय में उत्साह की वृद्धि हुई। अपनी राजपूत सेना को लेकर वह तेजी के साथ शत्रुओं से युद्ध करने के लिए रवाना हुआ।

मुगल सेना देवीर नामक स्थान पर मौजूद थी। राजपूत सेना ने वहाँ पहुँचकर एक साथ भयानक आक्रमण किया। खानखाना का भाई मुगल सेना का सेनापति था। देवेरा पर्वत के पहाड़ी रास्ते पर दोनों सेनाओं का सामना हुआ और भीषण युद्ध आरम्भ हो गया। दोनों तरफ से बहुत देर तक युद्ध होता रहा। उस मारकाट में दोनों सेनाओं के बहुत से आदमी मारे गये। सायंकाल का समय हो रहा था। राजपूत सरदारों ने इस समय भयानक मारकाट की। उससे बहुतेरे शूरवीर मुगल मारे गये। दिल्ली की सेना पीछे हटकर भागने लगी और थोड़ी ही देर में युद्ध समाप्त हो गया। सम्वत् १६६४ सन् १६०८ ईसवी को इस संग्राम में राजपूतों की विजय हुई। इस युद्ध में राजपूत सेना के कर्ण ने अपनी बहादुरी का परिचय दिया था। वह राणा का चाचा था और उसी से कर्णावत गोत्र की उत्पत्ति हुई।

इस युद्ध में पराजित होने के कारण दिल्ली में बहुत असंतोष पैदा हुआ। बादशाह जहाँगीर ने इस पराजय की आशा न की थी। इसलिए एक वर्ष के बाद सम्वत् १६६५ के बसन्त में युद्ध की दिल्ली में फिर तैयारी की गयी और एक विशाल मुगल सेना को लेकर अब्बुल्ला नामक सेनापति मेवाड़ की तरफ चला। इस आक्रमण का समाचार राणा अमरसिंह को मिला। उसी समय उसने अपने सरदारों को बुलाकर एकत्रित किया और युद्ध की तैयारी करके वह अपनी सेना के साथ

रवाना हुआ। रणपुर नाम के पहाड़ी रास्ते पर दोनों सेनाओं का आमना-सामना हुआ और मार-काट आरम्भ हो गयी।

दोनों तरफ से बहुत समय तक भीषण युद्ध हुआ। अन्त में राजपूतों के आगे बढ़ने से मुगल सेना पीछे हटने लगी। उस समय राजपूतों ने मुगलों पर भयानक आक्रमण किया। उसके फलस्वरूप लगभग सम्पूर्ण मुगल सेना मारी गयी। जो मुगल सैनिक बाकी बचे, वे युद्ध से भाग गये। ×

देवीर और रणपुर के युद्धों में मुगलों की भयानक पराजय हुई। इस हार से दिल्ली में अनेक प्रकार की चिन्तायें होने लगीं। बादशाह जहाँगीर चिन्तित होकर तरह-तरह की बातें सोचने लगा। उसने किसी प्रकार अमरसिंह को नीचा दिखाने के लिए अपने मंत्रियों से परामर्श किया। उसने सागर जी नामक राजपूत को राणा बनाकर चित्तौर के सिंहासन पर बिठाया। इस सागर जी के सम्बन्ध में पहले लिखा जा चुका है। वह राणा प्रताप का भाई था और बहुत पहले अकबर से जाकर मिल गया था। बादशाह जहाँगीर ने स्वयं सागर जी का अभिषेक किया और उसे चित्तौर का राजा घोषित किया।

चित्तौर के सिंहासन पर सागर जी को बिठाकर बादशाह जहाँगीर ने समझा था कि मेवाड़ के राजपूत सागर जी को अपना राजा मान लेंगे और इस प्रकार मेवाड़ राज्य मुगलों की अधीनता में आ जायगा। परन्तु ऐसा नहीं हुआ। मेवाड़ की प्रजा पहले से ही इस बात को जानती थी कि सागर जी मुगलों से मिल गया है। इसलिए समस्त मेवाड़ के लोग सागर जी से घृणा करते थे। चित्तौर के सिंहासन पर बैठने से सागर जी से मेवाड़ के लोग और भी अधिक घृणा करने लगे। अभिषेक के उत्सव में राज्य का कोई भी आदमी शामिल न हुआ। चित्तौर में रहकर सागर जी ने स्वयं इस बात को समझा कि यहां के लोग मुझको पापी और अपराधी समझते हैं।

इस प्रकार के जीवन में सागर जी ने चित्तौर के सिंहासन पर बैठकर सात वर्ष तक राज्य किया। परन्तु उसको स्वयं इस दशा पर संतोष और सुख न था। इससे पहले, जब वह चित्तौर का राणा नहीं बना था और मुगल दरबार में रहता था तो वह प्रसन्न था। चित्तौर में आकर और सिंहासन पर बैठकर प्रजा की घृणा के कारण वह रात-दिन असंतुष्ट रहने लगा। मनुष्य अपने जीवन में सबसे पहले सम्मान चाहता है। जहाँ पर वह रहता है, यदि वहाँ के लोग उससे घृणा करते हैं तो उसके सारे वैभव उसको अपने अपमान के रूप में दिखायी देते हैं।

सागर जी का यही हाल हुआ। राज्य के लोगों की घृणा को देख कर वह उदास रहने लगा। वह खुद भी समझता था कि मेरा यह वैभव मुगल सम्राट की गुलामी का परिचय देता है। यह शासनभी मुगलों के द्वारा ही मुझे प्राप्त हुआ है। इसमें मेरे अधिकार की कोई बात नहीं है। वह चित्तौर में जिस तरफ देखता है, उसे अपना अपमान ही दिखायी देता। जिस सिंहासन पर वह बैठा था, उसके आस-पास उसको अपना कोई न दिखायी देता। सभी उसको अपना शत्रु समझते थे। जीवन की इन परिस्थितियों में सागर जी रात-दिन दुखी रहने लगा।

चित्तौर में रहकर सागर जी ने भली प्रकार इस बात को समझा कि यहाँ के लोग अमर-

---

× इस लड़ाई में राजपूतों की तरफ जो सरदार मारे गये, उनमें प्रमुख इस प्रकार है—देवगढ़ के ठाकुर दूधा संगावत, नारायणदास, सूरजमल, यशकरण, शक्तावत सरदार, भानुसिंह का पुत्र पूर्णमल, राठौर हरिदास, साद्री का राजा झाला, कटिरदास कछवाहा, बेदला का चौहान केशवदास, मुकुन्ददास राठौर और जयमाल का वंशज जयमलोत।

सिंह को ही अपना राजा मानते हैं । इस दशा में नाम के लिए यहाँ शासन करना मेरे लिए सिवा अपमान के और कुछ नहीं है । इस प्रकार की रात-दिन बहुत-सी बातें सोचकर सागर जी ने अमरसिंह को बुलाया और चित्तौर का राज्याधिकार उसको उसने सौंप दिया ।

सागर जी अपने अपमानित जीवन से बहुत दुखी हो गया था । इसलिए वह चित्तौर से निकल कर कंधार के पहाड़ पर चला गया और वहाँ वह एकान्त जीवन बिताने लगा । परन्तु वहाँ पर भी उसको शांति न मिली । उसकी इस दशा में दिल्ली के बादशाह ने उसको अपने दरबार में बुलाया और बादशाह जहाँगीर ने स्वयं उसका बहुत तिरस्कार किया । उस अपमान से सागर जी बहुत दुखी हुआ । अब उसको अपना जीवन भार मालूम होने लगा । इसलिए बादशाह जहाँगीर के सामने सागर जी ने तलवार से अपने प्राणों का अंत कर दिया ।

सागर जी के द्वारा अमरसिंह को चित्तौर का सिंहासन मिल गया । परन्तु उससे उसको प्रसन्नता न हुई । वह जानता था कि शक्तिशाली मुगल सम्राट की शत्रुता के कारण मैं इस सिंहासन पर सकुशल अधिक समय पर न रहने पाऊँगा । उसे दिल्ली की सेना से प्रत्येक समय भय बना रहता । यद्यपि चित्तौर को प्राप्त करने के बाद राणा अमरसिंह ने मेवाड़ राज्य के अस्सी दुर्गों और नगरों को अपने अधिकार में कर लिया था । इन दुर्गों में अन्तला नाम का दुर्ग प्राप्त करने में राणा अमरसिह के दो श्रेष्ठ सामन्तों में भयानक संघर्ष हुआ था । राणा की सेना में जो राजपूत सरदार थे, वे राजपूतों की बहुत-सीं शाखाओं और उपशाखाओं में विभाजित थे । उनमें चंदावत और शक्तावत नाम की दो राजपूत शाखायें इन दिनों में शक्तिशाली हो रही थीं । दोनों राणा के दरबार में श्रेष्ठता चाहती थीं । इसी प्रधानता को प्राप्त करने के संबन्ध में चंदावत और शक्तावत सरदारों में उस समय संघर्ष पैदा हुआ, जब दिल्ली के मुगल सिंहासन पर जहाँगीर बादशाह था और वह दो बार अमरसिंह की राजपूत सेना से पराजित हो जाने के कारण तीसरे आक्रमण की तैयारी कर रहा था ।

राणा अमरसिंह की सेना में इस बात का झगड़ा उठा कि 'हीरोल' का अधिकारी कौन है । इस हीरोल को चंदावात सरदार अपने लिए चाहता था और शक्तावत सरदार अपने लिए चाहता । इस बात को लेकर दोनों राजपूत सरदारों में झगड़ा होने लगा । हीरोल का अभिप्राय सेना के आगे का भाग है । सरदारों में जो सब से श्रेष्ठ होता था, उसी को हीरोल का अधिकारीमाना जाता था । यह अधिकार सेना में श्रेष्ठता का परिचय देता था ।

दोनों सरदारों में इस झगड़े के बढ़ जाने पर राणा अमरसिंह ने निर्णय करते हुए कहा : "अन्तला दुर्ग पर पहुँचकर सबसे पहले अधिकार करने का जो प्रमाण देगा, इस हीरोल का वही अधिकारी होगा ।"

राणा के इस निर्णय को सुनकर दोनों ही सरदारों ने स्वीकार कर लिया और दोनों ही अपने साथ के राजपूतों को लेकर उस दुर्ग की तरफ रवाना हुए । राणा अमरसिंह की राजधानी से अन्तला दुर्ग की दूरी नौ कोस थी । यह दुर्ग ऊँची जमीन पर बना हुआ है और उसके चारों तरफ मजबूत पत्थरों की मोटी दीवार है । उस दुर्ग के ऊपर एक सरदार अपनी छोटी-सी सेना के साथ रहा करता था । उसके रहने के दुर्ग के भीतर एक सुरक्षित राजमहल है । उसके चारों तरफ खाई खुदी है । उसमें प्रवेश करने के लिये एक ही द्वार है ।

इस दुर्ग पर मुगलों का अधिकार था । दुर्ग के रक्षक सरदार और उसके सैनिकों को जीतने के बाद ही उस पर अधिकार किया जा सकता था । इसी उद्देश्य में चंदावत और शक्तावत उसकी तरफ रवाना हुए थे । सबसे पहले उस दुर्ग के सामने शक्तावत लोग पहुँचे । वहाँ के सरदार को इस

बात की कोई जानकारी न थी। शक्तावत राजपूतों ने दुर्ग पर आक्रमण किया। उसी समय उसके रक्षक सरदार ने अपने सैनिकों के साथ आकर सामना किया। दोनों तरफ से मारकाट आरम्भ हो गयी।

चंदावत लोग अन्तला दुर्ग का रास्ता भूल गये थे और वे एक ऐसे स्थान पर पहुँच गये थे, जो बहुत दूर तक जल से भरा हुआ था। उस जलमयी भूमि के कारण अन्तला दुर्ग के रास्ते का खोजना चंदावत लोगों के लिए मुश्किल हो रहा था। इस दशा में किसी गड़रिये की सहायता से उन लोगों को रास्ता मिला और उसके बाद वे लोग अन्तला दुर्ग के सामने पहुँचे। ये लोग अपने साथ एक मजबूत और लम्बी सीढ़ी ले गये थे। उसकी सहायता से चन्दावत लोग दुर्ग पर चढ़ने की कोशिश करने लगे।

दुर्ग के मुस्लिम अधिकारी ने चंदावत सरदार के ऊपर एक गोला छोड़ा। सरदार उससे नीचे गिर गया। इस समय चंदावत और शक्तावत कुछ देर के लिए रुके और फिर अपनी पूरी शक्ति लगाकर उस दुर्ग पर चढ़ने लगे। शक्तावत सरदार हाथी पर था। उसने अपना हाथी दुर्ग के द्वार की तरफ बढ़ाया द्वार के मजबूत किवाड़ों में लोहे के काँटेदार मोटे-मोटे कीले लगे थे। इसलिए हाथी के मस्तक का आघात किवाड़ों को तोड़ न सका। उस समय एक साथ चंदावत लोगों की तरफ से जोरदार आवाज उठी। शक्तावत सरदार ने उस आवाज को सुना। वह अपने हाथी से उतर पड़ा और किवाड़ों में लगे हुए लोहे पर पैर रखते हुए वह ऊपर चढ़ गया और महावत ने उसकी आज्ञा से हाथी को तेजी के साथ आगे बढ़ाया। इस बार हाथी के भीषण आघात से द्वार के किवाड़े टूट गये। लेकिन उन किवाड़ों के गिरने के साथ-साथ शक्तावत सरदार चोट खाकर पृथ्वी पर गिरा और तुरंत उसके प्राण निकल गये। उसके साथ के राजपूत सैनिकों ने इस बात की कुछ भी परवा न की। उनका सरदार हाथी के आघात से चोट खाकर गिरते ही मर गया। परन्तु उसके सैनिकों ने उसकी तरफ देखा तक नहीं और उसके मृत शरीर पर उसके समस्त राजपूत पैर रखते हुए बड़ी तेजी के साथ खुले हुए द्वार के भीतर चले गये। चन्दावत सरदार गिरकर पहले ही मर चुका था परन्तु शक्तावत लोगों ने दुर्ग पर पहुँचकर देखा कि चंदावत सरदार का मृत शरीर दुर्ग के ऊपर मौजूद है। उसके गिरने के कुछ ही देर बाद चंदावत लोगों का जो जय-घोष सुनायी पड़ा था, वह दुर्ग की विजय का परिचायक था और वह चंदावत लोगों की तरफ से हुआ था।

दुर्ग के सरदार के गोले से गिरकर मर जाने पर उसके स्थान की पूर्ति दूसरे चंदावत ने की थी और वह मरने वाले सरदार का सहायक था। उसका नाम चन्दा ठाकुर था। इसने अपने सरदार के गिरते ही उसे उठाया और उसके शरीर को अपने दुपट्टे से कमर में बाँधकर दुर्ग के मुसलमानों को मारता हुआ वह आगे बढ़ा। इस प्रकार उसने अपने सरदार का मृत शरीर अन्तला दुर्ग के ऊपर पहुँचा दिया। इस सफलता के द्वारा हीलोर का अधिकार चंदावत लोगों ने पाया। उनके द्वारा दुर्ग के रक्षक सैनिक मारे गये और जो बचे, वे दुर्ग छोड़कर भाग गये।

यहाँ पर शक्तावत लोगों के सम्बन्ध में कुछ प्रकाश डालना आवश्यक मालूम होता है। राणा उदयसिंह के पच्चीस लड़के थे शक्तसिंह दूसरा था। वह छोटेपन से ही तेजस्वी और निर्भीक था। उसकी छोटी अवस्था में ज्योतिषियों ने राणा उदयसिंह से कहा था कि तुम्हारा यह लड़का मेवाड़ के लिए कलंक होगा। शक्तसिंह उस समय से राणा को खटकने लगा था। एक समय राणा ने उसको मार डालने का प्रयत्न किया था। परन्तु उस समय शालुम्ब्रा सरदार ने राणा से शक्तसिंह की रक्षा की थी। एक समय शिकार खेलते हुए प्रतापसिंह और शक्तसिंह में झगड़ा हो गया और

उसके कारण जंगल में दोनों भाई एक दूसरे के प्राण घातक हो गये। उस समय मेवाड़ राज्य के एक वृद्ध मंत्री ने उन दोनों को रोकने की कोशिश की। लेकिन जब उसे सफलता न मिली तो वृद्ध मंत्री ने तलवार मार कर वहीं पर अपने प्राण दे दिए। मंत्री की इस प्रकार मृत्यु से झगड़ा तो रुक गया, परन्तु प्रतापसिंह ने मेवाड़ राज्य छोड़कर चले जाने के लिए शक्तसिंह को आदेश दिया। शक्तसिंह उसी समय मेवाड़ राज्य से निकल कर चला गया और दिल्ली के मुगलों से मिल कर वह बादशाह अकबर के यहाँ रहने लगा।

प्रतापसिंह ने उस मंत्री का अंतिम संस्कार किया और उसके लड़के को जीवन-निर्वाह के लिए एक जागीर दे दी। शक्तसिंह अकबर के यहाँ जा कर रहने लगा और हलदीघाटी के युद्ध में अंतिम समय उसने खुरासानी तथा मुलतानी सैनिकों से अपने भाई प्रतापसिंह की रक्षा की। उसके बाद दोनों फिर स्नेहपूर्वक रहने लगे।

शक्तसिंह के सत्रह पुत्र हुए। उनमें परस्पर स्नेह और बन्धुत्व का भाव न था। शक्तसिंह अपने परिवार के साथ भिनसोर के दुर्ग में रहा करता था। वहाँ पर उसके लड़कों में झगड़ा पैदा हुआ और उस झगड़े के कारण एक भाई अचलसिंह अपने छोटे पन्द्रह भाइयों के साथ वहाँ से ईदर राज्य की तरफ चला गया। उन दिनों में ईदर राज्य राठौरों के अधिकार में था। उस राज्य में पहुँचने के पहले ही रास्ते में अचलसिंह की गर्भवती स्त्री से एक बालक पैदा हुआ। उसका नाम आशा रखा गया।

इसके पश्चात् अचलसिंह सब को लेकर ईदर राज्य पहुँचा। वहाँ के राजा ने बड़े सम्मान [illegible]थ उसको अपने यहाँ स्थान दिया। शक्तसिंह के लड़कों ने शक्तावत गोत्र की प्रतिष्ठा की। [illegible] समय अमरसिंह ने जहाँगीर बादशाह से लड़ने के लिए सेना का संगठन करना शुरू किया था, [illegible] समय शक्तसिंह के लड़के ईदर राज्य से बुला लिए गये और और वे उदयपुर में आकर रहने लगे।

इन्हीं शक्तावत लोगों के साथ चन्दावत सरदार का विवाद पैदा हुआ था और उस विवाद के फलस्वरूप अन्तला दुर्ग पर जो मुसलमानों के अधिकार में था, विजय हुई। जो शक्तावत लोग अन्तला दुर्ग पर अधिकार करने गये थे, शक्तसिंह का लड़का बल्ल उनका सरदार था और उसने दुर्ग को प्राप्त करने के लिए अपने प्राण दे दिये। शक्तावत वंश धीरे-धीरे इतना विशाल हो गया कि शक्तसिंह के तीन-चार पीढ़ी बाद मेवाड़ के राणा ने आवश्यकता के समय दस हजार शक्तावत वीरों को युद्ध में भेजा था।

राणा अमरसिंह से लगातार पराजित होने के बाद भी बादशाह जहाँगीर के उत्साह में कोई कमी न आयी। वह राजपूतों के अहंकार को नष्ट करने की बात बराबर सोचता रहा। इसके कुछ ही समय बाद मुगलों की एक बड़ी फौज तैयार हुई और राणा अमरसिंह पर आक्रमण करने के लिए वह भेजी गयी। उस फौज का सेनापति जहाँगीर का लड़का परवेज था। यह सेना अजमेर में जा कर रुकी। बादशाह जहाँगीर ने उस समय परवेज को अपने पास बुला कर उत्साह पैदा करने वाली बहुत-सी बातें कहीं और समझाया : "तुम इस हमले में अपनी कोई ताकत उठा न रखना। मुझे उम्मेद है कि तुमको फतहयाबी हासिल होगी। लेकिन अगर राणा अमरसिंह अथवा उसका बड़ा लड़का कर्ण तुम्हारे पास आवे तो तुम खातिरदारी का व्यवहार उसके साथ करना और उस अदब-कायदे को भूल न जाना जो एक बादशाह की तरफ से दूसरे बादशाह के लिए जरुरी होता है। इस बात का भी ख्याल रखना कि दुश्मन के मुल्क को तुम्हारी फौज के सिपाहियों से किसी किस्म का नुकसान न पहुँचे।"

मुगल सेना के आने का समाचार पाकर अमरसिंह ने युद्ध की तैयारी की और अपने सामन्तों तथा सरदारों के साथ वह मुगल सेना का मुकाबिला करने से लिए रवाना हुआ। अरावली के एक पहाड़ी रास्ते पर दोनों सेनाओं का सामना हुआ और खामनोर नामक स्थान पर युद्ध आरम्भ हो गया। दोनों तरफ से भयानक मारकाट हुई। अंत में मुगलों की विशाल सेना लगातार पीछे हटने लगी। बादशाह के बहुत-से आदमी मारे गये। इसके बाद दिल्ली की फौज अजमेर की तरफ चली गयी।

बादशाह जहाँगीर ने अपने लड़के परवेज के साथ मुगल सेना को भेज कर यह आशा की थी कि इस लड़ाई में मुगलों की जीत होगी। परन्तु उसका उलटा हुआ। अब्बुल फजल ने मुगल सेना की हार को मंजूर करते हुए लिखा है : "शाहजादा परवेज लड़ाई से भागने के बाद एक ऐसे पहाड़ी मुकाम पर पहुँच गया कि जो उसके लिए बहुत खतरनाक साबित हुआ। उल हालत में शाहजादा परवेज वहाँ से निकल कर किसी तरह अपनी जान बचा सका।"

परवेज की सेना के हार जाने के बाद बादशाह ने दूसरी फौज तैयार की और अपने पोते महाबत खाँ को उसका सेनापति बना कर राजपूतों से लड़ने के लिए भेजा। महावत खाँ बहुत बहादुर था और उसने कई लड़ाइयों में विजय प्राप्त की थी। लगातार राजपूतों से हार होने के कारण बादशाह ने महावत खाँ को अपनी फौज के साथ रवाना किया।

महावत खाँ ने राजपूतों की सेना के साथ युद्ध किया, लेकिन आखीर में उसकी सेना की पराजय हुई। परवेज का बेटा महावत खाँ इस लड़ाई में मारा गया। बादशाह की फौज ने भाग कर और दिल्ली पहुँच कर हाल बताया। उसे सुन कर जहाँगीर जरा भी निराश न हुआ। उसके पास न तो धन की कमी थी और न फौज की। एक फौज के हार जाने पर वह दूसरी फौज को राजपूतों से लड़ने से लिए भेज देता था।

मुगलों से लगातार युद्ध करके राणा अमरसिंह की शक्तियाँ अब क्षीण हो गयी थीं। उसके पास सैनिकों की अब बहुत कमी थी। शूरवीर सरदार और सामन्त अधिक संख्या में मारे जा चुके थे। लेकिन राणा अमरसिंह ने किसी प्रकार अपनी निर्बलता को अनुभव नहीं किया। उसने सिंहासन पर बैठने के बाद और राणा प्रतापसिंह की मृत्यु के पश्चात् दिल्ली की शक्तिशाली मुगल सेना के साथ सत्रह युद्ध किये और प्रत्येक युद्ध में उसने शत्रु की सेना को पराजित किया।

लगातार युद्धों में पराजित होकर बादशाह जहाँगीर ने एक शक्तिशाली सेना अपने बहादुर बेटे खुर्रम के अधिकार में भेजी। यही खुर्रम बाद में शाहजहाँ के नाम से दिल्ली के सिंहासन पर बैठा। वह युद्ध में लड़ाकू और समझदार था। खुर्रम की फौज के पहुँचते ही मेवाड़ राज्य में घबराहट पैदा हुई। राजपूत इन दिनों में अपनी सैनिक निर्बलता को भली भाँति अनुभव करते थे। लड़ाई के अस्त्र-शस्त्रों की भी भयानक रूप से कमी थी। बहुत समय से लगातार युद्ध करते हुए अगणित राजपूत अब तक युद्धमें मारे जा चुके थे और जो बाकी रह गये थे, वे बहुत थक गये थे। लगातार युद्धों के कारण मेवाड़ के राजपूतों के साहस निर्बल पड़ रहे थे। परन्तु जो सरदार और सामन्त अभी जीवित थे, युद्ध करने के लिए तैयार हो गये। धन की कमी को किसी प्रकार पूरा किया और मेवाड़ के राजपूतों को एकत्रित करके युद्ध की तैयारी की गयी।

राजपूत सेना युद्ध करने के लिए मैदान में आ गयी। दोनों तरफ से सैनिक आगे बढ़े और भयानक संग्राम आरम्भ हो गया। शाहजादा खुर्रम के साथ जो मुगल सेना आयी थी, वह बहुत बड़ी थी। उसके समाने राजपूतों की सेना कुछ भी न थी। इसका परिणाम यह हुआ कि कुछ समय तक युद्ध करने के बाद बहुत-से राजपूत मारे गये और अंत में अमरसिंह की पराजय हुई। इसके

बाद मेवाड़ और दिल्ली—दोनों राज्यों के बीच के जीवन में किस प्रकार के परिवर्तन हुए और वे परिवर्तन कैसे हुए, इस बात को बहुत-सही-सही जानने के लिए बादशाह जहाँगीर की लिखी हुई पंक्तियों का यहाँ पर उल्लेख करना अत्यन्त आवश्यक मालूम होता है, जिनको उसने स्वयं अपनी लेखनी से अपने रोजनामचे में लिखा था :

"अपनी हुकूमत के आठवें साल हिजरी १०२२ सन् १६१३ ईसवी में मैंने ख्याल किया कि अजमेर की तरफ रवाना होने के पहले मैं अपने लड़के खुर्रम को भेज दूँगा। सफर का इन्तजाम हो जाने के बाद कई तरह के कीमती खिलत, एक हाथी, एक घोड़ा, एक तलवार और एक ढाल मैंने उसको दी। जो फौज उसकी मातहती में थी, उसके अलावा बारह हजार सवार ज्यादा उसको दिये और अजीम-खाँ को उसका सिपहसालार बनाकर उसके मातहत लोगों को इनाम दिये।"

"हिजरी १०२३ सन् १६१४ ईसवी को मैं अपने तख्त पर था और यह साल मेरी हुकूमत का नवां वर्ष था कि मेरे लड़के ने आलमगुमान हाथी के साथ दूसरे अठारह हाथी और कुछ आदमी जिनमें कुछ औरतें भी थीं और जो लड़ाई के वक्त गिरफ्तार की गयी थी—मेरी नजर में भेजे। दूसरे दिन उस आलमगुमान हाथी पर बैठ कर मैं शहर में घूमने के लिए गया। उस मौके पर बहुत-सी अशरफियाँ लुटाईं गयीं।"

"इसके बाद मुझे खुशखबरी मिली कि राणा अमरसिंह ने सुलह का पैगाम भेजा है और वह मेरी मातहती मंजूर करने के लिए खुशी से तैयार है। मेरे खुश किस्मत लड़के ने राणा के राज्य में अपनी फौज के बहुत-से नाके कायम कर दिये हैं और उन नाकों पर अपने ही आदमी इन्तजाम कर रहे हैं। मुल्क की आबहवा खराब है और तमाम राज्य बंजर पड़ा हुआ है। वहाँ पहुँचने में भी परेशानी होती है। इस वजह से कुल मुल्क को कब्जे में लाना नामुमकिन मालूम हुआ। लेकिन मेरी फौज ने मौसिमों की कुछ परवाह न करके तमाम मेवाड़ को अपने काबू में कर लिया वहाँ के कुछ राजपूतों और दीगर लोगों की औरतों के साथ उनके लड़के भी कैद किये गये। राणा इन बातों से बहुत नाउम्मेद हो गया और यह ख्याल करके कि अगर इसी तरह की हालत कायम रही तो या तो मुल्क छोड़ना पड़ेगा या कैद में जाना होगा, बहुत आजिज होकर सुलह की दरख्वास्त की। अपने दो सरदारों को खुर्रम के पास भेज कर राणा ने कहला भेजा कि अगर मुझे माफ किया जाय तो मैं जिस तरीके से दूसरे हिन्दू राजा मातहती में हैं, मैं भी उस के लिए तैयार हूँ और इसके लिए अपने लड़के कर्ण को दरबार में भेज सकता हूँ। मेरा बेटा दरबार में रहेगा। बुढ़ापे के सबब से मैं खुद वहाँ नहीं रह सकता। इसके लिए मैं माफी चाहता हूँ।"

"मेरी हुकूमत के जमाने में चित्तौर मातहत हुआ, इसके लिए मुझे बड़ी खुशी है और हुक्म दिया कि मेवाड़ के पुराने मुश्तहक महरूम नहीं रहेंगे। इस बात का मुझको कामिल यकीन है कि राणा अमरसिंह और उसके बुजुर्गों को अपनी ताकत का पूरा इतकाद था। उनको पहाड़ी लोगों की ताकत का पूरा यकीन था, वे अपनी कौम के नाम पर मगरूर थे, वे हिन्दूस्तान के दूसरे राजाओं को राजा नहीं समझते थे, उन्होंने कभी किसी के सामने सिर नहीं झुकाया था। ऐसी हालत में इस अच्छे मौके को हाथ से जाने देना मैंने मुनासिब नहीं समझा। इसलिए फौरन अपने लड़के को इख्तियारात दे कर भेजा और राणा को माफी दी। साथ ही एक फरमान भेज कर राणा को लिख दिया कि आप मेरे साथ बिना किसी फिक्र के रहेंगे। उस फरमान पर मैंने अपना पंजा भी लगा दिया। मैंने अपने लड़के को ताकीद कर दी कि उस मुअज्जिज राणा की मंशा और ख्वाहिश के मुआफिक सब बातें काम में लाई जावें।"

"मेरे लड़के ने यह फरमान और एक चिट्ठी सूपकर्ण और हरिदास के जरिए से वहाँ भेजी

और इन दोनों सरदारों के साथ शुक्रउल्ला व सुन्दरदास को भी रवाना किया। उसने राना को कहला भेजा कि बादशाह इस दस्तखती परवाने को कबूल करें। बाद इसके कुछ तारीख को राणा साहब का शाहजादे के पास आना करार पाया।"

"शिकार खेलने के लिए जब मैं अजमेर गया, उस वक्त शाहजादे खुर्रम का मुहम्मद बेग नामी नौकर मेरे पास आया। उसने खुर्रम की दस्तखती एक चिट्ठी देकर मुझसे कहा कि राणा ने शाहजादा साहब से मुलाकात की थी।"

"इस खबर को सुनते ही मैंने मुहम्मद बेग को एक हाथी, एक घोड़ा और एक तलवार इनाम में दी और उसको जुलफिकार-खाँ की पदवी दी।"

"सुलतान खुर्रम के साथ राणा अमरसिंह और राजकुमार कर्ण की मुलाकात और बेगम नूरजहाँ का कर्ण को इज्जत के साथ ओहदा देने का बयान।"

"राणा अमरसिंह ने तारीख २६ इकशम्बा के रोज बादशाहत के दूसरे मातहत राजाओं की तरह इज्जत और लियाकत के साथ शाहजादा से मुलाकात की। मुलाकात के वक्त राणा साहब ने शाहजादा खुर्रम को एक बेशकीमती पद्मराग, बहुत-से हथियार, बड़ी कीमत के हाथी और नौ घोड़े खिराज में दिये। शाहजादा ने भी उसको हलीमियत और इज्जत के कबूल किया। बादजाँ राना ने शाहजादे के घुटनों को पकड़ कर माफी चाही। खुर्रम ने भी अच्छी तरह से उनको समझा-बुझाकर दिलासा दिया और एक हाथी, कई एक घोड़े और एक तलवार लायक खिलत भी उनको दी। राणा साहब के साथ में जो राजपूत थे, उनके लिये भी एक सौ बीस खिलत, पचास घोड़े और रतनों से जड़े हुए बारह सिरपेंच (कलगी) भेजे गये। अगरचे इन लोगों में सौ आदमियों से ज्यादा इनाम पाने के लायक नहीं थे तो भी यह सब सामान उनमें बाँट दिया गया। इन राजा लोगों में एक रिवाज चला आता है कि बाप-बेटे दोनों एक साथ हम लोगों की मुलाकात को नहीं आते। राणा ने भी इस रिवाज के मुताबिक काम किया। वे अपने लड़के को साथ नहीं लाये। उस दिन सुलतान खुर्रम ने अमरसिंह को रुखसत कर दिया। उस वक्त उनसे वलीअहद कर्ण के भेज देने का अहद पैमान हो लिया। वक्त पर कर्ण आया। हाथी, तलवार और दूसरे हथियारों के सिवा तरह-तरह के खिलत उसको दिये गये। उस दिन ही शाहजादे के साथ वह मुझसे मुलाकात करने के लिए आया।"

"सुलतान खुर्रम ने मुझसे मुलाकात करके कहा कि अगर हुजूर हुक्म दें तो राजकुमार कर्ण आप की कदमबोसी हासिल करे। मैंने उसके लाने का हुक्म दिया। वह आजजी और अदब के साथ आया। बादजाँ सुलतान खुर्रम की सिफारिश से मैंने उसको अपनी दाहिनी तरफ़ बिठा लिया और एक उमदा खिलत दी। राजकुमार इस लिए शरमाया कि वह सख्त पहाड़ी मुल्कों में रहने के सबब दरबार के कायदों से महज नावाकिफ और ऐश आरामों के सामानों से बिलकुल महरूम था। दरबार शाही के दबदबे को उसने कभी नहीं देखा था। वह बहुत कम बोलता और हम लोगों के साथ बहुत कम मिलना चाहता था। राजकुमार कर्ण के दिल में अपना यकीन कराने के लिए मैं रोज व रोज उसको अपनी कोशिश और अपनी मुहब्बत का एक नमूना दिखाता था। उसके मुकर्रर होने से एक दिन बाद मैंने उसको जवाहिरात से जड़ी हुई एक छूरी और तीसरे दिन एक ईराकी घोड़ा दिया। इस ही दिन मैं उसको बेगम नूरजहाँ के पास ले गया। नूरजहाँ ने भी राजकुमार को सजा सजाया हाथी, घोड़ा, तलवार और बहुत से जवाहरात इनाम में दिये।"

"इस ही दिन मैंने भी उसको मोतियों का एक हार और दूसरे दिन एक हाथी बतौर इनाम

के दिया। मेरी जियादा ख्वाहिश थी कि शाहज़ादे को नफीस और उमदा उमदा सामान दिया जावे। जिस वख्त मुझको कोई खूबसूरत और उमदा तोग्रफा मिलता, मैं फौरन राजकुमार को दे देता। एक बार मैंने उसको तीन बाज और तीन तुरा जानवर दिये। वह जानवर यहाँ तक पोस मान गये थे कि हाथ बढ़ाते ही हाथ पर आकर बैठ जाते थे। एक सजोवा और दो कीमती अँगूठियाँ भी उसको दी गयीं और इस ही महीने की पिछली तारीख को मैंने गलीचे, खूबसूरत जरी के काम की आराम कुर्सियाँ, अतर की शीशियें, तिलाई बरतन और दो गुजराती बैल दिये।"

"दसवाँ साल। इस वक्त कर्ण को उसकी जागीर में जाने के लिए छुट्टी दी। रुखसत के वक्त एक हाथी, एक घोड़ा और एक मोतियों का हार जिसकी कीमत पचास हजार रुपये थी, दिया। उस बार कर्ण जितने दिन तक मेरे दरबार में रहा, उतने अरसे में उसको जितना सामान मेरे यहाँ से मिला, उसकी कीमत दस लाख से ज्यादा होगी, उसमें उस इनाम और सामान की कीमत नहीं लगाई गयी है जो शाहजादे खुर्रम ने राजकुमार को दिया था। मैंने मुबारक खाँ को कर्ण के साथ रवाना किया और उसकी मारफत राणा साहब को एक हाथी, व घोड़े वगैरह और कुछ पोशीदा खबरें भी भेजीं।"

"हिजरी सन् १०२४ सफर महीने की आठवीं तारीख को शाहज़ादे कर्ण के लिए पाँच हजारी मनसबदारी दी गयी। इस वख्त मैंने उसको एक कंठा भी इनाम में दिया था जिसमें पन्ने लगे हुए थे।"

"बाद इसके मुहर्रम की २४ तारीख को (सन १६१५ ईसवी) कुमार कर्ण का लड़का जगतसिंह, जिसकी उम्र बारह वर्ष की थी, दरबार में आया। उसने अदब के साथ आदाब बजा लाकर अपने वालिद और दादा की अर्जी पेश की। उसके आली खन्दान में पैदा होने का सबूत साफ-साफ उसके चेहरे से जाहिर हो रहा था। उसके साथ बर्ताव मेहरबानी से किया गया, मैं तरह-तरह की बखशीशें देकर उसको खुश करने लगा।"

"सावन के दसवें दिन जगतसिंह मेरी इजाजत लेकर अपने मुल्क को गये। वख्त रुखसत तक मैंने उसको बीस हजार रुपये, एक घोड़ा, हाथी, और तरह-तरह के खिलत दिये। राजकुमार कर्ण के उस्ताद हरिदास जाला को पाँच हजार रुपये, एक घोड़ा और खिलत तथा उस ही की मारफत राणा जी के पास सोने की छै मूर्तिया भेजीं।"

"तारीख २८-रवि-उल-अव्वल। आज मेरी सलतनत का ग्यारहवाँ साल है। मेरे हुक्म से राणा साहब और उनके लड़के कर्ण की दो मूर्तियाँ बनायी गयीं, ये मूर्तियाँ संगमरमर की बनी थीं। जिस दिन वह दोनों मूर्तियाँ तैयार करके मेरे पास लाई गयीं, उसी दिन की तारीख उन पर खुदवा कर उन्हें आगरे के बाग में फरोकश करने का हुक्म दिया।"

"मेरी सलतनत के ग्यारहवें वर्ष में एतमादखाँ ने मुझको लिख भेजा कि सुलतान खुर्रम राणा जी के मुल्म में गये। वहाँ पर राणा और उनके लड़के ने सात हाथी, सत्ताईस घोड़े, जवाहरात और तिलाई गहने वगैरह नजराने में दिये थे। इस नजराने में सुलतान खुर्रम ने सिर्फ तीन घोड़े ले कर बाकी सब सामान फेर दिया। उस दिन यह बात भी करार पाई कि राजकुमार कर्ण मय पन्द्रह सौ राजपूतों के मैदान जंग में शाहजादा खुर्रम के पास रहें।"

"अपनी सलतनत के तेरहवें वर्ष में जिस वख्त मेरा दरबार सिंदला में लगा हुआ था, वहीं पर राजकुमार कर्ण ने आकर मुझसे मुलाकात की। मुझको मुल्क दक्खन में जो फतह और कामयाबी हासिल हुई थी, उसके लिए खुशी जाहिर कर कर्ण सिंह ने सौ मोहर, एक हजार रुपये तरह-तरह के नजराने और इक्कीस हजार रुपये के सोने चाँदी के जेवरात व बहुत से हाथी, घोड़े मुझको

दिये। हाथी, घोड़ों को वापिस करके बाकी सब नजराना मैंने ले लिया, दूसरे दिन मैंने उसको खिलत देकर फतेहपुर से लौट जाने का हुक्म दिया। वक्त रुख्सत के उसको एक हाथी, एक घोड़ा, तलवार व कटार और उसके बाप के लिए एक उमदा घोड़ा यह सामान दिया।"

"चौदहवाँ साल। तारीख १७ रबि-उल-अव्वल हिजरी सन् १०२६ को मैंने अमरसिंह के बहिश्त नशीन होने की खबर पायी। राणा का बेटा भीमसिंह और पोता जगतसिंह यह खबर लेकर मेरे पास आये थे। उनको मैंने तरह-तरह के खिलत दिये और राजा किशोरीदास की मारफत एक चिट्ठी जिसमें तसल्ली दी गयी थी, कितने एक उमदा घोड़े, तख्तनशीन होने का जरूरी सामान रवाना करके कर्णसिंह को राणा का खिताब दिया। बादजाँ ७ वी सव्वाल को बिहारीदास वर्मन की मारफत एक फरमान जिस पर मेरा पंजा लगा हुआ था, रवाना करके कहला भेजा कि उनका लड़का मुकर्रिर फौज को साथ लेकर मेरे पास हाजिर हो।"

बादशाह जहाँगीर की यहाँ पर लिखी हुई पंक्तियों की एक पक्षीय आलोचना स्वयं मेवाड़-राज्य के गौरव को कम कर सकती है। इसलिए निष्पक्ष भावसे उन पर प्रकाश डालने की आवश्यकता है। शाहजादा खुर्रम के मुकाबिले में राजपूतों की पराजय के कारण अमरसिंह को दिल्ली के मुगलों की अधीनता स्वीकार करनी पड़ी। इतना लिख देने से मेवाड़ के राजपूतों का यथार्थ गौरव व्यक्त न हो सकता था और न राणा अमरसिंह के उस साहस और धैर्य का अनुमान किया जा सकता था, जिसके द्वारा उसने राणा प्रताप के मरने के बाद मेवाड़-राज्य के गौरव को कायम रखा था। जहाँगीर के उल्लेख से मेवाड़ का वह गौरव साफ-साफ हमारे सामने आ जाता है, जो इन दिनों में मुगल बादशाह के निकट कायम हुआ। इस परतंत्रता के बावजूद भी जहाँगीर ने अमरसिंह को वह सम्मान दिया, जो इसके पहले मुगलों से मेवाड़-राज्य को कभी न मिला था। इस सम्मान में जितना ही हम मेवाड़ के राजपूतों का शौर्य, स्वाभिमान, बलिदान और साहस अनुभव करते हैं, उतना ही हमें जहाँगीर के श्रेष्ठ चरित्र, उदार भाव बड़प्पन और निष्पक्ष भाव को स्वीकार करने के लिए मजबूर होना पड़ता है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि अमरसिंह के अधीनता स्वीकार करने पर बादशाह को प्रसन्नता हुई, परंतु उस प्रसन्नता में उसका अहंभाव, अभिमान और अमरसिंह के प्रति अपमान का भाव न था। उसने अपनी लेखनी के द्वारा मेवाड़ के गौरव को स्वीकार किया। बहुत समय तक राजपूतों ने जिस प्रकार स्वाभिमान के साथ मुगलों से युद्ध किया था और भयंकर कष्टों के जीवन में भी कभी मस्तक नीचा करने का विचार न किया, अमरसिंह और उसके पूर्वजों के इन गुणों की उसने खूब प्रशंसा की और उनके इस क्षत्रियोचित कार्य को बधाई दी। उसने निष्पक्ष भाव से अमरसिंह और उसके पूर्वजों के उस श्रेष्ठ उद्देश्य को स्वीकार किया, जिसके लिए उनको मुगलों के साथ इतने दिनों तक युद्ध करना पड़ा था। अधीनता स्वीकार करने के लिए पैगाम भेजने पर जहाँगीर ने अमरसिंह के साथ न्यायपूर्ण व्यवहार किया, यह पैगाम उसने उसी समय भेजा, जब उसके सामने दो ही बातें रह गयी थीं, वह या तो गिरफतार हो सकता था अथवा देश छोड़कर कहीं चला जा सकता था। अमरसिंह के सामने इन दो बातों को छोड़ कर, तीसरी कोई बात न थी। ऐसे समय पर बादशाह जहांगीर ने अनेक प्रशंसाओं के साथ राजपूतों के गौरव को स्वीकार किया। यह उसकी उदारता थी कि उसने अपने दरबार में अमरसिंह की उपस्थिति को क्षमा कर दिया। मुगलों ने राणा के प्रिय आलमगुमान हाथी को पकड़ कर बादशाह को भेंट किया था और जहाँगीर उस पर बैठ कर अपनी राजधानी में घूमने निकला था, विजय की खुशी में उसका ऐसा करना, सार्वजनिक उत्सवों की अपेक्षा कहीं श्रेष्ठ था। जहाँगीर ने अपने लड़के को राणा के पास भेजने के समय हिदायत दी थी कि वह राणा के साथ ठीक उसी प्रकार का व्यवहार करे, जैसा

कि एक बादशाह का दूसरे बादशाह के साथ होना चाहिए। उसका यह व्यवहार इस बात का ज्वलन्त प्रमाण है कि वह मनुष्य का सम्मान करना जानता था और उसकी यह लोकप्रियता किसी भी मनुष्य के हृदय पर प्रभाव डालती है। उसकी यह उदारता उसको अमिट सम्मान पाने का अधिकारी बनाती है। राजपूतों के राजा के प्रभुत्व को उसका स्वीकार करना उसकी श्रेष्ठता का प्रमाण है, मेवाड़ के उत्तराधिकारी के आने पर उसने उसको अन्य उपस्थित राजाओं से अधिक सम्मान देते हुए अपनी दाहिनी तरफ स्थान दिया। उसने कर्ण के संकोच और लज्जा-भाव को देखकर उसके कारण का जो उसने उल्लेख किया है, उससे मालूम होता है कि वह कर्ण की तरफ से सफाई दे रहा है। बालक जागतसिंह के दरबार में आने पर उसके व्यवहार में बादशाह ने एक सुन्दर शिष्टाचार को अनुभव किया और उसकी प्रशंसा की।

राणा अमरसिंह ने अंत तक अपनी योग्यता और बहादुरी का प्रमाण दिया। वह प्रसिद्ध सीसोदिया वंश में पैदा हुआ, राणा प्रताप का लड़का था। पिता के बाद उसने बड़ी बुद्धिमानी के साथ सिंहासन पर बैठ कर अपने कर्त्तव्य का पालन किया। मेवाड़-राज्य में जितने भी राजा हुए, अमरसिंह सभी में योग्य और श्रेष्ठ था।

बाईसवाँ परिच्छेद

अमरसिंह की मृत्यु—उसका लड़का कर्ण राज्य के सिंहासन पर—मेवाड़-राज्य की दशा—आर्थिक दशा का सुधार—राणा कर्ण के जीवन में साहस और पुरुषार्थ—प्रजा को सभी प्रकार की सुविधायें—राज्य की आर्थिक निर्बलता को दूर करने के लिए राणा कर्ण का प्रयास—बादशाह जहाँगीर के दरबार में राणा कर्ण को सम्मान—मुगल-दरबार में स्वाभिमानी राजपूतों का सम्मान—राणा कर्ण के द्वारा मेवाड़-राज्य की उन्नति—राणा कर्ण का छोटा भाई भीम—भीम और शाहजादा खुर्रम—भीम और खुर्रम में स्नेहपूर्ण व्यवहार—मुगल-शासन का अधिकारी शाहजादा परवेज—भीम शाहजादा खुर्रम का पक्षपाती था—भीम पर बादशाह जहाँगीर का अविश्वास—शाहजादा खुर्रम की प्रसिद्धि बादशाह शाहजहाँ के नाम से—वह जोधाबाई (जगत गोसाईं) का पुत्र था—भीम और मुगल-सेना—पराजय के बाद भीम का संहार—राणा कर्ण के महल में शाहजादा खुर्रम—उदयपुर में शाहजादा खुर्रम को सम्मान—मेवाड़ के सिंहासन पर राणा जगतसिंह—राणा जगतसिंह में शासन की योग्यता—बादशाह शाहजहाँ के बुढ़ापे में उसके लड़कों का विद्रोह—राजसिंह के द्वारा दारा शिकोह का समर्थन—मुगलों के घरेलू संघर्ष में राजस्थान के राजाओं ने राजसिंह का समर्थन किया—दारा के समर्थक राजपूत राजाओं के साथ औरंगजेब की शत्रुता—बादशाह औरंगजेब और प्रभावती—औरंगजेब के साथ राणा राजसिंह का संघर्ष।

अमरसिंह की मृत्यु के बाद उसका बड़ा लड़का कर्ण अपने पिता के राज सिंहासन पर सम्वत् १६७७ सन् १६२१ ईसवी में बैठा। इसके पहले से ही मेवाड़ राज्य लगातार युद्धों के कारण शक्तिहीन हो गया था। कनकसेन की सौराष्ट्र में स्थापना से लेकर इस समय तक पन्द्रह सौ वर्षों का लम्बा समय बीत चुका है। इस बीच में बप्पा रावल के वंश में होने वाले राजाओं पर जिस प्रकार की विपत्तियाँ आयीं और उन विपदाओं के कारण मेवाड़ के राजाओं को समय-समय पर

अपना राज्य और देश छोड़ कर पहाड़ों के जंगलों और निर्जन स्थानों में रह कर जीवन बिताना पड़ा, इसके वर्णन पिछले परिच्छेदों में किये जा चुके हैं।

दूसरी शताब्दी के मध्यकाल में कनकसेन ने लोह्कोट को छोड़कर सौराष्ट्र के किनारे अपना अस्तित्व कायम किया था। वहाँ पर उसके वंशजों का अरसे तक राज्य करना, शिलादित्य का समय, असभ्य पार्थियन लोगों का आक्रमण, परिवार के साथ शिलादित्य का मारा जाना, गहिलोत वंश की उत्पत्ति, ईदर राज्य की प्राप्ति, बप्पा रावल का समय, चित्तौर पर बप्पा का अधिकार, उदयपुर की प्रतिष्ठा, सीसोदिया वंश का गौरव, बाद में उसकी शोचनीय अवस्था और अंत में मेवाड़-राज्य का मुगलों की अधीनता में आना इत्यादि घटनाओं के उल्लेख उनके समुचित स्थानों पर किये जा चुके हैं। राणा अमरसिंह के बाद उसके पुत्र कर्ण के शासन काल में मेवाड़-राज्य ने जिस प्रकार करवट बदली और उसके फलस्वरूप, उस राज्य में जो परिवर्तन हुए, इस परिच्छेद में उन पर प्रकाश डाला जायगा।

राणा कर्ण का जीवन साहस और चरित्र से भरा हुआ था। सिंहासन पर बैठने के बाद उसने अपने राज्य की गिरी हुई परिस्थितियों का अध्ययन किया। राज्य सभी प्रकार दीन-दुर्बल हो चुका था। शूरवीर लगातार लड़ाई के कारण मारे जा चुके थे और सम्पत्ति का राज्य में पूर्ण रूप से अभाव था। न तो सरकारी खजाने में रुपया था और न राज्य की प्रजा के पास कुछ रह गया था। कर्ण ने इस अभाव को दूर करने की कोशिश की। प्रजा को सभी प्रकार की सुविधायें दी गयी, जिससे वह खेती के व्यवसाय से अपनी आर्थिक उन्नति कर सके। राणा कर्ण को इतने से ही संतोष न हुआ। इन सुविधाओं के द्वारा राज्य और प्रजा की गरीबी को दूर करने के लिए बहुत समय की आवश्यकता थी और कर्ण उस अभाव को जल्दी पूरा करने की चेष्टा में था। इसके लिए उसने अपने साथ सवारों की एक सेना तैयार की और उसे अपने साथ लेकर सूरत में पहुँच गया। वहाँ उसने लूट-मार की और अपने साथ लूट की एक अच्छी सम्पत्ति लेकर वह लौट आया। इस सम्पत्ति की सहायता से राणा कर्ण ने राज्य के आर्थिक अभाव को बहुत-कुछ पूरा किया और उससे प्रजा को भी सहायता मिली।

गहिलोत वंश के राजाओं ने डेढ़ हजार वर्ष तक भारतवर्ष में सम्मान और गौरव के साथ शासन किया। इस दीर्घ काल में उस वंश के कई राजाओं को भयानक कष्टों का सामना करना पड़ा। परन्तु उनके गौरव में कभी कोई अन्तर नहीं आया। जय और पराजय की दोनों परिस्थितियों में इस वंश के राजाओं ने अपने पूर्वजों के सम्मान की रक्षा की थी। लेकिन उन्होंने अपनी स्वाधीनता को कभी जाने नहीं दिया। इस स्वतंत्रता की रक्षा के लिए राणा प्रताप को अपने जीवन-भर त्याग और बलिदानों के साथ जिस प्रकार संघर्ष करना पड़ा था, उससे सीसोदिया वंश के राजाओं का गौरव बहुत ऊँचा हो गया था। उसी गौरव का यह परिणाम था कि दिल्ली का प्रसिद्ध सम्राट अकबर प्रताप के त्याग और कष्ट सहन की प्रशंसा करता था। दोनों एक दूसरे के शत्रु थे और कुछ समय के आगे-पीछे दोनों के जीवन का अंत हुआ।

बहुत दिनों तक युद्ध करने के बाद और लगतार मुगल सेनाओं को पराजित करने के बाद राणा अमरसिंह को अपनी विवश अवस्था में मुगलों की अधीनता स्वीकार करनी पड़ी थी। राजस्थान के अन्य सभी राजाओं ने भी अकबर की अधीनता मंजूर की थी और बहुत पहले मंजूर की थी। लेकिन उन राजाओं की अधीनता में और राणा अमरसिंह की अधीनता में महान अन्तर था। अमरसिंह के शासन काल में जहाँगीर दिल्ली के सिंहासन पर था। अमरसिंह के अधीनता स्वीकार करने पर बादशाह जहाँगीर ने अमरसिंह के बड़े पुत्र कर्ण को, उसके मुगल दरबार आने पर सिंहा-

सन पर अपनी दाहिनी तरफ स्थान दिया था। उस समय राजस्थान के दरबार में सभी राजा उपस्थित थे और उनकी मौजूदगी में बादशाह जहाँगीर ने कर्ण को यह सम्मान देकर राणा अमरसिंह के गौरव को जिस प्रकार स्वीकार किया था, उसका कारण राणा प्रताप के जीवन का त्याग तप, कष्ट,सहन और बलिदान था। इतिहास की इस प्रकार की घटनायें जीवन में इस बात का प्रमाण देती हैं कि मनुष्य को कठिनाइयों और विपदाओं का सामना करने में जो ख्याति और श्रेष्टता प्राप्त होती है, वह सुख-सुविधाओं और जीवन के किसी भी दूसरे बड़प्पन में कभी भी सम्भव नहीं होती।

राजस्थान के जिन राजाओं ने बिना किसी संघर्ष और कष्ट-सहन के मुगलों की अधीनता स्वीकार की थी, वे सदा के लिए मुगल दरबार में उपस्थित रहने के लिए विवश थे। परन्तु राणा अमरसिंह के सामने इस प्रकार की कोई पाबंदी न थी। बादशाह जहाँगीर ने सम्मान पूर्वक इस पाबंदी से उसको बरी कर दिया था और उसके लड़के कर्ण को मुगल-दरबार में मेवाड़ के सिंहासन पर बैठने के समय तक ही उपस्थित रहना पड़ा था। इसके पश्चात् उस पाबंदी से वह मुक्त हो गया था।

मेवाड़ के सिंहासन पर बैठकर राणा कर्ण ने अपने राज्य की उन्नति की। उसकी सेना में उसका छोटा भाई भीम सेनापति था। भीम जन्म से ही साहसी और तेजस्वी था। जहाँगीर का बेटा खुर्रम उसका बड़ा आदर करता था और इसी आदर के कारण दोनों में बहुत मित्रता बढ़ गयी थी। शाहजादा खुर्रम ने अपने पिता जहाँगीर से भीम की प्रशंसा की थी और लड़के की सिफारिश के कारण जहाँगीर ने भीम को राजा की उपाधि दे कर बनास नदी के करीब का एक इलाका दे दिया था। तोडा उस इलाके की राजधानी थी। भीम ने अपने उस पाये हुए इलाके का निर्माण अपनी मरजी के अनुसार किया और अपने रहने के लिए वहाँ पर उसने एक प्रसिद्ध राजमहल बनवाया। उस राजमहल में बहुत समय तक उसके वंश के लोग रहते रहे और आज भी उस राज-प्रसाद के खण्डहर अपने नगर के प्राचीन गौरव का परिचय देते हैं। यद्यपि उस नगर की दशा अब अच्छी नहीं है।

शाहजादा खुर्रम की प्रशंसा के कारण बादशाह जहाँगीर ने भीम को अपना एक इलाका देकर अपनी उदारता का परिचय दिया था और आशा की थी कि भीम भविष्य में उसके इस अनुग्रह में बँधकर रहेगा। परन्तु ऐसा नहीं हुआ। वह जहाँगीर के किसी बन्धन में न था। लेकिन खुर्रम के साथ उसका बन्धुत्व और मित्रता का भाव पूर्ण रूप से कायम रहा।

भीम शाहजादा खुर्रम से प्रेम करता था। परन्तु वे खुर्रम के बड़े भाई परवेज के साथ ईर्षा रखता था। उसका कारण था। परवेज मेवाड़ के राजपूतों से घृणा करता था और उस घृणा को सहन करने के लिए भीम किसी प्रकार तैयार न था। राणा अमरसिंह ने जब मुगलों की अधीनता स्वीकार की थी, उसके पहले और खुर्रम के आक्रमण के पूर्व परवेज ने एक मुगल सेना लेकर मेवाड़ पर आक्रमण किया था और उस समय मुगल सेना ने मेवाड़-राज्य का बुरी तरह विनाश किया था। भीम को मेवाड़ का वह विनाश और विध्वंश भूलता नहीं था।

शाहजादा परवेज बादशाह जहाँगीर का उत्तराधिकारी था और शाहजादा खुर्रम का बड़ा भाई था। जहाँगीर के बाद मुगल सिंहासन का वही अधिकारी था। भीम की अभिलाषा कुछ और थी। वह परवेज के स्थान पर शाहजादा खुर्रम को मुगल सिंहासन पर बिठाने का पक्षपाती था। खुर्रम के साथ उसकी मित्रता थी ही। इस विषय मे भी दोनों में परामर्श हुआ। भीम किसी प्रकार परवेज को दिल्ली के सिंहासन पर नहीं देखना चाहता था। इसलिए उसने अपनी सेना लेकर परवेज पर

आक्रमण किया। दोनों की सेनाओं में युद्ध हुआ। अंत में मुगल सेना की पराजय हुई और परवेज मारा गया।

बादशाह जहाँगीर को अभी तक भीम पर किसी प्रकार का संदेह न था। परवेज के साथ उसकी इस लड़ाई से जहाँगीर को उस पर अविश्वास हो गया। शाहजादा खुर्रम के साथ उसकी जो मित्रता थी, बादशाह जहाँगीर से वह छिपी न थी। अब उसे यह भी मालूम हो गया कि परवेज के साथ भीम की लड़ाई का कारण शाहजादा खुर्रम है। इस बात से जहाँगीर और खुर्रम के बीच कटुता पैदा हो गयी। भीम के द्वारा परवेज का मारा जाना जहाँगीर को सहन नहीं हुआ। इसलिए उसने भीम के साथ युद्ध करने का निर्णय किया और अपनी सेना लेकर वह रवाना हुआ।

शाहजादा खुर्रम—जो आगे चलकर और सिंहासन पर बैठने के बाद शाहजहाँ के नाम से प्रसिद्ध हुआ—जोधाबाई (जगत गोसाईं) से उत्पन्न हुआ था और जोधाबाई राठौर राजपूतों के वंश में उत्पन्न हुई थी। मारवाड़ राठौर वंश गजसिंह शाहजादा खुर्रम का नाना था। गजसिंह परवेज के स्थान पर खुर्रम को दिल्ली के सिंहासन पर बिठाना चाहता था और छिपे तौर पर वह अपनी इस कोशिश में लगा था। भीमसिंह से लड़ने के लिए मुगलों की जो सेना रवाना हुई, जयपुर का राजा उसका सेनापति था। इस मुगल सेना के आने का समाचार पाकर भीम ने उसके साथ युद्ध करने के लिए गजसिंह के पास संदेश भेजा।

मुगल सेना के साथ भीम ने युद्ध किया। मुगल सेना का मुकाबिला करने के लिए उसके पास सेना काफी न थी। इसलिए उसकी पराजय हुई और वह स्वयं युद्ध में मारा गया। शाहजादा खुर्रम महावत खाँ के साथ, भीम के मारे जाने पर उदयपुर चला गया। वहाँ पर राणा कर्ण ने सम्मान-पूर्वक उसके रहने की व्यवस्था कर दी और कुछ दिनों के बाद उसके रहने के लिए एक अच्छा-सा महल बनवा दिया।

शाहजादा खुर्रम बहुत दिनों तक उस महल में बना रहा। उसके बाद वह ईरान की तरफ चला गया। X सम्बत् १६४८ सन् १५६२ में राणा कर्ण की मृत्यु हो गयी। उसके बाद उसका लड़का जगतसिंह उसके सिंहासन पर बैठा। राणा जगतसिंह के शासन काल में मेवाड़ राज्य के आठ वर्ष बड़ी शाँति के साथ व्यतीत हुए। कर्ण के मर जाने के थोड़े ही दिनों बाद बादशाह जहाँगीर की भी मृत्यु हो गयी। शाहजादा खुर्रम उस समय सूरत में था। राणा जगतसिंह ने अनेक राजपूतों के साथ अपने भाई के द्वारा बादशाह जहाँगीर के मरने का सम्बाद सूरत में शाहजादा खुर्रम के पास भेजा। उस संदेश को पाकर खुर्रम सूरत से उदयपुर चला आया। उसके आने पर मेवाड़ राज्य के बहुत से सामन्त और सरदार उदयपुर आकर सुलतान खुर्रम से मिले।

उदयपुर में सभी लोग बादल महल के भीतर एकत्रित हुये। उस समय राणा जगतसिंह ने सब से पहले शाहजादा खुर्रम को शाहजहाँ कहकर अभिवादन किया। इसके बाद खुर्रम उदयपुर से दिल्ली चला गया। जाने के पहले उसने राणा जगतसिंह को अपने राज्य के पाँच इलाके दिये और एक कीमती मणि भेंट में देकर चित्तौर के टूटे हुए दुर्गों की मरम्मत कराने का आदेश दिया।

मेवाड़ राज्य के सिंहासन पर बैठकर राणा जगतसिंह ने छब्बीस वर्ष तक शासन किया। उसके राज्य का यह समय बड़ी शाँति के साथ व्यतीत हुआ। इन दिनों में किसी प्रकार का कोई उत्पात राज्य में नहीं पैदा हुआ। ग्रंथों में इस शाँति के इन दिनों का कोई विशेष वर्णन नहीं पाया

X कुछ इतिहासकारों का कहना है कि शाहज़ादा खुर्रम राणा के बनवाये हुए उस महल से कुछ दिनों के बाद गोलकुण्डा चला गया था।

जाता। राणा ने अपने शासन के इन दिनों में राज्य की अनेक प्रकार से उन्नति की थी। सुदृढ़ विशाल महलों का निर्माण हुआ था। शत्रुओं के आक्रमणों से जो स्थान नष्ट हो गये थे, और उनमें से जिनका निर्माण अभी तक नहीं हुआ था, राणा जगतसिंह ने बड़ी खूबसूरती और मजबूती के साथ उनका निर्माण कराया।

राज्य की आवश्यकतानुसार राणा जगतसिंह ने कितने ही नये स्थानों की प्रतिष्ठा करायी। उनमें जगनिवास और जगमन्दिर अधिक प्रसिद्ध हैं। पेशोला झील के निकट इन दोनों स्थानों का निर्माण कराया गया। उनके सभी स्थानों में संगमरमर लगवाया गया। इनके तैयार करा देने में बहुत-सी सम्पत्ति खर्च की गयी थी। उनकी दीवारों में अद्भुत और आकर्षक चित्रकला की सुन्दरता थी।

राणा जगतसिंह ने बड़ी सफलता के साथ शासन किया था। मुसलमानों के हमले से राज्ज का जो विनाश हुआ था, सभी तरह से इसकी पूर्ति की। उसके इस प्रकार के कार्यों और गुणों की प्रशंसा कई विदेशी विद्वानों ने अपने ग्रंथों में की है। उसके कार्यो को लिखने के लिए संक्षेप में इतना ही उल्लेख करना काफी होगा कि दीर्घकाल तक बाहरी शत्रुओं के आक्रमण से जो मेवाड़ राज्य स्मशान बन गया था, उसने फ़िर से नया जीवन प्राप्त किया।

राणा जगतसिंह ने मारवाड़ के राजा की लड़की से विवाह किया था उस लड़की से दो लड़के पैदा हुए। उनमें राजसिंह बड़ा था और वही पिता के मरने के बाद सम्बत् १७१० सन् १६५४ ईसवी में मेवाड़ के सिंहासन पर बैठा। उसके पिता के शासनकाल में मेवाड़ राज्य में जो शांति कायम हुई थी, वह छिन्न-भिन्न हो गयी। इधर बहुत दिनों से मेवाड़ और दिल्ली राज्यों के हिन्दुओं और मुसलमानों में मैत्रीपूर्ण जो व्यवहार चल रहा था, वह एक साथ नष्ट हो गया।

दोनों राज्यों के हिन्दुओं और मुसलमानों में शत्रुता पैदा होने का कारण था। बादशाह शाहजहाँ वृद्ध हो गया था। उसके चार लड़के थे। पिता के वृद्ध होते ही चारों लड़कों में राज्याधिकार के लिए झगड़ा पैदा हो गया। यह झगड़ा ही आगे चलकर दोनों राज्यों के हिन्दुओं और मुसलमानों की शत्रुता का कारण बना। शाहजहाँ के जीवन काल में ही उसके चारों लड़कों की आपस में शत्रुता बढ़ गयी थी। उन लड़कों ने एक, दूसरे को पराजित करने के लिए राजस्थान के राजाओं से सहायता माँगी और चारों ने सहायता देने के लिए राजसिंह को मजबूर किया।

राजसिंह ने शाहजहाँ के पुत्रों की माँगों को सुना। परन्तु उसने दारा शिकोह की सहायता की। दाराशिकोह अपने भाइयों में सबसे बड़ा था अपने पिता के राज्य का वही उत्तराधिकारी था। नैतिक दृष्टि से शाहजहाँ के बाद दिल्ली के सिंहासन पर बैठने का अधिकार दारा को ही मिलना चाहिए था। लेकिन औरंगजेब दारा शिकोह के इस अधिकार को मानने के लिए किसी भी दशा में तैयार न था। ऐसी अवस्था में राणा राजसिंह ने दारा की सहायता करना ही अपने लिए मुनासिब समझा और दारा का पक्ष-समर्थन किया।

राजस्थान के दूसरे राजाओं ने राजसिंह के निर्णय का समर्थन किया और वे सब राजसिंह से मिल कर दारा की सहायता करने के लिए तैयार हो गये। दारा औरंगजेब में युद्ध की तैयारियाँ होने लगीं। राणा राजसिंह और राजस्थान के दूसरे राजाओं ने दारा की तरफ से औरंगजेब के साथ फतेहाबाद के विस्तृत मैदान में युद्ध किया। उस युद्ध में दारा और उसके सहायकों की पराजय हुई और औरंगजेब विजयी हुआ।

जिन राजपूत राजाओं ने दारा की सहायता की थी अथवा दारा के साथ अपनी सहानुभूति प्रकट की थी, वे सब के सब औरंगजेब के दुश्मन बन गये। तैमूर के वशंज बाबर ने जिस बुद्धिमानी

के साथ भारत में अपना राज्य कायम किया था और अकबर ने जिस लोकप्रियता तथा राजनीति के द्वारा मुगल राज्य का विस्तार किया था, औरंगजेब ने उसकी परवा न की। अकबर की नीति जहाँगीर और शाहजहाँ तक कायम रही। दिल्ली के सिंहासन पर बैठकर दोनों ने अकबर के कायम किये हुए विशाल साम्राज्य को कमजोर नही होने दिया। बादशाह अकबर ने हिन्दू मुसलमान का भेद नहीं माना था। जहाँगीर और शाहजहाँ ने भी ऐसा ही किया। परन्तु औरंगजेब ने सिंहासन पर बैठने के पहले ही अपनी जिन्दगी में ऐसा रास्ता अख्तियार किया कि जो हिन्दू और मुसलमान बहुत दिनों से एक दूसरे के मित्र होकर चल रहे थे, वे एक दूसरे के शत्रु बन गये।

जहाँगीर और शाहजहाँ के शासन काल से मेवाड़ और दिल्ली राज्यों की यह अवस्था न थी। प्रजा से लेकर राज परिवारों और बादशाह के महलों तक हिन्दू-मुसलमान का कोई फर्क न था। इन दोनों बादशाहों की इस नीति का कारण था। दोनों ही मारवाड़ के राजपूत वंश में जन्म लेने वाली माताओं से पैदा हुए थे। औरंगजेब की परिस्थिति दूसरी थी। उसकी माता तातार देश की लड़की थी। जहाँगीर और शाहजहाँ के रगों और नसों में उनकी हिन्दू माताओं का खून प्रवाहित हुआ था। परन्तु औरंगजेब के जीवन में सब-कुछ तातारी माता से प्राप्त हुआ था। इसका प्रभाव उसके सम्पूर्ण जीवन में रहा और उससे शासन काल में राज्य के हिन्दू मुसलमान एक होकर न रह सके।

भारतवर्ष में औरंगजेब के समाकालीन अनेक हिन्दू राजा थे और सभी तेजस्वी एवम् साहसी थे। सम्पूर्ण राजस्थान राज्यों में बँटा हुआ था और प्रत्येक राज्य में पराक्रमी राजा का शासन था। अम्बेर का राजा जयसिंह, मारवाड़ का जसवंतसिंह, बूँदी और कोटा के राजा हाड़ा, बीकानेर का राठौर, उरछा और दतिया के राजा लोग—सभी शक्तिशाली एवम् अयोग्यता से इन सभी राजाओं से ईर्षा पैदा कर ली थी। इसके फलस्वरूप कटुता बढ़ी और वह कटुता स्वयं उसके लिए भी अच्छी नहीं साबित हुई।

औरंगजेब में एक प्रधान दोष यह था कि वह किसी का विश्वास नहीं करता था। जिनको वह अपना शुभचिंतक और मित्र समझता था, उनसे भी वह अपनी बातों को छिपाकर रखता था। इसका परिणाम यह हुआ कि उस पर अविश्वास करने वालों की संख्या बढ़ गयी और उसका अपना कोई न रह गया। उसने हिन्दुओं के साथ निर्दय व्यवहार किये थे, उनके लिए भयानक दण्ड की व्यवस्था की थी और तलवार के बल पर धर्म-परिवर्तन के लिए हिन्दुओं को मजबूर किया था। इन सब कारणों से हिन्दू प्रजा उसका राज्य छोड़-छोड़कर भाग गयी। न्याय के अभाव में उसके राज्य में अराजकता बढ़ गयी थी। अधिक संख्या में हिन्दुओं के भाग जाने से राज्य के नगर, ग्राम और बाजार बहुत कुछ सूने हो गये थे। कृषकों के चले जाने से खेती के व्यवसाय को बहुत आघात पहुँचा था। सरकारी खजाने में धन का अभाव हो गया था। चारों तरफ अशान्ति बढ़ गयी थी। इसी अशान्ति और अराजकता ने शिवाजी को प्रोत्साहित किया और उसने मराठों की एक योजना बनाकर औरंगजेब के शासनकाल में मुगलों के साथ युद्ध किया।

राणा राजसिंह ने सिंहासन पर बैठने के बाद एक ऐसा कार्य किया जो बहुत दिनों से चित्तौर के द्वारा नहीं हुआ था। अजमेर में मालपुर नाम का एक नगर है। राणा राजसिंह ने उस नगर पर आक्रमण किया और वहाँ की बहुत-सी सम्पत्ति और सामग्री लूटकर वह लौट आया। उस समय दिल्ली के सिंहासन पर शाहजहाँ था। वहाँ के मंत्रियों ने मालपुर के आक्रमण के सम्बन्ध में बादशाह से राजसिंह की शिकायत की। परन्तु शाहजहाँ ने उपेक्षा के साथ उसको टाल दिया।

राणा प्रतापसिंह के बाद मेवाड़-राज्य की वीरता छिन्न-भिन्न हो गयी थी। राणा राजसिंह ने अपने शासन-काल में उसको फिर से सजीव बनाया। उसमें साहस, शौर्य और स्वाभिमान था। राणा का पद पाने के बाद उसने अपने पूर्वजों के गौरव की वृद्धि की। राज्य के सरदार और सामन्त उसका सम्मान करते थे और भविष्य के सम्बन्ध में राज्य के लिए बड़ी-बड़ी आशायें रखते थे। सरदारों और सामन्तों के साथ राणा राजसिंह का सम्मानपूर्ण व्यवहार था।

मारवाड़ के कुछ राठौर राजपूत मारवाड़ को छोड़ कर रूपनगर चले गये थे। यह नगर मुगलों के शासन में था। इसलिए जो राजपूत रूपनगर गये थे, उनको मुगलों की अधीनता में रहना पड़ा। औरंगजेब के सिंहासन पर बैठने के दिनों में रूपनगर के सामन्त की एक लड़की थी। प्रभावती उसका नाम था। उसने यौवनावस्था में प्रवेश किया था। वह अपने रूप और सौन्दर्य के लिए उन दिनों में बहुत प्रसिद्ध हो रही थी। बादशाह औरंगजेब ने भी उसकी प्रशंसा सुनी थी। उसके मन में प्रभावती को प्राप्त करने की एक उत्कट अभिलाषा पैदा हुई। उसको अपने बादशाह होने का गर्व था। उसका विश्वास था कि प्रभावती मेरे साथ अपने विवाह को अपना सौभाग्य समझेगी।

औरंगजेब के हृदय में प्रभावती के प्रति लालसा बढ़ती गयी। अपनी अभिलाषा की पूर्ति के लिए उसने दो हजार सवार सैनिकों की एक छोटी-सी सेना तैयार की और उसे उसने इस उद्देश्य से रूपनगर की तरफ रवाना कर दिया कि उसकी उस सेना का अधिकारी रूपनगर के राजपूत के पास जाकर कहे कि वह अपनी लड़की प्रभावती का विवाह मेरे साथ कर दे। औरंगजेब की यह सेना रूपनगर पहुँच गयी। उसके अधिकारी ने राठौर सामन्त से बादशाह औरंगजेब का संदेश कहा। उसे सुनकर वह आश्चर्य चकित हो उठा। उसने उस समय बादशाह के इस प्रस्ताव का कोई उत्तर न दिया। उसकी लड़की प्रभावती ने भी सुना और जाना कि बादशाह औरंगजेब की एक सेना आयी है और उसने बादशाह के साथ मेरे विवाह का प्रस्ताव पिताजी के सामने रखा है।

प्रभावती ने राठौर राजवंश में जन्म लिया था। उसके अन्तरतर में राजपूत कन्या होने का स्वाभिमान था। बादशाह के प्रस्ताव को सुनकर उसके हृदय में आग लग गयी। वह अपने पिता की कमजोरियों को जानती थी और समझती थी कि शक्तिशाली मुगल-सम्राट का विरोध करने के लिए मेरे पिता में न शक्ति है और न साहस है। इस दशा में उसकी चिन्तनायें बढ़ने लगीं। इन्हीं दिनों में उसका ध्यान राणा राजसिंह की तरफ गया। उसके सामने और कोई रास्ता न था। वह समझती थी कि बादशाह से मेरी रक्षा करने में दूसरा कोई समर्थ नहीं हो सकता। इस प्रकार की बहुत-सी बातें सोच समझकर उसने अपने विश्वासी पुरोहित को राणा राजसिंह के पास भेजा। उसने वहाँ पहुँच कर प्रभावती का पत्र राणा के हाथ में दिया। उस पत्र को पढ़ कर राजसिंह कुछ देर के लिए चुप हो गया और उसके बाद प्रभावती की सहायता करने का विचार उसके मन में पैदा हुआ।

औरंगजेब की सेना रूपनगर में पहुँच चुकी थी और वह राठौर सामन्त का निर्णय सुनने के लिए वहाँ पर रुकी हुई थी। राणा राजसिंह राजपूतों की एक छोटी-सी सेना लेकर रूपनगर की तरफ रवाना हुआ। रूपनगर अरावली पर्वत के नीचे एक भूमि पर बसा हुआ था। राजसिंह अपने राजपूतों के साथ पहुँचा और उसने मुगल सैनिकों पर आक्रमण किया। दोनों तरफ से कुछ समय तक युद्ध हुआ। अंत में मुगल सैनिकों की हार हुई। उनमें से बहुत-से मारे गये और जो बचे, वे

रूपनगर से चले गये । राणा राजसिंह रूपनगर से उनको भगाकर लौट आया । मेवाड़ के लोगों ने जब रूपनगर का यह समाचार सुना तो उनको बड़ी प्रसन्नता हुई और सभी लोगों ने अपने राणा की प्रशंसा की ।

बादशाह के सैनिकों के लौट जाने के पश्चात् कुछ ही दिनों में रूपनगर में अफवाह उड़ने लगी कि पन्द्रह दिनों के भीतर बादशाह की एक बड़ी फौज आवेगी और वह जबरदस्ती प्रभावती को अपने साथ ले जायगी । बादशाह उसके साथ अपना विवाह करेगा । यह अफवाह प्रभावती के पिता ने सुनी । उसने प्रभावती से बातचीत की और उसने अपनी लड़की का विवाह राणा राजसिंह के साथ करने का निर्णय किया । प्रभावती ने पिता की इस बात को स्वीकार कर लिया । इसके बाद राठौर सामन्त की तरफ से एक आदमी इसी उद्देश्य के लिए उदयपुर भेजा गया ।

रूपनगर के आदमी ने उदयपुर पहुँच कर अपने सामन्त राजा का पत्र राणा को दिया । उसे पढ़कर राणा ने अपने दरबार के सामन्तों और सरदारों के साथ परामर्श किया । सभी ने राणा को राठौर सामन्त के प्रस्ताव को स्वीकार करने लिए प्रोत्साहित किया । इस विषय में कुछ देर तक राणा ने उनके साथ बाचचीत की । बादशाह औरंगजेब की शक्तिशाली सेना का और उसके विशाल साम्राज्य की शक्तियों का प्रश्न उठाकर राणा ने सरदारों और सामन्तों से विवाद किया । अंत में सब के परामर्श से राणा राजसिंह ने राठौर सामन्त के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया । यह स्वीकृति राणा की तरफ से रूपनगर राठौर सामन्त के पास भेज दी गयी ।

सरदार चूड़ावत के साथ विचार विनिमय करके राणा राजसिंह ने प्रभावती के साथ विवाह की तैयारी की । वह उदयपुर के कुछ राजपूतों को लेकर रूपनगर की तरफ विवाह के लिए रवाना हुआ और चड़ावत सरदार उदयपुर की शक्तिशाली सेना लेकर चला । उसके साथ पन्द्रह सौ शूरवीर राजपूत घोड़ों पर थे । राणा राजसिंह सीधा रूपनगर की तरफ गया और चूड़ावत सरदार पूर्व की तरफ रवाना हुआ । सरदार सैनिकों को मिलकर जो सेना रवान हुई, उसके.कुल सैनिकों की संख्या पचास हजार थी ।

राजपूतों की यह विशाल सेना उदयपुर से चलकर उस रास्ते पर पहुँच गयी, जो आगरा से रूपनगर की तरफ गया था । उस रास्ते पर पहुँच कर सरदार चूड़ावत ने अपनी सेना का मुकाम किया । इसके बाद बादशाह के आने वाले लश्कर का पता लगाने के लिए कुछ राजपूत रवाना हुए । उन्होंने लौटकर बताया कि मुगल बादशाह की एक बड़ी फौज आ रही है और उस फौज के आगे बादशाह हाथी पर बैठा हुआ आ रहा है । उसी समय सरदार चूड़ावत ने राजपूतों को तैयार हो जाने के लिए आदेश दिया ।

कुछ समय के पश्चात् जहाँ पर राजपूतों की सेना पड़ी थी, बादशाह का लश्कर आ गया । रास्ते में राजपूत सेना की मौजूदगी का समाचार पाकर बादशाह के आदमी आगे बढ़े और उन्होंने लोटकर बादशाह को बताया कि मेवाड़ के चूड़ावत सरदार की सेना पड़ी हुई है और वह सेना रास्ता रोक रही है । बादशाह ने अपनी फौज के निकल जाने के लिए रास्ता चाहा । लेकिन चूड़ा-वत ने रास्ता देने से इनकार कर दिया । बादशाह ने चूड़ावत को यह भी बताया कि सबको रूप नगर जाना है । उदयपुर और मेवाड़ से हमारा कोई प्रयोजन नहीं है ।

चूड़ावत सरदार के रास्ता न देने पर बादशाह औरंगजेब ने अपनी फौज को आगे बढ़ने का हुक्म दिया । राजपूत सेना इसके लिए पहले से ही तैयार थी । मुगल सेना के आगे बढ़ते ही

युद्ध आरम्भ हो गया। यह युद्ध कई दिन तक चलता रहा। कोई निर्णय न हुआ। दोनों पक्ष के बहुत-से आदमी मारे गये। लेकिन कोई पक्ष निर्बल न पड़ रहा था। युद्ध की यह दशा देख कर औरंगजेब बहुत चिन्तित हुआ। उसने विवाह के लिए जो दिन और समय निश्चित किया था, वह निकला जा रहा था। लेकिन रास्ते में होने वाला यह युद्ध जल्दी समाप्त होता हुआ दिखायी न दे रहा था।

यह देखकर औरंगजेब बहुत चिन्तित हुआ। उसने अपना दूत भेजकर चूड़ावत सरदार से बातचीत की। उसका उद्देश्य इस समय किसी प्रकार रूपनगर पहुँचने से था। रास्ते में होने वाले इस युद्ध का उसे कुछ पता न था। युद्ध के तीसरे दिन मुगल सेना का जोर बढ़ा। राजपूतों ने शक्तिभर उसका मुकाबिला किया। इन तीन दिनों में राजपूत अधिक संख्या में मारे गये। बादशाह की फौज बहुत बड़ी थी। पचास हजार सैनिकों के द्वारा उसको पराजित करना बहुत कठिन था। इस बात को सरदार चूड़ावत भी जानता था। वह तो राणा राजसिंह के परामर्श के अनुसार बादशाह को रास्ते में उतने समय तक रोकना चाहता था, जितने में राणा राजसिंह प्रभावती का ब्याह करके उदयपुर चला जाय और उसके बाद रूपनगर पहुँचने पर बादशाह औरंगजेब को प्रभावती न मिले।

तीसरे दिन के भयंकर युद्ध में बादशाह के साथ चूड़ावत सरदार की बातचीत हुई। बादशाह ने मुगल सेना के निकल जाने के लिए रास्ता माँगा। चूड़ावत ने समझ लिया कि मुगल सेना को रोकने के लिए जितनी आवश्यकता थी, उसकी पूर्ति हो चुकी है और रूपनगर यहाँ से काफी दूर है। बादशाह की फौज के पहुँचने के पहले ही राणा राजसिंह प्रभावती को लेकर उदयपुर चला जायगा। उसने बादशाह को उत्तर देते हुए कहा : "मैं रास्ता देने के लिए तैयार हूँ। लेकिन आप शपथपूर्वक मेरी एक छोटी-सी बात को मंजूर करें।"

बादशाह किसी भी सूरत में रूपनगर पहुँचना चाहता था। रास्ते में एक घड़ी की देर उसको असह्य हो रही थी। उसने चूड़ावत की बात को सुना और खुशी के साथ उसकी माँग को मंजूर करने का वादा किया। इसके बाद चूड़ावत सरदार ने कहा : "दस वर्ष तक उदयपुर में आप कोई आक्रमण न करेंगे। आपके इस वादे पर मैं अपनी सेना लेकर चला जाऊँगा और आपके साथ युद्ध न करूँगा।"

बादशाह ने चूड़ावत की माँग को मंजूर कर लिया। उसके बाद चूड़ावत अपनी सेना के साथ रास्ते से हट गया। बादशाह की फौज आगे बढ़कर रूपनगर की तरफ रवाना हुई। वहाँ से रूपनगर पहुँचने के लिए तीन दिन का रास्ता बाकी था। बादशाह की फौज चली गयी। चूड़ावत अपनी सेना के साथ उदयपुर की तरफ लौट रहा था। वह घोड़े पर था। उसके शरीर में बहुत से भयानक जख्म थे। उनसे लगातार खून बह रहा था। रास्ते में उसकी हालत बिगड़ने लगी। वह जैसे ही घोड़े से उतारा गया, उसकी मृत्यु हो गयी।

राणा राजसिंह ने पूर्णिमा के दिन रूपनगर पहुँचकर प्रभावती से साथ विवाह किया और उसके बाद वह उदयपुर लौट गया। वहाँ पहुँचने पर सरदार चूड़ावत की मृत्यु का समाचार सुना और यह भी सुना कि बादशाह औरंगजेब ने दस वर्ष तक चित्तौर पर आक्रमण न करने का वादा करने के बाद रूपनगर जाने का मार्ग प्राप्त किया था। राणा को प्रभावती के साथ विवाह करने की जितनी प्रसन्नता हुई, उससे अधिक वेदना चूड़ावत सरदार के मरने से उसको हुई।

जयपुर के राजा जयसिंह और मारवाड़ के राजा जसवन्तसिंह ने भी मुगल साम्राज्य की अधीनता स्वीकार की थी। लेकिन इन दोनों राजाओं के हृदयों में राजपूतों का स्वाभिमान था।

इसलिए मुगलों की अधीनता में रहते हुए भी दोनों राणा राजसिंह से प्रेम करते थे और मेवाड़ राज्य के शुभचिन्तक थे। इन दिनों में राजसिंह और औरंगजेब के बीच शत्रुता की आग सुलग रही थी। इसमें जयसिंह और जसवंतसिंह राणा राजसिंह के पक्षपाती थे और छिपे तौर पर उसकी सहायता करते थे, इस बात को औरंगजेब भली प्रकार जानता था।

औरंगजेब बहुत दिनों तक जयसिंह और जसवंतसिंह से जलता रहा। उसने खुले तौर पर इन दोनों के साथ शत्रुता का कोई व्यवहार न किया। लेकिन अवसर पाकर उसने उन दोनों को विष खिला दिया, उससे उन दोनों की मृत्यु हो गयी। मारवाड़ के राजा जसवंतसिंह के कई एक लड़के थे। उनमें अजित सब से बड़ा था। पिता के मरने के समय अजित की अवस्था छोटी थी। उसका पालन-पोषण करने के उद्देश्य से उसकी माता अपने पति के साथ सती नहीं हुई थी। वह अपने इस बड़े लड़के को मारवाड़ के सिंहासन पर बिठाना चाहती थी और उसकी छोटी अवस्था के कारण राज्य का प्रबन्ध स्वयं सम्हालना चाहती थी।

इन्हीं दिनों में अजित की माता को अपने प्यारे पुत्र अजित के सम्बन्ध में बादशाह औरंगजेब से भय उत्पन्न हुआ। इसलिए वह अपने बालक की रक्षा का उपाय सोचने लगी। उसको राणा राजसिंह के आश्रय के सिवा और कुछ दिखायी न पड़ा। इसके लिए उसने अपना दूत राणा के पास भेजा। राणा ने अजित की रक्षा का भार अपने ऊपर लिया और जसवंतसिंह के लड़कों को मेवाड़ भेज देने के लिए उ की माता के पास संदेश भेजा। राणा का यह संदेश मिलते ही अजित की माँ ने दो हजार सैनि ों के संरक्षण में अजित को मारवाड़ से रवाना किया।

जिस समय मारवाड़ के सैनिक अपने साथ अजितसिंह को लेकर उदयपुर जा रहे थे, उसी समय कूट गिरि के एक तंग रास्ते से दो हजार मुगल सैनिकों ने तेजी के साथ आक्रमण किया। उस रास्ते पर दोनों ओर के सैनिकों में कुछ समय तक युद्ध हुआ। उस पहाड़ी रास्ते में बहुत से मुगल सैनिक मारे गये और मारवाड़ के सैनिक अजित को लेकर उदयपुर की तरफ आगे बड़े गये। इसके पश्चात् मुगलों ने उनका पीछा नहीं किया। राणा राजसिंह ने बड़े सम्मान के साथ अजितसिंह को अपने यहाँ रखा और कैलवा नाम का एक स्थान उसके रहने-के लिए दे दिया। दुर्गादास नाम का एक साहसी राजपूत राजकुमार अजित की रक्षा करने लिए नियुक्त हुआ।

अजित की माता ने अपने पुत्र अजित को राजसिंह के आश्रय में भेज दिया था। लेकिन बादशाह औरंगजेब पर वह जल रही थी। इसलिए उससे बदला लेने के लिए वह तरह-तरह की बातें सोचने लगी। मारवाड़ के सामन्त और सरदार जसवंतसिंह की विधवा रानी के पास एकत्रित हुए और वे औरंगजेब से बदला लेने के प्रश्न पर परामर्श करते रहे।

इन दिनों में औरंगजेब राणा राजसिंह से बहुत अप्रसन्न था और राजसिंह भी उसकी अनीति को देखकर बहुत सावधानी से काम ले रहा था। अपने साम्राज्य में उसने हिन्दुओं के साथ जैसा निन्दनीय व्यवहार कर रखा था, उससे राणा राजसिंह बहुत अप्रसन्न था। इस बीच में उसने औरंगजेब को एक लम्बा पत्र लिखकर भेजा और उसमेंउसने उसके सारे कारनामो का उल्लेख किया, जो मुगल साम्राज्य में हिन्दुओं के विरुद्ध चल रहे थे।

अपना यह पत्र राजसिंह ने मुगल बादशाह के पास भेज दिया और उसके परिणाम की वह प्रतीक्षा करने लगा। बादशाह ने उस पत्र को पाकर पढ़ा। उसके क्रोध का ठिकाना न रहा। इस बीच में राणा राजसिंह के कई ऐसे कार्य हुए थे, जिनको सहन करने के लिए अब औरंगजेब किसी प्रकार तैयार न था। राजसिंह ने प्रभावती के साथ विवाह किया था। औरंगजेब के लिए

उसकी यह पहली चुनौती थी। इसके बाद उसने अजितसिंह को अपने यहाँ आश्रय दिया और इसके पश्चात् उसने इस प्रकार का एक पत्र भेजा। यह तीनों बातें औरंगजेब को असह्य हो उठीं। क्रोध में आकर उसने राजसिंह पर आक्रमण करने का निश्चय किया और अपनी फौज को तैयार होने के लिए उसने हुक्म दिया। मुगल सेना में युद्ध की तैयारियाँ शुरू हो गयीं।

औरंगजेब अपनी शक्तिशाली सेना लेकर राजसिंह पर आक्रमण करने के लिए तैयार हुआ। उसके जितने प्रसिद्ध सेनापति थे, बादशाह के हुक्म से अपनी बड़ी से बड़ी फौज तैयार करने में लग गये। बंगाल से शाहजादा अकबर और काबुल से अजीम बुलाया गया। औरंगजब का उत्तराधिकारी शाहजादा मुअज्जम दक्षिण में शिवाजी के साथ युद्ध कर रहा था। औरंगजेब का हुक्म पाकर अपनी फौज के साथ वह लौटकर आ गया और राजसिंह पर आक्रमण करने के लिए तैयार होने लगा।

औरंगजेब अपनी विशाल और शक्तिशाली सेना लेकर मेवाड़-राज्य की तरफ रवाना हुआ। मुगल सेना के आने की खबर मिलते ही राणा राजसिंह ने अपने सामन्तों और सरदारों को बुलाकर युद्ध के लिए तुरंत तैयार होने का आदेश दिया। इस मौके पर बहुत-सी प्रजा अपने-अपने स्थानों को छोड़कर अरावली पर्वत के पहाड़ी स्थानों पर चली गयी। प्रजा के चले जाने से मेवाड़ के बहुत से स्थान सुनसान हो गये। इस प्रकार के सभी स्थानों पर मुगल सेना ने अधिकार कर लिया और चित्तौर, मंगलगढ़, मन्दसौर, जीरन नामक नगरों के साथ-साथ दुर्ग भी इस समय बादशाह के अधिकार में चले गये और उनपर मुगलों का प्रबन्ध शुरू हो गया। इसके बाद औरंगजेब ने राजसिंह को गिरफ्तार करने के लिए अपनी फौज को हुक्म दिया। मुगल सेना राणा की खोज में आगे बढ़ी।

मुगलों के साथ युद्ध करने के लिए राजसिंह अपनी राजपूत सेना के साथ तैयार हो चुका था। बादशाह से युद्ध करने के लिए अनेक पहाड़ी जातियों के लोग अपने धनुष-बाणों के साथ राणा की सेना में आ गये। दोनों तरफ से युद्ध के लिए जोरदार तैयारियाँ की गयीं। इसके बाद दोनों सेनायें एक, दूसरे के सामने बढ़ने लगीं। राणा ने अपनी सम्पूर्ण सेना को तीन भागों में विभाजित किया और उनको अलग-अलग सेनापतियों के अधिकार में दे दिया। ये तीनों सेनायें एक दूसरे से दूर होकर युद्ध के लिए तैयार हुईं। राजसिंह के बड़े पुत्र जयसिंह ने अपनी सेना को अरावली के ऊपर रखा। राजकुमार भीमसिंह ने पश्चिम की तरफ से लड़ने के लिए अपना मोर्चा कायम किया और राणा राजसिंह अपनी सेना के साथ एक पहाड़ी स्थान के बीच में पहुँचकर शत्रुओं का रास्ता देखने लगा। इस प्रकार राणा की तीन सेनायें शत्रुओं से युद्ध के लिए तीन अलग-अलग स्थानों पर तैयार हो गयीं।

बादशाह औरंगजेब देवारी नामक स्थान पर अपनी सेना के साथ उस समय मौजूद था। उसने अपने लड़के अकबर को पचास हजार मुगल सैनिक देकर आक्रमण करने के लिए उदयपुर की तरफ भेजा। शाहजादा अकबर की मुगल सेना रास्ते के ग्रामों को उजाड़ती हुई उदयपुर की तरफ बढ़ी। रास्ते में लगभग सभी स्थान प्रजा से खाली उसको मिले। उन स्थानों के रहने वाले होने वाले विनाश से घबराकर पहाड़ पर चले गये थे। यह बात अकबर को मालूम थी।

शाहजादा अकबर की मुगल सेना का मुकाबिला करने के लिए राजकुमार जयसिंह अपनी सेना के साथ रवाना हुआ और जहाँ पर अकबर ने अपनी फौज का मुकाम किया था, बड़ी तेजी के साथ पहुँचकर जयसिंह ने आक्रमण किया। उस समय का उल्लेख करते हुए भट्ट ग्रंथों में लिखा है कि जिस समय राजपूत सेना ने आक्रमण किया, उस समय मुगलों में कुछ लोग नमाज पढ़ रहे थे

और कुछ लोग शतरंज खेल रहे थे। उस समय राजपूतों ने भयानक रूप से मुगलों का संहार किया उस भीषण अवस्था में मुगल सैनिक भागने की कोशिश करने लगे। लेकिन वह स्थान चारों तरफ से घिरा हुआ था। इसलिए उनको भागने का रास्ता न मिला। उस समय औरंगजब अपनी फौज के साथ देवारी नामक स्थान में था। अकबर ने वहाँ जाकर दूसरी फौज अपनी सहायता के लिए लाने की कोशिश की। परन्तु जयसिंह ने उसका रास्ता रोक कर घेर लिया, जिससे अकबर भयानक संकट में पड़ गया।

अकबर को भागने का जब कोई और रास्ता न मिला तो उसने गोगुण्डा के रास्ते से मारवाड़-राज्य के खेतों में गुजरते हुए निकल जाने का इरादा किया। लेकिन इसमें भी उसको सफलता नहीं मिली। सामन्त लोग अपनी सेनाओं के साथ अकबर के निकलने का रास्ता घेरे हुए थे। पीछे की तरफ जयसिंह और उसकी सेना थी। अकबर चारों तरफ से घिरा हुआ था। अपने निकलने का कोई रास्ता उसे दिखायी न पड़ा। इस दशा में उसके कई एक दिन बीत गये। निराश होकर उसने जयसिंह से प्रार्थना की और वादा किया कि आज के बाद सारी लड़ाइयाँ खत्म हो जायँगी। इसके बाद जयसिंह ने उसके प्राणों की रक्षा की। अकबर वहाँ से निकलकर चला गया। ×

जिस पहाड़ी स्थान पर युद्ध करने के लिए दोनों तरफ की सेनायें एकत्रित हुई थीं, वह अत्यन्त भयानक था। अकबर और दिलेर खाँ के पराजित होने के बाद राणा राजसिंह ने बादशाह औरंगजेब पर आक्रमण किया। दोनों तरफ से भीषण युद्ध आरम्भ हुआ। राजपूतों ने उस समय बड़ी बहादुरी से काम लिया। जिस राठौर वंश का नाश करने की औरंगजेब ने चेष्टा की थी, इस युद्ध में उसी राठौर वंश के राजपूत सैनिक उसके प्राण घातक साबित हुए। युद्ध में आये हुए राठौर सैनिकों को जशवंतसिंह की मृत्यु भूली न थी। उसका बदला लेने के लिए राठौर सैनिक इस समय भयानक रूप से औरंगजेब की फौज के साथ मारकाट कर रहे थे। औरंगजेब एकाएक संकट में पड़ गया। यह देखकर मुगल सेना आगे बढ़ी और उसके गोलंदाजों ने तोपों की मार आरम्भ कर दी। उससे थोड़े ही समय में बहुत से राजपूत मारे गये। लेकिन राजसिंह के उत्साह में किसी प्रकार की कमी न आयी।

देवारी के संग्राम में बहुत समय तक भीषण मारकाट हुई। राजपूतों की तलवारों से मुगल सेना के गोलंदाज मारे गये। इसी समय तेजी के साथ राजपूत सेना मुगलों के बीच में घुस गयी और उसके सैनिकों ने अपनी तलवारों से जो मारकाट की, उससे मुगल सेना पीछे हटने लगी और थोड़ी ही देर में औरंगजेब अपनी बची हुई सेना को लेकर वहाँ से भागा। उसकी तोपें और युद्ध का बहुत-सा सामान जो मुगलों के शिविर में मौजूद था, राजपूतों ने पहुँचकर अपने अधिकार में कर लिया। बादशाह के बहुत से हाथी राजपूतों के कब्जे में आ गये। यह संग्राम संवत् १७३७ सन् १६८१ के मार्च महीने में हुआ था। इस युद्ध में राजसिंह की विजय हुई।

युद्ध से भागने के बाद भी औरंगजेब का हृदय पराजित न हुआ। अपनी पराजय का बदला लेने के लिए अपनी सेना के साथ वह चित्तौर के निकट रुका और राणा पर आक्रमण करने के लिए

× प्रसिद्ध लेखक अर्म ने लिखा है कि औरंगजेब स्वयं अपने इस आक्रमण के समय राजपूतों के बीच में फँस गया था और बड़ी मुश्किल से उसको छुटकारा मिला था। जिस पहाड़ी स्थान पर युद्ध करने के लिए वह पहुंचा था, वहाँ के रास्तों से न तो वह स्वयं परिचित था और न उसकी सेना।

कोई योजना बना रहा था; उस समय जयमल के वंशज श्यामलदास ने अपनी सेना के साथ वहाँ पहुँचकर आक्रमण किया। औरंगजेब उस समय घबरा गया और वह अपने लड़के अकबर और अजीम को युद्ध के लिए वहाँ छोड़कर अजमेर की तरफ चला गया और वहाँ से उसने अपने दोनों लड़कों की सहायता के लिए एक बड़ी सेना भेजी।

अजमेर से औरंगजेब ने एक नयी सेना खाँ रोहेला नाम के सेनापति के साथ श्यामलदास से युद्ध करने के लिए भेजी। श्यामलदास को जब मालूम हुआ तो वह अपनी सेना के साथ आगे बढ़ा और पुर मण्डल नामक स्थान पर उसने शत्रु सेना पर आक्रमण किया। कुछ देर युद्ध करने के बाद मुगलों के साथ की सेना अजमेर की तरफ भाग गयी।

राजकुमार भीम अपनी सेना के साथ अभी तक अपने स्थान पर मौजूद था। उसने गुर्जर राज्य पर आक्रमण किया और ईदर नामक नगर को बरबाद किया। हुसेन नामक वहाँ पर एक मुसलमान बादशाह था। उसको और उसकी सेना को भीम ने वहाँ से निकाल दिया। इसके बाद पट्टन नगर में पहुँचकर राजपूतों ने लूट मार की और उसके बाद कई एक दूसरे स्थानों का विध्वंश किया।

राणा राजसिंह की सेना में दयालदास नाम का एक अत्यन्त बहादुर आदमी था। मुगलों से लड़कर उसकी तबियत अभी तक भरी न थी। सवारों की एक सेना लेकर वह रवाना हुआ और नर्वदा तथा बेतवा नदी के किनारे तक फैले हुए मालवा राज्य पर आक्रमण करके उसको लूट लिया और उसके बाद सारंगपुर, देवस, सरोज, माण्डू, उज्जैन और चंदेरी नगरों को पराजित किया। दयालदास ने इन नगरों की मुस्लिम सेना का संहार किया और कई स्थानों पर पहुचकर लूट मार की। वहाँ के रहने वाले अपने घरों को छोड़कर चले गये। राजपूतों ने उनके मकानों में आग लगा दी। दयालदास मुसलमानों से बहुत दिनों से चिढ़ा हुआ था और उसके द्वारा हिन्दुओं के जो नुकसान हुए थे, उनको वह भूला न था। आज उसने जी-भर मुसलमानो से बदला लिया। उसने मालवा राज्य को स्माशान के रूप में परिणत कर दिया।

मालवा से चल कर अपनी सेना के साथ दयालदास राजकुमार जयसिंह के पास पहुँचा। उस समय बादशाह का लड़का अजीम अपनी फौज के साथ चित्तौर के करीब था। दयालदास और जयसिंह ने अजीम पर आक्रमण किया। अजीम पराजित हो कर अपने कुछ सैनिकों के साथ रणथम्भोर भाग गया। राजपूतों ने उसका पीछा किया और उसके बहुत-से आदमियों का संहार किया।

इसके बाद राजकुमार भीम ने अपनी सेना लेकर अकबर की फौज पर हमला किया। कुछ समय तक दोनों तरफ से भीषण युद्ध हुआ। इसमें भी अकबर की हार हुई। लगातार मुगलों की पराजय से शाहजादा अकबर घबरा गया और उसने राणा से मिलकर मित्रता कायम करने की चेष्टा की। राजपूत सामन्तों ने औरंजेब को हटा कर उसके सिंहासन पर अकबर को बिठाने का इरादा किया। इसकी तैयारियाँ आरम्भ हो गयीं।

यह समाचार औरंगजेब ने सुना। वह घबरा गया। इस समय उसकी दशा बहुत दुर्बल हो गयी थी। इन दिनों में राजपूतों के साथ जो युद्ध हुआ था, उसमें कई स्थानों पर मुगलों का बुरी तरह संहार हुआ था। उसने दूरदर्शिता से काम लिया था और अपने पुत्र अकबर के नाम एक पत्र लिखा कर भेज दिया। बादशाह का वह पत्र ऐसे ढङ्ग से भेजा गया था कि वह अकबर को न मिल कर दुर्गादास को मिला। मुगल सिंहासन पर अकबर को बिठाने की जो योजना चल रही थी, उसकी जिम्मेदारी बहुत-कुछ दुर्गादास पर ही थी। पत्र को पढ़ कर दुर्गादास का विश्वास अकबर से हट गया। वह पत्र कुछ ऐसा लिखा हुआ था कि जिससे दुर्गादास को मालूम हुआ कि अकबर स्वयं

सिंहासन पर बैठने के बहाने राजपूतों के साथ कोई षड्यंत्र पैदा करने की कोशिश में है। इसीलिए अकबर को सिंहासन पर बिठाने की जो योजना शुरू की गयी थी, वह खत्म कर दी गयी। औरंगजेब की चालाकी सफल हुई। अकबर अत्यन्त दुखी और निराश हो कर इसके बाद फारस देश की तरफ चला गया।

औरंगजेब की दशा इन दिनों में बहुत निर्बल हो गयी थी। वह अब राजपूतों के साथ युद्ध नहीं करना चाहता था। इसलिए बीकानेर के श्यामसिंह नाम के एक राजपूत को बीच में डालकर औरंगजेब ने राणा राजसिंह के साथ संधि की। परन्तु उस होने वाली संधि के पहले ही सम्वत् १७३७ सन् १६८१ ईसवी में राणा राजसिंह की मृत्यु हो गयी। सिंहासन पर बैठने के बाद उसने लगातार युद्ध किये थे और उसके शरीर में बहुत-से जख्म हो गये थे। उन्हीं के कारण उसकी मृत्यु हुई।

राणा राजसिंह ने अपने शासन काल में राज्य के वैभव के लिए बहुत से काम किये। गोमती नामक पहाड़ी नदी की धारा को रोक कर उसने एक बहुत बड़ी झील बनवाई और अपने नाम के आधार पर राजसमुन्द उसका नाम रखा। यह झील बहुत गहरी है और उसका घेरा लगभग बारह मील का है। यह झील संगमरमर से बनवायी गयी है। उसकी सीढ़ियां भी संगमरमर की बनी हैं। उस झील की दक्षिण तरफ राणा ने एक नगर बसाया था और उसका नाम राजनगर रखा। उसने संगमरमर का एक मंदिर भी बनवाया था। उसके बनवाने में अट्ठानबे लाख रुपये खर्च किये गये थे। इस मंदिर के निर्माण में रुपये की सहायता सामन्तों, सरदारों और प्रजा ने भी की थी।

राणा राजसिंह की मृत्यु हो गयी और राजपूतों से लड़ते-लड़ते औरंगजेब की शक्तियाँ शिथिल पड़ गयीं। हमारा विश्वास है कि मुगलों के बाद औरंगजेब के साथ राजपूतों की समानता करते हुए पाठक मेवाड़ के राजा की प्रशंसा करेंगे। यद्यपि औरंगजेब के साथ राजसिंह की समता करना किसी प्रकार ठीक नहीं मालूम होता। नैतिकता और मनुष्यता के नाम पर दोनों एक, दूसरे के प्रतिकूल थे। राजसिंह जितना ही उदार और न्यायप्रिय था, औरंगजेब उतना ही अनुदार और पक्षपात से भरा हुआ, स्वार्थी था। एशिया महाद्वीप के राजसिंहासन पर आज तक जितने भी बादशाह बैठे हैं, उन सब से अधिक औरंगजेब ने अपने जीवन में अपराध किये थे। उसने अपने राज्य में सम्भावना से अधिक पक्षपात का स्थान दिया था, लेकिन उसके फलस्वरूप, राज्य की तरफ से उसके साथ कभी विश्वासघात नहीं किया गया। औरंगजेब ने अपने राज्य की सबसे बड़ी फौज लेकर राणा राज सिंह पर आक्रमण किया था और उस आक्रमण में शाहजादा अकबर जब राजपूतों के घेरे में आ गया था, जिससे उसके बचने का कोई मौका न रहा था, उस समय राणा राजसिंह के लड़के जयसिंह ने उसके साथ उदारता का व्यवहार किया और उसको सुरक्षित अवस्था में औरंगजेब के पास पहुँच जाने का मौका दिया। अपनी रक्षा के लिए पूरी शक्ति रखने की दशा में भी शत्रु के साथ उसने इतनी उदारता दिखाया, यह राजपूतों का ही काम था। इसके बाद भी औरंगजेब ने जो कुछ राणा के विरुद्ध किया, वह पूर्ण रूप से अनैतिक था। शत्रु के आक्रमण करने पर बुद्धिमान सैनिक और सेनापति की हैसियत से अपने देश की रक्षा करने में वह प्रत्येक अवस्था में प्रशंसा का अधिकारी है। शत्रु के भीषण आक्रमण के समय युद्ध के संकटों का सामना करते हुए राज्य की मर्यादा की रक्षा करने में एक बहादुर राजपूत की हैसियत से वह अद्वितीय था। एक शूरवीर में जो योग्यता, नैतिकता और न्याय परायणता होना, चाहिए, वह सब राणा राजसिंह के जीवन में था।

वह केवल युद्ध में शूरवीर ही न था, बल्कि उसने राज्य समुन्द के नाम से जो एक विशाल झील बनवाई और राजनगर नाम का जो नगर बसाया उसके इस निर्माण कार्य से उसकी अद्भुत प्रतिभा का परिचय मिलता है। मैं समझता हूँ कि संसार का कोई भी न्यायप्रिय मनुष्य अवश्य ही राणा राज सिंह की प्रशंसा करेगा।

तेईसवाँ परिच्छेद

बहु-विवाह की प्रथा का परिणाम–राजसिंह और औरंगजेब–राणा जयसिंह की संधि–राणा की विलासिता–औरंगजेब की नीति–मुगल-साम्राज्य में विद्रोह–बादशाह मुअज्जम–मुगलों के प्रति सिक्खों का विद्रोह–बादशाह शाहआलम की मृत्यु–मुगल-राज्य में घरेलू झगड़े–सैयद बंधुओं का जाल–देशभक्त हेमिल्टन!

राणा राजसिंह की मृत्यु के पश्चात् उसका दूसरा लड़का जयसिंह सम्वत् १७३७ सन् १६८१ ईसवी में मेवाड़ के राज-सिंहासन पर बैठा। जयसिंह के जीवन की उस घटना का यहाँ पर उल्लेख करना आवश्यक मालूम होता है, जो राजस्थान के राजवंश में प्रचलित बहु विवाह की प्रथा के प्रति संकेत करती है और उसके कारण होने-वाले दुष्परिणाम को सब के सामने रखती है। जयसिंह के पैदा होने के कुछ दिन पहले राणा राजसिंह की दूसरी रानी से एक लड़का पैदा हुआ था, उसका नाम भीम था। राणा का प्रेम आरम्भ से ही जयसिंह के साथ अधिक था। दोनों लड़कों के बड़े हो जाने पर राणा को इस बात का ख्याल पैदा हुआ कि इन दोनों में आगे चल कर राज्यधिकार के लिए झगड़ा पैदा होगा। राणा के ऐसा सोचने का कारण यह था कि वह जय सिंह को अपना उत्तराधिकारी बनाना चाहता था। लेकिन अवस्था में बड़ा में होने के कारण राज्य का अधिकारी भीम था।

बहुत दिनों तक इसके सम्बन्ध में अनेक चिन्ताओं में रह कर एक दिन राणा राजसिंह ने अपने बड़े पुत्र भीम को बुलाकर और अपनी तलवार की तरफ संकेत करके कहा : "तुम इस तलवार को ले लो और इससे अपने छोटे भाई जयसिंह को मार डालों क्यों कि उसके जिन्दा रहने से राज्य में भयानक उत्पात होंगे।" भीम अपने पिता का आशाय समझ गया। उसने नम्रता के साथ उत्तर देते हुए कहा : "पिता जी, आप बिलकुल चिन्ता न करें। मैं आप के सिंहासन को स्पर्श करके कहता हूँ कि मैं आज से अपने राज्याधिकार को छोटे भाई जयसिंह को देता हूँ और आप के सामने शपथ पूर्वक कहता हूँ कि मैंने अपने अधिकार को आज से छोड़ दिया। इस समय के बाद मैं आपके राज्य में कहीं पर पानी पीऊँ तो मैं आप का लड़का नहीं। "यह कह कर अपने नौकरों के साथ भीम उदयपुर से चला गया।

गर्मी के दिन थे। उदयपुर से चल कर भीम ने अपने नौकरों और चाकरों के साथ बेवारी के पहाड़ी मार्ग मे प्रवेश किया और दोपहर की तेज धूप में कुछ देर विश्राम करने के उद्देश्य से एक घने वृक्ष की छाया में वह ठहरा। उस समय उसने घूम कर एक बार अपनी जननी जन्म भूमि—उदयपुर की तरफ देखा। उसके बाद साथ के एक नौकर ने चाँदी के लोटे में सामने के झरने से ठंडा पानी ला कर पीने को दिया। भीम ने उसे हाथ में लेकर पीना चाहा। लेकिन उसी समय उसको अपनी शपथ और प्रतिज्ञा का स्मरण हो आया। वह तुरंत पानी को जमीन पर फेंक कर चलने के लिए

फिर तैयार हो गया। वहाँ से चल कर भीम अपने पिता का राज्य पार कर बादशाह के बेटे बहादुर शाह के पहुँचा। बादशाह ने उसको बड़े सम्मान के साथ लिया और अपने यहाँ तीन हजार सवार सेना का उसको सरदार बना दिया। साथ ही जीवन-निर्वाह के लिए अपने राज्य के बारह जिले उसको दे दिये। लेकिन कुछ समय में मुगल सेनापति के साथ झगड़ा होने के कारण भीम को बादशाह ने सिंध नदी के पार भेज दिया। काबुल में पहुँचने के बाद कुछ दिनों में उसकी मृत्यु हो गयी।

राणा राजसिंह के मरने के पहले उसके साथ संधि की शुरूआत हुई थी। उसकी बहुत-सी बातों का निर्णय भी हो गया था। परंतु संधि-पत्र पर दस्तखत होने के पहले ही राणा राजसिंह की मृत्यु हो गयी। इस लिए वह संधि अधूरी रह गयी थी। राणा के मर जाने के बाद राज्य का अधिकारी हो जाने पर और सिंहासन पर बैठने के उपरान्त जयसिंह ने बादशाह औरंगजेब के साथ संधि कर ली। यह संधि बादशाह के लड़के शाहजादा अजीम और सेनापति दिलेर खाँ के द्वारा औरंगजेब और राणा जयसिंह के बीच हुई। राणा राजसिंह के विरुद्ध औरंगजेब ने एक विशाल सेना ले कर आक्रमण किया। उस युद्ध में अरावली पर्वत के कठिन स्थानों में बादशाह की फौज संकट में पड़ गयी थी। उस समय जयसिंह ने दिलेर खाँ और बादशाह के लड़के के साथ अत्यन्त उदारता का व्यवहार किया जैसा कि पिछले पृष्ठों में लिखा जा चुका है।

दिलेर खाँ जयसिंह की उस उदारता को भूला न था। संधि के समय उदयपुर में मेवाड़ और दिल्ली राज्यों के बहुत से आदमियों का जमाव हुआ था। उसमें दस हजार सैनिक सवारों और चालीस हजार पैदल सिपाहियों के अतिरिक्त अरावली पर्वत पर रहने वाले अगणित संख्या में भील और दूसरी लड़ाकू जातियों के लोग एकत्रित हुए। इस प्रकार एक लाख से अधिक एकत्रित जन समूह ने राणा जयसिंह की जय-जयकार के नारे लगाने शुरू किये। उस समय शाहजादा अजीम के मन में भय उत्पन्न हुआ परन्तु दिलेर खाँ के दिल में जयसिंह की तरफ से किसी प्रकार की आशंका न थी। संधि का काम समाप्त हुआ। मेवाड़ राज्य की तरफ से बादशाह को तीन जिले दिये गये और यह तय हुआ कि संधि के बाद राणा जयसिंह को लाल रंग के डेरे और छत्र के प्रयोग का अधिकार न रहेगा।

संधि का काम समाप्त हो जाने के बाद भी उदयपुर में राणा के असीम सैनिकों को एकत्रित देख कर अजीम के मन में जो संदेह पैदा हुआ था, वह बराबर बना रहा और उस संदेह को दूर करने के लिए मुगल सेनापति दिलेर खाँ ने उदयपुर से बिदा होने के समय राणा जयसिंह से कहा : "आप के सरदार और सामन्त स्वाभाविक रूप से कठोर हैं। इस संधि का महत्व हमारे और आप के बीच जो कुछ हो सकता है, उसे दूसरे लोग नहीं समझ सकते। आप को इस बात के स्मरण रखने की आवश्यकता है कि यह संधि जो इस समय समाप्त हुई है, उस मित्रता की परिचायक है, जो आपके पिता और मेरे बीच में कायम हुई थी।

दिलेर खाँ का उद्देश्य दोनों राज्यों के प्रति सराहनीय था परन्तु अपनी चेष्टा में वह सफल न हुआ। राज सिंहासन पर बैठने के चार-पाँच वर्ष बाद जयसिंह को अपनी तलवार का विश्वास करना पड़ा। कामोरी मुगलों के भीषण आक्रमणों से अपनी रक्षा करने के लिए राणा को फिर पर्वतों का आश्रय लेना पड़ा और अनेक बार युद्ध करने पड़े। इन लड़ाइयों में राणा को बहुत बड़ी आर्थिक हानि उठानी पड़ी। इन कठिनाइयों का सामना करने के बाद भी जयसिंह ने कुछ ऐसे काम किये, जो उसकी योग्यता का परिचय देते हैं। उसने जयसमुन्द नाम की एक बहुत बड़ी झील का निर्माण पहाड़ पर करवाया। भट्ट ग्रंथों में लिखा गया है कि उस समय इस देश में जितनी

झीलें थीं, जयसिंह की बनवाई हुई यह झील सबसे बड़ी और दर्शनीय थी। इसका घेरा पन्द्रह कोस से अधिक है। इस झील से यहाँ की खेती को बहुत लाभ पहुँचा और कृषकों ने उसका लाभ उठा-कर अपनी आर्थिक उन्नति की। इस झील के समीप राणा जयसिंह ने अपनी रानी कमला देवी के लिए एक प्रसिद्ध महल बनवाया था।

राणा जयसिंह में एक बहुत बड़ी कमजोरी थी। उसमें विलसिता की भावना थी और उस विलसिता ने उसको स्त्री-परायण बना दिया था। उसकी इस आदत के कारण उसके सम्मान को भयानक रूप से आघात पहुँचा। जयसिंह की बहुत-सी रानियाँ थीं। उन रानियों में अमरसिंह की माँ सब से बड़ी थी। इसीलिए उससे पैदा हुआ लड़का अमरसिंह राणा जयसिंह का उत्तराधिकारी था। उसकी माता बूँदी राज्य के हाड़ा वंश में पैदा हुई थी। राणा जयसिंह अपनी रानियों में कमला देवी से अधिक प्रेम करता था। इन सब बातों के कारण राणा जयसिंह के परिवार में ईर्षा-भाव की वृद्धि हुई और उस ईर्षा ने राणा के परिवार में शत्रुता पैदा कर दी इसके फल स्वरूप राणा जयसिंह के गौरव को ही धक्का नहीं पहुँचा, बल्कि परिवार की इस बढ़ती हुई शत्रुता के कारण मेवाड़-राज्य की मर्यादा का विनाश आरम्भ हुआ। इस विनाश का कारण राज-स्थान के राजाओं में प्रचलित बहु विवाह की प्रथा थी।

राणा जयसिंह ने अपने परिवार में बढ़ती हुई कलह की परवा न की। वह अपनी रानी कमला देवी से इतना स्नेह करता था कि उसके बदले में वह अपने जीवन में सब कुछ छोड़ने के लिए तैयार था। यही हुआ भी। राणा अपने अन्तःपुर की अशान्ति को दबा न सका और अपनी सभी रानियों को छोड़कर अपनी छोटी रानी कमला देवी के साथ कहीं अन्यत्र जाने का विचार किया। उसने अपनी राजधानी का उत्तरदायित्व अमरसिंह को सौंपा और अमरसिंह को पांचौली नामक मंत्री के संरक्षण में देकर अपनी रानी कमला देवी के साथ जयपुर का रास्ता लिया। वहाँ के एक नगर में पहुँचकर वह एकान्त जीवन व्यतीत करने लगा। परन्तु वहाँ पर भी वह अधिक समय रह न सका और अपने लड़के के उपद्रवों के कारण उसे अपने नगर में फिर लौट आना पड़ा। अमरसिंह और मंत्री पांचौली में झगड़ा पैदा हुआ। अमरसिंह का व्यवहार राज्य के हित के लिए अच्छा न था। मंत्री ने उसको रास्ते पर लाने की कोशिश की। परन्तु उसको सफलता न मिली। मंत्री के साथ अमरसिंह के बढ़ते हुए विरोध को सुनकर और अनेक प्रकार की आशंकायें करके राणा जयसिंह को उदयपुर में लोटकर आ जाना पड़ा। राणा के उदयपुर से चले जाने के बाद अमरसिंह बिलकुल स्वतंत्र हो गया और बिना किसी अंकुश के मनमानी करने लग गया। उसकी इस अनु-चित स्वतंत्रता में उसकी माँ सहायक होती थी।

राणा जयसिंह के उदयपुर लौट आने पर अमरसिंह ने अपनी माता से परामर्श किया और उसकी सलाह से वह अपने मामा हाड़ा राजा के पास बूँदी पहुँचा और वहाँ से दस हजार सैनिक सवारों की सेना लेकर वह उदयपुर आ गया। राणा जयसिंह का विध्वंसकारी विरोध आरम्भ हुआ। राणा जयसिंह से मेवाड़ राज्य के सरदार और सामन्त प्रसन्न न थे। वे सभी राणा को अत्यन्त विलासी और आलसी समझते थे। इसलिए उन लोगों ने राणा का साथ न दिया। जीवन की यह परिस्थिति राणा के लिए अत्यन्त संकटपूर्ण बन गयी। इसके फल स्वरूप राणा उदयपुर से निकल कर गद्वाड़ राज्य चला गया और वहाँ के सामन्त राजा को उसने अमरसिंह के पास भेजा। उसने पिता और पुत्र की बढ़ती हुई शत्रुता को मिटाने की कोशिश की। परन्तु वह सफल न हुआ। उदय-पुर के सरदारों की सहायता पाकर वह बहुत निडर हो गया था और पिता की मौजूदगी में वह सिंहासन का अधिकार अपने हाथों में ले लेना चाहता था। राज्य के खजाने पर अपना अधिकार

करने के लिए अपनी सेना के साथ वह कमलमीर की तरफ चला। कमलमीर विप्रा नाम के सरदार के हाथ में था। वह समझदार, शूरवीर और दूरदर्शी था। उसने अमरसिंह की विशाल सेना की परवाह न की और उसने अमरसिंह को किसी प्रकार सफल न होने दिया।

इस प्रकार के कुछ और भी कारणों के पड़ने से अमरसिंह की शक्तियाँ क्षीण पड़ने लगीं। उनसे विवश होकर अमरसिंह ने अपने पिता के साथ संधि कर ली। राणा जयसिंह ने बीस वर्ष तक राज्य किया। उसके मरने पर उसका बड़ा लड़का अमरसिंह सम्वत् १७५६ सन् १७०० ईसवी में सिंहासन पर बैठा। पिता के जीवन काल में वह अपने व्यवहारों के कारण अनेक प्रकार की हानियाँ उठा चुका था, जिनसे वह अपनी शक्तियों का संचय न कर सका। फिर भी वह समझदार और दूरदर्शी था। उन दिनों में मुगल राज्य में आपसी झगड़े बढ़ गये थे। उनको देखकर अमरसिंह ने मुगल राज्य के उत्तराधिकारी शाहआलम के साथ संधि कर ली।×

बादशाह बाबर ने भारतवर्ष में मुगलों के राज्य की प्रतिष्ठा की थी और अकबर ने उसको विस्तार देकर लगभग सम्पूर्ण भारत में अपना साम्राज्य कायम कर लिया था। जिस नीति से अकबर को अपने राज्य के बढ़ाने में सफलता मिली थी, औरंगजेब ने जीवन-भर बिलकुल उसके प्रतिकूल काम किया। वह स्वाभाविक रूप से हिन्दुओं का और हिन्दू धर्म का विरोधी था। अपने इस स्वभाव के कारण ही वह उन हिन्दू राजाओं के साथ भी अच्छा व्यवहार न कर सका, जो अकबर के समय से मुगल साम्राज्य के समर्थक बने थे। वह मुस्लिम धर्म का प्रबल पक्षपाती था। अपने कठोर शासन के द्वारा उसने हिन्दूओं को इसलाम धर्म स्वीकार करने के लिए विवश किया था।

बादशाह अकबर के समय मुगल साम्राज्य में हिन्दू और मुसलमानों को धार्मिक मामलों में बराबर के अधिकार थे। जहाँगीर और शाहजहाँ के समय तक हिन्दूओं के इस प्रकार के अधिकार बराबर कायम रहे। औरंगजेब ने हिन्दुओं के इन अधिकारों को नष्ट कर दिया था। उसने उन लोगों पर जजिया टैक्स की तरह के कठोर कर लगाये थे, जिन लोगों ने इसलाम धर्म को स्वीकार नहीं किया था। उसके समय में इसलाम धर्म की धूम थी। जो हिन्दू अपनी किसी भी दशा में इसलाम को मंजूर कर लेता था, वह बादशाह औरंगजेब की हमदर्दी को प्राप्त करने का सहज ही अधिकारी बन जाता था। औरङ्गजेब का समस्त शासन इस प्रकार के पक्षपात से सदा डूबा रहा। मुगल साम्राज्य के पतन की शुरुआत यहीं से हुई और इसी पक्षपात ने उस विशाल साम्राज्य को सब प्रकार कमजोर बना दिया।

सीसोदिया वंश की एक छोटी शाखा में रावगोपाल नाम का एक राजपूत पैदा हुआ था। वह चम्बल नदी के किनारे पर बसे हुए रामपुर के इलाके का एक सामन्त राजा था। वह अपनी सेना के साथ दक्षिण की लड़ाई में गया था और जाने के समय उसने रामपुर का शासन अपने लड़के को सौंप दिया था। उसके लड़के ने उसके साथ विद्रोह किया। इस अवस्था में रावगोपाल ने अपने लड़के के विरुद्ध मुगल बादशाह के यहाँ मुकदमा कायम किया। रावगोपाल का लड़का अपराधी था। उस अपराध से बचने के लिए उसके सामने कोई रास्ता न था। इसलिए उसने हिन्दू धर्म छोड़कर इसलाम मंजूर कर लिया। उसके ऐसा करने से बादशाह औरङ्गजेब ने उसके पिता

× इस संधि में राणा अमरसिंह ने जो शर्तें पेश की थीं और वे मंजूर हुई थीं, उनका महत्वपूर्ण अंश संक्षेप में इस प्रकार है : (१) चित्तौर की प्रतिष्ठा का अधिकार राणा को होगा। (२) गो हत्या न की जाय। (३) शाहजहाँ के समय में जो जिले मेवाड़-राज्य में शामिल थे, वे राणा के अधिकार में रहेंगे। (४) धार्मिक बातों में हिन्दुओं को पूरी स्वतंत्रता रहेगी।

रावगोपाल के चलाये हुए मुकदमें को खारिज कर दिया। इसके साथ-साथ बादशाह ने रावगोपाल के रामपुर का राज्य भी उसके लड़के को दे दिया।

रावगोपाल को इस अन्याय से बहुत कष्ट पहुँचा। उसने अपनी छोटी-सी सेना लेकर अपने न लड़के पर आक्रमण किया। परन्तु बादशाह की मदद मिलने के कारण उसके लड़के को सफलता न मिली। उस दशा में रावगोपाल ने राणा अमरसिंह के पास जाकर आश्रय लिया। औरङ्गजेब ने जब सुना कि राणा अमरसिंह ने रावगोपाल को अपने यहाँ आश्रय दिया है तो वह अमरसिंह से बहुत अप्रसन्न हुआ और उसने उसको मुगल-राज्य का एक विद्रोही मान लिया।

बादशाह औरङ्गजेब ने एक मुगल सेना देकर शाहजादा अजीम को राणा अमरसिंह के विरुद्ध मालवा भेज दिया। अमरसिंह को जब मालूम हुआ तो उसने अजीम के विरुद्ध युद्ध की तैयारी की और उसकी सहायता के लिए मालवा का राजा युद्ध-क्षेत्र में गया। अजीम उस समय नर्वदा नदी के दूसरी तरफ था। वहाँ पर महाराष्ट्र लोगों ने मुगल-साम्राज्य के विरुद्ध विद्रोह कर रखा था। उस बगावत को शाँत करने के लिए औरङ्गजेब ने राजा जयसिंह को एक मुगल सेना के साथ अजीम की सहायता के लिए भेजा।

उन दिनों में मुगलों का शासन डाँवाडोल हो रहा था। साम्राज्य में चारों तरफ मुगलों के विरुद्ध विद्रोह हो रहे थे और कितने ही छोटे-छोटे राजा मुगलों से स्वतंत्र होने के लिए कोशिश कर रहे थे। दक्षिण में औरङ्गजेब के विरुद्ध शिवाजी ने विद्रोह कर रखा था। साम्राज्य की इस निर्बल अवस्था में औरङ्गजेब के लड़कों और भतीजों ने उसके विरुद्ध बगावत की। इससे औरङ्गजेब की कठिनाइयाँ भयानक हो उठीं। वह घबराकर अपने नाम पर बसाये हुए औरङ्गाबाद नामक नगर में चला गया और वहाँ पर सन् १७०७ ईसवी में उसकी मृत्यु हो गयी। उसके मरते ही उसके लड़कों और भतीजों में सिंहासन पर बैठने के लिए भयानक झगड़ा पैदा हुआ।

मुगल साम्राज्य की इस बगावत में औरङ्गजेब के दूसरे पुत्र अजीम ने साम्राज्य का अधिकार अपने हाथों में लिया। यह देखकर उसके बड़े भाई शाहजादा मुअज्जम ने अपनी सेना लेकर अजीम पर आक्रमण किया। अजीम दतिया और कोटा के राजपूतों की सहायता लेकर मुअज्जम से लड़ने के लिए आगरा पहुँचा। मेवाड़, मारवाड़ और राजस्थान के सभी पश्चिमी राजा मुअज्जम के साथ लड़ने के लिए आये थे। जाजौ नामक स्थान पर दोनों सेनायों का सामना हुआ। उस दतिया और कोटा के राजाओं और अपने लड़के बेदारबख्त के साथ अजीम मारा गया। उसके पश्चात् शाहजादा मुअज्जम शाहआलम बहादुरशाह के नाम से मुगल सिंहासन पर बैठा।

मुअज्जम के कुछ स्वाभाविक गुणों ने राजपूतों को अपनी ओर आकर्षित किया था। वह हिन्दुओं के साथ पक्षपात हीन व्यवहार करता था। एक विशेषता यह भी थी कि उसका जन्म एक राजपूत स्त्री से हुआ था। शाहजहाँ के बाद मुगल सिंहासन पर यदि मुअज्जम बैठा होता तो राजस्थान के राजाओं के साथ मुगल-साम्राज्य की शत्रुता न बढ़ती और मुगलों का शासन बहुत जल्दी कमजोर न पड़ जाता। परन्तु शाहजहाँ के बाद औरङ्गजेब दिल्ली के सिंहासन पर बैठा और उसने अपने जीवनकाल में हिन्दुओं के साथ जिस प्रकार घृणित और पक्षपातपूर्ण व्यवहार किया, उसके फलस्वरूप मुगलों के साथ राजपूतों के जो सम्बन्ध सुदृढ़ और सहानुभूतिपूर्ण बहुत दिनों से चले आ रहे थे, वे ढीले पड़ गये और उत्तरोत्तर वे कमजोर पड़ते गये।

शाहआलम ने बादशाह होने के बाद राजपूतों के टूटते हुए सम्बन्धों को फिर से जोड़ने की चेष्टा की। परन्तु इसके सम्बन्ध में उसकी सभी कोशिशें बेकार हो गयीं। इन्हीं दिनों में छोटे भाई

कामबख्श के साथ बादशाह का भयानक झगड़ा हुआ। कामबख्श ने अपने आपको भारत के दक्षिणी मुगल राज्य का बादशाह घोषित किया। शाहआलम अपने छोटे भाई के इस अन्यायपूर्ण कार्य का कुछ प्रतिकार करना चाहता था, परंतु उसी बीच मुगल शासन के विरुद्ध सिक्खों का विद्रोह बढ़ा। बादशाह के लिये यह विद्रोह अधिक भयानक मालूम हुआ और उसने सब से पहले सिक्खों के दमन करने की बात सोची। उन दिनों में सिक्खों का संगठन जोर पकड़ रहा था और उनकी भाषा में सिक्ख का अर्थ शिष्य होता है। आक्सस नदी के किनारे शाकद्विपी जित वंश में इन सिक्खों के पूर्वजों का जन्म हुआ था। पाँचवीं शताब्दी के मध्यकाल में सिक्खों के पूर्वज भारत के पश्चिम भाग में आकर बसे। गुरू नानक से जिन लोगों ने दीक्षा पायी, वे सभी सिक्खों के नाम से विख्यात हुए। वे इन दिनों में मुगलों के शासन से अलग होकर अपने आप को स्वतंत्र बनाने की चेष्टा में थे।

विद्रोही सिक्खों को दमन करने के लिए बादशाह शाहआलम पंजाब की तरफ रवाना हुआ। जिस समय वह सिक्खों के विरुद्ध जाने की तैयारी कर रहा था, अम्बेर और मारवाड़ के राजाओं ने जाकर उससे भेंट की और बिना कुछ उसको जाहिर किये दोनों हिन्दू राजा वहाँ से लौट आये। इतिहासकारों का अनुमान है कि उस समय ये दोनों हिन्दू राजा विद्रोही सिक्खों का अनुकरण करके मुगलों की अधीनता से छुटकारा प्राप्त करना चाहते थे।

बादशाह शाहआलम के नेत्रों से इन हिन्दू राजाओं की भावना छिपी न थी। उसने अपने लड़के के द्वारा उनके इन भावों को बदलने की चेष्टा की। परन्तु उसमें उसको सफलता न मिली। अम्बेर और मारवाड़ के राजा शाहआलम के पास से लौटकर उदयपुर में राणा अमरसिंह के पास पहुँचे और उस समय उन तीनों के बीच संधि हुई। उसमें निश्चय हुआ कि आज से हम लोगों में से कोई मुगल बादशाह के साथ सामाजिक अथवा राजनीतिक—किसी प्रकार का कोई सम्बन्ध न रखा जाय। इस संधि के द्वारा उन तीनों राजाओं में सामाजिक सम्बन्धों की प्रतिष्ठा हुई, जो पिछले दिनों में भंग कर दिये गये थे। इस संधि के द्वारा जो सम्बन्ध राजपूतों के मुगलों के साथ बाकी रह गये थे, वे निर्जीव पड़ गये और मुगलों की अधीनता से राजपूतों को छुटकारा प्राप्त करने का रास्ता मिला। परंतु इन्हीं दिनों में संगठित मराठों ने राजस्थान में प्रवेश किया और उनको छिन्न भिन्न कर डाला।

रामपुर के राजा रावगोपाल का लड़का रतनसिंह अपने पिता से विद्रोही होकर मुसलमान हो गया था और उस दशा में औरङ्गजेब ने रतनसिंह की सहायता करके उसके पिता का राज्य उसको सौंप दिया था। रावगोपाल इसके बाद राणा अमरसिंह की शरण में गया था। राणा ने उसकी सहायता का वादा किया और अपनी सेना के साथ उसने रतनसिंह के विरुद्ध रामपुर पर आक्रमण किया। मुसलमान हो जाने के बाद रतनसिंह का नाम राजमुस्लिमखाँ हो गया। राजमुस्लिमखाँ ने राणा की सेना का मुकाबिला किया और राणा को पराजित किया।

राणा की पराजय का समाचार बादशाह ने दूत से सुना। उसने यह भी सुना कि पराजित होने के बाद अपना राज्य छोड़कर राणा ने पर्वत पर जाकर रहने का निर्णय किया है। इन समाचारों से बादशाह बहुत प्रसन्न हुआ और उसने समाचार लाने वाले दूत को इनाम और इकराम दिये। इसके कुछ दिनों के बाद बादशाह को यह भी मालूम हुआ कि राणा की तरफ से साँवलदास नामक एक सरदार ने फिरोजखाँ पर आक्रमण किया। फिरोजखाँ अपना राज्य छोड़कर अजमेर भाग गया। इस लड़ाई में साँवलदास का लड़का जयमल मारा गया। मारवाड़ का शूरवीर दुर्गादास उदयपुर चला आया था। मारवाड़ के राजा से असंतुष्ट होने के कारण उसे ऐसा करना पड़ा था।

राणा ने उदयपुर में उसे सम्मानपूर्ण स्थान दिया था और उसके जीवन-निर्वाह के लिए पाँच सौ रुपये रोजाना के हिसाब से उसको दिये जाने की व्यवस्था कर दी थी।

दुर्गादास जैसे शूरवीरों का कोई लाभ उदयपुर को मिलने के पहिले ही शाहआलम बहादुर-शाह की मृत्यु हो गयी। राज्य के विरोधियों के द्वारा सन् १७१२ ईसवी में बादशाह शाहआलम को विष देकर उसके प्राणों का अंत किया गया। बादशाह शाहआलम चरित्रवान आदमी था। लेकिन उसको अपने पिता के अपराधों का फल भोगना पड़ा। औरङ्गजेब के अत्याचारों से मुगल राज्य में बहुत अशान्ति पैदा हो गयी और चारों तरफ अधीनस्थ राजाओं ने स्वतंत्र होने के लिए विद्रोह कर रखा था।

बादशाह शाहआलम के मरने के बाद मुगल राज्य की परिस्थिति एक साथ भयानक हो उठी। राज्य के उत्तराधिकारियों में झगड़े पैदा हो गये। इन्हीं दिनों में गंगा-जमुना के बीच के बेरा नगर से दो सैयद बंधु ने आकर मुगल राज्य ने अपना आधिपत्य जमाया और शासन व्यवस्था को व्यापार बनाकर दोनों भाइयों ने मुगलों के राज्याधिकार के साथ एक खेल आरम्भ कर दिया। जिसके द्वारा दोनों सैयद बंधुओं का स्वार्थ-साधन होता, वही मुगल सिंहासन का अधिकारी हो जाता। इसका परिणाम यह हुआ कि राजसिंहासन पर बैठने के लिए मुगलों में जो परिपाटी चली आ रही थीं, उसका कोई महत्व न रहा। इस प्रकार मुगलों का सिंहासन और उस पर बैठने का अधिकार हुसेन अली और अब्दुलाखाँ—दोनों सैय्यद बंधुओं के निर्णय पर चलने लगा। मुगल शासन की यह अवस्था उस समय शुरू हुई जब उदयपुर में राजस्थान के तीन राजाओं ने मुगल बादशाह के विरुद्ध संधि की थी और वे तीनों जिनों दिनों में मुगल राज्य के विरुद्ध विद्रोह करने के लिए तैयार थे, दोनों सैयद बन्धुओं ने फरुखसियर को मुगलों के राजसिंहासन पर बिठाया और सम्पूर्ण राज्य में अपने आतंक का विस्तार कर दिया। इसके फलस्वरूप राजपूतों में जो अराजकता पैदा हो रही थी, उसकी आग प्रज्वलित हो उठी।

बहुत दिनों से मुगल शासकों के अत्याचारों को सहते हुए राजपूत जिस शांति और संतोष से काम ले रहे थे, वह अब कायम न रह सकी। इधर मुगल राज्य में सैयद बंधुओं की जो मन-मानी चल रही थी, उसने राजपूतों को खुल कर विद्रोह करने का काम किया। राजस्थान में स्थान स्थान पर मन्दिरों को तोड़कर, मसजिदें बनवाई गयीं थी और उन मसजिदों में मुल्ला लोग दीवानी और फौजदारी के मुकदमें करते थे। मोहम्मद साहब के आदेशों का प्रचार होता था। राजस्थान की इन परिस्थितियों को सहन करने के लिए राजपूत लोग अब तैयार न थे। उन्होंने मुल्ला और काजी लोगों के विरुद्ध वातावरण उत्पन्न किया। उसका फल यह हुआ कि राजास्थान में मसजिदों के अस्तित्व नष्ट होने लगे। इसके पहले मुस्लिम शासकों ने हिन्दुओं के समस्त अधिकारों को छीन कर मुसलमानों को दे दिया था। इन दिनों में राजपूतों ने और विशेष रूप से राठौरों ने उन अधिकारों को मुसलमानों के हाथों से ले लिया। मारवाड़ के राजा अजितसिंह ने इन दिनों में मुगलों को अपने यहाँ पूर्ण रूप से पराजित किया और उनको मारवाड़ से निकाल दिया। उदय-पुर में जो संधि हुई थी, उसके अनुसार तीनों राजाओं ने साँभर झील को अपने-अपने राज्यों की सीमा मान ली और उससे होने वाली आमदनी को तीनों आपस में बाँट लेते थे।

राजपूतों की इस बढ़ती हुई शक्ति को देख कर बादशाह फरुखसियर ने विरोध करने का निश्चय किया और इसके लिए अमीरुलउमरा एक मुगल सेना के साथ अजितसिंह से युद्ध करने के लिए मारवाड़ की तरफ रवाना हुआ। उसी अवसर पर बादशाह फरुखसियर ने छिपे तौर पर एक पत्र अजितसिंह के पास भेजा और उसमें लिखा कि हमारे सेनापति सैयद को उसके हमले का पूरा

फल मिलना चाहिए। × बादशाह फर्रुखसियर ने जो इस प्रकार का पत्र अजितसिंह के पास भेजा था, उसका कारण यह था कि वह दोनों सैयद बंधुओं से बहुत दबा हुआ था और अपने आपको एक नाम का बादशाह समझता था। उसके इस पत्र का कोई लाभ उसको न मिला। मारवाड़ के राजा अजितसिंह ने मुगल सेनापति अमीरुलउमरा के साथ संधि करली और एक निश्चित कर देने के साथ-साथ अपनी लड़की का ब्याह बादशाह के साथ करने का वादा कर लिया।

इस विवाह के होने के कुछ दिन पहले बादशाह फर्रुखसियर की पीठ में एक फोड़ा निकला। वह धीरे-धीरे बढ़ गया। हकीमों और जर्राहों की बहुत चिकित्सा के बाद भी उसमें कुछ लाभ न पहुँचा। एक तरफ बादशाह को उस फोड़े का कष्ट था, जो दिन पर दिन भयानक होता जा रहा था और दूसरी तरफ उसके विवाह के दिन करीब आ रहें थे। इलाज करते-करते और भी कुछ दिन बीत गये। विवाह का जो दिन नियत हुआ था, वह दिन भी निकल गया लेकिन बादशाह का फोड़ा सेहत न हुआ।

उन दिनों में ईस्ट इण्डिया कम्पनी भारत में व्यवसाय करने के लिए आयी थी और उस कम्पनी के अँगरेज सूरत में मौजूद थे। उन अँगरेजों में हेमिल्टन नाम का एक डाक्टर भी था। उसने जब बादशाह को बीमार सुना तो वह देखने गया। फोड़े की हालत देखकर उसने घबराये हुए बादशाह को अनेक तरह की बातें समझाईं और अपनी चिकित्सा करने का उसने इरादा जाहिर किया। बादशाह की आज्ञा पाकर उस अँगरेज डाक्टर ने फोड़े की चिकित्सा आरम्भ की। उसके इलाज से थोड़े ही दिनों में फोड़ा अच्छा हो गया।

सेहत होने के बाद बादशाह फरुरसियर ने डाक्टर हेमिल्टन को इनाम देने का इरादा किया। बादशाह के इस इरादे को सुनकर डाक्टर हेमिल्टन ने कहा कि "मुझे इस चिकित्सा के बदले बादशाह का लिखा हुआ वह फरमान मिलना चाहिए, जिससे हमारी कम्पनी को इस राज्य में रहने का अधिकार मिले और हमारे मुल्क इंगलैण्ड से आने वाले माल पर जो चुंगी ली जाती है, वह माफ कर दी जाय।"

बादशाह डाक्टर हेमिल्टन की इस माँग को सुनकर—जिसमें किसी प्रकार व्यक्तिगत स्वार्थ की भावना न थी और उसके एक-एक अक्षर से देशभक्ति की महत्वपूर्ण शिक्षा मिलती थी—बहुत प्रभावित हुआ और उसने डाक्टर की माँग को स्वीकार किया। स्वस्थ हो जाने के पश्चात् बादशाह ने मारवाड़ की राजकुमारी के साथ अपना विवाह किया।

फरुखसियर दोनों सैयद बंधुओं से बहुत असंतुष्ट था। कुछ और न कर सकने की अवस्था में उसने औरंगजेब के पुराने मंत्री इनायतउल्ला खाँ को अपना मंत्री मुकर्रर किया। इनायतउल्ला खाँ ने अपने इस पद पर आते ही हिन्दुओं पर अनेक प्रकार के अत्याचार आरम्भ किये और जजिया टैक्स उसने फिर से कायम किया। बादशाह औरंगजेब के समय में यह टैक्स हिन्दुओं पर लगाया गया था। उसका एक संशोधित रूप इनायतउल्ला खाँ ने अपने मंत्री काल में फिर से हिन्दुओं में आरम्भ किया। इसके सिवा और भी अनेक प्रकार के भीषण अत्याचार उस समय हिन्दुओं के साथ आरम्भ किये गये।

× सैयद हुसेन अली अमीरुलउमरा के नाम से और उसका भाई अबदुल्ला खाँ कुतबुल मुल्क के नाम से प्रसिद्ध हुआ। बादशाह फरुखसियर ने गुप्त रूप से हुसेनअली के विरुद्ध अजितसिंह के पास जो पत्र भेजा था, उसकी जानकारी दोनों सैयद बंधुओं को न थी। इसीलिए वे बादशाह की तरफ से अजितसिंह को दबाना चाहते थे।

इसी परिच्छेद में पहले लिखा जा चुका है कि मुगल बादशाह के विरुद्ध जिन तीन राजाओं ने उदयपुर में संधि की थी, उसमें मारवाड़ का राजा अजितसिंह भी था। उस संधि में यह शर्त थी कि हममें से कोई मुगल बादशाह के साथ सामाजिक अथवा राजनीतिक—किसी प्रकार का सम्बन्ध न करेगा। संधि की उस शर्त को तोड़ कर अजितसिंह ने मुगल बादशाह फरुखसियर की अधीनता स्वीकार की और उसके साथ अपनी लड़की का विवाह किया। उसके इस कार्य ने राणा अमरसिंह से उसको फिर से अलग कर दिया।

जिन दिनों में राजस्थान के कितने ही राजा मुगलों के विरुद्ध विद्रोह कर रहे थे, दिल्ली के करीब रहने वाले जाटों ने भी विद्रोह किया और वे लोग स्वतंत्र हो गये। ये जाट लोग जिट वंश की एक शाखा में पैदा हुए थे और चम्बल नदी के पश्चिम तरफ रहा करते थे। मुगल साम्राज्य की बढ़ती हुई कमजोरियों को देख कर जाटों ने संगठित रूप से मुगल बादशाह के विरुद्ध अपनी स्वाधीनता का झण्डा उठाया और अपनी स्वतंत्रता की घोषणा की। मुगलों की शक्तियाँ अपनी पराधीनता में जाटों को रख न सकी।

मारवाड़ के राजा अजितसिंह ने जिन दिनों में मुगल बादशाह के साथ संधि की थी, उसके थोड़े ही दिनों के पश्चात् राणा अमरसिंह की मृत्यु हो गयी। वह एक स्वाभिमानी और उन्नतिशील राजा था। जिन दिनों में चारों ओर से मुगल साम्राज्य पर आक्रमण हो रहे थे और उसकी अधीनता में पड़े हुये राजा अपनी स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिये चेष्टा कर रहे थे, राणा अमरसिंह बड़ी बुद्धिमानी के साथ मेवाड़ राज्य की उन्नति में लगा हुआ था। उसने अपने जीवन में कितने ही ऐसे कार्य किये थे, जिनके द्वारा वह सर्वथा प्रशंसा का अधिकारी हुआ।

चौबीसवाँ परिच्छेद

मेवाड़ और दिल्ली के राज्य–परसिया, यूनान और मुगल शासन के पतन के रहस्य–मुगलों के विनाश की जड़ में सैयद बंधु–राजस्थान के राजाओं की सूझ–सीसोदिया वंश की सिद्धान्त प्रियता–मराठों और पठानों के मेवाड़ में आक्रमण–मराठों का आतंक–दिल्ली में नादिरशाह का आक्रमण–लूट-मार, रक्तपात और भयानक नर-संहार !

सन् १७१६ ईसवी में राणा अमरसिंह की मृत्यु हुई। उसने अपने जीवन में अंत तक मेवाड़ राज्य को उन्नत और सम्मानपूर्ण बनाने की चेष्टा की थी। उसके बाद संग्रामसिंह मेवाड़ राज्य के सिंहासन पर बैठा। लगभग इन दिनों में मुगल साम्राज्य का अंतिम बादशाह मोहम्मदशाह सिंहासन पर बैठा था। सन् १७१६ से १७३४ ईसवी तक—संग्रामसिंह के शासनकाल में विशाल मुगल साम्राज्य छिन्न भिन्न हो गया। जब कोई एक बड़ी शक्ति नष्ट होकर बहुत से अधिकारियों के हाथों में चली जाती है और प्रत्येक अधिकारी अपनी पूर्ण स्वतंत्रता को प्रयोग में लाता है तो उसका परिणाम सामुहिक रूप से भयानक होता है। शक्तिशाली मुगल साम्राज्य के पतन का यही कारण हुआ। साम्राज्य की एक बंधी हुई शक्ति बादशाह औरङ्गजेब के शासनकाल में कमजोर पड़ने लगी थी और उसके बाद जितने भी बादशाह मुगल सिंहासन पर बैठे, उस कमजोरी को दूर न कर सके

फलस्वरूप, साम्राज्य का नियंत्रण लगातार नष्ट होता रहा और एक समय वह आया, जब मुसलमानों, मराठों और राजपूतों ने साम्राज्य के विरुद्ध खुलकर विद्रोह किया। विद्रोह के इन दिनों में अनेक शक्तियों ने उन्नति की परन्तु उन शक्तियों का कोई एक अधिकारी न था—उनके ऊपर नियंत्रण रखने वाली कोई एक बड़ी शक्ति न थी, इसलिए इस विशाल देश का शासन, एक सौ वर्षों के भीतर इंगलैंड से आये हुये मुट्ठी-भर आदमियों के हाथों में चला गया। किसी बड़ी शक्ति के छिन्न-भिन्न हो जाने का परिणाम यही होता है। जहाँ पर सभी शक्तियाँ स्वतंत्रता से काम लेती हैं और उन पर किसी केन्द्रीय शक्ति का नियंत्रण नहीं रहता तो उन शक्तियों का पतन स्वाभाविक हो जाता है। इस स्वाभाविकता के उदाहरण छोटे छोटे परिवारों से लेकर बड़े-बड़े साम्राज्यों तक एक से देखे जाते हैं और संसार का प्रत्येक इतिहास इस स्वाभाविकता को बिना किसी विवाद के स्वीकार करता है। प्राचीन परसिया के सूबेदारों ने अपनी अनियंत्रित स्वतंत्रता का भोग करके परसिया के पतन का बीज बोया था और यूनान से लेकर हिन्दुस्तान तक फैली हुई सिकन्दर की बादशाहत का पतन उस समय आरम्भ हुआ था, जब उसके मरने के बाद, उसके सेनापतियों ने अनियंत्रित होकर अलग-अलग प्रान्तों में अपने-अपने अधिकारों की घोषणा की थी। विशाल और समुन्नत भारत का कभी पतन न हुआ होता, यदि इस विस्तृत देश में राजाओं और नरेशों की संख्या बढ़ी न होती और विशाल मुगल-साम्राज्य का पतन न होता, यदि अकबर वंशजों ने अनियंत्रित अवस्था में स्वतंत्र होकर राज्याधिकार के लिए विद्रोह न किया होता।

बादशाह फरुखसियर का थोड़े दिनों का शासन अपने अंतिम दिनों में चल रहा था। वह मुगल-सिंहासन पर था। परन्तु सैयद बन्धुओं के हाथों में वह कठपुतली हो रहा था। शासन में न तो उसका कुछ अधिकार था और न सम्मान था। उसने सैयद बंधुओं के आधिपत्य को खतम करने के लिए अनेक प्रयास किये थे, परन्तु किसी में उसको सफलतता न मिली। उसने इनायत-उल्ला को अपना मंत्री इसलिए मुकर्रर किया था कि उसकी सहायता से दोनों सैयद बंधुओं का प्रभाव नष्ट हो जायगा, परन्तु ऐसा न हुआ। इनायतउल्ला ने मंत्री होने के पश्चात् जजिया जैसे कर लगा कर हिन्दुओं के साथ जो असंगत और अन्यायपूर्ण व्यवहार किया, उससे बादशाह के साथ राजपूतों की जो सहानुभूति बाकी रह गयी थी, वह भी नष्ट हो गयी।

जब बादशाह को अपने किसी प्रयत्न में सफलता न मिली तो उसने हैदराबाद राज्य की प्रतिष्ठा करने वाले निजामुल-मुल्क को अपनी सहायता के लिए बुलाया। इसके पहले निजामुल-मुल्क मुरादाबाद का सूबेदार था। वह शासन-सम्बन्धी कार्यों में बहुत चतुर था। इसीलिए बादशाह ने सैयद बन्धुओं से राहत प्राप्त करने के लिए उसको बुलाया और मालवा का राज्य उसे देने का वादा किया।

सैयद बन्धुओं को निजामुल-मुल्क के बुलाये जाने की खबर मिल गयी। उन्होंने मराठों की दस हजार सेना लेकर बादशाह के विरुद्ध विद्रोह किया और फरुखसियर को सिंहासन से उत्तार दिया। उस समय अम्बेर और बूंदी के दो राजाओं के अतिरिक्त बादशाह को कोई सहायक न था। उस संकट के समय इन दोनों राजाओं ने बादशाह का जो परामर्श दिया, उन पर अमल करने की बादशाह की हिम्मत न पड़ी। इसलिए दोनों हिन्दू राजा उसको छोड़ कर चल गये।

बादशाह फरुखसियर बहुत कमजोर तबीयत का आदमी था। सैयद बन्धुओं से घबरा कर वह जनानखाने में अपनी बेगमों के साथ रहने लगा। उस हालत में सैयद बन्धुओं ने बादशाह के पास संदेश भेजा कि "तुम राजपूतों का विश्वास छोड़ दो और हमारे सेनापति को अपने दुर्ग का अधिकार दे दो। तुम्हारे ऐसा करने से हम तुम्हारे साथ फिर कोई अत्याचार न करेंगे।" बादशाह

को मजबूर होकर इस आज्ञा का पालन करना पड़ा। उसके हाथ से दुर्ग निकल गया और वहाँ पर वजीर और अजितसिंह को छोड़कर अन्य कोई उसका सहायक न रह गया। इसके बाद बाहर इस बात का पता किसी को न चला कि महलों में क्या हो रहा है।

अमीरुल उमरा अपनी दस हजार मराठा सेना के साथ बाहर इन्तजार कर रहा था। फरुख-सियर के स्थान पर रफेउलदिर्जात दिल्ली के सिंहासन पर बैठा। इस समय मुगल-राज्य की जो हालत चल रही थी, उससे घबरा कर नये बादशाह ने अजितसिंह और दूसरे राजाओं को खुश करने का विचार किया। इसके लिए उसने जजिया टैक्स—जो हिन्दुओं पर लगाया था—उठा लिया। दूसरी तरफ सैयद बन्धुओं ने राजपूतों को खुश करने की चेष्टा की और इनायतउल्ला को मन्त्री के पद से हटा कर राजा रत्नचन्द को मुगल-राज्य का मन्त्री बनाया।

तीन महीने तक शासन करने के बाद रफेउलदिर्जात की मृत्यु हो गयी। उसके बाद दो अन्य बादशाह वहाँ सिंहासन पर बैठे और चंद दिनों की बादशाहत का सुख उठा कर संसार से चले गये। इसके बाद बहादुरशाह का बड़ा लड़का रोशन अख्तर मोहम्मद शाह के नाम से सन् १७२० ईसवी में दिल्ली के सिंहासन पर बैठा। उसने तीस वर्ष तक शासन किया। उसके समय में सम्पूर्ण साम्राज्य में भयानक विद्रोह खड़े हुए और मुगलों का राज्य छिन्न-भिन्न हो गया। इन्हीं दिनों में मराठों और पहाड़ी अफगानों ने हिन्दुस्तान पर आक्रमण किया और बहुत-से गाँव और नगरों को लूट कर भीषण उत्पात मचाया।

इन दिनों में मुगल-राज्य की हालत बहुत खराब हो गयी थी। स्थान-स्थान पर उपद्रव हो रहे थे। सैयद बन्धुओं के अत्याचारों से राज्य का विध्वंस हो रहा था। इन दोनों बन्धुओं से जो लोग मित्रता रखते थे, उनमें निजामुल-मुल्क उनसे अधिक अप्रसन्न हुआ। निजामुल-मुल्क एक चतुर सेनापति था। उसने बड़ी बुद्धिमानी के साथ मालवा-राज्य की उन्नति की थी। इसलिए सैयद बन्धुओं को उससे शंका पैदा हो रही थी। निजामुल-मुल्क के अप्रसन्न होने के कारण सैयद बन्धुओं का भय अधिक हो गया। वे दोनों भाई जब से दिल्ली आये थे, मुगल शासकों को कठपुतली की तरह नचा रहे थे। उनकी भयानक राजनीति के कारण मुगलों का राज्य नष्ट होता जा रहा था। मुगल वंश में इस समय ऐसा कोई न था, जो इन भाइयों की राज-नीति से मुगल-राज्य की रक्षा कर सकता।

सैयद बन्धुओं ने अपनी राजनीति के द्वारा मुगल-सिंहासन पर बिठाने का अधिकार अपने हाथ में ले रखा था। वे किसी ऐसे व्यक्ति को सिंहासन पर नहीं बैठने देना चाहते थे, जो राज्याधिकार पाने के बाद उन दोनों का विरोध कर सके। इस लिए उन दोनों भाइयों के द्वारा अब तक मुगल सिंहासन पर ऐसे ही लोग बादशाह बना कर बिठाये गये, जो दोनों भाइयों के इशारों पर काम करते थे। इसका परिणाम यह हुआ कि एक अच्छे बादशाह के अभाव में मुगल-साम्राज्य की सारी शक्तियाँ नष्ट हो गयीं और जो राजा उसकी अधीनता में थे, वे सभी विद्रोह करके स्वतंत्र हो गये। शासन में अच्छा प्रबंध और न्याय न होने के कारण प्रजा बहुत दुखी थी और अधिकारियों के प्रति अपनी सहानुभूति नष्ट कर चुकी थी। निजामुल-मुल्क ने भी अपनी आजादी की आवाज उठायी और असीरगढ़ तथा बुरहानपुर के किलों पर अधिकार कर लिया। निजाम की इस बढ़ती हुई ताकत को देखकर सैयद बन्धु घबरा उठे और अपनी सहायता के लिए उन्होंने राजपूत सामन्तों से प्रार्थना की। इस पर कोटा और नरवर के दोनों राजकुमार निजाम के विरुद्ध सेनायें लेकर रवाना हुए और नर्वदा नदी के किनारे पर पहुँच गये। उस लड़ाई में निजाम की विजय हुई और कोटा का राजकुमार मारा गया।

हैदराबाद राज्य जिस समय स्वतंत्र हुआ, उसके साथ ही अयोध्या का राज्य भी आजाद हो गया। उस समय सैयद खाँ वहाँ का नवाब था। पहले वह बियाना दुर्ग का सरदार था। सैयद भाइयों के विरुद्ध मोहम्मदशाह ने उसको दिल्ली से बुलाया था। बादशाह की आज्ञा पाकर सहादत खाँ ने अमीरुल उमरा को मारने की चेष्टा की और हैदर खाँ ने उसका संहार किया। इस खबर को पाते ही कि अमीरुल उमरा मारा गया, मोहम्मद शाह ने उसके भाई अबदुल्ला खाँ को कैद करने की कोशिश की। इस पर उसके वजीर ने बगावत की और दिल्ली के सिंहासन पर इब्राहीम को बिठाकर वह मोहम्मद शाह के विरुद्ध युद्ध करने क लिए रवाना हुआ। कुछ देर के संग्राम में दिल्ली के सेनापति सहादत खाँ ने वजीर को गिरफ्तार कर मोहम्मद शाह के सामने उपस्थित किया और बादशाह की आज्ञा से उसको फाँसी की सजा दी गयी।

सेनापति शहादतखाँ की इस बहाहुरी से मोहम्मदशाह बहुत प्रसन्न हुआ। उसने उसको बहादुर जंग की पदवी दी और उसे अयोध्या का राजा बना दिया। इस सफलता के उपलक्ष में हिन्दू राजा बादशाह को बधाई देने के लिए गये। बादशाह ने अम्बेर और जोधपुर के राजाओं को अपने राज्य के कुछ इलाके इनाम में दिये। गिरधरदास ने मराठों को युद्ध करके पोछे हटाया था। इसलिए बादशाह ने उसको पुरस्कार में मालवा का राज्य दिया और निज़ाम को अपना वजीर बनाने के लिए हैदराबाद से बुलाया। गिरधरदास, रत्नचन्द्र के दीवान जुबीलराम नागर नामक ब्राह्मण का लड़का था। इसी सिलसिले में बादशाह ने जयसिंह को आगरा एवम् अजितसिंह को गुजरात और अजमेर दिया।

मुगल-साम्रज्य के इन बिगड़े हुए दिनों में राजस्थान के सभी राजा और नरेश अपने राज्यों के निर्माण में लगे थे। परन्तु मेवाड़ राज्य में इस प्रकार का कोई भी कार्य न हो रहा था। इन दिनों में अम्बेर का राज्य जमुना नदी के किनारे तक फैल गया था और मेवाड़ का राजा अजयसिंह ने अजमेर के किले पर अपना झंडा फहरा कर और गुजरात के राज्य को तहस-नहस करके अपनी सेना राजस्थान की मरुभूमि तक पहुँचा दी थी।

इस प्रकार उन दिनों में राजस्थान के सभी राजा अपनी उन्नति में लगे थे और अपने-अपने राज्यों की सीमा का विस्तार कर रहे थे। परन्तु मेवाड़ के राणा का इस तरफ बिलकुल ध्यान न था। मेवाड़ के सीसोदिया वंश में पूर्वजों के सिद्धान्तों की सदा रक्षा हुई थी और आज भी हो रही थी। सिद्धान्तों की रक्षा के लिए ही इस वंश के राजपूतों ने सदा अपने प्राणों को उत्सर्ग किया था और जीवन-भर कठोर संकटों का मुकबिला किया था। मुगल राज्य के पतन के दिनों में मेवाड़ का राणा अपने राज्य के लिए कुछ भी न कर रहा था। वह करना भी नहीं चाहता था। अवसरवादी होना एक शूरवीर का धर्म नहीं होता। ऐसे मौकों का लाभ उठाना अयोग्य और कायर खूब जानते हैं। सीसोदिया वंश के सिद्धान्तवादी शूरवीर राणाओं ने ऐसा कभी नहीं किया और उस राज्य का राणा अपने पूर्वजों के सिद्धान्तों के अनुसार आज भी कुछ करना नहीं चाहता था। यह बात इतनी ही न थी। बल्कि मेवाड़ राज्य का यदि कोई सामन्त राजा ऐसे अवसर पर अपने राज्य का विस्तार करके लाभ उठाना चाहता था तो राणा की तरफ से उसको मनाही कर दी जाती थी।

मेवाड़ के राणा के अनेक कार्य उसके सिद्धान्तवादी होने का प्रमाण देते हैं। यहाँ पर एक छोटा-सा उदाहरण लिख कर उसको स्पष्ट कर देना आवश्यक मालूम होता है। शक्तावत सरदार जैतसिंह ने राठौरों के हाथों से ईदर देश छीनकर कोलीवाड़ा के पहाड़ी भागों तक सम्पूर्ण भूमि को अपने अधिकार में कर लिया था और उसके बाद वह आगे बढ़ना चाहता था। यह समाचार राणा को

मिला। उसी समय अपनी सेना के साथ लौट कर उदयपुर आने के लिए शक्तावत सरदार को राणा की ओर से आदेश भेजा गया।

इस प्रकार का आदेश शक्तावत सरदार जैतसिंह को जैसे ही मिला, वह अपनी सेना के साथ उदयपुर आ गया। मेवाड़ के सामन्त राजाओं को इन दिनों में अपना दुर्ग बनाने के लिए अधिकार न था। इस लिए कि प्रत्येक सरदार राजा को राज्य की तरफ से जो इलाका मिलता था, वह केवल तीन वर्ष के लिए होता था। इन दिनों में अरावली पर्वत के ऊँचे पहाड़ी स्थान मेवाड़-राज्य के लिए दुर्गों का काम करते थे और राज्य की सीमाओं पर जो दुर्ग बने थे, शत्रुओं के आक्रमण करने पर उन्हीं दुर्गों का युद्ध के समय प्रयोग होता था। राज्य में इस प्रकार की व्यवस्था चल रही थी।

मुगल-राज्य के कमजोर पड़ जाने के बाद मेवाड़-राज्य के इन नियमों में परिवर्तन होने लगा। मराठों और पठानों ने अपनी शक्तियाँ मजबूत बना कर जब मेवाड़ राज्य में प्रवेश करना आरम्भ किया तो मेवाड़ के सरदारों ने अपने राज्य की रक्षा के लिए नये-नये दुर्गों का निर्माण किया।

राणा संग्रामसिंह ने मेवाड़ के सिंहासन पर बैठकर अठारह वर्ष तक राज्य किया। उसके शासनकाल में राज्य के गौरव को किसी प्रकार का आघात नहीं पहुँचा। शत्रुओं ने मेवाड़-राज्य के जिन नगरों पर अधिकार कर लिया था, संग्रामसिंह ने उनको लेकर अपने राज्य में मिला लिया। बिहारीदास पांचौली को अपना मंत्री बनाकर राणा संग्रामसिंह ने अपनी योग्यता और दूरदर्शिता का परिचय दिया। बिहारीदास पांचौली की तरह का योग्य मंत्री कदाचित पहले कभी मेवाड़ राज्य के दरबार में नहीं रहा था। अपनी योग्यता और प्रतिभा के द्वारा बिहारीदास ने उस राज्य में बहुत समय तक रह कर मन्त्री के पद पर कार्य किया।

राणा संग्रामसिंह का चरित्र उज्वल और श्रेष्ठ था। प्रजा के अधिकारों को सुरक्षित रखने में उसने बड़ी ख्याति पायी थी। इसके सिवा वह न्यायप्रिय था और अपने बचनों को पूरा करना वह खूब जानता था। शासन में वह जितना ही चतुर था, व्यवहार में वह उतना ही कुशल माना जाता था, राणा संग्रामसिंह के लोकप्रिय व्यवहारों के सम्बन्ध में बहुत-सी बातें राजस्थान की पुरानी पुस्तकों में पायी जाती हैं और उनमें से अधिकांश राजस्थान के लोगों के द्वारा आज तक कही जाती हैं। उन घटनाओं को—जिनके द्वारा राणा संग्रामसिंह की व्यावहारिकता और लोकप्रियता का प्रमाण मिलता है—विस्तार के भय से यहाँ पर लिखा नहीं जा सकता। इस लिए संग्रामसिंह के उज्वल चरित्र के सम्बन्ध में यहाँ पर इतना ही लिखना काफी है कि राज्य की प्रजा उसके प्रति सदा आस्था रखती थी और सरदार तथा सामन्त हमेशा विश्वास पूर्वक मेवाड़-राज्य के लिए प्राण देने को तैयार रहते थे।

राज्य की रक्षा करने के लिए राणा संग्रामसिंह को अठारह बार शत्रुओं के साथ युद्ध करना पड़ा था। उसके मरने के पश्चात् मेवाड़ राज्य में मराठों का प्रवेश आरम्भ हुआ और सीसोदिया वंश के उस प्राचीन राज्य में अनेक राजनीतिक परिवर्तन हुए। राणा संग्रामसिंह के चार लड़के थे। जगतसिंह सब से बड़ा था। यह नाम पहले भी आ चुका है। इसलिए प्राचीन ग्रंथों में इसका जगतसिंह दूसरा नाम देकर लिखा गया है। संग्रामसिंह की मृत्यु हो जाने पर जगतसिंह संवत् १७९० सन् १७३४ ईसवी में मेवाड़ के सिंहासन पर बैठा।

इन दिनों मुगल राज्य की अवस्था लगातार निर्बल होती जा रही थी। स्थान-स्थान पर विद्रोह पैदा हो रहे थे और उसको दमन करने की शक्ति मुगल बादशाह में न रह गयी थी। एक

प्रकार से देश में भीषण क्रांतिकारी आँधी चल रही थी। उस समय जगतसिंह के लिए यह बहुत आवश्यक था कि वह भविष्य में रहने वाले परिवर्तनों को देख कर किसी शक्ति का निर्माण करे। इसलिए उसने राजस्थान के दो अन्य राजाओं के साथ मिलकर एक संधि की।

इस प्रकार की एक संधि राजस्थान के तीन राजाओं में भी उदयपुर में हो चुकी थी। उसको मारवाड़ के राजा उदयसिंह ने भंग किया था और स्वीकृत बातों के विरुद्ध आचरण किया था। इस बार की संधि में वह अजितसिंह फिर शामिल हुआ और अपने अपराध को स्वीकार करते हुए भविष्य में संधि के अनुसार आचरण करने का उसने वादा किया। दूसरे दोनों राजाओं ने एक बार फिर अजितसिंह का विश्वास किया और तीनों ने मिलकर निश्चित शर्तों को शपथ पूर्वक स्वीकार किया कि हममे से कोई भी मुसलमानों के साथ किसी प्रकार का सम्बन्ध न कायम करेगा। इस प्रकार की शपथ लेने के बाद तीनों राजाओं ने—जिसमें राणा संग्रामसिंह का बड़ा लड़का जगतसिंह भी शामिल था—मेवाड़ के अन्तर्गत हुर्ला नामक नगर में संधि-पत्र पर हस्ताक्षर किये।

संधि के पश्चात् उन तीनों राजाओं ने मुगलों के साथ युद्ध करने का निश्चय किया और उनकी तैयारियाँ होने लगीं। बरसात के दिन समीप आ गये थे, इसलिए उसके बीतने की प्रतीक्षा होने लगी। बरसात के दिन पूरी तौर पर बीतने भी न पाये थे कि उसी बीच में तीन राजाओं ने मिल कर जो संधि की थी, वह ढीली पड़ गयी। कारण यह था कि-मुगल बादशाहत के कमजोर पड़ने पर अम्बेर और मारवाड़ के दोनों राजाओं ने अपनी शक्तियों को मजबूत बना कर उन्नति की थी और अब वे दोनों मेवाड़ राज्य से किसी समय बाद में अपने आप को कमजोर नहीं समझते थे। मेवाड़ का राजा जगतसिंह पहले की परिस्थितियों के अनुसार अपना गौरव अधिक समझता था। इस प्रकार की धारणाओं के कारण उन तीनों राजाओं में कोई भी अपने को निर्बल और छोटा नहीं समझता था। उस संधि के शिथिल होने का यही कारण हुआ और समय को देखकर उस संधि के द्वारा जो संगठन किया गया था, वह छिन्न-भिन्न हो गया।

निजामुल-मुल्क ने मुगलों की अधीनता से अपने राज्य को पूर्ण रूप से स्वतंत्र बना लिया था। ऐसी दशा में मुगलों का सेनापति मुबारिज खाँ एक मुगल फौज लेकर निजामुल-मुल्क से लड़ने के लिए रवाना हुआ। निजामुल-मुल्क बहुत चालाक आदमी था। उसने मुगल सेना में फूट पैदा करने की कोशिश की, परन्तु इसमें उसको कामयाबी न हुई। इसलिए उसको मुगल-सेना के साथ युद्ध करना पड़ा। उस संग्राम में मुगल-सेना की पराजय हुई। निजाममुल-मुल्क ने सेनापति मुबारिजखाँ का सिर काट कर बादशाह के पास भेजा और यह कहला भेजा कि बादशाह के साथ बगावत करने के कारण इसको पराजित करके और उसका सिर काट कर भेजा है। बादशाह मुहम्मदशाह ने अपनी कमजोरी में निजाममुल मुल्क की इस बात को सुना और उसने उसको बरदाश्त किया।

निजामुल-मुल्क बड़ी बुद्धिमानी के साथ इन दिनों में अपने राज्य को मजबूत बनाने में लगा हुआ था। उसे मुगल बादशाह से किसी प्रकार का डर न था। उसने अनेक प्रकार की बातें सोचकर राजपूतों के साथ मित्रता बढ़ायी और मालवा तथा गुजरात राज्यों के सम्बन्ध में बाजीराव को उसकाया। बाजीराव अपनी सेना के साथ रवाना हुआ और उसने मालवा को घेर लिया। दयाराम बहादुर उन दिनों में मालवा का अधिकारी था और वह मालवा के राजा गिरधारी-सिंह का भतीजा था। बाजीराव के साथ युद्ध करते हुए वह मारा गया और मालवा मराठों के अधिकार में चला गया। ठीक यही अवस्था गुजरात की भी हुई। इसके पहले इस राज्य को राठौरों ने बादशाह से पाया था। परन्तु उनके द्वारा शर्तों के पूरा न होने

पर अजितसिंह के लड़के अभयसिंह ने उस राज्य पर आक्रमण किया और उसके अधिकारी बुलंद खाँ को निकाल दिया। इस अवसर का लाभ उठाकर राठौरों के जीते हुए गुर्जर राज्य पर मराठों ने अधिकार कर लिया। अभयसिंह ने इस तरफ अधिक ध्यान न दिया। अब उसके अधिकार में गुर्जर राज्य के केवल उत्तरी इलाके रह गये थे।

जिन दिनों में भारत के दक्षिण में और राजस्थान में इस प्रकार के संघर्ष हो रहे थे, बंगाल बिहार और उड़ीसा मे शुजा-उद्दौला अपने सहकारी अलीवर्दी खाँ के साथ शासन कर रहा था और अयोध्या का राज्य शआदत खाँ के लड़के सफदर जंग के अधिकार में था। यह राज्य शआदतखाँ को मुगल बादशाह की मरजी से मिला था। परन्तु इसके बदले में उसने मुगल बादशाह के साथ विश्वासघात किया।

मालवा और गुजरात में अपने अधिकारों को मजबूत बनाकर मराठों ने दूसरे स्थानों पर अधिकार करने का इरादा किया। वे टीड़ी-दल के समान नर्बदा नदी के पार उतर कर उत्तरी भाग के स्थानों और नगरों पर आक्रमण करने लगे। उनके अत्याचारों को देखकर किसानों और मजदूरों ने अपने हाथों में हथियार लिए। जिन लोगों के आक्रमण उन दिनों में हो रहे थे, उनमें बाजीराव के मराठा प्रमुख थे। इन लोगों ने कमजोर राजपूत राज्यों को लूटने और बरबाद करने का काम आरम्भ किया और कुछ स्थानों में वे आबाद भी हो गये। उनका संगठन मजबूत था। राष्ट्रीयता के आधार पर उन मराठों ने अपना संगठन किया था।

सन् १७३५ ईसवी में मराठों का वह दल चम्बल नदी को पार करके दिल्ली में पहुँच गया और भयानक उत्पात आरम्भ किया। उनके अत्याचारों से घबरा कर मुगल बादशाह ने मराठों को चौथ अर्थात् साम्राज्य की आमदनी का चौथाई भाग देना मंजूर किया और इस प्रकार उसने अपनी जान बचाई।

मुगल बादशाह की इस कायरता को देखकर निजाम भयभीत हो उठा। वह सोचने लगा कि दिल्ली के बाद मराठा लोग निजाम राज्य पर आक्रमण करेंगे। इसलिए उसने मालवा से मराठों को निकाल देने का इरादा किया। उसको इस बात का विश्वास हो रहा था कि यदि मराठों ने मालवा में अपना शासन मजबूत बना लिया तो फिर उनको वहाँ से निकालना बहुत मुश्किल हो जायगा।

इस प्रकार निर्णय करके निजाम ने अपनी सेना लेकर मालवा पर आक्रमण किया और बाजीराव को पराजित किया। इसी अवसर पर उसे समाचार मिला कि हिन्दुस्तान पर आक्रमण करने के लिए बादशाह नादिरशाह की शक्तिशाली सेना आ रही है। यह सुनते ही निजामुल-मुल्क अनेक प्रकार की चिंताओं में पड़ गया। वह मालवा में मराठों को छोड़कर अपने राज्य में लौट आया।

मुगल-राज्य की शक्तियों का इन दिनों में अंत हो चुका था। शत्रुओं का सामना करने की अब उसमें कोई शक्ति बाकी न रह गयी थी। काबुल को अपने अधिकार में लेकर विजयी सेना के साथ नादिरशाह ने हिन्दुस्तान की सीमा में प्रवेश किया। उसके इस आक्रमण के समय राजस्थान के राजा चुप होकर बैठ गये। मुगल बादशाहत निर्बल हो चुकी थी और मुल्क के सभी राजा और नवाब अपनी-अपनी स्वतंत्रता के लिए लड़ रहे थे। सभी के सामने व्यक्तिगत स्वार्थ का प्रश्न था। देश के सार्वजनिक हितों की तरफ किसी का ध्यान न था।

नादिरशाह के होने वाले आक्रमण का समाचार सुनकर निजाम भयभीत हो रहा था। शआदतखाँ इन दिनों में मुगल बादशाह का मंत्री था। जिन राजपूतों के बल पर मुगल-राज्य का विस्तार हुआ था, अब उनसे मुगलों को कोई आशा न रह गयी थी। जिन हिन्दू राजाओं ने मुगल

शासन के गौरव को बढ़ाने के लिए अपना खून बहाया था, वे इस समय बादशाह के संकट को दूर से देख रहे थे।

निजाम अपनी सेना के साथ मुगल सेनापति के नेतृत्व में युद्ध के लिए रवाना हुआ। बादशाह की तरफ से अमीरुल-उमरा मुगलों की एक बड़ी सेना लेकर आगे बढ़ा। सन् १७४० ईसवी में करनाल के मैदान में इन सेनाओं ने नादिरशाह की फौज के साथ युद्ध किया। भीषण संग्राम के बाद मुगलों की पराजय हुई। अमीकुल-उमरा मारा गया। शग्रादतखाँ गिरफ्तार हो गया और मोहम्मद शाह तथा उसका राज्य नादिरशाह के अधिकार में आ गया। अमीरुल-उमरा के मारे जाने पर निंजाम को नादिरशाह ने अमीरुल-उमरा का अधिकार दिया। शग्रादतखाँ को निजाम की इस राजनीतिक सफलता से बड़ी ईर्ष्या पैदा हुई। उसने निजाम के विरुद्ध नादिरशाह को भड़काया और कहा कि दिल्ली के खजाने में अपरिमित सम्पत्ति है। निजाम जिस रकम के देने का वादा करके संधि करना चाहता है, उतनी सम्पत्ति तो वह स्वयं अपने पास से दे सकता है। शग्रादतखाँ की इस बात से नादिरशाह का लोभ बढ़ गया। निजाम के द्वारा जो संधि होने जा रही थी, वह टूट गयी। नादिरशाह ने दिल्ली के खजाने की कुंजी माँगी। इसके बाद नादिरशाह के सैनिक खुशी मनाते हुए बादशाह मोहम्मद शाह को पराधीन अवस्था में अपने कैम्पों के सामने से लेकर गुजरे। विजयी नादिरशाह ८ मार्च सन् १७४० ईसवी में दिल्ली के सिंहासन पर बैठा और उसने अपना सिक्का चलाया। उस सिक्के में लिखा गया :

संसार के बादशाहों का बादशाह,
युग का शाहंशाह बादशाह नादिरशाह।

मुगलों के खजाने में जो बहुत दिनों की एकत्रित सम्पत्ति थी, वह आपसी झगड़ों में और उसके सम्बन्ध के अनेक मौकों पर राजाओं तथा सामन्तों को प्रसन्न करने लिए इनामों के देने में निर्दयता के साथ खर्च की गयी थी। फिर भी, नकदी रुपयों के साथ सोना और जवाहिरात मिलाकर चालीस करोड़ रुपये मुगलों के खजाने से नादिरशाह के अधिकार में आ गये। इनके सिवा राज्य की बहुत सी कीमती चीजें और बहुमूल्य साजो-सामान उसके हाथ लगा। लेकिन इस अपरिमित सम्पत्ति ने नादिरशाह की भूख को मिटाने और उसको तृप्त करने के बजाय, उसके क्रोध को भड़का दिया। उसने दो करोड़ पचास लाख रुपये की और माँग की और इसके लिए उसने मुगल-राज्य में सर्वनाश आरम्भ कर दिया। राज्य के नेक और भले आदमियों को अपनी रक्षा का कोई मार्ग दिखाई न पड़ा और उन लोगों ने अपने और परिवारों की इज्जत बचाने के लिए आत्म-हत्यायें करके उस सर्वनाश से छुटकारा पाया। इसी मौके पर नादिरशाह को मालूम हुआ कि उसके साथ के कुछ ईरानी आदमी मारे गये हैं, वह भयानक रूप से उत्तेजित हो उठा। एक बड़ी मसजिद पर चढ़कर उसने अपनी फौज के सिपाहियों को कत्ले-आम का हुक्म दिया। उसके फलस्वरूप, लाखों मनुष्य काट-काट कर फेंक दिये गये। इस नर संहार के साथ-साथ नादिरशाह की फौज ने भयानक रूप से शहर को लूटा। गलियों और आम रास्तों में बरसाती पानी की तरह खून बहने लगा। पूरे शहर में आग लगा दी गयी। मकानों की जलती हुई होली में बेशुमार स्त्रियाँ, बच्चे और बूढ़े जलकर खाक हो गये। इस भयानक नर-संहार के समय अगर कोई बात जरा भी संतोष की हो सकती थी तो वह यह थी कि जब नादिरशाह ने मुगल बादशाह के मंत्री शग्रादतखाँ को—जो इस सर्वनाश का कारण बना, उस सम्पत्ति की फेहरिस्त के पेश करने की आज्ञा दी, जो उसके और उसके बादशाह के अधिकार में थी और निजाम ने जो ढाई करोड़ रुपये उसको देने का निर्णय किया था, वह रकम भी अपने पास से दाखिल करने के लिए नादिरशाह ने शग्रादतखाँ को हुक्म

दिया। शम्रादत खाँ की नीचता और कृतघ्नता उसका दुर्भाग्य बनकर उसके सिर पर मँडराने लगी। उसकी जो कृतघ्नता मुगल-साम्राज्य के सर्वनाश का कारण बनी थी, वही उसके विनाश की भी कारण हो गयी। कोई किसी का विनाश नहीं करता। मनुष्य स्वयं अपना सर्वनाश करता है।

नादिरशाह की आज्ञाओं को सुनते ही शम्रादतखाँ के होश उड़ गये। उसकी रक्षा का अब कोई उपाय न रह गया था। उसने विष खाकर अपनी हत्या की। उसके दीवान राजा मजलिस राय ने भी जहर खाकर अपनी जिन्दगी को खत्म किया। इसके बाद नयी संधि की गयी और उसके अनुसार, समस्त पश्चिमी सूबे काबुल, ठट्टा, सिंध और मुल्तान मोहम्मदशाह की तरफ से नादिरशाह को दिये गये और इन सूबों को अपने राज्य में मिलाकर और मुगलों की राजधानी दिल्ली को स्मशान बनाकर वह ईरान लौट गया।

नादिरशाह की फौज के सिपाहियों के द्वारा जो नर संहार हुआ था, उसके उल्लेख कई ग्रंथों में पाये जाते हैं। हाजिन नाम के एक मुसलमान ने सर्वनाश के इस दृश्य को अपनी देखी हुई घटनाओं को उसने एक पुस्तक में लिखा है। उसमें उसने बताया है कि नादिरशाह के अत्याचार बहुत बढ़ जाने पर हिन्दुस्तान के लोगों ने उसके साथ मार-काट की थी और उसमें नादिरशाह के सात हजार ईरानी आदमी मारे गये थे। दूसरी पुस्तकों में यह संख्या कुछ और ही पायी जाती है। लेकिन उनमें हाजिन का ग्रंथ इसलिए प्रामाणिक माना जाता है कि उस संहार को उसने स्वयं देखा था।

इस सर्वनाश के समय जब नादिरशाह बड़े बाजार की रकमुद्दौला नाम की एक मसजिद में बैठा हुआ था, मोहम्मदशाह ने वहाँ पहुँच कर अपनी आँखों के आँसुओं को पोंछते हुए नादिरशाह से प्रार्थना की कि 'मेरी रैयत की जाँ बख्शी फरमाई जावे।' नादिरनामा नाम के एक ऐतिहासिक ग्रंथ में लिखा है कि नादिरशाह के हुक्म से शहर में दिन-भर कत्लेआम होता रहा और उसमें बेशुमार आदमियों की जानें ली गयीं। एक ऐतिहासिक ग्रंथ में लिखा है कि नादिरशाह की फौज के द्वारा जो लोग मारे गये, उनकी संख्या एक लाख पचास हजार के कम नहीं हो सकती।

इस कत्लेआम के समय नादिरशाह के सिपाहियों ने अपने हाथों में तलवारें लिए हुए शहर के घरों में जाकर लूट-मार की थी। प्रत्येक मकान से रोने और चिल्लाने की आवाज आ रही थी। घर के आदमियों को तलवारों से काटकर जो सम्पत्ति मिलती थी, सिपाही उसको लूट लेते थे और घर के किसी आदमी को जिन्दा न छोड़ते थे। इस प्रकार का हा-हाकार सम्पूर्ण शहर में एक साथ आरम्भ हुआ। अत्याचार का यह दृश्य देखकर बसंतराय नामक मुगल राज्य के एक हाकिम ने जब अपने परिवार को बचाने का कोई उपाय न पाया तो उसने स्वयं अपने परिवार को मार डाला और अपनी भी हत्या कर ली। लिकयार खाँ एक प्रसिद्ध मुसलमान ने तलवार से अपने प्राणों का अंत किया। न जाने कितने परिवारों में शर्बत की तरह विष-पान किया गया और प्राणों की आहुतियाँ दी गयीं। राज्य का एक बहुत बड़ा हाकिम पकड़ा गया और एक प्रसिद्ध चौराहे पर खड़े करके बहुत देर तक उसके कोड़े लगवाये गये।

इस प्रकार के अत्याचारों की कोई सीमा न रही और वहाँ का कोई भी मनुष्य इस अत्याचार और संहार से अपने आपको बचा न सका। राज्य के कर्मचारियों, अधिकारियों और हाकिमों पर इतना अधिक प्रहार हुआ था कि वे मरने से भी अधिक बुरी अवस्था में पहुँच गये थे। बादशाह के फर्राशखाने में आग लगा दी गयी, जिससे उसका एक करोड़ रुपये का कीमती सामान जल गया। इस प्रकार नादिरशाह के जुल्म और सितम से सारा शहर स्मशान बन गया था।

इस विनाश के बाद वहाँ की हालत बहुत खराब हो गयी थी। खाने-पीने की चीजों का

बिलकुल अभाव हो गया। लोगों के पास खाने के लिए जो अनाज था, वह आग में सब जल गया था। रुपये के दो सेर मोटे चावल खाने के लिए मिलते थे। उस नर-संहार के समय और उसके बाद शहर की सफाई न होने के के कारण भयानक बीमारियाँ पैदा हुईं और उन बीमारियों में बचे हुए लोग बुरी तरह से मरे। जो लोग भागकर कहीं जा सकते थे, वे चले गये। फैली हुई बीमारियों में इतने अधिक संख्या में लोग एक साथ बीमार पड़े कि उनकी देख-भाल करने वाला कोई न था। यह अत्याचार, संहार और सर्वनाश राज्य में बहुत दूर तक हुआ था और सब मिलाकर पाँच लाख से अधिक नादिरशाह के आक्रमण के फल स्वरूप लोग मारे गये और मरे।

पाँचवीं अप्रैल को बादशाह के दफ्तर से नादिरशाह की मोहर बाहर लायी गई और शान्ति की स्थापना के लिए उस मोहर को लगा कर राजाओं के पास पत्र भेजे गये। मेवाड़, मारवाड़, अम्बेर, नागोर, सितारा और दूसरे देशी राजाओं के साथ-साथ पेशवा बाजीराव के पास भी जो फरमान भेजे गये, उनमें लिखा गया : "हमारे प्यारे भाई मोहम्मदशाह के साथ हमारी सुलह और दोस्ती हो गयी है। अब हम दोनों एक-दूसरे के मददगार बन गये हैं। भाई मोहम्मदशाह को फिर से बादशाहत हासिल हुई है। अब दूसरे मुल्कों को जीतने के लिए हम इस मुल्क को छोड़ रहे हैं। आप लोगों का फर्ज है कि आपके बुजुर्ग जिस तरह तैमूर खान्दान के पिछले बादशाहों के साये में रहते थे और उनको इज्जत देते थे, आप लोग भी भाई मोहम्मदशाह के साथ उसी तरह का रिश्ता रखिये और उन पर यकीन करिये। उनको इज्जत दीजिये और उनके खैरख्वाह बनिये। खुदा न करे, अगर आप लोगों की बगावत की कोई खबर मेरे कानों में पहुँची तो मैं इस दुनिया से आप लोगों की हस्ती को मिटा दूँगा।"—"Memoirs of Eradul Khan—Scotts History of the Dekhan, Vol. II Page 213.

नादिरशाह के आक्रमण के पहले इस देश की राजनीतिक और सामाजिक परिस्थितियाँ बहुत निर्बल हो गयी थीं। लोगों के दिलों से नैतिक भावना जाती रही। राज्यों में कोई बड़ी शक्ति न रह गयी थी और दूसरे लोगों के दिलों में अपने अपने हितों की भावना बहुत बढ़ गई थी। लोग दूसरे के हितों को देखना नहीं चाहते थे। ईर्षा और स्वार्थ परायणता ने उनकी मनुष्यता को मिटा दिया था। जीवन की इन परिस्थितियों में विनाश और विध्वंश के जो दृश्य उपस्थित होते हैं, वे ऐसे दिनों में भारत वर्ष के सामने आये और उनका परिणाम इस देश के सभी लोगों को भोगना पड़ा।

देश की इन दुर्घटनाओं में राजस्थान के राजाओं की कोई विशेष हानि नहीं हुई। इस्लामी राज्य के छै सौ वर्ष इस देश में बीत चुके थे और उसके कितने ही तूफान राजपूतों के सामने आये थे। उन सब का मुकाबला करते हुए मेवाड़, मारवाड़ और अम्बेर की तरह के कई राज्य अब तक अपना अस्तित्व कायम किये हुए थे। मोहम्मद गजनवी के आक्रमण के दिनों में मेवाड़-राज्य की जो सीमा थी, आज सात सौ वर्षों के बाद भी उस राज्य का वह बिस्तार बना हुआ था। यद्यपि उस राज्य के कई हिस्से दूसरों के अधिकार में चले गये थे, परन्तु उस राज्य का प्राचीन और प्रमुख भाग अब भी सुरक्षित था और इन दिनों में भी मेवाड़ राज्य की लम्बाई एक सौ चालीस मील और चौड़ाई एक सौ तीस मील थी। राज्य के इस विस्तार में दस हजार से अधिक नगर और ग्राम थे। मराठों के हमलों और अत्याचारों का प्रभाव इस राज्य पर क्या पड़ा, एवम् लगभग अर्द्ध शताब्दी में किस प्रकार के परिवर्तन इस राज्य में हुए, उनको हम नीचे लिखने की चेष्टा करेंगे।

सन् १७३५ ईसवी में मोहम्मशाह ने मराठों को चौथ देना मंजूर किया था, उसी समय से राजस्थान के राजाओं में मराठों का प्रभुत्व कायम हो गया था। राजस्थान के जो राजा मुगलों की अधीनता में थे, वे सभी मोहम्मदशाह के बाद मराठों को कर में निश्चित रकमें देने लगे।

मराठों ने इसके बाद राजस्थान में लगातार अपना आधिपत्य बढ़ाया। उनके इस बढ़ते हुए प्रभुत्व को देखकर राजपूत चिंतित हुए और वहाँ के राजाओं ने मिलकर फिर से एक नयी संधि की।

राणा जगतसिंह इन दिनों में मेवाड़ के सिंहासन पर था। उसने मारवाड़ के उत्तराधिकारी राजकुमार विजयसिंह के साथ अपनी लड़की का विवाह कर दिया। इसके पहले से मारवाड़ और अम्बेर के राजाओं में जो वैमनस्य चला आ रहा था, उसको दूर करके दोनों में मेल करा दिया गया। इस प्रकार उदयपुर में बैठकर इन राजाओं ने अपनी एकता को मजबूत बनाने की चेष्टा की। उन दिनों में राजस्थान के राजाओं और राजकुमारों ने जो पत्र राणा जगतसिंह के पास भेजे थे, उनको पढ़ने से साफ-साफ मालूम होता है कि वे लोग भविष्य में आनेवाली विपदाओं से जानकार हो चुके थे और उनके प्रतिकार के लिए ही उन लोगों ने पत्र लिखकर राणा जगतसिंह के प्रति अपना विश्वास प्रकट किया था। × जिन राजाओं में यह एकता कायम हुई थी, वह अधिक समय नहीं चल सकी और सामाजिक विवादों के कारण थोड़े ही दिनों में वह छिन्न-भिन्न हो गयी।

मालवा पर अधिकार करके मराठों ने चौथ लेना आरम्भ कर दिया था। उसके बाद अपनी सेना के साथ बाजीराव मेवाड़ में पहुँचा। राणा ने उसके साथ युद्ध करने का विचार नहीं किया। वह स्वयं बाजीराव से मिलने भी नहीं गया। मेवाड़ के प्रधान मंत्री बिहारीदास ने शालुम्ब्रा सरदार को साथ लेकर बाजीराव से मुलाकात की। मेवाड़ की तरफ से मराठों के साथ संधि हुई और उसमें राणा ने बाजीराव को चौथ देना मंजूर किया। इस चोथ में एक लाख साठ हजार रुपये वार्षिक राणा ने देना आरंभ किया, जिसको होलकर, सींधिया और पवाँर बराबर के हिस्सों में बाँट लेते थे। मेवाड़ की तरफ से चौथ की यह रकम दस वर्ष तक बराबर मराठों को दी गयी।

मेवाड़ के राणा ने अपनी लड़की का विवाह अम्बेर के राजा के लड़के के साथ किया था। उस समय राजा अम्बेर ने वादा किया था कि इस लड़की से जो लड़का पैदा होगा, उसको बड़े पुत्र के अधिकार प्राप्त होंगे। कुछ समय के बाद उस लड़की से माधवसिंह नाम का बालक उत्पन्न हुआ। नादिर शाह के आक्रमण के दो वर्ष बाद सवाई जयसिंह की मृत्यु हो गयी इसलिए उसका बड़ा लड़का ईश्वरीसिंह अम्बेर के सिंहासन पर बैठा। उस समय वहाँ के कुछ लोगों ने पहले किये गये वादे के अनुसार माधवसिंह को उत्तराधिकारी बनाने की चेष्टा की। परन्तु उस समय कोई सफलता न मिली और ईश्वरीसिंह को सिंहासन पर बैठे हुए पाँच वर्ष बीत गये। इन दिनों में दुर्रानियों के साथ युद्ध करने के लिए सवाई ईश्वरीसिंह अपनी सेना के साथ शतद्रु के किनारे पहुँचा। ‡ अपने भांजे माधवसिंह के अधिकारों को दिलाने के लिए राणा ने ईश्वरीसिंह के साथ जाकर युद्ध किया। उसमें राणा की पराजय हुई। कोटा और बुँदी के हाड़ा लोगों ने राणा की सहायता की थी,

---

× जिन राजाओं और राजकमारों ने राणा जगतसिंह के पास पत्र भेजकर राणा के प्रति अपनी श्रद्धा और आस्था प्रकट की थी, उनके पत्रों को टॉड साहब ने अपनी पुस्तक में ज्यों का त्यों दिया है।—अनुवादक

‡ कन्धार को जीतने के समय नादिरशाह ने अहमदखाँ अब्दाली नाम के एक अफगान को कैद किया था। अब्दाली उसके वंश का गोत्र है। अहमदखाँ तेजस्वी और शूरवीर था। नादिरशाह ने कैद करने के बाद उसको छोड़ दिया और उसको एक इलाका दे दिया। नादिरशाह जब मारा गया तो अहमद खाँ ने उसके राज्य पर अधिकार कर लिया और सन् १७४७ ईसवी के अक्टूबर में वह कन्धार का बादशाह बन गया। ईश्वरीसिंह इसीसे लड़ने के लिए शतद्रु नदी के किनारे गया था। अहमद खाँ ने अपना गोत्र अब्दाली बदल कर दुर्रानी कर दिया था।

कारण राज्य में अनेक प्रकार के उत्पात पैदा हुए। उन उत्पातों के कारण राज्य की अवस्था भयानक रूप से बिगड़ गयी। इसके पहले मराठों के उपद्रव और आक्रमण हुए थे। लेकिन राज्य का पतन इसके शासन काल में जितना अधिक हुआ, उतना पहले कभी नहीं हुआ था। अरिसिंह के शासन काल में भीतरी और बाहरी आक्रमणों ने राज्य को बुरी तरह से निर्बल बनाया। प्रजा की शक्तियाँ सभी प्रकार क्षत-विक्षत हो गयीं। मेवाड़ राज्य की इस बढ़ती हुई कमजोरी को देखकर मराठों के विभिन्न दलों ने राज्य पर अपने हमले आरम्भ किये। उन हमलों के दिनों में राज्य के सरदारों की एकता नष्ट हो गयी थी और राज्य की रक्षा के लिये आक्रमणकारी मराठों से सहायता माँगी गयी। राज्य की यह निर्बलता उसके लिए और भयानक हो उठी। सरदारों के विद्रोह को दबाने की शक्ति राणा अरिसिंह में न रह गयी थी। इसलिए उसकी तरफ से मल्हारराव होलकर से सहायता माँगी गयी। इसके परिणाम स्वरूप, मेवाड़ राज्य के बहुत से इलाकों पर मल्हारराव होलकर का अधिकार हो गया, राज्य के सरदारों के विद्रोह का मराठों ने अनुचित लाभ उठाया और होलकर ने सम्पूर्ण राज्य पर अधिकार कर लेने की चेष्टा की।

मनुष्य के जीवन में किसी के उपकारों का प्रभाव अमिट होता है और मनुष्य अपनी कृतज्ञता के द्वारा सदा उसको स्वीकार करता रहता है। परन्तु राजनीति में उपकारों को भुला देना और कृतघ्न बन जाना आश्चर्य जनक नहीं होता। राजनीति में इस प्रकार के अपराध को पाप नहीं कहा जाता। अम्बेर के सिंहासन पर जिस माधवसिंह को बिठाने के लिए मेवाड़ के राणा ने अपनी कोई शक्ति उठा न रखी थी, उसी माधवसिंह ने अपने मामा राणा के समस्त उपकारों को भुला कर मेवाड़ का श्रेष्ठ नगर--रामपुर का इलाका मल्हारराव होलकर को दे दिया। × मेवाड़ राज्य के साथ बाजीराव की जो संधि हुई थी, उसमें मेवाड़ के राणा ने कर देना स्वीकार किया था। उस कर को वसूल करने का कार्य होलकर को सौंपा गया था। होलकर ने निश्चित नियमों को तोड़ कर वसूल करने का कार्य आरम्भ किया, जिससे वह संधि टूट गयी। †

संधि के विरुद्ध मराठों के व्यवहार करने से जो कर मेवाड़-राज्य को अदा करना चाहिए था, उसकी अदायगी न हुई। इस लिए मल्हारराव होलकर ने सेना लेकर मेवाड़ पर आक्रमण किया। इन दिनों में मेवाड़ के सरदारों का विद्रोह राणा के साथ चल रहा था। इसलिए राणा ने विवश होकर होलकर के साथ संधि कर ली और उस संधि के अनुसार इक्यावन लाख रुपये होलकर को दिये।

इन दिनों में मेवाड़-राज्य की आर्थिक परिस्थितियाँ बहुत निर्बल हो गयी थीं। ऐसे समय पर इस इक्यावन लाख की अदायगी राज्य के लिए भयानक हो उठी। इन्हीं दिनों में मेवाड़ राज्य में प्रकृति का प्रकोप आरम्भ हुआ और भीषण दुर्भिक्ष के कारण राज्य में खाने पीने की समस्या अत्यन्त भयानक हो उठी। इसके चार वर्षों के पश्चात् मेवाड़ राज्य में आपसी झगड़े आरम्भ हुए, जिनसे राज्य की अवस्था और भी अधिक भयानक हो गयी।

मेवाड़ के राणा अरिसिंह के विरुद्ध राज्य के सरदारों ने विद्रोह किया। इस विदोह का कारण क्या था, यह साफ-साफ समझ में नहीं आता। इसके सम्बन्ध में कई प्रकार के उल्लेख पाये

× सन् १७५२ की यह घटना है। इस घटना के बाद रामपुर इलाके के कुछ गाँव मेवाड़ राज्य में रह गये थे। रामपुर के झगड़े का उल्लेख पहले किया जा चुका है।

† बाजीराव के साथ जो संधि हुई थी, उसमें निश्चय हुआ था कि मेवाड़ पर आज के बाद मराठों के आक्रमण न होंगे। परन्तु मराठों ने स्वयं इस शर्त को भंग किया।

जाते हैं। कुछ लोगों की धारणा है कि मराठों के आक्रमणों को न रोक सकने के कारण राणा सरदारों की आँखों में अयोग्य साबित हुआ। इसलिए वे राणा को सिंहासन से उतार देना चाहते थे और इसीलिए उन लोगों ने विद्रोह किया। कुछ अधिकारियों का कहना है कि सामन्तों की स्वार्थपरता के कारण यह विद्रोह उत्पन्न हुआ था। इसके सम्बन्ध में कहनेवालों का अनुमान है कि राणा अरिसिंह ने अपने भतीजे राजसिंह को मारकर सिंहासन पर अधिकार किया था। कुछ लोगों का कहना यह है कि अरिसिंह राज्याधिकारी होने के पहले मेवाड़ राज्य का एक साधारण सामन्त था और राज्य की तरफ से उसको जो इलाका मिला था, उसकी आमदनी तीस हजार रुपये वार्षिक थी। उस समय कितने ही सामन्त उससे ऊँची श्रेणी के माने जाते थे। इस दशा में अरिसिंह के सिंहासन पर बैठने से और राज्याधिकारी हो जाने के बाद मेवाड़ के कई एक सामन्तों और सरदारों का उसके साथ ईर्षा भाव बढ़ गया था। इस प्रकार सामन्तों और सरदारों के विद्रोह के सम्बन्ध में विभिन्न प्रकार के मत पाये जाते हैं। इन मतों में सही क्या है, निश्चित रूप से यह नहीं लिखा जा सकता। विद्रोह का कुछ तो कारण जरूर रहा होगा। लेकिन यदि राणा अरिसिंह दूरदर्शी और सुयोग्य शासक होता तो सामन्तों तथा सरदारों के विद्रोह करने की नौबत न आती। परन्तु उसमें योग्यता का भी बहुत अभाव था, इसीलिए उसके विरूद्ध सामन्तों और सरदारों ने विद्रोह किया।

मनुष्य के अनुचित व्यवहारों के कारण उसके विरोधियों की संख्या बढ़ती है। राणा अरिसिंह ने अपने रूखे स्वभाव के कारण अपने सरदारों को और राज्य के शक्तिशाली व्यक्तियों को अपना शत्रु बना लिया था। उसने मेवाड़ के प्रधान सरदार साद्री के राजा को उसके पद से अलग कर दिया था। जिस झाला सरदार ने हल्दी घाटी के भयानक युद्ध क्षेत्र में प्रताप के प्राणों की रक्षा करके अपने प्राण उत्सर्ग किये थे, राणा अरिसिंह ने उसके प्रति भी कृतज्ञ बने रहने की कोशिश नहीं की। उसने इस प्रकार के अनुचित व्यवहार दूसरे लोगों के साथ भी किये थे। देवगढ़ के राजा यशवंतसिंह के साथ भी उसने इसी प्रकार का असम्मानपूर्ण व्यवहार किया। यशवंतसिंह ने प्रतापी चण्ड वंश में जन्म लिया था। अरिसिंह के अनुचित व्यवहारों के कारण यशवंतसिंह भी उससे बहुत अप्रसन्न था और राणा को उसके अनुचित व्यवहारों का बदला देने के लिए वह समय और संयोग की प्रतीक्षा में रहा।

इस प्रकार के कितने ही कारण थे, जिनसे मेवाड़ के सामन्त और सरदार राणा अरिसिंह को सिंहासन से उतारने की चेष्टा कर रहे थे। इन्हीं दिनों में यह अफवाह फैल गयी कि राणा अरिसिंह जिस सिंहासन पर बैठा है, उसका वास्तव में अधिकारी रत्नसिंह है। इस रत्नसिंह के सम्बन्ध में अनेक प्रकार की बातें मेवाड़ राज्य में कही जाने लगीं और लोगों ने इस बात पर विश्वास किया कि रत्नसिंह राजसिंह का बेटा है और वह गोगुण्डा सरदार की लड़की से पैदा हुआ है। यह लड़की राजसिंह को ब्याही गयी थी। इस बात के सत्य और असत्य होने का कोई भी निर्णय वहाँ के लोगों के सामने नहीं आया। हुआ यह कि विरोधी सामन्तों और सरदारों ने राणा को पदच्युत करने के लिए रत्नसिंह का आश्रय लिया। मेवाड़ के प्रधान सोलह सरदारों में से पाँच राणा के पक्ष में रह गये और बाकी ने रत्नसिंह के अधिकारों का समर्थन किया। इन सरदारों में प्रसिद्ध शालुम्ब्रा सरदार प्रमुख रूप से रत्नसिंह का समर्थक था। परन्तु कुछ दिनों के बाद वह राणा के पक्षपाती सरदारों में मिल गया।

दिप्रा वंश के बसंतपाल के पूर्वज बारहवीं शताब्दी में दिल्ली से समरसिंह से साथ मेवाड़ में आये थे और इसके पहले इसके पूर्वज पृथ्वीराज के मंत्रि मण्डल में रह चुके थे। जो सरदार

रत्नसिंह के पक्ष में थे, उनमें बसंतपाल भी एक था, जो कमलमीर में रहता था। वहीं पर विरोधी सरदारों और सामन्तों ने रत्नसिंह को मेवाड़ के सिंहासन पर बिठाने के लिए एक योजना का निर्माण किया और अरिसिंह को सिंहासन से उतारने के लिए उन विरोधी सरदारों ने सोंधिया से सहायता लेने का निर्णय किया और इस सहायता की कीमत में एक करोड़ पचीस लाख रुपये उन लोगों ने सोंधिया को देना मंजूर किया। मेवाड़ के सरदारों को इन राजनीतिक भूलों ने उस राज्य को पतन के निकट पहुँचा दिया।

इन दिनों में कोटा का सरदार जालिमसिंह राजस्थान के राजाओं में बड़ी प्रसिद्धि पा रहा था। उसने मेवाड़ के इस आपसी विद्रोह को सुना। यहाँ पर जालिमसिंह के सम्बन्ध में इतना जान लेना आवश्यक है कि जिस समय राणा जगतसिंह ने माधवसिंह को अम्बेर के सिंहासन पर बिठाने के लिए ईश्वरीसिंह के साथ युद्ध किया था, उन दिनों में जालिमसिंह का पिता कोटा का राजा था। उससे बदला लेने के लिए सोंधिया के साथ मिलकर ईश्वरीसिंह ने कोटा राज्य पर आक्रमण किया। उस मौके पर जालिमसिंह ने मराठों की सेना का सामना किया था। उसके बाद जालिमसिंह कोटा छोड़कर मेवाड़ के राणा के पास चला आया था और राणा ने उसको अपने राज्य में एक सरदार का पद देकर उसका सम्मान किया। साथ ही छत्रखैरी का इलाका देकर उसकी सहायता की थी।

जालिमसिंह योग्य और दूरदर्शी राजपूत था। उसके परामर्श से राणा ने मराठों से सहायता लेने का निश्चय किया और इसके लिए राघूपागेवाला और दौलामिया नाम के दो मराठा नेता अपनी सेनाओं के साथ बुलाये गये। इस बीच में राणा ने राज्य के प्राचीन पंचोलियों को मंत्री के पद से पृथक करके उग्र जी मेहता को राज्य के प्रबंध का भार दे दिया। ये घटनायें सम्वत् १८२४ सन् १७६८ ईसवी में मेवाड़ के राज्य में चल रही थीं। माधव जी सोंधिया इन दिनों में उज्जैन में था। उसकी सहायता प्राप्त करने के लिए मेवाड़ के दोनों विरोधी दलों ने कोशिश की। सब से पहले रत्नसिंह उसके पास पहुँचा और सोंधिया के साथ कुछ बातों का निर्णय करके उसने क्षिप्रा नदी के किनारे अपने सहायक आदमियों को लेकर मुकाम किया। इस दशा में राणा सोंधिया की सहायता न प्राप्त कर सका।

राणा अरिसिंह रत्नसिंह की सेना का सामना करने के लिए रवाना हुआ। शालुम्ब्रा का सरदार, शाहपुर और बुनेरा के दोनों राजा और जालिमसिंह एवम् दोनों मराठा नेताओं ने उस समय राणा की सहायता की। रत्नसिंह की सहायता में माधव जी सोंधिया की सेना मौजूद थी। राणा अरिसिंह ने सब को लेकर सोंधिया की सेना पर आक्रमण किया दोनों तरफ से युद्ध आरम्भ हुआ। मेवाड़ के राजपूतों ने उस समय अपनी बहादुरी का परिचय दिया और उन लोगों ने बड़ी तेजी के साथ शत्रुओं का संहार किया। उस युद्ध में रत्नसिंह की पराजय हुई और वह सोंधिया की सेना के साथ उज्जैन की तरफ भागा और सोंधिया की सेना ने उज्जैन की तरफ दूर जाकर अपनी छावनी डाली।

इसके बाद माधव जी सोंधिया ने अवसर पाकर एक ऐसे समय पर अपनी सेना के साथ राजपूतों पर आक्रमण किया, जब कि मेवाड़ की तरफ से आधी हुई सेना युद्ध के लिए तैयार न थी। उस समय शालुम्ब्रा का सरदार, शाहपुर और बुनेरा के दोनों राजा मारे गये। मराठा सेनापति दौलामिया सादड़ी का उत्तराधिकारी राजकुमार और कई अन्य शूरवीर भयानक रूप से घायल हुए। जालिमसिंह का घोड़ा मारा गया और वह स्वयं भीषण रूप से जख्मी हुआ। वह कैद कर

लिया गया। उसके साथ प्रसिद्ध अम्बा जी के पिता त्रयंबकराव ने अत्यन्त सम्मानपूर्ण व्यवहार किया। राजपूतों की पराजित सेना उदयपुर की तरफ चली गयी।

उज्जैन के करीब होने वाले युद्ध में मेवाड़ का जो शालुम्ब्रा का सरदार मारा गया, भीमसिंह उसका चाचा और उत्तराधिकारी था। भीमसिंह राणा की सेना का सेनापति बनाया गया और उदयपुर की रक्षा का भार उसको सौंपा गया। लेकिन उस विपदकाल में जिसके द्वारा उदयपुर की रक्षा हुई, उसका नाम अमरचंद बरवा था। अमरचंद बरवा का जन्म वैश्य कुल में हुआ था। इसके पहले वह मेवाड़ का मंत्री था। वह अत्यन्त बुद्धिमान और राज्य के कार्य में दूरदर्शी था। स्वर्गीय राणा के समय मेवाड़ में होने वाले उपद्रवों को रोकने में उसने बड़ी बुद्धिमानी से काम लिया था। राणा अरिसिंह ने उसके साथ भी शत्रुता पैदा कर ली थी और उसको मंत्री पद से हटा दिया था। यह आघात अमरचंद के हृदय में कम अपमानपूर्ण न था। मंत्री पद से उसके पृथक हो जाने के बाद धीरे-धीरे दस वर्ष बीत गये। इन दिनों में मेवाड़ में बहुत से परिवर्तन हो गये।

राणा अरिसिंह की अयोग्यता उसके पतन का रास्ता पैदा करती जाती थी। जिन सरदारों ने उसको छोड़कर रत्नसिंह का पक्ष समर्थन किया था, उनके स्थानों पर राणा ने जिन आदमियों को नियुक्त किया, वे अयोग्य और राणा के झूठे प्रशंसक थे। वे राज्य की तरफ से वेतन पाते थे। इसके सिवा जो सरदार राज्य से अलग हो गये थे, इन वेतन पाने वाले आदमियों ने उन सरदारों के इलाकों पर अधिकार कर लिया था। राणा अरिसिंह अपनी अयोग्यता और निर्बलता के कारण उनके इन अनुचित अधिकारों को सहन किया था। लेकिन इसका प्रभाव राज्य की प्रजा पर अच्छा न पड़ा और उसके फलस्वरूप समस्त राज्य में असंतोष बढ़ता जा रहा था। इस असंतोष ने राज्य की निर्बलता को बढ़ाने का काम किया। असंतुष्ट सरदार राज्य की इस दुरवस्था को दूर से देख रहे थे।

अमरचंद बरवा के नेत्रों से राज्य का होने वाला यह पतन छिपा न था। अपने मंत्री काल में उसने राज्य के हित के लिए बड़े से बड़े प्रयत्न किये थे और अपने अथक परिश्रम से उसने राज्य के बहुत से अच्छे कामों का निर्माण किया था। वह मंत्री पद से अलग कर दिया गया था। राणा अरिसिंह की तरफ से उसकी योग्यता का उसे यह पुरस्कार मिला था। अपमानित होकर उसने दस वर्ष से अधिक दिन व्यतीत किये। इन दिनों में मेवाड़ के पतन की पीड़ा उसको मिलने वाले अपमान से भी अधिक भयानक और असह्य हो रही थी। इन दिनों में राज्य का वह कोई अधिकारी न था। परन्तु वह राज्य की रक्षा के उपाय एकान्त में बैठकर सोचा करता था। मेवाड़ की इस बढ़ती हुई विपद को देखकर उसने बहुत कुछ सोच डाला। उसने देखा कि उदयपुर के चारों तरफ रक्षा के लिए कोई खाई नहीं है। उदयपुर से दक्षिण की तरफ कुछ दूरी पर एकलिंगगढ़ नाम का एक ऊँचा पहाड़ था। उदयपुर का वह एक प्रमुख द्वार था। इसलिए उसको सुरक्षित बनाने के लिए राणा ने कुछ कार्य आरम्भ किया। उस स्थान की जमीन पहाड़ी होने के कारण बहुत ऊँची नीची और अत्यन्त असुविधाजनक थी। इसलिए राणा अरिसिंह को अपनी योजना के अनुसार उसमें उसको सफलता न मिल रही थी।

राणा एक दिन उस पहाड़ी स्थान पर गया, जहाँ पर उदयपुर को सुरक्षित बनाने के लिए उसने आरम्भ किया था। अचानक अमरचंद से उसकी भेंट हुई। राणा उसकी योग्यता को जानता था। उसने अमरचंद से परामर्श किया और उससे पूछा कि इसके बनवाने में कितना रुपया खर्च होगा और कितना समय लगेगा?

राणा अरिसिंह की इस बात को सुनकर अमरचंद ने सहज ही उत्तर दिया : जो लोग कार्य करेंगे, उनके खाने पीने के लिये कुछ चाहिये और बहुत थोड़े दिनों का समय चाहिए।

राणा अमरचंद के उत्तर से वह बहुत प्रसन्न हुआ। जो कार्य उसके लिए भयानक था और जिसके लिए वह बहुत बड़ी सम्पत्ति की आवश्यकता समझता था, उसके लिए अमरचंद के मुख से इतना सीधा सादा उत्तर सुनकर वह बहुत संतुष्ट हुआ और उसने उसी समय उसके निर्माण का कार्य अमरचंद बरवा को सौंप दिया। अमरचंद ने उसको स्वीकार करते हुये कहा कि इस कार्य के सम्पादन में कोई भी संशय और मतभेद पैदा न करेगा। यदि यह अधिकार मुझे मिल सकता है तो इसके निर्माण के उत्तरदायित्व मैं अपने ऊपर लेने को तैयार हूँ। राणा ने इस बात को स्वीकार कर लिया। अमरचंद ने उस कार्य को आरम्भ करवा दिया और उदयपुर से एकलिंगगढ़ तक एक रास्ता तैयार करवा दिया। इसके बाद थोड़े ही दिनों में इस कार्य को समाप्त करके अमरचंद ने उस पहाड़ के ऊपर से तोप छोड़कर राणा अरिसिंह का अभिवादन किया।

माधव जी सींधिया की सेना ने उत्तर-दक्षिण और पूर्व की तरफ से उदयपुर को घेर लिया। पश्चिम तरफ उदयसागर का विस्तृत जल था और पहाड़ी घने वृक्षों से वह दिशा परिपूर्ण थी। इसीलिए उदयपुर के पश्चिम का रास्ता शत्रु सेना से खाली रहा। इसलिए उदयपुर के लोग इसी रास्ते से बाहर आते-जाते और नावों पर बैठकर उदयसागर को पार करते। इस समय राणा के सामने भयंकर संकट था। राज्य के लगभग सभी सरदार शत्रु से मिल गये थे। सिंधी सेना के अतिरिक्त दूसरा कोई भी राणा की सहायता करने वाला न था। लेकिन वह सिंधी सेना भी राणा से विद्रोह कर रही थी। राणा और मेवाड़ राज्य की दुरवस्था देखकर सिंधी सेना अपने वेतन के सम्बन्ध में निराश हो रही थी और किसी प्रकार लड़-झगड़कर वह राणा से अपना वेतन वसूल करना चाहती थी।

राणा के पास धन का अभाव था। वेतन न दे सकने के कारण कई मौकों पर सिंधी सेना के द्वारा उसको अपना अपमान सहन करना पड़ा। वह अब अपनी रक्षा करने में निराश और असहाय हो रहा था। जिस सिंधी सेना का उसको कुछ बल-भरोसा था, उसका विद्रोह बढ़ता जा रहा था। इस निराश अवस्था के समय राणा को अपने और राज्य की रक्षा का कोई उपाय सूझ न पड़ा। रघुदेव नाम का एक व्यक्ति उनका दूध भाई था। × वह झाला सरदार का उत्तराधिकारी होकर उसके मंत्री का कार्य कर रहा था। इस संकट के समय उसने राणा को सलाह दी कि "आप उदयपुर छोड़ कर मण्डलगढ़ चले जायें।" राणा को इस सलाह पर संतोष न हुआ। उसने शालुम्ब्रा सरदार से परामर्श किया और उसने राणा को अमरचंद के बुलाने की सलाह दी। बुलाये जाने पर अमरचंद ने आकर कहा : "इस समय राज्य के सामने भीषण संकट है। इन संकटों का सामना करने के लिए मैं सहज ही साहस नहीं करता। यह बात जरूर है कि आज के पहले भी अनेक मौकों पर मेवाड़ को भयानक संकटों का सामना करना पड़ा है और उन दिनों में मुझे सफलता मिली है। लेकिन आज की परिस्थितियाँ पहले की निस्बत बहुत कुछ भिन्न हैं। मेरे स्वभाव में भी एक दोष है और वह यह है कि मैं जो सही समझता हूँ, वही करता हूँ। किसी के अयोग्य परामर्श अथवा आवेश का मैं पालन नहीं कर पाता। मैं अपने इस अपराध को स्वयं स्वीकार करता हूँ। मेवाड़ राज्य में इस समय धन का अभाव है। सरदार शत्रुओं से मिल गये हैं। सेना विद्रोह कर रही है। राज्य

× एक ही माता के दूध को पीकर पलने वाले दूध भाई कहलाते हैं। यद्यपि उनके जन्म का सम्बन्ध अलग-अलग माता-पिता से होता है।

के सामने खाने-पीने का भी संकट है ऐसी दशा में इन संकटों का मुकाबिला करना आसान नहीं है। फिर भी जो कुछ कर सकता हूँ, उसके लिए तैयार हूँ। लेकिन उसी अवस्था में जब कि मेरे कार्यों में बाधा और अविश्वास न उत्पन्न किया जाय। इस संकट के समय में जो उचित समझूँगा, करूँगा।"

राणा के सामने और कोई उपाय न था। उसने अमरचंद की बातों को स्वीकार किया और भगवान एक लिंग की शपथ ले कर अमरचंद को आश्वासन देते हुए उसने कहा : "मैं किसी प्रकार का अविश्वास न करूँगा। यदि आप रानी का रत्नहार और नथ भी माँगेगें तो उसके देने में इनकार न करूँगा। आप इसका विश्वास रखें।

जिस समय अमरचंद के साथ राणा की ये बातें हो रही थीं, रघुदेव भी वहाँ पर बैठा था। उसने ऐसे मौके पर राणा को जो सलाह दी थी उसका विरोध करते हुए अमरचन्द ने रघुदेव से अनेक बातें ऐसी कहीं, जिनको सुन कर उसने अपना तिरस्कार अनुभव किया।

इसके बाद, अमरचंद ने सिंधी सेना के प्रधान को बुला कर कहा—"आप लोग मेरे साथ आइए। आप लोगों के वेतन के जो रुपये बाकी हैं, उनके अदा करने का मैं अभी उपाय करता हूँ। परन्तु जिस कार्य के लिए आप को यह वेतन दिया जा रहा है, उसमें सफलता न मिलने से मैं अपराधी बनूँगा।" अमरचन्द ने यह कह कर वेतन के बाकी रुपये अदा करने के लिए सिंधी सेना से दूसरे दिन का वादा किया।

सिंधी सेना के सैनिकों का जो वेतन बाकी था, सब का हिसाब लगाया गया और अमरचन्द ने उनके बाकी वेतन को अदा करने के लिए इन्तजाम किया। मेवाड़ राज्य के खजाने में जो भी सम्पत्ति थी, उसको अमरचंद ने अपने अधिकार में लेने की कोशिश की। खजाने के अधिकारियों को जब यह समाचार मिला तो वे सब अपने स्थानों से भाग गये। इस लिए कि अमरचन्द ने उनसे खजाने की चाभियां मांगी थीं। इस दशा में खजाने के ताले और मजबूत दरवाजे तोड़े गये और सोना, चांदी, हीरा, जवाहिरात मिला कर जितनी भी सम्पत्ति खजाने में मौजूद थी, उसके द्वारा सिंधी सेना का बाकी वेतन अदा किया गया। उसी सम्पत्ति से युद्ध के अस्त्र-शस्त्र खरीदे गये। गोला गोली और बारूद एकत्रित किया गया। खाने-पीने की सामग्री का प्रबंध बहुत बड़ी तादाद में किया गया। इस प्रकार खजाने की सम्पत्ति का उपयोग करके अलचंद ने छै महीने तक शत्रु-सेना को आगे नहीं बढ़ने दिया।

रत्नसिंह ने इन दिनों में उदयपुर के कितने ही स्थानों पर अधिकार कर लिया था। इसके पहले उसने सोंधिया की सहायता लेने के समय एक निश्चित और लम्बी रकम देने का वादा किया था। उस रकम की अदायगी वह न कर सका। इस दशा में मराठों ने—जो अभी तक रत्नसिंह की सहायता कर रहे थे—अमरचंद के साथ संधि करने की कोशिश की और उन लोगों ने संधि की शर्तों में अमरचंद से सत्तर लाख रुपये की माँग की। साथ ही वादा किया कि इस संधि के बाद हम लोग रत्नसिंह की सहायता न करके वापस चले जायेंगे।

अमरचंद ने सोंधिया के साथ संधि करना मंजूर किया। संधि का पत्र लिखा गया और दोनों तरफ से उस संधि-पत्र पर हस्ताक्षर भी हो गये। इसी अवसर पर सोंधिया को अमरचंद की कमजोरियां मालूम हुई। उसे विश्वास हो गया कि ऐसे अवसर पर अमरचंद से और भी रुपया लिया जा सकता है। इसलिए उसने संधि-पत्र के सत्तर लाख रुपये के अतिरिक्त बीस लाख रुपयों की और मांग की। सोंधिया की इस नयी माँग से अमरचंद को बहुत क्रोध मालूम हुआ। उसने लिखे गये संधि-पत्र को फाड़ डाला और उसके टुकड़ों को सोंधिया के पास भेज दिया। इस प्रकार जो संधि हुई थी, वह खत्म हो गयी।

अमरचंद सौंधिया से निराश होकर अपनी रक्षा के नये-नये उपाय सोचने लगा। वह विपदकाल में साहस से काम लेना जानता था। उसने राज्य के योग्य और शूरवीरों के साथ परामर्श किया। उसे इस समय इस बात का भी यकीन हो गया कि आपत्तियों के दिनों में ही मनुष्य के पुरुषार्थ की वृद्धि होती है। सिंधी सेना के बाकी वेतन को अदायगी हो चुकी थी। इसलिए उस सेना की शुभकामनायें फिर मेवाड़-राज्य के साथ हो गयी थीं। जो राजपूत और सरदार राणा के विरोधी और विद्रोही थे, अमरचंद ने उनको मिलाने के लिये बड़ी बुद्धिमानी से काम लिया। वह स्वयं साहसी था और दूसरों को अपना बनाना जानता था। उसके बोलने और समझाने का दूसरों पर जादू की तरह प्रभाव पड़ता था। उसमें चरित्र का बल था। उसमें योग्यता और दूरदर्शिता थी। राज्य की जो सम्पत्ति उसके अधिकार में आयी थी, उसका उपयोग उसने राज्य की प्रजा के हित के लिए किया। जिनके द्वारा राज्य की रक्षा हो सकती थी, उनको प्रसन्न करने के लिए उसने राज्य की सम्पत्ति को पानी की तरह खर्च किया और समस्त प्रजा में सुख तथा संतोष पैदा करने के लिए उसने उस सम्पत्ति का अच्छा उपयोग किया। राज्य के खजाने में अब तक जो बहुमूल्य हीरा और जवाहिरात बेकार पड़े थे, उनको बेचकर अमरचंद ने खाने के अनाजों का संग्रह किया। राणा अरिसिंह की अयोग्यता के कारण राज्य में अनाज का बड़ा अभाव हो गया था और और वह इतना मँहगा बिक रहा था, कि जिससे बहुत बड़ी संख्या में राज्य के परिवार बहुत दिनों से पेट-भर भोजन न कर सकते थे। प्रजा की यह तबाही राणा और राज्य के लिए अभिशाप हो गयी थी।

अमरचंद ने राज्य की इस अवस्था को बदलने की तुरंत चेष्टा की राज्य का जो खजान अब तक बाकी था, उससे जितना भी अनाज मिल सका, खरीदा गया और राज्य के प्रत्येक बाजार में उसको भेजकर उसको अधिक से अधिक सस्ता बिकवाने की कोशिश की गयी। इस बात की चेष्टा की गयी कि कोई भी व्यापारी अनुचित लाभ उठाने की अभिलाषा न करे। सम्पूर्ण राज्य में ढोल पिटवा कर इस बात की मुनादी की गयी कि राज्य की रक्षा के लिए लड़ने वाले किसी भी आदमी को उसके प्रार्थना करने पर छै महीने के खाने-पीने की सामग्री दी जायगी, जिससे उसका परिवार सुख और संतोष के साथ रह सके।

अमरचंद की इन कोशिशों के फलस्वरूप राज्य की दुरवस्था में बड़ा परिवर्तन हुआ। मेवाड़ के जो शूरवीर राणा के विद्रोही हो रहे थे, उनमें से बहुत से राणा के दरबार में पहुँचे और उन सभी ने अपनी शुभकामनायें बड़ी नम्रता के साथ राणा और राज्य के प्रति प्रकट कीं। सरदार आदिल बेग ने कहा : "हम सब लोग मेवाड़ राज्य में रहते हैं। राज्य का नमक खाया है। सभी प्रकार की सुविधाओं का भोग किया है। हम सब का कर्त्तव्य है कि ऐसे समय पर, जब शत्रुओं का राज्य पर आक्रमण होने वाला है, राज्य की रक्षा के लिए अपने प्राणों का बलिदान दें। इसलिए हम सब शपथपूर्वक इस बात को स्वीकार करते हैं कि भयानक से भयानक संकटों के समय भी हम राणा का साथ नहीं छोड़ेंगे। मेवाड़-राज्य हमारी जन्मभूमि है। इस राज्य की रक्षा के लिए बलिदान होना ही हमारा धर्म है। हम लोगों को अब वेतन की आवश्यकता नहीं है। आज हमारे घरों में खाने-पीने की कमी नहीं है। यदि ऐसा समय आया, जब उसका अभाव होगा तो हम लोग अपने हाथों में तलवारें लेकर शत्रुओं के साथ युद्ध करेंगे और अपनी जन्मभूमि की रक्षा के लिए हंसते हुए अपने प्राणों को उत्सर्ग करेंगे।"

मेवाड़ राज्य के सरदार आदिलबेग की इस प्रकार की बातों का कारण अमरचंद का

प्रभाव था। × दरबार में राणा मौजूद था। आदिलबेग की बातों को सुन कर उसके नेत्र खुल गये। इस समय राजपूतों और सिंधी लोगों का उत्साह असीम लहरें मार रहा था। मंत्री अमरचन्द ने राज्य की परिस्थितियाँ ही बदल दीं और उसका परिणाम यह हुआ कि राज्य की निर्बल शक्तियाँ सजग और सबल हो उठीं। मेवाड़ दरबार का यह नव-जागरण सींधिया से छिपा न रहा। उसके मन में अनेक प्रकार की शंकायें पैदा होने लगीं। इसी बीच में सींधिया की सेना जो कुछ आगे बढ़ आयी थी, उसको पीछे हटाने के लिए राजपूतों ने आक्रमण किया। समय को देखकर सींधिया ने संधि का फिर से प्रस्ताव किया। अमरचन्द इन दिनों मेवाड़ राज्य को पहले की तरह निर्बल नहीं समझता था। सींधिया के द्वारा आने वाले प्रस्ताव का उत्तर देते हुए उसने कहला भेजा कि इधर छै महीने तक सींधिया के द्वारा जो अवरोध किया गया है, उसकी क्षति को काटकर संधि की जा सकती है। सींधिया को अमरचन्द की यह बात स्वीकार करनी पड़ी और अंत में अमरचन्द की क्षति के तिरसठ लाख पचास हजार रुपये मंजूर करने पर सींधिया को संधि करनी पड़ी।

अमरचन्द ने राज्य के खजाने का सोना, रत्न और जवाहिरात देकर संधि के रुपयों में तेंतीस लाख अदा कर दिये और बाकी रुपयों के लिए उसने जावद, जीरण, नीमच और मोरवण इत्यादि ग्रामों को गिरवी में देते हुए सींधिया के इस प्रकार अधिकार में दे दिये कि उनकी आमदनी दोनों राज्यों के कर्मचारी वसूल करेंगे और वर्ष में एक बार उसका हिसाब हो जाया करेगा। इस तरह संधि होकर सींधिया की शत्रुता का अंत हुआ।

सम्वत् १८२५ से लेकर सम्वत् १८३१ तक इस संधि के अनुसार कार्य चलता रहा। अंत में सींधिया के कर्मचारियों ने राणा के कर्मचारियों को उन स्थानों से निकाल दिया, जो स्थान सींधिया के पास गिरवी रखे गये थे। इस दशा में उन गावों का समस्त इलाका मेवाड़ के अधिकार से निकल गया। लेकिन सींधिया की शक्तियाँ भी बहुत समय तक कायम न रहीं और इसीलिये जो इलाके मेवाड़ के राज्य से निकल गये थे, राणा के फिर अधिकार में आ गये। परन्तु थोड़े दिनों के बाद वे फिर शत्रुओं के हाथ में चले गये।

सम्वत् १८३१ में मराठों में आपस में मतभेद हुआ। उनके सरदारों ने अपनी स्वाधीनता के लिये विद्रोही कोशिशें आरम्भ कीं। इस प्रकार की परिस्थितियों में सींधिया ने मोरवण नामक गाँव होलकर को दे दिया और होलकर ने उसको अपने अधिकार में लेकर एक वर्ष के बाद राणा से उसके राज्य का नीमबहेड़ा नामक इलाके की माँग की।

किसी भी अवस्था में अमरचन्द ने रत्नसिंह को असफल बना दिया। वह उदयपुर को छोड़कर मराठों की सेना के साथ चला गया। लेकिन जाने के पहले उसने उदयपुर के कई एक दुर्गों पर अधिकार कर लिया था और कितने ही नगर और ग्राम उसके कब्जे में आ गये थे। परन्तु उन पर उसका अधिकार बहुत दिनों तक न रहा। राजनगर, रायपुर और अन्तला पर मेवाड़ के राणा का फिर से अधिकार हो गया। जो सरदार अरिसिंह से विद्रोह करके रत्नसिंह के साथ हो गये थे, वे सब अब उसके साथ न रह सके और कई एक सरदार उसे छोड़कर उदयपुर चले आये। राणा ने उनके साथ सम्मानपूर्ण व्यवहार किया और उनकी जागीरें उनको दे दीं। अब रत्नसिंह की आशायें बिल्कुल निर्बल हो गयी थीं। दिप्रा-मंत्री और मेवाड़ के सोलह श्रेष्ठ सरदारों में जो उसके साथ रह

× सरदार आदिलबेग के बेटे का नाम मिर्जा अब्दुल रहीमबेग था। राणा ने मेवाड़-राज्य की तरफ से उसको एक जागीर दी थी।

गये थे, उनमें देवगढ़, भिण्डी और आमैता के तीन सरदार थे। कुछ दिनों के बाद ये तीनों सरदार भी राणा की तरफ आ गये।

जिन दिनों में रत्नसिंह कमलमीर रहने लगा था, राणा अरिसिंह ने जोधपुर के राजा विजयसिंह को गढ़वाड़ का अधिकार दे दिया था। राणा को यह आशंका हुई थी कि रत्नसिंह कमलमीर में रहकर गदवाड़ पर अधिकार कर लेगा। गदवाड़, मारवाड़ के सभी इलाकों में अधिक उपजाऊ है। गदवाड़ को देकर राणा ने विजयसिंह के साथ एक इकरारनामें की लिखा-पढ़ी की थी।

बसन्त का आहेरिया उत्सव राजपूतों का एक पुराना उत्सव है। यह उत्सव मेवाड़ के लिये कई बार अनर्थकारी साबित हुआ है। इस राज्य के तीन राणा इस उत्सव में अपने प्राणों का नाश कर चुके थे। फिर भी इस उत्सव के महत्व को कोई आघात नहीं पहुँचा था। राणा अरिसिंह भी इस उत्सव में भाग लेने के लिये गया था और जब वह वापस होने लगा तो रास्ते में हाड़ा राजकुमार अजीत ने उस पर अपने भाले का वार किया। उस भाले से जख्मी होने के बाद इन्दुगढ़ के एक सरदार ने तलवार से राणा का सिर अलग कर दिया। अजीत के इस अनुचित कार्य से उसका पिता बहुत अप्रसन्न हुआ और सभी हाड़ा सरदारों ने इस कार्य के लिए अजित की निंदा की।

राणा अरिसिंह के इस प्रकार मारे जाने के कुछ कारण थे। यह पहले लिखा जा चुका है कि अरिसिंह से उसके सरदार आरम्भ से ही विद्रोह रखते थे। जिस शालुम्ब्रा सरदार के पिता ने मेवाड़ राज्य के हित के लिए उज्जैन के युद्ध में अपनी जान दे दी थी, राणा अरिसिंह ने उसका भयानक रूप से अपमान किया था और राज्य से निकल जाने के लिए उसे आदेश दिया था। उस सरदार के विनयावनत होने पर भी राणा ने किसी प्रकार दया न की थी, बल्कि अपनी आज्ञा को अधिक कठोर बनाकर चन्दावत सरदार से कहा था : "यदि तुम मेरा आदेश पूरा न करोगे तो मैं तुम्हारा सिर कटवा लूँगा।" चन्दावत सरदार को विवश हो कर राणा का आदेश पालन करना पड़ा। राज्य से जाने के समय उसने राणा से कहा था : "आपकी आज्ञा से मैं जा रहा हूँ, लेकिन इसका फल आपको और आप के परिवार को अच्छा न मिलेगा।"

राणा के मारे जाने के सम्बन्ध में कई प्रकार के अनुमान लगाये जाते हैं। यह भी कहा जाता है कि मेवाड़ की सीमा पर बिलौना नाम का एक ग्राम है। बूँदी के राजा ने उस ग्राम पर अधिकार कर लिया था। यह घटना भी झगड़े की एक कारण बनी। इस प्रकार के अनुमानों में राणा के बध का सही कारण क्या है, यह ठीक नहीं कहा जा सकता। परन्तु जो अनुमान लगाये जाते हैं, उन्हीं में से किसी के कारण राणा अरिसिंह की हत्या की गयी।

राणा के मारे जाने पर उसके साथ के सभी सरदार उसका साथ छोड़कर चले गये। केवल उसकी एक छोटी रानी रह गयी। उसने चिता बनवाकर उसमें आग लगवाई और राणा का मृत शरीर गोद में लेकर वह भस्मीभूत हो गयी। राणा अरिसिंह के दो लड़के थे। बड़ा लड़का हमीर था और उससे छोटा भीमसिंह था। सम्वत् १८२८ सन् १७७२ ईसवी में हमीर मेवाड़ के सिंहासन पर बैठा। गहिलोत वंश में हमीर नाम का पहले भी एक शूरवीर पुरुष हो चुका था। लेकिन उन दिनों का आज न तो मेवाड़ था और न आज का यह हमीर, वह हमीर था। इन दिनों में मेवाड़ की अवस्था बहुत गिर चुकी थी। सिंहासन पर बैठने के समय हमीर की अवस्था बारह वर्ष की थी। इसलिए राज्य का प्रबन्ध राजमाता के सिर पर रहा।

राणा अरिसिंह के दिनों में ही मेवाड़ का पूर्ण रूप से पतन हो चुका था। उसके मरने के बाद जो शक्तियाँ बाकी रह गयी थीं, वे भी छिन्न-भिन्न हो गयीं। इन दिनों में कोई भी प्रतापी पुरुष मेवाड़ में न था, मराठों के उत्पात अब तक बराबर चल रहे थे, राज्य के सिंहासन पर एक

ालक था और उसकी छोटी अवस्था के कारण राज्य का शासन एक स्त्री के हाथ में था। इन सभी ातों के कारण मेवाड़-राज्य इन दिनों में अनाथ हो रहा था। एक महान शक्ति के अभाव में पतन सभी द्वार खुल गये। चन्दावत और शक्तावत सरदारों का विरोध इस राज्य में बहुत दिनों से ला आ रहा था था। राज्य के इन पतन के दिनों में भी वे अपनी-अपनी प्रधानता के लिए एक सरे का खून बहाने के लिए तैयार हो गये।

राज्य के लिए इतनी ही बात दुर्भाग्य की न थी। जितनी भी समस्यायें थीं वे सब एक साथ ाकर मेवाड़ राज्य को मिटाने में लगी थीं। शालुम्ब्रा सरदार का अपमान राणा अरिसिंह ने किया ा। इसीलिए अपने उस अपमान का बदला लेने के लिए शालुम्ब्रा सरदार ने अपनी कमर कसी ौर स्वर्गीय राणा अरिसिंह की विधवा रानी के विरुद्ध उसने अपना विद्रोह आरम्भ किया। इस द्रोह ने सभी प्रकार मेवाड़-राज्य को मिट्टी में मिला दिया। राज्य की शक्तियां समाप्त हो गयीं ौर अनाथ अवस्था में मेवाड़ निवासियों के दिन व्यतीत होने लगे।

अमरचन्द ने जिन सिंधी लोगों का वेतन मेवाड़ के खजाने के द्वारा अदा किया था उन्हीं ंधी लोगों ने मेवाड़-राज्य को निर्बल पाकर उसकी राजधानी पर आक्रमण किया और अपने बाकी तन के अदा करने की माँग की। राजधानी की रक्षा का भार शालुम्ब्रा सरदार के ऊपर था। सिंधी ोगों ने उस सरदार के साथ भयानक व्यवहार आरम्भ किये। शालुम्ब्रा सरदार के वेतन न दे सकने र सिंधी लोगों ने भयानक अत्याचार किये और जलते हुए लोहे पर बिठाने एवम् उसको दण्ड देने ी वे व्यवस्था करने लगे। ×ऐसे समय पर अमरचन्द बूँदी से लौट कर आया। उसके आते ही ालुम्ब्रा सरदार के साथ सिंधी लोगों के अत्याचार समाप्त हो गये।

राज्य में जो गड़बड़ी चल रही थी, अमरचन्द से वह छिपी न थी। वह समझता था कि स समय चारों तरफ से विपदायें राज्य को घेरे हैं। उसने संकट के दिनों में कुमार हमीर के ीवन की रक्षा करने की प्रतिज्ञा की। अमरचन्द एक योग्य और चरित्रवान आदमी था लेकिन ंसार के बहुत-से मनुष्य किसी अच्छे आदमी के बढ़ते हुए यश और वैभव को देख नहीं सकते। मरचन्द ने भयानक संकट के दिनों में जिस प्रकार मेवाड़-राज्य की रक्षा और सहायता की थी, ससमें उसकी प्रशंसा करने के स्थान पर बहुत-से मेवाड़ के लोग उसके साथ ईर्षा करते थे। हमीर े बालक होने के कारण राज्य का शासन जिन राज माता के हाथों में था उसके विचारों को ी राज्य के लोगों ने अमरचन्द के प्रति दूषित बना दिया था। इस प्रकार की सभी बातों को अमर न्द जानता था।

अच्छे-से-अच्छे आदमी के साथ भी ईर्षा करने वाले मनुष्य पैदा हो जाते हैं और एक नेक ादमी के द्वारा जिन लोगों का अहित होता है, वही उसके विरोधी बन जाते हैं। अमरचन्द अच्छा ाम कर सकता था, परन्तु वह दूसरों को प्रसन्न नही कर सकता था। उसने अपने पास की समस्त म्पत्ति की एक सूची तैयार की और उसे उसने राजा माता के पास भेज दिया। बहुमूल्य मोती ोना, चाँदी और हीरा जवाहिरात के साथ अमरचन्द ने सूची बना कर वस्त्रों को भी राजमाता के, ास भेजा। राजमाता ने उसकी भेजी हुई बहुमूल्य सामग्री और सूची को देखकर आश्चर्य किया ौर उसने अमरचन्द को लौटा देने की चेष्टा की। परन्तु प्रयोग में लाये गये वस्त्रों को वापस लेकर ेष सब-कुछ अमरचन्द ने राजमाता के अधिकार में दे दिया। उसने ऐसा राजमाता के हृदय को

× अपराधी को दण्ड देने के लिए राजपूत लोहे की एक चद्दर को गरम करते थे और उसी र बिठाकर वे लोग अपराधी को दण्ड देते थे।

विश्वासपूर्ण बनाये रखने के लिए किया और उसका प्रभाव उस समय राजमाता पर पड़ा भी। परन्तु वह कुछ ही दिनों के बाद बदल गया। इसमें राजमाता का अधिक अपराध न था। उसकी कमजोरी अवश्य थी। वास्तव में वह रामप्यारी नाम की एक स्त्री से प्रभावित था और उस स्त्री का सम्बन्ध एक चरित्रहीन आदमी के साथ था। जो लोग वहाँ पर अमरचन्द के विरोधी थे, उनके साथ उस आदमी का सम्बन्ध था। वह आदमी रामप्यारी को जितना पाठ पढ़ाता था, राम प्यारी उसी के अनुसार राजमाता को सोलह दूनी आठ पढ़ाया करती थी। राम प्यारी से सम्बन्ध रखने वाला वह व्यक्ति राणा का एक कर्मचारी था। सही बात यह है कि राजमाता उस कर्मचारी के हाथ की कठपुतली हो रही थी।

अमरचन्द रात दिन राज्य की और नवयुवक हमीर के समान की रक्षा का उपाय सोचा करता था। लेकिन इन बातों की चिन्ता करने वाला उन दिनों में मेवाड़ में दूसरा कोई न था। अमरचन्द के इस अच्छे कार्य में सहायकों की अपेक्षा विरोधियों का प्रभाव राजमाता पर अधिक काम कर रहा था और इस विरोध का सिलसिला उस चरित्रहीन कर्मचारी के द्वारा जारी होता था। अमरचन्द को इन सब बातों की खबर थी, परन्तु वह दरबार और महल की इन भीतरी बातों में नहीं पड़ना चाहता था। वह समझता था कि राज्य के सिर पर विपत्ति के बादल मँडरा रहे हैं और उनसे मेवाड़ की रक्षा करना मेरा कर्त्तव्य है।

दूसरी बार अमरचन्द के मंत्री होने के पूर्व मेवाड़-राज्य के जो लोग राणा अरिसिंह की अयोग्यता और निर्बलता का लाभ उठा रहे थे, वे सभी अमरचन्द के विरोधी थे और राज्य की बिगड़ती हुई परिस्थितियों से विवश होकर जब राणा ने अमरचन्द को फिर से मंत्री बनाया तो विरोधियों ने विद्रोही वातावरण उत्पन्न किया था। परन्तु राज्य के शुभचिंतक होने के कारण अमर चन्द ने उसकी कुछ परवाह की थी। अरिसिंह की मृत्यु के बाद बालक हमीर के सिंहासन पर बैठने और-सत्ता राजमाता के हाथों में आने पर उन विरोधियों को फिर से एक बार अवसर मिला। इन सब बातों को समझने और जानते हुए भी अमरचन्द राज्य के हितों की रक्षा में प्रत्येक समय रहा करता था। राजमाताकी अवस्था इन दिनों में बड़ी विचित्र थी। उसे अमर के विरुद्ध जैसा कोई भड़का देता, उसी पर वह विश्वास कर लेती। उसकी अपनी भलाई और बुराई के समझने का ज्ञान न रहा।

एक दिन रामप्यारी अमरचन्द के सामने आयी और उसने राजमाता की तरफ से कुछ ऐसी बातें अमरचन्द से कहीं, जो उसके सम्मान के सर्वथा विरुद्ध थीं। अमरचन्द ने उसे डाँट दिया। रामप्यारी वहाँ से लौट गयी और राजमाता के पास जाकर उसने अनेक झूठी बातें कहीं। राजमाता उन बातों को सुनकर क्रोध में आकर शालुम्बा सरदार के पास जाने को तैयार हुई। रामप्यारी के चले जाने पर अमरचन्द को कुछ आशंका मालूम हुई थी। वह अपने स्थान से उठकर चला गया और जाते हुए उसने रास्ते में राजमाता को पालकी पर जाते हुए देखा। अमरचन्द ने नौकरों को राजमता के राजमहल ले-जाने का आदेश दिया। महल के पास पहुँचने पर अमरचन्द ने बड़ी नम्रता के साथ राजमाता से कहा : "आपने इस समय अपने महल से निकल कर अच्छा काम नहीं किया। राणा को मरे हुए अभी छै महीने भी नहीं बीते। आपको अभी अपने महल से निकल कर कहीं जाना न चाहिए। ऐसा करना आपके प्रसिद्ध वंश के नियमों के विरुद्ध है। आप स्वयं बुद्धिमान हैं। मैं आपको समझाने की सामर्थ्य नहीं रखता। मैं आपका और आपके राज्य का शुभचिंतक हूँ। आपके राज्य पर भयायक संकट आने वाले हैं, मैं उनका सामना करने की चिन्ता में हूँ। मैं आशा करता हूँ कि मेरे इस कार्य में आप सहायता करेंगी।"

अमरचन्द ने इस प्रकार बहुत-सी बातें नम्रता के साथ कहीं। लेकिन अमरचन्द का राज

माता पर कोई प्रभाव न पड़ा । उसने अमरचन्द को अपना विरोधी और शत्रु समझा और जो लोग उसकी झूठी प्रशंसा किया करते थे, उन्हीं पर वह विश्वास करती थी । अमरचन्द पर राजमाता का अविश्वास बढ़ता गया और उसी अविश्वास के फलस्वरूप उसने विष खिलवा कर मंत्री अमर चन्द के प्राणों का संहार किया । इन दिनों में मेवाड़ राज्य के सम्मान की रक्षा करने वाला यही एक अमरचन्द था । वह चरित्रवान था और अपने देश की रक्षा करने के लिए प्रत्येक समय चिंतित रहता था । उसकी योग्यता और बुद्धिमता में कोई कमी न थी । उसमें लोकहित की अटूट भावना थी । इस प्रकार का योग्य और चरित्रवान व्यक्ति किसी भी देश के लिए आराध्य हो सकता है । मेवाड़ का दुर्भाग्य समीप आ गया था । इसीलिए वह राज्य ऐसे व्यक्ति का सम्मान न कर सका । पतन के दिनों में मनुष्य के बुद्धि की कीमत मानी जाती है । जब किसी परिवार, देश और राज्य का विनाश होने वाला होता है तो उस परिवार--देश और राज्य में अच्छे आदमियों के लिए स्थान नहीं रह जाता और वहाँ पर अयोग्य आदमियों का सम्मान बढ़ जाता है । खुशामद पसंदगी मनुष्य की अयोग्यता का लक्षण है । जो अधिकारी खुशामद पसंद होता है, वह कभी कोई अच्छा कार्य नहीं कर सकता । इस प्रकार के आदमियों के द्वारा, समाज का, देश का और राज्य का सर्वनाश होता है । राजमाता में खुशामद पसंद का रोग था । वह अमरचन्द की योग्यता का लाभ न उठा सकी । मेवाड़-राज्य का पतन और सर्वनाश निश्चित था । इसीलिए उस राज्य में अमरचन्द के त्याग और बलिदान का आदर उसके जीवन में न हुआ । विष देकर उसके प्राण लिए गए । उसने अपनी जिन्दगी में राज्य के लिए अपना सर्वस्वदान कर दिया था । मरने पर उसके अंतिम संस्कार के लिए भी पैसों का अभाव था । प्रसिद्ध मेवाड़-राज्य का प्रधान मंत्री होने के बाद भी उसकी मृत्यु एक दीन-दरिद्र की-सी हुई । अमरचन्द के जीवन का यह पीड़ामय दृश्य मेवाड़-राज्य के सर्वनाश का कारण बना !

राजमाता ने अमरचन्द को अपना शत्रु समझा था । इसलिए उसका अंत करके वह निरंकुश जीवन व्यतीत करना चाहती थी । उसे न मालूम था कि अमर के मरते ही राज्य में क्या होने वाला है । बड़ी बुद्धिमानी के साथ अमरचन्द ने शत्रुओं से मेवाड़-राज्य को सुरक्षित बना रखा था और मराठों के षड़यंत्रों से राज्य को बचाने में उसने सफलता प्राप्त की थी । उसके मरने के बाद सम्वत् १८३१ सन् १७७५ ईसवी में बेगू सरदार ने राज्य पर आक्रमण किया । उसको रोकने के लिए मेवाड़ मे अब कोई शूरवीर न था । इसलिए राजमाता को उस सोंधिया से सहायता माँगनी पड़ी जो बहुत दिनों से मेवाड़ के विरुद्ध अवसर की ताक में था । बेगू एक मेघावत सरदार था । मेघावत वंश चन्द्रावत गोत्र की एक प्रधान शाखा है ।

सींधिया की मराठा सेना ने मेवाड़ का पक्ष लेकर बेगू सरदार पर आक्रमण किया और उस सरदार ने मेवाड़ राज्य के जिन स्थानों पर अधिकार कर लिया था, उनसे सरदार को हटा कर अपना अधिकार कर लिया और बेगू सरदार पर विद्रोह करने के अपराध में बारह लाख रुपये का जुर्माना किया । जुर्माने की इस सम्पत्ति को सींधिया ने अपने हिस्से में रखा और रतनगढ़ खेड़ी, सिंगोली के प्रसिद्ध स्थान अपने जामाता बीर जी प्रताप को देकर इंनिया, जाठ, बिचूर और नदोई इत्यादि अनेक राज्य के प्रसिद्ध स्थान होलकर को दे दिये । इन इलाकों की वार्षिक आमदनी छै लाख रुपये थी । मराठों ने मेवाड़-राज्य के इतने ही इलाकों पर अधिकार नहीं किया । बल्कि सम्बत् १८३०-३१ और ३६ में युद्ध की सहायता की कीमत में अत्यधिक सम्पत्ति की माँग मेवाड़ राज्य से की और उस सम्पत्ति की अदायगी न होने के कारण मराठों ने मेवाड़-राज्य के कई एक प्रसिद्ध इलाकों पर अधिकार कर लिया । राज्य के इन सर्वनाश के दिनों में अठारह वर्ष की अवस्था में सम्बत्-१८३४ सन् १७७८ ईसवी में हमीर की मृत्यु हो गयी ।

मेवाड़ के राणाओं से भिन्न-भिन्न अवसरों पर मराठों ने जिस प्रकार रुपये लिए, वे इस प्रकार हैं :

छासठ लाख रुपये सम्बत् १८०८ सन् १७५२ ईसवी में राणा जगतसिंह से होलकर ने लिए।

इक्यावन लाख रुपये सम्बत् १८२० सन् १७६४ ईसवी में राणा अरिसिंह से माधव जी सींधिया ने लिए।

चौसठ लाख रुपये सम्बत् १८२६ सन् १८७० ईसवी में राणा अरिसिंह से माधव जी सींधिया ने लिए।

इस प्रकार तीन बार में मेवाड़ के राणाओं से मराठों ने जो सम्पत्ति वसूल की, वह सब मिलाकर एक करोड़ इक्यासी लाख रुपये थी। इस नकद सम्पत्ति के सिवा सम्बत् १८०८ से लेकर सम्बत् १८३१ तक मेवाड़-राज्य के जितने इलाकों पर मराठों ने अधिकार कर लिया, उनकी वार्षिक आमदनी अट्ठाईस लाख पचास हजार रुपये थी। मराठों के अधिकार में गये हुए इलाकों में रामपुरा, भनपुरा, जावद, जीरण, नीमच, नीम बहेड़ा, रतनगढ़, खेड़ी, सिंगौली, इंनिया, जाठ, बिचूर और नदोई प्रमुख थे।

छब्बीसवाँ परिच्छेद

राणा के पद पर बालक भीमसिंह–चंदावत सरदारों की प्रधानता–पतन और आपस की फूट–सींधिया के विरुद्ध मारवाड़ और जयपुर–घरेलू फूट का परिणाम–अराजकता की वृद्धि–राणा की असमर्थता–मराठा सेना के अत्याचार–सींधिया और राणा की भेंट–मेवाड़ में शत्रुओं की सहायता–राज्य में लुटेरों के दल–सींधिया और होलकर के संघर्ष–मेवाड़ में लूट–मेवाड़ के राजपुरुष गिरवी रखे गये–मराठों और अँगरेजों में तनातनी।

राणा हमीर की मृत्यु के बाद उसका छोटा भाई भीमसिंह आठ वर्ष की अवस्था में सम्वत् १८३४ सन् १७७८ ईसवी में मेवाड़ के सिंहासन पर बैठा। चालीस वर्षों में जो चार राजकुमार इस राज्य के अधिकारी बने, भीम उनमें चौथा था। उसने मेवाड़ के सिंहासन पर बैठकर पचास वर्ष तक राज्य किया। इस अर्द्ध शताब्दी में जो अनर्थ और उत्पात इस राज्य में पैदा हुए, उनके द्वारा इस राज्य की शेष शक्तियाँ भी छिन्न-भिन्न हो गयीं।

भीमसिंह बाल्यावस्था में राज्य का अधिकारी हुआ था। वयस्क हो जाने के बाद भी बहुत समय तक उसको अपनी माता की अधीनता में रहना पड़ा। वह जन्म से ही अयोग्य और उत्साह-हीन था। उसमें स्वयं समझने और विचार करने की शक्ति न थी। इसलिए दूसरे लोग आसानी से उसको अपने अधिकार में कर लेते थे। इन दिनों में विद्रोही रत्नसिंह का बहुत पतन हो चुका था और उसका जो कुछ प्रभाव बाकी रह गया था, उसमें कुछ शक्ति न थी। इसीलिए भट्ट ग्रंथों में आगे उसका कोई उल्लेख नहीं किया गया।

मेवाड़-राज्य में चंदावत और शक्तावत वंशों का पारस्परिक विरोध बहुत दिनों से चला आ रहा था। इस राज्य में ये दोनों वंश अत्यंत प्रभावशाली थे। लेकिन अपनी-अपनी प्रधानता के लिए दोनों वंशों के सरदार एक दूसरे से वैमनस्य रखते थे। चंदावत लोगों ने राणा पर प्रभाव डालकर अपनी प्रधानता कायम कर रखी थी। इन दिनों में राणा की निर्बलता के कारण दोनों वंशों के सरदारों का विरोध अधिक बढ़ गया था और सम्वत् १८४० सन् १७८४ ईसवी में चंदावत सरदारों ने शक्तावत सरदारों के विरुद्ध आधिपत्य आरम्भ किये। राज्य में उनको प्रधानता मिली। उस प्रधानता का उन्होंने दुरुपयोग किया और शक्तावत वंश के लोगों के मिटाने की कोशिश की।

कोरावाड का अर्जुनसिंह और अमैते का प्रतापसिंह शालुम्ब्रा सरदार का निकटवर्ती सम्बंधी था। × चंदावत शालुम्ब्रा सरदार ने अर्जुनसिंह और प्रतापसिंहके साथ शक्तावत सरदार मोहकम के भेंदर दुर्ग को घेर लिया और उसके आस-पास तोपें लगवा दीं। चंदावत सरदार का यह आक्रमण अकस्मात हुआ।

शक्तावत वंश की एक छोटी शाखा में संग्रामसिंह नाम का एक व्यक्ति हुआ, वह वीर और साहसी था। उसके द्वारा मेवाड़-राज्य में कई एक अच्छे कार्य हुए। भेंदर दुर्ग के घेरे जाने के कुछ पूर्व पुरावत सरदार के साथ संग्रमसिंह का एक झगड़ा पैदा हुआ। लव्हा नामक उस सरदार का एक दुर्ग था। संग्रामसिंह ने उस दुर्ग पर अधिकार कर लिया। इसी बीच में भेंदर का दुर्ग घेरा जा चुका था। शक्तावत वंश के साथ संग्रामसिंह का सम्बन्ध था। इसलिए उसने उसके बदले में कोरा-वाड पर आक्रमण किया। अर्जुनसिंह वहाँ का अधिकारी था। संग्रामसिंह ने वहाँ के बहुत से पशुओं को अपने अधिकार में ले लिया। उसी मौके पर अर्जुनसिंह के पुत्र सालिमसिंह ने उसके साथ युद्ध किया और वह संग्रामसिंह के भाले से मारा गया। पुत्र के मारे जाने का समाचार अर्जुनसिंह ने सुना, उसने अपने सिर का साफा फेंक कर प्रतिज्ञा की कि "जब तक संग्रामसिंह से मैं अपने बेटे के मारे जाने का बदला न ले लूंगा, अपने सिर पर साफा न बाँधूंगा।" इसके बाद वह कोरावाड की तरफ रवाना हुआ। संग्रामसिंह अपने को शत्रुओं से सुरक्षित समझता था। इसीलिए उसका परिवार वहीं पर रहा करता था।

अर्जुनसिंह अपनी सेना के साथ शिवगढ़ पहुँचा। वहाँ के दुर्ग में लालजी के सिवा और कोई शूरवीर न था। बुढ़ापे में पहुँच कर उसने अपनी अवस्था के सत्तर वर्ष पूरे किये थे। उसका शरीर शिथिल और निर्बल हो गया था। उसके पास लड़ने वालों की संख्या बहुत थोड़ी थी। फिर भी वह अपने हाथों में तलवार और ढाल लेकर निकला और अपने थोड़े से आदमियों की शक्ति का सहारा लेकर उसने युद्ध किया। लड़ते हुए वह मारा गया। अर्जुनसिंह ने संग्रामसिंह के परिवार और बच्चों का सर्वनाश किया। लालजी की वृद्धा स्त्री उसके मृत शरीर को लेकर सती हुई।

कोरावाड के अधिकारी अर्जुनसिंह के द्वारा होने वाले इस सर्वनाश का परिणाम मेवाड़-राज्य पर अच्छा नहीं पड़ा। आपसी फूट पहले से चली आ रही थी। उसने इन दिनों में भयानक रूप धारण किया और राज्य का अपहरण करने में उस फूट ने मराठों को एक अच्छा अवसर दिया। शिवगढ़ के सर्वनाश के बाद चन्दावत और शक्तावत वंशों की शत्रुता भयानक हो उठी। चन्दावत वंश के लोगों को राणा के यहाँ प्रधानता मिली थी और उस वंश के शालुम्ब्रा सरदार को राज्य की रक्षा का अधिकारी बनाया गया। मेवाड़ में इन दिनों राजपूत वीरों का अभाव

× जगवत वंश में प्रतापसिंह का जन्म हुआ था। मराठों के साथ युद्ध करते हुए वह मारा गया।

था। शताब्दियों से शत्रुओं के आक्रमणों का सामना करते-करते वे सभी अपने प्राणों की आहुतियाँ दे चुके थे। जो बाकी रह गये थे, उनको और उनकी संतानों को राज्य के वर्तमान राणा की अकर्मण्यता ने भीरु बना दिया था। इसलिए राज्य की रक्षा के लिए किराये पर सिंधी सेना रखी गयी थी और चित्तौर तथा उदयपुर के बीच का समस्त श्रेष्ठ इलाका उसको दे दिया गया था। चंदावत मंत्री भीमसिंह इन दिनों में मेवाड़ का मंत्री था और उसने सिंधी सेना को सुविधायें देकर उसको अपने अनुकूल बना रखा था। इस भीमसिंह ने अपनी कुटिल राजनीति से राज्य को और भी अधिक मिट्टी में मिलाने का काम किया था। उसने अपने अधिकारों का दुरुपयोग किया था और राज्य की सम्पत्ति को पानी की तरह बहाकर उसने बरबाद किया। राणा भीम के पास सम्पत्ति का इतना अभाव उस समय था कि उसने अपना विवाह जब ईदर राज्य में किया था तो उसके खर्च के लिए उसको कर्ज लेना पड़ा। लेकिन राज्य की इस दुरवस्था के दिनों में भी मंत्री भीम ने अपनी लड़की के विवाह में दस लाख रुपये से अधिक खर्च किये। राणा भीमसिंह की अयोग्यता का यह परिणाम था कि उसका मंत्री राज्य में मनमानी कर रहा था और राणा तथा राजमाता की उपेक्षा करने में उसे कुछ भी भय न होता था।

राजमाता मंत्री भीम के असद् व्यवहार को अधिक समय तक सहन न कर सकी। उसने शक्तावत वंश के श्रेष्ठ जनों को बुलाकर अपने राज्य में प्रतिष्ठा दी और भेंदर तथा लव्हा के सामन्तों को बुलाकर उनका सम्मान किया। राजमाता ने चन्दावत मंत्री को हटाकर राज्य का वह पद किसी योग्य शक्तावत को देने का निश्चय किया। परन्तु चन्दावत लोगों ने राज्य में अपना इतना अधिकार कायम कर लिया था कि राणा और राजमाता का आदेश कुछ महत्व न रखता था। शक्तावतों में स्वयं इतना बल और पराक्रम न था कि वे चन्दावत लोगों को पराजित करके उनके प्रभुत्व को अपने अधिकार में ले सकते। ऐसी दशा में कोटा के सरदार जालिमसिंह से सहायता माँगी गयी। जालिमसिंह से सहायता माँगने के कुछ कारण भी थे। वह चन्दावत लोगों से पहले से ही अप्रसन्न था और शक्तावत वंश के लोगों के साथ उसके वैवाहिक सम्बन्ध थे। इसलिए जालिमसिंह ने सहायता देना स्वीकार कर लिया। इस समय शक्तावत लोगों के सामने दो कार्य प्रमुख थे। एक तो चन्दावत लोगों का दमन करना और दूसरा कमलमीर से विद्रोही रत्नसिंह को निकाल देना। चंदावत लोगों ने सिंधी सेना को मिलाकर राज्य में षड़यंत्रों का एक जाल फैला दिया था और उस जाल से राणा का निकल सकना आसान न था। इसलिए उस जाल का छिन्न-भिन्न कर देना शक्तावत लोगों का उस समय प्रधान कार्य था।

मेवाड़ की इस दुरवस्था के दिनों मे मारवाड़ और जयपुर वालों ने मिलकर एक शक्ति का निर्माण किया और माधवजी सोंधिया के बढ़ते हुये प्रभुत्व को नष्ट करने का काम किया था। लालसोंट नामक मैदान में मारवाड़ और जयपुर की संगठित सेना ने माधवजी सोंधिया को बुरी तरह पराजित किया और जो इलाके सोंधिया के अधिकार में चले गये थे, उन पर राजपूतों ने फिर से अपना अधिकार कर लिया। इसका प्रभाव मेवाड़ राज्य पर भी पड़ा और वहाँ के राणा ने भी अपने उन इलाकों पर अधिकार करने की चेष्टा की, जो मेवाड़ राज्य के थे और जिन पर सोंधिया ने अधिकार कर लिया था। मालदास मेहता और उसका सहकारी मौजीराम—दोनों ही राणा के यहाँ सुयोग्य अधिकारी थे। उनके द्वारा नीमबहेड़ा और उसके निकटवर्ती दुर्गों पर सबसे पहले अधिकार किया गया। मराठों ने घबरा कर जावद नामक स्थान पर एकत्रित होकर सामना करने की कोशिश की, परन्तु वे राजपूतों का सामना न कर सके। जावद का अधिकारी शिवाजीनाना राजित होकर राजपूतों से क्षमा माँगकर अपने सामान और आदमियों के साथ भाग गया। इसी

बीच में बेगू-सरदार मेघसिंह के पुत्र ने बेगू-सिंगौली और दूसरे स्थानों से मराठों को निकाल दिया और चंदावत लोगों ने भी मराठों से रामपुर राज्य का उद्धार किया। ×

इन दिनों में राजपूतों ने लगातार मराठों को पराजित किया और मेवाड़ तथा मारवाड़ की सीमा पर प्रवाहित होने वाली रि‹किया नामक नदी के किनारे चई नामक स्थान पर एकत्रित होकर वे मराठों के दूसरे इलाकों में अधिकार करने के लिए बढ़ने लगे। यह देखकर होलकर राज्य की रानी अहिल्या बाई सींधिया से मिल गयी और तुलाजी राव सींधिया तथा श्री भाई पाँच हजार सवारों की सेना को लेकर पराजित शिवाजीनाना की सहायता के लिये मन्दसोर की तरफ रवाना हुए। वहाँ पर राजपूतों के साथ शिवाजीनाना युद्ध कर रहा था। इसी अवसर पर मराठों की एक दूसरी सेना ने वहाँ पहुँचकर राजपूतों पर अचानक आक्रमण किया। माघ शुक्ल चौथ, मंगलवार सम्वत् १८४४ सन् १७८८ ईसवी को दोनों ओर से घमासन युद्ध। उसमें राजपूतों की पराजय हुई राणा का मंत्री अपने बहुत से सैनिकों के साथ मारा गया। कानोर और साद्री के सरदार घायल हो गये। साद्री का सरदार घायल अवस्था में ही कैद हो गया और दो वर्ष तक बंदी अवस्था में रहने के बाद अपने अधिकृत राज्य के चार नगरों को देकर उसने मुक्ति पायी। माधवजी सींधिया के जिन स्थानों पर राजपूतों ने, अधिकार कर लिया था, जावद को छोड़कर बाकी पर फिर मराठों ने अपना अधिकार कर लिया। दीपचन्द ने बड़ी बहादुरी के साथ एक महीने तक जावद की रक्षा की।

इन दिनों में चन्दावत लोगों को छोड़कर बाकी सभी सरदार राणा के साथ मिल गये। राजमाता और मेवाड़ के नवीन मंत्री सोमजी ने चन्दावतों को दमन करने की चेष्टा की। इन परिस्थितियों में चन्दावत शालुम्ब्रा सरदार राणा से क्षमा माँगने के लिए उदयपुर आया और वह चापलूसी करने लगा। उसने कहा : "मैं राज्य के मंत्री सोमजी के साथ मिलकर काम करना चाहता हूँ।" परन्तु उसकी इस बात में सच्चाई न थी। वह किसी प्रकार मंत्री सोमजी का बध करना चाहता था और इसके लिए वह भीतर ही भीतर षडयंत्र की रचना कर रहा था। एक दिन कोरावाड का सरदार अर्जुनसिंह और भदेसर का सामन्त सरदारसिंह—दोनों एक साथ मंत्री सोम जी के सामने पहुँचे और बड़े आवेश के साथ कहा : "आपको हमारी जागीर के जब्त करने का क्या अधिकार था ?" इसके साथ ही सरदारसिंह ने अपनी तलवार का भीषण वार मंत्री पर किया। यह देखकर सोमजी के दोनों भाई उसकी रक्षा के लिए दौड़ पड़े। अर्जुनसिंह ने आगे बढ़कर उनका सामना किया। अंत में दोनों आक्रमणकारी शालुम्ब्रा सरदार के साथ चित्तौर चले गये। राणा भीम में हत्याकारियों को दण्ड देने का सामर्थ्य न थी। मंत्री सोमजी के मारे जाने पर उसके भाई शिवदास और सतीदास राज्य के मंत्री बनाये गये।

शिवदास और सतीदास ने मंत्री पद पाने के बाद शक्तावत लोगों की सहायता से कई बार चन्दावत लोगों के साथ युद्ध किया। उन लड़ाइयों में मंत्रियों को अकोला में होने वाले युद्ध में केवल विजय प्राप्त हुई। इस लड़ाई में कोरावाड का सरदार अर्जुनसिंह चन्दावत लोगों का सेनापति बना। अकोला के युद्ध के थोडे ही दिनों बाद खैरोद नामक स्थान पर युद्ध हुआ। उसमें शक्तावत फिर पराजित हुए।

× मेघ जी बेगू का सरदार था। उसने चंदावत वंश में जन्म लिया था, उसके वंश के लोग मेघावत वंश के नाम से प्रसिद्ध हुए। मेघासिंह के शरीर का रंग बिल्कुल काला था, इसलिए उसे लोग कालामेघ कहते थे।

मेवाड़ राज्य में आपसी झगड़ों के कारण प्रजा के सामने भयानक कठिनाइयाँ पैदा हो गयी थीं। उन दिनों में जो पक्ष विजयी होता था, वह उन्मत्त होकर प्रजा का सर्वनाश करता था। इन विद्रोहों को दबाने की शक्ति राणा में न थी। इसलिए सम्पूर्ण राज्य में अराजकता बढ़ती जाती थी। विद्रोही सैकड़ों और सहस्त्रों की संख्या में तलवारें लिए हुए राज्य में चारों ओर घूम रहे थे और प्रजा का सभी प्रकार विनाश कर रहे थे। कृषकों से लेकर सभी प्रकार के व्यवसायी भयानक संकट का सामना कर रहे थे। चोरों, लुटेरों और डाकुओं की संख्या बहुत अधिक बढ़ गयी थी। जो अपराध पहले कभी मेवाड़ में सुनने को न मिलते थे, इन दिनों में उनकी अधिकता के कारण प्रत्येक समय प्रजा की सम्पत्ति, प्रतिष्ठा और जिन्दगी खतरे में थी। चन्दावत लोगों के अत्याचारों से राज्य में चतुर्दिक त्राहि-त्राहि मच गयी। राज्य की तरफ से कोई प्रबन्ध न होने के कारण लोग अपने अपने घर द्वार छोड़कर भागने लगे। राज्य के जो स्थान सदा मनुष्यों से भरे रहते थे, वे सुनसान दिखायी देने लगे। जो लोग खेती करते थे, वे इस बढ़ती हुई अराजकता के कारण सदा अनिश्चित रहते थे। ठीक वही अवस्था राज्य के दूसरे व्यवसायों की हो गयी थी। गरीबों और मजदूरों की अवस्था अत्यन्त भयानक हो गयी थी। राज्य के इस आन्तरिक विद्रोह के कारण कुछ ही वर्षों में मेवाड़ की आबादी घटकर आधी रह गयी। व्यवसाय नष्ट हो गया था और बेकारों की संख्या बढ़ती जाती थी। खेती का काम नष्ट हो गया था और जुलाहों का बुना हुआ कपड़ा—जो चारों तरफ बिक्री के लिए जाता था, खतम हो गया था। राज्य की अवस्था अत्यन्त शोचनीय हो गयी थी। प्रजा की रक्षा करने के स्थान पर राणा स्वयं अपनी रक्षा कर सकने में असमर्थ हो रहा था। उसकी अवस्था बहुत दयनीय हो गयी थी, उसको अपनी रक्षा की आवश्यकता थी। राणा की इस असमर्थता के कारण शासन का डर लोगों के दिलों से मिट गया था। बढ़ती हुई चोरी, बदमाशी और डकैती में लोगों को अपनी रक्षा की जरूरत थी। इसलिए जो राजपूत शक्तिशाली थे, उन्होंने भयभीत प्रजा की रक्षा करने का व्यवसाय आरम्भ किया। वे घोड़ों पर चढ़कर और अपने हाथों में तलवार तथा भाला लेकर निकलते और लुटेरों से प्रजा की रक्षा करते। उस दशा में लोग अपने ही राज्य में एक स्थान से दूसरे स्थान पर जा सकते और अपने साथ की सामग्री की वे रक्षा कर सकते। दुरवस्था सम्पूर्ण राज्य में फैल गयी। शासन ढीला पड़ जाने के कारण रक्षक राजपूतों का व्यवसाय बढ़ने लगा और प्रजा का प्रत्येक व्यक्ति एवम् परिवार सहायता का अनिश्चित मूल्य देकर सहायता प्राप्त करने लगा। राज्य की यह दुरवस्था अत्यन्त भयानक हो उठी और लुटेरे मराठों के गिरोह मेवाड़-राज्य में आकर लूट मार करने लगे। उस समय मेवाड़ की जो शोचनीय दशा हो गयी थी, उसका वर्णन करना असम्भव है।

राज्य की इस दुरवस्था का कारण एकमात्र चन्दावत लोग थे। उनके दमन की कोई व्यवस्था न हो सकने पर राणा और उसके मंत्रियों ने प्राचीन राजधानी से विद्रोही चन्दावत लोगों को निकाल देने के लिए सोधिया से प्रार्थना की। जिस सोंधिया ने रत्नसिंह की सहायता करके मेवाड़-राज्य का सर्वनाश किया था, आज राणा को स्वयं अपनी असमर्थता में उसकी सहायता के लिए प्रार्थना करनी पड़ी। इसके लिए जालिमसिंह ने राणा को परामर्श दिया था। सोंधिया उन दिनों में पुष्कर के तट पर अपनी सेना के साथ था और अपनी सेना को युद्ध की शिक्षा देने के लिए उसने डिबोइम नामक एक फ्राँसीसी सरदार को अपने यहाँ नियुक्त किया। उसकी शिक्षा पाकर सोंधिया की सेना इन दिनों में अधिक शक्तिशाली हो गयी थी और मेरता तथा पट्टन में उसके उत्पात फिर से बढ़ गये थे, राठौर राजपूतों ने पूरी शक्ति लगाकर उनका मुकाबिला किया,

लेकिन उनको सफलता न मिली और वे पराजित हुए। राठौर राजपूतों को जीतने के कारण सोंधिया की शक्तियाँ फिर से भयानक हो उठीं।

जालिमसिंह उन दिनों में कोटा का सरदार था। वह किसी प्रकार मेवाड़ के सिंहासन पर अधिकार करना चाहता था। शूरवीर और राजनीतिक होने के साथ-साथ वह दूरदर्शी था। निर्बल राणा को असमर्थ बनाकर वह मेवाड़ का राज्याधिकार लेने के लिए अनेक प्रकार के षडयंत्रों की रचना करने लगा। मारवाड़ और जयपुर के राजाओं का उसे कोई भय न था। उसने मारवाड़ के प्रसिद्ध सामन्तों को मिलाकर अपने पक्ष में कर लिया।

अपनी आशा को पूरा करने लिए जालिमसिंह अवसर की प्रतीक्षा में था। परिस्थितियों स्वयं मनुष्य को निर्बल और सबल बनाने का काम करती हैं। अपनी बढ़ती हुई कमजोरियों में राणा ने अपनी सेना का अधिकार जालिमसिंह को सौंप दिया। इस समय और सुयोग का लाभ उठाने के लिए जालिम ने राजनीतिक चालों से काम लिया। राणा ने सेना का जो कार्य जालिमसिंह को सौंपा था, उसके लिए धन की आवश्यकता थी। इस धन का प्रबन्ध करने के लिए जालिमसिंह ने समझा कि राज्य की कुछ जागीरों पर चन्दावत लोगों ने जबरदस्ती अधिकार कर लिया है, इसलिए उन जागीरों के बदले में चन्दावत लोगों से चौंसठ लाख रुपये वसूल किये जा सकते हैं। इसके लिए उसने सोंधिया की सहायता लेने का विचार किया और निर्णय किया कि चन्दावत लोगों से जो यह धन वसूल किया जायगा, उसका तीन भाग सोंधिया को और बाकी रुपये मेवाड़-राज्य के आवश्यक कार्यों में खर्च किया जायगा।

अपने कार्य की सिद्धि के लिए जालिमसिंह ने एक योजना बना कर सोंधिया की सहायता प्राप्त की और अम्बाजी इंगले के सेनापतित्व में एक मराठों की सेना लेकर वह चित्तौर की तरफ रवाना हुआ। दोनों सेनाओं ने चित्तौर की तरफ बढ़ते हुए रास्ते में खेती को बड़ी हानि पहुँचायी। जो स्थान सुन्दर और सम्पन्न थे, उसको लूट लिया। इस अत्याचार में जालिमसिंह ने अपने नाम को सार्थक कर दिया। धीरजसिंह हमीरगढ़ का अधिकारी था और वह चन्दावत लोगों का मित्र था। जालिमसिंह ने उसके राज्य हमीरगढ़ पर आक्रमण किया डेढ़ महीने तक लगातार वहाँ पर युद्ध होता रहा। जालिमसिंह के पास युद्ध की तोपें थीं, उसने उस युद्ध में अपनी तोपों का प्रयोग किया। उनसे हमीरगढ़ के कुए बरबाद हो गये। इस लिए धीरजसिंह के सैनिकों ने विवश होकर अपने दुर्ग का द्वार खोल दिया। जालिमसिंह ने उस पर अधिकार कर लिया और उसके बाद आस-पास के दूसरे दुर्गों पर कब्जा करके मराठा सेना के साथ चित्तौर की तरफ बढ़ा। रास्ते में बुसी नामक चन्दावत लोगों का एक इलाका था। जालिमसिंह ने उस पर आक्रमण किया और उस पर भी उसने अधिकार कर लिया। संधिया की सेना इन दिनों में मारवाड़ की तरफ थी। चित्तौर में जालिमसिंह की सेनाओं के पहुँचते ही सोंधिया भी अपनी सेना के साथ उसकी सहायता करने के लिए वहाँ पर आ पहुँचा।

माधव जी सोंधिया की राणा से मिलने की अभिलाषा थी। इसलिए उसने अपना यह इरादा जालिमसिंह से प्रकट किया। वह राणा को लाने के लिए उदयपुर की तरफ रवाना हुआ। राजधानी से कुछ दूर व्याघ्रमेरु नामक एक पहाड़ी स्थान पर राणा और माधवजी सोंधिया की मुलाकात हुई। सोंधिया ने राणा के प्रति अपना सम्मान प्रकट किया। इस समय सोंधिया और जालिमसिंह चित्तौर छोड़कर उदयपुर की तरफ चले आये और अम्बा जी अकेला अपनी सेना के साथ चित्तौर में रह गया। जालिमसिंह ने अम्बा जी इंगले से सहायता ली। लेकिन वे दोनों ही एक दूसरे पर विश्वास नहीं करते थे। अम्बा जी ने अवसर पा कर विद्रोही चन्दावत सरदार के साथ मेल

करने की चेष्टा की और जलिमसिंह का उद्देश्य उसे जाहिर कर देने का निश्चय किया। इसी आधार पर चन्दावत सरदार भीमसिंह के साथ जो राणा का विद्रोही था—अम्बा जी की गुप्त बात चीत हुई और जालिमसिंह की योजना को समझ कर चन्दावत सरदार भीमसिंह ने राणा के प्रति आत्म-समर्पण करना और बीस लाख रुपये देना स्वीकार किया, इस शर्त पर कि यदि राणा अपने यहाँ से जालिमसिंह को निकाल दे।

जालिमसिंह अम्बाजी को अपना मित्र समझता था। उज्जैन के युद्ध में त्र्यम्बक जी ने उसकी बड़ी मदद की थी। परन्तु राजनीति में इस प्रकार की मित्रता बहुत बड़ा मूल्य नहीं रखती। स्वार्थों का संघर्ष होते ही इस प्रकार की मित्रता छिन्न-भिन्न हो जाती है। जालिमसिंह स्वभावत: राज-नीतिज्ञ था। वह अपने हितों को बहुत दूर से देखा करता था। ठीक यही अवस्था अम्बा जी की भी थी। दोनों ही अपने-अपने स्वार्थों को बहुत दूर से देख रहे थे। इसीलिए न तो जालिमसिंह ने कभी अम्बाजी से जाहिर किया था कि मेवाड़ के सम्बन्ध में उसका भीतरी इरादा क्या है और न अम्बाजी ने जालिसिंह को इस बात के समझने का मौका दिया कि वह राणा की सहायता के नाम से क्या लाभ उठा सकता है। दोनों ही परिस्थितियों का फायदा उठाना चाहते थे।

राणा के साथ चित्तौर में जालिमसिंह के आने पर अब्बा जी ने चन्दावत भीमसिंह का प्रस्ताव उपस्थित किया और कहा कि विद्रोही सरदार राणा के सामने आत्मसमर्पण करके अपने अपराध के बदले में बीस लाख रुपये देने को तैयार हैं, इस शर्त पर कि जालिमसिंह मेवाड़ से निकाल दिया जाय। अम्बा जी के मुख से सदारख भीमसिंह का प्रस्ताव सुनकर जालिमसिंह ने कहा : "यदि मेरे सम्बन्ध में इस प्रकार की आपत्ति की जाती है तो मैं मेवाड़ छोड़कर कोटा चले जाने के लिए तैयार हूँ, यदि मेरा चला जाना राणा जी को स्वीकार है।"

अम्बाजी ने जालिसिंह के उत्तर को ध्यान पूर्वक सुना। उसने कहा : "आपका यह उत्तर सुनने में बड़ा सुन्दर मालूम होता है। लेकिन इस पर वही लोग विश्वास करेंगे, जो आपको जानते नहीं हैं।" इसके बाद अम्बा जी ने प्रश्न करते हुए जालिमसिंह से पूछा : "क्या वास्तव में आप चले जाने के लिए तैयार हैं?"—"निश्चित रूप से।" जालिमसिंह के इस उत्तर को सुनकर अम्बाजी ने उसको कुछ सोचने समझने का मौका न दिया और वह तुरंत अपने घोड़े पर बैठ कर सोंधिया के पास उसके खेमे में चला गया।

जालिमसिंह सोंधिया पर विश्वास करता था और समझता था कि वह अम्बाजी के द्वारा पहुँचे हुए इस प्रस्ताव को स्वीकार नहीं करेगा। इसका कारण यह था कि सोंधिया ने यहाँ आने के पहले उससे वादा किया था कि वह मेवाड़ के इस मामले में सहायता के लिए अपनी एक सेना देगा जो मेवाड़-राज्य से चन्दावतों को निकाल देगी और राज्य में शान्ति कायम करेगी। इस कार्य के लिए राणा की तरफ से सोंधिया को एक निश्चित रकम दी जायगी। जालिमसिंह समझता था कि इसी वादे पर सोंधिया की सेना चन्दावतों के विरुद्ध यहाँ पर आयी है। अगर इस समय सोंधिया इस प्रस्ताव को स्वीकार करता है तो उसके साथ जो मैंने शर्तें तय की थीं, उनका उत्तरदायित्व किस पर होगा? इसलिए उसका विश्वास था कि सोंधिया अम्बाजी के इस प्रस्ताव को कभी स्वीकार न करेगा। वह यह भी समझता था कि यदि सोंधिया ने इसे स्वीकार भी कर लिया तो राणा की तरफ से उसका विरोध होगा। क्योंकि राणा मेरे बल और पराक्रम से प्रभावित है और वह समझता है कि मेरे बिना राज्य की इस बढ़ती हुई अशान्ति और अराजकता में दूसरा कोई कुछ नहीं कर सकता था।

जालिमसिंह इस प्रकार की जितनी भी बातें सोच रहा था, अम्बाजो उनको पहले ही

समझता और उसने उनका उपाय भी सोच समझ लिया था। × सींधिया के पास पहुँच कर अम्बा जी ने उस प्रस्ताव को उसके सामने पेश किया और उस समय राणा के वादे की रकम माँगने पर अम्बा जी ने पूरे रुपये की एक हुण्डी सींधिया को दे दी। ÷ सींधिया पूना जल्दी पहुँचना चाहता था। चित्तौर से जाने के पहले उसने अम्बा जी को अपना अधिकारी बनाया और उसके अधिकार में वह एक अपनी सेना भी छोड़ गया, जिससे वह मेवाड़ से पहले छिपे हुए रुपयों को वसूल कर सके।

माधवजी सींधिया पूना चला गया। अम्बा जी ने लौटकर जालिमसिंह से कहा : "सभी ने आपके इरादे को स्वीकार कर लिया है।" इसी समय राणा के कर्मचारी ने आकर उससे कहा : "आप की विदाई की भेंट तैयार है।" यह सुनते ही जालिमसिंह के हृदय को एक आघात पहुँचा। लेकिन उसने किसी को अपनी इस दशा को समझने का अवसर न दिया और वह चित्तौर से चला गया। उसके बाद शालुम्बा सरदार चित्तौर के दुर्ग से निकल कर बाहर आया और राणा के चरणों को स्पर्श करके उसने क्षमा माँगी।

बिना किसी युद्ध के चन्दावतों का दमन करने में अम्बाजी को सफलता मिली। राज्य में फैली हुई अशान्ति और अराजकता अपने आप कम हो गयी और उसका श्रेय अम्बाजी को मिला। वह जालिमसिंह का मित्र होने की अपेक्षा अपना मित्र अधिक था और यह उसी की राजनीति थी कि उसने चन्दावतों को नियंत्रण में लाकर जालिमसिंह के स्थान पर मेवाड़-राज्य में अपना प्रभुत्व कायम किया। अब वह पूरे मेवाड़-राज्य का अधिकारी बन बैठा। इसके पहले जब जालिमसिंह मेवाड़ को छोड़कर जा रहा था—अम्बा जी राणा के मन्त्री शिवदास और सतीदास के पास गया और दोनों मन्त्रियों से वादा करके उसने राज्य की अशान्ति को दूर करने का भार अपने ऊपर लिया। अनेक उत्तरदायित्वों को लेकर अम्बा जी ने मेवाड़ में अपना स्थान सर्वेसर्वा बना लिया।

अम्बाजी ने मेवाड़ में रहकर आठ वर्ष व्यतीत किये। इन दिनों में उसने राज्य की सम्पत्ति को चूसकर बारह लाख रुपये अपने अधिकार में कर लिए। चन्दावतों के शान्त हो जाने से राज्य के समस्त उपद्रव खत्म हो गये। मेवाड़-राज्य के प्रबन्ध के सम्बन्ध में सींधिया ने निम्नलिखित कई एक आदेश अम्बा जी को दिये थे :

(१) विद्रोही रत्नसिंह ने कमलमेर में अधिकार कर रखा है, उसको वहाँ से निकाल दिया जाय।

(२) मारवाड़ के राजा से गोदवाड़ (गोद्वार) लेकर मेवाड़ में मिला लिया जाय।

(३) विद्रोहियों और सिंधी सेना ने राज्य के जिन इलाकों पर कब्जा कर रखा है, उनको उनसे छीन लिया जाय और समस्त अधिकार राणा को दिये जायें।

(४) बूँदी के राजकुमार के द्वारा अरिसिंह का वध होने के कारण जो झगड़ा पैदा हुआ है, उसका अंत किया जाय।

सींधिया को जो बीस लाख रुपये दिये गये थे, वे इस प्रकार वसूल किये गये : चन्दावतों की

× चित्तौर से चन्दावतो को निकाल कर राज्य में शान्ति कायम करने के लिए राणा ने सींधिया को बीस लाख रुपये देने का वादा किया था।

÷ दक्षिण में अम्बा जी की जो रियासत थी, उसके नाम पर उसने अपनी तरफ से बीस लाख रुपये की एक हुण्डी सींधिया को दे दी। उससे राणा के वादे की रकम सींधिया ने वसूल कर ली।

जागीर से बारह लाख रुपये और × शक्तावतों से शेष आठ लाख रुपये। इसप्रकार उन बीस लाख रुपयों की पूर्त्ति हुई। राणा ने अम्बा जी से वादा किया था कि राज्य के सभी कार्य हो जाने पर सेना के खर्च के साथ-साथ साठ लाख रुपये राज्य की तरफ से अम्बाजी को अधिक दिये जायेंगे। इस निर्णय के अनुसार, दो वर्ष के भीतर कमलमीर से रत्नसिंह को निकाल दिया गया। विद्रोही चन्दावत सरदार से जिहाजपुर और अन्य सरदारों से उनके इलाके छीनकर राणा के अधिकार में दे दिये गये। ÷

मेवाड़-राज्य के कार्यों के सम्बन्ध में अम्बाजी और राणा के बीच जो कुछ निर्णय हुआ था, उसके अनुसार अम्बाजी ने कुछ कार्य किया। लेकिन राज्य की कई एक समस्यायें अभी तक ज्यों-की-त्यों पड़ी हुई थीं। गोदवाड का इलाका अभी तक मारवाड़-राज्य में शामिल था, बूंदी और मेवाड़ का झगड़ा ज्यों का त्यों पड़ा था और मराठों ने जिन स्थानों पर अधिकार कर लिया था, उनकी भी अभी तक कोई निर्णय न हुआ था। इस प्रकार के कितने ही काम बाकी थे। अम्बाजी ने मेवाड़ राज्य के सूबेदार होने की घोषणा कर दी थी।

राज्य के सभी प्रबन्ध अम्बाजी के अनुसार हो रहे थे। चन्दावत लोगों को राज्य के दरबार में पुराने अधिकार प्राप्त हो गये थे। इसलिए मंत्री शिवदास और सतीदास को उनसे भय पैदा हो गया। उनके भाई मंत्री सोमजी का जिस प्रकार बध किया गया था, उसकी स्मृति उनको दिन-रात भयभीत कर रही थी। धीरे-धीरे उन दोनों को इस बात का विश्वास होने लगा कि चन्दावत लोग हम दोनों के प्राण लेने की चेष्टा कर रहे हैं।

दोनों मंत्रियों ने अपनी रक्षा का कोई उपाय न देखकर अम्बाजी से प्रार्थना की कि मेवाड़ में विशेष प्रबंध करने के लिए एक सेना की आवश्यकता है। मंत्रियों ने इस आवश्यकता को भली प्रकार समझाया, जिसको अम्बाजी ने स्वीकार कर लिया और जो सेना मंत्रियों की प्रार्थना के अनुसार रखी गयी, उसके खर्चा के लिए आठ लाख रुपये वार्षिक आमदनी की जागीरें दी गयी।

राणा अपने राज्य में नाम के लिए राजा था। कुल अधिकार अम्बाजी के हाथों में थे। राज्य की आर्थिक अवस्था इन दिनों में बहुत खराब हो गयी थी। सम्बत् १८५१ में राणा ने जयपुर के राजकुमार के साथ अपनी बहन का विवाह किया। उसके खर्चा के लिए राणा को अम्बाजी से पाँच लाख रुपये कर्ज लेने पड़े। उसके दूसरे वर्ष राज माता की मृत्यु हो गयी। राणा के बालक पैदा हुआ और उदयसागर का बाँध टूट जाने से जल की वृद्धि से मेवाड़ को बहुत हानि हुई। राज्य की बहुत-सी खेती नष्ट हो गयी।

सींधिया ने सम्बत् १८५१ में अम्बा जी को मेवाड़ राज्य का अधिकारी बनाया और अम्बा जी ने अपनी तरफ से मेवाड़ का प्रबंध करने के लिए गणेशपन्त नामक एक मराठा को मुकर्रर किया। सवाई और श्री जी मेहता नाम के राणा के दो कर्मचारी थे, जो राज्य में अधिकारी माने गये। वे दोनों गणेशपंत के साथ मिल गये और तीनों ने प्रजा के साथ अत्याचार आरम्भ किया। अम्बाजी को जब यह मालूम हुआ तो उसने गणेशपंत को हटाकर उसके सामने रायचन्द को मुकर्रर

× चन्दावतों से जो बारह लाख रुपये वसूल किये गये, उनके विवरण इस प्रकार हैं : तीन लाख रुपये शालुम्ब्रा से, तीन लाख रुपये दवेगढ़ से, दो लाख रुपये सिंगिनगढ़ के मंत्रियों से, कोशीतल से एक लाख, अमैत से दो लाख कोरावाड से एक लाख। इस प्रकार बारह लाख रुपये वसूल किये गये।

÷ सिंधी सेना से रायपुर, राजनगर, पुरावत लोगों से गुरला, गादरमाला, सरदारसिंह से हमीरगढ़ और शालुम्ब्रा से कुर्जकोवारियो नामक इलाकों का उद्धार किया गया।

किया। रायचन्द राज्य में कुछ प्रबंध न कर सका। प्रजा से लेकर राणा के कर्मचारियों तक किसी के ऊपर उसका प्रभाव न पड़ा। लोगों का शासन में जो भय था, वह उस समय बिलकुल ढीला पड़ गया। इसका परिणाम यह हुआ कि राज्य में फिर से उपद्रव और उत्पात आरम्भ हो गये। राज्य की शांति मिटने लगी और दुराचारियों ने प्रजा को लूटना आरम्भ कर दिया।

राज्य की यह दुरवस्था देखकर मराठों, रुहेलों और दूसरे लोगों के दल के दल मेवाड़-राज्य में घूमने लगे। उनको रोकने के लिए राज्य की तरफ से कोई व्यवस्था न थी। इसलिए उन दलों ने निर्भीक होकर राणा की प्रजा को लूटना शुरू कर दिया। चन्दावत लोग इधर बहुत दिनों से चुपचाप थे। अवसर पाकर वे सोंधिया से मिल गये और मेवाड़-राज्य में लूटमार करके भयानक अत्याचार करने लगे। राणा को राज्य की ये सभी बातें मालूम थीं। कुछ दिनों तक चुपचाप रह कर उसने चन्दावन लोगों के अत्याचार लगातार देखे और अंत में विवश होकर उसने आदेश दिया कि चन्दावत लोगों को राज्य की तरफ से जो जागीरें दी गयी हैं। वे जब्त कर ली जायँ।

राणा का यह आदेश मिलने पर राज्य की सेना ने कोरावाड को अपने कब्जे में कर लिया और शालुम्ब्रा के दुर्ग पर आक्रमण करके उसके विध्वंश के लिए तोपें लगा दी। सिंधी लोग उन दिनों में वहीं पर रहते थे। राणा की सेना के आक्रमण करने पर वे लोग शालुम्ब्रा को छोड़कर चले गये और देवगढ़ में जाकर आश्रय प्राप्त किया।

मेवाड़ की सेना के आक्रमण करने पर चंदावत लोग घबरा उठे। उन्होंने अपनी रक्षा का कोई उपाय न देखकर अम्बा जी के पास अपना दूत भेजा और दस लाख रुपये देने के वादे पर सहायता के लिए उससे प्रार्थना की। अम्बा जी बहुत लोभी आदमी था। उसने चंदावतों को सहायता देना स्वीकार कर लिया। उसने शिवदास और सतीदास को मंत्री के पदों से हटाकर चंदावत लोगों के पक्ष का समर्थन किया। शालुम्ब्रा सरदार को राणा के दरबार में फिर वही स्थान प्राप्त हुआ। अग्रेजी मेहता को राज्य का मंत्री बनाया गया।

चंदावत लोगों ने अम्बा जी की सहायता प्राप्त करते ही शक्तावत लोगों के विरुद्ध अत्याचार आरम्भ किया और मौका पाते ही आक्रमण करके उन लोगों ने शक्तावत लोगों को पराजित किया। इसके साथ-साथ हीता और सायमारी नामक शक्तावतों की जागीरों से दस लाख रुपये वसूल करके चंदावत लोगों ने अम्बा जी को दिये।

माधव जी सींधिया की इन्हीं दिनों में मृत्यु हो गयी। उसका भतीजा दौलतराव उसके सिंहासन पर बैठा। सींधिया का लड़का उस समय नाबालिग था। दौलतराव ने सिंहासन पर बैठने के बाद सींधिया की विधवा पत्नियों के साथ अत्याचार करना आरम्भ किया। उसने शैनवी सरदारों को मरवा डाला। सोंधिया के लड़के नाबालिग होने के कारण अम्बा जी को लाभ उठाने का बहुत मौका था। लेकिन कुछ लोगों ने सोंधिया की विधवा रानियों का पक्ष लिया और उन लोगों ने अम्बा जी के साथ उन रानियों की तरफ से युद्ध किया। उन लोगों में लखवादादा, खीची का राजा दुर्जनसाल और दतिया का राजा प्रमुख था। इन सभी लोगों ने सोंधिया की विधवा रानियों की सहायता की। लखवादादा ने मेवाड़ के राणा को इस आशय का एक गुप्त पत्र भेजकर अनुरोध किया कि आप किसी भी दशा में अम्बा जी को राज्य में अधिकारी न मानें और जो लोग उसकी तरफ से राज्य में प्रबंध करते हैं, उनको राज्य से निकाल दें।

इसके पहले जिन शैनवी × सरदारों को मार डाला गया था, वे सब लखवादादा के पक्ष

× मराठा ब्राह्मण तीन भागों में विभाजित है--शैनवी, पूर्वा और माहरत। लखवादादा,

में थे। मेवाड़-राज्य में उनकी बहुत सी जमीन थी। अम्बा जी ने गणेशपंत को लिखा कि मेवाड़ की जो जमीन शैनवी ब्राह्मणों के अधिकार में है, वह सब उनसे ले लो। अम्बा जी के इस आदेश को पाकर गणेशपंत ने राणा के मंत्री और सरदारों को बुलाकर परामर्श किया। मंत्री और सरदार उसकी हाँ-में-हाँ मिलाते रहे। लेकिन वास्तव में वे गणेशपंत के समर्थक न थे।

राणा के मंत्री और सरदारों ने गणेशपंत को धोखे में रखा। इसी अवसर पर उन लोगों ने शैनवी ब्राह्मणों के पास गणेशपंत पर आक्रमण करने का संदेश भेजा। इस संदेश को पाते ही एक सेना लेकर शैनवी लोग रवाना हुए। उनका सामना करने के लिए गणेशपंत अपनी सेना के साथ जावद की तरफ चला। साला नाम के स्थान पर दोनों ओर की सेनाओं का सामना हुआ। युद्ध में गणेशपंत की पराजय हुई। उसकी सेना के आदमी अपने प्राण लेकर भागे। गणेशपंत के अधिकार में जो युद्ध की सामग्री थी, तोपों और बन्दूकों के साथ वह सब शैनवी लोगों को मिली।

इस लड़ाई में गणेश पंत की बहुत हानि हुई। वह युद्ध स्थल से चित्तौर की तरफ भागा। चंदावत लोगों ने उसको रोक कर फिर से उसे युद्ध करने के लिए तैयार किया और सहायता देने का वादा किया। नाना गणेश पंत ने उन लोगों का विश्वास करके युद्ध की फिर से तैयारी की और अपनी सेना को एकत्रित करके उसने शैनवी लोगों के साथ फिर युद्ध किया। चंदावत लोगों ने गणेश पंत की सहायता न की और वह दूसरी बार भी पराजित होकर हमीरगढ़ की तरफ चला गया। जिन चंदावतों ने सहायता देने के लिए नाना गणेश पंत से वादा किया था, वे उसके शत्रुओं से मिलकर और उनके पन्द्रह हजार सैनिकों को लेकर हमीरगढ़ को घेर लिया। नाना गणेश पंत ने अपनी रक्षा के लिए बड़े साहस से साथ नौ बार उनसे युद्ध किया। परन्तु किसी में उसको विजय न मिली। हमीरगढ़ के राजा धीरजसिंह के दो लड़के इन युद्धों में मारे गये।

नाना गणेशपंत की पराजय के समाचार जब अम्बा जी को मिले तो उसने गुलाबराव नाम के सेना पति के साथ अपने कुछ सैनिक सवारों को भेजा। उन दिनों में नाना गणेशपंत शत्रुओं के बीच में घिरा हुआ था। अम्बा जी की भेजी हुई सेना की सहायता से वह शत्रुओं के घेरे से निकल सका और अपने बचे हुए सैनिकों के साथ वह अजमेर की तरफ चला गया। उसके कुछ दूर निकल जाने के बाद मूसामूसी नामक स्थान पर शत्रुओं ने उसे फिर घेर लिया। नाना गणेशपंत को उनके साथ फिर युद्ध करना पड़ा। चंदावत लोगों ने इस लड़ाई में भयानक मारकाट की। गणेश-पंत की सेना पीछे हटने लगी। इसी समय बड़े जोर की आवाज सुनायी पड़ी—"भागा! भागा!" इस आवाज को सुनते ही दोनों तरफ के सैनिक आश्चर्य चकित हो उठे। इसी समय फिर सुनायी पड़ा—"मिल गयी! मिल गयी!" इस प्रकार की आवाजों को सुनकर चंदावत लोग भयभीत हो उठे। उन्हें विश्वास हो गया कि हमारी सेना शत्रुओं से मिल गयी। इस प्रकार का विश्वास करते ही चंदावत लोग युद्ध से भागने लगे। नाना गणेशपंत की सेना ने भागते हुए चंदावतों का पीछा किया और उस भगदड़ में बहुत से चंदावत लोग तलवारों से काट डाले गये। इसी समय सिंधी सेना का एक अधिकारी चंदन भी मारा गया। बहुत से सैनिक और अधिकारी घायल हुए। भागते हुए चंदावत राजपूत शापुरा पहुँचे। देवगढ़ के राजपूतों ने उनको अपने यहाँ आश्रय दिया।

इस युद्ध में नाना गणेशपंत ने राजनीतिक चाल से विजय प्राप्त की और चंदावत राजपूत

बल्लभा, सांतिहा, जीवदादा, शिवाजी नाना, लालजी पण्डित और जसबन्तसिंह भाऊ मेवाड़ की उस भूमि को अधिकार में रखते थे, जो राणा की तरफ से उनको गिरवी करके दी गयी थी।

बीच में आकर मारे गये। विजयी होने के बाद भी गरगेशपंत ने मेवाड़ पर अपना प्रभुत्व कायम न कर पाया। राजपूत सरदारों ने पंत को अयोग्य और निर्बल समझ लिया था। इसीलिये वे सभी उसके आधिपत्य से स्वतंत्र होने के लिए चेष्टायें करने लगे।

इसी बीच में एक बात और हुई। मेवाड़ में प्रधानता प्राप्त करने के लिये अम्बा जी और लखवादादा में झगड़ा पैदा हो गया। अम्बा जी ने मेवाड़ राज्य का सर्वनाश करने में कुछ उठा न रखा था। लखवादादा ने उसका विरोध करना आरम्भ किया। मेवाड़ के सरदार इस झगड़े और विरोध में नाना गरगेशपंत के विरुद्ध उसके साथी बने। जिस समय नाना गरगेशपंत की सहायक सेना हमीरगढ़ में मौजूद थी, लखवादादा ने अपनी सेना लेकर हमीरगढ़ को घेर लिया और उसके दुर्ग को गिराने के लिए तोपों की वर्षा आरम्भ कर दी। लगातार तोपों की मार से दुर्ग का एक हिस्सा गिर गया और दुर्ग में पहुँचने का रास्ता खुल गया। लखवादादा की सेना ने उसी रास्ते से उसमें प्रवेश करने का इरादा किया। इसी समय बालाराव इंगले, बापू सिन्दा और यशवंतराव सिन्धा की सेनायें नाना पन्त की सेना की सहायता के लिये हमीरगढ़ पहुँच गयी। कोटा के जालिमसिंह ने भी उसकी सहायता करने के लिए अपना एक गोलंदाज भेजा था। अम्बा जी का लड़का उसकी सहायक सेना का सेनापति था। इन नयी सेनाओं के आ जाने के कारण लखवादादा ने हमीरगढ़ से अपनी सेना हटा ली और चित्तौर की सीमा पर मुकाम किया। नाना गरगेशपंत से हमीरगढ़ को छोड़ कर नयी आने वाली सेनाओं से गोसुन्दर नामक स्थान पर जा कर मिला। दोनों विरोधी सेनाओं की तोपें बूनस नदी के दोनों किनारों पर लग गयीं और दोनों सेनायें युद्ध होने का रास्ता देखने लगी।

इसी मौके पर नाना गरगेशपंत और बालाराव इंगले में सेना के वेतन के प्रश्न के सम्बन्ध में एक झगड़ा पैदा हो गया। उस झगड़े का कोई निर्णय न हुआ और नानापंत उस स्थान को छोड़कर सिगनेर नामक स्थान की तरफ चला गया। उस झगड़े का कोई विशेष प्रभाव उन दोनों सेनाओं पर नहीं पड़ा। मराठों का संगठन इतना दुर्बल नहीं था कि वह किसी भी आपसी झगड़े के कारण छिन्न-भिन्न हो सके और उसका लाभ वे लोग शत्रु को उठाने दें। मराठों का आपसी झगड़ा आपस तक ही सीमित रहता था और शत्रुओं के मुकाबिले में वे फिर एक हो जाते थे।

नाना गरगेशपंत के उस स्थान से हट जाने के बाद युद्ध में रुकावट पड़ गयी। बालाराव इंगले युद्ध नहीं करना चाहता था। इसके सम्बन्ध में दो प्रकार की धारणायें पायी जाती हैं। एक तो यह कि गोगुलछप्रा की लड़ाई में लखवादादा ने बालाराव इंगले की सहायता की थी और उसके प्राणों की रक्षा की थी। लखवादादा का यह उपकार बालाराव के सिर पर था। इसलिए वह लखवादादा से युद्ध नहीं करना चाहता था। दूसरी धारणा यह है कि लखवादादा इंगले के के पास धन का अभाव था और उसे अपनी सेना का वेतन देना था। इसी समस्या को लेकर बालाराव और नानापंत में विरोध पैदा हुआ था। लखवादादा ने बालाराव को धन देकर उसकी सहायता करने का वादा किया था, इसलिए बालाराव युद्ध से इनकार कर रहा था।

अम्बाजी ने नाना गरगेशपंत की सहायता करने के लिये अपनी एक सेना दे कर सबरलैंड नामक एक अंग्रेज को भेजा। लेकिन नानापंत को इस सेना की सहायता न मिल सकी। उस दशा में उसने जार्ज थॉमस नामक एक अंग्रेज सेनापति से सहायता माँगी और उसके बाद नाना गरगेशपंत युद्ध के लिए तैयार हो गया। दोनों ओर की सेनायें बूनस नदी के दक्षिण तरफ युद्ध के लिए खड़ी हो कर समय की प्रतीक्षा करने लगी। उसको इस अवस्था में बरसात के छै सप्ताह बीत गये। राणा और उसके सरदार अभी तक लखवादादा के पक्ष में थे। लेकिन अब वे दोनों के

पक्ष की बातें करने लगे। इसलिए कि दोनों दलों की तरफ से उसको इन दिनों में सम्मान मिल रहा था।

बूनस नदी के किनारे पर दोनों सेनायें युद्ध के लिए तैयार थीं और दोनों ही शक्तियां इस समय लगभग बराबर थीं। नाना गणेशपंत इस समय कोई बाहरी सेना की सहायता प्राप्त न कर सके, इसलिए खीची का राजा दुर्जनसाल मेवाड़ के सरदारों और पाँच सौ सवारों के लिए नानापंत के शिविर के इधर-उधर घूमने लगा। परन्तु उसको अपने उद्देश्य में सफलता न मिली और जार्ज थॉमस शापुरा से एक सेना के साथ नानापंत की छावनी में पहुँच गया और कुछ समय के बाद लखवादादा को घेरने के उद्देश्य से वह अपनी छावनी से निकला। इस युद्ध के शुरू होने के पहले ही वहाँ पर एक भयानक आँधी आयी और बहुत तेजी के साथ वृष्टि हुई। इस भीषण आँधी और वृष्टि के कारण थॉमस की सेना अस्त-व्यस्त हो गयी, उसके रहने का स्थान शापुरा कई स्थानों पर नष्ट हो गया और वहाँ के दुर्ग का फाटक टूटकर चकनाचूर हो गया।×

शत्रु-सेना के तितर-बितर हो जाने पर लखवादादा ने मेवाड़ के सरदारों की सहायता से शत्रु सेना का पीछा किया और युद्ध की बहुत-सी सामग्री के साथ उसकी पन्द्रह तोपों पर अधिकार कर लिया। आज के पहले शापुरा के राजा ने सेना और रसद से नानापंत की सहायता की थी। परन्तु इस अवसर पर उसने उसकी किसी प्रकार सहायता न की। इस दशा में नाना गणेशपंत सिगनोर की तरफ भागा। इस भागने की अवस्था में उसकी सेना की बड़ी हानि हुई। उसके बहुत से सैनिक मारे गये। मेवाड़ के सरदारों ने नाना गणेशपंत को भयानक क्षति पहुँचायी। इस लिए नाना गणेशपंत मेवाड़ के सरदारों से बहुत अप्रसन्न हुआ और उसने उनसे बदला लेने का निश्चय किया।

बरसात बीत चुकी थी। रास्ते साफ हो चुके थे। गणेशपंत लखवादादा से युद्ध करने के लिए तैयारी करने लगा। इन दिनों में उसको क्रोध का ठिकाना न था। उसने चारों तरफ लूटमार और मनुष्यों का बध आरम्भ किया। अरावली पहाड़ की तलैटी में चन्दावत लोगों की जो जागीरें थीं। उनको घेरकर नानापंत ने भयानक अत्याचार आरम्भ किया। कितने ही गावों में आग लगा दी गई, जिससे सैकड़ों और सहस्त्रों घर जल कर राख हो गये। उनमें रहनेवाले मनुष्य कीड़ों और पतिंगों की तरह मरे। भीषण रूप से लोग लूटे गये। जो लोग अपने घर-द्वार छोड़कर भागे, वे रास्ते में घेरकर मारे गये। बड़ी निर्दयता के साथ कर लगाया गया और लोगों से रुपये वसूल किये गये। जार्ज थॉमस ने देवगढ़ और अमैता पर आक्रमण करके वहाँ के राजा को कर देने के लिये मजबूर किया। उसने कारवीतल और लुसानी के दुर्गों पर अधिकार कर लिया। लुसानी के रहने वालों ने उसके अत्याचारों का मुकाबिला किया। इसलिए सेनापति थॉमस ने उस नगर का भयानक रूप से विनाश किया। इस प्रकार के अत्याचार नाना गणेशपंत अम्बा जी की सहायता के बल पर कर रहा था।

सींधिया को जब अम्बाजी के द्वारा होने वाले इन अत्याचारों के समाचार मिले. तो उसने

×सम्वत् १८५६ सन् १८०० ईसवी में यह घटना घटी थी। लखवादादा ने जिहाजपुर का अपना इलाका शापुरा के राजा को दे दिया था। इसके सम्बन्ध के पुराने उल्लेखों से पता चलता है कि राणा ने छिपे तौर पर शापुरा के राजा से दो लाख रुपये लेकर अपनी मंजूरी दी थी। इसके लिए लखवादादा और मेवाड़ के सरदार लोग बहुत नाराज हुए।

मेवाड़ राज्य से उसको अलग करके उसके स्थान पर लखवादादा को नियुक्त किया। X

अम्बा जी के पदच्युत होने पर नाना गणेशपंत की सभी आशायें मिट्टी में मिल गयीं। उसने जितने स्थानों पर अधिकार कर लिया था, उन सबको उसने लौटा दिया। सींधिया के इस कार्य का लाभ मेवाड़ को न हुआ बल्कि उसकी प्रतिष्ठा को अघात पहुँचा। इसलिए कि उस समय से सींधिया मेवाड़ को अपना एक अधीन राज्य समझने लगा। लखवादादा सींधिया के आदेश से मेवाड़ का अधिकारी मुकर्रर हुआ। वह एक बड़ी सेना के साथ मेवाड़ की तरफ चला। अग्रजी मेहता फिर से मेवाड़ के मंत्री बनाये गये और चन्दावत लोगों ने अपने पहले के पदों को पाकर राणा के प्रति अपना सम्मान प्रकट किया। यह पहले लिखा जा चुका है कि लखवादादा ने अपना इलाका जिहाजपुर शापुरा के राजा को दे दिया था। लखवादादा ने उससे जिहाजपुर वापस ले लिया। उस इलाके में छत्तीस ग्राम थे। इन ग्रामों को गिरवी करके लखवादादा ने छै लाख रुपये एकत्रित करने की चेष्टा की। ये रकम जालिमसिंह ने अदा की और जिहाजपुर इलाके के सभी ग्रामों पर उसने अधिकार कर लिया।

लखवादादा को रुपये की भूख अब बढ़ गयी थी। छै लाख रुपये पाने के बाद उसकी भूख मिटी नहीं। उसने चौबीस लाख रुपये की एक दूसरी माँग की। उसकी यह माँग राणा से थी और उसके न दे सकने पर उसने राज्य से इस लम्बी रकम को वसूल करने का निश्चय किया। इस समय वह पहले का लखवादादा न था। शक्तियों के बढ़ जाने पर मनुष्य, मनुष्य नहीं रह जाता। लखवादादा के अधिकार में इस समय मराठों की एक बड़ी सेना थी। मेवाड़-राज्य से चौबीस लाख रुपये वसूल करने के लिए उसने अपनी सेना को आज्ञा दी। मराठे सैनिक राज्य में चारों तरफ दौड़ पड़े और वहाँ पर जैसे जो रकम मिली, उसे वसूल करके चौबीस लाख रुपये जमा किये गये। इन दिनों में लखवादादा की शक्तियाँ महान हो रही थीं। उसके पास अब रुपये का कोई अभाव न था। उसने यशवंतराव भाऊ नामक मराठा को अपनी तरफ से मेवाड़-राज्य का अधिकारी बनाया और उसको मेवाड़ में छोड़कर वह जयपुर की तरफ चला गया। भाऊ ने मेवाड़-राज्य का प्रबन्ध अपने अनुसार शुरू किया।

अग्रजी राणा का मन्त्री था और मौजीराम उपमन्त्री के स्थान पर काम कर रहा था। राज्य की दुरवस्था देखकर दोनों ही बहुत चिंतित हो रहे थे। इन दिनों में योरप के कई एक दल भारत में आ गये थे। उनकी शासन प्रणाली का प्रभाव इस देश के राजाओं पर पड़ रहा था। मंत्री आग्रजी के मनोभावों पर भी उनका असर पड़ा। उसने भी मेवाड़-राज्य में उनका अनुकरण करने की चेष्टा की और उसने यह भी सोच डाला कि उनकी एक सहायता रखकर राज्य का प्रबंध शान्तिपूर्वक चलाया जा सकता है। लेकिन इसके लिए अधिक धन की जरूरत थी और आर्थिक मामलों में देश की अवस्था बड़ी भयानक हो गयी थी। इस दशा में उसने राज्य के सरदारों को बुलाकर इस विषय में गम्भीरता के साथ परामर्श किया।

राज्य के सरदारों ने एकत्रित हो कर अग्रजी की बातें सुनीं। उन लोगों ने योरप से आये हुए लोगों के प्रभुत्व को अपनाने का समर्थन नहीं किया और इसी उद्देश्य से उन लोगों ने मन्त्री अग्रजी को कैद कर लिया। उसके स्थान पर सतीदास को फिर मन्त्री बनाया गया। उसका भाई

X बालोबा तातिया और बकसी नारायण राव—दोनों ही सींधिया के मंत्री थे और दोनों ही शैनवी ब्राह्मण मराठा थे। लखवादादा के साथ उनका वंशगत सम्बन्ध था। इसका लाभ लखवादादा को मिला और इसलिए वह सींधिया के द्वारा अम्बा जी के स्थान पर नियुक्त किया गया।

शिवदास चन्दावत लोगों के भय से कोटा चला गया था। उसे वहाँ से बुलवाया गया।

सन् १८०२ ईसवी में मराठा शासन के सम्बन्ध में जो एक लाख पचास हजार आदमी एकत्रित हुए थे, उन्होंने होलकर से उसका राज्याधिकार छीन लिया और उसकी राजधानी में हाथियों और घोड़ों के अतिरिक्त जो भी युद्ध की सामग्री और सम्पत्ति मौजूद थी, उस पर अधिकार कर लिया। होलकर के मेवाड़ की तरफ भागने पर सींधिया की सेना ने उसका पीछा किया। सदाशिवराव और बालाराव सींधिया की सेना के प्रधान थे। मेवाड़ की तरफ भागते हुए होलकर ने रतलाम का दुर्ग लूट लिया और शक्तावत लोगों के स्थान भेंदर दुर्ग को घेर कर उसने रुपये की सहायता माँगी। शक्तावत लोग होलकर की इस माँग से घबरा उठे। सींधिया की सेना अब भी होलकर का पीछा कर रही थी। इसलिए होलकर भेंदर को छोड़ कर नाथद्वारा चला गया।× वहाँ के पुरोहित और पुजारी से उसने तीन लाख रुपये वसूल किये। रुपये की यह रकम उसने नाथद्वारा के लोगों से बड़ी निर्दयता के साथ वसूल की।

नाथद्वारा का प्रधान पुजारी दामोदर जी था। होलकर के इस आक्रमण से भयभीत होकर उसने वहाँ की देवमूर्ति को किसी सुरक्षित स्थान पर ले जाने का इरादा किया और इस विषय में उसने कोटारियों के सरदार से परामर्श किया। निश्चय हुआ कि इसके लिए उदयपुर से अच्छा दूसरा कोई स्थान नहीं हो सकता। इसलिए पुजारी दामोदर जी अपनी देव मूर्ति को वहाँ ले जाने के लिए तैयार हुआ। उसकी रक्षा करने के लिए बीस सवारों के साथ कोटारियों का सरदार साथ चला और पुजारी को वहाँ पहुँचा कर अपने सवारों के साथ जब वह लौट रहा था, तो रास्ते में होलकर की सेना के सिपाहियों ने कठोर-स्वर में उससे कहा: "आप लोग अपने घोड़े हम लोगों को दे दें। अगर ऐसा न करेंगे तो उसका नतीजा बुरा होगा।"

इस बात को सुनकर कोठारियों का सरदार क्रोध के साथ बोला: "हम लोग राजपूत हैं। इस प्रकार प्राण रहते हुए हम लोग अपने घोड़े नहीं देख सकते।"

उस सरदार ने होलकर के सैनिकों की कुछ परवा न की। फलस्वरूप मराठा सैनिकों ने आक्रमण किया। सरदार ने अपने थोड़े-से आदमियों के द्वारा कुछ देर तक युद्ध किया और अन्त में वह मारा गया। उसके मारे जाने पर नाथद्वारे का कोई रक्षक न रह गया। होलकर ने वहाँ के पुजारी से और वहाँ के निवासियों से तीन लाख रुपये वसूल किये।

पुजारी दामोदर उदयपुर पहुँच गया। परन्तु वहाँ पर उसकी तबीयत न लगी। राणा की हालत को देख कर उसने वहाँ का रहना अपने लिए सुरक्षित न समझा। इसलिए छै महीने के बाद वह गसियर नामक एक पहाड़ी स्थान पर चला गया और वहाँ की पहाड़ी दीवारों के बीच एक मन्दिर बनाकर अपनी देव मूर्ति के साथ वह रहने लगा।

सींधिया की सेना अब भी होलकर का पीछा कर रही थी। नाथद्वारा की सम्पत्ति लूटकर और बनैडा तथा शापुरा से बहुत-सा धन लेकर होलकर अजमेर में पहुँचा और वहाँ से वह जयपुर की तरफ चला गया। मेवाड़ में पहुँच कर सींधिया की सेना ने जब होलकर को वहाँ न पाया तो उसने उसका पीछा करना छोड़ दिया और सींधिया के सरदारों ने राणा से तीन लाख रुपये की माँग की। इस समय राणा की अवस्था बहुत खराब थी। इस रकम को अदा करने के लिए उसमें सामर्थ न थी। परन्तु बिना रुपये दिये हुए छुटकारा न मिल सकता था। इसलिए राणा भीमसिंह ने

× उदयपुर से पच्चीस मील उत्तर की तरफ नाथद्वारा बसा हुआ है। इस स्थान का वर्णन आगे विस्तार के साथ किया जायगा।

अपनी व्यक्तिगत और रानियों की बहुमूल्य सामग्री तथा उनके आभूषण तीन लाख रुपये की अदा-यगी में दे दिये। इतना सब पा जाने के बाद भी सोंधिया के सरदारों को सन्तोष न हुआ। इसलिए अशबंत राव भाऊ के परामर्श से उन सरदारों ने राणा से और भी रुपये अदा करने की माँग की। ये रकम राणा के न दे सकने पर राज्य की प्रजा से कठोर अत्याचारों के साथ वसूल की गयी। जो लोग रुपये न दे सके, उनको कैद किया गया और उनके साथ अमानुषिक अत्याचार किये गये।

सम्बत् १८५६ सन् १८०३ ईसवी में सोंधिया की सेना के द्वारा मेवाड़-राज्य में अकथनीय अत्याचार हुए। उन्हीं दिनों में सोंधिया के द्वारा लखवादादा का अपमान किया गया, जिससे शालुम्बा-दुर्ग में पहुँच कर उसकी मृत्यु हो गयी। लखवादादा के मर जाने के बाद उसके स्थान पर अम्बा जी का भाई बालाराव नियुक्त किया गया। शक्तावत लोगों ने बालाराव के साथ मेल कर लिया। सतीदास भी उससे मिल गया। इस मेल के परिणाम स्वरूप, चन्दावत लोगों पर अत्याचार आरम्भ हुए। वे राज्य के कार्यों से अलग किये गये। जालिम सिंह पहले से ही चन्दावतों को अपना शत्रु समझता था। इसलिए जब उन पर अत्याचार हुए तो वह बहुत प्रसन्न हुआ। जालिमसिंह भी इन विद्रोही लोगों से मिल गया और राणा का मन्त्री देवी चन्द कैद कर लिया गया। इसलिए कि चन्दवतों के द्वारा वह राणा का मन्त्री बना था।

मेवाड़-राज्य में चन्दावतों की जो जागीरें थीं, बालाराव इंगले ने उनको भयानक रूप से लूटा और उनमें रहने वालों पर भीषण अत्याचार किये। प्रजा के घरों पर आग लगा दी गयी। इसके बाद बालाराव अपनी सेना के साथ राणा के महल की तरफ चला और मन्त्री के सहकारी मौजीराम की उसने माँग की। राणा ने मौजीराम को देने से इनकार कर दिया। इस पर बालाराव ने अपने सैनिकों को राणा के महलों में प्रवेश करने का आदेश दिया।

उदयपुर के लोग बालाराव के इस अत्याचार को अब सहन न कर सके। इसी समय मौजीराम का आदेश पाकर वे सब अपने हाथों में तलवारें लेकर बालाराव के सैनिकों पर टूट पड़े। बहुत-से आदमी मारे गये। माना गणेश पंत, जमाल कर और ऊदाजी कुँवर कैद कर लिए गये। बालाराव इंगले ने छिपकर भागने की चेष्टा की। लेकिन वह भी पकड़ कर कैद कर लिया गया। मराठा सरदारों के कैद हो जाने पर चन्दावत लोग अपने स्थानों से निकले और वे पर्वत के ऊपर उस स्थान पर पहुँचे, जहाँ सोंधिया की सेना ने अपना शिविर बनाया था। चन्दावतों ने वहाँ की समस्त मराठा सम्पत्ति और सामग्री पर अधिकार कर लिया। हियर्से नामक एक अँग्रेज सेनापति मराठों की सहायता करने के लिए आया था। उसने उदयपुर में सोंधिया की सेना की यह दशा देखकर अपने वापस चले जाने का प्रबन्ध किया। वह तुरंत भयभीत होकर वहाँ से तेजी के साथ लौट गया।

बालाराव इंगले की गिरफ्तारी का समाचार जालिमसिंह को मिला। उसने बालाराव को कैद से छुड़ाने का निश्चय किया। भिण्डोर और लावा के सरदारों के साथ अपनी सेना को लेकर चैजाघाट नामक पहाड़ी रास्ते की तरफ वह आगे बढ़ा। यदि राणा ने कैद करके इस विद्रोही शत्रुओं को मारवा डाला होता तो उसका यह कार्य कभी किसी प्रकार अनुचित और अन्यायपूर्ण न होता। यह बात जरूर है कि उसके ऐसा करने से सम्पूर्ण मराठे उसके शत्रु बन जाते। परन्तु राणा को उससे कोई विशेष हानि न होती। जालिमसिंह की सेना के आने का समाचार पाकर राणा की तरफ से सिंधी, अरबी और गोसाई इत्यादि अनेक जातियों के आदमियों को लेकर और छै हजार सैनिकों की सेना बनाकर जयसिंह अपनी शक्तिशाली खीची सेना के साथ उससे युद्ध करने के लिये

रवाना हुआ। उसके साथ राणा और उसकी सेना भी थी। मेवाड़ की ये सेनायें चैंजाघाट के रास्ते पर पहुँच गयीं। वहां पर दोनों ओर से पाँच दिनों तक भयानक युद्ध हुआ। मराठों के लगातार गोले बरसाने पर भी राणा की सेना युद्ध में बराबर डटी रही। छठे दिन राणा की पराजय हुई और उसके बाद ही उसने बालाराव इंगले को कैद से छोड़ दिया। इस युद्ध के बदले में सम्पूर्ण जिहाजपुर का इलाका और उसका दुर्ग जालिमसिंह ने ले लिया। उसके बाद भी मराठों ने युद्ध का खर्च राणा से माँगा। इसके पहले ही मराठों ने मेवाड़ को लूट कर और समय-समय पर अगणित सम्पत्ति लेकर राणा को ऐसी दुरवस्था में पहुँचा दिया था कि इस समय जो रकम उससे माँगी गयी, उसकी अदायगी का कोई उपाय राणा के पास न था। इस दशा में वह रकम मेवाड़-निवासियों से बड़ी निर्दयता के साथ वसूल की गयी।

सन् १८६० और सन् १८०४ ईसवी में होलकर ने निराश हो कर दक्षिण छोड़ दिया। इन्दौर के युद्ध में पराजित होकर भागने पर होलकर ने भिण्डोर के सरदार से रुपये माँगे, जिससे भिण्डोर का सरदार अप्रसन्न हुआ और उसने उसको एक पैसा न दिया। इस समय होलकर ने भिण्डोर पर आक्रमण किया और उसके सरदार से उसने दो लाख रुपये वसूल किये। इसके बाद वह उदयपुर की तरफ रवाना हुआ। उसका समाचार पाते ही राणा घबरा उठा और संधि के लिए उसने अजितसिंह नाम के एक राजपूत को भेजा। अजितसिंह ने होलकर की सेना में पहुँचकर बात चीत की और संधि के नाम पर लालजी मराठा ने चालीस लाख रुपये माँगे। राणा ने इस इस माँग को सुना। उसके पास रुपये के नाम पर देने के लिए कुछ न था। लेकिन इनकार वह किस बल पर करता। अपनी विवश अवस्था में बिना कुछ सोचे-समझे उसने उस माँग को मंजूर कर लिया। इन रुपयों का प्रबन्ध कहाँ से किया जायगा, इस बात का निर्णय राणा स्वयं कुछ न कर सका। उसका खजाना खाली था। मराठों को रुपया देते-देते राज्य की प्रजा दीन और दरिद्र हो चुकी थी। इस दशा में इन चालीस लाख रुपयों का प्रबन्ध कहाँ से होगा, राणा की समझ में यह न आया। परन्तु इस रकम को बिना अदा किये किसी प्रकार छुटकारा न मिल सकता था, इसलिए उसने अपने मन्त्रियों, सरदारों और राज्य के अधिकारियों के साथ परामर्श किया। किसी भी दशा में राज्य के निवासियों से रुपये लेने का कार्य आरम्भ किया गया, राणा के पास जो कुछ रह गया था, उसे लेकर, रानियों के आभूषणों को बेच कर और प्रजा से मिले हुए रुपयों को मिलाकर बारह लाख रुपये जमा किये गये। परन्तु अभी बहुत बड़ी रकम बाकी थी। उसकी कोई व्यवस्था न हो सकी। इस लिए बारह लाख रुपये होलकर के पास पहुँचाये गये। बाकी रुपयों की अदायगी के लिए राज परिवार और नगर के प्रमुख कितने ही व्यक्ति होलकर के अधिकार में गिरवी किये और निश्चय हुआ कि जब तक बाकी रुपया अदा न हो जायगा गिरवी में रखे गये आदमी होलकर के कैम्प में बराबर मौजूद रहेंगे।

इसके बाद होलकर की मराठा सेना ने लावा और बिदलौर के दुर्गों पर आक्रमण करके, उनको अपने अधिकार में ले लिया और जब वहाँ के सरदारों ने होलकर की माँगी हुई रकम अदा की तो उनके दुर्ग छोड़ दिये गये।

होलकर की रुपये की भूख बराबर बढ़ती जा रही थी। उसकी सेना ने देवगढ़ के दुर्ग पर आक्रमण किया और वहाँ के सरदार से होलकर ने साढ़े चार लाख रुपये वसूल किये। इस तरह आठ महीने तक लगातार होलकर ने मेवाड़-राज्य के भिन्न-भिन्न इलाकों और उनके दुर्गों पर हमले करके अगणित रुपये वसूल किये। किसी एक स्थान पर आक्रमण करके और रुपये वसूल करके वह

तुरन्त किसी दूसरे राज्य पर आक्रमण करने का कार्यक्रम बना लेता था। उन दिनों में मेवाड़ के इन राज्यों की दशा बहुत दयनीय हो रही थी।

राणा जी पर होलकर के जो रुपये बाकी रह गये थे, उनके बदले में राणा के कितने ही प्रमुख व्यक्तियों के साथ अजितसिंह भी गिरवी में रखा गया था और उस रुपये को मेवाड़ में एकत्रित करने के लिए बलराम सेठ उदयपुर में रह गया था। राज्य से रुपये वसूल करने की कोई सूरत बाकी न रह गयी थी, फिर भी लोगों से रुपये लिए जाने का कार्य राज्य के अधिकारियों के द्वारा होता रहा।

होलकर अपनी सेना के साथ मेवाड़ के राज्यों को लूटकर शापुरा में पहुँचा। इसी समय सींधिया की सेना मेवाड़ पहुँच गयी। इन दिनों में अंग्रेजों की शक्तियाँ भारत में शक्तिशाली हो रही थीं। सींधिया और होलकर—दोनों को अंग्रेजों से भय उत्पन्न हुआ। इसी उद्देश्य से दोनों ने ने एक, दूसरे से मुलाकात की और इस बात को वे परामर्श करने लगे कि अंग्रेजों की इस बढ़ती हुई शक्ति का किस प्रकार सामना किया जाय।

इन्हीं दिनों में अंग्रेजी सेना से मराठा सेना को पराजित होना पड़ा। इसलिए सींधिया और होलकर को अँग्रेजों से अधिक भय उत्पन्न हो गया। दोनों ने आपस में परामर्श करके अंग्रेजों से लड़ने की तैयारी की। सन् १८०५ ईसवी के वर्षाकालीन दिनों में होलकर और सींधिया के सैनिक विदनौर के मैदानों में एकत्रित हुए और अंग्रेजी सेना को पराजित करने के लिये अनेक प्रकार के मंसूबे बाँधने लगे, इसमें कुछ दिन बीत गये।

राजस्थान के और विशेषकर मेवाड़ के राज्यों को लूटने के लिए होलकर और सींधिया ने अपनी सेनाओं को अत्यन्त विशाल बना रखा था। लूट की रकमों से सेनाओं के वेतन अदा किये जाते थे। इधर कुछ दिनों से उनकी लूट का काम बन्द हो गया और ये लुटेरे मराठे अंग्रेजों से चिन्तित हो उठे थे। एक तरफ वे लोग अंग्रेजों से लड़ने की तैयारी कर रहे थे, और दूसरी तरफ लूट की जो सम्पत्ति होलकर और सींधिया के पास थी; वह खर्च हो चुकी थी। इसलिए सैनिकों के वेतन बाकी पड़े थे। उनकी अदायगी न हो सकने की अवस्था में मराठा सैनिक अपने राजाओं से विद्रोह करने के लिए तैयार थे। सींधिया और होलकर ने अपने सैनिकों से केवल लूटमार का काम लिया था। इसलिए सैनिकों के आचरणों में अनुशासन का अभाव हो गया। वेतन न पाने की दशा में मराठा सैनिक निरंकुश हो गये। सींधिया और होलकर को फिर अपनी लूटमार की नीति अपनानी पड़ी। उनके झुण्ड के झुण्ड आस-पास के देहातों में जाते और भयानक अत्याचार करके वे लोग ग्रामीण लोगों से रुपये वसूल करते।

मराठों के ये अत्याचार अत्यन्त भयानक हो उठे। जिन लोगों के पास धन न होता, उनके मकानों में मराठा सैनिक आग लगा देते और उनसे भागने वालों का अपनी तलवारों से मार डालते। उनके इन अत्याचारों से मेवाड़ राज्य के गाँव और नगर श्मशान बन गये। मेवाड़ राज्य की यह दुरवस्था दस वर्ष तक बराबर चलती रही। भारत में अब तक अनेक अवसरों पर भीषण अत्याचार हुए थे, परन्तु मराठों के इन अत्याचारों के सामने वे सब इस देश के लोगों को भूल गये थे। × मराठों के उन अत्याचारों को रोकने के लिए उन दिनों में किसी राजपूत में शक्ति न रह गयी थी।

× भारत के राजाओं में जिन लोगों ने अंग्रेजों की सहायता की थी उनमें गोहुद, ग्वालियर राघोगढ़ और बहादुरगढ़ के राजा प्रमुख थे। भूपाल के नवाब ने भी अंग्रेजों की सहायता की थी।

अंग्रेजों के साथ युद्ध करने के लिए मराठा लोग अपनी सभी प्रकार की तैयारियों में लगे थे। उनको इस होने वाले युद्ध से सभी प्रकार की आशंकायें थीं। इसलिए मराठों ने अपनी संपत्ति सामाग्री और अपने परिवार के लोगों को मेवाड़ के दुर्गों में छिपाना शुरू किया। चन्दावतों का प्रधान सरदारसिंह सींधिया के सभा में राणा का प्रतिनिधि बनाया गया। अम्बाजी सींधिया का फिर से मंत्री बना। * आज से पहले मेवाड़ के राणा ने अम्बा जी के विरुद्ध लखवादादा की सहायता की थी। अम्बाजी इस बात को भूला न था। सींधिया का मंत्री पद पाने के बाद उसके हृदय में राणा के विरुद्ध द्वेश की आग प्रज्वलित हुई। उसने राणा से बदला लेने का निश्चय किया और मेवाड़-राज्य को कई भागों में विभाजित करके उन पर उसने मराठों का अधिकार कायम करा देने की चेष्टा की।

शक्तावत सरदार संग्रामसिंह ने जब अम्बाजी के इस कार्यक्रम को सुना तो उसने उसमें रुकावट डालने का निश्चय किया। इन दिनों में देश की राजनितिक स्थिति को देखकर मेवाड़ के प्रति होलकर के हृदय में सहानुभूति पैदा हो गयी थी। संग्रामसिंह ने अपने उस कार्य में होलकर से सहायता लेने का इरादा किया।

सींधिया की स्त्री बायजाबाई बड़ी समझदार और दूरंदेश थी। उसका विवाह राजपूतों के शत्रु सींधिया के साथ हुआ था। परन्तु वह राजपूतों के गौरव के साथ-साथ समय की गति को पहचानती थी। प्रसिद्ध शूरजीराव की वह लड़की थी। मेवाड़ के सम्बन्ध में अम्बाजी का इरादा और कार्यक्रम बायजाबाई को मालूम हुआ। उसने तुरन्त अम्बाजी का विरोध करने के लिए चिन्ता किया। वह मेवाड़-राज्य के सम्बन्ध में इस प्रकार की कूटनीति नहीं देखना चाहती थी। वह नहीं चाहती थी कि प्रसिद्ध मेवाड़-राज्य का इस प्रकार सर्वनाश किया जाय। इसके लिये उसने मेवाड़ की पारस्परिक फूट को दूर करने की कोशिश की। जो चन्दावत और शक्तावत सरदार बहुत पहले से एक, दूसरे के विरोधी चल रहे थे, वे एक, दूसरे से मिल गये और दोनों ही वंश के राजपूत सरदारों ने अम्बाजी की योजना को असफल बनाने की प्रतिज्ञा की।

चन्दावतों का प्रधान सरदारसिंह पहले से ही सींधिया के राज-दरबार में था। अम्बाजी का उद्देश्य जानकर उसने उनसे घृणा की और सींधिया का दरबार छोड़कर वह मेवाड़ के संगठन में आकर मिल गया और अम्बाजी को विफल बनाने के लिए जो तैयारी हो रही थी, उसमें उसने भाग लेना आरम्भ कर दिया।

चन्दावतों और शक्तावतों का मेल आज मेवाड़ के लिए एक बड़े भाग्य की बात थी। इन दोनों वंशों के राजपूत सरदारों की पारस्परिक शत्रुता के कारण प्रसिद्ध मेवाड़-राज्य का पतन हुआ था। राजस्थान में जो मेवाड़-राज्य किसी समय उन्नति के शिखर पर था, वही मेवाड़ आज विशाल राजस्थान में सब से अधिक पतित और गिरी अवस्था में था। इसके बहुत से कारणों में चन्दावतों और शक्तावतों की पारस्परिक शत्रुता भी एक प्रधान कारण थी। राज्य की अंतिम दुरवस्था के दिनों में वे दोनों वंश एक हो गये और उनके सरदार लोग पंचौली किशनदास के साथ होलकर से पूछा : "क्या आपने मेवाड़ के टुकड़े-टुकड़े करके बेचने का अधिकार अम्बा जी को दिया है ?"

इस प्रश्न को सुनकर सरदारों को उत्तर देते हुए होलकर ने गम्भीरता के साथ कहा : "नहीं

---

* अम्बाजी, बापू चितनवीस माधव हजूरिया और अन्ना जी भास्कर सींधिया के दिनों में मंत्री थे।

मैं ऐसा कभी न होने दूंगा। मैं आप सबके सामने शपथपूर्वक कहता हूँ कि मेवाड़ की यह दुरवस्था मैं कभी देख न सकूंगा। मैं आप सबको सलाह दूंगा कि इस संकट के समय एक होकर राज्य की रक्षा का उपाय करें।"

होलकर के मुख से इस प्रकार की बात को सुनकर मेवाड़ के सरदारों को बहुत संतोष मिला। होलकर ने इतना ही नहीं कहा, बल्कि मेवाड़ के इन सरदारों को लेकर वह सींधिया के पास गया और राणा की प्रशंसा करते हुए उसने सींधिया से कहा : "राणा ने राजस्थान के एक श्रेष्ठ वंश में जन्म लिया है। यहाँ के सभी राजपूत राणा को सम्मान देते हैं। इस दशा में राणा के साथ शत्रुता रखना हम लोगों का कर्त्तव्य नहीं है। मेवाड़ राज्य की आज जो अधोगति है, क्या उसमें हम लोगों का कुछ कर्त्तव्य नहीं है? उस राज्य की भूमि का भोग बहुत समय से हमारे पूर्वज करते चले आ रहे हैं। मुनासिब तो यही था कि इस संकट के समय हम सब लोग उस राज्य की सम्पूर्ण बंधक भूमि को लौटा देते। इस कर्त्तव्य पालन के समय क्या यह उचित है कि हम सब के देखते-देखते उस राज्य को बहुत से टुकड़ों में बाँट दिया जाय? यदि ऐसा है तो हम लोगों को लज्जा मालूम होना चाहिए। ऐसे अवसर पर मैं साफ यह कह देना चाहता हूँ कि आपकी जो तबीयत हो, करें। परन्तु मैं तो शपथ खा चुका हूँ कि राणा के पक्ष को छोड़कर मैं कभी दूसरे पक्ष में न जाऊँगा। इस विषय में मैं इतना ही कहना चाहता हूँ कि मेवाड़ के इन संकट के दिनों में मैंने नीमबहेड़ा नामक अधिकार किया हुआ इलाका राणा को दे दिया है। ऐसा करके मैंने अपने कर्त्तव्य का पालन किया है।"

होलकर अपनी इन बातों को कहकर चुप हो गया। सींधिया चुपचाप सुनता रहा। उसने कुछ कहा नहीं। सींधिया होलकर की कही हुई बातों को अभी सोच रहा था, उसी समय होलकर ने फिर कहा : "आप इस समय की परिस्थितियों पर ध्यान दें। यदि आज राणा हम लोगों का साथ छोड़कर अलग हो जाँय तो हम लोगों के सामने कितना बड़ा संकट पैदा हो सकता है। अंग्रेजों के साथ जो युद्ध होने को है, उसके किसी प्रकार दिन कट रहे हैं। यदि लड़ाई शुरू होती है तो हम लोग अपनी सम्पत्ति और परिवार के लोगो को कहाँ रखेंगे? इस सङ्कट के समय राणा के दुर्ग ही हमारे लिए सुरक्षित हो सकते हैं। राणा के साथ शत्रुता पैदा करके हम किस प्रकार उन दुर्गों का लाभ उठा सकते हैं। इस समय हमें यह न भूलना चाहिए कि राणा की शत्रुता हमारी बिपदाओं को पहाड़ बना देगी।

होलकर की लगातार बातों को सुनकर सींधिया के मन की आशंकायें दूर हो गयीं और वर्तमान परिस्थितियों का अनुमान लगाकर वह एक बार प्रसन्न हो उठा। होलकर के शब्दों ने सींधिया को प्रभावित किया और सींधिया ने मेवाड़ के दूतों को बुलकार अपने यहाँ सम्मानपूर्ण स्थान दिया।

सींधिया और होलकर के कैम्पों में दस कोस का फासला था। इन्हीं दिनों में वहाँ पर कई दिनों तक भीषण वर्षा हुई। इसलिए आने जाने के रास्ते कुछ समय के लिए बंद हो गये। इसी वर्षा के दिनों में होलकर किसी समय में अपने कैम्प में बैठा था। एक कर्मचारी ने आकर उसके हाथ में एक समाचार-पत्र दिया। होलकर ने तुरन्त तत्परता के साथ उसे पढ़ा और फिर गम्भीर होकर उसने अपने कर्मचारियों से कहा : "राणा के दूतों को अभी बुलाकर मेरे पास ले आओ।" होलकर के अचानक आवेश में आ जाने का कारण यह था कि समाचार-पत्र से उसे मालूम हुआ कि राणा का भैरव बक्श नामक एक दूत मराठों को मेवाड़ से निकालने के सम्बन्ध में अंग्रेजों के

लार्ड लेक के साथ टोंक में परामर्श कर रहा था। इस को पढ़ते ही वह क्रोध में आ गया।

किशन दास और मेवाड़ के दूसरे दूतों ने आकर होलकर के कैम्पों में प्रवेश किया। होलकर का क्रोध अभी तक ज्यों का त्यों था। उसने उस-पत्र को किशन दास की तरफ फेंक कर कहा : "मेवाड़ वालों का हमारे साथ क्या यह विश्वासघात नहीं है ? तुम्हारे राणा के लिए मैंने सब कुछ छोड़ा है, सींधिया के भय की कुछ परवा न की है। अँगरेजों के साथ युद्ध करने के लिए जो तैयारियाँ हो रही हैं, उनमें समस्त हिन्दू-जाति को संगठित हो जाना चाहिए। ऐसे समय में सबसे अलग होकर तुम्हारे राणा ने अँगरेजों के साथ संधि करने का निर्णय किया है ? किसी समय राणा ने कहा था कि हम दिल्ली की अधीनता स्वीकार नहीं कर सकते। राणा का वह स्वाभिमान आज कहाँ है ?"

इस समय पंचोली किशनदास ने शांत होने के लिए होलकर को संकेत किया। परन्तु अलीकूर तातिया नामक मंत्री ने अपने स्वामी होलकर से कहा : "महाराज, आपने इन राजपूतों का व्यवहार अपने नेत्रों से देखा। ये लोग सींधिया के साथ आपको लड़ाना चाहते हैं। इसलिए आपको इन राजपूतों का समर्थन छोड़ कर सींधिया से मिल जाना चाहिए और शूरजी राव के स्थान पर अम्बाजी को मेवाड़ का सूबेदार बनाना चाहिए। यदि आप ऐसा न करेंगे तो मैं सींधिया के यहाँ जाकर मालवा चला जाऊंगा।"

अलीकूर तातिया की बातें भाऊ भास्कर को छोड़ कर वहाँ पर उपस्थित सभी लोगों ने पसन्द कीं। होलकर को भी उसका परामर्श मानना पड़ा। उसने शूरजी राव को मेवाड़ की सूबेदारी से बरखास्त कर दिया और अँगरेजी सेना के साथ युद्ध करने के लिए वह उत्तर की तरफ रवाना हुआ। वहाँ पर अँगरेजी सेना के साथ लड़कर वह पराजित हुआ और पंजाब तक अँगरेजों ने उसका पीछा किया। अन्त में होलकर को लार्ड लेक के साथ संधि करनी पड़ी।

अँगरेजों के साथ राणा का सम्पर्क और व्यवहार मालूम करके होलकर बहुत अप्रसन्न हुआ। लेकिन इस समय उसने मेवाड़ के विरुद्ध कोई कार्य नहीं किया। मेवाड़ छोड़ने के समय उसने सींधिया से कहा था : "अम्बा जी द्वारा मेवाड़-राज्य की कोई हानि न होगी, इसकी मैंने प्रतिज्ञा की है। इसलिए ऐसा कोई कार्य न हो, जो मेरी प्रतिज्ञा के विरुद्ध समझा जाय और यदि हुआ तो उसका उत्तरदायित्व आपके ऊपर होगा।"

होलकर की कही हुई बातों का प्रभाव सींधिया पर रहा। लेकिन होलकर के संकटों में पड़ते ही सींधिया ने उसकी कही हुई बातों की परवा न की और मेवाड़ से सोलह लाख रुपये वसूल करने के लिए उसे सदा शिवराव को रवाना करना पड़ा। सींधिया ने उसके साथ एक मजबूत और विश्वस्त सेना भी भेजी। सन् १८०६ ईसवी के जून में वह सेना मेवाड़ की तरफ आगे बढ़ी। सदाशिव राव को दो काम सौंपे गये। पहला कार्य यह था कि जैसे भी हो सके, मेवाड़ से सोलह लाख रुपये वसूल किये जाँय और दूसरा कार्य वह था कि उदयपुर से जयपुर की सेना हटा दी जाय। राणा की बेटी कृष्णकुमारी से साथ जयपुर के राजा का विवाह होना निश्चित हुआ था और इसीलिए जयपुर की सेना इन दिनों में उदयपुर गयी थी।

कृष्णकुमारी अपनी सुन्दरता और योग्यता के लिए राजस्थान में प्रसिद्ध हो रही थी। उसके पिता राणा ने उसका विवाह जयपुर के राजा के साथ तय किया था। उसके बाद नरवर के राजा मानसिंह ने कृष्णकुमारी के साथ विवाह करने का इरादा किया। जयपुर के राजा जगतसिंह के साथ कृष्णकुमारी का विवाह न हो सके, इसके लिए राजा मानसिंह ने अपनी तीन हजार सैनिकों की सेना उदयपुर भेज दी।

जयपुर की सेना उदयपुर में पहले ही आ चुकी थी। कृष्णकुमारी का विवाह जगतसिंह के साथ रोकने के लिए मानसिंह ने झूठी बातों का प्रचार करना आरम्भ किया। सोंधिया ने मारवाड़ के राजा मानसिंह का पक्ष लिया और इसके लिए उसने सदाशिव राव को आदेश दिया था कि उदयपुर की सेना निकाल दी जाय। सोंधिया ने राणा को एक धमकी भी दी थी और उसके लिए संदेश भेजा था कि यदि वह मेरी बातों को न मानेगा और अपनी लड़की का विवाह जयपुर के राजा के साथ करेगा तो मैं किसी प्रकार उस विवाह को होने न दूँगा।

कृष्णकुमारी का विवाह जगतसिंह के साथ न हो, इसके लिए विरोधियों की तरफ से अनेक प्रकार के उपाय किये गये। राजा मानसिंह ने चन्दावत लोगों को मिलाकर अपने पक्ष में कर लिया था और उनके सरदार अजितसिंह को रिश्वत दी थी। जयपुर के राजा जगतसिंह के साथ सोंधिया की अप्रसन्नता का कारण था। कुछ समय पहले सोंधिया ने जगतसिंह से रुपये मांगे थे और जगतसिंह ने रुपये देने से साफ-साफ इनकार कर दिया था। इस अप्रसन्नता के कारण सोंधिया ने मानसिंह का पक्ष समर्थन करके कृष्णकुमारी के विवाह में जगतसिंह का विरोध किया और अपनी आठ हजार सेना को लेकर वह उदयपुर पहुँच गया। नगर से कुछ दूरी पर उसने अपने डेरे डाले।

राणा भीमसिंह के सामने इस समय भयानक संकट था। उदयपुर से जयपुर की सेना को वापस भेज देने के सिवा अब उसके सामने और कोई उपाय न था। उसने यही किया। जयपुर की आयी हुई सेना उदयपुर से चली गयी। राजा जगतसिंह ने सेना के लौट आने पर अपना अपमान अनुभव किया और राणा से इसका बदला लेने के लिए उसने अपनी सेना के साथ मेवाड़ पर आक्रमण किया। राजा जगतसिंह के साथ उस समय जितनी बड़ी सेना थी, उतनी जयपुर में कदाचित कभी न रही थी।

राजा जगतसिंह की सेना के आक्रमण का समाचार सुन कर राजा मानसिंह उससे युद्ध करने को तैयार हुआ और अपनी सेना लेकर वह मेवाड़ की तरफ चल पड़ा। परन्तु इसी समय उसके राज्य मारवाड़ में कुछ घरेलू झगड़े पैदा हो गये, जिनसे मानसिंह बड़ी मजबूरी में पड़ गया। इस प्रकार के विवाद और घरेलू झगड़े मारवाड़ में बहुत पहले से चल रहे थे। वहाँ के इन भीतरी झगड़ों के कारण मारवाड़ की युद्ध सम्बन्धी योग्यता निर्बल पड़ गयी थी। मानसिंह युद्ध के लिए रवाना हो गया था। उसके चले जाने पर विरोधी सरदारों ने अपने साथ के एक सरदार को कल्पित राजा बनाया और एक सेना का संगठन करके वे लोग मानसिंह के शत्रुओं से मिल जाने को रवाना हुए। जयपुर के राजा जगतसिंह ने एक लाख बीस हजार सैनिकों की सेना लेकर चढ़ाई की थी। मानसिंह के पास जो सेना थी, वह लगभग इसकी आधी थी। पुरुवतसर नामक स्थान पर जयपुर और मारवाड़ की सेनाओं का मुकाबिला हुआ। युद्ध आरम्भ होने के कुछ समय बाद मानसिंह की सेना के बहुत से सैनिक और सरदार मारवाड़ के कल्पित राजा की तरफ चले गये। राजा मानसिंह की शक्तियाँ इस समय युद्ध में बहुत क्षीण पड़ गयीं। वह युद्ध में अलग जाकर खड़ा हो गया। उस समय शत्रुओं के आक्रमण करने पर उसके सामन्तों और सरदारों ने उसकी रक्षा की। वहाँ से हटकर शत्रु-सेना ने जोधपुर को घेर लिया। वहाँ पर छै महीने तक युद्ध हुआ। अंत में जोधपुर शत्रुओं के अधिकार में चला गया और वहाँ पर लूट आरम्भ हुई। इन शत्रुओं में मारवाड़ के जो विरोधी सरदार अपनी सेना के साथ आकर मिल गये थे, वह जोधपुर की यह अवस्था देख न सके। यहाँ पर कछवाहों और राठौरों का प्रश्न पैदा हो गया। जयपुर के लोग कछवाहा राजपूत थे और मारवाड़ के राठौर थे। इस प्रश्न ने जयपुर की सेना से कल्पित राजा के सरदारों और सैनिकों को अलग कर दिया और अब इन दोनों सेनाओं में मारकाट आरम्भ हो गयी।

जोधपुर में जो सम्पत्ति और सामग्री लूटी गयी थी, जगतसिंह ने सब की सब जयपुर भेज दी थी। मारवाड़ की विद्रोही सेना इस बात को सहन न कर सकी और उसने रास्ते में ही आक्रमण करके उस सम्पत्ति और सामग्री को लूट लिया। इस विद्रोही सेना के साथ मारकाट में जयपुर के बहुत-से सैनिक मारे गये और जगतसिंह स्वयं युद्ध से भाग गया।

जगतसिंह युद्ध से भागकर जयपुर चला गया। मेवाड़ पर चढ़ाई करने के लिए उसने बहुत से सैनिकों की भरती की थी। वे युद्ध में काम न आ सके। उसकी पराजय का यही कारण हुआ। जयपुर पहुँच कर वह भयानक संकट में पड़ गया। जिन अगणित जनों को उसने अपनी सेना में भरती किया था, उनके वेतन वह न दे सका और इसका परिणाम उसके लिए भयानक हो उठा। मारवाड़ में मानसिंह के विरुद्ध जो विद्रोही पैदा हो गये थे, वे अब कमजोर पड़ने लगे।

अमीर खाँ शुरू में मानसिंह के शत्रुओं के साथ था। उसके बाद वह राजा मानसिंह से मिल गया और मारवाड़ के कल्पित राजा का विनाश करके वह मानसिंह को प्रसन्न करने की चेष्टा करने लगा। अमीर खाँ न केवल राजनीतिज्ञ था, बल्कि वह धूर्त और कूटनीतिज्ञ था। वह जिसको मिटाना चाहता था, उसके साथ वह अपने हृदय का गहरा स्नेह प्रकट करता था। अपनी इसी आदत के अनुसार अमीर खाँ ने उस कल्पित राजा के साथ व्यवहार आरम्भ किया। एक मसजिद में दोनों ने बैठकर मित्रता की गाँठ बाँधी। मानसिंह का विद्रोही—मारवाड़ का वह कल्पित राजा अमीर खाँ की चालों को समझ न सका। उसकी मित्रता को पाकर वह बहुत प्रसन्न हो उठा। और अपने यहाँ उसने नाच और गाना शुरू कराके अपने सुख सौभाग्य का अनुभव करने लगा। इसी अवसर पर, जब वह कल्पित राजा अपने यहाँ नाच-गाने में मस्त हो रहा था। अमीर खाँ ने उस पर आक्रमण किया और बड़ी निर्दयता के साथ उसने उन सब का संहार किया। उस कल्पित राजा के मिट जाने से मारवाड़ में मानसिंह के जो विरोध हो रहे थे, सब समाप्त हो गये।

राणा की लड़की कृष्ण कुमारी ने सोलहवें वर्ष में प्रवेश किया। वह अत्यन्त रूपवती, गुणवती, स्वस्थ और सुशील थी। उसकी प्रशंसा दूर-दूर तक फैल रही थी। उसके मन और शरीर की यह अच्छाइयाँ उसके लिए दुर्भाग्य बन गयीं। इस प्रकार की घटनायें और भी कभी-कभी संसार के सामने आयी हैं। रोम की प्रसिद्ध वर्जीनिया को भी अपनी सुन्दरता और श्रेष्टता के कारण प्राण देने पड़े थे ÷ और यूनान की महान सुन्दरी इफीजीनिया को अपने अटूट रूप और सौन्दर्य के कारण प्राणों का उत्सर्ग करना पड़ा था। ×

अमीर खाँ ने अपने विश्वासघात के द्वारा मारवाड़ के कल्पित राठौर राजा का संहार किया। उसके बाद वह उदयपुर आया। राणा के दरबार में बड़े सम्मान के साथ वह लिया गया। समय पाकर अजितसिंह ने कृष्णकुमारी के विवाह के सम्बन्ध में उससे परामर्श किया। अमीर खाँ ने

÷ वर्जीनिया रोम के विख्यात व्यूसियस वर्जीनियस की लड़की थी। एपियस क्लडियस नाम के एक चरित्रहीन व्यक्ति ने वर्जीनिया को उसको माता-पिता से बलपूर्वक छीन कर ले जाने की कोशिश की थी। उसका पिता जब अपनी लड़की की रक्षा करने में असमर्थ हुआ तो उसने अपने हाथों से उसको मारकर उस नराधम से उसकी रक्षा की थी। यह घटना ईसा से ४४६ वर्ष पहले हुई थी।

× इफीजीनिया यूनान के एगेमेनन की लड़की थी। आलिस नाम के टापू में यूनान वालों का जब जंगी जहाज रुक गया गया तो डियाना देवी को प्रसन्न करने के लिए एगेमेनन ने उस देवी के सामने अपनी बेटी को मार कर बलिदान किया था। यूनान के पुराने ग्रन्थों से कुछ मतभेद के साथ इस घटना का समर्थन मिलता है।

अजितसिंह को साफ-साफ बताया कि राणा को अपनी लड़की कृष्ण कुमारी का विवाह मानसिंह के साथ करना पड़ेगा और यदि वह ऐसा नहीं करता तो कृष्ण कुमारी को अपने प्राणों का अन्त करना पड़ेगा।

अजितसिंह और अमीर खाँ का परामर्श राणा भीमसिंह ने भी सुना। उसका हृदय काँप उठा। उसकी समझ में न आया कि इस संकट के समय किस उपाय का आश्रय लिया जा सकता है। वह मानसिंह के साथ अपनी बेटी का ब्याह करने के लिए किसी भी दशा में तैयार न था और न वह अपनी प्यारी-दुलारी लड़की के प्राणों का नाश ही अपने नेत्रों से देखना चाहता था।

राणा भीम के सामने भयानक संकट था। उसने अपने जीवन में बड़े-से-बड़े संकट देखे थे। लेकिन इस समय उन सब को वह भूल गया था। इस समय क्या करना चाहिये, यह उसकी समझ में न आया। राणा इस बात को समझता था कि अमीर खाँ की बातों में सत्य है। और यदि वैसा न किया गया तो मेवाड़ में भयानक से भयानक दृश्य उपस्थित होंगे। इस समस्या को लेकर राणा ने अपने महल में बैठकर सरदारों और परिवार वालों के साथ कई बार परामर्श किया। परन्तु किसी रास्ते का निर्णय न हुआ। बहुत सोचने और समझने के बाद अन्त में जो तय हुआ, उसमें राणा ने इस बात को स्वीकार किया कि यह कार्य किसी स्त्री के द्वारा ही होना चाहिए इसको मान लेने के बाद भी किसी की समझ में यह न आया कि एक स्त्री इस कठोर कार्य में कहाँ तक सफल हो सकती है।

बहुत सोचने-विचारने के बाद निश्चय हुआ कि राणा के परिवार के दौलत सिंह से इस संकट के समय सहायता ली जाय। उस परामर्श के समय दौलतसिंह राणा के पास बैठा था। सीसोदिया वंश का सम्मान सुरक्षित रखने के लिए जिस कठोर कार्य का निर्णय हुआ, उसका उत्तर-दायित्व दौलतसिंह पर रखा गया। लेकिन उस कार्य के सम्हालने में दौलतसिंह ने कांपते हुए स्वर में असमर्थता प्रकट की। उसके नेत्रों से आँसू बह उठे। उसने इनकार करते हुए कहा : "मेरी तलवार कृष्ण कुमारी के प्राणों का संहार न कर सकेगी। मैं अपने वंश और देश के प्रति इस प्रकार लज्जा-पूर्ण कार्य नहीं कर सकता।"

दौलतसिंह के इनकार करने पर यह कार्य जवानदास को सौंपा गया। जवानदास भीमसिंह के स्वर्गीय पिता की उपपत्नी से उत्पन्न हुआ था। उसके बुलाए जाने पर उसने इस कार्य को स्वीकार कर लिया। लेकिन जिस समय कृष्णकुमारी वहाँ पर बुलाई गयी, उसको सामने देखकर जवानदास की आँखें नीची हो गयी और उसकी तलवार हाथ से फिसल गयी। खिले हुए फूल के समान कृष्ण कुमारी के मुखमण्डल को देखकर वह काँप उठा और बिना कुछ कहे हुए वह उस स्थान से चुपके चला गया। कृष्णकुमारी को यह रहस्य कुछ मालूम न था। लेकिन अब वह किसी से छिपा न रह सका। राजमहल में सभी को राणा का निर्णय मालूम हो गया। कृष्ण की माता ने उसके प्राणों को बचाने का प्रयास किया। परंतु उसको सफलता न मिली। वह निराश हो गयी।

पूर्व निर्णय के अनुसार, एक स्त्री ने विष तैयार करके राणा के नाम से राजकुमारी कृष्णा को दिया। सब-कुछ जानते और समझते हुए भी कुमारी कृष्णा ने विष का प्याला अपने हाथ में ले लिया। उसके चेहरे पर किसी प्रकार का कोई परिवर्तन न हुआ और सहज स्वभाव से वह प्याले को अपने मुख में लगा कर विष को पी गयी। उसकी माँ वहीं पर खड़ी होकर यह सब देख रही थी। उसके नेत्रों में आँसू देखकर राजकुमारी ने कहा : "मा, तुम क्यों रंज करती हो। मुझे मृत्यु से कोई भय नहीं है। भय क्यों हो ? क्या मैं तुम्हारी बेटी नहीं हूँ ? राजपूत वंश में जन्म ले कर मृत्यु

का भय करना कैसा ? हम सब का जन्म ही बलिदान होने के लिए होता है, फिर उसका भय क्यों हो ? मैं अब तक जीती रही, क्या यह कम आश्चर्य की बात है ?"

इसी समय बिष का दूसरा प्याला तैयार किया गया। राजकुमारी ने उसे लेकर बिना किसी भय के उसको पी डाला और प्याला खाली कर दिया। प्याला हाथ में लेते हुए उसके शरीर का एक भी रोम कांपा नहीं। उसके मुख पर किसी प्रकार की घबराहट पैदा नहीं हुई।

राजकुमारी के आस पास एक अपूर्व दृश्य था। दो बार विष का प्याला कुमारी कृष्णा पर असफल हो चुका था। तीसरी बार उस विष को अधिक भयानक बनाया गया और अफीम के साथ कुसुम्बे को मिलाकर विष तैयार किया गया। जिस समय वह प्याला में भरा जा रहा था, राज कुमारी समझ गयी, यह मेरे जीवन का अन्तिम प्याला है। प्याला सामने आते ही मधुर मुस्कान के के साथ उसने अपने हाथ में उसे ले लिया और अपने आस पास के दृश्य पर एक बार दृष्टिपात करते हुए—मानो वह संसार से बिदा हो रही थी—प्याले को उसने मुख में लगाया और पीकर उसने फिर किसी की तरफ नहीं देखा। राजकुमारी लेट गयी और सदा के लिए सो कर वह संसार से बिदा हो गयी !

कुमारी कृष्णा की इस प्रकार की मृत्यु के बाद उसकी माता अधिक दिनों तक जीवित नहीं रही। अपनी बेटी के शोक में उसने भोजन छोड़ दिया और उन सभी बातों का परित्याग कर दिया, जो मनुष्य को जिन्दा रखती हैं। इस दशा में कुछ ही दिनों के बाद उसकी भी मृत्यु हो गयी।

अमीर खाँ ने जिस समय अजितसिंह से यह समाचार सुना, उसने उसको बहुत धिक्कारा और कहा: "क्या यह कार्य शूरवीर राजपूतों के योग्य था ? सीसोदिया वंश में इस प्रकार का लज्जापूर्ण कार्य कभी नहीं हुआ था। इस समाचार को मुझसे कहते हुए तुमको लज्जा नहीं मालूम हुई ?"

राजकुमारी की मृत्यु के चार दिन बाद शक्तावत संग्रामसिंह राजधानी में आया। वह अजितसिंह का विरोधी था। संग्रामसिंह स्वभाव से ही बहादुर और स्वाभिमानी था। उसको न तो अपने राजा का भय था और न शत्रुओं की तलवारों का। निर्भीकता के साथ वह उस स्थान पर पहुँचा, जहाँ पर अजितसिंह बैठा हुआ था। उसको देखते ही आवेश में आकर उसने कहा : "नीच सीसोदिया वंश को कलंकित किसने किया ? राजस्थान के जिस वंश ने अपनी पवित्रता को बनाये रखने के लिए भयानक संकटों का सामना करते हुए सैकड़ों वर्ष बिताये थे, उसके माथे पर यह कलंक का टीका किसने लगाया ? राजकुमारी का वध करके आज इस वंश ने जो अपराध किया है, उसके जीवन से इसको कभी मिटाया नहीं जा सकता। अपनी इस कायरता के कारण यह वंश भविष्य में कभी भी अपना मस्तक ऊँचा न कर सकेगा ! यह ऐसा पाप हुआ है, जिसकी समानता के लिए दूसरा कोई उदाहरण नहीं दिया जा सकता। इस वंश के मिटने का समय अब समीप आ गया है ! बप्पा रावल के वंश की सम्पूर्ण कीर्ति इस पाप के साथ-साथ मिट चुकी है ! यह अपराध इस वंश के सर्वनाश का सूचक है !" क्रोध के आवेश में जिस समय संग्रामसिंह इस प्रकार की बातें कह रहा था, राणा अपने दोनों हाथों की हथेलियाँ मुख पर रखे हुए चुपचाप सुन रहा था। संग्रामसिंह ने फिर कहा : "नराधम, तेरा यह कार्य सीसोदिया वंश के माथे पर अमिट कलंक है ! इसने सम्पूर्ण राजपूत जाति का मस्तक संसार के सामने नीचा कर दिया है। नीच, तू निस्सन्तान रह कर मरेगा और तेरा नाम तेरी मृत्यु के साथ-साथ मिट जायगा। क्या सोचकर तूने राणा से यह अधर्म कराया किस भय ने ऐसा करने के लिए तुझे विवश किया था ? जिस शत्रु का भय था, उसका आक्रमण होने क्यों नहीं दिया ? अच्छा होता, यदि इस प्रकार के किसी आक्रमण से इस वंश के एक-एक

बच्चे का सर्वनाश हुआ होता और इतिहास के पन्नों में हमारे पूर्वज बप्पा रावल का नाम अमिट अक्षरों में लिखा जाता ! तूने इस वंश के लोगों को राजपूतों की मौत मरने क्यों नहीं दिया—उस प्रकार, जैसे हमारे पूर्वज अब तक मरे हैं ? उन सबने संकटों का सामना करके और अपने प्राणों का बलिदान देकर अपनी श्रेष्ठता और कीर्ति को अमर बनाया था। जीवन की यह अटूट कीर्ति उनको ऐसे ही न मिल गयी थी। हमारे पूर्वजों ने कभी किसी शक्तिशाली के सामने अपना मस्तक नीचा नहीं किया था ! संसार की शक्तियाँ एक तरफ थीं और सीसोदिया वंश की शक्ति दूसरी तरफ थी ! इस वंश ने बड़ी-से-बड़ी शक्तियों के साथ युद्ध किया था और शत्रुओं का संहार करते हुए अपने प्राणों को उत्सर्ग किया था। चित्तौर की कीर्ति को तू भूल गया है ! मैं किस को सम्बोधन करके ये बातें कह रहा हूँ ! एक राजपूत को ?—नहीं, उसको जो राजपूत जाति का कलंक है। यदि हमारी बहू-बेटियों और बहनों पर कोई विपत्ति आयी थी तो अपने हाथ में तलवार लेकर तूने शत्रु का सामना क्यों न किया था ? यदि तूने ऐसा किया होता तो तेरा नाम भविष्य में प्रसिद्ध होता और तेरी इस बहादुरी से बप्पा रावल को स्वर्ग में सुख प्राप्त होता ! परन्तु तूने कुछ न किया और जो कुछ किया, उसके द्वारा इस वंश की सम्पूर्ण योग्यता और श्रेष्ठता को मिटा कर तूने सदा के लिए इस वंश को निर्लज्ज बना दिया। आज संसार क्या कहेगा ! यही न कि दुष्टों और दुराचारियों के भय से बप्पा रावल के वंशज राणा भीमसिंह ने अपनी युवती राजकुमारी को विष देकर अपनी कायरता का परिचय दिया ! तूने आने वाली विपत्ति कि प्रतीक्षा न की ! तेरे भय ने तेरे जीवन के समस्त गुणों का नाश कर दिया ! तेरी बुद्धि नष्ट हो गयी है और इसीलिए तूने यह घृणित काय किया ! हमारे वंश के सर्वनाश का समय अब निकट आ गया है।"

विश्वासघातक अजितसिंह संग्रामसिंह की बातों को चुपचाप सुनता रहा। उसने किसी बात का उत्तर न दिया। लड़के और लड़कियाँ—सब मिलाकर राणा के पंचानबे संतानें हुई थीं। लेकिन एक पुत्र को छोड़कर—जो कृष्णा कुमारी का भाई था—सब की मृत्यु हो गयी थी। उसकी दो लड़कियों के अभी कुछ दिन पूर्व विवाह हुए थे। एक जैसलमेर में और दूसरी बीकानेर के राजा को ब्याही गयी थी। उनसे जो लड़के पैदा हुए वे राजस्थान की प्रणाली के अनुसार नाना के सिंहासन के अधिकारी न हो सके।

संग्रामसिंह ने अजितसिंह को शाप दिया था, वह पूरा हुआ। राजकुमारी की मृत्यु के बाद एक महीना भी नहीं बीता था, उसकी स्त्री की मृत्यु हो गयी और दो पुत्रों की भी मृत्यु हुई। इस विनाश से अजितसिंह का जीवन सूना हो गया। संसार में उसे अब अन्धकार दिखायी दे रहा था। जिन्दगी-भर के पापों का फल उसको बुढ़ापे में मिला। उसने सम्पूर्ण जीवन में जो अपराध किये थे, वे सब उसके सामने आये। अब बुढ़ापे में उसको वैराग्य सूझा। भगवान का भक्त बनकर उसने अपने पापों का प्रायश्चित करना आरम्भ किया।

अमीर खाँ जन्म से ही धूर्त और विश्वासघाती था। वह होलकर का सामन्त था। वह किसी का साथी न था। जिससे उसका स्वार्थ-साधन होता, उसी से वह मिल जाता था। अपने स्वार्थों के ही कारण होलकर को छोड़कर वह अँगरेजों से मिल गया था और इसके लिए उसने अँगरेजों से सिरौज, टोंक, रामपुरा और नीमबहेड़ा आदि अनेक स्थान पाये थे।

सन् १८०६ ईसवी के बसंत ऋतु में अँगरेजों का दूत मेवाड़ में आया। सम्पूर्ण मेवाड़-राज्य उजड़ चुका था। उसके शूरवीर मारे जा चुके थे, उसकी समस्त सम्पत्ति लूटी जा चुकी थी और अच्छे-अच्छे मकानों तथा महलों के स्थानों पर खँडहर दिखायी देते थे। सम्पूर्ण राज्य जंगल हो गया था। राज्य का व्यवसाय और वाणिज्य मिट गया था। कृषक दरिद्र हो गये थे। मराठा सेनाओं ने

राज्य को लूट कर सभी प्रकार बरबाद कर दिया था। जिस अम्बा जी ने निर्दयता के साथ मेवाड़ का विनाश किया था, उसको उसके पापों का बदला खूब मिला। अभिमान में आकर उसने अपने राजा सींधिया को धोखा देकर ग्वालियर में अपनी स्वतंत्रता का झण्डा खड़ा किया। सींधिया ने उसके अपराधों की सजा उसको दी। उसने उसके हाथों-पावों की उँगलियाँ जलवा दी और उसका समस्त धन छीन लिया। अम्बा जी ने तलवार मार कर आत्महत्या करने की चेष्टा की। अम्बा जी के खजाने से सींधिया ने पचपन लाख रुपये निकाल कर अपने अधिकार में कर लिए। इसके बाद अम्बा जी फिर मेवाड़ में सींधिया की तरफ से सूबेदार बनाकर भेजा गया। परन्तु थोड़े दिनों में उसकी मृत्यु हो गयी। उसके मरने पर उसकी समस्त सम्पत्ति पर उसके मित्र जालिमसिंह ने अपना अधिकार कर लिया।

राणा के मन्त्री सतीदास ने सत्तर हजार रुपये देकर यशवंतराव भाऊ से कमलमीर का दुर्ग ले लिया। सन् १८०६ ईसवी में अमीर खाँ ने अपनी सेना के साथ मेवाड़ पर आक्रमण किया और राणा से ग्यारह लाख रुपये माँगे। राणा की अवस्था इस रकम को दे सकने के योग्य न थी। फिर भी विवश अवस्था में उसने नौ लाख रुपये देना मंजूर किया। परन्तु वह दे न सका। इसलिए अमीर खाँ ने राज्य में भयानक अत्याचार शुरू किये और उन अत्याचारों में राणा का मन्त्री किशनदास घायल हुआ। ×

सम्वत् १८६७ सन् १८११ ईसवी में बापू सींधिया ने सूबेदार बनकर मेवाड़ में प्रवेश किया। उसके साथ उसकी एक सेना थी। अमीर खाँ की सेना उस समय मेवाड़ में लूट मार कर रही थी। मेवाड़ को अब दोनों सेनाओं ने लूटना शुरू किया। इन लुटेरों को वहाँ पर कोई रोकने वाला न था। राज्य की प्रजा के सामने इन दिनों में जो भयानक कष्ट थे, वे लिखे नहीं जा सकते। अमीर खाँ के पठानों और बापू सींधिया के मराठों ने मेवाड़ राज्य में भीषण अत्याचार किये। इन अत्याचारों से राज्य का अन्तिम विनाश हुआ, कृषि का जो व्यवसाय बाकी रह गया था उसका भी नाश हो गया। नगरों का विध्वंस हो गया। राज्य के लोग अपने परिवारों के साथ घर-द्वार छोड़ कर भाग गये, सरदारों का पतन हो गया; राणा और उसके परिवार के जीवन में साधारण सुविधायें भी न रह गयीं। ऐसी दशा में सींधिया के बाकी कर को अदा करने की धृष्टता पूर्ण माँग बापू सींधिया ने राणा से की और उसके बदले में राज्य के सरदारों, कृषकों और व्यवसायियों को अजमेर में ले जाकर कैद में रखा। वहाँ पर उनमें से बहुतों की मृत्यु हो गयी और बाकी लोगों को सींधिया की कैद से उस समय छूटकारा मिला, जब सन् १८१७ ईसवी में अँगरेजों की संधि हुई।

× अपनी उस विपद के समय किशनदास बहुत दिनों तक टॉड साहब के साथ रहा। राणा से भेंट के समय टॉड साहब की बातों को किशनदास ही अनुवाद करके राणा को समझाता था। किशनदास के मरने पर मेवाड़ के लोगों ने बहुत दुःख प्रकट किया था।

सत्ताईसवाँ परिच्छेद

मेवाड़ की उजड़ी हुई अवस्था में मराठों की लूट-देश में आपसी फूट की आग-अंग्रेजों के द्वारा राजस्थान के निर्बल राज्यों का संगठन-राणा को अंग्रेजों का आश्वासन-अंग्रेजों के साथ राणा की संधि-मेवाड़ में अंग्रेजी एजेण्ट का स्वागत। राज्य का सुधार-राणा पर कर्ज का बोझ-मेवाड़ में शांति के प्रयत्न-अत्याचारों का अंत-भूमि पर किसानों का अधिकार-मेवाड़ में राजकर की व्यवस्था !

दूसरी शताब्दी से लेकर उन्नीसवीं शताब्दी तक राणा के वंश का इतिहास लिखा जा चुका है और उसके सौभाग्य एवम् दुर्भाग्य की सभी घटनाओं पर गम्भीरता के साथ प्रकाश डाला जा चुका है। पारसियों, भीलों, तातारियों और मराठों ने समय-समय पर लगातार आक्रमणों के द्वारा जिस प्रकार इस प्रसिद्ध वंश और उसके राज्य को क्षत-विक्षत करके श्मशान बना देने का काम किया, उसको स्पष्ट रूप से लिखा जा चुका है। मेवाड़ की उजड़ी हुई अवस्था में मराठों की लूट आरम्भ हुई और उनकी अमानुषिक निष्ठुरता ने उस राज्य के जीवन में केवल हड्डियाँ और पसलियाँ बाकी रखीं। इन दिनों मे पश्चिमी कई देशों के व्यवसायी कम्पनियाँ बना बनाकर व्यवसाय के लिए इस देश में आ चुके थे। अँगरेजों की ईस्ट इण्डिया कम्पनी भी उनमें से एक थी। इस कम्पनी के अँगरेजों ने बड़ी राजनीति से काम लिया। राजस्थान के प्रसिद्ध राज्य मेवाड़ के संकटों में उन लोगों ने अपनी उदारता प्रकट की।

देश में घरेलू विद्रोह की भीषण आग जल रही थी। अँगरेजों को विद्रोह के इन दिनों में अपना अस्तित्व कायम करने का अवसर मिला। धीरे-धीरे उनकी शक्तियाँ मजबूत बन गयीं पीड़ित प्रजा और राजाओं को मिलाकर एक बड़ी शक्ति अँगरेजों ने अपने पक्ष में की और उनकी इस नीति से मेवाड़ के मिटानेवाले प्राणी को जीवन मिला। देशी राज्यों की शक्तियाँ पहले से ही छिन्न-भिन्न थीं, मराठों को छोड़ कर अन्य किसी में संगठन न था। विरोधी शक्तियों के मुकाबिले अँगरेजों ने देशी राज्यों को मिलाकर एक महान शक्ति का निर्माण किया। अँगरेजों की तरफ से एक घोषणा की गयी कि आततायियों और लुटेरों को रोकने के लिए इस देश में एक ऐसा संगठन किया जायगा, जिसके द्वारा निर्बल राज्यों की रक्षा हो सके और कोई शक्तिशाली आक्रमण करके उसको लूट न सके। उस समय जितने निर्बल राज्य रोज लूटे और मारे जा रहे थे, इस घोषणा को सुनकर सभी प्रसन्न हो उठे। उन्होंने एक बार सुख और संतोष की साँस ली। घोषणा के अनुसार, दिल्ली में एक सभा की गयी। जयपुर के अतिरिक्त शेष राजाओं के प्रतिनिधियों ने उसमें भाग लिया और उस उद्देश्य को स्वीकार किया। उस सभा को सफलता मिली और उसके द्वारा इस देश के राजाओं की बागडोर अँगरेजों के हाथों में पहुँच गयी। एक संधि पत्र लिखा गया, उसमें इस बात को स्वीकार किया गया कि राजपूत अपनी स्वतंत्रता को कायम रखें, लुटेरे शत्रुओं से अँगरेज सरकार उनकी रक्षा करेगी और इस कार्य के लिए देशी राज्य अँगरेजों को एक निश्चित कर अदा करेंगे। ×
रायपुर, राजनगर आदि जिन दुर्गों पर विद्रोही सरदारों ने राणा के विरुद्ध अधिकार कर लिया

× इन दिनों में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के साथ राणा भीमसिंह ने जो संधि की थी, उसका सारांश इस प्रकार है : (१) अंगरेजों और राणा भीमसिंह के बीच इस संधि के द्वारा जो मित्रता कायम

था, उनको लेकर राणा के अधिकार में दे दिया गया और एक विशाल दुर्ग पर अँगरेजों ने अपना अधिकार कर लिया। कमलमीर के दुर्ग में रहने वाली सेना का बहुत दिनों से वेतन बाकी था, उसको देकर अंगरेजों ने उस पर भी अपना अधिकार कर लिया।

कमलमीर के उत्तर में जिहाजपुर था। वहाँ से एजेन्ट की हैसियत से मैं राणा दरबार के लिए रवाना हुआ। उदयपुर वहाँ से एक सौ चालीस मील था। इस लम्बी यात्रा में मुझे केवल दो नगर मिले। मनुष्यों की आबादी बहुत कम थी, उनकी घनी आबादी उजड़ गयी थी। सम्पूर्ण रास्ता मनुष्यों से खाली था। चारों तरफ वृक्ष दिखायी देते थे। चतुर्दिक फैले हुए जंगलों को देखकर मालूम होता था कि यहाँ पर मनुष्यों की आबादी नहीं है। स्थान-स्थान पर जंगली जानवर घूमते हुए दिखायी देते थे। राज-मार्ग नष्ट हो गये थे और वे सब जंगली रास्ते बन गये थे राजस्थान में भीलवाड़ा एक प्रसिद्ध व्यावसायिक नगर था। दस वर्ष पहले यहाँ पर छै हजार अच्छे घर थे और उनमें लोग अपने परिवारों के साथ रहते थे। भीलवाड़े से होकर मैं गुजरा। उसकी गलियाँ सुनसान थीं। एक भी आदमी वहाँ पर न मिला। एक मन्दिर में बैठे हुए एक कुत्ते ने मुझे देखा, वह मुझे देखते ही अपरिचित समझकर भागा।

मैं अपने लश्कर के साथ उदयपुर के करीब नाथद्वारे में ठहरा। वहाँ पर राणा का एक प्रतिनिधि मुझे मिला और उसके लौटकर जाने के मौके पर मैंने कमलमीर दुर्ग प्राप्त किया। उसके बाद राणा का पुत्र जवानसिंह सामन्तों, सिपाहियों और बहुत से राज्य के अधिकारियों को साथ में लेकर स्वागत के लिए आया और हम सब को राजधानी ले गया। उदयपुर से एक कोस की दूरी पर हम सब का स्वागत करने के लिए एक स्थान सजाया गया था। वहाँ पर शतरञ्जियाँ बिछी थीं और उनके ऊपर बड़ी खूबसूरती के साथ गलीचे बिछाये गये थे। वहाँ पर सब से पहले मैंने राजकुमार जवानसिंह को देखा। उसका सुन्दर बदन, शिष्टाचार, स्वाभिमान, विनम्रभाव और अच्छा व्यवहार देख कर मै बहुत प्रभावित हुआ। इसके पहले भी मैंने एक बार देखा था। उस समय वह छोटा था। उसके आज के व्यवहारों के प्रति मैने उस समय उसको देखकर कल्पना नहीं की थी।

सूरजद्वार से होकर मैंने उदयपुर मे प्रवेश किया। रास्ते में दोनों तरफ सुन्दर वृक्ष लगे हुए थे। वहाँ का दृश्य देख कर भी इस बात का सहज ही आभास होता था कि जहाँ से हम लोग गुजर रहे हैं, बुरी तरह से वीरान हो चुका है। जहाँ से हम लोग चल रहे थे, रामप्यारी का महल

हो रही है, वह सदा के लिए है। एक का मित्र और शत्रु, दूसरे का भी मित्र और शत्रु होगा। (२) राणा के राज्य को सुरक्षित रखने के लिए अँगरेज सरकार पूरी चेष्टा करेगी और उस पर कोई आक्रमण नहीं कर सकेगा। (३) उदयपुर के राणा को अँगरेज सरकार की अधीनता में अपने समस्त कार्य करने पड़ेंगे। राज्य के सामन्तों और सरदारों से राणा का कोई सम्बन्ध न रहेगा। (४) बिना अँगरेज सरकार की स्वीकृति के राणा को किसी राजा के साथ संधि अथवा राजनीतिक सम्बन्ध कायम करने का अधिकार न होगा। (५) राणा को स्वय किसी पर आक्रमण करने का अधिकार न होगा। यदि किसी के साथ इस प्रकार की परिस्थिति पैदा हो तो उसका निर्णय अँगरेज सरकार करेगी। (६) पाँच वर्ष तक राणा अपनी आमदनी का एक चौथाई अँगरेज सरकार को अदा करेगा। और उसके बाद आमदनी का $\frac{3}{8}$ भाग राणा को सदा देना पड़ेगा। राणा से दूसरा कोई कर न ले सकेगा। इसका उत्तर-दायित्व अँगरेज सरकार पर होगा। (७) मेवाड़ राज्य के जो इलाके दूसरे राजाओं ने छीनकर अपने अधिकार में कर रखे हैं, राणा का इरादा उनको वापस लेने का है। लेकिन इस समय अँगरेज सरकार इस प्रकार के मामलों में किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं कर सकती। उदयपुर की

भी वहीं पर था। रामप्यारी का उल्लेख पहले किया जा चुका है। यह महल, राजपूतना के अन्यान्य महलों के समान कई मंजिलों का बना था। उसकी सुन्दरता और श्रेष्ठता प्रशंसा के योग्य थी। उसका निर्माण अन्य महल के समान हुआ था। आस-पास की ऊँची दीवारों पर अद्भुत नक्कासी का काम था और महल के भीतर मनोहर कमरे और दालानें थीं। बीच में खुला हुआ दीवानखाना था। वहीं पर हम लोगों के स्वागत की तैयारियाँ थीं। बाद में हमें रहने के लिये यही महल मिल गया था। इस महल के एक भाग में हम लोगों के खाने के लिए भोजन बना था उस भोजन में मीटी, नमकीन बहुत-सी चीजें थीं। खाने के पदार्थों में अनेक प्रकार के फल भी थे। वहाँ पर एक हजार रुपये की एक थैली भी रखी थी। ये रुपये उन लोगों में बाँटे जाने के लिए थे, जिन्होंने हम सब के आने का पहले पहल समाचार राणा को दिया था। इस प्रकार का पुरस्कार देना, राजपूतों की एक पुरानी प्रथा के अनुसार था। राणा के भेंट के लिए दूसरा दिन निश्चित हुआ। लेकिन उसी दिन शाम को चार बजे राणा के आदमियों से समाचार मिला कि राणा ने आप से मिलने का प्रबन्ध आज ही किया है।

इस समाचार के बाद कुछ समय में लोगों की भीड़ दिखायी पड़ने लगी। भीड़ के लोग दूर से हम लोगों की तरफ देख रहे थे। राजभवन में जाने लिए हम लोग अपने स्थान से रवाना हुए। आगे बढ़ते हुए हम लोगों ने लोगों को नारे लगाते हुए सुना—"जय! जय! फिरंगी राज!" राज्य के भाट लोग मेरे नाम का प्रयोग अपनी कविताओं में करके जोर के साथ कवितायें कह रहे थे और स्थान-स्थान पर अनेक प्रकार के बाजे बज रहे थे, उनके द्वारा हम सब के स्वागत की खुशी मनायी जा रही थी, स्वागत में हम लोगों ने स्त्रियों को राजस्थानी भाषा में गाना गाते हुए सुना। जिस मार्ग से हम लोग जा रहे थे, वह दर्शकों की भीड़ से भरा हुआ था। राजभवन के समीप आ जाने पर हम लोगों ने हाथी और घोड़ों से उतर कर पैदल चलना शुरू किया और कुछ ही देर में राज भवन में प्रवेश किया। वहाँ पर ऊँचे और विस्तृत चबूतरे बने हुए थे, जिनमें हाथी और घोड़े अपना खेल दिखा रहे थे।

राजभवन की बनावट अत्यन्त सुन्दर और सुदृढ़ है, उसमें संगमरमर और दूसरे मजबूत पत्थर लगे हुए हैं। जमीन से उसकी ऊँचान एक सौ फीट है। राजभवन के प्रत्येक पार्श्व में आठ कोने के बुर्जों पर गुम्बज बने हुए हैं। पर्वत के ऊपर होने के कारण वे बहुत ऊँचे मालूम होते हैं। बुर्ज के ऊपर चढ़ कर देखने से पर्वत के सभी दृश्य साफ-साफ दिखायी देते हैं। भवन के बाहर—बड़े द्वार पर

उन्नति का जहाँ तक प्रश्न है, उसमें अँगरेज सरकार सहायता करेगी। अँगरेजों की सहायता से जो इलाके राणा को वापस मिल जायँगे, राणा को उनकी आमदनी का $\frac{3}{8}$ भाग देना पड़ेगा। (८) आवश्यकता पड़ने पर अँगरेज सरकार राणा की सेना ले सकेगी। (९) मेवाड़-राज्यमें अँगरेजों का नहीं, राणा का प्रभुत्व रहेगा।

यह संधि पत्र १६ जनवरी सन् १८१८ ईसवी को दिल्ली में लिखा गया। इस पर अँगरेजों की तरफ से मिस्टर चार्ल्स मेटकॉफ और राणा की तरफ से अजितसिंह ने हस्ताक्षर किये और अपने-अपने राज्यों की तरफ से मोहरें लगायीं।

टॉड साहब ने इन्हीं दिनों में लार्ड हेस्टिंग्ज से पश्चिमी राज्यों के पोलिटिकिल एजेण्ट होने का पद प्राप्त किया। साथ ही वह राणा के दरबार का एजेण्ट भी बनाया गया। सन् १८१७ और १८ ईसवी के युद्धों में टॉड साहब के अधिकार में एक अँगरेजी सेना थी। उसको लेकर टॉड ने होलकर और बूँदी के राजाओं के साथ युद्ध किया था और कोटा के राजा से संधि की थी।

सिंधी सिपाहियों का पहरा था। राजभवन से दीवानखाने तक दोनों तरफ राजपूत शसस्त्र खड़े हुए थे। राजभवन के भीतर एक गणेश दरवाजा है, उस द्वार से होकरदीवान खाने जाना पड़ता है। पत्थरों से बनी हुई दीवानखाने की सीढ़ियों को हम लोगों ने पार किया। आगे बढ़ने पर हमको चोबदार मिले, जो किसी के आगमन की सूचना राणा को देते थे। अनेक दालानों को पारकर दीवानखाने जाना पड़ता है। दीवानखाने के द्वार पर पहुँचते ही हम लोगों के आने की सूचना वहीं से खड़े हुए भालेदार ने दी। उसी समय राणा ने सिंहासन से उठकर हमारी तरफ कदम बढ़ाये। राणा के उठते ही सरदारों ने भी खड़े होकर हम लोगों का स्वागत किया। यहाँ की सजावट किसी प्रकार दिल्ली दरबार से कम न थी। सिंहासन के सामने ही हम लोगों को स्थान मिला। यह वही स्थान था, जो इस दरबार में किसी समय पेशवा को दिया गया था। इस दरबार का स्थान सूर्य महल के नाम से प्रसिद्ध है! राणा के बैठने का सिंहासन बहुत ही कीमती और सुदृढ़ बना हुआ है। दरबार के प्रधान सोलह सरदार राणा के दाहिने और बायें बैठते हैं। उनके नीचे एक तरफ राजकुमार जवानसिंह के बैठने का स्थान है। राणा के सामने राज्य के मन्त्री का स्थान है। राणा के पीछे की तरफ राज्य के प्रधान अधिकारी और विश्वासी लोग बैठते हैं। हम सब के पहुँचने पर राणा को जो प्रसन्नता हो रही थी, उसे हम लोगों ने सहज ही अनुभव किया। राणा ने कुछ देर तक अपने संकटों की बातें कहीं। उनकी बातों को सुनकर मैं बहुत प्रभावित हुआ और मन ही मन राणा की सहायता करने का संकल्प किया। राणा की बातों को सुनकर मैंने कहा :

"हमारे गवर्नर-जनरल को आपके वंश की श्रेष्ठता मालूम है। आपके संकटों के साथ हम सब को पूरी सहानुभूति है। हमारे गवर्नर जनरल का इरादा है कि आपके संकटों को प्रत्येक अवस्था में दूर किया जाय और हम सब लोग सहायता करके आपके गौरव की वृद्धि करें।"

बातें हो जाने के बाद राणा ने हमको और हमारे साथ के लोगों को भेंट में बहुमूल्य चीजें दीं। हमें राणा ने एक सजा हुआ हाथी, एक श्रेष्ठ घोड़ा, जवाहिरात जड़े हुए आभूषण, मोतियों की एक माला, एक कीमती शाल और कुछ अन्य वस्त्र दिये। इसके बाद राणा से बिदा होकर हम लोग अपने ठहरने के स्थान पर चले आये। हमारे लौट कर आ जाने के बाद राणा के साथ राज्य के मन्त्री और सरदार लोग हम लोगों से मिलने के लिए हमारे स्थान पर आये। मैं अपने स्थान से चलकर कुछ दूरी पर स्वागत के लिए गया और राणा के सम्मान में मैंने सेना से सलामी करायी। राणा के बैठने के लिए मैंने पहले से ही एक ऊँचे स्थान की व्यवस्था की थी। उसी पर राणा को मैंने बिठाया। राणा ने उस समय बहुत सी बातें कीं। अन्त में मैंने राणा को एक हाथी, दो घोड़े, उनकी कीमती झूलें और कुछ चीजें भेंट में दीं। इनके सिवा मैंने बहुमूल्य रत्न भी राणा को भेंट में दिये। राजकुमार उमराव सिंह बीमार होने के कारण राणा के साथ नहीं आया था। मैंने उसके लिए एक उत्तम घोड़ा और कुछ कीमती चीजें भेंट में देते हुए राणा के सामने रखीं। राणा का बेटा जवानसिंह राणा के साथ आया था। मैंने उसको भेंट में एक घोड़ा और कुछ कीमती सामान दिया। जो कर्मचारी राणा के साथ आये थे, मैंने उनको भी भेंटों में रुपये दिये। उस समय राणा के सम्मान में मैंने बीस हजार रुपये खर्च किये।

राणा की उदारता और महानता में कोई अन्तर नहीं है। राज्य के मन्त्रियों में किशनदास बहुत समझदार और विचारशील था। उसने राज्य का सदा हित करना अपना कर्त्तव्य समझाथा। परन्तु उस समय उसकी मृत्यु हो चुकी थी। राज्य के पतन में बहुत से सरदार राणा के विरोधी हो गये थे। परन्तु अँगरेजों के साथ संधि होने के कुछ दिन बाद विरोधी सरदारों में परिवर्तन हुआ

और उनमें से कितने ही आकर राणा से मिल गये। अँगरेजों की सहायता से अनेक कार्य राज्य की उन्नति के लिए किये गये। मराठों के अत्याचारों में राज्य के जो लोग भाग कर चले गये थे, उनको वापस बुलाने का राणा ने इरादा किया। परन्तु इसमें दो बाधायें भयानक थीं। एक तो यह कि जो लोग राज्य छोड़कर चले गये थे, वे दूसरे राज्यों में जाकर बस गये थे और उन्होंने अपने सम्बन्ध वहाँ के लोगों के साथ कायम कर लिये थे। अब आसानी से उन सम्बन्धों को तोड़ा नहीं जा सकता था। फिर भी राणा ने इस आशय की एक विज्ञप्ति लिखकर प्रकाशित की कि मेवाड़ के जो लोग शत्रुओं के अत्याचारों से राज्य छोड़कर भाग गये हैं, उनको लौटकर अपने स्थानों पर आ जाना चाहिए। इसका उत्तर उन लोगों ने जो राज्य छोड़ कर चले गये थे—अत्यन्त प्रभावशाली शब्दों में दिया। उन्होंने कहा : "शत्रुओं के अत्याचारों तथा देश द्रोहियों के पाखन्डो से अपना हम बपौती का अधिकार न छोड़ देंगे।"×

भागे हुए लोगों के लिए राणा की घोषणा हो चुकी थी। अपनी मातृभूमि में लौट कर जाने के लिए लोगों को अपार आनन्द का अनुभव होने लगा। अपने घरों का सामान छकड़ों पर लादकर लोग मेवाड़ की तरफ रवाना हुए। इस समय उनके मन में प्रसन्नता का ठिकाना न था। रास्ते में चलते हुए वे सब मिलकर गाना गा रहे थे। मेवाड़ में पहुँच कर लोगों ने अपने-अपने घरों में प्रवेश किया। अँगरेजों के साथ संधि होने के आठ महीने बाद मेवाड़ के तीन सौ नगर और ग्राम मनुष्यों से आबाद हो गये। जो जमीन बहुत दिनों से बेकार पड़ी थी, उसमें फिर से खेती का काम आरम्भ हुआ। जो नगर और ग्राम सूनसान हो गये थे, उनमें फिर मनुष्यों का कोलाहल सुनायी पड़ने लगा। निर्जन हो जाने के कारण जहाँ पर जंगली पशुओं ने अपने रहने के लिए स्थान बना लिए थे, अब फिर से वहाँ पर मनुष्यों की चहल-पहल दिखायी पड़ने लगी।

अँगरेजों के साथ संधि करने के बाद राणा को बहुत बड़ी राहत मिली थी। इसीलिए अपने मंत्रियों के परामर्श से उसने उन लोगों को पास बुलाने की घोषणा की थी, जो अत्याचारों के दिनों में राज्य से भाग गये थे। वे लोग बड़े सुख तथा स्वाभिमान के साथ लौट कर आ गये। उनके आ जाने से उजड़े हुए घर, ग्राम और नगर बहुत-कुछ बस गये। लेकिन राज्य के लिए इतना ही काफी नहीं था जो लोग लौटकर आये थे, उनके पास कोई कार्य, व्यवसाय न था। राणा के पास उनकी सहायता के लिए सम्पत्ति न थी। राज्य में फैले हुए अत्याचारों के दिनों में भी जिन लोगों ने किसी प्रकार अपने धन की रक्षा कर ली थी, राणा ने उन लोगों से इस समय ऋण माँगा और विवश अवस्था में राज्य के इन लोगों से छत्तीस रुपये प्रतिशत सूदपर राणा को कर्ज लेना पड़ा।

राणा के ऊपर पहले से ही कर्ज का भार था, वह अब और भी अधिक कर्जी हो गया। इन दिनों में बाहरी व्यापारियों ने कर्ज देने का व्यापार मेवाड़ में शुरू किया और राज्य में स्थान-स्थान पर उसकी शाखायें कायम हो गयीं। लेकिन यह बहुत दिनों तक नहीं चला। राज्य में इन व्यवसायियों के विरुद्ध प्रबन्ध हुआ और जो व्यवस्था की गयी, उससे बाहरी व्यवसायियों का आतंक समाप्त हो गया। अपने व्यवसाय को नष्ट करके भीलवाड़ा उजड़ चुका था। लेकिन इन दिनों में उसने फिर उन्नति की और जिस भीलवाड़े में पहले छै सौ दूकाने थीं, वहाँ पर बारह सौ दूकानें खुल गयीं। उसके टूटे-फूटे मकानों की मरम्मत हो गयी और उसका बाजार रोजना उन्नति करने लगा।

राज्य की इस उन्नति में अनेक बाधायें भी पड़ीं। स्वार्थों के कारण व्यवसायी लोग आपस

× पूर्वजों के रहने के स्थान को राजपूत लोग बपौता अथवा बपौती कहते हैं।

में विद्वेष करने लगे । चन्दावतों और शक्तावतों का पिछले दिनों में मेल भी हो गया था. लेकिन उनके बीच में कलुषित व्यवहारों ने इन दिनों में फिर से उग्र रूप धारण किया । राज्य के जिन शुभचिंतकों ने उनमें एकता कायम रखने की कोशिश की थी, वे निराश हो गये। शक्तावत सरदार जोरावरसिंह ने तो यहाँ तक कह डाला कि भेड़ और बकरी का एक घाट पानी पीना सम्भव हो सकता है, परन्तु चन्दावत और शक्तावत लोगों का मेल के साथ रह सकना सम्भव नहीं हो सकता।

अँगरेजों के साथ राणा की संधि हो चुकी थी, परन्तु सामन्तों और सरदारों के साथ राणा के क्या सम्बन्ध रहेंगे, इसका निर्णय अभी तक बाकी था । इसके लिए राणा ने सब सामन्तों और सरदारों की एक सभा की और इसके सम्बन्ध में लिखी गयी पत्रिका विचार और निर्णय के लिए सब के सामने उपस्थित की गयी । बड़ी उलझनों और आलोचनाओं के बाद जो निर्णय हुआ, उस पर राणा तथा सामन्तों और सरदारों के हस्ताक्षर हो गये । राज्य की व्यवस्था सुचारु रूप से आरम्भ हुई । जो सरदार निकाले गये थे, उनको बुलाया गया और जिन सरदारों ने विद्रोह कर रखा था, दमन किया गया । व्यवसाय की उन्नति के लिए सभी साधन जुटाए गये, विद्रोही सरदारों ने राज्य के जिन इलाकों पर अधिकार कर लिया था, उन पर फिर से अपना अधिकार करने के लिए राणा ने बड़ी बुद्धिमानी से काम लिया और उसमें राणा को सफलता भी मिली । इस सिलसिले में कुछ घटनाओं का यहाँ पर संक्षेप में उल्लेख करना आवश्यक है ।

मेवाड में अरझा नाम का एक दुर्ग है । पूरावत गोत्र के सरदारों ने इस दुर्ग को राणा के अधिकार से जबरस्ती ले लिया था । पन्द्रह वर्षों के बाद शक्तावतों ने उस दुर्ग पर अपना अधिकार कर लिया और राणा को दस हजार रुपये देकर उन लोगों ने उस दुर्ग पर अपना अधिकार प्राप्त कर लिया । इन दिनों में उस दुर्ग को शक्तावत लोगों से ले लेना जरूरी समझा गया । जब शक्तावत लोगों ने सुना कि राणा का इरादा इस दुर्ग के भी लेने का है तो वे लोग बहुत चिंतित हो उठे । शक्तावतों और चन्दावतों पर मेवाड़ का गौरव निर्भर करता है । इस विद्रोह की आशंका होने से राणा को भी बड़ी चिंता हुई । लेकिन अरझा दुर्ग के सम्बन्ध में बड़ी बुद्धिमानी के साथ निर्णय किया गया, जिससे राणा और शक्तावतों के बीच पैदा होने वाला विद्रोह दब गया । इस दुर्ग के सम्बन्ध में जिन सरदारों के विद्रोही होने की सम्भावना थी, उनमें दो प्रमुख थे और उनमें एक का नाम जैतसिंह था । राठौर वंश की मैरतिया शाखा में इसका जन्म हुआ था । बादशाह अकबर के साथ युद्ध करने वाले शूरवीर जयमल ने भी इस शाखा में जन्म लिया था ।

राणा के साथ जैतसिंह का विरोध जब शांत न हो रहा था तो राणा ने उसका निर्णय मुझे सौंप दिया था । मैंने उसे सभी प्रकार समझाने की कोशिश की और उसमें मुझे सफलता मिली । मैंने उसका विरोध समाप्त कर दिया और जैतसिंह ने अपने अधिकारों को खतम करते हुए राणा ने नाम जो कुछ लिखा, उसे उसने मेरे हाथों में दे दिया ।

भदेश्वर के सरदार हमीर का वर्णन पहले किया जा चुका है । चन्दावत गोत्र में उसने जन्म लिया था । मेवाड़-राज्य में वह दूसरी श्रेणी का सरदार था, राणा के प्रधान मन्त्री सोमजी को जिस सरदार ने मार डाला था, हमीर उसी का बेटा था । जिन सरदारों ने मेवाड़-राज्य के साथ विद्रोह किया था, हमीर उनमें प्रधान था । उसकी जागीर की आमदनी तीस हजार रुपये से अधिक न थी । लेकिन अपने बल-पौरुष के द्वारा उसने अपनी आमदनी अस्सी हजार रुपये वार्षिक की बना रखी थी । उसने राणा पर अपना अनुचित प्रभाव कायम कर रखा था । लाव्हा का सक्तावत सरदार उसका अभिन्न मित्र था । खैरोदा का दुर्ग भी उस समय उसी के अधिकार में था । दोनों का

स्वभाव एक-सा था और दोनों ने अपनी कुटिल राजनीति से राणा को प्रभावित कर लिया था। अन्य विद्रोही सरदारों की जागीरें जब राणा ने वापस ले लीं थीं, उन दिनों में भी लाव्हा सरदार और हमीर अनधिकार रूप से अपनी जागीरें का भोग कर रहे थे।

इस दशा में कुछ दिनों के बाद राणा के लाव्हा-सरदार को हिदायत दी कि "जब तक आप खैरोदा का दुर्ग और बलपूर्वक अधिकार में रखी हुई जागीर राज्य को वापस नहीं देते, आपको राज-दरबार में प्रवेश करने का अधिकार नहीं है।" इससे हमीर जल उठा और आवेश में आकर उसने इस प्रकार की कड़ुवी बातें कहीं, जो किसी प्रकार उसको न कहनी चाहिए थीं। राणा ने उसके दमन का कार्य मुझे सौंप दिया। मैं इसके लिए अवसर की प्रतीक्षा करने लगा। एक बार राणा की आज्ञा से राज्य के सैनिक उस दुर्ग पर अपना कब्जा करने गये तो दुर्ग के अधिकारी ने अपमान के साथ उनको दुर्ग के बाहर से लौटा दिया। यह जानकर मुझे बहुत बुरा लगा और विवश होकर मुझे हमीर के साथ कठोर व्यवहार करना पड़ा और राजदरबार में बैठे हुए हमीर को सबके सामने जाहिर किया कि जो दुर्ग तुम्हारे अधिकार में था, उसे लेकर राज्य में मिला लिया गया है। मेरी इस बात को सुनकर राणा ने सामन्तों और सरदारों को संतोष देने के लिए कुछ बातें कहीं और अपनी निर्भीकता भी प्रकट की। हमीर के असिष्ट व्यवहारों के कारण अन्त में राणा ने उसको राज्य से निकल जाने का आदेश दिया। परन्तु इसके सम्बन्ध में कुछ -बातों के बाद निर्णय हुआ कि हमीर के अधिकार में सम्पूर्ण इलाका जब्त करके राज्य में उस समय तक के लिए मिला लिया जाय, जब तक बल पूर्वक अधिकार में लाये हुए राज्य के ग्रामों से वह अपना अधिकार वापस न लेले।

इस प्रकार के निर्णय से हमीर बहुत निराश और दुखी हुआ। उसी रात वह उदयपुर छोड़कर चला गया और अपने अधिकार की समस्त भूमि उसने राणा को दे दी। साथ ही उसने भदेश्वर का दुर्ग भी राणा को दे दिया है।

इसी प्रकार आमली दुर्ग की भी घटना है। इस दुर्ग की सम्पूर्ण भूमि अमाइत के सरदार के अधिकारों में सत्ताईस वर्षों से थी और अर्द्ध शताब्दी से वहाँ के लोग उसकी भूमि पर अधिकार किये हुए चले आ रहे थे। वे लोग जगवत शाखा में पैदा हुए थे और मेवाड़ के सोलह सरदारों में माने जाते थे। बिदनोर के सरदार के बाद उन्हीं लोगों का स्थान है। इस आमली दुर्ग का अधिकार भी राणा ने अँगरेजों की सहायता से प्राप्त किया।

मेवाड़-राज्य में भूमि का मालिक किसान माना जाता है। इस अधिकार को वहाँ के किसान बपौता कहते हैं। किसानों की भूमि पर कभी कोई दखल नहीं दे सकता और न उस पर कोई कर लगाया जाता है। किसानों के इस अधिकार के सम्बन्ध में यहाँ पर कुछ घटनाओं का सामने लाना आवश्यक है। किसी समय मन्दोर नगर में मारवाड़ की राजधानी थी। गहिलोत राजकुमार का विवाह किसी समय मारवाड़ की राजकुमारी के साथ हुआ। राजपूतों की प्रथा के अनुसार, कन्या के पिता को जामाता की माँग को पूरा करना पड़ता था। इस प्रथा के अनेक दुष्परिणाम राजस्थान में देखे गये हैं। गहिलोत राजकुमार ने लड़की के पिता से दस हजार जाटों की माँग की। ये जाट मारवाड़ राज्य में खेती करते थे। लड़की के पिता ने जामाता के माँगने पर आदेश दिया कि दस हजार जाटों को मेवाड़ जाने की आज्ञा दी। राजा के इस आदेश को सुनकर जाट लोग घबरा उठे। वे जाने के लिए तैयार न थे।

अन्त में जाटों ने आपस में परामर्श करके निर्णय किया और अपने राजा से उन लोगों ने प्रार्थना की : "क्या हम लोग अपना बपौता छोड़कर एक अपरिचित राज्य में चले जायँगे ? अगर

आप चाहें तो हमारा संहार करा सकते हैं। लेकिन हम लोग अपना यह अधिकार छोड़कर कहीं जा नहीं सकते।" इस विरोध में मारवाड़ के राजा को उन सभी जाटों के लिए जिन्हें जामाता की माँग पर मेवाड़ भेजा जा रहा था—उनकी जमीनें सदा के लिए लिख देनी पड़ीं। अपने इस अधिकार को प्राप्त करके जाटों ने जाना स्वीकार कर लिया।

इस प्रकार की घटनाओं से साबित होता है कि राजस्थान में भूमि पर पूर्ण रूप से किसानों का अधिकार है। राजा कर वसूल करता है। मेवाड़ में इस करके लेने की व्यवस्था आवश्यक है, अनाज के ऊपर मेवाड़ में दो तरह का कर लिया जाता है। ये दोनों कर कंकूट और भुट्टई के नामसे प्रसिद्ध हैं। गन्ना, पोस्ता, सरसों, सन, तमाखू, रुई, नील और फूलों पर दो रुपये प्रति बीघा से लेकर छै रुपये तक लिया जाता है। खेतों में अनाज के काटे जाने के पहले राज कर्मचारी अनुमान के आधार पर जो कर लगा देते हैं, उसको कंकूट कहते हैं। खेत का स्वामी कृषक यदि चाहे और समझे कि उस पर कर अधिक लगा दिया गया है, तो उसके विरुद्ध वह राजा के यहाँ प्रार्थना पत्र दे सकता है। भुट्टई करने के लिए भी वह राणा को प्रार्थना पत्र दे सकता है। खलिहान में अनाज तैयार हो जाने पर और पैदावार ठीक-ठीक मालूम हो जाने पर राज कर्मचारियों के द्वारा जो कर लगाया जाता है, उसे भुट्टई करते हैं।

यहाँ पर भुट्टई की प्रथा पुरानी है। इस रीति के अनुसार जौ, गेहूँ और इस तरह की दूसरी चीजों पर पैदावार का तृतीयांश अथवा दो पंचमांश राजा को मिलता है और कभी-कभी आधा भी कंकूट और भुट्टई की रीतियों के अनुसार, बाजार भाव से कर जोड़कर निश्चित किया जाता है।

इन करों के लगाने में राज कर्मचारी आमतौर पर किसानों के साथ बेईमानी करते हैं। वे किसानों से रिश्वत लेते हैं और रिश्वत लेकर वे किसानों की पैदावार कम दिखाते हैं। रिश्वत न पाने पर वे पैदावार को अधिक जाहिर करते हैं। ऐसा करने से किसानों पर लगने वाला कर बढ़ जाता है। एक कर्मचारी के बाद दूसरा आता है और वह भी रिश्वत लेता है। किसानों का सम्बन्ध एक ही कर्मचारी से नहीं रहता। रिश्वत देकर एक कर्मचारी की सहायता प्राप्त कर लेने के बाद किसान अपनी दी हुई रिश्वत का लाभ नहीं उठा पाता। दूसरा कर्मचारी आकर उससे रिश्वत पाने की आशा करता है। न पाने पर वह किसान के विरुद्ध रिपोर्ट करता है कि उसके खेतों की पैदावार राज्य के कागजों में कम दिखलाता है। कर के सम्बन्ध की यह व्यवस्था किसानों के लिए बड़ी घातक है। सन् १८१८ ईसवी से मेवाड़-राज्य में सुधार आरम्भ हुए। उनकी शुरुआत अँगरेजों की संधि के बाद से हुई। सन् १८२१ ईसवी के अन्तिम दिनों में राज्य के तीन इलाकों की मनुष्य-गणना की गयी। उनके सत्ताईस गाँवों में केवल छै गावों में मनुष्यों की आबादी थी और उनमें सब मिलाकर केवल तीन सौ उनहत्तर मनुष्य पहले रहते थे। इनमें भी तीन चौथाई आमली दुर्ग के थे। लेकिन नवीन गणना के अनुसार, उन छै गावों में नौ सौ छब्बीस परिवार रहते हुए पाये गये। तीन वर्षों में उनकी आबादी बढ़कर तीन गुनी हो गयी। इसके साथ-साथ वहाँ की खेती और दूसरे व्यवसाओं में भी उन्नति हुई। चौगुनी भूमि में खेती का काम होने लगा। अँगरेजों की संधि के बाद राज्य ने तेजी के साथ सभी प्रकार की उन्नति की। कमलमीर, रायपुर, राजनगर, सादी और कुनेडा मराठों से लेकर; कोटा से जिहाजपुर, विद्रोही सरदारों से बहुत-सी भूमि और पहाड़ी लोगों से मैरवाड़ा लेकर राज्य में मिला लिया गया। इस प्रकार जो नगर और ग्राम फिर से राज्य में मिलाये गये, उनकी संख्या कुछ ही दिनों में एक हजार पहुँच गयी।

सन् १८१८ ईसवी से १८२२ ईसवी तक मेवाड़ से जो राज कर वसूल हुआ, उसकी फेहरिस्त नीचे लिखी जाती है। उसके द्वारा मेवाड़ की होने वाली उन्नति का अनुमान आसानी के साथ किया जा सकता है :

रबी की सफल से	सन् १८१८ ई० का	४००००) रुपये
,, ,, ,,	,, १८१९ ई० का	४५१२८१) रुपये
,, ,, ,,	,, १८२० ई० का	६५६१००) रुपये
,, ,, ,,	,, १८२१ ई० का	१०१८४७८) रुपये
,, ,, ,,	,, १८२२ ई० का	९३६६४०) रुपये

अँगरेजों के साथ संधि होने के पहले मेवाड़ की क्या दशा थी, इस पर पहले लिखा जा चुका है। संधि के बाद पहले की दशा में परिवर्तन हुआ और राज्य में सभी प्रकार की शांति और सुविधा बढ़ी, जिनसे उन्नति आरम्भ हुई। सन् १८१८ से १८२२ ईसवी तक राज्य के पाँच प्रमुख नगरों की मनुष्य-गणना का हिसाब नीचे लिखा जाता है। उससे मालूम होता है कि संधि के पहले क्या हालत थी और उसके बाद चार वर्षों में किस प्रकार मनुष्यों की संख्या बढ़ी :

नगर	सन् १८१८ ई० में	घरों की संख्या	सन् १८२२ ई० में	घरों की संख्या
उदयपुर	,,	३५००	,,	१००००
भीलवाड़ा	,,	६०००	,,	२७०००
पुरा	,,	२००	,,	१२००
मण्डल	,,	८०	,,	४००
गोसुन्द	,,	६०	,,	२५०

इस तालिका में जो घर दिखाये गये है, वे सब मनुष्यों से भरे हुए थे। यह बढ़ती हुई आबादी इस बात का प्रमाण है कि संधि के पहले लोगों के जीवन में जो अशान्ति और दुरवस्था थी, वह संधि के बाद दूर हो गयी। इन दिनों में राज्य की खेती ने जो उन्नत की थी, उसे ऊपर लिखा जा चुका है। व्यावसायिक उन्नति का विवरण नीचे दिया जाता है :

सन् १८१८ ई०	...	...	बहुत साधारण
,, १८१९ ई०	...	...	९६६८३) रुपये
,, १८२० ई०	...	...	१६५१०८) रुपये
,, १८२१ ई०	...	...	२२००००) रुपये
,, १८२२ ई०	...	...	२१७०००) रुपये

ऊपर लिखे गये विवरण इस बात के प्रमाण हैं कि अँगरेजों की संधि के बाद मेवाड़-राज्य ने उन्नति की। इस राज्य की आर्थिक आय का साधन उसकी खानें थीं। करीब आधी शताब्दी से उन खानों के द्वारा राज्य को तीन लाख रुपये वार्षिक से अधिक आमदनी होती थी। ×

बहुत दिनों से मेवाड़ राज्य में अशान्ति फैली हुई थी। राज्य के सिंहासन पर इधर बहुत दिनों से जो बैठे, उनकी अयोग्यता और निर्बलता के कारण जो बाहरी आक्रमण आरम्भ हुए, उनका सिलसिला भयानक रूप से अँगरेजों की संधि के समय तक बराबर चलता रहा। उनके फल

× सन् १६१८ इसवी में जावड़ा की टीन की खान से २२२०००) रुपये और दुरिबाड़ा से ८००००) रुपये की आमदनी हुई थी। इन खानों से टीन के साथ-साथ चाँदी भी निकली थी।

स्वरूप राज्य की शक्तियाँ सभी प्रकार भीषण रूप से क्षीण हो गयी। इन्हीं दिनों में राज्य के सरदारों ने विद्रोह किये। उसके फलस्वरूप अराजकता की वृद्धि हुई।

इस प्रकार की परिस्थितियों के कारण राज्य का भीषण रूप से पतन हुआ। आर्थिक पतन के नाम पर राज्य की गरीबी भयानक हो उठी। ऐसी दशा में जब कि राज्य के सभी व्यवसाय नष्ट हो चुके थे, खानों के खुदवाने का काम बिल्कुल असम्भव था। इसीलिए अरसे से राज्य में वह कार्य बन्द रहा और अब तक बंद है। खानों की जमीन पर बहुत दूरी तक पानी भरा हुआ है और अब वे नष्ट हो चुकी है। एक बार इसके लिए चेष्टा की गयी थी। लेकिन उससे लाभ होने की आशा न होने के कारण उस कार्य को बंद कर देना पड़ा।

अट्ठाईसवाँ परिच्छेद

मेवाड़ में धार्मिक प्रवृत्ति–लोगों के विश्वासों का आधार–महादेव के भक्त राजपूत–राज्य में गुसाईं लोगों का सम्मान–जैनियों का प्रभाव–ब्राह्मणों-सन्यासियों का प्रभुत्व–उनको राज्य की सहायता–प्रजा का अंधविश्वास–जैन सम्प्रदाय का प्रभाव–राज्य के महत्वपूर्ण त्योहार।

भारत का प्रधान और पुराना धर्म सनातन धर्म है। उस धर्म के सभी रीति-रिवाज पौराणिक कथाओं के आधार पर चलते है। हिन्दुओं के शास्त्रों में जो धार्मिक आदेश दिये गये है, उनका समन्वय कथाओं के रूप में पुराणों में किया गया है। इन कथाओं की आलोचना करना हमारा यहाँ पर उद्देश्य नहीं है। इसलिए उनके सम्बन्ध में यहाँ पर इतना ही लिखना आवश्यक है कि धर्म के नाम पर जो रीति और रिवाज इस देश में प्रचलित है, उनको पुराणों से प्रेरणा मिलती है। राजस्थान में इन पुराणों का अधिक प्रभाव है। इस देश में और विशेषकर राजस्थान के राज्यों में आश्चर्यजनक परिवर्तन हुए है। उनके पुराने अस्तित्व मिट गये हैं। बड़ी-बड़ी राजधानियाँ बरबाद हो गयी है, विशाल नगर वीरान हो गये हैं और उनमें रहने वाले मनुष्यों के जीवन में अगणित परिवर्तन हुए हैं। परन्तु उनके प्रचलित रिवाजों और व्यवहारों में कोई परिवर्तन नहीं हुआ।

हिन्दुओं के धार्मिक मूल ग्रन्थ वेद है। परन्तु उनके धार्मिक विश्वासों को प्राचीनकाल से लेकर अब तक पुराणों से प्रेरणा मिली है। राजपूत इन पुराणों को सबसे अधिक महत्व देते हैं। राजस्थान में महादेव की पूजा होती है। राजपूत महादेव को ही अपना आराध्य देवता मानते हैं। वे लोग महादेव को एकलिंग भगवान के नाम से भी पुकारते हैं। मेवाड़ में एकलिंग के जितने भी मन्दिर है, उनमें आराध्य देव की मूर्त्ति के आगे धातु की बनी हुई वृषभ की मूर्त्ति पायी जाती है। गहिलोत वंश के राजा एकलिंग को अपना भगवान मानते हैं और उसी की पूजा करते हैं।

उदयपुर से तीन कोस उत्तर की तरफ एक पहाड़ी मार्ग के बीच में भगवान एकलिंग का प्रसिद्ध मन्दिर है। एकलिंग के पुजारियों को गोस्वामी कहा जाता है। ये लोग अपना विवाह नहीं करते। उनके शिष्य उत्तराधिकारी होते है। शैवपुजारी अपने शरीर में भस्म लगाते हैं और गेरुये वस्त्र पहनते हैं। मरने पर ये लोग जलाये नहीं जाते। बल्कि मृत शरीर को समाधि दी जाती है।

मेवाड़ के प्रधान सरदार, उनकी उपाधियाँ, जागीर, ग्राम-संख्या, उनके गोत्र और वंश।

सं०	उपाधि	नाम	गोत्र	वंश	जागीर	ग्राम सं०	सन् १७६० ई० के अनुसार कीमत	विशेष विवरण
१	राजा	चन्दनसिंह	झाला	झाला	सादड़ी	१२७	१०००००)	ये तीनों जागीरें बिगड़कर आधी कम हो गयीं। लेकिन उनकी मालगुजारी अब तक बहुत है।
२	राव	प्रतापसिंह	चौहान	चौहान	बेदला	८०	१०००००)	
३	राव	मोहकमसिंह	चौहान	चौहान	कोठारिया	६५	८००००)	
४	रावत	पद्मसिंह	चंदावत	सीसोदिया	शालुम्बा	८५	८४०००)	यह आमदनी उसकी जमीन के जोते जाने पर निर्भर है।
५	ठाकुर	जोरावरसिंह	मैरतियाँ	राठौर	गानोर	१००	१०००००)	राणा के हाथ से गोद्वार निकल जाने के बाद से यह सरदार राज्य के सोलह सरदारों में नहीं रहा।
६	राव	केशवदास	मैरतियाँ	परमार	बिजौली	४०	४५०००)	यह आमदनी उसके जमीन में खेती होने में निर्भर है।
७	रावत	गोकुलदास	संगावत	सीसोदिया	देवगढ़	१२५	८००००)	खेती होने पर इससे भी अधिक आमदनी हो सकती है।
८	रावत	महासिंह	मेघावत	सीसोदिया	बेगू	१५०	२००००)	आजकल इस जागीर पर सींधिया का अधिकार है। खेती होने पर ७००००) रुपये की आमदनी हो सकती है।
९	राजा	कल्याणसिंह	झाला	झाला	दैलवाड़ा	१२५	१०००००)	खेती होने पर दो तिहाई आमदनी हो सकती है।
१०	रावत	सालिमसिंह	जगावत	सीसोदिया	अमायित	६०	६००००)	,, ,, ,,
११	राजा	छत्रसाल	झाला	झाला	गोगुण्डा	५०	५००००)	खेती होने पर यह आमदनी हो सकती है।
१२	रावत	फतहसिंह	सारंगदेवत	सीसोदिया	कानोड	५०	६५०००)	खेती होने पर आधो आमदनी हो सकती है।
१३	महाराजा	जोरावरसिंह	शक्तावत	सीसोदिया	भिण्डोर	६४	६४०००)	खेती होने पर यह आमदनी हो सकती है।
१४	ठाकुर	जैतसिंह	मैरतियाँ	राठौर	बिदनौर	८०	८००००)	,, ,, ,,
१५	रावत	सालिमसिंह	शक्तावत	सीसोदिया	बानसी	४०	४००००)	इन सरदारों की जागीर और उनका प्रभाव—सब कुछ नष्ट हो गया है।
१६	राव	सूरजमल	चौहान	चौहान	पारलौसी	४०	४००००)	
१७	रावत	केशरीसिंह	किसनावत	सीसोदिया	भैंसरोड	६०	६००००)	ऊपर के सरदारों के विपद में पड़ने पर इन दोनों को ये पद प्राप्त हुए।
१८	रावत	जवानसिंह	किसनावत	सीसोदिया	कुरावड	३५	३५०००)	

साठ वर्ष पहले भैंसरोड और कोरावड के सरदार दूसरी श्रेणी के सरदारों में माने जाते थे। इस लिए इन दोनों को छोड़ कर बाकी सरदारों की जागीरों की आमदनी—जैसी कि ऊपर लिखी गयी है—होती थी। उनसे छोटे सरदारों की आमदनी तीस लाख रुपये वार्षिक थी।

बोलचाल की भाषा में गोस्वामियों को गुसाईं कहा जाता है। मेवाड़ में बहुत से ऐसे गोसाईं लोग पाये जाते हैं, जो केवल पुजारी ही नहीं होते, बल्कि वे जीवन के दूसरे व्यवसाय भी करते हैं।

इन गोसाईं लोगों ने मेवाड़ में राजा की तरफ से सदा सम्मान प्राप्त किया है। बहुत से राजकर्मचारी वहाँ पर गोसाईं देखे गये हैं। वे लोग अपने मठों और आश्रमों में रहा करते हैं। जीवन-निर्वाह के लिए राज्य की तरफ से उनको भूमि दी जाती है। कुछ लोग भिक्षा माँगकर अपना जीवन-निर्वाह करते हैं। यहाँ के बहुत से ब्राह्मण और राजपूत इन गोसाईं लोगों के सम्प्रदाय में पहुँच जाते हैं और उनकी धार्मिक दीक्षा ले लेते हैं। गुर्जर लोगों में अधिक संख्या में गोसाईं लोग मिलते हैं। मेवाड़ के राजपरिवार में एकलिंग भगवान की पूजा होती है। उसके मन्दिर में राणा के जाने पर एक बड़ा उत्सव मनाया जाता है।

राजस्थान में जैन सम्प्रदायवालों की भी अच्छी संख्या है। बहुत से राजपूत इस सम्प्रदाय के लोगों का महत्व देते हैं। राजस्थान में एक लाख से अधिक परिवार जैनियों के है। धनिकों और सम्पत्तिशालियों के द्वारा इस सम्प्रदाय के लोगों को बहुत बड़ी आर्थिक सहायता मिलती है। जैन सम्प्रदाय के लोग जिन पर्वतों को पवित्र मानते हैं, उनमें आबू, पालियान × और गिरनार को वे लोग अधिक महत्व देते हैं। मेवाड़ के अनेक मंत्री और राजविभाग के अधिकांश कर्मचारी जैनी है। पंजाब से लेकर समुद्र के किनारे के सभी प्रसिद्ध नगरों में जैन सम्प्रदाय को माननेवाले व्यवसायी रहते हैं। उदयपुर और उसके दूसरे नगरों में प्रसिद्ध कर्मचारी इसी सम्प्रदाय के लोग हैं। ये लोग अहिंसा को अपना सबसे प्रधान धर्म मानते हैं। अनहिलवाड़ा पट्टन का राजा कुमारपाल जैन सम्प्रदाय को माननेवाला था। इस सम्प्रदाय के लोग बरसात के दिनों में अपना चलना-फिरना—जहाँ तक सम्भव होता है—बंद रखते हैं। उनको भय रहता है कि इन दिनों में कीड़े-मकोड़े अधिक संख्या में होते हैं और उनमें किसी के पैरों के नीचे दबकर मर जाने से हिंसा होती है। ये लोग बरसात के दिनों में प्रकाश के लिए लालटीन भी नहीं जलाते। क्योंकि उसके द्वारा बहुत से कीड़े और पत्तिगों की मृत्य होती है।

मेवाड़ में ब्राह्मणों, सन्यासियों और गुसाइयों की बहुत बड़ी संख्या है। पुराणों से मिलने वाली प्रेरणा के आधार पर राज्य में इन सब लोगों को सम्मान मिलता है और धर्म के नाम पर उन लोगों की सहायता की जाती है। मेवाड़ की वार्षिक आमदनी का पाँचवा भाग धार्मिक वृत्ति में खर्च किया जाता है। इस भावना से ब्राह्मणों, सन्यासियों और गुसाइयों को जो भूमि दी जाती है, वह उनसे फिर लौटाई नहीं जाती। उस भूमि पर पाने वाले का उसके पुत्रों और प्रपौत्रों तक बराबर अधिकार होता है। इस प्रकार दी गयी भूमि किसी भी दशा में लौटालना एक धार्मिक पाप होता है, जिसके लिए राजा को साठ हजार वर्ष नरक में रहना पड़ता है और उसके राज्य की उपजाऊ भूमि बञ्जर हो जाती है, इसका डर मेवाड़ के राणा और उसके परिवार को सदा रहता है।

इस प्रकार के अंधविश्वास मेवाड़ में एक दो नहीं बहुत हैं। राजस्थान के लिए यह कोई नयी बात नहीं है। योरप के धार्मिक जीवन में ऐसी बहुत-सी बातें गुजर चुकी हैं, जो इस अंध-विश्वासों के साथ पूर्ण रूप से मिलती-जुलती हैं। योरप में चर्च का पादरी मनुष्यों के अपराधों पर

× पालिथान जैनियों का एक मशहूर तीर्थस्थान है। पाली एक जाति का नाम है। शाकद्वीप से जो विभिन्न जातियाँ भारत में आक्रमण करने के लिए आयी थीं, उनमें एक पाली जाति भी थी। उसी पाली जाति से इस स्थान का नाम पालिथान पड़ा है।

नियंत्रण रखने का दावा करता था। इसके लिए अपराधियों से उसे लम्बी रकमें मिलती थीं। पादरी अपराधी की हैसियत के अनुसार सम्पत्ति लेकर दण्ड से मुक्ति का परवाना दिया करता था। जो ऐसा न करते थे, उनको मरने के बाद नरक की यातना भोगनी पड़ती थी। चर्च के जो अधिकारी ऐसा करते थे, वे पोप के नाम से पुकारे जाते थे। बहुत समय तक योरप में पोपों का आतंक काम कर चुका है और आज के योरप में उस प्रकार के अंधविश्वास मिट गये हैं। भारतवर्ष में फैले हुए इस धार्मिक भय को देखकर और जानकर योरप के पोप लोगों के द्वारा फैले हुए आतंक की सहसा याद आती है। योरप के देशों में जब इस प्रकार के विश्वास फैले हुए थे, उस समय का इतिहासकारों ने काला युग नाम दिया है। इस देश में ऐसे समय को कलियुग कहा जाता है। सही बातों का ज्ञान न होने पर मनुष्य मिथ्या बातों पर विश्वास कर लेता है। वह जान बूझकर ऐसा नहीं करता। अपनी समझ में वह सही होता है। उसके विरुद्ध वह कुछ सुनना और जानना नहीं चाहता। इसी को अंधविश्वास कहा जाता है। भारत की इस प्रकार की बहुत-सी बातें किसी समय योरप में गुजर चुकी है। मिश्र के निवासियों और ज्यूइश लोगों की बहुत-सी बातें भी इस प्रकार की थीं। उनके धार्मिक अन्धविश्वासों के सम्बन्ध में बहुत-सी बातें विद्वानों के द्वारा लिखी जा-चुकी हैं। राजपूतों के बपौता का अधिकार मिश्र के निवासियों में बराबर मिलता है।

मध्यकालीन योरप के धर्माधिकारियों का वहाँ के देशों में वही स्थान था, जो राजस्थान के राज्यों में उनके सरदारों का है। लेकिन जब उनको मिली हुई सुविधायें धार्मिक वातावरण में आ जाती हैं तो उन पर न तो राजा का अधिकार रहता है और न उन पर कोई प्रतिबंध काम करता है। यद्यपि राणा के वंश की एक दो घटनायें ऐसी भी है जो इसके विपरीत अपना अस्तित्व प्रकट करती हैं।

मेवाड़ के सभी धार्मिक कार्यों में ब्राह्मणों का एक मात्र अधिकार है। मृत्यु के बाद अंतिम संस्कारों मे वही लोग काम करते हैं और इसके लिए वे अनिश्चित सम्पत्ति प्राप्त करते हैं। सन् १८१८ ईसवी में मेवाड़ की पटरानी ने राजकुमार अमर के मर जाने पर अंतिम संस्कार के अवसर पर पन्द्रह बीघा भूमि दान में दी थी। ऐसे अवसरों पर ब्राह्मण लोग प्राय: धमकी देकर और लोगों को भयभीत करके भी धन वसूल करते हैं। लोगों को ब्राह्मण की अप्रसन्नता का बड़ा भय रहता है और किसी भी दशा में वे लोग उसको अप्रसन्न होने का मौका नहीं देते। ग्रामीण मन्दिरों और उनके पुजारियों को वहाँ के निवासी नगरों की अपेक्षा अधिक सम्मान देते हैं। पुजारी का पूरा अधिकार मंदिरों में होता है, वह एकलिंग भगवान की पूजा करता है और इसके बदले में वह सर्व साधारण से दान-दक्षिणा पाता है। आज की उन्नीसवीं शताब्दी में भी यहाँ की प्रजा इन पुजारियों से उतनी ही भयभीत रहती है, जितनी कि वह अपने भगवान से रह सकती है। गुरू, पुरोहितों, पुजारियों और ज्योतिषियों पर लोग आँखें बन्द करके विश्वास करते हैं। ये सब लोग ब्राह्मण ही होते है और वे सभी राज्य से बिना किसी कर अथवा नियंत्रण के भूमि पाते है। इसके सिवा जन्म मृत्यु, शादी, विवाह, भाग्य, दुर्भाग्य, कथा भागवत आदि सैकड़ों-सहस्त्रों अवसरों पर उनको दान-दक्षिणा मिलता है। राजा से लेकर प्रजा तक सभी श्रेणी के लोग उनको समय-समय पर दान और दक्षिणा देकर अपने भविष्य जीवन का निर्माण करते हैं। किसान लोग अपनी पैदावार का चालीसवाँ भाग अपने पुरोहित को दान में दे देते हैं और प्रत्येक व्यवसायी को अपनी आय का एक निश्चित भाग उसे देना पड़ता है। प्राचीनकाल से मेवाड़ में ब्राह्मणों, सन्यासियों और गुसाई लोगों का सम्मान चला आ रहा है। राणा के पूर्वजों की बल्लभी में राजधानी थी और वे जैन धर्मावलम्बी थे। यही कारण था कि वहाँ पर जैनियों को सभी प्रकार का सम्मान प्राप्त था। यहाँ पर साम्प्रदा-

यिक बातों को विस्तार देना हमारा उद्देश्य नहीं है। आवश्यकता के अनुसार संक्षेप में यहाँ उन पर प्रकाश डालना पड़ा है।

भारत में बौद्ध, वैष्णव, शैव और शाक्त सम्प्रदायों का प्रचार है। इन सम्प्रदायों में बहुत दिनों तक झगड़ा चलता रहा है। परन्तु अब वह बहुत कुछ खतम हो गया है। इस प्रकार झगड़े के दिनों में बहुत से जैन धर्मावलम्बी भागकर मेवाड़ आ गये थे। इस सम्प्रदाय को गहिलोत वंश के आदि पुरुषों से प्रोत्साहन मिला था। पार्श्वनाथ का स्तम्भ—जो चित्तौर में बना हुआ है—इस बात का प्रमाण है। राजस्थान के अनेक राज्य जैन सम्प्रदाय के पोषक रहे हैं। यहाँ के राजाओं में वैष्णव धर्म का भी प्रचार है। मेवाड़ के नाथद्वारा में जो प्रसिद्ध मन्दिर बना हुआ है, उसमें श्री कृष्ण की मूर्ति है। औरङ्गजेब से सताये जाने पर नाथद्वारा के पुजारी श्रीकृष्ण की मूर्ति को लेकर भागे थे और उस समय राणा ने उदयपुर में उनको आश्रय दिया था। उदयपुर से ग्यारह कोस उत्तर-पूर्व की तरफ जो मन्दिर बना हुआ है, उसमें वैष्णव पुजारियों ने कृष्ण की मूर्ति को रखा। इस मंदिर की सीढ़ियाँ बड़ी मजबूत संगमरमर की बनी हुई हैं। उनके बीच बूनस नदी बहती है। नाथद्वारा के मन्दिर में श्री कृष्ण की मूर्ति के सिवा और कोई मूर्ति नहीं थी। उस मन्दिर की ख्याति श्रीकृष्ण के नाम से ही है।

अकबर, जहाँगीर और शाहजहाँ ने हिन्दू विचारों को प्रधानता दी थी। जहाँगीर का जन्म राजपूत महिला से हुआ था। इसीलिए उसके विचारों में हिन्दू संस्कृति का समन्वय था। शाहजहाँ ने शैव धर्म की दीक्षा ली थी। इसके फलस्वरूप वैष्णव लोगों पर अत्याचार किये गये। ये लोग उदयपुर से श्रीकृष्ण की मूर्ति को लेकर चले गये थे और भारत के अनेक स्थानों में घूमते रहे। इन दिनों में शैव लोगों ने शाहजहाँ को दीक्षा देकर जब अपना प्रभुत्व कायम किया, उस समय उनके अत्याचारों से पीड़ित होकर कृष्ण की मूर्ति के साथ फिर भागे और अंत में उन्हें फिर उदयपुर में ही आश्रय मिला। परंतु वहाँ पर वे लोग अधिक समय तक ठहर न सके। उन दिनों में औरंगजेब के अत्याचार आरम्भ हो गये थे। उससे श्रीकृष्ण की मूर्ति की रक्षा करने के लिए राणा राजसिंह ने औरंगजेब के साथ युद्ध किया। उस समय अगणित राजपूतों ने अपने जीवन की आहुतियाँ दीं। वैष्णव पुजारी अपनी मूर्ति के साथ कोटा होकर रामपुर की तरफ चले गये और मेवाड़ में पहुँच गये। राणा का इरादा कृष्ण की मूर्ति को उदयपुर ले आने का था। लेकिन रास्ते की एक घटना से उसमें बाधा पड़ी। मेवाड़ में शियोर नामक एक गाँव है। वहाँ से होकर एक रथ पर बैठे हुए वैष्णव पुजारी श्रीकृष्ण को मूर्ति को ला रहे थे। पृथ्वी में एकाएक रथ का पहिया ऐसा धँस गया कि वह बड़ी देर तक निकल न सका। उसी समय एक ज्योतिषी ने आकर कहा : "भगवान श्रीकृष्ण का इरादा यहीं पर रहने का है। इसीलिए रथ का पहिया ऊपर को उचक नहीं रहा है।

ज्योतिषी की इस बात को सुनकर राणा ने वहीं पर मंदिर बनवाने की आज्ञा दी। शियोर ग्राम मेवाड़-राज्य के दैलवाड़ा सरदार की जागीर में था। वह सरदार ज्योतिषी की बात को सुनकर वहाँ आया और मंदिर बनने का कार्य आरम्भ हो गया। उस मंदिर में उस गाँव के सिवा और भी बहुत-सी भूमि लगा दी गयी। राणा ने इसे स्वीकार कर लिया। मंदिर के बन जाने पर श्रीकृष्ण की मूर्ति उसमें रखी गयी। उसी समय से वह ग्राम नाथद्वारा के नाम से प्रसिद्ध हुआ और थोड़े ही दिनों में वह ग्राम एक विशाल नगर बन गया।

नाथद्वारे के पूर्व की तरफ पर्वत दीवार का काम करते हैं और उत्तर-पश्चिम की तरफ बूनस नदी प्रवाहित होती है। पहाड़ और नदी के बीच में श्रीकृष्ण का यह मंदिर बना हुआ है। राजपूतों का विश्वास है कि यहाँ पर आकर श्रीकृष्ण के दर्शन करने पर मनुष्य के पापों का क्षयहो

जाता है और मरने पर उसको स्वर्ग मिलना है तथा पापों से उसकी मुक्ति हो जाती है।

मेवाड़ के पर्वों और त्योहारों का बहुत महत्व है। इनका आरम्भ बसंत काल से होता है। राजस्थान के इस भाग में जो पर्व और त्योहार मनाये जाते हैं, संक्षेप में उन पर हम यहाँ प्रकाश डालने की चेष्टा करते हैं। वसंत नये वर्ष को नवजीवन देता है। इस देश में वर्ष के बाकी दिनों का उतना महत्व नहीं है, जितना बसंत का है।

बसन्त पञ्चमी—माघ शुक्ल पञ्चमी को यह त्योहार मनाया जाता है। इसका महत्व इस देश-भर में है। इस त्योहार में राजपूत अनेक प्रकार की खुशियाँ मनाते है। नाच और गाने होते हैं। लोग मादक द्रव्यों का प्रयोग करते हैं। छोटे बड़े सब एक हो जाते हैं। किसी प्रकार का भेद नहीं रहता। नाच और गानों में अश्लीलता का भी प्रयोग होता है।

भानुसप्तमी—बसन्तपञ्चमी के एक दिन बाद यह त्योहार मनाया जाता है। लोगों का विश्वास है कि इसी दिन सूर्य भगवान का जन्म हुआ है। सूर्य वंशी राजपूत इस त्योहार को अधिक महत्व देते हैं। इस दिन राणा अपने सरदारों और सामन्तों के साथ चोंगा नाम के स्थान में जाता है। वहाँ पर सूर्य भगवान की पूजा होती है। जयपुर में इस त्योहार को अधिक महानता दी जाती है। कुशवाहा राजपूत बड़ी धूमधाम से इस त्योहार को मनाते हैं। वहाँ का राजा सूर्य नारायण के मन्दिर में जाता है। आठ घोड़ों के रथ में वे लोग अपने देवता की मूर्ति को रखकर बाहर घुमाते है। कहीं-कहीं यह रथ मनुष्यों के द्वारा खींचा जाता है। उसमें सभी लोग शामिल होते हैं।

शिवरात्रि—फागुन की कृष्ण चतुर्दशी को इस त्योहार का उत्सव होता है। राणा के साथ-साथ सभी लोग इसको महत्व देते हैं। लोगों की धारणा है कि शिवरात्रि का व्रत रहने से स्वर्ग मिलता है। राणा स्वयं शिव की पूजा करता है। शिव के मानने वाले इस दिन किसी प्रकार का काम नहीं करते और पूरी रात जागकर लोग महादेव का भजन करते है।

अहेरिया—मेवाड़ के राजपूतों में और विशेषकर राणा के वंश में यह उत्सव बड़ी धूमधाम से मनाया जाता है। इसका सम्बन्ध उनके क्षात्र धर्म के साथ है। एक दिन पहले राज्य के सरदारों और प्रमुख कर्मचारियों को राणा से हरे रंग का पहनने के लिए कपड़ा मिलता है। ज्योतिषी अहेरिया उत्सव का समय निर्धारित करता है। उसके अनुसार राणा अपने सरदारों और मन्त्रियों के साथ बाराह का शिकार करने के लिए नगर के बाहर जाता है। जो शूकर मारा जाता है, वह अभीष्ट देवता के सामने लाया जाता है। वहाँ पर उसका बलिदान होता है।

इस त्योहार में राणा अपने भाग्य की परीक्षा करता है। शिकार की सफलता में वर्ष—जो शुरू होने वाला है—मंगलमय माना जाता है। असफलता में उसके विरुद्ध परिस्थितियों का अनुमान किया जाता है। राजपूतों का विश्वास है कि इस शिकार में सफलता न मिलने से राणा को आगामी वर्ष में भयानक विपदाओं का सामना करना पड़ता है। इस शिकार के समय राणा का रसोइया भी साथ जाता है। मारे गये बाराह को पकाकर र सोइया भोजन तैयार करता है और राणा सबी के साथ बैठकर उसका भोजन करता है।

फागोत्सव—यह त्योहार फागुन के महीने में मनाया जाता है। सभी श्रेणी के लोग इस त्योहार को मनाते हैं। फाग गाते हैं, एक दूसरे के अबीर लगाते हैं और रंग खेलते हैं। यह त्योहार बिना किसी भेद-भाव के मनाया जाता है। राणा अन्तःपुर में जाकर रानियों और उनकी सहेलियों के साथ रंग खेलता है। इस अवसर पर सभी प्रकार के बंधन टूट जाते हैं। सरदार लोग अपने घोड़ों पर चढ़ कर रंग खेलने निकलते हैं। इस त्योहार में एक-दूसरे पर रंग फेंका जाता है।

त्योहार का दिन समाप्त होने पर एक ऊँचे मकान की छत से नगाड़ा बजाया जाता है। उसको सुनते ही सरदार और सामन्त अपनी टोलियों के साथ राणा के पास जाते हैं। राणा उन सब को लेकर एक निश्चित स्थान पर पहुँचता है। वहाँ पर नृत्य और गान की व्यवस्था होती है। प्रजा बड़ी संख्या में पहुँचकर उस उत्सव को देखती है।

शीतलाषष्ठी—चैत महीने के शुक्लपक्ष में छठे दिन यह उत्सव होता है। राजपूतों का विश्वास है कि शीतला देवी की पूजा करने से बच्चों की रक्षा होती है। इस लिए इस दिन स्त्रियाँ शीतला देवी के मंदिर में जाती हैं। यह मंदिर उदयपुर के पास एक पहाड़ी शिखर पर बना हुआ है। वहाँ जाकर राजपूत स्त्रियाँ देवी की पूजा करती हैं। वहाँ से लौटने पर उनके घरों में तरह-तरह की खुशियाँ मनायी जाती हैं।

फूलडोल—बरसात के आरम्भ में इस त्योहार का उत्सव होता है। इस त्योहार की शुरुआत तलवार की पूजा से होती है। यह पूजा प्रत्येक राजपूत के घर से लेकर राणा के महल तक होती है। इस त्योहार को राजपूत लोग बड़े उत्साह के साथ मनाते हैं और अपनी तलवारों की पूजा करते हैं।

रामनवमी—लोगों की धारणा है कि भगवान रामचन्द्र ने इसी दिन जन्म लिया था। इसीलिए इसका नाम रामनवमी पड़ा है। राम के वंशज इस दिन को बहुत पवित्र मानते हैं। रामनवमी के पहले दिन अशोकाष्टमी का त्योहार होता है। उसमें राणा अपने सरदारों और सामन्तों के साथ नगर के बाहर जाकर भगवती की उपासना करता है।

रामनवमी के दिन हाथी, घोड़ों और अस्त्र-शस्त्रों की पूजा होती है। राणा बड़ी धूम-धाम के साथ चौगान महल में जाता है। वहाँ पर अनेक प्रकार के उल्लास मनाये जाने की व्यवस्था होती है। हिन्दू धर्म-ग्रन्थों में लिखा है कि इस दिन रामचन्द्र की पूजा करने से बहुत पुण्य होता है और उपवास तथा जागरण करने से स्वर्ग की प्राप्ति होती है।

नव गौरी पूजा—हिन्दू धर्म ग्रन्थों के अनुसार, बैसाख का महीना बहुत पवित्र होता है। इस महीने में राजपूत लोग नवगौरी पूजा का त्योहार मनाते हैं। इस दिन मेवाड़ के सोलह प्रधान सरदार अपने घोड़ों पर सवार होकर राणा के साथ पेशोला के करीब एक स्थान पर जाते हैं। वहाँ पर भगवती गौरी की पूजा होती है।

सावित्री व्रत और रम्भा तृतीया—ये दो त्योहार हैं। जेठ बदी चतुर्दशी को सावित्री व्रत मनाया जाता है। यह त्योहार स्त्रियों से सम्बन्ध रखता है। स्त्रियाँ उपवास करती हैं और पतिव्रता सावित्री की कथा सुनती हैं। उन्हें बताया गया है कि इस दिन उपवास करने से और सावित्री की कथा सुनने से कोई भी स्त्री विधवा नहीं होती। इसीलिए किसी बट के पास जा कर विधि-पूर्वक स्त्रियाँ सावित्री की पूजा करती हैं, उपवास रहती हैं और कथा सुनती हैं।

जेठ सुदी तीज को रम्भा तृतीया का त्योहार मनाया जाता है। इस दिन स्त्रियाँ व्रत रहती हैं। रम्भा देवी की पूजा करती हैं। स्त्रियों को यह विश्वास कराया गया है कि रम्भा देवी की आराधना करने से धन की प्राप्ति होती है।

अरण्यषष्ठी—जेठ महीने के शुक्लपक्ष में भगवती षष्ठी की जो पूजा होती है, उसे अरण्य-षष्ठी कहते हैं। विवाहित स्त्रियाँ इस पर्व को विशेष महत्व देती हैं और बट अथवा पीपल की जड़ में जल देकर देवी की आराधना करती हैं। स्त्री-समाज में इस प्रकार का विश्वास है कि अरण्य-षष्ठी की पूजा करने से स्त्रियों को पुत्र लाभ होता है।

पार्वती तृतीया—सावन सुदी तृतीया का व्रत रखा जाता है। राजपूत लोग इस व्रत में

बहुत विश्वास करते हैं। उनकी धारणा है कि पार्वती देवी की पूजा करने से मनोकामना पूरी होती है। इसी विश्वास पर राजपूत स्त्रियाँ पार्वती का व्रत रखती हैं। बहुत से अच्छे काम इस दिन राजपूत इसलिए करते हैं कि वे इस दिनको बहुत पवित्र मानते हैं। उनका यह भी कहना है कि इस दिन जो काम किया जाता है निश्चित रूप से उसमें सफलता मिलती है।

नागपञ्चमी—सावन सुदी पञ्चमी को यह त्योहार मनाया जाता है। बरसात के दिनों में साँपों का भय बढ़ जाता है। नागपंचमी का त्योहार मनाने से सांपों का डर नहीं रहता, लोगों का ऐसा विश्वास है।

राखी पूर्णिमा—सावन की पूर्णिमा को मेवाड़ के राजपूत इस त्योहार को मनाते हैं। जन साधारण के विश्वास के अनुसार राखी बाँधने का अधिकार केवल स्त्रियों को है। राजपूत स्त्रियाँ और लड़कियां अपने भाइयों के हाथों में राखी बांधती हैं अथवा बाँधने के लिए अपने भाइयों के पास भेजती हैं। राखी बँधवाने अथवा पाने के बाद राजपूत अपनी बहनों को रुपये-पैसे अथवा अन्य कोई बहुमूल्य वस्त्र देकर सम्मानित करते हैं। मेवाड़ में राखी बन्धन को बहुत पवित्र माना जाता है।

जन्माष्टमी—भादों बदी अष्टमी के दिन यह त्योहार होता है। हिन्दुओं की धारणा के अनुसार इसी दिन श्रीकृष्ण का जन्म हुआ था। इसीलिए समस्त हिन्दू जन्माष्टमी के त्योहार को मानते हैं। भादों बदी तीज को राणा अपने सरदारों और सामन्तों के साथ चौगान महल को चला जाता है। उस दिन से लेकर अष्टमी तक वहाँ पर श्रीकृष्ण की पूजा होती है। अष्टमी के दिन प्रात:काल से इस त्योहार की धूम-धाम शुरू हो जाती है। बाजे बजते हैं और अनेक तरीकों से खुशी मनायी जाती है।

खड्गपूजा—यह उत्सव राजपूतों के युद्ध-देवता की पूजा से सम्बन्ध रखता है। कुवार सुदी प्रतिपदा को यह त्योहार मनाया जाता है। उपवास करके राणा खड्ग पूजा में लवलीन होता है। गहिलोत वंश की प्रसिद्ध तलवार इसी समय शस्त्रागार से बाहर निकाली जाती है और फिर उसकी पूजा होती है। उसके बाद राणा के द्वारा वह खड्ग कृष्णपौर नामक प्रसिद्ध द्वार पर लाया जाता है। वहाँ पर अष्टभुजा देवी का मन्दिर है। वह खड्ग वहाँ पर देवी के सामने रखा जाता है। मन्दिर के सामने एक भैंसे की बलि दी जाती है और फिर नियमित रूप से खड्ग की पूजा होती है। इस त्योहार का सिलसिला लगातार ग्यारह दिनों तक चलता है।

गणेशपूजा—इस त्योहार का महत्व सम्पूर्ण भारतवर्ष में है। प्रत्येक हिन्दू गणेश के नाम पर श्रद्धा रखता है। हिन्दुओं के सभी अच्छे कार्य गणेश की पूजा के साथ आरम्भ होते हैं। शूर-वीर राजपूत गणेश के सामने मस्तक झुकाते हैं। व्यवसायी लोग अपनी सफलता के लिए गणेश पर अधिक विश्वास करते हैं। राजस्थान में प्रत्येक राजपूत घर में गणेश की मूर्ति मिलती है। गणेश का वाहन चूहा माना जाता है। गणेश की पूजा करने वाले चूहे की भी पूजा करते हैं। इन त्योहारों के सम्बन्ध में अनेक प्रकार के विश्वास हिन्दू समाज में पाये जाते हैं। इन विश्वासों को राजपूतों में और भी अधिक महत्व दिया गया है। ऊपर खड्ग पूजा का उल्लेख हो चुका है। मेवाड़ के राजपूतों का विश्वास है कि चतुर्भुजा देवी ने विश्वकर्मा से उस खड्ग को लेकर बप्पा रावल को दिया था। उस समय से वह खड्ग बप्पा रावल के वंश के अधिकार में है।

लक्ष्मी पूजा—कार्तिक सुदी पूर्णिमा को राजपूत लक्ष्मी की पूजा करते हैं। लक्ष्मी पूजा का त्योहार साधारणतया वैश्य लोगों से सम्बन्ध रखता है।

दीपावली—कार्तिक महीने की अमावस्या को दीपावली का त्योहार ममाया जाता है।

इस दिन रात को पूरे देश में चिराग जलाकर प्रकाश किया जाता है। एक साधारण गाँव से लेकर देश के बड़े-बड़े नगरों तक—सर्वत्र दीपावली का त्योहार मनाया जाता दे। मेवाड़ में सभी लोग मंदिर में जाकर लक्ष्मी की पूजा करते हैं। दीपावली के त्योहार में दो बातें प्रमुख हैं। एक तो दीपक जलाकर प्रकाश करना और दूसरे जुआ खेलना। ये दोनों बातें इस देश में सर्वत्र पायी जाती हैं। राजपूत भी जुआ खेलते हैं। जन-साधारण का और राजपूतों का भी यह विश्वास है कि दीपावली के दिन जुआ की विजय, पूरे वर्ष की विजय का प्रमाण देती है।

दीपावली के बाद ही भ्रातृ द्वितीया का त्योहार होता है। इसको बोलचाल की भाषा में भइयाद्वीज कहते हैं। कहा जाता है कि सूर्य की पुत्री यमुना ने इसी दिन अपने भाई यम को बुलाकर अपने यहाँ भोजन कराया था। इसी आधार पर इस त्योहार की सृष्टि हुई। हिन्दू-ग्रन्थों में लिखा है कि जो स्त्री कार्तिक सुदी द्वीज को सम्मानपूर्वक अपने बन्धुओं को भोजन कराती है, वह कभी विधवा नहीं होती और उसका भाई भी दीर्घायु होता है।

अन्नकूट—राजस्थान में श्रीकृष्ण की पूजा के लिए जितने त्योहार मनाये जाते हैं, उनमें अन्नकूट अधिक महत्व रखता है। नाथद्वारा में अन्नकूट का उत्सव बड़ी धूम-धाम के साथ मनाया जाता है। आज से पहले जब राजपूत लोग उन्नत अवस्था में थे, यह त्योहार अधिक उत्साह के साथ मनाया जाता था। श्रीकृष्ण की पूजा में अन्नकूट के दिन राजा लोग कीमती सोना, चाँदी और रत्नों से जड़े हुए अलंकार दान में देते हैं। इस प्रकार के दान के लिए राजस्थान सदा प्रसन्न रहा है। ऐसे अवसरों पर जो सम्पत्ति राजस्थान के मंदिरों को दान में दी जाती थी, उसका अनुमान केवल इस एक उदाहरण से हो सकता है कि सूरत की एक विधवा स्त्री ने सत्तर हजार रुपये की सम्पत्ति ठाकुरजी के मंदिर के नाम दान में दी थी।

उन्तीसवाँ परिच्छेद

राजपूतों का नैतिक जीवन— मनुष्य के जीवन में धर्म का प्रभाव-राजपूतों का पतन हुआ है-स्त्रियों का सम्मान-स्त्रियों के सम्बन्ध में मनु के आदेश-राजपूत की बात का महत्व-राजपूत बालायें-वे युद्ध के लिए संतान उत्पन्न करती है-माता का प्रोत्साहन-राजपूत स्त्री का शौर्य प्रेम-स्त्री का परामर्श-विवाह के बाद चिता की होली!

राष्ट्र के आचरण और व्यवहार उसके इतिहास में महत्वपूर्ण अंग की पूर्ति करते हैं। लेकिन उनका सही ज्ञान प्राप्त करने के लिए बहुत परिश्रम और खोज की आवश्यकता होती है। राजपूतों के आचरणों का वास्तविक चित्र अंकित करने के लिए असाधारण अध्यवसाय और साधन चाहिए, जिससे उनके सिद्धान्तों और नैतिक आचरणों को स्पष्ट रूप में समझा जा सके। राजपूतों के जीवन के साथ सिद्धान्तों का अटूट सम्बन्ध है, जिनका वे युद्ध के समय अपने शत्रुओं के साथ भी करते हैं और युद्ध समाप्त हो जाने के बाद उन सिद्धान्तों और नैतिक व्यवहारों का समर्थन करते हैं। लड़ाकू राजपूतों में उनके पूर्वजों के गुणों का जितना सामञ्जस्य मिलता है, उतना अन्यत्र न मिलेगा। बाप-दादों की चाल को छोड़ देने वालों से वे घृणा करते हैं और उनको असम्मान पूर्ण

नेत्रों से देखते हैं। नीति और धर्म का सिद्धान्त संसार के सभी महापुरुषों की दृष्टि में एक रहा है। मनु, मोहम्मद और ईसा ने एक ही प्रकार के नैतिक और धार्मिक सिद्धान्तों का उपदेश किया है, उनका लक्ष्य एक ही था और वे मनुष्य को जीवन के एक ही मार्ग पर ले जाने के लिए अपने सम्पूर्ण जीवन में प्रयत्नशील रहे। उनके समर्थकों ने अपना-अपना प्रभुत्व कायम करने के लिए नीति और धर्म के नये-नये रास्तों का निर्माण किया। लेकिन उनका मूल एक दूसरे का विरोधी नहीं है, मूल व्यवस्था उन सब की एक है। समय और स्थानों की बहुत दूरी पर जन्म लेकर भी उन सिद्धान्तों ने एक ही सत्य का प्रचार किया। हम सभी इस बात को जानते हैं कि हजरत मूसा के सिद्धान्तों का आधार लेकर कुरान का जन्म हुआ और मनु के द्वारा जो मनुस्मृति की रचना हुई, उसमें यहूदी विश्वासों की आभा थी। एक दूसरे के विरोधी आवरणों को यदि हटा दिया जाय तो यह मानना पड़ेगा कि धर्म के मूल सिद्धान्तों में कहीं किसी प्रकार का असादृश्य नहीं है। उन महापुरुषों ने एक ही तथ्य हम सब के सामने उपस्थित किया है। उस सत्य में मनुष्य को नैतिक प्रकाश मिलता है। उसके द्वारा मनुष्य-समाज विभाजित नहीं होता, जातीयता की उत्पत्ति नहीं होती और एक मनुष्य का दूसरे मनुष्य के साथ कोई विरोधी भाव नहीं पैदा होता। जीवन के नियमों और व्यवहारों की असमानता ने धर्म के अलग-अलग अखाड़े पैदा कर दिये हैं और उन्हीं के आधार पर प्राचीन काल से मनुष्य के संगठन एक दूसरे से अलग दिखायी देते हैं। मनुष्यों के नियमों और व्यवहारों में भी बहुत से अंतर पैदा हो गये हैं। इस प्रकार के अंतर दूरवर्ती देशों में ही नहीं हैं, बल्कि एक देश में और पड़ोसी प्रान्तों में भी उनके अलग-अलग रूप हैं। राजस्थान में कई एक राज्य हैं, परन्तु जीवन के नियमों, व्यवहारों और सिद्धान्तों में वे एक नहीं हैं। मेवाड़ और मारवाड़ राज्य एक दूसरे के पड़ोसी हैं। परन्तु मेवाड़ के सीसोदिया वंश के साथ मारवाड़ के राठौरों की समता नहीं हो सकती। उनके नियमों और व्यवहारों में विशाल अंतर है। हम यहाँ पर उनके जीवन के वही विवरण देना चाहते हैं, जिनको इतिहास हमारे सामने उपस्थित करता है और जिनके सत्य और सही होने में किसी को सन्देह नहीं हो सकता। उन्हीं के आधार पर राजपूतों के चरित्र का निर्माण हुआ है। उनके विचारों, विश्वासों और सामाजिक नियमों को ठीक-ठीक समझने के लिए उनके पूर्वजों के उन चरित्रों और विश्वासों की तहों को उलटना पड़ेगा, जिनसे उनके व्यक्तिगत और सार्वजनिक जीवन का स्रोत प्रवाहित हुआ है। प्रसिद्ध विचारक गोगेट के लिखने के अनुसार, मनुष्य के व्यवहार और वर्ताव उसकी उन्नति और अवनति का परिचय देते हैं। जो जातियाँ विज्ञान और कला में उन्नति करती हैं, उनके आचरण निश्चित रूप से श्रेष्ठ होते हैं। इस सिद्धान्त के आधार पर यदि हम राजपूतों के अतीत और वर्तमान जीवन की आलोचना करें तो हमें यह स्वीकार करना पड़ेगा कि राजपूतों का पतन हुआ है। उनके पूर्वजों ने उनके प्राचीन पुरुषों को जीवन की फिलॉसॉफी में हम उतना ही उन्नत पाते हैं, जितना कि यूनान वालों को, जिनके शिष्यों में प्लेटो, थेलीज और पैथागोरस के नाम आज तक प्रसिद्ध हैं। उनके वे प्रसिद्ध ज्योतिषी आज कहाँ हैं, जिनके कार्यों ने योरप को आश्चर्य चकित किया था और उनके वे श्रेष्ठ शिल्पी अब कहाँ हैं, जिनकी संसार ने किसी समय मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की थी? उनका वह संगीत कहाँ हैं जिसके स्वरों ने विश्व को मोहित किया था और जिसको सुनकर रोता हुआ मनुष्य मुस्कराने लगता था!

प्राचीन काल में उनके पूर्वजों के जीवन में बहुत-सी अच्छी बातों की सृष्टि हुई थी जिनके फलस्वरूप राजपूत लोग बहुत समय तक सजीव और शक्तिशाली बने रहे। यह सभी स्वीकार करते कि राजस्थान में स्त्रियों का राजपूतों ने जो सम्मान दिया है, वह किसी दूसरे देश में नहीं मिलता। संसार की किसी भी जाति ने स्त्रियों का उतना आदर नहीं किया, जितना कि राजपूतों ने किया है। उनके

धर्म-ग्रन्थों में स्त्रियों की जो प्रशंसा की गयी है, उससे मालूम होता है कि इस जाति ने किसी समय सभ्यता में बहुत उन्नति की थी। राजपूतों में स्त्री का स्थान सदा ऊँचा रहा है। यही देश है जहाँ पर स्त्री को लक्ष्मी और देवी का रूप माना गया है। यहाँ के लोगों का विश्वास है कि स्त्री के द्वारा पुरुष को सुख और शाँति मिलती है। मनुष्य के जीवन में उसके घर का महत्वपूर्ण स्थान है और जो घर इतना सम्मान पूर्ण माना जाता है, उसकी रचना गृहिणी के द्वारा होती है। गृहिणी स्त्री को कहते हैं और वह अपने घर की अधिकारिणी होती है। यहाँ के धार्मिक ग्रन्थों में लिखा गया है कि वह घर, घर नहीं कहलाता, जिसमें स्त्री नहीं होती। उनमें यह भी लिखा गया है कि जिस पुरुष के स्त्री नहीं है, उसको जंगल में रहना चाहिए। संसार के सभी रत्नों में स्त्री को एक श्रेष्ठ रत्न माना गया है। साथ ही जीवन में स्त्री को प्रधानता दी गयी है। यहाँ के धार्मिक ग्रन्थों में बताया गया है कि स्त्री के साथ विद्रोह करके कोई भी मनुष्य अपने जीवन को कल्याण के रास्ते पर नहीं ले जा सकता। स्त्री के विरोधी को व्यवसाय में सफलता नहीं मिलती, किसी कार्य में उसको शांति नहीं मिलती और तप करके वह मोक्ष नहीं प्राप्त कर सकता। सृष्टि की रचना में प्रकृति ने स्त्री को श्रेष्ठ दी है। उसी के आधार पर यहाँ के शास्त्रकारों ने इस बात को स्वीकार किया है कि झोपड़ियों से लेकर राज महलों तक स्त्री ही सुख और शांति की देने वाली है। राजपूत परिवारों में इन सिद्धान्तों का पालन होता है और प्रत्येक राजपूत अपने जीवन में इनको स्थान देता है।

राजपूत लोग स्त्रियों के साथ जिस प्रकार का व्यवहार करते हैं। उसके सम्बन्ध में हम यहाँ पर कुछ और भी लिखना चाहते हैं। प्राचीन जर्मनी और स्कैण्डीनेविया के लोगों की तरह राजपूत अपने प्रत्येक कार्य में स्त्रियों से मरामर्श करते हैं और उसके जीवन की अनेक बातों में वे लोग सफलता के लिए शकुन मानते हैं। राजपूत स्त्रियों को बहुत सम्मान देते हैं इसका सब से बड़ा प्रमाण यह है कि वे लोग स्त्रियों के नाम के साथ देवी शब्द का प्रयोग करते हैं। प्राचीन काल में यहूदी लोग स्त्रिओं को घरों में बन्द करके नहीं रखते थे। राजस्थान में साधारण और निम्न श्रेणी की लड़कियाँ घरों के बाहर कुओं पर पानी भरने जाती हैं और वहाँ पर स्वतंत्रता के साथ किसी भी पुरुष से वे बातें करती हैं। ऐसे अवसरों पर कभी-कभी वे अपने अपने विवाहों का निर्णय भी कर लेती हैं। बहुत कुछ यही अवस्था प्राचीन काल में यहूदी लड़कियों की भी थी। वे घरों के बाहर पानी भरने जाती थीं और वहाँ पर उनके विवाहों का निश्चय भी हो जाता था। इसके बाद मिश्र देश में घरों के भीतर बंद रहने की प्रथा का प्राचार हुआ। राजपूत स्त्रियों का जीवन घरों के भीतर बहुत-कुछ सीमित रहता है, परन्तु उनके जीवन में दासता नहीं है।

राजपूत अपनी स्त्रियों का सम्मान करते हैं और राजपूत स्त्रियाँ अपने पति की आज्ञाओं का का पालन करती हैं। दाम्पत्य जीवन को सुखमय बनाने का यह सबसे अच्छा साधन है। स्त्रियाँ अपने पति और उसके परिवार के प्रति सदा शिष्ट और सुशील साबित हों, इस उद्देश्य की रक्षा के लिए राजपूतों में लड़कियों के विवाह ऊँचे और सम्पन्न वंश में किये जाते हैं। उनमें यह प्रथा बहुत प्राचीन काल से चली आ रही है। इसका इतना ही उद्देश्य है कि लड़की ससुराल जाकर पति के प्रति शिष्ट और सुशील साबित हो। यदि ससुराल के लोग और उसका पति उसके पिता के परिवार से श्रेष्ठ नहीं होता तो लड़की के व्यवहारों में अशिष्टता पैदा हो सकती है। इसीलिए श्रेष्ट वंश में लड़कियों के विवाह किये जाते हैं। लेकिन ऐसे भी उदाहरण पाये जाते हैं, जो इस उद्देश्य के विपरीत होते हैं और उनका परिणाम अच्छा नहीं होता। मेवाड़ के राणा के जीवन में ऐसी घटनायें पैदा हुई थीं। उसने अपनी लड़की का विवाह सादड़ी के सामन्त के साथ किया था। वह सामन्त मेवाड़-राज्य की अधीनता में था।

विवाह के बाद राणा की लड़की जब अपने पति के परिवार में गयी तो एक दिन उसके पति ने उससे पीने के लिए पानी माँगा। राणा की लड़की ने पानी देने में अपना अपमान अनुभव किया। उसने पानी नहीं दिया और उसके उत्तर में उसने जो कुछ कहा, उसमें उसका स्वाभिमान भरा हुआ था। उसके पति ने उसका उत्तर सुनकर बुरा माना और उसने अपनी पत्नी को उत्तर देते हुए कहा : "यदि तुम मेरी आज्ञा का पालन नहीं कर सकती हो तो तुम इसी समय अपने पिता के पास चली जाओ।"

उस सामन्त ने अपने दूत के साथ राणा की लड़की को भेज दिया। कुछ समय के बाद राणा ने अपने जामाता को बुलाया और उसके आने पर राणा ने अपने सिंहासन पर उसे दाहिनी ओर स्थान दिया। राणा ने जामाता से सभी प्रकार की बातें कीं और अन्त में आश्वासन देते हुए कहा कि आज से फिर कभी हमारी लड़की आपके साथ इस प्रकार का अशिष्ट व्यवहार न करेगी। इसके बाद राणा ने जामाता के साथ अपनी लड़की को भेज दिया।

राजपूतों में पति और पत्नी के बीच का व्यवहार सर्वथा आदर्श है। यह व्यवहार संसार के किसी भी युग में और किसी भी देश में प्रशंसा का अधिकारी है। दाम्पत्य जीवन को सुन्दर और सुखमय बनाने के लिए पति का सम्मान और स्त्री का अनुराग अनिवार्य रूप से आवश्यक है, जैसा कि राजपूतों के जीवन में देखा जाता है। उसके सम्बन्ध में इतना ही कहना आवश्यक है : "दोनों के इस अनुराग को मरने के समय तक कायम रहने दो।" यह अनुराग संक्षेप में, पति और पत्नी का आदर्श जीवन है। अतीत काल में राजपूतों का यह जीवन था और आज भी है, हम इस बात पर पूरी तौर पर विश्वास करते हैं कि 'पति और पत्नी का यह जीवन किसी भी देश में और किसी भी युग में मनुष्य समाज को सुखी और संतोष पूर्ण बना सकता है। यह आदर्श राजपूत स्त्रियों में में जितना आज भी मौजूद है, उतना और उस प्रकार का अन्यत्र कहीं मिलेगा, इसमें मैं सन्देह करता हूँ। इतना ही नहीं, मेरा तो विश्वास है कि स्त्री के जीवन का यह आदर्श, इस देश में ही अन्यत्र कदाचित न मिलेगा। इस अटूट अनुराग का ही यह परिणाम है कि एक राजपूत अपनी पत्नी में एक छोटे से अविचार के प्रति भी अवहेलना नहीं कर सकता। पति के प्रति राजपूत रमणी का जो अनुराग होता है, वह संसार के इतिहास में कहीं न मिलेगा। मनुष्य के जीवन की यह सबसे बड़ी सभ्यता है, जिसको सजीव मैंने राजपूतों में देखा है। यह अनुराग उनके जीवन में कभी छिन्न-भिन्न नहीं होता। स्त्रियों की रक्षा में एक राजपूत अपने प्राणों को उत्सर्ग करता है और ऐसे अवसरों पर राजपूत रमणी अपने जीवन का बलिदान करती है।'

अपने जीवन के निर्माण में हिन्दू जाति जिन धार्मिक ग्रंथों का महत्व देती है, उनमें मनुस्मृति प्रधान है। इस ग्रंथ में मनुष्य के जीवन का आदर्श विधान पाया जाता है। प्राचीन काल में विद्वान मनु के द्वारा यह ग्रंथ लिखा गया था। इसमें स्त्री और पुरुष के जीवन की आदर्श प्रतिष्ठा की गयी है। राजपूतों के जीवन में इस महान ग्रंथ की छाया है और उसके विधान के अनुसार उनके जीवन का निर्माण हुआ है। मनुस्मृति में स्त्री के सम्बन्ध में बहुत सी प्रशंसात्मक बातें लिखी गयी हैं। यहाँ पर दो-चार बातों का उल्लेख हमें आवश्यक मालूम होता है। उस महान ग्रंथ में बहुत साफ साफ लिखा गया है : "स्त्री का मुख जितना सुन्दर होता है, उतना ही वह पवित्र भी होता है। स्त्री का जीवन गंगा के जल और सूर्य के किरणों के समान स्वयं पवित्र है और दूसरों के जीवन को पवित्र करने वाला है × × स्त्री के जीवन का माधुर्य उसके नाम से आरम्भ होता है। जिन शब्दों को लेकर लड़कियों के नाम रखे जाते हैं, उनमें कोमलता, नम्रता, मधुरता, प्यार, स्नेह, उदारता, सुन्दरता और स्नेह परायणता का सामञ्जस्य रहता है।"

विद्वान मनु ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ मनुस्मृति में निर्भीक हो कर घोषणा की है : "जिस घर में स्त्री का अनादर होता है, उस घर का पूर्ण रूप से नाश हो जाता है।" इस देश के एक प्राचीन विद्वान ने लिखा है : "स्त्री के सैकड़ों अपराध करने पर भी उसकी अवहेलना न करो।" इस प्रकार बहुत-सी बातें स्त्रियों के सम्मान में यहाँ के प्रसिद्ध प्राचीन ग्रंथों में पायी जाती हैं। राजपूतों के जीवन में उनका प्रभाव है और प्रत्येक राजपूत स्त्री के किसी भी जीवन को उतना महत्व नहीं देता, जितना उसके गार्हस्थ्य जीवन को। उसका विश्वास है कि मनुष्य के जीवन का केन्द्र उसका घर है और इस घर के संचालन का कार्य स्त्री के हाथ में हैं। जो स्त्री बुद्धिमानी के साथ अपने घर का संचालन करती है, वह सभी प्रकार अपने जीवन में सफल मानी जाती है।

इस देश में और विशेषकर राजपूतों में स्त्री का जीवन क्या है, इसको यदि हम देखना और समझना चाहते हैं तो हमको सीता के जीवन का अध्ययन करना पड़ेगा, जिसका चरित्र चित्रण बालमीकि ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक रामायण में किया है। दशरथ के पुत्र रामचन्द्र का राज्याभिषेक होने वाला था। लेकिन विमाता के विद्रोह के कारण अभिषेक का कार्य रुक गया था और रामचन्द्र को चौदह वर्ष के लिए बनवास की आज्ञा हुई थी। बन के लिए रवाना होने के समय सीता ने साथ चलने का रामचन्द्र से अनुरोध किया। परन्तु सीता के अनुरोध को स्वीकार न करके रामचन्द्र ने यह समझाया कि हमारे चले जाने पर तुमको यहाँ पर रहना चाहिए और हमारे माता-पिता की सेवा करना चाहिए। उस समय सीता और रामचन्द्र में बहुत देर तक बातें हुईं। राम का इरादा था कि सीता को अयोध्या के राजमहल में ही रखा जाय। इसलिए कि चौदह वर्षों का बनवास कोमलाङ्गिनी सीता के लिए असह्य हो जायगा। इसलिए यहाँ के महलों में रहना ही उसके लिए अच्छा रहेगा। अपने इस इरादे से राम ने बहुत-सी बातें सीता को समझायीं और अनेक प्रकार के उपदेश उसको दिये। लेकिन सीता ने एक भी बात को स्वीकार न किया। उसने अत्यन्त नम्रता के साथ रामचन्द्र की बातों का उत्तर देते हुए कहा : "मैं जानती हूँ कि मेरे सुख और कल्याण के लिए ही आप मुझे ऐसा समझा रहे हैं। मुझे आपकी बातों का विरोध न करना चाहिए। लेकिन मैं बहुत विनम्र शब्दों में इतना ही कहना चाहती हूँ कि यदि आप मुझे सुखी बनाने के लिए अपने साथ न ले जा कर अयोध्या में छोड़ना चाहते हैं तो मैं यहाँ रहकर न तो सुखी रहूँगी और न मेरा कल्याण हो सकेगा। पिता-माता और सभी दूसरे आत्मीय जनों का आदर और स्नेह स्त्री को सुख देने वाला नहीं होता। उसका सुख और कल्याण संसार में एक मात्र उसके पति का सम्पर्क है। स्त्री अपने पति के सम्पर्क से जुदा होकर कभी सुखी नहीं हो सकती। इसीलिए यदि आप मेरे जीवन के सुख और कल्याण की कल्पना करते हैं तो आप मेरे अनुरोध को स्वीकार करें और मुझे अपने साथ ले चलें।"

इस प्रश्न को लेकर सीता और राम में बहुत देर तक बात होती रहीं। अन्त में सीता ने अपना अनुरोध स्वीकार करने के लिए रामचन्द्र को विवश किया और अपने अनुरोध को स्पष्ट करते हुए कहा : "अयोध्या के राजमहल में रहने की अपेक्षा जंगल के निर्जन स्थानों में आप के साथ रहकर मैं अधिक प्रसन्न रहूँगी। आप के चले जाने के बाद राजप्रासाद के भोजन मुझे सुखकर न मालूम होंगे और उनके स्थान पर आपके साथ जंगल में पेट भरने के लिए जो कुछ भी और जब कभी मुझे मिल सकेगा, उसमें मैं अधिक सुखी और प्रसन्न रहूँगी। यदि आप मेरे हित के लिए ही यहाँ छोड़ना चाहते हैं तो मेरे अनुरोध को स्वीकार करें और मेरे कल्याण के लिए आप मुझे अपने साथ ले चलें। पति के अभाव में संसार के समस्त सौभाग्य स्त्री को सुखी नहीं बना सकते। यदि आप मुझे छोड़ कर चले गये तो अयोध्या मेरे लिए नरक से भी अधिक दुखदायी हो जायगी। इसके

विपरीत, आप के साथ रहकर जंगल का जीवन मेरे लिए स्वर्ग बन जायगा। स्त्री का धर्म यह है कि वह पति के सुख में सुखों का और दुख में दुखों का भोग करे। आपके चले जाने पर यहाँ के राजमहलों का सुख भोगना मेरे जीवन का सब से बड़ा पाप और अपराध होगा। उसमें पड़ने की अपेक्षा प्राण दे देना मेरे लिए कल्याण प्रद साबित होगा।"

राजपूत स्त्रियों का यह जीवन है, जिनका वर्णन यहाँ के प्राचीन ग्रंथों में मिलता है। यदि सावधानी के साथ राजपूत जाति का अध्ययन किया जाय तो उनके जीवन का नैतिक सौन्दर्य आज भी उनके घरों में मिलता है। इस जीवन की कोई भी निष्पक्ष व्यक्ति प्रशंसा करेगा, इसमें सन्देह नहीं, यहाँ के ग्रंथों में और भी इस प्रकार के बहुत से उदाहरण पढ़ने को मिलते हैं, जिनका प्रतिपादन यहाँ के प्राचीन कवियों ने अपने ग्रंथों में किया है। वे सभी घटनायें राजपूतों की हैं। विस्तार के भय से यहाँ पर उनके उल्लेख आवश्यक नहीं हैं। भारत के अनेक प्राचीन ग्रंथों के अंगरेजी और दूसरी भाषाओं में अनुवाद प्रकाशित हुए हैं। उनके पढ़ने से दूसरे देशों के लोग राजपूतों के ऊँचे चरित्रों से बहुत-कुछ परिचित हो चुके हैं और विलसन, जोन्स, कोलब्रुक, ग्रिफिथ, सेरिंश, टार्न, काउयेल, मनियार, और मैक्समूलर आदि विद्वानों ने राजपूत स्त्रियों की प्रशंसा की है।

भारत के ऐतिहासिक ग्रंथों का अध्ययन करने से राजपूतों के श्रेष्ठ पवित्र का ज्ञान प्राप्त होता है। इसके लिए निष्पक्ष भाव से खोज करने की आवश्यकता है। यहाँ का इतिहास बहुत कुछ अस्पष्ट है। इसीलिए हम लोग राजपूतों के गुणों से परिचित नहीं हैं। लेकिन इससे राजपूतों के महत्वपूर्ण चरित्र को कुछ आघात नहीं पहुँचता। यह हमारा काम है कि हम उनके चरित्र की श्रेष्ठता की खोज करें और जो सत्य है, उसे स्वीकार करें। यहाँ पर इतिहास की हम उन्हीं घटनाओं का उल्लेख करेंगे, जिनसे राजपूतों की श्रेष्ठता का पता चलता है।

पृथ्वीराज चौहान ने समेता की राजकन्या का अपहरण किया था। उस समय उसकी सहायता के लिए जो सेना साथ गयी थी, उस पर महोबा नामक स्थान पर चन्देल राजा परिमाल ने आक्रमण किया था। उस आक्रमण से उसके बहुत-से आदमी मारे गये थे। इसका बदला लेने के लिए पृथ्वीराज ने अपनी शक्तिशाली सेना लेकर राजा परिमाल के विरुद्ध आक्रमण किया। सिरसा नामक स्थान में पहुँच कर पृथ्वीराज की सेना ने परिमाल की सेना का विध्वंश किया।

पृथ्वीराज के इस आक्रमण का समाचार राजा परिमाल ने सुना। उसे यह भी मालूम हुआ कि पृथ्वीराज की सेना महोबा पर आक्रमण करने के लिए आगे बढ़ रही है। परिमाल भयभीत हो उठा। उसने अपनी रानी मालिनी के साथ परामर्श किया और अपना दूत भेज कर पृथ्वीराज से प्रार्थना की कि वह एक महीना महोवा पर आक्रमण न करे।

परिमाल के दूत ने पहोज नदी के करीब पृथ्वीराज से भेंट की और प्रार्थना की कि इस समय राजा परिमाल की सेना के दो सरदार—आल्हा और ऊदल राज्य से बाहर हैं। इसलिए इस असहाय अवस्था में राजा परिमाल ने एक महीना आक्रमण न करने के लिए आप से प्रार्थना की है।

दूत की इस बात को सुनकर पृथ्वीराज ने राजा परिमाल की प्रार्थना को स्वीकार कर लिया और ठीक एक महीना आक्रमण न करने के लिए उसने दूत को आस्वासन दिया। दूत वहाँ से लौट गया। उसके चले जाने के बाद पृथ्वीराज ने अपने मित्र कविचंद से पूछा कि महोबा के सरदार आल्हा और ऊदल कौन हैं और वे महोबा छोड़कर क्यों चले गये हैं।

पृथ्वीराज के प्रश्न का उत्तर देते हुए चंद कवि ने कहा : "वत्सराज एक शूरवीर सरदार राजा परिमाल की सेना का सेनापति था। उन्हीं दिनों में गौंद जाति के लोगों ने आक्रमण करके

राजा परिमाल को पराजित किया और परिमाल भयभीत होकर महोबा से भाग गया। सेनापति वत्सराज परिमाल के चले जाने पर भी शत्रुओं के साथ युद्ध करता रहा। वह साहसी और शूरवीर था। अंत में उसने शत्रुओं को पराजित किया और परिमाल की राजधानी महोबा पर उसने फिर से अधिकार कर लिया। आक्रमणकारी परिमाल के राज्य से भाग गये। सेनापति वत्सराज ने महोबा पर अधिकार करके राजा परिमाल को बुलाया। अपने परिवार के साथ राजधानी में लौट-कर वह वत्सराज से बहुत प्रसन्न हुआ। उसने अपने राज्य के कई एक प्रसिद्ध स्थान वत्सराज को दे दिये। सेनापति के आल्हा और ऊदल दो बेटे थे। रानी मालिनी उस दिन से वत्सराज के इन दोनों बेटों को बहुत सम्मान के साथ अपने यहाँ रखने लगी। बड़े होने पर वत्सराज के दोनों बेटे कालिंजर दुर्ग के अधिकारी बनें। राजा परिमाल के राज्य में कलिंजर का इलाका बहुत विशाल और प्रसिद्ध था। राजा परिमाल किसी मौके पर कालिंजर गये। आल्हा और ऊदल की भेंट हुई। आल्हा के पास एक प्रसिद्ध घोड़ा था। उसको देखकर परिमाल बहुत प्रसन्न हुआ और आल्हा से उस घोड़े की माँग की। राजपूतों को अपना घोड़ा बहुत प्रिय होता है। उसने राजा परिमाल को घोड़ा देने से इनकार कर दिया। राजा परिमाल को यह सह्य न हुआ। क्रोध में आकर उसने दोनों भाइयों को राज्य से निकल जाने का आदेश दिया। उसके फलस्वरूप आल्हा और ऊदल परिवार और सेना के साथ वहाँ से निकल गये।

रास्ते में माहिल का नगर मिला। यह राजा परिमाल का एक दरबारी मंत्री था। दोनों भाइयों को मालूम हुआ कि राजा परिमाल ने माहिल के कहने से ही यह दण्ड दिया है। इसलिए क्रोध में आकर ऊदल ने माहिल के नगर में आक्रमण किया और आग लगवा दी। इसके बाद दोनों भाई कन्नौज चले गये। वहाँ के राजा ने उनको बड़े सम्मान के साथ अपने यहाँ स्थान दिया। उस समय से वत्सराज के दोनों लड़के आल्हा और ऊदल कन्नौज के राजा के यहाँ रहते हैं।"

एक महीने तक आक्रमण न होने का आश्वासन पाकर राजा परिमाल को बहुत कुछ शांति मिली। उसके बाद रानी मालिनी ने आल्हा और ऊदल को बुलाने के लिए अपना दूत कन्नौज भेजा उसने वहाँ जाकर वत्सराज के दोनों बेटों से भेंट की और महोबा पर आई हुई विपद का वर्णन करते हुए उसने कहा : "पृथ्वीराज ने महोबा पर आक्रमण किया है। सिरसा में नरसिंह और वीरसिंह महोबा की सेना के साथ मारे गये हैं। पृथ्वीराज ने सिरसा नगर में आग लगवा दी है। और भयानक रूप से लूटमार की है। राज्य के दूसरे कई एक स्थानों को चौहानों की सेना ने लूट-मार की है। राज्य के दूसरे कई एक स्थानों को चौहानों की सेना ने लूट लिया है। बहुत प्रार्थना करने पर पृथ्वीराज ने तीस दिन महोबा पर आक्रमण न करने का वचन दिया है। इस विपत्ति के समय रानी मालिनी ने आपके पास मुझे भेजा है और रानी ने आपको महोबा बुलाया है। कालिंजर से आप सब के चले आने के कारण रानी को जो कष्ट पहुँचा था, उसका वर्णन करना असम्भव है। अपने पुत्रों के समान रानी ने आप के साथ स्नेह किया था। रानी ने रो-रोकर इतने दिन काटे हैं। अपनी असहाय अवस्था में उसने आपको याद की है और मुझे भेजकर उसने किसी प्रकार आपको वापस बुलाया है।"

दूत की इस बात को सुनकर आल्हा ने उत्तर दिया : "महोबा का विध्वंस हो जाने दो। हम लोग किसी प्रकार महोबा नहीं जा सकते। राजा परिमाल ने राज्य से निकल जाने का हमें आदेश दिया था। हमने उस आदेश का पालन किया। राजा परिमाल को यह भूल गया था कि शत्रुओं ने आक्रमण करके महोबा पर अधिकार कर लिया था और आपका राजा अपने परिवार को लेकर महोबा से भाग गया। उस समय हमारे पिता ने शत्रुओं को पराजित किया था और

महोबा पर फिर से अधिकार किया था। राजा परिमाल के राज्य का विस्तार हमारे पिता ने किया था और गोंदी लोगों के प्रसिद्ध दुर्ग देवगढ़ और चाँदबारी को जीतकर महोबा के राज्य में मिला दिया था। यादुनों के युद्ध में हमने विजय पायी थी और महोबा की सेना को लेकर हमने हिन्दोल का विध्वंस किया था। इस तरह की अनेक लड़ाइयों में विजय प्राप्त करके राजा परिमाल का प्रभुत्व काल्वाइर देश तक हमने कायम किया था। कुशवाहा लोगों के आक्रमण को हमने रोका था। गया के युद्ध में हमने विजय पायी थी और कितने ही भयंकर युद्धों में हमने शत्रुओं को पराजित किया था। इस प्रकार अनेक लड़ाइयों में विजय प्राप्त करके हमारे पिता ने राजा परिमाल के गौरव की वृद्धि की थी। उसका पुरस्कार हमको राजा से मिल चुका है। पिता के मरने के बाद महोबा की रक्षा के लिए हम दोनों भाइयों ने चौबीस बार शत्रुओं का मुकाबिला किया था और सात युद्धों में शत्रुओं को पराजित कर उनकी सम्पत्ति हमने राजा परिमाल को सौंपी थी। तीन युद्धों में हमारे प्राण संकट में पड़ गये थे। किसी प्रकार हमने शत्रुओं को नीचा दिखाया था। यह सब हमने महोबा के गौरव की रक्षा के लिए किया जिसके पुरस्कार में राजा परिमाल ने हमको राज्य से निकल जाने का आदेश दिया। इस लिए हमारा महोबा लौट कर जाना अब सम्भव नहीं है।"

आल्हा ने मुख से इन बातों को सुन कर दूत को निराशा होने लगी। उसने कुछ सोच-समझकर आल्हा को उत्तर देते हुए कहा : "आपने जो कुछ कहा है, वह सब सही है। आप के पिता ने और आपने बहुत समय तक महोबा के गौरव की रक्षा की है। राजा परिमाल ने आपके साथ जो अपराध किया है उसकी पीड़ा आपको न भूलना चाहिए ऐसा होना स्वाभाविक है। मैं राजा परिमाल को क्षमा करने की बात आप से नहीं कहता। गोंदी लोगों के आक्रमण पर राजा परिमाल ने महोवा से भागकर अपने प्राणों की रक्षा की थी। आज फिर वही हो सकता है। परन्तु यहाँ पर प्रश्न महोबा के गौरव की रक्षा का है। रानी मालिनी को आप ने सदा महोबा में आकर माता कहकर पुकारा है और राजमाता मालिनी ने सदा आपको बेटा कहकर पुकारा है। जिसको आप ने सैकड़ों और हजारों बार माता कहा, उसने शत्रुओं के आक्रमण पर अपने पुत्रों की याद की है। महोबा आज असहाय हो रहा है। पृथ्वीराज ने तीस दिनों तक युद्ध न करने का जो आश्वासन दिया है, वह समय समाप्त होने वाला है। इकतीसवें दिन चौहानों की विशाल सेना महोबे के भीतर प्रवेश करेगी। उस समय वहाँ की लड़कियों और स्त्रियों का क्या दृश्य होगा। महोबा के राज महल में शत्रुओं के आक्रमण करने पर आपकी माता रानी मालिनी के गौरव की रक्षा कौन करेगा। ये सब बातें आप को बाद में सुनने को मिलेंगी। आज महोबे के एक-एक स्त्री-पुरुष के नेत्र आप की तरफ देख रहे हैं। इस आर्त काल में महोबे की रक्षा करना आपका कर्त्तव्य है। पृथ्वीराज के आक्रमण करने पर रानी मालिनी ने आप दोनों भाइयों के नामों को ले लेकर अपने महल में क्रन्दन किया है। मेरे आने के समय रानी ने रो-रो-कर बहुत-सी बातें कहने के लिए मुझे समझाया है। मैं आप को समझाने नहीं आया। केवल इतना ही कहने आया हूँ कि जिस महोबे के गौरव की रक्षा आपके द्वारा सदा हुई है, वह गौरव अब नष्ट होने जा रहा है।"

जिस समय दूत महोबे के सम्बन्ध में ये बातें कह रहा था, पास ही आल्हा की माता देवला देवी खड़ी हुई इन बातों को सुन रही थी। वह कुछ कहना चाहती थी। उस समय ऊदल ने दूत से कहा : "महोबे के गौरव का विनाश हो जाय, परन्तु हमलोग अब लौट कर महोबा नहीं जा सकते। राजा परिमाल का वह आदेश आज भी हमारे कानों में गूंज रहा है। अब कन्नौज छोड़ कर महोबा जाना हमारे लिए असम्भव है।"

देवलदेवी अब चुप न रह सकी। उसने एक बार आल्हा और ऊदल की तरफ देखा और फिर दूत की तरफ देखकर कहा : "असहाय अवस्था में शत्रु की भी सहायता करना राजपूतों का धर्म है। इस समय मेरे बेटों ने महोबा जाने से क्यों इनकार किया है, मैं इसे समझ नहीं सकी।" इतना कहकर वह चुप हो गयी। उसके नेत्रों में आवेश झलक रहा था। रह-रहकर वह आल्हा और ऊदल की तरफ देखती थी और फिर अपने नेत्रों को नीचा कर लेती थी। उसने क्षण-भर चुप रह कर फिर कहा : "इस समय मेरे बेटों ने जो कुछ कहा है, वह राजपूतों की मर्यादा के विरुद्ध है। जिस महोबे का गौरव विध्वंस होने जा रहा है, वहाँ बहुत समय तक मेरा और मेरे परिवार का पालन हुआ है। जहाँ का नमक खाया है और जिसका पानी पिया है, विपत्ति के आने पर और वहाँ के लोगों की प्रार्थना पर सहायता न करना राजपूतों के धर्म के विपरीत है। इस समय मैंने अपने बेटों के मुख से जो कुछ सुना है, उससे मुझको आघात पहुँचा है। मैं यदि आज पुत्र हीन होती तो मुझे इतना दुख न होता, जितना कि इस समय मुझको हुआ है। यदि मेरे लड़के महोबा के चीत्कार को सुनकर उसकी रक्षा के लिए नहीं जाते तो ये अपने पिता के गौरव को स्वयं नष्ट करते हैं।"

इतना कह वेवल देवी ने एक बार आल्हा और ऊदल की तरफ देखा और वह चुप हो गयी।

आल्हा और ऊदल ने अपनी माता के शब्दों को सुना। वे परिमाल के द्वारा मिलने वाले अपमान को भूल कर मुस्करा उठे। दूत ने उस समय आल्हा और ऊदल को देखा। उसने समझ लिया कि परिस्थिति अब बदल रही है। उसी समय आल्हा ने दूत से कहा : "महोबा की रक्षा करने के लिए माँ का आदेश मिल चुका है। अब हम लोगों के सामने कोई संशय नहीं है।" यह कह कर उसने ऊदल की तरफ देखा और तैयार होने की आज्ञा दी।

दूत प्रसन्न हो उठा। उसने मन ही मन भगवान को धन्यवाद दिया। महोबा चलने के लिए तैयारियाँ होने लगीं। दोनों भाइयों ने कन्नौज के राजा के पास जाकर सब बातें कहीं। राजा ऐसे समय पर महोबा के लिए परामर्श दिया। दोनों भाइयों ने अपनी सेना तैयार की और वे दूत के साथ महोबा जाने के लिए रवाना हो गये।

रास्ते में दूत को अनेक प्रकार के अशकुन हुए। उनको देख कर वह भयभीत हो उठा। उसको चिन्तित और अप्रसन्न देखकर आल्हा ने कारण पूछा। दूत ने उत्तर देते हुए कहा : "दाहिनी ओर से उड़ते हुए एक सारस का जाना, उड़ते हुए पक्षी के मुख से उसके खाने की चीज का गिर जाना, चकवे का अपनी स्त्री के बिरह में होना, युद्ध के घोड़ों के नेत्रों से आसुओं का बहना शृगालों का एक साथ रोना, सूर्य के बीच में कालापन दिखायी देना अपशकुन है। इसीलिए मै कुछ चिन्तित हो उठा हूँ।"

दूत के मुख से अपशकुन की बातों को सुनकर आल्हा ने कहा : "राजपूतों के जीवन में शकुन और अपशकुन का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। जो युद्ध के लिए जाता है, वह अपनी मृत्यु की बात पहले सोच लेता है। जो मृत्यु के लिए ही घर से निकलता है, उसके सामने अपशकुन का क्या अर्थ होता है।"

आल्हा के मुख से दूत ने इन शब्दों को सुना, उसका भाव और संकोच मिट गया और वह मुस्कराने लगा।

अपनी माता देवल देवी और सेना के साथ आल्हा-ऊदल महोबा पहुँच गये। उनके आने का समाचार रानी मालिनी ने सुना। उसने तुरंत देवल देवी को अपने महल में बुलाया और अनेक प्रकार से उसका सत्कार किया। आल्हा के आने पर राजमाता मालिनी ने अपना दाहिना हाथ उसके

मस्तक पर रखा और आशीर्वाद दिया। × इसी समय आल्हा और ऊदल ने राजमाता के सामने प्रतिज्ञा की : "अपनी जिन्दगी के अन्तिम समय तक हम लोग महोबा के गौरव की रक्षा करेंगे।" राजमाता माकिनी ने दोनों भाइयों की इस प्रतिज्ञा को सुनकर मोतियों की वर्षा की और फिर वे मोती राज्य के नौकरी में बाँटे गये। ÷ कन्नौज में जाकर जो दूत आल्हा औ ऊदल को महोबा लाया था, उसको पुरस्कार में चार ग्राम दिये गये। साथ ही उसकी प्रशंसा की गयी।

आल्हा और ऊदल के आने का समाचार पृथ्वीराज के शिविर में भी पहुँच चुका था। चन्द कवि ने पृथ्वीराज को परामर्श देते हुए कहा : "आक्रमण न करने के लिए महोबा के लिए महोबा के दूत को जो आपने आश्वासन दिया था, उसकी अवधि समाप्त हो चुकी है। इसलिए दूत को भेज कर राजा परिमाल को सन्देश देना चाहिए कि वह या तो युद्ध के लिए तैयार हो जाय अथवा अपनी राजधानी महोबा खाली कर दे।"

चन्दकवि के इस परामर्श का उत्तर देते हुए पृथ्वीराज ने कहा : "वह अवधि बीत चुकी है। लेकिन इस प्रकार युद्ध रोकने के लिए जो समय दिया जाता है, उसके बाद सात दिनों तक किसी प्रकार का आक्रमण नहीं किया जाता है। यह राजपूतों की प्राचीन मर्यादा है।"

सात दिन और बीत गये। चंदकवि के परामर्श के अनुसार पृथ्वीराज के शिविर से महोबा दूत भेजा गया। राजा परिमाल ने दूत के मुख से पृथ्वीराज चौहान का संदेश सुना। उसने उत्तर में कहला भेजा : "मै महीने के पहले दिन रविवार को अपनी सेना के साथ युद्ध स्थल में पृथ्वीराज से भेंट करूँगा।"

पृथ्वीराज के शिविर में शुक्रवार के दिन शंखध्वनि की गयी और युद्ध के बाजे बजे। इससे महोबा के लोगों को युद्ध के आरम्भ होने की सूचना मिली। * पृथ्वीराज के शिविर में युद्ध की तैयारियाँ होने लगीं। उसकी विशाल सेना के शूरवीर सरदार और सैनिक तेजी के साथ युद्ध के लिए तैयार होने लगे।

राजपूतों का विश्वास है कि युद्ध करना राजपूतों का धर्म है। युद्ध में विजयी होने पर उनको इस लोक में कीर्ति मिलती है और युद्ध में मारे जाने पर पर लोक में स्वर्ग प्राप्त होता है। राजपूतों को मिलने वाले स्वर्ग की प्रशंसायें उनके प्राचीन ग्रंथों में बड़े विस्तार के साथ लिखी गयी हैं। उन ग्रंथों को राजपूत पढ़ते हैं और उन पर वे पूरी तौर पर विश्वास करते हैं। उनकी धारणा है कि युद्ध में मारे जाने के बाद स्वर्ग में राजपूतों को सबसे ऊंचा स्थान मिलता है। वहाँ पर सुन्दरी अपसरायें उनका स्वागत करती हैं और अनेक प्रकार उनका आदर सत्कार करती हैं।

× राजस्थान में सोने और चांदी के सिक्कों को एक पात्र में लेकर और उसे मस्तक पर रख-कर अशीर्वाद देने की पुरानी प्रथा है। ये सिक्के बाद में दीन-दुखियों को बांट दिये जाते हैं।

÷ राजस्थान की यह प्रथा बहुत प्राचीन और नाथरावली के नाम से प्रसिद्ध है। अत्यन्त प्रसन्नता और संतोष के समय इस प्रथा का राजपूतों में पालन किया जाता है। आल्हा और ऊदल के आने पर राजमाता को अकथनीय प्रसन्नता हुई थी। वह पहले से ही इन दोनों पराक्रमी भाइयों का बहुत सत्कार करती थी। इन दिनों भाइयों के न होने के कारण पृथ्वीराज के आक्रमण करने पर राज-माता को घबराहट हुई थी। इस समय उसकी घबराहट का कोई कारण न था।

* तीन बार शंखध्वनि करके और प्रत्येक शंखध्वनि के साथ युद्ध का बाजा बजा कर राजपूत अपनी सेना लेकर युद्ध स्थल की ओर रवाना होते हैं। राजस्थान में युद्ध सम्बन्धी इस प्रकार की पुरानी प्रथायें है, जिनका पालन राजपूत लोग अब तक करते है।

युद्ध की तैयारी करने के पूर्व राजा परिमाल ने अपने दरबार में सेना पतियों और सरदारों को बुला कर परामर्श किया। उस समय राजमाता मालिनी दरबार से कुछ दूरी पर बैठकर परामर्श को सुनने लगी। उसके निकट आल्हा की माता देवलदेवी भी मौजूद थी। उसको सम्बोधन करके राजमाता ने कहा : "पृथ्वीराज के साथ आयी हुई सेना बहुत बड़ी है। हम सब को युद्ध के परिणाम पर एक बार विचार कर लेना चाहिए। यदि पराजय हुई तो हम सब को महोबा छोड देना पड़ेगा। इस दशा में यदि चौहान राजा के साथ संधि कर ली जाय तो सब झगड़ा मिट सकता है।"

राजमाता के मुख से इस बात को सुनकर आल्हा ने सावधान होकर कहा : "दुष्परिणाम के भय से जो राजपूत अपने कर्त्तव्य का पालन नहीं करता, वह राजपूत कहलाने का अधिकारी नहीं है। मेरे सामने महोबा के गौरव का प्रश्न है। इस समय दिल्ली के सम्राट पृथ्वीराज ने अपनी विशाल सेना लेकर हमारे राज्य पर आक्रमण किया है। इसलिए आक्रमणकारी के साथ युद्ध करना हम लोगों का नैतिक धर्म है। यदि हम लोग ऐसा न करेंगे, तो निश्चित रूप से हम सभी अपनी राजपूती मर्यादा का अपने हाथों विनाश करेंगे। संधि का अर्थ है शत्रु की आधीनता स्वीकार करना राजपूतों की मर्यादा में अपनी ओर से संधि को कोई स्थान नहीं दिया गया। राजपूतों की भाषा में पराधीनता के पराजय और पराजय से मृत्यु श्रेष्ठ होती है। मैं जब तक जिन्दा हूँ, राजपूतों की इस श्रेष्ठता की रक्षा करूँगा। मेरे मारे जाने पर यदि वह जीवित रही× तो मै विश्वास करता हूँ कि वह जीवन-भर अपने धर्म की रक्षा करेगी और सती-साध्वी राजपूत स्त्रियों की भाँति अपना जीवन व्यतीत करेगी।

इसी समय राजमाता मालिनी ने कहा : "मैं चाहती हूँ कि युद्ध की परिस्थिति पर विचार कर लिया जाय। किस प्रकार महोबे की रक्षा करना चाहिए।

राजमाता के मुख से इस प्रकार की निर्बल बातों को सुनकर ऊदल ने आवेश में कहा : "इस बात का निर्णय आप को पहले ही कर लेना चाहिए था। इस समय, जब युद्ध की तैयारी हो रही है, इस प्रकार की बातों का सोचना अपनी शक्तियों को निर्बल बनाना है, चौहानों की छोटी-सी जख्मी सेना पर आपकी सेना ने आक्रमण किया था, उस समय युद्ध के दुष्परिणाम को यहाँ के लोगों को सोच लेना चाहिए था। इस समय जो बातें आप कह रही हैं, उनको सुनने और सोचने का यह अवसर नहीं है। मैं जब तक जीवित हूँ, शत्रु की आधीनता को कानों से सुनना नहीं चहाता। दूत को उत्तर देते हुए राजा परिमाल ने युद्ध की घोषणा की। अब इस घोषणा का किसी प्रकार लौटाया नहीं जा सकता।"

देवलदेवी बड़ी देर से इस प्रकार की बातों को सुन रही थी। ऊदल के चुप हो जाने पर उसने साहस और धैर्य के साथ कहा : "इस अवसर पर मेरे बेटों ने उसी प्रकार की बातें की हैं, जैसी कि सच्चे राजपूतों के मुख से सुनने को मिलनी चाहिए। मेरा विश्वास है कि ऐसे ही भीषण अवसरों पर राजपूत अपने कर्त्तव्यों का पालन करके पूर्वजों के यश और कीर्ति की वृद्धि करते हैं। इस समय व्यर्थ की बातों को सोचना नहीं चाहिए। क्यों कि शत्रुओं की सेना युद्ध करने के लिए

× आल्हा ने इस वाक्य में वह शब्द अपनी स्त्री के लिए इस्तेमाल किया है। राजपूतों में अपनी स्त्री का नाम सर्वधारण के सामने और विशेष कर जहाँ पर वृद्ध जन उपस्थिति हो, न लेने की पुरानी परिपाटी है। इस लिए आल्हा ने यहाँ पर अपनी स्त्री का नाम नहीं लिया।

रवाना हो चुकी है। उसके मुकाबिले में युद्ध के लिए यदि महोबा की सेना न पहुँचेगी तो इस राज्य की प्रजा का शत्रु-सेना भयानक रूप से विनाश करेगी।"

चंदेल राजा परिमाल ने इस प्रकार की बातों को समाप्त करते हुए कहा : "ग्राज शनिश्चर का शुभ दिन है। कल हमारी सेना शत्रुग्रों का संहार करने के लिए रवाना होगी।

राजा परिमाल से चुप होते ही ग्राल्हा ने ग्रावेश में ग्राकर कहा : "मैं समझता हूँ, शत्रुग्रों की सेना इस राज्य के ग्रामों को विध्वंस करने के लिए पहुँच गयी है। इस दशा में चुप होकर बैठ रहना राजपूतों की मर्यादा के विरुद्ध है। शत्रु के ग्राक्रमण करने पर जो राजपूत युद्ध नहीं करना चाहता, उसको मरने पर नरक होता है ग्रौर जिन्दगी के दिनों में ग्रपयश की कालिमा उसके मुख पर लगती है। मृत्यु के बाद युद्ध से डरने वाले राजपूतों को नरक की भीषण यातनायें सहनी पड़ती हैं। परन्तु जो राजपूत युद्ध के समय ग्रपने कर्त्तव्य का पालन करते हैं, उनको ग्रक्षय कीर्त्ति ग्रौर स्वर्ग की प्राप्ति होती है।"

इस परामर्श के समय ग्राल्हा ग्रौर ऊदल ने उत्तेजना पैदा करने वाली बातें कहीं। परन्तु राजा परिमाल के निर्बल ग्रन्तः करण पर उनका कोई प्रभाव न पड़ा। परामर्श के बाद परिमाल रानी मालिनी के महल में गया। रानी ने उसके मुख से ग्रनेक कायरता पूर्ण बातें सुनीं। उनको सुनकर उसे ग्रपमान मालूम हुग्रा। वह परिमाल की निर्बलता ग्रौर कायरता को पहले से जानती थी। उसने किसी प्रकार प्रोत्साहन दे कर परिमाल को युद्ध के लिए तैयार किया ग्रौर ग्रपनी सेना में उसी समय संदेश भेजा कि राजा की तैयारी युद्ध के लिए हो रही है। इसके बाद भी मालिनी ने परिमाल को बहुत-सी बातें समझायीं ग्रौर युद्ध के लिए उसको तैयार किया।

महोबा में युद्ध की तैयारियाँ शुरू हो गयी। सभी सैनिक युद्ध के वस्त्र पहनने लगे। समर के लिए तैयार हो चुकने पर ग्राल्हा ने ग्रपने इष्ट देव हनुमान की मूर्ति का पूजन किया ग्रौर फिर ग्रपने छोटे भाई ऊदल को बुलाकर एवम् ग्रपने पुत्र इन्दल को सामने देख कर कहना ग्रारम्भ किया : "हमको ग्रपने पिता वत्सराज के यश को कायम रखना है। हम दोनों भाइयों ने देवल देवी के गर्भ से जन्म पाया है। हमारी नसों में, राजपूतों का स्वाभिमान है ग्रौर शरीर के कण-कण में हम ग्रपने पूर्वजों का गौरव ग्रनुभव करते हैं। युद्ध-क्षेत्र में जाकर हम शत्रुग्रों का संहार करेंगे। ग्राक्रमण कारियों के सामने मस्तक नीचा करना राजपूतों का कभी किसी ग्रवस्था में धर्म नहीं है।"

बड़े भाई ग्राल्हा के मुख से इस प्रकार की वीरोचित बातों को सुनकर ऊदल ने कहा : "ग्रापने एक सच्चे राजपूत की भाँति इस समय युद्ध करने की प्रतिज्ञा की है। मैं ग्रापको विश्वास दिलाता हूँ कि ग्राज मेरी यह तेज तलवार शत्रुग्रों की गरदन पर ग्रविराम गति से चलेगी ग्रौर भयंकर रूप से शत्रुग्रों का संहार करेगी। जिस ग्रभिमानी पृथ्वीराज ने महोबे के गौरव को नष्ट करने के लिए ग्राक्रमण किया है, युद्ध के क्षेत्र में मैं उसकी तलवार को देख लेना चाहता हूँ।"

देवल देवी पास ही खड़ी हुई ग्रपने बेटों की प्रतिज्ञाग्रों को सुन रही थी। ऊदल के चुप हो जाने पर उसने कहा : "तुम्हारी इन प्रतिज्ञाग्रों को मैंने सुना है। तुम दोनों मेरे सुयोग्य बेटे हो। तुम्हारे मुख से प्रतिज्ञा के इन शब्दों को सुनकर मेरा मस्तक ऊँचा हो गया है। निश्चय ही तुम राजपूतों की मर्यादा को कायम रखोगे। युद्ध में जाने के समय मैं ग्रन्तरात्मा से ग्रशीर्वाद देती हूँ। युद्ध में तुम्हारी विजय होगी। यदि तुम शत्रु के पराक्रम को पराजित न कर सको तो मैं पूरी ग्राशा करती हूँ कि ग्रपनी जननी जन्म भूमि के गौरव की रक्षा के लिए तुम ग्रपने प्राणों को उत्सर्ग करोगे

और इस बलिदान के फलस्वरूप स्वर्ग में उस श्रेष्ठ सिंहासन को प्राप्त करोगे, जो देवताओं को भी नहीं प्राप्त होता।"

वीरमाता देवल देवी इतना कह कर चुप हो गयी। आल्हा और ऊदल युद्ध में जाने के लिए तैयार थे। उसी समय दोनों की स्त्रियों ने आकर कहा : "शत्रुओं का संहार करना राजपूतों का धर्म है। युद्ध करते हुए यदि वे मारे जाते हैं तो उनकी स्त्रियाँ अपने मृत पति के शरीर के साथ सती होकर अपने धर्म का पालन करती हैं।"

राजपूतों के जीवन में जितना शौर्य था, उतनी ही उनकी स्त्रियों में अपने धर्म के पालन की ममता थी। राजस्थान के इतिहास में इस प्रकार के अगणित उदाहरण मिलते हैं जो राजपूतों की स्त्रियों की श्रेष्ठ मर्यादा का उज्जवल प्रमाण देते हैं। यहाँ पर आवश्यकतानुसार संक्षेप में उस प्रकार के कुछ उदाहरणों का वर्णन करना आवश्यक है। मुगल बादशाह औरंगजेब ने अपने पिता शाहजहां को सिंहासन से उतार कर कैद में रखा था और अपने सगे भाई दारा शिकोह को मार कर उसका सिर काट लिया था। उस समय राजपूतों ने औरंगजेब के विरुद्ध तलवार उठायी थी। साहसी राठौर यशवंत सिंह के नेतृत्व में तीस हजार राजपूत औरंगजेब के साथ युद्ध करने के लिये रवाना हुए और नर्बदा नदी की तरफ बढ़ कर मुराद के साथ आयी हुई मुगल सेना पर टूट पड़े। मुराद की सेना ने राजपूतों पर गोलों की वर्षा की और अंत में नर्वदा नदी को पार कर मुराद अपने भाई औरंगजेब की सेना के पास पहुँच गया।

दूसरे दिन राजपूतों ने मुगलों के साथ प्रातःकाल से ही युद्ध आरम्भ किया। उस भयानक युद्ध में सारा दिन बीत गया। उस सग्राम में मुगलों की विजय हुई और यशवंत सिंह बचे हुए राजपूतों के साथ लौट कर अपने राज्य में पहुँच गया। इतिहासकार फरिश्ता ने लिखा है कि यशवंत सिंह का ब्याह उदयपुर के राणा की बेटी के साथ हुआ था। राणा की पुत्री ने जब सुना कि यश वंत सिंह पराजित होकर शत्रुओं के डर से भाग कर अपने राज्य में आया है तो उसने अपने किले का दरवाजा बन्द करवा लिया और यशवंतसिंह को भीतर नहीं आने दिया।

यशवंतसिंह के जीवन की इस घटना का उल्लेख करते हुए इतिहासकार बर्नियर ने लिखा है : "जब यशवंतसिंह की रानी ने सुना कि उसका पति शत्रुओं के सामने युद्ध करता हुआ पराजित हुआ है और बहुत-से राजपूतों के मारे जाने पर वह भागकर आया है तो रानी ने अपमानित होकर अपने महल का द्वार बंद करवा दिया और पति को महल में आने की आज्ञा नहीं दी। उसने आवेश में आकर यहाँ तक कह डाला कि जो शत्रुओं को पीठ दिखाकर भागा है, वह मेरा स्वामी नहीं हो सकता। इतना कहने के बाद भी राणा की पुत्री को संतोष नहीं हुआ। उसने कहा कि विजय न मिलने पर राजपूत को युद्ध क्षेत्र में ही अपने प्राणों को उत्सर्ग करना चाहिए। रानी ने चिता तैयार करने की आज्ञा दी और उसमें बैठकर उसने भस्म हो जाने का निर्णय किया। रानी की सखियों ने जब यह सुना तो उन्होंने उसको समझाते हुए कहा, आपके ऐसा करने से महाराज को भी आपकी चिता में बैठकर जलना पड़ेगा। इसलिए धैर्य के साथ आप थोड़ा-सा विचार करें। सखियों को उत्तर देते हुए जो कुछ रानी ने कहा, उसमें राजा यशवंतसिंह के लिए बहुत से शब्द अपमानजनक थे। रानी ने एक सप्ताह तक अनशन रहकर एकान्त जीवन व्यतीत किया। यह समाचार उदयपुर पहुँचा और वहाँ से रानी की माता ने आकर अपनी बेटी को समझाया कि युद्ध की थकावट को मिटाकर यशवंतसिंह अपनी नयी सेना के साथ युद्ध में जाने की तैयारी कर रहा है। इसलिए तुम ऐसा न करो। माता के इस प्रकार विश्वास दिलाने पर रानी ने अपना अनशन तोड़ा।"

प्रसिद्ध इतिहासकार बर्नियर यशवंतसिंह की रानी से बहुत प्रभावित हुआ था। उसने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ में लिखा है : "राजपूत स्त्रियों का इस प्रकार साहस और शौर्य संसार में अन्यत्र कहीं न मिलेगा।"

राजस्थान के इतिहास में इस प्रकार की घटनायें बहुत अधिक हैं। पृथ्वीराज ने जब कन्नौज के राजा जयचंद की बेटी संयुक्ता का हरण किया था, उस समय भी हमको इसी प्रकार के विवरण यहाँ के इतिहास में पढ़ने को मिलते हैं। राजा जयचंद ने अपनी अनुपम रूपवती संयुक्ता का विवाह करने के लिए स्वयंबर की रचना की थी। उस समय संयुक्ता के स्वयम्बर में सम्राट पृथ्वीराज को आने के लिए निमंत्रण नहीं भेजा गया था। उसमें जयचंद की एक राजनीति थी। स्वयंबर में देश के सैकड़ों राजाओं ने आकर भाग लिया था जयचंद ने पृथ्वीराज की मूर्ति बनवाकर स्वयम्बर में रखी थी। उस समय राजकुमारी संयुक्ता ने सैकड़ों राजाओं को ठुकराकर धातु से बनी हुई पृथ्वीराज की मूर्ति को अपनी बरमाला पहनायी। इसके फलस्वरूप पृथ्वीराज और जयचंद के बीच भीषण संग्राम हुआ और उस संग्राम में सैकड़ों अपमानित राजाओं ने जयचंद की सहायता की। लगातार पाँच दिनों के उस संग्राम में पृथ्वीराज की विजय हुई।

अपने स्वयम्बर में अपमानित पृथ्वीराज की मूर्ति को बरमाला पहनाकर राजकुमारी संयुक्ता ने नारी जीवन के जिस अलौकिक प्रेम की श्रेष्ठता का परिचय दिया, उसका महत्व संसार में सदा अमिट होकर रहेगा।

मोहम्मद गोरी ने सिंध नदी को पार कर जब दूसरी बार पृथ्वीराज के विरुद्ध दिल्ली पर आक्रमण किया था, उस समय पृथ्वीराज संयुक्ता के साथ विलासिता का जीवन व्यतीत कर रहा था। उसने जब मुहम्मद गोरी के आक्रमण का समाचार सुना तो वह आतंकित हो उठा। उन दिनों की अपनी विलासिता के कारण पृथ्वीराज कदाचित युद्ध में जाने की मनोवृत्ति में न था। उस समय संयुक्ता ने बहुत-सी बातें कहकर पृथ्वीराज को युद्ध के लिए प्रोत्साहित किया था। उसने अंत में कहा था : "हे नाथ मेरा और आपका कल्याण इसी में है कि आप दुविधा छोड़कर युद्ध में जावें और शत्रुओं का संहार करें।"

संयुक्ता के जीवन की अनेक बातें उसके श्रेष्ठ चरित्र का परिचय देती हैं। मोहम्मद गोरी के दूसरी बार भारत में आने के पहले पृथ्वीराज ने एक स्वप्न देखा था। उसका जिक्र करते हुए उसने संयुक्ता से कहा : "आज रात को जब मैं सो रहा था, रम्भा के समान एक सुन्दरी ने बड़ी कठोरता के साथ मेरे दोनों हाथों को पकड़ लिया। उसके बाद उसने तुम्हारे ऊपर आक्रमण किया। जिस समय तुमने उससे छुटकारा पाने की चेष्टा की, एक भयानक राक्षस ने आकर मेरे ऊपर हमला किया। उसके कुछ देर बाद मेरी नींद टूट गयी। फिर मैंने कुछ नहीं देखा। भगवान जाने इसका क्या परिणाम होगा।"

पृथ्वीराज के मुख से स्वप्न की बात को सुन कर धैर्य के साथ संयुक्ता ने कहा : "प्राणेश्वर आप शूरवीर और बुद्धिमान हैं। आपके समान यशस्वी और पराक्रमी पुरुष बहुत कम संसार में देखे गये हैं। आपकी तरह के शूरवीर राजपूतों को यह बताने की आवश्यकता नहीं है कि जो कर्मवीर होते हैं, वे शकुनों और अपशकुनों की तरफ नहीं देखा करते। इस सृष्टि में ऐसा कौन है, जिसकी मृत्यु न होती हो। मृत्यु तो देवताओं की भी होती है। पुराने शरीर के बदलने का नाम मृत्यु है। अधिक समय तक निर्बल होकर जिन्दा रहने की अपेक्षा स्वाभिमान के साथ मर जाना श्रेष्ठ होता है। जब यह बात सत्य है तो शकुन और अपशकुन का विचार ही कैसा है। शक्तिशाली अपनी शक्ति पर विश्वास करते हैं। वे शकुन और अपशकुन को महत्व नहीं देते।"

गजनी के सुलतान के आक्रमण करने पर पृथ्वीराज के दरबार में बहुत-से युद्ध कुशल शूर-वीर सरदार, सामन्त और नरेश परामर्श के लिए एकत्रित हुए थे। उन सबको यह निर्णय करना था कि गजनी के सुलतान के साथ किस प्रकार युद्ध किया जाय। इसी अवसर पर पृथ्वीराज उन सब को छोड़कर संयुक्ता के पास परामर्श के लिए गया था। संयुक्ता ने पृथ्वीराज को अपनी सम्मति देते हुए कहा :

"स्त्रियों से भी कोई परामर्श लेता है? संसार के पुरुषों का विश्वास है कि स्त्रियाँ मूर्ख होती हैं। यह विश्वास यहाँ तक बढ़ा हुआ है कि अगर स्त्रियाँ सही बात भी कहती हैं तो उनको पुरुष महत्व नहीं देते। सत्य तो यह है कि स्त्री स्वयं शक्ति का स्वरूप है। लेकिन उससे क्या! लोगों की यह धारणा में हम पवित्र और अपवित्र—दोनों है! गुण और अवगुण, योग्यता और अयोग्यता—सब कुछ हम में हैं। पुरुष बुद्धिमान होते हैं- स्त्रियां मूर्ख होती हैं! एक पुरुष ज्योतिषी पुस्तकों को देखकर ग्रहों की चाल के आधार पर मनुष्य के जीवन की अज्ञात बातें जान सकता है। लेकिन उसकी पुस्तकों का ज्ञान स्त्रियों को समझने में सहायता नहीं करता। स्त्रियों के सम्बन्ध में पुरुषों की यह धारणा—आज की नहीं, बहुत पुरानी है और सदा से यही रही है। उसकी पुस्तकों ने स्त्रियों को समझाने के योग्य नहीं रखा। इतना सब होने पर भी स्त्रियाँ पुरुषों के दुख और सुख में भाग लेती हैं। भूख और प्यास में स्त्री कभी पुरुष से जुदा नहीं होती। स्त्रियाँ यदि सरोवर हैं तो पुरुष राजहंस होते हैं। स्त्री और पुरुष की यह मर्यादा बहुत पुरानी है। फिर उसकी बात कौन सुनता है!"

उस समय संयुक्ता ने पृथ्वीराज से इस प्रकार की बातें की। उसके शब्दों में उस जीवन का आभास था, जिसका भोग संसार में अत्यन्त प्राचीन काल से स्त्रियों ने आज तक किया है। उस मौके पर संयुक्ता के ऐसा कहने का अभिप्राय क्या था, यह समझ में नहीं आता। गजनी के सुलतान से युद्ध करने के सम्बन्ध में वह पहले से ही अपना परामर्श दे चुकी थी। फिर उससे पृथ्वीराज के पूछने और परामर्श लेने का क्या अर्थ हो सकता है!

मोहम्मद गोरी से युद्ध करने के लिये दिल्ली में सभी प्रकार की तैयारियाँ हुईं। अपनी-अपनी सेनाओं के साथ सरदार-सामन्त और दूर-दूर के राजा आकर वहाँ पर एकत्रित हुए। संयुक्ता ने पृथ्वीराज को युद्ध में जाने के लिए अपने हाथों से तैयार किया। युद्ध के बाजों के साथ दिल्ली की विराट सेना युद्ध के लिए रवाना हो गयी। युद्ध स्थल में दोनों ओर की सेनाओं का भीषण संग्राम हुआ। दोनों तरफ के अगणित मनुष्य काट-काटकर फेंक दिये गये और उनके रक्त के नाले बहे। अंत में युद्ध करते हुए पृथ्वीराज बंदी होकर मारा गया। चिता बनाई गयी। अपने मृत पति के साथ उस चिता में बैठकर संयुक्ता ने अपने प्राणों की आहुति दी।

हम लोगों ने लुक्रेशिया का जीवन-चरित्र पढ़ा है, ठीक उसी प्रकार की घटना गानोर की रानी के जीवन में मिलती है। शत्रुओं के आक्रमण से अपने पाँच दुर्गों को सुरक्षित करके उसने नर्वदा के किनारे पर अपनी सेना का मुकाम किया और वहाँ से नदी को पार करके उसका इरादा अपने दुर्ग में जाने का था। उसी समय शत्रु-सेना वहाँ पर आ पहुँची। रानी की सेना उस समय बहुत थोड़ी थी। इसलिए आसानी से शत्रु-सेना ने रानी के दुर्ग पर अधिकार लिया। उसी के वंशज आज भूपाल में शासन करते हैं। गानोर की रानी का रूप लावण्य देखकर शत्रु-सेना का सेनापति खान बहुत प्रसन्न हुआ, अपने दूत के द्वारा खान ने रानी के पास संदेश भेजा कि वह हमारी प्रार्थना को स्वीकार करे और वह हमारे साथ इस राज्य पर शासन करे। अगर रानी ने उसे स्वीकार न किया तो उसका परिणाम अच्छा न होगा।

दूत ने गानोर की रानी के पास पहुँच कर सेनापति खान का सन्देश सुनाया। रानी ने क्षण-भर सोचकर सेनापति के प्रस्ताव को स्वीकार किया और कहा : "मैंने सेनापति खान के विक्रम और शौर्य को सुना हैं। विवाह कार्य के सम्पादन के लिए समय चाहिए। मैं दो घण्टे में उसकी आवश्यक व्यवस्था कर लूँगी और तैयारी हो जाने के बाद मेरे बुलाने पर सेनापति खान को यहाँ पर आना पड़ेगा। क्योंकि उसकी सभी बातें विधान के अनुसार होनी चाहिए।"

सेनापति खान ने दूत के मुख से रानी का उत्तर सुना। उसे बहुत प्रसन्नता हुई। उसने दो घण्टे का समय स्वीकार कर लिया। इस मंजूरी का समाचार भी रानी के पास भेज दिया गया। विवाह की तैयारियाँ आरम्भ हो गयीं। बाजे बजने लगे और अनेक प्रकार के संगीत सुनायी पड़ने लगे। रानी ने सेनापति को पहनने के लिए मूल्यवान आभूषण और वस्त्र भेजे और दूत से कहला भेजा कि राजपूतों में प्रचलित परिपाटी से अनुसार सेनापति को इन्हें पहन कर वैवाहिक कार्य के लिए मेरे बुलाने पर आना चाहिए। आभूषण और वस्त्रों के साथ-साथ रानी के संदेश को पाकर सेनापति की खुशी का ठिकाना न रहा। दूत वहाँ से लौट कर चला गया।

विवाह की सारी तैयारी हो जाने के बाद रानी ने सेनापति को बुलाने के लिए दूत भेजा। सेनापति ने रानी के भेजे हुए वस्त्र और आभूषण पहने और उसके बाद वह रानी के महल में पहुँच गया। वहाँ पर उसे सम्मानपूर्ण स्थान दिया गया। सेनापति ने अपने स्थान पर बैठकर अनेक बार रानी के सौन्दर्य को देखा। वहाँ पर बैठे हुए कुछ समय बीत गया। इस समय वहाँ क्या हो रहा था और अब तक क्या होता रहा, सेनापति कुछ समझ न सका। उसका ध्यान रानी की तरफ था।

इसी समय एकाएक सेनापति खान को अपने सम्पूर्ण शरीर में भीषण गरमी की अनुभूति हुई। वह थोड़ी ही देर में व्याकुल हो उठा। उसकी उस बेचैनी को देखकर रानी ने अपने स्थान पर खड़े होकर कहा : "पंखा करने, जल छिड़कने और दूसरे सैकड़ों उपाय किये जाने पर कुछ न होगा। सेनापति! तेरा अब अन्तिम समय है। भगवान को यह मंजूर है कि हम दोनों के प्राणों का अंत एक साथ हो।"

रानी के चुप होते-होते सेनापति की दशा भयानक हो उठी। वह जिन वस्त्रों को पहन कर महल में आया था, उनमें विष का इस प्रकार प्रयोग किया गया था कि उनके पहनने के कुछ देर बाद शरीर से एक साथ आग प्रज्वलित होगी और फिर किसी तरह उन वस्त्रों का पहनने वाला अपनी रक्षा न कर सकेगा। यही हुआ। सेनापति के सारे शरीर में एक साथ आग जल उठी। वह अचेत होकर गिर पड़ा। जिस समय उसके प्राण निकल रहे थे, रानी तेजी से अपने महल की छत पर चढ़ गयी। उसके नीचे गहरी नदी प्रवाहित हो रही थी। उसमें कूद कर रानी ने अपने प्राणों का अंत कर दिया। सेनापति खान की समाधि जो बनवाई गयी, वह भूपाल जाने के रास्ते में आज तक मौजूद है।

राजपूत स्त्रियों में कर्त्तव्य पालन और स्वाभिमान की बहुत सी बातें पायी जाती हैं। अम्बेर के प्रसिद्ध राजा जयसिंह ने कोटा की राजकुमारी के साथ विवाह किया था, उस राजकुमारी को सादगी से प्रेम था और आडम्बर की बातों को वह पसंद न करती थी। उसके वस्त्रों और आभूषणों में भी बहुत सादगी थी। उसकी यह अवस्था राजमहलों में रहने वाली रानियों के सर्वथा विरुद्ध थी। उसकी सादगी को उसका पति राजा जयसिंह पसन्द न करता था। परन्तु उसने बहुत दिनों तक कुछ न कहा।

जयसिंह को रानी की यह सादगी सदा खटकती रहती थी। उन दिनों में सभी रानियाँ बहु-

मूल्य वस्त्र और आभूषण पहना करती थीं। परन्तु कोटा की राजकुमारी इस प्रकार की बातों से घृणा करती थी। एक दिन राजा जयसिंह ने साधारण बातचीत करते हुए कोटा की राजकुमारी से कहा : "तुम्हारे वस्त्रों और आभूषणों से तो इस राज्य की प्रजा के घरों की स्त्रियाँ कीमती वस्त्र और आभूषण पहनती हैं।"

कोटा की राजकुमारी ने इसका कुछ उत्तर न दिया। राजा जयसिंह ने कांच का एक टुकड़ा लेकर रानी के पहने हुए वस्त्रों को फाड़ना चाहा। कोटा की राजकुमारी ने इससे अपना अपमान अनुभव किया। उसने तेजी के साथ तलवार निकल कर आवेश पूर्ण शब्दों में कहा : " मैंने जिस वंश में जन्म लिया है, वह वंश इस प्रकार के उपहास को कभी सहन नहीं कर सकता। यदि आप ने मेरा इस प्रकार अपमान किया तो आप देखेंगे कि अम्बेर के राजकुमार काँच का टुकड़ा चलाने में उतने होशियार नहीं होते जितनी होशियार कोटा की राजकुमारियाँ तलवार चलाने में होती हैं।"

राजा जयसिंह ने गम्भीर हो कर कोटा की राजकुमारी की तरफ देखा। उसकी मुख मुद्रा से इस बात का आभास हो रहा था, मानो वह अपनी भूल का अनुभव कर रहा है। उसी समय कोटा की राजकुमारी ने कहा : "कोटा वंश की किसी लड़की का भविष्य में कभी ऐसा अपमान न हो, इसलिए इस अपमान के विरुद्ध मुझे ऐसा करना पड़ा है।" राजकुमारी के संतोष के लिए राजा जयसिंह ने उस समय जो शपथ उठायी, वह अब तक वहाँ पर मानी जाती है।

राजस्थान की साधारण स्त्रियों में जो साहस और शौर्य पढ़ने और देखने को मिलता है, उससे आश्चर्य चकित हो जाना पड़ता है। गरीब राजपूत यहाँ पर खेती का काम करते हैं और उन की लड़कियाँ तथा स्त्रियाँ उनके कार्य में सहायता देती हैं। राजपूत कृषक जब काम करने के लिए अपने खेतों पर जाते हैं, तो उनकी लड़कियाँ और स्त्रियाँ भोजन पका कर खेतों पर पहुँचाने जाती हैं।

पञ्चपहाड़ के शिखर से मिले हुए एक जंगल के भीतर से एक राजपूत रमणी जा रही थी। उसका पति वहाँ से कुछ दूरी पर अपने खेतों में काम कर रहा था। राजपूत स्त्री उसके लिए भोजन ले जा रही थी। उस जंगली रास्ते में एक शूकर ने आकर स्त्री पर आक्रमण करना चाहा। स्त्री तेजी से एक बड़े वृक्ष की तरफ दौड़ी। शूकर ने पीछा किया। स्त्री उस वृक्ष के आस-पास घूमने लगी। उसको पकड़ने के लिए शूकर भी उसके पीछे-पीछे दौड़ने लगा। स्त्री ने जब कोई और उपाय न देखा तो उसने अपने दोनों हाथों से शूकर की गरदन को इस प्रकार पकड़ लिया कि वह दाहिने और बायें अपनी गरदन को घुमा न सका। इसी समय कुछ फासिले पर स्त्री ने एक सैनिक को जाते हुए देखा। स्त्री ने चिल्ला कर अपनी सहायता के लिए उस सैनिक को बुलाया।

बुलाने की आवाज सुनते ही सैनिक उस स्त्री के पास तेजी के साथ आया और उसने शूकर को दोनों हाथों से पकड़ लिया। स्त्री वहाँ से चल पड़ी। वह अभी कुछ ही दूर आगे गयी थी, इसी समय उस सैनिक ने जोर के साथ चिल्ला कर कहा : "यह शूकर मेरे काबू का नहीं है।"

सैनिक की इस बात को उस स्त्री ने सुना। वह तेजी के साथ दौड़ कर उस खेत पर पहुँची, जहाँ उसका पति काम कर रहा था और वहाँ से अपने पति की तलवार को लेकर वह लौट पड़ी। शूकर के पास आकर उसने सैनिक से अलग हो जाने के लिए कहा। उसके हटते ही उस स्त्री ने अपनी तलवार का जोरदार वार शूकर की गरदन पर किया। वह जख्मी होकर जमीन पर गिर गया। उसके बाद स्त्री अपने पति के खेत पर चली गयी।

इस प्रकार की घटनायें राजपूत स्त्रियों के सम्बन्ध में बहुत मिलती हैं, जिनसे उनकी श्रेष्ठता और वीरता का सहज ही अनुमान किया जा सकता है। यहाँ पर जैसलमेर राज्य की एक घटना का हम और उल्लेख करेंगे। यह राज्य राजस्थान से बहुत दूरी पर है। पूगाल का राजा नरंगदेव उस राज्य का सामन्त था। उसका उत्तराधिकारी पुत्र साधु नाम से प्रसिद्ध हुआ। उसका आतंक मरुभूमि के सभी लोगों में फैल गया था। वह साहसी और शूरवीर था। उसके अत्याचार दक्षिण में सिन्ध नदी तक और पश्चिम में नागौर तक हो रहे थे। उसका यह नित्य का कार्य था। एक बार वह लूट-मार करता हुआ माणिक राव की राजधानी अरिन्त नगर की तरफ चला गया। माणिक राव मोहिल जाति के लोगों का सरदार था। उसने जब सुना कि साधु बहुत-से आदमियों के साथ साथ लूट मार करता हुआ इस तरफ आ रहा है तो उसने अपना दूत भेजकर साधु को अपनी राजधानी अरिन्त नगर में बुलाया।

मोहिल लोगों के सरदार माणिकराव का निमंत्रण पाकर साधु बहुत प्रसन्न हुआ। राजधानी में आने पर माणिकराव ने उसका बहुत सत्कार किया। वह वृद्ध था और कर्मदेवी नाम की उसकी एक परम सुन्दरी लड़की थी। उसने युवावस्था में प्रवेश किया था। साधु सम्पूर्ण मरुभूमि में एक प्रसिद्ध अश्वारोही और शूरवीर था। कर्मदेवी ने उसकी प्रशंसा पहले से सुनी थी। उसकी राजधानी में आने पर कर्मदेवी ने उसको अपने नेत्रों से देखा। कर्मदेवी का विवाह मंदोर के राठौर वंश में होने का निश्चय हो चुका था। साधु की वीर भूषा देख कर कर्मदेवी प्रसन्न हो उठी और उसने उसके साथ अपना विवाह करने का संकल्प कर लिया।

कर्मदेवी ने अपने पिता माणिकराव से अपना निश्चय प्रकट किया। माणिकराव ने ही उसका विवाह मंदोर राज्य में तय किया था। लेकिन जब उसने कर्मदेवी का संकल्प सुना तो उसने एक बार भी उसका विरोध नहीं किया। यद्यपि वह तुरन्त इस बात को समझ गया कि कर्मदेवी का विवाह यदि मंदोर राज्य में न हुआ तो एक बार भयानक परिस्थिति उत्पन्न होगी। इस बात को जानते और समझते हुए भी उसने कर्मदेवी से कुछ न कहा।

साधु के साथ विवाह करने का निर्णय पूर्ण रूप से कर्मदेवी कर चुकी थी। इसलिए माणिक राव ने साधु से उसका प्रस्ताव किया। उसने प्रसन्न होकर स्वीकार कर लिया। उस समय साधु अपने साथ के लोगों के साथ वहाँ से लौट कर चला गया। माणिकराव ने कर्मदेवी के विवाह की तैयारी की और विवाह का दिन निश्चित हो गया। साधु ने वहाँ आकर निश्चित दिन और शुभ मुहूर्त में कर्मदेवी के साथ विवाह किया। माणिकराव ने इस विवाह के उपलक्ष में बहुमूल्य वस्त्र, आभूषण, सोने-चाँदी के बर्तन और एक सोने का बैल दिया। साथ ही कर्मदेवी के साथ जाने के लिए तेरह सहेलियाँ दीं।

कर्मदेवी के इस विवाह का समाचार चारों तरफ फैल गया। इस समाचार को मंदोर राज्य के युवराज अरण्य कमल ने भी सुना, जिसके साथ कर्मदेवी का विवाह होना पहले निश्चय हुआ था। अरण्य कमल को इस समाचार से बहुत क्रोध मालूम हुआ। उसने अपने राज्य के चार हाजार राठौर सैनिकों को मार्ग में साधु का विरोध करने के लिए भेज दिया। इन चार हजार राजपूत में कुछ लोग ऐसे भी थे जो साधु के अत्याचारों से पहले से ही नाराज थे। इसलिए उनको उससे बदला लेने का अवसर मिला। वे प्रसन्नता के साथ साधु से युद्ध करने के लिये मंदोर राज्य से रवाना हुए।

माणिक राव पहले से ही इस बात को जानता था कि कर्मदेवी के विवाह का समाचार सुन कर राजकुमार अरण्य कमल सभी प्रकार उपद्रव करेगा। इसलिए अपने जामाता के साथ कर्मदेवी

को बिदा करने के समय उसने चार हजार मोहिल सैनिकों को रास्ते में रक्षा करने के लिए भेजा। माणिकराव की इस सहायता के लिए धन्यवाद देकर साधु ने कहा : "मार्ग में किसी आक्रमणकारी के साथ युद्ध करने के लिए मेरे साथ के सात सौ सैनिक काफी हैं। आप किसी प्रकार की चिंता न करें। मैं सुरक्षित अवस्था में मरुभूमि पहुँच जाऊँगा।"

साधु के इतना कहने पर भी कर्मदेवी के बड़े भाई ने अपने पचास शूरवीर सैनिक साथ में भेजे। सब के साथ पराक्रमी साधु मरुभूमि की तरफ रवाना हुआ। चंदन नामक स्थान पर पहुँच कर उसने सब के साथ विश्राम किया। इसी समय मंदोर राज्य से अरण्य कमल की भेजी हुई सेना ने वहाँ पहुँचकर आक्रमण करने की चेष्टा की। शूरवीर साधु अपनी पञ्चकल्याणी नामक युद्ध की घोड़ी की पीठ के वस्त्रों को बिछा कर उस समय विश्राम कर रहा था। पञ्चकल्याणी की रस्सी उसकी दाहिनी भुजा में बँधी थी। इस समय मन्दोर के दूत ने आकर साधु का अभिवादन किया और भेजे गये संदेश को कहते हुए उसने प्रार्थना की कि मन्दोर राज्य की सेना आपके साथ युद्ध करने के लिए आयी है।

शूरवीर साधु ने सहज स्वभाव से युद्ध की बात स्वीकार कर लिया और अपनी स्वीकृत देते हुए उसने दूत से कहा : "मेरे साथ जो अफीम थी, वह कहीं खो गई है। इसलिए मेरे खाने के लिए तुम थोड़ी-सी अफीम अपने स्वामी से लेकर मेरे पास भेज देना।"

दूत ने ऐसा ही किया। साधु के सेवन करने के लिए दूत ने तुरंत अफीम भेज दी। उसे पाकर साधु बहुत संतुष्ट हुआ और एक खूराक खा कर वह फिर लेट गया। कुछ देर तक विश्राम करने के बाद वह उठ कर खड़ा हुआ। अपने साथ के सैनिकों को युद्ध के लिए तैयार होने की आज्ञा दी और वह स्वयं तैयार होने लगा। युद्ध की पोशाक पहनने के बाद उसने अपने सभी अस्त्र तैयार किये।

मंदोर राज्य से आयी हुई सेना भी युद्ध के लिए तैयार हो रही थी। इन तैयारियों के बाद दोनों तरफ से युद्ध के बाजे बजे और दोनों सेनायें युद्ध करने के लिए एक दूसरे की तरफ बढ़ने लगीं। थोड़ी देर में दोनों ओर से घमासान युद्ध आरम्भ हुआ। जहाँ पर यह मारकाट आरम्भ हुई उससे कुछ दूरी पर कर्मदेवी का रथ खड़ा हुआ था और उस पर बैठी हुई वह युद्ध में अपने पति साधु के पराक्रम को देखकर प्रसन्न हो रही थी। पंचकल्याणी घोड़ी पर बैठा हुआ साधु अपनी तेज तलवार से मंदोर के सैनिकों का संहार कर रहा था और उसकी तलवार की इस तेजी को देखकर कर्मदेवी अत्यन्त प्रसन्न हो रही थी। युद्ध के समय अनेक बार उसने साधु की वीरता देखकर जय-जयकार की।

बहुत देर की मारकाट के बाद दोनों ओर की सेनायें पीछे हट गयीं। अब तक युद्ध में दोनों तरफ के बहुत से सैनिक मारे गये थे। मंदोर के छै सौ सैनिकों का अंत हो चुका था और साधु के साथी आधे सैनिक युद्ध में धराशायी हो चुके थे। इस अवस्था में पराक्रमी साधु अपनी घोड़ी पर बैठा हुआ कर्मदेवी के रथ के पास आया। उसके शरीर में कई घावों से रक्त बह रहा था। उसको पास देखकर कर्मदेवी ने हँसकर उसकी प्रशंसा की। साधु ने युद्ध की परिस्थित पर प्रकाश डालते हुए कुछ बातें कर्मदेवी से कहीं। और कर्मदेवी की मुख की तरफ देखकर साधु ने अपने सहज स्वर में कहा : "युद्ध की हालत अच्छी नहीं है। अब वह फिर आरम्भ होने वाला है। मैं अब तुमसे उसके लिए अपने जीवन की अंतिम बिदा लेने आया हूँ।"

पति की बात को सुनकर कर्मदेवी ने अपने ओजस्वी शब्दों में कहा : "राजपूत का गौरव उसके युद्ध की वीरता में है। मैंने आपकी प्रशंसा अपने कानों से पहले सुनी थी। आज अपने नेत्रों

से आपके बाहुबल का प्रताप देखा है। आपकी विजय पर मैं पूर्ण विश्वास रखती हूँ। लेकिन यदि आप युद्ध में मारे गये तो यहीं चिता बनाकर आपके मृत शरीर के साथ मैं अपने प्राणों को भस्मीभूत करूंगी और स्वर्ग लोक पहुँचकर आप से भेट करूंगी।"

कर्मदेवी से बिदा लेकर साधु अरण्य कमल के साथ युद्ध करने के लिए रवाना हुआ। दोनों ही एक दूसरे के रक्त के प्यासे थे। अरण्य कमल साधु का सर्वनाश करने के लिए अपने दाहिने हाथ की तलवार को बार-बार घुमा रहा था।

इसी समय अपनी घोड़ी पर बैठा हुआ साधु युद्ध-क्षेत्र में अरण्य कमल के सामने पहुँच गया। दोनों ने एक साथ एक, दूसरे पर भीषण आक्रमण करने का प्रयास किया। साधु ने अरण्य कमल पर अपने भाले का वार किया। वह भाला अरण्य कमल की गरदन में जाकर लगा। उसी समय अरण्य कमल ने अपना भीषण प्रहार साधु के ऊपर किया। रथ पर बैठी हुई कर्मदेवी ने देखा कि अरण्य कमल के भाले से उसके पति के मस्तक में भयानक आघात हुआ। दोनों शूरवीर एक साथ भूमि पर गिर गये। साधु का मस्तक अरण्य कमल के भाले से फट गया था। इसलिए उसके गिरते ही उसकी मृत्यु हो गयी। अरण्य कमल की गरदन का जख्म बहुत गहरा न था। इसलिए कुछ देर बेहोश रहने के बाद उसके नेत्र खुल गये। दोनों ओर के सरदारों के गिर जाने पर युद्ध बन्द हो गया और दोनों तरफ की सेनायें युद्ध स्थल से पीछे की ओर हट गयीं।

साधु के मारे जाने पर कर्मदेवी रथ से निकली और चिता बनाने की तैयारी करने लगी। चिता के तैयार होने पर कर्मदेवी अपने साथ के बचे हुए आदमियों के बीच में खड़ी हुई। उसने अपनी तलवार निकालकर सबके सामने अपनी बाईं भुजा को काट कर कहा : "अपने प्राणेश्वर के पिता के पास मैं अपनी यह पूजा भेजती हूँ। उनसे कहना को आपकी पुत्री ने अपने हाथ से काटकर यह भुजा भेजी है।" इसके बाद उसने अपनी दूसरी भुजा को काटकर कहा: "विवाह का कंकण पहने हुए मेरी यह दाहिनी भुजा मोहिलयों के भट्ट कवि को देना।"

मनुष्यों के रक्त से डूबी हुई युद्ध भूमि में चिता तैयार हो चुकी थी। अपने प्राण प्यारे पति के मृत शरीर को लेकर कर्मदेवी चिता में जाकर बैठ गयी। उसी समय चिता में आग लगायी गयी। चिता की लपटों के उठते ही हजारों एकत्रित मनुष्यों के द्वारा वीरबाला कर्मदेवी के नाम की जयध्वनि से रणभूमि गूंज उठी! कर्मदेवी की आज्ञानुसार, उसकी दोनों भुजायें भेज दी गयीं। पूगल के वृद्ध सामन्त नरंगदेव ने अपनी पुत्र वधू कर्मदेवी की कटी हुई भुजा का दाह-संस्कार करके उसी स्थान पर एक विशाल सरोवर बनवाया। कर्मदेवी का सरोवर के नाम से वह सरोवर आज तक प्रसिद्ध है। सम्बत् १४६२ सन् १४०६ ईसवी में यह लड़ाई हुई थी। मन्दोर के राजकुमार अरण्य कमल के चार भाई थे, इस लड़ाई में वे भी भयानक रूप से घायल हुए थे। अरण्य कमल स्वयं अपने शरीर में कई एक भीषण जख्मों को लेकर मन्दोर वापस गया। वहाँ पर छै महीने तक उसके घावों की चिकित्सा होती रही। परंतु वे ठी न हो सके और उसके बाद अरण्य कमल की मृत्यु हो गयी।

कर्मदेवी के विवाह के कारण दो राजपूत वंशों में जो कलह उत्पन्न हुई, उसका अंत हो गया। पूगल और मन्दोर राज्य के सैनिकों का भीषण रूप से सर्वनाश हुआ। परन्तु बदला लेने की आग जो पैदा हुई थी उसका अंत न हुआ। शूरवीर साधु और राजकुमार अरण्य कमल—दोनों के प्राणों का अंत हो गया। अरण्य कमल ने अपने अपमान का बदला लेने के लिए साधु पर आक्रमण किया था। उस आक्रमण में हजारों मनुष्यों के सर्वनाश के साथ साधु मारा गया और कुछ दिनों बाद अरण्य कमल की भी मृत्यु हो गयी। परन्तु बदला लेने की भावना का अंत न हुआ। साधु

के पिता नरंगदेव जिस समय अपने बेटे का बदला लेने की तैयारी कर रहा था, उन्हीं दिनों में अरण्य कमल का पिता राजा चण्ड मन्दोर में नरंगदेव से युद्ध करने की तैयारी कर रहा था। दोनों के देटे मारे गये थे और दोनों ही अपने बेटों का बदला लेना चाहते थे। मन्दोर राज्य की अधीनता में संकल के सामन्तों ने साधु के साथ होने वाले युद्ध में मन्दोर राज्य की सेना का साथ दिया था। इसलिए नरंगदेव ने पूगल के वीरों को एकत्रित करके संकल के सामन्तों पर आक्रमण किया और उनके अधिकृत नगरों में लूटमार की।

नरंगदेव ने अपने इस आक्रमण में सभी प्रकार के अत्याचार किये। लूटी हुई सम्पत्ति को लेकर वह पूगल की तरफ लौटा। रास्ते में मन्दोर का राजा चण्ड एक विशाल सेना के साथ मिला। वह नरंगदेव पर आक्रमण करने के लिए आया था। बात की बात में दोनों ओर की सेनायें युद्ध के लिए तैयार हो गयीं और भीषण मारकाट आरम्भ हो गयी। इस लड़ाई में वृद्ध नरंगदेव मारा गया। उसके बाद युद्ध समाप्त हो गया और मन्दोर का राजा अपनी सेना के साथ वहाँ वहाँ से चला गया।

नरंगदेव के दो शेष पुत्र तूनो और महीर को पिता के मारे जाने का असाधारण दुख हुआ। दोनों ही राजा चण्ड से बदला लेने की तैयारी करने लगे। उनका भाई साधु पहले ही मारा गया था। वृद्ध पिता का भी अंत हो गया। अब उनके पास मन्दोर की सेना का सामना करने के लिए किसी प्रकार का बल न था। फिर भी दोनों भाइयों को संतोष न हुआ।

तूनों और महीर ने राजा चण्ड से बदला लेने के लिए बहुत-से उपाय सोच डाले। वे किसी भी दशा में अपने पिता का बदला लेना चाहते थे। बादशाह खिजरखाँ उन दिनों में मुलतान में था। दोनों भाइयों ने वहाँ पहुँचकर इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया और मन्दोर राज्य पर आक्रमण करने के लिए दोनों भाइयों ने बादशाह से सहायता माँगी।

बादशाह खिजिर खाँ ने उन दोनों भाइयों की बात को मंजूर कर लिया और उनकी सहायता के लिये अपनी एक फौज भेजी। उस फोज को लेकर राजा चण्ड पर आक्रमण करने के लिए तूनो और महीर रवाना हुए। इसी मौके पर जयशाल के राजकुमार कल्याण के साथ उनकी भेंट हुई। कल्याण ने उन दोनों भाइयों को परामर्श दिया कि राजा चंड पर बिना किसी सूचना के अचानक आक्रमण किया जाय और उसका बदला लिया जाय। दोनों भाइयों ने इस बात को स्वीकार कर लिया।

राजकुमार कल्याण ने इतना ही नहीं किया। बल्कि उसने राजा चंड को धोखे में रखने के लिए और भी बहुत-से उपाय सोच डाले। उसने दोनों भाईयों के साथ अनेक प्रकार के परामर्श करके एक षडयंत्र की सृष्टि की। उसने राजा चंड के पास अपनी लड़की का विवाह का प्रस्ताव भेजा और साथ ही यह भी कहला भेजा कि मैं राजा चंड के संतोष के लिए अपनी लड़की को नागोर भेजने के लिए तैयार हूँ। राजा चंड ने कल्याण के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। मन्दोर राज्य का विस्तार इन दिनों में नागोर तक हो चुका था।

राजा चण्ड के द्वारा प्रस्ताव की मंजूरी मिल चुकने पर पहरेदार पाँच सौ रथ बड़ी तेजी के साथ तैयार कराये गये और उन रथों में पूगल के शूरवीर सशस्त्र सैनिक बैठे। रथों के आगे सवार राजपूत रवाना हुए। सैकड़ों ऊँटों पर खाने-पीने की सामग्री रवाना हुई और उसकी रक्षा के लिए सशस्त्र सैनिक साथ में चले। इसी अवसर पर राजा चण्ड विवाह के लिए नगौर की तरफ रवाना हुआ। उसको नवीन पत्नी के पाने की प्रसन्नता थी।

नागौर के समीप पहुँचने पर राजा चण्ड ने रथों और सवारों के साथ ऊँटों पर लदी हुई

विवाह की आती हुई सामग्री को देखा। वह नागौर की तरफ चल रहा था और कल्याण के भेजे हुए रथ और सवार भी उसी तरफ जा रहे थे। बहुत निकट आ जाने पर राजा चण्ड ने परदों से बन्द रथों की तरफ देखा। अकस्मात उसे कुछ सन्देह पैदा हुआ। अब तक वह रथों के बिल्कुल समीप पहुँच गया था। उसने तेजी के साथ भागने की कोशिश की। इसी समय रथों के परदे खोल-कर सशस्त्र सैनिक भाटिया लोग निकल पड़े। उन सब ने एक साथ मन्दोर के राजा चण्ड पर आक्रमण किया और उसे पकड़ कर मार डाला। इसके बाद उन लोगों ने नागौर के आस-पास कुछ समय तक लूटमार की।

नरंगदेव के दोनों पुत्र तूनो और महीर राजा चण्ड को मार कर एवम् अपने पिता का बदला लेकर पूगल राज्य के बाहर आभोरिया के भाटियों से जाकर मिल गये।

हिन्दुओं के इतिहास का प्रत्येक पृष्ट स्त्री के प्रभाव से रंगा हुआ है। बहुत प्राचीन काल से इस देश की यही अवस्था रही है। रावण का बध सीता के कारण हुआ था। द्रौपदी के अपमान के कारण महाभारत हुआ था। स्त्री के कारण ही राज भर्तृहरि ने अपना राज-सिंहासन छोड़ा था। इस देश के इतिहास की प्रत्येक घटना स्त्रियों से सम्बन्ध रखती है। राजस्थान के बहुत से युद्ध आपस में केवल स्त्रियों के कारण हुए। राजकुमारी संयुक्ता जयचन्द और पृथ्वीराज की शत्रुता का कारण बनी और उसके फलस्वरूप, मोहम्मद गोरी के युद्ध में पृथ्वीराज मारा गया। यहाँ के इतिहास में इस प्रकार की सहस्त्रों घटनाये हैं, उनमें से कुछ के उल्लेख ऊपर किये गये हैं।

राजपूतों के शौर्य और विक्रम में किसी को सदेह नहीं हो सकता। उसके साथ-साथ जिसने राजस्थान का सच्चा इतिहास देखा है, वह राजपूत स्त्रियों के श्रेष्ठ चरित्र की प्रशंसा करेगा। राजपूत लड़कियाँ अपने विवाह के लिए शूरवीरों को पसन्द करती थीं और अपने पुत्रों को वे शूरवीर बनाती थीं। राजस्थान के इतिहास में जितनी प्रशंसा राजपूतों की की जा सकती है, उतनी ही प्रशंसा की अधिकारिणी यहाँ की राजपूत स्त्रियाँ हैं। इसमें किसी का मतभेद नहीं हो सकता।

तीसवाँ परिच्छेद

राजपूतों का जीवन, बलिदानों का जीवन है–युद्ध के लिए राजपूतों का जन्म–सती प्रथा–कन्याओं के वध की प्रथा–उसका मूल कारण–सामाजिक जीवन की खराबियाँ–राजपूत लड़कियों के विवाहों में भीषण दृश्य–राजपूत स्त्रियों में जौहर व्रत–युद्ध में बंदी स्त्रियाँ–राजपूतों में अफीम का सेवन।

राजस्थान के इतिहास में राजपूतों के चरित्र की जो विशेषता है, उसको राजपूत स्त्रियों के बलिदानों ने अधिक आकर्षण और अद्वितीय बना दिया है। इस परिच्छेद में हम उन पर प्रकाश डालने की चेष्टा करेंगे और इस बात के समझने की कोशिश करेंगे कि उनके उन बलिदानों का मूल आधार क्या है। राजपूत स्त्रियों के बलिदानों में सब से प्रधान हमारे सामने सती प्रथा है। इस प्रथा का अंकुर कहाँ और कैसे पैदा हुआ और फिर कैसे उसका विस्तार हुआ, इसे हम ऐतिहासिक दृष्टि कोण से यहाँ पर स्पष्ट करने का प्रयत्न करेंगे। राजपूतों में प्रचलित इस प्रकार की पुरानी प्रथाओं के समझने की सामग्री बहुत कुछ उनके धार्मिक ग्रंथों और पुराणों से मिलती है। इसलिए उनका आश्रय लेना हमारे लिए अनिवार्य रूप से आवश्यक है।

प्राचीन राजपूत स्त्रियों में सती होने की एक प्रथा थी और राजा दक्ष प्रजापति की बेटी का नाम सती था। राजा दक्ष ने एक यज्ञ किया था और उसमें भाग लेने के लिए उसने सभी राजाओं तथा नरेशों को आमंत्रित किया था। लेकिन उसने अपने जामाता शिवजी को निमंत्रण नहीं भेजा था। सती को जब मालूम हुआ कि मेरे पिता ने यह यज्ञ किया है तो बिना निमंत्रण के वह अपने पिता के यहाँ चली आयी। राजा दक्ष ने अपने यहाँ आये हुए राजाओं की सभा में महादेव की निंदा की। सती को अपने पिता से इस बात की आशा न थी। वह अपने पति शिवजी के अपमान को सहन न कर सकी और उसने उस अपमान के विरोध में अपनी जान दे दी। हिन्दू ग्रंथों के अनुसार, उस सती ने राजा हिमालय के यहाँ पार्वती के नाम से जन्म लिया और वह शिव जी को ब्याही गयी। राजपूत स्त्रियों में यह पुराना विश्वास था कि जो स्त्री अपने पति के लिए अपने प्राणों का बलिदान करती है, दूसरे जन्म में उसे वही मनुष्य फिर पति के रूप में मिलता है। स्त्रियों में इस बलिदान की प्रथा शुरुआत की शैव लोगों से हुई। उसके बाद दूसरे लोगों में उसका प्रचार हुआ। शैव लोग शिव के पुजारी थे। उनकी स्त्रियों का इस दशा में पार्वती या सती की आराधना का होना स्वाभाविक था। उन दिनों में सीथियन, जित अथवा जठ जाति के लोगों में जब कोई वीर पुरुष मरता था, तो उसके मृत शरीर के साथ उसकी स्त्री, उसकी सवारी का घोड़ा और उसके अस्त्र-शस्त्र चिता की प्रज्वलित अग्नि में जलाये जाते थे। स्कैण्डीनेविया के लोगों से लेकर फीजियन, फ्रेङ्कों और सैक्शन जाति के लोगों में यह प्रथा फैली। इस प्रथा का प्रधान उद्देश्य मोक्ष प्राप्त करने का था। सती प्रथा के सम्बन्ध में यह विश्वास किया जाता था कि सती होने वाली स्त्री न केवल अपने पापों से अपने आपको और पति को उसके पापों से मुक्त करती है, बल्कि दूसरे जन्म में फिर अपने पूर्व जन्म के पति को ब्याही जाती है। इस प्रथा के सम्बन्ध में यह विश्वास बहुत प्राचीन काल से चला आ रहा था। इस विश्वास ने सती होने वाली स्त्रियों के साहस और शक्ति में वृद्धि की थी और इसी का यह परिणाम था कि बंगाल की सहज ही भयभीत होने वाली स्त्रियाँ भी मृत पति के शरीर को लेकर प्रज्वलित चिता में जलती थीं।

सती प्रथा के सम्बन्ध में हिन्दुओं के ग्रंथ एक नहीं हैं। वेदव्यास ने अपने ग्रंथ महाभारत में इस प्रथा का समर्थन किया है। लेकिन मनु ने स्त्रियों को सती होने का उपदेश नहीं दिया। इस सत्य को मानने से कोई इनकार न करेगा कि हिन्दुओं के आचरणों का निर्माण मनु के विधान के अनुसार हुआ है। मनुस्मृति नामक प्रसिद्ध ग्रंथ में विधवा स्त्रियों के लिए बहुत-सी नैतिक बातें लिखी गयी हैं और मनु ने आदेश देते हुए कहा है : "विधवा हो जाने के बाद स्त्रियों को चाहिए कि वे अपना शेष जीवन बड़ी सादगी के साथ बितावें, साधारण भोजन करें और सादे वस्त्र पहनें। वे भूलकर भी कभी दूसरे पुरुष का नाम न लें। पति के मर जाने पर जो स्त्री पवित्र जीवन व्यतीत करती है, उसको मरने पर स्वर्ग मिलता है। परन्तु जो स्त्री विधवा हो जाने के बाद अपना दूसरा विवाह करके मृत पति का अपमान करती है, इस लोक में उसका नाम कलंकित होता है, और मरने पर उसे नरक मिलता है।"

इस देश के सभी प्राचीन विद्वानों ने पवित्र जीवन बिताने के लिए विधवाओं को अनेक प्रकार के उपदेश दिये हैं। लेकिन उनमें से किसी ने सती प्रथा के निर्दय सौर अमानुषिक प्रेम का उपदेश नहीं दिया। इस प्रथा में भीषण निर्दयता है। उसमें दाम्पत्य प्रेम नहीं है। बल्कि जीवन की इतनी बड़ी कठोरता है, जो सुनने पर ही भयानक रूप से रोमाञ्चकारी है। विधवाओं में चरित्रबल पैदा करना और चरित्रवान बनाना एक श्रेष्ठ गुण है। परन्तु सती प्रथा सर्वथा प्रकृति के विरुद्ध और अमानुषिक निर्दयता है।

सती प्रथा समाज की कोई अच्छी व्यवस्था नहीं कही जा सकती। इस प्रथा के साथ न तो धार्मिक दृढ़ता है और न दाम्पत्य प्रेम है। बल्कि प्रचलित प्रथा की एक ऐसी दासता है, जिसे सती होने वाली स्त्रियों को स्वीकार करना पड़ता था। इस प्रकार की निर्दय प्रथा का प्रचार केवल राजपूतों में ही नहीं था, बल्कि उस समय की अनेक जातियों में था, जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है। स्त्री के लिए इसे दाम्पत्य प्रेम कहा जा सकता है, लेकिन मृतक के साथ उसका घोड़ा और उसके अस्त्र-शस्त्र चिता में जला देने का क्या अभिप्राय था ? उन दिनों में गुलामी की प्रथा संसार के बहुत से स्थानों में थी और ऐसी जातियों में मालिक के मरने पर उसके गुलामों को चिता में जला देने की प्रथा भी थी। उसमें कौन सा धर्म था ? इस प्रकार की प्रथायें उस युग की घृणित गुलामी का परिचय देती थीं, जो मनुष्यों में ही नहीं—पशुओं में भी नहीं कायम रखी जा सकतीं ! ×

सती प्रथा से भी अधिक अमानुषिक राजपूतों में कन्याओं के मार डालने की प्रथा थी। स्त्रियों के सती होने के सम्बन्ध में अनेक बातें कही जा सकती हैं, लेकिन कन्याओं के मारे जाने का कारण क्या था ? राजपूतों में लड़की को पैदा होने के बाद मार डालने का रिवाज बहुत दिनों से चला आ रहा था। कन्या के उत्पन्न होते ही उसकी और उसकी माता की उपेक्षा होती थी। जैसे भी हो सकता था, उस कन्या को मार डाला जाता था। इस प्रकार का प्रचार आमतौर से राजपूतों में था।

उत्पन्न होते ही कन्याओं को राजपूतों में क्यों मार डाला जाता था, इसको सावधानी के साथ समझने की आवश्यकता है। सन्तान के साथ स्नेह होना अत्यन्त स्वाभाविक है और यह स्वाभाविकता पक्षियों और पशुओं में भी पायी जाती है। मनुष्य अन्य जीवों की अपेक्षा बुद्धिमान माना जाता है। फिर उत्पन्न होते ही कन्याओं के मार डालने का आम प्रचार राजपूतों में क्यों था, इसका कोई विशेष कारण होना चाहिए।

इस प्रकार नृशंसता संसार के अन्य देशों में भी देखी गयी है और आज भी उस तरह की कितनी बातें देखी जाती हैं। उनका भी कोई कारण रहा है। फ्रांस के फ्रीजियन के लोगों, इटली के लाङ्गोवार्डो लोगों और स्पेन के कुछ लोगों में कन्याओं को जिन्दगी भर धर्मशालाओं में बन्दी बना कर रखने की प्रथा थी और इसी प्रकार की प्रथा गाथियों में भी फैली रही। राजपूतों और जर्मनी के लड़ाकू लोगों में स्त्रियों के विरुद्ध अपवाद के भय से इस प्रकार की बातों का प्रचार था। वे लोग अपनी स्त्रियों में दूसरों का अधिकार देख न सकते थे। इसलिए ऐसे मौके पैदा होने पर वे लोग अपनी स्त्रियों पर आघात करते थे। प्राचीन काल में इस नृशंसता के विभिन्न रूप संसार के भिन्न-भिन्न देशों में पाये जाते थे। उन सब के कारण थे और राजपूतों में भी कन्याओं के मार डालने का निश्चित रूप से कारण था ! *

× मुगल बादशाह जहाँगीर ने अपने राज्य में आदेश दिया था कि जिस हिन्दू विधवा के पुत्र अथवा कन्या है, वह मृत पति के साथ जल नहीं सकती। लार्ड विलियम बैण्टिक के शासन-काल में भारत में सती होने की प्रथा कानूनन बंद कर दी गयी।

* सिन्ध नदी के किनारे भिक्कर नाम की एक सीथियन जाति रहती थी। प्राचीन काल में उस जाति के लोग कन्या के उत्पन्न होते ही मार डालते थे। इतिहास फरिश्ता में उन लोगों की इस प्रकार की बातों का वर्णन कुछ विस्तार में किया गया है। यही कारण था कि उस जाति में स्त्रियों की संख्या बहुत कम थी।

राजपूतों में कन्याओं के मार डालने के तरीके अनेक प्रकार के थे। अधिकांश लोग अफीम खिला कर उसे खतम कर देते थे। इस घृणित हत्या का सम्बन्ध राजपूतों में प्रचलित वैवाहिक प्रणाली के साथ था। राजस्थान के इतिहास में न जाने कितनी घटनायें इस प्रकार की पढ़ने को मिलती हैं कि जिनमें राजपूतों की लड़कियों के विवाहों में भयानक युद्ध हुए, अमानुषिक अत्याचार किये और माता-पिता तथा लड़कियों की इच्छाओं के विरुद्ध उनके विवाह हुए। इस प्रकार की घटनाओं के साथ होने वाले विवाहों में लड़कियों ने विष खाकर अपने प्राणों का अन्त किया। कहीं भीषण मारकाट हुई और हजारों मनुष्यों की जानें गयीं। विवाहों के सम्बन्ध में राजस्थान का इतिहास इस प्रकार की दुर्घटनाओं से भरा हुआ है।

इस दशा में इस बात को मान लेना कुछ भी अनुचित नहीं हो सकता कि राजपूतों में कन्याओं के मार डालने की जो प्रथा थी, उसका कारण उनमें विवाह की प्रचलित प्रणाली थी। राजपूत अपने स्वाभिमान के लिए सदा प्रसिद्ध रहे हैं। इसी स्वाभिमान के कारण सदा उनका सर्वनाश हुआ है। और उनके स्वाभिमान का ही यह कारण था कि राजपूत वंश में जन्म लेने वाला प्रत्येक बालक अपने प्राणों पर खेल जाना बहुत मामूली बात समझता था।

ऊपर यह लिखा जा चुका है कि राजपूत अपनी लड़कियों के विवाह श्रेष्ठ वंश के राजपूतों में करते थे। परन्तु उनके जिन दिनों का यह इतिहास लिखा जा रहा है, वह समय उनके लिए बड़ा भयानक था। नियमों और व्यवस्थाओं को एक तरफ रख कर छोटी-छोटी बातों में राजपूत एक दूसरे के सर्वनाश के लिए तैयार हो जाते थे और उसके साथ-साथ वे अपना भी सर्वनाश करते थे। उनके इतिहास में सर्वनाश की जितनी दुर्घटनायें मिलती हैं, उनमें अधिकांश उनके विवाहों से सम्बन्ध रखती हैं। उनकी लड़कियों के विवाहों में मनुष्य के जीवन का कोई अनाचार बाकी न रहता था। उस सर्वनाश से सुरक्षित रहने के लिए राजपूत उत्पन्न होते ही कन्याओं को मार डालते थे।

राजपूतों में लड़कियों के जो विवाह सकुशल व्यतीत होते थे, उनमें भयानक रूप से धन का अपव्यय होता था। आपस में लड़ते-लड़ते राजपूत भीषण पतन में पहुँच गये थे। उनकी आर्थिक परिस्थितियाँ शोचनीय हो गयी थीं। परन्तु उनके कार्य उसी प्रकार हो रहे थे, जैसे कि उनकी सम्पन्न अवस्थाओं में होते थे। धन अपव्यय के साथ-साथ अनेक प्रकार की वैवाहिक कुरीतियों का प्रचार राजपूतों में था। परन्तु उनका कभी सुधार न हुआ और जब कभी उन कुरीतियों के सम्बन्ध में कोई सुधार का कार्य किया गया तो उसमें उनको सफलता न मिली। इसका कारण था। राजपूतों का आपस में कोई संगठन न था। कहीं पर कोई उनका अधिकारी अथवा नेता न था। घर से लेकर बाहर तक उनके बीच में कोई ऐसा आदमी न था, जो अपने प्रभुत्व और पराक्रम से उन पर नियंत्रण रख सकता। राजपूत सभी स्वतंत्र थे और उनके जीवन का स्वाभिमान किसी के सामने उनको सिर झुकाने के लिए तैयार न होने देता था। वे अपना सर्वनाश स्वीकार करते थे। लेकिन कभी कोई किसी का अच्छा परामर्श मानने के लिए तैयार न होता था। उनके जीवन की यह परिस्थितियाँ प्राचीन काल से बराबर चली आ रही थीं।

राजपूतों में कुछ लोगों ने कुरीतियों के सुधार की चेष्टा भी की थी। अम्बेर के राजा जयसिंह ने एक बार कोशिश की कि राजपूतों में बढ़ती हुई वैवाहिक कुरीतियों को रोका जाय और धन का जो अपव्यय होता है, उसके विरुद्ध आन्दोलन किया जाय। जयसिंह ने उस समय के वर्तमान राजाओं से प्रस्ताव किया था कि कोई भी अपनी मर्यादा के बाहर विवाहों में धन का दुरुपयोग न करे। साथ ही प्रत्येक राजा अपने सामन्तों को परामर्श दे कि वे अपने एक वर्ष की आमदनी से अधिक खर्च विवाहों में न करें।

जिन दिनों में राजा जयसिंह ने यह प्रस्ताव किया था, राजपूतों की आर्थिक दशा उन दिनों में बहुत खराब हो चुकी थी। उनकी आमदनी के रास्ते बिगड़ते जाते थे और खर्चों के नाजायज बोझ उनके सिर पर नये-नये पैदा होते जाते थे। उन दिनों में भट्ट कवियों का प्रभाव बहुत बढ़ गया था। राजाओं, सामन्तों और सरदारों की झूठी प्रशंसायें करना उनका काम था। इसके बदले में उनको राजपूतों से सदा लम्बी-लम्बी रकमें मिला करती थीं। इन कवियों ने अपनी झूठी प्रशंसाओं के सुनने का उनको आदी बना दिया था।

विवाहों के अवसरों पर कवि लोग राजपूतों की झूठी प्रशंसायें करके और उनके पूर्वजों के हजारों वर्ष पहले के दृश्य उपस्थित करके वे कवि उनको मूर्ख बनाने का काम करते थे। विवाहों में राजपूत अपनी मर्यादा के बाहर जो धन खर्च करते थे, उसके अपराधी यह कवि थे। ये लोग अपनी कविताओं के द्वारा उनको प्रोत्साहन देते थे। इन कवियों ने राजपूतों को जमीन की सही बातें कभी नहीं बतायी थीं। घर के लड़ाई—झगड़ों में राजपूतों को इन कवियों से अनुचित प्रोत्साहन मिलता था।

राजा जयसिंह ने राजपूतों में प्रचलित कुरीतियों को सुधारने की कोशिश की थी। परन्तु इन झूठे प्रशंसक कवियों के विरोधी प्रचार के कारण उसमें सफलता न मिली। इस सुधार के कार्य में राजपूत आगे न बढ़ सके। उनके सलाहकारों ने उनको विरोधी सलाहें इस लिए दीं कि कुरीतियों में सुधार होने से सबसे बड़ी हानि उन्हीं की होती थी। विवाहों के अवसरों पर कवि और ब्राह्मण राजपूतों के यहाँ जाते थे और झूठी प्रशंसायें करके वे लोग दोनों पक्ष से धन वसूल करते थे। जो लोग इन कवियों और ब्राह्मणों को अधिक-से-अधिक सम्पत्ति देकर प्रसन्न न कर सकते थे, उनके विरुद्ध कवितायें बनाकर ये लोग उनका तिरस्कार करते थे। उस अपमान से बचने के लिए विवाह के अवसरों पर इन कवियों को अधिक-से-अधिक सम्पत्ति देकर प्रसन्न करने की कोशिश की जाती थी।

विवाह में अधिक व्यय करने के लिए प्रोत्साहन देना और दान करने की प्रथा का वर्णन करके राजपूतों को अधिक खर्च करने के लिए विवश करना कवियों का काम था। लड़की के विवाह में पिता को किस प्रकार अपनी सम्पत्ति लुटानी पड़ती थी, उसका सहज ही कोई अनुमान नहीं लगा सकता। प्रसिद्ध कवि चण्ड ने लिखा है : "पृथ्वीराज के साथ अपनी लड़की के विवाह में दाहिमा ने अपना पूरा खजाना खाली कर दिया था। धन के इस दुरुपयोग में उसकी प्रशंसा की गयी और भविष्य की विपदाओं में उसको आधार हीन बना दिया गया। इस विवाह में लड़की के पिता को आखें बन्द करके जो कुछ खर्च करना पड़ा था, उसमें एक लाख रुपये उसने राज कवि को दिये थे।"

विवाह में लड़की के पिता को धन देना पड़ता था, उसमें ब्राह्मण और कवियों को दी जाने वाली सम्पत्ति पहले से ही निर्धारित रहती थी। राणा भीमसिंह की आर्थिक अवस्था बहुत जीर्ण-शीर्ण हो गयी थी परन्तु अपनी लड़की के विवाह में राजा कवि को उसे भी एक लाख रुपये देने पड़े थे। राजपूतों की आर्थिक दशा लगातार गिरती जाती थी। परन्तु लड़कियों के विवाहों में खर्च की जाने वाली सम्पत्ति में वृद्धि होती थी। राजा जयसिंह ने इसको रोकने की कोशिश की थी। परन्तु उसको सफलता न मिली।

राजपूतों में उनकी लड़कियों के विवाहों की समस्या बहुत पहले से भयानक थी। कितनी ही बातों को लेकर राजपूतों के लिए यह समस्या बहुत असह्य हो गयी थी। यही कारण था कि

राजपूतों में पैदा होने के बाद लड़कियों को मार डलाने की प्रथा चल रही थी। अँगरेजी शासन में यह प्रथा निर्मूल हो गयी।

सती होने और जन्म के बाद लड़कियों को मार डालने की प्रथाओं से भी भयानक एक तीसरी प्रथा का प्रचार जो राजपूतों में था वह प्रथा जौहर व्रत के नाम से प्रसिद्ध थी। इस तीसरी प्रथा में एक साथ कई-कई हजार राजपूत बालायें आग की होली में जल कर खाक होती थीं। मेवाड़ के इतिहास में जौहर व्रत की घटनाओं का वर्णन कई बार किया जा चुका है। राजपूतों में स्त्रियों का सम्पूर्ण जीवन बलिदानों से भरा हुआ है। जन्म के बाद वे जीवित मार डाली जाती थीं। जो बच जाती थीं, उनमें अधिकांश लड़कियों को विवाह की दुर्घटनाओं में विष खाकर प्राण देने पड़ते थे। जो इससे सुरक्षित रह जाती थीं, उनको पति के मृत शरीर के साथ सती होना पड़ता था और उससे भी जो बच जाती थीं, उनको जौहर व्रत की प्रथा के अनुसार, हजारों बालाओं को जीवित बलिदान होना पड़ता था। राजपूत स्त्रियों का जीवन ही बलिदानों का जीवन था। किसी भी समय प्राणों को उत्सर्ग करने के लिए उनको तैयार रहना पड़ता था।

राजपूत स्त्रियों के जीवन में एक समय और भी बड़ा भयानक आता था। आक्रमणकारी विजय होने के बाद न केवल लूटमार करता था, बल्कि वह स्त्रियों को कैद करके अपने यहाँ ले जाता था और वे उसके आदमियों में उसी प्रकार बाँटी जाती थीं, जैसे लूट की सम्पत्ति बाँटी जाती है।

युद्ध के बाद युवतियों और स्त्रियों को कैद करने की प्रथा बहुत पहले से चली आ रही थी। इस समस्या के सम्बन्ध में हिन्दुओं के धर्म ग्रन्थ मनुस्मृति में लिखा है : "युद्ध के बाद यदि लड़कियाँ उसी जाति के लोगों के द्वारा कैद की जाती हैं तो उनके विवाह वैधानिक हैं।"

इसी प्रकार का आदेश यहूदी लोगों के धर्म ग्रंथों में भी पाया जाता है। हिन्दुओं में जो स्थान मनु का है, यहूदी लोगों में वही स्थान मोजेज का है। युद्ध के बाद जो लड़कियाँ और स्त्रियाँ बंदी हो जाती हैं, उनके विवाहों के सम्बन्ध में मनु और मोजेज ने एक ही प्रकार का निर्णय किया है। हिन्दुओं के धर्म शास्त्रों में राक्षस विवाह को स्पष्ट करते हुए लिखा गया है : "यदि आक्रमणकारी किसी स्त्री का अपहरण करे और उस स्त्री के चीत्कार करने पर कुटुम्बी और दूसरे सहायक लोग आक्रमणकारी के द्वारा मारे जावें और उसके बाद आक्रमणकारी उस स्त्री को अपने साथ ले जाकर विवाह करे, उसे राक्षस विवाह कहा जाता है।"

किसी भी स्वाभिमानी मनुष्य या जाति को अपनी लड़कियों के लिए इस प्रकार का विवाह मंजूर न होगा। इसीलिए राजपूतों में अपनी बेटियों और स्त्रियों के लिए उस प्रकार की कठोर प्रथाओं का प्रचार था, जिनका ऊपर वर्णन किया गया है। ये प्रथायें सुनने और देखने में बहुत भयानक हैं, इसमें सन्देह नहीं, लेकिन उनके अभाव में जीवन-भर जो असह्य तिरस्कार सामने आ सकता है, उसकी अपेक्षा इस प्रकार का कोई भी बलिदान अधिक सम्मानपूर्ण हो सकता है। इसीलिए स्वाभिमानी राजपूतों ने इस प्रकार की प्रथाओं को अपने यहाँ प्रचलित कर रखा था। सच बात तो यह है कि जीवन के ऐसे तिरस्कृत अवसरों पर ऐसा कौन स्वाभिमानी मनुष्य हो सकता है, जो राजपूत होना और राजपूत की प्रथाओं का पालन करना पसंद न करे।

मनु ने स्त्रियों के सम्बन्ध में अनेक प्रकार के आदेश दिये हैं। स्त्रियों के सम्मान की रक्षा करते हुए मनुस्मृति में साफ-साफ आज्ञा दी गयी है : "रास्ते में किसी स्त्री को देख कर वृद्ध, पुरोहित और राजा को भी चाहिए कि वह उसके लिए रास्ता छोड़ दे। × × नव-विवाहिता वधू, गर्भवती स्त्री और दूसरे घरों से आयी हुई किसी भी रमणी को सबके पहले भोजन कराना चाहिए।" प्राचीन काल में हिन्दुओं में स्त्रियों को पर्दे में रखने की प्रथा न थी। लेकिन मुस्लिम शासन काल

में हिन्दुओं ने मुसलमानों से यह प्रथा सीखी, जिसका पालन हिन्दू अब तक करते हैं।

स्त्रियों के सम्बन्ध में मनु ने एक स्थान पर लिखा है : "त्यौहारों और खुशी के अवसरों पर उनके आभूषणों और अच्छे वस्त्रों को पहन कर अपने पति से स्त्रियों को मिलना चाहिए। इससे उनके पति प्रसन्न होंगे।"

मनु ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक मनुस्मृति में स्त्रियों को सम्मान भी दिया है और उनकी मर्यादा के विरुद्ध भी लिखा है : "संसार में स्त्री मूर्ख को ही नहीं, बल्कि तपस्वी को भी सन्मार्ग से खींच कर गन्दे मार्ग पर ले जाने की योग्यता रखती है।" इस प्रकार का विश्वास स्त्रियों को परदे में रखने की प्रथा का समर्थन करता है और इस धारणा का सम्बन्ध न केवल राजस्थान के साथ है, बल्कि संसार की समस्त स्त्रियों से सम्बन्ध रखता है।

पति के मर जाने पर स्त्री को विधवा और स्त्री के मर जाने पर पुरुष को विधुर कहा जाता है। लेकिन पति के मरने पर उसकी स्त्री के माथे पर जिस प्रकार विधवा शब्द का साइनबोर्ड लगता है, उतना स्त्री के मर जाने पर पुरुष के माथे पर विधुर शब्द का नहीं लगता। वैधव्य अवस्था में आ जाने के बाद कोई भी स्त्री इस देश में विधवा के नाम से ही आमतौर पर पुकारी जाती है। पति के रहने पर वैधव्य उसके जीवन की एक अवस्था है, जो उसके माथे पर न मढ़ी जानी चाहिए। विधवा शब्द में स्त्री के लिए तिरस्कार की भावना है, जिससे उनके प्रति पुरुषों के दृष्टिकोण का सहज ही अनुमान होता है। ×

कन्याओं को मार डालने, सती होने और जौहर व्रत पालन करने की प्रथाओं को अपने जीवन में आश्रय देकर राजपूतों ने अपने जिस स्वाभिमान और स्वातंत्र्य का परिचय दिया था, वह संसार में अन्यत्र आसानी से देखने को न मिलेगा। जिन जातियों में इस प्रकार के आचरणों के थोड़े-बहुत आभास संसार के जिन लोगों में मिलते थे, राजपूत उनमें प्रधान थे। इस प्रकार की प्रथायें स्वाभिमानी राजपूतों के बलिदानों का परिचय देती हैं। संसार के जिन लोगों में बलिदान होने की शक्ति नहीं होती, वह कभी स्वतन्त्र नहीं रह सकती। बलिदानों की शक्ति मनुष्य की श्रेष्ठता का प्रमाण देती है। इसीलिए राजपूतों की उन प्रथाओं की निन्दा बिना समझे बूझे नहीं की जा सकती। उन प्रथाओं के कारण थे। और उनके द्वारा भविष्य में जो असह्य अपमान सामने आ सकता था उनको रोकने के लिए राजपूतों की ये प्रथायें औषधि के रूप में थीं। इसे सभी स्वीकार करेंगे।

इन प्रथाओं के सम्बन्ध में इतनी ही बात नहीं है। आक्रमणकारी राजपूतों पर इस प्रकार अत्याचार करते थे और उनके परिणामों को भोगना न पड़े, इसलिए राजपूतों ने इस प्रकार की प्रथाओं को अपने यहाँ प्रचलित कर रखा था, यह अवस्था राजपूतों के लिये कभी प्रशंसनीय नहीं हो सकती। लेकिन राजपूतों की समस्या को लेकर हम यहाँ अधिक विस्तार नहीं देना चाहते। किसी भी अवस्था में, उनकी वे प्रथायें बलिदानों से भरी हुई थीं। राजस्थान की वे परिस्थितियाँ बड़ी

× बोलचाल की भाषा में विधवा को राँड कहा जाता है। जिन दिनों में मैं अपने साथ कुछ राजपूत सैनिक लेकर राजस्थान के देहातों में घूम रहा था, साथ के एक सैनिक ने एक कुएँ पर जाकर पानी भरती हुई एक विधवा स्त्री को राँड कहकर पानी माँगा। वह विधवा स्त्री इस शब्द को सुनकर क्रोध में तमतमा उठी और अपने आवेश पूर्ण शब्दों में कहा : "मैं एक राजपूत स्त्री हूँ।" यह कहकर उसने उस सैनिक की तरफ देखा, सैनिक ने अपने आपको सम्हालकर क्षमा माँगी। इसके बाद उस स्त्री ने उस सैनिक को पानी दिया।

तेजी के साथ बदल रही हैं। इसलिए उनकी इन प्रथाओं को भी खत्म हो जाना चाहिए। अंगरेजों ने यहाँ आकर यही किया भी है।

राजपूतों का इतिहास ही भारतवर्ष का इतिहास है। इस देश के इतिहास से यदि राजपूत के हिस्से को निकाल दिया जाय तो इस देश का इतिहास बहुत निर्बल हो जायगा। जो लोग बहुत दूर से हिन्दू स्त्रियों को जानते हैं और जिनको उनके समझने का अवसर नहीं मिला, ऐसे लोगों ने हिन्दू स्त्रियों के सम्बन्ध में बहुत भ्रमात्मक बातों का प्रचार किया है और बताया है कि कई-कई हजार स्त्रियों में एक स्त्री भी ऐसी नहीं है, जो पढ़ना भी जानती हो। मैं ऐसे लोगों से पूछना चाहता हूँ कि वे राजपूतों के सम्बन्ध में कुछ जानते भी हैं? क्यों कि उनमें नीची श्रेणी के सामन्तों में भी ऐसे बहुत कम हैं, जिनकी लड़कियाँ पढ़ना और लिखना न जानती हों। यद्यपि वे लिखने का काम बहुत कम करती हैं और उनकी तरफ से जो पत्र लिखे हैं, उनमें वे केवल हस्ताक्षर कर देती हैं। परन्तु संसार के सभी कामों के सम्बन्ध में, वे बहुत योग्यता रखती हैं। राजपूत स्त्रियों में, जिनको अपने नाबालिग बालकों के सिंहासन पर बैठने के कारण राज्य का प्रबन्ध देखना पड़ा है उन्होंने शासन करने में अपनी अद्‌भुत प्रतिभा का परिचय दिया है। यद्यपि इस देश के विधान के अनुसार स्त्रियों को शासन में अधिकार नहीं मिला। फिर भी उन्होंने जो कार्य करके दिखलाये हैं, उनसे उनकी योग्यता का परिचय मिलता है और इस प्रकार की स्त्रियों से हिन्दूस्तान का इतिहास भरा हुआ है।×

राजपूतों के सम्बन्ध में जिन को सच्ची जानकारी नहीं है, ऐसे लोग उनकी स्त्रियों के लिए कुछ भी कह सकते हैं परन्तु राजपूतों को समझने के लिए जिनको अवसर मिला है, वे जानते हैं कि उनमें राज्य करने की योग्यता होती है। राजस्थान के इतिहास में ऐसे बहुत-से उदाहरण पढ़ने को मिलते हैं, जिनमें सिंहासन पर बैठने वाला कभी-कभी बिलकुल बालक रहा है, और उसकी नाबालिग अवस्था में राज्य का प्रबंध उसकी माता ने किया है।÷

स्वाधीनता, राजभक्ति, देशभक्ति, धार्मिकता स्वाभिमान और शुद्ध आचरण की तरह के अनेक गुण राजपूतों में पाये जाते है। यह बात सही है कि सभी मनुष्यों के गुण और स्वभाव एक से नहीं होते। प्रकृति का यह नियम है। एक माता पिता से उत्पन्न होने वाले बच्चों की योग्यतायें अलग-अलग होती हैं, एक जाति के सभी मनुष्य एक से नहीं होते और एक राज्य में विभिन्न श्रेणी के लोग पाये जाते हैं। राजस्थान में कई राज्य थे और प्रत्येक राज्य के आचरण

× बूँदी के राजा ने अपनी मृत्यु के समय मुझे अपने बेटे का संरक्षक नियुक्त किया था। उस बालक और उसके राज्य के कल्याण के लिए अनेक मौकों पर बूँदी राज्य की राजमाता के साथ बातें करने के मुझे अवसर मिले थे। मेरी बातें एक तीसरे विश्वस्त आदमी के सामने होती थीं। राजमाता परदे में बैठकर मुझसे बातें करती थीं। उनकी बातों को सुनकर मैं उनकी योग्यता को अनुभव करता था। राजमाता के लिखे हुए कितने ही पत्र अब तक मेरे पास है। राजमाता मेरे साथ उसी प्रकार बातें करती थीं जिस प्रकार एक स्त्री अपने भाई के साथ बातें करती है। राजमाता में मैं अनेक प्रकार के गुणों को अनुभव करता था।

÷ राजस्थान के इतिहास में राजपूत स्त्रियों के वीरोचित कार्य अनेक स्थानों में पढ़ने को मिलते हैं। सम्राट अकबर के सेनापति आसफखाँ के आक्रमण करने पर गाड़ा राज्य की रानी दुर्गावती ने अपनी सेना लेकर उसका मुकाबिला किया था। उसका नाबालिग बेटा राज्य के सिंहासन पर था। इस युद्ध में वह बड़ी बहादुरी के साथ लड़ी और अन्त में घायल होकर वह मारी गयी। यह गाड़ा

बहुत-सी बातों में एक, दूसरे से भिन्न थे। जयपुर, उदयपुर नहीं हो सकता और सीसोदिया वंश की योग्यता दूसरे राजपूत वंशों में नहीं मिल सकती। ठीक यही अवस्था वहाँ के अन्य राज्यों और राजपूत वंशों की थी। इतना सब होने पर भी कोई भी निष्पक्ष मनुष्य राजपूतों के चरित्र की प्रशंसा करेगा। सम्राज अकबर के प्रसिद्ध मंत्री अबुल फजल ने लिखा है : "धार्मिकता, व्यवहार की मधुरता, स्नेह परायणता, न्यायप्रियता, कार्यकुशलता, सभ्यता और लोकप्रियता की तरह के बहुत-से गुण राजपूतों में पाये जाते हैं। इन सब गुणों के साथ, वे युद्ध प्रिय होते हैं। पराजित होने पर भी भागकर प्राणों की रक्षा करने के बजाय रणभूमि में मर जाना वे अधिक श्रेष्ठ समझते हैं।

राजपूतों के अनेक गुणों को स्वीकार करने के बाद हम उनके जीवन की उन बातों का उल्लेख करना भी यहाँ पर आवश्यक समझते हैं कि जिनके कारण भारतवर्ष की इस प्रसिद्ध जाति की शक्तियाँ छिन्न-भिन्न हुई थीं। राजपूतों में आमतौर पर अफीम सेवन करने की आदतें पायी जाती थीं और उनकी इन आदतों ने उनको बहुत-कुछ बरबाद करने का काम किया। मुगल सम्राट बाबर के द्वारा इस देश में सबसे पहले अंगूर आये थे और उसके प्रपौत्र जहाँगीर ने हिन्दुस्तान में तम्बाकू का प्रचार किया। अफीम के सेवन करने की आदत इस देश के लोगों में कब से शुरू हुई थी, इसे मैं ठीक ठीक नहीं कह सकता। चण्ड कवि ने अपने प्रसिद्ध काव्य ग्रंथ में इसका कोई उल्लेख नहीं किया। लेकिन यह मानना पड़ेगा कि राजपूतों के विनाश का कारण उनके अफीम के सेवन करने की आदत थी। वे लोग इसका सेवन क्यों करते थे, इसे मैं नहीं समझ सका। अफीम खाने के बाद कुछ समय के लिए शरीर में एक अद्भुत शक्ति का संचार होता है। सम्भव है लड़ाकू राजपूतों ने इस प्रलोभन से अफीम का सेवन आरम्भ किया हो और उसके बाद वे उसके अभ्यासी हो गये हों कि बाद में वे उसे छोड़ न सके हों। उनकी इस आदत के सम्बन्ध में इस प्रकार की कल्पना की जा सकती है।

राजपूत लोग जल में अफीम को घोलकर उसका सेवन करते थे। यहाँ के प्राचीन ग्रंथों में—जहाँ तक हमको समझने का मौका मिला है—अफीम के सम्बन्ध में कोई जिक्र नहीं पाया जाता। अपने जीवन के विशेष अवसरों पर राजपूत अफीम का सेवन करते थे और इसके बाद वे भयानक से भयानक कार्यों की वे प्रतिज्ञा करते थे। राजपूतों की एक साधारण प्रतिज्ञा भी शपथ से अधिक महत्व रखती थी। आदर और सत्कार के अवसरों पर राजपूतों को पानी में घोलकर अफीम पिलायी जाती थी। पुत्र उत्पन्न होने की खुशी में अथवा विवाह के उत्सवों में जल के बड़े-बड़े बरतनों में अफीम घोलकर तैयार की जाती थी और उसके बाद वह एकत्रित राजपूतों को बड़े आदर और सम्मान के साथ पिलाई जाती थी। पीने के बाद उनको खाने के लिए मीठे लड्डू दिये जाते थे।

अफीम का प्रभाव जब राजपूतों के शरीर में न रहता था तो वे बिलकुल अकर्मण्य हो जाते थे। इस प्रकार की बातों को स्वयं अपने नेत्रों से देखा है। राजपूत कर्मचारी जब काम करने में असमर्थ हो जाते थे तो मैं उनको अफीम का सेवन करने के लिए छुट्टी दे देता था। इसलिए कि यदि उनको इसके लिए मौका न दिया जाता, तो वे कर्मचारी अफीम के अभाव में किसी काम के लिए योग्य न रह जाते थे। ×

राज्य जबलपुर के समीप है। रानी दुर्गावती की राजधानी जब बिलकुल विध्वंस हो गयी, उस समय भी ऊँचे शिखर के ऊपर गोल पत्थर का बना हुआ तिमंजिला महल बना हुआ था। उसका नाम था, महल। उस शिखर में रहने के और भी बहुत-से मकान बने हुए थे। वे सब अब खण्डहर हो चुके हैं।

× बातचीत करने के समय राजपूतों में मैं प्रायः अफीम के प्रभाव को अनुभव किया करता था। बातें करते हुए उनकी आँखें बंद हो जाती थीं और कभी-कभी उनके वाक्य पूरे न हो पाते थे।

राजपूतों में अफीम के सेवन का इतना प्रचार था कि वह उनके लिए खाने और पीने की एक साधारण चीज हो गयी थी। एक राजपूत किसी दूसरे से मुलाकात करने के समय अफ़ीम माँगता था और फिर मिलकर दोनों शिष्टाचार के साथ उसका सेवन करते थे। मैं तो यह भी कहने का साहस करता हूँ कि एक राजपूत जब तक अफीम का सेवन न कर लेता था, वह कोई काम कर न सकता था। सच बात तो यह है कि भोजन की चीजों की अपेक्षा अफीम किसी भी राजपूत के लिए अधिक जरूरी थी। मैंने राणा को अफीम पर अधिक कर लगाने का परामर्श दिया था कि जिससे उसके राज्य में अफीम का सेवन कम हो जाय, परन्तु राणा ने मेरे परामर्श को पसन्द नहीं किया। फिर भी मैं उसको समझाता रहता था।

राजपूतों की अनेक अच्छाइयों से मैं जितना ही प्रसन्न था, उनके अफीम के सेवन से मैं उतना ही चिन्तित था। मैं चाहता था कि इन प्रसिद्ध राजपूतों का किसी प्रकार विनाश न हो, इसके लिए मैं राजपूतों को और विशेषकर जवान लड़कों को अफीम के विरुद्ध समझाया करता था। मेरी बड़ी अभिलाषा थी कि राजपूतों में किसी प्रकार अफीम का सेवन रोका जा सके। मैं पूर्णरूप से समझता था कि यदि ऐसा किया जा सके तो इन मिटनेवाले राजपूतों का और हिन्दुस्तान की इस प्रसिद्ध जाति का बहुत कुछ कल्याण हो सकता है।

अफीम से होने वाली हानियाँ जब मैं लोगों को बताता था तो लोग बड़े प्रेम के साथ मेरी बातों को सुना करते थे। अनेक अवसरों पर बहुत से राजपूतों ने और खासतौर पर इस जाति के युवकों ने कभी अफीम के सेवन न करने का मुझसे वादा किया था। शायद मेरे समझाने का यह परिणाम था कि बहुत-से युवकों ने अफीम का सेवन न करने की प्रतिज्ञा की थी। राजपूतों में जब मैं इस प्रकार के युवकों को देखता, जो अफीम का सेवन नहीं करते हैं तो मुझे बड़ी प्रसन्नता होती थी। मेरा विश्वास है कि जो लोग राजपूतों में अफीम का सेवन बंद करा सकते हैं, वे राजपूतों के सबसे अधिक शुभचिंतक और मित्र हैं।

राजपूत जब कभी किसी बड़े कार्य के करने की प्रतिज्ञा करते थे तो उसके लिए उनके तीन नियम थे। पहला नियम तो यह था कि बहुत से लोगों के बीच में बैठकर और अफीम का सेवन करके वे उस कार्य के करने की प्रतिज्ञा करते थे। दूसरा नियम यह था कि उसके लिए वे परस्पर पगड़ी का परिवर्तन करते थे। इसके लिए एक तीसरा नियम यह भी था कि वे लोग आपस में दाहिना हाथ मिलाते थे। इस प्रकार जिस कार्य के लिए राजपूत एक बार प्रतिज्ञा कर लेते थे, उसको वे किसी प्रकार पूरा करते थे और आवश्यकता पड़ने पर उसके लिए वे अपनी जान दे देते थे।

जब कोई सामन्त मेरे पास आकर बैठता और कुछ देर बातें करता तो अक्सर उनकी आँखें बंद हो जातीं और वे अफीम के नशे में अलसाये हुए हिलने लगते। इस प्रकार के अनुभव राजपूतों के सम्बन्ध में मैंने बहुत से किये थे। राणा प्रतापसिंह का दहिना हाथ, साहसी श्याम का वंशधर सादी का सामन्त राजा कल्याण अफीम का सेवन करने के कारण ही सभी प्रकार अयोग्य और अकर्मण्य हो गया था। वह अपने सिर पर पगड़ी बाँधता था। अनेक मौकों पर, जब वह अफीम के नशे में होता था तो उसकी पगड़ी उसके मस्तक के नीचे गिर जाती थी। मैंने कितने ही सामन्तों को देखा था कि वे अपने पहनने के वस्त्रों में अफीम को बाँधकर लाते थे। ये लोग जब एकत्रित होते थे तो एक, दूसरे को अपने पास की अफीम खिलाते थे। अक्सर भेंट के लिए आने वाले सामन्त जब मेरे पास बैठकर बातें करते थे तो अपने खाने के लिए वे मुझसे अफीम माँगते थे। मैं उनके खाने के लिए अपनी मेज पर अफीम रख दिया करता था।

राजपूतों के शिकार खेलने के सम्बन्ध में भी बहुत-सी-बातें लिखी गयी हैं। वे लोग अपने कुत्तों और अपनी बन्दूकों के साथ बड़ा प्रेम करते थे। वे शिकार खेलने के शौकीन थे। उनके कुत्ते शिकार खेलने में उनकी सहायता करते थे। जंगल में जाकर जब राजपूत किसी शूकर अथवा इस प्रकार के किसी दूसरे जंगली जानवर पर आक्रमण करता था तो उसका कुत्ता उस जानवर का पीछा करता था। राजपूत घोड़ों के अच्छे सवार होते थे और प्राय: अपने घोड़ों पर बैठकर वे शिकार खेलने के लिए जाया करते थे।

शिकार खेलने के लिए राजस्थान के राज्यों में बड़े-बड़े जंगल सुरक्षित रखे जाते थे और 'रूमना' के नाम से उन जंगलों की रक्षा की जाती थी। राजा के सिवा उन जंगलों में जाकर दूसरा कोई शिकार नहीं कर सकता था। अगर कोई उन जंगलों में शिकार खेलते हुए पाया जाता था तो गिरफ्तार करके उसको दण्ड दिया जाता था। इन सुरक्षित जंगलों में मृग, शूकर, हिरन, बाघ, जंगली कुत्ते, नेकड़े और इस प्रकार के कितने ही दूसरे जानवर पाये जाते थे। समय-समय पर उनका शिकार खेलने के लिए राजा लोग अपने सामन्तों और सरदारों के साथ उन जंगलों में जाया करते थे। वे लोग तलवार भाले से इन जानवरों का शिकार करते थे।

राजपूत बंदूकों के प्रयोग में बड़े अभ्यासी होते थे। उनके निशाने अचूक होते थे। तेजी के साथ दौड़ाते हुए घोड़ों की जब वे तलवारों और बर्छों का प्रयोग करते थे तो उनके वे दृश्य देखने के योग्य होते थे। राजपूत तीरंदाजी में भी अद्वितीय होते थे। इस प्रकार के सभी कार्यों के लिए शक्ति और अभ्यास की आवश्यकता होती है। राजपूतों के शरीरों में अपार शक्ति होती थी। वे अपनी बहुत छोटी अवस्था से तीर, तलवार, और भाला चलाने का अभ्यास करते थे। राजपूतों में इस प्रकार का अभ्यास बहुत प्राचीन काल से चला आ रहा था। उन लोगों में लड़ने, युद्ध करने, शिकार खेलने और शत्रु पर आक्रमण करने को जितना महत्व दिया जाता था, उतना दूसरी किसी बात को नहीं।

प्रत्येक राजपूत अपनी संतान में साहस और शौर्य उत्पन्न करने का काम करता था। जन्म और मृत्यु को वे अधिक महत्व न देते थे। किसी भी अवसर पर राजपूत लड़कों का मारा जाना विषाद की कोई विशेषता न रखता था। लड़ना और युद्ध करना राजपूतों के जीवन का अत्यन्त प्रिय विषय था। ऐसे अवसरों पर यदि कोई राजपूत अथवा किसी राजपूत का बेटा मारा जाता था तो उसके परिवार के लोग क्रन्दन नहीं करते थे। बल्कि यदि वे आवश्यक समझते तो उसका बदला लेने के लिए वे लोग चेष्टा करते थे। अपने प्राणों की बलि दे देना, साधारण बातों में मरना और मार डालना अथवा इसके लिए भयानक आक्रमण कर देना वे लोग अपने जीवन की साधारण बात समझते थे।

राजपूतों के जीवन में लड़ने और युद्ध करने के सिवा और कुछ न था। जिन्दगी की दूसरी बातों का उसे ज्ञान भी न था। उनके जीवन में इसी एक बात को महत्व दिया जाता था। युद्ध करने की योग्यता और कुशलता उनके जीवन की प्रतिभा थी। प्रत्येक राजपूत अपनी और अपनी संतान की इसी योग्यता को बढ़ाने की चेष्टा करता था। उनके छोटे-छोटे लड़के जब आपस में खेलते थे तो उनके हाथों में छोटी-छोटी तलवारें होती थीं। छोटी अवस्था में ही उनको तलवार पकड़ने और उसके चलाने का उनको अभ्यास कराया जाता था। इस अभ्यास के लिए प्रभावशाली सैनिक अथवा अस्त्र-शस्त्र चलाने में कुशल आदमी नौकर रखे जाते थे। वे राजपूतों के बालकों को इस प्रकार की शिक्षा देते थे और संतान की शिक्षा और उनके अभ्यास के समय माता-पिता अपने नेत्रों से देखते थे और प्रसन्न होते थे। जिस दिन कोई राजपूत किसी बड़े जानवर का शिकार करके

घर लौटता था तो उस समय उसके परिवार में खुशियाँ मनायी जाती थीं। ×

राजपूतों के बालकों पर इस प्रकार की खुशियों का बहुत प्रभाव पड़ता था। इस प्रकार के गुणों के साथ राजपूत के जीवन में और भी अनेक बातें थी। वे संगीत के प्रेमी थे। नृत्य देखते थे और प्रसन्न होते थे। साहसपूर्ण कार्यों से उनको बहुत प्रोत्साहन मिलता था। वे स्वयं कुश्ती लड़ते थे और जो लोग अच्छी कुश्ती लड़ते थे, उनको देखकर वे प्रसन्न होते थे। इस प्रकार की इन बातों में उनके जीवन का बहुत-सा समय व्यतीत होता था। वे आपस में एक स्थान पर बैठकर इसी प्रकार की बातें करते थे।

प्रत्येक राजा के यहाँ अच्छे व्यायामशील और कुशल कुश्ती लड़ने वाले रहा करते थे। राज्य की तरफ से उनको आर्थिक सहायता दी जाती थी। अनेक अवसरों पर उनको पारितोषिक देकर उनका सम्मान किया जाता था। इस प्रकार की बहुत सी बातें राजपूतों के जीवन में आमतौर से पायी जाती थीं।

राज्य के सभी सामन्त और सरदार अपने-अपने अस्त्रागार रखते थे और वे अपने अस्त्र-शस्त्रों की हमेशा परीक्षा किया करते थे। इसमें वे कभी असावधान न होते थे। उनके अस्त्रागारों में तलवारें, बन्दूकें, बर्छे और धनुष-बाण रहते थे। इन अस्त्रागारों का संरक्षण अत्यन्त विश्वासी, शूरवीर सैनिकों को दिया जाता था। उनके अस्त्र-शस्त्र अत्यन्त सुन्दर और मूल्यवान होते थे। सिरोही की तलवार राजस्थान में बहुत प्रसिद्ध मानी जाती थी। उनके हथियारों में दोनों तरह की धारवाला खाँडा नाम का एक तेज हथियार होता था। राजस्थान के अनेक स्थानों में बन्दूकों के कारखाने थे। वहाँ पर वे बनायी जाती थीं। अन्य स्थानों की अपेक्षा बूँदी की तलवार श्रेष्ठ मानी जाती थी।

राजपूतों के अस्त्रागारों में बहुत मजबूत ढालें होती थीं। शत्रुओं से युद्ध करते हुए उन्हीं ढालों के द्वारा राजपूत अपनी रक्षा करते थे। गैंडे के चमड़े की ढाल बहुत मजबूत बनती थी। राजपूत लोग अपने तीरों पर जिन बाणों का प्रयोग करते थे, वे बहुत मजबूत और भयानक होते थे। जिन दिनों में बंदूकों का अविष्कार और प्रचार न हुआ था, उन दिनों में इन्हीं बाणों के द्वारा राजपूत शत्रुओं के साथ भीषण युद्ध करते थे और शत्रु सेना को पराजित करते थे।

राजपूतों में संगीत प्रियता का गुण भी बहुत पाया जाता था। वे स्वयं गाने और बजाने के शौकीन होते थे और जो लोग अच्छे गाने और बजाने वाले होते थे, उनका वे बहुत आदर करते थे। राजाओं में जिनको संगीत के साथ अधिक प्रेम था, राजा शिवधनसिंह उनमें एक अच्छा संगीतज्ञ माना जाता था। वह करीब-करीब रोज मेरे पास आता था और बिना किसी काम के बहुत समय तक वह मेरे पास बैठा रहता था।

राजा शिवधनसिंह में अनेक गुण थे। वह बन्दूक चलाने में बहुत होशियार माना जाता था। उसमें प्राचीन साहित्य के प्रति बड़ी लगन थी। लोगों का विश्वास था कि राजा शिवधन राजपूतों की प्राचीन बातों को जितना अधिक जानता है, उतना शायद कोई दूसरा नहीं जानता। बातचीत में उसकी इस योग्यता का सहज ही आभास होता था। उसके विचारों में कवियों के समान ऊँची

× बूँदी का राजकुमार एक बार मृग का शिकार करके लौटा था। उसकी सफलता और वीरता को सुनकर, उसकी माता बहुत प्रसन्न हुई। उसी प्रसन्नता में आकर उसने मुझे एक पत्र लिखा था। उस दिन बूँदी राज्य में खुसियाँ मनायी गयी और सभी सामन्तों को कीमती पदार्थ उपहार में दिये गये।

कल्पनायें होती थीं और उसकी बातचीत में मधुरता रहती थी। जब वह दूसरों से बातचीत करता था तो सुनने वालों को अपने मधुर भाषण से वह सदा प्रभावित किया करता था।

बहुत-से लोगों ने मुझसे राजा शिवधनसिंह के संगीत-ज्ञान की प्रशंसा की थी। बातचीत के सिलसिले में मैंने उसकी इस योग्यता को अनुभव किया था। अनेक अवसरों पर मैंने उसके मुख से सुन्दर गाने सुने थे। वह स्वयं मुझे अपने गाने सुनाने की कोशिश किया करता था। मैं उसके मुख से जो गाने सुनता था, उनकी कला को मैं ठीक-ठीक तो न समझ सकता था। लेकिन उसके गाने का तरीका बहुत प्रिय मालूम होता था। उसके इस गुण की सभी लोग प्रशंसा करते थे।

राजा शिवधन के पास गाने और बजाने वालों की एक अच्छी संख्या रहा करती थी। उसको इस बात का बहुत शौक था। उनके बीच में बैठकर वह स्वयं गाना गाता था और दूसरों के गानों को सुनता था। कई बार अपने साथ के इन लोगों को मेरे पास लाकर उसने उनके गाने मुझे सुन-वाये थे। उसके समीप जो गाने और बजाने वाले रहते थे, उनमें पुरुष भी थे और स्त्रियाँ भी।

राजा शिवधनसिंह के साथ के गाने बजाने वालों में एने स्त्री बहुत प्रसिद्ध थी। उसके गाने लोग बहुत प्रसंद करते थे। उसकी आवाज में मधुरता थी। उसके बहुत-से गानों ने लोगों को प्रभा-वित किया था। उज्जयिनी से आने वाली एक स्त्री भी गाने में बहुत प्रसिद्ध मानी जाती थी! मैंने उन दोनों स्त्रियों को एक साथ गाने के लिए कहा। शक्तावतों के सरदार और सालम्ब्र के सामन्त अक्सर शिवधनसिंह के यहाँ गाना सुनने के लिए आया करते थे। वे संगीत के प्रिय थे और अच्छे गानों को सुनकर वे लोग बहुत प्रशंसा किया करते थे। इन लोगों के गानों में टप्पे अधिक गाये जाते थे और लोग उन्हीं को अधिक सुनते भी थे। लड़कों के जन्म और विवाहों के उत्सवों में इस प्रकार के गाने बजाने का प्रायः प्रबन्ध होता था। ऐसे अवसरों पर मुझे भी बुलाया जाता था। उन मौकों पर दूर-दूर से आकर लोग शामिल होते थे

राजा शिवधनसिंह बन्दूक की गोली चलाने में बहुत मशहूर था। वह बड़ी सफाई से गोली मारा करता था। किसी लड़के के सिर पर कोई छोटी चीज रखकर वह बड़ी सफाई के साथ अपनी बन्दूक की गोली से उसको उड़ा दिया करता था। लेकिन उस लड़के को जरा भी चोट न आती थी।

शिवधनसिंह के गोली चलाने की कला को मैंने स्वयं अनेक अवसरों पर अपने नेत्रों से देखा था। उड़ती हुई छोटी-छोटी चिड़ियों के पंखों को वह गोली से मार देता था और अपने सामने आती हुई बन्दूक की गोली के दो टुकड़े वह अपनी तेज तलवार से कर देता था। उसकी निशाना बाजी ने लोगों का आश्चर्य में डाल दिया था। एक दिन उसने एक मिट्टी की हाँडी में जल भर कर उसमें एक चाकू डाल दी और बन्दूक की गोली किसी दूसरे से भरवाकर उसने अपने हाथ में ले ली। इसके बाद वह उस हाँडी से बीस कदम की दूरी पर खड़ा हो गया और लोगों की तरफ देखकर उसने कहा : "मैं अपनी गोली से हाँडी में रखी हुई चाकू के दो टुकड़े करूँगा।"

उसकी इस बात को लोगों ने सावधानी के साथ सुना। मैं स्वयं वहाँ पर मौजूद था। उसने गोली मार कर हाँडी के भीतर के चाकू के दो टुकड़े कर दिये। मैंने भी हाँडी के पास जाकर चाकू के उन दो टुकड़ों का देखा और शिवधनसिंह के निशानाबाजी की मैंने भी तारीफ की।

शिवधनसिंह में इस प्रकार की अनेक बातें प्रशंसा के योग्य थीं। कितने ही अवसरों पर मैंने उसकी निशानेबाजी अपनी आँखों से देखी थी। वह किसी लड़की पर एक नीबू रखवा देता और किसी मनुष्य से अपनी बन्दूक में गोली भरवा कर बन्दूक को अपने हाथ में ले लेता। इसके बाद

सबके सामने वह उस नीबू को अपनी गोली का निशाना बनाता। गोली के छूकर निकल जाने से नीबू जमीन पर गिर जाता परन्तु आश्चर्य की बात तो यह होती कि नीबू में गोली के लगने का कोई निशान तक दिखायी न पड़ता। नीबू को कोई आघात न पहुँचता। नीबू की हालत ज्यों की त्यों बनी रहती और गोली अपना काम करके अदृश्य हो जाती।

शिवधन सिंह के सम्बन्ध में मैंने जितनी प्रशंसायें सुनी थीं, उन सब को अपने नेत्रों से मुझे देखने का अवसर मिला। उसके सम्बन्ध में बिना किसी पक्षपात के मैं यह कह सकता हूँ कि उसकी इस योग्यताओं के सम्बन्ध में संसार के सभी लोग उसकी प्रशंसा कर सकते हैं। किसी मनुष्य में एक गुण प्रधान रूप से होता है और उसके लिए वह प्रसिद्ध हो जाता है। लेकिन शिवधनसिंह में अनेक गुण थे और अपने उन सभी गुणों में उसने ख्याति पायी थी। राजस्थान के सामन्तों और सरदारों की अधिक संख्या ने मैंने संगीत प्रिय पाया है। मैंने सुना है कि उदयपुर के सबसे श्रेष्ठ गाने-बजाने वालों को कुछ वर्ष पहले महाराज सोंधिया अपने साथ लाया था। अनेक प्रकार के गानों में राजपूत लोग टप्पा अधिक पसन्द करते हैं। इसीलिए यहाँ पर इसके गाने वाले भी अधिक हैं।

राणा भीमसिंह को भी गाना और बजाना बहुत प्रिय था। कभी-कभी वह स्वयं गानेवालों के बीच में बैठकर गाया करता था। महलों की छतों पर गाने वाले एकत्रित होते थे और मस्त होकर वे गाना गाया करते थे। राणा के यहां कुछ लोग बंशी बजाने वाले थे। उनसे जो स्वर निकलता था, उसे लोग बहुत पसन्द करते थे। ×

यहाँ के पहाड़ी शिखरों पर रहने वाले लोगों के द्वारा रात्रि की गम्भीरता में जिन लोगों को गाना सुनने का अवसर मिला है, वे उसको कभी भूल नहीं सकते।

योरप की केल्टिक जातियों में बैंड पाइप नाम के बाजे की बहुत प्रसिद्धि थी। संगीत प्रेमी राजपूत उससे अपरिचित न थे। इन लोगों में उस बाजे को मोशेक कहा जाता था। यह बाजा बहुत प्रिय और हृदयग्राही था। राजपूतों के इस बाजे का जिक्र इस देश के ग्रंथों में किया गया है। वह एक प्रकार से बन्शी की सी ध्वनि देता है। राजपूतों में कई प्रकार के बाजों का प्रचार था और उनके बजाने वाले चतुर कलाकार राजस्थान के अनेक स्थानों में पाये जाते थे।

अब हम राजस्थान के राजाओं की शिक्षा-दीक्षा पर कुछ प्रकाश डालना चाहते हैं। यहाँ पर ऐसा कोई राजा न था, जो लिखना-पढ़ना न जानता हो। हम इंगलैंड के राजवंश में उत्पन्न होने वाले उन लोगों को जानते हैं जो राज्य के कागजों पर हस्ताक्षर करना भी नहीं जानते थे और वे केवल राजवंश में उत्पन्न होने का अभिमान किया करते थे। राजस्थान के राजपूत राजाओं में उस प्रकार कोई भी अशिक्षित नहीं था। उदयपुर के राणा में लिखने की अच्छी शक्ति थी। उसके लिखे हुए पत्रों को पढ़ कर कोई भी राणा की प्रशंसा कर सकता है। मैं तो इंगलैण्ड के द्वितीय चार्ल्स का समर्थन करते हुए उदयपुर के राणा के सम्बन्ध में कह सकता हूँ: "उसने कभी कोई गलत बात नहीं लिखी बल्कि उसके पत्रों के अनेक स्थल उसकी योग्यता का परिचय देते हैं।" राणा के पत्रों में मैंने सदा शिष्टाचार पाया है, बन्धु अत्व की पराकाष्टा देखी है।

× सम्राट पृथ्वीराज स्वयं संगीत प्रेमी था। इन गानों के सम्बन्ध में मैं अधिक कुछ नहीं लिख सकता। मेरा अनुमान है कि राजपूतों में प्रचलित गाने अश्लील नहीं होते थे। उनके गानों में धार्मिक प्रेरणा रहती थी। इन बातों का जिक्र चन्द कवि ने अपने मशहूर ग्रन्थ में किया है। राजपूतों में जयदेव के गानों का अधिक प्रचार है। चन्द कवि के अनुसार मन्दिरों के पुजारी और भक्त अपने देवता के सामने धार्मिक गाने गाते थे। यहाँ पर इन गानों की शुरुआत सुख और शांति के दिनों में हुई थी।

यहाँ के राजाओं और सामन्तों में पत्र-व्यवहार की नकलों के रखने का बहुत अच्छा तरीका मैंने देखा है। इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि वे लोग जिस किसी के साथ पत्र-व्यवहार करते हैं, उसका वे महत्व समझते हैं और जानते हैं कि सैकड़ों हजारों वर्षो के बाद इन पत्रों की सुरक्षित नकलों के द्वारा कितने उपयोगी कार्यों की पूर्ति हो सकेगी। इस प्रकार के पत्रों की नकलों के संग्रह मैंने राजस्थान के अनेक राज्यों में पाये हैं। संग्रह किये हुए इन पत्रों के द्वारा इतिहास के जिन सही अंशों की रचना की जा सकती है, उनका निर्माण दूसरे तरीकों से उतना सही नहीं हो सकता। इसका यह भी अर्थ है कि यहाँ के राजा ऐतिहासिक सामग्री को सुरक्षित रखने में बहुत बड़ी योग्यता रखते थे। इस प्रकार के पत्रों के द्वारा राज्य की परिस्थितियों का सही अध्ययन किया जा सकता ह। उनके द्वारा प्राचीन बातों का जितना अच्छा ज्ञान हो सकता है, उतना अच्छा दूसरे साधनों द्वारा नहीं हो सकता। उनके राज्यों की राजनीतिक और सामाजिक कब कैसी परिस्थितियाँ रही हैं, इनके अध्ययन में यहाँ के राजाओं के ये संग्रह प्रशंसनीय हैं।

मारवाड़ का इतिहास

इकतीसवाँ परिच्छेद

मारवाड़ का राज्य और उसका विस्तार-राठौर वंश-कन्नौज की विजय-इतिहास की महानता-कन्नौज का पतन-जयचन्द के वंशजों की मरुभूमि में प्रतिष्ठा-मारवाड़ राज्य की ऐतिहासिक आधार-मरुभूमि में सियाजी का आश्रय-मारवाड़-राज्य के इतिहास की सामग्री-राठौर वंश की शाखायें-राठौर राजाओं की पदवी-उत्थान के दिनों का कन्नौज-राठौरों और चौहानों की शत्रुता-दिल्ली और कन्नौज।

मारवाड़ शब्द मारवार से बना है। इसका वास्तविक नाम मरुस्थल, मरुभूमि अथवा मरु प्रदेश है, अर्थात् वह स्थल, भूमि अथवा देश जो बालुकामय हो और जिसमें जल के प्राणी जीवित न रहते हों। कवियों ने अपनी सुविधाओं के अनुसार, मारवाड़ के भिन्न-भिन्न नामों का उपयोग किया है। राजस्थान में जो राज्य बालुकामय है, उसका नाम मारवाड़ है। राठौर वंश के राजपूतों के अधिकार में राजस्थान का जितना राज्य है, आजकल उतनी भूमि को मारवाड़ कहा जाता है। लेकिन प्राचीन काल में मारवाड़ की समस्त मरुभूमि सतलज से समुद्र तक फैली हुई थी।

राठौर राजाओं का वंश परिचय पहले लिखा जा चुका है। उसके समर्थन में और इस वंश की अन्यान्य ऐतिहासिक खोजों में हम उन्हीं के प्रसिद्ध ग्रंथों का आश्रय लेकर यहाँ लिखने का प्रयास करेंगे, जिनमें इस वंश के राजाओं का इतिहास अधिक प्रामाणिक माना जाता है। मेवाड़ राज्य का इतिहास लिखते हुए हमने राजस्थान के दूसरे राज्यों की बहुत-सी बातों का उल्लेख किया है। परन्तु मारवाड़ के इतिहास को लिखने में हम ऐसा नहीं करेंगे।

सबसे पहले हम उन ग्रंथों का उल्लेख करना चाहते हैं, जिनमें राठौर वंश के राजाओं के ऐतिहासिक वर्णन पाये जाते हैं। उनमें सबसे पहले हमारे सामने नाड़लाई जैन मन्दिर के पुजारी यती की बनाई हुई वंशावली है। यह बंशावली पचास फुट लम्बी है। इस वंशावली में राठौरों की उत्पत्ति इन्द्र के मेरुदण्ड से स्वीकार की गयी हैं।

इस वंशावली में पारलीपुर के राजा यवनाश्व को कल्पित माना गया है। इस राज्य के सम्बन्ध में राठौरों को बहुत कम जानकारी है। उनका अनुमान है कि पारलीपुर राज्य उत्तर की तरफ है। वे अधिक कुछ नहीं जानते। परन्तु राजा यवनाश्व के पूर्वज अश्व अथवा असि के वंशज थे और यह वंश सीथियन जाति की एक शाखा है, इसका हमारे पास प्रमाण है।

मारवाड़ का इतिहास कमध्वज वंश के कान्यकुब्ज अथवा कन्नौज के इतिहास के साथ आरम्भ होता है और राठौरों की तेरह शाखाओं और उनके गोत्रों के आचार्यों के वर्णन के साथ-साथ समाप्त होता है। दूसरा वंश वृक्ष भी उसी प्राचीनकाल का है, जब वंशावली के साथ अन्य कोई विवरण न था। नयनपाल से पहले का जो वर्णन है, उसे छोड़कर जहाँ से हम लिखने जा रहे हैं, वह नयनपाल से आरम्भ होता है। राजा नयनपाल ने सम्बत् ५२६, सन् ४७० ईसवी में कन्नौज को

विजय किया और वहाँ के राजा अजयपाल को मार डाला। उस समय से इस वंश का नाम कन्नौजिया राठौर पड़ा। कन्नौज का अन्तिम राजा जयचंद हुआ। उसके भतीजे सिया जी को देश निकाला हुआ। वह कन्नौज के राज्य से भयभीत होकर भाग गया। राजा जयचन्द के वंश के कितने ही लोग मरुदेश में जाकर बसे थे। कन्नौज के पतन के बाद राठौर वंश एक प्रकार मिट-सा गया था। परन्तु उसके बाद उस मृतप्राय वंश ने धीरे-धीरे फिर से अपनी उन्नति की। मारवाड़ के इतिहास में इस प्रकार की सभी घटनायें पढ़ने के योग्य हैं।

इतिहास की बहुत-सी घटनायें प्राय: पाठकों को नीरस मालूम होती हैं। परन्तु उनके भीतर मनुष्य के जीवन के अद्भुत रहस्य छिपे होते हैं। जो लोग मानव जीवन के रहस्यों को देखना और समझना चाहते हैं, इतिहास की वे घटनायें उनके लिए बड़ी महत्वपूर्ण साबित होती हैं। इसी सत्य के आधार पर, हम मारवाड़ राज्य के इतिहास की उन घटनाओं का वर्णन भी यहाँ पर करना चाहते हैं, जो साधारण पाठकों को सम्भव है, रुचिकर न मालूम हों, परन्तु इतिहास का ज्ञान प्राप्त करने वालों के लिए वे बड़े काम की हैं।

सन् ११९३ ईसवी में राजा जयचन्द के राज्य कन्नौज का पतन हुआ। उसके भाई और भतीजे मारवाड़ के बालुकामय प्रदेश में चले गये। वहाँ पर जो सरदार रहते थे, इन लोगों ने उनके यहाँ पहुँच कर आश्रय लिया। कन्नौज से भागकर लगभग चार सौ वर्ष तक ये लोग गंगा के किनारे रेतीले स्थानों में रहे। वहाँ पर इन्होंने अपनी तीन राजधानियाँ बनायीं। बड़े-बड़े राजमहलों का निर्माण कराया। वे लोग एक ही बाप से पैदा हुए और पचास हजार की संख्या में पहुँच गये। राजा जयचन्द के इन शूरवीर वंशजों ने दिल्ली के बादशाह का मुकाबिला किया। कन्नौज के पतन के बाद इस समय तक एक लम्बा समय बीत चुका था। इन चार शताब्दियों में राजा जयचन्द के जो वंशज उत्पन्न हुए, उनके मनोभावों में कन्नौज विजेता के प्रति शत्रुता का भाव जीवित रहा। बादशाह शेरशाह की अभिलाषा ने सिया जी के वंशजों की उस भावना को जाग्रत किया और पचास हजार राठौर कन्नौज का बदला लेने के लिए युद्ध-क्षेत्र में पहुँच गये।

ऊपर जिन वंशावलियों का उल्लेख किया गया है, उनके सिवा मारवाड़ के इतिहास के सम्बन्ध में जो कई एक भट्ट ग्रंथ पाये जाते हैं उनमें सूर्य प्रकाश प्रमुख हैं। इसलिए हम यहाँ पर इन्हीं तीनों का आश्रय होकर अपना वर्णन आरम्भ करते हैं।

मारवाड़ के दूसरे राठौर राजा अभयसिंह के शासनकाल में उसकी आज्ञानुसार कर्णीदान नाम के एक भट्ट कवि ने सूर्य प्रकाश ग्रंथ तैयार किया। इस ग्रंथ में पचहत्तर सौ छन्द हैं। सन् १८२० ईसवी में राजा मान ने इसकी नकल मेरे पास भेजी थी। कर्णीदान कवि ने अपने इस ग्रंथ को मनुष्यों की उत्पत्ति से आरम्भ किया है और राजा सुमित्र तक राजवंशों का वर्णन किया है परन्तु नयनपाल तक किसी राजा अथवा राजवंश का इस ग्रंथ में कोई विवरण नहीं मिलता। सूर्य प्रकाश में लिखा है कि राजा नयन पाल ने कन्नौज राज्य को जीतकर और उस पर अपना अधिकार करके कमध्वज की उपाधि धारण की थी। कर्णीदान ने राजवंशों के वर्णन को लेकर अपना यह ग्रंथ तैयार किया है। नाडोल के देव मन्दिर में जो वंशावली पायी गयी है, उसके साथ सूर्य प्रकाश की घटनायें अधिक मिलती हैं। परन्तु इन घटनाओं को संक्षेप में लिखा गया है। इस ग्रंथ में कन्नौज के राठौरों के ऐतिहासिक वर्णन बहुत कम पाये जाते हैं। इस ग्रंथ में यह अभाव बहुत खटकता है। इस ग्रंथ में कन्नौज के राजा जयचन्द की पराजय और उससे सम्बन्ध रखने वाली घटनाओं का भी उल्लेख नहीं किया। कवि ने सिया जी के वंशजों का वर्णन संक्षेप में करके अपनी वंशावली को समाप्त कर दिया है।

मारवाड़ के इतिहास के सम्बन्ध में राज रूपाख्यात दूसरा प्रसिद्ध ग्रंथ है। इस ग्रंथ में सबसे पहले सूर्यवंश के कई एक वर्णन लिखे गये हैं और उस समय का भी संक्षेप में वर्णन किया गया है जब राजा इक्ष्वाकु के वंशजों ने अपनी पुरानी राजधानी अयोध्या के राज सिंहासन पर बैठकर शासन किया था। उनके बाद इस ग्रंथ में सियाजी के राज्य छोड़ने की घटनाओं का वर्णन किया गया है। जिस समय राठौर सियाजी ने अपने थोड़े से अनुचरों के साथ राजस्थान की विशाल मरु-भूमि में जाकर आश्रय लिया और वहाँ पर उसने अपनी शक्तियों का संचय करके अपना प्रभाव कायम किया था, उस समय से लेकर राजा यशवंतसिंह की मृत्यु के समय तक राठौरों का वर्णन संक्षेप में इस ग्रंथ में पाया जाता है।

राजा यशवंतसिंह के बाद की घटनाओं के वर्णन इस ग्रंथ में विस्तार के साथ में किये गये हैं। उसके मरने के बाद नाबालिग उत्तराधिकारी अजीत उसके सिंहासन का अधिकारी हुआ था। इस प्रकार के वर्णन इस ग्रंथ में किये गये हैं और अजितसिंह एवम् उसके लड़के अभयसिंह के शासनकाल से लेकर गुजरात के सूबेदार सर बुलन्दखाँ के साथ होने वाले युद्ध के अंतिम समय तक की घटनाओं के उल्लेख इस ग्रंथ में किये गये हैं। ये सभी घटनायें सम्वत् १७३५ सन् १६७८ ईसवी से सम्वत् १७८७ सन् १७३१ तक की हैं।

इन दोनों ग्रंथों के अतिरिक्त विजय विलास का एक भाग मुझे देखने को मिला था। उसमें राजा विजयसिंह के शासनकाल की घटनाओं का वर्णन है। विजयसिंह बख्तसिंह का लड़का था। इस भाग में विजयसिंह और उसके भतीजे रामसिंह के आपसी झगड़ों का भी वर्णन किया गया है। रामसिंह अभयसिंह का लड़का था। इस आपसी झगड़े के फलस्वरूप मारवाड़ में मराठों के प्रवेश का द्वार खुला।

यहाँ के इतिहास के सम्बन्ध में ख्यात नाम की एक चौथी पुस्तक है, जो किसी भट्ट की लिखी हुई है। इस पुस्तक में कुछ राजवंश के जीवन चरित्रों का संकलन है। यह संकलन कथानक के रूप में है। इस पुस्तक का भी एक भाग हमें प्राप्त हुआ है। उसमें अकबर के मित्र राठौर राजा उदयसिंह, उसके बेटा गजसिंह और पौत्र यशवंतसिंह का वर्णन मिलता है। इन जीवन चरित्रों से राठौरों के जीवन का सच्चा चरित्र हमारे सामने आ जाता है।

राठौरों की उत्पत्ति का वर्णन हम पहले कर चुके हैं। यहाँ पर हम उनका इतिहास लिखने का प्रयास करेंगे। जोधपुर दरबार के किसी आदमी ने कुछ संस्मरण लिखे थे। उस आदमी का जीवन जोधपुर दरबार में व्यतीत हुआ था। उसके संस्मरण में सन् १६२८ ईसवी में राजा अजितसिंह की मृत्यु से लेकर सन् १८१८ ईसवी में अंग्रेजों की संधि तक के वर्णन पाये जाते हैं। इस लेखक के पूर्वज जोधपुर के ऊँचे पदों पर थे और जिसने ये संस्मरण लिखे हैं, उसमें ऐतिहासिक घटनाओं के लिखने की अच्छी योग्यता थी।

इस इतिहास को लिखने के लिए अनेक साधनों से मुझे काम लेना पड़ा है। ऐतिहासिक ग्रंथों से मैंने सहायता ली है। राजाओं मंत्रियों और राज-दरबार के योग्य व्यक्तियों के साथ बैठकर परामर्श किया है। इनके सिवा अन्य लोगों से भी मिलकर मैंने सामग्री प्राप्त करने की चेष्टा की है। इस प्रकार के अनेक साधनों से जो कुछ मिल सका है, उन सबको मिलाकर और एक करके मारवाड़ का ऐतिहासिक वर्णन करने की कोशिश की है।

राठौर राजपूत सूर्यवंशी हैं अथवा नहीं, इस विवाद में हम नहीं पड़ना चाहते। इस बात का निर्णय करना भी हमारा यहाँ पर उद्देश्य नहीं है कि राठौरों की उत्पत्ति इन्द्र के मेरुदण्ड से

हुई अथवा नहीं। उनके पूर्वजों की राजधानी उत्तर में कहाँ थी, इससे भी हमारा कोई सम्बन्ध नहीं है। हमें तो यहाँ पर इतना ही लिखना है कि यवनाश्व—जो पारलीपुत्र का राजा था और जो इसी वंश से सम्बन्ध रखता था—अश्व अथवा असी शाखा में उत्पन्न हुआ था और यह शाखा सोथियन जाति से निकली थी। इस शाखा के पूर्वज—सोथियन लोग सिंधु नदी से दूरवर्ती स्थानों में रहा करते थे। चन्द्रवंशी लोगों की वंशावली में—जिनकी उत्पत्ति बुध देवता और पृथ्वी से बतायी गयी है—लिखा है कि विजपाश्व के पाँचों पुत्र सिंधु नदी के किनारे के देशों में रहा करते थे। यूनान के बादशाह सिकंदर के आक्रमण के इतिहास में आसासेनी और आसाकानी जातियों के वर्णन पाये जाते हैं। वे जातियाँ इन देशों में अब तक रहा करती हैं। प्राचीन जातियों के जीवन में अनेक प्रकार के परिवर्तिन हुए और उनके फल स्वरूप, कई जातियों और उनकी शाखाओं ने भारत की उत्तर-पश्चिम सीमाओं पर अपनी-अपनी बस्तियाँ कायम कर लीं।

सम्बत् ५२६ सन् ४७० ईसवी में राजा नयनपाल ने कन्नौज को जीत कर उस पर अपना अधिकार किया था और उसी समय राठौरों ने कमध्वज की पदवी ग्रहण की थी। नयनपाल के पुत्र पदारत और उसके पुत्र पञ्जा से उन तेरह वंशों की उत्पत्ति हुई, जिनमें से प्रत्येक की कमध्वज पदवी थी इन तेरह वंशों का परिचय इस प्रकार पाया जाता है:

(१) धर्मबिम्ब—इसके वंशज कमध्वज के नाम से प्रसिद्ध हुए।

(२) भानुन्दा—इसने कांगड़ा नामक स्थान में अफगानों के साथ युद्ध किया और अभयपुर की स्थापना की थी और उसके वंशज अभयपुरी कमध्वज के नाम से प्रसिद्ध हुए।

(३) वीरचन्द्र—इसने अनहलपुर पत्तन के राजा हीरा चौहान की बेटी से विवाह किया था। वीरचन्द्र के चौदह लड़के पैदा हुए। वे अपना देश छोड़कर दक्षिण चले गये और वहाँ पर वीरचन्द्र के वंशज कपालिया कमध्वज के नाम से प्रसिद्ध हुए।

(४) अमर विजय—इसने गंगा के किनारे बसे हुए गौरागढ़ परमार राजा की लड़की से विवाह किया और राज्य के लोभ से उसने अपने ससुर के सोलह हजार परमारों को मार कार गौरागढ़ पर अधिकार किया था। उससे गोरा कमध्वज की उत्पत्ति हुई।

(५) सुजन विनोद—इसके वंशज जिरखोरिया कमध्वज के नाम से प्रसिद्ध हुए।

(६) पद्म—यदुवंशी राजा तेजोमान को जीतकर इसने बुगलाना पर अधिकार किया। उसने उड़ीसा को भी परास्त किया था।

(७) ऐहर—यदुवंशियों को पराजित करके इसने बङ्गाल पर अधिकार किया था। इससे ऐहर कमध्वज लोगों की उत्पत्ति हुई।

(८) वासुदेव—इसके बड़े भाई ने इसको बनारस और अड़तालीस गाँव जागीर के तौर पर दिये थे। वासुदेव ने पारकपुर नाम का एक नगर बसाया। इसके वंशज परकरा कमध्वज के नाम से विख्यात हुए।

(९) उग्रप्रभु—इसने हिंगलाज चन्देल नामक स्थान के प्रसिद्ध मंदिर में जाकर कठोर तप किया था। उग्रप्रभू के तप से प्रसन्न होकर मन्दिर के देवता ने उसे एक तलवार दी थी। देवता के सामने एक कुण्ड बना हुआ था। उसी कुण्ड से तलवार उसी समय निकली थी। उस तलवार के द्वारा उग्रप्रभू ने समुद्र के किनारे के सम्पूर्ण दक्षिणी प्रदेश को जीत लिया था। उससे चन्देला कमध्वजों का वंश आरम्भ हुआ।

(१०) मुकमान—इसने तोंअरवंशी राजा भानु पर आक्रमण किया और उसके राज्य का

कुछ हिस्सा जीत कर अपने अधिकार में कर लिया। इसके वंशज वीर कमध्वज के नाम से प्रसिद्ध हुए।

(११) भरत—इसने इकसठ वर्ष की अवस्था में गूजर वंशी रुद्रसेन राजा को पराजित करके पहाड़ों के नीचे बसे हुए कनकसीर नामक एक नगर पर अधिकार कर लिया। इसके वंशज बरियावा कमध्वज के नाम से प्रसिद्ध हुए।

(१२) अनलकुल—इसने खैरोदा नाम का एक नगर बसाया। अनलकुल पराक्रमी पुरुष था अटक में मुसलमानों के साथ इसने युद्ध किया। इसके वंश के लोग खैरोदिया कमध्वज के नाम से। विख्यात हैं।

(१३) चन्द—इसने उत्तर में तारापुर नाम के नगर पर अधिकार किया था। इसने ताहिरा नाम के नगर के चौहान राजा की लड़की के साथ विवाह किया और उसके बाद वह अपनी स्त्री को लेकर काशी चला गया। वहीं पर वह रहने लगा।

कन्नौज के राजा धर्मबिम्ब के एक लड़का था, उनका नाम था, अजय चन्द। इक्कीस पीढ़ियों तक वहाँ के राजाओं ने राज्य किया। उनमें से कुछ ने राव की पदवी धारण की। उसके बाद उनकी पदवी राजा हो गयी। उदयचन्द, नृपती, कनकसेन, सहेशसाल, मेघसेन, देवसेन, विमल सेन, दानसेन, मुकुन्द, भूदू, राजसेन, त्रिपाल, श्रीपुञ्ज, विजयचन्द और उसका लड़का जयचन्द जो कन्नौज का राजा हुआ।

सन् ४७० ईसवी में नयनपाल की कन्नौज में विजय से लेकर उसके तेरह पौत्रों तक—जिन्होंने भारत के विभिन्न स्थानों पर अपने राज्य कायम किये—जयचन्द के पहले का कोई वर्णन नहीं मिलता। सन् ११९३ ईसवी में जयचन्द की पराजय हुई और राठौरों का शासन कन्नौज में खतम होकर गंगा के किनारे प्रतिष्ठित हुआ। नयनपाल से लेकर इस समय तक सात शताब्दियों का समय बीत जाता है और इस दीर्घकाल में इक्कीस राठौर राजाओं के नामों का उल्लेख मिलता है जिन्होंने राव की पदवी धारण की थी और उसके बाद राजा की पदवी ग्रहण की। लेकिन राव की पदवी सबसे पहले किस राजा ने धारण की, इसका कहीं पर कोई उल्लेख नहीं मिलता। यती की वंशावली में जो नाम दिये गये हैं, वे सूर्य प्रकाश ग्रंथ में नहीं हैं। यती की वंशावली में अंगदध्वज राजा का एक नाम आता है, उसके सम्बन्ध में लिखा है कि उसने दिल्ली के प्रसिद्ध तोंअर राजा यशोराज को युद्ध में पराजित किया था, परन्तु इस प्रकार का उल्लेख सूर्यप्रकाश में नहीं मिलता। उसके समय का ठीक अनुमान लगा सकने के साधन हमारे पास हैं, फिर भी यती की वंशावली में जो नाम दिये गये हैं उनके सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा जा सकता। उनका कोई विवरण न मिलने के कारण उनके समय का विवाद बिल्कुल व्यर्थ मालूम होता है। लेकिन निश्चित रूप से हम यह कह सकते हैं कि उनका राज्य शक्तिशाली था और नयनपाल से लेकर राजा जयचन्द तक सभी राठौर राजाओं की मर्यादा प्रशंसा के योग्य थी। उनके सम्बन्ध में जो थोड़े-बहुत विवरण मिलते हैं, उनमें उनकी प्रशंसा की गयी है।

पतन के पहले कन्नौज राज्य ने बड़ी उन्नति की थी। यद्यपि उसके वर्णन भट्ट ग्रंथों में कुछ नहीं पाये जाते। लेकिन मुस्लिम इतिहासकारों ने उसकी उन्नति को स्वीकार किया है। कन्नौज राज्य के उन दिनों की उन्नति का सबसे बड़ा मित्र चंद बरदाई ने अपने ग्रन्थ में उसका वर्णन किया है।

उत्थान के दिनों में कन्नौज का विस्तार तीस मील से अधिक हो गया था और उसकी अपरिमित सेना दलपिङ्गल के नाम से प्रसिद्ध हो गयी थी। उसका अभिप्राय यह है कि विशाल

होने के कारण, सेना को जब वह कहीं जाने के लिए रवाना होती थी, रास्ते में उसको पड़ाव डालना पड़ता था। इस बात को कविचंद ने अपने ग्रंथ में स्वीकार किया है।

राठौरों की यह प्रबल सेना सिन्धु पारवर्ती यवनों का सामना करने के लिए काफी थी। इस विशाल सेना का वर्णन करते हुए सूर्यप्रकाश ग्रंथ में लिखा है : "राठौरों की इस सेना में अस्सी हजार कवचधारी शूरवीर, तीस हजार बख्तर पहने हुए सवार सैनिक, तीन लाख पैदल और दो लाख धनुष एवम् फरशाधारी सैनिक थे। इनके अतिरिक्त काले बादलों की तरह उन्मत्त हाथियों का एक विशाल समूह शूरवीरों को लेकर चलता था।

यह विशाल और शक्तिशाली सेना सिन्धु नदी से दूरवर्ती प्रचण्ड यवनों के साथ युद्ध करने के लिए गयी थी और गोर तथा ईरान के बादशाह के सिन्धु नदी के पार करते ही, भारत की सीमा पर युद्ध कुशल जयसिंह ने अपनी विशाल राठौर सेना के साथ यवनों का मुकाबिला किया था। दोनों तरफ से भयानक संग्राम हुआ। उस युद्ध में बहुत से शूरवीर योद्धा और सैनिक मारे गये। युद्ध-क्षेत्र का रक्त-प्रवाहित होकर सिन्धु नदी में पहुँचा और उसका नीला जल रक्त वर्ण हो उठा। अंत में यवनों की पराजय हुई।

राठौरों के साथ यवनों की पुरानी शत्रुता थी। चन्दबरदाई चौहानों का मित्र था। फिर भी उसने नयनपाल के वंशजों की प्रशंसा की है और राठौरों को माण्डलीक की उपाधि देकर लिखा है कि उत्तर में रहने वाले माण्डलीक यवन ने शहाबुद्दीन गोरी को पराजित करके उसके अधीन आठ बादशाहों को कैद कर लिया था। उन दिनों में कन्नौज के राजा ने कई एक हिन्दू राजाओं को पराजित किया था और अनहिल बाड़ा पट्टन के सोलंकी राजा सिद्धराज को जीतकर उसने कन्नौज राज्य की सीमा नर्मदा नदी के दक्षिणी किनारे तक पहुँचा दी थी। राठौरों की इस बढ़ती हुई मर्यादा के दिनों में राजा जयचंद ने राजसूय यज्ञ करने का विचार किया।

राजसूय यज्ञ की मर्यादा बहुत बड़ी मानी जाती है। महाराज युधिष्ठर के बाद अब तक कोई हिन्दू राजा राजसूय यज्ञ न कर सका था। राजा जयचन्द ने इस यज्ञ का निर्णय करके उसका कार्य आरम्भ किया। भारतवर्ष के समस्त राजाओं को निमंत्रण भेजे गये, देश के राजाओं में जयचन्द के राजसूय यज्ञ की चर्चा होने लगी। जो निमंत्रण भेजे गये उनमें यह भी लिखा गया कि "राजकुमारी संयोगिता का स्वयम्बर और राजसूय यज्ञ—दोनों का कार्य-सम्पादन एक साथ होगा।" इसका स्पष्ट अर्थ यह था कि जो राजा यज्ञ में सम्मिलित होंगे, उन्हीं में प्राचीन प्रथा के अनुसार राजकुमारी संयोगिता अपने वर का चुनाव करेगी।

कन्नौज में राजसूय यज्ञ की तैयारियाँ बड़ी धमधाम से की गयीं। कविचंद ने उसकी शोभा का वर्णन अपने ग्रंथ में पूर्ण रूप से किया है। यज्ञ का समय निकट आने पर निमंत्रित राजा अपनी-अपनी सेनाओं के साथ कन्नौज में आने लगे। भारत के राजाओं के आने से कन्नौज का दृश्य अपूर्व हो उठा। देश के समस्त राजा आकर राजसूय यज्ञ में सम्मिलित हुए, लेकिन दिल्ली का चौहान राजा पृथ्वीराज और मेवाड़ का गहिलोत राजा समरसिंह नहीं आया। राजा जयचंद ने उन दोनों की सोने की प्रतिमायें बनवाईं और राजसूय यज्ञ में उन मूर्तियों को वहाँ पर रखवाया, जहाँ पर द्वारपाल खड़े होते हैं। पृथ्वीराज और उसके बहनोई समरसिंह का अपमान करने के उद्देश्य से राजा जयचंद न ऐसा किया। यह समाचार दिल्ली में पृथ्वीराज ने सुना। उसने तुरन्त इस अपमान का बदला लेने का निश्चय किया।

पृथ्वीराज स्वयं एक पराक्रमी राजपूत था। बचपन से उसने युद्ध का ज्ञान प्राप्त किया था। वह अत्यन्त स्वाभिमानी था। अपने अपमान का वह बदला लेना जानता था। राजसूय यज्ञ में

राजा जयचंद ने उसके साथ जैसा व्यवहार किया, उस तिरस्कार का बदला लेने के लिए प्रतिज्ञाबद्ध होकर उसने निश्चय किया। इस राजसूय यज्ञ में चौहानों और राठौरों के बीच जो संघर्ष पैदा हुआ, वह भारतवर्ष का सर्वनाश का कारण बना। जयचन्द और पृथ्वीराज में युद्ध हुआ। दोनों पक्ष के बहुत से शूरवीर योद्धा और सैनिक मारे गये। इस संघर्ष का वर्णन कविचन्द ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ में बड़े विस्तार के साथ किया है। उस ग्रंथ में लिखा है कि पृथ्वीराज के द्वारा संयोगिता का अपहरण होने पर दिल्ली और कन्नौज की सेनाओं में पाँच दिनों तक भीषण युद्ध हुआ। इस संग्राम में भारत के प्रसिद्ध वीरों के मारे जाने पर यह देश निर्बल पड़ गया। इस अवसर का लाभ उठाकर शहाबुद्दीन गोरी ने भारत में आक्रमण किया। गोरी के इस युद्ध के परिणाम स्वरूप भारत की स्वाधीनता नष्ट हो गयी।

महमूद के आने के पहले से और इस समय तक भारत का शासन चार प्रधान राज्यों में विभाजित था : (१) दिल्ली, तोंग्रर और चौहानों का राज्य, (२) कन्नौज, राठौरों का राज्य (३) मेवाड़, गहिलोतों का राज्य (४) अनहिलवाड़ा, चावड़ा और सोलंकियों का राज्य।

उन दिनों में सम्पूर्ण भारतवर्ष इन चार राज्यों में विभाजित था और उनमें से प्रत्येक राजा की अधीनता में बहुत-से छोटे-छोटे राजा शासन करते थे। बड़े राजा की अधीनता में जो छोटे-छोटे राज्य थे, उनमें जागीरदारी प्रथा चलती थी।

दिल्ली और कन्नौज—दोनों स्वतन्त्र राज्य थे और दोनों एक, दूसरे से बहुत दूर न थे। इन दोनों राज्यों के बीच काली नदी बहती थी। यूनानी लोगों ने इस नदी का नाम कालिन्दी लिखा है। काली नदी से सिन्धु नदी के पश्चिमी किनारे तक और हिमालय पहाड़ के नीचे से मारवाड़ और अर्वली पहाड़ तक दिल्ली का विशाल राज्य फैला हुआ था। इस राज्य में चौहानों के एक सौ आठ सूबे थे। उनमें से बहुत से अधीन राजा शासन करते थे। इस विशाल राज्य का स्वामी अनंगपाल तोंग्रर था। पृथ्वीराज चौहान ने दिल्ली का राज्य अनंगपाल से पाया था। ×

कन्नौज का राज्य उत्तर में हिमालय पर्वत, पूर्व में काशी और चम्बल नदी को पार करके बुन्देलखण्ड तक फैला था। दक्षिण में यह राज्य मेवाड़ की उत्तरी सीमा तक पहुँच गया था और पश्चिम में उसकी सीमा अनहिलवाड़ा तक थी।

भट्ट ग्रंथों के पढ़ने से मालूम होता है कि इस देश के राजा सदा एक दूसरे के साथ लड़ते रहे हैं। गहिलोतों और चौहानों में मित्रता और चौहानों तथा राठौरों में शत्रुता का भाव हमेशा चला है। राठौरों और तोंवर राजपूतों की शत्रुता से इस देश को बहुत क्षति पहुँची है। वैवाहिक सम्बन्धों के कारण उनके कुछ संघर्ष कुछ दिनों के लिए शांत हो गये थे, परन्तु उनके आन्तरिक वैमनस्य कभी मिट नहीं सके। यह फूट इस देश के विनाश की सदा कारण रही है। इस बात का प्रमाण यहाँ के प्राचीन इतिहास देते हैं।

महमूद गजनवी के पश्चात् यदि किसी यात्री ने योरप के बाद गजनी होकर दिल्ली, कन्नौज और अनहिलवाड़ा की यात्रा की होती तो वह निश्चित रूप से राजपूतों की सभ्यता और योग्यता को स्वीकार करता। उसे स्वीकार करना पड़ता कि जो राजपूत जीवन की अन्य बातों में किसी से कम न थे। पश्चिमी देशों की भाँति इस देश के राज्यों में भी शासन की व्यवस्था जागीरदारी प्रथा के द्वारा होती थी। लेकिन उनकी आपस की फूट ने उन्हें आपस में लड़ा कर निर्बल बना दिया

× पृथ्वीराज चौहान अनंगपाल की लड़की का बेटा था। अनंगपाल पृथ्वीराज को अपना उत्तराधिकारी बनाकर और दिल्ली का राज्य सौंप कर बद्रिकाश्रम तप करने चला गया था।

था। बाहरी आक्रमणकारियों ने उनकी इस निर्बलता का सदा लाभ उठाया और शहाबुद्दीन गोरी ने दिल्ली के सम्राट पृथ्वीराज चौहान के साथ युद्ध करके उसको पराजित किया। इस पराजय का कारण राजपूत राजाओं की फूट थी।

शहाबुद्दीन गोरी ने पृथ्वीराज को जीत कर दिल्ली पर अधिकार किया उसके बाद उसने कन्नौज के राजा जयचंद पर आक्रमण किया। जयचंद इसके पहले पृथ्वीराज के साथ युद्ध करके अपनी शक्तियों का क्षय कर चुका था। गोरी के आक्रमण करने पर जयचंद के सामने एक भयानक विपद पैदा हो गयी। किसी प्रकार अपनी ले कर सेना वह युद्ध-क्षेत्र में पहुँचा और उसने शहाबुद्दीन गोरी की विजयी सेना का सामना किया। उस युद्ध में अपनी पराजय को देख कर जयचन्द ने गंगा को पार कर भाग जाने की चेष्टा की। परन्तु उसका दुर्भाग्य उसके सिर पर मंडरा रहा था। गंगा के अगाध जल में जयचन्द की नाव डूब गयी और वहीं पर उसकी मृत्यु हो गयी।

इस प्रकार राजा जयचन्द का अंत और कन्नौज राज्य का पतन सम्बत् १२४६ सन् ११६३ ईसवी में हुआ। इस पतन के बाद कन्नौज राज्य की अधीनता में जो छत्तीस राजा शासन करते थे, और आवश्यकता पड़ने पर राठौरों के झण्डे के नीचे एकत्रित होते थे, वे सभी कन्नौज के राज्य की अधीनता से पृथक हो गये। राठौरों का विशाल राज्य छिन्न-भिन्न हो गया। लेकिन राठौर वंश का अंत नहीं हुआ। कन्नोज के पतन के बाद नयनपाल के वंशजों ने मरु प्रदेश में जाकर अपना अस्तित्व कायम किया। इस वंश की इकतीसवीं पीढ़ी में मानसिंह उत्पन्न हुआ, वह महान प्रतापी हुआ। अपने शासन काल में उसने राठौर वंश के उस गौरव की फिर से प्रतिष्ठा की, जिसको नयनपाल ने कन्नौज जीत कर उन्नत बनाया था।

बत्तीसवाँ परिच्छेद

सियाजी के मरुभूमि में जाने का कारण—मरुभूमि में सियाजी के आश्रय का प्रथम स्थान—मोहिली राजधानी—मरुभूमि की प्राचीन जातियाँ—मरुस्थल का सोलंकी राजा और सियाजी—लाखा फूलाणी के साथ सियाजी का युद्ध—लाखा की पराजय—पहाड़ी जातियों का पतन—मरुभूमि में राठौर वंश की उन्नति—राठौरों का विस्तार।

कनौज पतन के अठारह वर्षों के बाद सम्बत् १२६८ सन् १२१२ ईसवी में राजा जयचन्द के पौत्र सिया जी और सेत राम अपने राज्य की भूमि को छोड़कर मरु प्रदेश चले गये। उनके साथ दो सौ अन्य लोग भी वहाँ गये।

सिया जी और सेतराम के कन्नौज छोड़ कर मरु प्रदेश चले जाने का कारण क्या था, इस पर जो ग्रन्थ मिलते हैं, उनका मत एक नहीं है। कुछ ग्रंथों में लिखा है कि वे धार्मिक स्थानों के दर्शन करने लिए वे कन्नौज से चले गये। उनका इरादा द्वारिका जाने को था। किसी का कहना है कि कन्नौज के पतन के बाद उन्होंने अपने सुख-सौभाग्य की खोज में मरु प्रदेश की यात्रा की थी। इस प्रकार के मतों में यद्यपि निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि सही बात क्या थी। परन्तु अनुमान के आधार पर सत्य की खोज की जाती है।

सिया जो राजा जयचन्द का पौत्र था। उसने स्वाभिमानी राठौर वंश में जन्म लिया था। शहाबुद्दीन गोरी के आक्रमण करने पर जयचन्द की मृत्यु हुई और उसके पूर्वजों के राज्य का पतन हुआ, उस समय सिया जी की तरह किसी भी स्वाभिमानी मनुष्य को राज्य छोड़कर चला जाना ही उचित था। इस दशा में सिया जी ने कन्नौज छोड़कर अच्छा ही किया। यदि उसने ऐसा न किया होता तो कन्नौज के पतन के बाद, भारत के मरुप्रदेश में जिस प्रकार राठौर वंश का उत्थान और विस्तार हुआ, वह होता अथवा नहीं, यह नहीं कहा जा सकता।

मरुप्रदेश में पहुँचकर सिया जी ने जिस विस्तृत स्थान पर अपना आधिपत्य और प्रभाव कायम किया, वह जमना, सिंध और गारा नदी तथा अर्वली पहाड़ की ऊँची चोटियों से घिरा हुआ था। वहाँ पर विभिन्न जाति के लोग उन दिनों में रहा करते थे। कछवाहों ने उस समय तक कोई प्रतिष्ठा नहीं पायी थी। उनके वंश का राजा पजोन कन्नौज के युद्ध में मुसलमानों के द्वारा मारा गया था। उसका बेटा मलैसी सिंहासन पर बैठा था। अजमेर, आमेर, साँभर और दूसरे चौहान राज्य मुसलमानों के अधिकार में चले गये थे। परन्तु अर्वली के अनेक दुर्ग अब भी राजपूतों के अधिकार में थे। मुसलमानों के आक्रमण के बाद भी नाडोल नगर अपनी स्वाधीनता के साथ सुरक्षित था और बीसलदेव का एक वंशधर नाडोल में शासन करता था। मंदोर नगर में अब भी परिहारों का गौरव प्रतिष्ठा पा रहा था। ईदाकुल परिहारों की एक शाखा है। मानसिंह इसी कुल में उत्पन्न हुआ था। मन्दोर नगर में उसका अधिकार था। मानसिंह ने बहुत ख्याति पायी थी और मरुप्रदेश में वह एक श्रेष्ठ राजा माना जाता था।

उत्तर की तरफ नागोर कोट के करीब मोहिल लोग रहते थे। यद्यपि उनकी प्रतिष्ठा बहुत कुछ नष्ट हो गयी है। परन्तु ग्रंथों में उनके बहुत से उल्लेख पाये जाते हैं। उन लोगो के राजा ने औरीन्त नाम के स्थान पर अपनी राजधानी कायम की थी और उसके अन्तर्गत चौदह सौ चालीस गाँवों में उसका अधिकार था। बीकानेर से लेकर भटनेर तक सम्पूर्ण प्रदेश बहुत-से छोटेछोटे राज्यों में विभाजित था और वे जाट लोगों के अधिकार में थे। उनके पूर्व की तरफ गारा की रेतीली भूमि पर कई जंगली जातियों का अधिकार था। जैसलमेर में भाटी। उसके दक्षिण में सोन और सिंधु एवम् कच्छ प्रदेश में जारीजा जाति के लोग रहा करते थे।

मरुप्रदेश में और भी अनेक जातियाँ रहती थीं। चन्दावती के पवारों के बीच सोलंकी रहते थे। ईदर और मेवाड़ की कुछ जातियाँ खंडधर के गोहिल लोग, साचोर के देवड़ा, जालोर के सोनगरा, औरीन्त के मोहिल लोग और सिनली के साला लोग—इस प्रकार कितने ही प्राचीन जातियों के लोग उस विस्तृत मरुभूमि में रहा करते थे।

बीकानेर नगर से पश्चिम की तरफ बीस मील की दूरी पर कोलूमठ नामक एक स्थान है। सिया जी अपने साथियों के साथ वहाँ पर पहुँचा। कोलूमठ में एक सोलंकी राजा का शासन था। उसने सिया जी के साथ शिष्टाचार पूर्ण व्योहार किया। सोलंकी राजा के स्नेहपूर्ण व्यवहारों से सिया जी बहुत प्रसन्न हुआ। वहाँ पर लाखाफूलाणी नाम का एक राजपूत रहा करता था। वह जारीजा वंश में उत्पन्न हुआ था। मरुप्रदेश में उसका एक प्रसिद्ध दुर्ग था। उसकी शक्तियाँ महान थीं और उसने वहाँ के लोगों को अपने अत्याचारों से बहुत दुखी बना रखा था। लाखा का नाम उन दिनों में वहाँ दूर तक फैला हुआ था और सतलज से लेकर समुद्र के किनारे तक जितने भी नगर और ग्राम थे, उनके निवासी लाखा का नाम सुनते ही घबरा उठते थे।×

× यद्यपि लाखा फूलाणी का आतंक चारों तरफ फैला हुआ था, परन्तु उसने निर्बलों पर कभी अत्याचार नहीं किया। वह अपने अनेक धार्मिक कार्यों के लिए भी प्रसिद्ध था। इसीलिए बहुत-से

सोलंकी राजा ने सिया जी और उसके साथियों का आदर पूर्वक अपने यहाँ स्थान दिया। वहाँ रह कर सिया जी को लाखा की बहुत सी बातें सुनने को मिलीं। उसे यह भी मालूम हुआ कि यहाँ के लोग लाखा से बहुत डरते हैं और सोलंकी राजा स्वयं उससे भयभीत रहता है। वहाँ पर रह कर सोलंकी राजा के अच्छे व्यवहारों से सिया जी बहुत प्रभावित हुआ और उसने सोलंकी राजा के शत्रु लाखा को पराजित करने का निश्चय किया।

सोलंकी राजा को सिया जी का इरादा मालूम हुआ। उसने सिया जी की सहायता में अपनी सेना के देने का वादा किया और सिया जी ने जब लाखा से युद्ध करने की तैयारी की तो सोलंकी राजा ने अपनी सेना दे कर सिया जी को सेनापति बनाया। सिया जी का भाई सेतराम भी युद्ध के लिए तैयार हुआ। जो राठौर राजपूत सिया जी के साथ कन्नौज से मरुप्रदेश आये थे, वे भी युद्ध क्षेत्र में जाने के लिए तैयार हो गये।

सिया जी ने सोलंकी राजा की सेना लेकर लाखा फूलाणी पर आक्रमण किया। दोनों ओर से युद्ध आरम्भ हुआ। अंत में सिया जी की विजय हुई। यद्यपि उस युद्ध में उसके भाई सेतराम के साथ-साथ कन्नौज के राठौर वीर भी बहुत-से मारे गये।

कोलूमठ का सोलंकी राजा सिया जी की इस विजय को सुनकर बहुत प्रसन्न हुआ। उसने सिया जी के साथ अपनी बहन का विवाह कर दिया। सिया जी कुछ दिनों तक वहाँ रहा। उसके बाद वह द्वारिका की तरफ रवाना हुआ। रास्ते में अनहिलवाड़ा पट्टन उसे मिला। अपनी थकान को मिटाने के लिए उसने उस नगर में रुकने का इरादा किया। वहाँ के राजा को जब यह मालूम हुआ तो उसने बड़े आदर-सत्कार के साथ सिया जी का स्वागत किया। वहाँ पर कुछ दिनों तक सिया जी ने विश्राम किया।

सिया जी जिन दिनों में अनहिलवाड़ा पट्टन में था, उसने सुना कि यहाँ पर लाखा फूलाणी का आक्रमण होने वाला है। इस आक्रमण के समाचार को सुनकर पट्टन का राजा बहुत भयभीत हो गया। सिया जी ने उसके भय को दूर किया और लाखा फूलाणी के साथ उसने फिर युद्ध करने का निश्चय किया।

सोलंकी राजा की तरफ से जब सिया जी लाखा के साथ युद्ध करने गया था, उस समय उसका भाई सेतराम मारा गया। उस युद्ध में लाखा ने भाग कर अपने प्राणों की रक्षा की थी। इस प्रकार सिया जी की उस पर विजय हुई। लेकिन भाई के मारे जाने का उसे रंज था। इसलिए उसका बदला लेने के लिए सिया जी ने लाखा के साथ युद्ध करने की तैयारी की। समय पर दोनों तरफ के आदमियों का सामना हुआ और लाखा के साथ सिया जी की मारकाट आरम्भ हो गयी। इस लड़ाई के अंत में लाखा मारा गया। उसके सिर के दो टुकड़े होकर जमीन पर गिरे। पट्टन की सेना के जयघोष से आकाश गूँज उठा।

लाखा के अत्याचारों से लोग बहुत दिनों से पीड़ित हो रहे थे। सिया जी द्वारा उसके मारे जाने का समाचार सुनकर अनहिलवाड़ा पट्टन के स्त्री-पुरुषों को बड़ी प्रसन्नता हुई। लाखा का आतंक जहाँ तक फैला हुआ था, सभी लोगों ने सिया जी की प्रशंसायें कीं।

सिया जी तीर्थ यात्रा करने के लिए कोलूमठ से रवाना हुआ। अनहिलवाड़ा पट्टन में लाखा को मारकर उसने विजय की ख्याति प्राप्त की। इसके पश्चात् वह तीर्थ यात्रा के लिए गया अथवा

लोग उसकी प्रशंसा किया करते थे। राजस्थान के छै प्रसिद्ध नगरों पर लाखा फूलाणी का पूर्ण रूप से अधिकार था।

नहीं, इसका उल्लेख भट्ट ग्रंथों में कुछ नहीं मिलता। उनमें जो कुछ लिखा है, उससे प्रकट होता है कि सिया जी अनहिलवाड़ा पट्टन से बिदा होकर लूनी नदी के किनारे चला गया और वहाँ पर उसने कुछ दिनों तक वास किया। वहाँ पर महबा नाम का एक नगर था। उस पर दावी वंश के क्षत्रियों का शासन था। × सिया जी ने वहाँ के राजा को मार कर नगर पर अपना अधिकार कर लिया।

कई स्थानों की लगातार विजय से सिया जी के हृदय में राज्य का प्रलोभन बढ़ने लगा। इन्हीं दिनों में उसने खेरधर पर आक्रमण किया। गोहिलों का प्रभुत्व था। गोहिल राजा महेश दास ने सिया जी का सामना किया। वह युद्ध में मारा गया और गोहिल लोग युद्ध-क्षेत्र से चले गये। सिया जी ने उसके बाद खेरधर पर भी अपना अधिकार कर लिया।

यहाँ पर पाली नगर में कुछ ब्राह्मण रहते थे। उनके अधिकार में बहुत बड़ी भूमि थी। उन ब्राह्मणों पर मेर और मीना जाति के पहाड़ी लोगों के अक्सर आक्रमण होते रहते थे और वे लोग लूट मार करके ब्राह्मणों पर अनेक प्रकार के अत्याचार करते थे। उनके आतंक से पाली नगर के ब्राह्मण सदा भयभीत रहा करते थे। इन दिनों में उन ब्राह्मणों ने पराक्रमी सिया जी की विजय के लगातार समाचार सुने। वे लोग सिया जी के पास गये और पहाड़ी जातियों के अत्याचारों को दूर करने के लिए उन्होंने सिया जी से प्रार्थना की। सिया जी ने उनकी प्रार्थना को स्वीकार कर किया और पहाड़ी जातियों पर आक्रमण करके उसने पाली के ब्राह्मणों को निर्भीक बना दिया।

जङ्गली जातियों के आक्रमण का भय कुछ दिनों के लिए पाली के ब्राह्मणों के मन से चला गया। परन्तु उनको इस बात का संदेह होने लगा कि सिया जी के चले जाने के बाद पहाड़ी जातियाँ फिर आक्रमण करेंगी। इस लिए उन ब्राह्मणों ने बहुत-सी भूमि सिया जी को देकर यह प्रार्थना की कि वह वहीं पर बना रहे।

सिया जी वहां रहने लगा। उसने कोलूमठ की सोलंकिनी राजकुमारी के साथ विवाह किया था। यहाँ पर उसके गर्भ से एक लड़का उत्पन्न हुआ। सिया जी ने आसथाम उसका नाम रखा।

पाली नगर में रहकर सिया जी के विचार कुछ और ही होने लगे। वह पाली नगर के समस्त ब्राह्मणों की विस्तृत भूमि पर अधिकार करने का विचार करने लगा। इस बीच में उसने वहाँ के ब्राह्मणों के प्रधान को मार डाला और वहाँ की सम्पूर्ण भूमि पर उसने अधिकार कर लिया।

सिया जी के तीन लड़के पैदा हुए। सब से बड़े लड़के का नाम था आसथाम, दूसरे का सोनग और तीसरे का नाम अजमल था। किसी भट्ट कवि ने अपने ग्रन्थ में लिखा है कि सिया जी का बड़ा पुत्र ठीक उसी की तरह का शूरवीर और पराक्रमी था। उसी ने गोहिलों पर आक्रमण करके खेरधर पर अधिकार किया था। सिया जी ने जिन दिनों में पाली नगर * पर अधिकार किया था, उसके बड़े पुत्र आसथाम ने ईदर को जीतकर अपने छोटे भाई सोनग को वहाँ का अधिकारी बना दिया था।

× दावी राजस्थान के छत्तीस राजवंशों में एक है। मैंने इन स्थानों की यात्रा की है और कैम्बे की खाड़ी में भावनगर के गोहिलों से मैं मिला था। उनके इतिहास के सम्बन्ध में मैंने उनसे बातें की थीं।

* पाली नगर राजस्थान के पश्चिम में है। यह नगर व्यवसाय का एक प्रसिद्ध स्थान है। वह भीलवाड़े से किसी प्रकार कम नहीं है। यह नगर चारों ओर ऊंची दीवारों से घिरा हुआ है। मराठों के आक्रमण से बचने के लिए वहाँ की इन दीवारों का निर्माण हुआ था। अब वे बहुत-कुछ टूट-

ईदर नगर गुजरात की सीमा पर बसा हुआ है। उन दिनों में यह नगर दावी वंश के किसी राजा के अधिकार में था। सिया जी का बड़ा लड़का आसथाम अपनी राजनीतिक चतुरता के लिए प्रसिद्ध था। ईदर के राजा के मरने पर उसने वहाँ पर अपना अधिकार कर लिया और उसका भाई सोनग वहाँ पर शासन करने लगा। उसके वंशज हातौदिया राठौर के नाम से प्रसिद्ध हुए। सिया जी का तीसरा लड़का अजमल भी बड़ा लड़ाकू था। सौराष्ट्र के पश्चिम तरफ ऊरवामण्डल नाम का एक नगर था। सौरवंशी भीषमशाह नाम का एक राजा वहाँ पर राज्य करता था। अजमल ने उसे मार डाला और उसके राज्य पर अधिकार कर लिया। उसके वशंज वाटेला नाम से विख्यात हुए और वे लोग अब तक द्वारिका और उसके आस-पास के नगरों में पाये जाते हैं।

आसथाम आठ पुत्रों को छोड़कर मरा। × दूँहड उसका सबसे बड़ा लड़का था। इस लिए पिता के मरने के बाद वही गद्दी पर बैठा। उसके अधिकार में बहुत छोटा-सा राज्य था। कन्नौज का उद्धार करने की अभिलाषा बहुत दिनों से उसके हृदय में थी। पिता के मरने के पश्चात् सिंहासन पर बैठते ही उसने कन्नौज के उद्धार का संकल्प किया। परन्तु वह पूरा न हुआ। इन्हीं दिनों में उसने मन्दोर पर आक्रमण किया। वहाँ पर वह मारा गया। दूँहड के सात लड़के पैदा हुए थे। रायपाल सबसे बड़ा था। इस लिए पिता के मरने के बाद वही सिंहासन पर बैठा। उसके बाद उसने मन्दोर पर आक्रमण किया और उसके परिहार राजा को मार कर उसने मन्दोर के दुर्ग पर अधिकार कर लिया। परन्तु थोड़े ही दिनों के बाद परिहारों ने संगठित होकर रायपाल के साथ युद्ध किया और उन लोगों ने उसे मन्दोर से भगा दिया।

रायपाल के तेरह लड़के थे। उसके बाद उसका बड़ा लड़का कनहुल सिंहासन पर बैठा। उसका बेटा जाल्हन, जाल्हन का बेटा छाडा और छाडा का लड़का टीडा क्रम से सिंहासन पर बैठे। इनके सम्बन्ध में कोई विशेष विवरण नहीं पाया जाता। जो कुछ उल्लेख मिलता है उससे इतना ही मालूम होता है कि ये लोग अपने आस-पास के छोटे-छोटे राजाओं के साथ युद्ध करते रहे। वे कहीं पर हारे और कहीं पर जीते। उनका यह क्रम कुछ दिनों तक लगातार चलता रहा। टीडा ने अपने राज्य की उन्नति की थी। उसने कई राज्यों पर अधिकार कर लिया था। जैसमेर के भट्ट ग्रंथों में लिखा है कि छाडा और टीडा बड़े लड़ाकू थे। टीडा के मरने के बाद सलखा उसके सिंहासन पर बैठा। *

उत्थान और पतन राजपूतों के जीवन का खेल रहा है। उनके न तो पतन होने में देर

फूट गयी है। इस नगर में दस हजार से अधिक घर पाये जाते हैं। यह नगर प्राचीन काल से प्रसिद्ध रहा है। तिब्बत और उत्तरी भारत की बहुत-सी व्यावसायिक चीजें यहाँ पर आकर एकत्रित होती थीं और फिर यहाँ से अरब, योरप अफ्रीका को वे चीजें जाती थीं। इस नगर में प्रति वर्ष पछत्तर हजार रुपये चुंगी के आते थे।

× दूँहड, जोपसाव, खीयसी, भूपसू, घाडल, जैतमल, बाँदर, और ऊहड नाम के आठ बेटे आस थाम के थे। इन आठों भाइयों ने अपने-अपने राज्यों का संगठन अलग-अलग किया। इन आठ पुत्रों ने दूँहड, घाडल, जैतमल और ऊहड के वंशों का पता चलता है। शेष भाइयों का नहीं।

* सलखा के वंशज सलखावत के नाम से प्रसिद्ध हुए। वे लोग अब तक बहुत-से स्थानों में पाये जाते हैं।

लगती थी और न उनके उन्नत होने में। अपनी उन्नति के थोड़े ही दिनों के भीतर चूड़ा उन सभी स्थानों से निकाल दिया गया जिन पर उसके पूर्वजों ने अधिकार कर लिया था। अपने उन दुर्दिनों में वह कल्लू नामक नगर में चला गया। वहाँ पर एक चारण ने अपने घर में उसे शरण दी।

मन्दोर नगर में अधिकार करने के बाद चूड़ा ने नोगौर की बादशाही सेना पर हमला किया। वहाँ पर उसे विजय प्राप्त हुई। इसके पश्चात् अपनी सेना लेकर वह दक्षिण की तरफ रवाना हुआ और गोडवाड राज्य की राजधानी नाडौल में पहुँच गया। वहाँ के दुर्ग पर उसने अपनी सेना रखी और उस राज्य पर अपना अधिकार कर लिया। उसने एक परिहार राजा की लड़की के साथ विवाह किया। उससे चौदह लड़के और एक लड़की पैदा हुई। रिडमल्ल, सत्ता, रणधीर, अडकमल्ल, पुन्ना, भीम, कान्हा, अज्जा, रामदेव, बीजा सहेशमल्ल, बोधा, लम्भा और शिवराज उसके चौदहों लड़कों के नाम थे। उसकी लड़की का नाम हंसा था। मेवाड़ के राणा लाखा के साथ हंसा का विवाह हुआ था। इसी हंसा से जो लड़का पैदा हुआ, उसने मेवाड़ के सिंहासन पर बैठ कर राणा कुम्भ के नाम पर महान कीर्ति प्राप्त की।

चूड़ा के सम्बन्ध में अधिक विवरण नहीं पाए जाते। संक्षेप में इतना ही लिख कर उसका वर्णन समाप्त किया है कि चूड़ा नागौर में एक हजार राजपूतों के साथ मारा गया। सम्बत् १४३८ सन् १३८२ ईसवी में वह सिंहासन पर बैठा था और सम्बत् १४६५ में वह मारा गया। उसकी मृत्यु के बाद उसका बड़ा लड़का रिडमल्ल मन्दोर के सिंहासन पर बैठा। उसकी मा मोहिल वंश की लड़की थी।

चूड़ा की मृत्यु हो जाने के बाद नागौर राठौरों के अधिकार से निकल गया। राणा लाखा रिडमल्ल से बहुत स्नेह करता था और अपने सामन्तों में उसे वह बहुत सम्मान देता था। राणा लाखा ने रिडमल्ल को चालीस गाँव और धनला नाम का एक नगर दे दिया था। राणा लाखा के जीवन काल में रिडमल्ल उसका राजभक्त बना रहा और कई अवसरों पर उसने अपने कार्यों के द्वारा अपनी राजभक्ति का प्रमाण दिया। एक बार वह अपनी और मेवाड़ की सेना लेकर चौहानों के एक पुराने दुर्ग पर पहुँचा और वहाँ की रक्षक सेना को मार कर उसने उस दुर्ग को अपने अधिकार में में कर लिया। रिडमल्ल ने दुर्ग को जीतकर राणा लाखा को दे दिया था। राणा लाखा उसके इस कार्य से बहुत प्रसन्न हुआ और उसने उसको कैटो नामक एक नगर इनाम में दिया। रिडमल्ल तीर्थ यात्रा करने के उद्देश्य से गया जी गया था। वहाँ पर उसने कई एक धार्मिक कार्य ऐसे किये जिससे वहाँ पर उसकी बड़ी प्रशंसा हुई। जो लोग तीर्थ यात्रा करते थे, उनको कर देना पड़ता था। रिडमल्ल ने वह सम्पूर्ण कर अादा कर दिया।

राज्य के कार्यों में रिडमल्ल बड़ा बुद्धिमान था। उसके अच्छे कार्यों से प्रजा को बहुत-सी सुविधायें मिली थीं। उसने मेवाड़ के नाबालिग़ राणा के सिंहासन पर अधिकार करने की चेष्टा की थी, जिसके फलस्वरूप वह मारा गया इसका वर्णन मेवाड़ के इतिहास में किया जा चुका है। इस झगड़े के कारण मेवाड़ और मन्दोर में बहुत अन्तर पड़ गया था और दोनों राज्यों के सम्बन्ध एक दूसरे से अलग हो गये थे। राठौर वंश के भट्ट कवियों ने रिडमल्ल की अपने ग्रंथों में प्रशंसा लिखी है और इस बात को स्वीकार किया है, कि उसने अपने राज्य में भूमि और कर के सम्बन्ध में कभी पक्षपात से काम नहीं लिया।

रिडमल्ल के विश्वासघास के कारण मेवाड़ और मन्दोर की सीमायें अलग-अलग हो गयी थीं और वे बहुत समय तक अलग बनी रहीं। रिडमल्ल का वर्णन मेवाड़ के इतिहास में भली भाँति

किया जा चुका है। उसके चौबीस लड़के थे, जिनकी सन्तानों ने और बड़े लड़के जोधा ने मारवाड़ की अधीनता स्वीकार कर ली। सियाजी के वंशजों ने मरुभूमि में चारो तरफ फैल कर अपना विस्तार किया था। उनकी नामावली जागीरों के साथ नीचे दी जाती है :

नाम	शाखा	जागीर
१—जोधा (सिंहासन पर)	जोधा	
२—कांधलजी	कांधलोत	बीकानेर
३—चम्पाजी	चम्पावत	अहवा, कैटो, पलरी हरसोला, जावला, सथलाना, सिगरी।
४—अरवैराज इसके सात बेटे थे। कूंपा सबसे बड़ा था।	कुम्पावत	असोप, कुम्पालिया, चन्द्रावल, सिरयारी, खारलो, हरसोर, बल्लू, बिजौरिया, शिवपुरा, देवरिया।
५—मण्डला जी	माण्डलोत	सरौदा
६—पाता जी	पत्तावत	कुनिचरी, बरोह, देसनोख।
७—लाखा जी	लाखावत	
८—बालो जी	बालावत	धुनार
९—जैतमल	जैतमालोत	पालासनी
१०—करन	करनोत	लूनाबास
११—रूपा जी	रूपावत	चौतला
१२—नाथ जी	नाथावत	बीकानेर
१३—डूंगर जी	डूंगरोत	
१४—सांडा जी	सांडावत	
१५—माडन जी	माडनोत	
१६—बीरा	बीरोत	
१७—जगमल जी	जगमालोत	
१८—हम्पा जी	हम्पावत	इनकी जागीरों का कोई वर्णन नहीं पाया जाता। इन लोगों ने अपने अपने श्रेष्ठ वंशजों की अधीनता स्वीकार कर ली थी।
१९—शक्ता जी	शक्तावत	
२०—कर्मचन्द्र	कर्मचन्द्रोत	
२१—अरिवाल जी	अरिवालोत	
२२—केतसी	केतसीओत	
२३ शत्रुशाल	शत्रुशालोत	
२४—तेजमल	तेजमालोत	

तेंतीसवाँ परिच्छेद

जोधा का जन्म–जोधपुर का निर्माण–जोधपुर में जल का अभाव–मरुभूमि में सिया जी के वंशजों का विस्तार और शासन–जोधा की संतानें–मेरतिया वंश की उत्पत्ति–बीकानेर नगर का उत्सव–ऊदावत वंश का प्रतिष्ठाता ऊदा–मारवाड़ के सिंहासन पर मालदेव–मारवाड़ राज्य का उत्थान और विस्तार।

सम्बत् १४८४ के बैसाख महीने में जोधा ने मेवाड़-राज्य के धनला नामक एक नगर में जन्म लिया था। वह रिडमल्ल का लड़का था। जोधा के पितामह ने मन्दोर पर अधिकार करके उसको अपने राज्य की राजधानी बनायी थी और यह नगर बहुत दिनों तक मारवाड़ की राजधानी के रूप में रहा। जोधा ने इस नगर से हटकर अलग अपने नाम का एक नगर बसाने का इरादा किया। कहा जाता है कि इसके लिए किसी संन्यासी ने उसको परामर्श दिया था। वह संन्यासी मन्दोर से चार मील दक्षिण की तरफ विहंगकूट नामक एक पहाड़ की गुफा में रहा करता था। वह राठौरों का शुभचिंतक था। उसी ने जोधा से कहा था कि मन्दोर नगर में अनेक प्रकार के संकट पैदा होंगे। इसलिए बकरचीरा की सीमा पर आप एक नगर की प्रतिष्ठा कराइए।

संन्यासी के इस परामर्श को पाकर जोधा ने उस नये नगर के निर्माण का विचार निश्चित कर लिया और बिहंगकूट पर्वत की ऊँची चट्टानों के ऊपर उनके बनाये जाने का कार्य आरम्भ हो गया। इसी पर्वत के ऊपर मन्दोर नगर बसा हुआ था। इस पर्वत पर बसे हुए नगर पर आक्रकरण करना किसी के लिए आसान न था। उस पर्वत के चारो तरफ घना जंगल था और उस पर्वत की ऊँचाई बहुत अधिक थी। उसकी ऊँची चोटियों पर खड़े होकर देखने से सम्पूर्ण मारवाड़ दिखायी देता था। मारवाड़ के तीन तरफ विस्तृत मरुभूमि थी। उस वालुकामय प्रदेश में जल का स्वाभाविक रूप से अभाव था। जोधा ने अपने नये नगर के निर्माण में इस अभाव की तरफ ध्यान न दिया। कार्य आरम्भ हुआ और निर्माण का कार्य समाप्त हुआ। जोधा ने अपने नाम के आधार पर इस नवीन नगर का नाम जोधपुर रखा। उसमें जल की कोई व्यवस्था न थी। जिस स्थान पर यह नगर बसाया गया था, वहाँ पहले से ही पहाड़ी चट्टानों पर इसका अभाव था। इसका विचार उस समय होना चाहिए था, जब उस नगर की प्रतिष्ठा होने जा रही थी। उस समय स्वयं जोधा ने और उसे परामर्श देने वाले मंत्रियों ने इसके सम्बन्ध में कुछ न सोचा। नगर के निर्माण का कार्य समाप्त हो जाने पर लोगों का ध्यान इस अभाव की तरफ गया।

जल का अभाव जोधपुर का एक बड़ा अभाव था। मारवाड़ भट्ट लोगों ने इस अभाव को उस संन्यासी के माथे पर मढ़ने की चेष्टा की और वे लोग सफल भी हुए। सर्व साधारण में कहा जाने लगा कि नगर के निर्माण में उस संन्यासी के साथ---जिसने इस नगर के निर्माण कराने की सलाह दी थी—अत्याचार किया गया है। जिस पहाड़ी गुफा में वह संन्यासी रहता था, उसको भी इसमें शामिल कर लिया गया है। संन्यासी को इससे बड़ा कष्ट हुआ और उसने राज्य के अधिकारियों से प्रार्थना की। लेकिन किसी ने कुछ सुना नहीं। इस दशा में उसके शाप से यह नगर सदा अच्छे जल के लिए दुखी रहेगा।

सर्वसाधारण की इस धारणा का आधार मारवाड़ के भट्ट कवियों का प्रचार था। उन्होंने जोधा और राज्य के प्रधान अधिकारियों को सुरक्षित रखने के लिए जन साधारण में इस प्रकार का प्रचार किया था।

शुद्ध जल की जब कोई व्यवस्था न हो सकी तो उसके लिए अनेक प्रकार के उपाय सोचे गये। जिन पहाड़ी ऊँची चट्टानों के ऊपर जोधपुर का दुर्ग बना था, उसके नीचे एक सरोवर था। उस सरोवर से जल लाने की व्यवस्था की गयी। उस सरोवर में ऐसी कलें लगवाई गयीं, जिनसे उस सरोवर का जल दुर्ग के ऊपर पहुँचने लगा।

जोधपुर नगर और दुर्ग में अच्छे जल के लिए बहुत-से उपाय किये गये, लेकिन वे सब व्यर्थ गये और किसी से कुछ लाभ न हुआ। इस अभाव का मूल कारण क्या था, इसे उस समय किसी ने नहीं जाना परन्तु इस पर सभी ने विश्वास किया कि संन्यासी के अभिशाप से जोधपुर में जल का अभाव पैदा हुआ और वह अभाव कभी मिट न सकेगा।

सम्बत् १५१५ के जेठ महीने में जोधा ने अपने नवीन नगर की प्रतिष्ठा की। उसके बाद तीस वर्ष तक जीवित रह कर सम्बत् १५४५ में इकसठ वर्ष की अवस्था में उसने पर लोक की यात्रा की। उसके द्वारा प्रतिष्ठित जोधपुर राजस्थान का एक प्रसिद्ध नगर बना। उसके साथियों में और सहायकों में कई एक शूरवीर थे, जिन्होंने जीवन भर उसके लिए त्याग और बलिदान से काम लिया था। जोधा अपने जीवन के अंत तक उनका सम्मान करता रहा। हरबूसाँकला, पाबू जी और रामदेव राठौर की प्रस्तर मूर्तियाँ बनवा कर जोधा ने मारवाड़ की प्राचीन राजधानी मन्दोर के श्रेष्ठ भाग पर लगवाई थीं। ×

जोधा ने अपने जिन तीन वीरों की प्रस्तर मूर्तियाँ बनवाई थीं, उनको देख कर उन तेजस्वी प्रताप का सहज ही आभास होता है। उनके यशस्वी नामों को कोई भी राठौर कभी भूल न सकेगा। प्रस्तर की बनी हुई उनकी मूर्तियाँ आज भी दर्शकों के सामने उनके शोर्य और प्रताप की तरफ संकेत करती हैं। * सिया जी ने जिस समय कन्नौज छोड़-कर भारत के मरुप्रदेश में जाकर आश्रय लिया था, उस समय से लेकर अब तक तीन शताब्दियाँ बीत चुकी हैं। इन तीन सौ वर्षों में उसके वंशजों ने मरुप्रदेश में फैल कर वहाँ की समस्त उत्तम भूमि पर अधिकार कर लिया। सिया जी के वंशजों की संख्या इन दिनों में इतनी बढ़ गयी थी कि जो विस्तृत भूमि उनके अधिकार में थी, वह

× पाबूजी की प्रस्तर मूर्ति उसकी प्रसिद्ध घोड़ी पर बनी हुई है। उस पर बैठा हुआ शूरबीर पाबू बड़ा आकर्षक मालूम होता है। रामदेव का नाम सम्पूर्ण मरु-प्रदेश में फैला हुआ है। वहाँ के गावों के निवासी भी उसके प्रसिद्ध नाम से परिचित हैं।

* जिन शूरबीरों ने जोधा की सदा सहायता की और अपने अद्भुत शौर्य का परिचय दिया था। ऐसे कई एक वीरों की प्रस्तर मूर्तियाँ जोधा ने बनवाई। वे सभी प्रसिद्ध कलाकारों के द्वारा पाषाणों पर तैयार की गयीं। प्रत्येक शूरवीर अपने युद्ध के भेष में घोड़ी पर चढ़ा हुआ दिखायी देता है। उनके दाहिने हाथ में बरछे और बायें हाथ में घोड़ों की लगामें हैं उनकी पीठ पर ढालें लटक रही हैं। कमर में लटकती हुई तलवारें दिखायी देती हैं। युद्ध के दूसरे अस्त्र भी उनके शरीर की शोभा बढ़ा रहे हैं। देखने में ये शूरबीर जीवित मालूम होते हैं। ये सब मूर्तियाँ मन्दोर नगर के एक विशाल मैदान में ऊँचाई पर लगी हुई हैं। एक स्थान पर तीन मूर्तियाँ हैं। पाबूजी, रामदेव और हरबूसाँकला की मूर्तियाँ एक साथ लगी हुई हैं। उनके अंत में प्रसिद्ध चौहानवीर गगा की प्रस्तर मूर्ति है। जिसने महमूद का आक्रमण रोकने के लिए सतलज नदी के किनारे अपने सैतालीस बेटों के साथ प्राणों की बलि दी थी।

उनके लिए कम पड़ रही थी और नयी भूमि पर उनको अधिकार करने की आवश्यकता थी, जिसमें राठौरों का वंश सुविधाओं के साथ अपना विस्तार कर सके।

जोधा की चौदह सन्तानें

नाम	शाखा	जागीर	विशेष विवरण
१—साँतल जी	+	साँतलमेर	पोकर्ण से छै मील
२—सूजा जी	+	+	जोधपुर का उत्तराधिकारी
३—जोगा जी	+	+	वंशहीन
४—दूदा जी	मेरतिया	मेरता	दूदा जी ने चौहानों से साम्भर छीन लिया था। उसके वीरन नाम का एक बेटा था। वीरन के दो लड़के जयमल और जगमल हुए। उनसे जयमलोत और जगमलोत शाखायें निकलीं।
५—बरसिंह	बरसिंहोत	नोलाई	मालवा में
६—बीका जी	बीकावत	बीकानेर	स्वतंत्र जागीर
७—भारमल्ल	भारमल्लोत	बिलारा	... ...
८—शिवराज	शिवराजोत	दूनारा	लूनी पर
९—कर्मसिंह	कर्मसिंहोत	क्योनसर	... ...
१०—रायपाल	रायपालोत	+	... ...
११—सावंतसिंह	सावंतसिंहोत	दावारो	... ...
१२—बीदा जी	बीदावती	बीदावती	नागौर जिले में
१३—बनबीर	+	+	... ...
१४—नीम जी	+	+	... ...

जोधाराव के चौदह लड़कों में साँतल जी सबसे बड़ा था। वह पिता के राज्य को छोड़कर राजस्थान के उत्तर-पश्चिम की तरफ भाटिया राज्य में चला गया था। वहाँ पर उसने साँतलमेर नाम का एक दुर्ग बनवाया। यह दुर्ग पोकर्ण से छै मील की दूरी पर है।

मरुभूमि के एक भाग में सराई नामक एक यवन जाति रहा करती थी। उसके राजा खान के साथ साँतल का संघर्ष पैदा हो गया। दोनों में युद्ध हुआ। उसमें खान के साथ-साथ साँतल भी मारा गया। उसके सात स्त्रियाँ थीं। वे सातों साँतल के साथ हुईं।

दूदा जोधाराव का चौथा लड़का था। मेरता की विशाल भूमि में उसने अपने वंश की प्रतिष्ठा की। उसके वंशज मेरतिया राठौर के नाम से प्रसिद्ध हुए। मरुप्रदेश में उसकी बहुत बड़ी ख्याति थी। जिस शूरवीर जयमल ने बादशाह अकबर की प्रचण्ड और विशाल सेना के साथ युद्ध करते हुए चित्तौर की रक्षा करने में अपने प्राणों का बलिदान किया था और जिसकी वीरता के सम्मान में बादशाह अकबर ने प्रस्तर की मूर्ति बनवा कर दिल्ली के सिंहद्वार पर रखवाई थी, राजकुमार दूदा उसी जयमल का पितामह था। दूदा के एक लड़की पैदा हुई थी वह अत्यन्त

बुद्धिमती और गुणवती थी। X उसका नाम मीराबाई था। इस मीराबाई के साथ राणा कुम्भ का विवाह हुआ था। जोधाराव के छठे पुत्र बीका ने जाटों के कुछ गावों और नगरों पर अधिकार कर लिया था और बीकानेर की प्रष्ठिता की थी। उसका वर्णन बीकनेर के इतिहास में किया जायगा। जोधा की मृत्यु के बाद उसका दूसरा लड़का सजा मारवाड़ के सिंहासन पर बैठा। * उसने सत्ताईस वर्ष तक बुद्धिमानी के साथ शासन किया।

सम्बत् १५७२ सन् १५१६ ईसवी के सावन महीने के शुक्ल पक्ष की पार्वती तृतीया को पीपार नामक नगर में एक उत्सव हो रहा था। T इस उत्सव में मारवाड़ की बहुत सी राजपूत स्त्रियाँ गौरी पूजा करने आयी थीं। उस उत्सव के दिन पठानों की एक सेना ने मेले में आकर आक्रमण किया और एक सौ चालीस राजपूत कुमारियों को उस सेना के पठान अपने साथ ले गये। इस घटना को राजा ने सुना। वह क्रोध में आ गया और जो राजपूत कुमारियाँ पठानों के द्वारा उपहरण की गयी थीं, उनका उद्धार करने के लिए वह कातर हो उठा। इतनी जल्दी में सेना की तैयारी न हो सकती थी। इस लिए बिना विलम्ब किये अपने साथ पहरेदार सिपाहियों को लेकर वह रवाना हुआ और बड़ी तेजी के साथ चल कर उसने पठानों का पीछा किया। रास्ते में पठानों की सेना से मिल जाने से युद्ध आरम्भ हो गया। सूजा ने पठानों के साथ भयानक मारकाट की और उसने अपहरण की हुई सभी राजपूत कुमारियों का उद्धार किया। परन्तु लड़ते हुए उसके शरीर में इतने अधिक जख्म हो गये थे कि उनके कारण वह युद्ध भूमि में गिर गया और उसकी मृत्यु हो गयी।

राजा सूजा के पाँच लड़के थे। सब से बड़े लड़के की मृत्यु हो गयी थी। इस दशा में उसका दूसरा बेटा गंगा राज सिंहासन पर बैठा। सूरजमल के चार लड़के थे। उसके दूसरे पुत्र ऊदा से ग्यारह लड़के पैदा हुए और उसके वंशज ऊदावत नाम से प्रसिद्ध हुए। इस वंश के लोगों को मारवाड़ और मेवाड़ में कई एक जागीरें मिली थीं। उन जागीरों में तीमाज, जेतारन, गूदाज, बराठिया और रायपुर आदि अधिक मशहूर हैं। तीसरे पुत्र साँगा को एक स्वाधीन नगर प्राप्त हुआ था। उसका नाम बरोह था। साँगा के वशंज साँगावत के नाम से प्रसिद्ध हुई। चौथे पुत्र प्रयाग से प्रागदास शाखा की उत्पत्ति हुई। वीरनदेव सूजा का पाँचवा लड़का था। उसके नारा नाम का एक लड़का पैदा हुआ था। ÷ नारा के वंशज नारावत जोधा के नाम से प्रसिद्ध हैं। इसकी एक शाखा हाड़ौती के पञ्चपहाड़ नामक स्थान में पायी जाती है।

X कुछ लोगों का कहना है कि मीरा बाई दूदा की बेटी नहीं थी और न वह राणा कुम्भ को ब्याही गयी थी। मीरा बाई दूदा के दूसरे बेटे रत्नसिंह की लड़की थी और वह राणा कुम्भा के प्रपौत्र साँगा के लड़के भोजराज को ब्याही गयी थी।

* कुछ लेखकों का कहना है कि जोधा के मरने के पश्चात् उसका बड़ा लड़का साँतल उसके सिंहासन पर बैठा और साँतल के बाद सम्वत् १५४८ में उसका भाई उसका उत्तराधिकारी हुआ।

T जोधपुर से तीस मील की दूरी पर पीपार नाम का एक छोटा-सा नगर है। इसमें लगभग पन्द्रह सौ घर हैं। इस नगर में व्यवसायी लोग अधिक रहते हैं। यहाँ पर एक शिलालेख मिला था। उसमें विजयसिंह और दैलून राजा की कुछ बातों का उल्लेख था। ये दोनों राजा गहिलोत वंश में पैदा हुए थे और उनकी उपाधि रावल थी। —अनुवादक

÷ कुछ लोगों का कहना है कि वीरनदेव राजा सूजा का लड़का नहीं था। बल्कि सूजा के लड़के बाणा जी का बेटा था। वह छोटी आयु में ही मर गया था। नाराजी वीरनदेव का नहीं सूजा का बेटा था और वह बाणा जी से बड़ा था।

सम्बत् १५७२ सन् १५१६ ईसवी में राजा सूजा के मर जाने पर उसका पौत्र गंगा मारवाड़ के सिंहासन पर बैठा। उसके चाचा साँगा ने उसका विरोध किया। उसने गंगा को सिंहासन से उतार कर उस पर अधिकार करने की कोशिश की। इसके फलस्वरूप, मारवाड़ में एक भयानक उत्पात पैदा हो गया। मारवाड़ के राठौर दो भागों में विभाजित हो गये। कछ लोग गंगा के पक्ष में थे और कुछ लोग साँगा के। साँगा ने दौलत खाँ लोदी से सहायता माँगी, जिसने कुछ दिन पहले राठौरों से नागौर को छीन कर अधिकार कर लिया था। उसकी सहायता से साँगा ने गंगा के साथ युद्ध करने की तैयारी की। दोनों ओर से युद्ध के बाजे बजे और भयानक मार काट हुई। उस लड़ाई में साँगा मारा गया और दौलत खाँ लोदी पराजित होकर युद्ध से भाग गया।

गंगा ने बारह वर्ष तक मारवाड़ में राज्य किया। उसके शासन काल में बाबर और राणा संग्रामसिंह के बीच संघर्ष पैदा हुआ। बाबर के आक्रमण को रोकने के लिए राणा संग्रामसिंह के बीच संघर्ष पैदा हुआ। बाबर के आक्रमण को रोकने के लिए राणा संग्राम सिंह ने युद्ध की तैयारी की और उस समय राजस्थान के अन्याय राजाओं, सामन्तों और सरदारों के साथ-साथ मारवाड़ का राजा गंगा भी अपनी सेना के साथ मेवाड़ का सहायक बना। मारवाड़ से जो सेना मेवाड़ की सहायता में बाबर के साथ युद्ध करने गयी थी, राव गंगा का पौत्र रायमल उसका सेनापति था। बियाना के विस्तृत मैदान में बाबर संग्रामसिंह की सेनाओं में भीषड़ युद्ध हुआ। राजपूतों का यह अंतिम युद्ध था, जिसमें उन्होंने अपने राष्ट्रीय सङ्गठन का परिचय दिया था। इस युद्ध में मारवाड़ का राजकुमार रायमल, मेरतिया के राठौर सरदार खैरतों और नवरत्न के साथ मारा गया।

इसके चार वर्षों के बाद गंगा की मृत्यु हो गयी और सम्बत् १५८८ सन् १५३२ ईसवी में मालदेव उसके सिंहासन पर बैठा। उसके शासनकाल में मारवाड़ ने बड़ी उन्नति की थी। मेवाड़ के शक्तिशाली राणा संग्रामसिंह पर बाबर विजय प्राप्त कर चुका था। लेकिन उसका कोई प्रलोभन मारवाड़ की तरफ न था। इसीलिए मालदेव को मारवाड़ की उन्नति करने का अवसर मिल गया था। दिल्ली और मारवाड़ की सीमा के कई दुर्गों पर मालदेव ने अधिकार कर लिया और मारवाड़ से दूरवर्ती ढूढास पर उसने राठौरों का झण्डा फहराया था। मारवाड़ की उन्नति में इस समय किसी प्रकार की रुकावट न थी।

राणा संग्राम की मृत्यु और मेवाड़ राज्य का दुर्भाग्य राजस्थान के छोटे राजाओं के लिए अभिशाप हो गया और उत्तर की तरफ से मुगलों और गुजरात के बादशाहों ने आक्रमण आरम्भ कर दिये। लेकिन मालदेव को उनसे कोई आघात नहीं पहुँचा। इस अवसर पर उसने मित्र और शत्रु—दोनों से लाभ उठाया और बिना किसी सन्देह के वह राजस्थान का उस समय एक श्रेष्ठ राजा बन गया। इन दिनों में मारवाड़ की परिस्थितियों की आलोचना करते हुए प्रसिद्ध मुस्लिम इतिहासकार फरिश्ता ने मालदेव को "हिंदुस्तान का अत्यन्त शक्तिशाली राजा" लिखा है। मारवाड़ के सिंहासन पर बैठने के बाद उसने अपने पूर्वजों के प्राप्त किये हुए दो प्रधान नगरों नागौर और अजमेर को मुसलमानों से लेकर अपने अधिकार में कर लिया और आठ वर्षों के बाद सम्बत् १५९६ में उसने सिधिलों के जालोर, सिवाना और भाद्राजून नामक तीन नगरों को लेकर अपने राज्य में मिला लिया। बीका के वंशजों को बीकानेर से निकाल दिया। लूनी नदी के तटवर्ती जिन नगरों को सिया जी ने अपने अधिकार में कर लिया था, उनके राजाओं ने राठौरों की अधीनता को ठुकरा कर अपने आपको स्वतन्त्र घोषित कर दिया था। मालदेव ने उन सबको पराजित करके फिर उन पर अधिकार कर लिया और उनको राठौरों की अधीनता में रहने के लिए मजबूर किया। मालदेव के प्रताप को इन दिनों में मरुप्रदेश के समस्त राजाओं ने स्वीकार किया। मरुस्थली के जो भूमिया

बिदनोर और उसके अन्तर्गत तीन सौ साठ गावों में राठौर रहा करते थे और वे सभी मेरतिया शाखा से उत्पन्न हुए थे, शूरवीर जयमल राजपूतों की इसी शाखा मेरतिया में पैदा हुआ था, जो मेवाड़ का एक प्रसिद्ध सरदार हुआ और यही कारण था कि उसके समय से बिदनोर मेवाड़-राज्य का एक भाग माना गया।

मारवाड़ के सिंहासन पर बैठकर मालदेव ने दस वर्ष व्यतीत किये। इन दिनों में—जैसा कि ऊपर लिखा गया है—अवसर पाकर उसने सभी प्रकार अपने राज्य की उन्नति की और अपनी सभी शक्तियाँ उसने बड़ी बुद्धिमानी के साथ मजबूत बना ली थीं। इन्हीं दिनों में बाबर की—जिसने मुगल राज्य की भारत में नीव डाली थी और बड़ी सफलता के साथ जिसने दिल्ली के सिंहासन पर बैठ कर अब तक राज्य किया—इन्हीं दिनों में मृत्यु हो गयी। उसके मरने पर उसका बेटा हुमायूँ, उसके सिंहासन पर बैठा। लेकिन वह अपने पिता के विशाल राज्य पर अधिक दिनों तक शासन नहीं कर सका।

बादशाह शेरशाह ने अवसर पाकर हुमायूँ पर आक्रमण किया। शेरशाह युद्ध में जितना शूरवीर था, राजनीति में वह उतना ही निपुण था। उसने युद्ध में हुमायूँ को भयानक रूप से पराजित किया। मुगल बादशाह हुमायूँ शेरशाह के भय से कातर हो उठा। कुछ थोड़े से सैनिकों के साथ अपना परिवार लेकर वह दिल्ली से भाग गया। इन दिनों में राजा मालदेव के सिवा हुमायूँ को और कोई दिखायी न पड़ा, जहाँ जा कर वह शरण ले सकता। इस दशा में बहुत सोच-विचार कर हुमायूँ मारवाड़ पहुँचा और मालदेव से उसने आश्रय तथा सहायता के लिए प्रार्थना की। बिगड़े हुए दिनों में कोई किसी की सहायता नहीं करता। मुगल सम्राट हुमायूँ के सामने इस समय भयानक दुर्भाग्य था। वह पराजित होकर अपने राज्य से भागा था। दुर्भाग्य के दिनों को काटने के लिए उसे कहीं आश्रय न मिल रहा था। कुछ दिन पहले जिस भारतवर्ष का वह एक बादशाह था आज कुछ इने गिने दिनों के बाद उसी देश में उसको जीवन रक्षा के लिए कोई स्थान न मिल रहा था। राजा मालदेव के यहाँ भी उस को आश्रय न मिला। इसका कारण था। बियाना के भीषण युद्ध में राजा मालदेव का इकलौता बेटा अपनी सेना का नेतृत्व लेकर संग्राम सिंह की तरफ से बाबर के साथ युद्ध करने गया था। वहाँ पर मारा गया। पुत्र का वह शोक राजा मालदेव को भूला न था। हुमायूँ बाबर का लड़का था और बाबर के साथ युद्ध में उसका बेटा मारा गया था। इसलिए असम्मान के साथ हुमायूँ को राजा मालदेव के पास से निराश हो कर लौटना पड़ा।

हुमायूँ को आश्रय न देने के और भी कारण राजा मालदेव के सामने थे। उसका बेटा रायमल तो अभी हाल ही में बाबर के द्वारा मारा गया था। लेकिन कन्नौज के पतन से लेकर मालदेव के सामने मुसलमानों की शत्रुता थी। शहाबुद्दीन गोरी ने पृथ्वीराज का सर्वनाश करके और दिल्ली के सिंहासन पर बैठकर कन्नौज पर आक्रमण किया था। उस सयम राजा जयचन्द की मृत्यु के साथ-साथ कन्नौज का पतन हुआ था और राठौर वंशी राजा जयचंद के भाई और भतीजों ने कन्नौज से भागकर भारत की मरुभूमि में जाकर आश्रय लिया। अपने पूर्वजों की यह दुरवस्था राजा मालदेव को भूली न थी। इस प्रकार के कितने ही कारणों से हुमायूँ अपनी भीषण विपद में मालदेव से किसी प्रकार का आश्रय न पा सका और वहाँ से उसे चला जाना पड़ा।

राजनीति में स्वार्थ को ही महत्व मिलता है। हुमायूँ को शरण न देने के कारण बादशाह शेरशाह के निकट राजा मालदेव के सम्मान की वृद्धि होनी चाहिए थी। उसने उसके शत्रु को आश्रय

देने से इनकार किया था। परन्तु शेरशाह के नेत्रों में इसका कोई महत्व न हुआ। वह मुगलों को पराजित करके दिल्ली के राजसिंहासन पर बैठा था। मारवाड़ का राज्य दिल्ली से बहुत दूरी पर न था। वहाँ का राजा मालदेव अपनी शक्तियों के लिए इस देश में प्रसिद्ध हो रहा था। शेरशाह को ऐसे समय पर उससे भयभीत होना स्वाभाविक था। हुमायूँ के बाद उसका मालदेव के साथ युद्ध करना कभी भी सम्भव हो सकता था। इस दशा में बादशाह शेरशाह के लिए यह जरूरी था कि वह पड़ोसी शक्तिशाली राजा को मिटाकर और शक्तिहीन बनाकर इस देश में शासन करे।

शेरशाह ने मारवाड़ पर आक्रमण करने की तैयारी आरम्भ कर दी। उसने अस्सी हजार लड़ाकू वीरों की एक सेना तैयार की और मारवाड़ पर आक्रमण करने के लिए वह दिल्ली से रवाना हो गया। शेरशाह के इस आक्रमण का समाचार मारवाड़ में राजा मालदेव ने सुना। उसके सामने किसी प्रकार की चिंता पैदा नहीं हुई। वह चुपचाप अपनी राजधानी में बैठा रहा और शेरशाह की सेना को मारवाड़ की तरफ लगातार बढ़ने का उसने अवसर दिया।

राजा मालदेव ने इसके बाद शेरशाह से युद्ध करने के लिए अपनी तैयारी आरम्भ की। परन्तु उस तैयारी में किसी प्रकार की उतावली न थी। मारवाड़ के निकट पहुँच कर शेरशाह की फौज ने मुकाम किया और बड़ी सावधानी के साथ वह राजा मालदेव की खबरें लेने लगा।

मारवाड़ में युद्ध की तैयारियाँ हो गयीं। मुसलमानों के आक्रमण को व्यर्थ करने के लिए पचास हजार राठौर शूरवीर युद्ध के लिए तैयार हो गये। लेकिन मालदेव की सेना अभी तक अपनी राजधानी में ही थी। उसके सामने भी किसी प्रकार की चिंता और उतावली न थी। उसके ये समाचार भी बादशाह शेरशाह को बराबर मिलते रहे। उसकी समझ में यह न आया कि राजा मालदेव की इस निश्चिन्त अवस्था का कारण क्या है। अपनी छावनी में बैठकर बड़ी सावधानी के साथ शेरशाह मारवाड़ की परिस्थितियों पर विचार करने लगा। राठौरों की शक्तियों से वह अपरिचत न था। मालदेव को पराजित करना वह बहुत आसान न समझता था। इस लिए होने वाले युद्ध की परिस्थितियों पर बड़ी गम्भीरता के साथ वह विचार करने लगा।

मालदेव की शक्तियाँ उन दिनों में इतनी साधारण न थीं, जिनको तुच्छ समझ कर कोई मारवाड़ पर आक्रमण करने का साहस करता। इसीलिए शेरशाह मालदेव को पराजित करने के लिए अनेक प्रकार के उपाय सोचता रहा। उसने अपने जीवन में राजनीतिक चालों के द्वारा सदा सफलता पायी थी। हुमायूँ को पराजित करने में भी उसने बड़ी राजनीति से काम लिया। था। इस समय उसने अपनी विशाल सेना लेकर मालदेव के साथ युद्ध करने के लिए मारवाड़ पर आक्रमण किया था। उसकी फौज मारवाड़ राज्य की सीमा के बाहर अभी तक पड़ी थी और युद्ध की पूरी तैयारी कर चुकने के बाद भी मालदेव अपनी सेना के साथ अभी तक राजधानी में ही था।

बहुत सोच—समझ कर शेरशाह ने मालदेव को पराजित करने के लिए निर्णय किया। वह राठौरों के युद्ध कौशल को भली भाँति जानता था। मालदेव के शूरवीर सरदारों की शक्तियों से भी वह परिचित था। शेरशाह भली प्रकार समझता था कि यदि सरदारों के साथ मालदेव का विश्वास किसी प्रकार भंग किया जा सकता है तो राजा मालदेव की शक्तियाँ बहुत दुर्बल हो जायँगी और उस दशा में उसको पराजित करना कोई बड़ा मुश्किल कार्य न होगा। अपनी सफलता के लिए उसने एक षड़यंत्र की रचना की। बड़ी बुद्धिमानी के साथ उसने एक पत्र तैयार किया, जिसके पढ़ने से राजा मालदेव का विश्वास तुरंत अपने सरदारों से हट जायगा। यह पत्र तैयार करके किसी प्रकार उसने राजा मालदेव के दरबार में पहुँचाने की कोशिश की। शेरशाह को अपने

षड्यंत्र में सफलता प्राप्त हुई। वह पत्र राजा मालदेव के हाथों में पहुँच गया। उसके पढ़ते ही उसके प्राण सूख गये। वह बार-बार सोचने लगा कि अपने जिन सरदारों पर मैं गर्व करता हूँ। वे मेरे शत्रु से मिले हुए हैं और इन सरदारों को इस बात का प्रलोभन है कि मारवाड़ का राज्य शेरशाह की आधीनता में आजाने पर इस राज्य के सरदारों को आज से अधिक अधिकार और सम्मान प्राप्त होंगे।

शेरशाह ने जो पत्र भेज कर राजा मालदेव के साथ षड़यन्त्र किया था, उसके रहस्य को मालदेव समझ न सका। उसने उस पत्र पर पूरा विश्वास किया और उस पत्र को पाने के बाद उसका सम्पूर्ण विश्वास सरदारों से हट गया। अपने मन की इस परिस्थिति में उसमें मन्त्रियों और सरदारों से एक बार भी बात करने का विचार न किया। बादशाह शेरशाह से युद्ध करने के लिए उसने जो पचास हजार राजपूतों की सेना तैयार की थी, वह अभी तक मारवाड़ की राजधानी में मौजूद थी। युद्ध के सम्बन्ध में राजा मालदेव क्या सोच रहा है, इस बात को वहाँ पर कोई न जानता था।

राजा मालदेव के शूरवीर सरदार युद्ध की प्रतीक्षा कर रहे थे और राजा मालदेव सरदारों से अपना विश्वास खोकर मन की ऐसी क्षत-विक्षत अवस्था में था, जिसमें यह सोच सकना उसके लिए असम्भव हो गया था कि अब उसे भयंकर विपद के समय क्या करना चाहिए। बादशाह शेरशाह अपने शिविर में बैठा हुआ मारवाड़ की इन भीतरी परिस्थितियों का अध्ययन कर रहा था। उसने जो षड़यन्त्र रचा था, उसमें उसे पूर्ण रूप से सफलता मिली। उसने अपने षड़यन्त्र के द्वारा मालदेव और उसके सरदारों के बीच का सुदृढ़ विश्वास नष्ट कर दिया। मालदेव को यह विश्वास पूरी तौर पर हो गया कि मेरे सभी सरदार शत्रु से मिले हुए हैं। इस दशा में उसने युद्ध स्थगित कर दिया और कर्त्तव्यहीन होकर वह अपनी राजधानी में बैठा रहा।

शेरशाह को जब मालदेव की इन भीतरी परिस्थितियों का सही समाचार मिल गया तो उसने अवसर का लाभ उठाया और मारवाड़ पर आक्रमण करने का निश्चय किया। राजा मालदेव और उसके सरदारों ने अपनी राजधानी में बैठकर सुना कि शेरशाह की विशाल फौज मारवाड़ में प्रवेश करने की तैयारी कर रही है। राजा मालदेव ने अपने अविश्वास के सम्बन्ध में न तो सरदारों से कोई बातचीत की और न उसने शत्रु से युद्ध करने का कोई कार्यक्रम बनाया। वह इस भीषण बिपद के समय क्यों चुपचाप बैठा हुआ है, मारवाड़ के सरदारों को इसका कुछ भी पता न था। इस अनिश्चित अवस्था में सरदारों ने राजा मालदेव से मिल कर बातचीत की। उसके अविश्वास का रहस्य सरदारों को मालूम हो गया। परन्तु वे मालदेव के मन में उत्पन्न होने वाले सन्देह को मिटा न सके। सभी सरदारों ने मालदेव के भ्रम को दूर करने के लिए बड़ी-से-बड़ी चेष्टायें कीं। परन्तु उनको सफलता न मिली। मालदेव के मन में जो संदेह और अविश्वास पैदा हो गया था, वह ज्यों का त्यों कायम रहा।

शेरशाह की फौज ने मारवाड़ के बाहर मुकाम किया और वहाँ रह कर उसने पूरा एक महीना व्यतीत किया। शेरशाह की चालों से राजा मालदेव और सरदारों में जो फूट पैदा हुई, वह मिट न सकी। सरदारों का विश्वास खोकर राजा मालदेव किसी प्रकार शत्रु के साथ युद्ध करने का साहस न कर सका। सरदारों के बातचीत करने पर भी जब कोई परिणाम न निकला तो ठीक उन्हीं दिनों में सरदारों ने राजा मालदेव के निराश होकर अपने अधिकार के बारह हजार राजपूत सैनिकों को तैयार किया और राजधानी से निकल कर वे लोग उस मुकाम की तरफ से रवाना हुए, जहाँ पर शेरशाह की फौज मौजूद थी। बड़ी तेजी के साथ वहाँ पर पहुँच कर मार-

वाड़ के राजपूतों ने बादशाह के शिविर पर आक्रमण किया। उसके साथ ही भीषण मार-काट आरम्भ हो गयी। शेरशाह की विशाल सेना ने सम्हल कर अपनी पूरी शक्ति के साथ राजपूतों से युद्ध आरम्भ किया। बादशाह की फौज के मुकाबिले में राजपूतों की संख्या बहुत कम थी। इसलिए युद्ध में राजपूत अधिक मारे गये।

राजा मालदेव ने जब युद्ध का समाचार सुना और उसे मालूम हुआ कि राज्य के सरदार और उनके साथ के थोड़े से सैनिक बादशाह की बहुत बड़ी फौज के साथ युद्ध में भयानक रूप से मारे जा रहे हैं। उस समय उसको अपने भ्रम पर बहुत अफसोस हुआ और उसने समझ लिया कि सरदारों पर अविश्वास करने के लिए मेरे साथ एक भीषण षड़यन्त्र रचा गया था। उसने बड़ी पीड़ा के साथ इस बात को अनुभव किया कि अपने सरदारों पर अविश्वास करके मैंने बहुत बड़ी भूल की है। उसी समय उसने मारवाड़ की रक्षा के लिए अपनी सेना को तैयार किया और युद्ध के क्षेत्र में पहुँचने की उसने चेष्टा की। मालदेव की सेना जिस समय वहाँ पर पहुँची, उसके सरदारों की सेना मारी जा चुकी थी और बहुत से सरदार युद्ध-क्षेत्र में अपने प्राण दे चुके थे।

इस दुरवस्था में मालदेव की सेना ने शेरशाह की फौज का सामना किया। परन्तु वह सेना भी अधिक समय तक युद्ध न कर सकी। मालदेव के बहुत से सैनिक मारे गये और अन्त में उसकी पराजय हुई।

शेरशाह से पराजित होकर दिल्ली की राजधानी से हुमायूँ के भागने पर हिन्दुस्तान में उसे कहीं शरण न मिली थी। इसलिए इस देश की मरुभूमि में जाकर अमरकोट मे हुमायूँ ने आश्रय लिया था। वहीं पर उसके बेटे अकबर का जन्म हुआ। उसके पश्चात् हुमायूँ भारतवर्ष से निकल कर परसिया के राज्य में चला गया और वहाँ पर बहुत समय तक रहकर उसने अपने जीवन के दिन काटे। वहाँ से लौट कर वह फिर भारतवर्ष में आया और उसने शेरशाह पर आक्रमण किया। उस युद्ध में शेरशाह की पराजय हुई और हुमायूँ फिर दिल्ली के सिंहासन पर बैठा।

शेरशाह को पराजित करने के बाद हुमायूँ अधिक समय तक राज्य का सुख भोग न सका। उसकी अकाल मृत्यु हो गयी। उसके मरने के बाद अकबर उसके सिंहासन पर बैठा। वह आरम्भ से ही बुद्धिमान और दूरदर्शी था। अपनी माता के मुख से पिता के दुर्दिनों की घटनायें वह सुना करता था। उन्हीं दिनों में उसने अपनी माता के मुख से यह भी सुना था कि दिल्ली से भागने पर किस प्रकार उसका पिता आश्रय पाने के उद्देश्य से मारवाड़ गया और वहां के राजा मालदेव ने उस विपदकाल में आश्रय न देकर किस प्रकार असम्मानपूर्ण व्यवहार किया था। इस प्रकार की घटनाओं को सुनने के बाद अकबर के कोमल अन्तःकरण में राजा मालदेव से बदला लेने की भावनायें एक साथ जाग्रत हो उठीं। उसने कुछ दिन और व्यतीत किये।

अभी अकबर की अवस्था पूरे पन्द्रह वर्ष की भी न हुई थी, सम्बत् १६१७ सन् १५६१ ईसवी में अकबर अपनी विशाल सेना लेकर रवाना हुआ और मारवाड़ में पहुँच कर उसने वहाँ के दुर्ग को घेर लिया। वहाँ पर दुर्ग की रक्षा के लिए मारवाड़ की जो छोटी-सी एक सेना थी, उसने अकबर की फौज के साथ युद्ध किया। उनकी संख्या बहुत थोड़ी थी। उनमें बहुत-से राजपूत मारे गये और जो बाकी रहे, वे किसी प्रकार दुर्ग से निकल कर भाग गये। अकबर की फौज ने उस दुर्ग पर अधिकार कर लिया। उसके बाद अकबर की सेना नागौर की तरफ रवाना हुई और वहाँ पर भी अकबर ने अधिकार कर लिया। इन जीते हुए दोनों नगरों को अकबर ने बीकानेर के राज रायसिंह को दे दिया और उसको अपनी तरफ से अधिकारी बना दिया।

अकबर का प्रताप इन दिनों में बढ़ रहा था। मेवाड़ को छोड़ कर राजस्थान के सभी

राज्य उससे भयभीत हो रहे थे। मारवाड़ के राजा मालदेव ने अकबर की प्रधानता स्वीकार कर ली और सम्वत् १६२५ सन् १५६६ ईसवी में उसने दूसरे पुत्र चन्द्रसेन को अकबर के पास भेजा। अकबर उन दिनों में अजमेर में रहता था। चन्द्रसेन ने वहाँ पहुँच कर बहुमूल्य भेंटे बादशाह अकबर को दीं। लेकिन अकबर को इससे संतोष न हुआ। मालदेव का स्वयं न आना अकबर के असंतोष का कारण बना। उसने मालदेव के इस अहंकार का बदला देने के लिए रायसिंह को जोधपुर का भी अधिकारी बना दिया।

चन्द्रसेन राजा मालदेव के भेजने से अकबर के पास गया। परन्तु वहाँ के व्यवहारों से उसके स्वाभिमान को जो आघात पहुँचा, उसे किसी प्रकार उसने सहन किया। इन्हीं दिनों में मुगलों की एक सेना ने मारवाड़ राज्य के सिकाना नगर पर आक्रमण किया। मुगलों की उस सेना का सामना करने के लिए राठौरों की एक सेना लेकर चन्द्रसेन युद्ध करने गया और वहाँ पर वह मारा गया। उस समय उसके तीन लड़के थे। उग्रसेन उनमें बड़ा था।

सम्वत् १६२५ सन् १५६६ में मालदेव की मृत्यु हो गयी। उसके निम्न लिखित बारह लड़के थे :

१—रामसिंह, पिता के निकाल देने पर वह मेवाड़ के राणा के पास चला गया। उसके सात लड़के थे। उनमें पाँचवें पुत्र केशवदास का कुछ उल्लेख पाया जाता है। केशवदास ने चोली महेश्वर नामक स्थान पर अपना निवास स्थान बनाया था।

२—रायमल, बियाना के युद्ध में मारा गया।

३—उदयसिंह, मारवाड़ का राजा।

४—चन्द्रसेन, झाला वंश की राजपूत रमणी से पैदा हुआ था। इसका वर्णन ऊपर किया जा चुका है। चन्द्रसेन के तीन लड़के हुए। उग्रसेन उनमें सबसे बड़ा था। उसे भिनाय नामक स्थान का अधिकार मिला था। उग्रसेन के भी तीन लड़के पैदा हुए। कर्ण, कान्ह जी और काहस जी।

५—आस कर्ण, इसका वंश आज भी जूनिया नामक स्थान में पाया जाता है।

६—गोपालदास, ईदर नगर में मारा गया।

७—पृथ्वीराज, इसके वंशज अब तक जालौर में पाये जाते हैं।

८—रतनसिंह, इसके वंशज भद्राजून में रहते हैं।

६—भोजराज, इसके वंशज अहारी में पाये जाते हैं।

१०—विक्रमाजीत
११—भान   } इनके सम्बन्ध में कोई उल्लेख नहीं मिलता।
१२—X

मालदेव के मरने के बाद उसका बड़ा बेटा उदयसिंह उसके सिंहासन पर बैठा। उसके कुछ ही समय के बाद उसने अपनी बहन का ब्याह मुगल राजघराने कर दिया।

चौंतीसवाँ परिच्छेद

राजा मालदेव की मृत्यु के बाद का मारवाड़ राज्य—मारवाड़ की परिस्थितियाँ—राठौरों का ऐतिहासिक जीवन और उसकी आलोचना—राज्य में जागीरों की व्यवस्था—मारवाड़ राज्य का विधान और उसका पालन—योरप और राजस्थान की जागीरदारी प्रथा में समानता—उदयसिंह की अयोग्यता—मोटा शरीर मोटी बुद्धि—बादशाह अकबर और उदयसिंह—उदयसिंह को मुगलों से सुविधायें।

राजा मालदेव की मृत्यु के पश्चात् मारवाड़ राज्य के इतिहास का एक नया अध्याय आरम्भ हुआ। वहाँ के शासन और सम्मान में अनेक प्रकार के परिवर्तन हो गये। मालदेव के समय तक मारवाड़ में सिया जी के वंशजों का शासन रहा। और अब वह शासन मुगलों की अधीनता पर जीवन के दिन व्यतीत करने लगा। मारवाड़ में जहाँ पर राजपूतों का पञ्चरंगा झण्डा फहराता था, वहाँ पर अब मुगलों का झण्डा फहरा रहा था। जहाँ की शासन सत्ता राठौरों के संकेत पर चल रही थी, वहाँ अब मुगलों की सत्ता काम करने लगी। राजा मालदेव के अंतिम दिनों में मुगलों का आधिपत्य मारवाड़ के नगरों में आरम्भ हुआ और उसके मरने के पश्चात् सम्पूर्ण राज्य को मुसलमानों की पराधीनता स्वीकार करनी पड़ी। उदयसिंह राजा मालदेव का बड़ा लड़का था। पिता के मरने के बाद सिंहासन का वही अधिकारी था। परन्तु सम्राट अकबर की आज्ञा के बिना वह सिंहासन पर बैठ न सका। उसका अधिकार अकबर की प्रसन्नता पर निर्भर था। राज्य सिंहासन को प्राप्त करने के लिए अकबर को प्रसन्न करना उदयसिंह के लिए सभी प्रकार आवश्यक था। उसके अन्त:करण में राजपूतों का स्वाभिमान न था। पूर्वजों के उज्वल गौरव को सम्मान देने की योग्यता उसमें न थी। उदयसिंह सियाजी का अयोग्य वंशज था। उसने स्वाभिमान और स्वातंत्र्य के सामने राज-सिंहासन को अधिक महत्व दिया। उसने अकबर को प्रसन्न करने में सफलता प्राप्त की। राजा मालदेव का सिंहासन और मारवाड़ का राज्याधिकार प्राप्त हुआ, लेकिन पूर्वजों का स्वाभिमान और गौरव उसे खो देना पड़ा। बादशाह अकबर की आज्ञा लेकर उदयसिंह पिता के सूने राज सिंहासन पर बैठा और इस सिंहासन के प्रत्युपकार में उसे अपनी बहन को मुगल घराने में ब्याह कर देना पड़ा। उदयसिंह ने मुगल दरबार में मनसबदारी का पद प्राप्त किया और उस दिन से मारवाड़ खुलकर मुगलों की पराधीनता में आ गया।

सम्वत् १६२५ में राठौर राजा मालदेव का परलोकवास हुआ। उसका सबसे बड़ा लड़का उदयसिंह उसका उत्तराधिकारी था और वही उसके बाद राज सिंहासन पर बैठा। परन्तु भट्ट ग्रंथों में लिखा गया है कि राजा मालदेव का दूसरा लड़का चन्द्रसेन जब तक जीवित रहा, उदयसिंह को राजसिंहासन प्राप्त नहीं हुआ। मालदेव के समय में ही उदयसिंह की जिन्दगी का रास्ता बिगड़ा हुआ दिखायी देता था। उसके मनोभावों में पूर्वजों के गौरव के प्रति सम्मान न था, उसमें स्वाभिमान का बिल्कुल अभाव था। वह स्वार्थी था और किसी प्रकार राजसिंहासन पर बैठ कर राज्य सुख का भोग करना चाहता था। मारवाड़ के सामन्तों से उदयसिंह की यह अवस्था छिपी न थी। उसका छोटा भाई चन्द्रसेन इन्हीं कारणों से उसका विरोधी था। इन्हीं कारणों के फल-स्वरूप

दोनों भाइयों में संघर्ष पैदा हुआ था। वहाँ के सभी श्रेष्ठ सामन्तों ने चन्द्रसेन का समर्थन किया था।

आरम्भ से लेकर उदयसिंह के समय तक मारवाड़ राज्य के शासन की हम यहाँ पर कुछ आवश्यक आलोचना करने की चेष्टा करेंगे। शुरू से लेकर उदयसिंह के समय तक मारवाड़ का इतिहास तीन प्रमुख विभागों में दिखायी देता है और वह इस प्रकार है :

(१) खेड़-राज्य में सियाजी के सन् १२१२ ईसवी में आने से लेकर सन् १३८१ ईसवी में चण्ड द्वारा मन्दोर जीतने के समय तक।

(२) मन्दोर जीतने के समय से लेकर जोधपुर की प्रतिष्ठा के समय सन् १४५६ ईसवी तक।

(३) जोधपुर की प्रतिष्टा के समय से उदयसिंह के राज्यसिंहासन पर बैठने के समय सन् १५८४ ईसवी तक, जब राठौरों ने मुगलों की पराधीनता को स्वीकार किया।

इन चार सौ वर्षों में राठौरों का ऐतिहासिक जीवन किस प्रकार व्यतीत हुआ, यहाँ पर उसकी स्पष्ट आलोचना होने की आवश्यकता है। आरम्भ में बहुत दिनों तक भूमिया लोगों से मरुभूमि का पश्चिमी भाग विजय करने में समय व्यतीत हुआ। उन दिनों में वहाँ का जितना भाग उनको प्राप्त हो सका था, उसी पर उनको संतोष करना पड़ा। उसके बाद मन्दोर नगर पर विजय प्राप्त करने पर लूनी नदी के दोनों तरफ की उपजाऊ भूमि रणमल्ल और जोधा के लड़कों के अधिकार में आ गयी। × इसके पश्चात् जोधपुर बसाया गया और इसके तैयार हो जाने पर राठौरों की राजधानी जोधपुर में पहुँच गयी।

जोधा के तेईस भाई थे उनमें कोई भी उत्तराधिकार प्राप्त करने की योग्यता न रखता था। इसी बात को दूसरे शब्दों में यों कहा जा सकता है कि उनमें कोई भी उत्तराधिकारी होने के योग्य न था। राज्य के हित के लिए यह आवश्यक था कि उन तेईस के सिवा किसी अन्य को, जो सभी प्रकार सक्षम और योग्य हो, उत्तराधिकारी बनाया जाय और ऐसा किसी निकटवर्ती को प्राप्त करके किया जा सकता था। परंतु जोधा ने इस बात का अपने यहाँ एक विधान बना लिया था कि उसके वंशजों के अतिरिक्त दूसरा कोई जोधपुर के सिंहासन पर नहीं बैठ सकता। जो राठौर मारवाड़ के सामन्त हैं, उनमें से किसी को जोधपुर के सिंहासन पर बैठने का अधिकार नहीं है। इस प्रकार जोधा ने अपने यहाँ एक निश्चित व्यवस्था बना ली थी, जिसका वर्णन भली प्रकार अजमेर के इतिहास में किया गया है।

सियाजी के वंशजों में जोधाराव ने प्रतिष्ठा प्राप्त की थी। अपनी उस प्रतिष्ठा को वह स्वयं भी अनुभव करता था। उसने अपने राज्य की जागीरदारी प्रथा के नियमों को बदलने का भी काम किया था। उसके पिता रणमल्ल के चौबीस लड़के थे और उनमें से वह स्वयं एक था। उसके चौदह पुत्र पैदा हुए थे। इन सब को देखकर उसको इस बात का ख्याल हुआ कि इन सबके जो संतानें पैदा होंगी, उनकी संख्या बहुत बढ़ जायगी और जागीरदारी प्रथा की पुरानी व्यवस्था के अनुसार जो जागीरें दी जायंगी, उनसे राज्य की सम्पूर्ण भूमि बहुत-से टुकड़ों में बट जायगी। उस दशा में भूमि के प्रश्न को लेकर विवाद पैदा होना बहुत स्वाभाविक हो जायगा। इसलिए भविष्य में पैदा होने वाले इन विवादों के रोकने का कार्य अभी से होना चाहिए। इस प्रकार सोच-विचार कर

× रणमल्ल को पिछले पृष्ठों में बहुत-से स्थानों पर रिडमल्ल भी लिखा गया है। दोनों नाम एक ही है। सही नाम के लिखने में कहीं कहीं बड़ी भूल हुई है। —अनुवादक

जोधाराव ने जागीरों की संख्या और उनकी सीमा का निश्चय कर दिया था। उसके बड़े भाई काँधल ने बीकानेर के स्वतत्र राज्य की स्थापना की थी। उसके वंशज काँधलोत नाम से प्रसिद्ध हुए और उन लोगों ने स्वतंत्रता के साथ वहाँ पर राज्य किया।

जोधाराव का तीसरा भाई चम्पा जी ने अपने नाम पर एक शाखा की प्रतिष्ठा की और इस प्रकार की शाखायें बहुतों के द्वारा स्थापित हुई थीं। जोधाराव ने जागीरदारी प्रथा में जो परिवर्तन किये थे, उसी के अनुसार उसने भाइयों, भतीजों, पुत्रों और पौत्रों को जागीरें दी थीं।

जोधाराव ने अपने राज्य में जिस प्रकार जागीरों का विभाजन किया था, राव मालदेव ने उनको स्वीकार किया यद्यपि उसने दूसरी श्रेणी की जगीरों की वृद्धि कर दी थी, फिर भी उनकी पूर्ति राज्य की सीमा के बढ़ जाने के कारण हो गयी थी। जोधा से लेकर मालदेव तक जो जागीरें इस राजवंश के लोगों को दी गयी थीं, उनके नियमों में कुछ भिन्नता थी। जो जागीरें विजय करके प्राप्त की गयी थीं, उनके लिए यह नियम रखा गया कि यदि जागीरदार के कोई पुत्र न हो तो गोद लिया हुआ लड़का भी उसका अधिकारी हो सकता है। परन्तु इसके बाद जो जागीरें दी गयीं, उनमें यह नियम काम नहीं करता और वे पुत्र के अभाव में राज्य में मिला ली जाती थीं।

इस प्रकार का नियम प्राचीन काल से मारवाड़ में चला आ रहा था। इसके पालन में कभी-कभी उपेक्षा भी हो जाती थी। ये जागीरें दो प्रकार की थीं। कुछ जागीरों में राजा को कर देना पड़ता था और कुछ में कर नहीं देना पडता था। सियाजी से लेकर जोधा तक वंश के जिन लोगों का स्थान राज्य के उत्तर और पश्चिम में था, वे अपनी दुर्बल आर्थिक अवस्था के कारण और कुछ अभिमान के कारण अपनी जागीरों का स्वतंत्रता पूर्वक भोग करते थे, इतना सब होने पर भी सभी जागीरदार मारवाड़ के राजा को प्रधानता देते रहे और जब कभी राजा पर संकट आता तो वे अपनी-अपनी जागीर के अनुसार धन देकर राजा की सहायता करते थे। ये लोग राजा को किसी प्रकार का कर नहीं देते थे। इसीलिए उनकी जागीरें स्वतंत्र मानी जाती थीं। इस प्रकार की जागीरें, जिनको कुछ नहीं देना पड़ता, बाढमेर कोटडा से फलसूंप तक फैली हुई थीं।

इनके बाद जो दूसरी जागीरें थीं, यद्यपि वे पूर्णरूप से स्वतत्र नहीं हैं, तो भी वे छोटे माफीदार कहे जाते थे। आवश्यकता पड़ने पर उनसे सहायता ली जाती है और विशेष उत्सवों पर वे लोग राजा को भेंट देते हैं। महेबा और सनदारी इसी प्रकार की माफीदार जागीरों में से हैं। इस वंश के लोग पूर्वजों की उपाधि से अपना परिचय देते हैं। इनमें से कुछ लोगों को दुहड़िया, किसी को मांगलिया, किसी को ऊहड़ और किसी को धांदल के नाम से सम्बोधन किया जाता है। परन्तु उनके द्वारा इस बात का पता नहीं चलता कि ये लोग राठौर हैं।

मारवाड़ राज्य में जो जागीरदारी प्रथा चल रही थी, वह सियाजी के समय से चली आ रही थी। यही प्रथा पहले कन्नौज में चला करती थी। राजस्थान के सभी राज्यों की जागीरदारी प्रथा करीब-करीब एक-सी थी और वह योरप की जागीरदारी प्रथा से बिलकुल मिलती-जुलती थी।

उदयसिंह के सिंहासन पर बैठने के सम्बन्ध में भट्ट ग्रंथों में जो उल्लेख पाया जाता है, वह एक-सा नहीं है। किसी ग्रंथ में लिखा है कि मालदेव की मृत्यु के बाद सम्बत् १६२५ सन् १५६६ ईसवी में वह मारवाड़ के सिंहासन पर बैठा। कुछ ग्रंथों में लिखा है कि वह बड़े भाई चन्द्र-सेन के मारे जाने पर गद्दी पर बैठा। इस प्रकार के कुछ मतभेद उसके सिंहासन पर बैठने के सम्बन्ध में पाये जाते हैं। इसमें सही क्या है, यह नहीं कहा जा सकता।

उदयसिंह जोधाराव का अयोग्य वंशज था और अपनी अयोग्यता के कारण ही उसकी स्वतंत्रता नष्ट हुई। उसमें स्वाभाविक रूप से विलासिता थी। राजपूतों में जो तेज और प्रताप प्रायः

पाया जाता है, उसके जीवन में इस प्रकार के गुणों का पूर्ण रूप से अभाव था। अपनी अकर्मण्यता के कारण वह स्वाभिमान को खोकर सब कुछ कर सकता था। उसने अपनी बहन का विवाह मुगल राज घराने में करके अपने पूर्वजों के गौरव को नष्ट कर दिया। इससे प्रसन्न होकर अकबर ने मारवाड़ राज्य का अजमेर नगर अपने अधिकार में रख कर राज्य का शेष भाग उदयसिंह को लौटा दिया था। इसके अतिरिक्त उसने मालवा के कई नगरों का अधिकार भी बादशाह से प्राप्त कर लिया था। वह बादशाह अकबर की अधीनता में था। परन्तु उसके राज्य की आमदनी पहले से बहुत अधिक हो गयी थी। उसको मुगलों की सैनिक सहायता भी प्राप्त थी, जिससे उसने दूदा के वंशजों से समस्त भूमि लेकर अपने अधिकार में कर ली और कुछ नगर दूसरों से भी उसने छीन लिए थे।

बादशाह अकबर से उदयसिंह को बहुत-सी सुविधायें प्राप्त थीं। अकबर उसे मरुप्रदेश का राजा कहा करता था। उसके चौंतीस संताने थीं। उसके द्वारा कितने ही नये वंशों की स्थापना हुई और उसके लड़कों ने गोविन्दगढ़ तथा पीसागढ़ आदि कई एक जागीरें कायम की थी। कुछ जागीरें उसके राज्य की सीमा से बाहर थीं और उनके नाम संस्थापकों के नाम पर रखे गये थे। इनमें से किशनगढ़ और रतलाम मालवा में हैं।

उदयसिंह का शरीर मोटा था, और उसकी बुद्धि भी मोटा थी। उसे लोग मोटा राजा कहा करते थे। स्थूल शरीर के कारण वह घोड़े पर नहीं चढ़ सकता था। उसने तेरह वर्ष राज्य किया। मृत्यु से पहले उसकी एक घटना का उल्लेख मिलता है। यों तो भट्ट ग्रंथों से पता चलता है कि राठौर राजकुमारों को छोटी आयु में नैतिक शिक्षा दी जाती थी और उससे प्रत्येक राजकुमार चरित्रवान बनने की चेष्टा करता था। उदयसिंह को नैतिक शिक्षा मिली थी अथवा नहीं, इसका कोई उल्लेख नहीं मिलता। उसके सत्ताईस रानियाँ थीं। उनके अतिरिक्त बुढ़ापे में उसने एक ब्राह्मण की लड़की से विवाह करने की चेष्टा की थी। उनकी घटना का उल्लेख इस प्रकार मिलता है :

'ख्यात' नामक एक भट्ट ग्रंथ में लिखा है कि उदयसिंह एक दिन बादशाह अकबर के दरबार से लौट कर अपने राज्य को आ रहा था। रास्ते में बीलड़ा नामक एक ग्राम के निकट उसने एक अत्यन्त रूपवती लड़की को देखा। उदयसिंह ने उस लड़की से बातचीत की। मालूम हुआ कि आयापंथी सम्प्रदाय के किसी ब्राह्मण की वह लड़की है। इस पंथ के ब्राह्मण लोग किसी देवी के उपासक होते हैं और तांत्रिक विद्या पर विश्वास करते हैं। वे लोग मदिरा और मांस के द्वारा अपनी आराध्य देवी की पूजा करते हैं।

उदयसिंह ने उस सुन्दरी युवती को अपने साथ ला कर विवाह करने का निश्चय किया। उदयसिंह ने उस लड़की के पिता को बुलाकर उससे अपनी अभिलाषा प्रकट की। ब्राह्मण उदयसिंह की बात को सुनकर बहुत दुखी और लज्जित हुआ। उसने सोच डाला कि मैं अपनी लड़की को मार डालूँगा, परन्तु इस प्रकार का कलंकित कार्य न करूँगा। उसने एक बड़ा होमकुण्ड खोद कर तैयार किया और एक तलवार लेकर उसने अपनी लड़की को मार डाला। उसने उसके शरीर के कई टुकड़े किये और उनको उसने जलते हुए होमकुण्ड में डाल दिया। कुण्ड की बहुत-सी लकड़ियों में घी डाला गया था। इसलिए उन लकड़ियों से होली की सी लपटें उठने लगीं। उसी समय उस ब्राह्मण ने खड़े होकर राजा को श्राप दिया और उसके बाद वह तांत्रिक ब्राह्मण जलते हुए अग्नि कुण्ड में कूद पड़ा। थोड़ी देर में पिता पुत्री के शरीरों से राख का ढेर बन गया।

राजा उदयसिंह ने भी यह समाचार सुना। इस समय उसको अपनी अभिलाषा एक भयानक अपराध में मालूम हुई। इसी दिन से उसके मन में एक अशांति पैदा हो गयी और प्रत्येक घड़ी वह

अस्थिर रहने लगा। इसके कुछ ही दिनों बाद उसकी मृत्यु हो गयी। ऊपर लिखा जा चुका है कि उदयसिंह के चौंतीस संतानें थीं। उनमें सत्रह लड़के थे और सत्रह लड़कियाँ। उसकी इन संतानों के के सम्बन्ध में नीचे लिखा हुआ विवरण पाया जाता है :

१—शूरसिंह, सिंहासन पर

२—अखयराज

३—भगवानदास, इसके वल्लू, गोपालदास और गोविन्ददास नाम के तीन लड़के थे। गोविन्दास ने गोविन्द गढ़ बसाया था।

४—नरहरदास
५—शक्तसिंह   इनके कोई संतान नहीं हुई।
६—भूपनसिंह

७—दलपत, इसके चार पुत्र हुए। महेशदास उनमें सबसे बड़ा था। उसके लड़के रतन ने रतलाम नामक एक दुर्ग बनवाया था। उसके तीन लड़के थे, यशवंतसिंह, प्रतापसिंह और कुनीरैन।

८—जयत, इसके चार लड़के उत्पन्न हुए, हरी, अमर, कन्हीराम और प्रेमराज। इनकी संतानों को बलूँता और खरवा की भूमि मिली थी।

६— किशनसिंह, इसने सम्बत् १६६६ सन् १६१३ ईसवी में किशनगढ़ बसाया। साहसमल, जगमल, भारमल नाम के इसके तीन लड़के थे। भारमल का लड़का हरीसिंह था और हरीसिंह के रूपसिंह नाम का एक बेटा था। रूपसिंह ने रुप नगर बसाया।

१०—यशवंतसिंह, इसके लड़के मानसिंह ने मानपुर बसाया। उसकी संतानें मनुरूप जोधा के नाम से विख्यात हुईं।

११—केशव इसने पीसानगढ़ बसाया था।

१२—रामदास
१३—पूरनमल
१४—माधवसिंह   इनके केवल नाम पाये जाते हैं।
१५—मोहनदास
१६—कीरतसिंह
१७—× × ×

इन पुत्रों के अतिरिक्त उदयसिंह के सत्रह लड़कियाँ भी पैदा हुई थीं, परन्तु भट्ट ग्रंथों में में उनका कोई वर्णन नहीं पाया जाता।

राजावली नामक एक पुस्तक में उदयसिंह की संतानों का ऊपर लिखा हुआ विवरण पाया जाता है।

———

पैंतीसवाँ परिच्छेद

मारवाड़ के सिंहासन पर शूरसिंह–शूरसिंह की रण कुशलता–बादशाह अकबर की तरफ से शूरसिंह का सिरोही पर आक्रमण–सिरोही का पतन–शाह मुजफ्फर के साथ शूरसिंह का युद्ध–शूरसिंह की विजय–जोधपुर की उन्नति–अमर बलेचा पर आक्रमण–अकबर की मृत्यु–गजसिंह को राज सिंहासन–जहाँगीर के लड़कों में सघर्ष–खुर्रम का आक्रमण–गजसिंह के बड़े पुत्र अमरसिंह का निर्वासन।

उदयसिंह की मृत्यु के पश्चात् उसका बड़ा लड़का शूरसिंह सम्वत् १६५१ सन् १५६५ ईसवी में मारवाड़ के सिंहासन पर बैठा। इस राज्य का गौरव उदयसिंह के शासन काल में निर्बल पड़ गया था। पिता की मृत्यु के समय में शूरसिंह लाहौर में था। वहाँ पर वह मुगल बादशाह की तरफ से भारत की सीमा का अधिकारी था। वहीं पर उसे उदयसिंह के मरने का समाचार मिला था। सन् १६४८ ईसवी में सिंध को विजय किया गया। शूरसिंह उसी समय से वहाँ पर था।

शूरसिंह अपने पिता उदयसिंह की तरह का न था। जीवन के आरम्भ से ही वह एक रणकुशल और पराक्रमी था। उदयसिंह के जीवन काल में उसने अपनी रणकुशलता और वीरता का परिचय दिया था। उससे प्रसन्न होकर मुगल बादशाह अकबर ने उसे एक सम्मानपूर्ण पद देकर सवाई राजा की उपाधि दी थी।

बादशाह अकबर शूरसिंह की योग्यता से बहुत प्रभावित था। इसी लिए उसने इन दिनों में उसको एक उत्तरदायित्यपूर्ण कार्य करने का आदेश दिया। सिरोही का स्वामी राव सुरतान अपने एक सुदृढ़ पहाड़ी दुर्ग पर रहा करता था। उसका राज्य समस्त पर्वतमय था। उसको इस बात का विश्वास हो गया था कि उसके पहाड़ी और जङ्गली राज्य के नगरों और स्थानों में मुगल बादशाह की सेना प्रवेश नहीं कर सकेगी। इसी विश्वास के कारण उसने मुगलों की अधीनता स्वीकार नहीं की थी।

बादशाह अकबर की तरफ से शूरसिंह ने सिरोही राज्य पर आक्रमण किया। इसके पहले भी सिरोही राज्य के साथ उसका एक संघर्ष हो चुका था। शूरसिंह ने सिरोही के राजा को जीत कर, उसका सिरोही नगर लुटवा लिया। इस लूट में यहाँ तक अत्याचार किया गया कि राव सुरतान के पास चारपाई पर बिछाने के लिए कपड़े तक न रह गये, भट्ट ग्रंथों में लिखा है कि सिरोही के राजा राव सुरतान का अभिमान नष्ट करने के लिए शूरसिंह को उसके साथ ऐसा करना पड़ा। शूरसिंह ने उसका सम्पूर्ण अभिमान मिट्टी में मिला दिया और उसे मुगलों की पराधीनता स्वीकार करनी पड़ी।

सामन्त शासन प्रणाली के अनुसार राव सुरतान ने मुगल बादशाह का फरमान मंजूर किया और अपनी सेना को लेकर वह दिल्ली के लिए रवाना हुआ। इन्हीं दिनों में बादशाह का आदेश पाकर शूरसिंह गुजरात के शाह मुज्जफ्फर के साथ युद्ध करने लिए रवाना हुआ। उसके साथ सिरोही का राजा भी अपनी सेना के साथ था। शूरसिंह की सेनायें धुंधुका नामक स्थान पर पहुँच गयीं। वहीं पर शाह मुज्जफ्फर की फौज ने आकर युद्ध शुरू किया। इस लड़ाई में शूरसिंह के सैनिक

अधिक मारे गये । लेकिन अंत में शूरसिंह की ही विजय हुई । शाह मुज्जफर पराजित हुआ । उसके अधिकार में अनेक नगर और ग्राम थे । वे सब के सब शूरसिंह के अधिकार में आ गये । शाह मुज्जफर के नगरों को लूटकर शूरसिंह ने जो सम्पत्ति एकत्रित की, उसको उसने बादशाह के पास दिल्ली भेज दिया । शूरसिंह की इस विजय से अकबर बहुत प्रसन्न हुआ और उसने उसको एक तलवार इनाम में देकर बहुत सी उसको भूमि दी ।

गुजरात की विजय में शूरसिंह को लूट में बहुत सी सम्पत्ति मिली थी । उससे उसने जोधपुर नगर और उसके दुर्ग की उन्नति की । इसी सम्पत्ति में से उसने मारवाड़ के छै भट्ट कवियों को पुरस्कार दिये । प्रत्येक पुरस्कार एक लाख पचास हजार रुपये का था । गुजरात की विजय से शूरसिंह की ख्याति राजस्थान में चारों तरफ फैल गयी । बादशाह अकबर ने उसकी शक्तियों से प्रभावित होकर और भी उत्तरदायित्व पूर्ण कार्य सौंपे । नर्मदा नदी के किनारे अमरबलेचा नाम का एक शूरवीर राजपूत राज्य करता था । उसने मुगलों की अधीनता स्वीकार नहीं की थी । इसलिए अकबर बादशाह ने उसको पराजित करने के लिए शूरसिंह को भेजा । वह अपने साथ तेरह हजार सवारों की सेना, दस बड़ी-बड़ी तोपें और बीस लड़ाकू हाथियों को लेकर रवाना हुआ और नर्मदा नदी के किनारे पहुँचकर उसने अमर बलेचा पर आक्रमण किया । × उसका सामना करने के लिए अपने साथ पाँच हजार सवारों को लेकर अमर रवाना हुआ और मुगल सेना के सामने पहुँच कर उसने युद्ध आरम्भ किया । अमर के साथ बहुत छोटी सेना थी । फिर भी उसने शक्ति भर युद्ध किया । अंत में उसकी पराजय हुई और वह मारा गया । शूरसिंह ने उसके राज्य पर अधिकार कर लिया । इस विजय का समाचार सुनकर बादशाह बहुत प्रसन्न हुआ । उसने शूरसिंह को नौबत भेजी और विजय में मिला हुआ राज्य उसने उसको दे दिया ।

इन्हीं दिनों में मुगल बादशाह की मृत्यु हो गयी । उसके बाद उसका बड़ा लड़का जहाँगीर मुगलों के सिंहासन पर बैठा । इस नवीन बादशाह के प्रति अपनी राजभक्ति प्रकट करने के लिए अनेक प्रकार की बहुमूल्य भेटों के साथ अपने उत्तराधिकारी गजसिंह को लेकर शूरसिंह मुगल दरबार में गया । युवक गजसिंह को देखकर बादशाह जहाँगीर बहुत खुश हुआ । राजकुमार गजसिंह शूरसिंह का सुयोग्य लड़का था । बादशाह ने जालौर के युद्ध में उसकी वीरता का प्रमाण पाया था । इस समय उसको दरबार में देखकर वह बहुत प्रभावित हुआ और अपने दरबारियों के सामने उसकी वीरता और योग्यता की बड़ी देर तक प्रशंसा की ।

जालौर के युद्ध क्षेत्र में गजसिंह ने अपने अद्भुत शौर्य का परिचय दिया । उसकी उन्नति का आरम्भ वहीं से हुआ । उसने जालौर को गुजरात के बादशाह से जीतकर मुगल बादशाह को दे दिया था ।

इन्हीं दिनों में पठानों के साथ युद्ध करने के लिए बादशाह ने आदेश दिया । गजसिंह ने युद्ध की तैयारी की । उसने जालंधर पर—जिसका नाम जालौर है—आक्रमण किया । उस युद्ध में बहुत-से राठौर शूरवीर मारे गये । लेकिन अंत में सात हजार पठानों को मारकर उसने उस शहर को लुटवा लिया और लूट में मिली हुई सम्पत्ति उसने बादशाह के पास भेज दी ।

सम्वत् १६७६ सन् १६२० ईसवी में राठौर नरेश शूरसिंह की दक्षिण में मृत्यु हो गयी । वह एक शूरवीर और सुयोग्य राजपूत था । बादशाह के दरबार में उसको बहुत सम्मान मिला था । दक्षिण में उसने बड़ी ख्याति पायी थी । उसके शासन-काल में जोधपुर का गौरव बढ़ गया था ।

× बलेचा चौहान वंश की एक शाखा है । अमर उस राजपूत का नाम था ।

उसने बहुत-से कुएँ, तालाब और अनेक इमारतें बनवाई थीं, जिनमें से बहुत-सी अब तक मौजूद हैं। उसके इस निर्माण कार्य में शूरसागर बहुत प्रसिद्ध है। यद्यपि उस मरुभूमि में उसकी कोई उपयोगिता नहीं है।

शूरसिंह ने छै पुत्र और सात कन्यायें छोड़कर परलोक की यात्रा की। गजसिंह, सवलसिंह, वीरनदेव, विजयसिंह, प्रतापसिंह और यशवन्तसिंह नाम के उसके छै बेटे थे। उसकी सात लड़कियों के सम्बन्ध में कोई उल्लेख नहीं पाया जाता। गजसिंह इन छै में सब से बड़ा लड़का था। पिता की मृत्यु के बाद सन् १६२० ईसवी में वह सिंहासन पर बैठा। उसका जन्म लाहौर में हुआ था। वहीं पर दारावखाँ बादशाह की तरफ से उसके पास पहुँचा और उसके सिर पर मुकुट रखकर उसके ललाट पर राजतिलक किया और उसकी कमर में तलवार बाँधी।

मारवाड़ के सिंहासन पर बैठने के बाद अजमेर के पास मसूदा नगर भी उसको दिया गया। इन्हीं दिनों में बादशाह ने उसको दक्षिण की सूबेदारी दी और कई प्रकार से उसका सम्मान किया।

गजसिंह अपने जीवन के आरम्भ से ही होनहार और सुयोग्य था। उसमें कई एक गुण थे। दक्षिण की सूबेदारी पाने के बाद उसने अपनी योग्यता और गम्भीरता के परिचय दिये। उसने कितने ही नगरों को जीतकर अपने अधिकार में कर लिया। खिड़कीगढ़, गोलकुण्डा, केलिया, परनाला, कंचनगढ़, आसेर और सितारा पर उसने इन्हीं दिनों में विजय पायी और ये सभी नगर मुगल राज्य में मिला लिए गये। इनको विजय करने में उसने अपने जिस रणकौशल का परिचय दिया था, उससे प्रसन्न होकर बादशाह ने उसको 'दलथम्भन' की उपाधि दी थी।

राजपूत राजकुमारियों के विवाहों का सम्बन्ध मुगलों में अकबर के साथ आरम्भ हुआ था। वह क्रम बराबर जारी रहा। जहाँगीर इस समय दिल्ली के सिंहासन पर था। उसने भी दो राजकुमारियों के साथ विवाह किये थे। उनमें से राठौर के गर्भ से परवेज नाम का एक लड़का पैदा हुआ। वह जहाँगीर का सब से बड़ा लड़का था। इसलिए सिंहासन पर बैठने का वही अधिकारी था। आमेर राजकुमारी से खुर्रम नाम का लड़का पैदा हुआ। वह परवेज से छोटा था। इन दोनों लड़कों में उत्तराधिकारी बनने के लिए झगड़ा पैदा हुआ। खुर्रम छोटा था। परन्तु वह परवेज की अपेक्षा अधिक बुद्धिमान था। वह युद्ध में निपुण और साहसी था। उसमें लोक प्रियता अधिक थी। इसीलिए मुगल दरबार के अधिकांश लोग उससे प्रसन्न रहते थे और खुर्रम का समर्थन करते थे। सीसोदिया वंश तेजस्वी भीमसिंह और प्रसिद्ध सेनापति महावत खाँ ने प्रसन्न होकर उसके पक्ष का समर्थन किया था। इन दोनों भाइयों के बीच उत्तराधिकार का झगड़ा बहुत बढ़ गया और खुर्रम ने परवेज को मार डालने की चेष्टा की।

मारवाड़ के राजा गजसिंह का सम्मान बादशाह के दरबार में इन दिनों बढ़ा हुआ था। वह दक्षिण में खुर्रम के साथ था। अवसर पाकर सुलतान खुर्रम ने उससे अपनी अभिलाषा प्रकट की और उसने उससे अपने उद्देश्य में सहायता माँगी। गजसिंह पहले से ही परवेज का सम्मान करता था। इसलिए उसने खुर्रम की बातों पर ध्यान न दिया। उसकी उदासीनता देखकर खुर्रम को निराशा हुई। वह किसी प्रकर उत्तराधिकारी बनना चाहता था। गोविन्ददास नामक एक भाटी राजपूत मारवाड़ का विदेशी सामन्त था। वह योग्य और दुरदर्शी था। इसलिए खुर्रम प्राय: उसके साथ परामर्श किया करता था। इन दिनों में उसने सहायता करने के लिए कहा। परन्तु भाटी सरदार के ऊपर उसका कोई प्रभाव न पड़ा। इसके फलस्वरूप खुर्रम उससे नाराज हो गया और

उसको इसका बदला देने के लिए किशनसिंह नाम के एक राजपूत को उसने नियुक्त किया। किशनसिंह ने अवसर पाकर उसको जान से मार डाला। गजसिंह के हृदय को इस दुर्घटना से बहुत आघात पहुँचा। खुर्रम के इस आचरण से उसको घृणा हो गयी और वह दक्षिण को छोड़कर अपने राज्य को चला गया। इसके थोड़े दिनों के बाद बादशाह जहाँगीर के साथ खुर्रम का विद्रोह बढ़ गया। इसीलिए उसने बादशाह को सिंहासन से उतार कर स्वयं बैठने का प्रयास किया।

शाहजादा खुर्रम ने जहाँगीर के विरुद्ध सैनिक आक्रमण की तैयारी की। उसकी यह चेष्टा जहाँगीर को मालूम हो गयी। इसलिए उसने राजपूत नरेशों से सहायता लेने का निर्णय किया। उसका संदेश पाकर मारवाड़, आमेर, कोटा और बूंदी के राजा लोग अपनी सेनाओं के साथ बादशाह की सहायता के लिए आ गये।

शाहजदा खुर्रम भी अपनी सैनिक तैयारी कर चुका था। इन्हीं दिनों में बादशाह को समाचार मिला कि अपनी फौज के साथ खुर्रम आ रहा है। वह भयभीत हो उठा। राठौर राजा गजसिंह ने उस समय बादशाह को बहुत धैर्य दिया। गजसिंह के प्रोत्साहन को सुनकर बादशाह जहाँगीर को बहुत शांति मिली। प्रसन्न होकर उसने गजसिंह से हाथ मिलाया और उसके हाथ का चुम्बन किया।

जो राजपूत नरेश सहायता करने के लिए आये थे, वे बादशाह के आदेश से अपनी सेनाओं के साथ खुरंम के विद्रोह के दमन करने को रवाना हुए। बनारस के पास खुर्रम की फौज मौजूद थी। उसको देखकर हिन्दू राजाओं की सेनायें रुक गयीं और संग्राम करने के लिए श्रेणी बद्ध हो कर खड़ी हो गयी। बादशाह की तरफ से जो सेनायें आयी थीं, उनका नेतृत्व आमेर के राजा को दिया गया।

यह नेतृत्व गजसिंह को मिलना चाहिए था। फिर बादशाह जहाँगीर ने ऐसा क्यों किया। इसका निर्णय करते हुए मारवाड़ के एक भट्ट ग्रंथ में लिखा गया है कि उस समय बादशाह की सहायता के लिए जो राजपूत नरेश गये थे, उनमें राजा आमेर के साथ सब से बड़ी सेना थी। इसका जो भी कारण रहा हो। परन्तु जहाँगीर के द्वारा नेतृत्व का अधिकार राजा आमेर को मिलने से राजपूत नरेशों में एक साथ भयानक ईर्षा पैदा हो गयी। गजसिंह ने इससे अपना अपमान अनुभव किया। उसने बादशाह के शिविर को छोड़ कर और कुछ दूर जाकर अपना एक अलग शिविर कायम किया। उसने निर्णय कर किया कि इस समय जहाँगीर और खुर्रम में जो युद्ध होने जा रहा है, उसमें मैं सम्मिलित न होकर दूर से तमाशा देखूँगा। परन्तु वह ऐसा न कर सका। राजा भीमसिंह ने उसकी उदासीनता का विरोध किया और अनेक प्रकार की बातें समझा कर उसने गजसिंह को बादशाह की सहायता करने के लिए विवश किया। सीसोदिया भीमसिंह के परामर्श को सुनकर गजसिंह ने अपना निर्णय बदल दिया और वह बादशाह की सहायता के लिए तैयार हो गया। उसको ऐसा करने के लिए भीमसिंह ने सभी प्रकार विवश किया। उसकी उदासीनता का विरोध करके भीमसिंह ने साफ-साफ शब्दों में उससे कहा था :

"युद्ध क्षेत्र में आकर आप संग्राम से दूर नहीं रह सकते। यदि किसी भी कारण से आप वृद्ध बादशाह की सहायता नहीं कर सकते तो आप को खुल कर शाहजादा खुर्रम के पक्ष में चला जाना चाहिए। आपको किसी भी अवस्था में खुलकर एक तरफ ही रहना पड़ेगा। जीवन के ऐसे कठोर अवसरों पर जो तटस्थ होकर रहता है, वह कायर होता है।"

भीमसिंह के इन वाक्यों से गजसिंह की उदासीनता दूर हो गयी और वह बादशाह की सहायता के लिए फिर से तैयार हो गया। इस समय युद्ध की परिस्थिति बहुत निकट आ गयी

थी। विद्रोहियों की फौज के आगे बढ़ते ही गजसिंह ने अपनी शक्तिशाली सेना को आगे बढ़ाया और उस पर भयानक आक्रमण किया। बड़ी तेजी के साथ युद्ध आरम्भ हो गया। बहुत समय तक युद्ध होने के बाद शाहजादा खुर्रम की पराजय हुई। वह अपनी जान बचाकर भाग गया। जिस उत्साही भीमसिंह ने युद्ध आरम्भ होने के पहले गजसिंह की उदासीनता दूर कर के युद्ध के लिए उत्तेजित किया था, वह इस युद्ध में मारा गया।

शाहजादा खुर्रम की फौज को पराजित करने के लिए आये हुए सभी राजपूत राजाओं को सम्मान मिला। लेकिन उस श्रेय का वास्तव में अधिकारी राजा गजसिंह बना। उसकी सहायता से विद्रोही सेना की पराजय हुई। गजसिंह इस श्रेय का भोग अधिक दिनों तक न कर सका। सम्वत् १६६४ सन् १६३८ ईसवी में वह गुजरात के एक युद्ध में गया था, जिसमें वह मारा गया। ×

गजसिंह राठौर वंश का एक योग्य राजा था। राजस्थान में उसको बहुत सम्मान मिला। अमर और यशवंत नाम के उसके दो लड़के थे। अचल नाम का एक तीसरा लड़का भी पैदा हुआ किन्तु वह छोटी अवस्था में मर गया। अमर गजसिंह का बड़ा लड़का था। इसलिए राज्य का वही उत्तराधिकारी था और पिता के सिंहासन पर बैठने का वही अधिकारी था। परन्तु गजसिंह ने स्वयं अमर को इस अधिकार से वंचित कर दिया और इस सम्बन्ध में वह जो निर्णय कर गया था, उसके अनुसार उसका दूसरा पुत्र यशवन्तसिंह सिंहासन पर बिठाया गया।

गजसिंह का पहला पुत्र अमरसिंह था। भाइयों में सबसे बड़ा होने के कारण वही अपने पिता का उत्तराधिकारी था। परन्तु राजा गजसिंह ने उसको इस अधिकार से क्यों वंचित किया था, इसका कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं पाया जाता। सम्वत् १६९० सन् १६३४ ईसवी में गजसिंह ने मारवाड़ के सिंहासन पर बैठ कर अपने मन्त्रियों के सामने घोषित किया था : "अमरसिंह उत्तराधिकारी से वंचित किया जाता है। वह कभी मारवाड़ के इस सिंहासन पर बैठ न सकेगा। मेरा उत्तराधिकारी दूसरा बेटा यशवन्तसिंह है। राज्य से निकल जाने का उसे आदेश दिया जाता है।"

इस आदेश के साथ-साथ अमरसिंह के राज्य से निकाले जाने की तैयारी होने लगी। उसके वस्त्र और आभूषण उसे दे दिये गये। उसके पहनने के सभी कपड़े काले रङ्ग के थे। काला पजामा, काला अंगरखा, काले रङ्ग की टोपी और काले ही रङ्ग की ढाल और तलवार भी उसको दी गयी। अमर जब इन सब कपड़ों को पहन कर तैयार हुआ तो काले रङ्ग का एक घोड़ा उसको दिया गया। उस पर बैठकर वह राज्य से निकल जाने के लिए रवाना हुआ।

अमरसिंह ने अकेले अपने पिता का राज्य नहीं छोड़ा। उसके वंश के बहुत-से लोग और वे लोग, जो राज्य का उत्तराधिकारी समझकर उसका सम्मान करते थे, अपनी इच्छाओं से अमर सिंह के साथ राज्य छोड़ना स्वीकार किया और वे सब के सब अमरसिंह के साथ रवाना हुए। अमरसिंह सब के साथ मारवाड़ से निकलकर मुगल बादशाह के यहाँ पहुँचा। बादशाह को यह घटना पहले से ही मालूम थी। राज्य से उसका निकाला जाना बादशाह ने भी स्वीकार किया। फिर भी उसने अमरसिंह को अपने यहाँ आश्रय दिया और मुगल सेना में उसको एक अधिकारी के पद पर नियुक्त कर दिया। अमरसिंह पराक्रमी और युद्ध में कुशल था। इसलिए थोड़े ही दिनों में

× कुछ लेखकों ने गजसिंह की इस मृत्यु का विरोध किया है। उनका कहना है कि गजसिंह आगरा में जेठ सुदी १३ सम्वत् १६६४ में बीमार होकर मरा था।

बादशाह के सामने ऐसे अवसर आये, जिनसे उसको अमर की योग्यता का परिचय मिला। उसने प्रसन्न होकर अमर को राव की उपधि दी। तीन हजार के ऊपर उसको मनसब बना दिया और नागौर का जिला उसके अधिकार में दे दिया। ×

अमर को राज्याधिकार से वंचित करने के चौथे वर्ष, जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है, गजसिंह युद्ध में मारा गया और उसके बाद यशवंतसिंह उसके सिंहासन पर बैठा। आरम्भ में बादशाह उससे प्रसन्न हुआ था। अमरसिंह मुगल बादशाह के यहाँ एक जागीर का अधिकारी हो गया परन्तु उसके स्वभाव और चरित्र में ऐसी निर्बलता थी, जिसके कारण अधिक समय तक वह बादशाह को प्रसन्न न रख सका। कर्त्तव्य पालन और उत्तरदायित्व का उसके चरित्र में भयानक अभाव था।

अमरसिंह शिकार खेलने का बहुत शौकीन था। अपनी इसी आदत के कारण एक बार वह मुगल दरबार में पन्द्रह दिनों तक बराबर अनुपस्थित रहा। उसका यह अपराध था। जिसका जिक्र करते हुए बादशाह शाहजहाँ ने उसको जुर्माने की धमकी दी। परन्तु अमर पर इसका कोई प्रभाव न पड़ा। उसने स्वाभिमान के साथ उत्तर देते हुए कहा : "मैं केवल शिकार के लिए गया था और इसीलिए दरबार में मैं नही आ सका।" इसके बाद उसने अपनी तलवार को स्पर्श करते हुए कहा : "जुर्माना अदा करने के लिए मेरी यह तलवार ही सम्पत्ति है।"

अमर का यह उत्तर शिष्टाचार के विरुद्ध था। बादशाह ने उसकी अशिष्टता का अनुभव किया और उस पर जुर्माना कर दिया, जिसको वसूल करने के लिए बख्शी सलावत खाँ को आदेश दिया गया। ÷ उस जुर्माने को वसूल करने के लिए सलावत खाँ अमर के पास गया। अमर ने जुर्माना देने से इनकार कर दिया। सलावत खाँ ने बादशाह के पास पहुँच कर बताया कि अमर जुर्माना देने से इनकार कर रहा है। यह सुनकर बादशाह ने अमर को बुलवाया। अमर ने आमखास में पहुँच कर बादशाह से भेंट की। सलावत खाँ भी वहाँ पर मौजूद था। उस समय बादशाह ने जो कुछ कहा, उससे अमर ने अपना तिरस्कार अनुभव किया। उसकी समझ में यह भी आया कि मेरे इस अपमान का कारण सलावत खाँ बख्शी है।

अमर अपने क्रोध को रोक न सका। उसने तेजी के साथ सलावत खाँ पर आक्रमण किया और अपनी तलवार से उसने उसको घायल कर दिया। इसके बाद वह बादशाह की तरफ झपटा।

× कुछ लेखकों ने अमरसिंह के उस प्रकार राज्य से निकाले जाने की घटना का उल्लेख दूसरे ढंग से किया है। उनका कहना है कि गजसिंह की अनेक रानियाँ थीं। जसवंतसिंह की माँ दूसरी थी और अमर सिंह की दूसरी। जसवंतसिंह की माँ के कहने पर गजसिंह को मुगल बादशाह के यहाँ फौज में एक अधिकारी बनवा दिया था और ऐसी व्यवस्था कर दी थी जिससे वह राज्य से अलग रहे। बादशाह की तरफ से अमर को एक जागीर मिली थी। वहीं पर उसकी माता और स्त्रियों को भी भेज दिया गया था।

÷ यह सलावत खाँ बख्शी कहलाता था। उसका कार्य केवल वेतन बाँटना ही नहीं था। जैसा कि उसके पद से जाहिर होता है। बल्कि मुआयना करना और हिसाब की जाँच करना भी उसके अधिकार का काम था। वह बादशाह की तरफ से वसूलयाबी का काम भी करता था। उसका स्थान मुगल कर्मचारियों में सम्मान पूर्ण था। उसके अधिकार में बहुत-से कर्मचारी थे और उन सब के ऊपर अमरसिंह था। अमर और सलावत खाँ में पहले से ही द्वेष चला आ रहा था। इसका कारण कदाचित यह था कि अमरसिंह अपने व्यवहारों में बहुत कठोर और उग्र था।

बादशाह भयभीत होकर सिहासन छोड़ कर भागा और महल के भीतर चला गया। अमर के इस आक्रमण से बादशाह का दरबार भयानक हो उठा। अमर उस समय एक उन्मादी की तरह सबके सामने मौजूद था और वह अपने कर्त्तव्य का ज्ञान भूल गया था। उस समय जो उसके सामने पहुँचा, उसी का उसने संहार किया। थोड़े से समय के भीतर उसके हाथ से पाँच मुगल सेनापत्ति मारे गये। बादशाह का दरबार रक्तमय हो उठा। इस भयानक दृश्य को देखकर उसके साले अर्जुन गौड़ ने उसको रोकने की चेष्टा की। लेकिन कोई परिणाम न निकलने पर उसने सम्हल कर अमर पर आक्रमण किया और अपनी तलवार से उसको घायल करके पृथ्वी पर गिरा दिया।

अमर की मृत्यु हो गयी। यह देखकर अमर के सरदार उत्तेजित हो उठे और अर्जुन गौड़ से अमर का बदला लेने के लिए वे तैयार हो गये। उसके बाद उन लोगों ने लड़ने की तैयारी की। चम्पावत बल्लू और कम्पावत भाऊ नाम के दो शूरवीर राजपूत उस सेना के सेनापति हुए, जो मुगलों से युद्ध करने के लिए अमर के सरदारों के द्वारा तैयार की गयी थी। वे राजपूत बड़ी तेजी के साथ लाल किले में पहुँच गये।

इन राजपूतों की संख्या बहुत थोड़ी थी। परन्तु दरबार में अमर का मारा जाना वे सहन न कर सके और उसका बदला लेने के लिए वे तैयार हो गये। राजपूतों के इस आक्रमण को रोकने के लिए मुगलों की सेना आ गयी और उसने इन राजपूतों पर आक्रमण किया। दोनों तरफ से युद्ध का आरम्भ हुआ। राजपूतों ने कुछ समय तक भयानक मारकाट की मुगल सेना बहुत बड़ी थी। इसलिए राजपूत सरदार और उनके सैनिक मारे गये। अमर का विवाह बूँदी की राजकुमारी के साथ हुआ था। अमर के मारे जाने पर उसकी रानी चिता बनाकर उस पर बैठी और अपने पति के शव को लेकर प्रज्वलित चिता की आग में भस्मीभूत हो गयी।

अमरसिंह के मारे जाने पर उसके सैनिकों और सरदारों ने मुगलों के साथ युद्ध किया और अपने प्राणों को उत्सर्ग किया। अपने सम्मान और स्वाभिमान के लिए जो राजपूत बलिदान हुए, वे आज संसार में नहीं हैं। परन्तु उनके बलिदानों की कथायें आज भी जीवित हैं और उनको कभी मिटाया नहीं जा सकता। अमरसिंह के सरदारों और सैनिकों ने जिस बुरवारा नामक सिंह द्वार से लाल किले के भीतर प्रवेश किया था, वह ईंटों से बन्द करा दिया गया और उसी दिन से वह सिंहद्वार 'अमरसिंह का फाटक' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। यह फाटक बहुत समय तक बंद रहा। सन् १८०९ ईसवी में जब जार्ज स्टील नामक अँगरेज यहाँ पर आया तो उसके आदेश से वह फाटक खोला गया।

अमरसिंह के उत्तराधिकारी होने पर भी उसके पिता गजसिंह ने उसको राज्यधिकार से वंचित कर दिया था। इसके कारणों का कोई उल्लेख न मिलने पर भी जो घटनायें बाद में उपस्थित होती हैं, उनसे साफ जाहिर हो जाता है कि अमर अनुत्तरदायी, अव्यावहारिक और उद्दण्ड था। उसके इन्हीं अपराधों के कारण उसके पिता राजा गजसिंह ने उसको राज्य में रहने नहीं दिया। उस समय उसे बादशाह शाहजहाँ ने अपने यहाँ शरण दी थी। परन्तु उसने उद्दण्ड स्वभाव के कारण वहाँ पर भी वह सकुशल रह न सका। उसने स्वयं अपना नाश किया और उसके साथ जिनका सम्बन्ध था, उन सबके संहार का वह कारण बना। ×

× इन घटनाओं से उस समय की बहुत सी बातों का मनुष्य को ज्ञान होता है, जिस समय का यह इतिहास लिखा जा रहा है। अमरसिंह के अपराधी जानते हुए भी शाहजहाँ ने उसको अपने यहाँ

छत्तीसवाँ परिच्छेद

राजा गजसिंह के बाद जसवंत सिंह को सिंहासन–शाहजहाँ के लड़कों में विद्रोह–राजपूत राजाओं की सहायता–फतेहाबाद का संग्राम–युद्ध से लौटकर जसवंत सिंह अपनी राजधानी में–औरंगजेब की सफलता–शाहजहाँ की कैद–औरंगजेब के साथ शुजा का विद्रोह–औरंगजेब और दारा–जसवंत सिंह और औरंगजेब–शिवाजी की बढ़ी अवस्था–औरंगजेब के षड़यंत्र–जसवन्त सिंह के विनाश की चेष्टा–पृथ्वीसिंह के साथ औरंगजेब का विश्वासघात–मारवाड़ का राठौर वंश।

राजा गजसिंह की मृत्यु के बाद जसवन्तसिंह उसके सिंहासन पर बैठा। वह मेवाड़ की राजकुमारी से पैदा हुआ था। मेवाड़ का सीसोदिया वंश सम्पूर्ण राजस्थान में अत्यन्त गौरव के साथ देखा जाता था।

राजस्थान के उस समय के राजाओं में जसवंतसिंह को बहुत ख्याति मिली। वह एक सफल शासक था और उसके शासन में सभी प्रकार राज्य ने उन्नति की थी। उसके प्रोत्साहन से कई एक अच्छे ग्रंथ लिखे गये थे। वह विचारशील, गम्भीर और रणकुशल राजपूत था।

शूरसिंह और गजसिंह ने दक्षिणी भारत को प्रधानता दी थी। जसवंतसिंह ने भी उसी को महत्व दिया। वह दक्षिणी भारत को अपने अधिकार में लाना चाहता था। परन्तु उसका कोई भी कार्यक्रम मुगल बादशाह की स्वीकृत पर निर्भर था। बादशाह ने अपने अनुमान और अन्दाज के काम लिया। उसने जसवंतसिंह को आरम्भ में गोंडवाना भेजा। वहाँ पर मुगलों की एक विशाल सेना औरंगजेब के नेतृत्व में पहले से मौजूद थी और उसकी सहायता बाईस सामन्त राजा अपनी-अपनी सेनाओं के साथ कर रहे थे। उन सब के साथ रह कर जसवंतसिंह को स्वतन्त्र रूप से अपने रण कौशल का परिचय देने के लिए कोई अवसर न था। फिर भी उसने वहाँ पर बड़ी योग्यता और वीरता से काम किया।

जीवन को इस परिस्थिति में जसवंतसिंह ने बहुत दिन व्यीतत किये। सन् १६५८ ईसवी में बादशाह शाहजहाँ भयानक रूप से बीमार पड़ा। उस समय उसकी तरफ से शासन का प्रबन्ध दारा करता रहा। वह जसवंतसिंह की योग्यता और युद्ध की कुशलता से बहुत प्रसन्न हुआ। इसलिए उसने जसवंतसिंह को पञ्चहजारी की उपाधि दी और उसको मालवा का अधिकारी बना कर उसने भेज दिया।

बादशाह शाहजहाँ के बीमार पड़ते ही उसके लड़कों में राज्य का अधिकार प्राप्त करने के लिए विद्रोह पैदा हुआ। बादशाह की बीमारी जितनी ही भीषण होती जाती थी, उसके लड़कों के

सम्मानपूर्ण स्थान दिया था। एक अयोग्य मनुष्य को आश्रय देने से जो फल मिलता है, शाहजहाँ को भी वही मिला। बादशाह शाहजहाँ ने अमर के अपराधों का दण्ड उसके पुत्र को नहीं दिया। बल्कि उसके लड़के को बादशाह ने नागौर के सिंहासन पर बिठाया। उसका नाम रायसिंह था। नागौर की यह जागीर अमर के वंशजों में बहुत दिनों तक चलती रही। रायसिंह के बाद हठीसिंह, उसका बेटा अनूप सिंह, उसका बेटा इंद्रसिंह और उसका बेटा मोहकम सिंह उसका मालिक रहा।

विद्रोह उतने ही भयानक होते जाते थे। लड़कों के इन झगड़ों को सुन कर बादशाह को असह्य कष्ट हुआ। वह रोग की जिस दशा में पड़ा हुआ था, उसमें वह कुछ कर सकने के योग्य न था। अपनी अयोग्यता और असमर्थता में उसने चारों तरफ देखा। राजपूत राजाओं के सिवा उसे और कोई दिखायी न पड़ा।

बुढ़ापे की असमर्थता के पहले बादशाह शाहजहाँ अपने लड़कों पर बड़ा गर्व करता था। परन्तु बुढ़ापे का आक्रमण होते ही उसका वह गर्व एक साथ अदृश्य हो गया और इस सांघातिक रोग में बीमार पड़ते ही उसके लड़कों ने विद्रोह का जो दृश्य उपस्थित किया, उससे बादशाह की निराशा सीमा पार कर गयी। इस असमर्थता के समय सहायता प्राप्त करने के लिए बादशाह ने राजपूतों की तरफ देखा। उसने राजपूत राजाओं को बुलाया और उनके सामने उसने अपनी वर्तमान परिस्थितियाँ रखीं। राजपूत राजाओं ने सभी प्रकार उसको आश्वासन दिया और किसी भी समय उसकी सहायता करने के लिए राजाओं ने बादशाह को बचन दिया, जिनको सुन कर बादशाह को बड़ी शांति मिली।

बादशाह के लड़कों में औरंगजेब ने खुल कर विद्रोह किया और उसने वृद्ध शाहजहाँ को सिंहासन से उतार कर उस पर बैठने का निश्चय कर लिया। इस समाचार को जान कर बादशाह ने राजपूत राजाओं के पास संदेश भेजा। उस संदेश को पाते ही आमेर का राजा जयसिंह और मारवाड़ का राजा जसवंतसिंह—दोनों ही बादशाह की सहायता के लिए रवाना हुए। औरंगजेब के साथ-साथ उसका भाई शुजा भी विद्रोही हो चुका था और वह भी औरंगजेब का साथी बन कर अपनी विद्रोही सेना की तैयारी कर चुका था। इस प्रकार की खबरें बादशाह को मालूम हो चुकी थीं। इसलिए बादशाह ने दोनों विद्रोहियों के दमन का प्रयत्न किया और उसकी इच्छा के अनुसार राजा जयसिंह शुजा के विरुद्ध और जसवंतसिंह औरङ्गजेब के विरुद्ध युद्ध करने के लिए रवाना हुआ। ×

जसवंतसिंह के साथ तीस हजार राजपूतों की एक सेना थी। उसके सिवा उसने अपने अधिकार में मुगलों की एक सेना ली और वह आगरा से रवाना हुआ। जसवंतसिंह के साथ इस समय एक विशाल सेना हो गयी थी। वह तेजी के साथ नर्मदा की तरफ चला। जिस समय वह उज्जैन के करीब पहुँच गया उसे समाचार मिला कि औरंगजेब अपनी फौज के साथ युद्ध करने के लिए आ रहा है और वह अब अधिक दूर नहीं है। यह सुन कर जसवंतसिंह की सेना ने वहीं रुक कर मुकाम किया। औरंगजेब की फौज ने नर्मदा के किनारे पहुँच कर नदी को पार किया और जहाँ पर वह फौज पहुँच गयी थी, जसवंतसिंह का शिविर उस स्थान से बहुत दूर न था।

औरङ्गजेब की फौज के आ जाने का समाचार जसवंतसिंह को मिला। वह औरङ्गजेब की तरफ से युद्ध के आरम्भ होने की प्रतीक्षा करने लगा। औरङ्गजेब युद्ध करने में जितना बहादुर था उससे बहुत अधिक वह राजनीतिज्ञ और षड्यंत्रकारी था। उसने युद्ध आरम्भ नहीं किया। और

× शाहजहाँ की बीमारी के दिनों में शुजा बंगाल का सूबेदार था। वहाँ पर उसने पिता की बीमारी का समाचार सुना और यह भी सुना कि उसके बचने की आशा नहीं है। इसलिए सिंहासन पर बैठने का अधिकार प्राप्त करने के लिए जब वह बंगाल से आ रहा था, बनारस के पास दारा के पुत्र सुलेमान शिकोह ने उसके साथ युद्ध किया और उसको परास्त किया। उस लड़ाई में राजा जयसिंह ने सुलेमान शिकोह की सहायता की थी। औरंगजेब उन दिनों में दक्षिण का सूबेदार था। वह आरम्भ से ही भयानक कपटी था।

जहाँ पर उसकी फौज ने मुकाम किया था, वहीं पर वह तरह-तरह के षड्यंत्रों की रचना करने लगा।

औरङ्गजेब और शुजा के सिया बादशाह का लड़का मुराद भी विद्रोही हो चुका था। इसलिए जसवंतसिंह से युद्ध करने के लिए वह भी एक अपनी फौज लेकर नर्मदा के किनारे पहुँच गया था। औरङ्गजेब और मुराद की फौजों ने मिलकर जसवंतसिंह के साथ युद्ध करने का निश्चय किया। जसवंतसिंह अब भी अपने शिविर में चुपचाप बैठा था। अपनी तरफ से युद्ध आरम्भ करने के पक्ष में वह न था। इसके दो कारण थे। एक तो यह कि उसको अपनी शक्तियों पर विश्वास था और दूसरा यह कि वह बादशाह के पक्ष में उसके लड़कों के साथ युद्ध करने के लिए आया था। इस लिए वह चाहता था कि युद्ध का आरम्भ मेरी तरफ से न होकर औरंगजेब की तरफ से ही होना चाहिए।

इस अवस्था में युद्ध रुका रहा और बहुत समय तक किसी ने किसी पर आक्रमण नहीं किया। इसका लाभ औरङ्गजेब ने उठाया। उसके आते ही यदि जसवंतसिंह ने एक साथ उस पर आक्रमण कर दिया होता तो निश्चित रूप से औरङ्गजेब की पराजय होती। वह जसवंतसिंह के साथ युद्ध कर के सफलता प्राप्त करने की शक्ति न रखता था। लेकिन जसवंतसिंह ने उसका लाभ न उठाया और वह अपने शिविर में चुपचाप बैठा रहा।

इस अवसर को पाकर औरङ्गजेब मुराद से मिला और उसने अपनी शक्तियों को युद्ध के लिए मजबूत बना लिया। उसने इतना ही नहीं किया, बल्कि उसने जसवंतसिंह के साथ जो मुगल सेना आगरा से आयी थी, उसके साथ ऊसने साजिश शुरू कर दी। जसवंतसिंह के साथ जो मुगल सेना थी, कासिम खाँ उसका सेनापति था। औरंगजेब ने बड़ी बुद्धिमानी के साथ उसको मिला लेने की चेष्टा की और उसकी फौज के सिपाहियों में राजपूतों के विरुद्ध ऐसी अफवाहें पैदा कर दी, जिनके कारण जसवंतसिंह के साथ की मुगल सेना औरङ्गजेब के षड्यंत्र में आ गयी।

इसी अवसर पर औरङ्गजेब ने जसवंतसिंह पर आक्रमण किया। यह युद्ध सन् १६५८ ईसवी के मार्च महीने में हुआ। राजा जसवंत सिंह ने अपनी सेना के साथ औरङ्गजेब का सामना किया और दोनों ओर से घमासान युद्ध आरम्भ हो गया। मारकाट के थोड़े ही समय के बाद, जसवंतसिंह के साथ आगरा से जो मुगल सेना आयी थी और कासिम खाँ जिसका सेनापति था, वह जसवंतसिंह की सेना से निकल कर औरङ्गजेब की फौज के साथ मिल गयी। उस मुगल सेना के निकल जाने से जसवंतसिंह की सेना बहुत थोड़ी रह गयी। अब उसके साथ केवल तीस हजार राजपूत थे। औरङ्ग-जेब और मुराद की फौजें एक साथ होकर जसवंतसिंह से युद्ध कर रही थीं। आगरा की मुगल सेना के मिल जाने से औरङ्गजेब की शक्तियाँ महान हो गयीं और इस विशाल सेना के द्वारा जसवंत सिंह को पराजित करना औरङ्गजेब के लिए कुछ कठिन नहीं रहा।

युद्ध की यह परिस्थति जसवंतसिंह के लिए भयानक हो उठी। उसको इस परिस्थिति का पहले कोई भी अनुमान न था। जसवंतसिंह ने यह सब दृश्य अपनी आँखों से देखा, परन्तु उसने साहस से काम लिया और अपने तीस हजार राजपूतों पर विश्वास करके वह बराबर युद्ध करता रहा। उसने युद्ध में भयानक मारकाट की और अपने घोड़े को आगे बढ़ा कर एक साथ वह औरङ्गजेब के सामने पहुँच गया। उस समय मुगलों और राजपूतों में भीषण मारकाट हुई। इतनी देर के युद्ध क्षेत्र में दस हजार मुस्लिम सैनिक मारे गये और उनका संहार करने में सत्रह सौ राठौर

राजपूतों ने युद्ध-क्षेत्र में अपने प्राण दे दिये। इनके साथ-साथ गहिलोत, हाड़ा, गौड़ और अन्य सामन्त के बहुत-से शूरवीर सैनिक मारे गये। ×

युद्ध की परिस्थिति बड़ी भयानक थी। जसवंत सिंह और उसका महबूब रक्त से नहाया हुआ था। अंत में दोनों ओर की सेनायें हट गयीं और युद्ध रुक गया। उस समय रक्त से डूबा हुआ जसवंत सिंह भूखे शेर की तरह दिखायी पड़ रहा था। इस युद्ध के सम्बन्ध में भट्ट ग्रंथों में जो पढ़ने को मिलता है, भारत यात्रा करने वाले बर्नियर और मुस्लिम इतिहासकारों ने उसी प्रकार का वर्णन किया है। उन्होंने लिखा है : "यद्यपि औरङ्गजेब ने फ्रांसीसी गोलन्दाजों, तोपों और बहुत से हाथियों के साथ एक विशाल सेना लेकर राजपूतों से युद्ध किया था, फिर भी जसवंत सिंह ने उसको पराजित किया होता, यदि जसवंत सिंह ने औरङ्गजेब की सेना के आने पर असावधानी से काम न लिया होता। जसवंत सिंह अपनी अदूरदर्शिता के कारण विजय से वंचित हुआ। *

फतेहाबाद के इस युद्ध में राजपूतों ने बादशाह शाहजहाँ के प्रति अपनी राजभक्ति का पूरा परिचय दिया। इसमें राजस्थान के अनेक राजवंश बिलकुल नष्ट हो गये। उनमें छै बूंदी के राजकुमार थे। इन राजकुमारों में छत्रसाल ने बड़ी बहादुरी के साथ युद्ध किया था। उसके अद्भुत शौर्य का वर्णन बूंदी के इतिहास में भली प्रकार किया गया है। खाफीखाँ और बर्नियर— दोनों इतिहासकार इन बातों को स्वीकार करते हैं। भट्ट कवियों ने मेवाड़ और शिवपुर के गहिलोत और गौड़ राजपूतों का ही उल्लेख किया है। ये लोग उस युद्ध में प्रमुख थे। लेकिन वृद्ध शाहजहाँ बादशाह के सम्मान की रक्षा के लिए राजस्थानी अनेक वंशों के शूरवीर योद्धा जो इस युद्ध में आये थे, उनमें से अधिकांश मारे गये।

फतेहाबाद के इस युद्ध में जिन राजपूतों ने अपनी वीरता का प्रदर्शन किया, उनमें रतलाम का रतनसिंह विशेष स्थान रखता है। सभी इतिहासकारों ने उसकी प्रशंसा की है। रासारावरत्न नामक ग्रंथ में उसकी वीरता का वर्णन विस्तार के साथ किया गया है। रतनसिंह ने राठौर वंश में जन्म लिया था और वह राठौर 'उदयसिंह का प्रपौत्र था। उसने इस युद्ध में भयानक रूप से शत्रुओं का संहार किया।

इस युद्ध से लौटकर अपनी बची हुई सेना के साथ जयवंतसिंह अपनी राजधानी पहुँचा। उसकी रानी को जब मालूम हुआ कि वह पराजित होकर और युद्ध से भागकर आया है तो उसने अपना फाटक बंद करवा लिया और जसवंतसिंह को भीतर आने नहीं दिया। वह युद्ध में पराजित होकर भागने की अपेक्षा वहाँ पर युद्ध करते हुए मर जाना श्रेष्ठ समझती थी। इसका विस्तार में वर्णन दूसरे स्थान पर किया गया है।

शाहजहाँ बादशाह ने जिस उद्देश्य से राजपूत राजाओं को सहायता ली थी, उसमें उसे कोई सफलता न मिली। उसके विरुद्ध उसके लड़कों के विद्रोह अब और भी भयानक हो उठे। उसकी इस विपद में राजपूतों के सिवा और कोई साथी न था। जिन राजपूतों ने बादशाह की सहायता करने का बचन दिया था और जिन्होंने फतेहाबाद से युद्ध में औरंगजेब की विशाल सेना के साथ

× कोटा के इतिहास से प्रकट होता है कि राजा कोटा और उसके पाँचों भाई युद्ध में मारे गये।

* बर्नियर और खाफी खाँ—दोनों ही इस बात को स्वीकार करते हैं कि जसवन्त सिंह के साथ जो मुगल सेना आयी थी, उसके सेनापति कासिमखाँ के औरंगजेब से मिल जाने के कारण जसवन्त सिंह की पराजय हुई।

युद्ध किया था, उनमें से बचे हुए राजपूतों ने एक बार फिर से बादशाह की सहायता करने का संकल्प किया और जाजौ नामक एक ग्राम के निकट औरंगजेब की फौज का सामना किया। परन्तु इस युद्ध से भी कोई अनुकूल परिणाम न निकला। राजपूतों की पराजय हुई शाहजहाँ सिंहासन से उतार कर बंदी बनाकर रखा गया और उसका बेटा दारा वहाँ से भाग गया।

औरंगजेब ने पिता के विरुद्ध जो विद्रोह किया था, उसमें उसको पूर्ण रूप से सफलता मिली। बादशाह को बंदी बनाकर वह सिंहासन पर बैठा। अब उसके सामने उसके भाई शुजा का प्रश्न था। इसलिए उसको दमन करने के लिए औरंगजेब ने तैयारी की। इन्हीं दिनों में उसने जसवंत सिंह को संदेश भेजकर बुलवाया और आमेर के राजकुमार के द्वारा कहला भेजा कि हमारे विरुद्ध अब तक जो कुछ आपने किया है, उसे क्षमा कर दिया जायगा। परन्तु आपको शुजा के विरुद्ध युद्ध करना होगा।

औरंगजेब के साथ-साथ मुगल सिंहासन का अधिकार प्राप्त करने के लिए शाहजहाँ के विरुद्ध शुजा ने भी विद्रोह किया था। बादशाह के बंदी हो जाने पर और सिंहासन पर औरंगजेब के बैठने पर शुजा का विद्रोह औरंगजेब के साथ हो गया। वह स्वयं मुगल सिंहासन का अधिकारी बनना चाहता था। इस दशा में औरंगजेब के साथ युद्ध करने के लिए अपनी फौज लेकर रवाना हुआ और आगरा की तरफ बढ़ रहा था।

जसवंत सिंह को औरंगजेब का संदेश मिला। उसने सोच-समझकर औरंगजेब का संदेश मंजूर किया। उसने शुजा के साथ युद्ध करने की तैयारी की। इसके पहले ही औरंगजेब अपनी फौज लेकर शुजा का सामना करने के लिए रवाना हुआ। इलाहाबाद से तीस मील उत्तर की तरफ खजुआ नामक स्थान पर दोनों शाहजादों की फौजों का सामना हुआ। उनमें युद्ध आरम्भ हो गया। युद्ध के इसी अवसर पर अपनी राठौर सेना लिए हुए जसवंत सिंह वहाँ पहुँच गया। उस युद्ध को देखकर उसने समझा कि इस अवसर का लाभ उठाना चाहिए। औरंगजेब और शुजा दोनों एक दूसरे के प्राणों के घातक हो रहे हैं, उसने मोहम्मद की फौज पर आक्रमण किया और उसके सिपाहियों को काट-काटकर फेंक दिया। इसके बाद वह बादशाही डेरे की तरफ बढ़ा और वहाँ पर जो सामग्री मिली, उसको ऊँटों पर लदवाकर आगरा की तरफ रवाना हुआ। औरंगजेब और शुजा में उस समय भयानक युद्ध हो रहा था।

जिस समय जसवंत सिंह अपनी सेना के साथ आगरा पहुँचा, उसके पहले ही वहाँ पर औरंगजेब के हारने की अफवाह उड़ रही थी। ऐसे अवसर पर जसवंत सिंह का अपनी सेना के साथ वहाँ पहुँच जाना वहाँ के लोगों के लिए घबराहट का कारण हो गया। आगरा में रक्षा करने के लिए औरंगजेब की जो फौज मौजूद थी, उस अफवाह को सुनकर बहुत भयभीत हो चुकी थी। उस समय जसवंत सिंह यदि चाहता तो वहाँ की बादशाही फौज उसके सामने आत्म-समर्पण कर देती और उस समय जसवंत सिंह शाहजहाँ को कारागार से निकाल सकता था। परन्तु इस तरफ उसका ध्यान न था।

शुजा के साथ औरंगजेब का संदेश जसवंत सिंह को मिला। उस अवसर पर औरंगजेब ने बड़ी राजनीति से काम लिया। जसवंत सिंह ने उस समय समझा कि औरंगजेब शुजा के साथ युद्ध करने जा रहा है। इस अवसर का लाभ उठाना चाहिए। वह समझता था कि शाहजहाँ की वृद्धावस्था है और दारा उसका उत्तराधिकारी है। वह इस अवसर का लाभ उठा सकता है। इस-लिए उसने छिपे तौर पर दारा के साथ परामर्श किया और इस अवसर पर उसने अपने सुझाव दिये। इसके लिए दारा ने जहाँ पर जसवंत सिंह से मिलने का वादा किया था, वहाँ न पहुँचा।

इसलिए जसवंत सिंह ने उसकी सहायता के लिए जो योजना बनायी थी, वह निष्फल हो गयी।

दारा उन दिनों में मारवाड़ के दक्षिण में घूम रहा था। उसको इस समय अपने कर्त्तव्य का ज्ञान न था। औरंगजेब से बहुत भयभीत हो चुका था। उसकी अपनी शक्ति कोई काम न कर रही थी। इन्हीं दिनों में उसने सुना कि औरंगजेब से लड़ते हुए शुजा की पराजय हो गयी है। इस अवस्था में औरंगजेब से मेल कर लेने के बजाय और कोई रास्ता उसके सामने न था। इसलिए विवश होकर दारा ने मेरता पहुँचकर औरंगजेब के साथ मेल कर लिया।

आगरा पहुँच कर जसवंत सिंह वहाँ रुका नहीं। लूट का माल जितना उसके साथ, सब का सब उसने जोधा के दुर्ग में बंद करवा दिया। शुजा पर विजय प्राप्त करने के बाद कितने ही राजपूत राजा औरंगजेब के साथ हो गये। औरंगजेब आज का नहीं, बहुत पहले की अत्यन्त चतुर राजनीतिज्ञ और षड़यंत्रकारी था। वह तलवार की शक्ति की अपेक्षा षड़यंत्रों की शक्ति पर अधिक विश्वास करता था। शुजा पर विजयी होने के बाद उसने एक पत्र जसवंतसिंह के पास भेजा, जिसमें उसने जसवंतसिंह को न केवल पूर्ण रूप से क्षमा कर देने का जिक्र किया, बल्कि उसको उसने गुजरात का अधिकारी बना दिया। लेकिन इस शर्त पर कि वह किसी प्रकार दारा की सहायता न करे और हम लोगों के आपसी झगड़े में तटस्थ हो कर रहे।

औरंगजेब ने अपने पत्र में जो शर्तें लिखी थीं, जसवंतसिंह ने स्वीकार कर लिया। उन दिनों में शिवा जी के साथ दक्षिण में मुगलों का युद्ध चल रहा था। औरंगजेब ने जसवंतसिंह को वहाँ भेज दिया। दक्षिण में पहुँचकर जसवंत सिंह ने वहाँ की परिस्थियों का अध्ययन किया। अन्तरात्मा से वह औरंगजेब का पक्षपाती न था। शाहजहाँ की सहायता करने के लिए उसने औरंगजेब के साथ युद्ध किया था। परन्तु मुगल सेना के विश्वासघात करने से उसकी पराजय हुई थी और उसके बाद जो विरोधी परिस्थितियाँ सामने आयीं, उनसे विवश होकर उसे औरंगजेब की सभी बातें स्वीकार करनी पड़ीं।

जसवंत सिंह शाहजहाँ के साथ-साथ दारा का पक्षपाती था। परन्तु अपनी अयोग्यता के कारण दारा स्वयं अपनी रक्षा न कर सकता था। उसकी यह अवस्था जसवन्त सिंह के लिए बड़ी भयानक थी। परन्तु इस समय उसके सामने कोई प्रतिकार न था। वह दक्षिण में पहुँच गया था और बड़ी सावधानी के साथ वहाँ पर वह अपनी योजनाओं पर विचार कर रहा था। उसने शिवाजी के साथ पत्र-व्यवहार करना आरम्भ किया और उन पत्रों के द्वारा उसने अपना एक नया कार्यक्रम आरम्भ किया।

इसके थोड़े ही दिनों बाद औरंगजेब का प्रसिद्ध सेनापति शाइस्ताखाँ शिवाजी के साथ युद्ध करता हुआ मारा गया। उसके मरते ही जसवन्त सिंह ने उसके स्थान की पूर्ति और मुगल सेना सेनापति होकर उसने शिवाजी के साथ युद्ध आरम्भ किया। सेनापति शाइस्ताखाँ के मारे जाने का का समाचार औरंगजेब के पास पहुँचा। इस समाचार के साथ-साथ अपने दूत के द्वारा औरंगजेब ने यह भी सुना कि सेनापति के मारे जाने में जसवंत सिंह का षड़यंत्र है। इसको सुनते ही औरंगजेब के हृदय में आग लग गयी। परन्तु उसने उस समय शाँति से काम लिया और उसने जसवंत सिंह के पास अपनी इस प्रसन्नता का समाचार भेजा कि उसने सेनापति शाइस्ताखाँ के मारे जाने पर उसके स्थान की पूर्ति की है और मुगलों की फौज में किसी प्रकार की कोई निर्बलता नहीं आने दी।

जसवंत सिंह के विरुद्ध औरंगजेब के हृदय में जो आग पैदा हुई, उसको वह अधिक समय तक छिपा न सका। चुपके-चुपके प्रबंध करता रहा और जब वह अपनी व्यवस्था कर चुका तो उसने अम्बेर के राजा जयसिंह को अधिकारी बनाकर जसवंत सिंह के स्थान पर दक्षिण भेज दिया।

वहाँ पहुँचकर जयसिंह ने शिवाजी के साथ युद्ध किया और उसको गिरफ्तार करके औरंगजेब के पास भेज दिया। शिवाजी के आने पर औरंगजेब ने उसके सार्वनाश की योजना बना डाली।

जयसिंह को स्वयं इस बात का विश्वास न था कि औरंगजेब इस प्रकार का विश्वासघात करेगा। उसने शिवाजी को इस उद्देश्य से औरंगजेब के पास नहीं भेजा था। इसीलिए शिवाजी के बंदी हो जाने पर जयसिंह को मानसिक वेदना हुई। वह किसी प्रकार शिवाजी के छुटकारे की बात सोचने लगा। शिवाजी स्वयं बहुत दूरदर्शी था। बंदी जीवन से छुटकारा पाने के लिए उसने अनेक उपाय सोच डाले और किसी प्रकार अवसर पाकर वह औरंगजेब के हाथ से निकल गया।

शिवाजी के निकल जाने पर औरंगजेब को जयसिंह पर संदेह हुआ। उसने जयसिंह को हटाकर उसके स्थान पर फिर से जसवंत सिंह को नियुक्त किया। जसवंत सिंह ने इस बार मुअज्जम के साथ साजिश आरम्भ की। इस अवसर पर उसके कई कार्य देखकर औरंगजेब के मन में फिर से संदेह उत्पन्न होने लगे और अंत में उसने जसवंतसिंह को उसके पद से हटा दिया। इसके साथ ही दिलेरखाँ को प्रधान सेनापति बनाकर वहाँ भेज दिया। वह औरंगाबाद पहुँच गया। उसकी वह रात उसके जीवन में आखिरी होती, परन्तु एकाएक उसे सूचना मिली और वह तुरन्त वहाँ से चला गया। औरंगाबाद से उसके चलते ही जसवंत सिह और मुअज्जम ने उसका पीछा किया।

दिलेरखाँ—जसवंतसिंह और मुअज्जम से भयभीत हो उठा। अपने प्राण बचाने के लिए वह नर्मदा नदी की तरफ भागा। जसवंत सिंह और मुअज्जम अब तक उसका पीछा कर रहे थे। यह समाचार औरंगजेब को मिला। उसने तुरन्त जसवन्त सिंह को बुलाया और उसे गुजरात का अधिकारी बनाकर वहाँ भेज दिया। अहमदाबाद पहुँचने पर उसे मालूम हुआ कि औरंगजेब ने मुझे भयानक रूप से धोखा दिया है। सम्वत् १७२६ सन् १६७० ईसवी में वह अपने राज्य में चला गया।

औरंगजेब भयानक रूप से षड़यंत्रकारी था। अब तक उसकी सम्पूर्ण सफलता का कारण उसके षड़यंत्रों को छोड़कर और कुछ न था। उसने जसवन्त सिंह के साथ भी वही किया। जसवन्त सिह उसकी चालों से बहुत परिचित था और हृदय से उसके साथ ईर्षा रखता था। उसका यह भाव औरंगजेब से छिपा न था। वह जसवन्त सिंह से काम लेता था, परन्तु उस पर विश्वास न करता था। इस प्रकार दोनों के बीच एक गम्भीर अविश्वास चल रहा था। जसवन्त सिंह से बदला लेने के लिए औरंगजेब ने अनेक प्रकार के प्रयत्न अब तक किये थे। परन्तु उसे सफलता न मिली थी। फिर भी वह अपनी कोशिश में लगा रहा।

इन्हीं दिनों में अफगानों ने काबुल में विद्रोह कर दिया। उसका समाचार पाते ही औरंगजेब ने जसवन्त सिंह को बुलाया और बड़ी प्रशंसा के साथ काबुल का विद्रोह दमन करने के लिए उसे जाने का आदेश दिया। जसवन्त सिंह काबुल जाने की तैयारी करने लगा। उसने अपने बड़े लड़के पृथ्वीसिंह को राज्य का अधिकार सौंप दिया और मारवाड़ के शूरवीर राठौरों को लेकर काबुल की तरफ रवाना हुआ, जहाँ से लौटकर फिर वह न आया।

जसवन्त सिंह के काबुल चले जाने पर औरंगजेब ने उसके उत्तराधिकारी पृथ्वीसिंह को राज दरबार में आने के लिए सन्देश भेजा। उस संदेश को पाकर पृथ्वीसिंह औरंगजेब के पास आया। बादशाह औरंगजेब ने उसका सम्मान किया और अपने समीप उसे बिठाया। एक दिन वह औरंगजेब के दरबार में पहुँचा और उसने बादशाह को सलाम किया। औरंगजेब ने हाथ जोड़े हुए पृथ्वीसिंह को खड़े देख कर अपने समीप बुलाया और सावधानी के साथ उसके दोनों हाथों को पकड़कर गम्भीरता के साथ कहा: "राठौर, मैंने सुना है तुम्हारे हाथों में वही बल है, जो कि

तुम्हारे पिता जसवन्त सिंह के हाथों में है । अच्छा यह बताओ कि तुम क्या कर सकते हो ।"

औरंगजेब की इस बात को सुनकर पृथ्वीसिंह ने राजपूतों के स्वाभाविक गौरव को स्मरण करते हुए उत्तर दिया: "ईश्वर आपके गौरव की रक्षा करे । जब साधारण तौर पर राजा प्रजा को आश्रय देता है तो प्रजा की शक्तियाँ विशाल हो जाती हैं । आप ने तो आज मेरे दोनों हाथों को पकड़ा है । इससे मुझे मालूम होता है कि मैं अब सम्पूर्ण पृथ्वी को विजय कर सकता हूँ "

यह कहकर पृथ्वीसिंह चुप हो गया । इस समय उसके मनोभावों में अद्भुत शक्ति का संचार हो रहा था । वह बार-बार अपने गम्भीर नेत्रों से बादशाह की तरफ देखता था । इसी समय औरंगजेब ने कहा : "यह दूसरा कुट्टन मालूम होता है ।" X

जसवन्त सिंह का बेटा पृथ्वीसिंह अभी युवक था । बादशाह के बुलाने पर वह बड़ी प्रसन्नता के साथ दरबार में आया था । उसे इस बात का गर्व था कि उसका पिता जसवन्तसिंह बादशाह की तरफ से विद्रोह अफगानों के साथ काबुल में युद्ध करने गया है । उसका अन्तःकरण निर्मल था । लेकिन औरंगजेब ने अपनी जिस कुत्सित भावना से प्रेरित होकर उसके साथ यह बातचीत की थी, युवक हृदय पृथ्वीसिंह उसको समझ न सका था । दरबार की पुरानी रीति के अनुसार बादशाह की तरफ से पृथ्वीसिह को खिलत दी गयी । उसे लेते हुए पृथ्वीसिंह ने बादशाह को सलाम किया और उसे पहनकर वह जब राज दरबार से अपने नगर को जाने लगा तो उसने बादशाह को फिर एक बार सलाम किया ।

राजकुमार पृथ्वीसिंह जैसे ही अपने नगर में पहुँचा, उसके हृदय में एक साथ भयानक पीड़ा उत्पन्न हुई । उसका मस्तक चकराने लगा और थोड़ी ही देर में उसका सम्पूर्ण शरीर शक्तिहीन हो गया । लोगों के देखते-देखते उसके प्राणों का अंत हो गया । मुगल-दरबार में पृथ्वीसिंह को जो खिलत दी गयी थी, उसमें विष का प्रयोग किया गया था । उसका प्रभाव कुछ समय के बाद हुआ । उस खिलत को पहनकर पृथ्वीसिंह औरंगजेब से बिदा हुआ और अपने नगर पहुँचते-पहुँचते उसके प्राणों का अंत हो गया । *

राजकुमार पृथ्वीसिह जसवंत सिंह का बड़ा लड़का था । वह योग्य, प्रतिभाशाली और पराक्रमी था । जसवन्त सिंह पृथ्वीसिंह से बड़ी-बड़ीं आशायें रखता था । काबुल जाने के पहले उसने इसी पृथ्वीसिह को राज्य का प्रबन्ध सौंपा था । उसे क्या मालूम था कि मेरे जाने के बाद औरङ्गजेब मेरे पुत्र पृथ्वीसिह के साथ इस प्रकार विश्वासघात करेगा ।

जसवन्त सिंह ने हिन्दुकुश की तराई में राजकुमार पृथ्वीसिह की इस प्रकार मृत्यु का समाचार सुना । उसके दो लड़के और थे । जगत सिंह और दलथम्भन सिंह । वे भी जीवित न रह सके । जसवन्तसिंह के अब और कौन था, जिसका वह भरोसा करता और जिसकी आशा पर वह जीवित रहता । पृथ्वीसिंह की मृत्यु के साथ-साथ उसकी आशाओं का दीपक बुझ गया । उसे अब संसार में अंधकार दिखायी देने लगा । प्यारे पुत्र पृथ्वीसिंह की इस प्रकार मृत्यु के समाचार से जो उसे

X औरंगजेब जसवंत सिंह को कुट्टन कहकर सम्बोधन किया करता था ।

* राजपूतों के इतिहास में इस प्रकार के और भी उदाहरण पाये जाते हैं । जिसमें वस्त्रों को विषाक्त बनाकर पहनने वालों का सर्वनाश किया गया था । शत्रु को मारने के लिए इस प्रकार विष के प्रयोग प्राचीन योरप में भी किये जाते थे । उनका वर्णन हर क्यूलस ने अपने लेखों में किया है । उसने स्वीकार किया है कि पहनने के किसी वस्त्र में विष का प्रयोग करके शत्रु का सर्वनाश करने की रीतियाँ प्राचीन योरप में प्रचलित थीं ।

आघात पहुँचा, उसे वह सहन न कर सका और सम्बत् १७३७ सन् १६८१ ईसवी में उसने परलोक की यात्रा की। उसकी मृत्यु के कुछ महीनों के पश्चात् शिवा जी के जीवन का भी अन्त हुआ। औरङ्गजेब के यही दो शत्रु थे। उन दोनों की मृत्यु से औरङ्गजेब के जीवन का मार्ग साफ हो गया। एक भट्ट ग्रन्थ में जसवन्त सिंह की मृत्यु का उल्लेख करते हुए लिखा है कि जसवन्त सिंह जब तक जीवित रहा, औरङ्गजेब एक दिन भी सुख की नींद सो नहीं सका। उसके मरते ही औरङ्गजेब की सारी कठिनाइयों का अन्त हो गया।

जसवन्त सिंह ने बयालीस वर्ष राज्य किया। राजस्थान में जितने भी गौरवशाली राजा हुए हैं उन सब में जसवन्त सिंह को सम्मानपूर्ण स्थान दिया जा सकता है। वह एक स्वाभिमानी राजपूत था। मुगलों की अधीनता में रहने पर भी उसने अपने गौरव को कभी भुलाया न था। मुगलों की शक्तियों को महान समझते हुए भी सदा उसने अपने स्वाभिमान की रक्षा की थी। उसने जीवन भर औरङ्गजेब की जड़ काटने का काम किया।

जसवन्त सिंह औरङ्गजेब से घृणा करता था। लेकिन उसकी यह घृणा समस्त मुगलों के प्रति नहीं थी। उन दिनों शाहजहाँ दिल्ली के सिंहासन पर था। यदि जसवंत सिंह की घृणा का कारण राजनीतिक होता तो उसको मुगल बादशाह शाहजहाँ के साथ घृणा करना चाहिए था। लेकिन उसके साथ जसवन्त सिंह ने सदा अपनी राजभक्ति का परिचय दिया और उसके सम्मान की रक्षा में उसने फतेहाबाद में औरङ्गजेब के साथ युद्ध किया। उस युद्ध में यदि मुगल सेना और उसके सेनापति कासिम खाँ ने विश्वासघात न किया होता तो युद्ध में—जैसा कि उस समय के इतिहास-कारों का विश्वास है—जसवन्त सिंह की विजय हुई होती।

जसवन्त सिंह स्वभावत: शाहजहाँ के साथ प्रेम और औरङ्गजेब के साथ घृणा करता था। बादशाह के बड़े लड़के दारा के साथ भी उसकी मित्रता थी। लेकिन दारा स्वयं जसवन्त सिंह की मित्रता के योग्य न था। वह अयोग्य और अकर्मण्य था। इसीलिए जसवन्त सिंह और राजस्थान के अनेक दूसरे राजाओं की सहानुभूति और सहायता मिलने पर भी वह अपनी औरबादशाह शाहजहाँ की रक्षा न कर सका। शाहजादा शुजा के साथ जब औरङ्गजेब का युद्ध आरम्भ हुआ था, उस समय भी दारा को सम्भल जाने का अवसर था। उस मौके का लाभ उठाने के सम्बन्ध में जसवन्त सिंह ने दारा को परामर्श भी दिया था। परन्तु दारा कुछ न करसका। जसवन्त सिंह किसी भी अवस्था में शाहजहाँ का उद्धार करना चाहता था। इसका साधन दारा के सिवा और कुछ नहीं था इसीलिए जसवन्त सिंह ने बादशाह की तरफ से दारा को औरङ्गजेब के सामने खड़ा किया था। यदि वह यग्योग्य और अकर्मण्य न होता तो बादशाह शाहजहाँ के सिंहासन से उतारे जाने की नौबत न आती और दारा का भी पतन न होता।

शाहजहाँ और दारा के कारण ही औरङ्गजेब के साथ जसवन्त सिंह की शत्रुता बढ़ी थी। औरङ्गजेब भली प्रकार इस बात को जानता था कि बादशाह और दारा का सहायक प्रधान रूप से जसवन्त सिंह है। बादशाह को सिंहासन से उतरने के बाद औरङ्गजेब ने जो पत्र जसवन्त सिंह को भेजा था, उसमें उसने इस बात का साफ-साफ जिक्र किया था और उसने जसवन्त सिंह को गुजरात का अधिकारी इसी शर्त पर बनाया था कि वह किसी भी दशा में दारा का साथ न दे। शक्तियों के अभाव में और दारा की अकर्मण्यता में जसवन्त सिंह को औरंगजेब की लिखी हुई शर्त को स्वीकर करना पड़ा था।

इसके बाद जसवन्त सिंह को शिवा जी के साथ युद्ध करने के लिए औरंगजेब ने दक्षिण भेज दिया। वह दारा से सभी प्रकार हताश हो चुका था और शाहजहाँ सिंहासन से उतारा जा

चुका था। फिर भी उसके हृदय में पीड़ा थी उसके प्रतिकार के लिए वह औरंगजेब का हृदय से पक्षपाती न था। इसके परिणाम स्वरूप दक्षिण में पहुँच कर उसने शिवा जी के साथ एक जाल तैयार किया। औरंगजेब का सेनापति दक्षिण में युद्ध करते हुए मारा गया। उससे भी उसको शांति न मिली। औरंगजेब ने दिलेर खाँ को प्रधान सेनापति बना कर वहां भेजा। उस समय उसने दिलेर खाँ के विरुद्ध मुअज्जम को प्रोत्साहित किया।

औरंगजेब से जसवन्त सिंह की ये चालें अप्रकट न रह सकीं। परन्तु वह खुल कर जसवन्त सिंह को अपना शत्रु नहीं बनाना चाहता था। इसीलिए वह राजनीति से काम लेता रहा और जसवन्त सिंह के सर्वनाश की वह चेष्टा करता रहा। जसवन्त सिंह की जो भीतरी अभिलाषा थी, उसकी सफलता के लिए वह भी बराबर अपना कार्य करता रहा। औरंगजेब जसवन्त सिंह को समझता था और जसवन्त सिंह औरंगजेब को समझता था। दोनों ही अपने-अपने उद्देश्य की पूर्ति में लगे थे।

राजनीतिज्ञ औरंगजेब जसवन्त सिंह से जो कार्य लेना चाहता था, जसवंत सिंह उसी को अपने उद्देश्य की सिद्धि के लिए साधन बनाने की कोशिश करता था। औरंगजेब जिस अवसर। की खोज में था, वह जसवन्त सिह के काबुल जाने पर उसको मिल गया। उसने राजकुमार पृथ्वी सिंह को बुला कर उसका सर्वनाश किया और यह सर्वनाश जसवन्त सिंह की मृत्यु का कारण बना।

पृथ्वीसिंह और जसवन्त सिंह की मृत्यु के बाद मारवाड़ के राठौर राजवंश पर किस प्रकार ब्रजपात हुआ, उसका वर्णन करने के पहले राठौर सरदारों के सम्बन्ध में कुछ लिखना बहुत आवश्यक मालूम होता है। जो सामन्त और सरदार औरंगजेब के विरुद्ध जसवन्त सिंह की सदा सहायता किया करते थे, उनमें नाहर राव प्रमुख था। इस का नाम अनेक ग्रंथों में नाहरखान लिखा गया है। यह कुम्पावत वंश का शूरवीर सरदार था और उन दिनों में इसका स्थान बहुत बहुत श्रेष्ठ समझा जाता था। उसका वास्तव में नाम मुकुन्ददास था। नाहर खाँ नाम मुगल बादशाह का रखा हुआ था। उसकी घटना इस प्रकार है :

बादशाह ने मुकुन्ददास को दरबार में आने के लिए संदेश भेजा। जो बुलाने गया था, उसकी व्यवहार और बातचीत का तरीका राजपूतों के योग्य न था। इसीलिए मुकुन्ददास ने कठोर उत्तर देकर उसे वापस कर दिया। बादशाह उसके उत्तर सुन कर बहुत अप्रसन्न हुआ और जब मुकुन्ददास दरबार में आया तो उसको दण्ड देने के लिए बादशाह ने बिना किसी अस्त्र के उसको बाघ के पिंजड़े में जाने की आज्ञा दी। इस कठोर आज्ञा को सुन कर मुकुन्ददास भयभीत नहीं हुआ और मुस्कराते हुए वह बाघ के पिंजड़े की तरफ रवाना हुआ, वहाँ पहुँच कर उसने देखा कि बाघ पिंजड़े के भीतर घूम रहा है। उसके समीप पहुँचकर और उसके सामने खड़े होकर मुकुन्ददास ने कहा : 'ऐ मुगल के बाघ, आ और जसवन्त सिंह के बाघ का सामना कर।' मुकुन्ददास की इस बात को सुनकर बाघ चौकन्ना हुआ और मुकुन्ददास की तरफ देख कर उसने गरजते हुए भयानक आवाज की। मुकुन्ददास बाघ की तरफ देख रहा था। भीषण गर्जना करने के बाद बाघ ने अपना मुख दूसरी तरफ घुमा लिया और मुकुन्ददास के सामने से वह पिंजड़े में दूसरी तरफ चला गया। यह देख कर मुकुन्ददास ने ऊँचे स्वर में कहा : 'यह देखो, बाघ मेरे साथ युद्ध नहीं कर सका। रण से भागे हुए शत्रु पर आक्रमण करना राजपूतों के धर्म के विरुद्ध है।' बहुत से लोग खड़े होकर यह घटना देख रहे थे। औरंगजेब के विस्मय का ठिकाना न रहा। मुकुन्ददास के सामने गरज कर बाघ का दूसरी तरफ घूम जाना औरंगजेब की समझ में भी एक आश्चर्य की बात थी। वह मुकुन्ददास के साहस और शौर्य पर बहुत प्रसन्न हुआ। उसी समय उसने मुकुन्ददास का नाम नाहर खाँ अर्थात् बाघ पति रखा और उसे बहुत-सा इनाम दिया।

इसी अवसर पर शाहजादा औरंगजेब ने मुकुन्ददास की तरफ देखा और हँसकर कहा : "राठौर तुम्हारे अद्भुत पराक्रम को आज मैंने अपनी आँखों से देखा। अब यह तो बताओ कि तुम्हारे कितने लड़के हैं?"

मुकुन्ददास ने औरंगजेब के प्रश्न को सुना और मुस्कुराते हुए उत्तर दिया : "बादशाह, जब आपने मेरी स्त्री से जुदा करके अटक की दूसरी तरफ पश्चिम ओर भेज दिया था तो फिर मेरे लड़के कैसे पैदा हो सकते हैं।"

मुकुन्ददास के इस उत्तर को सुनकर औरंगजेब ने एक अस्वाभाविक हँसी के साथ प्रसन्नता प्रकट की। इस प्रकार की बातचीत मुकुन्ददास के साथ औरंगजेब की और भी हुई थी। किसी समय औरंगजेब ने मुकुन्ददास से कहा : "क्या आप अपने घोड़े पर बैठ कर उसको बड़ी तेजी से दौड़ाते हुए पेड़ की डाली को पकड़ कर झूल सकते हो?"

इस प्रश्न को सुनकर स्वाभिमान के साथ मुकुन्ददास ने कहा : "मैं बन्दर नहीं हूँ, राजपूत हूँ। राजपूत के समस्त कार्य तलवार के द्वारा होते हैं। किसी राजपूत की तलवार का खेल उस समय देखना चाहिए, जब शत्रु उसके सामने हो।"

मुकुन्ददास ने अपने सहज स्वभाव से औरंगजेब को इस प्रकार का उत्तर दिया था। उस समय वह शाहजादा था। परन्तु उसके व्यवहारों में बादशाहत की गन्ध थी इसीलिए मुकुन्ददास ने उसके साथ इस प्रकार की बातचीत की थी।

मुकुन्ददास की बातों को सुनकर औरंगजेब को प्रसन्नता नहीं हुई। उसके वाक्यों में जिस स्वाभिमान का प्रदर्शन होता था, औरंगजेब उसे उसका अभिमान समझता था। इसलिए वह सदा उसके सर्वनाश की बात सोचा करता था और उससे ऐसे काम लेना चाहता था, जिससे उसका विनाश हो। इसी उद्देश्य से उसने उसको देवड़ा के राजा सुरतान के विरुद्ध युद्ध करने के लिए भेजा। मुकुन्ददास ने बिना किसी प्रकार भय के शाहजादे की आज्ञा का पालन किया और अपनी राठौर सेना को लेकर वह रवाना हो गया।

देवड़ा के राजा सुरतान ने जब मुकुन्ददास को सेना के साथ आते हुए सुना तो वह पहाड़ के कठिन स्थानों पर पहुँच गया। अनुमान था कि वहाँ पर शत्रु का प्रवेश नहीं हो सकता। इस विश्वास पर वह निश्चिन्त भाव से वहां रहने लगा। एक दिन रात को सुरतान अपने दुर्ग में निर्भीकता के साथ सो रहा था। दुर्ग में भीतर से लेकर बाहर तक सन्नाटा था। केवल एक पहरेदार वहां पर मौजूद था। उस समय मुकुन्ददास अपनी सेना के साथ बढ़ा और बड़ी सावधानी के साथ वह दीवार पर चढ़ गया। वहाँ पर उसने देखा कि अकेला पहरेदार वहाँ पर खड़ा है। उसने उस पर आक्रमण किया और उसके बाद दुर्ग के उस स्थान में उसने प्रवेश किया, जहाँ पर सुरतान सो रहा था।

मुकुन्ददास ने सुरतान को उसकी पगड़ी से चारपाई के साथ बांध लिया और उस चारपाई को उठाकर वह अपने साथ ले आया। × मुकुन्ददास ने सुरतान को अपनी सेना की सुपुर्दगी में दे दिया। उसके बाद जब राठौर सेना वहाँ से लौटने लगी, उस समय देवड़ा की सेना जाग पड़ी और उसके सैनिक को जब मालूम हुआ कि राव सुरतान को शत्रु अपने साथ ले जा रहे हैं तो वे सब मिल कर सुरतान के छुड़ाने की चेष्टा करने लगे। यह देख कर मुकुन्ददास ने गरजते हुए कहा :

× कुछ लेखकों का कहना है कि देवड़ा के सुरतान की मृत्यु बहुत पहले हो चुकी थी। नाहर खाँ के समय में उसका प्रपौत्र देवड़ा अखयराज सिरोही का राव था।—अनुवादक

"देवड़ा के सैनिको, शांत होकर हमारी बात सुनो। यदि आप लोगों ने इस समय मार-काट की तो मैं राव सुरतान का सिर कटवा लूँगा। इसलिए कि उसकी जिन्दगी इस समय मेरे हाथ में है और यदि आप लोगों ने मेरा कहना मान लिया तो विश्वास रखिये कि राव सुरतान का जीवन पूर्ण रूप से सुरक्षित रहेगा और उसके सम्मान को कुछ भी क्षति न पहुँचेगी।"

मुकुन्ददास की इन बातों को सुन कर देवड़ा के सैनिक शांत हो गये मुकुन्ददास सुरतान को बन्दी बना कर ले गया और राजा जसवन्त सिंह को सौंप दिया। जसवन्त सिंह ने सिरोही के राजा सुरतान को सान्त्वना देकर कहा कि आप बादशाह से मुलाकात करें। इससे आपकी कोई हानि न होगी। राव सुरतान ने इस बात को स्वीकार कर लिया।

बादशाह से भेंट करने के लिए सुरतान शाही कर्मचारियों के साथ रवाना हुआ। रास्ते में उन कर्मचारियों ने सुरतान को समझाया कि बादशाह के सामने पहुँच कर सलाम करना। इस बात को भूल न जाना। कर्मचारियों के इस उपदेश को सुन कर राव सुरतान के स्वाभिमान को जोर का आघात पहुँचा। उसने अपने मन में कहा : "मेरे प्राण बादशाह के हाथ में हैं और मेरा सम्मान मेरे अधिकार में है। जो मेरे अधिकार में हैं, उसकी मैं रक्षा करूँगा। कर्मचारियों ने जब उसके मुख से कुछ उत्तर न सुना तो उनको संदेह पैदा हुआ लेकिन राजा जसवन्त सिंह ने राव सुर-तान सिंह के सम्बन्ध में बहुत समझा बुझाकर भेजा था। इस लिए कर्मचारियों ने बड़ी बुद्धिमानी से काम लिया।

जो कर्मचारी राव सुरतान को बादशाह के पास ले जा रहे थे, उनको विश्वास हो गया कि यह बादशाह को सलाम नहीं करेगा। इसलिए राजा जसवन्तसिंह की बातों को ध्यान में रखकर राव सुरतान को ऐसे रास्ते से बादशाह के सामने ले गये, जो एक आदमी की छाती से ऊँचा न था। उस रास्ते को पार करते ही राव सुरतान ने अपने आप को बादशाह के सामने पाया। उसका उस रास्ते से पार होना बादशाह के निकट सम्मानपूर्ण अभिवादन के रूप में स्वीकार किया गया।

बादशाह ने अपने सामने राव सुरतान को देखा। उसका वीरोचित शरीर, ऊँचा मस्तक-और साहसपूर्ण मुख मण्डल देखकर बादशाह को प्रसन्नता हुई। उसने राव सुरतान को न केवल क्षमा कर दिया, बल्कि उसकी पसन्द के अनुसार बादशाह ने उसको एक जागीर देना भी स्वीकार किया।

बादशाह की इस उदारता से राव सुरतान को संतोष नहीं मिला। वह एक स्वाभिमान राजपूत था। उसने बादशाह की इस उदारता में अपनी पराधीनता को अनुभव किया। वह अभी तक एक छोटा किंतु स्वतंत्र राजा था और राव उसकी उपाधि थी। लेकिन बादशाह इस समय उसको एक जागीर देकर अपनी अधीनता में एक सामन्त बनाना चाहता था।

राव सुरतान को इससे कभी भी संतोष न मिल सकता था। इसलिए उसने निर्भीकता के साथ कहा : "बादशाह, आप ने मुझे मेरी पसन्द के अनुसार जागीर देने का बचन दिया है। इसके लिए मैं आपका शुक्रिया अदा करता हूँ और अपनी पसन्द को आप के सामने रखते हुए कहना चाहता हूँ कि अपने छोटे-से राज्य में मुझे रहने का अवसर दिया जाय। मेरा अचलगढ़ मेरे लिए सबसे बड़ी जागीर है।"

स्वाभिमानी देवड़ा राजा सुरतान की बात को सुन कर बादशाह को किसी प्रकार का क्षोभ नहीं हुआ। उसने उदारता के साथ उसकी माँग को स्वीकार कर लिया और उसे आबू के दुर्ग में चले जाने की आज्ञा देदी, राव सुरतान अचलगढ़ वापस लौट गया।

———

सैंतीसवाँ परिच्छेद

जसवंत सिंह की गर्भवती विधवा रानी—अजित का जन्म—औरंगजेब की राक्षसी चेष्टा—मारवाड़ के सामन्तों और सरदारों के द्वारा अजित की सहायता—राठौरों और मुगलों में संघर्ष—सामन्तों की दूरदर्शिता—सामन्तों की तैयारी—अजित की रक्षा—अजित का एकान्त जीवन—जोधपुर में मुगल सेना का आक्रमण—युद्ध के लिए राणा राजसिंह की तैयारी—मुगलों के लगातार आक्रमण—नाडोल का संग्राम—शांति के लिए चेष्टा—अकबर और दुर्गादास में मेल—औरंगजेब का षड़यन्त्र—मेवाड़ और मारवाड़ का विनाश—मुगलों पर आक्रमण।

पृथ्वीसिंह की मृत्यु के समय जसवन्त सिंह काबुल में था। उसके शोक में जसवन्त सिंह ने परलोक की यात्रा की। उसके मरते ही उसकी रानी, जो उसके साथ थी, सती होने के लिए तैयार होने लगी। उसने चिता बनवाने का आदेश दिया। लेकिन वह गर्भवती थी। सात महीने का शिशु उसके पेट में था। इसलिए उसका सती होना सरदार ऊदा ने उचित नहीं समझा। उसने बड़ी सावधानी के साथ रानी से प्रार्थना की और उसे समझाया कि इस दशा में आपको सती न होना चाहिए। उससे जो पुत्र पैदा हुए थे, उनकी अकाल मृत्यु हो गयी थी। अब जसवन्त सिंह के कोई बालक न था। इसलिए साथ के सरदारों ने मिलकर गर्भवती रानी को सती होने से रोका। इस दशा में जसवन्त सिंह की रानी सती न हो सकी। जसवन्त सिंह के साथ काबुल में जो उप पत्नियाँ थीं, वे सती हो गयीं। उसकी दूसरी रानी मन्दोर नगर में रहती थी। उसको जब जसवन्त सिंह की मृत्यु का समाचार मिला तो उसने सती होने की तैयारी की और अपने पति की पगड़ी साथ में लेकर चिता में बैठी और सती हो गयी।

जसवन्त सिंह के मरने के बाद सम्पूर्ण राजस्थान में शोक मनाया गया। मारवाड़ के स्त्री-पुरुष बहुत दिनों तक दुखी रहे। जसवन्त सिंह ने मारवाड़ के गौरव की रक्षा की थी। अब वह गौरव राज्य के सभी लोगों को अरक्षित दिखायी देने लगा। मन्दिरों में घण्टों का बजना बन्द हो गया। प्रातःकाल और सायंकाल राज्य में शंख बजा करते थे, अब उनकी आवाज कहीं सुनायी न पड़ती थी। मारवाड़ की परिस्थियाँ जसवन्त सिंह के मरते ही एक साथ भयानक हो उठीं। राज्य के सभी लोग अत्यन्त भयभीत हो उठे। अब उनको कोई ऐसा दिखायी न पड़ता था। जिसके द्वारा मारवाड़ की रक्षा हो सकती। जो ब्राह्मण जसवन्त सिंह के शासन काल में निर्भीक होकर अपने धर्म का प्रचार करते थे, उनका झुकाव अब इस्लाम की तरफ दिखायी पड़ने लगा। इस प्रकार के अनेक परिवर्तन जसवन्त सिंह के मरने के बाद एक साथ सामने आये।

जसवन्त सिंह की विधवा रानी अभी तक काबुल में थी। उसके साथ बहुत-से राठौर सैनिक और शूरवीर सरदार थे। समय पर उससे एक पुत्र पैदा हुआ। अजित उसका नाम रखा गया। कुछ समय के बाद जब रानी वहाँ से आने के योग्य हो सकी तो राठौर सरदार अपने साथ के सब लोगों को लेकर काबुल से मारवाड़ की तरफ रवाना हुए। उन सब के दिल्ली में पहुँचते ही औरंगजेब ने राठौर सरदारों को आगे न जाने दिया और उसने उनको दिल्ली में ही रोक लिया। उसने शिशु अजित को सरदारों से ले लेने का प्रयत्न किया।

राठौर सरदारों के दिल्ली आते ही औरंगजेब ने उनको आदेश दिया कि वे जसवन्तसिंह के शिशु अजित को उसके हवाले कर दें। जब औरंगजेब ने देखा कि जसवन्त सिंह के सामन्त और सरदार इसके लिए तैयार नहीं हैं तो उसने सामन्तों और सरदारों को अनेक प्रकार के प्रलोभन दिये। उसने उनसे साफ-साफ कहा: "यदि तुम शिशु राजकुमार को मुझे दे दोगे तो मैं सम्पूर्ण मारवाड़ राज्य तुम सबको बाँट दूंगा।"

औरंगजेब किसी भी दशा में जसवन्तसिंह के शिशु अजित को लेना चाहता था। परन्तु मारवाड़ के सामन्तों और सरदारों ने औरंगजेब की बात को स्वीकार नहीं किया और उन सब ने यह निश्चय कर लिया कि जब तक हम लोग जीवित रहेंगे, अजित को औरंगजेब के हवाले न करेंगे। अजित के लेने के लिए औरंगजेब बराबर आग्रह करता रहा। उसने अनेक प्रकार की बातें कीं। परन्तु सामन्तों और सरदारों ने अजित को देना स्वीकार नहीं किया।

औरंगजेब ने आमखास में मारवाड़ के सामन्तों और सरदारों को बुलाकर कहा और अजित के दे देने के लिए उसने आदेश दिया। राठौर सामन्त इसके लिए तैयार न हुए और उन लोगों ने एक मत होकर औरंगजेब को उत्तर देते हुए स्पष्ट कहा: "जिन मातृभूमि के द्वारा हमारा पालन हुआ है, उस मातृभूमि की रक्षा हमारी प्रत्येक अस्थिमज्जा और नस के द्वारा होगी।"

सामन्तों और सरदारों ने किसी भी दशा में शिशु अजित को देना स्वीकार नहीं किया। वे बादशाह के आमखास से निकल कर चले आये और जहाँ पर वे ठहरे थे, वहाँ वे पहुँच गये। उसके थोड़े ही समय के बाद मुगलों की एक सेना ने आकर उनको घेर लिया। औरंगजेब के इस अत्याचार से राठौर सामन्त बहुत क्रोधित हुए किन्तु वे सावधान होकर अजित के प्राणों की रक्षा का उपाय सोचने लगे। सभी ने मिलकर एक निर्णय कर लिया। राजधानी के हिन्दुओं में मिष्ठान्न पहुँचाने की तैयारियाँ होने लगीं और टोकरों में मिठाइयाँ भर-भरकर हिन्दुओं के यहाँ भेजना शुरू कर दिया गया। इस प्रकार जो हजारों टोकरे हिन्दुओं के घरों पर पहुँचाने के लिए रवाना हुए, उनमें एक टोकरे में शिशु अजित को छिपाकर भेज दिया।

इस मिष्ठान्न के बटवाने का कार्य समाप्त होने के बाद सभी राठौरों ने अपनी तैयारी की। औरंगजेब ने इस समय जैसा व्यवहार इन राठौरों के साथ किया था, उसके बदले में युद्ध करने के सिवा और कोई भी रास्ता राठौर सामन्तों के सामने न रह गया था। इसलिए युद्ध की तैयारी कर चुकने पर और अपने-अपने घोड़ों पर बैठ कर राठौर आगे बढ़े और साथ के लोगों को ललकारते हुए राठौर सामन्तों ने कहा: "आज हम लोगों के सामने राठौरों के गौरव की रक्षा का प्रश्न है। बादशाह ने हमारे सर्वनाश की चेष्टा की है। इसलिए जो संकट हमारे सामने पैदा हुआ है, उसका हम सामना करें और मारे जाने पर स्वर्ग की यात्रा करें।"

राठौर वीरों के इन शब्दों को सुनकर भट्ट कवि सूजा ने गम्भीर होकर कहा: "मारवाड़ की लाज आज आप लोगों के हाथों में है। आप के सामने मातृ भूमि और राजपूतों के गौरव की रक्षा का प्रश्न है। अपने प्राणों की बलि देकर आपको इस गौरव की रक्षा करना है।"

इसी समय दुर्गादास ने कहा: "हिन्दुओं का सर्वनाश करके बादशाह का साहस बढ़ गया है। हम सब लोग जितना दबे हैं, उतने ही हम लोग दबाये गये हैं। आज हम सब लोग अत्याचारों का बदला लेंगे। राठौर सामन्तों ने अजित के प्राणों की किसी प्रकार रक्षा कर ली थी। परन्तु अब उनके सामने उन स्त्रियों के गौरव का प्रश्न था, जो काबुल से उनके साथ आयी थीं। उनके धर्म की रक्षा कैसे होगी, इस प्रश्न को लेकर राठौर सामन्त बार-बार सोचने लगे। मुगल सेना ने चारों ओर से घेरा डाल रखा था। उनके घेरे में बाहर ले जाने का कोई रास्ता न था।

इसलिए उन सामन्तों ने साथ की स्त्रियों के अंत करने का निर्णय किया । क्योंकि इसके सिवा उनके धर्म की रक्षा का दूसरा कोई उपाय न था । घर के भीतर एक बड़े कोठे में बहुत सी बारूद, फूस और लकड़ी एकत्रित की । राजपूत स्त्रियों ने अपने देवता का नाम लेकर उस कोठे में प्रवेश किया । उसके बाद कोठे का दरवाजा बंद कर दिया गया और एक सूराख से बारूद में आग लगा दी गयी । कोठे के भीतर एकत्रित बहुत-सी बदरूद का ढेर एक साथ जल उठा और थोड़ी देर में वे समस्त स्त्रियाँ राख के ढेर में परिणित हो गयीं ।

राठौर सामन्तों का पहला कार्य था किसी प्रकार शिशु अजित की रक्षा करना और दूसरा कार्य था अपनी स्त्रियों और लड़कियों के धर्म को सुरक्षित रखना । इन दोनों कार्यों के सम्बन्ध में जो कुछ सम्भव हो सकता था, मुगलों की राजधानी दिल्ली में उन्होंने किया । अजित की जान बचाने में उनको सफलता मिली । स्त्रियों के धर्म की रक्षा करने के लिए उनको, उनके प्राणों का अंत करना पड़ा । अब वे मुगल सेना के साथ युद्ध करने के लिए तैयार हो गये । अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित होकर राठौरों ने मुगल सेना का सामना किया । बात की बात में घमासान युद्ध जारी हो गया । उस मारकाट में दूहड़ के वंशजों ने भयानक रूप से मुगल सैनिकों का संहार किया । ×

नौ हजार मुगल सैनिकों ने थोड़े से राठौरों के साथ युद्ध आरम्भ किया था । इस लड़ाई में राठौरों. को स्वयं सफलता की आशा न थी । लेकिन युद्ध के सिवा उनके सामने और दूसरा कोई उपाय न था । उन मुगल सैनिकों से भीषण मारकाट करते हुए रत्नसिंह मारा गया । उसके बाद कई एक राठौर धराशायी हुए । चन्द्रभान ने अपने प्राणों की बलि दी । राठौरों के साथ, जो शूरवीर योद्धा थे, वे एक-एक करके मारे जाने लगे । कवि चन्द बड़े साहस के साथ अपने दोनों हाथों में तलवारें लिए हुए शत्रुओं के साथ युद्ध कर रहा था । थोड़ी ही देर में वह भी मारा गया ।

मुगल सेना के साथ थोड़े से राठौरों का यह युद्ध श्रवण कृष्णपक्ष ७ सम्वत् १७३६ सन् १६८० ईसवी में हुआ । भट्ट ग्रंथों में इस युद्ध का वर्णन भली प्रकार किया गया है । शूर वीर राठौरों ने अपने प्राण देकर शिशु अजित की रक्षा की । राठौर सामन्तों ने बड़ी बुद्धिमानी से काम लिया था । दिल्ली में पहुँच जाने के बाद अजित के प्राणों को बचाने के लिए उनके पास कोई उपाय न था । इसलिए उन्होंने मिष्ठान्न बंटवाने का प्रबंध किया और मिठाइयों से भरे हुए जो बड़े-बड़े टोकरे वहाँ से भेजे गये, उनमें एक टोकरे के भीतर राठौर सामन्तों ने अजित को छिपा दिया । यह टोकरा—जिसमें अजित छिपाया गया था—एक मुसलमान को सौंपा गया । वह पहले से राठौरों का विश्वासी था । वह टोकरा एक मुसलमान के द्वारा रवाना किया गया । इसलिए उस पर किसी शाही कर्मचारी को संदेह न हो सकता था । राठौरों की यह दूरदर्शिता थी । लोग पहले से उस मुसलमान का विश्वास करते थे । उस टोकरे को ले जाने वाला मुसलमान जानता था कि इस ठोकरे में राजा जसवंत सिंह का शिशु छिपाया गया है । राठौरों ने उससे यह बात छिपाकर नहीं रखी थी । इसमें कोई सन्देह नहीं कि उस मुसलमान ने अजित के प्राणों की रक्षा करने में सहायता की ।

वह मुसलमान एक निश्चित स्थान पर टोकरा ले कर पहुँच गया और उसके कुछ समय के बाद दुर्गादास युद्ध में बचे हुए सरदारों को साथ में लेकर वहाँ पहुँचा । उसके शरीर में सैकड़ों जख्म थे, जिनसे बराबर रक्त निकल रह था । दुर्गादास ने उन जख्मों की परवा न की । वह किसी

× मारवाड़ में दूहड़ नाम का एक राजा हुआ था । राव उसकी उपाधि थी।

प्रकार अजित को सुरक्षित देखना चाहता था। उस मुसलमान ने जिस स्थान का निश्चय हुआ था, वहाँ पर पहुँच कर जब दुर्गादास ने टोकरे में अजित को सुरक्षित और सकुशल देखा तो उसे बहुत संतोष और सुख मिला। उस समय वह अपने शरीर के सैकड़ों जख्मों की पीड़ा को भूल गया। जो मुसलमान अजित को छिपा कर टोकरा लाया था, वह राठौरों का परम विश्वासी था। वह जानता था कि राजपूतों के साथ जो उपकार किया जाता है, वह कभी व्यर्थ नहीं जाता। अजित के प्राणों की रक्षा करने वाले मुसलमान को उसके इस उपकार के बदले मारवाड़-राज्य की तरफ से जागीर दी गयी जो अब तक वंशजों में पायी जाती है। इसके साथ-साथ मारवाड़ के दरबार में उसको बहुत बड़ी प्रतिष्ठा मिली। अजित जब बड़ा हुआ तो उसने उस मुसलमान का बहुत आदर किया और अंत तक अजित उसको काका कह कर पुकारता रहा।

दुर्गादास अपने कुछ विश्वासी आदमियों के साथ राजकुमार अजित को लेकर अर्बुद पहाड़ पर चला गया और वहाँ एकान्त स्थान में रहकर वह उस बालक का पालन-पोषण करने लगा। दुर्गादास को वहाँ रहकर भी औरंगजेब का भय बना रहा। इसीलिए उसने अपने एकान्त वास का समाचार शक्ति भर किसी को प्रकट नहीं होने दिया।

धीरे-धीरे बहुत दिन बीत गये। अजित के साथ बहुत दिनों तक दुर्गादास का छिपकर रहना अप्रकट न रह सका। किसी प्रकार मारवाड़ के राजपूतों में यह अफवाह फैलने लगी कि जसवंत सिंह का पुत्र अजित जीवित है और दुर्गादास के संरक्षण में उसका पालन-पोषण हो रहा है। इस अफवाह के फैलते ही वहाँ के अगणित राजपूत आपस में एक, दूसरे से बातें करने लगे और इस बात की खोज में रहने लगे कि यह अफवाह सही कहाँ तक है। इस खोज में मारवाड़ के बहुत-से राजपूत दुर्गादास का पता लगाने के लिए बाहर निकले। वे इधर-उधर घूमते हुए आबू पहाड़ पर पहुँच गये।

राजकुमार शिशु अजित को बहुत पहले से दूनाड़ा का सरदार धनी के नाम से सम्बोधन किया करता था। जो राजपूत आबू पर्वत पर पहुँच गये थे, उन्होंने दुर्गादास और अजित का पता लगा लिया और जब वे उस स्थान पर पहुँचे जहाँ पर अजित रहा करता था तो वे राजकुमार को देखकर बहुत प्रसन्न हुए और आपस में बातचीत करके उन लोगों ने मारवाड़ के सिंहासन पर अजित को बिठाने का निश्चय किया।

आबू पहाड़ पर अजित का वह एकान्त स्थान धीरे-धीरे मारवाड़ के दूसरे राजपूतों को भी मालूम हो गया, अब वहाँ पर बहुत-से राठौर, भट्ट और चारण एकत्रित होने लगे। प्राचीन काल में ईदा नामक एक प्राचीन राजवंश मरुभूमि में राज्य करता था। ईदा परिहार राजपूतों की एक शाखा है। मारवाड़ में राठौरों का आधिपत्य कायम होने पर ईदा वंश के लोग अपने राज्य को छोड़कर दूर चले गये थे और अपना राज्य खोकर किसी प्रकार दिन बिताने लगे। परन्तु अपने राज्य के छूट जाने की वेदना अभी तक उस वंश के लोगों में थी। इस समय उनको मौका मिल गया और थोड़े ही दिनों में परिहारों का झण्डा प्राचीन मन्दोर में फहराने लगा।

इस विजय से परिहार वंश के राजपूतों को बहुत प्रोत्साहन मिला रत्नसिंह नाम के एक राठौर ने जोधपुर को जीतकर अपने अधिकार में लाने की चेष्टा की। × अमर सिंह अपने पिता के द्वारा राज्याधिकार से वंचित किया गया था। औरंगजेब ने रत्नसिंह को जोधपुर विजय करने

× कुछ लेखकों का कहना है कि रत्नसिंह गलत नाम है। उसका सही नाम रायसिंह है। वह राव अमर सिंह का बेटा था और जसवंत सिंह का भतीजा था।

के लिए तैयार किया था, परन्तु उसको सफलता न मिली। राठौर सरदारों ने अजित का पक्ष लेकर उसके साथ युद्ध किया। उस युद्ध में रत्नसिंह की पराजय हुई। वह युद्ध से भाग कर नागोर के दुर्ग में पहुँच गया। उसके बाद राठौर सरदारों ने ईदा के वंशजों पर आक्रमण किया और उन्हें मन्दोर से निकाल दिया।

औरंगजेब ने रत्नसिंह को राठौरों से लड़ाने की चेष्टा की थी। परन्तु जब उसको सफलता न मिली तो उसने स्वयं राठौर सरदारों पर आक्रमण करने की तैयारी की और एक विशाल सेना लेकर वह मारवाड़ की तरफ रवाना हुआ। मुगल सेना ने जोधपुर पहुँच कर उस नगर को घेर लिया। मुगलों की सेना इतनी बड़ी थी कि मारवाड के राठौर उसके आक्रमण को रोक न सके। औरंगजेब ने जोधा पुर को अपने अधिकार में ले लिया। इसके बाद मुगल सेना ने वहाँ पर लूट मार और भयानक अत्याचार किये। वहाँ की सम्पत्ति को लूट कर मुगल सेना ने मेरता, डिडवाना और रोहत नगरों पर आक्रमण किया, लूट मार की और निर्दयता के साथ वहाँ की सम्पत्ति लूटी।

औरङ्गजेब की मुगल सेना ने एक-एक करके मारवाड़ के सभी नगरों पर अधिकार किया। वहाँ के गावों, कस्बों और नगरों को लूटकर उनमें आग लगा दी। वहाँ के मंदिर और स्तम्भ गिरा दिये गये। देवताओं की मूर्तियाँ तोड़ डाली गयीं और अगणित हिन्दुओं को मुसलमान बनाने का कार्य किया गया। मंदिरों के स्थानों पर मसजिदें बनवाई गयीं। उसके बाद औरंगजेब अपनी फौज के साथ राजधानी लौट गया। मेवाड़ का राणा राजसिंह मारवाड़ में किये गये मुगलों के अत्याचरो को सहन न कर सका। उसने राठौरों को मिला कर मुगलों से युद्ध करने की तैयारी की। उसके साथ संग्राम करने के लिए औरंगजेब ने सत्तर हजार फौज के साथ तहब्बर खाँ को भेजा और उसको रवाना करने के पश्चात् वह स्वयं मुगलों की एक बड़ी फौज लेकर अजमेर की तरफ चला। उसके साथ युद्ध करने के लिए मेरता के सामन्तों ने तैयारी की और अपने सैनिकों को लेकर वे पुष्कर के सामने पहुँच गये। वहाँ पर बाराह का एक प्रसिद्ध मंदिर था। उस मंदिर के सामने मेरता की सेना ने मुगलों के साथ युद्ध आरम्भ किया। उनको देखते हुए मुगलों की सेना बहुत अधिक थी। यह युद्ध सम्बत् १७३६ के भादों महीने में हुआ। उसमें मेरता के सैनिक और सरदार मारे गये।

मेरता के युद्ध में विजयी होकर तहब्बर खाँ अपनी फौज के साथ आगे बढ़ा। मुरधर के के निवासी घबरा कर पहाड़ों की तरफ भागने लगे। तहब्बर खाँ की फौज का सामना करने के लिए रूपा और कूंपा नाम के दोनों भाइयों ने सेना की तैयारी की और वे दोनों बड़ी तेजी के साथ गुडा नाम के स्थान पर पहुँच गये। मुगल सेनापति के साथ बहुत बड़ी फौज थीं इसलिए अपने सैनिकों के साथ दोनों भाई मारे गये।

औरंगजेब इन दिनों में राजपूतों के सर्वनाश में लगा हुआ था। उसकी शक्तियाँ विशाल थीं। इसलिये वह भयानक अत्याचार करने में भी किसी प्रकार का सोच विचार न करता। अजय दुर्ग में पाँच दिन तक रहकर उसने चित्तौर का रास्ता पकड़ा और वहाँ पहुँचते ही उसने रोमाञ्चकारी अत्याचार आरम्भ कर दिये। राणा ने शिशु राजकुमार की रक्षा की और राठौरों के युद्ध में सीसोदिया सेना आगे रही थी।

औरंगजेब के साथ बहुत बड़ी फौज देखकर चित्तौर के लोगों ने शिशु अजित को बचाने की कोशिश की। उसे एक गुप्त स्थान में छिपा कर रखा। औरंगजेब अपनी फौज के साथ देवाड़ी के निकट आ गया। उसका सामना करने के लिए कुम्भा, उग्रसेन और ऊदा आदि कई एक राठौर शूर वीर अपनी सेना के साथ पहाड़ी मार्ग पर पहुँच गये। राठौरों ने मुगलों को रोकने की कोशिश की। औरंगजेब ने उस पहाड़ी रास्ते से होकर जब उदयपुर में आक्रमण किया, उस समय

आजम चित्तौर में था। इसी समय औरंगजेब को समाचार मिला कि दुर्गादास ने जालौर राज्य पर आक्रमण किया है। इसको सुनते ही वह अजमेर की तरफ लौट पड़ा। वहाँ जाने के पहले उसने मुकर्रम खाँ को आज्ञा दी कि वह जालौर के युद्ध में बिहारी की सहायता करे।

दुर्गादास उन दिनों में युद्ध का कर वसूल कर रहा था। वह जोधपुर पहुँचा। इन दिनों में औरंगजेब भीषण रूप से धार्मिक पक्षपात कर रहा था और हिन्दुओं के विरुद्ध उसके हृदय में आग जल रही थी। उसने इन दिनों में बार-बार प्रतिज्ञा की कि इस्लाम को छोड़कर इस देश में दूसरा कोई मजहब न रखूँगा। उसने शाहजादा अकबर को एक मुगल सेना देकर तहव्वरखाँ के पास भेज दिया। इन दिनों में मुगल फौजें चारों तरफ लूट मार कर रही थीं और उसके बाद उसके सैनिक आग लगाकर ग्रामों और नगरों का सर्वनाश कर रहे थे। ईदा लोगों ने जोधपुर में अधिकार कर लिया। परन्तु कुम्पावत लोगों ने खत्तापुर में उनका सामना किया और भयानक रूप से उनका नाश किया। मुरधर का राजा एक बार और राव की पदवी से वंचित हुआ था। यद्यपि बादशाह चाहता था कि परिहार लोग मारवाड़ पर अधिकार करें। लेकिन उसका यह इरादा सम्वत् १७३६ के जेठ महीने की त्रयोदशी को बेकार हो गया।

इन दिनों में राठौरों ने अर्बली पहाड़ पर आश्रय लिया। जहाँ पर वे जाकर रहे थे, वे स्थान अत्यन्त कठोर और जनहीन थे। वहाँ पर पहुँच कर राठौरों ने अपना सुदृढ़ संगठन किया। वे अचानक अपने पहाड़ी स्थानों से निकलकर मुसलमानों पर आक्रमण करते और उनको मार-काट कर एवम् लूटकर फिर अपने स्थानों को भाग जाते। उनके लगातार ऐसा करने से औरंगजेब की परेशानियाँ बहुत बढ़ गयीं। अनेक उपाय करने पर भी उन आक्रमणकारी राठौरों से वह मुसलमानों की रक्षा न कर सका।

इस प्रकार के आक्रमणों के द्वारा राठौरों को प्रोत्साहन मिल रहा था। उन्होंने अनेक बार एकत्रित हो कर मुगलों का विनाश करने के लिए प्रतिज्ञायें कीं। इन्हीं दिनों में उनके एक दल ने जालौर पर आक्रमण किया और उनका दूसरा दल सिवाना पर आक्रमण करने के लिए तैयार हुआ। इसका फल यह हुआ कि औरङ्गजेब को राणा के साथ युद्ध बन्द कर देना पड़ा और उसने अपनी विशाल सेना मारवाड़ भेज दी।

राणा राजसिंह ने अजित को अपने यहाँ आश्रय देकर औरङ्गजेब के साथ आग भड़कायी थी। राणा ने अपने लड़के भीम को सीसोदिया सेना का भार सौंपा और उसे राठौरों की सहायता के लिए भेज दिया। उन दिनों में इन्द्रभानु और दुर्गादास राठौर सेना के साथ गोडवाडा में मौजूद थे। भीमसिंह वहाँ पहुँच कर उनके साथ मिल गया। शाहजादा अकबर और सेनापति तहव्वर खाँ मुगल फौज को लेकर उनके मुकाबिले के लिए पहुँचे। नाडोल नगर में दोनों तरफ से भयानक युद्ध आरम्भ हुआ। इस संग्राम में दोनों तरफ के बहुत से आदमी मारे गये। राजकुमार भीम युद्ध करते हुए मारा गया। उसकी सेना ने राठौरों के साथ मिलकर मुगलों से भीषण युद्ध किया। युद्ध की परिस्थिति लगातार भयानक होती गयी। इन्द्रभानु युद्ध करते हुए ऊदावत जैदा के साथ संग्राम भूमि में गिरा और उसके प्राणों का अन्त हो गया। सोनग और दुर्गादास अन्त तक युद्ध करते रहे।

इस युद्ध में जिस प्रकार नर संहार हुआ, उसको देखकर शाहजादा अकबर घबरा उठा। उसकी समझ में न आया कि इस प्रकार का सर्वनाश किस लिए हो रहा है। उसने इस युद्ध में अपने नेत्रों से राजपूतों की वीरता का दर्शन किया। उसने सोचा, 'जो वीर राजपूत इतने शूर-वीर हैं, क्या उनके साथ मिलकर इस नर संहार को रोका नहीं जा सकता?' उसने सेनापति तहव्वर खाँ

से बातें की और इस बात को स्वीकार किया कि इस सर्वनाश का कारण हम लोगों के सिवा कोई दूसरा नहीं हो सकता। शाहजादा अकबर की बात तहव्वर खां की समझ में आ गयी। उसने उसकी बातों का समर्थन किया। सेनापति के साथ परामर्श करके शाहजादा अकबर ने अपना दूत दुर्गादास के पास भेजकर कहा : "राज्य में शान्ति कायम होने के लिए यह जरूरी है कि आपके साथ मेरी मुलाकात हो और इस सिलसिले में बातचीत हो।"

शाहजादा अकबर के द्वारा यह संदेश पाकर दुर्गादास ने राठौर सरदारों को बुलाया और शाहजादा अकबर का संदेश सुनाकर उसने उनके साथ परामर्श किया। सभी लोगों ने विरुद्ध सम्मतियाँ प्रकट कीं। किसी ने कहा, 'यवनों का विश्वास करना किसी प्रकार ठीक नहीं है। उनकी विश्वास घातकता से राजपूतों का सर्वदा नाश हुआ है।' किसी ने कहा, 'शाहजादा अकबर का संदेश किसी रहस्य से खाली नहीं है।'

दुर्गादास ने सब को समझाते हुए कहा : "आपकी सम्मतियाँ बिल्कुल ठीक हैं। हमें शत्रु का विश्वास न करना चाहिए। लेकिन यदि सच्चाई के साथ यह संदेश आपके पास भेजा गया है तो उससे आपको भयभीत होने की आवश्यकता नहीं है। विश्वास करके हमको इतना निर्बल नहीं बन जाना चाहिए कि शत्रु हमारा विनाश कर सके। इसलिए यदि आप लोग मंजूर करें तो मेरा कहना यह है कि हम सब लोग संदेश भेजकर अकबर के शिविर में चलें और उसके साथ परामर्श करें। लेकिन इतना सतर्क और सावधान रहें कि शत्रु हमको क्षति न पहुँचा सके।"

सरदारों ने दुर्गादास की बातो को स्वीकार कर लिया। उसके बाद शाहजादा अकबर से भेंट हुई। किसी प्रकार का विवाद नहीं पैदा हुआ और संधि के रूप में सारी बातें तय हो गयीं। जो कुछ निर्णय हुआ, उससे दोनों तरफ के लोगों को सुख और संतोष मिला।

अकबर ने राठौरों के साथ संधि करके अपने नाम का सिक्का चलाया। मारवाड़ और मुगल राज्य की सीमायें निर्धारित हो गयीं। राठोरों ने अकबर को बादशाह माना। मुगल साम्राज्य के सभी प्रधान सामन्तों ने उसकी बादशाहत को स्वीकार किया। उसके बाद इस प्रकार के कार्य आरम्भ हुए, जिनसे राठौरों और मुगलों की इस मित्रता को आघात पहुँचने की सम्भावना न थी।

अजमेर में औरङ्गजेब को इन सब बातों का समाचार मिला। उसके हृदय को बहुत चोट पहुँची। वह एक साथ अधीर हो उठा। मिले हुए समाचारों से उसने विश्वास कर लिया कि शाहजादा अकबर दुर्गादास के साथ मिल गया है। इस विश्वास के कारण उसके हृदय में एक आग पैदा हो गयी। उसकी अशान्ति का कोई ठिकाना न रहा। दुर्गादास और शाहजादा अकबर के मिल जाने की बात चारों तरफ फैल गयी। लोग तरह-तरह की बातें आपस में करने लगे।

अगणित राजपूतों के साथ शाहजादा अकबर अपनी फौज लिए हुए अजमेर की तरफ रवाना हुआ। यह समाचार जब औरङ्गजेब को मिला तो वह घबरा उठा और सोचने लगा, "क्या अब मुझे राजपूतों को छोड़कर अकबर के साथ युद्ध करना पड़ेगा ? क्या यह बात सही नहीं है कि शाहजादा अपनी और राजपूतों की विशाल सेना लेकर मुझे सिंहासन से उतारने के लिए आ रहा है ?" इस प्रकार की अनेक बातें सोचकर उसने बड़ी दूरंदेशी से काम लिया और सेनापति तहव्वर-खां को सम्पूर्ण भार देकर वह अपनी बेगमों के बीच में चला गया। वह सोचने लगा, "भाग्य के आधीन हैं। मनुष्य भाग्य का खिलौना होता है। भाग्य हम सब को डोरे में बांधकर नचाता है और हम को नाचना पड़ता है।"

औरङ्गजेब अपने हृदय को शान्ति देने के लिए अनेक प्रकार की बातें सोचने लगा। वह स्वभाव से षड्यन्त्रकारी था और सच्चाई की अपेक्षा वह षड्यन्त्रों पर अधिक विश्वास करता था। भयानक कठिनाइयों के समय उसने षड्यन्त्रों के द्वारा अपने जीवन में सफलता पायी थी। उसने इस समय भी उन्हीं का आश्रय लिया और तहव्वर खां के साथ उसने साजिश शुरू की। औरङ्गजेब ने अत्यन्त गुप्त रूप से उसके पास संदेश भेजा कि यदि वह शाहजादा अकबर को हमारे सिपुर्द कर सके तो उसे बहुत बड़ा पुरस्कार मिलेगा।

तहव्वर खाँ ने उस संदेश पर विश्वास कर लिया और उसने रात में छिपे तौर से बादशाह से मुलाकात की और उसके बाद उसने राठौरों को एक पत्र भेजा। उसमें उसने लिखा: "आप लोगों के साथ जो अकबर की संधि हुई थी, उसमें मैं गाँठ के रूप में था। जिस बाँध ने जल के दो भाग कर दिये थे, वह बांध टूट गया है। बाप और बेटा मिलकर एक हो गये हैं। इस दशा में सँधि की समस्त बातें अब खत्म हो जाती हैं और मैं उम्मीद करता हूं कि आप लोग लौट कर चले जायेंगे।

तहव्वर खां ने यह पत्र लिखकर तैयार किया। उसने उस पर अपनी मुहर लगायी और दूत के द्वारा उस पत्र को राठौरों के पास भेजकर वह औरङ्गजेब के पास पहुँचने के लिए रवाना हुआ। औरङ्गजेब का काम पूरा हो चुका था। उसने समझ लिया कि इस प्रकार के पत्र से अकबर के साथ राठौरों का जो सम्बन्ध कायम हुआ है, वह खत्म हो गायगा। उसने लम्बा पुरस्कार देने के वादे पर यह काम सेनापति तहव्वर खाँ से लिया था। सेनापति के पहुँचने के पहले ही औरङ्गजेब ने सोच डाला: "मैंने अपनी मरजी के मुताबिक पत्र लिखवाकर तहव्वर खाँ से राठौरों के पास भिजवा दिया है। शाहजादा के साथ राठौरों की संधि का बहुत कुछ कारण यह सेनापति तहव्वर खाँ था। इसलिए इसको पुरस्कार तो मिलना ही चाहिए। पुरस्कार लेने के लिए ही इस समय तहव्वर खां औरङ्गजेब के पास गया था। उसके सामने आते ही औरङ्गजेब के एक अधिकारी ने अपनी तलवार से उसकी गरदन को काट कर जमींन पर गिरा दिया। उसके बाद ही आधी रात को तहव्वर खां का पत्र लेकर दूत राठौरों के पास पहुँचा। उसने वह पत्र उनको दे दिया और साथ ही यह भी बताया कि तहव्वर खां मारा गया।

उस पत्र और समाचार से राठौर आश्चर्य चकित हो उठे। शाहजादा अकबर का डेरा राठौरों के डेरों से बहुत दूर न था। इसीलिए वह समाचार शाहजादा के डेरे में भी फैल गया। उस पत्र और समाचार से एक साथ गड़बड़ी पैदा हुई। राठौरों ने अकबर से मिलकर कुछ समझने की चेष्टा न की और वे तुरन्त अपने डेरे को उठा कर अकबर के डेरे से बीस मील के फासले पर चले गये।

राठौरों और शाहजादा अकबर के डेरे एक दूसरे के करीब थे। लेकिन राठौरों ने उस पत्र के सम्बन्ध में कुछ भी जाँच न की। उस पर उन्होंने एक साथ विश्वास कर लिया और तुरन्त वे वहाँ से कुछ दूरी पर चले गये। राठौरों के चले जाने के बाद शाहजादा की फौज भी आंधी में उड़ने लगी। शाहजादा अकबर अपनी बेगम के साथ था। उसके आने के पहले ही उसकी फौज अपना डेरा तोड़कर उस स्थान से रवाना हो गयी।

दूसरे दिन सबेरे शाहजादा अकबर ने सेनापति तहव्वर खां के मारे जाने और राठौर तथा अपनी सेना के यहाँ से भाग जाने का समाचार सुना। उसकी समझ में यह रहस्य न आया। सब से पहले उसने अपनी फौज को खोजा। उस समय उसके साथ एक हजार सैनिक भी न रह गये थे।

औरंगजेब की जब यह चाल भी बेकार हो गयी तो उसने अकबर के विरुद्ध एक मुगल सेना रवाना की। उसके आने का समाचार सुनकर अकबर बहुत भयभीत हुआ। उसके मन में अनेक प्रकार की, "आशंकायें पैदा होने लगीं। उसे चिन्तित देखकर दुर्गादास ने संतोष देते हुए उससे कहा: आपको किसी प्रकार की चिंता नहीं करना चाहिए। जब तक मैं जिन्दा हूँ बादशाह आप का कुछ बिगाड़ नहीं सकता।"

दुर्गादास ने राजकुमार अजीत की रक्षा का भार सोगनदेव को सौंपा और एक सेना लेकर वह दक्षिण की तरफ रवाना हुआ। शाहजादा अकबर की रक्षा के लिए दुर्गादास ने जिन विश्वासी राजपूतों को नियुक्त किया था, उनका वर्णन कबि कर्णीदान ने बड़ी सुन्दरता के साथ किया है। उन विश्वस्त राजपूतों में चम्पावतो की संख्या अधिक थी। जोधा मेरतिया, यदु, चौहान, भाटी, देवड़ा, सोनगरा और मांगलिया आदि बहुत से सरदार दुर्गादस के साथ गये थे। बादशाह ने दुर्गादास की सेना का पीछा किया। उसकी फौज ने राठौर सेना को चारो तरफ से घेर लिया। इस दशा में दुर्गादास ने एक हजार सैनिकों को साथ लेकर उत्तर दिशा की तरफ का रास्ता छोड़ दिया। औरंगजेब ने उसका पीछा किया और जब वह जालौर में पहुँचा तो उसे उस बात का ख्याल हुआ कि दुर्गादास जालौर की तरफ नहीं आया। वह गुजरात के दक्षिण तरफ और चम्बल नदी की बायीं ओर अकबर को लिए हुए नर्मदा के किनारे पर पहुँच गया।

इस समय औरङ्गजेब के क्रोध का ठिकाना न रहा। वह अपने नित्य के धार्मिक कामों को भी भूल गया और मन की उलझन में उसने कुरान को उठाकर फेंक दिया। उसके बाद उसने आजम से कहा: "उदयपुर की फतह करने के लिए मैं वहाँ पर रहूँगा। तुम्हारा सब से पहला काम यह है कि राठौरों पर आक्रमण करके अपने भाई अकबर को गिरफ्तार करो।"

बादशाह औरङ्गजेब ने अजमेर पहुँचने के दस दिनों के बाद अपनी एक सेना जोधपुर और अजमेर में छोड़ दी और वह स्वयं आगे की तरफ रवाना हुआ। दुर्गादास ने अजित की रक्षा का भार बहुत विश्वासी राठौरों को सौंपा था। इसीलिए बहुत कोशिश करने के बाद भी औरङ्गजेब को अजित का पता न मिल सका। वह कहाँ पर किस पर्वत की गुफा में छिपा कर रखा गया है, इसका पता तो मारवाड़ के लोगों को भी न था। बहुत से लोग यह जानना चाहते कि अजित कहाँ है और उसकी रक्षा किस प्रकार हो रही है। परन्तु इन बातों का कोई पता न लग सका।

बादशाह औरङ्गजेब के इन दिनों के सारे अत्याचार मेवाड़ और मारवाड़ पर राजकुमार अजित के कारण हो रहे थे। वह किसी प्रकार अजित को जीवित नहीं सुनना चाहता था। वह जानता था कि मारवाड़ के सरदारों और सामन्तों ने उसके प्राणों की रक्षा का भार अपने ऊपर लिया है। इसीलिए उसने मारवाड़ के नौ हजार ग्रामों और नगरों में भयानक अत्याचार किया था और उनको लूटकर तथा आग लगा कर स्मशान बना दिया था। यही अवस्था उसने मेवाड़ की की थी। इसलिए कि वहाँ के राणा ने अजित को और उसकी रक्षा करने वालों को अपने यहाँ आश्रय दिया था। राणा के इस अपराध के बदले औरङ्गजेब ने मेवाड़ राज्य के दस हजार ग्रामों और नगरों का भयानक रूप से विनाश किया था। उसके इन अत्याचारों के कारण मारवाड़ के राठौर सरदार और सामन्त भयभीत नहीं हुए और उनकी इस निर्भयता का कारण शूरवीर दुर्गादास था।

मेवाड़ और मारवाड़ का विध्वंस और विनाश करके इनायत खाँ ने दस हजार मुगल सेना के साथ जोधपुर में प्रवेश किया और वहीं पर उसने मुकाम किया। जोधपुर इन दिनों में मुगलों के अधिकार में था। इस पराधीनता से जोधपुर को निकालने के लिए मारवाड़ के राठौरों ने प्रतिज्ञायें कीं। कर्णोत, क्षेमकर्ण, जोधावंशी, महेचा, विजयमल, सूजावत, जैतमाल, शिवदान आदि और भी शूरवीरों ने अपनी सेनायें तैयार कीं। इन लोगों को जब मालूम हुआ कि बादशाह औरङ्गजेब ने अजमेर से आठ मील की दूरी पर आकर विश्राम किया है, उस समय राठौर सेना ने जोधपुर पहुँच कर उसकी फौज का सामना किया। परन्तु उसके बाद ही बीस हजार मुगल सेना इनायत खाँ की सहायता के लिए वहाँ पहुँच गयी। उस समय जोधपुर में मुगल फौज के साथ राठौरों का भयानक युद्ध हुआ और उस संग्राम में दोनों तरफ के बहुत से आदमी मारे गये। जोधपुर का यह संग्राम सम्वत् १७३७ आषाढ़ बदी ७ के दिन हुआ था।

इसके बाद एक दूसरा युद्ध राठौरों और मुगलों के बीच फिर हुआ। उस युद्ध में हरनाथ और कर्ण अपने परिवार के कई लोगों के साथ मारे गये। इस युद्ध का अन्त सम्वत् १७३८ के आरंभ में हुआ।

इन संग्रामों में सोनग ने जिस प्रकार अपने अद्भुत पराक्रम का परिचय दे कर युद्ध किया था, उसको देखकर औरङ्गजेब आश्चर्य में आ गया। युद्ध के बाद बादशाह ने अपना दूत उसके पास भेजा और उसके साथ संधि की बातचीत शुरू की। इसके साथ-साथ उसने उसको सात हजारी की पदवी दी और उसके वंशजों को अजमेर देकर सोनग को वहाँ का अधिकारी बना दिया।

इसके संबन्ध में एक संधि पत्र लिखा गया। उसमें औरङ्गजेब ने यह भी लिख दिया : 'मैं भगवान की कसम खाकर इस संधि पत्र पर मुहर करता हूँ और वादा करता हूँ कि इसके विरुद्ध मैं कभी कोई कार्य न करूँगा।"

इस संधि पत्र को लेकर दीवान असद खाँ वहाँ पर आया और राठौरों के बीच पहुँच कर उसने शपथ के साथ कहा, : "इस संधि के विरुद्ध बादशाह कोई भी कार्य न करेगा।"

शाहजादा अकबर के जीवन की परिस्थितियाँ इस समय भयानक हो उठीं। वह अपने साथ के सैनिकों को लेकर दक्षिण की तरफ चला गया। असद खाँ अजमेर में और सोनग मेरता नगर में रहने लगा। औरङ्गजेब की दृष्टि मेरता पर गयी। वह सोनग के संबंध में बिचार करने लगा। उसने जो राठौरों को आश्वासन दिया था, उसे उसने भुला दिया और एक ब्राह्मण को धन देकर उसने सोनग का अन्त करने के लिए रास्ता बनाया। भट्ट ग्रंथों में लिखा गया है कि उस ब्राह्मण के द्वारा सोनग की मृत्यु हो गयी। वहाँ पर यह बात स्पष्ट नहीं की गयी कि उसकी मृत्यु का कारण क्या हुआ। परन्तु इस बात का अनुमान किया जाता है कि उस ब्राह्मण के द्वारा सोनग को विष खिलाकर मारा गया।

सोनग की मृत्यु का समाचार दीवान असद खाँ ने औरङ्गजेब के पास भेजा। उससे बादशाह को बहुत संतोष मिला। उसने ब्राह्मण को जो धन दिया था, सफल हो गया।

राठौरों के साथ की गयी संधि को तोड़कर और सोनग को संसार से बिदाकर औरंगजेब दक्षिण की तरफ रवाना हुआ। इन दिनों में मेरता निवासी कल्याण के पुत्र मुकुन्दसिंह को बादशाह की तरफ से एक उपाधि दी गयी थी। मुकुन्दसिंह ने उस उपाधि को ठुकराकर मुगलों के

साथ युद्ध करने की तैयारी की । उसने मेरता के करीब दीवान आसद खाँ की सेना से एक युद्ध किया। विट्ठलदास का बेटा अजबसिंह उस युद्ध में मारा गया। यह युद्ध सम्वत् १७३८ कार्तिक सुदी २ को हुआ था। इस युद्ध में शाहजादा आजम आसदखां के साथ था। इनायतखाँ जोधपुर में रहने लगा और उसकी फौज जोधपुर के आस-पास भयानक अत्याचार करने लगी।

इनायतखां के इस अत्याचार को रोकने के लिए चन्द्रावल का अधिकारी कुम्पावत शम्भू बख्शी उदयसिंह और दुर्गादास का बेटा तेजसिंह राठौर सेना के साथ रवाना हुआ। फतहसिंह और रामसिंह शाहजादा अकबर के साथ दक्षिण गये थे। वहाँ पर शाहजादा को छोड़कर वे दोनों कुम्पावत की सहायता करने के लिए आ गये। इनके अतिरिक्त और भी बहुत से राजपूत मुगलों के साथ युद्ध करने के लिए राठौर सेना में पहुँच गये। ये लोग मेवाड़ के कुछ नगरों में फैल गये और वहाँ के मुगल अधिकारी कासिमखाँ को उन लोगों ने मार डाला।

इन दिनों में राठौरों की शक्तियाँ बहुत क्षीण हो गयी थीं और वे अब शक्तिशाली मुगल सेना के साथ युद्ध करने के योग्य न रह गये थे। इसलिए उनको पहाड़ों पर जाकर आश्रय लेना पड़ा। वे निर्बल हो गये थे। इसलिए वे पहाड़ों के ऊपर दुर्गम स्थानों में छिपे रहते थे और मौका पाकर एकाएक शत्रुओं पर आक्रमण करके उन्हें भीषण रूप से क्षति पहुँचाते थे और फिर इसके बाद वे सब लोग भागकर फिर पहाड़ों पर चले जाते थे।

इस प्रकार की परिस्थितियों में राठौरों के कई महीने बीत गये। उन्होने एक बार भयानक रूप से मुगलों की उस सेना पर आक्रमण किया, जो जेतारन नामक स्थान पर पड़ी हुई थी। राठौरों के अचानक आक्रमणों से मुगल सेना का भयानक विनाश हुआ। उसके बाद राठौर फिर भागकर अपने पहाड़ी स्थानों पर चले गये। इस प्रकार के आक्रमण करके सम्वत् १७३६ में राठौरों ने अपनी शक्तियाँ पहले की अपेक्षा अधिक मजबूत बना ली। इन्हीं दिनों में चम्पावत विजयसिंह ने सोजत का दुर्ग जीतकर अपने अधिकार में कर लिया और राजपूतों की एक सेना लेकर रामसिंह ने मुगलों के साथ एक युद्ध किया। मिर्जा तूर अली नाम का एक मुसलमान चेराई का अधिकारी था। राठौरों ने उस पर आक्रमण किया और तीन घंटे के युद्ध में हजारों मुसलमान जान से मारे गये।

चम्पावत उदयसिंह और मेरता के मोहकमसिंह ने जेतारन के युद्ध में एक राठौर सेना को भेजा था। उसके लौटने पर वे दोनों गुजरात की तरफ रवाना हुए और खेराल नगर में पहुँच कर गुजरात के अधिकारी सैयद मोहम्मद का उन्हें सामना करना पड़ा। मुस्लिम सेना ने अचानक राठौरों को घेर लिया। परन्तु रात हो जाने के कारण युद्ध नहीं हुआ। सबेरा होते ही दोनों तरफ के लोग आगे बढ़े और युद्ध आरम्भ हो गया। भाटी गोकुलदास अपने बहुत से आदमिओं के साथ मारा गया। रामसिंह ने सैयद मोहम्मद की सेना के साथ भयानक युद्ध किया। परन्तु अंत में वह भी मारा गया। इस युद्ध में राठौरों के सैनिक और सामन्त अधिक मारे गये। लेकिन पराजय मुसलमानों की हुई।

इसी वर्ष भादों के महीने में मुगल सेना ने पाली नगर पर आक्रमण किया। वहाँ पर राठौरों ने तूर अली के साथ युद्ध किया। अफजलखाँ मुगल सेना का सेनापति था। तीन सौ राठौरों ने पाँच सौ मुगलों को युद्ध में पराजित किया। उनका सेनापति अफजलखाँ मारा गया। इस युद्ध में राठौरों की तरफ से जिसने भीषण युद्ध किया था और मुगलों को पराजित किया था, उसका नाम बल्लू था।

इसके बाद उदयसिंह ने सोजत पर आक्रमण किया। जेतारण में राठौरों का फिर से प्रभुत्व कायम हुआ। बैसाख के महीने में मोहकमसिंह ने मेरता के बचे हुए मुगल सैनिकों पर आक्रमण किया। उस लड़ाई में सैयदअली मारा गया और उसके गिरते ही मुगल सेना युद्ध के क्षेत्र से भाग गयी।

लगातार युद्धों, आक्रमणों और नर-हत्याओं के साथ संबत् १७३६ खतम हुआ। इस वर्ष राठौर अधिक संख्या में मारे गये। लेकिन संख्या में बहुत कम होते हुए भी उन्होंने मुगलों के साथ भयानक युद्ध किये और भीषण रूप से शत्रुओं का नर-संहार किया। इस वर्ष की लड़ाइयों में राजस्थान के सभी राजपूत मिलकर एक हो गये थे। इसका कारण मुगलों का अत्याचार था। इसलिए जो राजपूत एक, दूसरे के साथ कभी न मिल सके थे, वे भी इन दिनों में मिलकर एक हो गये। संवत् १७३६ के आखिर में जैसलमेर के भाटी लोग भी राठौरों के साथ मिल गये थे और उन लोगों ने राठौरों की सहायता में अपने प्राणों को उत्सर्ग किया।

संवत् १७४० के आरंभ से मुसलमानों की नयी तैयारियाँ आरंभ हुईं। अब वे अपनी नवीन शक्तियों को लेकर युद्ध की तैयारियाँ करने लगे। आजम और असद खाँ भारत के दक्षिण में चले गये और वहाँ जाकर औरङ्गजेब से मिले। इनायत खाँ अधिकारी बनकर अजमेर में रहने लगा। उसे औरङ्गजेब ने आज्ञा दी थी कि राठौरों के साथ युद्ध बराबर जारी रहे और बरसात के दिनों में भी युद्ध बन्द न किया जाय।

इनायत खाँ ने यही किया। इन दिनों में मारवाड़ के सभी नगर और ग्राम मुगलों के अधिकार में थे और उनके अत्याचार से मारवाड़ सभी प्रकार मिट चुका था। जो लोग उन गाँवों और नगरों में बाकी रह गये थे, वे मुगलों के नाम से घबरा रहे थे। अपनी इस निर्बलता में मारवाड़ के वे लोग मेरवाड़ा में पहुँचकर आश्रय लेने लगे और थोड़े समय के भीतर सभी राठौर अपने परिवारों को लेकर मेरवाड़ा के पहाड़ी स्थानों पर जाकर रहने लगे।

यहाँ आकर उन लोगों ने फिर से अपना संगठन किया और भयानक कठिनाइयों में होने पर भी उन्होंने मुगलों पर आक्रमण आरंभ कर दिये। वे किसी समय अपने स्थानों से निकल कर अचानक उन गाँवों और नगरों पर आक्रमण कर देते, जो मुगलों के अधिकार में थे। उन नगरों को लूट-मार कर वे फिर अपने पहाड़ी और जंगली स्थानों को भाग जाते। मुगलों से बदला लेने के लिए भी जितने अवसर राठौरों को मिल सकते थे, उनको उन्होंने बेकार नहीं जाने दिया। राठौरों ने पाली, सोजत और गोडवाड आदि कितने ही नगरों और ग्रामों को लूट-मार कर बरबाद कर दिया।

प्राचीन मंदोर नगर का अधिकार ख्वाजा सालह नाम के एक मुस्लिम सेनापति के हाथ में था। भाटियों ने उस पर आक्रमण किया और उसे वहाँ से निकाल दिया। बैसाख के महीने में बगड़ी नाम के स्थान पर एक भयानक युद्ध हुआ। उसमें रामसिंह और सामन्त सिंह नाम के दो भाटी सरदारों ने हजारों मुसलमानों का अन्त किया और अपने दो सौ सनिकों के साथ वे दोनों सरदार मारे गये। अनूपसिंह नाम का एक सरदार कुम्पावतों को लेकर लूनी नदी के समीप पहुँचा और उसने वहाँ के मुसलमानों का संहार करना आरंभ किया। उसके इस आक्रमण से उस्तराँ और गाँगाणी नाम के दो दुर्गों से मुगलों के सैनिक भाग गये। मोहकम सिंह मेरतिया सेना के साथ अपनी प्राचीन भूमि में आया और वहाँ के रहने वाले मुसलमानों पर उसने आक्रमण किया। मुगल सेनापति मोहम्मद अली ने अपनी फौज लेकर उसका सामना किया। दोनों ओर से मारकाट

हुई। अन्त में मोहम्मद अली ने राठौरों से युद्ध बन्द करने की प्रार्थना की। उसके बाद संधि हुई।

राठौरों ने युद्ध बन्द कर दिया था और मोहम्मद अली के साथ उनको जो संधि हुई थी, उससे वे निश्चिन्त हो गये। उनको असावधान देखकर मोहम्मद अली ने संधि की उपेक्षा करके राठौर सेनापति पर आक्रमण किया और धोखे से उसे मार डाला। मुसलमानों के इस विश्वासघात का प्रभाव राठौरों पर बहुत बुरा पड़ा। उसका बदला लेने के लिए राठौरो ने इधर-उधर अपने आक्रमण आरंभ कर दिये। सुजान सिंह राठौर सेना को लेकर दक्षिण की तरफ चला गया। जोधपुर में जो मुस्लिम सेना मौजूद थी, उसके साथ राजपूतों के संघर्ष आरंभ हुए। सुजान सिंह के मारे जाने पर सेनापति संग्रामसिंह युद्ध के लिए तैयार हुआ। ❀

संग्रामसिंह उन दिनों में मनसब के पद पर था। उसको एक जागीर मिली हुई थी। उसने युद्ध की तैयारी की। शूरवीर राठौर उसके झण्डे के नीचे आकर एकत्रित हुए। संग्राम सिंह ने अपनी सेना लेकर शिवाँणची पर आक्रमण किया और उसके साथ-साथ बालोतरा तथा पञ्चभद्रा में लूटमार की।

उदयभानु जोधावत सेना के साथ भाद्राजून के सम्मुख पहुँचा और उसने वहाँ पर आक्रमण करके शत्रुओं का धन-दौलत लूटकर उनके खाने-पीने की सामग्री अपने अधिकार में कर ली। वहाँ के मुसलमानों ने सामना किया परन्तु वे लड़ न सके और जोधावत सैनिकों ने कई बार उनको पराजित किया।

पुरदिल खाँ ने सिवाना और नाहर खाँ ने मेवाटी तथा कुनारी पर अधिकार कर लिया था। इसलिए उन पर आक्रमण करने के लिए चम्पावत लोग मुकुलसर नाम के स्थान पर इकट्ठा हुए। उसी अवसर पर उन्हें समाचार मिला कि नूरअली, अशानी खानदान की स्त्रियों को अपहरण करके ले गया है। यह सुनते ही रतनसिंह राठौर सेना को लेकर रवाना हुआ। उसने कुनारी नामक स्थान पर पहुँच कर पुरदिल खाँ पर आक्रमण किया। पुरदिल खाँ के साथ छै सौ लड़ाकू सैनिक थे। उनमें से बहुत से सैनिकों के साथ पुरदिल खाँ मारा गया। उस लड़ाई में राठोरों के केवल एक सौ सैनिक मारे गये। इस पराजय को सुनते ही मिरजा दोनों अपहृत स्त्रियों को लेकर थोडा की तरफ भागा और कोचाल में पहुँच कर उसने मुकाम किया।

इस समाचार को सुनकर आसकर्ण के पुत्र सबलसिंह ने अपनी सेना को तैयार किया और अफीम खाकर मुस्लिम सेनापति के साथ युद्ध करने के लिए वह रवाना हुआ। दोनों तरफ से मारकाट आरंभ हुई। उस लड़ाई में भाटी सरदार मारा गया।

धीरे-धीरे संवत् १७४१ भी समाप्त हो गया। इन दिनों में हिन्दू मुसलमानों के जो संघर्ष बढ़े थे, उनमें किसी प्रकार कमी न आयी। इसके पश्चात् संवत् १७४२ आरंभ हुआ। इस वर्ष के आरंभ में लाखावतों और आशावतों ने साँभर पहुँच कर मुसलमानों के साथ युद्ध करने की तैयारियाँ कीं। कुछ दूसरे सामन्तों ने गोडवाड से निकल कर अजमेर के मुसलमानों पर आक्रमण

❀ संग्रामसिंह जुझारसिंह का बेटा था। वह मुगल बादशाह के यहाँ नौकर था। उसने नौकरी छोड़ कर राठौरों के साथ आकर मिल गया था।

किया और वहाँ से चलकर वे मेरता के मैदानों में पहुँच गये और वहाँ के मुसलमानों पर उन्होंने आक्रमण किया। दोनों ओर से भयानक संघर्ष हुआ।

इस लड़ाई में राठौरों की पराजय हुई। विजयी मुसलमानों ने राठौर सेना को युद्ध से भगा दिया। संग्रामसिंह असफल होने के बाद फिर से युद्ध की तैयारी करने लगा। अपनी बची हुई सेना को लेकर वह रवाना हुआ और जोधपुर के गाँवों में पहुँच कर उसने आग लगवा दी। इसके बाद दूवाड़ा नगर में वह अपनी सेना के साथ पहुँच गया। वहाँ से उसने जालौर पर आक्रमण किया। वहाँ का मुस्लिम अधिकारी घबरा उठा। परन्तु उस पर कोई अत्याचार नहीं किया गया। उसको आत्म-समर्पण करने के लिए विवश किया गया और इसके लिए उसे सम्मान पूर्वक अवसर दिया गया। इस प्रकार संवत् १७४२ भी समाप्त हो गया।

अड़तीसवाँ परिच्छेद

अजित का गुप्त रूप से पालन–राज्य में चर्चा और उत्सुकता–अजित की खोज में राज्य के सामंत–अजित के गुप्तवास का अंत–राज्य में स्वागत–औरंगजेब की चिन्तायें–उसके षड़यंत्रों का जाल–मुगलों पर आक्रमण–दुर्गादास की विजय–औरंगजेब के प्रलोभन–अजित को फँसाने की चेष्टा–मेवाड़ में घरेलू विद्रोह–संधि के नाम पर विश्वासघात–राजकुमार अजित पर आक्रमण–मुगलों की पराजय–युद्ध की फिर से तैयारियाँ–दुर्गादास के आश्रय में शाहजदा अकबर की लड़की–औरंगजेब की चिन्ता–उसके नवीन षड़यंत्र–राजपूतों के चरित्र की प्रशंसा–मुगलों के फिर अत्याचार–औरंगजेब की धूर्तनीति।

राजकुमार अजित अभी तक आबू पर्वत के किसी एक गुप्त स्थान में था। दुर्गादास ने अत्यन्त विश्वासी राठौर सरदारों को संरक्षण और पालन-पोषण का भार इन दिनों में दे रखा था। यों तो मारवाड़ में बहुतों को यह मालूम हो चुका था कि जसवन्तसिंह का अंतिम बेटा अजित जीवित है। परन्तु वह कहाँ है और उसका संरक्षण किस प्रकार हो रहा है, यह सब ठीक तौर पर किसी को मालूम न था।

सम्वत् १७४३ के आरम्भ से ही मारवाड़ में राजकुमार अजित की चर्चा अधिक होने लगी। चम्पावत, कुम्पावत, ऊदावत, मेरतिया, जोधावत, करमसोत और मारवाड़ राज्य के दूसरे सामन्त तथा सरदार राजकुमार अजित को देखने के लिए अधीर होने लगे। उन सब ने मिलकर खीची वंशीय मुकुन्द के पास दूत के द्वारा संदेश भेजा: "हम सब एक बार राजकुमार को देखना चाहते हैं।'

इस संदेश को पाकर मुकुन्द ने दूत को उत्तर दिया: "जिसने विश्वास करके राजकुमार को मुझे सौंपा है, वह इस समय दक्षिण में है।"

सरदारों को इस उत्तर से संतोष न मिला। उन सब लोगों ने निश्चय किया कि हम लोग एक बार राजकुमार के दर्शन करेंगे। इसी आधार पर मुकुन्द के पास संदेशों का आना जाना

आरम्भ हुआ। अंत में सरदारों ने उसके पास संदेश भेजा: "जब तक हम राजकुमार को देख न लेंगे, हम सब को संतोष न मिलेगा और न हम सब को खाना-पीना अच्छा लगेगा।'

सरदारों के इस आग्रह को मुकुन्द टाल न सका। उनकी बात उसे स्वीकार करनी पड़ी। सरदारों और मुकुन्द के बीच इस समय जो निर्णय हुआ, उसके अनुसार उत्सुक सामन्त और सरदार आबू पहाड़ को रवाना हुए। कोटा राज्य का हाड़ा राजा दुर्जनशाल भी उनके साथ चला। उसके साथ दो हजार सैनिक सवार साथ थे। सम्वत् १७४३ के चैत्र के महीने की अंतिम तिथि को सामन्तों और सरदारों ने राजकुमार अजित के दर्शन किये। उस समय आबू पर्वत के उस रमणीक स्थान पर, जहाँ पर राजकुमार अजित ने अब तक पालन-पोषण पाया था, उदय-सिंह, संग्रामसिंह, विजय पाल, तेजसिंह, मुकुन्दसिंह और नाहरसिंह आदि चम्पावत और रामसिंह, जगतसिंह और सामन्तसिंह आदि कुम्पावत सरदार उपस्थित थे। उनके अतिरिक्त पुरोहित खीची-मुकुन्द, परिहार और जैनश्रवक यती ज्ञान विजय भी वहाँ पर मौजूद थे।

अच्छे मुहूर्त्त में राजकुमार अजित सब के सामने लाया गया। उसको देखकर सभी को बड़ी प्रसन्नता हुई। सब से पहले हाड़ाराव ने राजकुमार को अभिवादन किया। उससे पश्चात् सभी सामन्तों ने अभिवादन करते हुए राजकुमार को स्वर्ण, मणि, मुक्ता और घोड़े भेंट में दिये। उस समय जो लोग वहाँ पर उपस्थित थे इस वक्त का दृश्य देखकर, परम संतोष अनुभव कर रहे थे।

इनायतखाँ के द्वारा यह समाचार औरंगजेब को मालूम हुआ। मुगल दरबार में उपस्थित होकर सेनापति इनायत खाँ ने ऊँचे स्वर में बादशाह से कहा, "जहाँपनाह, राजा के अभाव में जिन लोगों ने अब तक आप के साथ युद्ध किया है, वे अपने राजा की उपस्थिति में क्या करेंगे। इसका आप अनुमान लगा सकते हैं। मेरे ख्याल से अब इन लोगों को शिकस्त देने के लिए आपको एक बहुत बड़ी फौज की जरूरत है। इसके बिना आप का काम नहीं चल सकता।"

संतोष और सुख को अनुभव करते हुए राठौर सरदार राजकुमार अजित को आहोर ले गये। वहाँ के राजा ने धूम-धाम के साथ राजकुमार का स्वागत किया और बहुमूल्य हीरा जवाहिरात के साथ उसने बहुत से घोड़े भेंट में दिये। उस समान्त राजा के दुर्ग में अनेक प्रकार से अजितसिंह का स्वागत सत्कार किया गया और उसी स्थान पर टीका दौड़ की रीति पूरी की गयी।

इसके बाद राजकुमार ने सब के साथ वहाँ से प्रस्थान किया। मार्ग में रायपुर, बीडा और बारोद मिले। वहाँ के सरदारों ने स्वागत के साथ-साथ राजकुमार को भेंटें दीं। इसके बाद राज-कुमार आसोप दुर्ग में पहुँचा। वहाँ पर कुम्पावत सरदार ने उसका बहुत सत्कार किया। आसोप से भाटी सरदार की जागीर लवेरा, लवेरा से मेरता, फिरारियाँ और रियाँ से करमसोतों से खीमसर में पहुँच कर उसने वहाँ के सरदारों का स्वागत स्वीकार किया। इस प्रकार राजकुमार अजित अपने साथियों के साथ, अनेक स्थानों में पहुँचा। प्रत्येक स्थानों पर उसका स्वागत-सत्कार किया गया और सभी लोगोंने उसके झण्डे के नीचे आने के लिए वचन दिया। वतखीमसर से पाबूराव धाधल के निवास स्थान कोलूनगर में पहुँचा। वहाँ पर पाबूराव ने अपनी सेना लेकर स्वागत किया। इसके पश्चात सम्वत १७४४ के भादों मास में राजकुमार पोकरण पहुँचा। वहाँ पर दक्षिण से लौटे हुए दुर्गादास ने राजकुमार से भेंट की।

बधावना और टीकादौड़ से राजकुमार अजित के सौभाग्य का परिचय मिला। + इस अवसर पर राजकुमार का जिस प्रकार स्वागत सत्कार किया गया, उससे राठौरों के उत्साह की अपरिमित वृद्धि हुई। दुर्जनशाल ने ❀ इस अवसर पर अपने जिस उत्साह और सहयोग का परिचय दिया, उससे राठौरों को अपना भविष्य उज्वल दिखायी देने लगा।

राजकुमार अजित को पाकर राठौरों में जिस उत्साह की वृद्धि हुई, उसे देखकर बादशाह औरंगजेब का सेनापति इनायतखाँ बहुत भयभीत हुआ। उसने सोच समझ कर एक फौज तैयार की। लेकिन उसकी मृत्यु हो गयी। बादशाह ने मुहम्मदशाह नामक एक मनुष्य को जसवंतसिंह का पुत्र कहकर उसे मारवाड़ के सिंहासन पर बिठाने की चेष्टा की। ·|· राजकुमार अजित को पञ्चहजारी की उपाधि देकर बादशाह ने उसे मोहम्मदशाह की अधीनता में रखना चाहा। किन्तु मोहम्मशाह औरंगजेब के इस षड़यंत्र का सम्मान प्राप्त न कर सका। वह जोधपुर की तरफ रवाना हुआ। रास्ते में बीमार हो जाने के कारण उसकी मृत्यु हो गयी।

इन्हीं दिनों में इनायतखाँ के स्थान पर सुजावतखाँ मारवाड़ का सेनापति बनाया गया। राठौर लोग अपने राज्य में मुगलों का आधिपत्य किसी प्रकार सहन करने के लिये तैयार नहीं थे। इसलिये वे हाड़ा लोगों के साथ मिल गये और दोनों की मिली हुई सेनाओं ने मारवाड़ को स्वतंत्र करने केलिये मुगलों पर आक्रमण किया। मालपुरा और पुरमाँड़ल में जो मुस्लिम सेना थी, उस पर आक्रमण करके राजपूतों ने उसे तितर-बितर कर दिया। पुरमाँडल के दुर्ग को घेरने के समय हाड़ा राजा की एक गोले से मृत्यु हो गयी। विजय प्राप्त करने पर राजपूतों ने आठ हजार मोहरें सेना के खर्च के लिये लेकर मारवाड़ की तरफ लौट पड़े। राज्य के कई एक अधिकारी अजित की सहायता करने के लिये धन एकत्रित करने में लग गये। इस प्रकार सम्वत् १७४४ भी बीत गया।

सम्वत् १७४५ के आरम्भ में सुजावतखाँ ने मारवाड़ पर कर लगाने का निश्चय किया। इस कर में जो धन एकत्रित होगा, उसका चौथाई सुजावतखाँ को दिया जाना निश्चित रहा। इसी मौके पर इनायतखाँ का लड़का जोधपुर छोड़कर दिल्ली की तरफ रवाना हुआ। जिस समय वह रैनवाल नामक स्थान पर पहुँचा। जोधा हरनाथ ने उस पर आक्रमण किया और उसकी स्त्रियों के साथ-साथ उसकी सम्पूर्ण सम्पत्ति और सामग्री छीन ली। इस समाचार को सुनकर सुजावतखाँ अपनी सेना के साथ अजमेर से रवाना हुआ। चम्पावत मुकुन्ददास ने उस पर आक्रमण किया और उसका सब कुछ छीन लिया।

+ बधावना और टीका दौड़ की रीति के अनुसार एक मनुष्य मोतियों से भरा हुआ एक बर्तन नवीन राजा अथवा युवराज के मस्तक पर रखकर उसकी परिक्रमा करता है।

❀ इस मौके पर दुर्जनशाल चम्पावत सरदार सुजानसिंह की लड़की से विवाह करने के लिए आया था। परन्तु राजकुमार का स्वागत-सत्कार देखकर वह अपने उत्साह को दबा न सका। किसी को उससे कुछ कहना न पड़ा। वह स्वयं उत्साहित होकर युद्ध में साथ देने के लिए तैयार हो गया।

·|· जसवंतसिंह के कबीलों की रक्षा के लिए जब राठौर मुगलसेना से युद्ध करके मारवाड़ चले आये थे, उस समय दिल्ली के एक मुगल अधिकारी ने एक बालक को ले जाकर बादशाह को दिखाया था और कहा था कि यह जसवन्तसिंह का लड़का है। बादशाह ने मोहम्मदशाह नाम रखकर उसको पाला था। सम्वत् १७४५ में उसकी मृत्यु हो गई।

सम्बत् १७४७ में सफीखाँ अजमेर का सूबेदार बनाया गया। दुर्गादास ने उस पर आक्रमण करने की तैयारी की। सफीखाँ एक पहाड़ी मैदान में अपनी सेना के साथ पहुँच गया। दुर्गादास ने उस पर जोरदार आक्रमण किया और उसे मारकर अजमेर की तरफ भगा दिया।

इस प्रकार लगातार पराजय के समाचार बादशाह औरंगजेब को मिले। उसने सफीखाँ को लिखा: "अगर तुम दुर्गादास को परास्त कर सके तो मैं अपने यहाँ तुमको साम्मानपूर्ण दर्जा दूंगा और यदि तुम खुद पराजित हुए तो तुमको पदच्युत करके अपमानित किया जायगा।"

बादशाह का यह तरीका देखकर सफीखाँ बड़ी परेशानी में पड़ गया और भयभीत होकर अपने सम्मान की रक्षा के लिये वह तरह-तरह के उपाय सोचने लगा। अंत में उसने राजकुमार अजित के साथ षड़यंत्र रचने की चेष्टा की और राजकुमार को लिखा "आप का पैतृक राज वापस करने के लिये बादशाह की तरफ से मुझे अधिकार मिला है। इसलिये आप आकर मुझसे मिलें, जिससे मैं बादशाह के हुक्म की पाबंदी कर सकूँ।"

सफीखाँ का यह पत्र पाकर बीस हजार राठौर सेना के साथ राजकुमार अजित अजमेर की तरफ रवाना हुआ। रास्ते में उसे सफीखाँ पर कुछ संदेह पैदा हुआ। इसलिए उसकी असलियत को समझने के वास्ते उसने चम्पावत मुकुन्ददास को रवाना किया और वह स्वयं अपनी सेना के साथ रास्ते में रुका रहा। पर्वत श्रेणी के आगे बढ़कर कुछ दूर जाने पर मुकुन्ददास को शत्रु के षड़यंत्र का पता चल गया। उसने लौटकर राजकुमार अजित को सभी बातें बतायी। परन्तु राजकुमार उससे भयभीत न हुआ। उसने अपने सरदारों से बातचीत करते हुए कहा: "जब हम लोग इतने समीप आ गये हैं तो अजयदुर्ग पर पहुँचकर हमें सफीखाँ का रंग-ढङ्ग देख लेना चाहिए।"

इस प्रकार निर्णय करके राजकुमार अपनी सेना के साथ आगे बढ़ा। सफीखाँ को राठौर सेना के आने का समाचार मिला। वह घबरा उठा और अपनी कमजोरी को समझ कर प्राणों की रक्षा का उपाय सोचने लगा। उसने बहुत सी सम्पत्ति और घोड़ों को साथ में लेकर राजकुमार अजित के पास पहुँचा और उन्हें भेंट में देकर उसने अधीनता स्वीकार की।

संवत् १७४८ का वर्ष आरंभ हुआ। इन दिनों में राणा के विरुद्ध मेवाड़ में विद्रोह हुआ। राजकुमार अमर अपने पिता राणा जयसिंह को सिंहासन से उतार कर उस पर बैठना चाहता था। मेवाड़ राज्य के सभी सामन्तों और सरदारों ने राजकुमार अजित का साथ दिया। यह देखकर राणा जयसिंह भयभीत हो उठा और वह घबरा कर गोडवाड राज्य में भाग गया और घाणेराव में सेना का संगठन करने लगा। अमर ने उस पर आक्रमण करने की तैयारी की। राणा जयसिंह घबरा उठा। अपनी इस विपद में उसने राठौरों से सहायता माँगी। राजकुमार अजित ने राणा की सहायता करने का निश्चय किया। उसने तुरन्त मेरतिया लोगों को राणा की सहायता के लिए भेजा और उसके बाद उसने दुर्गादास और भगवानदास को रवाना किया। दुर्गादास ने जोधावंशी रिडमल्ल और मारवाड़ के आठ सामन्तों को लेकर राणा की सहायता के लिए यात्रा की। परन्तु उसके पहुँचने के पहले ही चूड़ावत, शक्तावत, झालावत और चौहानों ने पिता-पुत्र के विद्रोह को दूर कर दिया था।

इन दिनों में राठौरों का साहस और बल जिस प्रकार बढ़ रहा था, वह औरङ्गजेब से छिपा न था। इन दिनों में औरङ्गजेब की चिन्ता का एक और भी कारण था। शाहजादा अकबर की लड़की दुर्गादास के आश्रय में थी। वह अब बड़ी हो गई थी। उसके संबंध में अनेक

प्रकार की बातें सोच कर औरङ्गजेब शंकायें करने लगा। उसने सोचा कि ऐसे मौके पर राठौरों के साथ सुलह कर लेना ही बुद्धिमानी है। इसके लिए उसने नारायणदास कुलबी को मध्यस्थ बनाया। सुलह की बात-चीत आरम्भ हो गयी। संवत् १७४९ भी बीत गया।

संधि की इस बातचीत के दिनों में बादशाह की तरफ से विश्वासघात किया गया। संधि की बातों का कदाचित यही अभिप्राय था कि राठोरों को धोखे में रखा जाय। सँवत् १७५० में जोधपुर, जालौर और सिवाना के मुगल अधिकारियों ने अपनी-अपनी सेनायें एकत्रित कीं और एक साथ राजकुमार अजित पर आक्रमण किया। राठौर इस आक्रमण के लिए तैयार न थे। इस दशा में राजकुमार अजित को पहाड़ी स्थानों का आश्रय लेना पड़ा। वह बल्लभवंशी अक्षों को लेकर युद्ध के लिए तैयार हुआ और उसने मुगलों का सामना किया। परन्तु उसे लगातार पराजित होना पड़ा। इसी मौके पर चम्पावत मुकुन्ददास ने मुगलों पर आक्रमण किया। मोकलसर नामक स्थान पर दोनों ओर की सेनाओं का सामना हुआ। इस युद्ध में मुकुन्ददास ने मुस्लिम सेना को पराजित करके चाँक के अधिकारी, उसकी सेना और उसके सामन्तों को कैद कर लिया।

इस पराजय के बाद मुगलों की शक्तियाँ लगातार कमजोर पड़ने लगीं। संवत् १७५१ में मुगलों की परेशानियाँ बहुत बढ़ गयीं और उनको विवश होकर राठौरों के साथ युद्ध बंद कर देना पड़ा। मुगल राज्य के कई एक जनपदों ने राठौरों की अधीनता मंजूर की। किसी ने चौथ और किसी ने कर देना आरम्भ किया। इस वर्ष कासिमखाँ और लश्करखाँ ने मुगल राज्य की यह दशा देखकर राठौरों के विरुद्ध युद्ध की तैयारी की।

राजकुमार अजित उन दिनों में विजयपुर में था। दुर्गादास का लड़का अपनी सेना लेकर मुगलों के सामने पहुँचा। युद्ध आरम्भ हुआ। उस संग्राम में सफीखाँ को पराजित होना पड़ा। इस युद्ध में हारकर मुगल और भी निर्बल पड़ गये।

शाहजादा अकबर की लड़की अब भी दुर्गादास के आश्रय में थी। बादशाह औरङ्गजेब उसको राठौर के आश्रय से लेने का कोई प्रवंध न कर सका। उसने उसके सम्बंध में जितने भी उपाय सोचे, सभी बेकार हो गये। राठौरों के साथ सँधि करने का अभिप्राय कोई दूसरा न था। परन्तु उसका भी वह कुछ लाभ उठा न सका। इन दिनों में उसे राठौरों की शत्रुता खल रही थी और उसके साथ मित्रता का एक नाटक खेल कर वह कुछ लाभ न उठा पाता था। औरङ्गजेब ने कभी किसी का विश्वास करना नहीं सीखा था। वह षड़यंत्रों के द्वारा संसार की बड़ी-से-बड़ी शक्ति को अपने अधिकार में लाना चाहता था।

औरङ्गजेब ने जोधपुर के अधिकारी सुजावतखाँ को लिखा: "जैसे भी हो सके—जिस किसी कीमत पर मुमकिन हो, मेरे सम्मान की रक्षा करो।" औरङ्गजेब के इन शब्दों का अर्थ शाहजादा अकबर की बेटी के सम्बन्ध में था। वह उसके प्रश्न को लेकर बहुत सशंकित हो रहा था और उसे राठौरों के अधिकार से लेना चाहता था। परन्तु इसके लिए अभी तक उसको कोई मार्ग न मिला था।

इसी वर्ष मेवाड़ के राणा ने अपने छोटे भाई गजसिंह की बेटी के साथ राजकुमार अजित का विवाह सम्बन्ध निश्चित किया और इसके लिए मुक्ता जड़े हुए नारियल, बहुमूल्य हीरा मोती और दो सजे हुए हाथी तथा दस घोड़े राजकुमार अजित के पास भेजे गये।

जेठ के महीने में सीसोदिया राजकुमारी के साथ अजित का विवाह संस्कार हुआ। इसके दूसरे महीने आषाढ़ में राजकुमार अजित ने अपना दूसरा विवाह देवलिया में किया।×

बादशाह औरङ्गजेब की चिन्तायें दिन-पर-दिन बढ़ती जा रही थीं। वह सब कुछ सहन करना चाहता था, परन्तु यह नहीं चाहता था कि शाहजादा अकबर की बेटी के गौरव को किसी प्रकार आघात पहुँचे और उसके द्वारा उसका असम्मान हो। लेकिन इसके लिए उसके पास कोई उपाय न था। कभी-कभी चिन्तित होकर वह राजकुमार अजित को पत्र भेजता। परन्तु उनका कोई लाभ न मिलने पर सम्वत् १७५३ में उसने दुर्गादास के साथ पत्र व्यवहार किया। उसके फल स्वरूप अकबर की लड़की बादशाह को दे दी गयी ❀ और उसी अवसर पर राजकुमार अजित अपने पिता के सिंहासन पर बैठा। बादशाह ने दुर्गादास को पञ्चहजारी पद पर प्रतिष्ठित करने का इरादा किया। परन्तु दुर्गादास ने उसे नामंजूर करके कहा: "इसके बदले में आप मुझे जालौर, सिवानची, साँचोर और थिराद दे सकते हैं।" दुर्गादास ने शाहजादा अकबर की लड़की को जिस सम्मान के के साथ अपने यहाँ रखा था, उसे जानकर औरङ्गजेब ने दुर्गादास की बहुत प्रशंसा की।

सम्वत् १७५७ के पौष महीने में अजित फिर अपने पिता के राजसिंहासन पर बैठा। जोधपुर में जाकर उसने वहाँ के पाँचों द्वारों के सामने एक भैंसे की बलि दी। इन्हीं दिनों में सुजावतखाँ की मृत्यु हुई।

संवत् १७५९ में आजमशाह ने फिर जोधपुर में आक्रमण किया। अजितसिंह जालौर में जाकर रहने लगा। उसके कुछ सरदार शत्रुओं के साथ चले गये। इन दिनों में मुसलमानों के अत्याचार फिर से बढ़े और मथुरा, प्रयाग, तथा ओकामंडल में गोहत्यायें होने लगीं। इस समय हिन्दुओं की शक्तियाँ क्षीण पड़ रही थीं और मुसलमानों के अत्याचार बढ़ते जा रहे थे। इसी वर्ष माघ के महीने में अजित की बड़ी रानी से एक लड़का पैदा हुआ। उसका नाम अभयसिंह रखा गया।

यूसुफ खाँ इन दिनों में जोधपुर का प्रधान अधिकारी होकर रहा था। उसने जोधपुर पहुँच कर बादशाह की आज्ञानुसार मेरता प्रदेश का शासन अधिकार अजित को सुपुर्द कर दिया। मेरतिया के सरदार कुशलसिंह और धांधल गोविन्ददास को वहाँ का प्रबन्ध करने के लिए आदेश मिला। इन्द्रसिंह का पुत्र मुहकमसिंह ने शिशु अवस्था में अजित की रक्षा की थी। वह मेरतिया का अधिकार अपने लिए चाहता था। लेकिन अजित के ऐसा न करने से उसको बहुत असंतोष हुआ। इसलिए उसने बादशाह को एक पत्र लिखा: "यदि आप मुझे मारवाड़ का सेनापति बना दें तो मैं वहाँ के हिन्दू और मुसलमानों—दोनों के लिए संतोषजनक शासन कर सकता हूँ।"

× मेवाड़-राज्य में प्रतापगढ़ देवलिया नाम की एक छोटी-सी रियासत है। इसे मल्ल ने बसाया था। इसकी उत्पत्ति और प्रतिष्ठा का उल्लेख मेवाड़-राज्य के इतिहास में किया गया है।

❀ अकबर की बेटी के लौटाये जाने के सम्बन्ध में दो प्रकार के उल्लेख पाये जाते हैं। कुछ लेखकों का कहना है कि अजित की इच्छा के विरुद्ध दुर्गादास ने उस लड़की को औरंगजेब को लौटाया था। इससे अजित दुर्गादास से नाराज हुआ था। इस अवसर पर अजित राजसिंहासन पर नहीं था। था—अनु०

संवत् १७६१ में मुगलों का सौभाग्य सूर्य पश्चिम में पहुँच कर अपने अस्त होने का प्रदर्शन करने लगा। औरङ्गजेब ने मुगल राज्य के सिंहासन पर बैठकर हिन्दुओं के साथ जितने अमानुषिक अत्याचार किये थे, उनके अन्त होने का समय लोगों को साफ-साफ दिखायी देने लगा। मुरशिदकुली खाँ इधर कुछ दिनों से मारवाड़ का शासक था। इस वर्ष उसका पद माफर खाँ को दिया गया। माफर खाँ जोधपुर के राठौर सामन्त के पास आया। मोहकमसिंह ने अजित से अप्रसन्न होकर एक पत्र बादशाह के पास भेजा था। वह पत्र इस समय अजित को मिला।

मोहकमसिंह को जब यह मालूम हुआ तो वह अत्यन्त भयभीत हो उठा और अपने स्थान से भाग कर वह मुगल बादशाह की सेना में चला गया। अजित को यह अच्छा न मालूम हुआ। उसने राजद्रोही मोहकमसिंह को दण्ड देने का निश्चय किया। उसने युद्ध की तैयारी की और दूनाडा नामक स्थान पर पहुँच कर उसने बादशाह की फौज के साथ युद्ध किया। उस युद्ध में मुगल सेना की पराजय हुई। मोहकमसिंह मारा गया। यह युद्ध संवत् १७६२ में हुआ था।

संवत् १७६३ में इब्राहीम खाँ—जो लाहौर में बादशाह का सूबेदार था मारवाड़ होकर गुजरात गया। वहाँ पर उसे शाहजादा आजम से शासन का अधिकार लेना था। चैत्र मास के कृष्ण पक्ष की द्वितीया को राठौरों ने समाचार सुना कि बादशाह औरङ्गजेब की मृत्यु हो गयी। इस समाचार को सुनकर अजित घोड़े पर सवार होकर अपनी सेना के साथ जोधपुर की तरफ रवाना हुआ और वहाँ पहुँच कर राजधानी के तोरण द्वार पर, मारवाड़ की पुरानी रीति के अनुसार, उसने भैंसों का बलिदान किया।

जोधपुर में अजितसिंह के पहुँचने पर वहाँ की मुगल सेना घबरा उठी। उसका अधिकारी मुगल भयभीत होकर जोधपुर से भाग गया। अजितसिंह ने अपनी सेना के साथ जोधपुर की राजधानी में प्रवेश किया। राठौर सेना ने मुगल सूबेदार की सम्पूर्ण सम्पत्ति पर अधिकार कर लिया। इसके साथ-साथ जो मुसलमान वहाँ पर मिले, उनको कैद कर लिया। राठौरों ने इस समय जोधपुर के मुसलमानों पर आक्रमण किया और अब तक हिन्दू जाति के साथ जो अत्याचार किये गये थे, उनका पूरा तौर पर बदला लिया।

इस समय जोधपुर के मुसलमानों पर भयानक संकट था। वे किसी प्रकार अपने प्राणों की रक्षा करना चाहते थे। इसलिए जो भाग सकते थे, वे अपना सब-कुछ छोड़ कर भाग गये और जो न भाग सके, उन्होंने अपने प्राणों की रक्षा के लिए हिन्दू वेष धारण किया। बहुतों ने अपनी दाढ़ी मुड़वा ली। इतना सब होने पर भी वहाँ के बहुत से मुसलमान भयानक रूप से मारे गये। इसके बाद वहां पर अजितसिंह का राजतिलक हुआ।

औरङ्गजेब की मृत्यु हो जाने पर उसके सिंहासन को प्राप्त करने के लिए पुत्रों में प्रलोभन पैदा हुआ। दक्षिण से आजम, उत्तर से मोअज्जम—दोनों अपनी-अपनी फौजें लेकर रवाना हुए। आगरे में उन दोनो का भयंकर युद्ध हुआ। उस युद्ध में औरङ्गजेब बड़ा लड़का शाहआलम विजयी होकर मुगल सिंहासन पर बैठा और बहादुरशाह के नाम से प्रसिद्ध हुआ। सिंहासन पर बैठने के बाद उसने सुना कि अजितसिंह ने मारवाड़ में मुसलमानों के साथ बड़ा अत्याचार किया है और उसने मुसलमानों का सब कुछ छीन लिया है।

संवत् १७६४ में बरसात के बीत जाने पर नवीन मुगल बादशाह अपनी शक्तिशाली सेना लेकर अजमेर की तरफ रवाना हुआ और अजमेर पहुँच कर उसने भाई बीलडा नामक स्थान पर मुकाम किया। अजितसिंह ने बादशाही फौज का मुकाबिला करने के लिए तैयारी की। औरङ्गजेब

संघर्ष के दिनों में धूर्त व्यवहारों का अधिक आश्रय लेता था। नवीन मुगल बादशाह ने इस समय अपने पिता का अनुसरण किया। जब उसने सुना कि अजितसिंह युद्ध की तैयारी कर रहा है तो उसने अपना दूत भेजकर संधि का प्रस्ताव किया।

अजितसिंह ने संधि के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। इसके बाद बादशाह ने मारवाड़ की राज सनद देने के लिए फिर उस दूत को अजितसिंह के पास भेजा। अजितसिंह ने उसको स्वीकार करने के पहले भेंट करने की अभिलाषा प्रकट की। फागुन मास के पहले दिन अजित अपनी सेना के साथ रवाना होकर बीसलपुर पहुँच गया। बादशाह के प्रधान मंत्री खानखाना के बड़े बेटा सुजाअत खाँ ने कई एक अमीर, भदावर के राजा तथा बूँदी के राव बुधसिंह के साथ बादशाह की ओर से पीपड़ नामक स्थान पर अजितसिंह का स्वागत-सत्कार किया।

पीपड़ नामक स्थान पर एक बैठक हुई। उसमें संधि के सम्बन्ध में परामर्श होता रहा। उसके बाद आनन्दपुर नामक स्थान में मुगल बादशाह के साथ अजितसिंह की भेंट हुई। बादशाह ने अजितसिंह को 'तेजबहादुर' की उपाधि दी। वह एक तरफ अजित को प्रसन्न करने की चेष्टा कर रहा था और दूसरी तरफ उसकी दूसरी कोशिशें चल रही थीं। इसी अवसर पर बादशाह ने महराब खाँ को मुगल सेना के साथ जोधपूर पर अधिकार करने के लिए भेज दिया था। बिश्वासघाती मोहकम इसके साथ गया था। जिस समय बादशाह ने अजितसिंह को अपने आदर-सत्कार में उलझा रखा था, महराबखाँ ने बड़ी आसानी के साथ जोधपुर में अधिकार कर लिया।

जिस समय अजितसिंह को यह मालूम हुआ कि मुगल सेना को लेकर महराबखाँ ने जोधपुर को अपने अधिकार में कर लिया है तो उसे बड़ा क्रोध आया। उस समय बादशाह ने फिर बड़ी चालाकी से काम लिया। अजितसिंह को आवेश में देखकर उसने अपने मन के भावों को छिपाकर रखा और तरह-तरह से वह अजितसिंह की खुशामद करता रहा। बादशाह ने उसको आलम के साथ दक्षिण जाने और कामबख्श की सहायता करने के लिए विवश किया। आमेर का राजा जयसिंह इस समय बादशाह के साथ था। उसने बादशाह का व्यवहार देखा। उसमें अजित को फँसाने के लिए एक जाल के सिवा और कुछ न था। इसलिए उसको बड़ा असंतोष हुआ।

इसी मौके पर बादशाह शाह आलम ने छिपे तौर पर अपनी एक फौज आमेर राज्य को भेज दी। उसने वहाँ जाकर उस राज्य पर अधिकार कर लिया और जयसिंह के छोटे भाई विजयसिंह को वहाँ का अधिकारी बना दिया। उस समय जयसिंह और अजितसिंह को लेकर बादशाह दक्षिण चला गया था। उस यात्रा में औरङ्गजेब के बेटे बादशाह शाह आलम ने राजपूत सेनाओं का लाभ उठाया। जयसिंह और अजितसिंह—दोनों अब बादशाह की चालों को साफ-साफ समझने लगे। नर्मदा नदी को पार करने के बाद दोनों राजपूत राजा अपनी सेनाओं के साथ बिना बादशाह से कुछ कहे-सुने राजस्थान की तरफ वापस लौट पड़े। रवाना होने के पहले उन दोनों राजाओं ने अपना एक कार्यक्रम बना लिया।

अजितसिंह और जयसिंह की सेनायें सबसे पहले उदयपुर पहुँची। राणा अमरसिंह ने राजधानी से निकल कर उनका स्वागत किया और दोनों राजाओं को वह अपनी राजधानी में ले गया। उसके बाद अजितसिंह और जयसिंह मारवाड़ में पहुँचे। उनके अहवा में पहुँचने पर चम्पावत सरदार उदयभानु के पुत्र संग्रामसिंह ने उनका स्वागत किया और उसने अपने मस्तक से

पगड़ी उतार कर दोनों राजाओं के आगे बिछा दी। उस पर पैर रखते हुए दोनों राजा आगे बढ़े और सामन्त उदयभानु के यहाँ पहुँच गये।

सम्वत् १७६५ के सावन महीने में मुगलों की परिस्थितियाँ फिर बिगड़ने लगीं। महराबखाँ को जब मालूम हुआ कि अजितसिंह अपनी सेना के साथ लौटकर मारवाड़ आ गया है तो बहुत भयभीत हुआ। इन्हीं दिनों में तीस हजार राठौरों की सेना ने जोधपुर पहुँचकर उसकी राजधानी को घेर लिया। महराबखाँ ने भयभीत होकर आत्म समर्पण किया। आसकरन के पुत्र ने उस समय उसके प्राणों की रक्षा की। उसके बाद अजितसिंह वहाँ से लौट कर अपनी राजधानी में आ गया।

राजा जयसिंह अपने राज्य से निकल कर इन दिनों में सूरसागर के समीप रहने के लिए चला गया था। बरसात के बीत जाने पर कछवाहों के श्रेष्ठ सामन्त अजयमल ने जयसिंह को फिर सिंहासन पर बिठाने का इरादा किया। जयसिंह ने अजितसिंह के साथ सेना लेकर मेरता की तरफ यात्रा की। उन दोनों राजाओं की सेनाओं के मेरता पहुँचने पर दिल्ली और आगरा में घबराहट पैदा हुई।

अजितसिंह और जयसिंह की सेनायें मेरता से चल कर अजमेर पहुँच गयीं। वहाँ का मुगल शासक घबरा उठा और वह ख्वाजा कुतुब मोहम्मदी नाम के एक फकीर की मसजिद में चला गया और वहाँ से उसने अजितसिंह के पास संदेश भेजकर अपने प्राणों की रक्षा के लिए प्रार्थना की। उसने दण्ड स्वरूप अजितसिंह को बहुत सी सम्पत्ति दी। इसके बाद अजितसिंह ने आमेर राज्य पर आक्रमण किया। उस राज्य के सभी सामन्त राजा जयसिंह से जाकर मिल गये। आमेर की मुगल सेना के अधिकारी सैयद हूसेन ने बारह हजार मुगलों को लेकर साँभर झील के किनारे अजितसिंह के साथ युद्ध किया।

इस युद्ध में छै हजार मुगलों के साथ सैयद हुसेन मारा गया। उसकी बाकी सेना युद्ध क्षेत्र से भाग गयी। इस पराजय की खबर पाते ही मुसलमान लोग, साँभर छोड़कर इधर-उधर भागने लगे। अजितसिंह ने माघ के महीने में अपनी एक सेना साँभर में रखी और आमेर का राज्य उसने जयसिंह को दे दिया। बीकानेर पर आक्रमण करने का पहले से ही इरादा अजितसिंह का था। उसने रघुनाथ भण्डारी को दीवान की उपाधि दे कर साँभर का अधिकारी बना दिया और वह अपनी सेना लेकार बीकानेर की तरफ रवाना हुआ।

सम्वत् १७६६ के भादों महीने में बादशाह शाह आलम ने कामबख्श को मरवा डाला। वह कामबख्श से हमेशा जला करता था। ❀ राजा जयसिंह ने मुगल बादशाह के साथ संधि करने के लिए फिर से प्रस्ताव किया। मारवाड़ के राजा अजितसिंह ने नागौर पर अपनी सेना भेजकर अधिकार कर लिया। नागौर के राजा इन्द्रसिंह ने अजित के सामने आत्म-समर्पण किया। इन्द्रसिंह जसवन्तसिंह के बड़े भाई अमरसिंह का लड़का था और विश्वासघाती मोहकमसिंह का पिता था। वह अजितसिंह से अप्रसन्न होकर मुगलों से मिल गया था। अजितसिंह ने उसके आत्म-समर्पण करने पर नागौर के स्थान पर लाडनू का अधिकार उसे दे दिया।

❀ कामबख्श औरंगजेब का लड़का था। वह उसके बुढ़ापे में एक राजपूत स्त्री से पैदा हुआ था। औरंगजेब उससे बहुत प्रेम करता था।

इन्द्रसिंह को इससे संतोष न हुआ। वह नागौर का राज्य लेना चाहता था। इसलिए उसने मुगल बादशाह के पास जाकर कहा कि अजितसिंह ने नागौर पर अधिकार कर लिया है। मुगल बादशाह इस खबर को सुनकर अजितसिंह से बहुत अप्रसन्न हुआ। उसी समय अजितसिंह को मालूम हुआ कि इन्द्रसिंह ने मुगल बादशाह को भड़काने की चेष्टा की है। लेकिन इस समय किसी तरफ से कोई असंगत बात पैदा नहीं हुई और दोनों ने मिल कर उस झगड़े को निपटाने का इरादा किया।

मुगल बादशाह के साथ झगड़े का निपटारा करने के लिए राजपूत डीडवाना नगर के करीब कोलिया नामक स्थान पर पहुँच गये। बादशाह दिल्ली से अजमेर चला गया। अजितसिंह के साथ राजस्थान के और भी राजा लोग थे, जिनको धमकी मिली थी और जो बादशाह के साथ एक संघर्ष का निर्णय करने के लिए वहाँ पर आये थे। मुगल बादशाह ने उनके साथ मित्रता का प्रदर्शन आरम्भ किया। उसने राजाओं के पास जो वहाँ पर एकत्रित हुए थे, अपने हाथ की सनदें भेजीं। उनको लेकर नाहर खाँ राजाओं के पास गया।

आषाढ़ मास के पहले दिन मारवाड़ और आमेर के राजाओं ने उन सनदों को प्राप्त किया। इसके बाद वे बादशाह से भेंट करने के लिए अजमेर गये। बादशाह ने आदरपूर्वक उनसे भेंट की। वहाँ से दोनों राजपूत राजा शासन की सनदें लेकर वापस लौटे। अजितसिंह सम्वत् १७६७ के श्रावण के महीने में जोधपुर की राजधानी में आकर अपने पिता के सिंहासन पर बैठा। इस वर्ष उसने गौड़ राजकुमारी के साथ विवाह किया।

अर्जुनसिंह ने दिल्ली के आमखास दरबार में अमरसिंह को जान से मार डाला था। उससे राठौर लोगों के साथ उसकी शत्रुता बढ़ गयी थी। अजितसिंह ने इस शत्रुता को मिटाकर उसके साथ मैत्री कायम की। इसके पश्चात् वह उस कुरुक्षेत्र को चला गया, जहाँ पर कौरवों और पाण्डवों का युद्ध हुआ था। इस तरह से १७६७ का सम्वत् समाप्त हो गया।

मारवाड़ के राठौरों को बहुत समय तक जीवन के संघर्ष में रहना पड़ा। उनको विभिन्न प्रकार के कष्टों का सामना करना पड़ा। परन्तु दुर्भाग्य के उन दिनों में भी उन लोगों ने अपने जिस उज्वल चरित्र को कायम रखा और विपदाओं की पराकाष्ठा में पहुँच जाने के बाद भी उन्होंने अपनी जिस राजभक्ति का परिचय दिया, उसकी उपमा संसार के इतिहास में खोजने पर भी आसानी से न मिलेगी।

मारवाड़ के भट्ट ग्रंथों से जाहिर होता है कि संघर्ष के इस दीर्घकाल में वहाँ के एक सामन्त ने भी स्वाभाविक मृत्यु नहीं पायी। इसका साफ अर्थ यह है कि मारवाड़ में तीस वर्ष तक लगातार युद्ध का जो संघर्ष जारी रहा, उस दीर्घकाल में मारवाड़ के सभी सामन्त और सरदार—जिन्होंने परलोक गमन किया—वे केवल युद्ध में मारे गये। उनमें से एक भी बीमार होकर और चारपाई पर लेट कर नहीं मरा।

मारवाड़ के राठौर राजपूतों के चरित्र की कई श्रेष्ट बातें हमारे सामने आती हैं। बादशाह की तरफ से अपरिमित सम्पत्ति देकर देश और धर्म के विरुद्ध उनको आकृष्ट किया गया। परन्तु सम्पत्ति और राज्य के प्रलोभन में एक भी राठौर ने देशद्रोह और जातिद्रोह न किया। उनको भयानक विपदाओं में रह कर मृत्यु का आलिंगन करना स्वीकार था, परन्तु सम्पत्ति और सम्मान के नाम पर उनको जातिद्रोह करना मंजूर न था।

मारवाड़ के राठौर दुर्गादास की तरह स्वाभिमानी और चरित्रवान व्यक्ति संसार की अन्य जातियों में बहुत कम मिलेंगे। उसने मृत्यु का सामना करके जसवन्तसिंह के पुत्र शिशु अजित के प्राणों की रक्षा की। सम्पत्ति और राजा के बड़े से बड़े प्रलोभन भी कर्त्तव्य परायणता से उसको डिगा न सके थे। राजस्थान के राजपूतों ने अपने जिस कर्त्तव्य का परिचय दिया है, उसकी तुलना में अन्य जातियों के इतिहास से उदाहरण निकाल कर उपस्थित करना एक व्यर्थ का प्रयास मालूम होता है। बादशाह औरङ्गजेब के साथ राठौरों की जो शत्रुता चल रही थी, उसको यहाँ पर लिखने की आवश्यकता नहीं है। औरङ्गजेब का लड़का शाहजादा अकबर विद्रोही हो गया। उस समय षड़यन्त्रकारी और निर्दय पिता से बचने की उसे आशा न रह गयी। उसे चारों तरफ अंधकार दिखाई देने लगा। उसका कोई अपना न रहा, जो उस संकट के समय उसकी सहायता करता और औरङ्जेग से उसके प्राणों की रक्षा हो सकती। उस समय शाहजादा अकबर ने मुगलों के परम शत्रु राठौरों का आश्रय लिया और उन राठौरों ने भयानक संघर्षों का सामना करके शाहजादा अकबर के प्राणों की रक्षा की।

शाहजादा अकबर के सिलसिले में, उसके परिवार की रक्षा का उत्तरदायित्व राठौरों को सौंपा गया। बहुत समय तक अकबर का परिवार राठौरों के आश्रय में रहा। उन दिनों में उसके परिवार को जो सम्मान प्राप्त हुआ, उसको लिखकर प्रकट करना सम्भव नहीं है। अकबर की एक लड़की थी। उसने यौवनावस्था में प्रवेश किया था। उसके सम्बन्ध में बादशाह औरंगजेब को जो चिन्तायें हुई थीं और उस नवयुवती शाहजादी को राठौरों के आश्रय से निकालने के लिए औरंगजेब ने जो प्रयास किये थे, उनका उल्लेख पिछले पृष्ठों में किया जा चुका है। वह शाहजादी रठौरों के आश्रय में कितनी सुरक्षित रही थी और किस मान-मर्यादा के साथ उसका उन दिनों का जीवन व्यतीत हुआ था। उस पर यहाँ कुछ लिखने की आवश्यकता नहीं मालूम होती। उस संरक्षण और श्रेष्ठ सम्मान का अनुमान इसी से किया जा सकता है कि उस शाहजादी को रोठौरों के अधिकार से निकालने के लिए जब बादशाह औरंगजेब के सारे प्रयत्न असफल हो गये तो उसने राठौर के साथ मित्रता की। उस समय राठौरों ने उस शाहजादी को लाकर बादशाह औरंगजेब को सुपुर्द कर दिया। शाहजादी को पाकर और उसके मुख से अजितसिंह, दुर्गादास और दूसरे राठौरों की प्रशंसा सुनकर बादशाह औरंगजेब ने दुर्गादास की भूरि-भूरि प्रशंसा की और उसने राठौरों के निर्मल चरित्र को बार-बार स्वीकार किया। वास्तव में चरित्र उसी का श्रेष्ठ है जिसकी श्रेष्ठता और निर्मलत उसके शत्रुओं को भी स्वीकार करनी पड़ती है। दुर्गादास का जीवन राजपूतों के चरित्र का एक उदाहरण है। दुर्गादास लूनी नदी के किनारे दूनाड़ा का एक सामन्त था। उसकी प्रस्तर मूर्त्ति आज भी उसके श्रेष्ठ गौरव का परिचय देती है।

अजितसिंह के जेष्ठ पुत्र अभयसिंह की जन्मपत्री में ४, ८, १०, ११ और १२ अंकों वे घर धन, संतान एवम् भाग्य का संकेत करते हैं। ८ में सूर्य और बुध का प्रभाव है। १० में केतु है घरों पर राहु और केतु—दोनों अशुभ हैं। सौभाग्य के घर पर मंगल और राजभवन में शनि तथ बृहस्पति का अधिकार है। अभयसिंह की यह जन्मपत्री शुभ और अशुभ—दोनों प्रकार के लक्षण प्रकट करती है।

राजकुमार अभयसिंह की जन्मपत्री
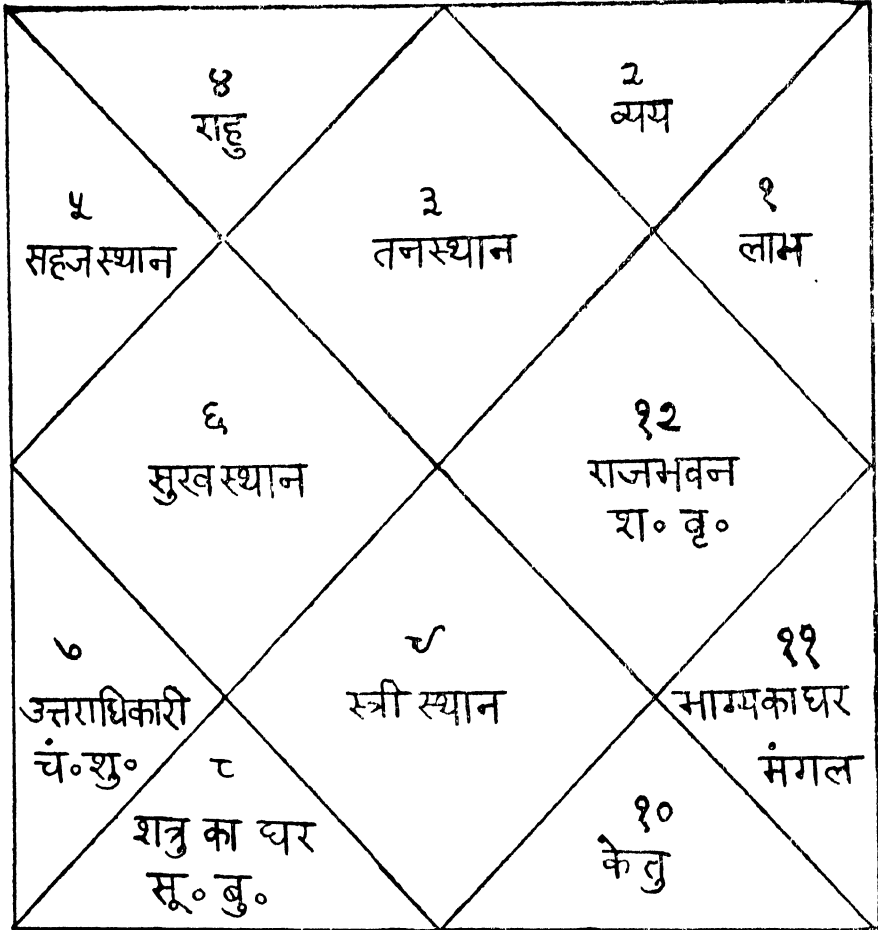
उन्तालीसवाँ परिच्छेद

मुगल सिंहासन पर बहादुरशाह-मुगलों में आपसी विद्रोह-जोधपुर में मुगलों का आक्रमण दिल्ली-दरबार में अभयसिंह-बादशाह के साथ अजितसिंह का मेल-मारवाड़ की उन्नति-अजितसिंह का वैभव-सैयद बंधुओं की घबराहट-अजितसिंह की गुप्त संधि-बादशाह के द्वारा अजितसिंह का सम्मान दिल्ली की अस्थिर अवस्था-मुगलों के महलों पर संकट-मुगल राज्य में अजितसिंह के अधिकार-मुगल दरबार में कलह-अजमेर के दुर्ग पर राठौर पताका-मुगलों की लगातार पराजय-साहसी अभयसिंह-अजित की मृत्यु-अजित और दुर्गादास।

सम्वत् १७६८ में बादशाह बहादुरशाह ने अजितसिंह को कैलाश पर्वत के विद्रोही सामन्तों को दमन करने और नाहन प्रदेश पर अधिकार करने के लिए भेजा। अजितसिंह अपनी शक्तिशाली सेना लेकर बादशाह की तरफ से रवाना हुआ और नाहन प्रदेश में जाकर उसने विद्रोहियों को पराजित किया। वहाँ से विजयी होकर लौटने पर अपनी सेना के साथ अजितसिंह ने गंगा का स्नान किया और दान-पुण्य करके बसन्त ऋतु में वह अपनी राजधानी लौट आया।

सम्वत् १७६९ में मुगल बादशाह की मृत्यु हो गयी। उसके लड़कों में सिंहासन पर बैठने का अधिकार प्राप्त करने के लिए आपस में विद्रोह हुआ। उस विद्रोह में अजीमुश्शान मारा गया। और मुईजुद्दीन सिंहासन पर बैठा। उस समय मारवाड़ के राजा अजितसिंह ने बहुमूल्य उपहार के साथ भंडारी खोमसी को नये बादशाह के पास भेजा। उस उपहार को पाकर नवीन मुगल बादशाह बहुत प्रसन्न हुआ और उसने अजितसिंह को गुजरात का शासक बना दिया।

सम्वत् १७६९ के माघ महीने में अजितसिंह ने अहमदाबाद पर अधिकर करने के लिए अपनी सेना तैयार की। परन्तु इन दिनों में मुगल सिंहासन का फिर झगड़ा पैदा हुआ। दोनों सैयद भाइयों ने बादशाह मुईजुद्दीन को मार कर वहाँ के राजसिंहासन पर फर्रुखसियर को बिठाया।

उन्हीं दिनों में जुलफकार खाँ भी मारा गया। इसके फलस्वरूप मुगलों की शक्ति बहुत कमजोर पड़ गयी। दोनों सैयद भाइयों ने मुगल दरबार में अपना आधिपत्य कायम किया। बादशाह फर्रुखसियर ने सैयद बन्धुओं के परामर्श से अजितसिंह के पास संदेश भेजा कि आप अपने बेटे अभयसिंह को राठौर सेना के साथ बहुत शीघ्र दिल्ली भेज दीजिये।

अभयसिंह की अवस्था इस समय सत्रह वर्ष की थी। इसी मौके पर अजितसिंह को मालूम हुआ कि विश्वासघाती नागौर का राजा मुकुन्द मुगल दरबार में रहा करता है और बादशाह उसके प्रभाव में भी है। ※ इसलिए अजितसिंह ने उस विश्वासघाती को संसार से बिदा करने के लिए अपने कुछ विश्वस्त आदमियों को दिल्ली भेज दिया। उन्होंने वहाँ पहुँचकर और मौका

※ इस मुकुन्द को मूल पुस्तक में कहीं-कहीं पर मोकाम लिखा गया है। उसका सही नाम मोहकमसिंह है।——अनु०

पाकर मुकुन्द को जान से मार डाला। इससे दिल्ली के मुगलों में आग भड़की। मारवाड़ पर आक्रमण करने के लिए मुगलों की विशाल सेना लेकर सैयद बन्धु दिल्ली से रवाना हुए।

अजितसिंह को मुगलों के इस आक्रमण का समाचार मिला। उसने अपने परिवार को अभयसिंह के साथ मरू प्रदेश के राडधड़ा नामक स्थान पर भेज दिया। ❀ मुगल सेना ने जोधपुर की राजधानी को वहाँ पहुँच कर घेर लिया। उसके बाद बादशाह की तरफ से अजितसिंह के पास आदेश भेजा गया कि उसे भविष्य में अपने अच्छे व्यवहारों का प्रमाण देना होगा और इसकी जमानत में उसका लड़का अभयसिंह बादशाह के दरबार में बराबर रहेगा और समय-समय पर उसे भी वहाँ जाना पड़ेगा।

अजितसिंह ने इस आदेश को मानने से इनकार कर दिया। परन्तु दीवान के कहने-सुनने और कवि केसर के परामर्श से उसने उस आदेश को स्वीकार कर लिया। केसर कवि ने समझाते हुए कहा : "बादशाह के इस आदेश को मानने में कोई हानि नहीं है। दौलत खाँ ने जिस समय मारवाड़ पर आक्रमण किया था, मारवाड़ के राजा राव गंगा ने अपने पुत्र मालदेव को इसी प्रकार के आदेश के अनुसार दरबार में रहने के लिए भेजा था।"

अजितसिंह ने राडधड़ा से अभयसिंह को बुलाया और उसके आ जाने पर सम्वत् १७७० आषाढ़ महीने के अंत में उसे हुसेनअली के साथ दिल्ली भेज दिया। वहाँ पहुँच कर राजकुमार अभयसिंह ने बादशाह से पाँच हजार सेना के अधिकार का पद प्राप्त किया।

पुत्र को भेजने के बाद अजितसिंह भी दिल्ली के लिए रवाना हुआ। पहुँच कर उसने उन शूर वीर राठौरों की मृत्यु के स्थानों को देखा, जो उसकी शिशु अवस्था में उसके प्राणों की रक्षा करने के लिए मुगल सेना के द्वारा मारे गये थे। उन स्थानों को देखकर स्वाभिमानी अजितसिंह के हृदय में प्रतिहिंसा की आग एक साथ प्रज्वलित हो उठी। उसने उसी समय इस प्रकार के अत्याचारों का बदला लेने के लिए प्रतिज्ञा की।

अजितसिंह दिल्ली पहुँच चुका था। वह मुगल दरबार में उपस्थित हुआ। उसने बादशाह के विरुद्ध नीचे लिखे हुए चार अपराधों का आरोप किया :

१—नौरोजा। × २—बादशाह के साथ राजाओं की लड़कियों का विवाह-संस्कार।

३—गोहत्या। ४—जजिया कर।

सैयद बंधुओं के मारवाड़ पर आक्रमण करने के बाद ऊपर लिखे हुए अजित के जो चार प्रस्ताव बादशाह के सामने पेश किये गये थे, उनमें से बादशाह फर्रुखसियर के साथ अजितसिंह की लड़की के विवाह का भी एक प्रस्ताव था। उसका उल्लेख इस ग्रंथ में पहले किया जा चुका है। अजितसिंह ने इच्छा पूर्वक अपनी लड़की का विवाह बादशाह के साथ नहीं किया था। कठोर

❀ राडधड़ा लूनी नदी के पश्चिमी किनारे पर बसा हुआ है। वह मरुभूमिका एक प्रसिद्ध स्थान है।

× नौरोजा का मेला प्रत्येक महीने के नवें दिन होता था। उस मेले में राजमहल और बड़े-बड़े अमीर-उमराओं के घरों के लोग अपनी-अपनी दस्तकारी की चीजें लाते थे और उनका क्रय-विक्रय होता था। इसी नौरोजा के नाम पर वर्ष में एक बार केवल स्त्रियों का मेला होता था, जिसमें प्रसिद्ध घरों की स्त्रियाँ ही शामिल होती थीं। वहाँ पर कोई पुरुष न जाता था। इस मेले को अकबर ने जारी किया था।

परिस्थियों में जकड़ जाने के कारण उसको ऐसा करना पड़ा था। ऐसा न करने पर उसका सर्वनाश उसके नेत्रों के सामने था। इसलिए जो अपराध उसे करना चाहिए था, उसके लिए उसे तैयार होना पड़ा। परन्तु उसके साथ-साथ उसने अपने मन में मुगल बादशाहत के सम्बन्ध में जो निर्णय कर लिए थे, उनके अनु- सार वह सैयद बंधुओं से जाकर मिल गया।

अजित सिंह मुगल बादशाह के साथ बहुत समय तक कठपुतली बन कर रहा। इसके कारण राजस्थान के राजपूतों की दृष्टि में उसकी मर्यादा भंग हो गयी। परन्तु वह क्या कर रहा था, इसे वह स्वयं जानता था। उसने नौरोजा के उत्सव में राजपूत स्त्रियों और राजकुमारियों का जाना बंद कराया। राजपूत लड़कियों के बादशाह के साथ होने वाले विवाहों में रोक लगायी। गो हत्या बंद कराने की चेष्टा की। हिन्दुओं से विरुद्ध जजिया कर का विरोध किया। इन कोशिशों में अजितसिंह को सफलता मिली। बादशाह ने उसकी इन बातों को मंजूर किया। इन सब बातों के साथ-साथ बादशाह ने यह भी स्वीकार किया कि हिन्दुओं के मंदिरों में बराबर शंखध्वनि होगी। हिन्दुओं के धार्मिक कार्यों में किसी प्रकार की बाधा नहीं पैदा की जायगी। अजितसिंह ने इन सब बातों के साथ अपने राज्य की सीमा की वृद्धि की।

सम्वत् १७७२ के जेठ के महीने में मुगल बादशाह ने अजितसिंह को गुजरात का शासक नियुक्त किया। इसके पश्चात् अजित दिल्ली छोड़कर जोधपुर चला गया। जजिया कर से हिन्दुओं को मुक्त दी गयी। इसका प्रभाव सम्पूर्ण हिन्दू-समाज पर पड़ा और सभी लोगों ने अजितसिंह की प्रशंसा की।

इस वर्ष अजित सिंह ने अपने राज्य में अनेक प्रकार के परिवर्तन किये। वह अपने पुत्र अभय सिंह को साथ में लेकर राज्य के सभी हिस्सों में घूमा। सब से पहले वह जालोर में गया और वहीं पर रहकर उसने बरसात के दिन व्यतीत किये। शरद ऋतु के आते ही अजितसिंह ने अपनी सेना लेकर मेवासा से आबू और सिरोही के देवड़ा लोगों पर आक्रमण किया और नीमाज पर अधिकार करते ही देवड़ा लोगों ने आत्म-समर्पण किया और उसकी आधीनता स्वीकार कर ली। उन लोगों ने कर देना आरम्भ कर दिया।

इन्हीं दिनों में पालनपुर से फीरोजखाँ ने आकर अजित सिंह से भेंट की और उसको बहुत सम्मान दिया। थिराड का राजा अजितसिंह को कर के रूप में वर्ष में एक लाख रुपये दिया करता था। कलवी लोगों के नेता क्षेमकर्ण ने भी उसकी आधीनता मंजूर की। शक्तावत, चम्पावत और विजय भंडारी शासन की व्यवस्था ठीक करने के लिए एक वर्ष पहले पाटन भेजे गये थे। वे सब वहाँ से आकर अजितसिंह से मिले।

सम्वत् १७७३ में अजित सिंह ने हलवद के झाला को पराजित किया और उसको अधीन बनाकर उसने नवानगर के जाम लोगों पर आक्रमण किया। वे लोग शूरवीर और पराक्रमी थे। उनको अजित सिंह की शरण में आना पड़ा। उन्होंने कर में तीन लाख रुपये और पच्चीस युद्ध की प्रसिद्ध घोड़ियाँ देकर अजित सिंह को प्रसन्न किया। इस प्रकार अपने राज्य को शक्तिशाली बनाकर अपनी सेना के साथ अजित सिंह द्वारिका चला गया। वहाँ की तीर्थयात्रा करके वह जोध-पुर की राजधानी लौट आया।

अजितसिंह ने जोधपुर आकर सुना कि इन्द्र सिंह ने इन दिनों में नागौर पर अधिकार कर लिया है। उसने उसी समय अपनी सेना तैयार की और नागौर पहुँच कर उसने इन्द्र सिंह को राज सिंहासन से उतार दिया।

सम्वत् १७७४ में दिल्ली के दरबार में परस्पर विद्रोह पैदा हुआ। फर्रुखसियर का शासन चल रहा था। यह विद्रोह, सैयद बंधुओं के विरोध में था। एक तरफ मुगल अमीर उमराव और दूसरी तरफ दोनों भाई सैयद थे। यह विद्रोह अधिक बढ़ गया और उसके भीषण रूप को देखकर बादशाह ने अजित सिंह को बुलवाया। हुसेन अली इस समय दक्षिण में था। अबदुल्ला बादशाह के विरुद्ध छिपे तौर पर विद्रोहियों की सहायता कर रहा था।

सैयद बंधु इस समय बड़ी घबराहट में थे। इस संकट के समय दोनों भाइयों ने अजित सिंह का भरोसा किया और सेना के साथ उसे दिल्ली आने के लिए संदेश भेजा। अजित सिंह ने अपनी सेना तैयार की और उसे लेकर वह नागर, मेरता, पुष्कर, मारोट और साँभर होकर वह दिल्ली पहुँचा। साँभर के दुर्ग में उसने अपनी सेना का एक बड़ा भाग छोड़ दिया और मारोट से उसने अपने पुत्र अभय सिंह को राजधानी की रक्षा करने के लिए भेज दिया। सैयद बंधुओं को समाचार मिला कि अजित सिंह अपनी सेना के साथ आ रहा है, वह तुरन्त उसके स्वागत के लिए दिल्ली से रवाना हुआ और अलीबर्दीखाँ की सरांय में पहुँचकर उसने अजित सिंह का स्वागत्-सत्कार किया। सैयदों ने विद्रोह की सारी बातें अजित सिह से कही।

राजा जयसिंह और मुगल अमीर बादशाह की तरफ थे। उन्होंने सैयद बंधुओं का विरोध किया। इसी अवसर पर जयसिंह ने अजय सिंह को समझाया कि मुगलों से बदला लेने के लिए इससे अच्छा अवसर दूसरा कोई नहीं मिलेगा। अजित सिंह ने गुप्त रूप से सैयद बंधुओं के साथ संधि की। इसके बाद सैयद बंधुओं ने अपने विरोधी विद्रोही जुलफकारखाँ को जान से मार डाला।

भविष्य में आने वाली परिस्थितियों को कोई नहीं जानता। एक समय था, जब मुगल बादशाह औरंगजेब ने हिन्दुओं के साथ अत्याचार करने में अपनी शक्ति को उठा न रखा था और जसवंत सिंह के पुत्र शिशु अजित को संसार से बिदा कर देने के लिए उसने भयानक अत्याचार किये थे। एक समय आज था, जब अत्याचारी औरंगजेब इस संसार से बिदा हो चुका था और उसके सिंहासन पर बैठा हुआ मुगल बादशाह फर्रुखसियर केवल अजित सिंह की सहायता के बल पर अपने सौभाग्य के सपने देख रहा था।

दिल्ली में अजित सिंह के आने का समाचार सुनकर मुगल बादशाह ने कोटा राज्य के हाड़ाराव भीम और खान दौरानखाँ को तुरन्त अजित सिंह के पास भेजा और उसने अजित सिंह से भेंट करने की अपनी तीव्र अभिलाषा प्रकट की। मोतीबाग के महल के ऊपर बादशाह के साथ अजित सिंह की भेंट का स्थान नियुक्त हुआ। अजित सिंह अपने साथ सामन्तों और बहुत से राठौर शूरवीरों को लेकर मोतीबाग के लिए रवाना हुआ। उसके साथ जैसलमेर के रावविष्णु सिंह, देराबल के पद्मसिंह, मेवाड़ के फतेह सिंह, सीतामऊ के राठौर प्रधान मानसिंह, रामपुरा के चन्दावत गोपाल, खण्डेला के उदय सिंह, मनोहर पुर के शर्कासिंह, खिलचीपुर के कृष्ण सिंह, आदि बहुत से सुयोग्य और सबल राजपूत अजित के साथ चले। इस समय मारवाड़ के राजा होने के कारण ही नहीं, बल्कि बादशाह की तरफ से गुजरात के शासक होने के कारण समस्त राजपूत सामन्त और सरदार इस समय अजित सिंह को अधिक महत्व दे रहे थे। बादशाह ने अत्यन्त सम्मान के साथ मोतीबाग में अजित सिंह से भेंट की और उसने अजित सिंह को सातहजारी मनसब की उपाधि दी। मुगल राज्य का कुछ हिस्सा दे कर उसके राज्य की सीमा बढ़ायी। इसके साथ-साथ उसने एक करोड़ रुपये की जागीर भी अजित सिंह को दी।

बादशाह फर्रुखसियर ने अनेक प्रकार से अजित सिंह का सम्मान किया। हाथी-घोड़े,

सोने की म्यान में ढकी हुई तलवार, किरिच, हीरों के सिरपेंच, दो कीमती मोतियों की मालायें और बहुमूल्य हीरा-जवाहिरात बादशाह फर्रुखसियर ने उपहार में अजित सिंह को दिये। इसके पश्चात् अबदुल्ला खाँ ने बड़े आदर के साथ अजित का स्वागत किया। इस प्रकार के स्वागत-सत्कार के समाचारों को सुनकर सैयद बंधुओं के विरोधी अनेक प्रकार की शंकायें करने लगे और गुप्त रूप से उन्होंने अजित सिंह पर एक साथ आक्रमण करने का निश्चय किया।

भट्ट ग्रंथों के अनुसार सम्वत् १७७५ के पूस मास की सुदी दूज के दिन बादशाह फर्रुखसियर ने अजित सिंह से भेंट की। अजित सिंह ने भी बादशाह का अधिक से अधिक सम्मान किया। उसने एक लाख रुपये का आसन बिछाकर उसके ऊपर बादशाह के बैठने का जो स्थान तैयार किया गया, वह सर्वथा अपूर्व था। बादशाह उसके ऊपर बिठाया गया और उसको हाथी, घोड़े तथा बहुमूल्य हीरे, जवाहिरात भेंट में दिये गये। बादशाह इस सम्मान से बहुत प्रसन्न हुआ। इस अवसर पर दिल्ली में अजित सिंह को जो सम्मान दिया गया, वह पहले कभी किसी को यहाँ पर न मिला था। फागुन के महीने में बादशाह के साथ अजित सिंह और सैयद बंधुओं ने एक गुप्त परामर्श किया और उस परामर्श में जो निश्चय हुआ, उसके द्वारा एक षड़यंत्र की सृष्टि की गयी और उसे लिखकर दक्षिण में हुसेन अली के पास भेज दिया गया। इसके साथ ही उसको तुरंत आकर मिलने के लिए लिखा गया। इस प्रकार के कई एक कार्य गुप्त रूप से किये गये।

भट्ट कवियों ने इस अवसर की आलोचना करते हुए लिखा है: "इस समय दिल्ली का वातावरण अत्यन्त अनिश्चित रूप में दिखायी दे रहा था। चारो तरफ प्रज्वलित दावानल दिखायी दे रहे थे। भविष्य अंधकारपूर्ण हो रहा था। दिल्ली के विचारशील व्यक्ति अनेक प्रकार की दुर्भाग्यपूर्ण कल्पनायें कर रहे थे। इन्हीं दिनों में दक्षिण से लौट कर हुसेन अली दिल्ली में आ गया।

उसके महल के पास पहुँचते ही प्रसन्नता के बाजे बजाये गये। हुसेन अली के साथ बड़ी संख्या में जो अश्वारोही सैनिक आये थे, उनको देखकर विद्रोही लोग तरह-तरह के अनुमान लगाने लगे। बादशाह ने हुसेन अली के पास उपहार में बहुत-सी चीजें भेजीं। इस समय दिल्ली में विद्रोहात्मक वातावरण शांत दिखायी देरहा था। हुसेन अली के आने के दूसरे दिन सैयद बंधु और उनके साथी जमना के किनारे अजित सिंह के शिविर में जाकर मिले और उन्होंने गुप्त रूप से कुछ बातें कीं।

सैयद बंधुओं के चले जाने के बाद अजित सिंह अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित होकर अपनी घोड़ी पर सवार हुआ और राठौर सेना को लेकर वह बादशाह के महलों की तरफ चला। वहाँ पहुँचकर उसने महलों के आस-पास अपनी सेना का घेरा डाल दिया और महलों को अपने अधिकार में ले लिया। दिल्ली के उस समय का उल्लेख करते हुए भट्ट ग्रंथों में लिखा गया है कि अजित सिंह उस समय दिल्ली के मुगलों को अत्यन्त भयानक रूप में दिखायी दे रहा था।

अजित सिंह के आने के पहले दिल्ली की अवस्था अत्यन्त भयानक थी। इस समय विद्रोह की आग फिर भड़की। बादशाह का खजाना लूट लिया गया। फर्रुखसियर के प्राणों की रक्षा करने वाला कोई दिखायी न पड़ा। आमेर का राजा जयसिंह दिल्ली की इस भयानक परिस्थिति को देखकर वहाँ से अपने राज्य को चला गया। फर्रुखसियर मार डाला गया और उसके स्थान पर दूसरा मनुष्य दिल्ली के राज सिंहसन पर बिठाया गया। परन्तु चार महीने में

उसकी मृत्यु हो गयी।× उसके मर जाने पर रफीउद्दौला को दिल्ली के सिंहासन पर बिठाया गया। परन्तु दिल्ली के मुगल अमीरों ने उसका विरोध किया और उन्होंने आगरा में नीकोशाह को मुगल राज्य का सम्राट बनाया। उनके विरुद्ध हुसेन अली दिल्ली से आगरा की तरफ रवाना हुआ। जाने के पहले उसने अजित सिंह और अबदुल्ला को बादशाह रफीउद्दौला की रक्षा के लिए दिल्ली में छोड़ा।

सम्वत् १७७६ में अजित सिंह और सैयद दिल्ली से रवाना हुए। लेकिन मुगलों ने नीकोशाह को, जो सलीमगढ़ में कैद कर लिया गया था, छोड़ दिया। उसके बाद बादशाह की मृत्यु हो गयी। अजित सिंह और सैयदों ने उसके स्थान पर मोहम्मद शाह को सिंहासन पर बिठाया। इसके पश्चात् मुगल साम्राज्य में भयानक विद्रोह उत्पन्न हुए। उसमें साम्राज्य के न जाने कितने नगरों का विध्वंस और विनाश हुआ न जाने कितने नगरों का निर्माण हुआ। बादशाह फर्रुखसियर की मृत्यु के साथ-साथ आमेर के राजा जयसिंह की समस्त आशायें समाप्त हो गयीं। सैयद बंधु आमेर के स्वामी को दण्ड देने की तैयारी करने लगे। जयसिंह को यह समाचार मिला। वह भयभीत हो उठा।

नवीन सम्राट और सैयद बंधुओं ने अजित सिंह के साथ सेनायें लेकर जयपुर का रास्ता पकड़ा और जब वे लोग सीकरी में पहुँच गये तो जयपुर के सभी सामन्तों ने घबरा कर अजित सिंह की शरण ली। उन सामन्तों ने अजित सिंह से प्रार्थना की, यदि आप ने सैयद बंधुओं से जयपुर के राजा की रक्षा न की तो उसके साथ-साथ हम सब लोगों का भी सर्वनाश हो जायगा।

जयपुर के सामन्तों की प्रार्थना सुन कर अजित सिंह ने उनको को अपने पास बुलाया और चम्पावत सरदार एवम् अपने मंत्री को जयसिंह के पास भेज कर उसे आश्वासन दिया कि जयसिंह को अब आने में किसी प्रकार का भय न करना चाहिए।

अजित सिंह का यह संदेश पाकर जयसिंह चम्पावत सरदार और अजित के मंत्री के साथ रवाना होकर वहाँ पहुँच गया। अजित सिंह ने उससे भेंट की और सभी प्रकार से उसने उसको आश्वासन दिया। बादशाह मोहम्मद शाह ने प्रसन्न होकर अजित सिंह को अहमदाबाद के शासन का अधिकार दिया और उसे अपने राज्य में जाने की आज्ञा दी।

आमेर के राजा जयसिंह और बूँदी के बुधसिंह हाड़ा के साथ अजित सिंह प्रसन्न होकर अपनी राजधानी जोधपुर की तरफ रवाना हुआ। रास्ते में मनोहर पुर के शेखावत सरदार की एक सुन्दरी लड़की के साथ उसने विवाह किया। कुँवार का महीना था। जोधपुर में अजित सिंह के पहुँच जाने के बाद जयसिंह ने शूर सागर के किनारे और हाड़ाराव ने जोधपुर की उत्तर की तरफ अपने खेमें लगातार मुकाम किया।

शीत काल का मौसिम व्यतीत हो गया और बसन्त के दिन आरम्भ हो गये। इन्हीं दिनों आमेर के राजा जयसिंह ने अजित सिंह की लड़की सूर्यकुमारी के साथ विवाह किया अजित सिंह ने ने इस विवाह के सम्बन्ध में प्रधान मंत्री कुम्पावत भंडारी और अपने गुरुदेव के साथ परामर्श कर लिया था। इस विवाह का पूर्ण वर्णन करने से बहुत विस्तार हो जायगा। इस लिए यहाँ पर हम संक्षेप में उसका उल्लेख रखने की चेष्टा करेंगे।

× बादशाह फर्रुखसियर के मारे जाने का वर्णन पहले किया जा चुका है। उसके स्थान पर जो सिंहासन पर बिठाया गया। उसके नाम का कोई उल्लेख नहीं है। वह उन्माद के रोग में चौथे महीने मर गया।

सम्वत् १७७७ में आमेर के राजा जयसिंह ने अजित सिंह के यहाँ कुछ दिन व्यतीत किये थे। अजित सिंह ने सैयद बंधुओं के साथ मिल कर मोहम्मद शाह को उस समय मुगल सिंहासन पर बिठाया था, जब मुगल दरबार में भयानक कलह चल रही थी और सम्पूर्ण साम्राज्य विद्रोह के कारण नष्ट-भ्रष्ट हो रहा था। सिंहासन पर बैठने के बाद मोहम्मदशाह अजित सिंह से बहुत प्रसन्न हुआ और उसी संतोष में उसने जैसा कि ऊपर लिखा चुका है—अहमदाबाद का शासन देकर अजित सिंह को जोधपुर भेज दिया था।

मोहम्मदशाह से बिदा होकर जयसिंह और बुधसिंह के साथ वह जोधपुर आ गया था। मोहम्मदशाह सिंहासन पर बैठने के बाद पहले का मोहम्मदशाह न रह गया था। सिंहासन पर बैठने के पूर्व वह केवल मोहम्मदशाह था और अब वह बादशाह मोहम्मदशाह था। अब उसकी शक्तियाँ अत्यन्त विशाल और महान हो चुकी थीं। संसार में ऐसे मनुष्य बहुत कम पाये जाते हैं, जो महान बन जाने के बाद उपकार करने वालों के प्रति कृतज्ञ बने रहते हैं। मोहम्मदशाह उस प्रकार के कृतज्ञ पुरुषों में से न था। साम्राज्य के सिंहासन पर बैठने के बाद वह अपने व्यवहारों में भी बादशाह बन गया। उसने सैयद बन्धुओं को जान से मरवा डाला और अजित सिंह पर आक्रमण करने के लिए वह तैयारी करने लगा।

जोधपुर में यह समाचार अजित सिंह ने सुना। उसे अत्यन्त क्रोध मालूम हुआ। उसने अपनी तलवार लेकर शपथ ली कि जैसे भी होगा, मै अजमेर पर अधिकार करूँगा।

अपना निश्चय कर लेने के बाद अजित सिंह ने जयसिंह को जोधपुर से बिदा किया और बारह दिन व्यतीत होने के पहले ही वह अपनी शक्तिशाली राठौर सेना को लेकर मेरता पहुँच गया। उसके बाद उसने अजमेर पर आक्रमण किया और वहाँ के दुर्ग पर राठौरों का झण्डा फहराया। अजमेर में सम्राट की जो सेना थी, उसका सेनापति मारा गया। वहाँ के मुसलमान अजमेर छोड़ कर भागने लगे। अजित सिंह ने तारागढ़ के मजबूत दुर्ग पर अधिकार कर लिया। वहाँ पर बहुत दिनों से मुगलों का शासन चल रहा था। इसलिए हिन्दुओं के मन्दिरों में शंखों और घण्टों का बजना चिरकाल से बन्द था। अब उनकी आवाजें फिर से सुनायी देने लगीं। जहाँ पर कुरान के पाठ पढ़े जाते थे, वहाँ पण्डितों के द्वारा पुराण पढ़े जाने लगे।

अजित सिंह ने साँभर और डीडवाना पर भी अधिकार कर लिया। उसने अनेक दुर्गों पर राठौरों के झण्डे फहराये। जयपुर पर अधिकार करके अजित सिंह ने अपने नामका सिक्का चलाया। इसके अतिरिक्त उसने शासन में अनेक प्रकार के पारिवर्तन किये। वहाँ के सामन्तों की मर्यादा में उसने वृद्धि की। इन सब बातों के साथ-साथ अजित सिंह ने स्वतंत्र रूप से अजमेर में अपना शासन आरम्भ किया। उसकी इस सफलता के समाचार न केवल भारत वर्ष के कोने-कोने में पहुँचे, बल्कि इस देश के बाहर मुस्लिम देशों में भी उसकी खबरे पहुँच गयीं।

सम्वत् १७७८ में मुगल बादशाह ने अजमेर पर फिर से अपना अधिकार करने का इरादा किया। बादशाह ने मुजफ्फरखाँ को सेनापति बनाकर और उसके अधिकार में एक बहुत बड़ी मुगलों की फौज देकर बरसात के दिनों में अजमेर की तरफ रवाना किया। मुजफ्फरखाँ के आने का समाचार सुनकर उसके साथ युद्ध करने के लिये अजित सिंह ने अपने बेटे अभय सिंह को तैयार किया। अभय सिंह के साथ तीस हजार अश्वारोही सैनिक थे और मारवाड़ के आठ सामन्त अपनी सेनाओं के साथ थे। सेना की दाहिनी तरफ चम्पावत लोग, बायीं तरफ कुम्पावत लोग, करमसोत, मेरतिया, जोधा, इन्दा भाटी, सोनगरा, देवड़ा, खीची धाँधल और गोगवत लोग चल रहे थे।

आमेर में पहुँचकर मुगलों और राठौरों की सेनाओं का सामना हुआ। मुजफ्फरखाँ राठौरों की विशाल सेना को देखकर घबरा उठा। युद्ध के पहले ही मुगल सेना पीछे की तरफ भागने लगी। राठौर सेना उसका पीछा करती हुई आगे बढ़ी। राजकुमार अभय सिंह ने शाहजहाँन पुर को अधिकार में लेकर नारनोल को लूट लिया और लम्बराघाटी तथा रिवाड़ी से बहुत सा धन एकत्रित किया। कई स्थानों पर राठौर सेना ने आग लगादी, जिससे अलीवर्दी की सराय तक कितने ही गाँव जल गये।

राठौर सेना का यह दृश्य देखकर दिल्ली और आगरा में मुगल घबरा उठे। युद्ध की इस यात्रा में राजकुमार अभय सिंह ने नरूका के राजा की लड़की के साथ विवाह किया।× राजकुमार अभय सिंह के मुकाबिले में मुजफ्फरखाँ के भाग जाने से सम्राट मोहम्मदशाह ने चार हजार मुगलों की सेना देकर नाहरखाँ को भेजा। वह मुगल सेना के साथ साँभर पहुँच गया। बादशाह ने उसको अजित सिंह के साथ मित्रता पैदा करने के लिए भेजा था। सम्वत् १७७६ में अभय सिंह ने साँभर में मुकाम किया और वहाँ पर उसने अपनी शक्तियों को मजबूत बना लिया। उसका पिता अजित सिंह अजमेर से वहाँ पर आ गया था। जिस प्रकार कश्यप के साथ सूर्य की भेंट हुई थी, अजित के साथ उसी प्रकार उसके पुत्र अभय सिंह का साक्षात हुआ।

नाहर खाँ जिस उद्देश्य से साँभर पहुँचा था, उसको सफल बनाने के लिए वह उपयोगी न था। बातचीत की कटुता और कटोरता के कारण वहाँ पर संघर्ष बढ़ गया और राठौर सेना के साथ मुगलों का युद्ध आरम्भ हो गया। नाहरखाँ की छोटी-सी सेना राठौरों से पराजित हुई। उसी समय चूड़ामणि जाट के लड़के ने आकर अजित सिंह के सामने आत्म-समपर्ण किया।

बादशाह मोहम्मदशाह इस समय बड़ी निराशा में था। उसने जो कुछ भी सोचा था, किसी में भी उसे सफलता न मिली। निराश और भयभीत अवस्था में मुगलों का सिंहासन छोड़कर उसने मक्का में जाकर रहने का निर्णय किया।

इन्हीं दिनों में उसने सुना कि मारवाड़ के राजा अजित सिंह ने नाहरखाँ को मार डाला है। वह अत्यन्त क्रोधित हुआ और नाहरखाँ का बदला लेने के लिए वह एक साथ उत्तेजित हो उठा। उसने मुगल साम्राज्य की समस्त सेना एकत्रित की और उसने उसको आमेर के राजा जयसिंह, हैदरकुली, इरादतखाँ आदि अनेक शूरवीरों के नेतृत्व मेंराठौरों के साथ युद्ध करने के लिए भेजा।

श्रावण के महीने में मुगलों की उस विशाल सेना ने अजमेर में पहुँच कर तारागढ़ को घेर लिया। अभयसिंह उस दुर्ग की रक्षा का भार अमर सिंह को सौंपकर सेना लेकर रवाना हुआ। मुगल सेना चार महीने तक तारागढ़ में घेरा डाले पड़ी रही। इस समय मुगलों की सम्पूर्ण शक्तियाँ एक साथ मिलकर आयी थीं और उनके साथ युद्ध करने के लिए मारवाड़ की अकेली राठौर सेना थी।

चार महीने पूरे बीत जाने के बाद आमेर के राजा जयसिंह के समझाने-बुझाने पर अजित सिंह ने बादशाह के साथ संधि करना स्वीकार किया। यद्यपि उसको मोहम्मद शाह की नीति पर विश्वास न था। परन्तु मुगल अमीरों के शपथ लेने पर और संधि के पालन करने का अनुशासन देने पर अजित सिंह ने अजमेर छोड़ देना स्वीकार कर लिया। राजकुमार अभय सिंह जयसिंह के साथ बादशाह के शिविर में गया। जाने के पहले यह निश्चय हो गया था कि अभय सिंह बादशाह की

× नरूका जयपुर राज्य में सामन्तों का एक प्रसिद्ध वंश था। इस वंश के कितने ही लोग जयपुर राज्य में प्रधान सामन्त थे।

अधीनता स्वीकार करेगा और उसके फलस्वरूप उसको आवश्यकतानुसार बादशाह के दरबार में रहना पड़ेगा। इस प्रकार के निर्णय में जयसिंह ने मध्यस्थ का काम किया। निर्भीक अभय सिंह ने अपनी तलवार हाथ में लेकर कहा : "मेरी कुशलता इस पर निर्भर है।"

बादशाह के यहाँ पहुँचकर अभय सिंह ने वहाँ पर अत्यधिक सम्मान प्राप्त किया। उसने यह समझकर कि मेरे पिता को बादशाह के दाहिने स्थान मिलता है, इसलिए मैं भी उसका अधिकारी हूँ। इसलिए कि यहाँ पर मैं अपने पिता का प्रतिनिधि बनकर आया हूँ, इसके सम्बन्ध में मुगल-दरबार की व्यवस्था क्या है, इस पर कुछ भी ध्यान न देकर वह सिंहासन की तरफ आगे बढ़ा। उसी समय मुगल अमीरों में से किसी एक ने अपने संकेत से उसे रोका। उससे अभय सिंह को क्रोध मालूम हुआ। उसने हाथ में तलवार लेकर अपने आवेश पूर्ण नेत्रों से इधर-उधर देखा। बादशाह मोहम्मदशाह को यह परिस्थिति बड़ी भयानक मालूम हुई उसने बड़ी बुद्धिमानी से काम लिया और अपने गले से हीरों का हार उतारकर उसने अभय सिंह को पहना दिया।

बादशाह के ऐसा करने से उस समय की भयानक परिस्थिति शांति में परिवर्तित हो गयी। यदि बादशाह ने इस समय ऐसा न किया होता तो उस परिस्थिति का परिणाम क्या होता, उसका कोई अनुमान नहीं लगाया जा सकता।

अभय सिंह साहसी और महान पराक्रमी था। वह जयसिंह के साथ बादशाह के दरबार में जा रहा था, तो उसके पिता अजित सिंह ने उसका विरोध किया था। परन्तु अभय सिंह ने पिता के विरोध की परवा न की थी। पिता और पुत्र के बीच इन दिनों में अथवा कुछ समय पहले से किस प्रकार के व्यवहार चल रहे थे, इसके सम्बन्ध में भट्ट ग्रंथों में स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता। इन्हीं दिनों में अजित सिंह की मृत्यु हुई। राजा अजित सिंह का जीवन चरित्र जिन राठौर कवियों के द्वारा काव्य में लिखा गया है, अजित सिंह की मृत्यु के सम्बन्ध में खोज करने के लिए हमने उसके पन्नों का भलीभाँति अवलोकन किया है। इन राठौर कवियों ने अजित सिंह का ऐतहासिक जीवन चरित्र, उसके पुत्र अभय सिंह के आदेश से और उसकी देख-रेख में लिखा है। सूर्य पुराण नामक ग्रंथ में केवल इतना ही लिखा है : "इस समय अजित सिंह ने संसार को छोड़कर स्वर्ग की यात्रा की।"

इसके सम्बन्ध में दूसरा ग्रंथ 'राज रूपक' नाम का है। उसके ग्रंथकार ने भी अजित सिंह की रहस्यपूर्ण मृत्यु पर कोई प्रकाश नहीं डाला। बल्कि उसने जो कुछ भी लिखा है, उसके शब्दों से स्पष्ट मालूम होता है कि उसने उस मृत्यु के रहन्य को ढकने की पूरी चेष्टा की है। इस दूसरे ग्रंथ में लिखा गया है : "अश्वपति के साथ राजकुमार अभय सिंह के होने वाले परिचय को सुन कर अजित सिंह को प्रसन्नता हुई। इस संसार में अविनाशी कोई वस्तु नहीं है। एक दिन विनाश सब का होता है। आगे और पीछे—इस संसार को छोड़कर जाना सभी को है। इस पृथ्वी पर ऐसा कोई नहीं है, जिसका कभी विध्वंस और विनाश न हो सके। रंक से लेकर राव तक मृत्यु सबके लिए है। जो जन्म लेता है, वह एक दिन मरता है। जो सबसे निर्बल है, उसकी भी एक दिन मृत्यु है और जो महान शक्तिशाली है, उसे भी एक दिन मर कर यहाँ से जाना है। संसार में कोई ऐसा नहीं है, जिसकी कभी मृत्यु न हो। इस विश्व में रहने का समय सबका पहले से निर्धारित होता है। उस समय के बीत जाने पर एक क्षण भी किसी का रह सकना सम्भव नहीं होता। मनुष्य सब कुछ कर सकता है, परन्तु मृत्यु के सामने उसका कोई बस नहीं चलता।"

मारवाड़ के राजा अजित सिंह की मृत्यु का उल्लेख करते हुए 'राजरूपक' के ग्रंथकार ने आगे फिर लिखा है : "जन्म के साथ मृत्यु को अपने भाग्य में लेकर मनुष्य इस संसार में आता

है। अजित सिंह का जन्म भी इसी प्रकार हुआ और उसकी मृत्यु भी हुई। अजित सिंह ने मारवाड़ के गौरव की वृद्धि की। हिन्दू जाति का मस्तक ऊँचा किया। राठौरों की मर्यादा बढ़ायी और शत्रुओं पर सदा सफलता प्राप्त की। अजित सिंह के मरने पर जोधपुर की राजधानी एक साथ रो उठी। चारों तरफ रोने और चिल्लाने की आवाजें उठने लगी। बच्चे से लेकर बूढ़े तक—सभी के नेत्रों से आँसू बह निकले। अन्त में सभी को यह समझ कर संतोष करना पड़ा कि मृत्यु सभी की होती है।"

अजित सिंह की मृत्यु के सम्बन्ध में राठौर कवियों ने लिखा है: "सम्बत् १७८० के आषाढ़ महीने के कृष्णपक्ष की त्रयोदशी को मरुभूमि के 'आठ ठाकुरौत' अर्थात् आठ श्रेष्ठ सामन्तों की अधीनता में सत्रह सौ राठौर वंशी राजपूत नंगे सिर, नंगे पैर स्वर्ग को गये हुए अजित सिंह के शव के निकट एकत्रित हुए। उनके नेत्रों से अश्रुपात हो रहे थे। नौका के आकार में एक रथी बनायी गयी। × अजित सिंह का शव उसी में रखा गया और सभी लोग उसी रथी को राज स्मशान भूमि में ले गये। चन्दन, लकड़ी, अनेक प्रकार के सुगन्धित द्रव्यों और घी—कपूर से चिता तैयार की गयी। इस मृत्यु का समाचार महलों में पहुँचा। सोलह दासियों के साथ चौहानी रानी ने स्मशान भूमि पर आकर कहा: "आज मैं अपने प्राणपति के साथ चिता में बैठकर स्वर्ग की यात्रा करूँगी।" ·|·

अजित सिंह के रानियाँ और उपरानियाँ—सब मिला कर अट्ठावन थीं। अजित सिंह के मर जाने के बाद एक-एक करके सभी स्मशान भूमि में आयीं और चिता में बैठ कर सती होने के लिए तैयार हो गयीं। उन सभो ने उस समय अपने कर्त्तव्य के सम्बन्ध में कुछ बातें कहीं और पति के साथ चिता पर बैठकर भस्म हो जाने को उन्होंने अपना धर्म बताया। उनकी कही हुई बातों का यहाँ पर उल्लेख करके हम अनावश्यक विस्तार नहीं देना चाहते।

रानियों के मुख से अनेक प्रकार की बातों को सुन कर नाजिर ने–जो एक राठौर था और राजमहलों में संरक्षक के रूप में रहा करता था, जिसका यह नाम मुस्लिम भाषा के आधार पर रखा गया था—उनको समझाते हुए कहा: "इस समय आप लोगों का इस प्रकार कहना सर्वथा समुचित है। लेकिन जिस समय चिता में आग दी जायगी, उस समय उसकी भयानक लपटें आप लोगों के जीवित शरीर को जलाने का काम करेंगी। उस समय का दृश्य कितना भीषण होगा, उसका अनुमान आप लोगों को कर लेना चाहिए। उस समय यदि घबराकर चिता से आप ने भागने का कार्य किया तो वह कलंक आपके वंश के माथे से कभी मिटाया न जा सकेगा। इसलिए हमारी आप लोगों से प्रार्थना है कि इस पर आपको विचार कर लेना चाहिए। प्रज्वलित अग्नि में बैठकर जल जाने का कार्य कितना रोमांचकारी है, उसकी कल्पना नहीं की जा सकती।"

अन्तःपुर के संरक्षक की बातों को सुनकर एक रानी ने कहा: "हम संसार में सब कुछ छोड़ सकती हैं, परन्तु अपने पति को छोड़कर जीवित नहीं रह सकतीं।"

× शव को ले जाने के लिए राजपूत लोग नौका के आकार-प्रकार में जो अर्थी तैयार करते थे। उसका नाम रथी है। प्रचीन काल में और आज भी हिन्दुओं का विश्वास है कि मरने के बाद बैतरणी नदी पार करनी पड़ती है। इस लिए हिन्दुओं में मृत्यु के पश्चात जितने भी संस्कार किये जाते हैं, कुछ उसी उद्देश्य से होतें हैं।

·|· अवस्था में परिपूर्ण होने के पहले ही इसी रानी के साथ अजित ने विवाह किया था। पितृ हन्ता अभय सिंह की वह माता थी।

इसके पश्चात् सभी रानियों ने स्नान करके बहुमूल्य वस्त्र और आभूषण पहने। इस उपरान्त शव के पास जाकर अजित सिंह के चरणों पर सभी ने अपने मस्तक रखे और अपने इ जीवन का अंतिम प्रणाम किया। उस समय मंत्रियों, सरदारों और अन्य सभी गुरुजनों ने रानिय को चिता पर जाने से रोका। उन सब ने पटरानी से प्रार्थना की : "आप चिता पर न बैठक अपने पुत्र अभय और बख्त के स्नेह का विचार करें। महाराज के न रहने पर राज्य का सम्पूर उत्तरदायित्व—दोनों बेटों का विश्वास और भरोसा आपके साथ है। महाराज के न रहने प मारवाड़ की समस्त प्रजा आपको देखकर संतोष करेगी। राज्य के प्रति और अपने बेटों के प्र आपका जो धर्म है, उसे आपको पालन करना है।"

पटरानी ने इन बातों को सुनकर कहा : "आप सब इस वंश के कल्याण के लिए ऐस कहते हैं। परन्तु मेरे कल्याण की तरफ आपका ध्यान नहीं है। पति को छोड़कर स्त्री का अल से कोई अस्तित्व नहीं होता। इसके सम्बन्ध में मैं आप लोगों से अधिक नहीं कहना चाहती आपको समझाने की आवश्यकता नहीं है। इसलिए मैं चाहती हूँ कि आप लोग मेरे कल्याण व रास्ता बन्द न करें और मुझे आशीर्वाद दें कि मैं चिता पर बैठकर उसकी प्रज्वलित अग्नि हँसते हुए जलकर अपने पति की मैं चिरसंगिनी बन सकूँ। इसके सिवा मेरा कल्याण किस प्रकार किसी दूसरे मार्ग पर चलकर नहीं हो सकता।"

इसके बाद स्मशान भूमि में बाजे बजे। सहस्त्रों मुख से एक साथ भगवान का ना निकला। दीन-दुखियों को धन लुटाया गया। सभी रानियाँ चिता पर बैठ चुकी थीं। उसमें आ दी गयी और क्षण-भर में चिता की होली जली। अजित सिंह की अवस्था इस समय पैंताली वर्ष तीन महीने और बाईस दिन की थी।

मारवाड़ के सिंहासन पर अब तक जितने भी राजा बैठे थे, अजित सिंह का स्थान सब अधिक श्रेष्ठ रहा। उसका जन्म और पालन-पोषण जिस प्रकार कठोर रहा, उसकी मृत्यु उस प्रकार रहस्यपूर्ण रही। अजित सिंह ने अपनी परिस्थितियों में जकड़े रहने पर भी वंश और राज के लिए बहुत कुछ किया।

अजित जब सत्रह वर्ष की अवस्था में भी न पहुँचा था, मारवाड़ के सामन्त, सरदार औ श्रेष्ठ पुरुष उसको देखने के लिए इतने लालायित हो उठे थे कि यदि वे राजकुमार को देखने व अवसर न पाते तो पता नहीं वे क्या करते। राज्य की यह श्रद्धा और भक्ति अजित सिंह को उ समय प्राप्त हुई थी, जब वह सोलह वर्ष का एक नवयुवक था और न तो उसने अपने राज्य दर्शन किये थे और न राज्य के लोगों ने उसके दर्शन किये थे। उस अवस्था में मारवाड़ के लोग ने प्रतिज्ञा की थी कि हम सब लोग उसी समय अन्न-जल ग्रहण करेंगे, जब हम अपने नेत्रों राजकुमार को देख लेंगे।

अजित सिंह असाधारण रूप से साहसी, वीर और दृढ़ प्रतिज्ञ था। उसके शरीर का गठ उसके शौर्य का परिचय देता था। अजित सिंह ने शत्रुओं के साथ लगातार तीस वर्षों तक यु किया था। सम्वत् १७६५ में आमेर में सैयद बंधुओं के साथ जिस संग्राम की आग भड़की थ उसमें अजित ने अपनी राजनीति और दूरदर्शिता का परिचय दिया था। उस समय सैयद बंधुअ के साथ उसकी गुप्त संधि हुई थी।

अजित सिंह के जीवन का शेष भाग मुगल बादशाह के दरबार में ही बीता था। मुग बादशाह ने जैसा व्यवहार उसके साथ किया था, ठीक वैसा ही व्यवहार अजित सिंह ने मुग

बादशाह के साथ किया था। इस विषय में अजित सिंह की राजनीति, गम्भीरता और योग्यता सर्वथा प्रशंसनीय थी।

अजित सिंह के जीवन के कार्यों के सम्बन्ध में सभी बातें ऊपर लिखी जा चुकी हैं। लेकिन उसके जीवन चरित्र में एक ऐसा दाग है, जिसका स्पष्टीकरण उस समय के किसी प्राचीन ग्रंथ से नहीं होता। यहाँ पर संक्षेप में उसका उल्लेख करना आवश्यक है।

अजित के प्राणों की रक्षा का सम्पूर्ण श्रेय दुर्गादास को है। उसने अपने प्राणों का मोह छोड़कर अजित की रक्षा की थी। औरंगजेब अजित के प्राणों का संहार करने के लिए पूर्ण रूप से तुला हुआ था। इसके लिए उसने उचित और अनुचित—सभी प्रकार के कार्य किये थे। शक्तिशाली मुगल बादशाह औरंगजेब से शिशु अजित के प्राणों की रक्षा करने का कार्य केवल दुर्गादास से ही हो सकता था। इसमें किसी को संदेह नहीं हो सकता कि यदि दुर्गादास न होता तो कदाचित् किसी दूसरे को उसकी रक्षा में सफलता न मिलती और औरंगजेब के द्वारा शिशु अजित संसार से बिदा कर दिया गया होता।

परन्तु दुर्गादास ने अपने विश्वासी राठौर सरदारों की सहायता से अजित के प्राणों की रक्षा की। उसने अनेक अवसरों पर स्वार्थ त्याग के अपूर्व उदाहरण दिये। बादशाह का कोई भी प्रलोभन दुर्गादास को आकर्षित न कर सका। वह एक स्वाभिमानी राजपूत था। अपने प्राणों को उत्सर्ग करके जो अजित की रक्षा करना चाहता था, उसके सामने प्रलोभन का क्या महत्व होता है। उसने अनेक मौकों पर बादशाह की सम्पत्ति और जागीरों को ठुकराया था। अजित सिंह के सम्पूर्ण जीवम की तैयारी दुर्गादास ने की थी। दुर्गादास एक स्वाभिमानी, साहसी, शूरवीर और राजभक्त राजपूत था। उसने अपने ये सभी गुण राजकुमार अजित में पैदा किये थे। अजित सिंह यदि अपने जीवन में देश, समाज, वंश और राज्य के लिए उपयोगी साबित हो सका तो उसका सम्पूर्ण श्रेय केवल दुर्गादास को था। ऐसी दशा में दुर्गादास ने कौन-सा अपराध किया था, जिसके कारण वह मारवाड़ से निकाल दिया गया!

अजित सिंह ने किस समय और किस कारण से दुर्गादास के साथ ऐसा व्यवहार किया था, यह नहीं कहा जा सकता। जिन कवियों ने अजित सिंह का ऐतिहासिक जीवन चरित्र काव्य में लिखा है, उन्होंने इसका कोई उल्लेख कहीं पर नहीं किया। इसका कारण यह नहीं है कि दुर्गादास को मारवाड़ से निकाले जाने की बात गलत है। उन कवियों के उल्लेख न करने का कारण यह हो सकता है कि उन्होंने अजित सिंह का जीवन चरित्र अभय सिंह की देख-रेख में लिखा था। इसलिए जान-बूझकर इस घटना का उल्लेख न करने दिया गया हो, यह बहुत स्वाभाविक बात है। उन कवियों के ग्रंथों में एक और भी बहुत बड़ा अभाव मिलता है। अजित सिंह की मृत्यु किस प्रकार हुई, इसका कोई उल्लेख नहीं किया गया। उस समय की सहायक घटनाओं से यह साफ जाहिर है कि अजित सिंह की मृत्यु का कारण उसका बेटा अभय सिंह था यद्यपि उसने अपने हाथों से पिता की हत्या नहीं की थी, परंतु उसने राज्य के प्रलोभन में अपने भाई बख्त सिंह को उकसाया था। उन कवियों ने इसका भी कोई उल्लेख नहीं किया और इस उल्लेख के न करने का भी वही कारण है, जो ऊपर लिखा जा चुका है।

बादशाह बहादुरशाह के यहाँ से समाचारों के कुछ कागज पाये गये थे, उनसे दुर्गादास के सम्बन्ध में कुछ मालूम हुआ। मिले हुए कागजों में अन्यान्य बातों के साथ-साथ एक कागज में पढ़ने को मिला : "दुर्गादास अपने परिवार और अनुचरों के साथ उदयपुर में पैशोला झील के

किनारे रहा करता है। उसके आवश्यक खर्चों के लिए राणा की तरफ से प्रति दिन पाँच सौ रुपये के हिसाब से उसको दिये जाते हैं।"

बादशाह की तरफ से दुर्गादास को आत्म समर्पण करने के लिए आदेश दिया गया था। लेकिन दुर्गादास ने किसी भी सूरत में उसे मंजूर नहीं किया। मैंने इसके सम्बन्ध में सही घटना को जानने के लिए चेष्टा की और मारवाड़ इतिहास के विशेष जानकार एक यती से मैंने पूछा। वह इस घटना की जानकारी रखता था। उसने अपना उत्तर कविता में दिया: "दुर्गा दशौं काढ़ियाँ गोला गाँगानी।" अर्थात् दुर्गादास को निकाल कर गाँगानी नगर गोला को दिया गया था। गोला का अर्थ गुलाम होता है।

यह गाँगानी नगर लूनी नदी के उत्तर की तरफ बसा हुआ था और वह कर्मसोत वंश के राजपूतों का प्रधान नगर था। दुर्गादास उस वंश के लोगों का अधिनायक था। यह नगर इन दिनों में मारवाड़ के राजा के अधिकार में है। परन्तु दुर्गादास के समय वह उसी के अधिकार में था। करणोत वंश के राजपूतों ने गाँगानी नगर में एक प्रसिद्ध मंदिर दुर्गादास के स्मारक में बनवाया। वह मंदिर आज भी दुर्गादास की स्मृतियाँ लोगों को दिलाता है। अपने त्याग और बलिदान के पुरस्कार में दुर्गादास को जिस प्रकार मारवाड़ राज्य से निकाला गया, उसकी वह दुरवस्था प्रसिद्ध कहावत का समर्थन करती है: "राजाओं पर कभी विश्वास न करना।"

चालीसवाँ परिच्छेद

अजित सिंह की हत्या–मारवाड़ का पतन–अभय सिंह का राजतिलक–अभय सिंह का स्वागत–नागौर का पतन–भूमिया लोगो का दमन–अभय सिंह का सम्मान–सेना पति का विद्रोह–मुगल साम्राज्य का पतन–अभय सिंह का साहस–अभय सिंह और जयसिंह का परामर्श–सिरोही पर आक्रमण–अभय सिंह की विजय–सरबुलंद खाँ के साथ अभय सिंह का युद्ध–सरबुलन्द खाँ की पराजय–अभय सिंह का शासन।

अजित सिंह की रहस्यमयी हत्या का यद्यपि कोई उल्लेख उस समय के ग्रंथों में नहीं पाया जाता, फिर भी अनेक परिस्थितियाँ इस ओर संकेत करती हैं। आमेर के राजा जयसिंह के परामर्श से राजकुमार अभय सिंह ने बादशाह के दरबार में न केवल जाना स्वीकार किया था, बल्कि पिता अजित सिंह के विरोध करने पर भी उसने बादशाह की अधीनता स्वीकार कर ली थी। उसके वहाँ जाने पर अभय सिंह के मनोभावों में राज्य का प्रलोभन पैदा हुआ और उसी के आधार पर अजित सिंह की हत्या के षड़यंत्र की रचना आरम्भ हुई। उसमें किसी को सन्देह नहीं हो सकता। इसके परिणाम स्वरूप अजित सिंह की हत्या की गयी।

मारवाड़ के राजा अजित सिंह के मरते ही उसके राज्य का पतन आरम्भ हुआ। इस विनाश की जड़ राजमहलों में पड़ी। मुगलों की जिस पराधीनता को मिटाने और षड़यंत्रकारी मुगलों को बदला देने के लिए अजित सिंह को बड़े-से-बड़े त्याग और बलिदान करने पड़े थे, उस पराधीनता को अभय सिंह ने प्रसन्नता के साथ स्वीकार किया।

अजित सिंह की मृत्यु के पश्चात दिल्ली के बादशाह मोहम्मद शाह ने अपने हाथ से अभय संह के मस्तक पर राज तिलक किया। कमर में तलवार बाँधी, मस्तक पर राजकुमुट रखा और गि मुक्ता एवम हीरा जवाहिरात से जड़ा हुआ किरिच देकर उसको मारवाड़ के सिंहासन पर बैठाया। छत्र, चवँर, नौबत और नगाड़े इत्यादि बाजे और बहुमूल्य पदार्थ उपहार में देकर बादशाह । अभय सिंह का सम्मान किया। नागौर का शासन अधिकार अमर सिंह को दिया गया था। इस वसर पर मोहम्मद शाह ने वहाँ का शासन अधिकार अभय सिंह को दिया।

मुगल बादशाह से इस प्रकार सम्मानित हो कर अभय सिंह अपनी राजधानी जोधपुर आ या। अभय सिंह ने इन दिनों में जो कछ किया था, मारवाड़ में कोई भी उससे अपरिचित न था। भी उसके पिता को मारने वाला हत्यारा और मुगलों की पराधीनता को स्वीकार करने वाला अप- धी समझते थे। परन्तु जब वह दिल्ली से सम्मानित होकर अपनी राजधानी को लौटा तो वहाँ सभी लोगों ने बड़े सम्मान के साथ उसका स्वागत किया। उसके सभी पापों और अपराधों को लोग ल गये थे। मार्ग के प्रत्येक ग्राम में अभय सिंह का जोरदार स्वागत होता था। राठौर वंश की स्त्रियाँ पानी से भरे हुए कलसों को सिर पर रख कर गाना गाती हुई वे अपने नवीन राजा का म्मान कर रही थीं। जोधपुर पहुँच कर अभयसिंह ने राठौर सामन्तों को उपहार में मूल्यवान दार्थ दिये और कवियों, चारणों तथा पुरोहितों को सम्पत्ति और पृथ्वी दान में दी। इस प्रकार से सभी प्रकार का सम्मान किया।

राठौर वंशी करणीदान एक श्रेष्ठ कवि था, वह राजनीति का पण्डित था और युद्ध करने ं शूरवीर था। मारवाड़ के घरेलू विद्रोह के समय की घटनाओं का वर्णन उसने बड़े अच्छे ढङ्ग किया है। सूर्य प्रकाश नामक प्रसिद्ध ग्रंथ काव्य उसी का लिखा हुआ है। यह ग्रंथ उस मय के इतिहास का वर्णन करता है। मारवाड़ के इतिहास का वर्णन हमने बहुत कुछ इसी सूर्य काश के आधार पर किया है। यद्यपि उसकी बहुत-सी दूसरी बाते दूसरे साधनों के द्वारा भी ाप्त की गयी हैं।

अभिषेक से छुट्टी पाने के बाद अभय सिंह ने नागौर का अधिकार अपने हाथ में लेने की ैयारी की। इस नागौर का अधिकार राव अमर सिंह के उत्तरधिकारी इन्द्रसिंह को बादशाह ी तरफ से उस समय दिया गया था, जब अजित सिंह के साथ मोहम्मदशाह का युद्ध आरम्भ आ था। उन्हीं दिनों में नागदुर्ग के सिंहासन पर इन्द्र सिंह को बिठाया गया था। × अभय सह अपनी सेना लेकर नागौर की तरफ रवाना हुआ। इन्द्र सिंह को जब उसके आने का समाचार मला तो वह अभय सिंह के पास पहुँचा और उसने बादशाह के हस्ताक्षरों की सनद दिखा कर सने कहा कि यहाँ के शासन का अधिकार मुझे मिला है। आमेर का राजा जय सिंह मेरे इस धिकार का साक्षी है। यहाँ पर दूसरा कोई अधिकारी नहीं हो सकता।

अभय सिंह ने इन्द्र सिंह की कही हुई बात का कुछ भी ख्याल न किया। उसने नागौर ो जा कर घेर लिया। इन्द्र सिंह ने अभय सिंह के साथ युद्ध नहीं किया। उसने नागौर का दुर्ग छोड़ दिया। अभय सिंह ने उस पर अधिकार करके अपने छोटे भाई बख्त सिंह को वहाँ का अधि- ारी बना दिया।

इस नागौर राज्य के प्रलोभन में ही बख्त सिंह ने अपने पिता के जीवन को नष्ट किया ा। उसने यह अक्षम्य अपराध अभय सिंह के परामर्श से किया था। इसलिए अभय सिंह ने

× नागौर का प्राचीन नाम नागदुर्ग था।

नागौर पर अधिकार करके बख्त सिंह को वहाँ का अधिकारी बनाया। नागौर का अधिकार प्राप्त करने पर मेवाड़, जैसलमेर, बीकानेर और आमेर के राजाओं ने बड़े सम्मान के साथ अभय सिंह को बधाइयाँ भेजीं। सम्बत् १७८१ में नागौर को विजय करके अभय सिंह अपनी राजधानी लौट आया।

सम्बत् १७८२ में अभय सिंह उन भूमिया लोगों का दमन करने के लिए गया जो उसके राज्य की दक्षिणी सीमा के निकटवर्ती स्थानों पर रहा करते थे। अभय सिंह के वहाँ पहुँचने पर सिन्धल देवड़ा, बालाबोडा, बलीसा और सोढा जाति के लोगों ने उसकी अधीनता स्वीकार की।

सम्बत् १७८३ में अभय सिंह को बादशाह का एक आदेश मिला। उसने अपने सभी सामन्तों की सेनाओं के साथ बुलवाया। आदेश पाते ही अपनी-अपनी सेनायें लेकर सामन्त लोग वहाँ पहुँच गये। उन सब को लेकर दिल्ली जाने के पूर्व अभयसिंह अपने राज्य के प्रमुख नगरों को देखने गया और सर्वत्र अपना शासन-प्रबन्ध मजबूत बनाया। पर्वतसर नामक स्थान पर पहुँचने के बाद अभयसिंह को चेचक का रोग हो गया। उस रोग से सेहत पाने के बाद सम्बत् १७८४ में अभयसिंह दिल्ली पहुँचा। बादशाह ने उसको बुलाने के लिए अपने प्रधान अमीर खान दौराखाँ को भेजा था।

अभय सिंह के आने पर बादशाह ने सम्मान के साथ उसको लिया और आदर पूर्वक बातें करते हुए उसने अभय सिंह से कहा : "आज बहुत दिनों के बाद आपसे मुलाकात हुई है। आपको देखकर इस समय मुझे बड़ी खुशी हो रही है।" कुछ देर तक बादशाह के पास रहकर और उसका सम्मान प्राप्त कर अभय सिंह वहाँ से अपने मुकाम पर चला गया। जहाँ पर वह ठहरा हुआ था, बादशाह ने बहुत-सी चीजें वहाँ भेजीं।

इन्हीं दिनों में दक्षिण के झगड़े बहुत बढ़ गये। शाहजादा जंगली ने अपने साथ साठ हजार विद्रोहियों की सेना का संगठन किया और उसने मालवा, सूरत और आमदपुर पर आक्रमण करके वहाँ के गिरिधर बहादुर, इब्राहीमकुली, रुस्तम अली और मुगल सुजाअत आदि अधिकारियों को मरवा डाला।

बादशाह ने इस समाचार को सुनकर तुरंत वहाँ के विद्रोह को दबाने के चेष्टा की और पचास हजार सैनिकों की एक विशाल सेना देकर उसने सरबुलन्द खाँ को रवाना किया। सेना के खर्च के लिए बादशाह ने खजाने से एक करोड़ रुपये भी दिये। सेनापति सरबुलन्दखाँ अपनी फौज के साथ रवाना हुआ। उसके आगे चलनें वाली मुगलों की दस हजार सेना ने विद्रोहियों के साथ युद्ध किया। लेकिन उसकी पराजय हो गयी।

विद्रोहियों का इस प्रकार बल और पराक्रम देखकर सरबुलन्द खाँ ने संधि का प्रस्ताव किया और अंत में उसने वहाँ के राज्य के विभाजन को स्वीकार कर लिया। एक दिन जिस समय मोहम्मदशाह दिल्ली के सिंहासन पर बैठा हुआ था और दरबार में ऊँची श्रेणी के दो सौ सामन्त और उमराव मौजूद थे, दक्षिण से समाचार आया कि सरबुलन्द खाँ वहाँ पहुँचकर विद्रोहियों के साथ मिल गया। दरबार में उस समय प्रधान राजमंत्री कमरुद्दीनखाँ, ऐत्तमादुद्दौला, खानदौरान, मीरबख्शी, समशुद्दौला, अमीरुलउमरा, मनसूरअली, रोशनउद्दौला, तुर्राबाज खाँ, रुस्तमजंग, अफगान खाँ, ख्वाजा सैयदउद्दीन, सआदत खाँ, बुरहान उलमुल्क, अब्दुलसमद खाँ, दलीलखाँ, जफरखाँ, दलेलखाँ, मीरहमला, खानखाना, जफर जंग, इरादत खाँ, मुरशीद कुली खाँ, जफरयाबर खाँ, अलीवर्दी खाँ और अजमेर का शासक मुजफ्फर खाँ आदि बहुत-से अमीर-उमराव बैठे थे। उन सभी की उपस्थिति में ऊँचे स्वर से पढ़ा गया कि सरबुलन्द खाँ ने गुजरात पर अधि-

कार करके अपने आपको वहाँ का स्वतंत्र बादशाह घोषित किया है और मण्डला, झाला, चौरसर्मा, बघेला तथा गोरिल जातियों को परास्त करके उनको विध्वंस कर डाला है। सर बुलन्द खाँ के इन अत्याचारों से भूमिया लोगों ने अपने-अपने दुर्ग छोड़ दिये हैं और सरबुलन्द खाँ की शरण में आ गये हैं। सरबुलन्द खाँ अहमदाबाद का बादशाह बनकर दक्षिण के मराठों से मिल गया है।

इस समाचार को सुनकर बादशाह मोहम्मदशाह ने गम्भीरता के साथ सोच-विचारकर निर्णय किया किया यदि सरबुलन्द खाँ का दमन न किया गया तो इसका प्रभाव साम्राज्य में सभी राजाओं और सामन्तों पर पड़ेगा और वे सभी लोग साम्राज्य की अधीनता को तोड़कर स्वतंत्र हो जाने की चेष्टा करेंगे।

इन दिनों में साम्राज्य के कई भागों से ऐसे समाचार आये थे, जिनसे मालूम हुआ कि साम्राज्य की अधीनता में चलने वाले कितने ही राजाओं ने स्वतंत्र हो जाने की कोशिश शुरू कर दी है। इन दिनों में मुगल बादशाह का प्रताप एक निर्बल दीपक की भाँति कमजोर पड़ गया था। इस दशा में मोहम्मदशाह ने अपने साम्राज्य की शक्तियों को फिर से मजबूत बनाने का उपाय सोचा।

मुगल साम्राज्य का पतन औरंगजेब के शासन-काल में ही आरम्भ हो गया था। उसके बाद जो लोग उस सिंहासन पर बैठे, साम्राज्य के पतन को वे रोक न सके। धीरे-धीरे मुगलों की शक्तियाँ क्षीण होती गयीं और इधर बहुत दिनों से साम्राज्य का सिंहासन डावाँडोल हो रहा था। मुगलों की इस बढ़ती हुई कमजोरी में सभी अधिकृत हिन्दू और मुसलमान राजा और नवाब साम्राज्य से सम्बन्ध तोड़ देने की चेष्टा कर रहे थे। इस प्रकार के लोगों में सरबुलन्द खाँ पहला आदमी था।

विद्रोहियों के साथ मिलकर सरबुलन्द खाँ ने अपने आपको स्वतंत्र बादशाह घोषित कर दिया था। उसका दमन करने के लिए बादशाह अनेक प्रकार के उपाय सोचता रहा। इसके लिए अपना एक बड़ा दरबार किया। उस दरबार में सोने के एक पात्र में पान का एक बीड़ा बनाकर रखा गया और उस दरबार में साम्राज्य के जितने भी राजा, सामन्त, अमीर-उमरा उपस्थित थे, सब के सानने सरबुलन्द खाँ के दमन का प्रस्ताव रखा गया।

उस समय दरबार के सभी लोगों ने इस बात को साफ-साफ समझ लिया कि पान का यह बीड़ा उसी को उठाना चाहिए, जो सरबुलन्द खाँ को पराजित कर सकने की सामर्थ रखता हो। बीड़ा को रखे हुए कुछ समय बीत गया। उपस्थित शूरबीरों में किसी ने भी पान के उस बीड़ा को उठाने का साहस न किया। दरबार के कितने ही अमीरों ने अपने सिर नीचे की तरफ झुका लिए। कितने ही लोगों ने उस बीड़ा की तरफ देखने का भी साहस न किया।

जो बादशाह अपनी शक्तियों के सामने किसी की कुछ परवा न करता था और जिसके मामूली संकेत पर बड़े-बड़े राज्यों का विध्वंस और विनाश होता था, आज उसके दरबार में एक भी ऐसा शूरवीर नहीं है जो साम्राज्य की गिरती हुई दीवारों को बचा सके। दरबार में किसी के बीड़ा न उठाने पर बादशाह मोहम्मदशाह का अन्तरतर घबरा उठा। इसी समय दरबार में बैठे हुए एक अमीर ने कहा :

"जो सरबुलन्द खाँ को पराजित कर सकता हो, उसी को पान का यह बीड़ा उठाना चाहिए।"

उस अमीर की बात समाप्त होते ही दूसरे अमीर ने कहा : "सरबुलन्द खाँ को परास्त करना सरल नहीं है। इसलिए समझ बूझ कर आगे कदम उठाना चाहिए।"

इसके बाद एक तीसरे अमीर ने कहा : "सरबुलन्द खाँ के साथ युद्ध करना जहरीले साँप के मुख को पकड़ने से कम संकट पूर्ण नहीं है।"

दरबार की यह परिस्थिति बादशाह को लगातार भयभीत बना रही थी। इस अवसर पर अमीरों ने दरबार में जो कुछ कहा, उससे दरबारियों के दिल और भी निर्बल पड़ गये। मारवाड़ का राजा अभय सिंह भी उस समय दरबार में बैठा था। वह गम्भीरता के साथ दरबार की परिस्थिति का और उपस्थित लोगों के मनोभावों का अध्ययन कर रहा था। उसने जब देखा कि दरबार में पान का जो बीड़ा रखा गया था, उसके उठाने का किसी ने साहस नहीं किया तो उसने बीड़ा उठाने के लिए अपने मन में निर्णय किया। वह अपने स्थान से उठा और पान के उस बीड़ा को उठाकर उसने अपनी पगड़ी पर रखा और फिर बादशाह को सम्बोधन करके कहा :

"बादशाह, आप निराश न हों। मैं इस विद्रोही सरबुलन्द खाँ को परास्त करूँगा और उसे मारकर, उस का मस्तक आप के सामने लाकर रखूँगा।"

अभय सिंह के इस प्रकार बीड़ा उठाने को सभा में बैठे हुए अमीरों ने देखा और उसके बाद उन लोगों ने अभय सिंह की कही हुई बातों को सुना। उनके दिलों में अभय सिंह के प्रति ईर्षा का भाव पैदा हुआ। बादशाह ने अभय सिंह की बातों को सुनकर शांति और संतोष को अनुभव किया। उसने उसी समय अभय सिंह को गुजरात के शासन की सनद दी। यह देखकर अमीरों के दिलों में अभय सिंह के विरुद्ध ईर्षा की आग प्रज्वलित हो उठी।

सिंहासन पर बैठे हुए बादशाह मोहम्मद शाह ने अभय सिंह को सम्बोधन करते हुए कहा : "आपके पूर्वजों ने इस सिंहासन की मर्यादा को सुरक्षित रखने के लिए सदा कोशिश की है और उनकी सहायता से मुगल राज्य की परेशानियाँ अनेक बार दूर हुई हैं। मैं विश्वास करता हूँ कि आप के सहयोग और साहाय्य से आज भी इस सिंहासन के सम्मान की रक्षा होगी।"

मारवाड़ के इतिहास में इस बात का स्पष्ट उल्लेख किया गया है कि सम्राट मोहम्मद शाह ने अभय सिंह की मर्यादा को बढ़ाने के लिए सात हीरों का एक आभूषण उसी समय उपहार में दिया। उसके साथ-साथ उसने और भी बहुमूल्य चीजें अभय सिंह को भेंट में दीं। सम्वत् १७८६ के आषाढ़ महीने में अभय सिंह अहमदाबाद और अजमेर के शासन की सनद लेकर दिल्ली से बिदा हुआ।

मुगल साम्राज्य के अनेक भागों में विभक्त होने की परिस्थिति सरबुलन्द खाँ के विद्रोही होने के साथ-साथ आरम्भ हुई। सन् १७३० ईसवी के जून महीने में अभय सिंह दिल्ली से रवाना हुआ। वह सीधा अजमेर की तरफ आगे बढ़ा। उस तरफ जाने में उसके दो उद्देश्य थे। अजमेर के शासन की सनद उसे बादशाह से मिल चुकी थी। वहाँ पर अधिकार कर लेने से न केवल मारवाड़ में उसकी शक्तियाँ मजबूत हो जाती थीं, बल्कि राजस्थान के समस्त राज्यों की कुञ्जी उसके हाथ में आ जाने को थी। दिल्ली से अजमेर जाने में उस समय उसका पहला उद्देश्य यह था। दूसरा उद्देश्य यह था कि अभय सिंह इस भयानक समय में जयसिंह के साथ परामर्श करना चाहता था। आमेर का राजा जयसिंह किस अभिप्राय से इस समय अजमेर आया था, इसका स्पष्टीकरण राठौरों के इतिहास में नहीं किया गया। परन्तु दूसरे ग्रंथों में जो उल्लेख किया गया है, उससे जाहिर होता है कि जयसिंह पुष्कर तीर्थ में अपने स्वर्गीय पूर्वजों का श्राद्ध करने के लिए वह अजमेर गया था।

अजमेर में अभय सिंह और जयसिंह की भेंट हुई। दोनों राजाओं ने एक ही स्थान पर विश्राम किया और साथ-साथ बैठकर भोजन किया। उसी अवसर पर दोनों ने वर्तमान राज-

नीतिक परिस्थितियों पर बहुत देर तक गम्भीरता के साथ परामर्श किया। उस परामर्श की अनेक बातें मुगल साम्राज्य के विध्वंस और विनाश की थीं।

अजमेर पहुँच कर अभय सिंह ने अपने कार्यकर्त्ताओं को आवश्यक स्थानों पर नियुक्त किया। इसके बाद वह मेरता चला गया। उसका छोटा भाई बख्त सिंह वहाँ पहले से ही पहुँच चुका था। वह अभय सिंह से सम्मान पूर्वक मिला। बख्त सिंह को नागौर राज्य के शासन की सनद इस समय मिल गयी थी। दोनों भाई सेना और सामन्तों के साथ मेरता से जोधपुर की तरफ रवाना हुए। मार्ग में अभय सिंह ने सामन्तों को बिदा करते हुए कहा : "विद्रोही सरबुलन्द खाँ के साथ युद्ध करने के लिए बहुत शीघ्र जाना है। इसलिए आप लोग देर न करें और अपनी सेनायें लेकर जोधपुर में आ जावें।

अभय सिंह की बात को सुनकर सभी सामन्त प्रसन्नता के साथ अपने-अपने राज्यों को चले गये। अभय सिंह बख्त सिंह के साथ जोधपुर पहुँचा। उसके पश्चात् सरबुलन्द खाँ के साथ युद्ध करने की वह तैयारी करने लगा। मारवाड़ के राठौर सामन्त अपनी सेनाओं के साथ एक-एक करके जोधपुर में आने लगे। सब सामन्तों के आ जाने पर और सेना के तैयार हो चुकने पर बड़वानल, मगरमुखन और जमराज इत्यादि तोपों की पूजा की गयी। बकरों का बलिदान किया गया।

युद्ध की सम्पूर्ण तैयारी हो चुकने के बाद अभय सिंह के मन में एक नया विचार उत्पन्न हुआ। इस समय उसके अधिकार में एक विशाल और शक्तिशाली सेना थी। उसके द्वारा उसने अपने पड़ोसी सिरोही के विद्रोही राजा को परास्त करने का इरादा किया। सिरोही का राजा जिस प्रकार उपद्रवी था, उसी प्रकार वह स्वाभिमानी और तेजस्वी भी था। सिरोही का शासन अब तक स्वतंत्र रूप से चल रहा था। सिरोही का राज्य पहाड़ों के ऊपर था। उस राज्य में उग्र स्वभाव के आदमी रहते थे। वे युद्ध करने में भयानक थे। सिरोही के राजा के साथ मारवाड़ का प्रायः संघर्ष हुआ करता था। अभय सिंह ने इस अवसर पर अपनी शक्तिशाली सेना का लाभ उठाने की इच्छा की।

सिरोही राज्य के तीन तरफ जो पहाड़ी जाति के लोग रहते थे, वे मीना नाम से प्रसिद्ध थे। इन मीना लोगों पर अभय सिंह ने आक्रमण करने का निश्चय किया। इन मीना लोगों से मारवाड़ की अनेक परेशानियाँ पैदा हुआ करती थीं। सिरोही राज्य का कुछ हिस्सा मारवाड़ राज्य के समीप तक चला गया था। उस हिस्से में पहुँच कर मीना लोग प्रायः मारवाड़ियों के साथ उत्पात किया करते थे। मारवाड़ के पशुओं को वे लोग अपने राज्य में ले जाते थे। अभी हाल में उन मीना लोगों ने मारवाड़ के पशुओं का अपहरण किया था। इस प्रकार की परिस्थितियों में उनको पराजित करना और उनके कार्यों का दण्ड देना अभय सिंह के लिए आवश्यक था। इसके लिए यह अवसर बहुत अनुकूल था। उसका अभय सिंह ने लाभ उठाने के उद्देश्य से मीना लोगों पर आक्रमण की तैयारी की।

सिरोही राज्य के मीना लोगों को इस होने वाले आक्रमण का समाचार मिला। वे लोग घबरा उठे। राठौर सेना के रवाना होने के पहले ही मीना लोगों ने मारवाड़ के अपहृत पशुओं को अपने यहाँ से लेकर वापस कर गये और उस समय उन लोगों ने राठौरों के साथ ऐसा व्यवहार किया, जिससे उन पर जो आक्रमण होने जा रहा था, उसकी परिस्थिति ही बदल गयी।

अभय सिंह ने अब सरबुलन्द खाँ पर आक्रमण करने का निर्णय किया। इसके लिए उसने जो विशाल और शक्तिशाली सेना तैयार की थी, उसमें न केवल राठौरों की सेना थी, बल्कि राज-

स्थान के अनेक राज्यों की सेनाओं के साथ-साथ दो मुस्लिम सेनापतियों की सेनायें भी थीं। इस अवसर पर अभय सिंह के झण्डे के नीचे जो अनेक राजा अपनी अपनी सेनाओं के साथ आये थे, उनमें कोटा और बूंदी की हाड़ा सेना, गागरौन की खींची सेना, शिवपुर की गौड़ सेना, आमेर की कुशवाहा सेना और मरुभूमि की अनेक सेनायें, प्रमुख थीं। अभय सिंह उन सभी सेनाओं का प्रधान सेनापति था।

सम्वत् १७८६ के चैत्र महीने में जोधपुर को छोड़कर अभय सिंह अपनी शक्तिशाली सेना के साथ भाद्राजून, मालगढ़ , सिवाना और जालौर होता हुआ आगे बढ़ा। रिवाड़ा पहुँचकर उसने आक्रमण किया। उसी समय संग्राम आरम्भ हो गया। चम्पावत सरदार कुछ समय के बाद मारा गया। देवड़ा के लोग पराजित होकर भागने लगे। वहाँ पर राठौर सेना ने भयानक मारकाट की। सिरोही के राजा ने जब सुना कि अभय सिंह की सेना ने रिवाड़ा और पोसालिया—दोनों का भीषण रूप से विध्वंस किया है तो वह घबरा उठा। निराश होकर सिरोही के राजा चौहान राव नारायण दास ने अपने भाई की लड़की का विवाह अभय सिंह के साथ करके अपनी रक्षा का विचार किया।

सिरोही के राजा नारायणदास ने चावड़ा सामन्त मायाराम को मध्यस्थ बनाकर अभय सिंह के पास संधि का प्रस्ताव भेजा। उस प्रस्ताव में उसने अपने भाई मानसिंह की लड़की का विवाह कर देने का इरादा प्रकट किया। उसके बाद विवाह के प्रस्ताव में एक नारियल, आठ श्रेष्ठ घोड़ियाँ और चार हाथियों का मूल्य राव नारायणदास ने अभय सिंह के पास भेजा। अभय सिंह ने विवाह के प्रस्ताव को स्वीबार कर लिया।

युद्ध बन्द हो गया। विवाह की तैयरियाँ होने लगीं। अभय सिंह ने मानसिंह की लड़की के साथ विवाह किया। इस लड़की से दस महीने के बाद जोधपुर में जो बालक पैदा हुआ, उसका नाम रामसिंह रखा गया। राव नारायणदास ने भतीजी का विवाह कर देने के अतिरिक्त अभय सिंह को कर देना भी स्वीकार किया।

देवड़ा के सभी सामन्त अपनी-अपनी सेनायें लेकर अभय सिंह की विशाल सेना में जाकर मिल गये। इसके पश्चात् अभय सिंह सरस्वती नदी के निकटवर्ती पालनपुर और सिद्धपुर होकर सरबुलन्द खाँ का दमन करने के लिए आगे बढ़ा और वहाँ पहुँचकर अपनी सेना का मुकाम करके उसने सरबुलन्द खाँ के पास अपना एक दूत भेजा और उसके द्वारा अभय सिंह ने कहला भेजा :

"मुगल बादशाह के युद्ध की जितनी सामग्री पर उसने अधिकार पर रखा है। उन सब को वह तुरंत लौटा दे। राज्य की सम्पूर्ण आमदनी और खर्च का हिसाब करके जो कुछ बादशाह का निकले। उसे वह तुरंत दे दे। इसके साथ-साथ अहमदाबाद और उसके समस्त दुर्गों से विद्रोही लोग निकल जावें।"

अभय सिंह के दूत से इस माँग को सुनकर सरबुलन्द खाँ जरा भी भयभीत नहीं हुआ। उसने अहंकार के साथ उत्तर दिया : "अहमदाबाद का मैं राजा हूँ। जब तक जिन्दा हूँ। अहमदाबाद नहीं छोड़ सकता।"

सरबुलन्द खाँ का उत्तर पाकर अभय सिंह ने अपने साथ के सभी राजाओं और सामन्तों के साथ बैठकर परामर्श किया। सरबुलन्द खाँ ने जो उत्तर दिया था, सब को बताया गया। चम्पावत वंश के अहवा के हरनाथ का बेटा सामन्त कुशल सिंह अभय सिंह के दाहिनी ओर बैठा हुआ था। सरबुलन्द का उत्तर सुनकर सबसे पहले उसने अपनी सम्मति देते हुए कहा। उसके बाद कुम्पावत वंश के सामन्त कन्हीराम—जो अभय सिंह की बायीं ओर बैठा था—बोला:"हम सब को अब अधिक देर करने की जरूरत नहीं है।"

मेरता के सामन्त केशरीसिंह और ऊदावत वृद्ध सामन्त ने कुछ समय तक इस पर विचार किया कि अब हम लोगों को क्या करना चाहिए। इसी समय जोधावंश के खैरवा के सामन्त ने कहा : "मेरी समझ में युद्ध के बाजे बजने चाहिए। मैं तो युद्ध करने के लिए आया हूँ। इस समय और कुछ विचार करना बिलकुल व्यर्थ है।" यह कह कर वह चुप हो गया।

जेतावत फतेह सिंह और करणोत अभयमल्ल ने योधा सामन्त की बातों का समर्थन किया। बड़ी देर तक परामर्श करने के बाद युद्ध करना निश्चित किया गया। सभी लोग एक साथ, युद्ध कह कर चिल्ला उठे। उस समय सभी के मनोभावों में उत्तेजना की तरंगे उठ रही थीं। वे प्रत्येक अवस्था में, सरबुलन्द खाँ का उत्तर सुनकर युद्ध करना चाहते थे। इसीलिए परामर्श के अंत में युद्ध की आवाजें करने लगे।

सब की बातों को सुनने के बाद अभय सिंह के भाई बख्त सिंह ने उपस्थित राजाओं और सामन्तों को सम्बोधन करके कहा : "आप सभी लोग अपने-अपने शिविर में विश्राम करें। मैं अकेला सेना लेकर सरबुलन्द खाँ के साथ युद्ध करने को जाता हूँ।"

बख्त सिंह की बात समाप्त होते ही लाल रंग का जल लाया गया और जल के उस पात्र को अभय सिंह के सामने रखा गया। अभय सिंह ने बैठे हुए राजाओं और सामन्तों पर उस जल को छिड़कते हुए कहा : "इस युद्ध में आप सबको विजय प्राप्त करना है। उसके अभाव में हम लोग स्वर्ग की यात्रा करेंगे।"

जिस समय अभय सिंह अपने साथ के राजाओं और सामन्तों के साथ परामर्श कर रहा था, सरबुलन्द खाँ ने युद्ध की तैयारी कीं। अपने नगर के प्रत्येक प्रवेश-मार्ग पर उसने दो हजार सैनिक और पाँच-पाँच तोपें लगवा दीं। उन तोपों पर योरप के लोग नियुक्त थे। बन्दूकों को लिए हुए योरप का एक शक्तिशाली दल सरबुलन्द खाँ के साथ रक्षक के रूप में था। सरबुलन्द ने युद्ध में विजय प्राप्त करने के लिए अनेक प्रकार के साधनों का आश्रय लिया था और वह युद्ध आरम्भ होने की प्रतीक्षा कर रहा था।

इसी समय अभय सिंह ने अपने सेना में युद्ध के बाजे बजवाये। उसके बाद दोनों तरफ से भयंकर गोलों की वर्षा आरम्भ हुई। लगातार तीन दिनों तक गोलों की मार होती रही। उसमें सरबुलन्द का लड़का मारा गया। तीन दिनों के बाद तलवारों और भालों की मार आरम्भ हुई। चम्पावत कुशल सिंह युद्ध करते हुए मारा गया। दोनों तरफ से तलवारों और भालों की जो भीषण मार-काट हो रही थी, उसमें अभय सिंह और बख्त सिंह ने शत्रुओं के बहुत-से आदमियों का संहार किया। अंतिम दिन जब आठ घड़ी दिन बाकी रह गया था. सरबुलन्द खाँ युद्ध-क्षेत्र से भाग गया। परन्तु उसकी अग्रवर्ती सेना का सेनापति उसके बाद भी युद्ध करता रहा। बख्त सिंह ने आगे बढ़कर उस पर आक्रमण किया और अपनी तलवार से उसने सरबुलन्द खाँ के सेनापति अलियार के मस्तक के दो टुकड़े कर डाले। उसी समय वह गिर गया।

अलियार के गिरते ही राजपूतों की सेना ने विजय का डंका बजाया। सरबुलन्द खाँ घायल होकर युद्ध क्षेत्र से भागा था। अहमदाबाद के इस युद्ध में शत्रु के चार हजार चार सौ तिरानबे आदमी मारे गये। इनमें से एक सौ पालकियों पर बैठकर युद्ध कर रहे थे और आठ हाथियों पर। राठौर सेना के एक सौ बीस प्रसिद्ध सरदार और पाँच सौ अश्वारोही सैनिक मारे गये। सात सौ सैनिक घायल हुए।

इस युद्ध में सरबुलन्द खाँ की पूर्ण रूप से पराजय हुई। उसके सैनिक और सरदार बहुत अधिक संख्या में मारे गये। सरबुलन्द खाँ अब निराश हो चुका था। दूसरे दिन प्रातःकाल आकर

उसने अभय सिंह के सामने आत्म-समपर्ण किया। वह कैद कर लिया गया। उसके साथ-साथ, उसके बहुत-से आदमी कैद किये गये। अभय सिंह ने सरबुलन्द खाँ को बन्दी अवस्था में आगरा भेज दिया। उसके साथ जो दूसरे लोग कैद किये गये थे, घायल होने के कारण उनमें से बहुतों की मार्ग में ही मृत्यु हो गयी।

इस युद्ध में राठौर सेना के अनेक सामन्त और मारवाड़ राजवंश के ऐसे लोग भी मारे गये, जिनकी मृत्यु से अभय सिंह को अत्यधिक शोक हुआ। अभय सिंह ने सत्रह हजार नगरों के गुजरात पर, नौ हजार नगरों के मारवाड़ पर और एक हजार नगरों पर अन्यत्र राज्य किया। ईदर, भुज, बागड, सिंध, सिरोही, फतेहपूर, झुँझनू, जैसलमेर, नागौर, बाँसवाडा, लूनावाडा, हलबध आदि राज्यों के राजा और सामन्त अभय सिंह की अधीनता में शासन करते थे।

राजा रामचन्द्र ने विजयादशमी के दिन लंका को विजय किया था। सम्वत् १७८७ सन् १७३१ ईसवी की उसी विजयादशमी को अभय सिंह ने सरबुलन्द खाँ पर विजय प्राप्त की और उसे कैद करके आगरा भेज दिया।

विजयी अभय सिंह ने गुजरात पर अधिकार करके सत्रह हजार सैनिकों की सेना वहाँ की रक्षा के लिए रखी और अन्यान्य कीमती चीजों के साथ साथ, गुजरात को लूटकर चार करोड़ रुपये नकद, एक हजार चार सौ तोपे बन्दूकें और युद्ध का बहुत-सा सामान वह अपने साथ जोधपुर ले गया, जिससे उसने अपने दुर्गों को शक्तिशाली बनाया।

इकतालीसवाँ परिच्छेद

जोधपुर की उन्नति–बख्तसिंह का विद्रोह–बीकानेर की स्वतंत्रता–अभय सिंह का आक्रमण–राजा जयसिंह की अयोग्यता–राजदूत की चाल–आमेर राज्य में युद्ध की तैयारी कुशवाहा और राठौरों का संघर्ष–आमेर की सेना के साथ बख्त सिंह का युद्ध–जयसिंह की पराजय–अभय सिंह की मृत्यु–जयसिंह की योग्यता–अभय सिंह का अद्भुत साहस–बादशाह का आश्चर्य।

सरबुलन्द खाँ को परास्त करके और जैपुर पर अधिकार करके अभय सिंह जोधपुर चला गया। जैपुर से अपरिमित सम्पत्ति और युद्ध की सामग्री लाकर उसने जोधपुर को सुदृढ़ बना लिया। इन दिनों में अभय सिंह ने जो कीर्ति प्राप्त की थी, वह उसके गौरव के लिए किसी प्रकार कम न थी। जोधपुर में उसके जीवन के दिन अब शांतिपूर्ण व्यतीत होने लगे। अभय सिंह ने वृद्धावस्था में प्रवेश किया था। उसकी शक्तियाँ अब धीरे-धीरे निर्बल पड़ने लगी। उसके छोटे भाई बख्तसिंह का साहस और शौर्य, उसकी अवस्था के अनुसार बढ़ रहा था।

संघर्ष और संग्राम के दिनों में जो एकता और स्नेह-परायणता काम करती है, शांति के दिनों में वह कायम नहीं रहती। अभय सिंह ने इन दिनों में जो गौरव प्राप्त किया था, उससे बख्त सिंह के मनोभावों में ईर्षा की उत्पत्ति हुई। वह अभय सिंह के प्रति द्वेष भरी दृष्टि से देखने लगा। इस ईर्षा का प्रमुख कारण क्या था, इसका कोई उल्लेख उस समय के ग्रंथों में कहीं नहीं मिलता। जो कुछ लिखा गया है, उससे जाहिर होता है कि बख्त सिंह अपने आपको साहसी और

पराक्रमी समझता था। अभय सिंह को इन दिनों में जो गौरव मिला था, उसका श्रेय वह अपने आपको कम न देता था। इस दशा में मिले हुए गौरव का पूर्णरूप से अधिकारी अभय सिंह बना। कुछ इस प्रकार की परिस्थितियों ने अभय सिंह के विचारों में एक उलझन पैदा की।

बख्त सिंह को अपने इन विचारों में राठौर कवि करणीदान से सहायता मिली। करणीदान सरबुलन्द खाँ के साथ होने वाले युद्ध में शामिल था। उसके बाद जब अभय सिंह जोधपुर आकर शांति और सुख के दिन व्यतीत करने लगा, उस समय करणीदान जोधपुर छोड़कर नागौर में बख्तसिंह के पास चला गया। अभय सिंह के प्रति बख्तसिंह के विचारों में जो ईर्षा उत्पन्न हुई थी, उसका स्पष्ट उल्लेख न मिलने पर भी यह जाहिर होता है कि राठौर कवि करणीदान के जोधपुर से नागौर चले जाने पर उसका प्रादुर्भाव हुआ।

बख्तसिंह ने कवि करणीदान के साथ अपने उन विचारों में परामर्श करता रहा। करणीदान ने दोनों भाइयों के बीच एक षड़यंत्र पैदा करने का कार्य किया। उसके अनुसार निश्चय हुआ कि आमेर के राजा जयसिंह के साथ यदि अभय सिंह का कोई संघर्ष पैदा हो सके तो अपनी सफलता मिल सकती है।

बीकानेर का राजा छोटा किन्तु स्वतन्त्र था। वह राठौर वंश की एक शाखा में उत्पन्न हुआ था और स्वतन्त्र रूप से राज्य कर रहा था। अभय सिंह ने इन्हीं दिनों में उसकी स्वतन्त्रता भंग करने का इरादा किया। दिल्ली के मुगलों की शक्तियाँ क्षीण हो चुकी थीं। इस दशा में मारवाड़ की राठौर सेना ने अभय सिंह के आदेश से बीकानेर पर आक्रमण किया। उस समय बीकानेर की सेना ने साहस के साथ उसका सामना किया। मारवाड़ की सेना कई सप्ताह तक बीकानेर को घेरे रही। इस संघर्ष से लाभ उठाने का इरादा बख्तसिंह ने किया। वह पहले से ही करणीदान के परामर्श के अनुसार इस प्रकार के किसी अवसर की प्रतीक्षा में था। इसलिए वह अपनी योजना तैयार करने लगा।

अभय सिंह ने अपने सरदारों और सामन्तों के साथ परामर्श करके बीकानेर पर आक्रमण किया। फिर भी मारवाड़ के राठौरों की तरफ से इस संघर्ष में बीकानेर के राजपूतों ने को अनेक प्रकार की सहायता मिलती रही। वहाँ के लोगों ने अफीम और युद्ध की सामग्री देकर इस समय यदि बीकानेर की सहायता न की होती तो वहाँ का राजा कुछ ही समय के बाद आत्म समर्पण कर देता।

मारवाड़ के राठौरों के द्वारा बीकानेर को इन दिनों में जो सहायता मिली, उसका कारण है। मारवाड़ और बीकानेर के राजपूतों का मूल वंश एक ही था। राठौरों के सहायता करने का यही प्रमुख कारण था। इस आपसी युद्ध का लाभ उठाने के लिए बख्तसिंह ने करणीदान से परामर्श किया। करणीदान इस प्रकार की बातों में बहुत चतुर और दूरदर्शी था। उसने बख्तसिंह से कहा: "अभय सिंह ने बीकानेर पर आक्रमण करके आमेर के राजा जयसिंह का अपमान किया है, इस आशय को लेकर आप एक पत्र जयसिंह के पास भेजिए और उसमें साफ-साफ जयसिंह को लिखिए कि अभय सिंह ने यह आक्रमण करके आप को युद्ध के लिए आमंत्रित किया है। इसलिए अपने अपमान का बदला लेने के लिए आप जोधपुर पर आक्रमण कर सकते हैं।"

करणीदान के परामर्श के अनुसार, बख्तसिंह ने उस आशय का एक पत्र लिख कर जयसिंह के पास भेज दिया और उसके साथ ही आमेर के राजपूत से पत्र-व्यवहार किया कि इस कठिन अवसर पर क्या करना चाहिए।

राजा जयसिंह का जितना ही बुढ़ापा आता जाता था, अफीम के सेवन की आदत उतनी ही

उसमें बढ़ती जाती थी। इससे कभी-कभी वह सही बातों के सोच सकने में असमर्थ हो जाता था। अतएव उसने अपने मन्त्रियों और उत्तरदायी कार्यकर्ताओं से कहा रखा था कि जिस समय हम अफीम के अधिक नशे में हों, उस समय हमारे सामने कई राजनीतिक मामला अथवा राज्य का कोई गम्भीर कार्य उपस्थित न किया जाय।

नागौर के अधिकारी बख्तसिंह का पत्र आमेर राज दरबार में आया। सभी सामन्तों ने उस पर विचार विनियम किया और अंत में सब की सम्मति से निर्णय किया गया कि मारवाड़ और बीकानेर के राजपूत अपने ही वंशज है। इसलिए आमेर के राजा का इरादा उसमें हस्तक्षेप करने का बिल्कुल नहीं है। यह निर्णय लिख कर बख्तसिंह के पास भेज दिया गया। उसे पढ़ कर बख्तसिंह ने जो योजना बनायी थी, वह व्यर्थ हो गयी। लेकिन बीकानेर का राजदूत उस समय आमेर के राज-दरबार में बैठा था। उसकी मित्रता आमेर के प्रधान मंत्री विद्याधर के साथ थी। × उसकी सहायता से राजदूत ने राजा जयसिंह से भेंट की और उसने प्रार्थना करते हुए कहा : "महाराज बीकानेर पर इस समय भयानक विपद है। हमारे राजा ने मारवाड़ के राजा की प्रधानता कभी स्वीकार नहीं की। इसलिए राजा अभय सिंह ने आक्रमण करके बीकानेर को नष्ट-भ्रष्ट करने की चेष्टा की है।"

राजदूत की इन बातों ने राजा जयसिंह को प्रभावित किया। स्वाभिमान में आकर उसने राजा अभय सिंह को लिखा : "हम सभी एक ही वंश के साथ सम्बन्ध रखते हैं। इसलिए बीकानेर पर जो आक्रमण किया है, उसे वापस ले लेना चाहिए।"

पत्र की इन पंक्तियों को लिख कर जयसिंह ने फिर अफीम सेवन किया और वह पत्र को बन्द करने लगा। बीकानेर का राजदूत राजनीति कुशल था। उसने राजा जयसिंह के मन की परिस्थिति का लाभ उठाया। उसने प्रार्थना करते हुए कहा : "महाराज, दो बातें इस पत्र में, यदि आप उचित समझें तो और आ जानी चाहिए। एक तो यह कि बीकानेर से राठौर सेनायें वापस चली जांय और दूसरी यह कि यदि ऐसा न हुआ तो मेरा नाम जयसिंह है, इसको स्मरण रखिये।"

अफीम के नशे में राजा जयसिंह ने राजदूत की बात सुनी और बिना कुछ सोचे समझे, दूत के कहने के अनुसार उसने पत्र में दोनों बातें बढ़ा दी। बीकानेर का राजपूत अपनी इस सफलता को देख कर बहुत प्रसन्न हुआ। राजा जयसिंह से उस पत्र को लेकर बीकानेर का राजदूत वहां से बिदा हुआ और उसने किसी दूसरे दूत के द्वारा राजा जयसिंह का पत्र अभयसिंह के शिविर में भेज दिया।

बीकानेर के राजदूत के चले जाने पर आमेर का प्रधान मंत्री राजा जयसिंह के पास पहुँचा। जयसिंह ने प्रधान-मंत्री से उस पत्र का जिक्र किया, जो उसने राजा अभय सिंह के पास लिख कर भेजा था। प्रधान मंत्री ने सुन कर कहा : "आप राजा हैं, जो ठीक समझते हैं करते हैं। लेकिन यह पत्र-जो राजा अभय सिंह के पास भेजा गया है—मेरी समझ में कुछ अच्छा न साबित होगा। इसलिए यदि आप मुनासिब समझें तो किसी आदमी को भेज कर रास्ते से पत्र ले जाने वाले दूत को वापस बुला लिया जाय।"

× विद्याधर एक बंगाली ब्राह्मण था। वह शास्त्रों का पण्डित था और ज्योतिष के शास्त्र का महान विद्वान था। वर्तमान जयपुर नगर का निर्माण उसी की सुयोग्य सम्मति के आधार पर हुआ था। आमेर का राजा उसका बड़ा सम्मान करता था।

राजा जयसिंह की समझ में आ गया। उसने अपना पत्र वापस मँगाने के लिए दूत पर दूत भेजे। परन्तु पत्र ले जाने वाला दूत अपने कार्य में होशियार था। राजा जयसिंह के भेजे हुए दूत उसको पा न सके। दोपहर को अनेक सामन्त आमेर के भोजन गृह में खाना खाने के लिए एकत्रित हुए। राजा जयसिंह की उपस्थिति में वृद्ध सामन्त दीपसिंह ने कहा: "महाराज जो पत्र आप ने राजा अभय सिंह के पास भेजा है, उसका परिणाम कुछ अच्छा दिखायी नहीं देता।"

दीपसिंह की इस बात को सुन कर आमेर के सामन्त कुछ देर तक आपस में बातें करते रहे। राजा अभय सिंह ने जयसिंह का पत्र पाकर पढ़ा और उसका उत्तर देते हुए उसने लिखा: "हमारे किसी विवाद में हस्तक्षेप करने और इस प्रकार का पत्र लिखने का आपको क्या अधिकार है? यदि आपका नाम जयसिंह है तो याद रखिए, मेरा नाम भी अभयसिंह है।"

राजा अभय सिंह का यह पत्र जयसिंह के दरबार में आया। सभी सामन्तों के सामने वह खोल कर पढ़ा गया। कुछ देर तक सभी लोग चुपचाप बैठे रहे। उसके बाद कुछ बातें हो चुकने पर दीपसिंह ने कहा: "महाराज, आपके उस पत्र के जाने के बाद जो परिस्थिति उत्पन्न हुई है, वह सामने है। अब हम सब सामन्तों को गम्भीरता के साथ विचार करके इस राज्य के सम्मान की रक्षा के लिए तैयार हो जाना चाहिए।"

सभी सामन्तों ने दीपसिंह का समर्थन किया। उसी समय राज्य के सामन्तों से युद्ध के लिए तैयार होकर आने के लिए कहा गया। आमेर राज्य में युद्ध की तैयारियाँ होने लगी। कुशवाहा सामन्त एक-एक करके अपनी सेनायें लिए हुए आमेर की राजधानी के बाहर एकत्रित होने लगे। बूंदी राज्य के हाड़ा, करौली के यादव, शाहपुर के सीसोदिया, खीची लोग तथा जाट सेनायें आकर वहाँ पहुँच गयीं। आमेर राज्य के पंचरंगी झण्डे के नीचे सब मिलाकर एक लाख सैनिकों का समारोह हुआ। इस विशाल सेना को लेकर अभय सिंह के साथ युद्ध करने के लिए जयसिंह मारवाड़ की तरफ रवाना हुआ। साथ में युद्ध के बाजे बज रहे थे। मारवाड़ की सीमा पर गगवाना नामक स्थान में आमेर राज्य की विशाल सेना पहुँच गयी और वहीं पर मुकाम करके वह अभय सिंह के आने का रास्ता देखने लगी।

अभय सिंह को आमेर की इस विशाल सेना के आने का समाचार मिला। उसने बीकानेर को छोड़ दिया और अपनी सेना लेकर आमेर की सेना की तरफ रवाना हुआ। बख्तसिंह को नागौर में इन सब बातों का समाचार मिला। यह जान कर कि आमेर और मारवाड़ के बीच एक भयानक संग्राम होने जा रहा है, वह बहुत चिन्तित हो उठा। उसने इस भीषण परिस्थिति की पहले कल्पना भी न की थी। ईर्षालु होकर अभय सिंह के प्रति उसने जो एक योजना बनायी थी, वह कुछ और चीज थी। परन्तु आपसी द्वेष के परिणाम स्वरूप, राठौर वंश का जो यह सर्वनाश होने जा रहा था, उसको देखकर और उसके सम्बन्ध में अनेक प्रकार की कल्पनायें करके वह अत्यन्त भयभीत हो उठा। उसकी योजना का यह उद्देश्य न था। वह राठौर वंश का सर्वनाश देखना नहीं चाहता था। इसलिए उसकी समझ में आ गया कि आमेर की यह विशाल सेना अभय सिंह पर आक्रमण करके मारवाड़ का विध्वंस और विनाश करेगी और उस अवस्था में न केवल मारवाड़ की शक्तियाँ नष्ट हो जायेंगी, बल्कि मारवाड़ राज्य को जो गौरव प्राप्त हुआ है, उसका पतन हो जायगा।

बख्त सिंह नागौर से चलकर अभय सिंह के पास पहुँचा और वर्तमान परिस्थिति पर विचार करते हुए उसने कहा: "बीकानेर को जिस प्रकार आपने घेरा था, उसका घेरा वैसा ही रहने

दीजिए। वहाँ से इस समय सेना का हटाना ठीक नहीं है। आमेर के राजा के साथ युद्ध करने के लिए मै अकेला काफी हूँ।" अभय सिंह ने उसकी बातों को स्वीकार कर लिया।

बख्तसिंह नागौर लौट गया। उसने अपने सामन्तों को युद्ध के लिये तैयार होकर आने के लिये संदेश भेजा। नागौर राज्य में युद्ध की तैयारियाँ होने लगीं। आने वाले सामन्तों को अफीम का शर्बत पिलाना शुरू किया गया और उसके बाद कुमकुम का जल उनके ऊपर छिड़का जाने लगा। नागौर के सभी सामन्त अपनी सेनाओं के साथ आकर वहाँ पहुँच गये। सभी ने अफीम का शर्बत पिया। उसके बाद नागौर में एकत्रित आठ हजार राजपूतों की सेना में युद्ध के बाजे बजे।

उस सेना को लेकर बख्त सिंह नागौर के बाहर निकला और एक बाजरा के बड़े खेत के पास जाकर बख्त सिंह ने ऊँचे स्वर से कहा : "इस समय हम आमेर की विशाल सेना के साथ युद्ध करने के लिए जा रहे हैं। इसलिए जो लोग उस युद्ध में जाने के लिए अपने हृदय से उत्सुक हों, वही हमारे साथ चलें और बाकी लोग प्रसन्नता के साथ अपने घरों को लौट जायँ। यदि आप लोगों में से कोई पराजित होने की अवस्था में भागने की इच्छा रखता हो, तो मैं ईश्वर का नाम लेकर उसको लौट जाने की आज्ञा देता हूँ।

इसके बाद बख्त सिंह ने अपना घोड़ा बाजरे के खेत में ले जाकर दौड़ाया। इसका अभिप्राय यह था कि उसके हट जाने पर जो लोग लौटकर घर जाना चाहते हैं, वे चले जायँगे। कुछ देर में बाजरा के खेत से लौट कर बख्त सिंह ने देखा कि आठ हजार सैनिकों और सरदारों में पाँच हजार से कुछ अधिक लोग युद्ध के लिए मौजूद हैं। बाकी लोग वहाँ से चले गये हैं। उनको देख कर बख्त सिंह ने समझ लिया कि युद्ध करने के लिए असली सैनिक इतने ही हैं।

अपनी छोटी-सी सेना को लेकर बख्त सिंह मारवाड़ के उस स्थान की तरफ बढ़ा जहाँ पर आमेर के राजा जयसिंह की सेना मौजूद थी। नागौर की सेना को आता हुआ देखकर आमेर की सेना तैयार होकर युद्ध के लिए आगे बढ़ी। कुछ समय में नागौर की सेना के निकट आ जाने पर बख्त सिंह ने आक्रमण करने की आज्ञा दी। उसी समय शूरवीर राठौर सैनिक एक साथ अपने हाथों में तलवारे और भाले लिए हुए आमेर राज्य की सेना पर टूट पड़े। उस भयानक मारकाट में रक्त के नाले बह निकले। युद्ध करते हुए बख्त सिंह ने एक बार अपनी सेना की तरफ देखा। उसे मालूम हुआ कि उसके पाँच हजार सैनिकों में अब केवल साठ सैनिक बाकी रह गये हैं। बाकी सब मारे गये।

इसी समय नागौर के श्रेष्ठ सामन्त गजसिंह पुरापति ने बख्त सिंह से कहा : "महाराज यहाँ पर एक घना जंगल है, वहाँ चल कर आश्रय लीजिए।"

बख्त सिंह ने पूछा : "सामने का यह मार्ग कौन-सा हे? जिस रास्ने से हम आये हैं, उस पर होकर हम नहीं जायेंगे।"

इसी समय दूर से बख्त सिंह ने आमेर के राजा जयसिंह का पञ्चरङ्गा झण्डा उड़ता हुआ देखा। उसने समझ लिया कि यहीं पर जयसिंह मालूम होता है। उसने बड़ी तेजी के साथ, अपने साठ आदमियों को लेकर जयसिंह के शिविर पर आक्रमण किया। उसका शरीर रक्तमय हो रहा था। बख्त सिंह को घोड़े पर तेजी से आता हुआ देख कर दीपसिंह ने घबरा कर राजा जयसिंह को तुरन्त भागने का संकेत किया। जयसिंह ने पहले बख्त सिंह का सामना करने की चेष्टा की। परन्तु उसके बाद उत्तर की तरफ से भाग कर वह कुण्डला नामक एक ग्राम में पहुँच गया।

भागते समय जयसिंह ने कहा : "मैंने सत्रह युद्ध देखे हैं परन्तु आज के युद्ध की तरह किसी भी युद्ध में किसी को तलवार के द्वारा विजय प्राप्त करते हुए नहीं देखा।" आमेर का

राजा जयसिंह राजस्थान में अत्यन्त बुद्धिमान और शिक्षित माना जाता था। इस युद्ध में केवल साठ राठौरों के डर से उसने युद्ध से भाग कर अपना गौरव नष्ट किया। उसकी आज की इस कायरता से उस बात का समर्थन होता है जो आमतौर से राजस्थान में कही जाती है। 'एक राठौर दस कछुवाहों के बराबर होता है।

बख्त सिंह ने डर कर भागी हुई आमेर की सेना पर तीसरी बार आक्रमण करने का इरादा किया। परन्तु राठौर कवि करणीदान ने उसको रोक दिया। इस समय जो राठौर सेना बख्तसिंह के साथ युद्ध करने के लिए आयी थी, करणीदान भी उसमें एक था।

आमेर की सेना के चले जाने के बाद बख्त सिंह ने, युद्ध के मैदान में जो राठौर मारे गये थे, उनका स्मरण किया उसके कितने ही प्रिय सामन्तों ने इस युद्ध में अपने प्राणों का विसर्जन किया था, उसके परिवार के कितने ही लोग मारे गये थे। इन सभी लोगों से बख्त सिंह बहुत स्नेह करता था। उन सभी लोगों का स्मरण करके और उनके विश्वासपूर्ण व्यवहारों की याद करके बख्तसिंह युद्ध के क्षेत्र में रो उठा। इस युद्ध के पहले ही बख्त सिंह ने जो अनुमान लगाया था, उससे उसको मालूम हुआ था कि इस युद्ध में सभी प्रकार राठौर वंश का सर्वनाश होने जा रहा है। दोनों राज्यों के राजपूत इसी राठौर वंश से उत्पन्न हुए हैं। इसलिए जो सर्वनाश होने जा रहा था, उससे वह पहले ही भयभीत हुआ था। जिस समय बख्त सिंह अपने विश्वासी सामन्तों और प्रिय कुटुम्बियों के लिए अश्रुपात कर रहा था, अभय सिंह अपनी सेना के साथ वहाँ आ पहुँचा। उसने बख्त सिंह को समझाते हुए कहा :

"आज के इस युद्ध में मै तुम्हारी सहायता के लिए नहीं आ सका। फिर भी तुमने अपने थोड़े से सैनिकों को लेकर इस युद्ध में जो विजय प्राप्त की है, उससे मारवाड़ के राठौरों का गौरव बहुत ऊँचा हो गया है।"

बड़े भाई अभय सिंह के मुख से प्रशंसा के इन शब्दों को सुनकर बख्त सिंह को बहुत शाँति मिली। उसी समय उसने प्रतिज्ञा करते हुए कहा : "जयसिंह युद्ध से भाग कर चला गया है, मैं उसे अम्बेर के दुर्ग से पकड़ कर लाऊँगा।" "यह कह कर चुप हो गया।

अम्बेर के राजा जयसिंह ने अफीम के नशे में जो पत्र अभय सिंह को लिखा था, उसका भयानक परिणाम उसके सामने आया। बीकानेर के राजपूत ने उसको अफीम के नशे में देखकर उससे अनुचित लाभ उठाया और जो वाक्य जयसिंह को अभय सिंह के पत्र में न लिखने चाहिए थे, उनको उस राजदूत ने जयसिंह से लिखवा लिया। मादक पदार्थों के सेवन का जो परिणाम होना चाहिए, वह जयसिंह के सामने आया। अभय सिंह के साथ उसकी शत्रुता बढ़ी। युद्ध में बुरी तरह उसकी पराजय हुई और संग्राम से भाग जाने के कारण उसके जीवन का समस्त गौरव मिट्टी में मिल गया।

इस युद्ध से यह जरूर हुआ कि बीकानेर विध्वंस और विनाश से बच गया। युद्ध के पश्चात् मेवाड़ के राणा ने मध्यस्थ होकर अम्बेर, बीकानेर और मारवाड़ के राजाओं के बीच शांति और मैत्री कायम कराने की चेष्टा की। इसमें राणा को सफलता मिली और वे तीनों राजा आपस से मिलकर एक हो गये।

राजपूत युद्ध में जाने के पहले अपने देवता के दर्शन करते थे और अपनी सेना के साथ वंश के आराध्य देव को अपने साथ युद्ध में ले जाते थे। बख्त सिंह ने इस युद्ध में भी यही किया था। युद्ध के समय बख्त सिंह की देवी की मूर्ति जयसिंह के अधिकार में पहुँच गयी थी। जयसिंह उस मूर्ति को अपने साथ जयपुर ले गया और वहाँ के देवता की मूर्ति के साथ उस देवी की मूर्ति का

विवाह करके बड़ा उत्सव किया। इसके बाद उन दोनों मूर्तियों को जयसिंह ने बख्त सिंह के पास भेज दिया।

अभय सिंह के जीवन में यह आखिरी युद्ध था। उसके पश्चात् उसने फिर कोई युद्ध नहीं किया। सम्वत् १८०६ सन् १७५० ईसवी में अभय सिंह की जोधपुर में मृत्यु हो गयी। वह अत्यन्त तेजस्वी और शूरवीर था। वृद्धावस्था में अफीम का अधिक सेवन करने के कारण उसमें आलसी होने का एक दुर्गुण पैदा हो गया था। लेकिन उसके कारण उसने मारवाड़ के गौरव में कभी कोई कमी नहीं आने दी।

जयपुर के कछवाहों और मारवाड़ के राठौरों में यद्यपि कोई विशेष अन्तर नहीं है और दोनों राजपूत एक ही मूल वंश से उत्पन्न हुए हैं। परन्तु राजस्थान में कछवाहे निर्बल और कायर माने जाते थे। मारवाड़ के राठौर आमतौर पर कछवाहों को साहस हीन समझ कर उनसे घृणा किया करते थे। यद्यपि राठौरों और कछवाहों में वैवाहिक सम्बन्ध चलते थे।

किसी समय अभय सिंह ने दिल्ली के बादशाह के सामने हँसी करते हुए जयसिंह से कहा था : "आप का वंश कुशवाहा है और यह वंश कुश से पैदा हुआ है। कुश काटने में जिस प्रकार तीक्ष्ण होता है, आपकी तलवार भी उतनी ही तेज है।" अभय सिंह की यह बात जयसिंह को अच्छी न लगी। उसने बादशाह के सामने इस बातचीत से अपना उपहास समझा। उसने उस समय कुछ न कहा। परन्तु इसके बदले में वह अभय सिंह को अपमान करने के तरह-तरह के उपाय सोचता रहा।

राजस्थान में जयसिंह ने अपनी विद्वत्ता के लिए और अभय सिंह ने तलवार चलाने में अपूर्व ख्याति पायी थी। कृपा राम दिल्ली के मुगलों का कोषाध्यक्ष था। जयसिंह उसके साथ अपना मेल रखता था। एक दिन बादशाह के पास कृपाराम मौजूद था। अभय सिंह और जयसिंह भी वहाँ पर खड़े थे। जयसिंह ने कृपाराम को पहले से ही एक संकेत कर रखा था। उसी के आधार पर, अवसर पाकर कृपाराम अभय सिंह के बल-पराक्रम की प्रशंसा करने लगा। उसी समय बादशाह ने कहा : "मैंने सुना है कि आप तलवार चलाने में बहुत ख्याति रखते हैं।"

बादशाह की बात को सुन कर अभय सिंह ने उत्तर दिया : "मैं आवश्यकता पड़ने पर उसका प्रयोग करता हूँ।" बादशाह ने कहा : "किसी मौके पर मैं आपकी तलवार का काम देखना चाहता हूँ।" अभय सिंह ने उसको स्वीकार कर लिया।

बादशाह की आज्ञा से अभय सिंह की शक्ति की परीक्षा लेने के लिए एक भयानक भैंसा लाया गया और सभी लोगों से जाहिर किया गया कि आज अभय सिंह इस भैंसे के साथ अपनी तलवार का हाथ दिखावेगा। इस बात को सुनते ही वहां पर बहुत-से लोग दर्शक बन कर एकत्रित हुए। एक बड़ी भीड़ के बीच में वह भयानक और खूंखार भैंसा लाकर खड़ा किया गया। उस भैंसे को देखते ही लोगों को भय मालूम होता था। वह मनुष्यों पर बड़ी तेजी के साथ आक्रमण करता था।

उस भैंसे को देखकर अभय सिंह अपने विश्राम-गृह में गया और वहाँ उसने अन्य दिनों की अपेक्षा दो गुनी अफीम का सेवन किया। उस समय उसे मालूम हो गया कि जयसिंह ने अपमानित करने के लिए यह षड़यंत्र रचा है। वह क्रोध से उन्मत्त हो उठा। विश्राम-गृह से लौट कर वह बादशाह के पास आकर खड़ा हो गया।

बादशाह ने मुस्कराते हुए अभय सिंह की तरफ देखा। अभय सिंह बादशाह का अभिप्राय समझ गया। वह अपने स्थान से भैंसा की तरफ बढ़ा। भैंसा बड़ी तेजी से अभय सिंह की तरफ चला। उसके पास आते ही अभय सिंह ने अपने दोनों हाथों से उसके दोनों सींग पकड़ लिए और

उसको घसीट कर वह जयसिंह की तरफ ले गया। बादशाह ने अभय सिंह को उधर जाने से रोका। लेकिन अभय सिंह ने इसकी कुछ परवा न की और उसने अपने दाहिने हाथ में तलवार लेकर एक ही आघात से उस भयानक और खूँख्वार भैंसे की गरदन काट कर उसका सिर अलग कर दिया। गरदन के कटते ही उस भैंसे का शरीर जयसिंह के पास गिरा और दबते-दबते वह बच गया। बादशाह ने अभय सिंह की इस बहादुरी की प्रशंसा की।

मारवाड़ पर अभय सिंह के शासन काल में प्रसिद्ध नादिरशाह ने हिन्दुस्तान पर आक्रमण किया था। उस समय घबराकर बादशाह मोहम्मद शाह ने नादिरशाह के साथ युद्ध करने के लिए राजपूत राजाओं को सेनाओं के साथ बुलवाया। परन्तु कोई राजपूत राजा नहीं आया। अभय सिंह भी नहीं गया।

करनाल के युद्ध में मोहम्मद शाह की पराजय हुई। नादिरशाह की विजयी सेना ने दिल्ली में प्रवेश करके भयानक नर-संहार किया और अमानुषिक अत्याचारों के साथ नादिरशाह की फौज ने वहाँ पर लूट-मार की। राजस्थान का कोई भी राजा नादिरशाह के विरोध के लिए आगे न बढ़ सका।

सिया जी के वंश में जितने भी राठौर मारवाड़ के सिंहासन पर बैठे, अभय सिंह उनमें से एक योग्य शासक था। लेकिन अम्बेर के राजा जयसिंह के कहने से उसने दिल्ली दरबार में जा कर मुगलों की जो अधीनता स्वीकार की थी और उसके बाद उसके पिता अजित सिंह की जिस प्रकार हत्या हुई थी, उसके द्वारा अभय सिंह के गौरव को एक भयानक आघात पहुँचा। सभ्यता की प्रत्येक अवस्था में अपराध स्वयं अपराधी को दण्ड देता है। अभयसिंह को उसका दण्ड मिला। उस दण्ड के फलस्वरूप मारवाड़ में अभय सिंह के मरते ही जो आपसी फूट और कलह उत्पन्न हुई, उससे मारवाड़ का राज्य किस प्रकार छिन्न-भिन्न हुआ, इसके विवरण विस्तार के साथ आगामी पृष्ठों में लिखे जायँगे।

यह पहले ही लिखा जा चुका है कि अजित सिंह को मारने के लिए जिस प्रकार षड़यंत्र से काम लिया गया था, उसका दुष्परिणाम मारवाड़ के राठौरों को थोड़े ही दिनों के बाद भोगना पड़ा और जो मारवाड़ इन दिनों में राजस्थान के अन्य राज्यों की अपेक्षा गौरव पूर्ण हो रहा था, उसके विनाश का बीजारोपण अजित सिंह की मृत्यु के साथ-साथ हुआ।

बयालीसवाँ परिच्छेद

जोधपुर के सिंहासन पर रामसिंह–रामसिंह की निर्बलता–बख्तसिंह के साथ युद्ध की तैयारी–अहंकारी रामसिंह–बख्तसिंह की विजय–रामसिंह की चालें–मराठों की सहायता–बख्तसिंह के साथ विश्वास घात–उसकी मृत्यु–बख्त सिंह का शासन प्रबंध।

अभय सिंह की मृत्यु हो जाने पर उसका लड़का रामसिंह जोधपुर के सिंहासन पर बैठा। अभय सिंह के मरने के ठीक बीस वर्ष पहले सिरोही के मानसिंह की लड़की और अभय सिंह की रानी से रामसिंह का जन्म हुआ था। सिरोही की देवड़ा शाखा चौहान वंश की एक प्रधान शाखा

है। रामसिंह स्वभाव का अत्यन्त क्रोधी और अदूरदर्शी था। मारवाड़ का राज्य-सिंहासन प्राप्त करने के समय तक उसने अपने चरित्र का जो परिचय दिया उससे कदाचित् कोई भी प्रसन्न न था।

रामसिंह के अभिषेक में मरुभूमि के प्रत्येक सामन्त और श्रेष्ठ व्यक्ति ने राजधानी जोधपुर में आकर नवीन राजा के प्रति अपना सम्मान प्रकट किया था। परन्तु उस अभिषेक में नागौर के शासक बख्त सिंह ने आकर भाग नहीं लिया। इस शुभ अवसर पर उसके न आने का क्या कारण था, इसका कोई उल्लेख और स्पष्टीकरण उस समय के भट्ट ग्रंथों में नहीं मिलता।

रामसिंह बख्त सिंह का भतीजा था और रामसिंह के अभिषेक में बख्त सिंह का आना अत्यन्त आवश्यक था। उस अभिषेक में रामसिंह के मस्तक पर राज तिलक करना बख्त सिंह का परम कर्त्तव्य था। परन्तु न तो वह स्वयं उसमें गया और न अपने प्रतिनिधि के रूप में उसने किसी सामन्त को भेजा। उसकी तरफ से उस अवसर पर एक धात्री जोधपुर गयी थी। राजस्थान में धात्री को माता के समान सम्मान मिलता है।

उस धात्री के भेजने में बख्त सिंह का क्या अभिप्राय था, इसका भी कोई उल्लेख उस समय के ग्रंथों में नहीं पाया जाता। उस धात्री के साथ रामसिंह ने जो व्यवहार किया, वह किसी प्रकार सम्मानपूर्ण नहीं कहा जा सकता। इतना ही नहीं, बल्कि रामसिंह के उस व्यवहार को निन्दनीय कहा जाना किसी प्रकार अनुचित नहीं हो सकता।

रामसिंह ने इतना ही नहीं किया, बल्कि राजसिंहासन पर बैठने के बाद जालौर का राज्य छोड़ देने के लिए उसने अपने चचा बख्त सिंह के पास दूत भेजा। अभिषेक के अभी बहुत थोड़े दिन बीते थे। चाचा और भतीजे में विद्वेष की आग सुलगने लगी।

रामसिंह ने दूत भेजने के बाद बख्त सिंह के पास अपना एक पत्र भी भेजा और नागौर राज्य पर आक्रमण करने की वह तैयारी करने लगा। इस अवसर पर रामसिंह ने अपने सुयोग्य सामन्तों और मन्त्रियों के साथ परामर्श न किया। उसने निम्न श्रेणी के कर्मचारियों के साथ बातें कीं और उन्हों के परामर्श से उसने काम किया। इन निम्न श्रेणी के लोगों में अमियाँ नाम का एक कर्मचारी था। उसके पूर्वज जोधपुर के प्रधान तोरण-द्वार पर नगाड़ा बजाने का काम करते थे। अमियाँ भी जोधपुर का एक कर्मचारी था और वह अपने पिता के स्थान पर काम करता था। यह अमियाँ रामसिंह का एक प्रिय और प्रधान सलाह देने वाला था।

रामसिंह और अमियाँ के स्वभावों की बहुत-सी बातें मिलती-जुलती थीं। रामसिंह जो चाहता था, अमियाँ उसी का समर्थन करता था। दोनों के बीच मित्रता का यही प्रधान कारण था। इसी अमियाँ ने रामसिंह को बख्त सिंह से युद्ध करने का परामर्श दिया था।

मारवाड़ के प्रधान चम्पावत सामन्त कुशलसिंह ने जब सुना कि रामसिंह अपने चाचा बख्त सिंह के साथ युद्ध करने की तैयारी कर रहा है तो वह चिन्तित हो उठा और जोधपुर पहुँच कर उसने रामसिंह को समझाने की चेष्टा की। कुशलसिंह के वहाँ पहुँचते ही और अपने स्थान पर बैठते ही रामसिंह ने उसकी तरफ देखा और आवेश में आकर उसने कहा : "आपका मुख न देखना ही मैं अच्छा समझता हूँ।"

रामसिंह के मुख से इस प्रकार के कड़वे शब्दों को सुनकर सामन्त कुशल सिंह ने उसकी तरफ देखा और फिर गम्भीर होकर उसने कहा : "आपके इस प्रकार के व्यवहार को देखकर आपके चाचा बख्त सिंह को भी इसी प्रकार का व्यवहार प्रकट करने का अधिकार है। आपने बख्त सिंह के साथ जिस प्रकार का व्यवहार आरम्भ किया है, उसका परिणाम आपके सामने अच्छा नहीं आवेगा।

यह कह कर कुशल सिंह वहाँ से उठ कर चल दिया और अपनी सेना के साथ वह जोधपुर के प्रधान राज कवि के मूंधियापाडा नगर की तरफ रवाना हुआ। यह राज कवि समस्त मरुभूमि में बड़े सम्मान के साथ देखा जाता था और उसको वार्षिक आमदनी श्रेष्ठ सामन्तों की आमदनी की तरह एक लाख रुपये से कम न थी।

जोधपुर से चल कर कुशल सिंह उस राज कवि के यहाँ पहुँचा। बख्तसिंह ने जब सुना कि मारवाड़ के प्रधान सामन्त कुशल सिंह ने जोधपुर छोड़ कर नागौर राज्य की सीमा में प्रवेश किया है तो वह उसी समय कुशल सिंह का स्वागत करने के लिए रवाना हुआ। कुशल सिंह के पास पहुँच कर बख्तसिह ने उसको सोता हुआ देखा। उसने सामन्त को जगाना उचित न समझ कर वहीं पर वह भी लेट गया।

सवेरा होते ही कुशल सिह ने अपने अनुचारों को हुक्का लाने की आज्ञा दी। उसी समय अनुचरों ने संकेत करके बख्त सिंह की तरफ उसका ध्यान आकर्षित किया। कुशल सिंह तुरन्त आश्चर्य चकित होकर खड़ा हो गया। इसी समय बख्तसिंह की भी नींद टूट गई। दोनों में कुछ देर तक बातें होती रहीं। अंत में सामन्त कुशल सिंह ने विनम्र होकर राजा बख्त सिंह से कहा: "राजन, मेरे इस मस्तक पर अब आप का अधिकार है।" राज कवि वहाँ पर मौजूद था। बख्त सिंह ने उससे सामन्त की ओर संकेत करके कहा: "अहवा से आप की पत्नी और परिवार के लोगों को आप नागौर ले आइए। राज कवि ने इस आज्ञा को स्वीकार करते हुए कहा: "आज से मैंने भी जोधपुर से सदा के लिए अपना सम्बन्ध विच्छेद कर लिया।"

बख्त सिंह ने राज-कवि की बात को सुनकर संतोष प्रकट करते हुए कहा: "जोधपुर और नागौर में कोई अन्तर हमको और आपको नहीं समझना चाहिए। अपने पास की बाजरे की एक रोटी को हम लोग आपस में बाँटकर खायँगे।" बख्त सिंह ने अपनी व्यावहारिक चतुरता के द्वारा सामन्त कुशल सिह और राजकवि के अन्तरतर में सदा के लिए स्थान बना लिया।

रामसिह ने बख्त सिह को युद्ध की तैयारी का मौका न देकर नागौर पर आक्रमण करने के लिए रवाना हुआ। खेरली नामक स्थान पर दोनों तरफ से एक युद्ध हुआ। उसके पश्चात् छै स्थानों पर लगातार दोनों सेनाओं की मार काट हुई। अंत में रामसिंह की पराजय हुई। वह युद्ध-क्षेत्र से भाग गया।

बख्त सिह विजयी होकर अपनी सेना के साथ जोधपुर की तरफ रवाना हुआ। उसके जोधपुर के निकट पहुँचते ही राठौरों ने उसका स्वागत किया। वहाँ पहुँकर बख्त सिंह ने जोधपुर पर अधिकार किया और उसके बाद वह श्रेष्ठ राठोरों के परामर्श से वहाँ के सिंहासन पर बैठा। बगड़ी के जेतावत सामन्त ने बख्त सिह के मस्तक पर राजतिलक किया। इसके बदले में उस सामन्त को राजतिलक करने का अधिकारी कहकर बख्त सिह ने उसको 'मारवाड़ का बार किवाड' की उपाधि दी।

बख्त सिंह ने रामसिह को पराजित करके न केवल तलवार के बल से जोधपुर का राजसिहासन प्राप्त किया, बल्कि उसने अच्छे व्यवहारों के द्वारा वहाँ के बहुत से सामन्तों की सहानुभूति भी अपने पक्ष में कर ली। इस दशा में रामसिह से कोई अन्देशा उसको न रह गया। फिर भी, उसने जोधपुर के श्रेष्ठ पुरुषों को अपने पक्ष में कर लेने का इरादा किया।

राजस्थान के प्रत्येक राज्य में पुरोहित और कवि पूर्वजों के अधिकारी माने जाते हैं। इस प्रकार वहाँ एक पुरानी व्यवस्था है। उसके अनुसार, मंत्री के पद पर उसका पुत्र और पुरोहित के पद पर पुरोहित का पुत्र नियुक्त किया जाता है। यही व्यवस्था राज्याधिकार के सम्बन्ध में भी वहाँ

पर है। इसीलिए अयोग्य और उग्र स्वाभाव का होने पर भी रामसिंह अपने पिता अभय सिंह के सिंहासन पर बैठा था। लेकिन वह इस पैतृक अधिकार को अधिक समय तक भोग न सका। उसने अपने चाचा बख्त सिंह के विरुद्ध आक्रमण किया और उसके फल-स्वरूप वह सिंहासन से उतारा गया। जोधपुर राज-दरबार के सभी मंत्रियों और सामन्तों ने बख्त सिंह का समर्थन किया। परन्तु वहाँ का पुरोहित बख्त सिंह के पक्ष में न रहा। उस पुरोहित का नाम था जग्गू। इस जग्गू ने रामसिंह को उग्र और अयोग्य समझकर भी समर्थन किया था। जोधपुर के सिंहाहन पर बख्त सिंह के बैठने पर रामसिंह ने राजा जयपुर के यहाँ जाकर आश्रय लिया। पुरोहित जग्गू पूरी तौर पर रामसिंह के पक्ष में था। उसने रामसिंह को फिर से राजसिंहासन पर बिठाने का प्रयास किया और इसके लिए मराठों की सहायता प्राप्त करने की इच्छा से जग्गू दक्षिण चला गया।

जग्गू का कार्य बख्त सिंह से छिपा न रहा। उसने देखा कि पुरोहित जग्गू मराठों की सहायता लेकर मारवाड़ के विनाश की चेष्टा कर रहा है। इसलिए इस पुरोहित को अपने अनुकूल बनाने की कोशिश क्यों न की जाय। इसके सम्बन्ध में अनेक प्रकार की बातें सोच-समझ कर बख्त सिंह ने राजनीति से काम लिया। उसने कविता में एक पत्र लिखकर जग्गू पुरोहित के पास भेजा। उसका आशय इस प्रकार है :

"हे मधुकर जिस फूल के सौरभ पर आप आसक्त हो रहे हैं, उसका पेड़ आँधी के आने से नष्ट होकर गिर गया है उसके सभी पत्ते सूख गये हैं। अब आप क्यों बेकार उसके काटों में उलझना चाहते हैं।"

पुरोहित ने इसका उत्तर देते हुए बख्त सिंह को लिखा : "सूखा हुआ गुलाब का वृक्ष अवसर पाकर फिर हरा हो सकता है और बसन्त के आने पर उसमें नवीन फूल पैदा होकर फिर से सुगंधि दे सकते हैं। इसी आशा से मधुकर उस वृक्ष से निराश नहीं है।"

पुरोहित की इस स्पष्ट बात को पढ़कर बख्त सिंह को बड़ी प्रसन्नता हुई। उसने पुरोहित का सम्मान करने के लिए संदेश भेजा, जिसे पुरोहित ने अस्वीकार कर दिया।

बख्त सिंह ने जोधपुर के सिंहासन पर बैठकर बड़ी बुद्धिमानी के साथ वहाँ के प्रसिद्ध जनों को अपने अनुकूल बना लिया था। उसमें इस प्रकार के गुण थे, जिनसे राजस्थान के लोग सदा प्रसन्न रहते थे। रामसिंह का दूत दक्षिण में पहुँचा और वहाँ के मराठा नेताओं से मिलकर रामसिंह को जोधपुर के सिंहासन पर बिठाने से लिए उसने पूरी चेष्टा की। दक्षिण के मराठा रामसिंह की सहायता करने के लिए तैयार हो गये। लेकिन जब उनको मालूम हुआ कि राजस्थान के अधिकांश राजा और सामन्त रामसिंह के विरुद्ध बख्त सिंह की सहायता करेंगे, तो वे भयभीत हो उठे।

राजस्थान के राजाओं में यह अफवाह फैल गई की बख्त सिंह के विरुद्ध रामसिंह की सहायता करने के लिए मराठा लोग आने की तैयारी कर रहे हैं। इससे राजपूतों में सनसनी पैदा हो गयी और वे लोग बख्त सिंह की सहायता करने के लिए तैयार हो गये। रामसिंह के दूत ने मराठों को समझा बुझा कर मारवाड़ की तरफ चलने के लिए तैयार किया। मराठा लोग रामसिंह की सहायता के नाम पर मारवाड़ को लूटने और वहाँ की अपरिमित सम्पत्ति ले जाने के लिए दक्षिण से रवाना हुए। मरुभूमि के सभी राजाओं और सामन्तों ने मराठों के विरुद्ध बख्त सिंह की सहायता करने के लिए निश्चय किया। इस दशा में मारवाड़ पर आक्रमण करने का मराठों का इरादा क्षत्-विक्षत् हो गया और उन्होंने जो आशायें की थीं, उनमें उनको निराश हो जाना पड़ा। राजपूतों की एकता ने मराठों को मारवाड़ की तरफ आगे बढ़ने का मौका नहीं दिया। फिर भी मराठों को

रोकने के लिए बख्त सिंह जोधपुर से रवाना हुआ और अजमेर के पास जाकर उसने उस रास्ते पर मुकाम किया, जहाँ से होकर शत्रुओं की सेना मारवाड़ राज्य में प्रवेश कर सकती थी।

आमेर के राजा माधव सिंह राठौर की रानी ने वहाँ पर जा बख्त सिंह से भेंट की और उसने रामसिंह के हितों की रक्षा करने के लिए बख्त सिंह के दीपक के जीवन को बुझा दिया। × सम्वत् १८०९ सन् १७५३ ईसवी में बख्त सिंह ने संसार छोड़ कर परलोक की यात्रा की।

मारवाड़ के राज सिंहासन पर बैठ कर बख्त सिंह ने तीन वर्ष व्यतीत किये। इस थोड़े से समय में उसने मारवाड़ के समस्त दुर्गों को सुदृढ़ बनवाया और जोधपुर में कई एक ऐसे कार्य किये जिनसे राठौरों की शक्तियां पहले की अपेक्षा अधिक मजबूत हो गयी थीं। मुस्लिम शासकों ने हिन्दुओं के साथ जो अमानुषिक व्यवहार और अत्याचार किये थे, बख्त सिंह ने भली प्रकार उनका बदला दिया। मुसलमानों के अत्याचारों में हिन्दुओं के मन्दिर गिराकर उनके स्थानों पर मसजिदें बनवाई गयी थीं। बख्त सिंह ने नागौर राज्य की मसजिदों को गिरवा कर, उनके स्थानों पर मन्दिर बनवाये थे। बख्त सिंह के शासन काल में दिल्ली मुगल बादशाह की शक्तियाँ बिलकुल निर्बल पड़ गयी थीं और समस्त मुगल साम्राज्य में विद्रोह पैदा हो गये थे।

कृष्णा नदी के किनारे मराठा किसानों ने संगठित हो कर दिल्ली के मुगलों के विरुद्ध विद्रोह किया था। उनके संगठन से राजस्थान के राजाओं के सामने एक भीषण आतंक पैदा हो गया था। यदि बख्त सिंह की मृत्यु असमय न हो जाती और उसको मारवाड़ के राज्य सिंहासन पर कुछ अधिक समय तक बैठने का अवसर मिलता तो राजस्थान की शक्तियाँ इतनी सुदृढ़ हो जाती कि फिर उनको कोई संगठित शक्ति आसानी के साथ दबा न सकती।

तेंतालीसवाँ परिच्छेद

मुगलों की कमजोरी–अधीन राजाओं के विद्रोह–जोधपुर में फूट–मराठों की सहायता–मेरता में मराठों के साथ युद्ध–विजय सिंह की पराजय–मराठों के साथ संधि–मराठों के अत्याचार–राठौरों में आपसी विद्रोह–मारवाड़ में अशान्ति–सामन्तों का विरोध–राजगुरू का अंतिम संस्कार–सामन्तों के साथ विश्वासघात–मराठों के साथ संघर्ष–अंत में मराठों की विजय–विजय सिंह का पतन।

बख्त सिंह की मृत्यु के पश्चात् उसका बेटा विजय सिंह बीस वर्ष की अवस्था में मारवाड़ के सिंहासन पर बैठा। उन दिनों में दिल्ली का मुगल बादशाह नाम मात्र के लिए बादशाह रह गया था। क्योंकि उसके शासन की शक्तियां इन दिनों में बिलकुल क्षीण हो गयी थीं और मुगल साम्राज्य के हिन्दू-मुस्लिम शासकों ने उसके प्रभुत्व को स्वीकर करने से इंकार कर दिया था। मुगलों की अधी-

× कुछ लेखकों का कहना है कि जयपुर के राजा ईश्वरी सिंह की स्त्री ने वहाँ जाकर बख्त सिंह को विषक्त वस्त्र दिये थे, जिनको पहनने के बाद बख्त सिंह की मृत्यु हो गयी। कुछ भी हो, रामसिंह के षड़यंत्र के अनुसार, माधव सिंह अथवा ईश्वरी सिंह की रानी के विषाक्त वस्त्रों के द्वारा उस समय बख्तसिंह की मृत्यु हुई थी।

नता को तोड़ कर छोटे और बड़े सभी राजा अपने आपको स्वतन्त्र समझने लगे थे। फिर भी मारवाड़ के सिंहासन पर बैठ कर प्राचीन प्रथा के अनुसार विजय सिंह ने अपने अभिषेक का समाचार दिल्ली के बादशाह के पास भेजा। उसे मुगल सम्राट ने स्वीकार किया। उस समय राजस्थान के अन्यान्य राजाओं ने विजय सिंह के अभिषेक उत्सव पर बधाई के पत्र भेजे।

मारोठ नामक स्थान मारवाड़ की सीमा पर बसा हुआ था, विजय सिंह का अभिषेक उत्सव वहीं पर किया गया। उस समय विजय सिंह ने मारोठ से मेरता जा कर पिता की मृत्यु के कारण कुछ दिन शोक में व्यतीत किये। वहाँ पर बीकानेर, कृष्णगढ़ और रूप नगर के स्वतंत्र राजा अपनी-अपनी सेनाओं को लेकर आये और सभी ने विजय सिंह के प्रति अपना सम्मान प्रकट किया। उनके सिवा सभी सामन्तों ने वहाँ पहुँच कर विजय सिह के आदर सत्कार में अपने कर्त्तव्यों का पालन किया। विजय सिंह ने भी आये हुए राजाओं और सामन्तों का पूर्ण रूप से आदर सम्मान किया। उसके पश्चात् जोधपुर जाकर बड़े धूम धाम के साथ उसने अपने पिता का श्राद्ध किया। इस कार्य में उसने बहुत-सा धन व्यय किया और उसने कवियों, भाटों, चारणों, ब्राह्मण और अनाथों को दान में बहुत-सा धन दिया।

राज्य सिंहासन पर बैठने के समय विजय सिंह की अवस्था बीस वर्ष की थी। उसकी इस छोटी-सी आयु में रामसिंह उसका शत्रु हो रहा था। रामसिंह की शत्रुता के ही कारण बख्त सिंह की अकाल मृत्यु हुई थी। जिस रामसिंह ने षड़यंत्र रच कर बख्त सिंह को संसार से विदा किया था, वही आज बख्त सिंह के प्यारे पुत्र विजय सिंह का शत्रु हो रहा था।

राम सिंह अपनी पूर्ण शक्तियों के द्वारा विजय को सिंहासन पर बैठने से रोकना चाहता था। इसके लिए उसने सभी प्रकार की चेष्टायें की। परन्तु मारवाड़ राज्य के सामन्तों, सरदारों और मंत्रियों ने विजय सिंह के पक्ष का समर्थन किया। इस लिए रामसिंह की कोई भी चेष्टा सफल न हो सकी और राम सिंह को असफल बनाकर विजय सिंह अपने पिता के सिंहासन पर बैठा।

बख्त सिंह के द्वारा मारवाड़ से निकाले जाने पर रामसिंह जयपुर में रहने लगा और वहाँ वह अपने उद्देश्य की सफलता के लिए तरह-तरह की चेष्टायें कर रहा था। बख्त सिंह की मृत्यु के बाद रामसिंह ने विजय सिंह के सिंहासन पर बैठने के समय कठोर बाधायें उपस्थित कीं और जब वह इसमें सफल न हो सका तो वह विजय सिंह को पराजित करने और सिंहासन से उतार देने की कोशिश करने लगा।

रामसिंह इन दिनों में जयपुर में रहा करता था और इसके सम्बन्ध में सभी प्रकार के परामर्श वह राजा जयपुर के साथ किया करता था। राजा जयपुर इस बात को भली-भाँति समझता था कि मारवाड़ के सामन्तों और सरदारों ने जब विजय सिंह को सिंहासन पर बिठा कर उसका प्रभुत्व स्वीकार किया है तो राम सिंह के विरोध करने से उसमें कुछ नहीं हो सकता।

नैतिक रूप से विजय सिंह को सिंहासन से उतारने का कोई रास्ता राम सिंह और सहायकों के सामने न था। इस लिए उसने अपने उद्देश्य में सफलता प्राप्त करने के लिए दूसरे उपायों का सहारा लिया। उन दिनों में दक्षिण के मराठों ने संगठित होकर अपनी शक्तियाँ मजबूत बना ली थीं। रामसिंह ने उन्हीं मराठों का सहारा लेने का निश्चय किया।

इसके पहले राम सिंह के पुरोहित ने मराठों के पास जा कर उनकी सहायता प्राप्त करने की चेष्टा की थी परन्तु उसमें राम सिंह को सफलता न मिल सकी। इस समय मराठों को बख्तसिंह का भय न रह गया था। इस लिए रामसिंह ने निर्भीक होकर मराठों के साथ संधि की। उसके

बाद मराठा सेना दक्षिण से चलकर कोटा होती हुई जयपुर में आ गयी। रामसिंह मराठा सेना के साथ जयपुर से जोधपुर के लिए रवाना हुआ।

मराठा सेना लेकर राम सिंह के आने का समाचार मारवाड़ में पहुँच गया। वहाँ के लोगों में यह अफवाह फैलने लगी कि मराठा लोग इस राज्य में आकर भीषण अत्याचारों के साथ लूटमार करेंगे। इस लिए रामसिंह के इस आक्रमण को व्यर्थ करने के लिए राठौर राजपूत के दल के दल मेरता के मैदानों में आकर एकत्रित होने लगे।

मराठा सेना के साथ पुष्कर तीर्थ में पहुँच कर रामसिंह ने अपने दूत के द्वारा संदेश भेजा : "तुम इसी समय राज सिंहासन छोड़ कर अपने प्राणों की रक्षा करो, अन्यथा तुम्हारी कुशल नहीं है।"

विजय सिंह ने अपने समस्त सामन्तों के सामने रामसिंह का भेजा हुआ संदेश प्रकट किया। उसकी बात सुन कर सभी राठौर सामन्त क्रोध में आकर एक साथ कह उठे : "हम लोग युद्ध के लिए तैयार हैं। हमें मराठों का कोई भी भय नहीं है।"

उत्तेजित राठौर सामन्तों ने एक मत से युद्ध का समर्थन किया। विजय सिंह ने रामसिह के संदेश का जबाब भेज दिया। रामसिंह के साथ जो मराठा सेना आयी थी, वह राठौर सेना के मुकाबिले में अधिक विशाल थी। उसके साथ जयपुर के कछवाहों की सेना भी थी। राठौर राजपूतों को जयपुर की सेना की कुछ भी परवा न थी। लेकिन मराठों की विशाल सेना को पराजित करने के लिए राठौर सामन्त आपस में परामर्श करने लगे।

विजय सिह युद्ध की तैयारी करके जोधपुर में एकत्रित सेनाओं के साथ वह मेरता के मैदानों में पहुँच गया। यहाँ पर मराठा सेना के साथ युद्ध करके उसको मारवाड़ के सिंहासन के अधिकारी का निर्णय करना था। दोनों ओर की सेनाओं का सामना हुआ और युद्ध आरम्भ हो गया। इस संग्राम में कुछ ही समय की मार काट करके राठौरों ने मराठों के छक्के छुटा दिये।

इस भयानक युद्ध में दो घटनायें राठौरों के विरुद्ध पैदा हुईं। यदि ये घटनायें न होतीं तो राठौरों ने निश्चित रूप से मराठों को पराजित किया होता। पहली घटना यह हुई कि जिस समय राठौरों की अश्वारोही सेना युद्ध-क्षेत्र से भाग कर लौट रही थी, राठौरों की दूसरी सेना ने उसको शत्रु सेना समझ कर भीषण रूप से गोलों की वर्षा की। जिससे राठौरों की सवारों की सेना को बहुत क्षति पहुँची और अचानक उसके बहुत से शूरवीर मारे गये। दूसरी घटना भी कुछ इसी प्रकार की थी। मराठा सेना का प्रधान सेनापति सींधिया जिस समय युद्ध-क्षेत्र को छोड़कर भागने को था, टीक उसी समय राठौर सेना छिन्न-भिन्न हो गयी।

कृष्णगढ़ और रूप नगर के दोनों राजा राठौर वंश में ही उत्पन्न हुए थे। परन्तु दोनों अपने-अपने राज्यों में स्वाधीनता के साथ शासन करते थे और मुगल बादशाह के प्रभुत्व को स्वीकार करते थे। कृष्णगढ़ से राजा ने रूप नगर के राजा को सिहासन से उतार कर उसके राज्य पर अधिकार कर लिया था। रूप नगर का राजा सामन्त सिंह अपनी वृद्धावस्था के कारण जमना नदी के किनारे वृन्दावन चला गया और वहाँ पर वह वैराग्य लेकर अपने दिन व्यतीत करने लगा।

सामन्त सिंह के पुत्र को पिता के सन्यास ले लेने से बहुत शोक पहुँचा। वह किसी प्रकार अपने राज्य का उद्धार करना चाहता था। उसने अपने पिता से भेंट की और बहुत-सी बातें उसने कहीं। लेकिन पिता पर कोई प्रभाव न पड़ा और उसने पुत्र को स्वयं समझाने की चेष्टा की कि संसार के इस माया-जाल को छोड़कर तुमको भी अलग हो जाना चाहिए।

पिता की इन बातों को सुनकर उसके पुत्र को बड़ी निराशा हुई। वह पिता के पास से लौटकर चला आया और राज्य के उद्धार के लिए वह तरह-तरह की बातें सोचने लगा। इन्हीं दिनों में विजय सिंह के साथ रामसिंह का संघर्ष बढ़ा। सामन्त सिंह के बेटे ने इसको अपने लिए एक अवसर समझा और वह रामसिंह के दूत के साथ दक्षिण में मराठों के पास पहुँच गया। वहाँ पर रामसिंह के दूत के साथ-साथ अपनी सहायता से लिए भी उसने मराठों से प्रार्थना की।

मेरता के युद्ध में जिस समय मराठा सेना पराजय की अवस्था में पहुँच रही थी और अपने प्राणों की रक्षा के लिए युद्ध से वह भागना चाहती थी, ठीक उसी समय मराठा सेना पति जय अप्पा ने सामन्त सिंह के बेटे को बुलाकर कहा:"आपका और रामसिंह का मामला एक साथ है और एक-सा है। हम लोग रामसिंह की सहायता करने के लिए आये थे। लेकिन युद्ध की परिस्थिति बिलकुल हम लोगों के विपरीत जा रही है। इससे जाहिर होता है कि रामसिंह का भाग्य अच्छा नहीं है। अब प्रश्न यह कि हम लोग इस समय आप की क्या सहायता कर सकते है?"

वह युवक मराठा सेनापति की इन बातों को सुनकर घबरा उठा। इसको इस प्रकार की आशा न थी। उसी समय उसने गम्भीर दृष्टि से काम लिया। वह समझता था कि इस समय राठौर सेना को पराजित करना साधारण बात नहीं है। इसलिए उसने सूक्ष्म दृष्टि से काम लिया और तुरंत उसने अपने एक जातीय अश्वारोही सैनिक को समझा-बुझाकर शत्रुओं की तरफ भेज दिया। वह अश्वारोही सैनिक राठौरों की सेना में पहुँचा और वहाँ पर उसने माईनोत राजपूत वंश के सेनापति से कहा :

"विजय सिंह शत्रु की गोली से वहाँ मारा गया। इस लिए अब किसके लिए युद्ध होगा।"

माईनोत सामन्त ने उस अश्वारोही सैनिक को अपना समझकर विश्वास किया। वह तुरंत अधीर हो उठा। विजय सिंह की मृत्यु का समाचार राठौर सेना में फैल गया। किसी ने उसके सम्बन्ध में पता लगाने की कोशिश नहीं की। राठौर सेना घबरा कर इधर-उधर भागने लगी। इस समय राठौर सेना के साथ मेरता के दूसरे क्षेत्र में विजय सिंह मराठों के साथ युद्ध कर रहा था। वह इस युद्ध में एक लाख सैनिकों की सेना लेकर आया था। उसने आश्चर्य के साथ सुना कि राठौर सेना एक साथ युद्ध के क्षेत्र से भाग रही है। विजय सिंह घबरा उठा। जो राठौर सेना उसके साथ शत्रुओं से लड़ रही थी, मारवाड़ की सेना के भागने का समाचार उससे भी अप्रकट न रहा। बिना सोचे-समझे उस सेना के राठौर भी युद्ध छोड़कर क्षेत्र भागने लगे। विजय सिंह के सामने भयंकर परिस्थिति पैदा हो गयी। किसी प्रकार शत्रु के सामने से हटकर विजय सिंह वहाँ से भाग गया और एक कृषक के यहाँ जाकर उसने प्राणों की रक्षा की।

रूप नगर के राजा सामन्त सिंह के युवक बेटे की राजनीति से विजय सिंह की एक लाख सेना को पराजित होना पड़ा। इस विजय का कोई भी श्रेय मराठा सेना को न मिला। फिर भी विजय उसी की मानी गयी। राठौर सेना के भाग जाने पर रामसिंह विजयी होकर युद्ध के क्षेत्र में घूमने लगा। उसने मारवाड़ के दुर्गों पर अधिकार कर लिया। मराठा सेना मारवाड़ के नगरों में घूम-घूम कर लूट मार करने लगी।

मराठा सेना का प्रधान जय अप्पा इस युद्ध में भयानक रूप से मारा गया था। × इसलिए राठौर सेना के भाग जाने के बाद मराठों ने जो भीषण अत्याचार आरम्भ किये, उस निर्दयता

× मराठा सेनापति मेरता के इस युद्ध में मारा गया था, इस पर दो प्रकार के मत पाये जाते हैं। विजय विलास नामक ग्रन्थ में लिखा है कि जय अप्पा युद्ध के संकट में पड़कर रोगी हो गया था।

देखकर विजय सिंह घबरा उठा। उसने अजमेर मराठों को दे दिया और कर देना भी उसने स्वीकार कर लिया।

मारवाड़ राज्य में अजमेर सबसे बड़ी विशेषता रखता था। इसलिए अजमेर के निकल जाने पर मारवाड़ का राज्य निर्बल पड़ गया। रूप नगर के युवक राजकुमार की राजनीति के द्वारा मराठा सेना ने राठौरों पर विजय प्राप्त की। इसलिए जय अप्पा ने रूप नगर के सिंहासन पर उस युवक को बिठाने का इरादा किया। उसको सुनकर उस युवक ने कहा: "पहले रामसिंह को जोधपुर के सिंहासन पर बैठना चाहिए। इससे रूप नगर का उद्धार बड़ी आसानी के साथ हो जायगा।" इसके कई दिनों बाद जय अप्पा मारे गये। उससे रामसिंह के साथ राजपूतों पर संदेह पैदा हो गया।

सेनापति जयअप्पा की मृत्यु हो जाने पर मराठों का समस्त राजपूतों पर अविश्वास पैदा हुआ। उन लोगों ने रामसिंह के समस्त राजपूतों पर आक्रमण किया। बिजय सिंह का दूत रावत कुबेर सिंह संधि के सम्बन्ध में मराठों के पास आया था। इस आक्रमण में वह भी मारा गया। नागौर राज्य के ताऊसर नाम के एक ग्राम में जयअप्पा के स्मारक में एक मंदिर बनवाया गया।

राठौरों के साथ संधि हो जाने के बाद मराठों ने रामसिंह के पक्ष को छोड़ दिया। इसलिए रामसिंह के सामने फिर से कठिनाइयाँ पैदा हो गयीं। उसने जोधपुर का सिंहासन प्राप्त करने के लिए बाईस वर्ष तक लगातार युद्ध किया। मराठों के अलग हो जाने के बाद रामसिंह फिर असहाय अवस्था में पहुँच गया। इस समय उसकी सहायता करने वाला कोई न था। इसलिए उसने विजय सिंह के यहाँ जाकर आश्रय लिया।

रामसिंह की इस असहाय अवस्था में विजय सिंह ने मारवाड़ राज्य के साँभर का इलाका उसके जीवन-निर्वाह के लिए दे दिया। साँभर का कुछ भाग जयपुर राज्य के साथ था। इसलिए जयपुर के राजा ने भी वह भाग देकर रामसिंह की सहायता की। इसके बाद रामसिंह निराश अवस्था में साँभर में रहकर अपना जीवन व्यतीत करने लगा। उसके स्वभाव में अब बड़ा परिवर्तन हो गया। पहले की सी उसमें अब उग्रता और कठोरता न रह गयी थी। अब बहुत कुछ विनम्र हो गया था। सम्वत् १७७३ में रामसिंह की जयपुर में मृत्यु हो गयी। उसका शरीर वीरोचित और शक्तिशाली था। अपने स्वभाव की उग्रता के कारण जीवन के आरम्भ में वह अपने सामन्तों के निकट अप्रिय हो गया था। उसमें पहले भी अनेक अच्छाइयाँ थीं। परन्तु वह व्यवहार कुशल न था। अपनी इसी अयोग्यता के कारण वह सिंहासन से उतारा गया था।

कुछ भी हो विजय सिंह की विशाल सेना के सामने मराठों की एक छोटी सेना लेकर रामसिंह विजयी हुआ। इस दशा में विजय सिंह की अपेक्षा रामसिंह को राजनीतिज्ञ और सुयोग्य मानना किसी प्रकार अस्वाभाविक नहीं कहा जा सकता।

निर्वासित अवस्था में रामसिंह जयपुर में परलोक की यात्रा की। उसके न रहने के बाद विजय सिंह ने निश्चिन्त होकर अपना राज्य शासन चलाया। मराठों ने अजमेर पर अधिकार करके

उसकी चिकित्सा करने के लिए राठौर के राजा ने सूरजमल नामक अपना चिकित्सक भेजा। सूरजमल ने वहाँ जाने से इनकार करते हुए कहा: "आप मुझसे जय अप्पा को विष देने के लिए कह सकते हैं। लेकिन मैं ऐसा न करूँगा। यह सुनकर विजय सिंह ने कहा: मैं ऐसा न कहूँगा। आप वहाँ जाकर अच्छी चिकित्सा करें। सूरजमल ने जाकर जय अप्पा की चिकित्सा की और उसने बहुत जल्दी उसे नीरोग कर दिया।

न केवल मारवाड़ राज्य से कर वसूल किया, बल्कि उसके बाद भी वे लोग लूट मार करके धन एकत्रित करते रहे और उस सम्पत्ति से उन्होंने अपनी शक्तियाँ प्रबल बना लीं। मराठों ने इतना ही अत्याचार नहीं किया, बल्कि वे अनेक दूसरे उपायों से राजपूतों को निर्बल बनाने का काम करते रहे। मराठों ने सदा दो राजपूतों को लड़ाने की चेष्टा की और किसी एक का पक्ष लेकर वे दूसरे का सर्वनाश करते रहे। इस प्रकार मराठों ने अपनी प्रबल शक्तियों के द्वारा राजपूतों को भयानक क्षति पहुँचाई। अनेक अत्याचारों से मारवाड़ और उसके आस-पास बहुत अशान्ति बढ़ गयी।

मराठों के उपद्रव के कारण कृषक खेती कार्य न कर सकते थे। व्यवसायी सदा डरते थे। मारवाड़ में विजय सिंह की निर्बलता बढ़ जाने के कारण राज्य के समस्त सामन्त स्वतन्त्र हो रहे थे। राज्य व्यवस्था नष्ट हो गयी थी और मारवाड़ में सर्वत्र अराजकता बढ़ जाने के कारण सदा लूट-मार होती रहती थी। इस लूट मार और अत्याचार से खेती का कार्य नष्ट हो गया। व्यवसाय बन्द हो गया और लोगों को राज्य का कोई भय न रह गया। विजय सिंह की मान-मर्यादा महलों से लेकर बाहर तक सर्वत्र नष्ट हो गयी।

अन्य राज्यों की अपेक्षा मारवाड़ के सामन्त अधिक स्वतंत्र और सदा शक्तिशाली रहे थे। उनकी इस स्वतन्त्रता का कारण यह था कि उनके पूर्वजों के बल—पौरूष से मारवाड़ राज्य की प्रतिष्ठा हुई थी। यही कारण था कि इस राज्य के सभी सामन्त अधिक स्वाधीनता और सुखों का सदा से भोग करते चले आ रहे थे।

विजय सिंह के प्रभाव के नष्ट हो जाने से वहाँ के समन्तों में जो स्वच्छन्दता पैदा हो गयी थी, वह धीरे-धीरे बढ़ती गयी और राज्य की एक घटना ने उस स्वच्छन्दता को अधिक नियंत्रण हीन बना दिया था। पोकरण चम्पावत लोगों की जागीर थी। वहाँ का सामन्त निस्सन्तान होकर मर गया था। वह मरने के पहले राजा अजित सिंह के दूसरे पुत्र देवी सिंह को गोद लेने के लिए अपनी स्त्री से कह गया था × गोद लेने की प्रथा के अनुसार जब कोई बालक किसी जागीर का अधिकारी बन जाता है तो वह अपने पिता के अधिकारों से वंचित हो जाता है।

देवीसिंह ने पोकरण का अधिकार प्राप्त कर लेने के बाद भी अपने पिता के अधिकारों की लालसा न छोड़ी और जिन दिनों में विजय सिंह जोधपुर के सिंहासन पर अपनी शक्तियों को लगातार खो रहा था, उस समय देवीसिंह का ध्यान मारवाड़ राज्य की ओर आकर्षिक हुआ वह निरंतर जोधपुर के सिंहासन को प्राप्त करने की चेष्टा करने लगा। इसके लिए उसने अपनी शक्तियों का संगठन किया। वह इन दिनों में राज्य का एक सामन्त था और जो सामन्त मारवाड़ के दरबार में आकर किसी भी राजनीतिक परिस्थिति का निर्णय किया करते थे, देवीसिंह भी उनमें से एक था।

ऊपर लिखा जा चुका है कि इन दिनों में विजय सिंह की शक्तियाँ बिलकुल निर्बल हो गयी थीं और इस निर्बलता का राज्य के सामन्त अनुचित लाभ उठा रहे थे। उन पर विजय सिंह का कोई प्रभाव न रह गया था। जो सामन्त ऐसा कर रहे थे, देवी सिंह उनमें प्रमुख था। सामन्तों में इस बढ़ती हुई अराजकता को देखकर विजय सिंह के मन में अत्यधिक दुख होता था। वह किसी प्रकार अनियंत्रित सामन्तों को अपने नियंत्रण में लाना चाहता था, लेकिन इसके लिए उसे कोई रास्ता मिलता न था।

राजस्थान में राजकुमार की धात्री को बहुत सम्मान देने की पुरानी प्रथा है। उसी के अनु-

---

× इस विषय के कुछ अधिकारियों का कहना है कि देवीसिंह अजित का बेटा नहीं था और न वह पोकरण की जागीर का दत्तक पुत्र बनाया गया। —अनु०

सार विजय सिंह भी अपनी धात्री को सम्मान की दृष्टि से देखता था। धात्री से जो बालक उत्पन्न होते थे, उनको राजकुमारों का भाई मानकर उसको धाभाई कहा जाता था। इन धाभाइयों को वयस्क होने पर राज्य में ऊँचे पद मिला करते थे। वहाँ की यह पुरानी प्रथा थी।

राजा विजय सिंह की धात्री का एक लड़का था। जग्गू उसका नाम था। विजय सिंह का धाभाई होने के कारण राज्य में उसने बहुत सम्मान पाया था। यह जग्गू वयस्क होने पर अत्यन्त बुद्धिमान और दूरदर्शी साबित हुआ। जग्गू विजय सिंह से बहुत प्रेम करता था और अपने अच्छे परामर्शों से वह उसको सदा सावधान किया करता था।

विजय सिंह भी जग्गू पर विश्वास करता था और किसी भी संकट के समय वह जग्गू के परामर्श को अधिक महत्व देता था। दोनों के बीच इस प्रकार श्रद्धा का भाव बहुत दिनों से चला आ रहा था। विजय सिंह के मन में राज्य की दुरवस्था के कारण जो चिन्तना और अशान्ति रहा करती थी, उसको उसने जग्गू से कई बार प्रकट किया। विजय सिंह की इन चिन्तनाओं को सुनकर जग्गू स्वयं बहुत मर्माहत होता था और वह किसी प्रकार विजय सिंह की इस अशान्ति और चिन्ता को दूर करना चाहता था। मारवाड़ के सामन्तों को नियंत्रण में लाने और राजा विजय सिंह की शक्तियों को प्रबल बनाने के लिए वह अनेक प्रकार के उपाय सोचने लगा।

जग्गू ने एक योजना तैयार की और उसने राज्य के सामन्तों को समझा-बुझाकर इस बात के लिए राजी कर लिया कि राज्य की रक्षा के लिए एक शक्तिशाली वैतनिक सेना रखी जाय और वह किसी भी संकट के समय राज्य की रक्षा करे। सामन्तों ने जग्गू की इस बात को स्वीकार कर लिया। उस सेना के लिए यह भी निश्चय हो गया कि वेतन की अदायगी सामन्तों के द्वारा होगी।

सामन्तों से नयी नयी सेना के रखे जाने और उसको वेतन दिये जाने के सम्बन्ध में जब स्वीकृति मिल गयी तो जग्गू ने कई सौ पुरबिया राजपूतों को अपने यहाँ रखकर पूर्व निश्चय के अनुसार एक वैतनिक सेना तैयार की। राजस्थान के सभी राज्यों में सैनिकों को मासिक वेतन के स्थान पर भूमि दी जाती थी। लेकिन जग्गू ने जो सेना तैयार की, वह सभी पैदल थी और उनको मासिक वेतन दिये जाने की व्यवस्था की गयी। इस सेना के सैनिकों ने योरोपियन शैली पर युद्ध करने की शिक्षा पायी थी। मारवाड़ की इस सेना को देखकर उदयपुर और जयपुर के राजाओं ने भी इसी प्रकार की अपने यहाँ सेनायें रखीं।

जग्गू ने मारवाड़ में जो नयी सेना रखी थी, उसमें सिंधी, अरबी और रुहेले—कई प्रकार के राजपूत थे। उस सेना का नियंत्रण और शासन मारवाड़ के राजा के अधिकार में रहा। इन सात सौ वैतनिक सैनिकों का प्रभुत्व और प्रभाव राज्य में पूर्ण रूप से काम करने लगा। उनके वेतन के लिए राज्य के सामन्त धन-संग्रह करते थे। लेकिन वह सेना मारवाड़ के राजा की अधीनता में थी।

कुछ ही दिनों के बाद इस वैतनिक सेना के द्वारा सामन्तों की उपेक्षा होने लगी। उस समय सामन्तों ने अपनी निर्बलता को अनुभव किया। उस नयी सेना के साथ सामन्तों का यहीं से विरोध प्रारम्भ हुआ। मारवाड़ की देखा देखी मेवाड़, जयपुर और कोटा के राजाओं ने भी अपने यहाँ वैतनिक सेनायें रखी थीं। परन्तु कोटा को छोड़कर और किसी राज्य ने वैतनिक सेना का लाभ नहीं उठाया।

मारवाड़ की इस नवीन सेना को शक्तिशाली बनाकर जग्गू ने राजा विजय सिंह और दीवान फतेहचंद के साथ परामर्श किया और मारवाड़ में फैली हुई अराजकता तथा अत्याचार को दूर

करने के लिए तैयारी की। राज्य के आस-पास पहाड़ी जातियों के आतंक बहुत बढ़ गये थे। उनको इधर बहुत दिनों से मारवाड़ के राजा का कोई भय न रह गया था। इसलिए उन अत्याचारी जातियों का दमन करना भी अत्यन्त आवश्यक था।

इस प्रकार के सभी कार्यों के लिए धन की आवश्यकता थी। मारवाड़ राज्य का खजाना इन दिनों में खाली पड़ा हुआ था। विजय सिंह की निर्बलता में राज्य का रुपया कहीं पर भी वसूल न होता था। बिना धन के राज्य की कोई भी योजना सफल नहीं हो सकती थी। इसलिए जग्गू धन की चिंता में रहने लगा। उसकी माता विजय सिंह की धात्री थी। इसलिए विजय सिंह के जन्म के साथ-साथ राज्य की तरफ से उसकी माता को पाँच हजार रुपये वार्षिक मिलने लगे थे। जग्गू को मालूम था कि उसकी माता के पास एक अच्छी सम्पत्ति है। इसलिए जब उसको और कहीं से धन की सहायता न मिल सकी तो उसने अपनी माता से प्रार्थना करने का इरादा किया।

जग्गू इस समय किसी प्रकार धन एकत्रित करके मारवाड़ राज्य का सुधार करना चाहता था। उसने आपनी माता से इसके लिये प्रार्थना की और तुरंत पचास हजार रुपये देने के लिए उसको विवश किया। उसने माता से यह भी कह दिया कि यदि तुम मुझे इतने रुपये न दे सकोगी तो मैं आत्म-हत्या करके मर जाऊँगा।

जग्गू की माता अपने बेटे की इस बात को सुन कर घबरा उठी और उसने अपने पास से पचास हजार रुपये ला कर बेटे को दे दिये। इस धन को पा कर जग्गू ने पहाड़ी जातियों को दमन करने की तैयारी की। इस समय मारवाड़ी सेना को घोड़ों की बहुत आवश्यकता थी और उन दिनों में घोड़ों का बड़ा अभावहो रहा था। इसलिए जब घोड़े न मिल सके तो जग्गू अपनी नयी सेना को नागौर तक दूसरी सवारियों पर बिठाकर ले गया। उस समय सामन्तों के पूछने पर जग्गू ने बताया कि पहाड़ियों को दमन करने के लिए यह सेना जा रही है।

नागौर के दुर्ग में कई सौ तोपें रखी हुई थीं, उनको लेकर अपनी सेना के साथ जग्गू पहाड़ों की तरफ रवाना हुआ और वहां पहुँचकर उसने पहाड़ की लुटेरी जातियों पर आक्रमण किया। वे जातियाँ बहुत आसानी के साथ परास्त हो गयीं। उन पर विजयी होकर जग्गू ने अपनी सेना के साथ थल नगरी पर आक्रमण किया। उस समय लोगों की समझ में आया कि मारवाड़ की इस वेतन भोगी सेना के रखने का क्या उद्देश्य है। उस दुर्ग पर जग्गू के अधिकार कर लेने पर मारवाड़ के सभी सामन्त भयभीत हो उठे और वे अपने अपने सम्मान की रक्षा करने के लिए जोधपुर की राजधानी से बीस मील पूर्व की तरफ बीसलपुर में एकत्रित हुए।

राज्य के सामन्तों को एकत्रित सुनकर विजय सिंह चिन्तित हो उठा। जग्गू जिस प्रकार सामन्तों को अधिकार में लाने की चेष्टा कर रहा था, उसका परिणाम विजय सिंह को प्रतिकूल दिखायी देने लगा। वह किसी प्रकार सामन्तों को शाँत करने का उपाय सोचने लगा। खीची वंश का राजपूत गोर्धन अपने बल और पराक्रम के द्वारा राजा बख्त सिंह का परम स्नेही हो गया था। मरने के समय बख्तसिंह ने गोर्धन से विजय सिंह की सहायता करने के लिए कहा था। विजय सिंह को यह बात पहले से मालूम थी। इसलिए इस संकट के समय गोर्धन को बुलाकर विजय सिंह ने पूछा कि इस भयानक समय में हमें क्या करना मुनासिब है?

गोर्धन मारवाड़ राज्य की वर्तमान परिस्थितियों को समझता था और राज्य के सामन्तों की अनियंत्रित दशा से भी वह अपरिचित न था। वह दूरदर्शी और बुद्धिमान था। उसने विजय सिंह को अपनी सम्मति देते हुए कहा:

"किसी भी दशा में राज्य के सामन्तों को शत्रु बनाना अच्छा नहीं हो सकता। इसलिए मर्यादा के अनुसार उनको सम्मान देना और उनके प्रति सद्भाव प्रकट करना इस समय अधिक हितकर साबित हो सकता है। यदि ऐसा न किया गया और यदि सामन्तों ने मिलकर और संगठित हो कर विरोध किया तो अनिष्ट होने की पूरी सम्भावना है। इसलिए अपनी सेना को साथ में न लेकर आप स्वय उस स्थान को जावें, जहाँ पर सभी सामन्त एकत्रित होकर परामर्श कर रहे हैं और अपने सद्भाव तथा शिष्टाचार से सामन्तों को संतोष देने की चेष्टा करें। इसका परिणाम आपके लिए हितकर होगा।"

गोर्धन की बातों को सुनकर विजय सिंह को संतोष मिला। वह सामन्तों के पास जाने की तैयारी करने लगा। उस समय गोर्धन स्वयं साथ में चलने के लिए तैयार हुआ और वह राजा विजय सिंह को लेकर बीसलपुर में एकत्रित सामन्तों की भेंट के लिए पहुँच गया और विजय सिंह को एक स्थान पर छोड़कर उसने सामन्तों से जाकर कहा : "आप लोगों से मिलने के लिए राजा विजय सिह की सवारी बीसल पुर आ गयी है। इसलिए आप लोग चल कर उसका स्वागत करिए।"

गोर्धन की इस बात पर किसी सामन्त ने ध्यान न दिया और न वे विजय सिंह से मिलने के लिए तैयार हुए। यह देख कर गोर्धन वहाँ से लौटा और वह मारवाड़ के प्रधान सामन्त राजा अहवा के शिविर में विजय सिंह को लेकर गया। वहाँ पर दूसरे सामन्त भी आकर एकत्रित हो गये। उसी समय विजय सिंह ने सभी सामन्तों की ओर देखकर प्रश्न किया : "आप सब लोगों ने हमको क्यों छोड़ दिया है?"

चम्पावत सामन्त ने विजय सिंह के इस प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा : "राजन, हम लोग विभिन्न राजपूत शाखाओं में पैदा हुए हैं। परन्तु हम लोगों का मूल वंश एक ही है।"

चम्पावत सामन्त के बाद अन्य सामन्तों की बातचीत आरम्भ हो गयी और जो विवाद उत्पन्न हुआ। उसने विजय सिंह को अपने आने का उद्देश्य सफल होता हुआ दिखायी न पड़ा। इस लिए उसने सोच-विचार कर बड़ी गम्भीरता के साथ कहा : "राज्य में किस प्रकार की व्यवस्था होने से शांति कायम हो सकती है और आप लोगों को संतोष मिल सकता है, इस बात को समझने के लिए मैं आप सब के पास आया हूँ।" विजय सिंह के इस प्रश्न को सुन कर सामन्तों ने तीन प्रस्ताव सामने रखे :

१—धा भाई की अधीनता में जो वैतनिक सेना है, उसको राज्य से निकाल दिया जाय।

२—राजा को आत्म समर्पण करके सामन्तों के पट्टे हम लोगों के अधिकार में दे देने होंगे।

३—न्यायालय दुर्ग से हटा कर नगर में रखा जाय।

विजय ने सामन्तों के प्रस्ताव में कही गयी तीनों बातों को ध्यान से सुना और गम्भीरता के साथ उस पर विचार किया। पहली और तीसरी बात में उसको कुछ भी विरोध न था। पहली बात के सम्बन्ध में वह जानता था कि धा भाई के द्वारा जो वैतनिक सेना रखी गयी है, उसी से सामन्तों को इस प्रकार का व्यवहार करने के लिए तैयार होना पड़ा है। इसलिए उस वैतनिक सेना को समाप्त कर देना ही इस समय बुद्धिमानी की बात मालूम होती है।

तीसरी बात में सामन्त लोग राज कार्य दुर्ग की अपेक्षा नगर में चाहते हैं। इसमें भी हमको कोई विशेष आपत्ति नहीं हो सकती। परन्तु दूसरी बात में जो माँग की गयी है, उससे राजा का प्रभुत्व पूरे तौर पर समाप्त हो जाता है। सामन्तों को जागीरें देकर जो पट्टे लिखे जाते हैं, उन पर

अधिकार केवल राजा का रहता है । यदि यह अधिकार भी हमारे हाथ से निकल गया तब तो हमारा अस्तित्व ही समाप्त हो जाता है ।

विजय सिंह कुछ समय तक सामन्तों के प्रस्ताव पर विचार करता रहा । उसने अन्त में समझा कि वर्तमान परिस्थितियों में सामन्तों को अप्रसन्न करना भविष्य के लिए अच्छा नहीं दिखायी देता । इसलिए उसने बहुत कुछ सोच-विचार कर सामन्तों के प्रस्ताव की तीनों बातों को स्वीकार कर लिया । इससे सभी सामन्त सन्तुष्ट होकर अब अपने राज्यों को चले गये । चम्पावत सामन्त अपनी सेना के साथ विजय सिंह को लेकर जोधपुर की राजधानी चला गया ।

गोर्धन के परामर्श के अनुसार विजय सिंह ने सामन्तों से भेंट की और उनके प्रस्ताव की तीनों बातों को उस ने स्वीकार कर लिया । इसके परिणाम स्वरूप सामन्त लोग संतोष के साथ अपने अपने नगरों को वापिस चले गये और उनके द्वारा जो संकट उपस्थिति हो सकता था, उसकी सम्भवना न रही । इसके कुछ ही दिनों के पश्चात् गुरु आत्मा राम की भयानक बीमारी का समाचार विजय सिंह को मिला । वह गुप्त रूप से गुरुदेव के पास गया । विजय सिंह को अपने समीप देखकर गुरुदेव ने कहा : "महाराज, आप कुछ चिंता न करें मेरी मृत्यु के साथ-साथ आपकी विपदाओं का अन्त हो जायगा ।"

गुरुदेव की इस बात का जो अभिप्राय था, उसे साफ-साफ धा भाई जग्गू ने विजय सिंह को बताया । वह अभिप्राय उन दो को छोड़ कर किसी तीसरे को मालूम न हो सका । गुरुदेव के मर जाने पर विजय सिंह ने दिखावा में बहुत दुख प्रकट किया । उसके बाद सर्व साधारण को यह बताया गया कि जोधपुर के दुर्ग में गुरुदेव का अंतिम संस्कार होगा ।

इस घोषणा के अनुसार राजधानी के दुर्ग में गुरुदेव के अन्तिम संस्कार की तैयारयाँ होने लगीं । निश्चित दिन और समय पर वहाँ पहुँचने के लिए राजा के अन्तःपुर से लेकर राजधानी तक स्त्रियाँ दुर्ग के लिए रवाना हुईं । अन्तःपुर से जो स्त्रियाँ दुर्ग की तरफ चलीं, उनकी रक्षा के लिए राज्य की सेना उनके साथ-साथ चली । मारवाड़ के सामन्तों के पास गुरुदेव की मृत्यु और उसके अन्तिम संस्कार का समाचार भेजा जा चुका था । इसलिए राज गुरु को श्रद्धाञ्जलि देने के लिए सामन्त लोग अपने-अपने नगरों से रवाना हुए ।

जोधपुर का दुर्ग पहाड़ों के ऊपर बना हुआ था । दुर्ग में जाने के लिए पहाड़ों को खोद कर सीढ़ियाँ बनायी गयी थीं । राज्य के सभी सामन्तों के आगे-आगे देवीसिंह सामन्त चल रहा था । सीढ़ियों पर पहुँच कर उसने कहा : "मुझे आज कुछ अच्छे लक्षण नहीं दिखायी देते ।" देवीसिंह की इस बात को सुन कर दूसरे सामन्तों ने कहा : "आप मारवाड़ राज्य के सर्वमान्य हैं । आपकी तरफ आँख उठा कर देखने का कोई साहस नहीं कर सकता ।"

सामन्तों ने आगे बढ़ कर दुर्ग में प्रवेश किया । उसी समय उन लोगों ने देखा कि नक्कार खांने का द्वार बन्द हो गया । सामन्त भयभीत हो उठे और उनके मुख से निकल गया—इतना बड़ा विश्वासघात । इसी समय अहवा के सामन्त ने अपनी कमर से तलवार निकाली और उसने राज सेना का संहार आरम्भ कर दिया ।

सामन्त लोग अपनी सेनाओं को साथ में नहीं लाये थे । उनको इस प्रकार के विश्वासघात की आशंका नहीं थी । राज-सेना के सामने सामन्त लोग कितनी देर युद्ध कर सकते थे, उस मार-काट में कितने ही सामन्त मारे गये और बाकी सामन्त धाभाई जग्गू की सेना के द्वारा कैद हो गये ।

कैदी सामन्तों को अपने भविष्य का अनुमान हो गया। इसी समय धाभाई जग्गू ने उत्तेजित होकर बन्दी सामन्तों से कहा : "आप लोग इस संसार को छोड़ कर परलोक यात्रा के लिए तैयार हो जाइए।"

सामन्तों ने साहस के साथ उत्तर दिया : "हम सब राजपूत हैं और राजा विजय सिंह के वश में ही हमने जन्म लिया है। हमारे प्राणों में राठौरों का स्वाभिमान मौजूद है। इसलिए हमारी माँग यह है कि वेतनिक सैनिकों की गोलियों से हमारे प्राणों का अंत न किया जाय। बल्कि तलवार के द्वारा हम सब की गर्दनें काट कर फेंक दी जायँ।"

सामन्तों की इस माँग के सम्बन्ध में क्या हुआ, इसका कोई उल्लेख विजय विलास नामक ग्रथ में नहीं पाया जाता। धाभाई जग्गू के आदेश से चम्पावत तीन प्रमुख सामन्तों, अहवा के जगत सिह, पोकरण के देवीसिंह, हरसोलाव के सामन्त, कुम्पावत के चन्द्र सिंह, चन्द्रावण के केशरी सिंह, निमाज के सामन्त कुमार, रास के सामन्त और उदावत लोगों के प्रधान सामन्तों के जीवन अंत किये गये।

देवीसिंह राजा अजित सिंह का बेटा था। × इसलिए गोली अथवा तलवार से उसको मारने का किसी ने साहस नहीं किया। इस लिए विष के साथ अफीम को घोल कर उसे पीने को दिया गया। देवी सिंह ने उसके पीने का आदेश सुन कर आवेश में कहा : "मै इस समय एक कैदी हूं। मुझे विष का यह प्याला पीने के लिए दिया गया है। परन्तु मैं मिट्टी के प्याले में इसे नहीं पी सकता। सोने के प्याले में मुझे यह विष पीने को दिया जाय। उस समय मै तुरन्त आज्ञा का पालन करूंगा।"

देवीसिंह की इस माँग को पूरा न किया गया और जब उसको मिट्टी के पात्र में विष पीने के लिए विवश किया गया तो उसने विष के उस पात्र को जोर के साथ दूर फेंक दिया और दीवार के विशाल पत्थर पर सिर पटक कर उसने अपने प्राण दे दिये। इसके पहले वहाँ के एक आदमी ने उससे पूछा था : "आप की वह तलवार कहां है, जिसके नीचे आप मारवाड़ के सिंहासन को समझते थे ?"

देवीसिंह ने स्वाभिमान के साथ उस मनुष्य की तरफ देखा और कहा : "मेरी वह तलवार इस समय पोकरण में मेरे बेटे सबल सिंह की कमर में बँधी हुई है।"

जग्गू की सहायता से विजय सिंह ने अपने राज्य के निरंकुश और स्वच्छन्द प्रधान सामन्तों को मरवा कर मारवाड़ में शांति की व्यवस्था की। जो सामन्त इस प्रकार मारे गये थे, वे सभी उसी वंश के थे, जिस वंश मे विजय सिंह ने जन्म लिया था। उन सामन्तों के मारे जाने का कारण उनकी निरंकुशता और स्वच्छन्दता थी। सामन्तों की इस निरंकुशता का कारण विजय सिंह की निर्बलता थी। शासक की कमजोरी—उसके शासन की हीनता प्रजा में और राज्य के छोटे-बड़े सभी कर्मचारियों में अराजकता उत्पन्न करती है। शासन की निर्बलता शासक का अपराध होता है। यदि विजय सिंह की यह अवस्था न होती तो सामन्तों के स्वच्छन्द और निरंकुश होने का कोई कारण न था। जो सामन्त जग्गू के षड़यंत्र के द्वारा मारे गये थे, उन्होंने और उनके पूर्वजों ने राज्य और राठौर की मर्यादा को सुरक्षित रखने के लिए सदा अपने आप को बलिदान किया था। आज उन्हीं सामन्तों का इस प्रकार संहार विजय सिंह के गौरव का कारण नहीं बन सकता।

× देवीसिंह को कुछ ग्रन्थकारों ने अजित सिंह का नहीं बल्कि महासिंह का बेटा माना है। —अनु०

यदि विजय सिंह में राजपूतों का बल पौरुष होता, अथवा उसके स्थान पर कोई दूसरा प्रतापशाली राठौर शासक होता तो राज्य के सामन्तों में अनुशासनहीनता न पैदा होती और न वे इस प्रकार मारे जाते। विजय सिंह का इस प्रकार का कार्य नैतिक प्रतिष्ठा से वंचित हो जाता है। विजय सिंह दूसरे उपायों से अपने सामन्तों को अपने अनुकूल नहीं बना सका, यह उसकी अयोग्यता का सब से बड़ा प्रमाण है।

जग्गू उसकी धात्री से उत्पन्न हुआ था। उसने एक सगे बंधु की हैसियत से विजय सिंह के साथ प्रेम किया था। वह प्रत्येक अवस्था में विजय का बढ़ता हुआ गौरव देखना चाहता था। विजय सिंह के प्रति उसकी शुभकामना और शुभ चिंतना में कोई अन्तर न था। उसने निरंकुश सामन्तों को अंकुश में लाने के लिए जो कुछ भी किया था, उसमें उसका कोई स्वार्थ न था। अपनी पवित्र भावनाओं से प्रेरित हो कर विजय सिंह के कल्याण के लिए उसने सब-कुछ किया था। राज्य में शांति की प्रतिष्ठा के लिए और वर्तमान अराजकता को नष्ट करने के लिए उसने एक वैतनिक सेना रखी थी। उसके वेतन के लिए अपनी आत्महत्या का भय दिखा कर उसने अपनी माता से पचास हजार रुपये लिए थे। इतनी बड़ी सम्पत्ति को उसने राज्य के आवश्यक कार्यों में खर्च करके उसने अपने अपूर्व स्वार्थ त्याग और बलिदान का परिचय दिया था। इस दशा में वह किसी प्रकार निंदा का अधिकारी नहीं है।

इतना सब होने पर भी जग्गू की प्रशंसा भी नहीं की जा सकती। सब से अच्छा यह होता कि उसने नैतिक उपायों के द्वारा सामन्तों को अनुकूल बना कर राजा विजय सिंह का कल्याण किया होता। परन्तु उसमें नैतिक शक्तियों का अभाव था। इसीलिए जो राज्य के सगे सम्बन्धी थे, उनका अंत करने के लिए उसे षड़यंत्र की संहार नीति का आश्रय लेना पड़ा।

देवीसिंह ने जिस प्रकार अपने प्राणों का अंत किया, उसका समाचार बड़ी तेजी के साथ पोकरण में पहुँच गया। उसके पुत्र सबल सिंह ने इस प्रकार अपने पिता की मृत्यु को सुना। उसने तुरन्त क्रोध में आकर अपने पिता का बदला लेने की प्रतिज्ञा की और पोकरण के शूरवीर राजपूतों को लेकर वह पिता का बदला लेने के लिए रवाना हुआ। सबल सिंह ने सबसे पहले व्यावसायिक नगर पाली पहुँच कर लूट मार की और बाद में उसने वहाँ आग लगवा दी। उसके बाद वह बीलाडा पर आक्रमण करने के लिए आगे बढ़ा। यह नगर उन दिनों में व्यवसाय के लिए बहुत प्रसिद्ध हो रहा था। बीलाडा नगर में प्रवेश करते ही एक साथ गोलों की वर्षा हुई। उसमें सबल सिंह मारा गया और उसके दूसरे दिन उसका मृत शरीर लूनी नदी के किनारे जलाया गया।

राज्य के निरंकुश प्रधान सामन्तों के मारे जाने पर मारवाड़ में एक साथ परिवर्तन हुआ। राजकर्मचारियों की अनुशासन हीनता बहुत-कुछ समाप्त हो गयी और प्रजा में फैली हुई अराजकता मिटने लगी। कृषि और व्यवसाय के बढ़ने से राज्य की आर्थिक दशा में परिवर्तन हुआ। मारवाड़ के उन दिनों का वर्णन करते हुए उस समय के ग्रन्थों में लिखा गया है कि थोड़े ही दिनों के भीतर मारवाड़ में सभी कार्य शांतिपूर्ण होने लगे और पिछले दिनों में जो अशान्ति बढ़ गयी थी, उसके दूर हो जाने से मारवाड़ राज्य में शेर और बकरी एक घाट पानी पीने लगे।

मारवाड़ राज्य में अब जो सामन्त रह गये थे, उनमें और विजय सिंह में किसी प्रकार का संघर्ष बाकी न रहा। इसलिए राज्य की शक्तियां धीरे-धीरे उन्नत होने लगीं और सामन्तों के साथ विजय सिंह के सम्बन्धों में स्नेह और माधुर्य पैदा हो गया। सभी सामन्त अपने राजा को सम्मान की दृष्टि से देखने लगे।

इन दिनों में विजय सिंह ने अपने राज्य के साथ-साथ चरित्र में भी अनेक परिवर्तन किये

थे। उसमें जो स्वाभाविक निर्बलता थी, उसको दूर करके उसने अपने साहस और पराक्रम का परिचय दिया। इन्हीं दिनों में उसने विद्रोही खोसा और सराई जाति के लोगों पर आक्रमण करने की तैयारी की और वहां पहुँच कर उसने राजाओं के साथ युद्ध किया। वहाँ पर विजयी होकर विजय सिंह ने अमरकोट के दुर्ग पर अधिकार कर लिया।

विजय सिंह इन दिनों में निर्भीकता से काम ले रहा था। उसने मारवाड़ की सीमा पर जो भाग जैसलमेर राज्य में मिला लिया गया था, उस पर उसने अधिकार कर लिया और गोडवाडा राज्य को मेवाड़ के राणा से छीन कर उसने अपने राज्य में मिला लिया। मारवाड़ में यह राज्य बहुत प्रसिद्ध माना जाता था। इसके पहले गोडवाडा राज्य पाँच शताब्दी तक मेवाड़ के राणा के अधिकार में रह चुका था। उसके मारवाड़ में मिल जाने के बाद राणा का उस पर कोई अधिकार न रहा।

स्वर्गीय पिता के न रहने के बाद रामसिंह के साथ विजय सिंह का जो संघर्ष पैदा हुआ था और उसके फलस्वरूप अजमेर देकर उसे मराठों को जो कर देना पड़ा था, उससे विजय सिंह की राजनीतिक और आर्थिक शक्तियाँ बहुत दीन-दुर्बल हो गयी थीं। उन्हीं दिनों में सामन्तों की स्वेच्छाचारिता के कारण और देवीसिंह के विद्रोही व्यवहारों से विजय सिंह की असमर्थता भयानक रूप से बढ़ गयी। परन्तु उस प्रकार के सभी सङ्कट अब समाप्त हो गये थे। राज्य के वर्तमान सामन्त अब संगठित रूप से चल रहे थे। मारवाड़ के बुरे दिनों का अब अंत हो चुका था। राज्य में किसी प्रकार आपसी विरोध और संघर्ष न रह गया था। परन्तु अजमेर में मराठों की शक्तियाँ अब भी प्रबल हो रही थीं और उनसे विजय सिंह अभी तक अजमेर वापस न ले सका था।

प्रताप सिंह इन दिनों में जयपुर का शासक था। वह योग्य प्रतिभाशाली और तेजस्वी था। मराठों के अत्याचारों से जयपुर का जो विनाश हो रहा था, उससे वह मन ही मन बहुत दुखी हो रहा था। सम्वत् १८४३ सन् १७८७ ईसवी में उसने अपने दूत के द्वारा सन्देश भेजा कि मराठा लोग राज्य में भयानक अत्याचार कर रहे हैं। इसलिए हम सब लोगों का कर्त्तव्य है कि उनको परास्त करने के लिए हम सभी संगठित हो जावें। इसके लिए मैंने सभी प्रकार की तैयारी कर ली है। यदि आप ऐसे समय पर राठौरों की सेना भेजकर हमारी सहायता करेंगे तो निश्चित रूप से हम मराठों को पराजित करके राजस्थान से उनको भगा देंगे।"

विजय सिंह ने सङ्कट के समय अजमेर के साथ-साथ चौथ देकर मराठों से संधि की थी। वह अब भी मराठों से अपना बदला लेना चाहता था। प्रताप सिंह का यह सन्देश पाकर वह प्रसन्न हो उठा और राठौर की एक सेना तैयार करके उसने प्रताप सिंह के पास उसको भेज दिया।

जयपुर के राजा ईश्वरी सिंह की स्त्री ने किसी समय विजय सिंह के पिता की हत्या करने का काम किया था और ईश्वरी सिंह ने स्वयं विजय सिंह को कैद करके उसका सर्वनाश करने की चेष्टा की थी। परन्तु विजय सिंह ने इस अवसर पर उन बातों को भुला दिया। वह समझता था कि आपस की इस शत्रुता को यदि हम लोग मिटा नहीं सकते तो मराठा लोग हम सब लोगों का सदा सर्वनाश करते रहेंगे। इसलिए राजपूतों के गौरव की रक्षा के लिए उसने पुरानी शत्रुता पर धूल डाली और प्रताप सिंह के प्रस्ताव के अनुसार राठौरों की एक सेना उसने भेज दी। बियार का सामन्त जवानदास राठौरों की उस सेना का सेनापति होकर गया था। वह जयपुर पहुँच कर प्रताप सिंह की सेना के साथ मिल गया।

जयपुर का राजा प्रताप सिंह पहले से ही मराठों के साथ युद्ध करने के लिए तैयार बैठा था। राठौर सेना के पहुँचते ही तुङ्गा नामक स्थान पर राजपूतों ने मराठों के साथ युद्ध आरम्भ कर दिया। उस संग्राम में आरम्भ से ही राठौर सेना शक्तिशाली साबित हो रही थी। मराठा सैनिकों ने सेनापति डिबोइनी के द्वारा युद्ध की शिक्षा पायी थी। फिर भी इस युद्ध में मराठा सेना के पैर उखड़ने लगे। जवानदास की राठौर सेना, मराठा गोलंदाजों के ऊपर एक साथ टूट पड़ी और उस समय राठौरों ने भयानक मारकाट की, जिससे मराठा घबरा उठे। उनके बहुत-से सैनिक मारे गये और जो बाकी रहे, वे परास्त होकर युद्ध भूमि से भाग गये। इसी अवसर पर विजयी राठौर सेना ने अजमेर पर अधिकार कर लिया और वहाँ पर राठौरों का झण्डा लगाकर अपना प्रबन्ध आरम्भ कर दिया।

राठौरों ने अजमेर पर अधिकार करके उस संधि को खत्म कर दिया, जो विजय सिंह के द्वारा माराठों के साथ की गयी थी। इसी समय विजयसिंह ने मराठों को कर देना भी बन्द कर दिया।

युद्ध में राजपूतों के साथ पराजित होकर माधव जी सोंधिया निराश नहीं हुआ। फ्राँसीसी सेनापति डिवोइनी के साथ परामर्श करके उसने एक विशाल सेना संगठन किया और उस सेना को युद्ध की योरोपियन शिक्षा का देना शुरू किया गया। माधव जी सोंधिया अत्यन्त बुद्धिमान और मराठा सेना का दूरदर्शी सेनापति था। राजपूतों के साथ पराजित होकर भी उसने बहुत-सी बातें सीखी थीं। अजमेर में रहकर मराठों ने राजपूतों के अनेक गुणों और अवगुणों की जानकारी प्राप्त की थी। माधव जी सोंधिया ने राजपूतों के युद्ध-कौशल का अध्ययन करके उसका लाभ मराठा सैनिकों को पहुँचाया था।

तुङ्ग के युद्ध-क्षेत्र में पराजित होकर मराठा लोग चार वर्ष तक चुपचाप रहे। इन दिनों में राजपूतों से बदला लेने के लिए उनकी तैयारियाँ गुप्त रूप से होती रहीं। माधव जी सोंधिया अपनी पराजय का कारण भली-भाँति समझता था और वह यह भी समझता था कि दो राज्य के राजपूत अधिक समय तक संगठित हो कर और एक होकर नहीं रह सकते। चार वर्षों में उसने अपनी विशाल सेना का संगटन कर लिया। उसके बाद वह राठौरों से बदला लेने के लिए रवाना हुआ। माधव जी सोंधिया की इस विशाल सेना के आने का समाचार जोधपुर में विजय सिंह को मिला। उसी समय उसने जयपुर के राजा के पास अपने दूत से संदेश भेजा कि माधव जी सोंधिया की एक बहुत बड़ी सेना मारवाड़ पर आक्रमण करने के लिए आ रही है। इसलिए आप तुरन्त जयपुर की एकशक्तिशाली सेना मराठों को पराजित करने के लिए भेज दीजिए।

विजय सिह के दूत के द्वारा यह संदेश पाकर जयपुर के राजा ने विचार किया कि हमारी माँग पर मराठों के साथ युद्ध करने के लिए मारवाड़ से राठौर सेना आयी थी और अब इस अवसर पर राजा विजय सिंह की माँग पर मराठों से युद्ध करने के लिए जयपुर की सेना जाना चाहिए। इसलिए उसने जयपुर की एक सेना तैयार करके विजय सिंह पास भेज दी।

जयपुर की यह सेना मारवाड़ पहुँच गयी। मराठा सेना के आ जाने पर जिस समय राठौर युद्ध के लिए तैयार हो रहे थे, जयपुर के सेना ने राठौर सेना के साथ झगड़ा कर दिया। इस दशा में राठौरों को मराठों की प्रबल सेना के साथ केवल अपने बल पर युद्ध करना पड़ा। पाटन के युद्ध क्षेत्र में मराठों के साथ राठौरों ने भीषण युद्ध किया। परन्तु मराठा सेना के अत्यधिक और प्रबल होने के कारण राठौर सेना पराजित हो गयी। राजा विजय सिंह ने अपनी राजधानी में जयपुर की सेना का विश्वासघात सुना। उससे उसको अत्यन्त क्रोध और दुख हुआ।

मराठों के साथ पराजित होकर राठौरों ने फिर से युद्ध के लिए तैयारी की। सम्वत् १८४७ सन् १७६१ ईसवी में राठौरों ने मेरता के मैदानों में मराठों के साथ फिर युद्ध किया। इस दूसरे युद्ध में प्राणों का मोह छोड़कर राठौर राजपूतों ने मराठों के साथ संग्राम किया परन्तु शत्रु-सेना के सामने संख्या में बहुत कम होने के कारण इस दूसरे युद्ध में भी राठौरों की पराजय हुई। माधव जी सोंधिया ने विजयी होकर राजा विजय सिंह से साठ लाख रुपये की माँग की।

विजय सिंह लगातार दो युद्धों में मराठों से पराजित हो चुका था। अब उसके सामने कोई आशा न रह गयी थी, इसलिए अपनी विवश अवस्था में उसने माधव जी सोंधिया की माँग के अनुसार साठ लाख रुपये देना स्वीकार कर लिया।

विजय सिंह के सामने इस स्वीकृति के सिवा और कोई रास्ता न था। जयपुर के राजा प्रताप सिंह की सहायता करके उसने मराठों की संधि तोड़ा था और माधव जी सोंधिया के साथ उसने नयी शत्रुता पैदा की थी। चार वर्षों के उपरान्त जब मराठों ने मारवाड़ पर आक्रमण किया, उस समय जयपुर की सेना ने विश्वासघात किया और उसके फलस्वरूप राठौरों को पराजित होकर उनके राजा विजय सिंह को दण्ड-स्वरूप साठ लाख रुपये देना स्वीकार करना पड़ा।

इन दिनो में मारवाड़ की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी। जोधपुर के खजाने में इतना रुपया न था, जिससे दण्ड की यह भारी रकम अदा की जा सके। इस दशा में उस रुपये की अदायगी कैसे हो, विजय सिंह की समझ में यह किसी प्रकार न आया।

जोधपुर के खजाने में जो कुछ मौजूद था, उसको निकाल कर देने पर भी साठ लाख रुपये अदा न हो सके। इस दशा में माधव जी सोंधिया के आदेश से मराठा सेना ने मारवाड़ के नगरों में धन की लूट की और उससे जो सम्पत्ति एकत्रित हुई, उससे भी दण्ड के बाकी रुपये पूरे न हो सके। उस दशा में मारवाड़ के प्रधान सामन्तों और राज्य के श्रेष्ठ आदमियों को कैद करके उनके महलों और प्रासादों की लूट की गयी। इससे जो धन एकत्रित हुआ, उससे भी दण्ड के बाकी रुपयों की पूर्ति न हो सकी।

विजय सिंह के पास दण्ड के बाकी रुपयों को अदा करने के लिए अब कोई उपाय न था। राज्य के प्रधान सामन्त बंदी बनाकर मराठा शिविर में रखे गये थे। बाकी रुपयों को वसूल करने के लिए माधव जी सोंधिया ने मारवाड़ के नगरों और गावों में फिर से लूट करने के लिए अपनी सेना को आदेश दिया। उस समय मराठा सैनिकों के अत्याचारों से राज्य में चारों तरफ हाहाकार मच गया। स्थान-स्थान से रोने और चिल्लाने की आवाजें आने लगीं। छोटे-छोटे बच्चे जान से मारे गये। स्त्रियों के सम्मान नष्ट किये गये। मराठों ने अपने अत्याचार में कोई बात बाकी न रखी।

तुङ्गा के मैदानों में मराठों को पराजित करके राठौर सेना ने अजमेर को अपने अधिकार में कर लिया था और वहाँ का शासन दुमराज को सौंप दिया था। पाटन और मेरता के युद्ध क्षेत्रों में राठौर सेना को पराजित करके मराठों ने फिर अजमेर पर अधिकार लिया। वहाँ का शासक दुभराज ने जब सुना कि मराठों की विशाल सेना भयानक अत्याचारों के साथ अजमेर में प्रवेश कर रही है तो उसने अफीम खाकर आत्महत्या कर ली। मराठों ने वहाँ पहुँचकर बिना किसी प्रकार के युद्ध के अधिकार कर लिया और अजमेर में मराठों का झण्डा फहराने लगा।

विजय सिंह मराठों के साथ होने वाली पराजय और उसके फलस्वरूप मारवाड़ में उनके अत्याचारों को थोड़े दिनों में बिलकुल भूल गया। उसके जीवन में आरम्भ से ही राजपूती स्वाभिमान का अभाव था। राठौरों के प्राचीन गौरव को भूलकर उसने विलासिता का आश्रय लिया और ओसवाल जाति की एक सुन्दरी युवती पर आसक्त होकर उसने उसको अपनी उप पत्नी बनाया।

उसके शासनकाल में मारवाड़ राज्य का भयानक रूप से पतन हुआ । अब उसकी इस विलासिता के कारण राज्य का सर्वनाश आरम्भ हुआ । परन्तु विजय सिंह को इसकी परवा न थी ।

ओसवाल युवती ने विजय सिंह को अंधा बना दिया । उसको उचित और अनुचित कार्यों का ज्ञान न रहा। उस युवती के प्रेम को पाकर विजय सिंह ने सब कुछ भुला दिया और अपनी प्रधान रानी के सम्मान को ठुकराकर उसने उस युवती को प्रधानता दी । इन दिनों विजय सिंह के मनोभाव बहुत पतित हो गये थे । उसने जीवन की सम्पूर्ण मर्यादा को भुलाकर केवल उस युवती को महत्व दिया था । वह युवती विजय सिंह की इस अवस्था से पूर्ण रूप से परिचित थी और वह कभी-कभी उसके इस अंधे प्रेम को ठुकरा दिया करती थी । उस समय के भट्ट ग्रंथों में लिखा गया है कि युवती ने अनेक मौकों पर विजय सिंह को अपनी जूतियों से मारा था । परन्तु इस पर भी विजय सिंह के स्वाभिमान को आघात न पहुँचा । किसी भी पुरुष के पतन की यह चरम सीमा मानी जा सकती है ।

विजय सिंह के इस पतन से मारवाड़ राज्य में अशान्ति और अराजकता बढ़ने लगी । इस पर भी विजय सिंह की आँखें नहीं खुलीं । मारवाड़ में इन दिनों विजय सिंह का नहीं , उसकी उप पत्नी का शासन चल रहा था । उस युवती ने ऐसी जाति में जन्म लिया था , जिसमें किसी राजपूत को राजस्थान की व्यवस्था के अनुसार , विवाह करने का कोई अधिकार न था । इसीलिए वह उप पत्नी के रूप में मानी गयी और उसे विजय सिंह की रानी होने का अधिकार न मिल सका । इतना सब होने पर भी वह युवती अपने आपको गौरवपूर्ण समझती थी और विजय सिंह की बड़ी रानी से भी वह अपने को श्रेष्ठ समझती थी ।

उस युवती का विश्वास था कि मुझसे जो लड़का पैदा होगा, वह विवाहित रानियों के लड़कों के होने पर भी इस राज्य का उत्तराधिकारी होगा । लेकिन जब उसके कोई लड़का पैदा न हुआ तो अपने अधिकारों को सुरक्षित बनाने के लिए उसने गुमान सिंह के पुत्र मानसिंह को गोद लिया और वह उसके उत्तराधिकारी होने की घोषणा करने लगी । विजय सिंह उसके हाथों की कठपुतली था । उसने अपनी बुद्धि नष्ट कर दी थी और आँखें बन्द करके वह अपनी उप पत्नी के आदेशों का पालन करता था । उस युवती ने इसका खूब लाभ उठाया ।

उप पत्नी की आज्ञानुसार , विजय सिंह ने अपनी राजधानी में समस्त सामन्तों को बुलाकर एकत्रित किया और उसने मानसिंह को राज्य का उत्तराधिकारी मानने के लिए उनको आदेश दिया । सामन्तों की समझ में ऐसा करना विधान और व्यवस्था के बिलकुल विरुद्ध था । इसीलिए सामन्तों ने साहस करके स्पष्ट रूप से उस आदेश को मानने से इनकार कर दिया । विजय सिंह ने सामन्तों की इस बात की बिलकुल परवा न की । उसने पण्डितों और पुरोहितों को बुलाकर शास्त्र की रीति से दत्तक पुत्र मानसिंह को अपना उत्तराधिकारी स्वीकार किया और उसका जो पुत्र वास्तव में राज्य का उत्तराधिकारी था, उसको उस अधिकार से वंचित कर दिया गया ।

राजा विजय सिंह के वंशज

अभय सिंह	बख्त सिंह	आनन्द सिंह	रूप सिंह	देबी सिंह
राम सिंह	विजय सिंह	ईदर में गोद लिया गया	मालवा में गोद लिया गया	पोकरण में गोद लिया गया

फतेह सिंह	जालिम सिंह	सावन्त सिंह	शेर सिंह	भीम सिंह	गुमान सिंह	सरदार सिंह
छोटी आयु में मृत्यु	विजय सिंह का उत्तराधिकारी	शूर सिंह		भीम सिंह	मान सिंह	भीम के द्वारा मारा गया

राजा विजय सिंह के वंशजों की ऊपर जो नामावली दी गयी है, उसके पढ़ने से मालूम होता है कि राजा विजय सिंह का उत्तराधिकारी जालिम सिंह था, जिसके अधिकारों की अवहेलना करके उसने अपनी उप पत्नी के दत्तक पुत्र को उत्तराधिकारी माना था। उस युवती को उप पत्नी बनाने के बाद उसका भयानक पतन हुआ और उसके परिणाम स्वरूप अपनी उप पत्नी को प्रसन्न रखने के लिए वह उचित और अनुचित—सभी प्रकार के कार्य करता था। उसके इस नैतिक पतन में अराजकता की भयानक वृद्धि हुई थी।

विजय सिंह के कुशासन की वर्तमान परिस्थितियों को देखकर राज्य के सामन्तों की चिन्तनायें बढ़ने लगीं। उन सब लोगों ने मिलकर और आपस में परामर्श करके निर्णय किया कि विजय सिंह को सिंहासन से उतारकर भीमसिंह को मारवाड़ का शासक बनाया जाय। इस निर्णय के अनुसार कार्य करने के लिए सामन्तों ने अपनी योजना बनायी। विजय सिंह को सामन्तों का यह निर्णय मालूम हो गया। उसने एक बार सामन्तों को अनुकूल बनाने में सफलता प्राप्त की थी। उसी विश्वास पर वह इस बार फिर सामन्तों के पास गया और गुप्त रूप से उसने अपना एक पत्र रास के सामन्त के पास भेजा।

उस सामन्त ने विजय सिंह की युवती प्रेमिका उप पत्नी के पास जाकर कहा : "महाराज ने सामन्तों के पास पहुँचकर आपको बुलाने के लिए हमें भेजा है। आपके साथ चलने के लिए राज्य की संरक्षक सेना तैयार है। इसलिए आप तुरंत हमारे साथ चलिए।" उप पत्नी ने सामन्त का विश्वास किया और अपने महल से निकलकर जिस समय वह सवारी पर बैठने लगी, उसी समय तलवार के आघात से उसका मस्तक गर्दन से कट कर नीचे गिर गया। उसके प्राणों का अंत करके सामन्त भीमसिंह को लेकर सेना के साथ अपने स्थान पर पहुँच गया। यदि रास का सामन्त भीमसिंह को वहाँ न ले जाकर एकत्रित सामन्तों के पास लेकर गया होता तो निश्चित रूप से सामन्तों ने अपने पहले के निर्णय के अनुसार, विजय सिंह को सिंहासन से उतारकर भीमसिंह को उसके स्थान पर बिठा दिया होता। उस युवती के मारे जाने का समाचार एकत्रित सामन्तों और विजय सिंह ने एक साथ सुना। सभी लोग वहाँ से उठकर भीमसिंह के पास पहुँच गये।

विजय सिंह सामन्तों के साथ था। इसलिए सामन्तों को अपने उद्देश्य में सफलता न मिली। विजय सिंह ने वहाँ पर सब को प्रसन्न करने के लिए बातें कीं और भीमसिंह को सोजत और सिवाना का अधिकार देकर सिवाना के दुर्ग में भेज दिया। भीमसिंह ने सन्तुष्ट होकर उसे स्वीकार कर लिया। उसके चले जाने के बाद विजय सिंह ने अपने बड़े पुत्र जालिम सिंह को बुलाया। मारवाड़ राज्य का वास्तव में वही उत्तराधिकारी था। विजय सिंह ने जब मानसिंह दत्तक पुत्र को अपना उत्तराधिकारी बनाया था, उस समय जालिम सिंह को बहुत असंतोष पैदा हुआ था। इसलिए उसके उस असंतोज को दूर करने के लिए विजय सिंह ने उसको गोडवाड़ का पूरा अधिकार देकर वहाँ भेज दिया। उसके जाने के समय विजय सिंह ने चुपके से उसको आदेश दिया कि तुम भीमसिंह पर आक्रमण करके उसे राज्य से निकाल दो। जालिम सिंह ने इसे स्वीकार कर लिया।

गोडवाड़ राज्य में पहुँचकर पिता की आज्ञानुसार जालिम सिंह ने भीमसिंह पर आक्रमण करने के तैयारी की। वह अपनी सेना लेकर रवाना हुआ। भीमसिंह को यह समाचार पहले से ही मालूम हो चुका था। जालिम सिंह के वहाँ पहुँचते ही दोनों तरफ से युद्ध आरम्भ हुआ। जालिम सिंह की सेना के मुकाबिले में भीमसिंह की सेना बहुत छोटी थी। इसलिए युद्ध के अंत में भीमसिंह की पराजय हुई और वह युद्ध से भागकर पोकरण के सामन्त के यहाँ चला गया और वहाँ से वह जैसलमेर पहुँच गया।

इन दिनों में मारवाड़ राज्य में बड़ी अशान्ति पैदा हो गयी थी। राज्य की तरफ से व्यवस्था न होने के कारण भयानक रूप से अराजकता बढ़ रही थी। राज्य के सभी सामन्त विजय सिंह के विद्रोही हो रहे थे। इस प्रकार न जाने कितनी बातें पैदा होकर राज्य का विनाश और विध्वंस कर रही थीं। उन्हीं दिनों में जोधपुर के सिंहासन पर इकतीस वर्ष बैठकर सम्वत् १८५० के अषाढ़ महीने में विजय सिंह की मृत्यु हो गयी। ×

चवालीसवाँ परिच्छेद

जोधपुर के सिंहासन पर भीमसिंह का अधिकार—जालिमसिंह की योग्यता—भीमसिंह के साथ मानसिंह का संघर्ष—मानसिंह के पक्ष में सामन्त—सिंहासन पर मानसिंह—राजा जयपुर के साथ शत्रुता—राज्य के सामन्त जयपुर के साथ—राज्य में मानसिंह का विरोध—सामन्त सवाई सिंह का षड्यंत्र—मराठा होलकर को रिश्वत—मानसिंह के विरुद्ध राजाओं और सामन्तों का संगठन—मानसिंह के शिविर में लूट—जयपुर की सेना का जोधपुर में आक्रमण—मारवाड़-राज्य में मराठों और पठानों की लूट—मानसिंह के भाग्य का परिवर्तन—जगत सिंह के सामने प्राणों का संकट।

जालिम सिंह के साथ युद्ध में पराजित होकर भीमसिंह जैसलमेर चला गया। वहाँ पर उसने विजय सिंह की मृत्यु का समाचार सुना। उसने तुरंत जैसलमेर से चलने की तैयारी की और अपनी सेना के साथ जैसलमेर से बाईस घण्टे में जोधपुर पहुँच कर उसने बड़ी शीघ्रता के साथ राज-सिंहासन पर अधिकार कर लिया।

जालिम सिंह विजय सिंह का सबसे बड़ा लड़का था और प्राचीन प्रणाली के अनुसार राज्य का वही उत्तराधिकारी था। भीमसिंह विजय सिंह का पौत्र था। पिता की मृत्यु का समाचार पाकर जालिम सिंह जोधपुर राजधानी के लिए रवाना हुआ। मेरता में आकर उसने मुकाम किया। वहीं पर उसने सुना कि जैसलमेर से भीमसिंह आकर मारवाड़ के सिंहासन पर बैठ गया है। यह सुनते ही जालिम सिंह को आश्चर्य हुआ। वह चिन्तित होकर वर्तमान परिस्थिति पर विचार करने लगा कि इस समय क्या करना चाहिए।

× कुछ अधिकारियों ने लिखा है कि विजय सिंह ने जोधपुर के सिंहासन पर बैठ कर इकतालीस वर्ष राज्य किया था। उसका जन्म सम्बत् १७८८ में हुआ था और सिंहासन पर बैठने के समय उसकी अवस्था बीस वर्ष की थी। —अनु०

जालिम सिंह के आने का समाचार जोधपुर में भीमसिंह को मिला। उसने यह भी सुना कि जालिम सिंह मेरता में आ गया है और वह सिंहासन पर बैठने के लिए आया है। इस प्रकार का समाचार पाते ही भीमसिंह ने जालिम सिंह को गिरफ्तार करके लाने के लिए एक सेना रवाना की। जालिम सिंह ने जब यह सुना तो वह बीलाडा चला गया। भीमसिंह की सेना ने वहाँ पहुँच कर उस पर आक्रमण किया। उसमें जालिम सिंह की पराजय हुई इसलिए वह भागकर उदयपुर में राणा के पास पहुँचा।

मेवाड़ की राजनीतिक परिस्थितियाँ उन दिनों में बहुत खराब हो गई थीं। इसलिए राणा के यहाँ से जालिम सिंह की कोई सहायता न हो सकी। जालिम सिंह राणा का भाञ्जा था। परन्तु मेवाड़ राज्य की बढ़ती हुई अशान्ति में वह उसकी कोई सहायता न कर सका। इसलिए भीमसिंह के साथ युद्ध करने के लिए मेवाड़ की सेना न भेजकर उसने जालिम सिंह को राज्य की एक बड़ी जागीर दे दी।

जालिम सिंह शिक्षित, विद्वान और कई विषयों का वह एक प्रसिद्ध पण्डित था। नैतिक विषयों पर उसकी बड़ी श्रद्धा थी और इतिहास का वह एक अच्छा जानकार था। उदयपुर में रह कर वह अपना अधिकांश समय काव्य और इतिहास की आलोचना में व्यतीत करने लगा। जालिम सिंह वहाँ अधिक दिनों तक जीवित न रहा। उसने अपने हाथ से अपनी एक नस काट डाली थी। उससे अधिक रक्त निकल जाने के कारण उसकी मृत्यु हो गयी।

जालिम सिंह मारवाड़ राज्य के सिंहासन पर बैठने का पूर्ण रूप से अधिकारी था। परन्तु वह अवसरवादी और अनावश्यक रूप से युद्ध प्रिय न था। वह एक कवि था। साहित्य के साथ विशेष रुचि रखता था। ×

मारवाड़ के सिंहासन पर बैठकर भीमसिंह ने राज्य के वास्तविक अधिकारी जालिम सिंह को राज्य में आने तक का अवसर नहीं दिया। उसके भाग जाने के बाद भीमसिंह अपने भविष्य के सम्बन्ध में अनेक प्रकार की बातें सोचने लगा। वह सोचने लगा कि अब जालिम सिंह के लौट कर आने की आशंका न होने पर भी जोधपुर का सिंहासन संकट हीन नहीं है।

भीमसिह के इस प्रकार सोचने का कारण था। विजय सिंह के सात लड़के थे। उनमें उसकी मृत्यु के समय जालिम सिंह और सरदार सिंह केवल जीवित थे। फतेह सिंह, सामन्त सिंह, भीमसिह के पिता भीमसिंह और गुमान सिंह की पहले ही मृत्यु हो गयी थी। सरदार सिंह और शेरसिंह के कारण सिंहासन के अधिकार का किसी भी समय संघर्ष उपस्थित हो सकता था। उसका अनुमान अभी से भीमसिंह करने लगा और इस आने वाले संकट को निर्मूल करने का उसने दृढ़ निश्चय कर लिया।

भीमसिंह स्वभाव का अत्यन्त कठोर और निर्भीक था। उसने अपने चाचा सरदार सिंह और शेरसिंह को मरवा डाला। शेरसिंह ने भीमसिंह को गोद लिया था। परन्तु उसने इसकी भी कुछ परवा न की। इस समय भीमसिंह के जीवन से तीनों संकट समाप्त हो गये। जालिम सिंह भाग कर चला गया। उसके दोनों चाचा मारे जा चुके थे। लेकिन इतने से ही उसको शांति न मिली।

× यती ज्ञान चंद्र–जिसे मैं आदरणीय गुरू के रूप में मानता था– वह दस वर्ष तक लगातार मेरे साथ रहा। यती ज्ञान चन्द्र ने जलिम सिंह की योग्यता की मुझसे प्रशंसा की थी। उसने बताया कि जालिम सिंह को कविता का बहुत अच्छा ज्ञान था और यह भी स्वीकार किया कि मैंने अनेक बातों की जानकरी जालिम सिंह से प्राप्त की है।

वह सोचने लगा कि सामन्त सिंह का पुत्र शूरसिंह और गुमान सिंह का पुत्र मानसिंह जिसको विजय सिंह की प्रेमिका युवती उप पत्नी ने गोद लिया था और विजय सिंह जिसको मारवाड़ का शासक बनाना चाहता था, अभी तक जीवित हैं—शूरसिंह अपने अच्छे व्यवहारों के कारण सबका प्रिय हो रहा था और वह भीमसिंह के बड़े भाई का लड़का था। इसी लिए सबसे पहले सिंहासन पर उसका अधिकार हो सकता था। इसलिए भीमसिंह उनके प्राणों का नाश करके अपने राज्य को संकटहीन बनाने का विचार करने लगा।

भीमसिंह को मानसिंह सबसे बड़ा शत्रु दिखायी देने लगा। मानसिंह जालौर के दुर्ग में रहता था। इसलिए उसके प्राणों का नाश करने के उद्देश्य से भीमसिंह एक सेना लेकर रवाना हुआ और उसने जालौर के दुर्ग को घेर लिया। यह दुर्ग बहुत मजबूत बना हुआ था और शत्रु उस पर सहज ही अधिकार नहीं कर सकते थे। भीमसिंह को उसमें सफलता दिखायी न पड़ी। राठौरों की जो सेना उसके साथ आयी थी, वह कई महीने तक उस दुर्ग को घेरे पड़ी रही। लेकिन उसका कोई परिणाम न निकलने से भीमसिंह से वहाँ का उत्तरदायित्व अपने सेनापति को सौंपा और वह स्वयं जोधपुर की राजधानी लौट गया। इसके बाद भी राठौर सेना वहाँ पर घेरा डाले पड़ी रही।

मानसिंह के अधिकार में इतनी सेना न थी कि वह भीमसिंह की सेना के साथ युद्ध कर सकता। इसीलिए दुर्ग के भीतर रहकर वह अपनी रक्षा करता रहा। इस अवस्था में और बहुत दिन बीत गये। खाने पीने की कठिनाइयाँ बढ़ गयीं। उस दुर्ग की बनावट इतनी सुदृढ़ थी कि जिसमें शत्रु का प्रवेश न हो सकता था। लेकिन कई महीने बीत जाने के कारण मानसिंह और उसकी साथ की सेना की कठिनाइयाँ बहुत बढ़ गयीं।

बिना खाये पिये कोई भी मनुष्य कितने दिन जीवित रह सकता है। यही परिस्थिति जालौर के दुर्ग में मानसिंह और उसकी सेना की थी। इसलिए विवश होकर मानसिंह ने अवसर पाकर और उस दुर्ग से निकल कर मारवाड़ के गावों और नगरों को लूटना आरम्भ किया। उस लूट में मानसिंह के सैनिक खाने-पाने की सामग्री अधिक लेकर अपने दुर्ग में आ जाते और मौका पाकर वे लोग फिर लूटने के लिए निकल जाते। भीमसिंह की सेना इस लूट को रोक न सकी। इसका नतीजा यह हुआ कि मानसिंह और उसकी सेना के सामने खाने-पीने की जो कठिनाइयाँ थीं, वे बहुत-कुछ कम हो गयीं। इस प्रकार की लूट में मानसिंह का जीवन एक बार बड़े संकट में पड़ गया। वह अपने सैनिकों के साथ दुर्ग से बाहर गया था और लूट कर जैसे ही वह लोटा, भीम सिंह की सेना ने उस पर आक्रमण किया। मानसिंह उस समय पैदल था और भीमसिंह के सैनिकों के द्वारा उसके कैद हो जाने में देर न थी, उसी समय मानसिंह के सामन्त ने उसको अपनी तरफ पकड़ कर खींचा और अपने घोड़े पर बिठा कर वह बड़ी तेजी के साथ वहाँ से भागकर चला गया। इस प्रकार उस भयंकर संकट से मानसिंह से प्राणों की रक्षा हो सकी।

राजस्थान के किसी भी राज्य में जब कभी आपसी विद्रोह पैदा होता था, उस समय राज्य के सामन्त एक न रह कर दोनों तरफ के सहायक बन जाते थे। राजस्थान के अनेक राज्यों में इस प्रकार देखा जा चुका था। मारवाड़ में इस समय भीमसिंह और मानसिंह में संघर्ष चल रहा था। इस लिए वहाँ के सामन्त दोनों तरफ के सहायक हो रहे थे। कुछ सामन्त भीमसिंह के साथ और कुछ मानसिंह के साथ भी थे। भीमसिंह का पक्ष प्रबल और शक्तिशाली था। इस लिए कितने ही सामन्त भीमसिंह का पक्ष छोड़ कर मानसिंह के समर्थक बन गये थे।

भीमसिंह के पक्ष से अनेक सामन्तों के निकल जाने का एक और भी कारण था। सभी सामन्त भीमसिंह को कठोर अव्यवहारिक और अत्याचारी समझते थे। सामन्तों के साथ भीमसिंह का व्यवहार अच्छा न था। जो सामन्त अपनी सेनाओं को लेकर जालौर के दुर्ग पर आक्रमण करने गये थे, उनको उसमें सफलता न मिलने के कारण भीमसिंह ने उनके सम्बन्ध में कई बार ऐसी बातें कही थीं, जो सामन्तों के सम्मान के बिलकुल विरुद्ध थीं। जालौर के दुर्ग में भीमसिंह की विशाल सेना को सफलता न मिलने का एक यह भी कारण था।

भीमसिंह के व्यवहारों से अनेक बार अपमानित हो कर मारवाड़ के अनेक सामन्त राज्य को छोड़कर बाहर चले गये और वहीं पर रहने लगे। भीमसिंह ने उनकी परवा न की और उसने उनकी जागीरों पर अपना अधिकार कर लिया। इन्हीं दिनों में भीमसिंह ने नीमाज के दुर्ग पर आक्रमण करने के लिए एक सेना भेजी और उस दुर्ग पर अधिकार करके भीमसिंह ने भयानक रूप से उसका विध्वंस किया। इसके बाद भीमसिंह ने उस सेना को भी जालौर के दुर्ग पर अधिकार करने के लिए भेज दिया।

भीमसिंह के द्वारा भेजी हुई इस वैतनिक सेना ने जालौर के नगर पर अधिकार कर लिया। इससे मानसिंह के सामने भयानक संकट पैदा हो गया। मारवाड़ की वैतनिक सेना के आ जाने से मानसिंह को मिलने वाली बाहरी सहायता से निराश हो जाना पड़ा। इन दिनों में फिर उसके सामने खाने-पीने की कठिनाइयाँ भयानक रूप से बढ़ गयीं। अब उसके सामने दो ही बातें थीं। वह अपने सैनिकों के साथ या तो भूखे रहकर प्राण दे सकता था अथवा भीमसिंह के सामने आत्म समर्पण कर सकता था। इन दोनों में उसे क्या करना चाहिए, इसका निर्णय करना उसके लिए बहुत कठिन हो गया।

जीवन की इस भयंकर परिस्थिति में आक्रमणकारी सेना के प्रधान के दूत ने दुर्ग में पहुँचकर मानसिंह से कहा : "महाराज, इस दुर्ग को मारवाड़ की जिस सेना ने घेर रखा है, उसके सेनापति के आदेश से मैं आप से यह कहने आया हूँ कि हम सब लोग आप की आज्ञा मानने के लिए तैयार हैं और राजा भीमसिंह के स्थान पर हम सब लोग आप को देखना चाहते हैं। इसलिए निर्भीक हो कर आप दुर्ग से निकल कर बाहर आ जाइये।"

मानसिंह ने अपने परिवार को छोड़कर जालौर के दुर्ग में ग्यारह वर्ष व्यतीत किये थे और भयानक विपदाओं का सामना किया था। सम्वत् १८६० कार्तिक, सन् १८०४ ईसवी के दिसम्बर महीने में मानसिंह को दूत के द्वारा यह समाचार मिला और उसके साथ ही मालूम हुआ कि भीमसिंह की मृत्यु हो गयी है, मानसिंह ने इस समाचार पर विश्वास न किया। यद्यपि दूत ने राजमंत्री इन्दराज के हाथ का लिखा हुआ पत्र लाकर मानसिंह के हाथ में दिया था। इस संदेश को ठीक-ठीक समझने के लिए राजगुरु देवनाथ को शत्रु के शिविर में भेजा गया और उसके बाद जब संदेश की सत्यता का समाचार मिल गया तो मानसिंह अपने दुर्ग से बाहर निकला। जो राठौर सेना उसको कैद करने के लिए आयी थी, उसने बड़े सम्मान के साथ मानसिंह का स्वागत किया।

सम्वत् १८६० के माघ महीने में मानसिंह का राजतिलक हुआ। इन दिनों में मारवाड़ की परिस्थिति बड़ी भयानक हो गयी थी और सम्पूर्ण राज्य एक बार विध्वंस हो चुका था। मारवाड़ के सिंहासन पर बैठकर भी मानसिंह ने शांति पूर्ण दिनों की आशा न की। विजय सिंह ने देवीसिंह को कैद करके जिस प्रकार उसकी हत्या की थी, उसके लड़के सबल सिंह ने पिता का बदला लेने के लिए जिस सर्वनाश का विष बोया था, उसका वर्णन किया जा चुका है।

मानसिंह के सिंहासन पर बैठने के समय देवीसिंह का पौत्र और सबल सिंह का बेटा सवाई सिंह पोकरण का सामन्त था उसने असंतुष्ट हो कर जोधपुर का राज दरबार छोड़ दिया और दूसरे सामन्तों के साथ मिलकर उसने एक नयी योजना का निर्माण कार्य आरम्भ किया। उसने चोपासनी नामक स्थान पर राज्य के सामन्तों को बुलाकर कहा : "स्वर्गीय भीमसिंह की रानी गर्भवती है। इसलिए हम और आप—सभी लोग इस बात को प्रतिज्ञा करें कि यदि रानी के पुत्र उत्पन्न होगा तो मानसिंह को सिंहासन से उतार कर उसको राजतिलक किया जायगा।"

सवाई सिंह रण कुशल होने के साथ-साथ प्रभावशाली था। उसकी उत्तेजना पूर्ण बातों को सुनकर उपस्थित सामन्तों ने उसके प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। उसके बाद इसी आशय का एक प्रस्ताव लिखा गया, उस पर सभी लोगों ने हस्ताक्षर कर दिये। अपने इस कार्य में सफलता पाकर सवाई सिंह बहुत प्रसन्न हुआ। भीमसिंह की गर्भवती रानी इन दिनों में दुर्ग में रहा करती थी। सवाई सिंह सभी सामन्तों के साथ उस दुर्ग में गया और भीमसिंह की रानी को दुर्ग से लाकर नगर के राजमहल में रखा।

सामन्तों का निर्णय राजा मानसिंह को मालूम हो गया और उससे जब सामन्तों ने उसका जिक्र किया तो मानसिंह ने बड़ी बुद्धिमानी के साथ स्वीकार किया कि यदि रानी के पुत्र पैदा होगा तो वह मारवाड़ का उत्तराधिकारी होगा और उसके सम्मान को बढ़ाने के लिए नागौर तथा सिवाना को जागीरें उसको दे दी जायँगी। लेकिन यदि रानी के लड़की पैदा हुई तो ढुंढ़ार के राजकुमार के साथ उसका विवाह किया जायगा।"

राजा मानसिंह के इस प्रकार स्वीकार कर लेने पर किसी सामन्त ने कुछ न कहा। उन सामन्तों के साथ उस समय पोकरण का सामन्त सवाई सिंह भी मौजूद था। कुछ दिनों के बाद भीमसिंह की विधवा रानी के गर्भ से बालक पैदा हुआ। रानी ने मानसिंह से भयभीत हो कर नवजात शिशु को एक टोकरी में छिपाकर विश्वासी अनुचर के द्वारा पोकरण में सवाई सिंह के पास भेज दिया।

सवाई सिंह उस बालक को देखकर बहुत प्रसन्न हुआ और बड़ी सावधानी के साथ उसके पालन पोषण का प्रबन्ध करा दिया। दो वर्ष तक उस बालक के जन्म को छिपाकर रखा गया। मानसिंह ने सिंहासन पर बैठकर सामन्तों के साथ अच्छा व्यवहार न किया। जिन सामन्तों ने जालौर के दुर्ग के घेरे के समय उसकी सहायता की थी, उनके सम्मान का उसने ख्याल रखा। परन्तु जो सामन्त भीमसिंह के समर्थक थे, मानसिंह ने अपने शासन के दिनों में उनके साथ कठोर और अनुचित व्यवहार आरम्भ किया। जिन दिनों में मानसिंह जालौर के दुर्ग में बन्द था, उसके वंशज दो प्रधान सामन्तों ने उसकी सहायता की थी। जो लोग इसके पक्ष में थे, उनमें भाटी वंश के राजपूत सैनिक थे और कायमदास की अधीनता में विष्णु स्वामी नाम का एक सैनिक दल भी था। ×

पोकरण का सामन्त सवाईसिंह से अप्रसन्न था इधर अनेक सामन्तों के साथ उसका अपमान जनक व्यवहार बढ़जाने के कारण सवाईसिंह को मौका मिल गया। उनने अपने पक्ष के सामन्तों को बुलाकर भीमसिंह के नवजातशिशु के जन्म का सब हाल बताया और उसने यह भी प्रकट किया कि

× विष्णु का भक्त होने के कारण यह दल विष्णु स्वामी दल के नाम से प्रसिद्ध था। महन्त कायमदास के हितों की रक्षा के लिए इस दल के लोगों ने भीषण युद्ध किया था और आवश्यकता पड़ने पर ये लोग दूसरों का साथ भी देते थे।

मैंने इस शिशु के जन्म का समाचार किस प्रकार अब तक छिपाकर रखा है। इस शिशु का नाम धौंकलसिंह रखा गया है। उसने यह भी कहा कि दो वर्ष तक मैंने धौकलसिंह का पालन पोषण किया है। राजा मानसिंह ने जन्म के बाद इस राजकुमार को नागौर तथा सिवाना देने का वादा किया था। इसलिए इस शिशु को वे दोनों नगर मिल जाने चाहिए।

सामन्तों की सम्मति से राजकुमार के जन्म का समाचार मानसिंह को जाहिर करना निश्चय किया गया। सवाईसिंह ने राजा मानसिंह के पास जाकर कहा: "महाराज भीमसिंह की विधवा रानी से जो शिशु उत्पन्न हुआ था, उसका पालन-पोषण इन दो वर्षों में मेरे द्वारा हुआ है। उस शिशु का नाम धौंकलसिंह है। आप ने इसको नागौर और सिवाना देने का वादा किया था। इसलिए उन दोनों नगरों को देकर आपको अपनी प्रतिज्ञा का पालन करना चाहिए।"

सवाईसिंह के मुख से इस बात को सुनकर मानसिंह ने कहा: "इस बात का पता लगा लेने पर और निश्चय कर लेने पर कि धौंकलसिंह भीमसिंह की विधवा रानी का पुत्र है, मैं निश्चित रूप के अपनी कही हुई बात को पूरा करूँगा।"

भीमसिंह की विधवा रानी ने अपने शिशु धौकलसिंह को पोकरन भेज दिया था और वह स्वयं जोधपुर के महल में रहती थी। मानसिंह ने धौंकलसिंह के जन्म का पता लगाना आरम्भ किया। भीमसिंह की रानी ने सुना कि इस बात का अनुसंधान हो रहा है कि धौंकलसिंह मेरा बेटा है अथवा नहीं। वह घबरा उठी। उसने सोचा कि यदि मैं धौंकलसिंह को अपना पुत्र स्वीकार करती हूँ तो मेरा यह छोटा-सा बालक मानसिंह के द्वारा सहज ही मारा जायगा। इसलिए उसने सोच समझकर सभी के सामने मानसिंह के पूछने पर कहा—"धौंकलसिंह मेरा लड़का नहीं है।"

रानी के मुख से इस बात को सुनकर राजा मानसिंह को बड़ी प्रसन्नता हुई। उसकी सम्पूर्ण चिंता मिट गयी। सामन्त सवाई सिंह ने जो कुछ सोच रखा था, उसका एक साथ अन्त हो गया। उस समय सभी सामन्त वहाँ पर मौजूद थे। धौकलसिंह के पैदा होने के पहले इस बात का कोई प्रमाण न रखा गया था कि भीमसिंह की विधवा रानी गर्भवती है, इसलिए रानी के उत्तर को सुनकर सभी सामन्तों ने इस बात को मान लिया कि धौंकलसिंह भीमसिंह की रानी से पैदा नहीं हुआ।

सामन्त सवाई सिंह ने धौकलसिंह के जन्म के बाद मानसिंह के विरुद्ध बड़ी-बड़ी योजनायें बना रखी थीं। वे सब यद्यपि निराधार हो गयीं, परन्तु सवाईसिंह निराश न हुआ। उसके अन्तःकरण में अनेक प्रकार की कल्पनायें उठने लगीं। उसका सबसे पहला कर्त्तव्य था, सावधानी के साथ धौकलसिंह का पालन-पोषण करना। पोकरण का दुर्ग इसके लिए बहुत सुरक्षित और सुदृढ़ न था। इसलिए धौंकलसिंह को शेखावाटी में ले जाकर छत्रसिंह भाटी अभय सिंह को सौंप दिया। इसके बाद वह अपनी योजना को सजीव बनाने में फिर लग गया। वह साहसी और शूरवीर होनेके साथ-साथ षड़यंत्र रचने का कार्य भी खूब जानता था।

सवाईसिंह ने स्वयं अपने व्यवहारों से अपनी शत्रुता का परिचय मानसिंह को दिया था। परन्तु अब उसने राज-नीति से काम लिया। उसने शत्रुता का भाव बदल कर मित्रता का भाव आरम्भ किया। इससे राजा मानसिंह उसका विश्वास करने लगा। उसने समझा कि इतने दिनों तक विरोधी रहने के बाद सवाईसिंह ने मित्र बनकर रहने में अपना कल्याण अनुभव किया है। इसका फल यह हुआ कि मानसिंह ने भी सवाईसिंह के प्रति अच्छे व्यवहार आरम्भ किये।

सवाईसिंह ने जिस होने वाली दुर्घटना को लक्ष करके मानसिंह के साथ इस प्रकार के व्यवहार आरम्भ किये थे, वह घटना धीरे-धीरे सामने आने लगी। मारवाड़ के स्वर्गीय राजा भीमसिंह ने मेवाड़ के राणा की लड़की कृष्णाकुमारी के साथ विवाह करने का प्रस्ताव किया था। राजकुमारी कृष्णा अत्यन्त सुन्दरी थी। विवाह का कोई निर्णय भी न हो पाया था, इसी बीच में भीमसिंह की मृत्यु हो गयी। सवाईसिंह ने छिपे तौर पर जयपुर के राजा जगतसिंह के पास संदेश भेजा कि मेवाड़ के राणा भीमसिंह की लड़की अत्यन्त सुयोग्य और सुन्दरी है। इसलिए उसके साथ विवाह करने का प्रस्ताव आप राणा के पास भेजिए।

इस संदेश को पाकर जगतसिंह को बड़ी प्रसन्नता हुई। उसने राजकुमारी कृष्णा के साथ विवाह करने का निश्चय कर लिया और बहुमूल्य उपहारों के साथ उसने चार हजार सैनिकों का एक दल राणा के पास उदयपुर भेज दिया। इसी समय सवाईसिंह ने राजकुमारी कृष्णा के साथ विवाह करने के लिए मानसिंह को प्रोत्साहित किया। उसने कृष्णाकुमारी की अनेक प्रकार से प्रशंसा की और मानसिंह को समझाया कि यह विवाह स्वर्गीय भीमसिंह के साथ होने जा रहा था। अब उसके अधिकारी आप हैं। जगतसिंह के साथ मेवाड़ की राजकुमारी का विवाह होने से मारवाड़ के गौरव को आघात पहुँचता है।

सवाईसिंह के इस प्रकार समझाने पर मानसिंह ने अपने सामन्तों को बुलाने के लिए आदेश दिया और उसके बाद तीन हज़ार राठोरों की अश्वारोही सेना लेकर वह रवाना हुआ। जयपुर से मूल्यवान उपहारों को लेकर जो सेना मेवाड़ के लिए रवाना हुई थी, हीरासिंह उसका नायक था। राठौर सेना ने मारवाड़ की सीमा के भीतर जाकर जयपुर के राजा का समस्त उपहार लूट लिया। जयपुर की सेना पराजित होकर वहाँ से भाग गयी। जगतसिंह ने मानसिंह के इस व्यवहार पर तुरंत युद्ध की घोषणा की। दोनों तरफ लड़ाई की तैयारियाँ होने लगीं।

सवाईसिंह की अभिलाषा सफल हुई। वह किसी प्रकार मानसिंह को सिंहासन से उतारना चाहता था। इसके लिए उसने अब तक जितने उपाय सोचे थे, व्यर्थ हो गये थे और अंत में मित्र बनकर वह मानसिंह को किसी बड़े युद्ध में फँसाने की जो योजना बना रहा था, उसमें इस समय उसे सफलता मिली। जयपुर में मारवाड़ के विरुद्ध युद्ध की घोषणा होते ही सवाई सिंह बहुत प्रसन्न हुआ। उसने तुरंत मानसिंह के पास जाकर राजा जगत सिंह का विरोध किया और मानसिंह के प्रति अपनी अपूर्व सहानुभूति दिखाकर वह खेतड़ी चला गया।

इसी खेतड़ी में धौकलसिंह अभयसिंह के संरक्षण में रहता था। सवाईसिंह धौकलसिंह को लेकर जयपुर में राजा जगतसिंह से मिला और मानसिंह के द्वारा जयपुर का जो उपहार लूटा गया था, उसके सम्बन्ध में वह बिलकुल अनजान बन गया। जगतसिंह को मालूम हुआ कि मानसिंह के विरुद्ध युद्ध की घोषणा को सुनकर सवाई सिंह धौकल सिंह को साथ में लेकर सहायता के लिए आया है। इसलिए जगतसिंह ने सम्मान के साथ उसके स्वागत का आदेश दिया।

सवाईसिंह ने राजा जगतसिंह से भेंट करके बहुत-सी बातें मानसिंह के विरुद्ध कहीं और जगतसिंह को इस बात का विश्वास कराया कि मारवाड़ के साथ इस युद्ध में वहाँ के समस्त सामन्त जयपुर का साथ देंगे। इसलिये कि वे सभी सामन्त मानसिंह के साथ द्वेष रखते हैं और उनको सिंहासन से उतारकर धौकलसिंह को उसके स्थान पर बिठाना चाहते हैं। सवाईसिंह ने जगतसिंह को यह भी बताया कि धौकलसिंह के जन्म लेने के पहले ही मारवाड़ के सभी सामन्तों ने एक प्रतिज्ञा पत्र पर हस्ताक्षर किये थे, जिसमें लिखा गया था कि स्वार्गीयभीमसिंह की विधवा रानी से यदि

बालक पैदा होगा तो मानसिंह को सिंहासन से उतारकर उस राजकुमार को राजतिलक किया जायगा।

राजा जगतसिंह को जब इन यथार्थ बातों की जानकारी हो गयी और उसने जब धौंकलसिंह को मारवाड़ का उत्तराधिकारी होना समझ लिया तो जगतसिंह ने धौंकलसिंह के साथ बैठकर एक थाल में भोजन किया और उसको अपना भाञ्जा एवम् मारवाड़ का उत्तराधिकारी कहकर सब को जाहिर किया। धौंकलसिंह के सम्बन्ध में इस प्रकार का प्रचार होने पर मारवाड़ के समस्त सामन्त अपनी सेनाओं के साथ जयपुर की सेना में आकर मिल गये। इससे जयपुर की सेना शक्तिशाली हो गयी।

धौंकलसिंह का पक्ष लेकर राठौर वंश के जो सामन्त और श्रेष्ठ लोग जयपुर की सेना में आकर मिल गये थे, उनमें बीकानेर का स्वतंत्र राजा प्रधान था। मानसिंह के विरुद्ध बीकानेर के राजा के खड़े होने पर मारवाड़ के सभी सामन्त एक-एक कर के जयपुर में आ गये। मारवाड़ में राजा मानसिंह का साथ देने वाला अब कोई न रह गया। फिर भी, उसने जयपुर की सेना के साथ युद्ध करने की तैयारी की और जयपुर की विशाल सेना के पहुँचने के पहले वह अपनी सीमा पर राठौर सेना को लेकर आ गया।

मारवाड़ के सामन्तों की सेनाओ के मिल जाने से जयपुर की सेना के अधिकारी और सैनिक--सब मिलाकर एक लाख से ऊपर पहुँच चुके थे। इसलिए मारवाड़ का विनाश होने में अब देर न थी। राजा जगतसिंह को मानसिंह से इस बात का बदला लेना था कि मानसिंह ने जयपुर का कीमती उपहार अपनी सेना को लेकर लूट लिया था और मारवाड़के समस्त सामन्त मानसिंह के विरुद्ध आक्रमण करने के लिये इसलिए तैयार थे कि वे सब मानसिंह के स्थान पर धौंकलसिंह को मारवाड़ का शासक बनाना चाहते थे।

मारवाड़ की राठौर सेना जयपुर की सेना से बिलकुल भयभीत नहीं हो रही थी। उसको मारवाड़ के सामन्तों की सेनाओं का भय था। मारवाड़ और जयपुर के इस होने वाले संग्राम को देखकर मराठा लोग बहुत प्रसन्न हुए। वे लोग राजस्थान के राज्यों को एक, दूसरे से लड़ाकर लाभ उठा रहे थे। इस समय भी मराठों को लूटने और लाभ उठाने का अवसर मिला। मराठों के दो दल हो गये थे और उन दोनों दलों का एक ही उद्देश्य था। मानसिंह ने किसी समय होलकर की सहायता की थी। इसलिए अपनी इस भीषण विपद में उसने होलकर से सहायता माँगी। होलकर अपनी मराठा सेना के साथ मानसिंह की सहायता के लिए आ गया और मानसिंह की सेना से अठारह मील की दूरी पर उसने मुकाम करके अपने दूत के द्वारा मानसिंह को संदेश भेजा कि कल प्रातःकाल भेंट होगी।

सवाईसिंह बड़ी सावधानी के साथ मानसिंह की चालों का अध्ययन कर रहा था। उसे जब मालूम हुआ कि होलकर अपनी मराठा सेना को लेकर मानसिंह की सहायता के लिए आया है, तो उसने होलकर को मिला लेने की चेष्टा की। उसने होलकर के पास संदेश भेजा कि उसकी मराठा सेना मानसिंह की सहायता न करके कोटा की तरफ चली जाय और वहाँ पहुँचने पर उसको एक लाख रुपये भेंट किये जायँगे।

होलकर रुपये का लोभी था। बिना युद्ध किये एक लाख रुपये का प्रलोभन वह रोक न सका। मानसिंह के उपकारों को भूलकर उसने सवाईसिंह के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया और

सवाईसिंह से एक लाख रुपये की हुंडी लेकर वह कोटा की तरफ चला गया। होलकर के इस व्यवहार को देखकर मानसिंह बहुत हताश हो गया। फिर भी उसने साहस से काम लिया और अपनी सेना के बल पर युद्ध करने के लिए वह आगे बढ़ा।

होलकर की मराठा सेना के चले जाने पर जयपुर की विशाल सेना आगे बढ़ी और गागोली नामक स्थान पर उसने गोले बरसाने आरम्भ किये। इस समय युद्ध में कुचामन, अहवा, जालौर और नीमाज के सामन्त राजा मानसिंह के सहायक थे। गोलों की वर्षा के बाद दोनों ओर से प्रलयकारी युद्ध आरम्भ हुआ।

मानसिंह के सहायक सामन्तों ने उसको समझाया कि जयपुर की इस विशाल सेना के साथ युद्ध कर सकना असम्भव है। इसलिए संग्राम को रोक देना ही अधिक हितकर मालूम होता है। इसी समय कुचामन के सामन्त शिवनाथसिंह ने मानसिंह के पास जाकर उसको हाथी से उतार लिया और एक तेज घोड़े पर बिठाकर युद्ध से चले जाने के लिए उससे अनुरोध किया। मानसिंह तुरन्त वहाँ से चला गया। लेकिन इस समय उसको अत्यन्त वेदना हुई।

दोनों ओर से गोलों की वर्षा होने के समय मानसिंह किसी प्रकार वहाँ से निकलकर मेरता में पहुँच गया। उसके पीछे उसके गोलंदाज भी वहाँ पहुँच गये। वहाँ पहुँच कर मानसिंह को कुछ शाँति मिली। विशाल शत्रु-सेना के आक्रमण से उस समय निकल आना उसको कठिन मालूम हो रहा था। उसने सोचा कि मैरता बहुत सुरक्षित स्थान नहीं है। इसलिए वह पीपाड होकर जोधपुर की राजधानी चला गया। मारवाड़ के जिन सामन्तों ने इस भयानक विपद में भी उसका साथ न छोड़ा था, वे भी उसके साथ राजधानी गये।

मानसिंह और उसके सामन्तों के भाग जाने पर जगतसिंह की सेना ने मानसिंह के शिविर में लूट की और मारवाड़ की अठारह तोपें अपने अधिकार में कर लीं। जयपुर की सेना के साथ सींधिया की मराठा सेना भी थी। सेनापति बालाराव के सैनिकों ने उस लूट में अधिक लाभ उठाया। अमीरखाँ की फौज ने वहाँ पर बहुत सी चीजें लूटकर अपने कब्जे में कर लीं। जयपुर की इस विशाल सेना ने युद्ध क्षेत्र से चलकर पर्वतसर और उसके आस-पास के गाँवों को लूट लिया।

मानसिंह को इस युद्ध में पराजित करके सवाईसिंह और जगतसिंह की आशायें पूरी हुईं। इसी समय जगतसिंह ने सवाईसिंह को बुलाकर कहा: "मानसिह पराजित हो कर भाग गया है। मैं अब राजकुमारी मेवाड़ के साथ विवाह करने के लिए जाता हूँ और आप जोधपुर जाकर वहाँ के राजसिंहासन पर धौंकलसिंह को बिठाने का प्रबन्ध करिए।"

सवाईसिंह दूरदर्शी और राजनीतिज्ञ था। उसने जगतसिंह की बात को स्वीकार कर लिया। परन्तु उसके साथ-साथ उसने कहा: 'मानसिंह अभी तक पूर्ण रूप से पराजित नहीं हुआ। वह किसी भी समय भयानक परिस्थिति पैदा कर सकता है।" जगतसिंह के परामर्श के अनुसार सवाईसिंह अपनी सेना के साथ रवाना हुआ। जोधपुर की राजधानी न जाकर वह मेरता में पहुँचा और वहाँ पर वह तीन दिन तक ठहरा रहा। सवाईसिंह सोचने लगा कि मानसिंह के अधिकार में जो एक छोटी-सी सेना है, उसके द्वारा वह अपनी और राजधानी की रक्षा नहीं कर सकता। इसलिए यह निश्चित है कि 'वह जोधपुर से जालौर चला जायगा। इसलिए कि वहाँ का दुर्ग अधिक सुदृढ़ और सुरक्षित है। उसके जोधपुर से चले जाने पर राजधानी में अपना रास्ता साफ हो जायगा।'

यही हुआ भी। मानसिंह अपनी सेना के साथ जोधपुर छोड़कर जालौर के लिये रवाना हुआ और वह बीसलपुर पहुँच गया। उसके साथ गायनमल सिंगवी एक उच्च पदाधिकारी था।

मानसिंह को जालौर जाते देख कर उसने कहा: "मेरी समझ में जालौर चला जाना आपके लिए हितकर न होगा। मारवाड़ की प्रजा उसी समय तक आप के साथ है, जब तक आप जोधपुर राजधानी की रक्षा कर सकेंगे। वहां से आपके चले जाने के बाद राज्य की प्रजा आपकी होकर न रहेगी।"

अपने उस अधिकारी की बात को सुनकर मानसिंह कुछ समय तक विचार करता रहा। उसकी समझ में यह बात आ गयी। उसने राजधानी की रक्षा करने की प्रतिज्ञा की और अपनी सेना के साथ वहाँ से लौटकर जोधपुर के लिए चल पड़ा। सवाईसिंह ने जो अनुमान लगाया था, वह सही न निकला। जगतसिंह को जब मालूम हुआ कि मानसिंह जोधपुर पहुँच गया है तो उसने मेवाड़ जाने का विचार छोड़ दिया और धौंकलसिंह का अभिषेक करने के लिए जयपुर की विशाल सेना को लेकर वह जोधपुर को तरफ चला।

मारवाड़ के बहुत से सामन्तों के विरोधी हो जाने के कारण और उनके शत्रु से मिल जाने से मानसिंह ने अपने उन सामन्तों का भी विश्वास छोड़ दिया, जो अभी तक उसके साथ थे। जोधपुर पहुँच कर वहाँ के दुर्ग की रक्षा का भार उसने अपने सामन्तों को नहीं दिया और वैतनिक सेना के प्रधान हिन्दाल खाँ को उसका अधिकारी बना दिया। साथ ही तीन हजार शूरवीर सैनिकों को उसके नेतृत्व में दे दिया। उनके अतिरिक्त चौहान भाटी और मन्दोर आदि राजवंशों के सैनिकों के साथ विष्णु स्वामी दल को मिलाकर दुर्ग की रक्षा के लिये नियुक्त किया। सब मिलाकर पाँच हजार सैनिक जोधपुर के दुर्ग की रक्षा के लिये नियुक्त किये गये।

जोधपुर के दुर्ग का प्रबन्ध करके मानसिह ने राज्य के दूसरे दुर्गों की रक्षा करना आवश्यक समझा। जालौर का दुर्ग राज्य के अन्यान्य दुर्गों में विशेषता रखता था। अमरकोट का दुर्ग राज्य की बिलकुल सीमा पर था। उन दोनों दुर्गों की रक्षा के लिए मानसिह ने अपनी सेनायें रवाना कीं। राज्य के तीन दुर्गो पर अपनी सेनायें रखकर मानसिह जोधपुर में शत्रु-सेना के आने का रास्ता देखने लगा। वह इस समय किसी प्रकार जोधपुर की राजधानी की रक्षा करना चाहता था।

मानसिंह ने राजधानी के दुर्ग की रक्षा का भार वैतनिक और बाहरी सेनाओं को सौंपा था, इससे उसके साथी सामन्तों ने अपना अपमान अनुभव किया। उन्होंने असंतोष अनुभव करते हुए राजा मानसिंह से प्रार्थना की कि राजधानी के दुर्ग की रक्षा का भार हम लोगों को मिलना चाहिये। मानसिंह ने उनकी इस बात को सुना परन्तु उसकी कुछ परवा न की। सामन्तों को उत्तर देते हुए उसने कहा: "नगर और दुर्ग दोनों की रक्षा करना है। आपको जोधपुर नगर की रक्षा करने में अपनी शक्तियों का उपयोग करना चाहिए।" मानसिंह के इस उत्तर से उसके सामन्तों को संतोष न मिला और वे राजधानी को छोड़कर सवाईसिंह के साथ जाकर मिल गये।

जो सामन्त अभी तक मानसिंह के साथ थे, उनके भी चले जाने के बाद मानसिंह की शक्तियाँ और भी निर्बल पड़ गयीं। अब उसके साथ वैतनिक सेना को छोड़कर और कोई न रहा। इसलिए उस सेना पर विश्वास करके वह शत्रुओं से युद्ध करने के लिए तैयार हो गया। मानसिंह में साहस और धैर्य की कमी न थी। वह सोचने लगा: "यद्यपि शत्रु की सेना अत्यन्त विशाल है, समस्त राठौर सामन्त अपनी सेनाओं के साथ शत्रुओं की सहायता कर रहे हैं। मराठा और पठान सेनायें भी शत्रु की तरफ से लड़ रही हैं। फिर भी इस राजधानी पर आसानी से शत्रु का अधिकार

नहीं हो सकता।" मानसिंह इस प्रकार की बातें सोचकर राजधानी की रक्षा करने का उपाय सोचने लगा।

जगतसिंह जयपुर की शक्तिशाली सेना को लेकर सवाईसिंह के साथ मारवाड़ की तरफ बढ़ा और जोधपुर पहुँच कर उसकी सेना ने नगर में प्रवेश किया। मानसिंह की कोई सेना नगर की रक्षा के लिए न थी। इसलिए जगतसिंह ने जोधपुर नगर पर अधिकार कर लिया और मराठा तथा पठानों की सेना ने वहाँ पर लूट मार करके भयानक अत्याचार किये। जोधपुर पर अधिकार करके मराठा और पठानों की सेना राजधानी के आस-पास ग्रामों और नगरों में लूट मार करने लगी। उस समय फलोदी के रहने वालों ने तीन महीने तक आक्रमणकारियों का सामना किया। लेकिन उसके बाद शत्रु के सामने उनको आत्म समर्पण कर देना पड़ा। इसलिए कि उनकी संख्या बहुत कम थी।

जगतसिंह की तरफ से बीकानेर के राजा ने अपनी सेना के साथ पहुँच कर फलोदी राज्य पर अधिकार कर लिया। जोधपुर और उसके आस-पास के अनेक नगरों पर अधिकार कर लेने के बाद सवाईसिंह ने एक घोषणा-पत्र प्रकाशित करके धौकलसिंह को राज्य के सिंहासन पर बिठाने के लिए मारवाड़ की प्रजा से प्रार्थना की। मानसिंह जोधपुर के दुर्ग में अपनी सेना के साथ मौजूद था। उसे किले पर शत्रु सेना के आक्रमण का सन्देह होने लगा।

जोधपुर और उसके आस-पास के स्थानों में भीषण रूप से लूट मार करके मराठा और पठानों की सेना ने जोधपुर के किले पर गोलों की वर्षा आरम्भ की। उस समय मानसिंह ने बड़े साहस और धैर्य से काम लिया। परन्तु दुर्ग की रक्षा उसे असम्भव मालूम होने लगी। जयपुर की विशाल सेना जोधपुर के दुर्ग को पाँच महीने तक बराबर घेरे रही। परन्तु उसे सफलता न मिली। जयपुर की सेना ने उस दुर्ग के एक हिस्से को गोलों से विध्वंस कर दिया। परन्तु उस स्थान की अस्सी फुट ऊँची पत्थर की दीवार को वे तोड़ न सके। इस दशा में आक्रमणकारी सेना निराश होने लगी।

जयपुर की सेना के साथ मराठों और पठानों की जो सेनायें आयी थीं, उनके सैनिकों और पदाधिकारियों को पाँच महीने तक वेतन देने का कोई प्रबंध न हो सका। उन सब सेनाओं के सैनिकों की संख्या एक लाख से ऊपर थी। उनके खाने-पीने की व्यवस्था में भी बड़ी कमी आ गयी। सेनाओं के साथ जो घोड़े थे, उनको पेटभर घास भी न मिलने लगी। जयपुर की सेना के साथ अमीरखाँ की भी एक फौज थी। उसने मारवाड़ के नगरों और ग्रामों में भीषण रूप से लूट की थी और राज्य के सभी व्यावसायिक नगरों को लूटकर उसने बरबाद कर दिया था। उसके अत्याचारों से पाली, पीपाड़, बोलाऊ और दूसरे बहुत-से नगर बुरी तरह से नष्ट हो गये थे। जिन सामन्तों ने मानसिंह का साथ छोड़कर धौकलसिंह का पक्ष लिया था, उनके नगरों में भी अमीरखाँ ने जाकर लूटमार के साथ सर्वनाश किया। यह देखकर उन सामन्तों ने अमीरखाँ का विरोध किया। मारवाड़ के इस विध्वंस का सब से बड़ा अपराधी पोकरण का सामन्त सवाईसिंह था। खाने-पीने और वेतन देने की व्यवस्था न हो सकने पर सवाईसिंह से कहा गया कि वह अपने नगर से इतना धन लावे, जिससे खाने-पीने और वेतन की व्यवस्था की जा सके।

सवाईसिंह ने इस बात को स्वीकार कर लिया। उसने अपने साथी सामन्तों की सहायता से जो धन एकत्रि किया, उसके साथ-साथ उसने अपनी संग्रह की हुई सम्पत्ति लाकर दी। उससे

कुछ दिनों तक खाने-पीने का काम चलता रहा। उसके बाद धन के अभाव में फिर वही दशा पैदा हो गयी। जयपुर राज्य का खजाना इसके पहले ही खाली हो चुका था। मारवाड़ के जो सामन्त मानसिंह को छोड़कर जयपुर की सेना में आकर मिल गये थे, सवाईसिंह ने उनसे धन की माँग की।

मारवाड़ के जिन चार सामन्तों ने अन्त में मानसिंह का साथ छोड़ा था और सवाईसिंह से जाकर मिल गये थे, उन्होंने सवाईसिंह के धन की माँग का विरोध किया और विरोधी होकर वे अमीरखाँ से जाकर मिल गये। वे चारों सामन्त मानसिंह का साथ देने के लिए फिर से आपस में परामर्श करने लगे।

उन सामन्तों के अमीरखाँ से मिल जाने का कारण था। वे लोग सवाईसिंह के धन माँगने पर बहुत असंतुष्ट हुए और उसका साथ छोड़ देने के लिए उन चारों सामन्तों ने आपस में निर्णय कर लिया इस दशा में उनके लिए यह जरूरी था कि वे किसी एक पक्ष में होकर चलें और इसीलिए वे अब फिर मानसिंह के पक्ष का समर्थन करने की बात सोचने लगे। वे चारों सामन्त इस बात को भली भाँति जानते थे कि अमीरखाँ धन का लोभी है और इसी लोभ में वह जयपुर की सेना के साथ आया है, उन चारों सामन्तों ने मिलकर अमीरखाँ के सामने एक प्रस्ताव उपस्थित किया और उसके अनुसार उन लोगों ने अमीरखाँ को समझाया कि जयपुर का राजा जगतसिंह अपनी सम्पूर्ण सेना के साथ जोधपुर में मौजूद है। जयपुर इस समय बिलकुल अरक्षित दशा में है। इसलिए उस राज्य पर आक्रमण करके अपरिमित सम्पत्ति लूटी जा सकती है।

अमीरखाँ के साथ उन सामन्तों की यह बात-चीत बड़े मौके पर हुई। अमीरखाँ ने मारवाड़ राज्य के पीपाड, पाली और बीलाडा इत्यादि नगरों को जब लूटा था तो जयपुर के राजा जगतसिंह ने कठोरता के साथ उसका विरोध किया था। इसलिए जगतसिंह के असंतोष को अमीर खाँ पहले से ही जानता था। इस समय सामन्तों के उकसाने पर वह जयपुर में आक्रमण करने के लिए सहज ही तैयार हो गया और चारों सामन्तों के साथ वह अपनी सेना लेकर जयपुर की तरफ रवाना हुआ।

जगतसिंह को जब यह मालूम हुआ तो उसने अपने प्रधान सेनापति शिवलाल को कई हजार सैनिकों की सेना देकर अमीरखाँ को दमन करने के लिए भेजा। शिवलाल अपनी सेना के साथ रवाना हुआ और जयपुर के रास्ते में उसने अमीरखाँ की सेना पर आक्रमण किया। शिवलाल की सेना अमीरखाँ और चारों सामन्तों की सेनाओं से बहुत बड़ी थी। इसलिए अमीरखाँ और चारों सामन्त घबराकर लूनी नदी की तरफ़ भागने लगे। शिवलाल की सेना ने उनका पीछा किया। अमीरखाँ और उसके साथी भागकर लूनी नदी के दूसरी तरफ निकल गये और कुछ देर में वे गोबिन्दगढ़ पहुँच गये।

शिवलाल की सेना लगातार अमीरखाँ का पीछा करती रही। अमीरखाँ सामन्तों के साथ वहाँ से भागकर हरसोर नामक स्थान पर चला गया। शिवलाल ने वहाँ पहुँच कर फिर उस पर आक्रमण किया। चारों सामन्तों के साथ भागता हुआ अमीरखाँ जयपुर की सीमा पर फागी नामक स्थान पर चला गया। शिवलाल को पहले से इस बात का कुछ भी अनुमान न था कि अमीरखाँ कहीं पर भी डटकर युद्ध न करेगा और एक स्थान से दूसरे स्थान की तरफ लगातार वह भागता रहेगा। अमीरखाँ बहुत पहले से अपने अत्याचारों और षड़यंत्रों के लिए प्रसिद्ध था। शिवलाल के आक्रमण से लगातार भागने में भी वह मन-ही-मन बहुत प्रसन्न हो रहा था।

फागी नामक स्थान जयपुर की आखिरी सीमा पर था वहाँ तक अमीरखाँ को भगाकर और जयपुर की सीमा से बाहर कर शिवलाल ने उसका पीछा करना अब आवश्यक न समझा। उसने जयपुर राज्य की सीमा के भीतर एक स्थान पर अपनी सेना का का मुकाम किया और विजय के उल्लास में गौरव अनुभव करने के लिए वह अकेला जयपुर चला गया।

राठौर सामन्तों के साथ अमीरखाँ लेंक के पास पीपलू नामक स्थान पर पहुँच गया था। वहीं उसने सुना कि शिवलाल अपनी सेना को अकेली छोड़कर जयपुर चला गया है। इस अवसर का लाभ उठाने की उसने चेष्टा की। उसके साथ की सेना युद्ध करने के लिए काफ़ी न थी। इन दिनों में मोहम्मदशाह खाँ और राजा बहादुर की सेनायें ईसरदा को घेरे हुए पड़ी थीं। अमीरखाँ ने उन दोनों नेताओं को मिलाकर हैदराबादी रिसाला दल में वह पहुँचा। यह दल इन दिनों में लूटमार के लिए बहुत प्रसिद्ध हो रहा था। अमीर खाँ ने उसको भी अपने साथ मिला लिया और एक शक्तिशाली सेना बनाकर उसने शिवलाल की सेना पर आक्रमण किया।

जयपुर की वह सेना इस समय बिना सेनापति के थी और सेनापति के अभाव में कोई भी फौज युद्ध नहीं कर सकती। फिर भी उस सेना ने पूरे तौर पर आक्रमणकारियों का सामना किया। वे युद्ध से पीछे नहीं हटे और अंत में वे सब के सब पराजित होकर मारे गये। अमीरखाँ की विजयी सेना ने पराजित सेना के शिविर में जाकर वहाँ की समस्त युद्ध सामग्री को अपने अधिकार में कर लिया।

जगतसिंह की विशाल सेना छै महीने तक जोधपुर के दुर्ग को घेरे हुए पड़ी रही। दुर्ग में प्रवेश करने की सफलता उसको न मिली। इन छै महीनों में खाने-पीने और वेतन सम्बन्धी कठिनाइयां भयानक रूप से उसकी सेनाओं के सामने पैदा हो गयीं। जो सेनायें जयपुर की सहायता में जोधपुर आयी थीं, उनके पदाधिकारियों का मतभेद भी सवाईसिंह और जगतसिंह के साथ पैदा हुआ।

यह झगड़ा धीरे-धीरे बढ़ने मगा और आपसी असंतोष के कठोर हो जाने के कारण बीकानेर और शाहपुर के राजा जोधपुर छोड़कर अपने अपने राज्य को चले गये। परन्तु सवाईसिंह और जगतसिंह को उनके चले जाने पर किसी प्रकार की चिंता नहीं हुई। इसी अवसर पर उनको मालूम हुआ कि अमीरखाँ को दमन करने के लिए सेनापति शिवलाल के नेतृत्व में जो सेना भेजी गयी थी, भयानक रूप से उसका विनाश हुआ है। सवाईसिंह को यह समाचार पहले ही मालूम हो चुका था। लेकिन उसने जगतसिंह को जाहिर नहीं किया था और जयपुर के दीवान रामचंद को रिश्वत देकर उसने रोका था कि यह समाचार जगतसिंह को मालूम न होने पावे। उसका विश्वास था कि इस समाचार को सुनते ही जगतसिंह अपनी सेना लेकर जयपुर चला जायगा और उसके चले जाने पर मानसिंह के विरुद्ध अपना उद्देश्य सफल न होगा।

सवाईसिंह और रामचन्द्र के छिपाने के बाद भी अधिक समय तक वह समाचार छिप न सका। जगतसिंह की माता ने जयपुर से उस सेना के विनाश का समाचार उसके पास भेजा, जिसे सुनकर जगतसिंह ने सवाईसिंह पर बहुत क्रोध किया। जयपुर के दूत से उस समाचार को पाकर जगतसिंह जोधपुर से चला गया। उसके सामने षड्यंत्रकारी अमीरखाँ का भयानक भय पैदा हो गया।

जगतसिंह ने जोधपुर की राजधानी की लूट में बीस तोपों के साथ जो सम्पत्ति पायी थी उसको अपने सामन्तों के पास भेजकर उसने मराठा सेना के सेनापति को बलाया। जगतसिंह के

ामने इस समय भयानक संकट था। × मराठा सेनापति के आ जाने पर जगतसिंह ने कहा : "इस समय मेरे सामने बड़ा संकट है। आपकी सहायता से सकुशल जयपुर पहुँच जाने पर मैं प्रापको पुरस्कार में बारह लाख रुपये दूंगा।"

मराठा सेनापति ने जगतसिंह की इस बात को स्वीकार कर लिया। परन्तु जगतसिंह को तब मालूम हुआ कि अमीरखाँ एक बड़ी सेना के साथ जयपुर के रास्ते में मौजूद है तो वह बहुत घबरा उठा और किसी प्रकार उसने जयपुर जाने का साहस न किया। उसने अपना दूत भेज कर अमीरखाँ से बातचीत कराई। उसमें अमीरखाँ ने नौ लाख रुपये लेकर इस बात को मंजूर किया कि जगतसिंह के जयपुर जाने में मैं कोई विरुद्ध कार्यवाही न करूंगा।

जगतसिंह ने अमीरखाँ की माँग को स्वीकार कर लिया। अपने प्राणों की रक्षा के लिए उसने न की परवा न की और पानी की तरह सम्पत्ति को बहाकर जोधपुर से वह जयपुर के लिए रवाना हुआ। अपने शिविर में उसने आग लगा दी, जिससे उसका बहुत-सा मूल्यवान सामान जलकर राख हो गया। उसके बाद उसने अपना प्यारा हाथी अपने हाथों से मार डाला। क्योंकि उसकी इच्छा के अनुसार वह तेजी से अपनी पीठ पर बिठाकर उसे ले न जा सका था।

मराठा सेनापतिने बारह लाख रुपये लेकर जगतसिंह को जयपुर पहुँचा देने का वादा किया था और अमीरखाँ ने नौ लाख रुपये लेकर किसी प्रकार का उत्पात न करने का वादा किया था। फिर भी, जगतसिंह अपने राज्य में पहुँच न सका। जिन चार सामन्तों ने अमीरखाँ को उकसा कर जयपुर में आक्रमण करने के लिए तैयार किया था, वे जगतसिंह के शत्रु बन गये। उन्होंने निश्चय कर लिया कि मारवाड़ का धन लूट कर हम उसे जयपुर न ले जाने देंगे। इसके लिए उन सामन्तों ने मेरता से बीस मील पूर्व की तरफ़ जा कर जगतसिंह के आने के रास्ते में मारवाड़ के अगणित राठौरों को एकत्रित किया और इन्दराज सिंघी को अपना सेनापति बनाया।

इन्दराज सिंघी राजा मानसिंह के पहले के राजाओं के शासनकाल में मारवाड़ के दीवान के पद पर काम कर चुका था। उस समय एकत्रित राठौरों के साथ बैठ कर चारों सामन्तों ने निश्चय किया कि राजा मानसिंह का हम लोगों पर जो अविश्वास था, और उसने हमको शत्रुओं के साथ मिला हुआ समझ लिया था, उस संदेह को दूर करना हम सब का कर्त्तव्य है। मारवाड़ की लूट का धन जगत सिंह अपने साथ जयपुर लेकर जा रहा है। उसे लूटकर राजा मानसिंह को हम लोग अर्पित कर दें। ऐसा करने से मानसिंह का विश्वास हम लोगों को फिर से प्राप्त हो सकेगा। इस निर्णय के साथ एकत्रित राठौर वहाँ पर राजा जगतसिंह के आने का रास्ता देखने लगे।

सेना के साथ जगतसिंह के आते ही राठौरों ने उसपर भीषण आक्रमण किया। दोनों ओर से मारकाट आरम्भ हो गयी। राजा जगतसिंह ने मारवाड़ के सामन्तों के बलपर ही जोधपुर पर आक्रमण किया था। इस समय उसके साथ सवाईसिंह न था। उसके साथ कोई भी राठौर सामन्त न था। इसलिए राठौरों ने जयपुर की सेना को आसानी के साथ पराजित कर लिया और उस

× सन् १८०६ ईसवी के पहले की बात है। जगत सिंह ने मराठा सेनापति सींधिया के पास सहायता के लिए अपने दूत के द्वारा एक पत्र भेजा था। उस समय मैं सींधिया के शिविर में मौजूद था। बापू सींधिया, बालाराव इंगले और जीन बैप्टिस्ट की सेनायें सींधिया की अधीनता में काम कर रही थीं। उन सेनाओं को रवाना होने के समय मैंने स्वयं देखा था। सन् १८०७ में जयपुर में मैंने वहाँ की सेना के विनाश चिन्ह भी देखे थे।

सेना के साथ जितनी सम्पत्ति और मूल्यवान सामग्री जा रही थी, राठौरों ने सब की सब लूट ली। जयपुर की सेना परास्त होकर इधर-उधर भाग गयी। जगत सिंह घबराकर अपने राज्य की तरफ चला गया और जयपुर पहुँचकर उसने किसी प्रकार अपनी जान बचायी।

जगतसिंह के साथ जोधपुर की चवालीस तोपें जा रही थीं; राठौरों ने उनको भी छीन लिया। जगतसिंह के जयपुर भाग जाने के पहले सवाईसिंह धौंकलसिंह के साथ जोधपुर छोड़कर नागौर चला गया। मारवाड़ के चारों सामन्तों ने अमीरखाँ से मिल कर एक नयी योजना तैयार की। अमीर खाँ धन के लोभ पर ही कोई भी कार्य कर सकने के लिए तैयार हो सकता था। इसलिए उन सामन्तों के सामने धन का प्रश्न पैदा हुआ।

कृष्णगढ़ का राजा राठौर राजपूत था। उसने इस में किसी की सयायता न की थी और वह पूर्ण रूप से तटस्थ होकर रहा था। इसलिए उन सामन्तों ने अमीरखाँ को देने के लिए कृष्णगढ़ के राजा से दो लाख रुपये की माँग की। राजा कृष्णगढ़ ने अपने खजाने से दो लाख रुपये सामन्तों को दिये। ये रुपये अमीरखाँ को दे दिये गये, जिन्हें पाकर अमीर खाँ ने वादा किया: "मैं राजा मानसिंह की हर तरीके की सहायता करूँगा।" इसके बाद वे सामन्त अमीरखाँ को लेकर जोधपुर आ गये। राजा मानसिंह ने बड़े सम्मान के साथ अपने सामन्तों का स्वागत किया और उनके जिन नगरों को छीनकर राज्य में मिला लिया गया था, वे नगर उनको दे दिये गये। इन्दराज सिंधी को मारवाड़ का प्रधान सेनापति बनाया गया।

पैंतालीसवाँ परिच्छेद

अमीर खाँ के साथ मानसिंह की मैत्री–रुपये का लोभी अमीर खाँ–षड़यंत्रों की सफलता–रुपये की लूट–बीकानेर पर आक्रमण–मानसिह के संकटों का अंत–अमीर खाँ का मारवाड़ राज्य में विस्तार–राज्य में सामन्तों की कठिनाइयाँ–मानसिंह का वैराग्य–जोधपुर की दुरवस्था--मानसिंह से सामन्तों की प्रार्थना–मानसिंह की योग्यता--जोधपुर का शासन फिर से मानसिंह के अधिकार में–अँगरेज प्रतिनिधियों की चेष्टा–अखय चंद मन्त्री की राज्य में लूट–राज्य के सामन्तों को मिटाने की चेष्टा–ईस्ट इण्डिया कम्पनी के द्वारा राज्य की सहायता।

मानसिंह ने अपनी राजधानी में अमीर खाँ का बहुत आदर और सम्मान किया। योधागिरि के दुर्ग में सेना के साथ उसके ठहरने का प्रबंध किया और बहुत-सी मूल्यवान चीजें उसे भेंट में दीं। इसके बाद मानसिंह और अमीर खाँ में बातें होती रहीं। मानसिंह उसकी सहायता से सवाई सिंह और धौंकल सिंह का विनाश करना चाहता था।

उस बतचीत के सिलसिले में अमीर खाँ ने वादा किया कि मैं न केवल आप की सहायता करूँगा, बल्कि सवाई सिंह को इस संसार से बिदा कर दूँगा, जिससे उसके द्वारा फिर कभी आप का अनिष्ट न हो सके। अमीरखाँ की इस प्रतिज्ञा को सुनकर मानसिंह बहुत प्रसन्न हुआ। वह अमीर खाँ के षड़यँत्रों को भली प्रकार जानता था। उसने इन बात पर विश्वास कर लिया कि अमीरखाँ

चाहे तो वह सब-कुछ कर सकता है। अमीर खां की चालों से ही जगत सिंह की शक्तियां छिन्न भिन्न हुई और उनके फलस्वरूप मानसिंह जोधपुर के दुर्ग से बाहर निकल कर प्रसन्नता का अनुभव कर रहा था। अमीर खां के वादे से उसे बहुत संतोष मिला और इस कार्य के लिए उसने तीन लाख रुपये अमीर खां को दे दिये।

पोकरन के सामन्त सवाई सिंह ने अपने पितामह का बदला लेने के लिए मानसिंह के विरुद्ध धौंकल सिंह के पक्ष का समर्थन किया और मानसिंह पर आक्रमण करने के लिए जयपुर के राजा जगत सिंह को उकसाकर उसने मारवाड़ राज्य का विध्वंस और विनाश कराया था। जगत सिंह के जोधपुर से चले जाने के बाद सवाई सिंह धौंकल सिंह को लेकर जोधपुर से नागौर चला गया। उसके साथ अनेक राठौर सामन्त भी थे। वहाँ पहुँचकर जोधपुर पर एक नया आक्रमण करने के लिए सवाई सिंह एक योजना की तैयारी करने लगा।

अमीर खाँ ने राजा मानसिंह से सवाई सिंह का सर्वनाश करने के लिए प्रतिज्ञा की थी और इस कार्य के लिए उसने तीन लाख रुपये मानसिंह से लिये थे। परन्तु वह जानता था कि सवाई सिंह भी कम षड़यंत्रकारी नहीं है। वह यह भी जानता था कि मारवाड़ के अधिक राठौर सामन्त उसके साथ हैं। इस दशा में युद्ध करके उसको परास्त करना आसान नहीं है। इसलिए सवाई सिंह को सर्वदा के लिए मिटा देने का उपाय वह सोचने लगा।

अमीर खां को अपने लड़ने की शक्ति की अपेक्षा कूटनीति पर अधिक विश्वास था और उसी के लिए वह सर्वत्र प्रसिद्ध हो रहा था। बड़ी दूरदर्शिता के साथ कुछ सोच समझ कर वह अपनी सेना को लेकर जोधपुर से रवाना हुआ और नागौर से बीस मील की दूरी पर मूँधियाड में उसने अपनी सेना का मुकाम किया। यहाँ पहुँचकर उसने प्रचार किया कि राजा मानसिंह के साथ उसकी शत्रुता पैदा हो गयी है। मानसिंह ने उसके साथ जो अपमान जनक व्यवहार किया है, उसको सहन करने के लिए अमीर खाँ किसी प्रकार तैयार नहीं है।

इस समाचार के फैलने में देर न लगी। सवाई सिंह ने भी यह खबर सुनी। वह अपने मन में अत्यन्त प्रसन्न हुआ। अमीर खां से भेंट करने के लिए वह किसी अवसर की प्रतीक्षा करने लगा। इन्हीं दिनों में अमीर खां ने अपना एक दूत भेजकर सवाई सिंह से कहा कि यदि मुझे इजाजत मिले तो मैं नागौर की पीर तारकीन मसजिद में आकर वहाँ पर ठहरने के दिनों में रोजाना नमाज पढ़ लिया करूँ।

दिल्ली के बादशाह का प्रभुत्व क्षीण हो जाने पर और मारवाड़ से उसका अधिकार हट जाने पर मुसलमानों की मसजिदें और दरगाहें मरुभूमि में एवम् विशेषकर नागौर में नष्ट कर दी गयीं थीं। नागौर में यह कार्य बख्त सिंह के शासन काल में विशेष रूप से हुआ था। किसी प्रकार पीर तारकीन की मसजिद विध्वंस होने से बच गयी थी।

सवाई सिंह नागौर में रहकर पहले से ही चाहता था कि अमीर खां से किसी प्रकार भेंट हो। अमीर खां ने मानसिंह के साथ पैदा होने वाली शत्रुता का जो प्रचार किया था, उसका वृक्ष फलता फूलता हुआ दिखायी देने लगा। सवाई सिंह ने अमीर खां को पीर तारकीन की मसजिद में आकर नमाज पढ़ने को इजाजत देदी। अमीर खां अपने शिविर से चल कर नागौर पहुँचा। सवाई सिंह ने सम्मान के साथ उससे भेंट की। वह पीर की मसजिद में जाकर नमाज पढ़ने लगा और वहाँ से लौट कर जब वह सवाई सिंह से बिदा हो कर अपने डेरों में आने लगा तो उसने सवाई सिंह से कहा : "मैंने मानसिंह के साथ बहुत उपकार किये है। उनके पुरुस्कार के बदले उसने हमारे

साथ जिस प्रकार गंदा व्यवहार किया है, उसे मैं कभी नहीं भूल सकता।" यह कहकर अमीर खाँ चुप हो गया।

सवाई सिंह ने अनुभव किया कि अमीर खाँ निश्चय ही मानसिंह से बहुत असंतुष्ट है। उसके मनोभावों को अनुकूल पाकर सवाई सिंह ने कहा : "यदि आप मानसिंह को सिंहासन से हटाकर धौंकल सिंह को उस पर बिठाने के लिए सहायता कर सकें तो मैं इस बात का वादा करता हूँ कि आप जितना रुपया माँगेंगे, सिंहासन पर बैठने के बाद आप को धौंकल सिंह देगा।"

अमीरखाँ ने सवाई सिंह की बात को सुनकर कहा : "मुझे बीस लाख रुपये की आवश्यकता है।"

सवाई सिंह ने उत्तर देते हुए कहा : "मैं शपथ पूर्वक आपको विश्वास दिलाता हूँ कि सिंहासन पर बैठने के बाद बीस लाख रुपये आपको धौंकल सिंह से मिलेंगे।"

सवाई सिंह की बातों को अमीरखाँ ने मंजूर कर लिया। एक संधि पत्र लिखा गया। अमीरखाँ ने कुरान को छूकर प्रतिज्ञा की और संधि को स्वीकार किया। राजपूतों की प्रचलित प्रणाली के अनुसार, सवाई सिंह ने अमीरखाँ के साथ पगड़ी बदली। उसी समय सवाई सिंह ने धौंकल सिंह के साथ अमीखाँ का परिचय कराया। अमीरखाँ ने धौंकल सिंह का हाथ अपने हाथ में लेकर कहा : "मैंने आपके साथ जो आज निश्चय किया है, प्राण देकर मैं उसका पालन करूंगा। जोधपुर के सिंहासन पर धौंकल सिंह को बिठाने के लिए मैं फिर एक बार प्रतिज्ञा करता हूँ।"

अमीरखाँ से प्रसन्न होकर सवाई सिंह ने बहुमूल्य चीजें उसको भेंट दीं। इसके बाद अमीरखाँ ने सवाई सिंह को गुप्त रूप से कोई बात प्रकट की और उसके बाद वह नागौर से मूँधियाड चला गया।

अमीरखाँ के साथ सवाई सिंह की जो मित्रता कायम हुई, उसकी खुशी में अमीरखाँ ने उसको और उसके राठौर सामन्तों को अपने यहाँ आमंत्रित किया। निश्चित दिन और समय पर सवाई सिंह राठौर सामन्तों के साथ अमीरखाँ के शिविर पर गया। सम्वत् १८६४ के चैत्र के मास में नागौर से सवाई सिंह के साथ राठौर सामन्तों के अतिरिक्त पाँच सौ सैनिक अमीरखाँ के निमंत्रण में भाग लेने के लिए पहुँचे। अमीरखाँ ने आमंत्रित सवाई सिंह और उसके साथ के लोगों को बड़े सम्मान के साथ अपने दरबार में बिठाया। सवाई सिंह के साथ उसने पगड़ी बदली। इस समय सवाई सिंह बहुत प्रसन्न हो रहा था। उसे विश्वास हो रहा था कि अमीरखाँ की सहायता से निश्चय ही मैं मानसिंह को सिंहासन से उतार सकूँगा।

अमीरखाँ के दरबार में नाच और गाना आरम्भ हुआ। रूपवती नर्तकी के नृत्य और गाने को सुनकर सभी राजपूत आनन्द विभोर हो उठे। अमीरखाँ दरबार से किसी कार्य के लिए चला गया था। उस समय भी नृत्य बराबर होता रहा। उसके गानों को सुनकर सवाई सिंह स्वयं बहुत प्रसन्न हो रहा था। एकाएक नृत्य बन्द हो गया और हजारों पठानों ने अपनी भयानक तलवारों के साथ वहाँ पहुँच कर आक्रमण किया। उस समय सवाई सिंह को मालूम हुआ कि अमीरखाँ ने भयानक रूप से हमारे साथ विश्वासघात किया है।

आक्रमणकारी पठानों की संख्या अधिक थी। इसीलिए उस दरबार में आये हुए सभी सामन्त काट-काटकर फेंक दिये गये। सवाई सिंह भी जान से मारा गया। अमीरखाँ ने उसका कटा हुआ सिर लेकर राजा मानसिंह के पास भेज दिया। सवाई सिंह के साथ जो पाँच सौ राठौर राजपूत आये थे, वे इस संहार को देखकर एक साथ घबरा उठे और भागने के लिए तैयार हुए। उसी समय पठानों के द्वारा वे भी मारे गये।

धौंकल सिंह नागौर में था। अमीरखाँ के द्वारा इस नर-संहार का समाचार पाकर नागौर की सेना अपने प्राणों की रक्षा के लिए इधर-उधर भाग गयी। अमीरखाँ अपनी सेना के साथ नागौर में पहुँचा और उससे वहाँ की सम्पूर्ण सम्पत्ति लूट ली। बख्त सिंह ने नागौर के दुर्ग में जो युद्ध की बहुत-सी सामग्री एकत्रित की थी, उसको अमीरखाँ ने अपनी सेना के अधिकर में दे दिया। उस दुर्ग की तीन सौ तोपें लेकर अमीरखाँ ने अपने दुर्गों को रवाना कीं। इसके बाद अपनी योजना में सफल होकर वह सेना के साथ जोधपुर चला गया। वहाँ पर राजा मानसिंह ने उसका अपूर्व स्वागत् किया। इसी समय मानसिंह ने अमीरखाँ को दस लाख रुपये पुरस्कार में दिये। और मूँडवा तथा कुचेरा नाम के दो ग्राम—जिनकी वार्षिक आमदनी—तीस हजार रुपये थी—अमीरखाँ को दिये। इसके अतिरिक्त राजा मानसिंह से अमीरखाँ को एक सौ रुपये प्रति दिन के हिसाब से दिये जाने लगे।

सवाई सिंह ने अपने पूर्वजों का बदला लेने के लिए मानसिंह और मारवाड़ का सर्वनाश करने के लिए जो विष बोया था, उसके द्वारा सवाई सिंह का भी सर्वनाश हुआ। जिस विष के द्वारा शत्रु का विनाश किया जाता है, वही विष विनाश करने वाले के लिए भी विष हो जाता है। सवाई सिंह के जीवन की घटनाओं का अध्ययन करने से मनुष्य को इसी बात की शिक्षा मिलती है। सवाई सिंह मानसिंह का सर्वनाश करने के लिए चला था। परन्तु अंत में उसका स्वयं सर्वनाश हुआ। मानसिंह अब भी जीवित रहा और उसने जोधपुर का सिंहासन अपने अधिकार से जाने नहीं दिया। मारवाड़ की इन घटनाओं से हमें विश्वास कर लेना चाहिए कि मनुष्य का षड़यंत्र दूसरों का नहीं, उसी का विनाश करता है। प्रकृति के इस नियम पर मनुष्य को धैर्य के साथ विश्वास रखना चाहिए। वह सदा सुरक्षित रहेगा।

सवाई सिह के जीवन का अंत हो गया। उसने जो कुछ किया था, उसका फल ठीक-ठीक उसे मिला। मानसिंह के जीवन की कठिनाइयों का अभी तक अंत नहीं हुआ। यद्यपि उसने षड़-यंत्रकारी अमीरखाँ के द्वारा अपने परम सत्रु सवाई सिंह को संसार से बिदा करने में सफलता पायी थी। परन्तु उसकी विपदाओं का अंत यहीं पर नहीं होता।

सवाई सिंह और मारवाड़ के विरोधी राठौर सामन्तों के प्राणों का नाश करवा के राजा मानसिंह ने चारों तरफ से निर्भीक होकर अपना शासन-कार्य आरम्भ किया। धौंकल सिंह के सामने अब कोई आशा बाकी न रह गयी थी। इसलिए निराश होकर वह नागौर से चला गया। जिन राठौर सामन्तों ने धौंकल सिह का पक्ष लेकर मानसिह के साथ युद्ध किया था, उनको दण्ड देने के लिए मानसिंह ने तैयारी की। सवाई सिंह के प्रोत्साहन देने पर जयपुर के जगत सिंह ने मानसिंह के विरुद्ध आक्रमण किया था। इस लिए मानसिंह ने अमीर खाँ की पठान सेना के द्वारा जयपुर राज्य के कितने ही नगरों और ग्रामों का भयानक रूप से विध्वंस और विनाश करवाया।

मानसिंह का दूसरा शत्रु बीकानेर का राजा था। धौंकल सिंह का पक्ष लेकर आरम्भ से ही उसने मानसिंह के विरुद्ध राजा जगत सिंह का साथ दिया था और जिस समय कई राज्यों की सेनाओं ने मिल कर जोधपुर पर आक्रमण किया था, उस अवसर का लाभ उठा कर राजा बीकानेर ने फलोदी को बीकानेर के राज्य में मिला लिया था। इसलिए राजा बीकानेर को दण्ड देने के उद्देश्य से मानसिंह प्रधान सेनापति इन्द्रराज के नेतृत्व में अपनी बारह हजार सेना लेकर बीकानेर राज्य पर आक्रमण करने के लिए रवाना हुआ उसके साथ अमीर खाँ और हिन्दाल खाँ की फौजें पैंतीस तोपें लेकर बीकानेर की तरफ चलीं।

इस आक्रमण का समाचार राजा बीकानेर को मिला। उसने शीघ्रता के साथ अपनी सेना

एकत्रित की और वह वापरी नामक स्थान में पहुँच कर मारवाड़ की सेना का रास्ता देखने लगा। उसी स्थान पर दोनों ओर की सेनाओं का युद्ध आरम्भ हुआ। उस युद्ध में बीकानेर के राजा की पराजय हुई। वह युद्ध क्षेत्र से भाग कर अपनी राजधानी को चला गया। इस लड़ाई में बीकानेर के दो सौ शूरवीर योद्धा मारे गये। युद्ध से उसके भागते ही इन्द्रराज और अमीर खाँ तथा हिन्दाल खाँ की सेनाओं ने उसका पीछा किया। ये सेनायें पीछा करती हुई गजनेर नामक स्थान पर पहुँच गयीं।

बीकानेर की सेना संख्या में बहुत कम न होने पर भी मारवाड़ की सेना के साथ युद्ध करने के योग्य न थी। पठानों की सेनाओं के साथ होने के कारण राजा मानसिंह से बीकानेर का राजा अधिक घबरा उठा। उसने भयभीत होकर संधि का प्रस्ताव किया और दो लाख रुपये देना स्वीकार कर लिया। इस सम्पत्ति को लेकर संधि की गयी और उसी समय राजा बीकानेर ने फलोदी नामक स्थान से अपना अधिकार हटा लिया।

पठान सेनापति अमीर खाँ ने जगत सिंह का पक्ष लेकर जोधपुर पर आक्रमण किया था। उसके बाद उसने जगत सिंह का विरोधी बन कर जयपुर में आक्रमण करने की तैयारी की और इसके पश्चात् उसने मान सिंह के साथ मित्रता जोड़कर सवाई सिंह तथा उसके सहायक अन्य राठौर सामन्तों का सर्वनाश किया। अमीर खाँ की राजनीति इन दिनों में खूब सफल हुई। उसने जयपुर और जोधपुर से अपरिमित सम्पत्ति अपनी कूट नीति की कीमत में प्राप्त की। जोधपुर पर आक्रमण के दिनों में उसने मारवाड़ के नगरों को लूटकर मनमानी सम्पत्ति अपने अधिकार में कर ली थी। उसके जीवन का उद्देश्य किसी प्रकार धन पैदा करना था। सत्य और असत्य एवम् उचित और अनुचित समझने की उसको आवश्यकता न थी।

जयपुर का मित्र बन कर अमीर खाँ ने मारवाड़ का सर्वनाश किया था और मारवाड़ का मित्र बन कर उसने जयपुर तथा उसके सहायक राज्यों का सर्वनाश किया। अब उसने फिर मारवाड़ की तरफ दृष्टिपात किया कारवाड़ का राजा मानसिंह उसके हाथ की कठतपुली हो रहा था। अमीर खाँ ने न केवल मानसिंह के मन और मस्तिष्क पर शासन आरम्भ किया, बल्कि उसने मारवाड़ की शक्तियों को अपने अधिकार में लेना आरम्भ किया। सम्पूर्ण मारवाड़ में अमीर खाँ का आतंक फैल गया और राज्य के बड़े कार्यों में उसी का आतंक काम करने लगा। राजा मानसिंह ने स्वयं उसको प्रधानता दे रखी थी। इसलिए अमीर खाँ ने राठौर सामन्तों पर अपना आतंक पैदा करने की चेष्टा की उसका प्रभुत्व लगातार वहाँ बढ़ने लगा।

राजा मानसिंह ने अमीर खाँ की सहायता से अपनी भयानक विपदाओं से मुक्ति पायी थी। उसी की सहायता से मानसिंह ने अपने शत्रुओं को परास्त किया था। इसलिए जिसके इतने उपकार मानसिंह के सिर पर थे, वह मानसिंह उस परोपकारी के विरुद्ध इस समय कैसे आवाज उठा सकता था। मानसिंह समझता था कि राज्य पर उसका अत्याचार हो रहा है। परन्तु उसने कुछ कह सकने का अथवा विरोध करने का साहस न किया।

अमीर खाँ ने मनमानी सम्पत्ति मानसिंह से वसूल की थी। तीस हजार वार्षिक रुपये की आमदनी के दो प्रसिद्ध नगर उसने राजा मानसिंह से अपनी बहादुरी के पुरस्कार में पाये थे। एक सौ रुपये नित्य उसे अलग से मिलता था। राज्य की सभी सुविधायें बिना किसी मूल्य के उसको अपने आप प्राप्त थीं। इतना लाभ उठा कर भी अमीर खाँ को संतोष न हुआ। इसलिए राज्य के कई एक ग्रामों और नगरों पर उसने अपना अधिकार कर लिया। परन्तु राजा मानसिंह उससे कभी कुछ कह न सका।

इतना सब होने के बाद भी अमीर खाँ ने अपने अधिकारों का विस्तार मारवाड़ राज्य में किया। सने अपने सेनापति गफूर खाँ के नेतृत्व में एक सेना नागौर के दुर्ग में भेज दी और प्रसिद्ध मेरता ो जागीर को नागौर से अलग करके उसने अपने अधिकार में कर ली। इसके बाद भी वह अपने धिकार को बढ़ाता रहा। उसने अपनी एक सेना नावा के दुर्ग में भेज दी और नावा नगर के साथ ाथ साँभर का विस्तृत इलाका भी उसने अपने अधिकार में कर लिया। मारवाड़ राज्य में अमीर ाँ के इस शासन के विस्तार को देखकर भी राजा मानसिंह विरोध करने का साहस न कर सका।

राजा मानसिंह के दरबार में अमीर खाँ का प्रभुत्व काम कर रहा था। जो राठौर सामन्त ाज-दरबार में आते थे। उनको कुछ कहने-सुनने का अधिकार न था। यदि कभी कोई सामन्त ाज्य की दुरवस्था को उपस्थित कर के कुछ कहने का साहस करता तो उसे अपमानित हो कर चुप ो जाना पड़ता। मारवाड़ की इस बढ़ती हुई दुरवस्था को देखकर सामन्तों ने आपस में परामर्श कया कि मानसिंह राज्य में जो कुछ भी करता है, उसमें इन्दराज और राजगुरु देवनाथ की सम्मति हती है। इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि अमीर खाँ ने राज्य में जो अत्याचार कर रखा है, उसके पराधी इन्दराज और देवनाथ प्रधान रूप से हैं इसलिए सामन्तों ने निश्चय किया कि इन्दराज ौर देवनाथ जब तक जीवित रहेंगे, अमीर खाँ के अत्याचार इस राज्य में कभी समाप्त नहीं हो कते। इसलिए जैसे भी हो सके इन दोनों के जीवत का अंत किया जाय परन्तु उनका अन्त करे ौन ? यह प्रश्न राज्य के सामन्तों के सामने पैदा हुआ।

उन सामन्तों के सामने बड़ी गम्भीर परिस्थिति थी। अमीर खाँ के अत्याचारों से मारवाड़ ाज्य की दशा अत्यन्त दी दुर्बल हो गयी थी और सभी की समझ में यह आ गया था कि जब तक ाजद्रोही इन्द्र और देवनाथ का अन्त न होगा, उस समय तक अमीर खाँ के अत्याचार नहीं रोके ा सकते। बहुत सोच-समझकर उन सामन्तों ने धन के लोभी अमीर खाँ से यह काम कराने ा निश्चय किया गया। अमीर खाँ ने उसे स्वीकार कर लिया। उसने कहा :

"इस कार्य के लिए मैं सात लाख रुपये लूँगा और उन दोनों को संसार से बिदा कर ूँगा।"

सामन्तों ने अमीर खाँ की इस माँग को स्वीकार कर लिया उसके बाद अमीर खाँ ने अपना ार्य आरम्भ कर दिया। उसने इन्दराज के नेतृत्व में काम करने वाली पठान सेना को भड़का ंया। उसने अपना बहुत दिनों का बाकी पड़ा हुआ वेतन माँगा और उस सिलसिले में ऐसा संघर्ष ैदा हुआ, जिसमें राजगुरु देवनाथ के साथ मंत्री इन्दराज मारा गया।

देवनाथ के मारे जाने पर मानसिंह बहुत दुखी हुआ। उसने अपने जीवन में भीषण कठि-ाइयों का सामना किया था। परन्तु उसके हृदय पर इस प्रकार का घातक प्रभाव कभी नहीं पड़ा ा, जिस प्रकार राजगुरु के मारे जाने पर उसके ऊपर प्रभाव पड़ा। इन दिनों में वह राजगुरु ेवनाथ की सम्मति से अपने सभी कार्य करता रहा था। उसने राजगुरु का बहुत विश्वास किया ा। अब उसका कोई ऐसा सहायक न रह गया, जिसके परामर्श पर वह अपनी आँखें बन्द करके काम कर सकता। इसलिए अपने जीवन में बिलकुल निराश होकर उसने राज्य के कार्यों से वैराग्य ले लिया। उसने राज दरबार में जाना बन्द कर दिया। परिवार के लोगों से लेकर मन्त्रियों तक सब के साथ उसने बातचीत करना बन्द कर दिया। उसके इस विराग को देख कर सभी लोग चिन्तित हो उठे।

राजा मानसिंह की इस उदासीनता को देख कर राज्य के सामन्तों ने उसके साथ बातें कीं और जब उनको उससे कोई आशा न पैदा हुई तो सामन्तों ने उसके एक मात्र बेटे छत्रसिंह को

सिंहासन पर बिठा कर राज्य का कार्य आरम्भ किया। राजा मानसिंह ने स्वयं अपने हाथों से छत्रसिंह के मस्तक पर राजतिलक किया।

राजकुमार छत्रसिंह ने अभी हाल में ही यौवनावस्था में प्रवेश किया था। उसको शासन करने का ज्ञान न था। इसलिए राज्य की दुरवस्था के प्रति ध्यान न देकर वह विलासिता में पड़ा रहता। इसका परिणाम यह हुआ कि वह सभी के निकट अप्रिय हो गया।

मानसिंह के विराग को देखकर सामन्तों ने बड़ी आशाओं के साथ छत्रसिंह को सिंहासन पर बिठाया था। परन्तु वह अत्यन्त अयोग्य निकला। इसलिए राज्य के सामन्त और मंत्री फिर से चिन्तित रहने लगे। इन्हीं दिनों में वह बीमार हो गया और एक दिन अचानक उसकी मृत्यु हो गयी। उसके मरने के सम्बन्ध में कुछ लोगों का एक दूसरा ही मत है। उनका कहना है कि छत्रसिंह ने एक रूपवती युवती पर मोहित होकर उसका धर्म नष्ट किया था। इसी अपराध में वह मारा गया। इन दोनों बातों में सही क्या है, इसका निर्णय नहीं किया जा सकता। कुछ भी हो, छत्रसिंह की असमय मृत्यु हुई।

राजा मानसिंह के मानसिक उन्माद का यह दूसरा कारण हुआ। राजगुरु देवनाथ के मारे जाने पर उसने राज्य के शासन से विरक्ति ले ली थी और उसने एकान्त में रहकर जीवन व्यतीत करना आरम्भ किया था। उसके बाद प्रिय पुत्र छत्रसिंह की मृत्यु से उसके अन्तरतर को ऐसा आघात पहुँचा, जिससे जीवन के प्रति उसे कोई आसक्ति न रह गयी।

छत्रसिंह मानसिंह का इकलौता बेटा था। वह अयोग्य था और मारवाड़ के सिंहासन पर बैठने के योग्य न था। फिर भी वह अपने पिता का अकेला लड़का था। इसलिए राजा मानसिंह का उस पर अगाध स्नेह होना पूर्ण रूप से स्वाभाविक था। इसलिए छत्रसिंह की मृत्यु के बाद मानसिंह को सभी लोगों से अश्रद्धा हो गयी। राज्य के सामन्तों और मंत्रियों का उसने विश्वास छोड़ दिया और उसका यह अविश्वास यहाँ तक बढ़ा कि वह अपनी रानी को भी अपना शत्रु समझने लगा।

न जाने क्यों मानसिंह को विश्वास हो गया कि महलों से लेकर बाहर तक—राज्य में सभी लोग मुझे मार डालना चाहते हैं। उसके इस विश्वास का आधार क्या था, यह नहीं कहा जा सकता। परन्तु उसके हृदय में सभी के लिए इस प्रकार का विश्वास पैदा हो गया। अपने इस अविश्वास के कारण ही उसने भोजन करना बंद कर दिया और अपने भोजन का कार्य उसने अपने एक विश्वासी अनुचर पर छोड़ दिया। वह जो कुछ खाना लाकर उसे देता था, मानसिंह उसी को खाकर और एकान्त में रहकर अपना जीवन व्यतीत करने लगा।

मानसिंह के जीवन की यह विरक्ति लगातार बढ़ती गयी। उसने स्नान करना और बाल बनवाना भी बन्द कर दिया। इन दिनों में राज्य के शासन में बड़ी गड़बड़ी पैदा हो रही थी। इसलिए राजा के अभाव में मंत्री कार्य संचालन करते रहे। आवश्यकता पड़ने पर वे लोग राजा मानसिंह के पास जाकर जब कुछ बातें करते थे तो मानसिंह मौन रहकर उनको सुन लेता। लेकिन कुछ उत्तर न देता।

मानसिंह की इस उन्माद अवस्था के सम्बन्ध में दो प्रकार के मत पाये जाते हैं। कुछ लोगों का कहना है कि गुरुदेव देवनाथ के मारे जाने से उसे अत्यधिक मानसिक आघात पहुँचा था। कुछ लोगों का विश्वास है कि वास्तव में उस को उन्माद नहीं हुआ था। राज्य की विरोधी परिस्थितियों से वह बहुत ऊब गया था और उन्हीं दिनों में देवनाथ के मारे जाने के बाद उसके एकमात्र बेटे छत्रसिंह की मृत्यु हुई थी। जीवन के इस विरोधी वातावरण में उसने एकान्त जीवन

व्यतीत करना प्रारम्भ किया था। कुछ भी हो, मानसिंह ने अपने आपको राज्य के शासन से सभी प्रकार अलग कर रखा था।

छत्रसिंह की मृत्यु के बाद राजा मानसिंह की मानसिक विरक्ति अधिक बढ़ गयी। उस समय मारवाड़ के सामन्तों ने पोकरण के स्वर्गीय सवाई सिंह के पुत्र सालिम सिंह को बुलाकर जोधपुर के शासन का प्रधान बनाया और उसने शासन का प्रबन्ध अपने हाथ में लेकर राज्य में अपने प्रभुत्व का विस्तार किया।

राजकुमार छत्रसिंह के जीवन काल में एक बार दिल्ली में एक बैठक हुई थी। उसमें मारवाड़ की वर्त्तमान अशान्ति को मिटाने और शांति कायम करने के सम्बन्ध में विचार होने को था। यह बैठक मेरे द्वारा आमंत्रित हुई थी। × उस बैठक में भाग लेने के लिए जोधपुर दरबार से एक दूत भेजा गया था। दिल्ली की उस बैठक का परिणाम निकलने के पहले ही छत्रसिंह की मृत्यु हो गयी।

जोधपुर का शासन सालिमसिंह के अधिकार में चले जाने पर मारवाड़ के अधिकांश सामन्त अपने भविष्य को बड़ी सावधानी से देखने लगे। सालिमसिंह को कुछ समय के लिए जोधपुर का शासन-भार दिया गया था। इसलिए वहाँ के सामन्त इस बात से भयभीत हो रहे थे कि राजा मानसिंह फिर किसी समय यहाँ के सिंहासन पर बैठ कर शासन न करने लगे। राजा मानसिंह के शासन से सामन्तों के भयभीत होने का कारण था। राज्य सिंहासन पर बैठकर मानसिंह ने राठौर सामन्तों के साथ अच्छा व्यवहार नहीं किया था। उनकी जागीरें छीन ली गयी थीं और विद्रोही बनने के लिए उनको विवश किया गया था। इसलिए उन दुर्घटनाओं से राठौर सामन्त आज भी भयभीत होकर अपने भविष्य की ओर देख रहे थे।

इस प्रकार की परिस्थितियों में चिन्तित होकर राठौर सामन्तों ने आपस में परामर्श करके निश्चय किया कि मानसिंह के सिंहासन पर न बैठने पर ईदर के राजकुमार को लाकर अभिषेक किया जाय और सिंहासन पर बिठाया जाय। मानसिंह के सिंहासन पर बैठने का इस समय सामन्तों के सामने कोई प्रश्न नहीं था। इसलिए कि कई बार प्रार्थना करने पर उसने इनकार कर दिया था। सामन्तों ने इसके सम्बन्ध में ईदर के राजा के पास अपना समाचार भेजा। उसका उत्तर देते हुए ईदर के राजा ने कहा :

"हमारे यही एक लड़का है। इसलिए किसी इस प्रकार के अवसर के लिए हमको न इच्छा है और न हमारी उत्सुकता है। लेकिन यदि मारवाड़ के सभी सामन्त इस प्रस्ताव में एक मत हों तो मैं इसके लिए इनकार न करूँगा। परन्तु दो-चार सामन्तों के प्रस्ताव करने पर मैं इसे स्वीकार नहीं कर सकता।"

ईदर के राजा का उत्तर पाकर मारवाड़ के सभी सामन्तों ने एकत्रित होकर आपस में परामर्श किया और सभी की सम्मति लेकर यह निश्चय किया गया कि राज्य का भार सम्हालने के लिए पहले राजा मानसिंह से प्रार्थना की जाय। इस निर्णय के अनुसार सामन्तों को फिर से मानसिंह पर निर्भर होना पड़ा। वे लोग राजा मानसिंह से जाकर मिले और मारवाड़ की दुरवस्था का एक चित्र सामन्तों ने उसके सामने रखा। इसके साथ-साथ सामन्तों ने मानसिंह को यह भी बताया कि ईस्ट इण्डिया कम्पनी के साथ जो संधि तैयार की गयी गई है और वह आपके सामने

× मारवाड़ की यह अशान्ति लगभग पूरे देश में फैली हुई थी। जिसको दूर करने के लिए कर्नल टॉड ने दिल्ली में राजस्थान के राजपूतों की एक बैठक बुलाई थी। अनु०

आने वाली है , उस पर भी आपको विचार करना है। इस प्रकार की अनेक बातें कहकर उपस्थित सामन्तों ने प्रार्थना की कि आपके शासन का भार न लेने पर मारवाड़ राज्य की दशा सभी प्रकार खराब हो जायगी।

सामन्तों ने राजा मानसिंह से इस विषय में बड़ी देर तक बातचीत की। राजा मानसिंह ने सामन्तों का विशेष आग्रह देखकर शासन-भार स्वीकार करने के प्रस्ताव को मंजूर कर लिया। राजकुमार छत्रसिह के साथ ईस्ट इण्डिया कम्पनी की जो संधि होने जा रही थी , उसकी अनेक बातों पर मानसिंह ने असंतोष प्रकट किया। उस संधि में यह भी लिखा गया था कि 'अधीन सामन्तों की सेना को आवश्यकता पड़ने पर ईस्ट इण्डिया कम्पनी अपने अधिकार में ले लेगी।' राजा मानसिंह ने संधि की इस शर्त पर विशेष रूप से अपना विरोध प्रकट किया। सन् १८१७ ईस्वी में मारवाड़ के दूत व्यास विष्णु राम नामक ब्राह्मण की उपस्थिति में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के साथ दिल्ली में यह संधि लिखी गयी थी। मानसिंह का लड़का छत्रसिंह उन दिनों में मारवाड़ राज्य के सिंहासन पर था।

इस संधि के एक वर्ष बाद सन् १८१८ ईसवी के दिसम्बर में ईस्ट इण्डिया कम्पनी का प्रतिनिधि मिस्टिर विल्डर जोधपुर गया था। उसको उस राज्य की वास्तविक परिस्थितियों की रिपोर्ट ईस्ट इण्डिया कम्पनी के सामने उपस्थित करनी थी। अखय चंद उन दिनों में मारवाड़ का दीवान था और सालिम सिंह को राठौर सामन्तों ने राज्य का प्रबन्ध करने के लिए नियुक्त किया था। उन दिनों में आवश्यकतानुसार राज्य में अनेक प्रबंध किये गये थे और अनेक प्रधान पदों पर काम करने के लिए कर्मचारियों को नियुक्त किया गया था। इन दिनों की व्यवस्था में सामन्तों का परस्पर विद्रोह चल रहा था और उनके द्वारा राज्य में जो उपद्रव हो रहे थे , स्वर्गीय इन्दराज के बेटे फ़तेह सिंह राज ने उनका विरोध किया था। फतेह राज जोधपुर की राजधानी में एक पदाधिकारी था। वह अपने स्वर्गीय पिता इन्दराज का बदला लेने के लिए सामन्तों की व्यवस्था में बाधायें पैदा करता था।

ईस्ट इण्डिया कम्पनी का प्रतिनिधि मि० विल्डर जोधपुर जाकर तीन दिन तक वहाँ पर रहा और उसके बाद वह गुप्त रूप से राजा मानसिंह से मिला। उसने राज्य की परिस्थितियाँ मानसिंह के सामने रखीं और उसने मानसिंह से कहा : "सामन्तों के स्वेच्छाचार और अन्याय को दूर करने के लिए ईस्ट इण्डिया कम्पनी अपनी सेना लेकर आपकी सहायता कर सकती है।"

मानसिंह विचारशील और दूरदर्शी था। उसने कम्पनी के प्रतिनिधि की इस बात को सुनकर धन्यवाद दिया और कहा : "आवश्यकता पड़ने पर मैं कम्पनी की सैनिक सहायता लूँगा।"

मानसिंह ने बड़ी बुद्धिमानी के साथ अँगरेज प्रतिनिधि को उत्तर दिया। उसने अपने मन में विचार किया कि राज्य के सामन्तों को नियन्त्रण में लाने के लिए अँगरेजी सेना की सहायता आवश्यक नहीं है। इस प्रकार की सहायता के दुष्परिणाम को समझने में मानसिंह को देर न लगी। जीवन के आरभ से ही वह इस प्रकार की बातों में दूरदर्शी था।

राजा मानसिंह ने सामन्तों के अप्रिय कार्यों पर कठोर व्यवहार करना उचित नहीं समझा। बल्कि उसने ऐसे मौकों पर सामन्तों के साथ उदारता का व्यवहार आरम्भ किया। राठौर सामन्त दो श्रेणियों में विभाजित होकर कार्य कर रहे थे। एक श्रेणी राजा के प्रति अपनी भक्ति का प्रदर्शन करती थी और दूसरी श्रेणी प्रतिकूल वातावरण को प्रोत्साहन देती थी।

मानसिंह ने गम्भीरता के साथ शासन कार्य संचालन किया। उसने सामन्तों की मनोवृत्तियों ा अध्ययन किया और दोनों श्रेणी के सामन्तों में से योग्य व्यक्तियों को निकाल कर राज्य के चे पदों पर नियुक्त कर दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि मानसिंह के व्यवहारों पर दोनों णी के सामन्तों को सन्तोष हुआ।

जो सामन्त विद्रोहात्मक कार्यों में सहायता कर रहे थे, मानसिंह ने उनके साथ भी उदा- ता का व्यवहार किया। इन दिनों में उसने बड़ी बुद्धिमानी से काम लिया। अंगरेज प्रतिनिधि ने ल कर मानसिंह को समझाने की कोशिश की थी और कहा था: "कम्पनी की सैनिक सहायता बिना आप किसी प्रकार अपने राज्य में शांति कायम नहीं कर सकते। "राजा मानसिंह ने नम्रता साथ प्रतिनिधि की इस बात का विरोध किया और उसने उसको उत्तर देते हुए स्पष्ट ब्दों में कहा "कम्पनी की इस सहायता के लिए धन्यवाद है। परन्तु अपने राज्य में शांति कायम रने के लिए मुझे बाहरी सेना की आवश्यकता नहीं है।"

अंगरेज प्रतिनिधि मि० विल्डर ने मारवाड़ में फैली हुई भयानक अशान्ति और अराजकता । अपने नेत्रों से देखा था। सामन्तों पर राजा का कोई प्रभाव न रह गया था और वे भयानक रूप मनमानी कर रहे थे। राज्य की इस दुरवस्था में प्रजा के कष्ट इतने बढ़ गये थे, जिनको लिखा हीं जा सकता। उस प्रतिनिधि ने जोधपुर में भी इसी प्रकार की परिस्थितियाँ देखी थीं। उस तिनिधि ने स्वयं स्वीकार किया था कि सामन्तों के स्वेच्छाचार के कारण राज्य में मानसिंह का ाई प्रभाव न रह गया था। सभी राज कर्मचारी अनुशासन हीन हो गये थे और राज्य की प्रजा ाबर लूटी जा रही थी। राजा मानसिंह की निर्बलता इतनी बढ़ गयी थी कि वह सामन्तों के सी भी अनुचित कार्य में हस्तक्षेप करने का साहस नहीं करता था। उसके अधिकार में जो वैतनिक ा थी, आर्थिक कष्टों के कारण सभी प्रकार असमर्थ हो रही थी। पिछले तीन वर्षों का वेतन नका बाकी था। उसके न मिलने से उस सेना का कष्ट और असंतोष बहुत बढ़ गया था। उस सेना सैनिक राजधानी में प्रजा से माँगकर कभी-कभी अपना पेट भर लेते थे। लेकिन सेना के अधिकांश निक प्राय: अनाहार रहा करते थे। इस प्रकार राजधानी से लेकर राज्य के प्रत्येक नगर और ग्राम ा भयानक अवस्था फैली हुई थी।

सन् १८१६ ईसवी में उदयपुर, कोटा, बूँदी और सिरोही के राज्यों की तरह ईस्ट ंडया कम्पनी के गवर्नर जनरल के द्वारा मैं मारवाड़ राज्य का राजनैतिक एजेण्ट बनाया ा। X नवम्बर के महीने में मैं मारवाड़ गया और जोधपुर पहुँच कर मैंने वैतनिक सेना को ानक कष्टों में देखा। उस समय मैंने सेना के पिछले वेतन में तीस प्रतिशत दिलाने की कोशिश । सेना ने इसे स्वीकार कर लिया। लेकिन तीन सप्ताह के बाद जोधपुर से मेरे चले जाने पर । सेना को जो आशा हुई थी, वह भी जाती रही।

जोधपुर में बढ़ी हुई अराजकता के कारण लोगों को किसी प्रकार का डर न रह गया । इसका कारण यह था कि अपराधियों को कोई दण्ड देने वाला न था। ऐसा मालूम होता कि मानों इस राज्य से इन्साफ़ उठ गया है। इसका परिणाम यह हुआ कि यदि कोई सी को मार डालता तो हत्या करने वाले के विरुद्ध कोई कुछ कहने वाला न था। ठीक यही ास्था दूसरे अपराधों की भी थी। समस्त राज्य बिना किसी शासन के हो रहा था। जो निर्बल

X इस ग्रन्थ के मूल लेखक कर्नल टॉड को सन् १८१६ ईसवी में अँगरेज गवर्नर जनरल ने रवाड़ राज्य का भी राजनैतिक एजेण्ट नियुक्त किया था। अनु०

थे, वे बुरी तरह से सताये जा रहे थे। प्रजा के चीत्कार को कोई सुनने वाला न था। भोजन के अभाव में सैनिक मर रहे थे। राजपूत अपने कर्त्तव्यों का पालन भूल गये थे और खाने-पीने के अभाव में उचित-अनुचित का ख्याल भूलकर वे कुछ भी खा लेते और अपने प्राणों की रक्षा करते थे।

राजा मानसिंह कहने के लिए शासक था, परन्तु राज्य की अव्यवस्था के प्रति उसने अपने नेत्र बन्द कर लिये थे। जोधपुर में तीन सप्ताह रह कर मैं राजा मानसिंह से मिला। उस भेंट में राज्य की वर्तमान परिस्थितियों पर बहुत-सी बातें हुईं। हम दोनों में मित्रता का भाव पैदा हुआ। मानसिंह ने अपनी बीती हुई विपदाओं की घटनायें मुझे सुनायीं। मैं बड़ी सहानुभूति के साथ उनको सुनता रहा और अंत में यह कह कर मैं राजा मानसिंह से बिदा हुआ: "आपकी इन समस्त विपदाओं को मैं भली प्रकार जानता हूँ। आपने उन दिनों में बड़ी बुद्धिमानी से काम लिया और उन कष्टों से छुटकारा पाया। उस समय की सभी घटनाओं को मैं जानता हूँ। आपने दूरदर्शिता से काम लेकर अपने शत्रुओं का नाश किया। अब आप अँगरेज़ सरकार के मित्र हैं। इसलिए आपको हमारी सरकार का विश्वास करना चाहिए। मैं इस बात को खूब समझता हूँ कि आपके सामने जितनी भी कठिनाइयाँ हैं, वे सभी थोड़े दिनों में नष्ट हो जायँगी।"

राजा मानसिंह ने सावधानी के साथ मेरी बात को सुना और प्रसन्न होकर उत्तर देते हुए उसने कहा: "आप जिस शुभकामना को लेकर मेरे पास आये हैं, उसके लिए मैं आपको धन्यवाद देता हूँ। साथ ही आपको विश्वास दिलाता हूँ कि इस राज्य में जो कठिनाइयाँ आप देख रहे हैं, एक वर्ष के भीतर ही उनका अन्त हो जायगा।"

मानसिंह की इस बात को सुनकर मैंने कहा: "यदि आप चाहेंगे तो इसके आधे दिनों में ही आपके राज्य की सारी कठिनाइयाँ खत्म हो जायँगी।"

मारवाड़ राज्य में इन दिनों जो अव्यवस्था थी, वह राज्य की सभी बातों में भयानक हो गयी थी। लेकिन इस समय जो सुधार बहुत जरूरी हो रहे थे, उनको राजा मानसिंह के सामने मैंने संक्षेप में उपस्थित किया और वे इस प्रकार थे:

१—शासन की शिथिलता को दूर करना।

२—राज्य की आर्थिक दशा सुधारना, जो सर्वसाधारण के असंतोष का कारण बन गयी है।

३—राज्य की सेना को शक्तिशाली बनाना, जिसके ऊपर शासन की व्यवस्था निर्भर है।

४—सामन्तों ने निरंकुश होकर राज्य के अनेक नगरों पर अधिकार कर लिया है, बुद्धिमानी के साथ उनकी व्यवस्था करना।

राजा मानसिंह ने अपने राज्य में बारह महीने के भीतर सुधार कर लेने पर विश्वास किया था उसके अनुसार राज्य में कुछ नये कार्य आरम्भ किये गये। गोड़वाड़ राज्य का घाणेराव एक प्रधान नगर था। उसे राज्य में मिला लिया गया और एक वर्ष की उसकी आमदनी को लेकर उसे छोड़ दिया गया। घाणेराव के सामन्त ने इस दण्ड का रुपया अपने अधीन सरदारों से वसूल किया और अपनी प्रजा पर कर बढ़ाकर उसने बड़ी कठोरता से काम लिया। इस प्रकार के और भी कितने ही कार्य किये गये, जिनके कारण सामन्तों और सरदारों में असंतोष की वृद्धि हुई। कुछ सामन्तों ने इसका विरोध करते हुए स्वाभिमान के साथ अनेक प्रकार की बातें कहीं।

जोधपुर के प्रधान के मंत्री अखय चंद ने राज्य के प्रत्येक भाग में इस प्रकार के कार्य किये, जिनसे राज्य में और भी असंतोष की वृद्धि हुई। इन अत्याचारों को देखकर राज्य के कुछ सामन्त भविष्य में आने वाली विपदाओं का अनुमान लगाने लगे। उनको विश्वास हो गया कि प्रधान मंत्री

अखय चंद कुछ सामन्तों को मिलाकर राज्य का विनाश करने के लिए तैयारी कर रहा है। प्रधान मंत्री के इन अत्याचारों को देखकर मानसिंह ने शासन की व्यवस्था से फिर अपने आपको अलग कर लिया और एकान्तवासी बनकर वह फिर अपने जीवन के दिन व्यतीत करने लगा। उसकी इस दशा को देखकर अनेक सामन्त भयभीत हो उठे।

इन्हीं दिनों में प्रधान मंत्री अखय चन्द के साथ फतहराज का वैमनस्य आरम्भ हुआ। राजा मानसिंह की सहानुभूति फतहराज के साथ अधिक थी और बहुत कुछ उसका प्रिय बन गया था। इसके अतिरिक्त मानसिंह की रानी फतहराज के साथ उदारता का व्यवहार करती थी और इसलिए राज्य के अनेक सामन्तों के साथ फतहराज की मैत्री थी। परन्तु प्रधान मंत्री अखय चन्द राजनीतिज्ञ और दूरदर्शी था। उसने बड़ी बुद्धिमानी के साथ राज्य की सेना को अपने अधिकार में कर लिया और जोधपुर के दुर्ग के साथ-साथ राज्य के सभी दुर्गों पर उसने अपना आधिपत्य कायम कर लिया।

अखय चंद की इस शक्ति को देखकर फतहराज का साहस निर्बल पड़ने लगा। अखय चंद इस बात को समझता था कि फतहराज कुछ नहीं कर सकता। इसलिए निर्भीक होकर उसने राज्य में भयानक अत्याचार आरम्भ किये। इन्हीं दिनों में अखय चंद ने कई बार फतहराज का अपमान भी किया। इसलिए विवश होकर उसने अखय चंद के विरुद्ध उस षड़यंत्र का एक जाल तैयार करने लगा। राज्य में अखय चंद के अत्याचार लगातार बढ़ते जा रहे थे। प्रजा को लूटकर उसने अपने पास अपरिमित सम्पत्ति एकत्रित कर ली थी। जो सामन्त और सरदार उसके अत्याचारों में शामिल थे, उन्होंने भी राज्य को लूटने में कोई कमी न की थी। इसके बाद अखय चंद जोधपुर के दुर्ग में जाकर रहने लगा। उसने यह अफवाह फैला दी कि राज्य में मेरे लिए बड़ा खतरा पैदा हो गया है, इसीलिए नगर छोड़कर मैं दुर्ग में चला आया हूँ।

इस प्रकार छै महीने बीत गये। राजा मानसिंह का एकान्त जीवन चल रहा था और राज्य में अखय चंद का आधिपत्य काम कर रहा था। एकाएक मानसिंह ने अपना एकान्त जीवन भंग किया और शासन की बागडोर अपने हाथों में लेकर उसने अखय चंद एवम् उसके समर्थक सामन्तों और सरदारों को राजधानी में बुलाया। अखय चंद और उसके समर्थकों के आते ही मानसिंह ने आदेश दिया, वे सब के सब कैद कर लिए गये और उसी समय मानसिंह ने अखय चंद से कहा: "तुमने राज्य को लूटकर जितनी सम्पत्ति एकत्रित की है, उसे साफ जाहिर करो। अन्यथा तुमको प्राण दण्ड दिया जायगा।"

अखयचन्द मानसिंह के इस आदेश को सुन कर एक साथ भयभीत हो उठा। उसने अपने साथ के लोगों के परामर्श से चालीस लाख रुपये का हिसाब लिख कर तैयार किया। राजा मानसिंह ने उस पत्र के अनुसार पूरी सम्पत्ति लेकर अपने अधिकार में कर ली और अखयचन्द के साथ जिनको कैद किया गया था, मानसिंह की आज्ञा से उनको प्राण दण्ड दिया गया। नग जी जो राज्य का एक किलेदार था, और मूल जी धांधल के साथ जो एक जागीरदार था, विष का प्याला पिलाकर उनके जीवन का अन्त किया गया और फतह पोल द्वार के बाहर उनके मृत शरीर फिकवा दिये गये। धांधल का भाई जीव राज और बिहारीदास खींची के साथ एक दर्जी भी मारा गया। व्यास शिवदास और श्रीकृष्ण ज्योतिषी को मार कर संसार से बिदा गया।

मानसिंह ने उन सभी लोगों के साथ कठोर व्यवहार किया, जिन्होंने अखयचन्द के साथ मिल कर राज्य में अत्याचार किये थे और प्रजा को लूट कर धन एकत्रित किया था। इस प्रकार के सभी लोग कैद किये गये। उनके पास का धन ले लिया गया और उनमें से अधिकांश लोग जान से मारे

गये । उनमें बहुत थोड़े आदमी ऐसे थे जो अधिक अपराधी न थे, उनको छोड़ दिया गया । नगजी किलेदार और मूल जी जागीरदार दोनों छत्रसिंह के शासन काल में राज्य के कर्मचारी थे । उस समय इन दोनों ने षड़यन्त्रों के द्वारा राज्य का बहुत-सा धन लूटा था और उसके बाद अपने नगरों में जाकर उन दोनों ने दुर्ग बनवाये थे । राजा मानसिंह ने सिंहासन पर बैठकर यह प्रकाशित किया कि जिन लोगों ने राज्य में किसी प्रकार का अपराध किया है, उनको क्षमा करके उनके पद उनको दिये जायँगे । उस समय नग जी और मूल जी अपने नगरों से जोधपुर की राजधानी आ गये थे । उनके आने पर उनको कैद कर लिया गया और जो सम्पत्ति वे अपने साथ लेकर चले गये थे, उनसे माँगी गयी । प्राणों के भय से उन दोनों ने वह सम्पत्ति ला कर दे दी । उसे लेकर उन दोनों को दुर्ग के ऊँचे बुर्जों से नीचे फेंक दिया गया, जिससे उनकी मृत्यु हो गयी । कहा जाता है कि इस प्रकार जिन लोगों ने राज्य की प्रजा को लूट कर धन इकट्ठा किया था, उससे जो सम्पत्ति राजा मानसिंह को मिली, वह एक करोड़ रुपये से कम न थी । लेकिन यदि वह सम्पत्ति इसकी आधी भी रही हो तो भी इस समय राजा मानसिंह के लिए बड़ी काम की साबित हुई ।

राजा मानसिंह ने अखय चन्द के साथ-साथ जितने भी लोगों को राज्य में अत्याचार करने के कारण अपराधी समझा था, उन सभी की लूटी हुई सम्पत्ति को वापस लेकर उनको मृत्यु का दण्ड दिया । इससे राज्य में भयानक आतंक पैदा हो गया । राजा मानसिंह ने राज्य के अन्य सम्मानित सामन्तों को भी दण्ड देने का इरादा किया । पोकरण का सामन्त सालिम सिंह, नीमाज का सामन्त सुरतान सिंह, आहोर का सामन्त ओनाड सिंह भी अखय चन्द के साथ शासन की व्यवस्था में शामिल था । साधारण श्रेणी के कितने ही सामन्त जोधपुर के दरबार में रोजाना जाकर भाग लेते थे । इन सभी सामन्तों की सम्मतियाँ लेकर अखय चन्द राज्य का शासन करता था । अखय चन्द के कैद हो जाने पर ये सभी सामन्त भयभीत हो उठे ।

इन भयभीत सामन्तों के पास राजा मानसिंह ने दूत के द्वारा संदेश भेजा कि उनके विरुद्ध कोई कार्यवाही न की जायगी । अखय चन्द और उसके साथियों ने राज्य में जो अत्याचार किया था, उनको दण्ड देना आवश्यक था । मानसिंह का यह संदेश पाने के बाद भी उब सामन्तों को विश्वास न हुआ । उनको पहले ही इस बात का पता चल गया था कि मानसिंह ने हम सब लोगों का सर्वनाश करने के लिए षड़यंत्र का एक जाल फैला दिया है । उनको यह भी मालूम हो चुका था कि राजा मानसिह ने पोकरण के सामन्त सालिम सिंह के वंश को मिटा देने के लिए निश्चित इरादा कर लिया है ।

मानसिंह के सन्देश का सामन्तों ने विश्वास नहीं किया, इसके कुछ और भी कारण थे । ओनाड सिंह मानसिंह का एक मित्र था । उसके एक निजी अनुचर को मानसिंह ने स्वयं आशा देकर कुछ दूसरे आदमियों के साथ राज-दरबार में बुलाया था । परन्तु वह नहीं गया और उसके अविश्वास ने ही उसके प्राणों की रक्षा की ।

नीमाज का सामन्त सुरतान सिंह अपनी सेना के साथ जोधपुर की राजधानी में रहा करता था । मानसिंह की भयानक विपदाओं में सुरतान सिंह ने बड़ी सहायता की थी । लेकिन मानसिंह ने उसके उन सभी उपकारों को भुला दिया और अपनी आठ हजार वैतनिक सेना को तोपों और गोलंदाओं के साथ लेकर सुरतान सिंह पर आक्रमण किया । उस समय सुरतान सिंह के साथ केवल एक सौ अस्सी सैनिक थे । तोपों के द्वारा गोलों की वर्षा होने पर सुरतान सिंह ने अपने सैनिकों के साथ तलवार लेकर मानसिंह की सेना का सामना किया । उसने और उसके साथ के शूरवीर सैनिकों

ने मानसिंह के सैकड़ों आदमियों को काट-काट कर फेंक दिया और अन्त में उन सभी ने अपने प्राण दे दिये। सुरतान सिंह के कुछ इने गिने सैनिक बच गये और वे सुरतान सिंह के परिवार के लोगों को लेकर नीमाज की तरफ भाग गये।

सालिम सिंह की भी इसी प्रकार हत्या करने का इरादा मानसिंह ने किया था। परन्तु सुरतान सिंह पर अनायास आक्रमण करके वह कुछ ऐसा हताश हो गया कि जिससे वह सालिमसिंह पर आक्रमण न कर सका। सालिम सिंह किसी प्रकार जोधपुर से निकल कर मारवाड़ चला गया। इसके बाद फतह राज को बुला कर मानसिंह ने राज्य का दीवान बना दिया। फतहराज स्वर्गीय इन्दराज का भाई था और वह राजा मानसिंह का प्रिय हो रहा था।

राजा मानसिंह ने अखय चन्द और उसके सहायक लोगों से जो एक बहुत सम्पत्ति वसूल की थी, उसने वैतनिक सेना का बकाया वेतन अदा किया। अखय चन्द के मारे जाने से साथ-साथ राज्य के दूसरे सामन्त बहुत भयभीत हो उठे थे। उस समय उन लोगों ने निश्चित रूप क संगठन करके राजा मानसिंह पर आक्रमण किया होता, लेकिन मारवाड़ में अफवाह जोरों के साथ फैल चुकी थी कि राजा मानसिंह ने राज्य में शांति कायम करने के लिए ईस्ट इण्डिया कम्पनी से अँग-रेजी सेना की सहायता माँगी है और वह सेना किसी भी समय जोधपुर में आकर मानसिंह के आदेश का पालन कर सकती है। केवल इस भय से राज्य के असंन्तुष्ट सामन्तों ने मानसिंह के विरुद्ध कुछ करने का साहस नहीं किया।

नीमाज के सामन्त सुरतान सिंह के राजधानी में मारे जाने पर नीमाज के कुछ सैनिक सुर-तान सिंह के परिवार को लेकर नीमाज चले गये थे। उस परिवार में सुरतान सिंह का एक छोटा सा बालक था। उसको खतम करने के लिए मानसिंह ने अपनी एक सेना नीमाज पर आक्रमण करने के लिए भेजी।

उस सेना का सामना करने के लिए नीमाज के समस्त निवासी तैयार हो गये। उस दशा में राजा मानसिंह के हस्ताक्षरों का एक पत्र सुरतान सिंह के बालक के नाम दिया गया। उस पत्र में लिखा था कि सुरतान सिंह के अपराध को क्षमा करके नीमाज का राज्य तुमको दे दिया जायगा। उसे लेने के लिए राज दरबार में तुम्हारा आना आवश्यक है।

सुरतान के पुत्र ने मानसिंह के .इस पत्र का विश्वास नहीं किया। उस समय जो सेना जोधपुर से नीलाज पर आक्रमण करने के लि आयी थी, उसके सेनापित ने सुरतान सिंह के लड़के को विश्वास दिलाया और कहा : "राजा मानसिंह के पत्र की सच्चाई का उत्तरदायी मैं हूँ। मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि राजा मानसिंह ने इस पत्र में जो लिखा है, उसका पालन मैं करूँगा।"

सुरतान सिंह के लड़के ने उस सेनापति की बात का विश्वाश कर लिया और अपने दुर्ग से निकल कर मानसिंह के शिविर में उसके पहुँचते ही पत्र के विरुद्ध उसके साथ कार्यवाही की गयी। एक राज पुरुष ने अपने साथ का आज्ञा-पत्र देकर उस लड़के से कहा : "महाराज ने आपको को कैद करके राज दरबार में लाने का आदेश दिया है।"

यह राजपुरुष उस सेना का सेनापति था, जो नीमाज पर आक्रमण करने के लिए गयी थी और मानसिंह के पत्र पर विश्वास दिला कर जिसने नीमाज के राजकुमार उस बालक को आत्म-समर्पण करने के लिए तैयार किया था। उस सेनापति ने राजा के आदेश को पढ़ कर सुनाया और कहा : "मुझे राजा के इस आदेश पर आश्चर्य हो रहा है। इसके पहले नीमाज में बालक राजकुमार को बुलाने के लिए जो पत्र दिया गया था, वह कुछ और था और यह कुछ और है। यह बालक मेरे विश्वास दिलाने पर यहाँ आया है। इसलिए मैं इसके साथ विश्वासघात न करूँगा।"

यह कह कर वह सेनापति अपने साथ उस बालक को लेकर अर्बली पहाड़ पर चला गया और उसने उसे ऐसे स्थान पर पहुँचा दिया, जहाँ से वह बालक सुरक्षित मारवाड़ चला गया।

राजा मानसिंह ने राज्य के सामन्तों को शक्तिहीन बनाने के लिए जो कुछ किया और जिस प्रकार के उपायों का आश्रय लिया, उसका वर्णन ऊपर किया जा चुका है। निरंकुश सामन्तों ने मानसिंह के इन कार्यों और व्यवहारों को समझते और जानते हुए भी विरोध करने का साहस न किया। उनको मालूम था कि ईस्ट इण्डिया कम्पनी की अंगरेजी सेना किसी भी समय राज्य में आकर हम लोगों का विध्वंस और विनाश कर सकती है।

मारवाड़ के सामन्त मानसिंह के अत्याचारों से कुछ महीनों में इतने भयभीत हो उठे कि वे मारवाड़ छोड़कर अन्यत्र भाग जाने का इरादा करने लगे। उनके सामने इस समय अपनी रक्षा के लिए कोई उपाय न था। इसलिए विवश होकर उन लोगों ने मारवाड़ राज्य छोड़ दिया और उसके पड़ोसी राज्यों में अपने परिवारों को लेकर वे चले गये।

राजा मानसिंह ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी के साथ सम्बन्ध जोड़कर सभी प्रकार का लाभ उठाया। उसने विरोधी सामन्तों को राज्य से निकाल देने में सफलता पायी। उसने राज्य की भयानक अराजकता में शांति कायम करने के लिए वह कार्य किया, जो उसके पूर्ववर्ती राजाओं में किसी के द्वारा न हो सकता था।

मारवाड़ के सामन्त अपने राज्य को छोड़कर कोटा, मेवाड़, बीकानेर और जयपुर में जाकर रहने लगे। राजा मानसिंह ने सामन्त ओनाड सिंह के साथ भी अपनी सहानुभूति और उदारता का प्रदर्शन न किया, जिसकी अनेक सहायतायें मानसिंह को मिली थीं। उसने उन सभी उपकारों को भुला दिया, जिनके द्वारा भयानक विपदाओं के समय उसके प्राणों की रक्षा हुई थी। ओनाड सिंह ने मानसिंह की भीषण आर्थिक कठिनाइयों में अपनी स्त्री के आभूषणों को बेच कर सहायता की थी और उसने उस सहायता के समय अपनी स्त्री की नाक की नथ भी बेच डाली थी, जिसका उतारना राजस्थान के राजपूतों में अपशकुन माना जाता था। जिस समय पाली में मानसिंह पर शत्रुओं ने एक साथ भयानक आक्रमण किया था और मानसिंह बिना घोड़े के पैदल था, उस समय ओनाड सिंह ने बड़े साहस के साथ अपने घोड़े पर मानसिंह को बिठा कर और वहाँ से भगाकर उसके प्राणों की रक्षा की थी। जिस समय मारवाड़ के सामन्तों ने मानसिंह का पक्ष छोड़कर धौंकल सिंह के पक्ष का साथ दिया था और जयपुर की सेना के साथ अनेक सेनाओं ने मानसिंह पर आक्रमण किया था, उस समय राज्य के केवल चार सामन्तों ने मानसिंह का साथ दिया था और उन चार सामन्तों में ओनाड सिंह प्रमुख था। जिस समय जयपुर का राजा जगतसिंह जोधपुर और मारवाड़ के नगरों को लूटकर अपनी सेना के साथ जयपुर जा रहा था, उस समय इन्हीं चार सामन्तों ने आक्रमण करके मारवाड़ की उस लूटी हुई सम्पत्ति को जयपुर की सेना से छीन लिया था। छत्रसिंह की मृत्यु हो जाने पर जिन सामन्तों ने मानसिंह को फिर से राज सिंहासन पर लाने के लिए चेष्टा की थी, उनमें ओनाड सिंह प्रधान था। इस प्रकार ओनाड सिंह के न जाने कितने उपकारों का भार मानसिंह के सिर पर था, परन्तु उसने सब को एक साथ भुला दिया।

मारवाड़ के जो सामन्त राज्य छोड़कर चले गये थे, उन्होंने जब कोई दूसरा रास्ता न देखा तो सन् १८२१ ईसवी में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के पास एक प्रार्थना-पत्र भेजा और उसमें उन्होंने अपने और राजा मानसिंह के बीच मध्यस्थ बन कर निर्णय करने का प्रस्ताव किया। इस प्रार्थना-पत्र को भेजने के बाद एक वर्ष बीत गया। परन्तु कम्पनी की तरफ़ से न तो उसका कोई

उत्तर दिया गया और न कोई कार्य किया गया। इस दशा में उन सामन्तों ने अपनी परिस्थितियाँ मेरे सामने रखीं। उसके बाद मैंने उनको कम्पनी की तरफ़ से संतोषजनक मध्यस्थता स्वीकार करने के लिए जवाब दिलवाया। उसमें यह भी लिखा गया कि यदि समय पर कम्पनी ऐसा न करे तो आप लोग अपने अधिकारों का निर्णय कर सकते हैं।

सन् १८२३ ईसवी तक मारवाड़ की राजनैतिक परिस्थिति इसी प्रकार चलती रही। इन दिनों में राजा मानसिंह ने बुद्धिमानी से काम लेकर राज्य में शांति कायम करने का प्रयत्न किया होता तो मारवाड़ से सामन्तों के बाहर जाने की नौबत न आती और राज्य में जो अराजकता पैदा हो गयी थी, वह बिल्कुल दूर हो जाती। लेकिन राजा मानसिंह ने बुद्धिमानी से काम नहीं लिया।

मारवाड़ राज्य के शासन की आलोचना करते हुए इस बात को स्वीकार करना पड़ता है कि इस राज्य के राठौरों और सामन्तों ने आवश्यकता पड़ने पर अपने जीवन के जो बलिदान किये थे और राज्य के गौरव की रक्षा की थी, वह सर्वथा प्रशंसनीय है। यदि राजस्थान के राजपूतों में आपसी फूट न होती और उसके कारण उन्होंने एक, दूसरे को मिटाने की कोशिश न की होती तो जिन बाहरी जातियों ने उनके राज्य में आकर भयानक अत्याचार किये और लूट कर उन राज्यों का विध्वंस और विनाश किया, उनकी नौबत न आती।

राजस्थान के राज्यों के पतन के दिनों में राजपूतों ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी का आश्रय लिया और कम्पनी ने राजपूतों को संगठित होकर अत्याचारियों का सामना करने के लिए तैयार किया, उस समय बाहरी जातियों के अत्याचार और आक्रमण एक साथ ख़त्म हो गये। क्या हम पूछ सकते हैं कि आज आक्रमण और अत्याचार करने वाले गज़नी, गिलजई, लोदी, पठान, तैमूर और मराठा कहाँ हैं? राजपूतों के आपसी विद्रोह के कारण इन बाहरी जातियों को आक्रमण और अत्याचार करने का अवसर मिला था। इन जातियों ने संगठित होकर राजपूतों पर इसलिए आक्रमण किये थे कि ये लोग आपस में लड़कर न केवल निर्बल हो गये थे, बल्कि आपसी द्वेष के कारण वे स्वयं एक दूसरे को मिटाने में लगे थे। पतन की इस अन्तिम अवस्था में राजपूतों ने अँगरेज़ों के साथ मित्रता की और अँगरेज़ों ने सहायता कर के उनको जिन्दगी के सही रास्ते पर ले जाने की चेष्टा की। इसका परिणाम यह हुआ कि राजपूतों को लूट कर और उनका संहार करके जो जातियाँ राजस्थान को नष्ट करने में लगी हुई थीं, उनके साहस छूट गये।

राजपूतों के साथ कम्पनी की जो संधि हुई है, उसमें पूर्ण रूप से न्याय से काम लिया गया है और राजपूतों के अधिकारों की रक्षा की गयी है। अँगरेज़ कम्पनी ने दलित और पीड़ित राजपूतों की राजनैतिक अवस्था को बदलने के लिए पूरे तौर पर कोशिश की है और कम्पनी का भीतरी अभिप्राय यह है कि जो राजपूत इस प्रकार निर्बल बना दिये गये हैं, वे फिर से शक्तिशाली हो सकें, उनकी इसी शक्ति पर उनके राज्यों में शांति कायम होने की सम्भावना हो सकती है।

मारवाड़ की वर्तमान राजनीतिक दुरवस्था में ईदर राज्य के स्वर्गीय राजा जोधा के एक वंशधर को वहाँ के सिंहासन पर बिठा देना हमको बहुत आवश्यक मालूम होता है। इस समय बड़ी बुद्धिमानी और दूरदर्शिता से काम लेने की आवश्यकता है। राज्य के सामन्तों ने राज्य छोड़ दिया है। उनके प्रति वर्तमान अवहेलना अच्छा परिणाम नहीं पैदा कर सकती। सामन्तों ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी को अपने मामलों में मध्यस्थ बनाने की प्रार्थना की है। हमारी समझ में मानसिंह और सामन्तों का मामला सुलझ जाना आवश्यक है। यदि ऐसा न किया गया तो भविष्य भयानक हो सकता है।

हमने मारवाड़ की वर्तमान परिस्थितियों को सभी प्रकार समझने की चेष्टा की है। अँगरेजों के हृदयों में राजपूतों के प्रति सहानुभूति है। किसी भी दशा में मारवाड़ की परिस्थितियाँ बदलनी चाहिए और राजपूतों को एक होकर उत्थान के मार्ग में आगे बढ़ना चाहिए।

जोधपुर के राज सिंहासन पर यदि ईदर का राजकुमार बिठाया जा सके तो बिना किसी सन्देह के वर्तमान संघर्षों का अंत हो जायगा। अगर सभी राठौर मिलकर और एक स्थान पर बैठ कर इस प्रश्न का निर्णय करें तो निश्चित रूप से ईदर के राजकुमार को सिंहासन पर बिठाने के पक्ष में राठौरों का बहुमत रहेगा। अगर ऐसा किया जा सके तो मारवाड़ राज्य का भविष्य उज्वल बन सकता है। इस राज्य में शांति क़ायम हो सकती है और ईस्ट इण्डिया कम्पनी को इस राज्य के सम्बन्ध में जो चिन्ता हो रही है, वह मिट सकती है।

छियालीसवाँ परिच्छेद

जोधपुर का परिचय–मारवाड़ के निवासी और उनकी जन-संख्या–राज्य के प्रसिद्ध नगर–सैनिक अवस्था–मारवाड़ राज्य की विशेषतायें–राज्य में आय के साधन–शिल्प कला और व्यवसाय–राज्य के व्यवसायी जैन धर्मावलम्बी–पुत्रों के अधिकार–राज्य के व्यावसायिक नगर–मारवाड़ में अपराध और न्याय–अपराधों की वृद्धि का कारण–पंचायतों के द्वारा न्याय का कार्य–राज्य की आय–किसानों की पैदावार और राज्य की मालगुजारी–विभिन्न प्रकार के कर–राठौरों की सैनिक शक्ति–राज्य का नैतिक पतन–मारवाड़-राज्य के सामन्त–अफीम का व्यवसाय।

मारवाड़ की राजधानी जोधपुर पश्चिम में गिरप और पूर्व की ओर अर्बली पहाड़ के शिखर पर श्यामगढ़ के बीच में है। इस राज्य की लम्बाई पश्चिम से पूर्व तक अँगरेजी के दो सौ सत्तर मील है। सिरोही की सीमा से मारवाड़ की उत्तरी सीमा तक इस राज्य के जितने भी नगर हैं, वे सभी बड़े हैं। जिसकी लम्बाई दो सौ बीस मील है। डीडवाना और जालौर के उत्तर पूर्व से साँचोर की सीमा के दक्षिण पश्चिम कोने तक साढ़े तीन सौ मील की लम्बाई है।

लूनी नदी ने मारवाड़ के नगरों की अवस्थाओं में परिवर्तन कर दिया है। यह लूनी नदी मारवाड़ की पूर्वी सीमा के पुष्कर से निकल कर, पश्चिम की ओर प्रवाहित होती है और उसके द्वारा राज्य के दो भाग हो जाते हैं। एक भाग उपजाऊ और दूसरा भाग अनुपजाऊ हो जाता है। इसी नदी के कारण दक्षिणी किनारे से अर्बली पर्वत के ऊपर तक के सभी ग्राम और नगर सम्पत्ति-शाली बन गये हैं। बीडवाना, नागौर, मेरता, जोधपुर, पाली, सोजत, गोडवाड, सिवाना, जालौर, भीनमाल और साँचोर नगरों में अधिकाँश उपजाऊ हैं। उनमें रहने वालों की संख्या अधिक है और इन नगरों के निवासी एक वर्ग मील में अस्सी मनुष्यों की संख्या में रहा करते हैं। मारवाड़ की जन संख्या का अनुमान बीस लाख है।

मारवाड़ में जाट लोगों की संख्या प्रत्येक आठ में पाँच है, राजपूतों की दो हे। शेष लोगों में ब्राह्मण, व्यवसायी और दूसरे लोग हैं। इस हिसाब से मारवाड़ में राजपूतों की संख्या पाँच लाख

है और उनमें पचास हजार सैनिक राजपूत हैं। यहाँ की छत्तीस जातियों के राजपूतों में राठौरों ने अधिक सम्मान प्राप्त किया है। यद्यपि अफ़ीम का सेवन करने के कारण इन राजपूतों ने अपने गौरव को बहुत कुछ नष्ट कर दिया है। फिर भी मुग़लों के शासन काल में राठौरों को अधिक सम्मान मिला था।

मारवाड़ के राठोरों में स्वाभिमान था और उसी के कारण आक्रमणकारियों ने उन पर अधिक अत्याचार किये थे। औरंगजेब स्वयं इन स्वाभिमानी राजपूतों से अधिक ईर्षा करता था। राजा मानसिंह के समय राठौरों की शक्तियों का अधिक विनाश हुआ। उस समय उनकी संख्या भी बहुत कम हो गयी थी। लगातार आक्रमणों और अत्याचारों में पड़े रहने के कारण राठौरों के नैतिक जीवन को बहुत अधिक आघात पहुँचा। इसके पहले इस वंश के राठौर अपने ऊँचे चरित्र के लिए बहुत प्रसिद्ध थे। इन राजपूतों में संगठन की शक्ति थी और आवश्यकता पड़ने पर जातीय गौरव के लिए वे हँस-हँसकर बलिदान होते थे। परन्तु विनाश और विध्वंश के दिनों में उनकी ये शक्तियाँ क्षीण पड़ गयी थीं और इसीलिए मारवाड़ राज्य में शासन और राज्य की रक्षा के लिए वैतनिक सेना रखनी पड़ी थी। इस देश में राठौर राजपूत अधिक साहसी और शूरवीर माने जाते थे।

मारवाड़ राज्य के कई नगरों में घोड़ों का मेला लगता था। बालोतरा और पुष्कर के मेले में कच्छ, काठियावाड़, मुलतान और अन्य दूरवर्ती स्थानों से उत्तम श्रेणी के घोड़े बिकने के लिए आते थे। मारवाड़ की पश्चिमी सीमा के लूनी नदी के किनारे बसने वाले ग्रामों और नगरों में बहुत अच्छे घोड़े पाये जाते थे। उनमें राडधडा के घोड़े सर्वश्रेष्ठ माने जाते थे। परन्तु पिछले बीस वर्षों से इस राज्य की राजनीतिक परिस्थितियाँ बहुत बदल गयी है। अन्य व्यवसायों के साथ-साथ, घोड़ों का व्यवसाय भी बहुत निर्बल पड़ गया है। इसलिए घोड़ों की संख्या अब बहुत कम हो गयी है। सिंध नदी के पश्चिमी भाग से जो अच्छे घोड़े पहले आते थे, उन में अब बहुत कमी हो गयी है। लूटमार के दिनों में सैनिकों को घोड़ों की अधिक आवश्यकता रहती थी। इसलिए वे अधिक संख्या में बिकने के लिए बाहर से आते थे और वे खरीदे जाते थे। इन दिनों में मारवाड़ की राजनीतिक परिस्थितियाँ बिल्कुल बदल गयी हैं। वहाँ पर अब कोई बाहरी आक्रमण नहीं करता। लूटमार भी बिल्कुल बन्द हो गयी है। इसलिए घोड़ों की आवश्यकतायें भी पहले की सी नहीं रह गयीं।

आक्रमणकारियों के भयानक अत्याचारों के समय जो राठौर सेना युद्ध करती थी, उसमें चार हजार राठौर सैनिक सवार होते थे। सैनिक सवारों की संख्या चम्पावत वंश के राजपूतों में अधिक थी। परन्तु मारवाड़ की दुरवस्था के दिनों में उनकी संख्या अधिक नहीं पायी गयी। उन दिनों में राठौरों के मुकाबिले में चम्पावत राजपूतों ने अपनी राजभक्ति का अधिक परिचय नहीं नहीं दिया। राठौर सेना के प्रत्येक सैनिक को जो भूमि वेतन के स्थान पर दी जाती थी, उसकी आमदनी पाँच सौ रुपये वार्षिक की होती थी।

मिट्टी—मारवाड़ में जहाँ खेती होती है, वहाँ की मिट्टी चार तरह की पायी जाती है। बैकलू, चिकनी, पीली और सफेद। बैकलू मिट्टी राज्य के अधिकांश भागों में पायी जाती है। इस मिट्टी में रेती का भाग अधिक रहता है। इसमें केवल बाजरा, मूँग, मटर, तिल और ज्वार आदि अनाजों की पैदावार होती है। खरबूजा भी पैदा है। चिकनी मिट्टी का रंग काला होता है। यह मिट्टी डीडवाना, मेरता, पाली और गोडवाड में पायी जाती है। इस मिट्टी में गेहूँ और इस श्रेणी के दूसरे अनाज पैदा होते हैं। पीली मिट्टी का रंग हल्दी की तरह है। इसमें बालू

मिली हुई है। यह मिट्ठी बनसर, जोधपुर, जालौर, बालोतरा और कुछ अन्य स्थानों में पायी जाती है। इस मिट्टी में जौ, कोकना, गेहूं, तम्बाकू, प्याज और कई प्रकार के शाक पैदा होते हैं। सफेद रंग की मिट्टी में खेती नहीं होती। अधिक वर्षा के बाद कुछ थोड़ी पैदावार हो जाती है। लेकिन उसी दशा में, जब वर्षा बहुत अधिक होती है। बाजरा भी बहुत कम होता है।

लूनी नदी के दक्षिणी किनारे पाली, सोजात और गोडवाड आदि स्थानों की मिट्टी नदियों के प्रवाह के द्वारा पहाड़ के ऊपर से बहकर आती है। यह मिट्टी अधिक उपजाऊ होती है। उस मिट्टी में बाजरा के सिवा, सभी प्रकार के अनाज अधिक पैदा होते हैं। नागौर और मेरता में कुओं के जल से खेती होती है और उसमें अच्छी श्रेणी के अनाज पैदा होते है। पश्चिमी भाग में ग्रामों और नगरों की संख्या पाँच सौ दस है। जालौर, साँचोर और भीनमाल के विशाल नगरों की विस्तृत भूमि का अधिकारी राजा होता है। वहाँ की मिट्टी उपज के लिये सबसे अच्छी समझी जाती है। यहाँ की मिट्टी नदियों के द्वारा पहाड़ों से बहकर आयी है और इसीलिए वह अधिक उपजाऊ हो गयी है। वहाँ की भूमि में बहुत अच्छी पैदावार हुआ करती थी। लेकिन राजा मानसिंह के शासनकाल में वह उपज घटकर एक तिहाई भी न रह गयी थी। इस भूमि के नगर और ग्राम अधिक उपजाऊ होने के कारण अधिक सम्पन्न रहते थे। इसीलिए आक्रमणकारियों की लूट इन स्थानों पर अधिक हुआ करती थी। अच्छी मिट्टी होने के कारण इन नगरों की भूमि सब से अधिक उपजाऊ थी और वहाँ पर गेहूँ, जौ, धान, ज्वार, मूंग और तिल अधिक पैदा होता था। रेतीली भूमि में केवल बाजरा, मूंग और तिल की पैदावार होती है।

इस राज्य में अनाजों की पैदावार इतनी अधिक होती थी कि जिससे कभी दुर्भिक्ष का भय न रहता था और अनाज के अभाव में वह राज्य के एक स्थान से दूसरे स्थान में आसानी से पहुँचाया जाता था। नागौर राज्य मे पाँच सौ छै नगर और ग्राम हैं। उनका अधिकारी मारवाड़ का राजकुमार होता है। यह राज्य अनेक प्रकार की सुविधाओं के लिए श्रेष्ठ माना जाता था। खेती के लिए वहाँ पर कुँओं की संख्या बहुत अधिक थी और वहाँ के कृषक अपनी खेती में कुओं के द्वारा अधिक लाभ उठाते थे।

मारवाड़ की खाने—इस राज्य में अनाजों की पैदावार की अपेक्षा खनिज पदार्थों की पैदावार अधिक होती थी और ये पदार्थ भारत के प्रत्येक भाग में इस राज्य से पहुँचते थे। पचभद्रा, डीडवाना और साँभर से पैदा होने वाला नमक इस राज्य की आमदनी का सदा विशेष साधन रहा था। यह नमक इस राज्य में तैयार होकर देश के समस्त बाजारों में पहुँचता है।

मारवाड़ के पूर्व में मकरा नामक एक स्थान है। वहाँ पर संगमरमर की खान थी और उस खान से निकले हुए पत्थरों के द्वारा इस देश की सभी प्रसिद्ध इमारतें किसी समय में बनी थीं। मुगलों के शासनकाल में इस खान के कीमती पत्थर राज महलों में लगाये गये थे। दिल्ली और आगरा के सभी प्रसिद्ध मकानों, राजाप्रसादों, शिवालयों, मसजिदों और दूसरी इमारतों में यहाँ के संगमरमर को लगाकर उनकी ख्याति की वृद्धि की गयी है।

मारवाड़ के राज्य में खनिज पदार्थों के द्वारा होने वाली आमदनी राज्य की प्रधान आमदनी थी। जोधपुर और नागौर के पास श्वेत पत्थर की खानें थीं। सोजत में टीन और शीशा की खान थी। पाली में फिटकरी, भीनमाल और गुजरात के करीब की खानों में लोहे की खानें थीं। इन खानों से जो पदार्थ पैदा होते थे, उनसे किसी समय मारवाड़ राज्य को धन की अपरिमित आमदनी होती थी।

शिल्पकला—यह राज्य शिल्प में कभी श्रेष्ठ नहीं रहा। यहाँ पर सूत के मोटे कपड़े और

कम्बल तैयार किये जाते थे, जो इसी देश में खप जाते थे। बन्दूक, तलवार और युद्ध के दूसरे अस्त्र-शस्त्र जोधपुर की राजधानी में और पाली में बनते थे। पाली के बने हुए लोहे के संदूक बहुत प्रसिद्ध माने जाते थे। लोहे की कढ़ाइयाँ और कढ़ाह यहाँ पर बहुत मजबूत और टिकाऊ बनते थे।

व्यवसाय के सब से प्रसिद्ध स्थान—राजपूत राज्यों में सर्वत्र व्यावसायिक स्थान पाये जाते थे। मेवाड़ में भीलवाड़ा, बीकानेर में चुरू और जयपुर मालपुर में वाणिज्य के लिए बहुत प्रसिद्ध माना जाता था। ठीक इसी प्रकार मारवाड़ में पाली नगर बहुत प्रसिद्ध व्यावसायिक स्थान था और राजस्थान में सब से अधिक प्रसिद्ध माना जाता था। उन दिनों में भारतीय व्यवसायी नब्बे प्रतिशत से भी अधिक जैन धर्मावलम्बी थे। खेतरी नामक नगर के व्यवसायी हजारों की संख्या में व्यवसाय के लिए इस देश के दूसरे प्रान्तों में जाते थे। ओसिया नामक स्थान में जो व्यवसायी रहते थे, वे ओसवाल के नाम से प्रसिद्ध थे। उनकी सख्या लगभग एक लाख के थी। वे सभी राजपूत वंशों में उत्पन्न हुए थे और व्यवसाय करने के कारण वे वैश्यों में प्रसिद्ध हो गये।

जैनियों की प्रथा के अनुसार पिता की सम्पत्ति सभी लड़कों में बराबर-बराबर बाँटी जाती है। लेकिन मध्य एशिया में जिट जाति और केल्टर के जूट लोगों में सबसे छोटे लड़के को दूना हिस्सा दिया जाता है। यदि पिता के जीवन काल में सम्पत्ति का बेटों में बँटवारा होता है तो लड़कों के साथ पिता को मिला कर सब के भाग बराबर-बराबर कर लिए जाते हैं और एक-एक भाग उनमें से सब कोई ले लेता है। पिता के मर जाने पर उसका भाग सबसे छोटे लड़के को मिलता है। अपनी सम्पत्ति का बटवारा करके पिता प्रायः अपने छोटे पुत्र के साथ में रहा करता है। संसार में व्यवसाय करने वाली जातियों की एक बहुत बड़ी संख्या है और वे विभिन्न जातियों के नाम से विख्यात हैं। एक जैन पुरोहित ने व्यावसायिक जातियों की तालिका तैयार करने की चेष्टा की थी, यद्यपि उसका वह कार्य पूरा न हो सका। अपनी उस तालिका में जैन पुरोहित ने व्यवसाय करने वाली अठारह सौ जातियों का नाम और परिचय दिया था। इसके बाद डेढ़ सौ व्यावसायिक जातियों के नाम उसको अपने एक जैन मित्र से—जो किसी दूर देश में रहता था—और मिले। इसलिए जो तालिका तैयार करने की उसने कोशिश की थी, उसे उसने अधूरा ही छोड़ दिया।

राजस्थान का ही नहीं, पाली भारतवर्ष का सब से बड़ा व्यावसायिक नगर उन दिनों में था। वहाँ पर देश के विभिन्न प्रान्तों के अतिरिक्त काश्मीर और चीन की बनी हुई बहुत-सी चीजें बिकने के लिए पाली में आती थी और उसके बदले में वहाँ के लोग इस देश की बहुत-सी चीजें ले जाते थे, जो योरप, अफ्रीका, फारस और दूसरे देशों की बाजारों में जाकर बिका करती थीं। कच्छ और गुजरात से हाथी दाँत, तावा, खजूर, गोंद, सुहागा, नारियल, रेशमी और बनात के कपड़े, पशमीना के वस्त्र, चंदन की लकड़ी, कपूर, रंग विभिन्न प्रकार की औषधियाँ, काफी, मसाले, गन्धक आदि बहुत-सी चीजें छकड़ों में भरकर पाली आती थीं और उन सबके बदले में यहाँ से छींट के वस्त्र, सूखे फल, जीरा, मुलतानी हींग, चीनी, सोडा, अफीम, प्रसिद्ध तैयार किये हुए वस्त्र, लवण, शालें, रंगीन कम्बल और विभिन्न प्रकार के वस्त्रों के साथ-साथ और भी बहुत-सी चीजें वहाँ भेजी जाती थीं।

सुईबाह, साँचौर, भीनमाल और जालौर होकर छकड़ों में भरा हुआ माल पाली आता था। यहाँ पर दूर-दूर के व्यवसायी एकत्रित होते थे। पाली की वह अवस्था अब नहीं रह गयी। उसका व्यावसायिक गौरव बहुत समय पहले से निर्बल पड़ रहा था। लेकिन बीस वर्ष पहले वहाँ

का बढ़ा हुआ व्यवसाय एक साथ खत्म हो गया था। इसका कारण उन दिनों में लगातार होने वाली लूट मार थी।

मारवाड़ के मेले—इस राज्य में वर्ष में दो मेले हुआ करते थे। एक तो मूडवा नामक स्थान में और दूसरा बालोतरा में। मूँडवा के मेले में हाथी, घोड़े और कई दूसरे पशुओं का व्यवसाय होता था। इस मेले में भारत के अन्यान्य नगरों से बिकने के लिए बने हुए पदार्थ आते थे और इस मेला माघ महीने के पहले दिन से आरम्भ होता था। और छै सप्ताह तक बराबर चलता था। उन दिनों में वहाँ बहुत बड़ी भीड़ होती थी। बालोतरा के मेले में भी घोड़ों, हाथियों और दूसरे पशुओं का क्रय-विक्रय होता था। लेकिन उनकी अपेक्षा दूसरी चीजों के व्यवसाय यहाँ पर मेले के दिनों में अधिक होते थे। देश के लगभग सभी नगरों के लोग यहाँ के मेले को देखने के लिए आते थे।

मारवाड़ के पतन के साथ-साथ इन मेलों का भी पतन हो गया। विदेशी आक्रमण और अत्याचार राज्य में जितने ही बढ़ते गये, व्यावसायिक नगरों का उतना ही पतन होता गया। मूँडवा और बालोतरा के प्रसिद्ध मेलों की भी यही अवस्था हुई।

मारवाड में अपराध और न्याय—इस राज्य में राजनीतिक पतन के साथ-साथ अपराधों के प्रति न्याय का कार्य बहुत शिथिल पड़ गया था। राजद्रोह अथवा राजनैतिक अपराध को तो अप-राध समझा जाता था और अपराधी को प्राण दण्ड दिया जाता था। परन्तु दूसरे अपराधों के प्रति दण्ड देने की व्यवस्था बहुत निर्बल पड़ गयी थी। यदि कोई मनुष्य किसी मनुष्य को मार डालता तो उसे साधारण दण्ड दिया जाता था। उसे कुछ दिनों के लिए करागार में रखा जाता था अथवा आर्थिक दण्ड देकर उसको छोड दिया जाता था। कभी-कभी इस प्रकार के अपराधी को राज्य से निकल जाने का आदेश होता था।

चोरी और इस प्रकार के अपराधों को साधारण दृष्टि से देखा जाता था। उसको कुछ आर्थिक दण्ड देकर अथवा कारागार में कुछ दिनों तक रख कर उसे छोड़ दिया जाता था। इस प्रकार के जिस अपराधी को कारागार में रखते थे, उसके भोजन और वस्त्रों का खर्च चोर की सम्पत्ति से वसूल किया जाता था। यदि उससे यह खर्च वसूल न हो सकता था तो उसको अधिक दिनों का दण्ड मिलता था। इन दिनों में राज्य की आर्थिक अवस्था बहुत खराब हो गयी थी, इसी लिए अपराधियों को प्राय: आर्थिक दण्ड अधिक दिया जाता था।

राजा विजय सिंह की मृत्यु के बाद राज्य में न्याय का कार्य इतना शिथिल पड़ गया था, जो बिलकुल नहीं के बराबर था। हालत यह हो गयी थी कि लोगों के घरों की अवस्था अधिक शोचनीय थी और कारागार में बिना किसी चिंता के अपराधियों को पेट भर भोजन मिलता था। अपराधों के बढ़ जाने का एक यह भी कारण था। राज्य की यह अवस्था इतनी अधिक शिथिल पड़ गयी थी कि अपराध को अपराध नहीं समझा जाता था। जो अपराधी कारागार भेज दिये जाते थे, उनको सुवधायें देने के लिए राज्य के व्यावसायिक लोग चंदा करते थे और दान के द्वारा एक-त्रित रुपये से करागार में अपराधियों को सुविधायें पहुँचाई जाती थीं। इसका कारण राज्य में और विशेष कर राज्य के व्यावसायिक समाज में जैन धर्म का प्रचार था। कारागर के अपराधियों के खाने-पीने के खर्च में राज्य की तरफ से रुपये व्यय नहीं किये जाते थे, धनिक व्यावसायी दान देकर जो सम्पत्ति इकट्ठा करते थे, उसी से अपराधियों के खाने-पीने और वस्त्रों की व्यवस्था होती थी। कभी-कभी यह भी होता था कि राज्य के खजाने से इसके लिए जो रुपये आते थे, वे कारगार के अध्यक्ष के व्यक्तिगत अधिकार में चले जाते थे और कारागार की व्यवस्था दान की सम्पत्ति के द्वारा होती थी वर्ष के अनेक अवसरों पर समय से पूर्ण अपराधियों को छोड़ दिया जाता था। सूर्यग्रहण,

चन्द्र ग्रहण, राजपुत्र का जन्म, राजा का अभिषेक इत्यादि अनेक अवसर वर्ष में आया करते थे, जिनमें अपराधियों को कारागार से छोड़ दिया जाता था।

दीवानी के सभी मामलों का निर्णय पञ्चायत के द्वारा होता था। पञ्चायत के निर्णय से संतुष्ट न होने पर राजा से प्रार्थना करने का अधिकार था। इसके लिए प्रार्थी को नियम के अनुसार निश्चित रुपये राजा के यहाँ जमा करने पड़ते थे। इस प्रकार की प्रार्थना, प्रार्थी के ग्राम का पटेल राजा के सामने उपस्थित करने का अधिकारी था। पटेल का अर्थ है राज्य की भूमि का अधिकारी छोटा अथवा बड़ा, जिसे शासन की पुरानी प्रणाली में सामन्त कहा जाता था और उस नाम को उसके बाद पटेल अथवा जमीदार कह कर सम्बोधन किया जाने लगा। उस प्रार्थना की स्वीकृति राजा के द्वारा होने पर वादी और प्रतिवादी दोनों पक्षों को उन ग्रामों का नाम देकर निर्णय करना पड़ता था कि वे कहाँ—किस ग्राम में अपना फिर से निर्णय कराना चाहते हैं।

जब दोनों पक्षों के द्वारा किसी एक ग्राम का निश्चय हो जाता था, तो उस ग्राम के भूमि के अधिकारी को राजा की तरफ से सूचना दी जाती थी और वह अपने ग्राम के विचारालय में बैठकर उस मामले का फिर से निर्णय करता था। उस ग्राम का निर्णायक दोनों पक्ष के साक्षियों से शपथ लेकर साक्षी लेता था। इतिहासकार हेरोडॉटस ने लिखा है कि मुकदमों का निर्णय करने के लिए इसी प्रकार की शपथ लेने की प्रथा सीथियन लोगों में बहुत प्राचीन काल से चली आ रही थी।

साक्षी लोग 'गद्दी का आन' की शपथ लेते थे। राजा के नाम की शपथ लेने का अधिकार केवल राजपूतों को था। अन्य जातियों के साक्षी अपने-अपने धर्म के नाम पर शपथ लेकर साक्षी देते थे। दोनों पक्षों की पूरी बातों को सुन कर निर्णायक अपना निर्णय देता था और लिखे हुए निर्णय पर वह अपनी मुहर लगा देता था। उस निर्णय के विरुद्ध किसी पक्ष को कुछ कहने का अधिकार न होता था।

मारवाड़ में राज्य की आमदनी दो तरीकों से होती थीं। एक तो कर से और दूसरी माल-गुजारी से। इन में चार साधन प्रधान थे :

१—खालसा अर्थात् राजा के अधिकार की भूमि का कर।

२—नाम के द्वारा होने वाली आमदनी।

३—व्यावसायिक चीजों पर लिया जाने वाला कर।

४—राज्य के अन्यान्य कर, जो हासिल के नाम से वसूल किये जाते थे।

पचास वर्ष पहले राजा विजय सिंह के शासनकाल में मारवाड़ के राज्य की सब मिलाकर सोलह लाख रुपये की आमदनी होती थी और इस आमदनी का लगभग आधा भाग नमक के द्वारा आता था। लेकिन उसके बाद राज्य की यह आमदनी लगातार घटती गयी और इन दिनों में वह दस लाख रुपये से अधिक नहीं है।

सामन्तों के अधिकारों में जो जागीरें हैं, उनकी आमदनी का अनुमान राज्य की आमदनी को मिलाकर पचास लाख रुपये हैं। परन्तु इन दिनों में इसकी आधी आमदनी के वसूल होने पर भी विश्वास करना कठिन मालूम होता है।

सामन्तों के अधिकार में जो सेनायें हैं, उनमें पैदल सेनाओं के अतिरिक्त अश्वारोही सैनिकों की संख्या पाँच हजार है। सामन्तों को वार्षिक आमदनी के एक हजार रुपये पर एक अश्वारोही और दो पैदल सैनिक रखने का अधिकार है। इसका अर्थ यह है कि यदि किसी सामन्त की वार्षिक

आय दस हजार रुपये है तो वह दस अश्वारोही और बीस पैदल सैनिक रख सकता है। आवश्यकता के समय अपनी सेना को लेकर सामन्त को राजा की आज्ञा का पालन करना पड़ता है।

राजा की सम्पूर्ण आय, जो राज्य के खजाने में रखी जाती है, उसका अनुमान दस लाख रुपये है। राज-दरबार के कर्मचारियों को जो भूमि दी जाती है, उसकी मालगुजारी इसमें शामिल नहीं है।

जो मालगुजारी अथवा आमदनी प्रजा से वसूल की जाती है, वह कई तरह की है। अनाज पर जो कर वसूल होता है और जिसकी प्रथा बहुत प्राचीन काल से इस देश में चली आ रही है, उसको बटाई अथवा विभाग-कर कहा जाता है। कृषक जितना अनाज पैदा करता है, उसका आधा भाग वह राजा को दे देता है और आधे भाग का वह स्वयं मालिक होता है।

भारतवर्ष की यह प्रथा पुरानी है। लेकिन उसके प्राचीन नियमों में अब अन्तर पड़ गया है। पहले कृषक की पैदावार का एक चौथाई अथवा छठा भाग राजा लेता था। बाकी सब अनाज का अधिकारी कृषक होता था। परंतु अब राजा का अधिकार बढ़ गया है और वह अब कृषक की पैदावार का आधा भाग ले लेता है।

किसानों की भूमि की पैदावार की निगरानी राज्य के कर्मचारियों के द्वारा होती थी और उन कर्मचारियों का वेतन किसानों से वसूल किया जाता था। इसके लिए प्रत्येक कृषक को दस मन अनाज पर दो रुपये देने पड़ते थे। इस प्रकार कृषकों से वसूल करके जो रुपये एकत्रित होते थे, उनसे निगरानी करने वाले कर्मचारियों और कृषकों से राजा के हिस्से का अनाज वसूल करने वालों का वेतन चुकाया जाता था। इसके बाद जो रुपये बचते थे, वे ग्राम के पटेल अर्थात् राज्य की तरफ से भूमि के अधिकारी के हिस्से में चले जाते थे, उसमें पटवारी का भी भाग रहता था।

राजा के घोड़ों और गायों आदि पशुओं के लिए प्रत्येक कृषक से एक-एक गाड़ी भूसा और ज्वार लिया जाता था। परन्तु अब उसके बदले में प्रत्येक कृषक से एक-एक रुपया लिया जाता है। दुर्भिक्ष पड़ने के वर्ष में इस रुपये के स्थान पर करबी ली जाती है। पटवारी और पटेल को कृषकों और राजा—दोनों के हिस्सों से अनाज दिये जाने का नियम था। इसके लिए अस्सी भागों में एक भाग पटवारी और पटेल का हो जाता था। इस प्रकार के बहुत-से नियम जो प्राचीन काल से अब तक इस देश में चले आ रहे थे, उनमें कुछ तो ज्यों के त्यों और कुछ परिवर्तन के साथ आज भी राजस्थान में चलते हैं और वही मारवाड़ में भी लागू हैं।

अंगकर—मारवाड़ में जितने कर प्रचलित हैं, उनमें एक अंगकर भी है। इसका अर्थ यह है कि राज्य के निवासियों की संख्या पर एक रुपया प्रत्येक प्राणी के हिसाब से जो कर लिया जाता है, वह अंगकर कहलाता है।

घासमारी कर—यह कर राज्य के पशुओं के ऊपर लगाया जाता है। इस कर को घासमारी कर कहते हैं। प्रत्येक बकरी और भेंस पर एक आना, प्रत्येक भैंसा पर आठ आने और प्रत्येक ऊँट पर तीन रुपये के हिसाब से कर वसूल किया जाता है।

किवाड़ी कर—इस कर को द्वार कर भी कहा जा सकता है। लेकिन यह कर किवाड़ी कर के नाम से प्रसिद्ध हुआ। राजा विजय सिंह ने इस कर को प्रचलित किया था। उसके शासन के अंतिम दिनों में सभी सामन्त विद्रोही हो गये थे और वे पाली में एकत्रित होकर राजा को सिंहासन से उतारने के लिए तैयारी कर रहे थे। विजय सिंह ने वहाँ पहुँच कर उनको अपने अनुकूल बनाने की चेष्टा की थी। परन्तु कोई परिणाम न निकला। भीमसिंह ने सिंहासन पर बैठकर विजय

सिंह के आने का रास्ता बंद कर दिया था। उस समय विजय सिंह के सामने भयानक कठिनाई पैदा हो गयी थी।

उस समय विजय सिंह ने एक सेना का संगठन किया और उसके खर्च के लिए उसने प्रत्येक घर से तीन रुपये वसूल किये। राजा विजय सिंह ने अपनी विपद के समय यह कर वसूल किया था। परन्तु वह स्थायी रूप से प्रचलित हो गया। कुछ समय के बाद जब राज्य में राजा मानसिंह के विरुद्ध विद्रोह पैदा हुआ और पठानों ने राजा की भूमि पर अधिकार कर लिया तो उस समय मानसिंह ने तीन रुपये के स्थान पर दस रुपये वसूल किये। इस कर के वसूल करने का तरीका यह रखा गया कि प्रत्येक नगर और ग्राम के घरों की गणना करके एक सूची तैयार की गयी और उस सूची में प्रत्येक घर की आर्थिक अवस्था का विवरण दिया गया। उस आर्थिक अवस्था के अनुसार कम और अधिक प्रत्येक घर से कर वसूल किया गया। गरीब घर से दो रुपये और सम्पन्न घर से बीस रुपये वसूल किये गये।

वाणिज्य कर—मारवाड़ में वाणिज्य पर जो कर वसूल किया जाता था, उसकी सूची नीचे दी जाती है। यह कर व्यवसाय की अवस्था के अनुसार घटता-बढ़ता रहता था। आक्रमणकारियों की लूट, उनके अत्याचार अथवा दुर्भिक्ष के समय यह कर कम कर दिया जाता था। यहाँ पर नीचे जो सूची दी जाती है, वह प्राचीन ग्रंथों के आधार पर तैयार की गयी है। राज्य के उत्थान के दिनों में जो वाणिज्य कर वसूल होता था, वह इस प्रकार है :

जोधपुर	...	...	७६००० रुपये
नागौर	...	...	७५००० ,,
डीडवाना	...	...	१०००० ,,
परवतसर	...	...	४४०-० ,,
मेरता	...	...	११००० ,,
कोलिया	...	...	५००० ,,
जालौर	...	...	२५००० ,,
पाली	..	...	७५००० ,,
जैसोल और बालोतरा का मेला		...	४१००० ,,
भीनमाल	...	...	२१००० ,,
साँचोर	...	...	६००० ,,
फलोदी	...	...	४१००० ,,
		कुल	४३०००० रुपये

इस कर को वसूल करने के लिए राज्य की तरफ से जो अधिकारी रखे जाते थे, उनको ढाणी कहा जाता था। एकत्रित कर पर प्रतिशत के हिसाब से ढाणी लोगों को मासिक वेतन के रूप में मिलता था। यह कर अनाजों पर भी लिया जाता था। राज्य में जो चीजें बाहर से आती थीं, उन पर भी कर लगता था। जो अनाज राज्य से बाहर जाता था, उससे भी कर वसूल किया जाता था।

वाणिज्य कर और भूमि की मालगुजारी पहले की अपेक्षा इधर बहुत दिनों से कम होती हुई चली आ रही है। नमक के द्वारा होने वाली आमदनी भी पहले से बहुत घट गयी है। राज्य के अच्छे दिनों में नमक के द्वारा मारवाड़ में जो आमदनी होती थी और जो राज्य के पुराने लेखों के आधार पर तैयार की गयी है, वह इस प्रकार है :

पञ्चभद्रा	...	...	२००००० रुपये
फलोदी	...	...	१००००० ”
डीडवाना	...	...	११५००० ”
साँभर	...	...	२००००० ”
नांवा	...	...	१००००० ”
		कुल	७१५००० रुपये

इस विभाग के कार्य में कितने ही हजार श्रमजीवी मनुष्य और बैल काम करते हैं। वे श्रमजीवी बनजारा नाम की जाति के होते हैं। जो नमक तैयार होता है, उसको ले जाने के लिए बहुत बड़ी संख्या में बैलों की जरूरत होती है। इसलिए जो बैल नमक ले जाने का कार्य करते है, उनकी संख्या लाखों में पहुँच जाती है। सिंधु नदी के तटवर्ती ग्रामों और नगरों से लेकर गंगा जी के समीपवर्ती स्थानों तक इस देश में सर्वत्र यह नमक जाता है। यह नमक साँभर नमक के नाम से विख्यात है। यों तो जितने नमक हैं, उनमें थोड़ी-बहुत सभी में विभिन्नता रहती है। परन्तु पञ्च-भद्रा का नमक सब से श्रेष्ठ माना जाता है।

मारवाड़ के पुराने लेखों को देखने से मालूम होता है कि मालगुजारी के द्वारा राज्य में प्राय: तीस लाख रुपये की आमदनी होती थी। जिसका ब्योरा उन पुराने लेखों में इस प्रकार पाया जाता है :

१—खालसा अर्थात् राजा के अधिकृत १४८४ ग्रामों और नगरों की आमदनी	...	...	१५००००० रुपये
२—वाणिज्य कर	...	...	४३०००० ”
३—नमक की आय	...	...	७१५००० ”
४—हासिल अर्थात् विभिन्न कर		...	३००००० ”
		योग	२९४५००० रुपये
सामन्तों और मंत्रियों की आय		...	५०००००० ”
		कुल योग	७९४५००० रुपये

ऊपर राज्य की आमदनी का जो उल्लेख किया गया है, उससे प्रकट होता है कि प्राचीन काल में मारवाड़ के राजा की अपनी और सामन्तों की आय मिला कर लगभग अस्सी लाख रुपये होती थी। इस आय का आधा भाग भी अब वसूल नहीं होता। मारवाड़ के प्राचीन मंत्रियों के वंशों में बहुत सम्पत्ति पायी जाती थी और उनके वंशज आज भी सम्पत्तिशाली माने जाते हैं।

अपनी सम्पत्ति को बहुत छिपा कर रखने की आदत इस देश के निवासियों की बहुत पुरानी है। बड़ी-से-बड़ी सम्पत्ति को छिपाकर रखने का सबसे पहला दुष्परिणाम यह होता है कि उसका कोई उपयोग नहीं हो पाता, जिससे वह सम्पत्ति जितनी होती है, उतनी ही रह जाती है। न तो उसमें कोई वृद्धि हो पाती है और न उसके द्वारा व्यक्तिगत अथवा देश का कोई अच्छा कार्य हो पाता है। नागौर के महलों को गिरवाने के समय राजा विजय सिंह को जमीन में गड़ी हुई बहुत बड़ी सम्पत्ति मिली थी।

मारवाड़ राज्य के सम्बन्ध में बहुत सी बातों का वर्णन किया जा चुका है। अब इस बात का उल्लेख करना बाकी है कि राठौर राजपूतों में युद्ध करने की शक्ति किस प्रकार थी। राज्य की आमदनी के घटने-बढ़ने के साथ-साथ उनकी सेना में समय-समय पर कमती और बढ़ती होती रही है। विद्रोही सामन्तों को दमन करने के लिए मारवाड़ के राजा को वैतनिक सेना के रखने की आवश्यकता पड़ी थी। उस सेना में जो सैनिक थे, उनमें रुहेले और अफगानी अधिक थे। वे सभी बन्दूकधारी थे। उनके साथ में तोपें भी थीं। वे लोग युद्ध करने में बड़े शूरवीर थे।

कुछ दिनों के बाद मारवाड़ की वैतनिक सेना और राज्य की राठौर सेना में संघर्ष पैदा हो गया था। राजा मानसिंह के शासनकाल में वैतनिक सेना के अन्तर्गत साढ़े तीन हजार पैदल और पन्द्रह सौ अश्वारोही सैनिक थे। उस सेना में पच्चीस तोपें थीं। पानीपत का रहने वाला हिन्दाल खाँ उस सेना का सेनापति था। वह विजय सिंह के समय से मारवाड़ से सम्बन्ध रखने लगा था। मारवाड़ के राज दरबार में उसने बड़ा सम्मान पाया था। राजा के साथ उसकी मैत्री का सम्बन्ध था। राजा मानसिंह काका कहकर उसको सम्बोधन करता था।

इस वैतनिक सेना के अतिरिक्त मारवाड़ में योद्धाओं का एक दूसरा दल भी था। उसका नाम था विष्णु स्वामी दल। कायमदास उस दल का सेनापति था। उस दल में सात सौ पैदल थे, तीन सौ अश्वारोही सैनिक थे और बहुत-से उसके सैनिक धनुर्धारी थे। ये धनुर्धारी धनुष बाण लेकर शत्रुओं के साथ युद्ध करते थे।

योरप में बारूद का आविष्कार होने के अर्ध शताब्दी पूर्व भारतवर्ष के लोग धनुष-बाण के द्वारा युद्ध करने में बहुत होशियार और शूरवीर होते थे। इस वैतनिक सेना के पहले राज्य में केवल राठौरों की सेना थी और वे राठौर युद्ध करने में बड़े बहादुर समझे जाते थे। परंतु राजा मानसिंह के साथ राज्य के सामन्तों का जब विद्रोह पैदा हुआ था, उस समय मानसिंह को सामन्तों की सेनाओं का विश्वास न रह गया था। उस दशा में राजा मानसिंह ने अपनी रक्षा के लिए वैतनिक सेना की नियुक्ति की थी। इस वैतनिक सेना के द्वारा मानसिंह राज्य के सामन्तों को दमन करना चाहता था। इन दिनों में राज्य का नैतिक जीवन बहुत क्षीण हो गया था। लोग अपने कर्त्तव्यों का ज्ञान भूल गये थे और कर्त्तव्य के अभाव में मारवाड़ के राठौर सभी प्रकार अपना विनाश स्वयं कर रहे थे। उस विद्रोह के दिनों में यह वैतनिक सेना राज्य में रखी गयी थी। उस समय के बाद राज्य का नैतिक बल भयानक रूप से नष्ट हुआ था। यह दशा लगातार बढ़ी।

उन दिनों में मेवाड़ के प्रधान सामन्तों की संख्या सोलह थी, जयपुर के सामन्तों की संख्या बारह थी। मारवाड़ में प्रथम श्रेणी के सामन्त आठ थे। उनके अतिरिक्त दूसरी श्रेणी के सामन्तों की संख्या सोलह थी। इस राज्य के सामन्तों की सूची उनके पूरे विवरण के साथ नीचे दी जाती है:

प्रथम श्रेणी के सामन्त

नाम	वंश	स्थान	आमदनी	विवरण
१—केशरीसिंह	चम्पावत	अहोवा	१०००००	मारवाड़ का प्रधान मन्त्री।
२—बख्तावरसिंह	कम्पावत	आमोप	५००००	
३—सालिमसिंह	चम्पावत	पोकरण	१०००००	अधिक शक्तिशाली
४—सुरतानसिंह	ऊदावत	नीमाज	५००००	
५— ...	मेरतिया	रियाँ	२५०००	अधिक साहसी और वीर
६—अजितसिंह	मेरतिया	घांड़ेराम	५००००	पहले यह मेवाड़ का सामन्त था।
७— ...	करमसोत	खीमसर	६००००	इसका स्थान पहले एक बड़ा नगर था।
८— ...	भाटी	खेजड़ला	२५०००	यह दूसरे राज्य का निवासी था।

द्वितीय श्रेणी के सामन्त

नाम	वंश	स्थान	आमदनी	विवरण
१—शिवनाथसिंह	ऊदावत	कुचामन	५००००	शक्तिशाली सामन्त
२—सुरतानसिंह	जोधा	खारीकादेत्र	२५०००	
३—पृथ्वीसिंह	ऊदावत	चन्दावल	२५०००	
४—तेजसिंह	”	खादा	२५०००	
५—ओनादसिंह	भाटी	आहोर	११०००	राज्य से निर्वासित
६—जीतसिंह	कुम्पावत	बगड़ी	४००००	
७—पदमसिंह	”	गजसिंहपुरा	२५०००	
८— ...	मेरतिया	मोटरो	४००००	
९—कर्णसिंह	ऊदावत	मारोत	१५०००	
१०—जलिमसिंह	चम्पावत	”	१५०००	
११—सवाईसिंह	जोधा	चापुर	१५०००	
१२— ...	...	बड़सू	२००००	
१३—शिवदानसिंह	चम्पावत	कावटा (बड़ा)	४००००	
१४—जालिमसिंह	”	हरसोलाव	१००००	
१५—साँवलसिंह	”	दीगोद	१००००	
१६—हुकुमसिंह	”	कावटा (छोटा)	११०००	

मारवाड़ के इन सब सामन्तों को उनकी शक्ति और योग्यता के अनुसार छोटी और बड़ी जागीरें मिली हुई हैं, उनके अधिकारी बन कर ये लोग रहते हैं और आवश्यकता पड़ने पर राजा की आज्ञा का पालन करते हैं। इनके सिवा बाढमेर, कोटडा, कोटडा, जसोल, फलसूंद, बड़गाँव, बाँकडा, कालिन्दरी और बरूंदा के जागीरदार भी हैं। यदि राजा आवश्यकता के समय उन लोगों से माँग करे तो वे भी उसकी आज्ञाओं का पालन कर सकते है। इन जागीरदारों के नाम ऊपर के जागीरदारों अथवा सामन्तों की सूची में शामिल नहीं किये गये।

राज्य के जिन सामन्तों के नाम और परिचय ऊपर लिखे गये है, उनके अधिकार की भूमि अथवा जागीर पूर्ण रूप से सही नहीं हो सकती। इसका कारण यह है कि ऊपर दी गयी सूची राज्य के बहुत पुराने लेखों से तैयार की गयी है। ये लेख जिन दिनों में लिखे गये थे, उनमें और वर्तमान दिनों में बहुत अन्तर पड़ गया है। बाहरी आक्रमणों, अत्याचारों और आपसी फूट के कारण राज्य की सभी परिस्थितियाँ बहुत निर्बल पड़ गयी है। यह निर्बलता प्राचीन काल के बाद लगातार बढ़ी है। इसीलिए इस बढ़ती हुई निर्बलता में सामन्तों की परिस्थितियों का बदल जाना कुछ भी अस्वाभाविक नहीं है। इसलिए राज्य के अधिकारी बहुत दिनों से सामन्तों के सम्बन्ध में एक नयी तालिका तैयार करने की आवश्यकता को अनुभव कर रहे थे। जागीरदारी प्रथा के अनुसार, राज्य में जो विधान प्राचीन काल से चला आ रहा था, उसमें अनेक प्रकार के परिवर्तन हो गये हैं।

अफीम का व्यवसाय

इस ग्रंथ में राजपूतों के अफीम सेवन करने का उल्लेख अनेक स्थलो पर किया गया है। इससे यह जाहिर है कि राजपूत लोग और विशेष कर राजा और नरेश अफीम का सेवन किया करते थे। यह अफीम खाने-पीने के अन्यान्य पदार्थों की भाँति उनके लिए आवश्यक हो गयी थी, जिसके द्वारा उनकी शारीरिक और नैतिक शक्ति को भयानक आघात पहुँचा था। अफीम का सेवन और व्यवसाय राजपूतों के साथ-साथ अन्य लोगों मे किस प्रकार बढ़ा था, उसके ऐतिहासिक तथ्य यहाँ पर देने को हम चेष्टा करेंगे।

राजस्थान के सभी राज्यो मे प्राचीन काल से अफीम के सेवन की आदतें चली आ रही थीं। इन आदतों के कारण उन राज्यों में अफीम की खपत बढ़ने लगी और उसने धीरे-धीरे एक विस्तृत व्यवसाय का रूप धारण किया। यह खपत जितनी ही बढ़ती गयी, उसके व्यवसाय में उतनी ही उन्नति होती गयी और व्यवसाय में जितनी ही वृद्धि हुई, राज्यों में उसके सेवन का उतना ही विस्तार होता गया, जिससे वहाँ के स्वास्थ्य को बहुत क्षति पहुँची।

गवर्नर जनरल के एजेण्ट लेफ्टिनेण्ट कर्नल ई० आर० सी० ब्रांडफोर्ड सी० एस० आई० ने राजस्थान मे जाकर वहाँ के शासन के सम्बन्ध में जो विस्तृत वर्णन अँगरेज गवर्नमेण्ट के पास भेजा था। उसमें उसने लिखा था :

राजस्थान के बड़े-बड़े व्यवसायी धन के प्रलोभन में अफीम के व्यवसाय को बढ़ाने में लगे हुए है। बड़े व्यवसायी अपने से छोटे व्यवसायियों को पहले से ही रुपये देते है और वे छोटे व्यवसायी महाजनों को रुपये देते हैं। महाजनों के द्वारा गावों के रहने वाले कृषकों को उन रुपयों से ऋण मिलता है। रुपये लेकर कृषक अफीम तैयार करते है और उसे महाजनों को दे देते है। ग्राम का महाजन उस अफीम को लेकर रुपया देने वाले व्यवसायियों के पास पहुँचा देता है और वे व्यवसायी उस अफीम को बड़े व्यवसायियों के पास पहुँचाने का काम करते हैं। उनके द्वारा अफीम की बिक्री

का कार्य राज्यों में सर्वत्र होता है । इस प्रकार अफीम के व्यवसाय में सभी राज्यों ने लगातर उन्नति की है ।

अफीम का व्यवसाय जितना बढ़ता गया , सर्वधारण में उसके सेवन का विस्तार उतना ही अधिक होता गया । इन दिनों में अफीम की बिक्री इन राज्यों में बहुत अधिक मात्रा में होती है । कृषक अफीम की खेती करते हैं और इस व्यवसाय में तरक्की करने के लिए कुएँ खुदवा कर कृषकों की खूब सहायता की गयी है । इस कार्य के लिए बड़े-बड़े व्यवसायियों ने बहुत अधिक रुपया बाँटा है ।

कुओं की संख्या काफी बढ़ जाने के कारण अफीम की खेती में बड़ी सहायता मिली है । इन राज्यों में अफीम की, जितनी विक्री बढ़ गयी है, उतनी ही पोस्त की डण्डी बिकती है । जिन खेतों में पहले दूसरे अनाजों के पैदा करने का कार्य होता था उन सब में पोस्त की डण्डी की खेती की जाती है ।

इस व्यवसाय के बढ़ जाने के कारण अफीम की कीमत लगातार घटी है और उसका परिणाम यह हुआ है कि गरीब से गरीब आदमी भी अब उसका सेवन करने लगे हैं । अच्छी अफीम रुपये के लोभ में चीन और दूसरे देशों को भेज दी जाती है । लेकिन साधारण दर्जे की अफीम यहीं पर रहकर देश में सर्वत्र उसकी बिक्री होती है । इसकी खेती में बट्टी नाम की जो अफीम तैयार होती है, वह बहुत साधारण श्रेणी की अफीम होती है और अच्छी अफीम के मुकाबिले में उसकी लगभग आधी कीमत होती है । सस्ती होने के कारण राजपूत और दूसरे लोग इसी अफीम का सेवन करते हैं । उत्तम श्रेणी की न होने के कारण इस सस्ती अफीम के सेवन से स्वास्थ्य को अधिक क्षति पहुँचती है । ×

———

× अफीम के व्यवसाय के सम्बन्ध में मूल लेखक कर्नल जेम्स टॉड ने अपने ग्रन्थ में कुछ नहीं लिखा । सिवा इसके कि अनेक स्थलों पर राजपूतों के अफीम के सेवन का उल्लेख किया हो और उसे बहुत हानिकारक समझा हो । अफीम का व्यवसाय और सेवन इन राज्यों में किस प्रकार बढ़ा है , उसको उपयोगी समझ कर यहाँ पर लिखा गया है ।—अनुवादक

बीकानेर का इतिहास

सैंतालीसवाँ परिच्छेद

बीकानेर राज्य और उसका प्रतिष्ठाता—बीका की प्रतिज्ञा-उसके आक्रमण—लगातार उसकी विजय—मरुभूमि के निवासी जाट—बीकानेर का विभाजन—बीका का रण-कौशल—जाटों का आत्म-समर्पण—बादशाह अकबर—अकबर का मारवाड़ पर आक्रमण—रायसिंह और बादशाह अकबर—अकबर के दरबार में राठौरों की मर्यादा—राजा सूरतसिंह के साथ सामन्तों का विद्रोह—सामन्तों का दमन—प्रजा का असन्तोष—भावलपुर से युद्ध।

राजस्थान के राज्यों में बीकानेर का स्थान दूसरी श्रेणी में है। यह राज्य मारवाड़ की एक शाखा है। इसके राजवंशी राठौर वंशज हैं। बीकानेर के जिस प्रथम राजा ने इस राज्य की प्रतिष्ठा की थी, उसके पूर्वज राठौर वंशी थे। राठौर राजा जोधा ने प्राचीन राजधानी मन्दोर को छोड़कर जोधपुर का निर्माण किया था, इसका वर्णन मारवाड़ के इतिहास में किया जा चुका है।

बीका राजा जोधा का दूसरा लड़का था। नवीन राजधानी जोधपुर का निर्माण हो जाने के बाद और मन्दोर से जोधा के जोधपुर में आजाने के पश्चात् बीका अपने चाचा काँधल के साथ मरुभूमि में अपने राज्य का विस्तार करने के लिए निकला। उसके साथ तीन सौ राठौरों की एक सेना थी। बीका के जोधपुर से निकलने के पहले उसके भाई बीदा ने मोहिलों पर आक्रमण किया। और उनके राज्य को जीत कर अपने राज्य में मिला लिया। मोहिल लोग बहुत प्राचीन काल से अपने राज्य में रहा करते थे। बीदा की इस सफलता से बीका को प्रोत्साहन मिला। इसलिए वहाँ के दूसरे राज्यों को परास्त करके राठौरों का राज्य बढ़ाने के लिए वह जोधपुर से रवाना हुआ।

जोधपुर से रवाना होने के समय बीकाने स्वाभिमान के साथ यह प्रतिज्ञा की थी कि मरुभूमि के जिन राज्यों पर मैं आक्रमण करूँगा, उनको या तो मैं परास्त करूँगा, अथवा वहीं पर मारा जाऊँगा। उसकी यह प्रतिज्ञा वहाँ के किसी भी दूसरे राज्य के सम्बन्ध में हुई थी। फिर चाहे वह राज्य मित्रता रखता हो अथवा शत्रुता। इस प्रकार के आक्रमण करके दूसरे राज्यों को परास्त करना और उनको अपने राज्य में मिला देना राजपूत लोग अपना धर्म समझते थे।

जोधपुर से रवाना होकर बीका ने जाङ्गल नामक स्थान पर साङ्खला नाम की एक पुरानी जाति पर आक्रमण किया। उस युद्ध में राठौरों की विजय हुई। उसमें सफलता प्राप्त करने के बाद पूंगल राज्य के भाटी लोगों के साथ बीका का परिचय हुआ। पूंगल का राजा बीका के पराक्रम को देखकर बहुत प्रभावित हुआ और उसने बीका के साथ अपनी लड़की का विवाह कर दिया। पूंगल के राजा को बीका से भय उत्पन्न हुआ था। इसलिए अपनी लड़की का विवाह उसके साथ करके उसने अपने राज्य की रक्षा की।

बीका ने पूंगल के राजा के साथ सम्बन्ध जोड़कर कोड़मदेसर नाम के एक स्थान पर अपने रहने का निर्णय किया। उसने वहाँ पर एक दुर्ग बनवाया और वहाँ पर रह कर उसने समीप के राज्यों पर आक्रमण करना आरम्भ किया। जो राज्य पराजित हो जाते, उन पर वह अपना अधिकार कर लेता। उसके लगातार ऐसा करने से वहाँ के सभी राज्यों में उसका आतंक पैदा हो गया। वहाँ के छोटे-छोटे सभी राजा भयभीत हो उठे। ऐसे राज्यों को परास्त करके बीका ने अपने-आप को शक्तिशाली बना लिया।

अपने अधिकार की सेना को प्रबल बनाकर और अपने राज्य का विस्तार करके वह मरू-भूमि के जाटों के राज्यों की तरफ़ अग्रसर हुआ। जाट लोग बहुत प्राचीन काल से वहाँ पर रहते आ रहे थे। वर्तमान बीकानेर राज्य का अधिकाँश भाग पहले वहाँ के जाटों के अधिकार में था।

मरुभूमि में बहुत प्राचीन काल से जाट लोग निवासी थे और प्राचीन एशिया में जितनी भी जातियाँ रहती थीं, उनमें इनकी संख्या बहुत अधिक थी। वे लोग अत्यन्त साहसी और पराक्रमी थे। बीका के आक्रमण के दिनों में उनका राजा निर्बल पड़ गया था। ईसा की चौथी शताब्दी में पंजाब में जाटों का शक्तिशाली राज्य था। भारतवर्ष में आक्रमण के समय इन्हीं जाटों ने मुसलमानों का सामना किया था। सिंधु नदी को पार करके महमूद के आगे बढ़ने पर इन्हीं जाटों ने युद्ध करके अपने राज्य की रक्षा की थी और तैमूर के आक्रमण करने पर उसके साथ इन्हीं जाटों ने भयंकर संग्राम किया था। बादशाह बाबर ने लिखा है: "भारतवर्ष में आक्रमण करने के लिए जब मैं आया था, उस समय जाटों ने मेरे साथ युद्ध किया था। पंजाब में इस्लाम का आतंक फैलने पर जाटों ने गुरु नानक के धर्म को स्वीकार किया और वे अपना नाम जाट बदल कर सिक्ख हो गये थे।"

जाट जाति के लोग भारतवर्ष में आने के पहले एशिया के दूसरे भागों में रहते थे और जित अथवा जट जाति के नाम से प्रसिद्ध थे। अपने प्राचीन स्थानों को छोड़कर ये लोग भारतवर्ष की मरुभूमि में कब आये, इसका कोई ऐतिहासिक आधार हमारे पास नहीं है। लेकिन यह निश्चय है कि जिन दिनों में राठौरों ने मरुभूमि के जाटों पर आक्रमण किया था, उस समय इस जाति के सामाजिक आचार और व्यवहार सीथियन आचार-व्यवहार थे। इससे ज़ाहिर होता है कि भारतवर्ष में आने के पहले इस जाति के लोग सीथिया में रहते थे और इनकी जाति सीथियन जाति की कोई एक शाखा थी। उन दिनों में ये लोग खेती का काम करते थे। जाट जाति के लोग प्राचीनकाल में एक देवी की पूजा करते थे।

अपने प्राचीन स्थानों से भारतवर्ष में आ जाने के बाद इन जाटों पर मुस्लिम साधु शेख फ़रीद ने अपने धर्म का प्रभाव डाला। उस समय इनके प्राचीन धार्मिक विश्वासों में अन्तर पड़े। उनके बहुत से लोग इस्लाम की अनेक बातें मानने लगे। एक पुनिया जाट ने बातचीत के सिलसिले में मुझसे कहा था: "हम लोग पंजाब के बाहर के रहने वाले हैं।"

भारतवर्ष में तैमूर और बाबर के आक्रमण के दिनों में राठौरों ने जाटों को पराजित किया था। बीका से परास्त होने के पहले जाट लोग कई शताब्दियों से मरुभूमि में रहते थे। बीकानेर राज्य छै भागों में विभाजित है। वे छै विभाग इस प्रकार है:

१—पूनिया	२—गोदारा	३—सारन
४—असिघ	५—बेनीवाल	६—जोया

जाट जाति के लोग छै शाखाओं में विभाजित थे। उन्हीं के नामों से इन स्थानों के नाम प्रसिद्ध हुए थे। इन, छै विभागों के सिवा बीकानेर राज्य के तीन विभाग और हैं, जो बागौर, खारी पट्टा और मोहिल के नाम से प्रसिद्ध हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण बीकानेर राज्य के नौ भाग हैं। राठौरों ने राज्य के छै विभाग जाटों से छीने थे और तीन विभाग दूसरे राजपूतों से। प्रत्येक विभाग बीकानेर राज्य का एक जिला है। ये छै जिले जो जाटों से छीने गये थे, बीकानेर राज्य के बीच और उत्तरी भाग में हैं। शेष तीन जिले राज्य के दक्षिण और पश्चिम में हैं उस समय के छै विभाग अथवा जिले इस प्रकार हैं :

विभाग	ग्राम	परगने
१—पूनिया	३००	भादरां, अजितपुर, सीधमुख, राजगढ़, दारद, सांकू आदि।
२—बेनीवाल	१५०	भूरवरखा, सून्दरी, मनोहरपुर, कूई बाई आदि।
३—जोया	६००	जैतपुर, कंवानो, महाजन, पीपसर, उदयपुर आदि।
४—असिध	१५०	रावतसर, बिरामसर, दाबूसर, गुंडइली, कोजर, फुआग आदि।
५—सारन	३००	बूचावास, सोवाई, बादनू, सिरसिला आदि।
६—गोदारा	७००	पुन्दरासर, गोसेनसर (बड़ा), शेखसर, गडसीसर, गरीबदेसर, रंगीसर,
जोड़	२२००	कालू आदि।

शेष तीन विभाग अथवा जिले

७—भागौर—३००...	बीकानेर, नार, किला, राजासर, सतासर, चतरगढ़, रिनदसिर, बीतनख, भवानीपुर, जयमलसर इत्यादि।
८—मोहिल—१४०...	चौपुरा (मोहिलों की राजधानी), सावन्ता, हीरासर, गोपालपुर चारवास, बीदासर, लाडनू, मलसीसर, खरबूजारा, कोट आदि।
९—खारीपदा—३०...	
कुल जोड़ २६७०	

जोधपुर से चले जाने के बाद कुछ ही वर्षों में बीका को मरुभूमि में इतनी बड़ी सफलता मिली कि वह छब्बीस सौ सत्तर ग्रामों का राजा बन गया। उसका आतंक बढ़ जाने के कारण वहां के कितने ही राज्यों ने स्वयं आत्म-समर्पण कर दिया था। लेकिन मुश्किल से तीन शताब्दियां गुजरी होंगी कि बीकानेर राज्य के ग्रामों की संख्या बहुत कम हो गयी। वर्तमान बीकानेर के राजा सूरतसिंह के शासनकाल में वहां के ग्रामों की संख्या तेरह सौ से भी कम रह गयी है।

मरुभूमि में बीका के जाने और वहां पर अपने राज्य का विस्तार करने के पहले जो जाट और जोहिया लोग वहां रहते थे, वे पशुओं के पालन का व्यवसाय करते थे। वे गायों और भैंसों का घी तैयार कर के बेचते थे। भेड़ों के बालों के बेचने का व्यवसाय करते थे और अपनी इन चीजों के बदले में वे गेहूँ, चावल इत्यादि खाने की चीजें लिया करते थे।

यह पहले लिखा जा चुका है कि भारतवर्ष की मरुभूमि में रहने वाले जाटों की संख्या बहुत अधिक थी। वे साहसी, लड़ाकू शूरवीर भी थे। इस प्रकार उनके शक्तिशाली होने के बाद भी राठौरों के द्वारा आसानी से उनकी पराजय के कारण थे। समस्त जाट छै शाखाओं में विभाजित थे। इन वंशों के जाटों में आपसी फूट बहुत बढ़ गयी थी और वे स्वयं एक दूसरे के लिए घातक हो रहे थे। इन्हीं दिनों में बीका ने वहां के छोटे-छोटे कितने ही राज्यों को जीत कर अपना आतंक फैला दिया और उसके बाद वह जाट राज्यों की तरफ आगे बढ़ा। जाटों का प्रत्येक वंश अलग-

अलग शासन करता था उनमें आपसी फूट और द्वेष की जानकारी बीका को हो चुकी थी। इसलिए उसने उनकी फूट का सभी प्रकार लाभ उठाया।

जाटों पर सहज ही राठौरों की सफलता का एक और भी कारण था। बीका के भाई बीदा ने पहले ही मरुभूमि के मोहिलों पर आक्रमण करके उनको पराजित किया था। मोहिलों के साथ बहुत पहले से जाटों की शत्रुता चली आ रही थी। इन मोहिलों ने मरुभूमि में आक्रमण के दिनों में बीका का साथ दिया था। उन मोहिलों के द्वारा बीका को ऐसी बहुत-सी बातों की जानकारी हुई कि जिनका लाभ उठाकर बीका ने जाटों को परास्त किया और अधिकांश जाट वंशी राज्यों ने भयभीत होकर आत्म-समर्पण किया।

वहाँ के जाट राज्यों में जैसलमेर का एक राज्य भी था। वहाँ के भाटी लोग जाटों पर अनेक प्रकार के अत्याचार किया करते थे। मोहिलों और भाटी लोगों की शत्रुता के कारण भी विवश और भयभीत होकर जाटों ने बीका की अधीनता स्वीकार कर ली थी।

उन्हीं दिनो में गोदारा के जाटों ने भी अपने राज्य के सम्बन्ध में निर्णय किया था। उन लोगों ने एकत्रित होकर और निर्णय करके अपने दो प्रतिनिधियों को बीका के पास भेज कर आत्म-समर्पण करने के लिए निम्न लिखित शर्तें उपस्थित कीं:

१—जोहिया और दूसरे राज्यों के जाट लोग हमारे साथ शत्रुता रखते हैं, उनके अत्याचारों से बीका को हमारी रक्षा करनी होगी।

२—राठौरों को ऐसा प्रबंध करना होगा, जिससे हमारे शत्रु भाटी लोग कभी हम लोगों पर आक्रमण न कर सकें।

३—हम लोगों के व्यक्तिगत और सामाजिक स्वत्व सदा सुरक्षित रहेंगे। उनमें कभी किसी प्रकार का हस्तक्षेप न किया जाएगा।

गोदारा के जाटों की इस प्रार्थना को बीका ने स्वीकार कर लिया। उसके बाद वहाँ के जाटों ने आत्म-समर्पण किया और बीका को अपना राजा मान लिया। वहाँ के जाटों के सम्बन्ध में निर्णय हुआ कि गोदारा के प्रत्येक घरसे एक-एक रुपया कर के रूप में लिया जायेगा और वहाँ के प्रत्येक किसान से दो रुपये कर के लिए जायंगे। गोदारा के जाटों ने इन शर्तों को स्वीकार करके राठौरों की अधीनता मंजूर की।

गोदारा के जाटों को किसी भी अवस्था में बीका के सामने आत्म-समर्पण करना था। क्योंकि बिना किसी आक्रमण और युद्ध के वहाँ के जाटों ने आत्म-समर्पण करने के लिए आपस में निश्चय कर लिया था। उनकी इस निर्बलता का बीका सभी प्रकार लाभ उठा सकता था। लेकिन उसने ऐसा नहीं किया और उसने गोदारा के जाटों की माँग को सम्भाव पूर्वक स्वीकार किया। राठौरों के उत्तम चरित्र का यह एक सजीव प्रमाण है।

राजपूतों में इस प्रकार के चरित्र का कभी अभाव नहीं रहा। मेवाड़ के प्राचीन निवासी भीलों ने गहलोत वंश के प्रथम राजा के सामने आत्म-समर्पण किया और जिस प्रकार उन भीलों ने उस समय राजा को राज-तिलक करके अधीनता स्वीकार की थी; उदयपुर के राणा के वंश में आज तक उन बातों को महत्व दिया जाता है। अब तक अभिषेक के समय मेवाड़ में ओगना भीलों का प्रतिनिधि अपने हाथ के अंगूठे को काट कर उसके रक्त से राजा के मस्तक पर तिलक करता है और वह राजा को सिंहासन पर बिठाता है। उन्दरी नाम भीलों का प्रतिनिधि अपने पूर्वजों के समान

अभिषेक के समय चाँदी के एक पात्र में धान, दूर्वा और रुपये रखकर भेंट में देता है। जयपुरके प्राचीन निवासी मीना लोग भी राजा के अभिषेक के समय कुछ इसी प्रकार की प्रणाली का अब तक अनुकरण करते हैं।

बीका के द्वारा प्रार्थना स्वीकार करने पर गोदारा के जाटों ने आत्म-समर्पण किया था और अधीनता स्वीकार करके उनके प्रतिनिधि ने जिस प्रकार बीका के मस्तक पर राज-तिलक किया था, राजा के अभिषेक के समय आज तक गोदारा के जाटों के वंशज उसी प्रकार बीकानेर में राज-तिलक किया करते हैं और अभिषेक के समय सोने की पच्चीस मुद्रा भेट में देते हैं।

बीका में न केवल युद्ध करने की शक्ति थी, बल्कि उसमें नैतिक बल भी था। पराजित करके जिन जातियों को उसने अपने अधिकार में लिया था, उनके सम्मान का वह सदा ख्याल रखता था। इसके सम्बन्ध में उसके जीवन की एक छोटी-सी किन्तु अत्यन्त महत्वपूर्ण घटना का उल्लेख करना बहुत आवश्यक मालूम होता है। बीकानेर की राजधानी का निर्माण करने के लिये उसने जो स्थान पसन्द किया था, उसका अधिकारी एक जाट था। उस जाट से बीका ने उस स्थान की माँग की और कहा :—"राजधानी बनाने के लिये यदि आप यह स्थान हमें दे देंगे तो अपने और आपके नाम को जोड़कर मैं इस राज्य का नाम रखूंगा।" उस जाट ने हर्ष पूर्वक बीका की इस माँग को स्वीकार कर लिया। इसके बाद राजधानी का निर्माण हुआ और मरुभूमि में बीका ने जिस राज्य की प्रतिष्ठा की, उसका नाम बीकानेर रखा गया। उस जाट का नाम नेरा था। बीका ने उस जाट की उदारता को निरंतर कायम रखने के लिए अपने नाम के साथ उसके नाम को सम्मिलित करके बीकानेर नाम रखा।

कृतज्ञता मनुष्य के चरित्र का सबसे ऊंचा गुण है। किसी की सहायता और उदारता को भुला देना अथवा उसकी अवहेलना करना मनुष्य के जीवन का सब से बड़ा अपराध है। इस प्रकार का अपराधी अपने जीवन में कभी उन्नति नहीं करता। अन्याय गुणों के साथ-साथ बीका में कृतज्ञता का एक महान गुण भी था और अपने इन्हीं गुणों के कारण वह बीकानेर राज्य की प्रतिष्ठा कर सका।

दिवाली और होली के अवसर पर शेखासर और रूणियाँ के प्रधान बीकानेर के राजा को अब तक तिलक करने के लिए आते हैं। रूणियाँ का प्रधान चांदी के पात्र में चन्दन आदि से टीका करने की सामग्री तैयार करता है और शेखासर का प्रधान उस पात्र को अपने हाथ में लेकर राजा के मस्तक पर तिलक करता है। इसके बदले में उन प्रधानों को राजा की तरफ से सोने की मोहरें और रुपये भेंट में दिये जाते हैं।

जाटों के इन प्रधानों के द्वारा तिलक हो जाने के बाद राज्य के सामन्त लोग तिलक करते हैं। इस प्रकार की प्रथायें बीकानेर राज्य में अब तक मौजूद हैं और वे राजा के साथ प्रजा की राजभक्ति का प्रमाण देती हैं।

गोदारा के जाटों को अधिकार में ले लेने के बाद बीका ने जोहिया राज्य को जीतकर अधिकार में करने का इरादा किया। जोहिया के साथ जाटों की पुरानी शत्रुता थी। इसलिये बीका के इस प्रकार इरादा करने पर जोहिया के विरुद्ध युद्ध करने के लिये गोदारा के जाट तैयार हो गये। बीका राठौरों और जाटों की प्रबल सेना को लेकर रवाना हुआ और उसने जोहिया पर आक्रमण किया।

भारत की मरुभूमि के उत्तरी भाग में सतलज नदी तक जोहिया राज्य फैला हुआ था और उस राज्य में ग्यारह सौ नगर और ग्राम थे। यद्यपि उसके बाद उस राज्य के विस्तार में बहुत कमी हो गयी और तीन सौ वर्ष के पहले ही जोहिया का नाम भी लोप हो गया।

जोहिया का राज्य शेरसिंह मरुपाल नामक स्थान में रहा करता था। बीका के आक्रमण करने पर शेरसिंह ने बड़ी तेजी के साथ युद्ध की तैयारी की और अपनी सेना को लेकर उसने बीका का सामना किया। मरुभूमि के अनेक युद्धों में बीका ने सहज ही सफलता प्राप्त की थी, परन्तु जोहिया के युद्ध में शेरसिंह के साथ जो भयानक युद्ध हुआ, उसमें विजय प्राप्त करना बीका को बहुत कठिन दिखायी देने लगा। विजय प्राप्त करने में निराश होकर बीका ने षड़यंत्रों का आश्रय लिया और विश्वसघात के द्वारा शेरसिंह मारा गया। इसके बाद बीका ने मरूपाल पर अधिकार कर लिया। शेर सिंह के मारे जाने के बाद जोहिया के लोगो ने विवश होकर बीका की अधीनता स्वीकार कर ली।

जोहिया को जीत कर अपनी विजयी सेना के साथ बीका पश्चिम की तरफ रवाना हुआ। भाटी लोगों के राजा ने बहुत पहले जाटों के बागर नामक नगर को छीन कर अपने अधिकार में कर लिया था। इसलिए बीका ने सब से पहले जाटों के बागर नगर को अपने अधिकार में कर लिया और वहाँ पर अपनी राजधानी निर्माण करने का उसने इरादा किया। बागर नगर का अधिकारी एक जाट था, जिसका नाम नेरा था। इसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। बीका ने नेरा से बागर नगर माँगकर सम्वत् १५४५ ईसवी सन् १४८९ की १५ मई को राजधानी का निर्माण करके बीकानेर उसका नाम रखा।

बीका अपने चाचा कांधल के साथ मन्दोर से रवाना हुआ था। मरुभूमि में तीस वर्ष तक रहकर और वहां के राज्यों को अपने अधिकार में करके उसने बीकानेर राज्य की प्रतिष्ठा की। इसके बाद कांधल ने बीका को बीकानेर में छोड़ कर उत्तर की तरफ रवाना हुआ। उसके साथ राठौरों की एक सेना थी। उस तरफ जाकर कांधल ने सिवाग, बेनीवाल और सारण नमक जाटों के वंशों को पराजित करके अपनी शक्तियाँ मजबूत बना लीं। कांधल के वंशज अब तक बीकानेर के उत्तरी भाग में पाये जाते हैं और वे अब काँधलोत राठौरों के नाम से विख्यात हैं।

कांधल ने जिन तीन राज्यों को जीत कर अपना अधिकार कर लिया था, वे बहुत दिनों तक बीकानेर राज्य में शामिल रहे। परन्तु उसके बाद काँधल के वंशज कांधलोत राठौरों ने बीकानेर के राजा को अपना राजा नहीं माना और न बीकानेर की अधीनता स्वीकार की। उनका कहना था कि काँधल ने इन राज्यों को जीतकर उन पर अधिकार किया था और हम कांधल के वंशज हैं। हमारे पूर्वज कांधल की सहायता से बीकानेर-राज्य की प्रतिष्ठा हुई थी। इस दशा में बीका के वंशजों को, जो आज बीकानेर के सिंहासन पर हैं, हमको अधीनता में लाने का क्या अधिकार है।

बीकानेर-राज्य की स्थापना करने के बाद सम्वत् १५५१ सन् १४९५ में बीका को मृत्यु हो गयी। उसने पूंगल के भाटी राजा की लड़की के साथ विवाह किया था। उससे लूनकरन और गडसी नाम के दो लड़के उत्पन्न हुये। बड़ा भाई होने कारण लूनकरन पिता के सिंहासन पर बैठा। गडसी ने गडसीसर और अडसीसर नाम के दो नगर बसाये। उसके वंशधर गडसियोत बीका के नाम से आज तक प्रसिद्ध हैं और वे लोग गडसीसर अथवा गरीबदेसर नामक स्थान में रहते हैं।

इन दोनों नगरों के अधिकार में चौबीस चौबीस ग्राम हैं। लूनकरन ने सिंहासन पर बैठने के बाद बीकानेर के पश्चिम तरफ भाटियों के राज्यों पर आक्रमण किया और उनको जीतकर अपने अधिकार में कर लिया।

लूनकरन की इस सफलता के बाद उसके चार पुत्रों में से बड़े पुत्र ने महाजन नाम के राज्य के एक सौ चवालीस ग्रामों को अधिकार में लेकर स्वतन्त्र जीवन बिताने की अभिलाषा जाहिर की। उसके पिता लूनकरन ने इस बात को स्वीकार कर लिया। बड़े पुत्र ने उन एक सौ चालीस ग्रामों के सिंहासन का अधिकार अपने छोटे भाई जेतसी को दे दिया।

सम्वत् १५६६ में लूनकरन की मृत्यु हो गयी। उसके बाद उसका बड़ा लड़का जेतसी उसके सिंहासन पर बैठा। जेतसी के दो भाइयों ने दो स्वतंत्र राज्यों को जीतकर उन पर अधिकार कर लिया। जेतसी के तीन लड़के पैदा हुए—पहला कल्याणमल, दूसरा शिवजी और तीसरा अश्वपाल। जेतसी ने नारनोत के राजा पर आक्रमण करके और उसको पराजित करके नारनोत पर अधिकार कर लिया था और अपने दूसरे पुत्र सिरंग जी को वहाँ का अधिकारी बना दिया था।

बीदा के लड़कों ने उपनिवेश कायम किये थे। जेतसी ने उन उपनिवेशों पर प्रभुत्व कायम करके बीदा के लड़कों को कर देने के लिए विवश किया। उनको यह माँग मंजूर करनी पड़ी और वे अपने उपनिवेशों से वार्षिक कर देने लगे।

सम्वत् १६०३ में जेतसी के मर जाने पर कल्याणमल पिता के सिंहासन पर बैठा। उसके शासन काल में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं हुआ। उसके तीन लड़के पैदा हुए, रायसिंह, रामसिंह और पृथ्वीसिंह।

सम्वत् १६३० में कल्याणसिंह की मृत्यु हो गयी। उसके स्थान पर रायसिंह सिंहासन का अधिकारी हुआ और सम्वत् १६३० सन् १५७४ ईसवी में वह अपने पिता की गद्दी पर बैठा। उसके शासन में बीकानेर की उन्नति आरम्भ हुई। इन दिनों में अकबर बादशाह दिल्ली के सिंहासन पर था। रायसिंह समझता था कि बादशाह अकबर ने राजस्थान के अनेक राजाओं को अधीनता में लाकर मुगलराज्य का विस्तार कर लिया है और वह दिन भी शीघ्र आ सकता है, जब मुगल सम्राट बीकानेर राज्य पर अपना प्रभुत्व कायम करने की चेष्टा करे। उस समय शक्तिशाली मुग़लों का सामना करना हमारे लिये बहुत कठिन हो जायगा। इसलिए कि अब तक अनेक राजपूत राजा उसकी अधीनता को स्वीकार कर चुके हैं। इस अवस्था में सब से अच्छा यह होगा कि मुग़ल बादशाह के साथ पहले से ही मित्रता कायम कर ली जाय।

रायसिंह के सिंहासन पर बैठने के समय तक जाट लोग राज्य के पूरे तौर पर राजभक्त बने रहे। परन्तु अब जाटों के साथ राज्य की तरफ़ से और विशेषकर राठौरों के व्यवहार बहुत कुछ बदल गये थे। इसका परिणाम यह हुआ कि जाट लोगों को जो अधिकार मिले थे, उनमें बहुत कमी आ गयी। उन अधिकारों से वंचित होने के बाद जाट लोग निरंतर निर्बल होते जाते थे। इसका प्रभाव बीकानेर राज्य की शक्तियों पर पड़ा और वह मुग़ल सम्राट के प्रभुत्व को स्वीकार करने के लिए विवश किया गया।

जैसलमेर के राजा की एक लड़की का विवाह राजा रायसिंह के साथ हुआ था और उसकी दूसरी लड़की बादशाह अकबर को ब्याही गयी थी। इस वैवाहिक सम्बन्ध के कारण रायसिंह के प्रति बादशाह अकबर का आकर्षण स्वाभाविक था। पिता की मृत्यु के बाद रायसिंह गंगा जी में

पिता की हड्डियों को प्रवाहित करने के लिये गया था। वहाँ से लौटकर वह मुगलों की राजधानी में चला गया। वहां पर आमेर का राजा मानसिंह मौजूद था और उसने मुगल दरबार में बहुत सम्मान प्राप्त किया। राजा मानसिंह ने रायसिंह को लेकर बादशाह अकबर से भेंट करायी और उसने बादशाह को रायसिंह का परिचय दिया।

बादशाह अकबर रायसिंह से मिलकर बहुत प्रसन्न हुआ और उसने रायसिंह को चार हज़ार अश्वारोही सेना का पदाधिकारी बना दिया। इसके साथ ही बादशाह ने रायसिंह को हिसार का शासक नियुक्त किया और राजा की उपाधि देकर बादशाह ने विशेष रूप से बीकानेर के नरेश को सम्मानित किया।

इन्हीं दिनों में जोधपुर के राजा मालदेव के अप्रिय व्यवहारों के कारण बादशाह अकबर ने मारवाड़ पर आक्रमण किया और वहाँ के सम्पत्तिशाली राज्य नागौर को जीतकर उसका अधिकार रायसिंह को दे दिया। इस प्रकार बादशाह से लगातार सम्मानित होकर रायसिंह बीकानेर लौट गया और अपने राज्य में पहुँचकर छोटे भाई रामसिंह को एक राठौर सेना के साथ भाटी लोगों के प्रसिद्ध नगर भटनेर पर आक्रमण करने के लिए भेजा। रामसिंह ने वहां पहुँचकर भटनेर और उसके आस-पास के अनेक स्थानों पर अधिकार कर लिया। इसके बाद वह बीकानेर लौट आया।

जोहिया के जाटों ने राठौरों की अधीनता स्वीकार करने के बाद बहुत समय तक किसी प्रकार का विद्रोह नहीं किया। लेकिन दिल्ली से लौटकर और बादशाह से सम्मानित होकर जब रायसिंह अपनी राजधानी को जा रहा था, जोहिया के जाटों ने विद्रोह करने का इरादा किया। यह देखकर रायसिंह ने एक राठौर सेना उन पर आक्रमण करने के लिए भेजी। बीकानेर की उस सेना ने वहाँ पहुँचकर जोहिया के जाटों के साथ भयानक अत्याचार किया। उस आक्रमण में हजारों जाट जान से मारे गये और राठौर सेना ने उनके राज्य में भीषण रूप से नर-संहार किया। उस समय के विध्वंस और विनाश से जोहिया का राज्य सदा के लिए निर्बल और जन-शून्य हो गया।

जोहिया राज्य के ग्रामों और नगरों में यूनान के सिकन्दर का नाम अब तक प्रसिद्ध है। दादूसर नामक स्थान में नष्ट-भ्रष्ट प्राचीन महल अब तक मौजूद है, जिसे लोग रंगमहल कहते हैं। कहा जाता है कि यूनान के सिकन्दर ने जब भारत पर आक्रमण किया था, उस समय उसने दादूसर में पहुँचकर उसके राजा को उसने परास्त किया था और दादूसर को विध्वंस किया। यह बात सही है कि सिकन्दर ने भारत में आकर अनेक राज्यों पर आक्रमण किया था और पंजाब में उसे भीषण संग्राम करना पड़ा था लेकिन जोहिया के जाटों पर सिकन्दर के आक्रमण करने का कोई उल्लेख इतिहास में नहीं पाया जाता। हो सकता है कि सिकन्दर के जिस यूनानी सेनापति ने समुद्र के समीप अपना राज्य कायम किया था, उसने किसी समय जोहिया पहुँचकर दादूसर पर आक्रमण किया हो और वहाँ के विध्वंस के साथ-साथ उसने इस रंगमहल को बरबाद किया हो।

रायसिंह के भाई रामसिंह ने जोहिया के जाटों को दमन करके अपनी सेना के साथ पूनिया की तरफ़ जाने का इरादा किया। बीका के वशंजों ने गोदारा और जोहिया के जाटों को पराजित कर लिया था। परन्तु पूनिया के जाट अभी तक स्वतंत्र जीवन व्यतीत कर रहे थे। रामसिंह अपनी सेना के साथ वहाँ पहुँच गया। पूनिया के जाटों ने शक्ति भर युद्ध करके राठौर सेना का मुकाबिला किया। अंत में उनकी पराजय हुई और राठौर सेना ने उनके राज्य पर भी अधिकार कर लिया। रामसिंह ने इन दिनों में जिन राज्यों में अधिकार किया था, वहीं पर उसने रहने का विचार किया। जिन जाटों ने पराजित होने के बाद राठौरों को

अधीनता स्वीकार की थी, वे अब तक विद्रोही बने हुए थे और उन्होंने अवसर पाकर रामसिंह को जान से मार डाला।

रामसिंह के मारे जाने पर भी वहाँ के जाट राज्यों पर राठौरों का शासन कायम रहा। रामसिंह के जीवन काल में वहाँ बहुत से राठौर रहने लगे थे और उन्होंने वहाँ के बहुत से प्रसिद्ध नगरों पर अधिकार कर लिया था। उन राठौरों के वंशज अब तक रामसिंहहोत के नाम से प्रसिद्ध है। रामसिंह के जीते हुए राज्यों के द्वारा बीकानेर राज्य की वृद्धि हुई थी। लेकिन रामसिंहोत राठौरों ने कांधलोतों की तरह बीकानेर के राजा के प्रभुत्व को स्वीकार नहीं किया। रामसिंहोत राठौर जिन नगरों में रहते थे, उनमें दो प्रमुख थे, सीधमुख और सांखू।

पूनिया को पराजित करने के बाद जाटों के छै राज्य राजा बीकानेर के अधिकार में आ गये। वहाँ के जाट लोग खेती और पशुओं के पालन का काम करते थे। इन राज्यों ने अपनी स्वतंत्रता खोकर बीकानेर को कर देना स्वीकार कर लिया।

राजा रायसिंह ने मुगल सम्राट की प्रधानता स्वीकार कर ली थी और उसके बाद उसने अपने राज्य को शक्तिशाली बना लिया। मुगलों को उन दिनों में जो युद्ध करने पड़े थे, उनमें रायसिंह ने भी राठौर सेना को लेकर युद्ध किया था। उसने अहमदाबाद के शासक मिर्जा मोहम्मद हुसेन के साथ युद्ध करके उसको पराजित किया और अहमदाबाद पर अधिकार कर लिया। इससे मुगल-दरबार में उसका सम्मान बहुत बढ़ गया। राजस्थान के राजाओं से मेल करके अथवा उनको पराजित करके अकबर बादशाह ने मुगल साम्राज्य की बहुत बड़ी उन्नति की थी। वहाँ के जिस राजा को अकबर अधिक शक्तिशाली समझता था, उसके साथ मित्रता कायम करने के लिए अकबर ने बड़ी बुद्धिमानी और राजनीति से काम लिया था।

रायसिंह की योग्यता और रण कुशलता को देखकर बादशाह अकबर बहुत प्रभावित हुआ था। इसलिए उसके सम्बन्ध को स्थायी और सुदृढ़ बनाये रखने के लिए उसने अपने लड़के शाहजादा सलीम का विवाह रायसिंह की लड़की के साथ करने का इरादा किया। रायसिंह ने इसे स्वीकार कर लिया। इस विवाह के बाद रायसिंह की लड़की से जो लड़का पैदा हुआ, उसका नाम परवेज रखा गया। राजा रायसिंह ने बादशाह अकबर के साथ सम्बन्ध जोड़कर अपने राज्य बीकानेर की सभी प्रकार उन्नति की। इसके बाद सम्वत् १६८८ सन् १६३२ ईसवी में इस संसार को छोड़कर उसने परलोक की यात्रा की।

रायसिंह के मर जाने के बाद उसका लड़का कर्णसिंह अपने पिता के सिंहासन पर बैठा। रायसिंह के जीवन-काल में ही उसने मुगल-सम्राट की अधिनता में दो हजार अश्वारोही सेना के अधिकारी का पद प्राप्त करके सम्मान पाया था और बादशाह ने उसे दौलताबाद का शासक नियुक्त किया। कर्णसिंह सुलतान दारा शिकोह के साथ विशेष अनुराग रखता था। इसका परिणाम यह हुआ कि दारा शिकोह के जो विरोधी थे, वे कर्णसिंह के साथ ईर्षा और द्वेष रखते थे। उन विरोधियों ने कर्णसिंह की हत्या करने के लिए एक षड़यंत्र की रचना की। परन्तु वह षड़यंत्र बूंदी के राजा को मालूम हो गया और उसने कर्णसिंह को सावधान कर दिया।

सिंहासन पर बैठकर कर्णसिंह ने कई वर्ष तक बड़ी योग्यता के साथ शासन किया। इसके बाद उसकी मृत्यु हो गयी। उसके चार लड़के थे—पद्मसिंह, केशरीसिंह, मोहनसिंह और अनूपसिंह। कर्णसिंह के इन चार लड़कों में पहला और दूसरा युद्ध में उस समय मारा गया, जब वे दोनों अपनी

राठौर सेना को लेकर मुग़ल बादशाह की तरफ़ से युद्ध करने गये थे। दक्षिणी भारत को विजय करने के लिए मुग़ल बादशाह की जो फौज गयी थी, उसकी सहायता में कर्णसिंह के चारों लड़के राठौर सेना के साथ गये थे। उसमें पद्मसिंह और केशरीसिंह मारे गये। वहीं दक्षिण में बादशाह के शिविर में एक घटना हुई। कर्णसिंह का तीसरा लड़का मोहनसिंह मुग़ल सेना के शिविर में बैठा था और वहीं पर शाहजादा मोअज्ज़म भी था। एक हिरन के बच्चे के लिए मोअज्ज़म के साथ मोहनसिंह का झगड़ा हो गया। उस झगड़े में दोनों ने तलवारें निकालीं और एक, दूसरे पर आक्रमण किया। मोअज्जम की तलवार से मोहनसिंह जख्मी हुआ और गिरते ही उसकी मृत्यु हो गयी। तवारिख़ फरिश्ता में लिखा है कि इस दुर्घटना को सुनकर राजस्थान के उन राजाओं पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ा जो बादशाह की तरफ से युद्ध करने के लिए दक्षिण में गये थे और वे सभी राजपूत क्रोधित होकर बादशाह के शिविर से बीस मील की दूरी पर चले गये।

तवारीख़ फरिश्ता के अनुसार दक्षिण में बीजापुर का युद्ध इस दुर्घटना के बाद हुआ, जिसमें कर्णसिंह के दोनों लड़के मारे गये थे। अब अनूपसिंह अपने पिता का अकेला लड़का रह गया था। कर्णसिंह के परलोक वास करने पर उसने सम्वत् १७३० सन् १६७४ ईसवी में राजा की उपाधि लेकर और सिंहासन पर बैठकर शासन आरम्भ किया।

राजा रायसिंह के समय से दिल्ली के बादशाह के यहाँ बीकानेर के राठौरों की मर्यादा बढ़ गयी थी। इसका कारण यह था कि बीकानेर से अनेक अवसरों पर बादशाह को सहायता मिली थी। अनूपसिंह स्वयं साहसी और वीर पुरुष था। मुगल बादशाह ने पाँच हज़ार अश्वारोही सेना का मनसब बनाकर और राजा की उपधि देकर उसे बीजापुर तथा औरंगाबाद का शासक नियुक्त किया था। अनूपसिंह ने भी इसके बदले में कई मौकों पर बादशाह की सहायता की थी। इससे बादशाह और भी अधिक प्रसन्न हुआ था।

जिन दिनों में काबुल के अफ़गान दिल्ली के बादशाह के विद्रोही हो गये थे, बादशाह ने उन विद्रोहियों को दमन करने के लिए मारवाड़ के राजा को भेजा था। उस समय अनूपसिंह भी बीकानेर की सेना लेकर बादशाह के आदेश से काबुल का विद्रोह दमन करने के लिए गया था। इस विद्रोह के शांत हो जाने के बाद भी बादशाह की तरफ़ से अनूपसिंह ने कई युद्ध किये।

अनूपसिंह की मृत्यु के सम्बन्ध में दो प्रकार के उल्लेख पाये जाते हैं। फरिश्ता ने अपने इतिहास में लिखा है कि राजा अनूपसिंह की मृत्यु दक्षिण में हुई थी परन्तु राठौरों के इतिहास से जाहिर होता है कि अनूपसिंह दक्षिण के युद्ध में अपनी सेना लेकर गया था। वहां पर शिविर बनाने के स्थान पर बादशाह के प्रधान सेनापति के साथ उसका झगड़ा हो गया। इसलिए अप्रसन्न होकर वह दक्षिण से अपने राज्य में चला आया और उसके बाद उसकी मृत्यु हो गयी। स्वरूपसिंह और सुजानसिंह नाम के दो लड़के अनूपसिंह के थे।

अनूपसिंह की मृत्यू के बाद सम्वत् १७६५ सन् १७०६ ईसवी में स्वरूपसिंह सिंहासन पर बैठा।* परंतु उसने बहुत थोड़े दिन राज्य किया। राजा अनूपसिंह ने अपने जीवन के अंतिम दिनों में बादशाह के साथ सभी सम्बन्ध तोड़ दिये थे। इसलिए बादशाह की तरफ़ से जो उसे ओडनी राज्य मिला था, वह वापस ले लिया गया। सिंहासन पर बैठने के बाद स्वारूपसिंह ने अधिकार

---

* बीकानेर के एक ग्रंथ में लिखा है कि राजा अनूपसिंह की मृत्यु सम्वत् १७५५ में दक्षिण में हुई। उसके साथ उसकी अठारह रानियाँ सती हुई थीं।

करने के लिए ओडनी राज्य पर आक्रमण किया और उसी युद्ध में वह मारा गया। उसका छो भाई सुजानसिंह उसके बाद सिंहासन पर बैठा। उसके शासन काल में कोई घटना नहीं हुई सम्वत् १७९३ सन् १७३७ ईसवी में जोरावरसिंह बीकानेर के सिंहासन पर बैठा।

जोरावरसिंह ने दस वर्ष तक राज्य किया। उसके बाद उसकी मृत्यु हो गयी। उसके ब गजसिंह बीकानेर के सिंहासन पर बैठा। उसके शासन के साथ-साथ राज्य में घटनायें आरम हुईं। गजसिंह साहसी और पराक्रमी था। उसने गौरव के साथ इकतालीस वर्ष राज्य करके स प्रकार बीकानेर की उन्नति की। राज्य की सीमा पर रहने वाले शक्तिशाली भाटी लोगों औ भावलपुर के मुसलमान राजाओं के साथ युद्ध करके उसने अपनी बहादुरी का परिचय दिया गजसिंह ने भाटी लोगों के राजासर, कालिया, रनियार, सनसर, बुझीपुरा, मुतालाई और अने छोटे-बड़े नगरों को अधिकार में लेकर अपने राज्य में मिला लिया। इन्हीं दिनों में उसने भावलप के राजा खां के साथ युद्ध किया और उसके प्रसिद्ध दुर्ग अनूपगढ़ पर अधिकार कर लिया। दाऊ के पोतडा लोगों का विध्वंस उसने इसलिए किया कि जिससे वे कभी विद्रोह न कर सकें और इ उद्देश्य से उसने अनूपगढ़ के पश्चिम तरफ बसे हुए स्थानों का भी विनाश किया।

राजा गजसिंह के इकसठ पुत्र पैदा हुए, उनमें विवाहित रानियों से केवल छै थे, जो इस प्रकार हैं

१—छत्रसिंह	२—राजसिंह	३—सुरतानसिंह
४—अजबसिंह	५—सूरतसिंह	६—श्यामसिंह

छत्रसिंह की मृत्यु शिशु अवस्था में ही हो गयी थी। राजसिंह को सूरतसिंह की ने विष देकर मार डाला था। सुरतानसिंह और अजबसिंह इस प्रकार की दुर्घटना से भयभीत कर जयपुर चले गये थे। इस दशा में सूरतसिंह बीकानेर के सिंहासन का अधिकारी हुआ। श्या सिंह उस राज्य की एक छोटी-सी जागीर को पाकर वहीं पर रहने लगा। इस प्रकार उस राज्य अब सूरतसिंह का कोई प्रतिद्वन्दी न रह गया था।

राजसिंह वास्तव में बीकानेर के सिंहासन का अधिकारी था। गजसिंह की मृत्यु के बा सम्वत् १८४३ सन् १७८७ ईसवी में राजसिंह बीकानेर के सिंहासन पर बैठा। उसके शासन केवल तेरह दिन बीते थे, उसके बाद सूरतसिंह की माँ ने विश्वासघात करके उसको विष खि दिया, जिससे उसकी मृत्यु हो गयी।

राजसिंह के दो लड़के थे—प्रतापसिंह और जयसिंह। विष के द्वारा राजसिंह की मृत्यु जाने के बाद राज्य के मन्त्री और सामन्त बहुत असंतुष्ट हुए। उनके असन्तोष को देखकर सूरत सिंह ने राजसिंह के बड़े लड़के प्रतापसिंह को सिंहासन पर बिठा कर शासन का कार्य आरम किया। प्रतापसिंह की अवस्था बहुत छोटी थी। इसलिए शासन के सम्पूर्ण अधिकार सूरतसिंह हाथ में ही रहे। इस प्रकार शासन करते हुए सूरतसिंह ने अठारह महीने बिता दिये। इन दि में उसने राज्य के मन्त्रियों और सामन्तों को पूर्ण रूप से अपने अनुकूल बनाने की चेष्टा की। उस उनको लगातार बहुमूल्य पदार्थ भेंट में दिये और अनेक प्रकार के प्रलोभन देकर उनकी सहानुभू को अपने पक्ष में करने की कोशिश की।

सूरतसिंह ने सामन्तों, मन्त्रियों और राज्य के दूसरे लोगों को दिखाने के लिए बाल प्रतापसिंह को सिंहासन पर बिठाया था। परन्तु राज्य का सम्पूर्ण अधिकारी वह स्वयं था। इ लिए कि प्रतापसिंह बिल्कुल बालक था। ऐसा करके सूरतसिंह संसार के नेत्रों में धूल झोंक र था। फिर भी उसको सन्तोष न था। वह राज्य की सम्पत्ति को अनावश्यक रूप से खर्च कर

सामन्तों और मन्त्रियों को मिलाने की जो चेष्टा कर रहा था, उसका एक रहस्य था। वह राजसिंह के बालक प्रतापसिंह को सिंहासन पर बिठा कर और थोड़े दिनों का नाटक खेल कर संसार से उसे बिदा कर देना चाहता था। इसके लिए पहले से ही सामन्तों और मन्त्रियों का मिला लेना, उसके लिए जरूरी था, जिससे वे लोग बाद में किसी प्रकार का विद्रोह न कर सकें।

बालक प्रतापसिंह के नाम पर अठारह महीने के शासन में उसने अपनी समझ में सामन्तों और मन्त्रियों को अनुकूल बना लिया। सूरतसिंह महाजन और भादरां के सामन्तों को अपना विशेष अनुयायी और समर्थक समझता था। इसलिए उसने बालक प्रतापसिंह के सम्बन्ध में अपने विचारों को उन दोनों सामन्तों से प्रकट किया। सूरतसिंह के प्रस्ताव को सुनकर दोनों सामन्त घबरा उठे। उनकी समझ में सूरतसिंह का यह विचार अत्यन्त घृणित और निन्दनीय था। सूरतसिंह ने उन दोनों सामन्तों को प्रसन्न करने के लिए भूमि और सम्पत्ति दी, जिससे वे उसके अभिप्राय को किसी से प्रकट न कर सकें। फिर भी सूरतसिंह का वह इरादा अप्रकट न रह सका। बीकानेर के दीवान बख्तावार सिंह को जब सूरतसिंह के उस पैशाचिक अभिप्राय की जानकारी हुई तो उसने राजसिंह के बालक प्रतापसिंह के प्राणों की रक्षा का प्रयत्न किया। लेकिन बख्तावरसिंह की चेष्टा सफल न हो सकी। सूरतसिंह ने बख्तावरसिंह को अपराधी बना कर कैद करवा लिया।

बख्तावरसिंह के सम्बन्ध में सूरतसिंह की धारणा पहले से ही अच्छी न थी। वह बख्तावरसिंह को अपना विरोधी समझता था। बालक प्रतापसिंह के सम्बन्ध में जो विश्वासघात सूरतसिंह के हृदय में छिपा हुआ था, उसके प्रकट हो जाने से राज्य के अनेक सामन्तों में विद्रोहात्मक भावनायें उठने लगीं। सूरतसिंह इन परिस्थितियों से अपरिचित न रहा। आने वाली भयानक परिस्थितियों की कल्पना करके सूरतसिंह ने बीकानेर के सामन्तों के पास आदेश भेज कर उनको राजधानी में बुलाया। लेकिन महाजन और भादरां के दोनों सामन्तों के सिवा अन्य कोई भी सामन्त राजधानी में नहीं आया।

भेजे हुए आदेश का सामन्तों के पालन न करने पर सूरतसिंह बहुत क्रोधित हुआ और वह अपने साथ एक सेना लेकर आज्ञा-पालन न करने वाले सामन्तों का दमन करने के लिए राजधानी से रवाना हुआ। नौहर नामक स्थान में पहुँचकर सूरतसिंह ने भूखर के सामन्त को अपने पास बुलवाया और उनको कैद करके नौहर के दुर्ग में बन्द करवा दिया। इसके बाद उसने अजितपुर नामक स्थान की लूट की और सांखू नामक स्थान पर आक्रमण किया। वहाँ के सामन्त दुर्जनसिंह ने सूरतसिंह का सामना किया। लेकिन बीकानेर की सेना के साथ युद्ध करने के लिए उसके पास सेना काफी न थी। इसलिए पराजित होने की अवस्था में आत्मघात करके वह मर गया।

साँखू में विजयी होने के बाद सूरतसिंह ने दुर्जनसिंह के लड़कों से बारह हजार रुपये लिए। इसके बाद वह अपनी सेना के साथ साँखू से चलकर राज्य के प्रसिद्ध व्यावसायिक नगर चूरू को घेर लिया और छै महीने तक वह उस नगर को घेरे पड़ा रहा। लेकिन उसको सफलता न मिली।

भूखर के जिन सामन्तों को कैद करके सूरतसिंह ने नौहर के दुर्ग में रखा था, वे बीकानेर राज्य के सामन्तों में शक्तिशाली सामन्त माने जाते थे। उनको इस बात की चिन्ता होने लगी कि सूरतसिंह राज्य के सभी सामन्तों के साथ इस प्रकार अलग-अलग दुर्व्यवहार करेगा और सामन्त कुछ न कर सकेंगे। इसलिए वे सूरतसिंह को बीकानेर के सिंहासन पर बिठाने के लिए राजी हो गये और उनके तैयार हो जाने पर कुछ दूसरे सामन्तों ने भी सूरतसिंह के पक्ष में अपनी सम्मति दे दी। इसके लिए एक कागज लिखा गया। उस पर उन सामन्तों के हस्ताक्षर हो गये, इसके बाद

जिन सामन्तों को सूरतसिंह ने कैद करवाया था, उनको छोड़ दिया गया और दो लाख रुपये लेकर सूरतसिंह अपनी सेना के साथ चूरू नगर से लौट आया।

सूरतसिंह ने राज्य के कितने ही सामन्तों के साथ इस प्रकार का अत्याचार करके उनको अपने अनुकूल बना लिया। उसके बाद वह अपनी राजधानी लौट आया। अब उसको सामन्तों के विरोध का डर न रहा था। इसलिए निर्भीक होकर वह बालक प्रतापसिंह की हत्या का उपाय सोचने लगा। इसी बीच में उसको मालूम हुआ कि बालक प्रतापसिंह की रक्षा का भार हमारी बहन के हाथ में है। उसकी बहन बुद्धिमती और शीलवती थी। वह किसी प्रकार इस बात को नहीं चाहती थी कि बालक प्रतापसिंह की हत्या की जाय। इसके लिए उसको अपने भाई सूरतसिंह से पूरी तौर पर आशंका थी। वह समझती थी कि सूरतसिंह के द्वारा इस बालक के प्राण खतरे में हैं। इसलिए वह राजकुमारी उस बालक को सदा अपने पास रखती थी और एक क्षण के लिए भी वह उसको अपने पास से अलग न होने देती थी।

सूरतसिंह ने अनेक उपायों से अपनी बहन को अनुकूल बनाने की कोशिश की। उसने समझा-बुझाने के अतिरिक्त प्रतारणा का भी प्रयोग किया। परन्तु उसकी बहन पर उसके इन व्यवहारों का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। अपने इन उपायों से निराश होने के बाद सूरतसिंह ने अपनी उस बहन का विवाह करके उसे ससुराल भेज देने का निश्चय किया। क्योंकि उसकी वह बहन अभी तक अविवाहिता थी। सूरतसिंह ने उसका विवाह करने के लिए नरवर के राजा के पास प्रस्ताव भेजा और वह स्वयं उसकी तैयारी करने लगा।

भारतवर्ष में राजा नल के नाम से सभी परिचित हैं। हिन्दू ग्रंथों में राजा नल की बहुत-सी कथायें लिखी गयी हैं। उसी राजा नल ने नरवर राज्य की प्रतिष्ठा की थी। सूरतसिंह ने अपनी बहन का विवाह करने के लिए जिस राजा से प्रस्ताव किया वह राजा नल का वंशज था। सींधिया के अत्याचारों से नरवर राज्य बिलकुल नष्ट-भ्रष्ट हो गया था और इन दिनों में उस राज्य की दशा अच्छी न थी। सींधिया की लूट के कारण यह राज्य बहुत समय से दीन-दुर्बल अवस्था में दिन व्यतीत कर रहा था। लेकिन सूरतसिंह ने इसका कुछ भी विचार न किया। वह अपनी उस बहन का विवाह बड़ी जल्दबाजी के साथ करके उसे ससुराल भेज देना चाहता था।

अपने विवाह का समाचार सूरतसिंह की बहन ने सुना और उसने यह भी सुना कि सूरतसिंह ने नरवर के जिस राजा के साथ मेरे विवाह का प्रस्ताव किया है, उसने उस प्रस्ताव को मंजूर करके अपनी स्वीकृति सूरतसिंह के पास भेज दी है। राजकुमारी ने सूरतसिंह को बुलाकर प्रार्थना की कि मेरी अवस्था अधिक हो चुकी है। विवाह न करके मैं आजन्म कुमारी रहूँगी। इसलिए आप मेरे विवाह की व्यवस्था न करें। इसके बाद राजकुमारी ने नरवर के राजा के पास भी संदेश भेजा कि मेरा विवाह मेवाड़ के राणा अरिसिंह के साथ बहुत पहले निश्चय हो चुका है। इसलिए जो प्रस्ताव आप से किया गया है, वह सही नहीं है। आपको किसी धोखे में नहीं पड़ना चाहिए।

राजकुमारी के इन विरोधों का कोई परिणाम न निकला। नरवर के राजा के साथ उसका विवाह कर दिया गया और सूरतसिंह ने इस विवाह के दहेज में तीन लाख रुपये दिये। राजकुमारी का अब कोई बस न था। उसने अब तक राजसिंह के बालक की रक्षा की थी। भविष्य में वह कैसे सुरक्षित रहेगा, इसको वह समझ न सकी। बीकानेर से ससुराल जाने के पहले राजकुमारी ने सूरतसिंह से इस विषय में स्पष्ट बातें कीं। उसने कहा : "इस बालक के साथ आप विश्वास-घात करना चाहते हैं और इसीलिए मेरा विवाह करके बीकानेर से मुझे भेज देने का आपने

एक रास्ता खोला है। अब तक मैंने उस बालक की रक्षा की थी। भविष्य में भगवान उसकी रक्षा करेगा।''

बहन की इन बातों को सुनकर सूरतसिंह के ऊपर कोई प्रभाव न पड़ा। प्रकट रूप में उसको सान्त्वना देने के लिए उसने कहा कि ऐसी बात बिलकुल नहीं है। तुम्हारा अनुमान बिलकुल निराधार है। सूरतसिंह के मुख से इस बात को सुनकर राजकुमारी ने साहसपूर्ण शब्दों में कहा : ''वास्तव में यदि आपके हृदय में उस बालक के प्रति इस प्रकार का विश्वासघात नहीं है तो सब के सामने अपने देवता की शपथ लेकर कहिए कि मैं अपने इस भतीजे के साथ किसी प्रकार का विश्वासघात न करूँगा।''

राजकुमारी की एक भी न चली। उसके ससुराल चले जाने के बाद सूरतसिंह ने महाजन के सामन्तों को बुलाकर उस बालक की हत्या करने का आदेश दिया। वे सामन्त बहुत दिनों से सूरतसिंह के अनुयायी और पक्षपाती थे। परन्तु ऐसा करने से उन्होंने साफ-साफ इनकार कर दिया। इसके लिए सूरतसिंह को जब और कोई रास्ता न मिला तो उसने स्वयं अपनी तलवार से राजसिंह के बालक को मार डाला।

उस बालक के मारे जाने के बाद सूरतसिंह अपने सौभाग्य का निर्माण न कर सका। उस बलक की जिस प्रकार हत्या हुई, उसका समाचार बीकानेर के प्रत्येक घर में फ़ैला और राज्य के प्रत्येक राठौर ने उस बालक के प्रति इस अपराध को सुनकर आँखों से आँसू गिराये। राजसिंह के दो भाई सुरतानसिंह और अजबसिंह भयभीत होकर जयपुर चले गये थे, सूरतसिंह के द्वारा राजसिंह के बालक के मारे जाने का समाचार उन्होंने सुना। अत्यन्त क्रोधित होकर उन दोनों भाइयों ने सूरतसिंह को इसका बदला देने का निश्चय किया और भटनेर में आकर दोनों भाइयों ने बीकानेर के सामन्तों को बुलाकर सूरतसिंह को सिंहासन से उतार देने की तैयारी की। सूरतसिंह के इस अक्षम्य अपराध को सभी सामन्त जानते थे। लेकिन जिन सामन्तों को अनैतिक रूप से भूमि और सम्पत्ति देकर सूरतसिंह ने अपने पक्ष में कर रखा था, वे सूरतसिंह के विरोध में सुरतानसिंह और अजदसिंह की सहायता करने का साहस न कर अके। परन्तु भाटी लोग खुलकर दोनों भाइयों की सहायता करने के लिये तैयार हो गये, वह समाचार बीकानेर में सूरतसिंह को मिला। उसने सुरतानसिंह और अजवसिंह को युद्ध की तैयारी का मौका नहीं दिया और उसने अपनी सेना लेकर एक साथ उन पर आक्रमण कर दिया।

बागोर नामक स्थान में दोनों ओर से भयानक युद्ध हुआ। तीन हजार भाटी लोगों ने सूरतसिंह के विरुद्ध सुरतानसिंह और अजबसिंह का साथ देकर युद्ध किया था। उनके मारे जाने पर सूरतसिंह की विशाल सेना विजयी हुई। विरोधियों का सर्वनाश कर के और युद्ध में विजयी होकर उस युद्ध भूमि में सूरतसिंह ने एक दुर्ग का निर्माण कराया, जिसका नाम रखा गया, फतहगढ़।

सूरतसिंह के जीवन में जो बाधायें थीं, वे अब सब की सब समाप्त हो चुकी थीं। सुरतसिंह को अब किसी का भय न था। इसलिए सभी प्रकार निर्भीक होकर उसने शासन का कार्य आरम्भ किया। उसने सजातीय बीदावत लोगों के राज्य पर आक्रमण किया और वहाँ से उसने पचास हजार रुपये कर के सम्बन्ध में वसूल किये। सूरतसिंह ने सुना था कि चूरू के सामन्त सुरतानसिंह और अजबसिंह की युद्ध में सहायता करेंगे। इसलिए उसने चूरू पर फिर से आक्रमण

किया बीकानेर की सेना ने चूरू पहुँच कर भयानक रूप से वहाँ पर लूट की। उसके बाद कई राज्यों में लूट मार करता हुआ सूरतसिंह ने भादराँ के करीब छानी राज्य के सामन्तों के दुर्ग पर आक्रमण किया। वहाँ के सामन्तों ने धैर्य के साथ सूरतसिंह का सामना किया। बीकानेर की सेना छै महीने तक उस दुर्ग को घेरे पड़ी रही और अन्त में निराश होकर वहाँ से बीकानेर लौट आयी।

सूरतसिंह अपने विरोधियों का दमन कर के निर्भीक हो गया था और राज्य के शासन को मजबूत करने के लिए उसने योजना बनानी आरम्भ कर दी थी। परन्तु राज्य की प्रजा उससे सन्तुष्ट न थी। विरोधों को दबाने के लिए सूरतसिंह ने जिस प्रकार अपने राज्य के आदमियों पर अत्याचार किये थे और भूमि तथा सम्पत्ति देकर सामन्तों को अपने पक्ष में कर लिया था, इसे राज्य की प्रजा ने अच्छा नहीं समझा था। न्याय और उदारता के अभाव में प्रजा सूरतसिंह से सभी प्रकार अप्रसन्न हो रही थी। राज्य की इस परिस्थिति को सूरतसिंह ने साफ-साफ अनुभव किया और उसने राज्य के असंतोष को दूर करने की चेष्टा की।

सूरतसिंह प्रजा के असंतोष को दूर करना चाहता था। लेकिन न्याय और उदार व्यवहारों के द्वारा नहीं। वह दमन पर विश्वास करता था शक्तिशाली। विरोधियों को धन और प्रलोभन देकर मिला लेना जानता था। वह इस समय भी इसी प्रकार की बातों को सोचने लगा उसका समय अच्छा था। प्रजा के इस असंतोष के दिनों में भी जो परिस्थितियाँ उत्पन्न हुईं वे अनुकूल साबित हुईं।

बीकानेर राज्य की सीमा के समीप भावलपुर राज्य था। उसके राजा के साथ बहुत पहले से विरोध चला आ रहा था। उसके सम्बन्ध में बीकानेर के सामन्तों को अनेक बार युद्ध करना पड़ा था। इन दिनों में भावलपुर के राजा भावलखाँ ने अपने राज्य के तियारो के सामन्त खुदाबख्श पर आक्रमण किया। खुदाबख्श ने सूरतसिह से सहायता माँगी। सूरतसिंह ने उस सामन्त को अपने यहाँ आश्रय देकर बीस ग्राम दिये और रोजाना के खर्च के लिए प्रतिदिन के हिसाब से एक सौ रुपया देना मंजूर किया।

भावलपुर राज्य में किरणी वंश के लोग रहते थे। वे युद्ध में साहसी और वीर थे। सूरतसिंह ने उस वंश के लोगों को मिलाकर लाभ उठाने का इरादा किया और सामन्त खुदाबख्श से पूछा : "मैं आपकी सहायता करने के लिए तैयार हूँ। परन्तु इसके बदले में आप मेरे साथ क्या करेंगे।"

खुदाबख्श ने इसका उत्तर देते हुए कहा : "बीकानेर राज्य की सीमा को बढ़ाने में मैं सभी प्रकार आपकी सहायता करूँगा।" उसके इस उत्तर को सुनकर सूरतसिंह प्रसन्न हुआ और उसने भावलखाँ के साथ युद्ध करने के लिए अपने सभी सामन्तों के पास संदेश भेज दिया। बीकानेर के सामन्त सूरतसिंह से संतुष्ट न थे। परन्तु इस समय राज्य के सामने राजनीतिक संघर्ष था। उसमें शामिल होना उन्होंने अपना कर्त्तव्य समझा। इसलिए अपनी-अपनी सेनायें लेकर वे लोग बीकानेर की राजधानी में आने लगे। तियारो का सामन्त खुदाबख्श भी अपने साथ पांच सौ पैदल और तीन सौ सैनिक सवारों की सेना लेकर राजधानी में पहुँच गया। भावलपुर के राजा के साथ युद्ध करने के लिए बीकानेर के जो सामन्त अपनी सेनाओं के साथ आये, उनकी संख्या इस प्रकार थी:

सामन्त		पैदल	अश्वारोही	बन्दूकें
१—भूखर का सामन्त अभयसिंह	...	२०००	३००	
२—पूंगल का सामन्त रावरामसिंह	...	४००	१००	
३—रानेर का सामन्त हाथीसिंह	...	१५०	८	

४—सतीसर का सामन्त कर्णसिंह ...	१५०	९	
५—जसाना शारोह का अनूपसिंह ...	२५०	४०	
६—इमनसर का सामन्त खेतसिंह ...	३५०	६०	
७—जांगल का सामन्त बेनीसिंह ...	२५०	९	
८—बितानो का सामन्त भूमिसिंह ...	६१	२	
जोड़	३६११	५२८	
९—मोजी परिहार के अधिकार की ...			२१
१०—नरपति की विदेशी सेना और खासपाटार्गा		२००	
११—गङ्गासिंह के अधिकार में ...	१५००	२००	... ४
१२—दुर्जनसिंह के अधिकार में ...	६००	३०	... ४
१३—अनोकासिंह (सिक्ख सामन्त)		३००	
१४—लाहौरीसिंह (सिक्ख सामन्त) ...		२५०	
१५—बुधसिंह (सिक्ख सामन्त) ...		२५०	
१६—अफगान सामन्त सुलतानखां और अहमदखां के साथ		...	
जोड़	५७११	१७५८	२९

राजा सूरतसिंह ने इन सब सेनाओं को एकत्रित करके अपने राज्य के दीवान के लड़के जैतराव मेहता को प्रधान सेनापति बनाया और वह सम्वत् १८५६ के माघ महीने में भावलपुर राज्य पर आक्रमण करने के लिए रवाना हुआ। सेनापति जैतराव ने अपनी राजधानी से चलकर कुनसर, पराजसर केली और रानेर होकर अनोहागढ़ पहुँच गया और वहां से चलकर शिवगढ़ और भोजगढ़ को पार करके फूलरा में मुक़ाम किया। ❀ हिन्दूसिंह नाम के एक भाटिया सरदार ने भोजगढ़ पहुँचकर उस पर अधिकार कर लिया और वहाँ के दुर्ग में पहुँचकर दुर्ग के अधिकारी मोहम्मद मासफ की सेना को पराजित किया और उसकी स्त्री को क़ैद करके उसने बीकानेर भेज दिया। उसके बाद पाँच हज़ार रुपये और चार हज़ार ऊँट लेकर उस स्त्री को छोड़ दिया गया। बीकानेर की सेना कई सप्ताह तक शिवगढ़, मोजगढ़ और फूलरा के दुर्गों को घेरे रही। इसके बाद विजयी होकर उस सेना ने वहाँ से एक लाख पच्चीस हज़ार रुपये, अनेक कीमती चीजें और नौ तोपें लेकर अधिकार में कर लीं।

भावलपुर राज्य की सीमा के निकटवर्ती स्थानों और नगरों पर आतंक पैदा करके बीकानेर की सेना सिन्धु नदी से तीन मील के फासिले पर खैरपुर पहुँच गयी। भावलपुर राज्य के जो सामन्त वहाँ के राजा से असंतुष्ट थे, वे भी जैतराव के साथ आकर मिल गये। भावलपुर के राजा, भावल खां ने बीकानेर की सेना को आगे बढ़ता हुआ देखकर युद्ध की परिस्थिति पर विचार किया। उसने इस अवसर पर बुद्धिमानी से काम लिया और अनेक प्रकार के प्रलोभनों के द्वारा उसने बीकानेर की सेना के सहायकों को तोड़ने की कोशिश की। उसने सेनापति जैतराव का बहुत सम्मान किया, जिससे प्रभावित होकर जैतराव ने भावलपुर राज्य के जीते हुए नगरों से अपना अधिकार हटा लिया और भावलपुर से लौटकर चला आया। इससे सूरतसिंह उससे बहुत अप्रसन्न हुआ और उसको

❀ भोजगढ़ का पुराना नाम कुल्लूर था और यह मरूभूमि के प्राचीन नगरों में एक नगर था, जो जोहिया की तरह प्रसिद्ध था।

जो सेनापति का पद दिया था , उसे उसने तोड़ दिया ।

बागोर के युद्ध में भाटिया लोग सूरत सिंह की सेना के साथ पराजित हो चुके थे । इसलिए दो वर्ष तक वे लोग युद्ध की तैयारी करते रहे । इसके बाद वे लोग सूरत सिंह को उसका बदला देने के लिए रवाना हुआ । बीकानेर राज्य के लोगों का जो असंतोष सूरत सिंह के सम्बन्ध में चल रहा था , उसे इन दिनों में सूरत सिंह ने खत्म कर दिया था । इसलिए उसको भाटी लोगों का कोई डर न हुआ और वह उनसे युद्ध करने के लिए अपनी सेना लेकर राजधानी से रवाना हुआ ।

भाटी लोगों के साथ बीकानेर की सेना ने फिर युद्ध किया और भयानक रक्तपात के बाद उसने भाटी लोगों को पराजित किया । इसके बाद भी सम्वत् १८६१ सन् १८०५ ईसवी तक भाटी लोग समय-समय पर सूरत सिंह से युद्ध करते रहे । अंत में बीकानेर की सेना ने भाटी लोगों की राजधानी भटनेर पर आक्रमण किया । वहाँ के राजा जाब्ताखाँ ने छै महीने तक युद्ध किया और अंत में उसने आत्म समर्पण कर दिया । सूरत सिंह ने भटनेर को अपने राज्य में मिला लिया और जाब्ताखाँ वहाँ से रहानियाँ नामक स्थान में जाकर रहने लगा ।

इन्हीं दिनों में मारवाड़ के सामन्त सवाई सिंह ने वहाँ के राजा मानसिंह को सिंहासन से उतारकर धौंकल सिंह को राज्याधिकारी बनाने की चेष्टा की थी और इसके लिए राजा जयपुर को तैयार किया । सवाई सिंह ने राजा सूरत सिंह से भी प्रार्थना की और सूरत सिंह ने अपनी सेना भेजकर मानसिंह के युद्ध में सवाई सिंह की सहायता की , इसका वर्णन मारवाड़ के इतिहास में किया जा चुका है ।

उस संघर्ष के दिनों में सूरत सिंह ने मारवाड़ के फलोदी नगर पर अधिकार कर लिया । परन्तु जब उसे धौंकल सिंह का पक्ष निर्बल मालूम हुआ तो वह अपनी राजधानी को लौट आया । उन्हीं दिनों में अपनी शक्तियाँ मजबूत बनाकर जब मानसिंह ने फालोदी पर फिर से अधिकार कर लिया, उस समय सूरत सिंह ने मानसिंह से मेल करके बहुत रुपये उसको भेंट में दिये ।

मानसिंह के विरुद्ध धौंकल सिंह का पक्ष लेकर सूरत सिंह ने अपनी बुद्धिमत्ता का परिचय नहीं दिया । इसीलिए उसको वहाँ से अपमानित होकर भागना पड़ा । इससे उसने बीकानेर के गौरव को क्षति पहुँचायी । अपने इस अपराध के बदले राज्य की लगभग पाँच वर्ष की आमदनी चौबीस लाख रुपये उसे मानसिंह को देने पड़े । इस क्षति और अपमान की पीड़ा से सूरत सिंह बीमार हो गया और उस बीमारी में उसका सेहत होना लोगों को असम्भव दिखायी देने लगा । किसी प्रकार उसे रोग से मुक्ति मिली और उसने एक तरह से नया जीवन प्राप्त किया ।

सूरत सिंह ने अपने राज्य की प्रजा पर लगातार कर के बोझ बढ़ाकर भयानक अत्याचार किये । वह स्वयं अपने इस अत्याचार को अनुभव करता था और अपने इन पापों से मुक्ति पाने के लिए उसने ब्राह्मणों और पुरोहितों को बहुत-सा धन दान में दिया था । इसके फलस्वरूप ब्राह्मण उसे हमेशा घेरे रहते थे और अपने आशीर्वादों से उसको प्रसन्न की चेष्टा करते थे ।

सूरत सिंह अपने खजाने के भरने के लिए एक तरफ प्रजा से उसके कष्टों को भूल कर लगातार कर वसूल करता था और दूसरी तरफ इस प्रकार के पाप से मुक्ति पाने के लिए वह ब्राह्मणों के बताये हुए विभिन्न प्रकार के दान करता था । वह स्वभावत: अत्याचारी और निष्ठुर था । भूरवर के सामन्तों ने अनेक कठिन अवसरों पर उसकी सहायता की थी । परन्तु उसने उनके उन उपकारों को भूला दिया । और उन सामन्तों का विनाश किया । बीकानेर राज्य के प्रधान सामन्त सीधमुख के नाहर सिंह , गुन्दाइल के गुमान सिंह और ज्ञानसिंह भी उसके द्वारा इसी प्रकार

मारे गये। सूरत सिंह ने चूरू पर तीसरी बार आक्रमण करके वहाँ के सामन्त को—जो विद्रोही हो रहे थे—अनुकूल बना लिया।

राजा सूरत सिंह के अप्रिय और कठोर शासन से बीकानेर राज्य को अनेक प्रकार की क्षति पहुँची। वहाँ की आर्थिक दशा खराब हो गयी और जन-संख्या में भी बहुत कमी आ गयी। राज्य के उत्तरी भाग के सामन्तों ने उसकी अधीनता को मंजूर न किया और भाटी लोगों की लूटमार बीकानेर के जाटों और किसानों पर धीरे-धीरे बढ़ने लगी। इससे भयभीत होकर राज्य के जाटों और किसानों ने भागकर अपने प्राणों की रक्षा करने का विचार किया। बहुत-से जाट, जो खेती का काम करते थे, राज्य से भाग गये और ईस्ट इण्डिया कम्पनी अधिकृत हांसी और हरियाना नामक स्थानों में जाकर रहने लगे। वहाँ पर उनको बड़ी शांति मिली। इन्हीं दिनों में ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने बहादुरखाँ के राज्य के कई नगरों पर अधिकार कर लिया था। उन नगरों के रहने वाले लूटमार करने के अधिक अभ्यासी थे। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के अधिकार में आ जाने के बाद वहाँ के लोग लूटमार करके बीकानेर को अधिक हानि पहुँचाने लगे।

बीकानेर के राजा की तरफ से जब इन लुटेरों को रोकने का कोई प्रबंध न हुआ तो राज्य के जाटों ने अपनी रक्षा करने लिए अपनी तैयारी की। उनके प्रत्येक ग्राम में मिट्टी का एक बहुत ऊँचा टीला तैयार किया गया और उस टीले रर एक पहरेदार रखा गया। वह पहरेदार जब लुटेरों को आता हुआ देखता तो वह अपने ऊँचे टीले पर से रखा हुआ ढोल बड़े जोर से बजाता उसको सुन कर ग्राम के सभी लोग लुटेरों से सावधान हो जाते। इस प्रकार का ढोल बजने पर कई ग्रामों के जाट एकत्रित होकर उन लुटेरों का सामना करते और मार कर भगा देते। उनका सामना करने के लिए सभी जाटों के पास भाले थे और अपनी रक्षा के लिए वे ढालें भी रखते थे।

बीदावाटी बीकानेर राज्य का एक प्रसिद्ध भाग था। उसमें बीदा वंशधर रहा करते थे। पहले यह लिखा जा चुका है कि मारवाड़ राज्य से बीका के निकलने के पहले उसका भाई बीदा अपनी प्राचीन राजधानी मंदोर से सेना के साथ निकला था। उसने सब से पहले मेवाड़ के गोडवाड राज्य पर आक्रमण किया। वहाँ पर राणा की शक्तिशाली सेना उसके साथ युद्ध करने के लिए आ गयी। इसलिए भयभीत होकर वह उस स्थान से उत्तर की तरफ चला गया और मोहिलों के एक नगर में पहुँचकर उसने मुकाम किया। कुछ लोगों की धारणा है कि मोहिल वंश यदुवंशी राजपूतों की एक शाखा है और कुछ लोगों का कहना है कि मोहिलों की एक स्वतंत्र जाति है।

जो कुछ हो, मोहिल लोगों के राजा की पदवी ठाकुर थी और वह एक सौ चवालीस ग्रामों तथा नगरों पर शासन करता था। वहाँ के संगठित मोहिल को पराजित करने का साहस बीदा को न हुआ। इसलिए अपनी सफलता के लिए उसने एक योजना तैयार की। बीदा ने मोहिलों राजा के साथ मारवाड़ की एक राजकुमारी के विवाह का प्रस्ताव किया। राठौर राजकुमारी के साथ विवाह करना मोहिल राजा के लिए अत्यन्त सम्मान पूर्ण था। इसलिए उसने उस प्रस्ताव को तुरंत स्वीकर कर लिया।

मोहिलों का राजा छापर नगर में रहता था। इसलिए मारवाड़ के राठौर विवाह करने के लिए राजकुमारी को छापर में ले आये। उसके साथ बहुत-सी डोलियाँ और बहलें आयीं। मोहिलों के राजा ने बड़े सम्मान के साथ उन सब को अपने दुर्ग में स्थान दिया। दुर्ग के भीतर पहुँचने पर डोलियों और बहलों से बहुत बड़ी संख्या में तलवारें लिए हुए राठौर सैनिक निकल पड़े और उन्होंने मोहिल के राजा पर आक्रमण किया।

उस दुर्ग में मोहिलों की जो सेना थी, उसके साथ बड़ी तेजी से मारकाट आरम्भ हो गयी। इसी समय राठौरों की एक सेना बाहर से आकर उस दुर्ग में पहुँच गयी। उसकी सहायता से बीदा ने वहाँ विजय प्राप्त की और उसने मोहिलों को अपनी अधीनता स्वीकार करने के लिए विवश किया। इस जीत के उपलक्ष में बीदा ने लाडनूँ नामक नगर और बारह ग्राम अपने पिता को दिये, जो अब तक मारवाड़ राज्य के अधिकार में हैं।

बीदा की मृत्यु के बाद उसके पुत्र तेजसिंह ने आपने पिता के नाम से वहाँ पर राजधानी बनवाई। इसके बाद के वंशज बीदावत के नाम से प्रसिद्ध हुए। बीदावत लोग साहसी और शूरवीर थे, बीकानेर के राजा ने उनसे कभी कर नहीं लिया। यहाँ की जमीन एक सी थी और खेती के लिए अत्यन्त उपयोगी थी। इसलिए वहाँ पर गेहूँ की पैदावार बहुत होती थी। उस समय के ग्रंथों से पता चलता है कि मोहिलों के समस्त नगरों और ग्रामों में चालीस हजार से लेकर पचास हजार आदमी तक रहते थे। इस आबादी का एक तिहाई भाग राठौरों का था। यह राज्य बारह भागों में विभाजित था और प्रत्येक भाग एक जागीर के रूप में था। उनमें पाँच जागीरों के सामन्त बहुत प्रसिद्ध थे। इस राज्य के आदि निवासी मोहिल लोग थे। जिनके परिवार वहाँ पर अब बीस से अधिक न रह गये। वहाँ की शेष जातियों में जाट कृषक और व्यावसायिक हैं।

अड़तालीसवाँ परिच्छेद

योरप के लोगों को बीकानेर की जानकारी-राज्य की परिस्थितियों में परिवर्तन-उसके कारण-शासन की क्रूरता-राज्य की पूर्व अवस्था-आर्थिक पतन-राज्य में लूट-मार-राज्य के बारह नगरों के घर और जन-जाटों की संख्या-राज्य की अन्य जातियाँ-राठौर राजपूत-राज्य की अन्य परिस्थितियाँ-खेती और वर्षा-नमक की झीलें-खानें और राज्य-व्यवस्था।

योरप के लोग बीकानेर की बहुत कम जानकारी रखते थे। वे इसे पूर्ण रूप से मरुभूमि समझते थे। राठौर राजपूतों के द्वारा आज से तीन सौ वर्ष पहले इस राज्य की प्रतिष्ठा हुई थी। उस समय इसकी जैसी हालत थी, वह अब नहीं रह गयी। पहले की अपेक्षा यह राज्य बहुत अवनत हो गया है। उन दिनों में बीकानेर राज्य की आबादी बहुत घनी और दूसरी बातों में भी यह राज्य उन्नत अवस्था में था। परन्तु उसकी वे अवस्थायें अब एक भी नहीं रह गयीं।

इस राज्य की प्राकृतिक अवस्था में भी बहुत परिवर्तन हो गया है। इसकी उपजाऊ भूमि में बालू की अधिकता हो गयी है। फिर भी यहाँ पर खेती के द्वारा जो अनाज पैदा होता है, उससे यहाँ के निवासियों के खाने पीने की कोई कमी नहीं रह सकती।

बीकानेर के राजा आवश्यकता पड़ने के समय दस हजार सैनिकों की सेना अपने अधिकार में कर लेते थे और उस सेना के खाने-पीने की पूरी व्यवस्था राज्य की पैदावार से ही होती थी। भूमि की उस पैदावार में भी कमी हो गई है। लेकिन राज्य की आवश्यकतायें उसके द्वारा पूरी

हो सकती थीं। परन्तु कई कारणों से उस पैदावार का लाभ राज्य के निवासी इन दिनों में नहीं उठा पाते।

बीकानेर के इस अभाव के दो प्रमुख कारण हैं। पहला कारण तो यह है कि शासक की निर्बलता में राज्य की चोरी और डकैती बहुत बहुत बढ़ गयी है। राज्य के बाहर की जातियाँ प्रायः संगठित होकर इस राज्य के निवासियों पर आक्रमण करती हैं और लोगों के घरों की सम्पत्ति के साथ-साथ उनका अनाज लूटकर ले जाती है। इस प्रकार की लूट राज्य में प्रायः होती रहती है। जिससे प्रजा खाने-पीने की चीजों और आर्थिक परिस्थितियों में लगातार गरीब होती जाती है। राज्य की तरफ से उसका कोई प्रबंध नहीं हो पाता।

प्रजा की बढ़ती हुई आर्थिक निर्बलता का दूसरा कारण राजा का क्रूर शासन है। प्रजा से अनावश्यक कर वसूल किये जाते हैं। इन करों के वसूल करने का राज्य में कोई विधान नहीं है। पुराने करों के अतिरिक्त राजा कभी भी कोई नया कर लगा सकता है और वह कर निर्दयता के साथ वसूल किया जाता है। इन दोनों कारणों से राज्य की आर्थिक परिस्थितियाँ दिन पर दिन निर्बल होती जाती हैं। एक तरफ खेती की पैदावार कम हो रही है, राज्य का वाणिज्य क्षीण होता जा रहा है और दूसरी तरफ राजा के कर और लुटेरों के अत्याचार बढ़ते जा रहे हैं।

इन कारणों का प्रभाव यह पड़ा है कि राज्य की पुरानी अवस्था तेजी के साथ बदल रही है। जन-संख्या लगातार कम हो रही है। तीन शताब्दी पहले राज्य के जो नगर और ग्राम जन-संख्या से भरे हुए दिखायी देते थे, वे बहुत कुछ पहले की अपेक्षा जनहीन हो गये हैं और न जाने कितने ग्राम अपने अस्तित्व खो चुके हैं। जो बाकी रह गये हैं, वे उत्तरोत्तर दीन और दुर्बल होते जाते हैं।

किसी समय इस राज्य में बहुत अच्छा व्यवसाय होता था और उस व्यवसाय से जो महसूल वसूल किया जाता था, उससे राज्य का खजाना सदा भरा रहता था। उस खजाने की दशा अब शोचनीय हो गयी है। जो खजानें राज्य के साधारण करों के द्वारा परिपूर्ण रहते थे, वे अनेक नये कर लगाये जाने के बाद भी अब खाली रहते हैं। राजा के ध्यान प्रजा की एवम् खजाने की इस दुरवस्था की तरफ नहीं है। वह आवश्यकता पड़ने पर प्रजा से उसी प्रकार रुपये वसूल करता है, जिस प्रकार कुओं से पानी भर लिया जाता है। इसका परिणाम यह हुआ है कि राज्य की शक्तियाँ निर्बल पड़ गयी हैं और प्रजा के कष्टों में अधिक वृद्धि हो गयी है।

बिकने के लिए जो चीजें राज्य में बाहर से आती थीं और जिनकी चुंगी से राज्य को अच्छी आमदनी होती थी, लुटेरों के भय से उनका आना बन्द हो गया है। इसके फलस्वरूप राज्य के व्यावसायिक नगर चूरू, राजगढ़ और रेनी आदि की बाजारें खाली पड़ी रहती हैं। इन बाजारों में सिंधु और गंगा के निकटवर्ती नगरों का बहुत-सा माल बिकने के लिए आया करता था, वह सब एक साथ बन्द हो गया है। इस प्रकार की हानि न केवल बीकानेर राज्य को पहुँची है, बल्कि जैसलमेर और पूर्वी सीमा के राज्यों की भी दशा इसी प्रकार की हो गयी है। बीकानेर की तरह उन राज्यों में लूटेरों के आतंक बढ़ गये हैं।

बीकानेर राज्य को बीदावत लोगों ने लूटमार करके क्षति पहुँचायी है, उसी प्रकार जैसलमेर को मालदेवोत और जयपुर को सेखावत लोगों ने लगातार लूट करके कमजोर बना दिया है। इन लुटेरों की संख्या बढ़ गयी है। मरुभूमि के पश्चिमी भाग के रहने वाले सराई, खोसा और राजड लोगों का यही व्यवसाय हो गया है। उनके झुण्ड के झुण्ड इधर-उधर घूमा करते हैं और जहाँ कहीं मौका पा जाते हैं, लूटकर भाग जाते है। इन लूटेरों की दशा अरेबिया के बेडूइन लोगों की तरह हो गयी है।

बीकानेर का विस्तार, उसकी भूमि और जन-संख्या—इस राज्य के पूगल से राजगढ़ तक सभी ग्राम और नगर पूर्वी ग्रामों और नगरों की अपेक्षा अधिक विशाल हैं। वे एक सौ अस्सी मील पक्की भूमि में फैले हुए हैं। उनकी चौड़ाई उत्तर से दक्षिण की तरफ है। भटनेर और महाजन इलाके के मध्यवर्ती ग्राम और नगर एक सौ साठ मील तक फैले हुए हैं। समस्त बीकानेर राज्य की भूमि लगभग बाईस सौ मील तक विस्तार रखती है। पहले किसी समय इस राज्य में दो हजार सात सौ नगर ग्राम थे। परन्तु इन दिनों में उनकी संख्या आधी से भी कम हो गयी है।

बीकानेर राज्य की जन-संख्या का यों तो कोई हिसाब हमारे सामने नहीं है। परन्तु उसके प्रधान बारह नगरों की जन-संख्या जो नीचे दी जा रही है, उसके आधार पर राज्य की जन-संख्या का अनुमान लगाया जा सकता है और वह अनुमान लगभग सही होना चाहिए। इसमें सन्देह करने की आवश्यकता नहीं है।

जैतपुर के पश्चिम की तरफ के ग्राम और नगर अधिक जन शून्य हो गये हैं और वहाँ से भटनेर तक के ग्रामों और नगरों की भी यही अवस्था है। उत्तर पूर्व के ग्रामों और नगरों की जन-संख्या बहुत कम है। राज्य के दूसरे भागों की जन-संख्या की भी यही व्यवस्था है। राज्य के मध्यवर्ती स्थानों की जन-संख्या साधारण है। वहाँ पर इस कमी का अधिक प्रभाव नहीं पड़ा। उत्तरी भाग के स्थानों की जन-संख्या भी ठीक है। राज्य के प्रमुख बारह नगरों के घरों की संख्या इस प्रकार है :

नगर		घरों की संख्या
१—बीकानेर	...	१२०००
२—नोहर	...	२५००
३—भादरॉ	...	२५००
४—नरैनी	...	१५००
५—राजगढ़	...	३०००
६—चूरू	...	३०००
७—महाजन	...	८००
८—जैतपुर	...	१०००
९—बीदासर	...	५००
१०—रत्नगढ़	...	१०००
११—देशमुख	...	१०००
१२—सनथाल	...	५०
	जोड़ ...	२८८५०

१०० ग्राम, प्रत्येक के घरों की संख्या	२००	...	२००००
१०० ,, ,, ,, ,,	१५०	...	१५०००
२०० ,, ,, ,, ,,	१००	...	२००००
८०० छोटे ग्राम ,, ,, ,,	३०	...	२४०००
		कुल जोड़ ...	१०७८५०

ऊपर लिखे हुए स्थानों के घरों की संख्या का उल्लेख किया गया है। यदि प्रत्येक घर में पाँच मनुष्यों का औसत रखा जाय तो ऊपर लिखे हुए समस्त घरों की जन-संख्या ५३६२५० होती है। राज्य की भूमि के हिसाब से प्रत्येक पच्चीस मनुष्यों के हिस्से में एक वर्ग मील की भूमि आती है। यहाँ के निवासियों में तीन चौथाई जाटों की संख्या है और राज्य के बाकी लोग बीका के वंशज हैं। राज्य में सारस्वत ब्राह्मण, चारण कवि और कुछ अन्य जातियाँ रहती हैं। उनकी संख्या राजपूतों की संख्या का दशांस भी नहीं है।

जाट लोग—बीकानेर राज्य में, जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है, जाटों की संख्या बहुत अधिक है और वे अन्य लोगों की अपेक्षा अधिक सम्पत्तिशाली हैं। उनके अधिकार में राज्य की अधिक भूमि भी है। परन्तु वे बड़ी गरीबी के साथ रहते हैं। विवाह जैसे कार्यों में वे आवश्यकता से अधिक व्यय करते हैं। उनमें आतिथ्य सत्कार की भावना विशेष रूप से पायी जाती है। मार्ग में चलने वाले यात्रियों को भी बुलाकर भोजन कराने में वे अपना गौरव अनुभव करते है।

सारस्वत ब्राह्मण—इस राज्य में सारस्वत ब्राह्मणों की अधिक संख्या हैं। वे गर्व के साथ अब भी कहा करते हैं कि मरुभूमि में जाटों के आने के पहले हमारे पूर्वज यहाँ के राजा थे। वे स्वभावतः परिश्रमशील और शांतप्रिय देखे जाते हैं। ये लोग माँस खाते है, तम्बाकू का सेवन करते हैं और खेती के साथ-साथ अधिक संख्या में गायें रखते हैं।

चारण लोग—बीकानेर में चारण लोगों का सम्मान अधिक होता है। ये लोग अपनी कविताओं में राजपूतों के शौर्य का वर्णन करते है। यही कारण है कि राठौर लोग उनकी कविताओं को सुनकर बहुत प्रसन्न होते हैं। राज्य की तरफ से जीवन-निर्वाह के लिए इन लोगों को भूमि दी जाती है। जैसलमेर के इतिहास में चारण कवियों का वर्णन विस्तार में किया गया है।

प्रत्येक राजपूत परिवार में माली और नाई काम करते हुए देखे जाते हैं। उनकी संख्या प्रत्येक ग्राम में है। यहाँ के राजपूतों के घरों पर यही लोग भोजन बनाने का भी प्रायः काम करते हैं।

चूहड़ और थोरी—ये दोनों वास्तव में लुटेरों की जातियाँ है। चूहड़ लोग लक्खी जगल के और थोरी लोग मेवाड़ के रहने वाले है। बीकानेर के सामन्तों के यहाँ इन दोनों जातियों के लोग वेतन लेकर काम करते है। ये लोग भयानक कार्यों के सामने भी कभी भयभीत नहीं होते। भादराँ के सामन्तों के यहाँ नौकरों में इन दोनों जातियों के लोगों की संख्या अधिक थी। लोगों का विश्वास है कि चूड़ह लोग बहुत विश्वासी होते हैं। इसलिए सीमा और नगर की रक्षा का भार प्रायः उनके हाथों में दिया जाता है। शव-दाह के समय ये लोग एक-एक आना सभी से अपनी दस्तूरी लेते हैं। इससे जाहिर होता है कि इस प्रकार दस्तूरी लेने की प्रथा प्राचीन-काल में उनके पूर्वजों में थी।

राजपूत—इस राज्य में अनेक परिवर्तन होने के बाद भी बीकानेर के राठौरों की वीरता में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। भारत की अन्य शूरवीर जातियों मै इन राठौरों का स्थान अत्यन्त गौरवपूर्ण माना जाता है। मारवाड़, आमेर और मेवाड़ के राजपूतों की तरह बीकानेर के राठौर पर मराठा और पठान अत्याचार नहीं कर सके। लेकिन उनको अपने ही राज्य की क्रूरता से अत्याचारों को अधिक सहना पड़ा है।

राठौर राजपूत खाने-पीने के सम्बन्ध में बहुत पुराने विचारों के पक्षपाती नहीं है। वे लोग जिसके हाथ का पानी पाते हैं, उसके हाथ का भोजन भी करते हैं। ये लोग जन्म से ही साहसी, धैर्यशील, सरल स्वभाव और शूरवीर होते हैं। अफीम, गाँजा और दूसरी मादक चीजों का

का सेवन करने के कारण इन लोगों ने अपनी शारीरिक शक्तियों का क्षय किया है।

प्राकृतिक अवस्था—कुछ स्थानों को छोड़ कर राज्य के लगभग सभी स्थानों की भूमि में बालू अधिक पायी जाती है— कहीं कम और कहीं अधिक। पूर्व से लेकर पश्चिमी सीमा तक सभी ग्रामों और नगरों की भूमि रेतीली है। उत्तरी और पूर्वी भाग में राजगढ़ से नोहर और रावतसर तक की मिट्टी उत्तम श्रेणी की पायी जाती है। उस मिट्टी का रंग काला है। कहीं-कहीं उसमें रेती का अंश भी देखा जाता है। यह मिट्टी खेती के लिए उपयोगी है। इसीलिए उस भूमि में गेहूँ, चना और चावल की अधिक पैदावार होती है। भटनेर से गारा के नजदीक तक की मिट्टी भी अच्छी पायी जाती है। मोहिलों के ग्रामों और नगरों की भूमि अधिक रेतीली है। बरसात का पानी वहाँ पर चारों तरफ से भर जाता है, जिससे खेतों की आबपाशी करने में बड़ी सहायता मिलती है। मेवाड़ और मारवाड़ की अपेक्षा इस राज्य में जो बाजरा पैदा होता है, वह अधिक अच्छा समझा जाता है। तिल और सोठ की पैदावार भी यहाँ अच्छी होती है।

जो मिट्टी गेहूँ के लिए उपयोगी होती है, उसमें कपास भी अधिक पैदा होती है। एक बार की बोई हुई कपास सात-सात और कभी-कभी दस-दस वर्ष तक बराबर फलती है। कपास के फलों को निकाल लेने के बाद कृषक लोग उनके वृक्षों को शाखाओं के नीचे से आधा काट डालते हैं। उन वृक्षों के नीचे का भाग जो रह जाता है, वह फिर बढ़ता है और पूरे आकार में पहुँचकर फलता है। बीकानेर में रुई की पैदावार अधिक होती है।

इस राज्य में शाक-सब्जी भी अधिक पैदा होती है। ज्वार, कचरी, ककड़ी और बड़े-बड़े तरबूज पैदा होते हैं। जल की कम वृष्टि का प्रभाव इन चीजों की पैदावार में नहीं पड़ता। सूखे तरबूजों का आटा स्वास्थ्य के लिए उपयोगी माना जाता है। भारत के अन्य प्रान्तों की अपेक्षा बीकानेर के तरबूज स्वादिष्ट और उत्तम माने जाते हैं।

इस राज्य की खेती वर्षा पर निर्भर है। यहाँ पर दुर्भिक्ष का भय प्रायः बना रहता है। इसलिए यहाँ के निवासी यथा-सम्भव खाने के पदार्थों को अपने यहाँ संग्रह करके रखते हैं। ऐसे अवसरों पर गरीब लोग प्रायः भुरुट, बूट, हिरारू आदि के फलों को सुखाकर और उनका आटा बनाकर बाजरे के आटे के साथ मिलाकर खाते हैं। छोटी श्रेणी के लोग बनबेर, खैर और करीट आदि फलों का अपने यहाँ संग्रह करते हैं। कुछ और भी ऐसी चीजें हैं जो एकत्रित करके रखी जाती हैं और दूसरे अनाजों के अभावों में वे खाने में प्रयोग की जाती हैं।

यहाँ की रेतीली भूमि में बड़े वृक्ष नहीं पाये जाते। राज्य के प्रमुख स्थानों में आम की तरह के वृक्षों को लगाने की कोशिश की जाती है। परन्तु बबूल, पीलू, और जाल नाम के छोटे-छोटे वृक्ष यहाँ अधिक पैदा होते हैं। सेटुडा नाम का एक वृक्ष यहाँ पाया जाता है, उसकी ऊँचाई लगभग बीस फुट के होती है। नीम के वृक्ष भी यहाँ पाये जाते हैं। सक नाम का वृक्ष यहाँ अधिक उपयोगी समझा जाता है। लोग उसे कुए के चारों ओर उसका घेरा बना देते हैं, जिससे कुए में रेती न जा सके।

बीकानेर राज्य में आक के वृक्ष बहुत पाये जाते हैं। वे बड़े और मजबूत भी होते हैं। उनकी जड़ों से जो रस्सियाँ बनायी जाती हैं, वे बड़े काम की और मजबूत साबित होती हैं और वे मूँज की रस्सियों से अच्छी समझी जाती हैं। बीदावाटी में सन और मूँज भी पैदा होती है।

खेती के यंत्र—यहाँ पर हल के द्वारा खेती होती है। बैलों और ऊँटों के द्वारा हल जोते जाते हैं। दो बैलों अथवा ऊँटों से हल माली लोग उस दशा में चलाते हैं, जब मिट्टी अधिक कड़ी होती है।

जल—यहाँ की भूमि में जल बहुत गहराई में मिलता है। बीकानेर की राजधानी के पास के स्थानों में दो सौ और कहीं तीन सौ फुट जमीन खोदने पर जल निकलता है। यहाँ पर ऐसा कोई स्थान नहीं है, जहाँ साठ फुट खोदने के पहले पीने का पानी निकल सके। तीस फुट खोदने के बाद जो पानी निकलता है, वह पशुओं के पीने के लायक होता है। प्रत्येक कुएँ के आस-पास एक नामक वृक्ष की दीवार बँधी रहती है। इसका घेरा बालू को कुएँ में जाने से रोकता है। राज्य के सभी प्रधान नगरों में माली लोग जल बेचने का कार्य करते हैं। लोगों के घरों पर हौज बने होते हैं। उनमें बरसात का पानी भरकर इकट्ठा हो जाता है। ये हौज ईंटों और पत्थरों से बनाये जाते हैं। उनके ऊपर हवा जाने का एक मार्ग खुला रहता है। इनमें से कुछ हौज बहुत बड़े होते हैं। इनका पानी आठ महीने तक और कभी-कभी बारह महीने तक उपयोग में लाने के लिए अच्छा बना रहता है। बीकानेर में जल का बहुत अभाव होने के कारण वहाँ के लोगों को इस प्रकार के प्रबन्ध करने पड़ते हैं।

नमक की झीलें—यहाँ पर नमक की जो झीलें हैं, वे एक में मिलकर सिर झील के नाम से प्रसिद्ध हो गयी हैं। मारवाड़ की झीलों की तरह यहाँ की कोई भी झील बड़ी और विशाल नहीं है। सिर झील के तट पर सिर नाम का एक विशाल नगर बसा हुआ है। उसका नाम यहाँ की बड़ी झील के नाम से रखा गया है।

इस राज्य की सिर झील की लम्बाई और चौड़ाई प्रायः छै मील की समझी जाती है। दूसरी नमक की झील लम्बाई और चौड़ाई में दो मील की है और वह चौपूर के पास है। ये दोनों झीलें कहीं पर भी पाँच फुट से अधिक गहरी नहीं है। गरमी के दिनों में इन झीलों का नमक अपने आप जल के ऊपर आ जाता है और वह जमी हुई सूरत में लोगों को मिलता है। इन दोनों झीलों का नमक राज्य की दक्षिणी झील से हलका होता है और इसीलिए वह सस्ता भी बिकता है।

खनिज पदार्थ—इस राज्य में खनिज पदार्थों की पैदावार बहुत कम है। राज्य के कई भागों में अच्छे पत्थर की खानें हैं। राजधानी से छब्बीस मील की दूरी पर उत्तर-पश्चिम की तरफ पूसियारा नाम की एक खान है। × बीदासर और बिरामसर में ताबें की खानें हैं। लेकिन बिरामसर की खान से कोई लाभ नहीं होता। क्योंकि उससे जो ताँबा निकलता है, वह खर्च को भी पूरा नहीं करता। बीदासर की खानों से तीस वर्ष तक ताँबा निकालने का काम किया गया है। परन्तु अब वह बंद है।

बीकानेर में कोलाद नाम का एक स्थान है। उसके करीब की एक खान से तेल से भीगी हुई मिट्टी निकलती है। वह बिकने के लिए दूसरे देशों और राज्यों में भेजी जाती है। इस मिट्टी से शरीर और बालों की सफ़ाई होती है। कहा जाता है कि इस मिट्टी के प्रयोग से शरीर की सुन्दरता बढ़ती है। राज्य को इस मिट्टी से पन्द्रह सौ रुपये की आमदनी होती है।

राज्य के पशु—यहाँ की गायें श्रेष्ठ मानी जाती हैं। ऊँट बोझ लादने और युद्ध में सवारी का काम देते हैं। भारतवर्ष के अन्यान्य स्थानों की अपेक्षा यहाँ के ऊँट अधिक उपयोगी समझे जाते हैं। इसीलिए उनकी कीमत भी अधिक होती है। इस राज्य में भेड़ों की संख्या बहुत है। नीलगाय और हिरण भी यहाँ बहुत मिलते हैं। बीकानेर के जंगलों में शेर पाये जाते हैं। भैंसों, बकरियों और गायों के दूध से घी अधिक मात्रा में तैयार होता है। उसकी बिक्री करके यहाँ के लोग बहुत लाभ उठाते हैं।

× पूसियारा नामक खान से राज्य को प्रत्येक वर्ष दो हजार रुपये की आमदनी होती है।

लोहे की चीजें—लोहे की बनी हुई चीजें बीकानेर की बहुत प्रसिद्ध हैं। राज्य के प्रमुख नगरों में लोहे के कारखानें हैं। उनमें छोटी-बड़ी चाकुओं से लेकर तलवारें, भाले और बन्दूकें तैयार की जाती हैं। यहाँ के कारीगर हाथी दाँत की बहुत-सी चीजें तैयार करते हैं। वे स्त्रियों के लिए उनकी चूड़ियाँ और कड़े भी बनाते हैं।

राज्य में साधारण श्रेणी का कपड़ा भी तैयार होता है, जो स्त्रियों और पुरुषों के पहनने में काम आता है।

मेले—कोलाद और गजनेर नामक नगरों में मेले लगते हैं। कार्तिक और फाल्गुण के महीनों में ये मेले वर्ष में दो बार हुआ करते हैं। उनमें अनेक प्रकार के व्यवसायी आते हैं और छोटी-मोटी बहुत-सी चीजों के सिवा ऊँटों, गायों के साथ-साथ मुलतान और लक्खी जङ्गल के प्रसिद्ध घोड़े बिकते हैं। राज्य के ये मेले पहले बहुत प्रसिद्ध थे। लेकिन उनके वे गौरव अब नहीं रह गये।

राज्य के कर—बीकानेर में पहले कई प्रकार के कर वसूल किये जाते थे। परन्तु उनमे भूमि का कर, खेती का कर और अपराधियों से लिया जाने वाला कर—इस प्रकार राज्य के तीन कर प्रमुख थे और उनसे राजा को पाँच लाख रुपये से अधिक की आमदनी नहीं होती थी। बीकानेर के सामन्तों के अधिकार में अन्य राज्यों के सामन्तों की अपेक्षा अधिक भूमि है। इसका कारण यह है कि बीदावत और कांधलोत लोगों ने अपने अधिकार की भूमि पर स्वतंत्र शासन कर रखा था। उन दोनों वंशों के अधिकारों की भूमि को यदि एक में मिला दिया जाय तो वह मिली हुई भूमि बीकानेर राज्य की शेष सम्पूर्ण भूमि से अधिक हो जाती है। इन दोनों वंशों ने बीकानेर के राजा को कर कभी नहीं दिया। केवल सम्मान के लिए वे लोग राजा का गौरव स्वीकार करते थे। राजगढ़, रेनी, नोहर, गारा, रत्नगढ़ और चूरू की भूमि राजा के अधिकार में है। चूरू का अधिकार अभी थोड़े दिन पहले राजा के हाथ में आया है।

राज्य में छै प्रकार के कर वसूल किये जाते हैं—(१) खालसा भूमि कर (२) धुआँ का कर (३) अंग कर (४) चुंगी और यातायात का कर (५) कृषि का कर और (६) मालबा का कर।

१—खालसा भूमि के कर से राज्य को पहले दो लाख रुपये वार्षिक की आमदनी होती थी। परन्तु अच्छे शासन के अभाव में राज्य के कितने ही नगर और ग्राम बरबाद हो गये हैं। खालसा भूमि के ग्रामों की संख्या पहले दो सौ थी। परन्तु अब उनकी संख्या अस्सी से अधिक नहीं है और इन अस्सी ग्रामों से राजा को जो आय होती है, वह एक लाख रुपये से अधिक नहीं होती। इस हानि का बहुत-कुछ कारण राजा सूरत सिंह था। उसने राज्य की भूमि लोगों को देने में बुद्धि से काम नहीं लिया। किसको देना चाहिए और किसको नहीं—कितनी भूमि देना चाहिए और कितनी न देना चाहिए, इसका विचार सूरत सिंह ने कभी नहीं किया। जिसको जितनी भूमि देनी चाही, उसको उतनी दे दी। इसका परिणाम यह हुआ कि राज्य की दूसरी भूमि की आमदनी मारी गयी और राजा के अधिकार में केवल खालसा भूमि रह गयी। इस आमदनी घट जाने के कारण खजाने की कमी को वह प्रजा से मनमानी धन लेकर पूरा करता रहा।

२—धुआँ कर—यह कर वास्तव में चूल्हा कर है। प्रत्येक घर में रसोई बनती है और खाना पकाया जाता है। घरों में धुआँ निकलने के लिए धुआँरे नहीं होते। इसलिए सूरत सिंह के

शासनकाल में यह कर लगाया गया और प्रत्येक घर अथवा परिवार से इस कर का एक रुपया वसूल किया जाता था। इस कर के पहले अन्य करों से जो रुपये वसूल होते थे, वे कम न थे। प्रत्येक प्रधान सामन्त को इस कर के पहले लगभग एक लाख रुपये की आमदनी होती थी। फिर भी यह कर लगाया गया था। यह कर केवल जैसलमेर और बीकानेर के राज्यों में वसूल किये जाते हैं।

३—अंग कर—यह एक प्रकार का शरीरिक कर है, जो प्रत्येक शरीर पर वसूल किया जाता है। राजा अनूप सिंह ने यह कर प्रचलित किया था। इस कर में प्रत्येक स्त्री-पुरुष से चार आने के हिसाब से वसूल किया जाता जाता है। इस कर में गायें, बैल और भैंसे भी शामिल हैं। उन पर भी यह कर लगता है। दस बकरियों का कर एक भैंस के कर के बराबर होता है। प्रत्येक ऊँट पर इस कर का एक रुपया लगता है। राजा गजसिंह ने इस कर को दो गुना कर दिया था। इस कर में प्राय: कमती और बढ़ती होती रही है। राज्य को इसके द्वारा दो लाख रुपये की आमदनी होती है।

४—यातायात अथवा वाणिज्य कर—इस कर में प्राय: परिवर्तन हो जाता है। राजा सूरत सिंह के शासन काल में इस कर की आमदनी बहुत कम हो गयी थी। प्राचीन काल में केवल राजधानी से इस कर की जो आमदनी होती थी, उतनी इन दिनों में पूरे राज्य से भी नहीं होती। पहले इस कर से राज्य को दो लाख रुपये मिलते थे। परन्तु आजकल जो आमदनी होती है, वह एक लाख रुपया भी नहीं है। लुटेरों के अत्याचारों के कारण राज्य के वाणिज्य को बहुत आघात पहुँचा है और उसी से वाणिज्य कर की आमदनी बहुत घट गयी है। मुलतान, भावलपुर और शिकारपुर से जो व्यवसायी बीकानेर होकर पूर्व के नगरों और राज्यों को जाते थे, लुटेरों के भय के कारण उनका राज्य में आना बन्द हो गया है।

५—कृषि कर—यह कर खेती का काम करने वालों पर लगता है और प्रत्येक हल पर पांच रुपये वसूल किये जाते हैं। प्राचीन काल में इस कर में किसानों से अनाज लिया जाता था। खेतों की पैदावार का एक चौथाई अनाज राजा ले लेता था। राजा रायसिंह ने इस व्यवस्था में परिवर्तन किया। परिवर्तन का कारण यह था कि पहले किसानों से जो एक चौथाई अनाज वसूल किया जाता था, उसमें राज्य के कर्मचारी बड़ी बेईमानी करते थे, और किसानों को बहुत क्षति उठानी पड़ती थी। राजा रायसिंह के द्वारा इस कर में परिवर्तन होने से राज्य के कर्मचारियों को पहले की तरह बेईमानी करने का मौका न रहा। इससे जाट लोग बहुत प्रसन्न हुए। इस कर से राज्य को पहले दो लाख रुपये की आमदनी होती थी, बीकानेर की खेती लगातार अवनत होती जा रही थी। इसलिए इसके द्वारा एक लाख पच्चीस हजार रुपये की आमदनी होने लगी। इस कमी का बहुत-कुछ कारण राज्य में फैली हुई अशान्ति थी अब उस अवस्था में परिवर्तन हो गया है। इसलिए राज्य की आमदनी भी बढ़ना चाहिए।

६—मालबा—माल शब्द का अर्थ भूमि है। बीकानेर में भूमि का जो कर लिया जाता है, वह मालबा कर के नाम से प्रसिद्ध है। यह कर वह है जिसे जाटों ने बीका के सम्मुख आत्म समर्पण करके देना स्वीकार किया था। वह कर बीका के बाद उसके उत्तराधिकारियों में अब तक चला आता है और बीकानेर के राजा उसे बराबर वसूल करते हैं। राज्य की प्रत्येक सौ बीघा पृथ्वी पर इस कर के दो रुपये लिये जाते हैं। इन दिनों में राज्य को इससे जो आमदनी होती है, वह पचास हजार रुपये से भी कम है। करों के द्वारा राज्य की आमदनी का विवरण इस प्रकार है :

१—खालसा ×	...	१००००० रुपये
२—धुम्रांकर	...	१००००० "
३—अंगकर	..	२००००० "
४—वाणिज्य कर ÷	...	७५००० "
५—कृषिकर	...	१२५००० "
६—मालवा	...	५०००० "
	जोड़	६५०००० रुपये

बीकानेर राज्य में धातुई नाम का भी एक कर लगता है। वह तीन वर्ष में एक बार वसूल किया जाता है और एक हल पर पाँच रुपये देने पड़ते हैं। राजा जोरावर सिंह ने यह कर प्रचलित किया था। एसिया गाटी के पचास ग्रामों और बेनीपाल के सत्तर ग्रामों को छोड़कर शेष सम्पूर्ण राज्य को यह कर देना पड़ता है। जिन ग्रामों से यह कर नहीं लिया जाता, उसका कारण यह है कि उन ग्रामों के निवासी राज्य की सीमा की रक्षा का कार्य करते हैं। इस कर से प्रधान सामन्तों को मुक्त रखा गया है। इस करके द्वारा राज्य की आमदनी एक लाख रुपये से भी कम होती है।

ऊपर जिन करों का वर्णन किया गया है, राजा सूरत सिंह ने उनके अतिरिक्त राज्य में नये कर लगाकर अपने शासन काल में रुपये वसूल किये थे। उन दिनों में राज कर्मचारी प्रजा के साथ भयानक अत्याचार करते थे और मनमानी धन वसूल करते थे। राजा सूरत सिंह के समय इस कर की आमदनी दो गुनी हो गयी थी।

× नोहर जिले के	...	८४ ग्रामों का कर	...	१००००० रुपये
रेनी "	...	२४ "	...	१०००० "
रागिथाँ "	...	४४ "	...	२०००० "
जालोली "	...	१ "	...	५००० "
(राजगढ़, चूरू आदि के मिल जाने पर) खालसा भूमि का कर			जोड़	१३५००० रुपये

÷ प्राचीन काल के वाणिज्य कर का विवरण नीचे दिया जाता है :

लूनकरण नगर	...	...	...	२००० रुपये
राजगढ़ "	...	...	...	१०००० "
शेखसर "	...	...	...	५००० "
राजधानी बीकानेर	...	...	...	७५००० "
चूरू और दूसरे नगर		...	...	४५००० "
				१३७००० रुपये

दण्ड और खुशहाली—इन दोनों नामों पर भी कर वसूल किये जाते थे। अपराधियों से जो दण्ड लिया जाता था, वह दण्ड कर कहलाता था और आवश्यकता पड़ने पर प्रजा से जो कर माँग कर वसूल किया जाता था, उसे खुशहाली कहा जाता था। यह कर सामन्तों, व्यवसायियों और सम्पत्तिशालियों से लेकर साधारण प्रजा तक वसूल किया जाता था।

दण्ड कर वसूल करने के लिए राज्य की तरफ से चौदह कर्मचारी थे। ये कर्मचारी राज्य के प्रमुख नगरों में रहा करते थे। अपराधी पर जो दण्ड दिया जाता था, उसका आदेश राज्य के यही कर्मचारी करते थे और जुर्माना करने के बाद यही लोग उसको वसूल भी करते थे। अपराधियों को दण्ड देने के लिए कोई विधान न था। प्रत्येक कर्मचारी, जो राज्य की तरफ से अपराधों का निर्णय करने के लिए नियुक्त होता था, अपनी इच्छानुसार अपराधी को दण्ड की आज्ञा देता था। यह न्यायोचित न था। इसीलिए गान्धोली के सामन्तों ने राज्य के इन कर्मचारियों का विरोध किया और अपने नगर से निकाल दिया था।

राजा सूरत सिंह ने भटनेर पर विजय प्राप्त करके युद्ध के खर्च के लिए खुशहाली करके नाम पर राज्य के प्रत्येक परिवार से दस रुपये वसूल करने के लिए आदेश दिया और ये रुपये कठोर अत्याचारों के साथ प्रजा से वसूल किये गये थे। बीकानेर में राजा की तरफ से इस प्रकार के जो कर लगते थे और जिनका प्रचार अब तक है, वे खुशहाली कर के नाम से प्रसिद्ध हैं। इस नाम से तो जाहिर यह होता है कि इस कर के रुपये प्रजा को खुश करके वसूल किये जाते हैं। इसीलिए इस कर का नाम खुशहाली कर है। परन्तु किस प्रकार के अत्याचारों के साथ राज्य के कर्मचारी प्रजा से इस कर के रुपये वसूल करते हैं, इसका अनुभव राज्य की उस प्रजा को ही है, जिसे राज्य के अत्याचारों का सामना करना पड़ता हैं।

सामन्तों की सेनायें—राजा के व्यवहार और चरित्र पर सामन्तों की सेनायें निर्भर होती हैं। यदि सूरत सिंह में प्रजा की भक्ति का भाव होता और उसने किसी भी विपद के समय राज्य और प्रजा की रक्षा करना अपना कर्त्तव्य समझा होता तो बीकानेर के सामन्त किसी भी समय बाहरी शक्ति के आक्रमण करने पर दस हजार राजपूतों की सेना लेकर राजा की सहायता कर सकते थे और सामन्तों के द्वारा आने वाली राजपूतों की सेना में बारह सौ अश्वारोही राजपूत होते। यह बात जरूर है कि इन दिनों में राज्य की राजनीतिक और आर्थिक परिस्थितियाँ बहुत निर्बल हो गयी थीं। इसलिए इन दिनों में सामन्तों के द्वारा आने वाली राजपूत सेना की उतनी सम्भावना नहीं हो सकती। इन दिनों में राजा के अधिकार में जो सेना है, उसमें एक सेना, जो विदेशी कही जाती है, पाँच सौ पैदल, ढाई सौ अश्वारोही और पाँच बन्दूकें रखती है। इस सेना का सेनापति भी बीकानेर राज्य की राजधानी के दुर्ग की रक्षा के लिए एक राजपूत सेना बराबर रहती है। उस सेना को वेतन देने के लिए पच्चीस ग्राम राज्य की तरफ से अलग कर दिये गये हैं।

राजा सूरत सिंह के समय बाहरी सेनायें

	अश्वारोही	पैदल	बन्दूकें
सुलतान खाँ	...	२००	...
अनोखेसिंह सिक्ख	...	२५०	...
बुधसिंह देवड़ा	...	२००	...

दुर्जन सिंह	७००	४	४
गंगासिंह	१०००	२५	६
जोड़	१७००	६७९	१०
बन्दूकें	...	...	२१
	१७००	६७९	३१

बीकानेर के प्राचीन सामन्तों के विवरण

सामन्त	वंश	निवास	आमदनी	पैदल सेना	अश्वारोही	विवरण
बैरीशाल	बीका	महाजन	४००००	५०००	१००	
अभय सिंह	बेनीरोत	भूकरका	२५०००	५०००	२००	बीकानेर का प्रधान सामन्त
अनूप सिंह	बीका	जसाना	५०००	४००	४०	
प्रेमसिंह	”	बाई	५०००	४००	२५	
चैनसिंह	बेनीरोत	सावा	२००००	२०००	३००	
हिम्मत सिंह	रावोत	रावतसर	२००००	२०००	३००	
शिव सिंह	बेनीरोत	चूरू	२५०००	२०००	२००	
उमेद सिंह	बीदावत	बीदासर	५००००	१००००	२०००	
जैतसिंह		साउनदवा				
बहादुर सिंह	नारनोत	मैमनसर	४००००	४०००	५००	
सूर्यमल		तिनदीसर				
गुमान सिंह		काटर				
अताई सिंह		कुटचौर				
शेरसिंह		निम्बाजी	५०००	५००	१२५	
देवीसिंह	नारनोत	सोधमुख	२००००	५०००	४००	
उम्मेद सिंह		कारीपुरा				
सुरतान सिह		अनोतपुरा				
करणीदान		बिपासर				
सुरतान सिंह	कछवाहा	नयनावास	४०००	१५०	३०	
पद्मसिंह	पवाँर	जैसीसर	५०००	२००	१००	ये दोनों सामन्त राज्य से बाहर के हैं। एक जयपुर का और दूसरा प्रमार वंश का। भाटियों के पूगल पर अधिकार कर लिया।
किशन सिंह	बीका	हैदेसर	५०००	२००	५०	
रावसिंह	भाटी	पूगल	६०००	१५००	४०	
सुरतान सिंह	”	राजासर	१५००	२००	५०	
लखनेर सिंह	”	सनेर	२०००	४००	७५	
करणी सिंह	”	सतीसर	११००	२००	६	
भूमसिंह	”	चक्करा	१५००	६०	४	
बीका के प्रारम्भिक चार सामन्त :						
१—भावनी सिंह	भाटी	बिचनोक	१५००	६०	६	
२—जालिम सिंह	”	गुरियाला	११००	४०	४	

समान्त	वंश	निवास	आमदनी	पैदल सेना	अश्वारोही	विवरण
३—सरदार सिंह	भाटी	सुरजीरा	८००	३०	२	
४—कायम सिंह	"	रनदीसर	६००	३२	२	
चन्दसिंह	करमसोत	नोरवा	११०००	१५००	५००	ग्यारह वर्ष पूर्व जोधपुर से २७ ग्राम पाकर यहाँ रहने लगा।
सतीदान	रूपावत	बादीला	५०००	२००	२५	
भूमसिंह	भाटी	जांगलू	२५००	४००	६	
केतसी	"	जामिनसर	१५०००	५००	१५०	२७ ग्राम
ईश्वरी सिंह	मण्डला	सारोंदा	११०००	२००	१५०	
पद्मसिंह	भाटी	कूंदसू	१५००	६०	२	
कल्याण सिंह	"	नैनिया	१०००	४०	४	
		जोड़	३३२१००	४२२७२	५४०२	

ऊपर लिखी हुई बीकानेर राज्य के सामन्तों की नामावली उस समय की है, जब राज्य अपने गौरव पर था। लेकिन उसकी राजनीतिक और आर्थिक परिस्थितियों के पतन के साथ-साथ, राज्य के सामन्तों की संख्या और अवस्था भी बदलती गयी।

उनचासवाँ परिच्छेद

जाटों का प्रसिद्ध स्थान भटनेर—जाटों की मर्यादा—भटनेर पर तैमूर का आक्रमण—लगातार संघर्ष—भटनेर का राजा बैरसी—उसके बाद का भटनेर—भटनेर पर राजा सूरत सिंह का आक्रमण।

भटनेर, जो इस समय बीकानेर का एक महत्वपूर्ण अंग है और जिसके द्वारा इस राज्य के विस्तार की वृद्धि हुई है, किसी समय जाटों का प्रसिद्ध निवास-स्थान था। वे जाट उस समय इतने शक्तिशाली थे कि वे अपने राजा के साथ भी युद्ध करने के लिए कभी-कभी तैयार हो जाते थे और राजा पर जब कोई आक्रमण करता था तो वे अपनी पूरी शक्ति के साथ राजा की सहायता करते थे। इसका भटनेर नाम इस बात को जाहिर करता है कि राज्य का सम्बन्ध भाटी लोगों के साथ हुआ। कुछ पुरानी खोजो से पता चलता है कि एक शक्तिशाली राजा ने इस राज्य की प्रतिष्ठा की थी। भटनेर भाट शब्द से बना है। इसलिए जाहिर है कि प्राचीन काल में भाटी जाति ने यहाँ पर अपना राज्य कायम किया था और इसका नाम भटनेर रखा। जैसलमेर के इतिहास में इसके सम्बन्ध में अधिक आलोचना की गयी है।

भटनेर राज्य के उत्तरी भाग की भूमि जो गाडा नदी के किनारे तक चली गयी है, इन दिनों में जन-शून्य हो रही है परन्तु प्राचीन काल में उसकी कुछ और ही दशा थी। उन दिनों में भटनेर का इलाका बहुत गौरवपूर्ण मना जाता था। भारतवर्ष में भटनेर एक प्रसिद्ध ऐतहासिक स्थान है और उसको ऐतिहासिक गौरव मिलने का कारण यह है कि मध्य ऐशिया से भारतवर्ष जाने का रास्ता भटनेर से होकर है। इसलिए यह बहुत सम्भव है कि गजनी के महमूद के भारत आक्रमण करने के समय भटनेर के शूरवीर जाटों ने युद्ध करके उसको रोकने की चेष्टा की हो। इस जाति के पूर्वजों ने मोहम्मद गजनी के भारत में आने के बहुत पहले इस देश देश की मरुभूमि में राज्य स्थापित किया था।

जाट वंश को जब राजस्थान के छत्तीस राजवंशों में माना गया है तो यह निर्विवाद सत्य है कि महमूद गजनी के बहुत पहले से ये जाट लोग बहुत शक्तिशाली थे। शहाबुद्दीन गोरी के भारत में विजयी होने के बारह वर्ष पहले सन् १२०५ ईसवी में उसके उत्तराधिकारी कुतुबुद्दीन ने उन जाटों के के साथ युद्ध किया था, जो मरुभूमि के उत्तरी भाग में रहते थे और इस युद्ध का कारण यह था कि उन जाटों ने मुस्लिम साम्राज्य के हाँसी नामक इलाके पर अधिकार कर लिया था। बादशाह फीरोज की उत्तराधिकारिणी रजिया बेगम अपने राज्य का सिंहासन छोड़ने के लिए वाद्ध होने पर आश्रय के लिए जाटों के पास गयी थी और उन जाटों ने रजिया बेगम को अपने यहाँ स्थान दिया था। उन जाटों ने रजिया बेगम की सहायता में उसके शत्रुओं के साथ युद्ध भी किया था। परन्तु उसका कोई परिणाम न निकला और रजिया बेगम स्वयं युद्ध में मारी गयी।

सन् १३९७ ईसवी में फिर से आक्रमण करके तैमूर ने जब भारतवर्ष पर अधिकार कर लिया, उस समय उसने भटनेर पर आक्रमण किया था और उसके इस आक्रमण का कारण यह था कि तैमूर ने जब मुलतान पर आक्रमण किया था, उस समय जाटों ने उसके साथ भयंकर युद्ध किया था। इसके लिए उसके बदले में तैमूर ने अपनी सेना लेकर भटनेर पर आक्रमण किया और वहाँ के जाटों को उसने भयानक क्षति पहुँचायी।

इस भटनेर के साथ जाटों और भाटी लोगों का इतना निकटवर्ती सम्बन्ध है कि उन दोनों को, ऐतिहासिक आधार लेकर और सही की खोज करके, एक दूसरे से पृथक करना कठिन मालूम होता है। तैमूर के आक्रमण करने के कुछ दिनों के बाद मरोठ और फूलरा के एक वंश ने भाटी राजा की अधीनता से निकल कर भटनेर पर अधिकार कर लिया था। उस भाटी राजा का नाम था, बैरसी। भटनेर में उन दिनों एक मुसलमान शासन करता था। उसकी नियुक्ति तैमूर के द्वारा हुई थी अथवा दिल्ली के बादशाह के द्वारा, इसको निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। कुछ भी हो, उन दिनों भटनेर में जो मुसलमान शासन करता था, उसका नाम था, चिगात खाँ।

भटनेर पर सत्ताईस वर्ष तक राज्य करके बैरसी ने संसार छोड़कर स्वर्ग की यात्रा की और उसके स्थान पर उसका बेटा भीरु राजा हुआ। भीरू के शासन काल में चिगात खाँ के उत्तराधिकारियों ने दिल्ली के बादशाह की सहायता लेकर दो बार भटनेर पर आक्रमण किया और दोनों बार भीरू ने उसको पराजित किया। इसके पश्चात् तीसरी बार फिर उसने एक शक्तिशाली सेना लेकर भटनेर पर आक्रमण किया, उस समय युद्ध में भीरू की शक्तियाँ निर्बल पड़ गयीं। भीरू को अन्त में शत्रु से संधि का प्रस्ताव करना पड़ा। उस समय शत्रु-पक्ष से उसको उत्तर मिला कि यदि आप ईस्लाम धर्म को स्वीकार करलें अथवा दिल्ली के बादशाह के साथ अपनी लड़की का ब्याह कर दें तो आप के राज्य भटनेर का होने वाला विनाश रोका जायगा।

भीरू के सामने इस समय भयानक विपद थी। वह अपनी छोटी-सी सेना के साथ भटनेर के दुर्ग में था और खाने-पीने तथा दूसरी कठिनाइयाँ भयानक रूप से उसके सामनें थीं। प्राणों की रक्षा का कोई दूसरा उपाय न देखकर उसने पहली शर्त—इसलाम को स्वीकार कर लिया। उसी समय से भीरू का वंश भट्टी वंश के नाम से प्रसिद्ध हुआ और शेष भाटी लोगों से उस का सम्बन्ध टूट गया।

भीरू के पश्चात उसके वंश के अन्य छः लोगों ने भटनेर के सिंहासन पर बैठ कर राज्य किया। भीरू से छठे राजा का नाम रावदुलोच उर्फ हयातखाँ था। वह जिस समय भटनेर के सिंहासन पर बैठा, उस समय बीकानेर के राजा रार्यासह ने आक्रमण करके भटनेर पर अधिकार कर लिया। उसके बाद भीरू के वंशज फतेहाबाद में जाकर रहने लगे। हयातखाँ के मरने के बाद उसके पोते हुसेन खाँ ने राजा सुजान सिंह के समय आक्रमण करके भटनेर पर अपना अधिकार लिया। अंत में राजा सूरतसिंह ने बहादुर खाँ के शासन काल में भटनेर पर आक्रमण करके उसको अपने राज्य में मिला लिया।

राजा सूरत सिंह ने जब भटनेर पर आक्रमण किया था, जाब्ताखाँ भटनेर में उस समय राजा था। वह रेनी नामक स्थान में रहा करता था और उसके अधिकार में पच्चीस ग्राम थे। इस रेनी नगर को बीकानेर के रार्यासह ने अपनी रानी के नाम से बसाया था। इमाम मोहम्मद ने उस नगर पर अधिकार कर लिया था। जाब्ता खाँ ने लूटमार करके बहुत-सी सम्पत्ति अपने अधिकार में कर ली थी। उसके अत्याचारों से जाट लोग बहुत भयभीत रहा करते थे। बीकानेर के उत्तरी सीमा से गाड नदी तक की सम्पूर्ण भूमि बहुत उपजाऊ थी। इसलिए वहाँ पर खेती का काम बहुत अच्छा होता था। बहुत दिनों के बाद वहाँ की परिस्थितियाँ बिगड़ी और उस तरफ की सम्पूर्ण भूमि जन-शून्य हो गयी। पहले वहाँ पर जो ग्राम और नगर बसे थे, वे बहुत अच्छी परिस्थितियों में थे। परन्तु वे धीरे-धीरे सब बरबाद हो गये। भटनेर से पच्चीस मील की दूरी पर दक्षिण तरफ दन्दूसर नामक एक स्थान है। वहाँ के लोगों का कहना है कि प्रमार वंश का राजा जब यहाँ शासन करता था, उस समय सिकन्दर रूमी ने वहाँ आकर और आक्रमण करके राज्य का विध्वंस किया था।

———

जैसलमेर का इतिहास

पचासवाँ परिच्छेद

मरुभूमि में जैसलमेर–उसका प्राचीन नाम–राज्य की भाटी जाति–भाटी वंश यदुवंश की शाखा है–भाटी लोगों का क्रमहीन इतिहास–प्राचीन काल का जैसलमेर–हिन्दुओं में संकीर्ण विचारों का जन्म–मध्य एशिया के लोगों को म्लेच्छ कहना–यदुवंशी श्रीकृष्ण–कृष्ण के वंशज–यदुवंशियों के अत्याचार–कृष्ण के बाद यदुवंशियों का इतिहास–म्लेच्छों के साथ युद्ध।

भारत की मरुभूमि में फैले हुए राज्य का नाम जैसलरमेर आधुनिक है। प्राचीन काल में इस राज्य का नाम मेर था, जैसा कि इस देश के पुराने भूगोल से प्रकट होता है। राज्य की बालुकामय पथरीली भमि होने के कारण इसका नाम पहले मेर राज्य था। भारत के संम्पूर्ण मरुक्षेत्र में यही एक राज्य ऐसा है, जिसकी भूमि में कंकड़-पत्थर बहुत हैं। इस राज्य की अनेक बातें ऐसी हैं, जो ऐतिहासिक अनुसंधान करने वाले को अपनी ओर आकर्षित करती हैं, उनमें यहां की खेती, रहने वाली जाति की स्वाभाविकता और राज्य की प्राकृतिक सुन्दरता का विशेष स्थान है।

इस राज्य की भाटी जाति यदुवंशी राजपूतों की एक शाखा है। तीन हजार वर्ष पहले ये भाटी लोग अत्यन्त शक्तिशाली थे और जो राजा आजकल भारत के इस दूरवर्ती भाग में शासन करता है, वह यदुवंशी राजाओं का वंशज होना स्वीकार करता है। वह जमना नदी के निकटवर्ती स्थानों से लेकर जगतकुण्ठ तक का राजा है। इस जगतकुण्ठ का नाम बाद में द्वारिका पुरी पड़ा।

इन लोगों का कोई क्रमबद्ध इतिहास नहीं मिलता, जिससे उनके पूर्वजों के सम्बन्ध में विस्तार के साथ क्रम से लिखा जा सके, परन्तु जो कड़ियाँ मिलती हैं, उनसे एक ऐसी शृङ्खला तैयार हो जाती है जो उनके मौलिक सम्बन्ध को उपस्थित करती हैं। यदुवंशी भाटी लोगों के इतिहास की खोज करने के समय दो अनुमान हमारे मस्तिष्क में क्रम से उत्पन्न होते हैं और उन दोनों पर सहज ही अविश्वास करना कठिन मालूम होता है। पहला अनुमान तो यह है कि यदुवंशी भाटी सीथियन लोगों से उत्पन्न हुए हैं और उनके पूर्वज सीथियन जाति के लोग थे। दूसरे अनुमान से यह धारणा होती है कि इन लोगों की मूल उत्पत्ति हिन्दुओं से है। मनुष्य जाति के सम्बन्ध में खोज करते हुए जब हम इतिहास के अत्यन्त प्राचीन काल में पहुँच जाते हैं, जब सीथियन और हिन्दुओं के पूर्वज एक ही थे तो हमें इतिहास के इस सत्य पर विश्वास करना पड़ता है कि इन दोनों जातियों की मूल उत्पत्ति एक थी और उनके आदि पूर्वज एक थे। उन पूर्वजों के वंशजों ने अपने मूल निवास को छोड़कर एक, दूसरे से पृथक हो गये। कुछ लोग सीथिया में जाकर रहने लगे और वे सीथियन नाम से प्रसिद्ध हुए। दूसरे लोगों ने भारत में आकर रहना आरम्भ किया और हिन्दुओं के नाम से प्रसिद्ध हुए। क्योंकि कास्पियन सागर से लेकर गंगा के किनारे तक जितनी

जातियाँ इस समय रहती थीं, उन सब की उत्पत्ति एक ही विशाल वंश से हुई थी और उस वंश के लोगों की एक ही भाषा थी और एक ही धर्म था। जो लोग अपने मूल पूर्वजों के प्राचीन निवास-स्थान को छोड़कर गंगा की तरफ आये, उनका प्रधान बुध का पुत्र भारत नाम का एक व्यक्ति था, जिसने एशिया के इस भाग में आकर अपने राज्य की प्रतिष्ठा की और उसका नाम भारतवर्ष रखा। उसी भारत के वंशज यदु भाटी लोग इस समय यह स्थल के एक कोने में शासन करते हैं।

यहाँ की भूमि में जब भारत ने उपनिवेश कायम किया, उस समय किसी राजवंश के लोग न रहते थे। बल्कि सूर्यवंश और चन्द्रवंश के पहले भील, गोंड और मीना आदि कई जातियों के लोग यहाँ पर रहते थे। इन जातियों के लोग भी उसी एक विशाल वंश के वंशज थे। लेकिन राजनीतिक पतन के कारण उनकी यह दशा हो गयी थी। इस प्रकार के ऐतिहासिक सत्य का कोई प्रमाण नहीं है, इसलिए हमको यहाँ पर यदुवंशी भाटी लोगों का ऐतिहासिक विवरण देने के लिए हिन्दू ब्राह्मणों के ग्रंथों का आश्रय लेना पड़ा।

गम्भीरता पूर्वक अध्ययन और अनुशीलन के बाद इस बात को स्वीकार करना पड़ता है कि हिन्दुओं में जो आज संकीर्णता मिलती है, उसका जन्म मध्य कालीन युग में हुआ है। इसी आधार पर कल्पना की जाती है कि मुसलमानों के भारत पर आक्रमण और अधिकार करने के बाद यह संकीर्णता पैदा हुई है और इसी संकीर्णता से प्रभावित होकर हिन्दुओं को अटक नदी के पार अथवा जहाज पर चढ़कर समुद्र के दूसरी तरफ के देशों में जाना धर्म के विरुद्ध बताया गया है। हिन्दुओं में इस प्रकार की संकीर्णता प्राचीन काल में न थी। इस सत्य के प्रमाण में बहुत-सी बातें कही जा सकती हैं। परन्तु उनके सम्बन्ध में बहुत अनुसंधान की आवश्यकता है। हिन्दू जाति के लोग प्राचीन काल में जल-युद्ध में क्षमताशाली थे और इसीलिए वे लोग अफ्रीका, अरेबिया और परसिया तक पहुँचे थे। × यह कहना अत्यन्त भ्रमात्मक है कि हिन्दू जाति सदा से संकीर्ण रही है। क्योंकि हिन्दुओं की मनुसंहिता तथा उनकी प्राचीन धार्मिक और पौराणिक पुस्तकों में इस बात के प्रमाण मिलते हैं कि वे लोग प्राचीन काल में आक्सस नदी से लेकर गंगा तक के सभी देशों में आते जाते थे। पौराणिक ग्रंथों के अनुसार हिन्दुओं ने मध्य एशिया के लोगों को म्लेच्छ कहना आरम्भ किया है। परन्तु वहीं से भारतवर्ष में अनेक प्रकार की विद्या और ज्ञान का प्रचार हुआ है। मनुस्मृति नामक ग्रंथ में पौराणिक विचारों का समर्थन किया गया है। इसका अर्थ यह है कि उस समय शाक द्वीप से लेकर गंगा के किनारे तक लोगों का एक ही मत था। इस देश के ग्रंथों में लिखा गया है कि श्रीकृष्ण की मृत्यु के बाद यदुवंश के लोग भारत छोड़कर चले गये। यदुवंश के आदि पुरुष बुध से श्रीकृष्ण तक पचास पीढ़ियाँ व्यतीत हो जाती हैं। बुध ने भारतवर्ष में आकर सूर्यवंश की कुमारी इला के साथ विवाह किया था। ÷

× प्राचीन हिन्दू साहित्य के सम्बन्ध में सर विलियम जॉन्स के साथ अनुसंधान करते हुए मि० मार्सडन ने स्वीकार किया है कि मेडेगास्कर से पूर्वी द्वीप तक जो मलायन भाषा प्रचलित है, उसमें बहुत-से संस्कृत के शब्द पाये जाते हैं। उनकी भाषा की यह अवस्था उस समय थी, जब वहाँ के लोगों ने इस्लाम धर्म को स्वीकार नहीं किया था।

÷ भागवत में इस बात का उल्लेख मिलता है कि बुध अपने पापों का क्षय करने के लिए भारतवर्ष में आया था। यहाँ आ कर उसने इला नामक सूर्यवंशी कुमारी के साथ विवाह किया था। उस कुमारी से पुरुरवा नामक लड़का पैदा हुआ। उसने मथुरा में अपनी राजधानी कायम की और

उस सूर्यकुमारी से पुरूरवा नामक लड़का पैदा हुआ। उसने मथुरा में अपने राज्य की प्रतिष्ठा की और बहुत समय तक वह उस राज्य पर शासन करता रहा। मथुरा उसके राज्य की राजधानी थी। चन्द्रवंशी यादव प्रयाग के मूल निवासी थे। यदुवंश में श्रीकृष्ण ने जन्म लिया था और द्वारिकापुरी की प्रतिष्ठा की थी। कृष्ण के आठ रानियाँ थीं इन रानियों में रूक्मिणी प्रधान थी। उसके पुत्रों में प्रद्युम्न सब से बड़ा था। उसने विदर्भ की राजकुमारी से विवाह किया था। उस राजकुमारी से अनिरुद्ध और बज्र नाम के दो पुत्र पैदा हुए। बज्र से भाटियों की उत्पत्ति हुई। बज्र के दो लड़के हुए। पहला का नाम था नाभ और दूसरे का खेर अथवा क्षेर।

द्वारिका में जब यादव युद्ध कर रहे थे, उनके साथ के बहुत से लोग मारे गये थे और कृष्ण ने स्वर्ग की यात्रा की, उस समय बज्र मथुरा से अपने पिता को देखने के लिए वहाँ जा रहा था। चालीस मील के आगे मार्ग में उसने सुना कि उसके परिवार के सभी लोग युद्ध में मारे जा चुके हैं, यह सुनते ही उसको इतना अधिक मानसिक आघात पहुँचा कि उसकी वहीं पर मृत्यु हो गयी। उसके बाद नाभ मथुरा के सिंहासन पर बैठा और खेर द्वारिका चला गया।

यादवों ने सम्पूर्ण भारत में अपने राज्य का विस्तार करके जिन छत्तीस राजवंशों पर भयानक अत्याचार किया था, वे सभी राजवंश अब उनसे अपना बदला लेने लगे। इसका परिणाम यह हुआ कि नाभ को द्वारिकापुरी से भागना पड़ा और वह मरुस्थली में पहुँच कर पश्चिम में उसको राजसिंहासन पर बैठने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। यहाँ तक भागवत में उल्लेख पाया जाता है। इसके आगे का इतिहास लिखने के लिए मथुरा के ब्राह्मण शुक्र धर्म का हम आधार ले रहे हैं।

नाभ के एक बेटे का नाम प्रतिबाहु था। खेर से जाड़ेचा और यदुभानु का जन्म हुआ। यदुभानु जिन दिनों में तीर्थ यात्रा के लिए गया था, मार्ग में उसके वंश की देवी ने प्रसन्न होकर और सोते हुए जगा कर उससे कहा: "तुम्हारी जो इच्छा हो, मुझसे माँगो।"

यदुभानु ने कहा: "देवी, तुम मुझे किसी राज्य का राजा बना दो, जिससे मैं संतोष के साथ वहाँ पर रह सकूँ।"

"तुम इन्हीं पहाड़ों पर राज्य करो"—यह कह कर देवी वहाँ से तिरोहित हो गयी।

सवेरा होने पर यदुभानु की नींद खुली। उस समय उसको रात में देखे हुए सपने की याद आयी। उसके बाद ही उसको कुछ दूरी पर मनुष्यों का कोलाहल सुनायी पड़ा। उसने पता लगाया तो मालूम हुआ कि यहाँ के राजा की मृत्यु हो गयी है। उसके कोई पुत्र नहीं है। इसलिए उसके स्थान पर किसे राजा बनाया जाय, लोग इसके लिए आन्दोलन कर रहे हैं।

उस बढ़ते हुए कोलाहल के समय मृत राजा के मंत्री ने कहा: "आज मैंने सपना देखा है कि श्रीकृष्ण का एक वंशज यहाँ पर आया है।"

मंत्री के मुख से इस बात को सुनकर सभी लोग बहुत प्रसन्न हुए और कृष्ण के उस वंशज को लोग खोजने निकले। यदुभानु के मिल जाने पर लोग उसे राजधानी में ले गये और सभी के परामर्श से यदुभानु को उस राज्य के सिंहासन पर बिठाया गया। यदुभानु ने अपने नाम पर वहाँ यदु गिरि की प्रतिष्ठा की और वह गिरि उसके बाद बहुत प्रसिद्ध हुआ।×

अपने राज्य मथुरा में शासन करता रहा। उसके छै लड़के पैदा हुए, उनमें बड़े लड़के का नाम आयु था। उसने भारत में इन्दुवंश की प्रतिष्ठा की।

× इस विषय में भाटी वंश के इतिहास में जो उल्लेख मिलता है। वह अधिक संतोषजनक मालूम होता है। जैसलमेर के किसी आदमी से यदि पूछा जाय कि यदुगिरी कहाँ पर है तो वह बता

नाभ के पुत्र प्रतिबाहु के बाहुबल नाम का एक लड़का पैदा हुआ। उसने मालवा के राजा विजय सिंह की लड़की कमलावती के साथ विवाह किया। उस विवाह में विजयसिंह ने खुरासान के एक हजार घोड़े, एक सौ हाथी, बहुत से हीरा जवाहिरात, और सोने के साथ-साथ पाँच सौ दासियाँ दी थीं। बहुत से रथों के साथ स्वर्णजड़ित पलंग भी दिये। प्रमार वंश की राजकुमारी कमलावती से सुबाहु नामक एक लड़का पैदा हुआ।

घोड़े पर से गिर जाने के कारण प्रतिबाहु के पुत्र बाहुबल की मृत्यु हो गयी। सुबाहु बाहु-बल का लड़का था। उसने अजमेर के चौहान वंशीय राजा नन्द की लड़की के साथ विवाह किया। उस चौहान राजकुमारी ने विष देकर अपने पति सुबाहु को मार डाला।

सुबाहु के रिज नाम का एक लड़का पैदा हुआ। उसने अपने पिता के राजसिंहासन पर बैठकर बारह वर्ष तक राज्य किया। उसने मालवा के राजा वैरसी की लड़की के साथ विवाह किया। उसका नाम था सौभाग्य सुन्दरी। जब वह गर्भवती थी, उन दिनों में उसने एक स्वप्न देखा कि मुझसे एक हाथी पैदा हुआ है। इस पर परामर्श देते हुए ज्योतिषियों ने कहा कि रानी से जो पुत्र उत्पन्न होगा, वह अत्यन्त पराक्रमी और शूरवीर होगा। उस रानी से जो लड़का पैदा हुआ, पण्डितों के द्वारा उसका गज नाम रखा गया। जिस समय वह पूर्ण अवस्था में पहुँचा, उसके साथ पूर्व देश के राजा यदुभानु ने अपनी लड़की के विवाह का प्रस्ताव भेजा। वह मंजूर किया गया।

इन्हीं दिनों में समाचार मिला कि समुद्र के समीपवर्ती राज्यों के म्लेच्छों की विशाल सेना आक्रमण करने के लिए आ रही है और उस चार लाख अश्वारोही सेना का सेना पति खुरसान का फरीदशाह है। उसी समय यह भी मालूम हुआ कि इस होने वाले भयानक आक्रमण से घबरा कर राज्य के लोग चारों तरफ भाग रहे हैं। इस प्रकार के समाचारों को सुनते ही राजा रिज ने तुरंत युद्ध की तैयारी की और अपनी सेना को लेकर वह हरियू नामक स्थान पर पहुँच गया। वहाँ से चार मील की दूरी पर शत्रु-सेना का शिविर था।

दोनों ओर की सेनायें आक्रमण के लिए तैयार थीं। उसके फलस्वरूप भीषण युद्ध आरम्भ हुआ। अंत में आक्रमणकारी यवनों की पराजय हुई और उनके तीस हजार सैनिक युद्ध के क्षेत्र में मारे गये। हिन्दुओं की तरफ से जो लोग मारे गये, उनकी संख्या चार हजार थी। इन म्लेच्छों ने इसके पहले सुबाहु पर भी आक्रमण किया था।

नहीं सकता और न वह बिहाड़ के सम्बन्ध में ही कुछ जानकारी रखता है। परन्तु मि० आर्सकिन ने बाबर नामा नामक ग्रन्थ का जो अनुवाद किया है। उसमें यदुगिरी का उल्लेख किया गया है। सन् १५१९ ईसवी की १७ फरवरी को बाबर ने सिंधु नदी को पार किया और १९ फरवरी को इस नदी और नगर के बीच बिहाड़ नामक स्थान पर वह पहुंचा, जहाँ पर दो हजार पाँच सौ वर्ष पहले कृष्ण के वशज रहा करते थे। बाबर नामा में लिखा है, उस स्थान से सात कोस की दूरी पर एक पहाड़ है। जाफर नामा अर्थात तैमूर की ऐतिहासिक स्मृतियाँ नामक ग्रन्थ में और कुछ दूसरी पुस्तकों में भी उस पहाड़ का नाम यदुगिरि लिखा गया है। पहले मैं पहाड़ के नाम से परिचित न था। लेकिन उसके बाद खोज करने पर मालूम हुआ कि इस पहाड़ पर दो वंश के लोग रहा करते है और वे कृष्ण के वंशज हैं। उनमें एक वंश यद् के नाम से और दूसरा वंश जनजूहा के नाम से प्रसिद्ध था। दोनों वंश इस पर्वत के निवासियों पर शासन करते थे। इन दिनों में दोनों वंशों की अनेक शाखायें हो गयी हैं।

राजा यदुभान ने गज के साथ अपनी लड़की का विवाह निश्चय किया था। विवाह की तिथियाँ इन्हीं दिनों में थीं, जब कि म्लेच्छों के आक्रमण का समाचार गज के पिता राजा रिज को मिला था। इस आक्रमण के समाचार का कोई प्रभाव उस विवाह पर न पड़ा। गज अपने विवाह के लिए राजा यदुभानु के राज्य में गया था। वह यदुभानु की कुमारी हंसावती के साथ विवाह करके अपनी नव विवाहिता पत्नी के साथ युद्ध भूमि में आया। युद्ध का अंत हो चुका था। म्लेच्छ सेना के तीस हजार आदमी मारे जा चुके थे। खुरासान का राजा पूर्ण रूप से पराजित हो चुका था। परन्तु उन यवनों को पराजित करने में राजा रिज भयानक रूप से जख्मी हुआ और युद्ध भूमि में ही उसकी मृत्यु हो गयी।

खुरासान का बादशाह पराजित होकर वहाँ से भाग गया और राजा रिज के साथ लगातार दो बार युद्ध करके वह पराजित हुआ। दूसरे युद्ध में जख्मी हो जाने के कारण रिज की मृत्यु हुई। परास्त होने के बाद खुरासान के बादशाह की सहायता के लिए रूम के बादशाह की एक इस्लामी फौज पहुँच गयी थी। यह फौज कुरान और इस्लाम का प्रचार करके अपने राज्य का विस्तार कर रही थी। असुरों की इस सेना के वहाँ पहुँच जाने पर म्लेच्छों ने फिर से युद्ध की तैयारी की। राजा रिज की मृत्यु हो चुकी थी। उसके पुत्र गज ने उसका स्थान लिया और तुरंत उसने अपने मंत्रियों को बुलाकर परामर्श किया।

म्लेच्छों के साथ जहाँ पर यह युद्ध हुआ था, वहाँ कोई ऐसा सुदृढ़ और विशाल दुर्ग न था, जिसका आश्रय लेकर अगणित सैनिकों की विशाल सेना के साथ युद्ध किया जा सके। इसलिए मंत्रियों के परामर्श के अनुसार उत्तर दिशा की ओर वाल पहाड़ पर एक मजबूत दुर्ग का निर्माण हुआ। इसके बाद कुल देवी से प्रार्थना की गयी। देवी ने भविष्य वाणी की कि हिन्दुओं की शासन शक्ति नष्ट हो जायगी। देवी ने अपनी भविष्य वाणी में नव निर्मित दुर्ग का नाम गजनी रखने का आदेश दिया। इस दुर्ग के निर्माण का कार्य समाप्त होते-होते राजा गज को समाचार मिला कि रूम और खुरासान की फौजें बहुत समीप आ गयी हैं। उसी समय युद्ध के बाजे बजने लगे और सेना की तैयारी होने लगी। ज्योतिषियों ने युद्ध के लिए रवाना होने के लिए मुहूर्त बताया। उसके अनुसार माघ महीने की सुदी त्रयोदशी बृहस्पति के दिन एक पहर के बाद वह शुभ घड़ी थी। उस शुभ मुहूर्त में युद्ध की यात्रा करने के लिए बाजे बजे और राजा गज ने अपनी सेना लेकर सोलह मील के आगे जाकर मुकाम किया। दोनों म्लेच्छ सेनायें युद्ध की प्रतीक्षा कर रही थीं।

जिस दिन राजा गज की सेना ने शत्रु के निकट पहुँच कर मुकाम किया, उसी रात को खुरासन बादशाह के पेट में भयानक पीड़ा उत्पन्न हुई, जिससे उसकी मृत्यु हो गयी। जब रूम के बादशाह शाह सिकन्दर को यह समाचार मिला तो उसने बहुत रंज किया और अन्त में उसने राजा गज की सेना के साथ युद्ध करने का इरादा कायम रखा। उसने अपनी फौज को तैयार होने की आज्ञा दी और हाथी पर हौदा कसे जाने के बाद वह युद्ध के लिए तैयार होकर उस हौदे पर बैठा। फौज के तैयार होते ही यवन सेना में युद्ध के बाजे बजे। वह फौज आगे की तरफ रवाना हुई।

दोनों ओर की सेनायें एक दूसरे के करीब पहुँच गयीं। उसी समय भयानक युद्ध आरम्भ हुआ। अगणित सैनिकों के पदाघातों से पृथ्वी कम्पायमान हो उठी। आकाश की तरफ अंधकार दिखायी देने लगा। उस समय युद्ध में लड़ते हुए सैनिकों की तलवारों की आवाज के सिवा और कुछ सुनायी न पड़ता था। कभी-कभी घोड़ों के बोलने की आवाज कानों में आती। दोनों ओर के अगणित सैनिक अपनी भीषण मार के साथ शत्रुओं का संहार करते हुए आगे बढ़ने की चेष्टा कर रहे थे। तलवारों की धारों से सैकड़ों शूरवीरों के सिर कट-कट कर भूमि पर गिर रहे थे कुछ देर

के युद्ध के पश्चात् सम्पूर्ण युद्ध स्थल रक्तमय हो उठा। युद्ध की परिस्थिति लगातार भयानक होती जाती थी। एक तरफ राजपूत सैनिक थे और दूसरी तरफ यवन फौज के खूँख्वार आदमी थे।

दोनों तरफ की भयानक मार काट से युद्ध की भूमि पर लाशों के चारों तरफ ढेर दिखायी देने लगे। बहुत समय तक भयानक मार काट होने लगी और यवन सेना भागने लगी। उसके पच्चीस हजार शूरवीर सैनिक इस युद्ध में मारे गए और सात हजार हिन्दुओं ने शत्रुओं का संहार करते हुए अपने प्राणों की आहुतियाँ दीं। यवन सेना के भागते ही हिन्दुओं की सेना में विजय का डंका बजा और राजा गज अपनी विजयी सेना को लेकर अपनी राजधानी की तरफ लौटा।

अपनी राजधानी में पहुच कर गज युधिष्ठिर के सम्वत् ३००८ के बैसाख महीने के तीसरे दिन रविवार को रोहिणी नक्षत्र में गजनी के सिंहासन पर बैठा और यदुवंशियों का शासन आरम्भ किया। इस विजय से राजा गज की शक्तियाँ अत्यन्त महान हो गयीं। उसने एक-एक करके समस्त पश्चिमों राज्यों को जीत कर अपने अधिकार में कर लिया और उसके बाद उसने काश्मीर के राजा कंदर्पकेलि को अपने यहाँ बुलवाया। राजा कंदर्पकेलि ने उसके उत्तर में संदेश भेजा कि मैं राजा गज की राजधानी में नहीं, रणभूमि में मिलूँगा। इस प्रकार का उत्तर पाकर राजा गज ने युद्ध की तैयारी की। काश्मीर में जाकर उसने आक्रमण किया और राजा कंदर्पकेलि को पराजित करके उसकी लड़की के साथ विवाह किया। उस रानी से राजा गज के शालिवाहन नाम का एक लड़का पैदा हुआ।

शालिवाहन को उसकी बारह वर्ष की अवस्था में समाचार मिला कि खुरासान की सेना आक्रमण करने के लिए आने वाली है। इस समाचार को पाकर राजा गज अपने वंश की देवी के मन्दिर में जाकर तीन दिन तक पूजा करता रहा। चौथे दिन आकाशवाणी हुई कि "शत्रु की विजय होगी। गजनी का अधिकार शत्रुओं के हाथों में चला जायगा। परन्तु किसी समय तुम्हारे वंश के लोग उस पर फिर से अधिकार कर लेंगे। लेकिन हिन्दुओं की हैसियत से नहीं, मुसलमानों की हैसियत से। तुम इस समय अपने पुत्र शालिवाहन को पूर्व के हिन्दुओं के पास भेज दो वहाँ जाकर शालिवाहन एक राजधानी की प्रतिष्ठा करेगा। उसके पन्द्रह लड़के होंगे और उसके वंश की वृद्धि होगी। गजनी के इस युद्ध में तुम्हारी मृत्यु होगी। लेकिन उससे तुमको स्वर्ग और यश मिलेगा।"

इस आकाशवाणी को सुनकर राजा गज ने अपने पुत्र शालिवाहन और परिवार को तीर्थ के बहाने पूर्व दिशा में भेज दिया।

इसके बाद खुरासान की फौज रवाना होकर गजनी से दस मील की दूरी पर आ गयी। राजा गज ने गजनी की रक्षा का उत्तरदायित्व अपने चाचा श्रीदेव को सौंपा और वह अपनी सेना लेकर शत्रु के साथ युद्ध करने के लिए रवाना हुआ। खुरासान के बादशाह ने अपनी फौज को पाँच भागों में विभक्त करके राजा गज की सेना पर आक्रमण किया। गज ने अपनी सेना को तीन भागों में बाँट कर शत्रु के साथ युद्ध आरम्भ किया।

उस युद्ध में खुरासान का बादशाह और राजा गज—दोनों ही मारे गये। इस भीषण युद्ध में एक लाख म्लेच्छों और तीस हजार हिन्दुओं ने अपने प्राणों को उत्सर्ग किया। इसके बाद खुरासान के लड़के ने गजनी पर आक्रमण किया। उसके साथ युद्ध करते हुए श्री देव ने तीस दिनों तक गजनी की रक्षा की। इसमें नौ हजार मनुष्यों का सर्वनाश हुआ। इसी समय श्री देव ने गजनी में जौहर व्रत की पूर्ति की।×

× जौहर व्रत का वर्णन मेवाड़ के इतिहास में लिखा जा चुका है।

पिता के मारे जाने का समाचार सुन कर शालिवाहन बारह दिनों तक पृथ्वी पर सोया। उसके बाद पंजाब में आकर एक स्थान पर उसने अपनी नयी राजधानी कायम की और उसका नाम शालिवाहन पुर रखा। उस राजधानी के आस-पास जो भूमिधर रहते थे, उन्होंने वहाँ आकर शालिवाहन को अपना राजा माना। विक्रम सम्बत् ७२ के भादों के महीने में अष्टमी रविवार के दिन शालिवाहन पुर राजधानी की प्रतिष्ठा हुई। ×

शालिवाहन ने पंजाब के अनेक राज्यों को जीतकर अपने शासन को शक्तिशाली बनाया। उसके पन्द्रह लड़के पैदा हुए। जिनमें तेरह लड़कों के नाम इस प्रकार हैं—(१) बालन्द (२) रसाल (३) धर्माङ्गद (४) बच्च (५) रूपा (६) सुन्दर (७) लेख (८) जसकर्ण (६) नोमा (१०) मात (११) नेपक (१२) गाङ्गेव और (१३) जागेव। इन सभी राजकुमारों ने अपनी शक्तियों के द्वारा स्वतन्त्र राज्यों की स्थापना की।

बालन्द के युवावस्था में पहुँचने पर दिल्ली के तोंवर वंशी राजा जयपाल ने अपनी लड़की के विवाह का उसके साथ प्रस्ताव किया और राजपूतों की प्रचलित प्रणाली के अनुसार, नारियल भेजा। बालन्द ने उसको स्वीकार कर लिया। दिल्ली की राजकुमारी के साथ बालन्द का विवाह हो गया। वह अपनी नव विवहिता पत्नी के साथ दिल्ली से शालिवाहनपुर आया। इन्हीं दिनों में शालिवाहन ने अपने पिता का बदला लेने के लिए तैयारियाँ शुरू कर दीं और थोड़े ही दिनों में अपनी सेना लेकर वह अटक नदी को पार करके आगे बढ़ा।

गजनी की म्लेच्छ सेना ने उसके साथ युद्ध किया। शत्रु की तरफ से बीस हजार सैनिक रणभूमि में पहुँचे। उस भयानक संग्राम में गजनी के म्लेच्छ मारे गये। शालिवाहन ने अपनी सेना लेकर गजनी पर अधिकार कर लिया। कुछ दिनों तक वह गजनी में बना रहा। उसके बाद वहाँ का शासन अपने बड़े पुत्र बालन्द को सौंप कर वह अपनी राजधानी लौट आया। इसके कुछ ही दिनों के बाद तेंतीस वर्ष नौ महीने तक राज्य करके उसने परलोक की यात्रा की।

शालिवाहन के बाद उसके राज्य सिंहासन पर बड़ा पुत्र बालन्द बैठा। उसके दूसरे भाइयों ने पंजाब के सम्पूर्ण पहाड़ी भागों पर अपने स्वतन्त्र राज्य कायम कर लिए थे। इन दिनों में म्लेच्छों की शक्तियाँ फिर प्रबल हो गयी थीं। उन तुर्कों ने गजनी के आस-पास के सभी नगरों और स्थानों पर अधिकार कर लिया। इन दिनों में बालन्द का कोई मंत्री न था। वह अकेले ही समस्त राज्य का शासन करता था। उसके सात लड़के पैदा हुए—(१) भट्टी (२) भूपति (३) कलूराव (४) झंझू (५) सहराव (६) भैंसडच और (७) मँगरेव। बालन्द के दूसरे पुत्र भूपति से चाकेता नाम का एक लड़का पैदा हुला। उससे चाकेता वंश की सृष्टि हुई।

चाकेता के आठ लड़के पैदा हुए—(१) देवसी (२) भैरों (३) क्षेमकर्ण (४) नाहर (५) जयपाल (६) धरसी (७) बिजलीखान और (८) साहसमन्द। *

× अपने परिवार और दूसरे लोगों के साथ शालिवाहन गजनी से भागकर पंजाब में चला आया था और राजा गज के मारे जाने के बाद विक्रम सम्बत ७२ के भादों के महीने में सन् १६ ईसवी को शालीवाहनपुर राजधानी की प्रतिष्ठा की। उस स्थान का सही उल्लेख पुराने ग्रन्थों में नहीं मिलता। लेकिन उस समय की अनेक बातों के आधार पर मालूम होता है कि वह स्थान लाहौर के समीप था।

* बादशाह बाबर ने यदुवंश से उत्पन्न यदुगिरी की जिस जनजूही जाति का उल्लेख किया है। वही जोहिया अथवा जदु जाति है। यह झंझू उसी जोहिया जाति का आदि पुरुष था।

बालन्द अपने पौत्र चकेता को गजनी का शासन सौंप कर शालिवाहनपुर चला आया। इन दिनों में जैसा कि ऊपर लिखा गया है, म्लेच्छों अर्थात् तुर्कों की संख्या बहुत बढ़ गयी थी। इसलिए चकेता ने उन लोगों को अपनी सेना में भरती कर लिया और अनेक तुर्क वहाँ के सामन्त बन गये। उन तुर्क सामन्तों और सैनिकों ने चकेता के सामने प्रस्ताव किया कि "यदि आप अपने पूर्वजों का धर्म छोड़ दें तो हम लोग आप को बलखबुखारा के सिंहासन पर बिठावेंगे।"

बलखबुखारा में उजबक जाति के लोग रहते थे और वहाँ के राजा के कोई लड़का न था। उसके एक बहुत सुन्दरी लड़की थी। चकेता ने राज्य के लालच में आकर बलखबुखारा की शाहजादी के साथ विवाह कर लिया और उसके बाद वहाँ के सिंहासन पर बैठकर उसने अट्ठाईस हजार अश्वारोही सेना को अपने अधिकार में रखा। बलख से लेकर भारतवर्ष तक चकेता ने एक विस्तृत राज्य पर शासन किया। इन चकेता लोगों से ही मुगलों के चगत्ता वंश की उत्पत्ति हुई है।×

बालन्द के तीसरे लड़के कलूराव के आठ पुत्र पैदा हुए। उसके वंशज कलर नाम से प्रसिद्ध हुए। बालन्द के आठ पुत्रों के नाम इस प्रकार हैं—(१) शिवदास (२) रामदास (३) अस्सो (४) किसतन (५) समोह (६) गंगू (७) जस्सू और (८) भागू। ये लोग सभी इस्लाम धर्म स्वीकार करके मुसलमान हो गये थे। इनके वंशवालों की संख्या अधिक हो गयी थी। ये लोग नदी के पश्चिम में पहाड़ी इलाकों में रहा करते थे।

बालन्द के चौथे पुत्र झूंझू के सात लड़के पैदा हुए—(१) चम्पू (२) गोकुल (३) मेघराज (४) हंसा (५) भादोंन (६) रासू और (७) जग्गू। इस वंश के लोग झूंझू नाम से पुकारे गये और इन लोगों से अनेक वंशों की उत्पत्ति हुई।

भट्टी बालन्द का सबसे बड़ा लड़का था। वही अपने पिता के राजसिंहासन पर बैठा। भट्टी अत्यन्त पराक्रमी और प्रतापशाली राजा हुआ। उसने चौदह राज्यों को जीत कर उनकी समस्त सम्पत्ति अपने अधिकार में कर ली और वहाँ की बहुमूल्य सामग्री और सम्पत्ति चौबीस हजार खच्चरों पर लाद कर वह ले गया। साठ हजार अश्वारोही और अगणित पैदल सैनिकों की सेना उसके अधिकार में थी।

राजा भट्टी ने सिंहासन पर बैठने के बाद लाहौर में अपनी सेना एकत्रित की और कनकपुर के राजा बीर भानु बघेले के साथ युद्ध किया। उस युद्ध में बीर भानु के चालीस हजार सैनिक मारे गये।

भट्टी की मृत्यु हो जाने पर उसका पुत्र मंगलराव सिंहासन पर बैठा। इसके शासन काल में गजनी के राजा धुन्धी ने अपनी विशाल सेना लेकर लाहौर पर आक्रमण किया। मंगलराव युद्ध से घबराकर अपने बड़े पुत्र के साथ नदी के तट पर जंगल में भाग गया। शालिवाहनपुर में उसके परिवार के लोगों को शत्रुओं ने जाकर घेर लिया। जब मंगलराव ने यह सुना तो वह जिस जंगल में जाकर छिप गया था, वहाँ से भाग कर वह लक्खा जंगल में चला गया। वहाँ पर किसानों की आबादी थी। इसलिए मंगलराव ने उनको अपनी अधीनता में लेकर वहाँ पर अपना राज्य कायम किया। उसके दो लड़के पैदा हुए। एक का नाम था अभय राव और दूसरे का नाम था शारणराव

× यदुवंशी राजा चकेता ने जिस प्रकार लालच में आकर इस्लाम धर्म स्वीकार किया है, उसमें किसी को संदेह करने की गुंजाइश नहीं है। इसलिए कि मुस्लिम तवारीखों में चकेता लोगों के प्रधान तमूचीन—जो चंगेजखाँ के नाम से प्रसिद्ध हुआ—जिक्र किया गया है। इस चंगेजखाँ से भारतीय इतिहास के पाठक अपरिचित नहीं हैं।

अभयराव ने वहाँ के समस्त नगरों को जीत कर अपने राज्य का विस्तार किया। इसके बाद उसके वंशजों की संख्या बढ़ी और वे लोग आभोरिया भट्टी के नाम से प्रसिद्ध हुए। शारणराव अपने भतीजे से लड़कर कहीं चला गया। भट्टी के बड़े पुत्र मंगलराव ने तुर्कों के भय से पिता की राजधानी शालिवाहन पुर को छोड़ दिया था और वहाँ से भागकर वह जंगल में चला गया, उसके छै लड़के थे, जो इस प्रकार हैं—(१) मंडमराव (२) कलरसी (३) मूल राज (४) शिव राज (५) फूल और (६) केवल।

राजधानी से मंगलराव के भाग जाने पर उसके पुत्रों और परिवार के लोगों की रक्षा उसकी प्रजा ने की। तक्षक वंशी सतीदास नाम का वहाँ पर एक भूमिधर रहता था। उसके पूर्वजों के साथ भट्टी राजाओं ने भयानक अत्याचार किये थे। उसने अपने पूर्वजों का बदला लेने के लिए विजयी तुर्कों से जाहिर किया कि मंगलराव के पुत्र और कुटुम्ब के लोग इसी नगर के एक घर में रहते हैं। उसकी इस बात को सुनकर कुछ तुर्क सैनिक उसके साथ गये। सतीदास ने तुर्क सैनिकों को लेकर श्रीधर महाजन के यहाँ मंगलराव के लड़कों को कैद कराया और वे राजकुमार तुर्क सेना के सामने लाये गये। उस सेना के प्रधान ने श्रीधर से कहा :

"शालिवाहन के प्रत्येक राजकुमार को तुम मेरे सामने लेकर आओ, नहीं तो मैं तुम्हारे परिवार में किसी को जिन्दा न छोड़ूँगा।"

इस बात को सुनते ही श्रीधर अत्यन्त भयभीत हुआ और घबरा कर उसने कहा : मेरे यहाँ अब राजा का कोई लड़का नहीं है। जो लड़के मेरे यहाँ रहते हैं, वे एक भूमिधर के बालक हैं। वह भूमिधर इस युद्ध के भय से भाग गया है।" तुर्कों के सेनापति ने उसकी बात का विश्वास नहीं किया और जिन लड़कों के रहने की बात उसने कही, उसने उनको लाने का आदेश दिया।

जब श्री धर महाजन ने देखा कि राजकुमारों के प्राणों की रक्षा का अब कोई उपाय नहीं है, तो उसने तुर्क सेनापति की आज्ञा का पालन किया। यदुवंशी राजकुमार किसान बालकों की वेश-भूषा में तुर्क सेनापति के सामने लाये गये और उसने राजकुमारों को किसान बालक मान कर वहाँ के भूमिधरों की लड़कियों के साथ उनके विवाह करवा दिये। इस तरीके से शालिवाहन के वंश में उत्पन्न होने वाले राजकुमार केलर के पुत्र कलोरियाँ जाट भुदं राज और शिवराजत नाम से प्रसिद्ध हुए। राजकुमार फूल और केवल का परिचय नाई और कुम्हार बालक के रूप में दिया गया था। इसलिए उन दोनों के वंशज नाई और कुम्हार वंश में माने गये।

भट्टी वंश के इतिहास में लिखा है : "मंगलराव जिस गाडा नदी के समीप वर्ती जंगल में चला गया था, उसने उस जंगल को छोड़कर एक नवीन स्थान पर जाकर अपना राज्य कायम किया। इस समय उस नदी के किनारे बराहा जाति के लोग रहते थे। × उनके पहले वहाँ पर बूता वंश के राजपूतों का राज्य था। पूगल के प्रमारों के अतिरिक्त वहाँ पर सोटा और लुद्रवा वंश के राजपूत भी रहा करते थे। मंगलराव ने पहुँच कर और वहाँ के राजाओं से मिल कर वहीं पर रहना आरम्भ किया। मंगलराव की मृत्यु हो जाने पर उसका लड़का मंडमराव अपने पिता के स्थान पर अधिकारी हुआ।

यह पहले लिखा जा चुका है कि मंगलराव अपने बड़े पुत्र मण्डमराव को अपने साथ लेकर शालिवाहनपुर से भागा था। यहाँ पहुँच कर धोरे के राजपूतों ने उसका अपना राजा बनाया और

× बराहा राजपूतों की एक शाखा है। इस वंश के लोगों ने भी इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया था। इसीलिए वे मुसलमान कहे जाते थे।

अभिषेक के समय उन लोगों ने उसे मूल्यवान सामग्री और सम्पत्ति भेंट दी। अमरकोट के सोढा वंशी राजा ने मंडमराव के साथ अपनी लड़की के विवाह का इरादा किया। मण्डमराव के स्वीकार कर लेने पर अमरकोट की राजधानी में बड़ी धूमधाम के साथ विवाह सम्पन्न हुआ। मंडमराव के तीन लड़के पैदा हुए—(१) केहर (२) मूलराज और (३) गोगली।

केहर नाम का बालक आरम्भ से ही तेजस्वी और साहसी था। किसी समय पाँच सौ घोड़े व्यावसायिक चीजों से लदे हुये आरोर से मुलतान जा रहे थे। केहर ने अपने कुछ वीरों को उनके पीछे रवाना किया। ये लोग व्यवसायी बन कर और ऊँटों पर बैठकर उनके पीछे चले। पंचनद के किनारे पहुँच कर इन लोगों ने उन व्यवसायियों पर आक्रमण किया और उन घोड़ों की समस्त सामग्री लूट ली। इसके बाद वे लोग लौटकर चले आये। इन्हीं दिनों में वहाँ पर केहर का नाम प्रसिद्ध हुआ। कुछ दिनों के बाद जालौर के आलनसिंह देवरा ने मंडमराव के वयस्क पुत्रों के विवाह का संदेश भेजा। मंडमराव ने उसे स्वीकार कर लिया और विवाह का कार्य बड़ी धूम धाम के समाप्त हुआ। इसके बाद केहर ने दुर्ग बनवाने का कार्य आरम्भ किया और उसका नाम उसने अपनी कुल देवी के नाम के आधार पर रखने का विचार किया। दुर्ग तैयार होने के पहले ही मंडमराव की मृत्यु हो गयी।

केहर अपने पिता के स्थान पर अधिकारी हुआ। उसके बनवाये हुए दुर्ग का नाम तन्नो देवी के नाम पर तनोट का दुर्ग रखा गया। इन्हीं दिनों में बराहा वंश के यशोरथ राजा ने अपनी सेना लेकर तनोट के दुर्ग पर आक्रमण किया और कहा कि यह दुर्ग हमारे राज्य की सीमा के भीतर बनाया गया है। मूल राज ने बड़ी बहादुरी के साथ तनोट दुर्ग की रक्षा की और यशोरथ की सेना पराजित होकर भाग गयी। इसके बाद केहर और यशोरथ में संधि हो गयी और उस संधि के फलस्वरूप मूल राज की लड़की के साथ यशोरथ का विवाह हो गया।

यदुभाटी लोगों की राजधानी कायम होने के बाद इस प्राचीन वंश का ऐतिहासिक वर्णन समाप्त करके उसका सारांश अत्यन्त सक्षेप में नीचे दिया जाता है :

१—श्रीकृष्ण यदुवंशियों के प्रसिद्ध पूर्वज।

२—जो यदुवंशी अपने मूल निवास से भाग कर सिंधु नदी के पश्चिम तरफ चले गये थे, उन्होंने मरुस्थली में जाकर उपनिवेश कायम किया और रूम तथा खुरासान के बादशाहों के साथ युद्ध किया।

३—जबूलिस्तान अर्थात् गजनी से भागने पर उन लोगों ने पंजाब में अपना उपनिवेश कायम किया और शालिवाहन पुर नामक राजधानी की प्रतिष्ठा की।

४—पंजाब से भागने पर मरुभूमि के पर्वत के ऊपर पहुँच कर तनोट का दुर्ग बनवाना।

चगताई लोगों की उत्पत्ति यदु वंशियों से हुई है, यह अनुमान ऐतिहासिक आधार पर कम महत्वपूर्ण नहीं है। मेवाड़ के सीसोदिया वंश के आदि पुरुष बप्पा रावल को भी चित्तौर में अपनी राजधानी कायम करने के बाद मध्य भारतवर्ष को छोड़ कर खुरासान चला जाना पड़ा था। इन सभी बातों से जाहिर होता है कि हिन्दू धर्म भारत से लेकर अत्यन्त सुदूरवर्ती देशों और राज्यों तक उन दिनों में फैला हुआ था और मध्य एशिया के साथ भारतवर्ष के सभी प्रकार सम्पर्क थे।

————

*

इक्यावनवाँ परिच्छेद

भट्टी वंश का सही इतिहास–यादवों के साथ हुसेन शाह का युद्ध–विजयराव पर आक्रमण–विजयी विजयराव–बराहा और लंगा लोगों का षड़यंत्र–बुरे दिनों का प्रभाव–देवराज और योगी–देवराज की शक्तियाँ–लंगा जाति के लोग राजपूत थे–लोद्र राजपूत–देवराज की प्रतिज्ञा–राजा की आज्ञा और वंश की मर्यादा–प्रमार सैनिकों के बलिदान–जैसलमेर की राजधानी।

पिछले परिच्छेद में वर्णन की गयी घटनाओं के जो समय लिखे गये हैं, वे सही नहीं मालूम होते। इसलिए इस परिच्छेद में भट्टी जाति के इतिहास का वर्णन यथासम्भव प्रामाणिक लिखने की हम चेष्टा करेंगे। गजनी के यदुवंशी राजा ने युधिष्ठिर के सम्बत् ३००८ में रूम और खुरासान × के बादशाहों को पराजित किया था। इसके समय पर भी विश्वास नहीं किया जा सकता और विक्रम सम्बत् ७२ में शालिवाहन ने अपने परिवार के लोगों के साथ जबूलिस्तान से भाग कर पंजाब में आश्रय लिया था, यह समय भी संदेहपूर्ण है। जिन ऐतिहासिक ग्रंथों में लिखा गया है कि यदु भट्टी लोगों ने मरुभूमि में जाकर अपना उपनिवेश कायम किया और सम्बत् ७८७ सन् ७३१ ईसवी में तनोट का दुर्ग बनवाया, इस समय में किसी प्रकार का सन्देह नहीं मालूम होता।

भाटी जाति के इतिहास में जो केहर नाम आया है और जिसके साहस तथा शौर्य की प्रशंसा की गयी है, वह खलीफा बलीदा का समकालीन था। उसी ने सब से पहले भारतवर्ष में अपना राज्य कायम किया और उत्तरी सिंह के आरोर नामक नगर में अपनी राजधानी बनायी। केहर के पाँच लड़के पैदा हुए—तनू, उतेराव, चहा, खाफरिया और आथहीन। इन लड़कों के जो पुत्र पैदा हुए, उन्होंने अपने-अपने पिता की उपाधि लेकर अलग-अलग शाखायें चलायीं।

उतेराव के पाँच लड़के पैदा हुए—सुरना, सेहसी, जीवा, चाको और अजो। इसके वंशधर उतेराव के नाम से प्रसिद्ध हुए। केहर से उत्पन्न होने वाले पाँचों लड़के साहसी और शूरवीर राजपूतों के बहुत से नगरों को जीत कर अपने अधिकार में कर लिया। राजपूतों का चन्न वंश अब नष्ट हो गया है। उन लोगों ने केहर पर आक्रमण किया था और उसे जान से मार डाला।

केहर की मृत्यु के पश्चात् तनू राज्य का अधिकारी हुआ। उसने सिंहासन पर बैठने के बाद बराहा और मुलतान के लंगा लोगों के राज्यों पर आक्रमण किया और भयानक रूप से उनको विध्वंस किया। लेकिन लोहे के बख्तर पहन कर हुसेनशाह ने लंगा लोगों के साथ दूदी, खीची, खोकर, मुगल, जोहिया, जूद और सैद जाति के दस हजार अश्वारोही सैनिक लेकर यादवों से युद्ध करने की तैयारी की। उसकी सेना ने बराहा राज्य-पहुँच कर मुकाम किया। तनू ने जब यह सुना तो वह अपनी सेना लेकर युद्ध करने के लिए रवाना हुआ। दोनों तरफ से चार दिन तक बराबर युद्ध होता रहा और पाँचवें दिन उसने अपने दुर्ग के द्वार को खोल देने का आदेश दिया। दुर्ग का फ़ाटक खुलते ही अपने पुत्र विजय राव के साथ सेना को लेकर तनू ने आक्रमणकारियों

× बादशाह बाबर ने लिखा है कि भारत वर्ष के लोग सिंधु नदी की पश्चिमी सीमा के आगे के राज्य को खुरासान कहते थे।

पर एक साथ भयानक आक्रमण किया । उस समय की भीषण मार काट से शत्रु की सेना परास्त होकर युद्ध के क्षेत्र से भाग गयी । बराहा लोगों के युद्ध-क्षेत्र से भागते ही म्लेच्छ लोग भी बड़ी तेजी के साथ इधर-उधर भागे । युद्ध में विजयी होकर तनू ने शत्रुओं के शिविर पर आक्रमण किया और उनके साथ की समस्त सम्पत्ति और सामग्री लूट ली । मुलतान और लंगा लोगों की सेना के पराजित हो जाने पर बूता राजपूतों के राजा जीजू ने विवाह के लिए तनू के पास नारियल भेजा इस विवाह के पश्चात् मुलतान के राजा के साथ तनू की मैत्री हो गयी ।

तनू से पाँच लड़के पैदा हुए—(१) विजयराव (२) मुकुर (३) जयतुंग (४) आलन और (५) राखेचा । दूसरे पुत्र मुकुर के माहपा नाम का एक लड़का पैदा हुआ माहपा के महोला और दिकाऊ नाम के दो बालक पैदा हुए । दिकाऊ ने अपने नाम पर एक झील खुदावायी । उसके वंशज मुकुर सुतार के नाम सम्बोधन किये जाते हैं ।

तीसरे पुत्र जैतुंग के दो बालक पैदा हुए—रत्नसी और चोहर । रत्नसी बीकमपुर में जाकर रहने लगा । चोहर के कोला और गिरिराज नामक दो बालक पैदा हुए । इन दोनों ने अपने-अपने नामों पर कोलासर और गिर राजसर नाम के दो नगर बसाये ।

चौथे पुत्र आलन के चार लड़के पैदा हुए—(१) देवसी (२) त्रिपाल (३) भवानी और (४) राकेचा । देवसी के वंशज ऊँटों के व्यवसायी हो गये और राकेचा के वंशजों ने व्यवसाय आरम्भ किया । इसलिए भविष्य में वे लोग ओसवाल के नाम से प्रसिद्ध हुए ।

तनू को विजसनी देवी के आशीर्वाद से एक स्थान पर बहुत बड़ी छिपी हुई सम्पत्ति मिली । तनू ने उस सम्पत्ति से एक विशाल दुर्ग बनवाया और उसका नाम विजनोट दुर्ग रखा । उस दुर्ग में उसने सम्बत् ८१३ सन् ७५७ ईसवी में उस देवी की मूर्ति की स्थापना की । अस्सी वर्ष तक राज्य करने के बाद उसकी मृत्यु हो गयी ।

सम्बत् ८७० सन् ८१४ ईसवी में विजयराव अपने पिता के सिंहासन पर बैठा और उसके बाद उसने अपने वंश के परम शत्रु बराह जाति के साथ युद्ध करने का निश्चय किया । और बराह लोगों पर आक्रमण करके उनकी सारी सम्पत्ति लूट ली । सम्बत् ८९२ में बूता वंश की रानी से देवराज नाम का एक बालक पैदा हुआ ।

विजय राव से बदला लेने के लिए बराह और लंगा जाति के लोग आपस में मिल गये और विजय राव पर आक्रमण किया । उस युद्ध में विजय राव ने उनको पराजित किया । उस दशा में युद्ध से निराश होकर इन दोनों जातियों के लोगों ने षड़यन्त्र करके विजयराव के सर्वनाश का विचार किया । उन लोगों ने इन दिनों की शत्रुता को भुलाकर सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार आरम्भ किया और बराह लोगों के राजा ने विजयराव के लड़के देवराज के साथ अपनी लड़की के विवाह का प्रस्ताव किया ।

विजयराव को उन लोगों के षड़यंत्र का कुछ भी ज्ञान न था । इसलिए उसने विवाह के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया और अपने वंश के आठ सौ आदमियों को लेकर अपने पुत्र देवराज राज के साथ विजयराव राजा बराह की राजधानी भटिण्डा में पहुँच गया । उसके वहां पहुँचते ही बराहों की सेना ने एक साथ आक्रमण किया और उन सब को जान से मार डाला । लेकिन देवराज अभी तक सुरक्षित था । उसने मृत्यु का संकट अपने निकट देखकर राजा बराह के पुरोहित की शरण ली । जब बराह लोगों को मालूम हुआ तो उन लोगों ने पुरोहित के घर पर आक्रमण किया ।

यह दृश्य देखकर पुरोहित घबरा उठा । परन्तु शरण में आये हुए देवराज के प्राणों की

वह रक्षा करना चाहता था। इसलिए उसने बड़ी बुद्धिमानी से काम लिया। उसने देवराज को जनेऊ पहना दिया और उसने आक्रमणकारियों से कहा : "जिसको आप खोज रहे हैं, वह हमारे घर पर नहीं है।" पुरोहित ने देवराज पर आक्रमणकारियों को सन्देह करने का अवसर नहीं दिया। उसने उसी समय सब के सामने देवराज के साथ एक थाली में भोजन किया। यह देखकर आक्रमणकारियों का सन्देह दूर हो गया वे लोग पुोहित का घर छोड़कर चले गये और अपने विशाल दल के साथ भट्टी लोगों की राजधानी तनोट पर उन्होंने आक्रमण किया। वहाँ के दुर्ग में जितने भी आदमी थे, मार डाले गये और कुछ दिनों के लिए भाटी जाति का नाम मिटा दिया।

बराह लोगों के भय से देवराज बहुत दिनों तक छिपकर वहीं बना रहा और अवसर पाने पर वह वहाँ से निकलकर अपने नाना बूतावन के राज्य में चला गया। ननिहाल में पहुँचकर देवराज अपनी माता से मिला। तनोट के दुर्ग में वराह लोगों के द्वारा जो लोग मारे गये थे, उनमें से देवराज की माँ ने किसी प्रकार वहाँ से भागकर अपने प्राणों की। रक्षा की। माता ने अपने पुत्र देवराज को देखकर और अनन्त सन्तोष को अनुभव करके कहा :

"बेटा, जिस प्रकार शत्रुओं ने हमारे वंश का सर्वनाश किया है, इसी प्रकार शत्रुओं का भी सर्वनाश होगा।"

देवराज कुछ दिनों तक ननिहाल में बना रहा। उसके बाद उसने अपने जीवन-निर्वाह के लिए नाना से एक ग्राम माँगा। उसके नाना ने इसे स्वीकार लिया। जब राजा के परिवार वालों को मालूम हुआ कि वह देवराज को एक ग्राम देकर उसके रहने का सुभीता कर रहा है तो उन लोगों ने देवराज के नाना को समझा कर कहा : "यदि आपने देवराज के रहने के लिए ग्राम दिया तो निश्चय जानिये कि आपके इस राज्य का भयानक रूप से विनाश होगा।

उस राजा को समझ यह बात आ गयी। लेकिन देवराज उसका दौहित्र था। इसलिए उसने अपने यहां उसको कोई ग्राम न देकर मरुभूमि में एक साधारण स्थान उसे दे दिया। देवराज वहां जाकर रहने लगा और वहाँ पर उसने एक दुर्ग बनवाया। जिसका निर्माण कार्य केकय नाम के एक चतुर शिल्पी के द्वारा हुआ। उसने उस दुर्ग का नाम भटनेर का दुर्ग रखा। इसके बाद उसने एक दूसरा विशाल दुर्ग बनवाया जिसकी सम्बत् ९०९ के माघ महीने के पांचवें दिन सोमवार को उसकी प्रतिष्ठा की गयी।

जब बूता के राजा को मालूम हुआ कि मेरे दौहित्र देवराज ने वहां अपने रहने के लिए कोई स्थान न बनाकर दुर्ग बनवाया है तो वह बहुत अप्रसन्न हुआ और उस दुर्ग को गिरवा देने के लिए उसने एक सेना भेजी। जब यह समाचार देवराज को मालूम हुआ तो उसने दुर्ग की चाबी अपनी माता को देकर अपने नाना के पास भेज दिया और जो सेना दुर्ग को गिराने के लिए आ रही थी, उसको दुर्ग पर अधिकार करने के लिए बुलवाया। बूता राज्य की सेना के एक सौ बीस शूरबीरों ने देवराज के साथ परामर्श करने के लिए दुर्ग में प्रवेश किया। उनके भीतर पहुँचते ही एक साथ उन पर आक्रमण हुआ। वे सब के सब मार डाले गये। जो सेना दुर्ग के बाहर रह गयी थी, वह सेनापति के अभाव में घबरा कर वहाँ से भाग गयी। जो लोग दुर्ग के भीतर मारे गये थे, उनकी लाशों को देवराज ने दुर्ग के बाहर फिंकवा दिया।

जिन दिनों में देवराज बराहों के राज्य में छिप कर रहा था, उन्हीं दिनों में उसे एक योगी वहां पर मिला और उसने उसके प्राणों को बचाने में बड़ी सहायता की थी। इन दिनों में

वह योगी वहां पर आकर देवराज से मिला और उसने देवराज को सिद्ध पुरुष की पदवी दी। वह योगी अपनी शक्ति से किसी भी धातु को सुवर्ण बना देता था। बराह राज में देवराज गुप्त रूप से जिस घर में रहता था, उसी घर में यह योगी भी रहा करता था। एक दिन वह योगी अपने रासायनिक घड़े को वहीं पर रखकर बाहर चला गया। उस घड़े में एक प्रकार का रासायनिक रस भरा हुआ था। उस रस के एक बूँद के स्पर्श से देवराज की सम्पूर्ण तलवार सुवर्ण की हो गई देवराज उसी अवसर पर उस घर से निकल और वराह राज से भाग कर अपने नाना के यहां पहुँचा था और वहां से मरुभूमि में पहुँच कर एवं घड़े में भरे हुए रासायनिक तत्वों की सहायता से उसने अपरिमित सम्पत्ति अपने अधिकार में करली, जिससे वह उस मरुभूमि में विशाल दुर्गों का निर्माण करा सका।

देवराज के चले आने के बाद बहुत दिनों में उस योगी ने सुना कि देवराज आजकल एक राज्य का अधिकारी है तो उसने देवराज के पास आकर और उससे भेंट करके उसने कहा : "आपने मेरी जिस सम्पत्ति का अपहरण किया है, उसको मैं केवल इस शर्त पर कहीं प्रकट न करूँगा, यदि आप मेरे चेला हो जायँ और मेरी तरह योगी का वेष धारण करें।

देवराज ने उसी समय योगी की बात को स्वीकार कर लिया। उसने गेरुये वस्त्र पहने। कानों में कुण्डल पहने और हाथ में कमण्डल लेकर उसने अपने वंश वालों के दर्वाजों पर जाकर भीख माँगना आरम्भ किया। उसका वह कमण्डल सोने बहुमूल्य मोतियों से भर जाता था। यदुवंशियों की उपाधि बहुत पहले से राय थी। लेकिन इस योगी के सम्पर्क के बाद यदुवंशियों की उपाधि रावल हो गयी। इस रावल की उपधि को देकर योगी ने जिस विधान से देवराज को राजतिलक किया, उस विधान को राजतिलक के समय मानने के लिए देवराज को विवश किया। जब तक यदु का वंश रहेगा, देवराज ने हर्षपूर्वक इसे स्वीकार किया। इसके बाद वह योगी अदृश्य हो गया।

देवराज के जीवन की सभी परिस्थितियाँ बदल गयी थीं और उसने अपने आपको शक्तिशाली बना लिया था। इसलिए यदुवंशियों का विनाश करने वाली बराह जाति के लोगों से वदला लेने की उसने तैयारी की और आक्रमण करके उसने बराह लोगों को परास्त किया। इसके साथ-साथ उस उसने जाति के राजमहलों में प्रवेश करके सभी प्रकार के अत्याचार किये और उन लोगों से बदला लेकर वह देवरावल लौट आया। इसके बाद उसने लंगा लोगों पर आक्रमण किया। लंगा का युवराज अपनी सेना के साथ विवाह के लिए अलीपुर जा रहा था। इसी अवसर पर देवराज ने अपनी सेना लेकर रवाना हुआ और उन लोगों पर आक्रमण करके उनके एक हजार आदमियों को मार डाला। परास्त होकर लंगा के युवराज ने देवराज की अधीनता मंजूर कर ली।

यदुभट्टी वंश के पंजाब से भागने के समय से लेकर मरुभूमि में उनकी राजधानी के कायम होने के समय तक प्रत्येक संघर्ष में लंगा जाति के लोगों ने यदुभट्टी लोगों की बराबर सहायता की थी। इसलिए उस जाति के सम्बन्ध में यहाँ पर कुछ प्रकाश डालना आवश्यक है।

लंगा जाति के लोग वास्तव में राजपूत थे और वे अग्निकुल की चार शाखाओं में चालुक्य अथवा सोलंकी राजपूतों से सम्बन्ध रखते थे। वे लौकोट के प्राचीन निवासी थे। इससे प्रकट होता है कि आबू पर्वत से आने के बाद और हिन्दू धर्म स्वीकार करने के पहले वे लौकोट में रहते थे।

सम्बत् ७८७ सन् ७३१ ईसवी में यदुभट्टी लोगों के द्वारा तनोट के दुर्ग के निर्माण से लेकर सम्वत् १५३० सन् १४७४ ईसवी तक सात सौ तेंतालीस वर्षों का एक लम्बा समय होता है। इन

दिनों में लगातार भट्टी जाति के साथ लंगा लोगों का संघर्ष और युद्ध चला था। उसके बाद वह संघर्ष एक साथ समाप्त हो गया और उसके थोड़े दिनों के पश्चात् बाबर ने भारतवर्ष में आक्रमण किया। उन दिनों में इस जाति का अस्तित्व तिरोहित हो गया। तवारीख फरिश्ता में इस जाति के लोगों को मुलतान के राजवंशी कहकर उल्लेख किया है और कुछ ऐसी बातें भी लिखी गयी हैं, जो इस वंश के सम्बन्ध में जानने के योग्य हैं।

इस वंश के पाँच राजाओं में से पहला राजा हिजरी सम्वत् ८४७ सन् १४४३ ईसवी में रावल चाचक के मरने के तीस वर्ष पूर्व राज्य करता था। तवारीख फरिश्ता के अनुसार जब तक खिजर खाँ सैयद दिल्ली के सिंहासन पर रहा, शेख यूसुफ को अपना प्रतिनिधि बनाकर मुलतान भेजा। उसने शेख यूसूफ ने मुलतान में जाकर जिन राज्यों के साथ सम्बन्ध कायम किये, उनमें लंगा जाति का राजा राय सेहरा भी एक था। राय सेहरा ने मुलतान में जाकर शेख यूसुफ के साथ अपनी लड़की के विवाह का विचार प्रकट किया और उसकी अधीनता को स्वीकार करने के लिए भी वह राजी हो गया।

शेष यूसुफ ने राय सेहरा की बात को मंजूर कर लिया। राय सेहरा के इस प्रस्ताव का अभिप्राय क्या था, यह बाद में लोगों को मालूम हुआ। अपने उस प्रस्ताव के बहाने उसने शेख यूसुफ को कैद करके दिल्ली भेज दिया और अपना नाम कुतुबबुद्दीन रखकर वह मुलतान का अधिकारी बन गया।

फरिश्ता ने अपने इतिहास में राय सेहरा और उसके वंश वाले लंगा को अफगान माना है। सेवी राज्य के रहने वाले नूमरी जाति के थे और यही नूमरो जाति प्रसिद्ध जाट वंश की एक शाखा थी। भट्टी वंश के इतिहास लेखक ने लंगा लोगों को अपने ग्रंथ में कहीं पर पठान और कहीं पर राजपूत लिखा है। पठान अथवा अफगान प्राचीन काल में, विशेषकर राय सेहरा के दिनों में मुसलमान थे। राय शब्द राय सेहरा के हिन्दू होने का परिचय देता है। प्रसिद्ध इतिहासकार एलफिन्स्टन ने अफगानों की उत्पत्ति यहूदी लोगों से मानी है। यदुवंश और यहूदी वंश में कोई अन्तर नहीं मालूम होता। ऐसा मालूम होता है कि एक ही नाम के दो नाम किसी प्रकार बन गये हैं।

देवरावल की दक्षिणी सीमा पर लोद्र राजपूत रहते थे। उनकी राजधानी का नाम लुद्रवा था। यह नगर अत्यन्त विशाल था। उस राजधानी में बारह फाटक थे। लुद्रवा के राज पुरोहित ने अपने राजा से अप्रसन्न होकर देवराज के यहाँ आकर आश्रय लिया। उसने लुद्रवा के राजा के विरुद्ध देवराज को उकसाया। उसकी बातों से प्रोत्साहित होकर देवराज ने लुद्रवा नृपभानु के पास उसकी लड़की के साथ विवाह करने का सन्देश भेजा। राजा नृपभानु ने इस प्रस्ताव को सम्मान के साथ स्वीकार कर लिया। इसलिए बारह सौ साहसी अश्वारोही सेना को लेकर विवाह के जिए देवराज लुद्रवा राजधानी पहुँच गया। वहाँ के राजा ने आदरपूर्वक उसका स्वागत किया परन्तु राजधानी में पहुँचते ही देवराज के अश्वारोही सैनिकों ने वहाँ पर आक्रमण किया और लुद्रवा के राजा को परास्त करके देवराज वहाँ के राजसिंहासन पर बैठ गया। इसके बाद उसने नृपभानु की लड़की के साथ विवाह किया और अपने साथ के सैनिकों का एक दल वहां पर छोड़कर वह देवरावल लौट आया। उनके अधिकार में इस समय छप्पन हजार अश्वारोही सेना थी, जिस पर वह शासन करता था।

यशोकर्ण नाम का व्यवसायी देवरावल से धारा नगरी में जाकर रहने लगा था। यहां के राजा ब्रिजभानु ने उसे सम्पत्तिशाली समझ कर कैद करवा लिया और उसकी सम्पूर्ण सम्पत्ति छीन

ली । यशोकर्ण ने देवरावल में आकर रोते हुए देवराज से प्रार्थना की : "राजन , धारा नगरी के राजा ने बिना कोई अपराध के मुझे कैद किया , मेरी सम्पूर्ण सम्पत्ति छीनकर अनेक प्रकार के कष्ट मुझे दिये और उसने बाद मुझे छोड़ दिया । कैद करने के समय मेरे गले में रस्सी बांधी गयी थी, जिसके निशान अब तक मेरी गर्दन में मौजूद हैं ।"

देवराज ने यशोकर्ण की प्रार्थना को सुनकर उसकी गर्दन में रस्सी के निशान देखे । वह मन ही मन सोचने लगा कि यशोकर्ण के साथ जो यह अपमान पूर्ण व्यवहार किया गया है, वह मेरा अपमान है । इसलिए क्रोध में आकर उसने प्रतिज्ञा की कि मैं इस अपमान का जब तक बदला न ले लूंगा , अन्न-जल ग्रहण न करूंगा ।

देवराज ने धारानगरी के राजा से अपमान का बदला लेने के लिए प्रतिज्ञा की । परन्तु उस समय उसने देवरावल और धारा नगरी की दूरी का विचार न किया । बिना अन्न ग्रहण किये तो कोई भी कई दिनों तक रह सकता है । परन्तु बिना जल के एक दिन भी काटना कठिन हो जाता है । देवरावल से धारानरी पहुँचने और उसको विजय कतरने के लिए समय की आवश्यकता है । उतने समय तक बिना जल के कोई मनुष्य जीवित नहीं रह सकता । इस दशा में देवराज की प्रतिज्ञा का क्या परिणाम होगा , इस प्रश्न को सोचकर देवराज के मन्त्री एक साथ चिन्तत हो उठे ।

इस विषय में मन्त्रियों ने देवराज के पास जाकर बातचीत की और जो सङ्कट सामने था , उस पर विचार करने के लिए देवराज से प्रार्थना की । उनकी बातों को सुनकर देवराज ने क्षण भर कुछ सोचा और अपने मंत्रियों की तरफ देख कर कहा : "फिर अब क्या होना चाहिए ?"

मंत्रियों ने आपस में परामर्श करके और एक मत होकर देवराज से कहा : "राजन् , सब-कुछ हो सकता है । धारा नगरी के निवासी प्रमार राजपूत हैं । वहाँ का राजा भी इसी वंश का है । आपके सेना में बहुत से सैनिक प्रमार वंशी हैं । मिट्टी की एक धारा नगरी तैयार करवायी जाव । उसकी रक्षा के लिए आपकी सेना के प्रमार राजपूत अपने हाथों में तलवारें लेकर इस धारा-नगरी की रक्षा करें और आप अपनी सेना के साथ उन पर आक्रमण करें । उस समय आप के प्रमार वंशी सैनिक पराजित हों और इस प्रकार विजयी होकर आप अपनी प्रतिज्ञा की रक्षा करें ।"

मंत्रियों के परामर्श के अनुसार धारा नगरी के निर्माण का कार्य आरम्भ हुआ । देवराज की सेना के सभी प्रमार सैनिक तलवारें और भाले लेकर उस नगरी की रक्षा करने के लिए पहुँच गये । इसके बाद देवराज ने पूर्व निश्चय के अनुसार , सेना लेकर उस नगरी पर आक्रमण किया । रक्षा करने वाले प्रमार सैनिकों ने देवराज के साथ युद्ध करना आरम्भ किया । उसी समय प्रमार सैनिकों ने कहा :

जँह पँवार तँह धार है , जहाँ धार वहाँ पँवार ।
धारक बिना पँवार नहिं , नहिं पँवार बिन धार ।

जहाँ पर प्रमार रहते हैं , धारानगरी वहीं पर है । जहाँ प्रमार नहीं रहते , धारानगरी वहाँ नहीं है ।

प्रमार सैनिक ने बड़े साहस और शौर्य के साथ उस कृत्रिम धारानगरी की रक्षा करते हुए देवराज के साथ युद्ध किया । तेजसिंह और सारंग नामक प्रमार सैनिक उनका नेतृत्व कर रहे थे । उस युद्ध में समस्त प्रमार सैनिक—जो संख्या में एक सौ बीस थे—मारे गये और उनको जीतकर देवराज ने अपनी प्रतिज्ञा पूरी की । जो प्रमार सैनिक युद्ध करते हुए मारे गये , उनके सिद्धान्त

और शौर्य से प्रसन्न होकर उनके परिवार के जीवन निर्वाह के लिए देवराज ने आर्थिक सहायतायें दीं।

इसके पश्चात् देवराज ने धारानगरी के राजा पर आक्रमण करने की तैयारी की। जिस समय वह अपनी शक्तिशाली सेना लेकर रवाना हुआ, उसके साथ युद्ध करने के लिए राजा ब्रिजभानु ने अपनी सेना भेजी। धारानगरी सीमा के बाहर भीषण युद्ध हुआ। उसमें धारानगर के बहुत से सैनिक मारे गये और जो सेना बाकी रह गयी, वह युद्ध-क्षेत्र छोड़ कर भागी। देवराज ने अपनी सेना लेकर धारानगरी पर आक्रमण किया। राजा ब्रिजभानु ने अपनी सेना के साथ पाँच दिन तक बराबर युद्ध किया और अंत में अपने आठ सौ सैनिकों के साथ वह युद्ध में मारा गया। देवराज ने प्राचीन धारानगरी के दुर्ग पर अपनी विजय का झंडा फहराया। इसके बाद वह लुद्रवा नगर चला गया। ×

देवराज के मूँद और छेद नामक दो लड़के पैदा हुए। उसके दूसरे लड़के के—जिसकी स्त्री बराह वंश में पैदा हुई थी—पाँच लड़के पैदा हुए। वे लोग छेदूवंशी राजपूतों के नाम से प्रसिद्ध हुए। बेरावल की निकटवर्ती भूमि में देवराज ने अनेक विशाल तालाब खुदवाये थे। तनोट नामक नगर में जो तालाब खुदवाया, उसका नाम तनोटसर रखा और एक दिन विशाल तालाब खुदवा कर उसका नाम अपने नाम पर देवसर रखा। एक देवराज अपने आदमियों के साथ शिकार खेलने गया था। वहाँ पर छानिया जाति के बलोचों ने देवराज पर आक्रमण किया और उसे जान से मारा डाला। उसने स्वाभिमान और गौरव के साथ बावन वर्ष तक राज्य किया।

देवराज की मृत्यु के पश्चात् उसका बड़ा लड़का मूँद उसके राज सिंहासन पर बैठा। उसने पिता का श्राद्ध कार्य किया। उसके बाद उसका राज्याभिषेक हुआ। उसने अड़सठ कुओं के जल से स्नान किया। अभिषेक के समय राज्य के पुरोहित ने आशीर्वाद दिया और सामन्तों ने उससे अपनी-अपनी भेंटे दीं। सिंहासन पर बैठने के बाद मूँद ने अपने पिता का बदला लेने के लिए तैयारी की।

जिन लोगों ने देवराज को मारा था, वे पहले से ही सतर्क थे। मूँद ने उन पर आक्रमण करके उनके आठ सौ सैनिकों का संहार किया। मूँद के बाछू नाम का एक लड़का पैदा हुआ। जब उसकी अवस्था चौदह वर्ष की थी, पटट्न के राजा सोलंकी राजपूत बल्लभसेना ने उसके साथ अपनी लड़की का विवाह करने के लिए नारियल भेजा। इसके पश्चात् सोलंकी राजकुमारी के साथ राजकुमार बाछूराव का विवाह हुआ।

मूँद के परलोक यात्रा करने पर सम्वत् १०३५ श्रावण कृष्ण पक्ष द्वादशी शनिवार के दिन बाछूराव सिंहासन पर बैठा। उसके पाँच बालक पैदा हुए—(१) दूसा (२) बापेराव (३) सिंह (४) इनवे और (५) मूलअपसा। इन पाँचों लड़कों के वंशधर कई शाखाओं के विभक्त होकर प्रसिद्ध हुए।

× राजपूतों में लुद्र लोगों का वंश क्या है, इसके सम्बन्ध में कोई स्पष्ट उल्लेख हमें पढ़ने को नहीं मिला। परन्तु सम्भावना की प्रत्येक अवस्था में ये लोग प्रमार वंशी राजपूत थे, जिन्होंने किसी समय भारत वर्ष की सम्पूर्ण मरुभूमि को अपने अधिकार में कर लिया था। जिन दिनों में भट्टी जाति के लोगों के द्वारा जैसलमेर में राजधानी कायम हुई थी, उसके पहले तक लुद्रवा भट्टी लोगों की राजधानी थी। यह बहुत प्राचीन नगर माना जाता है। परन्तु अब यह नगर बिलकुल नष्ट-भ्रष्ट हो गया है। इन दिनों में वहाँ पर गड़रिया लोगों की आबादी है। लगातार युद्धों के कारण मरुभूमि के सभी प्राचीन नगर विध्वंस हो गये हैं। लुद्रवा में दसवी शताब्दी का एक ताम्र पत्र मुझे मिला था, वह ब्रिजराज अथवा बीजी राज के समय का था। वह जैन भाषा में था।

एक घोड़ों का व्यवसायी अपने साथ एक सौ घोड़े लिए जा रहा था। उन घोड़ों में एक घोड़ा बहुत श्रेष्ठ था। उस व्यवसायी ने एक लाख रुपये में उसको बेचने का निश्चय किया। सिंधु नदी की पश्चिमी सीमा का रहने वाला गाजीखाँ नामका एक पठान उस घोड़े का मालिक था। दूसा ने अपनी सेना लेकर गाजी खाँ पर आक्रमण किया और उसको मारकर वह उसके उस श्रेष्ट घोड़े को अपने साथ ले आया।

सिंह के एक बालक पैदा हुआ, उसका नाम सच्चाराय था। उसके पुत्र बल्ला के रत्न और जग्गा नामक दो लड़के पैदा हुआ। उन्होंने मंदोर के परिहार राजा जगन्नाथ पर आक्रमण किया और उस के पाँच सौ ऊँटों को जीतकर अपने राज्य में ले आये। सिंह के वंशज सिंहराव राजपूत के नाम से प्रसिद्ध हुए।

बापेराव के दो बालक हुए। एक का नाम था, पाहुर और दूसरे का नाम था, मॉंदन। पाहुर के विरम और तोलर नाम के दो लड़के पैदा हुए। उनके वंशज पाहुर राजपूत के नाम से प्रसिद्ध हुए। पाहुर राजपूतों ने जोहिया. के समस्त नगरों से लेकर देवीछाल तक अधिकार कर लिया और पूगल में राजधानी बनाकर वहाँ पर बहुत से कुएँ खुदवाये। वे कुएँ पाहुर कूप के नाम से प्रसिद्ध हैं।

मारवाड़ के नागौर जिले में खाचो के करीब खीची वंश के लोग रहते थे। उनमें जिद्रा नामक एक आदमी बड़ा साहसी था। उसने पूगल की सीमा तक पहुँचकर लूटमार की और जयतुग भट्टियों का सर्वनाश किया। इन लुटेरों से बदला लेने के लिए दूसा अपने साथ कुछ साहसी बीरों को लेकर रवाना हुआ और उनके नगरों में पहुँचकर उसने उनके नौ सौ लुटेरों का सर्वनाश किया।

गहिलोन राजा प्रताप सिंह खडाल राज्य में रहता था। दूसा अपने तीन भाइयों के साथ वहाँ पहुँचा और उनकी तीन लड़कियों के साथ विवाह किया। इसके कुछ दिनों बाद खडाल राज्य में बिलोचियों के अत्याचार आरम्भ हुए। उन्हीं दिनों में उनके साथ युद्ध हुआ, जिसमें पाँच सौ बिलोची मारे गये और बाकी सब भाग गये। बाछूराव की मृत्यु के बाद उसका बड़ा पुत्र दूसा सम्वत् ११०० के आसाढ़ महीने में यदुवंशियों के सिंहासन पर बैठा।

दूसा के सिंहासन पर बैठने के थोड़े दिनों बाद सोढा जाति के राजा हमीर सिंह ने दूसा के राज्य पर आक्रमण किया और वहाँ के कई एक नगरों को लूट लिया। यह देखकर दूसा अपनी सेना लेकर रवाना हुआ और उसने हमीर सिंह पर उसकी राजधानी में जाकर आक्रमण किया। उस लड़ाई में हमीर सिंह की पराजय हुई।

दूसा के जयसलदेव और विजयराव नाम के दो बालक पैदा हुए। उसकी वृद्धावस्था में तीसरा लड़का पैदा हुआ। जिसका नाम लँजा विजयराव रखा गया। दूसा के मरने पर राज्य के सामन्तों ने उसके तीसरे राजकुमार लँजा विजयराव को राजसिंहासन पर बिठाया। राज्य का अधिकार प्राप्त करने के पहले लँजा विजयराव ने सोलंकी वंश के सिद्धराज जयसिंह की लड़की के साथ विवाह किया था। उस विवाह के अवसर पर जयसिंह की रानी ने लँजा विजयराव के मस्तक पर तिलक करते हुए कहा था: प्रिय, उत्तर दिशा में रहने वाले लोग इस राज्य से ईर्षा रखते हैं और वे प्राय: इस राज्य पर अत्याचार किया करते हैं। इसलिए उन लोगों से इस राज्य की रक्षा करना।"

सोलंकिनी राजकुमारी से लँजा विजयराव के एक बालक पैदा हुआ। उसका नाम भोजदेव रखा गया। अपने पिता की मृत्यु के बाद पच्चीस वर्ष की अवस्था में भोजदेव लुद्रवा का राजा हुआ। दूसा के दूसरे लड़के इस समय वयस्क हो चुके थे। जयसल की अवस्था पैंतीस वर्ष और विजयराव की आयु बत्तीस वर्ष की थी।

भोजदेव के लुद्रवा के सिंहासन पर बैठने के बाद उसके चाचा जयसलदेव ने ईर्षालु होकर उसके विरुद्ध षड़यंत्र आरम्भ किया। पाँच सो सोलंकी राजपूतों के द्वारा सुरक्षित रहने के कारण जयसलदेव भोजदेव को किसी प्रकार की क्षति पहुँचा न सका। इन दिनों में शहाबुद्दीन ठट्ठा नामक राज्य को जीतकर पाटन के राजा के साथ युद्ध कर रहा था। जयसलदेव ने शहाबुद्दीन से मिलकर भोजदेव को पराजित करने की चेष्टा की। उसने शहाबुद्दीन के साथ मित्रता की और उसकी सहायता लेकर उसने अनहिलवाड़ा पट्टन पर आक्रमण करने का निश्चय किया। उसका अनुमान था कि पट्टन के पाँच सौ सोलंकी राजपूत जो सदा भोजदेव की रक्षा में रहा करते हैं, वे पट्टन पर आक्रमण होते ही भोजदेव को छोड़कर चले जायँगे। उस समय भोजदेव के विरुद्ध हमारा मार्ग साफ हो जायगा। इस प्रकार सोच विचार कर उसने अपने साथ के दो सौ अश्वारोही सैनिकों को तैयार किया और उनको लेकर वह पंजाब की तरफ रवाना हुआ। इन्हीं दिनों में शहाबुद्दीन गोरी ठट्ठा राज्य में विजयी होकर सिंध की प्राचीन राजधानी अरोड नगर को जा रहा था। जयसलदेव शहाबुद्दीन से मिलने के लिये आया। शहाबुद्दीन ने उसका बहुत आदर किया। जयसलदेव ने स्वीकार कर लिया। दोनों में मित्रता हो गयी। शहाबुद्दीन गोरी ने अपने कई हजार सैनिकों की एक सेना करीमखाँ नाम के सेनापति को देकर जयसलदेव की सहायता में भेजी। गोरी की उस सेना को लेकर जयसलदेव भोजदेव को पराजित करने के लिए लुद्रवा राज्य की तरफ रवाना हुआ और वहाँ पहुँच कर जयसलदेव ने एक साथ लुद्रवा पर आक्रमण किया। इस युद्ध में भोजदेव मारा गया और उसकी बची हुई सेना ने जयसलदेव की अधीनता स्वीकार कर ली। इसके बाद करीमखाँ की फौज ने लुद्रवा में लूट की और वहाँ से बहुत बड़ी सम्पत्ति अपने अधिकार में लेकर करीमखाँ भक्खर की तरफ चला गया।

जयसल ने लुद्रवा के राज सिंहासन को अपने अधिकार में कर लिया। लेकिन इन्हीं दिनों में उसे आभास हुआ कि लुद्रवा की राजधानी सुरक्षित नहीं है। यहाँ पर शत्रुओं का कभी भी आक्रमण हो सकता है। इसलिए उसने एक सुरक्षित स्थान की खोज की और इसके लिए जो स्थान निश्चित किया, वह लुद्रवा से दस मील की दूरी पर था। जयसल ने उस स्थान के पत्थर पर किसी ब्राह्मण को बैठा हुआ देखा वहाँ पर ब्रह्मसर नामक एक तालाब था। उसी के निकट उस ब्राह्मण की कुटी थी।

जयसल ने उस ब्राह्मण से बातचीत की। उसको उत्तर देते हुए ब्राह्मण ने कहा : "त्रेता युग में काग नाम का एक योगी इस तालाब के समीप रहता था। यहाँ से एक नदी निकली थी। उस योगी के नाम से वह नदी काग नदी के नाम से प्रसिद्ध हुई। यह तालाब बहुत प्रसिद्ध और प्राचीन था। कृष्ण के साथ आकर अर्जुन ने इसके दर्शन किये थे। इसे देखकर कृष्ण ने अर्जुन से कहा था कि आज से बहुत दिनों के बाद हमारा कोई वंशज इस पर्वत पर अपनी राजधानी की प्रतिष्ठा करेगा।

कृष्ण की इस बात को सुनकर अर्जुन ने कहा : "राजधानी बनने के बाद यहाँ पर जो लोग रहेंगे, उनको जल का बहुत कष्ट रहेगा। क्यों कि इस नदी का पानी स्वच्छ नहीं है।

अर्जुन की इस बात को सुनकर कृष्ण ने अपने चक्र से पर्वत को स्पर्श किया। उससे स्वादिष्ट जल की एक नदी प्रवाहित हुई। उस नदी के किनारे एक पत्थर लगा हुआ था। उस पर कुछ पंक्तियाँ खुदी हुई थी। उस ब्राह्मण ने उन पंक्तियों को पढ़कर जयसल को सुनाया। उनका आशय इस प्रकार था :

१—हे प्रतापी यदुवंशी राजन, आप यहाँ पर आइए और इस पर्वत के ऊपर अपना दुर्ग बनवाइए।

२— लुद्रवा की राजधानी नष्ट हो गयी है और जयसल राज्य यहाँ से दस मील की दूरी पर है, जो सुदृढ़ और सुरक्षित है।

३—हे यदुवंशी राजन् आप जयसल और लुद्रवा को त्याग कर यहाँ पर आइए और अपनी राजधानी की प्रतिष्ठा करिए।

पत्थर पर लिखी हुई ये पंक्तियाँ संस्कृत भाषा के श्लोकों में थीं। इनकी जानकारी उस ब्राह्मण के सिवा वहाँ पर और किसी को न थी। उसने जयसल से यह भी कहा कि आप यहाँ पर अपनी रक्षा के लिए जिस दुर्ग के निर्माण का विचार कर रहे हैं। वह दो बार बाहरी जातियों के द्वारा विध्वंस किया जायगा, युद्ध होगा, रक्त के नाले बहेंगे और आपके उत्तराधिकारी उसे अपने अधिकार से खो देंगे।

सम्बत् १२१२ के श्रावण महीने की बदी द्वादशी रविवार के दिन सन् ११५६ ईसवी को जैसलमेर की राजधानी की प्रतिष्ठा हुई। इसके बाद लुद्रवा के निवासी अपने परिवारों के साथ वहाँ आकर रहने लगे। जयसल के केलन और शालिवाहन नाम के दो बालक पैदा हुए। जयसल ने पाहुवंशी एक विद्वान को अपना मंत्री नियुक्त किया। भट्टी लोगों के पुराने शत्रु चन्ना राजपूतों ने इन्हीं दिनों में फिर खडाल राज्य पर आक्रमण किया और उसके फलस्वरूप, उन लोगों को भयानक क्षति उठानी पड़ी। इस घटना के बाद जयसल पांच वर्ष तक जीवित रहा। उसके मरने पर उसका छोटा लड़का शालिवाहन द्वितीय उसके राज सिंहासन पर बैठा।

———

बावनवाँ परिच्छेद

राजा के साथ मंत्री का विरोध—युद्ध में राना जगभानु की पराजय—रावल शालिवाहन के साथ षड़यंत्र—प्रजा का विरोध—जैसलमेर का सूना राज-सिंहासन—खडाल राज्य पर खिजर खाँ का आक्रमण—चन्ना राजपूतों के साथ युद्ध—नागौर में मुजफ्फर खाँ के अत्याचार—राजा लाखन की मूर्खता—राज्याधिकार के लिए संघर्ष—अलाउद्दीन का आक्रमण।

जैसल ने अपनी बनवाई हुई राजधानी का नाम जैसलमेर रखकर बारह वर्ष तक शासन किया। जैसलमेर अब तक यदुवंशी लोगों के अधिकार में था। जैसल ने यदुवंशी एक योग्य मनुष्य को अपने राज्य में प्रधान मंत्री का पद दिया। वह अत्यन्त बुद्धिमान और राजनीतिज्ञ था। उसके मंत्री काल में जैसलमेर राज्य की उन्नति हुई।

जैसल की मृत्यु के पश्चात् उसके बड़े पुत्र केलन को राज्य का अधिकार था। वह पिता के राज्य सिंहासन पर बैठा। परन्तु राज्य का प्रधान मंत्री पाहु उससे प्रसन्न न था। इसलिए उसने केलन का विरोध किया और राज्य से उसे निर्वासित करके जैसल के छोटे पुत्र राजकुमार शालिवाहन द्वितीय को सबके परामर्श से सम्बत् १२२४ सन् ११६८ ईसवी में राज्य सिंहासन पर बिठाया।

शासन का प्रबंध अपने हाथ में लेने के बाद शालिवाहन ने ऐसे कार्य आरम्भ किये, जिससे उसकी कीर्ति बढ़ने लगी।

जालौर और अरावली के बीच के स्थानों में काठी नाम की एक जाति के लोग रहते थे। जगभानु उस जाति के लोगों का राजा था। सिंहासन पर बैठने के बाद शालिवाहन ने राजा जगभानु से युद्ध करने का निश्चय किया। इन दोनों राजाओं में युद्ध हुआ और उसमें काठी जाति का राजा जगभानु.परास्त होने के बाद मारा गया। × शालिवाहन ने विजय प्राप्त करने के बाद काठी राजा जगभानु के घोड़ों और ऊँटों को अपने अधिकार में कर लिया और फिर वह अपनी राजधानी लौट आया। शालिवाहन के तीन बालक पैदा हुए : बीजलदेव, बानर और हंसू।

यदुवंशी शालिवाहन प्रथम ने गजनी से पंजाब में आकर शालिवाहनपुर राजधानी की प्रतिष्ठा की। उसके लड़के ने बद्रीनाथ पहाड़ के ऊपर एक स्वतंत्र राज्य कायम किया। जैसलमेर के सिंहासन पर जिन दिनों में शालिवाहन द्वितीय बैठा था, उन्हीं दिनों में बद्रीनाथ पर्वत के यदुवंशी राजा की मृत्यु हो गयी। उसके कोई लड़का न था। इसलिए उसके मंत्रियों और सामन्तों ने किसी यदुवंशी बालक को उस सिंहासन पर बिठाने के लिए शालिवाहन द्वितीय से परामर्श किया।

रावल शालिवाहन ने अपने वंश के एक राज्य की रक्षा करने के लिए वहाँ के मंत्रियों और सामन्तों की माँग के अनुसार अपने तीसरे पुत्र हंसू को बद्रीनाथ भेज दिया। परन्तु संयोवंश वहाँ पहुँचने के बाद उसकी मृत्यु हो गयी। हंसू की स्त्री गर्भवती थी। बद्रीनाथ वह अपने पति के साथ जा रही थी। रास्ते में उसको प्रसव की पीड़ा हुई। वहीं पर एक पलाश के पेड़ के नीचे उसके एक बालक पैदा हुआ। उसका नाम पलाश रखा गया। यही राजकुमार पलाश बद्रीनाथ के राज्य का अधिकारी हुआ और उसी के नाम के आधार पर उस राज्य का नाम पलाशिया राज्य रखा गया। उसके वंशज पलाशिया भट्टी नाम से प्रसिद्ध हुए।

सिरोही के देवरावंशी मानसिंह ने रावल शालिवाहन के साथ अपनी लड़की के विवाह का विचार किया और उसका निश्चय करके राजपूतों की प्रणाली के अनुसार उसने नारियल भेजा। शालिवाहन ने उस विवाह को स्वीकार कर लिया और अपने बड़े पुत्र बीजलदेव को राज्य की रक्षा का उत्तरदायित्व देकर सिरोही विवाह करने चला गया। शालिवाहन के चले जाने के बाद बीजलदेव के धाभाई अर्थात् धात्री माता के लड़के ने यह अफवाह उड़ा दी कि सिरोही के रास्ते में रावल शालिवाहन ने एक चीते पर आक्रमण किया था। उसमें वह सफल न हुआ और वह चीते के द्वारा मारा गया।

उस धाभाई ने इस बात की पूरी चेष्टा की कि बीजलदेव को सिंहासन पर बिठा दिया जाय। बीजलदेव पहले से ही अपने इस धाभाई के साथ विशेष अनुराग रखता था और उस पर बहुत विश्वास करता था। बीजलदेव सिंहासन पर बिठा दिया गया। सिरोही से लौटने के बाद रावल शालिवाहन जब अपने नगर में आया तो उसने देखा कि बीजलदेव ने सिंहासन पर अधिकार कर लिया है। इसी समय उसने बीजलदेव की तरफ से असभ्य अशिष्टता का व्यवहार

× सिकन्दर महान के भारतवर्ष में आक्रमण करने पर जिस काठी जाति ने उसका सामना किया था, यह वह काठी जाति थी, जिसके लोग उन दिनों में मुलतान के आस-पास रहते थे। ये लोग युद्ध करने में सदा से साहसी और पराक्रमी थे। यदुभट्टी लोगों ने उन पर आक्रमण किया था।

देखा। उसने शालिवाहन के लौटने पर उससे साफ-साफ कह दिया :

"जैसलमेर के सिंहासन पर अब आपका कोई अधिकार नहीं है।"

शालिवाहन ने देखा कि राज्य की प्रजा बीजलदेव का पक्षपात कर रही है और उसको हमारा कुछ भी ख्याल नहीं है। इस दशा में सभी प्रकार निराश होकर वह खडाल राज्य चला गया। यह राज्य देरावर की अधीनता में था। वहाँ पहुँचकर शालिवाहन अधिक समय तक जीवित न रहा। वहाँ पर खिजरखाँ नामक एक बलोची ने विद्रोह किया। शालिवाहन उसको दमन करने के लिए रवाना हुआ और अपने तीन सौ आदमियों के साथ वहाँ पर वह मारा गया।

इस प्रकार शालिवाहन द्वितीय का सर्वनाश हुआ परन्तु विश्वासघाती उसका पुत्र बीजलदेव भी अधिक दिनों तक जीवित न रहा। धाभाई के साथ उसका द्वेषभाव उत्पन्न हुआ। उसमें बीजलदेव पूरी तौर पर उसका शत्रु बन गया। उसने एक बार अपने धाभाई पर तलवार लेकर आक्रमण किया। लेकिन अपने इस आक्रमण से लज्जित होकर बाद में बीजलदेव ने आत्म हत्या कर ली।

शालिवाहन और उसके लड़के बीजलदेव के न रहने पर जैसलमेर का राज्य सिंहासन सूना हो गया। उस पर अब किसको बिठाया जाय, यह प्रश्न पैदा हुआ। शालिवाहन के बड़े भाई राजकुमार केलन को राज्य से निकाल दिया गया था। सभी के परामर्श से सन् १२०० ईसवी में उसी को लाकर, उसकी पचास वर्ष की अवस्था में जैसलमेर के सिंहासन पर बिठाया गया। केलन के छै बालक पैदा हुए—(१) चाचकदेव (२) पाल्हन (३) जयचंद (४) पीतमसी (५) पीतमचंद और (६) ओसराड। दूसरे और तीसरे लड़के—पाल्हन और जयचन्द के बहुत-सी संताने पैदा हुईं, जो जेसर और सिहाना राजपूत के नाम से प्रसिद्ध हुईं।

खिजरखाँ ने अपने साथ पाँच हजार सवारों की सेना लेकर सिंधु नदी को पार किया और उसने दूसरी बार खडाल राज्य पर आक्रमण किया। इसी खिजरखाँ ने रावल शालिवाहन को पहले आक्रमण में पराजित किया था। उसके आक्रमण का समाचर सुनकर केलन सात हजार यदु वंशियों की सेना लेकर रवाना हुआ और खिजरखाँ के साथ उसने भयानक युद्ध किया। इस संग्राम में अपने पाँच सौ सैनिकों के साथ बलोच खिजरखाँ मारा गया और वृद्धावस्था में केलन को अपने शत्रु पर विजय प्राप्त हुई। जैसलमेर के सिंहासन पर बैठकर उसने उन्नीस वर्ष तक राज्य किया। उसके बाद उसकी मृत्यु हो गयी।

रावल केलन की मृत्यु के बाद उसके बड़े लड़के चाचकदेव को सम्वत् १२७५ सन् १२१६ ईसवी में राज्य सिंहासन पर बिठाया गया। इसके थोड़े ही दिनों बाद चाचक देव ने चन्ना राजपूतों के साथ युद्ध किया और शत्रु के दो हजार राजपूतों का संहार करके उनकी चौदह सौ गायें छीन लीं। चन्ना राजपूत पराजित हो जाने के बाद अपने राज्य को छोड़ कर जोहिया राज्य में जाकर रहने लगे।

रावल चाचक देव ने चन्ना राजपूतों को परास्त करने के बाद सोढा के राजा-राणा अमरसी के राज्य पर आक्रमण किया। राजा अमरसी को इस आक्रमण से बहुत आश्चर्य हुआ और चाचक देव का सामना करने के लिए अपने चार हजार सवारों की सेना को लेकर वह रवाना हुआ। इस युद्ध में चाचक देव से पराजित होकर प्रमार राजपूत अपनी राजधानी अमरकोट भाग गये और उनके राजा अमरसी ने चाचकदेव के साथ अपनी लड़की का विवाह कर दिया।

इन्हीं दिनों में राठौर राजपूतों ने मरुभूमि में आकर खेड नाम का एक नया राज्य बसाया था। वहाँ पर राठौरों ने अनेक प्रकार के अत्याचार आरम्भ किये इसलिए रावल चाचक ने उन राठौरों को दमन करने का विचार किया। जसोल और बालोतरा नामक दो राज्यों पर राठौरों ने

अधिकार कर लिया। रावल चाचक अपनी और सोढावंशी लोगों को सेना लेकर राठौरों के विरुद्ध रवाना हुआ और उसने राठौरों से युद्ध आरम्भ कर दिया। इस युद्ध में राठौरों ने संधि की और रावल चाचक के साथ राठौर राजकुमारी का विवाह कर दिया।

बत्तीस वर्ष तक राज्य करने के बाद रावल चाचक की मृत्यु हो गयी। उसका इकलौता बेटा तेजराव उसके सामने ही बयालीस वर्ष की आयु में चेचक रोग से पीड़ित होकर मर गया। तेजराव के जैनसी और कर्णसी नाम के दो बालक थे। कर्णसी छोटा था। रावल चाचक इस छोटे बालक के साथ अधिक स्नेह करता था। मरने के समय उसने मंत्रियों, सामन्तों और परिवार के लोगों को बुला कर कहा : "मेरे मरने के बाद राजकुमार कर्णसी को राज सिंहासन पर बिठाना। मेरी इस बात में किसी प्रकार का अन्तर न पड़े।"

रावल चाचक के निर्णय के अनुसार राज्य के सामन्तों ने छोटे राजकुमार कर्णसी को जैसलमेर के सिंहासन पर बिठाया। इस सिंहासन का वास्तव में अधिकारी बड़ा लड़का जैतसी था। अपने अधिकारों की अवहेलना देखकर व्यथित और लज्जित होकर वह अपने राज्य से चला गया और गुजरात के मुस्लिम बादशाह के यहाँ जाकर रहने लगा। रावल कर्णसी के सिंहासन पर बैठने के बाद नागौर में हिन्दुओं के साथ मुजफ्फर खाँ के अत्याचार हुए। नागौर से तीस मील की दूरी पर बराहवंशी भगवतीदास नामक एक राजा रहता था। उसके अधिकार में एक हजार पाँच सौ अश्वारोही सेना थी। भगवतीदास की लड़की अपने सौन्दर्य के लिए बहुत प्रसिद्ध हो रही थी। मुजफ्फर खाँ ने अपना एक आदमी भेजकर भगवतीदास से उस लड़की की माँग की। भगवतीदास जब मुजफ्फर खाँ की आज्ञा का पालन न कर सका और उसके साथ युद्ध करने में भी भगवती दास ने अपने आपको असमर्थ समझा तो उसने अपने परिवार के साथ जैसलमेर चले जाने का निर्णय किया और जब वह अपने परिवार को लेकर जैसलमेर जा रहा था, मुजफ्फर खाँ ने अपनी फौज लेकर मार्ग में उस पर आक्रमण किया। भगवतीदास के साथ जो सेना थी, उसने मुजफ्फर खाँ की फौज के साथ बहुत देर तक युद्ध किया। उसमें चार सौ बराहवंशी राजपूत सैनिक मारे गये और मुजफ्फर खाँ ने भगवतीदास के साथ की समस्त स्त्रियां को कैद कर लिया। उसमें वह लड़की भी गिरफ्तार हो गयी।

मुजफ्फर खाँ इन सब को कैद करके अपने साथ ले गया। भगवती दास ने जैसलमेर जाकर रावल कर्णसी से मुजफ्फर खाँ के इस अत्याचार का वर्णन किया। कर्णसी को अत्यधिक क्रोध मालूम हुआ। उसने उसी समय अपनी सेना को तैयार होने के लिए आदेश दिया और एक शक्तिशाली सेना लेकर मुजफ्फर खाँ पर आक्रमण करने के लिए रवाना हुआ। मुजफ्फर खाँ की फौज के साथ जैसलमेर की सेना ने भयानक युद्ध किया और उसके तीन हजार सैनिकों का संहार करके मुजफ्फर खाँ से भगवतीदास की लड़की और स्त्रियों के साथ साथ समस्त सम्पत्ति छीन ली और जैसलमेर में भगवतीदास को लाकर सौंप दी।

अट्ठाईस वर्ष तक राज्य करने के बाद रावल कर्णसी ने परलोक की यात्रा की। उसके बाद उसका पुत्र लाखनसेन सम्बत् १३२७ सन् १२७१ ईसवी में जैसलमेर के सिंहासन पर बैठा। उसके बुद्धिमानी व्यवहारों को सुनकर कोई भी हँसेगा। एक दिन रात की बात है, आबादी के बाहर बहुत से सियार चिल्ला रहे थे। लाखन के पूछने पर बताया गया कि ये सियार सरदी के कारण चिल्ला रहे हैं। यह सुनकर लाखनसेन ने प्रत्येक सियर को एक-एक कम्बल देने का आदेश दिया। इसके बाद भी जब कि राज्य की तरफ से कम्बलों का प्रबन्ध हो चुका और उनका चिल्लाना जारी रहा तो लाखनसेन ने फिर पूछा : "अब यह क्यों चिल्ला रहे हैं?"

इसके उत्तर में लाखनसेन को बताया गया कि उनके पास रहने के लिए घर नहीं है, इस लिए चिल्ला रहे हैं। लाखनसेन ने उनके लिए घर बनवाने की आज्ञा दी। आज्ञा के अनुसार उनके लिए मकान बनवाये गये। राजा लाखनसेन के द्वारा इस प्रकार जो घर बनवाये गये थे, उन में से कुछ अब तक वहाँ पर पाये जाते हैं।

लाखनसेन कनाडदेव सोनगरा का समकालीन था। उसकी रानी ने एक बार उसके प्राणों की रक्षा की थी। उसकी रानी सोढा वंश में उत्पन्न हुई थी। राज्य में उसी का प्रभुत्व काम कर रहा था। उसके पिता की राजथानी अमरकोट में थी। वहाँ से उसने बहुत-से आदमियों को बुलवाकर राज्य के अच्छे स्थानों पर रखे थे। लाखनसेन ने चार वर्ष तक सिंहासन पर बैठकर राज्य किया।

पुण्यपाल लाखनसेन था लड़का था। पिता के बाद वह सिंहासन पर बैठा। उसका व्यवहार अच्छा न था। इसलिए राज्य के सामन्तों ने उसे सिंहासन से उतार दिया और जेतसी को—जो गुजरात में जाकर रहने लगा था—सिंहासन पर बिठाया। पुण्यपाल अपने राज्य से निकल कर जैसलमेर से कुछ दूरी पर जाकर रहने लगा। वहाँ पर लाखनसी नाम का एक लड़का उसके पैदा हुआ। इस लाखनसी के रणिगदेव नाम का एक बालक हुआ। वयस्क होने पर खरल वंशी एक राजपूत के साथ मिल कर उसने एक षड़यंत्र आरम्भ किया। उसने जोहिया लोगों से मिल कर मरोट और जाति के अधिकारों से पूगल राज्य छीन कर अपना राज्य कायम किया और थोरी लोगों के प्रधान को कैद कर लिया। उसने पूगल में अपने परिवार के लोगों को रखा। राव रणिगदेव के सहदोल नामक एक लड़का पैदा हुआ। सम्बत् १३३२ सन् १२७६ ईसवी में जैतसी जैसलमेर के सिंहासन पर बैठा। मूलराज और रत्नसी नाम के दो बालक उसके पैदा हुए। मूलराज के पुत्र देवराज ने जालौर के सोनगड़े वंशी राजा की लड़की के साथ विवाह किया।

बादशाह मोहम्मद खूनी ने मन्दोर के परिहार राणा रूपसी के राज्य पर आक्रमण किया। राणा रूपसी ने उससे पराजित होकर अपनी बारह लड़कियों के साथ जैसलमेर में आकर आश्रय लिया। यहाँ आने पर उसे परिवार के साथ बारू नामक स्थान पर रखा गया।

देवराज के तीन बालक पैदा हुए—जड्डन, सिखन, और हमीर। हमीर अत्यन्त शूरवीर था। उसने मेहवा के कंपो हुसेन पर आक्रमण किया और वहाँ की बहुत सी सम्पत्ति लूटकर वह अपने साथ ले आया। हमीर के तीन बालक पैदा हुए—जैतू, लूनकर्ण और नीरो।

इन दिनों में गोरी अलाउद्दीन ने भारत के राजाओं के साथ युद्ध आरम्भ कर दिया था। मुलतान और ठट्टा उस समय दिल्ली के बादशाह अलाउद्दीन के अधिकार में थे। इन दोनों नगरों में आक्रमण करके और वहाँ की लूटी हुई सम्पत्ति और सामग्री पन्द्रह सौ घोड़ों और पन्द्रह सौ खच्चरों पर लादकर भक्खर से दिल्ली के बादशाह के पास भेजी गयी थी। इसका समाचार जैतराव के लड़के को मिला। उसने उस सम्पत्ति को लूट लेने का निश्चय किया। उसने अपने साथ सात सौ अश्वारोही और बारह सौ ऊँटों पर सैनिकों को लेकर चलने की तैयारी की और छिपे तौर पर वह अपनी सेना को लेकर उस रास्ते पर पहुँच गया, जहाँ से होकर लूट की सम्पत्ति दिल्ली जाने को थी।

पंचनद में एक नदी के समीप पहुँच कर उसने देखा कि जो सम्पत्ति और सामग्री दिल्ली जा रही है, उसकी रक्षा में चार सौ मुगल और चार सौ पठान सवारों की सेना है। भट्टी लोगों ने बादशाह की सेना के पीछे पहुँचकर कुछ दूरी पर मुकाम किया। उनसे कुछ फासिले पर आगे बादशाह की सेना ने मुकाम किया था। रात को मुगलों और पठानों के सो जाने पर भाटी लोगों ने

एक साथ उन पर आक्रमण किया और उनको मारकर उनके साथ ही सम्पूर्ण सम्पत्ति वे लोग जैसलमेर ले आये। बादशाह के जो सैनिक बच गये थे, उन्होंने बादशाह के पास जाकर इस लूट का हाल बताया।

बादशाह ने इस घटना को सुनकर भट्टी राजकुमारों से बदला लेने के लिए आदेश दिया और बादशाह की फौज जैतसी पर आक्रमण करने के लिए तैयार होने लगी। यह समाचार जैसलमेर पहुँचा और यह भी मालूम हुआ कि जो सेना आक्रमण करने के लिए आ रही है, वह अजमेर के निकट सागर तक पहुँच चुकी है। यह सुनकर जैतसी ने भी अपने यहाँ सेना को तैयार होने की आज्ञा दी। वहाँ के दुर्ग में बहुत दिनों के लिए खाने-पीने की व्यवस्था की गयी और उसके सभी रास्ते मजबूत पत्थरों से बन्द करवा दिये गये। साथ ही दुर्ग के भीतर पत्थरों के छोटे-छोटे टुकड़ों का एक बहुत बड़ा ढेर तैयार किया गया और निश्चय किया गया कि शत्रु के आक्रमण करने पर पत्थरों के इन टुकड़ों की मार की जायगी।

राज महलों से परिवार के सभी लोगों को मरुभूमि के एक दूरवर्ती स्थान पर भेज दिया गया। इसके बाद रावल जैतसी अपने दो लड़कों और पाँच हजार सैनिकों के साथ दुर्ग में रहने लगा।.देवराज और हमीर एक सेना को लेकर शत्रु का सामना करने के लिए अपनी राजधानी से निकले। उस समय बादशाह अलाउद्दीन अजमेर की तरफ चला गया और भादों के महीने में अपनी खुरासानी फौज को लेकर उसने जैसलमेर को घेर लिया। जैसलमेर के छप्पन बुर्जों की रक्षा करने के लिए तीन हजार सात सौ शूरवीर तैयार थे और आवश्यकता के लिए दो हजार सैनिक दुर्ग के भीतर थे।

खुरासानी फौज के आते ही भाटी लोग सभी प्रकार तैयार हो गये और शत्रु के घेरा डालते ही भाटी सैनिकों ने जो मार आरम्भ की, उससे सात हजार शत्रु के आदमी मारे गये। मीर महबूब खाँ और अली खाँ नामक दोनों सेनापति अपनी बची फौज को लिए हुए युद्ध के क्षेत्र में मौजूद रहे। शत्रु की फौज दो वर्ष तक जैसलमेर पर घेरा डाले पड़ी रही। इसके बाद उसके सामने खाने-पीने की 'कठिनाई पैदा होने लगी। क्योंकि मन्दोर से जो रसद उसके लिए आती थी, उसे देवराज और हमीर रास्ते में ही लूट लेते थे। दुर्ग में भाटी सैनिकों के सामने खाने-पीने की कोई कठिनाई न थी। इसके लिए उन लोगों ने पहले से ही प्रबन्ध कर लिया था। लेकिन युद्ध की इस अवस्था में धीरे-धीरे आठ वर्ष बीत गये। इन्हीं दिनों में जैसलमेर के राजा जैतसी की मृत्यु हो गयी और उसके मृत शरीर का अग्नि-संस्कार दुर्ग के भीतर ही किया गया।

जैसलमेर के इस युद्ध के दिनों में बादशाह के सेनापति नवाब महबूब खाँ और रत्नसी में मित्रता पैदा हुई। जैतसी की मृत्यु हो चुकी थी। सम्वत् १३५० सन् १२६४ ईसवी में जैतसी के पुत्र मूलराज तृतीय का राजतिलक के दुर्ग भीतर हुआ। इस अभिषेक के समय मूलराज का छोटा भाई रत्नसी खोजड़ा वृक्ष के नीचे सेनापति नवाब महबूब खाँ के साथ बातें कर रहा था। इस मित्रता के सिलसिले में रत्नसी प्रायः इसी वृक्ष के नीचे उसके साथ बातें किया करता था।

दुर्ग में जो उत्सव हो रहा था, उसके सम्बन्ध में सेनापति महबूब खाँ ने प्रश्न किया। उत्तर देते हुए रत्नसी ने कहा कि "पिता जी की मृत्यु हो जाने के कारण दुर्ग में बड़े भाई मूलराज का अभिषेक हो रहा है।"

इसी समय सेनापति महबूब खाँ ने रत्नसी से कहा "इस पेड़ के नीचे मैं आपके साथ प्राय: आपसे बातें किया करता हूँ और युद्ध आरम्भ होने पर हम दोनों अपनी-अपनी सेनाओं में युद्ध के लिए पहुँच जाते हैं। परन्तु इसकी असलियत बादशाह को जाहिर नहीं की गयी और उसे बताया गया है कि मेरे कारण जैसलमेर के दुर्ग पर अभी तक बादशाह का अधिकार नहीं हो सका। इसलिए दुर्ग पर तुरन्त अधिकार करने के लिए मुझे आज्ञा मिली है। ऐसी दशा में कल प्रात:काल अपनी फौज लेकर मैं दुर्ग पर अधिकार करने आऊँगा।"

नवाब महबूब खाँ की इस बात को सुनकर रत्नसी चुपचाप बना रहा। उसके ऊपर उसकी बातों का कोई प्रभाव न पड़ा। कुछ समय के बाद वह उस स्थान से चलकर दुर्ग में पहुँच गया।

दूसरे दिन सबेरा होते ही सेनापति महबूब खाँ अपनी शक्तिशाली सेना लेकर रवाना हुआ और उसने दुर्ग पर जोरदार आक्रमण किया। भीषण संग्राम आरम्भ हो गया। शत्रु की सेना दुर्ग पर अधिकार करने के लिए पूरी कोशिश कर रही थी और यदुवशी सेना दुर्ग की रक्षा करती थी। इस युद्ध में बादशाह के नौ हजार आदमी मारे गये। नवाब महबूब खाँ घबराकर अपनी बची हुई सेना के साथ युद्ध से भाग गया। इसके बाद उसने बादशाह की एक नयी सेना लेकर जैसलमेर के दुर्ग को उसने फिर घेर लिया। इसके बाद एक वर्ष और बीत गया।

उस दुर्ग में जैसलमेर की जो सेना मौजूद थी, अब उसके सामने खाने-पीने का कष्ट बढ़ने लगा और जब उसके लिए कोई व्यवस्था न हो सकी तो मूलराज ने अपने सामन्तों को बुलाकर कहा: "राजधानी की रक्षा करते हुए हम लोगों ने इतने दिन बिता दिये हैं। इन दिनों में खाने-पीने के कष्टों का किसी प्रकार सामना किया गया है। लेकिन अब कठिनाइयाँ बहुत बढ़ गयी हैं। शत्रुओं ने जैसलसर के सभी रास्तों पर अधिकार कर लिया है और बाहर से खाने-पीने की सामग्री का आ सकना अब असम्भव हो गया है। इस दशा में अब क्या होना चाहिए?"

राजा मूलराज के इस प्रश्न को सुनकर सिहर और बीकमसी नाम के दो सामन्तों ने कहा "राजमहलों की सभी राजकुमारियाँ और रानियाँ जौहर व्रत का पालन करें और हम सब लोग युद्ध-भूमि में शत्रुओं से लड़ते हुए अपने प्राणों की बलि दें। इसके सिवा इस समय दूसरा कोई उपाय नहीं हो सकता।"

जैसलमेर के दुर्ग में जिस समय राजा मूलराज अपने सामन्तों के साथ इस प्रकार का परामर्श करता था, कुछ भी पता बादशाह की फौज को न था। सेनापति महबूब खां और उसके साथियों को मालूम था कि जैसलमेर के दुर्ग में खाने-पीने की जो व्यवस्था है, वह अभी बहुत दिनों तक काम करेगी। इसलिए सेनापति महबूबखाँ स्वयं अधीर हो उठा और निराश होकर वह जैसलमेर से अपनी सेना के साथ चला गया।

बादशाह की फौज के चले जाने के बाद रत्नसी ने महबूबखाँ के छोटे भाई को जैसलमेर के दुर्ग में बुलया और उसका बड़ा सत्कार किया। महबूबखाँ के भाई ने दुर्ग में पहुँचकर वहाँ की जो परिस्थितियाँ देखीं, उससे यह बात छिपी न रही कि भोजन की कमी के कारण यदुवंशी सेना दुर्ग में भयंकर कठिनाइयों का सामना कर रही है। वहाँ की परिस्थिति को समझकर महबूबखाँ का छोटा भाई तुरन्त दुर्ग से चला आया और बादशाह की फौज में जाकर उसने दुर्ग की सब हालत बतायी।

नवाब महबूबखाँ उस समाचार को सुनकर अपनी फौज के साथ उसी समय जैसलमेर की तरफ रवाना हुआ और बड़ी तेजी के साथ उसने फिर दुर्ग को जाकर घेर लिया। यह देखकर

मूलराज को बड़ा आश्चर्य हुआ। उसके बाद ही उसे मालूम हुआ कि सेनापति महबूबखाँ का भाई दुर्ग में आया था और रत्नसी के द्वारा उसको यहाँ की सम्पूर्ण परिस्थिति मालूम हुई है।

मूलराज को रत्नसी पर बड़ा क्रोध मालूम हुआ। उसने उसे बुलाकर कहा : "तुम्हारे अपराध से, अब हम सबका सर्वनाश होने जा रहा है। तुमने दुर्ग की परिस्थिति महबूबखाँ के भाई को बतायी है। उसका परिणाम यह हुआ है कि बादशाह की जो फौज निराश होकर यहाँ से चली गयी थी, उसने फिर लौटकर दुर्ग पर आक्रमण किया है। इस समय जैसलमेर के सम्पूर्ण राज्य का प्रश्न है। हमारे महलों की राजकुमारियों और रानियों के धर्म की रक्षा कैसे होगी?"

बड़े भाई मूलराज के मुख से इन भयानक बातों को सुनकर रत्नसी ने स्वाभिमान के साथ कहा : "हम लोग इस समय मृत्यु के सामने हैं। दुर्ग के भीतर खाने-पीने का कोई प्रबंध नहीं है और दुर्ग के बाहर बादशाह की फौज ने घेरा डाल रखा है। बादशाह की विशाल सेना को पराजित करना हम लोगों के लिए असम्भव है। अब तक दुर्ग में बन्द रहकर उसका सामना किया गया है। लेकिन कुछ दिनों से दुर्ग में खाने-पीने की कोई व्यवस्था नहीं रह गयी। ऐसी दशा में दो ही रास्ते हम लोगों के सामने हैं। या तो हम लोग बिना भोजन के तड़प-तड़पकर दुर्ग में प्राण देंगे अथवा शत्रुओं के द्वारा मारे जायंगे। इन दोनों परिस्थितियों में राजपूतों के लिए युद्ध करते हुए प्राणों का त्याग करना सब प्रकार श्रेष्ठ है। इसलिए बलिदान होने के पहले हमें महलों में रानियों को जौहर व्रत की आज्ञा दे देना चाहिए। इसलिए कि हम सब लोगों के मारे जाने के बाद जैसलमेर में यवन बादशाह का राज्य होगा और उसके द्वारा यदुवंशियों का सम्पूर्ण गौरव नष्ट हो जायगा। इसलिए महलों की राजकुमारियाँ और रानियाँ जौहर व्रत का पालन करें और उनकी चिताओं के जलने के साथ-साथ जैसलमेर के राजमहलों में आग लगा दी जाय। सम्पूर्ण सम्पत्ति जला डाली जाय। इसके पश्चात् हम सब लोग अपने अपने हाथों में तलवारें लेकर युद्ध भूमि में प्रवेश करें और शत्रुओं का संहार करते हुए अपने-अपने प्राणों की बलि दे दें। यदुवंश के गौरव की रक्षा का इसके सिवा कोई दूसरा उपाय नहीं हो सकता।"

रत्नसी के मुख से इन शब्दों को सुनकर मूलराज को संतोष मिला। उसने अपने सामन्तों, परिवार के लोगों और अन्य प्रमुख व्यक्तियों को बुलाकर कहा : "आप सब का जन्म राजपूतों में हुआ है और आपके पूर्वजों ने अपने सम्मान की रक्षा के लिए सदा अपने प्राणों का मोह छोड़ा है। इस समय फिर आपके सामने परीक्षा का समय है। इस समय पूर्वजों के गौरव की रक्षा के लिए एक बार फिर अपने हाथों में तलवारों को पकड़ना है।"

इस प्रकार उत्तेजनापूर्ण बातें करके मूलराज महलों की तरफ रवाना हुआ। वहाँ की रानियों, राजकुमारियों और उनकी सहेलियों को एकत्रित करके मूलराज ने कहा : "हमारे वंश ने पूर्वजों के सम्मान और स्वाभिमान की रक्षा का समय उपस्थित हुआ है। अपने धर्म और गौरव को सुरक्षित बनाये रखने के लिए हम सबको अपने-अपने प्राणों की आहुतियाँ देना है। अब अन्तिम समय है। आप सब लोग जौहर व्रत के लिए तैयारी करें।

इसी समय सोढावंशी मूलराज की प्रधान रानी ने कहा : "जौहर व्रत के लिए आज रात में हम सब तैयारी कर लेंगी और कल प्रातःकाल इस संसार को छोड़कर हम सब लोग स्वर्ग की यात्रा करेंगी।"

प्रधान रानी के इन शब्दों को सुनकर राजमहलों की सभी रानियाँ, राजकुमारियाँ और सामन्तों की स्त्रियाँ हर्ष के साथ जौहर व्रत की तैयारी करने लगीं।

प्रातःकाल होते ही रंग महलों के द्वार पर हृदय विदारक दृश्य उपस्थित हुआ। जितनी भी रानियों और ललनाओं ने जौहर ब्रत के लिए तैयारी की थी, सभी ने स्नान करके रेशमी वस्त्र पहने और अपने देवता की पूजा करके वे सभी एक स्थान पर एकत्रित हुईं। प्रत्येक स्त्री ने जातीय गौरव का स्मरण करके अपने पूर्वजों के प्रति श्रद्धा और भक्ति के साथ नत मस्तक हो कर प्रणाम किया और उसके बाद वह जौहर ब्रत के लिए आगे बढ़ी। सभी ने उसका अनुसरण किया। प्रज्वलित अग्नि में कूद-कूदकर सभी बलिदान होने लगीं। चौबीस हजार जैसलमेर की ललनाओं ने प्रज्वलित अग्नि की होली में प्रवेश करके अपने प्राणों की आहुतियाँ दीं। इस जौहर ब्रत के भयानक किन्तु पवित्र दृश्य को राज्य के सभी लोगों ने देखा।

रावल मूलराज अब सब के साथ शत्रु से युद्ध करने की तैयारी करने लगा। उसने सिर पर तुलसी की कुछ पत्तियाँ और गले में शालिगराम की मूर्ति बाँधी। इसके बाद तीन हजार आठ सौ यदुभट्टी लोगों ने शत्रुओं के साथ युद्ध किया और उनमें से सभी ने प्राण उत्सर्ग किये।

रत्नसी के दो बालक थे—एक का नाम था घडसी और दूसरे का नाम था कानड। घडसी अपनी आयु के बारह वर्ष व्यतीत किये थे। रत्नसी ने अपने इन दोनों बालकों को प्राणों की रक्षा के लिए सेनापति महबूबखाँ के पास भेज दिया था और संदेश भेजा कि आप मेरे इन दोनों बालकों की रक्षा करें।

जो दूत रत्नसी के दोनों बालकों को वहाँ पर लेकर गया था, उसके सामने सेनापति महबूबखाँ ने शपथ खाकर विश्वास दिलाया कि इन दोनों लड़कों की रक्षा मैं करूँगा। इसके बाद अपने दो आदमियों के साथ सेनापति ने उन दोनों बालकों को बड़े सम्मान के साथ अपने यहाँ रखा और विश्वासी ब्राह्मणों की निगरानी में उसने दोनों बालकों को दे दिया। यह सब जैसलमेर के अन्तिम विनाश के पहले ही हो चुका था।

जौहर ब्रत के बाद जैसलमेर के जिन शूरवीरों ने बादशाह की फौज के साथ अपने जीवन का अंतिम युद्ध किया था, उनके द्वारा बादशाह के बहुत से आदमी मारे गये। केवल रत्नसी ने अपनी तलवार से एक सौ बीस शत्रुओं का संहार किया था और उसके बाद वह मारा गया। रावल मूलराज ने शत्रुओं के बहुत से आदमियों को मार कर युद्ध-क्षेत्र में अपने प्राण दिये। इस संग्राम में मारे गये रावल मूलराज और रत्नसी के मृत शरीरों को रणभूमि से मँगाकर उनके वंश की प्रणाली के अनुसार सेनापति महबूबखाँ ने उनका अंतिम-संस्कार करवाया।

सम्बत् १३५१ सन् १२९५ ईसवी में यदुवंशियों का पूर्ण रूप से विध्वंस और विनाश हो गया। जैसलमेर का प्रसिद्ध सामन्त देवराज यदुभट्टी सेना के आगे चला करता था और युद्ध-स्थल में अपनी सेना पर नियंत्रण रखता था, ज्वर से बीमार हो जाने के कारण उसकी भी मृत्यु हो गयी। यदुवंश को विध्वंस करके बादशाह की फौज दो वर्ष तक जैसलमेर के दुर्ग में रही। इसके बाद दुर्ग को मजबूती के साथ बंद करके और उसमें ताले लगाकर वहाँ से वह चली गयी।

जैसलमेर का दुर्ग इसके बाद बहुत दिनों तक पतित अवस्था में बना रहा। क्योंकि वहाँ पर जो यदुभट्टी लोग रह गये थे, वे न तो दुर्ग का फिर से निर्माण और सुधार कर सकते थे और न उनमें उसकी रक्षा करने की सामर्थ्य थी।

तिरपनवाँ परिच्छेद

जैसलमेर का संघर्ष-पराक्रमी तिलोकसी-फीरोजशाह का आक्रमण-दिल्ली में बादशाह तैमूर-जैसलमेर का उत्तराधिकार-राजकुमार जैतसी का विवाह-मोमन लोग-अमीर कुराई का आक्रमण-लूट की सम्पत्ति से जैसलमेर का निर्माण-पीलबग के राजा के साथ युद्ध-युद्ध की मृत्यु का महत्व।

भट्टी राज्य के विनाश के कुछ वर्षों के बाद महेवा के सामन्त मालवी जी राठौर के लड़के जगमल ने जैसलमेर की राजधानी पर अधिकार करने का निश्चय किया और वहाँ पर अपनी सेना के साथ सात सौ गाड़ियों पर रसद और दूसरी सामग्री को लादकर वह जैसलमेर पहुँच गया। जब यह समाचार भट्टी राजवंश के जसहड के दोनों पुत्रों—दूदा और तिलोकसी ने सुना कि राठौर वंश के राजपूत हमारी राजधानी पर अधिकार करने के लिए आ गये हैं तो उन्होंने अपने आदमियों को संगठित करके राठौरों का सामना करने की तैयारी की और वे जैसलमेर में आ गये। भट्टी लोगों ने जैसलमेर पहुँचकर राठौरों की सम्पूर्ण सम्पत्ति लूट ली और उनको मारकर जैसलमेर से भगा दिया।

राठौरों के चले जाने के बाद दूदा ने जैसलमेर की राजधानी अधिकार में ले ली। वहाँ की प्रजा ने इस पर संतोष प्रकट किया और उसे अपना राजा मानकर उसे रावल की उपाधि दी। दूदा ने जैसलमेर के राज्य सिंहासन पर बैठकर वहाँ के टूटे हुए मकानों के निर्माण का कार्य आरम्भ किया और थोड़े दिनों के बाद जैसलमेर की परिस्थितियाँ बदल गयीं।

रावल दूदा के पाँच बेटे पैदा हुए। उसका भाई तिलोकसी अपने पराक्रम के लिए बहुत प्रसिद्ध हुआ। उसने बलोचियों, मुसलमानों, मंगोलियों, देवरा जाति के लोगों और आबू पर्वत तथा जालौर के सोनगढ़ों को जीतकर अपनी शक्तियों का परिचय दिया। अनेक जातियों को लगातार पराजित करने के बाद उसका साहस बढ़ गया और उसने अपनी सेना लेकर अजमेर के तरफ की यात्रा की। दिल्ली के बादशाह फीरोजशाह के बहुत-से श्रेष्ठ घोड़े अजमेर से अनासागर स्नान कराने के लिए लाये गये थे। तिलोकसी ने आक्रमण करके बादशाह के समस्त घोड़े छीन लिए और वह जैसलमेर लौट आया।

बादशाह फीरोजशाह ने जब यह घटना सुनी तो उसने जैसलमेर पर आक्रमण करने के लिए अपनी एक फौज रवाना की। बादशाह की इस सेना के साथ युद्ध करने की क्षमता दूदा में न थी। इसलिए दिल्ली की इस फौज के पहुँचते ही जैसलमेर पर भयानक विपद आ गयी। जब दूदा ने अपनी रक्षा का कोई उपाय न देखा तो उसने अपने यहाँ की सोलह हजार रानियों और दूसरी ललनाओं को अग्नि में जलाकर अपने सत्रह सौ आदमियों के साथ युद्ध में प्राण दे दिये। उसने जैसलमेर के सिंहासन पर बैठकर दस वर्ष राज्य किया।

सम्वत् १६६२ सन् १३०६ ईसवी में अपने परिवार के लोगों के साथ दूदा युद्ध में मारा गया। उन्हीं दिनों में नवाब महबूबखाँ की मृत्यु हो जाने के कारण रत्नसी के दोनों राजकुमारों की रक्षा का भार महबूब खाँ के दोनों लड़कों गाजीखाँ और जुलफकारखाँ पर पड़ा। इन्हीं दिनों

में कानड छिपकर एक बार जैसलमेर चला आया और बड़े भाई घडसी ने पश्चिम के महेवा में जाकर राठौर राजकुमारी विमला के साथ विवाह किया। जिन दिनों में घडसी अपने विवाह की धुन में था, उसके सम्बन्धी सोनिगदेव ने आकर उससे भेंट की। सोनिगदेव शरीर से लम्बा-चौड़ा और शक्तिशाली था। विवाह के बाद घडसी अपने साथ सोनिगदेव को दिल्ली ले गया।

भीमकाय सोनिगदेव को देखकर दिल्ली के बादशाह ने आश्चर्य किया और उसने उसकी शक्ति की परीक्षा लेने का विचार किया। खुरासन के बादशाह ने किसी समय दिल्ली के बादशाह को सुदृढ़ लोहे का बना हुआ एक धनुष भेंट में दिया था। बादशाह ने उस धनुष को मँगाकर सोनिगदेव के हाथों में दिया और उस धनुष को बाण पर चढ़ाने वे लिए कहा। यह सुनकर सोनिगदेव ने धनुष को बाण पर न केवल चढ़ाने की कोशिश की बल्कि उसने उसको यहाँ तक खींचा कि वह लोहे का धनुष टूट गया। यह देखकर बादशाह उससे बहुत प्रसन्न हुआ और उसने उसकी बहुत प्रशंसा की।

इन्हीं दिनों में दिल्ली पर तैमूर बादशाह ने आक्रमण किया। उस अवसर पर बादशाह की तरफ से घडसी ने अपनी बहादुरी का ऐसा परिचय दिया कि जिससे तैमूरशाह का सम्पूर्ण साहस शिथिल पड़ गया और वह दिल्ली से लौट गया। बादशाह ने घडसी के साहस और पराक्रम को देखकर प्रसन्नता प्रकट की और पुरुस्कार के रूप में जैसलमेर के शासन का अधिकार उसने उसको दे दिया। घडसी ने जैसलमेर का अधिकार प्राप्त करके वहाँ पर अनेक प्रकार के सुधार किये और अपनी शक्तियों का निर्माण किया।

घडसी ने इन दिनों बड़ी बुद्धिमानी से काम लिया। उसने अपने साहस और पुरुषार्थ के पुरुस्कार में जैसलमेर का अधिकार प्राप्त किया था। उसके वंश के जो लोग वहाँ पर रहते थे, उन सब को बुलाकर उसने बातचीत की और महेवा के राजा जगमल की सहायता से उसने अपनी एक सेना तैयार की। उसने जैसलमेर और उसके आस.पास शांति तथा सुव्यवस्था कायम करने की चेष्टा की। हमीर और उसके पक्ष के लोगों ने सम्मान देने के साथ-साथ उसको राजा के रूप में स्वीकार किया। परन्तु जसहड के लड़के ने इसको मानने से इन्कार कर दिया।

देवराज ने मंदोर के राजा राणा रूपडा की लड़की के साथ विवाह किया। उस राजकुमारी से देवराज के केहर नाम का एक बालक पैदा हुआ था बादशाह की सेना के द्वारा जैसलमेर के घेरे जाने पर केहर को उसकी माता के साथ मंदोर भेज दिया गया। बारह वर्ष की अवस्था में केहर अपने ननिहाल में ग्वालों के साथ जंगल में जाता और अपनी अवस्था के लड़कों के साथ खेला करता। एक दिन की बात है केहर जंगल में खेलते हुए जिस स्थान पर लेट गया, वहाँ पर एक साँप की बाँबी थी। केहर को नींद आ गयी। उसी समय बाँबी से एक साँप निकला और केहर के मस्तक पर पहुँचकर फन की छाया करके वह बैठा रहा। उसी रास्ते से उस समय एक चारण निकला। उसने अपने नेत्रों से उस सुन्दर बालक के मस्तक पर फन फैलाये हुए साँप को देखा। उसने मन्दोर के राजा से जाकर यह घटना बतायी। उसको सुनकर राणा तुरन्त रवाना हुआ और वहाँ पहुँचने पर उसने देखा कि दौहित्र के मस्तक पर अभी तक अपने फन फैलाये हुए साँप बैठा है। उसने उसी समय इस बात पर विश्वास किया कि यह दृश्य बालक के उज्वल भविष्य का परिचय दे रहा है कि केहर किसी समय राजसिंहसन पर बैठेगा।

घडसी को जैसलमेर में शासन करते हुए कई वर्ष बीत चुके थे, परन्तु उसके कोई संतान पैदा न हुई। इसलिए उसको मानसिक खेद रहने लगा। इस विषय में निराश हो जाने के बाद

उसने अपनी रानी बिमला देवी को किसी बालक के गोद लेने का परामर्श दिया।

उसकी रानी ने इस बात को स्वीकार कर लिया और उसके गोद लेने के लिये किसी बालक खोज होने लगी। वह बालक यदुभट्टी वंश का होना चाहिए। अनेक बालकों की बातचीत होने के की बाद रावल घड़सी ने केहर को गोद लेने का निश्चय किया। यह समाचार बड़ी तेजी के साथ जैसलमेर और उसके आस-पास के स्थानों में फैल गया। इसे सुनकर जसहड के दोनों लड़के बहुत असंतुष्ट हुए और घडसी के विरुद्ध कोई षड़यंत्र करने के लिए वे उपाय सोचने लगे।

इन्हीं दिनों में जैसलमेर-राज्य की तरफ से एक विशाल सरोवर खुदवाया जा रहा था। उसको देखने के लिए रावल घडसी रोज वहाँ जाता था। एक दिन जसहड के दोनों लड़कों ने उस पर आक्रमण किया और उसे जान से मार डाला।

घडसी की मृत्यु का समाचार सुनकर बिमला देवी ने भली-भाँति समझ लिया कि जसहड के लड़कों ने जैसलमेर-राज्य का अधिकार प्राप्त करने के लिए ही यह अपराध किया है। इस लिए उसने केहर को गोद लेने और जैसलमेर का उसे राजा बनाने की घोषणा कर दी। इसलिए जसहड के पुत्रों का उद्देश्य संकट में पड़ गया।

घडसी के मृत शरीर के साथ रानी बिमला के सती न होने का कारण यह हुआ कि रावल घडसी के द्वारा जो विशाल सरोवर बनवाया जा रहा था, उसका कार्य अभी बहुत बाकी था और उसे पूरा करना रानी बिमला का कर्त्तव्य था। एक कारण और था। स्वामी के हत्याकारियों के उद्देश्य को असफल बनाने के लिए जिस केहर को गोद लेने की उसने घोषणा की थी, उसकी सहायता करना भी उसके लिए कुछ दिनों तक जरूरी कार्य था।

रावल घड़सी के मारे जाने के बाद छै महीने में उस विशाल सरोवर के निर्माण का कार्य समाप्त हो गया। विधवा बिमलादेवी ने अपने पति के नाम से घडसीसर उस सरोवर का नाम रखा। जिन लोगों ने रावल घडसी की हत्या की थी, वे अब केहर के सर्वनाश का उपाय सोचने लगे। घडसीसर का कार्य समाप्त हो जाने पर विधवा रानी बिमला ने सती होने का निर्णय किया और अग्नि में भस्मीभूत होने के पहले उसने अपना निर्णय सबको सुनाया कि "हमीर के पुत्र केहर के दत्तक पुत्र और उत्तराधिकारी हो सकते हैं।" हमीर के दो लड़के थे, बड़े लड़के का नाम था जेतसी और छोटे का नाम था लूनकर्ण।

जेतसी के वयस्क होने पर चित्तौड़ के राणा कुम्भ ने उसके विवाह के लिए नारियल भेजा। उसका निश्चय हो जाने पर अपने बहुत-से आदमियों के साथ विवाह के लिए जेतसी मेवाड़ के लिए रवाना हुआ। अरावली पर्वत से चौबीस मील के आगे सालवनी का प्रसिद्ध सरदार सांकला मीराज मिला भट्टी राजकुमार ने उस दिन उसके यहाँ विश्राम किया और दूसरे दिन प्रातःकाल होते ही सब के साथ राजकुमार जेतसी मेवाड़ की तरफ चला। कुछ दूर आगे जाने पर भट्टी राज कुमार जेतसी को दाहिनी ओर तीतर के बोलने की अवाज सुनायी पड़ी। साँकला मीराज इस प्रकार की बातों का अर्थ समझता था। उसने दाहिने हाथ की तरफ तीतर का बोलना अशकुन बताया।

राजकुमार जेतसी ने अशकुन की बात को सुनकर अपने घोड़े को रोका और सब के साथ उसने उस दिन वहीं पर विश्राम किया। वह तीतर पक्षी साथ के लोगों के द्वारा पकड़ लिया गया। उस समय मालूम हुआ कि उस तीतर के एक ही आँख है। दूसरे दिन प्रातःकाल जेतसी सबके साथ फिर रवाना हुआ। कुछ दूर आगे जाने पर बाघिनी के गरजने की आवाज सुनायी पड़ी। जेतसी ने साँकल मीराज से इसका अभिप्राय पूछा। उसने कोई बात स्पष्ट न कहकर जेतसी को सलाह दी कि आप सब लोग यहीं पर विश्राम करें और नाई को भेजकर कुम्भलमेर का समाचार मालूम कर

लें। जो आदमी भेजा जाय, वह आदमी वहाँ की सही परिस्थितियों का पता लगाकर लावे।

इस परामर्श के अनुसार एक युवक नाई की स्त्री का भेष धारण करके कुम्भलमेर की तरफ रवाना हुआ। उसने वहाँ पहुँचकर किसी प्रकार रानियों के महलों में प्रवेश किया और उसने वहाँ से लौटकर जो वर्णन किया, उससे मालूम हुआ कि वहाँ का समाचार अच्छा नहीं है। यह सुनकर जेतसी ने उसकी बातों पर विश्वास किया और राणा कुम्भ से अप्रसन्न होकर उसने साँकल की लड़की मारू के साथ विवाह कर लिया।

राणा कुम्भ ने जब सुना कि भट्टी राजकुमार जेतसी ने साँकल की लड़की के साथ विवाह कर लिया है, तो उसने अत्यधिक अपमान और क्रोध अनुभव किया परन्तु उसने शांति से काम लिया और गागरोन के प्रसिद्ध खीची राजा अचलदास के साथ अपनी लड़की का विवाह कर दिया। जेतसी विवाह के बाद सेना लेकर पूगल-राज्य पर अधिकार करने गया और अपने भाई लूनकर्ण तथा साले के साथ वहाँ के युद्ध में मारा गया। पूगल के राजा वृद्ध रनिंगदेव को इसके पहले की परिस्थितियों का कुछ ज्ञान न था। उसके प्रायश्चित करने पर रावल केहर ने उसे क्षमा कर दिया।

केहर के आठ बालक पैदा हुए—(१) सोम (२) लखमन (३) केलण (४) किलकर्ण (५) सातुल (६) बीजू (७) तन्नू और (८) तेजसी। सोम के बहुत-सी संतानें पैदा हुईं, जो सोमभट्टी नाम से प्रसिद्ध हुईं। केलण ने अपने बड़े भाई सोम से जबरदस्ती बीकमपुर छीन लिया और उस दशा में सोम अपने बसी लोगों के साथ गिरप नामक स्थान पर जाकर रहने लगा। X सातुल ने अपने नाम पर सातुलमेर राजधानी की प्रतिष्ठा की।

नागौर के राठौर राजा से अपने पिता का बदला लेने के लिए रणिगदेव के लड़कों ने जब इस्लाम स्वीकार किया तो वे पूगल और मेरोट के अधिकारों से वंचित हो गये और आभोरिया भट्टी लोगों के साथ जाकर वे लोग मिल गये। उसके बाद वे लोग मोमन अर्थात् मुस्लिम भट्टी लोगों के नाम से विख्यात हुए। रावल केहर के तीसरे लड़के केलण ने पूगल और मेरोट के बाद बीकमपुर में भी अपना अधिकार कर लिया और पदुमभट्टी लोगों की निर्बल अवस्था में देरावल नगर को छीन लिया।

केलण ने अपने पिता के नाम से एक दुर्ग बनवाया। केरोर उसका नाम रखा। यहीं से जोहिया और लंगा लोगों के साथ भट्टी लोगों का झगड़ा पैदा हुआ। लंगाहों के सरदार अमीर खाँ कुराई ने केलण पर आक्रमण किया। इस युद्ध में अमीर खाँ की पराजय हुई। केलण से इन दिनों में चाहिल, मोहिल और जोहिया लोग भयभीत रहते थे। केलण ने अपनी शक्तियों के द्वारा दूर-दूर तक ख्याति पायी थी और पंचनद तक उसने अपना विस्तार कर लिया था।

X बसी लोगों के सम्बन्ध में पहले वर्णन किया जा चुका है। बसी नाम की वहाँ पर गुलामों की एक जाति थी। अपनी दरिद्रता और सभी प्रकार की असमर्थता के कारण जो लोग सदा के लिए अपनी स्वाधीनता बेच देते थे, वे लोग बसी कहलाते थे। उसका मालिक उसके सिर के बालों को चाँद पर काट देता था। उनके गुलाम होने की यह पहचान थी। ये लोग पशुओं की भाँति खरीदे और बेचे जाते थे। राजस्थान के अन्य राज्यों की अपेक्षा मरुभूमि के राज्यों में ये गुलाम अधिक पाये जाते थे। प्रत्येक बड़ा आदमी अपने अधिकार में इस प्रकार के गुलाम रखता था। गुलामों की संख्या उसके बड़प्पन का परिचय देती थी। श्यामसिंह चम्पावत पोकर्ण के पास दो सौ गुलाम थे। ब्राह्मण, राजपूत और अन्य सभी जातियों के लोग गुलाम हो जाते थे।

इन्हीं दिनों में केलण ने समावंश की राजकुमारी के साथ विवाह किया। इसके बाद उस वंश में सिंहासन का अधिकार प्राप्त करने के लिए घरेलू विद्रोह पैदा हुआ। केलण ने उस विद्रोह को शांत करने में बड़ी सहायता की। उसने सुजाअतजाम नाम के समावंशी का पक्ष लिया था। दो वर्षों के बाद सुजाअत की मृत्यु हो गयी। उसके बाद केलण ने उस वंश के सम्पूर्ण राज्य पर अधिकार कर लिया और उसके राज्य का विस्तार सिंधु नदी तक पहुँच गया। बहत्तर वर्ष की अवस्था में उसकी मृत्यु हो गयी।

केलण के परलोकवासी होने पर चाचकदेव उसके सिंहासन पर बैठा। भट्टी लोगों का विस्तार इन दिनों में गाडा नदी के समीप तक पहुँच गया था। यह देखकर मुलतान के मुस्लिम राजा को बहुत असंतोष मालूम हुआ। परन्तु वह कुछ कर न सका। इसीलिए चाचकदेव ने मेरोट में अपनी राजधानी कायम की और वह वहीं पर रहने लगा।

इसके कुछ दिनों के पश्चात् मुलतान के राजा ने यदुवंशी लोगों पर आक्रमण करने का इरादा किया और इसके लिए उसने तैयारी आरम्भ कर दी। लंगा, जोहिया, खीची आदि जितनी जातियाँ भट्टी लोगों से शत्रुता रखती थीं, सभी ने मिलकर एक शक्तिशाली संगठन किया। मुलतान का राजा उस संगठन का प्रधान था। इस संगठन के द्वारा होने वाले आक्रमण का समाचार चाचकदेव को मिला। उसने बड़ी सावधानी के साथ इस आने वाले संकट का सामना करने की तैयारी की।

चाचकदेव मुलतान के राजा के साथ युद्ध करने के लिए अपने साथ सत्रह हजार अश्वारोही और चौदह हजार पैदल सेना को लेकर रवाना हुआ और व्यास नदी के पास पहुँचकर उसने मुकाम किया। इसके पश्चात् दोनों ओर की सेनाओं का सामना हुआ और युद्ध आरम्भ हो गया। इस संग्राम में मुलतानी फौज की पराजय हुई। वहाँ का राजा युद्ध-क्षेत्र से भाग गया। चाचकदेव ने शत्रुओं के शिविर से बहुत-सा युद्ध का सामान लूटा और इसके बाद वह मेरोट में लौट आया।

मुलतान का राजा पराजित होने के बाद शांत होकर नहीं बैठा। वह युद्ध की तैयारी करता रहा। अपनी शक्तियों को उसने अधिक जोरदार बनाया। जो लोग भट्टी जाति के विरोधी थे, उनका संगठन उसने फिर किया और दूसरे वर्ष अपनी शक्तिशाली सेना लेकर मुलतान से रवाना हुआ। चाचकदेव ने अपनी सेना के साथ चलकर उसके साथ युद्ध आरम्भ किया। इस लड़ाई में सात सौ चवालिस भट्टी और तीन हजार मुलतानी मारे गये। चाचकदेव ने दूसरी बार फिर मुलतान के राजा को पराजित किया और इस विजय से उसके राज्य का विस्तार अधिक हो गया। उसने कई नगरों पर अधिकार कर लिया और असनीकोट नामक दुर्ग में अपनी एक सेना रखकर उसका अधिकार अपने लड़के को सौंपा। इसके बाद वह पूगल चला आया।

इसके कुछ दिनों के बाद चाचकदेव ने दूँदी के राजा महिपाल पर आक्रमण किया और उसे पराजित किया। वहाँ से लौटकर जैसलमेर में उसने अपने भाई लखमन से भेंट की और जो सम्पति वह लूटकर लाया था, उसके द्वारा उसने जैसलमेर में कई निर्माण के कार्य किये। इन्हीं दिनों में जंजराज नाम के एक आदमी ने उससे भेंट की। यह आदमी बकरी और भेड़ों के पालने का काम करता था। बरजांग नाम का एक राठौर लुटेरा उसके यहाँ पहुँचकर प्राय: भेड़ों और बकरियों को चुरा ले जाता था। अपने इस विपद के लिए उसने चाचकदेव से प्रार्थना की। और अनेक बकरों और भैंसों को उसने उसे भेंट में दिया। जँजराज स्वयं एक साहसी मनुष्य था उसने प्रसिद्ध व्यावसायिक नगर सातुलमेर पर अधिकार कर लिया था। बरजांग ने अपने अत्याचारों से मरुभूमि के रहने वालों को भयभीत कर रखा था। रावल चाचकदेव ने जंजराज को संतोष देने की

चेष्टा की और विश्वास दिलाया कि यदि बरजांग अब फिर तुम्हारे साथ किसी प्रकार का अत्याचार करेगा तो मै उसे दण्ड दूंगा ।

इसके बाद कुछ दिन बीत गये । चाचकदेव एक बार जंजराज के गाँव में पहुँचा । उस समय जंजराज ने बरजांग के अत्याचारों का फिर से वर्णन किया । उनको सुनकर चाचकदेव ने बरजांग को दमन करने का निर्णय किया । उसने सीता जाति के सूमर खाँ के साथ मित्रता की । सूमर खाँ अपने तीन हजार अश्वारोही सैनिकों को लेकर चाचकदेव के पास आया । उन लुटेरे राठौरों का नियम यह था कि जहां पर वे लूट करने के लिए जाते थे, वहाँ नगर से बाहर छिपकर वे इस बात को समझने की चेष्टा करते थे कि नगर के विशेष लोग बाहर जाते हैं ।

चाचकदेव ने बरजांग के विरुद्ध एक योजना बना डाली और जो लोग बरजांग की लूट में सहायक होते थे, उन सबको चाचकदेव ने कैद करवा लिया । बरजांग के साथ-साथ बहुत से महाजन लोग भी कैद किये गये । उन लोगों ने धन दे कर अपने छुटकारे के लिए चेष्टा की । परन्तु चाचकदेव ने ऐसा नही किया और उसने उन महाजनों से कहा कि यदि तुम लोग उस नगर को छोड़कर और अपने परिवार के लोगों को लेकर जैसलमेर में जाकर रह सको तो तुमको इस कैद से छुटकारा मिल सकता है । चाचकदेव की इस बात को सुनकर वहां के तीन सौ पैसठ महाजन अपनी सम्पत्ति और सामग्री लेकर जैसलमेर चले गये और वहीं पर रहने लगे ।

बरजांग के तीन लड़के कैद किये गये थे । चाचकदेव ने उसके सबसे छोटे और मझले बेटे को छोड़ दिया । परन्तु उसके बड़े बेटे मेरा को नहीं छोड़ा । चाचकदेव 'ने इन्हीं दिनों में सीता वंश के राजा की प्रपौत्री शोनलदेवी के साथ विवाह किया । लड़की के पितामह ने विवाह के उपलक्ष में चाचकदेव को पचास घोड़े दो सौ ऊँट, चार पालकियां, पैंतीस गुलाम दिये । इस दहेज के साथ चाचकदेव ने शोनल देवी के साथ विवाह का कार्य सम्पन्न किया और उसे बिदा कराके अपने साथ ले यया ।

इस विवाह के दो वर्ष बीत जाने के बाद पीलबंग के राजा के साथ चाचकदेव का युद्ध आरम्भ हुआ । इसका कारण यह था कि एक भट्टी राजपूत से उसका श्रेष्ठ घोड़ा छीन लिया गया था । चाचकदेव ने पीलबंग के राजा को पराजित करके उसकी राजधानी को लूट लिया । इन्हीं दिनों में यदुवंशियों के पुराने शत्रु लंगा लोगों ने अवसर पाकर चाचकदेव के दीनापुर के दुर्ग पर आक्रमण किया और दुर्ग की सेना को पराजित किया ।

चाचक देव को अपना सम्पूर्ण जीवन लगातार युद्धों में व्यतीत करना पड़ा । उसने अनेक राजाओं के साथ युद्ध किया और विजय प्राप्त की । उसने पञ्जाब तक अपने राज्य का विस्तार कर लिया । बुढ़ापे के दिनों में वह चेचक की बीमारी से रोगी हुआ । उस समय उसे भय हुआ कि इस रोग से मैं अब सेहत न हो सकूंगा । यह सोचकर वह मन-ही-मन ही बहुत दुखी हुआ । उसका विश्वास था कि रोग से पीड़ित होकर चारपाई पर मरने वाले राजपूतों के नरक और शत्रु के साथ युद्ध करते हुए प्राण देने वाले राजपूतों को स्वर्ग मिलना है । राजपूतों का यही धर्म है और इसी धर्म के पालन में उनको गौरव प्राप्त होता है ।

बीमारी के दिनों में चाचक देव ने अपने किसी शत्रु के साथ युद्ध आरम्भ करने की इच्छा की । उसने मुलतान के लङ्गा लाति के राजा के पास अपना दूत भेजा और उस दूत ने वहाँ पहुँचकर कहा :—"चाचक देव की बीमारी के दिन चल रहे हैं । परन्तु वह बीमारी में मरने की अपेक्षा शत्रु के साथ युद्ध करते हुए मरना पसन्द करता है । इसलिए आपके साथ युद्ध करने का चाचक देव ने निर्णय किया है ।"

मुलतान के राजा ने दूत की इन बातों पर विश्वास नहीं किया और उसने सोच डाला कि चाचक देव अपनी किसी छिपी हुई अभिलाषा को पूरा करने के लिए हमें युद्ध-क्षेत्र में बुलाना चाहता है। इस प्रकार की बात अपने मन में सोचकर उसने चाचक देव के दूत से कहा: "तुमने अपने राजा के सम्बन्ध में जो बात कही है मैं उस पर विश्वास नहीं करता। इसलिए मेरा उत्तर यही है कि मैं चाचक देव के साथ युद्ध नहीं करूंगा।"

दूत ने इस उत्तर को सुन शपथ ग्रहण करते हुए कहा: "राजन आपको इस दूत पर विश्वास करना चाहिए। सही बात यह है कि राजा चाचक देव का रोग असाध्य है और इस प्रकार मरने की अभिलाषा चाचकदेव की नहीं है। इसलिए अपने सात सौ सैनिकों के साथ राजा चाचकदेव ने युद्ध में आने का निर्णय किया है। आप किसी प्रकार का संदेह न करें मैं आपसे जो प्रार्थना करता हूं, उस पर विश्वास करें।"

मुलतान के राजा ने दूत की बात को स्वीकार कर लिया। उसके बाद दूत ने वहाँ से लौटकर चाचकदेव को उसकी स्वीकृत की सूचना दी। उसे सुनकर वह बहुत प्रसन्न हुआ और अपने विश्वासी शूरवीरों को सात सौ की संख्या में ले कर उसने युद्ध में जाने की तैयारी की। जाने के पहले उसने राज्य की व्यवस्था की। सीतावंश की रानी से गजसिंह नामक बालक पैदा हुआ था। उसको चाचकदेव ने उसके ननिहाल भेज दिया। सोढा वंश की रानी लीलावती से वरसल, कम्बोह और भीमदेव नाम के तीन बालक पैदा हुए और चौहान वंश की रानी सूरजदेवी से रत्तू और रणधीर नामी के दो बालक पैदा हुए। इन पाँच पुत्रों में बड़े पुत्र बरसल को उसने अपने राज्य का उत्तराधिकारी बनाया, खाडाल राज्य को छोड़कर, तेरावर जिसका प्रधान नगर था, यह खडाल राज्य उसने रणधीर को दे दिया। इसके बाद उसने दोनों के मस्तक पर राजतिलक किया और दोनों के राज्यों को अलग-अलग कर दिया। बरसल सत्रह हजार सैनिकों की सेना को लेकर अपनी राजधानी केरोर चला गया।

अपने राज्य को दो लड़कों में बाँटकर चाचकदेव सात सौ सैनिकों के साथ दीनापुर क तरफ रवाना हुआ वहाँ पहुँचकर उसे मालूम हुआ कि मुलतान का राजा वहाँ से चार मील की दूरी पर अपनी सेना के साथ मौजूद है। चाचकदेव ने सुख और संतोष के साथ स्नान करके अपने देवता का पूजन किया और संसार के माया-मोह से अपने चित्त को हटाकर उसने भगवान का स्मरण किया।

इसके थोड़ी देर के बाद उसके कानों में युद्ध के बाजों की आवाज सुनायी पड़ी चाचकदेव ने तुरन्त अपनी सेना को तैयार किया और कई हजार मुलतानी सेना के साथ उसने युद्ध आरम्भ कर दिया। उस भयानक संग्राम में मुलतान के दो हजार सैनिकों का संहार करके चाचक देव के सात सौ वीरों ने अपने प्राणों को उत्सर्ग किया। इसी समय युद्ध करते हुए चाचकदेव मारा गया और उसके बाद मुलतान का राजा लौटकर अपनी राजधानी चला गया।

देवरावल में रणधीर जिस समय अपने पिता का श्राद्ध कर्म कर रहा था, चाचकदेव का दूसरा पुत्र पिता के शोक में विह्वल हो उठा और उसने उपस्थित लोगों के सामने प्रतिज्ञा की कि मैं मुलतान के राजा से अपने पिता का यह बदला लूंगा।

इसके बाद कुम्भा अपने एक अनुचर के साथ राजा मुलतान के कैम्प में गया। इस स्थान के आस-पास चारो तरफ बाईस हाथ चौड़ी एक खाई थी। कुम्भा ने बड़े साहस के साथ अपने घोड़े पर बैठे हुए रात के अँधकार में उस खायी को पार किया और दूसरी तरफ जाकर उसने चुपके से अपने घोड़े को बाहर बाँधकर मुलतान के राजा के कैम्प में पहुँच गया और बड़ी सावधानी के साथ

राजा कल्लूशाह के पास पहुँचकर उसने उसकी गर्दन पर तलवार मारी। राजा कल्लूशाह गहरी नींद में हो रहा था। उसकी गरदन कटकर अलग हो गयी। उसके बाद कुम्भा तुरंत वहाँ से निकलकर और बाहर आकर घोड़े पर बैठा। वहाँ से चल कर वह देवरावल आ गया। बरसल दीनापुर में अधिकार करके केरोर चला गया। वहाँ पर लंगा लोगों ने हैबतखाँ की सहायता से उस पर आक्रमण किया। परन्तु उनकी स्वयं पराजय हुई। इस युद्ध में कई हजार लँगा मारे गये। इसके बाद ही हुसेनखाँ ने बीकमपुर पर आक्रमण किया और वह बरसल के साथ युद्ध करके पराजित हुआ। सम्बत १५३० सन् १४७४ ईसवी में वरसल ने बीकमपुर के महलों को बनवाया।

इसके बाद यहाँ पर कोई बड़ी लड़ाई नहीं हुई। युद्ध की जिन घटनाओं के उल्लेख पाये जाते हैं, वे केवल रावल केलण के वंशजों और पंजाब के सामन्तों से सम्बन्ध रखते हैं। दोनों पक्षों की क्रमशः हारजीत होती रही। कोई ऐतहासिक मूल्य न होने के कारण उनका वर्णन करना हमने यहाँ पर आवश्यक नही समझा। अंत में केलण के वंशज गारा नदी के समीप तक विस्तार और विभाजन करके स्वाधीनता के साथ शासन करते रहे। इसके कुछ दिनों के बाद दिल्ली के बादशाह बाबर ने लंगाहों से मुलतान छीनकर अपने अधिकार में कर लिया और वहाँ पर अपना शासक नियुक्त कर दिया। कैरोट कोट, दीनापुर, पूगल और मैरोट के भट्टी लोगों ने कदाचित अपना अधिकार कायम रखने के लिए इस्लाम स्वीकार कर लिया। भट्टी राज्य वंश के सबल सिंह के शासनकाल में जैसलमेर की राजनीतिक परिस्थितियों में असाधारण परिवर्तन आरम्भ हो गये थे।

चौवनवाँ परिच्छेद

जैसलमेर के सिंहासन पर गोद लिया हुआ बालक–दिल्ली-सम्राट और सबल सिंह–जैसलमेर-राज्य के पतन का श्री गणेश–जैसलमेर और बीकानेर के सामन्तों का संघर्ष–अफगानी दाऊद खाँ के जैसलमेर में अत्याचार–राज मंत्री स्वरूप सिंह के काले कारनामें–राज्य की दुरवस्था–कैदी रावल मूलराज–निर्वासित रायसिंह और उसका परिवार–जैन धर्मावलम्बी के पैशाचिक कार्य।

अचानक विश्वासघात के द्वारा घडसी के मारे जाने पर उसकी विधवा रानी विमलादेवी ने केहर को गोद लेने की घोषणा की थी और जैसलमेर के राज्य-सिंहासन पर उसे बिठाया था। सती होने के पहले उसने यह निर्णय भी कर लिया था कि हमीर के दोनों पुत्र केहर के उत्तराधिकारी होंगे। उसके इस निर्णय के कारण, केहर के आठ पुत्रों के होने पर भी, उसके उत्तराधिकारी हमीर के दोनों बेटे—जैत और लून कर्ण माने गये। परन्तु सिंहासन पर बैठने का अवसर आने के पहले ही जैत पूगल के युद्ध में भाई लूनकर्ण के साथ मारा गया और उसके कोई बेटा न था। इसलिए लूनकर्ण के वंशज उस राज्य के अधिकारी बने।

लूनकर्ण के तीन बेटे थे—(१) हरराज (२) मालदेव और (३) कल्याणदास। केहर की मृत्यु के बाद लूनकर्ण का बड़ा बेटा हरराज जैसलमेर राज्य का अधिकारी था परन्तु उसकी मृत्यु

केहर के जीवन काल में ही हो चुकी थी। इसलिए इसका इकलौता बेटा भीम वहाँ के राज सिंहासन पर बैठा।
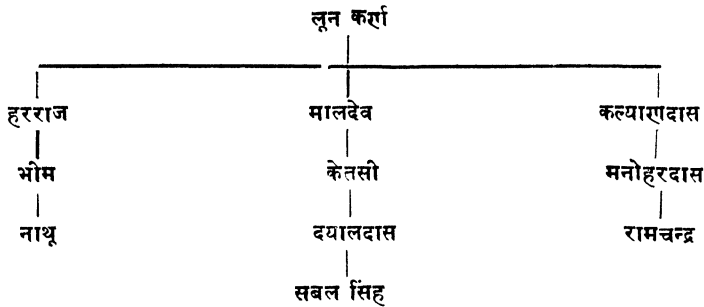
भीम की मृत्यु के पश्चात् उसका बेटा नाथू जैसलमेर के सिंहासन पर बैठा। राज्याधिकार प्राप्त करने के थोड़े ही दिनों के बाद नाथू बीकानेर की राजकुमारी के साथ विवाह करने के लिए गया और वहाँ से लौटने पर जैसलमेर राज्य के फलोंदी नगर में जब वह ठहरा हुआ था, कल्याण दास के बेटे मनोहर ने राज्य के लोभ से एक स्त्री के द्वारा उसको विष खिलाया, जिससे उसकी मृत्यु हो गयी। नाथू की इस प्रकार मृत्यु हो जाने पर मनोहरदास वहाँ के सिंहासन पर बैठा। उसने अपने बेटे रामचन्द्र को राज्य का अधिकारी बनाने की बड़ी चेष्टा की। परन्तु उसको सफलता न मिली और उसके बाद लूनकर्ण का मझला बेटा मालदेव का प्रपौत्र दयालदास का बेटा सबल सिंह वहाँ के सिंहासन पर बैठा। रामचन्द्र स्वभाव से जितना ही उपद्रवी और अयोग्य था, सबल सिंह उतना ही योग्य और सुशील था। इसलिए राज्य की प्रजा सबल सिंह के पक्ष में थी और वह उसी को राजा बनाना चाहती थी।

सबल सिंह आमेर के राजा का भाञ्जा था। वह राजा आमेर के संरक्षण में यवनों की राजधानी पेशावर राज्य में एक पदाधिकारी था। किसी समय पहाड़ों पर रहने वाले अफगानी लुटेरों ने यवन-सम्राट का खजाना लूटने की चेष्टा की थी। परन्तु साहसी सबल सिंह ने उनको असफल बना दिया था और उसके कारण सम्राट की कुछ भी हानि न हुई थी। उस समय से सम्राट सबल सिंह का बहुत सम्मान करने लगा था। अपने स्वभाव, व्यवहार और दूसरे गुणों के कारण सबल सिंह ने अन्य राजाओं से भी आदर प्राप्त किया था।

जैसलमेर के सिंहासन पर सबल सिंह के बैठने के जो कारण थे, उनमें एक यह कारण भी था और प्रधान कारण था कि उसकी योग्यता, सज्जनता और व्यावहारिकता के कारण हिन्दू राजाओं से लेकर यवन सम्राट तक—सभी उससे प्रसन्न और प्रभावित थे। इसलिए मनोहरदास के बाद जब रामचन्द्र सिंहासन पर बैठ गया था, उस समय यवन बादशाह ने जोधपुर के राजा जसवन्त सिंह को आदेश दिया था कि आप तुरन्त रामचन्द्र को उतार कर सबल सिंह को वहाँ के सिंहासन पर बिठावें। राजा जसवन्त सिंह ने यही किया। उसने सबल सिंह को जैसलमेर के सिंहासन पर बिठाने के लिए सेनापति नाहर खाँ के साथ एक सेना भेजी और सबल सिंह ने वहाँ के सिंहासन पर बैठकर सेनापति नाहर खाँ को सदा के लिए पोकर्ण का राज्य इनाम में दे दिया। उसी समय से पोकर्ण जैसलमेर से पृथक होकर जोधपुर राज्य में शामिल हो गया।

सेनापति नाहर खाँ को जो पोकर्ण दिया गया, उसी से जैसलमेर राज्य का पतन आरम्भ हुआ और उसके पश्चात् लगातार उस राज्य के नगर उससे निकलते गये। भारत में बादशाह

बाबर की विजय के पहले जैसलमेर राज्य की सीमा उत्तर में गारा नदी तक थी , पश्चिम में मेह-राण अथवा सिंधु नदी तक , पूर्व और दक्षिण में बीकानेर और मारवाड़ तक थी । लगभग दो सौ वर्षों से जैसलमेर राज्य के नगर और ग्राम बीकानेर और मारवाड़ राज्य में शामिल होते चले आ रहे थे । रावल सबल सिंह ने सिंहासन पर बैठकर बड़ी योग्यता के साथ अपने राज्य का शासन किया ।

रावल सबल सिंह के परलोक वासी होने पर उनका लड़का अमर सिंह सिंहासन पर बैठा और उसने उसके बाद बलोचियों के साथ युद्ध करके विजय प्राप्त की । उसका राज तिलक उसी युद्ध-क्षेत्र में हुआ था । सिंहासन पर बैठने के बाद अमर सिंह ने अपनी लड़की के विवाह के लिए राज्य की प्रजा से धन लेने की चेष्टा की । परन्तु उसके मन्त्री रघुनाथ ने उसका विरोध किया । इसलिए अमर सिंह ने उसे मरवा डाला । इसके थोड़े दिनों के बाद राज्य के उत्तरी और पूर्वी स्थानों पर चन्ना राजपूतों के अत्याचार फिर से बढ़ने लगे । यह देखकर रावल अमर सिंह ने अपनी सेना लेकर उनको इस प्रकार पराजय किया कि वे भविष्य में फिर इस प्रकार उपद्रव न कर सके ।

कुछ दिनों के उपरान्त जैसलमेर और बीकानेर के सामन्तों में संघर्ष पैदा हुआ । बीकानेर के कांधलोत राठौर बहुत दिनों से जैसलमेर के नगरों और ग्रामों पर अनेक प्रकार के अत्याचार कर रहे थे । इसीलिए जैसलमेर राज्य के वीरमपुर के सुन्दर दास और दलपति के दोनों सामन्तों ने उनके अत्याचारों का फल देने का निश्चय किया और अपनी-अपनी सेनायें लेकर दोनों सामन्तों ने बीकानेर राज्य की सीमा के जाजू नामक नगर पर आक्रमण किया और उसको लूट लेने के बाद उस नगर में आग लगा दी ।

कांधलोत राठौरों ने यह देखकर जैसलमेर वालों से बदला लेने की तैयारी की और जैसल-मेर की सीमा के गाँवों और नगरों पर आक्रमण करके अपने नगर जाजू का बदला लिया । इस प्रकार के संघर्ष के परिणाम-स्वरूप , दोनों राज्यों के बीच तनातनी बढ़ती गयी और अन्त में दोनों राज्यों के बीच कठिन संग्राम हुआ । उस युद्ध में बीकानेर के दो सौ राठौर मारे गये और उस राज्य की सेना पराजित होकर भाग गयी । अपने राज्य के सामन्तों की विजय को देखकर रावल अमर सिंह को बड़ी प्रसन्नता हुई ।

उन दिनों में बीकानेर के राजा दिल्ली के बादशाह की तरफ से दक्षिण गया था । उसने सुना कि जैसलमेर के सामन्तों ने बीकानेर के दो सौ आदमियों के मारकर बाकी सेना को भगा दिया है तो वह बहुत क्रोधित हुआ और उसने अपनी राजधानी में संदेश भेजा कि राज्य के समस्त राठौर जैसलमेर के साथ युद्ध करने के लिए तैयार हों । अनूप सिंह का यह आदेश मिलने पर बीकानेर राज्य में सुनादी की गयी । उसके अनुसार राज्य के राठौर युद्ध के लिए तैयार होकर राजधानी में एकत्रित होने लगे । इन्हीं दिनों में राजा अनूप सिंह ने राठौरों की सहायता के लिए हिसार से पठानों की एक फौज भेजी ।

जैसलमेर में रावल अमर सिंह को बीकानेर की इस तैयारी का समाचार मिला । इसलिए उसने बीकानेर के राठौरों के साथ युद्ध करने की तैयारी की । उसने भट्टी सेना को भेजकर बीकानेर के नगरों पर आक्रमण करने की आज्ञा दी । भट्टी सेना राठौरों पर आक्रकण करके और उनको पराजित करके पूगल नगर अपने राज्य में मिला लिया । इसके बाद उस सेना ने बाड़मेर तथा कोतडा के सामन्तों को जैसलमेर की अधीनता स्वीकार करने के लिए विवश किया ।

सम्वत् १७५८ सन् १७०२ ईसवी में अमर सिंह की मृत्यु हो गयी। उसके आठ लड़के थे। बड़े लड़के का नाम यशवंत सिंह था। शेष सात लड़कों में केवल हरीसिंह का नाम मिलता है। यशवंत सिंह के एक लड़की थी। उसका विवाह मेवाड़ के राजकुमार के साथ हुआ।

अमरसिंह की मृत्यु के पश्चात् जैसलमेर की अवनति आरम्भ हुई। वहाँ के राजाओं ने अपनी शक्तियों के द्वारा राज्य के गौरव की रक्षा की थी और रावल अमरसिंह ने उसको सुरक्षित बनाये रखने की चेष्टा की। उसके परलोक यात्रा करने पर राज्य की शक्तियाँ एक साथ क्षीण हो गयीं। उस दुर्बलता का बीकानेर के राठौरों ने लाभ उठाया और उन लोगों ने आक्रमण करके पूगल, बाडमेर, फलोदी और दूसरे अनेक नगरों को छीनकर बीकानेर राज्य में मिला लिया।

इन्हीं दिनों में शिकारपुर के एक अफ़ग़ानी दाऊद खाँ ने जैसलमेर के नगरों पर आक्रमण किया और उन पर अपना अधिकार कर लिया। रावल अमरसिंह के बाद जैसलमेर में कोई ऐसी शक्ति न रह गयी थी, जो आक्रमणकारी शत्रुओं के साथ लड़कर राज्य की रक्षा कर सकती। इसलिए थोड़े ही दिनों में जैसलमेर राज्य के कितने ही नगर दूसरे राज्यों में चले गये और उसके परिणाम स्वरूप, जैसलमेर राज्य को भयानक रूप से आघात पहुँचा।

अमरसिंह के पश्चात् उसका लड़का यशवंतसिंह जैसलमेर के सिंहासन पर बैठा। उसके पाँच लड़के पैदा हुए (१) जगतसिंह (२) ईश्वरीसिंह (३) तेजसिंह (४) सरदार सिंह और (५) सुलतान सिंह। जगतसिंह ने आत्म हत्या कर ली थी। उसके तीन लड़के पैदा हुए—(१) अखयसिंह (२) बुधसिंह और (३) जोरावरसिंह। बुधसिंह की चेचक की बीमारी में मृत्यु हो गयी।

यशवंतसिंह की मृत्यु के बाद उसका प्रपौत्र अखयसिंह सिंहासन का अधिकारी था। लेकिन उसके बालक होने के कारण उसके चाचा तेजसिंह ने सिंहासन पर हठ पूर्वक अधिकार कर लिया। अखयसिंह और जोरावरसिंह दोनों भाई-भाई थे। वे तेजसिंह से भयभीत होकर दिल्ली चले गये। यशवंत सिंह का भाई हरीसिंह दिल्ली के बादशाह के यहाँ रहा करता था। अखयसिंह और जोरावरसिंह ने उसी के यहाँ आश्रय लिया। हरीसिंह ने उन दोनों भाइयों के सामने प्रतिज्ञा की कि मैं जैसलमेर जाकर तेजसिंह को सिंहासन से उतार दूँगा और उसे अधिकारी न रहने दूँगा।

इसके बाद हरीसिंह जैसलमेर गया। वहाँ का एक नियम यह था कि वर्ष के अंतिम दिन जैसलमेर का राजा घडसीसर सब सामन्तों, परिवार के लोगों और सैनिकों के साथ जाता था और वहां पहुँचकर सरोवर की बालू एक मुट्ठी लेकर बाहर फेंकता था। उसके बाद राज्य के सभी एकत्रित लोग उस सरोवर की बालू को बाहर फेंकने का कार्य करते थे। राज्य में इस प्रकार की एक प्रथा बन गयी थी, जो ल्हास के नाम से प्रसिद्ध थी।

हरीसिंह इसी अवसर पर जैसलमेर आया था। उसने सोचा कि घडसीसर के इस उत्सव में तेजसिंह पर आक्रमण करने का बड़ा अच्छा मौका है। उस उत्सव में नियमानुसार सबके साथ तेजसिंह घडसीसर गया। हरीसिंह अपने अवसर की ताक में था। अनुकूल समय पर उसने तेजसिंह पर आक्रमण किया। उसके शरीर में इतने गहरे आघात आ गये कि उसकी मृत्यु हो गयी। परन्तु इससे हरीसिंह के उद्देश्य में सफलता न मिली।

तेजसिंह के मर जाने पर उसका तीन वर्ष का बालक सवाई सिंह जैसलमेर के सिंहासन पर बैठा। इस अवसर पर अखय सिंह ने राज्य के समस्त भट्टी सरदारों के पास एक पत्र भेजा। उसमें उसने लिखा :—

"आपको मालूम है, राज्य के सिंहासन का नैतिक रूप से अधिकारी मैं हूँ। तेजसिंह ने मेरे साथ अन्याय किया और स्वयं सिंहासन पर बैठ गया। जो बालक इस समय राज सिंहासन

पर बिठाया गया है , वह उसका अधिकारी नहीं है । मैं अपने अधिकारों की रक्षा करने के लिए सभी प्रकार तैयार हूँ और उसके लिए मैं सभी प्रकार का बलिदान करूँगा । अपनी राजभक्त प्रजा की मैं सहायता चाहता हूँ ।"

अखय सिंह के इस पत्र को पाकर जैसलमेर के भट्टी सरदार बहुत प्रभावित हुए और वे अखय सिंह के पास आकर मिले । उन सरदारों की सहायता को पाकर अखय सिंह ने जैसलमेर राज्य के दुर्गों पर आक्रमण किया । और राज्य के तीन दुर्गों पर अधिकार कर लिया । इसके थोड़े दिनों बाद सवाई सिंह की मृत्यु हो गयी । इसलिए अखय सिह जैसलमेर के सिंहासन पर बैठा ।

रावल अखय सिंह ने सिंहासन पर बैठकर चालीस वर्ष तक राज्य किया । उसके शासन काल में दाऊद खाँ के लड़के भावल खाँ ने जैसलमेर राज्य के खडाल नगर पर आक्रमण किया और उसे अपने भावलपुर राज्य में मिला लिया । रावल अखय सिंह के बाद सम्बत् १८१८ सन् १७६२ ईसवी में मूलराज राज्य के सिंहासन पर बैठा । उसके तीन बालक पैदा हुए—(१) रायसिंह (२) जैतसिंह (३) मानसिंह ।

मूलराज जैसलमेर के सिंहासन पर बैठा । लेकिन वह इसके लिए योग्य न था । उसकी अयोग्यता के कारण उसके मंत्री स्वरूप सिंह ने सभी प्रकार राज्य का सत्यानाश किया । स्वरूप सिंह जैन धर्मावलम्बी वैश्य था और वह मेहुता जाति में पैदा हुआ था । मंत्री स्वरूप सिंह अत्यन्त स्वेच्छाचारी और स्वार्थी था । उसने राज्य के सामन्तों के सम्मान की भी परवा न की और राज्य में उसने अनेक प्रकार के अत्याचार किये । उसके कार्यों से राज्य में बहुत असंतोष पैदा हुआ । राज्य के सामन्तों ने एक तरफ से उसका विरोध किया । परन्तु मूलराज पर इसका कोई प्रभाव न पड़ा । रावल मूलराज ने सिहासन पर बैठने के बाद राज्य का कोई भी प्रबन्ध स्वयं न देखा । इसीलिए मंत्री स्वरूप सिंह को राज्य में मनमानी करने का अवसर मिला ।

मंत्री स्वरूप सिंह के सम्बन्ध में एक और भी घटना चल रही थी । वह एक वेश्या से प्रेम करता था और वह वेश्या सरदार सिंह नाम के एक राजपूत से प्रेम करती थी । इसलिए स्वरूप सिंह सरदार सिंह से बहुत ईर्षा करता था और अनेक उपायों से वह उसको क्षति पहुँचाने की चेष्टा करता था । मंत्री स्वरूप सिंह के द्वारा सरदार सिह अनेक प्रकार की उलझनों का सामना कर चुका था । अंत में उसने अपनी विपदायें युवराज राय सिंह के सामने उपस्थित कीं । रायसिंह स्वयं मंत्री स्वरूप सिंह से बहुत अप्रसन्न था । इसलिए कि स्वरूप सिंह उससे खुश न रहता था । कुछ इस प्रकार के कारणों से स्वरूप सिंह ने रायसिंह के साथ भी अडंगे लगाये थे और युवराज को खर्च के लिए जो रुपये मिलते थे, मंत्री स्वरूप सिंह ने उसमें कमी कर दी थी ।

सरदार सिंह के प्रार्थना करने पर युवराज रायसिंह ने न केवल स्वरूप सिंह का विरोध करने के लिए निर्णय किया बल्कि उसके अपराधों का दण्ड देने के लिए उसने निश्चय कर लिया । एक दिन की बात है । मंत्री स्वरूप सिंह राज-दरबारमें बैठा था और रावल मूलराज भी वहाँ पर मौजूद था । राज्य के सामन्तों की उपस्थिति में युवराज राजसिंह वहाँ पहुँचा और उसने म्यान से तलवार निकाली । यह देखते ही स्वरूप सिंह काँप उठा उसने उसी समय घबराये हुए नेत्रों से रावल मूलराज की तरफ देखा । इसी क्षण रायसिंह की तलवार से स्वरूपसिंह का मस्तक कटकर नीचे गिर गया । सामन्तों को मालूम था कि मंत्री स्वरूप सिंह के अत्याचारों का मूल कारण रावल मूलराज है । इसलिए दण्ड उसको भी मिलना चाहिए । वे लोग इस प्रकार सोच रहे थे । उसी समय मूलराज भयभीत होकर वहाँ से भागा और रानियों के महलों में पहुँच गया ।

राज्य के सामन्तों ने राज-सिंहासन पर बैठने के लिए युवराज रायसिंह से प्रार्थना की ।

युवराज ने केवल राज्य-भार स्वीकार करने के लिए तैयार हुआ। रावल मूलराज इसी मौके पर कैद कर लिया गया और राज्य का प्रबंध रार्यासिह के नाम पर होने लगा। मूलराज सिंहासन से उतार दिया गया और उसको कैद करने के बाद तीन महीने चार दिन बीत गये। राज्य के सामन्तों में उससे कोई प्रसन्न न था। इसलिए किसी ने उसको कैद से छुड़ाने की चेष्टा न की। परन्तु एक स्त्री किसी प्रकार उसको कैद से छुड़ाना चाहती थी। यह स्त्री एक षड़यंत्रकारी की पत्नी थी और वह षड़यंत्रकारी रार्यासिह का गुप्त सलाहकार था। उसने माहेचा वंश में जन्म लिया था। यह वंश राठौरों की एक शाखा है। उस वंश का प्रधान सामन्त जिझियाली का अनूप सिंह है। उसकी पत्नी रावल मूलराज का छुटकारा चाहती थी। इसके लिए उसने अपनी सभी प्रकार की कोशिशें आरम्भ कर दीं।

अनूप सिंह इस राज्य का प्रधान सामन्त था और मंत्री स्वरूप सिंह तथा रावल मूलराज के विरुद्ध जो षड़यंत्र चल रहा था, उसका वह प्रधान नायक था। उसकी पत्नी मूलराज की मुक्ति के लिए इतनी बड़ी कोशिश में थी कि अपने इस उद्देश्य की सफलता के लिए यदि उसको अपने पति अनूप सिंह के लिए भी अनुचित कदम उठाना पड़े तो भी उसको कुछ चिंता न थी। वह सोचती थी कि रार्यासिह ने पिता को कैद करके अच्छा काम नहीं किया। इसलिए रार्यासिह को भी सिंहासन पर बैठने का अधिकार न मिलना चाहिए।

अनूप सिंह राठौर की स्त्री रावल मूलराज को कैद से छुड़ाने के लिए क्यों इतनी विह्वल हो रही थी, इसका स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता। इसलिए उसका कारण उस स्त्री की राजभक्ति भी मानी जा सकती है। उस स्त्री ने जब कोई दूसरा उपाय मूलराज के छुटकारे का न पाया तो उसने अपने बेटे जोरावर सिंह को बुलाकर अपनी बात कही। जोरावर सिंह ने माता के आदेश को स्वीकार कर लिया। यह जानकर उस स्त्री को बड़ी प्रसन्नता हुई। उसने आवेश में आकर कहा: "बेटा, तुम्हें किसी प्रकार रावल मूलराज के कैद से छुड़ाना है और इस कार्य में यदि तुम्हारे पिता बाधक बनें तो तुम उनकी भी परवा न करना और अपने उद्देश्य की सफलता में तुम यदि किसी प्रकार संकट देखना तो अपने पिता को भी मार डालना। यदि ऐसा हुआ तो तुम्हारे पिता के मृतक शरीर को लेकर मैं चिता में बैठूँगी और सती होकर स्वर्ग जाऊँगी।"

जोरावर सिंह अपनी माता के मुख से इस प्रकार की बातों को सुनकर रावल मूलराज को कैद से छुड़ाने के लिए तैयार हो गया। इसके बाद उसकी माता ने अपने देवर अर्जुन सिंह और बारू के सामन्त मेघसिंह को बुलाकर परामर्श किया और सभी प्रकार उनको समझा-बुझाकर रावल मूलराज के छुटकारे के लिए उनसे प्रतिज्ञा करायी।

मूलराज कारागार में बंद था। उसको अपनी मुक्ति की कोई आशा न थी। रार्यासिह के सम्बन्ध में उसकी धारणा बहुत दूषित हो चुकी थी। उसके छुटकारे के लिए जो कोशिश हो रही थी, उसका उसे कोई ज्ञान न था। जोरावरसिंह ने रावल के छुटकारे के लिए अपनी माता से प्रतिज्ञा की थी। इसलिए उसने अपनी तैयारी आरम्भ की और अर्जुनसिंह तथा मेघसिंह ने उसका साथ दिया। ये लोग अपनी-अपनी सेनायें लेकर आ गये और एक साथ उनकी सेनाओं ने कारागार पर आक्रमण किया। मूलराज को कैद से छुड़ाकर वे लोग कारागार से उसे लाने की कोशिश करने लगे। रावल मूलराज की समझ में यह न आया कि मुझे कैद से कौन छुड़ा रहा है। उसने युवराज रार्मासह पर संदेह किया और सशंकित होकर उसने कारागार से निकलने से इनकार कर दिया। इस पर जोरावर सिंह ने अपनी माता की सभी बातें उसको बतायीं। उन पर विश्वास करके मूलराज कारागार से बाहर निकला और फिर अपने राज-सिंहासन पर बैठा।

रावल मूलराज के सिंहासन पर बैठने के समय रायसिंह अपने महल में सो रहा था। नगाड़ों के बजते ही उसकी नींद खुल गयी। जागने पर उसने सुना कि पिता जी ने कारागार से निकलकर और सिंहासन पर बैठकर राज्य का प्रबंध अपने हाथ में ले लिया है। इसी समय एक राज कर्मचारी ने निर्वासन के दण्ड की आज्ञा लेकर रायसिंह के पास आया और उसने लिखा हुआ आदेश रायसिंह को दिया। साथ ही उसने कहा : "काला घोड़ा बाहर तैयार खड़ा है।"

राजपूतों में प्रचलित प्रथा के अनुसार, निर्वासन का दण्ड पाने पर निर्वासित को काले घोड़े पर बैठकर राज्य से निकल जाना पड़ता था। उसके वस्त्र, उसकी पगड़ी और उसकी सभी दूसरी चीजें काले रंग की होनी चाहिए। रायसिंह ने दण्ड को स्वीकार किया। वह नियम के अनुसार, काले घोड़े पर बैठकर जैसलमेर से बाहर निकला। जो सामन्त और दूसरे लोग रायसिंह के पक्ष-पाती थे वे सभी जैसलमेर से निकलकर उसके साथ चले गये। राज्य की दक्षिणी सीमा के अंत में कोटरा नामक स्थान पर पहुँचकर सामन्तों ने रायसिंह से बात-चीत की और आपस में वे लोग निश्चय करने लगे कि इस नगर को लूट लेना चाहिए। रायसिंह ने इस बात का विरोध किया और कहा : "राज्य की समस्त भूमि हमारी जननी है। इसे हम मातृ-भूमि कहते हैं। इसलिए हम लोग अपनी मातृ-भूमि पर किसी प्रकार का अत्याचार नहीं कर सकते। जो अत्याचार करेगा, वह हमारा शत्रु होगा।" रायसिंह की इन बातों को सुनकर सभी सामन्त चुप हो गये। फिर किसी ने वैसी बात नहीं की।

निर्वासित होकर रायसिंह जोधपुर चला गया और वहाँ पर उसने दो वर्ष छै महीने व्यतीत किये। जोधपुर के राजा विजय सिंह ने सम्मान के साथ अपने यहाँ उसको स्थान दिया। यद्यपि रायसिंह अपने अप्रिय स्वभाव के कारण उस सम्मान के पाने का अधिकारी न था। जोधपुर में रहकर उसने उस राज्य के एक महाजन से कर्जा लिया और बहुत दिनों तक जब उस कर्जा की अदायगी न हुई, तो उस महाजन ने रास्ते में रामसिंह को रोककर उस समय अपने रुपये की माँग की, जब वह अपने घोड़े पर बैठा हुआ राजा विजय सिंह के साथ शिकार खेलने जा रहा था।

उस महाजन ने रायसिंह के घोड़े की लगाम पकड़कर और उसको रोककर अपनी प्रार्थना की थी। रायसिह ने लगाम को छोड़ देने के लिए कहा। लेकिन महाजन ने लगाम न छोड़ी और वह बिगड़कर बातें करने लगा। यह देखकर रायसिंह ने अपनी तलवार से उस महाजन का सिर काटकर जमीन पर गिरा दिया और उसके बाद वह जैसलमेर की तरफ यह कहते हुए आगे बढ़ा : "दूसरे राज्य में सम्मान पूर्वक रहने की अपेक्षा आपने राज्य में गुलाम होकर रहना भी अच्छा है।"

रायसिंह के अचानक जैसलमेर की राजधानी में आ जाने से वहाँ के लोगों में एक कुतूहल पैदा हुआ और प्रत्येक मनुष्य उसको देखने के लिए लालायित हो उठा। रावल मूलराज को जब मालूम हुआ तो उसने अपने दूत से पूछा : रायसिंह जैसलमेर क्यों आया है?"

दूत ने रायसिंह के पास जाकर इस बात को जानने की कोशिश की। उसने दूत के प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा : "मैं तीर्थ यात्रा करने जा रहा हूँ। इसलिए अपनी जन्म-भूमि को देखने आया हूँ।"

दूत ने जब मूलराज के पास जाकर यह बात कही तो उसने रायसिंह की इस बात पर विश्वास नहीं किया। उसको इस बात की शंका होने लगी कि रायसिंह अपने किसी षड्यंत्र के लिए यहाँ पर आया है। इसलिए मूलराज ने रायसिंह के साथियों के अस्त्र-शस्त्र ले लेने का आदेश दिया और रायसिंह को देवा के दुर्ग में रहने के लिए भेज दिया।

मंत्री स्वरूप सिंह रायसिंह के द्वारा मारा गया था। इसलिए मूलराज ने राज्य की पुरानी प्रथा के अनुसार उसके बेटे सालिम सिंह को मंत्री बनाया। स्वरूप सिंह के मारे जाने के समय सालिम सिंह की आयु ग्यारह वर्ष की थी। उस छोटी अवस्था में ही सालिम सिंह के मनोभावों में प्रतिहिंसा की भावना पैदा हो गयी थी। जैसलमेर राज्य में जो लोग उसके पिता के विरोधी रहे थे, सालिमसिंह उनके और उनके परिवार के लोगों के साथ कटु व्यवहार कर रहा था। उसका शरीर और स्वभाव देखने में प्रिय मालूम होता था। परन्तु हृदय उसका बहुत कठोर था। मंत्री होने के कारण राज्य में उसे सभी प्रकार के अधिकार प्राप्त थे। परन्तु वह लोगों के साथ ऐसा व्यवहार न करता था, जिससे लोग उसको सम्मान की दृष्टि से देखते।

अपने पिता की तरह सालिम सिंह भी जैन धर्मावलम्बी था। लेकिन उसके स्वभाव की क्रूरता पर जैनधर्म का कोई प्रभाव न पड़ा था। जैन धर्म के अनुसार रात्रि के अंधकार में रहना अच्छा है परन्तु पतिंगों और दूसरे कीड़ों के जलने के डर से दीपक जलाना धर्म के विरुद्ध है। सालिम सिंह उस धर्म के इस प्रकार के सिद्धान्तों को मानता था। परन्तु मनुष्य के साथ अप्रिय और क्रूर व्यवहार करके उसको दुख तथा पीड़ा पहुँचाने में कभी संकोच न होता था।

सालिम सिंह जन्म से जैनधर्मावलम्बी था। परन्तु उसके कार्य बिल्कुल राक्षसों के से थे। जैसलमेर राज्य में बाहरी जातियों के आक्रमण से भट्टी लोगों का उतना संहार न हुआ था, जितना सर्वनाश सालिम सिंह के थोड़े दिनों के मंत्रित्व में इस राज्य के लोगों का हुआ। रायसिंह के निर्वाचन के समय जो सामन्त उसके साथ राज्य छोड़कर चले गये थे, वे लौट कर फिर अपने नगरों में आ गये।

इन्हीं दिनों में मारवाड़ के राजा विजय सिंह की मृत्यु हुई और उसके स्थान पर भीमसिंह सिंहासन पर बैठा। अभिषेक के दिनों में जैसलमेर के रावल मूलराज ने अपने यहाँ से प्रतिनिधि बनाकर मन्त्री सालिम सिंह को वहाँ भेजा। सालिम सिंह मारवाड़ के अभिषेक से लौट कर जब जैसलमेर आ रहा था, मार्ग में राज्य के सामन्तों ने उसे पकड़ कर कैद कर लिया और उसको मार डालने की चेष्टा की। उस समय घबराकर सालिम सिंह रो उठा और उसने अपनी पगड़ी जोरावर सिंह के चरणों पर रख कर अपने प्राणों की भिक्षा माँगी। इस अवस्था में उन सामन्तों ने उसको छोड़ दिया। जिस स्त्री ने कारागार से मूलराज को निकालने के लिए अपनी पूरी शक्तियों का प्रयोग किया था, उसी के बेटे जोरावर सिंह ने इस समय सालिमसिंह के प्राणों की रक्षा की। जिस जोरावर सिंह ने अपनी सेना के साथ आक्रमण करके मूलराज को कारागार से निकाला था और फिर उसे सिंहासन पर बिठाया था, उसी मूलराज के मंत्री सालिम सिंह ने इन सारी बातों को जानते हुए भी, मंत्री-पद पाने के बाद जोरावर सिंह के साथ भयानक अन्याय किया और जो सामन्त राज्य से निर्वासित किये गये थे, उनके साथ जोरावर सिंह को भी राज्य से निकाल दिया गया। जिस सालिम सिंह ने जोरावर सिंह के साथ इस प्रकार के अत्याचार किये थे, उस सालिम सिंह के प्राणों की रक्षा करने वाला एक मात्र जोरावर सिंह था। यदि उस समय जोरावर सिंह न होता तो मारवाड़ के अभिषेक से लौटने के बाद मार्ग में जैसलमेर के सामन्तों ने उसको जान से मार डाला होता।

सालिम सिंह की यह घटना उस समय की है, जब जैसलमेर के निर्वासित सामन्त राज्य से बाहर थे। सालिम सिंह ने छुटकारा प्राप्त करके निर्वासित सामन्तों को उनकी जागीरें दीं। परन्तु राज दरबार में वे सामन्त अपने पूर्व के अधिकारों से अब भी वंचित बने रहे।

जैसलमेर की राजधानी में रायसिंह के लौट कर आने पर रावल मूलराज ने उसे देवा के दुर्ग में भेज दिया और वहाँ पर कैद कर लिया गया। रायसिंह के लड़के अभय सिंह और धौकल सिंह निर्वासित सामन्तों के साथ बाड़मेर में रहते थे। मूलराज ने अपने दूत के द्वारा सामन्तों के पास संदेश भेजकर अपने दोनों पौत्रों को बुलवाया था लेकिन सामन्तों के न भेजने पर मूलराज ने अपनी सेना भेजकर बाड़मेर को चारों तरफ से घेर लिया।

वहाँ पर जो निर्वासित सामन्त रहते थे, उन्होंने छै महीने तक वहाँ के दुर्ग की रक्षा की। अन्त में खाने-पीने का कोई प्रबन्ध न रहने के कारण उन सामन्तों ने आत्म-समर्पण कर दिया। सामन्तों ने रायसिंह के दोनों बालकों को मूलराज के बुलाने पर भी न भेजा था, इसका कारण था। उसको मूलराज पर विश्वास न था। इसलिए जोरावर सिंह के आश्वासन देने पर दोनों राजकुमार मूलराज के पास भेज दिये गये। मूलराज ने उन दोनों लड़कों को देवा के दुर्ग में रायसिंह के साथ रहने के लिए भेज दिया। उसी दुर्ग में रायसिंह की स्त्री भी उसके साथ रहती थी। अचानक आग लग जाने के कारण उस दुर्ग में रायसिंह और उसकी स्त्री जल गयी। अभय सिंह और धौकल सिंह—दोनों उस आग से किसी प्रकार बच गये।

सालिम सिंह ने जोरावर सिंह के संरक्षण में अभय सिंह और धौकल सिंह को जेसलमेर से दूरवर्ती रामगढ़ नगर में भेज दिया। इसमें मंत्री सालिम सिंह की दूरदर्शिता थी। रायसिंह के राजकुमारों के नाम पर राज्य के सामन्त किसी भी समय मूलराज के साथ विद्रोह कर सकते थे। इस संकट से मूलराज को सुरक्षित रखने के लिए सालिमसिंह मेहता ने उन दोनों बालकों को राज्य से दूर भेज दिया था।

रायसिंह के दोनों राजकुमारों को जैसलमेर लाने के समय जोरावर सिंह ने आश्वासन दिया था। इसलिए जब उन दोनों राजकुमारों को राज्य से सुदूरवर्ती स्थान पर भेजने का आदेश हुआ, उस समय जोरावर सिंह को सन्देह पैदा हुआ। इसी संदेह के आधार पर जोरावर सिंह ने राज दरबार में निर्भीक होकर मूलराज से कहा : "आप के सिंहासन के उत्तराधिकारी राजकुमार अभय सिंह के जीवन का उत्तरदायित्व मेरे ऊपर है। जिस इस राजकुमार को राज्य के सिंहासन पर किसी समय बैठना है, उसको किसी दूरवर्ती स्थान पर भेज देने की अपेक्षा राजधानी में रखकर उसे राज्य के शासन की शिक्षा देना आप का कर्त्तव्य है।"

जोरावर सिंह के निर्भीक शब्दों को सुन कर मेहता सालिम सिंह भयभीत हो उठा। वह सोचने लगा कि राज दरबार में जोरावर सिंह की तरह के शक्तिशाली सामन्त का इस प्रकार कहना मेरे लिए किसी प्रकार अच्छा नहीं है। इसलिए वह किसी षड़यंत्र के द्वारा जोरावर सिंह को मार डालने का उपाय सोचने लगा।

जोरावर सिंह का एक भाई था। खेतसी उसका नाम था। सालिम सिंह ने खेतसी की स्त्री के साथ बहन का सम्बन्ध कायम किया और उसे अपने यहाँ बुलाकर उसने कई बार सम्मानित किया। उसको प्रभावित करने के बाद सालिम सिंह ने एक दिन अपने यहाँ उससे बड़ी बुद्धिमानी के साथ बातें कीं और कहा : "हमारी इच्छा तुम्हारे पति खेतसी को प्रधान सामन्त बनाने की है। क्या तुम इस बात को पसन्द करोगी?"

मंत्री सालिम सिंह की बात को सुनकर खेतसी की स्त्री बहुत प्रसन्न हुई और जब उसने इसे स्वीकार लिया तो सालिम सिंह ने सावधानी के साथ उसको समझाते हुए कहा : "इसके लिए मैं जैसा तुम्हें बताऊँ, तुम्हें करना पड़ेगा।"

वह स्त्री उत्सुकता के साथ सुन रही थी। सालिम सिंह ने गम्भीर होकर फिर उससे कहा : "मैं जैसा चाहता हूँ, तुम्हें भी उतना ही उसके लिए तैयार होना चाहिए। साहस से तुमको काम लेने की आवश्यकता है। इसके लिए मैं तुम्हें एक चीज दूँगा और तुम्हें उसका तरीका बताऊँगा। तुम इस चीज को जोरावर सिंह के भोजन में मिला देना। उसे खाकर जोरावर सिंह मर जायगा। बस तुम्हारा रास्ता साफ हो जायगा। उसके बाद में तुम्हारे पति खेतसी को इस राज्य का प्रधान सामन्त बना दूँगा।"

अपने पति के गौरव को बढ़ाने के लिए उस स्त्री ने भोजन में सालिम सिंह का दिया हुआ विष मिला कर जोरावर सिंह को खिला दिया, जिससे उसकी मृत्यु हो गयी। उसके बाद खेतसी जिझियाली का प्रधान सामन्त बना दिया गया।

मन्त्री सालिम सिंह के सामने जो संकट और भय था, जोरावर सिंह के मर जाने पर वह खत्म हो गया। अब उसको किसी प्रकार की चिंता न रह गयी। इसलिए उसने शासन में अपना एक मात्र आधिपत्य आरम्भ किया। उसके कार्यों से राज्य का कोई सामन्त प्रसन्न न था। परन्तु रावल मूलराज के चुप रहने के कारण कोई उसका विरोध न करता था। सालिम सिंह के बढ़ते हुए अत्याचारों को देख कर जिन सामन्तों से नहीं रहा गया और जिन्होंने उसके विरुद्ध सिर उठाने का साहस किया, सालिम सिंह ने सहज ही अपनी कूटनीति के द्वारा उनको इस संसार से बिदा कर दिया। इस प्रकार जो सामन्त मारे गये, उनमें बारू और डाँगरी आदि के सामन्त प्रमुख थे।

जोरावर सिंह के मर जाने के बाद राज्य में खेतसी को प्रधान सामन्त का पद मिला था। इस पद का वह अधिकारी कैसे हुआ, इस बात को वह स्वयं कुछ न जानता था। यह तो किसी से छिपा न था कि जोरावर सिंह को विष दिया गया। परन्तु वह विष किसने दिया और उसमें किसका षड़यंत्र था, यह किसी को जाहिर न हुआ। जोरावर सिंह के स्थान पर खेतसी प्रधान सामन्त बनाया गया था। इसलिए बड़े भाई जोरावर सिंह के कर्त्तव्यों का उत्तरदायित्व खेतसी पर आ पड़ा। इस कर्त्तव्य पालन के कारण ही सालिम सिंह के साथ खेतसी का विवाद हो गया।

जोरावर सिंह के मर जाने के बाद रायसिंह के पुत्र की अब बात कहने वाला कोई न रह गया था। उन दोनों बालकों के प्राणों की रक्षा का भार जोरावर सिंह ने अपने ऊपर लिया था, उसे मंत्री सालिम सिंह मेहता ने संसार से बिदा कर दिया। इसलिए सालिम सिंह अब पूर्ण रूप से निर्भीक हो गया। उसने मूलराज के बाद राज्य का उत्तराधिकारी अभय सिंह के स्थान पर उसके लड़के मानसिंह के बेटे गजसिंह को बनाने की चेष्टा की और जिस समय इस प्रकार का प्रस्ताव राज दरबार में उपस्थित किया गया, उस समय खेतसी चुपचाप बैठा रहा। राज्य के पुराने नियमों के अनुसार मंत्री सालिम सिंह का यह प्रस्ताव पूर्ण रूप अनैतिक था। राज-दरबार में उस प्रस्ताव का उसे समर्थन न मिल सका। इस प्रकार के अनैतिक कार्यों में प्रजा की सहानुभूति पर भी सालिम सिंह संदेह करने लगा। इस दशा में गजसिंह को उत्तराधिकारी बनाने के लिए एक ही उपाय रह गया था कि रायसिंह के दोनों बालकों को मारकर इस संसार से बिदा कर दिया जाय। इसके लिए वह प्रयत्न करने लगा।

सालिम सिंह संसार के नेत्रों में जैन धर्मावलम्बी था। उसने उस धर्म को स्वीकार किया था। जिसके अनुसार बिना जाने एक चींटी और पतिंगे के मर जाने से भी भयानक पाप होता है। सालिम सिंह स्वरूप सिंह का बेटा था और जैन धर्मावलम्बी होने के बाद भी उसने संसार का कोई पाप और अपराध बाकी न रखा था। सालिम सिंह उसी स्वरूप सिंह का लड़का था। इसने

मंत्री होने के बाद किस प्रकार के अत्याचार किये और षड्यंत्र करके लोगों की हत्यायें की, इसके वर्णन ऊपर किये जा चुके हैं।

रावल मूलराज ने सालिम सिंह के अत्याचारों के प्रति अपने दोनों नेत्र बंद कर लिए थे। जिस मूलराज ने सालिम सिंह को सभी प्रकार स्वात्वधिकारी बना दिया था, उस सालिम सिंह का भी कुछ कर्त्तव्य मूलराज के प्रति था। उसने मूलराज के प्रपौत्र गजसिंह को राज्य का उत्तर-धिकारी बनाने का दृढ़ निश्चय कर लिया था। राज्य का वास्तव में उत्तराधिकारी रायसिंह का बड़ा बेटा अभय सिंह था। रायसिंह स्वयं अपनी पत्नी के साथ आग से जलकर मर चुका था। अब गजसिंह के जीवन में अभय सिंह कांटा था। न केवल उस अभयसिंह को, बल्कि राजसिंह के दोनों बालकों अभय सिंह और धौंकल सिंह को मरवा डालने का सालिम सिंह ने निश्चय किया।

लगातार पाप और अपराध करने के बाद मनुष्य के हृदय का भय नष्ट हो जाता है। सालिम सिंह की यही अवस्था थी। अब उसके हृदय में किसी बात का भय न रह गया। उसने अपने षड्-यंत्र द्वारा जोरावर सिंह के स्थान पर खेतसी को राज्य का प्रधान सामन्त बनाया था। वह खेतसी पर अपना यह उपकार समझता था। उसका कदाचित्त यह विश्वास था कि मैं जो कुछ कहूँगा। खेतसी उसको पूरा करेगा। अपने इसी विश्वास के कारण उसने रायसिंह के दोनों बालकों को मार डालने के लिए खेतसी को आदेश दिया।

खेतसी प्रधान मंत्री सालिम सिंह के इस आदेश को सुनकर अत्यन्त क्रोधित हुआ और उसने सालिम सिंह को उत्तर देते हुए कहा : "मैं अपने वंश के किसी के भी प्रति इस प्रकार की बात सुनना भी पसन्द न करूँगा

खेतसी की इस बात को सालिम सिंह ने सुना। उसने कुछ उत्तर न दिया। इसके कुछ दिनों बाद खेतसी बालोतरा राज्य के फूलिया नामक स्थान पर एक निमंत्रण में गया। जब वहाँ से लौट रहा था, मंत्री सालिम सिंह के भेजे हुए राज्य के कुछ आदमी उसे जैसलमेर की सीमा के भीतर मिले और सालिम सिंह की योजना के अनुसार विश्वासघात करके उन लोगों ने खेतसी को मार डाला। यह समाचार जब खेतसी की स्त्री को मिला तो वह अश्रुपात करती हुई सालिम सिंह के यहाँ पहुँची। इसलिए कि वह सालिम सिंह को अपना सब से अधिक शुभचिंतक समझती थी। परन्तु उसे वहीं पर यह मालूम हो गया कि मेरे स्वामी के मारे जाने में इसी सलिम सिंह का षड्यंत्र था तो प्रतिहिंसा की भावना से उस स्त्री के अंतरतर में आग की लपटें उठने लगीं। सालिम सिंह को जब यह मालूम हुआ तो उसने खेतसी की स्त्री को भी मरवा डाला।

सालिम सिंह ने इन दिनों में लगातार उन लोगों की हत्यायें कीं, जो लोग उसके विरोधी बने। उसने रायसिंह के लड़के अभय सिंह और धौंकल सिंह को भी विष देकर मरवा डाला और उसने गजसिंह को जयसलमेर राज्य का उत्तराधिकारी घोषित किया। गजसिंह के चार भाई और थे। वे अपने प्राणों के भय से बीकानेर चले गये।

मूलराज के तीन लड़के थे—रार्यासह, जैतसिंह और मानसिंह। रायसिंह आग में जलकर मर गया। जैतसिंह काना था और मानसिंह घोड़े से गिरकर मर गया था। राजसिंह के दो लड़के थे, जो विष देकर मारे गये। जैतसिंह के एक लड़का था, महासिंह। यह भी काना था। मान-सिंह के पांच लड़के थे—तेजसिंह, देवीसिंह, गजसिंह, केशरी सिंह और फतेह सिंह। इनमें गजसिंह को छोड़कर शेष चारों लड़के राज्य से निर्वासित कर दिये गये थे। हिन्दू धर्म ग्रंथों के अनुसार काने को राज सिंहासन का अधिकार नहीं मिलता। इस दशा में गजसिंह ही उस राज्य का अब एक मात्र उत्तराधिकारी रह गया था।

राजस्थान के जिन राज्यों में मंत्रियों का आधिपत्य रहा और राजा कठपुतली बनकर सिंहासन पर बैठे रहे, उन राजाओं को अधिक समय तक शासन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। कोटा राज्य के भूतपूर्व राजा ने भी अपने सिंहासन पर बैठकर पचास वर्ष से अधिक शासन किया था और रावल मूल राज ने जैसलमेर में अपने शासन के अट्ठावन वर्ष व्यतीत किये। उसके पिता का शासन चालीस वर्ष तक रहा था। रावल मूल राजा के पितामह जसवंत सिंह के शासन काल में जैसलमेर के राज्य का विस्तार हुआ था। उत्तर की सीमा गाडा नदी तक और पश्चिम में पञ्जनद तक बढ़ी हुई थी। इसके पहले राज्य की इस सीमा का और भी अधिक विस्तार हुआ। जैसलमेर के दक्षिण में धात राज्य है। पूर्वी सीमा के फलोदी, पोकर्ण और अनेक दूसरे नगर बीकानेर राज्य में चले गये हैं। भावलपुर राज्य आजकल एक स्वतंत्र राज्य बन गया है। परन्तु किसी समय वह जैसलमेर की राजधानी का एक भाग था।

इस राज्य की राजनीतिक परिस्थितियाँ जितनी ही निर्बल होती गयीं और उसके सिंहासन पर बैठे हुए राजाओं ने जितनी ही अपनी अयोग्यता और कायरता का परिचय दिया, राज्य के उतने ही ग्राम और नगर उनके अधिकारों से निकल कर दूसरे राज्यों में चले गये। जैसलमेर की इस दुरवस्था का एकमात्र कारण यह था कि पतन के इन दिनों में जो लोग उसके राज-सिंहासन पर बैठे, वे अयोग्य थे और उनमें शासन की शक्तियों का पूर्ण रूप से अभाव था।

पचपनवाँ परिच्छेद

यदुवंशी के वंशजों का इतिहास–पिशाच मन्त्री के बेटे की पैशाचिकता–राज्य का विध्वंस और विनाश–रावल गजसिंह मन्त्री के हाथ का खिलौना–राज्य का पतन–कम्पनी के साथ संधि।

कृष्ण के स्वर्गवासी होने पर यदुवंश का इतिहास इस परिच्छेद के पहले बहुत कुछ लिखा जा चुका है और शेष आगामी पृष्ठों में लिखा जायगा। जैसलमेर का यदुवंशी रावल मूलराज कृष्ण का वंशज था और उसने वहाँ के सिंहासन पर बैठकर—जैसा कि पहले लिखा जा चुका है—अट्ठावन वर्ष तक राज्य किया। परन्तु वह नाम के लिए राजा था। उसके शासन के आरम्भ में मेहता स्वरूपसिंह राज्य का प्रधान मंत्री था और उसके मारे जाने पर उसका बेटा सालिमसिंह अपने पिता के स्थान पर प्रधान मंत्री बना। मूलराज आरम्भ से अंत तक अपने प्रधान मन्त्री के हाथ का खिलौना रहा। उसमें शासन की योग्यता न थी और एक राजपूत में जिन गुणों की आवश्यकता होती है, उनका उसके जीवन में पूर्ण रूप से अभाव था। यही कारण था कि उसके मंत्रियों ने राज्य को रसातल में पहुँचा दिया और जो सामन्त अथवा मूलराज के वंश के लोग राज्य के शुभ-चिंतक थे, उनकी हत्यायें करवाईं। इन सब बातों के परिणाम स्वरूप जैसलमेर राज्य का पूरे तौर पर पतन हुआ और जो यदुवंश अपने गौरव के लिए बहुत प्रसिद्ध हो चुका था, भयानक रूप से उसका अधःपतन हुआ।

सन् १८१८ ई० में मूलराज ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी के साथ संधि की और उसके दो वर्ष बाद सन् १८२० ई० में उसकी मृत्यु हो गयी। उसके बाद उसका प्रपौत्र गजसिंह जैसलमेर

के सिंहासन पर बैठा। प्रधान मंत्री सालिमसिंह ने राज्य के दूसरे उत्तराधिकारियों का सर्वनाश करके राजकुमार गजसिंह को उत्तराधिकारी घोषित किया था। राज्य के प्रधान मंत्री का यह कार्य पूर्ण रूप से अनैतिक था। परंतु उसे सफलता मिली और मूलराज के मरने पर वही गजसिंह—जिसको प्रधान मंत्री सालिमसिंह सिंहासन पर बिठाना चाहता था—राज्य का शासक बना।

रावल मूलराज के शासनकाल में राज्य का संचालक प्रधान मंत्री था और उस प्रधान मंत्री ने मूलराज के बाद भी शासन की सत्ता को अपने हाथ में बनाये रखने के लिए गजसिंह का समर्थन किया। राज्य के दूसरे उत्तराधिकारियों से सालिमसिंह को पहले से ही कोई आशा क्यों न थी और उसने गजसिंह से अपने सम्बन्ध में पूरी आशायें किस आधार पर कर रखी थीं, इसको स्पष्ट करने के लिए प्राचीन ग्रंथों में कोई उल्लेख नहीं मिलता। लेकिन यह बात सही है कि प्रधान मंत्री सालिमसिंह ने गजसिंह से जो आशायें की थीं, वे पूरे तौर पर पूरी हुईं। गजसिंह सालिमसिंह के बल पर राज्य के सिंहासन पर बैठा और राज्याधिकार प्राप्त करने के बाद वह सलिमसिंह के हाथों में कठपुतली बनकर रहा।

गजसिंह की शिक्षा-दीक्षा का कार्य उसकी छोटी आयु से ही सालिमसिंह के हाथ में रहा था। उसने गजसिंह को जिस सांचे में ढालना चाहा था, गजसिंह उसी साँचे में ढला। पुराने ग्रंथों में इस बात के उल्लेख पाये जाते हैं कि बचपन से ही गजसिंह का सम्पर्क सालिमसिंह के साथ अधिक था। सालिमसिंह का पिता मेहता स्वरूपसिंह राज्य का प्रधान मंत्री था और उस दशा में गजसिंह के साथ सालिमसिंह का सम्पर्क रहना अत्यन्त स्वाभाविक था। शुरू से ही गजसिंह का विश्वास सालिमसिंह ने प्राप्त किया था और उसके जीवन की गति मन को देखकर सालिमसिंह ने पहले से ही सभी प्रकार के अनुमान लगा लिए थे। सिंहासन पर बैठने के पहले तक गजसिंह सालिमसिंह को छोड़कर कदाचित् दूसरों को जानता भी न था और उसके सिंहासन पर बैठने के बाद भी सालिमसिंह ने उसकी यही अवस्था कायम रखी। प्रधान मंत्री ने गजसिंह को उन राजकर्मचारियों के सम्पर्क में रात-दिन रखा, जो सभी प्रकार सालिमसिंह के पक्षपाती थे और उनके जीवन का प्रधान कार्य यह था कि वे रावल गजसिंह से सालिमसिंह की खूब प्रशंसा करते रहें। वे राजकर्मचारी इसके लिए प्रधान मंत्री सालिमसिंह से बराबर पुरस्कृत होते रहते थे।

रावल मूलराज के समय प्रधान मंत्री सालिमसिंह को जो अधिकार प्राप्त थे, रावल गजसिंह के समय उनकी अपार वृद्धि हो गयी थी। उसके अधिकारों के सम्बन्ध में यह कहना अतिशयोक्ति नहीं है कि प्रधान मंत्री सालिमसिंह के हाथों में न केवल राज्य के सब अधिकार थे, बल्कि रावल गजसिंह और उसके परिवार के लोगों को भी सालिमसिंह की इच्छा के अनुसार चलना पड़ता था। उस समय जैसलमेर का राजवंश पूर्ण रूप से प्रधान मंत्री की आधीनता में जीवन बिता रहा था।

ईस्ट इण्डया कम्पनी के साथ राजस्थान के जितने राज्यों की संधियाँ हुई थीं, उनमें सबसे पीछे जैसलमेर की संधि हुई। इस देर अबेर का कारण था। वहाँ का प्रधान मंत्री सालिमसिंह कम्पनी के साथ संधि करने के पक्ष में न था। उसे भय था कि अंगरेजों के साथ इस प्रकार की संधि हो जाने के बाद मेरे अधिकार मारे जायँगे और उस दशा में मैं अपनी इच्छा के अनुसार इस राज्य में कुछ न कर सकूँगा। इस भय से उसने बहुत समय तक जैसलमेर की संधि को रोकने की कोशिश की। यद्यपि जैसलमेर राज्य की परिस्थितियाँ इतनी खराब हो चुकी थीं कि जिनके कारण कम्पनी के साथ उसकी संधि बहुत पहले हो जानी चाहिए थी। परन्तु सालिमसिंह ने ऐसा नहीं होने दिया। उस प्रधान मंत्री की शक्तियाँ राज्य में इतनी प्रबल थी कि कोई भी उसके

विरुद्ध वहां पर कुछ कर न सकता था। रावल मूलराज ने स्वयं उसको शासन की सत्ता सौंप रखी थी और वह चुप होकर बैठ रहा।

प्रधान मन्त्री सालिम सिंह की यह चेष्टा बहुत दिनों तक न चल सकी। इसके दो कारण थे। पहला कारण यह था कि जैसलमेर की राजनीतिक परिस्थितियाँ दिन-पर दिन भयानक होती जाती थीं और दूसरा कारण यह था कि राजस्थान में जैसलमेर को छोड़कर और कोई राज्य न रह गया था, जिसने ईस्ट इण्डिया कम्पनी के साथ संधि न की हो। इन दोनों कारणों से जैसलमेर को भी अंग्रेजों के साथ संधि करनी पड़ी और उसका कार्य १२ दिसम्बर सन् १८१८ ईसवी को सम्पन्न हो गया। इस संधि-पत्र के लिखे जाने और उसके कार्यान्वित होने के बाद सालिम सिंह को जो भय था और जिसके कारण उसने अब तक इस संधि को रोक रखा था, वह बहुत कुछ दूर हो गया। बल्कि कुछ ऐसी परिस्थितियाँ भी संधि के द्वारा राज्य में पैदा हुईं, जो पूर्ण रूप से सालिम सिंह के पक्ष में थीं।

इस संधि के पहले सालिम सिंह को बराबर भय बना रहता था कि गजसिंह के जो भाई जैसलमेर छोड़कर बीकानेर चले गये हैं, वे संगठित होकर किसी भी समय इस राज्य पर आक्रमण कर सकते हैं और वह समय मेरे लिए बड़ा भयानक होगा। अंग्रेजों के साथ जैसलमेर की संधि हो जाने के बाद सालिम सिंह के मन का यह भ्रम दूर हो गया। क्योंकि संधि में एक शर्त यह भी थी कि राज्य पर बाहर से किसी के आक्रमण करने पर अंग्रेजी सेना जैसलमेर की सहायता करेगी। प्रधान मंत्री को इसके सम्बन्ध में एक बड़ी आशंका रहा करती थी, संधि के बाद यह मिट गयी और सालिम सिंह निर्भीकता के साथ अपना शासन करता रहा। अब उसके सामने कोई बाधा न थी।

इस संधि के पहले जैसलमेर राज्य की जो परिस्थितियाँ चल रही थीं, उनमें इस बात का कोई अनुमान नहीं हो सकता था कि यह राज्य कब तक अपनी स्वाधीनता की रक्षा कर सकेगा। अंगरेजों की इस संधि के बाद राज्य की शक्तियों में तुरन्त कोई निर्माण नहीं हुआ। फिर भी उसकी कमजोरियों के कारण जो आशंकायें पैदा हो रही थीं, अब उनका कोई भय न रह गया। यह बात किसी से छिपी न थी कि जैसलमेर का शासन बहुत दिनों से शिथिल पड़ गया था और राज्य की सीमा इतनी कम हो गयी थी कि अब उसमें उसकी केवल राजधानी दिखायी देती थी। राज्य के समस्त उत्तरी ग्रामों और नगरों को लेकर भावलपुर के राज्य बन गया था और सिंध, बीकानेर और मारवाड़ के राज्य लगातार जैसलमेर के नगरों पर कब्जा करते हुए चले जा रहे थे।

ईस्ट इण्डिया कम्पनी के साथ संधि हो जाने बाद जैसलमेर के इस पतन का अंत हो गया। जो पड़ोसी राज्य उसके नगरों और ग्रामों पर लगातार अधिकार कर रहे थे, वे सब बन्द हो गये। यदि इस प्रकार की संधि न हुई होती तो अपनी रक्षा करने के लिए जैसलमेर में सैनिक शक्ति न रह गयी थी। एक समय यह था, जब जैसलमेर का व्यवसाय बढ़कर गंगा और सिंधु नदी के किनारे पर बसे हुए नगरों तक पहुँच गया था। परन्तु आपसी फूट, ईर्षा और अंतिम दिनों में सिंहासन पर बैठने वालों की अयोग्यता के कारण राज्य का यह सारा वैभव थोड़े दिनों में छिन्न-भिन्न हो गया और राज्य पतन की उस दुरवस्था में पहुँच गया, जब उसकी स्वाधीनता संकट में दिखायी देने लगी।

कम्पनी के इस संधि के बाद प्रधान मंत्री सालिम सिंह के सभी भय नष्ट हो गये। राज्य में अब उसका अत्याचार फिर से बढ़ने लगे। राज्य की संपूर्ण प्रजा उसको कोस रही थी। परन्तु उसके अत्याचारों को सहन करने के सिवा उसके अधिकार में और कुछ न था। राज्य में कोई

ऐसी शक्ति न थी, जहाँ पर प्रजा पहुँच कर अपना रोना रो सकती और अपने कल्याण के लिए प्रार्थना कर सकती। सालिम सिंह के कठोर अत्याचारों में अब राज्य के निवासियों को किसी अच्छाई की आशा न रह गयी थी।

संधि के पश्चात् आरम्भिक दिनों में प्रधान मंत्री सालिम सिंह ने प्रजा के साथ ऊपरी सहानुभूति प्रकट करने की कोशिश की। लेकिन उसके इन व्यवहारों का प्रजा पर कोई प्रभाव न पड़ा। लोगों का असंतोष इस प्रकार उस पर बढ़ा हुआ था कि उससे लोग अब किसी प्रकार की आशा न रखते थे। सालिम सिंह भी प्रजा के इस अविश्वास को जानता था। जब उसने देखा कि लोग मेरा विश्वास नहीं करते तो वह खुलकर लोगों के साथ अत्याचार करने लगा। इसके पहले उसने प्रजा के साथ सहानुभूति का जो एक दिखावा आरम्भ किया था, उसका भीतरी उद्देश्य यह था कि वह राज्य के प्रधान मंत्री पद पर अपने बाद अपने उत्तराधिकारी को ही रखना चाहता था। इसके लिए उसने प्रजा के साथ झूठी सहानुभूति आरम्भ की थी और इन्हीं दिनों में उसने ईस्ट इण्डिया कम्पनी के सामने इस प्रकार का एक प्रस्ताव भी रखा था।

सालिम सिंह को अपनी इन दोनों चेष्टाओं में असलफल होना पड़ा। प्रजा के अविश्वास में कोई परिवर्तन न हुआ और अँगरेज अधिकारियों के नेत्रों से उसके काले कारनामे छिपे न थे। इसलिए असफल हो जाने के बाद सालिम सिंह ने जैसलमेर राज्य में अपनी भयानक क्रूरता आरम्भ की। उन क्रूर और पैशाचिक अत्याचारों ने अँगरेजी दूत को जैसलमेर की राजनीतिक परिस्थितियों पर अपनी सरकार को रिपोर्ट करने के लिए विवश किया।

अँगरेजी दूत ने सन् १८२१ ईसवी के १७ दिसम्बर को अपनी सरकार से प्रार्थना की : "संधि के बाद जैसलमेर में जो निष्ठुर परिस्थितियाँ उत्पन्न हुई हैं, वे हमारी संधि के लिए अपमान जनक हैं। प्रधान मंत्री सालिम सिंह से उनके सम्बन्ध में प्रार्थनायें की गयी हैं। परन्तु वे व्यर्थ हो चुकी हैं। वह अपनी न्यायप्रियता और दयालुता को ऊँचे स्वर में वर्णन करता है। परन्तु प्रार्थनाओं के बाद उसने अपनी क्रूरता और पैशाचिकता को पहले की अपेक्षा कई गुना बढ़ा दिया है। उसके अत्याचारों से राज्य की सम्पूर्ण प्रजा में त्राहि मची हुई है। जैसलमेर राज्य की प्रजा के साथ समस्त राजस्थान के राज्यों की सहानुभूति है। जैसलमेर के व्यवसायी, जो पालीवालों से कर्ज में रुपये लेकर व्यवसाय करते हैं, सम्पूर्ण भारत में फैले हुए हैं। यह व्यावसायिक श्रेणी—जो पाँच हजार परिवारों में विभक्त है—विवश होकर राज्य से निर्वासित हो चुकी है। जो बनिए तथा महाजन व्यवसाय के लिए बाहर जाते हैं, अपने राज्य को लौटकर आने में घबराते हैं। राज्य की खेती का व्यवसाय इसलिए नष्ट हो गया है कि उसकी रक्षा का राज्य में कोई प्रबन्ध नहीं है। राज्य की मालगुजारी कृषकों से जबरदस्ती वसूल की जाती है। लोगों का सही अनुमान यह है कि प्रधान मंत्री सालिम सिंह ने बीस वर्षों में दो करोड़ से अधिक रुपये की सम्पत्ति अपने अधिकारों कर ली है और इस सम्पत्ति से उसने दूसरे देशो में रियासतें खरीदी हैं। यह अपरिमित सम्पत्ति उसने लूट, अपहरण नीति और भीषण क्रूरता के द्वारा एकत्रित की है। राज्य के सभी अच्छे परिवारों ने कम्पनी की सरकार के पास प्रार्थना पत्र भेजकर माँग की है कि हमारे परिवारों को सुरक्षित अवस्था में इस राज्य से निकालकर बाहर कर दिया जाय।"

ईस्ट इण्डिया कम्पनी के साथ राजस्थान के राज्यों की जो संधियाँ हुई थीं, उसके अनुसार जब राज्यों में झगड़े पैदा होंगे तो कम्पनी की सरकार मध्यस्थ बनकर निर्णय करेगी। इन दिनों में जैसलमेर की सीमा पर एक संघर्ष पैदा हुआ और उसके फलस्वरूप युद्ध होने की सम्भावना हो

गयी। उसमें ईस्ट इण्डिया कम्पनी को मध्यस्थ बनना पड़ा। यह संघर्ष बारू राज्य के मालदेवोत लोगों से सम्बन्ध रखता था।

मालदेवोत, केलन, बरसंग, पोहर और तेजमालोत भट्टी वंश के हैं। परन्तु लूटमार की नीति अपनाने के कारण अकुज्जाक और पिण्डारियों की तरह वे भी लुटेरों में प्रसिद्ध हो गये थे। बारू राज्य खारीपट्टा के नजदीक है। बीकानेर के राठौरों ने भट्टी लोगों से खारी पट्टा को लेकर अपने अधिकार में कर लिया था। राठौरों के साथ भट्टी लोगों के झगड़े का कारण यह है कि राठौरों ने भट्टीवंश के बहुत-से स्थानों पर अधिकार कर लिया था। इस प्रकार की घटनायें पच्चीस वर्ष पहले हो चुकी थीं। राठौरों ने बारू राज्य पर आक्रमण करके भट्टी लोगों का एक तरफ से संहार किया, उनके नगरों और ग्रामों को लूटकर बुरी तरह विध्वंस किया और वहाँ के निवासियों के साथ अनेक प्रकार के अत्याचार किये। भट्टीवंश के जो लोग उस सर्वनाश से बच गये थे, वे मरुभूमि के एक दूरवर्ती स्थान पर जाकर रहने लगे।

इस घटना के बाद धीरे-धीरे बहुत दिन बीत गये। भट्टीवंश के जो लोग बच गये थे, मरुभूमि के उस स्थान पर—जहाँ पर जाकर वे रहने लगे थे—उनके वंश की वृद्धि हुई। जैसलमेर के साथ ईस्ट इण्डिया कम्पनी की संधि हो जाने पर वे भट्टी लोग अपने प्राचीन नगरों में आकर बस गये। प्रधान मंत्री सालिम सिंह को जब यह मालूम हुआ तो वह उन भट्टी लोगों पर बहुत क्रोधित हुआ और मालदेवोत लोगों को विध्वंस करने के लिए उसने राठौरों से परामर्श किया। सालिम सिंह ने जैसलमेर के जब अनेक सामन्तों का नाश किया, तो उस समय वह एक प्रकार से राक्षस बन चुका था और उसने बारू के सामन्त की भी हत्या करायी थी। बारू का सामन्त राजकुमार हृदय से रायसिंह का पक्षपाती था और समय-समय पर उसने रायसिंह की सहायता भी की थी। उसके इस अपराध से जलकर सालिम सिंह ने उसको भी मरवा डाला। प्रधान मंत्री की यह शत्रुता बारू राज्य के प्रत्येक व्यक्ति के साथ पैदा हो गयी थी।

सालिम सिंह बारू के सर्वनाश की बात बराबर सोचा करता था। इसके लिए उसे अवसर मिल गया। पेशवा और ईस्ट इण्डिया कम्पनी के युद्ध के दिनों में पेशवा का एक राज कर्मचारी ऊँट खरीदने के लिए जैसलमेर आया था और चार सौ ऊँट खरीद कर जिस समय वह जैसलमेर से बीकानेर राज्य में पहुँचा, उसी समय बारू राज्य के सरदार ने अपने सैनिकों के साथ पेशवा के आदमी पर आक्रमण किया और उसके ऊँट लेकर अपने अधिकार में कर लिया।

इस समाचार को सुनकर बीकानेर के राजा ने मालदेवोत लोगों के विरुद्ध अपनी एक सेना भेजी। इस अवसर पर सालिम सिंह ने बीकानेर के राजा को मालदेवोत लोगों के विरुद्ध उकसाने का काम किया था। अन्यथा बीकानेर के राजा ने उनके विरुद्ध अपनी सेना न भेजी होती। सालिम सिंह अत्यन्त धूर्त था। उसने छिपे तौर पर बीकानेर के राजा को मालदेवोत लोगों पर आक्रमण करने के लिए तैयार किया। परन्तु जाहिरा तौर पर इस झगड़े को रोकने की वह कोशिश करता रहा। सालिम सिंह ने इस अवसर पर अपनी कूटनीति का प्रयोग किया। वह इसका जो फल देखना चाहता था, उसका उलटा हुआ। बीकानेर की सेना ने मालदेवोत लोगों के नोखा और बारू में पहुँच कर भयानक उत्पात किया। वहाँ के सामन्त को मार डाला और उसके ग्राम के सभी कुए बन्द करवा दिये।

इसके बाद बीकानेर की सेना बीरमपुर की तरफ रवाना हुई और जैसलमेर राज्य के कई स्थानों पर अत्याचार किया। इस समाचार को पाकर सालिम सिंह ने कम्पनी के अंग्रेजों से सहा-

यता माँगी। संधि के अनुसार जैसलमेर की रक्षा करने के लिए अंग्रेजों की सेना आयी और उसके फल स्वरूप बीकानेर की सेना अपनी राजधानी लौट गयी। इस प्रकार सालिम सिंह ने बीकानेर के राजा को उकसा कर बारू के सामन्त के प्राण लिए ।

रावल मूलराज के बाद गजसिंह जैसलमेर के सिंहासन पर बैठा। उसके बड़े भाइयों ने बीकानेर में जाकर अपने प्राणों की रक्षा की। मूलराज की तरह गजसिंह भी प्रधान मंत्री सालिम सिंह का खिलौना बनकर रहा। उसकी अयोग्यता और कायरता की बातें पहले लिखी जा चुकी हैं। सालिम सिंह अनेक दूसरे तरीकों से गजसिंह को प्रसन्न रखने का उपाय किया करता था। उसकी चेष्टा से मेवाड़ के राणा ने गजसिंह के साथ अपनी लड़की के विवाह का प्रस्ताव किया और नारियल भेजा। गजसिंह ने उसे स्वीकार कर लिया। मेवाड़ के राजा ने इन्हीं दिनों में अपनी दूसरी लड़की के विवाह के लिए बीकानेर के राजा के पास और प्रपौत्री के विवाह के लिए कृष्ण गढ़ के राजा के पास प्रस्ताव भेजा। ये तीनों विवाह एक साथ तय हो गये और तीनों राज्यों से सेनायें लेकर वर-पक्ष के लोग उदयपुर पहुँच गये। समयानुसार विवाहों के कार्य सम्पन्न हुए। गजसिंह मेवाड़ की राजकुमारी के साथ जैसलमेर में आकर रहने लगा। उस राजकुमारी से गजसिंह के एक लड़का पैदा हुआ। इससे गजसिंह की रानी को बहुत सम्मान मिला और सालिम सिंह ने मेवाड़ की राजकुमारी के साथ गजसिंह का विवाह कराने के कारण अपने आपको को बहुत गौरवान्वित समझा।

छप्पनवाँ परिच्छेद

जैसलमेर की अन्य परिस्थितियाँ—वहाँ की प्रकृति—खेती की पैदावार—शिल्प, वाणिज्य और राज्य के कर—कर वसूल करने में कठोरता—राजा का पारिवारिक व्यय—भट्टी राजपूत और अफीम।

इस राज्य के पिछले परिच्छेदों में वहाँ के राजनीतिक इतिहास का वर्णन किया गया है। जैसलमेर राजा के इतिहास का यह अन्तिम परिच्छेद है। इसमें वहाँ की भौगोलिक प्राकृतिक, सामाजिक और कुछ दूसरी आवश्यक बातें लिखी गयी हैं, जिनका इस राज्य के इतिहास के साथ-साथ जानना और समझना आवश्यक है।

जैसलमेर राज्य की भूमि नीची-ऊँची है और राज्य की सम्पूर्ण भूमि पन्द्रह हजार वर्ग मील में है। इस राज्य के ग्रामों और नगरों की संख्या दो सौ पचास के करीब अनुमान की जाती है। कुछ लोगों का कहना है कि उनकी संख्या तीन सौ से कम नहीं है। सन् १८१५ ईसवी में जैसलमेर की जितनी जन-संख्या थी, उसकी तालिका इसी परिच्छेद के अन्त में दी गयी है।

इस राज्य की भूमि कुछ थल अथवा रोही और कुछ ऊजड़ एवम् जंगली है। जोधपुर की सीमा पर बसे हुए लोबार से सिंधु की सीमा के खाडा तक इस राज्य की भूमि पूर्ण रूप से रेतीली और जलहीन है। इसके बीच के भागों में रेतीले स्तूप पाये जाते हैं और उसके कुछ भागों में

जङ्गल हैं। लोबार से खाडा तक जो राज्य का हिस्सा है, उसने जैसलमेर राज्य को दो भागों में विभाजित कर दिया है। यह भूमि उपजाऊ नहीं है। उसमें कोई भी चीज पैदा नहीं होती। उत्तरी दिशा की भूमि भी उजड़ है। दक्षिण में मगरा और रोई नाम के दो छोटे-छोटे पहाड़ हैं। उनके दृश्य देखने में बड़े सुहावने मालूम होते हैं। इन छोटे पर्वतों का रूप राज्य में सर्वत्र एक-सा नहीं है। उसके कुछ स्थानों के दृश्य ऐसे हैं, जो देखने में पर्वत नहीं मालूम होते। जैसलमेर की राजधानी के मध्य भाग में इन पर्वतों की ऊँचाई दो सौ पचास फुट है। उसको देखने से एक पर्वत का आभास होता है। भट्टी लोगों की राजधानी पर्वत के बिलकुल नीचे है और वहाँ से पन्द्रह-सोलह मील तक पर्वत की शाखायें फैली हुई है। एक शाखा जैसलमेर से पैंतीस मील उत्तर-पश्चिम की तरफ रामगढ़ तक चली गयी है और दूसरी पूर्व की तरफ से चलकर जोधपुर राज्य होती हुई पोकर्ण तक पहुँच गयी है और वहाँ से उत्तर की तरफ फलोदी तक गयी है। इस प्रकार राज्य के अनेक भागों में पर्वत की शाखायें फैली हुई हैं। पर्वत के ऊपर रेतीले पत्थर हैं। वहाँ पर गेरु मिट्टी पैदा होती है। जैसलमेर के निवासी अपने पहनने के कपड़ों को इसी गेरु मिट्टी में रङ्गा करते हैं।

इस राज्य के पर्वत के ऊपर कोई चीज पैदा नहीं होती। वहाँ पर कोई भी वृक्ष नहीं है। उसके किसी-किसी स्थान पर बट के वृक्ष दिखायी देते हैं। सम्पूर्ण जैसलमेर राज्य में ऐसी एक भी नदी नहीं है, जो प्रवाहित होती रहती हो। पर्वत के रेतीले शिखरों से बरसात के दिनों में खारी पानी की कुछ धारायें निकती है, जिनका पानी राज्य के स्थानों पर एकत्रित होकर छोटे-से तालाबों का रूप धारण करता है। उन स्थानों के निवासी ऊँचे घेरे बनाकर उस पानी को रोकने की कोशिश करते हैं। अधिक वर्षा होने के कारण इन छोटे-छोटे तालाबों में इतना अधिक जल एकत्रित हो जाता है जो साल भर तक लोगों के काम आता है। इस प्रकार के तालाबों में कानोदसर एक तालाब का नाम है। यह बहुत बड़ा है और कानोद से मोहन गढ़ तक अट्ठारह मील में इस तालाब में बराबर पानी बना रहता है। बरसात के दिनों में इसमें इतना अधिक पानी एकत्रित हो जाता है कि उससे एक छोटी-सी नदी निकल कर पूर्व की तरफ तीस मील तक प्रवाहित होती है। इस तालाब से कुछ नमक भी पैदा होता है और उससे राज्य को कुछ अधिक लाभ भी हो जाता है।

खेती की पैदावार—यद्यपि इस राज्य की भूमि रेतीली होने के कारण अनुपजाऊ है। परन्तु इस भूमि से पैदावार की शक्ति का बिल्कुल लोप नहीं हुआ। राज्य की कुछ भूमि कुछ अनाजों के पैदावार के लिए बड़ी अच्छी समझी जाती है और उसमें बाजरे की पैदावार अधिक होती है। वहाँ पर यदि कोई बाधा न पड़ो तो इतना अधिक बाजरा पैदा हो जाता है कि वहाँ के लोग तीन वर्ष तक उसे अपने खाने के काम में लाते हैं। इस राज्य में सिंध से गेहूँ आता है।

यहाँ के किसानों को बाजरे की खेती करने में अधिक सुविधा रहती है। बाजरा की फसल में दो तीन बार अच्छा पानी हो जाने से भी उसकी पैदावार अच्छी हो जाती है। भारतवर्ष के अन्य स्थानों की अपेक्षा जैसलमेर का बाजरा अच्छा माना जाता है। वह स्वादिष्ट और पौष्टिक होता है। फसल के दिनों में यहाँ पर बाजरे का भाव एक रुपये का डेढ़ मन तक साधारण तौर पर हो जाता है। परन्तु यह भाव फसल के बाद नहीं रहता यहाँ पर ज्वार भी पैदा होती है। परन्तु उसकी पैदावार साधारण रहती है। पहाड़ी स्थानों के करीब कहीं-कहीं पर कुछ फलों के पेड़ पाये जाते हैं। वे खाने में स्वादिष्ट होते हैं और राज्य के बाहर भी भेजे जाते हैं। जैसलमेर की राजधानी के आस पास के स्थानों में, जहाँ पर खेती में जल का उपयोग किया जा सकता है, अच्छे

गेहूँ की पैदावार होती है। इस राज्य में चावल नहीं पैदा होता और आवश्यकता के लिए राज्य में सिंध से मंगाया जाता है।

राज्य में जहाँ की मिट्टी मुलायम होती है, वहाँ पर खेती के लिए साधारण हल का प्रयोग किया जाता है। इन हलों में बैल और ऊँट—दोनों काम करते हैं। एक हल में दो बैल अथवा दो ऊँट जोते जाते हैं।

शिल्प-कार्य—इस राज्य में शिल्प से सम्बन्ध रखने वाला कोई व्यावसायिक कार्य नहीं होता। थोड़े से लोग कपड़ा बुनने का काम करते हैं और उनसे जो कपड़ा तैयार होता है, वह बहुत साधारण होता है। कपड़ा बुनने के लिए उत्तम श्रेणी की रूई राज्य से बाहर चली जाती है। राज्य की भेड़ों के बालों से लोई, कम्बल और कुछ दूसरे कपड़े तैयार किये जाते हैं यहाँ पर आचारी नाम की खान भी है। उसकी काली मिट्टी से अनेक प्रकार के बर्तन बनाये जाते हैं और वे बरतन खाने पीने के काम में आते हैं।

वाणिज्य—राज्य में उसके निवासियों का कोई विशेष वाणिज्य नहीं है। भारत के दूसरे नगरों की जो चीजें सिंध की तरफ बिकने के लिए जाती हैं, उनका रास्ता जैसलमेर हो कर है। हैदराबार, रोडी, भक्खर, शिकारपुर और कुछ दूसरे स्थानों से वाणिज्य की चीजें इस तरफ आती हैं। गंगा के निकटवर्ती नगरों और पंजाब के अनेक स्थानों से बहुत-से पदार्थ बिकने के लिए जैसलमेर आते हैं। दुआबे का नील, कोटा और मालवा की अफीम, बीकानेर का गुड़ और जयपुर की बनी हुई लोहे की चीजें जैसलमेर के रास्ते से शिकारपुर और सिंध के अनेक नगरों में जाती हैं। सिंध से अफ्रीका के बने हुए हाथी दांत के अनेक पदार्थ, रंग, नारियल अनेक औषधियां और चन्दन की लकड़ी राज्य में आती है।

मालगुजारी और कर—जैसलमेर राज्य की मालगुजारी पहले चार लाख रुपये से अधिक होती थी। इसमें तीन लाख रुपये के करीब भूमि की मालगुजारी होती थी। प्राचीन काल में वाणिज्य के शुल्क से राज्य की एक बंधी हुई आमदनी होती थी। परन्तु प्रधान मंत्री सालिम सिंह के अत्याचारों के कारण उस शुल्क के द्वारा होने वाली आमदनी बिलकुल नष्ट हो गयी। किसी समय इस शुल्क के द्वारा राज्य को लगभग तीन लाख रुपये की आमदनी होती थी। इस शुल्क को वहाँ पर दान और शुल्क एकत्रित करने वालों को दानी कहा जाता था।

खेती का कर—राज्य के किसान लोग खेती के द्वारा जितना अनाज पैदा करते हैं उसका पाँचवाँ भाग और कुछ लोग सातवाँ भाग राजा को कर में देते हैं। यह कर राज्य की मालगुजारी के रूप में वसूल होता है। कुछ ऐसा भी नियम है कि किसान के खेतों में जो अनाज अधिक पैदा होता है, कृषक उसी अनाज को राज्य की मालगुजारी में देता है। इन किसानों के इस अनाज को पल्लीवाल ब्राह्मण और बनिया लोग नकद रुपये देकर खरीद लेते हैं। उसके बाद वह रुपया राज्य के खजाने में चला जाता है।

धुंआं कर—इस कर के द्वारा राज्य को एक बंधी हुई आमदनी होती है। यह धुंआं कर एक प्रकार का रंधन कर अथवा भोजन-कर है, जो प्रत्येक परिवार से वसूल किया जाता है। इस कर को थाली कर भी कहा जाता है। थाली का अभिप्राय उस बरतन से है, जिसमें परोस कर भोजन किया जाता है। यह कर प्रत्येक परिवार को देना पड़ता है। इस कर से राज्य को बीस हजार रुपये की आमदनी होती है, जो एक प्रकार से निश्चित रहती है।

दण्ड कर—इस नाम से भी राज्य में एक कर वसूल किया जाता है। इसकी वसूलयाबी अनिश्चित रूप से होती है। उसका कोई बंधा हुआ नियम नहीं है। राजा को आवश्यकता होने

पर राज्य में दण्ड-कर बढ़ा दिया जाता है और उसकी आवश्यकता को इस कर से पूरा किया जाता है। इसीलिए इस कर में न्याय को अधिक स्थान नहीं मिलता। जैसलमेर राज्य में दण्ड कर सम्बत् १८३० सन् १७७४ ईसवी में प्रचलित हुआ था। उस समय इसको अतिरिक्त धुआँ अथवा थाली कर निर्धारित किया गया था।

ब्याज पर रुपया देने वाले वैश्यों से भी कर लिया जाता है और उनसे राज्य को सत्ताईस सौ रुपयों की आमदनी होती है। महेश्वरी वैश्यों से यह कर आसानी से वसूल हो जाता है। परन्तु ओसवाल वैश्यों के साथ इस कर के वसूल करने में सख्ती करनी पड़ती है और इसके लिए उन्हें जेल भी भेजना पड़ता है। रावल मूलराज के समय इन वैश्यों ने इस कर की अदायगी के समय बड़ी कठोरता से काम लिया था और अत्यन्त विवश अवस्था में वे लोग इस कर को अदा करते थे। यों तो रावल मूलराज से राज्य में कोई प्रसन्न न था। लेकिन ओसवाल वैश्य अपना असंतोष प्रकट करने के लिये उस समय अपनी दूकाने बंद कर देते थे, जब मूलराज अपनी राजधानी से नगर की की सड़कों पर निकलता था। इन वैश्यों के असन्तोषपूर्ण व्यवहारों को मूलराज जानता था। उसने इन वैश्यों को प्रसन्न करने की कोशिशें भी की थीं। उसने इसके सम्बन्ध में निर्णय किया था कि अगर वैश्यों से बराबर धुंआ कर मिलता रहे,तो दण्ड कर लेना बंद कर दिया जायगा। ओसवाल वैश्यों ने रावल मूलराज के इस निर्णय को स्वीकार कर लिया था। सम्बत् १८४१ में मूलराज ने ओसवाल वैश्यों से सत्ताईस हजार और सम्बत् १८५२ में चालीस हजार रुपये ऋण में लिए थे। ये रुपये कुछ दिनों के बाद दे दिये गये थे।

गजसिंह को सिंहासन पर बिठाने के बाद से प्रधान मंत्री सालिम सिंह ने दण्ड कर में चौदह लाख रुपये वसूल किये हैं। इस राज्य में वर्द्धभान नाम का एक सम्पत्तिशाली आदमी रहता था। राजस्थान में उसकी बड़ी ख्याति थी। यह ख्याति उसके पूर्वजों के समय से चली आ रही थी। सालिम सिंह ने उसकी सम्पूर्ण सम्पत्ति लेकर अपने अधिकार में कर ली थी

जैसलमेर राज्य के व्यय का उल्लेख इस प्रकार मिलता है जो वहां के राजा का पारिवारिक व्यय समझा जाता है :—

बार	२०००० रुपये
रोजगार सरदार	४०००० ”
वैतनिक सेना में	७५००० ”
राजा के निजी घोड़े हाथी, ऊंट आदि ...	३५००० ”
पांच सौ अश्वारोही	६०००० ”
रानियों का व्यय	१५००० ”
तोशा खान	५००० ”
दान	५००० ”
पाकशाला	५००० ”
अतिथि	५००० ”
उत्सव	५००० ”
वार्षिक ऊंट घोड़ों की खरीद ...	२०००० ”
जोड़	२९०००० रुपये

जैसलमेर राजा के व्यक्तिगत अथवा पारिवारिक व्यय का ऊपर उल्लेख किया गया है, उसमें बार के नाम से जो रुपये व्यय होते हैं, उसमें राजा के निजी अनुचर, शरीर रक्षक, खरीदे हुए गुलाम आदि सभी आ जाते हैं। वेतन में ये लोग खाने-पीने की सामग्री पाते हैं। इन लोगों की संख्या लगभग एक हजार तक होती है।

जो सामन्त राजधानी में रह कर राज्य का काम करते हैं, उनके सभी खर्चों का प्रबन्ध, जिसमें भोजन भी शामिल है, राज्य को करना पड़ता है और उसका नाम रोजगार सरदार है।

राज्य के मंत्रियों और अधिकारियों में कुछ लोगों को भूमि और कुछ लोगों को वाणिज्य शुल्क दिया जाता है। राज्य का व्यय किसी-किसी वर्ष में वाणिज्य शुल्क से पूरा हो जाता है, जिसकी वार्षिक आय लगभग तीन लाख रुपये होती है।

राज्य की जातियाँ—इन दिनों में भट्टी वंश के जो लोग जैसलमेर में रहते हैं, वे सभी हिन्दू हैं। लेकिन फूलरा और गाडा की तरफ रहने वाले भट्टी लोगों ने बहुत पहले इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया था। राज्य के भट्टी लोग अधिक साहसी और शूरवीर पाये जाते हैं। चाहे वे राठौरों की तरह शक्तिशाली न हों और कछवाहों की तरह लम्बे चौड़े शरीर न रखते हों, परन्तु शरीर की गठन में वे इन दोनों वंशों से अच्छे पाये जाते हैं। राजस्थान के सभी राजपूतों के साथ भट्टी राजपूतों के वैवाहिक सम्बन्ध होते हैं।

वस्त्र—भट्टी लोग अधिकतर सफेद और छींट का जामा पहनते हैं, जो उनकी रानों के नीचे घुटनों तक लम्बा होता हैं, कमर में कमरबन्द बाँधते हैं। तंग मोरी का पाजामा पहनते हैं। उनके पाजामें ऊपर से घेरदार होते है। कुंकुम रंग की सिर में पगड़ी बाँधते है। कमर में प्रत्येक भट्टी एक कृपाण रखता है। उनके साथ ढाल और तलवार रहती है। साधारण श्रेणी का आदमी धोती पहनता है.और पगड़ी बाँधता है। भट्टी लोगों की स्त्रियाँ आमतौर पर दस गज लम्बा रेशमी कपड़े का घाँघरा पहनती है और प्राय: उसी कपड़े का उनका दुपट्टा होता है। उनकी स्त्रियों में हाथी दाँत की चूड़ियाँ पहनने का अधिक प्रचार है। इन चूड़ियों से उनका पूरा हाथ ढका रहता है। एक जोड़ा चूड़ी का मूल्य सोलह रुपये से लेकर पैंतीस रुपये तक होता है। भट्टी स्त्रियाँ हाथों में चाँदी के कड़े भी पहनती हैं। नीच जाति की स्त्रियाँ दूसरों के घरों पर काम करती हैं और वे खेती के कामों में भी बड़ा परिश्रम करती हैं।

अफीम—दूसरे राजपूतों की तरह भट्टी राजपूत भी अफीम खाते हैं। अफीम को शरबत की तरह पीते है और उसके बाद तम्बाकू खाते हैं। अफीम खाने के बाद वे प्राय: नशे में बेहोश हो जाते हैं।

पल्लीवाल ब्राह्मण-- जैसलमेर में पल्लीवाल ब्राह्मण रहते हैं और उनकी संख्या भट्टी लोगों के प्राय: बराबर पायी जाती है। पल्लीवाल ब्राह्मण आमतौर पर धनिक होते हैं। राठौरों के द्वारा मारवाड़ की प्रतिष्ठा के पहले इन पल्लीवाल ब्राह्मणों के पूर्वज पाली अथवा पल्ली नामक स्थान पर रहा करते थे। बारहवीं शताब्दी में कन्नौज से निकलकर सिया जी ने मारवाड़ में पल्ली लोगों को पराजित किया था। परन्तु उसने इनका विनाश नहीं किया था। उसके बाद एक मुस्लिम बादशाह ने पल्ली पर आक्रमण किया और जीतकर उसने पल्ली वालों से कर माँगा। पल्लीवालों ने पराजित होने के बाद भी कर देने से इनकार किया और कहा कि हम लोग ब्राह्मण हैं। आज तक किसी बादशाह और राजा ने हम लोगों से कर नहीं लिया।

इन ब्राह्मणों के मुख से इस प्रकार का उत्तर सुनकर बादशाह को बहुत क्रोध मालूम हुआ। उसने पल्ली वालों के सरदारों को कैद करवा लिया। परन्तु उन लोगों ने इसके बाद भी कर नहीं दिया। इस दशा में बादशाह ने उनको पल्ली राज्य से निकाल दिया। उसके बाद ये लोग वहाँ से भागकर जैसलमेर आ गये और इनके बहुत से आदमी बीकानेर, धात और सिंध में जाकर रहने लगे। जैसलमेर में पल्लीवाल ब्राह्मण प्रसिद्ध व्यवसायी समझे जाते हैं। वहाँ का व्यवसाय इन्हीं लोगों के हाथों में है। ये लोग व्यवसाय कुशल पाये जाते हैं। राज्य के किसानों को ये लोग कर्ज में रुपये देते हैं और वे लोग जो कुछ पैदा करते हैं, उसे पल्ली वाल लोग सस्ते भावों में खरीदकर दूसरे राज्यों को भेज देते हैं।

पोकर्णा ब्राह्मण—जैसलमेर में इस नाम के ब्राह्मणों की एक जाति है। इनकी संख्या लगभग दो हजार होगी। मारवाड़ और बीकानेर में भी पोकर्णा ब्राह्मण रहते हैं। ये लोग खेती करते हैं और पशु पालते हैं। इन लोगों ने पुष्कर में जाकर वहाँ की झील को खोदने का काम किया था। उस समय से ये लोग पोकर्णा ब्राह्मण के स्थान पर पुष्कर ब्राह्मण कहे जाने लगे। जैसलमेर-राज्य में जाटों के सिवा दूसरी अनेक जातियाँ रहती हैं, जिनका विस्तार के साथ वर्णन आगामी मरुभूमि के परिच्छेद में किया गया है। अन्य राज्यों की तरह यहाँ के जाट भी खेती का काम करते हैं।

जैसलमेर की मरुभूमि में वहाँ के राजा का एक दुर्ग है, जो दो सौ पचास फीट ऊँचे शिखर पर बना हुआ है। उस दुर्ग के चारों तरफ एक बहुत मजबूत दीवार का घेरा है। दुर्ग में चार विशाल द्वार हैं। परन्तु उन चारों में तोपखाने नहीं हैं। दुर्ग के उत्तर की तरफ राजधानी है और सम्पूर्ण राजधानी तीन मील लम्बी एक ऊँची दीवार से घिरी हुई है। उसमें तीन बड़े द्वार और दो छोटे दरवाजे हैं।

राजधानी में व्यवसायियों के कुछ अच्छे मकान हैं। परन्तु साधारण घरों और झोपड़ियों की संख्या अधिक है। राजा और उसके परिवार के रहने के लिए एक वैभवशाली महल भी है। सामन्तों के साथ अच्छा व्यवहार होने के दिनों में आवश्यकता के समय राजा पाँच हजार पैदल और एक हजार अश्वारोही सेना का प्रबन्ध कर सकता है। लेकिन अप्रिय व्यवहारों और अत्याचारों के दिनों में—जैसा कि रावल मूलराज के समय मे प्रधान मंत्री ने कर रखा था—राज्य की रक्षा के लिए इससे आधी सेना का प्रबन्ध हो सकना भी संदेहपूर्ण मालूम होता है।

जैसलमेर का इतिहास अब समाप्त हो रहा है। इसके अंत में पाठकों की जानकारी के लिए राज्य की जन-संख्या दी गयी है। यह जन-संख्या सन् १८१५ ईसवी के अनुसार है। इसके पहले राज्य की जन-संख्या अधिक रही होगी, यह बात आसानी के साथ कही जा सकती है। क्योंकि राजनीतिक पतन के साथ-साथ जन-संख्या का लगातार कम होना स्वाभाविक होता है। उसके अतिरिक्त प्रधान मंत्री के अत्याचारों से राज्य की जन-संख्या भयानक रूप से कम हो गयी थी।

कुल जन-संख्या की तालिका में जो दो सौ पच्चीस गाँवों की जन-संख्या शामिल की गयी है। उसमें छोटे-से-छोटे गाँवों की जन संख्या भी शामिल है। इनमें कुछ गाँव तो इतने छोटे हैं कि उनमें घरों की संख्या चार से अधिक नहीं हैं। उनमें रहने वालों को भी राज्य की इस जन-संख्या में जोड़ लिया गया है।

जैसलमेर-राज्य की जन-संख्या की तालिका

नगर	शासन	घर	मनुष्य संख्या	विशेष विवरण
जैसलमेर	राजधानी	७०००	३५०००	
बीकमपुर	सामन्त शासन	५००	२०००	२४ ग्राम पृथक
सेरूरो	"	३००	१२००	निवासी केलण भट्टी
नचना	"	४००	१६००	रायलोत सामन्त
कटोरी	"	३००	१२००	
कवाह	"	३००	१२००	
कोलदरू	"	२००	८००	
सत्तोह	"	३००	१२००	
जिझियाली	"	३००	१२००	अधिकारी प्रधान सामन्त
देवीकोट	राजा का शासन	२००	८००	
भाप	"	२००	८००	
बलाना	सामन्त शासन	१५०	६००	
सतियाहसोह	"	१००	४००	
बारू	"	२००	८००	निवासी मालदेवोत
चान	"	२००	८००	
लोहरकी	"	१५०	६००	रावलोत वंश
नानतल्लो	"	१५०	६००	"
लहती	"	३००	१२००	"
डाँगरी	"	१५०	६००	"
बीजोराय	राज्य शासन	२००	८००	
मुन्दाई	"	२००	८००	
रामगढ़	"	२००	८००	
बरसलपुर	सामन्त शासन	२००	८००	
गिराजसर	"	१५०	६००	
			५६४००	
२२५ गांवों की			१८०००	

जोड़— ७४४००

मरुभूमि का इतिहास

सत्तावनवाँ परिच्छेद

मन्दोर नगर–ऐतिहासिक खोज–मरुभूमि का वर्णन–विस्तार और दृश्य–मरुभूमि का प्राचीन काल–उसके प्रसिद्ध नगर–उसका वालुकामय मार्ग–गाँवों का अस्तित्व–जनहीन विस्तृत मैदान–नदियाँ, झीलें और झरने–प्राचीन राजवंश–राज्य और जागीरें–आपस की फूट और उसका परिणाम।

मरुभूमि में मन्दोर से आगे जाने का मुझे अवसर नहीं मिला। मन्दोर नगर मरुभूमि की पुरानी राजधानी है। हिसार का प्राचीन दुर्ग इसके उत्तर-पश्चिम में है और आबू नहरवाला एवं भुज दक्षिण में है। मरुभूमि का वर्णन करने के पहले मैं इस बात को स्पष्ट कर देना आवश्यक समझता हूँ कि अनुसंधान करनेवाली मेरी समिति ने प्रत्येक दिशा में पहुँचकर उसकी ऐतिहासिक सामग्री को प्राप्त करने की चेष्टा की है और इस कार्य में जो चीजें प्राप्त हुई हैं, उनमें आवश्यक सामग्री का अभाव न था, फिर भी बड़े परिश्रम के साथ मैंने तैयार करके जो कुछ पाठकों के सामने उपस्थित किया है, वह काफी नहीं है। मैं समझता हूँ कि भविष्य में जो विद्वान इसके सम्बन्ध में खोज का कार्य करेंगे, मेरी यह सामग्री उनके लिए सहायक सिद्ध हो सकेगी। इस कार्य के सम्बन्ध में यात्रा के दिनों में मिली हुई सामग्री का मैंने शक्ति भर लाभ उठाया है।× यद्यपि उससे ऐतिहासिक तथ्य निकालने का कार्य सरल न था, फिर भी मैंने अपने प्रयत्न में कुछ बाकी नहीं रखा। इस सामग्री के साथ-साथ भटनेर से अमरकोट और आबू से आरोर तक के ऐसे बहुत से निवासी मेरी समिति के द्वारा मेरे पास आये हैं, जिन्होंने अपनी जानकारी से मेरी बड़ी सहायता की है। इतना सब होने पर भी मैं इसे स्वीकार करता हूँ कि मैं इस विषय में जो कुछ उपस्थित कर रहा हूँ, पर्याप्त नहीं है। मुझे केवल इतना ही संतोष है कि मेरे इस कार्य से अभाव के दिनों में लोगों को बहुत-कुछ सहायता मिल सकेगी।

ऊपर लिखी हुई बातों को स्पष्ट करने के बाद मैंने मरुभूमि का वर्णन विस्तार के साथ लिखने का प्रयत्न किया है। यद्यपि मैं जानता हूँ कि यदि इस कार्य में मेरे साथ कुछ अभाव न होते तो यहाँ पर जो मैंने वर्णन किया है, वह इस पुस्तक के भूगोल सम्बन्धी वर्णन में सम्मिलित कर दिया जाता। कुछ लोगों की दृष्टि में यह वर्णन ऐतिहासिक महत्व न रखे, यह सम्भव हो सकता

× मध्य और पश्चिमी भारत के साथ-साथ इस देश के दूसरे मार्गों के सम्बन्ध में जो पुस्तकें मुझे मिली हैं, वे ग्यारह भागों में विभाजित हैं। उनकी सहायता से यहाँ के राज्यों के मार्गों पर प्रामाणिक नक्शे तैयार किये जा सकते हैं। ऐसा करने का मेरा इरादा भी था। परन्तु लगातार बिगड़ने वाला मेरा स्वास्थ्य मेरे इस कार्य में बाधक हुआ है। इसलिए जो पुस्तकें इस विषय में मुझे प्राप्त हुई हैं, वे अब कम्पनी के दफ्तर में रख दी गयी हैं। यदि बुद्धिमानी और परिश्रम से काम लिया गया तो भारत का प्रामाणिक नक्शा तैयार करने में इन पुस्तकों से बहुत बड़ी सहायता मिलेगी।

है। परन्तु यहाँ की मरुभूमि की जानकारी के सम्बन्ध में इसका एक विशेष स्थान होगा, मै इस बात पर विश्वास करता हूँ। निरीक्षण और अध्ययम के बाद मैंने जो परिणाम निकाले हैं, उनका समर्थन अँगरेजी राजदूत मिस्टर एलफिन्स्टन के उन कार्यो के द्वारा होता है जो उसने काबुल जाते हुए अपनी प्राप्त सामग्री के आधार पर किया है। इस समर्थन से मुझे संतोष मिला है।

यहाँ पर मुझे यह स्पष्ट कर देना भी आवश्यक मालूम होता है कि मरुभूमि के वर्णन में कुछ बातें ऐसी भी आ गयी हैं, जिनका वर्णन बीकानेर के इतिहास में किया जा चुका है। मरुभूमि होने के कारण उस राज्य के इतिहास में उनका उल्लेख करना भी आवश्यक था और वह उल्लेख आवश्यकतानुसार यहाँ पर भी जरूरी हो गया है। यद्यपि ऐसे स्थलों के वर्णन में मैंने बड़ी सावधानी से काम लिया है।

मरुभूमि मरुस्थली का दूसरा नाम है। इसका अर्थ यह है कि वह भूमि अथवा स्थल, जो वालुकामय हो। थल अथवा स्थल प्रायः सूखी भूमि को कहते हैं। काबुल का थल, गोगा का थल और खेती करने के योग्य थल इस प्रकार आमतौर से थल अथवा स्थल के प्रयोग होते हैं। प्रायः कहा जाता है, जल और स्थल अर्थात् पानी और सूखी जमीन। बाघ के बदन पर जिस प्रकार लम्बी काली धारि-ाँ होती है, उसी प्रकार मरुभूमि में रेत की पंक्तियाँ-सी बन जाती हैं और इस प्रकार की विस्तृत भूमि पर अगणित गावों और नगरों की आबादी दिखायी देती है। मरुभूमि के उत्तर में एक लम्बा चौड़ा मैदान है। दक्षिण में नमक का एक विशाल दलदल रिन और कोलीवरी है। पूर्व में अर्वली और और पश्चिम में सिधु नदी की घाटी है। पूर्व और पश्चिम की सीमायें अधिक विशेषता रखती हैं। क्योंकि पूर्व में अर्वली पर्वत ने रेत के मार्ग को न रोका होता तो मध्य भारत भी बालुकामय होता। अर्वली पर्वत की दीर्घाकार श्रेणी समुद्र के किनारे से दिल्ली तक चली गयी है। फिर भी बीच में जहाँ कहीं रास्ता मिल गया है, वहीं से रेतीली भूमि प्रवेश कर आगे बढ़ गयी है और पर्वत को पार कर उसने अपना एक स्थल बना लिया है। जिन लोगों ने टोंक के पास बुनास को पार किया है, जहाँ पर कोसों की दूरी में केवल रेत ही रेत दिखायी देती है, उनकी समझ में यह आसानी से आ जायगा।

मरुभूमि का विस्तार समुद्र की तरह अन्त प्रतीत होता है, जिसके आर्यवीर का कहीं पता नहीं चलता। हैदराबाद से ओच तक उत्तर की तरफ चलने पर बहुत दूर तक पूर्व की ओर बालू के विशाल दुर्ग दिखायी देते हैं, जिनकी ऊँचाई नदी की सतह से लगभग दो सौ फीट तक है। बालू के इन ऊँचे और विस्तृत दुर्गों को देखकर मनुष्य अनेक प्रकार की बातें सोच सकता है।

प्राचीन काल में प्रमार वंश के राजा इस मरुभूमि में शासन करते थे। इसका समर्थन करते हुए भट्ट ग्रंथों में नौ दुर्गो का उल्लेख किया गया है। पूगल का दुर्ग उत्तर में है। मन्दोर मरुभूमि के बीच में है। आबू, खेरालू और परकर दक्षिण में। चोटन, अमर-कोट, आरोर और लुद्रवा पश्चिम में है। मरुभूमि के इन नौ दुर्गों के अधिकारियों राजा पर में आक्रमण करने की शक्ति किसी में न थी। वहाँ की प्राचीन ऐतिहासिक बातों की जानकारी किसी को नहीं है। जिन ग्रंथों में उसके उल्लेख पाये जाते हैं, उनमें भी इस प्रकार की बातों का एक बहुत बड़ा अभाव मिलता है। वहाँ के बड़े-बड़े नगरों के नामों को भी लोग नहीं जानते। लुद्रवा और आरोर के प्राचीन नगरों के अस्तित्व अब तक मौजूद हैं। फिर भी उनके नामों को वही लोग मुश्किल से जानते हैं, जिन्होंने मरुभूमि की यात्रा की है और वहाँ की भौगोलिक जानकारी प्राप्त की है। चोटन और खेरालू आदि नगरों के नाम भी नक्शों में नहीं पाये जाते। भट्ट ग्रंथों के छन्दों

में इस प्रकार के नामों का संकेत पाने पर हमें प्रोत्साहन मिला और हमने उनके सम्बन्ध की जानकारी प्राप्त करने की चेष्टा की। उस खोज में हमें जो कुछ मिला, उसे हमने यहाँ पर स्पष्ट रूप में लिखने की कोशिश की है।

मरुभूमि की समस्त प्राकृतिक और अप्राकृतिक बातों का उल्लेख करना यहाँ पर हमारा उद्देश्य है। उसके साथ उसके प्रसिद्ध नगरों का भी हमने वर्णन किया है। फिर चाहे वे वर्तमान हों अथवा नष्ट हो गये हों। इसके पश्चात् जैसलमेर आने-जाने वाले रास्तों का वर्णन किया गया है। सम्पूर्ण बीकानेर और अरवली पर्वत के उत्तर में बसा हुआ शेखावाटी का हिस्सा इस मरुभूमि में सम्मिलित है। कानोड नगर से मरुभूमि की शुरुआत होती है। इस बात को मिस्टर एलफिन्स्टन ने भी स्वीकार किया है। दिल्ली से कानोड नगर की दूसरी कम्पनी के राज्य में लगभग एक सौ मील है। उसके वर्णन करने की हमें कोई आवश्यकता नहीं मालूम होती। उसके सम्बन्ध में इतना ही जान लेना जरूरी है कि यह भूमि रेतीली होने पर भी खेती के लिए अच्छी है।

कानोड पहुँचने के बाद हमको मरुभूमि का दृश्य देखने को मिला। उसके देखने की मुझे पहले से ही उत्सुकता थी। कानोड से तीन मील के पहले से ही बालू की पहाड़ियाँ दिखायी दे रही थीं दूर से वे झाड़ियों से घिरी हुई मालूम होनी थीं। लेकिन आगे बढ़ने पर समुद्र की लहरों के समान वे दिखायी देने लगीं। कहीं-कहीं पर जमीन की सतह पर बालू के ऊँचे ढेर दिखायी पड़ते थे। बालू के ऊँचे टीलों पर जो रास्ते बने थे, वे पशुओं के चलने के कारण मजबूत हो गये थे। मार्ग से इधर-उधर हटने पर हमारे घोड़े घुटनों तक बालू में धँस जाते थे। मरुभूमि का यह पहला दृश्य था, जो हमारे सामने आया। सिगाना और झूँझनू से चूरू का रास्ता गया था। हम लोगों ने वहां पहुँचकर बीकानेर में प्रवेश किया। शेखावाटी के सम्बन्ध में मिस्टर एलफिन्स्टन ने लिखा है : "शेखावाटी को मरुभूमि में शामिल करने पर जब उसकी तुलना दो सौ अस्सी मील लम्बे मैदान के साथ -- जो कि पश्चिमी सीमा से बहावलपुर तक है—की जाती है तो वह अपने स्वत्व को खोता हुआ मालूम होता है। इसलिए कि इस विस्तृत मैदान के अंतिम एक सौ मील में कहीं पर कोई मनुष्य दिखायी नही देता और न कहीं पर कोई वृक्ष तथा जल ही मिलता है।

शेखावाटी से पूगल तक हम लोगों का मार्ग बालू की पहड़ियों और धसकती हुई रेती की घाटियों से होकर था। ये पहड़ियाँ कुछ इस प्रकार की थीं, जैसे समुन्द्र के किनारे कभी-कभी आँधी के द्वारा पानी की ऊँची दीवारें पहाड़ियों के समान खड़ी हो जाती हैं और जिनकी ऊँचाई बीस फीट से लेकर एक सौ फीट तक होती है। वहाँ के ये रास्ते सदा एक से नहीं रहते। समय-समय पर उनमें अन्तर पड़ जाते हैं। गर्मी के दिनों में इन रास्ते पर चलना बहुत मुश्किल हो जाता है। उड़ती हुई बालू के कारण ये रास्ते उन दिनों में अत्यन्त भयानक हो जाते हैं। मैंने सरदी के दिनों में वहाँ की यात्रा की थी। इसलिए उन दिनों में यह कठिनाई अधिक भयानक न थी। उन दिनों में वहाँ फोक, बाबूल और बट के जो वृक्ष मिलते थे, उनके ऊपर हरी-हरी घास पैदा हो गयी थी। उस घास को दूर से देखने पर मालूम होता था कि उन वृक्षों पर हरी चद्दरें ढँक दी गयी हैं।

बालू की इन भयानक पहाड़ियों के बीच में कहीं-कहीं पर गाँव दिखायी देते थे। उन गांवों के घरों की दीवारें बहुत छोटी-छोटी थीं और घरों के नाम पर घास-फूस की झोंपड़ियों के सिवा और कुछ न था। भाषा की सादगी और घटनाओं के यथार्थ वर्णन में एलफिन्स्टन साहब ने बड़ी ख्याति पायी है। मरुभूमि के उत्तरी भाग का उसने जो वर्णन किया है उसी के आधार पर हम आगे वर्णन करने की कोशिश करेंगे। यहाँ पर मंदोर के स्थान पर जैसलमेर को मरुस्थली की राजधानी मान लेना अधिक उपयोगी मालूम होता है। यहाँ की उपजाऊ भूमि में ऐसे बहुत-से

स्थान हैं, जिनमें से कितने ही ४० मील तक की चौड़ाई में हैं। वहाँ पर न तो किसी मनुष्य के दर्शन होते हैं और न वहाँ पर खाने-पीने कोई चीज ही मिलती है। जैसलमेर से मारवाड़ पहुँचकर और लूनी को पार न करके जालौर तथा सेवांची का वर्णन करेंगे। परकर और बीरवाह-चौहान राजाओं की अधीनता में हैं। राना उन राजाओं की उपाधि है। जिस पहाड़ी पर जैसलमेर बसा हुआ है, उसका नाम त्रिकूट है। इस पर्वत के पश्चिम की ओर सिन्धु नदी के नीले जल पर दृष्टि पात करने से हैदराबाद से ओच तक रेतीली पहाड़ियों पर कहीं-कहीं आसानी के साथ जल मिल सकता है। वहाँ छोटे-छोटे गाँवों की आबादी मिलती है। चार सौ से पाँच सौ मील लम्बे और एक सौ मील के चौड़े सम्पूर्ण राज्य में झोंपड़े वाले छोटे-छोटे गांव हैं। उनमें मरु भूमि को जोतकर उसमें खेती करते हैं। वहाँ गडेरिये अपनी भेड़ों को चराया करते हैं और उपजाऊ भूमि पर ऊँटों की एक लम्बी श्रेणी मिलती है। उसे इस देश में काफिला कहा जाता है। इन ऊँटों पर बहुत-से लोग मिलकर चलते हैं, इसलिए कि उनको रास्ते में लुटेरों का भय रहता है। जो लोग इस प्रकार रवाना होते हैं, उनको खाने-पीने का बड़ा कष्ट रहता है। यदि उनको दो दिनों में एक बार भी खाने-पीने के लिए किसी प्रकार की सामग्री और खाने के लिए स्वादहीन झरनों का जल मिल जाता है तो वे लोग अपना बड़ा सौभाग्य समझते हैं और भगवान को धन्यवाद देते हैं।

सम्बत् ११०० सन् १०४४ ईसवी में दूसौज जैसलमेर के राजसिंहासन पर बैठा था। वह हमीर का समकालीन था। कग्गर नदी से वलूक से निकलकर हाँसी-हिसार में प्रवाहित होती है। वह किसी समय भटनेर की दीवारों के नीचे बहती थी। भटनेर के बाद कग्गर नदी रंगमहल, बुल्लर, फूलरा और खदल के समतल मैदानों में होकर बहती हुई आगे जिस तरफ जाती है, उसके सम्बन्ध में दो प्रकार के मत हैं। किसी का कहना है कि वह बहती हुई ओच के नीचे चली गयी है। लेकिन अबूबरकत के अनुसार—जिसे हमने सन् १८०९ ईसवी में अनुसंधान के लिए भेजा था और जिसने शाहगढ़ के समीप नदी के सूखे मार्ग को जो सगर कहलाता है, पार किया था—जैसलमेर उसके कथनानुसार वह और रोरी भक्खर के बीच में प्रवाहित होती है। ऐसा मालूम होता है कि सगर नदी कग्गर नदी में मिल गयी और उसके बाद सगर का नाम मिटकर केवल कग्गर नाम प्रचलित हो गया। छोटी नदियाँ जब बड़ी नदियों से मिल जाती हैं तो उन सब की यही दशा होती है।

मरुभूमि में लूनी नदी की विशेषता है। इसी नदी को खारी नदी भी कहते हैं। वह अपनी अनेक सहायक नदियों के साथ अर्बली पर्वत की झीलों और झरनों से निकली है। मारवाड़ में उपजाऊ भूमि और मरुभूमि के बीच में लूनी नदी प्रवाहित होती है। मारवाड़ के आगे वह चौहानों के थल विभाग की तरफ बढ़ती है और चौहान वंश के राजपूतों का विभाजन करती है। इस नदी के द्वारा उनकी सीमा का निर्माण होता है। उसका पूर्वी भाग शिवबाह नामक राज्य के नाम से प्रसिद्ध है और पश्चिमी भाग पारकर के नाम से। उसके दक्षिण तरफ अनेक प्रकार के प्राकृतिक दृश्य दिखायी देते हैं। नमक का लम्बा-चौड़ा दलदल—जो चौड़ाई में डेढ़ सौ मील से अधिक है—विशेष तौर पर लूनी नदी के द्वारा बना है।

यहाँ पर थल और रो शब्दों से पाठकों को परिचित हो जाना चाहिए। इसलिए कि इन दोनों शब्दों के प्रयोग यहाँ पर कई बार किये हैं। उनकी जानकारी न होने से समझने में बड़ी कठिनाई पैदा होगी। थल सूखी भूमि का उपयोगी भाग कहलाता है। उसमें विस्तृत मैदान भी सम्मि-

लित हैं। रो भूमि मरुभूमि का वह भाग है, जिसमें कुछ घासों के सिवा और कोई चीज पैदा नहीं होती। उसे मरुभूमि की बंजर जमीन कह सकते हैं।

लूनी नदी का थल—यह थल नदी के दोनों किनारों पर है, जिसमें जालौर और उसके अधीन राज्य बसे हुए हैं। नदी के दक्षिण भाग इसमें सम्मिलित नहीं किया जा सकते। फिर भी उस पर बसे हुए राज्य के साथ इतना अधिक निकटवर्ती सम्बन्ध है कि उसका वर्णन हमें बहुत आवश्यक मालूम होता है।

जालौर—यह राज्य मारवाड़ के श्रेष्ठ भागों में से एक है। सुक्री और खारी नदियां जालौर को सेवाञ्ची से पृथक करती हैं। बहुत-सी छोटी-छोटी नदियां अर्बली और आबू पहाड़ों से निकलकर मारवाड़ के इस भाग में बहती हुई उसके तीन सौ साठ नगरों और गांवों की भूमि को उपजाऊ बनाती हैं। उनसे मारवाड़ को मालगुजारी मिलती है। मरुभूमि के नौ दुर्गों में से जालौर एक प्रसिद्ध दुर्ग था। उन दिनों में मरुभूमि में प्रमार वंशी राजपूतों का शासन था। प्रमार राजाओं से जालौर कब निकल गया, इसका वर्णन करने के लिए हमारे पास कोई ऐतहासिक आधार नहीं है। बहुत दिनों तक यह जालौर चौहान राजपूतों के अधिकार में रहा और चौहानों ने सन् १३०१ ईसवी में जो युद्ध अलाउद्दीन के साथ किया था, उसका वर्णन फरिश्ता और भाटों के ग्रंथों में मिला है। चौहानों की यह शाखा मल्लिनी के नाम से मशहूर थी। हाड़ौती के साथ चौहान राजपूतों के राज्य का वह भाग शामिल था जो हथराज कहलाता था। उसकी राजधानी जूनाचोटन थी। अजमेर से पारकर तक लूनी नदी के किनारे की समस्त भूमि में जो गांव और नगर बसे थे, उनमें इस वंश का राज्य था। इससे जाहिर होता है कि चौहानों ने प्रमार राजाओं का सर्वनाश करके खारी नदी के किनारे पारकर तक अपना अधिकार कर लिया था।

सोनगिरि अथवा स्वर्णगिरि इस दुर्ग का पुराना नाम है। चौहान राजाओं ने अपने वंश मल्लिनी का नाग बदलकर सोनगिरि के नाम पर सोनीगुर रख लिया था। यहां पर उन्होंने माली केदेवता भल्लिनाथ का मंदिर बनवाया था। सिया जी के वंशजों के आने के समय तक वहां पर चौहानों का शासन कायम रहा। उनके आने पर सोनगिरि दुर्ग का नाम जालौर रखा गया। सिया जी के वंशजों के आने पर सोनीगुरों का शासन वहाँ पर समाप्त हो गया और वे लोग निर्वासित अवस्था में चित्तलवाना में जाकर रहने लगे।

भद्राजून, महेवा, जैसोल और सिन्द्री की बड़ी-बड़ी जागीरों के अतिरिक्त सेवांची, मीनमल, सांचोर और मोरसेन के छोटे-छोटे जिले जालौर राज्य में शामिल हैं। उनकी भूमि उपजाऊ है, पानी की सुविधायें हैं और उन सब की लम्बाई-चौड़ाई नब्बे मील है। वहां पर अच्छे प्रबंध की आवश्यकता है, जिससे वहां की भूमि अधिक उपयोगी बन सके। यदि ऐसा किया जा सके तो वहां की आमदनी से जोधपुर के राजा का निजी खर्च भली प्रकार चल सकता है। परन्तु राज्य की ओर से अच्छा प्रबंध न होने कारण वहां पर अराजकता बढ़ गयी है, राज्य की ओर से जो कर्मचारी प्रबंध करते हैं, वे बहुत अधिक बेईमान हो गये हैं और पहाड़ी जातियों के लुटेरों के कारण वहां की भयानक अवनति हुई है। इन सभी जागीरों और छोटे-छोटे जिलों में अनेक पहाड़ियां हैं। उन्हीं पहाड़ियों में एक पर दुर्ग बना हुआ है। इन पहाड़ियों का सिलसिला आबू पर्वत तक पाया जाता है। वहां पर अनेक प्रकार के जंगली वृक्ष पाये जाते हैं।

जालौर का दुर्ग मारवाड़ की दक्षिणी सीमा के लिए बहुत-कुछ सहायक सिद्ध हुआ है। जिस पहाड़ी पर यह दुर्ग बना है, वह उत्तर की ओर सिवाना तक चली गयी है और उसकी ऊंचाई

तीन सौ से चार सौ फीट तक है। दुर्ग की बुर्जों पर तोपें रखी हुई हैं। इस दुर्ग के चार विशाल द्वार हैं। नगर की तरफ का द्वार सूरजपोल कहलाता है। उत्तर-पश्चिम का द्वार बालपोल कहलाता है। वहाँ पर जैनियों के गुरु पारसनाथ का मंदिर है। दुर्ग के भीतर बहुत-से कुएँ और दो बड़ी-बड़ी बावड़ी हैं। उत्तर की पहाड़ी नदियों को बाँधकर छोटी-सी झील बनायी गयी है। परन्तु उसका एकत्रित जल मुश्किल से छै महीने तक काम देता है। नगर की आबादी में तीन हजार सत्रह घर हैं। यह नगर के दुर्ग के उत्तर और पूर्व की ओर बसा हुआ है। पूर्व की तरफ लगभग एक मील की लम्बाई में सुक्री नाम की नदी प्रवाहित होती है। रक्षा के लिए इस नगर के चारों तरफ मजबूत दीवार बनी हुई है और एक दुर्ग है, जिसपर तोपें रखी रहती हैं। नगर में अनेक जातियों के लोग रहते हैं। आश्चर्य की बात यह है कि इस बड़ी आबादी में राजपूतों के केवल पाँच परिवार रहते हैं। सन् १८१३ में मेरी एक समिति ने यहाँ की जो मनुष्य गणना की थी, वह इस प्रकार है—

जाति			घरों की संख्या
माली	...	...	१४०
तेली	...	...	१००
कुम्हार	...	...	६०
ठठेरा	...	...	३०
धोबी	...	...	२०
व्यवसायी	...	...	११५६
मुसलमान	...	...	६३६
खटिक	...	...	२०
नाई	...	...	१६
कुलाल	...	...	२०
जुलाहा	...	...	१००
रेशम बनाने वाले जुलाहा		...	१५
जैन पुरोहित	...	...	२
ब्राह्मण	...	...	१००
गूजर	...	...	४०
राजपूत	...	...	५
भोजक	...	...	२०
मीना	...	...	६०
भील	...	...	१५
हलवाई	...	...	८
लोहार-बढ़ई	...	...	१४
मनिहार	...	...	४

लूनी और सुक्री के बीच का भाग सेवाञ्ची कहलाता है। जिस पहाड़ी पर जालौर बसा हुआ है, उसी पहाड़ी की श्रेणी में एक शिखर पर सिवाना नाम का एक दुर्ग बना है। वहीं पर इस राज्य की राजधानी है। इसके सम्बन्ध में वर्णन करने के लिए कोई नयी सामग्री हमारे सामने नहीं

है। प्राचीन काल में यह नागौर में होने के कारण मारवाड़ के युवराज की जागीर थी। लेकिन धौंकल सिंह को सिंहासन पर बिठाने के बाद इसे मारवाड़ राज्य में मिला लिया गया।

माचोल और मोरसेन के राजा जलौर के आधीन हैं। मीना लोगों की लूट और उनके अत्याचारों से सुरक्षित रहने के लिए माचोल के दक्षिण पूर्व में एक दुर्ग बना हुआ है। मोरसेन की जागीर जालौर की पश्चिमी सीमा पर है। वहां पर भी एक दुर्ग है। उस नगर में पाँच सौ घरों की आबादी है। दक्षिण की तरफ बीनमल और साँचोर दो बड़े-बड़े उपभाग हैं। वे दोनों मिलकर लगभग एक प्रान्त के हो जाते हैं। प्रत्येक उपभाग में आठ ग्राम हैं। कच्छ और गुजरात को जाने वाले मार्गों पर होने के कारण ये दोनों नगर बहुत पहले से व्यवसाय के लिए प्रसिद्ध रहे हैं। बीनमल में पन्द्रह सौ घरों का अनुमान किया जाता है और साँचोर में वहाँ से लगभग आधे घरों की आबादी है। लेकिन यहां पर धनी और महाजन अधिक रहा करते थे। परन्तु रक्षा का कोई उपाय न होने के कारण इन दोनों नगरों को बहुत बड़ी क्षति पहुँची है। वहाँ पर बाराह का एक मंदिर है। यह मंदिर शूकरावतार के सिद्धान्त पर बनवाया गया था और उस मंदिर में शूकर की मूर्त्ति पत्थर में खुदवाकर रखवाई गयी है। साँचोर नगर साँचोरा नामक ब्राह्मणों की जन्मभूमि है, इस प्रकार लोगों का विश्वास है। ये ब्राह्मण मंदिरों के पुरोहित नियुक्त किये जाते हैं।

भद्राजून—यह नगर जालौर की एक प्रसिद्ध जागीर है। इस नगर में पाँच सौ घरों की आबादी है। उनमें एक चौथाई मीनाओं की बस्ती है। यह नगर पहाड़ियों के बीच में है और उसमें एक दुर्ग बना हुआ है। वहाँ का सरदार जोधावंशी है। उसकी जागीर जालौर से पाली तक चली गयी है।

महेवा— यह नगर लूनी नदी के दोनों किनारों पर बसा हुआ है। राठौरों ने यहाँ आकर पहले पहल जिनको विजय किया था, उनमें से यह एक है। यह नगर सेवाँची में शामिल है और यहाँ से सेवाँची को कर मिला करता है। महेवा के सरदार की उपाधि रावल है। वह जैसोल में रहा करता है। वर्तमान राजा का नाम सूरतसिंह है। उसके सम्बन्धी सूरजमल की उपाधि भी रावल है। जैसोल से बाईस मील दक्षिण में लूनी नदी के तट पर सिंद्री का दुर्ग और वहाँ की जागीर उसके अधिकार में है। उन दोनों में आपसी द्वेष रहता है। इसीलिए उन दो में कोई भी राजधानी महेवा में नहीं रहा करता। आपसी द्वेष के कारण उनके चरित्रों का इतना पतन हुआ है कि वे डकैती जैसे कार्यों से भी अपना अपमान नहीं समझते। सन् १८१३ ई० तक उनके जीवन की जो परिस्थितियाँ थीं, उनका मैंने यहाँ पर उल्लेख किया है। सम्भव है, भविष्य में उनके जीवन का सुधार हो। खारी नदी के किनारे की उपजाऊ भूमि उनके द्वारा खेती के काम में आती है और वहाँ पर गेहूँ, ज्वार और बाजरा अच्छा पैदा होता है।

बालोतरा और तिलवारा यहाँ के दो प्रसिद्ध नगर हैं। वर्ष में एक बार यहाँ पर मेला लगा करता है। यह मेला राजस्थान में बहुत प्रसिद्ध है। यह बालोतरा का मेला कहलाता है। लेकिन वह लूनी नदी के एक द्वीप के करीब तिलवारा में लगता है। यह तिलवारा महेवा वालों के एक सम्बन्धी की जागीर में है और बालोतरा मारवाड़ के प्रधान सामन्त की अहवा जागीर का अंग है।

———

अट्ठावनवाँ परिच्छेद

चौहान राज्य–चौहानों की उत्पत्ति–प्राचीन काल में चौहान-राज्य का विस्तार–उसके प्रसिद्ध नगर–चौहान-राज्य की आकृति–पानी और पैदावार–निवासी–रहने वालों के लुटेरा होने का कारण–जल का कष्ट–अमर कोट–संघर्ष और परिणाम–बीमारियाँ–उनका प्रधान कारण–दुर्भिक्ष और उसके प्रति लोगों का विश्वास।

चौहान-राज्य राजस्थान के दूरवर्ती एक कोने पर बसा हुआ है। मरुभूमि की अन्यान्य रियासतों में चौहानों का राज्य अनेक अच्छाइयों और विशाल होने के कारण साम्राज्य मालूम होता है। यह चौहान-राज्य के नाम से प्रसिद्ध है। इसके उत्तर-पूर्व में मारवाड़-राज्य की भूमि है और दक्षिण-पूर्व में कोलीवाड़ा है। दक्षिण में नमक की झील है और पश्चिमी सीमा पर रेगिस्तान है। चौहान-राज्य दो भागों में विभाजित है। पूर्वी-चौहान-राज्य वीरबाह के नाम से प्रसिद्ध है और पश्चिमी भाग लूनी नदी की दूसरी तरफ है। मरुभूमि के इन चौहानों को अपनी प्राचीनता का बड़ा गर्व है और अपने वंश की श्रेष्ठता पर वे अभिमान करते हैं। वे अजमेर के मानिकराय और बीसलदेव को एवं दिल्ली के अन्तिम हिन्दू राजा पृथ्वीराजको अपना पूर्वज बतलाते हैं। लेकिन जितने भी प्राचीन ग्रंथ हमें प्राप्त हो सके हैं, उनके आधार पर हम सहज ही यह कह सकते हैं कि चौहानों की उत्पत्ति सोडा और प्रमार वंश के राजपूतों से बाद में हुई है। क्योंकि सिकन्दर के सिन्धु नदी की तरफ आने के दिनों में उन वंशों के लोग शासन कर रहे थे।

आठवीं शताब्दी से लेकर तेरहवीं शताब्दी तक चौहान-राज्य अजमेर से सिंध की सीमा तक फैला हुआ था। उसकी राजधानियां अजमेर, नादोल, जालौर, सिरोही और जूनाचोटन थी। यों तो साधारण तौर पर वे सभी स्वतंत्रता का जीवन व्यतीत करते थे। परन्तु उनको अजमेर की अधीनता कुछ बातों में स्वीकार करनी पड़ती थी। इसके लिए हमारे पास ऐतिहासिक आधार है। गजनी के महमूद से लेकर अलाउद्दीन द्वितीय और सिकन्दर के समय तक जो मुस्लिम इतिहास लिखे गये हैं, उन सब में इन चौहान-राज्यों के वर्णन पाये जाते हैं। अपने बारहवें आक्रमण में मुलतान से अजमेर की तरफ जाते हुए महमूद नादोल के पास से गुजरा था। उसने वहाँ पर लूटमार भी की थी। महमूद के आक्रमण की कथायें अब तक जूनाचोटन के लोगों में कही जाती हैं। वहाँ के लोग उन सुरंगों को अब तक जाहिर किया करते हैं, जिनके द्वारा वहाँ का पहाड़ी दुर्ग उड़ाया गया था।

इतिहास की ये घटनायें जो हमें जानने को मिलती हैं, उनमें कितनी ही बातें स्पष्ट नहीं हो पाती। इसलिए उनका स्पष्टीकरण हमारे लिए कठिन हो जाता है और हमें उन बातों को यों ही छोड़ देना पड़ता है। नादोल की लूट और जूनाचोटन के दुर्ग के पतन के सम्बन्ध में विस्तार के साथ में लिखने के लिए हमारे पास सामग्री नहीं है। लेकिन इतिहास से यह बात साफ मालूम होती है कि अपने अन्तिम आक्रमण में गजनी के महमूद ने सिन्ध होकर लौटने का इरादा किया था और उस समय सम्पूर्ण सेना के साथ उसके सर्वनाश की परिस्थितियाँ पैदा हो गयी थीं। ऐसा मालूम होता है कि जूनाचोटन पर उसके आक्रमण के कारण उसके सामने संकट पैदा हो गया था।

काफिरों को मुसलमान बनाना उसका मुख्य कार्य था। सम्भव है, उन दिनों में नहरवल्ल का निर्वासित राजवंश खेरधर की रेतीली पहाड़ियों के बीच में रहने वाले चौहानों के आश्रय में गया हो। पारकर के राजा ने बीरबाह की अधीनता नहीं स्वीकार की थी। यद्यपि वह बीरबाह के राजा को कर में कुछ देता था। उन दोनों की उपाधि राना थी और दोनों ने वीरता तथा बहादुरी के लिए ख्याति पायी थी। इस राज्य के थल की लम्बाई चौड़ाई इसलिए लिखना अनावश्यक मालूम होता है कि वह सदा घटता बढ़ता रहता है। लेकिन इस राज्य के प्रसिद्ध नगरों का वर्णन करना आवश्यक है। इससे वहाँ के मनुष्यों की संख्या का अनुमान लगाया जा सकता है।

ऊपर लिखा जा चुका है कि चौहान राज्य दो भागों में बंटा हुआ है। प्रथम भाग में सूई, बाह, धरणोधर, बंकसिर, थेराड, हितीगाँव और चीतलवाना प्रसिद्ध नगर हैं। राज्य के दोनों भागों के आस-पास बबूल तथा काँटेदार पेड़ों का परकोटा है। इसको वहाँ की भाषा में काठ का कोट कहा जाता है। यह परकोटा शत्रु के आक्रमण को रोकने में बहुत बड़ा काम करता है। अपने रेतीले राज्य से राना नारायण राव की वार्षिक आमदनी तीन लाख रुपये है। इसमें से तृतीयांश अर्थात् एक लाख रुपये उसे जोधपुर को कर के रूप में देना पड़ता है। परन्तु यह बिना युद्ध के जोधपुर को कभी नहीं मिला, इस राज्य की जो भूमि लूनी नदी के जल के द्वारा सींची जाती है, उसमें अनाज की पैदावार अच्छी होती है। गरमी के दिनों में उस नदी का जल सूख जाता है। उस दशा में नदी के जल-मार्ग में कुएँ खोदकर पानी निकाला जाता है और उसके द्वारा जल के अभाव की पूर्ति की जाती है। यही अवस्था कोहरी नदी में होती है। मैंने ग्वालियर के जिले में देखा है कि लोग कोहरी नदी के जल-मार्ग को खोजकर पानी निकाल लेते हैं और उससे अपना काम चलाते हैं।

पारकर की राजधानी नगर अथवा सरनगर है। वहाँ पर पन्द्रह सौ घरों की आबादी है। सन् १८१४ ई० में इन घरों की आबादी लगभग आधी रह गयी थी। नगर के दक्षिण-पश्चिम की तरफ एक छोटा-सा पहाड़ी दुर्ग है। उसकी ऊँचाई दो सौ फीट कही जाती है। कुएँ और बावड़ी बहुत सी हैं। नगर से सात कोस दक्षिण की तरफ लूनी नदी है। इससे मालूम होता है कि इस नदी के प्रवाह का मार्ग रिन के बीच में है। वीरबाह के राजा की तरह पार करके राजा की उपाधि भी राना की है। हमें यह नहीं मालूम कि उनके आपसी सम्बन्ध क्या हैं। फिर भी इस बात के प्रमाण हमारे पास हैं कि दोनों एक दूसरे के प्रति अपने कर्त्तव्यों का पालन करते हैं। दोनों एक ही वंश के हैं। सरनगर के मुकाबिले में बंकसर दूसरी श्रेणी का है। कुछ समय पहले यह एक वैभव शाली नगर था। परंतु सन् १८१४ ई० में इसके घरों की संख्या केवल तीन सौ साठ थी। नगर के राजा का लड़का यहीं पर रहा करता है और अपने पिता के समान वह राना की उपाधि का प्रयोग करता है। यहाँ पर हम छोटे छोटे नगरों का उल्लेख करना आवश्यक नहीं समझते।

थेराड लूनी के चौहानों का दूसरा भाग है, जिसका प्रधान नगर उसी नाम से सूई बाह के उत्तर की तरफ कुछ कोसों की दूरी पर है और वह पारकर की तरह नाम मात्र के लिए परतंत्र है।

चौहान राज्य की आकृति—जैसा कि ऊपर लिखा गया है, यहाँ की भूमि ऊसर और पहाड़ी है। वह चोटन से जैसलमेर तक फैली हुई है। वह बंकसर के पश्चिम तरफ चार मील की दूरी पर पायी जाती है। लूनी नदी के दोनों किनारों की भूमि में गेहूँ और दूसरे अनाजों की पैदावार होती है। वीरबाह में अनेक थल हैं। फिर भी सूई से सत्रह कोस तक और खास तौर पर राधूंपुर की ओर एक लम्बा मैदान है। लूनी के पार के थल ऊँचे टीलों के रूप में पाये जाते हैं। चोटन से

बंकसर तक सम्पूर्ण भाग ऊसर है और उसमें रेत की बहुत सी ऊँची ऊँची पहाड़ियां हैं।

पानी और पैदावार—समस्त चौहान राज्य में और विशेषकर उस हिस्से में जहां आबादी अच्छी है, भूमि से साधारण गहराई पर पानी मिल जाता है। कुओं की गहराई दस से बीस पुरुषा तक है। मरुभूमि में पुरुषा की एक माप है। औसत दर्जे का एक पुरुष खड़ा होकर यदि अपने दोनों हाथों को सिर के ऊपर सीधा करे तो उसके पैरों से लेकर हाथों की उँगलियों तक एक पुरुषा कहलाता है। पुरुष की इस प्रकार ऊँचाई के आधार पर इस माप का नाम पुरुषा पड़ा है। दूसरे शब्दों में इस गहराई को लगभग पैंसठ से एक सौ तीस फीट तक कहा जा सकता है। यह गहराई धात के कुओं के मुकाबिले में कुछ भी नहीं है। क्योंकि वहां के कुओं की गहराई कहीं कहीं पर लगभग सात सौ फीट तक पायी जाती है।

लूनी नदी के किनारे की भूमि में गेहूँ, तिल, मूंग, मोठ, दालें और बाजरा अच्छा पैदा होता है। परन्तु यहाँ के लोग लूट मार के अधिक अभ्यासी हैं और उन्होंने इसे अपना एक व्यवसाय बना लिया है। जो भूमि खेती के लिए अच्छी नहीं होती, उसे ऊँटों के चरने के लिए छोड़ दी जाती है। ऊँट अधिकतर काटेदार झाड़ियाँ खाकर रहा करते हैं। भेड़ें और बकरियाँ अधिक संख्या में पायी जाती हैं। बैल और घोड़े तिलवारा के मेले में बिकने के लिए आते हैं।

निवासी—सिकन्दर के शत्रु मल्लि अथवा पृथ्वीराज के वंशजों के नाम हम यहाँ वर्णन करेंगे। जोधपुर के लोगों से यहां के लोगों को जो अत्याचार सहने पड़ते थे, उनका बदला लेने के लिए उन लोगों ने लूट मार को अपना एक व्यवसाय बना लिया था और उसके लोग सिंध, गुजरात और मारवाड़ तक जाते थे। चौहान-राज्य में प्रायः सभी जातियां पायी जाती हैं। परन्तु उनमें सहरी, खोसा, कोली और भील जाति के लोग शक्तिशाली हैं और इन्हीं जातियों के लोग अधिकतर लूट मार का कार्य करते हैं। यहाँ का शासन चौहानों के हाथों में है परन्तु प्रत्येक गाँव के रहने वालों में उनकी संख्या बहुत कम पायी जाती है। कोली, भील और पिथिल लोगों की संख्या अधिक है। पिथिल लोगों की गणना नीच जातियों में है। परन्तु वे व्यवसायी हैं। खेती के साथ-साथ वे गोंद का व्यवसाय करते है। अनेक प्रकार के वृक्षों से वे लोग गोंद एकत्रित करते हैं और फिर उसे वे बेच डालते हैं। अन्य राजपूतों की तरह चौहान लोग जनेऊ नहीं पहनते। ब्राह्मणों के सम्पर्क से जिन लोगों ने अनेक व्यावहारिक प्रणालियों को अपना लिया है, उनकी तरह चौहानों के जीवन की परिस्थितियाँ नहीं हैं। आचार-विचार सम्बन्धी बहुत-सी बातों में चौहान भिन्न पाये जाते हैं। पूर्वी चौहानों की अपेक्षा यहाँ के चौहान नैतिक गुणों में श्रेष्ठ है। उनमें बाल-हत्या के अपराध नहीं पाये जाते। खाने-पीने के विचार में वे लोग बड़ी स्वतन्त्रता से काम लेते हैं। वे किसी प्रकार के पाखण्ड को अपने जीवन में आश्रय नहीं देते। वे चौका लगा कर भोजन बनाने का काम करते हैं। बचा हुआ भोजन वे लोग रख देते हैं और उसके बाद वे उसे खाते हैं। इस प्रकार के विचारों में यहाँ के चौहान बड़ी स्वतन्त्रता से काम लेते है।

कोली और भील—कोली जाति के लोग यहाँ अधिक पाये जाते है। उनकी गणना अछूतों में है। वे लोग मनुष्य के अधिकारों से वंचित कर दिये गये है। हिन्दू-समाज में उनका स्थान अत्यन्त घृणा पूर्ण है। ऊँची जाति के हिन्दू लोग पशुओं से भी गिरा हुआ व्यवहार उनके साथ करते है। कोली जाति के लोग सभी के घरों का भोजन करते हैं और मुर्दा खाने में भी वे लोग परहेज नहीं करते। इतना सब होने पर भी वे अपनी जाति को राजपूतों के साथ जोड़ते हैं। ये लोग चौहान कोली, राठौर कोली, परिहार कोली, आदि नामों से अपना परिचय देते है। कपड़ा बुनना कोली

जाति के लोगों का प्रधान व्यवसाय है और आमतौर पर भारतवर्ष के कहीं के भी कोली यह कार्य अधिक करते हैं।

भील लोगों की परिस्थितियाँ भी कोली लोगों की तरह हैं। बल्कि बहुत-सी बातों में ये लोगों कोलियों से भी पतित पाये जाते हैं। भील लोग सभी प्रकार के कीड़े, लोमड़ी, सियार, चूहे और साँपों को खाते है। इसलिए कि जिस देवी की वे पूजा करते है, उसको ऊंट और मुर्ग का माँस चढ़ाया जाता है। उनके खाने पीने की आदतें पतन की चरम सीमा में पहुँच गयी हैं। कोलों और भीलों का वैवाहिक सम्बन्ध नहीं है और वे एक दूसरे के साथ भोजन करने में परहेज करते हैं। तीर और कमान दोनों जातियों के लोगों के शस्त्र हैं। तलवारों का भी वे प्रयोग करते हैं परन्तु बहुत कम।

पिथिल लोग यहाँ पर खेती का काम करते है। उनकी मर्यादा वैश्यों की तरह है। वे गायों और बैलों के साथ भेड़े पालने का काम करते हैं। इनकी संख्या कोलियों और भीलों की तरह अधिक है। भारत के कुर्मी और मालवा तथा दक्षिण के कोलम्बी लोगों के साथ बिथिल लोगों की तुलना की जाती है। यहाँ पर रेवारी जाति की तरह और भी अनेक जातियाँ रहती हैं। रेवारी लोग ऊँटों के पालने का कार्य करते हैं।

धात और ओमुरसुमरा—राजस्थान की मरुभूकि को छोड़कर अब हम सिध की मरुभूमि अथवा उस भूमि का वर्णन करेंगे, जो पश्चिम में राजस्थान की सीमा नदी की घाटी तक और उत्तर की तरफ दाऊदपोतरा से रिन के किनारे वुलारी तक फैली हुई है। इस भूमि की लम्बाई लगभग दो सौ मील है और चौड़ाई लगभग अस्सी मील। यहाँ की सम्पूर्ण भूमि थल के रूप में है। उसमें गांव बहुत कम पाये जाते हैं। यह बात जरूर है कि वहाँ गड़रियों के कुछ छोटे-छोटे गांव मिलते हैं। लेकिन नकशे में उनका कहीं स्थान नहीं है। इसका कारण है। इन छोटे-छोटे गाँव में रहने वाले गड़रिये बहुत आसानी के साथ अपने स्थानों को बदल देते हैं और नये स्थानों पर पहुँचकर वे रहने लगते हैं। उनके स्थान पारिवर्तन का कारण पानी की सुविधा है। जहाँ इस प्रकार की वे सुविधा पाते हैं, अपने पुराने स्थानों को छोड़कर वे उन स्थानों पर पहुँच जाते है। उनकी ये सुविधायें स्थायी रूप से बहुत दिनों तक काम नहीं देतीं। इस लिए उनको फिर स्थान बदल देना पड़ता है। जहाँ पर ये लोग रहते है, यह समस्त भूमि एक विशाल रेगिस्तान के रूप में है और पचास-पचास मील तक पानी नहीं मिलता। इसलिए बड़ी सावधानी और बुद्धिमानी के साथ इस भूमि की यात्रा की जाती है। बालू की पहाड़ियाँ छोटे-छोटे पहाड़ों के रूप में मिलती हैं। यहाँ पर जो कुए मिलते भी हैं, वे बहुत लम्बे गहरे होते है। पानी के अभाव में न जाने कितने मनुष्य तड़प-तड़प कर मर जाते हैं। इन कुओं की गहराई सत्तर से पाँच सौ फीट तक पायी जाती है। इसको जान कर अनुमान लगाया जासकता है कि मरु-प्रदेश में यात्रा करना कितना संकटमय होता है। जयसिंह देसिर का एक कुआँ पचास पुरूषा गहराई में जाकर पानी देता है। इसी प्रकार धोत की बस्ती का कुआँ और गिरप का कुआँ साठ पुरुषा के नीचे पानी देता है। हमीर देवरा के कुएं में सत्तर और जिझिनियाली में पछत्तर से अस्सी पुरूषा तक की गहराई में पानी मिलता है।

पराजित होकर सम्राट हुमायूँ के भागने पर इतिहासकार फरिश्ता ने जो वर्णन किया है, वह अत्यन्त रोमाञ्चकारी है उसने लिखा है: "सम्राट हुमायूँ अपने साथ के लोगों को लेकर विस्तृत मरुभूमि की तरफ भागा। वहाँ पर सैकड़ों कोस की लम्बाई-चौड़ाई में केवल बालू थी। उस मरूभूमि में पानी न मिलने के कारण सम्राट और उसके साथियों को भयानक कष्ट हुआ। कितने ही लोग प्यास के कारण त्राहि-त्राहि करने लगे और कुछ लोग जमीन पर गिर गये। तीन दिनों तक लगातार

पानी के एक बूँद से भेंट न हुई। चौथे दिन उनको एक कुआँ मिला। उसका पानी बहुत दूर गहराई में था। पानी का बरतन बैलों के द्वारा खींचा जाता था और जो आदमी बैलों के द्वारा उस पानी को खींचता था, उस बरतन के ऊपर आजाने पर ढोल बजाकर लोगों को सूचना दी जाती थी। उस कुआँ के पास पहुँचने पर सम्राट और उसके साथी प्यास के कारण अधीर हो उठे थे और बिना किसी नियंत्रण के उसका प्रत्येक आदमी पानी के लिए चिल्ला रहा था। जल का बरतन ऊपर आते ही सब के सब एक साथ पानी पीने की चेष्टा करने लगे। कुएं के ऊपर पानी के पहुँचते ही एक साथ बहुत से आदमी उस पर टूट बड़े। उस समय तक पानी का बरतन कुएं के ऊपर निकालकर रखा भी न गया था। इसका परिणाम यह हुआ कि बहुत-से आदमी कुएं में गिर गये। इसके दूसरे दिन जो लोग कुएं में गिरने से बच गये थे, उनको पानी का एक छोटा-सा नाला मिला। साथ के ऊँटों को पानी पीने के लिए उस नाले की तरफ कर दिया गया। बिना पानी के उन ऊँटों के कई दिन बीत गये थे। इसलिए अधिक पानी पी जाने के कारण उनमें से कुछ ऊँट मर गये। इस प्रकार अकथनीय कष्टों को सहता हुआ सम्राट हुमायूँ अपने बचे हुए साथियों को लिए हुए अमरकोट पहुँचा वहाँ के राजा ने इस प्रकार की विपद में पड़े हुए सम्राट हुमायूँ की सभी प्रकार सहायता की।

इन कष्टों के साथ सम्राट हुमायूँ जिस राज्य में पहुँचा था, उसकी राजधानी अमरकोट में थी और इसी अमरकोट में हुमायूँ के लड़के अकबर ने जन्म लिया। अकबर जब अपनी माता के गर्भ में था, उसी समय से उसके जीवन में भयानक विपदायें आरम्भ हुईं। जन्म लेने के बाद उसको और उसके माता-पिता को संसार में टिकने के लिए कहीं स्थान न मिल रहा था। ये विपदायें सम्राट हुमायूँ और अकबर के जीवन में बहुद दिनों तक रहीं। उनके फल-स्वरूप अकबर भारतवर्ष का महान सम्राट बना।"

दुर्भाग्य के दिनों में मरुभूमि की तरफ भागकर और किसी प्रकार प्राणों की रक्षा करके सम्राट हुमायूँ ने जहाँ आश्रय लिया था, उसका राजा नाम मात्र के लिए अमरकोट का शासक था और चोर गाँव का वह अधिकारी था। अमरकोट धात-राज्य की राजधानी है। यह राज्य प्राचीन काल से प्रमार राजपूतों के अधिकार में चला आ रहा था। वहाँ पर सोढ, ओमरू और सुमुरा जाति के लोग अधिक संख्या में पाये जाते है। इधर बहुत दिनों से ओमरू और सुमुरा को मिलाकर इस राज्य के उत्तरी थल का नाम ओमुर सुमरा होगया है और अब वह भाग इसी नाम से प्रसिद्ध है।

अरोर के सम्बन्ध में हम पहले वर्णन कर चुके हैं। यह नगर सिंधु नदी के दूसरी तरफ बेखर से छै मील पूर्व की ओर नकशे में देखा जाता है और यह ओमुर सुमरा के अन्तरगत था। प्राचीन काल में ओमुर सुमरा की क्या दशा थी, यह हमें नहीं मालूम। पाँच सौ वर्ष पहले सुमरा जाति के राजपूतों का यहाँ पर शासन था। उनके निर्बल पड़ जाने पर और विरोधी सिन्ध तुम्भा के शक्तिशाली हो जाने पर राज्य की परिस्थितियाँ बदलीं। परन्तु सिन्धा तुम्भा के राजाओं को भाटी लोगों के द्वारा पराजित होना पड़ा। उसके बाद इस राज्य का नाम भाटी पोह हुआ। परन्तु उसके प्राचीन नाम ओमुर सुमरा को अब तक लोग भूल नहीं सके। वहाँ पर गड़रियों के छोटे-छोटे गाँव अब तक पाये जाते हैं। यहाँ के राज्यों में मध्यवर्ती और पश्चिमी राजस्थान के भट्टी लोगों, चावड़ा लोगों, सोलंकियों, गहिलोतों और राठौरों की बस्तियाँ पायी जाती हैं।

आरोर को कुछ लोग अलोर भी कहते हैं। अब्बुल-फजल ने लिखा है : "मरुभूमि के नौ भागों में आरोर एक भाग था और वहाँ पर प्रमार वंशी राजपूत शासन करते थे। इन प्रमारों की कई शाखायें हैं और सोढा वंश भी प्रमारों की शाखा है। बेखर अथवा मानसूरा का टापू अरोर से कुछ मील पश्चिम की तरफ है और वह सोदगी की राजधानी कही जाती है।" सोदगी और सोढा एक

ही नाम है। सोढा राजवंश के पूर्वज रेगिस्तान पर शासन करते थे। उन्हीं दिनों में भाटी लोग उत्तर से यहाँ पर पर आये थे। उनके आने के बाद का उल्लेख ग्रंथों में कुछ नहीं मिलता। इस दशा में फरिश्ता और अब्बुल फजल ने जो कुछ लिखा है, उसका हमें आधार लेना पड़ता है। अब्बुल फजल ने लिखा है :

"प्राचीन काल में सेहरीस नामक नरेश अलोर में राज्य करता था। उसके राज्य का विस्तार उत्तर में काश्मीर, पश्चिम में तेहरान और दक्षिण में समुद्र तक था। ईरानी फौज ने इस राज्य पर आक्रमण किया था। उस युद्ध में अलोर का राजा मारा गया और ईरानी फौज लूट मार करने के बाद वापस चली गयी। अलोर के राजा के मारे जाने पर रायसा अथवा सोढा वहाँ के राज सिंहासन पर बैठा। इस वंश के लोग वलीद के खलीफा के समय तक वहाँ पर शासन करते रहे। उन्हीं दिनों में ईराक के गवर्नर हीजोज ने सन् ७१७ ईसवी में मोहम्मद बिन कासिम को रवाना किया। उसने हिन्दू राजा दाहिर को पराजित किया। दाहिर उस युद्ध में मारा गया। इसके पश्चात् अनसेरी का वंश वहाँ पर राज्य करता रहा। उसके पश्चात् सुमरा वंश का शासन चला और आखीर में सामा वंश के लोगों ने वहाँ पर शासन किया। उन लोगों ने अपने आप को जमशेद का वंशज कह कर जाम की उपाधि ली।"

इसी प्रकार का वर्णन करते हुए फरिश्ता ने लिखा है : "मोहम्मद बिन कासिम के मर जाने के बाद अनसेरी वंश के लोगों ने सिंध में अपना राज्य कायम किया। उसके पश्चात् जमींदारों ने उस राज्य को छीन कर अपने अधिकार में कर लिया और पाँच सौ वर्षों तक वे लोग शासन करते रहे। सुमरा लोगों ने सुमना वंश के राज्य को नष्ट कर दिया। सुमना लोगों के सरदार की पदवी जाम थी। अब्बुल फजल ने इस वंश का नाम सुमना के स्थान पर सुमा लिखा है। साहना वंश की उत्पत्ति अनैतिक मानी जाती है। उस वंश के लोग सिंध में बेखर और तत्ता के बीच में रहा करते थे। वे लोग अपने आपको जमशेद का वंशज कहते हैं। खोज करने के बाद मालूम होता है कि सुमना, सेहना और सामा एक ही वंश का नाम है और वह वास्तव में प्रसिद्ध यदुवंश की सुमा शाखा है। इस शाखा को भिन्न-भिन्न नामों से लिखा गया है। उसकी राजधानी सुमा का कोट अथवा नगरी थी। महेवा परिवार के एक सम्बन्धी की जागीर तिलवारा है और बालोतरा मारवाड़ के प्रधान सामन्त महवा की जागीर में था। बालोतरा और सिन्द्री की प्रसिद्धि कुछ दूसरी बातों में है। इन दोनों पर प्रसिद्ध दुर्गादास का अधिकार था। मरुभूमि में दुर्गादास का नाम सर्वत्र प्रसिद्ध है। उसके वंशजों का अधिकार अब तक सिन्द्री नगर पर पाया जाता है। महेवा जागीर की वार्षिक आय पचास हजार रुपये की मानी जाती है। वहाँ का सरदार कभी-कभी अपने दरबार में आता है। राज्य पर जब कोई संकट आता है अथवा असाधारण प्रसंग पैदा होता है तो उसकी सूचना उसे दी जाती है और उस समय उसका आना आवश्यक होता है।"

इन्दुवती—यहाँ पर इन्दु जाति के राजपूतों की बस्ती है और उनका वंश परिहारों की एक प्रसिद्ध शाखा है। इन्दुवती बालोतारा से उत्तर की तरफ जोधपुर की राजधानी से पश्चिम की तरफ है। इसकी उत्तर तरफ गोगा का थल पाया जाता है। इन्दुवती का थल लगभग तीस कोस के घेरे में है।

गोगादेव का थल—गोगा का थल चौहानों के इतिहास से विशेष सम्बन्ध रखता है। यह थल इन्दुवती के उत्तर तरफ है। इन दोनों की परिस्थितियाँ बिलकुल एक हैं। यहाँ पर रेत के टीले बहुत ऊँचे-ऊँचे पाये जाते हैं। आबादी बहुत कम हैं। बहुत थोड़े से गाँव उसमें पाये जाते हैं। भूमि की सतह से पानी बहुत गहराई में मिलता है। यहाँ पर जंगल अधिक हैं। जो लोग यहाँ रहते

हैं, वे बरसात के पानी को टंकों में एकत्रित करते हैं और बड़ी सावधानी से उसे खर्च करते हैं। उस पानी के सड़ जाने पर जो लोग उसे पीने के काम में लाते हैं, उनकी आँखों में रतौंधी की बीमारी हो जाती है।×

तिरू'रो का थल गोगादेव और जैसलमेर की सीमाओं के बीच में है। पहले यह थल जैसलमेर राज्य में शामिल था। पोकर्ण तिरू'रो के साथ-साथ समस्त मरुभूमि की राजधानी है और वह मरुस्थली की दो राजधानियों के बीच में बसा हुआ है। ऊपर जिस भाग का वर्णन किया जा चुका है, इस थल का दक्षिणी भाग उससे पृथक नहीं है। उत्तरी भाग में और विशेष कर पोकर्ण नगर के चारों तरफ सोलह से बीस मील तक नोची-ऊँची चट्टानों की पंक्तियाँ पायी जाती हैं। इन्हीं चट्टानों के एक भाग पर भाटी लोगों की राजधानी बसी हुई है। चट्टानों की पंक्तियों के कारण इस भूमि का नाम चट्टानी अथवा चंदानी है। कुछ लोग इसे चंद्रानि भो कहते हैं।

पोकर्ण नगर में दो हजार घरों की आबादी है। यहीं पर सलीम सिंह का निवास-स्थान है। यह नगर पत्थरों से बनी हुई मजबूत दीवार से घिरा हुआ है और उसके किले पर पूर्व की तरफ कितनी ही तोपें रखी हुई हैं। नगर से पश्चिम की तरफ बरसात के दिनों में जल का अद्भुत दृश्य दिखायी देता है। वहाँ की रेत इस पानी को थोड़े ही समय में सोख लेती है। कुछ लोगों का कहना है कि जल कनोड के तालाब से आता है और कुछ लोग उस को पहाड़ी झरनों से आता हुआ बतलाते हैं यहाँ के रहने वाले जल के प्रवाह-मार्ग में खोद कर पीने के योग्य जल निकाल लेते हैं। यहाँ का सरदार चौबीस गावों के अतिरिक्त लूनी और बांदी नदियों के बीच की भूमि का भी मालिक है।

दूनरा और मंजिल प्रसिद्ध दुर्गादास की जागीरें थीं। लेकिन अब वे देशद्रोही सलीम के अधिकार में है। पोकर्ण से तीन कोस उत्तर की ओर रामदेवरा नाम का एक गाँव है। रामदेवरा का मंदिर होने के कारण इस गांव का नाम रामदेवरा हो गया है। उस गांव में भादों के महीने में एक मेला लगता है। उस मेले में बहुत दूर-दूर के आदमी आते हैं। कराची बंदर, मुलतान, शिकारपुर और कच्छ के व्यवसायी आकर यहाँ पर क्रय-विक्रय का काम करते हैं। यहां के लोग घोड़े, ऊट और बैल अधिक रखते हैं। सन १८१३ ईसवी के अकाल का यहां पर बुरा प्रभाव पड़ा है। राजा मानसिंह के शासनकाल में जो अराजकता उत्पन्न हुई थी, उससे यहाँ का व्यापार नष्ट हो गया।

खावर का थल—वह थल जैसलमेर और बीच में है और गिरो के निकट धात की मरुभूमि से जाकर मिल जाता है। यह थल मारवाड़ के एक दूर-वर्ती किनारे पर पाया जाता है। यहाँ पर मनुष्यों की संख्या बहुत कम है। लेकिन उसमें विस्तृत स्थान पाये जाते हैं। उसके कई एक नगर पहाड़ी चोटियों पर बसे हुए हैं। उनमें शिव और कोटरा अधिक विशाल हैं। ये दोनों नगर उन पहड़ी चोटियों पर हैं, जो भुज से जैसलमेर तक फैली हुई है। शिव में तीन सौ घरों की आबादी है और कोटरा में पाँच सौ घरों की। इन दिनों नगरों पर राठौर सरदारों का अधिकार है। वे सरदार बहुत साधारण जोधपुर-राज्य की अधीनता में माने जाते हैं। कुछ समय पहले अनहलवाड़ापट्टन और इस नगर में व्यावसायिक सम्बन्ध था। परन्तु लुटेरों के अत्याचारों के कारण वह व्यवसाय बिलकुल

× यहाँ के लोगों का विश्वास है कि इस रोग में एक पतला धागा-सा आँख में पड़ जाता है और वह एक कीड़ा होता है। इस प्रकार का कीड़ा घोड़े के नेत्रों में भी पैदा हो जाता है। जिन घोड़ों की आँखों में यह बीमारी थी, उसको मैंने स्वयं देखा है। एक पतले धागे के समान रोग का कीड़ा आँखों में दौड़ा करता है। जिसे कीचड़ या आँसू के साथ निकाला जाता है।

नष्ट हो गया। यहाँ पर भेड़ों और भैंसों के चरने के लिए बहुत-सी भूमि पायी जाती है।

मल्लिनाथ का थल—इस थल का नाम बरमेर भी है। प्राचीन काल में यहाँ पर मल्लि अथवा मालिनी जाति के लोग रहते थे। बहुत से लोगों में वे लोग राठौरवंश के नाम से प्रसिद्ध हैं। लेकिन वास्तव में वे लोग चौहान हैं और यह वही वंश हैं, जिसमें जूनाचोटन के राजा ने जन्म लिया है। पिछले दुष्काल के पूर्व बरमेर की आबादी बारह सौ घरों से कम की न थी और उन में सभी जातियों के लोग रहते थे। उसकी चौथाई आबादी सांचोर ब्राह्मणों की थी। बरमेर उसी पहाड़ी पर बसा हुआ है, जिस पर शिव और कोटरा आबाद हैं। बरमेर के पास उस पहाड़ी की ऊँचाई कहीं पर दो सौ फीट और कहीं पर तीन सौ फीट तक है। शिव के लेकर बरमेर तक एक विस्तृत मैदान है। वहाँ पर अनाज की अच्छी पैदावार होती है। बरमेर का सरदार पद्मसिंह उसी वंश का है, जिसमें शिव, कोटरा और जैसोल के राजाओं ने जन्म लिया है। इन नरेशों का वंश एक ही है। बरमेर जागीर में चौंतीस ग्राम हैं।

खेरधूर—खेर का उल्लेख कई बार किया जा चुका है। गोहिलों को पराजित करके सबसे पहले राठौरों ने यहाँ पर अधिकार किया था। गोहिल लोग यहाँ से भागकर खम्भात की तरफ चले गये थे। वे लोग अब गोगा और भाव नगर में शासन करते हैं। ऊँटों पर यात्रा करने वाले काफला को लूट लेना उन लोगों का एक व्यवसाय बन गया था। मरुभूमि में नौ दुर्ग थे, जिनका उल्लेख किया जा चुका है। राजधानी खेरल का दुर्ग उनमें से एक था और वह दुर्ग प्रमार राजपूतों के अधिकार में था। लेकिन उसका विनाश बहुत दिनों से हो रहा था। और अब वह एक साधारण गाँव रह गया है। इन दिनों में वहाँ पर जो घर है, उनकी संख्या चालीस से अधिक नहीं है। काले रंग की पहाड़ियों ने उसे चारों तरफ से घेर रखा है। जूना चोटन को बहुत से लोग प्राचीन चोटन भी कहते हैं। वास्तव में जूना और चोटन दो अलग-अलग स्थान हैं। कहा जाता है कि प्राचीन काल में वहाँ पर हथ-राज्य की राजधानियाँ थीं। हथ-राज्य के सम्बन्ध में कोई विशेष उल्लेख नहीं मिलता। केवल इतना ही मालूम होता है कि उसमें चौहानों का शासन था। वहाँ की बहुत-सी बातें इस बात का प्रमाण देती हैं कि पूर्वकाल में यह एक प्रसिद्ध राज्य था और उसके नगर बहुत बड़े-बड़े थे। प्राचीन काल में जूना चारों तरफ से पहाड़ियों से घिरा हुआ था और प्रवेश करने के लिए केवल एक तंग रास्ता था। उसके सामने छोटा-सा एक दुर्ग टूटी-फूटी अवस्था में अब भी पाया जाता है। उस पहाड़ी के शिखर पर दो अन्य दुर्गों के टूटे-फूटे भाग दिखायी देते हैं।

जिस पर्वत पर जूना और चोटन बसे हुए हैं, उसके दूसरे सिरे पर धोरिमन नाम का एक नगर है। वहां पर एक पवित्र स्थान है, जहां पर पूजा करने के लिए श्रावण सुदी तीज को बहुत-से लोग एकत्रित होते हैं। इस प्रकार की कुछ बातों को छोड़कर वहाँ के सम्बन्ध में कोई विशेष उल्लेख नहीं मिलता।

नागर और गुरु—ये दोनों नगर लूनी नदी के किनारे पर बसे हुए हैं और वहाँ चौहानों के राज्य की सीमा समझी जाती है। पहले किसी समय दोनों नगर चौहानों के राज्य में थे। यहां पर मारवाड़ के पश्चिमी थलों का वर्णन समाप्त होता है। मारवाड़ स्वयं एक मरुभूमि का ऐसा भाग है, जहां पर अनाज की पैदावार का कोई सहारा नहीं रहता। उस पर भी सम्वत् १८६८ के दुष्काल ने उसको एक भयानक दुरवस्था में पहुँचा दिया था। इसके अतिरिक्त पिछले तीस वर्षों से राज्य की व्यवस्था ठीक न होने के कारण लुटेरों ने अत्याचार करके जो संकट उत्पन्न कर दिया है, वह अत्यन्त रोमाञ्चकारी है।

अमरकोट—मरुभूमि में ओमर लोगों का यह एक प्रसिद्ध दुर्ग था और पिछले कुछ वर्षों तक सोढा राजाओं की यहां पर राजधानी थी। दो सौ वर्ष पहले इसका विस्तार सिंधु की घाटी में उत्तर की तरफ लूनी नदी तक था। लेकिन मारवाड़ के राठौरों और सिंध के वर्तमान राजवंश ने सोढा लोगों के इस राज्य को बहुत निर्बल और सीमित बना दिया। इन दिनों में अमरकोट का प्राचीन गौरव नष्ट हो गया और वहाँ की आबादी में पाँच हजार मकानों के स्थान पर केवल दो सौ पचास मकान झोपड़ों के रूप में रह गये थे। वहां पर पुराना दुर्ग नगर के उत्तर-पश्चिम में है। वह ईंटों से बना हुआ है। उसके अतिरिक्त वहां पर दूसर दुर्ग भी हैं, जिनकी संख्या अठारह बतायी जाती है। वे पत्थरों से बने हैं। नगर में एक दुर्ग भीतर भी है। राज-परिवार के रहने का सुदृढ़ प्रासाद है। किले के उत्तर की तरफ एक पुरानी नहर है, जिसका पानी वर्ष के कुछ दिनों तक बराबर काम देता है। अमरकोट में राजा मान के समय अनेक गाँवों की प्रतिष्ठा हुई थी। लेकिन वहाँ के गृह-युद्ध के कारण उनकी हालत खराब हो गयी और अमरकोट का अधिकार कुलोरों और राठौरों के हाथों में चला गया। इसके बाद उनमें झगड़े पैदा हो गये, जिनका यहाँ पर संक्षेप में कुछ वर्णन करना आवश्यक मालूम होता है।

मारवाड़ में विजय सिंह के शासनकाल में नूर मोहम्मद कुलोरा सिंध में शासन करता था। कंधार की फौज के आक्रमण करने पर वह अपने राज्य से भागकर जैसलमेर चला गया और वहाँ पर उसकी मृत्यु हो गयी। उसका बड़ा लड़का अन्तूर खां ने अपने भाइयों के साथ बहादुर खाँ खैरानी के पास जाकर शरण ली। उन्हीं दिनों में उसके एक अनैतिक बन्धु गुलामशाह ने अवसर पाकर हैदराबाद के राज सिंहासन पर अधिकार कर लिया। दाऊद पोतरा के सरदारों ने उमर खां के पक्ष का समर्थन किया। बहादुर खां, सज्जल खां, अली मोराद, महमूद खां, कायम खां और अली खां खैरानी सरदारों ने युद्ध की तैयारी की और अन्तूर खां के साथ वे लोग हैदराबाद के लिए रवाना हुए।

गुलाम शाह उनका मुकाबला करने के लिए अपनी फौज के साथ चला। भाइयों के बीच युद्ध आरम्भ हुआ। इस युद्ध में अन्तूर खां और उसके साथियों को सफलता न मिली। उसकी सहायता के लिए जो खैरानी सरदार युद्ध में गये, उनमें सभी मारे गये। अन्तूर खां कैद कर लिया गया और वह गुजा के दुर्ग में जन्म भर कैद होकर रहा। यह दुर्ग सिंध के टापू हैदराबाद से चौदह मील दक्षिण की तरफ है। गुलामशाह से उसका राज-सिंहासन उसके लड़के सर फीरोज को मिला। थोड़े ही दिनों में उसकी मृत्यु हो गयी। उसके बाद अब्दुल नबी उसके सिंहासन पर बैठा। उन दिनों में शिवदादपुर के उत्तर में चौदह मील की दूरी पर अभयपुर नामक एक नगर था। उसमें तालपुरी वंश का एक सरदार रहता था। यह वंश बालोच की शाखा है। उस सरदार का नाम गोराम था। बीजर और सोभान नाम के उसके दो लड़के थे। सर फीरोज ने गोदाम की लड़की से विवाह करने की मांग की। लेकिन गोराम ने उसको लड़की देने से इनकार कर दिया। इसके फल स्वरूप उसका परिवार नष्ट कर दिया गया। बीजर खाँ वहां से भाग गया और हैदराबाद के निरंकुश शासक को वहाँ के सिंहासन से उतारकर वह स्वयं वहां का अधिकारी बन गया। कुलोरा लोग छिन्न-भिन्न हो गये। बीजर खां ने वहां पर एकाधिपत्य शासन करने का इरादा किया। इसलिए अमरकोट में अधिकार करने के सम्बन्ध में राठौरों के साथ उसकी शत्रुता पैदा हो गयी। राठौर लोग मारवाड़ में शासन कर रहे थे। बीजर खां ने मारवाड़ से केवल कर ही नहीं मांगा, बल्कि राठौर राजा की लड़की के साथ विवाह करने के लिए उसने राजकुमारी की माँग भी की।

इसके परिणाम स्वरूप राठौरों के साथ दुगारा में उसका युद्ध हुआ। यह स्थान धरनीधर से दस मील की दूरी पर था। उस युद्ध में राठौरों ने बालोच सेना को बुरी तौर पर पराजित किया। राठौरों ने इतने पर ही संतोष नहीं किया। बीजर खां ने मारवाड़ से दो मांगें की थीं। एक तो राठौरों के राज्य मारवाड़ से कर मांगा था और विवाह करने के लिए मारवाड़ की राजकुमारी मांगी थी। इन दोनों मांगों का पुरस्कार बीजर खां को देने के लिए राठौर राजपूत तैयारी करने लगे। उसी समय भाटी और चंदावत दो सरदारों ने बीजर खां को पुरस्कार देने के लिए प्रतिज्ञायें की और वे दोनों मारवाड़ राज्य के राजदूत बनकर बीजर खां के दरबार में गये। बीजर खां के सामने एक लिखा हुआ कागज उन सरदारों ने उपस्थिति किया। उस कागज को देखते ही बीजर खां ने समझा कि मारवाड़ के राजदूत अपने राजा की संधि का प्रस्ताव लेकर आये हैं। उसने बड़ी तेजी के साथ उस कागज पर लिखी हुई पंक्तियों को देखा और उसने उसी समय मुँह बनाते हुए धीरे-धीरे कहा—"इस कागज में राजकुमारी के डोला देने का तो कोई जिक्र ही नहीं।" उसके इस वाक्य के समाप्त होने के साथ-साथ चंदावत सरदार ने बड़ी तेजी के साथ अपनी तलवार का प्रहार बीजर खां के वक्ष स्थल पर किया और कहा—'यह डोला है।' और "यह कर है", कहकर उसने अपनी तलवार का दूसरा प्रहार उस पर किया। बीजक खां भयानक रूप से जख्मी होकर सिंहासन पर गिर गया। उसी समय उसकी मृत्यु हो गयी। बीजर खां के गिरते ही वहां पर दोनों राजपूत सरदारों पर आक्रमण हुआ। उस आक्रमण में चन्दावत सरदार ने इक्कीस और भाटी सरदार ने पांच आक्रमणकारियों का संहार किया। इसके बाद आक्रमणकारियों ने उन दोनों सरदारों के टुकड़े-टुकड़े कर डाले।

बीजर खाँ के मारे जाने पर उसका भतीजा, सोभान का बेटा फतेहअली वहाँ के राजसिंहन पर बैठने के लिए चुना गया। कुलोरा का पुराना परिवार भाग कर भुज और राजपुताना चला गया और उसने कंधार का आश्रय ग्रहण किया। वहाँ पर शाह ने पच्चीस हजार सेना पर उसे अधिकारी बना दिया। उस सेना के द्वारा उसने सिंध को विजय किया और भयानक अत्याचार करके उसने वहाँ पर अपनी अमानुषिकता का परिचय दिया। फतेहअली ने—जो भागकर भुज चला गया था—अपने अनुयायी साथियों को एकत्रित करके शाह की फौज पर आक्रमण किया और उसे पराजित करके शिकारपुर के बाहर उसने भीषण नर-संहार किया। इसके बाद उसने वहाँ पर अधिकार कर लिया। फतेहअली वहाँ से लौटकर हैदराबाद चला गया। निर्दय कुलोरा लोगों ने एक बार फिर शाह पर आक्रमण किया और अपनी भयानक नीचता का व्यवहार करके उन लोगों ने शाह को वहाँ से भगा दिया। वह इधर-उधर घूमता हुआ मुलतान होकर जैसलमेर चला गया और पोकरण में जाकर वह रहने लगा। वहाँ पर उसकी मृत्यु हो गयी। पोकरण का सरदार उसका उत्तराधिकारी बना। उसने स्वर्गीय सिंध के बादशाह की सम्पत्ति पर अधिकार करके उस निर्वासित शाह की कब्र नगर के उत्तर की तरफ बनवायी।

इन घटाओं का सम्बन्ध मारवाड़ और सिंध के इतिहास के साथ है। लेकिन सोढा राजाओं के अंतिम प्रभाव को प्रकट करने के लिए यहाँ पर उनका उल्लेख किया गया है। यह सब किया उस वजीर ने जिसका सर्वनाश विजय सिंह के सरदारों ने राजदूत बन कर किया। सोढा राजा अमर कोट से भाग कर चला गया था। वहाँ पर सिंधी और भाटी लोगों ने मिल कर अधिकार कर लिया। लेकिन सिंधी फौज के पराजित होने पर विजय सिंह ने सोढा राजा को अमरकोट के सिंहासन पर अधिकार करने के लिए फिर से तैयार किया। इसके फलस्वरूप, अमरकोट पर आक्रमण हुआ और वहाँ पर भयानक रूप से नर-संहार करके अफगानों के द्वारा नगरों की लूट

हुई। उसके बाद आक्रमणकारियों ने अमरकोट पर अधिकार कर लिया। इस आक्रमण में विजय सिंह की सेना ने भी युद्ध किया था। इस लिए कंधार की अफगानी फौज के सेनापति फतेहअली ने उस सहायता की कीमत में विजय सिंह को अमरकोट का अधिकार दे दिया। उस समय से ले कर अंतिम गृह-युद्ध के दिनों तक वहाँ पर राठौर का झण्डा फहराता रहा। उसके पश्चात् सिंधी लोगों ने राठौर को वहाँ से निकाल दिया।

चोर—अमरकोट के पतन के बाद सोढा राजा अपनी राजधानी से उत्तर पूर्व की तरफ पन्द्रह मील की दूरी पर चोर नामक नगर में जाकर रहने लगा। उसकी उपाधि राना थी। निर्वासित होने के बाद भी वह अपनी इस पदवी को धारण किये रहा। जिस वंश के पूर्वजों ने किसी समय सिकन्दर, मेनाण्डर और कासिम का —जो खलीफा वलीद का गवर्नर था— सामना किया था और जिन्होंने बादशाह हुमायूं को उस समय अपने यहाँ शरण दी थी, जब वह पराजित हो कर और भारतवर्ष का सिंहासन छोड़ कर भागा था, आज उस वंश के राज परिवार की यह अवस्था थी कि वह रोटी के टुकड़ों के लिए अपनी लड़कियों और बहनों का विवाह अन्य धर्मावलम्बियों के साथ कर देते थे। उनके इस पतन का कारण उनकी क्षुधा थी, जिसको मिटाने के लिए उस वंश के लोगों के पास कोई दूसरे साधन न थे। अमरकोट के बाद सोढा वंश के लोग जहाँ पर जाकर रहे थे, वहाँ उनका कोई व्यवसाय न था, जीवन-निर्वाह के लिए उनके अधिकार में कोई साधन न था। वह स्थान मरुभूमि का एक भाग था, यहाँ कुछ पैदा न होता था। प्रत्येक तीसरे वर्ष अकाल पढ़ता था, जिसके कारण सर्व साधारण का जीवित रहना कठिन हो जाता था। इस दशा में जिनके पास खाने-पीने का सुभीता न होता था, वे अपने सम्पन्न पड़ोसियों का आश्रय लेते और अधिक संख्या में लोग सिंधु की घाटियों में जाकर वहाँ के लोगों की शरण लेते। उनके इन दुर्दिनों में जो सहायता करते, उनको वे अपनी लड़कियां और बहनें देकर उनके उपकार का बदला देते। यह सोढा वंश हिन्दू जाति का एक अंग था, जिसने अपने दुर्दिनों में इस्लाम धर्मावलम्बियों की समय-समय पर शरण ली थी और उनके साथ अपनी बेटियों के विवाह करके अपने वंश की पवित्रता को नष्ट किया था। इस प्रकार सोढा और झारोजा की कड़ियों ने हिन्दू मुसलमानों को एक में जोड़कर जंजीर बनाने का काम किया था। भूख में मरते हुए मनुष्य क्या नहीं करते। वह धर्म और कर्म की रक्षा उसी समय तक करता है, जब तक उसके प्राण सुरक्षित रहते हैं। लेकिन जब वह भूख से तड़पने लगता है तो उस समय वह सब-कुछ भूल जाता है। अमरकोट से भागने के बाद और चोर नगर में जीवन-निर्वाह करने के दिनों में सोढा वंश के लोगों की इस प्रकार दुरवस्था हो गयी थी। उनके अन्तरतर के सुदृढ़ धार्मिक तथा सामाजिक बंधन ढीले पड़ गये थे और क्षुधा की पीड़ा में उन्होंने वे कार्य करने के लिये विवश हुए थे, जो उन्हें न करना चाहिए था। इतना सब होने पर भी वे अपने हृदय से धार्मिक और सामाजिक नियमों को तिरोहित न कर सके थे। उन्होंने अपनी जिन प्यारी लड़कियों और बहनों के विवाह इस्लाम धर्मावलम्बियों के साथ किये थे, उनको उन्होंने फिर अपने परिवार में कभी आने नहीं दिया था। इस प्रकार उनके वंश की जो लड़कियां इस प्रकार गयी फिर। वे अपने जीवन में लौटकर माता-पिता के घर नहीं आयी। सोढा वंश के वर्तमान राना ने मीर गुलाम अली, मीर सोहराब और दादर के सरदार खोसा को अपनी लड़कियां देकर उस वंश के अन्य लोगों के लिये एक रास्ता पैदा कर दिया था। इस दशा में जैसलमेर, बाह और पारकर के राजा, सोढा राजकुमारी को विवाह करके स्वीकार कर लेते हैं, क्योंकि वे इस वंश की पवित्रता पर विश्वास करते हैं; परन्तु वे अपनी लड़कियां राना के वंश को नहीं

देते। क्योंकि उनकी संतान का सम्बन्ध बलीच वंश के साथ कभी भी हो सकता है, इसका सन्देह उनको बना रहता है। लेकिन मारवाड़ के राठौर न तो अपनी लड़कियाँ उनको देंगे और न उनकी लड़कियाँ लेंगे।

जातियां— मरुभूमि और सिंधु की घाटियों में जो जातियां रहती हैं, यदि उनके ऐतहासिक जीवन की खोज की जाय तो अनेक महत्वपूर्ण बातों का पता लग सकता है। खोज करने वाले इस बात को आसानी के साथ जान सकेंगे कि मरुभूमि की अनेक जातियां आज के पहले कुछ और थीं और संकटों में पड़कर उनके जीवन का वातावरण आज कुछ और हो गया है। जीवन की यह परिस्थितियां मरुभूमि की अनेक जातियों के सम्बन्ध में मिलेंगी। जिन वंशों का जन्म हिन्दू जाति से हुआ था, वे वंश आज किसी दूसरे ही धर्म की चादर से ढके हुए दिखायी देते हैं। इस विषय में अधिक विस्तार देना आवश्यक नहीं मालूम होता। जीवन के संकटों में इस प्रकार के परिवर्तन बहुत अस्वाभाविक नहीं कहे जा सकते। इसलिए इस वर्णन को हम यहीं पर समाप्त किये देते हैं।

मुसलमानों में कुलोरा और सेहरी नाम की दो जातियां ऐसी हैं, जिनकी उत्पत्ति के सम्बन्ध में हम निश्चित रूप से कुछ नहीं लिख सकते। जून, राजूर, ओमुरा, सुमरा, मेरमोर अथवा मोहर, बलौच लुमरिया, मालूका, सुमैचा, मंगुलिया, दाहिया, जोहिया, कैरो, मगुरिया, ओदुर, बेरोबी, बाबुरी, ताबुरी, चरेन्दी, खोसा, सुदानी और लोहाना आदि जातियों ने अपने प्राचीन धर्म को छोड़कर इस्लाम को स्वीकार कर लिया है। मरुभूमि की इस प्रकार न जाने कितनी जातियाँ—जो प्राचीन काल में हिन्दू थीं—आज इस्लाम के आवरण में दिखायी देती हैं। ऐसा क्यों हुआ है, इसका उत्तर आसानी के साथ नहीं दिया जा सकता है। एक विस्तृत खोज के बाद जो निष्कर्ष निकाला जा सकता है, वही उसका उत्तर हो सकता है। उनके सम्बन्ध में बहुत आसानी के साथ, यह कहा जा सकता कि जीवन की परिस्थितियों और उनके संकटों ने उनमें इस प्रकार के परिवर्तन कर दिये हैं। लेकिन यह बहुत सम्भव है कि ऐतिहासिक खोज के बाद यह उत्तर सही साबित न हो।

भट्टियों, राठौरों और चौहानों तथा उनकी शाखाओं मालिनी और सोढा वंश का वर्णन संक्षेप में किया जा चुका है। यहाँ पर सोढा वंश की कुछ विशेष बातों का वर्णन करना आवश्यक मालूम होता है।

सोढा हिन्दू-जाति का एक अंग है। परन्तु इस वंश के लोगों के आचरण अब हिन्दुओं के से नहीं रह गये। ये लोग खाने और पीने के विचारों में अब मुसलमानों के बहुत निकट पहुँच गये हैं। उदाहरण के तौर पर सोढा वंश के लोग उस बरतन में बिना किसी संकोच के पानी पी लेते हैं, जिसमें उनके सामने मुसलमानों ने पानी पिया हो। यही अवस्था हुक्का पीने के सम्बन्ध में भी है। इस वंश के लोग बहुत दिनों से निर्धन होते जाते हैं और अपनी आर्थिक निर्बलता में उन लोगों ने चोरी और लूट के कार्य को भी अपना लिया।

सोढा लोग जितने ही गरीब होते जाते, उनका उतना ही नैतिक पतन होता जाता है। इस गरीबी में वे लुटेरे और चोर बन गये हैं। सेहरीस और खोसा लोग संगठित होकर जहाँ कहीं अवसर पाते हैं, लूटमार करते हैं। सोढा लोग भी उनके संगठन में सम्मिलित हो गये हैं। इस संगठन के लोग दाऊयोतरा से लेकर गुजरात तक लूट किया करते हैं। सोढा लोग तलवार और ढाल को अपने साथ रखते हैं। उनकी कमर में एक तेज और भयानक कटार भी रहता है। इनमें से कुछ लोग बन्दूकें भी रखते हैं। उनकी पोषाक भट्टी और मुसलमानों से मिलती-जुलती है। वे लोग अपनी पगड़ी से

पहचाने जाते हैं। मरुभूमि में वे फैले हुए पाये जाते हैं। इस वंश की बहुत-सी शाखाये हैं। सुमाखा उन शाखाओं में अधिक प्रसिद्ध है।

कौरव—कौरव राजपूत धात के थल में पाये जाते हैं। ये लोग भी लूट-मार करते हैं। लेकिन परिश्रमी होते हैं। इनके रहने का कोई निश्चित स्थान नहीं होता। वे लोग बड़ी संख्या में भेड़े लिए हुए घूमा करते हैं और जहाँ कहीं अपनी भेड़ों के चरने के लिए अच्छा स्थान और पानी का सुभीता पाते हैं, वहीं पर वे लोग ठहर जाते हैं। रहने के लिए वे झोपड़ियाँ बना लेते हैं, जो पत्तों से ढकी होती हैं। उन झोपड़ों में भीतर मिट्टी का प्लास्टर लगा रहता है। लुटेरे सेहरीस लोग जंगलों में घूमा करते हैं और इस प्रकार के स्थानों में रखा हुआ अनाज चोरी करके अथवा लूटकर ले जाते हैं। इनमें से कुछ लोग ऊँट, गायें, भैंसे और बकरियाँ भी पालते हैं और वे लोग अपने इन पशुओं को चारुन तथा अन्य व्यवसायियों को बेच देते हैं। दूसरे राजपूतों की तरह ये लोग भी अफीम का सेवन करते हैं। वे लोग इस बात का विश्वास करते हैं कि अफीम के सेवन से शरीर में रोग नहीं पैदा होता और जो पैदा होता है, वह सेहत हो जाता है।

धात अथवा धाती—यह वंश भी राजपूतों की एक शाखा है। इस वंश के लोग धात में रहते हैं। इनकी संख्या कौरवों की अपेक्षा अधिक नही है। इनकी आदतें बहुत कुछ कौरवों से मिलती हैं और गड़रियों का जीवन व्यतीत करते हैं। ये लोग खेती भी करते हैं। लेकिन उसकी पैदावार बरसने वाले पानी पर निर्भर करती है। अपना तैयार किया हुआ घी देकर उसके बदले में अनाज और दूसरी आवश्यक चीजें लेते हैं। रबरी और छाँछ यहाँ का अच्छा भोजन माना जाता है।

लोहाना—इस वंश के लोग धात और तावपुरा में अधिक पाये जाते हैं। पहले वे लोहाना राजपूत कहलाते थे। लेकिन व्यवसाय करने के कारण वे लोग अब वैश्य कहे जाते हैं। जीवन-निर्वाह के लिए कोई भी कार्य करने में वे संकोच नहीं करते। बिल्ली और गाय के अतिरिक्त अन्य सभी पशुओं का वे लोग माँस खाते हैं।

अरोरा—लहना लोगों की तरह इस जाति के लोग खेती और व्यापार करते हैं। बहुत से लोग नौकरी भी करते हैं। सिंध में वे छोटी-छोटी नौकरियों में देखे जाते हैं। खाने-पीने की साधारण चीजों पर ये लोग अपना जीवन-निर्वाह करते हैं। हम यह ठीक नहीं जानते कि अरोर में रहने के कारण इन लोगों का नाम अरोरा पड़ गया है।

भाटिया—इस जाति के लोग पहले अश्वारोही हुआ करते थे। लेकिन अब जब से वे लोग व्यवसाय करने लगे हैं, उससे उनको बहुत लाभ हुआ है और उनकी आर्थिक परिस्थितियाँ पहले की अपेक्षा अच्छी हो गयी हैं। इनके जीवन की बहुत-सी बातें अरोरा लोगों के समान हैं। सम्पत्ति में इनका स्थान अरोरा लोगों के बाद है। शिकारपुर, हैदराबाद, सूरत और जयपुर में अरोरा तथा भाटिया लोगों की व्यावसायिक कोटियाँ बनी हैं।

ब्राह्मण—मरुभूमि और सिंध के ब्राह्मण वैष्णव धर्म को अपना धर्म बतलाते हैं। मनु के सिद्धान्तों का यथा-सम्भव वे पालन करते हैं। मनु की लिखी हुई बातें जो व्यवहारिक नहीं होतीं उनकी वे उपेक्षा कर जाते हैं। ब्राह्मण लोग अपनी बातों को ही कानून और सिद्धान्त मानते हैं। वे लोग जो कुछ कहते हैं, उसी को वे सत्य समझते हैं। ब्राह्मण जनेऊ पहनते हैं। साधारण तौर पर वे खेती का कार्य करते हैं। आवश्यक चीजों को खरीदने के समय मूल्य में वे अपने घरों का घी देते हैं। इनकी संख्या धात में अधिक है। चोर नगर में— जहां पर सोढा राणा रहता है—एक सौ घर इन ब्राह्मणों के हैं। कुछ घर अमरकोट में भी पाये जाते हैं। वे लोग मछली नहीं खाते और हुक्का भी नहीं पीते। माली और नाऊ के हाथ का बना हुआ भोजन वे कर लेते हैं। भोजन के समय वे चौका

नहीं लगाते । सिंध में रहने वाली सभी हिन्दू जातियाँ भटियारिन के हाथ का बना हुआ भोजन करती हैं । इन जातियों के लोग एक दूसरे के बरतनों को खाने-पीने के काम में लाने के लिए किसी प्रकार का विचार नहीं करते । उनमें मुरदे जलाये नहीं जाते । बल्कि दरवाजे की देहरी के पास जमीन में गाड़ दिये जाते हैं । जिनके पास रुपये-पैसे का सुभीता होता है , वे एक चबूतरा भी बनवा देते हैं । इस प्रकार जो चबूतरा बनता है , उस पर शिव की मूर्ति और उसके ऊपर जल का भरा हुआ कलश रखा जाता है । यहाँ पर कोली और लोहाना लोगों के सिवा सभी हिन्दू जातियों के लोग जनेऊ पहनते हैं । परन्तु भारतवर्ष में केवल द्विजाति के लोगों को जनेऊ पहनने का अधिकार माना जाता है ।

रेवारी—भारतवर्ष में रेवारी के नाम से सभी लोग परिचित पाये जाते हैं । मरुभूमि में रेवारी उन लोगों को कहते हैं , जो ऊँटों का पालन करते हैं । भारतवर्ष में मुसलमान साधारण तौर पर ऊँट रखा करते हैं । मरुभूमि में ऊँटों के पालन और उनके व्यवसाय का काम करने वाली एक विशेष जाति कहलाती है , जिसे रेवारी कहते हैं । यह हिन्दू-जाति है और इस जाति के लोग ऊँटों का पालन और व्यवसाय करते हैं । कहा जाता है कि ऊँटों की चोरी करने में ये लोग बड़े होशियार होते हैं और इसके लिए भट्टी लोगों के साथ ये लोग दाऊदपोतरा तक जाते हैं । उनके द्वारा ऊँटों की चोरी के सम्बन्ध में कहा जाता है कि उन लोगों को ऊँटों का चरता हुआ समुदाय जब कोई मिल जाता है तो उनके साथ का शक्तिशाली और अनुभवी आदमी उस ऊँट को अपना भाला मारता है । जिसके निकट वह पहले पहल पहुँचता है । उस ऊँट के खून में कपड़े को भिगोकर वह अपने भाले की नोक पर रख देता है और दूसरे ऊँट के पास जाकर अपने भाले के द्वारा उसे वह खून सुँघाता है ऐसा करके वह आदमी तेजी के साथ भागता है और ऊँटों का समुदाय उस के पीछे-पीछे दौड़ने लगता है ।

जाखूर , शिगाध और पूनिया जीत वंश की शाखायें हैं । इन शाखाओंके बहुत-से लोगों में अब तक सामाजिक और धार्मिक पुराने विश्वास पाये जाते है । लेकिन अधिक संख्या में लोगों ने इस्लाम-धर्म को स्वीकार कर लिया है । लेकिन अपने वंश की शाखाओं को उन लोगों ने अब तक नष्ट नहीं किया । ये लोग सीधे-सादे और परिश्रमी होते है । मरुभूमि और घाटी में ये लोग पाये जाते हैं । उनके बहुत-से प्राचीन घराने इधर-उधर जाकर बस गये हैं । ऐसे घरानों में सुलतान और खमरा हमारे सामने ऐसे नाम हैं , जिनके ऐतिहासिक उल्लेख हमें नहीं मिले । जोहिया और सिन्दिल आदि ऐसे अनेक नाम हैं , जिनके उल्लेख मरुस्थली के इतिहास में हम कर चुके हैं ।

सेहरी , कोसा , चन्दी , सुदानी—मरुभूमि की मुस्लिम जातियों में सेहरी का प्रधान स्थान है । लोगों का कहना है कि इसकी उत्पत्ति हिन्दू जाति से हुई और इस जाति के लोग अरोरा वंश के लोगा से उत्पन्न माने जाते हैं । निश्चित रूप से इसकी उत्पत्ति के बारे में कोई बात नहीं लिखी जा सकती । अरबी में सेहरा मरुभूमि को कहते है । सम्भव है उसी सेहरा शब्द से इस जाति का नाम सेहरी रखा गया हो । जो कुछ हो इसका निर्णय करने के लिए हमारे पास कोई ऐतिहासिक आधार नहीं है ।

कोसर अथवा खोसा सेहरी की शाखा है । कोसर और सेहरी लोगों में एक-सी आदतें पायी जाती हैं । लूट मार इन लोगों का प्रमुख कार्य हो गया है और अपने इस कार्य को उन लोगों ने बहुत कुछ नियमित और संगठित बना लिया है । इस वंश के लोगों ने कौरी नाम का एक कर वसूल करने की व्यवस्था की है । उस कर के द्वारा जो धन एकत्रित होता है , उससे संकट पड़ने पर लुटेरों की रक्षा और सहायता की जाती है । इस कर के अनुसार प्रत्येक हल पर एक रुपया और पाँच धड़ी

अनाज एकत्रित किया जाता है ! किसानों के सिवा गड़रियों से भी यह कर वसूल होता है। इस वंश के लोग प्राय: ऊँटों पर सवारी करते हैं। कुछ लोग घोड़ों को भी सवारी के काम में लाते हैं। तलवार और ढाल उनके विशेष हथियार हैं। बहुत कम लोगों के पास बन्दूक पायी जाती हे। लूटने के लिए सैकड़ों कोसों की दूरी पर और कभी कभी जोधपुर तथा दाऊद पोतरा के राज्यों में भी चले जाते हैं। ये लोग राजपूतों के साथ युद्ध करने में डरते हैं। मरुभूमि के दक्षिणी भाग में वे लोग विशेष रूप से रहा करते हैं और नवकोट तथा मित्ती के पास बुलेरी तक वे लोग पाये जाते हैं। इस जाति के बहुत से लोग उदयपुर, जोधपुर और दूसरे राज्य में नौकरी की खोज किया करते हैं। ये लोग कायर और अविश्वासी समझे जाते हैं।

सोढा वंश के जिन लोगों ने इस्लाम धर्म को स्वीकार कर लिया था, सुमाचा लोग भी उन्हीं में से हैं। वे थल और घाटी में अधिक संख्या में पाये जाते हैं। वहाँ पर उनके बहुत से गाँव हैं। उनकी आदतें धाती लोगों की तरह है। उनमें अधिकांश लोग सेहरी लोगों के साथ सम्पर्क रखने के कारण चोरी और लूट किया करते हैं। वे लोग अपने सिर के बालों को कभी मुड़वाते नहीं हैं। इसलिए वे देखने में पशु मालूम होते हैं। उन लोगों के यहाँ कोई भी पशु रोगी होकर नहीं मरता। क्यों कि बीमार पशु के सेहत की आशा न होने पर वे लोग उसे मार डालते हैं। उनकी स्त्रियाँ बड़ी लड़ाकू और असभ्य होती है। वे पर्दा नहीं करतीं।

राजूर—इस वंश के लोग भाटी कहे जाते हैं और वे मरुभूमि तथा जैसलमेर की सीमाओं पर रहा करते हैं। ये लोग जैसलमेर और सिंध के बीच के थल तक आते जाते रहते है। ये लोग खेती करते हैं। भेड़ें चराते हैं और चोरी करते हैं। जिन लोगों ने इस्लाम को स्वीकार किया है, उनमें ये लोग अधिक पतित माने जाते हैं।

आमुर और सुमरा—ये लोग प्रमारों के वंशज है और अब वे लोग इस्लाम पर विश्वास रखते हैं। जैसलमेर और आमुर सुमरा के थल में पाये जाते हैं। इनकी संख्या अधिक नहीं है। इन लोगों के सम्बन्ध में हम पहले ही वर्णन कर चुके हैं।

कुलोरा और तालपुरी—सिन्ध में ये दोनों जातियाँ बहुत प्रसिद्ध हैं। सिंध-राज्य का पिछला शासक कुलोरा वंश में ही उत्पन्न हुआ था और वहाँ का वर्तमान शासक तालपुरी जाति का है। इनमें से एक ने ईरान के अब्बशैद से अपनी उत्पत्ति बतलाई है। दूसरे ने पैगम्बर साहब से अपनी उत्पत्ति का दावा किया है। कहा जाता है कि ये दोनों बलोच हैं और उनकी मूल उत्पत्ति जिन वंश से हुई है। तालपुरी लोगों की संख्या लोहरी लोगों की संख्या की चौथाई मानी जाती है। उनका सम्बन्ध हैदराबाद राज्य के साथ है। वे थल में नहीं पाये जाते।

नुमरी, लुमरी अथवा लुक्का—यह बलोच की शाखा है। अब्बुल फजल ने इसको कुल-मानी से नीचे माना है। युद्ध में तीन सौ सवार और सात हजार पैदल सेना को लाने की इस वंश के लोग शक्ति रखते हैं। इस जाति को विभिन्न लेखकों ने विभिन्न नामों से लिखा है। उसकी उत्पत्ति के सम्बन्ध में भी एक मत नहीं है। इसलिए उस विवाद में पड़ना हमको आवश्यक नहीं मालूम होता है।

जोहूत, जूत अथवा जित—यह एक प्राचीन जाति है और वह समस्त राजपूतों की संख्या से भी अधिक पायी जाती है। सम्पूर्ण सिंध में समुद्र के किनारे से दाऊद पोतरा तक इस वंश के लोग फैले हुए हैं। थल में उनकी आबदी नहीं है। जिन वंश के लोगों ने पहले पहल इस्लाम धर्म स्वीकार किया था, ये लोग उन्हीं में से हैं।

मैर अथव मेर—इस नाम की एक पहाड़ी जाति है, जो सिंध की घाटी में पायी जाती है। इसके सम्बन्ध में जितना मुझे मालूम हुआ। उसके आधार पर मैं कह सकता हूँ कि यह भट्टी वंश की शाखा है।

मोहर अथवा मोर—इस वंश के लोग भी भट्टी माने जाते हैं।

जताबुरी, बोरिया—इनकी उत्पत्ति के सम्बन्ध में कोई बात निश्चित रूप से नहीं लिखी जा सकती। इनके जीवन का व्यवसाय अच्छा नहीं है। बातुरी, खेनगढ़, और सम्पूर्ण राजस्थान में फैली हुई जो जातियाँ केवल चोरी का कायम करती हैं, उन्हीं में इनकी भी गणना है। कोई भी अधम और अपराध का कार्य करने में वे संकोच नहीं करते। इन्हीं कार्यों के द्वारा उन लोगों ने अपनी आमदनी का साधन बना लिया है। वे लोग दाऊदपोतरा, बिजनौत, नोक, नवकोट और ओदुर के थलों में पाये जाते हैं। वे लोग ऊँट रखते हैं और उनको किराये पर चलाते हैं। कारवाँ की रक्षा करने के लिए भी उनकी नियुक्ति होती है।

जोहिया, दहिया और मंगुलिया—ये जातियाँ पहले राजपूतों की शाखायें मानी जाती थीं। परन्तु अब उन्होंने इस्लाम स्वीकार कर लिया है। घाटी और मरुभूमि में वे पाये जाते हैं। उनकी संख्या अधिक नहीं है।

बैरोवी—यह बालौच की एक शाखा है। इसकी तरह खैरोवी, जनग्रो, ओंदुर और बाघी नामक अनेक जातियाँ हैं। इन सबके पूर्वज प्रमार और शाँकला राजपूत थे। इनकी संख्या बहुत कम है और ये लोग कोई ऐतिहासिक महत्व नहीं रखते।

दाऊदपोतरा—यह एक छोटा-सा राज्य है। उसकी गणना हिन्दू धर्म में नहीं की जाती। लेकिन उसे मरुस्थली की सीमा के भीतर माना जाता है। जैसलमेर के भट्टी राज्य के कुछ भागों से दाऊदपोतरा बना है। दाऊदपोतरा की नींव डालने वाला सिन्धु नदी के पश्चिम में शिकारपुर का निवासी दाऊद खाँ था और उसने एक साधारण आदमी की हैसियत में रहकर अपने जीवन के बहुत दिन व्यतीत किये थे। उसने इन दिनों में अपनी बहुत बड़ी शक्ति का सम्पादन कर लिया था, जिसको दमन करने के लिए कन्धार के बादशाह ने अपनी फौज भेजी थी। उस फौज का वह सामना न कर सका। इसलिए उसने अपनी जन्म भूमि को छोड़ दिया और अपने परिवार को लेकर सिंधु नदी के दूसरी तरफ चला आया। बादशाह की फौज ने उसका पीछा किया। भाग जाने के बाद भी वह बच न सका। सूती अल्लाह नामक स्थान पर बादशाह की फौज ने उसे घेर लिया। उस समय उसके सामने दो रास्ते थे और उनमें से वह एक को स्वीकार करने के लिए विवश किया गया। वह एक तो अपने आपको शत्रुओं के हवाले कर दे अथवा अपने परिवार के साथ-साथ अपनी आत्म-हत्या कर ले। इस संकट के समय उसने साहस और धैर्य से काम किया और शत्रु से लड़कर मर जाना उसने अच्छा समझा। उसके इस साहस को देखकर बादशाह की फौज ने उस पर आक्रमण नहीं किया और वह उसे छोड़कर चली गयी।

इसके बाद दाऊद खाँ अपने साहसी साथियों के साथ सिंध के मैदान में जाकर रहने लगा और उसने अवसर पाकर अपनी शक्तियाँ बढ़ायी। उसके राज्य की सीमा इन दिनों में थल तक पहुँच गयी। दाऊद खाँ के बाद मुबारक खां उसके राज्य का अधिकारी हुआ और उसके बाद उसका भतीजा भावल खां उसकी मसनद पर बैठा। उसका लड़का सादिक मोहम्मद खाँ भावलपुर अथवा दाऊदपोतरा का आजकल शासक है। मुबारक खां ने भट्टी लोगों से खादल का जिला लेकर अपने अधिकार में कर लिया था। इसका उल्लेख जैसलमेर के इतिहास में किया जा चुका है। उसकी राजधानी देरावल है। इसकी नींव आठवीं शताब्दी में रावल देवराज ने डाली थी और वहीं पर

दाऊद खाँ के वंशज रहने लगे थे। उन दिनों में भट्टी लोगों की एक शाखा देरावल में रहती थी। उसके सरदार की उपाधि रावल है।

भावल खां ने दाऊदपोतरा की राजधानी बसायी और उसका नाम अपने नाम पर रखा। वहाँ पर पहले भट्टी नगर था। इसके तीस वर्ष बाद कंधारी फौज ने दाऊदपोतरा पर आक्रमण किया और देरावल को अपने अधिकार में कर लिया। इसके बाद एक संधि हुई और उसके अनुसार भावल खाँ को देरावल वापस दिया गया। भावल खाँ को एक बार अब्दाली शाह की अधीनता स्वीकार करनी पड़ी। उस समय भावल खाँ को अपना लड़का मुबारक खाँ अबदाली शाह के साथ भेजना पड़ा। मुबारक खाँ तीन वर्ष तक काबुल में रहा। उसके बाद वह स्वतंत्र कर दिया गया। मुबारक खाँ स्वाधीन होकर अपने राज्य की स्वतंत्रता के लिए चेष्टा करने लगा। इस दशा में भावल खाँ ने उसे कैद करा लिया और वह किजर के दुर्ग में कैद करके रखा गया। वह भावल खां की मृत्यु के समय तक वहां पर बन्दी होकर रहा। भावल खाँ के मर जाने के बाद दाऊदपोतरा के सरदारों के द्वारा वह दुर्ग से निकाला गया। स्वतन्त्र होकर वह मुरार में पहुँचा। अपनी राजधानी में आ जाने के बाद विरोधियों ने धोखे से उसे मरवा डाला। उसके बाद सादिक खाँ मसनद पर बैठा। उसने मुबारक खाँ के लड़कों को अपने छोटे भाई के साथ-साथ देरावल के दुर्ग में बन्द करवा दिया। लेकिन वे वहाँ से निकलकर भागे और राजपूतों तथा पुरबिया लोगों की सेना लेकर उन्होंने तेरावल पर अधिकार कर ली। सादिक खाँ दुर्ग की दीवार पर चढ़ गया। उस समय उसके साथ के लोगों ने उसकी रक्षा न की और उसके दोनों भाई और एक भतीजा युद्ध में मारा गया। उसका दूसरा भतीजा दीवार पर चढ़ गया। परन्तु वह पकड़ ही लिया गया। सादिक खाँ ने उसे मरवा डाला। सादिक खाँ ने जिस नसीर खाँ की सहायता से मसनद पर बैठने का अधिकार पाया था, उसने उसको भी मरवा डाला। सादिक मोहम्मद खाँ में उसके पिता की तरह के अच्छे गुण नहीं थे। मारवाड़ का विजय सिंह उसके पिता को अपना भाई कहकर सम्बोधन करता था। दाऊदपोतरा के सरदारों में मेल नहीं रहता। वे एक दूसरे के साथ लड़ा करते हैं। वहाँ के भट्टी लोग चोरी और लूट का काम करते हैं। और उसके बदले में दाऊदपोतरा के सरदारों को कर देते हैं। लेकिन इन भट्टी लोगों के दिलों में उन सरदारों के लिए कोई विशेष सम्मान नहीं है। भावलपुर के सरदार को कंधार से अब किसी प्रकार की आशंका नहीं रहती। वह सरदार अपने पड़ोसी राज्यों के साथ मिलकर चलता है। लाहौर के रणजीत सिंह की धमकियां कभी-कभी उसे मिलती हैं। उनसे भावलपुर का सरदार कभी-कभी भयभीत हो उठता है।

बीमारियाँ—मरुभूमि में अनेक प्रकार के रोग पाये जाते हैं। इन रोगों का बहुत-कुछ कारण यह भी है कि वहाँ के लोगों को अच्छा भोजन नहीं मिलता। वहाँ पर ऐसे लोगों की संख्या अधिक है, जो पेट-भर भोजन नहीं पाते। इस अभाव के कारण उनको जो कुछ मिलता है, खा लेना पड़ता है। पीने का जल स्वच्छ और स्वास्थ्य जनक नहीं मिलता। इसका परिणाम यह है कि रतौंधी, नारू और इस प्रकार के दूसरे रोगों ने वहाँ के निवासियों का स्वास्थ्य नष्ट कर डाला है। रतौंधी और वेरी कोस के रोग उन्हीं लोगों को अधिक होते हैं, जिनको मरुभूमि में अधिक दौड़ना-घूमना और चलना पड़ता है। मरुभूमि की जलती हुई धूप ने उनके शरीर के रंग को काला बना दिया है। मरुभूमि का जीवन इन गरीबों के लिए अत्यंत संकट पूर्ण है। उनके शरीर के अंगों को अनेक प्रकार की क्षति पहुँचती है। लेकिन वहाँ के निवासी इन सब बातों के ऐसे अभ्यासी हो गये हैं कि वे कभी अपने इस संकटपूर्ण जीवन की आलोचना तक नहीं करते।

मरुभूमि के लम्बे मैदानों में अधिक चलने के कारण वहाँ के लोगों के पैरों की नसें इतनी मोटी और भद्दी हो जाती हैं कि मालूम होता है कि उनकी पिंडुलियों में पट्टियाँ बँधी हैं। अधिक चलने के कारण उनके पैरों की नसों का यह दृश्य हो जाता है। नारू रोग से तो यहाँ के किसी भी आदमी का बचाव नहीं हो पाता। यह रोग एक किसान से ले कर राज परिवार के लोगों तक पाया जाता है। कदाचित् ही यहाँ का कोई मनुष्य इस नारू रोग से बच पाता है। मरुभूमि, पश्चिमी राजस्थान और उसके बीच के राज्यों में यह रोग नहीं होता परन्तु अरवली पर्वत की दूसरी तरफ रहने वालों में यह रोग इतना अधिक होता है कि वहाँ के लोग जब एक दूसरे से मिलते हैं तो वे उनके इस रोग का हाल सब से पहले पूछते हैं। इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि वहाँ पर रहने वालों में यह रोग बहुत अधिक पाया जाता है। इस रोग में इतनी अधिक पीड़ा होती है, जिसके सहन करने की शक्ति बहुत कम लोगों में पायी जाती है। शरीर के रोमछिद्रों में सूक्ष्म रेत के प्रविष्ट हो जाने से यह रोग पैदा होता है। चर्म के भीतर उस रेत के अणुओं के पहुँच जाने पर उस स्थान की खाल के ऊपर एक दाग पैदा होता है। वह धीरे-धीरे बढ़ कर सम्पूर्ण शरीर में जलन और सूजन पैदा करता है। उस समय शरीर के भीतर कीड़ा पैदा हो जाता है और वह चलता-फिरता है। उस कीड़े की गति कभी-कभी अधिक तेज हो जाती है। उस दशा में रोगी को असह्य कष्ट होता है। इसके लिए अनुभवी चिकित्सक बुलवाया जाता है। वह सूई के पतले धागे द्वारा उस कीड़े के सिर को पकड़ कर निकालने की चेष्टा करता है। शरीर के भीतर उस धागे के टूट जाने अथवा रह जाने से कई गुना सूजन और जलन बढ़कर मवाद देने लगती है। रोगी की यह दशा बड़ी भयानक होती है।

भारतवर्ष के दूसरे स्थानों की तरह यहाँ पर भी शीतला और तिजारी के रोग पाये जाते हैं। शीतला का रोग प्राय: छोटे बच्चों को अधिक होता है। इस रोग की यहाँ पर चिकित्सा नहीं की जाती है। उसका सेहत होना शीतला माता के ऊपर छोड़ दिया जाता है। तिजारी और उस प्रकार के दूसरे रोगों की चिकित्सा होती है। परन्तु उपचारों के लिए प्राचीन विचारों पर लोग अधिक विश्वास करते हैं।

दुर्भिक्ष – अकाल अथवा दुर्भिक्ष मरुभूमि के लिए एक साधारण रोग है। वहाँ के लोग कहा करते हैं कि भूखी माता के आने से दुर्भिक्ष अथवा अकाल पड़ता है। यहाँ पर ग्यारहवीं शताब्दी में एक अकाल पड़ा था और वह बारह वर्ष तक रहा था। उसके कारण राजस्थान के अनेक राज्यों को भीषण क्षति पहुँची थी। यों तो मरुभूमि में तीसरे-चौथे वर्ष अकाल पड़ा ही करता है। सन् १८१२ ईसवी में जो अकाल पड़ा, वह चार वर्ष तक बराबर रहा। उसमें न जाने कितने लोगों की जानें गयी थीं। गरीब लोगों के समूह अपने-अपने स्थानों को छोड़कर गंगा के निकट मैदानों में चले गये थे और वहाँ पहुँच कर उन लोगों ने अपने बच्चों को बेच कर अनाज प्राप्त किया था। मरुभूमि के राज्यों के लिए दुर्भिक्ष और अकाल कितने भयानक होते हैं, इसका सहज ही अनुमान किया जा सकता है।

फसल, पशु और वृक्ष—मरुभूमि के पशुओं में ऊँट विशेष स्थान रखता है। वह हल में जोता जाता है, उसके द्वारा कुएँ का पानी खीचा जाता है। ऊँट अपने मालिक के लिए मरुभूमि की यात्रा में पीने के लिए मश्कों में पानी ले जाता है और वह पानी कई दिनों तक काम देता है। ऊँट के पैरों की बनावट ऐसी होती है, जिससे वह मरुभूमि में चल सकता है। उसके मुख की बनावट ऐसी होती है, जिससे वह काँटेदार पेड़ों की पत्तियों को खा कर मरुभूमि में जीवित रह सकता हे। यही कारण है कि वहाँ के लोग अधिकतर ऊँट रखते हैं। यह भी एक प्रकृति की विशेषता है कि अन्य स्थानों की अपेक्षा मरुभूमि के ऊँट अधिक श्रेष्ठ होते हैं। वहाँ के राज्यों में ऊँट युद्ध के काम में आते हैं। इस लिए सभी राज्य अपने यहाँ अधिक ऊँट रखते हैं।

जैसलमेर की सेना में ऊँटों की संख्या दो सौ है। वहाँ के सभी सरदार अपनी सेना रखते हैं और उस सेना में ऊँट भी होते हैं। प्रत्येक ऊँट पर दो आदमी बैठते हैं। एक का मुख ऊँट के मुख की तरफ और दूसरे का उसकी पूंछ की तरफ होता है। युद्ध में ऊँटों के प्रयोग कई प्रकार से होते हैं।

खर अर्थात् गदहा—मरुभूमि के अन्य पशुओं में पाया जाता है। नील गाय, सिंह और हिरन भी मरुभूमि के कुछ भागों में मिलते हैं। यहाँ पर बाघ, लोमड़ी, सियार और सिंह भी पाये जाते हैं। पालतू पशुओं में ऊँटों के अतिरिक्त घोड़े, बैल, गायें, भेड़ें और बकरियाँ भी पायी जाती हैं। गदहे हल जोतने में भी काम आते हैं। बकरियाँ और भेड़ों को लोग अधिक संख्या में यहाँ पर पालते हैं। यहाँ के लोगों का विश्वास है कि बकरियाँ कार्तिक से लेकर चैत तक बिना पानी के रह सकती हैं। लोगों का यह विश्वास सही नहीं है। हरी पत्ती और हरी घास खाने के कारण वे कई-कई दिनों तक बिना पानी के बनी रहती हैं, यह सम्भव है। दाऊद पोतरा और भट्टी पोह के थलों की बकरियाँ और भेड़ें गरमी के आरम्भ में सिन्ध के मैदानों में चली चली जाती हैं, उनको रखने वाले गड़रिया लोग उनके दूध का मट्ठा बनाकर पीते हैं और उनके मक्खन से जो घी तैयार करते हैं, उसे वे अनाज तथा दूसरी चीजों के लेने में दे देते हैं। ऊँटों के चराने वाले उनका दूध पीकर अपनी रक्षा करते हैं और रोटी के स्थान पर जंगली फल खाते हैं।

वृक्षों में करील अथवा खैर का हम पहले उल्लेख कर चुके हैं। खैजरी के वृक्ष से छिलके को सुखा कर आटा तैयार किया जाता है। इसको वहाँ की भाषा में सांग्री कहते हैं। झल के वृक्ष बैसाख और जेठ में फल देते हैं। पीलू भोजन के काम में आता है। वहाँ के लोग बबूल के गोद को एकत्रित करते हैं। बेरों के वृक्ष भी पाये जाते हैं। इस प्रकार के वृक्षों की संख्या वहाँ अधिक होती हैं। जवास के रस का गोंद तैयार किया जाता है, वह औषधियों में काम आता है।

करील वृक्ष को भारतवर्ष में सभी लोग जानते हैं। इसे खैर भी कहते हैं। भारत के दूसरे स्थानों में उसका अचार डाला जाता है। लेकिन मरुभूमि में वह भोजन के लिए एकत्रित किया जाता है। यह एक तरह की झाड़ी का वृक्ष है। उसकी ऊँचाई दस फीट से पन्द्रह फीट तक होती है। इसकी हरी-हरी शाखाओं में पत्तियाँ नहीं होतीं। उनमें लाल रंग का फूल निकलता है और फल काले रंग का होता है। खाने के पहले एकत्रित किये हुए करील के फल चौबीस घण्टे तक पानी में भिगोकर रखे जाते हैं। उसके बाद उस पानी को फेंककर दो बार दूसरे पानी से धोया जाता है। इसके पश्चात् उसे उबाल कर नमक के साथ खाया जाता है। धनिक लोग घी में इसे तैयार करके रोटी के साथ खाते हैं। सभी लोग अपने घरों पर इसे सुखा कर रखा करते हैं।

सज्जी—एक छोटा सा पेड़ है। वह विशेष कर मरुभूमि के उत्तरी भाग में पैदा होता है। जैसलमेर के खदल नामक स्थान में इसके वृक्ष अधिक पाये जाते हैं। और भी कुछ स्थान हैं, जिसमें सज्जी के पेड़ बहुत पाये जाते हैं। साफ सज्जी के छोटे-छोटे पेड़ों को जमीन खोदकर भर देते हैं और आग लगातार तीन-तीन, चार-चार दिनों के बाद जो सज्जी निकाली जाती है, उसको साफ करते हैं। इस निकाली हुई सज्जी का बहुत से लोग व्यवसाय करते हैं सज्जी रुपये की एक सेर बिकती है। चारूं और मारवाड़ के रहने वाले इसको खरीद लेते हैं और वे फिर दूसरे दूकानदारों को बेचकर लाभ उठाते हैं। यह सज्जी तैयार होकर के सभी भागों में जाकर बिकती है। सिंध में इस का व्यवसाय अधिक होता है। यहाँ पर खरबूजा बहुत पैदा होता है। चिपरा, वाग्न और गोबर नाम की उसकी तीन किस्में होती हैं। यह खरबूजा खाने में अधिक स्वादिष्ट होता है।

———

जयपुर का इतिहास

उनसठवाँ परिच्छेद

जयपुर राज्य–उसका प्राचीन जीवन और नाम–राजधानी अयोध्या–रानी का भिखारी जीवन–भिखारिणी के बालक का भविष्य–उसके शासन का विस्तार–मीना लोगों का स्वतंत्र जीवन–मीना जाति की शाखायें–राजा पजून का शौर्य–पृथ्वीराज चौहान का सहायक पजून–शेखावाटी राज्य की स्थापना–राजा भगवानदास और मुगल बादशाह–दूरदर्शी और राजनीतिज्ञ–बादशाह अकबर–राजपूत राजाओं के साथ अकबर की नीति–सलीम के साथ राजा भगवानदास की लड़की का विवाह–मुगल-दरबार में घरेलू संघर्ष ।

अंग्रेज लेखकों ने राजस्थान का इतिहास लिखने में राज्य का नाम न देकर उसकी राजधानी का नाम शीर्षक में देकर लिखा है , जैसे मारवाड़ के स्थान पर जोधपुर और मेवाड़ के स्थान पर उदयपुर का नाम दिया है । जिस राज्य को हाड़ौती के नाम से लिखना चाहिए था , उसे उन्होंने कोटा और बूंदी का नाम दिया है । इसी प्रकार दूसरे राज्यों के सम्बन्ध में भी किया गया है । इसलिए पाठकों के सामने किसी प्रकार का भ्रम न उत्पन्न होना चाहिए ।

कछवाहे राजपूत जिस राज्य में रहते हैं , वह सर्व-साधारण में जयपुर के नाम से प्रसिद्ध है । चौहान और राठौर राजपूतों ने जिस प्रकार मरुभूमि की पुरानी जातियों को पराजित करके अपने नवीन राज्य कायम किये थे , ठीक उसी तरह जयपुर राज्य की भी स्थापना हुई थी । इस राज्य की प्रतिष्ठा करने वालों ने वहाँ के छोटे-छोटे राजाओं के शासन को मिटाया और उन सबके स्थान पर अपने राज्य की सृष्टि की । आज का विस्तृत जयपुर राज्य पहले ढूंढाड के नाम से प्रसिद्ध था । प्राचीन ग्रंथों से मालूम होता है कि ढूंढाड वहाँ के एक प्राचीन स्थान का नाम था । उन ग्रंथों से पता चलता है कि प्राचीन काल में बनेर नामक स्थान के पास ढूंढ नाम का एक प्रसिद्ध शिखर था । उसी से ढूंढाड नाम की उत्पत्ति हुई है । ढूंढ शिखर के सम्बन्ध में कहा जाता है कि चौहान वंश के प्रसिद्ध राजा अजमेर के नरेश बीसलदेव ने इसी शिखर पर तपस्या की थी । उसने अपनी प्रजा के साथ भयानक अत्याचार किये थे । इसीलिए वह राक्षस होकर पैदा हुआ । इस जन्म में भी वह पहले के समय प्रजा का संहार करता रहा । वह अपने राज्य की प्रजा को खा जाया करता था । उसकी इस दशा में राज्य के लोगों ने उसके पौत्र को उसके सामने पहुँचा दिया । उसे देखकर वह सचेत हो उठा । अपने पौत्र को वह संहार न कर सका और जमुना नदी के किनारे पर जाकर उसने अपनी आत्म-हत्या कर ली ।

यह जनश्रुति अब तक लोगों में चली आ रही है । ऐसा मालूम होता है कि राजा बीसलदेव अत्याचारी था और इसीलिए उसे लोग राक्षस कहा करते थे । वह प्रजा के साथ जिस प्रकार अत्याचार करता था , उसको प्रजा का संहार करना स्वाभाविक रूप से कहा जा सकता है । अपने वंशज पर इस प्रकार का अवसर आने के समय उसको ज्ञान उत्पन्न हुआ और वह अपने पापों का

प्रायश्चित्त करने के लिए ढूँढ के शिखर पर जाकर तपस्या करने लगा। उस जनश्रुति का अभिप्राय कुछ इस प्रकार जान पड़ता है।

अयोध्या कौशल राज्य की राजधानी थी। वहाँ के राजा रामचन्द्र के दूसरे पुत्र कुश से कुशवाहा अथवा कछवाह वंश की उत्पत्ति हुई। कुश के किसी वंशज ने अपने पूर्वजों की राजधानी को छोड़कर शोण नदी के किनारे रोहतास नाम का एक दुर्ग बनवाया था। × उसके बहुत दिनों बाद उसी वंश के राजा नल ने सम्वत् ३५१ सन् २९५ ई० में नरवर अथवा निबन्ध नाम की राजधानी कायम की। *

राजा नल के उत्तराधिकारियों ने 'पाल' की उपाधि धारण की थी। राजा नल से तेतीस पीढ़ियों के बाद सोढासिंह के पुत्र धोलाराय को उसके पिता के राज्य से निकाला गया और उसने सम्वत् १०२३ सन् ९६७ ईसवी में ढूँढाड नाम की राजधानी कायम की।

ऊपर यह लिखा जा चुका है कि जयपुर का प्राचीन नाम ढूँढाड था। अंग्रेज लेखकों ने जयपुर को अम्बेर के नाम से लिखा है। अम्बेर आमेर के नाम से भी प्रसिद्ध है। इस राज्य का इतिहास लिखने के लिए ऐतिहासिक सामग्री हमें मिली है, उसी का हमें आश्रय लेना पड़ता है। राजा नल से इकतीस पीढ़ी के बाद सोंढादेव ने नरवर में शासन किया। उसकी मृत्यु हो जाने पर उसके भाई ने अपने भतीजे धोलाराय के–जो उस समय केवल शिशु अवस्था में था–अधिकारों को छीन लिया और सिंहासन पर बैठा। धोलाराय की माँ अपने देवर का अत्याचार देखकर घबरा गयी और अपने पुत्र के प्राणों की चिंता करने लगी। वह किसी प्रकार अपने बालक शिशु की रक्षा करना चाहती थी। उसे अपने देवर से बहुत भय उत्पन्न हो गया था। उसको उससे सभी प्रकार की आशंकायें थीं। इसलिए उस अनाथ माता ने अपने छोटे बच्चे के प्राणों की रक्षा के लिए भिखारिणी का रूपधारण किया और अपने बालक धोलाराय को कपड़ों में लपेट कर वह अपने नगर से निकल गयी। अपने बालक को लिए हुए भिखारिणी माता जयपुर राज्य से पाँच मील की दूरी पर खोह गाँव में पहुँची। उस गाँव में मीना लोगों की आबादी थी। उस गाँव के बाहर एक स्थान पर रुककर उसने कुछ देर विश्राम करने का इरादा किया। इस प्रकार के कष्टों का सामना करने के लिए उसके जीवन में पहला अवसर था। वह भूख और प्यास से पीड़ित हो रही थी। पैदल चलने के कारण बहुत थक गयी थी। अपने चारों तरफ विपदाओं का पहाड़ देखकर वह बहुत घबरा रही थी। उसकी समझ में न आता था कि मेरे और मेरे बच्चे के भविष्य में क्या होने वाला है। उसके छोटे बालक का मुख सूख रहा था। उसकी यह दुरवस्था देखकर भिखारिणी राज माता की घबराहट बहुत बढ़ गयी। उस स्थान के निकट एक वृक्ष था। उसमें कुछ फल दिखायी पड़े। रानी ने उसके फलों को

× कुछ लेखकों का कहना है कि बिहार का रोहतासगढ़ राजा हरिश्चन्द्र के पुत्र रोहिताश्व का बनवाया हुआ है। साधारण तौर पर यह बात सही भी मालूम होती है—अनु०

* एक दूसरे ऐतिहासिक विवरण से प्रकट होता है कि राजा नल ने सम्बत् ३५१ में नरवर राजधानी की स्थापना की थी। परन्तु नल से धोलाराव तक तेतीस पुरुषों का जन्म होता है। यदि इनमें से प्रत्येक ने बाईस वर्ष तक राज्य किया तो ७२६ वर्ष होते हैं। धोलाराय सम्बत् १०२३ में निकाला गया था। इसलिए २७६ को घटा देने से २९७ वर्ष बाकी रहते हैं। इस प्रकार ५४ वर्ष का अंतर पड़ता है। यदि उनके शासन काल को २१ वर्ष का मान लिया जाय तो बहुत कम अन्तर रह जाता है और सम्वत् ३५१ में निषध राजधानी की स्थापना सही मालूम होती है।

लाकर अपनी क्षुधा मिटाने की इच्छा की। जिस पेड़ के नीचे वह रुकी थी, वहाँ पर अपने वस्त्रों में छोटे बालक को लिटा कर फल लेने के लिए गयी।

फल लेकर राजरानी ने लौटते हुए दूर से देखा कि उसके बालक के मस्तक पर अपना फन फैलाये हुए एक साँप बैठा है। इस दृश्य को देखकर वह एक साथ काँप उठी और चिल्ला कर रो उठी। उसी समय एक ब्राह्मण वहाँ पर आ पहुँचा। रानी की इस दुरवस्था को देखकर उसने कहा : "आप घबराये नहीं। घबराने का कोई कारण भी नहीं है। बालक के मस्तक पर साँप का यह दृश्य उसके उज्वल भविष्य की सूचना दे रहा है। आपका बालक किसी समय राज सिंहासन पर बैठेगा।"

ब्राह्मण के मुख से इस बात को सुनकर रानी को बहुत संतोष मिला। उसने ब्राह्मण से कहा : "इस समय मेरा यह बालक बहुत भूखा है।" वह कुछ और भी कहना चाहती थी, उसी समय उस ब्राह्मण ने खोह गाँव की तरफ संकेत किया उसने बताया कि वहाँ जाने पर आपकी सभी प्रकार व्यवस्था हो जायगी।

यह कहकर ब्राह्मण वहाँ से चला गया। बालक के मस्तक से साँप पहले ही हटकर चला गया था। रानी ने ब्राह्मण की बातों पर विश्वास किया और वह अपने बालक को लेकर खोहगाँव की तरफ रवाना हुई। उस नगर में प्रवेश करके रानी ने एक स्त्री से बातें की और उससे पूछा : "क्या मुझे कोई नौकरानी बनाकर रख सकता है? मैं केवल भोजन और कपड़ा चाहती हूँ।"

वह स्त्री खोहगांव के मीना राजा के यहां महल में दासी थी। रानी की बात को सुनकर वह उसे अपने साथ महल में ले गयी और अपनी रानी के उसने बातें कीं। मीना रानी धोलाराय की मां को अपने यहाँ दासी बनाकर रख लिया और उसे अपनी दासियों के साथ रहने की आज्ञा दी। धोलाराय की मां प्रसन्नता के साथ मीना रानी की दासियों के साथ रहने लगी। उसने वहां पर किसी को अपना परिचय नहीं दिया। वहाँ रहते हुए उसको बहुत दिन बीत गये। एक दिन धोला राय की मां को वहां पर भोजन बनाने का कार्य करना पड़ा। उसका बनाया हुआ भोजन मीना राजा लालनसी को बहुत पसन्द आया। राजा ने भोजन की प्रशंसा करते हुए कहा : "आज का भोजन बहुत स्वादिष्ट और मधुर बना है।"

मीना राजा के इस प्रकार भोजन की प्रशंसा करने पर धोलाराय की मां बुलायी गयी। उस समय धोलाराय की माँ को अपना परिचय देना पड़ा। मीना राजा ने परिचय जानकर उसका बड़ा सत्कार किया और उस दिन से वह धोलाराय की मां को बहन कहकर सम्बोधन करने लगा। धोलाराय उस दिन से मीना राजा का भाञ्जा होकर वहां पर रहा। लगातार उसका आदर और सम्मान बढ़ता गया। अपनी अवस्था के अनुसार धोलाराय ने वहां पर रहकर क्षत्रियोचित योग्यता प्राप्त की। इन दिनों में दिल्ली के सिंहासन पर तोमर वंशी राजा था। उसने समस्त भारतवर्ष में अपनी प्रभुता का विस्तार किया था। दूसरे राजा उसे कर दिया करते थे। चौदह वर्ष की अवस्था में धोलाराय को कर देने के लिए मीना राजा ने दिल्ली भेजा। धोलाराय को इस कार्य के सम्बन्ध में पाँच वर्ष तक दिल्ली में रहने का अवसर मिला। इन्हीं दिनों में एक मीना कवि के साथ उसका परिचय हुआ। धोलाराय एक राजपूत था। उसने राजवंश में जन्म लिया था। इसलिए उसके शरीर की रगों और नसों में राजपूती रक्त लहरें मार रहा था। उसके मनोभावों में शासन की अभिलाषा सजीव और शक्तिशाली हो रही थी। उसके जीवन में ऐसा होना सभी प्रकार स्वाभाविक था। मीना कवि के साथ मित्रता बढ़ जाने पर धोलाराय ने उससे अपनी अभिलाषा प्रकट की।

कवि धोलाराय के मन के भावों से अपरिचित न था। किसी प्रकार की अभिन्नता न होने के कारण दोनों में सभी प्रकार की बातें प्रायः हुआ करतीं। उसके साथ परामर्श करने में धोलाराय कभी संकोच का अनुभव न करता। उसके मन की अभिलाषा को समझकर मीना कवि ने कहा : "मीना राजा को नष्ट कर के आप उसके सिंहासन के अधिकारी बन सकते हैं।"

धोलाराय को अंधकार में प्रकाश दिखायी दिया। वह इसी प्रकार का परामर्श चाहता था। उसके मन की गम्भीरता को समझकर कवि ने कहा :"चिरकाल से प्रचलित प्रथा के अनुसार दिवाली के दिन सभी मीना राज्य के सरोवर में स्नान करते हैं। उस समय यहाँ का राजा भी स्नान करने के लिए आता है। ऐसे अवसर पर अपने सैनकों को लेकर आप अकस्मात् उस पर आक्रमण कीजिए। उसके मारे जाने पर आपको यहाँ के सिंहासन पर बैठने का अवसर मिलेगा।"

कवि के इस परामर्श को सुन कर धोलाराय ने गम्भीरता के साथ विचार किया और उसने एक योजना बना डाली। दीवाली का त्योहार आने पर धोलाराय ने बड़ी सावधानी और बुद्धिमानी से काम लिया। उसने दिल्ली पहुँच कर सैनिक सहायता प्राप्त की और अपनी योजना के अनुसार वह एक राजपूत सेना के साथ खोहगांव के समीप पहुँच गया। मीना लोगों के साथ स्नान के लिए सरोवर में प्रवेश करने पर धोलाराय ने एक साथ उस पर आक्रमण किया। राजा के बहुत से रक्षक सरोवर के भीतर मारे गये। धोलाराय ने अपने हाथ से मीना राजा का संहार किया और इसी समय उसने मीना कवि को भी—जिसने धोलाराय को इस प्रकार परामर्श दिया था—मार डाला। उसको मारने के समय धोलाराय ने कहा : "जो अपने राजा के साथ विश्वासघात कर सकता है, वह संसार में किसी का विश्वास-पात्र नहीं होता हो सकता।" धोलाराय ने मीना राजा को मार कर खोहगांव का अधिकार प्राप्त कर लिया। यहीं से ढूंढार, आमेर अथवा वर्तमान जयपुर राज्य की सृष्टि हुई।

खोहगांव पर अधिकार करने के बाद धोलाराय ने अपने राज्य को विस्तार देने की चेष्टा की। उन दिनों में जयपुर से तीस मील पूर्व की तरफ वाण गंगा के समीप दिओसा नामक स्थान में बड़गूजर राजपूत रहा करते थे। धोलाराय ने अपनी सेना लेकर उनके दुर्ग के पास जाकर बड़गूजर के राजा के पास संदेश भेजा : "आप अपनी लड़की का विवाह मेरे साथ कर दें।"

बड़गूजर के राजा ने इस प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया और कहा कि हम दोनों ही सूर्य वंशी हैं। इसलिए यह विवाह नहीं हो सकता। लेकिन दोनों तरफ की बातचीत होने के पश्चात् बड़गूजर के सरदार ने उस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया और उसने अपनी लड़की का विवाह धोलाराय के साथ कर दिया। बड़गूजर के सरदार के कोई पुत्र न था। इस लिए उसने धोलाराय को अपने राज्य का उत्तराधिकारी बना दिया और उसके बाद उसने धोलाराय के हाथों में राज्य का प्रबन्ध सौंप दिया।

इस विवाह के उपरान्त धोलाराय की शक्तियाँ पहले की अपेक्षा अधिक विशाल हो गयीं। उसने अपने राज्य को बढ़ाने की इच्छा की। माची नामक स्थान में राव नाटू नाम का एक मीना राजा रहता था। धोलाराय ने उसको पराजित करने का विचार किया और माची पर उसके आक्रमण करने पर दोनों ओर से युद्ध हुआ। उस युद्ध में धोलाराय की विजय हुई। मीना लोगों की सेना मारी गयी। धोलाराय ने माची राज्य में पहुँच कर अपना अधिकार किया और खोहगांव की अपेक्षा उस नगर को उसने अधिक पसन्द किया। इसी आधार पर वह अपनी राजधानी खोहगांव से माची ले आया और वहाँ पर उसने एक नया दुर्ग बनवाया। उस दुर्ग का नाम उसने रामगढ़ रखा।

इसके थोड़े दिनों के बाद धोलाराय ने अजमेर की राजकुमारी भारोनी के साथ विवाह किया। एक दिन धोलाराय अपनी रानी के साथ देवी के मंदिर में दर्शन करने के लिए गया था। वहाँ से उसके लौटने पर ग्यारह हजार शसस्त्र मीना सैनिकों ने एकत्रित होकर मार्ग में उसका सामना किया। धोलाराय निर्भीक और साहसी था। उसने एकत्रित मीना लोगों के साथ युद्ध किया। शत्रुओं की सेना अधिक थी। इसलिए युद्ध करते हुए धोलाराय मारा गया। उसके मर जाने पर उसके बचे हुए सैनिक वहाँ से भाग गये। धोलाराय की रानी गर्भवती थी इस लिए वह किसी प्रकार वहाँ से भाग गयी।

धोलाराय की मृत्यु के बाद उसकी विधवा रानी से एक बालक उत्पन्न हुआ। उसका नाम काँकिल रखा गया। काँकिल ने सिंहासन पर बैठकर ढूँढाड राज्य का उद्धार किया। उसका पुत्र मेदल भी अत्यन्त शूरवीर और पराक्रमी था। उसने अपनी सेना के साथ आमेर राज्य पर आक्रमण किया और मीना लोगों को पराजित करके उसने आमेर पर अधिकार कर लिया। मेदल राव ने अपने पिता के राज्य की लगातार वृद्धि की। उसने नान्दला लोगों को जीतकर उनके स्थान गातूर-गाती पर भी अधिकार कर लिया।

धोलाराय के वंशधर इन दिनों में अपने राज्य का विस्तार कर रहे थे। मेदलराव की मृत्यु हो जाने पर हणदेव ने उनके सिंहासन पर अधिकार किया। उसके राज्य के आस-पास दूर तक मीना लोग स्वतंत्र जीवन व्यतीत कर रहे थे। हणदेव ने लगातार उन लोगों के साथ युद्ध किया उसकी मृत्यु के बाद उसका लड़का कुन्तल सिंहासन पर बैठा। उसने पहाड़ी लोगों पर अपना शासन कायम किया। भूडवाड़ नामक स्थान पर इन दिनों में एक चौहान राजा रहता था। कुन्तल के साथ उसकी लड़की के विवाह का प्रस्ताव आया। राव कुन्तल ने उसे स्वीकार कर लिया और जिस समय वह सेना लेकर भूडवाड जाने के लिए तैयार हुआ, मीना लोगों ने उस समय उसके पास सन्देश भेजा कि "अगर आप हम लोगों के बीच से गुजरें तो अपनी पताका और नगाड़ा हम लोगों के अधिकार में छोड़ जावें।" राव कुन्तल ने मीना लोगों के इस प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया। उसके फल स्वरूप राव कुन्तल को विरोधी मीना लोगों के साथ युद्ध करना पड़ा। उस युद्ध में बहुत-से मीना मारे गये और शेष पराजित होकर भाग गये।

राव कुन्तल की मृत्यु हो जाने पर पजून नामक कछवाह राजपूत उसके सिंहासन पर बैठा। प्रसिद्ध कवि चन्दबरदाई ने अपने ग्रंथ में इसकी वीरता का अद्भुत वर्णन किया है।

ढूँढाड में कछवाहों का उदय होने के पहले वहाँ पर बड़े विस्तार से साथ मीना जाति के लोग रहते थे और यह जाति पाँच शाखाओं में विभक्त थी। अजमेर से ले कर जमना नदी तक विस्तृत पर्वत माला काली खो के नाम से प्रसिद्ध थी। मीना लोग वहाँ के मूल निवासी थे। वे लोग अम्बादेवी के पुजारी थे और उसी के नाम से उन लोगों ने अपने राज्य का नाम अम्बेर अथवा आमेर रखा। वहाँ की पर्वत माला में जो मीना लोग रहा करते थे, खोहगांव, माची और बहुत से प्रसिद्ध नगर उनके अधिकार में थे। बाबर और हुमायूँ तथा भारमल्ल के शासन काल में मीना लोग अत्यन्त शक्ति शाली थे। राजपूत लोग उनसे सदा सशंकित रहते थे। उन स्वतन्त्र मीनों के अधिकार में नाहन नाम का एक प्राचीन नगर भी था। भारमल्ल ने मुगलों की सहायता से उस नगर का विध्वंस और विनाश किया था। वहाँ पर जो मीना लोग रहते थे, उनके बल और पराक्रम की प्रशंसा ग्रन्थों में पढ़ने को मिलती है। नाहन नगर में जो मीना राजा रहता था, उसने अपने राज्य में बावन दुर्ग और तोरण द्वार बनवाये थे। दिल्ली के सिंहासन पर सब से पहले जो मुसलमान बादशाह बैठा

उस समय मीना लोग अत्यन्त शक्तिशाली थे। भारमल्ल ने नाहन का विध्वंस करके उसके स्थान पर मालिवाण नाम का नगर बसाया।

कुन्तल के बाद पजून उसके राजसिंहासन पर बैठा। उसके बल-विक्रम का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। उसके साथ चौहान सम्राट पृथ्वीराज की बहन का विवाह हुआ था। × सिंहासन पर बैठने के समय पृथ्वीराज ने एक सौ अस्सी राजाओं को अपने यहाँ आमंत्रित किया था और आने वाले राजाओं में राव पजून को ऊँचा स्थान दिया गया। पृथ्वीराज के साथ अनेक युद्धों में राव पजून ने संग्राम किया और दो संग्रामों में इसको बहुत बड़ी ख्याति मिली। शहाबुद्दीन गोरी को प्रथम युद्ध में पराजित करने का श्रेय बहुत-कुछ राव पजून को भी था। संग्राम से भागने के बाद पजून ने गोरी का पीछा किया और वह गजनी तक उसका पीछा करता हुआ गया था। चन्देलों के नगर महोबा पर अधिकार कर लेने से राव पजून की बड़ी प्रसिद्ध हुई थी। वह महोबा का शासक भी नियुक्त किया गया था। पृथ्वीराज ने कन्नौज के राजा जयचन्द की लड़की संयुक्ता को बल पूर्वक लाकर उसके साथ विवाह किया। उस समय पृथ्वीराज और जयचन्द में जो भीषण युद्ध हुआ था, उस युद्ध में पृथ्वीराज की तरफ से जो चौंसठ राजाओं ने युद्ध किया, उन चौसठ राजाओं में एक राव पजून भी था। वह युद्ध भयानक रूप से लगातार पाँच दिन तक हुआ था। उस युद्ध में राव पजून ने कन्नौज की विशाल सेना के साथ भयानक संग्राम किया और उसके कारण पृथ्वीराज संयुक्ता को लेकर सफलता पूर्वक दिल्ली चला गया। उस युद्ध में यद्यपि राव पजून मारा गया, लेकिन पृथ्वीराज की सफलता का बहुत कुछ कारण राव पजून था। उसने प्राण देकर युद्ध में पृथ्वीराज को विजयी बनाया। उसकी वीरता का वर्णन चन्द कवि ने अपने ग्रंथ में बहुत अधिक किया है। राव पजून के साथ मेवाड़ का गहिलोत सामन्त भी उस युद्ध में शामिल था और वे दोनों एक साथ युद्ध करते हुए मारे गये। राव पजून के युद्ध करने की प्रशंसा करते हुए प्रसिद्ध कवि चन्द ने लिखा है: जिस समय पृथ्वीराज का एक शूरवीर गोविन्दराय मारा गया, उस समय शत्रु-पक्ष के लोग बहुत प्रसन्न हुए। परन्तु उसके कुछ ही समय के बाद राव पजून अपने दोनों हाथों से भीषण मारस काट करता हुआ आगे बढ़ा। उस समय चार सौ शत्रुओं ने एक साथ राव पजून पर आक्रमण किया। यह देखकर पीरा, अजान बाहु, नरसिंह, कच्चर राय आदि सामन्तों ने पजून राव की सहायता में शत्रुओं के आक्रमण को रोकने के चेष्टा की। दोनों ओर से तलवारें और भाले चल रहे थे और रणभूमि में सहस्त्रों की संख्या में शूरवीर घायल होकर गिरते हुए दिखायी दे रहे थे। रक्त की नदी बह रही थी। राव पजून ने एतमाद पर जोर के साथ आक्रमण किया। उसका कटा हुआ सिर नीचे गिरा। उसके गिरते ही शत्रुओं के सैकड़ों भाले एक साथ राव पजून पर चले। पजून अपनी रक्षा न कर सका और वह भयानक रूप से घायल होकर गिर गया। गोविन्दराय और राव पजून के मारे जाने के समय एक घड़ी दिन बाकी रह गया था। राव पजून के गिरते ही शूरवीर पाल्हन ने युद्ध में प्रवेश किया। राव पजून के भाई पाल्हन के पहुँचते ही युद्ध की गति फिर भयानक हो उठी। कुछ देर के संग्राम के बाद कन्नौज की सेना की गति मंद पड़ गयी।

राव पजून युद्ध में पृथ्वीराज की ढाल हो कर रहता था। उसने अनेक भयानक अवसरों पर पृथ्वीराज की रक्षा की थी। कन्नौज की सेना के साथ होने वाले युद्ध में भी उसने अपनी जि वीरता का परिचय दिया, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। उसने अगणित शूरवीरों का संहार

× दूसरे लेखकों के अनुसार पजून पृथ्वीराज का बहनोई नहीं, साला था—अनु०

किया था। उसके मारे जाने के बाद उसके भाई और उसके पुत्र ने युद्ध में एक बार शत्रुओं के छक्के छुड़ा दिये थे। राव पजून के पुत्र मलैसी के शरीर पर उस युद्ध में तलवारों के सात जख्म भयानक रूप से हुए थे और उसके शरीर से इतना अधिक रक्त निकल रहा था कि उस रक्त से उसका घोड़ा भीग गया था।

चन्द कवि ने मलैसी की बीरता का भी बहुत वर्णन किया है। राव पजून के बाद उसका लड़का मलैसी आमेर के सिंहासन पर बैठा। मलैसी के बाद आमेर के सिंहासन पर जो ग्यारह राजा बैठे, वे इस प्रकार हैं: (१) बीजलदेव (२) राजदेव (३) कल्हण (४) कुन्तल (५) जोणसी (६) उदयकर्ण (७) नरसिंह (८) बनबीर (९) उद्धरण (१०) चन्द्रसेन और (११) पृथ्वीराज।

इन ग्यारह राजाओं में दस राजाओं का कोई उल्लेख इतिहास में नहीं मिलता। पृथ्वीराज के सम्बन्ध में लिखा गया है कि उसके सत्रह लड़के पैदा हु। उनमें पाँच की अकाल मृत्यु हो गयी थी शेष बारह पुत्रों में पृथ्वीराज ने अपने राज्य को बाँट दिया था। उन दिनों में आमेर-राज्य की भूमि बहुत थोड़ी थी और यह राज्य बहुत छोटा समझा जाता था। इस राज्य के बारह टुकड़े हो चुके थे और उसका प्रत्येक भाग पृथ्वीराज के एक-एक लड़के को मिला था। उदयकर्ण के शासन काल में परिवारिक संघर्ष पैदा हुआ। उसके पुत्र बाला जी ने अपना राज्य छोड़कर अमृतसर नामक नगर के साथ साथ कुछ अन्य स्थानों पर अधिकार कर लिया। उसके पुत्र शेखा जी ने सिंहासन पर बैठने के बाद शेखावाटी राज्य की स्थापना की। शेखावाटी का विस्तार उस समय दस हजार वर्गमील था। इस राज्य का वर्णन आवश्यकतानुसार आगे किया गया है।

पृथ्वीराज ने सिंधु नदी के तट पर बसे हुए देवल नामक स्थान को विजय किया था। लेकिन वह अपने ही पुत्र भीम से द्वारा मारा गया। जिस भीम ने पिता को मारकर अक्षम्य अपराध किया था। उसका बदला उसके पुत्र आसकर्ण ने उसको दिया और वह भी अपने लड़के के द्वारा मारा गया। पिता की हत्या करने के बाद भीम सभी की आँखों में अपराधी बन गया था और इसलिए लोगों ने उकसाने पर उसके पुत्र आसकर्ण ने उसकी हत्या की। अम्बेर राजवंश के इतिहास में पिता की हत्या करने वाले भीम और आसकर्ण का कोई उल्लेख नहीं मिलता।

धोलाराय से लेकर पृथ्वीराज तक इस वंश के प्रत्येक राजा ने स्वतंत्रतापूर्वक शासन किया। सम्राट पृथ्वीराज के समय राव पजून का शासन दिल्ली की अधीनता में था। परतु पृथ्वीराज की तरफ से उसके शासन में कभी किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं हुआ। बल्कि संबंधी होने के कारण सम्राट पृथ्वीराज के दरबार में राव पजून को सम्मान पूर्ण स्थान मिला था। अम्बेर के राजाओं में भारमल्ल ने सब से पहले मुस्लिम शासन के प्रति अपना मस्तक नीचा किया और यवन सम्राट के साथ उसने सामाजिक सम्बन्ध कायम किया। बाबर के शासन-काल में भारमल्ल ने उसकी अधीनता स्वीकार की और हुमायूँ के समय वह पांच सहस्त्र सेना पर अधिकारी बनाया गया।

भारमल्ल के लड़के भगवानदास ने सिंहासन पर बैठने के बाद यवन सम्राट के साथ सामाजिक घनिष्टता पैदा की। उसके फलस्वरूप वह बादशाह अकबर के दरबार में सम्मानपूर्ण माना गया। सम्राट अकबर शूरवीर, साहसी, दूरदर्शी और राजनीतिज्ञ था। अपनी राजनीति के बल पर उसने राजपूत राजाओं पर अधिकार प्राप्त किया था। उसने राजपूतों को अपना शुभचिंतक बनाने के लिए तलवार का ही नहीं—राजनीति का भी आश्रय लिया था। वह जानता था कि तलवार के बलपर जो अधिकार और प्रभुत्व प्राप्त किया जाता है, वह बहुत दिनों तक नहीं चलता। इसलिए उसने राउपूतों को मिलाने और उन पर अधिकार प्राप्त करने के लिए जिस नीति का प्रयोग किया था, वह सर्वथा सफल हुई और उसके फलस्वरूप वह भारतवर्ष का सब से बड़ा सम्राट माना गया।

अपनी इस नीति का श्रीगणेश अकबर ने भगवानदास से आरम्भ किया था। उसने किन उपायों से कछवाह राजा भगवानदास को मिलाकर अपना लिया था, उसका विशेष उल्लेख मुझे कहीं पढ़ने को नहीं मिला। सम्मान देकर कोई भी किसी के हृदय पर अधिकार कर सकता है, मालूम होता है कि अकबर ने भगवानदास के साथ इस नैतिक बल का प्रयोग किया था और उससे राजा भगवानदास इतना प्रभावित हुआ था कि उसने शाहजादा सलीम के साथ जो बाद में जहाँगीर के नाम से प्रसिद्ध हुआ—अपनी लड़की का विवाह कर दिया। उस लड़की से जहाँगीर के लड़के खुसरो का जन्म हुआ। ×

भगवानदास के भतीजे उत्तराधिकारी मानसिंह को अकबर के दरबार में श्रेष्ठ स्थान मिला था। भगवानदास ने उस दरबार में सम्मानित होकर सदा मुगल शासन का हित किया था और अनेक अवसरों पर अपने आप को संकट में डालकर मुगल शासन का हित किया। खुतन से लेकर समुन्द्र तक कितने हो राज्यों को अपनी तलवार से विजय करके वहाँ पर उसने मुगलों की पताका फहरायी थी। मानसिंह ने उड़ीसा और आसाम को जीतकर उनको बादशाह अकबर के आधीन बना दिया था। राजा मानसिंह से भयभीत होकर काबुल को भी अकबर की अधीनता स्वीकार करनी पड़ी थी। अपने इन कार्यों के फल स्वरूप मानसिंह बंगाल, बिहार, दक्षिण और काबुल का शासक नियुक्त हुआ था।

बादशाह अकबर ने राजपूत राजाओं पर प्रभुत्व कायम करने के लिए जिस नीति का आश्रय लिया था और उनके साथ वैवाहिक सम्बन्ध जोड़े थे, वह नीति किसी समय संकटपूर्ण भी हो सकती है, इसका स्पष्ट प्रमाण मानसिंह के द्वारा बादशाह अकबर को मिला था। जिन दिनों में बादशाह अकबर भयानक रूप से बीमार होकर अपने मरने की आशंका कर रहा था, मानसिंह ने अपने भाञ्जे खुसरो को मुगल सिंहासन पर बिठाने के लिए षड़यंत्रों का जाल बिछा दिया था। उसकी यह चेष्टा दरबार में सब को मालूम हो गयी और वह बंगाल का शासक बनाकर भेज दिया गया। उसके चले जाने के बाद शाहजादा खुसरो को कैद करके कारागार में रखा गया। मानसिंह चतुर और दूरदर्शी था। वह छिपे तौर पर अपने भाञ्जे का पक्ष समर्थन करता रहा। मानसिंह के अधिकार में बीस हजार राजपूतों की सेना थी। इसलिए बादशाह ने प्रकट रूप में उसके साथ शत्रुता नहीं की। कुछ इतिहासकारों ने लिखा है कि बादशाह ने दस करोड़ रुपये देकर मानसिंह को अपने अनुकूल बना लिया था। मुस्लिम इतिहासकारों ने लिखा हैं कि हिजरी १०२४ सन् १६१५ ईसवी में मानसिंह की बंगाल में मृत्यु हुई। परंतु दूसरे इतिहासों से पता चलता है कि वह उत्तर की तरफ

× मुस्लिम इतिहासकारों ने लिखा है कि हिजरी ९९३ सन् १५८६ ईसवी में भगवानदास की लड़की का विवाह शाहशादा सलीम के साथ हुआ था। उस समय राजा भगवानदास, उसका गोद लिया हुआ पुत्र मानसिंह और मानसिंह का लड़का—तीनों सम्राट की सेना में सम्मान पूर्ण स्थान पा चुके थे। मानसिंह को अधिक गौरव मिला था, क्योंकि उसने कई अवसरों पर बादशाह की प्रशसनीय सहायता की थी।

मूल लेखक की उपरोक्त टिप्पणी का समर्थन दूसरे लेखकों के द्वारा नहीं होता। उन लेखकों का कहना है कि मानसिंह भगवानदास का गोद लिया हुआ लड़का नहीं था। बल्कि भगवन्तदास का लड़का था और भगवानदास भगवन्तदास का भाई था। इस समय की सही घटनायें ये हैं कि राजा भारमल्ल ने अकबर के साथ अपनी लड़की का विवाह किया था। उसके बाद उसके बेटे भगवन्तदास ने अपनी लड़की का विवाह शाहजादा सलीम के साथ किया।—अनु०

खिलजी बादशाह के साथ युद्ध करने के लिए गया था। वहाँ पर ऊपर लिखे हुए समय से दो वर्ष बाद वह मारा गया।

राजा भगवानदास की मृत्यु हो जाने पर भावसिंह जयपुर के सिंहासन पर बैठा। मानसिंह के शासन काल में आमेर राज्य ने बड़ी उन्नति की। मुगल-दरबार में सम्मानित होकर मानसिंह ने अपने राज्य का विस्तार किया। उसने अनेक राज्यों पर आक्रमण करके जो अपरिमित सम्पति लूटी थी, उसके द्वारा उसने आमेर-राज्य को शक्तिशाली बना दिया था। धोलाराय के बाद जो आमेर-राज्य एक साधारण राज्य समझा जाता था, मानसिंह के समय वह एक शक्तिशाली और तिस्तृत राज्य हो गया था। भारतवर्ष के इतिहास में कछवाहों अथवा कुशवाहा लोगों को शूरवीर नहीं माना गया, परन्तु राजा भगवानदास और मानसिंह के समय कछवाहा लोगों ने खुतन से समुद्र तक अपने बल, पराक्रम और वैभव की प्रतिष्ठा की थी। मानसिंह बादशाह की आधीनता में था। लेकिन उसके साथ काम करने वाली राजपूत सेना बादशाह की सेना से अधिक शक्तिशाली समझी जाती थी। मानसिंह के मरजाने के बाद उसका बेटा राव भावसिंह आमेर के राज सिंहासन पर बैठा। बादशाह ने स्वयं उसका अभिषेक किया और पंचहजारी मनसब का पद देकर उसको सम्मानित किया। लेकिन भावसिंह बुद्धिमान न था। वह मदिरा पीने का अधिक अभ्यासी था। अधिक मदिरा पीने के कारण सिंहासन पर बैठने के कई वर्ष बाद हिजरी १०३० में उसकी मृत्यु हो गयी। इतिहास में उसके शासन का अधिक कोई विवरण नहीं लिखा गया।

भावसिंह के मरने के बाद उसका बेटा महासिंह राज सिंहासन पर बैठा। × महासिंह भी विलासी और अधिक मदिरा-सेवी था। इसलिए थोड़े ही दिनों के बाद उसकी भी मृत्यु हो गयी। मानसिंह के बाद आमेर के सिंहासन पर जो बैठे, उनकी अयोग्यता के कारण आमेर-राज्य निर्बल पड़ गया। इन दिनों में जोधपुर के राजाओं ने मुगल दरबार में अपनी प्रतिष्ठा बना ली थी। महासिंह के मर जाने पर आमेर के सिंहासन पर कौन बैठेगा, उस राज्य में यह एक प्रश्न पैदा हुआ।

मानसिंह के बाद जिन दो अयोग्य उत्तराधिकारियों ने आमेर के सिंहासन पर बैठकर, राज्य को क्षीण और दुर्बल बनाया था, उसकी पूर्त्ति जयसिंह ने की। जयसिंह मिर्जा राजा के नाम से प्रसिद्ध हुआ। राजा जयसिंह ने कई बातों में मानसिंह का अनुकरण किया। राजा मान सिंह ने बादशाह अकबर की सहायता करके जिस प्रकार मुगल-दरबार में सम्मानपूर्ण पद प्राप्त किया था, ठीक उसी प्रकार मिर्जा राजा जयसिंह ने बादशाह औरंगजेब के शासन काल में मुगल साम्राज्य के साथ उपकार किये। अनेक युद्धों में औरंगजेब के साथ रहकर जयसिंह ने उसके शत्रुओं से युद्ध किया और विजय प्राप्त की। बादशाह औरंगजेब जयसिंह की वीरता और ईमानदारी को देखकर बहुत संतुष्ट हुआ और प्रसन्न होकर उसने जयसिंह को छै हजारी मनसब का पद दिया।

मिर्जा राजा जयसिंह ने सभी प्रकार मुगल-साम्राज्य की सहायता की। बादशाह के प्रभुत्व को बढ़ाने के लिए अनेक अवसरों पर उसने अद्भुत कार्य किये। दक्षिण में जिस शिवा जी के कारण बादशाह को बहुत समय से कोई सफलता न मिल रही थी और कई एक युद्धों में जिस शिवा जी ने बादशाह की फौज को छिन्न-भिन्न किया था, उस शिवा जी को बादशाह औरंगजेब के यहाँ कैदी बनाकर लाने का कार्य अम्बेर के राजा जयसिंह ने किया। कैद करने के समय राजा जयसिंह ने शूरवीर मराठा शिवाजी को बचन दिया था कि बादशाह के द्वारा आपका कोई अहित न होगा,

---

× महासिंह भावसिंह का बेटा नहीं था, बल्कि मानसिंह के लड़के जगत सिंह का बेटा था। ऐसा कुछ लेखकों का कहना है—अनु०

इसका उत्तरादायित्व मेरे ऊपर है। शिवा जी पर जयसिंह की इस बाद बात का प्रभाव पड़ा था और उसने पूर्णरूप से जयसिंह का विश्वास किया था। लेकिन शिवा जी के बंदी होकर आ जाने पर औरंगजेब ने उसके साथ विश्वासघात करने की चेष्टा की। शिवाजी उस समय बंदी अवस्था में बादशाहकी आधीनता में था। उसने जयसिंह का विश्वास किया था। उसको जयसिंह पर किसी प्रकार का संदेह न था। बादशाह औरंगजेब के पास आने पर उसने जयसिंह के द्वारा कई एक अच्छी बातों की आशा की थी। परन्तु औररंगजेब उसका उलटा हुआ। जीवन की इस भीषण अवस्था में जयसिंह ने अपने बचनों का पालन किया। उसने शिवा जी को विश्वास दिलाया था। वह शिवाजी के साथ विश्वासघात न कर सका। जयसिंह ने बादशाह के भय की परवाह न की और उसने दिल्ली से शिवा जी के भाग जाने में निर्भीक होकर सहायता की। इसका परिणाम यह हुआ कि औरंगजेब से वह रहस्य अप्रकट न रह सका। बादशाह छिपे तौर पर जयसिंह से अप्रसन्न रहने लगा।

इन्हीं दिनों में मुगल-सिंहासन का अधिकार प्राप्त करने के लिए बादशाह औरंगजेब के यहां संघर्ष पैदा हुआ। मिर्जा राजा जयसिंह ने आरम्भ में सुलतान दारा के पक्ष का समर्थन किया। लेकिन उसके बाद उसने दारा का पक्ष छोड़ दिया। औरंगजेब जयसिंह से बहुत ईर्षा करने लगा था और वह छिपे तौर पर उसके सर्वनाश की चेष्टा कर रहा था। भारतीय इतिहासकारों के अनुसार, मिर्जा राजा जयसिंह अधिकार में बाईस हजार अश्वारोही सेना थी और प्रथम श्रेणी के बाईस प्रधान जागीरदार उसके नियंत्रण में काम करते थे। जयसिंह ने एक दिन अपने बाईस शूरवीर जागीरदारों के साथ मुगल-दरबार में बैठकर अपने दोनों हाथों में एक-एक गिलास लेकर कहा : "मेरे हाथों का एक गिलास दिल्ली और दूसरा सितारा है।" जिस गिलास को उससे दिल्ली कहा, उसे पृथ्वी पर पटक दिया और दूसरे गिलास को टुकड़े करके उसने कहा : सितारा का पतन हो जाने से दिल्ली का सौभाग्य मेरे दाहिने हाथ में है। यदि मैं चाहूँ तो आसानी के साथ में दिल्ली का पतन कर सकता हूँ।"

दरबार में कही हुई जयसिंह की यह बात बादशाह औरंगजेब तक पहुँच गयी। उसमें सब-कुछ करने की क्षमता इन दिनों में थी। वह दिल्ली का सम्राट था। उसने न जाने कितने राजपूत राजाओं का सर्वनाश किया था। उसने जिस तरह से जसवंत सिंह के जीवन का नाश किया था।, उसी घृणित तरीके से उसने जयसिंह का सार्वनाश करने का निश्चय किया। औरंगजेब भयानक षड़यंत्रकारी था। उसने जयसिंह के विरुद्ध एक विषैले षड़यंत्र की रचना की। राजस्थान की प्रथा के अनुसार, बड़े राजकुमार को ही पिता का सिंहासन प्राप्त होता है। जयसिंह के दो लड़के थे। रामसिंह और कीरत सिंह। बड़ा होने के कारण रामसिंह पिता का उत्तराधिकारी था। लेकिन बादशाह औरंगजेब ने छोटे लड़के कीरत सिंह को उकसा कर कहा : "जयसिंह के मरने के बाद आमेर का राज्यधिकार रामसिंह को मिलेगा। लेकिन यदि तुम अपने पिता जयसिंह को मार डालो तो राजस्थान की प्रथा का उल्लंघन करके मैं तुमको आमेर के राज-सिंहासन पर बिठाऊंगा। इस बात का मैं तुमको वचन देता हूँ।"

राजकुमार कीरत सिंह को संसार का ज्ञान न था। वह राजनीति की कलुषित, चालों से अपरिचित था। बादशाह औरंगजेब के षड़यंत्र का जादू उस पर काम कर गया। राज्य का प्रलोभन बुरा होता है। औरंगजेब ने सिखा-पढ़ाकर राजकुमार कीरत सिंह को जयसिंह के विरुद्ध तैयार कर दिया और कीरत सिंह ने अफीम के साथ विष मिलाकर अपने पिता जयसिंह को पिला दिया। उससे उसकी मृत्यु हो गयी। इस प्रकार पिता का सर्वनाश करके राज-सिंहासन प्राप्त करने के लिए कीरत सिंह बादशाह औरंगजेब के पास गया। बादशाह का मनोर्थ पूरा हो चुका था। अब उसको

कीरत सिंह की खुशामद करने की आवश्यकता न थी। उसने उपेक्षा पूर्ण उसके साथ व्यवहार किया और आमेर के राज-सिंहासन पर बिठाने के स्थान पर बादशाह ने कीरत सिंह को कामा नामक एक जिला जागीर में दे दिया।

जयसिंह की मृत्यु के पश्चात् उसका बड़ा लड़का रामसिंह आमेर के सिंहासन पर बैठा। जयसिंह को मुगल दरबार में छै हजारी मनसब का पद मिला था। परन्तु रामसिंह को दरबार से चार हजारी मनसब का पद दिया गया। इसके बाद उसे आसाम के युद्ध में जाना पड़ा। सम्वत् १७४६ में रामसिंह की मृत्यु हो गयी। उसके बाद उसका लड़का विशन सिंह आमेर के राज-सिंहासन पर बैठा।

जयसिंह के बाद आमेर राज्य का फिर से पतन आरम्भ हुआ। इन दिनों में वहाँ का शासन मुगल बादशाह की उंगलियों पर चल रहा था। बादशाह औरंगजेब किसी का शुभ चिंतक न था। जिसने अपने पिता, भाइयों और बहनों का सर्वनाम किया था, वह किसी दूसरे का शुभ चिंतक कैसे हो सकता था। स्वाभिमानी जयसिंह ने कभी औरंगजेब के षडयंत्रों की परवा न की थी। उसने शिवाजी को जो बचन दिया था, उसकी उसने पूर्ण रूप से रक्षा की और उसके फलस्वरूप उसके प्राणों की हत्या हुई। अपनी ईमानदारी का यह पुरस्कार बादशाह औरंगजेब से जयसिंह को मिला।

इन दिनों में आमेर का राज्य बहुत निर्बल पड़ गया था। दिल्ली दरबार में उस राज्य को जो सम्मान प्राप्त हुआ था, वह भी अब पहले का-सा न रह गया था। इसलिए विशन सिंह को तीन हजारी मनसब का पद मिला। वह बहुत दिनों तक जीवित न रहा। सम्वत् १७५६ में बहादुर शाह के साथ काबुल के युद्ध में गया था। वहीं पर उसकी मृत्यु हो गयी।

साठवाँ परिच्छेद

राजा सवाई जयसिंह की ख्याति–ज्योतिष, विज्ञान और इतिहास का विशेषज्ञ सवाई जयसिंह–अम्बेर-राज्य की उन्नति–सौतेलेपन का दुष्परिणाम–राज्य के लिए भाई की हत्या–आमेर-राज्य।

प्रथम राजा जयसिंह ने जिस प्रकार मिर्जा राजा जयसिंह के नाम से प्रसिद्ध पायी थी, ठीक उसी प्रकार द्वितीय राजा जयसिंह सवाई जयसिंह के नाम से प्रसिद्ध हुआ। बादशाह औरंगजेब के शासन के चवालीसवें वर्ष सम्वत् १७५५ सन् १६९९ ईसवी में वह राज सिंहासन पर बैठा। इसके छै वर्ष बाद औरंगजेब की मृत्यु हुई। सवाई जयसिंह ने दक्षिण के युद्ध में अपने साहस और शौर्य का परिचय दिया था। औरंगजेब की मृत्यु के पहले मुगल दरबार में सिंहासन का संघर्ष पैदा होने पर सवाई जयसिंह ने आजमशाह के लड़के शाहजादा बेदार वख्त का पक्ष लिया था और उसकी सहायता के लिए वह धौलपुर के युद्ध में गया था। उस संग्राम में बेदार वख्त मारा गया और शाह आलम बहादुरशाह के नाम से दिल्ली के सिंहासन पर बैठा। सवाई जयसिंह ने बेदार वख्त का पक्ष लेकर शाह आलम का विरोध किया था। इसलिए आमेर का राज्य मुगल साम्राज्य से अलग कर दिया गया और सम्राट शाह आलम की तरफ से एक व्यक्ति आमेर राज्य का शासक बनाकर

भेज दिया गया। सवाई जयसिंह ने बादशाह के इस कार्य को सहन नहीं किया। उसने कछवाहों की सेना लेकर मुगलों का सामना किया और उसने बादशाह की फौज को पराजित करके भगा दिया। इस घटना के बाद सवाई जयसिंह और बादशाह के बीच भयानक शत्रुता पैदा हो गयी। सवाई जयसिंह ने उस शत्रुता की परवाह न की और मुगलों का सामना करने के लिए उसने मारवाड़ के राजा अजीत सिंह के साथ संधि कर ली।

सवाई जयसिंह ने चवालीस वर्ष तक आमेर के सिंहासन पर बैठकर शासन किया। इस बीच में उसे कई बार युद्ध करने पड़े। वह मेवाड़ और बूंदी राज्य का कठोर शत्रु था। उसकी इस शत्रुता का वर्णन मेवाड़ और बूंदी-राज्य के इतिहास में किया गया है। सवाई जयसिंहके शासनकाल में मुगल-साम्राज्य में अराजकता की वृद्धि हो रही थी और उसके फलस्वरूप तैमूर के वंशजों का शासन बड़ी तेजी के साथ छिन्न-भिन्न होता जा रहा था। सवाई जयसिंह स्वाभिमानी राजपूत था और अपने स्वाभिमान के कारण ही उसको कई बार युद्ध करना पड़ा। उन युद्धों में उसने सदा अपने गौरव की रक्षा की। मुगलों की विशाल शक्तियां उसे मिटा न सकी।

शासन में राजनीति और न्याय के नाम पर सवाई जयसिंह का स्थान ऊँचा है, इसमें किसी का मतभेद नहीं हो सकता। यह दूसरी बात है कि विदेशी इतिहासकारों ने निष्पक्ष होकर उसके गौरव का वर्णन नहीं किया। सवाई जयसिंह ने अपने नाम पर जयपुर नामक राजधानी की स्थापना की। उस राजधानी में शिल्प और विज्ञान की बहुत उन्नति हुई। जिसके कारण प्राचीन आमेर की राजधानी का गौरव फीका पड़ गया। इन दोनों राजधानियों में छै मील की दूरी थी और यह दूरी बने हुए दुर्गों की श्रेणी के द्वारा मालूम न पड़ती थी। उन दिनों में जितनी भी राजधानियाँ बनी हुई थी, उन सबमें जयपुर की राजधानी श्रेष्ठ थी। उसका निर्माण वैज्ञानिक रूप से किया गया था। उसमें बने हुए राज-मार्ग अनेक प्रकार से सुविधा-पूर्ण थे। कहा जाता है कि विद्याधर नामक एक बंगाली ने इस राजधानी का नक्शा तैयार किया था। सवाई जयसिंह ने ज्योतिष, विज्ञान और इतिहास में बड़ी योग्यता प्राप्त की थी। विद्याधर बंगाली उसके इस कार्य में प्रधान सहयोगी था। यों तो अनेक राजपूत राजाओं ने ज्योतिष में ज्ञान प्राप्त किया था। परन्तु सवाई जयसिंह ने विशेष रूप से ज्योतिष में अधिकार प्राप्त किया। अपनी शिक्षा और अध्ययन के द्वारा वह एक अच्छा वैज्ञानिक बन गया। ज्योतिष में उसकी बढ़ी हुई योग्यता को देखकर दिल्ली के बादशाह मोहम्मदशाह ने पञ्चाङ्ग के संशोधन का कार्य उसको सौंपा था। राजा सवाई जयसिंह को चन्द्रमा, सूर्य और दूसरे ग्रहों तथा नक्षत्रों के सम्बन्ध का बहुत अच्छा ज्ञान था। इसके लिए उसने अनुभव और ज्ञान से अनेक प्रकार के यंत्रों की रचना की थी और दिल्ली, जयपुर, उज्जैन, बाराणसी और मथुरा आदि प्रसिद्ध नगरों में विशाल मंदिर बनाकर उसने अपने समस्त यंत्रों को वहाँ पर रखा था। इस प्रकार के कार्य में सवाई जयसिंह को अत्यधिक रुचि थी और उस रुचि के कारण उसे प्रशंसनीय सफलता मिली। भारत के अनेक प्रसिद्ध नगरों में उसके द्वारा जो मान-मंदिर बने थे और उनमें उसके जो यंत्र रखे गये, उनकी प्रशंसा इस विषय के अनेक विदेशी विद्वानों ने की है। ×

× काशी के मान मंदिर में जाने का जिनको अवसर मिला है, उन्होंने वहाँ पर इस प्रकार के अनेक यंत्र और उसकी दूसरी सामग्री देखी होगी। यह बात अवश्य है कि इतना समय बीत जाने के बाद उसके यंत्रों और उपकरणों की अवस्था पहले की सी न रह गयी हो। उन यंत्रों को देखकर पश्चिमी अनेक ज्योतिषियों ने सवाई जयसिंह की प्रशंसा की है।

जयसिंह ने अपने यंत्रों का आविष्कार करने के पहले समरकन्द के राज-ज्योतिषी उलगबेग के बनाये हुये यंत्रों का प्रयोग किया था। परन्तु उनसे उसको संतोष न मिला। इसके बाद सात वर्ष तक अनेक प्रकार की परीक्षायें और अनुभव करके उसने अपने यंत्रों की रचना का कार्य आरम्भ किया। इन्हीं दिनों में मैन्युएल नामक एक मिशनरी पादरी पुर्तगाल से भारत में आया था। उससे मिलकर सवाई जयसिंह ने पुर्तगाल-राज्य की ज्योतिष के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करने की कोशिश की और इस कार्य के लिए उसने अपने कई एक योग्य सहयोगियों को उस पादरी के साथ पुर्तगाल भेजा था। वहाँ के राजा ने जेवियर डि सिलवा नामक एक व्यक्ति को भारतवर्ष भेजा। उसने जयपुर में आकर पुर्तगाल के डि ला हायर के बनाये हुए यंत्र सवाई जयसिंह को दिये थे। उन यंत्रों की परीक्षा करके सवाई जयसिंह ने चन्द्रमा के स्थान के सम्बन्ध में आधी डिगरी की भूल साबित की और इस बात को स्वीकार किया कि दूसरे ग्रहों के सम्बन्ध में इन यंत्रों में इस प्रकार की भूल नहीं है। सवाई जयसिंह ने एक तुर्की ज्योतिषी के बनाए हुए यंत्रों के सम्बन्ध में भी इसी प्रकार का निर्णय दिया था।

ज्योतिष-विज्ञान में उन्नति करने और मान मन्दिर बनवाने के सिवा सवाई जयसिंह ने यात्रियों की सुविधा के लिए अपने राज्य में बहुत-सा धन व्यय करके अनेक धर्मशालायें बनवायी हैं। इसमें सन्देह नहीं कि उसके हृदय में सार्वजनिक हितों के लिए उदारता थी। उसके अनेक कार्यों के द्वारा उसके इस उज्वल हृदय का प्रमाण मिलता है। यह बात सही है कि राजस्थान के अनेक राजपूत वीरों में सवाई जयसिंह की अपेक्षा अधिक साहस और शौर्य था। लेकिन अन्य गुणों के सम्बन्ध में जो ख्याति सवाई जयसिंह को मिली वह किसी दूसरे को नहीं मिली। उसके शासन काल में सम्पूर्ण देश में अविराम युद्ध हो रहे थे और मुगल बादशाह के दरबार में षड़यन्त्रों का अटूट जाल बिछा हुआ था, उस समय सवाई जयसिंह वर्तमान युद्धों और षड़यन्त्रों से अपने आपको पृथक न रख सका। कदाचित ऐसा सम्भव भी न था। मुगल साम्राज्य की शक्तियां क्षीण पड़ गयी थीं, चारों ओर अराजकता बढ़ रही थी और बाहरी जातियां लूट मार करके देश का सर्वनाश कर रही थीं, उन सङ्कटपूर्ण दिनों में भी सवाई जयसिंह ने आमेर के राज्य की सम्पत्ति और उन्नति में अनेक प्रकार की रक्षा की थी। इससे उसकी योग्यता का निर्मल प्रमाण मिलता है। सवाई जय सिंह से यह छिपा न था कि निकट भविष्य में मुगल-साम्राज्य का पतन होने जा रहा है, लेकिन उस समय भी अपने राज्य को सुरक्षित रखने के साथ-साथ उसने अवसरवादी बनकर कुछ लाभ नहीं उठाया। उसने बादशाह के साथ कभी विश्वासघात करने का विचार नहीं किया। अवसरवादी होकर लाभ उटा लेने से मनुष्य की श्रेष्ठता का परिचय नहीं मिलता और न इस प्रकार प्राप्त की हुई उन्नति अधिक समय तक स्थायी होकर रहती है। जिस समय मुगल-दरबार में फर्रुखसियर का संहार करके राज्याधिकार छीन लेने का षड्यंत्र चल रहा था, उस समय कई एक राजाओं ने उसका साथ दिया था। उन राजाओं में सवाई जयसिंह भी एक था। फर्रुखसियर में कई एक निर्बलतायें थीं। वह अपने पूर्वजों की तरह योग्य और साहसी न था। यदि उसमें कम-जोरियां न होती तो सवाई जयसिंह की तरह के राजाओं की सहायता से उसका कभी अकल्याण न होता।

मेवाड़ के राणा वंश के साथ सवाई जयसिंह के राजनीतिक और सामाजिक सम्बन्ध थे। इस प्रकार की बातों का वर्णन मेवाड़ के इतिहास में किया जा चुका है। जिस समय सैयद बन्धुओं ने फर्रुखसियर को मार कर अपना प्रभुत्व कायम किया था, उस समय राजस्थान का कोई भी राजा

सभी प्रकार का लाभ उठा सकता था। लेकिन जयसिंह ने ऐसा नहीं किया। फरुखसियर को अयोग्य समझ कर और उसके मारे जाने पर वह अपनी राजधानी लौट गया और ज्योतिष-सम्बन्धी बातों के अध्ययन तथा मनन में लवलीन रहने लगा। फर्रुखसियर के मारे जाने के बाद मुगल राज्य में राजनीतिक विप्लव हुए। तीन वर्षों के बाद सन् १७२१ ईसवी में बादशाह मोहम्मदशाहके द्वारा दोनों सैयद बंधु मारे गये। इसके बाद जितने भी विप्लव हो रहे थे, शान्त हो गये। विप्लव के तीन वर्षों में सवाई जयसिंह अपनी राजधानी में रहकर ज्योतिष-विज्ञान की उन्नति में लगा था। राज्य में शान्ति की व्यवस्था करने पर बादशाह ने सवाई जयसिंह को अपने यहाँ बुलाया और उसको आगरा तथा मालवा का शासक नियुक्त किया। जयसिंह ने शान्तिपूर्ण दिनों में मानमन्दिरों के निर्माण का कार्य किया था। मान मन्दिरों का निर्माण सवाई जयसिंह के जीवन का एक श्रेष्ठ कार्य था। × उसे इस विषय से इतना स्नेह था कि वह संसार के दूसरे देशों से ज्योतिष के प्रसिद्ध विद्वानों को अपने यहाँ बुलाया करता था और उनका वह बहुत सम्मान करता था। उसके साथ देश के अनेक विद्वान ज्योतिषी रहा करते थे और राज्य की तरफ से उनको जागीरें मिली हुई थीं।

ज्योतिष के अध्ययन और मनन में लगे रहने पर भी सवाई जयसिंह ने अपने राज्य अम्बेर की अनेक प्रकार से उस समय रक्षा की थी, जब भारतवर्ष में आपसी विद्रोह के साथ-साथ, आक्रमणकारी जातियों के लगातार अत्याचार हो रहे थे। मुगल बादशाह के दरबार में रहकर चिरकाल से चले आने वाले जजिया कर को खतम करा देने का उसने सफल प्रयत्न किया था। अम्बेर राज्य के निकट अधिक संख्या में शक्तिशाली जाट लोग रहते थे और उनके द्वारा अम्बेर-राज्य में भयानक उत्पात हुआ करते थे। राजा सवाई जयसिंह ने बड़ी बुद्धिमानी और दूरदर्शिता के साथ उनका दमन किया।

सन् १७३२ ईसवी में शासक नियुक्त होने पर जयसिंह को मराठों के साथ संघर्ष करना पड़ा था। उन दिनों में संगठित होकर उन लोगों ने देश में भयानक अत्याचार आरम्भ कर दिये थे। मराठों की संगठित शक्तियों को देखकर सवाई जयसिंह ने समझ लिया कि उनको रोक सकना बहुत कठिन है। इसलिए उसने मराठों के नेता बाजीराव के साथ संधि कर ली। इस संधि के

× सवाई जयसिंह ने अपने लेखों में स्वीकार किया है कि मैंने सन् १७२८ ईसवी में ज्योतिष-गणना और यन्त्र बनाने के कार्य का अन्त किया। इसके पहले सात वर्षों तक मैं इस कार्य में विशेष रूप से लवलीन रहा। उन दिनों में मैंने और कोई विशेष कार्य नहीं किया।

डाक्टर डब्लू हण्टर ने भारतवर्ष आने पर सवाई जयसिंह के बनवाये हुए मान मंदिरों और ज्योतिष के यंत्रों की परीक्षा करके जयसिंह की योग्यता की प्रशंसा की। उज्जैन जाने पर डाक्टर हण्टर ने ज्योतिष के एक युवक पण्डित से बातचीत की। उस युवक का पितामह राजा सवाई जयसिंह का घनिष्ट मित्र था और उसे ज्योतिषराय की उपाधि मिली थी। राजा जयसिंह ने उसे पाँच हजार रुपये वार्षिक की जागीर भी दी थी। मराठों के अत्याचारों से वह जागीर अब नष्ट हो गयी है। डाक्टर हण्टर ने उस युवक के साथ ज्योतिष के सम्बन्ध में बातचीत करके उसकी योग्यता को स्वीकार किया और उसकी प्रतिभा की प्रशंसा की। डाक्टर हण्टर के उज्जैन से चले जाने के बाद सन् १७९३ ईसवी में राजा सवाई जयसिंह की जयपुर में मृत्यु हो गयी।

प्रसिद्ध लेखक स्काट ने बादशाह औरंगजेब के उत्तराधिकारियों पर एक ऐतिहासिक ग्रन्थ लिखा है। उसमें लेखक ने राजा जयसिंह की मृत्यु का मार्मिक वर्णन किया है।

सम्बन्ध में इतिहास में कोई ऐसा उल्लेख नहीं मिलता, जिससे उसका स्पष्टीकरण हो सके। इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि इस संधि का कारण क्या था। इस देश के एक ऐतिहासिक ग्रंथ से पता चलता है कि वे दोनों एक ही देश के रहने वाले थे और उन दोनों का एक ही धर्म था, इसलिए उनमें संधि हो गयी। यद्यपि यह बात बहुत संगत नहीं मालूम होती। हमारा अनुमान है कि उन दोनों के बीच संधि हो जाने का कोई विशेष कारण था। लेकिन वह कारण क्या था, यह नहीं कहा जा सकता। बाजीराव के साथ उसकी संधि हुई और उसके फलस्वरूप कोई संघर्ष नहीं बढ़ा। सवाई जयसिंह की सहायता से ही बाजीराव मालवा का सूबेदार बना था। उस समय की घटनाओं के आधार पर इस देश के कुछ लेखकों ने लिखा है कि सवाई जयसिंह ने राजस्थान में मराठों के आने का रास्ता खोल दिया था। यह धारणा भी बहुत सही नहीं मालूम होती। इसलिए कि सवाई जयसिंह की संधि के बाद मराठों के आक्रमण और अत्याचार कुछ दिनों के लिए खत्म हो गये। यद्यपि उसके कुछ समय बाद वे फिर से आरम्भ हुए और दिल्ली तक वे आक्रमण पहुँच गये। सन् १७३९ ईसवी में नादिरशाह के भारत पर आक्रमण करने पर राजपूत राजाओं ने मुगलों की तरफ से उसके साथ युद्ध नहीं किया। इसके कई कारण थे। नादिरशाह ने जिस विशाल सेना को लेकर भारत पर आक्रमण किया था, उसका सामना करना और उसे पराजित करना आसान न था। इस बात को राजपूत राजा जानते थे। एक कारण यह भी था कि राजपूतों के साथ मुगल बादशाहों के जो सम्बन्ध बहुत पहले से चले आ रहे थे, वे बहुत दिनों से निर्बल और शिथिल पड़ गये।

राजा सवाई जयसिंह के जीवन की अनेक ऐसी घटनायें हैं, जिनके कारण उसे गौरव मिला। यहाँ पर उनमें से कुछ घटनाओं का उल्लेख करना आवश्यक मालूम होता है। राजा बिशन सिंह के दो लड़के पैदा हुए थे। एक का नाम था जयसिंह और दूसरे का नाम था, विजय सिंह। दोनों का जन्म सौतेली माताओं से हुआ था। इस सम्बन्ध के कारण किसी अमंगल से विजय सिंह को क्षति न पहुँच सके, इसके लिए उसकी माता सतर्क रहती थी। उसने बहुत कुछ सोच-समझकर अपने पुत्र को अपने पिता के यहाँ भेज दिया। पुत्र के बड़े होने पर बादशाह की सहानुभूति प्राप्त करने के लिए उसने विजय सिंह को मुगल-दरबार में भेजा और इसके लिए उसने अपने बहुमूल्य आभूषण दरबार के प्रधान लोगों को पुत्र के द्वारा भेजे। वे आभूषण वहाँ पर उपहार में दरबार के अमीरों, उमराओं और अधिकारियों को दिये गये। इस प्रकार मुगल प्रधान मंत्री कमरुद्दीन की सहानुभूति विजय सिंह के पक्ष में प्राप्त की गयी। अम्बेर राज्य में बसवा नाम का नगर अधिक उपजाऊ और दूसरी बातों में भी बहुत प्रसिद्ध था। विजय सिंह उस नगर का अधिकार प्राप्त करना चाहता था और इसी उद्देश्य से उसने अपने पक्ष में मुगल-दरबार की सहानुभूति प्राप्त की थी। यह बात मालूम होने पर अम्बेर के राजा जयसिंह ने अपने भाई विजय सिंह की अभिलाषा बिना किसी प्रकार के संकोच के पूरी कर दी। विजय सिंह को इससे बहुत संतोष मिला। लेकिन दोनों भाइयों की माताओं में संतोष के स्थान पर ईर्षा-भाव बढ़ने लगा। विजय सिंह की माता ने एक दिन अपने पुत्र से कहा : "तुम प्रधान मंत्री कमरुद्दीन के पास जाओ और कहो कि बादशाह से कहकर तुम्हें अम्बेर के सिंहासन पर बिठावे। प्रधान मंत्री यदि चाहे तो वह यह कार्य तुरंत करा सकता है। इस सहायता के लिए पाँच करोड़ रुपये देने का तुम प्रधान मंत्री से वादा करो। बादशाह से यह भी वादा करना कि उसके आदेश पर मैं पाँच हजार अश्वारोही सेना लेकर सदा मुगल-राज्य की सेवा करूँगा।"

विजय सिंह ने अपनी माता की आज्ञा का पालन किया। वह प्रधान मंत्री के पास गया और माता के समझाने के अनुसार उसने सब-कुछ उससे कहा। प्रधान मंत्री विजय सिंह को लेकर

बादशाह के पास गया। बादशाह ने विजय सिंह की बातों को सुना। उसने प्रधान मंत्री से पूछा : "विजय सिंह के इन वादों की जमानत कौन करेगा ?"

प्रधान मंत्री ने तुरन्त दादशाह से, कहा : "विजय सिंह के इन वादों की जमानत मैं करूँगा। मैं उसकी तरफ से आपको यकीन दिलाता हूँ कि अम्बेर-राज्य के सिंहासन पर बैठने पर विजय सिंह आपको पांच करोड़ रुपये देगा और आपके हुक्म पर अपने पाँच हजार अश्वारोही सैनिकों के साथ वह सदा तैयार रहेगा।"

प्रधान मंत्री की इन बातों को सुनकर बादशाह ने विजय सिंह की प्रार्थना को स्वीकार कर लिया और उसने विजय सिंह को अम्बेर का राज्य देने के लिए अपने प्रधान मंत्री से सनद तैयार करने के लिए कहा। इसके पहले किसी समय सवाई जयसिंह ने खाँन दौरान खाँ नामक एक मुसलमान अमीर से पगड़ी बदल कर उसके साथ भाई का सम्बन्ध कायम किया था। वह खाँन इन दिनों में बादशाह के यहाँ उच्चधिकारी था। उसने जब सुना कि बादशाह जयसिह को सिंहासन से उतारकर विजय सिंह को राज्य का अधिकार देने की तैयारी कर रहा है तो उसने कृपा राम नामक एक दूत को बुलाकर यह समाचार सुनाया और उसने कृपा राम को जयसिंह के पास भेज दिया।

इन दिनों में कमरुद्दीन खाँ का बादशाह के दरबार में बहुत प्रभाव था और उसने अपने कार्यों के द्वारा दरबार में ऊँचा स्थान प्राप्त कर लियथा। जयसिंह उस समाचार को पाकर चिन्तित हो उठा। उसने तुरन्त अपने मंत्री को बुलाकर दूत के द्वारा आया हुआ पत्र दिया। उसके मंत्री ने बड़ी गम्भीरता के साथ सोचकर कहा—कि वर्तमान संकटपूर्ण परिस्थिति में तलवार की सहायता नहीं ली जानी चाहिए। ऐसे समय पर राजनीतिक कौशल से ही सफलता प्राप्त हो सकती है। विजय सिंह ने जिस प्रकार षड़यंत्र का आश्रय लिया है, वह राजनीतिक चालों से ही छिन्न-भिन्न किया जा सकता है। अपने मंत्री के परामर्श के अनुसार, सवाई जयसिंह ने अपने सामन्तों को बुलाने के लिए संदेश भेजा। सवाई जयसिंह का संदेश पाने पर नाथावत् वंश के प्रधान सामन्त मोहन सिंह, बाँसखो के सामन्त दीपसिंह, कुंभानी, सुवरम और पोता के सामन्त जोरावर सिह, नरू के सामन्त हिम्मत सिंह, झोला के सामन्त कुशल सिंह, मोजाबाद के सामन्त भोजराज और माओली के सामन्त फतेह सिंह आदि अम्बेर-राज्य की राजधानी में आकर एकत्रित-हुए। उन सब के आने पर राजा सवाई जयसिंह ने दरबार में बैठकर कहा : "आप सब ने मुझे आमेर के राज-सिंहासन पर बिठाया है। मेरा भाई विजय सिह बसवा नगर प्राप्त करने के लिए बादशाह के यहाँ चेष्टा कर रहा था। मैंने जब सुना तो हर्षपूर्वक वह नगर मैंने उसको दे दिया। अब नवाव कमरुद्दीन खाँ बलपूर्वक इस सिंहासन से मुझे उतारकर राज्य का अधिकार मेरे भाई विजय सिह को देना चाहता है।"

राजा जयसिंह की बातों को सुनकर कुछ समय तक सामन्तों ने आपस में परामर्श किया और फिर एक मत हो कर उन लोगों ने कहा : बसवा नगर देकर आपने-अपने भाई के साथ उदारता का परिचय दिया है। उस नगर को दे देने के बाद हम सब लोग एक मत होकर इस बात की प्रतिज्ञा करते हैं कि जैसे भी हो सकेगा, विजय सिंह द्वारा होने वाले उपद्रवों को हम लोग शांत करेंगे।"

सामन्तों की इस बात को सुनकर सवाई जयसिंह ने बसवा नगर का अधिकार-पत्र लिखकर सामन्तों को दे दिया। इसके बाद सभी सामन्तों ने अपने प्रतिनिधियों को भेजकर विजय सिंह के उपद्रव को शांत करने की चेष्टा की। उन सब के उत्तर में विजय सिंह ने कहा : "मुझे अपने भाई के दिये हुए अधिकार-पत्र पर बिश्वास नहीं है।"

विजय सिंह का यह उत्तर पाकर सभी सामन्तों ने उसको विश्वास दिलाते हुए प्रतिज्ञा की कि यदि राजा जयसिंह ने अपनी प्रतिज्ञा भंग की तो हम सब लोग आपका समर्थन करेंगे और राज्य के सिंहासन पर आपको बिठावेंगे।"

सामन्तों की इस प्रतिज्ञा पर विजय सिंह राजी हो गया और उसने राजा जयसिंह का दिया हुआ अधिकार-पत्र स्वीकार कर लिया। उस अधिकार-पत्र को लेकर विजय सिंह कमरुद्दीन खाँ के पास गया और उस अधिकार-पत्र को दिखा कर उसने सब बातें कहीं। कमरुद्दीन खाँ को उस अधिकार-पत्र पर संतोष न हुआ। लेकिन उसने बसवा नगर पर अधिकार करने के लिए विजय सिंह से कहा और उसकी सहायता के लिए खाँन दौरान खाँ और कृपा राम को साथ में भेजा।

विजय सिंह के बसवा नगर को स्वीकार कर लेने पर आमेर-राज्य के सामन्तों को प्रसन्नता हुई। उन लोगों ने दोनों भाइयों में प्रेम और सहानुभूति पैदा करने के लिए चेष्टायें कीं। उन लोगों ने विजय सिंह को राजधानी में लाकर राजा जयसिंह से मिलाने की कोशिश की। परन्तु विजयसिंह राजधानी में आने के लिए तैयार नहीं हुआ। वह जयपुर से पश्चिम की तरफ छै मील की दूरी पर साँगानेर नामक नगर में जाकर रहने लगा।

सामन्तों के परामर्श के अनुसार विजय सिंह से भेंट करने के लिए जिस समय राजा जयसिंह चलने के लिए तैयार हो रहा था, उसी समय उसके मंत्री ने आकर उससे कहा: "आप की माता ने मुझे आप के पास भेजा है और कहा है कि दोनों भाइयों में जो परस्पर मेल और स्नेह पैदा होने जा रहा है, उस शुभ-अवसर को देखने से मुझे क्यों वंचित किया जाता है।"

मंत्री की इस बात को सुन कर सामन्तों ने कहा: "हम लोगों को इसमें कोई आपत्ति नहीं है। वे जरूर चल सकती हैं।" सामन्तों की इस बात को सुन कर मंत्री ने राजमाता से जाकर कहा। वह अपने चलने के लिए तैयारी करने लगी। उसके साथ चलने वाली अन्त:पुर की स्त्रियों के लिए तीन सौ रथ सजायें गये। जिस पालकी में राजमाता को बैठना चाहिए था, उसमें उसके स्थान पर भट्टी सामन्त उग्रसेन बैठा और प्रत्येक रथ के भीतर स्त्रियों से बदले दो-दो शस्त्रधारी सैनिक तैयार होकर बैठे। सामन्त लोग पहले ही राजा जयसिंह के साथ चले गये थे। उनको राजमाता की इस तैयारी का कुछ भी पता न था। यह तैयारी जयसिंह और उसके बुद्धिमान मंत्री के द्वारा हुई थी। उग्रसेन और रथों में बैठे हुए सैनिकों के अतिरिक्त प्रजा में इस बात की किसी को भी जानकारी न थी। पालकी और तीन सौ रथों के रवाना होने पर राजस्थान की प्रजा के अनुसार पालकी पर सोने के सिक्कों की वर्षा की गयी। दीनों और दरिद्रों ने मोहरों को लूट कर राजा और राजमाता की जय-जयकार मनायी। राज-मार्ग पर एकत्रित स्त्री-पुरुषों ने दोनों भाइयों के स्नेह पूर्ण मिलन को सुनकर प्रसन्नता प्रकट की।

राजा जयसिंह के साथ सामन्त लोग पहले ही साँगानेर पहुँच गये थे और वे लोग राजमाता के आने का रास्ता देख रहे थे। इसी समय एक दूत ने आकर कहा: "राजमाता साँगानेर के महल में चली गयी है।" यह सुनते ही जयसिंह घोड़े पर बैठा और वह महल की तरफ चला गया। रास्ते में विजय सिंह से भेंट हो गयी। दोनों भाई स्नेहपूर्वक एक दूसरे से मिले। इसी समय जयसिंह ने विजय सिंह को प्रसन्न होकर बसवा नगर के शासन की सनद दी और कहा: "यदि तुम को आमेर-राज्य के सिंहासन पर बैठने की अभिलाषा है तो मैं हर्ष पूर्वक तुम्हारे लिए सिंहासन छोड़ दूँगा और बसवा में जाकर रहने लगूँगा।"

जयसिंह के मुख से उदारता पूर्ण इस बात को सुनकर विजय ने कहा : "राज सिंहासन पर पर बैठने की अब मेरी इच्छा नहीं है । आप इस बात का विश्वास रखें ।"

इसके बाद दोनों भाई सामन्तों के बीच में बैठकर स्नेहपूर्वक बातें करते रहे । उसी अवसर पर जयसिंह के मन्त्री ने आकर सामन्तों से कहा : "राजमाता ने आप लोगों के पास मुझे भेजकर कहा है कि यदि आप लोग कुछ देर के लिए यहाँ से चले जावे तो राजमाता यहाँ आकर दोनों भाइयों को प्रेम से बातें करते हुए देखना चाहती हैं ।"

दूत की इस बात को सुनकर सामन्त कुछ देर तक आपस में बातें करते रहे । सब की सलाह से दोनों भाई महल के उस कमरे में चले गये , जिसमें राजमाता पहले से मौजूद थी । कमरे के द्वार पर एक पहरेदार खड़ा था । जयसिंह ने अपनी कमर से तलवार निकाल कर पहरेदार को दे दी और कहा कि माता के पास जाने में तलवार की क्या आवश्यकता है । विजय सिंह ने भी अपने भाई का अनुकरण किया और उसने भी अपनी तलवार निकालकर पहरेदार को दे दी । इसी समय मंत्री ने कमरे का दरवाजा खोला । विजय सिंह उस कमरे के भीतर पहुँच गया । उसने माता के स्थान पर भट्टी सामन्त उग्रसेन को देखा । उग्रसेन ने उसी समय विजय सिंह के हाथों और पैरों को बाँध कर पालकी साँगानेर से अम्बेर राजधानी की ओर रवाना करवा दी । बाहर के सभी लोगों ने समझा कि राजमाता की पालकी राजधानी वापस जा रही है ।

एक घण्टे के पश्चात् जयसिंह को समाचार मिला कि विजय सिंह कैदी होकर दुर्ग में आ गया है । इसके कुछ समय बाद सैनिकों के साथ जयसिंह को अकेले आता हुआ देखकर सामन्तों ने पूछा : "विजय सिंह कहाँ है ?"

सामन्तों के इस प्रश्न को सुनकर जयसिंह ने कहा : "मेरे पेट में है । अपने पिता के हम दोनों बेटे हैं । बड़ा होने के कारण राज्य का मैं अधिकारी हूँ । राज सिंहासन से उतारने के लिए उसने मेरे साथ जो षड्यंत्र किया था , उसका बदला मुझे विश्वासघात के द्वारा देना पड़ा । उसने हम सब का सर्वनाश करने के लिए आमेर-राज्य में शत्रुओं को आमंत्रित किया था । मैंने जो कुछ किया है , इसके सिवा मेरे पास और कोई उपाय न था ।"

जयसिंह के इस उत्तर को सुन कर सभी सामन्त आश्चर्य-चकित हो उठे । किसी ने कुछ उत्तर न दिया । वे सभी उस स्थान से चले गये । साँगानेर के बाहर मुगल बादशाह की छै हजार अश्वारोही सेना खड़ी थी । प्रधान मन्त्री कमरुद्दीन खाँ ने उस सेना को विजय सिंह की सहायता के लिए भेजा था । विजय सिंह को न पाने के बाद मुगल सेना के अधिकारी ने जयसिंह से पूछा : "विजय सिंह कहाँ है ?"

जयसिंह ने रोष में आकर उत्तर दिया : "तुम्हें इसके पूछने का क्या अधिकार है ? तुम लोग यहाँ से वापस चले जाओ नहीं तो तुम सब के घोड़े छीन लिए जायँगे ।" उस सेना के अधि-कारी ने कुछ उत्तर न दिया और मुगल सेना वहाँ से वापस लौट गयी । विजय सिंह इस प्रकार कैदी हो गया ।

सवाई जयसिंह के समय कछवाहों के राज्य ने सभी प्रकार की उन्नति की । इसके पहले वहाँ पर जो लोग आमेर के सिंहासन पर बैठे , उन्होंने मुगल बादशाह के दरबार में सम्मान प्राप्त किया था । लेकिन उनमें से किसी ने सवाई जयसिंह की तरह अपने राज्य की उन्नति नहीं की । बादशाह बाबर से लेकर औरंगजेब के समय तक आमेर के राजाओं के साथ पारिवारिक सम्बन्ध रहा । परन्तु किसी कछवाहा राजा ने अपने राज्य की सीमा का विस्तार नहीं कर पाया था । औरङ्गजेब की मृत्यु के बाद मुगलों की शक्तियाँ कमजोर पड़ गयीं और मुगलों का शासन बहुत-से टुकड़ों में विभक्त होता जा

रहा था । इसके पहले मुगल साम्राज्य में आमेर-राज्य का कोई विवेष स्थान न था । औरङ्गजेब के मर जाने के बाद मुगलों के राज्य में बहुत-से उपद्रव पैदा हो गये थे । उन दिनों में सवाई जयसिंह को बादशाह की तरफ से आगरा का शासक नियुक्त किया गया था । इस समय की सुविधाओं का लाभ उठाकर सवाई जयसिंह ने अपने राज्य की उन्नति की ।

राजा जयसिंह के आमेर के सिंहासन पर बैठने के समय आमेर, देवसा और बिसाऊ नामक केवल तीन परगने उस राज्य में थे और इन्हीं तीनों नगरों से बने हुए राज्य का नाम आमेर अथवा अम्बेर राज्य था । इसके पश्चिम तरफ के सभी नगर बादशाह के अधिकार में थे और वे अजमेर के साथ शामिल थे । शेखावाटी का राज्य आमेर-राज्य से अधिक शक्तिशाली था । उसकी चारों सीमायें इस प्रकार थीं :

दक्षिण में चाँतस नामक दुर्ग था , पश्चिम में साँभर की झील थी , पश्चिम उत्तर की तरफ हस्तिना और पूर्व में देवसा तथा बिसाऊ का इलाका था । वहाँ के बारह प्रधान सामन्त जिस भूमि के अधिकारी थे , वह कोटारी बंद के नाम से प्रसिद्ध थी । उस इलाके की भूमि बहुत साधारण थी ।

देवती नामका एक छोटा-सा प्राचीन राज्य था । राजोर उसकी राजधानी थी । उसमें बड़-गूजर जाति का राजा शासन करता था । कछवाहे राजपूत जिस प्रकार रामचंद्र के वंशज कहे जाते हैं , बड़गूजर राजपूत अपने आप को रामचन्द्र के पुत्र लव का वंशज कहते हैं । बड़गूजर राजपूतों ने कभी भी मुसलमान बादशाहों को अपनी लड़कियाँ नहीं दीं और इसीलिए राजपूतों में उनका स्थान अधिक सम्मानपूर्ण माना जाता था । जिस समय कछवाहा राजा ने मुगल बादशाह के वंश को लड़की दी थी , और राजपूतों के मस्तक पर कलंक का टीका लगाया था , उस समय बड़गूजर राजपूतों ने अपनी स्त्रियों , बहनों और बेटियों की मर्यादा को सुरक्षित बनाये रखने के लिए उन्हें आग की जलती हुई होली में फूँक कर भस्मीभूत कर दिया था । कछवाहों ने बादशाह के साथ सामाजिक और वैवाहिक सम्बन्ध जोड़कर सांसारिक गौरव प्राप्त किया था । लेकिन बड़गूजर राजपूतों ने अपने जीवन का भयानक त्याग और बलिदान करके अक्षय कीर्त्ति प्राप्त की थी । इसलिए शताब्दियों के बाद आज भी इस विशाल देश में कछवाहों की निंदा और बड़गूजरों की प्रशंसा की जाती है । मनुष्य का गौरव सदा त्याग और बलिदानों से बढ़ता है ।

जिन दिनों में देवती-राज्य का बड़गूजर वंशी राजा अपनी सेना के साथ गंगा के समीप अनूप शहर में बादशाह की फोज की अधीनता में था , उस समय सवाई जयसिंह बादशाह के प्रतिनिधि की हैसियत से उसके राज्य में काम कर रहा था । बड़गूजर राजा ने राजोर की रक्षा का भार अपने छोटे भाई को सौंप दिया था। उसने एक दिन जंगल में जाने और शूकर का शिकार करने का इरादा किया । उसने भावज के पास जाकर जल्दी से भोजन करना चाहा । उसकी उतावली को देखकर भावज ने कहा : "मालूम होता है कि आप युद्ध में जयसिंह को भाला मारने के लिए जा रहे हैं । "बड़गूजर के राजा के हृदय में इस बात से एक ऐसा आघात पहुँचा कि वह अन्यमनस्क होकर कुछ देर तक सोचता रहा । उस स्त्री के द्वारा कही गयी बात का सम्बन्ध एक पुरानी घटना के साथ है । कछवाहों के पूर्वज धोलाराय ने नरवर से निकलकर बड़गूजरों के दिओसा नामक नगर पर अधिकार किया था । भावज की बात को सुनकर राजा बड़गूजर के भाई ने उस घटना का स्मरण किया और उसने तुरंत प्रतिज्ञा करते हुए कहा : "मैं अपने देवता की शपथ लेकर प्रतिज्ञा करता हूँ कि आप के हाथ का भोजन मैं पीछे करूँगा और जयसिंह के सीने पर मैं भाले का आघात पहले करूँगा । "

इस प्रकार प्रतिज्ञा करके स्वाभिमानी बड़गूजर अपने साथ दस शसस्त्र अश्वारोही वीरों को लेकर आमेर की तरफ रवाना हुआ और उसके समीप पहुँचकर उसने मुकाम किया। वहाँ पड़े हुए उसको पूरा एक मास बीत गया। उसे अपनी प्रतिज्ञा पूरी करने का अवसर न मिला। वह फिर भी वहीं पर पड़ा रहा और वहाँ पर उसके कई महीने बीत गये। उसके पास जो कुछ था, उसे उसने खाने-पीने में खर्च कर डाला। इसके बाद वह अपने साथ के घोड़ों को बेचकर दिन काटने लगा। इसके बाद भी उसे अपनी अभिलाषा पूरी करने का अवसर न मिला। उस दशा में उसने अपने साथ के सैनिकों को भेज दिया और अकेले रहकर अवसर की प्रतीक्षा करने लगा। इस बीच में उसने अपने अस्त्र-शस्त्र बेच डाले और उनसे जो कुछ मिला उनके द्वारा उसने अपना समय व्यतीत किया। इसके बाद भी उसको अवसर न मिला। अब उसके पास केवल एक भाला रह गया था। उसने तीन दिन बिना भोजन के काटे और चौथे दिन उसने अपनी पगड़ी बेच डाली। अब उसके पास बेचने के लिए कोई वस्तु न रह गयी थी। उसने अकस्मात् राजा जयसिंह को दुर्ग से बाहर निकलकर मोरा नामक मार्ग की तरफ जाते हुए देखा। उसी समय उसने अपना भाला फेंककर राजा जयसिंह को मारा। वह भाला जयसिंह को नहीं लगा। उसके साथ के एक सैनिक ने उस बड़गूजर को पकड़ लिया और अपनी तलवार से उसने उसका सिर काट लेने का इरादा किया। उसी समय राजा जयसिंह ने जोर के साथ कहा : "इसको राजधानी में पकड़कर ले आओ, यहाँ पर उसका प्राण नाश न करो।"

बड़गूजर को पकड़कर आमेर राजधानी में लाया गया। उसको देखकर राजा जयसिंह ने उससे प्रश्न किया : "तुम कौन हो और तुमने भाला का प्रहार किस लिए मेरे ऊपर किया?"

उस बड़गूजर ने उत्तर देते हुए कहा : "मैं देवती के बड़गूजर राजा का छोटा भाई हूँ। मैंने अपनी भावज के सामने आप की छाती में भाला मारने की प्रतिज्ञा की थी। इसलिए इस राजधानी के समीप आकर और छिपे तौर पर रहकर मैं बहुत दिनों तक पड़ा रहा। अवसर पाने पर अपनी प्रतिज्ञा पूरी करने के लिए मैंने भाले का प्रहार आप के ऊपर किया है। अपने प्रहार में मुझे सफलता नहीं मिली। आज मैं आप के सामने कैदी बनाकर लाया गया हूँ। आप को दण्ड देने का पूर्ण अधिकार है।"

राजा जयसिंह उसकी बातों को सुनकर बहुत प्रभावित हुआ और बिना किसी प्रकार का दण्ड दिये हुए उसने उसको छोड़ दिया। राजा जयसिंह ने उसकी इन दिनों की विपद का हाल सुनकर उसे मूल्यवान वस्त्र दिये और पचास अस्वारोही सैनिकों के संरक्षण में उसको उसके राज्य भेज दिया। उसने अपने राज्य में आकर सभी बातें अपनी भावज से कहीं। उन बातों को सुनकर उसकी भावज ने कहा : "आप ने सोते हुए विषैले साँप को उकसाया है। इसके फलस्वरूप अब यह राज्य नष्ट हो जायगा।"

राजोर के अनेक अनुभवी लोगों की सम्मति से बड़गूजर वंश के परिवार को अनूप शहर में राजा बड़गूजर के पास भेज दिया गया और देवती राज्य के राजोर के दुर्ग में युद्ध की तैयारियाँ होने लगीं। इसलिए कि वहाँ पर सब को विश्वास हो गया कि सवाई यजसिंह का शीघ्र ही आक्रमण अब इस राज्य पर होगा।

ऊपर लिखी हुई इस घटना के चौथे दिन सवाई जयसिंह ने अपने सभी सामन्तों को बुलाया और अपने दरबार में बैठकर उनसे कहा : "देवती राज्य पर तुरंत अधिकार कर लेने की आवश्यकता है। इस कार्य के लिए मैं पानों का बीड़ा रखता हूँ। आप लोगों में से जो इसके लिए तैयार हो, वह उस बीड़ा को उठाले।"

राजा जयसिंह की इस बात को सुनकर आमेर के प्रधान सामन्त चैमू के अधिकारी मोहन सिंह ने कहा : "देवती-राज्य के विरुद्ध आक्रमण करना संकटपूर्ण है। इसका कारण यह है कि बड़गूजर का राजा बादशाह के दरबार का एक सदस्य है और वह इन दिनों में अपनी सेना के साथ बादशाह की फौज के साथ है।

प्रधान सामन्त मोहन सिंह की इस बात को सुनकर उपस्थित सामन्त भयभीत हो उठे और किसी ने युद्ध के बीड़े को उठाने का साहस न किया। इसके बाद एक महीना बीत गया। राजा जयसिंह ने देवती राज्य पर आक्रमण करने के लिए फिर प्रश्न उपस्थित किया। परन्तु किसी सामन्त ने युद्ध का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लेने का साहस नहीं किया। सभी को चुप देखकर सामन्त फतेह सिंह ने हाथ से उस बीड़े को उठाया और उसने देवती-राज्य पर आक्रमण करने की तैयारी की। राजा जयसिंह ने फतेह सिंह की अधीनता में पांच हजार अश्वारोही सेना भेजने का प्रबन्ध किया। उस सेना को लेकर फतेह सिंह देवती राज्य की तरफ रवाना हुआ। वहाँ पहुँच कर उसने सुना कि बड़गूजर राजा का भाई राजोर से गंगोर नामक मेला में गया है। यह सुनकर वह मेला की तरफ रवाना हुआ। वहां पहुँच कर उसने अपना दूत उसके पास भेजा। दूत ने वहां जाकर बड़गूजर राजा के भाई के हाथ में एक पत्र दिया। उस पत्र को पढ़ते ही उसने अपने सैनिकों को आज्ञा दी कि इस दूत का सिर काट लिया जाय। इसी समय आमेर की सेना वहां पहुँचकर बड़गूजर राजा के भाई को कैद कर लिया। उस समय उसके साथ राजोर के जो सैनिक थे, वे सब मारे गये।

राजोर की रानी चौमू के कछवाहा सामन्त की बहन थी। वह गर्भवती थी और फतेह सिंह की सेना के राजोर पर आक्रमण करने के समय वह प्रसव-वेदना से पीड़ित थी। रानी ने फतेह सिंह के पास कहला भेजा : "प्रिय बन्धु मेरे गर्भ के कारण बालक के प्राणों की रक्षा करना।"

इसी समय रानी को स्मरण हुआ कि राजोर पर इस आक्रमण के होने का मूल कारण मैं हूँ। मेरी ही बात को सुनकर मेरे देवर ने राजा जयसिंह पर भाले का वार किया था। इस दशा में मेरे जीवित रहने की आवश्यकता नहीं है। अपने मन में इस बात को सोचकर रानी ने तलवार से अपनी आत्महत्या कर ली। बड़गूजर राजा का भाई कैद हो चुका था। उसको मारकर और उसके कटे हुए मस्तक को एक कपड़े में लपेट कर फतेह सिंह वहां से लौटा और आमेर की राजधानी में आ गया। राजा जयसिंह के आदेश से वह कटा हुआ मस्तक उसके सामने दरबार में लाया गया। आमेर राज्य के प्रधान सामन्त मोहन सिंह ने अपने आत्मीय का कटा हुआ सिर देखकर अपनी आँखें बन्द कर लीं और उसके नेत्रों से आँसू निकल-निकल कर गिरने लगे। मोहन सिंह का यह क्रन्दन देखकर राजा जयसिंह को बहुत असन्तोष मालूम हुआ। उसने मन-ही-मन सोच डाला कि इसी मोहन सिंह ने देवती राज्य पर आक्रमण करने के प्रस्ताव पर सब सामन्तों के सामने विरोध किया और आज हमारे शत्रु के कटे हुए मस्तक को देखकर वह अश्रुपात कर रहा है। यह हमारे राज्य का प्रधान सामन्त होकर भी राजद्रोही और विश्वासघाती है। राजा जयसिंह ने उस समय उससे कुछ न कहा। लेकिन कुछ दिन बीत जाने के बाद मोहन सिंह का अपमान करते हुए उसने कठोर शब्दों में कहा : "आपने उस दिन हमारे शत्रु के कटे हुए सिर को देख कर आंसू बहाये थे। लेकिन जब उस शत्रु ने हमारे ऊपर भाले का वार किया था, उस समय आपके नेत्रों में एक भी आंसू का बूंद दिखाई नहीं पड़ा था।" यह कह कर राजा जयसिंह ने मोहनसिंह की जागीर को आमेर-राज्य में मिला लेने का आदेश दिया और मोहन सिंह को अपने राज्य से निकाल

दिया । मोहन सिंह आमेर से निकल कर उदयपुर के राणा के यहाँ चला गया । राजा जयसिंह ने देवती और राजोर पर अधिकार करके उनको अपने राज्य में मिला लिया । × वे मिले हुए दोनों नगर माचेरी के नाम से प्रसिद्ध हुए ।

राजा जयसिंह के चरित्र में अनेक अच्छाइयाँ थीं । परन्तु उसमें मदिरा पीने का दोष था । वह मधुसंजात अथवा चावल की मदिरा पिया करता था । इस प्रकार की कुछ निर्बलताओं के होने पर भी राजा सवाई जयसिंह एक श्रेष्ठ पुरुष था, इसमें किसी को मतभेद नहीं हो सकता ।

सवाई जयसिंह के पहले आमेर का राजमहल मानसिंह ने बनवाया था । उन दिनों की अपेक्षा आमेर की अवस्था जयसिंह के शासन के दिनों में बहुत बदल गयी थी । पहले का आमेर बहुत कुछ इन दिनों की अपेक्षा गौरवहीन था । मिर्जा राजा जय सिंह ने वहां के महल में कई एक कमरे बनवाये थे । परन्तु वे कमरे एक राजमहल के लिए अनुकूल न थे । इसलिए सवाई जयसिंह ने उनके सम्पर्क में एक दर्शनीय महल बनवाया, जिसको देखकर सभी लोगों ने प्रशंसा की । सम्बत् १७८२ सन् १७२६ ईसवी में सवाई जय सिंह ने जयपुर नाम की नवीन राजधानी कायम की । वहाँ के एक इतिहास से प्रकट होता है कि उन दिनों में राजा मल्ला सवाई जयसिंह के यहाँ मुसाहिब पद पर नियुक्त था और कृपाराम जयपुर का दूत बनकर दिल्ली में रहता था । बुधसिंह कुम्भानी दक्षिण में सम्राट के यहाँ दूत बना कर नियुक्त किया गया था । जयपुर का विशेष विवरण आगामी पृष्ठों में लिखा गया है ।

राजा जयसिंह राजनीति और शासन में बहुत योग्य था । उसने सामाजिक बातों में कई एक सुधार किये थे । राजस्थान में लड़कियों के विवाहों और श्राद्ध जैसे कार्यों में राजपूतों के यहाँ बहुत अधिक धन खर्च किया जाता था और इस प्रकार के खर्चों के कारण ही राजपूतों में लड़कियों को जन्म के बाद मार डालने की एक पुरानी प्रथा प्रचलित थी । कुछ इस प्रकार के वीभत्स कार्यों के कारण वहाँ पर न जाने कितनी स्त्रियों को आत्म-हत्यायें करनी पड़ती थीं । राजा सवाई जयसिंह ने इस प्रकार के अनिष्ट कार्यों में बहुत सुधार किया और उनके खर्चों में बहुत कमी कर दी । उसने इस प्रकार के बहुत से सामाजिक नियम बनाये थे और अपने राज्य में उसने लोगों को उन नियमों पर चलने के लिए बाध्य किया था । विवाह और श्राद्ध आदि कार्यों के अवसरों पर जो वहाँ अत्यधिक खर्च किया जाता था, उनको उसने अपने राज्य में बहुत कम करवा दिया । राजपूतों में प्रचलित पुरानी और अनावश्यक प्रथाओं में संशोधन का कार्य कितना जरूरी था, इसे सवाई जयसिंह ने भली प्रकार अनुभव किया और इसीलिए उसने उनमें आवश्यक सुधार किये । उसके इन कार्यों से साफ जाहिर होता है कि वह न केवल एक अच्छा शासक था, बल्कि सार्वजनिक हितों की रक्षा करना भी वह खूब जानता था । उसके राज्य में जैन सम्प्रदाय के लोगों को आवश्यक प्रोत्साहन मिला था । विद्याधर नामक व्यक्ति जो उसके ज्योतिष विज्ञान के कार्य में सहयोगी था और जिसकी सहायता और योग्यता से जयपुर राजधानी का निर्माण हुआ, वह जैन धर्मावलम्बी था । सवाई जयसिंह योग्य और विद्वान पुरुषों को अपने यहां आदरपूर्वक स्थान देना आवश्यक समझता था । उसने प्रसिद्ध पण्डित हेमाचार्य को अपने यहाँ मन्त्री का पद दिया था । विद्याधर उसी हेमाचार्य का वंशज था ।

× राजोर एक बहुत पुराना नगर था । वहाँ पर देवती राज्य की राजधानी थी । कई शताब्दियों से बड़गूजर वंश के राजपूत वहाँ पर रहते थे । इस वंश के लोगों की बहादुरी की प्रसंशा चँद कवि ने अपने ग्रंथ में की है । सम्राट पृथ्वीराज के समय इस वंश के लोग युद्ध करने में बहुत प्रसिद्ध थे ।

अन्यान्य योग्यताओं के साथ-साथ सवाई जयसिंह एक अच्छा शासक था। उसकी इस योग्यता का एक बड़ा प्रमाण यह भी है कि उसने अपने शासन काल में अश्वमेध यज्ञ करने का इरादा किया था। इस यज्ञ का इरादा वही राजा करता है जो अन्य राजाओं की अपेक्षा अपने आपको अधिक शक्तिशाली समझता है। ऐसा मालूम होता है कि उसका यह इरादा उन दिनों में हुआ था, जब मुगल-राज्य की शक्तियाँ निर्बल पड़ गयी थीं और दूसरे राजाओं का उसे कोई भय न रह गया था। पाण्डु वंश के जनमेजय से लेकर कन्नौज के अन्तिम राजा जयचन्द तक जितने राजाओं ने अश्वमेघ यज्ञ किया था, उन सभी का सर्वनाश हो गया। मुगल बादशाह के दरबार में जितने राजा थे सवाई जयसिंह उन सभी में अधिक शक्तिशाली था। इस यज्ञ का निर्माण करके उसने यदि घोड़ा छोड़ा होता, जैसा कि उस यज्ञ का नियम है, तो सम्भव है कि अन्य राजा उसका घोड़ा पकड़ने का साहस न करते। लेकिन उस घोड़े के मरुभूमि की तरफ जाने पर राठौर राजा अवश्य ही उसको पकड़ लेता और यही अवस्था चम्बल नदी के किनारे हाड़ा राजा के राज्य में भी होती। वह घोड़ा वहाँ पर भी पकड़ा जाता। सवाई जयसिंह ने बहुत-सा धन खर्च करके यज्ञशाला बनवाई थी और उसके स्तम्भों तथा उसकी छत को चाँदी के पत्तरों से मढ़वाया था। इस चाँदी के मूल्यवान पत्तरों को उसके वंशज स्वर्गीय जगतसिंह ने निकलवा कर उनके स्थान पर साधारण चाँदी के पत्तर लगवा दिये। जयसिंह ने जिन ग्रंथों का संग्रह करने में अत्यधिक परिश्रम और धन व्यय किया था, उनके दो भाग कर दिये थे। उनका एक भाग किसी प्रकार जयपुर की एक साधारण वेश्या के अधिकार में पहुँच गया था।

चवालीस वर्षों तक राज्य करके सम्वत् १७९९ सन् १७४३ ईसवी में सवाई जयसिंह की जयपुर में मृत्यु हो गयी। उसकी तीन विवाहिता रानियाँ और अनेक उपपत्नियाँ उसके शव के साथ जल कर सती हुईं। उसने जिस विज्ञान की अपने जीवन भर उन्नति की थी, उसकी मृत्यु के बाद वह एक साथ लोप हो गयी।

इकसठवाँ परिच्छेद

जयपुर का शक्तिशाली राज्य—मेवाड़ की राजकुमारी के विवाह की शर्त—राजा ईश्वरी सिंह का असंतोष जनक शासन—जाटों का सरदार चूड़ामणि—प्रधान मंत्री खुशहाली राम की चालें।

सवाई जयसिंह की मृत्यु के बाद उसका बड़ा लड़का ईश्वरी सिंह जयपुर के सिंहासन पर बैठा। इन दिनों में जयपुर का राज्य भारतवर्ष के राज्य में विशाल और शक्तिशाली समझा जाता था। उस राज्य की सेना ने अनेक अवसरों पर अपनी शक्ति का परिचय देकर सम्मान प्राप्त किया था। इन दिनों में जयपुर राज्य की सीमा अन्य राज्यों की अपेक्षा अधिक बड़ी हो गयी थी। राजकोष में सम्पत्ति की कमी न थी। शासन में राजनीतिज्ञ और बुद्धिमान मन्त्री काम कर रहे थे। वहाँ की सेना भी शक्तिशाली थी। ईश्वरी सिंह के सिंहासन पर बैठने के बाद राज्य में कोई विशेष टघना नहीं हुई।

सन् १७४७ ईसवी सिंह में ईश्वरी अब्दाली की विशाल सेना के साथ युद्ध करने के लिए सतलज नदी के किनारे गया था । उस युद्ध में उसके पक्ष के प्रधान सेनापति कमरुद्दीन खाँ के मारे जाने पर ईश्वरी सिंह अपनी सेना के साथ भागा और जब वह लौट कर अपनी राजधानी में आया तो उसकी रानी ने युद्ध से भागने का समाचार सुनकर बहुत असंतोष प्रकट किया ।

अपने पिता सवाई जयसिंह की तरह ईश्वरी सिंह बुद्धिमान और राजनीति कुशल न था । सिंहासन पर बैठने के बाद अपनी प्रजा को प्रसन्न और संतुष्ट करने के लिए वह कार्य न कर सका । राज्य के सरदार और सामन्त भी उसके व्यवहारों और कार्यों से थोड़े ही दिनों में असंतोष अनुभव करने लगे । ईश्वरी सिंह के लिए राज्य की इस प्रकार परिस्थितियाँ आगे चल कर अच्छी साबित न हुईं ।

मेवाड़ के इतिहास में लिखा जा चुका है कि दिल्ली के मुगल बादशाह के विरुद्ध होकर मेवाड़, मारवाड़ और आमेर राज्यों ने संधि की थी । उस संधि के अनुसार उन तीनों राज-वंशों में वैवाहिक सम्बन्ध भी होने लगे थे । उस संधि के परिणाम स्वरूप मारवाड़ के राजा ने बादशाह के गुजरात में अनेक नगरों पर अधिकार कर लिया था , आमेर-राज्य के सवाई जयसिंह के उन सभी स्थानों को अपने राज्य में मिला लिया था , जो आमेर के आस-पास कुछ दूरी तक फैले हुए थे और उन्हीं दिनों में उसने शेखावाटी के राजा को कर देने के लिए विवश किया था । उस समय आमेर-राज्य को अपने राज्य की सीमा का विस्तार करने के लिए सभी प्रकार का अवसर था और उसकी सीमा साँभर झील से लेकर जमुना नदी के किनारे तक पहुँच गई थी । इसका कारण यह था कि जो संधि हुई थी , उसने इन तीनों राज्यों को शक्तिशाली बना दिया था । लेकिन संधि से अनुसार वैवाहिक सम्बन्ध शुरू होने का परिणाम अच्छा साबित नहीं हुआ ।

आमेर और मारवाड़ के राजाओं ने मुगल बादशाह के वंश में अपनी लड़कियाँ देकर अपने जातीय गौरव को क्षीण बना लिया था । राजस्थान के दूसरे राजाओं ने भी इस प्रकार के प्रतिष्ठा के विरुद्ध कार्य किये थे । परन्तु मेवाड़ का एक राणा वंश ही ऐसा था , जिसने उन दिनों में अपना मस्तक ऊँचा रखा था और इस प्रकार का ऐसा कोई कार्य नहीं किया, जिससे इस वंशकी प्रतिष्ठा को किसी प्रकार आघात पहुँच सकता । इस संधि के पहले आमेर और मारवाड़ के राजाओं ने जो इस प्रकार अप्रतिष्ठापूर्ण कार्य किये थे , उनसे उनके मेवाड़ के राणा वंश के साथ वैवाहिक सम्बन्ध बन्द हो गये थे । लेकिन इस संधि के बाद वे फिर आरम्भ हो गये । विवाह के सम्बन्ध को प्रचलित करने के लिए सवाई जयसिंह ने मेवाड़ की राजकुमारी के साथ विवाह किया था । लेकिन विवाह होने के पहले हो दोनों ओर से इस बात का निर्णय हो गया था कि आमेर-राज्य में मेवाड़ की राज कुमारी का विवाह होने पर यदि उससे बालक पैदा होगा तो वह अपने पिता के राज्य का उत्तराधिकारी होगा । राजस्थान की प्रथा के अनुसार बड़ा लड़का राज्य का अधिकारी होता है । लेकिन मेवाड़ की राजकुमारी से उत्पन्न होने वाले बालक पर वहाँ की इस प्रथा का कोई प्रभाव पड़ेगा । यदि उम राजकुमारी से लड़की उत्पन्न होगी तो वह किसी भी अवस्था में और किसी भी परिस्थिति में मुगल बादशाह के वंश में नहीं दी जायगी । सवाई जय-सिंह और मारवाड़ के राजा ने मेवाड़ के राणा की इन शर्तों को स्वीकार कर लिया था । उसके बाद राणा वंश की राजकुमारी का विवाह सवाई जयसिंह के साथ हुआ था । विवाह के वाद उस राजकुमारी से एक बालक पैदा हुआ । उसका नाम माधव सिंह रखा गया । राजा जयसिंह ने अपने जीवन-काल में ही उस बालक के सम्मान की रक्षा के लिए आमेर-राज्य के टोंक, रामपुरा, फागी और मालपुरा नामक चार परगने माधवसिंह को

दे दिये और उन्हीं दिनों में मेवाड़ के राणा ने भी माधव सिंह को मेवाड़-राज्य के रामपुरा और भानपुरा नामक नगर दिये। माधव सिंह को मिले हुए इन नगरों की वार्षिक आय चौरासी लाख रुपये थी।

सिंहासन पर बैठे हुए ईश्वरी सिंह के कई वर्ष बीत गये। आरम्भ से सामन्तों के साथ उसका व्यवहार संतोषजनक नहीं रहा। इसलिए राज्य के सभी सामन्त ईश्वरी सिंह को सिंहासन से उतार कर माधव सिंह को राज्य का अधिकार देने का विचार करने लगे। ईश्वरी सिंह को सामन्तों के इन षड़यन्त्रों का कुछ भी पता न था। उसके व्यवहारों के कारण ही राज्य की प्रजा भी उससे प्रसन्न न थी। पिता और राणा से जो नगर माधव सिंह को मिले थे, उनको लेकर वह संतोषजनक अपना जीवन बिता रहा था। ईश्वरी सिंह से लगातार अप्रसन्न और असंतुष्ट रह आमेर-राज्य के मंत्रियों और सामन्तों ने मेवाड़ के राणा के पास माधव सिंह को सिंहासन पर बिठाने के लिए संदेश भेजा और उस मिले हुए संदेश के आधार पर राणा ने अपने दूत के द्वारा ईश्वरी सिंह को कहला भेजा : "विवाह के पहले सवाई जयसिंह के साथ निर्णय हो गया था कि राणा राज वंश की राजकुमारी के साथ विवाह करने से जो बालक पैदा होगा, किसी भी दशा में वह अपने पिता के राज्य का उत्तराधिकारी होगा। इसके बाद मेवाड़ की राजकुमारी के साथ जयसिंह का विवाह हुआ था। मरने के पूर्व भी सवाई जयसिंह ने निर्णय किया था कि अवस्था में छोटा होने पर भी मेरे बाद आमेर के सिंहासन पर माधव सिंह बैठेगा। इसलिए आमेर-राज्य का सिंहासन आप माधव सिंह को दे दें।"

राणा का यह संदेश पाकर ईश्वरी चिन्तित हो उठा। उसने अपनी सहायता के लिए मराठों से मदद लेने का विचार किया और उसके बाद आपा जी सोंधिया के साथ उसने संधि कर ली। मराठों के सरदार आपा जी सोंधिया ने ईश्वरी सिंह के पक्ष का समर्थन किया। यह बात मेवाड़ में राणा से छिपी न रही। उसने ईश्वरी सिंह के विरुद्ध युद्ध की घोषणा की। कोटा और बूँदी के राजाओं ने माधव सिंह का पक्ष-समर्थन करके मेवाड़ की सेना का साथ दिया। राजमहल नामक स्थान पर दोनों ओर की सेनाओं का भयंकर युद्ध आरम्भ हुआ। मराठों की शक्तियाँ उन दिनों में बढ़ी हुई थीं। इसलिए कोटा, बूँदी और मेवाड़ की सेनायें युद्ध में भयानक हानि उठाकर पराजित हुई।

युद्ध में जीतकर ईश्वरी सिंह का उत्साह बढ़ गया। कोटा और बूँदी के राजाओं ने उसके विरुद्ध युद्ध में मेवाड़ का साथ दिया था। इसलिए ईश्वरी सिंह ने उन दोनों राज्यों पर आक्रमण किया। कोटा के राजा ने शक्ति भर युद्ध करके शत्रुओं का सामना किया। उस युद्ध में आपा जी सोंधिया का एक हाथ कट गया। परन्तु अन्त में कोटा और बूँदी के राजाओं की पराजय हुई। उन दोनों राज्य के अनेक गावों और नगरों पर आपा जी सोंधिया ने अधिकार कर लिया। युद्ध के बाद दोनों राजाओं को कर देना मंजूर करके आपा जी के साथ संधि करनी पड़ी।

आपा जी सोंधिया की सहायता मिल जाने कारण मेवाड़ के साथ युद्ध में ईश्वरी सिंह को सफलता मिली थी। इसलिए मेवाड़ के राणा ने ईश्वरी सिंह के विरुद्ध होलकर का आश्रय लिया और उसके साथ संधि करके आमेर के राज्य पर माधव सिंह को बिठाकर चौरासी लाख रुपये के बदले राणा ने माधव सिंह की तरफ से आरम्भ में उसको मिले हुए परगने होलकर को दे दिया।

सिंहासन पर बैठकर माधव सिंह ने आरम्भ से ही अपनी योग्यता का परिचय दिया। राज्य में जो कमजोरियाँ पैदा हो गयी थीं। उनको उसने दूर करने की कोशिश की। वह मराठों के नेता होलकर की सहायता से अपने पिता के सिंहासन पर बैठा था और उसकी सहायता के मूल्य में उसने

चौरासी लाख रुपये की आय के प्रसिद्ध परगने उसे देने पड़े थे। राज्यधिकार प्राप्त करने के बाद उसे यह बात भूल न सकी। वह समझता था कि होलकर को किसी भी समय दमन करना हमारा एक आवश्यक कर्त्तव्य होगा। वह अपने इस निश्चय के अनुसार राठौरों और जाटों की सहायता से ऐसा कर सकता था। लेकिन उसके राज्य के पड़ोसी शत्रुओं ने उसकी कल्पनायें बेकार कर दीं।

जाटों के सम्बन्ध में विस्तृत वर्णन इस ग्रंथ में अन्यत्र दिया जा चुका है। जाटों का वंश राजस्थान के छत्तीस राजवंशों में एक वंश था। उस वंश का बाद में पतन हुआ। लेकिन पराधीन होने के बाद भी जाटों ने सदा स्वाधीन होने की चेष्टा की। इस जाति के लोग अत्यन्त लड़ाकू थे। चूड़ामणि नामक उनका सरदार उनको प्रोत्सहित किया करता था। इस जाति के लोगों ने संगठित होकर थून और सिनसीनी नामक स्थानों पर दुर्ग बनाने का कार्य आरम्भ किया था। वे आमतौर पर खेती करने का कार्य करते थे। लेकिन अवसर पाकर लूटमार का कार्य भी करते थे। उनके संगठन में जाटों की बहुत बड़ी संख्या थी। उन लोगों ने दिल्ली तक लूटमार करने का कई बार साहस किया था। इन जाटों के बढ़ते हुए अत्याचारो को देखकर बादशाह के दरबार में सवाई जयसिंह से उनके दमन करने के लिए कहा गया था। राजा सवाई जयसिंह ने अपनी सेना लेकर थून और सिनसीनी को जाकर घेर लिया। उस समय जाटों ने भयंकर युद्ध किया और अपने दुर्गों की रक्षा की। राजा जयसिंह को निराश होकर वहाँ से लौट आना पड़ा।

चूड़ामणि जाटों का सरदार था। छोटे भाई बदन सिंह के साथ उसका संघर्ष आरम्भ हुआ। अंत में चूड़ामणि के द्वारा बदन सिह कैद कर लिया लिया गया और वह कई वर्ष तक बंदी अवस्था में रहा। इसके पश्चात् आमेर के राजा जयसिंह के मध्यस्थ होने पर चूड़ामणि ने अपने छोटे भाई बदन सिंह को कैद से छोड़ दिया। बदन सिंह छूटकर जयपुर में पहुँचा। उसने थून पर अधिकार करने के लिए राजा जयसिंह को प्रोत्साहित किया। जयसिंह ने अपनी सेना लेकर जाटों के नगर थून को जाकर घेर लिया। चूड़ामणि ने बड़े साहस के साथ छै महीने तक युद्ध किया। अंत में वह अपने पुत्र मोहन सिंह के साथ दुर्ग से भाग गया। राजा जय सिंह ने थून के दुर्ग पर अधिकार कर लिया और बदन सिंह को वहाँ के जाटों का राजा घोषित किया। यह घोषणा डीग नामक स्थान पर की गयी।

बदन सिंह के कई लड़के पैदा हुए थे। उनमें सूर्यमल्ल, शोभाराम, प्रताप सिंह और वीर नारायण नामक चार पुत्र अधिक प्रसिद्ध हुए। बदन सिंह ने जाटों के उन कई नगरों पर भी अधिकार कर लिया, जिन पर मुगल बादशाह का अधिकार चल रहा था। बदन सिंह ने वेर नामक स्थान पर एक दुर्ग बनवाया और अपने बड़े लड़के सूर्यमल्ल को उसने सब अधिकार दे दिये।

सूर्यमल्ल बदन सिंह का बड़ा बेटा सभी प्रकार योग्य और पराक्रमी था। पिता से अधिकारों को प्राप्त करने के बाद उसने भरतपुर पर आक्रमण किया। वहाँ का राजा जाट वंशीथा। सूर्यमल्ल ने युद्ध में उसको पराजित किया और भरतपुर पर अधिकार कर लिया।

सूर्यमल्ल की शक्तियाँ धीरे-धीरे विशाल होती गईं। उसने साहस और बुद्धिमानी के साथ अपना संगठन बनाया और सम्वत् १८२० सन् १७६४ ईसवी में सूर्यमल्ल ने बादशाह की राजधानी दिल्ली को लूट लेने का विचार किया। परन्तु कुछ कारणों से वह ऐसा कर न सका। जिस समय वह शिकार खेलने गया था, बिल्लोचों के एक समूह ने आकर एकाएक उस पर आक्रमण किया। उस समय वह जान से मारा गया। जवाहिर सिंह, रतन सिंह, नवल सिंह, नाहर सिंह और रणजीत सिंह नामक पाँच लड़के उसके पैदा हुए। सूर्यमल्ल एक दिन जब शिकार खेलने गया था, रास्ते में उसको हरदेव बख्श नामक एक छोटा बालक उसे मिला उसे लाकर सूर्य मल्ल ने

उसको भी अपना बालक बनाकर रखा। ऊपर लिखे हुए पांच लड़कों में पहला और दूसरा कुर्मी जाति की विवाहिता स्त्री से पैदा हुआ था। तीसरा पुत्र मालिन जाति की स्त्री से और शेष दो जाट बंशी स्त्रियों से पैदा हुए थे।

सूर्यमल्ल की मृत्यु हो जाने पर उसका लड़का जवाहर सिंह अपने पिता के राज्य का अधिकारी हुआ। वह माधव सिंह का समकालीन था। सिंहासन पर बैठने के बाद जवाहर सिंह ने माधव सिंह के साथ विरोधाभाव पैदा किया। इसके दो मुख्य कारण थे। पहला कारण यह था कि माधव सिंह मराठों पर आक्रमण न कर सके और दूसरा कारण यह था कि जयपुर के अधीन माचेरी के सामन्त को निकालकर वहाँ पर अपना अधिकार कर ले। हिजरी सन् ११८२ में जवाहर सिंह ने आमेर के राजा से कामा नामक राज्य दे देने के लिए कहा। परन्तु राजा माधव सिंह ने उसकी माँग की कुछ परवा न की। इस अवस्था में जवाहर सिंह क्रुद्ध होकर माधव सिंह के साथ युद्ध करने के लिए अवसर की प्रतीक्षा करने लगा। वह किसी भी दशा में माधव सिंह के साथ युद्ध करना चाहता था। इसलिए उसने स्वयं अवसर पैदा करने की चेष्टा की। उसने जाटों की एक सेना तैयार की और पुष्कर तीर्थ जाने के लिए वह अपनी सेना के साथ जयपुर राज्य से होकर गुजरा। उसका ऐसा करना राजनीति के सर्वथा विरुद्ध था। जब एक राजा अपनी सेना के साथ दूसरे राज्य की भूमि से होकर निकलना चाहता है तो उसे नियम के अनुसार उस राजा से आज्ञा ले लेना चाहिए। परन्तु जवाहर सिंह ने ऐसा नहीं किया। वह अपनी सेना के साथ जयपुर राज्य के स्थानों से होकर पुष्कर चला गया। वहाँ पर मारवाड़ के राजा विजय सिंह के साथ उसकी भेंट हुई। दोनों ने स्नेहपूर्वक पगड़ी बदली।

इन दिनों में आमेर का राजा माधव सिंह बीमार था। उसके दोनों भाई हरसहाय और गुरुसहाय उसके आदेश के अनुसार शासन का प्रबंध करते थे। दोनों भाइयोंने जब सुना कि जवाहर सिंह अपनी सेना के साथ पुष्कर जाते हुए बिना आदेश के जयपुर राज्य से होकर गुजरा है तो उन भाइयों ने माधव सिंह के पास जाकर कहा और पूछा, "ऐसे अवसर पर क्या होना चाहिए।"

अपने भाइयों के मुख से जवाहर सिंह के अहंकारपूर्ण व्यवहार को सुनकर माधव सिंह को क्रोध मालूम हुआ। उसने उसी समय अपने भाइयों से कहा: "इसके सम्बन्ध में जवाहर सिंह को एक पत्र लिखो और उससे कहो कि उसका यह कार्य सर्वथा नियम के विरुद्ध है। इसलिए दूसरी बार फिर से ऐसा न होना चाहिए। लेकिन यदि अहंकारी जवाहर सिंह दूसरी बार फिर ऐसा करता है तो अपने सामन्तों को उनकी सेनाओं के साथ उस पर आक्रमण करो।

राजा माधव सिंह के आदेश के अनुसार उसके दोनों भाइयों ने तुरन्त प्रबंध किया। उसने राज्य के सामन्तों को सारी बातें लिखकर युद्ध के लिए तैयार होने का अनुरोध किया। जयपुर-राज्य से निकलने में जवाहर सिंह का अपना एक उद्देश्य था। वह माधव सिंह के साथ युद्ध करने के लिए कोई कारण पैदा करना चाहता था। उसकी चाल से कारण पैदा हो गया। राजा माधव सिंह के भाइयों का भेजा हुआ पत्र पुष्कर में जवाहर सिंह को मिला। उसने उस पत्र की पूर्ण रूप से उपेक्षा की और पुष्कर से लौटते हुए वह फिर जयपुर-राज्य से होकर गुजरा। राजा माधव सिंह के सभी सामन्त अपनी सेनाओं के साथ युद्ध के लिए तैयार होकर आ चुके थे। जयपुर में जवाहर सिंह की सेना के प्रवेश करते ही सामन्तों ने उस पर आक्रमण किया। जवाहर सिंह इस होने वाले आक्रमण को पहले से ही जानता था और वह युद्ध के लिए तैयार होकर पुष्कर से लौटा था। और दोनों ओर से भयानक युद्ध आरम्भ हुआ। अंत में जवाहर सिंह युद्ध से भागा और इस संग्राम का परिणाम यद्यपि जयपुर के पक्ष में रहा; लेकिन आमेर-राज्य के कितनेही प्रधान सामन्त उस युद्धमें मारे गये।

जवाहर सिंह के मर जाने पर उसका छोटा भाई रतन सिंह सिंहासन पर बैठा। इन्हीं दिनों में वृन्दाबन के एक गोस्वामी के साथ रतन सिंह की भेंट हुई। गोस्वामी ने अपनी योग्यता का परिचय देते हुए रतन सिंह से कहा : "किसी भी धातु को मैं सोना बनाना जानता हूँ। लेकिन ऐसा करने में पहले बहुत-सा धन खर्च करना पड़ता है।" गोस्बामी की इस बात को सुनकर रतन सिंह ने उस पर विश्वास किया और उसकी मांग के अनुसार उसने उसको रुपये दिये। गोस्वामी ने उन रुपयों को लेकर सोना देने के लिए एक निश्चित दिन बता दिया। उस बताये हुए दिन को उससे न तो सोना मिला और न उसके दर्शन हुए। लेकिन उसके बाद उसी गोस्वामी ने अवसर पाकर रतन सिंह पर आक्रमण किया और उसके प्राण ले लिये।

रतन सिंह के मारे जाने पर उसका छोटा लड़का केशरी सिंह सिंहासन पर बैठा। उसकी अवस्था छोटी थी। इसलिए रतनसिंह का छोटा भाई नवलसिंह शासन की देख भाल करने लगा। केशरीसिंह के बाद रणजीत सिंह जाटों के सिंहासन पर बैठा। उसने अपने शासनकाल में अधिक ख्याति पायी। उन्हीं दिनों में अँगरेज सेनापति लार्ड लेक ने भरतपुर पर आक्रमण किया। उसके साथ रणजीत सिंह ने भयानक युद्ध किया। सन् १८२५ ईसवी में रणजीत सिंह की मृत्यु हो गयी। रणधीर सिंह, बलदेव सिंह, हरदेव सिंह और लक्ष्मण सिंह नाम के चार लड़के रणजीत सिंह के थे। रणधीर सिंह अपने पिता के सिंहासन पर बैठा। उसके बाद उसका छोटा भाई भरतपुर के सिंहासन पर बैठा। उसके शासनकाल में अँगरेजों ने फिर भरतपुर पर आक्रमण किया और कुछ दिनों तक वहाँ के दुर्ग को घेरे रहकर अँगरेजों ने विजय प्राप्त की। भरतपुर राज्य को अधिकार में लेकर अँगरेजों ने राज्य में धन और सम्पत्ति की लूट की।

यहाँ पर जाटों की कुछ बातों पर प्रकाश डालना जरूरी है। माचेरी आमेर-राज्य की अधीनता में था। नरूका वंश का प्रताप सिंह माचेरी में शासन करता था। माधव सिंह ने प्रताप सिंह से माचेरी का राज्य लेकर अपने अधिकार में कर लिया था। प्रताप सिंह माचेरी से जाटों के राजा जवाहर सिंह की शरण में गया। उसने प्रताप सिंह को अपने यहाँ आश्रय दिया और उसके जीवन-निर्वाह के लिए उसने उसको भूमि भी दी।

प्रताप सिंह के चले जाने पर उसके स्थान पर खुशहाली राम नामक एक व्यक्ति माचेरी का सामन्त बनाया गया और उन्हीं दिनों में जयपुर-दरबार में नन्दाराम नाम का एक आदमी दूत के स्थान पर नियुक्त किया गया।

सत्रह वर्ष तक राज्य करके पेट की बीमारी में माधव सिंह ने पर लोक की यात्रा की। शासन पर बैठने के बाद उसने जो संकल्प किये थे, उन्हें वह पूरा न कर सका। उसकी मृत्यु के बाद शिशु अवस्था में उसका पुत्र सिंहासन पर बैठा। इसलिए माधव सिंह के बाद जयपुरकी अवस्था थोड़े ही दिनों में बहुत निर्बल हो गयी। राजा माधव सिंह ने अपने शासन काल में कई नगर बसाये थे। उनमें रणथम्भोर नामक नगर अधिक प्रसिद्ध हुआ। उसके दुर्ग के पास माधव सिंह ने अपने नाम पर माधव पुर नामक एक नगर बसाया था। वह नगर कई बातों में बहुत सुन्दर था। माधव सिंह की दोनों रानियों से पृथ्वी सिंह और प्रताप सिंह नामक दो बालक पैदा हुए थे। माधव सिंह की मृत्यु के बाद छोटा बालक पृथ्वी सिंह जयपुर के सिंहासन पर बैठा। पृथ्वी सिंह की माता छोटी रानी और प्रताप सिंह की माँ बड़ी रानी थी। इसलिए प्रताप की माता पृथ्वी सिंह के बालक होने के कारण शासन का प्रबंध करने लगी। वह चन्द्रावत वंश में पैदा हुई थी। शासन की महत्वाकांक्षा पहले से ही उसके हृदय में थी। बड़ी रानी होने के कारण इसके लिए वह अधिकारिणी भी थी। उसके आचरण में दृढ़ता थी। शासनको अपने हाथ में लेने के बाद बड़ी रानीने फीरोज

नामक महावत को दरबार का सदस्य नियुक्त किया। रानी का यह कार्य राज्य के सामन्तों को अच्छा न लगा। महावत की इस नियुक्ति से दरबार के सदस्यों का अपमान होता था। इसलिए सामन्तों ने रानी के इस कार्य का विरोध किया। परन्तु उसके कुछ परवा न करने पर राज्य के समस्त सामन्त अप्रसन्न होकर राजधानी से अपनी-अपनी जागीरों में चले गये। बड़ी रानी ने उनके चले जाने की कुछ परवा न की और उसने मराठों से मिलकर अम्बाजी की अधीनता में एक वैतनिक सेना अपने राज्य में रखी। उस सेना ने मालगुजारी वसूल करने का काम किया। इन दिनों में आरत-राम नामक एक व्यक्ति आमेर का प्रधान मंत्री था और खुशहाली राम बोरा राज्य का एक मंत्री था। बौरा राजनीति में अत्यन्त कुशल था। लेकिन फीरोज के प्रभुत्व ने उसकी मर्यादा को भी क्षीण बना दिया था। रानी ने प्रभावित होकर एक साधारण महावत को अपने मंत्रिमण्डल में रखा था। लेकिन रानी का विशेष अनुराग रखने के कारण उसका प्रभाव मंत्रिमण्डल से लेकर सम्पूर्ण राज्य पर हो गया। इस दशा में राज्य के शासन का कार्य नौ वर्षों तक चलता रहा।

इन्हीं दिनों में आमेर का राजा पृथ्वीसिंह घोड़े से गिर कर मर गया। इस दुर्घटना से राज्य के सर्वसाधारण में यह अफवाह फैल गयी कि बड़ी रानी ने अपने लड़के प्रताप सिंह को राज्य के सिंहासन पर बिठाने के लिए विष देकर पृथ्वी सिंह को मरवा डाला है। यद्यपि इस अफवाह का आधार सही नहीं था क्यों कि पृथ्वी सिंह के न रहने पर राज्य का उत्तराधिकारी उसका भाई और बड़ी रानी का लड़का प्रताप सिंह नहीं हो सकता था। इसलिए कि पृथ्वी सिंह का विवाह हो चुका था और उसके साथ कृष्णगढ़ की राजकुमारी से जो विवाह हुआ था, उससे मानसिंह नामक एक लड़का पैदा हुआ था। पृथ्वी सिंह के बाद राज्य का उत्तराधिकारी यह बालक मानसिंह था। इस दशा में बड़ी रानी के द्वारा पृथ्वी सिंह के मारे जाने का कोई अर्थ नहीं निकलता। वास्तव में वह घोड़े से गिर कर मरा था।

पृथ्वी सिंह के मर जाने पर मानसिंह की माता को अपने पुत्र के सम्बन्ध में भय उत्पन्न हुआ। इसलिए उसने अपने बालक को कृष्णगढ़ भेज देने का इरादा किया। लेकिन वहाँ पर भी उसे संदेह पैदा हुआ। इसलिए वह अपने बालक को लेकर सोंधिया के यहाँ चली गयी और वहीं पर बालक मानसिंह का पालन-पोषण होने लगा। पृथ्वी सिंह के परलोकवासी होने पर आमेर के सूने सिंहासन पर बड़ी रानी का लड़का प्रताप सिंह बैठा। खुशहाली राम इन दिनों में आमेर का प्रधान मन्त्री था। उसने अभिषेक के समय प्रतापसिंह की सभी प्रकार सहायता की। खुश हाली राम को राजा की उपाधि दी गयी थी और वह प्रधान मन्त्री की हैसियत से आमेर-राज्य में काम कर रहा था। संयोग की बात है कि फीरोज के साथ उसका भीतर ही भीतर विरोध चल रहा था। प्रधान मन्त्री खुशहाली राम ने फीरोज के प्रभुत्व को मिटा देने का प्रयत्न किया। इसके लिए उसने जिन उपायों का आश्रय लिया, उनसे माचेरी के सामन्त को अपनी स्वतन्त्रता प्राप्त करने में बड़ी सहायता मिली। प्रताप सिंह के अभिषेक के समय आमेर-राज्य के सभी सामन्तों ने भाग लिया था। लेकिन माचेरी का सामन्त राजधानी में नहीं आया था। प्रधान मन्त्री खुश हाली राम की राजनीतिक चालें फीरोज के विरोध में चल रही थीं और इसके लिए उसने जो कुछ कर रखा था, उसमें प्रमुख बात यह थी कि उसने आमेर के मन्त्रिमण्डल से फीरोज को हटाने के लिए दिल्ली के मुगल बादशाह से भी भेंट की थी।

नजफ खाँ दिल्ली के मुगल बादशाह के यहाँ प्रधान सेनापति था और इन दिनों में दिल्ली के आस-पास जाटों के उपद्रव बढ़ रहे थे। उनके आगरा पर आक्रमण करने पर प्रधान सेनापति नजफ खाँ ने बादशाह के साथ परामर्श किया और मराठों की सहायता लेने के लिए उसने उनके

सरदार से बातचीत की। इसके पश्चात् मुगलों की एक फौज लेकर वह जाटों को दमन करने के लिए रवाना हुआ। खुशहाली राम राजनीति से काम लेना जानता था। उसके परामर्श से माचेरी का सामन्त भी अपनी सेना लेकर बादशाह के प्रधान सेनापति की सहायता के लिए पहुँच गया। जाटों के विरुद्ध मराठा सेना भी आ गयी थी। नजफ खां ने जाटों पर आक्रमण किया। जाटों की सेना पराजित होकर आगरा से अपनी राजधानी भरतपुर की तरफ भागी। मुगल सेना ने अन्य सेनाओं के साथ भरतपुर राज्य पर आक्रमण किया। नवल सिंह इन दिनों में जाटों का सरदार था। मुगलों के साथ जाटों को पराजित होना पड़ा। इस युद्ध में माचेरी के सामन्त ने बादशाह की फौज का साथ दिया था और उसके इस कार्य के बदले में बादशाह ने खुश हो कर उसको राव राजा की उपाधि दी। इसके साथ-साथ जयपुर की अधीनता से निकल कर मुगलों की अधीनता में शासन करने के लिए बादशाह ने उसे एक सनद भी लिख दी। इस प्रकार माचेरी का सामन्त जयपुर राज्य की अधीनता से अलग हो गया।

राजा खुशहाली राम के परामर्श का पूरा लाभ माचेरी के सामन्त ने उठाया। अब वह जयपुर राज्य की अधीनता से अलग हो चुका था। उसका सीधा सम्बन्ध मुगल बादशाह के साथ हुआ। राजा खुशहाली राम ने इन दिनों में माचेरी के सामन्त से एक नया परामर्श किया और उसके द्वारा उसने अपने शत्रु फीरोज का नाश करने के लिए संकल्प किया। राजा खुशहाली राम ने अपनी सेना के साथ बादशाह के यहां जाने की तैयारी की। बड़ी रानी ने इसको बिना किसी विरोध के स्वीकार कर लिया और उसने राजा खुशहाली राम के स्थान पर फीरोज महावत को आमेर की सेना का अधिकारी बना कर भेजा। राजा खुश हाली राम ने इसमें किसी प्रकार की आपत्ति न की। फीरोज आमेर की सेना को लेकर बादशाह के प्रधान सेनापति के यहां गया। राजा खुशहाली राम ने इसके पहले ही माचेरी के राव राजा से एक गुप्त षड़यंत्र का परामर्श कर लिया था। फीरोज महावत के वहां पहुँचने पर माचेरी के सामन्त ने उससे भेंट की और उसने उसके साथ सम्मान पूर्ण व्यवहार किया। फीरोज महावत ने माचेरी के राव राजा का पूर्ण रूप से विश्वास किया। इसी अवसर पर राजा खुशहाली राम का षड़यंत्र सफल हुआ। माचेरी के राव राजा ने फीरोज महावत को विष देकर उसके जीवन का अंत कर दिया। उसके मर जाने के बाद माचेरी का सामन्त फीरोज के स्थान पर आमेर मन्त्रिमण्डल का सदस्य बनाया गया।

फीरोज के मर जाने के बाद बड़ी रानी ने उसका अनुसरण किया और उसने अपने प्राण त्याग दिये। प्रताप सिंह की अवस्था इस समय भी बहुत थोड़ी थी। वह बिना किसी दूसरे की सहायता के राज्य का शासन नहीं कर सकता था। इस परिस्थिति को राजा खुशहाली राम पहले से ही जानता था और माचेरी के राव राजा के साथ वह पहले ही परामर्श कर चुका था। उसने अपनी राजनीति का जो जाल बिछाया था, वह आमेर राज्य में इस समय पूर्ण रूप से सफल हो रहा था। परन्तु कूटनीति और विश्वासघातकता थोड़े ही समय के बाद संकटपूर्ण साबित होती है। राजा खुशहाली राम के सम्बन्ध में भी ऐसा ही हुआ। उसने अपनी राजनीतिक चालों से आमेर के राज्य को अपने नियन्त्रण में रखने की चेष्टा की थी। इसके लिए अब तक के उसके सभी प्रयत्न सफल हुए थे। उसका विरोधी फीरोज विष देकर मारा गया और उसके प्रभाव में रहने वाली राज्य की बड़ी रानी भी इस संसार से चली गयी थी। यहां तक सफलता प्राप्त करने के बाद राजा खुशहाली राम ने आमेर के विरुद्ध एक नया षड़यन्त्र किया और उसके फल-स्वरूप हमदानी खां के नेतृत्व में बादशाह की एक सेना ने आमेर में प्रवेश किया। उस समय आमेर के मन्त्रिमण्डल में यह प्रश्न पैदा हुआ कि अब आमेर की रक्षा कैसे की जाय। इसी समय

मन्त्रिमण्डल के कुछ लोगों ने मराठों के साथ संधि करने की सलाह दी। यह संधि हो गयी। लेकिन दूसरे ही दिन वह संधि भङ्ग कर दी गयी। इसका परिणाम यह निकला कि राज्य में कुछ दिनों तक भयानक अशान्ति रही। चारों तरफ अत्याचार होते रहे और गरीब प्रजा लूटी जाती रही। दुर्भाग्य से इन दिनों को पार करके प्रतापसिंह समर्थ हुआ। उसने शासन अपने हाथ में लिया और जिन लोगों के कारण राज्य की यह दुरवस्था हुई थी, उनको निकाल कर उसने अत्याचारी मराठों को दमन करने की प्रतिज्ञा की।

इन दिनों में मराठों के अत्याचार भारतवर्ष के अनेक स्थानों पर हो रहे थे। उन लोगों ने राजस्थान के विभिन्न राज्यों पर लगातार आक्रमण करके पैशाचिक अत्याचार किये थे और भयानक रूप से राज्यों को लूटा था। प्रतापसिंह ने इन्हीं दिनों में आमेर-राज्य का शासन-प्रबन्ध अपने हाथों में लिया था। युवक प्रतापसिंह अत्यन्त स्वाभिमानी और साहसी था। मराठों के द्वारा चारों ओर जो अत्याचार हो रहे थे, उनको सुनकर उसका खून उबल रहा था। सन् १७८७ ईसवी के इन दिनों में विजय सिंह मारवाड़ के सिंहासन पर था। प्रतापसिंह ने बहुत सोच-समझ कर अपना एक पत्र दूत के द्वारा विजय सिंह के पास भेजा। उसमें उसने लिखा : "मराठों के द्वारा होने वाले अत्याचारों से आप अपरिचित न होंगे। इन मराठों ने चारों ओर जिस प्रकार निष्ठुर अत्याचार कर रखे हैं, उनको देखकर मेरे हृदय में बड़ी पीड़ा हो रही है और मैं किसी भी अवस्था में उनका दमन करना आवश्यक समझता हूँ। इसके लिए यदि समस्त राजपूत राजा मिलकर मराठों पर आक्रमण करें तो शत्रुओं की पराजय आसानी के साथ हो सकती है। इन अत्याचारी मराठों के साथ युद्ध करने के लिए मैं स्वयं अपनी सेना के साथ जाऊँगा। यदि आप हमारी सहायता में अपने राज्य की राठौड़ सेना भेज सकें तो शत्रुओं का विनाश और पराजय बिना किसी सन्देह के हो सकती है। एक बार ऐसा कर देने से राजस्थान के सभी राजाओं की स्वाधीनता सुरक्षित हो सकेगी।"

प्रतापसिंह के इस पत्र को पढ़कर विजय सिंह प्रभावित हुआ। मारवाड़-राज्य में एक नया उत्साह पैदा हुआ। वहाँ की सेना आमेर की सेना के साथ मिलकर अत्याचारी मराठों के साथ युद्ध करने के लिए तैयार होने लगी। उन्हीं में मारवाड़ के राजा विजय सिंह ने मराठों के अधिकार से अपना आमेर का राज्य वापस लेने का निर्णय किया। राठौर सेना मारवाड़ से चलकर आमेर की सेना के साथ जाकर मिल गयी।

तुङ्गा नामक स्थान पर मराठों के साथ आमेर और मारवाड़ की सेनाओं का युद्ध आरम्भ हुआ। सींधिया मराठा सेना का सेनापति था और उसके साथ फ्राँसीसी सेनापति डीवाईन भी मौजूद था। मराठों और राजपूतों में कुछ समय तक भयङ्कर संग्राम हुआ, अंत में सींधिया की पराजय हुई वह अपनी युद्ध की सामग्री और अस्त्र-शस्त्र भी छोड़कर बची हुई सेना के साथ भाग गया। कछवाहा और राठौड़ सेना ने मराठों की समस्त सम्पत्ति और सामग्री पर अधिकार कर लिया। इस युद्ध में सींधिया के मुकाबिले युद्ध करने के लिए प्रतापसिंह स्वयं गया था। सन् १७८९ ईसवी के इस युद्ध में विजयी होकर प्रतापसिंह ने एक विशाल उत्सव किया और उसने चौबीस लाख रुपये दीनों-दरिद्रों को दान में दिये।

तुङ्गा के युद्ध में विजयी होने पर प्रतापसिंह की राजस्थान में बहुत ख्याति मिली। मराठों की पराजय से चारों ओर के राज्यों में शान्ति कायम हुई। लेकिन यह परिस्थिति बहुत दिनों तक न रही। कई वर्षों के बाद माधवजी सींधिया एक नयी सेना संगठित करके रवाना हुआ और

उसने मारवाड़ को विध्वंश करने का निश्चय किया। यह समाचार पाकर विजय सिंह ने प्रताप सिंह के पास अपना दूत भेजा। राजा प्रताप सिंह ने मराठा सेना के आने का समाचार सुनते ही अपनी सेना को तैयार होने का आदेश दिया और तुरन्त मराठों के साथ युद्ध करने के लिए राठौड़ और कछवाहों की सेना ने संयुक्त मोर्चा तैयार किया। उन दिनों में एक ओर मराठों के साथ युद्ध आरम्भ हुआ और दूसरी ओर राठौर कवियों ने राठौड़ सैनिकों को प्रोत्साहित करने के लिए जो गाने गाये, उनमें केवल राठौड़ों की प्रशंसा थी। कछवाहे सैनिकों पर इसका दूषित प्रभाव यह पड़ा कि आमेर की सेना युद्ध में उदासीन हो गयी। उसकी सहायता न मिलने के कारण इस युद्ध में राठौड़ों की पराजय हुई।

राठौड़ राजा विजय सिंह के साथ आमेर-राज्य को जो संधि हुई थी, वह टूट गयी। इसलिए सन् १७९१ ईसवी में तुको जी होलकर ने जयपुर-राज्य पर आक्रमण किया। उस युद्ध में प्रताप सिंह को पराजय हुई और उसे होलकर को वार्षिक कर देना स्वीकार करना पड़ा। बाद में अमीर खाँ उस कर के वसूल करने का अधिकारी बना दिया गया। उस समय से लेकर प्रताप की मृत्यु के समय सन् १८३३ ईसवी तक जयपुर-राज्य की दशा बहुत खराब रही। इन दिनों में मराठा और फ्राँसीसी सेना ने भयानक रूप से जयपुर का विनाश किनाश किया।

प्रताप सिंह ने आमेर के सिंहासन पर बैठकर पच्चीस वर्ष तक शासन किया। वह साहसी और दूरदर्शी था। लेकिन लुटेरे शत्रुओं के कारण वह अधिक सफलता न प्राप्त कर सका। मांचेड़ी राज्य के निकल जाने के कारण जयपुर-राज्य की आमदनी बहुत कम हो गयी थी। मराठों के कई बार आक्रमण होने पर प्रताप सिंह को लाखों रुपये उनको देने पड़े थे, इससे आमेर- राज्य का खजाना खाली हो गया। मराठों ने उस राज्य से सब मिलाकर अस्सी लाख रुपये वसूल किये।

राजपूतों की अधोगति का कारण उनकी संकुचित विचारधारा थी। मराठों ने जिस प्रकार अत्याचार करके राजस्थान के राज्यों का विध्वंस और विनाश किया, उनका बदला लेने के लिए स्वाभिमानी प्रताप सिंह ने अपने राज्य का शासन अपने हाथों में लेते ही जो योजना तैयार की थी और जिसके अनुसार मारवाड़ के राजा विजय सिंह ने एक बार उसका साथ दिया, उसके द्वारा प्रताप सिंह ने निश्चय रूप से मराठों को सदा के लिए निर्बल कर दिया होता। लेकिन सोंधिया के दूसरी बार आक्रमण करने पर मारवाड़ के कवियों ने जिस संकुचित विचारधारा से काम लिया, उसके फलस्वरूप न केवल मारवाड़ का बल्कि आमेर-राज्य का भी पतन हुआ। उसका विवरण ऊपर लिखा जा चुका है।

बासठवाँ परिच्छेद

आमेर के सिंहासन पर जगत सिंह—राजपूत-राज्यों की अवनति—अङ्गरेजों के साथ जगत सिंह की संधि—राजा जगत सिंह पर अङ्गरेज लेखकों का झूठा दोषारोपण—स्वार्थ के मौके पर अङ्गरेजों की तरफ की संधि की अवहेलना—राजा जगत सिंह की अयोग्यता—पतन की ओर आमेर का राज्य—जगत सिंह की रखेल रानी—राज्य में नाजिर मोहन के षड़यंत्रों का जाल।

प्रताप सिंह के बाद सन् १८०३ ईसवी में जगत सिंह आमेर के सिंहासन पर बैठा। इन दिनों में आमेर के साथ-साथ वहाँ के समस्त राजपूत राज्यों की अवनति हो गयी थी। मराठों के अत्याचारों से राजस्थान का प्रत्येक राज्य अशान्ति के दिन व्यतीत कर रहा था। कहीं पर भी प्रजा सुखी न थी। सर्वत्र व्यवसाय को भयानक क्षति पहुँची थी। किसानों की खेती लगातार नष्ट हो रही थी। चारो तरफ मराठों की लूट मार चल रही थी। उनको रोकने के लिए राजपूत राजाओं के पास कोई साधन न था। मराठों के दो संगठित दल थे। एक का नेतृत्व होलकर कर रहा था और सींधिया दूसरे दल का सेनापति था। पठानों का सेनापति अमीर खाँ मराठों का सहायक हो रहा था। इन दिनों में राजपूतों की अवस्था अच्छी न थी। पठानों और मराठों के शक्तिशाली संगठन लगातार उनका विनाश कर रहे थे। जगत सिंह के सामने भयानक संकट था। अपने राज्य की रक्षा के लिए उसे कहीं कुछ दिखायी न दे रहा था। राजपूत राजा संगठित होकर शत्रुओं का सामना न कर सकते थे। वे अपने संस्कारों में एकता को लेकर संसार में न आये थे। इधर बहुत दिनों से राजपूत राजाओं को मुगल बादशाह का आश्रय मिल रहा था। उनकी बादशाहत भी इन दिनों में मृतप्राय हो रही थी। समुद्र पार करके जो अँगरेज इस देश में आये थे, केवल उनकी शक्ति इन दिनों में सजीव और जाग्रत हो रही थी। इस दशा में जगत सिंह की आँखें बार-बार इन अङ्गरेजों की तरफ देख रही थीं। उसने सोच-समझ कर सन् १८०३ ईसवी में अंगरेजों के साथ सन्धि कर ली। वह सन्धि सात शर्तों के साथ लिखी गयी थी। उसका सारांश इस प्रकार है :

(१) इस सन्धि के द्वारा ईस्ट इन्डिया कम्पनी और राजा जगत सिंह तथा उसके उत्तराधिकारियों में स्थायी रूप से मित्रता कायम होती है।

(२) इस सन्धि के अनुसार एक पक्ष का शत्रु दोनों पक्षों का शत्रु होगा और किसी एक पक्ष का मित्र दोनों पक्षों का मित्र समझा जायगा।

(३) राजा जगत सिंह को अपने राज्य में शासन करने का पूर्ण अधिकार होगा। ईस्ट इण्डिया कम्पनी उसमें कभी हस्तक्षेप नहीं करेगी।

(४) कम्पनी के अधिकृत राज्यों पर अगर इस देश की कोई शक्ति आक्रमण करेगी, तो आमेर की सेना कम्पनी की सेना के साथ आक्रमणकारी के साथ युद्ध करेगी।

(५) इस सन्धि को स्वीकार करके राजा जगत सिंह ने कम्पनी के अधिकारों को मंजूर किया है। यदि किसी समय किसी के साथ राजा जगतसिंह का सङ्घर्ष पैदा होगा तो सन्धि के अनुसार

उस सङ्घर्ष का कारण जगत सिंह कम्पनी के अधिकारियों के सामने उपस्थित करेगा। कम्पनी उस सङ्घर्ष को दूर करने की चेष्टा करेगी।

(६) किसी भी आवश्यकता के समय आमेर की सेना कम्पनी की सेना के साथ रह कर युद्ध करेगी।

(७) कम्पनी के अधिकारियों के आदेश के बिना राजा जगत सिंह को किसी देशी अथवा विदेशी शक्ति के साथ सन्धि अथवा मेल करने का अधिकार न होगा।

ऊपर लिखी हुई सन्धि पर सम्बत् १८६० सन् १८०३ ईसवी के १२ दिसम्बर को दोनों पक्षों की तरफ से हस्ताक्षर किये गये और उस पर मोहर लगायी गयी।

इस प्रकार कम्पनी के साथ राजा जगत सिंह ने सन्धि करके मित्रता की। लेकिन वह मैत्री अधिक दिनों तक कायम न रह सकी। अँगरेज लेखकों ने राजा जगत सिंह पर दोषारोपण करते हुए इनके सम्बन्ध में लिखा : "जयपुर के राजा ने सन्धि में लिखी हुई शर्तों की अवहेलना की। इसलिये लार्ड कार्नवालिस को इस सन्धि के तोड़ देने का विचार करना पड़ा।"

अँगरेज लेखकों का राजा जगत सिंह पर यह झूठा दोषारोपण था। इसका प्रमाण आचिसन साहब के एक लेख से मिलता है। उसने लिखा है : "लार्ड कार्नवालिस ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी को जगत सिंह के साथ की गई सन्धि को तोड़ देने का आदेश दिया। इसके पहले राजा जगत सिंह ने ऐसा कोई कार्य नहीं किया था, जिससे उसकी तरफ से सन्धि की शर्तों की अवहेलना प्रकट होती। सन्धि टूटने के पहले होलकर की सेना के साथ कम्पनी का युद्ध हुआ था। उस समय राजा जगत सिंह ने लार्ड लेक की सेना के साथ जा कर मराठों से युद्ध किया था।" इस लेख से साफ जाहिर होता है कि सन्धि टूटने का अपराध राजा जगत सिंह पर नहीं, कम्पनी पर था। कम्पनी का हित इसी में था कि उसने राजा जगत सिंह के साथ जो सन्धि की है, वह टूट जाय। उस सन्धि के टूट जाने से जयपुर को भयानक क्षति उठानी पड़ी। मराठों के अत्याचार फिर से जयपुर में आरम्भ हो गये। इनके आरम्भ होने का कारण यह था कि संधि के अनुसार जयपुर के राजा जगत सिंह ने अँगरेज सेनापति जनरल लेक का साथ देकर होलकर के साथ युद्ध किया था। इसके बाद कम्पनी ने जयपुर की सन्धि तोड़ दी और उसका परिणाम जयपुर को भोगना पड़ा।

जगत सिंह जिन दिनों में आमेर के सिंहासन पर बैठा था, उन दिनों में मेवाड़ में राणा भीमसिंह का और मारवाड़ में राजा मानसिंह का शासन चल रहा था। ये तीनों समकालीन राजा थे। राजा मानसिंह से उसके सामन्त प्रसन्न न थे। उन्हीं दिनों में पोकर्ण के सामन्त सवाई सिंह ने राजा मानसिंह के साथ सङ्घर्ष पैदा किया। सवाई सिंह किसी प्रकार मानसिंह को सिंहासन से उतार देने की चेष्टा कर रहा था। उसकी इस चेष्टा को शक्तिशाली बनाने वाले कई एक कारण पैदा हो गये थे। मानसिंह के पहले राजा भीमसिंह मारवाड़ के सिंहासन पर था। उसके मरने के बाद उसकी गर्भवती रानी से एक लड़का पैदा हुआ था। उसका नाम धौंकल सिंह था। सवाई सिंह मानसिंह से अप्रसन्न था। इसलिए उसके सिंहासन पर बैठने के बाद सवाई सिंह ने धौंकल सिंह का पक्ष लेकर मानसिंह का विरोध किया और एक भयानक सङ्घर्ष पैदा कर दिया। वह राजनीति में बहुत चतुर था। इसलिए उसने मानसिंह के विरुद्ध एक षड्यन्त्र की रचना की और उसके अनुसार उसने आमेर और मारवाड़ के राजाओं में सङ्घर्ष पैदा करने का सफल प्रयत्न किया। उसका अनुमान था कि इन दोनों राजाओं की शत्रुता बढ़ जाने से मेरी चेष्टा सफल होगी और मारवाड़ के सिंहासन से मानसिंह को उतार कर धौंकल सिंह को बिठाने में मैं सफल हो सकूँगा। सामन्त सवाई

सिंह के द्वारा पैदा होने वाले संघर्ष का वर्णन विस्तार के साथ इस पुस्तक में पहले किया जा चुका है, इसलिए यहाँ पर फिर उसका उल्लेख करना किसी प्रकार आवश्यक नहीं।

राजा जगत सिंह ने ऊपर लिखी हुई संधि ईस्ट इण्डिया-कम्पनी के साथ की थी। वह संधि उस समय तक चली, जब तक कम्पनी के अंगरेजों को उसकी आवयकता रही। उस संधि को तोड़ देने में जिस समय कम्पनी को अपना लाभ मालूम हुआ तो वह बिना किसी आधार के तोड़ दी गयी और उसका अपराधी राजा जगत सिंह को बनाया गया। इन दिनों में ईस्ट-इण्डिया कम्पनी की शक्तियाँ बराबर बढ़ रही थीं। राजस्थान के सभी राजाओं ने क्रम क्रम से कम्पनी के साथ संधियाँ कीं। उस दशा में जयपुर के राजा को फिर विवश होकर सन् १८१८ ईसवी की दो अप्रैल को कम्पनी के साथ नयी संधि करनी पड़ी।

जगत सिंह न केवल शासन में बल्कि अन्य बातों में भी अयोग्य था। उसकी इस अयोग्यता के कारण जयपुर राज्य का पतन हुआ। अयोग्य मनुष्य को सांसारिक ज्ञान के अभाव में अपने ऊपर भी विश्वास नहीं रहता और इसीलिए उसको दूसरे के आश्रय पर चलना पड़ता है। इस दशा में उससे उचित और अनुचित कोई भी लाभ उठा सकता है। जगत सिंह की यही अवस्था थी। अपनी निर्बलता के कारण उसको होलकर की सेना के एक अधिकारी अमीर खाँ की सहायता लेनी थी। अमीर खाँ दूसरों को लूटने में एक असाधारण पुरुष था। उसने अपनी सेना के खर्च के नाम पर जयपुर-राज्य से अपरिमित सम्पत्ति ली थी और उसके बाद भी उसने जयपुर-राज्य के कितने ही ग्रामों और नगरों पर अधिकार कर लिया था। इन दिनों में केवल अमीर खाँ जयपुर-राज्य की अधोगति का कारण बन गया था। वह कूटनीति का पण्डित था। उसने जयपुर में भयानक रूप से अशान्ति पैदा कर दी थी। अमीर खाँ एक तरफ अंगरेजों का मित्र बनने की कोशिश करता था और दूसरी तरफ वह जयपुर के राजा जगत सिंह को अंगरेजों के विरुद्ध उत्तेजित किया करता था। उसकी भलाई इसी में थी कि अंगरेजों के साथ जगत सिंह की संधि चल न सके। वह भयानक रूप से तिकड़मबाज था। अंगरेजों से जगत सिंह की निंदा किया करता था और जगत सिंह को अंगरेजों से सदा सावधान रहने की चेतावनी दिया करता था। जगत सिंह उसकी इन चालों को समझ न सका। उसमें न तो योग्यता थी और न आत्म-विश्वास था। अपनी इन निर्बलताओं के कारण वह राज्य के सामन्तों और मंत्रियों पर भी विश्वास न करता था। उसकी इन कमजोरियों का अनुचित रूप से लाभ अमीर खाँ ने उठाया। उसने जगत सिंह को अंगरेजों के साथ संधि न करने के लिए सदा तैयार किया। वह जगत सिंह का मित्र न था। उसकी अयोग्यता के कारण अमीर खाँ इन दिनों में जयपुर को असहाय समझता था। इसीलिए इन दिनों में उसने जजपुर के अत्यन्त समीप माधव राजपुरा नामक स्थान पर गोलों की वर्षा की थी। जिससे घबराकर जगत सिंह को दूसरी बार अंगरेजों वे साथ संधि करनी पड़ी। इस बार की संधि में जयपुर-राज्य पहले की अपेक्षा अधिक जकड़ा गया। पहली संधि में उससे कर लेने की कोई शर्त न रखी गयी थी। दूसरी बार की संधि में जयपुर राज्य को कर देना स्वीकार करना पड़ा। यह संधि दस शर्तों में तैयार की गयी। विस्तार के भय से संधि की शर्तों का उल्लेख हम यहाँ नहीं करना चाहते। इस दूसरी संधि के अनुसार राजा जगत सिंह ने ईस्ट-इण्डिय-कम्पनी को कर के रूप में आठ लाख रुपये वार्षिक देना स्वीकार किया और इस संधि को मंजूर करके उसने जयपुर-राज्य की स्वाधीनता का अन्त कर दिया। यद्यपि उन दिनों में राज्य की परिस्थितियाँ इतनी भयानक हो गयी थीं कि अंगरेजों की संधि के बिना जयपुर-राज्य का कार्य किसी प्रकार चल न सकता था और यदि उसने ऐसा

न किया होता तो आक्रमणकारी लुटेरों ने उसकी बची हुई जिन्दगी का भी विनाश कर दिया होता।

आमेर के सिंहासन पर बैठकर जगत सिंह ने अपने पूर्वजों के गौरव के अनुसार एक भी कार्य न किया। उसके शासन-काल में प्रायः नित्य ही एक-न-एक ऐसी घटना हुआ करती थी, जो उस राज्य को तेजी के साथ पतन की ओर ले जाने का कार्य कर रही थी। उसके समय में अनेक बार राज्य पर आक्रमण हुए। राज्य लूटा गया। शत्रुओं ने भयानक रूप से प्रजा का विध्वंश और विनाश किया। जगत सिंह अपनी अयोग्यता के कारण इस दुरवस्था से राज्य की रक्षा न कर सका। उसने ऐसे अवसरों पर आत्म-समर्पण किया और युद्ध का खर्च देकर जान बचायी। वह राजपूत था लेकिन क्षत्रियोचित उसमें शौर्य स्वाभिमान न था। अपने अनुचित कार्यों से उसने व्यक्तिगत चरित्र को भी कलंकित किया था। रसकपूर नामक एक वेश्या की लड़की से उसने प्रेम किया था, जिसके कारण उसको सिंहासन से उतार देने के लिए कुछ मंत्रियों और सामन्तों ने तैयारी की थी। रसकपूर से अप्रसन्न होकर राज्य के अधिकारों ने उसे नाहरगढ़ के दुर्ग में भेज देने का निर्णय किया। उस दुर्ग में राग्य के अपराधी भेजे जाते थे। लेकिन राजा जगत सिंह के कारण रसकपूर वहाँ भेजी न जा सकी।

राजा जगत सिंह ने उस मुस्लिम लड़की को अपनी रखेल बनाकर अपने यहाँ रखा और आधे राज्य पर उसको अधिकारिणी बना दिया। राजा जगत सिंह ने अपने राज्य में रसकपूर के नाम से सिक्का चलाया। एक बार वह रसकपूर ने साथ घूमने के लिए निकला और अपने सामन्तों से उसने उसके प्रति उसी प्रकार का सम्मान प्रकट करने के लिए आदेश दिया, जिस प्रकार का सम्मान सामन्त लोग अपने राजवंश की महिलाओं के प्रति प्रकट किया करते थे। सामन्तों ने उसकी इस आज्ञा को स्वीकार नहीं किया। उसके दरबार में शिवनारायण मिश्र नाम का एक ब्राह्मण था। वह राज्य के प्रधान मंत्री के पद पर इसीलिए नियुक्ति किया गया था कि वह रसकपूर को लड़की कहकर पुकारता था। राजा जगत सिंह की आज्ञाओं का विरोध करके दूनी के सामन्त चाँदसिंह ने आवेश में आकर कहा था : "मैं किसी भी उस आयोजन में भाग न लूंगा जिसमें रसकपूर मौजूद होगी।"

चाँदसिंह की इस बात को सुनकर जगत सिंह ने उस पर दो लाख रुपये का जुर्माना किया। जुर्माने की यह रकम उसकी जागीर दूनी की चार वर्ष की आमदनी थी।

मनु ने अपनी पुस्तक मनुस्मृति में राजा को सिंहासन से उतार देने की व्यवस्था दी है। आमेर के सामन्तों से उस व्यवस्था का आश्रय लेकर जगत सिंह को सिंहासन से उतारने का प्रयास किया। जगत सिंह को इसका पता लग गया। वह अपने बचने की कोशिश करने लगा। कुछ सामन्त और मन्त्री इस अपमान से जगत सिंह की रक्षा भी करना चाहते थे। किसी प्रकार रसकपुर को कारागार भेज दिया गया और राजा जगत सिंह से जो सम्पत्ति उसे मिली थी, उससे छीन लेने का आदेश दिया गया। जिस दुर्ग के कारागार में रसकपूर भेजी गई, वहाँ से वह वह किसी प्रकार निकल कर भाग गयी। जगतसिंह ने उसके भाग जाने पर कोई विरुद्ध कार्यवाही न की। सन् १८१८ ईसवी की २१ दिसम्बर को जगत सिंह की मृत्यु हो गई।

राजा जगत सिंह के कोई लड़का न था। उसने अपने जीवन-काल में किसी को उत्तराधिकारी भी नहीं बनाया था। राजा के पुत्रहीन मरने पर गोद लेने की व्यवस्था बहुत प्राचीन काल से राजस्थान में चली आ रही है। इस प्रकार जो बालक गोद लिया जाता है, उसी के द्वारा मृत राजा की दाह-क्रिया का संस्कार कराया जाता है। राजा जगत सिंह के मर जाने पर नरवर के एक राजा के लड़के मोहन सिंह को गोद लेकर आमेर-राज्य के सिंहासन पर बिठाने का निश्चय हुआ।

२१ दिसम्बर को जगत सिंह की मृत्यु हो जाने पर राज्य में गोद लेकर शासन का कार्य सम्हालने का निश्चय हुआ। लेकिन वर्तमान परिस्थितियों में यह सम्भव नहीं है, जैसा कि अँगरेजों के साथ की गयी संधि में स्वीकार किया गया है, इस पर राज्य के मन्त्री और सामन्त आपस में परामर्श करने लगे। जयपुर राज्य के मन्त्रिमण्डल के सामने यह एक कठिन समस्या पैदा हुई। ऐसे अवसर पर मैं मन्त्रि-मण्डल की सहायता करना चाहता था। लेकिन राज्य की पुरानी और प्रचलित प्रथाओं का ज्ञान न रखने के कारण मैंने जो हस्तक्षेप किया, उसे राज्य के लोगों ने अच्छा नहीं समझा और वहाँ के सरदारों को इसके लिए अपनी असकर्थता प्रकट करनी पड़ी।

इन दिनों में जयपुर के मन्त्रि-मण्डल के सामने राज्य के उत्तराधिकारी के अभाव की जो समस्या थी, उस पर यहां कुछ प्रकाश डालना आवश्वक मालूम होता है। साधारण तौर पर राजा के बड़े पुत्र को उत्तराधिकारी होने का पद मिलता है। राजपूतों में प्रचलित यह एक पुरानी प्रथा है। यद्यपि कभी-कभी इस प्रथा का उल्लंघन होता हुआ भी देखा गया है। लेकिन बहुत कम। इसके सम्बन्ध में मनु ने अपने ग्रन्थ में निर्णय किया है। यद्यपि बहुत से राजपूतों ने मनु की इन आज्ञाओं का अनुशरण नहीं किया। राजा के बड़े लड़के को पाटकुमार अथवा राजकुमार के नाम से पुकारा जाता है और वही अपने पिता के राज्य का उत्तराधिकारी माना जाता है। राजकुमार के दूसरे भाई कुमार नाम से सम्बोधित होते हैं। राज्य की सब से बड़ी रानी को अर्थात् राजा का विवाह जिसके साथ सब से पहले होता है, उसे पटरानी कहा जाता है। अन्य रानियों की अपेक्षा पटरानी के अधिकार अधिक होते हैं। छोटी अवस्था में राजकुमार के सिंहासन पर पटरानी राज्य का शासन करती है।

यदि कोई राजा पुत्रहीन अवस्था में मरता है तो उस वंश के किसी निकटवर्ती सम्बन्धी के बालक को गोद लेने की राजस्थान में बहुत पुरानी व्यवस्था है। ऐसे प्रश्न पर सगे भाई के बालक को सबसे पहले गोद लेने का नियम है। उसके अभाव में वंश के किसी निकटवर्ती बालक की खोज की जाती है। इस प्रकार की प्रचलित प्रणाली के अनुसार, मेवाड़ राज्य में उत्तराधिकारी के अभाव में राणावत वंश के बालक को गोद लिया जाता है। मारवाड़-राज्य में जोधावंशीय बालक को गोद लेने की व्यवस्था है। बूँदी-राज्य में दुगारी वंश, कोटा-राज्य में आपजी वंश, बीकानेर के महाजन गाँव के सामन्त वंश का बालक गोद लिया जाता है।

जगत सिंह की मृत्यु के बाद दूसरे दिन मोहन सिंह नाम का बालक जयपुर के सिंहासन पर बैठा। वह बालक नरवर-राज्य के भूतपूर्व राजा मनोहर सिंह का लड़का था। सींधिया ने मनोहर सिंह को राज्य से निकाल दिया था। वह जयपुर-राज्य का वंशज था। उसके पूर्वज आठ सौ वर्ष पहले जयपुर-राजवंश से पृथक हुए थे। इसलिए मोहन सिंह का अभिषेक प्रचलित प्रथा के विपरीत हुआ। क्योंकि वर्त्तमान प्रथा के अनुसार झिलाँय के सामन्त का वंशज आमेर राज्य के पद पर आने का अधिकारी था। उस वंश के किसी बालक के न मिलने पर दूसरे कई सामन्त वंश इसका अधिकार रखते थे। उन वंशों के किसी बालक की खोज न करके मोहन सिंह के गोद लिए जाने का एक कारण था। जगत सिंह की मृत्यु के समय उसके अन्तःपुर में मोहन नाम का एक नाजिर था।* उस समय शासन की बागडोर उसी के हाथ में थी। वह बड़ा चतुर था और

* मुगल बादशाहों के महलों में जो मनुष्य रक्षक के पद पर रक्खा जाता था, उसे नाजिर कहा जाता था। राजपूत राजाओं में जयपुर और बूंदी के राजाओं ने उनका अनुकरण करके अपने अन्तःपुर के रक्षक को नाजिर उपाधि दी थी।

स्वार्थ साधन करना वह खूब जानता था। बड़ी बुद्धिमानी के साथ उसने अपने उद्देश्यों की पूर्ति की थी और राज्य के शासन में अपना अधिकार पैदा कर लिया था। वह स्वार्थ परायण था। अवसर का लाभ उठाना जानता था। जिस मोहन सिंह को आमेर राज्य का उत्तराधिकारी बनाया गया और वहाँ के सिंहासन पर बिठाया गया; उसकी अवस्था केवल नौ वर्ष की थी। इस बालक के सिंहासन पर बैठने से नाजिर मोहन को बहुत समय तक राज्य से लाभ उठाने का मौका था। इसलिए राजस्थान की प्रथा के अनुकूल न होने पर भी बालक मोहन सिंह को आमेर के सिंहासन पर बिठाने की नाजिर मोहन ने चेष्टा की थी और उसमें उसको सफलता भी मिली थी।

जयपुर राज्य के श्रेष्ठ सामन्तों में डिग्गी के मेघराज सिंह सामन्त की मित्रता उस नाजिर के साथ थी। सामन्त मेघसिंह ने नाजिर की मित्रता का पूरे तौर पर लाभ उठाया था और राजा की खास भूमि पर अधिकार करके स्वतन्त्रता के साथ उसका उपयोग किया था। शासन में नाजिर का आधिपत्य था और उस नाजिर के साथ मेघसिंह की मैत्री थी। अन्तःपुर से लेकर राज्य के छोटे-बड़े सभी कर्मचारियों तक जो लोग नाजिर के मेल के थे, वे सभी राज्य में मनमानी कर रहे थे। उन पर किसी का नियन्त्रण न था। छोटे बालक के सिंहासन पर बैठने से राज्य में शासन का अधिकार नाजिर के हाथ में रहेगा और अधिकार बने रहने से अनुकूल कर्मचारी और राज्य के अधिकारी बिना किसी अंकुश के रहेंगे। इसीलिए वे सब नाजिर के समर्थक हो रहे थे और नाजिर की इच्छानुसार बालक मोहन सिंह वहाँ के सिंहासन पर बिठाया गया था।

नाजिर ने नरवर से मोहन सिंह को लाने और अभिषेक करके सिंहासन पर उसे बिठाने के लिए किसी से परामर्श नहीं किया था। अपनी समझ में उसको परामर्श करने की जरूरत भी नहीं थी। दरबार से लेकर राज्य तक सर्वत्र उसका आधिपत्य था। इसीलिए उसने न तो रानियों से कुछ पूछा था और न सामन्तों से कुछ बातचीत की। केवल अपने अधिकारों के बल पर बालक मोहन सिंह को लेकर उसने जगत सिंह का दाह संस्कार कराया और उसके बाद दूसरे दिन मोहन सिंह को मानसिंह के नाम से सिंहासन पर बिठा कर कछवाहों का राजा बना दिया। इसके बाद जयपुर की राजधानी में जो सामन्त उपस्थित थे, उनकी सम्मति लेकर उसने राज्य की मोहर लगाने का प्रयास किया। उस समय उसके पक्षपाती सामन्त ही वहाँ पर मौजूद थे। लेकिन उन लोगों ने भी इसे पसन्द न किया और उन लोगों ने सोच समझकर ऐसा कर दिया, जिससे बालक मोहन के अभिषेक में न तो उनकी सम्मति जाहिर होती थी और न उनका विरोध ही प्रकट होता था। इसका परिणाम यह हुआ कि कुछ समय तक उस अभिषेक के सम्बन्ध में किसी की ओर से आलोचना न हो सकी। जो लोग इस कार्य को नाजिर की अधिकार चेष्टा समझते थे, वे भी कुछ न कह कर ईस्ट-इन्डिया कम्पनी की प्रतीक्षा कर रहे थे। वे चाहते थे कि कम्पनी के अधिकारी नाजिर के इस कार्य में दखल दें। नाजिर बहुत समझदार था। विरोधी अवसरों को वह अनुकूल बनाना जानता था। दिल्ली में अँगरेज रेजीडेण्ट को उसने अपना एक प्रार्थना-पत्र भेजा। उसके अनुसार कम्पनी की तरफ से एक कर्मचारी जयपुर-राज्य में आया। राजा जगत सिंह की मृत्यु के बाद छः दिन बीत चुके थे। कम्पनी ने अपने उस कर्मचारी के द्वारा निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर प्राप्त करने की कोशिश की थी :

१—नरवर-राज्य के बालक-मोहन सिंह को जयपुर-राज्य का अधिकारी किस प्रकार बनाया गया ?

२—मोहन सिंह के वंश का विवरण क्या है ?

३—मोहन सिंह के वंश का जयपुर-राज्य के राज वंश से क्या सम्बन्ध है ?

४—बालक मोहन सिंह के पूर्वजों की नामावली और उसके सम्बन्ध में आवश्यक विवरण।

५—मोहन सिंह को इस राज्य के सिंहासन पर बैठने का अधिकार कैसे मिला और उसके इस अधिकार को किस आधार पर स्वीकार किया गया ?

६—इस बात का कैसे निर्णय हुआ कि बालक मोहन सिंह इस राज्य के सिंहासन पर बैठने का अधिकारी है।

७—जिनके द्वारा इस प्रकार का निर्णय हुआ, उनका नाम और परिचय।

८—अभिषेक के सम्बन्ध में अन्तःपुर की रानियों से क्या परामर्श किया गया और यदि लिया गया तो उसका प्रमाण क्या है ?

९—इस बालक को सिंहासन पर बिठाने के लिए कितने सामन्तों ने सम्मति दी और अभिषेक के समय समारोह में भाग लिया ?

१०—जिनकी सम्मतियों और परामर्शों से बालक मोहन सिंह को सिंहासन पर बिठाया गया, क्या उनके हस्ताक्षर लिए गये और यदि लिए गये तो वे कहाँ हैं ?

११—अभिषेक समारोह में राज्य की समस्त प्रजा और उसके प्रतिष्ठित लोगों को क्या आमंत्रित किया गया ?

नाजिर ने अँगरेजी रेजीडेण्ट के पास प्रार्थना-पत्र भेजकर उसको अपने अनुकूल बनाये रखने का प्रयास किया, लेकिन रेजीडेण्ट ने कम्पनी की तरफ से एक कर्मचारी भेजा। उसने जयपुर-राज्य में आकर ऊपर लिखे हुए प्रश्नों के आधार पर परिस्थितियों को समझने की चेष्टा की। नाजिर ने अपने सफल प्रयत्नों के द्वारा कम्पनी के उस कर्मचारी को भी अनुकूल बना लिया। उसने जयपुर से लौटकर अपने अधिकारियों को ऐसी रिपोर्ट दी, जिससे सन्तुष्ट होकर बालक मोहन सिंह के पक्ष में कम्पनी की स्वीकृति नाजिर के पास आ गयी। कम्पनी का वह पत्र दरबार में सबके सामने उपस्थित किया गया और नाजिर ने प्रसन्नता के साथ उसे पढ़कर सबको सुनाया। इस स्वीकृति के मिलने के बाद मोहन सिंह को राज-सिंहासन मिलने के संबंध में नरवर में खुशियाँ मनायी गयीं।

नाजिर को अब भी थोड़ा बहुत सामन्तों पर संदेह था। उसको दूर करने के लिए उसने सामन्तों से प्रश्न किया : "आप लोगों की क्या सम्मति है ?"

सामन्त लोग नाजिर की चालाकी को खूब जानते थे। इन दिनों में उसी के संदेहों पर राज्य का शासन चल रहा था। नाजिर जिसे चाहता था अधिकारी बना देता था और जिसे चाहता था, उसे मिटाने की कोशिश करता था। इन परिस्थितियों में जान बूझकर सामन्त लोग उसके शत्रु नहीं बनना चाहते थे। इसलिए उन लोगों ने बुद्धिमानी के साथ एक निर्णय करके नाजिर के प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा : "जोधपुर के राजा की बहन आजकल इस राज्य की पटरानी है। उसकी मर्यादा को सम्मान देना हम सब का कर्त्तव्य है। इसलिए इस प्रश्न के सम्बन्ध में हम लोगों का उत्तर पटरानी के उत्तर पर निर्भर है।"

सामन्तों के इस उत्तर को सुनकर नाजिर चौंक पड़ा। उन सामन्तों से इस प्रकार के उत्तर की आशा न थी। पटरानी नाजिर से प्रसन्न न थी। उसने न केवल नाजिर का विरोध किया, बल्कि इस मामले में जो लोग उसके पक्षपाती थे और जिस किसी ने बालक मोहन सिंह को सिंहासन पर बिठाने के लिए अपनी सम्मति दी थी, पटरानी ने साहसपूर्वक उसका भी विरोध किया। इसी फरवरी को इस्ट-इण्डिया कम्पनी की तरफ से मोहन सिंह का समर्थन नाजिर को प्राप्त हो गया था। लेकिन पटरानी के विरोधों से दरबार की परिस्थिति पलटने लगी। सामन्तों ने बड़ी बुद्धिमानी के साथ पटरानी का आश्रय और आधार लेकर ऐसा उत्तर दिया, जिससे बहुत साफ-साफ

बालक मोहन सिंह को सिंहासन देने का विरोध प्रकट होता था। इन सब बातों का परिणाम यह निकला कि फरवरी के अंत तक नाजिर की विदोधी शक्तियाँ बढ़ने लगीं और मोहन सिंह का जो अभिषेक किया गया था, उसके प्रति राज्य की प्रजा में असंतोष पैदा हो गया। झिलाय का राजावत सामन्त इस सिंहासन के पाने का अधिकारी था। वह अपने स्वत्व की रक्षा के लिए युद्ध करने के लिए तैयार हो गया। सिवाड़ और ईसरदा के दोनों सामन्तों ने उसका साथ देने की प्रतिज्ञा की। पृथ्वी सिंह का पुत्र इन दिनों में ग्वालियर में रहता था, उसको आमेर के सिंहासन पर बिठाने के लिए कुछ लोगों की रायें होने लगीं। इस प्रकार राज्य में नाजिर का विरोध आरम्भ हुआ। अभी तक वह समझता था कि अँगरेज कम्पनी की स्वीकृत मिल जाने के बाद विरोध करने का किसी में साहस नहीं हो सकता। लेकिन उसके बाद जो विरोध और विद्रोह पैदा हुआ, उसको असफल बनाने के लिए उसने सभी प्रकार उपाय सोच डाले।

इन दिनों में जयपुर-राज्य में कोई शक्तिशाली सामन्त न था : नहीं तो नाजिर जैसे व्यक्ति ने राज्य में अपना आधिपत्य कायम न किया होता। उसकी चालाकी की सीमा न थी। वह अंतःपुर का एक साधारण संरक्षक था। लेकिन अपनी कूटनीति के द्वारा उसने दरबार से लेकर राज्य तक सब को अपनी मुट्ठी में बाँध रखा था। उसने अँगरेज रेजीडेण्ट को भुलावे में रखा और उसकी तरफ से आने वाले कर्मचारी से अपने पक्ष के समर्थन का काम लिया। इन दिनों में पटरानी ने यदि साहस करके उसका विरोध न किया होता तो मोहन सिंह के अभिषेक का राज्य में कोई बिरोधी न था। पटरानी के विद्रोह करने पर नाजिर का मायाजाल निर्बल पड़ने लगा। उसके पास कूटनीति के अस्त्रों की कमी न थी। उसने पटरानी को अपने पक्ष में करने के लिए एक रास्ता निकाला। वह जोधपुर के राजा की बहन थी। * नाजिर जोधपुर के राजा मानसिंह के पास पहुँचा और जयपुर-राज्य की परिस्थितियों की बड़ी बुद्धिमानी के साथ उसके सामने रखकर सभी प्रकार का शिष्टाचार और सम्मान प्रदर्शित किया। उसका विश्वास था कि पटरानी अपने भाई के आदेश को जरूर मानेगी। राजा मानसिंह से अपने पक्ष में सम्मति ले लेना वह जरा भी कठिन कार्य नहीं समझता था। नाजिर ने राजा मानसिंह से प्रार्थना करते हुए कहा : "राजा जगत सिंह ने मरने के पहले आमेर के सिंहासन पर बालक मोहन सिंह को बिठाने का आदेश दिया था। अपने राजा की आज्ञानुसार ही राज्य में मोहन सिंह का अभिषेक किया गया है। हमारी पटरानी को इसमें कुछ भ्रम हो गया है। इसलिए आप उसे समझा देने की कृपा करें। पटरानी के विरोधों से राज्य में अशान्ति उत्पन्न हो रही है और यह अशान्ति राजा जगत सिंह के सम्मान के विरुद्ध है।"

नाजिर ने सभी प्रकार की बातें कह कर राजा मानसिंह को प्रभावित करने की चेष्टा की। लेकिन उस राजा पर नाजिर का कोई प्रभाव न पड़ा। राजा मानसिंह ने उसको उत्तर देते हुए कहा : "जयपुर के सिंहासन पर इस समय किसको बिठाया जाय, इसका निर्णय करने के लिए प्रचलित प्राचीन प्रथाओं के अनुसार राजा के प्रधान सामन्त अधिकारी हैं। आप उन सामन्तों की सम्मति उनके हस्ताक्षरों के साथ ले लीजिए। इसके बाद आपको पटरानी की सम्मति की आवश्यकता न रहेगी और यदि होगी तो मैं उसके हस्ताक्षर करवा दूँगा।'

राजा मानसिंह के उत्तर को सुनकर नाजिर ने आश्चर्यचकित होकर उसकी ओर देखा। यह उसका अन्तिम अस्त्र था। उसके प्रयोग में वह पूर्ण रूप से असफल हुआ। जोधपुर से लौटकर नाजिर ने एक नया षड्यन्त्र रचा। राज्य के सामन्तों और पटरानी का विरोध करने के

* कुछ लेखकों ने पटरानी को जोधपुर के राजा की पुत्री माना है—अनु०

लिए उसने एक शक्तिशाली राजपूत राजा को खोजना आरम्भ किया। उसने विश्वास किया वह मोहन सिंह का समर्थन करेगा तो आज जो विरोध पैदा हुए हैं, वे अपने आप सब खत्म हो जायँगे।

बहुत कुछ सोच-समझकर नाजिर ने उदयपुर के राणा को अपने पक्ष में लाने की कोशिश की। उसने राणा की पोती के साथ मोहन सिंह के विवाह का प्रस्ताव अपने दूत के द्वारा भेजा। राणा को इसके रहस्य की कोई जानकारी न थी। उसने इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। राणा के जो प्रतिनिधि दिल्ली में मौजूद थे, नाजिर ने उनकी सम्मति भी प्राप्त कर ली। लेकिन राणा के दरबार में कुछ बुद्धिमान व्यक्तियों ने विवाह के प्रस्ताव का विरोध किया। उसका फल यह हुआ कि राणा ने विवाह के उस प्रस्ताव को नामंजूर कर दिया। नाजिर अपने षड़यन्त्र की सफलता में इसके बाद भी लगा रहा। उसके सामने अभी तक निराशा का कोई कारण न था।

सन् १८१८ ईसवी के दिसम्बर की २१ तारीख को राजा जगत सिंह की मृत्यु हुई थी। सन् १८१९ ईसवी की २४ मार्च को सुनने को मिला कि राजा जगत सिंह की भाटियानी रानी को आठ महीने का गर्भ है। यह बात कई महीने तक नाजिर से छिपा कर रखी गयी थी। इन्हीं दिनों में एक दिन राजा जगत सिंह की सोलह विधवा रानियाँ राज्य के प्रधान सामन्तों की पत्नियों को लेकर भाटियानी रानी के महल में गयीं। उन सबने देख-सुनकर और सभी प्रकार समझकर इस बात को स्वीकार किया कि भाटियानी रानी गर्भवती है, इसमें कोई संदेह नहीं। राज्य के सामन्तों ने इस निर्णय को सुनकर अत्यधिक सन्तोष प्रकट किया और सभी ने मिलकर प्रतिज्ञा की कि अगर भाटियानी रानी से बालक पैदा होगा, तो हम सब लोग उसको अपना राजा मानकर स्वीकार करेंगे।

इस प्रतिज्ञा-पत्र पर सभी सामन्तों के हस्ताक्षर हो गये। उसके बाद वह पत्र नाजिर के पास भेजा गया और उससे भी उस पर हस्ताक्षर करने के लिए कहा गया। नाजिर को अभी तक रानी के गर्भवती होने का समाचार मलूम न था। इसीलिए उस प्रतिज्ञा-पत्र को असंगत और सारहीन समझकर उसने भी हस्ताक्षर कर दिये। इसके बाद रानी के गर्भवती होने का समाचार राज्य में फैलने लगा। राजा जगत सिंह की मृत्यु के चार महीने और चार दिन बीत जाने पर २५ अप्रैल को प्रातःकाल भाटियानी रानी से बालक पैदा हुआ। इस समाचार को सुनकर राज्य के सभी सामन्त बहुत प्रसन्न हुए। राजधानी में अनेक प्रकार के उत्सव के किये गये। लेकिन उस बालक के जन्म से नाजिर पर बज्राघात हुआ। भाटियानी रानी से उत्पन्न हुआ बालक राजसिंहासन पर बिठाया गया। उसका अभिषेक हुआ और बालक मोहन सिंह को सिंहासन से उतारकर नरवर भेज दिया गया।

———

शेखावाटी का इतिहास

तिरसठवाँ परिच्छेद

शेखावत वंश—जयपुर राज्य का एक भाग शेखावाटी राज्य-शेखावत वंश का आदि पुरुष बालोजी—फकीर का चमत्कार—शेखावत वंश में फकीर का प्रभाव—शेख का बढ़ता हुआ प्रभाव—आमेर के शासक के साथ संघर्ष—राजा रायसल के बेटे—मुगल दरबार के अमीर का रोष—द्वारिकादास का आश्चर्य जनक पौरुष—शेर के साथ युद्ध—राजा बहादुर सिंह और मुगल बादशाह का सेनापति।

इस राज्य का इतिहास शेखावत वंश के इतिहास के साथ आरम्भ होता है। इस वंश का सम्बन्ध आमेर के सामन्तों के साथ है और इस वंश का शेखावाटी राज्य जयपुर के समान महत्व रखता है। यह बात जरूर है कि इस राज्य के नियम और कानून लिखे हुए नहीं हैं और न उसका कोई अधिकारी अथवा राजा ऐसा है, जिसे सभी स्वीकार करते हों। इस राज्य में कोई एक व्यवस्था नहीं है। लेकिन उसके सभी सामन्तों में एकता है। इस वंश के लोगों में कोई निश्चित राजनीति नहीं पायी जाती। उनको जब कभी किसी समस्या के निर्णय की जरूरत होती है, उस समय शेखावाटी के सभी सामन्त उदयपुर में एकत्रित होकर निर्णय करते हैं और उनके द्वारा जो निश्चय होता है उसे सभी स्वीकार करते हैं।

आमेर राजा उदयकर्ण के तीसरे पुत्र बालोजी को सन् १३८८ ईसवी में सिंहासन पर बैठने का काधिकार प्राप्त हुआ था। शेखावत सभी लोग उसी के वंशज है। उन दिनों आमेर की राजनीतिक अवस्था कैसी थी, यदि उस पर ध्यान दिया जाता है तो साफ जाहिर होता है कि उस समय चौहान और नरवर राजवंश के सामन्त उस राज्य के विभिन्न भागों पर शासन करते थे। उनकी शक्तियाँ अलग-अलग थीं। यही कारण था कि मुसलमानों के आक्रमण के समय उनको सभी प्रकार के अत्याचार सहने पड़े थे।

इस समय जो शेखावत वंश विशेष रूप से प्रसिद्ध है, बालोजी इस वंश का आदि पुरुष था। बालोजी का पोता अमरसर में शासन करता था। वहाँ का शासन उसे किस प्रकार मिला था, इसको समझने के लिए हमारे सामने कोई सामग्री नहीं है। उसके तीन लड़के पैदा हुए थे। पहले का नाम था मोकल जी, दूसरे का नाम था खेमराज जी और तीसरे का नाम था खारद। मोकल अपने पिता के स्थान पर अमरसर का शासक हुआ। दूसरे पुत्र खेमराज के वंशज बाला पोता के नाम से प्रसिद्ध हुए। खारद के नूमन नाम का एक बालक पैदा हुआ। उसके वंशज कुम्भावत नाम से प्रसिद्ध हुए। इन दिनों में कुम्भावत लोगों का नाम प्रायः लोप सा हो गया है।

मोकल के बहुत समय तक कोई संतान पैदा नहीं हुई। अंत में एक मुसलमान फकीर का नाम था, शेखबुरहान। इसलिए उसके आशीर्वाद से पैदा होने वाले बालक का नाम शेखाजी रखा गया। राजस्थान में इस समय जो शेखावत वंश प्रसिद्ध है, उसका आदि पुरुष यही शेखाजी था।

उस मुसलमान फकीर की दरगाह अवरोल से छः मील की दूरी पर और मोकल के निवास स्थान से चौदह मील की दूरी पर बनी हुई थी। यह दरगाह अब तक उस स्थान पर देखी जा सकती है। यह घटना भारत में तैमूर के आक्रमण करने के थोड़े ही दिनों बाद की है, जिसका उल्लेख इस प्रकार मिलता है :

शेख बुरहान भ्रमण करता हुआ किसी समय अमरसर की सीमा के एक ऐसे स्थान पर पहुँच गया, जहाँ पर मोकल जी मौजूद था। फकीर उसके पास जाकर साधारण अभिवादन के बाद पूछा : "क्या आप मुझे कुछ देंगे ? मोकल जी ने नम्रता के साथ उत्तर दिया : "आप किस चीज की इच्छा करेंगे।"

मोकल जी के इस उत्तर को सुनकर फकीर ने थोड़ा-सा दूध माँगा। मोकल जी की आज्ञा से उस फकीर के पास एक ऐसी भैंस लायी गयी, जिसका दूध कुछ ही पहले दुह लिया गया था। फकीर ने भैंस के थनों से इस प्रकार दूध निकालना शुरू किया जैसे किसी झरने से पानी निकलता है। यह देखकर मोकल को बड़ा आश्चर्य हुआ। उसे विश्वास हो गया कि फकीर में कोई दैवी शक्ति है। उसने प्रभावित होकर बड़ी नम्रता के साथ कहा : "मेरे कोई संतान नहीं है। "उस फकीर की दुआ से मोकल जी के एक लड़का पैदा हुआ। उस लड़के का नाम फकीर के नाम के आधार पर शेखा रखा गया। फकीर ने उस बालक के सम्बन्ध में कहा : "यह बालक हमेशा अपने गले में गण्डा नाम का तागा बाँधेगा। आवश्यकता पड़ने पर वह गण्डा दरगाह के किसी ऊँचे स्थान पर रखा जायगा। यह बालक नीले रङ्ग की टोपी और दूसरे वस्त्र पहनेगा। कभी शूकर अथवा दूसरे मांस का सेवन नहीं करेगा।"

इन बातों के साथ-साथ फकीर ने मोकल से कहा कि 'शेखावत में किसी बालक के उत्पन्न होने पर बकरे की बलि दी जायगी। कुरान का कल्मा पढ़ा जायगा और उस बकरे के रुधिर के छींटे बालक पर डाले जायेंगे।' मोकल ने फकीर की इन बातों को स्वीकार किया। इस घटना को चार सौ वर्ष बीत चुके हैं, लेकिन फकीर की कही हुई बातों का उस के वंश के लोगों में आज तक पालन होता है।

मोकल के वंशज दस हजार वर्ग मील की भूमि में फैले हुए हैं। शेखावत लोगों में प्राचीन बातों का प्रचलन अब कम हो गया है। लेकिन इस वंश के बालकों को जन्म से दो वर्ष तक नीले रङ्ग के वस्त्र पहनाये जाते हैं। इस वंश में आज भी उस फकीर का महत्व बहुत-कुछ देखा जाता है और उसके सम्मान में ही वे लोग अपने पीले रङ्ग की पताका के किनारे नीला फीता लगाते हैं। गण्डा पहनने की प्रथा उस समय से लेकर अब तक शेखावतों में देखी जाती है। अमरसर और उसके आस-पास के नगर अथवा ग्राम आमेर राज्य के अधिकार में थे। परन्तु शेख बुरहान की दरगाह अब तक स्वतन्त्र मानी जाती है। उस दरगाह की शरण में जो पहुँच जाता है, राजा की तरफ से वह कैद किया जाता है। दरगाह के समीप ताला नाम का एक नगर है। उस नगर में एक सौ से अधिक के वंशज रहते हैं। जिस भूमि पर वे खेती करते हैं। उसका वे लगान नहीं देते।

अपने पिता की मृत्यु के पश्चात शेखा वहाँ का अधिकारी हुआ और थोड़े ही दिनों में उसने अपने आस-पास के तीन सौ साठ ग्रामों पर अधिकार कर लिया। यह समाचार मिलने पर आमेर के राजा ने उस पर आक्रमण किया। उस समय जो युद्ध हुआ, उसमें शेखा को यूनान के बादशाह से सहायता मिली और पठानों की मदद पाकर शेखा ने आमेर की सेना को पराजित किया। वह लौटकर चली गयी।

यहाँ का प्रत्येक सामन्त आमेर के राजा का आधिपत्य स्वीकार करता था। उनके यहाँ घोड़ों के जो बच्चे पैदा होते थे, वे कर आमेर राज्य को दे दिये जाते थे।※ लेकिन शेखा ने आमेर-राज्य के तीनों दुर्गों को छीन लिया था और पूर्ण रूप से अपनी स्वतन्त्रता कायम की थी। इसी समय से शेखावाटी राज्य स्वतन्त्र हो गया और आमेर-राज्य के साथ उसका कोई सम्बन्ध न रह गया था। सवाई जयसिंह के समय तक शेखावाटी राज्य स्वतन्त्र रहा। परन्तु सवाई जयसिंह ने दिल्ली के बादशाह के यहाँ सम्मानित होकर शेखावाटी पर आक्रमण करने का इरादा किया और बादशाह की फौज लेकर उसने शेखावाटी के स्वतन्त्र सामन्तों को युद्ध में पराजित किया। इसके बाद शेखावाटी के सामन्तों ने आमेर की अधीनता फिर से स्वीकार की और वे लोग आमेर को कर देने लगे।

शेखावाटी-राज्य में शेखा ने बहुत दिनों तक अपने प्रभुत्व का प्रदर्शन किया। उसके मरने के बाद उसका लड़का रायमल्ल उसके स्थान पर अधिकारी हुआ। रायमल्ल के शासन का कोई उल्लेख इतिहास में नहीं मिलता। रायमल्ल के बाद सूजा अमरसर के सिंहासन पर बैठा। उसके तीन लड़के पैदा हुए—पहला नूनकरण, दूसरा रायसल और तीसरा गोपाल। उसका बड़ा लड़का अमरसर और उसके अधीन तीन सौ ग्रामों का अधिकारी हुआ। रायसल को लाम्बी नामक और गोपाल को झाडली नाम की जागीर मिली। रायसल के द्वारा शेखावाटी की उन्नति बड़ी तेजी के साथ हुई।

शेखावाटी के अधिकारी नूनकरण का मन्त्री देवीदास नाम का एक वैश्य था। वह अत्यन्त बुद्धिमान और दूरदर्शी था। एक दिन अपने स्वामी के साथ विवाद करते हुए देवीदास ने कहा : "पिता की सम्पत्ति पर अधिकार प्राप्त करने की अपेक्षा अपने बल-पौरुष से अपनी उन्नति करना मनुष्य का श्रेष्ठ कर्तव्य है। पिता की सम्पत्ति और जायदाद पर अधिकार पा जाने से उसकी श्रेष्टता का परिचय नहीं मिलता।" देवीदास की इस बात को सुनकर प्रतिवाद करते हुए नूनकर्ण ने कहा : "आपकी यह बात कुछ महत्व नहीं रखती। यदि ऐसी ही बात है तो हमारे भाई रायसल के पास लाम्बी में जाकर आप रहिए और अपनी श्रेष्टता का परिचय दीजिए।"

नूनकरण ने देवीदास को मन्त्री के पद से हटा दिया। वह अमरसर को छोड़कर अपने परिवार के साथ लाम्बी चला गया। उसके वहाँ पहुँचने पर रायसल ने बड़े सम्मान के साथ उसे लिया। लेकिन देवीदास इस बात को अनुभव करने लगा कि रायसल की आमदनी बहुत साधारण है। इसलिए मेरे यहाँ रहने से रायसल के ऊपर खर्च की वृद्धि हो जायगी। उसने यह भी सोचा कि जिस उद्देश्य से अमरसर छोड़कर मैं यहाँ आया हूँ, उसमें यहाँ रहकर मैं सफलता प्राप्त न सकूँगा। इस प्रकार की बातें सोच-समझकर देवीदास ने रायसल से कहा "मैं दिल्ली में मुगल बादशाह के यहाँ जाना चाहता हूँ।" इसके साथ उसने रायसल को भी दिल्ली चलने के लिए कहा। रायसल की समझ में आ गया। वह साहसी और आशावादी था। अपने बीस सवारों के साथ वह दिल्ली पहुँच गया।

※ इसी प्रकार की प्रथा प्राचीन फारस में भी प्रचलित थी। उस राज्य के अन्तर्गत जो छोटे-छोटे राजा अथवा सामन्त दूरवर्ती स्थानों पर शासन करते थे, वे अपने घोड़ों के बच्चों को कर में फारस राज्य में भेजते थे। हेरोडॉटस ने लिखा है कि आरमेनिया से करके रूप में एक वर्ष में बीस हजार घोड़ों के बच्चे वहाँ भेजे गये थे।

इन दिनों अफगानों के आक्रमण को रोकने के लिए दिल्ली में बादशाह की एक फौज तैयार हो रही थी। रायसल किसी से बिना कुछ कहे-सुने अपने बीस सवारों के साथ युद्ध क्षेत्र पर गया। उस लड़ाई में रायसल के द्वारा अफगानों का एक प्रसिद्ध सेनापति मारा गया। उसके गिरते ही युद्ध में मुगलों की विजय हुई। मुगल सेनापति को रायसल के सम्बन्ध में कुछ भी जानकारी न थी। उसने साधारण तौर पर इस बात का अनुसंधान किया कि अफगानों के सेनापति को मारने वाला कौन व्यक्ति है। लेकिन कुछ पता न चला। इस दशा में मुगल सेनापति ने जियाफत नाम से अपने समस्त सैनिकों की एक सभा का आयोजन किया। उसके सम्बन्ध में बताया गया कि जो लोग अफगानों के इस युद्ध में लड़ने के लिए गये थे, वे सभी इस जियाफत में शरीक हों और मुगल प्रधान सेनापति के प्रति अपना सम्मान प्रकट करें।

मुगल सेना में जियाफत का आयोजन किया गया। उसमें सभी प्रमुख व्यक्तियों और शूर-वीरों ने प्रधान सेनापति के सामने आकर अपना-अपना सम्मान प्रकट किया। रायसल के पहुँचने पर उसे लोगों ने जान लिया। जियाफत का आयोजन समाप्त होने पर रायसल से उसका परिचय पूछा गया। अमरसर का राजा नूनकर्ण भी अपनी सेना के साथ वहाँ पर उपस्थित था। रायसल के साथ उसकी ईर्षा उत्पन्न हुई। उसने रायसल से कहा : "मेरे आदेश के बिना आप यहाँ पर कैसे आये?" रायसल ने उसके इस प्रश्न का कुछ उत्तर न दिया। रायसल से परिचित होकर प्रधान सेनापति उसे अपने बादशाह के पास ले गया और अकबर बादशाह के निकट पहुँच कर प्रधान सेनापति ने रायसल की प्रशंसा करते हुए उसका परिचय दिया। बादशाह अकबर ने उसी समय रायसल को 'रायसल-दरबारी' की उपाधि दी और देवासा तथा कासली नाम के नगरों का अधिकार उसे दिया। यहीं से रायसल के सौभाग्य का उदय हुआ। कुछ दिनों के बाद बादशाह के बुलाये जाने पर वह फिर दिल्ली गया। उस समय भटनेर में युद्ध करने के लिए मुगलों की सेना जा रही थी। बादशाह ने रालसल को भी उस युद्ध में भेजा। भटनेर के संग्राम में रायसल ने अपने जिस शौर्य का प्रदर्शन किया उससे खुश होकर बादशाह ने खण्डेला तथा उदयपुर के शासन की सनद भी उसे दी। ये दोनों नगर निर्वाण राजपूतों के अधिकार में थे। परन्तु उन्होंने सम्राट के प्रति अपने विद्रोही व्यवहार प्रकट किये थे।

बादशाह ने जो अन्तिम दो नगरों का अधिकार रायसल को दिया था, वहाँ के शासक राजपूतों को पराजित करके उनके प्रभुत्व को वहाँ पर नष्ट करना था। रायसल ने भटनेर के संग्राम में जाने के पहले खण्डेला के राजा की लड़की के साथ विवाह किया था। उस विवाह में रायसल को दहेज में बहुत कम मिला था। इसलिए रायसल ने खण्डेला के राजा से दहेज को पूरा करने के लिए कहा। उसके उत्तर में उसने कहा : "अधिक देने के लिए मेरे पास कुछ नहीं है। मेरे अधिकार में एक शिखर है। यदि आप चाहें तो उसे ले सकते हैं।"

इसके बाद रायसल भटनेर के युद्ध में गया और वहाँ से लौटने पर वह अपनी सेना के साथ खण्डेला की तरफ बढ़ा। सेना के साथ रायसल को आता हुआ सुन कर खण्डेला का राजा भयभीत हुआ और वह अपना नगर छोड़ कर भाग गया। खण्डेला के निवासियों ने रायसल की अधीनता स्वीकार कर ली। इसके बाद खण्डेला शेखावटी में मिला लिया गया। रायसल के वंशज रायसलोत नाम से प्रसिद्ध हुए। वे सभी शेखावाटी के दक्षिणी स्थानों में रहते थे। उन दिनों में सिद्धानी वंश के लोग शेखावाटी के उत्तर की तरफ रहा करते थे। रायसल ने खण्डेला को शेखावाटी

में मिला कर उदयपुर को अपने अधिकार में कर लिया। उदयपुर पहले कैसुम्बी नाम से प्रसिद्ध था और वहाँ पर निर्वाण राजपूतों का अधिकार था।*

बादशाह अकबर के साथ मेवाड़ के राणा प्रताप सिंह का जो युद्ध हुआ था। उसमें रायसल आमेर के राजा मानसिंह के साथ बादशाह के पक्ष में राणा प्रताप सिंह से युद्ध करने गया था। काबुल के अन्तर्गत कोहिस्तान के अफगानियों के विरुद्ध युद्ध करने के लिए दिल्ली से मुगलों की एक फौज गयी थी, रायसल को उस फौज के साथ वहाँ पर युद्ध करने के लिए भेजा गया था। रायसल ने सभी युद्धों में अपने युद्ध-कौशल का प्रदर्शन किया था और उसके लिए बादशाह ने उसको पुरस्कृत किया था।

रायसल ने अपने अधिकार के नगरों और ग्रामों पर शान्तिपूर्वक शासन करने के बाद इस संसार को छोड़कर परलोक यात्रा की। मरने के पहले उसने अपने राज्य के सात भाग कर दिये थे और उन सातों भागों को उसने अपने सातों पुत्रों में बाँट दिया था। उसके पुत्रों के वंशजों से अगणित परिवारों और बहुत-से वंशों की सृष्टि हुई। रायसल के सातों लड़कों के नाम और उनके हिस्से में मिले हुए राज्य इस प्रकार हैं।

१—गिरिधर	...	खण्डेला और रेवासा
२—लाडखान	...	खाचरियावास
३—भोजराज	...	उदयपुर
४—तिरमलराव	...	कांसली और चौरासी ग्राम
५—परशुराम	...	बिबाई
६—हरीराम	...	मूंडरू
७—ताजखान	...	कोई स्थान नहीं मिला

गिरिधर रायसल का बड़ा लड़का था। ज्येष्ठ पुत्र होने के कारण उसको राज्य का बड़ा हिस्सा प्राप्त हुआ था। वह अपने पिता के समान तेजस्वी और शूरवीर था। दिल्ली के बादशाह से उसे खण्डेला राजा की उपाधि मिली।

इन दिनों में बादशाह के राज्य में बड़ी गड़बड़ मची हुई थी। मेवात के पहाड़ी इलाकों पर मेव जाति के पहाड़ी लुटेरों ने लूटमार आरम्भ कर दी थी और वे कभी-कभी राजधानी के समीप तक आ जाते थे। उनको दमन करने के लिए बादशाह ने गिरिधर को तैयार किया। उन पहाड़ी लुटेरों को दमन करने के लिए गिरिधर ने अपनी तैयारी आरम्भ की। उसने सोचा यदि हम एक बड़ी सेना लेकर उन लुटेरों के विरुद्ध जायंगे तो वे भयभीत होकर पहाड़ की कन्दराओं में छिप जायँगे और हमारे लौट आने पर उनके अत्याचार फिर होने लगेंगे। इसलिए उनका दमन करने के लिए इतनी छोटी सेना साथ लेकर जाने की जरूरत है कि जिससे वे लोग युद्ध करने के लिए सामने आवें।

---

* चौहान राजपूतों की एक शाखा निर्वाण के नाम से प्रसिद्ध थी। इस वंश के राजपूतों ने अपनी शक्तियों को मजबूत बना लिया था। उदयपुर का नाम पहले कसुम्बी था। वहाँ पर निर्वाण राजपूतों की राजधानी थी। इस उदयपुर में ही आवश्यकता पड़ने पर अपनी समस्याओं का निर्णय करने के लिए शेखावटी के सामन्त एकत्रित हुआ करते थे।

गिरिधर ने यही किया। वह अपने साथ एक साधारण सेना लेकर रवाना हुआ और पर्वत पर पहुँच कर वह घूमने लगा। एकाएक वहाँ पर लुटेरों का एक दल दिखायी पड़ा। गिरिधर ने तुरन्त उस पर आक्रमण किया। दोनों ओर मार-काट आरम्भ हो गयी उसने लुटेरों के दल से बहुत देर तक युद्ध किया। अन्त में उन लुटेरों का सरदार मारा गया और उनकी पराजय हुई। गिरिधर की इस सफलता पर बादशाह बहुत प्रसन्न हुआ और गिरिधर को राजा की उपाधि दी गई। गिरिधर इसके बाद बहुत दिनों तक जीवित नहीं रहा। जमना नदी में स्नान करने के समय मुगल बादशाह के दरबार के एक पदाधिकारी मुसलमान के द्वारा वह मारा गया। यह घटना इस प्रकार हैं :

"एक दिन खण्डेला राजा गिरिधर का एक कर्मचारी दिल्ली के एक लोहार की दूकान पर बैठा हुआ अपनी तलवार की मरम्मत करा रहा था। उस समय दूकान के सामने से होकर एक मुसलमान गुजरा। उसने इस कर्मचारी को एक असभ्य आदमी समझकर और लोहार की दूकान पर बैठकर उसे चिढ़ाना आरम्भ किया। वह कर्मचारी राजपूत था। उसने राजस्थानी भाषा में धीरे से उत्तर दिया। इसके बाद उस मुसलमान ने आग का एक टुकड़ा उस कर्मचारी की पगड़ी पर डाल दिया। आग से जब पगड़ी जलने लगी तो उस राजपूत कर्मचारी को क्रोध आया। उसने अपनी तलवार उठाकर उस मुसलमान के टुकड़े-टुकड़े कर दिये।

जो मुसलमान उस राजपूत कर्मचारी के द्वारा मारा गया, वह बादशाह के दरबार के एक प्रसिद्ध अमीर का नौकर था। जब उस अमीर ने यह घटना सुनी तो वह अत्यन्त क्रोधित हुआ। अपने साथ कुछ आदमियों को लेकर वह अमीर खण्डेला राजा के निवास-स्थान पर पहुँचा। गिरिधर उस समय वहाँ पर न था। वह जमना नदी में स्नान करने गया था। अमीर अपनी क्रोधित अवस्था में जमना नदी के उस स्थान पर पहुँचा, जहाँ पर गिरिधर नहा रहा था। अमीर ने उस पर आक्रमण किया, जिससे खण्डेला राजा गिरिधर स्नान करता हुआ मारा गया।"

गिरिधर के कई पुत्र थे। द्वारिकादास सब से बड़ा था। इसलिए वही अपने पिता के सिंहासन पर बैठा। इसके थोड़े ही दिनों के बाद द्वारिकादास एक षड्यंत्र में फंस गया। नूनकरण का एक वंशज मनोहरपुर में शासन करता था। वह द्वारिकादास के साथ एक पुरानी शत्रुता मानता था। दिल्ली का बादशाह एक दिन शिकार खेलने गया था। जंगल से वह एक शेर को पकड़ लाया। बादशाह ने अपने दरबार के लोगों से पूछा : "इस शेर के साथ कौन युद्ध कर सकता है ?'

मनोहरपुर के राजा ने बादशाह से कहा : "रायसलोत वंशी द्वारिकादास प्रसिद्ध शूरबीर नाहर सिंह का शिष्य है। वह इस सिंह के साथ युद्ध कर सकता है।'

मनोहरपुर के राजा द्वारिकादास का उपहास कराने के लिए बादशाह से यह बात कही थी। लेकिन बादशाह ने उसे गम्भीरता देकर द्वारिकादास को सिंह से युद्ध करने के लिए आज्ञा दी। द्वारिकादास भली प्रकार इस बात को समझता था कि बादशाह से मनोहरपुर के राजा ने जो इस प्रकार की बात कही है, उसके दो अभिप्राय हैं; एक तो यह कि इस प्रकार बादशाह के आदेश देने पर मैं सिंह के साथ युद्ध करने से इनकार करूँगा, उससे मेरा उपहास होगा। दूसरा अभिप्राय उसका यह हो सकता है कि यदि मैंने इनकार न किया तो सिंह के द्वारा मेरा प्राण नाश होगा। बादशाह का आदेश सुनकर द्वारिकादास जरा भी भयभीत न हुआ और उसने शेर के साथ युद्ध करना स्वीकार कर लिया।

बादशाह की सम्पूर्ण राजधानी में यह बात फैल गयी कि जंगल से जो शेर पकड़ कर आया है, द्वारिकादास उसके साथ युद्ध करेगा। बादशाह की तरफ से इस युद्ध के लिए स्थान तैयार

किया गया। निश्चित समय से पहले ही दर्शकों की एक अपार भीड़ वहाँ पर एकत्रित हो गयी। द्वारिकादास अपनी तैयारी करने लगा। स्नान करके पीतल के एक पात्र में पूजा की सामग्री लेकर वह आराधना के लिए बैठा और पूजा का कार्य समाप्त करने के बाद द्वारिकादास शेर से लड़ने के लिये उस स्थान पर पहुँचा, जो उसके लिए तैयार किया गया था। उसके वहाँ पहुँचते ही उसके सामने शेर छोड़ा गया। मनोहरपुर के राजा का विश्वास था कि द्वारिकादास को सामने देखते ही शेर मार डालेगा। लड़ाई के इस दृश्य को देखने के लिए उस स्थान पर बादशाह भी आया था। शेर के सामने पहुँच कर द्वारिकादास ने उसके मस्तक पर चन्दन लगाया, उसके गले में माला डाली और उसके सामने बैठकर वह पूजा करने लगा। शेर द्वारिकादास के समीप चुपचाप खड़ा हो गया और अपनी जीभ से वह उसको चाटने लगा, द्वारिकादास निर्भीकता के साथ उसके सामने बैठा रहा। उपस्थित दर्शकों ने आश्चर्य के साथ यह दृश्य देखा। बादशाह के विस्मय का ठिकाना न रहा। इसके बाद बादशाह का आदेश पाकर द्वारिकादास शेर के सामने से उठ कर चला आया। शेर अपने स्थान पर चुपचाप खड़ा रहा। उसने द्वारिकादास पर किसी प्रकार का आघात नहीं किया।

बादशाह ने अत्यन्त आश्चर्य के साथ इस दृश्य को देखा। उसकी समझ में न आया कि ऐसा क्यों हुआ। वह विश्वास पूर्वक सोचने लगा कि द्वारिकादास में कोई दैवी शक्ति है। उसने उसे बुला कर कहा : "आप जो चाहें, मुझसे माँग सकते हैं, मैं वहीं आप को दूँगा।"

बादशाह की इस बात को सुनकर द्वारिकादास ने कहा : "इस विपद से भगवान ने मेरी रक्षा की है। भविष्य में आप किसी को भी इस प्रकार की विपद में न डालें, यही आप से मेरी प्रार्थना है।"

द्वारिकादास अपने समय के अत्यन्त शूरवीर खानजहाँन लोदी के द्वारा मारा गया। ग्रंथों से मालूम होता है कि वे दोनों ही एक दूसरे के द्वारा मरे। यह घटना इस प्रकार है : "द्वारिकादास और खानजहाँन लोदी में परस्पर मित्रता थी। कुछ कारणों से दिल्ली का बादशाह खानजहाँन से बहुत चिढ़ गया और उसने द्वारिकादास को खानजहाँन पर आक्रमण करने और उसके शरीर को दरबार में लाने का आदेश दिया। बादशाह की इस आज्ञा को सुनकर द्वारिकादास बड़े असमंजस में पड़ गया। खानजहाँन उसका मित्र था। फिर वह उस पर कैसे आक्रमण कर सकता था! बहुत सोच समझकर द्वारिकादास ने खानजहाँन लोदी को संदेश भेजा कि बादशाह ने आपके विरुद्ध अत्यन्त अनुचित कार्य मुझे सौंपा है। मैं बड़े असमंजस में हूँ। आप या तो बादशाह के सामने आकर आत्म-समर्पण करें अथवा भाग जावें। खानजहाँन ने द्वारिकादास का यह संदेश पाया। वह एक शूरवीर था। द्वारिकादास के परामर्श के अनुसार न तो उसने आत्म-समर्पण करना चाहा और न भाग जाना ही उचित समझा। इन दोनों बातों की अपेक्षा मित्र के हाथों से मारे जाने पर अपनी श्रेष्ठता समझी। फरिश्ता ने अपने इतिहास में इस घटना का वर्णन करते हुए दोनों वीरों की प्रशंसा की है। युद्ध-क्षेत्र में पहुँच कर दोनों लड़े और दोनों ही एक दूसरे की तलवार से मारे गये।

द्वारिकादास के बाद उसका लड़का वीरसिंह देव उसके स्थान पर बैठा। वीरसिंह देव अपनी सेना के साथ मुगल बादशाह की आज्ञा से दक्षिण के युद्ध में गया था। वहाँ पर उसके युद्ध कौशल से प्रसन्न होकर बादशाह ने उसको परनाला का शासक बना दिया। खण्डेला के एक ऐतिहासिक ग्रंथ से पता चलता है कि वीरसिंह देव आमेर के राजा की अधीनता में न रह कर स्वतन्त्र रूप से शासन करता था। परन्तु उस समय की परिस्थितियों से यह बात सम्भव नहीं मालूम होती। क्योंकि मिर्जा राजा जयसिंह उन दिनों में सम्राट के यहाँ सम्मानपूर्ण पद पर था। इसलिए

वीरसिंहदेव उसकी अधीनता में अपने राज्य पर शासन करता था, यह अधिक सम्भव मालूम होता है।

वीरसिंह देव के सात लड़के पैदा हुए—(१) बहादुर सिंह (२) अमर सिंह (३) श्याम सिंह (४) जरादेव (५) भूपाल सिंह (६) मोकर सिंह और (७) प्रेमसिंह। वीरसिंह देव ने अपने जीवन काल में ही बहादुर सिंह को अपना उत्तराधिकारी बनाया था और शेष छै पुत्रों को एक-एक जागीर दे दी थी। राजा वीरसिंह देव बहादुर सिंह को अपने राज्य का अधिकार देकर अपनी सेना के साथ बादशाह की सेना में सम्मिलित होकर दक्षिण गया था। वहाँ पर उसे समाचार मिला कि उसका बड़ा लड़का बहादुर सिंह राजा की उपाधि लेकर राज्य का शासन करने लगा है। यह सुनकर बहादुर सिंह पर वीरसिंह देव बहुत क्रोधित हुआ और अपने चार सवारों को साथ लेकर दक्षिण से वह अपने राज्य की तरफ रवाना हुआ। अपने राज्य खण्डेला से चार मील की दूरी पर आकर एक ग्राम की किसी जाट स्त्री के यहाँ वीरसिंह देव ने मुकाम किया और उस स्त्री से उसने भोजन तैयार करने के लिए कहा। साथ ही उसने यह भी कहा कि "हमारे घोड़ों की देख-भाल करना कहीं कोई उनको खोलकर ले न जाय।" वीरसिंह देव की इस बात को सुनकर उस जाट की स्त्री ने कहा: "आप इस बात की चिंता न करें। राजा बहादुर सिंह का यहाँ पर शासन है। रास्ते में आप सोना छोड़कर चले जाइए, कोई उसे छू नहीं सकता।"

अपने लड़के के शासन की इस प्रकार प्रशंसा सुनकर वीरसिंह देव बहुत प्रसन्न हुआ। वहाँ से वह फिर दक्षिण लौट गया और वहीं पर उसकी मृत्यु हो गयी।

बीरसिंह देव के मर जाने के बाद बहादुर सिंह विधान के अनुसार पिता के सिंहासन पर बैठा। नियमित रूप से उसका अभिषेक हुआ और उसने शासन का कार्य आरम्भ किया। मुगल बादशाह औरंगजेब अपनी सेना के साथ उन दिनों में दक्षिण में था। बहादुर सिंह भी अपनी सेना लेकर उसकी सहायता के लिए दक्षिण में पहुँच गया। वहाँ पर बहादुर खाँ नामक एक प्रसिद्ध मुसलमान के साथ बहादुर सिंह का अपमान हुआ। उससे अपने अपमान का बदला न पा सकने के कारण बहादुर सिंह दक्षिण से लौटकर चला आया। इसलिए मनसबदार सरदारों की सूची से उसका नाम काट दिया गया।

शेखावाटी के राजा-बहादुर सिंह का जिस मुसलमान बहादुर खाँ ने अपमान किया था, वह मुगल बादशाह के यहाँ सेनापति था। बहादुर सिंह के साथ शत्रुता हो जाने के कारण बहादुर खाँ ने बादशाह से खण्डेला राज्य में जजिया कर वसूल करने का आदेश माँगा और आज्ञा लेकर वह खण्डेला की तरफ रवाना हुआ। बहादुर सिंह को जब मालूम हुआ कि बहादुर खाँ अपनी सेना के साथ इस राज्य में आ रहा है तो वह अपनी राजधानी छोड़कर भाग गया। बादशाह की फौज लेकर बहादुर खाँ खण्डेला राजधानी के समीप पहुँच गया। वहाँ के समस्त शेखावत लोगों को मालूम हुआ कि बादशाह की फौज के आने का समाचार पाकर बहादुर सिंह खण्डेला से भाग गया है। बादशाह की फौज ने वहाँ पहुँचकर खण्डेला के मन्दिरों को विध्वंस करने का कार्य आरम्भ किया। रायसल का दूसरा लड़का भोजराज का वंशज सुजान सिंह छापोली का अधिकारी था। उसने जब सुना कि बादशाह की फौज ने खण्डेला में पहुँच कर मंदिरों को गिराने के साथ-साथ भयानक अत्याचार आरम्भ किया है तो उसने प्रतिज्ञा की कि मैं खण्डेला के मन्दिरों की रक्षा करूँगा और अपने इस कर्त्तव्य-पालन में मैं अपने प्राणों की बलि दूँगा।*

---

* औरङ्गजेब के आदेश से इस प्रकार के अत्याचारों के साथ अगणित देवालय और

खण्डेला में बादशाह की सेना के प्रवेश करने के समय सुजान सिंह मारवाड़ में विवाह करने के लिए गया था। वहाँ से लौटकर सुजान सिंह ने अपनी माता और नवविवाहिता पत्नी से खण्डेला जाने के लिए बिदा माँगी। इस समय उनके परिवार के दूसरे लोग भी वहाँ पहुँचकर सुजान सिंह से कहने लगे : "खण्डेला में बादशाह की सेना के आक्रमण करने पर राजा बहादुर सिंह को वहाँ की रक्षा करनी चाहिए। आपको वहाँ पर हस्तक्षेप की क्या आवश्यकता है।"

इस बात को सुनकर सुजान सिंह ने कहा : "क्या मैं रायसल का वंशज नहीं हूँ ? खण्डेला के मन्दिरों के तोड़े जाने पर क्या मेरा कर्त्तव्य नहीं है कि मैं वहाँ जाकर उन मन्दिरों की रक्षा करूँ ! इस प्रकार के अत्याचारों के समय कोई भी राजपूत चुप होकर नहीं बैठ सकता।"

सुजान सिंह की इस बात को सुनकर किसी को कुछ कहने का साहस न हुआ। उसके वीरोचित वाक्यों को सुनकर उसके वंश के साठ शूरवीर उसकी सहायता के लिए साथ चले। अपने साथियों के साथ सुजान सिंह ने खण्डेला राजधानी में प्रवेश किया। सेनापति बहादुर खाँ ने सुजान सिंह के आने का समाचार सुना। उसने इस विषय में सुजान सिंह से बातचीत करने के लिए उसके दो आदमियों को अपने यहाँ बुलवाया। उसके आने पर बहादुर खाँ ने कहा : "बादशाह ने खण्डेला के देव-मन्दिरों को विध्वंस करने का हमें आदेश दिया है। लेकिन यदि खण्डेला राजा बादशाह की अधीनता स्वीकार कर लेता है और अपने मन्दिरों के समस्त सोने के कलशों को हमें दे देता है तो हम मन्दिरों को विध्वंस नहीं करेंगे।"

बहादुर खाँ के मुख से इस बात को सुनकर सुजान सिंह के दोनों प्रतिनिधियों ने नम्रता के साथ उससे बातें की और बहुत-सा धन उसको देना मंजूर किया। लेकिन बहादुर खाँ उस पर राजी न हुआ और उसने स्पष्ट शब्दों में कहा : "आपको किसी भी दशा में यहाँ के मन्दिरों के कलश देने पड़ेंगे।" सेनापति बहादुर खाँ की इस हठ को सुनकर स्वाभिमानी दोनों राजपूतों को क्रोध मालूम हुआ। उन्होंने गीली मिट्टी का एक-एक कलश बनाकर उसके सामने रखा और एक ने कहा : "मन्दिरों से सोने के कलशों की बात तो बहुत दूर है, इस मिट्टी के कलश को ले लेने का अधिकार किसमें है, यह मैं देखना चाहता हूँ।

इस प्रकार दोनों ओर से आवेश पूर्ण बातें हुई। बहादुर खाँ के साथ दोनों राजपूत कुछ निर्णय न कर सके। वे अंत में इस बात को समझकर कि युद्ध होना अनिवार्य है। वहाँ से चले गये।

उन दिनों में खण्डेला में कोई दुर्ग न था। वहाँ का राज-प्रसाद एक ऊँचे शिखर पर बना हुआ था। उस शिखर से एक रास्ता सरदारों के निवास-स्थान की तरफ गया था। उस रास्ते

मन्दिर नष्ट किये गये थे, उसका प्रमाण मन्दिरों की टूटी-फूटी इमारतों और मूर्तियों के टुकड़ों से ही भलीभाँति हो सकता है। लाहौर से लेकर कन्याकुमारी तक एक भी ऐसा मंदिर नहीं है, जो औरङ्गजेब के हुक्म से नष्ट न किया गया हो। नर्मदा के एक छोटे-से टापू पर ओंकार जी का एक प्रसिद्ध मंदिर है। उस मंदिर की मूर्ति के तोड़े जाने के समय की घटना यहाँ पर देने के योग्य है। औरङ्गजेब ने उस मंदिर की मूर्ति के सामने जाकर कहा : "यदि तुममें वास्तविक कोई शक्ति हो तो तुम उसे मेरे सामने प्रकट करो और मेरे आदेश को शक्तिहीन बना दो।" इस घटना का उल्लेख करने वाले ग्रन्थों में लिखा है कि ओंकार जी के मस्तक पर आघात होते ही उनकी नाक और मुख से तेजी के साथ खून गिरना आरम्भ हो गया। इस दशा में दूसरा आघात करने का साहस नहीं हुआ। उस समय से ओंकार जी का महत्व लोगों में अधिक बढ़ गया।

पर मन्दिर बना हुआ था। सुजान सिंह ने अपने साथ के कुछ लोगों को शिखर के सभी रास्ते पर रखा और वह स्वयं साथ के दूसरे आदमियों को लेकर मन्दिर की रक्षा करने के लिए तैयार हुआ। सुजान सिंह भली प्रकार इस बात को समझता था कि बादशाह की इतनी बड़ी सेना के सामने हम लोग कुछ कर न सकेंगे और अंत में मारे जायँगे। लेकिन अपने मन्दिरों की रक्षा करने में प्राणोत्सर्ग करना वह राजपूतों का एक परम धर्म समझता था। इसलिए अपने थोड़े से आदमियों को लेकर निर्भीकता के साथ वह तैयार हो गया। इसके बाद बादशाह की सेना ने आगे बढ़कर उन राजपूतों पर गोलियों की वर्षा आरम्भ की, जो मन्दिर की रक्षा के लिए खड़े हुए थे। राजपूतों ने भी साहस के साथ मुगल सेना के आक्रमण का जवाब दिया। युद्ध आरम्भ होने के थोड़े समय बाद लड़ते हुए वे राजपूत मारे गये। इसके बाद मुगल सैनिक मन्दिर की तरफ बढ़े। यह देखकर सुजान सिंह और उसके साथियों ने एक बार मन्दिर की मूर्ति को प्रणाम किया और फिर वे शत्रु के साथ युद्ध करने लगे। कुछ देर के बाद शेष राजपूतों के साथ सुजान सिंह भी मारा गया। मुगल सैनिकों ने मन्दिर को तोड़कर उसकी मूर्ति के टुकड़े-टुकड़े कर डाले। बहादुर खाँ ने सुजान सिंह और उसके साथियों को मारकर खण्डेला पर अधिकार कर लिया था और वहाँ का प्रबन्ध करने के लिए उसने अपने साथ के सैनिकों की एक सेना छोड़ दी।

खण्डेला से भागकर बहादुर सिंह कुछ दूरी पर बसे हुए एक ग्राम में जाकर रहने लगा था। अपने दीवान की सहायता से वह बहादुर खाँ से मिल गया और आमदनी का कुछ साधन पैदा करके वह अपने दिन काटने लगा। इसके बाद बादशाह की तरफ से उसको कुछ और सुविधा मिली। उसने अपने रहने के लिए बादशाह से महल भी प्राप्त कर लिया।

इन दिनों में बादशाह के दरबार में सैयद बन्धुओं का आधिपत्य चल रहा था। बहादुर सिंह उनसे मिल गया और उनको प्रसन्न करके उसने अपना राज्य प्राप्त कर लिया। लेकिन इसके बाद भी खण्डेला राजधानी में दिल्ली की एक सेना का मुकाम रहा और उस सेना का खर्च बहादुर सिंह ने देना मंजूर किया। राजा बहादुर सिंह के तीन लड़के थे—केशरी सिंह, फतेह सिंह और उदय सिंह।

बहादुर सिंह की मृत्यु के बाद केशरी सिंह पिता के सिंहासन पर बैठा। उसने अपने पिता का अनुकरण किया और बादशाह के दरबार में जाकर वहाँ की सेना के संरक्षण में रहने की अभिलाषा प्रकट की। इन्हीं दिनों में मनोहरपुर के राजा ने बादशाह से मिलकर अपने राज्य का उद्धार किया। उसे जब मालूम हुआ कि केशरी सिंह बादशाह के दरबार में आया है तो उसको उसके प्रति ईर्षा पैदा हुई। वह नहीं चाहता था कि बादशाह के दरबार में केशरी सिंह को कोई स्थान मिले। उसने केशरी सिंह के विरुद्ध षड्यन्त्र पैदा किया और उसके भाई फतेह सिंह से मिल कर उसने कहा : "आप भी बहादुर सिंह के लड़के हैं। खण्डेला में केवल केशरी सिंह को राज्य का अधिकारी बनकर रहने का हक नहीं है। आप केशरी सिंह से आधा राज्य अपना स्वत्व लीजिये।"

फतेह सिंह उसके बहकावे में आ गया और उसने अपने भाई केशरी सिंह के साथ झगड़ा शुरू कर दिया। खण्डेला का दीवान समझदार था। उसने दोनों भाइयों को समझाने की कोशिश की। लेकिन उसको सफलता न मिली। उसने देखा कि दोनों भाइयों के झगड़े से खण्डेला का सर्वनाश होगा और शत्रु लोग इसका लाभ उठायेंगे तो उसने खण्डेला राजधानी में जाकर राजमाता से बातें कीं और उनको सभी प्रकार समझाकर कहा कि आप को ऐसा करना चाहिए, जिससे दोनों भाइयों में झगड़ा न हो। यदि फतेह सिंह नहीं मानता तो दोनों में राज्य का बटवारा कर देना अच्छा है।

राजमाता ने दीवान के अनुरोध को स्वीकार कर लिया। खण्डेला राज्य पाँच भागों में विभाजित किया गया। तीन भाग केशरी सिंह को और दो भाग फतेह सिंह को दिये गये। इस विभाजन के अनुसार दोनों भाई राजधानी में बराबर के अधिकारी बन गये परन्तु इसके बाद भी दोनों भाइयों के बैर को शांति न हुई। केशरी सिंह खण्डेला को छोड़ कर कांवर नामक स्थान में जाकर रहने लगा। दोनों भाइयों में यहाँ तक शत्रुता बढ़ गई कि वे एक दूसरे को देखना नहीं चाहते थे। केशरी सिंह जब खण्डेला राजधानी में आता तो फतेह सिंह वहाँ से चला जाता।

मनोहरपुर के राजा का यही अभिप्राय था कि केशरी सिंह और फतेह सिंह कभी मिलकर न रह सकें। इसीलिए उसने षड्यन्त्र रचा था। इसमें उसको सफलता मिली। केशरी सिंह के दीवान को भली-भाँति यह मालूम था कि इन दोनों भाइयों के लड़ने में मनोहरपुर के राजा का षड्यन्त्र काम कर रहा है। उसने पूरी चेष्टा इस बात की कि दोनों भाइयों में किसी प्रकार का झगड़ा न हो और वे प्रेम से रहें। इसीलिए उसने राजमाता से मिल कर राज्य का बटवारा करा दिया था। लेकिन उसके बाद भी वे दोनों एक दूसरे के शत्रु बने रहे। इस प्रकार की परिस्थितियों को देख कर दीवान ने सोचा कि फतेह सिंह कभी केशरी सिंह के लिए संकट हो सकता है। इसलिए उसने केशरी सिंह को गुप्त रूप से सलाह दी कि फतेह सिंह पूरी तौर पर मनोहरपुर के राजा के संकेतों पर काम कर रहा है और मनोहरपुर का राजा खण्डेला का परम शत्रु है। इसलिए किसी षड्यन्त्र के द्वारा फतेह सिंह के जीवन का अन्त कर दिया जाय। परन्तु केशरी सिंह इसके लिए तैयार न हुआ।

केशरी सिंह का दीवान अब भी उसी बात को सोचता रहा। उसने कावटा में दोनों भाइयों को एकत्रित करके मेल कराने की कोशिश की। फतेह सिंह काटवा में पहुँच गया। वहाँ पर आक्रमण करके फतेह सिंह को मार डाला गया। दीवान ने स्वयं तलवार लेकर आक्रमण किया था। संयोग और सौभाग्य की बात है कि फतेह सिंह के साथ-साथ दीवान भी जख्मी होकर मर गया।

फतेह सिंह के मर जाने के बाद केशरी सिंह ने सम्पूर्ण खण्डेला पर अधिकार कर लिया। रेवासो नगर का कर अजमेर और खण्डेला का कर नारनोल जाता था। केशरी सिंह ने इनका भेजना बन्द कर दिया। सैयद अब्दुल्ला इन दिनों में दिल्ली के मुगल बादशाह का प्रधान मन्त्री था। वह केशरी सिंह के इस व्यवहार से बहुत अप्रसन्न हुआ और उसको इसका बदला देने के लिए सैयद अब्दुला ने दिल्ली से एक मुगल सेना भेजी। केशरी सिंह ने इन दिनों में अपनी शक्तियों को अधिक सुदृढ़ बना लिया था। बादशाह की फौज के आने का समचार सुनकर केशरी सिंह ने समस्त शेखावत सामन्तों को सेनाओं के साथ बुलाया। उस समय जो सामन्त एकत्रित हुए, उनमें एक केशरी सिंह का परम शत्रु मनोहरपुर का सामन्त भी बादशाह की फौज के विरुद्ध लड़ने के लिए तैयार होकर आया। केशरी सिंह ने युद्ध की पूरी तैयारी की। मुगल सेना के साथ युद्ध करने के लिए वह रवाना हुआ। खण्डेल-राज्य की सीमा पर बसे हुए देवली नामक स्थान पर दोनों ओर की सेनाओं का युद्ध हुआ। केशरी सिंह को बादशाह की सेना से पराजित होने की कोई आशंका न थी। लेकिन युद्ध शुरू होने के कुछ समय बाद उसकी वंशगत शत्रुता सजीव हो उठी। इस युद्ध में कुछ लोग उसकी सहायता करने के लिए ऐसे सामन्त भी आये थे, जिनके साथ, केशरी सिंह की कभी शत्रुता रह चुकी थी। इस प्रकार के लोगों में शत्रुता का भाव जाग्रत हुआ। कासली का सामन्त केशरी सिंह की सहायता के लिए आया था। वह एक शूरवीर योद्धा था और केशरी सिंह उस पर बहुत विश्वास करता था। वह इस युद्ध में मारा गया। दाँता राज्य के लाडखानी वंश का सामन्त भी केशरी सिंह की सहायता के लिए आया था। उसने मौका पाकर

केशरी सिंह के खासा नगर पर अधिकार कर लेने का विचार किया और वह युद्ध क्षेत्र से निकल कर उस तरफ चला गया। इस प्रकार की विरोधी परिस्थितियों के कारण युद्ध में केशरी सिंह का पक्ष निर्बल पड़ने लगा। इस भीषण समय में केशरी सिंह को अपने भाई फतेह सिंह की याद आयी। अपने पक्ष को कमजोर होते हुए देख कर भी केशरी सिंह को घबराहट नहीं हुई। वह बड़े साहस के साथ युद्ध करता रहा। उस समय दोनों तरफ से भयानक मारकाट हो रही थी।

युद्ध की गति देख कर केशरी सिंह ने अपने भाई उदय सिंह को बुलाया और युद्ध छोड़कर तुरन्त चले जाने के लिए उससे उसने कहा। उदय सिंह इसके लिए तैयार न हुआ। उसके इनकार करने पर केशरी सिंह ने उसको समझाते हुए कहा : "मैं जानता हूँ कि एक राजपूत को युद्ध से भागना नहीं चाहिए। लेकिन तुमसे मेरे ऐसा कहने का कुछ अभिप्राय है। मैं इस युद्ध में अन्तिम समय तक रहूँगा। लेकिन तुम यहाँ से चले जाओ। क्योंकि तुम्हारे भी मारे जाने से हमारे पिता का वंश नष्ट हो जायगा। केशरी सिंह के सामन्तों ने भी इस बात का समर्थन किया और उन लोगों ने केशरी सिंह को भी चले जाने की बात कही। लेकिन अपने सामन्तों के इस परामर्श का उत्तर देते हुए केशरी सिंह ने कहा : "युद्ध से हम दोनों भाइयों का चला जाना किसी प्रकार अच्छा नहीं हो सकता। इस युद्ध में यदि पराजय होती है तो उसमें मेरा मारा जाना अनुचित नहीं है। राज्य की रक्षा करते हुए बलिदान हो जाना राजा का कर्त्तव्य होता है। मेरे कारण मेरे भाई फतेह सिंह की हत्या हुई थी। इस युद्ध में लड़कर और प्राण देकर मुझे उसका प्रायश्चित करना चाहिए। लेकिन उदय सिंह का चला जाना आवश्यक है।" इसके बाद उदय सिंह युद्धस्थल से चला गया।

मुगल-सेना के साथ राजपूतों ने शक्ति भर युद्ध किया। अन्त में युद्ध करता हुआ केशरी सिंह मारा गया। उसके बाद खण्डेला की सेना युद्ध-क्षेत्र से भाग गयी। विजयी मुगल-सेना ने खण्डेला पर अधिकार करके उदय सिंह को कैद कर लिया और उसे तीन वर्ष तक बन्दी बना कर अजमेर के दुर्ग में रखा। इसके बाद दो शेखावत सामन्तों ने खण्डेला राज्य को स्वतन्त्र करने का इरादा किया। उन्होंने गुप्त रूप से अजमेर में कैदी उदय सिंह के पास सन्देश भेजा : "हम लोगों ने मुगलों से लड़कर खण्डेला राज्य को स्वतन्त्र करने की योजना बनायी है। हमारे ऐसा करने से आपके ऊपर भयानक संकट पैदा होने की पूरी सम्भावना है। इसलिए आप पहले ही ऐसा करिए जिससे आपको बादशाह हमारे साथ शामिल न समझें। इसके लिए आप ऐसा कर सकते हैं कि हम लोगों की इस कोशिश की सूचना आप पहले से ही बादशाह के प्रधान मन्त्री को कर दें। इससे वह आपके ऊपर सन्देह न करेगा।"

इसके कुछ दिनों के बाद उदयपुर और कासली के दोनों सामन्तों ने अपनी सेनायें लेकर एकाएक खण्डेला में बादशाह की सेना पर आक्रमण किया और उसे परास्त करके उसके सेनापति देवनाथ को मार डाला। यह समाचार दिल्ली पहुँचा। उदय सिंह ने अपने सामन्तों के परामर्श के अनुसार पहले ही कार्यवाही कर ली थी। इसलिए दिल्ली के दरबार में किसी को भी उदय सिंह पर सन्देह पैदा न हुआ। खण्डेला में मुगल सेना के परास्त हो जाने के कारण बादशाह का प्रधान मन्त्री फिर से खण्डेला पर अधिकार करने की बात सोचने लगा। उसने इसके सम्बन्ध में उदय सिंह से परामर्श किया। उसका उत्तर देते हुये उदय सिंह ने कहा : "यदि आप मुझको कैद से छोड़ दें तो मैं खण्डेला को फिर बादशाह के अधिकार में करा सकता हूँ।"

उदय सिंह की इस बात को सुन कर मुगलों के प्रधान मन्त्री ने कहा : "मैं आपको कैद से

छोड़ सकता हूँ। परन्तु आपकी सहायता से खण्डेला पर फिर से मुगलों का अधिकार ही जायगा, इस पर कैसे विश्वास किया जाय ?"

प्रधान मन्त्री की इस बात को सुन कर उदय सिंह ने कहा : "मेरे परिवार में वृद्धा माता को छोड़ कर और कोई नहीं है। मेरे स्थान पर आप मेरी माता को कैदी बना कर रख लीजिये।"

प्रधान मन्त्री इस पर राजी हो गया। उदय सिंह की माता कैदी के रूप में अजमेर में रखी गई और उदय सिंह को छोड़ दिया गया। उदय सिंह ने इस मौके पर बड़ी बुद्धिमानी से काम लिया। उसने ऐसा कार्य किया, जिससे मुगल प्रधान मन्त्री को बहुत सन्तोष मिला। उसने खण्डेला का अधिकार उदय सिंह को सौंप दिया और उदय सिंह उसके बाद फिर अपने पिता के सिंहासन पर बैठा। खण्डेला का राज्याधिकार पाकर उदय सिंह ने अपनी सैनिक शक्ति को मजबूत करने की कोशिश की। वह भली प्रकार इस बात को समझता था कि खण्डेला-राज्य के पतन का कारण मनोहरपुर का राजा है। इसीलिए उसने उससे बदला लेने का निश्चित इरादा किया। अपनी सेना को प्रबल बना कर उदय सिंह ने मनोहरपुर-राज्य पर आक्रमण किया। मनोहरपुर के राजा को जब यह समाचार मिला तो उसने अपने धा भाई के अधिकार में सेना देकर युद्ध के लिए भेजा। वह मनोहरपुर की सेना को लेकर रवाना हुआ। लेकिन युद्ध शुरू होने के पहले ही वह भाग गया। इस दशा में उदय सिंह ने अपनी सेना को लेकर मनोहरपुर को घेर लिया।

मनोहरपुर का राजा युद्ध करने की अपेक्षा धोखा देने और विश्वासघात करने में अधिक चतुर था। उसे मालूम हुआ कि कासली का सामन्त दीपसिंह भी अपनी सेना को लेकर उदय सिंह के साथ हमारे विरुद्ध युद्ध करने आया है। इसलिए उसने अपने दो अत्यन्त चतुर और विश्वासी दूतों के हाथ दीपसिंह के पास अपना एक पत्र भेजा। उसमें उसने दीपसिंह को लिखा : "उदय सिंह न केवल मनोहरपुर में अधिकार करेगा, बल्कि इसके बाद कासली को भी अधिकार में लेने का उसका एक निश्चित इरादा है। इस बात को आप निश्चित समझिए।"

इस पत्र को पाकर और पढ़ कर दीपसिंह ने उस पर विश्वास कर लिया। सबेरा होते ही उदय सिंह ने युद्ध के बाजे बजवाये और उसने मनोहरपुर पर आक्रमण करने की तैयारी की। उसी समय दीपसिंह अपनी सेना के साथ उस स्थान को छोड़ कर अपनी राजधानी कासली की तरफ चला गया। उदय सिंह की समझ में न आया कि दीपसिंह ने ऐसा क्यों किया। उदय सिंह ने अपनी सेना लेकर दीपसिंह का पीछा किया। दीपसिंह ने जब यह देखा तो उसको मनोहरपुर के राजा के पत्र का पूरा विश्वास हो गया। दीपसिंह घबरा कर जयपुर के राजा के यहाँ चला गया। उदय सिंह ने कासली पहुँच कर उस पर अधिकार कर लिया। इसका परिणाम यह हुआ कि मनोहरपुर में उदय सिंह का जो आक्रमण होने वाला था, वह खत्म हो गया।

राजा जय सिंह इन दिनों में आमेर के सिंहासन पर था। दीपसिंह के वहाँ पहुँचने पर राजा जयसिंह ने कहा : "यदि आप हमारी अधीनता स्वीकार कर लें तो हम आपकी सहायता करेंगे और कासली का अधिकार फिर से आपको मिल जायगा।"

दीपसिंह के सामने अपने उद्धार का और कोई रास्ता न था। उसने राजा जयसिंह की बात को स्वीकार कर लिया और जयपुर-राज्य की अधीनता स्वीकार करने के लिये हस्ताक्षर करते हुए उसने चार हजार रुपये वार्षिक कर में देना भी मंजूर किया।

इस तरह शेखावत सामन्तों पर जयपुर के राजा का आधिपत्य का फिर से सूत्रपात्र हुआ। शेखावत सामन्तों की संख्या बहुत थोड़ी थी और उनके अधिकारों में जो सेनायें थीं, वे भी अधिक न

थीं। कासली के सामन्त दीपसिंह के अधीनता स्वीकार कर लेने पर कई दिनों के बाद आमेर के राजा जयसिंह ने सूर्य ग्रहण के समय गंगा-स्नान के लिए जाने की तैयारी की। उसके साथ दीपसिंह भी रवाना हुआ। गंगा के किनारे पहुँचकर जयसिंह ने स्नान किया और ब्राह्मणों तथा दीनों-दरिद्रों को दान देने के समय उसने एक कर्मचारी से पूछा : "यह दान कौन लेगा।"

कासली के सामन्त दीपसिंह ने यह सुन कर अपने अंगरखे का दामन फैलाकर राजा जयसिंह से कहा : "इसके लिए मैं प्रार्थी हूँ।"

राजा जयसिंह ने दीपसिंह को उत्तर दिया : "इस प्रकार का दान केवल मँगता लोगों को दिया जाता है और उन मँगता लोगों में पुरोहित, कवि एवम् दरिद्र माने जा सकते हैं। लेकिन ठाकुर आपकी अभिलाशा क्या है?'

राजा जयसिंह ने अपनी यह बात दीपसिंह से कही। उसको सुनकर उसने उत्तर दिया : "इस प्रार्थना के द्वारा फतेह सिंह का लड़का राज्य में अपने पिता का हिस्सा प्राप्त कर सकता है।'

राजा जयसिंह ने दीपसिंह की इस प्रार्थना को पूरा करने का वादा किया।

यह घटना सन् १७१६ ईसवी की है। इन दिनों जाटों की शक्तियाँ प्रबल हो रही थीं और आमेर का राजा जयसिंह उन दिनों में मुगल बादशाह के यहाँ सम्मानित होकर एक बड़ी सेना पर अधिकार रखता था। साधारण श्रेणी के राजा उसकी अधीनता में थे। करौली, भदावर शिरपुर और दूसरे इस श्रेणी के राजाओं के साथ खण्डेला का उदयसिंह भी अपनी सेना के साथ जयपुर के राजा जयसिंह की अधीनता में रहा करता था। जाटों की बढ़ती हुई शक्तियों को देखकर जयसिंह ने उनके थून नामक दुर्ग को जाकर घेर लिया। उस दुर्ग का संरक्षक चूड़ामणि नामक एक जाट सरदार था। जाटों के विरुद्ध आक्रमण करने के लिए राजा जयसिंह के साथ उदय सिंह भी अपनी सेना लेकर गया था। लेकिन कुछ कारणों से जयसिंह उदय सिंह से अप्रसन्न हो गया। इसलिए उदय सिंह अपनी सेना के साथ वहाँ से लौटकर चला आया। थून के दुर्ग को घेरे हुए जयसिंह को बहुत दिन बीत गये। इसी बीच में सरदार चूड़ामणि ने छिपे तौर पर बादशाह के मन्त्री सैयद के साथ संधि कर ली। इसलिए जाटों के विरुद्ध जयसिंह की सारी कोशिश बेकार हो गयीं।

खण्डेला का अधिकार प्राप्त करने के बाद उदय सिंह ने उदयगढ़ नामक एक दुर्ग बनवाया था। जब उसे मालूम हुआ कि थून में अप्रसन्न हो जाने के कारण जयसिंह खण्डेला-राज्य पर आक्रमण करने की तैयारी कर रहा है तो वह सचेत और सावधान होकर अपने परिवार तथा सैनिक लोगों के साथ अपने उदयगढ़ दुर्ग में जाकर रहने लगा। वजीद खाँ और समस्त सामन्त की सेनाओं को लेकर जयसिंह ने अपनी सेना के साथ उदयगढ़ पर आक्रमण किया। इस विशाल सेना ने वहाँ पहुँच कर दुर्ग के आस-पास घेरा डाल दिया। उदय सिंह अपने उस दुर्ग में एक महीने तक बना रहा। इसके बाद उसने खाने-पीने की जो सामग्री दुर्ग में एकत्रित की थी, वह समाप्त हो गयी। इसलिए उदय सिंह के साथ जो लोग दुर्ग में मौजूद थे, उनको खाने-पीने का कष्ट होने लगा। इस दशा में उदय सिंह साथ के सब लोगों को लेकर मारवाड़ के नारू नामक स्थान को चला गया। उसके चले जाने पर उसके सवाई सिंह ने विजय सिंह के सामने जाकर आत्म-समर्पण किया और उसने किले का फाटक खोल दिया।

सवाई सिंह के इस व्यवहार से जयसिंह प्रसन्न हुआ। उसने उसको क्षमा करके आमेर की अधीनता स्वीकार करने के लिये कहा। सवाई सिंह ने कासली के राजा दीपसिंह का अनुकरण

किया और अधीनता के पत्र पर उसने हस्ताक्षर कर देने के बाद वार्षिक एक लाख रुपये कर के रूप में देना भी स्वीकार किया। लेकिन इसके बाद एक लाख रुपये में कमी की गयी और अन्त में वह चासठ हजार रुपये वार्षिक कर में आमेर के राजा को देने लगा।

कुछ दिनों के बाद राजा जयसिंह की शक्तियाँ कमजोर पड़ गयीं। मराठों और पठानों की लूट-मार आमेर-राज्य के चारों तरफ आरम्भ हो गयी, उस समय खण्डेला से कर वसूल करना उसके लिए कठिन हो गया। इसके पहले गंगा के किनारे दीपसिंह से राजा जयसिंह ने फतेह सिंह के लड़के को उसका अधिकार दिलाने का वादा किया था, वह वादा अभी तक बाकी था। इसलिए फतेह सिंह ने अपने जीवन-काल में खण्डेला-राज्य के दो हिस्से पाये थे, उन पर उसके लड़के धीरसिंह को अधिकारी बना दिया गया। इस तरह सवाई सिंह और धीरसिंह—दोनों ही जयसिंह की अधीनता में चलने लगे।

सवाई सिंह जिन दिनों खण्डेला में न रहता था, उन दिनों में उदय सिंह ने अपने राज्य पर अधिकार करने के अभिप्राय से एक सेना लेकर अचानक उदयगढ़ पर आक्रमण किया और उस पर अधिकार कर लिया। सवाई सिंह उस समय आमेर-राजधानी में था। उसने अपने पिता उदय सिंह के आक्रमण का समाचार जयसिंह से कहा। उसे सुनते ही जयसिंह ने तुरन्त उदय सिंह पर आक्रमण करने का आदेश किया। सवाई सिंह जयपुर की सेना के साथ रवाना हुआ और उसने उदयगढ़ पर आक्रमण करके उदय सिंस को वहाँ से भगा दिया। उदय सिंह इसके बाद फिर नारु चला गया और जीवन के शेष दिन उसने वहीं पर व्यतीत किये। सवाई सिंह ने उसके खर्च के लिये पाँच रुपये नित्य के हिसाब से देने का प्रबन्ध कर दिया था। सवाई सिंह के तीन लड़के पैदा हुए—वृन्दावन, शम्भू और कुशल। बड़े लड़के वृन्दावन को खण्डेला का राज्याधिकार मिला। मझले लड़के शम्भू को रानौली का और छोटे लड़के कुशल को पिपरौली का अधिकारी बना दिया।

चौंसठवाँ परिच्छेद

आमेर-राज्य में गृह-युद्ध—खण्डेला-राज्य पर उसका प्रभाव—वृन्दावन दास की सहायता में आमेर के राजा माधव सिंह—पीड़ित ब्राह्मणों का प्रकोप—राजा माधव सिंह की कूटनीति—खण्डेला-राज्य में भीषण गृह-युद्ध—मुगल सेना का खण्डेला पर आक्रमण—शेखावाटी में विपद—भीषण अकाल—मराठों का आक्रमण—प्रसिद्ध सामन्त देवीसिंह।

खण्डेला का राज्याधिकार वृन्दावन दास के प्राप्त करने के दिनों में आमेर-राज्य में गृह-युद्ध चल रहा था और माधव सिंह ने ईश्वरी सिंह के साथ संघर्ष पैदा करके वहाँ पर भयंकर परिस्थिति उत्पन्न कर दी थी। वृन्दावन दास ने माधव सिंह का पक्ष लेकर इस गृह-युद्ध में काम किया था। उस संघर्ष में माधव सिंह को सफलता मिली। उसके सिंहासन पर बैठने के बाद वृन्दावन दास ने उससे प्रार्थना की। माधव सिंह ने भी उसकी सहायता का पुरस्कार देना चाहा। इसलिए उसने कहा कि खण्डेला-राज्य के दो भागों में विभक्त होने के कारण आपस में संघर्ष चल रहा है। इस

आपसी झगड़े को दूर करने के लिए एक ही उपाय है कि खण्डेला-राज्य में एक को अधिकारी बना दिया जाय। फतेह सिंह के लड़के बीरसिंह का पुत्र इन्द्र सिंह इन दिनों में खण्डेला के दो भागों का अधिकारी था। इसलिए आमेर के राजा माधव सिंह ने इन्द्र सिंह के विरुद्ध अपनी पाँच हजार सैनिकों की सेना वृन्दावन दास के साथ भेजी। उसने खण्डेला पहुँच कर इन्द्रसिंह पर आक्रमण किया। इन्द्र सिंह कुछ दिनों तक अपने दुर्ग में रह कर आमेर की सेना का मुकाबिला करता रहा। लेकिन अन्त में निर्बल पड़ कर वह दुर्ग से निकल गया और पारासोली स्थान पर चला गया। वृन्दाबन दास ने वहाँ जाकर उस पर आक्रमण किया। इसलिए अन्त में इन्द्र सिंह को आत्म-समर्पण करना पड़ा। लेकिन इसी बीच में एक ऐसी घटना हुई कि जिससे उसको फिर अपने पिता के अधिकार का राज्य मिल गया।

आमेर के राजा माधव सिंह ने पाँच हजार सैनिकों की सेना जो वृन्दाबन दास की सहायता में भेजी थी, उसके वेतन देने का भार वृन्दाबन दास के ही ऊपर था। लेकिन उसके पास इतना धन न था कि वह उस सेना का वेतन अदा कर सकता। इस दशा में वृन्दाबन दास ने दूसरे साधनों का आश्रय लिया। उसने मन्दिरों की मूर्तियों में लगे हुए चाँदी-सोने को अपने अधिकार में करने के साथ-साथ प्रजा से कर लेना आरम्भ किया। यह कर राज्य के ब्राह्मणों से भी वसूल होने लगा। इसलिए वहाँ के ब्राह्मणों ने इसकी निन्दा की। परन्तु वृन्दाबन दास ने उनकी निन्दा की कुछ परवाह न की। यह देखकर ब्राह्मणों ने वृन्दाबन दास का अपमान जनक विरोध किया। वृन्दाबन दास पर इसका भी कोई प्रभाव न पड़ा तो ब्राह्मण अपने आपको आघात पहुँचाकर वृन्दा-बन दास को ब्रह्म-हत्या का पापी बनाने लगे। ब्राह्मणों के दल के दल वृन्दाबन दास के सामने पहुँचते और अपने शरीरों को आघात पहुँचा कर उसे कोसते। इस प्रकार की घटनाओं के कारण खण्डेला की प्रजा वृन्दाबन दास की निन्दा करने लगी।

खण्डेला-राज्य की इस प्रकार की घटनाओं के समाचार आमेर-राजधानी में माधव सिंह के पास पहुँचे। वह ब्राह्मणद्रोही नहीं बनना चाहता था। इसलिए उसने अपनी भेजी हुई सेना को वापस बुला लिया और विद्रोही ब्राह्मणों को आमेर में आने के लिए उसने संदेश भेजा। खण्डेला-राज्य के ब्राह्मण बड़ी संख्या में आमेर राजधानी पहुँचे। राजा माधव सिंह ने उन ब्राह्मणों को बीस हजार रुपये देकर संतुष्ट किया। इसके बाद वे ब्राह्मण अपने-अपने स्थानों को लौट गये।

आमेर की सेना के लौट जाने से वृन्दाबन दास कमजोर पड़ गया। इन्द्रसिंह ने इस अवसर का लाभ उठाने के लिए अपने सैनिकों को एकत्रित किया। उसने राजा माधव सिंह का अनुग्रह प्राप्त करने का भी इरादा किया। इन दिनों में आमेर के राजा की तरफ से खुशालीराम बोरा ने माचेड़ी के राव पर आक्रमण करने की तैयारी की थी और जिस समय आमेर सेना खुशालीराम बोरा के नेतृत्व में माचेड़ी की तरफ जा रही थी, इन्द्र सिंह अपनी सेना के साथ पारासोली से रवाना हुआ था। वह आमेर की सेना के साथ जाकर मिल गया और इन दोनों सेनाओं ने माचेड़ी पहुँचकर आक्रमण किया। वहाँ का राव घबराकर जाटों के राजा के पास भाग गया। माचेड़ी के आक्रमण में इन्द्र सिंह ने आमेर की सेना का साथ दिया। इसलिए आमेर के राजा माधव सिंह ने उसको खण्डेला-राज्य की सनद दे दी। इन दिनों में इन्द्र सिंह ने राजा माधव सिंह को पचास हजार रुपये भी दिये।

राजा माधव सिंह से इन्द्र सिंह को खण्डेला-राज्य की सनद मिल जाने के बाद उसकी शत्रुता वृन्दाबन दास के साथ और भी अधिक हो गयी। दोनों ने एक दूसरे का नाश करने की पूरी तैयारी की। इसका परिणाम उसके वंश और परिवार के लिए अत्यधिक भयानक हो उठा। यह

भयानक संघर्ष पिता-पुत्र के साथ, भाई-भाई के साथ और परिवार के एक व्यक्ति का दूसरे व्यक्ति के साथ आरम्भ हुआ।

खण्डेला-राज्य के इस गृहयुद्ध में एक तरफ बृन्दाबन दास था और दूसरी तरफ इन्द्र सिंह था। दोनों आमेर के राजा की सहायता अपने पक्ष में प्राप्त करने के लिए सभी प्रकार के प्रयत्न कर रहे थे। राजा माधव सिंह ने सिंहासन पर बैठने के बाद अपनी सेना देकर बृन्दाबनदास की सहायता की थी और माचेड़ी के राव पर आक्रमण करने के समय इन्द्र सिंह की सहायता मिलने से उसी राजा माधव सिंह ने इन्द्र सिंह को खण्डेला-राज्य की सनद दे दी। आमेर के राजा की इन दो मुखी चालों से उन दोनों को यह समझना कठिन हो गया कि राजा माधव सिंह किस पक्ष का समर्थन कर रहा है। यही कारण था कि इन दिनों में भी आमेर की सहायता प्राप्त करने के लिए दोनों पक्षों की तरफ से पूरी-पूरी कोशिश हो रही थी।

इन्द्र सिंह बृन्दाबन से उदयगढ़ दुर्ग का अधिकार छीन लेने के लिए अपनी सेना के साथ रवाना हुआ। बृन्दाबन दास का छोटा लड़का रघुनाथ सिंह अपने पिता के विरुद्ध युद्ध करने के लिए इन्द्र सिंह के साथ चला। बृन्दाबन दास ने अपने लड़के रघुनाथ को कोछोर का अधिकार दे दिया था। लेकिन इससे उसको संतोष न मिला और उसने कोछोर के अतिरिक्त दूसरे तीन नगरों पर अधिकार कर लिया। उस समय बृन्दावन दास ने रघुनाथ को दबाने के लिए इन्द्र सिंह के साथ मेल किया था और उसके बाद उसने कोछोर पर आक्रमण करने का प्रयास किया। रघुनाथ सिंह को जब यह रहस्य मालूम हुआ तो उसने इन्द्र सिंह का साथ छोड़कर उसके भतीजे रानोली के सामन्त पृथ्वी सिंह का आश्रय लिया और कोछोर की रक्षा करने का प्रयत्न किया। कोछोर के आक्रमण में असफल होकर बृन्दाबन दास खण्डेला की तरफ लौट गया।

इन्द्र सिंह अपनी सेना के साथ खण्डेला के समीप पहुँच गया। उसी समय नगर के बाहर दोनों तरफ से युद्ध आरम्भ हुआ। बृन्दाबन के बड़े लड़के गोविन्द सिंह ने बड़े साहस के साथ उदयगढ़ की रक्षा की। इन्द्र सिंह लगातार उसको पराजित करने की कोशिश कर रहा था। कई दिनों तक यह युद्ध चलता रहा अंत में युद्ध करते-करते दोनों पक्ष निर्बल पड़ गये। लेकिन युद्ध का कोई परिणाम न निकला। इसके बाद बृन्दाबन और इन्द्र सिंह में समझौता हो गया और इन्द्र सिंह राज्य के जितने हिस्से का वास्तव में अधिकारी था, उतना राज्य बृन्दाबन दास ने उसको दे दिया। इस समझौते के बाद खण्डेला-राज्य के आपसी संघर्ष का अंत हो गया।

घरेलू संघर्ष के अंत होने के कुछ ही दिनों के बाद दिल्ली के बादशाह के सेनापति नजफ-कुली खाँ ने एक फौज लेकर खण्डेला पर आक्रमण किया। माचेड़ी का राव मुगल सेनापति को लेकर शेखावाटी राज्य में आया और वहाँ के छोटे-छोटे राज्यों पर अत्याचार करके मुगल सेनापति ने धन एकत्रित करने का काम आरम्भ किया। नवलगढ़ के नवल सिंह, खेतड़ी के बाघसिंह, बिसाऊ के सूर्यमल आदि शेखाणी वंश के राजाओं से मुगल सेनापति ने दण्ड स्वरूप कई लाख रुपये देने के लिए कहा। इस रुपये की अदायगी न हो सकने पर मुगल सेनापति ने उन सब को कैद कर लिया। इसके बाद शेखावाटी के गरीब किसानों से कई लाख रुपये एकत्रित करके जब यवन सेनापति को दिये गये तो उसके बाद वे सामन्त कैद से छोड़े गये।

इन दिनों में शेखावाटी का प्रत्येक ग्राम और नगर भयानक विपदाओं का सामना कर रहा था। घरेलू संघर्ष के कारण खण्डेला-राज्य निर्बल हो चुका था। उसके बाद वहाँ के ब्राह्मणों ने अपने भय का प्रदर्शन आरम्भ किया। बृन्दाबन दास ने खण्देला की प्रजा से कर वसूल करने के अवसर पर यहाँ के कुछ ब्राह्मणों से भी वसूल किया था। उसको शांत करने के लिए आमेर के

राजा ने खण्डेला से अपनी सेना वापस बुला ली थी और क्रोधिक ब्राह्मणों को बीस हजार रुपये देकर शान्त किया था इसका ऊपर वर्णन किया जा चुका है। इन दिनों में बृन्दावन दास और इन्द्र सिंह को निर्बल समझ कर यहाँ के ब्राह्मणों ने उत्पात करना आरम्भ किया। बृन्दावन ने उन लोगों से जो कर वसूल किया था, उसके पाप का प्रदर्शन करके वे लोग बृन्दावन को भयभीत करने लगे। बृन्दावन ने ब्राह्मणों के श्राप से डर कर प्रायश्चित के रूप में उनको भूमि के अधिकार देना शुरू किया। बहुत समय तक अनाचार देखकर बृन्दावन दास के लड़के गोविन्ददास ने इसका विरोध किया। इसके फलस्वरूप बृन्दावन ने गोविन्ददास को अपने राज्य का भार देकर और अपने अधिकार में पाँच नगरों को रखकर सिंहासन छोड़ दिया।

गोविन्ददास अपने पिता के सिंहासन पर बैठकर अधिक समय तक राज्याधिकार का भोग न कर सका। सिंहासन पर उसके बैठने के वर्ष में वर्षा न होने के कारण राज्य में भयानक अकाल पड़ा। राज्य में चारों तरफ हा-हाकार आरम्भ हुआ। इस अकाल के कारण गोविन्द सिंह को प्रजा से कर वसूल करने में बड़ी कठिनाई हुई। महरोली के सामन्त ने गोविन्द सिंह से राज्य में घूमकर खेती की दशा देखने की प्रार्थना की। इसके लिए जब गोविन्द सिंह तैयार हुआ तो ब्राह्मणों ने विरोध करते हुए उससे कहा : "बाहर जाने के लिए आज का दिन अच्छा नहीं है।"

गोविन्द सिंह ने ब्राह्मणों की इस बात पर ध्यान नहीं दिया और वह राज्य में खेती की दशा देखने के लिए रवाना हुआ। उसके साथ खेजड़ोली नामक स्थान का रहने वाला एक कर्मचारी था। गोविन्द सिंह उसका विश्वास करता था। उसकी जिम्मेदारी में गोविन्द सिंह ने कुछ मूल्यवान चीजें रख दीं, जो खो गयीं। गोविन्द सिंह उससे बहुत अप्रसन्न हुआ। कर्मचारी ने अपने निर-पराध होने के अनेक प्रमाण दिये। लेकिन गोविन्द सिंह ने उसका विश्वास नहीं किया। इस अवस्था में उस कर्मचारी को बहुत ग्लानि मालूम हुई। उसे अपने अपराध में किसी बड़े दण्ड की आशंका होने लगी। इसलिए उस कर्मचारी ने रात के समय गोविन्द सिंह को जान से मार डाला। गोविन्द सिंह के पाँच लड़के थे—(१) नरसिंह (२) सूर्यमल (३) बाघसिंह (४) जवान सिंह और (५) रणजीत सिंह। उसके इन पुत्रों के द्वारा उसके वंश की वृद्धि हुई।

पिता के बाद नरसिंह खण्डेला के सिंहासन पर बैठा। घरेलू संघर्ष और विद्रोह के कारण खण्डेला की राजनीतिक और सामाजिक परिस्थितियाँ बहुत निर्बल हो गयी थीं। पड़ोसी राज्यों ने इस अवसर का लाभ उठाकर अपनी सीमायें बढ़ा ली थीं। दिल्ली की मुगल बादशाहत बहुत कमजोर पड़ गयी थी। आमेर के राजा ने अपने निकटवर्ती राज्यों से लाभ उठाकर शक्ति और सम्मान की वृद्धि की थी। शेखावत राज्यों के साथ उसका शान्तिपूर्ण सम्बन्ध चल रहा था। इन्हीं दिनों में वहाँ पर मराठों के अत्याचार आरम्भ हुए। लोगों ने शेखावाटी में चारों तरफ लूटमार आरम्भ कर दी और वहाँ के सामन्तों और उनके लड़कों को कैद करके वे ले जाने लगे। बन्दी होने वाले सामन्तों ने अपना सब-कुछ बेचकर मराठों की माँगी हुई रकमें अदा कीं। इसके बाद उन लोगों ने छुटकारा पाया। जो सामन्त मराठों को उनकी माँग के अनुसार धन नहीं दे सके, उनको बहुत दिनों तक कैदी होकर मराठों के साथ रहना पड़ा। इसके बाद भी उनसे कुछ न मिलने पर मराठों ने उनको छोड़ दिया।

मराठा लुटेरों ने इन दिनों में सभी प्रकार के अत्याचार शेखावाटी में किये। मेड़ता के युद्ध के बाद मराठों के इस दल ने शेखावाटी पहुँचकर सबसे पहले बिवाई पर आक्रमण किया। वहाँ के लोग घबराकर दूसरे नगरों की तरफ भाग गये। लेकिन अस्सी राजपूतों ने अपने दुर्ग के भीतर जाकर मराठों के साथ लड़ने का निश्चय किया। मराठों ने बिवाई पर अधिकार करने के

बाद वहाँ दुर्ग पर आक्रमण किया। उस दुर्ग में जो राजपूत मौजूद थे, वे युद्ध करते हुए मारे गये। उस दुर्ग पर अधिकार कर लेने के बाद मराठों का दल खण्डेला की तरफ रवाना हुआ।

खण्डेला के चार मील रह जाने पर मराठों के दल ने होदीगाँव नामक स्थान पर जाकर मुकाम किया और अपना दूत भेजकर खण्डेला के राजा नरसिंह और इन्द्रसिंह से बीस हजार रुपये की माँग की। * नरसिंह और इन्द्रसिंह ने अपने दो सामन्तों को इस विषय में बातचीत करने के लिए मराठों के पास भेजा। उन सामन्तों के नाम थे, नवल सिंह और दलेल सिंह।

उन सामन्तों ने मराठों के सरदार के पास जाकर संधि की बातचीत की और मराठों को दी जाने वाली रकम का निर्णय हो गया। उस समय दोनों सामन्त वापस आने लगे तो मराठों के सरदार ने उनको रोककर कहा : "जब तक दण्ड की यह रकम हमारे पास न आ जायगी, आप यहाँ से किसी प्रकार जा नहीं सकते।"

उन सामन्तों ने मराठा सरदार की इस बात का विरोध किया। इसी समय एक सामन्त अपने साथ के एक कर्मचारी से हुक्का लेकर पीने लगा। यह देखकर एक मराठा ने उसका हुक्का छीन कर फेंक दिया। उसके इस व्यवहार से सामन्त ने अपमानित होकर अपनी कमर से तलवार निकाल ली और हुक्का फेंकने वाले मराठा पर आघात करने के लिए तैयार हो गया। इसी समय मराठा सरदार ने दलेल सिंह के हाथ में तलवार देखकर अपनी बन्दूक से उसके गोली मारी। यह देखकर अपने साथ के कर्मचारियों को संकेत करके दूसरा सामन्त नवल सिंह लड़ने के लिए तैयार हो गया। इस पर बहुत-से मराठा एक साथ टूट पड़े और उन्होंने खण्डेला के सामन्तों और कर्मचारियों को जान से मार डाला।

बहुत समय तक मराठों के पास से सामन्तों के न लौटने पर खण्डेला के राजा इन्द्रसिंह को चिन्ता होने लगी। अपने साथ कुछ आदमियों को लेकर वह मराठों की तरफ रवाना हुआ। उनके करीब पहुँचने पर उसने सुना कि मराठों ने दोनों सामन्तों और साथ के कर्मचारियों पर आक्रमण करके उनको मार डाला है। इस समाचार को सुनते ही साथ के आदमियों ने इन्द्रसिंह से खण्डेला लौट जाने के लिए कहा। उसको समझाते हुए इन्द्रसिंह ने उत्तर दिया : "ऐसा नहीं हो सकता। हमारे सामन्त और आदमी मारे गये हैं। इसलिए इस समाचार को पाने के बाद लौट जाने की अपेक्षा वहाँ जाकर मृत्यु का सामना करना अधिक अच्छा है।"

यह कह अपने आदमियों के साथ इन्द्रसिंह आगे बढ़ा और कुछ दूर आगे जाकर सभी लोग घोड़ों से उतर पड़े। समीप के पेड़ों में घोड़ों को बाँधकर अपने आदमियों के साथ हाथों में तलवारें लिए हुए इन्द्रसिंह ने शत्रुओं पर जाकर आक्रमण किया। उसी समय मराठों का दल उन पर टूट पड़ा और अपने आदमियों के साथ इन्द्रसिंह मारा गया। दलेल सिंह घायल होने के कारण अभी तक मरा नहीं। इसीलिए शत्रु के आदमी उसको घसीट कर अपने डेरों में ले गये।

इन्द्रसिंह के मारे जाने के समय उसका लड़का प्रताप सिंह खण्डेला से दस मील दूर एक शिखर पर बने हुए दुर्ग में मौजूद था। वह अभी शासन के सम्बन्ध में कुछ नहीं जानता था।

---

* इस लुटेरा मराठा-दल में सभी मंत्री, अधिकारी और दूत केवल ब्राह्मण थे। ब्राह्मण लोग इस प्रकार के कार्य में बड़े होशियार होते हैं। जरूरत पड़ने पर वे साहस से भी काम लेते हैं। दूत का कार्य करने में ये ब्राह्मण लोग बहुत चतुर पाये जाते हैं। इन ब्राह्मण दूतों ने योरप के प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ मो.केया बेली को भी बुरी तरह से ठगा था।

इसलिए खण्डेला के प्रसिद्ध पुरुषों ने राज्य में जिसके पास जो कुछ मौजूद था, अनाज और खाने की वस्तुयें तक बेचकर जो धन एकत्रित किया गया, वह मराठों को दे दिया गया। इसके बाद मराठा वहाँ से चले गये और सिद्धानी वंश के अधिकारी नगरों में वे जा पहुँचे। सबसे पहले उन मराठों ने उदयपुर पर आक्रमण किया और उसे सभी प्रकार लूटकर उसको अपने अधिकार में कर लिया। उसके बाद भी मराठा दल के लोग नगर में लूटमार के अतिरिक्त भयानक अत्याचार करते रहे। इसके बाद उनका दल उदयपुर को छोड़कर सिहाना, झुंझनू और खेतड़ी आदि के सामन्तों पर आक्रमण करने के लिए चला।

मराठों के चले जाने के बाद भी खण्डेला के नरसिंह और प्रताप सिंह सुख की नींद सो नहीं सके। वहाँ के लोगों ने अपना सब कुछ बेच कर मराठों को दे दिया। उनके जाते ही आमेर के राजा ने खण्डेला से कर माँगा। बालक प्रताप इनकार कर सकने की दशा में न था। उसके नगरों में लोगों के पास खाने के लिए जो कुछ अनाज रह गया था, उसका अधिकांश भाग प्रताप सिंह ने आमेर के राजा को दे दिया। परन्तु नरसिंह ने कुछ न दिया।

इन दिनों में शेखावत वंश की एक शाखा में सामन्त देवीसिंह ने ख्याति प्राप्त की थी। वह कासली के राव तिरमहल का वंशज था और सीकर का वह अधिकारी था। उसने खण्डेला-राज्य की अधीनता में रह कर भी लोहागढ़, खोह और इस प्रकार के दूसरे पच्चीस नगरों और दुर्गों पर अधिकार कर लिया था। इसके बाद उसने रिवासो पर अधिकार करने की चेष्टा की थी। परन्तु मृत्यु हो जाने के कारण वह अपनी अभिलाषा पूरी न कर सका।

देवीसिंह के कोई लड़का न था। इसलिए अपने जीवन काल में ही उसने शाहपुरा के सामन्त के लड़के लक्ष्मण सिंह को गोद लेकर अपना उत्तराधिकारी बना लिया था। शेखावाटी के निर्बल सामन्तों से ग्राम और नगरों पर अधिकार कर लेने के कारण देवीसिंह से आमेर का राजा बहुत अप्रसन्न हो गया था। इसलिए उसने अपने मन्त्री दौलत राम के भाई नन्द राम हलदिया को देवीसिंह के नगरों पर आक्रमण करने का आदेश दिया। नन्दराम ने वहाँ आक्रमण करके लक्ष्मण सिंह को आमेर की अधीनता में लाने की तैयारी की। इस समय, जिन सामन्तों के ग्रामों और नगरों पर देवीसिंह ने अधिकार कर लिया था, वे सभी देवीसिंह के विरुद्ध नन्दराम हलदिया के पास जाने लगे। खण्डेला के राजा भी उसके पास पहुँचे। कासली और बिलारा आदि के पात्तवत सामन्त भी नन्दराम के पास पहुँच गये। देवीसिंह ने जिसको क्षति पहुँचाई थी, वे सभी उसके दत्तक पुत्र लक्ष्मण सिंह के विरुद्ध होने वाले आक्रमण में सहायता करने के लिए तैयार हो गये।

सीकर का अधिकारी देवीसिंह भी साधारण दूरदर्शी न था। उसने पहले से ही अपने पक्ष में बहुत-कुछ कर रखा था। उसने आमेर-राज्य के दरबारी सदस्यों के साथ पहले से ही सम्बन्ध जोड़ रखा था। वह इस बात को समझता था कि इन लोगों के साथ अनुराग पूर्ण सम्बन्ध कायम रहने से हमारा भविष्य संकटपूर्ण न बन सकेगा। देवीसिंह के साथ जयपुर के मन्त्री और उसके भाई का स्नेहपूर्ण सम्बन्ध था। यह सब देवीसिंह ने अपने जीवनकाल में ही कर लिया था। नन्दराम अपनी सेना के साथ सीकर पर आक्रमण करने के लिए जब गया तो एक चन्द्रावत सामन्त, जो सीकर का दीवान था—लक्ष्मण सिंह का प्रतिनिधि होकर नन्दराम के पास गया और उसने बड़ी नम्रता के साथ स्वर्गीय देवीसिंह का जिक्र करते हुए उसके दत्तक पुत्र लक्ष्मण सिंह की परिस्थितियाँ उसके सामने रखीं। नन्दराम ने उससे कहा : "आप जो चाहते हैं, उसका एक ही रास्ता है। आप एक

बड़ी सेना को एकत्रित करके सीकर की रक्षा करने के लिए तैयार हों। उस समय मेरे ऊपर किसी प्रकार का दोषारोपण न हो सकेगा।"

सीकर के दीवान की समझ में यह आ गया। देवीसिंह ने अनेक नगरों को लूटकर बहुत-सा धन एकत्रित किया था। वह सम्पत्ति लक्ष्मण सिंह के अधिकार में थी। इस समय उस सम्पत्ति का उपयोग किया गया और सीकर की रक्षा करने के लिए दस हजार सैनिकों की सेना का तुरन्त प्रबन्ध किया गया। इन दिनों में नन्दराम की सेना के अतिरिक्त कई सामन्तों की सेनायें सीकर पर आक्रमण करने के लिए आयी थीं। उन सब का युद्ध कौशल नन्दराम पर निर्भर था। साथ के सामन्तों से परामर्श करके नन्दराम ने सीकर में युद्ध आरम्भ किया।

लक्ष्मण सिंह ने अपनी रक्षा के लिए दस हजार सैनिकों की व्यवस्था कर ली थी। उसके दीवान के साथ नन्दराम से जो गुप्त बातचीत हुई थी, उसे वह जानता था और उसी के आधार पर दस हजार नयी सेना की व्यवस्था की गई थी। नन्दराम की तरफ से युद्ध आरम्भ हुआ, उसके कई दिन बीत गये। लेकिन वह युद्ध इस प्रकार चलता रहा कि सीकर को कोई क्षति न पहुँच सकी। इसके बाद नन्दराम ने जयपुर राज्य के मन्त्री के पास एक पत्र भेजा। वह मन्त्री नन्दराम का भाई था। उसने पत्र में लिखा : "वर्तमान परिस्थितियों में सीकर को परास्त करना बहुत कठिन मालूम होता है। इस पर भी सीकर का अधिकारी लक्ष्मण सिंह जयपुर की अधीनता स्वीकार करके दण्ड में दो लाख रुपये देने के लिए तैयार है। हमारी समझ में दो लाख रुपये लेकर और सीकर को अधीन बनाकर युद्ध रोक देना अधिक अच्छा है।"

नन्दराम ने अपना यह पत्र जयपुर के मन्त्री के पास भेज दिया। उसके बाद उसने जयपुर से आने वाले उत्तर की प्रतीक्षा नहीं की। उसने पत्र में लिखने के अनुसार दो लाख रुपये जयपुर राज्य के लिए और एक लाख रुपया अपने लिए लेकर सीकर छोड़ दिया। इस प्रकार देवीसिंह के स्नेह पूर्ण व्यवहारों के कारण सीकर को इस सम्पत्ति के सिवा और कोई विशेष क्षति नहीं उठानी पड़ी।

खण्डेला के राजा नरसिंह ने आमेर के राजा को कर देने से इनकार किया था। लेकिन प्रताप सिंह ने किसी प्रकार उसे अदा करके आमेर के राजा का सन्तोष प्राप्त किया था। नरसिंह का कर न देना आमेर नरेश को सहन नहीं हुआ। उसने नरसिंह और प्रताप सिंह से सङ्घर्ष पैदा करने की चेष्टा की। जयपुर राज्य की सहानुभूति अपने पक्ष में समझने के कारण प्रताप सिंह सम्पूर्ण खण्डेला राज्य का अधिकार प्राप्त करने की चेष्टा करने लगा। उसने जयपुर-राज्य के सेनापति नन्दराम के पास एक पत्र भेजा। उसमें उसने लिखा : "खण्डेला-राज्य की जितनी आमदनी है। उसका सम्पूर्ण कर मैं अकेले जयपुर को देने के लिए तैयार हूँ। लेकिन सम्पूर्ण खण्डेला का अधिकार मुझे दिला दिया जाय। जयपुर-राज्य की आज्ञानुसार मैं सदा अपनी सेना के साथ तैयार रहूँगा। मेरे लिखने के अनुसार खण्डेला का जो अभिषेक मेरे लिए किया जायगा, उसमें बहुत-सा धन जयपुर के राजा को उपहार में दिया जायगा।"

सेनापति नन्दराम ने प्रताप सिंह के इस पत्र को पढ़कर उसकी प्रार्थना को स्वीकार कर लिया और उसी समय से वह सम्पूर्ण खण्डेला-राज्य की सनद प्रताप को दिये जाने की चेष्टा करने लगा।

उन दिनों में नाथावत वंश का सरदार सामोद का सामन्त रावल इन्द्रसिंह जयपुर में रहता था। उसे जब मालूम हुआ कि नरसिंह के अधिकार का राज्य प्रताप सिंह को देने के लिए जयपुर में तैयारी हो रही है, तो उसने गुप्त रूप से नरसिंह को अपने पास बुलाया और सभी बातें बताकर

उसने उससे कहा : "सम्पूर्ण खण्डेला-राज्य का अधिकार राजा जयपुर की तरफ से प्रताप सिंह को दिया जा रहा है। उसके शासन की सनद तैयार हो चुकी है। इसलिए आप तुरंत जयपुर के राजा के साथ संधि करलें और जो मांग की जाय, उसे आप पूरा करें। यदि आप ऐसा चाहते हैं तो मैं आप की सहायता करूंगा।"

नरसिंह ने इन्द्रसिंह की इस बात को स्वीकर नहीं किया। इसलिए इन्द्रसिंह ने जयपुर छोड़कर तुरन्त उसको चले जाने के लिए कहा। उसने यह भी कहा यदि आप चुपके से निकलकर अपने राज्य न चले जायंगे तो आपके साथ साथ मेरे ऊपर भी सङ्कट पैदा हो जायगा।

इन्द्रसिंह के परामर्श के अनुसार नरसिंह रात के समय जयपुर से जाने के लिए तैयार हुआ। इन्द्रसिंह ने उसकी रक्षा के लिए अपने साठ कर्मचारियों को उसके साथ भेजा। वे लोग गुप्त रूप से उसको नवल गढ़ पहुँचा कर लौट आये। नरसिंह सवेरा होते-होते अपने दुर्ग गोविन्द गढ़ में पहुँच गया।

इन्द्रसिंह के पास नरसिंह का आना जयपुर में प्रकट हो गया इसलिए नन्दराम ने इन्द्रसिंह को अनेक प्रकार की धमकियाँ दीं। उनका उत्तर देते हुए इन्द्रसिंह ने नन्दराम से कहा : "मैंने राजपूतों के कर्त्तव्य का पालन किया है। इसका कोई भी परिणाम हो, मैं उसके लिए जरा भी भयभीत नहीं हूँ।"

नाथावन वंश में सामोत और चोमू के दोनों सामन्त प्रधान थे। सामोत के सामन्त चौमू से भी अधिक श्रेष्ठता मिली थी और वे दोनों जयपुर-राज्य की अधीनता में रहते थे। इन दोनों प्रधान सामन्तों को राज्य की तरफ से रावल की उपाधि मिली थी। उनके शासन में बहुत-से छोटे-छोटे सामन्त रहते थे। सामोत के सामन्त के साथ चौमू के सामन्त का बहुत दिनों से भीतर ही भीतर ईर्षाद्वेष चल रहा था और कभी-कभी उन दोनों में झगड़े भी हो जाते थे।

नरसिंह को जयपुर में अपने पास बुलाने के कारण इन्द्र सिंह से नन्दराव सेनापति बहुत अप्रसन्न हुआ। इस प्रकार का समाचार पाकर चौमू का सामन्त जयपुर के राज-दरबार में गया और नाथावत वंश के सामन्तों में श्रेष्ठ सामन्त का पद प्राप्त करने के लिए वह आमेर के राजा को बहुत-सा धन उपहार में देने के लिए तैयार हुआ। आमेर का राजा सामोत सामन्त इन्द्र सिंह से अप्रसन्न था ही। उसने चौमू के सामन्त की प्रार्थना को स्वीकार कर लिया। इन्द्र सिंह इस समय भी जयपुर में मौजूद था। उसे बुलाकर राज-दरबार में आज्ञा दी गयी :"आप ने राज्य के विरुद्ध जो अपराध किया है, उसके दण्ड में सामोत की जागीर राज्य के अधिकार में ले ली गयी है और आप को आदेश दिया जाता है कि आप तुरंत सामोत की जागीर छोड़कर राज्य से चले जायं।"

राजा के इस आदेश को पाकर सामोत के सामन्त इन्द्र सिंह ने कुछ भी विरोध न किया। उसने एक राजभक्त की हैसियत से इस आज्ञा को स्वीकार किया और आमेर राजधानी से वह अपनी जागीर सामोत चला गया। वहाँ पहुँचकर उसने सामोत से निकल जाने की तैयारी की और अपनी सामग्री तथा सम्पत्ति को लेकर अपने परिवार के लोगों साथ सामोत से निकलकर वह मारवाड़ राज्य में चला गया। कुछ दिन बीत गये। इन्द्र सिंह की स्त्री को आमेर राज्य के दरबार से पिपली नामक एक ग्राम का अधिकार मिला। इन्द्र सिंह की अवस्था बुढ़ापे की चल रही थी। उसने अपनी जन्मभूमि में मरने का इरादा किया। इसलिए जीवन के अंतिम दिनों में वह अपने परिवार के साथ उस ग्राम में चला गया। वह जन्म से ही साहसी और वीर था। यदि वह चाहता तो

तो आमेर के राजा के अन्यायपूर्ण आदेश के विरुद्ध वह युद्ध कर सकता था। परन्तु उसमें राजभक्ति की भावना थी। इसीलिए उसने ऐसा करना किसी प्रकार उतित न समझा।

खण्डेला का राजा नरसिंह अपने व्यवहारों से आमेर के राजा का विरोधी बन चुका था। उसके फलस्वरूप सेनापति नन्दराम हलदिया ने प्रताप सिंह को सम्पूर्ण खण्डेला-राज्य का अधिकारी बना दिया और इस अधिकार की सनद भी उसको दे दी गयी। इसके बाद प्रताप सिंह खण्डेला-राज्य के उस भाग में पहुँचा, जिसमें अब तक नरसिंह का अधिकार रहा था। वहाँ पहुँचकर सब से पहले प्रताप सिंह ने उस प्रधान द्वार को गिरवा कर धराशायी करा दिया, जिसे नरसिंह ने दुर्ग के रूप में बनवाया था और उसके ऊपर से उसने प्रताप सिंह के पिता के महलों पर गोले बरसाये थे। उसकी दीवाल में लगी हुई गणेश की एक मूर्ति थी। नरसिंह उस मूर्ति की पूजा किया करता था। वह मूर्ति भी टूटकर गिर गयी।

प्रताप सिंह ने सम्पूर्ण खण्डेला के शासन का अधिकार अपने हाथों में लेकर रेवासो पर अधिकार करने की तैयारी की और उसे लेकर उसने गोविन्दगढ़ दुर्ग को जाकर घेर लिया, जिसमें नरसिंह इन दिनों में रहता था। रानोली के सामन्त को यह देखकर अच्छा न मालूम हुआ। वह सदा से नरसिंह का समर्थक था। उसने अपने मंत्री को नन्दराम के पास भेजा और उसके द्वारा उसने हलदिया से प्रार्थना की कि आमेर के राजा को नरसिंह से जो मिलना चाहिए, हम सब देने के लिए तैयार हैं, यदि आप नरसिंह को पूर्ववत् अधिकारी बना रहने दें। साथ ही इसके बदले हम आपको उपहार में अधिक धन देकर संतुष्ट करेंगे।

धन की आशा में सेनापति नन्दराम ने उस सामन्त के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। धन की ही आशा में उसने अभी कुछ दिन पहले प्रताप सिंह को सम्पूर्ण खण्डेला-राज्य का अधिकारी बनाया था और उसे राजा की तरफ से इसके लिए सनद भी दी गयी थी। अब उसने नरसिंह के सम्बन्ध में इस प्रकार का प्रस्ताव स्वीकार किया और अपनी सफलता के लिए उसने एक नये षड़यंत्र की रचना की। उसने नरसिंह के समर्थक सामन्त के पास गुप्त रूप से समाचार भेजा कि आपने नरसिंह के पक्ष में जो प्रस्ताव किया है, उसके लिए गोविन्दगढ़ से नरसिंह एक सेना को लेकर रात्रि के समय बाहर निकले और हमारी सेना पर आक्रमण करे। उस समय कुछ देर तक तक बनावटी युद्ध करके हम अपनी सेना के साथ परास्त होकर भाग जायंगे। ऐसा करने से प्रताप सिंह को हम पर किसी प्रकार का संदेह न होगा और नरसिंह को सफलता मिल जायगी।

नन्दराम का यह संदेह गुप्त रूप से रानोली के सामन्त के पास पहुँच गया। उसने इस संदेश के अनुसार तैयारी की। सूर्यमल्ल और बाघसिंह नरसिंह के दो भाई थे। उन दोनों ने गोविन्दगढ़ के दुर्ग के भीतर तैयारी की और निश्चित दिन तथा समय पर रात में डेढ़ सौ सैनिकों को लेकर वे दोनों भाई दुर्ग से बाहर निकले और उन्होंने नन्दराम की सेना पर इस प्रकार का आक्रमण किया, जिससे आमेर की सेना को किसी प्रकार की क्षति न पहुँचे। उस आक्रमण पर कुछ देर तक युद्ध करके नन्दराम अपनी सेना के साथ वहाँ से भाग गया और नरसिंह ने अपने भाइयों के साथ अवसर पाकर राज्य के अपने नगरों और ग्रामों पर अधिकार कर लिया।

इस घटना से प्रताप सिंह को बहुत क्रोध मालूम हुआ। इसके रहस्य का उसे कुछ पता न था। उसने नरसिंह के अधिकार को रोकने की कोशिश की। परन्तु उसे सफलता न मिली। नरसिंह के पक्ष में कई सेनायें खण्डेला में आ चुकी थीं। प्रताप सिंह उसको रोक न सका। इसलिए उसने विरोधी सैनिकों को पानी का कष्ट पहुँचाने की कोशिश की। उसने कुओं को बन्द करवाने का

आदेश दिया। इसके फलस्वरूप दोनों ओर की सेनाओं में संघर्ष हो गया और दोनों तरफ के बहुत-से आदमी घायल हुए। अंत में नन्दराम हलदिया ने आमेर-राज्य की पंचरंगी पताका फहराकर युद्ध को रोका और उसकी कोशिशों से दोनों पक्षों में संधि की बातचीत आरम्भ हुई। प्रताप सिंह को रेवासो का अधिकार और नरसिंह को खण्डेला-राज्य में पैतृक अधिकार दिलाकर संधि करायी गयी।

इस संधि के बाद भी दोनों पक्षों में अधिक समय तक शांति कायम न रह सकी। साधारण विवाद को लेकर उनमें संघर्ष पैदा हो जाता। गंगोर नामक पर्व के दिन दोनों पक्षों में भयानक झगड़ा हुआ। उस सिलसिले में और भी घटनायें पैदा हुईं। जिनके कारण समस्त शेखावत सामन्तों ने एकत्रित होकर निर्णय करने की चेष्टा की। आमेर के राजा को उसमें मध्यस्थ बनाया गया। उसके फलस्रूप, उस समय के सभी उत्पात शांत हो गये।

इस प्रकार की संघर्षपूर्ण परिस्थितियों में आमेर के राजा का अधिकार शेखावाटी में धीरे-धीरे बढ़ता गया। नन्दराम हलदिया ने अपने षड़यंत्रों के द्वारा शेखावत सामन्तों को अनेक प्रकार की क्षति पहुँचायी। अपरिमित धन वसूल किया। सामन्तों को आपस में लड़ाया और कई एक जागीरें आमेर-राज्य में मिलायी गयीं। जो लोग अधीनता में रहने के बाद भी जयपुर राज्य को नियमित रूप से किसी प्रकार का कर नहीं देते थे और किसी सामन्त के मरने पर अथवा उत्तराधिकारी के अभिषेक के समय आमेर के राजा को उपहार में कुछ रुपये देते थे, उन पर नियमित रूप से नन्दराम के द्वारा कर का बोझ रखने की चेष्टायें हुईं। इन दिनों में शेखावत सामन्तों की परिस्थियाँ बड़ी भयानक हो उठी थीं। कब किसकी स्वाधीनता का अपहरण होगा, इसको कोई न जानता था : इसलिए सिद्धानी लोगों ने एकत्रित होकर वर्तमान परिस्थितियों पर कुछ निर्णय करने का विचार किया। इसके पहले नन्दराम के द्वारा कुछ और भी घटनायें हो चुकी थीं। उसने नवलगढ़ के सामन्तों के तुई नगर को घेर लिया और रानोली पर प्रताप सिंह को अधिकारी बनाने के लिए उसके सामन्त को कैद कर लिया गया। इस प्रकार की घटनाओं के फलस्वरूप सभी सिद्धानी सामन्त अत्यन्त असंतुष्ट हो चुके थे। उनके विरुद्ध इस प्रकार की घटनाओं के होने का कोई कारण न था। उस वंश के सभी सामन्त सभी प्रकार के झगड़ों से दूर रह कर अपनी-अपनी जागीरों में रहा करते थे। इस पर भी उनके विरुद्ध जो व्यवहार और आक्रमण किये गये उनको देख कर उन लोगों ने निश्चय किया कि राजनीति में निष्पक्ष-भाव से रह सकना असम्भव होता है। इसलिए सम्पूर्ण शेखावाटी के राजाओं और सामन्तों को एकत्रित करके उनके झगड़ों को दूर करने की चेष्टा की। उन लोगों ने समझ लिया कि हम लोगों की आपसी फूट के कारण नन्दराम को अनुचित रूप से लाभ उठाने का मौका मिलता है। इसलिए उसका सब से अच्छा रास्ता यह है कि हम सब अपने झगड़ों को मिलकर ईमानदारी से दूर करने की कोशिश करें। उसी दशा में हम लोग सुरक्षित रह सकते हैं औरअपनी स्वाधीनता की रक्षा कर सकते हैं।

इस निर्णय के अनुसार, शेखावाटी के सामन्तों में आपसी निर्णय की तैयारियाँ होने लगीं। उस समय से पहले ऐसे अवसरों पर शेखावत सभी सामन्त उदयपुर नामक स्थान पर एकत्रित हुआ करते थे और आपसी संघर्षों का निर्णय किया करते थे। उसी उदयपुर में इस समय भी सम्पूर्ण शेखावाटी के अधिकारी और सामन्त एकत्रित हुए। उस समय एक प्रस्ताव सब के सामने इस आशय का उपस्थित किया गया कि हम सब लोग कुछ भी निर्णय करने के पहले, प्राचीन प्रणाली के अनुसार नमक पर हाथ रख कर इस बात की शपथ लें कि इस सम्मेलन में जो कुछ निर्णय

होगा, उसका पालन प्रत्येक अवस्था में हम लोग करेंगे। बिना किसी विरोध के उपस्थित लोगों ने उसको स्वीकार किया। उदयपुर में इस समय शेखावाटी के सभी अधिकारी और सामन्त आये थे। उन लोगों ने निश्चय किया कि हम सब को व्यर्थ के आपसी झगड़े खत्म कर देने चाहिए। यदि कभी कोई ऐसा संघर्ष पैदा हो, जो विचारणीय हो, उसके लिए हम सब लोग इसी स्थान पर एकत्रित हों और बिना किसी पक्षपात के हम सब लोग मिल कर उस संघर्ष का निर्णय करें। हमारे पूर्वज भी ऐसा ही करते थे और ऐसे मौकों पर वे इसी स्थान पर एकत्रित होते थे।

शेखावाटी के उन एकत्रित अधिकाकारियों ने यह भी निश्चय किया कि हम लोग अपने किसी संघर्ष को मिटाने के लिए भविष्य में कभी भी आमेर के राजा को मध्यस्थ नहीं बनावेंगे। उसके लिए हम लोगों के बीच का कोई भी व्यक्ति चुन लिया जायगा। हम लोगों के किसी भी विवाद के निर्णय करने का अधिकार आज के बाद किसी दूसरे को न होगा। हम सब लोग स्वयं अपना निर्णय करेंगे और उसके किसी निर्णायक अथवा मध्यस्थ का निर्वाचन कर लेंगे।

उन एकत्रित लोगों में यह भी निश्चय हुआ कि यदि आमेर का राजा हम लोगों में जबरदस्ती हस्तक्षेप करेगा तो हम सभी लोग अपनी सेनाओं के साथ एकत्रित होकर आमेर के राजा का सामना करेंगे।

शेखावाटी के समस्त अधिकारियों और सामन्तों के उदयपुर में एकत्रित होने और इस प्रकार निर्णय करने का समाचार जयपुर पहुँच गया। उसे सुनकर वहाँ का राजा बहुत भयभीत हुआ। शेखावत सामन्तों के साथ राज्य की तरफ से अब तक जो कुछ हुआ था, उस पर आमेर के राजा ने गम्भीर होकर विचार किया और इस बात को अनुभव किया कि नन्दराम हलदिया के के दूषित व्यवसारों और अत्याचारों के कारण शेखावाटी के सामन्तों को इस प्रकार एकत्रित होकर हमारे विरुद्ध निर्णय करना पड़ा है। इस बात का भली-भाँति अनुभव करके आमेर के राजा ने नन्दराम को उसके पद से हटाकर रोडाराम नामक एक व्यक्ति को नियुक्त किया और उसे सेना के साथ शेखावाटी रवाना किया। राजा की आज्ञानुसार नन्दराम को कैद करके जयपुर भेजने के लिए रोडाराम को आदेश मिला।

नन्दराम हलदिया को आमेर के राजा का यह आदेश रोडाराम के आने के पहले ही मालूम हो गया। उसने समझ लिया कि अब मैं कैद किया जाऊँगा। इसलिए वह इस समाचार के पाते ही भाग गया। जयपुर के राजा से वह बात छिपी न रही कि सेनापति नन्दराम के इन समस्त अत्याचारों का कारण और अपराधी बहुत कुछ राज्य का प्रधान मंत्री दौलत राम है, जो नन्दराम का भाई है। दौलतराम से नन्दराम को सहायता मिलती थी। इसलिए जयपुर के राजा ने दौलतराम की सम्पूर्ण सम्पत्ति जब्त कर ली।

नवीन सेनापति रोडाराम दर्जी वंश में पैदा हुआ था। नन्दराम को कैद करने के लिए उसे आदेश मिला था और यह भी आज्ञा हुई थी कि उसके अधिकार में जितनी भी सम्पत्ति हो, उसे लेकर राज्य के अधिकार में दे दी जाय। सेनापति रोडाराम ने शेखावाटी पहुँचकर उसको कैद करने की चेष्टा की। लेकिन वह पहले से ही तिरोहित हो चुका था। नन्दराम ने राज्य का शत्रु बनकर भयानक अत्याचार आरम्भ किये। उसके अधिकार में अब भी एक आमेर की सेना थी। इसलिए उसने गाँव और नगरों में लूटमार करके आग लगा देने का कार्य आरम्भ किया।

नन्दराम के इन भयानक अत्याचारों को देखकर नवीन सेनापति रोडाराम ने शेखावाटी के सामन्तों से सहायता की प्रार्थना की। परन्तु कोई भी शेखावत सामन्त उसकी सहायता के लिए तैयार न हुआ। क्योंकि जयपुर राज्य के पूर्व सेनापति से उनको बहुत-कुछ शिक्षा मिल चुकी थी। शेखावाटी के सामन्तों के साथ इन बिगड़ी हुई परिस्थितियों में जयपुर के राजा की तरफ से संधि का प्रस्ताव हुआ, जिससे भविष्य में उनके राजनैतिक सम्बन्धों को निर्धारित किया जा सके। यह प्रस्ताव स्वीकृत हुआ और राजा जयपुर के साथ शेखावाटी के अधिकारियों और सामन्तों की उस समय जो संधि हुई, वह इस प्रकार है :—

१—सेनापति नन्दराम हलदिया ने तुई और ग्वाला आदि जिन नगरों पर अधिकार कर लिया है, वे उनके पूर्व अधिकारियों को लौटा दिये जायँ।

२—शेखावत सामन्त अब तक जो कर देते रहे हैं, उनके सिवा आमेर के राजा को किसी से कोई कर लेने का अधिकार न होगा। सामन्त अपना कर स्वयं आमेर की राजधानी में भेजते रहेंगे।

३—किसी भी अवस्था में आमेर की सेना को शेखावाटी में प्रवेश करने का अधिकार न होगा। इसलिए कि जयपुर की सेना के कारण खण्डेला राज्य में रक्तपात हुआ है।

४—आवश्यकता पड़ने पर आमेर के राजा की सहायता के लिए अपनी सेनायें सामन्त भेजेंगे। परन्तु वे सेनायें जब तक जयपुर-राज्य की सहायता में रहेंगी, उनका सम्पूर्ण खर्च जयपुर-राज्य की तरफ से दिया जायगा।

ऊपर लिखी हुई संधि शेखावाटी सामन्तों के साथ जयपुर-राज्य के नवीन सेनापति रोडाराम ने की। यह संधि-पत्र जयपुर-राज्य के सामने रखा गया और उसने उसे स्वीकार किया। इस स्वीकृति के समय सभी शेखावत सामन्त आमेर की राजधानी में जाकर राजा से मिले और उन सामन्तों ने मिलकर दस हजार रुपये राजा को भेंट किये। इस संधि के अनुसार सामन्तों के साथ निर्धारित राजनीतिक सम्बन्धों पर राजा ने संतोष प्रकट किया और उसने सामन्तों से उनकी सहायता के लिए अनुरोध किया, जिससे नन्दराम पकड़ा जा सके।

जिन नगरों और गाँवों पर नन्दराम ने अधिकार कर लिया था, वे उनके अधिकारियों को वापस दे दिये गये। सेनापति रोडाराम के साथ जहाँ कहीं नन्दराम ने युद्ध किया, वहाँ शेखावत सामन्तों की सहायता पाकर रोडाराम ने नन्दराम को पराजित किया और वह परास्त होकर युद्ध-क्षेत्र से भागा।

इसी बीच में सामन्तों को अनुभव हुआ कि संधि के सम्बन्ध में आमेर के राजा का दृष्टिकोण शुद्ध नहीं है। शेखावाटी में कई स्थानों पर रोडाराम की सेनाराम ने वहाँ के सामन्तों की उपेक्षा करके अधिकार कर रखा था। इसलिए सेखावत सामन्तों ने संगठित होकर उन स्थानों से रोडाराम की सेना को भगा दिया।

इन्हीं दिनों में आमेर के राजा ने खण्डेला के नरसिंह दास से बाकी कर वसूल करने के लिए अपना एक अधिकारी भेजा। नरसिंह दास ने उसे कुछ न दिया और अपमान के साथ उसने उसको अपने यहाँ से वापस कर दिया। उस अधिकारी के साथ होने वाले अपमान पूर्ण व्यवहारों को सुनकर आमेर के राजा ने आदेश दिया कि नरसिंहदास को कैद करके जयपुर में लाया जाय।

राजा के आदेश के अनुसार आशाराम नामक एक सेनापति एक सेना लेकर खण्डेला की तरफ रवाना हुआ। नरसिंह गोविन्दगढ़ में रहता था। आशाराम ने खण्डेला पहुँचकर नरसिंह और प्रताप सिंह—दोनों को कैद करने की चेष्टा की। नरसिंह अपने दुर्ग में सावधानी के साथ

था। लेकिन प्रताप सिंह को जयपुर के सेनापति से अपने सम्बन्ध में कोई आशंका न थी। आशाराम ने भी राजनीति से काम लिया। उसके व्यवहारों से मालूम हुआ कि आमेर की सेना केवल नरसिंह के विरुद्ध खण्डेला में आयी है। आशाराम बिना किसी युद्ध के नरसिंह को कैद करना चाहता था और उसका कुछ ऐसा ही इरादा प्रताप सिंह के सम्बन्ध में भी था। लेकिन उसने इसको जाहिर नहीं होने दिया।

आशाराम ने मनोहर पुर के सामन्त को नरसिंह के पास उसके दुर्ग में भेजा और इस बात का वादा किया कि उसके सम्मान के विरुद्ध आमेर में कोई भी व्यवहार न होगा, इसका उत्तर-दयित्व मेरे ऊपर है। मनोहरपुर के सामन्त के द्वारा नरसिंह ने आशाराम के इस संदेश को सुना। उसने उस पर विश्वास कर लिया और गोविन्दगढ़ से निकलकर वह बाहर आ गया। आशाराम ने सम्मान पूर्वक इससे मिलकर बाकी कर के सम्बन्ध में बातचीत की और उसके सम्बन्ध में दोनों के बीच एक संधि पत्र लिखा जाने लगा। इस प्रकार की बातचीत दो दिन लगातार चलती रही। तीसरे दिन—जब नरसिंह को आशाराम से कोई आशंका न रह गयी थी—आशाराम ने एकाएक उसके निवास-स्थान को घेर लिया और उसको अपने साथ चलने के लिए कहा। नरसिंह के पास इस समय कोई दूसरा उपाय न था, वह विवश होकर अपने कुछ राजपूतों के साथ, आशाराम के साथ रवाना हुआ और वह उसके मुकाम पर पहुँच गया।

इसके बाद आशाराम ने अपने पास प्रताप सिंह को बुलाया, वह जानता था कि नरसिंह ने जयपुर-राज्य के विरुद्ध व्यवहार किया है। इस लिए उसका परिणाम नरसिंह के लिए अच्छा नहीं है। इसी अवसर पर जब आशाराम ने उसे बुलाया तो प्रताप सिंह को इस बात का विश्वास हुआ कि इस समय निश्चय ही मैं आमेर के राजा से लाभ उठा सकता हूँ। इस प्रकार की बात सोच-समझकर प्रताप सिंह भी आशाराम के पास पहुँच गया। चतुर सेनापति आसाराम ने कुछ समय तक दोनों को धोखे में रखा और जिस समय वे दोनों भोजन कर रहे थे, आशाराम ने आदेश देकर अपनी सेना के द्वारा उन दोनों को कैद करा लिया। इसके बाद वे दोनों जंजीरों से बाँधे गये और एक बंद सवारी गाड़ी में बिठाकर पाँच सौ सैनिक के संरक्षण में उनको जयपुर भेज दिया गया।

जयपुर पहुँचने पर नरसिंह और प्रताप सिंह—दोनों कारागार में बंद कर दिये गये और राजा की आज्ञा से खण्डेला-राज्य में मिला लिया गया। इसके बाद वहाँ का प्रबंध करने के लिए पाँच सौ सैनिक खण्डेला में रखे गये। जो छोटे-छोटे सामन्त राजा खण्डेला की अधीनता में थे, उनको वहाँ का अधिकार बाँटकर उनसे ऐसे प्रतिज्ञा-पत्र लिखा लिए कि जिससे वे राज्य के विरुद्ध कभी विद्रोह न कर सकें। इस प्रकार खण्डेला-राज्य पतित होकर पूर्ण रूप से जयपुर-राज्य की पराधीनता में आ गया।

———

पैंसठवाँ परिच्छेद

जयपुर-राज्य में प्रधान मंत्री का बोल बाला-सिद्धानी के सामन्तों का असंतोष-आमेर की सेना की पराजय-जयपुर में फिर से युद्ध की तैयारी-अन्याय के विरूद्ध खण्डेला-राज्य की स्त्रियाँ-जयपुर को कारागार में खण्डेला के अधिकारी नरसिंह और प्रताप सिंह-जयपु-राज्य के विरुद्ध शेखावत सामन्त-युद्ध और उसका परिणाम-विद्रोही सामन्तों का नेता संग्राम सिंह।

सन् १७६८ और ६६ ईसवी में दीनाराम बोहरा जयपुर का प्रधान मन्त्री था। खण्डेला में आशाराम की सफलता को देखकर वह बहुत प्रसन्न हुआ और सिद्धानी सामन्तों से कर वसूल करने के लिए वह राजधानी से शेखावाटी के लिए रवाना हुआ। आशा राम की सेना के साथ उदयपुर में दीनाराम की भेंट हुई। इसके बाद उसने सिद्धानी सामन्तों के नगर परशुरामपुर में पहुँच कर मुकाम किया और वहाँ से उसने समस्त सामन्तों के नाम कर अदा करने के लिए पत्र भेजे। इसके साथ-साथ उसने प्रत्येक सामन्त के यहाँ कर वसूल करने के लिए अश्वारोही सेनायें भेजीं और उन सेनाओं के अधिकारियों को उसने आदेश दिया कि वे अलग-अलग सामन्तों के पास जाकर कर वसूल करें। उन सामन्तों को जो पत्र भेजे गये, उनमें यह भी लिखा गया कि कर देने में विलम्ब होने पर दण्ड निर्धारित धन अलग से वसूल किया जायगा और जिन सामन्तों से कर वसूल न होगा, उनके विरूद्ध सैनिक आक्रमण होगा।

जयपुर के प्रधान मन्त्री का इस प्रकार पत्र पाने पर समस्त सिद्धानी सामन्त अत्यन्त क्रोधित हो उठे और उस पत्र को अपमान जनक समझकर सबके हस्ताक्षरों से एक पत्र प्रधान मन्त्री के पास भेजा गया। उसमें लिखा गया—हम लोगों के इस पत्र को पाकर यदि प्रधान मन्त्री अपनी सेना के साथ झुंझनू तुरन्त न चला जायगा तो उसका नतीजा बहुत खराब होगा। लेकिन यदि वह इस पत्र को पाते ही उसी समय झूंझनू चला गया तो यहां के सामन्तों से कर के जो दस हजार रुपये एकत्रित हुए हैं, वे तुरन्त उसे दे दिए जायेंगे।"

इस पत्र में शेखावाटी के सभी सामन्तों ने हस्ताक्षर किये। परन्तु खण्डेला के कैदी राजा के भाई बाघसिंह ने उसमें अपने हस्ताक्षर नहीं किये। उसका कहना था कि संधि के बाद जिस प्रकार हम लोगों ने आमेर के राजा के साथ नेकियां की हैं और नन्दराम के अत्याचारों को दमन करने के लिए जिस प्रकार हम लोगों ने जयपुर की सेना का साथ दिया है, उन सब का बदला जयपुर राज्य से हमको अत्याचारों के रूप में मिला है। इसलिए ऐसे राजा के पास जो पत्र भेजा जा रहा है, उस पर मैं हस्ताक्षर नहीं करूंगा। क्योंकि हम सब लोगों के साथ जयपुर के राजा ने जो संधि की थी, उसका उसने पूर्ण रूप से उल्लंघन किया है। संधि के अनुसार कर वसूल करने के लिए राजा की सेना को आने का अधिकार नहीं था। प्रधान मन्त्री ने कर वसूल करने के लिए सामन्तों को जो पत्र भेजा है, वह पूर्ण रूप से अपमानजनक है।

बाघसिंह ने सामन्तों के उस पत्र पर हस्ताक्षर नहीं किये और वह जयपुर की सेना के साथ युद्ध करने के लिए तैयारी करने लगा। इसी अवसर पर खेतरी के पाँच सौ राजपूत उसकी सहायता के लिए पहुँच गये। बाघसिंह ने उन लोगों की मदद से सीकर और फतेहपुर का कर

वसूल किया और इस प्रकार जो धन एकत्रित हुआ, उससे उसने योरप के प्रसिद्ध जार्ज थॉमस को अपने यहाँ सेनापति बनाकर नियुक्त किया। सेनापति थॉमस युद्ध में बहुत बुद्धिमान माना जाता था। उसने बाघसिंह की इस नियुक्ति को प्रसन्नता के साथ स्वीकार किया और उसकी सेना का अधिकार अपने हाथों में लेकर जयपुर के साथ वह युद्ध की तैयारी करने लगा।

बाघसिंह और जार्ज थॉमस के अधिकार में जितनी सेना थी, उससे कई गुना बड़ी जयपुर की सेना बाघसिंह से युद्ध करने के लिए तैयार हुई। परन्तु जार्ज थॉमस ने इसकी कुछ भी परवा न की। उसके साथ की सेना यद्यपि बहुत छोटी थी, परन्तु उसने युद्ध की पूरी शिक्षा पायी थी और इसलिए सेनापति थॉमस उस पर बहुत विश्वास करता था। जयपुर की एक विशाल सेना उसके साथ युद्ध करने के लिए तैयार हुई। दोनों ओर से युद्ध आरम्भ हुआ। अन्त में जयपुर की सेना कमजोर पड़ने लगी और उसका सेनापति रोडाराम भयभीत होकर युद्ध-स्थल से भाग गया। आमेर की सेना के पराजित होकर भागने पर जार्ज थॉमस ने शत्रुओं की बहुत-सी युद्ध सामग्री लेकर अपने अधिकार में कर ली।

रोडाराम की सेना के पराजित होने पर जयपुर में फिर से युद्ध की तैयारियाँ हुईं। चौमू के सामन्त रणजीत ने अपनी शक्तिशाली सेना को एकत्रित करके और जयपुर की सेना को साथ लेकर जार्ज थॉमस की सेना पर आक्रमण किया। उस समय दोनों सेनाओं में भयानक युद्ध हुआ और अन्त में रणजीत सिंह को विजय हुई। परन्तु बुरी तरह से वह घायल हुआ और उसके साथ के बहुत-से शूरवीर राजपूत मारे गये। इस युद्ध में साँगारोत वंश के दो शक्तिशाली सामन्त बहादुर सिंह और पहाड़ सिंह भी भयानक रूप से घायल हुए। जार्ज थॉमस अपनी सेना के साथ परास्त होकर भाग गया।×

जयपुर के कारागार में खण्डेला के नरसिंह और प्रताप सिंह अब भी कैदी थे। जयपुर राज्य के विरुद्ध बाघसिंह को प्रयत्नशील सुन कर वे दोनों अपनी मुक्ति की आशा करने लगे। इन दिनों में उन दोनों ने छिपे तौर पर बाघसिंह के साथ पत्र व्यवहार किया और उसने गुप्त रूप से सेनापति रोडाराम के पास ऐसा संदेश भेजा कि जिससे वह बाघसिंह से मिल कर उसको अनुकूल बना सके। रोडाराम ने उस संदेश के उत्तर में कहला भेजा कि अगर रायसालोत की शक्तिशाली सेना मेरे साथ आकर मिल जाय तो आप के प्रस्ताव के अनुसार मैं सब-कुछ कर सकता हूँ।

बाघसिंह और सेनापति रोडाराम के साथ खण्डेला के कैदी अधिकारियों ने जो गुप्त परामर्श और पत्र-व्यवहार किया, उसके फलस्वरूप रोडाराम की बात को पूरा करने के लिए बाघसिंह को मौका दिया गया। रोडाराम राजनीति चतुर एक सेनापति था। वह समझता था कि शेखावाटी के सामन्तों में बाघसिंह ने अपने बल-पौरुष इन दिनों ख्याति प्राप्त की है, इस लिए यदि वह जयपुर-राज्य के पक्ष में कर लिया जाता है तो यह हमारी राजनीतिक चतुरता होगी। बाघसिंह उन दिनों में अपनी सेना के साथ दुर्ग में बने हुए महल में रहता था। उसने अपने छोटे भाई लक्ष्मण सिंह को वहाँ पर अधिकारी बना कर रखा और स्वयं अपनी सेना के साथ जयपुर के सेनापति के पास जाकर उससे मिल गया।

× प्रसिद्ध लेखक फ्रैंकलिन ने जार्ज थॉमस का जीवन चरित्र लिखा है। उसमें उसने लिखा है कि उसका यह युद्ध जो राजपूतों के साथ हुआ था उसमें राजपूतों की विजय कुछ विशेष कारण रखती थी, फिर भी जार्ज थॉमस ने राजपूतों की बहादुरी की प्रशंसा की थी।

कैदी प्रताप सिंह का लड़का हनुमन्त सिंह खण्डेला में था। उसने जब सुना कि बाघसिंह जयपुर की सेना के साथ मिल गया है तो उसने इस अवसर का लाभ उठा कर खण्डेला के दुर्ग पर अधिकार करने का निश्चय किया। उसने अपने राजपूत सैनिकों के साथ रात में चल कर खण्डेला के दुर्ग को घेर लिया और फिर मौका पाकर सूनसान रात में दुर्ग की दीवारों पर चढ़कर अपने सैनिकों को लिए हुए उसने बड़ी सावधानी के साथ दुर्ग में प्रवेश लिया। वहाँ पर लक्ष्मण सिंह के साथ-साथ उसके सैनिकों को मार डाला गया और हनुमन्त सिंह ने उस दुर्ग पर अपना अधिकार कर लिया।

लक्ष्मण सिंह के मारे जाने का समाचार बाघसिंह को मिला। वह अपने साथ सेना लेकर खण्डेला की तरफ रवाना हुआ। हनुमन्त सिंह अपने सैनिकों के साथ वहाँ के दुर्ग के भीतर मौजूद था। बाघसिंह ने वहां पहुँचकर दुर्ग पर गोलों की वर्षा आरम्भ की। हनुमन्त सिंह ने युवक लक्ष्मण सिंह की हत्या की थी। इस लिए खण्डेला के निवासी उससे बहुत अप्रसन्न हो गये थे। उन सब ने बाघसिंह की सहायता की। खण्डेला की स्त्रियाँ भी इस अवसर पर बाघसिंह के पक्ष में अपने घरों से निकलीं। हनुमन्त सिंह और उसके सैनिकों ने बहुत समय तक दुर्ग के भीतर अपनी रक्षा की। लेकिन अंत में संधि के लिए श्वेत झण्डा दिखाकर उन लोगों ने दुर्ग का फाटक खोल दिया। बाघसिंह ने अपने सैनिकों के साथ उसमें प्रवेश किया। उसने हनुमन्त सिंह पर आक्रमण कर के अपने भाई का बदला लेने का निश्चय किया। लेकिन हनुमन्त सिंह दुर्ग के भीतर से पहले ही निकल गया था, इसलिए वह निराश हो गया।

इन्हीं दिनों में दीनाराम को जयपुर-राज्य के मन्त्री पद से उतार कर मानजीदास को उसके स्थान पर नियुक्त किया गया। रोडाराम अभी तक शेखावाटी में कर वसूल करने का काम कर रहा था। उसकी तरफ से एक ब्राह्मण इसके लिए नियुक्त किया गया था। वह ब्राह्मण इस कार्य में बड़ा चतुर साबित हुआ और पहले वर्ष में ही उसने कर वसूल करने का इतना अधिक काम किया कि रोडाराम ने उसे अगले दो वर्षों का अधिकार भी दे दिया।

रोडाराम की तरफ से शेखावाटी में जो ब्राह्मण कर वसूल कर रहा था, उसके अधिकार में जयपुर की एक सेना थी। उस ब्राह्मण ने शेखावाटी के उन सामन्तों से भी बलपूर्वक कर वसूल किया, जो अभी तक स्वतन्त्रतापूर्वक अपनी जागीरों में रहते थे। जिन लोगों ने कर नहीं दिया, उनके नगरों और दुर्गों पर आक्रमण करके उसने अधिकार कर लिया। जयपुर के राजा ने नरसिंह और प्रतापसिंह को अपने राज्य में कैद करके रखा था और खण्डेला-राज्य पर अधिकार कर लिया था। परन्तु उनकी अधीनता में जो सामन्त थे, उसके ऊपर जयपुर के राजा ने किसी प्रकार का आधिपत्य नहीं किया और उनसे वह नियमित रूप से कर लेता रहा। इस ब्राह्मण ने उन सामन्तों पर भी आक्रमण किया और उनकी जागीरों में उसने भयानक अत्याचार किये।

उस ब्राह्मण के इन अत्याचारों को देखकर खण्डेला के सभी रायसालोत सामन्त क्रोधित हो उठे और उन सब ने मिलकर उस ब्राह्मण पर आक्रमण करने की तैयारी की। इन्हीं दिनों में जयपुर की कारागार से छिपे तौर पर नरसिंह और प्रताप सिंह ने समाचार भेजा कि अब हम दोनों के छूटने की कोई आशा नहीं है। इस समाचार को पाकर शेखावाटी के सभी सामन्त अधिक क्रोधित हुए और इस प्रकार के अत्याचारों का बदला लेने के लिए वे लोग उत्तेजित हो उठे। सभी ने अपनी सेनाओं के साथ खण्डेला में उस ब्राह्मण पर आक्रमण किया। दोनों तरफ से युद्ध आरम्भ हो गया।

उस ब्राह्मण के पास सात हजार सैनिकों की सेना थी। वह लड़कर पराजित हुई। सामन्तों ने उस ब्राह्मण को परास्त कर उसका खण्डेला नगर लूट लिया। ब्राह्मण वहाँ से अपने बचे हुए सैनिकों के साथ भाग गया।

उस ब्राह्मण को पराजित करने के बाद वहाँ के सामन्तों का उत्साह बढ़ गया। उत्तेजित अवस्था में वे सब अपनी सेनाओं के साथ जयपुर राज्य की तरफ बढ़े और वहाँ के ग्रामों तथा नगरों को लूटना आरम्भ किया। इन प्रकार लूटमार करते हुए वे लोग उस नगर में पहुँचे, जो जयपुर राज्य की बड़ी रानी के अधिकार में था। सामन्तों की सेनायें उस नगर का विनाश और विध्वंस करने लगीं।

इस समाचार को सुनकर और क्रोधित होकर जयपुर के राजा ले उनको दमन करने के लिए एक नयी सेना राजधानी से भेजी। उस सेना के पहुँचते ही दोनों ओर से भीषण संग्राम आरम्भ हुआ। इस युद्ध में सामन्त निर्बल पड़ने लगे। उस दशा में रानोली और कई एक दूसरी जागीरों के सामन्तों ने राजा जयपुर के साथ संधि कर ली और उसकी अधीनता को स्वीकार किया। परन्तु रायसाल की छोटी शाखा के सामन्तों ने जयपुर की आधीनता स्वीकार करने से इनकार कर दिया। वे लोग इनके लिए किसी प्रकार तैयार न हुए और अपनी जागीरों को छोड़कर बीकानेर एवम् मारवाड़ में जाकर रहने लगे। प्रतापसिंह के सजातीय बंधु सूजावास के सामन्त संग्राम सिंह ने मारवाड़ में और बाघसिंह तथा सूर्यसिंह ने बीमानेर में जाकर आश्रय लिया। वहां के राजाओं ने सम्मानपूर्वक उनको स्थान दिया और उनके गुजारे के लिए उनको जागीरें दी गयीं। बहुत दिनों तक वहां पर रहकर उन लोगों ने अपनी शक्तियों का सङ्गठन किया और संगठित होकर उन्होंने जयपुर राज्य के विध्वंस और विनाश का निश्चय किया।

निर्वासित सामन्त अपनी सेनायें लेकर संग्राम सिंह के नेतृत्व में जयपुर की तरफ रवाना हुए और आमेर के पास पहुँचकर वहां के ग्रामों और नगरों को लूटने लगे। जयपुर राज्य के दुर्गों पर आक्रमण किया और निर्दयता के साथ वहां के सैनिकों का संहार किया। इस प्रकार विध्वंस और विनाश करते हुए वे लोग आमेर के निकट खोह नगर में पहुँच गये। वहां पर भी उन लोगों ने लूटमार की और वहां के समस्त अच्छे घोड़ों को अपनी सेना में ले आये।

संग्राम सिंह ने इन दिनों में अपनी शक्तियाँ सुदृढ़ बना ली थीं और उसे अब जयपुर राज्य का कोई भय न रह गया था। उसके अत्याचारों से जयपुर राज्य की प्रजा भयानक कष्टों में पड़ गयी। इस प्रकार के समाचार जयपुर के राजा के पास पहुँचे। राज्य की तरफ से लोगों ने वहां के राजा से इस लूट-मार का जिक्र किया। उसे सुनकर संग्राम सिंह से राजा को भय पैदा हुआ और उसने बिसाऊ के सिद्धानी सामन्त श्याम सिंह को अपना प्रतिनिधि बनाकर संग्राम सिंह के पास संधि के लिए भेजा। संग्राम सिंह श्याम सिंह की बातों को सुनकर प्रभावित हुआ और उसने भविष्य में इस प्रकार का कोई अनिष्ट न करने का निश्चय किया। साथ ही उसने श्याम सिंह के कहने पर जयपुर की राजधानी में आना और वहां के राजा के साथ भेंट करना भी स्वीकार कर लिया। इसके कई दिनों के बाद अपनी सेना लेकर संग्राम सिंह ने जयपुर नगर में प्रवेश किया। उसके वहां पहुँचने पर प्रकट रूप से किसी को कुछ कह सकने का साहस न हुआ। परन्तु प्रधान मन्त्री मानजीदास के मनोभावों में संग्राम सिंह के विरुद्ध कुछ बातें पैदा होने लगीं।

जयपुर के राजा की तरफ के श्याम सिंह ने संग्राम सिंह के पास जाकर जो बातें की थीं, उनके फलस्वरूप संग्राम सिंह ने शत्रु की राजधानी में साहसपूर्वक प्रवेश किया था। ऐसे अवसर

पर प्रधान मन्त्री मानजी दास सोचने लगा कि इस अवसर का लाभ क्यों न उठाया जाय। यद्यपि वह जानता था कि यदि किसी प्रकार के षड़यन्त्र के द्वारा संग्राम सिंह कैद किया गया तो राजा का यश कलंकित होगा, इसलिए कि ऐसा करना राजनीति के विरुद्ध है; फिर भी वह संग्राम सिंह को कैद करने के लिए किसी उपाय की खोज करने लगा। इसके कुछ घण्टों के बाद जयपुर के राजा को समाचार मिला कि संग्राम सिंह जयपुर को छोड़ कर तंवरा वाटी चला गया है और तंवर तथा लाडरवानी के लोग भी उससे मिल गये हैं। उसने यह भी सुना कि संग्राम सिंह के अधिकार में इस समय एक हजार अश्वारोही राजपूत सैनिक हैं।

जयपुर से निकल कर चले आने के बाद संग्राम सिंह ने अपनी सेना के साथ उस राज्य के ग्रामों और नगरों को फिर से लूटना आरम्भ किया। उनसे कर वसूल करने के लिए उसने दूत भेजे। जिन लोगों ने कर देने से इनकार किया, उनके सरदारों को उसने कैद कर लिया और कर मिल जाने के बाद उसने उनको छोड़ दिया। जिनसे कर नहीं वसूल हुआ, उनके ग्रामों और नगरोंको लूटकर उनकी सम्पत्ति और सामग्री ऊँटों पर लाद कर वह अपने साथ ले चला।

इस प्रकार लूटमार करता हुआ संग्राम सिंह जयपुर की एक रानी के अधिकृत माधवपुर नगर में पहुँचा। वहाँ पर उसके मस्तक में एक गोली लगी, जिससे उसकी मृत्यु हो गयी। उसका शव रावोली में लाकर जलाया गया। संग्राम सिंह के मारे जाने पर उसका लड़का उसके स्थान पर अधिकारी हुआ। वह अपने पिता की तरह तेजस्वी और शक्तिशाली था। उसने पिता का अनुकरण किया और जयपुर राज्य के ग्रामों और स्थानों को वह लूटने लगा। इसके बाद जयपुर के राजा ने उसके साथ संधि की और उसके पिता का सूजावास नगर उसको दे दिया। इसके पश्चात् लूट-मार बन्द हो गयी।

इन दिनों में राजा जगतसिंह आमेर के सिंहासन पर था और रायचन्द वहाँ का प्रधान मंत्री था। पोकरण के सामन्त सवाई सिंह ने बालक धौंकल सिंह के अधिकार को लेकर जो संघर्ष पैदा किया था, वह चल रहा था। प्रधान मन्त्री रायचन्द ने इस बात की पूरी कोशिश की थी कि जगत सिंह का विवाह कृष्णाकुमारी के साथ हो जाय। इस समय उसने राजनीति से काम लिया। उसने शेखावाटी के असंतुष्ट सामन्तों को मिलाकर अपने पक्ष में कर लेना बहुत जरूरी समझा। इसके लिए उसने सबसे पहले अपने भतीजे कृपाराम को शेखावाटी के सामन्तों के पास भेजा और कृपाराम ने अपनी सहायता के लिए शेखावटी पहुँचकर वहां के एक सामन्त कृष्ण सिंह को अपना प्रतिनिधि बनाया। उन सामन्तों के साथ जयपुर के राजा की तरफ से जो बातचीत आरम्भ हुई, उसके फलस्वरूप शेखावाटी के सामन्त अपनी सेनाओं के साथ उदयपुर के रास्ते में एकत्रित होने लगे।

शेखावाटी के सामन्तों ने अनुभव किया कि नरसिंह और प्रतापसिंह को जयपुर की कैद से निकालने का यह एक अच्छा अवसर है। इसलिए उन लोगों ने उन दोनों की मुक्ति के लिए कृपाराम के सामने प्रस्ताव किया। इस प्रस्ताव के साथ-साथ अन्यान्य वर्तमान राजनीतिक परि-स्थितियों पर बहुत समय तक परामर्श होने के बाद कृपाराम और शेखावाटी के सामन्तों के बीच एक नवीन राजनीतिक संधि का होना निश्चय हुआ। उस संधि के अनुसार जो अनेक बातें तय हुईं, उनमें निम्नलिखित प्रमुख हैं :

१—इस संधि के अनुसार खण्डेला के अधिकारी नरसिंह और प्रताप सिंह को तुरन्त मुक्ति दी जायगी।

२—खंडेला-राज्य का अधिकार पूर्ववत् नरसिंह और प्रतापसिंह को लौटा दिया जायगा।

३—शेखावत सामन्त जयपुर राज्य को अपना कर देते रहेंगे और उस अवस्था में सामन्तों के शासन में हस्तक्षेप करने का जयपुर को कोई अधिकार न होगा।

इस प्रकार की सभी आवश्यक बातों का निर्णय करके जो संधि लिखकर तैयार की गयी, उस पर सभी सामन्तों के हस्ताक्षर हो जाने के बाद कृपाराम और कृष्ण सिंह ने जयपुर की राजधानी में जाकर राजा जगत सिंह के सामने उस सन्धि पत्र को रखा। राजा जगत सिंह ने उसे स्वीकार किया और अपने हस्ताक्षर कर दिये। इसी समय शेखावाटी के सामन्तों ने जयपुर राज्य की सहायता के लिए दस हजार सैनिकों को एकत्रित करके देना मंजूर किया। राजा जगत सिंह ने उस समय कहा कि सामन्तों की यह सेना हमारे राज्य के काम से जब तक जयपुर में रहेगी, उसका समस्त व्यय इस राज्य की तरफ से दिया जायगा। इस संधि के सम्पन्न हो जाने के बाद दोनों पक्षों की तरफ से सन्तोष प्रकट किया गया।

पोकरण का सामन्त सवाई सिंह अपने साथ धौंकल सिंह को लेकर पहले ही खेतड़ी नामक स्थान पर चला गया था। जयपुर राजा के साथ शेखावाटी के सामन्तों की संधि हो जाने पर पोकरण के सामन्त का भतीजा श्याम सिंह खेतड़ी में गया और कृपाराम के संरक्षण से धौंकल सिंह को लेकर शेखावत सामन्तों के पास पहुँचा। वहाँ पर स्वर्गीय राजा प्रताप सिंह की लड़की और मारवाड़ के राजा भीम सिंह की विधवा रानी आनन्दी कुँवरि से उसकी भेंट हुई। रानी आनन्दी कुँवरि ने धौंकल सिंह बालक को गोद लेकर उसे दत्तक पुत्र के रूप में स्वीकार किया। उस समय वहाँ पर रानी के राज्य के अनेक कर्मचारी और प्रमुख व्यक्ति मौजूद थे। इसके बाद सब लोग जयपुर की राजधानी में चले आये। वहाँ पर एक विशाल सेना मारवाड़ पर आक्रमण करने की तैयारी कर रही थी।

यह सेना जयपुर की राजधानी से रवाना होकर खण्डेला से बीस मील दूर खट्टू नामक स्थान में पहुँची और वहाँ पर ठहर कर वह दूसरी सेनाओं के आने की प्रतीक्षा करने लगी। खण्डेला के नरसिंह और प्रताप सिंह कैद से छूट चुके थे। वे दोनों भी अपने सेनाओं के साथ आ कर वहाँ पर मिले। खण्डेला के भूतपूर्व राजा को जो कई ग्राम दिये थे और जिनको लेकर वह अकेला रहा करता था, राजा वृन्दाबनदास भी अपनी वृद्धावस्था में युद्ध करने के लिए इस सेना में आकर मिल गया। राजा जगत सिंह की सहायता में इस समय एक विशाल सेना इस स्थान पर एकत्रित हो चुकी थी। रायसालोत, सिद्धानी, भोजानी और लाडखानी सेनाओं के साथ शेखावत सामन्तों की सेनायें भी मारवाड़ पर आक्रमण करने के लिए जगत सिंह के अधिकार में आ गयी थीं। कृष्णा कुमारी के विवाह का प्रश्न लेकर मारवाड़ के राजा मानसिंह के साथ जगत सिंह का जो युद्ध हुआ था, उसका वर्णन मारवाड़ के इतिहास में लिखा जा चुका है। इसलिए यहाँ पर फिर से उसका उल्लेख करने की आवश्यकता नहीं है। इस युद्ध में शेखावत सामन्तों ने अपनी जिस वीरता का प्रदर्शन किया था, जगत सिंह के युद्ध से भाग जाने के कारण वह सब बेकार हो गया। इस युद्ध में खण्डेला का राजा नरसिंह और वृद्ध वृन्दावनदास--दोनों ही मारे गये।

नरसिंह के बाद उसका लड़का अभय सिंह अपने पिता के स्थान पर अधिकारी हुआ। राजा जगत सिंह ने अभय सिंह के साथ आँखें बदलीं। उसने अभय सिंह को उसके पिता के राज्य का अधिकार देने से इनकार दिया। इस दशा में अभय सिंह माचेड़ी के राजा बख्तावार सिंह के पास चला गया। उसने भी अभय सिंह के साथ अच्छा व्यवहार नहीं किया। इस लिए अपना

अपना अनुभव करके अभय सिंह एक सप्ताह में माचेड़ी से चला गया। इन दिनों में मराठा सेनापति बापू सींधिया दिवसा नामक स्थान पर रहता था। खण्डेला का प्रताप सिंह अपने पुत्र के साथ सींधिया के पास पहुँचा। इन्हीं दिनों में हनुमन्त सिंह ने गोविन्द गढ़ पर अधिकार करने के लिए फिर से चेष्टा की। उसने अपने साठ शूरवीर सैनिकों को सायंकाल एक नदी के किनारे छिपाकर रखा और आधी रात के समय पहाड़ी रास्ते से उसने एक-एक को दुर्ग की तरफ रवाना किया। उन सैनिकों ने दुर्ग की दीवारों पर चढ़ कर वहाँ की रक्षक सेना का संहार करना आरम्भ किया। दुर्ग के सैनिक सजग और सावधान हो कर युद्ध करने लगे। उस युद्ध में हनुमन्त सिंह की विजय हुई। दुर्ग के बचे हुए सैनिक भाग गये। उनके चले जाने पर हनुमन्त सिंह ने दुर्ग पर अधिकार कर लिया।

हनुमन्त सिंह ने कई सप्ताह दुर्ग में रहकर दो हजार सैनिकों का संगठन किया और इसके बाद उसने जयपुर के राजा के साथ युद्ध करने का इरादा किया। इस बीच में उसने खण्डेला के आस-पास के अनेक स्थानों पर अधिकार कर लिया। वहाँ पर जयपुर की तरफ से जो सेना रहती थी, वह भाग गयी। उन स्थानों की रक्षा के लिए खुशियाली राम नामक एक अधिकारी दरोगा जयपुर की तरफ से नियुक्त था। खण्डेला में इस समय उसी का शासन था। वह भाग गया और जयपुर के राजा के पास पहुँचकर उसने सब समाचार सुनाया। वह दरोगा बड़ा षड़यंत्रकारी था। खण्डेला के दुर्ग में एक सौ सैनिक रखने का जयपुर की तरफ से आदेश था। खुशियाली राम उतने सैनिकों के स्थान पर केवल तीस सैनिक रखता था और बाकी सैनिकों के वेतन को लेकर वह स्वयं अधिकारी बन जाता था। उसकी इस चालाकी का लाभ हनुमन्त सिंह ने उठाया और उसके तीस सैनिकों को परास्त करके उसने उस दुर्ग पर आसानी के साथ अधिकार कर लिया।

दारोगा खुशियाली राम के द्वारा खण्डेला के दुर्ग का समाचार सुनकर जयपुर का राजा अत्यन्त क्रोधित हुआ। उसने वहाँ पर फिर से अधिकार करने के लिए रतन चन्द नामक एक सेनापति के अधिकार में दो पैदल सेनायें भेजीं और एक गोलन्दाज भी उसके साथ रवाना हुआ। उन सबके साथ खुशियाली राम को रवाना करके जयपुर के राजा ने उससे कहा: "यदि तुम अब भी हनुमन्त सिंह को परास्त न कर सकोगे तो तुमको इसके लिए दण्ड दिया जायगा।"

जयपुर की सेना को लेकर खुशियाली राम खण्डेला की तरफ चला। वहाँ पहुँचकर जयपुर की सेना ने हनुमन्त सिंह के सैनिकों पर आक्रमण किया। कुछ समय तक युद्ध होने के बाद खुशियाली राम अपनी सेना के साथ पराजित हुआ। वह जयपुर की सेना को लेकर युद्ध-स्थल से हट गया। इस लड़ाई में हनुमन्त सिंह भयानक रूप से घायल हो गया था। जयपुर की सेना के हट जाने से वह अपनी सेना के साथ दुर्ग में चला गया। इसके बाद खुशियाली राम ने उस दुर्ग को घेर लिया। फिर से युद्ध आरम्भ हो गया। हनुमन्त सिंह ने घायल होने पर भी शत्रु-सेना के तीस आदमियों का संहार किया। इस समय पर दुर्ग को जीत सकना खुशियाली राम के लिए सम्भव न था। परन्तु इस समय दुर्ग के भीतर पानी का अभाव हो गया, उससे हनुमन्त सिंह और उसके सैनिकों को पानी का भयानक कष्ट पहुँचा। इस दशा में हनुमन्त सिंह को आत्म-समर्पण करने के लिए मजबूर होना पड़ा। लेकिन इसके पहले ही राजा जयपुर की तरफ से खुशियाली राम ने हनुमन्त सिंह को पाँच ग्रामों का अधिकार देने के लिए प्रस्ताव किया। हनुमन्त सिंह ने उस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया और पाँच विशाल-ग्राम लेकर उसने दुर्ग छोड़ दिया।

इन दिनों में जयपुर-राज्य के दरबार में एक दूसरा परिवर्तन हुआ। वहाँ के राजा प्रताप सिंह खुशियाली राम बोहरा को उसके अनेक अपराधों के कारण आजन्म कैद की सजा दी थी और आदेश दिया था कि भविष्य में उसके वंश का कोई भी मनुष्य कभी मंत्री पद पर न रखा जाय। इस आदेश के अनुसार खुशियाली राम बोहरा को कैद करके जयपुर की कारागार में रखा गया था। परन्तु कुछ परिस्थितियों के कारण वह छोड़ दिया गया और उसके बाद वह फिर मंत्री के पद पर नियुक्त हुआ। उन दिनों में शेखावाटी के सामन्तों ने अपने प्रतिनिधियों को भेजकर प्रार्थना की कि हमारे पूर्वजों के अधिकार हमको दे दिये जायँ। खुशियाली राम ने उन सामन्तों की प्रार्थना को राजा के सामने रखा और सामन्तों का पक्ष लेकर राजा से प्रार्थना करते हुए कहा: "सामन्त किसी भी राज्य के स्तम्भ होते हैं। उनके संतुष्ट रहने से राज्य का सदा कल्याण होता है। यह बात सही है कि शेखावत सामन्तों ने बहुत समय से अन्याय पूर्ण कार्य किये हैं और उनके अत्याचारों से राज्य में अशान्ति पैदा हुई है। परन्तु राज्य पर कभी किसी प्रकार की विपद आने पर उन सामन्तों ने राज्य का पक्ष लेकर युद्ध भी किया है। मारवाड़ के युद्ध में जयपुर की सेना के साथ शेखावाटी के सामन्तों ने दस हजार सैनिकों की शक्तिशाली सेना भेजी थी। सामन्तों के इस प्रकार के उपकार भी राज्य के ऊपर है। यदि इन सामन्तों का भय न रहे तो मराठों का दल कभी भी इस राज्य में आकर अत्याचार कर सकता है। इसलिए हमारी समझ में इन सामन्तों को संतुष्ट रखना हमारा कर्तव्य है।"

खुशियाली राम बोहरा की इन बातों को सुनकर राजा ने कहा: "जो आप मुनासिब समझें, इन सामन्तों के सम्बन्ध में करें।"

राजा का आदेश पाकर खुशियाली राम ने शेखावत सामन्तों के साथ एक नयी संधि की। उसमें यह निश्चय हुआ कि रायसालोत सामन्त वर्ष में साठ हजार रुपये जयपुर-राज्य को कर में दिया करें और इस समय चालीस हजार रुपये भेंट में दें। संधि की इस शर्तों को सामन्तों ने स्वीकार कर लिया। इसलिए खण्डेला नगर और उसके अधिकार की दूसरी जागीरें उनके वारिसों को दी गयीं। इस तरह अभय सिंह और प्रताप सिंह को उनके पिता के अधिकार फिर से खण्डेला-राज्य में मिल गये।

इन सामन्तों के साथ जयपुर की जो संधि हुई थी, उसे स्वीकार करके चालीस हजार रुपये सामन्तों ने राजा को भेंट में दे दिये और उसके बाद शासन की जो सनदें सामन्तों को दी गयी, उन पर प्रधान मंत्री और राजा के हस्ताक्षर हो चुके थे। परन्तु राज्य की तरफ से नागा लोगों की जो सेना खण्डेला के दुर्ग की रक्षा में थी, उसने अभय सिंह और प्रताप सिंह को खण्डेला के अधिकार देने के लिए तैयार न हुई। यह देखकर हनुमन्त सिंह को संदेह हुआ और वह सोचने लगा कि खुशियाली राम बोहरा ने धोखा देकर हम लोगों से चालीस हजार रुपये ले लिए है। उसने गम्भीर होकर खण्डेला के अभय सिंह और प्रताप सिंह से पूछा: "यदि मैं जयपुर के इन सैनिकों से लड़कर अधिकार लेने की कोशिश करूँ तो आप लोग कितने सैनिक देकर मेरी सहायता करेंगे?"

अभय सिंह और प्रताप सिंह के अधिकार में इस समय पाँच सौ सैनिक थे। अभय सिंह और प्रताप सिंह की अनुमति लेकर हनुमन्त सिंह ने उनमें से बीस तेजस्वी और शूरवीर राजपूतों को अपने साथ लिया और वह दुर्ग के द्वार पर पहुँच गया। उसने अपने आपको छिपाकर दुर्ग के भीतर जो नागा लोगों की सेना थी, उनके अधिकारी के पास उसने संदेश भेजा: "मैं हनुमन्त सिंह

का दूत हूँ। आपके पास कुछ परामर्श करने के लिए मैं भेजा गया हूँ। इसलिए मुझे अपने साथियों को लेकर आपके पास आने दी आज्ञा दी जाय।''

दुर्ग के अधिकारी ने यह संदेश पाकर उसे आने के लिए आदेश दे दिया।

हनुमन्त सिंह ने अपने बीस सशस्त्र सैनिकों के साथ दुर्ग में प्रवेश किया। उनके पीछे उसके और भी बीस सैनिक वहाँ पर पहुँच गये। इसके भीतर पहुँच जाने के बाद अभय सिंह और प्रताप सिंह की सेना दुर्ग के फाटक पर आ गयी। हनुमन्त सिंह ने नागा सैनिकों के सरदार को अपना सही परिचय देकर कहा : "जयपुर के राजा और वहाँ के राज-मंत्री के हस्ताक्षरों के साथ यहाँ के शासन की सनद हमारे पास है। इसलिए यदि आप लोग तुरन्त इस दुर्ग को छोड़कर न चले जायंगे तो आप लोगों का एक भी सैनिक यहाँ पर जीवित न रहेगा।''

हनुमन्त सिंह के इन शब्दों को सुनकर दुर्ग का अध्यक्ष भयभीत हो उठा और वह अपने सैनिकों को लेकर दुर्ग से चला गया। उन सबके निकल जाने के बाद अभय सिंह और प्रताप सिंह ने फिर से अपने पिता के राज्य पर अधिकार प्राप्त किया और उस समय से हनुमन्त सिंह के साथ उनका कोई बैर-विरोध बाकी न रहा।

इस घटना के कुछ ही दिनों के बाद जयपुर के राजा को समाचार मिला कि पठान सेनापति अमीरखाँ उसके राज्य पर आक्रमण करने की तैयारी कर रहा है, यह सुनकर उसने अमीरखाँ का दमन करने का प्रयत्न किया। राजा जगत सिंह ने राज्य के सभी सामन्तों के पास संदेश भेजे और उनको सेनाओं के साथ अपनी राजधानी में बुलाया। मोहम्मदशाह खाँ अमीरखाँ का सेनापति था और वह धोमगढ़ में रहता था। राजा जगत सिंह के संदेश के अनुसार सभी सामन्त अपनी सेनायें लेकर आमेर की राजधानी में आ गये। राजा जगत सिंह ने राजधानी में एकत्रित सेनाओं का नेतृत्व धूनी के राव चाँदसिंह को सौंपा और राव चाँदसिंह उस विशाल सेना को लेकर आमेर से रवाना हुआ और उसने धोमगढ़ पहुँचकर वहाँ के दुर्ग को घेर लिया।

इसके बाद ही एक दूसरी घटना हो गयी। जयपुर-राज्य के पक्ष में जो सामन्तों की सेनायें आयी थीं, उनमे से एक दल ने टोंक के अन्तर्गत एक नगर पर आक्रमण किया और उसको लूट लिया। उस नगर में गोगावत वंशी एक आदमी मारा गया और आक्रमणकारी दल ने उसकी भी सम्पत्ति लूट ली। जो आदमी मारा गया था, उसका लड़का गोगावत वंश के प्रधान राव चाँदसिंह के पास गया और उसने सब कुछ बताकर उससे सहायता माँगी। चाँदसिंह ने उसकी सहायता में एक सेना भेजी। उसने अपनी सेना को आदेश दिया कि आक्रमणकारी दल ने जो लूट की है, उस पर अधिकार कर लिया जाय और आक्रमणकारी दल वहाँ से कुछ ले न जा सके। यह कहकर उसने अपनी सेना को आने वाले लड़के के साथ भेजा।

राव चाँदसिंह की सेना को आक्रमणकारी दल लूटी हुई सम्पत्ति देने के लिए राजी नहीं हुआ। यह सुनकर राव चाँदसिंह को बहुत क्रोध मालूम हुआ और उसने आक्रमणकारी दल के साथ युद्ध करने के लिए एक बड़ी सेना तैयार की। इस प्रकार शेखावत और गोगावत लोगों में युद्ध की तैयारियाँ होने लगीं। वे लोग लोग अमीरखाँ को दमन करने की बात भूल गये और आपस में एक दूसरे का विनाश करने के लिए तैयार हो गये। शेखावत सामन्तों की सेनायें राव चाँदसिंह के साथ युद्ध करने के लिए रवाना हुई। चाँदसिंह स्वयं इसके लिए पहले से ही तैयार हो चुका था। परिणाम यह हुआ कि दोनों तरफ से युद्ध की आग भड़की।

इस आपसी विद्रोह में केवल सीकर का सामन्त तटस्थ था। इस युद्ध के शुरू होने के पहले खाङ्गारोत वंश के एक सरदार ने मध्यस्थ होकर इस बात की कोशिश की कि ऐसे मौके पर

कोई ऐसा रास्ता निकालना चाहिए, जिससे दोनों पक्षों के सम्मान की रक्षा हो सके। खण्डेला राज्य की सेना ने गोगावत लोगों की सम्पत्ति लूटी है और उसे वे अपने राज्य में ले गये हैं। लेकिन यदि वे लोग उस सम्पत्ति और सामग्री को प्रधान सेनापति के पास भेज दें तो दोनों तरफ का सम्मान कायम रह सकता है। उसके इस निर्णय को शेखावत लोगों ने स्वीकार कर लिया और उस समय जो युद्ध हो जा रहा था, वह खत्म हो गया। परन्तु इससे राव चाँदसिंह को संतोष न मिला। आपसी विनाश से उन लोगों की रक्षा हुई। परन्तु उसका दुष्परिणाम यह निकला कि आपसी सहयोग की भावना छिन्न-भिन्न हो गयी और उन सब ने भीमगढ़ पर जो घेरा डाला था, उसे छोड़कर सभी सामन्त अपने-अपने नगरों को चले गये।

सीकर का सामन्त लक्ष्मण सिंह आपसी विद्रोह में किसी तरफ शामिल नहीं हुआ था। वह पहले से ही खण्डेला पर अधिकार करने की बात सोच रहा था। इस समय का उसने लाभ उठाने की कोशिश की। वह तेजी के साथ सीकर पहुँच गया और सीसोह नामक स्थान को उसने जाकर घेर लिया। किसी प्रकार वहाँ पर उसका अधिकार हो गया। पठान सेनापति के विरुद्ध युद्ध करने के लिए जयपुर की जो सेनायें गयीं थीं, उनमें एक सीकर का सामन्त भी था। इस समय आपसी विद्रोह का लाभ उठाकर वह किसी प्रकार खंडेला का शासन प्राप्त करना चाहता था। इसलिए उसने पठान सेनापति को दो लाख रुपये देने का वादा करके उसे अपनी सहायता के लिए बुलाया। मन्नू और महताबखाँ दो पठान सेनापति अपनी फौज लेकर सीकर पहुँच गये। वहाँ के सामन्त लक्ष्मण सिंह ने पठानों की सेना के आ जाने पर खंडेला पर आक्रमण करने की तैयारी की। यह समाचार हनुमन्त सिंह ने सुना। उसने अभय सिंह और प्रताप सिंह के स्वार्थों की रक्षा करने के लिए पठान सेनापति महताबखाँ को पचास हजार रुपये देने का वादा किया और इसके बदले में खंडेला जाने और वहाँ पर सीकर का पक्ष लेकर युद्ध करने के लिए उसने उसको रोका। लेकिन पठान सेनापति ने हनुमन्त सिंह के दिये गये प्रलोभन की परवा न की और वह खुलकर लक्ष्मण सिंह के साथ हो गया।

यह देखकर हनुमन्त सिंह को पठान सेनापति महताब खाँ पर बहुत क्रोध मालूम हुआ और वह खण्डेला की रक्षा करने के लिए युद्ध की तैयारी करने लगा। पठानों की सेना को साथ में लेकर लक्ष्मण सिंह ने पहले रेवासो और कुछ दूसरे नगरों पर अधिकार किया और इसके बाद वह अपनी विशाल सेनाओं के साथ खण्डेला नगर में रहकर वहाँ से दूरवर्ती कोटे के दुर्ग में उसने खाने पीने की सामग्री का प्रबन्ध किया। जब उसने सुना कि लक्ष्मण सिंह और पठानों की सेना खण्डेला नगर में आ गयी है तो वह अपने सैनिको के साथ दुर्ग से निकला और उसने एक साथ शत्रुओं पर भयानक आक्रमण किया। उसके इस अचानक आक्रमण से शत्रु के बहुत से सैनिक मारे गये। इसके बाद हनुमन्त सिंह अपने सैनिकों को लेकर कोटे के दुर्ग में चला गया। वहाँ पर जाकर वह शत्रु-सेना का संहार करने के लिए तरह तरह के उपाय सोचने लगा।

सामन्त लक्ष्मण सिंह के सीकर की जागीर खण्डेला-राज्य की अधीनता में थी। इस लिए लक्ष्मण सिंह के खण्डेला पर आक्रमण करने से वहाँ के सभी सामन्त बहुत क्रोधित हुए और उनमें से कई-एक सामन्तों ने अभय सिंह और प्रताप सिंह की सहायता करने का निश्चय किया। लक्ष्मण सिंह के पास धन की कमी न थी। उसने धन के बल पर ही पठान सेना की सहायता प्राप्त की थी और इस समय जो सामन्त अभय सिंह और प्रताप सिंह की सहायता के लिए तैयार हुए उनको भी उसने धमकियाँ देकर अपने पक्ष में कर लिया। यह देखकर दूसरे सामन्त भी चुपचाप हो गये और जो लोग अभय सिंह एवम् प्रताप सिंह की सहायता करना चाहते थे, उन्होंने तटस्थ रहने में

अपना कल्याण समझा । इन परिस्थितियों में भी कुछ सामन्तों ने जयपुर के राजा से प्रार्थना की कि सीकर के सामन्त लक्ष्मण सिंह का खण्डेला पर आक्रमण करना बहुत अन्यायपूर्ण है । परन्तु उनकी उस प्रार्थना का जयपुर के राजा पर कोई प्रभाव न पड़ा । बल्कि वहाँ के राजा ने यह भी कहा कि खण्डेला के अभय सिंह और प्रताप सिंह ने यदि भोमगढ़ पर किये गये आक्रमण के दिनों में गोगावतों के नगर को लूटा न होता तो खण्डेला पर इस प्रकार की आपत्ति कभी न आती और पठान सेना को हम लोगों ने स्वयं परास्त किया होता ।

हनुमंत सिंह कोटे के दुर्ग में पहुँच गया था । उस के साथ कई सौ शूरवीर सैनिक थे । लक्ष्मण सिंह ने खण्डेला नगर पर अधिकार करके कोटा के दुर्ग को घेर लिया । हनुमन्त सिंह उस दुर्ग के भीतर रहकर तीन महीने तक शत्रुओं के साथ युद्ध करता रहा इसके बाद पठान सेना का आक्रमण जोर पकड़ने लगा । उस समय हनुमन्त सिंह के सैनिकों ने उसको इस दुर्ग को छोड़कर खण्डेला के दुर्ग में चलने की सलाह दी । परन्तु हनुमन्त सिंह ने उसे स्वीकार नहीं किया और उसने अपने सैनिकों से कहा : "शत्रु की सेना ने जब खण्डेला नगर पर अधिकार कर लिया है तो वहाँ के दुर्ग में जाना किसी प्रकार बुद्धिमानी की बात नहीं हो सकती । "

हनुमन्त सिंह की इस बात को सुनकर उसके साथ के सैनिक चुप हो रहे । इसी समय हनुमन्त सिंह ने अपने सैनिकों से फिर कहा : "हम सब लोग मिलकर इस बात की प्रतिज्ञा करें कि शत्रुओं का संहार करते हुए हम लोग अपने प्राणों की बलि देंगे । "

हनुमन्त सिंह के इन तेजस्वी वाक्यों को सुनकर उसके सैनिक प्रोत्साहित हो उठे । इसके बाद अपने समस्त सैनिकों को लेकर हनुमन्त सिंह आवेश में दुर्ग से बाहर निकला और उसने शत्रुओं पर भीषण रूप से आक्रमण किया । उसके इस आक्रमण से शत्रु की सेनायें परास्त हो गयीं । इसी समय हनुमन्त सिंह ने बाहरी दुर्ग को अपने अधिकार में कर लिया, जो शत्रुओं के हाथों में चला गया था । शत्रु की भागी हुई सेना ने लौटकर फिर से युद्ध आरम्भ किया और प्रात:काल से लेकर सांयकाल तक दोनों तरफ से भयानक युद्ध होता रहा । हनुमन्त सिंह ने अपने प्राणों का मोह छोड़कर एक बार फिर शत्रुओं का संहार किया । शत्रु-सेना के पैर उखड़ गये । लक्ष्मण सिंह के साथ जो सेनायें आयी थीं, वे युद्ध छोड़कर के भागीं । हनुमन्त सिंह ने शत्रु की सेनाओं का पीछा किया । उस समय एकाएक शत्रु की एक गोली इस प्रकार उसके लगी कि वह तुरन्त गिर गया और उसकी मृत्यु हो गयी ।

हनुमंत सिंह के मारे जाने पर शत्रुओं की विजय हुई । दूसरे दिन प्रात:काल हनुमन्त सिंह का अंतिम संस्कार करने और घायल सैनिकों को ले जाने से लिए लक्ष्मण सिंह से कुछ समय तक शांति रखने की प्रार्थना की गयी । लक्ष्मण सिंह ने उसे स्वीकार कर लिया और इसी मौके पर लक्ष्मण सिंह की तरफ से अभय सिंह और प्रताप सिंह से सामने संधि का प्रस्ताव उपस्थित किया गया । लेकिन अभय सिंह और प्रताप सिंह ने उसको स्वीकार नहीं किया । हनुमन्त सिंह के मारे जाने पर उसके बचे हुए सैनिक फिर दुर्ग में चले गये थे । उनके खाने के लिए उदयपुर के सामन्त ने अपने सैनिकों के साथ भोजन की सामग्री उस दुर्ग में भेजी । खेतडी का सामन्त इस मौके पर जयपुर में था । इसलिए वह हनुमन्त सिंह की कोई सहायता न कर सका । लेकिन उसने अपने लड़के को आदेश दिया था कि हमारी अनुपस्थिति में बिसाऊ के सामन्त की सलाह से काम करना, परन्तु बिसाऊ के सामन्त ने लक्ष्मण सिंह से धन लेकर उसी का समर्थन किया था ।

हनुमन्त सिंह के बचे हुए सैनिक दुर्ग में पहुँच गये थे । वहाँ पर वे बाजरा की रोटियाँ खाकर पाँच सप्ताह तक दुर्ग की रक्षा करते रहे । इससे बाद उनके खाने-पीने का कोई प्रबंध न हो सका,

जिससे वे आत्म-समर्पण करने का विचार करने लगे । इसी मौके पर लक्ष्मण सिंह ने अभय सिंह और प्रताप सिंह को दस नगरों का अधिकार देने के लिए प्रस्ताव किया, लेकिन अभय सिंह ने मंजूर नहीं किया । प्रताप सिंह ने लक्ष्मण सिंह से पांच नगर लेकर युद्ध समाप्त किया । हनुमन्त सिंह के जो सैनिक अभी तक दुर्ग में थे, उन्होंने आत्म-समर्पण कर दिया । इस प्रकार युद्ध समाप्त हो गया । इसके कुछ दिनों के बाद लक्ष्मण सिंह ने प्रताप सिंह को दिये हुए पाँचों नगरों पर अधिकार कर लिया । उसके बाद अभय सिंह और प्रताप सिंह झुंझनू नामक स्थान पर चले गये और बड़ी गरीब के साथ अपने दिन व्यतीत करने लगे । उन दिनों में उनकी सहायता के लिए सिद्धानी के सामन्तों ने कुछ धन एकत्रित किया और उस धन से पाँच रुपये प्रतिदिन के हिसाब से उनको दिये जान लगे ।

सन् १८१४ ईसवी में शिवनारायण मिश्र जयपुर का प्रधान मन्त्री था । उसी वर्ष पठानों के सरदार अमीर खाँ ने जयपुर के राजा से नौ लाख रुपये की मांग की । पांच लाख रुपये जयपुर के खजाने से और शेष चार लाख रुपये सिद्धानी के सामन्तों से—कुल नौ लाख रुपये की माँग अमीर खाँ की तरफ से हुई । जयपुर के राजा ने प्रधान मन्त्री शिवनारायण मिश्र से इस विषय में परामर्श किया जयपुर के खाजने की परिस्थिति ऐसी न थी कि जिससे अमीर खाँ को नौ लाख रुपये दिये जा सकते । इस लिए प्रधान मन्त्री शिवनारायण मिश्र ने लक्ष्मण सिंह से इस रकम को वसूल करने की आाशा की । सीकर के सामन्त लक्ष्मण ने जयपुर की अवहेलना करके खण्डेला पर आक्रमण किया था और अमीर खाँ की सहायता से उसने वहाँ पर अधिकार कर लिया था । लेकिन जयपुर के राजा से उसको अभी तक खण्डेला के शासन की सनद न मिली थी । इस सनद को प्राप्त करने के लिए लक्ष्मण सिंह ने कई बार चेष्टा की थी । परन्तु सनद प्राप्त करने में वह असफल रहा ।

प्रधान मन्त्री शिवनारायण मिश्र ने इस समय सनद के नाम पर लक्ष्मण सिंह से इस लम्बी रकम को लेने का प्रयत्न किया । उसने अपना दूत भेजकर लक्ष्मण सिंह से प्रस्ताव किया कि यदि वह स्वयं पांच लाख रुपये दे और सिद्धानी के सामन्तों से चार लाख रुपये एकत्रित कर के कुल नौ लाख रुपये जयपुर राज्य की तरफ से अमीर खाँ के पास पहुँचा दे तो उसको खाण्डेला के शासन की सनद दे दी जायगी । जयपुर के दूत ने लक्ष्मण सिंह के पास जाकर अपने प्रधान मन्त्री का प्रस्ताव उपस्थित किया । उसको सुनकर लक्ष्मण सिंह तैयार हो गया । उन दिनों में अमीर खाँ रानोली में रहा करता था । लक्ष्मण सिंह ने वहाँ जाकर पांच लाख रुपये अपने पास से और चार लाख रुपये सिद्धानी के सामन्तों से एकत्रित करके उसको दिये और नौ लाख रुपये की रसीद अमीर खाँ से लेकर जब वह जयपुर में राजा के यहाँ आया तो जयपुर नरेश ने खण्डेला के शासन की सनद उसको दे दी । लक्ष्मण सिंह इस सनद को पाकर बहुत प्रसन्न हुआ । उसने राजधानी में जयपुर के राजा को सत्तावन हजार रुपये खण्डेला के एक वर्ष के कर में पेशगी दिये । इस रकम को लेकर राजा जगत सिंह ने खण्डेला का वार्षिक कर स्वीकार कर लिया । इसके बाद अभय सिंह और प्रताप सिंह का पैतृक अधिकार खण्डेला से सदा के लिए खत्म हो गया ।

कुछ दिन पहले की बात है, एक ब्राह्मण पुरोहित ने जयपुर के राजा से खण्डेला का पट्टा ले लिया था और उन दिनों में उसने खण्डेला के छोटे-छोटे सामन्तों पर भयानक अत्याचार किया था । इन दिनों में खाण्डेला पर लक्ष्मण सिंह का अधिकार हो जाने से उस ब्राह्मण पुरोहित का पट्टा बेकार हो गया । इस लिए उसने लक्ष्मण सिंह के विरुद्ध एक षड़यंत्र रचने का काम आरम्भ

किया। वह ब्राह्मण पुरोहित अत्यन्त चतुर और षड़यन्त्रकारी था। इन दिनों में शिवनारायण मिश्र जयपुर राज्य का प्रधान मन्त्री था। इस लिए एक ब्राह्मण होने के नाते उसने प्रधान मन्त्री शिवनारायण मिश्र से लाभ उठाने की चेष्टा की। उसके षड़यन्त्र में फँस जाने के कारण प्रधान मन्त्री इस प्रकार अपराधी बन गया कि उसने आत्म-हत्या करके अपना जीवन समाप्त कर दिया।

ब्राह्मण पुरोहित ने जो षड़यन्त्र आरम्भ किया था और जिसके कारण प्रधान मन्त्री शिव नारायण मिश्र को आत्म-हत्या करनी पड़ी, उसमें उसको पूरी तौर पर सफलता मिली। शिवनारायण मिश्र के बाद वह ब्राह्मण पुरोहित जयपुर राज्य का मन्त्री बनाया गया। इस ब्राह्मण पुरोहित के मन्त्रीत्व काल में लक्ष्मणसिंह आमेर की राजधानी में आया। उसने लक्ष्मणसिंह के बढ़ते हुए प्रभुत्व को देखकर अपने सम्बन्ध में अनेक प्रकार की चिन्तायें कीं। वह सोचने लगा कि लक्ष्मण सिंह के विरुद्ध कोई ऐसा कार्य होना चाहिए जिससे जयपुर के राजा के साथ उसका विरोध उत्पन्न हो जाय।

इस प्रकार की अनेक बातें सोच कर प्रधान मन्त्री ब्राह्मण ने गुप्त रूप से खण्डेला पर आक्रमण करने के लिए राज्य की सेना को आदेश दिया। इस समय उसने सिद्धानी सामन्तों को भी अपने पक्ष में कर लिया और राज्य की सेना के साथ उन सामन्तों की सेनाओं को मिलाकर उसने खण्डेला पर आक्रमण करने के लिए भेजा। लक्ष्मण सिंह उन दिनों में जयपुर में ही था। उसे जब यह मालूम हुआ तो उसने पठान सरदार जमशेद खाँ को बहुत-सा धन देकर खण्डेला की रक्षा करने के लिए भेजा। जयपुर की जो सेना खण्डेला पर आक्रमण करने के लिए गयी थी, प्रधान मन्त्री ब्राह्मण उसके साथ था और खण्डेला पहुँचकर उसने मुकाम किया। पठान सरदार जमशेद खाँ ने अपनी सेना के साथ वहाँ पहुँच कर प्रधान मन्त्री ब्राह्मण की सेना पर आक्रमण किया और उसके साथ की समस्त सामग्री और सम्पत्ति पर अधिकार कर लिया। ब्राह्मण मन्त्री घबरा कर वहाँ से जयपुर की राजधानी की तरफ लौट आया। लक्ष्मण सिंह उस समय भी जयपुर में मौजूद था। उसको कैद करने के लिए प्रधान मन्त्री ने आज्ञा दी। उस आदेश का समाचार पाकर लक्ष्मण सिंह राजधानी छोड़कर भाग गया। क्योंकि उसके साथ उस समय केवल पचास अश्वारोही सैनिक थे। लक्ष्मण सिंह के भागने पर राज मन्त्री ने कुछ दूर तक उसका पीछा किया। उसके बाद लौट कर वह राजधानी में आया और लक्ष्मण सिंह की समस्त सम्पत्ति और सामग्री पर अधिकार कर लिया। खण्डेला से इस बार राज्य के प्रधान मन्त्री और सिद्धानी सामन्तों के भागने पर खण्डेला से अभय सिंह की आशायें सदा के लिए खत्म हो गयीं।

शेखजी के पुत्रों में सब से बड़े राजा रायसाल के सात लड़के पैदा हुए थे। उनमें चौथे लड़के का नाम तिरमल था। राव की उपाधि लेकर उसने चौरासी ग्रामों और नगरों के साथ कासली का अधिकार प्राप्त किया था। तिरमल के पुत्र हरिसिंह ने फतेहपुर के कायमखानियों का बीलाडा नामक नगर लेकर उसकी अधीनता के एक सौ पच्चीस ग्रामों और नगरों पर अधिकार कर लिया था और उसके थोड़े दिनों के बाद रेवासा एवम् उसके पच्चीस ग्रामों और नगरों को भी अपने अधिकार में करलिया। हरिसिंह के लड़के शिवसिंह ने कामखानियों के प्रधान नगर फतेहपुर को विजय किया और उसके बाद वह उसी नगर में रहने लगा।

शिवसिंह के लड़के चाँदसिंह का शासन सीकर में था। उसके वंशज देवी सिंह ने अपने निकटवर्ती सम्बन्धी शाहपुरा के ठाकुर के लड़के लक्ष्मण सिंह को—जिसका ऊपर उल्लेख किया गया है—गोद लिया था। देवीसिंह के समय भी सीकर की हालत अच्छी थी। लक्ष्मण सिंह ने उसको और भी उन्नत किया। खण्डेला पर अधिकार करने के पहले उसने अपने सामन्तों को निर्बल बना

कर केवल अपने आश्रित कर लिया था। उसने अपने पिता के नगर शाहपुरा के दुर्ग और बीलाड़ा भटौती और पासली के दुर्गों को भी गिरवा कर नष्ट कर दिया था।

लक्ष्मण सिंह के इस प्रकार के अत्याचारों से दुखी हो कर उसका पिता अपने नगर को छोड़ कर जोधपुर चला गया और वहीं पर वह रहने लगा।

लक्ष्मण सिंह के अधिकार में इन दिनों जितने भी ग्राम और नगर थे, उनकी संख्या पन्द्रह सौ थी और उनसे लक्ष्मण सिंह को वार्षिक आठ लाख रुपये की आमदनी होती थी। उसने अपने नाम पर लक्ष्मण गढ़ नाम का एक दुर्ग बनवाया और उसके अतिरिक्त उसने दूसरे कई एक स्थानों पर दुर्ग तैयार कराये। × उसने अपने अधिकार में एक अच्छी सेना का संगठन किया था। उसकी विशाल सेना में बन्दूकधारी और गोलन्दाज भी थे और उसके अधिकार में एक हजार अश्वारोही सैनिक थे। उनमें पाँच सौ सैनिक को वेतन दिया जाता था और शेष पाँच सौ सैनिकों ने राज्य की तरफ से भूमि पायी थी। खण्डेला पर अधिकार करने के बाद लक्ष्मण सिंह ने अपनी शक्तियों को अधिक सुदृढ़ बना लिया। (:)

सिद्धानी शेखावत वंश की एक प्रबल शाखा है। शेखावत लोगों का वर्णन समाप्त करने के बाद सिद्धानी वंश का संक्षिप्त परिचय यहाँ पर देना बहुत आवश्यक है। इसलिए आगामी पंक्तियों और पृष्ठों में हमने इसी वंश का उल्लेख हमने किया है। रायसाल ने अपने राज्य को अपने सातों पुत्रों में बाँट दिया था। उसमें भोजराज को उदयपुर और उसके अधीन ग्राम और नगर मिले थे। भोजराज के वंश में अधिक संख्या बढ़ी और वे भोजराज के नाम पर भोजानी नाम से प्रसिद्ध हुए। भोजराज को मिले हुए इसी उदयपुर में शेखावत सामन्त एकत्रित होकर आवश्यकता पड़ने पर परामर्श किया करते थे। ÷

भोजराज से कई पीढ़ियों के बाद उसका वंशज जगराम उदयपुर के सिंहासन पर बैठा। उसके छै लड़के थे। सब से बड़े लड़के का नाम था साधु। वह पिता से झगड़ा करके दशहरा के दिन अपने राज्य से निकल कर चला गया। जहाँ पर सिद्धानी लोग रहा करते थे, वह फतेहपुर-राज्य कहलाता था। झुंझुनू इसका प्राचीन नाम था। वहाँ के निवासी समस्त सिद्धानी कायमखानी अफगानी नवाब के शासन में रहा करते थे। :-: वह नवाब दिल्ली के बादशाह की अधीनता में शासन करता था। साधु अपने राज्य से निकल कर उस नवाब के पास गया। नवाब ने उसको सम्मानपूर्वक अपने यहाँ स्थान दिया।

साधु वहाँ पर कुछ दिनों तक रहने के बाद नवाब के निकट अत्यन्त विश्वासी और उपयोगी साबित हुआ। इस लिए उसने फतेहपुर का समस्त शासन-सबम्धी कार्य साधु को सौंप दिया।

× सम्बत् १८६२ सन १८०६ ईसवी में एक सब से ऊँचे शिखर पर—जहाँ पहले कोई दुर्ग था और इन दिनों में वह नष्ट हो गया था—लक्ष्मण गढ़ बनवाया गया था। यह दुर्ग बहुत सुदृढ़ और श्रेष्ठ समझा जाता है।

(:) कहा जाता है कि खोकर राजपूतों के नाम पर खण्डेला नाम की उत्पत्ति हुई है। खोकर राजपूतों का उल्लेख भाटी लोगों के साथ पाया जाता है। खोकर राजपूत निश्चित रूप से सीथियन थे। खण्डेला में चार हजार घर है और उसमें अस्सी ग्राम लगते हैं।

÷ उदयपुर का प्राचीन नाम काइस है उसमें पैंतालीस ग्राम लगते हैं।

:-: कुछ लेखकों ने कायमखानी लोगों को अफगान नहीं, चौहान वंश के मुसलमान राजपूत माना है—अनु०

वहाँ पर शासन करते हुए साधु ने कुछ दिन और व्यतीत किये। उसने फतेहपुर-राज्य में अपना पूरा अधिकार जमा लिया। इसके बाद उसने एक दिन बृद्ध नवाब से कहा : "आपकी बृद्धावस्था है। अब आप को पूर्ण रूप से विश्राम मिलने की आवश्यकता है। मैं चाहता हूँ कि आप राज्य के एक सुविधा जनक स्थान पर रहकर अपना शेष जीवन शांतिपूर्ण बितावें। आप की मर्यादा के अनुसार इस राज्य से आप को इतनी सम्पत्ति मिलती रहेगी, जिससे आप के सामने कभी कोई अभाव न रहेगा।"

नवाब ने साधु की बातों को सुना। उसने साधु के अभिप्राय को आसानी से समझ लिया। शासन का अधिकार और प्रबन्ध साधु के हाथों में सौंप कर नवाग ने स्वयं अपने आप को शक्तिहीन बना लिया था। उसने सोचा कि इस मौके पर साधु का विरोध करना संकटपूर्ण हो सकता है। इसलिए नवाब झुंझुनू से फतेहपुर—जिसकी आबादी झुंझुनू से कुछ दूर थी—चला गया। वहाँ पर उसके वंश के कुछ लोग रहते थे और शासन करते थे। उन लोगों ने नवाब को अपने यहाँ सम्मान-पूर्ण स्थान दिया और वे साधु को फतेहपुर-राज्य से भगाने ये लिए एक सेना की तैयारी करने लगे।

इसका समाचार साधु को मिला। ऐसे मौके पर उसने अपने पिता से सहायता माँगी। वह अपने पुत्र साधु से अप्रसन्न था। लेकिन इस संकट के समय उसने अपने लड़के की सहायता करने का निश्चय किया। उसका एक दूसरा लड़का मिर्जांराजा जयसिंह के यहाँ अपनी सेना के साथ रहता था। जगराम ने अपने उस लड़के को लिखा कि वह तुरन्त जयपुर-राज्य के राजा से सैनिक सहायता लेकर तुरन्त साधु के पास जावे और इस सङ्कट के समय वह उसकी मदद करे। पिता के इस पत्र को पाकर जगराम का लड़का अपनी सेना के साथ जयपुर की सेना को लेकर रवाना हुआ और वह साधु के पास पहुँच गया। अपने भाई की सैनिक सहायता पाकर साधु ने सम्पूर्ण फतेहपुर में अपना अधिकार कर लिया और उसके अन्तर्गत ग्रामों और नगरों का शासन दोनों भाई मिल कर करने लगे। अपने भाई के परामर्श के अनुसार साधु ने जयपुर-राज्य की अधीनता स्वीकार कर ली। इसके कुछ दिनों के बाद साधु ने सिहाना पर भी अधिकार कर लिया। उसमें एक सौ पच्चीस ग्राम थे। उसके पश्चात उसने सुलताना नामक स्थान को लेकर अपने राज्य में मिला लिया। इन दिनों में लगातार वह अपने राज्य की सीमा को बढ़ाता रहा और खेतड़ी के के राजा के समस्त ग्रामों को भी उसने अपने अधिकार में कर लिया। इन दिनों में सब मिलाकर एक हजार से अधिक ग्राम और नगर उसके अधिकार में हो गये थे।

साधु के पाँच लड़के थे—(१) जोरावर सिंह (२) किशन सिंह (३) नवल सिंह (४) केशरी सिंह और (५) पहाड़ सिंह। साधु ने अपना सम्पूर्ण राज्य अपने पांचों बेटों में बाँट दिया। उसके वंशज सिद्धानी नाम से ही प्रसिद्ध हुए।

साधु के बड़े लड़के जोरावर सिंह ने अपने पैतृक राज्य के अतिरिक्त चोकेड़ी पर अधिकार कर लिया। उसमें बारह ग्राम थे। लेकिन साधु के मझले लड़के किशन सिंह के एक वंशज ने जोरावर सिंह के वंशजों के अधिकार से समस्त नगर और ग्राम ले लिए। उनके अधिकार में केवल चोकेड़ी और उसके ग्राम रह गये। इतना सब होने पर भी किशन सिंह के वंशज मर्यादा में श्रेष्ठ माने जाते थे।

साधु के शेष चार पुत्रों के वंशजों में निम्नलिखित अधिक प्रसिद्ध हुए—(१) खेतड़ी का अभय सिंह (२) बिसाऊ का श्यामसिंह (३) नवलगढ़ का ज्ञानसिंह और (४) सुलताना का शेरसिंह।

साधु ने अपने परिवार के छोटे अधिकारियों को सिहाना, झुंझुनू और सूर्यगढ़— जिसका प्राचीन नाम उड़ैछा था इत्यादि कई नगर और ग्राम दिये थे। लेकिन खेतड़ी के अभय सिंह ने

सिहाना और उसके एक सौ पच्चीस ग्रामों पर अधिकार कर लिया था। साधु के वंशजों की संख्या धीरे-धीरे बढ़ती गयी। इसलिए उसका राज्य भी छोटे-छोटे टुकड़ों में लगातार विभाजित होता गया।

सीकर के सामन्त लक्ष्मण सिंह की तरह अभय सिंह ने भी अपने राज्य के विस्तार की चेष्टा की। उसने अपने वंश के अधिकारियों पर भी आक्रमण किया और उनके अधिकार के ग्रामों और नगरों को लेने में उसने भयानक अत्याचार किये।

साधु के सब से छोटे लड़के पहाड़ सिंह के भूपाल 'नाम का एक लड़का पैदा हुआ। लुहारू के युद्ध में भूपाल सिंह के मारे जाने पर पहाड़ सिंह ने अपने भाई के पुत्र खेतड़ी के सामन्त बाघसिंह के सब से छोटे लड़के को गोद लिया। पहाड़ सिंह के मर जाने के बाद गोद लिया हुआ बालक उसका अधिकारी हुआ। उसकी अवस्था उस समय बहुत कम थी। इसलिए वह अपने पिता के यहाँ जाकर रहने लगा। इसके बारह वर्ष के बाद बाघसिंह की मृत्यु हुई। उसके अनुचित आचरणों के कारण सभी लोग उससे अप्रसन्न रहते थे। उसके मर जाने के बाद किसी ने भी उसके लिए दुख प्रकट नहीं किया। बल्कि शवदाह के समय उसके वंश और परिवार के लोग उसके प्रति अपनी घृणा प्रकट करते रहे।

रायसालोत और सिद्धानी लोगों का वर्णन करने के बाद लाडखानी लोगों के सम्बन्ध में यहाँ पर कुछ ऐतिहासिक प्रकाश डालना आवश्यक मालूम होता है। लाडखानी शब्द का अर्थ प्यारा प्रभु होता है। इस अर्थ के आधार पर लाडखानी लोगों की मर्यादा का सही अनुमान नहीं किया जा सकता। क्योंकि अपने आचरणों और कार्यों से लाडखानी लोग राजस्थान में बहुत बदनाम थे। रायसाल के बड़े लड़के के नाम में खाँ शब्द का प्रयोग क्यों किया गया और उसके छोटे लड़के का नाम ताजखाँ क्यों रखा गया, इसके सम्बन्ध में हम कुछ नहीं जानते। रायसाल के लड़के लाड़खाँ ने दाँतारामगढ़ पर अधिकार कर लिया था। यह नगर मारवाड़-राज्य की सीमा पर बसा हुआ जयपुर-राज्य की अधीनता में था। लाड़खाँ का पिता बादशाह के दरबार में एक सम्मानपूर्ण स्थान रखता था। सम्भव है, उसी आधार पर लाँड़खाँ को यहाँ का अधिकार मिल गया हो। लाड़खाँ का अधिकार तप्पनोसल पर भी हो गया था। सब मिलाकर अस्सी नगर और ग्राम उसके अधिकार में थे। ये ग्राम और नगर पहले मारवाड़ और बीकानेर के राज्य में शामिल थे। लाडखानी लोग उनके राज्यों में किसी प्रकार लूटमार न करें, इसलिए ये ग्राम और नगर लाड़खाँ को दे दिए गये थे। लाडखानी लोग पिंडारियों की तरह लूट मार करते थे। वे सैकड़ों और हजारों की संख्या में एकत्रित होकर जहाँ चाहते थे, आक्रमण करके लूट लेते थे और अपने स्थानों को भाग जाते थे। जयपुर का राजा कभी-कभी इन लोगों से कर वसूल करने की कोशिश करता था। परन्तु उसे सफलता न मिलती थी। इन लोगों का रामगढ़ नामक एक बहुत मजबूत दुर्ग था। उसी में वे लोग भागकर पहुँच जाते थे। वह दुर्ग सभी प्रकार सुरक्षित था। लेकिन अमीरखाँ जब इन लोगों पर आक्रमण करता था तो ये लोग उसे बहुत-सा धन देकर अपनी रक्षा करते थे। इन लाडखानी लोगों ने अमीरखाँ को बीस हजार रुपये वार्षिक कर में देना स्वीकार किया था।

शेखावाटी के राज्यों और उसकी जागीरों की आमदनी की तालिका नीचे दी जाती है। यद्यपि उसके बहुत सही होने का हमारे पास कोई प्रमाण नहीं है। फिर भी जो साधन हमको प्राप्त हुए हैं, उनके आधार पर हमने सही-सही लिखने की चेष्टा की है। वहाँ की कुल आमदनी पच्चीस लाख रुपये से लेकर तीस लाख रुपये वार्षिक तक थी। यद्यपि इन दिनों में उन जागीरों और राज्यों

की आमदनी घटकर बहुत कम हो गयी थी। उनकी आमदनी के घट जाने का मुख्य कारण यह था कि वे प्राय: आपस में लड़कर एक दूसरे का विनाश किया करते थे और इस आपसी विद्वेष के कारण प्राय: उनको बहुत-सा धन देकर आक्रमणकारियों को शांत करना पड़ता था। आपसी लड़ाइयों और बाहरी हमलों से उन जागीरों को बहुत क्षति पहुँची थी। उनकी आय की तालिका इस प्रकार है :

सीकर और खण्डेला से लक्ष्मण सिंह की	...	८००००० रुपये
खेतड़ी के अभय सिंह की	...	६००००० "
बिसाऊ के श्याम सिंन और रणजीत सिंह की	...	१६०००० "
नवलगढ़ के ज्ञानसिंह की	...	७०००० "
मेदसर के लक्ष्मण सिंह की	...	३०००० "
जोरावर सिंह की	...	१००००० "
उदयपुर वाटी की	...	१००००० "
मनोहर पुर की	...	३०००० "
लाडखानियों की	...	१००००० "
हरराम जी लोगों की	...	४०००० "
गिरिधर पोताओं की	...	४०००० "
छोटे सामन्तों की	...	२००००० "
	जोड़	२३००००० रुपये

जयपुर के राजा को जागीरों से मिलने वाले कर की तालिका :

सिद्धानी लोगों से	...	२००००० रुपये
खण्डेला से	...	६०००० "
फतेहपुर से	...	६५००० "
उदयपुर और बिवाईं से	...	२२००० "
कासली से	...	४००० "
	जोड़	३५१००० रुपये

शेखावाटी के सामन्तों की ऊपर लिखी हुई जो आमदनी यहाँ पर दी गयी है, वह बिगत पचास वर्षों से लगातार घटती आ रही है।

———

छियासठवाँ परिच्छेद

अम्बेर-राज्य और उसकी जागीरों का विस्तार–जयपुर-राज्य की आबादी–जातियों का विभाजन–खेती और पैदावार–मालगुजारी और अन्यान्य कर–विदेशी सेना–जयपुर-राज्य के प्राचीन नगर।

कुशवाहा जाति के जन्म, उत्थान और विस्तार की तरह शेखावाटी और माचेडी के अधिकारियों के वंशजों का भी इतिहास है। सम्भव है, कुछ लोगों को आठ सौ वर्षों में पन्द्रह हजार वर्ग मील की भूमि पर फैले हुए इन लोगों के इतिहास में कुछ दिलचस्पी न मालूम हो। लेकिन इस वंश के चालीस हजार मनुष्य अपने राजा और राज्य की रक्षा करने के लिए सदा अपने हाथों में तलवारें लिए हुए तैयार रहते हैं। अपने राज्य को ही वे अपना देश समझते हैं और देश का नाम राजपूतों में जादू का सा प्रभाव पैदा करता है। इन राज्यों के अगणित उदाहरणों के आधार पर हमें यह स्वीकार करना पड़ता है कि इस देश में देशभक्ति और कृतज्ञता का अभाव नहीं है।

सीमा और विस्तार—आमेर और उसके अधिकृत राज्यों की सीमा नकशा देखने से भलीभांति मालूम होता है कि उसकी सीमा का विस्तार कहाँ तक है। फिर भी, पश्चिम में मारवाड़ की सीमा के अन्त में साँभर झील तक, पूर्व में जाटों की सीमा के पार स्त्रौथ नगर तक फैला हुआ है। अङ्गरेजी पैमाने के हिसाब से एक सौ बीस मील चौड़ा और उत्तर से दक्षिण में शेखावाटी को मिलाकर एक सौ अस्सी मील लम्बा है। इसकी जमीन एक सी नहीं है। खास जैयपुर अथवा ढूँढार की जमीन नौ हजार पाँच सौ वर्गमील है और शेखावाटी की पाँच हजार चार सौ वर्ग मील है। समस्त भूमि मिला कर चौदह हजार नौ सौ वर्ग मील है।

आबादी—जयपुर-राज्य में रहने वाली सभी जातियों की सही संख्या लिख सकना सम्भव नहीं है। इसलिए प्राप्त सामग्री के आधार पर बहुत सही अनुमान लगा कर इतना ही कहा जा सकता है कि इस राज्य की एक वर्ग मील की भूमि में एक सौ पचास और शेखावाटी में प्रति वर्ग मील अस्सी मनुष्य रहते हैं। जयपुर और शेखावाटी को मिलाकर एक सौ चौबीस मनुष्यों के औसत से एक लाख पचासी हजार छै सौ सत्तर मनुष्यों की वहां पर आबादी है। लेकिन मकानों से भरे हुए राज्य के बड़े-बड़े नगरों को देखकर जब हम समझने की कोशिश करते हैं तो मालूम होता है कि जो संख्या मनुष्यों की ऊपर दीं गयी है, वह किसी प्रकार अधिक नहीं हो सकती। सब मिला कर राज्य में छोटे-छोटे गाँव और पुरवा छोड़कर चार हजार ग्राम और नगर हैं। शेखावाटी के ग्रामों और नगरों की संख्या जयपुर से आधी है। जिसमें से सीकर और खण्डेला के लक्ष्मण सिंह और खेतडी के अभय सिंह में प्रत्येक लगभग सौ ग्रामों और नगरों का स्वामी था।

रहने वालों का जातीय विभाजन—वहाँ पर रहने वाली विभिन्न जातियों की संख्या निश्चित रूप से नहीं लिखी जा सकती। परन्तु प्राप्त साधनों से यह स्वीकार करना पड़ता है कि राजपूतों की संख्या शेष सम्मिलित जातियों के मुकाबिले में बहुत कम थी। लेकिन मीना जाति के लोगों को छोड़कर राजपूत किसी भी जाति से अलग-अलग कम न थे। मीना लोगों की संख्या

निश्चित रूप से अधिक थी। बाकी जातियों में राजपूत अधिक थे। वहाँ पर जो जातियाँ रहती हैं, उनमें प्रमुख इस प्रकार हैं: मीना, राजपूत, ब्राह्मण, वैश्य, जाट, धाकर अथवा कीरात और गूजर। इस प्रकार वहाँ के रहने वालों में ऊपर लिखी हुई सात जातियां प्रमुख मानी जाती हैं।

मीना—इस जाति के लोग जिन प्रमुख शाखाओं में विभाजित हैं, उनकी संख्या बत्तीस से कम नहीं है। राजस्थान के प्रत्येक राज्य में मीना लोगों की संख्या अधिक है। इसलिए उनका वर्णन हमने एक पृथक परिच्छेद में करना मुनासिब समझा है। आमेर राज्य में मीना लोगों को सभी प्रकार के राजनीतिक अधिकार प्राप्त हैं। नरवर के निर्वासित राजा को मीना लोगों के द्वारा ही आमेर का सिंहासन प्राप्त हुआ था। मीना लोगों को सभी प्रकार के राज्यधिकार प्राप्त होने का प्रमुख कारण यह था कि आरम्भ में कुशवाहा राजा ने उनको पराजित करके, उन पर किसी प्रकार का आधिपत्य नहीं किया था बल्कि मीना लोगों ने अपने आप, पराजित होने पर उसकी अधीनता स्वीकार कर थी और इसके फलस्वरूप काली खोह के मीना लोग जयपुर के राज्याभिषेक के अवसरों पर अपने रुधिर से तिलक करने लगे थे। अनेक उदाहरणों से यह भी जाहिर होता है कि विश्वासी होने के कारण उनको जयपुर राज्य में उत्तरदायी पदों पर रखा जाता था। जयगढ़ के खजाने में और वहां के दरबारी कागजों की देख भाल रखने में मीना लोग ही काम करते थे। राजधानी के विश्वस्त कार्य, राजा के शरीर-रक्षक, सैनिक होने का पद और इस प्रकार के दूसरे उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य उनको सौंपे जाते थे। मीना लोगों को पहले अपना झण्डा फहराने और नक्कारा बजाने का अधिकार था। लेकिन बाद में इस अधिकार से वंचित कर दिया गया। जयपुर राज्य में खेती का काम अधिक संख्या में मीना, जाट और किरात करते हैं।

जाट—जाटों की संख्या भी लगभग मीना लोगों के बराबर समझी जाती है। इनके अधिकार के ग्रामों और नगरों की संख्या भी अधिक है। खेती के काम में ये लोग अधिक परिश्रमी होते हैं।

ब्राह्मण—समाज में जो धार्मिक प्रथायें हैं, उन पर ब्राह्मणों ने अपना अधिकार कर रखा है। दूसरी जातियों के लोग धार्मिक कार्यों में ब्राह्मणों को ही अधिकारी समझते हैं। राजस्थान के अन्यान्य राज्यों की अपेक्षा जयपुर-राज्य में ब्राह्मण अधिक पाये जाते हैं। इसका अर्थ यह नहीं है कि इन ब्राह्मणों के राजा अपने पड़ोसी राजाओं से अधिक धार्मिक हैं। बल्कि इसके विरुद्ध जयपुर के अन्य राजाओं की अपेक्षा अधिक अधर्मी और अपराधी हैं।

राजपूत—यह बात अब भी देखी जाती है कि अगर कुशवाहों के राज्य में युद्ध सम्बन्धी आवश्यकता पड़ती है और कुशवाहा लोग उत्तेजित किये जाते हैं तो अपने वंश के तीस हजार लोगों को लेकर वे युद्ध क्षेत्र में पहुँच जाते हैं। उनमें नरूका और शेखावत वंश भी शामिल हैं। कुशवाहा राजाओं में पजून-राजा मान और मिर्जा राजा आदि उतने ही शूरवीर और योग्य हुए हैं, जितने कि अन्य वंशों में। लेकिन राठौरों की तरह साहस और शौर्य में ये लोग ख्याति नहीं प्राप्त कर सके। इसका बहुत कुछ कारण यह भी हो सकता है कि मुगल बादशाहों के साथ इन लोगों ने वैवाहिक सम्बन्ध कायम किये थे और उनके फलस्वरूप उन्होंने मुगल-दरबार में सम्मान प्राप्त करके बादशाह की राजनीतिक आवाजों का समर्थन करके उनमें सहयोग दिया था। मराठों के आक्रमणों से कुशवाहा राजाओं को अधिक आघात पहुँचा था। उनके प्रबल प्रभाव के समय इन लोगों की राजनीतिक, सामाजिक और पारिवारिक—सभी प्रकार की भावनायें दुर्बल पड़ जाती हैं।

खेती, मिट्टी और पैदावार—ढूँढाड राज्य में खेती के योग्य सभी प्रकार की मिट्टी पायी जाती है। धान और जुआर की अपेक्षा वहाँ पर बाजरा अधिक पैदा होता है। गेहूँ की अपेक्षा जौ की पैदावार वहाँ विशेष होती है। जयपुर राज्य में सभी प्रकार के अन्न पैदा होते हैं। ईख की पैदावार भी वहाँ अधिक होती थी, लेकिन कितने ही कारणों से राज्य के कृषकों ने विवश होकर ईख की खेती कम कर दी। उसका प्रधान कारण यह हुआ कि पहले ईख की खेती पर चार रुपये से लेकर छै रुपये प्रति बीघा के हिसाब से निश्चित कर लिया जाता था। लेकिन अब किसानों को खेत देने के पहले साठ रुपये पेशगी ले लिए जाते हैं। इस राज्य के अनेक जिलों में रूई की पैदावार अधिक होती है।

मालगुजारी अथवा राज्य कर—जितने भी कर इस राज्य में वसूल किये जाते हैं, वे सभी यहाँ पर कभी भी एक से नहीं रहे। वे हमेशा घटते-बढ़ते रहते हैं। इसलिए उनके सम्बन्ध में सही उल्लेख करना बहुत कठिन मालूम होता है। यह बात जरूर है कि इसके सम्बन्ध में अनेक प्रकार की सामग्री हमको मिली है, जिसमें राज्य की मालगुजारी और उसके विभिन्न प्रकार के करों का उल्लेख मिलता है। लेकिन विस्तार में उनका यहाँ जिक्र करना संतोषजनक नहीं मालूम होता। इसलिए उनके सम्बन्ध में इतना ही लिखना अधिक अच्छा मालूम होता है कि मालगुजारी और विभिन्न प्रकार के करों के द्वारा जयपुर राज्य की सम्पूर्ण आमदनी एक करोड़ रुपये थी: लेकिन मराठों और माचेडी नरूका सामन्तों के सत्रह ग्राम और नगर ले लेने से वहाँ की आमदनी बहुत घट गयी। जयपुर राज्य के अधिकार से जो सत्रह ग्राम और नगर निकल गये थे, वे इस प्रकार हैं:

ग्राम/नगर	विवरण
१—कामा २—खोरी ३—पहाड़ी	जनरल पीरन ने अपने स्वामी सेंधिया की तरफ से जयपुर राज्य के इन तीन नगरों पर अधिकार कर लिया था। उसके बाद जाटों ने उनको पट्टा पर लेकर अपना अधिकार कायम रखा।
४—कान्ती ५—उकरोद ६—पुन्दापुन ७—गाथी का थाना ८—रामपुरा (किरदा) ९—गौनराई १०—रानी ११—पुरबैनी १२—मौजपुर हरसाना	माचेडी के राव ने इन पर अधिकार कर लिया था।
१३—कानोढ अथवा कानोद १४—नारनोल	डी वाइन ने इन पर अधिकार करके मुरतजा खाँ को लार्ड लेक की स्वीकृति से दे दिया था।
१५—कोटपूतली	... सन् १८०३ और ४ के युद्ध में लार्ड लेक ने मराठों से लेकर खेतडी के अमय सिंह को दे दिया था।
१६—टोंक १७—रामपुर	राजा माधव सिंह ने लार्ड हेस्टिग्स के द्वारा अमीर खाँ की प्रधानता में होलकर को दिया।

यहाँ पर यह समझने की जरूरत है कि ऊपर लिखे हुए जिले—जो जयपुर राज्य से दूसरे राज्यों में गये—ढूँढाड राज्य की पूर्ति करते थे और उनमें से अधिकांश पहले किसी समय मुगल

बादशाह के अधिकार में थे। बादशाह ने उनके शासन का अधिकार जयपुर के राजा को दे रखा था। लगभग आधी शताब्दी पहले राजा पृथ्वी सिंह के शासन काल में आमेर राज्य और उसके सामन्तों की आमदनी मिलाकर कुल सत्तर लाख रुपये थे। राजा प्रताप सिंह के शासन के अंतिम वर्ष सम्बत् १८५८ सन् १८०२ ईसवी में यह आमदनी उन्नासी लाख रुपये थी।

राजा जगत सिंह के समय सम्बत् १८५८ सन् १८०२—३ ईसवी में जयपुर राज्य की खालसा अथवा कर-सम्बन्धी राजकोष की आय इस प्रकार थी :

कर-सम्बन्धी अथवा राजा के प्रबंध के द्वारा	...	२०५५००० रुपये
देवरी ताल्लुका, अन्त:पुर के व्यय के लिए आय	...	५०००००"
राज-दरबार के नौकरों के लिए होने वाली आय	...	३०००००"
मंत्रियों और दीवानी के अधिकारियों के लिए	...	२०००००"
सिलहपोष नामक सेना की जागीरों से	...	१५००००"
दस पैदल और सवार सेनाओं को जागीरों से	...	७१४०००"
सामन्तों की जागीरों की आय	...	१७०००००"
ब्राह्मणों को दी हुई भूमि की आय	...	१६०००००"
कृषि-कर और वाणिज्य-कर के द्वारा	...	१९००००"
राजधानी की कचहरी, नगर चुंगी आदि से	...	२१५०००"
टकसाल के द्वारा	...	६००००"
हुंडी, भाड़ा इत्यादि से	...	६००००"
आमेर की फौजदारी के जुर्माने से	...	१२०००"
जयपुर नगर की फौजदारी कचहरी से	...	८०००"
कचहरी के साधारण जुर्मानों से	...	१६०००"
सब्जी मण्डी के द्वारा	...	३०००"
शेखावाटी राज्य की आय	...	३५००००"
राजावत और जयपुर के अन्य सामन्तों से	...	३००००"
हाड़ौती के सामन्तों से	...	२००००"
	कुछ जोड़—	८१८३००० रुपये

प्राप्त सामग्री से ऊपर लिखी हुई आमदनी यहाँ पर जो दी गयी है, वह अगर सही है तो उससे यह साबित होता है कि जगत सिंह के सिंहासन पर बैठने के बाद—जैसा कि ऊपर लिखा गया है—अस्सी लाख रुपये से अधिक राज्य की आमदनी हो गयी थी। इसमें से लगभग आधी खालसा भूमि अर्थात् राजा के अधिकारी ग्रामों और नगरों की थी। राजस्थान के अन्य राजाओं की निजी आमदनी से यह लगभग दो गुनी थी। अङ्गरेजों के साथ संधि करने के समय जयपुर की आमदनी का उपरोक्त अनुमान लगाया था और राजा ने अंगरेज कम्पनी को आठ लाख रुपये वार्षिक देना मंजूर किया था। उससे यह भी निश्चय हुआ था कि राज्य की वर्तमान आमदनी में

में जितनी आय अधिक होगी, उसके सोलह भागों में पाँच भाग राजा को अतिरिक्त कर में देने पड़ेंगे।

विदेशी सेना—सन् १८०३ ईसवी में जयपुर के राजा ने अपनी सहायता के लिए तेरह हजार सैनिकों की एक विदेशी सेना रखी थी। इस सेना में बन्दूकों के साथ दस कम्पनी पैदल सेना, चार हजार नागा सेना, एक प्रहरी सैनिकों का दल और सात सौ अश्वारोही सिपाहियों की सेना थी। इस विदेशी सेना के अतिरिक्त सामन्तों की ओर से चार हजार अश्वारोही सैनिकों की सेना राज्य के लिए सदा तैयार रहती थी और आवश्यकता पड़ने पर बीस हजार कुशवाहा सैनिक युद्ध क्षेत्र में पहुँच सकते थे।

सामन्त—जयपुर के राजा पृथ्वीराज ने अपने बारह पुत्रों को राज्य के बारह प्रधान सामन्तों का पद दिया था। उनका उल्लेख ग्रंथों में इस प्रकार पाया जाता है :

पुत्रों के नाम	वंश का नाम	जागीर	वर्तमान सामन्त	आमदनी	सैनिक
१—चतुर्भुज	चतुर्भुजोत	पवार, बगरू	बाघसिंह	१८०००	२८
२—कल्याण	कल्याणोत	लाटवाडा	गंगासिंह	२५०००	४७
३—नाथू	नाथावत	चौमू	किशन सिंह	११५०००	२०५
४—बलभद्र	बलभद्रोत	अचरोल	कायम सिंह	२८८५०	५७
५—जगमल उसका बेटा खंगर	खंगारोत	टोढरी	पृथ्वी सिंह	२५०००	४०
६—सुलतान	सुल्तानोत	चाँदसर	...	...	...
७—पचायन	पचायनोत	सम्बूरा	सूलीसिंह	१७७००	३२
८—गोगा	गोगावत्	धूनी	राव चाँदसिंह	७००००	८८
९—कायम	खूमबानी	भाँसरवो	पद्मसिंह	२१५३५	३१
१०—कुम्भो	कुम्भावत	माहर	रावत स्वरूप सिंह	२७५३८	४५
११—सूरत	शिवबरन	नीन्दिर	रावत हरिसिंह	१००००	१९
१२—बनबीर	बनबीरपोता	बाटको	स्वरूप सिंह	१९०००	३४

इन बारह प्रधान सामन्तों के सिवा आमेर-राज्य में और भी सामन्त थे, उनकी आमदनी, सेना और अन्यान्य बातों का उल्लेख जो पाया है, वह इस प्रकार है :

वंश का नाम	अधीन सामन्त	समस्त आमदनी	अश्वारोही सैनिक
१—चतुर्भुजोत	६	५३८०	६२
२—कल्याणोत	१६	२४५१६६	४२२
३—नाथावत्	१०	२२०८००	३७१
४—बलभद्रोत	२	१३०८५०	१५७
५—खाँगारोत	२२	४०२८०६	६४३
६—सुल्तानोत	—	—	—
७—पचायनोत	३	२४७००	४५
८—गोगावत्	१३	१६७६००	२७३
९—कुम्भानी	२	२३७८७	३५
१०—कुम्भावत	६	४०७३८	६८
११—शिवबरनपोता	३	४६५००	७३
१२—बनवीरपोता	३	२६५७५	४८
१३—राजावत	१६	१९८१३७	३९२
१४—नरूका	६	६१०६६	६२
१५—बाँकावत	४	३४६००	५३
१६—पूर्णमलोत	१	१००००	१६
१७—भाटी	४	१०४०३६	२०५
१८—चौहान	४	३०५००	६१
१९—बड़गूजर	६	३२०००	५८
२०—चन्दावत	१	१४०००	२१
२१—सीकरवार	२	४५००	८
२२—गूजर	३	१५३००	३०
२३—राँगड़	६	२९११०५	५४६
२४—खेतड़ी	४	१२००००	२८१
२५—ब्राह्मण	१२	३१२०००	६०६
२६—मुसलमान	९	१४१४००	२७४

ऊपर जो तालिका दी गयी है, उसमें एक से बारह तक आमेर के प्रधान सामन्त हैं। तेरह से सोलह तक कुशवाहा वंशज हैं और उनकी गणना बारह सामन्तों में नहीं होती। अन्तिम दस विदेशी सामन्त हैं, उनके वंशज अलग अलग हैं।

यहाँ पर राज्य के कुछ प्रसिद्ध और प्राचीन नगरों का संक्षेप में वर्णन करके हम इस परिच्छेद का अन्त कर रहे हैं। अनुसंधान करने से इन नगरों की प्राचीनता के सम्बन्ध में बहुत-सी बातें जानी जा सकती हैं।

मोरा—देवनशाह से पूर्व की तरफ अठारह मील की दूरी पर बसा हुआ है, मोरध्वज नामक चौहान राजा ने इसकी प्रतिष्ठा की थी।

आभानेर—यह नगर लालसोन्ट से तीन कोस पूर्व की तरफ है। यह नगर बहुत प्राचीन है और यहाँ पर कभी एक चौहान राजा की राजधानी थी।

भानगढ़—यह नगर थोलाई से पांच कोस की दूरी पर है। यह नगर और उसका प्रसिद्ध दुर्ग—दोनों नष्ट हो चुके हैं। कुशवाहा राजाओं के अभ्युदय के पहले ढूंढाड के प्राचीन राजाओं के द्वारा इसका निर्माण हुआ था।

अमरगढ़—खुशालगढ़ से तीन कोस की दूरी पर है। नाग वंशियों के द्वारा इसका निर्माण हुआ था।

बीरात—माचेडी में बूसे से तीन कोस के फासिले पर है। कहा जाता है कि पाण्डवों के द्वारा यह बसाया गया था।

पाटन और गनीपुर—इन दोनों को दिल्ली के प्राचीन तोंअर राजाओं ने बसाया था।

खुरार अथवा खण्डार—रणथम्मोर के करीब है।

ओटगिर—चम्बल के किनारे पर है।

आमेर, अम्बेर अथवा अम्बेश्वर—यह नगर इन तीनों नामों से प्रसिद्ध रहा है। यहां पर शिव जी का एक प्राचीन मन्दिर है, उसमें एक कुण्ड है और कुण्ड के मध्य में शिवलिङ्ग की मूर्ति है। कुण्ड के जल से यह मूर्ति लगभग आधी डूबी है, सर्व साधारण में इस प्रकार का एक विश्वास भरा हुआ है कि शिवलिङ्ग की मूर्त्ति जल में जब डूब जायगी, जयपुर राज्य का उस समय पतन हो जायगा।×

× मूल ग्रन्थ में शेखावाटी का इतिहास जयपुर राज्य से अलग नहीं है, इसलिए टॉड साहब ने शेखावाटी के इतिहास का अंत इस रूप में किया है—अनुवादक

बूँदी का इतिहास

सरसठवाँ परिच्छेद

बूँदी कोटा के राज्य–हाड़ा वंश की शाखा–उस वंश का आदि पुरूष–परशुराम के द्वारा क्षत्रियों का संहार–ब्राह्मणों का शासन–अराजकता की वृद्धि–विश्वामित्र की चिंता–यज्ञ का अनुष्ठान–क्षत्रियों की उत्पत्ति–असुरों के साथ क्षत्रियों का युद्ध–कुल देवियों की सहायता–अग्निवंश में उत्पन्न होने वाले क्षत्रियों की श्रेष्ठता–वे क्षत्री कौन थे ?–चौहन, परिहार, सोलंकी और प्रमार अग्निवंशी राजपूत–चाहनो का विस्तृत राज्य–अहीर वश के लोगों का विस्तार–चक्रवर्ती राजा अजय पाल–राजपूताना में मुसलमानों का प्रवेश–इस्लाम धर्म प्रचारक रोशन अली–सिंध में मुसलमानों की फौज–माणिक राय का संकट–शाकम्भरी देवी का आशीर्वाद–राजस्थान की प्रसिद्ध नमक की झील–साँभर का प्राचीन नाम–चम्बल नदी के किनारे भदौरिया राजपूत–मरूभूमि में माणिक राय के वशज–सुलतान महमूद का आक्रमण–चौहनों की वंशा वली !

राजस्थान में हाड़ौती हाड़ा वंश के राजपूतों का देश है। उसमें दो राज्य हैं, एक का नाम है बूंदी और दूसरे का नाम है कोटा। इन दोनों को मिलाकर पहले एक ही राज्य था। लेकिन तीन सौ वर्षों से वह राज्य दो भागों में विभाजित हो गया है। चम्बल नदी उन दोनों के बीच में प्रवाहित होती है और यही नदी दोनों राज्यों की सीमा हो गयी है। इन दोनों राज्यों में हाड़ा वंश के राजपूत रहते हैं। इस वंश के नाम से ही प्राचीन काल में इस नाम का राज्य हाड़ौती रखा गया था। इस हाड़ौती देश के बूंदी-राज्य का इतिहास नीचे लिखा गया है।

चौहान राजपूतों की चौबीस शाखायें हैं। हाड़ा उनकी एक प्रसिद्ध शाखा है। अजमेर के राजा माणिक राय का लड़का अनुराज इस शाखा का आदि पुरुष माना जाता है। माणिक राय ने सम्बत् ७४१ सन् ६८५ ईसवी में सबसे पहले मुसलमानों के साथ युद्ध किया था। हाड़ा वंश के उस समय का इतिहास बहुत स्पष्ट नहीं है। उसकी अनेक घटनायें संदेहात्मक हैं। चन्द कवि ने उसके सम्बन्ध में जो कुछ लिखा है, यद्यपि वह भी स्पष्ट नहीं मालूम होता। फिर भी हमें इस स्थल के वर्णन करने में उसी का आश्रय लेना पड़ा है। परशुराम ने इक्कीस बार भयानक रूप से क्षत्रियों का संहार किया था। उस समय कुछ क्षत्रियों ने अपने आपको कवि कहकर और उनमें से कुछ लोगों ने स्त्रियों का रूप धारण करके अपने प्राणों की रक्षा की थी।

क्षत्री राजाओं का संहार करके परशुराम ने इस देश का शासन ब्राह्मणों को सौंप दिया था। नर्बदा नदी के किनारे माहेश्वर नगर के हैहय वंश के राजा सहस्त्रार्जुन ने परशुराम के पिता को मारकर क्षत्रियों के प्रति उस संघर्ष को उपस्थित किया था और उसी के परिणाम स्वरूप परशुराम ने एक तरफ से क्षत्रियों का नाश किया था।

ब्राह्मण शासन करना नहीं जानते थे। उनके अधिकार में अभिशाप और आशीर्वाद देने के ही दो गुण थे। इसलिए उनके हाथों में शासन आते ही चारों तरफ अराजकता का जन्म हुआ। सार्वजनिक जीवन की शांति मिटने लगी और अशान्ति की वृद्धि होने लगी। अन्याय और अत्याचार करने में किसी को भय न रहा। चोरों लुटेरों के भय बढ़ने लगे। अच्छे कामों का अंत हो गया, धार्मिक ग्रंथ पैरों से कुचले जाने लगे। अत्याचारों के द्वारा भले आदमियों का जीवन संकटमय बन गया। शासन की अयोग्यता के कारण जितनी भी परिस्थितियाँ पैदा हो सकती हैं। ब्राह्मणों के शासन में वे सब उत्पन्न हो गयीं।

विश्वामित्र को यह सब देखकर अपार दुख। उसने भलीभाँति इस बात को समझ लिया कि क्षत्रियों के शासन के बिना इस अराजकता का अंत नहीं हो सकता। इसलिए उस महर्षि ने क्षत्रियों के शासन को फिर से लाने के लिए एक योजना तैयार की। आबू शिखिर के जिस स्थान पर ऋषि और मुनि रहा करते थे और अपने तप से उन्होंने जिस स्थान को पवित्र किया था, वहाँ पर जाकर क्षत्रियों के शासन की सृष्टि के लिए विश्वामित्र ने यज्ञ करने का अनुष्ठान किया। उसकी सहायता के लिए वहाँ के समस्त ऋषि और मुनि तैयार हो गये। वे सभी भगवान के पास गये और उन्होंने बढ़ी हुई अराजकता का वर्णन करके उसको दूर करने के लिए भगवान से प्रार्थना की। ऋषियों और मुनियों की प्रार्थना को सुनकर भगवान ने क्षात्रियों की सृष्टि करने का आदेश दिया। ऋषि और मुनि उस आदेश को सुनकर इन्द्र, ब्रह्मा, रूद्र और विष्णु के साथ आबू शिखर पर आये। यज्ञ का कार्य आरम्भ हो गया। उसके समस्त कार्यों को पूरा करने के लिए आये हुए देवताओं ने सलाह दी। इन्द्र ने हरी दूब से एक पुतली बनाकर उसे यज्ञ के जलते हुए कुण्ड में डाल दिया। इसी समय संजीवन मंत्र का पाठ हुआ। उस पाठ के समाप्त होते-होते दाहिने हाथ में गदा लिए हुए मार-मार की आवाज करता हुआ वीर पुरूष बाहर निकला। उसके मुख से निकलने वाले शब्दों के आधार पर उसका नाम प्रमार रखा गया। देवतावों ने उसको शासन करने के लिए आबू, धार और उज्जैन नामक नगर दिये।

इसके पश्चात पद्मासन बैठकर ब्रह्मा ने दूब की एक पुतली बनाकर अग्निकुण्ड में डाली। यज्ञ-कुण्ड में उस पुतली के गिरते ही एक वीर पुरुष का अविभाव हुआ। उसके एक हाथ में तलवार और दूसरे हाथ में वेद-ग्रंथ था। उसका नाम चालुक अथवा सोलंकी रखा गया। उसको राज्य करने के अनहलपुर पट्टन दिया गया।

तीसरे देवता महादेव ने दूब लेकर एक पुतली बनायी और उसको गंगा के चल में स्नान कराकर अग्नि-कुण्ड में डाल दी। उसके साथ ही मन्त्रों का पाठ हुआ। मन्त्रों के उच्चारण होते ही धनुष-बाण हाथ में लिए हुए कृष्ण-वर्ण मूर्त्ति का एक वीर पुरुष अग्नि-कुण्ड से निकला। असुरों के साथ युद्ध करने के लिए उसको प्रस्तुत न देख कर उसका नाम परिहार रखा गया और द्वार की रक्षा का उत्तरादायित्व उसको दिया गया। इसके बाद उसको मरुस्थली के नौ स्थान दिये गये।

चौथे देवता विष्णु ने दूब को अपने हाथों में लेकर एक पुतली बनायीं और मंत्रों से उच्चारण के साथ-साथ उस पुतली को अग्नि-कुण्ड में डाल दिया। उसके बाद ही अपने चारों हाथों में अस्त्र लिए हुए एक वीर पुरुष निकला। चार हाथ होने के कारण उसका नाम चतुर्भुज चौहान रखा गया। उसको मैहकावती नगर का शासन दिया गया। इस समय जो स्थान गढा मंडला के नाम से मशहूर है, उस समय वह मैहकावती के नाम से प्रसिद्ध था।

यज्ञ के कार्य को असुर और दानव बड़ी गम्भीरता से देख रहे थे और उनके दो प्रधान अग्नि-कुण्ड के बहुत समीप खड़े थे। यज्ञ का कार्य समाप्त होने पर चारों शूरवीर क्षत्री असुरों और दानवों के साथ युद्ध करने के लिए भेजे गये। उन चारों क्षत्रियों ने उनके साथ भीषण युद्ध आरम्भ किया। क्षत्रियों के द्वारा जो असुर और दानव कट-कट कर जमीन पर गिरते थे, उनके शरीर से निकलने वाले रक्त से नवीन असुर और दानव पैदा होकर युद्ध करने लगते थे। इससे उस युद्ध के कभी अंत होने का अनुमान नहीं लगाया जा सकता था। इस दशा में चारों क्षत्रियों की कुल देवियों ने युद्ध-क्षेत्र में प्रवेश किया और घायल होकर गिरने वाले असुरों एवम् दानवों के रक्त को पीना आरम्भ किया। इसका परिणाम यह हुआ कि उनके रक्त से जो नये असुर और दानव पैदा हो जाते थे, उनका उत्पन्न हो जाना बंद हो गया। इसलिए युद्ध करने वाले असुरों और दानवों का अंत हो गया।

चारों क्षत्रियों की जिन कुल देवियों ने युद्ध-क्षेत्र में पहुँचकर असुरों और दानवों के रक्त का पान किया था, उनके नाम इस प्रकार पढ़ने को मिलते है :

चौहान की कुलदेवी	...	आशा पूर्णा
परिहार की कुलदेवी	...	गाजन माता
सोलंकी की कुलदेवी	...	क्यूंज माता
प्रमार की कुलदेवी	...	सञ्चायर माता

असुरों और दानवों का अंत हो जाने के बाद देवताओं ने आकाश में जयध्वनि की। स्वर्ग से फूलों की वर्षा की गयी। इसके बाद स्वर्ग लोक से देवताओं ने आकर विजयी क्षत्रियों की प्रशंसा की।

क्षत्रियों के छत्तीस वंशों में अग्नि वंश सब से श्रेष्ठ है। क्योंकि उनके अतिरिक्त जो राजपूत वंश हैं, वे स्त्रियों के गर्भ से उत्पन्न हुए हैं। लेकिन जो वंश अग्नि से उत्पन्न हुए हैं, वे श्रेष्ठ और पवित्र हैं।

चन्द कवि का आश्रय लेकर हमने ऊपर लिखा है कि परशुराम के द्वारा क्षत्री राजाओं के मारे जाने पर यज्ञ का जो अनुष्ठान हुआ, उसमें ऐसे क्षत्रियों की उत्पत्ति हुई जो राक्षसों और दानवों का नाश कर सके। हमें इसके सम्बन्ध में किसी प्रकार का तर्क नहीं करना चाहिए। उसकी आवश्यकता भी नहीं है। लेकिन चन्द कवि ने अपने ग्रंथ में जो दस प्रकार का वर्णन किया है, उसमें सत्य है, परन्तु उस सत्य को इतिहास का रूप नहीं दिया गया। एक इतिहासकार को तो इस बात का अनुसंधान करना ही पड़ेगा कि क्षत्रिय राजाओं के अभाव में बढ़ती हुई अराजकता को नष्ट करने के लिए और अत्याचारियों को निर्मूल करने के लिए जो चार शूरवीर क्षत्रिय यज्ञ के द्वारा उत्पन्न किये गये, वे कौन थे। उस समय का इतिहास यह था कि अच्छे शासकों का पूर्ण रूप से अभाव था और उस अभाव में शासन का नियंत्रण नहीं रहा था। इसीलिए सभी प्रकार की अशान्ति और अव्यवस्था पैदा हो गयी थी। उस समय विश्वामित्र को चिन्तित होकर उस यज्ञ का अनुष्ठान करना पड़ा। उस समय जो लोग पैदा हुए और समाज के अधिकरियों के द्वारा स्वीकृत हुए, वे या तो यहाँ के आदिम निवासी रहें होंगे अथवा वे कोई विदेशी थे। उनकी शक्तियों को समझकर ब्राह्मणों ने उनको शासन के अधिकारियों के रूप में स्वीकार किया। इन दो के सिवा किसी तीसरे की कल्पना नहीं की जा सकती। अब प्रश्न यह पैदा होता है कि वे कौन थे ? इसका निर्णय आसानी के साथ किया जा सकता है। यहाँ के आदिम निवासियों की शारीरिक आकृति और बनावट के साथ यदि विदेशियों की तुलना की जाय तो समझ में आ सकता है कि वे लोग इन

दोनों में कौन थे ? यहाँ के आदिम निवासी लोगों का रंग काला होता है और उन में किसी प्रकार की श्री और सुन्दरता नहीं होती । लेकिन यज्ञ-कुण्ड से जो चार क्षत्री पैदा किये गये, वे प्राचीन राजाओं के समान शक्तिशाली, श्रीयुक्त और प्रभावशाली थे । अग्नि-कुण्ड से पैदा होने वाले चारों क्षत्रियों के बल, और पराक्रम ठीक उसी प्रकार पाये जाते हैं, जिस प्रकार प्राचीन भारत में सीथियन लोगों में पाये जाते थे ।

चौहान, परिहार, सोलंकी और प्रमार-चार क्षत्रिय वंश अग्नि से उत्पन्न हुए थे । इन चारों में चौहान वंशी क्षत्रिय अधिक प्रबल थे और इसीलिए उन्होंने अपने राज्य को बड़े विस्तार में कायम कर लिया था । प्रमार वंशी राजाओं का शासन उन दिनों में बड़े विस्तार में फैलता जा रहा था । उसके विस्तार के सम्बन्ध में एक प्रबल लोकोक्ति अब तक पायी जाती है, लेकिन चौहान राजाओं के शासन के विस्तार का खोजना बहुत कुछ कठिन मालूम होता है । उस समय के मिले हुए प्रमाणों के पढ़ने से जाहिर होता है कि जिस समय प्रमार वंशी राजाओं का वैभव बढ़ रहा था, चौहानों का गौरव लगातार घटता जा रहा था ।

चौहान वंश के इतिहास को पढ़ने से जाहिर होता है कि उनका शासन किसी समय बड़े विस्तार में फैला हुआ था । लेकिन वह अधिक समय तक स्थायी नहीं रह सका । मैहकावती से माहेश्वरी पुरी तक नर्मदा नदी के दोनों किनारों के उत्तर और दक्षिण में चौहानों का राज्य था । उस वंश के प्रबल और शक्तिशाली होने के कारण माण्डू, आसेर, गोलकुण्डा और कोकन तक एवम् उत्तर की तरफ गंगा के किनारे तक चौहानों का राज्य फैला हुआ था । प्रसिद्ध कवि चन्द ने चौहान राजाओं के वैभव को अपने ग्रंथ में बड़े विस्तार के साथ वर्णन किया है । उसने लिखा है कि चौहान वंशी राजाओं ने अपने बल और पराक्रम से ठट्ठा, लाहौर, मुल्तान और पेशावर आदि पर अधिकार करके भारत में अपने राज्य का विस्तार किया था । × वहाँ पर जो असुर लोग शासन करते थे, वे चौहानों के भय से भाग गये थे । दिल्ली और काबुल में चौहानों का शासन था । चौहानों के द्वारा ही नैपाल का राज्य माल्हन को मिला था ।

यह पहले ही लिखा जा चुका है कि गढ़ मण्डला का प्राचीन नाम मैहकावती था । * उस मैहकावती के राजाओं की उपाधि बहुत समय से पाल थी । मालूम होता है कि पशुओं का पालन करने के कारण उनको यह उपाधि मिली थी । अहीर वंश के लोगों ने किसी समय समस्त मध्य भारत पर अधिकार कर लिया था । यह अहीर शब्द पाल से बहुत-कुछ सम्बन्ध रखता है और अहीर जाति उस वंश की शाखा मालूम होती है । पाल अथवा पालियों का जिन नगरों पर अधिकार था, उनमें भेलसा, भोजपुर, दाप, भूपाल, आइरन, और गर्सपुर आदि प्रमुख हैं ।

× मुस्लिम इतिहासकार ने इस को स्वीकार करते हुए लिखा है कि सम्बत् ७४६ में मुसलमान जिस समय पहले पहल भारतवर्ष पर आक्रमण करने के लिए आये थे, उस समय लाहौर और अजमेर में चौहन वंश के हिन्दू राजाओं का शासन था और वहाँ का राजा मुस्लिम आक्रमण का सामना करने के लिए तैयार हुआ था । यह बात भी सही है कि अजमेर में चौहानों की राजधानी थी ।

* यहाँ के प्राचीन ग्रन्थों से पता चलता है कि माल्हन चौहन वंश की एक शाखा है । सिकन्दर के भारत पर आक्रमण करने के समय समुद्र के तटवर्ती नगरों पर जिस मल्लारी नाम के राजा ने आक्रमण किया था, वह माल्हन वंश का था, ऐसा मालूम होता है । चौहानों की इस शाखा का अब कहीं कोई अस्तित्व नहीं मिलता । पाँच सौ वर्ष पहले इस शाखा को कोई नहीं जानता था । हाड़ा वंश के एक बूँदी नरेश ने किसी माल्हन स्त्री के साथ विवाह किया था ।

मेहकावती के एक राज वंशज ने—जिसका नाम अजयपाल था—अजमेर-राज्य की प्रतिष्ठा की थी और वहां पर उसने तारागढ़ नाम का एक बहुत मजबूत दुर्ग बनवाया। प्राचीन राजाओं में अजयपाल का नाम भारतवर्ष में आज तक प्रसिद्ध है। प्राचीन ग्रंथों से साफ प्रकट होता है कि वह एक चक्रवर्ती राजा था। लेकिन उसके शासन के समय का ग्रंथों में कोई उल्लेख नहीं मिलता। पाली भाषा में लिखे हुए जो शिला लेख हमको मिले हैं, उनका हम कोई लाभ नहीं उठा सके। पृथ्वीपहाड़ मेहकावती से अजमेर आया था। उसके आने का कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता। परंतु उसके आने का कारण यह मालूम होता है कि राजा के पुत्रहीन होने की अवस्था में वह अजमेर आया था। उसकी स्त्री से चौबीस लड़के उत्पन्न हुए। उन दिनों में वहाँ पर बहु विवाह की प्रथा प्रचलित न थी। माणिकराय उसके चौबीस पुत्रों में से एक का वंशज था और वह सम्बत्-७४१ सन् ६८५ ईसवी में अजमेर एवम् सांभर का अधिकारी हुआ। कहा जाता है कि माणिकराय के समय से चौहानों के इतिहास को अंधकार से मुक्ति मिली।

सम्बत् ७४१ सन् ६८५ ईसवी के दिनों में ही पहले पहल मुसलमानों ने राजपूताने में प्रवेश किया। उस समय दुर्लभ अथवा दूलेराय अजमेर के सिंहासन पर था। मुसलमानों के साथ युद्ध में वह मारा गया। उसका इकलौता सात वर्ष का बेटा दुर्ग के ऊपर खेल रहा था। शत्रुता के द्वारा उसकी भी मृत्यु हुई। दुर्लभराय ने रोशन अली नाम के एक इस्लाम धर्म प्रचारक के साथ अन्याय किया था। उसने अली का अँगूठा कटवा लिया था। इसके बाद वह मक्का चला गया और वहां पहुँच कर मूर्त्ति पूजक राजपूतों के विरुद्ध उसने बहुत-सी बातें कहीं। उनसे उत्तेजित हो कर मुसलमानों ने सिंध के रास्ते से अजमेर में पहुँचकर आक्रमण किया और दुर्लभराय तथा उसके लड़के को मार कर मुसलमानों ने गढ़बीटली पर अधिकार कर लिया। इस युद्ध का वर्णन कहां तक सही है, यह नहीं कहा जा सकता। उसके सम्बन्ध में एक दूसरी घटना भी पढ़ने को मिलती है। उससे मालूम होता है कि उन्हीं दिनों में खलीफा उमर ने मुसलमानों की एक फौज सिंध में भेजी थी। अबुलयास उस सेना का अधिकारी था। आलोर पर अधिकार करने के समय अबुल यास मारा गया। मालूम होता है कि उसके बाद मुसलमानों की उत्तेजित फौज ने मरुभूमि में जाकर राजपूतों पर आक्रमण किया था।

किसी भी परिस्थिति में अजमेर का अधिकारी दुर्लभराय मारा गया और अजमेर पर शत्रुओं का अधिकार हो गया। इस घटना को चौहान कभी भूल न सके और उसके स्मारक के रूप में वे लोग अब तक दुर्लभ राय के स्वर्गीय पुत्र लौठ की पूजा करते हैं। चन्द कवि के अनुसार, दुर्लभ राय का उत्तराधिकारी बेटा लौठ देव जेठ महीने की बारहवीं तिथि सोमवार के दिन मरा था।

मुसलमानों के आक्रमण करने और दुर्लभराय के मारे जाने पर माणिकराय बड़े संकट में पड़ गया। अपने प्राणों की रक्षा करने के लिए वह अपने नगर से भाग गया। उस समय शाकम्भरी देवी के उसको दर्शन हुए। देवी ने माणिकराय से कहा—"तुम इस स्थान पर अपना राज्य कायम करो और अपने घोड़े पर बैठकर तुम जितनी दूर जा सकोगे, उतनी दूर तक तुम्हारे राज्य की सीमा का विस्तार होगा। लेकिन इस बात का स्मरण रखना कि जब तक तुम लौटकर इस स्थान पर न आ जाओ, घोड़े पर चढ़ कर जाने के समय तुम किसी समय अपने पीछे की तरफ न देखना।"

देवी के आशीर्वाद को सुनकर माणिकराय उस स्थान से अपने घोड़े पर बैठ कर रवाना हुआ। कुछ दूर निकल जाने के बाद वह देवी की आज्ञा को भूल गया। उसने अपने पीछे की तरफ

देखा। उसे बड़ा आश्चर्य मालूम हुआ ।जहाँ तक उसकी दृष्टि गयी, सम्पूर्ण मरुभूमि श्वेत चद्दर से ढकी हुई दिखायी पड़ी। राजस्थान की प्रसिद्ध नमक की झील की उत्पत्ति का यही कारण कहा जाता है। माणिकराय ने उस झील का नाम देवी के नाम पर शाकम्भरी झील रखा और उस झील के कुछ फासले पर एक छोटे-से द्वीप में देवी की प्रतिष्ठा की । उस देवी की प्रतिमा आज तक वहाँ पायी जाती है। शाकम्भरी का नाम बहुत दिनों के बाद बिगड़ कर साँभर हो गया है।

माणिकराय ने—जो उत्तरी भारत के चौहनों का आदि पुरुष माना जाता है—अजमेर पर अपना अधिकार कर लिया। उसके कई संतानें पैदा हुईं। उसके वंशजों ने पश्चिम राजस्थान में पहुँच कर बहुत-सी शाखाओं की सृष्टि की और सिंध नदी तक उनका विस्तार हो गया। खीची, हाड़ा, मोयल, निरवान, भदौरिया, भूरेचा, धनेरिया अथवा धुंधेरिया और बाचडेचा आदि समस्त शाखाये मणिकराय के वंशजों के द्वारा पैदा हुई हैं। खीची शाखा के लोगों ने दूरवर्ती दो आब में जाकर जो—सिंध सागर के नाम से प्रसिद्ध है— रहना आरम्भ किया। वहाँ की भूमि का विस्तार बेतवा नदी से लेकर सिंध नदी तक अड़सठ कोस है। उसकी राजधानी का नाम खीची पुर पाटन था हाड़ा शाखा के लोग हरियाना प्रान्त के असी अथवा हाँसी नामक स्थान को जीत कर वहाँ रहने लगे और उनकी एक शाखा गोबाल कुण्ड—जो अब गोलकुण्डा के नाम से प्रसिद्ध है—पहुँच गयी और उसके बाद उस शाखा के लोगों ने वहाँ से चल कर आसेर नामक स्थान पर अधिकार कर लिया। मोयल लोगों ने नागौर के आस-पास के सब स्थानों पर अधिकार कर लिया था। भदौरिया लोगों ने चम्बल नदी के किनारे विस्तृत भूमि पर अधिकार कर लिया। वह भूमि उसी शाखा के नाम से आज तक भदावर नाम से प्रसिद्ध है और अब तक उन्हीं के अधिकार में है। धुंधेरिया शाखा के लोगोंने शाहाबाद जाकर रहना आरम्भ किया था। यह स्थान कुछ दिनों के बाद कोटा की हाड़ा शाखा के अधिकार में चला गया। उनमें से एक शाखा के लोगों ने नारोल में रहना आरम्भ किया था। × परन्तु उन लोगों ने अपने मूल वंश चौहान को कभी नहीं छोड़ा।

माणिकराय के वंशजों ने मरुभूमि में फैल कर बहुत से स्थानों पर अधिकार कर लिया था। उनमें से कुछ लोगों ने स्वतन्त्रता पूर्वक शासन किया और कुछ लोगों ने स्वाजातीय राजाओं की अधीनता में शासन किया।

× नारोल अथवा नाडोल किसी समय बहुत सम्पन्न था। अनेक बातों के द्वारा इस बात के प्रमाण पाये जाते है। आठवीं शताब्दी से लेकर बारहवीं शताब्दी तक वह अपनी समृद्धि के लिए विख्यात रहा। सम्वत् १०३६ सन् ९८३ ईसवी में राव लाखनसी वहाँ के सिंहासन पर था। उसने नाहर वाला के राजा के साथ युद्ध किया । ग्रन्थों में इस बात के उल्लेख पाये जाते हैं कि संवत १०३६ में चौहान राजा ने पाटन और मेवाड़ से कर वसूल किया था। उन दिनों में उसकी शक्तियाँ अत्यन्त प्रबल थीं। सुबुक्त गीन और उसके लड़के महमूद ने लक्ष्मण के शासन-काल में नाडोल पर आक्रमण किया था और भयानक रूप से उसे लूट कर वहाँ के दुर्ग को बुरी तरह से नष्ट कर दिया था। लेकिन समय का परिवर्तन हुआ। परिस्थितियों के बदलने में देर नहीं लगती। नाडोल के राजा ने अपने खोये हुए गौरव को फिर से प्राप्त कर लिया।

तेरहवीं शताब्दी से इस वंश के लोगों ने अलाउद्दीन के साथ युद्ध किया था और उस युद्ध में वे लोग अधिक संख्या में मारे गये थे। नाडोल के राजा ने शहाबुद्दीन को कर देकर अधीनता स्वीकार की थी।

जागा नामक ग्रंथ में माणिकराय से लेकर वीसलदेव तक ग्यारह राजाओं के नामों का उल्लेख मिलता है। उनमें हर्षराज के बल-पौरुष की प्रशंसा जागा तथा हमीर रासा नामक ग्रंथों में विशेष रूप से की गयी है। हर्षराज का प्रताप अर्बली के शिखर से लेकर आबू के शिखर तक एवम् पूर्व में चम्बल नदी तक फैला हुआ था। उसने सम्बत् ८१२ से ८२७ तक शासन किया। युद्ध में उसने आश्चर्य जनक पराक्रम का प्रदर्शन करके अन्त में अपने प्राणों की आहुति दी। तवारीख फरिश्ता में लिखा है कि एक सौ तेंतालीस हिजरी में मुसलमानों की संख्या बहुत बढ़ गयी थी। बहुत बड़ी संख्या में उन्होंने पर्वत से आकर किरमान, पेशावर और दूसरे अनेक प्रसिद्ध स्थानों पर अधिकार कर लिया। अजमेर के राजा का वंशीय लाहौर में शासन करता था। उसने इन अफगानों के विरुद्ध युद्ध करने के लिए अपने भाई को भेजा। उसके साथ काबुल के खिलजी और गोरी जाति के लोगों ने मिलकर अफगानों के साथ युद्ध किया। लेकिन अन्त में उनको इस्लाम धर्म मंजूर कर लेना पड़ा। पाँच महीने के समय में राजपूत घबराकर और परास्त होकर भाग गये। लेकिन शीतकाल के दिन व्यतीत हो जाने पर राजपूतों ने नयी सेना के साथ फिर से युद्ध की तैयारी की और राजपूतों की सेना पेशावर के मध्यवर्ती स्थानों में पहुँच गयी। दोनों तरफ से फिर भयानक संग्राम आरम्भ हुआ। उस युद्ध में कभी राजपूत विजयी होकर अफगान सेना को परास्त करके कोहिस्तान तक अधिकार कर लेते और कभी अफगानी फौज राजपूतों को पराजित करके पीछे हटा देती।

अजमेर का राजा इन युद्धों में कभी शामिल हुआ था अथवा नहीं, इसका कोई उल्लेख राजपूतों के ऐतिहासिक ग्रन्थों में नहीं मिलता। हमीर रासा में लिखा है कि हर्ष राजा के बाद दुजगनदेव अथवा दुर्जदेव सिंहासन पर बैठा था। दुजगनदेव ने नासिरुद्दीन नामक मुस्लिम सेनापति को युद्ध में पराजित करके उसके बारह सौ घोड़े अपने अधिकार में कर लिए थे। महमूद के पिता सुबुक्तगीन का दूसरा नाम नासिरुद्दीन था। अलप्तगीन के पन्द्रह वर्षों के शासन में सुबुक्तगीन अनेक बार भारतवर्ष पर आक्रमण करने के लिए आया था।

इसके बाद बीसलदेव के समय तक की महत्व पूर्ण ऐतिहासिक घटना नहीं मिलती। राजा बीसलदेव के पिता का नाम, हाड़ा जाति की वंशावली के अनुसार, धर्मगज था। परन्तु जागा की वंशावली में बेलनदेव नाम लिखा गया है। अनुसंधान करने से पता चलता है कि उसका वास्तविक नाम वेलनदेव था। वह धार्मिक मनुष्य था, इसीलिए उसको धर्मगज की उपाधि मिली थी। दिल्ली के विजय स्तम्भ में एक प्रस्तर पर लिखा हुआ जो कुछ पढ़ने को मिला है, उससे भी इसी बात का समर्थन होता है। सुलतान महमूद ने अन्तिम बार जब भारत पर आक्रमण किया था, उस समय वेलनदेव सिंहासन पर था। उसने युद्ध करके सुलतान महमूद को पराजित किया था और उसे अजमेर से भगा दिया था। परन्तु वह भी उस युद्ध में मारा गया।

गोगा चौहान नामक एक लड़का बच्चा राजा का था। उसने बहुत गौरव प्राप्त किया और सतलज से हरियाना तक समस्त विस्तृत जांगल भूमि को उसने अपने अधिकार में कर लिया था। सतलज नदी के किनारे महलावा 'गोगा की भैडी' नामक उसकी राजधानी थी। सुलतान महमूद के आक्रमण से अपनी राजधानी को सुरक्षित रखने के लिए गोगा चौहान ने भयानक युद्ध किया था और अंत में अपने पैंतालीस लड़कों और साठ भतीजों के साथ वह युद्ध में मारा गया। राजस्थान के छत्तीस वंशी राजपूत उसकी मृत्यु के दिन उसकी समाधि-मंदिर में एकत्रित

होते हैं। मरुस्थली में गोगा का बल आज तक प्रसिद्ध है। गोगा के घोड़े का नाम जवादिया था।× इसीलिए अधिकांश राजपूत अपने उस घोड़े का नाम जवादिया रखा करते हैं, जो युद्ध में काम आते हैं।

ऐसा मालूम होता है कि ऊपर जिस युद्ध का वर्णन किया गया है, वह उस समय हुआ हो, जब महमूद ने भारत के बाकी हिस्सों को जीतने की चेष्टा की थी। उस समय सुलतान महमूद अपनी फौज लेकर मरुभूमि में गया होगा और अजमेर पर उसके आक्रमण करते ही चौहान राजा अपना स्थान छोड़कर भाग गया हो, यह सम्भव हो सकता हो। उस दशा में महमूद की सेना ने अजमेर और उसके आस-पास के नगरों को लूटकर विध्वंस और विनाश किया हो, इसका अनुमान किया जा सकता है। उस समय राजपूत राजा ने गढवीठली नामक दुर्ग की रक्षा की। वहाँ पर परास्त और घायल होकर महमूद नाडोल की तरफ भागा और वहाँ पहुँचकर उसने लूटमार की। इसके पश्चात् उसने नहरबाला पर अधिकार कर लिया। सुलतान महमूद ने जिन ग्रामों और नगरों पर अधिकार किया था, वहां उसने भयानक अत्याचार किये। इसलिए वहां के रहने वाले सभी लोग महमूद के शत्रु हो गये। उस दशा में महमूद को वहां के पश्चिमी मरुभूमि के रास्ते से होकर भागना पड़ा और वह रास्ता उसकी फौज के लिए अत्यन्त भयानक हो गया।

कवि चन्द ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ में वीसलदेव के शासन का समय सम्वत् ६२१ लिखा है। परन्तु यह किसी प्रकार सही नहीं मलूम होता।

उस समय के समस्त हिन्दू राजाओं में वीसलदेव का नाम अधिक प्रसिद्ध था। उसके इस प्रताप और गौरव को सुनकर सुलतान महमूद लुटेरों की एक बहुत बड़ी फौज लेकर इस देश में आया था। उस युद्ध में अनहिल वाड़ा के चालुक्य राजा को छोड़कर सभी राजाओं ने वीसलदेव का साथ दिया था। क्योंकि वे सभी उसकी प्रधानता में शासन करते थे। उस युद्ध में शामिल होने के लिए कितने राजा अपनी सेनाओं के साथ वीसलदेव की तरफ से आये थे, उनका वर्णन चन्द कवि ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ में इस प्रकार किया है:

गोयलवाल जैत पर विश्वास करके अजमेर के राजा ने कहा—'मैं आप की राजभक्ति पर विश्वास करता हूँ। चालुक्य राजा को कहाँ आश्रय मिलेगा।' यह कहकर वीसलदेव ने अपनी सेना के साथ अजमेर नगर से रवाना होकर वीसल * नामक सरोवर के तट पर पहुँचकर

× राजपूतों के एक ऐतिहासिक ग्रन्थ में लिखा है कि गोगा चौहान के पहले कोई लड़का नहीं था। उससे वह चिंतित रहा करता था। एक दिन उसकी कुलदेवी ने गोगा को दो जव दिये। गोगा ने उनमें से एक जव अपनी रानी को खिलाया और दूसरा अपनी घोड़ी को। जव खाने से उस घोड़ी के एक बच्चा हुआ। जव खाने से उत्पत्ति होने के कारण घोड़ी के उस बच्चे का नाम गोगा ने जवादिया रखा। यह जवादिया घोड़ा उतना ही प्रसिद्ध हुआ, जितना कि गोगा चौहान स्वयं विख्यात हुआ। उदयपुर के राणा ने काठियावाड़ का एक घोड़ा मुझे उपहार में दिया था, उसका नाम भी जवादिया था। वह घोड़ा देखने में बहुत साधारण था। परन्तु युद्ध में वह अपनी अद्भुत शक्ति का प्रदर्शन करता था। उन दिनों में युद्ध में शिक्षित घोड़ों को बहुत महत्व दिया जाता था। लेकिन अब उस प्रकार के घोड़े नहीं हैं।

* राजा वीसलदेव ने एक हजार वर्ष पहले इस सरोवर को बनवाया था। वह आज तक इसी

मुकाम किया और अपने अधिकारी सामन्त राजाओं को सेना के लिए संदेश भेजा। मन्दोर के मोहन सिंह परिहार ने सेना के साथ वहाँ आकर वीसलदेव की वन्दना की। × उसके बाद गहिलोत, तोंवर से साथ पावासर और मेवात के राजा मेव के साथ गौड़ जाति के राम और दूसरे नरेश आये। द्रोणपुर के मोयल राजा ने कर भेजकर अपने न आ सकने के लिए क्षमा प्रार्थना की। दोनों हाथ जोड़े हुए बालोच राजा आया। बामूनी के राजा ने सिंध में तैयारी की और वहाँ पर आकर पहुँचा। भटनेर से नजर आयी। ठट्टा और मुलतान से नालबनी आकर उपस्थित हुए। देरावर के भूमिया और भट्टी लोग वहाँ आकर एकत्रित हुए। मालनवास के यादव भी वहाँ पर आये। मौर्य, बड़गूजर और अन्तर्वेद के कछवाहा लोग भी वहाँ पर पहुँच गये। मीरा लोगों ने आकर वीसलदेव के चरणों की वंदना की। तख्तपुर की सेना वहाँ पर आकर उपस्थित हुई। निर्वाण, डोंडे, चन्देल और दाहिमा के राजाओं के साथ उदय, प्रमार आदि राजा लोग अपने घोड़ों पर बैठकर वहाँ पर पहुँच गये।

चन्द कवि ने आने वाले राजाओं में चित्तौर के गहिलोत राजा का भी उल्लेख किया है। चित्तौर का राजा अजमेर के राजा के साथ मैत्री का सम्बन्ध रखता था। उस समय चित्तौर के सिंहासन पर तेज सिंह था। बारहवीं शताब्दी में वीसलदेव के वंशज दिल्ली के राजा पृथ्वीराज के साथ तेजसिंह के पौत्र समर सिंह की मित्रता थी और तेजसिंह ने जिस प्रकार वीसलदेव का साथ दिया था, समर सिंह ने भी पृथ्वीराज का साथ देकर अनहिलवाड़ा के राजा के विरुद्ध युद्ध किया था। तेजसिंह सम्वत् ११२० सन् १०६४ ईसवी में चित्तौर के सिंहासन पर बैठा और वह वीसलदेव की तरफ से मुसलमानों के साथ युद्ध करने के लिए गया।

राजा वीसलदेव का संदेश पाकर तोंवर राजा भी गया था। इससे जाहिर होता है कि वह भी उसकी अधीनता में था। मेवात की मेव जाति ने बाद में इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया था। गौड़ जाति ने उन दिनों में विशेष प्रसिद्धि पायी थी और चौहानों के सामन्त राजाओं में उसका विशेष स्थान था। बालोच वंश के लोगों ने भी उस युद्ध के बाद इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया था। बामुनी वंश का उल्लेख दूसरे स्थानों पर मनवासा के नाम से किया गया है। इसका प्राचीन नाम देवल था। उससे कुछ दूरी पर ठट्टा नगर बसा हुआ है। मुलतान और नालवनी के लोगों पर चौहानों का उस समय शासन था। मोर लोग अर्वली पर्वत के शिखर पर रहा करते थे। निर्वाण का आधुनिक नाम टोंडा है। यह टोंक के समीप बसा हुआ है। डोड और चन्देल वंश के राजपूतों ने उन दिनों में बहुत प्रसिद्ध पायी थी। चन्देलों ने किसी समय पृथ्वीराज के साथ युद्ध किया था और पृथ्वीराज ने चन्देलों से महोबा, कालिंजर एवम् सम्पूर्ण बुन्देल खण्ड लेकर अपना अधिकार कर लिया था। दाहिमा बियाना के राजा का नाम है। वह धरणीधर के नाम से भी प्रसिद्ध था। उदय का अभिप्राय उदयादित्य से है। उसने इस देश में बहुत गौरव प्राप्त किया था।

माणिकराय से लेकर चौहान सम्राट पृथ्वीराय तक जितने प्रमुख राजाओं के नामों का उल्लेख मिलता है, उनमें वीर वीसलदेव का नाम अधिक प्रसिद्ध है। इस लिये उसके समय का निर्णय करना यहाँ पर आवश्यक मालूम होता है। उस समय का कोई भी उल्लेख करने के पहले चौहान वंश की वंशावली नीचे दी जाती है :

× इस से प्रकट है कि परिहार लोग अजमेर के चौहानों की अधीनता में थे।

चौहानों की वंशावली

संवत्	नाम		विवरण
	अनल	...	अथवा अग्निपाल , चौहान वंश का आदि पुरुष जो विक्रमादित्य से ६५० वर्ष पहले अग्नि कुण्ड से पैदा हुआ था । उसने तुरस्क लोगों को जीतकर मैहकावती में राजधानी कायम की । फिर कोकन, असीर और गोलकुण्डा को विजय किया ।
	सुबाहु	...	
	मालन	...	इसके वंशज मालन चौहान कहे जाते हैं ।
	गलनसूर	...	
सं० २०२	अजयपाल	...	इसने अजमेर नगर की स्थापना की ।
	दूलाराय	...	सन् ६८५ ईसवी में मुसलमानों के द्वारा मारा गया और उसका राज्य अजमेर मुसलमानों के अधिकार में चला गया ।
सं० ७४१	माणिक राय	...	इसने साँभर में चौहानों की राजधानी कायम करके सम्भरीराव की उपाधि धारण की । उस समय से चौहान सम्भरी राव कहे जाते हैं ।
	हर्षराज	...	
	बीरबोलन देव	...	
सं० १०६६–११३०	वीसलदेव	...	
	सारङ्गदेव	...	छोटी अवस्था में मारा गया ।
	आना	...	अजमेर में उसने अपने नाम पर आनासातर ताल बनवाया , जो अब तक प्रसिद्ध है ।

- आना
  - जयपाल
    - अजयदेव अथवा आनन्ददेव
      - सोमेश्वर
        - पृथ्वीराज
          - रेनसो
        - चाहड़देव
          - विजयदेवराज
            - लखनसी
      - कान्हराय
        - ईश्वरीदास
      - जेतगोयलवाल
    - विजयदेव
    - उदयदेव
  - हर्षपाल
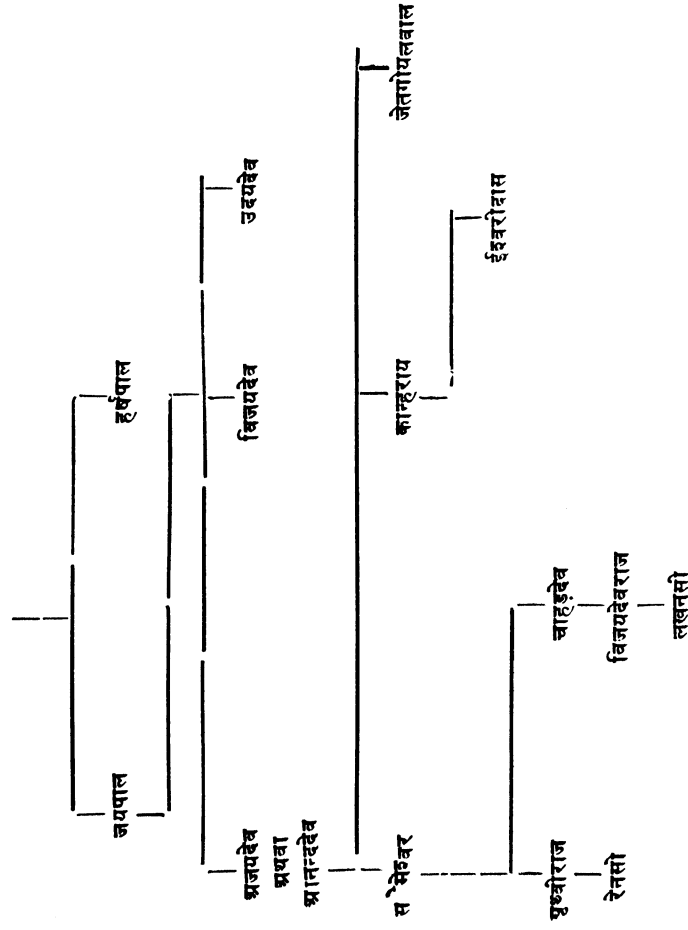
चौहान वंशावली में जिन नामों का उल्लेख किया गया है, उनके विवरण अत्यन्त संक्षेप में इस प्रकार हैं, जो कुछ नामों से सम्बन्ध रखते हैं :

अनल अथवा अग्निपाल प्रमार वंश का आदि पुरुष था। ऐसा भी कुछ लोगों का मत है।

हर्षराज ने नाजिमुद्दीन अथवा सुबुक्तगीन को परास्त किया था।

वीर वीलनदेव अथवा वीलनदेव महमूद गजनवी के साथ युद्ध करता हुआ मारा गया था। इसका दूसरा नाम धर्मगज भी है।

सोमेश्वर दिल्ली के तोंवर राजा अनंगपाल की बेटी रूका बाई के साथ ब्याहा था।

ईश्वरीदास का आकर्षण इस्लाम की तरफ हो गया था।

पृथ्वीराज दिल्ली के सिंहासन पर बैठा और सन् ११९३ ईसवी में शहाबुद्दीन गोरी के द्वारा मारा गया।

रेनसी पृथ्वी राज का उत्तराधिकारी बनाया गया। उसका नाम दिल्ली के स्तम्भ में लिखा हुआ मिलता है।

विजयदेव राज दिल्ली पर होने वाले आक्रमण में मारा गया।

लखनसी के इक्कीस लड़के हुए। उनमें सात लड़के विवाहिता रानियो से पैदा हुए थे। उनके द्वारा चौहान वंश की सात शाखाओं की प्रतिष्ठा हुई।

वीसलदेव से पृथ्वीराज तक और भी छै राजाओं के नामों के उल्लेख मिलते हैं। लेकिन इन सब में वीसलदेव और पृथ्वीराज का नाम अधिक प्रसिद्ध है। वास्तव में पृथ्वीराज ने वीसलदेव की तरह वीरता और ख्याति में गौरव प्राप्त किया था। उसने अनेक युद्धों में मुसलमानों तथा दूसरे शत्रुओं को पराजित किया था।

वीसलदेव के अधीन जो राजा अपनी सेनाओं के साथ युद्ध के लिए आकर एकत्रित हुए थे, कवि चन्द के ग्रंथ में उनका उल्लेख मिलता है। लेकिन उनमें केवल चार-राजाओं के समय का जिक्र किया गया है और हम उनमें केवल एक राजा के समय का ही सही रूप में वर्णन कर सके हैं। शेष तीन राजाओं के समय का निर्णय अप्रत्यक्ष है। इसीलिए उसको छोड़ दिया है। पहल राजा भोज का लड़का धार का स्वामी उदयादित्य प्रमार था। मैंने अनेक लिपियों और शिला लेखों के आधार पर माना है कि उदयादित्य का समय ११०० से ११५० तक था। इस दशा में, जब उदयादित्य का सेना लेकर वीसलदेव के यहां आना साबित होता है तो साफ जाहिर है कि वीसलदेव का समय उदयादित्य के समय के साथ-साथ था। इसके सिवा, कुछ प्रमाण और भी इसकी सहायता में हम को मिलते हैं, जो इस प्रकार हैं :—

कवि चन्द ने देरावल के भट्टी लोगों का वीसलदेव के पास आना स्वीकार किया है। उस दशा में भट्टी लोगों का नगर और उनकी वर्तमान राजधानी जैसलमेर के अस्तित्व का प्रमाण मिलता है।

जमना और गंगा के मध्यवर्ती अन्तर्वेद से कछवाहों का आना कवि चन्द्र के अनुसार साबित है। इससे भी उस समय का अनुनान होता है। क्यों कि उस समय कछवाहों ने नरवर से जाकर अम्बेर में अपनी राजधानी कायम की थी और वह उस समय प्रसिद्ध नहीं हुई थी।

मेवाड़ के शिला लेखों से हमें जानने को मिला है कि समर सिंह का पितामह तेजसिंह राजा वीसलदेव का मित्र था। कहा जाता है कि वीसलदेव चौंसठ वर्ष तक जीवित रहा। उससे भी [illegible]

उल्लेखों का यहाँ पर वर्णन करके हम अनावश्यक एक भ्रम नहीं पैदा करना चाहते। इसलिए सभी ग्रंथों, शिला लेखों और दूसरे ऐतिहासिक आधारों को समझकर जो हमने बहुत सही समझ समझा है, उसी का हमने ऊपर उल्लेख किया है। शेष सब छोड़ दिया है।

ऐतिहासिक ग्रंथों के आधार पर ही यह स्वीकार करना पड़ता है कि राजा वीसल देव दिल्ली के तोंवर राजा जयपाल सिंह, गुजरात के राजा दुर्लभ और भीम, धार के राजा भोज और उदयादित्य एवम् मेवाड़ के राणा पद्मसिंह और तेजसिंह का समकालीन था। वीसल देव ने जिस मुस्लिम बादशाह के साथ युद्ध की यह तैयारी की थी, वह निश्चित रूप से महमूद रहा होगा; बिना किसी विवाद के इसे माना जायगा। वीसल देव ने उस महमूद को परास्त करके उत्तरी राजस्थान से भगा दिया था। राजा बैरान देव और अजमेर के राजा की सेनाओं से हार कर भारत में अंतिम बार महमूद सिंध की तरफ भागा था। यह युद्ध हिजरी ४१७, सम्बत् १०-८२ व सन् १०२६ में हुआ था। इस समय को चन्द कवि ने सम्बत् १०८६ लिखा है। लेकिन इन दोनों उल्लेखों में समय का कोई विशेष अन्तर नहीं है।

वीसलदेव ने गुजराज के राजा के साथ युद्ध करके विजय प्राप्त की थी और वहां पर उसने अपने नाम पर वीसल नगर बसाया था। उसका वर्णन विस्तार के साथ आगामी पृष्ठों में प्रसिद्ध पृथ्वीराज के शासन के साथ किया गया है। कालिक जुहनेर में वीसल देव का धोंध नामक रहने का जो स्थान था, वह अब तक मौजूद है और बीसल का धोध कहलाता है।

हाड़ा वंश के राजा कवि गोविन्द राम के राज ग्रन्थ में लिखा है कि वीसल देव के लड़के अनुराज से हाड़ा वंश की उत्पत्ति हुई है। लेकिन खीची वंश का कवि लिखता है कि अनुराज माणिक राय का लड़का था और वह खींची वंश का आदि पुरुष था। हमने यहाँ पर हाड़ा कवि का अनुसरण किया है।

गोविन्दराम ने लिखा है कि अनुराज को सीमा पर स्थित आसिका—जिसे असी अथवा हांसी भी कहा जाता है—अधिकार प्राप्त हुआ था। अनुराज के लड़के अस्थिपाल और सिंध सागर के खीचीपुर पाटन के आदि पुरुष अजयराज के लड़के अनुगराज ने अपने सौभाग्य की परीक्षा के लिए गोलकुण्डा के चौहान राजा रणधीर की अधीनता में जाकर रहने का विचार किया था। लेकिन उन्हीं दिनों में कजलीबन के बर्बरों ने एक साथ असी और गोलकुण्डा पर आक्रमण किया। चौहान राजा रणधीर ने उनका सामना किया और युद्ध करते हुए वह अपने लड़कों के साथ मारा गया। राजा रणधीर के वंश में सुराबाई नाम की उसकी लड़की बच गयी। वह अपने प्राणों की रक्षा के लिए गोलकुण्डा छोड़कर असि की तरफ रवाना हुई। मारे जाने के बाद राजा रणधीर के नाम की शाका चली। उन्हीं दिनों में आक्रमणकारियों ने असि पर भी आक्रमण किया था। उनके भय से असि का राजा अनुराज भाग गया। लेकिन उसके लड़कों ने युद्ध की तैयारी की और अपने नगर के बाहर जाकर उन्होंने आक्रमणकारियों का सामना किया। दोनों ओर से भयानक युद्ध आरम्भ हुआ। उस युद्ध में अस्थिपाल पूरी तरह से घायल हुआ। परन्तु उसी समय आक्रमणकारी सेना युद्ध-क्षेत्र से भागने लगी। जख्मी अस्थिपाल ने शत्रु-सेना का पीछा किया। लेकिन वह अधिक दूर तक न जा सका और अचेत होकर गिर पड़ा। इसी समय सुराबाई आश्रय पाने के लिए गोलकुण्डा से आ रही थी। वह भूख, प्यास और पैदल चलने के कारण थकावट से एक वृक्ष के नीचे बैठ गई। वह वृक्ष पीपल का था। उसके नीचे सुराबाई मृतप्राय हो रही थी। उसकी इस अवस्था में चौहानों की कुल देवी आशापूर्णा ने [illegible] [illegible] दर्शन दिये। देवी को देख

दशा में गोलकुण्डा से भागकर यहां आयी, किस प्रकार उसका पिता अपने बारह पुत्रों के साथ आक्रमणकारियों के द्वारा मारा गया।

सुराबाई के मुख से उसकी करुण कहानी को सुनकर देवी ने संतोष देते हुए उससे कहा : "अब तुम घबराओ नहीं। इसलिए कि तुम्हारे एक सजातीय चोहान ने आक्रमणकारियों को परास्त करके भगा दिया है।" यह कहकर सुराबाई को साथ में लेकर देवी उस स्थान पर गयी, जहां पर अस्थिपाल घायल अवस्था में चकेत पड़ा था। देवी की सहायता से अस्थिपाल ने स्वास्थ्य लाभ किया और उसके पश्चात् उसने असीर के प्रसिद्ध दुर्ग पर अधिकार कर लिया।

हाड़ा वंश के प्रतिष्ठाता अस्थिपाल ने सम्बत् १०८१ सन् १०२५ ईसवी में असीर पर अधिकार प्राप्त किया था और सुलतान महमूद मुलतान होकर मरुभूमि के रास्ते से हिजरी ७१४ सन् १०२२ ईसवी में अजमेर पहुँचा था। इस दशा में हमें सभी प्रकार अधिकार यह निर्णय करने के लिए है कि अस्थिपाल के पिता अनुराज ने उसी समय अपने प्राणों की बलि देकर असिराज्य का अधिकार खोया था, जब महमूद ने अजमेर पर आक्रमण करके उसको विध्वंस किया था।

हिन्दू कवि ने कजली बन को असुर कहकर अपने काव्य में लिखा है। लेकिन मुस्लिम इतिहासकार ने कहीं पर भी इस बात का उल्लेख नहीं किया कि सुलतान महमूद किस समय अपनी सेना के साथ दक्षिण गया और कब उसने गोल-कुण्डा को जीत कर अधिकार किया। कवि गोविन्द राम ने जिस कजली बन की बर्बर जाति का वर्णन किया है, महमूद सुलतान उस कजली बन का शासक था, इस बात को स्वीकार करने के लिए कोई ठोस प्रमाण होना चाहिए। यद्यपि यह बात सही है कि यदुवंशी राजा गज से गजनी की सृष्टि हुई थी, फिर भी यदि महमूद दक्षिण की तरफ गया था तो निश्चित रूप से मुस्लिम इतिहासकार को उसका वर्णन कहीं न कहीं पर करना चाहिए था। ऐसा मालूम होता है कि दक्षिण में किसी पहाड़ी स्थान का नाम कजलीबन रहा होगा। वह कजली बन कहाँ था, इसका निर्णय करने के लिए हमारे पास कोई सामग्री नहीं है।

उत्तर और दक्षिण भारत में जो राजा थे, उनके वंशजों ने वहां के प्राचीन निवासियों के साथ मिलकर मराठा नाम की एक नयी जाति की उत्पत्ति की और यादव, तोंअर एवम् प्रमार आदि अपने प्राचीन राजवंशों के नामों को छोड़ कर देश के जिस भाग में पैदा हुए, उसी के नाम से नीमालकर, फालकिया और पाटनकर आदि नामों से प्रसिद्ध हुए।

अस्थिपाल के एक लड़का था, चन्दकर्ण उसका नाम था। चन्द्र कर्ण के लोकपाल नामक लड़का पैदा हुआ। लोकपाल के दो लड़के हुए। एक का नाम था हमीर और दूसरे का नाम था गम्भीर। वे दोनों सम्राट पृथ्वीराज की अधीनता में थे और कई युद्धों में उन्होंने अपनी वीरता का परिचय दिया था। सम्राट पृथ्वीराज की अधीनता में एक सौ आठ राजा थे, उनमें इन दोनों भाइयों ने अधिक ख्याति पायी थी और इसीलिए चौहान सम्राट उनका अधिक सम्मान करता था।

पृथ्वीराज ने कन्नौज के राजा जयचन्द की लड़की अनंगमञ्जरी—जो संयोगिता के नाम से प्रसिद्ध है—अपहरण किया था, उस समय जयचन्द के साथ उसका भयानक संग्राम हुआ। उस युद्ध में हमीर और गम्भीर—दोनों भाई सम्राट का पक्ष लेकर बड़ी बहादुरी के साथ लड़े थे। हाड़ाराव हमीर ने अपने छोटे भाई गम्भीर के साथ घोड़े पर बैठे हुए पृथ्वीराज के पास जाकर कहा था :

"जंगलेश, हम जयचन्द की सेना के साथ युद्ध करेंगे; आप अपने लिए आवश्यक कार्य-क्रम बनाइए।" *

राजा जयचन्द ने अपनी लड़की संयोगिता का स्वयंबर किया था। उसमें सम्राट पृथ्वीराज ने संयोगिता का अपहरण किया। इसके फलस्वरूप जयचन्द और पृथ्वीराज में भीषण युद्ध हुआ। जयचन्द के अधीन सभी राजा अपनी सेनाओं के साथ जयचन्द की सहायता में युद्ध करने के लिए आये। उनमें काशी का राजा भी था। युद्ध में हमीर और गम्भीर ने काशी के राजा पर आक्रमण किया और हमीर ने उस समय इतना भयानक युद्ध किया कि उससे एक बार जयचन्द के पक्ष की सेनायें विचलित हो उठीं। लेकिन उसके बाद दोनों भाई युद्ध में मारे गये।

हमीर के कालकर्ण नाम का एक लड़का था। कालकर्ण के लड़के का नाम महामुग्ध था। उससे रावबाचा नामक लड़का पैदा हुआ और रावबाचा के लड़के का नाम रावचन्द था।

अलाउद्दीन ने जिन राज्यों का विनाश किया था, उनमें रावचन्द का भी एक राज्य था। असीरगढ़ नामक दुर्ग उसका बहुत मजबूत और सुरक्षित समझा जाता था। लेकिन अलाउद्दीन ने उस दुर्ग को जीत कर रावचन्द को उसके पूरे परिवार के साथ सर्वनाश किया था। उस संहार में रैनसी नामका ढाई वर्ष का एक रावचन्द का बालक किसी प्रकार बच गया था। वह बालक चित्तौर के राणा का भांजा था, इसलिए वह राणाके पास, रामचन्द्र के मारे जाने पर भेज दिया गया। वहाँ रहकर रैनसी बड़ा हुआ और युद्ध की शिक्षा प्रात करने के बाद उसने अपनी सेना लेकर भैंसरोड पर आक्रमण किया और वहाँ के सरदार दूंगा को भगा दिया।

यह भैंसरोड पहले मेवाड़ के राज्य में शामिल था। अलाउद्दीन के चित्तौर पर आक्रमण करने और उसको विध्वंस करने के बाद राणा की शक्तियाँ निर्बल पड़ गयी थीं। उस समय अवसर पाकर दूंगा ने भैंसरोड पर अधिकार कर लिया था।

रैनसी × के कोलन और कनफल नामक दो लड़के थे। बड़ा लड़का कोलन रोग से व्यथित होने के कारण केदारनाथ की यात्रा करने के लिए चला गया। यह लम्बी यात्रा उसने बिना किसी सवारी के पूरी की और छै महीने तक लगातार चलकर वह बूंदी के पास पहुँचा। वहाँ पर पर्वत से निकली हुई बाण गंगा नामक नदी में उसने स्नान किया। स्नान करने के बाद उसे अनुभव हुआ कि अब मैं आरोग्य हो गया हूँ। उसके बाद वह पठार का राजा हुआ। :-:

यह पठार पहले मेवाड़ के राज्य का एक भाग था। अलाउद्दीन ने चित्तौर पर आक्रमण करके बहुत-से गहिलोतों को मार डाला था। उस सर्वनाश से राणा बहुत निर्बल पड़ गया था। इस दशा में वहाँ के प्राचीन निवासी मीर लोगों ने मौका पाकर इस पठार पर अधिकार कर लिया था।

किसी समय प्राचीन काल में प्रमार वंश का राजा हूण इस पठार का शासक और मैनाल में उसकी राजधानी थी। उस राजधानी में हूण राजा के समय की बहुत-सी चीजें अब तक देखने

---

* जंगलेश, सम्राट पृथ्वीराज की एक उपाधि थी।

× रैनसी का नाम वंश भास्कर में रतन सिंह लिखा है। इसे कहीं-कहीं पर रैनसिंह भी लिखा गया है।

:-: पठार मध्य भारत का नाम था। कोलन ने अपने राज्य का दसवाँ भाग अपने छोटे भाई को दे दिया था।

को मिलती हैं। मिली हुई ऐतिहासिक सामग्री से जाहिर होता है कि आठवीं शताब्दी में चित्तौर पर पहले-पहल आक्रमण होने पर हूण राजा अंगतसी ने राणा की सहायता में युद्ध किया था। यह भी जाहिर होता है कि प्रसिद्ध बारौली का मंदिर इसी हूण राजा का बनवाया हुआ है।

कोलान के लड़के राव बाँगा ने मैनाल पर अधिकार करके पठार के पश्चिम तरफ एक शिखर पर बंबावदा नामक दुर्ग बनवाया था। पूर्व की तरफ भैंसरोड, पश्चिम की तरफ बंबावदा और मैनाल पठार राज्य में शामिल थे और वहाँ पर हाड़ा राजा का अधिकार हो गया था। इसके पश्चात् माण्डलगढ़, बिजोलिया, बेंगू, रतनगढ़ और चौराइतगढ़ आदि अधिकार में आ जाने के कारण पठार राज्य की सीमा पहले से बढ़ गयी थी।

राव बाँगा के बारह लड़के पैदा हुए। उन सभी ने अपने वंश और राज्य की उन्नति की। राव बाँगा के बाद देवा उसके सिंहासन पर बैठा। राव देवा के हरराज, हथजी और समरसी नामक तीन लड़के पैदा हुए। *

हाड़ा राजाओं के बढ़ते हुए वैभव को देखकर दिल्ली के बादशाह का ध्यान उस ओर आकर्षित हुआ। सिकन्दर लोदी इन दिनों में दिल्ली के सिंहासन पर था। उसने हाड़ा राजा को दिल्ली आने के लिए संदेश भेजा। उस संदेश को पाकर राव देवा ने अपने बड़े लड़के को बंबावदा के शासन का अधिकार सौंपा और अपने छोटे लड़के समरसी के साथ वह दिल्ली गया। हाड़ा वंशी कवि के अनुसार राव देवा बहुत दिनों तक दिल्ली में रहा। दिल्ली के बादशाह ने राव देवा का घोड़ा लेने की कोशिश की। वह किसी प्रकार अपना घोड़ा देना नहीं चाहता था। इस घोड़े की कहानी इस प्रकार है: "दिल्ली के बादशाह के पास एक ऐसा घोड़ा था, जो अपने पैरों की टापों को पानी में बिना स्पर्श किये नदी को पार कर जाता था। उस घोड़े की इस प्रशंसा को जानकर राव देवा ने बादशाह के अश्वपाल को रिश्वत देकर मिला लिया और अपने राज्य की एक घोड़ी से बादशाह के उस घोड़े के द्वारा एक बच्चा पैदा करवाया। वह बछेड़ा कुछ दिनों के बाद घोड़ा हो गया। बादशाह ने उस घोड़े को लेने का इरादा किया। लेकिन राव देवा उसे देना नहीं चाहता था। उसने अपने परिवार और साथ के लोगों को दिल्ली से धीरे-धीरे रवाना कर दिया और सबके चले जाने के बाद वह हाथ में तलवार लिए हुए अपने घोड़े पर बैठकर बादशाह के पास पहुँचा। बादशाह उस समय अपने महल के एक बरामदे में था। उसे देखकर घोड़े पर चढ़े हुए राव देवा ने अभिवादन करते हुए कहा, जहाँपनाह, आपके साथ मेरा यह अंतिम अभिवादन है। मेरी इतनी ही आपसे प्रार्थना है जो आपको बताना चाहता हूँ कि कोई भी किसी राजपूत से उसकी तीन चीजों के पाने की अभिलाषा न करे। उन तीनों चीजों में उसका—पहला घोड़ा है, दूसरी उसकी स्त्री है और तीसरी उसकी तलवार है।"

इतना कहने के बाद राव देवा वहाँ पर रुका नहीं। वह तेजी के साथ दिल्ली से रवाना हुआ और पठार पहुँच गया।

राव देवा ने बंबावदा का अधिकार अपने बड़े लड़के हरराज को पहले ही सौंप दिया था। इसलिए वह वहाँ पर नहीं गया और बुन्दानाल की तरफ रवाना हुआ। इसी स्थान पर उसके एक पूर्वज ने अपने एक कठिन रोग से मुक्ति पायी थी। राव देवा वहाँ पर पहुँच गया। यहाँ पर मीना

---

* हरराज के बारह लड़के पैदा हुए। हालू हाड़ा उनमें सबसे बड़ा था बम्बावदा का अधिकार उसी को मिला था। पठार के चौबीस दुर्गों पर उसका अधिकार था।

श्रौर उसारा जाति के लोग अपने राजा जेता की अधीनता में रहते थे। उन दिनों वहाँ पर कोई नगर नहीं था। केवल पत्थरों पर चलने के लिए पहाड़ी घाटियाँ थीं। वहाँ के मध्यवर्ती स्थान में मीना लोगों ने अपने रहने के लिए कुटियाँ बनायी थीं। यहाँ के लोग चित्तौर के विध्वंस के पहले राणा की अधीनता में रहा करते थे। परन्तु इन दिनों में राणा की शक्तियाँ निर्बल पड़ गयी थीं। इसीलिए रामगढ़ के खीची राजा रावगांगा ने यहाँ पर आकर अधिकार कर लिया था। रावगांगा के अत्याचारों से बचने के लिए मीना और उसारा लोगों ने उसको कर देना आरम्भ कर दिया था और बहुत दिनों तक वे कर देते रहे। राव देवा ने वहाँ पहुँच कर मीना और उसारा लोगों की इस परिस्थिति को समझा। उसने उन दोनों जातियों की सहायता करने का बचन दिया और उसने इस बात की प्रतिज्ञा की कि भविष्य में अब कभी उनको रावगांगा से डरने की आवश्यकता न होगी। राव देवा की इस प्रतिज्ञा को सुनकर उसारा और मीना लोगों ने उसका विश्वास किया और रावगांगा से मुक्ति पाने के लिए वे लोग प्रतिक्षा करने लगे।

इसके कुछ दिनों के बाद रावगांगा अपनी सेना के साथ कर वसूल करने के लिए बूंदी राज्य की सीमा पर आया। यहीं पर मीना और उसारा जाति के लोग आकर उसको कर दिया करते थे। उनके न आने पर रावगांगा को आश्चर्य हुआ। उन्ही दिनों में उसने रावदेवा को घोड़े पर बैठे हुए सेना के साथ आते हुए देखा। उसने तुरन्त पूछा: "कौन आ रहा है?"

प्रश्न के बाद उसे उत्तर मिला: "पठार का राजा आ रहा है।"

राव गांगा की सवारी का घोड़ा भी राव देवा के घोड़े से किसी प्रकार कम था। उस घोड़े का जन्म भी उसी प्रकार हुआ था, जिस प्रकार रावदेवा के घोड़े का। राव गांगा अपने घोड़े पर चढ़कर तेजी के साथ पठार नरेश रावदेवा की तरफ रवाना हुआ।

कुछ ही समय के बाद दोनों में युद्ध आरम्भ हो गया। उस युद्ध में पठार के राजा राव देवा की विजय हुई और राव गांगा युद्ध-क्षेत्र से भाग गया। रावदेबा ने रावगांगा के घोड़े की परीक्षा करने का विचार किया। वह अपने घोड़े पर बैठा हुआ राव गांगा के पीछे रवाना हुआ। राव गांगा ने घाटी को छोड़कर चम्बल नदी में प्रवेश किया। रावदेवा आश्चर्य के साथ उसकी तरफ देख रहा था। उसके देखते-देखते रावगांगा चम्बल नदी की दूसरी तरफ निकल गया। यह देखकर राव देवा ने प्रसन्न होकर उससे पूछा: "राजपूत, मैं आपकी प्रशंसा करता हूँ। आपका नाम क्या है?"

अपने प्रश्न के उत्तर में रावदेवा को सुनायी पड़ा: "गांगार खींची।"

उसी समय रावदेवा ने अपना नाम बतलाते हुए उससे कहा: "हमारा नाम देवहाड़ा है। हम दोनों ही एक ही जाति के हैं और हम दोनों भाई-भाई हैं। इसलिए हम दोनों में किसी प्रकार की शत्रुता न होनी चाहिये। यह चम्बल नदी हम दोनों के राज्यों की सीमा है।"

सम्बत् १३९८ सन् १३४२ ईसवी में मीना और उसारा लोगों के राजा जैत ने रामदेवा को अपना राजा मंजूर किया। रामदेवा ने बुन्दानाल के मध्यवर्ती स्थान में बूंदी नामक एक नगर में प्रतिष्ठा की और वह नगर बाद में हाड़ा जाति की राजधानी के नाम से प्रसिद्ध हुआ। उसी सयय चम्बल नदी बूंदी की सीमा निश्चिय हुई थी। परन्तु थोड़े ही दिनों के बाद हाड़ा वंश के लोगों ने चम्बल नदी की दूसरी तरफ जाकर बहुत दूर तक अपने राज्य का विस्तार किया और दिल्ली के बादशाह के सेनापति के साथ मेल करके बूंदी-राज्य की सीमा का विस्तार मालवा तक पहुँचा दिया। उसके पश्चात् यह विस्तृत राज्य हाड़ावती अथवा हाड़ौती के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

———

अरसठवाँ परिच्छेद

बूँदी-राजधानी की प्रतिष्ठा—मीना लोगों की स्वतन्त्र भावनायें—मीना लोगों की पराजय—राजपूतों की एक पुरानी प्रथा—बूँदी के सिंहासन पर नापाजी—भीलों की पराजय—कोटा के नाम की उत्पत्ति—ससुर और दामाद में असंतोष—ससुर के अपराध का बदला पत्नी से—अपमानित पत्नी की पिता से शिकायत—उसका परिणाम—सामन्त की राजभक्ति—अलाउद्दीन के आक्रमण के कारण चित्तौर की निर्बल शक्तियाँ—चित्तौर राज्य के अवसरवादी सामन्त—हामा जी और चित्तौर के राणा में संघर्ष—बूँदी-राज्य को अधीनता में लाने की चेष्टा—बूँदी-राज्य पर आक्रमण—राणा की पराजय—राणा की प्रतिज्ञा—उसके मन्त्रियों की चिंता—हाड़ा राजपूतों में जातीय स्वाभिमान—चित्तौर पर पठानों का आक्रमण।

सम्बत् १३८९ सन् १३४२ ईसवी में राव देवा ने बूँदी राजधानी की प्रतिष्ठा की। उसके बाद उसका राज्य हाड़ौती के नाम से प्रसिद्ध हुआ। वहां पर रावदेवा के हाडा वंश के जो लोग रहते थे, उनकी अपेक्षा मीना लोगों की संख्या बहुत अधिक थी। उन लोगों ने राव देवा की अधीनता स्वीकार कर लिया था, लेकिन उनकी स्वतन्त्र भावनायें बराबर काम करती रहती थीं। इस बात को राव देवा समझता था। उन्हीं दिनों में मीना जाति के एक सरदार ने राव देवा की लड़की के साथ विवाह करने का इरादा किया और उसने इस विवाह का प्रस्ताव भी राव देवा के पास भेजा। असभ्य मीना जाति के सरदार के इस प्रस्ताव को सुन कर राव देवा ने अपना अपमान अनुभान किया। विवाह के इस प्रश्न को लेकर मीना लोगों के साथ राव देवा का एक विवाद उत्पन्न हुआ।

रावदेवा इस बात को समझता था कि मीना लोगों के अहंकार का कारण यह है कि उनकी संख्या राज्य में अधिक है। इस लिए उसने समझ-बूझ कर बंबावदा से हाड़ा जाति के और टोडा से सोलंकी वंश के बहुत-से लोगों को बुलाया। उनके आ जाने के बाद उसने मीना और ओसारा लोगों पर एक साथ आक्रमण किया और भयानक रूप से उनका विनाश किया। इस आक्रमण में दोनों जातियों के लोग अधिक संख्या में मारे गये।

रावदेवा ने अपना पहला राज्य बड़े लड़के हरराज को सौंप दिया था और उसके बाद वह दिल्ली चला गया। इसके बाद लौटकर अपने उस राज्य में नहीं गया। इन दिनों में उसने अपना बूँदी का राज्य छोटे लड़के समरसी को सौंप दिया। दूसरी बार उसने राज्य का अधिकार छोटे लड़के को क्यों दे दिया, इसको समझने के लिए कोई भी सामग्री हमको नहीं मिली। लेकिन अनुमान से मालूम होता है कि मीना और ओसारा जाति के लोगों को दमन करने के बाद उसने अपने बुढ़ापे की अवस्था का अनुभव किया। इसलिए उसने शासन करने की अपनी अभिलाषा को परित्याग करके बूँदी राज्य का अधिकार छोटे लड़के को दे दिया। इसके बाद वह बूँदी छोड़कर वहाँ से पाँच कोस की दूरी पर अमरथून नामक एक स्थान पर चला गया और वहीं पर जाकर वह रहने लगा। इसके बाद वह लौटकर फिर कभी न तो बंबावदा गया और न बूँदी राज्य ही गया। राजपूतों की यह प्रथा बहुत पुरानी है कि जब राजा वृद्ध हो जाता है तो वह राज्य का भार उत्तराधिकारी पुत्र को सौंपकर राजधानी से चला जाता है। मृत्यु के बाद जिस प्रकार बारह दिन अपवित्रता के मनाये जाते हैं, राजा के राजधानी से चले जाने के बाद उसी प्रकार बारह दिन

अपवित्र समझे जाते हैं। इसके बाद तेरहवें दिन राजधानी छोड़कर जाने वाले वृद्ध राजा की एक प्रतिमा बनायी जाती है और पुरानी प्रणाली के अनुसार उसकी दाह क्रिया की जाती है।

समरसी के तीन लड़के पैदा हुए। बड़े लड़के का नाम था नापाजी, वह बूँदी के सिंहासन पर बैठा। दूसरे लड़के का नाम हरपाल था, उसको जजावर नामक ग्राम का अधिकार मिला, वह उस स्थान पर जाकर रहने लगा। उससे बहुत-से वंशजों की वृद्धि हुई और वे हरपाल पोता के नाम से प्रसिद्ध हुए। तीसरे लड़के का नाम था जैतसी। उसने सबसे पहले चम्बल नदी की दूसरी तरफ अपने राज्य का विस्तार किया। किसी समय वह कैतून के तोंवर राजा से मिलने के लिए गया था। वहाँ से लौटने के समय वह भीलों के एक नगर से होकर गुजरा। वह नगर नदी के किनारे पर बसा हुआ था। उसने भीलों के उस नगर पर आक्रमण किया और उनको उसने परास्त किया। उस आक्रमण में बहुत-से भील जान से मारे गये। उस नगर से बाहर भीलों का एक दुर्ग था और उसमें एक भील सरदार रहता था। जैतसिंह ने दुर्ग के उस भील को मरवा डाला और फिर युद्ध देवता भैरो के स्मारक में पत्थर की एक हाथी की मूर्ति बनवाकर उसने वहाँ पर स्थापित की। जिस स्थान पर यह स्थापना हुई, वह कोटा राजधानी के दुर्ग के चार झोंपड़ा नामक स्थान के पास है। कोटिया नामक एक भीलों की जाति से इस कोटा नाम की उत्पत्ति हुई है।

जैतसी और उसके वंशजों ने उस दुर्ग एवम् उसके आस-पास के नगरों तथा ग्रामों पर कई पीढ़ियों तक अपना अधिकार रखा। उसका पाँचवाँ राजा भोनंगसी, बूँदी के राव सूरजमल के द्वारा अधिकारों से वञ्चित किया गया। जैतसी के सुरजन नाम का एक लड़का था। उसने भीलों के इस स्थान का नाम कोटा रखा और उसके चारो तरफ उसने दीवार बनवा दी। सुरजन के लड़के धीर देव ने बारह विशाल सरोवर खुदवाये और नगर के पूर्व की ओर एक विस्तृत झील तैयार करवाई, जो उसके नाम पर किशोर सागर के नाम से अब तक प्रसिद्ध है। उसके लड़के का नाम कन्दल था और कन्दल के लड़के का नाम भोनंगसी था। उसने कोटा को एक बार खोकर फिर से उस पर अधिकार प्राप्त कर लिया। वह घटना इस प्रकार है—धाकर और केसरखाँ नामक पठानों ने कोटा पर आक्रमण किया। अफीम और मदिरा का अधिक सेवन करने के कारण भोनंगसी को उन्माद रहा करता था। इसलिए वह बूँदी से निकाल दिया गया। उसकी स्त्री अपने परिवार और सरदारों के साथ केतून नगर चली गयी। उसके आस-पास तीन सौ साठ ग्राम हाड़ा लोगों के थे। निर्वासित होने के बाद कुछ दिनों में भोनंगसी की आदतों में सुधार हुआ। उसने मादक पदार्थों के सेवन की आदतों को बहुत कम कर दिया और अपनी स्त्री तथा परिवार के लोगों से मिलने की कोशिश की। उसकी स्त्री उसके इस सुधार पर बहुत प्रसन्न हुई और कोटा पर अधिकार प्राप्त करने के लिए उसने अपने पति को तैयार कर लिया। वह इस बात को समझती थी कि बलपूर्वक कोटा पर अधिकार करने से रक्तपात होगा और उसकी सफलता पर आसानी से विश्वास नहीं किया जा सकता। क्योंकि पठानों की शक्तियाँ उसकी अपेक्षा प्रबल थीं। इसलिए उसने बड़ी बुद्धिमानी से काम लिया। फाल्गुन के महीने में पठानों के साथ उसने केतून की बहुत-सी युवती लड़कियों को होली खेलने के लिए आमंत्रित किया और उनके साथ उसने निश्चय कर लिया कि हम सब लोग कोठा के पठानों के साथ होली खेलेंगी। इसके लिए उसने कोटा के पठानों के पास भी संदेश भेजा, जिसे सुनकर पठान बहुत प्रसन्न हुए। दोनों तरफ होली खेलने की तैयारियाँ होने लगीं। जिस समय कोटा के पठान, कोटा की भूतपूर्व रानी और केतून की युवतियों के साथ होली खेलने के लिए हर्ष पूर्वक तैयारी कर रहे थे, रानी ने बड़ी सावधानी के साथ तीन सौ अत्यन्त सुन्दर हाड़ा जाति के युवकों को स्त्रियों के वेष में सजाकर तैयार कर लिया। होली खेलने का समय पहले

से ही निर्धारित हो गया था। समय आते ही युवतियों का वेष धारण किए हुए तीन सौ युवक अपने हाथों में अबीर लेकर धात्री के साथ रानी के महल से बाहर निकले और कोटा में जाकर पठानों पर अबीर फेंकने लगे, धात्री के साथ रानी के वेष धारण किए हुए भोनंगसी भी था। उसने पठानों के सरदार केसरखां के पास आते ही—जैसा कि पहले से निश्चित था—अपने हाथ का अबीर-पात्र उसके मुख पर जोर के साथ पटका। उसी समय हाड़ावंश के तीन सौ युवकों ने युवतियों का वेष फेंककर बड़ी तेजी के साथ कमर में छिपी हुई तलवारें निकालकर पठानों का संहार करने लगे। उस आक्रमण में केसरखां अपने बहुत से शूर-वीर पठानों के साथ मारा गया और उसके बाद भोनंगसी ने कोटा पर अधिकार कर लिया।

समरसी की मृत्यु के बाद नापा जी बूँदी के सिंहासन पर बैठा, टोंडा के सोलंकी राजा की लड़की के साथ उसका विवाह हुआ था। वह सोलंकी राजा अनहिल वाड़ा के प्राचीन नरेशों का वंशज था। टोंडा की राजधानी में संगमरमर का एक बहुमूल्य पत्थर था, नापाजी को वह बहुत पसंद आया। इसलिए उसने अपनी स्त्री से कहा कि वह अपने पिता से उस पत्थर को माँग ले। उसके कहने के अनुसार उसकी स्त्री ने अपने पिता से उस पत्थर को माँगा। सोलंकी राजा ने उसे देने से इनकार किया और उत्तर देते हुए उसने कहा—"इस प्रकार नापाजी की माँग एक दिन हमारी स्त्री के लिए भी हो सकती है।" इस तरह उत्तर देने के बाद उसने चाहा कि नापाजी टोंडा राज्य से चला जावे।

नापाजी को इस प्रकार की बातों से अपना अपमान मालूम हुआ। लेकिन उसने उसे उस समय जाहिर नहीं किया। वह टोंडा छोड़कर अपनी राजधानी चला आया और इस घटना के परिणाम स्वरूप वह अपनी रानी से घृणा करने लगा। उसने उसके साथ सभी प्रकार के व्यवहारों का अंत कर दिया। नापाजी के इस व्यवहार को देखकर उसकी रानी को बहुत दुख हुआ। उसने इस प्रकार की सभी बातें अपने पिता के पास कहला भेजीं।

सावन महीने का तीसरा दिन राजस्थान में कजली तीज के नाम से प्रसिद्ध है। इस दिन वहाँ के सभी राजपूत अपनी स्त्रियों से भेंट करने जाते हैं। इसलिए नापाजी ने अपने सभी सरदारों और सामन्तों को अपने-अपने नगरों में जाने की आज्ञा दी। ऐसी दशा में बूँदी राजधानी सरदारों और सामन्तों से खाली हो गयी। यह अवसर पाकर सोलंकी रानी का भाई टोंडा का राजकुमार छिपे-तौर पर बूँदी राजधानी में रात के समय आया और महल में जाकर नापाजी को मार डाला। इसके बाद वह तुरन्त अपने आदमियों के साथ बूँदी राजधानी से चला गया।

कजली तीज का त्योहार मनाने के लिए जितने भी सामंत अपने परिवारों के साथ बूँदी से बिदा हुए थे, उनमें एक सामंत की स्त्री बीमार थी। इसलिए वह सामन्त अपने नगर नहीं पहुँचा और बूँदी के बाहर एक रास्ते में बैठकर वह अफीम का सेवन कर रहा था। इसी समय टोंडा का राजकुमार नापाजी को मारकर अपने सैनिकों के साथ उस मार्ग से बातें करता हुआ जा रहा था। उस सामन्त ने उसकी बातों को सुना। वह तुरन्त उत्तेजित हो उठा और अपनी तलवार लेकर नापाजी का संहार करने-वाले टोंडा राजकुमार पर उसने आक्रमण किया। सामन्त की तलवार से राजकुमार का एक हाथ कटकर नीचे गिर गया। टोंडा के सैनिकों ने राजकुमार को लेकर वहाँ से भागने की कोशिश की। राजकुमार के कटे हुए हाथ को अपने दुपट्टे में बाँध कर सामन्त उसी समय बूँदी राजधानी आया।

राजधानी में पहुँच कर सामन्त को मालूम हुआ कि नापा जी के मारे जाने से राजमहल में चीत्कार हो रहा है। सोलंकी रानी—जिसके भाई ने उसके पति का संहार किया था—अपने

स्वामी के मृत शरीर को लेकर चिता पर बैठने की तैयारी कर रही है। सोलंकिनी रानी जिस समय चिता पर बैठने के लिए प्रस्तुत हो रही थी, सामन्त ने आकर हत्या करने वाले टोडा के राजकुमार का कटा हुआ हाथ अपने दुपटे से निकाल कर उसके सामने रखा। उस हाथ में बँधे हुए कंकरण को देखकर सोलंकिनी रानी पहचान गयी कि यह हाथ उसके भाई का है। उसने उस कटे हुए हाथ को देखकर अपने भाई के नाम एक पत्र लिखा कि आपके ऐसा करने से आपका वंश कलंकित हो चुका है। इसके कलंक को धोने का आप उपाय करिए। आपके सभी वंशधर एक हाथ वाले सोलंकी के नाम से पुकारे जायँगे। टोंडा के राजकुमार ने अपनी बहन का यह पत्र पाकर पढ़ा, और अपने अपराध का कोई प्रतिकार न समझ कर उसने एक स्तम्भ पर अपने मस्तक को इतने जोर से पटका कि उसके प्राणों का उसी समय अन्त हो गया।

नापाजी के तीन लड़के थे। पहले लड़के का नाम था हामाजी, दूसरे नवरंग और तीसरे का थारूड नाम था। सम्बत् १४४० में हामा सिंहासन पर बैठा। नवरंग के वंशज नवरंग पोता और थारूड के वंशज थारूड हाड़ा के नाम से प्रसिद्ध हुए।

यह पहले लिखा जा चुका है कि राव देवा ने बूँदी राज्य की प्रतिष्ठा करने के पहले पठार का राज्य और बम्बावदा का दुर्ग अपने लड़के हरराज को दे दिया था। हरराज के बाद उसका बड़ा लड़का पठार के सिंहासन पर बैठा। उसके शासन काल में चित्तौर के राणा के साथ संघर्ष पैदा हुआ। उस संघर्ष में राणा ने पठार पर अपना अधिकार कर लिया। अलाउद्दीन के द्वारा चित्तौर के विध्वंस होने पर वहाँ की राज शक्तियाँ निर्बल हो गयी थीं और वहाँ के राणा उसी निर्बल अवस्था में शासन कर रहे थे। उन दिनों में चित्तौर के बहुत से सामन्तों ने अपनी अधीनता के बंधन को तोड़ कर स्वतन्त्रता प्राप्त कर ली। इसके कुछ दिनों के बाद चित्तौर की शक्तियाँ फिर से प्रबल हो उठीं। इसलिए वहाँ के राणा ने उन राजाओं को फिर से अपनी अधीनता में लाने की कोशिश की, जो अवसर पा कर स्वतन्त्र हो गये थे। राणा ने सब से पहले हामाजी के पास संदेश भेजा कि जिन नगरों और ग्रामों में बूँदी के राज्य की प्रतिष्ठा हुई है, वे सब चित्तौर राज्य के हैं। इस लिए बूँदी के राजा को चित्तौर की अधीनता स्वीकार करनी पड़ेगी और अधीन राज्यों के जो नियम हैं, बूँदी के राजा को भी उन्हें स्वीकार करना पड़ेगा।

बूँदी के राजा हामाजी ने राणा को इसका उत्तर देते हुए लिखा : मैं "किसी प्रकार चित्तौर के राणा का सामन्त नहीं हूँ। मीनों के नगरों और ग्रामों को तलवार के बल पर लेकर बूँदी-राज्य की प्रतिष्ठा हुई है।"

चित्तौर के राणा और बूँदी के हामा जी में ऊपर लिखे हुए जो पत्र व्यवहार हुए और उनमें दोनों तरफ से जो लिखा गया, उसमें सत्य क्या है, यह विचारणीय है। हामा जी का एक पूर्वज रणसीवा रापसी असीरगढ़ से निकाल दिया गया था। उस समय चित्तौर के राणा ने उसको अपने यहाँ आश्रय दिया था और भैंसरोड पर अधिकार करने के लिए राणा ने सहायता भी की थी। अलाउद्दीन के चित्तौर पर आक्रमण करने के पहले सम्पूर्ण पठार राणा के अधिकार में था। अलाउद्दीन के आक्रमण के बाद चित्तोर निर्बल हो गया था। उन दिनों में मीना आदि जातियों ने अपने पूर्वजों के नगरों और ग्रामों पर अधिकार कर लिया और उसके बाद उन लोगों ने हाड़ा वंश के पठार-राज्य को भी लेने का निश्चय किया था। इस प्रकार कुछ पहले की घटनायें थीं।

हामा जी के साथ राणा का पत्र-व्यवहार चलता रहा। हामा जी को उत्तर देते हुए राणा ने लिखा : "कुछ दिनों के बाद हमारा राज्य निर्बल हो गया था। लेकिन कोई भी हमारे राज्य

के नगरों और ग्रामों पर बल पूर्वक अधिकार नहीं कर सका। इसलिए बूंदी राज्य को चित्तौर की अधीनता स्वीकार करनी पड़ेगी।"

हाड़ा राजा हामा जी ने सभी प्रकार राणा की अंतिम बातों पर विचार और परामर्श किया और अंत में उसने स्वीकार किया कि दशहरा और होली के अवसर पर सेना के साथ बूंदी का राजा चित्तौर में उपस्थित हुआ करेगा। अभिषेक के समय राणा को बूंदी में राज तिलक करने का अधिकार होगा। परन्तु दूसरे सामन्तों की तरह बूंदी का राजा चित्तौर की अधीनता के नियमों का पालन नहीं कर सकता।

हामा जी के इस उत्तर से राणा को संतोष नहीं मिला इसलिए उसने हामा जी को अधीन बनाने और रावदेवा के वंश को पठार-राज्य से अलग करने का निर्णय किया। बूंदी के राजा हामा जी ने राणा के इस निर्णय को जाना। वह जरा भी भयभीत नहीं हुआ और साहस पूर्वक सभी परिस्थितियों में उसने अपनी स्वाधीनता की रक्षा करने का निश्चय किया।

चित्तौर का राणा अपने सामन्तों की सेनाओं के साथ अपनी सेना लेकर बूंदी पर आक्रमण करने के लिए रवाना हुआ और बूंदी के निकट पहुँच कर निमोरिया नामक स्थान पर उसने मुकाम किया। चित्तौर की सेना के आने का समाचार पाकर हामा जी ने तुरन्त युद्ध की तैयारी की। उसने अपने वंश के पाँच सौ शक्तिशाली वीरों की सेना को तैयार किया और वे सभी लाल रंग के वस्त्र पहन कर राजधानी से युद्ध के लिए रवाना हुए। भयानक रात का समय था, बिना किसी प्रकार की सूचना दिये हुए पाँच सौ शूरबीर हाड़ा लोगों ने एकाएक चित्तौर की सेना पर आक्रमण किया। उस समय के भयानक संहार को देखकर राणा घबरा उठा और वह अपनी रक्षा के लिए चितौर भाग गया। हाड़ा राजपूतों के द्वारा बहुत-से सीसोदिया सैनिक और चित्तौर के सामन्त मारे गये। बचे हुए राणा के सैनिक युद्ध से भाग गये। विजयी हामाजी बूंदी राजधानी लौट गया।

हाड़ा वंश के थोड़े-से राजपूतों से पराजित होकर चित्तौर पहुँच जाने के बाद राणा ने अपना अपमान अनुभव किया और बूंदी के राजा से इस अपमान का बदला लेने के लिए उसने प्रतिज्ञा की कि जब तक मैं बूंदी पर अपना अधिकार न कर लूँगा, अन्न-जल ग्रहण न करूँगा। राणा की इस प्रतिज्ञा को सुनकर उसके मन्त्री और सामन्त घबरा उठे। बूंदी राजधानी चित्तौर से साठ मील की दूरी पर थी और शूरवीर हाड़ा राजा उसकी रक्षा के लिए तैयार था। इस दशा में चित्तौर के मंत्रियों और सामन्तों ने सोचा कि इतनी जल्दी बूंदी को पराजित करना किसी प्रकार सम्भव नहीं है। इसलिए राणा ने जो प्रतिज्ञा की है, वह किसी प्रकार संगत नहीं मालूम होती।

राणा की प्रतिज्ञा के सम्बन्ध में चित्तौर के मंत्रियों और सामन्तों ने बड़ी गम्भीरता के साथ परामर्श किया। उनकी समझ में राणा की यह प्रतिज्ञा अत्यन्त भयानक मालूम हुई, इसलिए कि बिना अन्न-जल ग्रहण किये मनुष्य कितनी देर तक जीवित रह सकता है, इतने थोड़े समय में चित्तौर से बूंदी का साठ मील लम्बा रास्ता पार करना भी सम्भव नहीं मालूम होता। इसलिए उन लोगों ने आपस में यह निर्णय किया कि राणा की इस प्रतिज्ञा को पूरा करने के लिए कोई उपाय निकालना चाहिए। इस आधार पर उन सभी लोगों ने मिलकर एक निर्णय किया और राणा से प्रार्थना की कि हम लोग चित्तौर में एक कृत्रिम बूंदी का निर्माण करते हैं। आप अपनी सेना लेकर उसके दुर्ग पर अधिकार करके अपनी प्रतिज्ञा को पूरा कीजिए।

सामन्तों की इस प्रार्थना को सुनकर राणा ने उसे स्वीकार कर लिया। चित्तौर में तुरंत कृत्रिम बूँदी का निर्माण किया गया, और उसमें बूदी की सभी बातों की रचना की गयी। बूँदी राज्य का जो भाग जिस नाम से सम्बोधन किया जाता था, इस कृत्रिम बूँदी में स्थान बनाये गये और उसका दुर्ग भी तैयार कर दिया गया। चित्तौर में पठार के हाड़ा लोगों की एक छोटी-सी सेना थी, जो राणा के यहाँ काम करती थी। कुम्भावैरसी उस सेना का सेनापति था। कुम्भावैरसी शिकार खेलकर लौट रहा था। उसने मार्ग में एक कृत्रिम दुर्ग को बनते हुए देखा, वह उसके पास गया। उसके पूछने पर लोगों ने बताया कि इस कृत्रिम बूँदी की विजय करके राणा अपनी प्रतिज्ञा को पूरा करेगा। कुम्भावैरसी के हृदय में उसी समय जातीय गौरव की भावना उदय हुई। उसने उसी समय कहा : "बूँदी और उसके दुर्ग के कृत्रिम होने पर भी हम उसकी रक्षा करेंगे। यहाँ पर हमारी जातीय मर्यादा का प्रश्न है।"

दुर्ग के निर्माण का कार्य समाप्त होने पर राणा के पास सूचना भेजी गयी। राणा अपनी सेना लेकर उस कृत्रिम दुर्ग पर अधिकार करने के लिए रवाना हुआ। पहले से यह योजना बनायी गयी थी कि दुर्ग में सीसोदिया सेना रखकर राणा के आक्रमण के समय खाली बन्दूके फायर की जायँ और दिखावटी दुर्ग की रक्षा की जावे। यह योजना पहले से निश्चित थी। परन्तु सेना के साथ दुर्ग की तरफ राणा के बढ़ते ही बन्दूकों से निकल-निकल कर गोलियाँ राणा के सैनिकों का संहार करने लगीं। यह देखकर राणा को बहुत आश्चर्य मालूम हुआ। उसने रहस्य का पता लगाने के लिए अपना एक दूत भेजा। उस दूत के वहाँ पहुँचने पर कुम्भावैरसी ने कहा : "तुम राणा से जाकर कहो कि बूँदी के कृत्रिम दुर्ग को जीतकर हाड़ावंश को अपमानित करना आसान नहीं है।"

इसके बाद उस कृत्रिम दुर्ग के बाहर युद्ध आरम्भ हुआ। जाति के सम्मान की रक्षा करने के लिए कुम्भावैरसी और उसके सैनिकों ने राणा की सेना के साथ शक्तिभर युद्ध करके अपने प्राणों को उत्सर्ग किया। उस युद्ध से बचकर और भाग कर एक भी हाड़ा सैनिक ने अपने प्राणों की रक्षा नहीं की।

राणा ने इस प्रकार कृत्रिम बूँदी और उसके दुर्ग पर विजय प्राप्त की। परन्तु उसके बाद उसने बूँदी राज्य पर अधिकार करने का इरादा छोड़ दिया। उसकी समझ में आ गया कि हाड़ा-वंश के लोग इतने शूरवीर और साहसी हैं कि वे युद्ध होने पर अपने प्राणों को बलिदान करेंगे। इसलिए उनके साथ युद्ध न करना ही अच्छा है। इस दशा में हाड़ा राजा हामाजी ने अधीनता के नाम पर जितना स्वीकार कर लिया था, राणा ने उसी पर संतोष कर लिया।

बूँदी के सिंहासन पर सोलह वर्ष तक बैठकर हामाजी ने स्वर्ग की यात्रा की। उसके दो लड़के थे, वीरसिंह और लाला। लाला को खुटकड नाम का राज्य मिला। नववर्मा और जैता नाम के उसके दो लड़के थे। उन दोनों के वंशधर नववर्मा पोता और जैतावत के नाम से प्रसिद्ध हुए।

हामा के बड़े लड़के वीरसिंह ने बूँदी के सिंहासन पर बैठकर पन्द्रह वर्ष तक राज्य किया। उसके तीन लड़के पैदा हुए। पहले का नाम था वीरू, दूसरे का जबदू और तीसरे लड़के का नाम था नीमा। जबदू से तीन शाखाओं की उत्पत्ति हुई और नीमा के वंशज नीमावत नाम से प्रसिद्ध हुए। पचास वर्ष तक शासन करने के बाद सम्वत् १५२६ में वीरू की मृत्यु हुई। उसके सात लड़के थे—(१) रावभांडा (२) राव सौंडा (३) अखैराज (४) राव ऊधव (५) राव चूड़ा (६) समर सिंह

ग्रौर (७) ग्रमर सिंह । ग्रारम्भ के पाँच लड़कों से पाँच वंशों की उत्पत्ति हुई । समर सिंह ग्रौर ग्रमर सिंह ने इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया ।

उपकार , शौर्य ग्रौर चातुर्य के लिए राजस्थान में राव भांडा का नाम ग्रब तक प्रसिद्ध है । लोगों का कहना है कि उसमें परोपकार की भावना इतनी ग्रधिक थी , जितनी दूसरों में बहुत कम देखने को मिलेगी । सम्वत् १५४२ सन् १४८६ ईसवी में एक भयानक दुर्भिक्ष राजस्थान में पड़ा था । राव भांडा ने ग्रकाल के उन दिनों में ग्रन्न ग्रौर धन से लोगों की सहायता करके ग्रक्षय कीर्ति पायी थी । वहाँ के एक ग्रंथ में पढ़ने को मिलता है कि सम्बत् १५४२ के एक वर्ष पहले बूँदी के राजा राव भाँडा ने एक स्वप्न देखा था । उसमें उसने देखा कि एक भयानक ग्रकाल पड़ा हुग्रा है ग्रौर एक काले भैंसे पर बैठा हुग्रा ग्रकाल उसके सामने ग्राकर उपस्थित हुग्रा । राव भांडा ने उसे देख कर ग्रपनी ढाल ग्रौर तलवार उठायी ग्रौर उस ग्रकाल पर ग्राक्रमण किया । यह देखकर ग्रकाल ने कहा—"मैं दुर्भिक्ष हूँ । मेरे ऊपर तुम्हारी तलवार का कोई प्रभाव न पड़ेगा । तुमको छोड़कर ग्रौर किसी ने ग्राज तक मुझ पर कभी ग्राक्रमण नहीं किया । इसलिए मैं तुमसे जो कुछ कहना चाहता हूँ , उसे ध्यान-पूर्वक सुनो । मैं ग्रागामी वर्ष सम्वत् १५४२ में ग्राऊँगा । उस वर्ष सम्पूर्ण भारत में ग्रकाल पड़ेगा । तुम ग्रभी से धन ग्रौर ग्रनाज एकत्रित करने की कोशिश करना ग्रौर दुर्भिक्ष पड़ने पर तुम सब की सहायता करना । "

यह कह कर ग्रकाल ग्रन्तर्ध्यान हो गया । उसके बाद राव भाँडा का स्वप्न भंग हुग्रा । वह बड़ी देर तक ग्रपने स्वप्न पर विचार करता रहा । ग्रकाल के उपदेश के ग्रनुसार उसने ग्रन्न ग्रौर धन एकत्रित करने का कार्य ग्रारम्भ किया ग्रौर उस वर्ष के ग्रंत तक वह बराबर ग्रनाज संग्रह करता रहा । दूसरे वर्ष सम्वत् १५४२ में बरसात न हुई । उसके कारण सम्पूर्ण देश में ग्रकाल पड़ गया ।

राव भाँडा ने पहले से ही सभी प्रकार का ग्रनाज एकत्रित किया था । उसने ग्रकाल के दिनों में ग्रनाज देकर लोगों की सहायता की । दुर्भिक्ष से पीड़ित दूसरे राज्यों के नरेशों ने उससे ग्रनाज की सहायता माँगी । राव भाँडा ने उनको भी ग्रनाज की सहायता दी । उस दुर्भिक्ष में ग्रकाल के कारण बहुत-से ग्रादमियों की मृत्यु हुई । परन्तु बूँदी राज्य में किसी को खाने पीने का ग्रधिक कष्ट नहीं मिला । राव भाँडा के इस प्रकार के स्मारक में बूँदी राज्य में ग्रब तक लंगर का गूगरी नाम से दीनों ग्रौर दरिद्रों को ग्रनाज बाँटा जाता है ।

राव भाँडा यद्यपि परम दयालु ग्रौर परोपकारी था, परन्तु जीवन की कठिनाइयों से उसे भी छुटकारा न मिला । समर सिंह ग्रौर ग्रमर सिंह नाम के दो भाई उससे छोटे थे । इस्लाम धर्म स्वीकार कर लेने के कारण वे दिल्ली के बादशाह को प्रिय हो गये थे । उन दोनों भाइयों ने बादशाह की सेना लेकर बूँदी राज्य पर ग्राक्रमण किया । राव भाँडा ने शक्ति-भर उस सेना के साथ युद्ध किया । लेकिन बादशाह की फौज बहुत बड़ी होने के कारण राव भाँडा की पराजय हुई । वह ग्रपने राज्य से भाग कर मातोंदा नामक स्थान पर चला गया ग्रौर वहाँ के पर्वत शिखर से गिरकर उसने प्राण दे दिये । राव भाँडा ने इक्कीस वर्ष तक शासन किया । समर सिंह ग्रौर ग्रमर सिंह ने इस्लाम धर्म स्वीकार करने के बाद ग्रपने नाम बदल दिये थे ग्रौर समरकंदी तथा ग्रमरकंदी के नामों से उन दोनों ने ग्यारह वर्ष तक बूँदी-राज्य में शासन किया ।

राव भाँडा के दो लड़के थे । एक का नाम था नारायण दास ग्रौर दूसरे का नाम नरवद था। नरवद मानोंदा ग्राम का ग्रधिकारी हुग्रा । वयस्क होने पर नारायण दास के मनोभावों में पिता के राज्य का उद्धार करने की भावना उत्पन्न हुई । उसने पठार के समस्त हाड़ा लोगों को एकत्रित

करके कहा : "हम लोग या तो बूँदी राज्य पर अधिकार करेंगे अथवा युद्ध-भूमि में अपने प्राण त्याग देंगे।"

नारायण दास के मुख से इस प्रकार की बात को सुनकर सभी एकत्रित हाड़ा लोगों ने उत्साह के साथ उसका समर्थन किया। इसके पश्चात कुछ दिन बीत गये। नारायण दास अपनी अभिलाषा को पूरी करने के लिए तरह-तरह के उपाय सोचता रहा। एक दिन उसने अपने दोनों मुस्लिम चाचाओं के पास संदेश भेजा : "मैं अपना सम्मान प्रकट करने के लिए आपके पास आना चाहता हूँ।"

अयोग्य और असमर्थ होने के कारण नारायण दास पर उसके किसी चाचा को संदेह पैदा न हुआ और उन दोनों ने नारायण दास को बूँदी के महल में आने के लिए आदेश दे दिया। इससे नारायण दास को बड़ी प्रसन्नता हुई। उसने अपने साथ चलने के लिए कुछ ऐसे लोगों को तैयार किया, जो पूर्ण रूप से विश्वासी, पराक्रमी और शूरवीर सैनिक थे। उनको लेकर नारायण दास बूँदी राजधानी में पहुँच गया और महल से कुछ दूरी पर अपने साथ के लोगों को छिपा कर वह महल की तरफ रवाना हुआ। नारायण दास के दोनों चाचा बिना किसी आशंका के महल के भीतर एक कमरे में बैठे थे और दोनों आपस में बातें कर रहे थे। उनके पास किसी प्रकार का कोई अस्त्र न था। नारायण दास ने महल के भीतर प्रवेश किया। उसके मुख-मण्डल पर हिंसा की रेखायें प्रस्फुटित हो रही थीं। उन दोनों को देखकर नारायण दास ने तेजी के साथ आक्रमण किया। उन दोनों ने नारायण दास का यह दृश्य देख कर सुरङ्ग के रास्ते से भाग जाने की चेष्टा की। इसी समय नारायण दास ने अपनी तलवार से समर सिंह को आघात पहुँच कर गिरा दिया और अपने तेज भाले का वार उसने अमर सिंह पर किया। चोट खाकर दोनों जमीन पर गिर गये। उसी समय नारायण दास ने अपनी तलवार से दोनों के सिर काट लिए और वह कटे हुए दोनों सिर लेकर महल के बाहर देवी के मन्दिर में पहुँचा और देवी के सामने रखकर अपनी पूर्व योजना के अनुसार उसने ऊँचे स्वर में जय घोष किया। उसे सुनते ही उसके साथ के सैनिकों ने उस स्थान में प्रवेश किया। जहाँ पर नारायणदास मौजूद था। यह सब इतनी तेजी और तत्परता के साथ हुआ कि उनके विरुद्ध बूँदी में कोई प्रबन्ध न हो सका। नारायण दास और उसके साथ के सैनिकों ने वहाँ के मुसलमानों पर भयानक आक्रमण किया। यह देख कर राजधानी के प्रत्येक हाड़ा राजपूत ने नारायण दास का साथ दिया। उस समय भीषण रूप से राज धानी में मुसलमान मारे गये। राव नारायण दास ने साहस के साथ मुसलमानों का संहार करके अपने पिता की राजधानी बूँदी पर अधिकार कर लिया। महल के भीतर जिस स्थान पर नारायण दास के दोनों चाचा मारे गये थे, दशहरा के त्योहार में उस स्थान के पत्थर की पूजा बूँदी के राजपूतों में अब तक की जाती है।

नारायण दास विशाल काय और अत्यन्त वीर पुरुष था। वह कभी भी भयभीत होना न जानता था। लेकिन अधिक अफीम सेवन करने की उसकी आदत थी और इस अफीम के कारण ही उसके जीवन में अवाच्छनीय घटनायें घटी थीं। राजपूतों में आमतौर पर अफीम का सेवन होता था। लेकिन इन दिनों में इसका प्रचार अधिक बढ़ गया था। अफीम सस्ती मिलती थी। उन दिनों में साधरण अफीम का सेबन करने वाला अपने लिए एक पैसे की अफीम प्रति दिन के लिए काफी समझता था और जो आदमी इसका सेवन नहीं करता था, उसके लिए एक पैसे की अफीम भी प्राण घातक हो जाती थी। परन्तु नारायण दास एक बार में सात पैसे की अफीम खाता था। उसकी यह आदत धीरे-धीरे बहुत बढ़ गयी थी।

नारायण दास के समय राणा रायमल्ल चित्तौर के सिंहासन पर था। उन्हीं दिनों में मांडू के

पठानों ने चित्तौर पर आक्रमण करके वहाँ के दुर्ग को घेर लिया था। संधि के अनुसार चित्तौर के राणा ने नरायण दास को सेना के साथ सहायता के लिए बुलाया। नारायण दास ने चुने हुए पाँच सौ शूरवीरों को अपने साथ लिया और वह चित्तौर की ओर रवाना हुआ।

बूँदी से चलकर पहले दिन उसने मार्ग में एक स्थान पर विश्राम किया और एक वृक्ष के नीचे अफीम का सेवन करके वह लेट रहा। उसका मुख खुला हुआ था और नेत्र बन्द थे। मक्खियाँ उसके मुख और होठों पर एकत्रित हो रही थी। उसी समय उस रास्ते से एक तेली की स्त्री कुएं का जल लाने के लिए होकर निकली और नारायण दास को इस दशा में लेटे हुए देखकर उसने पास के किसी आदमी से पूछा "यह कौन है ?"

उस आदमी ने उत्तर दिया : "आप दूँदी के राव साहब हैं। चित्तौर के राणा ने अपनी सहायता के लिए राव साहब को बुलाया है।"

उस स्त्री ने ध्यान पूर्वक नारायण दास की तरफ देखा और कहा : "हे भगावान, अपनी सहायता के लिए राणा को और कोई आदमी न मिला।"

कहा जाता है कि अफीम सेवन करने वाले की आंखें बन्द रहती हैं। लेकिन उसको उस समय कानों से अधिक सुनायी देता है। उस स्त्री ने जो कुछ कहा, नारायण दास ने उसे भली प्रकार सुना। उसने अपनी आंखें खोल दीं और उठ कर उसने उस स्त्री से पूछा : तुम क्या कह रही हो ?"

नारायण दास की इस बात को सुनकर उस स्त्री ने उसकी ओर देखा और उसकी विराट मूर्ति को देखकर वह भयभीत हो उठी। क्षमा मांगने के लिए उसने कुछ कहना चाहा, उसी समय नारायण दास ने कहा : "डरो नहीं, तुम जो कह रही थीं, उसे फिर कहो।"

भयभीत हो जाने के कारण वह स्त्री कुछ कह न सकी। उसके हाथ में मजबूत लोहे की एक मोटी छड़ थी। नारायण दास ने उसके हाथ से उस छड़ को ले लिया और उसे पकड़कर इस प्रकार झुकाया कि वह गले में पहनने की एक हसली बन गयी। नारायण दास ने उसे हसली को गले में पहनाकर उसके दोनों किनारे एक दूसरे से साथ इस प्रकार मिला दिये कि जिससे वह सिर से उतर न सकती थी। नारायण दास ने उसके गले में उस हसली को पहना कर कहा : "क्या तुम्हें कोई दूसरा आदमी ऐसा मिलेगा जो तुम्हारे गले से इसको निकाल सके ? यदि मिल सके तो इसे निकलवा लेना, अन्यथा मेरे चित्तौर से लौटने के समय तक तुम इसे पहने रहना।"

पठानों की सेना ने चित्तौर को इस प्रकार घेर लिया था कि उसका कोई भी मनुष्य वाहर आ-जा नहीं सकता था। पठानों के इस घेरे से राणा के सामने बड़ा संकट पैदा हो गया था। पठार के गूढ़ मार्ग से होकर अपने पांच सौ शूरवीरों के साथ रात्रि के समय नारायण दास ने अकस्मात पठानों के शिविर में प्रवेश किया और भीषण आक्रमण के साथ पठानों का संहार करना आरम्भ कर दिया। इसी समय आक्रमणकारी पठानों के सेनापति के सामने पहुँच गये। हाड़ा राजपूतों के संहार से भयभीत होकर पठान लोग शिविर से बाहर की तरफ भागने लगे। इस भगदड़ में पठानों का भयानक रूप से संहार हुआ। बहुत-से लोग मारे गये और जो शेष बचे, वे सब के सब शिविर से भाग गये।

चित्तौर के राणा ने प्रात:काल होते ही सुना कि बूँदी से राव नारायण दास ने अपनी सेना के साथ आकर रात में पठानों का संहार किया है और बचे हुए पठान अपने प्राण लेकर भाग गये हैं। यह जानकर राणा रायमल्ल चित्तौर से बाहर निकला और बड़े सम्मान के साथ नारायण दास से मिलकर उसने अपनी प्रसन्नता प्रकट की। इसी समय नारायण दास को लिए हुए रायमल्ल

चित्तौर में पहुँचा। जय जयकार के साथ चित्तौर की राजधानी में नगाड़े बजाये गये। यह बात किसी से छिपी न रही कि बूँदी के राजा नारायण दास के केवल पाँच सौ हाडा राजपूतों ने पठानों की सेना को पराजित किया। सम्पूर्ण चित्तौर में नारायण दास की प्रशंसा होने लगी। राणा के महल में नारायणदास को सम्मान देने के लिए एक बड़ी सभा की गयी। उस सभा में मेवाड़ के सभी सामन्तों ने आकर बूँदी के नरायण दास के प्रति अपना सम्मान प्रकट किया। राणा के महल से नारायण दास को देखने के लिए परदे में स्त्रियां आयीं और सभी ने उसकी विराट मूर्ति को देखा। सभी ने प्रसन्नता प्रकट की।

अफीम का सेवन करने की आदत यद्यपि नारायण दास की बहुत बढ़ गयी थी। फिर भी उसकी भीमकाय मूर्ति को देखकर सभी लोग दंग रह जाते थे। राणा के भाई की लड़की ने नारायणदास को देखा। सभा में उसकी जो प्रशंसा की गयी, उसको उसने सुना। वह अत्यन्त प्रभावित हुई और उसके साथ अपना विवाह करने के लिए उसने अपनी सखियों से कहा। दूसरे दिन राणा ने अपनी भतीजी के इस निर्णय को सुना। उसने प्रसन्नता के साथ भतीजी के निर्णय को स्वीकार किया। राणा ने इस विवाह के सम्बन्ध में नारायण दास से बातचीत की। विवाह में सीसोदिया वंश की लड़की का पाना हाड़ा राजपूतोंके लिए बड़े सम्मान की बात थी। इस लिए राव नारायण दास ने राणा के उस प्रस्ताव को हर्ष-पूर्वक स्वीकार किया।

इन्हीं दिनों में नारायण दास के साथ चित्तौर में बड़ी धूम-धाम से राणा की भतीजी का विवाह हुआ। नव विवाहिता पत्नी को लेकर नारायण दास बूँदी गया। और दोनों दाम्पत्य जीवन का सुख भोग करने लगे। इन दिनों में नारायण दास का अफीम का सेवन पहले की अपेक्षा अधिक बढ़ गया और एक दिन नशे के उन्माद में उसने रात के समय मेवाड़ की राजकुमारी के शरीर को आधात पहुँचाकर उसके अपूर्व सौदंर्य को नष्ट कर दिया। सीसोदिया राजकुमारी ने उससे कुछ भी बुरा न माना। दूसरे दिन जब नारायण दास ने अपनी रानी की उस दशा को देखा तो वह बहुत लज्जित हुआ। जिस पात्र में वह अफीम रखता था, उसे अपनी रानी के हाथ में देकर उसने प्रतिज्ञा की कि आज से मैं इस प्रकार अधिक अफीम का सेवन कभी न करूँगा।

राव नारायण दास ने बत्तीस वर्ष तक शासन करके बूँदी के राज्य का विस्तार किया। इन दिनों में बूँदी राज्य का गौरव राजस्थान में बहुत बढ़ा था। इसके बाद उसकी मृत्यु हो गयी।

नारायण दास के बाद उसका इकलौता लड़का सूर्यमल्ल सम्वत् १५९० सन् १५३४ ईसवी में बूँदी के सिंहासन पर बैठा। वह अपने पिता की तरह बलिष्ठ, साहसी और पराक्रमी था। रामचन्द्र और पृथ्वीराज की तरह उसकी दोनों भुजायें रानों तक लम्बी थीं।

बूँदी के राजसिंहासन पर सूर्यमल्ल के बैठने के बाद मेवाड़ के राणा वंश के साथ फिर एक वैवाहिक सम्बन्ध वहाँ का कायम हुआ। राव सूर्यमल्ल ने सूजाबाई नामक अपनी बहन का विवाह चित्तौर के राणा रत्नसिंह के साथ कर दिया और राणा रत्नसिंह ने भी अपनी बहन का विवाह राव सूर्यमल्ल के साथ किया। इन दोनों वैवाहिक सम्बन्धों के कारण दोनों राज्यों में आत्मीयता अधिक सुदृढ़ हो गयी। परन्तु वह अधिक दिनों तक चल न सकी और कुछ दिनों के बाद शत्रुता में परिणत हुई।

सूर्यमल्ल भी अपने पिता नारायण दास की तरह अधिक अफीमची था। किसी अवसर पर राव सूर्यमल्ल चित्तौर गया था और एक दिन अधिक अफीम सेवन करके वह राज-दरबार में आँखें मूँदे बैठा हुआ था। इसी समय मेवाड़ राज्य का एक पुरबिया सामन्त वहाँ पर आया। उसने

सूर्यमल्ल को आँखें बन्द किये हुए देखकर हँसी करने के अभिप्राय से एक सींक का टुकड़ा उसके कान में डाल दिया। सूर्यमल्ल ने अपने नेत्र खोल दिये और क्रोध में आकर अपनी तलवार लेकर उसने उस सामन्त के सिर को काटकर जमीन पर गिरा दिया। उस सामन्त का लड़का भी वहाँ पर उपस्थित था। अपने पिता का बदला लेने के लिए वह उत्तेजित हो उठा। परन्तु सूर्यमल्ल को पराक्रमी और भीमकाय देखकर एवम् राणा का निकट वर्ती आत्मीय समझकर उसने अपना क्रोध शांत किया।

सूजाबाई ने अपने पति और भ्राता को भोजन कराने के लिए अनेक प्रकार की सामग्री बनवाई और तैयार हो जाने पर दोनों को भोजन करने लिए बुलवाया। भोजन करने के लिए रत्नसिंह और सूर्यमल्ल—दोनों महल में गये। भोजन परोस कर आ जाने के बाद दोनों ने खाना आरम्भ किया। देख-भाल के लिए सूजाबाई स्वयं वहाँ पर उपस्थित रही। हिन्दुओं में पति वंश की अपेक्षा बंधु वंश की प्रशंसा करना लड़कियाँ अपना कर्त्तव्य समझती हैं। पिता के वंश की यदि कोई निंदा करता है तो वे किसी प्रकार सहन नहीं कर सकतीं। राणा और राव—दोनों के भोजन कर चुकने पर सूजाबाई ने अपने भाई के गौरव को बढ़ाने के लिए कहा : "मेरे भाई ने सिंह के समान भोजन किया है। लेकिन स्वामी ने भोजन करने के समय एक बालक की तरह प्रदर्शन किया है।"

सूजाबाई के मुख से इस प्रकार की बात को सुनकर राणा ने अपना अपमान समझा और क्रोध में आकर इसका बदला लेने के लिए वह उत्तेजित हो उठा। परन्तु यह सोचकर कि अतिथि के साथ किसी प्रकार का अशिष्ट व्यवहार करना राजपूत का कर्त्तव्य नहीं है, वह शांत हो गया। वह बात ज्यों की त्यों रह गयी।

राव सूर्यमल्ल चित्तौर से बूँदी जाने के लिए तैयार हुआ। उस समय राणा रत्नसिंह ने उससे कहा : "आगामी बसन्त ऋतु में फागुन के उत्सव के समय हम बूँदी के जंगल में शिकार खेलने के लिए आवेंगे।"

राव सूर्यमल्ल ने राणा की इस बात को सुनकर प्रसन्नता प्रकट की।

कुछ दिनों के बाद बसन्त ऋतु में फागुन का उत्सव समीप आने पर राव सूर्यमल्ल ने राणा के पास आने के लिए निमंत्रण भेजा। उस निमंत्रण को पाकर सेना और सामन्तों के साथ राणा रत्नसिंह पठार के रास्ते से बूँदी की तरफ रवाना हुआ। चम्बल नदी के पश्चिमी किनारे नान्दता नामक स्थान के विस्तृत बन में शिकार खेला जायगा, यह पहले से ही निश्चय था। उस बन में सिंह से लेकर सभी प्रकार के जंगली जानवर थे। राणा के वहाँ पहुँचने पर बूँदी का राजा राव सूर्यमल्ल भी सेना के साथ वहाँ पर आ गया। राव और राणा—दोनों ही शिकार खेलने के लिए चले। दोनों ओर के सैनिकों ने शोर-गुल करते हुए जंगल में प्रवेश किया। उनकी आवाजों को सुनकर जंगल के सभी जानवर उत्तेजित हो उठे। छोटे-छोटे जंगली पशु डरकर जंगल में इधर-उधर भागने लगे।

उस घने बन में राणा रत्नसिंह ने अपने अपमान का बदला लेने की कोशिश की। राणा और राव जंगल में जहाँ घूम रहे थे, उनकी सेनाओं के सैनिक वहाँ से जंगल में दूर पहुँच गये थे। कान में सींक डाल देने के कारण बूँदी के राव ने मेवाड़ के एक पुरबिया सामन्त को मार डाला था और उस सामन्त के लड़के ने अपने पिता का बदला लेने की प्रतिज्ञा की थी। इस समय जंगल में राणा रत्न सिंह के साथ उस सामन्त का लड़का भी था। राणा रत्नसिंह ने सामन्त के लड़के को संकेत से बुलाकर कहा : "इस अवसर पर क्या बाराह का शिकार करोगे ?"

सामन्त के पुत्र के साथ यहाँ आने के पहले ही बातें हो चुकी थीं । सामन्त के लड़के ने अपना धनुष लेकर राय सूर्यमल्ल पर एक बाण मारा । राव सूर्यमल्ल ने अपना बाण छोड़कर उसको असफल कर दिया । लेकिन वह सामन्त के पुत्र ने सूर्यमल्ल पर अपने दूसरे बाण का वार किया । यह देखकर सूर्यमल्ल को उस पर संदेह हुआ और उसने समझ लिया कि यह तो मेरे प्राणों पर आक्रमण हो रहा है , इसी समय राणा रत्न सिंह ने अपने घोड़े को बढ़ाकर तेजी के साथ सूर्यमल्ल पर तलवार का प्रहार किया और उसे पृथ्वी पर गिरा दिया । राव सूर्यमल्ल ने सम्हलकर अपने जख्मों पर पट्टी बाँधी । उसके गिर जाने पर राणा ने उस स्थान से हट जाने की कोशिश की । यह देखकर सूर्यमल्ल ने जोर के साथ ललकार कर कहा : "अब भाग क्यों रहे हो ? मेवाड़ का पतन अब दूर नहीं है ।"

राणा ने सूर्यमल्ल की इस बात की कुछ परवा न की । वह अपने घोड़े को बढ़ाकर तेजी के साथ आगे बढ़ा । सूर्यमल्ल अपने जख्मों पर पट्टी बाँधकर तेजी के साथ राणा की तरफ दौड़ा । इसी समय सामन्त के लड़के ने राणा के पास जाकर कहा : "अभी कार्य पूरा नहीं हुआ , सूर्यमल्ल अभी जीवित है ।"

सामन्त के पुत्र से इस बात को सुनते ही राणा रत्न सिंह ने अपने घोड़े को मोड़ दिया और वह सूर्यमल्ल की तरफ रवाना हुआ । रास्ते में दोनों की भेंट हो गयी । सूर्यमल्ल को देखते ही राणा ने अपनी तलवार का वार करने की चेष्टा की । उसी समय सूर्यमल्ल ने राणा को पकड़कर घोड़े से नीचे गिरा दिया । बहुत समय तक दोनों में कुश्ती होती रही । उसके बाद राणा को गिरा कर सूर्यमल्ल उसकी छाती पर चढ़कर बैठ गया और उसने अपने एक हाथ से राणा का गला पकड़ा और दूसरे हाथ में अपनी तलवार लेकर उसने कहा : "देखो किस प्रकार बदला लिया ।"

इतना कहने के साथ ही सूर्यमल्ल ने राणा रत्न सिंह की छाती पर अपनी तलवार का गहरा आघात किया । राणा की उसी समय मृत्यु हो गयी । सूर्यमल्ल ने राणा को मारकर अपना बदला ले लिया परन्तु उसी समय राणा के मृत शरीर पर गिरगर उसने भी अपनी हत्या करली ।

इसके बाद यह समाचार बूँदी के राजमहल में पहुँचा । सूर्यमल्ल की माता ने उस समाचार को सुनकर उत्तेजित स्वर में कहा : "क्या मेरा पुत्र अकेला ही उस जंगल में मरा ? क्या वह अपने साथ शत्रु को संसार से बिदा करके नहीं ले गया ?"

सूर्यमल्ल की माता ने जिस समय वह बात अपने महल में कही , उसी समय वहाँ पहुँचकर एक आदमी ने उससे कहा : "राव सूर्यमल्ल ने अपने शत्रु राणा रत्न सिंह को मारकर अपने प्राणों को उत्सर्ग किया है ।" उस आदमी के मुख से इस बात को सुनकर वृद्धा रानी को संतोष मिला ।

राव सूर्यमल्ल ने राणा रत्न सिंह की बहन के साथ विवाह किया था और राणा रत्न सिंह का विवाह सूर्यमल्ल की बहन के साथ हुआ था । राव और राणा के मृत शरीरों को लेकर दोनों रानियाँ प्रज्वलित चिता पर बैठीं और सब के देखते-देखते वे सती हो गयीं । राव और राणा—दोनों जिस स्थान पर मारे गये थे , वहाँ पर दोनों के समाधि मंदिर बनवाये गये । सूजाबाई का समाधि मंदिर शिखर के ऊपर बना । इन समाधि मन्दिरों को देखकर उस समय की अवाञ्छनीय घटना का स्मरण होता है ।

सूर्यमल्ल के पश्चात् उसका लड़का सुरतान सम्वत् १५९१ सन् १५३५ ईसवी में बूँदी के सिंहासन पर बैठा । मेवाड़ के शक्तावत वंश के आदि पुरुष शक्तसिंह की लड़की के साथ सुरतान का विवाह हुआ था । इन दिनों में तांत्रिक शैवियों का बूँदी राज्य में प्रभाव बढ़ रहा था । अत्याधिक राजपूत उन तांत्रिकों में शामिल होकर महाकाल भैरव की पूजा किया करते थे । राव सुरतान ने भी उस

दल में शामिल होकर काल भैरव के मंदिर में जाना आरम्भ कर दिया था। इस लिए राज्य के सामन्त और दूसरे सभी लोग उससे बहुत अप्रसन्न हो गये। उन लोगों ने आपस में परामर्श करके उसे सिंहासन से उतार दिया। चम्बल नदी के किनारे एक साधारण ग्राम उसको रहने के लिए दे दिया गया। सुरतान ने उस ग्राम का नाम सुरतानपुर रखा। उसके कोई लड़का न था इसलिए बूँदी के सामन्तों ने आपस में परामर्श करके बूँदी-राज्य के भूतपूर्व राजा राव भाँडा के दूसरे लड़के नरबुध के पुत्र अर्जुन को मातोंदा से लाकर बूँदी के सिंहासन पर बिठाया।

अर्जुन ने सिंहासन पर बैठकर शासन का कार्य आरम्भ किया। वह साहसी, समझदार, योग्य और युद्ध-कौशल था। राजपूतों में एक यह आदत पायी जाती है कि उनकी जब किसी के साथ शत्रुता हो जाती है तो वह शत्रुता उनके वंशजों तक चली जाती है और वे एक दूसरे को क्षति पहुँचाने में कुछ उठा नहीं रखते। चित्तौर के राणा रत्नसिंह और बूँदी के राव सूर्यमल्ल—दोनों आपसी संघर्ष के कारण मरे थे। परन्तु राव अर्जुन सिंह और रत्नसिंह का लड़का—जो उसके समय मेवाड़ के सिंहासन पर था—आपस की शत्रुता को भुला कर प्रेम और सद्भाव के साथ दोनों रहने लगे थे। गुजरात के बहादुरशाह ने जिस समय चित्तौर को घेर लिया था, उस समय जो हाड़ा राजा अपनी सेना लेकर चित्तौर की सहायता के लिए गया था और शत्रु सेना के साथ जिसने युद्ध किया था, वह राव अर्जुन ही था। जिस समय अर्जुन अपने साहस और पराक्रम के साथ चित्तौर के एक बुर्ज की रक्षा में युद्ध कर रहा था, उस समय बहादुरशाह ने उस बुर्ज के नीचे सुरंग तैयार करवाई थी और उस सुरंग में बारूद भर कर उसने आग लगवा दी थी। अर्जुन के प्राण उस समय भयानक संकट में पड़ गये थे। लेकिन वह जरा भी विचलित नहीं हुआ था और अपने हाथ में तलवार लेकर शत्रुओं का संहार करते हुए उसने वहीं पर एक सच्चे राजपूत की तरह अपने प्राण दे दिये। हाड़ा कवि ने अपने ग्रन्थ में अर्जुन की वीरता का वर्णन करते हुए बहुत अधिक प्रशंसा की है।

अर्जुन के चार लड़के पैदा हुए थे। उनमें सबसे बड़े लड़के का नाम सुरजन था और वह सम्वत् १५८६ सन् १५३३ ईसवी में अपने पिता के सिंहासन पर बैठा। दूसरे लड़के का नाम था रामसिंह। उसके वंशज राम हाडा नाम से प्रसिद्ध हुए। तीसरे लड़के का नाम था अखैराज, उसके वंशज अखैराजपोता के नाम से पुकारे गये। सब से छोटे लड़के का नाम था। कांदिल, उसके वंशज जेसाहाड़ा नाम से विख्यात हुए।

उनहत्तरवाँ परिच्छेद

बूँदी-राज्य में परिवर्तन—बैदला के चौहान सामन्त के साथ सामन्त सिंह का मेल—बादशाह अकबर के द्वारा रण-थम्भोर के दुर्ग का घेरा—मानसिंह की राजनीति—बादशाह के प्रलोभन—दोनों पक्षों में संधि—दिल्ली की राजधानी आगरा में—अकबर की लोकप्रिय राजनीति—राजपूत राजाओं की अधीनता—बादशाह की सेना के साथ चंदा बेगम का युद्ध—बूँदी का राव राजा भोज और बादशाह अकबर—राजा मानसिंह—विष से बादशाह अकबर की मृत्यु—खुर्रम और परवेज में विद्रोह—जहाँगीर का संकट—राव रतनसिंह की सहायता—शाहजहाँ के लड़कों में विद्रोह—औरंगजेब और छत्रसाल—दिल्ली में आपसी संघर्ष।

राव सुरजन सिंह के सिंहासन पर बैठने के बाद बूँदी-राज्य में अनेक प्रकार के राजनीतिक परिवर्तन हुए। वहाँ के राजाओं ने अब तक स्वतन्त्र शासन किया था और आवश्यकता पड़ने पर

सम्मानपूर्वक उन्होंने मेवाड़ के राणा की सहायता की थी। लेकिन राव सुरजन सिंह के समय राज्य की इन बातों में परिवर्तन हुए। उसे दिल्ली के बादशाह के प्रति अपनी स्वतन्त्रता को निर्बल करना पड़ा। यद्यपि ऐसा करके उसने अपने राज्य की शक्तियों को मजबूत बना लिया था।

बूँदी राज वंश की एक शाखा में सामन्त सिंह नाम का एक व्यक्ति हुआ। वह उस राज्य का एक सामन्त था और अपने बल-पौरुष से उसने गौरव प्राप्त किया। शेरशाह का शासन निर्बल पड़ जाने पर सामन्त सिंह ने बैदला के चौहान सामन्त के साथ मेल पैदा किया और रणथम्भोर नामक प्रसिद्ध दुर्ग को छोड़ देने के लिए उसने अफगान शासक को पत्र लिखा। अफगान बादशाह उसके इस प्रकार के पत्र को पाकर चिन्ता में पड़ गया। बहुत सोच-समझ कर उसने उस दुर्ग का अधिकार सामन्त सिंह को दे दिया और सामन्त सिंह ने वह दुर्ग सुरजन सिंह को दे दिया। बूँदी के राज्य में इस प्रकार सुदृढ़ और सुरक्षित दुर्ग दूसरा न था। इस लिए उस दुर्ग का अधिकार पाकर सुरजन सिंह ने सामन्त सिंह का बहुत सम्मान किया और अपने राज्य के एक प्रसिद्ध इलाके का अधिकार उसको दे दिया। इस प्रकार सामन्त सिंह की ख्याति बूँदी-राज्य में आरम्भ हुई। उसके वंशज सामन्त हाडा के नाम से विख्यात हुए।

बैदला के जिस चौहान सामन्त ने रणथम्मोर के दुर्ग को लेने में सामन्त सिंह की सहायता की थी, उसने राव सुरजन सिंह से प्रस्ताव किया कि उस दुर्ग पर अधिकार उसे मेवाड़ के एक सामन्त की हैसियत से रखना होगा। राव सुरजन ने इसको स्वीकार कर लिया।

दिल्ली के सिंहासन पर बैठकर बादशाह अकबर ने रणथम्भोर के इस दुर्ग को लेने का इरादा किया और उसने अपनी सेना लेकर उस दुर्ग को जाकर घेर लिया। राव सुरजन ने अपनी सेना लेकर बादशाह की विशाल सेना का मुकाबिला किया और उसने किसी प्रकार दुर्ग को बादशाह के अधिकार में जाने न दिया। बादशाह की फौज दुर्ग की दीवारों को विध्वंस करने की लगा तार चेष्टा करती रही। लेकिन उसे सफलता न मिली।

आमेर के राजा भगवानदास ने बादशाह अकबर की अधीनता स्वीकार कर ली थी और उसका लड़का मानसिंह बादशाह की सेना में सेनापति हो गया था। इन्हीं दिनों में राजा भगवानदास ने बादशाह अकबर के साथ अपनी बहन का विवाह कर दिया था।

रणथम्भोर के दुर्ग पर बादशाह अकबर को सफलता न मिलने पर मानसिंह ने अपनी राज नीति से काम लिया। उसने राव सुरजन को किसी प्रकार बादशाह की अधीनता में लाने का निश्चय किया। उसने अनेक प्रकार की योजनायें बना कर राव सुरजन से भेंट करने के लिए अपना संदेश भेजा। बूँदी का राजा राव सुरजन उसे सजातीय समझता था। इसलिए उस पर विश्वास करके उसने उसको रणथम्भोर के दुर्ग में बुला लिया। मानसिंह के साथ बादशाह अकबर भी अपने आप को छिपा कर उस दुर्ग में गया। दोनों ने वहाँ पहुँच कर राव सुरजन से भेंट की और मानसिंह के साथ उसकी बातचीत आरम्भ हुई। वहाँ पर राव सुरजन का चाचा भी मौजूद था। उसने वेष बदले हुए अकबर को पहचान लिया। उसने तुरन्त अकबर को सम्मानपूर्वक एक ऊँचे स्थान पर बिठाया। अकबर ने बड़े शिष्टाचार के साथ राव सुरजान से कहा : राव सुरजन, क्या होना चाहिए ?"

इसी समय मानसिंह ने राव सुरजन की तरफ देखा और अपनी आत्मीयता को प्रकट करते हुए उसने उससे कहा : "आप चित्तौर के राणा की आधीनता को तोड़कर रणथम्भोर का दुर्ग बादशाह को दे दीजिए।

बादशाह की अधीनता स्वीकार करने के बाद आप को वह सम्मान प्राप्त होगा, जिसकी आप कभी कल्पना नहीं कर सकते। आप के शासन की मर्यादा बढ़ेगी और एक विशाल-राज्य की आमदनी के आप स्वतंत्र अधिकारी होंगे। बादशाह का उसमें कोई अधिकार न होगा। लेकिन आप अपनी सेना के साथ बादशाह के आदेशों का पालन करेंगे। आप अपनी आवश्यकताओं के सम्बन्ध में जो कुछ प्रार्थना करेंगे, बादशाह सम्मानपूर्वक उसे पूरा करेगा। मैं इस प्रकार की बातें आप की मान-मर्यादा को बढ़ाने के लिए कह रहा हूँ।"

बातचीत में मानसिंह ने बादशाह की तरफ से अनेक प्रकार के प्रलोभन राव सुरजन के के सामने रखे। वह मानसिंह को सजातीय समझता था इसलिए वह मानसिंह की बातों से प्रभावित हुआ और उसने कुछ शर्तों के साथ मानसिंह के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। उसी समय दोनों पक्षों के बीच एक संधि का होना निश्चय हुआ और राव सुरजन ने बादशाह अकबर के साथ उस समय जो संधि की, वह इस प्रकार थी :

(१) बूँदी के राजवंश की कोई लड़की किसी भी समय दिल्ली के बादशाह को नहीं दी जायगी।

(२) बूँदी राज्य की तरफ से बादशाह को कभी जजिया कर नहीं दिया जायगा।

(३) बूँदी के राजा को अटक के बाहर युद्ध करने के लिए न जाने का पूर्णरूप से अधिकार होगा और इस अधिकार के विरुद्ध बादशाह की तरफ से उसे कोई आदेश कभी न दिया जायगा।

(४) नौरोजा के उत्सव में बादशाह की तरफ से जो मीना बाजार लगता है और जिसमें राजपूत राजाओं और सामन्तों की स्त्रियाँ शामिल की जाती हैं, उस मीना बाजार में बूँदी के राजा और उसके सामन्तों की स्त्रियाँ कभी बुलायी न जाँयगी।

(५) बादशाह के दरबार में बूँदी के राजा को सशस्त्र जाने का अधिकार होगा।

(६) बूँदी-राज्य के देव-स्थानों पर किसी प्रकार का अनुचित व्यवहार न किया जायगा।

(७) बूँदी के राजा और उसके सामन्तों को किसी हिन्दू नरेश की अधीनता में रहने के लिए वाध्य नहीं किया जायगा।

(८) बादशाह और उसके अधीन राजाओं की अश्बारोही सेना के घोड़ों पर बादशाह का जो चिन्ह रहता है, बूँदी की अश्बारोही सेना के घोड़ों पर उस प्रकार का चिन्ह रखने के लिए विवश नहीं किया जायगा।

(९) दिल्ली जाने के समय, दिल्ली के मार्ग में और दिल्ली राजधानी के लाल दरवाजे तक बूँदी के राजा को नक्कारों के बाजों के साथ जाने का अधिकार होगा।

(१०) बूँदी के राजा को अपनी राजधानी में वे सभी अधिकार होंगे, जो अधिकार दिल्ली राजधानी में बादशाह को हैं। दोनों ही अपनी राजधानियों में आवश्यनानुसार परिवर्तन करने के अधिकारी होंगे।

ऊपर लिखी हुई शर्तों के साथ राव सुरजन और बादशाह अकबर में संधि हो गयी। इसके पश्चात् बादशाह ने राव सुरजन को तीर्थ स्थान काशी में महल बनवाने का अधिकार दिया। राव सुरजन के पहले उसके पूर्वज मेवाड़ के राणा की अधीनता में थे। राव सुरजन ने राणा की उस अधीनता को तोड़कर दिल्ली के बादशाह की अधीनता स्वीकार की। इन्हीं दिनों में मेवाड़ के राणा प्रताप ने दिल्ली के बादशाह के साथ विद्रोह करके अपना राज्य छोड़ दिया था और वह अपने परिवार और साथ के लोगों को लेकर पर्वत के ऊपर कठोर जंगल में जाकर रहने लगा था। जिन दिनों में राणा प्रताप अपनी स्वतंत्रता को सुरक्षित बनाने के लिए जीवन का कठोर तप कर रहा

था , राव सुरजन मुगल बादशाह की अधीनता में रहकर अपने गौरव को बढ़ाने में लगा हुआ था । बूँदी के राजा पहले राव की उपाधि रखते थे । किन्तु इन दोनों में बादशाह अकबर ने सुरजन को राव राजा की पदवी देकर सम्मानित किया ।

बादशाह अकबर ने राव राजा सुरजन को अपनी सेना में सेनापति का पद देकर गोंडवाना राज्य पर आक्रमण करने के लिए भेजा । सुरजन ने अपनी सेना लेकर गोंडवाना पर हमला किया और गोंडों की राजधानी वाडी पर अधिकार कर लिया । उस राजधानी में उसने अपने नाम पर सुरजनपोल नाम का एक विशाल दरवाजा बनवाया । वह आज तक वहाँ पर इसी नाम से प्रसिद्ध है ।

गोंडवाना-राज्य को जीतकर राव राजा सुरजन ने गोंडों के प्रधान सरदारों को कैद कर लिया और उनको सम्राट अकबर के पास ले आया । वहाँ लाकर दयालु हृदय सुरजन ने उनको छोड़ देने और राज्य के कुछ ग्रामों तथा नगरों पर उनको अधिकारी बना देने के लिए अकबर से अनुरोध किया । बादशाह अकबर ने उसके अनुरोध को स्वीकार कर लिया । राव राजा सुरजन की विजय के उपलक्ष में बादशाह अकबर ने प्रसन्न होकर बाराणसी और चुनार के साथ-साथ पाँच अन्य नगरों का अधिकार भी उसको दे दिया । सम्वत् १६३२ सन् १५७६ ईसवी में जब मेवाड़ का राणा प्रताप बादशाह के विरुद्ध हलदी घाटी का युद्ध लड़ा था , उसी वर्ष राव राजा सुरजन को बादशाह की तरफ से ये नगर मिले थे ।

बाराणसी में रहकर राव राजा सुरजन ने शासन करते हुए ऐसे बहुत-से कार्य किये, जिससे उसकी उदारता चारो तरफ लोगों में फैल गयी । बादशाह की सेना में सेनापति हो कर उसने हिन्दूयों के साथ अनेक उपकार किये । पहले चोरों और डाकुओं का भय बहुत अधिक लोगों में पैदा हो गया था और प्रत्येक समय लोगों की शांति और सम्पत्ति अरक्षित रहती थी लेकिन राव राजा सुरजन के शासनकाल में चोरों और लुटेरों का भय एक साथ दूर हो गया और लोग शांतिपूर्ण जीवन व्यतीत करने लगे । इन्ही दिनों में राव राजा सुरजन ने बाराणसी नगर में एक अत्यन्त रमणीक महल बनवाया और सर्व साधारण के उपयोग के लिए चौरासी स्थान बनवाये । गंगा के किनारे स्नान करने के लिए उसने बीस सुदृढ़ घाटों का निर्माण करवाया । अपने इन कार्यो से वह सर्वसाधारण में लोकप्रिय बन गया ।

कुछ दिनों के बाद वाराणसी में सुरजन की मृत्यु हो गयी । उसके तीन लड़के थे । पहला रावभोज, दूसरा दूदा, बादशाह अकबर इसको लकड़खाँ नाम से सम्बोधन करता था, और तीसरा रायमल । रायमल को पलायता नामक नगर और उसके ग्राम मिले, जो अब कोटा की जागीरों में शामिल है ।

इन्ही दिनों में बादशाह अकबर ने दिल्ली से उठाकर अपनी राजधानी आगरा में कायम की और वहाँ पर अनेक प्रकार के निर्माण करके उसने उसका नाम अकबराबाद रखा । इसके कुछ दिनों के पश्चात बादशाह अकबर ने गुजरात पर अधिकार करने का निश्चय किया । अपने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए वहाँ पर उसने अपनी एक विशाल सेना भेजी और उसके बाद वह स्वयं अपनी एक दूसरी सेना के साथ वहाँ पर पहुच गया । अकबर की ये दोनों सेनायें ऊँटों पर बैठकर गयी थीं । गुजरात को पराजित करने के लिए बादशाह ने पाँच सौ शूरवीर राजपूतों को भी ऊँटों पर बिठाकर भेजा था और उनका नेतृत्व राव भोज और दूदा को सौंपा था ।

बादशाह की जो सेना पहले गुजरात की तरफ रवाना हुई थी , उसने सूरत को जाकर घेर लिया । उसके बाद अपनी सेना लिए हुए अकबर भी वहाँ पहुँच गया । बादशाह की दोनों सेनाओं

ने मिलकर वहाँ पर भीषण युद्ध किया। उस युद्ध में राव भोज के द्वारा शत्रु सेना के अनेक शूरवीर मारे गये और अंत में बादशाह अकबर की विजय हुई।

सूरत की इस लड़ाई में विजयी होने के बाद बादशाह बहुत प्रसन्न हुआ और उसने राव भोज से पूछा : "इस विजय के पुरस्कार में आप क्या चाहते हैं?" बादशाह के प्रश्न को सुनकर राव भोज ने कहा : "प्रति वर्ष बरसात के दिन के दिनों में मैं अपनी राजधानी बूँदी में जाकर रहना चाहता हूँ, ऐसी मेरी अभिलाषा है। उसके लिए सुबिधा की आप से माँग करता हूँ।"

बादशाह अकबर ने राव भोज की इस माँग को बड़ी प्रसन्नता के साथ स्वीकार कर लिया।

बादशाद अकबर ने दिल्ली के सिंहासन पर बैठने के बाद लगातार उन्नति की। अपनी राजनीति के द्वारा उसने राजपूत राजाओं को अपनी अधीनता की जंजीर में बाँधा और लगातार अपने राज्य की वृद्धि की। अपने राज्य के विस्तार के लिए उसने अधीन राजपूत राजाओं से बड़ी बुद्धिमानी के साथ काम लिया और सभी युद्धों में उसने विजय प्राप्त की। बूँदी के राव भोज ने बादशाह की तरफ से कई एक युद्ध किये थे और उनमें विजय पाने के कारण उसने सम्राट के यहाँ सम्मानपूर्ण पद प्राप्त किया था।

अहमद नगर के प्रसिद्ध युद्ध में सात सौ सैनिक स्त्रियों को लेकर चंदा बेगम ने बादशाह की विशाल सेना के साथ युद्ध करके अपने प्राणों की आहुति दी थी। उस अहमद नगर को विजय करने के लिए बादशाह अकबर ने राव भोज को प्रधान सेनापति बनाकर और शक्तिशाली सेना देकर भेजा। भोज ने वहाँ पहुँच कर अहमद नगर के दुर्ग की दीवार को लाँघ कर उसके भीतर प्रवेश किया और उस दुर्ग पर अधिकार कर लिया। राव भोज की इस सफलता पर अकबर बहुत प्रसन्न हुआ और उसने भोज को कई एक नगर पुरस्कार में देकर सेना में ऊँचा पद दिया। राव भोज ने अहमद नगर के दुर्ग के बुर्ज पर बड़ी बुद्धिमानी के साथ अधिकार किया था, इसलिए बादशाह ने प्रसन्न होकर उसके सम्मान में उस दुर्ग के भीतर एक नया बुर्ज बनवाया और उसका नाम भोज बुर्ज रखा।

बूँदी के राव राजा भोज ने बादशाह अकबर के साथ बहुत-से उपकार किये थे और अपने शौर्य से उसने मुगल साम्राज्य की सीमा का विस्तार किया था। इतना सब होने पर भी वह एक समय बादशाह के क्रोध का शिकार बना। अकबर की रानी जोधाबाई की जब मृत्यु हो गयी तो बादशाह अकबर ने अपने यहाँ सब को रानी के मृत-संस्कार में शामिल होने के लिए आदेश दिया। उसका यह आदेश मुसलमानों और अमीरों के लिए भी था और उनको भी मृत रानी के अंतिम-संस्कार में दाढ़ी मुड़वा कर बाल बनवाने होंगे। बादशाह की इस आज्ञा को पूरा करने के लिए नाई ने बाल बनाने का काम आरम्भ किया और इसके लिए वह दिल्ली राजधानी में बूँदी के राजा के पास पहुँचा। राजा के सिपाहियों ने उस नाई को मार कर वहां से भगा दिया।

कुछ लोगों ने इस घटना का जिक्र बादशाह से किया और उन कहने वालों ने अपनी बात को बढ़ाकर यहां तक कहा कि राव भोज ने न केवल नाई को मारा है, बल्कि उसने मृत रानी को भी अनेक प्रकार के अनुचित वाक्य कहे हैं। इसको सुनकर बादशाह अकबर क्रोध से उत्तेजित हो उठा और उसने आज्ञा दी कि राव भोज को बांध कर जबरदस्ती उसकी दाढ़ी और मूँछों को बनवा दो।

बादशाह का यह आदेश राव भोज को भी सुनने को मिला। उसने उसी समय अपने साथ के हाड़ा राजपूतों से बादशाह के आदेश का जिक्र किया। उसको सुनते ही समस्त राजपूत एक

साथ उत्तेजित हो उठे और अपनी तलवारें निकाल कर वे भीषण युद्ध के लिए तैयार हो गये। यह समाचार बादशाह अकबर ने सुना। उसकी समझ में आ गया कि मैंने जो आदेश राव भोज के सम्बन्ध में दिया था, वह किसी प्रकार न्याय पूर्ण नहीं कहा जा सकता। इस प्रकार की बात को सोच समझ कर अकबर अपने हाथी पर सवार हुआ और वह राव भोज के यहाँ पहुँचा। बादशाह हाथी से उतर कर राव भोज के यशस्वी कार्यों की प्रशंसा करता हुआ आगे बढ़ा। बादशाह को देखते ही राव भोज अकबर की तरफ आगे बढ़ा और अत्यन्त शिष्टाचार शब्दों में उसने कहा : "मैं अपने पिता की भाँति सुअर का माँस खाने वाला हूँ। इसलिए मैं स्वर्गीय रानी के मृत-संस्कार में शामिल होने के लिए अधिकारी नहीं हूँ।"

बादशाह को यह सुनकर बहुत संतोष मिला और राव भोज को साथ में लेकर वह अपने स्थान को लौट गया।

बूँदी के संस्मरणों में जोधाबाई की मृत्यु के बाद बादशाह अकबर की मृत्यु का उल्लेख किया गया है। यह घटना उस समय की है, जब मानसिंह से अप्रसन्न होकर अकबर ने विष दे कर उसको मारने की चेष्टा की थी। लेकिन भूल से मानसिंह को विष खिलाने के बजाय धोखे से वह स्वयं विष खा गया, जिससे उसकी मृत्यु हो गयी। अकबर की मृत्यु के बाद कुछ दिनों में राव भोज की, राजधानी बूँदी में उसकी इस लोक-लीला का अंत हो गया। उसके तीन लड़के थे, राव रतन, हिरदेव नारायण और केशवदास। हिरदेव नारायण को बादशाह से कोटा राज्य के शासन की सनद मिली थी। उसने पन्द्रह वर्ष तक वहाँ पर शासन की किया। केशवदास को चम्बल नदी के किनारे ढीपरी नगर और उसके सत्ताईस ग्रामों का अधिकार मिला था।

अकबर की मृत्यु के बाद जहाँगीर मुगल-सिंहासन पर बैठा। उसने अपने लड़के परवेज को दक्षिण का शासक नियुक्त किया और बुरहानपुर में शासन की सनद देकर वह उत्तर की तरफ चला गया। जहाँगीर के दूसरे लड़के शाहजादा खुर्रम ने अपने भाई परवेज के विरुद्ध एक षड़यंत्र रचा और उसने परवेज को संसार से बिदा कर देने की चेष्टा की। शाहजादा खुर्रम अपने भाई को मार कर बादशाह जहाँगीर को सिंहासन से उतार देना चाहता था। इसके लिए वह तैयारी करने लगा। शाहजादा खुर्रम राजपूत स्त्री के पैदा हुआ था। इसलिए उसकी सहायता में बाईस राजपूत राजा तैयार हुए और वे जहाँगीर को सिंहासन से उतारने के लिए अपनी सेनाओं के साथ एकत्रित हुए। इस कठिन अवसर पर बूँदी के राजा राव रतन ने बादशाह जहाँगीर का साथ दिया।

शाहजादा खुर्रम ने भाई और पिता के विरुद्ध भयानक रूप से विद्रोह किया था और युद्ध करने लिए उसने पूरी तैयारी कर ली थी। बादशाह जहाँगीर इस समय बड़े संकट में था। उसकी सहायता के लिए बूँदी का राजा रतन सिंह अपने दोनों लड़कों—माधव सिंह और हरिसिंह—को साथ लेकर सेना के साथ रवाना हुआ। सम्बत् १६३५ सन् १५७६ ईसवी में कार्तिक शुक्लपक्ष मंगलवार के दिन यह भयानक संग्राम हुआ। उस युद्ध में राव रतन के दोनों लड़के भयंकर रूप से घायल हुए। लेकिन बुरहानपुर के इस युद्ध में राव रतन सिंह की विजय हुई। इसलिए बादशाह जहाँगीर ने प्रसन्न होकर राव रतन को बुरहानपुर के शासन का अधिकार दे दिया और उसके दूसरे लड़के माधव को कोटा नगर एवम् उसके सभी नगरों और ग्रामों का स्वामी बना दिया। इसी समय से हाड़ौती का राज्य दो भागों में विभाजित हो गया।

बूँदी के राव रतन सिंह ने यदि बादशाह जहाँगीर की सहायता न की होती तो उसके विरोधी शाहजादा खुर्रम को निश्चित रूप से सफलता मिलती और बादशाह जहाँगीर मुगल सिंहासन

से उतार दिया गया होता। इतना सब होने पर भी और राव रतन सिंह की सहायता का महत्व जानते हुए भी बादशाह जहाँगीर के मन में राव रतन सिंह के विरुद्ध ईर्षा पैदा हुई। उसने आसानी के साथ इस बात को सोच डाला की राव रतन एक शूरवीर राजपूत है और उसके दोनों लड़के उसी की तरह पराक्रमी हैं। यदि इन तीनों में स्नेह बना रहा तो ये किसी भी समय अपनी शक्तियों का संगठन करके एक भयानक विपद पैदा कर सकते हैं। इसलिए पिता और पुत्रों में मतभेद पैदा करा देना बहुत आवश्यक है। इसी उद्देश्य से बादशाह ने राव रतन को केवल बुरहानपुर के शासन का अधिकार दिया और उसके लड़के को कोटा का स्वतंत्र शासक बना दिया। बादशाह जहाँगीर ने माधव सिंह को कोटा का शासन देकर जिस प्रकार सनद दी थी, उसका वर्णन कोटा के इतिहास में किया गया है।

राव रतन ने बुरहानपुर का शासन आरम्भ करने के बाद वहाँ एक नगर की प्रतिष्ठा की और उसने उसका नाम रतनपुर रखा। उसने इन दिनों में एक ऐसा कार्य किया कि जिससे दिल्ली का बादशाह और मेवाड़ का राणा—दोनों प्रसन्न हुए। वह घटना इस प्रकार हैं :

दरियाखाँ नामक एक मुसलमान अमीर ने बादशाह की आज्ञा के विरुद्ध मेवाड़-राज्य पर आक्रमण किया और उसकी सेना ने मेवाड़-राज्य के नगरों में भयानक अत्याचार किये। राव रतन ने अपनी सेना के साथ वहाँ पहुँचकर दरियाखाँ पर आक्रमण किया और युद्ध में उसको कैद करके रतन सिंह बादशाह के पास ले आया। दरियाखाँ अपनी बहादुरी के लिए बहुत प्रसिद्ध था। इसलिए उसको कैद करके राव रतन ने अपने शौर्य के सम्बन्ध में बड़ी ख्याति प्राप्त की। बादशाह स्वयं राव रतन ने बहुत प्रसन्न हुआ और उसने पुरस्कार में राव रतन को एक दल नौबत के बाजे का दिया। साथ ही उसके स्थान पर लाल पताका फहराने का आदेश दिया। बादशाह ने इस बात की भी आज्ञा दी कि राव रतन अपनी सेना के साथ जिस समय बाहर हो उस समय पीले रंग का झण्डा उसकी सेना में फहराया जाय। राव रतन के उत्तराधिकारी अब तक उस सम्मान सूचक झण्डे का प्रयोग करते हैं।

राव रतन को इस प्रकार का सम्मान न केवल दिल्ली के बादशाह से मिला था, बल्कि समस्त हिन्दू जाति उसके प्रति अपना सम्मान प्रकट करती थी। बादशाह के यहाँ सम्मान और सामर्थ पाकर राव रतन ने अनेक ऐसे कार्य किये, जिनसे कितने ही अत्याचारों से हिन्दुओं को छुटकारा मिल सका। उसने गो-हत्या रोकने के सम्बन्ध में बहुत बड़ी सफलता पायी थी। बादशाह के यहाँ रहकर वह हिन्दुओं के हितों का सदा ख्याल रखता था। वह युद्ध में एक महान शूरवीर समझा जाता था। अंत में बुरहानपुर के एक भीषण युद्ध में वह मारा गया।

रावरतन के चार लड़के थे। गोपी नाथ, माधव सिंह, हरिजी और जगन्नाथ। माधव सिंह को कोटा का स्वतन्त्र शासन मिला था और तीसरे लड़के हरिजी को गूंगेर का अधिकार प्राप्त हुआ था। मेरे समय में हरिजी के वंशजों के पचास आदमियों का परिवार नीमोदा नामक स्थान में रहता था। चौथे लड़के जगन्नाथ की मृत्यु हो गयी। उसके कोई सन्तान न थी। सबसे बड़ा लड़का और राज्य का उत्तराधिकारी गोपीनाथ पिता की मृत्यु के पहले ही मारा गया था। उसकी मृत्यु के सम्बन्ध में निम्नलिखित घटना पढ़ने को मिलती है :

राजकुमार गोपीनाथ बूँदी राज्य के बलदिया वंश के एक ब्राह्मण की सुन्दरी स्त्री से प्रेम करता था। गोपीनाथ रोजाना रात के समय उस ब्राह्मण के घर पर जाया करता था। उसकी इस हालत में कुछ दिन व्यतीत हो गये। एक दिन रात को जब गोपीनाथ उस ब्राह्मण के घर मौजूद था, तो उस ब्राह्मण को मालूम हो गया। उस ब्राह्मण ने गोपीनाथ को पकड़ कर

उसके हाथ-पैर बांध दिये और अपने मकान में उसको छोड़कर वह राजमहल में गया और राव रतन से उसने कहा—"एक दुराचारी ने रात में मेरे घर आकर मेरी स्त्री के सतीत्व को नष्ट करने की कोशिश की थी। मैंने उसे पकड़ लिया है। उसको क्या दण्ड दिया जाय ?"

उस ब्राह्मण की इस बात को सुनकर बूँदी के राजा रतन सिंह ने कहा—"उसकी सजा मृत्यु है।"

ब्राह्मण वहाँ से लौटकर अपने मकान पर आया और तलवार लेकर उसने राजकुमार गोपी नाथ को जान से मार डाला। उसके बाद ब्राह्मण ने राजकुमार के मृत शरीर को मकान के बाहर फेंक दिया। यह समाचार राव रतन सिंह को मिला। उसने सुना कि राजकुमार गोपीनाथ मार डाला गया है। यह सुनने के बाद उसने क्रोध में आकर आदेश दिया कि हत्याकारी को पकड़ कर उसको मृत्यु की सजा दी जाय। इसके बाद उसे मालूम हुआ कि राजकुमार गोपीनाथ को ही ब्राह्मण ने अपने मकान पर पकड़ा था और उसके आकर पूछने पर मैंने ही उसको मार डालने का आदेश दिया था। इस रहस्य को जान लेने के बाद राव रतन चुप हो गया और उसके पश्चात् ब्राह्मण के विरुद्ध कुछ नहीं किया गया।

गोपीनाथ के बारह लड़के थे। राव रतन ने उन सब को अपने राज्य से अलग-अलग जागीरे दीं और वे बूँदी-राज्य के प्रधान सामन्तों में माने गये। गोपीनाथ के सब से बड़े लड़के छत्रसाल को बूँदी-राज्य का अधिकार मिला। उस समय उसने नीचे लिखे हुए स्थानों पर शासन आरम्भ किया :

१—इन्द्रसिंह ने इन्द्रगढ़ की प्रतिष्ठा की थी।

२—बैरीशाल ने बलवन और फिलोदी नाम के दो नगर बसाये थे। करबर और पिपलोदा नाम के दो नगरों का अधिकार उसे मिला था।

३—मोखिम सिंह को आँतरदा नामक ग्राम मिला था। बाद में इन्द्रगढ़, बलवन और आँतरदा पर कोटा के जालिम सिंह ने षड़यंत्र के द्वारा अधिकार कर लिया था।

४—महासिंह को थाना नामक ग्राम प्राप्त हुआ था। दूसरे ग्रंथों में इस ग्राम का नाम थावना लिखा गया है।

गोपीनाथ के शेष पुत्रों के सम्बन्ध में कोई उल्लेखनीय बात पढ़ने को नहीं मिली।

राव रतन के मर जाने के बाद गोपीनाथ का बड़ा लड़का छत्रसाल पितामह के सिंहासन पर बैठा। उसके अभिषेक के समय बादशाह जाहजहाँ बूँदी राजधानी में गया था और उसने स्वयं उसको तिलक किया था। राव रतन बादशाह शाहजहाँ की तरफ से न केवल अपने पैतृक राज्य का अधिकारी माना गया था, बल्कि वह बादशाह की राजधानी का गवर्नर भी घोषित हुआ था। उसका यह अधिकार उसके जीवन भर कायम रहा। बादशाह शाहजहाँ ने जब अपने चारों लड़कों को राज्य के अलग-अलग हिस्से देकर शासन करने का भार सौंपा था, उस समय औरङ्गजेब की सेना में राव छत्रपाल को सेनापति का पद मिला था और इस अधिकार के साथ वह दक्षिण भेज दिया गया था। बादशाह ने अपने चारों लड़कों—दारा, औरङ्गजेब, शुजा और मुराद को राज्य में अलग अलग अधिकारी बना दिया था। दक्षिण-राज्य का अधिकार प्राप्त करके औरङ्गजेब ने वहाँ पर युद्ध आरम्भ किया और कई दुर्गों पर उसने अधिकार कर लिया। दौलताबाद और बीदर नामक दुर्गों पर युद्ध के समय हाड़ा राजा छत्रपाल ने अपने असीम साहस और शौर्य का परिचय दिया। उसने बीदर के दुर्ग पर आक्रमण करके विजय प्राप्त की और भयानक रूप से शत्रु-सेना

का उसने संहार किया । सम्वत् १७०६ सन् १६५३ ईसवी में कलवर्ग का युद्ध हुआ । उस संग्राम में भी राव छत्रसाल को विजय प्राप्त हुई है । धामूनी के दुर्ग को जीतने के बाद दक्षिण में फिर कोई संघर्ष नहीं हुआ ।

दक्षिण की इन घटनाओं के समय एकाएक सुनने को मिला कि बादशाद शाहजहाँ की मृत्यु हो गयी है । उन दिनों में बादशाह लगातार बीस दिनों तक दरबार में नहीं आया । इससे लोगों को विश्वास हो गया कि सचमुच बादशाह की मृत्यु हो गयी है । बादशाह के लड़कों में केवल दारा शिकोह दिल्ली राजधानी में रहता था । उसके शेष तीनों भाई राज्य के अलग-अलग भागों में उस समय दूर थे । बादशाह की मृत्यु का समाचार सुनकर शेष तीनों भाई अपने-अपने स्थानों से दिल्ली की तरफ रवाना हुए । वे सभी राज सिंहासन का अधिकार प्राप्त करना चाहते थे । इसीलिए वे दिल्ली शीघ्र पहुँचना चाहते थे ।

शुजा बंगाल में था । वहाँ से रवाना होने के पहले उसने अपने मन में अनेक प्रकार की कल्पनायें कीं । औरङ्गजेब ने दक्षिण से चलने के साथ-साथ मुराद के पास संदेश भेजा कि मै शासन के कार्यों से उदासीन हो चुका हूँ । मेरे हृदय में सिंहासन पर बैठने की जरा भी अभिलाषा नहीं है । मैं जंगल के जन हीन स्थानों पर रहकर मोहम्मद पैगम्बर की नसीहतों के अनुसार अपना जीवन व्यतीत करना चाहता हूँ । दारा नास्तिक है और मैंने राज्य का प्रलोभन त्याग दिया है । इस दशा में सिंहासन पर बैठने के केवल आप ही अधिकारी हैं और मैं आपको ही मुगल सिंहासन पर बिठाना चाहता हूँ ।

मुराद के पास औरङ्गजेब का भेजा हुआ यह संदेश बादशाह शाहजहाँ को मालूम हुआ । उसने गुप्त रूपसे संदेश भेजकर हाड़ा राजा छत्रसाल को सेना के साथ दिल्ली राजधानी में बुलाया । छत्रसाल को बादशाह का जब संदेश मिला तो उसने निश्चय किया कि किसी भी अवस्था में बादशाह की आज्ञा का पालन करना मेरा कर्त्तव्य है । इस प्रकार निर्णय करके छत्रसाल दक्षिण से रवाना होने की तैयारी करने लगा ।

औरङ्गजेब अभी तक दक्षिण में मौजूद था । उसे जब मालूम हुआ कि छत्रसाल एकाएक दक्षिण से दिल्ली जाने की तैयारी में है तो वह सोचने लगा कि उसके अकस्मात दक्षिण से दिल्ली जाने का कारण क्या हुआ और वह कारण मुझे क्यों नहीं जाहिर हुआ । अनेक प्रकार के संदेह कर के औरङ्गजेब ने छत्रसाल से पूछा कि आपके एकाएक यहाँ से दिल्ली जाने का कारण क्या है ? अभी आप यहाँ से रवाना न हों और मेरे साथ ही आप दिल्ली चलें ।

औरङ्गजेब की इस बात को सुनकर छत्रसाल ने गम्भीर होकर कहा : "बादशाह की आज्ञा का पालन करना मेरा कर्त्तव्य है ।"

यह कह कर छत्रसाल ने औरङ्गजेब के हाथ में वह पत्र दिया , जो उसे बादशाह शाहजहाँ की तरफ के मिला था । उस पत्र को पढ़ को पढ़कर औरङ्गजेब ने छत्रसाल से कहा : "आप किसी भी अवस्था में यहाँ से राजधानी नहीं जा सकते ।"

इस प्रकार का आदेश देकर औरङ्गजेब ने अपने आदमियों से कहा : "जैसे भी हो सके राव छत्रसाल को यहाँ से जाने न दो ।"

औरङ्गजेब का यह आदेश छत्रसाल से छिपा न रहा । उसने बुद्धिमानी से काम लिया और अपने शिविर का सभी आवश्यक सामान अपनी एक सेना के साथ वहाँ से रवाना कर दिया । उसने अपने साथ मुगल सेना के उन्हीं सैनिकों को अपने साथ रखा जो बादशाह शाहजहाँ के सभी प्रकार पक्षपाती थे । अपने इस सैनिक दल को लेकर राव छत्रसाल दक्षिण से रवाना हुआ और

वह नर्बदा नदी की ओर चला। औरङ्गजेब की सेना ने उसका पीछा किया। परन्तु छत्रसाल पर आक्रमण करने का उसने साहस न किया। बरसात के कारण नर्बदा नदी उफनाती हुई प्रवाहित हो रही थी। राव छत्रसाल ने नदी के किनारे पहुँच कर सोली राजाओं की सहायता से उसको पार किया। औरङ्गजेब की सेना अब भी उसका पीछा करती हुई आ रही थी। राव छत्रसाल अपने राज्य बूँदी नगर में पहुँच गया और कई दिनों तक वहाँ पर विश्राम करके अपने राज्य की व्यवस्था की। इसके बाद वह सेना लेकर दिल्ली की तरफ चला।

पिता का द्रोही औरङ्गजेब षड़यन्त्रों का जाल बिछाता हुआ फतेहाबाद में पहुँचा। वहाँ पर राजा जसवन्त सिंह के साथ उसने युद्ध किया और अपने षड़यन्त्रों के द्वारा विजय प्राप्त की। इस युद्ध में औरंगजेब के विरुद्ध छत्रसाल नहीं गया। उसका कारण यद्यपि कोई स्पष्ट नहीं लिखा गया लेकिन मालूम होता है कि बादशाह अकबर के साथ उसके पूर्वजों ने जो संधि की थी, उसकी एक शर्त यह भी थी कि बूँदी का कोई भी राजा किसी हिन्दू नरेश के नेतृत्व में युद्ध करने के लिए नहीं जायगा। छत्रसाल के उस युद्ध में न जाने का यही एक कारण जाहिर होता है। परन्तु बूँदी का राजवंशज कोटा का राजा अपने चार भाइयों के साथ सेना लेकर बादशाह की तरफ से फतेहाबाद के उस युद्ध में गया था। उस संग्राम में उसके चारों भाई युद्ध करते हुए अंत में मारे गये।

औरंगजेब किसी प्रकार मुगल सिंहासन पर बैठना चाहता था। इसलिए उसने अपने बड़े भाई और सिंहासन के उत्तराधिकारी दारा के साथ धौलपुर में फिर युद्ध किया। इस युद्ध में बूँदी का राजा राव छत्रसाल भी गया था और वहाँ जाने के पहले उसने इस बात की प्रतिज्ञा की कि युद्ध में या तो मै विजय प्राप्त करूँगा, अन्यथा प्राण देकर स्वर्ग लोक की यात्रा करूँगा।

राव छत्रसाल अपनी इस प्रतिज्ञा के साथ बादशाह की तरफ से युद्ध के लिए रवाना हुआ था और दारा की सेना में सब से आगे रहकर उसने औरंगजेब के साथ धौलपुर का युद्ध आरम्भ किया। दारा स्वयं एक हाथी पर बैठकर युद्ध करने के लिए गया था। लेकिन युद्ध आरम्भ होने के बाद कुछ समय में दारा युद्ध-भूमि से निकलकर भागा, उसके हटते ही बादशाह की समस्त सेना युद्ध-क्षेत्र से भागने लगी। राव छत्रसाल को यह देखकर बहुत आश्चर्य हुआ। परन्तु उसके साहस में कुछ भी अन्तर न पड़ा। उसने अपने सामन्तों और सैनिकों से स्वाभिमान शब्दों में कहा: "हमारा कोई भी सैनिक युद्ध से भाग नहीं सकता। जो राजपूत डर कर युद्ध से भागता है, वह मरने पर नरक जाता है। मैं बादशाह की तरफ से युद्ध करने के लिए आया हूँ। मैंने यह प्रतिज्ञा की है कि युद्ध में या तो मैं विजय प्राप्त करूँगा, अन्यथा प्राण दे दूँगा।"

इस प्रकार कहकर राव छत्रसाल ने अपनी सेना को युद्ध के लिए उत्तेजित किया और अपने हाथी को बढ़ाकर उसने भयानक रूप से शत्रुओं का संहार आरम्भ किया। इसके कुछ समय के बाद आग का एक गोला उसके हाथी पर आकर गिरा। उससे जलकर छत्रसाल का हाथी युद्ध से भागा। यह देखकर छत्रसाल अपने भागते हुए हाथी की पीठ से कूद कर नीचे आ गया और एक घोड़े पर चढ़ कर वह फिर शत्रुओं की ओर आगे बढ़ा। उसके आगे बढ़ते ही राजपूत सेना ने अपनी पूरी शक्ति लगाकर भीषण संग्राम उपस्थित किया। दोनों ओर की सेनाये एक दूसरे के बहुत निकट पहुँच गयीं। इसी समय मुराद और छत्रसाल का सामना हुआ। छत्रसाल ने अपने दाहिने हाथ में भाला लेकर मुराद पर आक्रमण किया। इसी समय शत्रु की एक गोली छत्रसाल के मस्तक में लगी। वह गिर गया और उसकी मृत्यु हो गयी। उसका छोटा लड़का भारत सिंह उस युद्ध में मौजूद था। पिता के गिरते ही वह आगे बढ़ा और मुराद के साथ उसने

युद्ध आरम्भ किया। छत्रसाल के भाई मोखिम सिंह अपने दोनों लड़कों और उदय सिंह नामक भतीजे के साथ शत्रु-सेना पर भीषण मार कर रहा था। इस समय दोनों ओर से युद्ध की गति भयानक हो उठी थी। शत्रुओं का संहार करते हुए भारत सिंह मारा गया। उज्जैनी और धौलपुर के संग्रामों में राजवंश के बारह शूरबीरों और हाड़ा वश के प्रत्येक सामन्त ने युद्ध करते हुए अपने प्राण दे दिये। लेकिन उनमें से एक भी युद्ध से भागा नहीं। राजपूतों के तरह की यह बहादुरी संसार में अन्यत्र देखने को न मिलेगी।

राव छत्रसाल ने अपने जीवन में बावन युद्ध किये थे और प्रत्येक युद्ध में उसने अपनी अद्भुत वीरता का परिचय दिया था। उसने बूँदी के राजमहल में कुछ भाग निर्माण करवाया था और उसका नाम उसने छत्रमहल रखा था। पाटन नामक स्थान में केशवराय भागवान के नाम का उसने एक रमणीक मंदिर बनवाया था। सम्वत् १७१५ में युद्ध करते वह मारा गया, जैसा कि ऊपर वर्णन किया गया है।

राव छत्रसाल के चार लड़के थे—राव भावसिंह, भीमसिंह, भगवन्त सिंह और भारत सिंह। भीमसिंह को गूंगेर का अधिकार मिला। भगवन्त सिंह मऊ नामक स्थान का अधिकारी बनाया गया। भारत सिंह धौलपुर युद्ध में मारा गया था, जिसका वर्णन ऊपर हो चुका है। राव छत्रसाल के बाद भावसिंह बूँदी के सिंहासन पर बैठा।

दिल्ली के सिंहासन पर बैठकर औरंगजेब ने राव छत्रसाल का बदला उसके लड़के राव भावसिंह से लेने की कोशिश की। शिवपुर के राजा आत्माराम को बुलाकर उसने बूँदी राज्य पर आक्रमण करने और उसको रणथम्भोर की अधीनता में लाने का आदेश दिया। राजा आत्माराम ने बादशाह के आदेश पाकर अपने साथ बारह हजार सैनिकों की एक सेना तैयार की और हाड़ौती-राज्य में जाकर उसने चारों तरफ विध्वंस और विनाश आरम्भ कर दिया। इन्द्रगढ़ बूँदी के प्रधान सामन्त के अधिकार में था। उस जागीर के खातौली नगर के राजा ने आत्माराम की सेना का सामना कि ा। दोनों तरफ से गोठड़ा नामक स्थान पर युद्ध आरम्भ हुआ। उस युद्ध में आत्माराम की पराजय हुई। वह युद्ध-क्षेत्र से भाग गया। हाड़ा राजपूतों ने उसकी सेना का पीछा किया और उसके साथ की सम्पूर्ण युद्ध सामग्री उन्होंने अपने अधिकार में कर ली। राजपूतों ने भागी हुई सेना का पीछा करके शत्रु-सेना का झण्डा छीन लिया और फिर उसके बाद हाड़ा राजपूतों की सेना ने राजा आत्माराम की राजधानी शिवपुरी को जाकर घेर लिया। पराजित आत्माराम औरंगजेब के पास पहुँचा और उसने जब हाड़ा राजपूतों के मुकाबिले में अपनी पराजय की बात उससे कही तो बादशाह औरंगजेब ने अनेक प्रकार के अपशब्द कहकर उसका तिरस्कार किया।

बादशाह औरंगजेब ने कई अवसरों पर राजपूतों की बहादुरी देखी थी। इसलिए वह हाड़ा राजपूतों से मेल करने के तरीके सोचने लगा। जाहिरा तौर पर उसने इस बात को मान लिया कि इन राजपूतों से मेल रखने में ही अपनी भलाई है। उसने राव भावसिंह को दिल्ली राजधानी में आने के लिए संदेश भेजा। लेकिन भावसिंह किसी प्रकार दिल्ली जाने के लिए तैयार न हुआ। वह अनेक प्रकार के संदेह करने लगा। लेकिन औरंगजेब ने कई बार उसको पत्र लिखे और इस बात का विश्वास दिलाया कि मुझसे आपका कोई अनिष्ट न होगा। इसके बाद राव भावसिंह अपनी सेना के साथ दिल्ली गया। बादशाह औरंगजेब ने उसके साथ दिल्ली में अत्यन्त सम्मानपूर्ण व्यवहार किया और शाहजादा मुअज्जम की अधीनता में उसको औरंगाबाद का शासक बना दिया।

राव भावसिंह ने औरंगबाद के शासन का अधिकार पाकर ओड़छा और दतिया के बुंदेला लोगों के साथ होने वाले युद्धों में अपनी वीरता का परिचय दिया था। बीकानेर के राजा कर्ण का सर्वनाश करने लिए जो षडयंत्र रचा गया था, राव भावसिंह ने उस षड़यंत्र को नष्ट करके बीकानेर के राजा की रक्षा की। राव भावसिंह ने औरंगाबाद में कई एक इमारतें बनवाई। वहाँ के इतिहास से जाहिर होता है कि उसने अपने साहस, शौर्य और उदार व्यवहार के द्वारा सभी प्रकार के लोगों में लोक प्रियता पायी थी। सम्बत् १७३८ सन् १६८२ ईसवी में राव भावसिंह की औरंगाबाद में मृत्यु हो गयी।

राव भावसिंह के कोई लड़का नहीं था। इसलिए उसके भाई भीमसिंह के लड़के का लड़का अनिरुद्ध बूंदी के सिंहासन पर बिठाया गया और भीमसिंह को गूगोर का अधिकारी बना दिया। भीमसिंह के लड़के किशन सिंह को औरंगजेब ने छल से मरवा डाला था। अपने उस अपराध को छिपाने के लिए उसने अनिरुद्ध सिंह के अभिषेक के समय मूल्यवान उपहारों के साथ एक हाथी सजाकर भेजा था। राव अनिरुद्ध सिंह ने बूंदी के सिंहासन पर बैठने के बाद दिल्ली में जाकर अपने सम्मान का परिचय दिया।

इसके कुछ दिनों के बाद बादशाह औरंगजेब जब अपनी सेना को लेकर दक्षिण में युद्ध करने के लिए गया तो राव अनिरुद्ध सिंह भी अपनी सेना के साथ वहाँ गया। दक्षिण में मुगल सेना को भयानक युद्ध करना पड़ा और उन्हीं दिनो में शत्रुओ की एक सेना ने बादशाह औरंगजेब के उस शिविर में आक्रमण किया, जिसमें उसकी बेगमें थीं। उस समय बादशाह की बेगमों के सामने भयानक संकट उत्पन्न हो गया। इस भीषण समय में राव अनिरुद्ध सिंह ने अपने राजपूतों के साथ शत्रु सेना पर आक्रमण किया और उसे परास्त करके उसने बेगमों की रक्षा की। बादशाह औरंगजेब अनिरुद्ध सिंह के इस साहसपूर्ण कार्य से बहुत प्रसन्न हुआ और उसने उससे पूछा : "इसके बदले में आप क्या पुरुस्कार चाहते है ?"

बादशाह के इस प्रश्न को सुनकर अनिरुद्ध सिंह ने कहा : "मैं कोई पुरस्कार नहीं चाहता। मैं इस समय आप के पीछे चलने वाली सेना का अधिकारी बनाया गया हूँ। मैं चाहता हूँ कि मुझे सम्पूर्ण सेना के आगे चलने का अधिकार दिया जाय।"

बादशाह औरङ्गजेब ने राव अनिरुद्ध सिंह की इस माँग को स्वीकार कर लिया।

बादशाह औरङ्गजेब जब बीजापुर का युद्ध लड़ रहा था। राव अनिरुद्ध सिंह ने उस युद्ध में भी अपने आश्चर्य जनक रण कौशल का परिचय किया था और बादशाह उससे भी बहुत प्रसन्न हुआ था।

बूंदी-राज्य के प्रधान सामन्त दुर्जन सिंह के साथ राव अनिरुद्ध सिंह का कुछ झगड़ा पैदा हुआ। उसके कारण दुर्जन सिंह दक्षिण से चला आया और अपनी जागीर में आकर उसने अनिरुद्ध सिंह के विरुद्ध युद्ध की तैयारी की। अपने वंश के लोगों की एक सेना तैयार करके वह बूंदी राजधानी में पहुँच गया और बलवन्त सिंह का अभिषेक करके उसने उसको बूंदी-राज्य का शासक घोषित किया।

यह समाचार बादशाह औरङ्गजेब को मिला। उसने अनिरुद्ध सिंह के साथ अपनी एक सेना भेजकर दुर्जन सिंह को भगाने और बूंदी-राज्य पर अधिकार करने का आदेश दिया। अनिरुद्ध सिंह उस सेना के साथ बूंदी में पहुँचा और दुर्जन सिंह को परास्त करके उसने बलवन्त सिंह को

सिंहासन से उतार दिया। इसके बाद अनिरुद्ध सिंह ने सिंहासन पर बैठकर बूँदी-राज्य की व्यवस्था की। इन्हीं दिनों में बादशाह का लड़का शाह आलम उत्तरी भारत का शासक होकर लाहौर गया। राव अनिरुद्ध सिंह भी उसके साथ था। आमेर का राजा विष्णु सिंह भी बादशाह की तरफ से वहाँ भेजा गया। कुछ दिनों के बाद राव अनिरुद्ध सिंह की वहाँ पर मृत्यु हो गयी।

राव अनिरुद्ध सिंह के बुधसिंह और जोधसिंह नामक दो लड़के थे। उन दोनों में बुधसिंह बड़ा था। इसीलिए वह पिता के सिंहासन पर बैठा। बुधसिंह के अभिषेक के बाद थोड़े ही दिनों में बादशाह औरङ्गजेब औरंगाबाद में बीमार पड़ा। उसकी बीमारी धीरे-धीरे बढ़ती गयी और जब उसके बचने की कोई आशा न रह गयी तो उसके सामन्तों और अमीर उमरावों ने उससे पूछा : "आपका उत्तराधिकारी कौन है और अपने बाद मुगल सिंहासन पर बैठने के लिए किसके पक्ष में आप निर्णय देते हैं ?"

इस प्रकार के प्रश्न को सुनकर मरणासन्न बादशाह औरङ्गजेब ने कहा : "मेरे बाद मुगल-सिंहासन पर कौन बैठेगा, यह मैं ईश्वर पर छोड़े देता हूँ। यों तो मै चाहता हूँ कि मेरा लड़का बहादुरशाह आलम मेरे बाद सिंहासन पर बैठे। परन्तु मेरा ख्याल है कि शाहजादा आजम अपने लिए कोशिश करेगा।"

औरङ्गजेब ने जो कुछ कहा था, अन्त में वही हुआ। आजमशाह ने अपने बड़े भाई का विरोध किया और वह स्वयं मुगल सिंहासन पर बैठने के लिए कोशिश करने लगा। इस विरोध में दोनों भाइयों के बीच भयानक संघर्ष हुई। दोनों तरफ से युद्ध की तैयारियाँ होने लगीं। जो हिन्दू राजा बहादुरशाह के पक्ष में थे, उनको प्रोत्साहित किया गया। उन राजाओं में बूँदी का राव बुधसिंह भी था। उसकी आयु उस समय बहुत थोड़ी थी और वह अपने छोटे भाई जोधसिंह की मृत्यु से बहुत दुखी था। बहादुरशाह आलम ने जब जोधसिंह की मृत्यु का समाचार सुना तो उसने बूँदी-राजधानी में जाकर उसका श्राद्ध-कर्म करने के लिए बुधसिंह को आदेश दिया। राव बुधसिंह ने इसका उत्तर देते हुए बहादुर शाह से कहा : "आपकी वर्तमान परिस्थिति में मेरा बूँदी जाना किसी भी दशा में मुनासिब नहीं है। धौलपुर के जिस युद्ध-क्षेत्र में मेरे वंश के अनेक शूरवीर ने युद्ध करके अपने प्राणों की आहुतियां दी थीं और जिस युद्ध भूमि में मेरे पूर्वज छत्रसाल ने अपने प्राणों की बलि दी थी, उसी युद्ध-भूमि में जाकर बादशाह की विजय के लिए मै युद्ध करूँगा। इस समय सब से पहला मेरा कर्त्तव्य यही है।"

शाहआलम अपनी सेना के साथ लाहौर से और अपने लड़के बेदार बख्त के साथ सेना लिए हुए आजम दक्षिण से रवाना हुआ। धौलपुर के निकट जाजौ नामक स्थान पर दोनों सेनाओं की भेंट हुई और युद्ध आरम्भ हो गया। थोड़े ही समय के बाद इस युद्ध ने भयानक रूप धारण किया। मुगल-सिंहासन पर बैठने का अधिकार प्राप्त करने के लिए शाह आलम और आजम में यह युद्ध हुआ लेकिन राजस्थान के सभी राजपूत नरेश अपनी-अपनी सेनायें लेकर इस युद्ध में आये और उनमें से कुछ लोगों ने शाह आलम का और शेष लोगों ने आजम का साथ दिया। इस प्रकार राजस्थान के सभी राजपूत राजा इस युद्ध में एक, दूसरे का सर्वनाश करने के लिए तैयार हो गये और शाह आलम तथा आजम की सहायता करने के स्थान पर राजपूत राजा इस युद्ध में लड़कर स्वयं अपना ही विनाश करने लगे।

दतिया और कोटा राज्य के दोनों नरेश बहुत दिनों तक शाहजादा आजम के अधीन दक्षिण के युद्ध में रह चुके थे। आजम उन दोनों का बहुत विश्वास भी करता था। इसलिए उन

दोनों राजाओं ने बादशाह औरंगजेब के निर्णय की परवा न करके छोटे शाहजादे को सिंहासन पर पर बिठाने के लिए पूर्ण कोशिश की। बूँदी और दतिया के राजाओं की आपस में मित्रता थी और दोनों ने दक्षिण के युद्ध में कीर्ति प्राप्त की थी। परन्तु इस समय दतिया का राजा अपने मित्र अनिरुद्ध सिंह के लड़के बुधसिंह के विरुद्ध युद्ध कर रहा था और कोटा का राजा रामसिंह आजम का पक्ष लेकर शाहआलम के विरुद्ध युद्ध कर रहा था। बूँदी के राजा को बादशाह के दरबार में सदा सम्मान पूर्ण स्थान मिला था और इसीलिए उसके साथ कोटा का राजा ईर्षा करता था। वह चाहता था कि हाड़ा राजा को मुगल दरबार में जो सम्मान पूर्ण स्थान प्राप्त हुआ है, वह मुझे मिले। इसीलिए उसने इस युद्ध में आजम का साथ दिया था। राव बुधसिंह शाह आलम के पक्ष में था। सही बात यह है कि धौलपुर के इस युद्ध में जो राजा और नरेश दोनों पक्षों की सहायता में युद्ध कर रहे थे, उन सबके सामने एक न एक स्वार्थ था। प्रत्येक पक्ष अपने सहायकों के सम्मान को बढ़ाने का विश्वास दे रहा था। युद्ध आरम्भ होने के पहले कोटा के राजा राम सिंह ने बुधसिंह के पास एक पत्र भेजा था और उसके द्वारा उसने बुधसिंह को शाहआलम के पक्ष से आजम की ओर लाने की चेष्टा की थी। उस पत्र को पाकर राव बुधसिंह ने क्रोध में आकर उसको उत्तर देते हुए लिखा : "मेरे पूर्वजों ने बादशाह का समर्थन करके जिस युद्ध-क्षेत्र में अपने जीवन का अन्त किया था, उस युद्ध-क्षेत्र में बादशाह के विरुद्ध युद्ध करके मैं अपने वंश को कलंकित नहीं कर सकता।"

युद्ध आरम्भ होने पर राव बुधसिंह ने बादशाह आलम के द्वारा प्रधान सेनापति का पद प्राप्त किया और युद्ध में उसने अपने असीम साहस और शौर्य का आश्चर्यजनक परिचय दिया। उसके परिणाम-स्वरूप बहादुरशाह आलम की युद्ध में विजय हुई और वह शत्रु-पक्ष को परास्त करके मुगल-सिंहासन पर बैठा। कोटा का हाड़ा राजा रामसिंह और दतिया का बुन्देला राजा दलीप दोनों ही आजम की तरफ से लड़ते हुए युद्ध में मारे गये। उस युद्ध में आजम और बेदारबख्त का भी अन्त हो गया।

जाजो के युद्ध में बुधसिंह का शौर्य देखकर बादशाह बहादुरशाह आलम ने उसको राव राजा की उपाधि दी और उसके साथ मैत्री कायम की। यह मित्रता बादशाह के जीवन के अन्त तक चलती रही। बादशाह की मृत्यु के बाद मुगल सिंहासन पर बैठने का अधिकार प्राप्त करने के लिए फिर से संघर्ष पैदा हुआ। उस संघर्ष में औरंगजेब के सभी पौत्र मारे गये। इसके बाद फरुखसियर मुगल सिंहासन पर बैठा और उसने भयानक अत्याचार करके मुगल साम्राज्य को सभी प्रकार विध्वंस किया। इसके बाद फरुखसियर के दोनों भाइयों ने उसके साथ संघर्ष पैदा किया और उसको मार डालने के लिए वे चेष्टा करने लगे। इन दिनों में बूँदी के राजा ने फरुखसियर का साथ दिया। दिल्ली राजधानी में भीषण युद्ध आरम्भ हुआ। उस युद्ध में बुधसिंह का चाचा जगत सिंह अनेक बूँदी के सामन्तों के साथ मारा गया।

जाजो के युद्ध में कोटा और बूँदी के राजाओं में शत्रुता पैदा हुई। कोटा का राजा रामसिंह युद्ध में मारा गया था। इसलिए उसका लड़का भीमसिंह अपने पिता का बदला लेने के लिए अनेक प्रकार के उपाय सोचने लगा। फरुखसियर के दोनों भाइयों ने उसके साथ युद्ध किया था और उस युद्ध में बूँदी के राजा ने फरुखशियर की तरफ से युद्ध हो रहा था। इसलिए बूँदी के राजा से बदला लेने के लिए भीमसिंह फरुखसियर के दोनों भाइयों से मिल गया था। राव राजा बुधसिंह एक दिन जिस समय दिल्ली राजधानी के बाहर अपने घोड़ों को युद्ध की शिक्षा दे रहा था, कोटा का राजा भी भीमसिंह अपने कुछ सैसिकों के साथ वहाँ पहुँचा और उसने बुधसिंह को कैद

करके दोनों सैयद बन्धुओं के पास ले जाने के लिए तैयार हुआ। उस समय बुधसिंह के साथ बहुत थोड़े से सैनिक थे। परन्तु उन सैनिकों ने कोटा के राजा के साथ युद्ध करके बुधसिंह की। रक्षा की इन दिनों में बादशाह फरुखसियर के विरोधी दोनों सैयद बन्धु शक्तिशाली हो गये थे और फरुखसियर का भविष्य अंधकार पूर्ण हो रहा था। इसलिए राव राजा बुधसिंह दिल्ली छोड़कर चला गया। इसके बाद अवसर पाकर दोनों सैयद बन्धुओं ने बादशाह फरुखसियर को मार डाला। उसके मर जाने के बाद जो राजपूत राजा दिल्ली में थे, वे अपने-अपने राज्यों को चले गये।

इन्हीं दिनों में आमेर के राजा जयसिंह के साथ बूंदी के राजा बुध का संघर्ष पैदा हुआ और राजा जयसिंह बुधसिंह को बूंदी के सिंहासन से उतार देने की कोशिश करने लगा। यह घटना इसप्रकार कही जाती है—

बुधसिंह ने राजा जयसिंह की एक बहन के साथ विवाह किया था और उसके पहले यह तय हो चुका था कि जयसिंह की उस बहन के साथ बादशाह बहादुरशाह आलम का विवाह होगा। लेकिन जाजो के युद्ध में बुधसिंह की सहायता से बादशाद शाह आलम बहुत प्रसन्न हुआ और उसने जयसिंह की उस बहन के साथ विवाह करने के लिए बुधसिंह से कहा। बादशाह के इस परामर्श से जयसिंह ने प्रसन्न होकर अपनी उस बहन का विवाह बुधसिंह के साथ कर दिया।

जयसिंह की उस बहन के कोई संतान पैदा नहीं हुई। इस विवाह के पहले बुधसिंह ने बेगू के कालामेघ की एक लड़की के साथ विवाह किया था। उस रानी से दो लड़के पैदा हुए। उन दोनों सौतेले लड़कों के साथ जयसिंह की बहन ईर्षा करने लगी। इन्हीं दिनों में बुधसिंह अपने राज्य से बाहर चला गया। उसके जाने के बाद जयसिंह की उस बहन ने अपने आपको गर्भवती कहकर प्रकट किया और कुछ दिनों के बाद बुधसिंह की दूसरी रानी से पैदा होने वाले छोटे लड़के को गुप्त रूप से अपने पास लाकर जाहिर किया कि यह लड़का मुझे पैदा हुआ है। उसकी यह बात राजमहल से लेकर बाहर तक सभी लोगों में फैल गयी।

राव राजा बुधसिंह के बाहर से लौटने पर जयसिंह की बहन ने अपना वह लड़का उसकी गोद में दिया। राव बुधसिंह उसके षड्यंत्र को सुन चुका था। उसे अत्यन्त क्रोध मालूम हुआ। उसने यह घटना आमेर के राजा जयसिंह को लिखी। राजा जयसिंह ने उस घटना को जान कर बहुत आश्चर्य किया और अपनी उस बहन से घृणा करने लगा। लेकिन उसकी बहन पर उसके तिरस्कार का कोई प्रभाव न पड़ा और एक दिन अवसर पाकर—जब वह आमेर की राजधानी में थी—एक तलवार लेकर उसने जयसिंह पर आक्रमण किया। लेकिन जयसिंह किसी प्रकार उससे बचकर निकल गया।

राजा जयसिंह पर इसका बहुत बुरा प्रभाव पड़ा और वह अपनी बहन के साथ-साथ बुधसिंह से भी बहुत चिढ़ गया। उसने बुधसिंह को बूंदी के सिंहासन से उतार कर इन्द्रगढ़ के राजा देवीसिंह को वहाँ के सिंहासन पर बिठाने का निर्णय किया। लेकिन राजभक्त देवीसिंह इसके लिए तैयार न हुआ। उस दशा में, जयसिंह ने करवर के सामन्त सालिम सिंह को बूंदी के राज-सिंहासन पर बिठाना चाहा। सालिम सिंह बूंदी-राज्य का एक सामन्त था और वह तारागढ़ की जागीर का अधिकारी था।

राजा जयसिंह बुधसिंह को सिंहासन से उतारने के उपाय सोचने लगा। इन दिनों में वह मुगल बादशाह की तरफ से मालवा, अजमेर और आगरा का शासक था। उसके अधिकार में इन दिनों मुगल-साम्राज्य की शक्तियाँ थीं। दिल्ली में आपसी विरोध और संघर्ष के कारण मुगल बाद-

शाह की शक्तियाँ लगातार क्षीण हो रही थीं। जयसिंह ने इस अवसर पर सभी प्रकार के लाभ उठाने की कोशिश की। बादशाह फरुखसियर के मारे जाने के बाद जयसिंह अपने राज्य में चला आया और उसने अपने राज्य की सीमा को लगातार बढ़ाने की चेष्टा की। जो नगर और ग्राम उसके राज्य की सीमा के निकट थे, उन पर उसने अधिकार करने का निश्चय किया। इन दिनों में मुगल-साम्राज्य के अनेक सामन्तों की सेनायें उसके अधिकार में थी। जयसिंह ने उससे लाभ उठाना चाहा।

आमेर-राज्य में लाल सोढ के पचवाना चौहान और गोरा तथा नीमराणा आदि कितने ही ऐसे सामन्त थे, जो जयपुर के राजा को न तो कर देते थे और न विधान के अनुसार अधीनता स्वीकार करते थे। वे केवल आवश्यकता पड़ने पर अपनी सेनायें लेकर आमेर की राजधानी में आते थे और जयपुर के राजा की सहायता में युद्ध करते थे। शेखावाटी के सामन्त इसको भी स्वीकार नहीं करते थे और राजौर के बड़गूजर एवम बियाना के जादव आदि अनेक सामन्त पूर्ण रूप से स्वतंत्र शासन करते थे परन्तु इधर कुछ दिनों से उन्होंने आमेर-राज्य की अधीनता स्वीकार कर ली थी और वे जयपुर के राजा का आदेश पालन करने के लिए तैयार रहा करते थे। इन सामन्तों की भाँति बूँदी के राव बुधसिंह को अपनी अधीनता में लाकर और बूँदी-सिंहासन पर किसी को अपनी इच्छानुसार बिठाकर राजा जयसिंह अपनी अभिलाषा को पूरा करने के लिए तत्पर हुआ।

राजा जयसिंह के इस षड़यन्त्र की कोई जानकारी बुधसिंह को न थी। वह जिन दिनों में आमेर की राजधानी में मौजूद था, जयसिंह ने उससे कहा: "अगर आप कुछ दिनों तक आमेर राजधानी में रह सकें तो मैं आप को सैनिकों और सेवकों के खर्च में पाँच सौ रुपये रोजाना के हिसाब से दूँगा।"

बुधसिंह का चाचा जगतसिंह सैयद बंधुओं की सेना के साथ युद्ध करते हुए मारा गया था और उस युद्ध में जिसने अपने प्राण देकर बुधसिंह को रक्षा की थी, उसका एक भाई राव बुधसिंह के साथ आमेर राजधानी में इस समय मौजूद था। राजा जयसिंहने आमेर-राजधानी में रहने के लिए बुधसिंह से जो प्रस्ताव किया था, उसमें उसका षड़यंत्र क्या था, यह उससे छिपा न रहा। उसने गुप्त रूप से एक पत्र बूँदी भेजा और उसमें उसने लिखा कि बेगूवाली रानी को अपने दोनों पुत्रों के साथ तुरन्त बूँदी से अपने पिता के यहाँ चला जाना चाहिए।

इसके बाद जगतसिंह के भाई ने आमेर राजधानी से बाहर राव बुधसिंह से छिपकर बात चीत की और उसने बुधसिंह को बताया कि राजा जयसिंह ने आमेर राजधानी में रहने के लिए जो प्रस्ताव किया है, उसमें एक भयानक षड़यंत्र है और उस षड़यंत्र के द्वारा आप का विनाश किसी न किसी तरह निश्चित है। इस प्रकार विश्वासघात की बात को सुनकर वह अपने तीन सौ हाड़ा राजपूतों के साथ जयपुर छोड़कर रवाना हुआ। वह बूँदी की तरफ जा रहा था। उसके पंजोला नामक स्थान पर पहुँचते ही राजा जयसिंह की आज्ञानुसार जयपुर के पाँच प्रधान सामन्तों ने सेनाओं के साथ उस पर आक्रमण किया। वह अपने तीन सौ राजपूतों के साथ घेर लिया गया। राव बुधसिंह ने बिना किसी घबराहट के आक्रमण कारियों के साथ युद्ध करना आरम्भ किया। इस युद्ध में जयपुर-राज्य के ईशरदा, मेंवाड़ और भावर आदि के पांच सामन्तों के साथ कितने ही सरदार मारे गये। उस स्थान पर उन सामन्तों के जो स्मारक बने, वे अब तक वर्त्तमान हैं। इस युद्ध में बुधसिंह के चाचा का वह भाई भी मारा गया, जिसने पहले से ही जयसिंह के षड़यंत्र को समझकर राव बुधसिंह को सचेत किया था।

इस युद्ध में राव बुधसिंह की विजय हुई। लेकिन उसके साथ के बहुत-से हाड़ा राजपूत मारे गये। इसलिए अब उसके साथ जो सैनिक बाकी रह गये थे, उनकी संख्या बहुत कम थी। राव बुधसिंह को मालूम हो गया कि उसके विरुद्ध इसी प्रकार का षड़यंत्र बूंदी में भी पैदा कर दिया गया है। इसलिए वह अपने साथ के थोड़े से सैनिकों को लेकर बूंदी न जा सका और वह उस स्थान से पहाड़ी रास्तों की तरफ चला गया। जयसिंह ने राव बुधसिंह को भगाकर करवर के सामन्त दलेलसिंह के साथ अपनी लड़की का विवाह किया और उसको बूंदी के सिंहासन पर बिठाया।

यह पहले ही लिखा जा चुका है कि कोटा और बूंदी में शत्रुता पैदा हो गयी थी। यद्यपि उन दोनों राजवंशों का मूल आधार एक ही था और बूंदी के राजवंश से निकल कर उसी वंश के लोगों ने कोटा के राजवंश की प्रतिष्ठा की थी। इस प्रकार दोनों राजवंशों के पूर्वज एक ही थे। फिर भी उन दोनों में जो शत्रुता पैदा हुई, उसके कारण वे दोनों एक, दूसरे का विनाश करने में लगे थे। राव बुधसिह को जयसिंह के द्वारा पराजित देखकर कोटा के राजा भीम सिंह को बड़ी प्रसन्नता हुई। उसने मारवाड़ के राजा अजित सिंह और दिल्ली के दोनों सैयद बन्धुओं के साथ मित्रता कायम की। एवम् उनकी सहायता से उसने भरवार और हाड़ौती आदि नगरों में अपने आधिपत्य का विस्तार आरम्भ किया।

राव बुधसिह के सामने इन दिनों में भयानक संकट थे। उसने कई बार साहस करके अपने पूर्वजों की राजधानी पर अधिकार करने की चेष्टा की और उसके फलस्वरूप कई बार युद्ध हुए। उनमें बहुत से हाड़ा राजपूत मारे गये परन्तु बुधसिह को सफलता न मिली। अंत में निराश होकर वह अपनी ससुराल में जाकर रहने लगा। वहीं पर उसकी मृत्यु हो गयी। राव दुधसिंह के दो लड़के थे। बड़े लड़के का नाम था उम्मेद सिंह और छोटे का नाम था दीपसिंह।

राव बुधसिंह के मर जाने के बाद भी उसकी विपदायें कम न हुई। राजा जयसिंह के प्रोत्साहित करने पर मेवाड़ के राणा ने बेगू का इलाका अपने अधिकार में कर लिया और बुधसिंह के ने दोनों लड़कों को उनके मामा के यहाँ से निकाल दिया। दोनों हताश लड़के अपने कुछ विश्वासी आदमियों के साथ पुचैल नामक एक जंगल में चले गये और वहाँ पर अपना जीवन व्यतीत करने लगे।

इन्हीं दिनों में कोटा के राजा भीमसिंह की मृत्यु हो गयी और उसके स्थान पर दुर्जनशाल कोटा के सिंहासन पर बैठा। बुधसिंह के लड़के उम्मेद सिंह और दीपसिंह के जीवन में चारो ओर अंधकार था। कहीं से किसी प्रकार आशा न होने पर उन दोनों ने राजा दुर्जनशाल को अपनी दुर-वस्था लिखी और उससे सहायता की प्रार्थना की। दुर्जनशाल उदार और दयालु हृदय था। उसने जातीय शत्रुता के भावों को भूलकर उम्मेद सिह दीपसिंह की न केवल सहायता की, बल्कि उनके पक्ष का यहाँ तक समर्थन किया कि जिससे दोनों भाई फिर से अपने पूर्वजों के राज्य का अधिकार प्राप्त कर सकें।

सत्तरवाँ परिच्छेद

जयपुर के राजा जयसिंह की मृत्यु–राजा बुधसिंह का लड़का उम्मेद सिंह–कोटा-राज्य पर राजा ईश्वरी सिंह का आक्रमण–उम्मेद सिंह का संकट–जयपुर की सेना पर हाड़ा राजपूतों की विजय–युद्ध की फिर से तैयारी–उम्मेद सिंह की प्रतिज्ञा–उसकी सेना की पराजय–सामन्तों का परामर्श–युद्ध के बाद उम्मेद सिंह के जीवन की घटनायें–दुर्दिन और दुर्व्यवहार–हाड़ौती के एक श्रेष्ठ कवि के साथ उम्मेद सिंह की भेंट–कवि की सहायता–बूँदी के सिंहासन पर दलेलसिंह–उम्मेद सिंह के विरुद्ध जयपुर की सेना–उम्मेद सिंह और उसकी सौतेली माता–मराठा सेनापति होलकर की सहायता–जयपुर में होलकर का आक्रमण–होलकर की सहायता से उम्मेद सिंह बूँदी के सिंहासन पर–इन्द्रगढ़ के सामन्त देव सिंह का सर्वनाश ।

सम्वत् १८०० सन् १७४४ ईसवी में जयपुर के राजा जयसिंह की मृत्यु हो गयी । उस समय उम्मेद सिंह की अवस्था केवल तेरह वर्ष की थी । जयसिंह की मृत्यु का समाचार पाकर उम्मेद सिंह हाड़ा वंश के थोड़े से सैनिकों को लेकर तैयारी की और पाटन तथा गेनोली पर आक्रमण करके उसने अधिकार कर लिया । उसकी इस विजय का समाचार हाड़ौती-राज्य में फैल गया और लोगों ने सुना कि बूँदी के स्वर्गीय राजा बुधसिंह के लड़के उम्मेद सिंह ने अपने पिता के राज्य पर अधिकार करने के लिए निश्चय किया है । इस समाचार से उस राज्य के सभी लोगों को बड़ी प्रसन्नता हुई और हाड़ा वंश के राजपूतों के दल चारों ओर से आकर उम्मेद सिंह के झण्डे के नीचे एकत्रित होने लगे । यह समाचार कोटा के राजा दुर्जनशाल के पास पहुँचा । वह बहुत प्रसन्न हुआ और उम्मेद सिंह की सहायता के लिए उसने अपने राज्य से एक सेना भेजी ।

जयसिंह की मृत्यु के बाद ईश्वरी सिंह वहाँ के सिंहासन पर बैठा । उसने जब सुना कि कोटा के राजा दुर्जनशाल ने उम्मेद सिंह की युद्ध में सहायता करने का निश्चय किया है तो उसने कोटा राज्य पर आक्रमण किया । इस आक्रमण के सम्बन्ध में अधिक विवरण कोटा के इतिहास में लिखा गया है ।

आक्रमण के बाद कोटा में जो युद्ध हुआ, उनमें ईश्वरी सिंह को भागना पड़ा । रास्ते में उसने उम्मेद सिंह पर आक्रमण करने के लिए एक सेना भेजी । लोहारी नामक स्थान पर मीना जाति के लोगों रहा करते थे । हाड़ा राजा ने किसी समय उनकी स्वाधीनता नष्ट की थी । फिर भी मीना लोग ने हाड़ा राजा के साथ कई अवसरों पर उपकार किये थे और कई युद्धों में मीना लोगों ने उसका साथ दिया था । मीना लोग अपने वंश की इन बातों को भूले न थे । इन दिनों में उम्मेद सिंह के शौर्य और साहस को देख कर मीना लोग बहुत प्रसन्न हुए और वे धनुष-बाण लेकर उम्मेद सिंह की सहायता करने के लिए पाँच हजार की संख्या में तैयार हो गये । यह देखकर बालक उम्मेद सिंह को बहुत संतोष मिला । उसने मीना लोगों की सहायता से विचोरी नामक स्थान पर शत्रुओं के साथ युद्ध आरम्भ किया । मीना लोगों ने शत्रु के शिविर में जाकर लूट-मार आरम्भ की और उम्मेद सिंह ने हाड़ा राजपूतों की सेना को लेकर जयपुर की सेना का संहार करना

शुरू कर दिया। उस समय शत्रु-सेना के बहुत-से लोग मारे गये। हाड़ा राजपूतों ने शत्रुओं के झण्डे को छीनकर अपने अधिकार में कर लिया। उस युद्ध में हाड़ा राजपूतों की विजय हुई और शत्रुओं की सेना पराजित होकर युद्ध क्षेत्र से भाग गयी।

जयपुर के राजा ने अपनी इस पराजय का समाचार सुना। उसने उम्मेद सिंह को परास्त करने का निश्चय किया और नारायण दास के नेतृत्व में उसने अठारह हजार सैनिकों की एक सेना रवाना की। यह समाचार हाड़ा लोगों में सर्वत्र फैल गया कि बालक उम्मेद सिंह से युद्ध करने के लिए जयपुर से एक बड़ी सेना आ रही है। यह जान कर हाड़ा बंश के जो सामन्त अभी तक उम्मेद सिंह की सहायता में नहीं आये थे, वे भी अपनी सेनाओं के साथ रवाना हुए। उम्मेद सिंह ने अपने पिता के राज्य को प्राप्त करने के लिए एकत्रित हाड़ा राजपूतों के सामने प्रतिज्ञा करते हुए कहा, अपने वंश की मर्यादा को सुरक्षित रखने के लिए मैं युद्ध में अपने प्राणों की बलि दूँगा।

जयपुर-राज्य-के अठारह हजार सैनिकों की सेना डबलाना नामक स्थान पर आकर रुकी। युद्ध आरम्भ करने के पहले उम्मेद सिंह अपने वंश की देवी आशापूर्णा के मन्दिर में गया और वहाँ से लौटकर उसने अपनी सेना के सामने प्रतिज्ञा की—या तो मैं बूंदी-राज्य पर अधिकार करूंगा अथवा युद्ध-भूमि में बलिदान हो जाऊँगा।

बालक उम्मेद सिंह के साहस और शौर्य को देखकर एकत्रित हाड़ा राजपूतों ने उसकी प्रतिज्ञा का समर्थन करते हुए कहा—"हम लोग या तो विजयी होंगे अथवा युद्ध-क्षेत्र में अपने प्राणों को उत्सर्ग करेंगे।"

दिल्ली के बादशाह जहाँगीर ने बूँदी के राजा राव रतन को जो राज पताका दी थी, उम्मेद सिंह इस युद्ध में उसे अपने साथ लाया था। समस्त हाड़ा राजपूत बूँदी के उस झण्डे के नीचे एकत्रित हुए। उसी समय समाचार मिला कि शत्रुओं की सेना आक्रमण करने के लिए आ रही है। यह जान कर समस्त हाड़ा राजपूत एक साथ उत्तेजित हो उठे। उनकी अपेक्षा जयपुर की आने वाली सेना अधिक थी। परन्तु उम्मेद सिंह उस विशाल सेना से किञ्चित भयभीत न हुआ। उसने अपनी सेना को चक्राकार सजाकार और अपने हाथ में भाला लेकर युद्ध की गर्जना की। हाड़ा राजपूत आगे बढ़े। दोनों सेनाओं का मुकाबिला हुआ। हाड़ा राजपूतों ने शत्रुओं की सेना पर इतने जोर का आक्रमण किया कि वह एक बार तितर-बितर होती हुई दिखायी पड़ी। परन्तु शत्रु-सेना ने अपने आपको सम्हाल कर हाड़ा राजपूतों पर भंयकर गोलियों की वर्षा की। उम्मेद सिंह के सैनिकों ने उन गोलियों के सामने अपने प्राणों की परवा न की और वे अपने हाथों में तलवारें लिए हुए शत्रुओं की ओर आगे बढ़े और अपनी तलवारों से उन्होंने जयपुर-राज्य के सैनिकों का संहार किया। परंतु इस प्रकार कई बार आगे बढ़कर हाड़ा राजपूतों ने शत्रुओं की गोलियों का सामना किया जिससे वे प्रत्येक वार अधिक संख्य में मारे गये। सब से पहले उम्मेद सिंह का मामा पृथ्वी सिंह घायल होकर गिरा उसके बाद मोटरा का राजा मरजाद सिंह मारा गया। सारन के सामन्त प्राग सिंह के साथ-साथ दूसरे बहुत-से शूरवीरों ने अपने प्राणों को उत्सर्ग किया। इस प्रकार प्रधान रण-कुशल सैनिकों के मारे जाने पर भी बालक उम्मेद सिंह हताश न हुआ और शत्रुओं का संहार करने के लिए साहस पूर्वक अपनी सेना के साथ वह आगे बढ़ा।

कुछ समय के भीषण युद्ध के बाद शत्रु की गोली से उम्मेद सिंह का घोड़ा घायल हुआ। उसके शरीर से रुधिर की धारा बहने लगी। शत्रुओं की संख्या अधिक होने के कारण और शत्रु-पक्ष की तरफ से गोलियों की मार होने से उम्मेद सिंह की सेना लगातार निर्बल होती गयी और अन्त में उसकी पराजय के लक्षण दिखायी देने लगे। इस समय युद्ध की दशा भयानक थी। शत्रु-

सेना बराबर आगे बढ़ रही थी और उम्मेद सिंह के सामने संकट का समय आने में अधिक देर न थी। यह देख कर उसके सामन्तों ने समझाते हुए उससे कहा : "अगर आप जीवित रहेंगे तो किसी समय बूंदी पर अधिकार हो सकता है। लेकिन अगर आप इस युद्ध में मारे गये तो भविष्य की समस्त आशायें समाप्त हो जायंगी। इसलिए आप युद्ध को बन्द कर दें।"

उम्मेद सिंह ने अपने सामन्तों की इस बात को सुना। उसकी कुछ समझ में आ गया। इसलिए अपने अन्तरतर में एक वेदना को रख कर बाकी बची हुई सेना के साथ युद्ध क्षेत्र से हटकर उम्मेद सिंह सवाली नाम की घाटी की तरफ चला आया। वहां से इन्द्रगढ़ अधिक दूर न था। इसलिए उम्मेद सिंह अपने जख्मी घोड़े को विश्राम देने के लिए उससे उतर पड़ा। उसके उतरने के कुछ देर बाद उसका घोड़ा गिर गया और उसकी मृत्यु हो गयी। यह देखकर उम्मेद सिंह का हृदय विव्हल हो उठा। वह घोड़े के सिरहाने बैठकर रोने लगा। उस घोड़े का नाम हुआ था। वह घोड़ा ईराक देश का था। दिल्ली के बादशाह ने उम्मेदसिंह के पिता राव बुधसिंह को वह घोड़ा उपहार में दिया था और बुधसिंह ने उस पर बैठकर अनेक युद्धों में विजय प्राप्त की थी। उम्मेद सिंह ने जब बूंदी के राज-सिंहासन पर बैठने का अधिकार प्राप्त किया तो उसने सबसे पहले इस घोड़े की एक प्रस्तार मूर्ति बनवा कर बूंदी राजधानी की चोक में स्थापित की। ×

घोड़े के मर जाने के बाद बहुत दुखी होकर उम्मेद सिंह इन्द्र गढ़ गया। इस इन्द्रगढ़ का राजा बूंदी राज्य का प्रधान सामन्त था। उसने राजभक्ति को ठुकराकर और अवसरवादी बनकर आमेर के राजा की अधीनता स्वीकार की थी। इस बात को समझते हुए भी उम्मेद सिंह उसके पास गया। इन्द्र गढ़ के राजा ने उम्मेद सिंह के मागने पर एक घोड़ा नहीं दिया और उम्मेद सिंह को इन्द्रगढ़ से चले जाने के लिए उसने साफ साफ कहा।

इन्द्रगढ़ के राजा से उम्मेद सिंह ने इस प्रकार की आशा न की थी। वह उसके इस दुर्व्यवहार से अत्यन्त दुखी और क्रोधित होकर उसने इन्द्रगढ़ में पानी तक नहीं पिया और वहां से वह करवान की तरफ चला। वहां का राजा इन्द्रगढ़ के राजा की तरह अवसरवादी और विश्वासघातक न था। उम्मेद सिंह के आने का समाचार पाकर वह बहुत प्रसन्न हुआ और अपने स्थान से चलकर वह उम्मेद सिंह के पास जाकर मिला। इसके बाद वह उसे अपने यहां लिवा गया। उसने उम्मेद सिंह को एक घोड़ा देकर आवश्यकता के समय सभी प्रकार की सहायता करने का वादा किया।

उम्मेद सिंह इस बात को समझता था कि जयपुर की सेना के साथ इस समय युद्ध करना असम्भव है। इसलिए उम्मेद सिंह ने अपने साथ के हाड़ा राजपूतों को विदा कर दिया और कहा : इस समय आप लोग अपने अपने स्थान को जावें : फिर कभी अवसर मिलने पर आप लोगों की सहायता से बूंदी-राज्य को प्राप्त करने की कोशिश करूंगा।"

इस प्रकार कहकर और साथ के लोगों को बिदा करके उम्मेद सिंह चम्बल नदी के किनारे रामपुरा नामक स्थान के एक प्राचीन और टूटे-फूटे महल में जाकर रहने लगा।

तेजस्वी उम्मेद सिंह को दुर्भाग्य के इन दिनों में अधिक दिनों तक नहीं रहना पड़ा। कोटा के राजा दुर्जनशाल ने आमेर के राजा ईश्वरी सिंह और उसके सहायक मराठा सेनापति आपा जी

× मैंने हुआ घोड़े की प्रस्तर मूर्त्ति को देखकर आदर पूर्वक उस को नमस्ते किया था। अगर मैं हाड़ा लोगों के बीच में रहता तो प्रत्येक सैनिक उत्सव के समय राजपूतों की तरह उस मूर्ति के गले में माला पहनाता।

सीधिया को परास्त करके कोटा राज्य की रक्षा की थी। उसके हृदय में उदारता थी और विपद में पड़े हुए किसी शूरवीर की सहायता करना वह जानता था। इन दिनों में उसने सबसे अधिक उम्मेद सिंह की सहायता की।

इन्हीं दिनों में हाड़ौती के एक श्रेष्ठ कवि के साथ बालक उम्मेद सिंह की भेंट हुई। वह कवि उम्मेद सिंह का साहस और पुरुषार्थ देखकर बहुत प्रवाहित हुआ। वह लगातार इस बात को सोचने लगा कि जैसे भी हो सके, बालक उम्मेद सिंह को उसके पिता के राज्य का अधिकार प्राप्त होना चाहिए। राजपूत कवि के हाथ में केवल उसकी लेखनी का ही महत्व नहीं होता, बल्कि वह अपनी कलम के समान तलवार का चलाना भी जानता है। उम्मेद सिंह को मिले हुए कवि की ठीक यही अवस्था थी। वह किसी भी दशा में और किसी मूल्य में उम्मेद सिंह को उसकी चेष्टाओं में सफल बनाना चाहता था। वह बालक उम्मेद सिंह के साहस, स्वाभिमान और शौर्य से बहुत प्रभावित हो चुका था। वह जानता था कि जीवन की विपदायें और भयानक कठोरतायें स्वाभिमानी तथा वीर आत्माओं के लिए होती है। जो मनुष्य स्वाभिमान खो देता है अथवा जिसमें स्वाभिमान नहीं होता, उसे कभी भी जीवन की कठिनाइयों का सामना नहीं करना पड़ता। उम्मेद सिंह से सभी प्रकार खुश होने के कारण उस कवि ने उसकी सहायता करने का निश्चय कर लिया। वह अपनी ओजस्वी कविताओं के द्वारा हाड़ा राजपूतों को प्रोत्साहित करने लगा और उम्मेद सिंह की सहायता में तलवार लेकर वह स्वयं युद्ध-क्षेत्र में जाने के लिए तैयार हुआ। शत्रु की सेना उम्मेद सिंह को मिटाने में लगी थी। इसलिए हाड़ा राजपूत संगठित होकर और कोटा की सेना की सहायता पाकर फिर युद्ध के लिए तैयार हुए और रणभूमि में जाकर उन लोगों ने बड़े साहस के साथ शत्रु-सेना का सामना किया।

जयपुर के राजा जयसिंह ने दलेल सिंह को बूँदी के सिंहासन पर बिठाया था। यह युद्ध दलेल सिंह और उम्मेद सिंह के बीच आरम्भ हुआ। उसमें दलेल सिंह की पराजय हुई। उम्मेद सिंह ने बूँदी नगर पर अधिकार कर लिया। दलेल सिंह भागकर बूंदी के प्रसिद्ध दुर्ग को आने वाले चला गया। उम्मेद सिंह ने अपनी सेना लेकर उस दुर्ग को जाकर घेर लिया और था। उसने दुर्ग पर अधिकार करने की कोशिश की। दलेल सिंह अपनी सेना के साथ दुर्ग के भीतर मौजूद था और बाहर उम्मेद सिंह के सैनिक थे। उनके आगे बढ़ते ही दोनों ओर से मार-काट आरम्भ हुई। उस समय वह कवि युद्ध करते हुए मारा गया, जो उम्मेद सिंह की तरफ से युद्ध करने के लिए आया था और उसका मारने वाला उसी के वंश का एक विश्वासघाती सैनिक था। उसके मृत शरीर पर एक कपड़ा डाल दिया गया, जिससे उसके मारे जाने का समाचार जल्दी प्रकट न हो सके। उस दुर्ग पर आक्रमण करने से जो युद्ध हुआ, उसमें भी उम्मेद सिंह की विजय हुई। इसके बाद वह बूंदी के सिंहासन पर बैठा।

दलेल सिंह उस दुर्ग से भागकर जयपुर राज्य में पहुँचा और ईश्वरी सिंह को उसने अपनी पराजय का सब हाल बताया। जयपुर का राजा उसे सुनकर अत्यधिक क्रोधित हुआ और उसने केशवदास खत्री के नेतृत्व में एक सेना बूंदी पर अधिकार करने के लिए भेजी।

बूंदी के सिंहासन पर बैठने के बाद उम्मेद सिंह को इतना भी अवसर न मिला कि वह अपनी निर्बल शक्तियों को एक बार संगठित कर लेता। उसके सिंहासन पर बैठते ही जयपुर की सेना उस पर आक्रमण करने के लिए रवाना हुई। उम्मेद सिंह को इस बात का ख्याल न था कि जयपुर की सेना इतनी जल्दी आकर आक्रमण करेगी। जिस समय वह युद्ध के लिए तैयार न था और अपने राज्य तथा राजधानी की नष्ट-भ्रष्ट अवस्था पर बिचार कर रहा था, एकाएक जयपुर

की सेना ने आकर आक्रमण किया। उसमें उम्मेद सिंह को पराजित हो जाना पड़ा और बूँदी के दुर्ग के ऊपर जयपुर का झण्डा फिर से फहराने लगा। बूँदी पर अधिकार कर लेने के बाद वहाँ के सिंहासन पर दलेल सिंह को फिर से बिठाने के लिए कोशिश की गयी। परन्तु उसने इनकार कर दिया। इसलिए कि एक बार उस सिंहासन पर बैठकर उसने जिस लोक-निंदा को सुना था, दूसरी बार वह अपने जीवन में फिर इस प्रकार का अवसर नहीं आने देना चाहता था।

बूँदी का अधिकार निकल जाने के बाद उम्मेदसिंह की अवस्था फिर उसी प्रकार संकटपूर्ण बन गयी, जैसी कि पहले थी। अब फिर उसके सामने अंधकार था और कहीं भी उसे प्रकाश दिखायी न देता था। अपनी इस दुरवस्था में उसने बहुत-कुछ सोच डाला और अपने पूर्वजों के राज्य का अधिकार प्राप्त करने के लिए उसने मारवाड़ और मेवाड़ के राजाओं से सहायता माँगी। परन्तु कोई भी उसकी सहायता के लिए तैयार न हुआ। इससे और भी उम्मेद सिंह के सामने निराशा पैदा हुई। परन्तु वह हताश होना नहीं जानता था। उसके भाग्य में जिसने इस प्रकार की कठोर विपदायें पैदा की थीं, उसी ने उसके अन्तर में अटूट साहस और स्वाभिमान उत्पन्न किया था।

स्वाभिमानी बालक उम्मेद सिंह ने फिर से अपनी टूटी-फूटी शक्तियों को एकत्रित किया और उसके द्वारा वह तरह-तरह के आघात शत्रु को पहुँचाने का उपाय सोचने लगा। अपने स्थान से रवाना होकर वह उस ग्राम में पहुँच गया, जिसका विनोदिया नाम था। इसी ग्राम में राजा जयसिंह की वह बहन इन दिनों में रहा करती थी, जो उम्मेद सिंह की सौतेली माँ थी और जिस के ईर्षालु व्यवहारों के कारण न केवल बूँदी-राज्य तहस-नहश हुआ था, बल्कि उसकी ससुराल का सम्पूर्ण परिवार और उसके पति राव बुधसिंह का समस्त वंश नष्ट होने की परिस्थिति में पहुँच गया था। वह अब वैधव्य अवस्था में इसी विनोदिया नामक ग्राम में रहा करती थी और समझती थी कि मैंने ही अपने स्वामी के वैभव और प्रताप को नष्ट करके सौतेले लड़कों का सर्वनाश किया है। वह स्वयं न तो बूँदी में अपना अधिकार रख सकी थी और न जयपुर-राज्य में ही उसने अपने लिए कोई स्थान रखा था। इसलिए इस ग्राम में रहकर वह अपने वैधव्य जीवन के दिन किसी प्रकार काट रही थी।

उम्मेद सिंह ने अपनी सौतेली माता के पास पहुँचकर उसके चरणों का स्पर्श किया। उम्मेद सिंह को देखकर रानी के अन्त:करण में एक साथ पीड़ा की अग्नि प्रज्वलित हो उठी। बालक उम्मेद सिंह की दुरवस्था को देखकर वह बहुत दुखी हुई। बार-बार वह सोचने लगी कि मेरी गलतियों के कारण ही बूँदी के राजवंश का सर्वनाश हुआ है। वह सोचने लगी, ऐसे अवसर पर यदि मैं किसी प्रकार इस बालक की सहायता कर सकूँ तो मेरा वह परम कर्त्तव्य होगा।

रानी, उम्मेद सिंह को अपने पास बिठाकर उसके साथ बड़ी देर तक बातें करती रही। उसने निश्चय किया कि अपने इस अवसर पर हमको मराठों से सहायता के लिए प्रार्थना करनी चाहिए। दोनों में इस बात का निश्चय हो गया और रानी उम्मेद सिंह को अपने साथ लेकर दक्षिण के मराठा सेनापति मल्हार राव होलकर के पास गयी और उससे मिलकर उसने बालक उम्मेद सिंह की दुरवस्था का सम्पूर्ण वृत्तान्त उसके सामने रखा। उसने सेनापति होलकर से कहा : "इस विपद में आप की सहायता माँगने के लिए मैं आपको अपना भाई समझ कर आयी हूँ।"

मल्हार राव होलकर ने एक साधारण वंश में जन्म लिया था। परन्तु वह श्रेष्ठ वंश के अच्छे गुणों को समझता था उसने सहानुभूति के साथ रानी की बातों को सुना और उसने पूरे तौर पर सहायता करने के लिए रानी को बचन दिया।

रानी का विश्वास था कि मराठा सेनापति के चलने पर श्रामेर का राजा ईश्वरी सिंह युद्ध में परास्त होगा श्रौर वह संधि करने की चेष्टा करेगा। मल्हार राव होलकर अपनी सेना के साथ दक्षिण से रवाना होने के लिए तैयार हुश्रा श्रौर वह जयपुर के लिए रवाना हो गया। राजा ईश्वरी सिंह को मालूम हुश्रा कि मल्हार राव होलकर की सेना जयपुर पर श्राक्रमण करने के लिए श्रा रही है तो वह अपनी सेना के साथ अपनी राजधानी से निकला श्रौर मराठा सेना के साथ युद्ध करने के लिए श्रागे बढ़ा।

राजा ईश्वरी सिंह ने कुछ दिन पहले अपने मंत्री केशवदास को मरवा डाला था। इसलिए केशवदास के दोनों लड़के हरसहाय श्रौर गुरु सहाय ईश्वरी सिंह से ईर्षा करते थे श्रौर किसी प्रकार ऐसे षड़यंत्र की खोज में थे, जिससे वे राजा ईश्वरी सिंह से अपने पिता का बदला ले सकें। श्राक्रमण के लिए मराठों की सेना श्राने पर वे दोनों भाई बहुत प्रसन्न हुए। लेकिन जाहिरा तौर पर उन्होंने राजा ईश्वरी सिंह के साथ अपनी पूरी सहानभूति प्रकट की श्रौर उससे कहा : "श्रायी हुई मराठा सेना इतनी थोड़ी है कि श्राप उसे सहज ही पराजित कर लेंगे।"

मराठों की श्रायी हुई सेना प्रबल श्रौर विशाल थी। लेकिन मंत्री केशवदास के लड़कों ने राजा ईश्वरी सिंह को बिलकुल धोखे में रखा ईश्वरी सिंह अपनी सेना लेकर राज्य के बगरू नामक स्थान पर पहुँचकर उसने समझा कि मराठा सेना का अनुमान लगाने में हमने पूर्ण रूप से भूल की है। मराठा सेना इतनी बड़ी है कि उसको परास्त करना पूर्ण रूप से असम्भव है। इस प्रकार सोच-विचार कर राजा ईश्वरी सिंह बगरू के सामन्त के दुर्ग में चला गया। यह जानकर मराठा सेना उस दुर्ग की तरफ रवाना हुई श्रौर वहाँ पहुँचकर उसने उस दुर्ग को घेर लिया।

ईश्वरी सिंह दस दिनों तक उस दुर्ग में बना रहा। उसको युद्ध के लक्षण अच्छे नहीं मालूम हुए। इसलिए मराठा सेनापति के साथ उसने संधि करने का निश्चय किया। संधि के प्रस्ताव पर मल्हार राव होलकर ने ईश्वरी सिंह से कहा: "भविष्य में ईश्वरी सिंह श्रौर उसके उत्तराधिकारियों का कोई भी अधिकार बूँदी-राज्य पर न रहेगा, बूँदी का राज्य उम्मेद सिंह को दे दिया जायगा श्रौर जयपुर का वर्तमान राजा इस बात को स्वीकार करेगा कि बूँदी के राज्य का अधिकारी उम्मेद सिंह है।"

संधि के सम्बन्ध में ऊपर लिखी हुई बातें सेनापति होलकर ने राजा ईश्वरी सिंह के सामने रखीं। उनको स्वीकार करने के सिवा ईश्वरी सिंह के सामने कोई दूसरा रास्ता न था। इसलिए उसके स्वीकार करने पर यह संधि हो गयी श्रौर उसके सम्बन्ध में जो दस्तावेज लिखा गया, उस पर दोनों पक्ष के अकिारियों के हस्ताक्षर हो गये। होलकर की इस सेना के साथ जयपुर पर श्राक्रमण करने के लिए कोटा श्रौर हाड़ा राजपूतों की सेनायें भी श्रायी थीं। संधि हो जाने के बाद होलकर सब के साथ जयपुर से बूँदी श्रा गया। उसके साथ उम्मेद सिंह भी था।

बूँदी के राज-सिंहासन पर जो अब तक बैठा हुश्रा था, वह सिंहासन छोड़कर भाग गया। बूँदी राजधानी में बड़ी धूमधाम के साथ उम्मेद सिंह का अभिषेक-समारोह मनाया गया श्रौर उसके बाद वह अपने राज्य के सिंहासन पर बैठा। इन्ही दिनों में उसने सुना कि श्रामेर के राजा ईश्वरी सिंह ने विष खाकर श्रात्म-हत्या कर ली है।

चौदह वर्षों तक लगातार बे-घर बार होकर उम्मेद सिंह ने अपने जीवन के दिन व्यतीत किये थे। इसके बाद सम्बत् १८०५ सन् १७४६ ईसवी मे वह बूँदी के सिंहासन पर बैठा। उसने

मल्हार राव होलकर को सहायता के बदले में चम्बल नदी के किनारे पाटन का सम्पूर्ण इलाका और उसके समस्त ग्राम दे दिये। साथ ही उनकी लिखा-पढ़ी भी कर दी।×

राव बुधसिंह के बाद लगातार चौदह वर्षों में बूँदी का राज्य नष्ट हुआ था और बूँदी राजधानी अनेक प्रकार से श्रीहीन हो गयी थी। दलेल सिंह ने केवल राजमहल और तारागढ़ दुर्ग को सुरक्षित रखने की चेष्टा की थी। बूँदी के सिंहासन पर बैठकर उम्मेद सिंह ने राज्य की बिगड़ी हुई दशा को सुधारने की कोशिश की। उसने वे सभी कार्य आरम्भ किया, जिनके द्वारा प्रजा का कल्याण हो सकता था।

उम्मेद सिंह ने मराठों की सहायता से अपने पूर्वजों के राज्य पर अधिकार प्राप्त किया था। उसने सेनापति होलकर को अपना मामू बनाया। इस सम्बन्ध के साथ होलकर ने उम्मेद सिंह की जो सहायता की थी, उसके मूल्य में उम्मेद सिंह को बूँदी राज्य का जो हिस्सा देना पड़ा था, उसका उल्लेख किया जा चुका है। उस समय के राजपूत जाति के इतिहास लेखकों का कहना है कि दक्षिण के मराठों ने इस प्रकार के अवसरों पर राजपूतों के आपसी विरोधी का लाभ उठाया था और अपनी शक्तियों को मजबूत बना लिया था। उनका यह भी कहना है कि समय-समय पर मराठों की शरण में जाने से राजस्थान के अन्यान्य राज्यों की अपेक्षा बूँदी-राज्य को अधिक क्षति उठानी पड़ी।

उम्मेद सिंह स्वभाव से ही नेक, उदार और धार्मिक था। उसने जीवन के संकटों में चरित्र और अच्छे व्यवहारों की शिक्षा पायी थी। उसके जीवन में यदि प्रतिहिंसा की भावना से एक घटना न पैदा होती, जिसका उल्लेख नीचे की पंक्तियों में किया गया है तो उम्मेद सिंह का चरित्र अत्यन्त निर्मल माना जाता। यद्यपि उस घटना के आधार में दो प्रमुख कारण हैं। अपनी भीषण कठिनाइयों के समय उम्मेद सिंह इन्द्रगढ़ के राजा देवसिंह के पास गया था। देवसिंह उसके पिता राव बुधसिंह का एक आज्ञाकारी सामन्त था। इस विपद के समय उम्मेद सिंह की सहायता करना उसका एक आवश्यक कर्त्तव्य था। परन्तु उसने कुछ भी ख्याल नहीं किया। उम्मेद सिंह का घोड़ा मर गया था। उस दशा में उसके एक घोड़ा माँगने पर देवसिंह ने निष्ठुरता के साथ इनकार कर दिया था। इतना ही नहीं, बल्कि उसने अपनी जागीर से चले जाने के लिए भी उम्मेद सिंह से कहा था। देवसिंह का यह व्यवहार उम्मेद सिंह के प्रति कितना अपराध पूर्ण था और उम्मेद सिंह पर इस व्यवहार से क्या प्रभाव पड़ा था, इसका अनुमान एक सहृदय व्यक्ति आसानी से कर सकता है। परन्तु उम्मेद सिंह ने उसके इस व्यवहार को अधिक महत्व न देकर उसे भुला देने की कोशिश की थी। इसके बाद भी उम्मेद सिंह अपने दुर्भाग्य के दिन किसी प्रकार व्यतीत करता रहा।

समय और परिस्थितियों के बदलने पर उम्मेद सिंह एक दिन बूँदी के सिंहासन पर बैठा और आठ वर्ष तक अपने राज्य में उसने बुद्धिमानी के साथ शासन किया। इन्ही दिनों में उसने जयपुर के राजा माधव सिंह के साथ अपनी बहन का विवाह करना निश्चय किया और राजपूतों की प्रचलित प्रथा के अनुसार उसने माधव सिंह के पास नारियल भेजा। राजा माधव सिंह ने अपने राजदरबार में सभी मन्त्रियों और सामन्तों की उपस्थिति में उस नारियल को स्वीकार किया। इसका अर्थ यह था कि राजा माधव सिंह ने उम्मेद सिंह की बहन के साथ विवाह करना मंजूर कर लिया यह बात सभी राजाओं महाराजाओं को मालूम हो गयी। इन्द्रगढ़ का राजा देवसिंह

× सन् १८१७ ईसवी में अंगरेज सरकार ने यह इलाका मराठों से लेकर बूँदी के राजा, उम्मेद सिंह के पौत्र को दे दिया था।

इन्हीं दिनों में आमेर गया। राजा माधव सिंह ने उससे राव बुधसिंह की लड़की के संबंध में पूछा और कुछ जानने की इच्छा प्रकट की। उस समय देवसिंह ने माधव सिंह को उत्तर देते हुए कहा : उस लड़की का जन्म बुधसिंह से नहीं हुआ है।"

इन्द्रगढ़ के जिस देवसिंह ने, बूँदी राज्य का सामन्त होकर भी भयानक विपदाओं के समय उम्मेद सिंह के साथ अपनी जागीर में अत्यन्त असम्मानपूर्ण व्यवहार किया था, उसी देवसिंह ने उम्मेद सिंह की बहन के विवाह के सम्बन्ध में इस प्रकार कलंकपूर्ण बात कहने में जरा भी संकोच न किया। राजा माधव सिंह ने देवसिंह की बात पर विश्वास किया और उम्मेद सिंह के भेजे हुए नारियल को मंजूर कर चुकने के बाद भी उम्मेद सिंह के पास वापस भेज दिया। राजपूताने के राजपूतों की प्रथा के अनुसार वहाँ के एक राजा का इससे अधिक अपमान और किसी प्रकार नहीं हो सकता जितना कि उसकी लड़की अथवा बहन के विवाह का नारियल स्वीकार करने के बाद भी वापस करने से हो सकता है ? लेकिन मारवाड़ के राजा विजय सिंह ने उसके बाद उम्मेद सिंह की बहन के साथ विवाह करके देवसिंह की कही हुई बात को मिथ्या प्रमाणित कर दिया।

इन्द्रगढ़ के राजा देवसिंह के इस प्रकार के व्यवहारों का कारण—जो उसने उम्मेद सिंह के साथ किये—कोई न था, सिवा इसके कि वह स्वभाव से ही दुष्टात्मा था। बिना किसी कारण के उसने राजा माधव सिंह को भड़का देने में पूरी सफलता प्राप्त की थी। लेकिन उन्हीं दिनों में उस लड़की का विवाह मारवाड़ के राजा के साथ हो जाने से उम्मेद सिंह और उसकी बहन का मुख उज्वल हो गया।

सम्बत् १८१३ सन् १७५७ ईसवी में उम्मेद सिंह करवर के पास विजय सेनी देवी के मन्दिर में पूजा करने के लिए गया। यह स्थान इन्द्रगढ़ के निकट था। उम्मेद सिंह ने इन्द्रगढ़ के राजा देवसिंह को परिवार के साथ वहाँ आकर एकत्रित सामन्तों से मिलने के लिए संदेश भेजा। उस संदेश के अनुसार देवसिंह अपने परिवार के सभी लोगों को लेकर वहाँ पर आ गया। उसके साथ उसके पुत्र और पौत्र सभी थे। उम्मेद सिंह ने देवसिंह और उसके परिवार के लोगों पर आक्रमण कर के सब को एक तरफ से काट-काट कर फेंक दिया। उम्मेद सिंह के ऐसा करने से देवसिंह का वंश नष्ट हो गया। इसके बाद उम्मेद सिंह ने इन्द्रगढ़ देवसिंह के भाई को दे दिया।

उम्मेद सिंह ने दुष्टात्मा देवसिंह का उसके पुत्र-पौत्रों के साथ संहार तो किया, लेकिन इससे उसके हृदय में एक भीषण आघात पहुँचा। वह बहुत दिनों तक इस बात को सोचता रहा कि मैंने यह कार्य अच्छा नहीं किया। उसकी यह भावना धीरे-धीरे बढ़ती गयी और उसने पिता के पाये हुए राज्य को छोड़कर तीर्थ यात्रा और धार्मिक आचार-व्यवहार के द्वारा प्रायश्चित करने का निर्णय किया।

सम्बत् १८२७ सन् १७७१ ईसवी में उम्मेद सिंह ने राज्य के अधिकारों से अपने सम्बन्ध को विच्छेद कर लिया। शासन से उसका सम्बन्ध टूट जाने के बाद राजपूतों में प्रचलित प्रथा के अनुसार अनुष्ठान किये गये उम्मेद सिंह के लड़के अजित सिंह ने अपने पिता की एक मूर्ति बनवाई और उसको अग्नि पर रखकर अंतिम संस्कार के रूप में उसने अपने पिता का दाह-संस्कार किया और बारह दिनों का मातम मनाया। राज्य में अन्तःपुर से लेकर बाहर तक शोक प्रकट किया गया। इस प्रकार श्राद्ध हो जाने के बाद अजित सिंह का राज्याभिषेक हुआ और फिर वह बूँदी के सिंहासन पर बैठा।

अजित सिंह के अभिषेक के पहले उम्मेद सिंह शासन से सम्बन्ध-विच्छेद करके राज्य से चला गया। जीवन के इस परिवर्तन के साथ उसने अपना नाम बदल कर भी रखा और उस समय

के बाद वह श्री जी के नाम के विख्यात हुआ। उम्मेद सिंह बूँदी राजधानी से केदारनाथ तीर्थ स्थान में जाकर रहने लगा। उसका विश्वास था कि सांसारिक जीवन के साथ सम्बन्ध तोड़ देने और भगवान की आराधना करने से जीवन को शांति मिलेगी। साथ ही मैंने जो अपने जीवन में अधर्म और अन्याय किया है, उस अपराध से मुक्ति प्राप्त होगी। इस लिए उसने एक तीर्थ-यात्री का रूप धारण किया। उम्मेद सिंह ने अपने और दूसरे राज्यों के ऐतिहासिक ग्रंथों को पढ़कर इस बात पर विश्वास किया था कि राज्य, ऐश्वर्य और आडम्बर पूर्ण सम्मान से आत्मा का विनाश होता है। जो लोग अपने जीवन में इस प्रकार के आडम्बरों को छोड़कर ईश्वर की भक्ति में लवलीन हो जाते हैं, केवल वही मनुष्य अपने आप को सुखी बना पाते हैं।

उम्मेद सिंह के हृदय में अपने देश के सभी तीर्थ-स्थानों की यात्रा करने का विचार धीरे-धीरे मजबूत होता गया।। परन्तु राजपूत जाति में जन्म लेने के कारण उसके कुछ संस्कार अब तक वैसे ही बने हुए थे। वह तीर्थ-यात्रा करने के लिए निकला लेकिन उसने दूसरे सन्यासियों की तरह अपना वेश नहीं बनाया। तीर्थ-यात्री बन कर भी उसने अपने अस्त्रशस्त्रों का मोह नहीं छोड़ा। उन दिनों में तीर्थ-यात्रा करते हुए लोगों को अनेक प्रकार के संकटों का सामना करना पड़ता था। मार्ग में चोर और लुटेरे मिलते थे, जो तीर्थ-यात्रियों को लूट लेते थे। उनका सामना करने के लिए उम्मेद सिंह ने अपने सभी अस्त्र-शस्त्र साथ में रखे। एक शूरवीर राजपूत के लिए जितने भी हथियार आवश्यक होते हैं, उन सब को उम्मेद सिंह ने अपने साथ में रखा। वह तीर्थ-यात्रा करने के लिए भी एक राजपूत की तरह रवाना हुआ। किसी आक्रमणकारी के अस्त्रों के आघात को रोकने के लिए उसने रुई का अंगरखा पहना और अपनी ढाल-तलवार के साथ उसने एक बन्दूक और भाला अपने साथ में लिया। उसने और भी कुछ अस्त्रों को अपने साथ लेकर तीर्थ-यात्रा आरम्भ की।

अपनी राजधानी से निकलने के समय उम्मेद सिंह ने कुछ विश्वासी सेवकों को अपने साथ लिया और कई वर्ष तक वह भारत के उत्तर में गंगोत्तरी, दक्षिण में सेतुबन्ध रामेश्वर और अराकान में गरम सीता कुण्ड एवम् द्वारका आदि में घूमता रहा। इन दिनों में उसने देश के सभी प्रसिद्ध नगरों और स्थानों का पर्यटन किया। साधु संतों और प्रसिद्ध सन्यासियों से उसने भेंट की। इस प्रकार यात्रा करते हुए वह जब कभी अपने राज्य की सीमा पर आया तो उसके वंश के लोगों के साथ-साथ दूसरे राज्यों के राजपूतों ने उसके पास आकर अपना सम्मान प्रकट किया। यात्रा करते हुए उम्मेद सिंह जिस राजा के राज्य में पहुँचता, वहाँ के देवताओं का-सा सम्मान और वहां के राज वंश के लोग उसे महलों में ले जाकर अनेक प्रकार से उसका आदर-सम्मान करते। इन दिनों में उम्मेद सिंह सर्वत्र देवता के समान श्रद्धेय समझा जा रहा था और उसकी बातों को सभी लोग बड़े ध्यान से सुनते थे। बूँदी-राज्य में शासन करते हुए उसे जितना मान मिलता, इन दिनों में उससे सैकड़ों गुना अधिक चारो ओर उसे सम्मान मिल रहा था।

उम्मेद सिंह अत में भारतीय सीमा के बाहर मकरान से निकल हिंगलाज नामक स्थान में गया और फिर वह द्वारिका में पहुँचा। वहाँ से लौटने के समय मार्ग में कावा नाम के लुटेरों के एक दल ने उस पर आक्रमण किया। परन्तु उम्मेद सिंह ने लुटेरों के उस दल को पराजित करके उनके सरदार को कैद कर लिया। उस सरदार ने बाद में कई बार शपथ खायी कि आज से मैं कभी तीर्थ यात्रियों पर आक्रमण नहीं करूँगा। इसके बाद उस सरदार को उम्मेद सिंह ने छोड़ दिया।

उम्मेद सिंह बहुत दिनों तक तीर्थों और प्रसिद्ध नगरों में घूमता रहा। उसने अपने राज्य से सम्बन्ध-विच्छेद कर लिया था और इस बात का निश्चय कर लिया था कि अब हम कभी राज्य के शासन से सम्बन्ध न रखेंगे। परन्तु एक घटना ऐसी घटी, जिसके कारण इस निर्णय को आघात पहुँचा और उसे अपने निश्चय में कुछ परिवर्तन करना पड़ा। वह घटना मेवाड़ और हाड़ा जाति के इतिहास में पढ़ने को मिलती है। उसमें बताया गया है कि बहुत दिन पहले बम्बावदा की रानी ने चिता में बैठकर सती होने के समय कहा था : "अगर राव और राणा कभी बसन्ती उत्सव में एक साथ शामिल होंगे तो भयानक अनिष्ट होगा।"

उस सती के कहने के अनुसार बहुत दिनों के बाद जो घटना हुई, वह इस प्रकार है :

वीलहठा नामक एक ग्राम में बहुत से मीना लोग रहते थे। उस ग्राम का एक बाग बहुत प्रसिद्ध था। उसमें उत्तम श्रेणी के आमों के वृक्ष थे। बूँदी के राजा अजित सिंह ने उस बाग के आस-पास एक दुर्ग बनवा दिया। मेवाड़ के सामन्तों ने इसके विरुद्ध होकर लुटेरों के एक दल को भड़काया और वह दल वीलहठा ग्राम पर आक्रमण करने के लिए तैयार हुआ। यह समाचार अजित सिंह को मिला। उसने ग्राम की रक्षा के लिए अपनी एक सेना वहाँ के दुर्ग में रख दी। यह सुनकर राणा बहुत क्रोधित हुआ और वह एक सेना लेकर उस स्थान पर पहुँचा, जहाँ पर संघर्ष था। इसके बाद राणा ने अजित सिंह को शिविर में बुलाया। अजित सिंह वहाँ पहुँचा। उसके सद्व्यवहार को देखकर राणा संघर्ष को भूल गया। अजित सिंह ने बसन्ती उत्सव के समय राणा को आमंत्रित करने का निश्चय किया। फागुन के महीने में राजपूतों का बसन्ती उत्सव बहुत प्रसिद्ध है। उस उत्सव में राजपूत बाराह का शिकार करते थे। हाड़ा राजा अजित सिंह ने आमंत्रित करते हुए राणा से कहा कि बसन्ती-उत्सव के अवसर पर बूँदी के राज भवन में आवें। राणा ने इस निमंत्रण को स्वीकार कर लिया। सीसोदिया राजपूतों में उस निमंत्रण के अनुसार जाने की तैयारियाँ होने लगीं और निश्चित दिन में राणा अपने सामन्तों के साथ हरे रंग की पगड़ियों में बूँदी के नन्दता नामक पहाड़ी स्थान पर पहुँच गया। इन्हीं दिनों में उम्मेद सिंह बद्रीनाथ से लौटकर आया। उसने सुना कि राणा के साथ पुत्र अजित सिंह बाराह का शिकार करने के लिए जाने की तैयारी कर रहा है। उसी समय उम्मेद सिंह ने अजित सिंह को रोकने के लिए एक आदमी भेजा और उस सती स्त्री के वाक्यों का स्मरण दिलाकर राणा के साथ न जाने के लिए कहा। अजित सिंह ने अपने पिता उम्मेद सिंह के संदेश को सुना। उसने उत्तर में कहला भेजा, "मैंने ही राणा को आमंत्रित किया है। इसलिए मेरा न जाना किसी प्रकार अच्छा साबित नहीं हो सकता। सती के कहने के अनुसार अनिष्ट होने से डर जाना एक राजपूत की लज्जापूर्ण कायरता है। इसलिए मेरा जाना प्रत्येक अवस्था में जरूरी है।"

राणा अजित सिंह के साथ पहले दिन दोपहर के बाद शिकार खेलने के लिए निकला। वहाँ पहुँचने पर मेवाड़ के मंत्री ने अजित सिंह के पास पहुँचकर अभिमान के साथ कहा : "वीलहठा राणा का है। वहाँ से आप अपना अधिकार हटा लेंगे। यदि ऐसा आप ने न किया तो एक सिंधी सेना भेजकर आपको कैद करा लिया जायगा।" मंत्री ने अजित से यह भी कहा कि राणा के आदेश के अनुसार मैंने आपसे ऐसा कहा है। अजित सिंह ने उस समय मंत्री को कुछ उत्तर न दिया। वह रातभर संशय में पड़ा रहा। दूसरे दिन बाराह के शिकार का उत्सव हो जाने पर राणा ने अजित सिंह को बिदा किया। वहाँ से कुछ दूर चले जाने के बाद अजित को मंत्री की बात का स्मरण हुआ। इसलिए वह लौटकर फिर राणा के पास आ गया। राणा अभी तक किसी निर्णय में न था। उसने बिना कुछ कहे हुए अजित को फिर से बिदा किया।

अजित सिंह राणा से बिदा होकर अपनी राजधानी की तरफ चला। परन्तु उस समय मेवाड़ के मन्त्री की कही हुई बातें उसको बार-बार याद आने लगीं। उसने समझ लिया कि मेरे विरुद्ध राणा ने इस प्रकार का निर्णय जरूर किया है और मन्त्री ने इस बात को स्पष्ट भी कर दिया था, वह क्रोध में आकर उत्तेजित हो उठा। अपने हाथ में भाला लेकर वह फिर लौटा और राणा पर जाकर उसने आक्रमण किया। अजित के भाले से राणा भयानक रूप से घायल हो गया। उसके मुख से उस समय इतना ही निकला—"ओह हाडा, तुमने यह क्या किया।"

कुछ ही देर में राणा की मृत्यु हो गयी। मेवाड़ के राणा को मार कर अजित सिंह ने उस क्रोध में कुछ शांति अनुभव की, जो मन्त्री के कहने से उसके हृदय में पैदा हुआ था। वह अपनी राजधानी में आ गया। राणा के मारे जाने का समाचार साधु उम्मेद सिंह ने सुना। वह बहुत दुखी हुआ। उसने क्षण भर में सोच डाला कि इस राज्य में अब फिर पाप की वृद्धि हो रही है। उसने उसी समय निश्चय किया कि अब मैं कभी अपने लड़के का मुख नहीं देखूँगा।

कृष्णगढ़ के राजा के दो लड़कियाँ थीं। एक राणा को व्याही गयी थी और दूसरी अजित सिंह को। दोनों इस सम्बन्ध में बँधे हुए थे। कदाचित इसी सम्बन्ध के कारण राणा को विश्वास था कि अजित सिंह के द्वारा मेरा कोई अनिष्ट न होगा। यद्यपि राणा की स्त्री ने उससे इस बात को कहा था कि तुम कभी अजित सिंह का विश्वास न करना। कई पीढ़ी पहले मेवाड़ और बूँदी के राजाओं ने एक दूसरे पर आक्रमण करके अपने प्राणों को उत्सर्ग किया था। वह घटना लिखी जा चुकी है। लेकिन दोनों राजवंशों ने उस शत्रुता को भुला दिया था।

इस दुर्घटना के एक दिन पहले मेवाड़ के राणा और अजित सिंह ने एक साथ बैठ कर भोजन किया था। उसके बाद भी वह अवाछनीय घटना घटी। प्राचीन ग्रंथों के उल्लेखों से जाहिर होता है कि मेवाड़ के सामन्त अपने इस राणा से प्रसन्न न थे और इसीलिए राणा के मारे जाने पर वे सभी शान्त रहे। अजित सिंह के आक्रमण करने पर मेवाड़ के सामन्तों ने राणा की रक्षा करने का प्रयत्न नहीं किया और न उन्होंने अजित सिंह के साथ उस समय युद्ध किया। यद्यपि राणा के अनेक सामन्त वहाँ पर मौजूद थे। राणा के घायल होकर गिरते ही मेवाड़ के उपस्थित सामन्त अपने-अपने शिविर में चले गये। इसका अर्थ स्पष्ट यह है कि राणा से उसके सामन्त प्रसन्न न थे।

राणा जहाँ पर मारा गया था, वहाँ पर उसकी एक मात्र उपपत्नी मौजूद थी। उसने चिता तैयार करवा कर सती होने के लिए निश्चय किया और जिस समय चिता में अग्नि लगायी गयी, जलने के पहले शाप देते हुए उसने कहा—"जिस अजित सिंह ने राणा का संहार किया है, उसको दो महीने के भीतर ही इसका फल मिलेगा।" बूँदी के एक ग्रंथ में लिखा गया है कि जहाँ पर राणा के मृत शरीर के साथ सती होने के लिए चिता बनायी गयी थी, उस स्थान के एक वृक्ष की शाखा टूट कर पृथ्वी पर गिरी। उससे चिता की भूमि बिलकुल सफेद हो गयी।

इस घटना का उल्लेख करते हुए हाड़ा कवि ने लिखा है कि सती होने वाली राणा की उप-पत्नी के शाप के अनुसार दो महीने में ही अजित सिंह का अनिष्ट आरम्भ हुआ। उसके शरीर का मांस अपने आप गल गल कर गिरने लगा और उसके कारण अजित सिंह की मृत्यु हो गयी।

अजित सिंह के विशन सिंह नाम का एक लड़का था। अजित सिंह के मर जाने के बाद वह सिंहासन पर बिठाया गया। लेकिन उसकी अवस्था बहुत छोटी थी और वह किसी प्रकार शासन करने के योग्य न था। उम्मेद सिंह ने अपने राज्य से पहले ही सम्बन्ध विच्छेद कर लिया था। परन्तु इस अवसर पर बूँदी-राज्य के सम्बन्ध में उसे विचार करना पड़ा। उम्मेद सिंह किसी

प्रकार अपने हाथों में शासन का प्रबन्ध नहीं लेना चाहता था। इसलिए उसने बालक विशन सिंह की तरफ से शासन की देख रेख करने के लिए के अपने विश्वासी धात्री पुत्र को नियुक्त किया और उसे शासन के सम्बन्ध में बहुत-सी बातें समझा-बुझा कर उम्मेद सिंह फिर तीर्थ यात्रा करने के लिए चला गया और बहुत दिनों तक वह तीर्थों में घूमता रहा। अब वह वृद्धावस्था में पहुँच गया था। इसलिए उसने शांतिपूर्वक केदारनाथ में रहना आरम्भ किया।

उम्मेद सिंह के बाद उसका बालक विशन सिंह बूँदी के सिंहासन पर बैठा था। उस समय वह बहुत छोटा था। कुछ दिनों के बाद वह सयाना हुआ। लेकिन उसे अब भी शासन सम्बन्धी कुछ अनुभव न थे। इसलिए उसकी अनभिज्ञता का लाभ उठा कर राज्य के सामन्त और अधिकारी विशन सिंह को ऐसी बातें समझाने लगे, जिनसे उनके स्वार्थों का सम्बन्ध था। उन लोगों ने उम्मेद सिंह के विरुद्ध भी बहुत सी बातें विशन सिंह से कही और उम्मेद सिंह के प्रति उसमें अविश्वास पैदा करने की चेष्टा की। विशन सिंह अभी तक एक नवयुवक था। उसने राज्य के अधिकारियों पर विश्वास किया और वह उम्मेद सिंह से घृणा करने लगा।

सामन्तों और अधिकारियों के कहने से विशन सिंह ने एक सन्देश भेज कर उम्मेद सिंह से कहा : "आप बूँदी का राज्य छोड़कर वाराणसी में जाकर रहिए।" उम्मेद सिंह बिना किसी विरोध के वाराणसी जाने के लिए तैयार हो गया। यह बात राजस्थान के दूसरे राजपूतों और राजाओं को मालूम हुई तो उन्होंने बहुत खेद प्रकट किया। इसलिए कि वे सभी उम्मेद सिंह के प्रति बड़ी श्रद्धा रखते थे। विशन सिंह के इस सन्देश को जानकर दूसरे राज्यों के राजा और सामन्त उम्मेद सिंह को अपनी राजधानियों में ले जाने के लिए आग्रह करने लगे। आमेर के राजा प्रताप सिंह ने भी उम्मेद सिंह से आमेर की राजधानी में जाकर रहने के लिए प्रार्थना की। उम्मेद सिंह ने प्रताप सिंह की बात को स्वीकार कर लिया और वह बूँदी राज्य को छोड़ कर आमेर चला गया।

प्रताप सिंह ने उम्मेद सिंह को आमेर में रखकर सभी प्रकार उसकी सेवायें की और एक दिन उसने अपना भक्तिभाव प्रकट करते हुए उम्मेद सिंह से कहा : "यदि आपके हृदय में अपने राज्य के प्रति कुछ भी लालसा हो तो आप मुझे आज्ञा दीजिए। मैं जयपुर की सेना लेकर बूँदी और कोटा को परास्त करूँगा और दोनों राज्यों का अधिकार आपको सौंप दूँगा।"

प्रताप सिंह की इन बातों का सुनकर श्री जी ने गम्भीर होकर किन्तु प्रसन्नता के साथ कहा : "ये दोनों राज्य तो मेरे ही है। एक में मेरा पौत्र और दूसरे में मेरा भतीजा राज्य करता है।" यह कहकर श्री जी ने मुस्कराहट के साथ प्रताप सिंह की तरफ देखा। उस अवसर पर वहाँ और भी कुछ लोग बैठे थे। उन सभी लोगों ने श्री जी की बात को सुना और प्रसन्न होकर श्री जी को धन्यवाद दिया।

उम्मेद सिंह ने आमेर-राज्य में जाने के बाद कोटा के मंत्री जालिम सिंह से विशन सिंह के सन्देश का जिक्र किया। जालिम सिंह बूँदी गया और उसने विशन सिंह के साथ बातें कीं। उस समय उसकी समझ में आया कि स्वार्थी सामन्तों के भड़काने से मैंने इस प्रकार अज्ञानता से भरा हुआ संदेश अपने पितामह के पास भेजा था। यह सोचकर, कि मैंने एक कलंकपूर्ण कार्य किया है, वह बहुत लज्जित हुआ और उसने जालिम सिंह से कहा कि मैं अपने अपराध क्षमा की माँगने के लिए अपने पितामह साधु के दर्शन करना चाहता हूँ। विशन सिंह की इस बात को सुनकर जालिम सिंह ने वृद्ध श्री जी को आमेर से बुलाने के लिए लाल जी नाम के एक पण्डित को भेजा।

उम्मेद सिंह के अन्तःकरण में अब भी अपने पौत्र के प्रति स्नेह का भाव था। लालजी पण्डित के साथ वह आमेर से बूँदी आ गया। अपराधी विशन सिंह ने श्री जी के पास जाकर उनके चरणों को स्पर्श किया। उस समय वहाँ पर बैठे हुए लोगों के नेत्रों में आँसू आ गये। विशन सिंह को अपनी छाती में लगाकर वृद्ध उम्मेद सिंह ने अपने नेत्रों से आँसू बहाये और फिर उसने अपनी तलवार उसके हाथ में देकर कहा : "यह तलवार तुम्हारे हाथ में है, यदि तुम मुझे अपना अनिष्ट-कर समझते हो तो उसकी सजा तुम मुझे दो और इस तलवार से तुम मेरे टुकड़े-टुकड़े कर डालो। लेकिन विश्वास रखो, तुम मेरे प्यारे बच्चे हो, मैं तुम्हारा कभी अनिष्ट नहीं सोच सकता।" श्री जी की इन बातों को सुनकर विशन सिंह फूट-फूटकर रोने लगा और उसने श्री जी के चरणों को पकड़कर अपने अपराध की क्षमा माँगी। श्री जी ने उसे क्षमा करके फिर एक बार अपनी छाती मे लगा लिया।

कुछ देर में विसन सिंह ने अपने आँसुओं को पोछा और श्री जी से महल में चलने के लिए उसने प्रार्थना की। लेकिन इसके लिए वह तैयार न हुए। लेकिन दोनों में इस समय जो स्नेह और श्रद्धा-भाव पैदा हुआ, उसमें फिर कभी कमी न आयी। यह सब देखकर मध्यस्थ जालिम सिंह को बड़ी प्रसन्नता हुई।

इसके बाद आठ वर्ष तक उम्मेद सिंह ने अपने जीवन के दिन व्यतीत किये। अब वह बहुत वृद्ध हो गया था। उसकी इस दशा में विशन सिंह ने उसके पास जाकर प्रार्थना की : "आप बूँदी के राजमहल में चलिए। वहाँ पर आपके पूर्वजों ने अपने जीवन का अंतिम समय व्यतीत किया था।"

विशन सिंह की इस प्रार्थना को श्री जी ने स्वीकार कर लिया और बूँदी के राजमहल में चला गया। जिस दिन वह बूँदी पहुँचा था। उसी रात में उसकी मृत्यु हो गयी। सम्वत् १८६० सन् १८०४ ईसवी में उम्मेद सिंह ने संसार छोड़कर स्वर्ग की यात्रा की। उम्मेद सिंह ने तेरह वर्ष की अवस्था में जीवन के कठोर संघर्ष में प्रवेश किया था। उसके बाद उसने अपनी अवस्था के साठ वर्ष पूरे किये। उसने अपने पूर्वजों का राज्य प्राप्त करने के लिए न जाने कितनी बार मृत्यु का सामना किया और अंत में उसने राज्य छोड़कर जीवन के अंतिम समय तक तपश्चर्या की। उसने सम्पूर्ण जीवन कठिनाइयों का सामना करके राजपूत राजाओं के लिए एक आदर्श उप-स्थित किया।

हाड़ा वंश के इतिहास में उम्मेद सिंह की मृत्यु का वर्ष बहुत महत्वपूर्ण समझा जाता है। इन्हीं दिनों में एक अंगरेजी सेना मॉनसन के नेतृत्व में यहाँ पर आयी थी और उसने राजपूतों एवम् विशेष रूप से बूँदी के प्रमुख शत्रु होलकर को परास्त करने के लिए युद्ध किया था। उस समय वृद्ध उम्मेद सिंह जीवित था या नहीं, अथवा उसके परामर्श से यह युद्ध हुआ था अथवा नहीं, यह हमको नहीं मालूम। उस समय बूँदी के राजा ने होलकर के साथ युद्ध करने में बड़ी सहायता की। जिस समय अंगरेजी सेना ने होलकर को पराजित करने के उद्देश्य से यात्रा की थी, उस समय भी, और युद्ध से अँगरेजी सेना के भागने पर बूँदी के राजा ने बड़े साहस के साथ सभी प्रकार उसकी सहायता की थी। उसने अँगरेजी सेना को अपने राज्य से होकर जाने की आज्ञा दी और आवश्यकतानुसार सभी प्रकार की दूसरी सहायतायें करके बूँदी के राजा ने आने वाले संकटों को आमंत्रित किया। इसमें कोई सन्देह नहीं कि अंगरेजी सेना की सहायता करने के कारण ही मराठा सेनापति होलकर ने बूँदी-राज्य का सर्वनाश करने की चेष्टा की थी। उन दिनों की संकीर्ण राजनीति के

के कारण हम उसको कुछ समझ न सके थे और यह बात भी सही है कि उस तरफ बहुत कम ध्यान दिया गया था।

सन् १८१७ ईसवी में जब हमने आक्रमणकारियों का मुकाबिला करने के लिए राजस्थान के राजाओं को आमंत्रित करके क्रान्फरेन्स करने और सम्मिलित शक्तियों के द्वारा शत्रुओं को परास्त करने का प्रयत्न किया तो जो राजा आकर उस कान्फरेन्स में सम्मिलित हुए, उनमें बूँदी का राजा सब से प्रथम था। इसका एक कारण यह भी था कि राजस्थान में मराठों का सब से अधिक आतंक बूँदी-राज्य पर था और उन दिनों में बूँद का राजा अपने राज्य में जितनी मालगुजारी वसूल करता था, वह किसी प्रकार उसके लिए काफी न थी। क्योंकि अधिक मालगुजारी उस राज्य की मराठा लोग वसूल करते थे।

सन् १८०४ ईसवी में हमारी सहायता करने के कारण मराठों ने बूँदी-राज्य पर आक्रमण किया था। उस समय हम बूँदी की कुछ भी सहायता न कर सके। इस कारण बूँदी के राजा को भीषण कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। सन् १८१७ ईसवी के संघर्ष में बूँदी का राजा अपने सामन्तों और उनकी सेनाओं को साथ लेकर बराबर हमारे साथ रहा। इसलिए जब हमने उस युद्ध में विजय प्राप्त की तो हम राव राजा विशन सिंह को भूले नहीं। मराठा सेनापति होलकर ने बूँदी राज्य के जिस हिस्से पर अपना अधिकार कर रखा था और जिस अधिकार में अर्द्धशताब्दी बीत चुकी थी, होलकर को पराजित करके उन समस्त नगरों तथा ग्रामों का अधिकार हमने बूँदी के राजा को दे दिया था। इसके सिवा सींधिया ने बूँदी-राज्य के जिन नगरों और ग्रामों पर अधिकार कर लिया था, हमने मध्यस्थ होकर उन सभी को बूँदी के अधिकार में फिर मिला दिया था। हमारे इन कार्यों के लिए बूँदी के राजा विशन सिंह ने कृतज्ञता प्रकट की थी। उसने उस समय कहा था: "मैं उन आदमियों में से नहीं हूँ, जो एक बार प्रतिज्ञा करके उसके विरुद्ध आचरण करते हैं। मेरे इस मस्तक पर आपका अधिकार है। जब कभी भी आप को इसकी आवश्यकता पड़े।" बूँदी के राजा के ये वाक्य अर्थ हीन न थे। उसने अपने प्राणों की बलि देकर अपनी प्रतिज्ञा को पूरा किया होता और उस वंश के प्रत्येक हाड़ा ने उसका अनुसारण किया होता जिसने उसका नमक खाया था, अगर उसकी परीक्षा ली गयी होती।

इन्हीं दिनों में कोटा और बूँदी-राज्यों के बीच एक ऐसी घटना हुई, जिससे बूँदी के राजा विशन सिंह के हृदय में चोट पहुँची। कोटा के मंत्री जालिम सिंह ने अंगरेजों की खुशामद करके बूँदी-राज्य से इन्द्रगढ़, बलवान, आनरदा और खातोली आदि स्थानों को अपने राज्य में मिला लेने की कोशिश की। उसने इन दिनों में अपने हस्ताक्षर से पहले लिखना आरम्भ किया— 'अंगरेज सरकार का गुलाम।'

मंत्री जालिम सिंह की इस कोशिश से बूँदी के राजा विशन सिंह को बहुत अफसोस हुआ। अंगरेज-सरकार ने बूँदी के उन स्थानों को कोटा-राज्य में मिला देने के लिए जो व्यवस्था दी, उससे पीड़ित होकर विशन सिंह ने इतना ही कहा: "अंगरेजी सरकार ने जालिम सिंह के पक्ष में इस प्रकार की व्यवस्था देकर मुझे एक पंख हीन पक्षी बना दिया है, वास्तव में अंगरेजी सरकार की यह व्यवस्था मुनासिब नहीं थी। राजनीतिक ईमानदारी के नाम पर इस व्यवस्था में परिर्तन करना ही अच्छा था।

अंगरेज-सरकार और राजा बूँदी के बीच संधि करने का निर्णय हुआ। उस संधि को तैयार करने के बाद मैंने प्रसन्नता अनुभव की और मेरे द्वारा जो संधि लिखी गयी, वह सन् १८१८ ईसवी के फरवरी महीने में दोनों पक्षों की तरफ से मंजूर हो गयी।

बूंदी के राजा का जो सदव्यवहार अंगरेजों के साथ आरम्भ हुआ था, उसके कारण मैं बूँदी-राज्य का कल्याण चाहता था। राजा विशन सिंह ने विश्वासपूर्वक मेरी सभी बातों को स्वीकार किया और मुझे खुशी है कि मैं जैसा चाहता था, बूँदी-राज्य वैसा कर सका। इससे बूँदी का राजा शांतिपूर्वक उन्नति की ओर बढ़ा और बिना किसी दूसरे राज्य को आघात पहुँचाये, स्वतंत्रतापूर्वक चार वर्ष तक उसने शासन किया। इसके बाद वह एक ऐसे रोग से पीड़ित हुआ कि वह फिर उससे सेहत न हो सका और सब मिलाकर सत्रह वर्ष तक राज्य करके सन् १८२१ ईसवी की १४ जुलाई को उसकी मृत्यु हो गयी।

विशनसिंह के चरित्र के सबंन्ध में यहाँ पर संक्षेप में कुछ प्रकाश डालना आवश्यक है। वह ईमानदार था और पूर्ण रूप से वह राजपूत था। उसका हृदय कपटहीन था, उसमें कोई बनावट नहीं थी, उसका अन्तरतर उज्वल और आत्मा महान थी। वह समझदार था और दूरदर्शिता से काम लेता था। जिन दिनों में मराठों ने उसके राज्य का अधिकांश कर वसूल करके उसे दीन-दुर्बल बना दिया था, उन दिनों में भी उसने अपने जीवन को एक नयी दिशा में मोड़कर संतोष के दिन बिताये थे। वह शिकार खेलने का पहले से ही शौकीन था। इन दिनों में उसने अपने जीवन का एक प्रधान कार्य शिकार खेलना ही मान लिया था वह रोजाना शिकार के लिए जाया करता था और उसने चीतों तथा बाघों के अतिरिक्त एक सौ से अधिक केवल शेर मारे थे। अपनी इस शिकार-प्रियता के कारण ही उसका एक पैर टूट गया था, जिससे वह लँगड़ा हो गया था। फिर भी उसके इस प्रकार के जीवन में अंतर न पड़ा था। उसे देखकर सहज ही इस बात का अनुमान होता था कि वह एक शूरवीर राजपूत है। वह अपने पूर्वजों की तरह स्वाभिमानी था और जिस किसी का साथ देने के लिए वह एक बार निश्चय कर लेता था, प्रत्येक कठिनाई का सामना करके उसका वह साथ देता था। शक्तिशाली मराठों के द्वारा आने वाली विपदाओं की अपेक्षा उसने अंगरेजों का साथ दिया था।

राजा विशन सिंह ने अपने यहाँ एक सुरक्षित कोष खोला था और उसमें प्रतिदिन एक सौ रुपये डालने के लिए उसने अपने मंत्री को आदेश दे रखा था। मंत्री को किसी भी अवस्था में ये सौ रुपये उस कोष में डालने पड़ते थे। इसके आभाव में राजा मंत्री को किसी प्रकार क्षमा नहीं कर सकता था।

दूसरे राज्यों की तरह, बूँदी-राज्य में भी राज्य का प्रबन्ध नीचे लिखे हुए चार अधिकारियों के हाथों में रहता है—(१) दीवान अथवा मुसाहिब (२) फौजदार अथवा किलेदार (३) बख्शी और (४) रिसाला अथवा पारिवारिक हिसाब रखने वाला। प्रधान मंत्री दीवान अथवा मुसाहिब के नाम से सम्बोधित होता था। राज्य का सम्पूर्ण शासन उसी के अधिकार में रहता था। फौजदार अथवा किलेदार, राज्य के दुर्गों का संरक्षक था। वंश के राजपूतों को छोड़कर इस पद पर दूसरा कोई नियुक्त नहीं किया जाता। बख्शीराज्य का सम्पूर्ण हिसाब-किताब रखता था और रिसाला राजमहल का हिसाब रखता था।

राजा विशन सिंह के दो लड़के थे। बड़े लड़के का नाम रामसिंह था। ग्यारह वर्ष की अवस्था में वह सन् १८२१ ईसवी के अगस्त महीने में पिता के सिंहासन पर बैठा। दूसरा लड़का गोपाल सिंह अपने बड़े भाई से कुछ महीने छोटा था। रामसिंह अपने पिता की तरह शिकार खेलने का बहुत शौकीन था। इन दोनों लड़कों की माता कृष्णगढ़ की राजकुमारी थी। वह अत्यंत समझदार थी। हम हाड़ा वंश के कल्याण की सदा कामना करते है।

———

कोटा-राज्य का इतिहास

इकहत्तरवाँ परिच्छेद

कोटा और बूंदी के हाड़ा राजवंश–कोटा का शासक माधव सिंह–कोटा-राज्य का विस्तार–कोटिया भील का शासन–माधव सिंह के पहले कोटा के प्राचीन मकान–कोटा की उन्नति–वहाँ के राज सिंहासन पर राजा मुकुन्द सिंह–बादशाह औरंगजेब के बाद दिल्ली में फिर आपसी विद्रोह–बादशाह के यहाँ भीमसिंह को मनसबदार का पद–भीलों का राजा चक्रसेन–भीमसिंह के मरने के बाद कोटा-राज्य–कुलीचखाँ पर राजा गजसिंह का आक्रमण–मित्रता और कर्त्तव्य परायणता का अन्तर–कुलीचखाँ के साथ युद्ध–युद्ध में कुलीचखाँ की विजय–कोटा राजवंश के इष्ट देव की मूर्ति–बूँदी के राजा बुधसिंह के साथ कोटा के राजा रामसिंह का युद्ध–पहरेदार की कर्त्तव्य परायणता–अपराधी पहरेदार को पुरस्कार–सिंहासन के लिए भाइयों में युद्ध ।

कोटा और बूंदी, दोनों राजवंशों का मूल एक ही है। दोनों ही हाड़ावंशी राजपूत हैं। बूंदी के एक राजवंशज से ही कोटा-राज्य का इतिहास आरम्भ हुआ है। बादशाह शाहजहां के शासन काल में बूंदी के राव राजा रतन सिंह के दूसरे लड़के माधव सिंह ने मुगल साम्राज्य का पक्ष लेकर बुरहानपुर के युद्ध में अपनी अद्भुत वीरता का परिचय दिया था और उस युद्ध में विजय प्राप्त की थी। इसलिए बादशाह शाहजहां ने प्रसन्न होकर कोटा का इलाका और उसके अन्तर्गत सभी ग्राम और नगर उसको दे दिये थे। उस समय से माधव सिंह अपने पिता के बूंदी-राज्य को छोड़ कर स्वतन्त्रतापूर्वक कोटा-राज्य का शासन करने लगा था। उस समय से बूंदी और कोटा दो अलग-अलग राज्य हो गये ।

माधव सिंह का जन्म सम्बत् १६२१ सन् १५६५ में हुआ था। चौदह वर्ष की अवस्था में उसने बुरहानपुर का युद्ध लड़ा था। उसके फलस्वरूप कोटा के तीन सौ साठ नगरों और ग्रामों पर उसे अधिकार मिला था। इसके पहले कोटा एक जागीर थी और वह बूंदी-राज्य के एक प्रधान सामन्त के अधिकार में थी। उसमें दो लाख रुपये प्रजा से करके वसूल होते थे। साहस और वीरता के कारण माधव सिंह को बादशाह से राजा की उपाधि मिली थी ।

इस कोटा में पहले कोटिया भील का शासन था और उसमें भील लोग रहा करते थे। ये लोग वहां के प्राचीन निवासी थे। उन लोगों के साथ खाने और पीने में राजपूत लोग कोई परहेज नहीं करते थे। राजपूतों के अधिकार करने के पहले कोटा में केवल झोंपड़ियां थीं और वहाँ का भील राजा कोटे से पांच कोस दूर दक्षिण की तरफ इकलेगढ़ नामक प्राचीन दुर्ग में रहा करता था। दिल्ली के बादशाह से कोटा के सनद पाने पर माधव सिंह ने उसकी सीमा में वृद्धि की। उन दिनों में कोटा के दक्षिण में गागरौन और घाटोली का प्रान्त था। खीची लोग वहाँ के अधिकारी थे। पूर्व में मंगरोल और नाहरगढ़ था, जिनमें पहले गौर राजपूतों का अधिकार था और उनके बाद राठौरों का अधिकार हो गया। वहां के राजपूतों ने अपने राज्य की रक्षा करने के लिए धर्म

का परिवर्तन कर लिया और बाद में वे नवाब की उपाधि से प्रसिद्ध हुए थे। उत्तर में कोटा की सीमा चम्बल नदी के किनारे सुलतान पुर तक थी। चम्बल नदी के दूसरी तरफ नाशता नाम का एक स्वतन्त्र छोटा-सा राज्य था। उनमें सब मिलाकर तोन सौ साठ नगर और ग्राम थे। अनेक नदियों का पानी मिलने के कारण वहाँ की भूमि बहुत उपजाऊ थी।

राजा माधव सिंह ने कोटा का अधिकार प्राप्त करके उसकी सीमा में उन्नति की और सफलता पूर्वक उसने राज्य का विस्तार किया। माधव सिंह के मरने के पहले इस राज्य का विस्तार मालवा और हाड़ौती की सीमा तक हो गया था। सम्बत् १६८७ में माधव सिंह की मृत्यु हो गयी। उसके पाँच लड़के थे। उनमें चार को कोटा राज्य में प्रधान सामन्तों का पद प्राप्त हुआ। माधव सिंह के वंशज माधानी नाम से प्रसिद्ध हुए। उसके पाँच लड़कों के नाम इस प्रकार हैं :

१—मुकुन्द सिंह, कोटा का राजा हुआ।

२—मोहन सिंह, इसको पलायता का अधिकार मिला।

३—जुझार सिंह को कोटरा और उसके बाद रामगढ़ रेलावन का अधिकार मिला।

४—कनीराम को कोइला का अधिकार मिला। इस के सिवा दिल्ली के बादशाह से उसको देह और जोरा का अधिकार मिल गया।

५—किशोर सिंह को साँगोद का अधिकार प्राप्त हुआ।

माधव सिंह की मृत्यु के बाद उसका बड़ा बेटा मुकुन्द सिंह कोटा के सिंहासन पर बैठा। उसने अपनी सीमा पर हाड़ौती और मालवा के बीच एक रास्ते का निर्माण कराया और उसका नाम, अपने नाम के आधार पर मुकुन्ददर्रा अथवा मुकुन्द द्वार रखा। इसी रास्ते से सन् १८०४ ईसवी में अंगरेज सेनापति मॉनसन की सेना युद्ध में पराजित होकर भागी थी। कोटा के इतिहास में मुकुन्द सिंह की प्रशंसा की गयी है। उसने अपने राज्य में कई एक मजबूत दुर्ग और तालाब बनवाये थे। आगता नामक स्थान की सुदृढ़ दीवारें उसी की बनवाई हुई हैं।

राजा मुकुन्द सिंह अपने पूर्वजों की तरह साहसी और शूरवीर था। जिन दिनों में बादशाह औरङ्गजेब ने अपने पिता शाहजहाँ को कैद कर लिया था और मुगल सिंहासन पर बैठने के लिए उसने युद्ध आरम्भ किया था, उस समय प्रायः सभी राजपूत राजाओं ने उसका विरोध करके बादशाह की तरफ से युद्ध किया था। जिन राजाओं ने शाहजहाँ का साथ दिया था, उनमें राठौर हाड़ा वंश के राजा प्रमुख थे। कोटा के राजा माधव सिंह के लड़कों ने निर्भीकता के साथ बादशाह शाहजहाँ के पक्ष का समर्थन किया और उज्जैनी के निकट होनेवाले युद्ध में औरङ्गजेब के साथ युद्ध किया। उस युद्ध में औरङ्गजेब की विजय हुई। उसने उस स्थान का नाम जहाँ पर युद्ध हुआ था—फतेहाबाद रखा। औरंगजेब की प्रबल सेना के साथ युद्ध करके माधव सिंह के पाँचों लड़कों ने अपनी वीरता का परिचय दिया। यद्यपि वे राजनीति कुशल औरंगजेब की चालों के कारण विजयी नहीं हो सके। परन्तु वे युद्ध से भागे नहीं और वहीं पर अपने प्राणों की बलि देकर चार लड़कों ने अपने वंश का मस्तक ऊँचा किया। उस युद्ध में सब से छोटा लड़का किशोर सिंह भयानक रूप से घायल हुआ। लेकिन वह किसी प्रकार उन घावों को सेहत करके युद्ध के बाद जीवित बच सका, और फिर उसने दक्षिण के युद्ध में बीजापुर का युद्ध करते हुए उसने अपने रण-कौशल का परिचय दिया था, लेकिन मुगल बादशाह के यहाँ उसके इन बलिदानों का सम्मान न मिला।

राजा मुकुन्द सिंह युद्ध में मारा गया। इसलिए उसका लड़का जगत सिंह कोटा के सिंहासन पर बैठा। दिल्ली के बादशाह ने उसको अपने यहाँ दो हजार सेना पर मनसबदार अर्थात् सेना

पति का पद दिया । सम्बत् १७२६ तक जगत् सिंह दक्षिण में युद्ध करता रहा । उसी वर्ष उसकी मृत्यु हो गयी । उसके कोई लड़का न था । इस लिए माधव सिंह के चौथे लड़के कनीराम के पुत्र प्रेमसिंह को कोटा के शासन का अधिकार प्राप्त हुआ ।

प्रेमसिंह में शासन की योग्यता न थी । इसलिए आरम्भ से ही प्रजा उससे असंतुष्ट रहने लगी । इस असन्तोष के परिणाम स्वरूप , वह सिंहासन से उतारा गया और उसके पिता के नगर कोइला में वह भेज दिया गया । उसके वंशज अब तक वहाँ रहते हैं । माधवसिंह का पाँचवाँ लड़का किशोर सिंह को जो युद्ध में घायल होने के बाद किसी प्रकार बच गया था , राज्य के सामन्तों ने कोटा के सिंहासन पर बिठाया । औरङ्गजेब के मुगल-सिंहासन पर बैठने के बाद राजा किशोर सिंह ने अपनी सेना लेकर और औरङ्गजेब के साथ जाकर दक्षिण में मराठों के साथ युद्ध किया था । सम्बत् १७४२ में अरकाट गढ़ के दुर्ग पर युद्ध करते हुए वह मारा गया । किशोर सिंह के साहस और शौर्य में किसी प्रकार का संदेह नहीं किया जा सकता । उसके शरीर में पचास जख्मों के निशान उसके जीवन के अंत तक रहे । उसके तीन लड़के थे । विशन सिंह , राम सिंह और हरनाथ सिंह ।

राजपूत की प्रथा के अनुमार बड़े लड़के विशन सिंह को कोटा के सिंहासन पर बैठना चाहिए था । लेकिन किशोर सिंह के दक्षिण में जाने के समय उसने अपने पिता की आज्ञा का उल्लङ्घन किया , इसलिए उसने क्रुद्ध और असंतुष्ट होकर विशन सिंह को उत्तराधिकार से वंचित करके आणता नामक स्थान उसे दे दिया । विशन सिंह से पृथ्वी सिंह नामक बालक का जन्म हुआ । वह बाद में आणता की जागीर का सामन्त बनाया गया । उसके लड़के का नाम था अजीत । अजीत सिंह के तीन लड़के पैदा हुए , छत्रसाल , गुमान सिंह और राजसिंह ।

किशोर सिंह के दूसरे लड़के रामसिंह ने अपने पिता की आज्ञानुसार दक्षिण में जाकर मराठों के साथ युद्ध किया था और उन युद्धों में उसने अपने पिता की प्रशंसा पायी थी । इसलिए पिता किशोर सिंह के मर जाने पर उसे राज्य के सिंहासन का अधिकार प्राप्त हुआ ।

बादशाह औरङ्गजेब के मर जाने पर मुगल सिंहासन के लिए दिल्ली में फिर संघर्ष पैदा हुआ । रामसिंह ने शाहजादा आजम के पक्ष का समर्थन किया और वह उसके बड़े भाई मुअज्जम के विरुद्ध दक्षिण में युद्ध करने के लिए गया । सम्बत् १७६४ में जाजो के युद्ध में वह मारा गया । उस युद्ध में बूँदी के राजा ने शाहजादा मुअज्जम का पक्ष लेकर युद्ध किया था ।

रामसिंह के बाद भीमसिंह कोटा का राजा हुआ । उसके शासनकाल में कोटा राज्य ने धन सम्मान और समर्थ्य में इतनी उन्नति की , जिससे वह भारतवर्ष के प्रथम श्रेणी के राज्यों में माना गया । इसके पहले कोटा का राज्य तीसरी श्रेणी के राज्यों में माना जाता था । बादशाह बहादुर शाह के मरने पर फरुखसियर मुगल सिंहासन पर बैठा । उस समय दोनों सैयद बंधुओं ने मुगल-राज्य का शासन किया । कोटा के राजा भीमसिंह ने सैयद बंधुओं के पक्ष में होकर अपने राज्य की उन्नति की ।

राजा माधव सिंह के समय से कोटा के राजा , बादशाह के यहाँ दो हजार सेना पर मनसब दार होते चले आ रहे थे । लेकिन दोनों बंधुओं ने भीमसिंह पर प्रसन्न होकर उसके राज्य की गणना प्रथम श्रेणी के राज्यों में की और वहाँ के राजा को पाँच हजार सेना पर मनसबदार का पद दिया । बूँदी के इतिहास में लिखा जा चुका है कि कोटा के राजा भीमसिंह ने किस प्रकार बूँदी के राजा बुधसिंह को मार डालने की कोशिश की थी । भीमसिंह ने इसके सम्बन्ध में सैयद बंधुओं और आमेर के राजा जयसिंह से सहायता ली थी । इसका वर्णन बूँदी के इतिहास में

किया जा चुका है। दोनों सैयद बन्धुओं ने भीमसिंह को पश्चिम में कोटा से और पूर्व में अहीरबाड़े से पठार की सम्पूर्ण भूमि का अधिकार दे दिया था। वह विस्तृत भूमि खीची लोगों और बूँदी के राज्य की थी। उसने इस प्रकार गांगरोन का प्रसिद्ध दुर्ग प्राप्त किया था और अलाउद्दीन के आक्रमण के समय बड़े साहस के साथ उस दुर्ग की रक्षा की थी। उसने मऊ, मेदाना, शेरगढ़, बारां, मंगरोल और बड़ोदा आदि चम्बल नदी के पूर्वी दुर्गों पर अधिकार कर लिया था। जिनके द्वारा राज्य की पश्चिमी सीमा बन गयी थी।

इसके बाद भीलों ने अपने पूर्वजों के नगरों और ग्रामों पर अधिकार कर लिया। उनके बीच में मनोहर थाना एक स्थान था, जो अब भी दक्षिण तरफ कोटा की सीमा पर है। वहाँ पर भीलों ने अपनी राजधानी कायम की और उनका राजा चक्रसेन वहाँ पर रहने लगा। उस राजा के अधिकार में पाँच सौ सवार सैनिक और आठ सौ धनुषधारी थे। मेवाड़ से लेकर सभी स्थानों के भील चक्रसेन को अपना राजा मानते थे। ये भील लोग धार के राजा भीमसिंह के समय तक अपनी स्वतन्त्र की रक्षा करते आये थे। परन्तु कोटा के राजा भीमसिंह ने भीलों के नगरों और ग्रामों पर आक्रमण करके और भीलों के वंश को विध्वंस करके अपने राज्य में मिला लिया। इन्हीं दिनों में उसने नरसिंहगढ़ और पाटन पर भी अधिकार कर लिया। राजा भीमसिंह यदि और कुछ दिनों तक जीवित रहता तो कोटा राज्य की सीमा को वह पहाड़ के बाहर तक बढ़ा लेता। उसमें अनारसी, डिग, पडावा और चन्दावतों के नगरों को भी अपने राज्य में मिला लिया था, लेकिन भीमसिंह के मरने के बाद ये सभी नगर और ग्राम कोटा राज्य से निकल गये।

प्रसिद्ध कुलीच खाँ ने, जिसने इतिहास में निजामुलमुल्क के नाम से प्रसिद्धि पायी है, दक्षिण में स्वतन्त्र रूप से हैदराबाद राज्य की प्रतिष्ठा की थी। उसने दिल्ली के बादशाह के साथ विद्रोह करके मुगल-साम्राज्य के नगरों और ग्रामों को लूटना आरम्भ किया। बादशाह ने जब यह सुना तो उसने आमेर के राजा जयसिंह, कोटा के राजा भीमसिंह और नरवर के राजा गजसिंह को कुलीच खाँ पर आक्रमण करने और उसे कैद करके लाने का आदेश दिया।

भीमसिंह ने निजामुलमुल्क के पास जाकर और उसके साथ पगड़ी बदल कर बन्धुत्व का सम्बन्ध कायम किया। इसके बाद कुलीच खाँ ने जयसिंह को आक्रमण के लिए आता हुआ जानकर भीमसिंह के नाम मित्र-भाव से एक पत्र लिखकर भेजा। उसमें उसने लिखा कि, "मैंने दिल्ली के बादशाह का कोई नुकसान नहीं किया और न उसके किसी ग्राम तथा नगर को लूटा है। इसलिए मेरे सम्बन्ध में बादशाह से जो कुछ भी कहा गया है, वह सब असत्य है, जयसिंह एक षड़यन्त्र कारी है और वह मेरे विनाश के लिए हमेशा चेष्टा करता रहता है। इसलिए आप से मेरा अनुरोध है कि आप उसकी बात का कभी विश्वास न करें और मेरी दक्षिण यात्रा में कोई रुकावट न डालें।"

निजामुलमुल्क का यह पत्र पाकर हाड़ा राजा भीमसिंह ने उत्तर में लिख कर भेजा: "मित्रता और कर्त्तव्य परायणता में अन्तर होता है। ये दोनों चीजें एक नहीं हैं और न वे एक साथ चल सकती हैं। मुझे बादशाह की तरफ से जो आदेश मिला है, उसका पालन मुझे करना चाहिए और इसीलिए मैं इतनी दूर से सेना ले कर आया हूँ। बादशाह की आज्ञानुसार मैं कल प्रातःकाल आपके ऊपर आक्रमण करूँगा।"

भीमसिंह ने अपना पत्र निजामुलमुल्क के पास भेज दिया। उसने उसको सावधान कर दिया। कुलीचखाँ ने अपनी रक्षा करने के लिए राजनीति के सभी दाँव-पेंच सोच डाले। उसने सिंधु के कुरवाई और भौंरासा नगरों के निकटवाले पहाड़ी मार्ग पर मुकाम किया। यह स्थान ऐसा था,

जहाँ शत्रु लोग उसको आसानी से पा नहीं सकते थे और अपने इस स्थान से आक्रमणकारियों पर छिपकर गोलियों की वर्षा की जा सकती थी। यही समझकर निजामुलमुल्क ने उस पहाड़ी तंग रास्ते में अपनी फौज का मुकाम किया।

दूसरे दिन प्रातःकाल भीमसिंह ने अपनी सेना को तैयार किया। आमेर के जयसिंह की सेना भी वहाँ पर उसके साथ थी। भीमसिंह ने अफीम का सेवन करने के बाद निजामुलमुल्क पर आक्रमण करने की तैयारी की युद्ध के लिए सुसज्जित होकर उसने अपने हाथ में भाला लिया और अपनी तथा आमेर की सेना को मिलाकर वह रवाना हुआ। राजपूत सेना के आगे बढ़ते ही निजाम ने अपनी तोपों में—जो कुछ दूरी पर ऐसे छिपाकर लगायी गयी थीं, जो कहीं से जाहिर न होती थीं—आग लगादी। तुरन्त गोलों की ऐसी वृष्टि हुई कि उसके द्वारा हाथियों पर बैठे हुए राजा भीमसिंह और राजा गजसिंह—दोनों ही मारे गये। उनके मारे जाते ही राजपूत सेना इधर-उधर भागने लगी। इस प्रकार कुलीचखां ने विजय पायी और फिर वह दक्षिण की तरफ रवाना हुआ। हैदराबाद पहुँचकर उसने स्वतंत्रता पूर्वक शासन आरम्भ किया। हैदराबाद का राज्य अब तक उसके वंशजों में चला आता है।

इस समय का उल्लेख करते हुए प्राचीन ग्रंथों में हाड़ा वंश की दो विपदाओं का वर्णन किया गया है। एक तो राजा भीमसिंह का मारा जाना और दूसरा कोटा राज वंश के इष्टदेव बृजनाथ की मूर्ति का खो जाना। राजपूत राजा युद्ध में अपने इष्टदेव की मूर्ति ले जाते हैं और युद्ध के समय अपने इष्टदेव का नाम लेकर राजपूत लोग विजय की आवाज लगाते हैं।

कोटा-राजवंश के इष्टदेव की मूर्ति छोटी-सी सोने की बनी हुई थी। उस वंश के लोगों ने उस मूर्ति को साथ में लेकर कितने युद्धों में विजय प्राप्त की थी। इन दिनों में वह मूर्ति कहाँ खो गयी, इसका कुछ पता न चला। कहा जाता है कि बहुत खोजने के बाद कोटा के राजपूतों को उसी तरह की एक दूसरी मूर्ति मिली। उसको पाकर कोटा राजधानी में समारोह के साथ एक उत्सव मनाया गया।

पन्द्रह वर्ष तक राज्य करने के बाद सम्वत् १७७६ सन् १७२० ईसवी में—जैसा कि ऊपर लिखा गया है—भीमसिंह युद्ध में मारा गया था। उसने अपने शासनकाल में कोटा-राज्य की उन्नति करके अपनी योगग्ता, वीरता और राजनीति का परिचय दिया।

कोटा और बूँदी के राजवंशों का मूल एक ही था। बूँदी के राजा बुधसिंह के साथ कोटा के राजा रामसिंह का युद्ध धौलपुर में हुआ। दोनों ही हाड़ावंशी राजपूत थे। फिर भी दोनों ओर की सेनाओं ने एक दूसरे का सर्वनाश किया। इस युद्ध के परिणाम-स्वरूप बूँदी के राजवंश को भयानक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। राजा भीमसिंह बूँदी पर आक्रमण करके वहाँ का नगाड़ा और भण्डा आदि अपने कोटा राज्य में ले आया। बादशाह जहाँगीर ने बूँदी के राजा रतन सिंह को जो पीले रंग की राज-पताका दी थी, उसे भी भीमसिंह ने बूदी से लाकर अपने यहाँ रखा। इन सभी चीजों को फिर से प्राप्त करने के लिए बूदी के राजा ने अनेक बार कोशिशें की, परन्तु उसको सफलता न मिली इसके लिए कोटा के पहरेदारों और दूसरे राज्य के अधिकारियों को प्रलोभन देकर उन चीजों के प्राप्त करने की चेष्टा की गयी। परन्तु कोई परिणाम न निकला। बल्कि बूँदी वालों की ये कोशिशें कोटा में जाहिर हो गयीं। इसलिए वहाँ पर अधिक सावधानी से काम लिया जाने लगा और यहाँ तक किया गया कि कोटा राजधानी का नगर-द्वारा संध्या होने के बाद बहुत जल्दी बन्द हो जाता और फिर वह किसी प्रकार न खुल सकता। इसके सम्बन्ध में लिखा गया है कि, अगर कोटा का राजा स्वयं सांयकाल के बाद बाहर से आकर उस नगर-द्वार को खुलवाना चाहें

तो भी वह नहीं खुल सकता। इसके सम्बन्ध में एक घटना का उल्लेख किया गया है, जो इस प्रकार है :

"कोटा का राजा दुर्जनशाल किसी युद्ध में पराजित होकर अपने थोड़े-से सैनिकों के साथ आधी रात के समय राजधानी में आया और पहरेदार से उसने फाटक खोलने के लिए कहा। परन्तु पहरेदार ने रात के समय फाटक खोलने से साफ साफ इनकार किया। इसलिए कि उसको यह आज्ञा मिल चुकी थी कि रात को किसी प्रकार फाटक न खोला जाय। यह देखकर राजा दुर्जनशाल स्वयं फाटक पर आया और अपना परिचय देकर पहरेदार से फाटक खोलने के लिए कहा। पहरेदार ने इस पर भी फाटक नहीं खोला और उसने फाटक के भीतरी हिस्से से जवाब देते हुए कहा, 'फाटक रात में किसी प्रकार नहीं खुल सकता। यदि आप इसके बाद फिर कहेंगे तो मैं बंदूक की गोली से आपको मार दूंगा। अगर आप हमारे राजा हैं तो भी बाहर ही रहकर कहीं पर रात बितानी पड़ेगी।' राजा दुर्जनशाल ने निराश होकर रात का शेष भाग बाहर किसी स्थान पर व्यतीत किया। दूसरे दिन सवेरे फाटक खोला गया और पहरेदार जिस समय रात की इस घटना की बात अपने साथ के किसी सैनिक से कह रहा था, सामने से राजा दुर्जनशाल ने फाटक में प्रवेश किया। अपने राजा को देखकर पहरेदार भयभीत हो उठा। उसने आगे बढ़कर अपने हाथ की बंदूक राजा के चरणों पर रखदी और हाथ जोड़कर वह खड़ा हो गया। राजा दुर्जनशाल ने मुस्कराते हुए उसकी तरफ देखा और उसकी कर्त्तव्य परायणता से प्रसन्न होकर उसको पुरस्कार देने का आदेश दिया।

राजा भीमसिंह के शरीर में इतने अधिक जख्म आये थे कि उनसे उसके शरीर की सुन्दरता नष्ट हो गयी थी। इसलिए वह अपने शरीर के सूखे हुए जख्मों को छिपाने के लिए हमेशा वस्त्र पहने रहता था। कुरवाई के युद्ध में कुलीचखाँ के गोले से घायल होने के बाद उसके जख्मों को देखकर जब एक राज्य के अधिकारी ने उससे पूछा तो भीमसिंह ने उसको जवाब देते हुए कहा : "जो शासन करने के लिए पैदा हुआ है और अपने पूर्वजों के राज्य की रक्षा करना चाहता है," उसको तो इस प्रकार की चोटों का सामना करना ही पड़ेगा।

कोटा के राजाओं में भीमसिंह पहला राजा था, जिसने मुगल बादशाह के यहाँ पञ्चहजारी मनसबदार अर्थात पाँच हजार सेना पर सेनापति का पद प्राप्त किया था और महाराव की उपाधि पायी थी। यह उपाधि मेवाड़ के राणा से उसे मिली थी और मुगल बादशाह ने उसकी इस उपाधि को स्वीकार किया था।

बूँदी के गोपीनाथ के वंशज हाड़ौती के प्रधान सामन्त थे और उनके सम्मान में आप जी शब्द का प्रयोग होता था। किन्तु इन्द्रशाल के उदयपुर जाने पर राणा की तरफ से उसको महाराजा की पदवी मिली। राजा भीमसिंह के तीन लड़के थे—अर्जुनसिंह, श्यामसिंह और दुर्जनसाल। महाराजा अर्जुन सिंह का विवाह झाला के जालिम सिंह के पूर्वज माधव सिंह की बहन के साथ हुआ था। चार वर्ष तक राज्य करने के बाद अर्जुन सिंह की मृत्यु हो गयी। उसके कोई संतान न थी। इसलिए उसके मर जाने के बाद कोटा के राजसिंहासन का अधिकार प्राप्त करने के लिए श्यामसिंह और दुर्जनशाल में संघर्ष पैदा हुआ। वह संघर्ष लगातार बढ़ा और राज्य की सम्पूर्ण शक्तियाँ दो भागों में विभाजित हो गयीं। उदयपुर के युद्ध-क्षेत्र में दोनों भाइयों ने अपनी-अपनी सेनायें लेकर संग्राम किया और आपस में ही लड़कर और एक दूसरे का सर्वनाश करके रक्त की नदियाँ बहाई। उस युद्ध में श्यामसिंह मारा गया उसके बाद युद्ध बन्द हो गया।

युद्ध के शांत हो जाने के बाद दुर्जनसाल को—मारे जाने वाले श्यानसिंह के वियोग का द" हुआ। इसके पहले राज्याधिकार के लिए उन्मत्त होकर वह अपनी बुद्धि को खो बैठा था

श्याम सिंह के युद्ध में मारे जाने पर उसने बहुत रंज किया और अश्रुपात के साथ उसने बार-बार इस बात को स्वीकार किया कि राज्य के प्रलोभन में मैंने अपने सगे भाई का सर्वनाश किया है। इस प्रकार दुर्जनशाल ने अपने भाई श्यामसिंह के लिए अनेक बार विलाप किया।

इन्हीं दिनों में कोटा-राज्य की एक बड़ी क्षति हुई। मुगल बादशाह ने राजा भीमसिंह पर प्रसन्न होकर पुरस्कार में रामपुरा, भानपुरा और कालापीत नाम के तीन वैभव-शाली नगर वहाँ के मूल अधिकारियों से लेकर दे दिये थे, उन पर कोटा राज्य का अधिकार अपनी संघर्ष पैदा होने के पहले तक बना रहा। लेकिन जब श्यामसिंह और दुर्जनसाल में संघर्ष पैदा हुआ और वे दोनों एक, दूसरे का सर्वनाश करने की कोशिश में रहने लगे। उन दिनों वे तीनों सम्पत्तिशाली नगर कोटा-राज्य के अधिकार से निकल गये और उन दिनों में अवसर पाकर उनके पूर्व अधिकारियों ने उन पर अधिकार कर लिया।

सम्बत् १७८० सन् १७२४ ईसवी में दुर्जनशाल कोटा के सिंहासन पर बैठा। इन दिनों में तैमूर वंश का अंतिम सम्राट मोहम्मदशाह दिल्ली के सिंहासन पर था। दुर्जनशाल को उसने अपने यहाँ बुलाया और खिलत दी। दुर्जनशाल ने बादशाह से प्रार्थना की कि जमना नदी के किनारे जिन स्थानों पर हाड़ा वंश के राजपूत रहा करते हैं, वहाँ पर गौहत्या न की जाय।

दुर्जनशाल के शासन के समय बाजीराव ने मराठा सेना लेकर उत्तरी भारत पर आक्रमण किया और हाड़ौती-राज्य से पूर्वी सीमा पर तारजपास नामक पहाड़ी रास्ते को पार करते हुए नाहर गढ़ के दुर्ग को अपने अधिकार में कर लिया और उसने वह दुर्ग दुर्जनशाल को दे दिया। वह दुर्ग और नगर एस मुसलमान के अधिकार में था। सम्बत् १७९५ सन् १७३९ ईसवी में मराठों के साथ हाड़ा राजपूतों का यह पहला सम्पर्क हुआ। राजा दुर्जनशाल ने उस दुर्ग के बदले बाजीराव पेशवा की सहायता में बहुत सी आवश्यक युद्ध-सामग्री दी। मराठा बाजीराव के साथ दुर्जनशाल की यह मित्रता जो कायम हुई, वह बहुत थोड़े दिनों के बाद समाप्त हो गयी। अधिक दिनों तक दोनों का यह सम्बन्ध चल न सका।

बूँदी-राज्य के इतिहास में लिखा जा चुका है कि आमेर के राजा जयसिंह ने दिल्ली के बादशाह के दरबार में रहकर अपने राज्य की शक्ति को उन्नत बना लिया था और राज्य की सीमा में बहुत वृद्धि कर ली थी। इस प्रकार अपनी बढ़ी हुई शक्तियों के द्वारा बूँदी के राजा को सिंहासन से उतार कर उसको सामन्त का पद देने का निर्णय किया था और उसके उत्तराधिकारियों ने उसका समर्थन करके बूँदी के राजा बुधसिंह को सिंहासन से उतार दिया। राजा बुधसिंह ने वृद्धावस्था में इस मानसिक पीड़ा के कारण परलोक की यात्रा की। अंत में आमेर के राजा ने मराठों से परास्त होकर आत्म-हत्या कर ली। आमेर के राजा ने राजा बुधसिंह को सिंहासन से उतार कर एक सामन्त को वहाँ के सिहासन पर बिठाया और उससे कर लेने का निश्चय किया।

बूँदी-राज्य में इस प्रकार सफलता पाकर आमेर के राजा ने कोटा-राज्य पर अधिकार करने का इरादा किया। दुर्जनशाल उस समय कोटा के सिंहासन पर था। सम्वत् १८०० में आमेर के राजा ईश्वरी सिंह ने कोटा पर आक्रमण करने के लिए तीन मराठा सेनापतियों और जाटों के सेनापति सूयमल्ल को सेनाओं के साथ बुलाया और उन सब को लेकर ईश्वरी सिंह ने कोटा-राज्य पर आक्रमण किया। कोटड़ी नामक स्थान पर दोनों ओर से युद्ध हुआ। उसके बाद जयपुर के राजा ने अपनी विशाल सेना लेकर कोटा की राजधानी को घेर लिया। आक्रमणकारी तीन महीने तक उस

राजधानी को घेरे हुए पड़े रहे। लेकिन उसको सफलता न मिली। अंत में निराश होकर आमेर का राजा ईश्वरी सिंह सब के साथ लौटकर चला गया। इन्हीं दिनों में मराठा सेनापति जय अप्पा सींधिया का एक हाथ गोली से उड़ गया।

शत्रुओं के आक्रमण के दिनों में झाला राजपूत हिम्मत सिंह कोटा राज्य में प्रधान सेनापति था। उसने उस अवसर पर बड़े साहस से काम लिया था और प्राणों की परवा न करके उसने अपनी राजभक्ति का परिचय दिया था। उसी के परामर्श और मध्यस्थ होने से बाजीराव ने दुर्जन-शाल को नाहरगढ़ का दुर्ग दे दिया था। संम्वत् १७९५ और १८०० के बीच की घटनाओं के समय जालिम सिंह का जन्म हुआ और उसने अपने जीवन काल में बहुत अधिक कीर्ति प्राप्त की।

बूंदी और कोटा राज्यों में शत्रुता हो चुकी थी। लेकिन दुर्जनशाल ने उसको भुलाकर बूंदी के राजा बुधसिंह के लड़के उम्मेद सिंह की सहायता की और उसको अपने पूर्वजों के राज्य का अधिकार मिल जाय, इसके लिए उसने चेष्टा की। सबसे पहले होलकर से सहायता माँगने के लिए उसको परामर्श दिया इसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। मराठा सेनापति होलकर से सहायता लेने का यह परिणाम हुआ कि होलकर ने दुर्जनशाल से भी कर लेना आरम्भ कर दिया और दुर्जन शाल को इस के लिए विवश होना पड़ा।

दुर्जनशाल ने कई एक नगरों को जीतपर और खीची बंश का फूलवरोद नामक इलाका लेकर अपने राज्य में मिला लिया था। गूगोर नामक दुर्ग के सम्बन्ध में हाड़ा लोगों के साथ खीची जाति का युद्ध हुआ। गूगोर के अधिकार बलभद्र ने बड़ी वीरता के साथ अपने दुर्ग की रक्षा की। उस युद्ध में बलभद्रपुरा, रामपुरा और शिवपुर आदि के सामन्त संगठित होकर हाड़ा लोगों के साथ लड़े थे। सम्बत् १८१० में हाड़ा और खीची लोगों का युद्ध हुआ। बूंदी के राजा उम्मेद सिंह ने इस युद्ध में राजा दुर्जनशाल की सहायता की और उसकी वीरता से कोटा के राजा को उस युद्ध में सफलता मिली।

इसके तीन वर्ष बाद दुर्जनशाल की मृत्यु हो गयी। वह एक साहसी राजा था और राजपूतो के सभी गुण उसमें मौजूद थे। साहस और वीरता के साथ-साथ उसमें उदारता थी। वह शिकार खेलने का बहुत शौकीन था। वह प्रायःशेर और बाघ का शिकार किया करता था। दुर्जनशाल के साथ शिकार खेलने के समय उसकी रानियाँ भी जाती थीं। उन रानियों ने बन्दूक चलाने की शिक्षा पायी थी। जंगल में जाकर एक बने हुए मञ्च पर अपने हाथों में बन्दूकें लेकर वे बैठती थीं और आवश्यकता पड़ने पर वे सिंह एवम् बाघ पर अपनी गोलियाँ चलाती थीं।

शिकार खेलने के सम्बन्ध में एक घटना का उल्लेख इस प्रकार पढ़ने को मिलता है: "एक दिन दुर्जनशाल अपने सेनापति हिम्मत सिंह झाला को लेकर शिकार खेलने के लिए गया। उसके साथ के सैनिकों ने एक बाघ को उत्तेजित किया। उस समय वह शिकारी लोगों पर आक्रमण करने के लिए दौड़ा। दुर्जनशाल ने यह नियम बना रखा था कि जब कोई शेर अथवा बाघ जङ्गल से निकल कर हम लोगों पर आक्रमण करे तो उस समय मञ्च पर बैठी हुई रानियाँ अपनी गोलियों से उसको मारने की कोशिश करें। लेकिन आज ऐसा नहीं हुआ। जिस समय वह बाघ क्रोध से उत्तेजित होकर दौड़ा, उस समय हिम्मत सिंह झाला मञ्च के नीचे जंगली भूमि पर खड़ा था। ऐसे अवसर पर राजा दुर्जनशाल की आज्ञा पाने पर रानियाँ गोलियाँ चलाती थीं। आज दुर्जनशाल ने गोली चलाने के लिए रानियों को आदेश नहीं दिया। इसीलिए मञ्च पर बैठी हुई किसी रानी ने गोली मारने का साहस नहीं किया। तड़पते हुए बाघ ने आक्र हिम्मत सिंह पर आक्रमण किया। हिम्मत सिंह ने बड़ी तेजी के साथ ढाल से आपनी रक्ष

की ओर दाहिने हाथ से तलवार मार कर उसने बाघ के सिर को काट कर जमीन पर गिरा दिया। यह देखकर राजा दुर्जनशाल और उसके साथ के सामन्तों ने हिम्मत सिंह की बहुत प्रशंसा की।"

राजा दुर्जनशाल का विवाह मेवाड़ के राणा की एक लड़की के साथ हुआ था। दुर्जनशाल के कोई संतान पैदा न हुई थी। इसलिए मरने के तीन वर्ष पहले उसने अपनी रानी से कहा था : "यदि मैं पुत्रहीन अवस्था में मरूँ तो उस समय किसी लड़के को गोद ले लेना होगा।"

पहले यह लिखा जा चुका है कि राजा रामसिंह का बड़ा लड़का विशन सिंह अपने पिता के कहने पर भी दक्षिण की लड़ाई में नहीं गया था। इसलिए उसके पिता ने सिंहासन के अधिकार से वंचित करके उसे चम्बल नदी के किनारे आणता नामक स्थान पर रहने के लिए भेज दिया था। दुर्जनशाल की मृत्यु के समय आणता में विशन सिंह का पौत्र वृद्ध अजीत सिंह मौजूद था। अजीत सिंह के तीन लड़के थे। उनमें सब से बड़ा छत्रसाल था। मरने के समय दुर्जनशाल ने छत्रसाल को गोद लेने की सलाह दी थी और उस समय मन्त्रियों और सामन्तों ने उस पर अपनी सम्मतियाँ दे दी थीं। लेकिन गोद लेने का समय उपस्थित होने पर सेनापति हिम्मत सिंह झाला ने छत्रसाल का विरोध करते हुए कहा : "यह मैं जानता हूँ कि मरने के पहले हमारे राजा ने छत्रसाल को गोद लेने के लिए अपनी सलाह दी थी और हम सभी ने उसे स्वीकार किया था। लेकिन इस समय हम सब के सामने गोद लेने का प्रश्न है। इसीलए हम सब को इस विषय में सोच-समझ कर काम करना चाहिए। मैं छत्रसाल को गोद लिए जाने के पक्ष में नहीं हूँ। छत्रसाल का पिता वृद्ध अजीत सिंह अभी तक मौजूद है। लड़के को सिंहासन पर बिठा कर पिता को अधीन बना कर प्रजा के समान रखना किसी प्रकार न्यायपूर्ण नहीं है। इसलिए अजीत सिंह को ही सिंहाहन पर बैठने का अधिकार मिलना चाहिए।"

किसी ने हिम्मत सिंह झाला की बात का विरोध न किया। इस लिए सेनापति के प्रस्ताव के अनुसार वृक्ष अजीत सिंह कोटा के राज सिंहासन पर बिठाया गया। ढाई वर्ष के बाद अजीत सिंह की मृत्यु हो गयी। उसके तीन लड़के थे—छत्रसाल, गुमान सिंह और राज सिंह।

अजीत सिंह की मृत्यु हो जाने के पश्चात उसका बड़ा लड़का छत्रसाल सिंहासन पर बैठा। प्रसिद्ध हिम्मत सिंह झाला की भी मृत्यु हो चुकी थी। इसलिए उसके स्थान पर उसका भतीजा जालिम सिंह सेनापति बनाया गया।

इन्हीं दिनों में आमेर का राजा ईश्वरी सिंह आत्म-हत्या करके मर गया था। उसके स्थान पर माधव सिंह सिंहासन पर बैठा। उसने बूँदी और कोटा-राज्य पर आक्रमण करने की तैयारी की। इन दिनों में अब्दाली के आक्रमण से मराठों की शक्तियाँ कमजोर पड़ गयी थीं। इसलिए कछवाहा वंश के राजपूत मराठों से निर्भय हो गये थे। सम्वत् १८१७ सन् १७६१ ईसवी में माधव सिंह आमेर की एक विशाल सेना लेकर हाड़ौती-राज्य की तरफ रवाना हुआ और उनियारा पर आक्रमण करके उसने उस पर अधिकार कर लिया। इसके बाद उसने लाखेरी में जाकर मराठों को पराजित किया और उन पर भी उसने अधिकार कर लिया। इसके बाद वह पालीघाट पर पहुँचा। सुलतान पुर का हाड़ावंशी सामन्त वहाँ का अधिकारी था। माधव सिंह ने आक्रमण करके उसे पराजित किया और पालीघाट पर भी उसने अधिकार कर लिया। सुलतान पुर का सामन्त अपने परिवार के साथ उस युद्ध में मारा गया।

विजयी माधव सिंह इसके बाद आगे बढ़ा। भटवाड़ा नामक स्थान पर हाड़ा वंश के पाँच हजार राजपूत उसके साथ युद्ध करने के लिए तैयार थे। आमेर की सेना ने उन हाड़ा राजपूतों पर

आक्रमण किया। आमेर की सेना के मुकाबिले में हाड़ा राजपूतों की संख्या बहुत थोड़ी थी। फिर भी उन लोगों ने बड़ी वीरता के साथ युद्ध किया। इसी अवसर पर कोटा-राज्य के सेनापति जालिम सिंह ने राजनीति से काम लिया। उसकी अवस्था इक्कीस वर्ष की थी। उसने अपनी सेना लेकर उस युद्ध में प्रवेश किया और उसने आमेर की सेना के साथ बड़े साहस से युद्ध करना आरम्भ किया।

मराठा सेनापति मल्हारराव होलकर इस युद्ध को कुछ दूरी पर रह कर देख रहा था। पानीपत के युद्ध के बाद वह निर्बल पड़ गया था। इसीलिए वह इस युद्ध में किसी तरफ शामिल नहीं हुआ था। जालिम सिंह ने जब माधव सिंह को विजयी होता हुआ देखा तो वह अपने घोड़े पर तेजी के साथ होलकर के पास गया और उससे उसने कहा : "यदि आप इस युद्ध में किसी पक्ष का साथ नहीं देना चाहते तो अपनी सेना लेकर माधव सिंह के शिविर को लूट कर लाभ उठा सकते हैं। यह एक अवसर आपके सामने है।"

मल्हार राव होलकर ने जालिम सिंह की इस बात को स्वीकार कर लिया। शिविर में होलकर की सेना के लूट करते ही युद्ध में आमेर की सेना घबरा उठी और वह भयभीत होकर युद्ध छोड़ कर भागी। उस भगदड़ में आमेर राज्य की पंचरंगी पताका कोटा की सेना के अधिकार में आ गयी।

भटवाड़ा के इस युद्ध के जयपुर राज्य की शक्ति निर्बल पड़ गयी। इसके बाद वहाँ के राजा ने हाड़ा लोगों पर आक्रमण करने का साहस नहीं किया।

हाड़ा वंश के कवि ने इस युद्ध को देख कर प्रशंसा करते हुए हाड़ा राजपूतों की वीरता का ओजस्वी शब्दों में उल्लेख किया है। हाड़ा राजपूत उन कविताओं को अब तक स्वाभिमान के साथ गाया करते हैं।

अपनी स्वाधीनता और मर्यादा की रक्षा करने के लिए भटवाड़ा के युद्ध में हाड़ा राजपूतों ने जिस प्रकार युद्ध करके अपने प्राणों को उत्सर्ग किया था, उसके स्मारक में उस वंश के लोग प्रति वर्ष एक उत्सव मनाया करते हैं। उस उत्सव में आमेर का एक दुर्ग बनाया जाता है और उत्सव के दिन उस दुर्ग का विध्वंस किया जाता है।

भटवाड़ा के युद्ध के बाद थोड़े ही दिनों में छत्रसाल की मृत्यु हो गयी। उसके कोई लड़का न था। इसलिए उसका भाई कोटा के सिंहासन पर बैठा।

————

बहत्तरवाँ परिच्छेद

राजस्थान में मराठों के आक्रमण–कोटा-राज्य के साथ जालिम सिंह का सम्बन्ध–जालिम सिंह के एक ही नेत्र था–उसके पूर्वज साधारण सामन्त थे–दिल्ली में आपसी विद्रोह का भयानक दृश्य–कोटा में भावसिंह का लड़का माधव सिंह–अर्जुन सिंह के साथ माधव सिंह की बहन का विवाह–माधवसिंह को कोटा के एक दुर्ग का अधिकार–कोटा-राज्य का सेनापति हिम्मत सिंह–उसका साहस और शौर्य–मेवाड़-राज्य में जालिम सिंह–उदयपुर में मराठों का आक्रमण–कोटा-राज्य में फिर जालिम सिंह का आगमन–कोटा पर होलकर का आक्रमण–जालिम सिंह के द्वारा संधि–कोटा के सिंहासन पर बालक उम्मेद सिंह–उसके संरक्षण का प्रश्न–कोटा-राज्य के शासन का भार जालिम सिंह पर।

सम्बत् १८२२ सन् १७६६ ईसवी में गुमान सिंह कोटा के सिंहासन पर बैठा। उन दिनों में वह साहसी और बुद्धिमान मालूम होता था। इन्हीं दिनों में मराठा दल ने राजस्थान में आक्रमण किया और उसने राजपूतों का सर्वनाश करने की चेष्टा की। गुमान सिंह में उससे अपने राज्य की रक्षा करने की शक्ति थी। लेकिन कुछ ही दिनों के बाद उसे शासन का भार एक बालक को सौंप देना पड़ा। कुछ बीच की परिस्थितियों पर प्रकाश डालने के बाद उस घटना का हमने उल्लेख किया है।

कोटा-राज्य के साथ जालिम सिंह का घनिष्ट सम्बन्ध था और इस राज्य के इतिहास के साथ उसके कार्यों का ऐसा मिश्रण है, जिसमें उसके नाम के प्रति किसी प्रकार की उपेक्षा अथवा अवहेलना नहीं की जा सकती। वास्तव में जालिम सिंह इतनी अच्छी राजनीति जानता था कि वह कहीं पर भी रहकर अपनी मर्यादा कायम कर सकता था।

जालिम सिंह झालावंशी राजपूत था। सम्बत् १७९६ सन् १७४० ईसवी में उसका जन्म हुआ था। उसी वर्ष एक शक्तिशाली सेना लेकर भारतवर्ष पर नादिरशाह ने आक्रमण किया था। मोहम्दशाह उन दिनों में दिल्ली के मुगल सिंहासन पर था और दुर्जनशाल कोटा का राजा था। मोहम्दशाह ने नादिरशाह के साथ युद्ध किया था। जालिम सिंह के एक ही नेत्र था। उसने भटवाड़ा के युद्ध में अपनी अद्भुत राजनीति और वीरता का परिचय देकर राजस्थान में प्रसिद्धि पायी थी।

जालिम सिंह के पूर्वज सौराष्ट्र के झाला के अन्तर्गत हलवद के साधारण सामन्त थे। उस वंश के भावसिंह नामक एक नवयुवक ने अपने पिता का स्थान छोड़कर किसी दूसरे राज्य में जाने के लिए यात्रा की थी। उन दिनों में औरंगजेब के वंशजों में दिल्ली का सिंहासन प्राप्त करने के लिए संघर्ष चल रहा था। भावसिंह ने वहाँ जाकर एक पक्ष का आश्रय लिया। जिन दिनों में राजा भीमसिंह दिल्ली के सैयद बंधुओं से मिलकर अपनी शक्ति को मजबूत बना रहा था, उन्हीं दिनों में भावसिंह का लड़का माधव सिंह कोटा में आया। उसके साथ पच्चीस सवार सैनिक थे। राजा भीमसिंह ने उसके झाला वंश का परिचय पाकर सम्मापूर्वक उसको अपने यहाँ स्थान दिया और उसे अत्यन्त होनहार समझकर न केवल उसके साथ स्नेह पैदा किया, बल्कि माधवसिंह की बहन का विवाह अपने लड़के अर्जुन सिंह के साथ कर दिया और माधव सिंह के रहने के लिए आणता नामक नगर दे

दिया। माधव सिंह समझदार साहसी और नीतिज्ञ था। इसलिए राजा भीमसिंह ने प्रसन्न होकर उसको सेनापति का पद दिया और जिस दुर्ग के महल में वह स्वयं रहता था, उस दुर्ग का उसने उसका अधिकारी बना दिया। इसके बाद कोटा राज्य में माधव सिंह का सम्मान लगातार बढ़ा और उसने ख्याति प्राप्त की। उसके मरने के बाद उसके लड़के मदन सिंह को सेनापति के स्थान पर रखा गया। उसके दो लड़के हुए—हिम्मत सिंह और पृथ्वीसिंह।

राजस्थान के राज्यों में मन्त्री, दीवान, सेनापति आदि जब कोई पदाधिकारी मर जाता है तो राज्य में उसका स्थान उसके लड़के को मिलता है। इस नियम के अनुसार मदन सिंह के मर जाने पर हिम्मत सिंह झाला कोटा-राज्य का सेनापति बनाया गया। वह जिस प्रकार नीति कुशल, साहसी और शूरवीर था, उसका वर्णन ऊपर किया जा चुका है। जयपुर के राजा ने मराठों को साथ लेकर जब कोटा-राज्य पर आक्रमण किया था तो हिम्मत सिंह झाला ने साहस पूर्वक कोटा-दुर्ग की रक्षा की थी। परन्तु उस समय कोटा-राज्य चारो ओर से घिरा हुआ था। इस लिए हिम्मत सिंह के परामर्श से कोटा के राजा ने मराठों से संधि करके उनको कर देना मंजूर कर लिया था।

राजा दुर्जनशाल के मरने के बाद हिम्मत सिंह ने अजीत सिंह को कोटा के सिंहासन पर बिठाया था। हिम्मत सिंह के कोई लड़का न था। इसलिए उसने अपने भतीजे जालिम सिंह को गोद ले लिया था। हिम्मत सिंह की मृत्यु के बाद जालिम सिंह कोटा राज्य का सेनापति बनाया गया। जालिम सिंह ने भटवाड़ा के युद्ध में आमेर-राज्य की सेना के साथ भीषण युद्ध किया था और कोटा-राज्य की रक्षा की थी। परन्तु इसके बाद कोटा राज्य की राजनीति में परिवर्तन हुआ और उस परिवर्तन में जालिम सिंह का सौभाग्य निर्बल होता हुआ दिखायी पड़ने लगा।

कोटा के सिंहासन पर जब गुमान सिंह बैठा तो राज्य में जालिम सिंह का बढ़ता हुआ प्रभुत्व उसे अच्छा न मालुम हुआ। इसलिए राजा भीमसिंह ने जो नान्ता नगरमाधव सिंह के रहने के लिए दे दिया था और जहां पर अब भी झाला वंश का एक परिवार रहता है,

राजा गुमान सिंह ने सेनापति का पद और आणता का नगर जालिम सिंह के मामा भूपति सिंह को दे दिया। ×

राजा गुमान सिंह का व्यवहार देखकर जालिम सिंह को अपना अपमान मालूम हुआ। इसलिए वह कोटा-राज्य छोड़कर किसी दूसरे राज्य में चले जाने की बात सोचने लगा। आमेर-राज्य के कछवाहों से लड़कर भटवाड़ा की लड़ाई में उसने कोटा-राज्य की रक्षा की थी। इसलिए वह जयपुर राज्य जा नहीं सकता था। मारवाड़-राज्य जाना उसने अपने लिए अच्छा नहीं समझा। इस दशा में जालिम सिंह मेवाड़-राज्य के सम्बन्ध में बार-बार विचार करने लगा। वहाँ पर उसके वंश का एक राजपूत राणा के दरबार में था और मेवाड़-राज्य में उसने एक प्रधान सामन्त का पद पाया था और झाला सामन्त के नाम से प्रसिद्ध था। यह सामन्त जालिम सिंह के वंश का था। उसने मेवाड़ के संघर्ष में अरिसी का पक्ष लेकर उसको मेवाड़ के सिंहासन पर बिठाया था। इसलिए राणा अरिसी झाला-सामन्त से बहुत दबा हुआ था और राणा को विवश बना कर उस झाला सामन्त ने शासन में बहुत से अधिकार अपने हाथ में कर लिए थे।

जालिम सिंह ने सोच-समझकर कोटा-राज्य छोड़ दिया और वह मेवाड़ में चला आया। उसकी योग्यता की प्रशंसा पहले ही राणा अरिसी सुन चुका था। इसलिए राणा ने जालिम सिंह को अपने यहाँ सम्मान के साथ लिया। वह साहसी, नीतिकुशल और शूरवीर था। इसलिए थोड़े ही दिनों में जालिम सिंह राणा का विश्वासपात्र बन गया। राणा की दशा इन दिनों में बहुत शोचनीय थी। जिस झाला सामन्त की सहायता से वह सिंहासन पर बैठा था, वह सामन्त मेवाड़-राज्य में मनमानी कर रहा था। उसने विरोधी सामन्तों की जागीरों को राज्य में मिला लिया था और राज्य के जिन लोगों ने विद्रोह किया, उनके साथ उसने भयानक अत्याचार आरम्भ कर दिये थे। राणा अरिसी इन सब बातों को अच्छा नहीं समझता था। परन्तु उस झाला सामन्त के विरुद्ध वह कुछ कर नहीं सकता था और उसकी दुर्बलता में झाला सामन्त राज्य में, जो चाहता था, करता था।

राणा अरिसी ने जालिम सिंह की प्रशंसा पहले से ही सुनी थी। उसको वह साहसी और नीतिकुशल समझता था। इसलिए राणा ने उससे सभी प्रकार की आशायें कीं। जालिम सिंह ने राणा की परिस्थियों का अध्ययन किया। इसके बाद उसने एक योजना तैयार की, जिसमें देलवाड़ा का वह झाला सामन्त जान से मारा गया। उसके मरते ही राणा की सम्पूर्ण विवशता का अंत हो गया। इसके लिए राणा ने जालिम सिंह को राजराणा की उपाधि दी और मेवाड़ की दक्षिणी सीमा पर चित्रखाड़िया नामक स्थान उसको पुरस्कार में दिया। उस समय से जालिम सिंह मेवाड़ के दूसरी श्रेणी के सामन्त में माना गया।

यद्यपि झाला सामन्त के मारे जाने से राणा की बहुत-सी कठिनाइयों का अन्त हो गया था, परन्तु मेवाड़ के सिंहासन के लिए जो संघर्ष पहले चल रहा था और उसका जो वंशज सिंहासन पर बैठना चाहता था, वह राज्य के अनेक सामन्तों से मिलकर अब भी राणा के विरुद्ध षड़यंत्र कर रहा था। वह अभी तक शांत न था और मेवाड़ के सिंहासन से राणा अरिसी को हटा कर स्वयं बैठने की चेष्टा कर रहा था। उसने इन दिनों में फिर से विद्रोह किया और अपनी सहायता में मराठों को लाकर उसने राणा को सिंहासन से उतार देने का प्रयत्न किया। जालिम

× इस आणता नगर का नाम कई स्थलों पर और दूसरे ग्रंथों में नान्दता लिखा गया है।—अनु०

सिंह के साथ परामर्श करके राणा अरिसी ने एक सेना तैयार की और उसने मराठों के साथ युद्ध आरम्भ कर दिया। इस युद्ध में राणा के विरोधी और मराठों की विजय हुई। जालिम सिंह घायल होकर शत्रुओं के द्वारा कैद हो गया।

इस युद्ध में पराजय होने के कारण और उसके मेवाड़-राज्य का भाग विजेता की दया पर निर्भर हुआ। मराठा-सेना ने उदयपुर को जाकर घेर लिया। मेवाड़ के राजपूतों ने बड़े साहस के साथ मराठों के साथ युद्ध किया। परन्तु शत्रु-सेना के सामने उनकी संख्या बहुत कम होने के कारण उनकी एक न चली। अंत में राणा को मराठा सेनापति के साथ संधि कर लेनी पड़ी। उस दशा में अम्बाजी इङ्गले के पिता त्रयम्बकराव ने जालिम सिंह को छोड़ दिया।

अपने जख्मों को सेहत करने के बाद जालिम सिंह ने अपने भविष्य पर फिर एक बार विचार किया। मेवाड़ में कुछ दिन रहकर उसने भली प्रकार इस बात को समझ लिया कि यहाँ के राणा की शक्तियाँ बहुत दीन-दुर्बल हो चुकी हैं। इसलिए उसके साथ रहकर मैं अपने भाग्य का निर्माण नहीं कर सकता। इसलिए उदयपुर छोड़कर पण्डित लालजी बेलाल के साथ वह कोटा चला आया। बुकायनी के युद्ध में बहुत-से सैनिकों के मारे जाने से मराठा सेनापति मल्हार राव होलकर बहुत निर्बल हो गया था। फिर भी वह अपनी सेना लेकर कोटा-राज्य पर आक्रमण करने के लिए रवाना हुआ।

कोटा के राजा गुमान सिंह को समाचर मिला कि मल्हारराव होलकर अपनी सेना के साथ आक्रमण करने के लिए आ रहा है। वह घबरा उठा और उसने इस बात का निश्चय कर डाला कि जैसे भी हो सके, होलकर के साथ संधि कर लेना आवश्यक है। इस प्रकार निर्णय करके राजा गुमान सिंह ने संधि करने के लिए अपने सेनापति को होलकर के पास भेजा। परन्तु उस सेनापति को सफलता न मिली और वह निराश होकर लौट आया।

इन दिनों में जालिम सिंह उदयपुर से कोटा आ गया था। उसने मल्हारराव होलकर के कारण कोटा राज्य पर आयी हुई विपद को सुना और उसने राजा गुमान सिंह से भेंट करने का इरादा किया। राजा गुमान सिंह स्वयं इस समय संकट में था। इसलिए उसने जालिम सिंह को अपने राज्य में फिर से स्थान दिया। मराठों ने कोटा-राज्य की दक्षिणी सीमा पर आकर बुकायनी पर आक्रमण किया। कोटा के सेनापति माधव सिंह अपने चार सौ हाड़ा राजपूतों के साथ वहाँ के दुर्ग की रक्षा करने में लगा हुआ था। मराठों ने किले को घेर कर उस पर अधिकार करने की चेष्टा की। परन्तु उसे सफलता न मिली। इस दशा में मराठों ने अपने एक हाथी के द्वारा दुर्ग की दीवार को तोड़ने की कोशिश की। उस समय हाड़ा सेनापति माधव सिंह को मालूम हुआ कि यदि दुर्ग की दीवार टूट गयी तो दुर्ग पर शत्रु का का अधिकार हो जायगा। यह सोचकर वह किसी भी तरह दुर्ग की रक्षा करने के उपाय सोचने लगा।

इसी समय माधव सिंह ने देखा कि शत्रु का हाथी अपने मस्तक की टक्कर से दुर्ग का फाटक तोड़ने की कोशिश कर रहा है। उसी समय माधव सिंह अपने हाथ में तलवार लेकर दुर्ग के ऊपर के टक्कर मारने वाले हाथी की पीठ पर कूद पड़ा और उसने पीलवान को मारकर नीचे गिरा दिया। इसके बाद उसने हाथी की गर्दन पर अपनी तलवार के हाथ मारे, जिससे वह भयानक रूप से घायल हुआ। दुर्ग से कूदने के बाद माधव सिंह ने अपने प्राणों की आशा छोड़ दी थी। दुर्ग की रक्षा करने के लिए उसका यह अंतिम प्रयास था। माधव सिंह को इस प्रकार शत्रु के हाथी पर कूदने और उसको मार करते हुए देखने के बाद हाड़ा राजपूत दुर्ग का दरवाजा खोलकर एक साथ निकल पड़े और अपनी तलवारों से उन्होंने शत्रु-सेना का संहार करना आरम्भ किया।

बहुत समय के बाद युद्ध की परिस्थिति बदलने लगी। शत्रुओं की अपेक्षा संख्या में कम होने के कारण बहुत-से हाड़ा राजपूत मारे गये और अंत में मराठों की जीत हुई। राजपूतों को पराजित करके मराठों ने कोटा-राज्य के अनेक स्थानों पर भयानक अत्याचार किये और लूटमार करने के बाद उन्होंने सुकेत नामक दुर्ग को घेर लिया। यह समाचार राजा गुमान सिंह को मिला। उसने उस दुर्ग-रक्षक के पास अपना संदेश भेजा कि जैसे भी हो सके शत्रु से दुर्ग की रक्षा होना चाहिए। बुकायनी के युद्ध में राजपूतों ने मराठों का भयानक रूप से संहार किया था।

राजा का इस प्रकार का आदेश पाकर कोटा राजधानी में जाने के लिए अपनी सेना के साथ आधी रात को निकलकर दुर्ग का रक्षक रवाना हुआ। रात के अंधकार में जिस मार्ग से वह जा रहा था, उसकी सूखी घास में एक साथ आग जल उठी। उसी समय मराठा सेना ने जाते हुए राजपूतों पर एकाएक आक्रमण किया। उसमें कोटा के बहुत-से सैनिक मारे गये।

सेनापति मल्हारराव होलकर ने बुकायनी के युद्ध में भयानक क्षति उठायी थी। लेकिन इस बीच में उसने अपनी शक्तियों को फिर से मजबूत बना लिया था। कोटा का राजा गुमान सिंह इस समय बड़े संकटों में था। उसको अपनी रक्षा के लिए कोई उपाय न मिल रहा था। इसलिए उसने बहुत-कुछ सोचकर इस बात का निर्णय किया कि भटवाड़ा के युद्ध में जालिम सिंह के द्वारा हाड़ा राजपूतों ने सफलता पायी थी और इस समय भी जालिम सिंह के द्वारा ही कोटा-राज्य की रक्षा का कोई उपाय निकल सकता है। इस प्रकार सोच-समझकर उसने जालिम सिंह को बुलाया और होलकर के साथ संधि करने का उत्तरदायित्व उसने उसको सौंपा।

जालिम सिंह संधि का प्रस्ताव लेकर होलकर के पास गया। दोनों पक्ष की बातचीत समाप्त होने के बाद होलकर ने संधि करना स्वीकार कर लिया। उस संधि में निश्चय हुआ कि कोटा के राजा गुमान सिंह से छै लाख रुपये लेकर मल्हारराव होलकर अपनी सेना के साथ कोटा राज्य से वापस चला जायगा।

जालिम सिंह के निर्णय के अनुसार होलकर के साथ संधि हो गयी। वह छै लाख रुपये लेकर कोटा-से चला गया। जालिम सिंह की सफलता पर गुमान सिंह बहुत प्रसन्न हुआ। उसके अधिकार के जो नगर और ग्राम उसने उससे ले लिए थे, उसको फिर से दे दिये और कोटा-राज्य का फिर उसको सेनापति बना दिया।

इसके कुछ दिनों के बाद गुमान सिंह बीमार पड़ा। उसका रोग सेहत न हो सका। मरणासन्न अवस्था में पहुँचकर वह इस बात के लिए चिन्तित हुआ कि अपने छोटे बालक के संरक्षण का भार किसको सौंपा जाय। अंत में गुमान सिंह ने अपने सब सामन्तों की मौजूदगी में दस वर्ष के बालक उम्मेद सिंह के संरक्षण का भार जालिम सिंह को सौंपा। इसके बाद उसकी मृत्यु हो गयी।

राजा गुमान सिंह के मर जाने के बाद सम्वत् १८२७ सन् १७७१ ईसवी में बालक उम्मेद सिंह कोटा के सिंहासन पर बैठा। पुरानी प्रथा के अनुसार अभिषेक के दिनों में वह कैलवाड़ा के राजा के साथ युद्ध करने गया। उस युद्ध में विजयी होकर उसने कैलवाड़ा अपने राज्य में मिला लिया। राज सिंहासन पर उम्मेद सिंह के बैठने के पश्चात् जालिम सिंह ने शासन का उत्तरदायित्व अपने हाथों में लिया। वह दूरदर्शी और राजनीतिज्ञ था। उसने कोटा-राज्य में अपना आधिपत्य इस प्रकार आरम्भ किया कि जीवन के अंतिम समय तक उसकी शक्तियाँ राज्य में कायम रहें।

राजा गुमान सिंह ने मरने के समय जालिम सिंह को राज्य की रक्षा का भार सौंपा था। उस समय राज्य के सभी सामन्त उपस्थित थे। लेकिन वे सभी जालिम सिंह से प्रसन्न न थे।

इसलिए विरोधी सामन्तों के राजा गुमान सिंह का यह निर्णय अच्छा न मालूम हुआ। परंतु उस समय उन लोगों ने किसी प्रकार का विरोध न किया। कोटा-राज्य में जालिम सिंह का प्रभुत्व बढ़ता हुआ देखकर विरोधी सामन्त चिन्तित होकर उसके साथ ईर्षा करने लगे और आपस में उन लोगों ने जालिम सिंह के प्रभाव को निर्बल करने का निर्णय किया। जालिम सिंह कोटा-राज्य का सेनापति था। लेकिन उसका सम्बन्ध युद्धों के साथ था। राज्य के शासन-विभाग के साथ उसका कोई सम्बन्ध न था। शासन-विभाग में राय अखैराम सब से बड़ा अधिकारी था। शासन की नीति को भली प्रकार जानता था। जालिम सिंह के सेनापति होने के दिनों में अखैराम कोटा का प्रधान मंत्री था। उसके शासन काल में कोटा-राज्य ने सभी प्रकार की उन्नति की थी।

आरम्भ में जालिम सिंह के विरोधियों की संख्या कम थी। लेकिन उसने राज्य में अपना अधिकार और आधिपत्य जितना ही बढाया, उसके विरोधियों की संख्या कोटा राज्य में उतनी ही बढ़ती गयी। जालिम सिंह राज्य का सेनापति था। परन्तु वह शासन में भी अपना प्रभुत्व रखने लगा। राज्य के मंत्रियों और सामन्तों को यह किसी प्रकार सहन न हुआ। उन लोगों ने विरोध कर के इस बात को साफ-साफ कहना आरम्भ किया कि राजा गुमान सिंह ने जालिम सिंह को शासन में कोई अधिकार नहीं दिया था। जो सामन्त जालिम सिंह के विरोधी थे, उनमें राजा गुमान सिंह का भतीजा स्वरूप सिंह और बाङ्कडोत का सामन्त भी था। इस सामन्त को पदच्युत करके जालिम सिंह को सेनापति का पद दिया गया था। बालक उम्मेद सिंह का धाभाई जसकर्ण भी जालिम सिंह का विरोधी था। वह बुद्धिमान और दूरदर्शी था। इसलिए वह बालक उम्मेद सिंह के पास हमेशा रहा करता था।

जो सामन्त जालिम सिंह के विरोधी थे, उनको जसकर्ण से बड़ी सहायता मिली। जालिम सिंह के विरुद्ध विरोधी सामन्तों ने कई बार षड़यंत्र रचे। परन्तु राजनीतिज्ञ जालिम सिंह ने उन विरोधियों को किसी प्रकार सफल नहीं होने दिया। जालिम सिंह की कूटनीति इस समय राज्य में पूरी तौर पर चल रही थी। स्वरूप सिंह उसका भीषण रूप से विरोधी हो रहा था। इसलिए जालिम सिंह ने उसको बदला देने का निश्चय किया। स्वरूप सिंह, धाभाई जसकर्ण और बाङ्कडोत का सामन्त जालिम सिंह के प्रधान शत्रुओं में थे। इसलिए जालिम सिंह ने धाभाई को किसी प्रकार मिला लिया और उसके द्वारा जालिम सिंह ने स्वरूप सिंह को मरवा डाला।

स्वरूप सिंह के साथ धाभाई का कोई विरोध न था। लेकिन जालिम सिंह की कूटनीति धाभाई पर काम कर गयी। जालिम सिंह ने ही धाभाई को उकसाया, जिससे उसने स्वरूप सिंह पर आक्रमण करके उसको मार डाला। धाभाई जसकर्ण के इस अपराध की सभी ने निन्दा की और जिस जालिम सिंह ने उसको उकसाया था, वह भी उसके विरुद्ध हो गया। इस प्रकार की निन्दा से अपमानित होकर जसकर्ण कोटा-राज्य से चला गया और जयपुर में उसकी मृत्यु हो गयी।

ऊपर यह लिखा जा चुका है कि राज्य के जो सामन्त जालिम सिंह के विरोधी थे, स्वरूप सिंह और जसकर्ण उनमें प्रधान थे। इसलिए जालिम सिंह ने अपनी राजनीतिक चालों के द्वारा जसकर्ण को भड़का कर स्वरूप सिंह को मरवा डाला। उसने जसकर्ण से कहा था कि स्वरूप सिंह कोटा के राज्य सिंहासन का अधिकार प्राप्त करना चाहता है। इसीलिए वह मेरा शत्रु बन गया है। वह किसी षड़यंत्र के द्वारा उम्मेद सिंह को मार कर सिंहासन पर बैठना चाहता है। यदि इसका तुरन्त कोई उपाय न किया गया तो उम्मेद सिंह का भविष्य निश्चित रूप से अंधकार में है।

जसकर्ण ने जालिम सिंह की इन बातों का विश्वास कर लिया। उसने किसी प्रकार खोज न की। वह उम्मेद सिंह के किसी शत्रु को जीवित नहीं देखना चाहता था। इसलिए उसने स्वरूप सिंह को मार डाला। जालिम सिंह को अपनी राजनीति में पूरी सफलता मिली। कोटा के जो सामन्त और धनिक लोग उसके विरोधी थे, वे सब एक, दूसरे से मिले और उन्होंने इस प्रकार के अन्याय को देखकर कोटा से चले जाने का निर्णय किया। अपने निश्चय के अनुसार वे सभी लोग अपने-अपने नगरों और स्थानों से निकल गये और दूसरे राज्यों में जाकर रहने लगे। राज्य से निकले हुए लोगों ने जाने के समय कहा कि हम लोग राज्य को छोड़कर जाते हैं। लेकिन जालिम सिंह के अन्याय और अत्याचारों का हम लोग जरूर बदला देंगे।

कोटा के भागे हुए सामन्त जयपुर और जोधपुर-राज्य में जाकर रहने लगे और वहाँ के राजाओं से मिल कर जालिम सिंह के विरुद्ध प्रचार करने लगे। इन दिनों में मराठा लोगों के अत्याचार राजस्थान के राज्यों में लगातार बढ़ रहे थे। इसलिए जयपुर और जोधपुर में जालिम सिंह के विरुद्ध कोई तैयारी न हो सकी। कोटा में जालिम सिंह को भागे हुए सामन्तों के षड्यंत्रों का पता चल गया। इसलिए उसने जयपुर और जोधपुर के राजाओं के पास संदेश भेजा कि कोटा-राज्य के विद्रोही सामन्तों को उनको अपने यहाँ आश्रय नहीं देना चाहिए। इसका परिणाम यह निकला कि उन भागे हुए सामन्तों को जो आश्रय मिला था, उनमें बाधा पैदा हो गयी। मराठों के अत्याचारों के दिनों में कोई भी राजपूत राजा आपस में शत्रुता पैदा करना उचित नहीं समझता था।

इन परिस्थितियों में जो सामन्त कोटा-राज्य छोड़कर चले गये थे, उनको कोटा में आने के लिए फिर से विवश होना पड़ा और उन्होंने जालिम सिंह के पास संदेश भेजकर प्रार्थना की कि हम लोगों को अपनी जन्म भूमि में लौट कर आने के लिए फिर से अधिकार दिया जाय। जालिम सिंह ने उनकी प्रार्थना को स्वीकार कर लिया, जिससे वे लोग फिर कोटा-राज्य में आ गये। लेकिन उनके चले जाने के बाद उनकी जो जागीरें राज्य में मिला ली गयी थीं, वे उनको नहीं दी गयीं। केवल जीवन-निर्वाह के लिए उन लोगों को थोड़ी-थोड़ी भूमि दे दी गयी और वे जालिम सिंह की चालों से भयभीत होकर कोटा-राज्य में रहने लगे।

इतना सब होने पर भी कोटा में जालिम सिंह के विरुद्ध एक छिपा हुआ विद्रोह चल रहा था और कुछ दिनों के बाद जालिम सिंह के विरुद्ध जो विद्रोह पैदा हुआ, वह पहले की अपेक्षा अधिक भयानक था। कोटा में जालिम सिंह के विरुद्ध जो सामन्त थे, आथून जागीर का सामन्त देवसिंह उन सब का प्रधान था। उसके जागीर की वार्षिक आमदनी साठ हजार रुपये थी। देवसिंह ने जालिम सिंह के विरुद्ध एक नया विद्रोह पैदा किया। उसके अधिकार में एक मजबूत दुर्ग था, जिसको उसने स्वयं बनवाया था। उस दुर्ग में जालिम सिंह के विरोधी सामन्त आकर एकत्रित हुए और जालिम सिंह के विरुद्ध तैयारी करने लगे।

जालिम सिंह बड़ी सावधानी के साथ कोटा में शासन कर रहा था। वह अत्यन्त दूरदर्शी था और उसके गुप्तचर चारों तरफ फैले हुए थे। जालिम सिंह को मालूम हो गया कि आथून के दुर्ग में विरोधी सामन्त एकत्रित होकर मेरे विरुद्ध तैयारी कर रहे हैं। इसलिए सचेत होकर उसने सोच डाला कि राज्य की सेना के द्वारा इन संगठित सामन्तों को पराजित करना कठिन है। इस लिए किसी दूसरे उपाय का आश्रय लेना चाहिए।

इन दिनों में दिल्ली के बादशाह का प्रभाव करीब-करीब बहुत-कुछ क्षीण हो गया था। इसीलिए चारों तरफ अशान्ति और अराजकता बढ़ रही थी। मराठों का दल चारों तरफ लूटमार कर

रहा था और उसने अनेक प्रकार के अत्याचार करके कितने ही राज्यों को बरबाद कर दिया था। जालिम सिंह ने मोसेज नामक एक सेनापति को बुलाया और उसको आथून के दुर्ग पर अधिकार करने एवम् विद्रोही सामन्तों को दमन करने का आदेश दिया। मोसेज अपनी सेना लेकर रवाना हुआ और आथून के दुर्ग को जाकर उसने घेर लिया। उस दुर्ग में एकत्रित सामन्त तैयार होकर बाहर निकले और उन्होंने शत्रु पर आक्रमण किया। यह युद्ध कई महीने तक चलता रहा। किसी पक्ष की विजय न हुई।

आथून के दुर्ग में जो सामन्त एकत्रित थे, वे बड़े साहस के साथ युद्ध करके शत्रु से दुर्ग की रक्षा करते रहे। लेकिन कई महीनों के बाद उस दुर्ग में उनके खाने-पीने की जो सामग्री थी, वह सब खत्म हो गयी। इसलिए दुर्ग के सामन्तों के सामने भयानक संकट-पूर्ण परिस्थिति पैदा हुई। इस दशा में उन सामन्तों ने सेनापति मोसेज से कुछ प्रार्थना की। उसने उस प्रार्थना को स्वीकार करके सामन्तों को सकुशल दुर्ग के बाहर चले जाने का अवसर दिया।

दुर्ग से निकलकर सामन्त कोटा-राज्य छोड़कर चले गये और उन्होंने दूसरे राज्यों में जाकर आश्रय लिया। जालिम सिंह ने इस समय जिस बुद्धिमानी से काम लिया था, उसमें उसको पूर्ण रूप से सफलता मिली और सामन्तों ने उसके विरुद्ध जो तैयारी की थी वह नष्ट हो गयी। उन सामन्तों के चले जाने पर, जो भूमि उनको दी गयी थी, वह फिर से राज्य में मिला ली गयी। विद्रोही दल के प्रधान देव सिंह ने भी दूसरे राज्य में जाकर आश्रय लिया था। वहाँ पर उसकी मृत्यु हो गयी। इसके कई वर्षों के बाद देवसिंह का लड़का कोटा में जालिम सिंह के पास आया और उसने अपने आपको निरपराधी प्रमाणित करके आश्रय पाने की प्रार्थना की। जालिम सिंह ने उसकी प्रार्थना को स्वीकार कर लिया और पन्द्रह हजार रुपये की वार्षिक आमदनी की जागीर बामोलिया उसे दे दी। कोटा-राज्य में कुछ और सामन्त थे जो निम्न श्रेणी के थे और छिपे तौर पर जालिम सिंह के विरुद्ध विद्रोह में शामिल थे, जालिम सिंह ने उनको क्षमा कर दिया और उन्हें राज्य में रहने की आज्ञा दे दी। परन्तु उनको इतना निर्बल बना कर रखा कि जिससे वे फिर कभी विद्रोह करने का साहस न कर सकें।

शत्रुओं के द्वारा जितने भी विद्रोह पैदा किये गये, जालिम सिंह ने अपनी राजनीति के द्वारा उन सब को नष्ट कर दिया और कोटा-राज्य के शासन को अपने अधिकार में रखा। उसने मेवाड़ के राज्य वंश की एक लड़की के साथ विवाह किया था। उस लड़की से माधव सिंह नामक जालिम सिंह के एक लड़का पैदा हुआ। जालिम सिंह अनेक विपदाओं में रहने पर भी मेवाड़ की कठिनाइयों का ध्यान रखता रहा। उसने सम्वत् १८४७ सन् १७९१ ईसवी में मेवाड़ की जो सहायता की थी, उसका वर्णन पहले ही किया जा चुका है।

जालिम सिंह के विरोधी जो सामन्त कोटा-राज्य से चले गये थे, वे फिर से जालिम सिंह के विरुद्ध तैयारी करने लगे। उन लोगों ने अब तक जितनी चेष्टायें की थीं, वे सब असफल हुई थीं। सम्वत् १८३३ में आथून के सामन्त के नेतृत्व में जालिम सिंह के विरुद्ध जो तैयारी की गयी थी, उसमें असफलता मिलने के बाद बीस वर्ष तक जालिम सिंह के विरुद्ध कोई विद्रोह नहीं किया गया। इसके बाद सम्वत् १८५६ में दस हजार रुपये वार्षिक की आमदनी वाले मोसेन के सामन्त बहादुर सिंह ने जालिम सिंह के विरुद्ध एक षड़यंत्र रचा। परन्तु जालिम सिंह को उसकी सूचना मिल गयी। षड़यंत्र के अनुसार सपरिवार जालिमसिंह को उसके मित्रों और सलाहकार पंडित लाला जी को मार डालने के लिए एक योजना तैयार की गयी थी। उसमें निश्चित किया गया था कि जिस समय जालिम सिंह राज-दरबार में बैठा हो, एकाएक उस पर आक्रमण किया जाय और

उसे मार डाला जाय। षड़यंत्रकारियों की यह योजना जालिम सिंह को प्रकट हो गयी। उसने पहरेदारों के स्थान पर राज्य की शक्तिशाली सुरक्षित सेना की नियुक्त कर दी। षड़यन्त्रकारियों के दरबार में आने पर उस सुरक्षित सेना के सवार सैनिकों ने एक साथ उन पर आक्रमण किया। उस आक्रमण में बहुत से विरोधी लोग मारे गये और एक अच्छी संख्या में लोग कैद कर लिए गये। षड़यन्त्र का नेता बहादुर सिंह भागकर चम्बल नदी के किनारे पाटन नामक स्थान पर चला गया और हाड़ा वंश के कुल देवता केशव राय के मन्दिर में पहुँच कर उसने आश्रय लिया। उसका विश्वास था कि बूंदी राज्य के इस मन्दिर में आकर कोई मुझ पर आक्रमण नहीं करेगा। परन्तु जालिम सिंह के सैनिकों ने उस मन्दिर को घेर लिया और उसको कैद करके मार डाला।

राजस्थान के प्राचीन ग्रथों से यह भी मालूम होता है कि उम्मेद सिंह के हितों की रक्षा करने के लिए बहादुर सिंह मारा गया था। क्योंकि उसके षड़यंत्र की योजना का उद्देश्य यह था कि उम्मेद सिंह को सिंहासन से उतार कर उसके छोटे भाई को उस पर बिठाया जाय। यह बात कहाँ तक सही ह, इसको निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। हो सकता है कि षड़यन्त्र कारियों ने सोचा हो कि जालिम सिंह ने उम्मेद सिंह को अपने हाथ की कठपुतली बना रखा है। इसलिए उसको सिंहासन से उतार दिया जाय। इस प्रकार का अनुमान किया जा सकता है। इन दिनों में कोटा राजवंश का राज सिंह, जो उम्मेद सिंह का चाचा था, अपने दोनों भाइयों गोवर्द्धन सिंह और गोपाल सिंह के साथ जीवित था। आथून के सामन्त के विद्रोह के दिनों में गोवर्द्धन सिंह और गोपाल सिंह—दोनों विद्रोहियों की सहायता कर रहे थे। इसलिए जालिम सिंह ने उन दोनों भाइयों को कैद करवा लिया। दस वर्ष तक कारागार में रह कर गोवर्द्धन की मृत्यु हो गयी। उसके बाद उसका छोटा भाई गोपाल सिंह भी बहुत दिनों तक कैदी की दशा में रहने के बाद मर गया। उम्मेद सिंह का चाचा राजसिंह वृद्ध हो गया था। वह बहुत दिनों तक जीवित रहा। लेकिन किसी षड़यन्त्र में वह शामिल न होकर एक मन्दिर में बना रहता था।

सब मिला कर अठारह बार जालिम सिंह के विरुद्ध षड़यंत्र किये गये। परन्तु विरोधियों को एक बार भी सफलता न मिली। अन्त में राजमहल की स्त्रियों ने जालिम सिंह को मार डालने की एक योजना बनायी, उसमें वह भयानक रूप से फँस गया था। यदि राजमहल की एक स्त्री साहस करके उसको बचाने की चेष्टा न करती तो जालिम सिंह के सामने किस प्रकार का संकट उपस्थित होता, यह नहीं कहा जा सकता। राज महल की स्त्रियों ने उसको कैद करने अथवा मार डालने का प्रयत्न किया। वह राजमहल में बुलाया गया। उसके महल में पहुँचते ही बहुत-सी राजपूत स्त्रियों ने अपने हाथों में तलवारें लेकर उस पर आक्रमण किया। जालिम सिंह महल के भीतर यह दृश्य देखकर घबरा उठा। उसको उस प्रकार के संकट की कोई आशंका न थी। आक्रमणकारी महिलाओं ने उसको कैद कर लिया। इस समय अपनी मुक्ति के सम्बन्ध में कोई उपाय उसकी समझ में न आया।

जालिम सिंह को कैद करके राजपूत स्त्रियों ने उससे प्रश्न पूछने आरम्भ कर दिये। जालिम सिंह ने कोटा राज्य में सेनापति का पद पाकर और बालक उम्मेद सिंह का संरक्षक बनने के बाद उसने जो कुछ भी किया था, उन स्त्रियों ने एक-एक घटना पर अलग-अलग प्रश्न करना आरम्भ कर दिया। उन स्त्रियों ने इन्हीं प्रश्नों के बीच उसे मार डालने के लिए पूरी तौर पर इरादा कर लिया था। लेकिन इसी अवसर पर राजमहल की एक राजपूत स्त्री ने बड़ी बुद्धिमानी के साथ जालिम सिंह का पक्ष लिया। हाड़ा वंश के इतिहास में लिखा हुआ उल्लेख इस बात को स्पष्ट रूप

से प्रकट करता है कि, जालिम सिंह एक सुन्दर राजपूत था और जिस स्त्री ने उसका पक्ष लिया, वह बहुत दिनों से उसके साथ प्रेम करती थी। उस स्त्री के बिगड़ने और उसके पक्ष में सहायता करने के कारण जालिम सिंह किसी प्रकार महल से निकलकर अपने प्राणों की रक्षा कर सका।

इस प्रकार जालिम सिंह के विरुद्ध जितने भी षड़यंत्र किये गये, उनमें एक भी सफल न हुआ। जालिम सिंह में अनेक ऐसे गुण थे, जिनके कारण अपने विरोधियों के बीच में रहकर भी वह सुरक्षित बना रहा। उसका एक गुण प्रधान यह था कि वह अपने विरोधियों से बदला लेने की बात अधिक नहीं सोचता था और प्रार्थना करने पर वह विद्रोहियों को भी क्षमा कर देता था। वह रात में एक लोहे के मजबूत कटहरा में सोया करता था और प्राय: निर्भीक रहता था। साथ ही वह इतनी सावधानी से काम लेता था, जिससे कोई विद्रोही उसके जीवन को क्षति न पहुँचा सके। उसने अपने अधिकार में जितने भी लोगों को रखा था, उन सभी कर्मचारियों को—साधारण पहरेदारों से लेकर सेना के सैनिकों और अधिकारियों तक सभी को—समय पर वेतन देता था और उनकी कर्तव्य परायणता के लिए प्राय: उनको पुरस्कार देकर सम्मानित किया करता था। इसलिए राजकर्मचारी उसके साथ सहानुभूति रखते थे। इस सब गुणों के साथ-साथ जालिम सिंह प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ और दूरदर्शी था। इसीलिए इस प्रकार के विरोधों, उपद्रवों और विद्रोहों के होने पर भी उसने कोटा-राज्य में बराबर शासन किया। उसके विरोधी कभी कुछ उसका बिगाड़ न सके।

तिहत्तरवाँ परिच्छेद

कोटा-राज्य में जालिम सिंह का प्रभुत्व—जालिम सिंह की राजनीतिक कुशलता और योग्यता—उसके शासन में किसानों की हानि—प्रजा पर कर के बोझ—जालिम सिंह के शासन में राज कर्मचारियों के अत्याचार—किसानों में जन्म भूमि के छोड़ देने का इरादा—शासन के प्रबन्ध की कठोरता—प्रजा की बढ़ती हुई गरीबी—मेवाड़ में जालिम सिंह की चेष्टा—मराठा सेनापति इंगले के साथ उसकी मित्रता—जालिम सिंह का राजधानी से हटकर रहने का विचार—उसका उद्देश्य—किसानों की दशा में सुधार करने की योजना—राजधानी से बाहर उसकी छावनी—पुराने नियमों में परिवर्तन।

कोटा राज्य में दूसरी बार सेनापति होने के बाद किस प्रकार शासन में अपना आधिपत्य कायम करके जालिम सिंह ने अपना प्रभुत्व बढ़ाया और राज्य के कितने ही सामन्तों के विद्रोही होने तथा उनके अनेक बार षड़यंत्र करने पर भी किन उपायों से उसने अपने प्रभाव को राज्य में सुरक्षित रखा, इसका विस्तार के साथ वर्णन पिछले परिच्छेद में किया जा चुका है। इसमें संदेह नहीं कि जालिम सिंह राजनीति में कुशल, शासन में निपुण और मौके का लाभ उठाने में पण्डित था। सम्वत् १८२७ में उसने मेवाड़ के राणा के साथ कुछ दिन रहकर अपनी योग्यता का परिचय दिया था और फिर वहाँ से आकर कोटा में दूसरी बार सेनापति होकर अपने प्रताप का विस्तार किया। उसकी राज्य में जितनी ही शक्तियाँ बढ़ी थीं, राज्य के किसानों और व्यवसायियों को उतनी ही क्षति पहुँची थी। सम्वत् १८४० में उसका शासन किसानों और व्यवसायियों के

लिए अत्याचार पूर्ण साबित हो चुका था। उसने प्रजा पर कर का इतना भारी बोझ लाद रखा था कि उससे राज्य की शाँति संकट में पड़ गयी। किसानों में भूमि का कर अदा करने के लिए अपने आपको वे लोग बहुत असमर्थ समझते थे।

शासन की अयोग्यता और कठोरता के दिनों में राजकर्मचारी प्रजा के लिए राक्षस बन जाते हैं। जालिम सिंह के शासन काल में कोटा राज्य की भी यही अवस्था हो गयी थी। जालिम सिंह का शासन जितना अधिक कठोर था, राजकर्मचारियों का व्यवहार उतना ही अधिक भयानक था। किसानों के साथ उनके व्यवहार अमानुषिक हो गये थे। इस प्रकार के अत्याचार के दिनों में कोटा राज्य के किसान भयानक दुर्दशा का जीवन बिताने लगे थे। उनमें से बहुत-से अपनी जन्म भूमि को छोड़कर भाग गये। न जाने कितने भाग जाने के लिए रोजाना सोचा करते थे। जालिम सिंह के राजकर्मचारी सहज ही किसानों के बैलों और पशुओं को छीनकर ले जाते थे। इस दशा में बहुत बड़ी संख्या में किसान खेती न कर पाते थे और वे अपने पूर्वजों के कार्य को छोड़कर नौकरी करने के लिए विवश हो जाते थे। बहुत-से किसानों ने दूसरों के यहाँ नौकर होकर खेती का काम करना आरम्भ कर दिया था। राज्य की इस दुरवस्था में बहुत-सी भूमि बिना खेती किये ही पड़ी रह जाती थी। उस पर जालिम सिंह राज्य की तरफ से खेती कराने का प्रयत्न करता था। जहाँ उसने एक तरफ राजकर्मचारियों को अनेक प्रकार के सुभीते देकर संतुष्ट कर रखा था, वहाँ उसने राज्य के दीनों-दरिद्रों, किसानों और व्यवसायियों को गरीबी की भीषण परिस्थितियों में पहुँचा दिया था।

जालिम सिंह ने मेवाड़-राज्य में भी अपना आधिपत्य कायम करने के लिए बड़ी चेष्टायें की। परन्तु एक घटना के कारण उसकी योजना को गम्भीर आघात पहुँचा। मराठा सेनापति इङ्गले के परिवार के साथ जालिम सिंह ने अपनी घनिष्ट मित्रता पैदा कर ली थी। इसी इङ्गले वंश का बालाराव मेवाड़ के राणा के द्वारा कैद करके उदयपुर के कारागार में रखा गया था। जालिम सिंह बालाराव को कैद से छुड़ाने के लिए उदयपुर गया। उसके फलस्वरूप जालिम सिंह के प्रति राणा के व्यवहारों में बहुत अंतर पड़ गया और जालिम सिंह ने मेवाड़ राज्य के सम्बन्ध में जो कुछ सोच रखा था, उसकी सफलता में भयानक आघात पहुँचा। जालिम सिंह ऐसे अवसरों पर बड़ी राजनीति से काम लेता था। उसने मेवाड़-राज्य में अपनी असफलता को देखकर एक दूसरी योजना को जन्म दिया।

सम्बत् १८५६ तक जालिम सिंह कोटा के दुर्ग के महल में रहता रहा। परन्तु सम्वत् १८-६० सन् १८०३—४ ईसवी में बालाराव को कैद से छुड़ाने के बाद जब वह मेवाड़ से लौटकर आया तो कोटा के दुर्ग के महल को छोड़कर अन्यत्र अपने रहने का इरादा किया। उन दिनों में अंगरेजी सेना ने राजपूतों के साथ संगठित होकर मराठों से युद्ध करना आरम्भ कर दिया था और उनके अधिकार से बहुत-से नगरों तथा ग्रामों को अंगरेजी सेना ने छीन लिया था। इसके फलस्वरूप मराठों की सेना कई टुकड़ों में बंट गयी थी और उसने राजस्थान के अरक्षित स्थानों पर लूटमार कर के भयानक अत्याचार किये थे।

जालिम सिंह ने ऐसे अवसर पर बुद्धिमानी से काम लिया और उसने राजधानी के महल में रहना छोड़कर उस स्थान पर रहने का निर्णय किया, जहाँ पर मराठे आक्रमण करके लूट-मार कर सकते थे। ऐसा करने में उसके दो उद्देश्य थे। पहला उद्देश्य यह था कि वह किसानों की माल-गुजारी के नियमों में सुधार और परिवर्तन करना चाहता था, दूसरा उद्देश्य यह था कि वह ऐसे स्थान पर रहना चाहता था, जहाँ से किसी बाहरी आक्रमण को रोक सकने में वह समर्थ हो सके।

राजधानी के महल का रहना छोड़ने में जालिम सिंह के जो उद्देश्य ऊपर लिखे गये हैं, मैं उन पर अधिक विश्वास करता हूँ। लेकिन हाड़ा वंश के प्राचीन ग्रंथों में कुछ दूसरी ही बात का उल्लेख किया गया है। उसमें बताया गया है कि एक दिन रात में महल के ऊपर बैठकर एक उल्लू कुछ देर तक बोलता रहा। जालिम सिंह ने रात में उसकी बोली को सुना और सवेरा होने पर उसने ज्योतिषियों को बुलाकर पूछा। जालिम सिंह की बात को सुनकर उन लोगों ने उत्तर दिया : "इस महल में अब आप का रहना किसी प्रकार उचित नहीं है। क्यों कि इस महल में रहने से आप के अनिष्ट की सम्भावना है।"

जालिम सिंह ने ज्योतिषियों के मुख से इस प्रकार का उत्तर सुन कर राजधानी के महल का रहना छोड़ दिया। हाड़ा वंश के प्राचीन ग्रंथों में जालिम सिंह के महल छोड़ने के सम्बन्ध में इस प्रकार उल्लेख किया गया है। परन्तु मैं इस प्रकार की बातों पर विश्वास नहीं करता।

जो कुछ भी हो, जालिम सिंह ने राजधानी के महल का रहना छोड़कर जब अपने राज्य के विभिन्न नगरों और स्थानों का भ्रमण किया तो उस राज्य की दुरवस्था का बहुत-कुछ उसको ज्ञान हुआ। राज्य की इस अधोगति से वह पहले परिचित न था। राज कर्मचारियों और अधिकारियों ने उसको कभी इस प्रकार की बातें बतायीं न थीं, जिनसे वह किसानों और दूसरे लोगों की दीनता और दरिद्रता को समझ सकता। उसने इस अवसर पर किसानों की अवस्था को अपनी आँखों से देखा। उसने इस बात को अनुभव किया कि शासन अयोग्यता और कठोरता के कारण राज्य की यह अवस्था हुई है। उसने भली प्रकार इस बात को समझ लिया कि राज्य के किसान अधिक संख्या में जीवन की भयानक विपदाओं का भोग कर रहे हैं। इसी के कारण किसानों से वसूल होने वाली मालगुजारी बहुत कम हो गयी है।

जालिम सिंह ने राजधानी छोड़ने और राज्य के छोटे-बड़े सभी स्थानों को देखने के बाद यह समझा कि राज्य के व्यवसायियों की दशा भी अच्छी नहीं है। उसने अभी तक प्रजा की पीड़ाओं को सुनने के लिए अपने कानों को बन्द कर रखा था लेकिन अब उसे मालूम हो गया कि अगर राज्य की इस दुरवस्था में शीघ्र सुधार न हुआ तो भविष्य में किसी भी समय राज्य को संकट पूर्ण परिस्थित का सामना करना पड़ेगा। राज्य की अवस्था को सुधारने के लिए सबसे पहले कृषकों की दशा को सुधारने की आवश्यकता है। इस प्रकार का निर्णय करके जालिम सिंह ने गागरोल के दुर्ग के पास अपने रहने का निश्चय किया। राज्य के श्रेष्ठ पुरुषों और सामन्तों ने भी उसका अनुकरण किया और उन्होंने भी अपने नगरों को छोड़कर जालिम सिंह के साथ रहना आरम्भ किया। उस स्थान पर एक शामियाना लगाया गया, जालिम सिंह ने उसी में स्थायी रूप से रहना आरम्भ किया और उसी स्थान से राज्य का समस्त कार्य आरम्भ हुआ। राज्य में वह स्थान छावनी के नाम से कहा जाता था।

दक्षिण की तरफ से कोटा-राज्य में जाने के लिए जो रास्ते थे, यह मार्ग उनके बीच में था। दूसरी तरफ कोटा की अधीनता में भील जाति के लोग रहा करते थे। इस स्थान पर जालिम सिंह को एक सुभीता यह भी था कि वहाँ से शेरगढ़ और गागरोन के सुदृढ़ दुर्ग बहुत दूर न थे। जालिम सिंह ने युद्ध के हथियारों और उनकी सभी सामग्री को उन दुर्गों में रख कर सुरक्षित बना दिया था। इसके साथ-साथ उसने इस बात की पूरी चेष्टा की थी कि बाहरी कोई शक्ति आकर उन दुर्गों के भीतर प्रवेश न कर सके। उसने अपनी समस्त सेना को अंगरेजी शिक्षा दी थी और इन दिनों में उसने लड़ाई के बहुत-से अस्त्र-शस्त्र विदेशों से मंगवा लिए थे। उसने अपनी सेना को शक्तिशाली बनाने में कोई उपाय बाकी नहीं रखा था। उसने इस बात का पूरा पूरा प्रबन्ध कर लिया था

कि राज्य में कोई बाहरी शक्ति आकर सफलता न प्राप्त कर सके। इस प्रकार का प्रबन्ध वह राजधानी के महल में रहकर नहीं कर सकता था। इसी लिए उसने राजधानी के बाहर अपने रहने के लिए स्थान चुना था।

जालिम सिंह को अभी तक अपने राज्य की भीतरी परिस्थितियों को समझने का अवसर नहीं मिला था। कोटा राज्य में अब तक प्राचीन काल के बने हुए नियमों का पालन होता था। लेकिन इन दिनों में उसने भली प्रकार समझ लिया कि प्राचीन काल के नियमों से अब काम न चलेगा। क्योंकि वे नियम राज्य की व्यवस्था करने में बहुत कुछ अयोग्य साबित हो चुके थे। राजकर्मचारी और अधिकारी प्रजा से कर वसूल करने में बहुत अन्याय करते थे। वे किसानों से नियम के विरुद्ध इतना अधिक कर वसूल कर लेते थे, जो किसी प्रकार न्यायपूर्ण नहीं था। उसके परिणाम स्वरूप किसानों की दशा अत्यन्त शोचनीय हो गयी थी। इस प्रकार का अन्याय राज्य में उन पटेलों के द्वारा होता था, जिनको राज्य की भूमि का प्रबन्ध करने के लिए पूर्ण रूप से अधिकारी बना दिया गया था। उन पटेलों ने राज्य के कृषकों के साथ बेईमानी करके अपने आप को सम्पत्तिशाली बनाने का काम किया था।

अपने नवीन स्थान में रहकर जालिम सिंह ने कृषकों की दशा को समझने का कार्य आरम्भ किया। उसने गुप्त रूप से सम्पूर्ण राज्य में इस बात का पता लगाया कि पटेलों ने किस प्रकार किसानों के साथ बेईमानी करके अत्याचार किया है। इसके सम्बन्ध में उसने बड़ी कठोरता के साथ खोज की और जब उसके अनुसंधान का कार्य समाप्त हो गया तो उसने राज्य के समस्त पटेलों को अपने यहाँ बुलाया। उन लोगों के आने पर जालिम सिंह ने अपने ईमानदार कर्मचारियों के द्वारा एक चिट्ठा तैयार करवाया, जिसमें इस बात के विवरण लिखे गये कि किस पटेल के अधिकार में कितनी भूमि है और वह कितने किसानों से कर वसूल करता है। साथ ही इस बात का भी उसमें उल्लेख किया गया कि इन पटेलों में आर्थिक अवस्था किसकी कैसी है और प्रत्येक पटेल की वार्षिक आमदनी क्या है।

इस प्रकार अनुसधान का कार्य करके और राज्य का एक विस्तृत लेखा तैयार करके जालिम सिंह खेतों और कृषको की अवस्था को देखने और समझने के लिए अपना निवास स्थान छोड़कर बाहर निकला। उस भ्रमण में उसने इस बात का भी एक लेखा तैयार करवाया कि राज्य में कहाँ और कितनी भूमि वर्षा पर निर्भर है और कितनी भूमि को नदियों का पानी मिलता है। इस लेखे में सभी प्रकार की भूमि को समझने की कोशिश की गयी और ईमानदारी के साथ इस बात का हिसाब तैयार किया गया कि राज्य की कितनी भूमि उपजाऊ, कम उपजाऊ और अनुपजाऊ है। जालिम सिंह ने इस बात का भी एक हिसाब तैयार करवाया कि पिछले कुछ वर्षों से किसानों से वसूल होने वाली मालगुजारी प्रति वर्ष किस प्रकार रही है। किस किसान से कितना कर लिया जाना चाहिए था और कितना लिया गया है। इस प्रकार अनुसंधान का कार्य समाप्त करके जालिम सिंह ने आदेश दिया कि अब किसानों से पैदा होने वाला अनाज न लेकर नकद रुपये लिए जायँगे।

जालिम सिंह ने इस प्रकार भूमि का कर निश्चित करके कर वसूल करने वाले पटेलों के परिश्रम का निर्णय किया और आदेश दिया कि प्रत्येक पटेल को अपने अधिकार की भूमि पर डेढ़ आना प्रति बीघा के हिसाब से कर देना होगा। पटेलों से वसूल होने वाला यह कर किसानों के कर की अपेक्षा बहुत कम रखा गया। इसके साथ ही उसने इस बात का भी आदेश दिया कि निर्धारित कर की अपेक्षा यदि कोई पटेल किसी किसान से अधिक कर वसूल करेगा। तो उसके

अधिकार की समस्त भूमि उससे छीनकर राज्य में मिला ली जायगी। इस व्यवस्था के अनुसार किसानों से पटेलों को कर वसूल करने का भार जो दिया गया, वह पाँच हजार से पन्द्रह हजार रुपये तक वार्षिक था। इस नयी व्यवस्था से राज्य के पटेल बहुत असंतुष्ट हुए और उन्होंने राज्य में पुरानी व्यवस्था को लाने के लिए न केवल कोशिशें की, बल्कि दस हजार बीस हजार पचास-पचास हजार रुपये तक रिश्वत में दिये। इससे राज्य को काफी रुपये की आमदनी हुई और एक-एक बार में दस-दस लाख रुपये राज्य के खजाने में रखे गये,

कोटा-राज्य की भूमि पर नयी व्यवस्था लागू हो जाने के बाद किसानों को बहुत संतोष मिला। उन्होंने विश्वास कर लिया कि हम लोगों पर अब तक पटेलों के जो अत्याचार होते थे, वे अब न हो सकेंगे। लेकिन इस प्रकार की व्यवस्था के बाद पटेलों ने जो लम्बी रिश्वतें दी थीं, वे निष्फल नहीं गयीं। जालिम सिंह ने अपनी नयी व्यवस्था चालू करने के बाद इस बात का आदेश दिया कि वर्षा न होने के कारण अथवा और किसी सबब से यदि राज्य में अकाल पड़ जायगा तो पहले की तरह फसल न होने पर भी किसानों को निर्धारित कर देने में कोई सुभीता न दिया जायगा और उन्हें सम्पूर्ण राज्य-कर अदा करना पड़ेगा। यदि कोई किसान उसकी अदायगी न करेगा तो उसकी भूमि लेकर पटेल किसी दूसरे को दे देने का पूरा अधिकारी होगा। अगर उस प्रकार की भूमि का कोई लेने वाला न होगा तो उसे राज्य की भूमि में मिला लिया जायगा।

इस प्रकार जालिम सिंह ने कोटा-राज्य की भूमि का नया प्रबन्ध किया। लेकिन भूमि का प्रबन्ध अब भी पटेलों के हाथ में ही रखा गया और यह निश्चय किया गया की जो पटेल किसानों के साथ ईमानदारी का व्यवहार करेंगे, राज्य की तरफ से उसको सम्मान दिया जायगा। इस व्यवस्था के अनुसार, पटेल ग्रामों के प्रतिनिधि और राज्य के कर्मचारी माने गये और उनको सम्मान में राज्य की तरफ से सोने के कंकण और पगडियाँ दी गयीं।

जालिम सिंह ने राज्य के ग्रामों की परिस्थितियों में सुधार करने के लिए अपने यहाँ एक समिति कायम की और उस समिति में ग्रामों के चुने हुए पटेलों को भी रखा। उस समिति को राज्य की व्यवस्था में अनेक प्रकार के अधिकार दिये गये और उनके द्वारा देहाती क्षेत्रों में शांति कायम करने की व्यवस्था की गयी। उस समिति को यह भी अधिकार दिया गया कि राज्य की तरफ से व्यवस्था में कोई भी त्रुटि होने पर उसका विचार और निर्णय वह समिति कर सकती है। उसका निर्णय राजा के निकट फिर से विचारणीय होगा।

जालिम सिंह ने अपने राज्य में इस प्रकार की नयी व्यवस्था कायम करके न केवल अपनी लोक प्रियता का परिचय दिया, बल्कि उसने राष्ट्रीय पञ्चायत कायम करके राज्य की व्यवस्था में प्रजा को जो अधिकार दिये, वे प्रत्येक अवस्था में प्रशंसनीय थे। उसकी इस व्यवस्था पर मैं बिना किसी संकोच के कहने के लिए तैयार हूँ कि राज्य की इतनी सुन्दर व्यवस्था कोटा में पहले कभी नहीं रही।

अपनी नयी व्यवस्था के अनुसार जालिम सिंह ने इस बात की पूरी कोशिश की कि पटेल लोग किसानों पर किसी प्रकार अत्याचार न कर सकें। इसमें कुछ दिनों तक उसे सफलता भी मिली लेकिन पटेलों को अधिक समय तक उसके द्वारा नियंत्रण में नहीं रखा जा सका। जो पटेल व्यवस्था के बंधन में आ गये थे, उन्होंने ऐसे उपायों की खोज की, जिससे वे वर्तमान व्यवस्था में भी मन-मानी कर सकें। अंत में उन्होंने अपने लिए एक रास्ता निकाल ही लिया। राजस्थान में बोहरा नामक वैश्यों की एक जाति रहा करती है, वे लोग किसानों को कर्ज में रुपये देते हैं और उनसे ब्याज वसूल करते हैं। राज्य के पटेलों ने उन बोहरा लोगों को अपने अधिकार में कर लिया।

राज्य के किसान आवश्कता पड़ने पर बोहरा लोगों से ऋण में रुपये लेते थे और खेतों को बोने के समय अनाज भी लिया करते थे। खेतों का अनाज तैयार होने के पहले बोहरा लोग किसानों से किसी प्रकार का तकाजा नहीं करते थे। लेकिन अनाज तैयार होने पर सूद मिलाकर कुल रुपये किसान लोग अपने महाजन को अदा कर देते थे। इस प्रकार किसानों और बोहरा महाजनों के बीच एक ऐसा व्यवहार प्रचीन काल से चला आ रहा था कि उससे उनके बीच में किसी प्रकार की कटुता न थी। महाजन किसानों पर, ऋण देने के बाद भी किसी प्रकार का अत्याचार इसलिए नहीं करते थे कि फिर उनसे किसान लोग ऋण में रुपये न लेंगे और उनके ऐसा करने से उन महाजनों का व्यवसाय मारा जायगा। कोई किसान अपने महाजन के साथ ऋण की अदायगी में किसी प्रकार की बेईमानी इस लिए न करता था कि उससे फिर कोई महाजन उसको ऋण में रुपये न देगा। इस लिए उन महाजनों और किसानों के बीच बहुत प्रचीनकाल से संतोषजनक व्यवहार चला आ रहा था।

जालिम सिंह ने किसानों से निर्धारित कर के अतिरिक्त अधिक वसूल न करने के लिए पटेलों को सभी प्रकार विवश कर दिया। इस दशा में उन पटेलो ने किसानों को लूटने के लिए एक नया रास्ता निकाला और उन्होंने बोहरा लोगों के व्यवसाय को नष्ट करके स्वयं महाजनों का कार्य आरम्भ किया। उन्होंने यह भी सोच डाला कि जालिम सिंह को हम लोगों पर अप्रसन्न होने का अवसर न मिले, इसलिए उन्होंने एक बीच के मार्ग का आश्रय लिया। किसान लोग अपने खेतों का अनाज तैयार हो जाने पर राज्य-कर की अदायगी किया करते थे। लेकिन अब पटेलों ने एक नया नियम यह बना दिया कि खेतों का अनाज तैयार होने के पहले ही किसानों को राजा की माल-गुजारी अदा कर देना चाहिए।

पटेलों का यह नियम किसानों के लिए अत्यन्त घातक सिद्ध हुँआ। इसलिए कि खेतों के अनाज को छोड़ कर राज्य-कर अदा करने के लिए उनके पास दूसरा कोई साधन न था। इसलिए उनके सामने भयानक संकट पैदा हो गया। अपनी इस विपद के समय ऋण में रुपये लाने के लिए किसान लोग बोहरा महाजनों के पास दौड़ने लगे। पटेलों ने महाजनों से कह दिया कि जब तक किसान लोग मालगुजारी का रुपया अदा न कर दें, वे लोग किसानों को ऋण में रुपये न दें। पटेलों के ऐसा कह देने के बाद उन महाजनों ने किसानों को रुपये देने से इनकार कर दिया। इस दशा में राज्य के किसान पटेलों की शरण में आने के लिए विवश हो गये। अब उनको राज्य में कोई दूसरा स्थान दिखायी न पड़ा, जहाँ से वे रुपये लाकर राजा की मालगुजारी में पटेलों को देते। वे लोग न तो अपने खेतों का उत्पन्न अनाज किसी को बेच सकते थे और न कहीं से ऋण में रुपये ला सकते थे। इस भयंकर परिस्थिति में किसानों ने अपने खेतों का अनाज पटेलों के यहाँ लाकर रखना आरम्भ किया। क्योंकि राज्य में माल-गुजारी के रुपयों में अनाज का लेना बन्द हो गया था और उन को रुपये देने थे। उस एकत्रित अनाज का भाव पटेलों पर निर्भर था, इसलिए कि दूसरा कोई अपने भाव में उस अनाज को खरीद नहीं सकता था। इसलिए मनमानी भाव लगा कर अनाज के रुपये का हिसाब करके पटेलों ने किसानों को रसीद दी और उनसे लिखा लिया कि राज्य-कर देने के लिए हमारे पास रुपये न थे और हमारे इस अनाज को कोई दूसरा लेने वाला न था, इसलिए अपनी इच्छा से हमने अपना अनाज अपने भाव से पटेल को दिया है और उसके रुपये लेकर मैंने राज्य-कर अदा किया है।

पटेलों के किसानों से इस प्रकार लिखा लेने का अभिप्राय यह था कि जिससे जालिम सिंह को यह न मालूम हो कि पटेलों ने किसानों पर किसी प्रकार का अत्याचार किया है। इस प्रकार की नीति का आश्रय लेकर पटेल लोग किसानों से प्रति वर्ष बहुत-सा धन वसूल करके अपना घर भरने लगे। अपने इस उपाय का अवलम्बन करके कोटा के पटेल राजस्थान में अधिक सम्पत्तिशाली समझे जाने लगे।

पटेलों के इस व्यवहार के कारण राज्य के किसानों की अवस्था फिर शोचनीय हो गयी। पटेलों के इस अत्याचार का समाचार जालिम सिंह के कानों में पहुँचा। इसी बीच में पटेलों ने राज्य के खजाने को रुपयों से भर दिया और बहुत-से किसानों की भूमि लेकर जालिम सिंह के अधिकार में दे दी थी। इस लिए कुछ दिनों तक जालिम सिंह ने पटेलों के अत्याचारों पर बहुत दिनों तक सुनी-अनसुनी की। राज्य की यह अवस्था सम्बत् १८६७ सन् १८११ ईसवी तक चलती रही। इसके बाद एकाएक जालिम सिंह ने राज्य के समस्त पटेलों को कैद करने का आदेश दिया। उनके कैद हो जाने पर पटेलों ने अन्याय करके जो बहुत-सा धन एकत्रित किया था, उनकी समस्त सम्पत्ति लेकर जालिम सिंह ने राज्य के खजाने में शामिल कर दी। उसके बाद उनके अपराधों का निर्णय करके उन पर लम्बे-लम्बे जुर्माने किये गये। उन पटेलों में केवल एक ने अपने पैदा किये हुए धन से सात लाख रुपये किसी दूसरे-राज्य में भेज दिये। केवल इसी एक उदाहरण से अनुमान किया जा सकता है कि कोटा के पटेलों ने किसानों पर अन्याय करके कितना अधिक धन एकत्रित किया था और उनके अत्याचारों से वहां के किसानों का किस प्रकार सर्वनाश हुआ था।

जालिम सिंह ने जब देखा कि वर्तमान नयी व्यवस्था के कारण किसानों की अवस्था और भी अधिक शोचनीय हो गयी है तो उसने अपने राज्य में फिर से प्राचीन व्यवस्था को लागू किया और नयी कायम की हुई व्यवस्था को उसने हमेशा के लिए खतम कर दिया।

चौहत्तरवाँ परिच्छेद

जालिम सिंह के द्वारा प्रचलित नयी व्यवस्था पर किसानों का संतोष—पटेलों की कूटनीति का दुष्परिणाम—जालिम सिंह की चेष्टा—पटेलों का लगातार विश्वासघात—राज्य के नियंत्रण हीन पटेल—किसानों की बढ़ी हुई गरीबी—प्रजा के भयानक कष्ट—जालिम सिंह के अधिकार में विस्तृत भूमि—राज्य की अच्छी भूमि जालिम सिंह के अधिकार में—कोटा-राज्य की उपजाऊ भूमि—हलों और बैलों का प्रबंध—खेती की पैदावार—अनाज रखने की व्यवस्था—अनाज पर कर—जालिम सिंह की वार्षिक आमदनी।

जालिम सिंह के शासन काल में कोटा राज्य के किसानों की जो शोचनीय अवस्था हो गयी थी, उसका वर्णन पिछले परिच्छेद में किया जा चुका है। उसमें लिखा जा चुका है कि खेती की दुरवस्था को जानने और समझने के बाद जालिम सिंह ने राज्य के पुराने नियमों को हटाकर एक नयी व्यवस्था कायम की थी और उसके द्वारा राज्य के पटेलों को नियंत्रण में लाकर उसने किसानों को सुभीता देने की चेष्टा की थी। परन्तु पटेलों की कूटनीति के कारण जालिम सिंह को अपनी

नवीन व्यवस्था में सफलता न मिली और उसे अपनी कायम की हुई व्यवस्था को तोड़कर राज्य के नये नियमों का फिर से उसको आश्रय लेना पड़ा। यह सब पिछले परिच्छेद में लिखा जा चुका है।

कोटा-राज्य में नयी व्यवस्था चालू होने पर वहाँ के किसानों को इस बात का विश्वास हो गया था कि अब हम लोगों के साथ पटेलों के अन्याय न होंगे और हमारे जीवन की अधोगति शीघ्र ही दूर हो जायगी। वहाँ के किसानों का उस समय ऐसा सोचना स्वाभाविक ही था। क्यों कि उनको इस बात का ज्ञान न था कि पटेल लोग अपनी कूटनीति से इस नयी व्यवस्था को पहले से भी भयानक कर देंगे। इसलिए उन्होंने पुराने नियमों के हटने पर अपने अच्छे दिनों का सपना देखा था।

पटेलों को नियंत्रण में लाकर जालिम सिंह ने जब नयी व्यवस्था चालू की तो कुछ दिनों तक खेती की दशा अच्छी रही और सम्पूर्ण राज्य में लहराती हुई खेती को देखकर कोई भी बाहर का मनुष्य कोटा राज्य के किसानों की अच्छी दशा का अनुमान लगा सकता था। लेकिन एक बाहरी आदमी को इस बात का कैसे ज्ञान होता कि इन लहराते हुए हरे-भरे खेतों की समस्त पैदावार, भूमि का प्रबन्ध करने वाले पटेलों के घरों में चली जायगी और उसका कुछ भाग रुपयों के रूप में राज्य के खजाने में जमा हो जायगा।

अपनी व्यवस्था में असफल होने के बाद जालिम सिंह ने राज्य के पुराने नियमों का फिर से आश्रय लिया था। वह पटेलों को नियंत्रण में न रख सका था। किसी औषधि के काम न करने पर जालिम सिंह को शांत हो जाना पड़ा। राज्य के पटेल फिर से अनियंत्रित होकर भूमि का प्रबन्ध करने लगे। इसका परिणाम यह निकला कि राज्य के किसानों की दशा लगातार बिगड़ती गयी। वे इस योग्य न रह गये कि वे खेती करके राज्य का कर अदा कर सकते और अपने परिवार को जीवित भी रख सकते। इस दशा में निरुपाय होकर किसानों ने खेती का काम छोड़ना आरम्भ किया और वे वेतन लेकर किसी प्रकार अपना काम चलाने की कोशिश करने लगे। पटेलों ने ऐसे किसानों की भूमि को लेकर जालिम सिंह के अधिकार में दे दिया और जालिम सिंह उन सभी खेतों में स्वयं खेती कराने लगा।

सम्वत् १८४० सन् १७८४ ईसवी में जालिम सिंह के उसकी निजी भूमि पर लगभग तीन सौ हल चलते थे परन्तु इसके कुछ ही वर्षों के बाद उसके हलों की संख्या आठ सौ तक पहुँच गयी। जालिम सिंह ने पुराने नियमों को तोड़कर और नयी व्यवस्था चालू करके किसानों से राज्य-कर में अनाज के स्थान पर रुपये लेना आरम्भ किया, उस समय उसके हलों की संख्या पहले से दूनी होकर एक हजार छै सौ तक पहुँच गयी थी। सन् १८२१ ईसवी में जालिम सिंह की अपनी भूमि पर चार हजार हल चलते थे और उनमें सोलह हजार बैल काम करते थे। जालिम सिंह के वंश के लोगों के अधिकार में कितनी भूमि थी और उसमें कितने हल चलते थे, उनकी संख्या जालिम सिंह के हलों की संख्या से बिलकुल अलग थी।

जालिम सिंह ने कोटा-राज्य में खेती के द्वारा अपरिमित सम्पत्ति पैदा की थी। वह अपनी इस सम्पत्ति के द्वारा राजस्थान के राजाओं में सब से अधिक सम्पत्तिशाली समझा जाता था। लेकिन उसकी इस उन्नति ने कोटा राज्य के किसानों और दूसरे लोगों को न केवल निर्धन, बल्कि भिखारी बना दिया। अपनी भीषण दरिद्रता के कारण राज्य के अगणित कृषकों ने खेती का काम बन्द करके नौकरियों का आश्रय लिया था। इस प्रकार जो भूमि किसानों से छूटती जाती थी, उस पर जालिम सिंह का अधिकार होता जाता था।

जालिम सिंह ने राज्य की लगभग सम्पूर्ण अच्छी भूमि पर अधिकार कर लिया था और उसमें उसकी खेती होने लगी थी। उसकी इस नीति से कोटा का राज्य पक्ष जितना ही सम्पन्न और सम्पत्तिशाली बन गया था, दूसरे पक्ष में सभी प्रकार की प्रजा से लेकर किसानों तक— सभी लोग भयानक दरिद्र हो गये। इसके फलस्वरूप राज्य की प्रजा भीषण कठिनाइयों का सामना कर रही थी।

कोटा के किसानों को अपनी जन्मभूमि से प्रेम था। इसीलिए गरीबी और कठिनाई में रह कर भी उन्होंने अपने राज्य को नहीं छोड़ा। यह बात जरूर है कि जालिम सिंह के कठोर शासन के कारण प्रजा के बहुत-से लोग राज्य छोडकर चले गये थे। परन्तु राजस्थान के अनेक राज्यों में मराठों की लूट-मार उन दिनों में हो रही थी। इसलिए जो लोग कोटा-राज्य से भागकर गये थे, वे लोग कहीं आश्रय न पा सके और उन्हें फिर अपने राज्य में लौटकर आ जाना पड़ा। ×

कोटा-राज्य के भूमि की मिट्टी उपजाऊ और बहुत कड़ी है। वह आसानी से टूटती नहीं है। इसलिए जालिम सिंह ने कोकण राज्य की तरह अपने यहाँ भी दो हलों को एक साथ प्रयोग में लाने के लिए प्रबन्ध कर दिया था और उन हलों में जो बैल जोते जाते थे, वे उत्तम श्रेणी के थे। जालिम सिंह ने अपनी खेती के लिए अच्छे बैलों के रखने का प्रबन्ध किया था और वे बैल झालरापाटन के मेले में खरीदे गये थे। मारवाड़ और मरुभूमि के दूसरे स्थानों में जो बैल शक्तिशाली समझे जाते थे, जालिम सिंह ने वहाँ से भी बैल खरीदकर मँगवाये थे। परन्तु कोटा की भूमि में वे उपयोगी साबित नहीं हुए, इसलिए वे बेच दिये गये।

कोटा-राज्य की भूमि में एक वर्ष में दो बार खेती होती है और एक हल पर सौ बीघा भूमि की खेती की जा सकती है। इस प्रकार हजार हलों से लेकर एक बार में चार लाख बीघा की खेती की जा सकती है और दोनों फसलों में आठ लाख बीघा की खेती हो जाती है, जो अँगरेजी हिसाब से तीन लाख एकड़ भूमि की होती है। जिस भूमि में एक बीघे में सात मन से कम गेहूँ और बाजरा पैदा होता है तो उस मिट्टी को अच्छा नहीं समझा जाता। इस हिसाब से प्रति बीघे चार मन की पैदावार मान ली जाय तो आठ लाख बीघों में बत्तीस लाख मन गेहूँ और बाजरा पैदा हो सकता है। जालिम सिंह को केवल खेती की पैदावार से बत्तीस लाख रुपये से कम की आमदनी नहीं होती थी। इस खेती के कार्य में जालिम सिंह का जो खर्च पड़ता है, वह इस प्रकार है :

पशुओं के आहार और किसानों के वेतन आदि में		...	चार लाख रुपये
बीज के खरीदने में	...	...	छै लाख "
पशुओं के खरीदने में	...	...	अस्सी हजार"
फुटकर खर्च	...	...	बीस हजार "
			सब ग्यारह लाख रुपये

× बूँदी राज्य में किसानों का अपनी भूमि पर पैतृक अधिकार था। वहाँ पर किसानों के इस अधिकार को नष्ट नहीं किया जा सकता था। अपने इस अधिकार के कारण वहाँ के किसान अपनी भूमि को बेच सकते थे और रेहन कर सकते थे। बूँदी राज्य में राज्य कर न वसूल हो सकने की दशा में भी किसानों की भूमि राजा ले नहीं सकता था और न उनको उनके पैतृक अधिकारों से किसी प्रकार वंचित किया जा सकता था। किसान अपनी भूमि को अपनी इच्छानुसार किसी दूसरे किसान को दे देने का स्वयं अधिकारी था। किसी अपराध करने पर यदि बूँदी-राज्य का कोई किसान राज्य से निकाल दिया जाता था तो भी उसकी भूमि पर उसका अधिकार कायम रहता था।

इस हिसाब से साफ प्रकट होता है कि जालिम सिंह को खेती से जितनी आमदनी होती थी, खर्च उसका लगभग एक तिहाई होता था।

कोटा-राज्य में अनाज रखने के लिए बहुत अच्छी व्यवस्था है। उसके लिए ऊँची जमीन पर खत्ती बनाई जाती है, और उन खत्तियों में नीचे घास और भूसा डाल कर उसके ऊपर अनाज रखा जाता है। खत्ती भर जाने पर उसके ऊपर फिर भूसा रखा जाता है और उसके ऊपर बहुत मोटी मिट्टी की तह लगा कर इस प्रकार मजबूत कर दिया जाता है कि अधिक से अधिक वर्षा के होने पर भी खत्तियों के अनाज को किसी प्रकार हानि न पहुँच सके। इस तरह वहाँ की खत्तियों में जो अनाज रखा जाता है, वह कई-कई वर्षों के बाद भी खराब नहीं होता। जालिम सिंह अपने अधिकार में बहुत-सा अनाज सुरक्षित रखता है और अकाल के पड़ने अथवा किसी प्रकार अनाज मंहगा होने पर उसका वह सुरक्षित अनाज बाहर निकाला जाता है और समय के अनुसार काफी मंहगा बेचा जाता है। अकाल अथवा किसी दूसरे कारण से फसल के खराब होने पर जालिम सिंह एक-एक वर्ष में साठ-साठ लाख मन तक अनाज बेचा करता है और उन दिनों में उसकी ये सुरक्षित खत्तियाँ सोने की खानों के रूप में हो जाती हैं।

सम्वत् १८६० सन् १८०४ ईसवी में मराठा सेनापति होलकर ने भरतपुर राज्य और राजस्थान के दूसरे हिस्सों में भयानक रूप से लूट की थी। उसके आक्रमण से चारों तरफ की खेती बहुत-कुछ नष्ट हो गयी थी और एक अकाल-सा पड़ा था। उस समय कोटा-राज्य के अनाज से वहाँ के पीड़ित राज्यों को बड़ी सहायता मिली थी और जालिम सिंह ने अपना सुरक्षित अनाज बेचकर एक करोड़ रुपये वसूल किये थे।

कोटा-राज्य के हिसाब के कागजों को देख कर मालूम हुआ कि यहाँ के राजा को प्रजा से कर में जो रुपये वार्षिक मिलते हैं, उनकी संख्या पच्चीस लाख रुपये तक है। जालिम सिंह ने स्वयं इस बात को स्वीकार किया है कि मेरी यह आमदनी उस भूमि से प्रति वर्ष होती है, जिसे मैंने अपनी समझ कर किसानों को दे रखी है।

सम्बत् १८६५ में जालिम सिंह ने अपने राज्य में उस अनाज पर एक कर लगाया था, जो राज्य से बाहर जाता था। उस कर के कारण राज्य में बहुत अन्याय होने लगे थे। पहले यह कर बेचने वालों पर लगा था। लेकिन बाद में राज्य के कुछ लोगों के परामर्श से वह कर खरीदने वालों पर भी लागू कर दिया गया। केवल इस कर से वर्ष में जालिम सिंह को दस लाख रुपये की आमदनी होने लगी। यह कर एक ही अनाज के ऊपर चार-चार पाँच-पाँच बार तक वसूल होता था। इसके कारण प्रजा की कठिनाइयां अधिक बढ़ गयीं और लोगों की गरीबी बढ़ने लगी। साधारण आदमियों से लेकर सामन्तों तक—यह कर सभी को देना पड़ता था। इस कर के वसूल करने में राज्य के कर्मचारियों ने भयानक अत्याचार किये। उस कर के वसूल करने का कोई नियम न था। वसूल करने वाले अपनी इच्छा से उसे कम और अधिक कर देते थे और इसके विरुद्ध राज्य में कोई सुनवायी न थी। अंगरेजों के साथ कोटा-राज्य की संधि होने के दिनों में इसके अत्याचार बहुत बढ़े हुए थे। कर वसूल करने वालों ने जालिम सिंह की आज्ञा के विरुद्ध लोगों के साथ इतना अधिक अत्याचार किया था कि वे जब चाहते थे, राज्य में इस कर को वसूल कर लेते थे। यह भी होता था कि जालिम सिंह के आदेश देने पर कर वसूल करने की कर्मचारी एक सूची तैयार कर लेते थे और उसके अनुसार गरीब और अमीर सभी से वह कर वसूल कर लिया जाता था। उस सूची के बनाने में किसी नियम का प्रयोग नहीं होता था। राज कर्मचारी जिस पर जितना चाहते थे, कर लगा देते थे और बड़ी कठोरता के साथ वह कर वसूल कर लिया जाता था।

उस कर से कोई भी आदमी राज कर्मचारियों की इच्छा के बिना बच नहीं सकता था। उसमें शत्रु और मित्र का कोई भेद नहीं रहता था। जिस पर जो कर लगा दिया जाता था, उसको उतना देना पड़ता था। इस कर में जालिम सिंह के एक पुराने मित्र पण्डित बेलाल को एक बार में पच्चीस लाख रुपये, एक सामन्त की अधीनता में रहने वाले किसी एक आदमी को पाँच हजार रुपये और किसी मन्त्री को भी पाँच हजार रुपये देने पड़े थे। राज्य के महाजनों में बहुतों को चार-चार और पाँच-पाँच हजार रुपये एक-एक बार में देने पड़े थे। इस करके वसूल करने में राज कर्मचारियों के द्वारा बहुत अत्याचार बढ़ गये और राज्य में भयानक अशान्ति पैदा हो गयी। प्रजा के असन्तोषपूर्ण चीत्कार करने से कोटा के राजा को बहुत दुखी होना पड़ा और उसने जालिम सिंह के विरुद्ध बहुत-सी बातें सोच डालीं।

कोटा राज्य के साथ संधि करने के बाद अंगरेजी सरकार ने राज्य के सभी लोगों के साथ एक-सा व्यवहार करना आरम्भ किया। अंगरेजों के इस व्यवहार का प्रभाव जालिम सिंह पर भी पड़ा। उसके द्वारा जो अत्याचार राज्य में बढ़ रहे थे, वे लगातार इसलिए कम होने लगे कि जालिम सिंह को अंगरेजी सरकार के अप्रसन्न होने का भय मालूम हुआ। इस दशा में जो कर अनाज की बिक्री पर लगाया गया था, वह बेचने वाले किसानों और खरीदने वालों पर ही एक निर्धारित नियम के साथ वसूल होने लगा और बाकी लोगों को उससे मुक्ति मिल गयी। इस दशा में भी उस कर से राज्य को पाँच लाख रुपये वार्षिक वसूल होने लगे थे।

राज्य की समस्त भूमि से जालिम सिंह को वार्षिक पचास लाख रुपये की आमदनी होती थी। इसके अतिरिक्त जो भूमि उसके परिवार के लोगों के अधिकार में थी, उससे पाँच लाख रुपये की आमदनी अलग से होती थी, जो उन्हीं लोगों के खर्च के काम में आती थी।

जालिम सिंह ने विविध साधनों से चालीस वर्ष के शासन में जिस प्रकार कोटा में अपना आधिपत्य कायम किया था, उसको देखकर दूसरे देशों के लोग न जाने क्या अनुमान कर सकते हैं। एक नेत्र से हीन होकर अस्सी वर्ष की आयु में उसने शासन में जो सफलता प्राप्त की, उसको देख कर कोई भी सहज ही उसकी प्रशंसा कर सकता है। उसने दूसरों के देखने में कृषि के व्यवसाय में अद्भुत सफलता पायी, व्यवसाय के क्षेत्र में उसने अत्यधिक सम्पत्ति एकत्रित की और प्रजा के ऊपर कर लगा कर उसने अपरिमित सम्पत्ति एकत्रित करने में अपनी बुद्धिमत्ता का परिचय दिया। इन सभी बातों में कोई भी उसकी दूरदर्शिता की सराहना कर सकता है। परन्तु अपने इन गुणों में वह कहाँ तक प्रशंसा का अधिकारी था, यह एक प्रश्न अलग से उसके सम्बन्ध में पैदा होता है, जो विचारणीय है।

इसमें संदेश नहीं कि जालिम सिंह ने कृषि के कार्य में, व्यावसायिक नीति में और सम्पत्ति के एकत्रित करने में अपनी अद्भुत प्रतिभा का प्रदर्शन किया। उसने इतना ही नहीं किया, बल्कि उसने कोटा राज्य में अपने शासन को सुदृढ़ बनाया। राज्य की रक्षा करने के लिए अपने अधिकार में उसने बीस हजार सैनिकों की सेना रखी थी। उस सेना को उसने युद्ध की अच्छी शिक्षा दी थी। राज्य के दुर्गों में ऐसी व्यवस्था कर दी थी, जिससे वे पहले की अपेक्षा बहुत काम के बन गये। उन दुर्गों में सभी प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों के साथ बहुत-सी युद्ध सामग्री एकत्रित की थी। राज्य में कहीं पर कोई विरोधी कार्य न हो सके, इसके लिए उसने गुप्तचरों का अच्छा प्रबन्ध किया। राज्य में अनाज के भावों पर वह नियन्त्रण रखता था और दूसरे राज्यों के भावों को देखकर वह अपने यहाँ के भावों में तुरन्त परिवर्तन कर देता था।

जालिम सिंह ने राज्य के अनेक स्थानों पर बहुत से बाग लगवाये थे। उन बागों के फल राज्य के विभिन्न बाजारों में बिकने के लिए जाते थे।

जालिम सिंह ने कोटा के शासन में कुछ इस प्रकार की व्यवस्था की थी, जो न्यायपूर्ण होने पर भी लोगों को आश्चर्यजनक मालूम हो सकती है। भिक्षा माँगने वाले भिखारियों, साधुओं और संन्यासियों पर उसने कर लगाया था। जो विधवा स्त्री अपना दूसरा विवाह करना चाहती थी, उसको राज्य-कर में बहुत-सा धन देना पड़ता था। इस प्रकार जो उसने नये कर लगाये थे, उनमें कुछ का विरोध होने से उसने उनको वापस ले लिया था।

राजस्थान के प्रत्येक राज्य में प्राचीन काल से भाटों और कवियों का आदर होता आया है। विवाह जैसे कार्यों के अवसरों पर राज्य की तरफ से उनको बहुत सा धन दिया जाता है। इस प्रकार के धन को पाकर भाट और कवि लोग अपनी कविताओं के द्वारा दान देने वाले के यश का गान करते हैं। इस प्रकार का प्रचार सम्पूर्ण राजस्थान में अब तक पाया जाता है। लेकिन जालिम सिंह इन भाटों और कवियों की कविताओं में प्रशंसा को सुन कर प्रसन्न नहीं होता था। उसका कहना था कि इन कवियों की कविताओं में एक भी सत्य नहीं होता और वे झूठी प्रशंसा के गीत गाया करते हैं। उसकी इस बात का उत्तर देते हुए एक कवि ने कहा : "सत्य का आदर बहुत कम होता है। कोई सत्य बात सुनना नहीं चाहता। यदि आप पसन्द करते हैं तो मैं आप को सुनाता हूँ।"

कवि ने यह कर जालिम सिंह से अपने अपराध के लिए क्षमा की प्रार्थना की और उसने जालिम सिंह के चरित्र के सम्बन्ध में सत्य घटनाओं को लेकर कविता का सुनाना आरम्भ किया। उसे सुन कर जालिम सिंह अत्यधिक क्रोधिक हुआ और उसने कवि के अधिकार की समस्त पैतृक भूमि जब्त कर ली और उसके बाद उसने किसी भी कवि को अपने यहाँ आने से मना कर दिया।

राजस्थान के राजा हिन्दू-धर्म के अनुसार ब्राह्मणों का अधिक सम्मान करते हैं और उनके अपराध करने पर भी उनको दण्ड देने का साहस नहीं करते। परन्तु जालिम सिंह के मनोभाव हिन्दू-धर्म का समर्थन करने पर भी इससे भिन्न है। उसने अपराध करने पर ब्राह्मणों के साथ कभी दया नही की। उसके राज्य में जब कोई ब्राह्मण राजनीतिक अपराध करता है, तो जालिम सिंह दूसरे लोगों की तरह उसको भी दण्ड देता है।

जालिम सिंह कोटा का राजा नहीं था। लेकिन राजा गुमान सिंह के मरने पर और उसके बालक उम्मेद सिंह के सिंहासन का अधिकारी होने पर जालिम सिंह—जो पहले उस राज्य का सेनापति था—बालक उम्मेद सिंह का संरक्षक बना दिया गया था। इस प्रकार वह राजा का एक प्रतिनिधि था। राजा गुमान सिंह के अंतिम दिनों में कोटा-राज्य की सीमा बहुत सीमित थी। लेकिन जालिम सिंह ने कितने ही नगरों और ग्रामों को मिलाकर उस राज्य की सीमा का विस्तार कर लिया था। एक प्रतिनिधि की हैसियत से जब उसने कोटा का शासन पाया, उस समय राज्य का खजाना सम्पत्ति से बिलकुल खाली था और राज्य पर बाईस लाख रुपये का ऋण था। उन दिनों में राज्य के दुर्ग टूटे-फूटे थे और राज्य की सेना बहुत निर्बल थी। जालिम सिंह ने बहुत-सा धन खर्च करके टूटे-फूटे दुर्गों की मरम्मत करायी और उनमें आवश्यकता के अनुसार युद्ध के अस्त्र-शस्त्र एकत्रित किये। राज्य की चार हजार अश्वारोही सेना के स्थान पर उसने बीस हजार सैनिकों की सेना कर दी और अपनी इस विशाल सेना को युद्ध की अच्छी शिक्षा दी। उसने अपने अधिकार

में एक सौ तोपें रखीं। राज्य के सामन्तों की अधीनता में जो सेनायें थीं, वे उसकी सेना के अतिरिक्त थीं।

इतना सब होने पर भी कोटा-राज्य का शासन क्या प्रशंसनीय कहा जा सकता है? राजा गुमान सिंह ने क्या यही करने के लिए जालिम सिंह को उम्मेद सिंह का संरक्षक और प्रतिनिधि बनाया था? बीस हजार सैनिकों की शक्तिशाली सेना रखकर क्या जालिम सिंह कोटा-राज्य के हाड़ा राजपूतों की मर्यादा को बढ़ाया? क्या इसी को शासन कहते हैं? क्या इसी प्रकार का शासन राज्य की प्रजा में सुख और संतोष उत्पन्न करता है? संसार के उन्नत देश क्या इसी को राज्य की महानता कहेंगे? जालिम सिंह ने राज्य में टैक्सों की भरमार करके क्या राज्य की प्रजा का कल्याण किया था? खेती के सम्बन्ध में उसकी नीति से किसानों की कैसी अधोगति हो गयी थी? हम इस बात को मानते है कि कुछ समय के लिए जालिम सिंह की नीति और व्यवस्था कोटा राज्य के लिए आवश्यक कही जा सकती है। न केवल उसके मिले हुए अधिकारों की रक्षा करने के लिए बल्कि आक्रमणकारियों को लूटमार से राज्य की प्रजा को सुरक्षित रखने के लिए। किसी अर्थ में हम इस बात को मानने के लिए भी तैयार हैं कि जालिम सिंह ने कोटा राज्य के हाड़ा राजपूतों के गौरव की रक्षा की थी। लेकिन जहाँ पर राज्य की प्रजा के सुख-संतोष का प्रश्न पैदा होता है, जालिम सिंह के शासन की किसी प्रकार प्रशंसा नहीं की जा सकती। उसने विभिन्न साधनों से व्यक्तिगत सम्पत्ति जितनी ही अधिक पैदा की थी, राज्य की प्रजा का जीवन उतना ही संकटमय बन गया था। वह राज्य के कर्मचारियों पर नियंत्रण रखने में पूरी तौर पर असफल हुआ था, जो किसी प्रकार अच्छे शासन का प्रमाण नहीं देता। उसने सम्पत्ति से राज्य का खजाना भरा था, दुर्गों को सुदृढ़ बनाया था। परन्तु उसकी इस व्यवस्था का राज्य की प्रजा पर क्या प्रभाव पड़ा था, क्या यह विचारणीय नहीं है? अच्छा वेतन पाने वाली शिक्षित और शक्तिशाली सेना राज्य की रक्षा के लिए आवश्यक थी, परन्तु दीन और दरिद्र प्रजा के असंतुष्ट होने के कारण वह सेना आवश्यकता पड़ने पर राज्य की रक्षा करने में कहां तक सफल हो सकती थी, इस पर कुछ नहीं कहा जा सकता।

पछत्तरवाँ परिच्छेद

जालिम सिंह की शासन-नीति–लुटेरे मराठों से बहुत दिनों तक सुरक्षित कोटा-राज्य–राज्य में जालिम सिंह का शासन-प्रबन्ध–अन्य राजाओं के साथ जालिम सिंह का व्यवहार–उसकी व्यावहारिक कुशलता–जालिम सिंह का स्वभाव–वह सब को प्रसन्न रखना जानता था–अँगरेजी सेनापति के साथ जालिम सिंह का व्यवहार–अंगरेज सेनापति का असंतोष–अंगरेजी सेना की सहायता में जालिम सिंह–होलकर की कैद में सेनापति बख्शी–कोटा में होलकर का आक्रमण–कोटा की उन्नति–उम्मेद सिंह के साथ जालिम सिंह का व्यवहार।

जालिम सिंह के शासन काल का जो वर्णन किया है, उसको दो भागों में विभाजित किया जा सकता है—राज्य का बाहरी विभाग और भीतरी विभाग। अपने सुभीते के लिए मैंने उसके शासन के दो विभाग किये हैं।

कोटा-राज्य भारतवर्ष के मध्य में बसा हुआ है। बहुत दिनों तक कोटा-राज्य के आस-पास के राज्यों में अनेक प्रकार के अत्याचार और विनाश होते रहे। आक्रमणकारियों ने उन राज्यों मे जाकर सभी प्रकार के अन्याय किये, उनको लूटा और विध्वंस किया। कोटा-राज्य की सम्पत्ति ने भी उन आक्रमणकारियों को अपनी ओर आकर्षित किया और उन लुटेरों ने इस राज्य पर भी आक्रमण करने की तैयारियाँ कीं। परन्तु जालिम सिंह ने कोटा राज्य में इस प्रकार का शासन आरम्भ किया कि आधी शताब्दी तक लुटेरे मराठों को उसके राज्य की तरफ आगे बढ़ने का साहस न हुआ। यद्यपि इस दीर्घकाल में राजस्थान के लगभग सभी राज्य लूटे गये, उनका विनाश हुआ और अनेक प्रकार की विपदाओं का उनको सामना करना पड़ा। परन्तु कोटा का राज्य इस प्रकार के विनाश से बचा रहा। इसका कारण जालिम सिंह का शासन था, जिसको उसने अपनी पच्चीस वर्ष की अवस्था में आरम्भ किया था और बयासी वर्ष की आयु तक सफलतापूर्वक चलाया।

राजस्थान के सभी राजाओं के साथ जालिम सिंह के सम्बन्ध थे। उसने बड़ी बुद्धिमानी के साथ सबसे अपने सम्बन्ध जोड़ रखे थे। प्रत्येक राजा के दरबार में उसका एक प्रतिनिधि रहता था। अपने प्रतिनिधियों का चुनाव वह बड़ी बुद्धिमानी के साथ करता था। उसका जो प्रतिनिधि जिस राज्य में रहता था, वहाँ की परिस्थितियों से वह जालिम सिंह को सदा परिचित कराता रहता था। यह कई बार लिखा गया है कि जालिम सिंह दूरदर्शी और राजनीति कुशल था। आवश्यकता पड़ने पर वह सभी प्रकार का व्यवहार कर लेता था और विरोधियों को भी एक बार अपना मित्र बना लेना वह खूब जानता था। उसने लुटेरे मराठों और पिण्डारी लोगों के सेनापतियों के साथ भी चाचा और भतीजे के सम्बन्ध बना रखे थे। किसी भी अवस्था में जालिम सिंह अपने उद्देश्य को सफल बनाने के लिए सभी प्रकार के दाँव पेंच जानता था। उसकी सफलता का बहुत कुछ यही कारण था।

जालिम सिंह स्वभाव का कठोर और क्रोधी था। परन्तु समय और आवश्यकता के अनुसार वह अपने आपको सहज ही बदल देता था। बहुत स्वाभिमानी होने पर भी वह जरूरत के अनुसार विनम्र बन जाता था। वह प्रभावशाली पत्र लिखना और बातचीत करना भली-भाँति जानता था। उसमें यह गुण था कि बहुत विनम्र होने पर भी वह स्वाभिमान से काम लेता था और स्वाभिमानी होने पर भी विनम्र हो जाना खूब जानता था। वह पूर्ण रूप से निर्भीक था। जो कुछ निर्णय करता था, निडर होकर उसके अनुसार काम करता था। सन् १८०६ और १८०७ ईसवी में तीन राजाओं में संघर्ष पैदा हुआ। तीनों की तरफ से युद्ध की तैयारियाँ होने लगीं और उन तीनों ने जालिम सिंह से युद्ध के लिए सहायता माँगी। बुद्धिमान जालिम सिंह ने उन तीन में से एक की भी सहायता न की और तीनों को उसने अपनी तरफ से संतुष्ट रखा। उस अवसर पर उसकी यह सफलता उसके श्रेष्ठ राजनीतिज्ञ होने का स्पष्ट प्रमाण देता है।

मराठा सेनापति होलकर पर आक्रमण करने के लिए जिस समय अंगरेजी सेना को लेकर जनरल मॉनसन मध्य भारत की ओर रवाना हुआ, उस समय जालिम सिंह ने बड़ी दूरदर्शिता से काम लिया। वह अँगरेजों की शक्ति पर विश्वास करता था। इसलिए अंगरेजी सेना के कोटा-राज्य में आते ही उसने सभी प्रकार उसका स्वागत किया। परन्तु होलकर के साथ युद्ध करते हुए सेनापति मॉनसन के भागने पर जालिम सिंह ने परिस्थिति के अनुसार अपने आपको बदल दिया। उस समय जब सेनापति मॉनसन ने कोटा-राज्य से होकर निकल जाने के लिए उससे प्रार्थना की तो जालिम सिंह ने उसकी माँग को अस्वीकार करते हुए उत्तर दिया : "इस राज्य में आपकी सेना

के प्रवेश करने से अराजकता पैदा हो जाने की पूरी सम्भावना है। इसलिए आप अपनी सेना को लेकर कोटा-राज्य की सीमा से निकल जावें। मैं उस समय सभी प्रकार आपकी सेवा और सहायता करूंगा और मेरे ऐसा करने पर यदि आप का शत्रु इस राज्य पर आक्रमण करेगा तो मैं उसके साथ युद्ध करूंगा।"

सेनापति मानसन जालिम सिंह के इस उत्तर को पाकर कोटा-राज्य में नहीं गया। वह बूंदी और जयपुर-राज्य में से होकर निकला और सेनापति लेक के पास पहुँच कर होलकर के युद्ध में होने वाली पराजय उसने उसको बतायी। होलकर के साथ होने वाले युद्ध में राजस्थान के जिन राजाओं ने उसकी जैसी सहायता की थी, उसमें उसने अनेक परिवर्तन किये और अपनी मर्यादा को बनाये रखने के लिए उसने बहुत सी बातें घटा-बढ़ा कर कहीं। सेनापति मॉनसन ने जालिम सिंह पर भी अपराध लगाया और सेनापति लेक को समझाते हुए उसने कहा कि होलकर के साथ होने वाले युद्ध में जालिम सिंह ने खुलकर हमारी सहायता नहीं की। जनरल मॉनसन ने सेनापति लेक से जालिम सिंह के सम्बन्ध में यह बात बिलकुल निराधार कही। वास्तव में जालिम सिंह ने जनरल मॉनसन के प्राणों की रक्षा करने के लिए पूरी शक्ति लगा कर सहायता की थी। जालिम सिंह के आदेश के अनुसार ही कोइला के सामन्त लखन ने उस समय मराठों के साथ युद्ध किया था और अँगरेजों की सहायता करते हुए वह युद्ध में मारा गया।

अँगरेजी सेनापति मॉससन की तरफ से कोइला के सामन्त ने मराठा होलकर के साथ जो युद्ध किया था, उसमें अपनी सेना के बहुत-से आदमियों के साथ वह सामन्त मारा गया और जालिम सिंह का सेनापति बख्शी कैद कर लिया गया। होलकर ने बख्शी से दस लाख रुपये का एक कागज लिखा लिया और यह कहकर उसे जालिम सिंह के पास भेजा कि अगर वह दस लाख रुपये जालिम सिंह से लाकर हमें दे देगा तो हम उसको छोड़ देंगे। लेकिन अगर ये रुपये जालिम सिंह ने न भेजे तो मैं कोटा राज्य पर आक्रमण करूंगा और सभी प्रकार राज्य का विनाश करूंगा।

सेनापति बख्शी ने जालिम सिंह के पास जाकर दस लाख रुपये देने की बात कही। उसको सुनकर जालिम सिंह ने बख्शी को होलकर के पास भेज दिया और दस लाख रुपये से साफ-साफ इनकार करके उसने कहला भेजा कि होलकर को जो कुछ करना हो करे।×

जालिम सिंह का उत्तर पाकर सेनापति होलकर अपने शिविर से रवाना हुआ और कोटा राज्य के पास जाकर आक्रमण करने के लिए मुकाम किया।

होलकर की सेना के आ जाने का समाचार जालिम सिंह ने सुना। उसने राजधानी की चारों ओर की दीवारों पर अपनी तोपें लगा देने को तुरन्त आदेश दिया। इसके बाद उसने युद्ध की तैयारी आरम्भ कर दी। कोटा राज्य के आस-पास पहाड़ी जातियों के जो लोग रहते थे, जालिम सिंह की आज्ञानुसार उन लोगों ने संगठित होकर होलकर की सेना पर आक्रमण करने और उसके शिविर में लूटमार करने की तैयारी की।

कोटा राज्य के समीप पहुँच कर और मुकाम कर सेनापति होलकर ने बख्शी का लिखा हुआ दस लाख रुपये का कागज जालिम सिंह के पास भेजा। जालिम सिंह ने उस रुपये की अदायगी से

× जहाँ तक मुझे मालूम है, होलकर के द्वारा गिरफ्तार होने के बाद बख्शी ने अपमान अनुभव करके विष खालिया और अपनी आत्महत्या कर ली।

बिलकुल इनकार कर दिया। इस दशा में दोनों ओर से युद्ध का होना अनिवार्य हो गया। लेकिन होलकर की तरफ से उसकी सेना का एक अधिकारी इसके बाद भी युद्ध न होने की चेष्टा करता रहा। उसने जालिम सिंह के पास कहला भेजा कि जालिम सिंह और होलकर की भेंट से होने वाला संघर्ष मिट सकता है। जालिम सिंह होलकर का विश्वास नहीं करता था। इसलिए उसने उत्तर में कहला भेजा कि होलकर के साथ मेरी कोई बातचीत चम्बल नदी के जल में नौका पर बैठ कर हो सकती है। होलकर ने उसके इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। दोनों तरफ से बातचीत की तैयारियाँ होने लगी।

जालिम सिंह ने दो नावें तैयार करायी और प्रत्येक में उसने बीस सशस्त्र सैनिकों को बिठा कर एक तीसरी नाव में स्वयं बैठा और उसकी वे तीनों नावें चम्बल नदी के अगाध जल में तैरती हुई। रवाना हुईं होलकर भी अपने विश्वासी शरीर रक्षकों के साथ नावों पर चल कर चम्बल नदी के जल के उस स्थान पर आकर पहुँच गया, जो दोनों तरफ से निश्चित किया गया था। नदी जल में एक नाव के ऊपर कालीन बिछाया गया। उस कालीन पर जालिम सिंह और होलकर—दोनों बैठे। बातचीत आरम्भ हो गयी। उस समय होलकर ने जालिम सिंह को काका कह कर और जालिम सिंह ने होलकर को भतीजा कह कर बातचीत की। यद्यपि वह बातचीत शान्तिपूर्वक हो रही थी, परन्तु दोनों ओर के आये हुए रक्षक सैनिक अपनी नावों पर बैठे हुए बड़ी सावधानी के साथ दोनों को देख रहे थे और जरा भी दोनों के बीच असन्तोष देखकर आक्रमण करने के लिए तैयार थे। लेकिन इस प्रकार का अवसर नहीं आया और जालिम सिंह ने होलकर को तीन लाख रुपये देकर होने वाले युद्ध को रोक दिया। वे रुपये लेकर होलकर अपनी सेना के साथ चला गया।

कोटा राज्य के शासन का भार अपने अधिकार में लेकर जालिम सिंह ने बड़ी बुद्धिमानी और सावधानी के साथ राज्य की परिस्थितियों पर ध्यान दिया। उसने पड़ोसी राज्यों की तरफ कभी आंख उठाकर देखा भी नहीं था। कोटा राज्य के दक्षिण तरफ होलकर और सोंधिया के अधिकार में कुछ नगर और ग्राम थे। वहां पर भी खेती होती थी। लेकिन जालिम सिंह ने अपने राज्य की खेती में अधिक उन्नति की थी। अंगरेजी सेना ने होलकर और सोंधिया के साथ युद्ध करके दोनों को पराजित किया और अंगरेज सेनापति ने सोंधिया के अधिकार का पांच महल नाम का इलाका और होलकर के अधिकार का डिग पिडावा आदि चार जिले लेकर जालिम सिंह को दे दिये। इन दिनों में जालिम सिंह ने दोनों मराठा सेनापतियों से बहुत सावधान रहने की चेष्टा की। उसने होलकर और सोंधिया के साथ अपने प्रतिनिधि रखे थे, जो बुद्धिमानी के साथ मराठों की नीति का अध्ययन करते रहते थे और जो कुछ समझते थे, उसकी सूचना गुप्त रूप से जालिम सिंह को देते थे। जालिम सिंह के दरबार में भी कई एक राजनीति कुशल मराठा ब्राह्मण थे, जालिम सिंह ने अपने कुशल व्यवहारों से उनको अपने अनुकूल बना लिया था। जालिम सिंह में एक अद्भुत क्षमता इस बात की थी कि वह जिसको जैसा समझता था, उसके साथ वह वैसा व्यवहार करता था। अपनी इसी नीति के अनुसार उसने प्रसिद्ध अमीर खाँ के साथ मित्रता कायम कर ली थी और वे दोनों एक दूसरे के सहायक बन गये थे। आवश्यकता के अनुसार जालिम सिंह अमीर खाँ को युद्ध के अस्त्र-शस्त्र और उसको बहुत-सी सामग्री दिया करता था। उसने अमीर खाँ के रहने के लिए अपना शेरगढ़ नामक दुर्ग दे दिया था। इन सब बातों से कृतज्ञ होकर अमीर खाँ जालिम सिंह का शुभ चिंतक बन गया था।

पिण्डारी लोगों का दल उन दिनों में लूटमार के लिए प्रसिद्ध हो रहा था। लेकिन जालिम सिंह ने अपनी दूरदर्शिता के द्वारा उस दल के सरदारों को अपने अनुकूल बना लिया था। उनके सद्भाव को प्राप्त करने के लिए जालिम सिंह ने अपने राज्य में बहुत-सी भूमि पिण्डारी सरदारों को दे रखी थी। जालिम सिंह ने पिण्डारी सरदारों के साथ इतना ही नहीं किया था, बल्कि १८०७ ईसवी में पिण्डारियों के सरदार करीम खाँ को जब सींधिया ने कैद करके ग्वालियर के दुर्ग में बन्द कर दिया था, उस समय जालिम सिंह ने करीम खाँ को कैद से छुड़ाने के लिए बहुत-सा धन दिया था और इस बात की जिम्मेदारी ली थी कि भविष्य में करीम खाँ कभी उसके विरुद्ध कोई कार्य न करेगा।

इस प्रकार जालिम सिंह ने दूसरे राज्यों के साथ सहानुभूति पूर्ण व्यवहार करके बड़ी ख्याति प्राप्ति की थी। मारवाड़ और मेवाड़ के कितने सामन्तों ने कोटा-राज्य में आकर आश्रय प्राप्त करने की कोशिश की थी। जालिम सिंह ने उन सामन्तों के साथ सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार किया था और अपने राज्य में रखकर उनको उसने ग्राम और नगर दिये थे। दूसरे राज्यों में जब कभी कोई आपसी संघर्ष पैदा होता था तो जालिम सिंह मध्यस्थ बनकर उस संघर्ष को मिटाने की पूरी चेष्टा करता था। अपने इन नेक कामों के द्वारा जालिम सिंह ने राजस्थान के राज्यों में बड़ी ख्याति पायी थी। उसके इस प्रकार के व्यवहारों को देखकर दूसरे राज्यों के लोग विपद के समय कोटा में आकर आश्रय पाने की पूरी आशा करते थे और ऐसे लोगों के आने पर जालिम सिंह उनकी सहायता किया करता था।

दूसरे राज्यों के प्रति जालिम सिंह के शासन की जो नीति थी, उसका बहुत-कुछ वर्णन हो चुका है। अब उसकी उस नीति पर यहां कुछ प्रकाश डालना आवश्यक है, जिसका प्रयोग उसने अपने राज्य के भीतरी मामलों में कर रखा था। राजा गुमान सिंह ने अपनी मृत्यु के समय जालिम सिंह को अपने बालक उम्मेद सिंह का संरक्षक बना दिया था। पिता के मरने के बाद बालक उम्मेद सिंह कोटा के सिंहासन पर बैठा। वह नाम के लिए अपने राज्य का शासक था, लेकिन सम्पूर्ण शासन जालिम सिंह के अधिकार में था। परन्तु जालिम सिंह ने कोटा का शासन करते हुए उम्मेद सिंह की कभी अवहेलना नहीं की। वह प्रत्येक अवसर पर उम्मेद सिंह के पास बैठकर परामर्श किया करता था। यद्यपि जालिम सिंह अपनी इच्छानुसार सब कुछ करता था, परन्तु आरम्भ से लेकर अंत तक उम्मेद सिंह यही समझता रहा कि जालिम सिंह का प्रत्येक कार्य मेरा आदेश लेने के बाद होता है।

उम्मेद सिंह बुद्धिमान और दूरदर्शी था। वह शिकार खेलने का बहुत शौकीन था। घोड़े पर सवारी करना वह खूब जानता था और प्राय: शिकार खेलने के लिए जाया करता था। जालिम सिंह ने अपने अच्छे व्यवहारों के द्वारा उम्मेद सिंह के साथ सदा इस प्रकार की राजभक्ति का प्रदर्शन किया, जिससे उसके विरुद्ध उम्मेद सिंह को कभी एक क्षण के लिए भी सोचने का अवसर न मिला, उम्मेद सिंह दस वर्ष की आयु में राजसिंहासन पर बैठा था। उसी समय से जालिम सिंह ने उसके प्रति अपनी श्रद्धा और भक्ति प्रकट करना आरम्भ किया था। उम्मेद सिंह की अवस्था जितनी ही बढ़ती गयी, उसके प्रति जालिम सिंह की श्रद्धा उतनी ही अधिक होती गयी। धर्म के प्रति उम्मेद सिंह का विश्वास इधर बहुत दिनों से अधिक हो गया था। इसलिए सांसारिक जीवन में उसको कुछ अरुचि हो गयी थी। इस दशा में भी जालिम सिंह उसका परामर्श लेकर राज्य का शासन करता था।

उम्मेद सिंह की मर्यादा को श्रेष्ठता देने में जालिम सिंह कभी किसी प्रकार की भूल न करता था। किसी दूसरे देश के राजपूत के आने पर जालिम सिंह उसे उम्मेद सिंह के पास ले जाता था और जो समस्या होती थी, उसके निर्णय का भार वह उम्मेद सिंह पर ही रखता था। ऐसे अवसरों पर उम्मेद सिंह जालिम सिंह के परामर्श को महत्व देता था। किसी दूसरे राज्य के सामन्त के आने पर और कोटा-राज्य में आश्रय माँगने के प्रश्न पर जालिम सिंह उम्मेद सिंह से मिलकर ही निर्णय करता था। किसी भी दशा में जालिम सिंह वही करता था, जिसे उम्मेद सिंह पसन्द करता था। उम्मेद सिंह किसी भी व्यवस्था में वही निर्णय करता था, जिसके लिए जालिम सिंह का संकेत होता था। जालिम सिंह अपने व्यक्तिगत कार्यों में भी उम्मेद सिंह से सलाह लिया करता था और उसकी पसंद के अनुसार ही वह काम करता था। जालिम सिंह के इस प्रकार के व्यवहारों के कारण उम्मेद सिंह के मनोभावों में कभी असंतोष नहीं पैदा हुआ। इसका परिणाम यहाँ तक हुआ था कि जालिम सिंह की बिना सलाह के उम्मेद सिंह राजमहल में में कभी कोई नौकर न रखता था। एक दिन की घटना है, राज्य के किसी मैदान में सेना के घोड़े को युद्ध की शिक्षा दी जा रही थी। उस स्थान पर जालिम सिंह का इकलौता लड़का माधव सिंह और उम्मेद सिंह का लड़का राजकुमार किशोर सिंह मौजूद था। राजकुमार किशोर सिंह के साथ वहाँ पर माधव सिंह ने कुछ ऐसा व्यवहार किया, जो किसी अर्थ में अप्रिय कहा जा सकता था। उसको जान कर जालिम सिंह ने अपने लड़के माधव सिंह के साथ अत्यन्त कठोर व्यवहार किया और उसको अपने साथ से हटा कर नान्दता में रहने के लिए भेज दिया। जालिम सिंह ने अपने इन व्यवहारों के द्वारा उम्मेद सिंह के प्रति जिस राजभक्ति का परिचय दिया था, उसकी जितनी प्रशंसा की जाय, वह भी थोड़ी समझी जायगी।

जालिम सिंह के हृदय में राजभक्ति की बहुत ऊँची भावना थी, इसके प्रमाण में उसके जीवन की अनेक बातें जानने के योग्य हैं। किसी दिन जालिम सिंह अपने महल के मन्दिर में बैठा हुआ पूजा कर रहा था। कठोर जाड़े के दिन थे और जिस भूमि पर वह पूजा करने बैठा था, वह पानी से कुछ भीगी हुई थी। इसलिए जालिम सिंह ने एक रजाई अपने कंधों पर डाल ली थी। उसकी उस पूजा के समय उम्मेद सिंह के छोटे लड़के आ गये। उनको देख कर जालिम सिंह ने अपने कंधों पर पड़ी हुई रजाई को जमीन पर बिछा दिया और उन राजकुमारों को उस पर बैठने के लिए कहा। राजकुमार उस पर बैठ गये और वे उस समय तक वहाँ बैठे रहे, जब तक जालिम सिंह पूजा करता रहा। उसकी पूजा समाप्त होने के बाद राजकुमार वहाँ से उठ कर चले गये। उनके चले जाने पर जालिम सिंह के एक नौकर ने सोचा कि हमारे स्वामी इस रजाई को अब अपने काम में न लावेंगे, क्यों कि वह गीली जमीन पर बिछायी जाने के कारण और राजकुमारों के बैठने से गन्दी हो गयी थी। यह सोच कर उस नौकर ने उस रजाई को महल के एक गन्दे कोने में फेंक देना चाहा। जालिम सिंह ने उसके मन के भाव को समझ लिया। उसने उसी समय नौकर के हाथ से उस रजाई को लेकर अपने शरीर पर डाल लिया और नौकर की तरफ देखकर उसने बड़ी श्रद्धा के साथ कहा : "राजकुमारों के चरणों को स्पर्श करके यह रजाई पवित्र हो गयी है।" उसका नौकर इस बात को सुनकर जालिम सिंह की तरफ देखता हुआ रह गया।

जालिम सिंह का व्यवहार सभी के साथ बहुत उत्तम श्रेणी का था। निजी कर्मचारियों से लेकर राज्य के कर्मचारियों तक—सभी उससे प्रसन्न रहते थे। जालिम सिंह ने अपने व्यवहारों के द्वारा राज्य से लेकर बाहर तक सब को अपना बना लेने में आश्चर्यकजनक सफलता पायी थी। सभी लोग उसको अपना मित्र समझते थे। यद्यपि अनेक अवसरों पर वह कर्मचारियों के साथ कठो

व्यवहार करता था। परन्तु अपनी सहानुभूति के आवरण को वह कभी नष्ट नहीं होने देता था। उसका इसी प्रकार का व्यवहार दूसरे राज्यों के लोगों के साथ भी था। इसीलिए छोटे से लेकर बड़े तक सभी उससे प्रसन्न रहते थे।

किसी काम काज के समय, धार्मिक अनुष्ठान के समय किसी उत्सव और विवाह के समय अथवा इस प्रकार के किसी भी दूसरे अवसर पर जालिम सिंह उन सभी लोगों को जी खोलकर पारितोषिक में रुपये देता था, परन्तु किसी के अन्याय और अपराध करने पर वह बहुत कठोर व्यवहार करता था। उसके राज्य में एक बड़ी विशेषता यह थी कि उसके यहाँ पठान और मराठे सब से अधिक विश्वासी माने जाते थे। इसलिए उसने उन लोगों को अपने यहाँ अच्छे स्थानों पर कर्मचारी बना कर रखा था। पठानों को उसने सेना के ऊँचे पद दिये थे और मराठों को अपने यहाँ रखकर उसने राजनीतिकि अधिकार सौंपे थे। वह अपने वंश के आदमियों को राज्य के किसी अच्छे कार्य में नियुक्त नहीं करता था। उसके शासन के अंतिम दिनों में शक्तावत वंश का विशन सिंह कोटा-राज्य में सेनापति के पद पर था। इस एक उदाहरण को छोड़कर कोई दूसरा उदाहरण उसके राज्य में इस प्रकार का नहीं मिलता। दलेलखाँ और महरावखाँ नाम के दो आदमी जालिम सिंह के अत्यन्त विश्वासी कर्मचारी थे। उनके साथ वह मित्रता का व्यवहार करता था। कोटा का विशाल दुर्ग भारतवर्ष में प्रसिद्ध है, वह दलेलखाँ का बनवाया हुआ है। इसी दलेलखाँ ने झाला-रापाटन × नाम का एक प्रसिद्ध नगर बसाया था। कोटा-राज्य में जितने भी दुर्ग हैं, उनके सुधार और संशोधन का कार्य भी इसी दलेलखाँ के द्वारा हुआ था। जालिम सिंह दलेलखाँ का बहुत आदर करता था। वह दलेलखाँ के सम्बन्ध में प्राय: कहा करता था : "दलेलखाँ के बाद मैं जीवित नहीं रह सकता।"

महराब खाँ कोटा राज्य की पैदल सेना का सेनापति था। उसने अपनी इस सेना को अत्यन्त योग्य और शक्तिशाली बना दिया था। * कोटा की पैदल सेना के सैनिकों को महीने में बीस दिनों का वेतन दिया जाता था। लेकिन दो वर्ष बीत जाने पर उनका बाकी वेतन भी दे दिया जाता था।

× जालिम सिंह झाला वंश का राजपूत था और झालरा पाटन झाला वंशीय राजपूतों का नगर है।

* महराव खाँ जालिम सिंह की एक सेना का शूरवीर और विश्वासी सेनापति था। अंगरेजों का पक्ष ले कर वह अपनी सेना के साथ मराठा सेनापति होलकर से युद्ध करने गया था और आठ दिनों में उसने हाड़ौती राज्य के उन सब नगरों और ग्रामों पर अधिकार कर लिया था, जो बहुत दिनों से होलकर के अधिकार में चले आ रहे थे। उसकी सेना ने सौंदी दुर्ग की लड़ाई में अपनी वीरता का परिचय दिया था।

छियत्तरवाँ परिच्छेद

अंगरेजी-सरकार और कोटा-राज्य–पिण्डारी लोगों के विरुद्ध युद्ध की घोषणा–राजस्थान के साथ अंगरेज-सरकार का सहयोग- मित्रता के लिए आमन्त्रण–सहयोग की शर्तों की घोषणा–कोटा-राज्य के साथ अंगरेजों की मैत्री–हाड़ौती-राज्य पर लुटेरों के आक्रमण की सम्भवना-कोटा में युद्ध की तैयारी–राजस्थान में अंगरेजों की नीति–विरोधियों की पराजय–राजस्थान के राजाओं की परिस्थितियां–लुटेरों के लगातार अत्याचार और उनकी लूट–एक केन्द्रीय शक्ति की स्थापना–जालिम सिंह की राजनीतिक सूझ–उसने लुटेरों और आक्रमणकारियों के विरुद्ध आवाज उठायी–अंगरेजी-सरकार के साथ कोटा की संधि–उम्मेद सिंह की मृत्यु-संधि का विरोध-कोटा में विद्रोह–उसका परिणाम।

अब हम कोटा राज्य के उस इतिहास में प्रवेश करते हैं, जब अंगरेज सरकार और वहाँ के राजा में संधि हुई थी। सन् १८१७ ईसवी में मारक्विस ऑफ हेस्टिंग्स ने पिण्डारी लोगों के विरुद्ध युद्ध की घोषणा की थी और राजस्थान के राजाओं को सहयोग देने के लिए आमंत्रित किया था। उस समय यह भी जाहिर कर दिया था कि जो राजा तटस्थ रहेंगे और उन लुटेरों तथा सर्वनाश करने वालों को परास्त करने में हमारा साथ नहीं देंगे, जिनसे वे स्वयं पीड़ित हैं तो वे हमारे विरोधी समझे जायँगे। जो राजपूत राजा एक ऐसी शक्ति की प्रतिष्ठा करना चाहते हैं, जो लुटेरों के अत्याचारों को बन्द कर सकें और जिससे सभी को आवश्यकता पड़ने पर सहायता मिल सके, उनको राजस्थान के इस महान संघर्षपूर्ण कार्य में सहयोग देने के लिए सम्मान पूर्वक आमंत्रित किया जाता है। हमारी सहायता और रक्षा के मूल्य में उनको अपने राज्य की आमदनी का एक भाग देना पड़ेगा।

हेस्टिंग्स की इस प्रकार घोषड़ा होने पर दूरदर्शी जालिम सिंह ने समझ लिया कि अँगरेज सरकार के साथ सहयोग करना आवश्यक है। इसलिए उसके प्रतिनिधि ने उसके साथ परामर्श करके अँगरेज सरकार के साथ सहयोग स्थापित किया और सब से पहले उसने हमारे साथ मित्रता करना स्वीकार किया। इस सहयोग और मित्रता का सूत्रपात कोटा राज्य से हुआ और उसके बाद राजस्थान के सभी राजओं ने उसे स्वीकार करके लुटेरों को सदा के लिए नष्ट कर देने का निश्चय किया। इसके सम्बन्ध में हाड़ौती की राज्य सीमा पर सब से पहले संघर्ष होने की सम्भावना हुई। इसलिए जालिम सिंह के पास अँगरेज सरकार के प्रतिनिधि का पहुँच जाना उस समय अनिवार्य हो गया। उस समय मैं सोंधिया के दरबार में असिस्टेण्ट रेजीडेण्ट था। लार्ड हेस्टिंग्स ने मुझे राजराणा जालिम सिंह के पास भेजा। सन् १८१७ ईसवी के बारह नवम्बर को मैं ग्वालियर से रवाना हुआ और कोटा से पच्चीस मील दूर जालिम सिंह की छावनी रेवता में २३ नवम्बर को पहुँच गया। कोटा पहुँच कर मैंने युद्ध के लिए सभी प्रकार की तैयारी आरम्भ करवा दी, जिससे शत्रु के आक्रमण करने पर परास्त करके उसे भगाया जा सके।

मेरे कोटा पहुँचने पर पाँच दिनों के भीतर युद्ध की सभी तैयारियाँ इतनी तेजी के साथ हुई कि शत्रु के द्वारा आक्रमण हो सकने के प्रत्येक मार्ग पर सैनिक रोक लगा दी गयी। इसके बाद

चार तोपों के साथ पन्द्रह सौ सैनिकों का एक दल सेनापति सर जॉन मालकम के पास पहुँचने के लिए रवाना हुआ। उसने इस छोटी-सी सेना के साथ नर्वदा नदी को पार किया और वह उत्तर की तरफ आगे बढ़ा।

इन दिनों में भारतवर्ष का प्रत्येक प्रान्त और जिला संघर्षमय हो रहा था और गंगा के किनारे से लेकर समुद्र तक युद्ध की एक भयानक आँधी दिखायी देती थी। राजपूत राजाओं के साथ अँगरेजों के इस सहयोग और संगठन ने मराठों, पठानों और पिण्डारी लोगों में एक बिजली पैदा कर दी थी। उन लोगों ने हमारे इस संगठन को तोड़ देने के लिए सब से पहले हाड़ौती-राज्य के आस-पास आक्रमण करने की तैयारियाँ की थीं। लेकिन उनको असफल बनाने के लिए मेरे परामर्श के अनुसार जालिम सिंह ने भी अपने यहां पूरा प्रबन्ध किया। वह अँगरेजों पर पूरा विश्वास करता था और अँगरेज अधिकारी भी उस सहयोग में जालिम सिंह को सब से आगे समझते थे। जो लोग हमारे सहयोग की योजना पर संदेह करके विवाद करते थे, उनको उत्तर देते हुए मैं कह देता था: "महाराजा, जो कुछ आप कहते हैं, मैं उस पर संदेह नहीं करता। लेकिन वृद्ध जालिम सिंह क्या कहता है। वह दिन दूर नहीं है, जब समस्त भारतवर्ष में एक ही राज्यनीतिक शक्ति काम करेगी।"

सन् १८१७—१८ की यह बात है, दस वर्षों में ही इस भविष्यवाणी की सच्चाई का प्रमाण मिल गया। उस समय यद्यपि समस्त भारतवर्ष को जीतकर अथवा सहयोग प्राप्त करके अपने अधिकार में नहीं कर लिया गया। लेकिन इतना जरूर हुआ कि उस समय जो कहा गया था, वह बहुत अंशों में सही निकला। प्लासी के युद्ध में विजयी होकर अँगरेजों ने इस देश में एकाधिकार प्राप्त किया। अँगरेजों ने अपनी इस सफलता के लिए राजपूत राजाओं की नीति साम, दाम, दण्ड और भेद को अपनाया। इस प्रकार देश की विरोधी शक्तियों को नष्ट कर दिया गया।

घोषणा के बाद सब से पहले कोटा के जालिम सिंह ने अँगरेजों के साथ मित्रता कायम की और उसके फलस्वरूप कोटा-राज्य में आक्रमणकारी शत्रुओं के अत्याचारों का नाश हो गया। उसने हमारी नीति और घोषणा पर विश्वास किया, इसलिए हमने उसकी भीतरी और बाहरी—सभी कठिनाइयों में खुलकर उसका साथ दिया। राजस्थान में ऐसा कोई राजा न था जो आक्रमणकारी लुटेरों के अत्याचारों से अनेक बार पीड़ित न हो चुका हो। इसलिए राजपूतों का सर्वनाश करने वाले अत्याचारी लुटेरों के विरुद्ध युद्ध करने के लिए अँगरेजों ने प्रतिज्ञा कर ली थी। उसमें राजपूत राजाओं का साथ देना अनिवार्य रूप से आवश्यक था। उन्होंने वैसा किया भी। उनमें सब से अधिक राजनीतिज्ञ और दूरदर्शी कोटा का जालिम सिंह था। सब से पहले उसने उन शत्रुओं के विरुद्ध आवाज उठायी, जिन्होंने समस्त राजस्थान का अनेक बार सर्वनाश किया था। इस बात का उल्लेख किया जा चुका है कि जालिम सिंह के यहाँ कुछ मराठे ऊँचे पदों पर काम करते थे और जालिम सिंह उन पर बहुत विश्वास करता था। वे मराठे इस बात को नहीं चाहते थे कि अँगरेजों के साथ जालिम सिंह की मित्रता हो। उन मराठों ने अनेक प्रकार के तर्कों के साथ इस मित्रता का विरोध किया। लेकिन उनके तर्कों का जालिम सिंह पर कोई प्रभाव न पड़ा। उसने सफलता पूर्वक पचास वर्ष तक कोटा-राज्य में शासन किया था। वह राजनीति को समझता था। इस बात को वह खूब जानता था कि राज्य के हितों की रक्षा के लिए अँगरेजों की मित्रता आवश्यक है। वह समझता था कि इस मैत्री के साथ जो अधीनता स्वीकार करनी पड़ रही है, उसका महत्व है। इसके अभाव में लुटेरों के द्वारा राज्य का जो विध्वंस और विनाश होता आ रहा है, वह अधिक घातक है। लगातार झगड़ों और उपद्रवों की अपेक्षा इस अधीनता में अधिक उन्नति की जा

सकती है। जालिम सिंह ने इस प्रकार के अनेक तर्क सामने रख कर अपने उन मराठा अधिकारियों और मित्रों को समझाया कि हमारे राजपूत ने मित्रता को स्वीकार करने के साथ उन जिलों का अधिकार दे देना मंजूर कर लिया है, जिन पर बहुत दिनों से होलकर का अधिकार चला रहा था। हमारे साथ अँगरेजों ने जो उदारता का व्यवहार किया है, उसे हमको भूल नहीं जाना चाहिए।

जालिम सिंह का व्यवहार और सद्भाव बहुत ऊँचा था। हमने उस पर कभी संदेह नहीं किया। उसमें उदारता की भावना बहुत श्रेष्ठ है। इसके लिए न जाने कितने प्रमाण उसके जीवन में पाये जाते हैं। जिस समय उसको कोटा राज्य के शासन की सनद दी गयी तो उसने सम्मानपूर्वक उसको स्वीकार करने से इनकार किया और कहा कि इस सनद का अधिकारी महाराव है, मैं नहीं हूँ। मैंने जालिम सिह के जीवन में एक-दो नहीं, बहुत-सी ऐसी बातें देखी हैं, जो प्रत्येक अवस्था में प्रशंसनीय हैं और मुझे उनकी प्रशंसा करना चाहिए। सन् १८१९ ईसवी के नवम्बर महीने में उम्मेद सिंह की मृत्यु हो गयी। उस समय कोटा के सिंहासन पर बैठने का प्रश्न पैदा हुआ। उस अवसर पर जालिम सिंह ने जो कुछ किया, उसमें अँगरेज-सरकार का कोई परामर्श न था। अंग-रेजों के साथ कोटा की जो संधि हुई थी। जालिम सिंह का यह कार्य उसके विपरीत हुआ। सन् १८१७ ई० के २६ दिसम्बर को दिल्ली में संधि हुई थी और उस संधि में कोटा-राज्य का प्रतिनिधि अधिकारी की हैसियत से उपस्थित था। महाराव उम्मेद सिंह ने उस संधि को स्वीकार किया था। दस्तावेज के कागज जनवरी के पहले दोनों पक्षों के अधिकारियों को दे दिये गए थे। इस संधि पर दोनों पक्षों की तरफ से मोहरें लग गयी थीं। लेकिन उस संधि में जालिम सिंह के अधिकार का कोई निर्णय नहीं हुआ था। इसलिए उस विषय में कोई उल्लेख संधि की शर्तों में नहीं किया गया था और जहाँ पर जालिम सिंह का नाम आया था, वहाँ पर उसके नाम के साथ मन्त्री शब्द का प्रयोग किया गया था। अँगरेज प्रतिनिधियों को उस संधि में एक त्रुटि मालूम हुई। इस भूल का कारण किसी प्रकार की असावधानी नहीं थी। बल्कि उसका कारण जालिम सिंह स्वयं था और वह संधि में अपने लिए इस प्रकार कोई शर्त आवश्यक नहीं समझता था।

बालक उम्मेद सिंह के सिंहासन पर बैठने के बाद से अब तक उसने कोटा राज्य में पचास वर्ष शासन किया था और इस दीर्घ काल में उसकी सफलता और प्रभुता ने उसको कोटा के शासक के रूप में प्रसिद्ध कर दिया। अगर उसने संधि के समय अपने लिए इस प्रकार शर्त की अभि-लाषा की होती तो उसके स्वाभिमान को आघात पहुँचा होता और अपनी श्रेष्ठ मर्यादा को खोकर विदेशी प्रभुत्व में उसने मन्त्री के पद का अधिकार प्राप्त किया होता। उस समय इसका कोई भी कारण हो, लेकिन दोनों पक्ष के अधिकारियों ने जालिम सिंह के सम्बन्ध की शर्त को संधि में उतना ही आवश्यक और महत्वपूर्ण समझा होता, जितना कि उसकी दूसरी शर्तों को और उसके द्वारा महाराव उम्मेद सिंह की मृत्यु के बाद जालिम सिह के अधिकारों को भविष्य में विरोधियों के निकट सुरक्षित रखा गया होता।

यह लिखा जा चुका है कि संधि दिल्ली में सन् १८१७ ईसवी के दिसम्बर महीने में हो चुकी थी और सन् १८१८ के जनवरी महीने में उनकी तहरीरों को दोनों पक्षों के अधिकारियों ने पा लिया था। उसी वर्ष के मार्च में संधि की दो नयी शर्तें दोनों पक्षों के प्रतिनिधियों ने दिल्ली में मंजूर की, जिसमें इस बात को स्वीकार कर लिया गया कि शासन का भार सदा के लिए जालिम सिंह के लड़कों और उसके उत्तराधिकारियों के अधिकार में रहेगा। इन स्वीकृत शर्तों को जालिम सिंह के पास भेज दिया गया था।

इसके बाद हमें कोटा-राज्य के उन लोगों का उल्लेख करना है, जिनका भाग्य कोटा-राज्य के भविष्य से सम्बन्ध रखता था। महाराव उम्मेद सिंह के तीन लड़के थे। किशोर सिंह, विशन सिंह और पृथ्वीसिंह। उत्तराधिकारी राजकुमार किशोरसिंह की अवस्था उस समय चालीस वर्ष की थी। वह स्वभाव का विनम्र और शीलवान था। धार्मिक बातों में उसकी अधिक रुचि थी और राज्य के मामलों से वह बहुत कम सम्बन्ध रखता था। उसके मनोभावों में जातीय गौरव था और वंश की मर्यादा को वह सदा उन्नत रखने का विचार रखता था। उसके जीवन में पिता को रहन-सहन का पूरा प्रभाव पड़ा था। उसको जो शिक्षा मिली थी, उसने उसे धार्मिक, शिष्ट और नम्र बना दिया था। वह अपने पिता का अनुयायी था, वह जालिम सिंह को नाना साहब कहा करता था। छोटे-पन से ही वह जालिम सिंह पर विश्वास करता था। अब उसकी अवस्था काफी हो चुकी थी। अब वह सब-कुछ समझता था। लेकिन पिता की तरह राज्य के शासन का भार नाना साहब के अधिकार में रहने में वह संतोष अनुभव करता था। विशन सिंह अपने बड़े भाई किशोर सिंह से तीन वर्ष छोटा था। आरम्भ से वह जालिम सिंह के सम्पर्क में रहा था और जालिम सिंह स्वय उसको बहुत प्यार करता था। किशोर सिंह की तरह वह भी विनम्र, सुशील और अच्छे स्वभाव का था।

राजकुमार पृथ्वी सिंह की अवस्था तीस वर्ष से कम थी, जीवन के आरम्भ से ही उसमें राजपूतोचित गुण थे और अस्त्र शस्त्र चलाने का वह शौकीन था। वयस्क होने पर वह जालिम सिंह के साथ ईर्षा करने लगा। उसके पिता ने जालिम सिंह पर जो शासन का कुल भार छोड़ रखा था, उसे उसने पसन्द नहीं किया और इस प्रकार की बातों के प्रति उसका असन्तोष बढ़ने लगा। आरम्भ से तीनों भाई एक साथ प्रेमपूर्वक रहा करते थे। लेकिन जालिम सिंह के उत्तराधिकारी लड़के के साथ विशन सिंह के अत्यधिक स्नेह और धैर्य को देख कर कुछ लोग संदेह पैदा करने लगते थे। प्रत्येक राजकुमार को पच्चीस हजार वार्षिक आमदनी की भूमि का अधिकार मिला था।

जालिम सिंह के दो लड़के थे। बड़े लड़के का नाम माधव सिंह था, वह जालिम सिंह की विवाहिता स्त्री से पैदा हुआ था और छोटे लड़के का नाम गोवर्धनदास था, वह जालिम सिंह की अविवाहिता स्त्री से पैदा हुआ था। जालिम सिंह छोटे लड़के का अधिक प्यार करता था और उसी को वह अपना उत्तराधिकारी मान रखा था। उस समय माधव सिंह की अवस्था छियालीस वर्ष की थी। वह देखने से ही आलसी और निकम्मा मालूम होता था। उसका व्यवहार अहंकार से भरा हुआ था। महाराव उम्मेद सिंह उसका बहुत आदर करता था और झगड़ों के समय अपने लड़कों की अपेक्षा उसका अधिक पक्षपात करता था। यही कारण था कि जालिम सिंह ने जब राजधानी छोड़ कर छावनी में रहना आरम्भ किया था तो उस समय माधव सिंह को उसके पैतृक अधिकार पर सेनापति का पद दिया गया। इसके बाद सेना का वेतन देना और इस प्रकार के दूसरे कामों का करना उसी के अधिकार में आ गया। इसलिए उसने इस अवसर का लाभ उठाकर अपने पास धन संग्रह करना आरम्भ कर दिया। वह जालिम सिंह का उत्तराधिकारी महाराव उम्मेद सिंह का सम्मानित और राज्य का सेनापति था, इसलिए उसके विरुद्ध किसी ने कुछ कहने का साहस न किया। उसने अनियंत्रित होकर बहुत-सा धन एकत्रित किया और उस धन से उसने एक विशाल बाग लगवाया। श्रेष्ठ घोड़े खरीदे और जल-बिहार करने के लिए उत्तम नावें बनवाई। उसके इन कामों को सुनकर और जानकर जालिम सिंह ने उसको समझाने की कोशिश की। लेकिन वह अपने पिता की परवाह नहीं करता था।

गोवर्धन दास की अवस्था इन दिनों में सत्ताईस वर्ष की थी। वह बुद्धिमान, साहसी और

योग्य था। उसका जीवन अपने भाई माधव सिंह के बिलकुल विपरीत था। कोटा के राजवंश के साथ माधव सिंह की जितनी ही उपेक्षा थी, गोवर्धन दास उसके प्रति उतना ही अपना सदभाव प्रकट करता था। यही कारण था कि जालिम सिंह आरम्भ से ही उसके साथ अधिक स्नेह रखता था और उसने उसको प्रधान के पद पर नियुक्त करके राज्य में कृषि-विभाग का अधिकारी बना दिया। इससे गोवर्धन दास के अधिकार में राज्य की अपरिमित सम्पति रहने लगी। माधव सिंह और गोवर्धन दास में पहले से ही स्नेह था। इन दिनों में माधव सिंह उससे ईर्षा करने लगा और इसके बाद परिणाम स्वरूप दोनों भाइयों में झगड़े पैदा होने लगे। इसमें बहुत-कुछ कमजोरी जालिम सिंह की थी। इसलिए कि उसने अच्छी शिक्षा देकर माधव सिंह के आचरण को अच्छा नहीं बनाया था। इसके लिए जालिम सिंह को स्वयं दुखी होना पड़ा।

सन् १८१६ ईसवी के नवम्बर में कोटा राज्य की राजनीतिक और पारिवारिक यह परिस्थिति थी, जब कि महाराव उम्मेद सिंह की मृत्यु हो गयी थी और उस दुखमय समाचार को छिपाकर रखा गया था, जिसके परिणाम-स्वरूप राज्य में भयानक परिस्थिति पैदा हुई। जालिम सिंह छावनी में था और वह छावनी गागरोन में थी, उन्हीं दिनों में उम्मेद सिंह की मृत्यु हुई थी। उस समाचार को पाकर महाराव का अंतिम संस्कार करने और उत्तराधिकारी किशोर सिंह को सिंहासन पर बिठाने के लिए जालिम सिंह राजधानी के लिए रवाना हुआ।

मारवाड़ से मेवाड़ जाते हुए पोलिटिकल एजेष्ट की हैसियत से मैंने उम्मेद सिंह की मृत्यु का समाचार पाया। × मैंने उसी समय अपनी सरकार को लिखकर पूछा कि इस अवसर पर क्या होना चाहिए। मैं कुछ दिनों तक उस समय उदयपुर में बना रहा और फिर उसके बाद मैं कोटा गया, यह जानने के लिए कि महाराव की मृत्यु के बाद वहाँ के राज सिंहासन पर बैठने के लिए क्या होता है। कोटा में पहुँचकर मैंने वृद्ध जालिम सिंह को राजधानी से एक मील बाहर छावनी में पाया। उसका उत्तराधिकारी लड़का राजधानी के महल में रहता था। राज्य का उत्तराधिकारी राजकुमार किशोर सिंह दुर्ग के महल में रहकर अपने भाइयों के साथ उन दिनों में क्या सोच रहा था, यह नहीं कहा जा सकता। कोटा पहुँचने के बाद मुझे मालूम हुआ कि पृथ्वीसिंह और गोवर्धन दास ने मिल कर नवीन महाराव को अपने अनुकूल बनाने की पूरी कोशिश की है और उन दोनों ने विशन सिंह को अपने इस प्रयास में शामिल नहीं किया। इस प्रकार की जो योजना चल रही थी, उसकी जानकारी जालिम सिंह को कुछ नहीं थी।

× २१ नवम्बर सन् १८१६ ईसवी को जालिम सिंह ने महाराव उम्मेद सिंह की मृत्यु का समाचार देते हुए जो मुझे लिखा था, वह इस प्रकार था : "रविवार के दिन दोपहार के बाद तक महाराव उम्मेद सिंह की हालत बिलकुल ठीक रही। सूर्यास्त के एक घण्टा बाद श्री ब्रिजनाथ के मन्दिर में जाकर महाराव ने दर्शन किये। छै बार प्रणाम करने के बाद सातवीं बार में वह मूर्छित हो गये। अचेत अवस्था में महाराव उम्मेद सिंह को किसी प्रकार महल में लाकर लिटाया गया। उस समय जितनी भी अच्छी चिकित्सा हो सकती थी, की गयी और कोई उपाय बाकी न रखा गया। लेकिन किसी से कुछ लाभ न हुआ और रात के दो बजे महाराव उम्मेद सिंह ने स्वर्ग की यात्रा की।"

"भगवान न करे, किसी शत्रु को भी इस प्रकार का दुख हो। लेकिन इसमें किसी का बस नहीं है। आप हमारे भाई हैं जिन राजकुमारों को छोड़कर महाराव ने स्वर्ग की यात्रा की है, उनका कल्याण आपके हाथों में है। स्वर्गीय महाराव का बड़ा लड़का किशोर सिंह राज सिंहासन पर बैठ गया है। मित्रता के नाते मैं यह समाचार आपको भेज रहा हूँ।"

महाराव उम्मेद सिंह की मृत्यु के बाद जालिम सिंह को भयानक रोग हो गया। उसके इस रोग को देखकर जो लोग जालिम सिंह के विरोधी थे और राज्य में उसके अधिकार को नष्ट कर देना चाहते थे, वे बहुत प्रसन्न हुए। लेकिन कुछ दिनों के बाद जालिम सिंह का उस रोग से मुक्ति मिल गयी तो जो लोग उसकी बीमारी के दिनों में प्रसन्न हो रहे थे, उनकी प्रसन्नता खत्म हो गयी। जालिम सिंह की बीमारी के दिनों में विरोधियों ने अपनी जिस योजना का कार्य आरम्भ किया था, वह अप्रकट न रह सकी। लेकिन वृद्ध जालिम सिंह को उस समय भी उसकी जानकारी हुई।

संधि हो जाने के बाद जो दो शर्तें दोनों पक्षों के प्रतिनिधियों की मंजूरी से संधि में शामिल की गयी थीं और जिनके अनुसार जालिम सिंह के उत्तराधिकारियों को सदा के लिए अधिकारी बना दिया गया था, छिपेतौर पर इसका विरोध हुआ और महाराव के दरबार में षड़यन्त्र चलने लगा। जालिम सिंह के दोनों लड़कों के बीच संघर्ष पैदा कराने की पूरी कोशिश की गयी। संधि के अनुसार माधव सिंह अपने पिता का उत्तराधिकारी था। इसका निर्णय संधि की अन्तिम दोनों शर्तों के द्वारा हो चुका था और मैं उसका मध्यस्थ था। राज्य में जालिम सिंह के विरुद्ध जो षड़यन्त्र रचा गया, उसका साफ-साफ अभिप्राय यह था कि संधि के द्वारा नवीन महाराव किशोर सिंह को माधव सिंह के हाथ की कठपुतली उसी प्रकार बनाने की चेष्टा की गयी है, जिस प्रकार जालिम सिंह के समय स्वर्गीय महाराव की हालत थी। इसलिए इसका विरोध होना चाहिए। विरोधी लोग जालिम सिंह और उसके उत्तराधिकारियों के इस अधिकार को सदा के लिए नष्ट कर देना चाहते थे। उनके षड़यन्त्र का यही एक अभिप्राय था।

सन् १८१७ ईसवी के सङ्गठन का आन्दोलन न केवल राजनीतिक था बल्कि वह पूर्ण रूप से नैतिक था। उसके पहले की अवस्था सम्पूर्ण राजस्थान में बड़ी भयावह थी। लुटेरों के द्वारा चारों ओर आक्रमण, विध्वंस और विनाश हो रहे थे। बिना संगठित शक्तियों के उनको रोक सकना सम्भव नहीं था। भारत में आये हुए अङ्गरेजों ने राजस्थान की इस दुरवस्था का अनुभव किया और राजस्थान के समस्त राजाओं को एक सूत्र में बांधकर आक्रमणकारियों के विरुद्ध युद्ध आरम्भ किया। इसका परिणाम यह निकला कि न केवल राजस्थान में बल्कि सम्पूर्ण भारतवर्ष में शान्ति कायम हो गयी। इस संगठन और सहयोग में कोटा-राज्य के साथ हमारा सम्पर्क हुआ। इस सम्पर्क में कोटा राज्य की तरफ से हमने भीतर और बाहर जालिम सिंह को ही पाया। इसीलिए जब संधि हुई तो जालिम सिंह के भविष्य का निर्णय उसके द्वारा होना नैतिक दृष्टि से भी आवश्यक था। इसीलिए बाद में—जैसा कि पहले लिखा जा चुका है—दो शर्तें दोनों पक्षों की मंजूरी लेकर संधि में जोड़ी गयीं। इन दोनों शर्तों का महत्व उनके परिणाम को देखकर नहीं, बल्कि उस समय हमारा कर्त्तव्य क्या था, इसे सामने रख कर हमें करना चाहिए।

संधि के दोनों पक्षों के प्रतिनिधियों की उपस्थिति में जो शर्तें तय हुई थीं, उनका निर्णय दोनों पक्षों की उपयोगिता और आवश्यकता को सामने रखकर किया गया था और इसीलिए दिसम्बर की संधि में दो नयी शर्तें शामिल की गयी थीं। उनकी आवश्यकता और महत्ता से किसी प्रकार इनकार नहीं किया जा सकता। न केवल इसलिए कि जालिम सिंह ने अपनी बुद्धिमत्ता और दूरदर्शिता से स्वर्गीय महाराव के सिंहासन पर बैठने के बाद से लेकर उस समय तक कोटा-राज्य की मर्यादा को कायम किया था, बल्कि जिस समय समस्त राजस्थान के आकाश पर आक्रमणकारियों के कारण विपद के बादल मंडरा रहे थे और उस विपद की सम्भावना सब से

पहले हाड़ौती-राज्य पर थी, दूरदर्शी जालिम सिंह ने उसको अनुभव किया और उस विनाशकारी विपद के विरुद्ध जब अँगरेज अधिकारी ने घोषणा की, उस समय जालिम सिंह ने राजस्थान में सब से पहले सहयोग किया। उस सहयोग में जालिम सिंह का जो कुछ भी अभिप्राय रहा हो, लेकिन उसके इस वीरोचित कार्य से राजस्थान के सार्वजनिक हितों की रक्षा हुई और उसी से प्रभावित होकर अँगरेज प्रतिनिधियों ने संधि की शर्तों में उसके भविष्य का निर्णय करना अपना एक महा कर्त्तव्य समझा। जिस युद्ध की घोषणा की गयी थी, वह समाप्त होने पर थी। जिस कोटा के साथ हमने संधि की थी, उसके विनाश के सभी कारण सदा के लिए नष्ट हो गये थे। ऐसी हालत में जिसके द्वारा कोटा के फिर अच्छे दिन देखने का अवसर मिला, उसकी सेवाओं का पुरस्कार देना हम सब के लिए अनिवार्य हो गया। किसी भी अवस्था में जिसके द्वारा राजस्थान में और विशेष कर कोटा राज्य में इतना बड़ा कार्य हुआ था, उसके प्रति अवहेलना करना किसी प्रकार उचित न था। सन् १८१७ ईसवी की संधि में जालिम सिंह के भविष्य का जो निर्णय किया गया वह प्रत्येक अवस्था में आवश्यक था। बालक उम्मेद सिंह के सिंहासन पर बैठने के समय से लेकर अब तक उसने कोटा-राज्य के गौरव को जिस प्रकार बढ़ाया था, उसका बहुत बड़ा मूल्य था। इसलिए उसके भविष्य का निर्णय करने के लिए कोटा की संधि में जो दो शर्तें जोड़ी गयीं, उनको दोनों पक्षों के प्रतिनिधियों ने बिना किसी विरोध के स्वीकार किया था।

जालिम सिंह ने स्वर्गीय महाराव के साथ आरम्भ से लेकर अन्त तक जो सद्भाव रखा था, नवीन महाराव ने उसे अस्त्र बनाकर जालिम सिंह के साथ प्रयोग में लाने का निर्णय किया। उत्तराधिकारी किशोर सिंह के प्रति जालिम सिंह के कितने अच्छे भाव थे, और महाराव उम्मेद सिंह की मृत्यु के बाद उसने जिस राजभक्ति के साथ उसे राज सिंहासन पर बिठाया था, उसका भली प्रकार ऊपर उल्लेख किया जा चुका है। हमारा यह भी विश्वास है कि पृथ्वी सिंह और गोवर्धनदास ने यदि षड़यंत्र की रचना करके जालिम सिंह के विरुद्ध उकसाया न होता तो महाराव किशोर सिंह ने उसके प्रति विद्रोहात्मक निश्चय कभी न किया होता। इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि पृथ्वी सिंह और गोवर्धनदास ने जालिम सिंह के विरुद्ध षड़यंत्र की रचना की और विरोध में महाराव किशोर सिंह को लाकर सामने खड़ा कर दिया।

गोवर्धन दास जालिम सिंह का छोटा लड़का था। लेकिन वह उसकी विवाहिता स्त्री से पैदा नहीं हुआ था। इस पर भी उसके अच्छे स्वभाव को देखकर जालिम सिंह उससे बहुत प्रेम करता था। लेकिन पृथ्वी सिंह ने—जो पहले से ही जालिम सिंह का विरोधी था—माधव सिंह और गोवर्धन दास में विद्रोह पैदा कराने में सफलता प्राप्त की। उसने गोवर्धनदास को समझा दिया कि जो संधि पहले स्वीकृत हुई थी, वह सही थी। लेकिन माधव सिंह और उनके उत्तराधिकारियों को इस राज्य में सत्ता बनाये रखने के लिए अँगरेज प्रतिनिधियों ने तुम्हारे साथ अन्याय किया है। यद्यपि २६ दिसम्बर को स्वीकृत होने वाली संधि में इस प्रकार का कोई जिक्र नहीं था। लेकिन पोलिटिकल एजेन्ट के पक्षपात करने से माधव सिंह को यह महानता दी गयी है। पृथ्वी सिंह के इन तर्कों ने गोवर्धन दास को माधव सिंह और पोलिटिकल एजेन्ट के प्रति विद्रोही बनाने का काम किया।

इसी प्रकार महाराव किशोर सिंह को भी समझा कर विद्रोही बनाया गया। उसको भली प्रकार इस बात का विश्वास कराया गया कि २६ दिसम्बर को जो संधि मंजूर हुई थी, उसके अनुसार राज राणा जालिम सिंह और उसके अधिकारियों को शासन का अधिकार नहीं दिया गया था। इस लिए स्वर्गीय महाराव के बाद राजा राणा का अधिकार समाप्त हो गया था। इस दशा में

आप अंगरेज सरकार से इस बात की प्रार्थना कीजिए कि पूर्व स्वीकृत संधि के अनुसार काम किया जाय। क्योंकि मूल संधि की दसवीं शर्त में लिखा है : "कोटा-राज्य के पूर्ण शासन का अधिकार महाराव उम्मेद सिंह और उसके उत्तराधिकारियों को होगा। पूर्व स्वीकृत संधि में महाराव उम्मेद सिंह और अंगरेज सरकार की तरफ से हस्ताक्षर हुए हैं और दोनों की मोहरे लगी हुई हैं। परन्तु बाद की दो शर्तें जो शामिल की गयी हैं, उनमें न तो स्वर्गीय महाराव के हस्ताक्षर हैं और न उन शर्तों की महाराव को जानकारी ही थी।"

कोटा-राज्य में आरम्भ से ही कुछ लोग—जिनमें सामन्त भी शामिल थे और जिनके उल्लेख पहले किये जा चुके हैं—विरोधी थे। उन्होंने इस प्रकार के षडयन्त्रों की रचना करके और विरोधी प्रचार करके गोवर्धनदास को उसके पिता का विरोधी बना दिया था। साथ ही महाराव किशोर सिंह को जालिम सिंह के विपरीत कायम करने के लिए तैयार कर दिया था। राज्य की इस परिस्थिति का भली प्रकार अध्ययन करके मैंने दूरदर्शिता से काम लिया और विरोधी षड़यन्त्रों की तरफ ध्यान न देकर मैंने नवीन महाराव किशोर सिंह को विश्वास दिलाने की पूरी चेष्टा की कि मैं आपकी मर्यादा को सुरक्षित रखने के लिए पूरा प्रयत्न करूँगा। लेकिन राज राणा जालिम सिंह के अधिकारों के प्रति अवहेलना करने की मैं कोई प्रतिज्ञा नहीं करता। मेरी बात से प्रभावित होकर किशोर सिंह ने कहा : मैं आँख मूँद कर आपकी मित्रता पर विश्वास करता हूँ।" पृथ्वी सिंह ने भी इसी प्रकार का कुछ भाव प्रकट किया। लेकिन वहाँ पर जो सामन्त उपस्थित थे, वे सब शान्त बैठे रहे। किसी ने उस समय कुछ नहीं कहा।

विरोधी परिस्थितियों को शान्त देखकर मैंने किशोर सिंह और जालिम सिंह में फिर से सद्भाव पैदा करने की कोशिश की। कोटा के दुर्ग में राज्य के श्रेष्ठ व्यक्तियों को आमंत्रित करके एक बैठक की गयी और किशोर सिंह को राजसिंहासन पर बिठाने का निश्चय किया गया। उस समय पोलिटिकल एजेण्ट की हैसियत से मैंने अपने भावों को प्रकट करते हुए कहा : "मैं इस राज्य का शुभचिंतक हूँ। और महाराव किशोर सिंह का सभी प्रकार कल्याण चाहता हूँ। मैं आशा करता हूँ कि वर्तमान संकटपूर्ण परिस्थितियों में महाराव किशोर सिंह के द्वारा ऐसा कोई कार्य न होगा, जिससे इस राज्य को और हाड़ा राजवंश के सम्मान को किसी प्रकार की क्षति पहुँच सके। महाराव को बहुत सोच-समझकर प्रत्येक कार्य करना चाहिए और अपने घनिष्ट बन्धु तथा गोवर्धन दास से पृथक रहना चाहिए। गोवर्धनदास को हाड़ौती राज्य से बिलकुल हट जाने की जरूरत है।"

मई महीने के मध्य में इस प्रकार की बातें हुईं और जून में गोवर्धनदास को राज्य के विद्रोहात्मक अपराध में कोटा-राज्य से दिल्ली भेज दिया गया। इसके बाद महाराव किशोरसिंह और राज राणा जालिम सिंह में सद्भाव पैदा कराने के उद्देश्य से एक सार्वजनिक सभा की गयी। उस सभा में दोनों का फिर से स्नेह और सद्भाव देखकर उपस्थित लोगों ने बड़ी प्रसन्नता प्रकट की। इस प्रकार सभा अपने उद्देश्य में सफल हुई।

सन् १८२० ईसवी के अगस्त महीने की १७ तारीख को एक बड़े समारोह में कोटा के सिंहासन पर किशोर सिंह को बिठाया गया। अंगरेज सरकार के प्रतिनिधि की हैसियत से सब से पहले मैंने किशोर सिंह के मस्तक पर राजतिलक किया और हीरा-जवाहिरात के आभूषण महाराव के गले में पहनाकर उसकी कमर में मैंने तलवार बाँधी।। महाराव ने इसके बदले उपहार मुझे एक सौ सोने की मोहरें दी। इसके बाद अँगरेज गवर्नर-जनरल की तरफ से मैंने महाराव को कीमती खिलत दी। इसके लिए राज राणा जालिम सिंह ने अँगरेज सरकार और उसके प्रति-

निधि के रूप में मुझे धन्यवाद देकर पच्चीस सोने की मोहरें भेंट में दीं। इसके पश्चात् कोटा के सेनापति की हैसियत से महाराव के मस्तक पर माधव सिंह ने तिलक किया और उसकी कमर में तलवार बाँधकर बहुमूल्य आभूषण भेंट में दिये। महाराव ने प्रचलित प्रणाली के अनुसार उन भेंटों को लौटाकर माधव सिंह को खिलत दी और कोटा के सेनापति की उसे सनद दी।

इस अभिषेक के उत्सव के बाद मैं एक महीने तक कोटा में रहा। इन दिनों में मैंने महाराव और राजराणा के बीच सद्भाव बढ़ाने का प्रयत्न किया। मुझे उसमें उस समय पूरी तौर पर सफलता मिली। इस अवसर पर दोनों ने विश्वासपूर्वक रहने, राज्य का शासन करने और हाड़ा राजवंश की मर्यादा की वृद्धि करने की जो प्रतिज्ञायें कीं, उनसे मुझे अपार संतोष और सुख मिला। कोटा मे बिदा होने के चार दिन पहले मैंने सभी सामन्तों, प्रमुख अधिकारियों और राज्य के श्रेष्ठ पुरुषों को एकत्रित किया। उस समय सभी लोगों ने एक, दूसरे के प्रति पूर्ण रूप से स्नेह, श्रद्धा-भाव और सम्मान प्रकट किया। सबसे बड़ी बात यह हुई कि उपस्थित लोगों ने राजराणा जालिम सिंह के प्रति अपना अगाध श्रद्धा-भाव प्रकट किया और कहा : "हम लोग वयोवृद्ध राजराणा के प्रति कभी श्रद्धा में कमी न करेंगे।"

स्वर्गीय महाराव की मृत्यु के बाद कोटा में जो आपसी संघर्ष पैदा हुआ था, वह अत्यन्त घातक था। उस संघर्ष में इस राज्य का भयानक विनाश हो सकता था। लेकिन अंत में सभी बातें सद्भाव के साथ सुलझ गयीं और राज्य की व्यवस्था संतोष और सौभाग्य के साथ आरम्भ हुई।

कोटा-राज्य में जालिम सिंह ने दण्ड नामक एक कर जारी किया था। उसको उसने सदा के लिए उठा दिया, जिससे उसको अपने जीवन के अंतिम दिनों में बड़ी ख्याति मिली।

सतत्तरवाँ परिच्छेद

कोटा-राज्य के षड़यंत्रों का मूल कारण–हाड़ौती-राज्य से निर्वासित गोवर्धनदास–दिल्ली में रह कर गोवर्धन दास का षड़यन्त्र–विवाह के बहाने मालवा जाने की स्वीकृति–कोटा राज्य में फिर से अशान्ति के बादल–कोटा और बूँदी के राज्यों-में विद्रोहात्मक उत्तेजना–सेनापति सैफअली के द्वारा महाराव का समर्थन–जालिम सिंह की सूझ–राजधानी में युद्ध की तैयारी–आपसी विद्रोह का परिणाम–महाराव की असफलता–संधि के अनुसार राज्य में कार्य–गोवर्धनदास को कैद करने के लिए अँगरेजी सेना को आदेश–महाराव की तीर्थ-यात्रा–महाराव के पास सामन्तों के पत्र–तीर्थ-यात्रा में महाराव का अनुभव–युद्ध की फिर से तैयारी–संधि के लिए महाराव का पत्र–युद्ध के बाद राज सिंहासन पर महाराव।

इन दिनों में कोटा-राज्य के षड़यंत्रों का मूल कारण जालिम सिंह की अविवाहिता स्त्री से पैदा हुआ गोवर्धनदास था। जालिम सिंह प्यार में उसको गोवर्धन जी कहा करता था। पिछले परिच्छेद में लिखा जा चुका है कि गोवर्धसदास राजनीतिक अपराधी के रूप हाड़ौती राज्य से निकाल

दिया गया था और उसके कहने के अनुसार दिल्ली और इलाहाबाद में उसको रहने के लिए भेज दिया गया था। इसलिए वह अपने परिवार के साथ दिल्ली में रहने लगा था। वहाँ के स्थानीय अंगरेज अधिकारियों को उसकी देखभाल रखने के लिए सावधान कर दिया गया था।

दिल्ली में रहकर गोवर्धनदास ने सन् १८२१ ईसवी के अंतिम दिनों में झबुआ की उस लड़की से विवाह करने के लिए—जो वहाँ के सामन्त की अविवाहिता स्त्री से पैदा हुई थी—मालवा जाने की आज्ञा ले ली थी। उसके उस नगर में पहुँचते ही कोटा-राज्य में अशान्ति के बादल दिखायी पड़ने लगे और उसके बाद ही कोटा से लेकर बूंदी तक विद्रोहात्मक उत्तेजना फैलने लगी। सैफअली राज पलटन नामक राणा की विशेष सेना का सेनापति था और अपनी तीस वर्ष की सेना में वह विश्वास और वीरता के लिए प्रसिद्ध हुआ था। उसने किशोर सिंह के पक्ष का समर्थन किया। इस प्रकार विद्रोही समाचारों के मिलने पर आरम्भ में जालिम सिंह ने विश्वास न किया। लेकिन बुद्धिमानी के साथ उसने सैफअली की सेना के साथ राज्य की दूसरी सेना भी रख दी, जिससे विद्रोही सेना नियंत्रण में रह सके। इन्हीं दिनों में महाराव किशोर सिंह ने सैफअली के अधिकार की सेना को अपने महल में बुलवाया और वह जल के रास्ते से होकर महाराव की आज्ञानुसार महल में आ गयी। यह समाचार जालिम सिंह को मिला। उसने अपनी सेना लेकर सैफअली की सेना पर आक्रमण किया और दो ऊँचे स्थानों पर तोपों को लगवा दिया, जिनसे राजधानी से लेकर चम्बल नदी के दोनों किनारों पर बसे हुए नगरों तथा ग्रामों पर गोलों की वर्षा होने लगी। यह देखकर महाराव किशोर सिंह, अपने भाई पृथ्वी सिंह और कुछ सैनिकों को साथ लेकर वहाँ से बूंदी-राज्य चला गया। उसके जाते ही जो सेना महल में आयी थी, उसने आत्म-सर्म्पण कर दिया। इसलिए महाराव किशोर सिंह ने जो प्रयत्न किया था, वह व्यर्थ हो गया। इस युद्ध में विशन सिंह ने अपने दोनों भाइयों का साथ छोड़ दिया और उसने जालिम सिंह के साथ अपना सम्पर्क स्थापित किया।

इस समय कोटा-राजधानी में अशान्ति पैदा हुई, उसको दूर करने और विद्रोही उत्तेजना को मिटाने का केवल यही एक उपाय था कि संधि के अनुसार काम किया जाय। इसलिए सबसे पहले बूंदी के राजा के पास एक पत्र भेजा गया। उसमें लिखा गया कि कोटा के महाराव किशोर सिंह के अतिथि के रूप में रखने और उसका सम्मान करने में कोई हानि नहीं है। लेकिन अगर किशोर सिंह ने बूंदी में पहुँच कर जालिम सिंह के विरुद्ध सैनिक तैयारी की तो उसका उत्तर-दायित्व आपके ऊपर हो गया।

उन दिनों में नीमच नामक स्थान पर जो अंगरेज सेना रहती थी, उसके सेनापति के पास आदेश भेजा गया कि झबुआ बूंदी राज्य के मध्यवर्ती रास्ते पर एक सेना लगा दी जाय और अगर गोवर्धनदास महाराव किशोर सिंह से मिलने के लिए बूंदी की तरफ आवे तो उसे किसी भी दशा में कैद कर लिया जाय। यह समाचार गोवर्धन दास को मालूम हो गया। इसलिए वह पहाड़ी गुप्त रास्तों से होकर निकल गया और अंगरेजी सेना उसे कैद न कर सकी। लेकिन बूंदी के राजा को कोटा से जो पत्र भेजा गया था, उसके कारण वह गोवर्धनदास को अपने यहाँ किसी प्रकार रखने के लिए तैयार न था। इसलिए वह बूंदी से छिपे तौर पर भागकर मारवाड़ चला गया। लेकिन वहाँ के राजा ने उसको अपने यहाँ आश्रय न दिया। उस दशा में वह विवश होकर वह दिल्ली में आ गया। वहाँ पर वह अधिक सावधानी के साथ रखा गया।

महाराव किशोर सिंह ने भी बूंदी राज्य छोड़ दिया और वह बृन्दावन की तरफ तीर्थ यात्रा करने के लिए चला गया। उसने ब्रजनाथ जी के मन्दिर में रहकर धार्मिक जीवन बिताने

का निश्चय किया। बूंदी में रहकर महाराव ने किसी प्रकार की सहायता नहीं प्राप्त की। कोटा-से बूंदी का फासिला बहुत न था। इसलिए जब तक वह बूंदी में रहा, कोटा में उसके समर्थक अनुकूल वातावरण का अनुमान लगाते रहे। लेकिन जब वह बूंदी से उत्तर की तरफ चला गया तो लोगों ने विश्वास किया कि महाराव ने किसी आशा से उस तरफ की यात्रा की है, उसे निश्चित रूप से वहाँ से सहायता मिलेगी। इन दिनों में कोटा के सामन्त महाराव के पास सहानुभूति के पत्र भेजते रहे। महाराव बूंदी से चलकर जिस राज्य में पहुँचा, वहाँ के राजा ने उसके साथ सम्मानपूर्वक व्यवहार किया। भरतपुर का राज्य कोटा के समीप था। वहाँ के राजा ने जब महाराव के आने का समाचार सुना तो वह स्वयं उसके पास नहीं गया और अपने प्रतिनिधियों को भेजकर अपने न पहुँच सकने की विवशता प्रकट की। उन प्रतिनिधियों ने महाराव के पास जाकर अपने राजा की तरफ से बातें कीं और भरतपुर के राजा ने जो मूल्यवान उपहार भेजे थे, उनको उन्होंने महाराव के सामने उपस्थिति किया। भरतपुर के राजा के न आने पर महाराव ने उसकी अवहेलना समझी और उसके भेजे हुए उपहारों को उसने वापस कर दिया। भरतपुर के राजा ने जब सुना कि महाराव ने हमारे भेजे हुए उपहारों को वापस कर दिया है तो उसने अपना अपमान समझ कर भरतपुर राज्य से चले जाने के लिए संदेश भेज दिया।

महाराव वहाँ से वृन्दावन चला गया और कुछ दिनों तक वह ब्रज कुञ्ज में बना रहा। इन दिनों वह शासन के प्रलोभनों को भूल गया और भक्ति-भावना में लिप्त होकर वह अपना समय काटने लगा। इन दिनों में उसने अनुभव किया कि जो लोग वहां पर उसको बराबर घेरे रहते हैं, वे उससे धन पाने की आशा रखते हैं। इसका प्रभाव महाराव पर अच्छा नहीं पड़ा। उसने समझ लिया कि यहां पर रहकर मेरा जो सम्मान होता है, वह मेरा व्यक्तिगत सम्मान नहीं है, बल्कि कोटा का राजा समझ करलोग मेरा सम्मान करते हैं और मुझसे भूमि और धन पाने की आशा करते हैं। वह बृन्दावन से चल कर आधे अप्रैल तक मथुरा पहुँच गया। वह कोटा लौटकर आ जाने का विचार कर चुका था। लेकिन गोवर्धदास ने उसके पास संदेश भेजकर उसके कोटा आने का विरोध किया और कहला भेजा कि महाराव को वहाँ नहीं जाना चाहिये।

गोवर्धन दास षड़यन्त्रकारी था। वह दिल्ली में रहकर भी महाराव के पक्ष में एक न एक योजना का निर्माण करता रहता था। इसलिए धीरे-धीरे विद्रोह की जो आग सुलग रही थी, वह भयानक होने लगी। हाड़ा वंश के जो लोग पक्ष में थे, उनको गोवर्धन दास बराबर उकसाता रहता था और कितने ही लोगों के विद्रोही संदेश महाराव के पास पहुँचते रहते थे। महाराव ने अपने साथ एक ऐसी सेना का सङ्गठन किया और वह उस सेना को लेकर हाड़ौती राज्य की तरफ रवाना हुआ। रास्ते में जो राज्य मिले, उनके राजाओं से महाराव ने कहा कि अपने राज्य का सिंहासन प्राप्त करने के लिए जा रहा हूँ। उसकी इस यात्रा को देखकर और उसकी बातों को सुनकर लोगों का अनुमान हुआ कि महाराव और अंगरेज सरकार के बीच में और कुछ सन्तोषजनक निर्णय हो गया है, इसीलिए महाराव किशोर सिंह का अपने राज्य जाना अब आवश्यक हो गया है। इस प्रकार का अनुमान लगाकर सभी लोगों ने प्रसन्नता प्रकट की और महाराव के साथ चलने वालों की संख्या लगातार बढ़ने लगी। सन् १८२२ ईसवी की बरसात के अन्तिम दिनों में लगभग तीन हजार सेना साथ में लेकर महाराव चम्बल नदी के किनारे पहुँच गया। नदी को पार करके महाराव ने राजस्थानी बोली में एक ऐसी घोषणा का प्रचार किया, जिसे वहाँ के लोग भली-भाँति समझ सकें और कोई भी महाराव के आह्वान करने पर इनकार न कर सके। उस घोषणा में कहा

गया कि महाराव ने संधि के अनुसार न्याय की माँग की है। इसलिए प्रत्येक हाड़ा राजपूतों को महाराव की सहायता के लिए आना चाहिए।

महाराव किशोर सिंह की इस घोषणा को सुनकर हाड़ा राजपूत आकर एकत्रित होने लगे। उस समय घोषणा को सुन कर वे लोग भी महाराव के पास पहुँचे, जो जालिम सिंह के वंश के थे और जिन्होंने समय-समय पर जालिम सिंह के द्वारा बहुत लाभ उठाये थे। ऐसे लोगों ने भी किशोर सिंह के पक्ष का समर्थन किया और उसकी सहायता के लिए वे रवाना हुए। इनमें से अधिक आदमी ऐसे थे, जिन्होंने किशोर सिंह को कभी देखा भी न था और न उसके सम्बन्ध में कुछ जानते ही थे। उस समय ऐसा मालूम होता था कि राज्य में प्रजा से लेकर कर्मचारियों और अधिकारियों तक - सभी लोग महाराव किशोर सिंह के पक्ष में हैं। राज्य की इस परिस्थिति को जालिम सिंह भी स्वीकार करता था। सन् १८२२ ईसवी की १६ सितम्बर को अँगरेज सरकार के पोलोटिकल एजेण्ट की हैसियत से मेरे पास एक पत्र भेजकर महाराव किशोर सिंह ने संधि के लिए प्रार्थना की। उस पत्र में लिखा था :

मैं क्या चाहता हूँ, यह जानने के लिए चाँद खाँ ने कई बार इच्छा प्रकट की थी। इसलिए मिर्जा मोहम्मद अली बेग और लाला सालिगराम अपने दोनों वकीलों के द्वारा अपनी मागे मैं आप के पास भेज रहा हूँ। मैं फिर आपके पास पूर्व निश्चित् संधि की शर्तों को भेज रहा हूँ। आप को उन्हीं के अनुसार कार्य करना चाहिए। अँगरेज सरकार के प्रतिनिधि की हैसियत से आपको मेरे साथ न्याय करना चाहिए। मालिक को मालिक की तरह और नौकर को नौकर की तरह रखना चाहिए। संसार में सर्वत्र यही होता है। आपसे छिपा नहीं है।

१—महाराव उम्मेद सिंह के समय दिल्ली में जो संधि हुई थी, मैं उसका पालन करूँगा।

२—मैं नाना जालिम सिंह पर सभी प्रकार का विश्वास रखता हूँ। जिस प्रकार नाना जी ने महाराव उम्मेद सिंह के समय इस राज्य में काम किया है, उसी प्रकार मेरे साथ भी उसे करना चाहिए। मैं नाना जो के प्रबंध-शासन को स्वीकार करता हूं। परन्तु मेरे और माधव सिंह के बीच सन्देह और अविश्वास है। हम दोनों एक दूसरे पर विश्वास नहीं कर सकते और न कभी एक हो सकते हैं। इसलिए मैं उसको एक जागीर दूँगा, उसको वहाँ रहने दिया जाय। उसका लड़का बप्पा लाल मेरे साथ रहेगा और जिस प्रकार दूसरे मंत्री अपने राजा के समीप रहकर राज्य का कार्य करते हैं, वह भी उसी प्रकार मेरे साथ रहकर करेगा। मैं मालिक होकर रहूँगा और वह नौकर होकर रहेगा। यदि वह ऐसा करता है तो यह क्रम बराबर चलता रहेगा।

३—अँगरेज-सरकार और दूसरे राजाओं के जो पत्र भेजे जायँगे, वे मेरे परामर्श के अनुसार लिखे जायँगे।

४—मेरी और राजराणा के जीवन की रक्षा का उत्तरदायित्व अंगरेज-सरकार पर होगा।

५—अपने भाई पृथ्वी सिंह को मैं एक जागीर दूँगा, वहीं पर वह रहा करेगा। उसके पास जो नौकर अथवा दूसरे आदमो रखे जायँगे, उनको मैं नियुक्त करूँगा। मेरे वंश के लोगों को आवश्यकतानुसार जागीरें दी जायँगी और वे जागीरें उनकी मर्यादा के अनुसार होंगी। वे प्राचीन प्रणाली के अनुसार राज-दरबार रहा करेंगे।

६—मेरे शरीर रक्षक सैनिक तीन हजार की संख्या में मेरे पास रहेंगे और उनमें राजराणा का पौत्र बप्पा लाल भी रहेगा।

७—राज्य में जो आमदनी वसूल की जायगी, वह राज्य के खजाने में रखी जायगी और उसके बाद उसमें से खर्च किया जायगा।

८—दुर्गों पर किलेदारों को मैं नियुक्त करूंगा और राज्य की सम्पूर्ण सेना मेरे अधिकार में रहेगी। कर्मचारियों और अधिकारियों को आदेश देने का अधिकार राजराणा को होगा, लेकिन उनके लिए पहले मुझ से पूछ लेना पड़ेगा।

ऊपर लिखी हुई मेरी माँगें हैं, जो राज्य के नियमों के अनुसार हैं। आसोज पञ्चमी सम्वत् १८७८ सन् १८२२ ईसवी।

संधि का प्रस्ताव करते हुए महाराव किशोर सिंह ने यह पत्र मेरे पास भेजा और अपनी लिखी हुई शर्तों पर उसने हमको बांधने की कोशिश की। इस पत्र में उस संधि का भी नाम आया, जो अँगरेज-सरकार के साथ कोटा के राजा ने की थी। लेकिन आदि से लेकर अन्त तक सभी शर्तें राजराणा जालिम सिंह पर लागू करने के लिए लिखी गयी थीं। राज्य के नाममात्र के राजा महाराव ने संधि का उल्लेख करके तानाजनी के साथ मुझे लिखा कि जो शर्तें मैंने अपने पत्र में लिखी हैं, वे मंजूर की जायगी या नहीं। व्यवहार की इस अशिष्टता को भी सहन कर लिया जाता, यदि महाराव ने अपने पत्र में संधि की उन शर्तों को भी शामिल किया होता जो बाद में दोनों पक्षों की स्वकृति से संधि में शामिल की गयी थीं। पत्र में न्याय की माँग की गयी अपने समस्त अधिकारों को सुरक्षित बनाकर। पत्र में यह भी लिखा गया कि राजराणा को शासन-भार देने में हमें कोई आपत्ति नहीं है, मैं उस पर पूरा विश्वास करता हूँ। लेकिन लिखी गयी इन शर्तों के बाद राज्य में राजराणा का कोई अधिकार बाकी नहीं रह जाता। स्वर्गीय महाराव के समय क्या राजराणा ने इसी प्रकार राज्य का शासन-भार अपने हाथों में रखा था? महाराव किशोर सिंह के नेत्रों में दोनों पक्षों के प्रतिनिधियों की स्वकृति दो शर्तों का कोई मूल्य नहीं है। यह बात उस पत्र से साफ-साफ जाहिर है। यदि इन दो शर्तों को अलग कर दिया जाता है तो संधि का कोई मूल्य नहीं रह जाता। इस दशा में आपसी समझौते का प्रश्न ही खत्म हो जाता है। राजराणा जालिम सिंह के उत्तराधिकारियों के अधिकारों का निर्णय करने के लिए जो दो शर्त बाद में स्वीकृत होकर संधि में जोड़ी गयी, यदि वे न रखी गयी होतीं तो राज्य में राजराणा का अधिकार था ही और उसके उत्तराधिकारियों को प्राचीन प्रणाली के अनुसार, अनधिकारी बना देना सहज न था। शासन-प्रबन्ध से लेकर स्वर्गीय महाराव और उनके वंश के साथ जालिम सिंह का जो व्यवहार आरम्भ से लेकर अब तक चला था, उसी ने उसके अधिकारों को अटूट बना दिया था और स्वर्गीय महाराव को कभी विरोधी गंध न मालूम हुई थी। सिंहासन पर बैठने के पहले ही किशोर सिंह को जालिम सिंह से विद्रोहात्मक भय मालूम हुआ। इसका क्या अभिप्राय हो सकता है? सिंहासन पर बैठने के बाद दस-पाँच वर्षों का अनुभव किसी हद तक उसकी सहायता कर सकता था, लेकिन उसको नवीन महाराव ने पास ही तक नहीं आने दिया। क्या इसका स्पष्ट अर्थ यह नहीं है है कि जालिम सिंह के विरोधियों ने महाराव किशोर सिंह के मस्तिष्क को पहले से ही खराब कर दिया था? इस दशा में मेरा क्या कर्त्तव्य हो सकता है, इसे मैं समझता हूँ। अँगरेज सरकार और कोटा के राजा के बीच के व्यवहारों में मेरा वही स्थान है जो एक मध्यस्थ का हो सकता है और मैं ईमानदारी के साथ जालिम सिंह को कोटा का शासक की हैसियत में जानता हूँ। सच बात यह है कि अगर किशोर सिंह का मस्तिष्क खराब न किया गया होता तो जो अशान्ति पैदा हुई, उसकी किसी प्रकार सम्भावना न थी।

महाराव किशोर सिंह ने अपने पत्र में संधि का प्रस्ताव भी किया है, मुझसे न्याय की माँग

भी की हैं और नाना जी पर पूर्ण रूप से विश्वास भी प्रकट किया है। लेकिन उसकी ये तीनों बातें उसके अस्तित्व को कहाँ ले जाकर पटकेगी, इसे उसने समझने की कोशिश नहीं की। मुझसे लाभ की माँग करने का अर्थ यह है कि उसको मुझ पर संदेह है। संधि का प्रस्ताव करने का अभिप्राय यह है कि वह पूर्व स्वीकृत संधि को स्वीकार नहीं करना चाहता। क्यों कि उस संधि की दो शर्तों को छोड़ देने का अर्थ है, संधि के अस्तित्व को ही नष्ट कर देना। जालिम सिंह के शासन-प्रबन्ध को स्वीकार करने के बाद भी अपनी शर्तों के द्वारा उसे प्रत्येक अधिकार से वञ्चित कर देना क्या अर्थ रखता है, इसे वही समझ सकता है। वास्तव में महाराव किशोर सिंह ने जो कुछ किया, उस के अपराधी वे हैं, जिन्होंने उसके भोलेपन का लाभ उठाया और उसे जालिम सिंह के विरुद्ध उकसाकर खड़ा कर दिया।

महाराव किशोर सिंह ने अपनी माँगें लिखकर भेजी है। वे मैत्री के आधार पर होने वाली किसी संधि का समर्थन नहीं करतीं। यदि उनको मान भी लिया जाय तो उसी समय से जालिम सिंह और उसके उत्तराधिकारियों के अधिकारों का अंत हो जाता है। उसके बाद उनके अधिकारों का प्रश्न किशोर सिंह की दया पर निर्भर हो जाता है। जिसने अपना सम्पूर्ण जीवन कोटा-राज्य की रक्षा करने और उसकी मर्यादा को कायम रखने में व्यतीत किया, उसके साथ ऐसा नहीं किया जा सकता और यदि कोई करता है तो वह न्यायपूर्ण नहीं हैं।

अपनी माँगों को लिखकर भेज देने के पहले ही महाराव किशोर सिंह ने अपने आदमियों को युद्ध के लिए एकत्रित किया था। इसलिए पूर्व स्वीकृत संधि को कायम रखने के लिए अँगरेजी सेना को आदेश दिया गया और वह सेना कालीसिंधु नामक स्थान पर पहुँच गयी। इस स्थान के एक तरफ महाराव की सेना थी और दूसरी तरफ जालिम सिंह की। दोनों ओर की सेनाओं के पहुँचने के बाद पानी का बरसना आरम्भ हुआ और कई दिनों तक लगातार भयानक रूप से पानी बरसता रहा। उस वृष्टि से नदी में बाढ़ आ गयी और एक ऐसी भयानक परिस्थिति पैदा हो गयी, जिससे महाराव का सम्पूर्ण विश्वास और भरोसा नष्ट हो गया। उसने फिर से मेल करने का भाव प्रकट किया और अँगरेज प्रतिनिधि पर अपना विश्वास स्वीकार किया। लेकिन उस समय भी वह कहता रहा : सम्मान खोकर जिन्दा रहने से क्या लाभ और अधिकारों के बिना राज्य के क्या फायदा! पूर्वजों के राज्य को खोकर जीवित रहने से मर जाना अधिक अच्छा है!

महाराव किशोर सिंह की अपेक्षा जालिम सिंह का व्यवहार इन दिनों में कुछ कम उलझन से भरा हुआ न था। वह बार-बार अपनी राजभक्ति का परिचय देता था और अपने सफेद बालों में किसी को कालिमा लगाने का मौका नहीं देना चाहता था। अपनी रक्षा के लिए उसने संधि को ढाल बना लिया था यद्यपि वह भविष्य में अपने अधिकारों की सुरक्षा चाहता था। लेकिन उसके लिए वह स्वयं कुछ करना नहीं चाहता था। उसको भय था कि मैंने जीवन-भर इस राज्य की रक्षा है। इस समय अपने पक्ष का समर्थन करने से मैं बदनाम हो जाऊँगा। यद्यपि उससे स्पष्ट रूप में यह बात कही गयी कि अगर आप भविष्य में अपने उत्तराधिकारियों के लिए अधिकारों का निर्णय चाहते हैं तो आपको खुलकर अपने पक्ष का समर्थन करना चाहिए। राजभक्ति का प्रदर्शन करने से काम न चलेगा। लेकिन जालिम सिंह के मन के भाव डावाँडोल हो रहे थे। मैंने अनेक बार उसको दुविधा की बातें कहते सुना और उसे सचेत करते हुए मैंने कहा कि अब भी अवसर है। लेकिन अंतिम समय की दुविधा प्रतिकूल परिणाम का परिचय देती है। यद्यपि दोनों तरफ की परिस्थितियाँ उस समय अत्यन्त कठोर हो रही थीं, इसलिए शांतिपूर्ण उपायों का अवलम्बन बहुत दूर हो गया था।

महाराव किशोर सिंह ने मेरे पास पत्र भेजकर हाँ अथवा नहीं की प्रतीक्षा की थी और विरोधी अवस्था को समझने के पहले ही वह युद्ध के लिए बिल्कुल तैयार था। इसलिए उसके साथ मुकाबिला करने के लिए जालिम सिंह से परामर्श हुआ और एक सम्मिलित सेना तैयार की गयी। उस सेना के अधिकारियों के सम्बन्ध में भी हमारे साथ उसने बातचीत की। उसके प्रार्थना करने पर एक अँगरेज सेनापति ने उसको अपनी सेना की सहायता दी। ×

पहली अक्टूबर को प्रातःकाल होते ही सेनायें आक्रमण करने के लिए आगे बढ़ीं। जालिम सिंह की सेना में आठ दल पैदल सैनिकों के थे, बत्तीस तोपें थीं और चौदह दल अश्वारोही सैनिकों के थे। प्रत्येक दल में दो सौ सैनिकों की संख्या थी। इनमें से पाँच पलटनें अर्थात् पाँच दल पैदल और दस दल अश्वारोही अपने साथ चौदह तोपें लेकर आगे बढ़े। शेष सेना पाँच सौ गज की दूरी पर जालिम सिंह के साथ आवश्यकता के लिए सुरक्षित रखी गयी। अँगरेजी सेना में दो दल पैदल और छै दल अश्वारोही सैनिकों के थे। उसमें एक दल गोलन्दाजों का था। यह सेना राव राणा जालिम सिंह की दाहिनी तरफ होकर चली। दोनों सेनायें आगे जाकर नदी से कुछ दूरी पर एक ऊँचे मैदान में खड़ी हो गयी। महाराव किशोर सिंह की सेना नदी की दूसरी तरफ पर थी। उसने अपने शिविर को छोड़ कर सैयद अली सेनापति की सेना को बाईं तरफ लगाया और स्वयं अपने पाँच सौ हाड़ा राजपूतों को लेकर दाहिनी ओर खड़ा हुआ। दोनों ओर की सेनायें एक दूसरे पर आक्रमण करने के लिए बिलकुल तैयार थीं। उस समय मैंने एक बार अँगरेज सेनापति की ओर देखा और फिर क्षण-भर में मैंने सोच डाला कि मुझे एक बार इस समय महाराव किशोर सिंह को समझाने का काम कर लेना चाहिए। कदाचित् इस समय मुझे सफलता मिल जाय और उसकी समझ में आ जाने से होने वाला विध्वंस और विनाश बच जाय।

यह सोचकर मैंने अपने सेनापति को आक्रमण करने से रोका। इसके बाद दोनों ओर की सेनाओं के बीच में जाकर मैंने युद्ध रोकने का प्रस्ताव किया और कहा : "हमारे और आपके लिए यह जरूरी है कि युद्ध रोका जाय। महाराव किशोर सिंह को सम्मान पूर्वक कोटा के राज सिंहासन पर बिठाया जायगा और सभी के अब तक के अपराधों को क्षमा किया जायगा। इस प्रस्ताव को स्वीकार करने के लिए इस समय केवल पन्द्रह मिनट का समय है। उसके बाद युद्ध अनिवार्य हो जायगा।"

इस प्रस्ताव को सुन कर महाराव ने जो उत्तर दिया, उससे साफ जाहिर हो गया कि उसने अपने पत्र में लिखकर जो शर्तें भेजी हैं, उनमें से वह एक भी शर्त छोड़ने के लिए तैयार नहीं है और अपने साथ तीन हजार सैनिकों को लेकर ही वह कोटा में प्रवेश करना चाहता है।

पन्द्रह मिनट का समय बीत गया। उस प्रस्ताव के निष्फल होते ही सेनायें आगे बढ़ी। महाराव की जो सेना दाहिने ओर लगी हुई थी, उसने जालिम सिंह की सेना को रोकने के लिए आगे कदम बढ़ाये। प्रस्ताव में दिया गया समय बीत चुका था। इसलिए युद्ध का आदेश मिलते ही जालिम सिंह की तरफ से गोलों की वर्षा आरम्भ हो गयी और उसके बाद उसकी अश्वारोही सेना आक्रमण करने के लिए आगे बढ़ी। हाड़ा राजपूतों ने सदा की भाँति इस अवसर पर भी अपनी वीरता का प्रदर्शन किया और उन्होंने फतेहाबाद तथा धौलपुर के युद्ध में भयानक रूप से आक्रमण

× पाँच नम्बर रेजीमेण्ट देशी पैदल सेना के सेनापति लेफ्टिनेन्ट मिलन ने अपनी तरफ से युद्ध में जालिम सिंह की सहायता करना स्वीकार किया और वह युद्ध में गया। एक सेनापति से इससे अधिक और क्या आशा की जा सकती है।

किया, जिससे जालिम सिंह की तरफ के बहुत-से सैनिक गोलियों की वर्षा में मारे गये। हाड़ा राजपूत भीषण रूप से मार करते हुए उस स्थान पर पहुँच गये, जहाँ पर जालिम सिंह मौजूद था। लेकिन वहां पर उनकी शक्तियां निर्बल पड़ गयीं और वे भागने के लिए कोई रास्ता न पाकर नदी को पार कर दूसरी तरफ निकल गये। महाराव को जालिमसिंह की तरफ के चार सौ अश्वारोही सैनिकों ने घेर लिया। उसके साथ के हाड़ा राजपूत उसे छोड़कर और नदी के पार जाकर लगभग आध मील की दूरी पर चले गये थे। इस समय जालिम को सहायक सेना ने आगे बढ़ कर महाराव की सेना को तितर-बितर कर दिया। अँगरेजी सेना ने तेजी के साथ नदी को पार किया और जैसे ही उसने हाड़ा राजपूतों पर आक्रमण करके खतम कर देने की कोशिश की, वैसे ही वे दक्षिण की तरफ से भाग गये। उसी समय दो दल सैनिकों के महाराव पर आक्रमण करने के लिए आगे बढ़े। उस समय मालूम हुआ कि जो लोग महाराव की तरफ से युद्ध क्षेत्र छोड़ कर भागे थे, वे पिण्डारी लोग थे, राजपूत नहीं थे। राजपूत अब भी युद्ध में दीवार बनकर खड़े थे। उनके साथ युद्ध करते हुए हमारी सेना पीछे हट गयी, उसी समय हमारे दो शूरवीर युवक मारे गये। उनमें एक क्लर्क और दूसरा रीड था। दोनों चौथी रेजीमेण्ट में लेफ्टीनेण्ट थे। उनका प्रसिद्ध कमाण्डर किसी प्रकार बच सका। इसके कुछ ही देर बाद एक दूसरी अँगरेजी सेना युद्ध करते हुए आगे बढ़ी, उस समय महाराव की सेना पीछे हट कर एक विशाल बाजरे के खेत में पहुँच गयी। अँगरेजी सेना ने उसका पीछा किया और उसने बाजरा के खेत में पहुँचने पर पृथ्वी सिंह को घायल पड़ा हुआ देखा। उसी समय उसे उठाकर अँगरेजी सेना ने अपने सैनिकों के द्वारा शिविर में भेज दिया। अँगरेजी शिविर में पहुँच जाने पर उसकी बड़ी सावधानी के साथ सुश्रुषा और चिकित्सा की गयी। परन्तु वह बच न सका और दूसरे दिन उसकी मृत्यु हो गयी। उस समय उसके साथ कुछ चीजें पायी गयीं। उनमें से एक अँगरेज सैनिक ने उसकी तलवार और अँगूठी ले ली और मोतियों की माला, कटार एवम् अन्य मूल्यवान आभूषण उसने मुझे दे दिये। मैंने वे चीजें पृथ्वी सिंह के लड़के को सम्हाल कर रखने के लिए दे दीं, जो कोटा के सूने सिंहासन का पूर्ण रूप से उत्तराधिकारी था।

अँगरेजी सेना के किसी सैनिक ने आक्रमण करके पृथ्वी सिंह को नहीं मारा था, बल्कि भालों की मार के समय वह अनायास ही घायल हो गया था। अँगरेजी सेना ने महाराव की सेना के साथ युद्ध किया था, लेकिन उनके एक भी सैनिक ने उसके पास पहुँचने की चेष्टा नहीं की थी। इसलिए मालूम होता है कि महाराव के किसी शत्रु ने विश्वासघात करके पृथ्वी सिंह को घायल किया था। क्योंकि पृथ्वी सिंह के शरीर पर सामने कोई भी चोट न थी। उसकी पीठ पर भाले की लगी हुई चोटें इस बात का स्पष्ट प्रमाण देतीं थीं कि उस पर उसी के पक्ष के किसी आदमी का आक्रमण था और उसने किसी दूरवर्ती अपने स्वार्थों की भावना से प्रेरित होकर इस प्रकार विश्वासघात किया था।

महाराव की सेना बाजरा के विशाल खेत में जाकर इधर-उधर हो गयी और उसने अपनी रक्षा की। उस खेत के आगे इतना घना जंगल था कि वहाँ पहुँच जाने पर उस सेना के ऊँचे हाथी भी दिखायी न पड़े। इस युद्ध में हाड़ा राजपूत ने अपनी असीम वीरता का प्रदर्शन दिया। लेकिन दो शूरवारों ने उस समय अपनी जिस राजभक्ति का परिचय दिया, उसका यहाँ पर उल्लेख करना आवश्यक मालूम होता है। वह राजभक्ति ग्रीस और रोम के प्राचीन वीरों की वीरता से किसी प्रकार कम नहीं मानी जा सकती। पहले यह युद्ध एक ऊँचे मैदान में आरम्भ हुआ था। लेकिन अंत में युद्ध करती हुई सेनायें एक स्थान पर पहुँच गयीं, जो संकीर्ण था और क्रमशः ऊँचा होता

गया था। जालिम सिंह की सेना उस संकीर्ण स्थान से होकर जब जा रही थी, एकाएक नदी की दूसरी तरफ की एक ऊँची भूमि से गोलियाँ आकर उस पर पड़ी। लेकिन अपनी ओर की सेना को गोलियाँ चलाने का आदेश नहीं दिया गया था। इसलिए वह सेना रुक कर उस तरफ देखने लगी, जिधर से गोलियाँ आ रह थीं। मालूम हुआ कि नदी के पार की एक ऊँची भूमि पर खड़े हुए दो आदमी गोली चला रहे हैं। सेना चुपचाप खड़ी रही और उसके बाद उसको आगे बढ़ने की आज्ञा दी गयी। उसी समय सेना के आगे के कई एक सैनिक गोलियों से घायल हो गये। उन दोनों आदमियों की तरफ से लगातार गोलियाँ आ रही थीं। परन्तु हमारी तरफ से एक भी गोली नहीं मारी गयी इसलिए अपनी सेना को आदेश दिया और उन दोनों पर गोले मारे गये लेकिन एक भी गोला उनके नहीं लगा। वे दोनों अब भी बड़ी निर्भीकता के साथ गोलियाँ चला रहे थे और उनकी गोलियों से जालिम सिंह के सैनिक घायल हो रहे थे। फिर भी उन दोनों के साहस को देखकर उनके प्राणों की रक्षा करना आवश्यक मालूम हुआ। इसलिए जालिम सिंह की सेना को आदेश दिया गया कि इस सेना के जो लोग आगे बढ़ कर उन दोनों पर आक्रमण करने का साहस करें, उन्हें आगे बढ़ना चाहिए। यह सुनते ही दो रुहेले सैनिक अपने हाथों में तलवारें लेकर आगे बढ़े और आक्रमण करके उन्होंने उन दोनों को मार डाला। आश्चर्य की बात यह है कि उन दो आदमियों ने जालिम सिंह के दस दल सैनिकों और बीस तोपों का सामना किया और लगातार गोलियाँ चलाईं। वे दोनों हाड़ा राजपूत थे, जिनको जालिम सिंह ने उनके अधिकारों से वञ्चित किया था। इसीलिए इस अवसर पर आकर उन्होंने अपना बदला लिया और अन्त में वे मारे गये।

हाड़ौती-राज्य के जिन लोगों ने महाराव के साथ इस समय अपनी राजभक्ति का परिचय दिया, उससे मालूम होता है कि राजपूतों में ऐसे कठोर अवसरों पर भी अपना धर्म-पालन करने का कितना भाव रहता है। साथ ही यह भी प्रकट होता है कि जालिम सिंह का शासन कितना कठोर था। यहाँ तक कि जो एक सामन्त उस संधि में प्रतिनिधि के रूप में रहा था, उसने भी महाराव का साथ दिया और उसका एक लड़का इस युद्ध में बुरी तरह से घायल हुआ। यद्यपि वह सामन्त जालिम सिंह के साथ वैवाहिक सम्बन्ध रखता था और उसने राज राणा के द्वारा कोटा-राज्य में जागीर पायी थी।

महाराव किशोर सिंह ने अपनी बची हुई सेना के साथ युद्ध से निकल कर एक पहाड़ी नदी को पार किया। वहाँ पहुँचने पर उसका घोड़ा गिर कर मर गया, क्योंकि उसके शरीर में गोली का एक घाव था।

इसके बाद महाराव किशोर सिंह अपने तीन सौ अश्वारोही सेना के साथ बड़ौदा चला गया। जिन लोगों ने अपनी राजभक्ति का परिचय देकर महाराव का साथ दिया था, उनको हमने अपना शत्रु नहीं समझा और इसीलिए मराठों की तरह उनका पीछा करके हमने उनको नष्ट करने की चेष्टा नहीं की। वे हमारे विरुद्ध युद्ध में लड़े थे। लेकिन आत्म-रक्षा के लिए उनको ऐसा करना पड़ा था।

संधि के द्वारा कोटा-राज्य के भविष्य को जिस प्रकार घरेलू और बाहरी विपदाओं तथा संघर्षों से अलग रखने की कोशिश की गयी थी, इन दिनों में आपसी विद्रोह ने उसको नष्ट कर दिया। इस विद्रोह के दो कारण थे। एक पृथ्वीसिंह था, जो युद्ध में मारा गया था। इस युद्ध में कोटा के बहुत-से सामन्तों ने जालिम सिंह का पक्ष छोड़कर महाराव का साथ दिया था। लेकिन पहले उनको इस बात का विश्वास न था कि युद्ध का यह परिणाम होगा। यदि हम चाहते तो

उनको राजस्थान के किसी राज्य में आश्रय नहीं मिल सकता था। लेकिन ऐसा करना हमारा कर्त्तव्य नहीं था। महाराव के शिविर में इन सामन्तों के बहुत से कागज-पत्र हमें मिले, जिनसे मालूम हुआ कि राज्य के सामन्तों और हाड़ा राजपूतों को अपने पक्ष में करने के लिए उनके साथ किस प्रकार षड्यन्त्र किये गये थे। उसका परिणाम यह हुआ कि महाराव का साथ देने वालों को भयानक क्षति उठानी पड़ी। लेकिन उस युद्ध के बाद सबको क्षमा कर देने की घोषणा की गयी और जालिम सिंह के द्वारा यह भी घोषणा हुई कि जो सामन्त राज्य को छोड़कर चले गये हैं वे लौट कर अपने स्थानों में आ सकते हैं। वे किसी प्रकार अपराधी न समझे जायँगे। इस, घोषणा के बाद कुछ सप्ताहों में सभी सामन्त और सरदार अपने अपने नगरों में आ गये और राज्य में पूर्ण रूप से शांति कायम हो गयी।

राजनीतिक कार्यों में प्रवेश करने के पहले सन् १८०७ ईसवी में मैंने कोटा-राज्य के अनेक स्थानों में घूम कर वहाँ की ऐतिहासिक सामग्री एकत्रित करने का काम किया था। राहुतगढ़ में सींधिया के दरबार को छोड़कर अपने कुछ आदमियों के साथ चन्देरी के घने जंगलों में मैं घूमता हुआ पश्चिम की तरफ आगे बढ़ा और वेतवा तथा चम्बल नदी के मध्यवर्ती स्थानों में घूमता रहा। इसके बाद बारा नामक स्थान पर पहुँचकर मैंने मुकाम किया। उसके पश्चात् हाड़ौती से सत्रह मील की दूरी पर काली सिंध नामक नदी के किनारे मैं पहुँच गया और अपने आदमियों से वहीं पर आने के लिए मैंने कह दिया था। बमौलिया नामक नगर के पास से जाने के समय मुझे कुछ आदमी मिले। उन्होंने मुझे घेर कर कहा कि आपको हमारे राजा के पास चलना पड़ेगा। उस समय मैं बहुत थका हुआ था। लेकिन उन आदमियों की बात का मान लेना मेरे लिए आवश्यक था। इसलिए मैं उनके साथ चल पड़ा। एक बगीचे के भीतर जाकर घने वृक्षों के बीच में मैने एक ऊँचा चबूतरा देखा। इस चबूतरे पर बमौलिया का सामन्त एक कालीन पर बैठा हुआ था। उसके पास कुछ और भी लोग बैठे हुए थे। उन लोगों ने मेरे साथ बहुत सम्मान प्रकट किया। चबूतरे के पास पहुँच कर मैंने अपने बूट खोलने की कोशिश की लेकिन कुछ थकावट और फिर जल्दी के कारण मैं अपने बूट खोल नहीं सका। मेरे पहुँचने के बाद तुरन्त जलपान की सामग्री मँगाई गयी और एक ब्राह्मण हाथ मुँह धोने के लिए पानी ले आया। मैं उस समय राजपूतों के आचार-व्यवहार से परिचित न था। इसलिए मेरी समझ में जो कुछ आया, वैसा मैंने किया, कुछ देर तक मैंने वहाँ विश्राम किया। वहाँ पर बैठे हुए सामन्त और उनके साथ के आदमियों से मेरी बराबर बाते होती रहीं। यद्यपि मैं इतना थका हुआ था कि चुपचाप लेटे रहकर कुछ देर तक केवल विश्राम करना चाहता था परन्तु मेरे वहाँ पहुँचने के बाद कुछ ही देर में मनुष्यों की एक भीड़ लग गयी और वहाँ पर मेरे आने का समाचार पाकर आदमियों के साथ बहुत-सी स्त्रियाँ और जवान लड़कियाँ मुझे देखने के लिए आयीं। इस प्रकार आने वालों की वहाँ पर एक अच्छी भीड़ लग गयी। वे सभी मेरी ओर देख रहे थे। मेरी घोड़ी लँगड़ी हो गयी थी। इसलिए बमौलिया के सामन्त ने मेरे लिए एक अच्छा घोड़ा कसवा कर तैयार करवा दिया। मेरे चलने के समय जब उस घोड़े के लिए मुझसे कहा गया तो मैंने बड़े सम्मान के साथ सामन्त के घोड़े को लेने से इनकार किया। अपने डेरे पर लौट कर जाने के बाद मैंने कई एक छोटी-छोटी चीजे उपहार स्वरूप सामन्त के पास भेजीं। इसके चौदह वर्ष बाद माँगरोल में महाराव के साथ युद्ध आरम्भ होने से दूसरे दिन बमौलिया के सामन्त की माता का भेजा हुआ मुझे एक पत्र मिला। सामन्त की माता ने मुझे आशीर्वाद देते हुए पत्र में लिखा था कि मेरे लड़के ने अपने सम्मान की रक्षा के लिए युद्ध में महाराव किशोर सिंह का साथ दिया है। इसलिए मेरे लड़के की आप रक्षा करेंगे। मैंने बड़े हर्ष के

साथ उस पत्र का उत्तर देते हुए सामन्त की माता को लिखा कि पत्र लाने वाले आदमी के लौट कर आपके पहुँचने के पहले ही आपका लड़का सुरक्षित आपके पास पहुँच जायगा। बमोलिया का सामन्त आथून के उस सामन्त का वंशज था, जो किसी समय जालिम सिंह का महान शत्रु था।

महाराव किशोर सिंह ने मेवाड़ के नाथद्वारा में जाकर धार्मिक जीवन आरम्भ कर दिया। उस समय उसकी भावनाओं को देख कर और सुन कर मालूम हुआ कि उसने राजनीतिक अशान्ति से अपने आपको अब बिलकुल अलग कर लिया है। उसके नेत्रों का भ्रमात्मक आवरण अब हट गया था और उसकी समझ में आ गया था कि लोगों ने मुझे जिस मार्ग पर ले जाने की कोशिश की थी, वह मार्ग सही नहीं था। मैंने आँखें मूँद कर उनका विश्वास किया था। अब उसकी समझ में आ गया कि जो संधि हुई थी, वह सही थी और उसमें जो दो शर्तें बाद में शामिल की गयी थीं, वे सही थीं। महाराव के सामने अब कोई उलझन न रह गयी थी। अपने जीवन के इस परिवर्तन के साथ वह मेवाड़ के नाथद्वारा में पहुँच गया था और धार्मिक जीवन बिताना आरम्भ कर दिया था। उसके जीवन के इस परिवर्तन के बाद उसके पास उन बातों का उल्लेख करते हुए एक पत्र भेजा गया, जिसके आधार पर वह सम्मान पूर्वक कोटा में आकर राज सिंहासन पर बैठ सकता था। यह पत्र उसके पास भेज दिया गया और उसकी स्वीकृति मिलने पर तुरन्त एक इकरारनामा लिखा गया और उसमें उन सभी बातों का निर्णय किया गया, जिनको लेकर राणा जालिम सिंह और उसके बीच कभी कोई संघर्ष पैदा हो सकता था। उस इकरारनामा में महाराव के पद की मर्यादा सम्मानपूर्ण और सुरक्षित रखी गयी और पूरी शक्ति लगा कर उसमें इस बात का निर्णय किया कि जिससे भविष्य में कभी भी विरोध और विद्रोह की सम्भावना न रह गयी थी। महाराव के पूर्वजों में कभी किसी राजा को राज्य का कोई हिस्सा नहीं दिया गया था। परन्तु इस इकरारनामें के अनुसार महाराव किशोर सिंह को कोटा-राज्य की आमदनी का बीसवां भाग देने का निर्णय किया गया। उदयपुर के राणा को पारिवारिक व्यय के लिए उसके राज्य से जितना मिलता है, महाराव किशोर सिंह को मिलने वाली यह आमदनी उसके बराबर होगी।

यह इकरारनामा लिखकर तैयार कर लिया गया और उसमें दोनों पक्षों के सम्मान और अधिकारों का पूर्ण रूप से ध्यान रखा गया। साथ ही इस बात की चेष्टा की गयी कि एक बार दोनों पक्षों में सद्भाव कायम हो जाने के बाद जो फिर से विरोध की आग प्रज्वलित हुई थी, इसलिए दूसरी बार फिर वैसा न होना चाहिए। इस प्रकार की सभी बातों को सोच-समझ कर इकरारनामा में उनका उल्लेख करके जब संतोषजनक व्यवस्था कर ली गयी तो उसके बाद महाराव किशोर सिंह को नाथद्वारा से बुलाने का प्रयत्न किया गया। महाराव किशोर सिंह ने अपनी स्वीकृत पहले ही दे दी थी। वह नाथद्वारा से चलकर कोटा में आया और बड़े समारोह के साथ जिस दिन महाराव को राजसिंहासन पर बिठाना था, उसी दिन एक भीषण षड़यन्त्र का जन्म हुआ। एक आदमी लँगड़ी दशा में वहां पर आया और उसने अपना नाम विशन सिंह बता कर जाहिर किया कि जालिम सिंह के लड़के माधव सिंह की आज्ञा से मुझे लँगड़ा कर दिया गया है।

इस आदमी की आकृति और महाराव के भाई विशन सिंह की आकृति एक थी। दोनों की शारीरिक बातों में इतनी अधिक समता थी कि सहज ही राज्य के किसी आदमी को उस पर इस तरह का संदेह नहीं हो सकता था कि वह विशन सिंह नहीं है। उस आदमी के इस प्रकार प्रचार करने से पहले तो कोटा के लोगों की हवा बिगड़ी। कुछ उत्तेजना बढ़ती हुई मालूम हुई। लेकिन उसके बाद बहुत जल्दी यह मालूम हो गया कि जो आदमी विशन सिंह के नाम से कोटा में आया है, वह महाराव किशोर सिंह का भाई नहीं है। साथ ही यह भी मालूम हुआ कि

महाराव किशोर सिंह को बुलाकर राज सिंहासन पर बिठाने की चेष्टा की जा रही है, उसको नष्ट करने के लिए इस प्रकार का यह एक षड़यंत्र रचा गया है। उदयपुर के राणा का विवाह महाराव किशोर सिंह की बहन के साथ हुआ था। इसलिए वहाँ के राणा की बहुत बड़ी अभिलाषा यह थी कि महाराव किशोर सिंह को कोटा के सिंहासन पर बिठाया जाय।

राणा ने जब उस षड़यंत्र का समाचार सुना और यह भी सुना कि उसका प्रभाव महाराव किशोर सिंह के सिंहासन पर बैठने पर पड़ रहा है तो राणा ने बड़ी सावधानी और बुद्धिमानी के साथ उस षड़यंत्रकारी को पकड़वाकर उदयपुर राजधानी में बुलवा लिया। उसके षड़यंत्र का रहस्य बाद में भी कुछ प्रकट न हुआ। लेकिन यह मालूम हो गया कि विशन सिंह के नाम से जो आदमी आया था, वह जयपुर-राज्य का रहने वाला था और किसी अपराध के कारण उसको दण्ड देकर लँगड़ा कर दिया गया था। उसके सम्बन्ध में इस प्रकार का रहस्य जाहिर होने पर उसको प्राण-दण्ड दिया गया।

जो षड़यंत्र रचा गया था, उसका अंत हो गया। बड़े सम्मान और समारोह के साथ महाराव किशोर सिंह का आगमन कोटा में हुआ। राज्य की सम्पूर्ण प्रजा ने उस समय खुशियाँ मनायीं। महाराव किशोर सिंह ने इस बार सिंहासन पर बैठ कर उन सभी बातों को अपने हृदय से निकाल दिया, जिनके कारण उसने एक बार सिंहासन छोड़ दिया था और राज्य में भयानक विद्रोह पैदा हो गया था।

महाराव का भाई विशन सिंह राजधानी छोड़कर कोटा से बीस मील की दूरी पर आणता नामक स्थान में रहता था। सिंहासन पर बैठने के बाद महाराव ने कुछ ग्राम और नगर देकर विशन सिंह की जागीर बढ़ा दी।

इसके पहले एक बार और महाराव किशोर सिंह और जालिम सिंह में सद्भाव कायम हुआ था। उस समय मैं एक महीने तक कोटा राजधानी में इस अभिप्राय से रहा था कि जिससे उन दोनों से बीच का सद्भाव मजबूत हो जाय और फिर किसी प्रकार की उसमें कोई बाधा न पड़े। इस बार भी मैंने यही किया और कोटा में इसलिए कुछ दिनों तक बना रहा कि जिससे दोनों के सम्बन्ध सदा के लिए स्नेहपूर्ण बन जांय। महाराव के सिंहसन पर बैठ जाने के बाद और राज्य में पूर्ण रूप से शांति कायम हो जाने के पश्चात् जालिम सिंह राजधानी से बाहर छावनी में जाकर रहने लगा। इसके बाद जालिम सिंह पाँच वर्ष तक और जीवित रहा।

कोटा के राज-सिंहासन पर जितने भी राजा बैठे थे, उनमें जालिम सिंह राजा तो न था, लेकिन उसने एक राजा की हैसियत से वहाँ का शासन किया था। उसके जीवन में अनेक विशेषतायें थीं। इसलिए कोटा-राज्य के इतिहास का अंत करते हुए जालिम सिंह के अन्तिम जीवन में उसकी कुछ विशेषताओं पर प्रकाश डालना जरूरी है।

जालिम सिंह के सम्पूर्ण जीवन का अध्ययन करने के बाद हम यह कहने का साहस करेंगे कि वह एक असाधारण पुरुष था। यही कारण था कि उसने कोटा-राज्य में अपना प्रभुत्व कायम किया था। वह प्रायः कहा करता था कि अपने मन के भावों को मैं ही जानता हूँ। यह बात सही है। वह एक साधारण पुरुष न था और इसलिए उसको समझ सकना साधारण काम न था। कोटा में इतना बड़ा अधिकार प्राप्त करने के बाद भी उसने सुख और विलासिता का जीवन कभी नहीं बिताया। वह स्वाभाविक रूप से गम्भीर था। अपने प्रभुत्व के दिनों में वह कभी बहुत प्रसन्न नहीं हुआ और भयानक से भयानक कठिनाइयों के समय भी उसको किसी ने कभी घबराते नहीं देखा। वह सुख

और दुख में, कठिनाइयों और विपदाओं में एवम् सहयोग और विद्रोह में एक-सा रहता था। उसकी सब से बड़ी विशेषता यह थी। उसमें आत्म संयम था और आत्म-बल था। जिसमें आत्म-बल होता है, वह भयानक कठिनाइयों में भी प्रसन्न रहता है। जालिम सिंह में इस गुण का अभाव न था।

जालिम सिंह के बहुत निकट रहकर जिसने उसको समझा है, वह जानता है कि वह आशावादी था। अपने किसी भी कार्य में वह कभी असफलता का स्वप्न नहीं देखता था। वह कहा करता था कि एक शक्तिशाली पुरुष को सदा सफलता मिलती है। असफलता मनुष्य की निर्बलता होती है। वह जल्दी किसी पर संदेह नहीं करता था। उसका विश्वास था कि मनुष्य को अपनी निर्बलता में बहुत जल्दी दूसरों पर अविश्वास पैदा होता है। उसका यह भी विश्वास था कि जो दूसरों पर विश्वास करता है, उसको कभी क्षति नहीं उठानी पड़ती। सचमुच विश्वास करना मनुष्य का एक अच्छा गुण है।

जालिम सिंह अपने कर्मचारियों से काम लेना जानता था और अपने अच्छे व्यवहारों से वह उनके हृदयों पर अपना अधिकार पैदा कर लेता था। शासक का यह एक बहुत ऊँचा गुण होता है। पिछले पृष्ठों में यह लिखा गया है कि राज्य के कितने ही कर्मचारियों और अधिकारियों के साथ वह मित्रता का व्यवहार करता था। राज्य के कार्य में उसकी सफलता का यह एक बहुत बड़ा कारण था। उसकी बुद्धिमत्ता की सब से बड़ी खूबी यह थी कि वह जिन कर्मचारियों और अधिकारियों पर विश्वास करता था और उनको अपना मित्र समझता था, उनके द्वारा वह कभी नियंत्रित नहीं होता था, बल्कि उनको वह स्वयं अपने नियंत्रण में रखता था। कर्मचारियों और अधिकारियों को संतुष्ट रखने के लिए वह समय पर वेतन देता था और उनके अच्छे कामों के लिए पुरस्कार देकर उनके उत्साह को बढ़ाता था।

जालिम सिंह में बातचीत करने का एक अच्छा गुण था। अपने तर्क और सद्भाव के द्वारा वह लोगों को प्रभावित करना जानता था। उसकी बातचीत को सुनकर प्रजा प्रसन्न होती थी और उसको धन्यवाद देती थी। अपराध करने वालों के साथ भी वह संतोष जनक बातें करता था।

जालिम सिंह ने कोटा-राज्य में खेती के कार्य में बड़ी उन्नति की थी। वह कृषि-व्यवसाय को भली प्रकार समझता था और अनाज की पैदावार को बढ़ाना जानता था। यही कारण था कि उसके पहले राज्य में खेती के द्वारा जो अनाज पैदा हुआ करता था, उसमें उसके समय में बहुत वृद्धि हो गयी थी। जालिम सिंह अनाज की पैदावार का महत्व समझता था और इसलिए वह राज्य की खेती के प्रति अधिक ध्यान देता था। उसके समय कोटा-राज्य में अनाज की पैदावार इतनी अधिक होती थी कि राज्य के लोग कभी अनाज का अभाव अनुभव नहीं करते थे। इतना ही नहीं, बल्कि आवश्यकता पड़ने पर राजस्थान के दूसरे भागों और भारतवर्ष के अधिकांश नगरों में कोटा का अनाज जाया करता था।

जालिमसिंह में अनेक गुण आश्चर्य जनक थे। अपराधियों के साथ वह कठोर अत्याचार करता था और जिन लोगों को वह अधिकारी समझता था, उनकी वह पूर्ण रूप से सहायता करता था। अपने इन गुणों के अनुसार वह साधु और संन्यासियों की भिक्षा का दसवाँ भाग ले लेता था और जहाँ आवश्यकता समझता था लोगों को सोने के आभूषण दान में देता था। उसने अपने राज्य के सामन्तों को निकालकर उनकी भूमि पर अधिकार कर लिया था और दूसरे राज्यों के सामन्तों को अपने यहाँ आश्रय देकर उनकी सभी प्रकार सहायता किया करता था।

जालिम सिंह कवियों और जादूगरों पर विश्वास नहीं करता था। झूठी प्रशंसा करने वालों पर वह जला करता था। इस प्रकार की अपनी प्रशंसा सुनकर वह कभी प्रसन्न नहीं होता था। कवियों की झूठी प्रशंसाओं से उसे एक प्रकार की चिढ़ थी। उसका कहना था कि इन कवियों ने अपनी इन आदतों के द्वारा न जाने कितने राजवंशों का क्षय किया है। अपनी इन आदतों के लिए वह कोटा से लेकर बाहर तक प्रसिद्ध था और इसीलिए भाट और कवि उसके पास कभी आते न थे। किसी अनजान के आ जाने पर उसको निराश होकर लौटना पड़ता था।

जालिम सिंह बहुत अधिक परिश्रमी था। पच्चासी वर्ष में उसके परिश्रम को देखकर लोग आश्चर्य करते थे। वह आलसी न था और जो आलस करते थे, उनसे वह अप्रसन्न रहता था। वह कहा करता था कि शासक को विलासी और आलसी न होना चाहिए। उसका विश्वास था कि अनाज के घुन की तरह विलासिता मनुष्य का क्षय करती है। इसीलिए वह स्वयं विलासिता का विरोधी था और दूसरों को विलासिता में नहीं देखना चाहता था। प्रत्येक समय वह कुछ काम किया करता था और दूसरों को भी ऐसा करने के लिए वह सदा शिक्षा देता था। वह कहा करता था कि एक आलसी और विलासी राजपूत अपने कर्त्तव्य और धर्म से गिर जाता है। राज वंश के लोगों को शिक्षा देते हुए कहा करता था कि राजा सिंहासन पर बैठकर नहीं, बल्कि घोड़े पर बैठ कर राज्य की रक्षा करता है।

जालिम सिंह घोड़े पर बैठकर शिकार खेलने के लिए जाया करता था। जब उसकी दृष्टि बिलकुल निर्बल हो गयी थी और अपनी एक आँख को वह पहले ही खो चुका था, उस समय वह पालकी पर बैठकर शिकार खेलने के लिए जाता था और उसके पीछे उस समय हजारों सैनिक चलते थे। शिकार पर जाने के समय अपने सामन्तों के साथ वह संकोच छोड़कर बातें किया करता था। कर्मचारियों के भीतरी भावों को जानने के लिए मौका मिल जाने पर वह छिप कर उनकी बातें सुना करता था। ऐसे अवसरों पर उनकी कमजोरियों को जानकर वह उनको अच्छी बातें सिखाने का काम करता था।

जङ्गल में शिकार खेलने के बाद वह सब के साथ घने पेड़ों के नीचे बैठता था और बिना किसी संकोच के सैनिकों तथा कर्मचारियों के साथ शिकार खेलने तथा उस समय की घटनाओं पर विवाद करने में वह एक अपूर्व सुख अनुभव करता था। जालिम सिंह ऐसे अवसरों की बातचीत में सब को बातें करने का मौका देता था। उन अवसरों पर कभी-कभी हँसी मजाक की बात आ जाती थी, उस समय वह भी खूब हँसता था। उसके इन व्यवहारों से सैनिक और कर्मचारी बहुत प्रसन्न होते थे। वह जब शिकार खेलने के लिए जाता था, तो ऊँटों पर आटा, घी; शक्कर, तरकारी और खाने पीने की बहुत-सी चीजें साथ जाया करती थी। वह सब के साथ जङ्गल पहुँच कर जब शिकार खेलने चला जाता था, उस समय आयी हुई सामग्री से भोजन बनाने का कार्य आरम्भ हो जाता था, और शिकार खेलकर लौटने के बाद सभी लोग बैठकर भोजन करते थे। इसके बाद जालिम सिंह जङ्गल में जब बैठकर बातें करता तो उस समय राज्य के अनेक कार्यों के सम्बन्ध में वह लोगों के विचारों को जानने की कोशिश करता। उस समय खेती और दूसरे व्यवसायों के सम्बन्ध में उपस्थित लोगों के साथ बातें किया करता था।

जालिम सिंह शासन करने में बहुत कठोर था और अपराधियों को वह कभी क्षमा नहीं करता था। उसका विश्वास था कि बिना कठोर व्यवहारों के शासन की व्यवस्था कभी ठीक नहीं रह सकती। इसलिए वह इस विषय में कभी शिथिलता से काम नहीं लेता था। राज्य की दूसरी

उलझनों और आपसी विरोधों तथा विद्रोहों के समय भी जालिम सिंह का शासन कभी शिथिल नहीं पड़ा था। प्रत्येक परिस्थिति में वह शासन के प्रबन्ध को कभी कमजोर नहीं होने देता था। यही कारण था कि कोटा-राज्य में अपराधी लोग बहुत डरा करते थे।

अच्छे और बुरे आदमियों के पहचानने की जालिम सिंह में अद्भुत क्षमता थी। वह राज्य के कर्मचारियों में कभी खराब आदमियों को नहीं रखता था। सिफारिशों पर वह विश्वास नहीं करता था। उसका विश्वास था कि राज्य का अच्छा शासन अच्छे आदमियों पर निर्भर होता है।

अपने इन सब गुणों के साथ जालिम सिंह अच्छा सैनिक और सेनापति था। अनेक अवसरों पर उसने कोटा-राज्य की रक्षा की और उसके गौरव को उसने बढ़ाया। उन अवसरों पर यदि जालिम सिंह न होता तो कोटा-राज्य को किस प्रकार के दिन देखने पड़ते, यह नहीं कहा जा सकता।

———

ऐतिहासिक यात्रा
अठत्तरवाँ परिच्छेद
मारवाड़ की तरफ

रोमाञ्चकारी उदयपुर राज्य–ऐतिहासिक खोज का कार्य–सामन्तों के साथ भेंट–विचारपरामर्श–सामन्तों के द्वारा सम्मान और सुविधायें–मेवाड़ से मारवाड़ जाने की तैयारी–उदयपुर राज्य का बरसाती जीवन–जल का कष्ट–कुओं के जल का सुधार–प्रातःकाल महल में बजने वाले नगाड़े का अभिप्राय–राजा की ओर से मार्ग में सहायक सेना–तेरह मील के बाद मुकाम–बारीश नदी का दृश्य–राणा की परिस्थितियां और उसका अनुरोध–मारवाड़ के सैकड़ों जंगली ऊंटों का एक साथ बोलना–आठ वर्ष के हाथी का एक बच्चा–वृक्षों और जल से भरा हुआ रास्ता–कठिनाइयों के साथ प्रकृति का सौन्दर्य–देवपुर ग्राम–राणा का भानैज जालिम सिंह–जालिम सिंह और यती ज्ञान चन्द–पुलानो का दृश्य–राजस्थान में ओसी जाति के लोग–माणिक चन्द और रामसिंह–माणिकचन्द के षड़यंत्र–नाथद्वारा का शिखर–चलने के मार्ग में भीषण दलदल–मंदिर के अधिकार में चालीस हजार दूध देने वाली गायें–सुराट का वैश्य–मन्दिर का प्रधान पुजारी–फतेहचन्द नामक हाथी की नाराजगी–बूनाश नदी की देवी–संन्यासी के द्वारा अँगरेजों की प्रशंसा–पहाड़ी स्थानों में प्रकृति की शोभा–पहाड़ों के ऊपर खेती–राणा कुम्भ के वंशज–सती मंदिर–राजा दौलत सिंह से भेंट–कमलमीर के दुर्ग के सैनिकों का वेतन–सैनिकों की संकीर्ण मनोवृत्ति–जैन मन्दिर की विशेषता–स्वाभिमानिनी ताराबाई–बिदनोर का उद्धार–पृथ्वीराज की बहन–संकटपूर्ण रास्ता–स्मारकों के दर्शन ।

११ अक्टूबर सन् १८१६ ईसवी—भारतवर्ष के अत्यन्त रोमाञ्चकारी उदयपुर-राज्य की भूमि में जब मैंने पदार्पण किया था, उस समय से लगभग दो वर्ष अब तक बीत चुके हैं । हम लोगों का कोई भी आदमी अब तक इसकी छै मील की सीमा के बाहर नहीं जा सका था । इस राज्य के प्रत्येक स्थान, मार्ग, पर्वत, शिखर, दुर्ग, देवालय, धर्मशाला, मीनार और उसके वृक्षों के साथ परिचय हो गया है । मैंने उन सबको सम्मान के साथ देखा है और राज्य के प्रत्येक मंदिर, शिवाला और धर्मशाला को देखने में मैंने एक अद्भुत सुख को अनुभव किया है । यहाँ के समस्त टूटे-फूटे स्थानों और मुकामों का मैंने अपने नेत्रों से भलि-भाँति अवलोकन किया है । ऐसा करने में मुझे अत्यधिक सुख मिला है ।

इन सभी स्थानों को देख-देखकर उसकी ऐतिहासिक खोज की है । राज्य के सामन्तों से भेंट की है और अनेक विषयों पर मैंने उनसे बातें की हैं । यही नहीं; सामन्तों के कर्मचारियों और उनके मंत्रियों से भी मैंने भेंट करके उनसे भली प्रकार बातें की हैं । मैंने उनके सब भावों और व्यवहारों को समझने की कोशिश की है । राज्य के प्रत्येक स्थान पर सम्मान के साथ मुझे सुविधायें प्राप्त हुई हैं । मुझको किसी समय अभावों का अनुभव नहीं हुआ । जहां जैसी जरूरत

पड़ी है, बहुत आसानी के साथ वहाँ के लोगों के द्वारा उनकी पूर्ति हुई हैं। मैंने कहीं पर भी किसी प्रकार की असुविधा को अनुभव नहीं किया।

राजस्थान में उदयपुर का नाम बहुत प्रसिद्ध है। उसकी सभी बातों को जानने के लिए मेरे साथ का प्रत्येक आदमी पहले से ही बहुत उत्सुक था और मैं स्वयं भारतवर्ष के उस प्रसिद्ध नगर को सभी प्रकार जानना और समझना चाहता था, जो उदयपुर के नाम से विख्यात था।

किसी प्रकार यह दिन मेरे सामने आया। मैंने प्रसन्न होकर अपने सहयोगियों के साथ मेवाड़ से मारवाड़ की तरफ जाने की तैयारी की। मेवाड़ और मारवाड़ में बहुत अन्तर है। इस अन्तर को यहाँ पर स्पष्ट कर देना जरूरी मालूम होता है। मेवाड़ जितना ही सुख और सुविधाओं से परिपूर्ण है, मारवाड़ की मरुभूमि उतनी ही कष्टों और कठिनाइयों से भरी हुई है। इतना सब होने पर भी पर्यटन और अनुसंधान सम्बन्धी उत्सुकता के कारण वहाँ की कष्टपूर्ण और कठोर यात्रा हम लोगों को किसी प्रकार अप्रसन्न न कर सकी।

हमारे साथ कप्तान वाग, लेफ्टिनेण्ट केरी, डाक्टर डङ्कन, पहरेदारों का एक दल और पैदल तथा सवारों की दो पल्टनें थीं। उदयपुर की घाटी छोड़ने के लिए हमारे साथ के सभी लोग उत्सुक थे। इसका एक कारण यह भी था कि बरसात के कारण यह घाटी स्वास्थ्य के लिए भयानक हो जाती है। उन दिनों में झरनों और नदियों का जल उफन-उफन कर कुओं में भर जाता है और अनेक प्रकार की गन्दगी पैदा हो जाने के कारण उन कुओं के जल में काले रंग का तेल-सा तैरने लगता है। इसका फल यह होता है कि उन कुओं का जल न केवल पीने में बदजायका हो जाता है, बल्कि वह अनेक प्रकार से दूषित, अरुचिकर, अप्रिय और स्वास्थ्य को नष्ट करने वाला हो जाता है। उसके पीने वालों को उन दिनों में बड़ा कष्ट रहा करता है।

वहाँ पर इन्हीं कुओं का जल पीने के काम में आता है। इन कुओं के जल को दूषित और अरुचिकर समझने के बाद भी उनको शुद्ध और विकार हीन बनाने का कोई उपाय मैं वहाँ के लोगों को बता नहीं सका। वहाँ के लोग इन कुओं के जल को क्षार और आमला के द्वारा शुद्ध कर लेने की कोशिश किया करते हैं। उन कुओं का जल जब क्षार के द्वारा शुद्ध किया जाता है तो वह जल किसी प्रकार भोजन बनाने और पीने के लिए बहुत कुछ काम का बन जाता है। आमला का प्रयोग करने से जल का दूषित अंश और विकार जल के नीचे बैठ जाते हैं। राजपूत लोग अपने मैले कपड़ों को धोने के समय साबुन का भी प्रयोग करते हैं।

१२ अक्टूबर—प्रातःकाल पाँच बजे बिगुल बजा। तैयार होने के लिए यह एक आदेश था। उस बिगुल के बजते ही सभी लोग तैयार होने लगे और मैं भी अपनी तैयारी में लग गया। उस समय मैंने देखा कि पीले वस्त्र पहने हुए सैनिक वृद्ध सेनापति के सामने खड़े हैं और अश्वारोही सैनिक लाल पगड़ी बाँधकर बड़ी तेजी के साथ पीले अँगरखे बाँधने पहनने और पेटियाँ बाँधने में लगे हैं।

महल का नगाड़ा भी बज चुका था। वह जाहिर करता था कि सूर्यवंशी राजा जग गये हैं। हम लोग तैयार होने के बाद अपने स्थानों से चलकर सूर्य द्वार पर पहुँच गये। वहाँ पर देखा कि भिण्डोर, दैलवारा, अमाइत और वंशी के चार सामन्त अपनी सेनाओं के साथ तैयार खड़े हैं और राजा का आदेश पाकर हम लोगों को वहाँ की सीमा तक पहुँचाने के लिए तैयार हैं। राजा का यह एक अच्छा व्यवहार हम लोगों के साथ था। कुछ कठिनाइयों और आशंकाओं के कारण भी राज्य

की सेना के साथ सीमा तक पहुँचना हम लोगों के लिए जरूरी था। इसलिए राज्य की सेना के साथ हम लोग वहाँ से रवाना हुए और पहाड़ी रास्ते को हम लोगों ने धीरे-धीरे पार किया। यहाँ तक पहुँचाकर राज्य की सेना वापस जाने को थी। इसलिए हमने राणा और सामन्तों को धन्यवाद देकर उसको वहां से वापस किया।

आठ बजने के पहले ही हम लोग तेरह मील का रास्ता चलकर उस स्थान पर पहुँच गये, जहाँ पर रुकने और विश्राम करने के लिए हम लोगों ने पहले से ही एक निश्चित कार्यक्रम बना लिया था। इसलिए वहाँ पहुँचकर हम लोगों ने मुकाम किया। वह स्थान मैरता और तुषग्राम के बीच का था। उसके रास्ते में दोनों तरफ बहुत अच्छे वृक्ष लगे हुए हैं। उनको देखकर उस स्थान की रमणीकता का सहज ही अनुमान होता है। यहाँ से छितौर की तरफ जाती हुई जो भूमि दिखायी देती है, वह उस स्थान की सतह से नीची है। स्थान के तीन मील उत्तर की तरफ वह स्थान है, जहाँ पर राणा और उसके सामन्त लोग शिकार खेलने के लिए जाया करते हैं। उस स्थान में बहुत हिरण और बाघ पाये जाते हैं।

उस स्थान के दक्षिण में और एक मील उत्तर की तरफ बारीश नदी बहती है। उस नदी में बहुत-सी मछलियाँ तैरती हुई दिखायी देती हैं। उनके कारण नदी का जल देखने में बहुत सुन्दर मालूम होता है। वहाँ से पश्चिम की तरफ तीन मील की दूरी पर विशाल उदय सागर है। कुछ कारणों से राजधानी से बाहर राणा ने यह स्थान तैयार करवाया है। यह बात जरूर है कि यह स्थान स्वास्थ्य के लिए बहुत उपयोगी मालूम होता है। लेकिन उसके तैयार कराने में केवल इतना ही कारण नहीं है। राजमहल से इतनी दूरी पर इस स्थान के निर्माण का कुछ विशेष कारण भी है। इस स्थान को देखकर मेरे मन में अनेक प्रकार की भावनायें पैदा हुईं। मुझे यह भी अनुभव हुआ कि राजधानी से इतनी दूरी पर इस स्थान को तैयार करा के राणा ने कम्पनी के प्रतिनिधियों को ठहरने के लिए व्यवस्था की है। उसकी इस व्यवस्था में एक राजनीतिक दूरदर्शिता है, इसमें संदेह नहीं।

पहले पहल जब मैने राणा से मुलाकात की तो मैने उसको बहुत परेशान हालत में पाया। उसको देखकर और उसकी परिस्थितियों को अनुभव करके मैंने उसके साथ अपनी हमदर्दी प्रकट की। उससे उसको बहुत शांति मिली। उसने सहायता करने के लिए मुझसे अनुरोध किया। उसके अनुरोध को सुनकर मैंने सोचा कि यह भी अच्छा रहेगा और सहायता करने के नाम पर अनेक प्रकार से दखल देने का मुझे अधिकार रहेगा। सबसे बड़ी बात यह होगी कि ऐसा करने से राज्य के किसी व्यक्ति को संदेह करने का मौका न मिलेगा।

यही हुआ भी। इस दूरवर्ती स्थान पर हम लोगों को मुकाम मिलने के कारण राणा को भी अनेक प्रकार की सुविधायें मिलीं और उसके शासन की परिस्थितियों से हम लोगों का सम्पर्क दूर रहा। इस स्वास्थ्य पूर्ण स्थान पर रहकर हम लोगो ने सुख का अनुभव किया। कई बातों के कारण यह स्थान रमणीक मालूम हो रहा था। यहाँ का जलवायु बहुत अच्छा था। ऊँटों पर लाद-लाद कर हमारा सामान यहाँ पर पहुँचाया गया और हम लोगों ने वहाँ की सभी चीजों को अपने अनुकूल बनाया।

१३ अक्टूबर– उस स्थान को छोड़कर जब हम लोग रवाना हुए, उस समय सबेरा था। उस प्रात:काल में मारवाड़ के सैकड़ों जंगली ऊँटों के चिल्लाने की आवाज सुनायी दे रही थी। उस समय कोई दूसरी आवाज हम लोगों के कानों में नहीं आती थी। लेकिन बाद में हाथियों की भयानक आवाजें भी सुनायी पड़ने लगीं। उन हाथियों में उनके बच्चे इधर-उधर दौड़ रहे थे। वे बच्चे

स्वतंत्र रूप से इधर-उधर दौड़ते हुए कभी हम लोगों के पास आ जाते थे और कभी दूर भाग जाते थे। ऐसा मालूम होता था, मानों वे आपस में खेल रहे हैं। उनको देख कर हम लोग बहुत खुश हो रहे थे। उस समय उन हाथियों के बच्चों को देखकर और उनके चलने तथा दौड़ने से प्रसन्न होकर हम सभी लोग जोर से एक साथ हँस पड़े।

इन हाथियों के बच्चों में एक बच्चा आठ वर्ष का मालूम हुआ। वह अधिक ऊँचा नहीं है। लेकिन चञ्चल और शैतान बहुत मालूम होता है। जो लोग हम लोगों का खाना बना रहें थे, वह आठ साल का बच्चा उनके पास बार-बार जाता और उसके बाद लौटकर तेजी के साथ भागता। उसको देखकर साफ जाहिर होता है कि वह भोजन बनाने वालों के साथ शैतानी कर रहा है। उसकी इन हरकतों को देखकर मुझे आदमी के बच्चों की आदतो का स्मरण होने लगा। मैं सोचने लगा कि हम लोगों के बच्चों में भी बहुत-कुछ इसी प्रकार की आदतें पायी जाती हैं।

हमको मालूम हुआ कि जिस रास्ते से हम लोगों को जाना है, वह रास्ता जलमय है। मारवाड़ी पशुओं को उस रास्ते पर चलना मुश्किल दिखायी देने लगा। जिस स्थान से हम लोग चल रहे थे, वहाँ पर विभिन्न प्रकार के बहुत-से वृक्ष थे और रास्ता जल से भरा हुआ था। उस रास्ते से हम लोगों को चलना पड़ा। मार्ग में बहुत-से ग्राम दिखायी पड़े। ऐसा मालूम हुआ कि उनके रहने वालों का मार पीट कर लूट लेना, झगड़ा करना और लड़ाई लड़ना ही रोजगार है। इस प्रकार की बातें उन गावों के सम्बन्ध में जानकर हमने न जाने क्या-क्या सोच डाला।

कुछ भी हो, जिस स्थान से हम लोग चल रहे थे, उसमें प्रकृति का सौन्दर्य खूब दिखायी देता था। बहुत तरह के वृक्ष आँखों के सामने आ रहे थे और उनसे हम लोगों ने एक प्रकार के सुख और संतोष का अनुभव किया। इस प्रकार के रमणीक स्थान राजस्थान में ही देखने को मिलते हैं। यह बात बार-बार मेरे मन में गुजरने लगी।

जिस रास्ते से हम लोग चल रहे थे, हमारे बायी तरफ पहाड़ों का एक ऊंचा सिलसिला था। उसे देखकर ऐसा मालूम होता था, मानों उन पहाड़ों के द्वारा उदयपुर की रक्षा के लिए एक ऊँची और अटूट दीवार बनी हुई है। उस शिखर के ऊपर राताकोट का टूटा और गिरा हुआ भाग अब तक उसके प्राचीन गोरव का परिचय देता है। उसके ऊपर से चारों तरफ के दृश्य दिखायी देते हैं। हमारे पूर्व की तरफ इतना विस्तृत क्षेत्र दिखायी दे रहा है, जिसकी कहीं पर सीमा नजर में नहीं आती।

हम लोग देवपुर होकर आगे बढ़े। यह एक ग्राम था और सभी प्रकार सम्पन्न था। मारवाड़ का उत्तराधिकारी भानैज × जालिम सिंह उस देवपुर का अधिकारी है। हमारे पूज्यगुरु :-: ने

× टॉड साहब का लिखा हुआ यहाँ पर भानैज शब्द कुछ समझ में नहीं आता। इस शब्द से कुछ भ्रम पैदा होता है। इस विषय के दूसरे विद्वानों का इस प्रकार कहना है। भानैज और भागनेय दो शब्द ऐसे हैं, जो एक दूसरे का भ्रम उत्पन्न करते हैं। वास्तव में भानैज भाञ्जे को कहा जाता है। टॉड साहब का अभिप्राय क्या है, यह स्पष्ट रूप से समझ में नहीं आता। इस शब्द पर कुछ लोगों का मतभेद होने के कारण यहां पर इतना लिख कर स्पष्टी करण किया गया है। जिससे पाठक कुछ सही अन्दाज लगा सकें।—अनुवादक।

:-: टॉड साहब ने अपने गुरु ज्ञान चन्द के सम्बन्ध में बहुत-कुछ लिखा है और इस बात को स्वीकार किया है कि यती ज्ञान चन्द जैन मत का मानने वाला था। वह दस वर्ष तक मेरे साथ रहा और उसने सभी प्रकार मेरी सहायता की। मै न केवल उसकी सहायता से सन्तुष्ट रहा, बल्कि उसकी योग्यता और व्यावहारिकता से मुझे बहुत सन्तोष मिला।

शस्त्र विद्या के समान शास्त्रों के अध्ययन में भी जो योग्यता प्राप्त की थी, उसका श्रेय जालिम सिंह को ही था। जालिम सिंह ने मेवाड़ की राजकुमारी से जन्म लिया था और वह राजकुमारी राजा विजय सिंह को ब्याही गयी थी। दुर्भाग्य से राजा विजय सिंह के परिवार में एक भयानक वैमनस्य पैदा हो गया था और उससे असंतुष्ट होकर जालिम सिंह अपने मामा के यहाँ जाकर रहने लगा था।

राणा ने जालिम सिंह को बड़े सम्मान के साथ अपने यहाँ रखा और उसके गुजर के लिए सम्पत्ति तथा जागीर दी गयी थी। हमारे गुरु यती ज्ञान चन्द्र ने न्याय शास्त्र, विज्ञान, ज्योतिष और अपने देश के इतिहास का अच्छा अध्ययन किया था, उसे दूसरे कवियों की बहुत-सी अच्छी कवितायें जबानी याद थीं और वह स्वयं कवि था। जयदेव की बहुत-सी कवितायें, उसने याद कर रखीं थी। उनको वह प्राय: सुनाया करता था। उसकी इस योग्यता और काव्य-प्रियता के कारण बहुत-से कवि प्राय: उसके पास आया करते थे और कई-कई दिनों तक वहाँ ठहरा करते थे।

शिक्षा और अध्ययन के सम्बन्ध में जालिम सिंह और यती ज्ञानचन्द का एक घनिष्ट सम्बन्ध रहा। उस विषय में बातचीत करते हुए ज्ञानचन्द ने कभी अपनी प्रशंसा नहीं की। वह सदा अपने आपको एक साधारण स्थान देता रहा। उसका यह तरीका उसके विशाल आत्मा का परिचय देता है। गुरु ज्ञान चन्द में इस प्रकार के अनेक गुण थे, जिनमे वह सभी प्रकार की प्रशंसा का अधिकारी था। उसने मेरे इस इतिहास के निर्माण कार्य में जिस लगन के साथ सहायता की थी, उसे मैं भूल नहीं सकता।

हम लोग जिस रास्ते से चल रहे थे, वह कीचड़ से भरा हुआ था और चलने में अनेक प्रकार के कष्ट पैदा करता था। उस मार्ग में लगातार चार घन्टे तक चलकर हम लोग पुलानो के अगले शिखर पर पहुँचे। देवपुर की तरह पुलानों का भी विध्वस हो चुका था। उसके इस प्रकार नष्ट हो जाने के कारण उसके निवासी उस नगर के उस भाग में रहते हैं, जो किसी प्रकार रहने के योग्य है और उसके रहने वालों ने अपने स्थानों को रहने के योग्य बना लिया है।

पुलानों पहले एक सम्पन्न और समृद्ध नगर था, इसका सहज ही अनुमान यहाँ के देव स्थानों और मकानों के खण्डहरों को देखकर किया जा सकता है। देवपुर पुलानो—दोनों ही पहले राणा के अधिकार में थे, जालिम सिंह की मृत्यु के बाद राणा ने इन दोनों स्थानों को भगवान कृष्ण के मन्दिर में लगा दिये थे, राजमन्त्री के दाहिने हाथ रामसिंह मेहता निन्दी के देवधान माणिक चन्द और नरसिंहगढ़ के पच्युत राजा को यहां पर मैंने देखा। वह अब उदयपुर में रहा करता है, रामसिंह वैश्य जाति का एक आदर्श पुरुष है। यह बात जरूर है कि उसने मेवाड़ की सीमा के बाहर कभी जाने का अवसर नहीं पाया, फिर भी उसके साथ बातें करके यह स्वीकार करना पड़ेगा कि उसकी तरह का अच्छा आदमी जल्दी कहीं मिलेगा नहीं, वह देखने में सुन्दर है, उसका शरीर लम्बा है और शरीर के सभी अंग सुगठित तथा सुव्यवस्थित हैं। उसका रंग गोरा है। बाल काले घुंघराले हैं, उसके मुख पर गलमुच्छें बड़ी अच्छी मालूम होती हैं। वह देखने में सुन्दर और प्रिय मालूम होता है, अपने अच्छे व्यवहारों के कारण उसने सभी के हृदयों पर अधिकार कर रखा है। रामसिंह सदा साफ-सुथरे और अच्छे वस्त्र पहनता है। उसने ओसी जाति में जन्म लिया है और जैनमत का मानने वाला है।

राजस्थान में ओसी जाति के लोग लगभग एक लाख की संख्या में रहते हैं। ओसी जाति राजपूतों में अग्नि वंश में मानी जाती है। इस जाति के लोगों ने बहुत पहले हिन्दू धर्म छोड़कर

जैन धर्म अपना लिया था। उस समय से ये लोग ओसवालों के नाम से प्रसिद्ध हैं। लोगों का कहना है कि अग्नि वंश के प्रमार और सोलंकी राजपूतों ने सबसे पहले जैन धर्म को स्वीकार किया था। और उस समय से वे लोग इसी जैन धर्म में चले आते हैं।

मानिक चन्द भी जैन धर्मावलम्बी था। लेकिन वह युद्ध प्रिय था। उसका स्वभाव रामसिंह से बिलकुल भिन्न था। उसका शरीर लम्बा, लेकिन अत्यन्त दुबला-पतला और उसका रंग काला था। मस्तक के साथ-साथ उसकी जबान बराबर हिला करती थी। पच्चीस वर्ष तक वह अनेक प्रकार के षड़यन्त्रों में रहा, कोटा में जालिम सिंह के अतिरिक्त षड़यन्त्रों में दूसरा कोई उसका सामना नहीं कर सका। वह शक्तावत लोगों का एक प्रधान व्यक्ति था और उस सम्प्रदाय के राजपूतों के सरदार निन्दी पति का मन्त्री था। यही कारण था कि वह चन्दावत लोगों का परम शत्रु था।

माणिक चन्द ने चन्दावत लोगों को नष्ट करने के लिए सभी प्रकार के षड़यन्त्र किये थे। और अपने उपायों में उसने कुछ शेष नहीं रखा था। अपने शत्रुओं के सर्वनाश के लिए उसने पठानों और मराठों के साथ मेलकर लिया था। अपने षड़यन्त्रों के कारण वह एक बार कैद कर लिया गया था और उस समय जुर्माने में रुपये न दे सकने के कारण उसको भयानक कष्टों और अपमानों का सामना करना पड़ा था। इसमें सन्देह नहीं कि वह एक दूरदर्शी और बुद्धिमान पुरुष था। यही कारण था कि वह वंश के लोगों में प्रधान माना जाता था।

इस समय माणिक चन्द की अवस्था पचास वर्ष की थी। वह सदा प्रसन्न रहता था, रहस्य पूर्ण बातें करता था और अपने इन्हीं गुणों के कारण वह एक बार राणा का भी प्रिय बन गया था। इसके फलस्वरूप राणा ने उसके लड़के को अपने उत्तरदायित्वपूर्ण पद पर नियुक्त कर दिया था। उस लड़के के सम्बन्ध में लोगों का कहना है कि वह यदि जीवित रहता तो निश्चित रूप से वह बड़ी ख्याति पाता। उसके सम्बन्ध में इस प्रकार की धारणा का कारण यह था कि वह अपने पिता के समान बुद्धिमान और दूरदर्शी एवम् रामसिंह की तरह रूपवान था। लेकिन अपने स्वाभिमान के कारण उसने आत्महत्या कर ली थी। लोगों का कहना है कि माणिक चन्द ने किसी समय बिना किसी सबब के उसका अपमान किया था और उस अपमान को न सहन कर उसने आत्महत्या कर ली थी।

यहाँ पर माणिक चन्द के सम्बन्ध में कुछ प्रकाश डालना बहुत आवश्यक मालूम होता है। उसने मेवाड़-राज्य से दो लाख पचास हजार रुपये वार्षिक वसूल करने का उत्तरादयित्व अपने ऊपर लिया था। इस कार्य के लिए उसने जो आदमी नियुक्त किये थे, उनके अकर्मण्य तथा अविश्वासी होने के कारण उसको इस कार्य में सफलता न मिली और जितने रुपये शुल्क में उसे वसूल कर के देने थे, उनका छठा भाग भी वह राज्य को न दे सका, उसकी बुद्धिमत्ता को देखकर यह अनुमान किया गया था कि वह इस कार्य को सफलता पूर्वक कर सकेगा, और दूसरों की अपेक्षा वह अच्छा साबित होगा। माणिक चन्द ने मेरे कैम्प के पास अपना मुकाम निश्चित करके मुझसे मुलाकात के लिए प्रार्थना की। भेंट के समय मैंने देखा कि वह बहुत अस्त-व्यस्त अवस्था में है। उस समय उसने प्रकट किया कि मैंने कई बार आपसे मुलाकात करने की चेष्टा की। लेकिन समय को अनुकुल न देखकर मैं चुप हो जाता रहा।

माणिक चन्द की इन बातों को मैंने ध्यान से सुना, उसके प्रति राणा का जो अविश्वास पैदा हो गया था, उसके सम्बन्ध में बातें करते हुए उसने कहा : "जिन कर्मचारियों को रख कर मैंने शुल्क वसूल करने का कार्य आरम्भ किया था, वे कर्मचारी विश्वासी न थे. इसलिए उत्तरा-

दायित्व के रुपये न तो मैं वसूल कर सका और न मैं राज्य को दे सका। मेरे ऊपर राज्य के जो रुपये बाकी हैं, मैं उनको अदा करूँगा।"

माणिक चन्द अपने षड़यन्त्रों के कारण बदनाम हो चुका था। इसलिए उसकी बातों पर विश्वास नहीं हो सका। वह अपने वादे को पूरा कर भी न सका और इस अवस्था में वह शाहपुरा में जाकर रहने लगा। वहां पर भी उसे शांति न मिली। इसलिए अपमानित अवस्था में विष खा कर उसने आत्महत्या कर ली।

नरसिंह गढ़ का राजा निर्वासित अवस्था में यहां पर रहा करता है। प्रमार जाति के उच्च वंश में वह पैदा हुआ है। मध्य भारत में रहते हुए उसके वंशवालों की पन्द्रह पीढ़ियां बीत चुकी हैं। उसके राज्य का नाम उमत वाडा और राजधानी का नाम नरसिंहगढ़ है। लुटेरे पिण्डारियों और मराठा लोगों ने उसके राज्य के प्रत्येक ग्राम में अधिकार कर लिया था और इसके फलस्वरूप उसकी राजधानी नरसिंह गढ़ में जब होलकर का झण्डा फहराने लगा तो उसका राजा होलकर की अधीनता में रहने के लिए मजबूर हुआ। इसके सिवा उस समय कोई दूसरा उपाय न था।

उन दिनों में होलकर और सींधिया की चारों तरफ विजय हो रही थी और जिन पर उनके आक्रमण होते थे, उनको अधीनता स्वीकार करके कर देना मंजूर करना पड़ता था। उमतवाडा के राजा ने आरम्भ में अस्सी हजार रुपये वार्षिक कर में देना स्वीकार किया था। इतना कर वसूल करने के बाद भी होलकर की सेना के अत्याचार उसके राज्य में बराबर होते रहे और लूटमार से उसकी प्रजा का विनाश बन्द न हुआ।

अनेक वर्षों के बाद सन् १८२१ ईसवी में जब उस राज्य में शांति कायम हुई तो उस समय उसका राजा लगातार अफीम सेवन करने के कारण निर्बल और असमर्थ हो गया था। इसलिए वह अपने राज्य की दशा सुधारने में समर्थ न हो सका। उस का लड़का चैनींसिह अपने पिता की तरह बुरी आदतों का शिकार नहीं हुआ था। इसलिए अंगरेजी सरकार की व्यवस्था के अनुसार चैनींसिह ने शासन करना आरम्भ कर दिया।

१४ अक्टूबर—प्रातःकाल होते ही हमलोगों की यात्रा आरम्भ हुई और कुछ ही दूर आगे जाने पर मालूम हुआ कि आगे का रास्ता बहुत खराब और दलदलमय है। उस रास्ते में बोझे से लदे हुए ऊँटों के ले जाने में बड़ी मुश्किल पैदा हो गयी। यहां की चारों तरफ की भूमि ऊंची-नीची और पथरीली है। बड़ी कठिनाई के साथ लगभग चार सौ फुट ऊँचे नाथद्वारा के शिखर को पार किया। इसके चारों तरफ लाल पत्थरों का शिखर मालूम होता है। नाथद्वारा से तीन मील की दूरी पर पूर्व की तरफ बराबर की भूमि में यह बना हुआ है। इस स्थान के दोनों तरफ दो छोटे-छोटे तालाब हैं और उनसे दो नहरें निकलकर नगर की ओर बहती हैं। नहरों के दोनों तरफ वृक्षों की पंक्तियां हैं। इन वृक्षों के कारण उस रास्ते में चलने वालों को बहुत आराम मिलता है।

हम लोगों का मुकाम नाथद्वारा से नीचे बहने वाली बुनाश नदी की दूसरी तरफ हुआ। और वहाँ से जब हम लोग नगर की तरफ चले तो नगर के रहने वालों ने मार्ग के दोनों तरफ खड़े होकर अपनी प्रसन्नता प्रकट की। अंगरेजी सरकार की सहायता से उन लोगों ने लुटेरों और अत्याचारियों से छुटकारा पाया था और उनके कन्हैया जी के मंदिर की रक्षा हुई थी। इसलिए वे सब अंगरेजों की प्रशंसा करने लगे।

१५ अक्टूबर—अब जो मार्ग आगे आ रहा था, वह पहले से भी कठिन दलदल के भरा हुआ और बहुत-से स्थलों पर जलमय था। कुछ इसी प्रकार के रास्ते के कारण मैरता नामक स्थान

से हमारे वे आदमी जो बोझा लिए हुए चल रहे थे, हमसे छूट गये थे। इसलिए जहाँ पर हम लोग पहुँचे थे, वहाँ ठहरकर हम लोग उन छूटे हुए आदमियों का इन्तजार करने लगे।

इसी समय वहाँ श्रीमंदिर के प्रधान पुरोहित ने सुराट के निवासी एक सम्पत्तिशाली मनुष्य के साथ आकर हमसे भेंट की और उसने सम्मान में एक सुनहला अंगरखा एवम् एक सोने से मढ़ा हुआ नीले रंग का दुपट्टा मुझे दिया। इसके साथ-साथ अपने देश के बहुत से स्वादिष्ट फल भी उसने मेरे सामने रखे। उस पुरोहित की तरफ से दोपहर में भोग का दूध और बहुत-से मिष्ठान्न पदार्थ भी आये थे।

यहाँ पर लोदी नामक एक प्रसिद्ध स्थान है। वहाँ के मंदिर की अधीनता में चालीस हजार दूध देने वाली गायें हैं। कहा जाता है कि इन गायों के समान दूध देने वाली गायें भारतवर्ष में अन्यत्र कहीं नहीं है। इनमें चार हजार गायों के दूध से खीर रबड़ी मक्खन इत्यादि बनाकर देवता का भोग लगाने के बाद सर्वसाधारण में बाँट दिया जाता है।

सुराट के उस सम्पत्तिशाली वैश्य ने जो एक मूर्ति मेरे सामने पेश की, उसकी दैवी शक्ति के सम्बन्ध में उसने बहुत-सी बातें मुझसे कहीं और उस मूर्ति की उसने बहुत बड़ी प्रशंसा की। उसने कहा कि जमना तट से जिस रथ पर श्री कृष्ण को नाथद्वारा लाया गया था, मैं उसी रथ पर बैठे हुए श्री कृष्ण की पूजा करता हूँ। भगवान के भक्तों को छोड़कर किसी दूसरे को यह मूर्ति पूजा के लिए नहीं दी जाती।

भगवान ने कृष्ण का अवतार लेकर जब जिस अवस्था में जैसा श्रृंगार किया था, इस मूर्ति को उसी के अनुसार समय-समय पर श्रृंगार से सजाया जाता है। कंस को बध करने के समय धनुष बाण के साथ इस मूर्ति को दिखाया जाता है और दूसरे अवसरों पर मूर्ति का दूसरा ही रूप प्रकट किया जाता है। उस वैश्य के मुख से मूर्ति के सम्बन्ध में जितनी बातें निकलीं, मैं ध्यानपूर्वक उनको सुनता रहा और उनके उत्तर में मैंने कोई भी बात आलोचनात्मक नहीं कही।

मंदिर के प्रधान पुजारी के सम्मान के बदले में मैंने एक पत्र लिखकर उसको इस आशय का दिया कि भविष्य में अंगरेजी सरकार के किसी कर्मचारी को यहाँ के मोरों को मारने और पीपल के वृक्षों को काटने का अधिकार न होगा। साथ ही इस पवित्र स्थान में किसी प्रकार की कोई जीव हत्या न कर सकेगा। यह सब लिख कर मैंने उस पुजारी को दे दिया और उसके दिल में असंतोष का कोई भाव पैदा न हो, इसलिए मैंने मंदिर के आस-पास की भूमि को छोड़कर और नदी के पार दूर जाकर भोजन के लिए मुर्गों का बध किया। यद्यपि वह स्थान मंदिर से दूर था, फिर भी मुर्गों के पंखों को मिट्टी खोदकर उस के भीतर भली प्रकार छिपा दिया।

१६ अक्टूबर—अभी तक अपने छूटे हुए आदमियों से हम लोगों की मुलाकात नहीं हुई थी। इसलिए हम लोगों के दिल में उनके सम्बन्ध में चिन्ता हो रही थी। किसी भी दशा में उन छूटे हुए आदमियों का पता लगाना जरूरी था। इसलिए असुरवास नामक स्थान की तरफ हम लोगों ने यात्रा की वह कोट यहाँ से आठ मील की दूरी पर था और हम लोग दोपहर के समय वहाँ पहुँचने के लिए रवाना हुए थे। लेकिन रास्ते में ही शाम हो गयी। मार्ग में फतह नामक हमारा एक हाथी पानी में गिर गया। महावत की गलती से हाथी पानी में गिरा था। हाथी इतना बुद्धिमान होता है कि चलते हुए वह अपने पैर से मार्ग बढ़ने वाला पैर किसी संकट की सूचना करता है तो हाथी अपने शेष तीन पैरों से अपने आप को सम्हाल लेता है। फतह ने भी ऐसा ही किया था। परन्तु महावत ने उसके संकेत पर ध्यान नहीं दिया।

उस फतेह नामक हाथी को पन्द्रह सेर आटे की रोटियाँ रोजाना शाम को दी जाती थीं।

पिछली शाम को ये रोटियाँ उस हाथी को नहीं दी गयी थीं। इसलिए हाथी अपने महावत से बहुत नाराज था। उसकी यही अप्रसन्नता उसके पानी में गिरने की कारण हो गयी। उसको उठाने के लिए जो उपाय सम्भव हो सकते थे, सब किये गये। कुछ देर में हाथी उठकर खड़ा हो गया। वह शाम से ही नाराज तो था ही। खड़े होते ही उसने पीठ हिलाई, जिससे उसकी पीठ की सभी चीजें पानी में गिर गयीं।

हम लोग बूनाश नदी को पार करके आगे की तरफ चले। नदी का जल गहरा और काँच के समान साफ दिखायी देता है। उसके किनारे की ऊँची भूमि पर बहुत-सी घास दिखायी दे रही है। नदी के किनारे के हरी-हरी घास से लदे हुए ये कगार देखने में बड़े मनोहर मालूम होते हैं।

इस नदी के सम्बन्ध में एक जनश्रुति बहुत प्रसिद्ध है। लोग कहा करते है: मुसलमानों से आने के पहले बूनाश नदी की देवी जल के भीतर से अपने हाथ बाहर निकाला करती थी। उस समय यहाँ के रहने वाले उसके हाथों में नारियल दे देते थे। मुसलमानों के आने के बाद देवी ने सदा की भाँति अपने हाथों को निकाला। उस समय एक यवन ने उसके हाथों में नारियल देने के बदले मिट्टी का एक ढ़ेला दे दिया। उस समय से देवी अपना हाथ नहीं निकालती।

हम सब लोग लगभग आधी रात के समय अपने अभीष्ट स्थान पर पहुँच गये।

छूटे हुए आदमी अभी तक हमारे पास नहीं पहुँचे थे। इसलिए १७ अक्टूबर को उसी स्थान पर रुककर हमें उनका रास्ता देखना पड़ा। असुरवास एक सम्पन्न और समृद्धशाली ग्राम है। लेकिन वहाँ के निवासियों की संख्या अब पहले की अपेक्षा बहुत कम हो गयी है। चरण कवि ने एक संगीत से प्रसन्न होकर राणा भीम ने यह ग्राम उसको दे दिया था। जिस स्थान पर हमने मुकाम किया था, उसके पास ही एक सन्यासी का आश्रम है। वह सन्यासी मुझसे मिलने के लिए मेरे पास आया और उसके बाद मैं भी उसके पास गया।

सन्यासी लोग आमतौर पर भ्रमण किया करते हैं। मेरे पड़ोस का संन्यासी भी भ्रमणशील होने के कारण समझदार और व्यवहार कुशल हो गया था। अन्यान्य संन्यासियों की तरह यह संन्यासी भी गेरुए रंग के वस्त्र पहनता था। उसकी पगड़ी के ऊपर कमलगट्टे की बनी हुई माला लगी हुई थी। उसी तरह भी एक दूसरी माला उसके हाथ में थी, जिससे वह अपने इष्टदेव का भजन कर रहा था।

उस सन्यासी ने बातें करते हुए अंगरेजी शासन की मुझसे प्रशंसा की और कहा कि अंगरेजों की शक्ति दूसरे सभी आदमियों की अपेक्षा प्रबल होती है। उसकी इन बातों को सुनकर मैं गम्भीरता के साथ उसकी तरफ देखता रहा। मैंने उसकी बातों को सुनकर कुछ कहा नहीं। शायद वह मुझसे कुछ सुनना भी नहीं चाहता था। उससे बातें करने के बाद मैं अपने स्थान पर लौट आया।

१८ अक्टूबर—प्रातःकाल होते ही हम लोगों ने यात्रा शुरू कर दी। वहाँ से सुमैचा नामक स्थान बारह मील की दूरी पर था। जिस रास्ते से हम लोग चल रहे थे, वह घने वृक्षों से बहुत संकीर्ण हो रहा था। स्थान-स्थान पर वह कहीं टेढ़ा, कहीं ऊँचा और कहीं बहुत नीचा था। रास्ते के दोनों तरफ खैर, कोकड़ और बबूल के वृक्ष थे। इन्हीं वृक्षों के बीच से गये हुए मार्ग पर चल रहे थे। गङ्गागुडा नामक ग्राम से होकर हम लोग शिरनाला नामक ग्राम में पहुँच गये। विशाल काय शिखर की जड़ से जो नदी वह रही थी, गोडा ग्राम वहीं पर बसा हुआ था। नदी का आकार-प्रकार टेढ़ा देखकर हम लोगों ने अनुमान लगाया कि इस विस्तृत उपत्यका का एक ही

मार्ग हो सकता है। वह विशाल स्थल दूर तक इस प्रकार फैला हुआ था, जो एक-सा नहीं था और उसका प्रत्येक स्थान एक मील से कम नहीं था। पहाड़ों के नीचे से यह जमीन दूर तक फैली हुई थी। पहाड़ों के ऊपर आमों के वृक्ष थे। शिखर के ऊपर के स्थान देखने में अत्यन्त मनोहर मालूम हो रहे थे।

पहाड़ों के इन स्थानों को प्रकृति ने सभी प्रकार प्रिय और आकर्षक बना दिया था। वहां पर जो वृक्ष थे, उनमें गूलर, सीताफल और बादाम के वृक्ष अधिक मालूम हो रहे थे। नदी के किनारे की भूमि में बहुत तरह के वृक्ष दिखाई दे रहे थे। उसमें आम, तेन्दू, पीपल और बरगद इत्यादि के बड़े बड़े-बड़े वृक्ष दूर तक फैले हुए थे। यहाँ के रमणीक दृश्य देखकर हम लोग प्रसन्न होते रहे। वहाँ के निवासियों ने नदी के जल को पर्वत के ऊपर पहुँचाने की चेष्टा की थी और उसमें उनको सफलता भी मिली है।

नदी का जल जो पर्वत पर पहुँचाया जाता है, उससे वहाँ की मिट्टी वाली भूमि में ईख, रुई और दूसरे अनाजों की खेती की जाती है। लोगों का कहना है कि वहाँ पर जो ईख पैदा होती है, वह दूसरे स्थानों की ईख से उत्तम होती है। ईख की खेती से वहां के लोगों की अच्छी आमदनी हो सातो है। परन्तु तीन वर्षों से ईख की खेती में एक कीड़ा लग जाने से उसको बहुत हानि पहुँचती है और जो आमदनी उससे हुआ करती थी, उसको बहुत क्षति पहुँची है।

सुमेचा ग्राम तीन भागों में विभाजित है और उसके प्रत्येक भाग में लगभग एक सौ परिवार रहा करते हैं, यह ग्राम राणाराज नामक पर्वत के नीचे की भूमि पर बसा हुआ है। मुगलों से पराजित होने पर राणा वहाँ के पहाड़ी रास्ते से भागकर घने जंगलों में चला गया था। उस समय से यह पर्वत राणा राज के नाम से प्रसिद्ध हुआ है। इस सुमेचा ग्राम में प्रसिद्ध राणा कुम्भ के वंशज कुम्भावत लोग रहा करते है। हम लोगों के पहुँचने पर कुम्भावत सरदार अपने साथ बहुत से लोगों को लेकर मुझसे मिलने आया। उसने अपने यहाँ की बनी हुई प्रसिद्ध कुकड़ी मुझे भेंट में दी। कुकड़ी यहां का एक पहाड़ी शस्त्र है, जो तीन फुट लम्बा होता है। घी के साथ उसने बकरी के बच्चे भी मुझे भेंट में दिये। मैंने उन राजपूतों और भूमिया लोगों से सम्मान के साथ भेंट की और उनसे मिलने की खुशी जाहिर की। उन लोगों के स्वथ्य शरीर और उनकी आकृतिक देखकर हम सभी लोग बहुत प्रसन्न हुए।

मेरे साथ जितने भी लोग थे, सभी ने उन राजपूतों को देखा और उनके स्वथ्य शरीर देखकर वे आपस में उनकी प्रशंसा करने लगे। वास्तव में उनके शरीरों को देखकर उनकी वीरता का सहज ही अनुमान होता था। उनकी मूंछे लम्बी थीं। उनके सरदार के सिर पर पगड़ी उनके मस्तक की शोभा बढ़ा रही थीं। सरदार के साथ बाकी जो लोग आये थे, वे सभी साधारण श्रेणी के लोग थे। वे कुरता और पाजामा पहने थे और उनके सिर पर साधारण पगड़ियाँ थीं।

पहले कमलमीर के दुर्ग की रक्षा करने के लिए ये लोग नियुक्त किये जाते थे। परन्तु मराठों ने इनकी शक्तियों को इधर बहुत दिन पहले से नष्ट कर दिया है। अब ये लोग राणा की प्रजा में गिने जाते हैं। ये लोग राज्य के सभी कार्यों में काम आते हैं और वर्ष में निश्चित कर भी राणा को अदा करते हैं। इन लोगों के पूर्वजों ने जो बहादुरी के काम किये थे। मैंने उनकी प्रशंसा उन लोगों के सामने की। उस प्रशंसा को सुनकर वे लोग बहुत प्रसन्न हुए। इस

सुमैचा ग्राम में हमारे छूटे हुए आमदनी आकर हमसे मिले। उन सबको देखकर हमें बड़ी शांति मिली।

१६ अक्टूबर—चित्तौर बूनाश नदी के प्रदेश को छोड़ देने के बाद पहाड़ी स्थानों में रहने के लिए राणा को विवश होना पड़ा था और उस दशा में उसकी बहुत-सी प्रजा पहाड़ के नीचे की भूमि में आकर रहने लगी थी। हम लोगों ने कैलवाड़ा नगर की ओर यात्रा की। यह नगर उस समय की बहुत-सी ऐतिहासिक बातों का परिचय देता है। वहाँ पर जितने भी पर्वत और जो नदियां हैं, उन सबके साथ उस समय की ऐतिहासिक घटनाओं का सम्बन्ध है। हमने ऊपर जिस उपत्यका के प्राकृतिक सौन्दर्य की प्रशंसा की है, यह स्थान भी बहुत-कुछ उसी प्रकार का रमणीक है। यहाँ के पर्वत में होकर जो मार्ग जाता है, उसके बाईं तरफ 'करी सरोवर' नामक एक नदी प्रवाहित होती है। पैदल चलने वाले लोग यहाँ से एक सीधे रास्ते में चलकर कैलवाड़ा नगर पहुँच जाते हैं। परन्तु वह मार्ग अत्यन्त घने जंगलों के बीच से गुजरता है। इसलिए वह सर्वथा संकटपूर्ण है; जिसके कारण कोई भी सहसा मनुष्य उस रास्ते से जाने का साहस नहीं करता।

इस नदी का नाम 'करी सरोवर' क्यों पड़ा, इसको जानने के लिए मैंने कोशिश की। परन्तु उसका कुछ रहस्य मालूम नहीं हुआ। मैंने जितने भी लोगों से पूछा, कोई कुछ बता नहीं सका।

हम लोग मूर्च नामक ग्राम से होकर अपने मार्ग में आगे बढ़े। इस ग्राम में एक राठौर सामन्त का अधिकार है। उस ग्राम के पास बिल्कुल एक छोटा-सा सरोवर और उस सरोवर के समीप एक अत्यन्त रमणीक मंदिर बना हुआ है। उसको देखकर मैंने एक मनुष्य से पूछा: यह कौन-सा मंदिर है?

मेरे प्रश्न को सुनकर उस आदमी ने जवाब दिया: इसका नाम सती मंदिर है।

उस आदमी के इस उत्तर को सुनकर मुझे संतोष नहीं मिला। मैं उस मंदिर के सम्बन्ध में कुछ अधिक जानना चाहता था। इसलिए मैंने उस आदमी को अपने पास बुलाया और उससे मैंने मंदिर के सम्बन्ध में अधिक जानने की कोशिश की। उस आदमी के द्वारा मालूम हुआ कि उस ग्राम के अधिकारी के पूर्वजों ने बनवाया था। बादशाह औरङ्गजेब की सेना के आक्रमण करने पर उस ग्राम के अधिकारी ने लड़कर अपना जीवन उत्सर्ग कर दिया और उसकी स्त्री अपने पति के मृत शरीर को लेकर चिता में भस्मीभूत हुई थी।

उस मंदिर में एक वीर पुरुष की अश्वारोही प्रतिमा स्थापित है। यह वही वीर पुरुष है, जो उस ग्राम का अधिकारी था और जिसने बादशाह की सेना के साथ युद्ध करके अपने प्राणों की बलि दी थी। उसके मरने पर उसकी स्त्री चिता में बैठकर सती हुई थी। उसी के नाम से जो मंदिर इस स्थान पर बनवाया गया, उसका नाम सती मंदिर रखा गया।

खिरली गाँव के पास से दो रास्ते दो तरफ को गये हैं। एक रास्ता बीर गुला मार्ग में होकर जाता है। उससे नाथद्वारा तक आसानी के साथ जाया जा सकता है। दूसरा रास्ता चिराई और प्रसिद्ध चतुर्भुज देव के पवित्र स्थान की तरफ गया है। पर्वत श्रेणी के द्वारा बाधा उत्पन्न होने से हम लोगों ने ओलद्वारा होकर कैलवाड़ा की तरफ चलना आरम्भ किया और कैलवाड़ा नगर से तीन मील उत्तर की तरफ मैदान में पहुँचकर हम लोगों ने मुकाम किया। उस मैदान में आमों के बहुत-से वृक्ष हैं यह स्थान आगे चलकर विस्तृत हो गया है। इस स्थान के जंगली होने में कोई बात बाकी नहीं है। लेकिन प्रवृति ने उसको अपने हिसाब से सभी प्रकार सुन्दर बना रखा है।

इसलिए उसके इस सौन्दर्य को महत्व देना भी आवश्यक है। उसकी इस सुन्दरता से मैं प्रसन्न हुआ।

इस स्थान की और भी कुछ ऐसी बातें हैं, जो अपनी तरफ मुझे आकर्षित कर रही हैं। यह विस्तृत मैदान उदयपुर की भूमि से एक हजार फुट और समुद्र की सतह से तीन हजार फुट ऊँचा है। इस ऊँचे मैदान के ऊपर बहुत-सी शिखर पंक्तियां दिखायी देती हैं। उन शिखरों में बहुत से झरने हैं और उन झरनों से लगातार पानी गिरता रहता है। झरनों के जल से पश्चिमी मारवाड़ की भूमि को उपजाऊ बनाने में वहाँ के किसानों को बड़ी सहायता मिलती है। इन झरनों का जल जो पूर्व की तरफ जाता है, वह मेवाड़ के विशाल तालाबों को भरा करता है।

पहले इस झरनों के जल की व्यवस्था कुछ और थी। कङ्करोली नामक सरोवर का निर्माण ऐसा किया गया था, जिससे इन सभी झरनों का जल मेवाड़ की तरफ बहा करता था और मरु-भूमि की तरफ बहुत कम पानी जाता था। लेकिन इन दिनों की हालत कुछ दूसरी है। पश्चिम की तरफ अगर इन झरनों का जल न जाता तो मारवाड़ की बहुत-सी भूमि उपजाऊ न बन सकती थी।

इन दिनों में दौलत सिंह कमलमीर का शासक है। हम लोगों का आने के समाचार पाकर उसने अपनी बड़ी-बड़ी तैयारियों के साथ मुलाकात करने का निश्चय किया और अपने बहुत से आदमियों को लेकर हम लोगों से मुलाकात करने के लिए रवाना हुआ। उसके साथ उसकी लाल पताका थी। राजा दौलत सिंह घोड़े पर सवार था। करीब आने पर वह घोड़े से उतर पड़ा। मैं भी अपने घोड़े से उतर कर जमीन पर आ गया। दोनों आगे बढ़े और बड़े स्नेह के साथ हम दोनों ने एक दूसरे का आलिंगन किया।

दौलत सिंह से भेंट करके मैं अपने घोड़े पर बैठा और उसी समय वह भी अपने घोड़े पर सवार हुआ। साथ-साथ चलते हुए हम दोनों वर्तमान परिस्थितियों की बातें करने लगे। दौलत सिंह राणा भीमसिंह का एक निकटवर्ती सम्बन्धी है। महाराज की उसकी उपाधि है और राणा के रबार में उसे अच्छा सम्मान प्राप्त है। राणा का अत्यन्त निकटवर्ती सम्बन्धी होने के कारण वह शिवधन सिंह का उत्तराधिकारी माना गया।

महाराज दौलत सिंह में अनेक प्रकार के गुण थे। उसका स्वभाव सरल और सब को प्रसन्न करने वाला था। वह चरित्रवान था और सभी लोग उसे ईमानदार समझते थे। वह बहुत कम बातें करता था। उसके स्वभाव में जरा भी अहँकार न था। अपने इन गुणों के कारण उसने कमलमीर का शासन प्राप्त किया था।

सन् १८१८ ईसवी के फरवरी महीने में मैंने कमलमीर के दुर्ग में रहने वली सेना का बकाया वेतन अदा करके उस दुर्ग पर अधिकार कर लिया था। उस सेना के सैनिकों की भावना को देखकर मैंने कितनी ही बातें उस समय सोच डालीं अगर उन दिनों में उस सेना के सैनिकों का वेतन बाकी न होता और मैंने उनका बकाया वेतन अदा न कर दिया होता तो कमलमीर के दुर्ग पर हम लोगों के अधिकार करने का कोई मौका ही न पैदा होता। उन सैनिकों की इस दशा को देखकर मुझे अफसोस हुआ और उसके साथ आश्चर्य भी। एक सैनिक का उद्देश्य रुपये तक ही सीमित नहीं होता। किसी भी देश में उसके सैनिकों का महत्व इसलिए सबसे अधिक होता है कि वे लोग अपने देश की आजादी की रक्षा के लिए वलिदान होने के लिए हमेशा तैयार होते हैं। वेतन लेकर देश

की रक्षा करने का कार्य बहुत अधिक महत्व नहीं रखता। अगर उनके जीवन का उद्देश्य रुपयों तक ही सीमित रहता है तो उन सैनिकों में और देश के बाकी लोगों में अन्तर ही क्या रह जाता है। यह बात साधारण नहीं है।

कमलमीर के दुर्ग के सैनिकों को देखकर मुझे कम आश्चर्य नहीं हुआ। उन लोगों ने वेतन के रुपयों को अधिक महत्व दिया और उनके दुर्ग की स्वतंत्रता का कोई महत्व उनके निकट न रहा। उनको जो वेतन दे, वही उनका स्वामी है और उनके वेतन के रुपये जो अदा करे, वही कमलमीर का राजा अथवा अधिकारी है। यह मनोवृत्ति सैनिकों की बहुत संकीर्ण है और किसी भी देश के लिए इस प्रकार की मनोवृत्ति वांछनीय नहीं हो सकती।

दूसरे दिन प्रातःकाल हम सब लोग वहाँ के टूटे-फूटे और पुराने मन्दिरों में बैठे हुए जल-पान कर रहे थे, मैंने देखा कि उस दुर्ग की सेना पश्चिमी पहाड़ी रास्ते से निकल कर जा रही है। मैं उस सेना की तरफ कुछ देर तक बराबर देखता रहा। हमारे साथ की सेना ने उस दुर्ग पर एक सप्ताह तक अधिकार रखा। उसके बाद राणा की सेना वहाँ पर आयी। उसके आने पर उस दुर्ग का अधिकार राणा की उस सेना को सौंप दिया गया।

वहाँ पर आठ दिनों तक लगातार रह कर मैं अपना काम करता रहा। वहाँ पर मुझे बहुत से ऐसे स्तम्भ मिले, जिनमें खुदे हुए प्राचीन काल के विवरण मेरे बड़े काम के थे। मैं उन सब का संकलन आठ दिनों तक बराबर करता रहा और उस कार्य में इतने दिन कैसे बीत गये, मुझे यह बिलकुल न जान पड़ा।

कमलमीर और उसका दुर्ग अनेक प्रकार की विशेषता रखता है। उसके सम्बन्ध में यहाँ पर कुछ लिखना आवश्यक जान पड़ता हैं। दुर्ग के आस-पास लोहे की तरह एक ऐसी मजबूत दीवार है, जो काफी ऊँची है और जिसका तोड़ सकना आसान नहीं है। दुर्ग के भीतर से बाणों की वर्षा करने के लिये उस दीवार में बहुत-से ऐसे सूराख हैं, जिनका फायदा आक्रमणकारी शत्रु नहीं उठा सकता। वह दीवार अत्यन्त मजबूत पत्थरों से बनी हुई है। गोलों की वर्षा करने के लिये भी दीवार में कई प्रकार के सुभीते हैं, जिनका लाभ पूरे तौर पर दुर्ग की सेना उठा सकती है।

उस दुर्ग की सबसे ऊँची चोटी पर अत्यन्त रमणीक बादल महल बना हुआ है। राजा और उसका परिवार वर्षा के दिनों में उसमें आकर रहा करता है। इस बादल महल से मरुभूमि का बालुकामय विस्तृत प्रान्त देखने में अत्यन्त सुन्दर मालूम होता है। कमलमीर के इस दुर्ग पर चढ़ते ही सबसे पहले एक संकीर्ण मार्ग मिलता है, उस मार्ग से कैलवाड़ा से लगभग एक मील की दूरी पर अराइनपोल नामक फाटक दिखायी भी देता है। उस विशाल फाटक के आगे दो फाटक और हैं, जिनका नाम हुल्लापोल और हनुमान पोल है। वे फाटक जितने सुन्दर और दर्शनीय हैं, उतने ही वे सुदृढ़ और मजबूत भी हैं। भीतर की तरफ जो फाटक बना हुआ है, उसका नाम चौगान पोल है।

कमलमीर का सबसे ऊँचा शिखर समुद्र की सतह से ३३५३ फुट ऊँचा है। इस ऊँचे शिखर से मैंने मरुभूमि के अत्यन्त दूरवर्ती दृश्य देखे हैं वहाँ से मैंने एक पुराना जैन मंदिर भी देखा। उस मंदिर की बनावट बहुत प्राचीन काल की है। उस मंदिर के मध्य भाग में एक विशाल कमरा है, उसमें बहुत-से स्तम्भ हैं और उसके आगे का बरामदा बड़ा अच्छा बना हुआ है। इस मंदिर की बनावट में न केवल प्राचीनता है, बल्कि हिन्दू मंदिरों में जो निर्माण कला देखने में आती है, इसकी निर्माण कला उससे भिन्न है। ऐसा मालूम होता है कि हिन्दू धर्म और जैन धर्म में

जो विभिन्नता है, उसी का अनुकरण कर के इन दोनों प्रकार के मंदिरों के निर्माण में भिन्नता रखी गयी है।

यह जैन मंदिर अपने पुरानेपन के साथ सादगी में भी एक विशेषता रखता है। उसकी पुरानी इमारत को देखकर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि यह मंदिर ईसा से दो सौ वर्ष पहले बना होगा। हिन्दुओं के जितने भी मंदिर देखने में आते हैं, इस मंदिर की सभी बातें उनसे भिन्न मिलती हैं। हिन्दू मंदिरों के स्तम्भ मोटे होते हैं। उनके प्रति कूल इस मंदिर के स्तम्भ पतले हैं और इनकी बनावट में भी बड़ी भिन्नता है, इसी प्रकार के अन्तर अन्य बातों में भी पाये जाते हैं। बहुत सम्भव है कि यह मंदिर चन्द्रगुप्त के वंशज राजा सम्प्रीति के समय में बनवाया गया हो।

राजा सम्प्रीति चन्द्रगुप्त के वंश में उससे चार पीढ़ियों के बाद पैदा हुआ था। वह जैन धर्मावलम्बी था। राजा सम्प्रीति और यूनानी सिल्यूकस में मित्रता था। सिल्यूकस बैकट्रिया का शासक था। मेगास्थनीज के लेखों से भी पता चलता है कि इन दोनों में गहरी मित्रता थी। उन्हीं लेखों से यह भी जाहिर होता है कि जैन धर्मावलम्बी राजा की एक लड़की का विवाह सिल्यूकस के साथ हुआ था। उस विवाह में बहुत-से हाथी और कीमती पदार्थ सिल्यूकस को दिये गये थे। और सिल्यूकस ने अपनी सेना का एक दल चन्द्रगुप्त के पास उसकी अधीनता में रहने और काम करने के लिए भेजा था। ×

ऊपर जिस जैन मंदिर का उल्लेख किया गया है, उसको देखकर मालूम होता है कि यूनान के कारीगरों ने उस मंदिर को बनाया है। यह बात सही नहीं हो सकती तो यह निश्चित है कि जिन भारतीय कारीगरों ने उस मंदिर का निर्माण किया था, वे यूनान की कारीगरी से प्रभावित थे और उन्होंने उसी के आधार पर इस मंदिर का निर्माण किया था।

जैनियों का यह मंदिर पर्वत के ऊपर बना हुआ है। कदाचित् इस पर्वत की मजबूती ने बहुत समय तक इस मंदिर को मजबूत रखने का काम किया है। अगर ऐसा न होता तो यह मंदिर न जाने कब गिरकर मिट गया होता। लेकिन ऐसा नहीं है। पुराना और जर्जरित होने के बाद भी जैनियों का यह मंदिर, मंदिर के रूप में अब तक बना हुआ है।

इस मंदिर के पास जैनियों का एक दूसरा मंदिर भी है। वह दूसरी तरह से बना हुआ है। यह दूसरा मंदिर तीन खण्ड का है और उसके प्रत्येक खण्ड में बहुत-से स्तम्भ बने हुए हैं। वे स्तम्भ देखने में अब भी बहुत सुन्दर मालूम होते हैं। तीन खण्ड के होने पर भी यह दूसरा मन्दिर इस प्रकार बना हुआ है कि उसके प्रत्येक खण्ड में सूर्य का प्रकाश पूरी तौर पर पहुँचता है, जिससे

× टॉड साहब ने राजा सम्प्रीति और सिल्यूकस के सम्बन्ध में जो कुछ लिखा है वह सही नहीं जान पड़ता। दूसरे इतिहासकारों के अनुसार चन्द्रगुप्त ने अपनी लड़की का विवाह सिल्यूकस के साथ कर दिया था। टॉड साहब ने लिखा है कि राजा सम्प्रीति चन्द्रगुप्त के वंश में उसकी चौथी पीढ़ी में उत्पन्न हुआ था। यह समय और भी अधिक आश्चर्य में डालता है। राजा सम्प्रीति और चन्द्रगुप्त का एक समय नहीं हो सकता। फिर टॉड साहब के लिखने में इस प्रकार की भूल कैसे हुई यह नहीं कहा जा सकता। भारतवर्ष के दूसरे इतिहासकारों और टाड साहब में यहाँ पर अन्तर है। अन्य इतिहासकारों ने अपने ग्रंथों में इस बात को स्पष्ट लिखा है कि सिल्यूकस के साथ मैत्री हो जाने पर चन्द्रगुप्त ने अपनी लड़की का विवाह उसके साथ कर दिया था। इस स्थल पर दूसरे इतिहासकार सही जान पड़ते हैं।—अनुवादक

मन्दिर के किसी भी खण्ड में अन्धकार नहीं रहता। मन्दिर के निर्माण में यह उसकी एक बड़ी खूबी है, जिसकी बहुत बड़ी प्रशंसा की जा सकती है।

दुर्ग के ऊपर और भी कितने मन्दिर बने हुए हैं। उन सबके विवरण बहुत कुछ एक दूसरे से मिलते जुलते हैं। इसलिए उनके सम्बन्ध में अलग-अलग यहाँ पर लिखने की जरूरत नहीं मालूम होती। लेकिन वहाँ पर दो मन्दिर ऐसे हैं, जिनके सम्बस्ध में कुछ प्रकाश डालना जरूरी है। यही दो मन्दिर वहाँ के मन्दिरों में प्रमुख माने जाते हैं।

इन दोनों मन्दिरों में एक माता देवी का मन्दिर कहलाता है। यह मन्दिर देवगढ़ की राजमाता का बनवाया हुआ है। पहाड़ी रास्ते की तरफ ऊंचे शिखर की चोटी पर यह मन्दिर बना हुआ है। इस मन्दिर में छोटी और बड़ी देवताओं की बहुत सी मूर्तियाँ हैं और उन सबके बीच में राजमाता की प्रतिमा है। ये सभी प्रतिमायें श्वेत संगमरमर पर बनी हुई हैं और उनमें हर एक की ऊंचाई करीब-करीब तीन फुट के हैं। ये सभी मूर्तियाँ इतनी खूबसूरती के साथ बनायी गयी हैं कि उनको देखकर मनुष्य अवाक रह जाता है। मन्दिर की रचना प्रणाली बहुत प्राचीन हैं और साधारण होने पर भी उसमें अनोखा चमत्कार देखने को मिलता है। मन्दिर के भीतर एक बड़ा कमरा है। उसमें इन सब मूर्तियों को दर्शन होते हैं।

इन मन्दिरों के सामने एक बहुत मजबूत दीवार बनी हुई है। उसमें नीचे से ऊपर तक काला पत्थर बना हुआ है। इस दीवार के बनाने में जो काले पत्थर लगाये गये हैं, उनमें प्रत्येक पत्थर में अलग-अलग देवताओं के विवरण खोदे गये हैं। इन पत्थरों में बहुत-से राजा लोगों के विवरण भी पाये जाते हैं। अफसोस यह है कि दीवार में लगे हुए पत्थरों में कोई एक भी समूचा नहीं रह गया है। प्रत्येक पत्थर कई-कई टुकड़ों में टूट कर नीचे गिर गया है और उनके इस प्रकार टूट जाने के कारण उन पत्थरों का कोई लाभ नहीं उठाया जा सकता।

माता देवी के मन्दिर की तरह वहां पर एक दूसरा मन्दिर भी है और वह भी स्मारक के रूप में बनवाया गया है। यह मन्दिर जिस स्थान पर दना हुआ है, अनेक बातों के कारण वह स्थान अत्यन्त प्रिय मालूम होता है। उस स्थान से मारवाड़ जाने के लिए एक मार्ग दिखायी देता है। इस मन्दिर में चारो ओर स्तम्भ बने हुए हैं और उन स्तम्भों से मन्दिर के भीतर के सभी स्थल और दृश्य आसानी से देखने में आते हैं। टिभोली के मन्दिर की तरह इसका निर्माण हुआ है। मैंने शिखर के ऊपर जाकर इस मन्दिर के टूटे-फूटे भागों को देखा। मेवाड़ के प्रसिद्ध पृथ्वीराज और उसकी पत्नी ताराबाई की भस्म का ढेर भी मैंने अवलोकन किया। उस ढेर को देख कर पृथ्वीराज के जीवन की बहुत-सी बातें आंखों के सामने घूमने लगी।

तारा बाई बिदनोर के राव सुरतान की लड़की थी। राव सुरतान सोलंकी राजपूतों के बलहर राजवंश में पैदा हुआ था। सुरतान के पूर्वज तेरहवीं शताब्दी में अनहलवाड़ा छोड़कर मध्य भारत में चले आये थे और वहां पहुँच कर टंकथोड़ा एवं बनाश नदी के समीपवर्ती सम्पूर्ण प्रदेश पर अधिकार कर लिया था। बहुत पहले प्राचीन काल में तक्षक जाति के लोगों ने इस थोडा राज्य को कायम किया था और उस जाति के नाम पर इसका नाम तक्षशील अथवा तक्षपुर बहुत दिनों तक रहा और इसके बाद टंक थोड़ा के नाम से प्रसिद्ध हुआ। × अफगानी लिल्ला ने उस पर अधिकार

× यहाँ के खण्डहरों में ऐसी बहुत सी चीजे पायी जाती है। जिनसे इस बात का पता चलता है कि यहाँ पर तक्षक जाति के लोग रहा करते थे। इस स्थान के चारों तरफ प्रकृति के

करके सुरतान को वहां से निकाल दिया था। इसलिए राव सुरतान मेवाड़ की सीमा पर आरावली पर्वत के नीचे बसे हुए बिदनौर में आकर रहने लगा था।

राव सुरतान की लड़की ताराबाई बहुत समझदार थी। अपने पिता के भाग्य के इस पतन पर बहुत दुखी रहने लगी। उसने कीमती आभूषणों का पहनना छोड़ दिया और वह बहुमूल्य वस्त्रों से घृणा करने लगी। उसने घोड़े पर चढ़ने और बाण चलाने का अभ्यास आरम्भ कर दिया। अफगानी सेना का मुकाबला करने के लिए जब सुरतान की सेना युद्ध के क्षेत्र में आगे बढ़ी, ताराबाई अपने घोड़े पर बैठी हुई और अपने हाथों से धनुष-बाण लिए हुए वह सेना के साथ-साथ चल रही थी। लेकिन उस युद्ध में सुरतान की सेना की पराजय हुई।

इसके कुछ दिनों के बाद राणा रायमल के लड़के जयमल ने ताराबाई की बहुत प्रशंसा सुनी। उसने ताराबाई के साथ विवाह करने का प्रस्ताव किया। उस प्रस्ताव को सुनकर ताराबाई ने गम्भीरता के साथ उत्तर दिया : जो बिदनौर का उद्धार करेगा, मैं केवल उसके साथ विवाह करूँगी।

जयमल ने तारा की इस प्रतिज्ञा को सुना। उसने विदनोर का उद्धार करना और अफगानियों को वहां से निकाल देना स्वीकार कर लिया। लेकिन विदनोर से अफगानियों को निकालने के पहले ही जयमल ने तारा बाई के साथ अपना व्यवहार आरम्भ कर दिया। उसने निर्लज्जता पूर्वक ऐसे व्यवहार आरम्भ किये जो तारा बाई को और उसके पिता राव सुरतान को किसी प्रकार पसन्द नहीं आये। इसके फलस्वरूप जयमल राव सुरतान के हाथों से मारा गया।

जयजल का भाई पृथ्वीराज निर्वासित अवस्था में उन दिनों मारवाड़ में था और उसने गोदवारा का उद्धार करके अपने शौर्य का परिचय दिया था। इसलिए उसका पिता अब फिर उसके साथ स्नेह करने लगा था। पृथ्वी राज ने राव सुरतान के द्वारा जयमल के मारे जाने का समाचार सुना। उसने भाई जयमल को प्रतिज्ञा को पूरा करने का निश्चय किया।

भाटों और दूसरे कवियों के द्वारा पृथ्वीराज की वीरता की ख्याति इन दिनों में दूर-दूर तक फैली हुई थी। राव सुरतान की लड़की ताराबाई ने भी उसकी वीरता की प्रशंसा सुनी थी। उसने अनेक कवियों के द्वारा जाना था कि पृथ्वीराज युद्ध करने में अत्यन्त कुशल और शूरवीर है। उसने यह भी सुना था कि पृथ्वीराज घोड़े का एक अच्छा सवार है और एक अच्छे शूरवीर क्षत्रिय के गुण उसमें पाये जाते हैं।

तारा बाई ने इस प्रकार पृथ्वीराज की प्रशंसा सुन कर अपने पिता से बातचीत की और उसने उससे कहा : अगर पृथ्वीराज अफगानियों को भगा कर बिदनोर का उद्धार कर सकता है तो मैं उसके साथ विवाह कर सकती हूँ।

जयमल अपनी बात को पूरा नहीं कर सका, इस बात को समझ कर पृथ्वीराज ने अफगानों से बिदनोर के उद्धार की प्रतिज्ञा की थी। इस कार्य के लिए उसने पांच सौ अच्छे सैनिक सवारों का चुनाव किया और अफगान के विरुद्ध विदनोर पर आक्रमण करने के लिए उसने तैयारी कर ली। ऐसे अवसर पर तारा बाई ने साथ चलने और युद्ध में शामिल होने के लिए अनुरोध किया। पृथ्वीराज ने उसके इस अनुरोध को स्वीकार कर लिया।

सुन्दर दृश्य दिखायी देते हैं। यहाँ पर किसी समय बूनाश नदी के समीप राजकमल और कुछ दूसरे प्रासाद बने हुए थे। उनके टूटे हुए अंशों को देखकर उनकी रमणीकता का अनुभव होता है।

—अनुवादक

अपने पांच सौ सैनिक सवारों के साथ पृथ्वीराज थोडा में उस दिन पहुँचा जब ताजिया उठाने की बिदनोर में तैयारी हो रही थी और राजमहल के आंगन में हसन , हुसेन दोनों भाइयों का जनाजा रखा था । अफगान सरदार महल में कपड़े पहन कर नीचे आने की तैयारी में था । महल के बाहर ताजिया के साथ जाने के लिए बहुत से आदमियों की भीड़ थी ।

पृथ्वीराज ने अपने साथ के सैनिकों को बाहर छोड़ दिया और ताराबाई तथा अपने अभिन्न मित्र सेंगर सरदार के साथ उस एकत्रित भीड़ में जाकर शामिल हो गया । अफगान सरदार ने महल से नीचे आकर उस भीड़ की तरफ देखा और फिर उसने अपने आदमियों से पूछा कि इस भीड़ में जो तीन नये घोड़े के सवार दिखायी देते हैं , वे कौन हैं ?

अफगान के सरदार के मुख से यह प्रश्न निकला ही था कि एकाएक पृथ्वीराज के बरछे और ताराबाई के तीर से अफगान सरदार जख्मी होकर जमीन पर गिर गया । इसके साथ ही वे तीनों भीड़ से निकल कर नगर के फाटक पर पहुँच गये । वहाँ पर एक हाथी के द्वारा पृथ्वीराज का एक साथी मारा गया । यह देखकर ताराबाई ने अपनी तलवार से उस हाथी की सूँड़ को काट डाला । हाथी वहाँ से तेजी के साथ भागा और इस मौके पर वे तीनों अपनी सेना में जाकर मिल गये जो नगर के बाहर कुछ दूरी पर खड़ी थी ।

पृथ्वीराज ने अपने सवारों की सेना को लेकर अफगानों पर आक्रमण कर दिया । उस समय इस युद्ध के लिए अफगान सेना तैयार न थी । इसलिए अफगान सेना के सैनिक आक्रमण में, ठहर न सके । वे सब के सब इधर-उधर भागने लगे । उस भगदड़ में बहुत से अफगान सैनिक मारे गये । अफगान सरदार के एक भाई को पृथ्वीराज के सैनिको ने इसी मौके पर मार डाला ।

अजमेर के नवाब मूलूखां ने अपनी फौज लेकर राजपूतों से युद्ध करने का निश्चय किया । उसकी इस खबर को पाकर पृथ्वीराज ने अपनी सेना के साथ अजमेर की यात्रा की और प्रातःकाल होते ही पृथ्वीराज ने वहाँ पहुँच कर अजमेर में भयानक मारकाट आरम्भ कर दी और उसी अवसर पर उसने बितलीगढ़ को पराजित किया । राजपूतों की इस मारकाट से बिदनोर से लेकर अजमेर तक हाहाकार मच गया ।

पृथ्वीराज ने अफगानों से बिदनोर का उद्धार किया और वहां का शासन राव सुरतान को सौप दिया । इसके बाद ताराबाई का विवाह पृथ्वीराज के साथ हो गया । इसके कुछ ही दिनों के बाद पृथ्वीराज को उसकी बहन का पत्र मिला । उसकी बहन अपनी ससुराल में थी । और बड़ी विपद में फँसी हुई थी । उसका पति अफीम का सेवन करता था और उसको रोज बुरी तरह से अपमानित किया करता था ।

बहन का पत्र पाकर पृथ्वीराज तुरन्त रवाना हुआ और सिरोही में बहन के यहां आधी रात को पहुँचा । वह सीधा महल में चला गया । उसका बहनोई सो रहा था । पृथ्वीराज ने अपनी बन्दूक की नली बहनोई के गले पर रखी । उसी समय उसकी नींद खुल गयी । यह दृश्य देखकर पृथ्वीराज की बहन घबरा उठी । उसने अपने भाई से क्षमा माँगी । पृथ्वीराज ने कहा कि यदि वह मेरी बहन से हाथ जोड़कर क्षमा माँगे और भविष्य में किसी प्रकार का अनुचित व्यवहार न करने का वचन दे तो मैं उसे क्षमा करूँगा । उसके बहनोई ने पृथ्वीराज की इस बात को स्वीकार कर लिया और उसने वैसा ही किया , जैसा कि पृथ्वीराज ने कहा । इसके बाद पृथ्वी राज ने उसे छाती से लगाकर उसका सम्मान किया ।

पृथ्वीराज पाँच दिन तक अपनी बहन के पास बना रहा । वहां से लौटने के समय बहनोई ने अपने बनाये हुए लड्डू रास्ते में खाने के लिए उसको दिये । पृथ्वीराज कमलमीर में

रहा करता था। बहनोई के यहाँ से लौटकर और कमलमीर के पास पहुँचने पर पृथ्वीराज ने पानी पीने के समय बहनोई के दिये हुए दो लड्डू खाये। उसके बाद आगे चलते ही उसकी हालत खराब होने लगी। वहाँ से पृथ्वीराज ने कमलमीर में सन्देश भेजकर अंतिम भेंट के लिए ताराबाई को बुलाया। लेकिन लड्डुओं में मिला हुआ विष इतना तेज था कि तारा बाई के आने के पहले ही उसकी मृत्यु हो गयी। ताराबाई ने आकर चिता बनवाई और पतित के मृत शरीर को लेकर वह चिता में जल कर राख हो गयी।

२० अक्टूबर—आज प्रतःकाल हम लोग यात्रा नहीं कर सके। आज हमें मारवाड़ की तरफ यात्रा करनी थी। जिस घाटी से होकर हमें जाना था, लोगों का कहना था कि वह घाटी बड़ी भयानक है। लेकिन उसके साथ ही लोगों ने यह भी बताया था कि हाथी और घोड़े अंकुश और चाबुक के भय से चले जाते हैं। इसलिए हम लोगों ने उसी घाटी के रास्ते से जाना निश्चय कर लिया।

दोपहर तक खाना-पीना खतम करके हम लोगों ने अपनी यात्रा शुरू कर दी। रवाना होने के पहले जब हम लोगों का सामान बांधा जा रहा था, सभी लोगों में आगे के रास्ते के सम्बन्ध में ही बातें होती रहीं। जब हम लोग रवाना हुए, उस समय दोपहर के तीन बज चुके थे। सब से पहले हमारे साथ के वे लोग रवाना हुए, जो मार्ग के देखने-समझने का काम करते थे।

हम सब लोग ने पहले से ही यह निश्चय कर लिया था कि रात हम लोग वहाँ पर व्यतीत करेंगे, जहां पर मेवाड़ और मारवाड़ की सीमा मिलती है। उस स्थान के सम्बन्ध में हम पहले से मालूम कर चुके थे कि वह विस्तृत और अधिक चौड़ा है। रास्ता बहुत संकटपूर्ण होने पर भी हम लोग अपने निश्चय के अनुसार अभीष्ट स्थान पर समय पर पहुँच जाते, लेकिन रास्ते की खराबी के कारण बीच में ही हम लोगों को बहुत समय लग गया।

यात्रा आरम्भ करने के बाद एक मील तक हमें इतना भी चौड़ा रास्ता न मिल सका, जिससे समान से लदा हुआ हाथी आसानी से जा सकता। उस मार्ग के दोनों तरफ ऊंची-नीची भूमि थी। और स्थान-स्थान पर जल के सोते बह रहे थे। बूंदी के राजा ने हमको चैतन्यमणि नामक एक घोड़ा दिया था। यात्रा के पहले ही मील में हमें मालूम हुआ कि पैर फिसल जाने के कारण चैतन्यमणि घोड़ा लुढ़क कर नीचे गिर गया है। उसकी पीठ पर कसी हुई जीन का तंग टूट गया था। उससे आगे कुछ फासिले पर रसोइया दिखायी पड़ा। वह अपनी परेशानी की हालत में गिरी हुई चीजों को एकत्रित करने में लगा हुआ था और उसका ऊंट अपनी पीठ पर सामान लादने नहीं देता था।

यात्रा का अब हम एक मील किसी प्रकार पार कर सके और धीरे-धीरे चलकर दूसरे मील में हम लोग कमलमीर के दुर्ग के नीचे पहुँच गये। यहां पर रास्ता बहुत सीधा हो गया था। यहां की चट्टान पर जो बुर्ज बना था, वह जमीन की सतह से पाँच सौ फुट ऊँचा था। इस स्थान का दृश्य अत्यन्त रमणीक था। उसके चारों तरफ ऊँचे-नीचे शिखर दिखाई देते थे। पश्चिम की तरफ जाकर अस्त होने वाली सूर्य की किरणें हमारे मार्ग में पड़कर थोड़ा बहुत उजाला पैदा कर देती थीं। मार्ग में वृक्षों पर उन किरणों का जो प्रकाश पड़ रहा था, वह बड़ा सुहावना मालूम होता था। उस मार्ग में अनेक प्रकार के संकटों का सामना करना पड़ रहा था। लेकिन उसकी बहुत-सी बातें मेरे अंतर में एक प्रकार का अनोखा उल्लास पैदा कर रही थीं। हम लोग जब यात्रा कर रहे थे, उस समय शीतल वायु बड़ी तेजी के साथ चल रही थी।

मार्ग के भयानक संकटों को पार करते हुए मैंने एक सप्ताह व्यतीत किया था। ये कठिनाइयाँ एक-सी नहीं थीं। कहीं पर रास्ता अत्यधिक ऊँचा और कहीं पर अधिक नीचा था। कहीं पर बहुत तंग और इतना तंग कि साथ के हाथी का निकल सकना कठिन हो जाता और कहीं पर वह इतना ऊबड़-खाबड़ कि आगे बढ़ना कठिन मालूम होता। इस प्रकार अनेक तरह की कठिनाइयों और संकटों का सामना करते हुए हम लोग अपनी यात्रा पूरी कर रहे थे।

अपने मार्ग पर चलते हुए हम लोग अब एक ऐसे स्थान पर पहुँच गये, जहाँ पर बहुत-सा जल रुककर एक सरोवर के रूप में बन गया था। साथ के एक सैनिक को यह विश्वास हुआ कि वह इस जल को पार कर ले जायगा। इसी आशा पर जल के भीतर उसने अपने घोड़े को बढ़ाया और जैसे ही वह बायें हाथ की तरफ मुड़ा, उसका घोड़ा अपने सवार के साथ जल में डूब गया। यह दृश्य भयानक रूप से सामने उपस्थित हुआ। लेकिन बहुत थोड़ी देर तक यह दृश्य भयानक रूप मे रहा और कुछ ही देर में वह घोड़ा जल के बाहर निकल आया।

इस स्थान का नाम हाथी दुर्रा है। मैंने सोचा कि इसी स्थान पर रहकर रात काटी जाय। लेकिन वह स्थान इस योग्य न था कि हम लोग वहाँ पर मुकाम कर सकते। स्थान बहुत तंग और सीमित था। रात का समय था और अंधकार बढ़ता जा रहा था। उस भीषण अंधकार में न तो आगे बढ़ने की हिम्मत पड़ती थी, क्योंकि रास्ता अत्यन्त अरक्षित था और न वह स्थान इस योग्य था कि मुकाम किया जा सके। मजबूरी अवस्था में हम लोग नदी के किनारे का रास्ता पकड़कर धीरे-धीरे आगे की तरफ चल रहे थे। अंधकार इतना अधिक था कि कुछ दिखायी नहीं देता था। नदी के जल बहने से जो आवाज हो रही थी, वही हमारा उस समय सहारा था और उसी से हम लोगों को पथ प्रदर्शन मिल रहा था।

किसी प्रकार हम लोग आगे को तरफ बढ़ते रहे। नदी के जल की आवाज से जो हम लोगों को सहारा मिल रहा था, उसमें भी गड़बड़ी पड़ने लगी। बाहर का जल जो नदी में गिर रहा था, उसकी आवाज अधिक तेज हो जाती थी और उसके कारण हम लोगों के सामने एक नया असमंजस पैदा हो जाता था। लेकिन परिस्थितियाँ सदा एक-सी नहीं चलतीं। उस समय हम लोग ढालू स्थान पर चल रहे थे। कुछ आगे जाने के बाद आगे का रास्ता चौड़ा मिला। विस्तार में स्थान पाने के कारण नदी का जो जल गहराई में बह रहा था, वह फैल गया था और नदी की चौड़ाई अधिक हो गयी थी।

अपने मार्ग में चलते हुए हमने आकाश की तरफ देखा, बादलों के बिना आसमान दिखायी पड़ा। आकाश में नक्षत्र चमक रहे थे। हम लोग अपने रास्ते पर चलते जा रहे थे। लेकिन हम लोग चिंताओं से खाली न थे। रास्ता भयानक जंगली था और एकाएक भयानक जंगली जानवरों का हम लोगों पर आक्रमण हो सकता था। हमें यह पहले से ही मालूम था कि मार्ग में हिंसक जानवरों का भय रहेगा। चीतों और बाघों के कारण रास्ता सुरक्षित नहीं है। यह बात हम लोगों को मालूम थी। हम लोगों की चिंता इतनी ही न थी। पहाड़ों पर रहने वाले लुटेरों का भय भी हम लोगों को था। जंगल में हिंसक पशुओं से भी अधिक भय उन लुटेरों का था, जो अचानक रात के अंधकार में आक्रमण कर सकते थे। फिर भी हम लोग अपने मार्ग पर चले जा रहे थे।

कुछ आगे बढ़ने के बाद एकाएक हम लोगों को एक झाड़ी में प्रकाश दिखायी पड़ा। उस झाड़ी के पास बरगद का एक पेड़ भी था और उस पेड़ के नीचे घोड़ों के सवारों का एक दल

दिखायी पड़ा । हम लोग जहाँ पर पहुँचे थे , वहीं पर ठहर गये और अनेक साथ के आदमियों से परामर्श करने लगे । जो संकट हम लोगों को दिखायी पड़ा , उसका सही अनुमान हम लोगों को न हो सका । इस दशा में हम लोगों ने समझा कि उस बरगद के नीचे लुटेरों का एक दल है , जो अपने घोड़ों पर है । अगर उस लुटेरे दल ने आक्रमण किया तो हम लोगों को उसका मुकाबिला करना होगा । इसके लिए हम लोग तुरन्त सतर्क और सावधान हो गये ।

हम सब लोग अपने स्थान पर खड़े थे । अंधकार के कारण मीलों की दूरी पर मार्ग संकट पूर्ण दिखायी दे रहा था । रास्ते को छोड़कर हम लोग दाहिने और बायें भी नहीं जा सकते थे । क्योंकि जंगल के हिंसक पशुओं का भय था । साथ ही यह भी भय था लुटेरों का कोई दूसरा दल कहीं हम लोगों पर एकाएक हमला न कर दे । इस प्रकार के असमंजस में हम लोग अपने स्थान पर खड़े थे और इस बात का निर्णय न कर सके कि इस भयानक समय में हम लोगों को क्या करना चाहिए ।

इसी समय घोड़ों के उन सवारों के दल की तरफ हमने फिर एक बार देखा । जहाँ पर वह दल मौजूद था , एक अलाव जल रहा था और अलाव की आग को घेरे हुए उस दल के सब लोग दिखायी दे रहे थे । वे सब सशस्त्र सैनिक और घोड़ों के सवार थे और उनकी संख्या लगभग तीस के मालूम हो रही थी । दूर से हम लोगों को यह भी अनुमान हुआ कि वे लोग आपस में बातें कर रहे हैं । लेकिन उनकी बातचीत इतनी धीरे हो रही थी कि सुनी नहीं जा सकती थी । लगातार उनकी तरफ देखने से यह भी मालूम हुआ कि वे लोग हुक्का पी रहे हैं और जब एक आदमी हुक्का पी लेता है तो वह हुक्के की नली को दूसरे आदमी की तरफ कर देता है ।

उन शस्त्रधारी आदमियों को देखकर अनुमान होता था कि वे सब मरुभूमि के रहने वाले हैं । क्योंकि उनके सिर पर पञ्च रंगी पगड़ी थी और उनके सिर के बाल घुंघराले थे । अलाव की जलती हुई आग में यह सब दिखायी दे रहा थ । उन लोगों के पास एक छोटा-सा चबूतरा भी दिखायी दे रहा था । शायद किसी अच्छे आदमी के स्मारक स्वरूप यह चबूतरा बनवाया गया है , ऐसा मालूम होता है । जो कुछ हो यह तो मालूम हो गया है कि वह चबूतरा बैठने के काम में आ सकता है ।

मैंने लगातार शस्त्रधारी उस दल की तरफ देखा । उस दल के लोगों का एक सरदार भी उनके साथ था । उसके सिर की पगड़ी उसके सरदार होने की दूर से परिचय दे रही थी । क्योंकि दूसरों की पगड़ी से उसके पगड़ी कुछ विशेषता रखती थी और ऐसा मालूम होता था कि उसकी पगड़ी में सोने की एक जञ्जीर लटक रही है। वह सरदार हिरन के चमड़े की बंडी पहने दिखायी दे रहा था ।

उस दल की इन सभी बातों को देखने , समझने और अनुमान लगाने के बाद मैं आगे की तरफ बढ़ा और कुछ निकट जाकर मैंने उस सरदार को राम राम किया । इसके साथ ही मैंने गनोहा सरदार का कुशल समाचार उससे पूछा । मैं इस बात को जानता था कि गनोहा का सरदार उन लोगों में बहुत प्रसिद्ध है और सभी लोग उसका सम्मान करते हैं ।

मेरे मुख से राम राम सुनकर और मेरी बातों से मेरी ओर आकर्षित होकर उन लोगों ने मेरी ओर देखा । पचास वर्ष पहले गोदवारा मेवाड़-राज्य में शामिल था । लेकिन उसके बाद वह उस राज्य में नहीं रहा । वह मेवाड़ और मारवाड़ राज्यों का सीमा समझा जाता था । और वहाँ पर प्रायः भयानक दुर्घटनायें हुआ करती थीं । उन लोगों के पहुँचने पर मुझे अनेक नयी बातें मालूम

हुईं, यह भी मालूम हुआ कि उस स्थान पर कितने ही मृत पुरुषों के स्मारक बने हुए हैं और प्रत्येक स्मारक पर घोड़े पर चढ़े हुए और हाथ में भाला लिए हुए एक वीर पुरुष की मूर्ति है।

उन स्मारकों को मैं ध्यानपूर्वक देखता रहा। प्रत्येक स्मारक की मूर्ति इस बात का परिचय देती हैं कि उस वीर पुरुष का इस घाटी की रक्षा करते हुए बलिदान हुआ है। प्रत्येक स्मारक पर मिती और सम्बत् खुदा हुआ है। उसको पढ़कर मालूम होता है कि उस वीर पुरुष का कब बलिदान हुआ था इन स्मारकों से मैं बहुत प्रभावित हुआ और बड़ी देर तक उनको देखने के साथ-साथ मेरे मनोभावों में अनेक प्रकार की बातें पैदा होती रहीं।

आधी रात से अधिक समय हो चुका था। हम सभी भूखे थे। लेकिन किसी प्रकार का कोई भोजन इस समय मिलने की आशा नहीं थी। डाक्टर डंकन और कैप्टेन बौने ने हाथी की पीठ से झूल उतार ली और उसको बिछाकर उस दल के सरदार के पास वे दोनों बैठ गये। मैं भी वहीं बैठ गया और उस दल के लोग जो आपस में बातें कर रहे थे, उनको सुनने लगा। कदाचित आपस में इस प्रकार की बातें करके वे लोग रात का समय काट रहे थे। वे आग के सहारे बैठे थे।

उन लोगों में जो बातें होती रहीं, वे दिलचस्प थीं और सुनने में बड़ी प्रिय मालूम होती थीं। उनकी बातें मुझे बहुत दिनों तक याद रहेंगी। लेकिन उनका क्रम और तरीका मेरे साथ न रह सकेगा। मैं जानता हूँ कि इस स्थान पर हम लोगों के आदमियों ने अनेक मौकों पर यहाँ के पहाड़ियों से युद्ध किया था और उनमें से बहुतों को यहाँ पर मार डाला था। वे घटनायें अब पुरानी हो चुकी हैं। पहले का समय भी अब नहीं रह गया। इन पहाड़ियों के रहने वाले भील लोग अब पहले की तरह लुटेरे नहीं रह गये। अब उनमें कुछ अच्छी आदतें आ गयी हैं।

उन्नासीवाँ परिच्छेद

माहीर जाति के लोग-हिन्दू से मुसलमान होने वाला दाऊद खाँ-चौहान के साथ प्रमार राजपूतों का युद्ध-लड़ाकू मीना लोग-राजपूतों की बरबादी का मुख्य कारण-मेवाड़ के ब्राह्मणों में विधवा विवाह का प्रचार-मीना लोगों का सामाजिक जीवन-देवगढ़ का सामन्त-गोदवारा के रास्ते में गानोरा का सामन्त-गोदवारा सामन्त का निमंत्रण-रूपनगर के सामन्त का पद-राणा रायमल के लड़कों की आपसी फूट-चौहान राजा पण्ड-गोदवारा प्रदेश का अधिकार-सीसोदिया और चौहान राजपूतों के स्वास्थ्य की तुलना-लगातार यात्रा और उसकी कठिनाइयाँ-राणा के दूत कृष्णदास के साथ मुलाकात-दूत के साथ बातचीत-मेवाड़ और मारवाड़ राज्यों की सीमा-राणा के दूत की निर्भीक बातचीत-मारवाड़ राज्य की विस्तृत रेतीली भूमि-मेवाड़-राज्य की भूमि की पहचान-मारवाड़ की भूमि में वृक्षों का अभाव-मन्दोर का प्रदेश-मन्दोर के सम्बन्ध में राणा की नीति-मन्दोर पर जोधा का आक्रमण-मन्दोर पर जोधा का अधिकार-मन्दोर और मेवाड़ की सीमा का निर्णय-अरावली पर्वत से निकलने वाली छोटी-छोटी नदियाँ-मेवाड़ और मारवाड़ की प्रजा का अन्तर-सोनीगुग वंश के राजपूतों का साहस-चौहानों की वीरता के प्रमाण-गोगा चौहान की कीर्ति-महावीर का प्रसिद्ध मंदिर-मान राजा का होम-नदोल की यात्रा-पाली का प्रसिद्ध नगर-शिवा जी और पाली के ब्राह्मण-चारण और भाट लोगों का भय-भाटों की आत्म हत्या का भय-पोकर्ण का सामन्त-सामन्त सुरतान सिंह पर आक्रमण ।

माहोर जाति को लोग मीरा जाति भी कहते हैं । इस जाति के लोग पहाड़ों पर रहा करते हैं और पर्वत के जिस भाग में रहते है वह माहीर वाडा कहलाता है । माहीर लोगों की उत्पत्ति मीना अथवा माहीना जाति से मानी जाती है । वे लोग माहीरोत अथवा माहीरावत के नाम से प्राचीन काल में पुकारे जाते थे । कमलमीर से लेकर आजमीर तक का जो सम्पूर्ण स्थान अरावली पर्वत पर है , वह माहीरवाड़ा कह लाता है। वह स्थान लम्बाई में नब्बे मील और चोड़ाई में छै सो बीस मील तक पाया जाता है। चौड़ाई का भाग कहीं पर कम और कहीं पर अधिक है । समुद्र की सतह से तीन हजार से लेकर चार हजार फुट तक वह स्थान ऊँचा है और उसके ऊपर विभिन्न प्रकार से छोटे-बड़े वृक्ष पाये जाते हैं । उस भूमि पर प्रकृति का जो सौन्दर्य देखने को मिलता है , वह कदाचित् कहीं अन्यत्र न मिलेगा ।

यों तो माहोर जाति का वर्णन बहुत विस्तार में है। लेकिन यहाँ पर उसको अधिक विस्तार में लिखने की जरूरत नहीं है । इस दशा में उस जाति की प्रमुख और महत्वपूर्ण जो बातें जानने के योग्य हैं , उन्हीं को यहाँ लिखने की कोशिश करेंगे ।

मीना जाति कई भागों में विभाजित है। उसके चिता नामक विभाग से माहोर लोगो की उत्पत्ति मानी जाती है । मीना लोगों में जेता नामक एक शाखा है। राजपूतों की तरह उस जाति में भी बहुत-सी शाखायें पायी जाती हैं । उन शाखाओं के लोग बड़े स्वाभिमान के साथ अपने पूर्वजों का वर्णन करते हैं। मीना जाति के चिता वंश के लोग दिल्ली के अन्तिम चौहान-सम्राट के पौत्र को अपना आदि पुरुष मानते हैं । चौहान राजा के

भतीजे लाक्षा के अनल और अनूप नामक दो लड़के पैदा हुए थे। उनके साथ विवाह करने के लिए जैशलमीर के राजा ने नारियल भेजा था। उसके बाद मालूम हुआ कि उस वंश की उत्पत्ति एक वेश्या के गर्भ से हुई है। इस दशा में वे लोग अजमेर से निकाल दिये गये थे। उस दशा में वे लोग अपने मामा के यहां जाकर रहने लगे।

अनल का विवाह मीना सामन्त की लड़की के साथ हुआ था और उससे चित्ता का जन्म हुआ। चिता के वंश के लोग सदा से महीरवाड़ा का शासन करते आये थे। अजमेर के उत्तरी भाग में चित्ता के जो उत्तराधिकारी रहते थे, उनकी संख्या पन्द्रह थी। उनके बाद उनका सोलहवाँ पुरुष अजमेर के मुसलमानों के द्वारा मुसलमान बनाया गया और उनका नाम दाऊद खाँ रखा गया। उस समय से वे लोग मुसलमानों में माने गये।

दाऊद खाँ आथुन नामक गाँव में रहता था। उस गाँव के सम्बन्ध के कारण महीरोतों का सरदार आथुन खाँ के नाम से प्रसिद्ध हुआ। चाङ्ग, झक और राजसी नगर उसके अधिकार में प्रधान थे। अनूप का विवाह भी एक मीना कुमारी के साथ हुआ। उसके बुडा नामक एक लड़का पैदा हुआ। बुडा के वंश वाले अपने पूर्वजों की रीति नीति पर बराबर चलते रहे। बुडार, बाहिर वाडा और मन्दिला इत्यादि नगरों में वे लोग रहा करते थे।

इन मीना लोगों के वंश का सम्बन्ध राजपूतों के साथ था। लेकिन उनके चरित्र में राजपूतों के ऊंचे गुण नहीं थे। वे लोग चरित्रहीनता और लूटमारी के लिए बहुत पहले से प्रसिद्ध थे। चन्द कवि ने अपने ग्रंथ में लिखा है कि अजमेर के राजा विशाल देव ने इस मीना जाति के लोगों का भयानक रूप से दमन किया था। उस दमन के परिणाम स्वरूप उन लोगों को अजमेर की सड़कों पर पानी छिड़कने का काम करना पड़ा। इन घटनाओं से मालूम होता है कि इस जाति के लोग बहुत पहले से अत्याचारी और लुटेरे थे।

मीना जाति के राजा की शक्तियाँ जब निर्बल हो गयी थीं और उसका डर मीना लोगों को न रहा तो उसके बाद मीना जाति के लोग मनमानी अत्याचार करने लगे। अजमेर के चौहानों के साथ जब मन्दोर के परिहारों का युद्ध हुआ था, उस समय मन्दोर राजा की तरफ से चार हजार माहीर लोग धनुष-वाण लेकर युद्ध में गये थे। इसका वर्णन चन्द कवि ने अपने ग्रंथ में किया है। उसने लिखा है कि मन्दोर के राजा ने उन माहीर लोगों को पहाड़ी रास्ते की रक्षा करने के लिए युद्ध के समय नियुक्त किया था। मन्दोर का राजा माहीर अथवा मीना लोगों की बहादुरी को भली प्रकार जानता था। उसे इस बात का विश्वास था कि ये लोग अपनी भयानक शक्तियों का प्रमाण देंगे।

चौहानों को समाचार मिला कि मन्दोर के राजा की तरफ से पहाड़ी रास्ते की रक्षा करने के लिए मीना लोग नियुक्त किये गये हैं। उनको पराजित करना आसान नहीं है। चौहानों को यह सुनकर बड़ा क्रोध मालूम हुआ और मीना लोगों को पराजित करने के लिए शूरवीर काना को भेजा गया। साहसी काना अपनी सेना के साथ पहाड़ की उस दिशा की तरफ रवाना हुआ, जिस तरफ चार हजार मीना लोग युद्ध के लिए तैयार खड़े थे।

दोनों तरफ से युद्ध आरम्भ हुआ और बहादुर मीना लोगों के बाणों से राजपूतों के सैनिक जख्मी होकर गिरने लगे। यह दशा कुछ देर तक बराबर चलती रही। मीना लोग अपने बाणों से मार करने में जिस प्रकार प्रसिद्ध थे, वह किसी से छिपा न था। मीना लोगों की मार देख कर शूरवीर काना अपने घोड़े से उतर पड़ा और उसने शत्रुओं के साथ तलवार की मार आरम्भ कर

दी। यह देख कर मीना जाति के सरदार ने युद्ध में धनुष-बाण छोड़ कर अपनी तलवार का प्रयोग किया और उसकी मार से काना एक बार बिचलित हो उठा।

इस समय दोनों तरफ से भीषण मार-काट हो रही थी। मीना सरदार के आक्रमणको देख कर साहसी काना आगे बढ़ा और मीना सरदार को मार कर उसने जमीन पर गिरा दिया। उसके गिरते ही एक मीना शूरवीर आगे बढ़ा और अपने सरदार का बदला लेने के लिए उसने काना पर जोर का आक्रमण किया। मीना सरदार के मारे जाने पर राजपूतों का उत्साह बढ़ गया था। उस समय वे लोग अपनी भयानक शक्तियों का प्रदर्शन करते हुए आगे बढ़े। उस समय राजपूतों में उत्साह की वृद्धि हो रही थी। हाथियों के चिग्घाड़ने और घोड़ों के हिनहिनाने की आवाजों से युद्ध का वह सम्पूर्ण स्थल गूँज उठा। उस समय राजपूतों के सामने मीना लोगों का ठहरना कठिन मालूम हो रहा था। इसी समय गिरनार और दूसरी सेना ने आगे बढ़ कर भीषण युद्ध आरम्भ किया। इस समय मीना सरदार की तरफ से नाहर नामक एक योद्धा राजपूतों से युद्ध कर रहा था। प्रत्येक शूरवीर अपने हाथों में तलवारें लिए हुए और अपने वंश के देवता की जय-जयकार करते हुए युद्ध में आगे बढ़ रहे थे।

चौहान नरेश पृथ्वीराज इस समय युद्ध में मौजूद था। उसने नाहर का सामना किया। प्रमार वंश के राजपूत अपने हाथों में तलवारें लिए हुए काले बादलों की तरह आगे बढ़ रहे थे। मन्दोर के राजा का भाई मोहन भी इस समय युद्ध कर रहा था। इसी समय प्रमार राजपूतों के राजा के सिर पर रखा हुआ शिरस्त्राण तलवार की चोट खाकर दो टुकड़े हो गया और नीचे गिर गया। इसी समय परिहार राजपूत जख्मी होकर पृथ्वी पर गिरा।

माहीर लोग सदा से अत्याचारी रहे हैं। वे आज कल जिस प्रकार उपद्रवी देखे जाते हैं, बारहवीं शताब्दी में भी वे वैसे ही थे। कई मौकों पर उनका दमन किया गया था। लेकिन अवसर पाने पर वे फिर विद्रोह कर देते रहे हैं।

राजपूत राजाओं के द्वारा कई बार इन मीना लोगों का दमन हो चुका था। लेकिन मराठों के के आने पर इन लोगों ने फिर से अत्याचार और उपद्रव करना आरम्भ कर दिया। सन् १८२१ ईसवी में दूसरे अत्याचारियों का दमन करने के साथ-साथ इन लोगों का भी दमन किया गया और उसमें बहुत बड़ी सफलता भी मिली। लेकिन कुछ कारणों से वह सफलता स्थायी रूप में न रह सकी।

माहीर, मराठा पिण्डारी और पठान लोगों के अत्याचार राजपूतों पर बहुत दिनों तक होते रहे। आपसी फूट, विरोध, द्वेष और विद्रोह के कारण रातपूत लोग उनको परास्त करने में असमर्थ रहे। राजपूतों के आपसी विरोध ने उनको इस योग्य नहीं रखा कि वे शत्रुओं को पराजित कर सकते। सदा हालत यह रही कि जब राजपूत राजा आक्रमणकारी शत्रु के साथ युद्ध करने के लिए जाता तो दूसरा राजपूत राजा आक्रमणकारी को आश्रय देकर उसकी सहायता करता। इसका अभिप्राय यह था कि आपस में फैली हुई फूट के कारण राजस्थान के सभी राजा छोटे और बड़े एक दूसरे के विध्वंस और विनाश में लगे हुए थे। उनके सर्वनाश का यही एक प्रधान कारण हुआ।

राजपूतों के आपसी वैमनस्य के कारण माहीर लोगों की शक्तियाँ प्रबल हो गयी थीं। लेकिन जब अंगरेज सरकार ने राजपूत राजाओं का संगठन करके इन लोगों का दमन किया, उस समय आक्रमणकारियों को राजस्थान में कहीं पर भी आश्रय नहीं मिला और न उनको किसी से किसी

प्रकार की सहायता प्राप्त हो सकी। इसलिए आक्रमणकारियों का साहस सदा के लिए पस्त हो गया। उनके अत्याचार वहीं से खत्म हो गये।

मीना लोगों के सम्बन्ध में अधिक हम आगे लिखने की कोशिश करेंगे। यहाँ पर संक्षेप में कुछ नीचे प्रकाश डाल कर हम समाप्त कर देंगे। माहीर लोग अपने पूर्वजों के निर्धारित नियमों का आज तक पालन करते हैं। उनमें नया कोई परिवर्तन देखने में नहीं आता। उन लोगों में विधवाओं के साथ विवाह किये जाते है। विधवाओं के साथ होने वाले विवाह को उनमें 'नाथ विवाह' कहा जाता है। राजपूत लोग विवाह के समय कागली नामक एक दण्ड उनसे लिया करते हैं और उसमें उन लोगों को रुपये देने पड़ते हैं। इस प्रकार के विवाह के समय बर के सिर पर मौर के बदले पीपल की टहनी बाँध देते हैं। विवाह में सात बार घूमने की उनमें भी प्रथा है। अर्थात् अन्न से भरे हुए सात कलशे नीचे-ऊपर रखकर वे फेरे डाले जाते हैं। वर और कन्या के वस्त्रों में गांठ बाँधकर विवाह करने की प्रणाली माहीर लोगों में अब तक प्रचलित है और सभी लोग उसके नियमों का पालन करते हैं।

इस प्रकार की प्रथाओं में एक विशेष बात यह है कि जो माहीर लोग मुसलमान हो गये हैं, वे भी विवाह के समय इसी प्रकार के नियमों का पालन करते हैं और उनके विवाह ब्राह्मण पुरोहितों के द्वारा सम्पन्न होते हैं। उनके सामाजिक सस्कारों में मुसलमान होने के बाद कोई अन्तर नहीं आया।। माहीर लोगों की यह एक विशेषता है।

इस प्रकार की बातों की खोज के समय मुझे मालूम हुआ है कि विधवा स्त्रियों के विवाह केवल माहीर लोगों में ही नहीं होते थे, बल्कि अत्यन्त प्राचीन काल में ब्राह्मण और राजपूत भी विधवा स्त्रियों के साथ विवाह किया करते थे। उनके विवाहों में उस समय किसी प्रकार की रुकावट न थी। लेकिन आजकल ब्राह्मणों और राजपूतों में विधवा विवाह का प्रचार नहीं है। ऐसा मालूम होता है कि विधवाओं के विवाह की रुकावट प्राचीन काल में न थी बल्कि वह बीच में किसी समय पैदा की गयी है।

गहलोत राजपूतों के मेवाड़ में राज्य का विस्तार करने के पहले वहाँ पर जो ब्राह्मण रहते थे, उनमें विधवा विवाह की प्रथा प्रचलित थी। इसके बहुत-से प्रमाण पाये जाते हैं। जिन राजपूतों में विधवा विवाह की प्रथा पायी जाती थी, वे सब इस स्थान के रहने वाले प्राचीन राजपूतों के वंशज थे और इन दिनों में उनको राजस्थान में भूमिया कहा जाता है। पुराने काव्य ग्रंथों में चिनानो, खारवार, उत्तायन और दया इत्यादि नामक जातियों के जो उल्लेख पाये जाते हैं, उन सब का सम्बन्ध उन्हीं लोगों के साथ था। अरावली पर्वत के बहुत-से स्थानों में उन जातियों के मनुष्य अब भी पाये जाते हैं। परन्तु उनकी संख्या बहुत कम है।

माहीर लोगों में विवाह का कार्य बहुत आसानी के साथ होता है और उसमें किसी प्रकार की कोई कठिनाई पैदा नहीं होती। उन लोगों में विवाह-विच्छेद का प्रचलन भी है। यदि स्त्री-पुरुष में कुछ बिगाड़ पैदा हो जाय और ऐसे कारण पैदा हो गये हों, जिनसे वे एक, दूसरे के साथ रहना न चाहें तो उनको विवाह-विच्छेद करने का सामाजिक अधिकार है। इसके लिए पति अपने दुपट्टे का कुछ भाग फाड़कर स्त्री के हाथ में दे देता है। उसके बाद उसका सम्बन्ध उसके साथ विच्छेद हो जाता है। जिस स्त्री का इस प्रकार परित्याग होता है, वह स्त्री उस दुपट्टे का टुकड़ा हाथ में लेकर और अपने सिर पर जल से भरे हुए दो कलशे नीचे-ऊपर रखकर किसी मार्ग से इच्छा पूर्वक निकलती है। उस समय जो पुरुष उस स्त्री के सिर से जल के भरे हुए कलशों को उतार लेता है, उस पुरुष के साथ उस स्त्री का विवाह हो जाता है। उनमें यह एक साधारण नियम है।

विवाह विच्छेद का यह नियम मीना लोगों के साथ-साथ जाट, गूजरों मालियों और बहुत-सी दूसरी जातियों में भी प्रचलित है। माहीर वाड़ा के रहने वाली सभी जातियों में विवाह-विच्छेद की प्रथा आमतौर से पायी जाती है।

इन लोगों में ईश्वर की पूजा और शपथ लेने की प्रथायें कुछ विचित्र सी पायी जाती हैं। मुसलमान लोग अल्लाह को कसम खाते हैं और हिन्दू ईश्वर की सौगन्ध लिया करते हैं। उसी प्रकार माहीर लोग शपथ लेने के समय सूर्य की सौगन्ध कहा करते हैं। उनमें से कुछ लोग इस प्रकार शपथ लेने के समय नाथ की आन कहते हैं। शपथ ग्रहण करने का उनका यह एक तरीका है, जो साधारण रूप में पाया है।

जो माहीर लोग मुसलमान हो गये हैं, वे शूकर का मांस नहीं खाते। परन्तु दक्षिणी प्रान्त के रहने वाले माहीर लोग बिना किसी विचार के सभी प्रकार का माँस खाते हैं। परन्तु गो का माँस नहीं खाते। तीतर और मालेली नाम के दो पक्षियों का बोलना उन लोगों में शकुन समझा जाता है। माहीर लोग जब लूट मार करने के लिए अपने घरों से बाहर निकलते हैं, उस समय अगर तीतर की आवाज उनको सुनायी पड़े तो वे लोग शकुन समझते हैं और अपनी सफलता पर पूर्ण विश्वास करते हैं।

माहीर जाति के लोग सौराष्ट्र से लेकर उत्तर की तरफ चम्बल नदी तक फैले हुए हैं। माहीर वाडा आजकल मेवाड़ के राणा के अधिकार में हैं। जहाँ के माहीर लोग राणा का शासन नहीं स्वीकार करते, इनको दमन करने के लिए राणा ने बड़ी सख्ती से काम लिया है। सभी स्थानों के माहीर लोगों से कर लिया जाता है। जो लोग राणा को कर नहीं देते, उनके सरदारों को राणा के सामने लाकर पेश किया जाता है और जब वे शपथ पूर्वक राणा की अधीनता को स्वीकार कर लेते हैं तो राणा की तरफ से उनके पद के अनुसार पारितोषिक दिये जाते हैं। माहीर लोगों को अपनी अधीनता में लाने के लिए राणा की तरफ से जो प्रयत्न किये गये हैं, उनमें पूरी सफलता मिली है। लेकिन कमलमीर में हमारे आने के पहले की ये सब घटनायें हैं।

२१ अक्टूबर—रात बीत जाने के बाद सवेरे का प्रकाश देखकर हम सभी लोग बहुत प्रसन्न हुए। कप्तान बाघ और डाक्टर डङ्कन ने जो हाथी की झूल शीत से बचने के लिए अपने शरीरों पर लपेट रखी थी, उसको उन लोगों ने अलग किया और मैं भी पालकी के भीतर से निकलकर बाहर आया। रात में पड़ने वाली ओस से बचने में पालकी ने हमारी बड़ी सहायता की। हम सभी लोग भूखे थे। इसलिए प्रकृति के रमणीक दृश्य देखने में तबीयत न लगती थी। फिर भी मैं तो यही चाहता था कि दक्षिण के भयानक पहाड़ी रास्ते से चलकर वहाँ के लुटेरों की खोज की जाय।

यह छोटा सरदार बडबटिया नाम से सभी लोगों में प्रसिद्ध है। वह चौहानों की दूसरी शाखा में पैदा हुआ है। उसका वंश सोनीगुर कहलाता है। उसके वंश के लोगों ने कई शताब्दी तक झालोर में राज्य किया है। यह सामन्त पहले मारवाड़ की अधीनता में था। किन्तु अनेक खराबियों के कारण मारवाड़ के राजा ने उसको अपने यहाँ से निकाल दिया था। उस दशा में वह गोकुलगढ़ के दुर्ग में आश्रय लेने के लिए चला गया। गोकुलगढ़ का दुर्ग अरावली पर्वत के ऊपर बना हुआ है।

उस दुर्ग में पहुँच जाने के बाद वह सामन्त वहाँ के आस-पास के निवासियों को अनेक प्रकार से भयभीत करने लगा। वहाँ के लोग लूटमार किया करते थे। इसलिए देवगढ़ का सामन्त उनकी लूट में हिस्सा लिया करता था। इसका एक कारण यह भी था कि वे लुटेरे उन्हीं स्थानों में लूटमार किया करते थे, जो देवगढ़ के अन्तर्गत थे और इस दशा में उन लुटेरों को किसी दूसरे सामन्त

के द्वारा कैद होने का डर नहीं था। सोनीगुर वंश के लोग भी इसी प्रकार का काम करते थे और उनके अत्याचार अत्यन्त भयानक थे।

एक समय की घटना है। कोई मनुष्य विवाह करके अपनी नव विवाहिता स्त्री को लिए हुए गोदवारा के रास्ते से जा रहा था। कुछ लुटेरों ने उन दोनों को पकड़ा और उन्हें गोकुलगढ़ में ले आये। जो मनुष्य विवाह करके जा रहा था, उससे दण्ड में एक लम्बी रकम माँगी गई। वह उस दण्ड को अदा न कर सका। इसलिए उसको बहुत दिनों तक कैद में रहना पड़ा। उसके बाद उन दोनों को छोड़ दिया गया।

इस प्रकार लोगों को पकड़ने के लिए लुटेरों का एक दल छिपे तौर पर इधर-उधर घूमा करता था। इस प्रकार की चोरी और लूटमारी यहाँ पर बहुत दिनों से होती चली आयी है।

मारवाड़ी मित्रों के साथ इस प्रकार बातें करते हुए हम लोग अपने रास्ते पर चल रहे थे। और संकट पूर्णमार्ग से पाँच मील आगे निकल गये थे। इसके बाद गानोरा का सामन्त अपने बहुत-से आदमियों के साथ मेरे पास आया और सम्मानपूर्वक उसने मुझसे भेंट की। इस सामन्त ने बात-चीत के सिलसिले में अपनी विपदाओं की एक कहानी मुझसे कही। उसकी बातो को सुनकर मैंने उसके साथ अपनी सहानुभूति जाहिर की।

हम लोग घोड़ों पर बैठे हुए उस स्थान की तरफ चलने लगे, जहाँ पर हम लोगों का मुकाम होने वाला था। रास्ते में उस सामन्त के साथ राणा और मारवाड़ के राजा के सम्बन्ध में बातें होती रहीं। उसने राणा के सम्बन्ध में अनेक बातें मुझसे पूछीं। सामन्त अजित सिंह एक प्रसिद्ध आदमी है। उसकी अवस्था तीस वर्ष, लम्बा शरीर और देखने में साहसी मालूम होता है। गानोरा, गोदवारा में एक प्रसिद्ध नगर है। वहाँ से राणा को पहले चार हजार राठौर सेना युद्ध के समय प्राप्त होती थी। उस सेना वेतन को स्थान पर भूमि दी जाती थी। उसी भूमि से उस सेना के सैनिक अपना निर्वाह करते थे।

गानोरा का सामन्त मेवाड़ के सोलह प्रधान सामन्तों में एक था। समय की गति से उसका प्रदेश मारवाड़ में मिला लिया गया है। और अब उसका राजा मारवाड़ का शासक है इस अवस्था में भी गानोरा के सामन्त की राजभक्ति मेवाड़ के राणा के प्रति इतनी अधिक है कि अभिषेक के समारोह में मारवाड़ के राजा के बदले वह अपने प्राचीन स्वामी राणा को ही आमन्त्रित करता है और राणा के द्वारा असिबन्धन का संस्कार पूरा होता है।

राणा के प्रति उसकी जो यह राजभक्ति थी, वह मारवाड़ के राजा से छिपी न रह सकी। और उस सामन्त से इसका बदला लेने लिए गानोरा का दुर्ग गिरवा दिया। परन्तु उस सामन्त पर इसका कोई प्रभाव न पड़ा। आज भी उस सामन्त की यह हालत है कि राणा का दूत आकर जब उसे कोई संदेश राणा का देता है तो वह सामन्त बड़े सम्मान के साथ राणा की आज्ञा का पालन करता है।

गानोरा के राजपूत स्वाभिमानी हैं और किसी प्रकार की विपद आने पर वे अपनी मातृभूमि की रक्षा करना जानते हैं, उनके पूर्वजों ने भी अनेक अवसरों पर अपनी बहादुरी का परिचय दिया था। उनका प्रभाव उनकी संतान पर भी पड़ा है। कहा जाता है कि उन राजपूतों के पूर्वजों ने मुगल-सेना के आक्रमण करने पर संग्राम किया था और उस युद्ध में उन लोगों ने अपनी वीरता का अच्छा प्रमाण दिया था।

यह बात सही है कि आजकल गनोरा का प्रदेश मेवाड़ राज्य से अलग है। लेकिन जब कभी उसका सामन्त राणा के दरबार में आता है तो उसका उचित और आवश्यक सम्मान किया

जाता है। मेवाड़ के राज्य में जब कोई उत्सव अथवा खुसी का अवसर मनाया ताजा है तो राणा की तरफ से गानोरा के सामन्त को उपहार भेजा जाता है। लोग इस बात को जानते हैं कि राणा के वंश के साथ वहाँ के सामन्त का गम्भीर सम्बन्ध है और वह सम्बन्ध जातीय रक्त का परिचय देता है। इसीलिए मेवाड़ के राणा के प्रति उसका अधिक आकर्षण है और उसको भी राणा की तरफ से सम्मान मिलता है। जन-साधारण में उस सामन्त को लोग मेवाड़ का भतीजा 'कहते हैं।

गानोरा के सामन्त ने मुझ से मिलकर अपना बहुत सम्मान मेरे प्रति प्रकट किया। इसके साथ ही गानोरा चलने के लिए मुझे उसने बड़ी अभिलाषा के साथ आमंत्रित किया। मैं समझता था कि उसके प्रति उसके राजा के भाव अच्छे नहीं है। इसलिए उसका निमंत्रण स्वीकार करने में मैं बड़े असमंजस में पड़ गया। मैं सामन्त का आदर-भाव देखकर उसके निमंत्रण को स्वीकार करना चाहता था और मैं यह भी नहीं चाहता था कि उस सामन्त के यहाँ जाने के कारण उसका स्वामी मारवाड़ का राजा असंगत धारणा पैदा करे। बिना किसी कारण के मैं इस प्रकार की परिस्थिति पैदा करूँ, यह मेरी बुद्धिमानी नहीं होगी, इसलिए बहुत कुछ सोच-समझकर मैंने अपने अन्त:करण में इस सामन्त के यहाँ न जाना ही निश्चित किया। लेकिन सीधे शब्दों में ऐसा कहा नहीं जा सकता था। यह एक स्पष्ट अशिष्टता होगी। इसलिए उससे बातें करते हुए और उसके प्रति अपना पूरा सम्मान प्रकट करते हुए मैंने उसके निमंत्रण को अस्वीकार किया। लेकिन उसके अन्तरात्मा को किसी प्रकार भी बेदना न पहुँचे, इसलिए मैंने मार्ग की थकावट और प्रात:काल की खानगी का जिक्र करते हुए अत्यंत शिष्टाचार के साथ मैंने उसका निमंत्रण अस्वीकार कर दिया।

इस मौके पर मैंने बड़ी नम्रता और शिष्टता से काम लिया। अपनी बड़ी मजबूरी को दिखाकर मैंने सामन्त का निमंत्रण अस्वीकार किया था। लेकिन मेरा असली भाव उस सामन्त से छिपा न रह सका। मेरा ऐसा खयाल है कि वह इस बात को ताड़ गया कि उसके इतने आग्रह करने पर भी मैंने उसके निमंत्रण को किस लिए नामंजूर कर दिया है।

अपने निर्णय के अनुसार प्रात:काल मैंने अपनी यात्रा आरम्भ की। साथ के सभी लोग प्रसन्नतापूर्वक आगे की तरफ रवाना हुए। आज की यात्रा लम्बी नहीं थी और अन्त के दो मील मारवाड़ के मैदान थे। हम लोगों ने तेजी के साथ चलकर उस मार्ग को पार करने की कोशिश की। सरदी अधिक थी और जब जिस मार्ग में हम लोग चल रहे थे, वहाँ का वातावरण बदल गया था। जिसके कारण रास्ते में चलते हुए हम लोगों को बड़ी तकलीफों का सामना करना पड़ रहा था। उन कठिनाइयों के समय हम लोगों के मुख से इतना ही निकलता था : आखिरकार मारवाड़ के मैदान हैं।

२७ अक्टूबर—मारवाड़ के मैदानों में और रेगिस्तानी भूमि पर चलने के कारण साथ के सभी आदमी रुककर विश्राम करना चाहते थे। इसलिए एक स्थान पर पहुँचकर हम लोगों ने मुकाम किया। साथ के जो आदमी पीछे रह गये थे, वे सब इस स्थान पर आकर मिल गये। वे सभी रास्ते की मुसीबतों का एक, दूसरे से वर्णन कर रहे थे। परन्तु किसी के मुख पर किसी प्रकार की निराशा न थी।

यहाँ पर रूपनगर का सामन्त मुझसे मिलने आया। इसके जीवन की परिस्थितियाँ भी बहुत कुछ गानोरा के सामन्त की तरह थीं। उसका प्रदेश मारवाड़ और मेवाड़ के बीच में ऐसा पड़ता था कि जिसमें उसको दोनों राज्यों को खुश रखना बहुत जरूरी था। इसलिए वह मेवाड़ के राणा और मारवाड़ के राजा—दोनों की आज्ञा पालन करता था।

रूपनगर का सामन्त राणा के दूसरी श्रेणी के सामन्तों में पहले माना जाता था। जहाँ पर हमसे वह सामन्त मिलने आया था, वहाँ से उसका महल और दुर्ग दिखायी देते थे। उसका दुर्ग पहाड़ के पश्चिम की तरफ है। उस दुर्ग के सामने एक मार्ग है, जो अनेक कठिनाइयों से भरा हुआ है। किसी भूमि के पीछे उसके स्वामी के साथ रूपनगर के सामन्त का कुछ दिनों से झगड़ा चल रहा है। रूपनगर का सामन्त उस भूमि पर अधिकार करना चाहता है। इसलिए उसे कई बार युद्ध करना पड़ा है।

रूपनगर का सामन्त सोलंकी राजपूत है और वह नाहरवाला के वंश में उत्पन्न हुआ और प्रसिद्ध राजा सदराज के युद्ध का शंख इस समय उसके पास है। + अपने समय में सदराज एक पराक्रमी और शूरवीर राजा था। उसने अपने राज्य की सीमा का बहुत विस्तार कर लिया था। सन् १०९४ ईसवी से लेकर लगभग आधी शताब्दी तक उसने अनहलवाड़ा को अपने अधिकार में रखा था। वह शिक्षा और शिल्प का बहुत समर्थक था। उसने अपने शासन-काल में इन दोनों बातों में बड़ी उन्नति की थी।

रूपनगर के वर्तमान सामन्त के पूर्वज बिदनौर की प्रसिद्ध ताराबाई के चाचा थे। ताराबाई स्वभाव से जिस प्रकार वीरांगना थीं, उसके अनुसार उसने एक शूरवीर के साथ विवाह करने की प्रतिज्ञा की थी और अपने निश्चय के अनुसार उसने वीरात्मा पृथ्वीराज के साथ अपना विवाह किया था। पृथ्वीराज ने ताराबाई की वेदना को दूर करने के लिए विवाह से पहले ही ताराबाई की जन्म भूमि और उसके पिता के राज्य बिदनौर का उद्धार उसके शत्रुओं से किया था। यहाँ पर रूपनगर के सामन्त के जीवन की एक घटना का वर्णन करना जरूरी मालूम होता है।

राणा रायमल के लड़कों में आपस की कलह बड़े भयानक रूप में चल रही थी और दिल्ली तथा मालवा के बादशाह राणा रायमल की इन भीतरी कमजोरियों का लाभ उठाना चाहते थे। इसलिए उन दिनों में मेवाड़ का भाग्य बड़े संकट में चल रहा था। उन दोनों बादशाहों से राणा रायमल को गोदवारा प्रान्त का खतरा था। मीना और माहीर लोग मेवाड़ के मैदानों में रहा करते थे और नादोल के स्वाधीन चौहान राजा षण्ड के द्वारा उनको सभी प्रकार की सहायता मिलती थी। नादोल की चौहान सेना ने द्वेसुरी पर अधिकार कर लिया था। पृथ्वीराज द्वेसुरी से चौहानों का अधिकार खतम करना चाहता था। इसके लिए उसने शुद्धगढ़ के सोलंकी सामन्त से सहायता माँगी।

सोलंकी सामन्त के लड़के के साथ राजा षण्ड की एक लड़की ब्याही थी। इसलिए पृथ्वीराज ने जो कुछ सोचा था, उसमें एक बड़ी बाधा दिखाई पड़ने लगी। पृथ्वीराज किसी प्रकार द्वेसुरी से चौहानों का अधिकार हटाना चाहता था। उसने राजनीतिक दूरंदेशी से काम लिया और उसने सोलंकी सामन्त के साथ परामर्श करके यह निश्चय किया कि द्वेसुरी से चौहानों का आधिपत्य हटाकर उस का अधिकार सोलंकी सामन्त को दे दिया जायगा। उस सामन्त के साथ पृथ्वीराज का यह निर्णय हो गया।

सोलंकी सामन्त भी ऐसे अवसर पर सोच-समझकर काम करना चाहता था। इसलिए कि द्वेसुरी पर जिस चौहान राजा के साथ उसको यह युद्ध आरम्भ करना था, उसकी लड़की के साथ उसका लड़का विवाहित था। लेकिन दूसरी तरफ उसने पृथ्वीराज के साथ जो निश्चय किया था, उसमें उसको द्वेसुरी के अधिकार का प्रलोभन था। इस अवस्था में उसने एकान्त में अपने लड़के के

+ राजा सदराज ने १०९४ ईसवी से लेकर ११४४ ईसवी तक राज्य किया था।

साथ परमर्श किया और अपने लड़के के साथ अपनी स्त्री को द्वैसुरी में रहने के लिए भेज दिया।

सामन्त का लड़का अपनी माता के साथ वहां जाकर रहने लगा। धीरे-धीरे कुछ दिन बीत गये। वहां पर उसको कोई मौका नहीं मिला। इन्हीं दिनों में एक और बाधा पैदा हुई। चौहान राजा षण्ड के एक लड़के के साथ बालेचा के सामन्त सागर की एक लड़की का विवाह होना निश्चित हुआ। जब यह समाचार शुद्धगढ़ के सोलंकी सामन्त के लड़के को मालूम हुआ तो उसने अपने पिता को छिपे तौर पर लिख दिया कि षण्ड के लड़के का विवाह बालेचा सामन्त की लड़की के साथ होने जा रहा है। विवाह के उस मौके पर राजा षण्ड अपने लड़के के साथ बालेचा जायगा। उस मौके पर द्वैसुरी पर अधिकार कर लेना बड़ी आसानी से सम्भव हो सकता है। राजा षण्ड के लड़के की बारात जाने पर मैं द्वैसुरी के दुर्ग के ऊँचे शिखर पर आग प्रज्वलित करूँगा। उस अवसर पर आप अपनी सेना के साथ यहाँ आकर अधिकार कर लें।

इस प्रकार लड़के का पत्र पाकर सोलंकी सामन्त बहुत प्रसन्न हुआ और वह सन्तोष पूर्वक अपने लड़के के बताये हुए संकेत की प्रतीक्षा करने लगा। इन दिनों में उसने इस बात की पूरी तौर पर तैयारी कर ली कि अवसर आने पर वह किस प्रकार अपनी सेना को लेकर रवाना होगा और द्वैसुरी में पहुँच कर किस तरीके से वह उस पर अधिकार करेगा।

अपनी तैयारी के साथ वह सामन्त जिस अवसर की प्रतीक्षा कर रहा था, उसके लिए उसको बहुत दिनों तक रुकना नहीं पड़ा। एक दिन एकाएक उसने द्वैसरी के दुर्ग के ऊपर धुआँ उठता हुआ देखा। वह तुरन्त अपनी सेना को लेकर और अरावली पर्वत से उतर कर आगे की तरफ बढ़ा। द्वैसुरी में दुर्ग के ऊपर जब चौहान राजा की स्त्री ने धुआं उठते हुए देखा तो उसने अपना आदमी भेज कर जमाता से पूछा : शिखर पर यह किस प्रकार का धुआँ हो रहा है ? मेरे लड़के के विवाह के लिए यहाँ से बारात गयी है और वह विवाह के बाद बहु को अपने साथ लेकर यहाँ आवेगा। इसलिए दुर्ग के ऊपर जो आग जलाई गयी है, वह किसी का दाह-संस्कार सा मालूम होता है। यह लक्षण किसी प्रकार शुभ नहीं है।

रानी ने जामाता से बातें करने के लिए अपना एक विश्वासी नौकर भेज दिया था। उसके बाद एकाएक उसको अपनी राजधानी में बड़ा गड़बड़ सुनायी पड़ा। उसे मालुम हुआ कि उसके नगर में सोलंकी सेना ने प्रवेश किया है और उसके सैनिक नगर में चारों तरफ आग लगा रहे हैं। इन बातों को सुनकर रानी बहुत घबड़ा उठी और वह इस बात की चिंता करने लगी कि इस संकट के समय क्या करना चाहिए। इसके कुछ समय बाद चौहान राजा षण्ड अपनी पुत्र बधू को लेकर अपने लड़के के साथ वापस आ गया।

राजा षण्ड ने नगर की जब यह अवस्था देखी और उसे मालूम हुआ कि मेरे बालेचा चले जाने पर सोलंकी सामन्त की सेना ने यहाँ पर आक्रमण किया है तो वह बड़ी तेजी के साथ युद्ध के लिए तैयार हो गया और सोलंकी सामन्त के सामने पहुँचकर उसने ललकारते हुए कहा :बालेचा से लौटकर मैं आ गया हूँ। अब मैं देखूँगा कि यहाँ पर आक्रमण करने के लिए किसने साहस किया है।

यह सुनते ही सोलंकी सामन्त आगे बढ़ा और उसने अभिमान के साथ चिल्लाकर कहा : षण्ड कहाँ हैं ? मेरा नाम सिंह है। मैं आज षण्ड को खाकर अपनी भूख मिटाऊँगा।

इस प्रकार कहकर सोलंकी सामन्त अपने हाथ की तलवार को चमकाता हुआ वहाँ पर घूम लगा। चौहान राजा की सेना युद्ध के लिए तैयार हो चुकी थी और दोनों तरफ से भयानक मारकाट

होने लगी, उस मारकाट में राजा षण्ड का और सोलंकी सामन्त का सामना हुआ। दोनों ने एक दूसरे पर आक्रमण किया। इसके कुछ समय बाद राजा षण्ड मारा गया।

चौहान नरेश के मारे जाने पर उसकी सेना निर्बल पड़ गयी। उस दिन नगर में पूरी अशान्ति रही। लेकिन दूसरे दिन की परिस्थितियाँ बदल गयी। पृथ्वीराज ने द्वँसुरी के दुर्ग पर अपनी विजय का झण्डा फहराया। इसके बाद कई दिनों में वहाँ पर शांति कायम हुई। पृथ्वीराज ने अपने निश्चय के अनुसार द्वँसुरी का अधिकार सोलंकी सामन्त को दे दिया और इसके लिए उसने अपने हस्ताक्षरों से एक पत्र लिखकर दिया। उसमें उसने लिखा :

द्वँसुरी के विजय के बाद गोदवारा प्रदेश का अधिकार शुद्धगढ़ के सोलंकी सामन्त को दिया गया। अब इस पर सीसोदिया वंश का कोई भी व्यक्ति अधिकार नहीं कर सकता। इसलिए कि इसको मैंने दान में देकर यह पत्र लिखा है।

इस घटना को बीते हुए बहुत दिन हो चुके हैं। लेकिन उस समय शुद्धगढ़ के सामन्त के वंश वालों के साथ चौहान राजा षण्ड के वंश वालों की जो शत्रुता पैदा हुई थी, वह आज तक उसी प्रकार चली जा रही है। इस शत्रुता में सत्रह पीढ़ियाँ बीत चुकी है। लेकिन उसमें कोई अन्तर नहीं आया। संसार में ऐसा अन्यत्र शायद ही कहीं दिखायी पड़े।

उदयपुर की पहाड़ी भूमि और उसकी दक्षिणी सीमा की तरफ के प्रदेश का जलवायु स्वास्थ्य कर नहीं है। इसलिए सीसोदिया वंश के जो लोग वहाँ पर रहा करते हैं, उनके स्वास्थ्य के मुकाबिले में चौहान राजपूतों की शारीरिक अवस्थायें बहुत अच्छी हैं। वहाँ के राजपूतों के शारीरिक गठन को ही वहाँ के दूषित जलवायु ने खराब नहीं किया, बल्कि उनको निर्बल भी बना दिया है और उनके शरीर के गोरे रंग को भी नष्ट कर दिया है।

वहाँ के सीसोदिया राजपूतों की संतानों पर इसका बहुत दूषित प्रभाव पड़ना चाहिए था। लेकिन उससे सुरक्षित रखने के लिए जो कारण हो गया है, वह केवल यह है कि उनके वैवाहिक सम्बन्ध राजस्थान के दूसरे स्थानों और राज्यों में होते रहते हैं। इन सम्बन्धों के कारण उनकी संतानों पर वह दूषित प्रभाव नहीं पड़ता, जिसका प्रभाव अत्यन्त स्वाभाविक था।

अगर उन लोगों के वैवाहिक सम्बन्ध पहाड़ों पर रहने वाले चंदावतों और गोगुन्दा के झाला लोगों में ही होते तो उनकी संतान उस अवनति से कभी बच न सकती। लेकिन वैवाहिक सम्बन्धों ने उन खराबियों से उनकी संतान की बड़ी रक्षा की है। हमें मालूम हुआ है उन सीसोदिया लोगों के वैवाहिक सम्बन्ध गोदवारा के राठौरों, हाड़ौती के चौहानों और दूसरे स्थानों के राजपूतों के साथ होते रहते हैं। इसलिए वहाँ के जलवायु के दूषित प्रभाव से उनकी संतान बहुत कुछ सुरक्षित रहती है।

गानोरा का सामन्त मुझसे फिर मिलने के लिए आया था। इस बार भी वह उसी सम्मान के साथ मुझसे मिला, जिस प्रकार वह पहले मिल चुका था। उसने इस बार की भेंट में भी मुझसे बहुत-सी बातें कीं और फिर वह चला गया। गानोरा के इस सामन्त में भी मुझे उसी प्रकार की नम्रता, शिष्टता और व्यवहार कुशलता मिली, जिस प्रकार मनुष्य के इन गुणों को राजस्थान के दूसरे सामन्तों में मैंने पाया था। जिन लोगों को इन सामन्तों के साथ बातचीत और व्यवहार करने का मौका मिला है, वे निश्चय ही उनकी प्रशंसा करेंगे। मैंने केवल गानोरा के सामन्त की ही नहीं, बल्कि राजस्थान के समस्त सामन्तों की प्रशंसा करता हूँ। यह बात सही है कि वे सब के सब पूरे तौर पर स्वाभिमानी हैं और अपने प्राचीन गौरव पर गर्व करते हैं। लेकिन वे व्यवहार करना भी

जानते हैं और दूसरों का सम्मान करने में वे अपने जिन गुणों का प्रदर्शन करते हैं, उनकी प्रत्येक अवस्था में प्रशंसा की जानी चाहिए। इसमें जरा भी अतिशयोक्ति नहीं है।

२८ अक्टूबर—आज बहुत सवेरे हम लोगों ने अपनी यात्रा आरम्भ कर दी। रवाना होने के समय ठाकुर ने अपने एक विश्वासी अनुचर को हम लोगों के साथ रवाना किया। हम लोग अरावली की शिखर माला को पार कर रहे थे। लेकिन उसके ऊँचे से ऊँचे पहाड़ों से हमारी दृष्टि को कोई बाधा नहीं पहुँचती थी और अपने रास्ते में चलते हुए हम लोग गोदवारा की उपजाऊ भूमि को दूर तक देख रहे थे। इस समय हम लोग चलते हुए गानोरा के बहुत पास पहुँच गये थे। वहाँ का दुर्ग और उसके महल बहुत अच्छी तरह से हमको दिखायी पड़ रहे थे। अपने रास्ते से उसकी आबादी की बहुत-सी बातों को हमने देखा और समझा। उसके निवासी अधिकांश बहुत साधारण अवस्था में हमको दिखायी दे रहे थे। उन्हें हमने ध्यान पूर्वक देखा।

गानोरा के राजपूतों ने मेवाड़ के राणा की अधीनता स्वीकार करके अपने प्रदेश को मेवाड़ राज्य में मिला दिया था। उससे अप्रसन्न होकर मारवाड़ के राजा भीमसिंह ने गानोरा नगर को अनेक प्रकार से क्षति पहुँचाई थी। आज से बीस वर्ष पहले की यह बात है। राजस्थान में गानोरा एक ऐसा स्थान है, जिस पर अधिकार करने के लिए मेवाड़ का राणा और मारवाड़ का राजा— दोनों ही आतुर रहा करते हैं।

हम सब लोग जिस समय इस प्रदेश के नदी-नालों, जलाशयों और अनेक प्रकार के सुन्दर वृक्षों से भरे हुए स्थानों को पार कर रहे थे, राणा का दूत हमारे पास आया और हम लोगों से बातचीत करने लगा। उसका नाम कृष्णदास है। वह बातचीत में होशियार और बहुत समझदार है। उसकी वृद्धावस्था में चरित्र की जो सुन्दरता और योग्यता होना चाहिए, वह हमें पूर्णरूप से मिलती है। मैं उसकी योग्यता का बहुत आदर करता हूँ और वह भी इस बात को समझता है कि मेरे हृदय में उसके लिए बहुत ऊँचा स्थान है। मैं उससे पहले से ही परिचित हूँ और उसकी योग्यता तथा प्रतिभा को मानता हूँ।

इस मार्ग में आकर उसने मुझसे भेंट की। प्रणाम करने के बाद उसने कुछ देर बाद तक मुझसे बातें कीं और फिर गम्भीर होकर उसने मेरी तरफ देखकर कहा: गोदवारा प्रदेश हमको आप लौटा दीजिए।

मैंने उसकी इस बात को सावधानी के साथ सुना और उसकी तरफ देखा अपनी बात सुन-कर वह गम्भीर हो रहा था। मैंने उसको उत्तर देते हुए कहा: आप लोगों ने उस पर दूसरों को क्यों अधिकार करने दिया था?

इस प्रकार कहकर मैंने उनकी तरफ एक बार देखा और उसको उत्तर देने का अवसर न देकर मैंने फिर कहा: आधी शताब्दी तक सीसोदिया राजपूत क्यों सोते रहे और उन दिनों में उनकी तलवार कहाँ चली गयी थी। भगवान का यह नियम नहीं है कि पहाड़ों का यह निकटवर्ती प्रदेश मेवाड़ में ही मिला रहे।

कृष्णदास गम्भीर पूर्वक मेरी बातों को सुन रहा था। उसको समझाते हुए और उसकी बात का उत्तर देते हुए मैंने फिर कहना आरम्भ किया। प्रकृति ने मेवाड़ और मारवाड़ की सीमा को अलग-अलग करने के लिए गोदवारा की प्रतिष्ठा की है। यहाँ से दोनों राज्यों की सीमा की जानकारी होती है। कदाचित् यह न्याय और निर्णय प्रकृति की ओर से हुआ है।

दूत कृष्णदास मेरी बात को सुनकर उत्तेजित हो उठा और उसने मेरी तरफ एक बार देखकर स्वाभिमान के साथ कहा : इस प्रकार दोनों राज्यों के बीच की सीमा का पृथक्करण होने पर गोदवारा हम लोगों का है और वह सदा हम लोगों का होकर रहा है। प्रकृति ने गोदवारा के द्वारा मेवाड़ की सीमा को निर्धारित नहीं किया, बल्कि खाने और पीने के जितने भी अच्छे पदार्थ होते हैं, प्रकृति ने मेवाड़ को देकर उसकी सीमा अलग कर दी है। इस स्थान से जब आप आगे बढ़ेंगे तो मेवाड़ की भूमि में वे सभी फल आपको मिलेंगे, जिनको देखकर और पाकर आप प्रसन्न होंगे, लेकिन मेवाड़ की सीमा को पार कर जब आप मारवाड़ की तरफ जायँगे तो वहाँ की भूमि में आपको यह कुछ नहीं मिलेगा।

यह कहकर राजा का दूत कृष्णदास मेरी तरफ देखने लगा और उसके बाद उसने एक गहरी साँस लेकर और मेरी तरफ देखकर कहा : आँवला आँवला मेवाड़, बबूल बबूल मारवाड़।

कृष्णदास ने कुछ ठहर कर कर फिर कहा : आँवले का फूला हुआ पीला फूल जहाँ तक दिखायी देता है, वहाँ तक मेवाड़ की भूमि है, मेवाड़ की सीमा को प्रकृति ने अपने-आप अलग कर दिया है। उसकी सीमा का निरुपण गोदवारा के द्वारा होने की आवश्यकता नहीं है।

कृष्णदास की इन बातों को मैं चुपचाप सुन रहा था। मेरे कुछ न कहने पर उसने कहा : मारवाड़ के लोग अपने बबूलों का सुख भोगें, हमको उनसे कोई मतलब नहीं है, मैं तो आपसे अपने आँवलों के लिए करता हूँ, हमारे आँवले हमको मिलने चाहिए।

कृष्णदास की बातों को बड़ी देर तक मैं सुनता रहा। अपनी बात समाप्त करके वह चुप हो गया। मैंने गम्भीर होकर उसकी ओर देखा। मैं सोचने लगा कि उसने सत्य ही कहा है। मेवाड़ और मारवाड़—दोनों राज्यों की सीमा पर छोटी-सी नदी है। उसको पार करके आगे बढ़ते ही प्रकृति का सम्पूर्ण सौन्दर्य धीरे-धीरे समाप्त होने लगता है और बबूलों के पेड़ तथा जंगली घास दूर तक फैली हुई दिखायी देने लगती है।

वहाँ के सभी वृक्ष देखने में सुन्दर नहीं मालूम होते। लेकिन उनके द्वारा उपकार बहुत होता है। ऊँटों के दल के दल उन वृक्षों की पत्तियों को खाकर अपनी भूख मिटाते हैं। वृद्ध दूत कृष्णदास ने मेरी बातों के उत्तर में जो कुछ कहा, उनमें न्याय तो नहीं है, लेकिन उसमें बातचीत की खूबसूरती जरूर है। कृष्णदास को मैं पहले से जानता हूँ कि वह बातचीत करने में प्रभावशाली है। उसने दोनों राज्यों की सीमा का निर्णय करने के लिए पहाड़ को महत्व न देकर वृक्षों को महत्व दिया, इसका कारण क्या है, इस पर यहाँ कुछ प्रकाश डालना जरूरी है।

कृष्णदास ने मेवाड़ और मारवाड़ की सीमा का निर्णय करते हुए जिस कविता का प्रयोग किया है, वह आज की नहीं बल्कि एक पुरानी कविता है। यह कविता कब कही गयी थी, किस मौके पर कही गयी थी और उसका उद्देश्य क्या था, केवल इतनी ही बात को हम यहाँ पर दिखाना चाहते हैं। पहले कभी एक घटना घटी थी और उसी घटना के सम्बन्ध में यह कविता कही गयी थी। यद्यपि वह घटना कई ग्रंथों में लिखी हुई मिलती है।

वह कविता पुरानी है और बहुत दिनों से जनश्रुति के रूप में वह राजपूताना में चली आ रही है। जिस घटना का हम उल्लेख करना चाहते हैं। वह संक्षेप में इस प्रकार है। चौदहवीं शताब्दी के अन्तिम दिनों में चंदावत शाखा के आदि पुरुष चण्ड ने मन्दोर के राजा रणमल को विश्वासघातकता के दण्ड में उसको मार डाला था और उसकी राजधानी तथा राठौर राजपूतों के

सम्पूर्ण प्रदेश पर अधिकार कर लिया था। वहाँ पर कई वर्ष तक उसका अधिकार रहा। मन्दोर के राजा के परिवार के लोग अरावली पर्वत की गुफाओं में जाकर रहने लगे थे। मन्दोर के राजा उत्तराधिकारी ने जो उस समय पहाड़ी गुफाओं में चला गया था। कभी इस बात का अनुमान नहीं लगाया था कि उसका नाम एक वंश के आदि पुरुषों में माना जायगा और उसको बहुत सम्मान मिलेगा एवं मन्दोर जोधपुर में मिला लिया जायगा।

मन्दोर प्रदेश जब बहुत दिनों तक मेवाड़-राज्य में शामिल रहा तो दोनों पक्षों ने उसके विवाद को भुला दिया था। मन्दोर राज्य का उत्तराधिकारी जोधा की भेंट एक कवि के साथ हुई। उस कवि ने एक भविष्य वक्ता की हैसियत से कहा : चित्तौर की राजमाता के अनुरोध से राणा ने तुमको मन्दोर वापस देने का निर्णय किया है।

योधा को मन्दोर का अधिकार मिलने के सम्बन्ध में दो प्रकार के कथानक पाये जाते हैं। मेवाड़ के इतिहास में लिखा है कि राणा ने दयालू होकर योधा को मन्दोर-राज्य वापस दे दिया। परन्तु मारवाड़ के इतिहास में लिखा है कि योधा ने युद्ध करके अपने पैतृक राज्य का उद्धार किया। इस प्रकार के दो विरोधी उल्लेख पाये जाते हैं। इन दोनों में सही क्या है, यह नहीं कहा जा सकता।

राणा ने मन्दोर के शासक चण्ड को वहाँ से चले आने के लिए आदेश भेजा था। चण्ड ने राणा का आदेश पाकर अपने बड़े लड़के के साथ मन्दोर से प्रस्थान किया। जब वह चार मील की दूरी पर निकल गया तो उसको अचानक मन्दोर के ऊपर उजाला दिखायी पड़ा। लेकिन चण्ड चित्तौर की तरफ आगे बढ़ा। उसके बड़े लड़के का नाम मञ्ज था। उसने अपने पिता का साथ छोड़ दिया और मन्दोर की तरफ वापस लौटा।

रास्ते में उसने सुना कि उसके दोनों भाई मन्दोर की रक्षा करते हुए योधा के हाथ से मारे गये हैं और विजयी योधा ने मन्दोर के दुर्ग पर अपनी विजय का झण्डा गाड़ दिया है। अपने दोनों भाइयों के मारे जाने और अपनी सेना के पराजित होने का समाचार पाकर मञ्ज रास्ते से ही लौट पड़ा। मन्दोर की सीमा पर योधा के सैनिकों ने मञ्ज को कैद कर लिया और उसे जान से मार डाला।

चण्ड जिस समय अराबली पहाड़ के रास्ते से होकर गुजर रहा था, उसने मन्दोर का समाचार सुना। वह तुरन्त मन्दोर के लिए लौट पड़ा। उसके वहाँ पहुँचने पर योधा ने उससे भेंट की और उसने राणा का वापस दिया हुआ मन्दोर चण्ड को बताया और उसके सामने योधा ने राणा का लिखा हुआ कागज दिखाया। इसके बाद योधा ने चण्ड से कहा कि आप मन्दोर की सीमा का निर्णय कीजिए।

योधा की बात को सुनकर चण्ड सोचने लगा कि प्रकृति ने मन्दोर और मेवाड़ की सीमा का निर्णय स्वयं कर दिया है। उसके सिवा और दूसरा कोई निर्णय नहीं हो सकता। चण्ड ने प्रकृति के उस निर्णय के अनुसार कहा : जहाँ तक पीले फूल वाले आंवले दिखायी देते हैं, वहाँ तक मेवाड़ की सीमा है।

चण्ड के इस निर्णय को सुनकर कवि ने उसको अपनी कविता में कहा : आँवला आँवला मेवाड़, बबूल बबूल मारवाड़।

चण्ड को जब मालूम हुआ कि राणा ने मन्दोर का इलाका योधा को दे दिया है, तो वह शांत हो गया। उसका लड़का मञ्ज आँवलों से परिपूर्ण सीमा पर मारा गया था। लेकिन वह स्थल

राणा के अधिकार में आ जाने का दुख भूल गया। मेवाड़-राज्य के दूसरे राजपूतों को भी इस बात की प्रसन्नता हुई कि सीमा पर आंवलों का प्रदेश मेवाड़-राज्य में शामिल किया गया। मन्दोर में जितने भी पत्थर खुदे हुए मिलते हैं, उन सभी में कवि की वह जनश्रुति पायी जाती है।

खेतों में इस समय जो फसल तैयार हुई थी, वह अमीर खां की सेना के द्वारा बहुत-कुछ नष्ट की गयी थी। इन बर्बादियों को वहाँ के रहने वालों के मुख से मैंने सुना जिससे मुझे बहुत अफसोस हुआ। यह बात सही है कि इन सभी स्थानों की फसलें लुटेरों और अत्याचारियों के द्वारा नष्ट की गयी थीं फिर भी मेवाड़ राज्य की फसलों की अपेक्षा इन स्थानों की फसलें अब भी अच्छी थीं। लोगों से बातें करने के बाद इन फसलों के सम्बन्ध में मैंने साफ-साफ समझने की कोशिश की। क्योंकि इन राज्यों की आमदनी का सबसे बड़ा साधन खेती की फसलें ही हैं।

अरावली पहाड़ से निकलकर जो छोटी-छोटी नदियाँ लूनी नदी के खारी पानी में मिलती हैं, अपनी यात्रा करते हुए उनमें से अनेक नदियों को हम लोगों ने पार किया। मार्ग में जो बड़े-बड़े ग्राम हमको मिले, वे सभी प्रजा से भरे हुए थे। यहां के किसानों को देखकर हमें मेवाड़ के किसानों की परिस्थितियों का स्मरण हो आया। इस प्रदेश के किसान मेवाड़ के किसानों की अपेक्षा अपनी फसलों में अधिक अनाज पैदा करते हैं। परन्तु ये लोग मेवाड़ के किसानों की तरह अच्छी हालतों में नहीं दिखायी देते। इस प्रदेश में किसानों को देखकर ऐसा मालूम होता है, जैसे उनमें जीवन का बहुत-बड़ा अभाव है और उनके प्राण सूख कर निर्बल पड़ गये हैं। किसानों की इस परिस्थिति को मैंने भली प्रकार समझा।

मेवाड़ और मारवाड़ की प्रजा में इस समय जो एक बड़ा अन्तर मुझे दिखायी देता है, उसकी उपेक्षा करना किसी प्रकार अच्छा नहीं मालूम हो सकता। जिस प्रदेश के किसान अच्छी फसलें पैदा करते हों और अनाज की पैदावार में जो अच्छे रहते हों उनकी परिस्थितियां नाजुक और निर्जीव क्यों दिखायी देती हैं, उसका स्पष्ट कारण यहां का शासन है।

मारवाड़ के राजा को उसके प्रधान मन्त्री ने शासन सम्बन्धी कार्यों में निर्बल और अयोग्य बना रखा है। यहां का राजा अपने प्रधान मन्त्री से अधिक प्रभावित है, और इसका परिणाम यह हुआ कि प्रधान मन्त्री के द्वारा राज्य में एक अव्यवस्था चल रही है। उसके कारण यहाँ की प्रजा सुखी और सन्तुष्ट नहीं है। मेरी समझ में इस प्रदेश की प्रजा के लिए राज्य की यह दुरवस्था प्रत्येक भाँति कष्टमय है। यही कारण है कि यहाँ के किसान अच्छी पैदावर करते हुए भी प्रसन्न नहीं दिखायी देते।

हरी-हरी घासों से भरे हुए शीतल स्थानों पर मुकाम करने से हम लोगों को अधिक अच्छा मालूम होता है। नादोल में मुकाम करके हमको इस प्रकार की सुख अधिक मिला। यहां के दृश्य देख कर और उसकी प्राचीन तथा नवीन परिस्थितियों का अध्ययन करके मैंने यह अनुभव किया कि मुझे जिस तरह की सामग्री की जरूरत पड़ेगी यहां पर काफी मिलेगी। इस प्रदेश में नादोल को अधिक प्रधानता दी जाती है। लेकिन उसके राजधानी होने का कोई प्रमाण हमको यहाँ पर नहीं मिलता।

इस प्रदेश के पश्चिमी भाग में नादोल बसा हुआ है। प्राचीन काल में अजमेर के चौहानों की एक शाखा यहाँ पर रहती थी। इस नादोल के राजपूतों के वंश से ही सिरोही के देवर और झालोर के मनीगुरा लोगों की उत्पत्ति हुई है। उन लोगों पर राठौर राजपूतों के बहुत अत्याचार हुए हैं और उनके अत्याचारों को उन लोगों ने सहन कर भी अपनी रक्षा की है। यह उनकी विशेषता है।

दूसरे अलाउद्दीन ने जब यहाँ पर आक्रमण किया था तो सोनीगुरु वंश के राजपूतों ने साहस पूर्वक उसका मुकाबिला किया था। परंतु समझ में नहीं आता कि स्वतन्त्र राज्यों के नामों के साथ उस वंश का नाम कहीं पढ़ने को क्यों नहीं मिलता। नादोल में छोटे-बड़े सब मिलाकर तीन सौ साठ नगर और ग्राम हैं, जो जोधपुर राज्य में माने जाते हैं।

सम्पूर्ण राजस्थान में ऐसा कोई स्थान नहीं है, जहाँ पर चौहानों की वीरता के प्रमाण न पाये जाते हों। यह बात सही है कि बहादुरी में सभी राजपुतों को महानता दी जाती है। लेकिन युद्ध के कौशल और शौर्य में चौहानों का स्थान अधिक श्रेष्ठ समझा जाता है, इतिहास के विद्वान इस बात को स्वीकार करते हैं।

राजपूतों में जिस वंश के साथ मुझे अधिक समय तक रहने का मौका मिला है, उसके इतिहास को और उसके बहादुरी के कार्यों को मैं भली प्रकार समझ सका हूँ। इस विषय में जहाँ तक मुझको जानकारी है, मैं कह सकता हूँ कि भारतवर्ष के समस्त राजपूतों में चौहानों का स्थान ऊंचा है। यही कारण है कि राजपूतों में चौहानों की प्रशंसा कवियों ने अधिक लिखी है। इससे इनकार नहीं किया जा सकता।

चौहानों की श्रेष्ठता को स्वीकार करने के बाद भी यह तो कहना ही पड़ेगा कि सम्राट पृथ्वीराज के बाद चौहानों की परिस्थियों में बहुत परिवर्तन हो गया है और यह बात सही है कि जो वीरता और बहादुरी पृथ्वीराज के समय चौहानों में पायी जाती थी, उसका एक बड़ा भाग चौहानों में नष्ट हो गया है। ऐसा होना स्वाभाविक होता है। यह अवस्था केवल चौहानों की ही नहीं हुई, बल्कि संसार की अन्य जातियों में भी यही बात देखी जाती है। किसी समाज अथवा जाति की श्रेष्ठता उसके किसी एक व्यक्ति तक ही प्राय :सीमित रहती है और उसके बाद वह धीरे-धीरे नष्ट हो जाती है। इस प्रकार की परिस्थितयाँ किसी एक स्थान में नहीं, बल्कि संसार में सर्वत्र देखी जाति हैं।

राजस्थान में जितने श्रेष्ठ पुरुष चौहानों में कवियों के द्वारा माने गये हैं, उनमें भटिण्डा का गोगा नामक चौहान भी बहुत प्रसिद्ध है। जिन दिनों में गजनी का बादशाह महमूद अपनी बड़ी सेना लेकर हिन्दुस्तान पर आक्रमण करने के लिए आया था, उस समय शूरवीर और स्वाभिमानी गोगा अपने चवालीस लड़कों को साथ लेकर उसके साथ युद्ध करने गया था। शत्रु के साथ उसने विकट संग्राम किया था और अपने समस्त पुत्रों के साथ वह उस युद्ध में मारा गया था। विजयी महमूद उसके बाद मरुभूमि में होकर अपनी सेना लिए हुए अजमेर में पहुँचा और वहाँ पर उसने भयानक आक्रमण किया। अजमेर के चौहान राजपूतों ने गजनी की सेना के साथ भयानक युद्ध किया और महमूद को घायल करके पराजित किया। अभिमानी महमूद को वहाँ से भागना पड़ा।

इसके बाद बादशाह महमूद नादोल होकर नाहर वाला और सोमनाथ की तरफ गया। जिस समय वह अपनी विराट सेना के साथ नादोंल पहुँचा, उस समय वहाँ के राजा ने आक्रमणकारी सेना के साथ युद्ध किया। नादोल में उसके प्रसिद्ध राजा लाक्षा के समय की खुदी हुई मुझे एक शिला लेख मिली। उसमें लिखा हुआ है कि लाक्षा अजमेर के चोहानों की उस शाखा का आदि पुरुष है, जो अजमेर से यहाँ आयी थी।

सम्बत् १०३९ सन् ९८३ ईसवी में नादोल अजमेर को कर देता था, और वह उसकी अधीनता में था। लाक्षा ने वहाँ पर जो दुर्ग बनवाया है, वह पश्चिमी शिखर के ऊपर बना हुआ है। यह दुर्ग अत्यन्त सुदृढ़ और प्राचीन काल की तरह के शिल्प के साथ बनवाया गया है। उसमें पर्वत के बहुत ही मजबूत पत्थर लगे हुए हैं। वहाँ पर मुझे एक दूसरा शिला लेख मिला है। उसमें

सम्बत् १०२४ सन् ९६८ खुदा हुआ है उसमें लिखा है कि लाक्षा मेवाड़ के राक्षा भीमसिंह के पूर्वज आइतपुर के शक्तिकुमार का समकालीन है। वह नगर भी सम्भवत बादशाह महमूद के पिता के द्वारा नष्ट किया गया था।

चौहान कवि ने राव लाक्षा को बहादुरी की प्रशंसा करते हुए लिखा है; अनहलवाड़ा राज्य से लाक्षा को कर मिला करता था और यही अवस्था चित्तौर के राजा की भी थी। वह भी उसको कर देता था।

यहाँ पर महलों, मन्दिरों और दुर्ग आदि के जितने गिरे और टूटे हुए अंश दिखायी देते है, उन सब के सम्बन्ध में वर्णन करना असम्भव मालूम होता है। यहाँ की बहुत-सी बातों को देखने से यह जाहिर होता है कि यहाँ पर किसी समय जैन धर्म का प्रभाव था। यहाँ पर जैनियों के अंतिम देवता महाबीर का मन्दिर बना हुआ है।' वह देखने में बहुत रमणीक मालूम होता है। इस मन्दिर के गुम्बज की बनावट बहुत प्राचीन काल से 'बिलकुल मिलती-जुलती है। उसके शिल्प को देखकर रोम के मन्दिरों के निर्माण की कला का सहज ही स्मरण होता है।

महाबीर के मन्दिर की अनेक बातें प्रशंसा के योग्य हैं। उसकी शिल्पकारी प्राचीन होने के साथ-साथ इतनी मजबूती के साथ उसके निर्माण के समय हुई थी, जो देखने में आज भी बड़ी खूबसूरत मालूम होती है। उस मन्दिर में जो प्रतिमायें हैं, कहा जाता है कि वे सभी डेढ़ सौ वर्ष पहले नदी से निकाल कर इस मन्दिर में स्थापित की गयी थीं। यहाँ के लोगों का यह भी कहना है कि बादशाह महमूद के आक्रमण के दिनों में वे सब प्रतिमायें उसके डर से फिर नदी में फेंक दी गयी थीं।

नादोल की बहुत-सी बातें प्रशंसा के योग्य है। वहाँ पर .एक जलाशय हैं। वह बहुत बड़ा है। चने की बावली उसका नाम है। लोगों का कहना है कि एक मुट्ठी चने के दानों की बिक्री के धन से यह जलाशय बनवाया गया था। विशाल होने के साथ-साथ यह बावली बहुत गहरी है और उसके जल में पहुँचने के लिए मजबूत लाल पत्थरों की सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। उस बावली के आस-पास की इमारत में भी लाल पत्थर लगे हुए हैं।

यहां पर मुझको इतिहास की कुछ प्राचीन बातें मालूम हुई। संस्कृत में लिखे हुए जो पत्र मुझे यहाँ मिले, मेरे नियुक्त किये हुए संस्कृत जानने वाले कर्मचारियों ने उन पत्रों की नकल की। ताँबे पर लिखे हुए दो पत्र भी मुझे मिले। उनमें एक अनलदेव के सम्बन्ध में सम्बत् १२१८ में लिखा गया था। उसमें जो लिखा था, उसका अनुवाद इस प्रकार है: विषय-पासना से रहित कोध और अहंकार से परे ज्ञान के भण्डार सर्वशक्तिमान महाबीर आपको प्रसन्न रखें। :-:

बहुत प्राचीन काल में चौहान वंश के लोग समुद्र के निकटवर्ती स्थानों में राज्य करते थे और नादोलवालों का उन पर शासन था। उन लोगों में लोहिया नाम का एक व्यक्ति था। उसके लड़के का नाम बलराज था और बलराज के लड़के का नाम बिग्रहपाल था। इसी प्रकार विग्रह पाल के लड़के का नाम महेन्द्रपाल और महेन्द्रपाल के लड़के का नाम अनल था। अनल उन दिनों में ऊपर लिखे हुए चौहानों का प्रधानों का प्रधान था। उसका प्रभाव दूर तक फैला हुआ था।

बाला प्रसाद नामक अनल का लड़का हुआ। । लेकिन बाला प्रसाद के कोई लड़का न होने के कारण उसके छोटे भाई जेत्रराज को वहां की प्रधानता का पद मिला। पृथ्वीपाल नामक जैत्रराज

:-: जैनियों के चौबीस धर्म के प्रचारक माने गये हैं। उनमें महाबीर का नाम लोग अंतिम समझते हैं।

के लड़का पैदा हुआ। वह महान पराक्रमी और बुद्धिमान था। उसके कोई पुत्र न होने के कारण उसका छोटा भाई जाल को अधिकार मिला। उसके बाद मानराजा अधिकारी बना। अनलदेव उसका पुत्र था। ×

मानराजा कुछ दिनों तक चौहानों का प्रधान रहा और वह अपने वंश पर शासन करता रहा। इसके बाद उसमें संसार के प्रति विराग की भावना उत्पन्न हुई। संसार का जीवन उसको व्यर्थ मालूम होने लगा। उसको विश्वास हो गया कि जीवन में दुख भोगने के सिवा और कुछ नहीं है, यह संसार कष्टमय है। वह धार्मिक ग्रंथों का अध्ययन किया करता था और इस बात को सोचा करता था कि यह संसार नाशवान है। इसकी कोई बात स्थायी नहीं है। जीवन में जो कुछ दिखायी देता है, वह किसी भी क्षण नष्ट हो सकता है। माया और मोह के सिवा इसमें और कुछ नहीं है। इस प्रकार के विचारों से प्रभावित होकर उसने एक बार अपने अधीन सामन्तों के पास आदेश भेजा कि आप लोग धार्मिक जीवन व्यतीत करते हुए दूसरों को सदा सहायता पहुँचाने की चेष्टा करो।

मानराजा ने एक होम का श्रीगणेश कराया और उस होम का कार्य सम्वत् १२१८ श्रावण मास शुक्ल पक्ष चतुर्दशी को समाप्त हुआ। उस समय शिव की मूर्ति को पञ्चामृत से स्नान कराया और अपने गुरु तथा ब्राह्मणों को उनकी अभिलाषा के अनुसार सोना, चाँदी, अन्न और वस्त्र दान में दिये। उंगलियों में कुश की अाँगूठियाँ पहनकर तिल, चावल और जल लेकर वह महावीर के मन्दिर में गया और अपने इष्ट देवता के माथे पर चन्दन लगाकर जल देने के बाद उसकी आराधना की और उसने सुन्दर गाछा :-: वंश के लोगों के लिए भेंट का संकेत करते हुए पाँच मुद्रा मासिक वृत्ति निर्धारित कर दी। उसने कहा :

"मैं अपने निर्णय के अनुसार इस बात की घोषणा करता हूँ कि इस वंश का जो कोई अधिकारी होगा। वह इस वृत्ति को बराबर प्रचलित रखेगा। जो इस वृत्ति का दान करेगा, वह साठ हजार वर्ष तक बैकुण्ठ में रहेगा और जो इस वृत्ति को पूरा न करेगा, वह साठ हजार वर्ष तक नरक में रहेगा।

प्रायवंशीय, जैन धर्मावलम्बी ओसवाल लोगों की एक शाखा है, धरणीधर के लड़के करमचंद मेरे मंत्री और शास्त्री मनोरथराम, इनके विशाल और श्रीधर नामक दो लड़कों ने शिला-लेख पर लिखकर मेरा नाम अमर कर दिया है।" श्री अनल ने अपने हाथ से यह पत्र लिखकर प्रदान किया। सम्वत् १२१८

यहाँ पर मैंने कई एक ग्रंथ ऐसे प्राप्त किये, जो मेरे इस कार्य के लिए अत्यन्त उपयोगी हैं। इन ग्रंथों में एक ग्रंथ राजस्थान के ३६ राजवंशों का विवरण देता है। एक ऐसा ग्रंथ है, जिसमें भारतवर्ष के प्रचीन भूगोल का वर्णन है। इस तरह यहाँ जो कई एक पर ग्रंथ मिले हैं, उनसे मुझे अपने इतिहास की बहुत अच्छी सामग्री प्राप्त होती है। एक ग्रंथ ऐसा भी मिला है, जिसमें विक्रम तथा महावीर के जन्म का वर्णन है और जैन धर्माविलम्बी नरेशों में सब से प्रसिद्ध श्रीनीक और सम्प्रोति के वंशजों का इतिहास है। महमूद बुलबन, अल्ला पुकारने का नाम खूनी और भारत विजयी नादिरशाह के नामों के सिक्के मुझे इस स्थान में मिले हैं।

× मानराजा जो जाल के बाद प्रधान बनाया गया था, उसका लड़का अनलदेव देव लक्ष्म से बारह पीढ़ी पहले सन् ८६८ ईसवी में पैदा हुआ था।

:-: सुन्दर गाछा जैनियों की चौरासी शाखाओं में एक शाखा है।

मेरे कर्मचारी नादोल से चौहानों की मुद्रा लाये हैं और उन्होंने वह मुद्रा मुझे दी है। उसका आकार-प्रकार छोटा है। देखने में वह बहुत साधारण सी जान पड़ती हैं। एक सिक्के में एक तरफ एक घोड़े के सवार की मूर्ति है। दूसरे कई सिक्कों में बैलों की मूर्तियाँ बनी हैं।

इस नादोल की जो यात्रा करता है, उनको परिश्रम के पुरस्कार में निश्चय ही कुछ सामग्री मिलती है। यहाँ पर प्राचीन काल की ऐतिहासिक सामग्री कई प्रकार की पायी जाती है। मैंने स्वयं उस प्रकार की सामग्री यहाँ पर प्राप्त की है। जैनियों की प्राचीन निवास-भूमि नादोल, देसुरी और सादरी में पुराने सिक्के, हाथ की लिखी हुई पुरानी पुस्तकें और कुछ इसी प्रकार की दूसरी सामग्री प्राप्त की जा सकती है। वहाँ के टूटे-फूटे महलों और मन्दिरों में भी प्राचीन-काल के विवरण खोजने से मिलते हैं। जो लोग इस प्रकार की खोज का काम करना चाहते हैं, उनको आबू पर्वत से लेकर मंदोर तक यात्रा करने की जरूरत है। इस सम्पूर्ण प्रदेश में जैन धर्मावलम्बी उन दिनों में रहा करते थे।

इन स्थानों की यात्रा करके बिना किसी अधिक परिश्रम के मैंने अपने काम की सामग्री प्राप्त कर ली है। इस सामग्री के संकलन में मुझे अपने कर्मचारियों से बड़ी सहायता मिली है। इस कार्य के लिए जिन पण्डितों को मैंने नियुक्ति किया है, वे रोजाना शाम को लौटकर मिली हुई सामग्री मुझे देते हैं। जहाँ कहीं मैं जरूरत समजता हूँ, इस सामग्री की खोज में मैं स्वयं जाता हूँ। किसी कारण वश जहाँ मैं नहीं पहुँच सकता, वहाँ पर मै अपने योग्य और विश्वासी आदमियों को भेजता हूँ, वहाँ पर इन बातों को लिखने का मेरा उद्देश्य यह है कि भविष्य में जो लोग यहाँ पर अनुसंधान का कार्य करेंगे, उनको मेरे इस वर्णन से कदाचित् बहुत कुछ मदद मिलेगी।

२६ अक्टूबर—ग्यारह मील का रास्ता पार करके इन्दुरा नामक स्थान में हम लोगों ने मुकाम किया। वहाँ पर लूनी नदी प्रवाहित होती हे। इसका जल नमकीन होने के कारण उसका नाम लूनी नदी पड़ा है। यह स्थान उस नदी के किनारे पर बसा हुआ है और गोदवारा राज्य की वह सीमा है। वहां से मेवाड़ एक तरफ और मारवाड़ दूसरी तरफ पड़ता है। इस सीमा पर खड़ा हुआ पीले आँवले का वृक्ष दोनों राज्यों की सीमा का परिचय देता है। मारवाड़ की तरफ देखने से बहुत दूर तक केवल बालू के मैदान दिखायी देते हैं। मेवाड़ की दशा दूसरी ही है उसकी तरफ देखने से विभिन्न प्रकार के वृक्षों का दृश्य और प्रकृति का सौन्दर्य बहुत दूरी तक दिखायी देता है। इस दृश्य को देखकर मुझे एक कवि की कविता याद आ गयी। वह कविता मैंने राणा के दूत कृष्ण दास को कई बार सुनायी थी उसे सुनकर कृष्ण दास ने कहा था: प्रकृति ने स्वयं इन दोनों राज्यों की सीमा का निरुपण कर दिया है।

जो कविता मुझे याद आयी, वह इस प्रकार है:

"आखाँरा झोंपड़ा,
फोगाँरी बाड
बाजरारी रोटी,
मोठाँरी दाल,
देखिये हो राजा तेरी मारवाड़।"

गाँव का निर्माण एक विशेषता के साथ हमने यहाँ देखा। प्रत्येक गांव के आस-पास कांटों का एक घेरा बना हुआ है और उस घेरे को ऊपर तक भूसे के साथ इस प्रकार ढका है कि वह दूर

से एक दुर्ग-सा मालूम होता है। ऐसे कुछ मौके आते हैं, जब किसानों को अपने पशुओं के खिलाने की कोई चीज नहीं मिलती तो वे इसी भूसे को अपने पशुओं के खाने के काम में लाते हैं। इस प्रकार के अवसर या तो वर्षा के दिनों में आते हैं अथवा उन दिनों में, जब उनके खेतों में फसल खड़ी होती है।

यहां के किसान अपने इस भूसे को सुरक्षित रखने के लिए एक खास तरीका प्रयोग में लाते हैं। भूसे की ऊँचाई तेरह हाथ पन्द्रह हाथ अथवा बीस हाथ बनाकर मिट्टी और गोबर से लेस देते हैं और उसकी रक्षा के लिए कांटे लगा देते हैं। मिट्टी और गोबर लगाने से वह भूसा दस वर्ष तक खराब नहीं होता और वह पशुओं के खाने के योग्य बना रहता है। कभी दुष्काल के पड़ने पर जब उनके खेतों में कोई पैदावार नहीं होता तो किसानों के पशु इसी भूसे को खाकर जिन्दा रहते हैं।

मरुभूमि में एक ही प्रकार का दृश्य देखने को मिलता है और सम्पूर्ण मरुस्थली प्रकृति की शोभा से वंचित रहती है। परन्तु लूनी नदी को पार करने के बाद यह दृश्य बदल जाता है और फिर तरह-तरह के पेड़-पौधे दिखायी देने लगते हैं।

३० अक्टूबर—इक्कीस मील का मार्ग चलने के बाद हम लोग राजस्थान के प्रसिद्ध व्यावसायिक नगर पाली में पहुँच गये। उस नगर के जो दृश्य आँखों के सामने से गुजरे, उनमें वे दृश्य सामने आये, जो उस ननर में होने वाले अत्याचारों की याद दिला रहे थे।

किसी समय राजपूतों से दो पक्षों में भयंकार युद्ध इस राज्य में हुआ था, उस समय दोनों पक्ष के लोग पाली नगर पर अधिकार करना चाहते थे। उस नगर के निवासी उस युद्ध से भयभीत हो गये थे और उन लोगों ने अपने नगर की रक्षा के लिए एक मजबूत और ऊँची दीवार अपने नगर के आस-पास खड़ी कर ली थी। कुछ इसी प्रकार का इरादा प्रसिद्ध व्यवसायी नगर भीलवाड़ा की सुरक्षा के लिए भी किया गया और जब उसकी रक्षा के लिए दीवार का घेरा डालना निश्चव किया गया तो आपत्ति पैदा की गयी। पाली में जो दीवार खड़ी की गयी थी उसका कुछ हिस्सा अब तक मौजूद हैं और उसको देखकर इस बात का स्मरण होता है कि यह दीवार पाली में किस भयंकर समय में खड़ी की गयी थी।

पाली नगर में दस हजार की संख्या में मनुष्य बसते हैं। बहुत प्राचीन काल से यह नगर वाणिज्य के लिए प्रसिद्ध रहा है और इस राज्य की प्रतिष्ठा के साथ इस नगर का राजनीतिक सम्बन्ध कायम हुआ।

प्राचीन काल में मन्दोर के राजा ने ब्राह्मणों की एक शाखा को दान के रूप में पाली नगर दिया था। उस समय से यह नगर उन ब्राह्मणों के अधिकार में रहा। सम्वत् १२१२ सन् ११५६ ईसवी में मरुभूमि के राठौर वंश का आदि पुरुष शिया जी जब द्वारिका से गंगा तक यात्रा करके लौटा था तो वह इस पाली नगर में विश्राम करने के लिए ठहरा था।

पाली के रहने वाले ब्राह्मणों ने उस समय शिया जी के आने का लाभ उठाना चाहा और इसलिए उन्होंने अपने प्रतिनिधियों को शियाजी के पास भेजकर प्रार्थना की कि हम लोगों को पहाड़ी मीना लोगों से बहुत बड़ा कष्ट मिल रहा है। वे लोग हमेशा इस नगर में आकर लूट-मार किया करते हैं।

शिया जी ने उन ब्राह्मणों के प्रतिनिधियों की बातें सुनी और उसने पाली के ब्राह्मणों को सहायता करने का बचन दिया। उसने पहाड़ी मीना लोगों पर आक्रमण करके उनको नष्ट-भ्रष्ट किया

और पाली नगर में उनके द्वारा होने वाले अत्याचारों को सदा के लिए खत्म कर दिया। शिया जी के द्वारा वहाँ के ब्राह्मणों का वह कष्ट तो दूर हो गया। परन्तु उनका भविष्य पहले से भी अधिक अंधकारमय हो गया।

शिया जी ने न केवल पहाड़ी मीना लोगों को पराजित किया, बल्कि उनको छिन्न-भिन्न करने के बाद उसने पाली नगर के सभी प्रधान ब्राह्मणों को मार डाला और पाली नगर पर अधिकार कर लिया। शिया जी ने अपने राज्य-विस्तार की अभीलाषा से प्रेरित होकर ऐसा किया।

किसी भी नगर अथवा प्रदेश की स्वतंत्रता उसके वाणिज्य-व्यवसाय पर निर्भर होती है। व्यवसाय से राजनीति को बल मिलता है और उसकी स्वाधीनता पर सहज ही कोई शक्ति आक्रमण करने का साहस नहीं करती। भीलवाडा, झालरापाटन और दूसरे प्रसिद्ध व्यावसायिक नगरों की तरह पाली के निवासी भी अपने नगर की व्यवस्था करने का अधिकार रखते हैं और भीलवाडा की तरह पाली नगर भी राज्य की तरफ से कई बातों में स्वतंत्रता का अधिकारी है।

प्राचीन काल से पाली नगर उत्तरी भारत का सम्बन्ध समुद्री किनारे से जोड़ने के लिए बहुत प्रसिद्ध रहा है। मस्कत, मालद्वीप, सुराट और नाऊनगर आदि व्यावसायिक नगरों से फारस, अरब, अफ्रिका और योरप का बना हुआ माल यहाँ पर भेजा जाता है और इस पाली नगर से भारतवर्ष तथा तिब्बत का बना हुआ माल ऊपर लिखे हुए स्थानों को भेजा जाता है। समुद्र के तट पर बसे हुए देशों से हाथी दाँत, गैडे का चमड़ा, ताँबा, टीन, जस्ता, सूखा खजूर और पिण्डखजूर, अरब का गोंद, सुहागा, नारियल, बनात और रेशमी कपड़े, अनेक प्रकार के रंग, कितनी ही औषधियाँ, गन्धक, पारा, मसाले, चन्दन की लकड़ी, कपूर, चाय, हरे रंग का काँच और औषधियाँ बनाने के लिए मोम आता है। × वहाँ से आने वाला पिण्ड खजूर इस देश में बहुत खपता है और जो वहाँ से विभिन्न प्रकार के रंग आते हैं, उनकी भी यहाँ पर बड़ी खपत होती है।

भावलपुर से सज्जी मिट्टी, आल, मजीठ नामक रङ्ग, बन्दूकें, पक्के फल, हींग मुलतानी छींट और संदूक तथा पलगों के लिए लकड़ी आती हैं। कोटा और मालवा से अफीम और छींट आती है। भोज से तलवार और घोड़े भेजे जाते हैं।

पालीनगर से नमक और पशम भेजा जाता है। इस नगर में एक प्रकार का कागज और सूती मोटा कपड़ा बहुत मशहूर है। व्यापारी लोग इन दोनों चीजों को बड़ी संख्या में दूसरे नगरों और देशों को ले जाते हैं। पाली की बनी हुई लोई बहुत प्रसिद्ध है। भारतवर्ष के सभी स्थानों में उस लोई की बिक्री होती है और वे लोइयाँ चार रुपये से लेकर साठ रुपये तक जोड़ा के हिसाब से बिकती हैं। ओढ़ने और पगड़ी भी इस नगर की बनी हुई बहुत अच्छी समझी जाती हैं और इसी लिए उनकी खपत भी इस देश में अधिक होती है। परन्तु ये दोनों चीजें दूसरे देशों को नहीं भेजी जाती।

× जब मैं सींधिया के दरबार में गया था तो वहाँ के सभी लोगों ने यह बात समझ ली थी कि मैं सभी प्रकार के रोगों का इलाज करना जानता हूँ और उसके सम्बन्ध की सभी चीजें मेरे पास रहती हैं। एक सामन्त की स्त्री को मोम की आवश्यकता थी। उसने मेरे पास अपना एक नौकर भेजा। उस सामन्त के यहाँ वह नौकर खबरदार कहलाता था। उसने आकर मुझसे मोम माँगा। मेरे पास मोम न था। इसलिए मोम देने से मुझे इन्कार करना पड़ा। लेकिन उस नौकर को मेरी बात का विश्वास न हुआ। उसने समझा कि मेरे पास मोम है। लेकिन मैं देना नहीं चाहता। उसकी इस हालत को समझ कर मैंने उसे हिन्दुस्तानी रबड़ का एक टुकड़ा दे दिया और वह उसको मोम समझ कर ले गया।

पाली नगर में जो चीजें तैयार होती हैं और दूसरे नगरों तथा देशों के साथ जिनका व्यापार होता है, उनमें नमक प्रधानता रखता है। यहाँ का बना हुआ नमक बहुत अधिक दूसरे स्थानों को जाता है और उसके द्वारा इस नगर को आमदनी भी अच्छी होती है। पता लगाने के बाद मुझे मालूम हुआ है कि इस नमक से होनेवाली आमदनी, राज्य की आमदनी की आधी से कम नहीं होती। यहाँ पर कई जलाशयों में पञ्चभद्रा, फिलोदी और डोडवाना प्रमुख हैं। इन झीलों में बहुत अधिक नमक तैयार होता है। पञ्चभद्रा झील का विस्तार कई मीलों तक है। पाली नगर में जो नमक तैयार होता है, उससे वर्ष में पछत्तर हजार रुपये की आमदनी होती है। मारवाड़ जैसे गरीब राज्य के लिए यह आमदनी एक बड़ी आमदनी है।

इस प्रदेश में वाणिज्य की जो चीजें आती-जाती हैं, उनकी रक्षा का कार्य चारण और भाट लोगों को करना पड़ता है। ये लोग आमतौर पर कवि होते हैं और अपनी कविताओं के द्वारा राजवंश की प्रशंसा का गाना गाया करते हैं। केवल इसीलिए राज्यों में इन कवियों को प्रधानता दी जाती है और वे पूज्य माने जाते हैं। कोई भी इनको नाराज नहीं करना चाहता। क्योंकि अप्रसन्न होने पर कविता करने का व्यवसाय रखने वाले चारण और भाट शाप देने की धमकी दिया करते है और उनके शाप से सभी लोग बहुत भयभीत रहते है।

इन चारण और भाट लोगो का डर इतना अधिक लोगों को रहता है कि प्रत्येक अवस्था में लोग उनको खुश करने की कोशिश करते हैं। यहाँ तक की लुटेरे लोग, जंगली कोल, भील और मरुभूमि के भयानक सराई लोग भी उनके शाप से बहुत डरते हैं।

राज्य की तरफ से व्यावसायिक आने-जाने वाले माल की रक्षा का कार्य इन लोगों को इसलिए दिया जाता है कि उनके भय से कोई बदमाश और लुटेरा गिरोह माल पर हमला नहीं कर सकता। इस कार्य को राज्य में इतनी सफलता के साथ दूसरा कोई नहीं कर सकता, जितनी सफलता के साथ ये चारण और भाट लोग कर सकते हैं। इसीलिए राज्य की तरफ से इस कार्य का भार इन्हीं लोगों को हमेशा दिया जाता है।

इन चारणों और भाटों की इस शक्ति को सभी लोग जानते हैं और सब का यह विश्वास रहता है कि इनमें किसी के साथ रहने से लुटेरों का डर नहीं रहता। इसीलिए जिन लोगों को कहीं जाना होता है, वे अपनी और अपने माल की रक्षा के लिए राज्य के इन संरक्षकों को साथ में लेकर चलते हैं। इनकी सहायता से व्यापारी लोग झालर, पीनमहल, साँचौर और राधानपुर होकर सूराट एवम् मस्कत द्वीपों में सुरक्षित पहुँच जाते हैं।

पाली नगर से दस मील पूर्व की तरफ पुण्य गिरी नामक एक पहाड़ है। उसके शिखर के ऊपर एक मंदिर बना हुआ है। कहा जाता है कि सौराष्ट्र के पालिताना के एक बौद्ध ने इस मंदिर को बनवाया था। वह बौद्ध इन्द्रजाल जानता था। लेकिन उसकी इस जानकारी को वही बौद्ध लोग मानते थे, जो उस प्रदेश में बहुत अधिक संख्या में रहा करते थे।

यहाँ पर एक पुराने मित्र के साथ मेरी भेंट हुई। वह मित्र गफ के नाम से प्रसिद्ध था। वह यहाँ के दक्षिणी-पश्चिमी प्रदेश में रहने वाले सराई, कोशा इत्यादि जंगली और पहाड़ी असभ्य लोगों में घोड़े प्राप्त करने के लिए घूम रहा था।

३० अक्टूबर खरैरा

३१ अक्टूबर रोहित

१ नवम्बर—लूनी के उत्तरी किनारे पर सङ्कुली नामक एक स्थान है। वह स्थान पाली से दूर हमारी यात्रा के मार्ग में है। पाली से लेकर लूनी नदी तक तीस मील की दूरी में जो ग्राम बसे

हुए हैं, वे बहुत टूटी-फूटी दशा में है और उनमें कोई भी ऐसी बात नहीं है जो भ्रमण करने वालों को अपनी ओर आकर्षित करती हो। इस दशा में खरैरा नामक स्थान में हम लोगों ने मुकाम किया।

खरैरा में नमक बनाने के दो जलाशय हैं। उनमें बहुत-सा नमक तैयार होता है। नमक खारी होता है और वहाँ पर बहुत-सा तैयार किया जाता है। मालूम होता है, इसीलिए उस स्थान का नाम खरैरा पड़ा है। यहाँ पर खरैरा और रोहित नाम के दो इलाके हैं और वे दोनों इलाके दो अलग-अलग सामन्तों की अधीनता में हैं। इधर कुछ दिनों से उन दोनों सामन्तों में आपसी द्वेष की आग जल रही है। जिसके कारण वे दोनों एक, दूसरे को मिटाने में लगे हुए हैं और इन परिस्थितियों के कारण उनमें जो लड़ाइयां चल रही हैं, उनके फलस्वरूप रोहित के सामन्त की दशा बहुत खराब हो गयी है। यहां पर एक घटना का उल्लेख जरूरी मालूम होता है।

पाइमा नामक एक व्यापारी रोहित के इलाके में नमक का व्यवसाय करता है और उसके द्वारा बहुत-सा नमक आता जाता है। एक-दूसरे व्यापारी के साथ उसका झगड़ा हो गया। उस झगड़े में उसके सिर में चोट आयी। जख्मी दशा में वह परिवार के लोगों के पास गया, झगड़ा करने वाले दोनों व्यापारी भाट जाति के हैं और पाइमा भूमानिया भाटों का प्रधान है। :-: बोझा ढोने के लिए पाइमा के पास चार हजार पशु हैं। व्यापार न होने के दिनों में वह अपने पशुओं को लेकर दूसरे स्थानों में चला जाता है।

पाइमा का जिस व्यापारी के साथ झगड़ा हुआ था, उसका नाम श्यामा था। श्यामा ने मौका पाकर पाइमा के बहुत से छकड़ों पर अधिकार कर लिया और पाइमा के सिर पर चोट पहुँचा कर उसको जख्मी कर दिया था। इस प्रकार के किसी भी झगड़े का फैसला करने के लिए जब वह मुकदमा पेश किया जाता है तो उसी पक्ष की विजय हुई और श्यामा के अधिकार ले लिए गये।

ऊपर यह लिखा जा चुका है कि राजस्थान में चारण और भाट लोग ही व्यापारिक माल के संरक्षक बनाये जाते हैं। लेकिन अगर वे अत्याचार और अन्याय करते तो वे संरक्षक के पद से हटा दिये जाते हैं। उपरोक्त पाइमा के पूर्वजों के साथ राणा अमर सिंह का एक झगड़ा हुआ था। वह घटना इस प्रकार है कि पाइमा के पूर्वज भाट लोगों ने अपने शुल्क को कम करने के लिए राणा अमर सिंह से प्रार्थना की। लेकिन राणा ने उस प्रार्थना को मंजूर नहीं किया।

इस दशा में प्रार्थी भाट लोग बहुत अप्रसन्न हुए और वे लोग अपनी आत्म हत्यायें करके राणा को ब्रह्महत्या का भय दिखाने लगे। इन भाटों का यह पुराना तरीका था और इस प्रकार के भय दिखाकर वे राज्य से उचित और अनुचित हमेशा लाभ उठाया करते थे। इस अवसर पर भी उन्होंने वैसा ही किया और राणा अमर सिंह से साफ-साफ कहा कि अगर आप हमारी प्रार्थना को मंजूर नहीं करेंगे तो हम लोग 'आत्महत्या' कर लेंगे और आप ब्रह्महत्या के पापी होंगे। लेकिन अमर सिंह ने उनकी इन बातों पर ध्यान नहीं दिया।

राणा के द्वारा प्रार्थना स्वीकार न होने पर भाँट लोग बहुत क्रोधित हुए और उन्होंने आपस में परामर्श करके अपने पुराने अस्त्र का प्रयोग किया। भाँट वंश के अस्सी स्त्री-पुरुषों ने राणा के महल के सामने पहुँचकर कटारों से अपनी आत्म हत्यायें की। इसलिए कि इन ब्रह्महत्याओं का

:-: भूमानिया नामक स्थान में रहने के कारण उन लोगों का नाम भूमानिया भाट पड़ा है।

अपराध राणा को लगे, इस अपराध के कारण राणा जाति से च्युत किया जाय और मरने पर उसको नरक का भोग करना पड़े। इसलिए भाटों ने अपनी आत्म हत्यायें कीं।

इस बात को सभी जानते थे कि भाट की हत्या के अपराध में मनुष्य को लोक और परलोक—दोनों में नरक भोगना पड़ता है। लेकिन राणा अमर सिंह पर इसका कोई प्रभाव न पड़ा। क्योंकि वह जानता था कि एक बार ऐसा करने से ये लोग रोजाना इस प्रकार की प्रार्थनायें किया करेंगे और किसी प्रार्थना के पूरा न होने पर ये लोग अपने इसी अस्त्र का प्रयोग करेंगे। यह समझ कर राणा अमर सिंह ने उनकी आत्महत्याओं की कुछ परवा न की और जो भाट बाकी रह गये थे, उनको राज्य से निकाल कर उनके भूमानिया इलाके पर अधिकार कर लिया और इस बात का आदेश कर दिया कि आज के बाद एक भी भूमानिया भाट नहीं आ सकता।

राणा अमर सिंह के उस आदेश का पालन अब तक मेवाड़ राज्य में होता था। लेकिन जिस समय राणा भीमसिंह ने घोषणा की कि मेवाड़ राज्य की भागी और निकाली हुई प्रजा फिर इस राज्य में रह सकती है, उस घोषणा को सुनकर भूमानिया भाट फिर मेवाड़ में आकर रहने लगे।

पाइमा के पूर्वज जिस कारण से मेवाड़ राज्य से निकाले गये थे, वह सब को मालूम है और पाइमा को भली प्रकार जानता है। लेकिन अपना मतलब निकालने के लिए वह उस पुरानी घटना को भुलाये रहता है। अगर उसकी प्रार्थना कोई स्वीकार न करे तो वह उसके बदले आत्म-हत्या के लिए धमकी देता रहता है और इसके लिए वह अपनी कमर में सदा तलवार बाँधे रहता है। भाटों के शाप का जिस प्रकार प्रचार है, उसको जानते हुए भला कौन आदमी उनकी हत्या का कारण बनेगा।

श्यामा के मुकदमे में उसकी विजय अधिक कर देने के कारण हुई थी। वह उस मुकदमे में विजय तो हो गया। लेकिन उसे अधिक कर देना न पड़े, इसके लिए उसने राणा भीम से प्रार्थना की और जब राणा ने उसकी प्रार्थना को मंजूर न किया तो वह अपने हाथ में कटार लेकर राजा के सामने आत्म-हत्या करने के लिए तैयार हो गया। राणा भीमसिंह अमर सिंह की तरह साहसी और निर्भीक न था। पाइमा की होने वाली आत्म हत्या को सुनकर घबरा उठा और उस मामले में उसने मुझको मध्यस्थ बनाया।

राणा का एक दूत इस समाचार को लेकर मेरे पास आया और उसने पूरी घटना बताकर मुझसे कहा कि इसका निर्णय करने के लिए राणा ने आपको मध्यस्थ नियुक्त किया है, इस समाचार को सुनकर राणा के दूत के साथ मैंने अपना एक नौकर भेजा और उसके द्वारा मैंने पाइमा को बुलवाया।

पाइमा के आने पर उसका मोटा ताजा शरीर मैंने देखा। वह देखने में सुन्दर और साहसी मालूम होता था। उसके आने पर मैंने उससे बातें करना आरम्भ किया और उसके मुख से पूरी घटना को सुनकर मैंने उससे कहा : जो कोई व्यवसाय का माल लेकर मेवाड़ के राज्य के भीतर से निकलेगा, उसको राज्य के निर्धारित कर देना पड़ेगा। इसके लिए अगर आप लोग आत्म हत्या का भय दिखाने के लिए तैयार होंगे तो उसका कोई नतीजा न निकलेगा। राज्य की तरफ से कर वसूल करने की जो व्यवस्था की गयी है, और जिस पर जो कर लगाया गया है, उसके अनुसार उसको कर देना पड़ेगा। अगर आप इस नियम के अनुसार कर देने के लिए तैयार होंगे और इस बात को लिखकर स्वीकार करेंगे तो बोझा उठाने वाले आपके चालीस हजार में पाँच सौ बैलों का

कर माफ कर दिया जायगा और भूमिया में रहने के लिए आपको आज्ञा मिल जायगी। इसके सिवा आप दूसरी कोई आशा न रखें।

यह कहकर मैंने पाइमा की तरफ देखा और उससे फिर कहा : अगर आपको मेरा निर्णय मंजूर है तो लिखकर दीजिए और अगर मंजूर नहीं है तो मेज पर यह कटार रखा हुआ है। आप शौक से आत्म हत्या कर सकते हैं।

पाइमा मेरी इन बातों को चुपचाप सुनता रहा। क्षण-भर उसके कुछ न बोलने पर मैंने फिर कहा : राणा अमर सिंह ने भाटों के आत्म हत्या करने पर उस वंश के बाकी भाटों को राज्य से निकल जाने का दण्ड दिया था। राणा अमर सिंह का वह आदेश आज भी राज्य में कायम है। उसके साथ-साथ मै इतना और इस अपराध में दण्ड की मात्रा बढ़ा दूँगा कि यदि आपने मेरे इस निर्णय को न माना तो व्यवसायिक माल को ले जाने के लिए जितने छकड़े आपके पास हैं, वे सब छीन लिये जायँ और आपको देश से निकाल दिया जाय। ऐसा करने के लिए मैं राणा भीमसिंह से अनुरोध करूँगा।

मेरे इस निर्णय को सुनकर पाइमा काँप उठा। उसने बुद्धिमानी से काम लिया और बिना किसी प्रकार की रुकावट के उसने मेरे निर्णय को मंजूर कर लिया। इसके बाद राणा ने उसको भूमनिया में रहने की आज्ञा दे दी और उसके पाँच सौ बैलों का कर माफ कर दिया।

राणा भीमसिह ने इसके बाद पाइमा को उसके भूमानिया प्रदेश का प्रधान नियुक्त किया और उसको बहुमूल्य वस्त्रों के साथ सोने के बाजूबन्द उपहार में दिये।

२ नवम्बर—दस मील का मार्ग पार करके हम सब लोग झालामंद नामक स्थान पर पहुँचे। जोधपुर वहाँ से बहुत थोड़े फासिले पर है। इसलिए यहाँ पर रुक जाने का हमारा एक विशेष अभिप्राय है। उसके सम्बन्ध में हमें कुछ निर्णय कर लेना था। इसीलिए इस स्थान पर हमको रुकना पड़ा। पश्चिमी देशों में किसी राज्य की ओर से आने वाले प्रतिनिधि के साथ जो व्यवहार किया जाता है, वह उन देशों तक ही कदाचित् सीमित हो सकता है। मरुभूमि के राज-दरबार में अंगरेज प्रतिनिधि के साथ किस प्रकार आदर सम्मान होगा और किस प्रकार होना चाहिए, इसको समझ-बूझकर हमें आगे कदम बढ़ाना चाहिए, राजा का भेजा हुआ जो प्रति-निधि हमारे पास आवेगा, उसका किस प्रकार हमें स्वागत करना चाहिए, यह भी हमें समझ लेने जरूरत है।

ऐसे अवसरों पर राज-दरबारों में प्राचीन काल की निर्धारित प्रथाओं का ही पालन होता है। शायद जोधपुर में भी वैसा ही किया जाय। अथवा किसी दूसरे प्रकार का स्वागत हो, यह भी नहीं कहा जा सकता। किसी भी दशा में हमें कुछ निर्णय कर लेने की आवश्यकता है। इसलिए कि अंगरेजी शासन की परिस्थिति बिलकुल भिन्न है। ईस्ट इण्डिया कम्पनी का गवर्नर एक व्याव-सायिक संस्था के अनुचर के रूप में माना जाता है। इसलिए उसके एक प्रतिनिधि के साथ यहाँ के एक राजा का व्यवहार किस प्रकार होगा, इसका अनुमान नहीं किया जा सकता। इसलिए जब तक इसका निर्णय न हो, अथवा वह स्वागत हमारे सामने न आवे, उस समय तक हम इस बात को नहीं समझ सकते कि हमें भी किस प्रकार राजा के प्रतिनिधि का स्वागत करना होगा।

सिन्धु नदी से लेकर समुद्र तक ईस्ट इण्डिया कम्पनी का शासन है। लेकिन यह कम्पनी एक शासक के रूप में नहीं, बल्कि एक व्यावसायिक संस्था के रूप में प्रसिद्ध है। राजस्थान के

राज्यों की परिस्थितियाँ आज पहले की-सी नहीं रह गयीं। सींधिया और होलकर के लगातार आक्रमणों से कारण इन राज्यों की पद-मर्यादा को बड़ा आघात पहुँचा है। फिर भी कम्पनी के प्रति यहाँ के लोगों की व्यावसायिक धारणा हमको अपनी परिस्थितियों को सावधानी के साथ सोचने और समझने के लिए वाध्य करती है। हमारा शासन चाहे जितने विस्तार में पैदा हुआ हो और हमने यहाँ के राजाओं के प्रति कितना ही उपकार क्यों न किया हो, लेकिन राजाओं की समानता करने वाले हमारे पद का निर्माण नहीं होता। इस दशा में कम्पनी के प्रतिनिधि का स्वागत किस रूप में होता है, यह समझने की जरूरत है। राजपूत राजाओं की आज जो भीतरी दुरवस्था यें हैं, उन्होंने उन राजाओं को अपनी श्रेष्ठता भुला देने के लिए मजबूर कर दिया है। उनकी बढ़ती हुई दुरवस्थाओं का ही परिणाम है कि अमीर खाँ और बापू सींधिया जैसे व्यक्ति राजपूत राजाओं के समान सम्मान पाने के दावा करने लगे हैं। राजा ने स्वयं अपने प्रतिनिधि को भेजकर अमीर खां का स्वागत-सत्कार किया था। जो सामंत उसके स्वागत के लिए भेजा गया था, वह मौन था और कितनी ऊँची उसकी श्रेष्ठता थी इसका ख्याल नहीं किया गया। यह संसार है और यहाँ पर सदा से यह होता चला आया है।

किसी भी दशा में, जो सम्मान इन राजाओं से मराठा सेनापति को मिला है, इससे कम किसी प्रकार संतोषजनक नहीं हो सकता। बहुत समय से जो वकील मेरे साथ रहा है, मैंने उससे अनेक प्रकार के प्रश्न किये और इस जटिल समस्या को समझने तथा सुलझाने के लिए उसको राज-दरबार में भेजा और राजधानी से पाँच मील के पहले ही इस स्थान पर मुकाम करके मैं उसका रास्ता देखता रहा। मैं स्वयं इस प्रकार के सम्मान को अधिक महत्व नहीं देता। लेकिन यह सम्मान मेरा व्यक्तिगत सम्मान नहीं है। ईस्ट इंडिया कम्पनी के प्रतिनिधि के पद पर होने के कारण मैं वही सम्माम चाहता हूँ, जो कम्पनी के लिए योग्य और मुनासिब हो सकता है।

मैं यह समझता हूँ कि आज का व्यवहार भविष्य में दोनों के सम्मान पूर्ण अस्तित्वों की रचना करेगा। यही सोच-समझकर मैंने वकील को राजा के दरबार में भेजा है। मेरी समझ में दोनों के सम्मान की रक्षा होना चाहिए। राजा के दरबार के भेजे गये वकील × के द्वारा जब स्वागत के सम्बन्ध में बातचीत हो गयी और मालूम हो गया कि राजा पालकी में बैठकर कम्पनी के प्रतिनिधि के स्वागत के लिए आवेगा तो हम लोगों ने झालामंद से प्रस्थान किया और दोपहर के समय हम सब के साथ जोधपुर राजधानी के तरफ रवाना हुए। राजा के भेजे हुए पोकर्ण और निजाम के दो सामन्त हमारे स्वागत के लिए राजधानी से चलकर कुछ दूर आगे आये और उन दोनों सामन्तों ने मुझसे भेंट की। मैं घोड़े से उतर पड़ा और दोनों सामन्तों से बड़ा प्रेम के साथ मिला। कुशल समाचार पूछने के बाद मैं फिर घोड़े पर सवार हुआ और दोनों सामन्तों के साथ राजधानी की तरफ चलने लगा।

पोकर्ण के सामन्त का नाम सालिम सिंह है। वह मारवाड़ के सामन्तों में सब से अधिक धनी है। इसकी जागीर का इलाका और उसका दुर्ग मरुभूमि के बीच में है। उसका इलाका जैसलमेर के राज्य से अलग कर दिया गया है। उसका दुर्ग बहुत मजबूत है। पोकर्ण के सामन्त के द्वारा

× सन् १८१८ ईसवी के दिसम्बर महीने में अजमेर का सुपरिन्टेन्ट विल्डर जोधपुर के वकील की हैसियत से भेजा गया था, उस समय राजा ने बड़े सम्मान के साथ उससे भेंट की थी और स्वागत के सम्बंध में निर्णय किया था।

मारवाड़ का राजसिंहासन कई बार संकटों में पड़ चुका है। उसके वंश के चार व्यक्तियों ने मारवाड़ के अत्यन्त साहसी राजाओं को भी भयभीत कर दिया था।

सामन्त सालिम सिंह का परदादा देवसिंह कम्पावत वंश का प्रधान था और वह पाँच सौ शूरवीर राजपूतों के साथ प्रत्येक समय रहा करता था। वह अभिमान पूर्वक अपने राजा से कहा करता था : मारवाड़ का राज सिंहासन मेरी तलवार में है।

देवसिंह के लड़के सुनेल सिंह ने अपने पिता का अनुकरण किया और मारवाड़ के राजा विजय सिंह को सिंहासन से उतार दिया। सबल सिंह के लड़के और उत्तराधिकारी सवाई सिंह ने राजा भीमसिंह के साथ व्यवहार करने में अपने पिता का अनुसरण किया और सन् १८०६ के आरम्भ में धौंकल सिंह को मारवाड़ के सिंहासन पर विठाने की कोशिश की।

नागौर नामक स्थान पर अमीर खाँ ने कम्पावत वंश के राजपूतों के प्रधान सवाई सिंह के साथ विश्वासघात किया था और उसने उसके समस्त अनुचरों के साथ-साथ उसको भी जान से मार डाला था। राजा मानसिंह ने उस दुराचारी से अपने वंश की रक्षा की और सवाई सिंह के लड़के को अपने राज्य के कर्मचारियों में प्रधान का पद देकर उसको सम्मान किया। उसने अपने व्यवहारों से उसकी प्रसन्न करके उसको सभी प्रकार अपने अनुकूल बना लिया। सामन्त की यह बुद्धिमानी थी। अगर वह ऐसा न करता तो उसके सर्वनाश के साथ-साथ उसकी जागीर पोकर्ण का भी विनाश हो जाता।

पोकर्ण के सामन्त सालिम सिंह का संक्षेप में इतना ही जीवन चरित्र है, जिसका यहाँ पर उल्लेख करना जरूरी था। इस समय उसकी अवस्था करीब पैंतीस वर्ष की है। वह देखने में सुन्दर नहीं है। लेकिन साहसी, शूरमा और स्वाभाव का गम्भीर है। उसका शरीर कद में लम्बा और शक्तिशाली है, उसके शरीर की बनवट सुदृढ़ होने के साथ-साथ अच्छी है। लेकिन मारवाड़ के अन्य सामन्तों की तरह उसके शरीर का रंग गोरा नहीं है।

निमाज का सामन्त सुरतान सिंह पोकर्ण के सामन्त सालिम सिंह का मित्र है। लेकिन उसके शरीर की बनावट आकृति और दूसरी चीजें सालिम सिंह से भिन्न पड़ती हैं। सुरतान सिंह ऊदावत शाखा के राजपूतों का प्रधान है और अरावली पहाड़ के समीपवर्ती स्थानों में रहने वाले चार हजार शूरवीर उसके अधिकार में हैं। उसकी जागीर में निमाज, रायपुर और चन्दावत प्रधान नगर हैं। सुरतान सिंह के जीवन की अनेक बातें बहुत अच्छी हैं। उसके शरीर का कद लम्बा और उसकी बनावट सुगठित है, रंग गोरा है। देखने में वह वीरोचित और विनम्र मालूम होता है। उसकी बुद्धिमत्ता औ रसभ्यता में किसी को सन्देह नहीं हो सकता।

सुरतान सिंह सालिम सिंह का मित्र था और इस मित्रता के कारण ही सुरतान सिंह पर अनेक प्रकार की विपदायें आयी थीं। उन विपदाओं का यहाँ पर उल्लेख न तो सम्भव है और न वह बहुत आवश्यक मालूम होता है। यहाँ पर केवल इतना ही समझ लेने की आवश्यकता है कि वह अपने मित्रों का सहयोगी होने के कारण जीवन के भयानक संकटों में डाला गया था। अन्यथा वह इस योग्य न था। उसने अपने जीवन में अनेक ऐसे कार्य किये थे, जिनके लिए वह सभी की प्रशंसा का अधिकारी था। पुरवत्सर के युद्ध में पराजित होने के कारण जब मारवाड़ के राजा ने अपनी तलवार से आत्म हत्या करने की कोशिश की थी, उस समय इसी सामन्त सुरतान सिंह ने उसके प्राणों की रक्षा की थी। और जिस समय कई राज्यों की विशाल सेना ने आक्रमण करने के लिए मारवाड़ को घेर लिया था, उस समय जिन चार सामन्तों ने मारवाड़ के राजा का साथ दिया

था, उनमें एक सामन्त सुरतान सिंह भी था। सन् १८०६ ईसवी में जब वह शक्तिशाली सेना मारवाड़ का विध्वंस और विनाश करके उसकी अपरिमित सम्पति लूटकर ले गयी, उस समय जिन चार सामन्तों ने आक्रमणकारी सेना पर हमला करके उसकी लूटी हुई सम्पत्ति को छीन लिया था, उनमें एक सामन्त सुरतान सिंह भी था, उस समय इन चारों सामन्तों ने भयानक युद्ध करके और अपने प्राणों का भय छोड़कर भीषण रूप में शत्रुओं का संहार किया था। :-: सुरतानसिंह के जीवन की अच्छाइयाँ अनेक थीं। इसीलिए उसकी मृत्यु पर समस्त राजस्थान में शोक मनाया गया।

सुरतान सिंह चरित्रवान और एक वीर पुरुष था। उसके जीवन के गुण की प्रशंसा उसके विरोधी भी करते हैं। सच बात यह है कि जिसके विरोधी प्रशंसा करें, वही मनुष्य वास्तव में प्रशंसा के योग्य है। सुरतान सिंह इसी प्रकार के आदमियों में था। मैंने जब जोधपुर की यात्रा की थी, उसके आठ महीने के बाद उसकी मृत्यु का समाचार मुझे मिला। जिस पत्र में लिख कर उसके मरने का समाचार आया था, उसे नीचे दिया जाता है :

जोधपुर, २ आषाढ़
२८ जून सन् १८२० ईसवी

जेठ महीने के अन्तिम दिन, २६ जून को सूर्य निकलने के कुछ पहले आलीगोल और समस्त सामन्तों की सेना अर्थात् अस्सी हजार सेना को सुरतान सिंह के ऊपर आक्रमण करने की आज्ञा दी गयी। X वह सेना सुरतान सिंह के निवास-स्थान को घेर कर तीन घड़ी तक बन्दूकों से गोलियां चलाती रही। इसके पीछे सुरतान सिंह अपने भाई सूरसिंह और परिवार तथा वंश के सभी लोगों को लेकर हाथों में तलवारें लिए हुए निकला और उसने आक्रमण करके शत्रुओं से भयानक युद्ध किया। लेकिन उसके ऊपर यह आक्रमण उसके राजा की तरफ से हुआ था और राजा के पक्ष में बहुत सी सेना थी। इसलिए दोनों भाई बड़ी देर तक युद्ध करने के बाद मारे गये। उन दोनों भाइयों के साथ नागो जी और साथ के चालीस शूरमाओं का भी अन्त हुआ। उनके सिवा सुरतान सिंह के चालीस वंशज युद्ध करते हुए घायल हुए। केवल अस्सी राजपूत—जो सुरतान सिंह की तरफ से युद्ध करने आये थे—बाकी बचे। वे निमाज के सामने से युद्ध छोड़ कर भाग गये। राजा की सेना में चालीस सैनिक जान से मारे गये और एक सौ सैनिक युद्ध करते हुए घायल हुए। इस लड़ाई में नगर के बीस (:) आदमी भी मारे गये।

युद्ध का यह समाचार जब पोकर्ण के सामन्त को मिला तो वह उसमें शामिल होने के लिए तैयार हुआ। परन्तु कोचामन के शिवनाथ सिंह ने आश्वासन दिया और अपने नगर में ही रहने के लिए उसने संदेश भेजा। फिर भी वह युद्ध-स्थल पर पहुँचने के लिए बार-बार चेष्टा करता रहा। वह सोचता रहा कि अपने पच्चीस सैनिकों के साथ मेरा भतीजा इस युद्ध में मारा गया है।

:-: पिछले पृष्ठ में यह लिखा जा चुका है कि राणा भीमसिंह की लड़की के साथ विवाह करने के लिए ही यह संग्राम हुआ था और उस युद्ध में अनेक प्रकार की राजनीतिक चालों से काम लिया गया था। उसका वर्णन पहले किया जा चुका है। यहाँ पर उसको संक्षेप में लिखा गया है।

X आलीगोल का अभिप्राय है, रुहेला सेनायें। स्वतन्त्र रुहेला सैनिकों का संगठन योरप की फौजों की तरह होता है। रुहेला लोग अत्यन्त स्वार्थी होते हैं।

(:) उन राजपूतों ने निमाज नगर की रक्षा बड़ी बहादुरी के साथ कई मास तक की थी। लेकिन अन्त में उनको युद्ध क्षेत्र से भाग जाना पड़ा।

सर्वत्र इन मारे जाने वालों की प्रशंसा हो रही है और हिन्दू-मुसलमान—दोनों ही उनकी तारीफ करते हैं। निश्चय ही उन लोगों को मोक्ष प्राप्त हुआ। विशनाथ सिंह बख्तावर सिह, रूपसिंह और अनार सिंह ने उनकी दाहक्रिया का संस्कार किया। +"

सामन्त सुरतान सिंह के मारे जाने के सम्बन्ध में ऊपर लिखा हुआ पत्र मुझे मिला। अपने सम्मान और स्वाभिमान की रक्षा करने के लिए राजपूत किस प्रकार बलिदान होते हैं, इसका अनुभव ऊपर लिखे हुए पत्र को पढ़ कर किस प्रकार किया जा सकता है। उस युद्ध में सुरतान सिंह अपने सम्मान और स्वाभिमान के कारण ही गया था और उस समय तक उसने युद्ध किया, जब तक उसके शरीर में प्राण रहे। आक्रमण करने के लिए जो सेना उसके राजा की तरफ से आयी थी, वह अत्यन्त विशाल और शक्तिशाली थी। सामन्त सुरतान सिंह इस बात को जानता था। लेकिन एक राजपून की हैसियत से उसके लिए यह असम्भव था कि वह युद्ध न करता और अपने प्राणों की रक्षा करने का उपाय करता। उसी का यह प्रभाव था कि जब तक वह जीवित रहा और युद्ध करता रहा, उसका एक भी आदमी न तो युद्ध से भागा और न किसी ने आत्म समर्पण किया। जो लोग सुरतान सिंह के मारे जाने के बाद युद्ध से भागे थे उनका एक महान उद्देश्य था और वह यह कि सुरतान सिंह के मारे जाने पर भागकर वे सुरतान सिंह के लड़के की रक्षा करना चाहते थे। इसीलिए वे उस युद्ध से भागे थे।

———

+ अंतिम शूरवीर और बहादुर आदमी इस पत्र का लिखने वाला था। वह साहसी और बुद्धिमान था। उसने अपने राजा और मारवाड़ की रक्षा के लिए अपनी संपूर्ण सम्पति दे दी थी और अपनी स्त्री के उसने समस्त आभूषण बेच डाले थे। इसके बाद भी जब उसे भय मालूम हुआ तो वह अपने प्राणों की रक्षा के लिये वहाँ से भाग गया। इस प्रकार के अनिष्ट का कारण मैं समझता हूँ कि हम लोगों का भ्रम हुआ।

अस्सीवाँ परिच्छेद

लूनी नदी के पार बालू के विस्तृत मैदान—राजा जोधा का बसाया हुआ जोधपुर—जोधपुर का दुर्ग—राजधानी में जाने के मार्ग—जोधपुर के राजा के स्वागत का वैभव—मारवाड़ के राज महल—राज दरबार का दृश्य—स्वाभिमानी राजा मानसिंह—मानसिंह के मनोभावों में परिवर्तन—राजा के द्वारा उपहार—राजा अजित सिंह—औरंगजेब के साथ अजित सिंह का संघर्ष—भीमसिंह और राजा मानसिंह—राठौर राजपूतों के गुरुदेव के कार्य—गुरुदेव के द्वारा भीमसिंह को विष दिया गया—राजा मानसिंह और गुरुदेव—राज्य में गुरुदेव के आधिपत्य—गुरुदेव के शिष्यों की सेना—गुरुदेव और राज्य के निवासी—राज्य के सामन्तों की चिन्तनायें—अमीरखाँ के सिपाहियों के द्वारा गुरुदेव की हत्या—मारवाड़ राज्य का उत्तराधिकारी बालक धौंकल सिंह—मारवाड़-राज्य में परिवर्तन—राजनीतिक सत्ता की निर्बलता—विरोधी लोगों को राजा मानसिंह के द्वारा दण्ड—राजा मानसिंह का उन्माद—राजसिंहासन पर छत्रसिंह—छत्रसिंह की मृत्यु—मानसिंह और राज्य के सामन्त—मानसिंह की राजनीति—मन्त्री अक्षयचन्द की सहायता और उसका परिणाम—प्राचीन राजधानी मन्दोर—मारवाड़ राज्य के वीरों के स्मारक—अभयसिंह और भक्तसिंह—राजा अजित सिंह और राजा बुधसिंह की रानियाँ—परिहार राजपूतों का इतिहास—राजा नाहरराव—नाहरराव के स्मारक की देखभाल का कार्य—मारवाड़ के वीरों की प्रतिमायें—तेंतीस कोटि देवताओं का स्थान—राजा अजित सिंह का बाग—बाग में विभिन्न प्रकार के फल-फूल वाले वृक्ष—बाग की रमणीकता—मानसिंह के महल में भोजन--राजा के साथ भेंट--मारवाड़ से बिदा का दिन।

लूनी नदी को पार करने के बाद हम लोग बालू के मैदानों में पहुँच गये और वहां से जहां तक नजर जाती, बालू के मैदान दिखायी देते। हम लोग जितना ही मरुभूमि की राजधानी के करीब पहुँचते गये, बालू के मैदानों का कष्ट उतना ही हम लोगों के लिए भयानक होता गया। यहाँ पर मैंने एक बात और अनुभव की। हमारे साथ के लोग गंगा के निकटवर्ती अच्छे मार्गों में जितनी तेजी के साथ चलते रहे हैं, उतनी ही तेजी के साथ मारवाड़ के लोग इन बालू के मैदानों में चलते हुए दिखायी देते हैं। इसका अर्थ यह है कि यहाँ के लोग इन बालुकामय मार्गों में चलने के अभ्यासी हैं। इसीलिए हम लोगों की तरह इन लोगों के रेतीले मैदनों में चलने में कष्ट नहीं होता।

राजा जोधा का बसाया हुआ, जोधपुर नगर कैसा है, इसको देखने और जानने के लिए मेरे मन में उत्सुकता बढ़ रही थी और उसके कारण रेतीले मैदानों में चलने का कष्ट कुछ भूल भी जाता था। वहाँ का दुर्ग चारों ओर से घेरे हुए पहाड़ी शिखरों के बीच में बना हुआ है और जिस स्थान पर वह दुर्ग बना है, वहाँ की भूमि बहुत कुछ एक-सी और बराबर है। वह दुर्ग अपने आस-पास के सभी स्थानों से ऊँचा और बहुत मजबूत है। दूर से देखने में वह बड़ा अच्छा मालूम होता है।

दुर्ग का स्थान तीन सौ फुट से अधिक ऊँचा नहीं है। इसलिए इस दुर्ग की गणना उन दुर्गों में नहीं की जा सकती, जो पहाड़ों के ऊपर बने होते हैं। परन्तु इस दुर्ग की इतनी ऊँचाई में भी

विशेषता है। इसलिए कि यह दुर्ग मरुभूमि की रेतीली भूमि में बना हुआ है।दुर्ग के दक्षिण तरफ उसके सबसे ऊँचे स्थान पर राजधानी है और उत्तर की तरफ जो सबसे ऊँचा स्थान है, उस पर राजमहल बना हुआ है। उसकी ऊँचाई तीन सौ फुट है। राजधानी का स्थान चारों तरफ ढालू बना हुआ है। कहा जाता है कि सन् १८०६ ईसवी में जब कई एक सेनाओं ने आक्रमण किया था, तो उस समय शत्रुओं के द्वारा जहाँ पर गोले वरसाये गये थे, वह स्थान नष्ट होकर टेढ़ा हो गया है और उसकी ऊँचाई लगभग एक सौ फुट ऊँची रह गयी है।

राजधानी में राजमहल बहुत मजबूत और देखने में सुन्दर बना हुआ है। वहाँ के बुर्जों की श्रेणियाँ दूर तक चली गयी हैं और वे बुर्ज गोल और चौकोने बने हुए हैं। राजधानी का व्यास लगभग आठ मील लम्बा है। दुर्ग में ऊपर को जो रास्ता जाता है, उसमें बहुत-सी दीवारें और दरवाजें हैं। पत्थर से बने हुए प्रत्येक परकोटे पर अलग-अलग सैनिकों का पहरा रहता है। वहाँ ऊपर दो जलाशय बने हुए हैं। पूर्व की तरफ जो जलाशय है, उसका नाम रानी सरोबर और दूसरे जलाशय का नाम गुलाब सागर है। गुलाब सागर दक्षिण की तरफ है। दुर्ग में जो सैनिक रहते हैं, वे अपनी आवश्यकता के लिए इसी गुलाब सागर से पानी लाते हैं। वहाँ जो परकोटे बने हैं, उनके बीच में एक कुण्ड भी है। वह कुण्ड पहाड़ को खोद कर बनवाया गया है, जो नब्बे फुट गहरा है। इस कुण्ड में जो पानी है, वह रानी सरोवर और गुलाब सागर से लाया गया है।

वहाँ पर बहुत-से कुएँ भी हैं। लेकिन उनका जल अच्छा नहीं है। वहाँ पर बहुत-से मकान और महल बनवाये गये है और उन सबको मिलाकर वहाँ के महलों की संख्या कई एक हो गयी है। दुर्ग के पश्चिमी भाग की तरफ राजधानी छै मील तक मजबूत दीवारों से घिरी हुई है और उनके ऊपर ऊँचे-ऊँचे बुर्ज बने हैं। वहाँ पर पाइकला नाम की तोतें रखी हुई हैं।

राजधानी में जाने के लिए सात मार्ग हैं और वे सिंहद्वार के नाम से प्रसिद्ध हैं। जो द्वार जिस तरफ बना हुआ है, उस स्थान के नाम से वह पुकारा जाता है। राजधानी में बने हुए मार्ग बहुत मजबूत और साफ सुथरे हैं और प्रत्येक मार्ग के दोनों तरफ मजबूत पत्थर लगे हैं। यहाँ के लोगों का कहना है कि आज से कुछ वर्ष पहले इस नगर में बीस हजार परिवारों के रहने के लिए स्थान था। इसका अर्थ यह है कि उस समय जोधपुर में अस्सी हजार मनुष्यों की बस्ती थी, इस समय वह संख्या बहुत अधिक जान पड़ती है। सम्भव है, पहले यहाँ पर इतने मनुष्य रहते हों।

यहाँ के रहने वालों के लिए गुलाब सागर विशेष रूप से विश्राम का स्थान है। बहुत-से लोग वहाँ पर जाकर वायु-सेवन किया करते हैं। वहाँ पर एक बाग है, उसमें एक प्रसिद्ध फल पैदा होता है और वह फल कुछ बातों में काबुल के अनार से भी अच्छा होता है। इस बाग में पैदा होने वाले उस फल में दाने बहुत कम और अत्यन्त छोटे होते हैं। वह बाग कागली का बाग कहलाता है। उसे दाड़िम का बाग समझना चाहिए। इस बाग के अनार बहुत स्वादिष्ट होने के कारण भारतवर्ष के बहुत-से प्रसिद्ध स्थानों में भेजे जाते हैं।

चौथी तारीख को जोधपुर के राजा के मन्त्री एवम् राजपरिवार के अन्य लोगों ने दूसरे सिंहद्वार तक आकर की और प्रचलित नियमों के अनुसार नमस्कार होने के बाद कुशल समाचार के प्रश्न हुए। इसके बाद हम सबको लेकर राजमहल की ओर ले जाया गया। महल में मेरे थी। स्वागत की तैयारी हो रही महल की तरफ आगे बढ़ने पर मैंने देखा कि जिस

रास्ते से हम लोग चल रहे थे, उसमें दोनों तरफ पंक्ति बांधकर लोग खड़े हुए थे। उनमें राज-वंश के बहुत-से लोगों के बीच से होकर मैं सबके साथ आगे बढ़ा, मेरे स्वागत में जो तैयारी की गयी थी और बाहर से लेकर महल के भीतर तक जिस प्रकार समस्त स्थान और मार्ग सजाये गये थे, उनकी मुझे पहले से आशा नहीं थीं।

मेवाड़ के राणा के यहाँ भी मेरा स्वागत हुआ था। परन्तु उस स्वागत में इस प्रकार के वैभव का प्रदर्शन नहीं किया गया था। राणा के उस स्वागत में जो मुझे सरलता और स्वाभाविकता देखने को मिली थी, यहाँ का स्वागत उससे बिलकुल भिन्न था। राठौर वंश के राजाओं ने दिल्ली के बादशाह के दाहिने हाथ बनकर बहुत दिनों तक शासन किया था। इसलिए यहाँ के प्रत्येक स्वागत के अनुष्ठान में दिल्ली के बादशाह का तर्ज अमल दिखाती देता था। हम लोगों को देखते ही सोने और चाँदी के पदक पहने हुए बहुत-से लोगों ने एक साथ 'राजराजेश्वर' कहकर जो जोरों के साथ आवाज की, उससे मेरे कानों के परदे फटने लगे। हम लोग धीरे-धीरे आगे की तरफ बढ़ रहे थे और महल के अनेक कमरों को—जिनमें बहुत-से आदमी दोनों तरफ खड़े हुए हम लोगों का स्वागत कर रहे थे—पार करके हम लोग राज-दरबार में पहुँचे।

हम लोगों को देखते ही मारवाड़ का राजा सिंहासन से उठकर खड़ा हुआ और कई पग आगे बढ़कर उसने सम्मानपूर्वक मुझे ग्रहण किया, जिस स्थान पर हम लोग पहुँचे थे, वह स्वागत समारोह के लिए विशेष रूप से सजाया गया था। वहां पर एक हजार स्तम्भ थे जो बड़ी खूबसूरती के साथ सजाये गये थे। इन स्तम्भों के कारण राजमहल का वह स्थान सहस्त्र स्तम्भ कक्ष कहलाता है। यहाँ पर बने हुए स्तम्भ सुन्दरता और नवीनता की अपेक्षा मजबूत अधिक हैं। प्रत्येक दो स्तम्भों के बीच का फासिला बारह फुट है और प्रत्येक स्तम्भ इसी दूरी पर खड़ा हुआ है। वे सभी श्रेणियों में बनाये गये हैं। इसीलिए उनका क्रम देखने में बहुत प्रिय मालूम होता है।

राज दरबार की छत अधिक ऊँची नहीं है। इस स्थान के मध्य भाग में एक वेदी के ऊपर राजसिंहासन बना हुआ है और उस सिंहासन के ऊपर जो चंदोवा लगा है, उसके नीचे चांदी के स्तम्भ लगे हैं। राणा के दाहिनी ओर पोकर्ण और निमाज के दोनों सामन्त बैठते हैं। इन दोनों सामन्तों ने राजदरवार में बहुत ऊँचा पद प्राप्त किया था। दूसरे सामन्त लोग और ऊँची श्रेणी के पदाधिकारी राजसिंहासन के चारों तरफ बैठते हैं। उनके नाम वहां पर लिखने की आवश्यकता नहीं मालूम होती।

विष्णुराम वकील राजा के सामने और मेरे पास बैठा था। कुछ देर तक साधारण बातें होती रहीं। उसके बाद अनेक दूसरे विषयों पर राजा के साथ मेरी बातें हुईं। वह बातचीत अनियमित और क्रमहीन थी। प्रशंसात्मक होने के साथ-साथ वे बातें किसी समस्या के लेकर न थीं। राजा ने जो कुछ भी कहा, मैंने उसको ध्यान पूर्वक सुना। वह हिन्दुस्तानी भाषा में बोल रहा था। उसके बोलने की भाषा में बहुत अच्छा प्रवाह था। मुझे ऐसा मालूम हुआ कि दिल्ली के बादशाह के दरबार में जितने भी राजा एकत्रित हुआ करते थे, उन सब में जोधपुर के इस राजा की बातचीत का ढङ्ग बहुत अच्छा रहा होगा। वह मेरे साथ बड़ी देर तक बातें करता रहा।

राजा का शरीर न बहुत लम्बा था और न अधिक छोटा। वह मुझे अधिक गम्भीर मालूम हुआ। आरम्भ से लेकर अंत तक मुझे अनुभव हुआ कि उसके मनोभावों में किसी प्रकार की प्रसन्नता नहीं है। उसका शरीर वीरोचित था। उसकी बहुत देर की बातों के बाद भी मैंने उसमें उस प्रताप को अनुभव न किया, जिसकी सहज ही अनुभूति मुझे उदयपुर के राणा की बातचीत से हुई थी। इस बात को मैं बार-बार सोच रहा था।

राजा मान सिंह के सभी अङ्ग सुदृढ़ और सुन्दर हैं। उसके दोनों नेत्रों से उसकी योग्यता का परिचय मिलता है। इतना सब होने पर भी उसके मन के भाव उसके सन्तोष का इजहार नहीं करते। इसका कारण यह है कि राज्य से निर्वासित होकर उसे बहुत दिनों तक कैदी की हालत में रहना पड़ा था और उन दिनों में उसके मस्तिष्क में विकार उत्पन्न हो गये थे। ऐसा मालूम होता है कि उस समय से उसकी मानसिक दशा में सुधार नहीं हुआ।

राजा मानसिंह ने सदा अपने मान की रक्षा की थी। वह स्वाभिमानी था। लेकिन उसके जीवन की विपदाओं ने उसे कठोर और अनुदार बना दिया था। मनुष्य को विपदाओं से जो शिक्षा मिलती है, वह दूसरों से मिलने वाली शिक्षा से बिलकुल भिन्न होती है। कठिनाइयों में पड़ कर मनुष्य कुछ का कुछ हो जाता है। अपने जीवन की दुरवस्थाओं में राजा मानसिंह की दशा भी बहुत-कुछ इसी प्रकार की हो गयी है।

कैदी जीवन से छुटकारा पाने के बाद भी राजा मान सिंह के विचारों में परिवर्तन न हुआ। बन्दी जीवन में जिन बातों का, सुविधाओं का और सौभाग्यपूर्ण अवस्थाओं का उसके निकट अभाव रहा था, उन सब के प्रति आज उसने अपनी तरफ से तिरस्कार-सा कर रखा है। जो उसकी अधीनता में काम करते हैं और राज्य के ऊँचे पदों पर नियुक्त है, उन सबका विनाश करने के लिए वह चुपके चुपके एक षड़यन्त्र की रचना किया करता है। उसने अब तक कितने हो लोगों का सर्वनाश किया है और जिन लोगों का विनाश हुआ है, उनमें से एक सामन्त सुरतान सिंह था, जिसका ऊपर वर्णन किया जा चुका है।

राठौर राजपूतों की श्रेष्ठता को समझने के लिए हमें भाटों और कवियों की कविता की जरूरत नहीं है। इसलिए कि उनके शौर्य, विक्रम और प्रताप से इतिहास के न जाने कितने पन्ने भरे हुए हैं। उनकी यह श्रेष्ठता ऐतिहासिक ग्रंथों से कभी नष्ट नहीं हो सकती। चौहान राजपूतों की भी यही अवस्था है। राजपूतों में राठौरो और चौहानों का स्थान ऊँचा है। राठौर राजा शिया जी के वंश में उत्पन्न होने वाले चण्ड और योधा तथा उसके उत्तराधिकारी राजा मानसिंह की मान-मर्यादा पृथ्वी पर चिरकाल तक कायम रहेगी।

राजा के हाथों से इत्र और पान लेकर मैने सम्मानपूर्वक उसको नमस्कार किया। राजस्थान के राज दरबारों में सिर पर पगड़ी बाँधे हुए और नंगे पैर बैठने की प्रथा है। साधारण लोगों के बैठने के लिए सफेद चद्दर के ऊपर एक विशाल कालीन बिछा हुआ था। मैने देखा कि उस पर लोग जूता पहन कर नहीं बैठते। उसके बाहर लोग जूता उतार देते हैं और मोजा पहने हुए उस बिछे हुए बिछौने पर आकर लोग बैठते हैं। ऐसे ही यहाँ का नियम है।

राजा मानसिंह ने मुझको सजा हुआ हाथी, घोड़ा, सोने और चाँदी के काम के वस्त्र और अनेक बहुमूल्य पदार्थ उपहार में दिये। इसके साथ ही जितने भी लोग मेरे साथ थे, राजा ने सबको उनकी मर्यादा के अनुसार भेटें दीं।

छठी तारीख को मैने दूसरी बार राजा से मुलाकात की। बहुत देर तक हम दोनों में बातें होती रहीं। उस समय राजा के एक विश्वासी अनुचर के सिवा वहाँ पर कोई न था। बात-चीत के सिलसिले में मुझे मालूम हुआ कि राजा समझदार और योग्य व्यक्ति है और उसे अपने देश के इतिहास का अच्छा ज्ञान है। उसने अपने वंश की एक ऐतिहासिक पुस्तक मुझे दी थी। वह पुस्तक मैंने रॉयल एशियाटिक सोसायटी की लाइब्रेरी में दी दी है।

राजा अच्छा पढ़ा-लिखा आदमी है। उसने अनेक विषयों की जानकारी मुझे कराई और मेरे साथ उसने व्यक्तिगत बाते बड़ी देर तक कीं। उसका गुरु, उसका मंत्री और मित्र भी था।

अनेक घटनायें रहस्यपूर्ण बन गयी हैं। उन घटनाओं को राजा के सिवा दूसरा कोई नहीं जानता। उसने अपने जिस उद्देश्य के लिए सामन्त सुरतान को मरवा डाला था, उसके सम्बन्ध में यहाँ पर कुछ प्रकाश डालना आवश्यक मालूम होता है।

अभय सिंह ने अपने पिता राजा अजीत सिंह की हत्या की थी। उसके बाद मारवाड़-राज्य के दुर्दिनों का आगमन हुआ और तीन-चार पीढ़ियों के पश्चात् उस राज्य का सर्वनाश करने वाली परिस्थितियाँ अपने आप पैदा हो गयीं। अपराधों का बदला प्रकृति स्वयं मनुष्य को देती है।

पराक्रमी राजा अजीत सिंह ने बादशाह औरङ्गजेब के आधिपत्य से अपने पैतृक राज्य का उद्धार किया था और बादशाह औरङ्गजेब, उसका कुछ न बिगाड़ सका था। उसी औरङ्गजेब ने राजा अजीत सिंह से बदला लेने के लिए एक षड़यंत्र रचा। उसने अजीत सिंह के बड़े लड़के को अपने षड़यंत्र के द्वारा तैयार किया और पापात्मा अभय सिंह ने बादशाह के द्वारा मिलने वाले प्रलोभनों में आकर अपने पिता अजीत सिंह को जान से मार डाला।

बादशाह ने अभय सिंह को गुजरात का शासक मुकर्रर किया था और अभय सिंह के छोटे भाई भक्तसिंह ने नागर प्रदेश का अधिकार प्राप्त किया था। यह अधिकार अभय सिंह ने स्वयं अपने छोटे भाई को सौंपा था। इसके बाद समय में परिवर्तन हुआ और उस परिवर्तन के अनुसार वहाँ की राजनीतिकपरिस्थितियाँ बदली। जो अपने थे, शत्रु मालूम होने लगे। ईर्षा की आग के कारण जिन्दगी का बड़ा से-बड़ा अपराध कर्त्तव्य और एक आवश्यक कार्य के रूप में दिखायी देने लगा।

मन की दूषित भावनाओं में क्रान्तिकारी विचारों ने अधिकार जमाया। राजा मानसिंह इन दिनों में वहाँ के सिंहासन पर था। उसके सामने कठिनाइयों और विपदाओं की वृद्धि हुई। झालामन्द में जिस समय वह अपने भाई के आक्रमण से अपनी रक्षा करने में लगा हुआ था, अवसर पाकर भीमसिंह राज सिंहासन पर बैठ गया और उसने मारवाड़ के राजवंश का सर्वनाश करने के साथ-साथ राजा मानसिंह को संसार से बिदा करने के लिए सोच डाला। भीमसिंह के इन भावों और कार्यों के कारण मारवाड़ में विनाशकारी आग की भीषणता आरम्भ हुई और उसके कारण राज्य का जितना विनाश हो सकता था, सब एक साथ पैदा हो गया। इस विनाश से बचने के लिए जब राजा मानसिंह को कोई सुरक्षित मार्ग दिखायी न पड़ा तो उसने झालोर का सम्पूर्ण प्रदेश देकर अपने प्राणों की रक्षा की। मानसिंह ने मुझसे कहकर स्वयं इस बात को मंजूर किया था : "राठौर राजपूतो के गुरुदेव के द्वारा मेरे प्राणों की रक्षा हुई है। अन्यथा मेरे बचने की कोई आशा न थी।"

वह गुरुदेव सभी लोगों में देवनाथ के नाम से प्रसिद्ध था। उसे लोग साधारण तौर पर नाथ जी कहा करते थे। उसी के द्वारा मानसिंह के जीवन की रक्षा हुई, इस बात को मानसिंह ने स्वीकार किया। लेकिन यह बात कहाँ तक सही थी और गुरुदेव नाथ जी के द्वारा मानसिंह के प्राणों के बचने में क्या रहस्य था, इसके सम्बन्ध में मानसिंह स्वयं कुछ नहीं जानता था और वह अपनी रक्षा में उस गुरुदेव की मेहरबानी को ही मानता था। इसके सम्बन्ध में मैंने समझने की कोशिश की। लेकिन लोगों के द्वारा किसी एक बात का समर्थन नहीं हुआ। जितने लोगों से मेरी बातें हुईं, उतनी ही बातें मुझे मालूम हुईं। फिर भी यह तो सभी स्वीकार करते हैं कि अगर देवनाथ ने न कोशिश की होती अथवा वह न चाहता तो भीमसिंह के जाल से मानसिंह मारा जाता और वह किसी प्रकार संसार में जीवित न रह सकता।

भीमसिंह के सामने आत्म-समर्पण करने के बाद मानसिंह ने अपनी जिन्दगी के सुरक्षित दिनों का अनुमान लगाया था। लेकिन उसका वह अनुमान और विश्वास सही साबित न हुआ। उसके सामने भयानक विपदायें दिखायी देने लगीं। उस दशा में उसने आत्म हत्या करने की बात सोच डाली। लेकिन उस समय राठौर राजपूतों के गुरुदेव देवनाथ ने उसको रोका और आत्म-हत्या न करने के लिए उसने उसको बहुत-सी बातें समझाईं। उसने उसको समझाया कि तुम्हारी कुण्डली में तुम्हारी आत्म-हत्या का कोई योग नहीं है और कुण्डली से इस बात का पूरा प्रमाण मिलता है कि थोड़े ही दिनों में तुम्हारी विपदाओं का अन्त हो जायगा और बाद में तुम्हारी ही विजय होगी।

मानसिंह को गुरुदेव की इन बातों पर विश्वास हो गया। उसने आत्म-हत्या का विचार छोड़ दिया। वह गुरुदेव किसी प्रकार मानसिंह को सुरक्षित रखना चाहता था और इसके लिए उसके पास जितने उपाय थे, सभी को वह काम में लाना चाहता था। मानसिंह को बचाने में, उसका क्या उद्देश्य था, इसका स्पष्टीकरण इसके बाद आने वाली घटनाओं के द्वारा होता है।

इस विषय में यह भी मालूम हुआ कि गुरुदेव नाथ जी ने भीमसिंह को मार डालने लिए मारण-मंत्र का जाप आरम्भ कर दिया था और अपने इस जाप की सफलता के लिए विष का प्रयोग करके भीमसिंह को मार डालने और मानसिंह को उसके षड़यंत्रों से उसने बचाया। उस गुरुदेव के इस कार्य को मानसिंह ने उसकी कृपा के रूप में स्वीकार किया। उसको इस बात का विश्वास हो गया कि गुरुदेव में बहुत बड़ी शक्ति है। इसलिए यह सभी प्रकार उसके निकट अनुगृहीत हुआ।

गुरुदेव ने अपने षड़यंत्र से भीमसिंह को विष दिलाकर सफलता प्राप्त की थी। उसके बाद मानसिंह उस गुरुदेव का आशीर्वाद लेकर सिंहासन पर बैठा। देवनाथ ने स्वयं उस समय राजा मानसिंह के गले में जयमाल पहनाई। उसके बाद इसका श्रेय मानसिंह ने गुरुदेव को दिया और उसने सिंहासन पर बैठने के बाद और गुरुदेव के द्वारा जयमाल पहनने के समय हाथ जोड़कर उसके उपकार को स्वीकार किया।

सिंहासन पर बैठने के बाद राजा मानसिंह ने अपने राज्य की इतनी अधिक भूमि उसके नाम पर कर दी, जितनी भूमि मारवाड़ के किसी प्रधान सामन्त के अधिकार में भी न थी। उस भूमि से गुरुदेव देवनाथ को जितना कर वसूल होने लगा, उससे बहुत कम राज्य के अधिकार में रह गया। मिले हुए राज्य के इलाकों से देवनाथ को जो आमदनी होने लगी, उसका दसवाँ अंश राज्य की आमदनी का रह गया। इससे इस बात का अंदाज लगाया जा सकता है कि उस गुरुदेव के अधिकार में राज्य की कितनी बड़ी अमदनी राजा मानसिंह के सिंहासन पर बैठने के बाद आ गयी थी।

राजा मानसिंह राज्य के सिंहासन पर था। लेकिन उसके हृदय और मस्तिष्क पर गुरुदेव का अधिकार था। देवनाथ जो कुछ चाहता था, राज्य में वही होता था, मानसिंह गुरुदेव के संकेत के बिना राज्य में कुछ कर न सकता था। इस प्रकार उस गुरुदेव ने राजा मानसिंह को कई वर्षों तक अपने अधिकार में रखा और राज्य की आमदनी का अधिकांश भाग उसने मन्दिरों और देव स्थानों के बनवाने में खर्च किया। उसने एक-एक करके लगातार चौरासी मन्दिर बनवाये और धर्मशालओं का निर्माण करवाया। उन सभी धर्मशालाओं में, जो राज्य की सम्पत्ति से बने थे, गुरुदेव के बहुत-से शिष्य लोग रहा करते थे, और राज्य का सुख भोगते हुए मनमानी करते थे।

यह हालत उन मन्दिरों और धर्मशालाओं की बहुत दिनों तक चलती रही। कोई उसमें दखल नहीं दे सकता था।

किसी भी दशा में अन्याय, अन्याय होकर रहता है। गुरुदेव देवनाथ के शिष्यों का प्रभाव राज्य के लोगों से नष्ट होने लगा और सभी लोग इन सब बातों का कारण देवनाथ को समझने लगे। धीरे-धीरे राज्य के निवासियों में असंतोष बढ़ा और वे छिपे तौर पर गुरुदेव से असंतुष्ट हो गये। इस असंतोष में गुरुदेव के प्रति लोगों में शत्रुता का भाव पैदा हुआ। इसके साथ-साथ लोगों में इस बात का विश्वास भी बढ़ने लगा कि राजा ने इस गुरुदेव की सहायता से राज-सिंहासन प्राप्त किया है। इसलिए राजा गुरुदेव की अधीनता में चल रहा है। वह राज्य में होने वाले इस प्रकार के अन्यायों में कभी भी सुधार करने का साहस नहीं कर सकता।

इस प्रकार की भावनायें राज्य के न केवल निवासियों में पैदा हुईं, बल्कि राज्य के सामन्त लोग भी चिन्तित और पीड़ित रहने लगे। गुरुदेव के आधिपत्य के दिनों में सामन्तों के अधिकार धीरे-धीरे नष्ट होने लगे। राजा मानसिंह के ऊपर सामन्तों का प्रभाव छिन्न-भिन्न हो गया। राज्य की इस परिस्थिति को सामन्तों ने अपनी दुरवस्था समझी और उसे बदलने के लिए वे सभी प्रकार के कार्य करने की तैयारी करने लगे। वे समझते थे कि इन दिनों में जो कुछ राज्य में रहा है, वह अन्याय और अपराध है। इसे बदलने के लिए अगर जल्दी कोशिश नहीं की जाती तो उसका परिणाम भयानक है।

गुरुदेव को राज्य की इस बिगड़ती हुई परिस्थिति का कुछ पता न था। उसको कोई-परवा भी न थी। राजा मानसिंह पूरे तौर पर उसके अधिकार में था। राज्य की सम्पत्ति और आमदनी का प्रयोग वह बहुत मनमानी तरीके से करता था। राज्य के व्यापारियों और सम्पत्तिवानो का विश्वास गुरुदेव और उसके शिष्यो पर था। वे लोग इन धर्माचारियों के विरुद्ध सोचने का कभी साहस न कर सकते थे। इस का फल यह हुआ कि राज्य के खजाने के सिवा धनिकों के पास जो सम्पत्ति थी, वह गुरुदेव के पास धीरे-धीरे पहुँच रही थी और देवनाथ के नेत्रों में उस सम्पत्ति का महत्व कुएँ और तालाबों के जल से अधिक न था।

मारवाड़ राज्य के सामन्तो का अधिकार नष्ट हो गया था। इसलिए वे लोग गुरुदेव और उसके शिष्यों के कार्यो को पूरे तौर पर अनाचार समझ रहे थे। परन्तु राजा मानसिंह के विरोधी होने के कारण वे लोग कुछ करने का साहस न करते थे। वे समझते थे कि गुरुदेव का विरोध करना राजा मानसिंह का विरोध है। इसलिए कि उसके दिल और दिमाग पर देवनाथ ने पूरा अधिकार कर रखा है। इसलिए चिन्तित होने पर भी राज्य के सामन्त चुप थे।

देवनाथ का पूरा आधिपत्य राज्य पर चल रहा था। उसके अधिकार में नौकरों की संख्या इतनी अधिक थी, जितनी बड़ी संख्या सब सामन्तों के नौकरों की मिलाने पर भी नहीं होती थी। मारवाड़ का राजा मानसिंह जिस ध्वजा और झण्डे के साथ निकला करता था, ठीक उसी प्रकार का वैभव गुरुदेव के साथ चलता था। वह राज्य के सामन्तों को अपनी अधीनता में समझता था और सामन्त लोग भी उसी प्रकार उसको हाथ जोड़कर प्रमाण करते थे, जिस प्रकार वे सब विनम्रभाव से अपने राजा का अभिवादन करते हुए अपनी अधीनता का प्रदर्शन किया करते थे। गुरुदेव के द्वारा सामन्तों के अधिकारों और सम्मानों का जिस प्रकार बिनाश हुआ था, उसे सामन्त लोग भली प्रकार समझते थे।

इस प्रकार की दुरवस्था राज्य की बहुत दिनों तक चली और उसके मिटाने का साधन भी उसी के द्वारा उत्पन्न हुआ। गुरुदेव और उसके शिष्यों के अनाचारों के विरुद्ध राज्य के सामन्त पूर्ण

रूप से थे। परन्तु राजा मानसिंह के कारण वे सोच-विचार में पड़े थे। आखिरकार एक ऐसा समय उपस्थित हुआ, जिनके कारण मारवाड़ राज्य की परिस्थितियाँ बदलीं। अभिमानी गुरुदेव अमीर खाँ की सेना के सैनिकों के द्वारा मारा गया। कुछ लोगों का विश्वास है कि राजा मानसिंह भी गुरुदेव के अत्याचारों से ऊबा हुआ था। लेकिन वह उससे बहुत दबा हुआ था, इसीलिए उसके विरुद्ध कुछ करने का साहस न कर सकता था।

गुरुदेव देवनाथ अमीर खां के सिपाहियों के द्वारा मारा गया। लोगों की धारणा है कि राजा मान सिंह ने उसको बचाने के लिए कुछ भी चेष्टा न की। इसी आधार पर लोगों का विश्वास है कि देवनाथ के मारे जाने में मानसिंह का भी कुछ हाथ था। यह बात कहाँ तक सही है, उसके सम्बन्ध में कोई सही बात नहीं कही जा सकती। इसके रहस्य को सही तौर पर अमीर खाँ और राजा मान सिंह के सिवा तीसरा कोई नहीं जानता था।

गुरुदेव के मारे जाने के बाद आश्चर्य रूप में मारवाड़ की परिस्थितियों में परिवर्तन आरम्भ हुआ। उस परिवर्तन में निमाज का सामन्त और उसके वंश के लोग भयानक रूप से मारे गये थे और उन्हीं दिनों में सुरतान पर आक्रमण किया गया था। उस आक्रमण में न केवल वह मारा गया था, बल्कि मारवाड़ के राजा मानसिंह ने राज्य के प्रधान सामन्तों को छिन्न-भिन्न करके जो भयानक परिस्थिति पैदा कर दी थी, उसका पहले से कभी किसी को अनुमान न था। इस दुर्घटनाओं के सम्बन्ध में यहाँ पर कुछ प्रकाश डालना जरूरी मालूम होता है।

सम्वत् १८६० सन् १८०४ ईसवी में जालोर से जोधपुर आने पर मानसिंह का राज्याभिषेक हुआ था। मानसिंह से पहले राजा भीमसिंह सिंहासन पर बैठा था। राजा भीमसिंह जब मरा था तो उसकी रानी गर्भवती थी। विधवा हो जाने के बाद अपने गर्भवती होने का जिक्र उसने किसी से नहीं किया और उसने पूर्ण रूप से उसे छिपाकर रखा। समय आने पर उससे जो बालक पैदा हुआ, उसे पोकर्ण के सामन्त सवाई सिंह के पास भेज दिया गया। दो वर्ष तक उस बालक के सम्बन्ध में किसी को कुछ न मालूम हुआ। उसके बाद राज्य के सामन्तों को मालूम हुआ कि भीम सिंह की रानी से जो बालक पैदा हुआ है, वह दो वर्ष का हो चुका है। इसलिए उन लोगों ने प्रसन्न होकर और राजा मानसिंह के पास जाकर, उस बालक धौकल सिंह का परिचय देते हुए कहा :

मारवाड़ का उत्तराधिकारी बालक धौकल सिंह है। इसलिए नगर का राज्य और अधीन प्रदेश को आप उसे दे दीजिए।

राजा मानसिंह को सामन्तों की यह बात अच्छी न लगी परन्तु उसने अपने मन के भावों को छिपाकर कहा : अगर बालक धौकल सिंह भीमसिंह से पैदा हुआ है और बालक की माँ इस बात को स्वीकार करती है तो मैं आप लोगों के इस अनुरोध को जरूर मंजूर करूँगा।

राजा मानसिंह की इस बात को सुनकर यह जरूरी हो गया कि धौंकल सिंह की माता इस बात को स्वीकार करे कि उससे उत्पन्न होने वाला बालक राजा भीमसिंह से पैदा हुआ है। इस बात को स्पष्टीकरण करने के लिए जब रानी के पास समाचार पहुँचा तो उसने बड़ी दूरंदेशी से काम लिया और अपने बालक के प्राणों की रक्षा के लिए उसको स्पष्ट न करना ही आवश्यक समझा। बल्कि उसने इस बात को स्वीकार नहीं किया कि उससे कोई बालक पैदा हुआ है।

रानी के इस निर्णय में पोकर्ण के सामन्त का षड़यंत्र था। जब राज्य के सामन्तों ने रानी का उत्तर सुना तो उनको उसका विश्वास नहीं हुआ। लेकिन जब रानी स्वयं इस बात को स्वीकार

नहीं करती है तो चुप हो जाने के सिवा वे लोग कर ही क्या सकते थे। जिन सामन्तों ने राजा मानसिंह से धौंकल सिंह की बात कही थी, उनको खामोश हो जाना पड़ा। रानी के इनकार करने पर मानसिंह को बड़ी प्रसन्नता हुई।

मारवाड़ राज्य में कई तरह से परिस्थितियाँ बदली। राजनीतिक सत्ता कमजोर पड़ने लगी। राज्य में लूट-मार अधिक बढ़ गयी। बाहर से आकर लुटेरों ने राज्य का लूटना आरम्भ किया और राजा मानसिंह को सिंहासन से उतार दिया। लेकिन पोकर्ण के सामन्त सवाई सिंह को मारवाड़ के राज्य-सिंहासन पर धौंकल सिंह को बिठाने में सफलता न मिली। उसने धौंकल सिंह को जयपुर राज्य के खेतड़ी नामक प्रदेश के स्वतन्त्र सामन्त के पास इसलिए भेज दिया कि वहाँ पर वह बालक सुरक्षित रह सकेगा।

इसके कुछ दिनों के बाद मेवाड़ के राणा की राजकुमारी कृष्णा के विवाह के सम्बन्ध में मारवाड़ और जयपुर में भीषण युद्ध हुआ। सामन्त सवाई सिंह ने उस अवसर का लाभ उठाने की कोशिश की। कृष्णा कुमारी के साथ विवाह करने के लिए मानसिंह और जयपुर के राजा का जो युद्ध हुआ था, उसको पहले लिखा जा चुका है। उस युद्ध में उत्तरी भारत के लगभग सभी राजा लोग जो शामिल हुए थे, उसका कारण सवाई सिंह का षड़यंत्र था।

राजा मानसिंह ने सुन्दरी कृष्णाकुमारी के साथ किसी भी दशा में विवाह करने की प्रतिज्ञा की थी, इसलिए मारवाड़ की प्रजा असंतुष्ट हो गयी थी। बड़ी बुद्धिमानी के साथ इस अवसर का लाभ सवाई सिंह ने उठाया और उसने जब समझा की मारवाड़ की प्रजा राजा मानसिंह के विरुद्ध है तो उसने बालक धौंकल सिंह के सम्बन्ध में घोषणा की और इस बात को जाहिर किया कि धौंकल सिंह, भीमसिंह का बालक है और इसीलिए वह मारवाड़-राज्य का उत्तराधिकारी है।

सवाई सिंह की इस घोषणा को सुनकर समस्त राजा लोग धौंकल सिंह के पक्ष में हो गये। और उसका क्या परिणाम हुआ, इसे विस्तारपूर्वक पहले लिखा जा चुका है। उन्हीं दिनों में सवाई सिंह मारा गया था और गुरुदेव देवनाथ का सर्वनाश अमीर खाँ के सिपाहियों के द्वारा हुआ।

प्रारम्भिक दिनों में राजा मानसिंह को मारवाड़-राज्य के प्रमुख व्यक्तियों, राजवंश के लोगों और सामन्तों से जो विपदायें मिली थीं, मानसिंह ने उन सब का पूरा-पूरा बदला लिया। उसका सबसे बड़ा शत्रु भीमसिंह विष के द्वारा मारा गया था। इसके बाद उसने बड़ी बुद्धिमानी के साथ सामन्तों का सर्वनाश किया। आरम्भ में सब से साथ मिलकर और अपना विश्वास कायम करके उसने एक-एक सामन्त को छिन्न-भिन्न किया और अपने शत्रुओं से बदला लेने में उसने भयानक विश्वासघातों और अत्याचारों से काम लिया।

मनुष्य उत्पात, अपराध और अत्याचार करते-करते अपने मनुष्यत्व को खोदेता है। राजा मानसिंह का इतना ही पतन नहीं हुआ, बल्कि उन पापों और अपराधों के फलस्वरूप उसका मन और मस्तिष्क विक्षिप्त हो गया। उसने राज्य के अधिकांश लोगों को अपना शत्रु समझ लिया था, अब शत्रुओं के न रहने पर भी उसको प्रत्येक स्त्री-पुरुष पर संदेह रहने लगा। प्रत्येक व्यक्ति से उसको आशंका मालूम होती और किसी के द्वारा भी वह अपने सर्वनाश का अनुमान करने लगता। मन के इन विकृत भावों से उसने केवल अपनी स्त्री के हाथ का बना हुआ भोजन करना आरम्भ किया और दूसरे का बनाया एवम् तैयार किया हुआ भोजन करना बन्द कर दिया।

राजा मानसिंह की विक्षिप्त अवस्था धीरे-धीरे और भी बढ़ी। अब उसका मन राज्य के कार्य में न लगता। जीवन का प्रत्येक कार्य उसे अप्रिय और संकटपूर्ण मालूम होने लगा। इसलिए सार्वजनिक स्थानों को छोड़कर वह एकान्त में रहने लगा। उसके मन के इस उन्माद को दूर

करने के लिए जो उपाय सम्भव हो सकते थे, सब किये गये। लेकिन किसी से कुछ लाभ न हुआ। वह स्वर्गीय गुरुदेव देवनाथ की मृत्यु पर विलाप किया करता और अपने इष्ट देवता की आराधना किया करता। उसके मन की इस दुरवस्था में राज्य का बहुत पतन हुआ। यह देखकर उसके दरबार के प्रमुख व्यक्तियों ने परिस्थितियों पर विचार करके यह निर्णय किया कि राज्य के शासन का कार्य उसके लड़के को सौंप दिया जाय। इस प्रकार का निर्णय करके उन लोगों ने राजा मानसिंह से प्रार्थना की। इसको राजा मानसिंह ने मंजूर कर लिया और उसने अपने हाथ से अभिषेक के समय लड़के के मस्तक पर राजतिलक किया। उसके बाद उसका लड़का छत्रसिंह सिंहासन पर बैठ कर राज्य का शासन करने लगा।

छत्रसिंह इस समय राज्यसिंहासन पर था। लेकिन अभी तक उसको शासन सम्बन्धी बातों का ज्ञान न था। संसार के व्यवहारों को समझने का उसे कोई अवसर न मिला था। अभिषेक के बाद वह राजा बन गया था। लेकिन राज्य कैसे किया जाता है, इस बात को वह समझता न था। उसमें इतना ही अभाव न था, बल्कि वह अयोग्य और नासमझ भी था। उसके आचरण अच्छे न थे। बुद्धिहीन होने के कारण उसमें दूरंदेशी न थी। अपनी इसी अयोग्यता के कारण उसने आरम्भ से ही ऐसा काम आरम्भ किया, जो राज्य के लिए अच्छा न था। सिंहासन पर बैठने के बाद उसने अक्षयचंद नामक एक वैश्य को अपना मंत्री नियुक्त किया।

सन् १८०६ से १८१७ ईसवी तक मारवाड़ राज्य की दशा सभी प्रकार खराब रही। अच्छे शासन के अभाव में लगातार विनाशकारी दुर्घटाओं की वृद्धि हुई। इनके फल स्वरूप मारवाड़ का शासन बहुत निर्बल पड़ गया। इन दिनों में ईस्ट इण्डिया कम्पनी की सत्ता भारतवर्ष में बढ़ रही थी। उसके प्रभाव में राजस्थान के अनेक राज्य आ चुके थे। यह देखकर राजा छत्रसिंह ने अँगरेजी कम्पनी के पास संधि करने के उद्देश्य से अपना एक दूत भेजा। उस संधि का अवसर आने के पहले ही छत्रसिंह की मृत्यु हो गयी।

राजा छत्रसिह की इस आकस्मिक मृत्यु का क्या कारण हुआ, निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। दूसरे लोगों के मत भी इस विषय में भिन्न-भिन्न हैं। कुछ लोगों का कहना है कि आचरण की खराबी से उसका शरीर बहुत निर्बल पड़ गया था। इसीलिए असमय उसकी मृत्यु हुई। कुछ लोगों का कहना है कि आचरण दुर्बलता में उसने एक राजपूत लड़की का सतीत्व नष्ट करना चाहा था। उसके इस अपराध के कारण उस लड़की के पिता अपनी तलवार से उसको मार डाला। सही बात क्या है, इसको प्रामाणिक तौर पर कहने के लिए कुछ साधन नहीं हैं। जो कुछ भी हो। छत्रसिह की मृत्यु हो गयी। उसके मरने के बाद मारवाड़ राज्य का पतन भयानक रूप से आरम्भ हुआ और राज्य में चारो तरफ अन्याय होने लगे।

राज्य की बढ़ती हुई दुरवस्था को देखकर सामन्त लोग बहुत चिन्तित हुए, बहुत कुछ सोचने-विचारने के बाद उनको समझ में न आया कि उस दशा में क्या होना चाहिए। अन्त में सभी लोगों ने निश्चय किया कि मानसिंह के पास जाकर राज्य की सब हालत कही जाय और उसके ऊपर जोर डाला जाय कि वह फिर से राज्य का शासन हाथ में ले। इन दिनों में मैं विभिन्न प्रकार के लोगों से मारवाड़-राज्य के सम्बन्ध में बातें करता रहा। मैं जल्दी से इस बात का निर्णय करने में असमर्थ हो रहा था कि इस राज्य की इस बरबादी का कारण क्या है। मुझे बहुत से आदमियों के द्वारा अनेक प्रकार की बातें सुनने को मिलीं। उन सबको सुनने के बाद मैं तो इसी नतीजे पर आता हूँ कि मारवाड़ राज्य में किसी योग्य शासक के न होने के कारण उसकी यह दुरवस्था हो रही थी। इसके सिवा और कोई बात न थी।

राजा मानसिंह की दशा भी अभी तक अच्छी न थी। मानसिंह के उन्माद का रोग अभी तक कुछ कम न हुआ था। सिर और दाढ़ी के बाल भी उसने बहुत दिनों से नहीं बनवाये थे। इसलिए उसकी आकृति पागलों की सी हो गयी थी। परन्तु उन्माद के इन दिनों में राजा मानसिंह को अपने जीवन की रक्षा का बहुत ध्यान था। राजा छत्रसिंह के समय जो लोग राज्य के ऊँचे पदों पर थे। उनके सेवक मानसिंह के पास जाकर उसकी सेवा करते थे। कहा जाता है कि उन सेवकों ने राजा मानसिंह को विष देने के लिए कई बार कोशिश की थी। लेकिन उसमें उन लोगों को सफलता नहीं मिली। यह जानकर बहुत-से लोग इस बात का विश्वास करने लगे थे कि राजा मानसिंह की जिन्दगी के दिन अभी बाकी है। इसीलिए कोई उसे अभी तक विष नहीं दे सका।

उन्माद के दिनों में भी उसके जीवित रहने का कारण यह था कि वह स्वयं अपने सम्बन्ध में बहुत अचेत रहता था और किसी के हाथ का कोई भी भोजन वह न करता था। इसमें सबसे बड़ा सहारा यह था कि राजा मानसिंह का एक बहुत विश्वासी नौकर था, वह मानसिंह का इतना अधिक विश्वासी और भक्त था कि उसने अब तक राजा का साथ नहीं छोड़ा था और वह अपना लाया हुआ भोजन ही राजा को खाने देता था।

छत्रसिंह के मरने के बाद राजा मानसिंह में बहुत परिवर्तन हुआ। उसका उन्माद जाता रहा। उसकी समझ में आ गया कि राज्य के हित के लिए उसको तरफ ध्यान देने की आवश्यकता है। अँगरेजी सरकार ने राजा मानसिंह की सहायता की और उसके शत्रुओं का पूर्णरूप से दमन हुआ।

शासन की बागडोर अपने हाथ में लेने के बाद राजा मानसिंह ने समझा कि नियंत्रणहीन राज्य सामन्त राज्य की अराजकता के कारण है। इसलिए उसने बड़ी राजनीति से काम लिया। उसने राजा के सामन्तों के साथ बड़ी सहानुभूति प्रकट की। उसके व्यवहारों को देखकर सभी सामन्त उसका विश्वास करने लगे। दोनों तरफ से बढ़ते हुए विश्वासों के कारण यह मालूम होने लगा कि सामन्तों के साथ राजा मानसिंह का जो व्यवहार चल रहा है, उससे बहुत थोड़े दिनों में राज्य की उन्नति हो गयी। अपने राजा के प्रति वहाँ के सामन्तों का इसी प्रकार का विश्वास पैदा हो गया। राजा मानसिंह ने सामन्तों की स्वतंत्रता पर कभी कोई आलोचना न की। इस तरह की बातों को देखकर मालूम होने लगा कि राजा मानसिंह ने अपने राज्य को सभी प्रकार के अधिकार दे रखे हैं।

जब अच्छे दिन आते हैं तो परिस्थितियाँ अपने आप अनुकूल होने लगती हैं और अच्छा अवसर बिना किसी चेष्टा के सामने आ जाता है। पोकर्ण का सामन्त सालिम सिंह और प्रधान मंत्री अक्षय चन्द को नष्ट करने के लिए योधराज ने अपनी शक्तियों को तैयार किया। इस संघर्ष को बढ़ते हुए देखकर मानसिंह बहुत प्रसन्न हुआ। वह समझता था कि इस झगड़े का लाभ अपने लिए सभी प्रकार अच्छा होगा। लेकिन उसका जो भीतरी उद्देश्य था, सालिम सिंह उसे समझ न सका। वह मानसिंह पर विश्वास करता रहा।

छत्रसिंह के शासनकाल में अक्षय चन्द मंत्री था। उन दिनों में मारवाड़ राज्य का शासन उसी के हाथ में था। छत्रसिंह किसी योग्य न था और उसकी अयोग्यता के कारण ही अक्षय चन्द ने सभी प्रकार के अधिकार अपने हाथों में कर रखे थे। राजा मानसिंह इस बात को समझता था कि राज्य की सारी परिस्थितियों की जानकारी सबसे अधिक अक्षय चन्द को है, इसलिए उसने अक्षय चन्द की इस जानकारी का लाभ उठाने के लिए चेष्टा की। परन्तु उसके उन्माद के दिनों में

राज्य के जिन पदाधिकारियों ने अधिक अन्याय किया था और अनैतिक रूप से राज्य की सम्पत्ति अपने अधिकारों में कर ली थी, राजा मानसिंह ने उन सबकी सम्पत्तियों को लेकर अपने अधिकार में करना आरम्भ कर दिया।

राजा मानसिंह ने इन दिनों में अपनी एक अनोखी राजनीति से काम लिया। उसने निर्णय किया कि मेरे उन्माद के दिनों में जिन्होंने अपने स्वार्थों के लिए राज्य और प्रजा का सर्वनाश किया है, उनकी हत्या करने की अपेक्षा यह ज्यादा अच्छा होगा कि उनकी उन सम्पूर्ण सम्पत्ति को छीन लिया जाय, जो उन्होंने अपने अन्यायपूर्ण कार्यों से अपने अधिकार में कर ली है। अक्षयचंद राजनीतिज्ञ और दूरदर्शी था। वह राजा मानसिंह की इस पालिसी को समझ रहा था। अँगरेजों के साथ राजा मानसिंह की मित्रता हो जाने के कारण वह बहुत भयभीत होने लगा था। उसने अँगरेजों की तरफ से राजा मानसिंह को बहुत भड़काने की कोशिश की। राजा मानसिंह भी दिखावे में अक्षयचंद की हाँ में हाँ मिलाता रहा। इसका फल यह हुआ कि अक्षयचंद और उसके आदमी राजा मानसिंह के चंगुल में आ गये। मानसिंह ने बड़ी बुद्धिमानी के साथ यह सब किया।

इन दिनों में मारवाड़ राज्य की अवस्था बड़ी भयानक हो रही थी। किसी पर किसी का विश्वास ना था। सम्पूर्ण राज्य में राजनीतिक षड़यंत्र फैले हुए थे। राजा मानसिंह अपने षड़यंत्र में राज्य के आदमियों को फँसाने में बड़ी सावधानी से काम ले रहा था और अक्षयचंद की तरह के लोग राजा मानसिंह को अपने जाल में फँसाने की कोशिश में थे।

षड़यंत्रों के इन दिनों में मैं मारवाड़ राज्य में पहुँचा था। वहाँ जाकर मैंने राजा मानसिंह को बहुत चिन्तित और परेशान देखा। अक्षयचंद और उसके पक्षपातियों ने एक भीषण षड़यंत्र में उसको फँसा रखा था। जो लोग राजा के शुभचिंतक थे, अक्षयचंद ने उनसे राजा को अलग करने की पूरी चेष्टा की थी। जो लोग अक्षयचंद के विरोधी थे, वह उनको कैद नहीं कर सकता था, इसलिए उनके विरुद्ध उसने राजा मानसिंह को भड़काने उकसाने का काम किया। वह इस प्रकार के कार्यों में बहुत होशियार था। उसकी सहायता से मानसिंह ने उन सभी लोगों से अपना बदला लिया, जिनको वह दण्ड देना चाहता था। जब राजा मानसिंह अपने विरोधियों से बदला ले चुका और ले चुका, अक्षयचंद की सहायता से, तब उसने मंत्री अक्षयचंद और उसके पक्षपातियों पर शासन की कठोरता आरम्भ की। राजा मानसिंह ने सब से पहले अक्षयचंद और उसके समर्थक राज के पदाधिकारियों को उनके पदों से अलग किया और उसके बाद उसने उन सबको कैद करके कारागार में बंद कर दिया।

मंत्री अक्षयचंद को जब मालूम हुआ कि अब मेरे बचने की कोई उम्मेद नहीं है तो उसने राजा मानसिंह से प्रार्थना की और अपनी मुक्ति के बदले उसने अपने पास की सम्पूर्ण सम्पत्ति दे देने का वादा किया। राजा मानसिंह ने उसकी इस प्रार्थना को स्वीकार कर लिया।

अक्षयचंद ने अपने अधिकार की समस्त सम्पत्ति चालीस लाख रुपये की राजा मानसिंह को दे दी, उस सम्पत्ति को लेकर मानसिंह ने अपने अधिकार में किया और मंत्री अक्षयचंद को मरवा डाला। इसके बाद राजा मानसिंह ने अपने राज्य में मुनादी की, कि जो आदमी राज्य के पदों से निकाले गये हैं, उनके अपराधों को क्षमा कर दिया जायगा। इस पर दुर्ग के अधिकारी नाग जी और मल्ल जी धांधल नामक दो आदमी—जो मारवाड़-राज्य से भाग गये थे, लौटकर राज्य में वापस आ गये और रहने लगे। छत्रसिंह के शासन काल में उन दोनों ने अपने पास बहुत सम्पत्ति एकत्रित कर ली थी। उन दोनों के राज्य में लौट आने पर राजा मानसिंह ने उनके पास की सम्पूर्ण सम्पत्ति छीन ली और उन दोनों को विष देकर मार डाला।

इस प्रकार विनाश और संहार करने के बाद भी राजा मानसिंह शान्त नहीं हुआ। राज्य में अन्याय करने वालों में उसने किसी के साथ रियायत नहीं की और बड़ी निर्दयता के साथ उसने उन सबका विनाश और संहार किया, जिन्होंने उसके उन्माद के दिनों में सम्पत्ति की लूट करके अत्याचार किये थे। उसने उनको कैद करके कारागार में बंद किया, उनके अधिकार की सारी सम्पत्ति उसने छीन ली और उसके बाद भी उसने उनको जिन्दा नहीं रखा। कहा जाता है कि राजा मानसिंह ने ऐसा करके एक करोड़ रुपये अपने खजाने में एकत्रित किये।

मारवाड़-राज्य में मेरे जाने के छै महीने के बाद और अँगरेजी सरकार के साथ मित्रता कायम होने के अठारह महीने पश्चात राजा मानसिंह ने अपने राज्य में विनाश और संहार के ये काम किये थे। मानसिंह के इन सब कार्यो का मैं समर्थन नहीं करता। लेकिन उसके इन कार्यों में मैं दखल नही दे सका, उसका कारण यह है कि राजा मानसिंह के साथ मेरा पहले ही इस बात का निर्णय हो चुका था कि शासन की भीतरी बातों में अंगरेज सरकार की तरफ से किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं किया जायगा। इन परिस्थितियों में मुझे चुपचाप रहना पड़ा और मानसिंह ने जिसके सम्बन्ध में जैसा मुनासिब समझा, वैसा किया। यह बात जरूर है कि मारवाड़ के इतिहास में कभी किसी राजा ने अपने शासन काल में इस प्रकार के कार्य कभी नहीं किये थे।

यहाँ पर मैं राजा मानसिंह की आलोचना करना अपना कर्त्तव्य नहीं समझता। मैं समझता हूँ कि मानसिंह ने जो कुछ भी किया, समझ-बूझकर किया। मनुष्य जीवन की परिस्थितियाँ उसको सब कुछ करने के लिए बाधा करती हैं। राजा मानसिंह के शासन काल में मारवाड़ राज्य की परिस्थितियाँ क्या थीं और वहाँ के पदाधिकारियों व सामन्तों ने कब क्या किया था, इन सब बातों को हमारी और दूसरों की अपेक्षा राजा मानसिंह अधिक समझता था। इसलिए उन घटनाओं के सम्बन्ध में यह कहना ही मुनासिब मालूम होता है कि मानसिंह ने जो अच्छा समझा था किया था।

मैं यह भली प्रकार जानता हूँ कि राजा मानसिंह पढ़ा-लिखा आदमी था। हिन्दुस्तानी भाषा के साथ-साथ वह फारसी भाषा जानता था और और इन दोनों भाषाओं में वह बातें करता था। मानसिंह कवि भी था और उसने कविता में लिखा हुआ अपने वँश का इतिहास मुझे दिया था, जिसके कुछ भाग का मैंने अङ्गरेजी में अनुवाद भी किया और उसके उस उपहार के बदले में मैंने उसको फरिश्ता का लिखा हुआ 'भारत में मुस्लिम शासन का इतिहास' भेंट में दिया था। बीतचीत के सिलसिले में वह मुझे हमेशा बुद्धिमान मालूम हुआ। राजा मानसिंह बातें करते हुए शासन प्रणाली के सम्बन्ध में बहुत-सी अपने अनुभव की बातें कहा करता था। उनको सुनकर मैं बहुत प्रसन्न होता था।

मानसिंह मुझे अपने साथ लेकर अपने महल के कई एक हिस्सों में घूमा था। उस समय हम दोनों के साथ उसका एक नौकर था। महल में घूमते हुए मानसिंह ने बहुत देर तक मुझसे बातें की थीं। उसने मरुभूमि के विस्तृत मैदानों की ओर संकेत करके देखने के लिए मुझसे कहा था। मैंने उस समय मारवाड़ के दूरवर्ती रेतीले मैदानों को देखने की चेष्टा की थी। उन लम्बे मैदानों में बहुत दूर तक केवल रेतीली भूमि दिखायी देती थी। कहीं-कहीं पर एक आध वृक्ष भी नजर आते थे। राजा मानसिंह से बड़ी देर तक उसके महल में बातें करने के बाद मैं लौटकर अपने मुकाम पर चला आया। वहाँ आने पर मैंने देखा कि मेरे दोनों मित्र कैप्टेन बाघ और मेजर गफ रोहिल्ले कुत्तों की सहायता से एक मृग का शिकार करके लाये हैं।

८ नवम्बर—मारवाड़ की पंचरंगी राज-पताका मुस्लिम शासकों के सामने झुकने से पहले यहाँ की राजधानी मन्दोर थी। वहाँ का इतिहास जानने के लिए मैंने सवेरा होते ही अपनी यात्रा

आरम्भ की। मेरे साथ राजा के भेजे हुए नौकर थे। वे भी मेरे साथ-साथ चल रहे थे। अपने निश्चित स्थान पर पहुँचने में एक घण्टे से कुछ अधिक समय लगा। वह स्थान जहाँ पर हमें पहुँचना था, पांच मील से अधिक दूरी पर न था परन्तु बहुत धीरे-धीरे चलने के कारण हम लोगों को वहाँ पहुँचने में इतना समय गया।

राजमहल से प्राचीन राजधानी की तरफ जो रास्ता जाता है, उस मार्ग से जाने के लिए मैं राजमहल से रवाना हुआ। उसके कुछ दूर आगे जाने पर मैंने मन्दिर देखा। राजा मानसिंह ने जालौर से मुक्ति पाने के बाद इस विशाल मन्दिर को बनवाया था। वह रास्ता तीन मील तक नीचे की तरफ ढालू होता गया था। मैं उस रास्ते से चलकर पश्चिम की तरफ जाने वाले मार्ग में मुड़ा और उस स्थान पर पहुँच गया, जो मारवाड़ राज्य के प्राचीन राजाओं के स्मारकों से भरा हुआ था। यह मार्ग बहुत छोटा है और पहाड़ी शिखर बहुत ऊंचे-ऊंचे हैं। पर्वत के ऊपर सैकड़ों गुफायें बनी हुई हैं, उनमें तपस्वी और सन्यासी लोग रहा करते हैं।

इस प्राचीन राजधानी में शत्रुओं का आक्रमण न हो सके, इसके लिए परिहार राजपूतों ने चारों तरफ दुर्ग की दीवार बनायी थी। उसके बिगड़े हुए टूटे-फूटे भाग अब भी वहाँ देखने को मिलते हैं। वहाँ पर एक नदी बहती है। उसका जल बहुत साफ है। कुछ दूर आगे जाने के बाद वह मार्ग धीरे-धीरे चौड़ा होता जाता है। वहाँ पर एक गांव को हमने पार किया। उस गाँव में लगभग दो सौ घर बने हुए हैं। उसके आगे बढ़ने पर हमें एक ऊंचा स्थान दिखाई पड़ा। वहाँ पर बहुत-से राठौर राजाओं के स्मारक बने हुए हैं। हम लोग उस स्थान पर पहुँच गये।

वह स्थान अपने आस-पास की जमीन से ऊंचा है। वहीं पर मारवाड़ के राजाओं के शव उनकी रानियों के साथ जले थे और जहाँ पर चिता लगी थी, वहाँ उनके स्मारक बनवाये गये हैं। उस भूमि से थोड़े फासिले पर एक छोटी सी नदी बहती है। उन स्मारकों में एक स्मारक प्रसिद्ध राव मालदेव का है। जिस बादशाह शेरशाह ने मुगलों पर आक्रमण किया था, उसके साथ युद्ध करने के लिए मालदेव ने तैयारी की थी और युद्ध करके उसने अपनी बहादुरी का प्रदर्शन किया था। वहाँ पर राजा अजित सिंह, सूरसिंह, उदय सिंह, गजसिंह और यशवन्त सिंह इत्यादि राजाओं के भी स्मारक बने हुए हैं। मैंने उन स्मारकों को ध्यान से देखा।

इस स्थान पर बने हुए सभी स्मारक पंक्तियों में दिखायी देते हैं। मालदेव का स्मारक बहुत साधारण रूप में बनवाया गया है। उसके पास ही चण्ड और योधा के स्मारक भी बने हुए हैं। इन स्मारकों के बनाने का तरीका अलग अलग है। जो स्मारक जिस समय बना है, वह उस समय की शिल्प कला का परिचय देता है। मालदेव के स्मारक को देखकर उसके उस समय की याद आती है, जब वह अफगान बादशाह के विरुद्ध युद्ध करने के लिए गया था। इसके साथ ही अफगान बादशाह की वह बात भी याद आती है, जो उसने इस देश के सम्बन्ध में कही थी : "मैंने एक मुट्ठी जौ के लिए भारतवर्ष का राज सिंहासन खोया था।" उस अफगान बादशाह की यह बात आज ऐतिहासिक हो गयी है। वह कभी भी मिटाई नहीं जा सकती।

इस स्थान के सभी स्मारक लाल रंग के छोटे-छोटे पत्थरों से बने हुए हैं और उन पत्थरों पर विभिन्न प्रकार की शिल्प कला देखने को मिलती है। इसके बनाने के ढंग को देखकर शिव और बुद्ध मन्दिर की याद आती है। कुछ स्मारकों के निर्माण में जैनियों के मन्दिरों का अनुकरण मालूम होता है। राजा यशवंत सिंह और अजित सिंह के स्मारक एक विशेष प्रकार के बने हुए हैं। इन स्मारकों का नकशा तैयार करवाकर मैं उसे अपने साथ योरप ले गया हूँ। स्मारकों के पत्थरों

पर खुदाई का काम बड़ी सफाई के साथ किया गया है। यशवंत सिंह का स्मारक सब से अधिक मजबूत मालूम होता है। उसकी कई एक बातें अजित सिंह के स्मारक से मिलती हैं।

इस स्थान के स्मारकों के बीच में अत्यन्त रमणीक स्तम्भ बने हुए हैं। उनके द्वारा यह स्थान अत्यन्त सुहावना और आकर्षक हो गया है। इन स्मारकों में कुछ की बनावट मिश्र देश की शिल्प कला का स्मरण दिलाती है। यहाँ के दृश्य को देखते हुए मैं मारवड़ के बीते हुए इतिहास के सम्बन्ध में बहुत-सी बातें सोचता रहा। इन स्मारकों को देखकर सहज ही कोई भी विद्वान इस बात का अनुमान लगा सकता है कि मारवाड़ राज्य में किस प्रकार के वीरों ने जन्म लिया था। सही बात यह है कि संसार के उस समय का—जब कि राजस्थान में और विशेष कर मेवाड़ तथा मारवाड़ मे इस प्रकार के वीर उत्पन्न हुए थे—इतिहास देखा जाय तो कहीं पर किसी भी देश में इस प्रकार के शूरवीरों के इतिहास पढ़ने को न मिलेंगे, जैसे कि यहाँ के वीरों का इतिहास पढ़ने को मिलता है।

यहाँ पर हम मेवाड़, मारवाड़ और तैमूर वंश के कुछ प्रसिद्ध ऐतिहासिक वीरत्माओं के नाम नीचे दे रहे हैं, उनके मुकाबिले में शूरवीर राजनीतिज्ञ और रण कुशल कब किस देश में उत्पन्न हुए, क्या कोई बता सकता है? यहाँ पर जो नाम हम देना चाहते हैं, वे इस प्रकार हैं।

मेवाड़	मारवाड़	दिल्ली
राणा साँगा	राव मालदेव	बाबर और शेरशाह
००	राव सूरसिह	हुमायू
राणा प्रताप सिंह	राजा उदय सिंह	अकबर
राणा अमर सिंह (प्रथम)	राजा गजसिंह	जहाँगीर शाहजहाँ
राणा करण सिंह		
राणा राजसिंह	राजा यशवंत सिह	औरंगजेब
राणा जयसिंह	राजा अजित सिंह	फर्रुखसियर के बाद
राणा अमर सिंह (द्वितीय)		दिल्ली के सिंहासन के लिए समस्त प्रतिद्वन्दी

पहले मारवाड के राजाओं की उपाधि राव थी। उदय सिंह से लेकर यशवंत सिंह और अजित सिंह आदि राजा बड़े शूरवीर थे।

पथ-प्रदर्शन के लिए मेरे साथ राजा का एक समझदार अनुचर आया था। मैंने उससे पूछा: अजित सिंह की तरह उसके शूरवीर लड़कों के स्मारक कहाँ हैं?

उसने मेरे प्रश्न को सुनकर दो स्मारकों की तरफ संकेत किया। मैंने उन दोनों स्मारकों की तरफ देखा। मुझे उन दोनों में और अन्य स्मारकों में बड़ा अन्तर दिखायी पड़ा। मैं सोचने लगा, इस अन्तर का कारण क्या है?

राजा के अनुचर के साथ मैं उस स्थान पर बातें करता रहा। अभय सिंह ने अपने पिता की हत्या की थी। इसलिए वह अपराधी था। परन्तु उसका शासन अच्छा गुजरा था और उसने बड़ी योग्यता के साथ अपने राज्य का विस्तार किया था। उसके भाई भक्तसिंह को उसके कारण अपने अधिकारों से वन्चित होना पड़ा था। इन स्मारकों में पिता की हत्या करने वाले अभय सिंह और उसके भाई भक्तसिंह—दोनों के स्मारक है। उन दोनों भाइयों के स्मारकों की पंक्ति में विजय सिंह का भी स्मारक है। मैंने आश्चर्य चकित होकर इस बात को देखा और बड़ी गम्भीरता के साथ उस

पर विचार करता रहा । अभयसिंह ने अपने पिता अजितसिंह की हत्या की थी और भक्तसिंह कभी अपनी योग्यता एवम् शक्ति का परिचय नहीं दे सका । परन्तु विजय सिंह ने अपने जीवन के अन्तिम समय तक जिस वीरता और कर्त्तव्य-परायणता का परिचय दिया , उसकी प्रशंसा नहीं की जा सकती । लेकिन आश्चर्य यह है कि इन तीनों के स्मारकों के बनवाने में किसी प्रकार का अन्तर नहीं रखा गया । यह बात मेरी समझ में नहीं आयी । एक पतित और श्रेष्ठ में अगर कोई जाति अन्तर रखना नहीं जानती तो उस जाति को धिक्कार है ! इससे अधिक उसको और क्या कहा जा सकता है । ऐसे देश में जो श्रेष्ठ और पतित का अन्तर रखना नहीं जानता और जिसकी नजरों में दोनों का एक मूल्य है , उस देश में, भविष्य में विजय सिंह की तरह के शूरवीर पुरुष पैदा नहीं हो सकते !

विजय सिंह के तीन लड़के थे । बड़े लड़के जालिम सिंह का वर्णन इस इतिहास में पहले किया जा चुका है । इन तीनों लड़कों के स्मारक उनके पिता विजय सिंह के स्मारक के पास बने हैं । उनके कुछ फासिले पर राजा भीमसिंह और उसके भाई एवम् मारवाड़ के वर्तमान राजा के पिता गुमान का स्मारक है । गुमान की मृत्यु छोटी अवस्था में ही हो गयी थी । वह भीमसिंह का बड़ा भाई था । इस श्रेणी के बिल्कुल आखीर में छत्रसिंह का स्मारक बना हुआ है । उसके स्मारक को देखकर मुझे अच्छा नहीं मालूम हुआ । अपने साथ के पथ-प्रदर्शक की तरफ देखकर मैंने पूछा : यहाँ पर मारवाड़ के उन राजाओं के स्मारक नहीं बनवाये गये , जो छत्रसिंह के मुकाबिले में बहुत श्रेष्ठ थे और जिनके स्मारक यहाँ पर बनने चाहिए थे । लेकिन उनके स्मारकों को न बनवाकर किस ने छत्रसिंह का स्मारक बनवाया है , क्या आप बता सकते हैं ?

राजा के अनुचर ने मेरे प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा : माता के प्रेम के कारण ही छत्रसिंह का यह स्मारक बनवाया गया है ।

उस स्थान पर मुझे यह भी मालूम हुआ कि प्रत्येक महीने की अमावस्या का दिन मारवाड़ में पवित्र माना जाता है । उस दिन राजा यहाँ पर आकर इन स्मारकों को अपनी श्रद्धाञ्जलि देता है । मैने इस प्रकार की और भी कुछ बातें सुनीं । परन्तु यहाँ आकर मैं जो बातें जानना चाहता था , और जिनकी मै खोज में था , उनको मै जान न सका । इसका बहुत कुछ कारण राजा का भेजा हुआ अनुचर है , जो मार्ग में मेरा पथ-प्रदर्शन कर रहा है । वह इतना योग्य नहीं है कि जो मेरी आवश्यकता के अनुसार सहायता कर सके और मेरे उन प्रश्नों का जवाब दे सके , जो मेरे काम के है और जिनका सम्बन्ध यहाँ के प्राचीन इतिहास के साथ है । अगर मैंने मारवाड़ का प्राचीन इतिहास पहले से पढ़ा न होता तो यहाँ आकर मैं जो कुछ जान सका हूँ , उसको भी मै समझ न सकता और मेरा यहाँ आना किसी काम का साबित न होता ।

बड़ी सावधानी के साथ मैं अपने पथ-प्रदर्शक से काम ले रहा था । उसके द्वारा मुझे एक बहुत अच्छी बात समझने को मिली । राजा अजित सिंह के मरने पर उसके मृत शरीर के साथ उसकी चौसठ रानियां चिता में बैठकर जलीं थीं और बूँदी के राजा बुधसिंह के मरने पर उनके मृत शरीर के साथ चिता में बैठ कर चौरासी रानियां भस्मीभूत हुई थीं । इन दोनों बातों को सुनकर मैं कुछ गम्भीर हो उठा और उस अनुचर की तरफ देख कर मैं सोचता रहा । बुधसिंह अजित सिंह का समकालीन और बादशाह औरंगजेब का सेनापति था । उसके बाद से करीब एक सो बीस वर्ष बीत चुके हैं । इस लम्बे समय में बड़ा परिवर्तन हो गया है । बुधसिंह का वंशज राणा विष्णु सिंह मेरा घनिष्ट मित्र था । सन् १८२१ ईसवी में उसकी मृत्यु हुई

थी। मरने के पहले उसने आदेश दिया था कि मेरी कोई स्त्री पतिभक्ति और सतीत्व का परिचय देने के लिए चिता पर न बैठे। मैं राजा विष्णु सिंह के उस आदेश का स्मरण करता हूँ और अजित सिंह तथा बुधसिंह की मृत्यु के बाद उनके शव को लेकर जलने वाली उनकी रानियों की संख्या पर विचार करता हूँ। जिस प्रकार के सुधार बड़ी-बड़ी कोशिशों के बाद भी नहीं होते, वे समय आने पर अपने आप हो जाते हैं।

राजा विष्णु सिंह ने अपने पुत्र की देख रेख और रक्षा का भार मरने के पहले मुझे सौंपा था। उसके मर जाने के बाद मैं बूँदी चला गया और जो भार मुझे विष्णु ने सौंपा था, शक्ति भर मैंने उसका पालन करने की कोशिश की।

दुर्ग के नीचे भी कुछ स्मारक बने हुए हैं। राव रणमल्ल, राव गंगा और चन्द का स्मारक वहाँ पर देखने को मिला। इन लोगों ने परिहारों के अधिकार से मन्दोर छीन लिया था। इन तीनों राजाओं के स्मारकों से लगभग दो सौ हाथ की दूरी पर कुछ खाली स्थान पड़ा हुआ है। यह स्थान उन रानियों के लिए रखा गया है, जो किसी रोग से पीड़ित होकर मरेंगी। अब परिहार राजपूतों की राजधानी का हम कुछ वर्णन करेंगे।

जिसने प्राचीन टस्कन के कर्टोना और वलटेरा जैसे नगरों को देखा है, वह मन्दोर की रक्षा के लिए उसके आस पास बनी हुई मजबूत और ऊँची दीवार की उपयोगिता को आसानी के साथ समझ सकेंगे। मन्दोर की यह विशाल और विराट दीवार ठीक उसी प्रकार की बनी है, जिस प्रकार प्राचीन काल में उन नगरों की दीवारें थीं। अग्नि से उत्पन्न होने वाले चार राजपूत वंशों में परिहारों का भी एक वंश माना जाता है। उनके इतिहास के अनुसार, उनके राज्य का विस्तार भारतवर्ष में सूर्य और चन्द्रवंशी राजाओं के राज्य विस्तार से पहले हुआ था। ×

परिहार राजपूतों का यह भी कहना है कि हम लोग काश्मीर से भारवर्ष में आये थे। जिन दिनों में बौद्धों के साथ शैव लोगों का धार्मिक युद्ध चल रहा था, उन्हीं दिनों में ये लोग भारतवर्ष में आये थे और बौद्ध लोगों से उनको प्रोत्साहन मिला था। परिहारों की इस बातों का समर्थन उनके इतिहास के द्वारा होता है।

मन्दोर राजधानी की तरफ चलने के लिए पत्थरों की सीढ़ियाँ पार करनी पड़ती हैं। वहाँ पर नागदा नाम की एक छोटी-सी नदी बहती है और मार्ग में एक विशाल बावड़ी बनी हुई है। इस बावड़ी को बनाने के लिए भयानक परिश्रम करना पड़ा है। लोगों का कहना है कि पहाड़ के पत्थरों को काटकर यह जलाशय बनाया गया है। इस बावड़ी के भीतर जाने के लिए गोलाकार में चक्करदार सीढ़ी बनी हुई है। यह बावड़ी बहुत पुरानी है और उसकी दीवारों में गूलर जैसे दो वृक्ष पैदा हो गये हैं। उनकी जड़ें पृथ्वी में दूर तक फैली हुई हैं। परन्तु उनके द्वारा इन वृक्षों की कोई बड़ी मजबूती नहीं है। इस तरह की कितनी ही बातों ने उस प्राचीन बावड़ी को अयोग्य बना दिया है। अब उसकी कोई मरम्मत भी नहीं है।

× इस बात का समर्थन सभी इतिहासकारों के द्वारा नहीं होता। कुछ विद्वानों का कहना है कि परिहार राजपूतों के राजविस्तार के पहले और लगभग सैकड़ों वर्ष पहले भारतवर्ष में सूर्य और चन्द्रवंशी राजा राज करते थे। परिहार राजपूतों के राज्य विस्तार का यह वर्णन टॉड साहब ने उन्हीं के अनुसार किया है।—अनुवादक

परिहार राजपूतों के अन्तिम राजा नाहर राव ने इस बावड़ी को बनवाया था। मेरा ध्यान मन्दोर की ऊँची और मजबूत दीवार की ओर आकर्षित हुआ। उसको बने हुए कई सौ वर्ष और बीतेंगे। यह ऊंची दीवार दुर्ग की तरह मन्दोर को घेरे हुए जिस प्रकार आज खड़ी है, भविष्य में भी खड़ी रहेगी। केवल इतने से ही इस बात का अनुमान किया जा सकता है कि वहाँ की यह दीवार कितनी मजबूत है।

यह दीवार शिखर की तरफ चली गयी है। उन दिनों में लड़ाई की तोपों का अविष्कार नहीं हुआ था। इसीलिए यहां के परिहार राजाओं ने दुर्ग के ऊपर बीचो बीच अपना महल बनवाया था। उस महल के सभी बुर्ज बहुत मजबूत बने हुए हैं और वे चौकोर हैं। उनको देखकर प्राचीन काल की अनेक बातों का अनुमान किया जा सकता है। मैंने इस बात को भली भाँति समझा।

मैं जब मन्दोर में पहुँचा तो बहुत थक गया था और थकावट के कारण ही मुझे बुखार आ गया था। इसलिए उस दीवार के सम्बन्ध में मुझे और जो कुछ जानना चाहिए था, नहीं जान वहाँ के सका। वहाँ पर परिहार राजाओं का जो महल बना हुआ है। उसके ऊपर चढ़कर मैं पहुँचा और टूटे-फूटे भागों को देखा। वह महल अब केवल एक पुराने खण्डहर के रूप में रह गया है। फिर भी उसको देखकर उसकी पहले की अनेक बातों का अनुमान लगाया जा सकता है। जिस प्रकार के उपकरणों से वह महल बनाया गया था, उन्ही उपकरणों से जोधपुर राजधानी का निर्माण हुआ है।

यहाँ के राजमहल के बहुत करीब अनेक देवताओं के मंदिर अपनी गिरी हुई दशा में दिखायी देते हैं। मैंने राजमहल को बाहर से लेकर भीतर तक देखने और समझाने की कोशिश की। यद्यपि वह बिलकुल गिर चुका है, परन्तु उसके कितने ही कमरों का आकार-प्रकार अब भी देखने को मिलता है, उन कमरों के बाहरी हिस्सों में जो शिल्प कला देखने को मिलती है, उससे अनु-मान होता है कि महल का निर्माण तक्षक अथवा बौद्ध शिल्पियों के द्वारा हुआ था।

राजमहल की दीवारों पर जो धार्मिक चित्र अंकित किये गये थे, वे यद्यपि बहुत कुछ बिगड़ गये हैं। फिर भी बौद्ध और जैन धर्मों के साथ उनके सम्पर्क स्पष्ट रूप में जाहिर होते हैं। महल के स्थानों में शैव लोगों का धार्मिक त्रिकोण चित्र भी देखने को मिलता है।

दुर्ग के दक्षिण-पूर्व में बना हुआ सिंहद्वार और जयतोरण अपनी सुन्दरता और रमणीकता का किसी प्रकार आज भी परिचय देता है। इस सिंहद्वार को देखकर परिहार राजपूतों की श्रेष्ठता का अनुमान लगाया जा सकता है। यह सिंहद्वार किसी समय अत्यन्त सुदृढ़ और सुन्दर था, उसको देखकर यह बात आज भी जाहिर होती है। मन्दोर के प्राचीन राजाओं में से किसी एक राजा ने अपनी विजय के स्मारक में जयतोरण बनवाया था और उसी के आधार पर इसका यह नाम रखा था, यह बात भी जाहिर होती है। समय की कमी के कारण मैं इस जयतोरण का नकशा नहीं ले सका इसका मुझे बार-बार ख्याल होता है।

उत्तर की तरफ मन्दोर से कुछ ही दूरी पर थानापीर का थान है। थान शब्द का अर्थ स्थान होता है। अजमेर में ख्वाजा कुतुब की एक प्रसिद्ध मसजिद है। थानापीर उसी कुतुब का शागिर्द था। राजस्थान में बहुत दिनों से सिंधी और अफगानी लोग लूट मार करते हुए चले आ रहे हैं। ये सभी लोग इसी पीर की मसजिद में एकत्रित होते थे और राजस्थान के राज्यों में आक्रमण करने का कार्यक्रम तैयार करते थे।

मन्दोर की उत्तर तरफ राठौर राजाओं और उनकी रानियों के स्मारक बने हुए हैं। परिहार राजपूत राजाओं के शव कहाँ पर जलाये जाते थे। और कहाँ पर उनके स्मारक बनाये गये थे,

इसको मैं जान नहीं सका। इसके सम्बन्ध में न तो इतिहास से ही कुछ पता चलता है और न कुछ जन-श्रुत के द्वारा ही मालूम होता है। राजधानी के पूर्व और उत्तर-पूर्व की तरफ प्रकृति ने एक ऐसा घेरा बना दिया है, जो राजधानी के लिए किसी सुदृढ़ दुर्ग से कम संरक्षक नहीं है। वहाँ पर नगर के बहुत-से लोग घूमने, विश्राम करने और प्राकृतिक शोभा का दर्शन करने के लिए प्राय: जाया करते हैं।

हम लोग जिस रास्ते से होकर ऊपर चढ़कर गये थे, उसी रास्ते से होकर हम लोग पुसकुण्ड की तरफ आगे बढ़े। रास्ते में अनेक प्रकार के मनोहर दृश्य देखने को मिले। उनमें प्राचीन काल के बने हुए पुराने महलों के भी कुछ स्थान थे। उस मार्ग के नीचे के भाग में दो सिहद्वार हैं। वहाँ अच्छे जल का एक जलाशय भी है। उन सिंहद्वारों में एक से होकर आगे चलने पर विस्तृत जंगल दिखायी देता है और वहाँ के लम्बे चौड़े मैदान में अनेक महल देखने को मिलते हैं। दूसरे सिंहद्वार से होकर चलने पर वह स्थान मिलता है, जहाँ पर मारवाड़ राज्य के शूरवीर राठौरों की प्रस्तर प्रतिमायें स्थापित हैं।

वहाँ के इन सभी रमणीक दृश्यों को देखकर मन में अनेक प्रकार के भाव उत्पन्न होते हैं। मैं वहां पर कुछ देर के लिए रुक कर कितनी ही बातों को सोचने लगा। मैंने वहां पर एक गुफा के भीतर मन्दोर के प्रसिद्ध राजा नाहरराव के स्मारक में एक बनी हुई वेदी को देखा। नाहरराव अरावली पर्वत के भयानक स्थान पर चौहानों के साथ युद्ध करते हुए मारा गया था। चन्द कवि ने नाहरराव की श्रेष्ठता और वीरता पर बहुत-सी कवितायें लिखी हैं और उन कविताओं में कवि ने उसकी बड़ी प्रशंसा की है।

नाहरराव के स्मारक की देखभाल और उसके दूसरे कार्यो के लिये एक नाई रखा गया है, जो निरंतर वहाँ पर रहकर अपना कार्य करता है। उस स्मारक का कोई भी कार्य नाई को क्यों सौंपा गया, इसको मैं समझ नहीं सका। मैं इस प्रश्न को बड़ी देर तक सुलझाता रहा। इसके सम्बन्ध में जो उलझन मनोभावों में थी, उसको सुलझाने के लिए मुझे कोई साधन नहीं मिला। इसलिए मुझे यह समझकर संतोष कर लेना पड़ा कि नाई लोग राजपूतों के यहाँ घरों का सभी कार्य करते है। कदाचित् इसीलिए इस स्मारक के कामों को करने के लिए नाई नियुक्त किया गया है। यह तो मेरे मस्तिष्क की उपज है। परन्तु इसका और कारण क्या है, इसको न कोई जानता है और न मुझे कोई बताने वाला मिल सका।

यहाँ पर एक मंदिर बना हुआ है, इस मंदिर में नौ मूर्तियाँ हैं। यहां के लोगों का कहना है कि लंका से आकर रावण ने मदोर के राजा की लड़की के साथ विवाह किया था। उन्हीं दिनों में यह मंदिर बना था और ये मूर्तियाँ इस मंदिर में स्थापित की गयी थीं। नागदा नाम की जो यहाँ पर एक छोटी सी नदी बहती है, उसके सम्बन्ध में भी यहाँ पर एक जनश्रुति है। लेकिन यहाँ के लोग उस श्रुति को बड़े विस्तार में कहते हैं, इसीलिए वह लिखी नहीं जा सकती। यहाँ पर एक झरना है, उसके पास ही पृथ्वीराज और उसकी स्त्री ताराबाई का स्मारक बना हुआ है।

उस मार्ग से कुछ दूरी पर चलने से एक विस्तृत मैदान मिलता है। उस मैदान को चारों ओर से घेरे हुए एक मजबूत दीवार बनी हुई हैं। हम लोग जब उस विस्तृत मैदान में पहुँचे तो पहाड़ के ऊपर एक विशाल कमरा दिखायी पड़ा। जैनियों के मंदिरों की तरह उस कमरे में बहुत-से स्तम्भ बने हुए हैं और उन स्तम्भों के ऊपर कमरे की मजबूत छत बनी हुई है। उस कमरे में भीतर मारवाड़-शूरबीर राजाओं की प्रतिमाये लगी हुई है। प्रत्येक मूर्ति अपने अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित साथ ही वे मूर्तियाँ घोड़े पर चढ़ी हुई बनवाई गयी है। इन मूर्तियों की सब से बड़ी विशेषता यह

है कि वे पत्थरों को काटकर बनवायी गयी हैं। उनकी ऊँचाई एक मनुष्य की ऊँचाई से कुछ अधिक है।

इन मूर्तियों के बनाने में यद्यपि किसी प्रकार की कारीगरी से काम नहीं लिया गया। परन्तु उनमें वीरता का भाव है। उनको देखने से साहस, तेज और शौर्य का सहज ही आभास होता है। इन वीरों के मूर्तियों के साथ एक बात और है। उन राजाओं के जो प्रिय और विश्वासी सामन्त थे, उनकी मूर्तियाँ भी उनके साथ ही रखी हैं। प्रत्येक सामन्त के हाथ में तलवार और ढाल है। उसकी पीठ पर धनुष-बाण और कटार लटक रही है। ये सभी मूर्तियाँ देखने में सुन्दर मालूम होती हैं। जिन शूरवीरों की ये प्रतिमायें हैं, उनकी शरीर की गठन कैसी थी, इस बात को मैं नहीं जानता। सम्भव है, वे राजा और सामन्त इसी प्रकार सुगठित शरीर के रहे हों। अथवा मूर्ति-निर्माताओं ने अपनी इच्छा से इन मूर्त्तियों को यथाशक्ति सुन्दर और आकर्षक बनाया हो। इसमें सही क्या है, मैं नहीं जानता।

उस कमरे में प्रवेश करते ही सब से पहले गणेश जी की मूर्त्ति दिखायी देती है। उस मूर्त्ति के पास रणदेव के दो पुत्रों की मूर्त्तियाँ हैं और वे गणेश जी की मूर्त्ति के दोनों तरफ स्थापित हैं। इन दोनों मूर्त्तियों में प्रत्येक का नाम भीरू है। गणेश जी की मूर्त्ति के आगे चण्डमण्डा और कङ्काली देवी की मूर्त्तियाँ हैं। काली देवी की मूर्त्ति भी वहाँ पर स्थापित है। वह मूर्त्ति भयंकर काली और उसका एक पैर महिषासुर की छाती पर और दूसरा पैर सिंह की पीठ पर है। काली देवी की मूर्त्ति अपने दोनों हाथों में अस्त्र-शस्त्र लिए हैं। वहाँ पर कुछ और भी मूर्त्तियाँ है और उनमें एक मूर्त्ति राठौरों के गुरुदेव नाथ जी की है। नाथ जी के एक हाथ में माला और दूसरे हाथ में धर्म-दण्ड है।

घोड़े पर चढ़े हुए मल्लीनाथ की मूर्त्ति भी वहाँ पर दिखायी देती है। उसके एक हाथ में माला है और तरकस घोड़े के पीछे लटक रहा है। उसकी स्त्री पद्मावती भोजन से भरे हुए पात्र को हाथ में लेकर मल्लीनाथ के युद्ध क्षेत्र से लौटने की प्रतिक्षा कर रही है। मल्लीनाथ जब युद्ध में मारा जाता है तो उसकी पत्नी पद्मावती अपने पति के शव के साथ चिता में बैठकर जल जाती है।

ऊपर जिन मूर्त्तियों का उल्लेख किया गया है, उनके सिवा कृष्ण काली की प्रतिमा भी है। वह घोड़े पर सवार है। इस प्रतिमा को यहाँ के लोग प्रभु जी की प्रतिमा कहते हैं। मारवाड़ के बहुत-से कवियों ने प्रभु जी की प्रशंसा में कवितायें लिखी है और वे समय-समय पर अपने प्रभु जी की कविताओं को गा-गाकर सुनाया करते हैं। इससे उन कवियों को बड़ी प्रशंसा मिलती है। अनेक चित्रकार प्रभु जी का चित्र बनाकर मारवाड़ के देहातों में रहने वाले लोगों को दिखाते हैं और ग्रामीण लोग भक्ति भावना से प्रेरित होकर चित्र दिखाने वालों को दान में धन देते हैं।

प्रभु की मूर्त्ति के पीछे प्रसिद्ध वीर रामदेव की प्रतिमा है। रामदेव के सम्मान में राजस्थान के प्रत्येक ग्राम में पूजा करने की वेदी का निर्माण किया गया है। सम्पूर्ण राजस्थान में रामदेव राठौर को बड़ी ख्याति मिली थी और आज तक राजस्थानी लोग उस पर अपनी आस्था रखते हैं।

इसके पश्चात् मैंने हर्ब सांकला की मूर्त्ति देखी। वह अत्यन्त स्वाभिमानी था और जिन दिनों में जोधा अपने राज्य से निर्वासित होकर दिन व्यतीत कर रहा था, हर्ब साँकला ने उन दिनों

में उनकी बड़ी सहायता की थी। चित्तौर के राणा का मन्दोर पर अधिकार हो जाने पर उसने उद्धार के लिए बड़ा प्रयत्न किया था। इसकी प्रतिमा भी मैंने यहाँ पर देखी।

आगे बढ़ने पर मैंने प्रसिद्ध गोगा चौहानों की प्रतिमा देखी। सुलतान महमूद के भारतवर्ष में आक्रमण करने पर स्वाभिमानी और शूरवीर गोगा चौहान ने उसकी विशाल सेना के साथ युद्ध किया था और उस युद्ध में अपने सैंतालिस पुत्रों के साथ स्वाधीनता की रक्षा करते हुए गोगा चौहान मारा गया था। यह युद्ध शतद्रु नदी के निकट हुआ था। मैंने गोगा की प्रतिमा को सम्मान पूर्वक कुछ देर तक देखा। सब के अन्त में गहिलोत राजपूत मधुमङ्गल नामक प्रसिद्ध शूरमा की प्रतिमा को मैंने देखा।

इन समस्त शूरवीरों की प्रतिमाओं को देखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। वहाँ की प्रत्येक प्रतिमा का दर्शन मानों मेरे शरीर में शक्ति की बिजली दौड़ा रही थी। बड़ी गम्भीरता के साथ मैं इन प्रतिमाओं को देखता रहा। प्रत्येक मूर्त्ति के साथ उसके जीवन का जो इतिहास है, वह मेरी आँखों के सामने घूम रहा था। इन शूरवीरों की मूर्त्तियों की स्थापना करके इस देश में शक्ति और शौर्य कायम रखने की चेष्टा की गयी है।

ऊपर जिस कमरे का वर्णन किया गया है, उसके पास ही एक दूसरा कमरा है। दोनों की बनावट एक है। पहले कमरे की अपेक्षा दूसरा कमरा बड़ा है। "तेंतीस कोटि देवताओं का स्थान" के नाम से दूसरा कमरा प्रसिद्ध है। इस दूसरे कमरे में जो देवताओं की मूर्तियाँ हैं, वे सभी पत्थर की बनी हुई हैं और उनके आकार कई प्रकार के हैं। छोटी और बड़ी आकार में सभी प्रकार की मूर्तियाँ वहाँ पर देखने को मिलती हैं। वहाँ की कुछ मूर्तियों का यहाँ उल्लेख करना आवश्यक है। इसीलिए उनके सम्बन्ध में नीचे लिखा जाता है।

इस कमरे में सब से पहले ब्रह्मा की मूर्ति है। भारतवर्ष के लोग ब्रह्मा को सृष्टि कर्त्ता मानते है। दूसरी मूर्ति सात घोड़ों की एक सवारी पर है। वह सूर्य की मूर्ति है। उसके पास राम चन्द्र और सीता की प्रतिमा देखने को मिलती है। उसके पश्चात गोपियों से घिरे हुए कृष्ण की मूर्ति है। इन सब के बाद महादेव की प्रतिमा है वह विशाल आकार प्रकार में है। उसके पास ही महादेव की सवारी में आने वाले साँड़ की प्रतिमा है। इन सब के साथ-साथ इस कमरे में लक्ष्मी और सरस्वती की मूर्ति हैं।

इस बड़े कमरे में जितनी भी प्रतिमायें हैं, बहुत अच्छे पत्थरों से बनी हुई हैं और हिन्दूओं के ग्रन्थों में उनके जिस प्रकार वर्णन किये गये हैं, उसी रूप में शिल्पियों ने उनको तैयार किया है। सभी मूर्तियाँ देखने में प्रिय मालूम होती हैं।

इस बड़े कमरे और उसकी मूर्तियों को देखने के बाद मैं राजा अजित सिंह के बाग और महल को देखने गया। वह महल अत्यन्त सुन्दर और अनेक प्रकार की सुविधाओं के साथ बना हुआ है। उसकी बहुत-सी बातें अत्यन्त प्रशंसा के योग्य हैं। महल के भीतर छोटे और बड़े बहुत कमरे हैं। वे कमरे विभिन्न प्रकार से बने हुए हैं। सभी कमरों में स्तम्भ हैं और प्रत्येक स्तम्भ निर्माण में शिल्पियों ने अपनी अद्भुत योग्यता का परिचय दिया है। वे सभी स्तम्भ सुन्दरता के साथ-साथ दृढ़ता भी रखते हैं। महल में जितनी भी दीवारें हैं, उनमें बहुत श्रेष्ठ शिल्पकारी देखने को मिलती है। महल की ये सभी बातें अत्यन्त आकर्षक और प्रशंसनीय हैं।

महल के अन्त:पुर में जहाँ स्त्रियाँ रहती हैं, उन स्थानों में अत्यन्त बारीक बुनावट के कपड़े के बने हुए परदे पड़े हुए हैं। इन परदों का कदाचित उद्देश्य यह है कि महल में आने वाला कोई बाहरी व्यक्ति उन स्त्रियों को देख न सके। इसके साथ ही महल के अन्त:पुर का भाग अत्यन्त

रमणीक बना हुआ है। उस सम्बन्ध में अगर यह कहा जाय कि सम्पूर्ण महल में अन्तःपुर का भाग सबसे अधिक अच्छा है × तो अतिशयोक्ति न होगी।।

राजा अजित सिंह का बाग अधिक बड़ा नहीं है। लेकिन वह जिस दीवार से घिरा हुआ है। वह दीवार बहुत मजबूत बनी हुई है। बाग गरमी के दिनों भी बहुत शीतल रहता है वहाँ पर अनेक प्रकार के जलाशय हैं और कृतिम झरनों से बराबर पानी निकला करता है। इस प्रकार जलाशयों और झरनों के कारण वह बाग गरमियों में भी शीतल और विश्राम के लिए बहुत अच्छा रहता है। राजा अजित सिंह का यह बाग अपनी बहुत-सी अच्छाइयों के लिए प्रसिद्ध है। यहाँ पर उसकी कुछ बातों का जिक्र करना आवश्यक जान पड़ता है।

इस बाग में अनेक प्रकार के वृक्ष हैं और वे सभी फल देने वाले हैं। कुछ ऐसे वृक्ष भी हैं, जो देखने में बहुत बड़े हैं। परन्तु उनके फलों की कोई विशेष उपयोगिता नहीं है। छोटे वृक्षों में स्वर्ण चम्पक नाम के कुछ पेड़ हैं, जिसकी सुगन्धि बहुत तीव्र और असह्य होती है। यदि उसके फूलों को लेटने के पलंग पर रखकर सोया जाय तो उसकी तेज सुगन्ध से मस्तक में पीड़ा होने लगती है।

इस बाग में अनार के बहुत से वृक्ष हैं। उनके साथ-साथ 'सीताफल के भी अनेक वृक्ष यहाँ पर पाये जाते हैं। यहाँ पर बहुत-से वृक्ष केला के हैं। इन पेड़ों के बड़े-बड़े पत्तों के हिलने से शीतल वायु मिलती है। मोगरा, चमेली और फूलरानी के फूलों की सुगन्धि से बाग सदा सुहावना बना रहता है। फूल वाले वृक्षों में बारह मासा नाम के कुछ पेड़ यहाँ पाये जाते हैं। यह वृक्ष वर्ष के बारह महीनों में बराबर खिला करता है। इसीलिए इस वृक्ष को बारहमासा का पेड़ कहा जाता है। इन पेड़ों से जो फूल खिलते हैं, उनसे बाग हमेशा शोभायमान रहता है। यह बाग मुझे बहुत प्रिय मालूम हुआ और उसमें कुछ देर तक विश्राम करने से मुझे बड़ा सुख मिला।

इस बाग की अनेक चीजें सुन्दर, आकर्षक, शोभायमान और उपयोगी हैं। मन्दोर की राजधानी में खोज और अनुसंधान के लिए आया हुआ एक 'अँगरेज अपनी थकावट के समय इस बाग में पहुँचकर किस प्रकार शांति और सुख को अनुभव करता है, समझदार पाठक इसका अनुमान लगा सकेंगे। वह अपने अनुसंधान के कार्य में लगा हुआ है। उसके नेत्रों के सामने आम के बड़े बड़े वृक्ष खड़े हैं। पास ही तिन्दू का एक विशाल वृक्ष है। कहा जाता है कि परिहार राजपूतों के अंतिम राजा नाहरराव के सामने अपने इन्द्रजाल का प्रदर्शन करते हुए किसी एक ऐन्द्रजालिक ने इस वृक्ष के अस्तित्व को कायम किया था। यह भी कहा जाता है कि इस वृक्ष की शाखा से गिरने के कारण उस ऐन्द्रजालिक की मृत्यु हो गयी थी। × इस वृक्ष की लम्बी डालियों पर बन्दर निर्भीकता के साथ चढ़ते और उन पर कूदते एवम् विहार करते हैं। उस वृक्ष के पास जाकर मैंने देखा कि उसके नीचे दो राठौर राजपूत सोये हुए हैं और पास ही, उनके दोनों घोड़े बँधे हैं।

मन्दोर के पास जो पर्वत है, उसमें बहुत सी गुफायें हैं। उन गुफाओं में तपस्वी और संन्यासी लोग रहा करते हैं। उनके सम्बन्ध में मैंने लोगों से अनेक प्रकार की बातें सुनी। ये गुफायें

× बादशाह जहाँगीर ने अपनी आत्म कथा लिखी थी। उस पुस्तक में जहाँगीर की जीवनी थी। उसका अनुवाद विद्वान मेजर प्राइस साहब ने किया है। जिन लोगों ने उस ग्रंथ को पढ़ा है। वे जानते होंगे कि ऐन्द्रजालिक लोग अपने इन्द्रजाल से बड़े बड़े अद्भुत कार्य करके दिखालाते हैं और बात की बात में किसी पेड़ में फल पैदा करके लोगों को आश्चर्य चकित कर देते हैं।

अत्यन्त संकीर्ण और इतने छोटे स्थानों में बनी हुई है कि उनमें किसी प्रकार वायु नहीं पहुँच सकती। मुझे इन बातों को सुनकर बहुत आश्चर्य मालूम हुआ कि उनमें रहने वाले तपस्वी और संन्यासी लोग बिना वायु के किस प्रकार जीवित रहते है। सायंकाल हो जाने के कारण अपने मुकाम पर लौट आने का समय हो चुका था। इसलिए वहाँ से लौटने के पहले मैं उस स्थान पर फिर गया, जहाँ पर मारवाड़ के शूरवीरों की प्रतिमायें हैं। उन सब के सामने खड़े होकर मैंने श्रद्धापूर्वक उन प्रतिमाओं के दर्शन किये और फिर उनको प्रणाम करके मै अपने मुकाम पर लौट आया।

१३ नवम्बर—राजा मानसिंह ने अपने महल में आज भोजन करने के लिए मुझे आमंत्रित किया था। इसलिए अपनी नयी पोशाक में मैं राजपूत राजा का आतिथ्य प्राप्त करने के लिए गया। राजाने मुझसे एक अनुरोध किया था, वह अनुरोध कुछ अजीब-सा था। राजाने अपने महल में भोजन तैयार करने के लिए मेरे खानसामा को इसलिए बुलाया था कि मुझे देशी भोजन पसन्द नहीं आयेगा और उससे मेरा न तो पेट भरेगा और मैं न संतुष्ट हो सकूँगा। सींधिया ने कैम्प में यह जरूर कहता था कि महाराष्ट्रीय भोजन के साथ-साथ मै अपने देश का भी भोजन किया करता था। लेकिन राजा मानसिंह के यहाँ मुझे अपने देश के भोजन की जरूरत नहीं थी। इसलिए राजा मानसिंह के पास मैंने कहला भेजा कि आप के महल में मैं केवल जोधपुर का ही भोजन करूँगा और उससे मै पूर्णरूप से संतुष्ट हो सकूँगा।

इसके साथ ही मैंने यह जरूर किया कि अपने यहाँ की टेबुल कुर्सी और अपने पीने की शराब मैने राजा मानसिंह के महल में भेज दी। मेरे महल में पहुँचने पर राजा ने बड़े सम्मान के साथ मुझे ग्रहण किया और भोजन करने के लिए वह मुझे लेकर महल के भीतर की तरफ चला। भोजन-घर में पहुँचकर मैंने देखा कि पुलाव, माँस और मिष्ठान्न से बनी हुई खाने की बहुत-सी चीजें तैयार करायी गयी है। मेरे पहुँचने पर भोजन की वे सभी चीजें चाँदी के पात्रो में परोसी गयीं। उन चीजों को देखकर यह आभास होता था कि वे सभी स्वादिष्ट और खाने में बहुत अच्छी होंगी। शिखर के उत्तरी भाग में भोजन-घर बना हुआ था और उसका नाम मान महल रखा गया है। राज-दरबार की तरह इस मान महल में भी बहुत से स्तम्भ बने हुए है। मुझे मालूम हुआ कि शीतकाल के आने पर वहाँ से अस्सी मील दूर कमलमीर के दुर्ग का ऊपरी भाग दिखायी देता है।

१६ नवम्बर—आज का दिन राजा मानसिंह से भेंट करने के लिए पहले से ही निश्चित हो चुका था। राजा मानसिंह ने मेरे कैम्प के पास ही अपना कैम्प भी लगाया था। उसका खेमा बहुत लम्बा चौड़ा और लाल रंग का था। वह देखने में एक महल की तरह विशाल और बड़ा था। उसके चारों तरफ कपड़े की एक दीवार सी बनी हुई थी और उसके बीचो बीच राज-सिंहासन रखा था। उस राज-सिंहासन के ऊपर छत्र लगाया गया। दोपहर के बाद लगभग तीसरे पहर महल और दुर्ग में एक साथ जोर का कोलाहल मचा। नगाड़ों के बजने की जोरदार आवाजें कानों में आने लगीं। राज्य की तरफ से मुनादी की गयी थी कि "आज महाराज फिरंगी वकील से मुलाकात करने जायँगे।"

जब मुझे मालूम हुआ कि मुलाकात के लिए राजा अपने पूरे वैभव के साथ आ रहा है तो मैं भी अपने आदमियों के साथ राजा से भेंट करने के लिए तैयार हुआ और अपने घोड़े पर चढ़कर मैं आगे की तरफ बढ़ा। कुछ दूर मार्ग में जाकर मैंने राजा मानसिंह से मुलाकात की और कुशल समाचार उससे पूछकर मैं अपने मुकाम पर लौट आया।

इसके बाद अपने मुकाम पर राजा के आने पर मैंने अत्यन्त सम्मान के साथ उससे मुलाकात की। राजा के आने पर मेरे साथ के सैनिकों ने अपने हथियारों को नीचा करके उसके प्रति सम्मान प्रकट किया। यह देखकर राजा को बड़ी प्रसन्नता हुई। राजा मानसिंह ने एक घन्टे तक मेरे यहाँ बैठ कर बातें कीं। इसके बाद जब वह लौटकर जाने के लिए तैयार हुआ तो मैंने हीरे और रत्नों के आभूषण, सुनहले काम के वस्त्र, बहुमूल्य शाल और कितनी ही कीमती चीजें एवम् उन्नीस ढालें राजा को भेंट में दीं। इनके साथ-साथ इंगलैण्ड के बने हुए कुछ हथियार, एक दुरबीन और कुछ दूसरी चीजें भी मैंने उसको उपहार में दीं। भेंट की इन चीजों के साथ-साथ मैंने एक सजा हुआ हाथी और एक घोड़ा भी राजा को दिया। अपने यहाँ से विदा करते समय मैंने बड़े सम्मान के साथ उसको सलाम किया और उसने मुझसे हाथ मिलाया।

१७ नवम्बर—मारवाड़ से आज मेरे बिदा होने का दिन था। इसलिए मैं राजा मानसिंह के पास गया। इस अंतिम मुलाकात में राजा के साथ बहुत देर तक मेरी बातें होती रहीं। बातचीत करते हुए मैंने राजा को विश्वास दिलाया कि आप अपने पुरुषार्थ, विक्रम और चरित्र वल से अपनी समस्त कठिनाइयों पर विजय प्राप्त करेंगे। राजा मानसिंह ने अपनी जिन परिस्थितियों का जिक्र मुझसे किया, उनका उत्तर देते हुए मैंने कहा कि जिन लोगों ने आप के और आपके राज्य के साथ विश्वासघात किया है और आपके उन्माद के दिनों में अनैतिक लाभ उठाया है, उनको दण्ड देना पड़ेगा। आपके जीवन का यह एक संघर्ष है। उसके लिए सदा आपको तैयार रहना चाहिए। यह आप का कर्त्तव्य है, जिसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। आप ने यही किया भी है और आवश्यकता के अनुसार भविष्य में भी आप को यही करना पड़ेगा। शासक में यह सभी गुण होने की जरूरत है। शासक साधु और महात्मा नहीं होता। सफल शासक के लिए इस प्रकार के उन सभी गुणों की जरूरत होती है, जो उसके शासन को कायम रख सके। आप में इस प्रकार की योग्यता और प्रतिभा है, इस बात को मैं भली प्रकार जानता हूँ।

मारवाड़ की अतीत और वर्तमान परिस्थितियों के सम्बन्ध में मैंने राजा मानसिंह से सभी प्रकार की बातें कीं और अपनी उन बातों में मैंने उससे कहा: जिसका हृदय निर्बल होता है, वह शासन नहीं कर सकता और ऐसे व्यक्ति के शासन में अनधिकारी, अयोग्य तथा गैर-जिम्मेदार लोग नाजायज लाभ उठाते हैं। आपके शासन काल में ऐसा समय बीत चुका है और उस समय अनेक लोगों ने ऐसा ही किया है। आपने अपनी इन परिस्थितियों को पूर्ण रूप से समझा है और विश्वास घातियों, अत्याचारियों और विरोधियों को उचित दण्ड दिया है। आप के लिए ऐसा करना जरूरी था। मेरा विश्वास है कि वह समय अब आ गया है, जब आप मारवाड़ राज्य में सफलता पूर्वक शासन करेंगे और आपके शासन में अँगरेजी सरकार आपकी सहायता करेगी।

बिदा होने के समय राजा मानसिंह ने अपने पूर्वजों की एक तलवार, एक कटार और एक ढाल मुझे दी। वह तलवार अगणित शत्रुओं का अब तक संहार कर चुकी थी और भविष्य में भी वह ऐसा ही करती रहेगी।

बहुत देर तक बातें करने के बाद और राजा के दिये हुए उपहार को स्वीकार करने के बाद मैंने राजा मानसिंह और मारवाड़ की राजधानी जोधपुर को सम्मान पूर्वक नमस्कार किया। इसके बाद राजा की तरफ देखता हुआ मैं उससे बिदा हुआ। रवाना होने के पहले पत्र-व्यवहार करने के लिए मैंने राजा से अनुरोध किया था। वह आरम्भ हुआ। लेकिन थोड़े समय के बाद बन्द हो गया।

———

इक्यासीवाँ परिच्छेद

नन्दोला का रास्ता-शेखावती तालाब-नन्दोला ग्राम और उसके स्मारक-इन्दुरा ग्राम का कोट-पाँचकुल्ला नामक स्थान-पठानों के आक्रमण-पीपल नगर-जैनियों की आबादी-व्यवसायी ओसवाल और महेश्वरी वैश्य-पीपल नगर के छींट के कपड़े-पीपल नगर में निमाज के सामन्त का अधिकार-पीपल नगर का प्रसिद्ध स्मारक-मराठों का आक्रमण-प्रमार वंशी गन्धर्व सेन-लक्ष्मी देवी का मन्दिर-शिला लेख में ऐतिहासिक विवरण-साँपू सरोवर और उसके सम्बन्ध की जनश्रुति-साँप का धन-लखफुलानी का कुण्ड-भुरुण्ड ग्राम-कुचामन का सामन्त गुमान सिंह-स्वतन्त्रता की रक्षा में बदन सिंह का बलिदान-राजा विजय सिंह और बदन सिंह-राजा विजय सिंह की सहायता-मराठों का आक्रमण-बदन सिंह का स्मारक-मैरता के दृश्य-खुशामद का परिणाम-मैरता का प्रतिष्ठाता-जयमल का अपराध-मैरता के स्मारक-सैयद-बन्धुओं का अजित सिंह के प्रति षड़यन्त्र-अजित सिंह की हत्या-हत्याकारी बख्त सिंह-अभय सिंह और बख्त सिंह-रामसिंह का अभिषेक-रामसिंह की अशिष्ठता-सामन्तों के साथ विरोध और उसका परिणाम-रामसिंह और बख्त सिंह का युद्ध-मराठों की सहायता-साला और बहनोई-ईश्वरी सिंह का षणयन्त्र-विजय सिंह और ईश्वरी सिंह-सेनापति सींधिया की मृत्यु-हत्याकारी राजपूत और अफगानी सैनिक को पकड़ने के लिए मराठा सैनिकों की दौड़-राजपूत सैनिक की बुद्धिमानी-अफगानी सैनिक मारा गया-माधव जी सींधिया मराठा सेना का सेनापति-अनाश्रित रामसिंह-उसके जीवन के अन्तिम दिन ।

१६ नवम्बर—यहाँ से छै मील की दूरी पर बसे हुए नन्दोला नामक स्थान के लिए हम लोग रवाना हुए । राजधानी छोड़ते ही हमको दो मील का रास्ता भयानक बालू के भरा हुआ मिला । इस रास्ते में चलने वालों को जो असुविधा और कठिनाई मालूम होती है, उसे भली प्रकार हम लोगों ने अनुभव की । राजधानी से दो मील तक निकल आने के बाद का रास्ता बदल गया । उसमें लाल रंग के पत्थर इस प्रकार उभरे हुए थे कि चलने में यात्रियों को बालुकामय भूमि की अपेक्षा बहुत कुछ आराम मिलता था ।

लगभग आधा रास्ता हमने पानी और कीचड़ से भरा हुआ पार किया । यह पानी उस जलाशय से आता था, जिसको मारवाड़ के राजसिंहासन के अभिलाषी धौंकल सिंह की माता शिखावती ने बनवाता था । यह एक छोटा-सा सरोवर था । रानी शिखावती के नाम से उसका नाम शेखावती तालाब रखा गया था । रानी शिखावती ने शेखावती तालाब के पास एक धर्मशाला बनवाया था और उसमें उसने हनुमान की मूर्ति की प्रतिष्ठा कराई थी । वहाँ पर रानी के नाम का एक पत्थर लगा हुआ है ।

झालामन्द से जोधपुर राजधानी जाते समय हमने जोगिनी नाम की नदी को पार किया था । वह नदी मन्दोर के करीब नागदा नदी के साथ मिलकर लूनी नदी में गिरती है । हम जहाँ

पर पहुँचे थे, वहाँ पर हमने फिर नदी को पार किया। नदी के किनारे से कुछ दूरी पर कुछ कुए बने हुए हैं। उन्हीं कुओं का पानी उस ग्राम के रहने वाले अपने व्यवहार में लाते हैं। वहाँ पर हमें दो कुएँ देखने को मिले। उनमें काफी जल है। लेकिन साफ नहीं है। उन कुओं की गहराई पृथ्वी की सतह से लगभग चार फुट है। नन्दोला ग्राम में एक सौ पच्चीस घरों की आबादी है और यहाँ पर आहोर के सामन्त का अधिकार है। यहाँ पर एक सूखा तालाब भी है। उसमें जल बिलकुल नहीं है। उसके करीब कुछ स्मारक बने हुए हैं। मैंने उन स्मारकों के पास जाकर देखा। जिसका जो स्मारक था, उस पर उसका नाम लिखा हुआ है। उन नामों से जाहिर होता है कि ये स्मारक प्रसिद्ध व्यक्तियों के नहीं हैं। फिर भी मैं उन स्मारकों को बड़ी देर तक देखता रहा।

नन्दोला से लगभग बारह मील की दूरी पर बोसलपुर नामक ग्राम है। यह रास्ता भी गहरी बालू से भरा हुआ है। एक ऊँची भूमि के ऊपर बोसलपुर ग्राम की बस्ती है। उस ग्राम में जितने भी घर हैं, करीब-करीब एक से बने हुए है। घरों की दीवारों पर भूसी से मिली हुई मिट्टी ऐसे ढंग से लगी हुई है, जो देखने में बड़ी अच्छी मालूम होती है।

इन्दुरा ग्राम की तरह बोसलपुर भी मजबूत और काँटेदार कोट से घिरा हुआ है। यहाँ की बहुत-सी बातों को देखने से मालूम होता है कि यह ग्राम पहले कभी एक अच्छा नगर था। कहा जाता है कि भूकम्प के आने से यह ग्राम बिलकुल नष्ट हो गया था। उसके बाद यहाँ की हालत सुधर नहीं सकी। इसीलिए वह आज एक साधारण ग्राम के रूप में दिखायी देती है। इस ग्राम में इस समय भी गिरी हुई दशा में जो फाटक देखने को मिलता है, उससे भी जाहिर होता है कि यह ग्राम पहले किसी समय एक कस्बा अथवा नगर की मर्यादा में था। इसके समर्थन में और भी अनेक प्रमाण यहाँ पर देखने को मिलते हैं। इस ग्राम का कोट यद्यपि इन दिनों में बहुत कुछ नष्ट हो गया है परन्तु फिर वह इस ग्राम की प्राचीन विशालता का प्रमाण देता है। यहाँ पर खुदा हुआ कोई पत्थर हमको नहीं मिला। इस ग्राम के निवासी अपने काम के लिए निकटवर्ती एक तालाब से पानी लाते है।

२१ नवम्बर—बोसल से दस मील की दूरी पर पाँचकुलला अथवा बिचकुलला नामक एक ग्राम है। वहाँ पहुँच कर जुरी नामक नदी की दूसरी तरफ हम लोगों ने मुकाम किया। यहाँ की मिट्टी हमें बड़ी अच्छी मालूम हुई। वह बालू की तरह लाल रंग की है। नदी के किनारे के खेतों में जो अनाज पैदा होता है, उसमें गेहूँ और जौ की पैदावार अच्छी होती है। यहाँ की जमीन में बबूल और नीम के एक-दो वृक्ष भी दिखायी पड़े।

इस ग्राम में आजकल सौ घरों से अधिक की बस्ती नहीं है। लेकिन पहले यह ग्राम बहुत सम्पन्न अवस्था में था। यहाँ के पुराने आदमी इस ग्राम को समृद्धि अवस्था की तारीफ करते हुए बहुत-सी बातों का वर्णन करते हैं। मैंने उनको ध्यानपूर्वक सुना। यहाँ पर मुझे शिला लेख का एक टुकड़ा मिला। उसमें सिर्फ 'सोनङ्ग का लड़का १२२४ सम्बत्' लिखा है। लुटेरे पठानों ने आक्रमण करके इस ग्राम को सभी प्रकार बरबाद कर दिया है। एक भट्टी सामन्त को जीविका के रूप में यह ग्राम राज्य की तरफ से दिया गया है। नदी के किनारे से कुछ फासिले पर जो कुएँ बने हुए हैं, अपने काम के लिए इस ग्राम के रहने वाले उन्हीं से जल लाते हैं।

२२ नवम्बर—यहाँ से आठ मील की दूरी पर पीपल नगर बसा हुआ है। बालू से भरी हुई वहाँ की जमीन काली है। वहाँ के लोग उसे धामुनी कहते हैं। पीपल नगर में लगभग डेढ़ सौ मकानों की आबादी है। यहाँ पर जो लोग रहते हैं, उनके एक तिहाई लोग जैन सम्प्रदाय के

मानने वाले हैं। इस इलाके में प्रमुख रूप से ओसवाल जाति के लोग व्यवसाय करते हैं। यहाँ पर दो सौ महेश्वरी वैश्य भी रहते हैं और वे शैव धर्मावलम्बी हैं।

यहाँ का व्यवसाय बहुत अच्छा है। छींट के कपड़े पीपल नगर के बने हुए बहुत पसन्द किये जाते हैं और वह बहुत काफी तैयार भी होता है। इसका अनुमान केवल इसी बात पर किया जा सकता है कि तीन सौ से अधिक व्यवसायी केवल यहाँ की छींट का ही व्यवसाय करते हैं। पीपल नगर का व्यवसाय छींट के कपड़े तक ही सीमित नहीं है। यहाँ पर और भी कई चीजों का व्यवसाय होता है।

निमाज के सामन्त की मृत्यु का वर्णन पहले किया जा चुका है। यह पीपल नगर उसी के इलाके का एक हिस्सा है। निमाज के सामन्त के एक प्रतिष्ठित पूर्वज का एक स्मारक यहां बना हुआ था। आक्रमणकारी मराठों ने उसका एक बड़ा हिस्सा नष्ट कर दिया है। मारवाड़ के इतिहास को पढ़ने से मालूम होता है कि ईसा मसीह के बहुत पहले प्रमार वंश के राजा गन्धर्व सेन ने पीपल नगर को बसाया था। यहाँ पर लक्ष्मी देवी का एक मन्दिर है। उसमें मुझे एक शिला लेख मिला। उसमें गहिलोत वंश के रावल विजय सिंह और देलजी राजपूत के नाम खुदे हुए हैं। यह शिला लेख मेवाड़ के इतिहास की कुछ बातों का समर्थन करता है। गहिलोत वंशी राजपूत चौबीस भागों में विभाजित है। उस विभाजन के अनुसार उनकी चौबीस शाखायें मानी जाती हैं और उनमें पिपलिया नाम की एक शाखा है। पिपलिया लोगों के अधिकार करने के बाद इस स्थान का नाम पीपल नगर पड़ा है। इस शिला लेख से भी इसी बात का समर्थन होता है।

पीपल नगर में बहुत-से कुएँ हैं और उनकी गहराई साठ फुट से लेकर अस्सी फुट तक है। यहाँ पर एक बड़ा तालब है और उसका नाम है साँपू सरोवर। इस सरोवर का पानी बहुत साफ है। इस सरोवर के सम्बन्ध में एक जनश्रुति मुझे सुनने को मिली है। कहा जाता है कि पाली वंश का पीपा नामक एक ब्राह्मण था। वह इस सरोवर के पास रहने वाले एक सर्प को रोजाना दूध पिलाया करता था। वह सर्प तक्षक जातीय था। वह साँप उस ब्राह्मण के दूध को पीकर रोजाना सोने के दो टुकड़े उसको दिया करता था।

पालीवाल ब्राह्मण इससे बहुत खुश रहा करता था। कुछ दिनों के बाद अपने नगर से बाहर जाने के लिए उसे विवश होना पड़ा। उस दशा में उस ब्राह्मण ने अपने लड़के को सब बातें समझाई और अपने स्थान पर उस साँप को दूध पिलाने का कार्य सौंप कर वह ब्राह्मण अपने नगर से बाहर चला गया। जाने के पहले ब्राह्मण ने दूध पिलाने के सम्बन्ध में सभी बातें भली प्रकार समझाई थीं। लेकिन उसके चले जाने पर उसका लड़का सोचने लगा कि अगर मैं इस साँप को मार डालूँ तो इसके पास जितना सोना है, सब का सब मुझे एक साथ मिल जायगा।

ब्राह्मण के लड़के ने बहुत कुछ सोच-समझ कर उस साँप के पास का सम्पूर्ण सोना एक साथ लेने की कोशिश की। अपने पिता के बताने के अनुसार वह दूध लेकर साँप को पिलाने गया और वह साँप जैसे ही पास आकर दूध पीने लगा, ब्राह्मण के लड़के ने बड़ी तेजी के साथ उस के सिर पर एक लाठी मारी। उस साँप के चोट तो लगी, लेकिन वह मरा नहीं। साँप तेजी के साथ भाग कर अपने बिल में घुस गया। यह देख कर ब्राह्मण का लड़का चिन्तित हुआ और वहाँ से लौट कर, घर आने पर उसने अपनी माता से वह घटना बतायी। उसे सुन कर उसकी माता भी चिन्तित हो उठी।

ब्राह्मणी यह सोचकर घबराने लगी कि हमारे लड़के से चोट खाने के बाद भी वह साँप मरा नहीं है। इस लिए वह साँप बदला लेगा और इससे मेरे लड़के के लिए एक खतरा पैदा हो

गया। उसने बहुत पहले न जाने कितने लोगों से सुन रखा था कि साँप अगर चोट खाकर बच जाय तो वह बदला लेता है। इस विश्वास के अनुसार उसने सोच-समझ कर यह निश्चय किया कि कल सवेरा होते ही अपने लड़के को उसके पिता के पास भेज दूँगी। इसके लिए उसने एक बैल और साथ में जाने वाले एक आदमी का प्रबन्ध कर लिया। चिंता और भय के मारे ब्राह्मणी को रात में नींद नहीं आयी। प्रातःकाल होते ही वह अपने लड़के को जगाने के लिए उस स्थान पर गयी, जहाँ पर उसका लड़का रात को सोया था।

ब्राह्मणी के मनोभावों में भय और चिंता तो थी ही। उसने वहाँ पहुँचते ही देखा कि वहाँ पर उसका लड़का नहीं है और उसके स्थान पर साँप सो रहा है। यह देखते ही उसकी घबराहट का ठिकाना न रहा। उसी समय नागौर गया हुआ उसका पति लौट कर आ गया। उसने अपनी स्त्री से पूरी घटना सुनी। उसने बुद्धिमानी से काम लिया और साँप को मारने के बजाय पहले की तरह उसने दूध पिलाना आरम्भ किया। ब्राह्मण की इस भक्ति से प्रसन्न होकर साँप अपने अधिकार का समस्त सोना निकाल कर ब्राह्मण के पास लाया और उसे दिखाकर साँप ने कहा : यह समस्त सोना आज मैं तुमको सौंपता हूँ। तुम आज से इसके मालिक हो। लेकिन इसे पाकर तुम कोई ऐसा कार्य करना, जिससे मेरा कोई स्मारक बन सके।

साँप के दिये हुए समस्त सोने को लेकर पीपा ब्राह्मण ने अपने अधिकार में किया और उस सम्पत्ति से साँप के स्मारक में उसने 'साँपू सरोवर' नामक एक बड़ा तालाब बनवाया। इस सरोवर के सम्बन्ध में पीपल नगर के लोग इस प्रकार की कथा कहा करते हैं। उन्हीं के द्वारा मैंने भी इस फैली हुई जनश्रुति को सुना।

पीपल नगर में एक कुण्ड है। लक्षफुलानी उस कुण्ड का नाम है। अत्यन्त प्राचीन काल में मारवाड़ राज्य के अन्तर्गत फुलैरा नामक एक स्थान था और उसमें लक्षफुलानी का अधिकार था। लोगों का कहना है कि बहुत पहले लक्षफुलानी को बड़ी ख्याति मिली थी और समुद्र के करीब तक उसने अपने राज्य का विस्तार किया था। लूनी नदी से सिन्धु तक यात्रा करने के दिनों में मैंने बहुत-से स्थानों पर लक्षफुलानी का नाम सुना है। ×

२३ नवम्बर—पीपल नगर से माद्रीय नामक स्थान दस मील की दूरी पर है। वहाँ जाने के लिए जो रास्ता है, वह सभी प्रकार अच्छा है। लेकिन सम्पूर्ण रास्ता सूनसान रहता है। यह ग्राम औसत दर्जे का है। न तो वह बहुत अच्छा है और न बहुत खराब है। इस ग्राम में एक तालाब है। उसका जल अच्छा है। वहाँ के निवासी उस तालाब के जल को व्यवहार में लाते हैं।

२४ नवम्बर—आठ मील के फासिले पर भुरुण्डा नामक गाँव बसा हुआ था। हमारे आगे का सम्पूर्ण रास्ता धीरे-धीरे बदलता जा रहा था। इसके पहले बालू के जिस मार्ग में हमें चलना पड़ा था, वह अब बिल्कुल बदल गया था। आगे का मार्ग लगातार रेतीला और पथरीला हमें मिल रहा है। मार्ग में हमें वे सभी वृक्ष मिलते रहें, जो यहाँ पर पाये जाते हैं। यह मार्ग ऊँचाई पर

× लक्षफुलानी के सम्बन्ध में एक जनश्रुति बहुत पहले से चली आ रही है उस जनश्रुति को लोग कविता में कहा करते हैं जो इस प्रकार है :

कुशपगढ़ सुरजपुरा, बासुकगढ़ और तक्ष।
अन्धानिगढ़ जगरपुरा, जो फुलगढ़ई लक्ष।

इस कविता से जाहिर है कि तक्षक वंशीय लक्ष के अधिकार में कविता में वर्णित छै नगर थे।

होने के कारण जन साधारण में गासुरियापास के नाम से प्रसिद्ध है। और यहाँ पर एकाएक किसी शत्रु के आक्रमण का मुकाबिला करने एवम् वाणिज्य कर वसूल करने के लिए राजा की एक सेना रहा करती है।

मैरता वंश का शक्तिशाली कुचामन का सामन्त गोपाल सिंह भुरुण्डा नामक स्थान का अधिकारी है। इस गाँव में डेढ़ सौ घरों की आबादी है। अन्यान्य गाँव की तरह यहाँ के कृषक भी जाट वंश के लोग हैं। यहां पर बने हुए स्मारकों को मैंने देखा। उन स्मारकों में एक पर बदन सिंह का नाम खुदा हुआ है। वह कुचामन के शासक का सरदार था। मैरता के युद्ध में फ्रान्सीसी सेनापति डी बाइन के साथ लड़ता हुआ वह मारा गया था। स्वतंत्रता की रक्षा करने के लिए जिस प्रकार बदन सिंह ने अपने प्राणों का उत्सर्ग किया था, उसकी स्मृति को कायम रखने के लिए यह स्मारक बनवाया गया है, जिसे देखते ही उसके जीवन का वीरोचित वलिदान मेरे नेत्रों के सामने एकाएक चित्र बनकर दिखायी देने लगा।

मारवाड़ के राजा विजय सिंह ने बदन सिंह से भुरुण्ड का इलाका छीन लिया था। किस लिए छीन लिया था, इसका कारण नहीं मालूम हो सका। उस दशा में बदन सिंह जयपुर राज्य चला गया और वहाँ पहुँच कर उसने वहाँ के राजा को शरण ली। जयपुर के राजा ने उसको अपने यहाँ आश्रय दिया और राजपूत राजाओं में प्रचचित प्रथा के अनुसार उसने बदन सिंह को सम्मान पूर्ण स्थान देकर नियुक्त किया। जयपुर में बदन सिंह को कुछ नयापन नहीं मालूम हुआ। वह सम्मानपूर्वक अपने जीवन के दिन व्यतीत करने लगा।

बदन सिंह स्वाभिमानी राजपूत था। उसने जयपुर राज्य में रहकर थोड़े दिनों में अपनी शक्तियाँ सम्पन्न बना लीं। इन्हीं दिनों में उसकी जन्मभूमि पर मराठों का आक्रमण हुआ। बदन सिंह को उसका समाचार मिला। मराठों के इस आक्रमण को सुनकर वह चिंतित और पीड़ित हो उठा। राजा विजय सिंह ने बदन सिंह को उसके अधिकारों से वंचित किया था और वह अपनी असहाय अवस्था में जयपुर राज्य में आया था। इसलिए राजा विजय सिंह के प्रति उसकी भावनायें अच्छी न थीं। लेकिन जब उसने सुना कि मराठों ने एक विशाल सेना लेकर राजा विजय सिंह के विरुद्ध आक्रमण किया है तो वह विजय सिंह की शत्रुता का भाव भूल गया। उसके मन में अपने पूर्वजों की मर्यादा का भाव उत्पन्न हुआ। किसी भी दशा में इस विपद के समय उसने राजा विजय सिंह की सहायता करने का निश्चय किया।

बदन सिंह ने अपने साथ चलने के लिए एक सौ पचास सैनिक सवारों को तैयार किया और उनको लेकर वह अपनी जन्मभूमि एवम् राजा विजयसिंह की स्वतंत्रता की रक्षा करने के लिए जयपुर से रवाना हुआ। संयोगवश वह अपने पूर्वजों के प्रदेश में पहुँच न सका और मार्ग में ही मराठा सेना के साथ उसका मुकाबिला हो गया। मराठों की विशाल सेना के सामने बदन सिंह के के डेढ़ सौ सवार सैनिकों की कितनी हस्ती थी। परन्तु स्वाभिमानी बदन सिंह ने इसकी कुछ भी परवा न की और उसने साहसपूर्वक मराठों के साथ मार्ग में ही बिना किसी तैयारी के युद्ध आरम्भ कर दिया।

राजपूत सैनिकों की बहुत थोड़ी संख्या थी। फिर भी वे सब के सब अपने हाथों में नंगी तलवारें लिए हुए शत्रु-सेना में घुसे और कुछ समय तक उन्होने भयानक मारकाट की। लेकिन मराठा सेना के द्वारा उनका संहार हुआ। बदन सिंह के शरीर में कितने ही घाव हो गये थे। लेकिन वह किसी प्रकार अपनी जन्मभूमि में पहुँच गया। राजा विजय सिंह को इस प्रकार बदन

सिंह का आना और शत्रुओं के साथ उसका युद्ध करना मालूम हुआ तो वह बहुत प्रसन्न हुआ और उसने भूरुण्डा का इलाका बदन सिंह के वंशवालों को दे दिया। उसने इस बात का भी आदेश कर दिया कि आवश्यकता पड़ने पर इस प्रदेश की रक्षा बदन सिंह के वंश के लोग ही करेंगे। भूरुण्डा की वार्षिक आमदनी सात हजार रुपये है।

बदन सिंह के स्मारक के पास मैंने एक दूसरा स्मारक देखा। उसमें प्रताप का नाम लिखा हुआ था। प्रताप एक अच्छा शूरमा राजपूत था और अपने प्रदेश की स्वाधीनता के लिए उसने मुगल बादशाह औरंगजेब की सेना के साथ युद्ध किया था। मुगलों की सेना बहुत बड़ी थी। इसलिए उसके मुकाबिले में राजपूतों की पराजय हुई और युद्ध करता हुआ प्रताप मारा गया।

२५ नवम्बर—यहां से दस मील दूरी पर इन्दुवर नामक एक ग्राम है। वहाँ पर दो सौ घरों की आबादी है। उस गाँव के सभी कृषक जाट वंश के हैं। मैंने अभी तक इन जाटों के सम्बन्ध में बहुत कम लिखा है। जाट लोग स्वाभाविक रूप से परिश्रमी होते हैं। उनको स्वतन्त्रता प्रिय है। उनके शरीर मजबूत और बलवान होते हैं। जाट लोग कृषि कार्य को अधिक महत्व देते हैं। उनके शरीर के रङ्ग प्रायः काले होते हैं।

मारवाड़ के राजा ने सिंध के भूतपूर्व अधिकारी को उसकी जीविका के लिए यह इन्दुवर ग्राम दिया था। सिंध का वह अधिकारी कालोरा जाति का है और वह अपने को पारसी बतलाता है। बलोचिस्तान के नूमरी लोगों के साथ मिल जाने से उसके वंशवालों की संख्या अधिक हो गयी है। नूमरी लोग अपने आपको अफगानी कहते हैं। लेकिन वे लोग मध्य एशिया के रहने वाले जिट लोगों में से हैं।

२६ नवम्बर—यहाँ से आठ मील की दूरी पर मैरता नामक स्थान है। एक चौड़ा मैदान पार करके हम लोग मैरता में पहुँचे। वहाँ से दक्षिण की तरफ लगभग पच्चीस मील की दूरी पर अरावली पर्वत के शिखर दिखायी पड़ते हैं। पश्चिम की तरफ बहुत ऊँची-नीची भूमि दूर तक चली गयी है। यहाँ की भूमि बहुत उपजाऊ है। लेकिन जल गहराई में होने के कारण उससे खेती के कार्य को कोई फायदा नहीं पहुँचता। जो खेत बस्ती के पास हैं, उनमें ज्वार, मक्का और तिल अधिक पैदा होता है।

मैरता एक ऊंची पर भूमि पर बसा हुआ है। इसलिए देखने में वह रमणीक मालूम होता है। औरङ्गजेब बादशाह ने यहाँ के एक विशाल हिन्दू मन्दिर को नष्ट करके उस पर मसजिद बनवाई थी। वह मसजिद यहां के अन्य सभी हिन्दू मन्दिरों से ऊँची है। बादशाह औरङ्गजेब ने यहाँ पर जो मसजिद बनवाई है, उसमें फारसी और हिन्दुस्तानी में लिखवा कर पत्थर लगवाये गये हैं और उनके द्वारा इस बात की हिदायत दी गयी है कि कोई भी इस मसजिद में किसी प्रकार का अत्याचार न करे। लेकिन इस प्रकार के पत्थर किसी हिन्दू मन्दिर में लगे हुए हमें देखने को नहीं मिले।

यहाँ के रहने वालों का कहना है कि मारवाड़ राज्य के लोभी धौकल सिंह ने अत्याचारी पठानों की सहायता की थी और अमीर खाँ को प्रसन्न करने के लिए ही उसने इस प्रकार के पत्थर उस मसजिद में लगवाये थे? धौंकल सिंह को अपनी इस खुशामद का कोई फल न मिला। अमीर खाँ उसकी कमजोरी को समझता था। समय आने पर उसने धौंकल सिंह को बरबाद किया और भयानक रूप से उसकी सेना का उसने संहार किया। एक मतलबी और सिद्धान्तहीन मनुष्य का जिस प्रकार सर्वनाश होता है, ठीक उसी तौर पर धौकल सिंह का विनाश हुआ। इस प्रकार की घटनायें पहले वर्णन की जा चुकी है।

मन्दोर के राव दूधा ने मैरता को बसाया था और उसके लड़के मालदेव ने मालकोट नाम का दुर्ग बनवाया था। × मैरता प्रदेश में तीन सौ साठ ग्राम शामिल थे। उन सबको मिला कर सम्पूर्ण मैरता प्रदेश मालदेव से उसके लड़के जयमल को मिला था। राठौर राजपूतों की एक प्रसिद्ध शाखा मैरता प्रदेश के नाम से प्रसिद्ध हुई और उस शाखा के राजपूत मैरतीया राठौरों के नाम से विख्यात हुए।

बादशाह शेरशाह के आक्रमण करने पर जयमल ने उसके साथ युद्ध नहीं किया। उसके इस अपराध पर उसके पिता मालदेव ने उसको मन्दोर से निकाल दिया था। उस दशा में जयमल ने मेवाड़ के राणा के यहाँ जाकर शरण ली। राणा ने उसको बड़े सम्मान के साथ अपने यहाँ आश्रय दिया और अपने राज्य का एक प्रदेश बिदनोर उसके जीवन निर्वाह के लिए दे दिया। जयमल मन्दोर से निकाला गया था। लेकिन राणा से उसको बिदनोर का प्रदेश मिला, वह मन्दोर की अपेक्षा अधिक उपजाऊ और अनेक बातों में अच्छा था। राणा के इस उपकार का बदला जिस प्रकार जयमल ने दिया, उसका वर्णन पहले किया जा चुका है, वह घटना संक्षेप में इस प्रकार है :

बादशाह अकबर ने अपनी शक्तिशाली और विशाल सेना लेकर चित्तौर पर आक्रमण किया था। उस समय जयमल ने उसके साथ भयानक युद्ध किया था। उस युद्ध में जयमल मारा गया था। लेकिन उसका शौर्य देखकर शत्रु ने आश्चर्य किया था और बादशाह की तरफ से शूरबीर जयमल का स्मारक बनवाया था। इतिहासकार अबुलफजल, हर्बर्ट और बर्नियर आदि विद्वान यात्रियों ने अपने ग्रंथों में जयमल की बहुत प्रशंसा लिखी है।

लार्ड हेस्टिंग्जा उसका बड़ा प्रशंसक था। उसने जयमल की बीरता की बहुत सराहना की थी और जयमल के वंशज, बिदनोर के वर्तमान सामन्त से जयमल की बहादुरी के सम्बन्ध में बहुत-कुछ कहा था। सचमुच जयमल इसी योग्य था। मेवाड़ के राणा ने उसको अपने यहाँ आश्रय देते हुए जो उसके साथ उपकार किया था, उसका बदला देते हुए जयमल राणा से उद्धार हुआ। लेकिन जिस चित्तौर के लिए युद्ध करते हुए जयमल वलिदान हुआ था, चित्तौर उससे कभी भी उऋण न हो सकेगा।

मैरता नगर में बहुत से सुदृढ़ बुर्ज बने हुए हैं और सम्पूर्ण नगर मजबूत पत्थरों के कोट से घिरा हुआ है। उसका पश्चिमी भाग मिट्टी से और पूर्व की तरफ का सम्पूर्ण हिस्सा मजबूत पत्थरों से बनाया गया है। इस नगर के अधिकांश भीतरी हिस्से टूटे-फूटे हैं। इस नगर में बीस हजार मनुष्यों के रहने के लिए घर हैं। यहाँ पर धनिकों के पक्के और मजबूत मकानों और महलों के साथ-साथ गरीबों के कच्चे मकान और दरिद्रों की झोपड़ियां भी हैं। नगर के दक्षिणी पश्चिमी भाग में दुर्ग बना हुआ है। उसकी लम्बाई दो मील से अधिक है। दुर्ग के पूर्व और पश्चिम तरफ छोटे-छोटे तालाब हैं। नगर के भीतर बहुत से कुए हैं। लेकिन उनमें जल किसी का अच्छा

× मालदेव के सिवा राव दूधा के तीन लड़के और थे। पहले लड़के का नाम रायमल और दूसरे का नाम बीरसिंह था जिसने मालवा में अजमेरा नामक राज्य कायम किया था। वह राज्य अब तक उसके वंशजों के अधिकार में है। राव दूधा के तीसरे लड़के का नाम रत्नसिंह था! मीराबाई का पिता था और मीराबाई मेवाड़ राज्य के प्रसिद्ध राणा कुम्भा को ब्याही थी। इस प्रकार राव दूधा के मालदेव को मिला कर चार लड़के थे।

नहीं है। मेरता के आस-पास दूधसार, वाइजपा, दुराणी और धनगोलिया इत्यादि नाम के कई एक बड़े-बड़े जलाशय हैं।

मैरता के मैदानों में बहुत-से स्मारक बने हुए हैं। जिन शूरवीर राजपूतों ने मराठों के आक्रमण करने पर अपनी स्वाधीनता की रक्षा करते हुए युद्ध किया था और अपने प्राणों की बलि दी थी, उस सब के इस विस्तृत मैदान में स्मारक बने हुए हैं। किन परिस्थितियों में राठौर राजपूतों की एकता नष्ट हुई थी, उनकी किन परिस्थितियों में मराठों के आक्रमण हुए और आक्रमणकारी शत्रुओं ने मारवाड़ में प्रवेश किया एवम् किन परिस्थितियों में मारवाड़ी राजपूतों की शक्तियां निर्बल पड़ीं, इतिहास की इन रोमांचकारी घटनाओं के स्मरण के साथ-साथ इन स्मारकों के दर्शन करना उचित मालूम होता है।

राजा अजित सिंह के मारे जाने का वर्णन संक्षेप में पहले लिखा जा चुका है। दिल्ली में सैयद बन्धुओं ने बादशाह फर्रुखसियर को सिंहासन से उतार कर दूसरों को उस पर बिठाने का जो एक नाटक शुरू किया था, उन्हीं दिनों में सैयद बन्धुओं की कूट नीति के फलस्वरूप राजा अजित सिंह अपने ही एक लड़के के द्वारा मारा गया था। अजित सिंह मुगल दरबार में अपने लड़के अभय सिंह को छोड़ कर अपनी लड़की के साथ राज्य की तरफ आ रहा था। मुगल दरबार में सैयद बन्धुओं के कारण एक बड़ा उथल-पुथल मचा हुआ था। उस दरबार में सैयद बन्धुओं का प्रभाव था और वे मुगल सिंहासन पर उसी को बिठाने के पक्ष में थे, जो सैयद बन्धुओं की कठपुतली बनकर काम करना चाहता था। जो ऐसा नहीं कर सकता था, वह अधिकारी होते हुए भी दिल्ली के मुगल सिंहासन पर नहीं बैठ सकता था।

उस दरबार में सैयद बन्धुओं का इतना अधिक प्रभाव था कि कोई भी उनका विरोध नहीं कर सकता था। साम्राज्य के सभी नवाब और राजा उनकी हाँ में हाँ मिलाते थे। परन्तु राजा अजित सिंह के सामने जब इस प्रकार का अनुचित और अयोग्य मसला पेश हुआ तो उसने बड़े साहस के साथ समर्थन करने से इनकार किया। सैयद बन्धुओं ने जब अजित सिंह का इस प्रकार विरोध देखा तो वे उसी समय से उसके शत्रु बन गये और उसके इस विरोध का निष्ठुर बदला देने की उन्होंने तैयारी की। राजा अजित सिंह को सैयद बन्धुओं के विश्वासघात का कुछ पता न था। वह एक ईमानदार और स्वाभिमानी राजपूत था। किसी के षड्यन्त्र का समर्थन करना वह अपना कर्त्तव्य न समझता था।

उस समय सैयद बंधुओं ने राजा अजितसिंह से कुछ न कहा। वह दिल्ली दरबार में अपने लड़के अनूपसिंह को छोड़कर—जैसा कि ऊपर लिखा गया है—राज्य में चला गया। सैयद बंधु अपने बढ़ते क्रोध में अजितसिंह को उसके विरोध का तुरंत बदला देना चाहते थे। इसलिए उन्होंने अभयसिंह को बुलाकर कहा : तुम अगर अजितसिंह को जान से मार डालो तो तुमको मारवाड़ के राजसिंहासन पर बिठाया जायगा, अन्यथा मारवाड़ राज्य नष्ट कर दिया जायगा।

अभयसिंह ने सैयद बंधुओं के मुख से इस आदेश को सुना। परन्तु अपने पिता अजितसिंह को मार डालने का उसमें साहस नहीं हुआ। उसने ऐसा करने से जब इनकार किया तो सैयद बंधुओं ने उससे पूछा : 'मा बाप की शाखा अथवा भूमि की शाखा ?' सैयद बंधुओं ने अभयसिंह से जो प्रश्न किया, उसका अर्थ यह है कि राजपूत लोग भूमि के अधिकार को सबसे अधिक महत्व देते हैं और उसके लिए वे भयानक से भयानक कार्य कर सकते हैं। फिर तुम्हारे इनकार करने अथवा इस प्रकार का उत्तर देने का क्या अभिप्राय होता है

राजकुमार अभयसिंह सैयद बंधुओं के प्रभाव में आ गया। उसके मनोभावों में मारवाड़ के राजसिंहासन का प्रलोभन पैदा हुआ। सैयद बंधुओं के द्वारा कही गयी बात उसके दिल में धीरे-धीरे घर करने लगी। मैं राजपूतों का प्रशंसक हूँ। अनेक स्थलों पर मैंने राजपूतों के चरित्र की महानता को स्वीकार किया है। यहां पर किसी राजपूत के पतन को स्वीकार करते हुए मेरे हृदय को एक आघात पहुँच रहा है। परन्तु जिन राजपूतों के चरित्र का मैं प्यार करता हूँ, उनके चरित्र से भी प्रिय और अधिक प्रिय सत्य है, मैं किसी भी दशा में सत्य को छिपाना नहीं चाहता। मैंने ऐसा कभी नहीं किया और भविष्य में भी कभी ऐसा न करूंगा।

राजा अजितसिंह के बारह लड़के थे। उनमें अभयसिंह और बख्तसिंह—दोनों भाई बड़े थे। दोनों भाई एक ही माता-बूँदी की राजकुमारी से उत्पन्न हुए थे। बख्तसिंह राज्य में अपने पिता के पास था बड़े भाई अभयसिंह ने एक पत्र लिखकर उसके पास भेजा। उसमें उसने लिखा: अगर तुम पिता को जान से मार डालो तो मैं तुमको नागौर का सम्पूर्ण प्रदेश—जिसमें पांच सौ पचपन नगर और गांव हैं—दे दूंगा और तुम उस प्रदेश में राजा की उपाधि लेकर स्वतंत्र रूप से शासन कर सकोगे।

बड़े भाई अभयसिंह का यह पत्र बख्तसिंह को मिला। उसको पढ़ने के बाद उसके दिल में किस प्रकार के विचार उत्पन्न हुए, यह बताया नहीं जा सकता। लेकिन वह अपने बड़े भाई के लिखने के अनुसार काम करने के लिए तैयार हो गया। नागौर प्रदेश के शासन के अधिकार ने उसके हृदय में एक बार भी पिता की हत्या करने से विचलित नहीं किया। वह अजितसिंह की हत्या करने के लिए तैयार हो गया। किसी प्रकार बख्तसिंह की माता को उसका भाव जाहिर हो गया। उसने अपने पति से कहा: मैं बख्तसिंह का विश्वास नहीं करती। तुम उससे सावधान रहना और किसी भी समय एकान्त में तुम उससे न मिलना।

राजा अजितसिंह ने रानी के मुख से इन शब्दों को सुना। वह साहसी और शक्तिशाली था। उसे विश्वास नहीं हुआ कि मेरा लड़का मेरे साथ ऐसा व्यवहार कर सकता है। बख्तसिंह अपने बड़े भाई के पत्र को पाने के बाद समय और संयोग की ताक में रहने लगा। महल के जिस कमरे में अजितसिंह सोया करता था, उससे मिले हुए कमरे में बख्त सिंह सोया करता था। वह जिस अवसर की प्रतीक्षा में था, उसके लिए उसे अधिक दिन व्यतीत नहीं करने पड़े। एक दिन रात को जब राजा अजितसिंह सो गया था, रात अधिक जाने के कारण महल में सन्नाटा हो गया था। सभी लोग अपने-अपने स्थानों पर सो रहे थे। रात का भीषण अंधकार चारों तरफ फैला हुआ था। अजित सिंह के साथ उसकी रानी सो रही थी। उस अंधकार में बख्त सिंह अपने कमरे से निकला और दबे पैरों वह अजितसिंह के कमरे में पहुँच गया। बिस्तर के नीचे अजित सिंह की रखी हुई तलवार को उसने बड़ी सावधानी के साथ निकाल लिया और उस तलवार से उसने पिता की हत्या कर डाली। एकाएक बख्तसिंह की माँ की नींद टूट गयी। उसे अपने लड़के से जिस बात की आशंका थी, वह इस समय चरितार्थ हो गयी। उसने देखा कि बख्त सिंह ने अपने पिता को जान से मार डाला। वह जोर के साथ चीत्कार करती हुई रो उठी। रानी के रोने को सुनते ही महल में सब लोग जाग पड़े। सभी लोग दौड़कर वहां पर आये। बख्तसिंह ने पिता के कमरे को बड़ी मजबूती के साथ बंद कर दिया था। वह दरवाजा किसी प्रकार खोला गया। सभी ने भीतर जाकर देखा। अजितसिंह की मृत्यु हो चुकी थी और उसके शरीर के निकले हुए रक्त से सभी कपड़े डूबे हुए थे। रक्त चारपाई से निकलकर कमरे में एकत्रित हो रहा था। बख्तसिंह की माँ एक तरफ बैठी हुई रो रही थी।

हत्याकारी बख्तसिंह अजितसिंह को मारकर महल की सबसे ऊंची छत पर चला गया और ऊपर जाने के पहले उसने सभी दरवाजों को बंद कर दिया था। वे दरवाजे इस प्रकार बंद किये गये थे कि उनको तोड़ने और खोलने में रात का बाकी सम्पूर्ण भाग समाप्त हो गया। सवेरा होने पर बख्तसिंह ने महल की छत से सब के देखते-देखते बड़े भाई अभयसिंह के भेजे हुए पत्र को फेंकते हुए कहा : मैंने अपने मन से कुछ नहीं किया। पिता को जान से मार डालने के लिए भाई अभय सिंह का यह पत्र मुझे मिला था। बख्तसिंह का फेंका हुआ पत्र पढ़ा गया और सभी लोगों ने उस आदेश को पढ़ा जो अभयसिंह के द्वारा पिता को मार डालने के लिए बख्तसिंह को मिला था। सभी अवाक् थे। स्त्री पुरुषों के नेत्रों से आंसू निकल-निकलकर गिर रहे थे।

अजितसिंह के मारे जाने पर उत्तराधिकारी अभय सिंह सिंहासन पर बैठेगा और अब वही यहां का राजा है, यह सोचकर राज्य के समस्त कर्मचारी और पदाधिकारी शान्त हो गये। राजपूतों में राजभक्ति सदा से रही है। उसी भावना के कारण अजित सिंह की हत्या को वहां के लोगों ने भूलकर अभयसिंह के प्रति अपने कर्त्तव्य का पालन करना मुनासिब समझा। राजा अजितसिंह के चौरासी रानियां थीं। वे सभी अजितसिंह के शव के साथ चिता पर बैठी और सती हो गयीं।

अजितसिंह स्वाभिमानी और प्रभावशाली शासक था, राज्य की प्रजा पर उसका पूरा अधिकार था और समस्त प्रजा उसके प्रति अपनी राजभक्ति प्रकट करती थी। अजित सिंह को इस प्रकार मृत्यु से मारवाड़ के समस्त स्त्री, पुरुषों और बच्चों को वेदना पहुँची थी, राज्यों के सरदारों और सामन्तों ने अपने राजा अजितसिंह के लिए बहुत अधिक विलाप किया था। लोगों का कहना है कि राज्य की सम्पूर्ण प्रजा अजितसिंह पर स्नेह रखती थी। राजभक्ति के कारण मारवाड़ की प्रजा ने अभयसिंह के अपराधों को भुला दिया। लेकिन मारवाड़ का इतिहास अभय सिंह के इस अपराध को क्षमा न कर सकेगा। संसार जब तक मारवाड़ राज्य का इतिहास पढ़ेगा, अभयसिंह को अपराधी समझेगा और पिता के हत्याकारी के रूप में उससे घृणा करेगा। इसको कोई रोक नहीं सकता।

अभयसिंह ने सैयद बंधुओं के जाल में फंसकर बड़ी बुद्धिमानी से काम लिया और पिता की हत्या का अपराधी उसने अपने छोटे भाई बख्तसिंह को बनाया। परन्तु इस हत्या से बहुत दूर रहने के बाद भी लोगों के नेत्रों में वही हत्याकारी साबित हुआ। कवियों ने अजितसिंह की हत्या के बाद जो कवितायें लिखीं, उनमें उन्होंने अभयसिंह को ही अपराधी माना। इस विषय में एक कवि की लिखी हुई कविता की चार पंक्तियां नीचे दी जाती जाती हैं :

बख्त, बख्त, बाइरा;
क्यों मारा अजमाल। ×
हिन्दुयानी को सेवरा;
तुर्कानी का साल।

कविता की इन पंक्तियों का अर्थ है : अरे बख्त तूने असमय अजमल की हत्या क्यों की। वह हिन्दुओं का संरक्षक और मुसलमानों के लिये शाल की तरह था।

अजितसिंह के बाद अभय सिंह मारवाड़ के सिंहासन पर बैठा और सैयद बंधुओं की तरफ से वह गुजरात का शासक बनाया गया। राजसिंहासन पर बैठने के बाद जैसा उसने लिखकर अपने

× अजित का अर्थ अजेय मानकर कवि ने यहाँ अजमल शब्द का प्रयोग किया है।

छोटे भाई बख्तसिंह से वादा किया था, उसने उसको नागौर प्रदेश का अधिकार दे दिया। बहुत दिनों से मुगल साम्राज्य डावाँ डोल हो रहा था। आपसी मतभेदों और विरोधों के कारण दिन पर दिन मुगलों की शक्तियाँ क्षीण होती जा रही थीं। अभय सिंह नीति कुशल, अवसरवादी और दूरदर्शी था। उसने बीणा महल, सांचार और इस प्रकार कितने ही सम्पन्न नगरों को—जो गुजरात में शामिल थे—मारवाड़ राज्य में मिला लिया और छोटे भाई बख्त सिंह को झालोर प्रदेश का अधिकार भी दे दिया।

अभय सिंह ने मारवाड़ राज्य में शांति रखने की चेष्टा की और वहाँ की प्रजा भी राज-भक्ति के कारण सिर न उठा सकी। परन्तु अपराध तो अपराध होता है। किसी के कुछ विरोध न करने पर भी अपराध फलता-फूलता है और प्रकृति के नियमों के अनुसार अपराधी को दण्ड मिलता है। पिता की हत्या के अपराध में अभय सिंह को मारवाड़ में दण्ड देने वाला कोई न था परन्तु वह सुरक्षित न रह सका। मारवाड़ में असंतोष, द्वेष और फूट की आग भीतर ही भीतर सुलगने लगी।

राजा अजित सिंह के कई लड़के थे। संक्षेप में उनके सम्बन्ध में यहाँ कुछ लिखना जरूरी है। अजित सिंह के लड़कों में एक लड़के का नाम देवीसिंह था। वह चम्पावत वंश के प्रधान महा-सिंह के द्वारा गोद लिया गया था। इसलिए कि महासिंह के कोई लड़का न था। देवीसिंह उन दिनों में बीणा महल का अधिकारी था। वहाँ के लोगों की रक्षा कोलियों के अत्याचारों से जब वह न कर सका तो देवीसिंह ने पोकर्ण का प्रदेश लेकर उसके बदले में बीणामहल दे दिया। सबल सिंह सवाई सिंह और नीमाज का सामन्त सालिम सिंह देवीसिंह के वंशज थे।

अजित सिंह के एक लड़के का नाम आनन्द सिंह था। वह स्वतंत्र ईदर के महाराज के द्वारा गोद लिया गया था। मारवाड़ के राजा के पुत्र न होने की अवस्था में आनन्द सिंह का उत्तरा-धिकारी मारवाड़ राज्य का अधिकारी होना चाहिए, परन्तु राठौर राज्य में एक दूसरी ही प्रथा पायी जाती है। छोटा भाई अगर किसी दूसरे स्वतंत्र राज्य में गोद लिया जाय तो मारवाड़ के राजसिंहासन पर उसके वंशजों का अधिकार रहता है। लेकिन अगर वह अपने राज्य के किसी सामन्त के द्वारा गोद लिया जाय तो मारवाड़ के राज सिंहासन पर उसका और उसके वंशजों का कोई अधिकार नहीं रहता। राज्य के किसी सामन्त के द्वारा गोद लिये जाने पर उसका पैतृक अधिकार नष्ट हो जाता है और वह केवल उसी सामन्त के प्रदेश का अधिकारी रह जाता है, जिसने उसको गोद लिया है। इस प्रकार महासिंह के द्वारा गोद लिए जाने के कारण मारवाड़ के सिंहासन पर देवीसिंह का कुछ भी अधिकार न रहा।

जिन दिनों में अभय सिंह मारवाड़ राज्य का अधिकारी हुआ और वह उसके राजसिंहासन पर बैठा, ठीक उन्हीं दिनों में मुगल शासन की सता बड़ी तेजी के साथ नष्ट हुई। इस अवसर का लाभ उठाकर अभय सिंह ने मुगल साम्राज्य के अनेक प्रदेशों को अधिकार में लेकर मारवाड़ राज्य में मिला लिया। इसके बाद उसकी मृत्यु हो गयी और उसके मरने पर उसका लड़का रामसिंह मारवाड़ के सिंहासन पर बैठा।

बख्तसिंह उन दिनों में नागौर का शासक था और रामसिंह के अभिषेक समारोह का यहाँ पर उल्लेख करना जरूरी है, उससे राजपूतों की मनोबृति का पता चलता है। रामसिंह बख्तसिंह का भतीजा था। इसलिए उसके अभिषेक के समय उसका आना आवश्यक था और इसलिए भी आवश्यक था कि नागौर मारवाड़-राज्य का एक प्रदेश था और मारवाड़ के राजा की तरफ से बख्तसिंह को वहाँ के शासन का अधिकार मिला था। लेकिन रामसिंह के अभिषेक के समय बख्तसिंह

स्वयं नहीं आया और उपहार की सभी चीजें उसने बूढ़ी धाय के द्वारा भेज दीं।

उस अभिषेक में बख्तसिंह के न आने का कारण क्या था, इसका कहीं पर स्पष्टीकरण नहीं हुआ। अभिषेक समारोह के समय जब नागौर की धाय उपहार लेकर उपस्थित हुई तो रामसिंह के हृदय को बहुत आघात पहुँचा। उसने नागौर से उपहार लाने वाली धाय से कहा : इस अभिषेक में उपहार पहुँचाने के लिए चाचा साहब को क्या कोई दूसरा आदमी नहीं मिला था।

धाय से रामसिंह के भाव छिपे नहीं रहे। अपनी बात कह कर भी रामसिंह चुप नहीं रहा। उसने जरा भी शिष्टाचार का व्यवहार नहीं किया। अपने यहाँ से उसने उस धाय को वापस कर दिया और बख्तसिंह के भेजे हुए उपहारों को भी उसने उसी के साथ लौटा दिया। रामसिंह ने यहीं तक नहीं किया, उसने धाय के द्वारा बख्तसिंह के पास संदेश भेजा। उस संदेश में उसने कहा : चाचा साहब जालौर का प्रदेश तुरन्त वापस कर दें मेरा यह आदेश है।

धाय लौटकर अपने साथ उपहार लिए हुए नागौर पहुँची और उसने बख्तसिंह से सभी बातें कहीं। धाय का रामसिंह ने अपमान किया था। इसलिए उसने रामसिंह के विरुद्ध कहने-सुनने में कुछ उठा न रखा और रामसिंह ने जालौर लौटाने के लिए जो संदेश भेजा था, उसने उसे भी बख्तसिंह से कहा। बख्तसिंह को संदेश सुनकर अच्छा नहीं मालूम हुआ। परन्तु उसने बुद्धिमानी से काम लिया और रामसिंह के संदेश के उत्तर में उसने कहला भेजा : 'जालौर और नागौर—दोनों प्रदेश आप के आदेश पर निर्भर हैं।' संक्षेप में बख्तसिंह ने इतना ही उत्तर भेजा।

बख्तसिंह को रामसिंह के अभिषेक में आना चाहिए था। उसके प्रदेश मारवाड़ राज्य के अन्तर्गत थे और सम्बन्ध में वह रामसिंह का चाचा भी था। फिर वह क्यों नहीं गया, यह नहीं कहा जा सकता और न मारवाड़ के इतिहास से यह बात कहीं साफ होती है। परन्तु रामसिंह को बख्तसिंह का न आना किसी प्रकार बरदाश्त नहीं हुआ इसलिए उसने जो कुछ किया और बख्तसिंह के पास जो सदेश भेजा, वह ऊपर लिखा जा चुका है। अगर बख्तसिंह ने अपनी धाय को दूत बना कर न भेजा होता और स्वयं उपस्थित न होने पर किसी सुयोग्य प्रतिनिधि को उसने भेजा होता, साथ ही उसने अपनी अनुपस्थिति का कारण रामसिंह को जाहिर किया होता तो बहुत सम्भव था कि रामसिंह को इस प्रकार का व्यवहार न करना पड़ता जैसा कि उसने किया।

प्रत्येक अवस्था में दोनों राजपूत थे और एक राजपूत इस प्रकार के अवसर पर जो कुछ कर सकता है, बख्तसिंह और रामसिंह ने वही किया। यही बख्तसिंह है, जिसने अपने बड़े भाई के आदेश पर अपने पिता को धोखे से, रात को सोते हुए जान से मार डाला था। नागौर प्रदेश का शासन अधिकार दे देने के लिए उससे बड़े भाई अभयसिंह ने लिखा था। लेकिन नागौर पाने का प्रलोभन ही बख्तसिंह के मनोभाव में न था। वह राजा अजित सिंह का एक प्यारा लड़का था और जब बख्तसिंह की माँ ने उससे सावधान रहने के लिए अजित सिंह को सचेत किया था, उस समय अजित को जरा भी विश्वास न हुआ था कि जो लड़का मुझसे पैदा हुआ है, वह विश्वास घात करके मुझे मार डालेगा। उसने सहज स्वभाव से अपनी रानी को उत्तर देते हुए कहा था : क्या वह मेरा लड़का नहीं है ?

राजा अजितसिंह के इन शब्दों में अपने लड़के के प्रति कितना बड़ा विश्वास था। फिर भी बख्तसिंह ने उस पर आक्रमण किया और सोते हुए उसको मार डाला। बख्तसिंह का चरित्र क्या था, इसके समझने के लिए यह घटना ही काफी है। रामसिंह अभयसिंह का लड़का था और अभयसिंह ने सैयद बंधुओं के कहने से शूरवीर और प्रतापी राजा अजितसिंह को मरवा डाला था। अजित सिंह अभय सिंह और बख्त सिंह का पिता था। रामसिंह उसी अभयसिंह का लड़का था,

जिसने बिना किसी कारण के और सैयद बंधुओं के कहने से अपने जीवन का इतना बड़ा अपराध कर सकता था। उस बीती हुई घटना के सम्बन्ध में यहाँ पर अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं है। अभिषेक में बख्तसिंह के न जाने और धाय के द्वारा उपहार भेजने एवम् इसके बदले में रामसिंह के उस संदेश के भेजने के परिणाम स्वरूप क्या हुआ, उसका वर्णन नीचे किया जाता है।

रामसिंह मारवाड़ के राजसिंहासन पर बैठ चुका था। उसके व्यवहारों में शिष्टाचार का अभाव था। वह इस बात को भी न जानता था कि अपने अधीन सामन्तों के साथ मुझे कैसा व्यवहार करना चाहिए। मारवाड़ राज्य में जितने भी सामन्त थे, उनमें अहवा का सामन्त कुशल सिंह सबसे योग्य और प्रधान माना जाता था। वह चम्पावत वंश का था। उसका शरीर कद में छोटा लेकिन शक्तिशाली था। रामसिंह और उसके बीच साधारण बातों के सिलसिले में एक मन मुटाव पैदा हो गया। रामसिंह में दूसरों का उपहास करने की आदत थी। लेकिन उपहास करना उसे आता न था। इसलिए उसकी बातचीत सहज ही अप्रिय हो जाती थी।

अपने इस स्वभाव के कारण रामसिंह ने एक बार कुशलसिंह को गुरजी कहकर सम्बोधन किया। गुरजी राजस्थानी भाषा में कुत्ते को कहा जाता है। रामसिंह ने कुशलसिंह के लिए इस प्रकार शब्द का प्रयोग केवल अपनी आदतों के कारण किया। उसको सुनकर सामन्त कुशलसिंह ने तेजी के साथ उत्तर दिया : यह गुरजी आक्रमण करके सिंह के टुकड़े-टुकड़े कर सकता है।

सामन्त का यह उत्तर रामसिंह को अच्छा न मालूम हुआ। लेकिन उस समय वह कुछ न बोला। परन्तु यहीं से दोनों के दिलों में अन्तर पड़ गया। इसके बाद उन दोनों के बीच एक घटना और घटी। दोनों एक दिन मन्दोर के जंगल में घूम रहे थे। वहाँ पर तरह-तरह के वृक्षों को देखते-देखते रामसिंह ने एक वृक्ष की तरफ संकेत करके कुशलसिंह से प्रश्न किया : इस पेड़ का नाम क्या है ?

जब मनोभावों में किसी प्रकार का द्वेष होता है तो एक साधारण बात भी कड़वी बनकर मनुष्य के मुख से निकलती है। सामन्त कुशलसिंह ने राजा रामसिंह के प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा : राजपूत जाति में जिस प्रकार मैं श्रेष्ठ हूँ, यह वृक्ष भी यहां के अन्य वृक्षों में श्रेष्ठ माना जाता है। यह वृक्ष चम्पा का है। चम्पा का वृक्ष उत्तम होता है।

सामन्त कुशलसिंह के इस प्रकार उत्तर देने का यहाँ पर कोई तुक न था। लेकिन रामसिंह के प्रति उसकी भावनायें दूषित थीं। इस लिए वह उनको सम्हाल कर कोई अच्छा उत्तर न दे सका और उसने जो कुछ कहा, उसे सुनकर रामसिंह क्रोधित हो उठा। उसने कहा : अभी मैं इस श्रेष्ठ वृक्ष को उखाड़कर फेंके देता हूँ। मारवाड़ राज्य में चम्पा नाम का कोई वृक्ष नहीं रह सकता।

कुशलसिंह ने रामसिंह के इस जवाब को सुना। उसने कुछ उत्तर न दिया। लेकिन भीतर ही भीतर क्रोध से वह तमतमा उठा। उस दिन की बात यहीं से समाप्त हो गयी और मन्दोर के जंगल से दोनों कुशलपूर्वक वापस चले गये।

रवाड़ के सामन्तों में कुशलसिंह की तरह कुनीराम भी एक प्रधान सामन्त था। वह आसोप प्रदेश का सामन्त था और उसने राजपूतों की कम्पावत शाखा में जन्म लिया था। कुनीराम साहसी और युद्ध कुशल था। परन्तु उसकी मुखाकृति अच्छी न थी। एक दिन राजा रामसिंह ने बातचीत करते हुए कुनीराम को बूढ़ा बन्दर कह दिया। यह सुनकर कुनीराम ने अपना अपमान अनुभव किया और उसने राजा रामसिंह को उत्तर देते हुए कहा : जिस समय यह बन्दर नाचेगा, आप को बड़ा आनन्द मालूम होगा।

सामन्त कुशीराम ने इस प्रकार रामसिंह को उत्तर दिया। परन्तु स्वाभिमानी सामन्त दरबार में बैठा न रह सका। उसने आहवा के सामन्त कुशलसिंह की तरफ देखा। दोनों सामन्त एक साथ अपने स्थानों से उठे और दरबार से निकलकर चले गये। वे दोनों सामन्त नागौर में पहुँचे और अनेक प्रकार के परामार्श करके युद्ध को तैयारी करने लगे।

उस समय नागौर में बख्तसिंह नहीं था। लेकिन कुछ ही समय में वह अपनी राजधानी में आ गया। उसने दोनों सामन्तों से रामसिंह की बातें सुनी। उसने सोचा कि इन बातों के फलस्वरूप जो होने जा रहा है, वह मारवाड़-राज्य के भविष्य के लिए अच्चा नही है। यह सोच समझ कर बख्तसिंह ने दोनों सामन्तों को समझाने की चेष्टा की और कहा कि मैं आप लोगों का मध्यस्थ बनकर इस झगड़े को तय करने के लिए तैयार हूँ। मेरा बिश्वास हैं कि यह विवाद जो पैदा हुआ है, वह शान्त हो जायगा। परन्तु अपमानित सामन्तों ने बख्तसिंह की बात को स्वीकार नहीं किया और उसी समय दोनों सामन्तों ने आवेश के साथ बख्तसिंह से कहा: हम लोग रामसिंह को अपना राजा समझ कर कभी उसके दर्शन नहीं करेंगे, आप की बातो को सुनकर हम दोनों इतना ही कर सकते हैं कि आप मारवाड़ के सिंहासन पर बैठने के लिए तैयार हों। हम लोग सभी प्रकार से आपकी सहायता करेंगे। लेकिन अगर आपने हमारी बात न मानी हो हम लोग सदा के लिए मारवाड़-राज्य छोड़ देंगे।

बख्तसिंह किसी प्रकार मारवाड़ में इस प्रकार का उत्पात नहीं चाहता था। उसने उत्तेजित सामन्तों को बार-बार समझाने की चेष्टा की। वह समझता था कि जो विवाद राजा और सामन्तों में पैदा हुआ है, वह किसी प्रकार अच्छा नहीं साबित होता। जिन दिनों में बख्त सिंह इस विवाद को शान्त करने की कोशिश में लगा था, रामसिंह ने अपनी अयोग्यता का एक और नया परिचय दिया। उसने सुना था कि सामन्त कुशल सिंह और कुशीराम—दोनों सामन्त राज दरबार से रूठपर चले गये हैं और वे हमारे विरुद्ध नागौर में तैयारी कर रहे हैं। उसे विश्वास हो गया कि इसमें नागौर के शासक बख्तसिंह का षड्यंत्र है। इसलिए उसने अपने चाचा बख्तसिंह को एक पत्र लिखकर भेजा कि आप फौरन जालौर का प्रदेश वापश कर दें।

रामसिंह का यह पत्र बख्तसिंह को मिला। उसे उसने पढ़ा, परन्तु उसे किसी प्रकार का क्रोध नहीं आया और उस पत्र का उत्तर देते हुए उसने रामसिंह को लिख कर भेजा: मैं किसी भी परिस्थिति में अपने राजा के साथ विवाद बढ़ाने का साहस नहीं रखता। अगर आप यहाँ आ सकें तो मैं जल से भरा हुआ घड़ा लेकर आप से भेंट करूँगा। ×

बख्तसिंह के टेढ़े वाक्यो और पत्रों से भी रामसिंह का क्रोध शान्त नहीं हुआ। बख्तसिंह जो नहीं चाहता था वह परिस्थिति उसके सामने आकर खड़ी हो गयी। दोनों ओर से युद्ध के बाजे बजे और तेजी के साथ लड़ाई की तैयारी हुई। मैरता के विस्तृत मैदान में दोनों अपनी-अपनी सेनायें लेकर पहुँच गये। मारवाड़ के लोगों में मैरतीय राजपूत अधिक साहसी और शूरवीर समझे जाते है। वे सभी रामसिंह की सेना में जाकर एकत्रित हुए। रिया, बुदसू, मिथरी, खोलर, भरावर, अलनिवा, जुसुरी, बामरी भुरूण्डा, दुरह, और चन्दारुण के सामन्त अपनी-अपनी सेनायें लेकर युद्ध के लिए रवना हुए। जोधपुर के राजभक्त सामन्त अपनी-अपनी सेनाओं के साथ युद्ध क्षेत्र में दिखाई देने लगे। लाएडू और निम्बी इत्यादि कुछ प्रदेशों के सामन्त विरोधी पक्ष में

× सीथियन लोगों में राज्याभिषेक के समय जल से भरे हुए कलश को लेकर जाने की प्रथा है। बख्तसिंह के उत्तर में उसी प्रथा की समानता जाहिर होती है।

जाकर मिल गये। लेकिन खैरोवा, गोविन्द गढ़ और भद्राजुर्न जैसे प्रदेशों के प्रसिद्ध सामन्त राजा के प्रति अपने कर्त्तव्य को न भूले। उन्होंने राज्य का नमक खाया था। इसलिए उससे उद्धार होने के लिए उन सामन्तों ने निश्चय किया। कुछ सामन्तों ने आपसी युद्ध में शामिल होना उचित न समझ कर तटस्थ रहने का निर्णय किया।

रामसिंह अपने साथ पांच हजार शुरवीर राजपूतों को लेकर युद्ध से पहुँचा था। उसका विवाह राजा भोज की राज कुमारी के साथ हुआ था। इसलिए राजा भोज की तरफ से पाँच हजार सैनिकों की एक सेना युद्ध में रामसिंह की सहायता के लिए आयी थी। उस सेना ने राजधानी के बाहर मुकाम किया। वहां पर भोजपुरी राजपूतों के जो खेमे लगे थे और जिसमें रामसिंह की रानी स्वयं मौजूद थी, उसके ऊपर एक कौवा आकर बोलने लगा। उसका बोलना रानी के विश्वास के अनुसार अपशकुन सूचक था। इस प्रकार के अपशकुन की शांति का उपाय भी वह जानती थी। रानी ने हाथ में बन्दूक लेकर उस कौवे को मार कर गिरा दिया।

रामसिंह अपने दूरवर्ती खेमे में बैठा हुआ था। वह स्वभावत: क्रोधी था। उसने अचानक बन्दूक की आवाज सुनी। उसे क्रोध आगया और बन्दूक की उस फायरिंग को उसने अपना अपमान समझा। इसलिए उसने आवेश के साथ आदेश किया कि जिसने बन्दूक की यह आवाज की है, उसे पकड़ कर मेरे सामने ले आओ। उसके आदेश को सुनकर उसके नौकर चौंक उठे और उन लोगों ने बड़ी नम्रता के साथ उससे कहा: महाराज बन्दूक की फायरिंग करने वाला और कोई नहीं है। स्वयं रानी साहबा ने अपनी बन्दूक से एक फायरिंग की है।

रामसिंह की रानी का नाम सुनकर भी संतोष न मिला। अपने बढ़ते हुए क्रोध में उसने आदेश दिया: रानी से जाकर कहो कि वह हमारे राज्य से फौरन निकल जाय और वह जहाँ से आयी है, वहीं चली जाय।

पति के इस आदेश को सुनकर रानी बहुत दुखी हुई। लेकिन वह अपने स्वामी के कल्याण के लिए भगवान से प्रार्थना करने लगी। अपने पति से भी उसने क्षमा प्रार्थना की। लेकिन रामसिंह ने उसे स्वीकार नहीं किया। जब किसी प्रकार पति का क्रोध शान्त नहीं हुआ तो उसने दुखी होकर कहा: बिना किसी अपराध के आप मुझे इस प्रकार का दण्ड दे रहे हैं, इसका परिणाम अच्छा नहीं होगा और आपके मस्तक से मारवाड़ का राज मुकुट उत्तार दिया जायगा,

यह कहकर रानी अपने पिता के राज्य से आये हुए पांच हजार सैनिकों की सेना को लेकर और युद्ध क्षेत्र को छोड़ अपने पिता के राज्य को चली गयी। इस युद्ध के लिए जो सेनायें रामसिंह के पक्ष में युद्ध करने के लिए आयी थी, उनमें से भोजपुरी सेना के चले जाने से रामसिंह को सैनिक शक्ति कमजोर पड़ गयी। नीमाज, रायपुर और राऊस की सेनायें किंउसिर के ठाकुर की अधीनता में बख्तसिंह के झण्डे के नीचे पहुँच गयी और समस्त चम्पाबत और कम्पावत राजपूतों के साथ मिल गयीं। रामसिंह के पक्ष में एकत्रित सेनायें सब मिलाकर भी बख्तसिंह के पक्ष की सेनाओं से कम थी। लेकिन रामसिंह के मारवाड़ के राजा होने के कारण उनका साहस विरोधी सेनाओं की अपेक्षा प्रबल था। मैरता के इस मैदान में रामसिंह ने अपनी सेना का मुकाम किया था और उसने तीन मील के फासिले पर मुकाम करके बख्तसिंह का रास्ता देख रहा था। उसकी सेना ने जहां पर मुकाम किया था, वह मुकाम माता जी का स्थान कहलाता है। वहां पर आद्याशक्ति का एक मंदिर है। कहा जाता है कि यह मंदिर और उसके पास का जलाशय पाण्डवों का बनवाया हुआ है।

बख्तसिंह ने सब से पहले अपनी सेना में युद्ध के बाजे बजवाये और उसने तोपों की मार आरम्भ कर दी। इसके साथ ही रामसिंह के गोलन्दाजों ने भी तोपों की मार आरम्भ की। सम्पूर्ण दिन तोपों की मार में बीत गया। क्रमशः युद्ध की परिस्थिति भयानक होती गयी। इस युद्ध में सभी राजपूत थे और दोनों पक्षों की तरफ से जितने भी लोग युद्ध कर रहे थे, सभी एक वंश और एक जाति के थे। इस युद्ध में भाई के विरुद्ध भाई और मित्र के विरुद्ध मित्र युद्ध कर रहे थे। सभी की नाड़ियों में एक ही रक्त था। फिर भी वे एक दूसरे का सर्वनाश करने के लिए इस युद्ध क्षेत्र में एकत्रित हुए थे।

शाम होते-होते एक घटना के साथ युद्ध बन्द हुआ। वह घटना इस प्रकार है। युद्ध क्षेत्र के पास बाजोपा नाम का एक तालाब है। उसके किनारे पर दादूपंथी एक सन्यासी का आश्रम है। कहा जाता है कि राजा सूरसिंह ने इस आश्रम को बनवाया था। इस समय युद्ध के लिए दोनों पक्षों की ओर से जहाँ पर सेनायें खड़ी थी, उसके मध्य भाग में यह आश्रम बना हुआ है। इस आश्रम में बाबा कृष्णदास अपने शिष्यों के साथ रहता था। युद्ध आरम्भ होते ही शिष्य लोग आश्रम से भाग गये। परन्तु बाबा कृष्णदास आश्रम में ही मोजूद रहा। शिष्यों ने भागने के लिए उससे भी कहा था। परन्तु उसने आश्रम से भागने का इरादा नहीं किया। शिष्यों के चले जाने पर युद्ध करने वाले सैनिकों ने भी आश्रम से निकल जाने के लिए बाबा कृष्णदास से कहा। लेकिन उसने आश्रम नहीं छोड़ा और सैनिकों को जवाब देते हुए उसने कहा: अगर तोप के गोले से ही मेरी मृत्यु का होना लिखा है तो उसे कोई मिटा नहीं सकता और अगर ऐसा नहीं है तो तोप के गोलों से मुझे कोई क्षति नहीं पहुँच सकती।

बाबा कृष्णदास के इस उत्तर को सुनकर सैनिक चुप हो गये। सम्पूर्ण दिन गोलों की वर्षा होती रही और उन गोलों से बाबा का आश्रम और उसकी पुष्पवाटिका बिलकुल नष्ट हो गयी। परन्तु बाबा के शरीर को जरा भी आघात नहीं पहुँचा। कहा जाता है कि गोलों की इस भीषण वर्षा के समय कृष्णदास बिना किसी भय के अपने आश्रम में बैठा रहा।

सायंकाल होते ही बाबा कृष्णदास ने युद्ध बन्द करने के लिए दोनों पक्ष के लोगों के पास संदेश भेजा। इसके बाद युद्ध बन्द हो गया और दोनों पक्ष के सैनिक युद्ध-क्षेत्र से हट गये। इस प्रकार उस दिन जो युद्ध आरम्भ हुआ था, सायँकाल तक समाप्त हो गया।

दूसरे दिन सबेरा होते ही फिर दोनों पक्षों में युद्ध की तैयारियां हुई। राजा रामसिंह अपनी सेना को लेकर आगे बढ़ा और उसने अपने चाचा बख्तसिंह पर आक्रमण किया। इस समय दोनों तरफ से तोपों में आग लगायी गयी। उनका धुंवा चारों तरफ फैलकर ऊपर की तरफ उठा और उस धुएँ से युद्ध का सम्पूर्ण स्थान अन्धकारमय हो उठा।

इसके कुछ ही समय बाद चम्पावत राजपूत सैनिक शत्रु की तरफ आगे बढ़े। रामसिंह के पक्ष के शूरवीर मैरतीय अपनी राजभक्ति का परिचय देते हुए शत्रुओं की ओर बढ़े और उन लोगों, ने अपने साथ के सैनिकों को सम्बोधित करते हुए कहा: हम लोग युद्ध में या तो विजयी होंगे अथवा बलिदान होकर स्वर्ग की यात्रा करेंगे। उनके इन वीरोचित शब्दों को सुनकर राजपूतों का उत्साह कई गुना बढ़ गया। इसके साथ ही युद्ध भीषण रूप में आरम्भ हुआ और शूरवीर राजपूतों ने अपने-अपने शत्रुओं पर भयानक मार आरम्भ की।

ऊपर यह लिखा जा चुका है कि मारवाड़ के राजपूतों में मैरता के लोग अधिक साहसी और रणकुशल माने जाते हैं। इस युद्ध में वहाँ के जो राजपूत सैनिक आये थे, इस युद्ध में उन्होंने

शत्रुओं का भीषण संहार किया। बख्तसिंह के साथी चम्पावत लोगों ने मैरता के राजपूतों के साथ कठिन युद्ध किया और एक बार उन्होंने अपनी भयानक तलवारों के बल से मैरतीय राजपूतों को युद्ध क्षेत्र में भयभीत कर दिया।

इस समय युद्ध-क्षेत्र में चारों तरफ से भयानक मार हो रही थी। तोपों की भयानक आवाजों के साथ-साथ तलवारों की झनकार से कानों के परदे फट रहे थे। युद्ध के क्षेत्र में सैनिकों के कटे हुए शरीर बड़ी संख्या में दिखायी देने लगे। इस भयानक संग्राम में कोई भी पक्ष पीछे हटने की स्थिति में न था। दोनों पक्ष के लोग अपने-अपने शत्रुओं के संहार का निश्चय करके आगे बढ़ रहे थे। अभी तक युद्ध के परिणाम का अनुमान लगा सकना किसी के लिए सम्भव नहीं मालूम होता था।

युद्ध की इस परिस्थिति में मैरतीय राजपूतों का सरदार शेरसिंह मारा गया। उसके गिरते ही उसका भाई अपनी सेना के साथ आगे बढ़ा और उसने शत्रुओं के साथ भीषण युद्ध आरम्भ किया। इसी समय अहवा का शूरवीर सामन्त मारा गया। यह देख कर दोनों पक्ष की ओर से युद्ध ने भयंकर रूप धारण किया। बहुत से सैनिक जान से मारे गये और बड़ी संख्या में दोनों पक्षों के लोग घायल होकर गिर गये। परन्तु किसी पक्ष की सेना ने पीछे हटने का इरादा नहीं किया।

बख्तसिंह की सेना बड़ी थी। इसलिए वह शत्रुओं में जिस तरफ अपने भतीजे रामसिंह को देखता, उसी तरफ आगे बढ़कर वह उसपर आक्रमण करने की कोशिश करता। इस युद्ध में मैरतीय सैनिकों ने अपनी बड़ी बहादुरी का परिचय दिया और जब तक वे सब के सब मारे नहीं गये, बख्तसिंह को उन्होंने आगे नहीं बढ़ने दिया। रामसिंह के पक्ष में सैनिकों की संख्या कम थी। मैरतीय वीरों के मारे जाने पर रामसिंह का पक्ष निर्बल हो गया। इस दशा में बख्तसिंह की सेनायें आगे बढ़ी। रामसिंह की सेनायें अपनी बढ़ती हुई निर्बलता में पीछे की तरफ हटने लगीं। मिथरी के सामन्त का अधिकारी युद्ध करते हुए मारा गया। वहाँ का सामन्त युद्ध करते हुए अपने लड़के के साथ बलिदान हुआ।

मिथरी के सामन्त के पुत्र की घटना अत्यन्त रोमाञ्चकारी है। इसीलिए यहाँ पर संक्षेप में उसको हम लिखने का प्रयास करते हैं। मैरता के मैदानों में होने वाले इस युद्ध में बहुत पहले मिथरी के सामन्त के इसी लड़के के साथ जयपुर-राज्य के निरूमा के सामन्त की लड़की के साथ विवाह निश्चय हुआ था। इस युद्ध के दिनों में मिथरी-सामन्त का लड़का अपना विवाह करने के लिए निरूमा गया था, जिस समय उसका विवाह-संस्कार हो गया था, उसने सुना कि शत्रुओं की सेनायें युद्ध में आगे बढ़ रही हैं, इसी समय हाथ में बँधे हुए कङ्कण को खोलकर वह बाहर निकला और घोड़े पर बैठकर वह युद्ध के लिए मैरता की तरफ रवाना हुआ।

उस समय युद्ध में रामसिंह का पक्ष निर्बल पड़ रहा था। मिथरी के सामन्त का लड़का वहाँ पहुँच गया और उसने शत्रुओं के साथ युद्ध आरम्भ कर दिया। उस दिन युद्ध में उसने अपने असीम पौरुष का परिचय दिया। परन्तु दूसरे दिन युद्ध करते हुए वह मारा गया। मारवाड़ के कवियों ने मिथरी के उत्तराधिकारी की वीरता का वर्णन अपनी बहुत-सी कविताओं में किया है। विवाह-मण्डप के नीचे से मिथरी के सामन्त कुमार के चले आने पर निरूका के सामन्त की नव-विवाहिता कुमारी भी अपने नगर से रवाना हुई। लेकिन युद्ध स्थल पर पहुँचते ही उसे मालूम हुआ कि उसका पति मारा गया तो उसी समय उसने चिता बनवाई और अपने पति के शव को लेकर वह भस्म हो गयी।

जिस स्थान पर यह युद्ध हुआ था, वहाँ जाकर मैंने उस सामन्त के लड़के का स्मारक खोजा, परन्तु वहाँ पर मुझे उसका कोई स्मारक देखने को नहीं मिला।

मैरता के इस युद्ध में रामसिंह के पक्ष की सेनाओं ने बहुत समय तक युद्ध करके अपनी बहादुरी का परिचय दिया था। लेकिन अंत में उनकी पराजय हुई और उसके पक्ष के लोगों ने मंजूर किया कि शत्रुओं के गोलों की वर्षा से हमारी हार हुई है। राजभक्त सामन्त शेरसिंह ने अपने साले अहवा के सामन्त को बहुत समझाया था कि तुम रामसिंह के विरुद्ध युद्ध में न जाओ। परन्तु उसकी बात को अहवा के सामन्त ने किसी प्रकार नहीं माना। इस दशा में शेरसिंह ने आवेश के साथ अपने साले से कहा था: अच्छी बात है। बख्तसिंह का पक्ष लेकर रामसिंह को परास्त करने में तुम अपनी शक्ति को उठा न रखना।

अहवा के सामन्त को उसकी यह बात अच्छी न लगी। इसलिए उसका उत्तर देते हुए उसने निर्भीकता के साथ कहा था: अपने पक्ष के लिए कोई भी अपनी शक्ति को उठा नहीं रखता।

साले और बहनोई में इस प्रकार की बातचीत मैरता के इस युद्ध के पहले हुई थी। उसके बाद युद्ध की तैयारी हुई और उस संग्राम में दोनों ने अलग-अलग पक्षों का समर्थन किया और एक दूसरे के विरुद्ध इस प्रकार वे लड़े कि फिर वे एक दूसरे को देख न सके। इस युद्ध की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि इसमें लड़ने वाले दोनों पक्षों के लोग एक, दूसरे के सगे थे।

यह युद्ध मैरता से कुछ दूरी पर जिस विस्तृत मैदान में हुआ था, उसके निकट कोई छोटा या बड़ा ग्राम नहीं है। उस विस्तृत भूमि पर-जहाँ पर यह युद्ध हुआ था, युद्ध में मारे जाने वाले वीरों के अब केवल स्मारक देखने को मिलते हैं। जो राजपूत जिस श्रेणी का था, उसका स्मारक उसी श्रेणी का बनवाया गया है। लेकिन स्मारक, एक स्मारक होता है, चाहे वह छोटा हो, अथवा बड़ा। मैंने वहाँ पर बने हुए स्मारकों को देखा और बीस स्मारकों के लिखे हुए पत्थरों की मैंने नकल ले ली। उन पत्थरों पर जो कुछ लिखा है, उनसे राजपूतों की वीरता का परिचय मिलता है।

इस युद्ध में पराजित होने के बाद रामसिंह ने मैरता नगर में जाकर आश्रय लेने का निश्चय किया। परन्तु शत्रु की विशाल सेना से मैरता में सुरक्षित रहने और बच सकने का उसको विश्वास न हुआ। इसलिए अब उसके सामने प्रश्न यह था कि बख्तसिंह की शक्तिशाली सेना से अपनी रक्षा कैसे की जाय। उसके सामने अपने सम्मान और प्राणों का भय था। इसलिए उसने सभी प्रकार की बातें सोच डालीं।

उन दिनों में मराठों की शक्तियाँ प्रबल हो रही थीं। रामसिंह ने उनकी सहायता लेकर अपने चाचा बख्तसिंह को परास्त करने का निश्चय किया और अपनी बची हुई सेना को लेकर वह दक्षिण चला गया। उज्जैन नगर में पहुँचकर उसने मराठा सेनापति जयअप्पा सोंधिया से मुलाकात की और बख्तसिंह को पराजित करने के लिए वह सेनापति सोंधिया से परामर्श करने लगा।

युद्ध से रामसिंह के भाग जाने के बाद बख्तसिंह अपनी सेना को लेकर जोधपुर में पहुँचा और मारवाड़ के सिंहासन पर बैठकर उसने अपने राजा होने की घोषणा की। इसके बाद उसे मालूम हुआ कि रामसिंह सहायता के लिए मराहठों के पास गया है। इसलिए उसने बड़ी दूरंदेशी से काम लिया और वह जयपुर राज्य की तरफ इस इरादे से रवाना हुआ कि वहाँ से रामसिंह के ससुर जयपुर के राजा मराठों के आने पर किसी प्रकार की सहायता न दे सके।

उन दिनों में ईश्वरी सिंह जयपुर का राजा था। वह बख्तसिंह की वीरता से भली भाँति परिचित था। इसलिए जब बख्तसिंह उससे मुलाकात की और सारी बातें उसने उसके सामने रखीं तो ईश्वरी सिंह के सामने एक विषय परिस्थिति पैदा हो गयी। ऐसे अवसर पर क्या करना चाहिए, वह इस बात का निर्णय न कर सका। उसके सामने एक भयानक समस्या थी। बड़े असमंजस में पड़कर उसने एक रास्ता निकाला और बख्तसिंह की समस्या को सुलझाने के लिए उसने निश्चय कर लिया। स्वर्गीय अजित सिंह का एक लड़का ईदर में शासक था। उसकी एक लड़की ईश्वरी सिंह को ब्याही थी। ईश्वरी सिंह अपनी उस रानी के पास गया और महल में बैठकर उसने परामर्श किया।

ईश्वरी सिंह स्वर्गीय अजित सिंह की हत्या का बदला लेना चाहता था और अपने दामाद रामसिंह के अधिकारों की रक्षा भी करना चाहता था। उसने रानी से बातें करते हुए कहा : मेरे सामने एक विकट समस्या है। इस समय रामसिंह और बख्तसिंह के बीच में भयानक संघर्ष है। मैं जिसका समर्थन करूँगा, उसी के पक्ष में मुझे युद्ध करना पड़ेगा। इसलिये कि युद्ध के द्वारा ही। इन दोनों के संघर्ष का निर्णय हो सकता है। अगर मैं बख्त सिंह का विरोध करता हूँ तो मैं सफलता की आशा नहीं करता और अगर मैं रामसिंह का समर्थन करता हूँ तो समाज मुझे क्या कहेगा। इसलिए कि पिता की हत्या कराने के बाद अभयसिंह मारवाड़ के सिंहासन पर बैठा था और उसके बाद उस राज सिंहासन का अधिकार रामसिंह को प्राप्त हुआ। इस दशा में मैं इन दोनों में से किसी के पक्ष का समर्थन नहीं करना चाहता। इसके लिए मुझे क्या करना चाहिये। जिससे मुझे किसी प्रकार का आघात न पहुँचे। इस संकट से मुक्ति पाने के लिये एक मात्र तुम्हीं मेरी सहायक हो सकती हो।

बड़ी देर तक परामर्श करने के बाद निश्चय हुआ कि विष को विष के द्वारा नाश किया जाता है। अपराधी के साथ अपराध करना किसी प्रकार अधर्म नहीं है। इस निर्णय मे एक संकेत था। उसको समझ कर ईश्वरी सिंह ने उसको स्वीकार कर लिया। इसके बाद उसको कुछ शांति मिली।

ईश्वरी सिंह की यह रानी ईदर की राजकुमारी थी और वह बख्तसिंह की भतीजी थी। अपने पति के जीवन में पैदा हुए संकट को दूर करने के लिए उसने जो निर्णय किया था, उसके लिए उसने तैयारी की और उसके बाद भेंट करने के लिए उसने अपने चाचा बख्तसिंह के पास संदेश भेजा। बख्तसिंह इस समय जिस स्थान पर मौजूद था, वह स्थान मेवाड़, मारवाड़ और अम्बेर—तीनों राज्यों की सीमा के बीच में पड़ता था। बख्तसिंह ने अपने पास भतीजी को आने और भेंट करने के लिए उसे इजाजत दे दी। ईश्वरी सिंह की रानी अपने साथ बहुमूल्य कुछ वस्त्रों को लेकर और उनको उपहार में देने के लिए चाचा से भेंट करने के लिए रवाना हुई।

बख्तसिंह से भेंट करके उसकी भतीजी के जाते ही उसको भयानक रूप से ज्वर आ गया और शक्तिशाली बख्तसिंह को उसने क्षणभर में विह्वल कर दिया। बख्तसिंह की इस दशा को देखकर तुरन्त वैद्य बुलाया गया। उसने आकर बख्तसिंह को देखा और उसने कहा, आप को सेहत करने के लिए किसी भी औषधि में शक्ति नहीं है।

राठौर राजा बख्तसिंह ने वैद्य के मुख से इस बात को सुनकर कहा : क्या तुम मुझको सेहत नहीं कर सकते ? अगर मेरे रोग को दूर करने की शक्ति तुममे नहीं है तो फिर तुम

मेरी दी हुई वृत्ति का उपयोग क्यों करते हो? तुम्हारी चिकित्सा का फिर कौन-सा उपयोग हो सकता है?

बख्तसिंह के मुख से इस आलोचना को सुनकर वैद्य ने राजा के खेमे के पास जमीन में एक गढ़ा खोदा और उसमें जल भर दिया। इसके बाद उसमें उसने अपनी एक औषधि डाली। औषधि के पड़ते ही उस गढ़े का जल बर्फ के समान शीतल हो गया। इसके बाद उसने बख्तसिंह से कहा: महाराज, जिस रोग से आप पीड़ित हैं। उसकी यह अंतिम चिकित्सा है। परन्तु आपके रोग को सेहत करने के लिए इसमें भी शक्ति नही है।

अपनी बात को समाप्त करके चिकित्सक ने राजा बख्तसिंह की तरफ देखा और फिर कहा: अब बिलम्ब करने का समय नहीं हे। आपको जो कुछ करना हो, कर लीजिए।

चिकित्सक इस बात को जानता था कि विषाक्त पोशाक पहनने के कारण ही बख्तसिंह की यह दशा हो गयी है और उसके सम्पूर्ण शरीर में जो विष फैल गया है, उसको शरीर से निकाल कर उसे सेहत करने का अब कोई उपाय नहीं हो सकता। इस रहस्य को समझने के बाद भी उसने किसी से उसको जाहिर नहीं किया। चिकित्सक की अंतिम बात को सुनकर बख्तसिंह ने अपने सब सामन्तों को पास बुलाया। क्योंकि जब वह अपनी सेना को लेकर जयपुर की तरफ आया था तो उसके राज्य के सभी सामन्त उस सेना में मौजूद थे। सामन्तों के आने पर बख्तसिंह ने अपने लड़के की रक्षा का भार !उन सामन्तों को सौंपा और उन सामन्तों ने उसे स्वीकार किया। इसके पश्चात ब्राह्मणों को बुलाकर दान-पुण्य के अनेक कार्य किये गये। इसी समय बख्तसिंह को एक अभिशाप की याद आयी। उसने जिस समय अपने पिता की हत्या की थी और पिता अजित सिंह की समस्त रानियां चिता में बैठकर भस्मीभूत हुई थीं। जलने के पहले उनमें से एक रानी ने कहा था: जिसने हमारे पति की हत्या की है, उसके साथ कोई एक स्त्री ही विश्वासघात करेगी और उसके द्वारा प्राणान्त होने पर उसका शव राज्य से बाहर ही कहीं जलाया जायगा।

अपने जीवन के अंतिम क्षणों में उस रानी के वाक्यों की उसे याद आयी। उसने समझा मेरे साथ किसी ने विश्वासघात किया है। इसी समय उसकी मृत्यु हो गयी। जहाँ पर वह मरा और उसका शव जलाया गया, वहीं पर बख्तसिंह का एक स्मारक बना हुआ है। उस स्मारक को वहाँ के लोग बुरोदेवल कहा करते हैं। बुरोदेवल का मतलब होता है, पिशाच मन्दिर।

बख्तसिंह ने अपने बड़े भाई का कहना मानकर अगर अपने पिता की हत्या न की होती तो वह मारवाड़ के राजाओं में सबसे श्रेष्ठ राजा होता। इस बात में किसी को मतभेद नहीं हो सकता कि वह बहुत साहसी था और साहस तथा पराक्रम में उनमें कोई राजा उसकी बराबरी का नहीं माना जा सकता, जो अब तक मारवाड़ के राजाओं में हुए हैं। वह जितना ही बुद्धिमान था, उतना ही वह बीर भी था। पिता को हत्या करने के पहले वह सभी राजपूतों का प्यारा और दुलारा था और मारवाड़ का प्रत्येक व्यक्ति उसको स्नेह पूर्ण नेत्रों से देखता था। अभय सिंह ने मारवाड़ के सिंहासन पर बैठने के बाद जो सफलता प्राप्त की थी, उसका श्रेय अभय सिंह को नहीं, बल्कि बख्त सिंह को था। उसी के बल और प्रताप पर अभय सिंह गुजरात राज्य के आधे भाग पर अधिकार कर लिया था। वास्तव में अभय सिंह की सफलता का मुख्य कारण और आधार बख्त सिंह था। इसमें किसी को सन्देह नहीं हो सकता।

मारवाड़ के राजसिंहासन पर बैठने के बाद रामसिंह ने लगातार अपनी अयोग्यता तथा अशिष्टता का परिचय दिया तो उसे सिंहासन से उतार कर बख्त सिंह को राजसिंहासन पर बिठाने

का अधिकार राज्य के सामन्त को था। इस राज्य के सामन्तों को सदा से इस प्रकार का अधिकार रहा है।

बख्त सिंह के मर जाने के बाद राज्य के सामन्तों ने उसकी अभिलाषा को सफल बनाने की कोशिश की। सभी सामन्तों ने बख्त सिंह से उसके लड़के विजय सिंह के अधिकारों की रक्षा करने का वादा किया था। उस प्रतिज्ञा के अनुसार सामन्तों ने मायोरात नामक स्थान पर विजय सिंह का अभिषेक किया और उसे मैरता में ले गये।

रामसिंह ने मराठा सेनापति जयअप्पा सोंधिया से मिल कर कोटा राज्य पर आक्रमण किया और मेवाड़ का विनाश करके वह मराठा सेना के साथ अजमेर में पहुँच गया। वहाँ पर सेना पति सोंधिया के साथ रामसिंह का कुछ मतभेद हो गया था। लेकिन उसके बाद वह दूर हो गया। इसके बाद रामसिंह को लेकर मराठा सेनापति ने अपनी विशाल सेना के साथ, मारवाड़ राज्य में प्रवेश किया। मराठों के इस आक्रमण को रोकने के लिए विजय सिंह ने बड़ी तेजी के साथ तैयारी की और अपने साथ दो लाख सैनिकों की एक शक्तिशाली सेना को लेकर वह रवाना हुआ। अत्याचारी और लुटेरे मराठों की सेना को लेकर रामसिंह ने मारवाड़ राज्य पर आक्रमण किया है, यह सुनकर और जानकर मारवाड़ के प्रत्येक राजपूत का खून खौल उठा था।

मैरता से कुछ दूरवर्ती मैदानों में दोनों तरफ की सेनाओं का सामना हुआ। उसी समय दोनों तरफ से गोलों की वर्षा आरम्भ हुई। तोपों के धुएँ से वह मैदान दूर तक अन्धकारमय हो उठा। उस दिन दोनों तरफ से बराबर गोले बरसते रहे। मैरता के रहने वालों ने इस युद्ध में मारवाड़ी सेना के भोजन की व्यवस्था की थी। इस कार्य में मैरता के बहुत से आदमी मारे गये। वहाँ पर दादू पंथी जो एक सन्यासी रहा करता था, उसके अनेक शिष्य खाने की सामग्री एकत्रित करते हुए मराठा सैनिकों के द्वारा मारे गये।

दूसरे दिन भी भयानक रूप से युद्ध आरम्भ हुआ। उसमें बहुत-से मराठा सैनिक मारे गये। लेकिन विजय सिंह की सेना की अपेक्षा मराठों की सेना बहुत बड़ी थी। इसलिए राजपूत सेना कुछ पहले से ही चिन्तित और भयभीत हो रही थी। दूसरे दिन के युद्ध में दोनों तरफ के सैनिक मारे गये और किसी पक्ष ने युद्ध से हटने का विचार नहीं किया। तीसरे दिन विजय सिंह की सेना के साथ वाले पशुओं की एक दुर्घटना हो गयी। जिस समय विजयसिंह के आदमी अपनी सेना के पशुओं को मैरता के बाहर एक छोटी-सी नदी में पानी पिलाने के लिए गये तो उस समय रास्ते में विजय सिह के अश्वारोही सैनिकों की एक सेना मिल गयी। वह सेना मराठों की एक सेना का सर्वनाश करके लौटी हुई आ रही थी। उसके अश्वारोही सैनिकों ने विजय सिंह की सेना के पशुओं को रामसिंह के पशु समझ कर आक्रमण किया और अपनी गोलियों से उन्होंने उन पशुओं को मार डाला। उन पशुओं के साथ विजय सिंह के जो नौकर थे, वे भी मारे गये।

इन पशुओं के मारे जाने से विजय सिंह की सेना की बड़ी हानि हुई, उन्हीं पशुओं के द्वारा सेनाओं का सामान एक स्थान से दूसरे स्थान पर लद कर जाता था। उनका संहार अपने ही सैनिकों के द्वारा हुआ। शत्रु के पशु और उनके रक्षक समझकर उन सैनिकों ने उनका संहार किया था। उनके मारे जाने से बोझा ढोने वाले पशुओं और उनके रक्षकों का ही नुकसान नहीं हुआ, एक और भी अनिष्ट हुआ। वह अनिष्ट ही सबसे अधिक भयानक साबित हुआ। दकियानूसी विचारों पर विश्वास करने के कारण विजय सिंह के पक्ष में जितने भी राजपूत युद्ध के लिए आये थे, सबका विश्वास हो गया कि अपने ही सैनिकों के द्वारा अपने पशुओं और उनके रक्षकों का

मारा जाना एक ऐसा अपशकुन हुआ है, जिससे युद्ध का भविष्य अपने अनुकुल नहीं जान पड़ता।

अपशकुन की आशंका का भय विजय सिंह के पक्ष के समस्त राजपूतों में फैल गया। उसके परिणाम स्वरूप उनके साहस निर्बल पड़ गये और वे सब के सब सोचने लगे कि यह युद्ध न लड़ना पड़े तो अच्छा है। इसलिए कि व्यर्थ प्राण देने से क्या लाभ है।

विजय सिंह की अवस्था बीस वर्ष से अधिक न थी। वह साहसी था और किसी प्रकार युद्ध से डरता न था। लेकिन उसके पक्ष के लोगों में ऐसा प्रभावशाली कोई राजपूत राजा न था, जो लोगों के फैले हुए भय को दूर कर सकता। विजय सिंह ने कोशिश की। लेकिन एक युवक होने के कारण राजपूतों पर उसका प्रभाव न पड़ा। ऐसे संकट के समय विजय सिंह को अपने पिता बख्त सिंह की बार-बार याद आयी। लेकिन उससे क्या लाभ हो सकता था।

"भगवान हमारे विरुद्ध हैं, नहीं तो क्या अपने ही सैनिकों के द्वारा हमारा विनाश होता—" यह विश्वास विजय सिंह के पक्ष के राजपूतों में खूब फैला और उस विश्वास ने दो लाख एकत्रित राजपूतों को कायर बना दिया। राजपूतों में फैले हुए इस विश्वास का समाचार मराठा सेना में पहुँचा। जयअप्पा की सेना पहले से ही प्रबल और शक्तिशाली थी। शत्रु-पक्ष की इस कमजोरी को मालूम करके वे लोग और भी अधिक प्रोत्साहित हो उठे।

मनुष्य का पहला बल उसका साहस और विश्वास होता है। जिस साहस और विश्वास ने विजय सिंह के राजपूतों को इस अवसर पर निर्बल बनाया, वही साहस और विश्वास मराठों की विजय का कारण बन गया। विजय सिंह के प्राणों में स्वाभिमान था। उसकी स्वाभाविक उत्तेजना उसे युद्ध करने के लिए विवश कर रही थी। लेकिन उसके राजपूतों में फैले हुए अविश्वास के कारण उसका कुछ बस न चलता था। युद्ध करने के लिए उसने अपनी सेनाओं को जितना भी परामर्श किया, वह सब-का-सब बेकार हो गया।

इस अवसर की बिगड़ी हुई परिस्थिति से जिस समय विजय सिंह बहुत चिन्तित हो रहा था, ठीक उसी समय अपने पक्ष के राजपूतों के भावों को समझ कर बीकानेर के राजा ने युद्ध न करने के लिए विजय सिंह को सलाह दी और उसने साफ-साफ कहा कि ऐसे समय में युद्ध-क्षेत्र से हट जाना ही अपने हक में अच्छा होगा। युद्ध के लिए आये हुए सभी सामन्त युद्ध क्षेत्र से भाग जाने के ही पक्ष में थे। उस समय विजय सिंह की तरफ निश्चय हुआ कि हम सब लोग युद्ध-क्षेत्र छोड़ कर एक ही तरफ—मैरता की ओर चलें।

इस प्रकार का निर्णय हो जाने के बाद भी जब विजय सिंह के सामन्त वहाँ से हटने लगे तो वे एक साथ और एक दिशा की ओर नहीं चले। बल्कि प्रत्येक सामन्त अपनी-अपनी सेना को लेकर अपनी राजधानी की ओर रवाना हुआ। इसी समय रामसिंह ने मराठा सेना के साथ आगे बढ़ कर विजय सिंह की सेनाओं का पीछा किया। शत्रु के भाग जाने के कारण तोपों और बन्दूकों के सिवा जितनी भी युद्ध की सामग्री वहाँ पर विजय सिंह की सेनाओं की थी, मराठा सेना ने उस पर अधिकार कर लिया।

मारवाड़ के सभी सामन्तों के साथ बीकानेर और कृष्ण गढ़ के राठौर राजा भी अपनी-अपनी सेनाओं के साथ अपने राज्यों को चले गये। उस समय विजय सिंह अकेला हो गया। युद्ध-क्षेत्र से भागने के समय उन राजपूतों ने यह भी जानने की कोशिश नहीं की कि विजय सिंह कहाँ है। अपनी इस दुरवस्था में विजय सिंह ने कुछ सैनिकों को लेकर नागौर की तरफ रवाना हुआ। कुछ इने-गिने सैनिकों को छोड़ कर अब उसके साथ कोई सेना न थी। मराठों के साथ युद्ध करने के लिए उसके पक्ष में जो दो लाख राजपूत आये थे, उनका अब पता न था।

विजय सिंह अपने कुछ साथियों के साथ नागौर की तरफ जा रहा था। रात का समय था और भयानक अंधकार था। उस अंधकार में मार्ग का पहचानना अपरिचित लोगों के लिए कठिन हो रहा था। जो लोग उसके साथ थे, उनमें राहिन का सामन्त भी था। वह विजय सिंह के साथ चल रहा था। परन्तु किसी भी दशा में वह अपने आपको सुरक्षित रखना चाहता था। मार्ग में चलते हुए विजय सिंह ने राहिन के सामन्त से कहा कि नागौर पहुँचकर राजपूतों को एकत्रित करेंगे और एक नयी सेना को लेकर मराठों से मारवाड़ की स्वाधीनता की रक्षा करेंगे। विजय सिंह का यह परामर्श राहिन के सामन्त को पसन्द नहीं आया। वह अब मराठों के साथ युद्ध करने के लिए तैयार न था। लेकिन विजय सिंह से वह कुछ कह न सका।

राहिन का सामन्त विजय सिंह को बिना कुछ बताये हुए अपने नगर की तरफ ले जा रहा था और विजय सिंह का निश्चय नागौर पहुँचने का था। इसके सम्बन्ध में उसने साथ के सामन्त से बातें कर लीं थीं। इसलिए वह समझता था कि सामन्त नागौर की तरफ चल रहा है। लेकिन जब उसे मालूम हुआ कि जिस रास्ते पर हम लोग चल रहे हैं, वह रास्ता नागौर की तरफ नहीं जाता। यह देखकर राहिन के सामन्त लालसिंह को सम्बोधित करते हुए उसने कहा : ठहरिये, हम लोग रास्ता भूल गये। इसलिए यहीं से नागौर की तरफ मुड़ जाइए।

लालसिंह ने रास्ता चलते हुए कोई भूल नहीं की थी। वह नागौर नहीं जाना चाहता था। इसलिए जान बूझकर वह अपने नगर की तरफ चल रहा था। इस समय विजय सिंह ने जो कुछ कहा उसका कोई प्रभाव सामन्त लालसिंह पर न पड़ा। यह सब समय की बात होती है। अभी कुछ घण्टे पहले जिस विजय सिंह के आदेश पर दो लाख राजपूत युद्ध के लिए आये थे और मारवाड़ राज्य के समस्त सामन्त विजय सिंह के लिए मरने मारने को तैयार थे, उसी विजय सिंह का एक सामन्त आज उसकी बात को सुनने के लिए तैयार नहीं है! यह सब समय की बात होती है।

सामन्त लालसिंह ने जब देखा कि विजय सिंह किसी की दशा में नागौर जाना चाहता है तो अपने मन के भावों को बदल कर उसने प्रार्थना की : यहाँ से मेरा नगर बहुत करीब है। अगर आप इजाजत दें तो मैं अपने परिवार के सब लोगों को जाकर देख आऊँ और उसके बाद लौट आऊँ।

विजय सिंह समझदार था। सामन्त लालसिंह के मन का भाव उससे छिपा न रहा। सामन्त के उत्तर में उसने कुछ कहा नहीं और अपने घोड़े को घुमाकर वह नागौर की तरफ चलने लगा। उसके साथ के केवल पाँच शिलापोस उसके पीछे-पीछे चलने लगे। शरीर-रक्षक को मारवाड़ी भाषा में शिलापोस कहा जाता है। विजय सिंह रात के अन्धकार में चलता हुआ कुजवाना नामक स्थान पर पहुँच गया। लेकिन वहाँ पर रुकना किसी प्रकार उसके लिए सुरक्षित न था। इसलिए विजय सिंह उस स्थान को छोड़ कर आगे की तरफ बढ़ा।

कुछ दूर निकल जाने के बाद कुजवाना स्थान की सीमा पर उसके घोड़े की हालत बिगड़ी। वह इतना थक गया था कि चलने के लिए उसमें शक्ति न रह गयी थी। उसकी इस दशा को देखकर विजय सिंह उसकी पीठ से उतर पड़ा। घोड़ा उसी समय गिर गया और विजय सिंह के देखते-देखते उस घोड़े की मृत्यु हो गयी। उसके मर जाने से विजय सिंह के हृदय को बड़ा आघात पहुँचा। युद्ध में राजपूतों की सफलता का बहुत बड़ा कारण उनका घोड़ा होता है। विजयसिंह इस समय बहुत हताश हुआ। उसे भय था कि शत्रु पीछा करते हुए कहीं आ न रहे हों। ऐसे समय पर घोड़े का मर जाना उसे बहुत खला।

विजय सिंह के एक शरीर रक्षक ने उसके बैठने के लिए अपना घोड़ा दे दिया। उस पर बैठ कर विजय सिंह फिर रवाना हुआ और तीन मील का रास्ता पार करके वह देशवाल नामक स्थान पर पहुँच गया। वह अब जिस घोड़े पर बैठ कर चल रहा था, उसकी भी दशा अच्छी न थी, थकावट के मारे उसके पैर आगे की तरफ बढ़ते न थे और उसके साथ न दे सकने का अंदेशा विजय सिंह को हो रहा था। यहाँ से नागोर सोलह मील की दूरी पर था। इसलिये उसने सोचा कि यहाँ पर घोड़े का कोई प्रबन्ध हो जाना जरूरी है।

विजय सिंह के साथ जो शरीर रक्षक चल रहे थे, उनके घोड़े भी बहुत थके हुये थे। उनमें कौन घोड़ा किस समय काम न दे सकेगा, इसका कोई अंदाज न था। ऐसी दशा में किसी सवारी का प्रबन्ध हो जाना बहुत जरूरी मालूम हुआ। जिस स्थान पर विजय सिंह पहुँचा था, वहाँ के लोगों से बातचीत करने पर मालूम हुआ कि यहाँ पर घोड़ों का मिलना सम्भव नहीं है। लेकिन कोशिश करने पर वहाँ के एक जाट किसान ने कहा : मैं सवेरा होते-होते नागोर पहुँचा दूँगा लेकिन अपनी बैलगाड़ी का किराया में पाँच रुपये से कम न लूँगा।

विजय सिंह ने उस जाट की इस माँग को मंजूर कर लिया। विजय सिंह ने वहाँ प किसी को अपना परिचय जाहिर नहीं होने दिया। जाट ने अपनी बैलगाड़ी तैयार की और उस पर बैठ कर विजय सिंह नागोर की तरफ रवाना हुआ। जाट अपने बैलों को तेजी के साथ चलाने की कोशिश में था लेकिन युद्ध के घोड़े पर बैठने वाले विजय सिंह के बैलों की तेज रफ्तार भी धीमी मालूम होती थी। इसलिए उसने कई बार कहा : और हाँके चलो।

विजय सिंह के अनेक बार ऐसा कहने पर जाट अप्रसन्न हो उठा। उसने क्रोध के साथ विजय सिंह से कहा : मैं अपनी गाड़ी को तेजी के साथ चलाने की कोशिश करता हूँ। फिर भी तुम बार-बार कहते हो। हाँक-हाँक। तुम कौन हो? इतनी तेजी के साथ भागने का तुम्हारा क्या अभिप्राय है? तुम्हारे जैसे एक शक्तिशाली जवान को विजय सिंह की सेना में रहकर युद्ध करना अच्छा मालूम होता। तुम्हारी बातों को सुनकर और तुम्हारे व्यवहार को देख कर मालूम होता है, मानो मराठा लोग तुम्हारे पीछे आ रहे हैं। अब बार-बार हाँक-हाँक न कहना। मै इससे अधिक तेजी में अपनी गाड़ी को नहीं चला सकता।

विजय सिंह ने क्रोध भरी जाट की बातों को सुना। उसने कुछ जवाब नहीं दिया। वह किसी भी दशा में जाट को अपना परिचय नहीं देना चाहता था। जाट अपनी गाड़ी को यथा सम्भव तेज चलाने की कोशिश में था। जब नागोर दो मील के फासिले पर रह गया, उस समय सवेरा हो गया। रात का अंधकार दूर हो गया था और प्रात:काल का प्रकाश चारो तरफ फैल गया था। उस प्रकाश में जाट ने विजय सिंह की तरफ देखा। उसकी पोशाक को देखते ही जाट कांप उठा। वह तेजी के साथ अपनी गाड़ी से नीचे उतरकर और अपने दोनों हाथों को जोड़कर विजय सिंह के सामने खड़ा हुआ। उसकी दशा को देखकर विजय सिंह ने मुस्कुराते हुये कहा : डरो मत।

जाट की घबराहट में कोई कमी न हुई। उसने गिड़गिड़ाते हुए कहा : महाराज, मुझसे बड़ी गलती हुई। मैंने आपको पहचाना नहीं था। मैं आप से अपनी भूलों की क्षमा चाहता हूँ।

विजय सिंह ने उसकी तरफ देखकर मुस्कराते हुए कहा : मैंने तुमको क्षमा किया। चलो, गाड़ी हाँकों।

जाट गाड़ी लेकर चलता हुआ। नागौर में पहुँचकर विजय सिंह ने जाट को पाँच रुपये दिये और उससे कहा : 'अवसर आने पर तुमको इनाम दिया जायगा।" यह सुनकर और प्रसन्न होकर जाट अपने गाँव लौट गया।

नागौर पहुँचकर विजय सिंह ने हरसोला सामन्त को उसकी सेना के साथ जोधपुर की रक्षा के लिए भेजा और मारवाड़ के सब सामन्तों को बुलाने के लिए उसने संदेश भेजे। इसी मौके पर विजयी रामसिंह ने मराठा सेना को लेकर नागौर की राजधानी घेर ली उस राजधानी को घेरे हुए मराठा सेना ने पूरे छै महीने बिता दिया लेकिन साहसी विजय सिंह ने मराठों को राजधानी के भीतर प्रवेश नहीं करने दिया।

माराठा सेना ने राजधानी में प्रवेश करने के लिए अनेक बार चेष्टा की, लेकिन उसको सफलता नहीं मिली। उसको अपने इस प्रयास में भयानक क्षति उठानी पड़ी। विजय सिंह अत्यंत साहसी और रणकुशल था। उसने सोचा कि इस प्रकार काम न चलेगा और नांगौर की छोटी-सी सेना के बल पर मराठों की इस विशाल सेना को पराजित करना सम्भव नहीं है। मराठों को परास्त करने के लिए कोई दूसरी योजना काम में लाना चाहिए। ऐसे अवसर पर मारवाड़ राज्य से किसी प्रकार की सहायता के मिलने की आशा नहीं है। इस प्रकार सोच-विचार कर विजय सिंह ने राजस्थान के अन्य राजाओं से सहायता लेने का निश्चय किया। उसको विश्वास था कि ऐसे अवसर पर मराठों के विरुद्ध लड़ने के लिए पड़ोसी राज्य मेरी सहायता करेंगे।

अपने इस विश्वास के अनुसार विजय सिंह ने नागौर से बाहर जाने की कोशिश की। उसके अधिकार में इस समय पाँच सौ ऊँटों के सवार सैनिक थे। उनको और एक हजार शूरवीर राजपूत सैनिकों को अपने साथ लेकर विजय सिंह आधीरात के समय नागौर की राजधानी से निकल कर रवाना हुआ। चौबीस घन्टे तक बराबर चलने के बाद वह बीकानेर राज्य में पहुँचा। विजय सिंह ने वहाँ के राजा से सहायता करने के लिए कहा। बीकानेर के राजा ने बड़े सम्मान के साथ उसका आतिथ्य सत्कार किया। लेकिन मराठों के साथ युद्ध करने में सहायता करने से उसने बिलकुल इनकार कर दिया।

विजय सिंह को बीकानेर के राजा से ऐसी आशा न थी। वह बीकानेर की राजधानी से निकलकर बाहर हुआ और जयपुर राज्य की तरफ रवाना हुआ। वह जानता था कि जयपुर का राजा ईश्वरी सिंह रामसिंह की सहायता कर रहा है। फिर भी उसने ईश्वरी सिंह से सहायता के लिए कहने का निश्चय किया। जयपुर राज्य में पहुँचकर उसने एक स्थान पर मुकाम किया और अपने राजदूत को भेजकर राजा ईश्वरी सिंह से कहा कि मैं अपनी इस विपद काल में आप से सहायता लेने के लिए आया हूँ और आशा करता हूँ कि आप मेरी सहायता करेंगे।

जयपुर की राजधानी अम्बेर के राजदरबार में विजय सिंह का भेजा हुआ राजदूत पहुँचा और उसने यथोचित अभिवादन करने के बाद राजा ईश्वरी सिंह से विजय सिंह का संदेश कहा। ईश्वरी सिंह अपने पिता राजा सवाई जयसिंह की तरह साहसी और बुद्धिमान न था। वह प्रत्येक अवस्था में अवसरवादी था। उसी ने अपने षड़यंत्र से विषैले वस्त्र पहना कर बख्त सिंह के प्राणों का नाश किया था। राजपूत के द्वारा विजय सिंह का संदेश सुनकर यह असमंजस में पड़ गया। राजस्थान में आतिथ्य सत्कार की प्रथा बहुत प्राचीन काल से चली आयी है। राजा ईश्वरी सिंह ने विजय सिंह के आतिथ्य सम्मान का भी प्रबन्ध न किया और उसने सोच डाला कि ऐसे मौके पर विजय सिंह को कैद करवा लेना चाहिए। इसके लिए उसने पूरी शक्ति लगाकर कोशिश की। उसका परिणाम जो कुछ हुआ, उसे संक्षेप में नीचे लिखा गया है।

मैरतीय राजपूतों का सरदार शेरसिंह अपने राजा के प्रति कर्त्तव्यों का पालन करते हुए युद्ध में बलिदान हुआ था, इसका ऊपर वर्णन हो चुका है। शेरसिंह जिसका पक्ष लेकर लड़ा था, उसकी पराजय हुई थी। इसलिए बख्त सिंह ने उसके अधिकार के प्रदेश पर कब्जा करके उसके वंश के दूसरे लोगों को उस प्रदेश का अधिकार दे दिया था। इस प्रकार रिया प्रदेश का अधिकार जिस नये सामन्त को मिला, उसका नाम जवान सिंह है।

जिस समय विजय सिंह सहायता माँगने के लिए जयपुर गया था, जवान सिंह भी उस समय उसके साथ था। जयपुर राज्य में अटचोल नामक एक स्थान है। वहाँ के शक्तिशाली सामन्त की लड़की का विवाह जवान सिंह के साथ हुआ था। वह सामन्त योग्य और शक्तिशाली होने के कारण जयपुर राज्य का विश्वास पात्र था। ईश्वरी सिंह ने विजय सिंह को कैद करने के लिए एक षड़यंत्र रचा और उस षड़यंत्र के द्वारा विजय सिंह को कैद करने के लिए सामन्त जवान सिंह के ससुर को आदेश दिया।

अटचोल का सामन्त इस बात को जानता था कि मेरा दामाद जवान सिंह विजय सिंह का राजभक्त है और विजय सिंह ने उदारता पूर्वक रिया का प्रदेश जवान सिंह को दे दिया है। इस दशा में उसने ईश्वरी सिंह का सम्पूर्ण षड़यंत्र अपने दामाद से जाहिर कर दिया। उसको सुनकर जवान सिंह ने प्रतिज्ञा की कि प्रत्येक अवस्था में मैं विजय सिंह की रक्षा करूँगा।

जयपुर के राजा ईश्वरी सिंह ने जब अपने षड़यंत्र का पूरा प्रबन्ध कर लिया तो भेंट करने के लिए राज्य की एक धर्मशाला में उसने विजय सिंह को बुलवाया। उसके आने के पहले ही ईश्वरीसिंह धर्मशाला में आ गया था। विजयसिंह को ईश्वरीसिंह के षड़यंत्र की कुछ खबर न थी। अपने खेमों से चलकर विजय सिंह धर्मशाला में पहुँचा और अत्यन्त सम्मान के साथ वह ईश्वरी सिंह से मिला। दोनों ही एक आसन पर बैठे और दोनों ने एक दूसरे से कुशल समाचार पूछे। विजयसिंह जहाँ पर बैठा था, सामन्त जवान सिंह चुपके से जाकर उसके पीछे बैठ गया। वह राजा ईश्वरी सिंह के षड़यंत्र को सुन चुका था। इसलिए अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार वह बहुत सतर्क और सावधान था। मारवाड़ राज्य के प्रचलित नियमों के अनुसार मैरता का सामन्त राजा के दक्षिण तरफ स्थान पाने का अधिकारी है। लेकिन जवान सिंह अपने उचित स्थान पर न बैठकर अपने राजा के पीछे बैठा था। यह देखकर राजा ईश्वरी सिंह ने उससे कहा : ठाकुर आप अपने राजा के पीछे क्यों बैठे हैं ?

सामन्त जवान सिंह ने राजा ईश्वरी सिंह के इस प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा : महाराज, आज इसी स्थान पर बैठने की आवश्यकता है।

ईश्वरी सिंह चुप हो रहा। सामन्त जवान के अभिप्राय को वह समझ न सका। जवान सिंह अपने स्थान पर बैठा हुआ राजा ईश्वरी सिंह के षड़यंत्र को बड़ी सावधानी के साथ देख रहा था। कुछ देर के बाद उसने विजय सिंह की तरफ देखा और कहा : महाराज, आप शीघ्र यहाँ से उठकर चल दीजिए, अन्यथा भयानक विपद में होंगे।

जवानसिंह की बात को सुनकर विजयसिंह सचेत हुआ, उसने किसी प्रकार की विलम्ब न करके जवान सिंह की तरफ देखा और उठ कर तेजी के साथ चलता हुआ। विजय सिंह अपने सामन्त जवान सिंह के संकेत का अर्थ समझ गया था। उसे इस बात का आभास हो गया कि मेरे विरुद्ध राजा ईश्वरी सिंह का कोई षड़यंत्र चल रहा है। अपने स्थान से विजय सिंह के उठते ही और तेजी के साथ बाहर जाते ही ईश्वरी सिंह ने उसके पीछे दौड़ने की कोशिश की। लेकिन सामन्त जवान सिंह ने उसकी चेष्टा को बेकार कर दिया। ईश्वरी सिंह के स्पष्ट विश्वासघात

को देखकर जवान सिंह ने निर्भीक होकर उससे कहा : महाराज, सावधान, अगर आपने कुछ भी मेरे स्वामी का अनिष्ट किया तो अपनी इस तलवार से मैं आपकी गरदन को काट कर फेंक दूंगा।

इस समय सामन्त जवान सिंह के दाहिने हाथ में नंगी तलवार थी। इसी समय उसने विजय सिंह की तरफ देखकर कहा : महाराज आप अपने खेमे में पहुँच जाने के बाद मुझे समाचार दें।

धर्मशाला से निकल कर विजय सिंह अपने घोड़े पर बैठा 'और जब वह अपने खेमों में पहुँच गया तो उसने सामन्त जवान सिंह के पास समाचार 'भेजा : मैं आप का रास्ता देख रहा हूँ।

सामन्त जवान सिंह ने राजा विजय सिंह के प्राणों की रक्षा करने की प्रतिज्ञा की थी। उसने अपने प्राणों को संकट में डालकर अपनी प्रतिज्ञा को पूरा किया और उसके द्वारा विजय सिंह सुरक्षित अपने खेमों में आ गया। उसका समाचार पा जाने के बाद जवान सिंह ने अपनी तलवार म्यान में रखी और फिर वह राजा ईश्वरी सिंह के पास गया और नम्रता पूर्वक उसने उसको प्रणाम किया। जवान सिंह को देखकर ईश्वरी सिंह ने अपने सामन्तों मो सम्बोधन करते हुए कहा : आप के सामने एक सामन्त की राजभक्ति का आदर्श है। जिस राजा के सामन्तों में इस प्रकार की राजभक्ति होती है, उस राजा का कभी कोई अनिष्ट नहीं कर सकता।

मराठों को पराजित करने के लिए विजय सिंह नागौर की राजधानी से निकला था। परन्तु उसको सफलता न मिली। इसलिए निराश होकर वह नागौर की राजधानी में फिर लौट आया और छै महीने उसने फिर व्यतीत किये। इतने दिनों तक नागौर की राजधानी को घेरे रहने के बाद भी मराठा सेना नागौर में विजय न प्राप्त कर सकी।

इन दिनों में मराठों ने मारवाड़ राज्य के कई एक प्रसिद्ध स्थानों पर अधिकार कर लिया था, मारोत, पर्वतसर, पाली और सुजात आदि नगरों के निवासियों ने रामसिह की अधीनता मंजूर कर ली थी। परन्तु जोधपुर की राजधानी, नागौर, झालौर, सिवनोह और फलोदी इत्यादि नगर अब भी विजय सिंह के शासन में थे। नागौर में रह कर और इतने दिनों तक मराठा सेना का सामना करके उसको परास्त करने के लिये विजय सिह ने एक नयी योजना तैयार की।

विजय सिंह की सेना में काम करने वाले एक राजपूत और एक अफगानी सैनिक ने आपस में कुछ परामर्श करके दोनों विजय सिंह के पास आये और अपनी राजभक्ति का प्रदर्शन करते हुए दोनों ने प्रार्थना की : अगर महाराज हम दोनों के 'परिवारों के पालन करने का उत्तरदायित्व स्वीकार करें तो मारवाड़ पर आयी हुई विपदा के मूल अपराधी मराठा सेनापति को हम दोनों जान से मार डालेंगे।

उन दोनों सैनिकों की इस बात को सुनकर विजय सिंह ने उनकी तरफ देखा 'और उनकी प्रार्थना को स्वीकार कर लिया। इसके बाद एक दिन राजपूत और अफगानी सैनिक रास्ते में झगड़ा करते हुए मराठा नेता के शिविर के समीप पहुँच गये। सेनापति सींधिया अपने शिविर के बाहर हाथ-मुँह धो रहा था। उसको देखकर वे दोनों सैनिक एक, दूसरे को अश्लील बातें कहकर आपस में लड़ने लगे और लड़ते हुये वे सेनापति सींधिया के पास पहुँच गये। उसमें से एक सैनिक ने सींधिया की तरफ देखकर कहा : "आप से हमारी प्रार्थना है कि मध्यस्थ बनकर हम दोनों का झगड़ा तय कर दीजिये।

सेनापति सोंधिया उन दोनों की बातें सुनने लगा। इसी समय अवसर पाकर अफगानी सैनिक ने 'यह तो नागौर' कहकर सेनापति सेंधिया पर अपनी तलवार का आक्रमण किया। उसी समय राजपूत सैनिक ने 'यह लो जोधपुर' कह कर अपनी तलवार सेनापति सोंधिया की छाती पर मारी। वे दोनों सैनिक इसके बाद वहाँ से भागे, अफगानी सैनिक मराठों के द्वारा पकड़ लिया गया और वह जान से मार डाला गया। लेकिन राजपूत सैनिक मराठा सैनिकों के साथ 'पकड़ो पकड़ो' कह कर दौड़ने लगा और फिर उनके बीच से निकल कर वह नागौर पहुँच गया।

जयअप्पा सोंधिया की मृत्यु हो गयी। उसके मरने पर माधव जी सोंधिया उसकी सेना का सेनापति बनाया गया। मराठा सेना इसके बाद भी कुछ दिनों तक नागौर को घेरे रही। परन्तु उसे सफलता न मिली। इस दशा में माधव जी सेंधिया ने विजय सिंह के साथ संधि कर ली। उस संधि में निश्चय हुआ कि मराठा सेना रामसिंह का पक्ष छोड़कर मारवाड़ से चली जायगी और इस संधि के द्वारा विजय सिंह ने माधव जी सेंधिया को एक निश्चित कर देना स्वीकार किया। इसके बाद माधव जी सोंधिया वहाँ से अजमेर की तरफ चला गया।

अब रामसिंह का कोई सहायक न रह गया था। ईश्वरी सिंह की भी मृत्यु हो गयी थी। इसलिए उसको अब विजय सिंह का ही सहारा था। रामसिंह की इस अवस्था को देखकर विजय सिंह ने उसको मारवाड़ राज्य के हिस्से की साँभर झील का अधिकार दे दिया। उस झील में आधा हिस्सा जयपुर राज्य का था। इसलिए रामसिंह ने उसका स्वत्व भी प्राप्त कर लिया। उसके बाद वह जीवन के अंतिम दिनों तक वहीं पर बना रहा।

बयासीवाँ परिच्छेद

जयअप्पा सोंधिया के स्थान पर माधव जी सोंधिया–माधव जी सोंधिया को राजपूतों की परिस्थितियों का ज्ञान–राजपूतों का जातीय द्रोह–जयपुर का राजा प्रताप सिंह–मराठों के साथ युद्ध–मराठों का दूसरा आक्रमण–कविता का भयानक परिणाम–जयपुर सेना का विश्वासघात–मराठों की विजय–मारवाड़ पर मराठों का आक्रमण–दूरदर्शी विजय सिंह–आपसी द्वेष के कारण शत्रु की सहायता–मेरता के मैदानों में मराठोंके साथ युद्ध–जोधपुर राजधानी में मन्त्रियों की फूट का परिणाम–सामन्त महीदास की प्रतिज्ञा–राठौर सेना की पराजय का कारण–फ्रांसीसी सेनापति डी वाइन–बिना युद्ध के मराठों की विजय–आसोप का अफीमची सामन्त–युद्ध की फिर से तैयारी–जवान सिंह की उत्तेजनापूर्ण बातें–मराठों की तोपों के गोलों के सामने राजपूतों के बलिदान–युद्ध क्षेत्र में घायलों की दशा–शिविर में अहवा के सामन्त की चिकित्सा–अहवा के सामन्त की मृत्यु–विष खाकर मन्त्री भीमराज की आत्महत्या–मैरता के युद्ध में मराठों का सर्वनाश–बहादुर राजपूतों की दुरवस्था का कारण–राजपूतों के साथ सच्ची सहानुभूति का परिणाम–कोटा के जालिम सिंह की स्पष्ट बातचीत–अङ्गरेजों की सफलता का कारण भारतवर्ष की आपसी फूट–झारो का सम्पन्न ग्राम और उसका स्मारक–माहीर लोगों के आक्रमण–पुष्कर का प्रसिद्ध स्थान–पुष्कर के सम्बन्ध में प्रचलित जनश्रुतियाँ–अजमेर की यात्रा।

जयअप्पा सोंधिया के मर जाने के बाद उसका वंशज माधव जी सोंधिया मराठा सेना का सेनापति चुना गया। माधव जी दूरदर्शी और राजनीति कुशल था। राजपूतों के साथ होने वाले

युद्धों को देखकर उसने भलीभांति इस बात को समझ लिया था कि मराठा अश्वारोही सैनिक राजपूत अश्वारोही सैनिको का मुकाबला नहीं कर सकते। इसलिए उसने अपनी सवार सेना को युद्ध की शिक्षा देना आरम्भ किया।

माधव जी सौंधिया से राजस्थान के राजपूतों की परिस्थितियाँ छिपी न थीं। वह जानता था कि राजपूत राजाओं में आपसी फूट का विष फैला हुआ है। वे एक दूसरे के शुभचिंतक नहीं हैं और मौका पाने पर प्रत्येक राजपूत राजा अपने ही वंश के दूसरे राजा का सर्वनाश करने के लिए सदा तैयार रहता है। इन परिस्थितियों में राजपूतों को पराजित करना कुछ भी मुश्किल नहीं है। माधव जी सौंधिया इन बातों को खूब जानता था।

राजपूतों के सम्बन्ध में माधव जी सौंधिया का ख्याल असत्य नहीं था। राजस्थान का जब कोई राजा आपस में लड़कर पराजित होता था तो वह अपने विरोधी राजा को परास्त करने के लिए मराठा सेना की शरण में जाता था और अपनी सहायता में इसको लाकर वह अपने वंश और राज्य का विध्वंस और विनाश कराता था। उदयपुर के राणा ने अपने भान्जे मधुसिंह को जयपुर के राजसिंहासन पर बिठाने के लिए मराठों की सहायता ली थी और सहायता के बदले मराठों की माँग के अनुसार कर देना मंजूर किया था। इस प्रकार की घटनाओं के वर्णन पहले किये जा चुके हैं। राणा के सिवा राजस्थान के दूसरे राजाओं ने भी आवश्यकता पड़ने पर मराठों की सहायता ली थी।

राजपूतों की ये परिस्थितियाँ साफ-साफ जाहिर करती हैं कि उनमें बुरी तरह फूट का विष फैला हुआ है। यह बात सही है कि जिन राजपूत राजाओं ने अपनी दुरवस्थाओं में मराठों की सहायता ली थी, उनमें कोई भी अच्छी हालत में नहीं रह सका। मराठों ने सहायता करने के नाम पर भयानक लूट की थी और उनके द्वारा मिलने वाली सहायता किसी भी राजा के लिए पराजित अवस्था से भी अधिक भयानक हो जाती थी। इसको समझते और जानते हुए भी राजपूत नरेश मराठों की सहायता लेने के लिए दौड़ा करते है। इन बातों से मराठा सेनापति माधव जी सौंधिया भली प्रकार परिचित था।

मधुसिंह अपने मामा उदयपुर के राजा के द्वारा मराठों की सहायता से अम्बेर के सिंहासन पर बैठा था। परन्तु उस सौभाग्य का सुख वह अधिक दिनों तक न उठा सका। उसकी मृत्यु हो जाने के बाद जयपुर के राजसिंहासन पर प्रतापसिंह बैठा। जयपुर राज्य के निवासी मराठों से बहुत चिढ़े हुए थे। इसलिए उन्होंने इस बात की आशा की कि प्रताप सिंह के शासन काल में राज्य से मराठों का आधिपत्य मिटा दिया जायगा।

प्रताप सिंह ने यही किया भी। उसने राजसिंहासन पर बैठने के बाद मराठों की अधीनता मंजूर करने से इनकार कर दिया। यह देखकर माधव जी सौंधिया अपनी विशाल सेना लेकर जयपुर में आक्रमण करने के लिए अम्बेर राजधानी की तरफ रवाना हुआ। पहले यह लिखा जा चुका है कि विपदाओं में पड़ जाने के कारण ही मारवाड़ के राजा विजयसिंह ने माधव जी सौंधिया के साथ साथ संधि की थी और सौंधिया के माँग के अनुसार अजमेर राज्य एवम् त्रैवार्षिक कर देना उसे मंजूर करना पड़ा था।

प्रताप सिंह ने सिंहासन पर बैठने के बाद राजस्थान की राजनीतिक परिस्थितियों का गम्भीरता पूर्वक अध्यन किया। उसने भलीभाँति इस बात को समझा कि मराठे लोग जयपुर राज्य के जितने शत्रु हैं, वे उतने ही शत्रु मारवाड़ राज्य के भी हैं। इसलिए मराठों को परास्त करने के लिए राजा प्रताप सिंह ने मारवाड़ राज्य से सहायता माँगी।

जयपुर राज्य पर मराठों के होने वाले आक्रमण के समय जयपुर के वर्तमान राजा प्रताप-सिंह का मारवाड़ से सहायता माँगना किसी प्रकार अनुचित न था। लेकिन मारवाड़ के सिंहासन पर इन दिनों जो विजय सिंह था, उसने इन्हीं मराठों को परास्त करने के लिए जयपुर के राजा ईश्वरी सिंह से सहायता के लिये प्रार्थना की थी। उस समय ईश्वरी सिंह ने सहायता देने के बजाय अपने षड़यंत्र द्वारा विजय सिंह को कैद कर लेने की एक मजबूत योजना बनायी थी। उस योजना में वह सफल न हो सका था। विजय सिंह को अपने जीवन की यह घटना भूली न थी। भूल जाने के योग्य वह घटना थी भी नहीं।

विजत सिंह के हृदय में जयपुर राज्य की तरफ से होने वाली इतनी ही चोट न थी। उसके पिता बख्तसिंह के प्राणों का नाश करने के लिए राजा ईश्वरी सिंह ने जो षड़यंत्र रचा था और जिसके फल स्वरूप बख्तसिंह की मृत्यु हुई थी, उस दुर्घटना को भी विजय सिंह जानता था। जिस जयपुर राज्य की तरफ से इस प्रकार के आघात विजय सिंह और उसके पूर्वजों को पहुँचे थे, उसी जयपुर राज्य के राजा प्रताप सिंह ने अपनी विपदाओं को सामने रखकर मराठों को परास्त करने के लिए विजय सिंह से सहायता माँगी।

जयपुर के राजा ईश्वरी सिंह के षड़यंत्रों को विजय सिंह भूला न था। इन्हीं दिनों में प्रताप सिंह ने उससे सहायता के लिए प्रार्थना की। ऐसे अवसर पर विजय सिंह को क्या करना चाहिए, यह समस्या उसके सामने एक साथ पैदा हो गयी। विजय सिंह राजा ईश्वरी सिंह की तरह स्वार्थी और अवसरबादी न था। वह स्वाभिमानी राजपूत था। राजनीति कुशल और दूर-दर्शी था। उसने आसानी के साथ अपनी इस समस्या को हल करते हुए निर्णय किया: आज का यह अवसर आपसी फूट का बदला लेने के लिए नहीं है। बल्कि यह अवसर उस शत्रु को परास्त करने के लिए है, जिसने समय-समय पर हम सभी का विनाश किया है। इसलिए आपस की फूट को भुलाकर एक दूसरे का ऐसे मौके पर साथ देना बुद्धिमानी की बात है।

इस प्रकार निर्णय करके विजय सिंह ने राजा प्रताप सिंह की सहायता में मराठों के साथ युद्ध करने के लिये अपनी एक सेना देकर सामन्त जवान सिंह को रवाना किया। मराठों के साथ युद्ध करने के लिए तङ्गा नामक स्थान पर मोर्चा बन्दी हो रही थी। उस स्थान पर जो युद्ध हुआ। वह 'लाल सन्त का समर' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। युद्ध क्षेत्र में राठौर सेना के पहुँचने पर इस्माइल्य बेग और हमदानी नामक दो मुगल सेनापति वहाँ पर आकर उनसे मिल गये।

दोनों तरफ की सेनाएँ संग्राम भूमि में पहुँच चुकी थीं। युद्ध आरम्भ हो गया। मारवाड़ की राठौर सेना आरम्भ से ही अपने बल विक्रम का परिचय देने लगी और उसने शत्रुओं का भयानक रूप से संहार किया। रिया के सामन्त जवान सिंह ने अपने सैनिकों को आगे बढ़ाया और मराठों के साहस को उसने पस्त कर दिया। सींधिया के सैनिकों ने फ्रांसीसी सेनापति डी बाइन से युद्ध की शिक्षा पायी थी। लेकिन राठौर अश्वारोही सेना के सामने वे ठहर न सके और वे बुरी तरह से मारे गये। यह देखकर मराठा सेना पीछे की तरफ हटने लगी और कुछ समय के बाद मराठों को भगाकर राठौर सेना ने विजय प्राप्त की।

सेनापति माधवजी सींधिया अपनी पराजित सेना को लेकर युद्ध स्थल से भागा और मथुरा में पहुँच कर उसने मुकाम किया। इस युद्ध में सींधिया की सेना को जो क्षति पहुँची थी, उसकी वह बहुत दिनों तक पूर्ति नहीं कर सका। मराठों को पराजित करने के बाद सामन्त जवान सिंह ने अजमेर पर अधिकार करने के लिए अपनी एक सेना भेजी। उसने वहां पर पहुँच कर अधिकार कर लिया और अजमेर के राज्य को मारवाड़ मे शामिल कर लिया। माधव जी सींधिया के साथ

विजय सिंह ने जो संधि की थी और उसके अनुसार वह जो प्रति तीसरे वर्ष निश्चित कर में बहुत-सा धन दिया करता था, वह संधि टूट गयी और विजय सिंह ने उस कर का देना बन्द कर दिया। इस युद्ध का एक परिणाम और हुआ, इसके पहले जयपुर के साथ, मारवाड़ और मेवाड़ की जो फूट चल रही थी, वह खत्म हो गयी और वे तीनों राज्य फिर एक होकर चलने लगे।

तङ्गा के युद्ध क्षेत्र में माधव जी सोंधिया की जो पराजय हुई, उससे वह बहुत लज्जित हुआ और राजपूतों से बदला लेने के लिए उसने अपनी तैयारियाँ आरम्भ कर दी। फ्रांसीसी सेनापति डी बाइन के साथ उसने परामर्श किया और अपनी सेना को पहले से अधिक शक्तिशाली बनाने की चेष्टा की। फ्रांसीसी सेनापति ने बड़े परिश्रम के साथ मराठा सेना को युद्ध की शिक्षा देने का कार्य आरम्भ किया। किसी प्रकार माधव जी सोधिया राजपूतों से अपना बदला लेना चाहता था। इसलिए युद्ध की तैयारी में उसने कुछ बाकी न रखा। उसने अपनी सेना में अच्छे से अच्छे सैनिकों की भरती की और उसको युद्ध की शिक्षा दिलायी। पराजित सेनापति सोंधिया ने अपने अधिकार में इतनी अधिक सेना का संगठन किया, जितना बड़ा संगठन कदाचित मराठा सेना में कभी न हुआ था, इस प्रकार अपनी सुरक्षित, युद्ध कुशल और विशाल सेना को लेकर वह राजस्थान की तरफ रवाना हुआ।

राठोर राजा विजय सिंह को समाचार मिला कि मराठा सेनापति अपनी नवीन और विशाल सेना को लेकर युद्ध करने के लिए आ रहा है। बिना किसी चिंता और भय के उसने अपने राज्य में युद्ध की तैयारियाँ कीं। शूरबीर राठौर राजपूत फिर मराठों के साथ युद्ध करने के लिए उत्तेजित हो उठे। विजय सिंह राजनीतिक और दूरदर्शी था। उसने निश्चय किया कि राज्य में आने के पहले ही मराठों का मुकाबिला करना चाहिये। इसलिए उसने जयपुर के राजा के पास संदेश भेजा और दोनों राज्यों की सेनायें युद्ध के लिए तैयार हो गयीं।

मारवाड़ से राठोर सेना और जयपुर से अम्बेर की सेना युद्ध के लिए रवाना हुई। जयपुर-राज्य की उत्तरी सीमा पर पातन नामक नगर में दोनों ओर की सेनायें मिल गयी और मराठा सेना के साथ युद्ध करने के लिए दोनों सेनायें आगे बढ़ी। दोनो ओर की सेनाओं में शत्रुओं के साथ युद्ध की उत्तेजना थी। और राजपूती स्वाभिमान के साथ वे सेनायें आगे की ओर बढ़ रही थीं। लेकिन युद्ध स्थल पर पहुँचते ही एक ऐसी घटना घटी जिससे उनके मनोभावों में एक देसरे से प्रति ईर्षा पैदा हो गयी। मारवाड़ के एक कवि की एक कविया से दोनों राज्यों की एकता की जञ्जीर टूट गयी। उस कवि ने राठौर सेना की प्रशंसा में कविता की जो पंक्ति कही थी, वह निम्नलिखित है :

उदत ताइन अम्बरराराठौरण

कविता की इस पंक्ति का अर्थ यह कि राठौर वीरों ने ही युद्ध स्थल में स्त्री स्वरूप अम्बेर की सेना की रक्षा की थी। कविता की इस पंक्ति को गाते हुए कवि ने राठौर सेना की प्रशंसा की। उस प्रशंसा को अम्बेर राज्य की सेना ने सुना। उससे उसने अपना अपमान अनुभव किया। अम्बेर के सैनिकों ने समझा कि मराठा सेना को पिछले युद्ध में पराजित करने का श्रेय राठौर राजपूत केवल अपने आप को देते हैं और उनका एक कवि जयपुर की सेना को स्त्रियों में सुमार करता है।

राठौरों की यह भावना अम्बेर की सेना को असहय हो उठी। उसने निश्चय किया कि अगर राठौरों की सेना ही मराठों को पराजित कर सकती है तो इस युद्ध में उनकी बहादुरी को देख लेना

है। इस प्रकार राठौरों के साथ अम्बेर की सेना का ईर्षा-भाव पैदा हो गया। अम्बेर के राजपूतों ने इतना ही नहीं किया बल्कि वे चुपके-चुपके मराठों के साथ अपनी संधि की बातचीत भी करने लगे और मराठों के साथ उन्होंने निश्चय किया कि युद्ध आरम्भ होने पर अम्बेर की सेना अलग खड़ी होकर केवल युद्ध का दृश्य देखेगी और वह मराठों पर किसी प्रकार का आक्रमण न करेगी। इसके बदले में मराठा सेना जयपुर राज्य को किसी प्रकार की क्षति न पहुँचावेगी। मराठों और अम्बेर की सेनाओं में जबानी इस प्रकार की एक संधि हो गयी।

राठौर सेना को इस रहस्य का कुछ पता न था। पिछले युद्ध में राठौरों ने अन्य राजपूत सेनाओं के साथ मिलकर मराठों को पराजित किया था। इस युद्ध में भी वे उसी का सपना देख रहे थे। इस के बाद युद्ध आरम्भ हुआ। मराठों और राठौरों ने एक दूसरे पर गोलों की वर्षा आरम्भ की। इसके बाद युद्ध भयानक होता गया। अम्बेर की सेना ने युद्ध में भाग नहीं लिया और वह एक तरफ अलग खड़ी रही। मराठों की विशाल सेना ने यह देखकर और मौका पाकर राठौर सेना को घेर लिया। राठौरों की अपेक्षा मराठा सैनिकों की संख्या बहुत अधिक थी। उस समय भीषण रूप से राठौरों का 'संहार हुआ। राठौर राजपूत मराठों के मुकाबिले में ठहर न सके। उन्होंने युद्ध-क्षेत्र छोड़ दिया। मराठो की इस प्रकार विजय हुई। इस युद्ध में राठौर सेना का बुरी तरह संहार हुआ। अगर अम्बेर की सेना ने विश्वासघात न किया होता तो राठौर सेना का इस प्रकार सर्वनाश न होता।

राठौर कवि ने अपनी कविता के द्वारा अम्बेर की सेना का जो अपमान किया था, उसका बदला लेने के लिए अम्बेर के एक कवि ने राठौरों की इस पराजय पर एक कविता लिखी जो इस प्रकार है :

घोड़ा, जोड़ा, पागडी;
मुटचा, खड्ग मारवाड़;
पाँच रकमे मेल लिदा;
पातन में राठौर।

कविता की इन पंक्तियों का अर्थ यह है कि पातन के युद्ध में राठौर सैनिकों को घोड़ा, जोड़ा पगड़ी, गोंप और तलवार—सब-कुछ शत्रुओं को सौंप देना पड़ा था।

पातन के युद्ध में राठौर कवि की कविता से ईर्षालु होकर अम्बेर की सेना ने राठौरों के साथ जो विश्वासघात किया, उसका दुष्परिणाम राठौरों के साथ-साथ अम्बेर राज्य को भी भोगना पड़ा। इसमें संदूह नहीं कि राठौर कवि ने अपनी कविता के द्वारा एक भयानक मूर्खता का परिचय दिया था। परन्तु अम्बेर की सेना ने भी उससे कम मूर्खता नहीं की। राठौर कवि की वह कविता और कल्पना व्यक्तिगत थी। उसमें सम्पूर्ण राठौर सेना का अपराध न था। यद्यपि उसका यह कर्त्तव्य था कि उस कविता को सुनकर उसने राठौर कवि का विरोध किया होता। लेकिन उसने ऐसा नहीं किया। उसके बदले में अम्बेर वालों को इस प्रकार का विश्वासघात नहीं करना चाहिए था। इसलिए कि मराठों के साथ युद्ध करने के लिए जयपुर के राजा प्रताप सिंह ने जब विजय सिंह से सहायता माँगी थी, उस समय भी इन दोनों राज्यों में ईर्षा और कटुता कम न थी। उसका वर्णन ऊपर किया जा चुका है। लेकिन बुद्धिमान विजय सिंह ने उन षड़यंत्रों पर धूल डाल कर और पिछले दिनों की शत्रुता को भुलाकर विजय सिंह ने प्रताप सिंह की सहायता करना और मराठों को परास्त करना ही अपना कर्त्तव्य समझा था। अम्बेर के राजपूतों ने ऐसा नहीं किया। यह कलंक जयपुर के मस्तक से कभी मिटाया नहीं जा सकता। युद्ध में पराजित होना कलंक की बात

नहीं है। लेकिन अपने ही आदमियों के साथ विश्वासघात करना एक ऐसा कलंक है, जिससे इस प्रकार का अपराध करने वाली जाति और उसके वंशज भविष्य में कभी भी अलग नहीं हो सकते।

पातन के युद्ध में राठौरों की पराजय और जयपुर की सेना के विश्वासघात का समाचार जोधपुर राजधानी में विजय सिंह ने सुना। उस समय उसके हृदय में कितना भयानक आघात पहुँचा होगा, इसका सहज ही अनुमान समझदार पाठक कर सकते हैं।

विजय सिंह ने अपने समस्त सामन्तों को अपने राजदरबार में बुलाया और सब के साथ बैठकर उसने परामर्श किया। बीकानेर और रूपनगर के दोनों स्वतंत्र नरेश भी इस परामर्श में शामिल थे। राठौरों की स्वतंत्रता अब फिर नष्ट हो रही है, राठौर राजपूतों के सामने यह एक समस्या पैदा हुई। बड़ी देर तक परामर्श करने के बाद स्वाभिमानी राजा विजय सिंह ने कहा :

इसमें संदेह नहीं कि आज राठौरों के सामने फिर एक भीषण बिपद पैदा हो गयी है। अम्बेर की सेना के विश्वासघात से न केवल राठौरों की पराजय हुई है, बल्कि पातन के इस युद्ध से मराठा सेना का उत्साह बढ़ गया है। ऐसी दशा में मैं यह मुनासिब समझता हूँ कि माधव जी सेंधिया के साथ संधि करके हम लोगों ने जो उसकी शर्तों को मंजूर किया था और उन शर्तों के के अनुसार अजमेर का राज्य देकर हम लोग जो कर मराठा सेनापति को देते थे, उसे हमें फिर स्वीकार कर लेना चाहिए।

राजा विजय सिंह के मुखसे इस प्रकार की बातों को सुनकर मारवाड़ के समस्त सामन्तों ने उत्तेजित होकर एक साथ कहा : नहीं, ऐसा कभी नहीं हो सकता। बिना युद्ध किये आत्म समर्पण करने की अपेक्षा शत्रु के साथ अपनी स्वाधीनता की रक्षा के लिए युद्ध करना राजपूतों का कर्त्तव्य है।

सामन्तों के इस उत्तेजनापूर्ण निर्णय को सुनकर विजय सिंह प्रसन्न हो उठा और हर्षपूर्वक उसने सामन्तों के प्रस्ताव को स्वीकार किया। उसके बाद मारवाड़ के राठोर राजपूतो में मराठों के साथ युद्ध करने के लिए घोषणा की गयी और इस बात का आदेश दिया गया कि इस युद्ध में शामिल होने के लिए मैरता की भूमि में राठौर वंश के शूरवीर योधा एकत्रित हों।

राजा विजय सिंह के इस आदेश और उसकी घोषणा को सुनकर सम्पूर्ण राठौर में मराठों के विरुद्ध उत्तेजना पैदा हुई। जितने भी लोग युद्ध करने का हौसला रखते थे, वे सभी जातीय मर्यादा की रक्षा करने के लिए अपने-अपने घरों से युद्ध के लिए सुसज्जित होकर रवाना हुए और सन् १७९० ईसवी के सितम्बर महीने की १० तारीख को विजय सिंह की घोषणा पर मराठों से युद्ध करने के लिए तीस हजार शूरवीर राठौर पातन के युद्ध का बदला लेने के लिए मैरता के मैदानों में पहुँच गये।

उन दिनों में बहादुर सिंह कृष्णगढ़ का राजा था और उसके अधिकार में दो सौ नगरों और ग्रामों का प्रदेश कृष्णगढ़ था। यह विशाल प्रदेश मारवाड़ के राजा की तरफ से बहादुर सिंह को मिला था। इस विशाल प्रदेश में बहादुर सिंह के साथ रूप नगर का राजा भी शामिल था। कृष्णगढ़ और रूपनगर के दोनों राजाओं में बन्धुत्व का सम्बन्ध था। वे दोनों राजा स्वतंत्र रूप से अपने इलाकों में शासन करते थे। परन्तु आवश्यकता पड़ने पर वे जोधपुर के राजा के यहाँ आकर एकत्रित होते थे और राठौरों की स्वाधीनता की रक्षा के लिए सभी प्रकार योग देते थे।

कुछ कारणों से उन दोनों राजाओं में फूट पैदा हो गयी। उसके कारण बहादुर सिंह ने रूप नगर के राजा के प्रदेश पर आक्रमण किया और उसकी सम्पूर्ण सम्पत्ति लूट ली। उस आपसी

झगड़े का फैसला करने के लिए अपनी सेना के साथ राजा विजय सिंह को जाना पड़ा और उसने बहादुर सिंह से छीनी और लूटी हुई समस्त सम्पत्ति रूप-नगर के राजा को दिलवा दी।

बहादुर सिंह ने उस समय विजय सिंह से कुछ न कहा। लेकिन उसके हृदय में द्वेष की एक आग सुलगती रही। जब उसने सुना कि पातन के युद्ध में मराठों से विजय सिंह की सेना पराजित हुई है और मराठों का सीधा आक्रमण अब विजय सिंह के विरुद्ध होने वाला है तो बहादुर सिंह अपने मन में बहुत प्रसन्न हुआ। विजय सिंह से बदला लेने के लिए बहादुर सिंह सेनापति डी बाइन से जाकर मिल गया और मराठा सेना को लेकर उसने सबसे पहले रूप नगर पर आक्रमण किया। उसने चौबीस घन्टे में रूप-नगर पर अधिकार कर लिया।

रूपनगर से रवाना होकर मराठा सेना अजमेर पहुँची और उस पर अधिकार करके सेनापति डी बाइन ने वहीं पर मुकाम किया। इसके बाद मराठों के सेनापति सींधिया ने लकदा, जावदादा, सदाशिवभाऊ आदि कई एक अश्वरोही नेताओं और अस्सी तोपों के गोलंदाजों के साथ एक प्रबल मराठा सेना राठौरों के विरुद्ध युद्ध करने के लिए भेजी। यह सेना डी बाइन के अधिकार में रवाना हुयी और वह एक दिन का मार्ग पार करके नेत्रीया नामक स्थान पहुँची। वहीं पर उसने मुकाम किया।

मराठा सेना के आने की खबर सुनकर मैरता नगर के बाहर एक दूरवर्ती मैदान में युद्ध के लिए राठौर लोग तैयार होने लगे। मराठा सेना से पाँच मील पीछे लूनी नदी के एक गहरे कीचड़ को पार करते हुए माधव जी सींधिया की भेजी हुई तोपें फँस गयी थीं। इसलिए वे मराठा सेना के साथ आकर मुकाम पर न पहुँच सकीं। राठौर सेना मैरता में मराठों के आने का रास्ता देखती रही। अगर उसने आगे बढ़कर उस समय मराठों पर आक्रमण किया होता तो निश्चित रूप से उसकी विजय होती।

राजस्थान में एक प्रथा है कि जब राजा अपनी सेना के साथ युद्ध में नहीं जाता तो उसका कोई एक मंत्री सेना के साथ जाता है और सम्पूर्ण सेना के लोग उसकी आज्ञा का पालन करते हैं। इस युद्ध में मराठों से लड़ने के लिए जो राठौर सेना मैरता में पहुँची थी, उसके साथ राजा विजय सिंह नहीं गया था और उसका प्रधान मंत्री खूबचन्द्र भी राजधानी में ही बना रहा। इसलिए सेना के साथ गंगाराम बन्दारी और भीमराज सिंगुई नामक दो मंत्री सेना के साथ मैरता गये थे। भीमराज से प्रधानमंत्री खूबचंद ईर्षा रखता था और वह किसी भी अवस्था में भीमराज का पतन चाहता था। मंत्रियों की इस आपसी फूट का प्रभाव भी सेना में काम कर रहा था।

अहवा के सामन्त माहीदास ने जब सुना कि सींधिया की तोपें पीछे लूनी नदी के कीचड़ में फँस गयी हैं और सींधिया की मराठा सेना नेत्रीय नामक स्थान पर पड़ी हुई है तो उसने प्रतिज्ञा की, 'या तो मैं अपने राज्य की स्वाधीनता के लिए शत्रुओं को परास्त करूँगा अन्यथा युद्ध करके बलिदान हो जाऊँगा।' अपनी इस प्रतिज्ञा के साथ उसने मंत्री भीमराज से सेना को आगे बढ़ाने के लिए कहा। मारवाड़ के उपस्थित सभी सामन्तों ने माहीदास का समर्थन किया और वे मराठा सेना पर आक्रमण करने के लिए बिल्कुल तैयार थे। माहीदास के साथ-साथ सभी सामन्तों ने भी मंत्री भीमराज से कहा : पातन के युद्ध में फ्राँसीसी सेनापति डी बाइन के गोलन्दाजों के गोलों की मार से राठौर सेना पराजित हुई थी। इस समय सींधिया की वे तोपें और उनके गोलन्दाज मराठा सेना के साथ नहीं हैं। इसलिए ऐसे मौके पर हम लोगों को तुरंत मराठा सेना पर आक्रमण कर देना चाहिए। इस समय निश्चत रूप से हमारी विजय होगी और मराठा सेना के एक-एक सैनिक को हम लोग काटकर फेंक देगें।

मंत्री भीमराज ने सामन्तों के इस प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया और उसने सामन्तो को समझाते हुए प्रधानमंत्री खूबचंद का भेजा हुआ एक पत्र दिखाया। उसमें लिखा था, 'शत्रुओं पर उस समय तक कोई आक्रमण न करना, जब तक स्माइलबेग पहुँच न जाय।'

स्माइलबेग उस समय नागौर में था। प्रधानमंत्री के लिखने के अनुसार जोधपुर के सामन्त मराठों पर आक्रमण न कर सके और जो एक अवसर उनके सामने था, वह व्यर्थ हो गया। युद्ध में आक्रमण करने का एक अवसर होता है और उसका लाभ आक्रमणकारी को होता है। मैरता के मैदानों में एकत्रित राठौरों की सेना मराठों पर आक्रमण करके विजय प्राप्त करना चाहती थी। लेकिन राजधानी में बैठा हुआ प्रधानमंत्री आक्रमण करने का लिए आदेश नहीं दे रहा था। इस प्रकार की परिस्थितियाँ राठौरो के विरुद्ध थीं। एक प्रबल शत्रु की शक्तिशाली सेना का मुकाबिला था। आपस में फैली हुई फूट राजपूतों की शक्तियों को निर्बल बना रही थी और बहादुर सिंह जैसे सामन्त नियंत्रण हीन होने के कारण शत्रुओं के साथ जाकर मिल गये थे। इस प्रकार की अनेक परिस्थितियाँ राठौर राजपूतों के विरुद्ध थीं।

सेनापति डी बाइन कीचड़ में फँसी हुई तोपों को किसी प्रकार निकालकर और तेजी के साथ चलकर मराठा सेना में जाकर मिल गया। बीकानेर का राजा राठौर सेना की परिस्थितियों का अध्ययन करके कह उठा : हम लोगों की सेना की समस्या बड़ी टेढ़ी मालूम होती है। जो राठौर सेना युद्ध करने और अपने प्राणों को उत्सर्ग करने के लिए यहाँ पर आयी है, उसका सेनापति नहीं है। प्रधान मंत्री अपने सुरक्षित महल में बैठा हुआ आदेश देता है और राठौर सेना अधीर होकर रह जाती है। इन परिस्थितियों का लाभ निश्चित रूप से शत्रु के पक्ष को मिलेगा। इस भयानक समय में हम लोगों को अपने-अपने प्रदेशों की रक्षा का उपाय सोचना चाहिए।

इस प्रकार सोच-समझ कर बीकानेर का राजा अपनी सेना के साथ अपनी राजधानी की तरफ रवाना हुआ। उसके जाने के बाद मैरता के मैदानों में पड़ी हुई राठौर सेना शिथिल और किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो रही थी। ऐसे समय पर क्या करना चाहिए, राठौर सेना इसके सम्बन्ध में कुछ निर्णय नहीं कर सकती थी। इस अवस्था में सवेरा होने से कुछ पहले सेनापति डी बाइन ने अपने गोलंदाजो के साथ तोपें लेकर राठौरों पर भयानक आक्रमण किया। राठौर सेना उस समय बेखबर पड़ी हुई सो रही थी।

शत्रु की ओर से गोलों की मार होते ही बहुत-से राठौर जख्मी हो गये। जो बचे, वे सब अपने-अपने प्राण लेकर भागे। गंगाराम बिन्दारी और भीमराजसिगई—दोनों मंत्री भीषण विपद में फंस गये। इसलिए अपने प्राणों की रक्षा के लिए वे दोनों भी उस स्थान से भाग गये।

अहवा और आसोप के सामन्तों ने एक दूरवर्ती स्थान पर अपने खेमें लगाये थे। उन्होंने मराठों के आक्रमण और राठौरों के भागने का समाचार एकाएक सुना। आसोप का सामन्त अफीम खाने का आदी था। इसलिए जब यह समाचार उसके कैम्प में पहुँचा तो वह अफीम के नशे में पड़ा हुआ सो रहा था। अहवा के सामन्त ने बड़ी मुश्किल से उसको जगा पाया और जब उसने आँखें खोलीं तो अहवा के सामन्त ने कहा : भाई, तुम तो पड़े सो रहे हो। मराठों का आक्रमण हो गया है और राठौर सेना युद्ध क्षेत्र से भाग गयी है। अब केवल हम और तुम यहाँ पर बाकी रह गये हैं।

आसोप के सामन्त ने आँखें मलते हुए इन बातों को सुना। इसके बाद उसने उत्तेजित होकर कहा : क्या परवा है; चलो घोड़े पर सवार हो, देखें शत्रु किस तरफ है।

दोनों सामन्त अपने-अपने घोड़ों पर सवार हुए। इसके पहले दोनो ने अपनी-अपनी सेनाओं को युद्ध के लिए आदेश दिया, और फिर अफीम का घुला हुआ पानी पीकर वे घोड़े पर बैठे। उन दोनों के रवाना होने के पहले बाईस सामन्त उस स्थान पर आकर पहुँच गये थे। सभी ने घुली हुई अफीम का जल पिया और रवाना होने के पहले उन लोगों में बातें हुई। उनमें कहा गया कि मराठों ने सोते हुए राजपूतों पर आक्रमण किया है। उनके गोलों की मार होते ही राजपूतों में जो कमजोर और कायर थे, केवल वही लोग मैदानों से भाग गये हैं। बाकी सभी लोग अभी मौजूद हैं।

अहवा और आसोप के सामन्तों की सेनाओं के साथ अन्य सामन्तों की सेनायें भी युद्ध के लिए तैयार हो गयीं। मैरतीय राजपूतों का प्रधान रिया का सामन्त जवान सिंह अपनी सेना के साथ तैयार था। अलनिवास, इरोया, चानोद और गोविन्दगढ़ के सामन्त लोग भी अपनी सेनाओं के साथ वहाँ पर आ गये। इस प्रकार उस स्थान पर एकत्रित राठौर राजपूतों की संख्या चार हजार हो गयी। इसी समय सामन्त जवान सिंह ने सब को सम्बोधन करते हुए कहा :

भाइयों, हम लोग मराठों के साथ युद्ध करने के लिए तैयार हैं। स्वतंत्रता के अधिक राजपूतों को कोई चीज प्रिय नहीं हो सकती। अपनी इसी स्वतंत्रता की रक्षा के लिए हम और आप मराठों के साथ युद्ध करेंगे। मुझे विश्वास नहीं है कि हमारे साथ का कोई भाई युद्ध से भयभीत होगा। फिर भी, अगर कोई हम लोगों के बीच में ऐसा हो तो उसको निकलकर अपने बाल-बच्चों में चला जाना चाहिए।

जवान सिंह की उत्तेजनापूर्ण बातों को सुनकर किसी ने कुछ न कहा। इसके बाद अहवा के सामन्त ने कहा : अब युद्ध क्षेत्र की तरफ चलो।

इसके बाद चार हजार राठौर राजपूत अपने घोड़ों पर बैठे हुए तेजी के साथ आगे बढ़े। उनके दिलों में उत्साह था। शत्रुओं पर आक्रमण करने के लिए उनके साथ का प्रत्येक राजपूत उतावला हो रहा था। तेजी के साथ चलकर वे सब के सब युद्ध-क्षेत्र में पहुँच गये। सेनापति डी बाइन अपने अधिकार की अस्सी तोपों को ठीक तौर पर लगाकर युद्ध की प्रतीक्षा में था। उसने एकाएक चार हजार राठौर अश्वारोहियों को हाथों में नंगी तलवारें लिए आते देखा। उसी समय उसने अपने गोलंदाजों को आदेश दिया और उसकी अस्सी तोपें एक साथ राजपूतों पर गोले बरसाने लगीं।

राठौर शूरवीरों ने उन लोगों की परवा न की और 'पातन की याद करो' कहते हुए चार हजार राजपूत सवार एक साथ मराठा सैनिकों पर टूट पड़े। उन्होंने गोलों का सामना करते हुए तोपों की पंक्ति तोड़ दी और गोलंदाजों पर आक्रमण किया। गोलंदाज प्राण बचाकर वहाँ से भागे। लेकिन डी बाइन ने उनको फिर से सम्हाला और उन तोपों ने फिर से गोले बरसाने आरम्भ किये।

गोलों की मार से बहुत-से राजपूत मारे गये और जो बाकी बचे, उनको मराठा सेना ने ने आकर चारों तरफ से घेर लिया। राठौर सवारों ने उस समय मराठा सेना के साथ भयानक मार आरम्भ की। लेकिन मराठों की सेना बहुत बड़ी थी इसलिए बहुत-से राजपूत मारे गये। जो लोग जख्मी होकर गिरे, वे सब वहीं पर पड़े रहे। चौबीस घन्टे का समय बीत गया। उस रात को बड़े जोर का पानी बरसा। उस पानी के कारण वहाँ पर पड़े हुए घायलों को बहुत कष्ट भोगना पड़ा। दूसरे दिन उस राज्य का एक अनुचर वहाँ पर पहुँचा। बड़ी देर तक खोजने के बाद उसको कुछ जख्मी आदमी ऐसे दिखायी पड़े, जो वहाँ से लाये जा सकते थे। ऐसे जख्मी लोगों में अहवा

का सामन्त भी था। उस अनुचर ने अपने स्वामी सामन्त के पास जाकर कुछ बातें कीं और उसको खाने के लिए अफीम दी। अफीम सेवन करने के बाद सामन्त के शरीर में कुछ स्फूर्ति पैदा हुई। इस मौके पर राज्य के और भी कई एक अनुचर वहाँ पहुँच गये थे। वे सब मिलकर अहवा के सामन्त को अपने साथ लेकर चले। सामन्त के शरीर में बहुत-से गहरे घाव थे। फिर भी वह किसी प्रकार मैरता के शिविर में पहुँच गया।

उस शिविर में अहवा के सामन्त की चिकित्सा का प्रबन्ध हुआ। उस समय सामन्त ने चिकित्सक से बातें करते हुए कहा : युद्ध में हमारे बहुत से साथी सामन्त, सरदार और सैनिक मारे गये हैं। उनमें बहुत से अभी वहाँ पर गायब दशा में हैं। इसलिए जब तक उन सब की चिकित्सा का प्रबन्ध न होगा, मैं अपनी चिकित्सा नहीं कराना चाहता।

मैरता के शिविर के लोगों ने अहवा के सामन्त के मुख से इस प्रकार की बातें सुनीं। अपने साथियों के प्रति सामन्त में सहानुभूति और उदारता के इन भावों को देखबर सबके दिल पसीज उठे। उन लोगों ने सामन्त के प्रति अपना बहुत बड़ा सम्मान प्रकट किया और उसकी चिकित्सा करने में उन लोगों ने किसी प्रकार की त्रुटि नहीं की। अहवा के सामन्त के गहरे घाव थोड़े ही दिनों में बहुत-कुछ सेहत हो गये। उसकी इस दशा को देखकर शिविर के संरक्षक ने उस सामन्त से कहा : आप बाल बनवा कर स्नान कर डालिए।

संरक्षक की इस बात को सुनकर सामन्त ने कहा : मैं अपने स्वामी मारवाड के राजा के जब तक दर्शन नहीं कर लेता, उस समय तक मैं इस दशा में रहूँगा। कई दिन बाद राजा विजय सिंह उस शिविर में आया। उसने दूसरे के साथ-साथ अहवा के सामन्त से भेंट की। विजय सिंह ने सामन्त के साहस, शौर्य और स्वाधीनता के प्रति उसके अनुराग की बहुत प्रशंसा की। राजा विजय सिंह से मिलने के बाद अहवा के सामन्त को बहुत बड़ी शान्ति मालूम हुई। इसके बाद वह स्नान करके अच्छे कपड़े पहनने लगा। लेकिन उसके शरीर के कुछ घाव पूरे तौर पर अच्छे नहीं हुए थे, इसलिए उनसे फिर रक्त जारी हो गया और उनके सेहत न हो सकने के कारण उस सामन्त की मृत्यु हो गयी। उसकी मृत्यु से सम्पूर्ण मारवाड़ में शोक मनाया गया और राजा विजय सिंह को भी बहुत दुख पहुँचा।

मैरता के इस युद्ध में मंत्री भीमराज की मूर्खता के कारण राठौर राजपूतों को इस प्रकार के दृश्य देखने पड़े। राजा विजय सिंह ने जब भीमराज की अदूरदर्शिता को सुना तो बहुत क्रोधित हुआ। मंत्री भीमराज इस समय नागौर में था। राजा विजय सिंह ने उसकी मूर्खता के लिए अत्यन्त कठोर और अपमान-जनक पत्र लिखकर उसके पास नागौर भेजा। उस पत्र को पढ़कर भीमराज बहुत लज्जित हुआ। वह अब राजा विजय सिंह को अपना मुख नहीं दिखाना चाहता था। इसलिए उसने विष खाकर अपनी हत्या कर ली।

मैरता के मैदानों में एकत्रित तीस हजार राजपूतों ने अपने सामन्तों के निर्णय के अनुसार अगर मराठों पर आक्रमण कर दिया होता तो निश्चित रूप से उनकी विजय होती और मराठा सेनापति पराजित होकर वहाँ से भाग गया होता। लेकिन मंत्री भीमराज की अदूरदर्शिता से राठौर राजपूत शत्रु पर आक्रमण न कर सके। इस भयंकर भूल का अपराधी जितना मंत्री भीम-राज था, उससे अधिक अपराधी प्रधान मंत्री खूबचंद था। उसके पत्र के कारण ही भीमराज ने सामन्तों को आक्रमण करने का आदेश नहीं दिया था। उसके फल स्वरूप राठौरों का सर्वनाश हुआ।

राजपूतों के इस विनाश का मूल कारण उनमें फैली हुई ईर्षा और फूट थी। यह ईर्षा और फूट राजपूतों में घरों से लेकर महलों तक फैली हुई थी। मैरता के इस युद्ध में राठौरों का जो सर्वनाश हुआ, उसका मूल कारण भीमराज के प्रति प्रधान मंत्री खूबचंद का ईर्षा भाव था। व्यक्तिगत फूट और वैमनस्य के कारण सम्पूर्ण समाज और देश का सर्वनाश करते हुए इन राजपूतों को छोड़कर संसार में अन्यत्र कहीं पर कोई न मिलेगा। राजपूतों के लिए यह कोई नयी बात नहीं है। उनका सम्पूर्ण इतिहास प्राचीनकाल से लेकर अब तक इसी प्रकार के कलंकों से भरा हुआ है और उनके पतन का मुख्य कारण भी उनका यही कलंक हुआ है। इससे कोई इनकार नहीं कर सकता।

तीन वर्ष पहले मैं इन राठौर राजपूतों को पराजित करने वाले फ्राँसीसी सेनापति डी बाइन की जन्मभूमि कैम्बेरी क घाटी में गया था और दो दिनों तक मैं उसके साथ वहाँ पर रहा। डी बाइन के दीर्घ जीवन के लिए यद्यपि मैं ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ, परन्तु इस बात का मुझे बहुत अफसोस है कि मारवाड़ के चार हजार शूरवीर राठौरों को पराजित करने और उनके जीवन का अंत करने के लिए ही वह जिन्दा था। मैंने डी बाइन से मैरता के युद्ध के सम्बन्ध में बातें कीं तो उसको उस युद्ध के सभी दृश्यों का स्मरण हो आया। उसने मैरता के युद्ध की बातें मुझसे सुनकर कहा कि 'वे सब बातें अब मुझे स्वप्न के समान मालूम होती हैं।' सेनापति डी बाइन बड़ी देर तक मुझसे राठौरों की वीरता का वर्णन करता रहा। जहाँ पर रहता था, वह सड़क बहुत मशहूर हैं और उसका मकान अनेक प्रकार की सजावट से देखने में आकर्षक मालूम हो रहा था। जिन दिनों में मैं इस इतिहास को लिख रहा था, संयोग से सेनापति डी बाइन का जीवन चरित्र मुझे मिल गया। मैंने बड़ी उत्सुकता के साथ उसके जीवन चरित्र को पढ़ा। उससे मुझे मालूम आ कि सेनापति डी बइन ने अन्त तक इस बात को नहीं समझा था कि मैरता के युद्ध में राठौरों पर उसकी विजय का कारण राजपूतों में फैला हुआ उनका आपसी विषैला ईर्षा भाव था। अगर उनमें फूट न होती और अपने साधारण झगड़ों के कारण राजपूत लोग एक, दूसरे को मिटाने के लिए सदा तैयार न रहते तो उन राजपूतों को पराजित करना बहुत मुश्किल था। लेकिन सेनापति डी बाइन इस बात को जानता न था और राठौरों को पराजित करने का श्रेय वह केवल अपने आपको देता था। यह बात मुझको उसके जीवन चरित्र से मालूम हुई।

राजपूतों के बहादुर होने में किसी प्रकार का संदेह नहीं किया जा सकता और इस पर भी कोई सन्देह नहीं करसकता कि ये लोग आपसी फूट, ईर्षा और विरोध के कारण आज दुरवस्थाओं में हैं। इसलिए एक ऐसी महान शक्ति की जरूरत है, जो इनकी राजनीतिक परिस्थितियों की सही जानकारी प्राप्त करने के लिए सहानुभूति के साथ इनका अध्ययन और अनुसंधान करे। इसके पश्चात वही इस बात का निर्णय करे कि इस देश के महान शक्तिशाली राजपूतों को उसे अपना मित्र बनाना चाहिए अथवा शत्रु। इस देश में आकर मैंने सबसे अधिक अनुभव इन राजपूतों का किया है और मैं इस नतीजे पर पहुँच हूँ कि अगर कोई बड़ी शक्ति इनको अपना मित्र बना सके तो ये राजपूत उसके लिने अस्त्र के समान बड़े सहायक हो सकते हैं। लेकिन ऐसा करने के लिए केवल बातों से काम नहीं चल सकता। बल्कि उस शक्ति का जो इन लोगों के साथ सम्पर्क स्थापित करे--अपनी सहानुभूति का प्रमाण सार्थक बनाकर देना पड़ेगा। मेरा तो विश्वास है कि अगर इन राजपूतों के प्रति सच्चा सम्मान प्रकट किया जा सके, जैसी कि अंगरेज सरकार की नीति है, और इनकी आपसी लड़ाइयों में निश्छल तथा निस्वार्थभाव से मध्यस्थता करके उनमें फैली हुई पारस्परिक ईर्षा और फूट निर्मूल की जा सके तो बिना किसी संदेह के इन बहादुर राजपूतों का

विश्वास प्राप्त किया जा सकता है और किसी भी शत्रु को—चाहे वह विदेशी हो अथवा देशी—यहाँ के शक्तिशाली राजपूतों की सहायता से पराजित किया जा सकता है।

कलकत्ता से लेकर राजपूताना तक बड़ी तेजी के साथ हमारा विस्तार हुआ है। अब हमको अपने राज्य का विस्तार अधिक करने की जरूरत नहीं हैं। इस विषय में अनेक बार मैंने कोटा के वृद्ध जालिम सिंह से बातें की हैं। मैंने उससे भी अपनी इसी भावना को प्रकट किया है। लेकिन उसने हमारी इन बातों पर विश्वास नहीं किया और जो बातें मैंने उससे कहीं ; उनको सुनकर उसने जवाब देते हुए मुझसे कहा : आप जो कुछ कहते हैं, मैं इस बात को विश्वास करता हूँ। लेकिन मेरा तो यकीन है कि वह समय आ रहा है और अब दूर नहीं है, जब इस पूरे हिन्दुस्तान में एक ही सिक्का होगा। आप हमारी बात पर विश्वास करें। मैं समझ बूझकर यह बात कह रहा हूँ। महाराज, आप बड़े शुभ अवसर पर इस देश में आये हैं। जो फूट पैदा हुई हैं; वह पक चुकी है और उसके खाने का समय है। आप को उसके सभी टुकड़ों को खा जाना है। आप अपनी शक्तियों के द्वारा ऐसा नहीं करेंगे। बल्कि हमारी असंगठित अवस्था—ईर्षा और फूट स्वयं इस देश के शासन की बागडोर आपके हाथों में देने का काम करेंगी।

जालिम सिंह की ये बातें महत्वपूर्ण तर्क से भरी हुई हैं। फिर भी मैं विश्वास करता हूँ कि उसकी यह भविष्यवाणी कभी पूरी न होगी।

जालिम सिंह बातचीत करने में बहुत होशियार हैं। मेरी उन बातों को सुनकर उसने जो कुछ कहा था, उसके द्वारा उसकी बातचीत की योग्यता का परिचय मिलता है। फूट एक फल है, जो इस देश में मक्का के साथ खेतों में पैदा होती है। यह फूट जब पकती हैं तो वह बहुत-से टुकड़ों में हो जाती है। उसका अर्थ असंगठित अवस्था भी है। जालिम सिंह हमेशा उपमा और दृष्टान्तों के साथ अपनी बातें किया करता है। उसने यहाँ पर हिन्दुस्तान के राज्यों की उपमा फूट के साथ दी है।

२८ नवम्बर—आज दस मील का रास्ता पार करके झारो नामक स्थान पर हम लोगों ने मुकाम किया। मैरता के युद्ध में जिन चार हजार राठौर राजपूतों ने अपनी स्वाधीनता के लिए मृत्यु का सामना किया था और अपने प्राणों को उत्सर्ग किया था, उनके स्थानों को देखते हुए हम लोग झारो की तरफ चले थे। जिस मार्ग से हम लोग रवाना हुए थे, वह दिल्ली को गया था। इसलिए उस मार्ग को छोड़कर हम लोगों ने फिर अरावली पर्वत को पार किया और अजमेर पहुँचने के लिए जो सही रास्ता है था, उस पर हम लोग चलने लगे। यह मार्ग अच्छा है और उसकी मिट्टी किसी प्रकार असुविधाजनक न थी। रास्ते के दाहिने और बायें तरफ किसानों के खेत दूर तक दिखायी पड़ते थे। जो गाँव रास्ते में नजदीक अथवा दूर मिलते थे, उनमें अधिकांश गिरे हुए दिखायी पड़ते थे।

उस दिन प्रात:काल हमें प्रकृति के सुन्दर दृश्य देखने को मिले। उस समय सरदी बहुत जोर की पड़ रही थी और उत्तर पूर्व की तरफ से ठण्डी वायु आ रही थी। जमीन के अनेक भागों में जमी हुई बर्फ दिखायी पड़ती थी। वहाँ पर अनेक प्रकार के वृक्ष देखने को हमें मिले थे। लोगों से मालूम हुआ कि जाड़े के दिनों मे यहाँ के प्राकृतिक दृश्य अधिक रमणीक हो जाते हैं। मारवाड़ के निवासी इसको 'शीतकोट' कहा करते हैं। मरुभूमि के किसान इस दृश्य को 'चित्राम' और जमुना तथा चम्बल नदी के निकटवर्ती स्थानों में रहने वाले लोग इसे 'देशासुर' कहा कहा करते हैं।

प्रकृति के इस दृश्य को देखते ही हमारा ध्यान एक दूसरी दिशा की ओर आकर्षित हुआ। उधर हमको धुएँ का एक महल सा दिखायी पड़ा। हम लोग जितना ही आगे बढ़ते गये, धुएँ के उस महल का दृश्य उतना ही बदलता गया। सूर्य की किरणों ने उस धुएँ को—जो असल में कोहरा था—कुछ देर के बाद नष्ट कर दिया। हमारे साथ एक राजस्थानी पथ-प्रदर्शक चल रहा था। वह रास्ते के सभी दृश्यों की जानकारी हमें कराता जाता था।

भारो एक सम्पन्न ग्राम है। रिया के मैरतीय सामन्त का अधीन एक सरदार इस ग्राम का प्रधान है। इस स्थान के बायीं तरफ एक छोटा-सा तालाब है। उसके किनारे नीमों के बहुत से वृक्ष हैं और उनके बीच में एक स्मारक बना हुआ है। उस स्मारक की मूर्ति घोड़े पर हैं और उसके हाथों में अस्त्र हैं। उसके पास ही उसकी स्त्री की मूर्त्ति भी बनी हुई है। स्त्री हाथ जोड़े हुए खड़ी हैं। उसकी यह स्त्री अपने पति के शव को लेकर चिता में बैठी थी। उस स्मारक पर लिखा हुआ है—सन् १६३३ ईसवी, सम्वत् १६८९ के माघ महीने की द्वितीया को महाराज जसवन्त सिंह ने मुगल बादशाह औरंगजेब की सेना पर आक्रमण किया था। उस युद्ध में मैरतीय वंश का ठाकुर हरकर्णदास मारा गया था। उसी की स्मृति में सम्वत् १६९७ के माघ महीने में यह स्मारक बनवाया गया।

२९ नवम्बर—यहाँ से दस मील चलकर हम लोग अल-निवास में पहुँचे और वहाँ पर हम लोगों ने मुकाम किया। लगभग आधे रास्ते के बाद हमको रिया नगर मिला था। जिस शूरवीर सामन्त का हमने ऊपर कई स्थानों उर उल्लेख किया है, यह रिया नगर उसका जन्म स्थान हैं। यह नगर लम्बा-चौड़ा है और अधिक मंख्या में लोग इस नगर में रहा करते हैं। नगर के आस-पास मजबूत पत्थरों का कोट बना हुआ है।

रिया के वर्तमान सामन्त का नाम बदन सिंह है। वह मारवाड़ के आठ श्रेष्ठ सामन्तों में से एक है। यह नगर एक ऊँची जमीन पर बसा हुआ है। इस नगर के सामने के प्रदेशों के रमणीक दृश्य दिखायी देते हैं। नगर के शुरू से लेकर उसकी सीमा तक बहुत से ग्राम बसे हुए हैं।

यहाँ पर एक स्मारक बना हुआ है। मैंने उसको देखा। उसमें लिखी हुई पंक्तियों को पढ़ने के बाद मालूम होता है कि अरावली पर्वत पर रहने वाले माहीर लोग किस प्रकार के अत्याचारी होते हैं। स्मारक में लिखी हुई पंक्तियाँ इस प्रकार हैं: सन् १७७९ ईसवी, सम्वत् १८३५ के माघ महीने के कृष्ण पक्ष की तृतीया सोमवार के दिन माहीर लोगों के आक्रमण को रोकने के लिए भूपाल सिंह ने युद्ध किया था। युद्ध में जाने के पहले उसने अपने हाथ से अपनी स्त्री का सिर काट डाला था। इसके बाद वह युद्ध में गया था और उसमें वह मारा गया था।

पचास वर्ष पहले माहीर जाति के लोग किस प्रकार अत्याचार करते थे, इसका यह एक उदाहरण है। उन लोगों के अत्याचार उसके बाद लगातार बढ़ते रहे। वे लोग अपनी जाति के बहुत से लोग पहाड़ों पर एक साथ रहा करते थे। उनमें एकता थी और सब मिलकर इस प्रकार के आक्रमण किया करते थे। पर्वत शिखर के दोनों तरफ राठौर सामन्तों के ग्राम हैं। उन ग्रामों के सभी घरों के कितने ही लोग इन माहीर लोगों के द्वारा मारे गये थे। इस प्रकार जो राठौर मारा जाता था, उसका स्मारक बनवाया जाता था। इस प्रकार के बहुत से स्मारकों को मैंने देखा। राजपूतों में स्मारक बनाने की प्रथा बहुत पहले से चली आ रही है। चौहान राजा विशाल देव का स्मारक आज तक दिल्ली में फिरोज के महल में मौजूद है। माहीर लोगों के अत्याचारों को रोकने के लिए राजस्थान में कई बार प्रयत्न किये गये हैं और उन्हीं के फलस्वरूप उनमें अब बहुत

तब्दीली हो गयी है। उनका दमन करके उनके अस्त्र शस्त्र छीन लिए गये हैं और उनके छीने हुए अस्त्रों को उदयपुर के राणा के पास भेज दिया गया है। जो माहोर लोग आक्रमण करके भयानक अत्याचार करते थे, वे लोग अजमेर के राजमार्गों पर जल छिड़कने के लिए विवश किये गये हैं।

रिया और अलनिवास के बीच में लूनी नदी बहती है। इसी नदी के कीचड़ में सेनापति डी बाइन की तोपें फंस गयी थीं। अलनिवास में एक मेरतीय सामन्त का अधिकार है। यह ग्राम बहुत बड़ा है और अधिक संख्या में लोग उसमें रहते हैं। यहाँ पर एक स्मारक मुझे देखने को मिला। चम्पावत राजपूतों के साथ मेरतीय लोगों ने मेरता के मैदानों में युद्ध किया था। उस आपसी युद्ध में सोनमल्ल नामक एक मेरतीय राजपूत मारा गया था, उसी का यह स्मारक था।

३० नवम्बर—अलनिवास से चलकर छै मील की दूरी पर हम लोग गोविन्दगढ़ पहुँचे। रास्ता अच्छा था। कहीं पर कोई विशेष कष्ट नहीं हुआ। गोविन्द नगर और उसका दुर्ग जोधा सम्प्रदाय के अधिकार में है। गोविन्द ने इस नगर को बसाया था। वह महाराज उदय का पोता था। गोविन्द स्थूल काय था। इसलिए बादशाह अकबर उसको मोटा राजा कहकर पुकारता था। खैरवार का सामन्त उसके सम्प्रदाय का प्रधान है और वह सोलह ग्रामों का अधिकारी है। बुनाई और मासूद के दोनों सामन्त भी इस सम्प्रदाय के श्रेष्ठ पुरुषों में हैं और उन दोनों के अधिकार में पचास ग्राम हैं।

वे दोनों सामन्त आजकल अजमेर में रहते हैं और वे दोनों ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन में हैं। गोविन्दगढ़ शिखर के बाहर बसा हुआ है। पूषा नगर और उसके निकटवर्ती बारह गाँव अजमेर राज्य में माने जाते हैं।

गोन्दिगढ़ से कुछ दूरी पर पश्चिम की तरफ शुभ्रमती नाम की एक नदी बहती है। कुछ लोग उसको लूनी नदी भी कहते हैं। यह नदी और एक दूसरी सरस्वती नामक नदी पुष्कर सरोवर से निकलकर और आगे जाकर एक दूसरे से मिल जाती हैं।

१ दिसम्बर—गोविन्द गढ़ से आठ मील चलकर हम लोग पुष्कर सरोवर पर पहुँचे। यह हिन्दुओं का तीर्थ स्थान है। इसके रास्ते में सम्पूर्ण भूमि रेत से भरी हुई है। पुष्कर सरोवर से चार मील की दूरी पर पुष्कर नामक स्थान बसा हुआ है। मन्दोर के परिहार राजपूतों के अंतिम राजा ने पुष्कर सरोवर को बनवाया था। उस सरोवर से निकली हुई सरस्वती नदी को घाटी के करीब बहते हुये हमने देखा। पर्वत पर नन्द नामक चोटी बहुत ऊँची है।

भारतवर्ष में पुष्कर का नाम बहुत प्रसिद्ध है। लोग उसकी समानता तिब्बत के मानसरो- के साथ करते है। पुष्कर सरोवर घाटी के मध्य में बना हुआ है। वहाँ की घाटी में बहुत-से घर बने हुए हैं। वहाँ पर धार्मिक राजाओं और सम्पत्ति शालियों ने बहुत से मंदिर बनवाये हैं। पूर्व की तरफ छोड़कर सरोवर के शेष तीनों तरफ रेतीले शिखर दिखायी देते हैं। वहाँ पर बने हुए मंदिरों में राजा मानसिंह, महाराज होलकर, रानी अहिल्याबाई, भरतपुर के जौहरी मल और मारवाड़ के राजा विजय सिंह के बनवाये हुए मंदिर अधिक प्रसिद्ध हैं। यहाँ पर बहुत-से स्मारक भी हैं। जयअप्पा सोंधिया, जो नागौर में मारा गया था और उसका भाई, जो नागौर को घेरे जाने के समय मारा गया था—दोनों के स्मारक वहाँ पर मुझे देखने को मिले।

यहाँ पर बने हुए मंदिरों में ब्रह्मा का मंदिर अधिक आकर्षक है। चार वर्ष पहले सोंधिआ के मंत्री गोकुल पाल ने इस मंदिर को बनवाया था। उस मंदिर के बनाने में सभी चीजें वहीं के लोगों से मिली थीं और मजदूरों तथा शिल्पकारों को वेतन में बहुत कम दिया गया था। फिर भी

इस मंदिर के बनवाने में एक लाख तीस हजार रुपये खर्च हुए थे। उस मंदिर की श्रेष्ठता का इसी से अनुमान किया जा सकता है।

पुष्कर तीर्थ के सम्बन्ध में जो जनश्रुति सुनने को मिलती है। उसका यहाँ पर संक्षेप में कुछ उल्लेख करना आवश्यक जान पड़ता है। उस जनश्रुति में कहा जाता है कि सृष्टि उत्पन्न करने वाले ब्रह्मा ने देवताओं के आग्रह करने पर एक यज्ञ किया था। उन दिनों में असुरों ने उन देवताओं को अनेक प्रकार के कष्ट दिये थे। इसलिए उन असुरो को रोकने के लिए चारों ओर कोट बनाकर रक्षक नियुक्त किये गये थे। उस कोट का प्रमाण देने के लिए यहाँ लोग सरोवर के आस-पास बने हुए पर्वत का जिक्र करते हैं। सरोवर के दक्षिण ओर के पर्वत का नाम रत्नगिरि है। उसकी चोटी पर सावित्री देवी का मंदिर बना हुआ है। उत्तर दिशा की तरफ के पर्वत का नाम नीलगिरि है। पश्चिम की तरफ सोना चूड़ा नामक पर्वत है। यज्ञ स्थल पर असुरों का प्रवेश रोकने के लिए महादेव के वाहन नन्दी को प्यारी के मार्ग पर रखा गया था। वहाँ पर उसकी मूर्ति बनी है। उत्तरी भाग में असुरों को रोकने के लिए कृष्ण को रखा गया था।

यज्ञ का अध्यक्ष पद ब्रह्मा ने ग्रहण किया था, उसकी आहुति के समय ब्रह्मा की स्त्री सावित्री वहाँ पर न थी। स्त्री के बिना यज्ञ के कार्य का सम्पादन नहीं हो सकता था। इसलिए अपनी स्त्री के स्थान पर एक गूजरी को ब्रह्मा ने बिठाकर यज्ञ का कार्य आरम्भ किया। उसके बाद ब्रह्मा की स्त्री सावित्री वहाँ पर आ गयी। उसने अपने स्थान पर एक दूसरी स्त्री को बैठे देखा, इसलिए वह अप्रसन्न होकर चली गई और रत्नगिरि के जिस स्थान पर सावित्री अदृश्य हुई थी, ठीक उसी स्थान पर एक झरना पैदा हो गया। वह झरना ' सावित्री झरना के नाम से प्रसिद्ध हुआ। उस झरने के पास सावित्री देवी का मंदिर बना हुआ है।

इस प्रकार की अनेक जनश्रुतियाँ पुष्कर के सम्बन्ध में यहाँ पर सुनी जाती है। उन सब का यहाँ पर उल्लेख करने की आवश्यकता नहीं है। केवल एक जनश्रुति को यहाँ पर हमने और लिखा है। वह इस प्रकार है; कलियुग में मन्दोर का राजा शिकार खेलते हुये यहाँ पर आ गया था। वह एक असाध्य रोग से पीड़ित था। यहाँ पर आकर उसने सावित्री झरने के जल में स्नान किया। उससे उसका वह रोग अच्छा हो गया। जब वह राजा लौटकर वहाँ से जाने लगा तो पहचान के लिए उसने अपने सिर की पगड़ी एक वृक्ष की शाखा में बांध दी।

इसके कुछ दिनों के बाद अपने राज्य के बहुत-से आदमियों के साथ वह यहाँ पर फिर आया और उसने एक सरोवर बनवाया। वही सरोवर पुष्कर सरोवर के नाम से आज तक प्रसिद्ध है। यहाँ के ब्राह्मणों ने मुझ से कहा कि "हमारे पूर्वजों ने परिहार राजा से अपने निर्वाह के लिए बहुत-सी भूमि पायी थी और राजा ने उनको भूमि देकर दानपत्र लिखे थे।" मुझे वहाँ पर राजा का लिखा हुआ फारसी भाषा में एक ही आदेश पत्र मिला। वह ताँबे पर लिखा हुआ था। विभिन्न अवसरों पर कितने ही राजाओं ने मंदिरों के खर्च के लिए भूमि देकर जो आदेश पत्र लिखे थे, उनमें से कुछ आदेश-पत्रों को मैंने यहाँ पर प्राप्त किया।

चौहान वंश के प्रसिद्ध राजा विशाल देव का नाम इस तीर्थ स्थान में आज तक बड़े सम्मान के साथ लिया जाता है। विशाल देव ने जिस शाखा में जन्म लिया था, उसका आदि पुरुष अजपाल इस सरोवर के दक्षिण तरफ नाग पहाड़ नामक स्थान पर रहा करता था। यहाँ के ब्राह्मण आने वाले यात्रियों को ले जाकर इन स्थानों के दर्शन कराते हैं। वहाँ पर अजपाल का टूटा हुआ दुर्ग अब भी देखने को मिलता है। इस तीर्थ स्थान में एक संन्यासी रहा करता था। उसको अजपाल

अपने यहाँ से बकरी का दूध रोजाना भेजा करता था। संन्यासी ने प्रसन्न होकर अजपाल को वर-दान दिया था, जिससे वह राजा हो गया था।

अजमेर के संस्थापक अजपाल से लेकर विशालदेव तक जितने भी राजा हुए हैं, उनमें माणिकराय का नाम बहुत प्रसिद्ध है। हिजरी की प्रथम शताब्दी में वलीद एक सेना लेकर आक्र-मण करने के लिए आया था। उस समय माणिकराय ने उसके साथ युद्ध किया था और उस युद्ध में वह मारा गया। महमूद के उत्तराधिकारी ने भारतवर्ष में आकर जब आक्रमण किया था तो चौहान राजा विशालदेव अनेक राजाओं और उनकी सेनाओं के साथ उससे युद्ध करने गया था और उसे पराजित करके भगा दिया था।

विशालदेव की इस कीर्ति के स्मारक में लोहे का एक स्तम्भ दिल्ली में गाड़ा गया था। वहाँ पर वह लौह स्तम्भ आज तक देखने को मिलता है। शिला लेखों के द्वारा मालूम होता है कि विशालदेव चित्तौर के रावल तेजसिंह का समकालीन था। यह तेजसिंह शूरवीर समर सिंह का परदादा था और समर सिंह सम्राट पृथ्वीराज का बहनोई था। उसने विशाल मुस्लिम सेना के के साथ पृथ्वीराज के पक्ष में युद्ध करते हुई इस देश की स्वाधीनता की रक्षा में अपना सर्वस्व अर्पण किया था। परन्तु अंत में अपने तेरह हजार राजपूतों के साथ कग्गर के युद्ध-क्षेत्र में युद्ध करते हुए वह मारा गया था। विशालदेव के समय को निश्चित रूप से कुछ नहीं लिखा जा सकता। लेकिन इस बात के प्रमाण मिलते हैं कि प्रमार वंश के राजा उदयादित्य की सन् १०६६ ईसवी में मृत्यु हुई थी। मरने के पहले उदयादित्य ने विशालदेव साथ मुसलमानों के विरुद्ध युद्ध किया था। इस आधार पर जाहिर होता है कि विशालदेव ग्यारहवीं शताब्दी में अजमेर में शासन करता था।

२ दिसम्बर—पुष्कर से अजमेर छै मील की दूरी पर है। वहाँ पहुँचने के लिए हम लोग पुष्कर के आगे घाटी की तरफ चले। पर्वत पर चढ़ते हुए हमने देखा कि पहाड़ के ऊपर आंवले के पेड़ खड़े हैं। उन पेड़ों को देखर जाहिर होता है कि वह शिखर अरावली पर्वत का एक हिस्सा है। मार्ग में अनेक प्रकार के प्राकृतिक दृश्यों को देखते हुए हम लोग अजमेर नगर में पहुँच गये। इस नगर की हमने बहुत बड़ी प्रशंसा सुन रखी थी। लेकिन यहाँ आने पर यह नगर हमको उस प्रकार देखने को नहीं मिला। भारतवर्ष के दूसरे नगरों की तरह अजमेर में भी हमको दीनता, निर्बलता और अशान्ति के दृश्य देखने को मिले। इन दिनों में अंगरेज सरकार की तरफ से विलडर साहब यहाँ पर रहता था। उसने अथमेर के कुछ भागों को अच्छा बनाने की कोशिश की थी। इन दिनों में अजमेर के व्यापारियों के लिए कई सुविधाजनक कार्य किये गये हैं। मैंने उनको देखा।

राजस्थान के बहुत-से व्यवसायी अजमेर में रहा करते हैं। वे सब मुझसे मिलने के लिए आये और उन सब ने ब्रिटिश सरकार के द्वारा मिली हुई शांति और सुरक्षा के लिए बार-बार धन्यवाद दिया। उनको देखने से मुझे मालूम हुआ कि वे हृदय से अंगरेजों के शासन में शांति और संरक्षण को अनुभव करते हैं।

———

तिरासीवाँ परिच्छेद

अजमेर की ऐतिहासिक विशेषता–मुस्लिम शासकों के अत्याचार–जैनियों का प्राचीन मन्दिर–फैली हुई जनश्रुति–अजमेर का विस्तृत तालाब–उस तालाब का निर्माता–अजमेर का अन्नसागर–उस सागर की विशेषता–पठानों के द्वारा महल का विनाश–पराक्रमी जयमल की ख्याति–तीन सौ साठ ग्रामों का प्रदेश बिदनौर–राणा भीम के साथ मुलाकात–बिदनौर के सामन्त के साथ राणा का विवाद–राणा भीम के साथ मेरी मित्रता का सम्बन्ध–सामन्त के साथ राणा के झगड़े का निर्णय–राणा के बहुमूल्य उपहार–भीलवाड़ा का प्रसिद्ध नगर–वहाँ के राजपूतों का आपसी झगड़ा–भीलवाड़ा में मेरा आतिथ्य–भीलवाड़ा जाने में मेरी अस्वीकृति–राजपूतों के साथ मेरा स्नेह–राजपूतों के झगड़े का निर्णय–भीलवाड़ा के राजपूतो का सम्मान–टाडगंज नाम रखने का प्रस्ताव–मेरी नामंजूरी–भीलवाड़ा के साथ मेरा स्नेहभाव–ग्रामीण किसानों के द्वारा स्वागत–मेवाड़ राज्य में स्वागत की प्रणाली–मरुभूमि की यात्रा से होने वाली थकावट–यात्रा से लौटने पर राणा का पत्र–देवारी नामक स्थान पर मुकाम –राणा का स्नेहपूर्ण सन्देश–मेवाड़ की राजधानी की रमणीकता–राजधानी के दुर्ग–आहर नामक स्थान के स्मारकों के निर्माण में संगमरमर पत्थर के प्रयोग–आहर नामक स्थान के पुराने नाम–साथ में पथ प्रदर्शक की सहायता–ज्योतिषी का परामर्श–मेंवाड़ के नागरिकों का प्रेम।

भारतवर्ष में अजमेर एक बहुत प्राचीन नगर है और वह अनेक बातों में ऐतिहासिक विशेषता रखता है। यहाँ पर मुसलमानों का शासन बहुत दिनों तक रहा और पठानों तथा मुगलों ने वहाँ पर अनेक प्रकार के अत्याचार किये। उन विदेशियों के अतिरिक्त बहुत पहले से सभी प्रकार से अनुसंधान करने-वालों का ध्यान अनेक अवसरों पर इसकी ओर गया है। इसका कारण कितनी ही बातों में अजमेर की विशेषता है। यहाँ के दुर्ग के पश्चिम तरफ जैनियों का एक पुराना मंदिर हैं। यह मन्दिर आक्रमणकारियों के द्वारा गिरने से बच गया था। इस मन्दिर के सम्बन्ध में जो बातें कही जाती हैं, उनमें इतना सत्य जरूर है कि यह मन्दिर बहुत थोड़े दिनों के भीतर बनकर तैयार हो गया था। जिसके लिए लोग कहा करते है कि यह मन्दिर ढाई दिनों में बना था।

अजमेर में विशाल तालाब नाम का एक लम्बा-चौड़ा सरोवर है। उसका घेरा आठ मील का है। प्रसिद्ध विशालदेव ने इस सरोवर को बनवाया था। उसके एक मील पूर्व की तरफ अन्ना सागर एक दूसरा सरोवर है। लोगों का कहना है कि इस सरोवर को विशालदेव के पौत्र ने बनवाया था। इसकी विशता यह है कि इस विस्तृत सरोवर के बीच में एक विशाल प्रासाद बना हुआ है, जो पठानों के समय में नष्ट कर दिया गया था और आक्रमणकारी लोग उस प्रासाद की मूल्यवान चीजें यहाँ से उठा ले गये।

राजस्थान के इतिहास में शूरवीर राठौर जयमल का नाम बहुत प्रसिद्ध है। वह मारवाड़ छोड़कर मेवाड़ चला गया था। उसके वंशज बिदनौर में अब भी शासन करते हैं। यह बिदनौर तीन सौ साठ ग्रामों और नगरों का एक प्रसिद्ध और विस्तृत इलाका है।

मेवाड़ के राणा से मिलने के लिए जब मैं वहाँ गया तो वहाँ के राज-दरबार में पहुँच कर मैंने देखा कि मेवाड़ के सरदार और सामन्त मेरे आने की प्रतीक्षा कर रहे हैं। मेरे वहाँ पर पहुँचते ही सभी ने खड़े होकर अपना सम्मान प्रकट किया और इसके बाद वे मुझे राणा के पास ले गये। राणा ने अपने बगल में एक ओर मुझे स्थान दिया और मेरे बैठने के बाद राणा भीम ने कुशल समाचार के पश्चात् बहुत-सी बातें मुझे सुनायीं। राणा बात-बात में भाई कह कर मुझसे बातें करता था। बिननौर के सामन्त का राणा के साथ एक वैवाहिक झगड़ा चल रहा था। मैंने उसको सुना और उसको तय करवा दिया। राणा भीम के साथ भूमि सम्बन्धी कुछ सरदारों का भी झगड़ा था। यह झगड़ा बहुत दिनों से चला आ रहा था। उसके लिए भी दोनों पक्षों की तरफ से मैं मध्यस्थ बनाया गया। इसका कारण यह नहीं था कि मैं अङ्गरेज सरकार का एक प्रतिनिधि था। बल्कि मेरे मध्यस्थ बनाये जाने का एक मात्र कारण यह था कि राणा भीम मुझे अपना मित्र समझता था। मुझे इस बात की प्रसन्नता है कि मेरे थोड़े से प्रयास के द्वारा वह झगड़ा भी सुलझ गया। मेरे वहाँ से बिदा होने के समय राणा भीम ने बहुत-से बहुमूल्य पदार्थ मुझे उपहार में दिये, मैंने उनको स्वीकार कर लिया। लेकिन उसके बाद धन्यवाद पूर्वक और सम्मान के साथ उन पदार्थों को मैंने लौटा दिया। राणा भीम ने विशप हर्बर को भी इसी प्रकार अपने उपहार से उसकी यात्रा के समय सम्मानित किया था। इसे जानकर मुझे प्रसन्नता हुई।

जब मैं वहाँ से बिदा हुआ तो राणा भीम मेरे उस मुकाम तक, जहाँ पर मैं ठहरा हुआ था, मुझे भेजने के लिए आया। उस समय मैंने राणा को कीमती पिस्तौल और दूरबीन यन्त्र उपहार में दिया। मेरे मुकाम से लौटने के समय राणा ने मुझसे मिलकर जिस प्रकार का भाव प्रकट किया, उसको देखकर सहज ही इस बात का अनुमान होता था, मानो दो घनिष्ट मित्र एक दूसरे से बिदा हो रहे हैं।

कितने ही प्रसिद्ध स्थानों की यात्रा करता हुआ मैं ६ दिसम्बर को भीलवाड़ा में पहुँचा और इस प्रसिद्ध स्थान के लगभग दो मील की दूरी पर मैंने सब के साथ मुकाम किया। वहीं पर मैंने सुना कि यहाँ के राजपूतों में आपसी झगड़ा चल रहा है। मैंने उस झगड़े के सम्बन्ध में सभी-कुछ जानने की चेष्टा की और जब उस नगर के दोनों पक्षों के प्रमुख व्यक्ति मेरे पास आये और अपने यहाँ मुझे ले जाने के लिए उन लोगों ने मुझसे अनुरोध किया। उस समय मैंने दोनों पक्षों के प्रतिनिधियों से बातें करते हुए उनके आपसी झगड़े पर बहुत अफसोस जाहिर किया और उनसे यह भी कह दिया कि आप लोगों के इस झगड़े को सुनकर मैं आपके यहाँ नहीं जाना चाहता।

मेरी इस बात को सुनकर आये हुए प्रतिनिधि बड़े संकोच में पड़ गये। उनके उस भाव को अनुभव करके मैंने नम्रता किन्तु कठोरता के साथ उनसे कहा : "यदि आप लोग मुझे अपने यहाँ ले जाना चाहते हैं तो मेरे पास बैठ कर अपने आपसी झगड़े को तय कर लीजिये और मिल कर एक हो जाइए। मैं आप लोगों को विश्वास दिलाना चाहता हूँ कि मैं इस देश के राजपूतों से बहुत प्रेम करता हूँ मैं उनको आपस में लड़ते हुए नहीं देखना चाहता।"

मेरी बातों से वे बहुत प्रभावित हुए। कुछ देर की बातों के बाद उनका आपसी झगड़ा तय हो गया और उनमें मित्रता पैदा हो गयी। इसे देखकर मुझे प्रसन्नता हुई। उसके बाद मैं उनके साथ उस नगर में गया। वहाँ पर मेरे साथ बहुत सम्मान प्रकट किया गया। और वहाँ के लोगों ने मुझसे प्रभावित होकर भीलवाड़ा का नाम बदल कर टॉडगञ्ज रखने का निश्चय किया।

उनके इस निर्णय को सुनकर मैंने उनको धन्यवाद दिया और उसके साथ ही मैंने उनसे प्रार्थना की में इस बात को पसन्द न करूँगा। मैंने उनसे स्पष्ट कहा कि मैं जितना आप लोगों से स्नेह करता हूँ, उतना ही इस नगर के नाम भीलवाड़ा से मैं प्रेम करता हूँ, मैं कभी भी इस नगर का नाम बदला जाना स्वीकार न स्वीकार न करूँगा। मेरी इस प्रार्थना को वहाँ के लोगों ने स्वीकार कर लिया और उसके बाद मैं सम्मानपूर्वक वहाँ के लोगों से बिदा होकर अपने स्थान पर आ गया।

१२ दिसम्बर को आस-पास के स्थानों में घूमते हुए मैं मेवाड़ की उस भूमि पर पहुँचा, जो राणा के अधिकार में थी और दहुत उपजाऊ थी। मार्ग में जहाँ से हम लोग निकलते थे, किसान लोग स्त्री-बच्चों के साथ एकत्रित होकर हम लोगों को देखते थे और अपनी प्रसन्नता को प्रकट करने के लिए राजस्थानी गाना गाते थे। जब हम लोग किसी नगर अजश ग्रामों में प्रवेश करते थे तो वहाँ के निवासी जय-जयकार करते थे। बहुत-से स्थानों में जल भरे हुए कलसों को अपने सिर पर रखे हुए स्त्रियों ने हम लोगों का स्वागत किया। मार्ग के दोनों ओर जिस प्रकार लोग पंक्ति लगाकर खड़े होते और हम लोगों को देखकर मुस्कराते, उनका यह दृश्य मुझे बहुत प्रिय मालूम होता। इस प्रकार का स्वागत मेवाड़ के सभी स्थानों में किया गया। जो स्त्रियाँ सिर पर कलस लेकर खड़ी होती थो, उनमें बहुत सी युवती लड़कियाँ और स्त्रियाँ भी थीं। उनके इस स्वागत और सम्मान को देखकर मैं बहुत प्रसन्न होता और इस देश राजपूतों की मैं मन ही मन प्रशंसा करता।

१६ दिसम्बर—हमने अपनी यात्रा का श्रीगणेश मैरता नामक स्थान से किया था और और दो महीने तक मेवाड़ और मारवाड़ के राज्यों में घूमने के बाद हम लोग फिर मैरता में आकर उपस्थित हुए। यहाँ पर बारीय और बुनाश नदियों के चार स्थानों पर विश्राम करने के बाद हम लोग आगे बढ़े। जिस प्रदेश में हम लोग आकर पहुँचे थे। वहाँ की भूमि साधारण रूप से अधिक उपजाऊ है। इस प्रदेश में पहले कई एक सम्पन्न नगर थे। उन नगरों के अनेक प्राचीन स्थान टूटी-फूटी दशा में देखने को मिलते हैं। यहाँ की पैदाबार का हाल सुनकर ऐसा मालूम होता है कि इतनी उपजाऊ भूमि शायद इस देश में कहीं नहीं है।

मरुभूमि में बहुत दिनों तक चलने के कारण हमारे साथ ऊँटों को बहुत कष्ट उठाना पड़ा था। हमारे साथ का सम्पूर्ण बोझा उन्हीं ऊँटों पर चलता था। इसलिए जितने भी ऊँट हमारे साथ थे, उनमें से लगभग आधे ऊँठ बेकार हो गये थे। हम लोगों के यहाँ पर लौट आने के बाद राणा ने हमारे पास अपना एक पत्र भेजा। उसका वह पत्र सम्मान से भरा हुआ है और पढ़ने से मालूम होता है कि वह मुझे देखने के लिए बहुत अधीर हो रहा है। परन्तु कुछ कारणवश मैं राणा की राजधानी में उसका पत्र पाने के बाद तुरन्त नहीं जा सका और कुछ समय के लिए मुझे मैरता और उसकी घाटी में रह जाना पड़ा। ×

१९ दिसम्बर—दो दिनों तक अपनी थकावट को दूर करने के बाद हम लोग देवारी होकर र नामक स्थान की तरफ चले। वहाँ पर जाने का कारण था। राणा ने संदेश भेजा था कि वहाँ पर आकर मैं स्वयं आप से मिलूँगा और अपनी राजधानी आपको ले जाऊँगा।

राणा का यह संदेश पाकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई थी। यद्यपि मुझे लिवा जाने के लिए राणा का मेरे पास आना कुछ आवश्यकता नहीं रखता था। फिर भी उसने इस प्रकार का संदेश

× यहाँ पर पाठकों को यह जान लेने की आवश्यकता है कि मैरता नामक ग्राम मेवाड़ और मारवाड़ दोनों राज्यों में है। इसलिए कोई भ्रम न पैदा होना चाहिए।

मेरे पास भेजा। उस संदेश से मैं इस बात को अच्छी तरह समझ सका कि राणा मुझसे बहुत अधिक प्रेम करता है।

राणा की राजधानी के अनेक दृश्य मुझे अत्यन्त प्रिय और रमणीक मालूम होते हैं। राणा और उसके उत्तराधिकारी का महल राजधानी के ऊँचे-ऊँचे मंदिर और सामन्तों के रमणीक तथा विशाल भवन सदा मुझे अपनी ओर आकर्षित करते रहे हैं। राजधानी के और भी अनेक दृश्य ऐसे हैं, जो मुझे प्राय: अपनी याद दिलाते हैं। राजधानी के आस-पास का कोट यद्यपि बहुत ऊँचा नहीं है, परंतु वह बहुत मजबूत है और बड़ी दूर तक चला गया है। उसके किनारे-किनारे बने हुए बहुत से दुर्ग एक पंक्ति में देखने से बड़े सुन्दर मालूम होते हैं। राजधानी में जाने के लिए बहुत से मार्ग हैं और उन बने हुए दुर्गों से राजधानी के सभी मार्ग सुरक्षित हैं। उन दुर्गों को इस प्रकार बनवाया गया है कि वे किसी शत्रु के आक्रमण करने पर राजधानी की रक्षा कर सकें।

गरमी के दिनों में इन दुर्गों पर सामन्त लोग आकर रहा करते हैं। अर अथवा आहर नामक जिस स्थान पर हमने मुकाम किया था, वह राणा का एक प्रिय स्थान है। जब से मेवाड़ राज्य की राजधानी उदयपुर में कायम हुई है, उन्हीं दिनों से इस आहर नामक स्थान को अनेक प्रकार की विशेषता मिली है। यहाँ पर मेवाड़ के बहुत से शूरवीरों के स्मारक बने हुए हैं। उन स्मारकों में कुछ राणा वंश के स्मारक भी हैं। वे आकार प्रकार में दूसरों की अपेक्षा बड़े और आकर्षक हैं।

आहर नामक स्थान पर जितने भी स्मारक बने हैं, उनमें अमर सिंह का स्मारक सब से श्रेष्ठ है, राणा भीमसिंह के पिता के समय तक जो लोग मेवाड़ के राजसिंहासन पर बैठे थे, उनके स्मारक भी वहाँ पर देखने के योग्य हैं। इन स्मारकों में कीमती संगमरमर लगा हुआ है। इनमें अनेक स्मारक बहुत पहले के बने हुए हैं। यहाँ के स्मारकों को देखने से पता चलता है कि अर अथवा आहर नामक स्थान बहुत पुराना है।

इस स्थान के सम्बन्ध में लोगों का कहना है कि राणा के पूर्वज किसी समय यहीं पर रहा करते थे। लोगों का यह भी कहना है कि आशादित्य ने इस नगर को बसाया था। उसके बहुत पहले वहाँ पर विक्रमादित्य के पूर्वज उज्जैनी प्राप्त करने के पहले रहा करते थे। उन दिनों में इस स्थान का नाम तम्बनगरी था। उसके बहुत दिनों के बाद यह नाम बदलकर आनन्दपुर रखा गया और उसके बाद आनन्दपुर अर अथवा आहर के नाम से प्रसिद्ध हुआ। आहर में ही रहने के कारण गहिलोत वंश के लोग आहारिया नाम से प्रसिद्ध हुए।

प्राचीन काल में आहर एक बड़ा नगर था। इस बात को सभी लोग मंजूर करते हैं। इस नगर के आस पास जो प्राचीन कोट बना हुआ है, वह अब बहुत कुछ नष्ट हो गया है। परन्तु अपनी प्राचीनता का वह स्पष्ट प्रमाण देता है। वहां पर कितने ही मन्दिर बने हुए हैं। उनमें जैन मन्दिर को प्रधानता दी जाती है। इन मन्दिरों को देखने से वहाँ की बहुत सी प्राचीन बातों का अनुमान होता है। इन मन्दिरों में जितनी भी मूर्तियाँ पत्थरों पर बनी हुई हैं, वे सभी उलटी हैं। उनके सिर नीचे की तरफ और पैर ऊपर की तरफ हैं। महावीर और महादेव—दोनों की मूर्तियां एक ही स्थान पर रखी हुई हैं और दोनों सफेद पत्थर पर खोद कर बनायी गयी हैं। यहां पर मुझे दो शिलालेख भी मिले। उनमें एक जैन भाषा में लिखा हुआ है और दूसरा किसी दूसरी भाषा में। मैं उस भाषा का नाम नहीं जान सका।

मैरता में आने के बाद उदयपुर के राणा का मुझे पत्र मिला था। उसका उल्लेख मैं ऊपर कर चुका हूँ। सकुशल अपनी यात्रा से लौट आने पर राणा ने उस पत्र के द्वारा मुझे बधाई दी थी।

उस समय मुझे राणा की राजधानी में जाना चाहिए था। लेकिन मुझे कुछ समय के लिए मैरता में रुक जाना पड़ा था। राजस्थान का एक आदमी पथ-प्रदर्शक की हैसियत से मेरे साथ था। वह ज्योतिष का भी ज्ञान रखता था। मैरता से राणा की राजधानी जाने के लिए बातचीत होने पर साथ के उस ज्योतिषी ने मुझे कुछ समय के लिए मैरता में ही रुकने के लिए कहा था। उसने यह भी था कि उस तरफ जाने के लिए नक्षत्र आपके विरुद्ध पड़ता है। इसलिए जब तक वह बदल न जाय, आपको राणा की राजधानी की दिशा में नहीं जाना चाहिए।

मैंने उस ज्योतिषी की बात को सुनकर कुछ समय वहाँ रहने के लिए मंजूर कर लिया। यद्यपि नक्षत्र के विरोध का मेरे ऊपर कोई प्रभाव न था। लेकिन मैं बहुत थका हुआ था। इसलिए नक्षत्र के बहाने वहां पर रहकर विश्राम कर लेना मैंने मुनासिब समझा। मेरे ऐसा करने से मेरे पथ-प्रदर्शक को बहुत संतोष मिला। नक्षत्रों की चालों पर विश्वास न करते हुए भी मैं अपने साथ के ज्योतिषी को अप्रसन्न नहीं करना चाहता था। रुककर विश्राम करने की मेरी स्वयं इच्छा थी। इस दशा में उसको संतोष देने में मेरा क्या बिगड़ता था।

आहर से बिदा होने के समय भी मेरे सामने उसी नक्षत्र का प्रश्न पैदा हुआ। उस समय भी मुझसे एक दिन और ठहरने के लिए कहा गया। उसके उत्तर में अब तो मुझे कहना पड़ा कि अगर विरोधी नक्षत्र का प्रभाव मेरे ही ऊपर पड़ता हो तो मैं उसका फल भोगने के लिए तैयार हूँ।

मेरी इस बात को सुनकर बेचारा ज्योतिषी कुछ संकोच में पड़ गया। वह मेरा विरोध करने के लिए साहस न कर सका। इसलिए उसने मुझसे जो कहा था, उसमें उसने संशोधन किया और फिर उसने कहा : नक्षत्र के प्रकोप से बचने के लिए मुझको पूर्व की तरफ के दरवाजे के बजाय दक्षिण के फाटक के रास्ते से राजधानी में प्रवेश करना चाहिए।

मैंने उसकी इस बात को मान लिया। इसलिए कि ऐसा करने से मेरा कुछ नहीं बिगड़ता था और दूसरी बात यह भी थी कि इन राज्यों के जो लोग इस प्रकार की बातों पर विश्वास करते हैं, उनको भी मेरे साथ चलना था। इसलिए पथ-प्रदर्शक के इस संशोधन को मैंने स्वीकार कर लिया।

हम सब लोग राणा की राजधानी में पहुँचे। राणा भीमसिंह अपने लड़के तथा समस्त सामन्तों और मंत्रियों को लेकर राजधानी के बाहर आकर मुझसे मिला। उसके साथ राजधानी में रहने वालों की बहुत बड़ी संख्या थी। उन सभी लोगों ने एक साथ जोर से कहा : टाड साहब राम राम।

मैंने हँसते हुए बड़ी प्रसन्नता के साथ उन सब को राम-राम कहा। जो लोग राणा के साथ मुझसे मिलने आये थे, बहुत प्रसन्न थे और मालूम होता था कि वे लोग बहुत दिनों से बिछुड़े हुए अपने किसी निकटवर्ती सम्बन्धी अथवा प्रेमी से आज मिल रहे हैं। उन सबको देखकर और उनकी प्रसन्नता को अनुभव करके मुझे भी इसी प्रकार का सुख मिल रहा था, जिस प्रकार राणा और उसके साथी लोग उस समय अनुभव कर रहे थे।

मैं राणा के साथ-साथ उसके लड़के, सामन्तों और मंत्रियों से खूब मिला और सभी से मैंने उनके और उनके परिवार से कुशल समाचार पूछे। राणा ने दूसरे दिन अपने राज महल में आने के लिए मुझे आमंत्रित किया। उस निमंत्रण की स्वीकृति मुझसे पाने के बाद वह सबके साथ उस स्थान से लौटकर चला गया और हम लोग भी ग्रह के कोप को बचाते हुए पूर्व के द्वार को

छोड़ कर दक्षिण के द्वार से निकले और अपने निवास-स्थान रामप्यारी के बाग में हम सब लोग संतोष के साथ चले गये।

चौरासीवां परिच्छेद

उदयपुर की वापसी–सूरजपुरा की सराय के आगे का एक प्रसिद्ध दलदल–नगर के चारों ओर की विस्तृत भूमि में जल–एक साधारण नगर में सात सौ पचास जैनियों के मन्दिर–उनकी बिगड़ी हुई अवस्था–खरोदा का प्रसिद्ध स्थान और दुर्ग–उसकी उपयोगिता और विशेषता–अमर पुरा नामक स्थान पर हम लोगों का मुकाम–ब्राह्मणों को दान में मिला हुआ नगर--अनधिकारी और अकर्मण्य ब्राह्मण–राजा पर ब्रह्मणों का नियंत्रण–राजा को ब्रह्म-हत्या का भय–राणा के सामने मेरा प्रस्ताव–राणा के दरबार में ब्राह्मण ज्योतिषी के द्वारा ब्राह्मणों के अधिकारों का समर्थन–मेवाड़ राज्य में मराठों और पठानों के अधिकार–वर्त्तमान राजपूतों की निर्बलता–मेवाड़ के बच्चे-बच्चे के साथ मेरा स्नेह–राजस्थान के साथ मेरा सम्बन्ध--राजपूतों की बुराइयों को दूर करने की चेष्टा।

मारवाड़-राज्य के प्रसिद्ध स्थानों की यात्रा समाप्त करने के बाद मैं उदयपुर लौटा और इस राजधानी को कुछ दिनों के लिए मुकाम बनाकर २६ जनवरी १८२० ईसवी तक वहाँ रहा। जनवरी को खैरोदा नामक स्थान पर पहुँचकर मैंने मुकाम किया। यहाँ पर आने का मार्ग जलमय था। उसके बाद दूबा नामक स्थान से चलकर लगभग दो मील की दूरी पर हम लोगों ने बैरस नदी को पार किया। उस नदी के तट पर मानदेश्वर नामक महादेव का एक बहुत प्राचीन मंदिर था। उसे मैंने देखा।

वहाँ से हम लोग फिर रवाना हुआ। सूरजपुरा की सराय के आगे बढ़ते ही हम लोगों को दल-दल में फँस जाना पड़ा। इन नगर के चारों तरफ की भूमि जल से भरी हुई थी। मेवाड़ के सोलह सामन्तों में कनोरा के प्रधान सामन्त के अधिकार में यह स्थान है और अपनी प्राचीनता के लिए बहुत प्रसिद्ध है। कहा जाता है कि इस नगर में किसी समय सात सौ पचास केवल जैनियों के मन्दिर थे और उन समस्त मन्दिरों में एक साथ घण्टा बजता था। इन मन्दिरों में अब समूचा एक भी नहीं है। उनके टूटे-फूटे भाग देखने को मिलता हैं और उनको देखकर उनकी प्राचीनता का सहज ही अनुमान होता है। खैरोदा से एक मील को दूरी पर खैरोदा एक ग्राम है। हम लोग उसमें गये। वह ग्राम ब्राह्मणों के अधिकार में है। इसीलिए वह ब्रह्मोत्तर कहलाता है।

खरोदा एक प्रसिद्ध स्थान है उसके चारो तरफ किला है। चित्तौर और उदयपुर के बीच खैररा बसा हुआ है औद वहीं पर उसका किला है। मेवाड़ के आपसी विद्रोह के दिनों में यही पर एकत्रित होकर लोग विवाद किया करते थे। इस स्थान को अनेक बातों में उपयोगी समझकर राणा ने अपने अधिकार में रखा हैं।

सन् १७४८ ईसवी में मेवाड़ राज्य में आपसी विद्रोह की आग सुलग उठी थी। शक्तावत संग्राम सिंह का गोद लिता हुआ उत्तराधिकारी लावा का रावत जयसिंह उस विद्रोह का प्रधान नेता था। खैरोदा उसी के अधिकार में था। इसके द्वारा आमदनी अच्छी होती थी और वह एक

सुरक्षित स्थान पर बसा हुआ था। इसीलिए इस नगर को किसी सामन्त के अधिकार में न देकर राणा ने अपने ही अधिकार में उसको रखा था। लावा के सामन्त के साथ ४ मई को राणा की एक संधि हुई थी और उसी संधि के अनुसार यह नगर और उसका किला राणा को मिला।

मेवाड़ में जो आपसी विद्रोह पैदा हुआ था, उसका वर्णन खैरोदा के इतिहास में स्पष्ट रूप से लिखा गया है। उस विद्रोह में शक्तावत संग्राम सिंह और चन्द्रावत भैरोंसिंह की तरफ से बहुत से राजपूत मारे गये थे। सन् १७३३ ईसवी में संग्राम सिंह को अवस्था छोटी थी। उसका पिता शिवगढ़ का रावत लाल उस समय जीवित था। उसने अपने राजा राणा के अधिकार से खैरोदा को छीन लिया था और छै वर्ष तक लगातार उसने उसको अपने अधिकार में रखा। सन् १७४० ईसवी में देवगढ़, आमोत और कोरावर इत्यादि के सामन्तों ने सालुम्ब्रा के नेतृत्व में तैयारी की और वहाँ से शक्तावत लोगों को भगा देने के लिए वे एकत्रित हुए। शक्तावत सरदार ने चार महीने तक उन आक्रमणकारियों से खैरोदा के दूर्ग की रक्षा की। उसके बाद वह दुर्ग का अधिकार दे देने के लिए तैयार हो गया और इसके लिए उसने संधि कि सूचना देने वाले सफेद झण्डे को फहराया। इसके उपरान्त वह अपने परिवार के लोगों को लेकर शक्तावत्तों की राजधानी भोंदर नामक स्थान को चला गया। इस प्रकार उसने आक्रमणकारियों से अपनी रक्षा की। परन्तु शिवगढ़ का उत्तराधिकारी संग्राम सिंह भोंदर में पहुँच गया। वहाँ जाकर उसने अपने शत्रुओं पर आक्रमण किया।

संग्रामसिंह ने भोंदर में जो अत्याचार किये, उनके सम्बन्ध में मेवाड़ के लोग अब तक बहुत-सी बातें कहा करते हैं। किसी समय उसने गुरली नामक स्थान पर पहुँचकर वहाँ के पशुओं स्त्रियों और पुरुषों को कैद कर लिया था। कोरावर के सामन्त का लड़का जालिम सिंह वहाँ के निवासियों की सहायता के लिए गया। संग्राम सिंह ने जालिम सिंस पर आक्रमण किया और उसने उसको जान से मार डाला। समाचार को सुनकर कोरावर प्रदेश के राजपूत बहुत बिगड़े और संग्राम सिंह से जालिम सिंह की मृत्यु का बदला लेने के लिए वे लोग चन्द्रावत सालुम्ब्रा के सामन्त के झण्डे के नीचे एकत्रित हुए।

महारणा को स्वयं जालिम सिंह की मृत्यु के समाचार से बड़ा आघात पहुँचा। इसलिए उसने चन्द्रावतों का पक्ष लेकर अपने अधिकार की वेतन भोगी सेन्धवीसेना लड़ने के लिए भेजी और उस सेना ने भोदर पहुँचकर उसको घेर लिया। जिस समय राणा की भेजी हुई इस सेना ने भोंदर पर आक्रमण किया था, उसी समय कोरावर के सामन्त अर्जुन सिंह ने अपने लड़के जालिम सिंह की मृत्यु का बदला लेने लिए तैयारी की और शिवगढ़ पहुँचकर वहाँ के दुर्ग पर अधिकरा करके उसने वहाँ के स्त्री पुरुषों को मार डाला। खैरोदा कई वर्ष तक राणा के अधिकार में रहा। आखीर में राणा ने वहाँ का किला भवेसर के चन्द्रावत सामन्त सरदार सिंह को दे दिया।

सम्बत् १७४६ में चन्द्रावत सामन्त ने महाराणा के विरुद्ध विद्रोहियों का साथ दिया। इसलिए राणा की तरफ से उसको बहुत अपमानित होना पड़ा। उसके शत्रु शक्तावत लोग उन दिनों में भोंदर के सामन्त के नेतृत्व में वहाँ के दुर्ग से सेन्धवी सेना को निकालने के लिए तैयार हुआ। कोरावर का सामन्त अर्जुन सिंह दुर्ग की सहायता करने के लिए गया। कुलीखाँ सेन्धवी सेना का प्रधान था। दुर्ग के करीब के मैदान में युद्ध आरम्भ हुआ। उस लड़ाई में कोरावर प्रदेश के दो सरदार सीकरवाल गोमान और राणावत भीम जी मारे गये। लेकिन अंत में चन्द्रावत लोगों की ही विजय हुई और शक्तावत पराजित होकर वहाँ से चले गये।

कोटा राज्य के जालिम सिंह ने भींदर के इस युद्ध की आग भड़कायी थी और शक्तावतों के साथ चन्द्रवत लोगों को लड़ाकर उसने भींदर के दुर्ग को अपने अधिकार में लेने का इरादा किया था। इसलिए उस लड़ाई में जब शक्तावत लोगों की हार हो गयी तो जालिम सिंह ने अपनी अरब सेना का एक दल उनकी सहायता के लिए भेजा। कोटा के जालिम सिंह की इस सहायता को पाकर शक्तावत लोगों ने फिर चन्द्रावतों पर आक्रमण किया। दोनों ओर से फिर से युद्ध आरम्भ हुआ। उसमें चन्द्रावत लोग पराजित हो गए। सींधिया सेना का सरदार कुली खाँ उस लड़ाई में मारा गया था। संग्राम सिंह के शरीर में युद्ध करते हुये कई एक घाव हो गये थे। परन्तु उसको इन घावों की कुछ परवाह न थी और वह अपने शत्रु चन्द्रावतों को पराजित करके प्रसन्न हो रहा था।

चन्द्रावत सरदार सिंह के विद्रोहियों में मिल जाने के कारण राणा के साथ उसकी शत्रुता पैदा हो गयी थी। इसलिए जब शक्तावतों के साथ चन्द्रावतों को पराजय हुई और संग्राम सिंह ने चन्द्रावतों के विरुद्ध विजय प्राप्त की तो उसने राणा से अपनी विजय के लिये सम्मान पाया। इस प्रकार उस युद्ध के पश्चात खैरोदा का दुर्ग सम्वत १७:८ सन् १८०२ ईसवी तक राणा के अधिकार में रहा। उसके कुछ दिनों के बाद संग्राम सिंह ने दस हजार रुपये उपहार में देकर वहाँ के दुर्ग को अपने अधिकार में कर लिया।

राजा का स्वभाव सरल और सहज था। इसका अनुचित लाभ मेवाड़ के सामन्त उठाया करते थे। राणा के साथ अनेक बार सामन्तों का मतभेद मेरे सामने उपस्थित हुआ और मैंने मध्यस्थ बनकर उनके बीच में उपस्थित होकर वैमनस्य दूर करने की कोशिश की। मेवाड़ राज्य की समस्त खालसा भूमि का खैरोदा एक विभाग है। छोटे-छोटे गाँवों को छोड़कर इस प्रदेश में चौदह बड़े-बड़े कस्बे हैं। इस प्रदेश से वार्षिक चौदह हजार पाँच सौ रुपये की। आमदनी होती है। केवल खैरौदा नगर से होने वाली आमदनी पैंतीस सौ रुपये वार्षिक है।।

३० जनवरी को हम लोग हिन्ता नामक स्थान पर पहुँचे। उन दिनों यहाँ के खेत अनाजों से भरे हुए चारों तरफ लहरा रहे थे और उस फसल की खेती अच्छी होने के कारण वहाँ के निवासी बहुत प्रसन्न हो रहे थे। उन खेतों में जो गेहूँ, जौ और चना खड़ा हुआ था, उसको देखकर फसल के बहुत अच्छा होने की आशा की जाती थी। हम लोगों के आगमन का समाचार सुनकर वहाँ के बहुत-से लोग एकत्रित हो गये थे। उनमें स्त्रियाँ और बच्चे भी थे। हम सब लोगों के आने पर वे लोग बहुत प्रसन्न हो रहे थे।

खैरोदा के अन्तर्गत अमरपुरा नामक एक ग्राम था। वहाँ पर हम लोग पहुँचे। हमारे बायीं तरफ मनियास नामक एक नगर था। उस नगर पर ब्राह्मणों ने अधिकार पाया था। मेवाड़ के राणा ने प्राचीन काल में यह नगर ब्राह्मणों को दे दिया था। इस नगर में पचास हजार बीघा भूमि अधिक उपजाऊ होने के कारण बहुत प्रसिद्ध थी, जिसे किसी समय मेवाड़ के किसी राजा ने - अकर्मण्य ब्राह्मणों को दे दी थी। पता लगाने से मालूम होता है कि त्रेता युग में राजा मान्धाता के द्वारा यह नगर और इसकी भूमि ब्राह्मणों ने पायी थी। उन ब्राह्मणों के अब मुश्किल से पच्चीस परिवार उस स्थान पर पाये जाते हैं। इन ब्राह्मणों ने इतनी बड़ी भूमि का अधिकार प्राप्त करने के बाद उसके जोतने-बोने का काम कभी नहीं किया और न वह विस्तृत भूमि दूसरों को कभी जोतने-बोने के लिये दी गयी। इसका परिणाम यह हुआ कि वह विस्तृत उपजाऊ भूमि बञ्जर हो गयी। वे ब्राह्मण इतने अकर्मण्य थे कि वे उस भूमि को न तो स्वयं जोत-बो सके और न इसके लिए वे किसी को दे सके। जो भूमि सैकड़ों वर्षों से जोती-बोई न गयी हो, बञ्जर हो कर उसका बेकार हो जाना स्वाभाविक है। आश्चर्य यह है कि मेवाड़ का राणा उस भूमि को—जिसमें लाखों

मन अनाज पैदा हो सकता था—उन ब्राह्मणों से अब वापस भी नहीं ले सकता था। क्योंकि उस भूमि को वापस लेने से राणा को साठ हजार वर्ष नरक में रहना पड़ता। ब्राह्मणों के इस प्रचार पर स्वयं राणा और दूसरे सभी लोग विश्वास करते थे। जिनका इस पर विश्वास था, उनके विचारों से इस विश्वास का दूर कर सकना बहुत कठिन मालूम होता था। इस दशा में मेवाड़-राज्य की इस विस्तृत भूमि के उद्धार का प्रश्न बहुत कठिन जान पड़ता था।

यह जानकर मुझे बहुत प्रसन्नता हुई कि शक्तावत वंश के कुछ राजपूत परिवारों ने अपने वंश की वृद्धि के कारण, भूमि के अभाव में ब्राह्मणों की उस भूमि पर अधिकार कर लिया और साठ हजार वर्ष तक नरक में रहने का भय छोड़कर उन परिवारों में हिन्ता और दूंदिया नामक ग्रामों को बसाया।

इस विषय में सार्वजनिक हितों को सामने रखकर मैंने राणा से प्रस्ताव किया कि यदि राणा आवश्यकता के अनुसार ब्राह्मणों को भूमि देकर बाकी समस्त भूमि पर अधिकार कर ले और उसे अपने राज्य में मिला ले तो ऐसा करने से जो पाप होगा अथवा मरने के बाद जो दण्ड मिलेगा, उसका भोग करने के लिए मैं तैयार हूँ। अगर ब्राह्मण मेरे इस प्रस्ताव को स्वीकार करें तो उनको खेती करने के लिए एक हजार बीघा भूमि उसमें से दे दी जायगी और खेती करने के लिये उनको मजबूर होना पड़ेगा। ऐसा करने के लिए उनके सामने जो असुविधायें होंगी, उनको दूर करने के लिये सहायता दी जायगी। उस भूमि में खेती करने के लिए जो कुएं थे, वे काम में न लाये जाने के कारण बेकार हो गये हैं, उनकी मरम्मत करा दी जायगी। नये कुएं भी खुदवाये जा सकते हैं। यह विस्तृत उपजाऊ भूमि फिर पहले के समान काम की और उपजाऊ बन सके, इसके लिए राज्य की तरफ से सब कुछ किया जायगा।

राणा से जब मैंने यह प्रस्ताव किया, उस समय राणा के दरबार में एक ब्राह्मण ज्योतिषी भी बैठा था। वह वैद्य भी था। ब्राह्मण होने के कारण उसने मनियास के उन ब्राह्मणों का पक्ष लिया, जिनके अधिकार में मेवाड़ की यह विस्तृत भूमि थी और अत्यन्त उपजाऊ होने पर भी अयोग्य ब्राह्मणों के अधिकार में होने के कारण बंजर होकर बेकार हो गयी थी। उस ज्योतिषी ने मेरे इस प्रस्ताव का विरोध किया और कहा कि उस पचास हजार बीघा भूमि का एक टुकड़ा भी ब्राह्मणों से वापस नहीं लिया जा सकता। इसलिए कि उन्होंने उस ग्राम को और उसकी इस भूमि को ताम्र पत्र में लिखकर यहां के राणा से पायी थी। उस ज्योतिषी से जब उस ताम्र पत्र के लाने के लिए कहा गया तो वह उस ताम्र पत्र को राणा के सामने उपस्थित नहीं कर सका।

राजा मान्धाता, जिसने मनियास के ब्राह्मणों को वह विस्तृत भूमि दे दी थी, प्रमार वंशी था और वह मध्य भारत का राजा था। धार और उज्जैनी उसकी राजधानियां थीं। उसका समय विक्रमादित्य से पहले का माना जाता है। विक्रमादित्य का सम्वत् सम्पूर्ण भारतवर्ष में प्रचलित है। प्राचीनकाल में चित्तौर और उसके समस्त प्रदेश धार राज्य में शामिल थे। उन सभी प्रदेशों में प्रमार राजा का राज्य शामिल था, इसके बहुत-से प्रमाण पाये जाते हैं।

हिन्ता और दूदा नामक स्थानों के साथ राजा मान्धाता के शासन का सम्बन्ध पाया जाता है। राजा मान्धाता ने दूंदिया नामक स्थान पर अश्वमेध यज्ञ किया था। उस स्थान पर अब तक वह यज्ञ कुण्ड देखने को मिलता है। उस यज्ञ के कार्य में हिन्ता के दो ऋषि शामिल हुए थे। उनके कार्य के बदले में राजा मान्धाता ने उनको बहुत-साधन दिया। लेकिन उन दोनों ऋषियों ने उस धन को लेने से इनकार कर दिया।

यज्ञ के कार्य के बाद जब वे दोनों ऋषि बिदा होकर जाने लगे तो राजा ने मीनार प्रदेश का अधिकार पत्र लिखकर उनके हाथ में दे दिया। उस अधिकार पत्र को लेने के बाद उन दोनों ऋषियों की अब तक की की हुई तपस्या नष्ट हो गयी और अपने तप से जो उनमें अलौकिक प्रताप पैदा हुआ था, वह सब लोप हो गया। उन ऋषियों के सम्बन्ध में इस प्रकार की जनश्रुति पायी जाती है।

आज प्रतः:काल यात्रा करके हम लोग बामोनिया नामक ग्राम में पहुँचे। वहां पर एक बड़ा सुन्दर तालाब है। उस तालाब के चारों तरफ पत्थर की दीवार का घेरा है। उस ग्राम में चार हजार बीघा भूमि है। वह भूमि पहले राणा के अधिकार में थी। लेकिन मराठों के आक्रमण होने के बाद उस ग्राम का अधिकार अब राणा के हाथ में नहीं रहा।

यह ग्राम पहले किसी समय बड़ा रमणीक और सम्पन्न अवस्था में था। लेकिन आक्रमण कारियों के अत्याचारों के कारण वह धीरे-धीरे बिलकुल नष्ट हो गया है और वहां की आबादी भी बहुत कम हो गयी है। इन दिनों की उसकी दशा को देखकर कोई उसके प्राचीन वैभव का अनुमान नहीं लगा सकता। उसकी यह दुरवस्था उस समय आरम्भ हुई थी, जब राणा की शक्तियों का क्षीण होना आरम्भ हुआ था, उन्हीं दिनों में इस स्थान का अधिकार राणा के हाथ से निकल कर दूसरों के हाथों में चला गया था।

मेवाड़ के आपसी विद्रोह के दिनों में हिन्ता एक प्रसिद्ध स्थान था और मेवाड़ राज्य की तरफ से शक्तावत सामन्त उसका अधिकारी था। सम्बत् १८१२ में दस हजार मराठा सेना के मेवाड़ पर आक्रमण करने पर राजसिंह ने बड़ी वीरता के साथ युद्ध किया था। वह राजसिंह हिन्ता का ही रहने वाला था। राजसिंह झालावंशी राजपूत था और वह सान्दी का सामन्त था। राणा प्रताप के साथ जिन राजपूतों ने मुगलों के साथ युद्ध किया था और राजपूती स्वाभिमान की रक्षा करते हुए जो लोग बलिदान हुए थे, यह राजसिंह उन्हीं का वंशज था।

राजसिंह साद्री जाने के लिए राजधानी से रवाना होकर जब हिन्ता में पहुँचा तो उसने आने पर सुना कि मराठों की सेना आक्रमण करने के लिए आ रही है और यहाँ से तीन मील की दूरी पर सानाई नामक स्थान तक आ गयी है। उसी समय किसी आदमी ने उससे कहा कि साद्री जाते हुए माराठा सेना रास्ते में पड़ेगी। इस लिए जो रास्ता वहाँ के लिए गया है, उसे छोड़कर जाना चाहिए। परन्तु रामसिंह ने इसकी कुछ भी परवा न की और वह साद्री पहुँचने के लिए हिन्ता से सीधे रास्ते पर रवाना हुआ।

राजसिंह के साथ कुछ थोड़े से अश्वारोही सैनिक थे। राजसिंह उन्हीं के साथ अपने रास्ते पर चला जा रहा था। कुछ देर के बाद उस रास्ते पर मराठा सेना के साथ भेंट हो गयी। मराठों की विशाल सेना के सामने थोड़े से अश्वारोही सैनिक क्या कर सकते थे। मराठों ने उन सब को कैद कर लिया और घोड़ों से उतरने की उनको आज्ञा दी। राजसिंह ने सोचा कि अपना कुछ देकर आत्म समर्पण करने की अपेक्षा मृत्यु का सामना करना श्रेष्ट है। इस प्रकार अपने मन में निर्णय करके राजसिंह मराठों के साथ युद्ध करने के लिए तैयार हो गया। उसके साथ तीन सौ अश्वरोही सैनिक थे। उन सब ने एक साथ अपने हाथों में तलवारें लेकर मराठों की सेना पर आक्रमण किया। मराठा सेना को उन थोड़े सैनिकों से इस प्रकार का भय न था। लगातार कुछ समय तक दोनों तरफ से मारकाट होती रही। उसी मौके पर राजसिंह अपने साथ के बचे हुये अश्वरोहियों को साथ लेकर तिन्ता के दुर्ग में पहुँच गया।

भींदर के सामन्त खुशियाल सिंह के साथ राजसिंह का वैवाहिक सम्बन्ध था। जब खुशियाल सिंह ने राजसिंह पर मराठों के आक्रमण का समाचार सुना तो खुशियाल सिंह अपने विश्वस्त शूर-वीरों की सेना को लेकर तुरन्त रवाना हुआ। उसके साथ केवल पाँच सौ राजपूत सैनिक थे और वे सभी शक्तावत वंशी थे। उनमें तीन चौथाई पैदल सैनिक थे और एक चौथाई अश्वारोही सैनिक थे।

खुशियाल सिंह अपनी इस छोटी-सी सेना को लेकर रात के समय रवाना हुआ। उसके साथ में मशाले लिये हुए लोग चल रहे थे, उनके जो लोग अपने हाथों में प्रकाश के लिए मशालें लिए थे, उनके दाहिने और बायें तरफ पैदल और सवार सैनिक चल रहे थे। खुशियाल सिंह सब से आगे था। अपनी सेना को आदेश देते हुए खुशियाल सिंह ने कहा। जो सैनिक अपने साथ पंक्ति को तोड़कर चलेगा, उसको बन्दूक से मार दिया जायगा।

खुशियाल सिंह की यह छोटी-सी सेना दस हजार मराठा सेना पर आक्रमण करने के लिए बड़े साहस के साथ चली जा रही थी। कुछ दूर आगे जाने पर मराठा सेना मिल गयी। उसने चारों ओर से खुशियाल सिंह की सेना को घेर लिया। परन्तु खुशियाल सिंह की छोटी सी सेना दस हजार मराठों की सेना के द्वारा घेरे जाने पर कुछ भी भयभीत नहीं हुई और वह सेना मराठों के घेरे में आ जाने के बाद भी भींदर और थिन्ता के बीच के विस्तृत मैदान में होकर हिन्ता के सामने पहुँच गयी। उस समय मराठों ने यह देखकर कि राजपूतों की यह छोटी-सी सेना हमारे हाथ से निकली जा रही है तो उन लोगों ने सक्तावत लोगों पर भालों की मार आरम्भ कर दी।

यह देखकर खुशियाल सिंह अपने पैदल और सवार सैनिको को युद्ध के लिए उत्तेजित किया। उसी समय उनके समस्त सैनिक एक साथ मराठों पर टूट पड़े और उन्होंने शत्रुओं के साथ भयंकर युद्ध आरम्भ कर किया। इससे मराठों की विशाल सेना पीछे की तरफ हट गयी। खुशियाल सिंह ने अपने सैनिको को अपनी भाषा में आदेश दिया, जिससे वे तेजी के साथ हिन्ता के दुर्ग के फाटक पर पहुँच गये। साद्री का सामन्त राजसिंह पहले से ही अपने अश्वारोही सैनिकों के साथ वहां पर मौजूद था। वह खुशयाल सिंह से वहीं प्रसन्नता के साथ मिला।

खुशियाल सिंह ने कुछ समय तक राजसिंह के साथ कुछ परामर्श किया। उनको यह मालूम था कि मराठा सेना अभी यहां आकर हम लोकों पर आक्रमण करेगी, उस समय हम लोगी को इस दुर्ग में आश्रय लेना पड़ेगा और अधिक दिनों तक हम दुर्ग में हम लोगों के खाने पीने को व्यवस्था न हो सकेगी इसलिए मजबूर होकर हमें आत्म समर्पण करना पड़ेगा। इसलिए इसके सम्बन्ध में परामर्श होने के बाद राजपूत सैनिक वहां से रवाना हुये और मराठों के द्वारा होने वाली क्षति की परवाह न करके वे लोग भींदर में पहुँच गये।

खुशियाल सिंह ने जिस साहस और बहादुरी के साथ दस हजार मराठों के मुकाबिले में सफलता प्राप्त की और वहाँ से चलकर वह अपने सैनिकों के साथ भींदर में आ गया, उस की बातें शक्तावत लोगों में बहुत दिनों तक होती रहीं। उस वंश के लोगों में अपने पूर्वजों की इस बहादुरी की कथायें अब तक कही जाती है और उनको सुनकर लोगों में प्रोत्साहन पैदा होता है।

३१ जनवरी को हम सब लोग मेवाड़-राज्य की सीमा पर पहुँच गये। यहाँ की भूमि भी बहुत उपजाऊ थी। मैंने वहाँ पहुँच कर जब सुना कि राजपूत की इस भूमि पर आजकल मराठों और पठानों का अधिकार है तो मुझे बहुत दुख हुआ। मैं उसी समय सोचने लगा कि जिनके पूर्वज इतने साहसी और शूरवीर थे कि उनके सामने युद्ध में आने के लिए कोई साहस न

कर सकता था, उनके वंशजों की यह दशा कि आज उनकी भूमि पर दूसरों का अधिकार है। इसमें कोई संदेह नहीं कि आज ये राजपूत बहुत अयोग्य दिखायी देते हैं। परंतु इनकी सामर्थ्य का अभी लोप नहीं हुआ। वर्तमान परिस्थितियों में उनकी शक्तियाँ क्षीण पड़ गयी हैं, परन्तु वे नष्ट नहीं हुईं। मैं देखता हूँ कि आज राणा के दरबार में जो सामन्त हैं, वे अपने पूर्वजों की तरह योग्य, साहसी और शूरवीर नहीं हैं। उनमें कोई आलसी है, कोई विलासी है, कोई अकर्मण्य हैं और कोई षड्यंत्रकारी है। किसी भी दशा में मेवाड़ के साथ मेरा वही सम्बन्ध है, जो सम्बन्ध गोद लिये जाने के बाद किसी भूमि पर किसी का हो जाता है। मेवाड़ के साथ मेरा गम्भीर सम्बन्ध है। यहाँ के प्रत्येक मनुष्य को, प्रत्येक बच्चे को और यहाँ की मिट्टी को मैं स्नेह के साथ देखता हूँ। मेवाड़ के साथ मेरे जीवन का यह अटूट सम्बन्ध है। इस सम्बन्ध के कारण मेरे मुख से निकलता है: 'मेवाड़' सभी प्रकार की कमजोरियों के होने पर भी मैं तुझसे प्रेम करता हूँ।

"Mewar, with all thy faults, I love thee still"

मेवाड़ से ही नहीं, मैं सम्पूर्ण राजस्थान के साथ प्रेम करता हूँ। मैं चाहता हूँ कि राजपूतों की कमजोरियां दूर हो जांय। अफीम और मदिरा के सेवन ने इन राजपूतों को अयोग्य और अकर्मण्य बना दिया है। मैं आशा करता हूँ कि इन राजपूतों के वशंज अपने पूर्वजों के अवगुणों को अपने जीवन में स्थान न देंगे। अफीम और मादक पदार्थों का सेवन करके राजपूतों ने स्वयं अपना सर्वनाश किया है। आपसी फूट और कलह उनकी इन्हीं आदतों का दुष्परिणाम है। राजपूतों के वंशज अपने जीवन के इन दुर्गुणों को दूर करने की प्रतिज्ञा करेंगे, इस बात की मैं आशा करता हूँ। तबला और सारंगी की आवाजों में उनके जीवन का बहुत-सा समय बीत जाता है। अब वे इनसे घृणा करेंगे और श्रेष्ठ गुणों को अपने जीवन में स्थान देंगे, मैं इस बात की इन राजपूतों से आशा करता हूँ। इस प्रकार के अवगुणों को राजपूतों के जीवन से निकालने की मैंने कोशिश की है। जो राजपूत आज राज सिंहासन पर है और जो भविष्य में उसका उत्तराधिकारी है, उनसे मैंने इन अवगुणों को दूर करने के लिए प्रतिज्ञायें करवा ली हैं। ऐसा मैंने बहुत-से राजपूतो के साथ किया है। जो राजपूत मेरे सम्पर्क में आये हैं, मैंने उनको इस प्रकार के अवगुणों को दूर करने के लिए शिक्षा दी है और उन राजपूतों ने भी विनाशकारी अफीम का सेवन न करने के लिए मुझे विश्वास दिलाया है। यह बात जरूर है कि जिन लोगों ने इस प्रकार की प्रतिज्ञायें की थीं, उनमें से कुछ लोगों ने अपनी प्रतिज्ञायें भंग कर दी हैं और वे मेरे सिखाने के विरुद्ध आचरण करने लगे हैं। लेकिन बहुत-से राजपूत अब तक अपनी प्रतिज्ञाओं का पालन कर रहे हैं। जो लोग अपने बचनों दृढ़ पर हैं, उनकी हालतों में बहुत सुधार हुआ है और उनकी आर्थिक परिस्थितियाँ भी बदल गयी हैं। बुसाई लोगों के सामन्त अर्जुन सिंह और चन्द्रावत शाखा के सेत्रागत वंश के सामन्त ने भी मेरी बातों को सुनकर अपनी खराब आदतों को छोड़ देने का निश्चय किया था। वे दोनों दृढ़ता-पूर्वक अपनी प्रतिज्ञा पर चल रहे हैं।

अर्जुन सिंह के पिता की मृत्यु हो गयी थी। उसके बाबा बख्त सिंह ने मराठों के कई बार आक्रमण करने पर भी अपने महत्व और दुर्ग की रक्षा की थी। लेकिन उसी के वंश के प्रधान सालुम्ब्रा के सामन्त भीमसिंह ने किसी कारण अप्रसन्न होकर उसके अधिकार का क्षेत्र छीन लिया था और सम्वत् १८४६ में बुसाइयों की शाखा के एक आदमी को उसका अधिकार दे दिया था। लेकिन बख्त सिंह ने अपने उस क्षेत्र पर—जो छीना जा चुका था—अधिकार कर लिया था और

वह मेवाड़ के विद्रोह के बाद 'सन्' १८१८ ईसवी तक अपने अधिकारों की रक्षा करता रहा। इसी वर्ष अंगरेजी सरकार के साथ मेवाड़ राज्य की संधि हुई थी।

अंगरेजों के साथ सेवाड़ को इस संधि हो जाने के बाद जब उस राज्य में सामन्त राणा के प्रति अपना सम्मान प्रकट करने के लिए गये थे, उनमें तख्त सिंह भी था। बूढ़े तख्त सिंह ने अपने पोते अर्जुन सिंह को जिस प्रकार मेरे पास भेजने की व्यवस्था की थी, ठीक उसी तरह सालुम्ब्रा के सामन्त ने हमारे पास बरोत सिंह को भेजना आरम्भ कर दिया था। उन दिनों में अर्जुन सिंह और बरोत दोनों की अवस्थायें लगभग बराबर थीं। लेकिन बरोत सिंह के शरीर को देखकर वह कुछ बड़ा मालूम होता था। अर्जुन सिंह का शरीर दुबला-पतला था और उसका रंग साँवला था। परन्तु वह बुद्धिमान था।

बरोत सिंह शारीरिक शक्ति में अर्जुन सिंह से जितना ही अच्छा था, अर्जुन सिंह योग्यता और बुद्धिमत्ता में बरोत सिंह से उतना ही अच्छा समझा जाता था। तख्त सिंह का पोता मेरे पास अपना एक उद्देश्य लेकर आता था। उसके सम्बन्ध में तख्त सिंह ने मुझसे एक बार अपनी तलवार पर हाथ रखकर कहा था: राजपूत लोग अपने धर्म और अपनी तलवार को कभी नहीं भूल सकते। इन्हीं दोनों ने अब तक मेरे अधिकारों की रक्षा की है। अपने जीवन में जहाँ तक हो सका है, मैंने अपने कर्त्तव्यों का पालन किया है। मेरे सामने अब यह बालक अर्जुन सिंह है। उसको मैं आप की और राणा की सुपुर्दगी में छोड़ता हूँ। आप दोनों जैसा चाहें करें। इस मौके पर मैं राणा के सम्बन्ध में एक बात कहना चाहता हूँ। राणा का न्याय धन के द्वारा खरीदा जाता है। राज्य के किसी व्यक्ति को उसकी योग्यता पर पद और सम्मान नहीं मिलता।

बूढ़े तख्तसिंह को प्रार्थना को मैंने सुना। तख्तसिंह और बरोतसिंह के अधिकारों का झगड़ा था और राणा ने सालुम्ब्रा के सामन्त बरोतसिंह के पक्ष का समर्थन किया था। लेकिन बाद में उन दोनों का निर्णय राणा ने मेरे ऊपर छोड़ दिया। मैंने दोनों को अपने पास बुलाया और दोनों से पूछ-पूछकर मैंने उनकी वंशावलियाँ तैयार कीं। उन दोनों वंशावलियों को मैंने राणा के सामने रखा। राणा ने तीन वर्ष पहले शासन की सनद अर्जुन सिंह को दी थी। इस समय भी उसने उसी का समर्थन किया और उसे अधिकारी बनाकर उसकी कमर में तलवार बाँधकर उसके मस्तक पर तिलक लगा दिया।

अर्जुनसिंह का बाबा तख्तसिंह जिहाजपुर के दुर्ग की रक्षा के लिए अधिकारी बनाकर भेजा गया था। वह दुर्ग राज्य की सीमा पर है। तख्तसिंह ने वहाँ पर बुद्धिमानी और वीरता के साथ अपने कर्त्तव्यों का पालन किया। उस दुर्ग पर अर्जुन सिंह भी मौजूद था और बाबा बख्तसिंह के वहाँ से चले आने पर अर्जुन सिंह उसके स्थान पर अधिकारी बनकर दुर्ग की रक्षा किया करता था।

अर्जुन सिंह की योग्यता को मैं समझता था। जिस प्रकार मैंने बहुत से दूसरे राजपूतों को अफीम का सेवन करने से रोका था, उसी प्रकार मैंने अर्जुन सिंह को भी समझाने की कोशिश की थी कि अफीम के सेवन से शरीर और बुद्धि को किस प्रकार नुकसान पहुँचता है। मेरी बातों से प्रभावित होकर अर्जुन सिंह ने भविष्य में अफीम का सेवन न करने की प्रतिज्ञा की थी। कुछ दिनों के बाद अर्जुनसिंह जब मुझे मिला तो मैंने पूछा, क्या आप अफीम का सेवन करते हैं?

मेरे प्रश्न को सुनकर अर्जुन सिंह ने मेरी तरफ देखा और उसने उत्तर देते हुए कहा: आप ने जिस बात का निषेध किया था और आपकी बातों को मानकर मैंने जो प्रतिज्ञा की थी, उसको मैं कैसे भूल सकता था?

अर्जुन सिंह के अफीम सेवन न करने की बात को उसके मुख से सुनकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। मैंने उसकी प्रशंसा करते हुये कहा : मैं आप से इसी बात की आशा रखता था। मुझे खुशी हुई है यह जानकर कि आप अपनी प्रतिज्ञा पर कायम हैं।

एक बरगद के वृक्ष के नीचे ग्राम के कुछ लोग बैठे हुए पञ्चायत कर रहे थे। उस पञ्चायत में उन लोगों ने आधे घन्टे तक मेरा इंतजार किया। मेरे पहुँचने पर और मेरे पूछने पर वहां पर एकत्रित पंचों ने कहा : 'खुश है' कम्पनी साहब के प्रताप से।' यह कहकर उन लोगों ने हजार वर्ष तक जिन्दा रहने के लिए मुझे दुआयें दीं। मैं पड़ी रात तक धैर्यपूर्वक उस पञ्चायत में बैठा रहा और पहाड़ी भीलों के द्वारा होने वाले अत्याचारों और लूट की बातों को उन लोगों के मुख से सुनता रहा।

पचासीवाँ परिच्छेद

हिन्ता का सामन्त-स्वागत की व्यवस्था-मेवाड़ राज्य का आपसी विद्रोह-हिन्ता का उससे छीन लेने का प्रस्ताव-मानसिंह की नियुक्ति-हिन्ता का विवाद-राणा के साथ नथारा के सामन्त का असंतोष-लावा के दुर्ग पर शक्तावत संग्राम सिंह का अधिकार-दूदिया संग्रामसिंह--दूदिया राजपूतों का परिचय-चन्द्रभानु किसान और राणा जगतसिंह-चन्द्रभानु को आरिओं के शासन की सनद-मेवाड़ के राजसिंहासन पर राजसिंह-राणा राजसिंह और सामन्त सरदार सिंह-सरदारसिंह पर राजसिंह का क्रोध-मन्दिर के देवता की मध्यस्थता-मेवाड़ राज्य पर सामन्त का तीन दिन का शासन-राज्य के खजाने पर सामन्त का आधिपत्य-लावा में शानदार महल-राजधानी के खजाने से नौलाख रुपये-अपने प्रदेश में सामन्त का वैभव-तेजस्वी नाहर सिंह-जयसिंह और मानसिंह की प्रार्थनायें-अपने अधिकार की माँग-मानसिंह को आश्वासन-मानसिंह की सफलता के लिए नेक सलाह।

पिछले परिच्छेद के अंत में मैंने जिस पंचायत का उल्लेख किया है, उस पर कुछ प्रकाश डालना यहाँ पर आवश्यक मालूम होता है। हिन्ता का सामन्त छप्पन नामक एक शिखर के ऊपर कून नामक स्थान में रहा करता है। उसी स्थान पर उसके बाप-दादे भी रहते थे। मेरे सम्मान में हिन्ता का सामन्त नहीं आ सका था। इसलिए अपनी अनुपस्थिति में कुछ अनुचारों के साथ उसने अपने भाई को मेरे पास भेजा और अपने न आ सकने के कारण उसने क्षमा की प्रार्थना की। उसने यह भी कहला भेजा कि हिन्ता मेरा इलाका है और वहाँ पर आकर मुझे जरूर आपके दर्शन करने चाहिए थे। लेकिन कुछ कारणों से मजबूर होकर मैं हाजिर नहीं हो सका। इसके लिए मुझे अफसोस है।

हिन्ता के सामन्त का इस प्रकार संदेश पाकर मैंने उन लोगों में प्रचलित एक शिष्टाचार को अनुभव किया। उसका भेजा हुआ भाई मुझसे मिला और मेरे प्रति उसने अपना सम्मान और विश्वास प्रकट किया।

सम्वत् १८२४ में मेवाड़ राज्य में आपसी विद्रोह चल रहा था उन्हीं दिनों में शक्तावतों ने हिन्ता पर अधिकार कर लिया था। सन् १८१८ ईसवी के मई महीने की चार तारीख को

शक्तावतों से हिन्ता छीन लेने का निर्णय राणा के वहाँ किया गया। इस पर हिन्ता के सामन्त ने विरोध किया और उसने अपने अधिकार का समर्थन करते हुए कहा : हिन्ता पर विगत आधी शताब्दी से हमारा अधिकार चला आ रहा है।

इस परिस्थिति में हिन्ता के छीन लेने का प्रस्ताव साधारण न था। इसलिए उसके सम्बन्ध में सभी प्रकार की बातें बड़ी उत्तेजना के साथ होती रहीं। उस अवसर की तमाम बातों को सुनने के बाद साफ-साफ यह जाहिर हो रहा था कि शक्तावत शाखा के प्रधान भींदर के सामन्त जोरावर सिंह को अपनी अच्छी आमदनी के दस नगरों को छोड़ देने के बाद भी उतना अफसोस न होगा, जितना कि वह हिन्ता के सम्बन्ध में अनुभव कर रहा था। उसके सगे भाई फतेह सिंह अपने वंश के बहुत-से वीरों के बलिदानों के बाद जिन उपजाऊ गावों पर अधिकार प्राप्त किया है, उनको भी सामन्त छोड़ने के लिए तैयार हो सकता है। परन्तु हिन्ता का अधिकार छोड़ने के लिए वह किसी प्रकार तैयार नही है। ऐसा जाहिर हुआ।

हिन्ता के सम्बन्ध में राणा के यहाँ जो प्रस्ताव किया गया था, उसको जब उसके सामन्त के सामने रखा गया तो शक्तावत शाखा के प्रधान ने विरोध करते हुए कहा : 'हिन्ता भींदर के प्रवेश का प्रवेश द्वार है। उसके भाई फतेह सिंह ने कहा : बहुत दिनों से हिन्ता पर शक्तावतों का अधिकार चला आ रहा है। इसके बाद सामन्त के एक अन्य मनुष्य ने कहा : 'हिन्ता पर राणा का अधिकार न्याय के बल पर नहीं हो सकता। इसके बाद शक्तावत वंश के अनेक लोगों ने अपने अधिकारों का समर्थन करते हुए कहा : 'हिन्ता हमारा बपोता है। उसकी भूमि हमारे पिता की भूमि है।'

हिन्ता का सामन्त वहाँ की सात हजार रुपये की आमदनी से चौदह अश्वारोही और चौदह पैदल सैनिक रख सकता है और आवश्यकता पड़ने पर वह अपने इन सैनिकों को लेकर राणा के यहां उपस्थित होता है। इधर कुछ दिनों से हिन्ता की आमदनी पहले से कम हो यही है। इसलिए अब उस सामन्त को पांच अश्वारोही और आठ पैदल सैनिक रखने का अधिकार है।

हिन्ता का वर्तमान सामन्त कून के सामन्त का लड़का है। इसके पहले हिन्ता का जो सामन्त था, उसने इसको गोद लिया था। राजस्थान के नियमो के अनुसार गोद लिया जाने वाला लड़का अपने पिता सम्पत्ति और रियासत का अधिकारी नहीं होता। परन्तु हिन्ता का वर्तमान सामन्त दोनों प्रदेशों पर अधिकार रखता था। हिन्ता का सामन्त होने के कारण वह कून का तीसरी श्रेणी का सामन्त को माना जाता था और तीसरी श्रेणी के सामन्त को राणा के यहाँ रोजाना जाने की एक प्रणाली है। देश में अथवा बाहर कही भी आवश्यकता पड़ने पर हिन्ता के सामन्त को अपने सैनिकों के साथ जाकर राणा के आदेश का पालन करना पड़ता है।

हिन्ता के सामन्त के यहां जो सैनिक इस समय हैं, मानसिंह सामन्त उसका प्रधान है। बनैले भीलों से मालवा की सीमा पर कोई अत्याचार न हो सके इसकी रक्षा के लिए मानसिंह की नियुक्ति की गयी थी। परन्तु मानसिंह ने उसके सम्बन्ध में अपने कर्त्तव्यों का पालन नहीं किया। उस दशा में राणा ने उसको संदेश भेजा कि अगर तुमने भविष्य में भी ऐसा ही किया तो हिन्ता प्रदेश छीन कर राणा अपने अधिकार में कर लेगा।

राणा और उसके सामन्तों में किसी प्रकार का विवाद पैदा होने पर दोनों पक्षों की बातों के सुनने का प्राय: मुझे मौका मिलता है। मानसिंह ने अपने कर्त्तव्यों का पालन क्यों नहीं किया, उसका भी कारण है। उसे संक्षेप में नीचे लिखा गया है :

मानसिंह शक्तावत लावा के सामन्त के वंश की छोटी शाखा में पैदा हुआ था। कोरावर के सामन्त ने शिवगढ़ के दुर्ग में जाकर जब लालजी के विरुद्ध आक्रमण किया था, उसमें लाल जी का सम्पूर्ण परिवार मारा गया था। उस हत्याकाण्ड में जो कई एक बालक बच गये थे। मानसिंह उनमें से एक है। मानसिंह के अधिकारों का निर्णय करने के लिए हमें और भी उसके पूर्वजों की तरफ जाने की जरूरत है। लाल जी रावत किसी समय नथारा प्रदेश का सामन्त था। किसी कारण से राणा ने लाल जी से उसके नथारा के प्रदेश को लेकर उसके विरोधी चन्द्रावत शाखा के प्रधान को दे दिया था। लाल जी ने भींदर के सामन्त वंश में जन्म लिया था और अपने परिवार का पालन करने के लिए उसने भूमि पायी थी।

जब लाल जी के अधिकार से नथारा प्रदेश निकल गया तो वह डूंगरपुर के सामन्त के पास गया। वहां के सामन्त रावल ने लाल जी को शिवगढ़ का प्रदेश दे दिया। इस प्रकार वह शिवगढ़ में जाकर रहने लगा। राणा ने उसके अधिकार से नथारा प्रदेश छीन लिया था। इसलिए लाल जी राणा से बहुत असंतुष्ट था और राणा से इसका बदला लेने के लिए उसने मेवाड़-राज्य में अत्याचार करना आरम्भ किया। भींदर के सामन्त को उसने अपना अधिकारी समझ लिया और उसके साथ मिलकर उसने उन प्रदेशों में अत्याचार करके लूट-मार शुरू की, जो ग्राम और नगर भींदर के सामन्त के विरोधियों के अधिकार में थे। लेकिन कुछ दिनों के बाद परिस्थितियों के बदलने पर वह राणा के पक्ष में फिर हो गया। अन्त में कोरावर के सामन्त ने शिवगढ़ के दुर्ग में आक्रमण करके उसे मार डाला।

शिवगढ़ के उस हत्याकाण्ड में लाल जी के बड़े लड़के संग्राम सिंह और उसके भतीजे अर्यसिंह और नाहर सिंह के प्राण किसी प्रकार बच गये थे और लाल जी के मारे जाने के बाद संग्राम सिंह शिवगढ़ के दुर्ग का मालिक हुआ। वह अपने पिता की मृत्यु को भूला न था। शिवगढ़ में जिस प्रकार उसका सम्पूर्ण परिवार मारा गया था, उसकी आग उसके अन्तरतर में बराबर सुलग रही थी।

संग्राम सिंह जब खैरोदा की रक्षा करने के लिए गया था तो उसके साथ उस का भतीजा नाहर सिंह भी उसके साथ था। संग्राम सिंह ने लावा के दुर्ग पर अधिकार कर लिया। उस समय राणा ने उसको क्षमा ही नहीं किया, बल्कि उसको अपने दरबार में सम्मानपूर्ण स्थान दिया।

लावा के दुर्ग पर दुदिया संग्राम सिंह ने उस दुर्ग पर आक्रमण किया और उसको पराजित करके अपने अधिकार में कर लिया। × दूदिया लोग भी राजपूत होते हैं। परन्तु उनके इस वंश के नाम से सभी लोग परिचित नहीं हैं। इसलिए यहां पर नीचे एक घटना का उल्लेख किया गया है। उससे दूंदिया राजपूतों का परिचय मिलता है—

मेवाड़ राज्य के पर्वत की एक घाटी में खेती करने योग्य जो जमीन थी, उसमें कुछ भूमिका मालिक चन्द्र भानु नामक एक आदमी था। वह उस जमीन में अपने बैलों से खेती किया करता था। उसके पास खेती के लिए दो बैल थे। उस भूमि के सिवा चन्द्रभानु के पास

× यहाँ पर संग्राम सिंह दो हैं। लाल जी के बड़े लड़के का नाम संग्रामसिंह था। और वह शक्तावत वंशी था। लावा दुर्ग का अधिकारी भी संग्राम सिंह था। वह दूदिया राजपूत था।

ग्रौर कोई रियासत न थी। चन्द्रभानु के उन खेतों के पास राणा का एक जङ्गल था। उस जङ्गल में मेवाड़ का राणा शिकार करने के लिए जाया करता था।

सरदी के दिनों में सायंकाल चन्द्रभानु अपने खेतों से बैलों को ले कर घर को तरफ जा रहा था। उसी समय उसे मालूम हुआ कि पीछे की तरफ जंगल से किसी आदमी के बुलाने की आवाज आ रही है। दूदिया चन्द्रभानु अपने स्थान पर रुक गया। उसने पीछे की तरफ घूम कर देखा और जिधर से आवाज आ रही थी, उसी तरफ वह चलता हुआ। राणा को जङ्गल के पास पहुँच कर उसने देखा कि वहाँ पर एक अपरिरिचित आदमी ने दूदिया चन्द्रभानु से पूछा: तुम कौन लोग हो?

अपरिचित आदमी के मुख से इस प्रश्न को सुनकर चन्द्रभानु ने स्वाभिमान के साथ उत्तर दिया: हम राजपूत हैं।

उसके इस उत्तर को सुनकर अपरिचित आदमी ने नम्रतापूर्वक कहा: मैं बहुत प्यासा हूँ। तुम किसी प्रकार थोड़ा-सा जल लाकर मुझे पिलाओ।

चन्द्रभानु ने उस अपरिचित आदमी की तरफ देखा और एक प्यासे मनुष्य को पानी पिलाने के लिए वह तुरन्त तैयार हो गया। चन्द्रभानु ने सम्पूर्ण दिन अपने खेतों पर काम किया था, वह बहुत थका हुआ था। लेकिन ऐसी दशा में भी किसी भूखे और प्यासे को देखकर उसकी सहायता करना वह अपना कर्त्तव्य समझता था। चन्द्रभानु ने अपने दोनों बैलों को एक पेड़ की डाली में बाँध दिया और एक लोटा शीतल जल लाकर उसने उस अपरिचित आदमी के सामने रख दिया। उसी समय उसने अपने मैले वस्त्रों में से मका और चने की बनी हुई दो रोटियाँ निकाली। उन पर उसने थोड़ा सा घी रखा और सहज स्वभाव से उसने उस प्यासे आदमी के हाथों में दे दिया।

अपरिचित व्यक्ति थका होने के साथ-साथ भूखा और प्यासा भी था। उसने उन रोटियों को खाकर ठंढा पानी पिया। जब वह आदमी रोटियाँ खाकर पानी पी चुका तो चन्द्रभानु अपने बैलों को लेकर और उसको नमस्ते करके अपने घर की तरफ चला। उसी समय उसे अपने साकने अश्वारोही सैनिकों का एक दस दिखायी पड़ा। वे लोग चन्द्रभानु की तरफ आ रहे थे।

उन अश्वारोहियों को देखकर चन्द्रभानु अपने स्थान पर खड़ा हो गया। अश्वारोही उस अपरिचित आदमी के सामने जाकर खड़े हो गये और उन लोगों ने उस आदमी के प्रति अपना जो सम्मान प्रकट किया, उसको देखकर चन्द्रभानु को मालूम हुआ कि जिसको मैंने अपनी रोटियाँ खिलाकर ठंढा पानी पिलाया है, वह कोई साधारण आदमी नहीं है।

चन्द्रभानु ने जिसको रोटी खिलाकर ठंडा जल पिलाया था, वह मेवाड़ का राजा जगतसिंह था। राणा शिकार के लिए आया था, और दिन भर घोड़े पर दौड़ने के बाद जब वह नाहर मगरा नामक शिखर पर पहुँचा था, उस समय अधिक प्यास के कारण वह बड़े संकट में पड़ गया था। उसी अवसर पर दूदिया चन्द्रभानु से जिस प्रकार ठंडा जल राणा को पीने के लिए मिला, उसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। राणा के पूछने पर दूदिया चन्द्रभानु ने अपना परिचय देते हुए बड़े स्वाभिमान के साथ कहा था, हम राजपूत हैं।

उस समय चन्द्रभानु के मनोभावों में राजपूत होने का जो स्वाभिमान था उसे वह भूला न था। राजपूतों में यह गुण स्वाभाविक रूप के देखा जाता है। वे कितने ही गरीब क्यों न हों,

परन्तु उनके स्वभाव से स्वाभिमान कभी जा नहीं सकता।+ राणा जगतसिंह दूदिया चन्द्रभानु से बहुत प्रसन्न हुआ। उसने एक घोड़ा लाने के लिए उससे कहा। जब घोड़ा आ गया तो राणा ने चन्द्रभानु से कहा : यहाँ से दस मील तक राजधानी में तुमको चलना होगा।

राणा की बात को सुनकर चन्द्रभानु चलने के लिए तैयार हो गया। वह घोड़े पर बैठकर राणा के साथ चला। चन्द्रभानु घोड़े का कितना अच्छा सवार था, यह बात उस समय राणा से छिपी न रही। चन्द्रभानु राणा की राजधानी में पहुँच गया था और दूसरे दिन उसने दरबार में जाकर राणा को सम्मान पूर्वक अभिवादन किया। राणा ने आदरपूर्वक उसे ग्रहण किया और अपनी एक मूल्यवान पोशाक उसको दी। उस पोशाक को पाकर चन्द्रभानु बहुत प्रसन्न हुआ। वह जानता था कि राणा की व्यवहार की हुई पोशाक का मिलना बड़े सौभाग्य की बात है। इसीलिए उसे राणा के सम्मान के रूप में स्वीकार किया जाता है। उस पोशाक के साथ-साथ राणा ने कोआरिओ नामक प्रदेश और उसकी समस्त भूमि चन्द्रभानु को भोग करने के लिए दे दी। साथ ही एक सनद लिखकर उसे दे दी, जिसके अनुसार वह और उसके उत्तराधिकारी सदा उसके स्वामी बने रहेंगे।

संयोग की बात है कि दूदिया चन्द्रभानु और उसके राजा राणा जगतसिंह की एक साथ मृत्यु हुई। जगतसिंह की मृत्यु के बाद राजसिंह मेवाड़ के सिंहासन पर बैठा और चन्द्रभानु का लड़का सरदार सिंह कोआरिओं का सामन्त हुआ। राजसिंह और सरदार सिंह—दोनों की अवस्थायें लगभग एक सी थीं। इसलिए दोनों में बड़ा स्नेह हो गया था। दोनों साथ-साथ खेला करते थे और इच्छानुसार घूमने के लिए जाया करते थे। बालक राणा राजसिंह प्राय: सरदार सिंह को अपने साथ लेकर राजधानी से दो मील की दूरी पर 'सुहेलिया की बाड़ी' नामक एक बगीचे में जाया करता था और उस बाग के जलाशय में दोनों स्नान किया करते थे।

राणा राजसिंह और सामन्त सरदार सिंह में उस समय किसी प्रकार का भेदभाव न था। दोनों स्वतंत्रतापूर्वक एक, दूसरे के साथ व्यवहार करते थे। एक दिन राणा राजसिंह ने जलाशय में स्नान करने के समय देखा कि स्नान करते हुए भी सरदार सिंह ने अपने सिर की पगड़ी को नहीं खोला। यह देखकर राणा को सामन्त पर कुछ संदेह होने लगा। उसने समझा कि सरदार सिंह के सिर से पगड़ी न उतरने का कोई रहस्य है। उसने यह भी सोच डाला कि सरदार सिंह अपने सिर को किसी खराबी को छिपाने के लिए ही पगड़ी को सिर से नहीं उतारता।

राणा राजसिंह बालोचित स्वभाव के कारण सरदार सिंह के पगड़ी न उतारने के रहस्य को जानने की कोशिश करने लगा। वह सीधे-सीधे उससे कुछ पूछना नहीं चाहता था। उसको

+ जिस समय मैंने राजस्थान की यात्रा आरम्भ की थी, उस समय मैं यहाँ के लोगों से बिल्कुल अपरिचित और अनजान था। किसी स्थान पर जब मैं अकेला पहुँचता और उस समय मैं किसी किसान से रास्ता पूछता तो मेरे प्रश्न का उत्तर देते हुए वह किसान इतना जरूर कहता—'मैं राजपूत हूँ।' राजस्थान के किसानों के मुखसे स्वाभिमानपूर्वक यह सुनकर कि मैं 'राजपूत हूँ', मै बहुत प्रसन्न होता और मैं उसके प्रति अपना सद्भाव तथा सम्मान प्रकट करता। मेरे इस व्यवहार से वे किसान बहुत प्रसन्न होते। मैंने इन राजपूतों में सब से बड़ी बात यह देखी कि वे किसी अपरिचित के प्रति सहानुभूति प्रकट करना खूब जानते हैं। राजपूतों के इस गुण ने मुझे अपनी ओर बहुत आकर्षित किया है।

उसके अप्रसन्न हो जाने का अन्देशा था। इसलिए वह सोचने लगा कि सरदार सिंह के इस रहस्य को कैसे जाना जाय। बहुत-कुछ सोचकर राजसिंह ने सरदार सिंह से कहा : आओ आज हम दोनों जलाशय स्नान करने के समय जल क्रीड़ा करें।

सरदार सिंह ने राजसिंह के इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। दोनों जलाशय में उतरे और पानी में खेलते हुए स्नान करने लगे। इसी मौके पर सरदार सिंह के सिर की पगड़ी खुल कर जल में गिर गयी। उस समय राजसिंह ने सरदार सिंह के सिर को देखा। उसकी चाँद में बाल न थे। इन बालों के न होने से मनुष्य गंजा कहलाता है। इसी को छिपाने के लिए सरदार सिंह किसी के सामने अपनी पगड़ी खोलता नहीं था। बिना बालों के उसके सिर को देखकर राजसिंह को हँसी आ गयी और बिना किसी ख्याल के उसके मुख से निकल गया : आप के सिर के बाल क्या हुए।

राजसिंह के इस प्रश्न को सुनकर सरदार सिंह कुछ लज्जित हुआ। परन्तु उसने अपने मन के भावों को छिपाकर राजसिंह को उत्तर दिया : पूर्व जन्म में मैं आप का शिष्य था और आप योगी थे। बद्रीनाथ के ऊँचे शिखर पर जब आप तपस्या करते थे, उस समय आप के यज्ञ कुण्ड के लिए मैं अपने सिर पर लकड़ी रखकर लाया करता था। लकड़ियाँ सिर पर बहुत दिनों तक रखकर लाने के कारण मेरे सिर के समस्त बाल नष्ट हो गये हैं।

सरदार सिंह के इस उत्तर को सुनकर राणा को क्रोध आ गया। उसने सोचा, सरदार सिंह आखिरकार हमारा सामन्त है। उसको ऐसी कोई बात कहने का अधिकार नहीं हैं, जिससे हमारा अपमान होता हो। उसने सरदार सिंह को उत्तर देते हुये कहा : सरदार तुमने जो कुछ कहा है, उसका तुमको प्रमाण देना होगा। प्रमाण दे सकने पर तुमको दूसरा पुरस्कार मिलेगा और प्रमाण न दे सकने पर इसका दण्ड मिलेगा।

युवक सामन्त सरदार सिंह ने राजसिंह की बात को स्वीकार कर लिया और उसको उत्तर देते हुए उसने कहा : कोआरिओं के मंदिर का देवता इसका प्रमाण दे सकता है।

राजसिंह ने भी इस बात को मंजूर कर लिया और उस मन्दिर के देवता से प्रमाण लाने के लिए उसने सरदार सिंह को रवाना कर दिया। कोआरियों प्रदेश में गोपालपुर का नाम का एक गाँव है, उस गाँव में बागरावत नामक एक शाखा के लोग रहा करते हैं, उन्हीं लोगों का उस गाँव में एक मंदिर है, सरदार सिंह राजसिह के पास से रवाना होकर उस गाँव में पहुँचा और उस मंदिर के देवता की उसने आराधना आरम्भ करी।

उस मन्दिर का देवता जब प्रसन्न हुआ तो एकाएक सरदार के हाथ में एक फूल आ गया और उसी समय देववाणी हुई, उसमें सरदार सिंह को सुनायी पड़ा : तुम इस फूल को ले जाओ और उसे राणा को दे दो। यह फूल ही तुम्हारी बात का प्रमाण है।

सामन्त सरदारसिंह उस फूल को लेकर मन्दिर से चला गया और उसने राणा के हाथ में उस फूल को देकर उसने देववाणी के द्वारा सुनी हुई बात को राणा से कहा। की बात को राणा से कहा। राणा ने सरदार सिंह की बात पर विश्वास कर लिया और उसे यकीन हो गया कि पूर्व जन्म में मैं योगी था और सरदार सिंह मेरा शिष्य था। उसने सरदार सिंह से पूछा : आप क्या पुरस्कार चाहते हैं?

सामन्त ने उस पुरस्कार में कोआरिओ से मिला हुआ लावा और उसकी सम्पूर्ण भूमि की माँग की। राणा उस समय बालक था। उसकी माता राज्य में उसके नाम से शासन करती थी। उसने सरदार सिंह का पुरस्कार देने की बात पहले ही स्वीकार कर ली थी। इसलिए वह राजमहल में अपनी माता के पास गया और उसने उससे सब बातें कहीं। लावा और उसकी भूमि रानी के

अधिकार में थी। उसकी वह भूमि खास भूमि होने के कारण किसी दूसरे को नहीं दी जा सकती थी। राजसिंह के मुख से उन बातों को सुनकर रानी ने सरदार सिंह के शिष्य होने और राजसिंह के पूर्व जन्म में योगी होने पर विश्वास कर लिया। लेकिन उसने अपने लड़के राजसिंह को समझाते हुए कहा : दूदिया सरदार सिंह हमारी खास भूमि को न लेकर वह दूसरी कोई भी भूमि ले सकता है। अगर वह चाहे तो उसे मेवाड़ राज्य दिया जा सकता है।

माता के मुख से इस प्रकार की बात को सुनकर राणा के मन में असंतोष का भाव पैदा हुआ। उसने आवेश में आकर कहा : अच्छा, मैंने उसको मेवाड़ राज्य दिया।

सामन्त सरदार सिंह बुलाया गया। उसके आने पर राजसिंह ने उससे कहा : मैंने तीन दिनों के लिए सम्पूर्ण मेवाड़ का राज्य आपको दे दिया। उन तीन दिनों में आप मेवाड़ राज्य में जो चाहें, कर सकते हैं, मेरा सिलहखाना, शस्त्रागार, खजाना, राज्य की सेना और मेरा सिंहासन तथा मन्त्री और सामन्त—सबका सब तीन दिनों के लिए आपके अधिकार में होगा।

सामन्त सरदार सिंह ने राणा राजसिंह के इस निर्णय को स्वीकार कर लिया और वह तीन दिनों के लिए मेवाड़ राज्य का शासक बन गया। उसने राजधानी की कीमती चीजों, राजमहल के वैभव वाले पदार्थों और खजाने के रुपयों को अपने प्रदेश कोआरिओ भेजना शुरू कर दिया। राजसिंहासन पर बैठकर सामन्त ने अपने प्रदेश के ऐश्वर्य को बढ़ाने वाले सभी कार्य किये। कोई उसके कार्यों और व्यवहारों में हस्तक्षेप नहीं कर सकता था। राणा राजसिंह वचनबद्ध था। इसलिए उसने अपने नेत्रों को बन्द कर लिया था, जिससे उसे कुछ दिखायी न दे, तीन दिनों तक मेवाड़ के सिंहासन पर बैठकर सामन्त सरदार सिंह ने राज्य का खजाना खाली कर दिया और जितना भी उससे हो सका, उसने कोआरिओ को भेज दिया। इसके बाद चौथे दिन उसने राणा को उसके राज्याधिकार सौंप दिये।

कोआरिओ के सामन्त सरदार सिंह ने मेवाड़ राज्य के रुपयों से अपने प्रदेश में अनेक प्रकार के कार्य आरम्भ किये। नौ लाख रुपयों से उसने अपने अधिकार के प्रसिद्ध स्थान लावा में एक मजबूत दुर्ग बनवाया और वहीं पर उसने एक महल तथा विशाल तालाब भी तैयार कराया। सरदार सिंह ने लावा में जो एक बाग बनवाया, उसमें उसके एक लाख रुपये खर्च हुए। लावा में सरदार सिंह के बनवाये हुए महल की आज तक प्रशंसा की जाती है। लेकिन एक दिन अचानक बारूद के गोदाम में आग लग गयी। उससे उसके किले का आधा हिस्सा बुरी तरह से नष्ट हो गया। सरदार सिंह ने बहुत सा धन खर्च करके उस किले की मरम्मत करायी और मेवाड़ की राजधानी से लायी हुई सम्पत्ति को उसने पानी की तरह बहाया, उससे लावा का वह किला फिर ज्यों का त्यों हो गया। लेकिन मराठा होलकर की सेना के आक्रमण करने पर लावा का सर्वनाश हुआ और होलकर की तोपों से उसका किला बरबाद हो गया। सरदार सिंह ने लावा में जो महल बनवाया था, वह मेवाड़ के समस्त महलों में श्रेष्ठ समझा जाता था। और आजतक लोग उसकी प्रशंसा करते हैं।

उदयपुर की राजधानी में जो महल सरोवर के समीप बने हुए हैं, उनमें एक रहने के लिए राणा की तरफ से सरदार सिंह को मिला था। लेकिन उन दिनों में उस महल में जिसमें रहने के लिये सरदार सिंह को अधिकार कर दिया गया था, आमावत का सामन्त रहता रहा। फिर भी वह महल अब तक दूल दिया का महल कहलाता है। मैंने उस महल को देखा है, उसमें अब चिमगादड़ों और उल्लू पक्षिओं का स्थायी निवास हो गया है। उस महल के एक कमरे को तोड़ कर बरगद का वृक्ष ऊपर निकल गया है।

लावा में किला और महल बनवाने के बाद सरदार सिंह बीस वर्ष तक जीवित रहा। सम्बत् १८३८ सन् १७८२ ईसवी में उसकी मृत्यु हो गयी। मरने के समय उसके एक लड़का था। सरदार सिंह ने अपनी जिदंगी में बहुत सम्मान प्राप्त किया था। लेकिन उसके मरने के बाद उसके सम्मान को नष्ट होने में देर न लगी। जो ख्याति उसने प्राप्त की थी, मरने के बाद वह उसे अपने साथ लेता गया। सरदार सिंह के सम्बन्ध में लोगों की ऐसी धारणा है। शक्तावत संग्राम सिंह ने सामन्त सरदार सिंह के लड़के संग्राम सिंह को पराजित करके लावा पर अधिकार कर लिया था। इसका ऊपर वर्णन किया जा चुका है। सरदार सिंह के मरने पर उसका लड़का संग्राम सिंह अपने पिता के प्रदेश का अधिकारी हुआ था। लेकिन अयोग्य और निर्बल होने के कारण जब वह संग्राम सिंह के द्वारा लावा से निकाला गया, उस समय उसकी दशा एक अनाश्रित कीसी थी। उसी दशा में उसकी मृत्यु हुई। उसके एक उड़का था, वह चन्द्रभानु का प्रपौत्र, सरदार सिंह का पौत्र और संग्राम सिंह का लड़का था, उससे पूर्वजों की कोई सम्पति उसके अधिकार में न रह गयी थी। इसलिए वह मेवाड़ के युवराज जवानसिंह के पास चला गया और उसकी सहायता में रह कर वह अपनी जिन्दगी के दिन व्यतीत करने लगा।

शक्तावत सरदार सिह को राणा से लावा के शासन की सनद मिली थी। उसकी वार्षिक आय तेईस हजार रुपये थी। उसकी सनद देकर राणा ने कोंआरिआ का अधिकार उससे लेलिया था। लावा का प्रदेश बहुत विस्तृत है। उसके विशाल तालाब से वहाँ के कई हजार एकड़ भूमि को सीचने के लिए पानी मिलता है। मेवाड़ राज्य में जितने भीं प्रदेश हैं, लावा उनमें दुसरी श्रेणी का माना जाता है।

संग्राम सिंह का परिवार शिवगढ़ के दुर्ग में मारा गया था। उसमें उसके लड़कों बा अंत हो गया था। इसलिए उसके मरने के बाद उसके भाई शिवसिंह का लड़का जयसिंह को लावा के सामन्त का अधिकार दिया गया। संग्राम सिंह की जिन्दगी में उसकी सम्पत्ति का कोई दूसरा अधिकारी नहीं हो सका था। नाहरसिह, संग्रामसिंह के छोटे भाई सुरतानसिंह का लड़का था और मानसिंह का वह पिता था। नाहरसिंह ने कई युद्धों में संग्रामसिंह को साथ लेकर युद्ध किया था। लेकिन वह अपने अधिकारों के लिये सदा वंचित रहा था।

नाहर सिंह तेजस्वी और शूरवीर था। उसने बनबल नामक स्थान पर अधिकार कर लिया था। बनबल पहले राणा के खास अधिकारों में था। सन् १८१८ ईसवी में वह खालसा हो गया था। नाहरसिंह के लड़के मानसिह ने जयसिंह से इस बात की प्रार्थना की थी कि लावा के प्रदेश में मुझे भी अधिकार मिलना चाहिये। इसलिए कि मैं संग्राम के छोटे भाई का लड़का हूँ। इसलिये मुझे अपने इस अधिकार से किसी भी अवस्था में वंचित नहीं होना चाहिये।

जयसिंह ने मानसिंह की इस प्रार्थना को सुना। लेकिन कुछ दिनों तक उसने उस पर ध्यान न दिया। जय सिंह इस बात को समझता था कि मानसिंह की माँग सामाजिक नियमों के अनुसार उचित और नैतिक है। इसलिए पन्द्रह सौ रुपये वार्षिक आय के जैतपुरा का अधिकार उसने नाहर सिंह के लड़के मानसिंह को दे दिया। उसके साथ उसने जो उसको सनद दी, उसमें उसने लिख दिया कि मानसिंह को दी गयी यह सनद उसी समय तक सुरक्षित रहेगी, जब तक मानसिंह लावा के सामन्त के प्रति अपने कर्त्तव्यों के पालन में किसी प्रकार की त्रुटि न करेगा। उस सनद में जयसिंह ने लिखा :

"भाई मानसिंह को मैंने दान में अपनीं इच्छा से जैतपुरा नामक ग्राम और उसकी समस्त भूमि दी। इसका अधिकार मानसिंह को और उसके वंशजों को बराबर रहेगा। मानसिंह के लड़के

सपूत हों अथवा कपूत, प्रत्येक अवस्था में वे इसके अधिकारी रहेंगे। मेरे इस कार्य में चतुर्भुजा देवी साक्षी हैं। मानसिंह मेरा भाई है। इसलिए आवश्यकता पड़ने पर जब मैं उसको आदेश दूँगा तो उसको उस आदेश का पालन करना पड़ेगा। अगर किसी समय उसने ऐसा न किया तो अपने इस अपराध का वही उत्तर दायी होगा।"

मानसिंह ने अपने कर्त्तव्य का पालन नहीं किया। इसलिए अथवा और कोई कारण हुआ हो, जयसिंह ने जैतपुरा का अधिकार मानसिंह से ले लिया। मानसिंह ने जैतपुरा पर अपना अधिकार कायम रखने के लिए बड़ी चेष्टा की, परन्तु उसको सफलता न मिली। उस दशा में मानसिंह मेरे पास आया और उसने अपना मामला मेरे सामने पेश किया। लावा के सामन्त से खैरोदा का प्रदेश लेकर राणा ने अधिकार में कर लिया था। इसलिए जयसिंह की आमदनी घटकर आधी रह गयी थी। कुछ इसी प्रकार के कारणों से जयसिंह ने जैतपुरा को मानसिंह से लेकर अपने अधिकार में कर लिया था।

सन् १८२० ईसवी में जब मैं मारवाड़ गया था, उस समय एक पत्र भेजकर मानसिंह ने मुझे जाहिर किया था कि जयसिंह ने जैतपुरा का अधिकार छोड़ देने के लिए मुझे धमकी दी है। मैंने उसको उत्तर में लिख दिया कि इसका निर्णय केवल राणा के अधिकार में है।

इसके बाद मानसिंह राणा के पास गया। वहाँ उसने अपना मामला पेश किया और सभी प्रकार उसने राणा से प्रार्थना की। परन्तु मानसिंह को राणा के यहाँ सफलता न मिली। इस दशा में वह फिर मेरे पीछे पड़ा। मैंने किसी प्रकार उसको साद्री की सीमा पर एक दल का अधिकारी बना दिया। लेकिन वहाँ पर भी उसका कार्य संतोष जनक नहीं रहा। यह सब मुझे जानने को मिला। मानसिंह अपनी अकर्मण्यता के कारण लगातार अपने अधिकारों से वंचित हो रहा था। उसकी बार-बार प्रार्थना को सुनकर मैंने जो उसकी सहायता की थी, उसकी भी वह रक्षा न कर सका। उसकी इन परिस्थितियों में अब उसका कोई सहायक न रह गया था।

मानसिंह ने अपनी अनाश्रित अवस्था में मेरे पास आकर जैतपुरा के लिए मिली हुई सनद को मुझे देकर कहा : मैं लावा के प्रदेश का अधिकारी हूँ। उस अधिकारी से मुझे कोई रोक नहीं सकता। लेकिन मैं कुछ नैतिक बंधनों में बँधा हुआ हूँ। अगर मैं इन बंधनों को तोड़ डालूँ तो मैं फिर जैतपुरा पर अधिकार कर सकता हूँ। मेरे साथ जो षड्यंत्र किये जा रहे हैं, उनको मैं समझता हूँ। मुझे कमजोर बनाने के लिए ही मेरे सैनिकों की संख्या कम की गयी है। अगर मुझे नैतिक बंधनों का ख्याल न हो तो मैं नहीं समझता कि जैतपुरा का अधिकार मुझसे कौन छीन सकता है। जिस समय संग्राम सिंह की मृत्यु हुई थी, उस समय लावा मेरे अधिकार में था। उस समय अगर मैं चाहता तो इस लावा का कोई दूसरा अधिकारी नहीं हो सकता था। किसी में सामर्थ न थी कि वह मुझसे लावा छीन सकता। लावा प्रदेश में जो सामन्त थे, वे मेरे कोई विरोधी न थे। मेरे संकेत पर वे लोग मेरे पक्ष का समर्थन करते। मैं इस बात को समझता हूँ। लेकिन उस समय मैंने इस प्रकार का विचार तक नहीं किया। उस समय बल पूर्वक मेरे अधिकारों को कोई नष्ट नहीं कर सकता था। लेकिन मैंने जयसिंह को ही प्रधानता दी और उसको लावा का सामन्त मैंने माना। उसका यह परिणाम मेरे सामने आया।

मानसिंह इस प्रकार की बातें बड़ी देर तक मुझसे करता रहा। मेरे कुछ न बोलने पर उसने कहा : जब आमाइत के ठाकुर ने राजधानी पर आक्रमण करने के लिए लावा की सीमा पर डंका बजाया था, उस समय क्या मैं अपने अधिकारों के लिए कुछ कर नहीं सकता था। अगर लावा

के सामन्त पर राणा पर और आपके ऊपर मेरा विश्वास न होता तो मैंने अपनी शक्ति के बल पर जैतपुरा पर अधिकार कर लिया होता। लेकिन मैंने ऐसा नहीं किया। मैं आपका बहुत बड़ा विश्वास करता हूँ। इसीलिए जैतपुरा के छीने जाने के समय भी मैं खामोश बना रहा। अगर आप जैतपूरा पर अधिकार करने के लिए आज्ञा दे दें तो मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि मैं उस पर अधिकार कर लूंगा और अगर मैं उस पर अधिकार न कर सकूं तो मैं नाहर सिंह का लड़का नहीं हूँ। जैतपुरा का अधिकार पाने के बाद मैंने वहाँ पर एक छोटा-सा किला बनाया था। उस किले में मेरा परिवार रहता था। लावा के सामन्त जयसिंह ने जैतपुरा पर अधिकार करके मेरे स्त्री बच्चों को वहाँ के किले से निकाल दिया है और मेरे परिवार के लोग अन्यत्र आश्रय लेने के लिए मजबूर हो गये हैं। इसकी जो पीड़ामेरे हृदय में है, उसे मैं भूल नहीं सकता।

मैं अब भी मानसिंह की इन बातों को सुन रहा था। वह मुझे प्रभावित करने के लिए फिर कहने लगा : जैतपुरा से मेरे अधिकारों को छीनकर जो भूमि मुझे दी गयी है, वह किसी काम की नहीं है। उस जंगली भूमि को काम के योग्य बनाने के लिए मुझे पहले बहुत रुपये खर्च करने पड़ेंगे। इस भूमि को लेने के लिए मैंने पहले से ही कोशिश कर ली थी और दो हजार पाँच सौ रुपये देकर मैंने इस भूमि का पट्टा लिखा लिया था। मैं समझता था कि इस भूमि से आमदनी होने के समय तक मैं अपने परिवार का पालन जैतपुरा की आमदनी से करूँगा। पट्टा लिखाने के समय जो मैंने रुपये दिये थे, वे मेरे पास न थे। इसलिए महाजन से मैंने वे रुपये सूद पर कर्ज लिए थे। जैतपुरा के मेरे अधिकार से निकल जाने के बाद कर्ज देने वाले महाजन ने अपने रुपये मुझसे वसूल करने की कोशिश की और मेरे न दे सकने पर उसने मेरे समस्त मूल्यवान पदार्थों को लेकर जब उसने देखा कि उसके रुपये की आमदनी पूरी नहीं हो जाती तो उसने मेरी स्त्री के समस्त आभूषणों को लेकर उसने मेरे घोड़े पर अधिकार कर लिया। मैं जिस घोड़े पर बैठकर गंगापुर में आपके दर्शन करने गया था, उस घोड़े को मुझे बेंच डालना पड़ा और वे रुपये भी महाजन के कर्ज में चले गये। मैंने अपनी इस रोमाञ्चकारी अवस्था का वर्णन पृथ्वीनाथ से किया था। उसने उसे सुनकर मेरे साथ सहानुभूति प्रकट की। मैं राणा के भाई जवान दास को लेकर पृथ्वीनाथ से मिला था। मुझसे पाँच सौ रुपये माँगे गये और मैंने उन रुपयों को देना मंजूर कर लिया। इस शर्त पर कि मुझे उसमें सफलता मिल जाय।

मानसिंह अपनी बातों को बराबर मुझसे कहता रहा। मैं ध्यान से उसकी बातें सुन रहा था। उसने आगे कहा : यह घटना उस समय की है, जब आपकी सहायता से मुझे सीमा की रक्षा का भार दिया गया था। मैंने पाँच सौ रुपये देने मंजूर किये थे। लेकिन मेरे पास उतने रुपये न थे, जितने अधिक लावा के सामन्त के पास थे। इसलिए लावा के सामन्त ने एक हजार रुपये देकर उस पर अधिकार कर लिया। उस समय मैं बहुत दुखी हुआ और अपनी इस मानसिक बेदना के कारण ही। मैं उस सीमा पर अपने कर्तव्य का पालन नहीं कर सका। इस दशा में पठानों ने सालाईरोह नामक स्थान के खेतों में हमारा जो अनाज तैयार हुआ था, उसको लेकर भैरवी नामक ग्राम पर अधिकार कर लिया। अब आप मेरी परिस्थितियों पर विचार कीजिए। अगर आप समझें कि मैंने अन्याय किया है अथवा मेरी माँग मुनासिब नहीं है तो आपको अधिकार है, आप जो मुनासिब समझें, मुझे दण्ड दें।

बहुत देर तक अपनी बातें सुनाने के बाद ठाकुर मानसिंह चुप हुआ। उसकी बातों को बड़ी देर तक मैंने सुना था और जब मैं सुन रहा था, उस समय भी मैं सोच रहा था कि मुझे मानसिंह

को क्या जवाब देना चाहिए। मैं चाहता था कि अनुचित व्यवहार किसी के साथ न किया जाय और मैंने इस बात को कभी नहीं पसन्द किया कि एक आयोग्य और अकर्मण्य आदमी को प्रोत्साहन दिया जाय। इसलिए मैं ध्यान पूर्वक मानसिंह की बातों को अन्त तक सुनता रहा। अपनी बातों को समाप्त करके ठाकुर मानसिंह ने न्याय का भार मेरे ऊपर छोड़ दिया। मैं जो सही समझूँ, करूँ। इसके लिए ठाकुर मानसिंह ने पूर्णरूप से मुझे अधिकारी बना दिया।

मानसिंह ने जितनी भी बातें मुझसे कहीं, वे किसी को भी प्रभावित करने के लिए दलीलों से भरी हुई थीं। मैं इस बात को मानता हूं कि हो सकता है, मानसिंह ने बुद्धिमानी के साथ अपनी बातों को इस प्रकार मुझसे कहा हो। लेकिन अपने जीवन की जो घटनायें उसने बयान की, वे रोमाञ्चकारी हैं। इसमें किसी प्रकार का संदेह नहीं किया जा सकता।

अब प्रश्न यह है कि मुझे मानसिंह से क्या कहना चाहिए और उसके मामले में सही न्याय क्या हो सकता है। मैंने इस पर गम्भीरता के साथ विचार किया। साधारण तरीके से मानसिंह के इस मामले में न तो लावा के जयसिंह से किसी प्रकार की आशा की जा सकती है और न राणा को ही आसानी से मानसिंह के पक्ष मे किया जा सकता है। इस परिस्थिति में क्या होना चाहिए, यह मुझे एक गम्भीर समस्या मालूम हुई।

मैंने सोच विचार कर मानसिंह से कहा : आपके मामले में मैं आपको अपराधी और उत्तर-दायी नहीं कहना चाहता। इसके साथ ही आपकी सहायता करने के लिए भी मैं आपको कोई बचन नहीं देता। लेकिन मैं आपके मामले में राणा से कहूँगा। इसके लिए मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ और राणा से निराश होने का मैं कोई कारण नहीं समझता।

यह कहकर मैं क्षण-भर के लिए चुप हुआ। मेरी इन बातों को सुनकर मानसिंह को कुछ राहत-सी मिली। उसने मेरी तरफ देखा और उसको देखकर मैं उसके सम्बन्ध में इस प्रकार का अनुमान लगा सका। इसी समय मैंने फिर उससे कहा : किसी काम के बिगड़ जाने पर एक बुद्धि-मान मनुष्य बड़ी तरकीबों से काम लेता है और सफलता प्राप्त करता है। मैं चाहता हूँ कि अपनी सफलता के लिए आप भी बुद्धिमानी से काम लें।

इतना कहकर मैं फिर चुप हुआ। वह मेरी तरफ देख रहा था और ऐसा मालूम हो रहा था, मानो वह मुझसे कुछ आगे सुनने के लिए तैयार है। उसी समय मैंने फिर कहा : मैं आपको एक सलाह देता हूँ। आप उसके अनुसार काम कीजिए। मैं उम्मीद करता हूँ कि आपको सफलता मिलेगी। आप इसी समय उस सीमा पर चले जाइये, जिसकी रक्षा का भार आपको दिया गया था। वहाँ पर एक ऐसा हत्या-काण्ड हो गया है, जिसका अफसोस राणा से लेकर सभी को है। वहाँ पहुँचकर आप उस हत्या काण्ड के अपराधी को दण्ड दें अथवा उसे कैद करके राणा के सामने पेश करें। अगर इतना आप कर सकें तो आपका सम्मान राणा के नेत्रों में बढ़ जायगा और उस दशा में आपकी सभी प्रार्थनायें आसानी से मंजूर हो सकेंगी।

यह कहकर मैंने मानसिंह को एक अच्छी सी पिस्तौल दी और उसे मैंने सीमा पर जाने के लिये रवाना कर दिया।

छोटी सादड़ी की सीमा पर सेना के एक दल के साथ मानसिंह को पहले भेजा गया था और वहां की रक्षा का भार उसको सौंपा गया था। उस सीमा पर एक बहुत लम्बा चौड़ा और भयानक जंगल है। उससे मिला हुआ जो एक इलाका है, वह एक तरह से लुटेरों और अत्याचा-रियों के रहने का प्रदेश है। उस जंगली इलाके में लुटेरे मीना और भील लोग रहा करते हैं। उनसे सीमा पर बसे हुए गाँव की रक्षा करने के लिए मेवाड़-राज्य की तरफ से कितने हो सामन्त नियुक्त

हैं और इस कार्य के लिए उन सामन्तों को राणा की तरफ से विस्तृत भूमि दी गयी है। उन सामन्तों का कर्तव्य यह है वे कि अत्याचारी मीना लोगों और भीलों से वहाँ के ग्रामों की रक्षा कर सकें।

उन दिनों में सीमावर्ती स्थानों पर मीना लोगो और भीलों के द्वारा हमेंशा अत्याचार होते रहत थे और वे बड़ी तादाद में आकर राणा के वहाँ पर बसे हुये गाँवों को लूटकर ले जाते थे। इस लूट के समय वे लोग उन गाँवों के आदमियें को आक्रमण करके जान से मार डालते थे। इन अत्याचारों को रोकने के लिए राणा की तरफ से जो वहाँ पर सामन्त नियुक्त थे, वे उन अत्याचारियों का दमन न कर सके। उन सामन्तों ने इतना ही अपराध नही किया बल्कि उन लुटेरों को वे मौका दे देते थे और उन लोगों के द्वारा जो सम्पत्ति लूटी जाती थी, उसमें वे भी हिस्सा लेते थे।

जो सामन्त अपने कर्तव्यों के विरुद्ध इस प्रकार का अपराध 'करते थे, उनमें कालाकोट के सामन्त का विशेष हाथ था। चम्पान नाम के जंगल की तरफ पहाड़ी स्थान के ऊपर की भूमि में एक राठौर राजपूत रहा करता था। उसने वहाँ की भूमि को लेकर खेत की व्यवस्था की थी। उसने वहाँ पर कई एक कुए खुदवाये थे। वह राजपूत बड़ा परिश्रमी था और अपने परिश्रम से ही वह उस भूमि में अनाज पैदा करके अपने परिवार का पालन-पोषण करता था।

एक दिन की बात है। अपने खैतों पर दिन-भर काम करने के बाद वह राजपूत अपने घर जा रहा था। नजदीक पहुँचने पर उसने अपनी स्त्री के रोने की आवाज सुनी। वह तेजी से अपने घर पहुँचा। उसको देखकर उसकी स्त्री रो उठी और आँसू पोंछते हुए उसने कहा : जंगल के रहने वाले भीलों ने आकर हमारी कुटी को लूट लिया है। हमारे सब पशुओं को लेकर और हमारे एक लौते बेटे को एवम् उसके संरक्षक एक युवक योगी को बाँधकर वे लोग अपने साथ ले गये हैं।

अपनी स्त्री के मुख से इस बात को सुनते ही राठौर राजपूत के शरीर में मानों आग लग गयी। क्रोध में आकर उसने अपनी बन्दूक में गोली भरी और उसे लेकर वह कालाकोट की तरफ रवाना हुआ। वह जिस मार्ग से होकर जा रहा था, उसी में उसको अपने लड़के का कटा हुआ सिर मिला और उसके पास ही युवक योगी भी मरा हुआ पड़ा था। पता लगाने के बाद उसे मालूम हुआ कि कालाकोट के सामन्त के साथी भीलों ने ही यह हत्या काण्ड किया है। राजपूत को यह भी सुनने को मिला कि जिस समय भील लोग उसके लड़के को पकड़कर वहाँ पर ले गये, उस समय बालक ने कालाकोट के सामन्त के अनुचर को देखकर कहा। 'चाचा' इन भीलों से मेरी रक्षा करो, इसके बदले में तुम जितने रुपये माँगोगे, हमारे पिता तुम्हें उतने रुपये देगें।' लेकिन वास्तव के प्राणों की रक्षा कौन करता। जिस राक्षस को वह बालक चाचा कहकर अपनी रक्षा के लिए प्रार्थना कर रहा था, उसी के द्वारा यह काण्ड हुआ था और रुपये के लिए ही उस लड़के को वे लोग पकड़कर ले गये थे।

इन बातों को सुनने के बाद राठौर राजपूत कालाकोट पहुँचा। जिसने यह हत्याकाण्ड करवाया था, कालाकोट के सामन्त का वह अनुचर वहाँ पर पहुँचते ही मिला। उसने राठौर राजपूत को देखकर कहा : मैं इस काण्ड के सम्बन्ध में कुछ नहीं जानता। लेकिन तुम्हारे जितने पशु वे लोग ले गये हैं, उनकी चौगुनी कीमत और जो तुम्हारा माल असबाब चला गया है, उसकी दो गुनी कीमत मैं तुमको देने के लिए तैयार हूँ।

दुखी राठौर राजपूत ने उसको जबाब देते हुए कहा : मैं अपना लड़का चाहता हूँ। मुझे

परुये की जरूरत नही है। इस रुपये को लेकर मैं जिन्दा रहना नहीं चाहता। जिसने मेरे लड़के की हत्या की है, उसको मारकर मैं बदला लूंगा।

उस राठौर राजपूत को कालाकोट के सामन्त की बातों से संतोष नहीं मिला। वह अपने लड़के को मारकर बदला लेना चाहता था। यह घटना उस सीमा पर घट चुकी थी। ऐसे मौके पर मैंने मानसिंह को वहां रवाना किया था। हमें उम्मीद थी कि मानसिंह को वहां पर हत्याकारी को पकड़ने अथवा उसको दण्ड देने में सफलता मिलेगी।

जिस समय मुझसे बिदा होकर मानसिंह रवाना हुआ, ठीक उसी समय समाचार मिला कि छोटी साद्री की सीमा पर जो हत्या काण्ड हुआ था और जिसने वह काण्ड किया था, उसको सजा मिल गयी। समाचार से मालूम हुआ कि राठौर राजपूत के विलाप को सुनकर कालाकोट का सामन्त बहुत दुखी हुआ और उसने अपने अनुचर को बुलाकर उसको दण्ड देने के लिए कहा। उसके अनुचर ने भयभीत होकर उत्त दिया : मैं इसका अपराधी नहीं हूं ? इसके लिएं मैं मंदिर के सामने जागर शपथ पूर्वक कह सकता हूं।

सामन्त ने उसकी बात को मान लिया। वह मंदिर के सामने शपथ लेने के लिए भेजा गया। मंदिर के सामने पहुँचते ही उसकी मृत्यु हो गयी। यह देखकर सभी ने कहा कि उसके पापों का वदला भगवान ने उसको दिया। उस समाचार में यह भी सुनने को मिला कि उस हत्या काण्ड में जो लोग शामिल थे, राठौर राजपूत के संतोष के लिए और इसलिए कि जिससे भविष्य में इस प्रकार के काण्ड न हों, कालाकोट के सामन्त ने सबको जान से मरवा डाला।

१ फरवरी—आज शनिवार को हम लोग मोरबन अथवा मरबन नामक स्थान पर पहुँच गये। लावा के सामन्त के साथ ठाकुर मानसिंह का जो विवाद चल रहा था, उसके लिए कल शुक्रवार का दिन मुझे पूरा खर्च करना पड़ा। कुछ और स्थान भी राणा के खास अधिकार से निकल गये थे। इसलिए उनके सम्बन्ध में भी मुझे बहुत-सी बातों का पता लगाना था। इसलिए मुझे इस स्थान पर आकर रुकना पड़ा।

मोरबन को लोग मरबन भी कहते हैं। पहले यह नगर सभी प्रकार सम्पन्न था और आस-पास के प्रदेशों में इसको बड़ी ख्याति मिली थी। इसकी वार्षिक आमदनी सात हजार रुपये थी। यह नगर बहुत सुन्दर और रमणीक है। यहां के ऊंचे शिखर पर वह बसा हुआ है। इसके पश्चिम तरफ एक बहुत बड़ा सरोवर है। वह देखने में बहुत अच्छा मालूम होता है। उसके किनारों पर इमली के बहुत पुराने पेड़ खड़े हैं। यहाँ की जमीन बहुत उपजाऊ है। इस जमीन पर जो खेती होती है, उनको इसी सरोवर के जल से सींचा जाता है। इस प्रकार के सुभीते होने पर भी यहाँ आद-मियों की बहुत कमी हो गयी है। विध्वंस होने के बाद इस नगर के आदमी अपने घरों को छोड़ कर इधर-उधर भाग गये हैं और उनके चले जाने से यह नगर उजाड़ हो रहा है।

इस मोरबन नगर को आक्रमण करके पठानों ने जिस प्रकार नष्ट किया है, उसको मैंने अपने नेत्रों से देखा और आक्रमण से होने वाली बरबादी की बातों को सुनकर मुझे बहुत अफसोस हुआ। युद्ध के दण्ड में जो प्रदेश राणा को देने पड़े थे और शत्रुओं ने जिन नगरों पर अधिकार कर लिया है, उनमें मोरबन भी एक है। दूसरे नगरों और ग्रामों के साथ-साथ यह नगर भी मराठों के अधिकार में चला गया था। धन के लोभी मराठों ने इस नगर पर भयानक अत्याचार किये थे और इस के निवासियों का सर्वस्व छीनकर क्रूर हृदय मराठों ने अपने धन की प्यास बुझाई थी।

मोरबन ठहरकर और उनकी इन बातों को सुनकर मैं एक प्रकार की पीड़ा का अनुभव करता रहा। जिसने इन नगरों में होने वाले मराठों के अत्याचारों को न देखा है और न सुना है, वे इस बात का अनुमान नहीं लगा सकते कि आक्रमणकारी इन मराठों के दिल कितने कठोर और भयानक हैं। यहाँ के राजपूतों की आपसी कमजोरी का लाभ इन मराठों ने खूब उठाया, लेकिन अपनी भीषण दुरवस्थाओं को भोगकर भी यहाँ के राजपूत न तो अपनी कमजोरियों को दूर कर सके और न कभी वे अपना संगठन कर सके। अगर एक बार भी ये राजपूत अपनी फूट को दूर करके संगठित हो सकते तो इन मराठों की यह हस्ती न थी कि वे युद्ध में इन राजपूतों का सामना कर सकते। लेकिन यह उनके सौभाग्य की बात है कि ये राजपूत लोग आज तक संगठित नहीं हो सके।

आक्रमणकारियों ने केवल इस सम्पन्न नगर को लूटाही नहीं है, बल्कि अपने अत्याचारों से उसको इतना नष्ट कर दिया है कि अब यह नगर बिलकुल वीरान दिखायी देता है। जिस नगर में किसानों के द्वारा बेशुमार अनाज पैदा होता था और जहां की खेती अपार सम्पत्ति उत्पन्न करती थी, वहाँ के खेत चारो तरफ बंजर दिखायी देते हैं। उनको कोई अब जोतने और बोने वाला यहां नहीं रह गया। इसलिए जिन खेतों में हजारों मन अनाज पैदा होता था, उनमें अब बहुत बड़ी-बड़ी घास दिखायी देती है और ढाक के पेड़ों का एक लम्बा-चौड़ा जंगल बन गया है।

कुछ भी हो, मोरवन इस राज्य का एक ऐतिहासिक स्थान है। मोरी जाति से इसका नाम मोरबन हुआ है। चित्तौर को पराजित करने के पहले मोरी जाति इस स्थान पर रहा करती थी। यहां पर एक टूटा-फूटा प्राचीन किला अब भी मौजूद है। चित्रांगप्रासाद इस किले का नाम है। चित्तौर नगर की जब स्थापना नहीं हुई थी, उन दिनों में मेरी जाति के बहुत से लोग इसी किले में रहा करते थे। इस बात के ऐतिहासिक प्रमाण पाये जाते हैं।

चित्रांग नाम का एक आदमी यहाँ के इस किले का स्वामी था और वह मोरी जाति का था। उसका एक किसान जब अपना खेत जोत रहा था तो उसके हल के फल का स्पर्श किसी कठोर चीज के साथ हुआ। उस किसान ने अपने हल को रोक कर और उसके फल को मिट्टी के ऊपर निकाल कर देखा। उसके हल का सम्पूर्ण फल जो लोहे का था, उस कठोर चीज को स्पर्श करके वह सोने का हो गया था। जिस चीज को स्पर्श करके हल का फल सोना हो गया था, उसको लेकर किसान अपने स्वामी चित्रांग के पास गया और पत्थर की तरह उस कठोर चीज को उसने अपने स्वामी के हाथ में दे दिया।

चित्रांग ने उसको हाथ में लेकर देखा। वह पारस पत्थर था। चित्रांग ने उसकी सहायता से न जाने कितने लोहे को सोना बना डाला और उस सोने की अपार सम्पत्ति को अपने अधिकार में करके उसने मोरबन नगर में बड़े-बड़े महल बनवाये और उस नगर को बड़ी उन्नति पर पहुँचा दिया। उसके बाद उसने चित्तौर की प्रतिष्ठा की। मोरवन के पश्चिम तरफ कालकोट नामक उसकी उन दिनों में राजधानी थी। उसके ध्वंसावशेष अब तक वहां पर देखे जाते हैं। कहा जाता है कि उस राजधनी का बहुत-सा हिस्सा वहीं के किसी रहने वाले की भूल से आग लग जाने के कारण पूरी तरह से जल गया था।

धालकोट के सम्बन्ध में एक जनश्रुति यह भी है कि धोरे के बन में एक ऋषि तपस्या कर रहा था। कुछ लोग उसको पकड़ कर और उसके सिर पर सूखी लकड़ियों का बोझ रखकर उसे बल पूर्वक बाजार ले आये। उस ऋषि के क्रोध से उस बाजार में आग लग गयी और उस बाजार के साथ धालकोट भी जल गया।

इस प्रकार की जनश्रुतियों का कुछ आधार जरूर होना चाहिए, अनुमान से जाहिर होता है कि उस स्थान पर भू गर्भ से कभी-कभी आग निकला करती थी। उसी की आग में वह स्थान जला था। मोरबन में अब भी तीन मन्दिर मौजूद हैं। उनमें एक मन्दिर में शेषनाग की मूर्ति है। लोगों की धारणा है कि उस शेषनाग के एक हजार सिर है, और उसी के उन सिरों पर पृथ्वी रुकी हुई है। पहले शेषनाग पर लोग कुंकुम चढ़ाया करते थे। लेकिन आप कुकुम के स्थान पर मूर्ति पर चंदन घिसकर लगाया जाता हैं।

मोरबन के दक्षिण-पश्चिम तरफ पाँच मील की दूरी पर उनेर नामक एक ग्राम है। उस ग्राम में एक शिला लेख है। जब मैंने यह सुना तो मैंने अपने यती गुरु को वहां भेजा और उस शिला लेख की नकल मंगायी। उस शिला लेख की नक़ल आने पर मालूम हुआ कि कालीन और उनेर नामक ग्राम ब्राम्हणों को दे दिये गये थे। राणा संग्राम सिंह ने सम्बत १५७० सन् १५१४ ईसवी में उस ग्राम में जो मन्दिर बनवाया था, उसका नाम चतुर्भुजा देवी का मन्दिर रखा गया था। उसी मन्दिर में वह शिला लेख रखा हुआ है, उस शिला लेख पर राणा जगत सिंह ने इतना और लिखवा दिया था कि इन अह्मोरार ग्रामों के साथ कभी कोई हस्तक्षेप न करे। इसके साथ राणा जगत सिंह का नाम भी उसमें खोदकर लिखा गया। सम्बत् १४६१ में राणा जगत सिंह की तरफ से उस पर यह लिखा गया था। उस मन्दिर में पत्थर का एक स्तम्भ लगा हुआ है। उस स्तम्भ पर ग्राम की पंचायत की तरफ से लिखकर यह आदेश दिया गया है कि वर्ष की प्रत्येक फसल के कटने पर और अनाज के तैयार होने पर हर एक किसान को अपने प्रत्येक खेत से ढाई सेर अनाज इस मन्दिर के देवता के नाम देना चाहिए। ये पंक्तियाँ उस स्तम्भ में खोदी गयी हैं।

सम्बत् १८४५ सन् १७८६ ईसवी में मेवाड़ के युद्ध के दिनों में ग्राम पंचायत की तरफ से उस स्तम्भ पर ये पंक्तियां खोदी गयी थीं ऐसा मालूम होता है। सम्बत् १७७४ में उस ग्राम में एक जैन मन्दिर बना था, जो चतुर्भुजा देवी के मन्दिर के ठीक सामने है। जिस स्थान पर वह मन्दिर बना हुआ है, वहाँ की जमीन खोदने से समय पारस नाथ की एक मूर्ति निकली थी, ऐसा कहा जाता है और उस मन्दिर में उसी मूर्ति की स्थापना हुई। इस ग्राम के बहुत से स्थानों में प्राचीन काल के संस्मरण पाये जाते हैं।

२ फरवरी—आज की एक घटना हमें बड़ी मनोरंजक मालूम हुई। भोजन करने के बाद विलायती मदिरा पीने के हम अभ्यासी हैं। जिस समय आज हम भोजन करने बैठे, उसी समय हमें कुछ दूरी पर जोर से चिल्लाने की आवाज सुनायी पड़ी। उसको सुनकर हम चौंक पड़े और खड़े होकर हम सोचने लगे कि यह कौन चिल्ला रहा है। मैं उस चिल्लाने वाले के सम्बन्ध में जानना चाहता था। उसी समय दो आदमी और एक बालक सिर पर दूध के घड़े लिए हुए मेरे सामने आये और उन्होंने मेरा संशय दूर किया। वे लोग रोजाना दूध एकत्रित करने के लिए दूर-दूर के ग्रामों में जाया करते थे। उस दिन बालक के साथ के आदमी आगे निकल गये और वह बालक पीछे रह गया। वह बालक एक साथ चिल्ला उठा : 'मामा, मुझे छोड़ दो। मैं तुम्हारा भाञा हूँ। मामा, मामा, मुझे छोड़ दो।'

इस प्रकार कहकर वह बालक चिल्ला रहा था। उस बालक के साथ के आदमी कुछ दूर आगे निकल गये थे। मालूम नहीं कि उन लोगों ने उस बालक का चिल्लाना सुना अथवा नहीं। इसके बाद साथ के आदमी पीछे की तरफ लौटे और आगे जाकर उन्होंने देखा कि जंगल का एक बाघ उस बालक के अंगरखे को पकड़ कर खींच रहा है। यह देखकर उन दोनों आदमियों ने लोहे से गढ़ी हुई एक लकड़ी से उस बाघ को मारना आरम्भ किया। बालक के चिल्लाने की आवाज उस ग्राम

के रहने वालों तक पहुँच गयी थी। इसलिए वे सब के सब अपने हाथों में अस्त्र-शस्त्र लिए हुए वहाँ पर आ गये।

उस बालक के मामा का परिचय देने के लिए यहाँ पर नीचे की पंक्तियों का लिखना जरूरी है। बिना उनको पढ़े हुए यह नहीं मालूम हो सकता कि यह मामा कौन था, मोर बन के करीब मुगरवार नामक एक स्थान है। इन दोनों स्थानों के बीच में काला पहाड़ नामक एक पहाड़ी शिखर है। उस शिखर पर एक बाघ रहता था। वह बाघ किसानों के पशुओं को खाकर अपनी भूख मिटाया करता था। लेकिन उसको कोई मार नहीं सका था। आज से दो दिन पहले उस बाघ ने एक तेली के बैल को खा डाला था। इस प्रकार के नुकसान होने पर भी किसी ने उसको अभी तक मारा नहीं था। जाहिरा तौर पर इसका कोई कारण समझ में नहीं आता। लेकिन वहाँ के आदमियों में यह विश्वास पैदा करा दिया गया था कि वह बाघ कभी किसी आदमी पर आक्रमण नहीं करता। यदि करे भी तो अगर उस बाघ को मामा कहकर छोड़ने के लिए कहा जाय तो बाघ तुरंत उसको छोड़ कर चला जायगा।

लोगों के इस विश्वास को मजबूत करने के लिए लोगों ने उदाहरण दिये थे कि अमुक स्थान के एक आदमी को इस बाघ ने पकड़ लिया था, लेकिन उस आदमी के, 'मामा मुझे छोड़ दो' कहते ही उसने छोड़ दिया। इस प्रकार से कितने ही उदाहरण सुनकर लोगों को विश्वास हो गया था कि हमें इस बाघ से आदमियों को कोई खतरा नहीं है। कदाचित इसी विश्वास के कारण अब तक उस बाघ को किसी ने मारने की चेष्टा नहीं की थी। लेकिन जब उस बाघ ने उस बालक को पकड़ लिया और उसके "मामा मुझे छोड़ दो मैं तुम्हारा भाञ्जा हूँ" कहने पर भी उसने उसको छोड़ा, उस समय ग्राम के निवासी दौड़े और उसे मार कर उस बालक की उन्होंने रक्षा की।

४ फरवरी—अपने साथियों को देव मन्दिर से एक शिला लेख की नकल लाने के लिए मैंने पालोद भेजा था। उनके लौटने पर जो कुछ मालूम हुआ, वह इस प्रकार है: पालोद का वह मन्दिर एक सम्पत्तिशाली जैन का बनवाया हुआ है। उस मन्दिर में जैनी लोग अपने देवता की मूर्ति स्थापित करना चाहते थे, जो कि स्वाभाविक है। लेकिन जब मन्दिर बन कर तैयार हो गया तो कहा जाता है कि जिस धनिक जैनी ने मन्दिर बनवाया था, उससे एक देवी ने कहा कि इस मन्दिर में तुम मेरी स्थापना करो। उस जैनी में इतना साहस न था कि वह एक देवी का विरोध करके अपने देवता की मन्दिर में स्थापना कर सके। लेकिन उसने हिम्मत करके उस देवी से कहा कि तुम्हारी स्थापना होने के बाद में इस मन्दिर के सामने किसी पशु का बलिदान नहीं होने दूँगा। इस पर देवी ने उसको समझा कर कहा कि इस विषय में तुम चित्तौर में सोनगढ़े के पास जाओ। इसका निर्णय वहाँ से हो जायगा।

वह जैनी देवी के कहने के अनुसार वहाँ गया और फिर वहां से लौट कर उसने अपने मन्दिर के पास पार्श्वनाथ का एक मन्दिर अलग से बनवाया। मैंने अपने जिस मित्र को उस मन्दिर के शिला लेख की नकल लाने के लिए भेजा था, उसने लौट कर इन बातों को मुझे बताया। वह जिस शिला लेख की नकल लाया था, उसको उसने पढ़कर मुझे सुनाया। उस सोलङ्की राजवंश का कुछ परिचय मिलता है। इसके बाद चित्तौर से मुझे एक लिपि मिली उसका और पालोद के मन्दिर से आयी हुई नकल में लिखे हुए समय का दोनों का एक ही समय मालूम हुआ।

इन मिली हुई दोनों लिपियों से जाहिर हुआ कि सोलंकी राजा ने किसी समय गहिलोतों की राजधानी को लेकर अपने अधिकार में कर लिया था। पालोद के मन्दिर से शिला लेख की

जो लिपि मेरे पास आयी, उसमें केवल इतना ही लिखा है : 'कुमार पाल सम्वत् १२०७ के पूस महीने में पालोद के मन्दिर में पूजा करने के लिए आया।' लेकिन जो लिपि चित्तौर से मेरे पास आयी, उसमें लिखा है : सदराज के निकाल देने पर कुमारपाल ने चित्तौर में आकर आश्रय लिया। उस समय चौहान पृथ्वीराज का बहनोई राणा समर सिंह चित्तौर का राजा था। उसके यहाँ कुमारपाल मन्त्री के पद पर नियुक्त होकर रहने लगा।

७ फरवरी को निकुम्प नामक स्थान से रवाना होकर हमलोग ८ फरवरी को मुरला नामक स्थान पर पहुँछ गये। मुरला एक प्रसिद्ध ग्राम है। यहाँ पर कुचौलिया जाति के चारण लोग भाट वंशी हैं। परन्तु अब वे लोग व्यावसायिक कार्य करने लगे हैं। राजस्थान में लोग पूज्यनीय माने जाते हैं और इसीलिए यहाँ के रहने वाले सभी लोग उनके प्रति सदा अपनी भक्ति प्रकट करते हैं। इन लोगों के अन्याय और अत्याचार करने पर भी कोई उनके विरुद्ध हस्तक्षेप नहीं कर सकता। इन चारण लोगों के साथ यहां के सभी दूसरे लोगों का यह व्यवहार बहुत प्राचीन काल से चला आ रहा है। हिन्दुओं के पुराने ग्रंथों में लिखा हुआ है कि चारण लोगों को अप्रसन्न करने से मनुष्य को सैकड़ों हजारों वर्ष तक नरक में रहकर भयानक कष्टों का भोग करना पड़ता है। इस डर से कोई कभी इनको अप्रसन्न करने का साहस नहीं कर सकता।

चोर, लुटेरे और बदमाश लोग भी नरक के भय से इन चारण लोगों के विरुद्ध कोई कार्य और व्यवहार नहीं करते। चारण लोग आम तौर से व्यवसायियों के माल की रक्षा करने का काम करते हैं और उसके बदले वे लोग व्यवसायी लोगों से मनमानी रकम लेते हैं। वे लोग समझते हैं कि हम लोगों के सिवा व्यवसायियों के माल की रक्षा का कार्य दूसरा कोई नहीं कर सकता। उन चारण लोगों में आपसी सङ्गठन और मेल भी रहता है। जिस माल के साथ चारण लोग रक्षक बन कर जाते हैं, वह माल मार्ग में कहीं लूटा नहीं जाता। इसलिए समस्त राजस्थान में व्यवसाय का माल चारण लोगों के संरक्षण में चलता है। इस जाति के बहुत-से लोग स्वयं व्यवसाय करते हैं। क्योंकि उनके द्वारा जो व्यवसाय होता है, उस पर राज्य की तरफ से कोई कर नहीं वसूल किया जाता।

मुरला के रहने वाले पुरुषों और वहां की स्त्रियों का एक दल हम लोगों का स्वागत-सत्कार के लिए आया। उस दल के आगे बाजा बजाने वाले पुरुष चल रहे थे। उनके पीछे नृत्य करती हुई स्त्रियों की एक अच्छी संख्या थी। उन स्त्रियों ने घेर कर मुझे एक कैदी बना लिया। उस समय उनका दृश्य बहुत मनोहर मालूम हो रहा था। उस दल में जो लोग आये थे, वे अपने सिर पर पगड़ी बांधे थे और उनकी उन पगड़ियों पर फूलों की मालायें थीं। स्त्रियां कुरता और घांघरा पहने थीं। उनके शरीर में बहुत से आभूषण थे, उन स्त्रियों ने जिस प्रकार मुझे बन्दी बनाया था, उसे देखकर मालूम होता था कि वे मुझसे कुछ पुरस्कार चाहती हैं।

बहुत पहले कभी मेवाड़ का कोई राणा इस मुरला में आया था। उस समय भी यहाँ की स्त्रियों ने इसी प्रकार राणा को घेर कर बन्दी किया था। उस समय राणा ने इन स्त्रियों को भोजन देकर छुटकारा पाया था। मेरे सम्बन्ध में उन स्त्रियों को कुछ अनुभव न था। मेरे अप्रसन्न होने के भय से उन्होंने मुझे अधिक समय तक कैदी बनाकर नहीं रखा और कुछ सोच-समझ कर उन्होंने मुझे छोड़ दिया। इसके बाद मैंने उनको पुरस्कार में कुछ रुपये दिये।

राणा हमीर के शासन काल में गुजरात से चारण वंश के लोग राणा के साथ यहाँ आये थे। उसके बाद लगभग पांच सौ वर्ष बीत चुके हैं, लेकिन इन चारण लोगों के आचार-व्यवहार

और पहनावे में किसी प्रकार का अन्तर नही पड़ा । इनकी ये सभी बातें भारत के अन्य लोगों से प्रतिकूल मालूम होती हैं । वे लोग किस प्रकार मेवाड़ में आये और उनके आने का कारण क्या था, इसको यहां पर संक्षेप में लिखना आवश्यक जान पड़ता है ।

मेवाड़ के प्रसिद्ध राणा हमीर के एक हाथ पर कुछ थोड़ा सा कुष्ट रोग उसको सेहत कर के लिए राणा महीर हिंगलाज तीर्थ गया था । कच्छ भुज की सीमा में पहुंचकर चारण लोगों ने निवास स्थान के पास टाडा में वह गया । राणा के घोड़े से उतरते ही एक चारणी युवती अपनी रसोई से निकलकर उसके पास आयी । उसको देखने पर राणा ने कहा : "हमारे साथ के लोग इस समय भूखे हैं । आप ने जो रसोई तैयार की हैं, उसके द्वारा हमारे साथ के लोगों को प्रति मिल सकती है ।"

राणा की इस बात को सुनकर उस युवती ने उत्तर दिया : "मेरी रसोई में जो|भोजन तैयार है, उसे मैं देने से लिए तैयार हूँ ।"

यह सुनकर राणा ने फिर कहा : "लेकिन आपकी रसोइ के तैयार थोड़े से भोजन के द्वारा इतने लोगों की भूख कैसे मिटेगी ?"

युवती ने उत्तर दिया : "हिंगलाज तीर्थ के प्रताप से मेरी रसोई का भोजन आप सब के लिए काफी है ।"

इसके बाद अपने आदमियों के साथ बैठकर राणा ने उस युवती की रसोई का भोजन किया । सभी के पेट-भर भोजन कर चुकने के बाद भी उसकी रसोई की कोई सामग्री कम नहीं मालूम हुई । राणा ने युवती के एक कुएं का जल पिया, उससे उसको बहुत शाँति मिली । इससे राणा को वहां के तीर्थ पर और भी अधिक विश्वास पैदा हुआ । उससे वहां के जल में स्नान स्नान करने से उसके हाथ का कुष्ट रोग जाता रहा । राणा हमीर जब वहां से लौटा तो अपने साथ वह उस चारणी युवती और उसके परिवार के लोगों को अपने साथ मेवाड़ ले आया और उन लोगों को रहने के लिए उसने मुरला नामक ग्राम दे दिया । राणा हमीर ने उस समय यह भी एक आदेश दिया कि इन चारण लोगों से राज्य का कोई कर कभी वसूल न किया जायगा । इस प्रकार मेवाड़ में चारण लोगों का आना हुआ ।

यह मुरला अब एक बहुत बड़ा ग्राम हो गया है और उसमें कई हजार की संख्या में चारण जाति के स्त्री-पुरुष रहा करते हैं । ऊपर लिखा गया है कि सर्व साधारण में चारण लोगों का बड़ा सम्मान था और उनके साथ चोर और लुटेरे भी किसी प्रकार का अनुचित व्यवहार न करते थे । इसलिए सम्पूर्ण राजस्थान में चारण लोल स्वतंत्रता के साथ व्यवसाय करते हुए पाये जाते हैं । जिन मार्गों में चोरों और डाकुओं का भय रहता है, वहाँ पर भी ये लोग निर्भीकता के साथ निकलते हैं । उनके साथ चोर और डाकू भी किसी प्रकार का अन्याय नहीं करते, इसका कारण क्या है, इसे हम नहीं जान सके । अनुमान से मालूम होता है कि मेवाड़ के राणा की कृपा प्राप्त होने के कारण जब उस राज्य में उनके साथ राजा से लेकर प्रजा तक की सहानुभूति पैदा हुई तो उसका प्रभाव बाकी राजस्थान पर भी पड़ा । यद्यपि ये लोग इस देश के मूल निवासी नहीं हैं और भारतवर्ष उनके लिए एक विदेश है । उनके जीवन की समस्त बातें पारन वालों के साथ मिलती-जुलती हैं । उनका व्यवहार वर्त्ताव, वस्त्रों का तरीका और सामाजिक जीवन देखकर गुबरेस के मन्दिर के पुजारियों का स्मरण हो आता है ।

चारण लोग मेवाड़-राज्य में जहां पर रहते हैं, वहां पर और उसके आस-पास उनके द्वारा खेती का काम नहीं होता । इससे जाहिर होता है कि वे लोग व्यवसाय से अपना काम चलाते हैं ।

उनके जीवन में किसी प्रकार का अभाव नहीं मालूम होता। वे अच्छे वस्त्र पहनते हैं और स्त्री-पुरुष सभी आभूषणों का प्रयोग करते हैं। मेवाड़-राज्य में आने के बाद उन लोगों के वंश की वृद्धि हुई। इसलिए जो भूमि उनको दी गयी थी, उसका लगातार विभाजन हुआ। इस विभाजन के कारण उन लोगों में आपसी झगड़ा पैदा हुआ। उस विद्रोह में उन्होंने स्वयं एक दूसरे का नाश किया। जो चारण मारे गये उनकी स्त्रियां चिता में बैठकर अपने-अपने पतियों के साथ सती हुई। सती होने के समय उन स्त्रियों ने कहा था कि इस जाति में अब कोई खेती न करे, नहीं तो उसका नाश हो जायगा। उस समय से चारण लोगों ने खेती करना बन्द कर दिया।

वहां से चलकर हम लोग रानी खेड़ा में पहुँचे। यह नगर बहुत बड़ा है और यहां की रानी द्वारा यह नगर बसाया गया था। उसी ने बहुत-से मन्दिर और कुए बनवाये थे। लोगों के कहने से मालूम हुआ कि वहां के किसी मेहतर ने एक सुअर मार कर उस कुए में डाल दिया था, जिसका जल लोग प्रयोग में लाते थे। उस मेहतर ने अपने महाजन को परेशान करने के लिए ऐसा किया था। उस मेहतर को उसके इस अपराध का दंड दिया गया। उसका मुंह काला करके, उसके गले में जूतियों का हार पहनाकर और गधे पर बिठाकर वहां से उसको निकाल दिया गया। इसके बाद उस कुए का जल सब निकाल डाला गया और उसकी सफाई करने के बाद उसमें गंगा जल छोड़ा गया और फिर एक ब्रह्म भोज का आयोजन करके उसका जल शुद्ध किया गया।

हमने रानी खेड़ा को जाकर देखा। वहां के लोगों ने बहुत-सी चीजें मुझे दीं। इसके बाद वहां के एक रईस खांन से मेरी भेंट हुई। वह मुझको अपने स्थान पर ले गया और मेरे साथ उसने अपना बहुत सम्मान प्रकट किया।

१३ फरवरी को मेवाड़ की पूर्वी सीमा के पठार नामक स्थान पर मैं पहुँचा। इस स्थान की ऊंचाई अरावली पहाड़ की अपेक्षा लगातार कम होती गई है। पठार के ऊपरी भाग पर खड़े होने से बहुत दूर तक प्रकृति के रमणीक दृश्य दिखायी देते थे। वे दृश्य मुझे बहुत प्रिय मालूम हुए। उनको देखकर मेवाड़ राज्य की बहुत-सी ऐतिहासिक बातों को मैं सोचने लगा। जहां पर हम लोग खड़े थे, उसके दक्षिण तरफ चित्तोर है। पश्चिम की तरफ मेवाड़ की नवीन राजधानी उदयपुर का मनोहर दृस्य दिखायी दे रहा था। उस ऊंचे स्थान के नीचे जावदा, जीरण, नीमच, निम्बेड़ा, खेरी और रतनगढ़ इत्यादि दिखायी दे रहे थे। ये सभी स्थान अब मराठों के अधिकार में हैं। पहाड़ों के ऊपर से कई एक नदियां निकलकर विभिन्न दिशाओं की ओर प्रवाहित हो रही थीं। उनके किनारे के दृश्य देखने में बड़े मनोहर मालूम होते थे।

जिस ऊंचे स्थान पर मैं खड़ा था, वहां पर मैं सहसा सोचने लगा, मेवाड़ की राजधानी उदयपुर तक एक विशाल नहर तैयार करवाने से खेतों में पैदा होने वाले अनाज की अधिक वृद्धि की जा सकती है। यदि ऐसा किया जा सके तो अकाल के दिनो में इस राज्य के निवासियों को कभी भी अधिक कष्ट नहीं हो सकता।

इस विषय में मैं बड़ी देर तक सोचता रहा। लेकिन ऐसा करने के लिए मेरे अधिकार में साधन ही क्या था। इस विशाल नहर को तैयार करने के लिए धन की आवश्यकता है। वह धन कहां से आवेगा? यदि राणा इस कार्य को अपने हाथ में ले तो उस नहर के द्वारा उसका और उसकी प्रजा का बहुत उपकार हो सकता है। मेरी समझ में नहीं आता कि मेवाड़ के राणा का ध्यान इन सब बातों की तरफ क्यों नही जाता।

पठार की समस्त भूमि बहुत उपजाऊ है। यहां की मिट्टी खेतो के लिए अधिक उपयोगी है। यहां पर आम, महुआ और नीम आदि के बहुत-से वृक्ष दिखायी देते हैं। पठार की ऊंची भूमि

में कुछ झरने भी पाये जाते हैं। वहाँ पर महादेव का एक मंदिर भी है। ऊंचे पहाड़ी स्थान पर चढ़कर मैं जहाँ पहुँचा था, उससे दो मील की दूरी पर एक अंधकार पूर्ण पहाड़ी रास्ते में शुक्र देव का आश्रम है। मैं इस मार्ग से अपरिचित था। इस समय मेरे साथ रामगोविन्द नामक ब्राह्मण भी न था। इसलिए मैं शुक्रदेव के आश्रम को देख न सका। उस आश्रम को देखने की मेरी अभिलाषा थी। वहाँ पर न जा सकने पर मैंने अपनी उत्सुकता को लोगों से बातें करने के बाद पूरा किया। लोगों के द्वारा उस आश्रम की बहुत-सी बातें मुझे मालूम हुई। यह आश्रम जन शून्य रहता है। वहाँ पर अनेक प्रकार के फूलों के वृक्ष देखने को मिलते हैं। पहाड़ों से निकली हुई नदियाँ आश्रम की ओर प्रवाहित हुई हैं। उस आश्रम में शुकदेव की मूर्त्ति है। वहाँ पर पहाड़ का एक ऊंचा स्थान है। वह दैत्य का हाड़ कहलाता है। इस ऊँचे स्थान का पारलौकिक महत्व माना जाता है। उसके ऊँचे स्थान से नीचे बहती हुई नदी में कूदने से परलोक बनता है, इस प्रकार लोगों का विश्वास है। कहने वालों में अधिकांश लोगों की मृत्यु हो जाती है। उनमें से कोई मरने से बच भी जाता है। न जाने कितनी स्त्रियों ने पुत्र की इच्छा से उस स्थान से नदी में कूदकर अपने जीवन का अंत कर दिया है। एक स्त्री अपने छोटे बालक को लेकर उस पहाड़ी स्थान के ऊपर से नदी में कूदी थी। कहा जाता है कि वह बच गयी और उसका बालक भी जीवित रहा। इस प्रकार कूदने वालों में कुछ लोग बच भी जाते हैं। वहाँ पर ओंकार नाम का एक मन्दिर भी हैं।

साठ वर्ष पहले चम्बल नदी के किनारे तक सम्पूर्ण पठार मेवाड़-राज्य में था। लेकिन इन दिनों में कुनेड़ा को छोड़कर सम्पूर्ण पठार सींधिया के अधिकार में है। बाईस नगरों और ग्रामों में कनेरी नाम का एक प्रसिद्ध नगर है। वह किसी प्रकार फिर राणा के अधिकार में आ गया है। यहाँ के जो नगर और ग्राम सींधिया ने प्राप्त किये हैं, वे सब राणा की तरफ से सींधिया को युद्ध के व्यय में दिये गये हैं।

यहाँ पर अफीम की बढ़ती हुई खेती को देखकर मुझे बहुत पीड़ा होती है। कानूनों के द्वारा इस प्रवृत्ति को रोकने की बहुत बड़ी आवश्यकता है। मुझे इस बात को स्वीकार करने में कोई संकोच नहीं हैं कि अङ्गरेज सरकार के द्वारा चेटिया कर वसूल किये जाने के कारण अफीम की खेती बहुत अधिक होने लगी है। जिन स्थानों के किसान पहले कभी अफीम की खेती नहीं करते थे, वे भी अब करने लगे हैं। इसका कारण यह है कि अफीम की खेती के द्वारा अनाजों की अपेक्षा अधिक आय होती है। इस स्वार्थ के कारण लोग स्वयं अपना सर्वनाश करते हैं।

लगातार अकालों और युद्धों के कारण राजस्थान के निवासियों को जितनी क्षति पहुँची है। उसकी अपेक्षा अफीम के द्वारा यहाँ के लोगों का शारीरिक विनाश बहुत अधिक हुआ है। इस दशा में यह स्वीकार करना पड़ता है कि यहाँ के सर्वनाश का मूल कारण अफीम है। इस अफीम का यहां पर प्रचार कैसे हुआ और किस प्रकार उसकी खेती आरम्भ हुई, उसका संक्षेप में यहां पर वर्णन करना आवश्यक मालूम होता है। यद्यपि इसके लिए हमारे पास कोई आधार नहीं हैं। इस-लिएजो कुछ समझने को मिला है, उतना ही लिखकर मैं संतोष करता हूँ।

बाबर, अकबर और जहांगीर के जीवन चरित्रों को पढ़ने से मालूम होता हैं कि उनके द्वारा बहुत-से वृक्ष—छोटे और बड़े—इस देश में लाये गये हैं। इस देश में अनेक जातियों के लोग समय-समय पर आये। लेकिन वे लोग लूट-मार कर यहाँ से चले गये। तैमूर के वंश के लोगों ने यहाँ आकर स्थायी रूप से अपना अधिकार कायम किया। इस देश के राजा और महाराजा उनको यहाँ से हटा न सके। तैमूर वंशज बाबर ने भारत में आकर विजय प्राप्त की थी। वह रोजाना अपनी डायरी लिखा करता था। उसने इस देश की सभी घटनाओं को अपनी डायरी में लिखा हैं।

उसका यह नित्य का कार्य था। यों तो संसार के बहुत-से बादशाहों ने डायरी लिखने का कार्य किया है। परन्तु बाबर का स्थान उन सब की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ समझा जाता है। बाबर की तरह संसार के किसी भी बादशाह ने डायरी लिखने का कार्य नहीं किया। उसने जितने युद्ध किये थे, सब का वर्णन उसने अपनी डायरी में किया था। दिल्ली में युद्ध करके वहाँ के सिंहासन पर बैठने का उल्लेख भी उसने बड़े अच्छे तरीके पर अपनी डायरी में किया है।

बादशाह अकबर के जीवन की बहुत-सी बातें बाबर के जीवन से मिलती हैं। वह फारस और तातार देश के किसानों और बागवानों को इस देश में लाया था और उनके द्वारा पिस्ता एवम् बादाम आदि की तरह के अनेक फलों के वृक्षों को यहाँ पर लगवाया था। इसके पहले इस प्रकार के वृक्ष इस देश में नहीं होते थे। बादशाह जहांगीर के जीवन-चरित्र से मालूम हुआ है कि उसके शासन-काल में तम्बाकू का प्रचार भारतवर्ष में हुआ और यहाँ पर उनकी खेती होने लगी।

भारतवर्ष में अफीम की खेती कब से शुरू हुई और किसके द्वारा इस देश में इसका प्रचार हुआ, इसका वर्णन हमें कहीं पढ़ने को नहीं मिला। यहां के लोगों से मालूम होता है कि इह देश में अफीम का प्रयोग बहुत पहले से औषधि के रूप में होता था और यहाँ के चिकित्सा-ग्रंथो में इसी प्रकार का उल्लेख पाया भी जाया है। ठीक यही अवस्था अफीम के सम्बन्ध में संसार में सर्वत्र थी। तीन सौ वर्ष के पहले नशा लाने के लिए अफीम का प्रयोग ससार में कहीं नहीं होता था लेकिन अब तो अफीम का प्रयोग आमतौर पर होने लगा है। राजस्थान में इसका प्रयोग बहुत अधिक पाया जाता है।

चम्बल और छिप्रा के बीच का प्रदेश दुआबा के नाम से प्रसिद्ध है। वहाँ पर अफीम की खेती होती थी। इस आधार पर इस देश के मध्य प्रदेश में अफीम की खेती का आरम्भ माना जा सकता है। लेकिन अब तो उसकी खेती राजस्थान के बहुत-से स्थानों में होने लगी है। इस खेती के लिए मेवाड़ और हाड़ौती राज्य विशेष प्रसिद्ध है। कुम्भी, जाट, वैश्य और ब्राह्मण आदि सभी अफीम की खेती करते हैं। इसकी खेती के लिए कुम्भी लोग अधिक प्रसिद्ध हैं और बहुत पहले से वे अफीम की खेती करते आ रहे हैं। अफीम के वृक्ष का पाँचवाँ भाग अफीम के रूप में तैयार होता है। उसकी खेती करने वाले इस बात को भली प्रकार जानते हैं।

राजस्थान में सुख और शान्ति की जितनी ही कमी होती जाती है, अफीम की खेती वहाँ पर उतनी ही बढ़ती जाती है। इस अफीम के द्वारा राजस्थान को जितनी क्षति पहुँची है, उतनी क्षति किसी भी दुर्भिक्ष और युद्ध के द्वारा नहीं पहुँची। अफीम की खेती के कारण राजस्थान का सर्वनाश हुआ है। भारत में मुगलों के पतन के साथ-साथ मराठों पठानों और पिन्डारियों के अत्याचारों के समय यहाँ के किसानों ने विभिन्न प्रकार के अनाजों की खेती का कार्य छोड़कर अफीम की खेती आरम्भ की है। मराठों और पठानों की लूट के समय इस देश में अफीम की खेती की वृद्धि हुई है। इसका कारण है। अफीम कीके लिए अधिक भूमि की आवश्यकता नही होती और लुटेरों से वह सुरक्षित रहती है। इसके द्वारा धन अधिक पैदा किया जा सकता है और उस धन से लुटेरे मराठों और पठानों को उनकी माँगी हुई रकम आसानी से अदा की जा सकती है।

अपनी खेती में अफीम पैदा करके किसान लोग व्यापारियों को बेच देते हैं और वे व्यापारी अपने यहाँ अफीम संग्रह करके दूकानदारों को बेचा करते हैं। इस देश की तैयार की हुई अफीम चीन तक जाती है और वहां पर मालवा की अफीम के नाम से बिकती है। इसका अर्थ यह है कि भारत में मालवा की अफीम श्रेष्ठ समझी जाती हैं।

बहुत से लोगों का ख्याल है कि अफीम की खेती बन्द कर देने से किसानों को आर्थिक हानि होगी। परन्तु ऐसा समझने वाले इस बात पर कभी ध्यान नहीं देते कि अफीम की खेती होने के कारण उसका प्रयोग करने वालो की संख्या कितनी अधिक बढ़ गयी है। शरीर को आघात पहुँचा कर मनुष्य कितने दिन जीवित रह सकता है, हम सबको अफीम के इस खतरे की तरफ ध्यान देना चाहिए। इस खेती के द्वारा भारतवर्ष की और विशेष कर राजस्थान की कितनी अधिक अवनति हुई है, इसका अनुमान लगाकर शरीर रोमाञ्च होता है। जिनको इस अवनति से कोई भय नहीं मालूम होता, उनको अफीम की खेती के पक्ष का समर्थन करना चाहिए। हमारी समझ में कोई भी बुद्धिमान मनुष्य अफीम के व्यवहार का समर्थन करेगा।

अफीम की खेती के स्थान पर रुई, नील, ईख और दूसरे अनाजों की खेती करके धन पैदा किया जा सकता है। उसके द्वारा मनुष्य की शरीरिक उन्नति होती है और उसकी आयु बढ़ती है। मैं राजस्थान का शुभचिंतक हूँ। जिस पतन के मार्ग पर आज राजस्थान जा रहा है, मैं उसे सहन नहीं कर सकता। इसीलिए मैं चाहता हूँ कि उसके पतन के जितने भी कारण हैं, वे एक साथ रोक दिया जांय। मेरी समझ में राजस्थान के पतन का कारण अफीम का व्यवसाय और प्रयोग प्रमुख है और इसको रोक देना उन्हीं के अधिकार में है। जो मनुष्य अपने अधिकार का काम नहीं कर सकता, वह दूसरों के द्वारा होने वाले कार्यों का क्या लाभ उठा सकता है। अफीम के व्यवसाय से उसके प्रयोग की वृद्धि होती है और अफीम के प्रयोग से मनुष्य का शारीरिक एवम् नैतिक पतन होता है। यह पतन हमारे जोवन में सब से प्रधान है। इसीलिए मैं अफीम के व्यवसाय और प्रयोग—दोनों का विरोध करता हूँ।

अफीम के प्रयोग से मनुष्य का सर्वनाश होता है। बुद्धि नष्ट हो जाती है। शरीर आलसी और अकर्मण्य हो जाता है। इसके भयानक परिणाम को अनुभव करके मैंने राजस्थान के प्रत्येक राजा से लेकर उसकी प्रजा के एक-एक मनुष्य से अफीम का सेवन न करने के लिए प्रतिज्ञा करायी है। परन्तु मैं इस शपथ और प्रतिज्ञा के महत्व को समझता हूँ। अफीम की दूकानों के बीच में रहने वाले मनुष्य का उपकार शपथ और प्रतिज्ञा से कुछ नहीं हो सकता।

१५ फरवरी को हम लोग रतनगढ़ पहुँचे। यहाँ से खेरी नामक स्थान नौ मील की दूरी पर है। धारेश्वर से दो मील दूरी पर कुनेरों की सीमा का अंत हो जाता है और खेरी के चौरासी ग्रामों की सीमा शुरू हो जाता है। यहाँ से खेरी जाने का जो मार्ग आरम्भ होता है, वह लगातार ऊँचा होता गया है। उस मार्ग के दोनों तरफ जंगल है और उसकी जमीन पथरीली है। वहाँ की मिट्टी काले रँग की है। हम लोग छोटे-छोटे ग्रामों को पार करके चारण लोगों के स्थान पर पहुँच गये। वहाँ पर मुरला के वंश के बहुत-से लोग रहते थे। उनके साथ हमारी भेंट हुई। वहाँ की स्त्रियों और पुरुषों ने संगीत और नृत्य के साथ चलकर अपनी परिपाटी के अनुसार हमको बन्दी बनाने की चेष्टा की। परन्तु उनको सफलता न मिली। एक वृद्धा चारणी स्त्री के लिए पाँच रुपये देकर मैं वहाँ से चला आया।

सम्वत् १८२८ सन् १७७२ ईसवी के युद्ध खर्च में माधव जी सोंधिया ने रतनगढ़ खेरी के चौरासी ग्राम लिए थे। उन दिनों में उन ग्रामों का राज्य-कर राणा को मिलता था। सम्वत् १८३२ के बाद वे ग्राम सोंधिया के जामाता के अधिकार में चले गये। इसलिए उन ग्रामों का सम्बन्ध मेवाड़ से बिलकुल न रह गया। बेगू का सामन्त मेवाड़ के सोलहन प्रधा सामन्तों में था। उसके बिश्वासघात के कारण ये ग्राम मेंवाड़ के अधिकार से निकल गये थे। उसके विरुद्ध युद्ध करने के लिए राणा ने माधव जी सोंधिया से सहायता ली थी और माधव जी सोंधिया ने उस अवसर का लाभ उठाकर चौरासी ग्रामों के साथ-साथ बेगू जागीर पर भी अधिकार कर लिया था। इसके बाद

बाद बेगू के सामन्त ने उसके साथ संधि करके अपने चालीस ग्रामों को सींधिया के अधिकार में दे दिया।

उस स्थान से चलकर हम लोग छोटा अतवा नामक स्थान पर पहुँचे। यहाँ का दुर्ग पर्वत के नीचे बना हुआ है और देखने में बहुत सुदृढ़ मालूम होता है। वहां पर हमने एक आदमी से प्रश्न किया : "इस दुर्ग पर कभी किसी शत्रु ने आक्रमण किया था ?"

उस आदमी ने उत्तर देते हुए मुझसे कहा : "कभी नहीं। जब तक किसी दुर्ग पर शत्रु का आक्रमण न हो, उस समय तक वह दुर्ग अविवाहित रहता है। इसलिए यह दुर्ग अभी तक अविवाहित ही है।" यह कहकर वह चुप हो गया।

छोटा अतवा बेगू के मेघावत् राजपूतों के अधिकार में था। डूँगर सिंह वहाँ का शासक है। वह मुझसे मिलने के लिए मेरे पास आया था। मेघावत् राजपूत लूटमार के लिए प्रसिद्ध थे और वे लोग मराठों पर इस प्रकार का अत्याचार किया करते थे। उनके पूर्वज कालामेघ के नाम से प्रसिद्ध थे।

१७ फरवरी को हम लोग सिंगोली नामक स्थान पर पहुँचे। अन्तरी नामक जिले का यह एक नगर है। यह स्थान पहाड़ों से घिरा हुआ है। यहाँ पर भामूनी नामक नदी प्रवाहित होती है। यहाँ की भूमि उपजाऊ है और कई प्रकार के अनाज यहाँ पर पैदा होते हैं। इस नगर की दीवारें मिट्टी की बनी हुई हैं, वे ऊँची हैं और उनके ऊपर फूस के छप्पर रखे हुए हैं। यहाँ पर उम्मेदपुरा नामक एक ग्राम है। उस ग्राम में यहां के सामन्त का चाचा रहता है। उसके रहने के स्थान में और प्रजा के रहने के स्थानों में कोई अन्तर नहीं है। इस प्रकार के घरों में इंगलैण्ड का एक दरिद्र कृषक भी नहीं रह सकता।

बेगू का सामन्त अपने लड़के, भतीजे और परिवार के पन्द्रह आदमियों को लेकर मुझसे मिलने के लिए आया। उसके साथ उम्मेदपुरा में रहने वाला उसका चाचा भी था। वह एक घोड़े पर सवार था और अपने दाहिने हाथ में वह एक भाला लिए था। सामन्त के साथ जो नौकर और सैनिक आये थे, वे पैदल थे।

वे सभी लोग साथ-साथ चलकर हमारे मुकाम तक आये। मैंने सामन्त उसके लड़के और भतीजे को लाल रंग की पगड़ी के साथ-साथ इंगलैण्ड की बारूद उपहार में देकर विदा किया।

पठार में बिलवर गढ़ नाम का एक प्रसिद्ध दुर्ग था। उसका टूटा-फूटा भाग अब भी वहां देखने को मिलता है। इस दुर्ग पर बेगू के मेघावतों और ग्वालियर के शक्तावतों का भयंकर युद्ध हुआ था। वहां पर और भी कितने हो दुर्ग हैं। लेकिन उनमें बमोदा का दुर्ग सबसे अधिक प्रसिद्ध है। वह पश्चिमी सीमा पर है। वहां के आलूहाड़ा का नाम आज तक सम्मान के साथ लिया जाता है। यहाँ पर आलूहाड़ा के जीवन की एक घटना का उल्लेख करना आवश्यक मालूम होता है।

एक दिन आलूहाड़ा शिकार से लौटकर वापस आ रहा था। रास्ते में एक चारण से उसकी भेंट हुई। उसने आलूहाड़ा को आशीर्वाद दिया और उसके सिर की पगड़ी उसके पुरस्कार में मांगी। इसके साथ ही उसने यह भी कह दिया कि मैं आप से और कुछ नहीं चाहता।

आलूहाड़ा बड़े असमञ्जस में पड़ गया। वह कवि को अप्रसन्न नहीं करना चाहता था। इसलिए उसने मस्तक से पगड़ी उतार कर चारण को दे दी। पगड़ी लेकर वह मरुभूमि की राजधानी मन्दोर चला गया। वहां पहुँचकर उसने मन्दोर के राजा को आशीर्वाद दिया। उस समय

चारण के एक हाथ में आलूहाड़ा की पगड़ी थी। उसे देखकर मन्दोर के राजा ने प्रश्न किया। चारण ने उसको उत्तर देते हुए कहा : "यह आलूहाड़ा की पगड़ी है, जो संसार में किसी के सामने झुक नहीं सकती।"

मेवाड़ के एक साधारण और अपरिचित सामन्त के प्रति चारण का यह सम्मान देखकर मन्दोर के राजा को अच्छा न लगा। उसने इसके हाथ से उस पगड़ी को लेकर कमरे के बाहर फेंक दिया। चारण ने बाहर निकलकर उस पगड़ी को उठा लिया और वहां से लौटकर वह आलूहाड़ा के पास पहुँचा। वहां जाकर उसने इस अपमान की कथा सुनायी और उसने राठौर राजा से इस अपमान का बदला लेने के लिए आलूहाड़ा को उकसाया।

चारण के मुख से उस अपमानजनक बात को सुनकर कुछ देर के लिए आलूहाड़ा चुप हो गया। इसके बाद उसने कहा "मैंने आप से उसी समय कहा था कि आप और कोई चीज माँगिये। लेकिन आपने किसी भी दूसरी चीज को माँगने और लेने से इनकार किया। पगड़ी देने के बाद अब मस्तक देने की नौबत आ गयी।"

आलूहाड़ा ने अपने वंश के सभी वीरों को आने के लिए संदेश भेजा। उस संदेश को पाकर पाँच सौ शूर-वीर बमोदा के दुर्ग में आकर एकत्रित हुए। आलूहाड़ा ने उन सब को पूरी घटना बतायी और युद्ध के लिए आदेश दिया। मन्दोर के राजा से युद्ध करना खेल न था। फिर भी सम्मान की रक्षा के लिए राजपूतों को सब कुछ करना पड़ता है। इसलिए युद्ध की तैयारी होने लगी।

आलूहाड़ा के कोई लड़का न था। इसलिए उसने अपने भतीजे को गोद लिया था। इस समय उसको अपने प्राणों की चिन्ता न थी। चिंता थी अपने उस भतीजे की, जिसको गोद लेकर उसने अपना उत्तराधिकारी बनाया था। बमोदा के दुर्ग के भीतर एक सुदृढ़ प्रासाद था। दुर्ग के सात मजबूत फाटकों को पार करने के बाद वह प्रासाद मिलता था। इसलिए वह पूर्ण रूप से सुरक्षित समझा जाता था। आलूहाड़ा ने अपने उत्तराधिकारी युवक भतीजे को उस प्रासाद में बंद कर दिया। कुछ दिनों के लिए खाने-पीने की पूरी व्यवस्था करदी और आवश्यकता के लिए अपने विश्वासी आदमियों को वहाँ पर रख कर दुर्ग के मजबूत फाटकों में ताले डलवा दिये। इस प्रकार उसको सुरक्षित प्रासाद में छोड़कर आलूहाड़ा उसकी तरफ से निश्चिन्त हो गया।

पगड़ी के अपमान करने वाले मन्दोर के राठौर राजा को यह मालूम हो गया था कि चारण लौटकर आलूहाड़ा के पास गया है, इसलिए अब कुछ होकर रहेगा। यह सोच समझकर उसने भी अपने यहां युद्ध की तैयारी प्रारम्भ करवा दी। राठौर राजा आलूहाड़ा से परिचित न था और न उसे इस समय आलूहाड़ा की कोई बात मालूम हो सकी। आलूहाड़ा समझदार और दूरदर्शी था। मन्दोर की अपेक्षा उसकी शक्तियां बहुत निर्बल थीं। इसलिए उसने बुद्धिमानी से काम लिया। उसने अपनी सेना को तैयार कर लिया था, जिसे लेकर उसने मंडोर राजधानी के बाहर खड़ा कर दिया और वह स्वयं घोड़ों के बेचने के बहाने से मंडोर राजधानी में पहुँचा। जिस समय वह राजधानी में गया, रात का अंधकार था और किसी को वहाँ पर इस प्रकार आलूहाड़ा के जाने का अंदेशा भी न था। आलूहाड़ा ने रात में कुछ समय तक वहाँ पर विश्राम किया और प्रातःकाल होने के पहले ही उसने राजधानी में नगाड़ा बजवा दिया। उसे सुनकर राठौर राजा की नींद खुल गयी। उसी समय मालूम हुआ कि आलूहाड़ा पाँच सौ राजपूतों के साथ आक्रमण करने के लिए आया है।

यह जानकर मंडोर के राजा ने निश्चय किया कि मैं भी अधिक सेना लेकर उससे युद्ध करने न जाऊँगा। इसलिए पाँच सौ राठौरों की सेना लेकर वह आलूहाड़ा के साथ युद्ध करने के लिए रवाना हुआ। दोनों तरफ सैनिकों की संख्या बराबर थी। सेनाओं का सामना होते ही युद्ध आरम्भ हुआ। उसी समय एक युवक ने घोड़े पर आकर उस युद्ध में प्रवेश किया। उसको देखकर आलूहाड़ा ने तुरन्त उससे कहा: "क्या तुम यहाँ पर हमारे वंश का अंत करने के लिए आये हो?"

उस युवक ने घोड़े पर बैठे हुए उत्तर दिया: "काका इस युद्ध के समय में महल के भीतर बैठकर कैसे रह सकता था, क्या मैं राजपूत नहीं हूँ!"

यह युवक आलूहाड़ा का भतीजा था, जिसके प्राणों को सुरक्षित रखने के लिए आलूहाड़ा ने अपने दुर्ग के महल में बन्द कर दिया था और दुर्ग के सात सुदृढ़ द्वारों में ताला लगाकर वह युद्ध करने के लिये आया था। आलूहाड़ा उसकी बात सुनकर चुप हो रहा। युद्ध आरम्भ हो चुका था। दोनों ओर के सैनिक अपने-अपने शत्रुओं का संहार कर रहे थे। थोड़ी ही देर में युवक की तलवार से राठौर सेनापति जख्मी होकर गिर गया। उसके गिरते ही मन्दोर के एक दूसरे राठौर सेनापति ने आकर युद्ध करना आरम्भ कर दिया।

वह सेनापति भी युवक के हाथ से मारा गया। इसी समय तीसरा राठौर सेनापति युद्ध करने के लिए आगे बढ़ा। युवक हाड़ा ने उसको भी मारकर गिरा दिया। इस प्रकार उस युवक के द्वारा पच्चीस राठौर सेनापति युद्ध में मारे गये। इसके बाद भी राठौर सेना में किसी प्रकार की निर्बलता न आयी और एक नवीन राठौर सेनापति ने युद्ध करने के लिये वहाँ पर प्रवेश किया। उसके आगे बढ़ते ही हाड़ा युवक पर तलवार का ऐसा आघात हुआ कि उसके मस्तक के दो टुकड़े हो गए।

युवक के मारे जाने पर हाड़ा राजपूत एक साथ उत्तेजित हो उठे। यह दृश्य मन्दोर की राजमाता अपने नेत्रों से देख रही थी। उसने समझ लिया कि युवक के मारे जाने के बाद युद्ध की परिस्थिति एक साथ भयानक हो जायगी। इसलिए उसने अपने पुत्र मन्दोर के राठौर राजा को युद्ध बन्द करने का आदेश दिया और उसने अपने बेटे को परामर्श दिया कि वह आलूहाड़ा के साथ मन्दोर की राजकुमारी का विवाह करके दोनों तरफ शाँति कायम करे।

राठौर राजा ने यही किया। युद्ध बन्द हो गया। दोनों तरफ से शान्त वातावरण में बातचीत होने लगी। अंत में आलूहाड़ा का विवाह मंडोर की राजकुमारी के साथ हो गया। इसके बाद आलूहाड़ा अपनी नवीन पत्नी के साथ बमोदा लौटकर चला आया।

१० सितम्बर—इन दिनों में छै महीने तक मैं कोटा राज्य में रहा। अन्त में मई महीने में यहाँ पर हैजा की बीमारी का भयानक प्रकोप रहा। मैं स्वयं इन दिनों में वहाँ पर रह कर हैजा में बीमार पड़ा। बीमारी से उठने के बाद मैं जालिम सिंह से विदा होकर कोटा से रवाना हुआ और कुनारो नामक स्थान पर पहुँचा वह स्थान देखने में बहुत रमणीक मालूम होता है।

१३ सितम्बरको मैं हाड़ावंश की राजधानी के पास पहुँचा। दूर से ही उड़ती हुई धूल दिखायी पड़ी, जिसके कारण मार्ग अंधकारमय हो गया। मुझे मालूम हुआ कि शायद राजा इधर से निकल रहा है। इसी समय बाजों की आवाज सुनायी पड़ने लगी। इसके बाद थोड़ी ही देर में एक सांड़नी पर बैठे हुए सवार के द्वारा राजा के आने का समाचार सुना। राजा घोड़े पर बैठा हुआ आ रहा था और मैं हाथी पर था। उस समय मेरा हाथी पर बैठना मुझे अच्छा न मालूम हुआ। इसलिए हाथी को छोड़कर मैं एक घोड़े पर बैठा और आगे बढ़ा। राजा मेरे सामने आगया

था। हम दोनों घोड़ों से उतर पड़े और एक दूसरे के साथ गले मिले। इसी प्रकार मैंने सामन्तों के साथ भी भेंट की। राजा ने मुझसे कहा: "यह आप ही का राज्य है। अपने इस राज्य में आप बहुत दिनों के बाद आये हैं।"

थोड़ी देर के बाद राजा से बिदा होकर मैं अपने स्थान पर चला गया।

१ अक्टूबर को मैं जिहाज पुर में पहुँचा। उस दिन भी मेरी दशा अच्छी न थी। बुखार होने के कारण मुझे भूख बिल्कुल न थी। फिर भी साथ के लोगों के कहने पर मैंने दो-चार कौर मकाई की रोटी के खाये। इसके बाद मेरी हालत और भी खराब हो गयी। मेरा मुख सूख रहा था। फिर भी मैं घबराया नहीं। मेरे साथ के लोग चिन्तित हो रहे थे। कई वर्ष पहले भी मैं इसी प्रकार भयानक रूप से बीमार पड़ा था। मेरी दशा लगातार खराब होती गयी और मुझे मालूम हुआ कि मैं अब बच नहीं सकता।

इसके बाद मैंने देखा कि एक चिकित्सक मेरे पास आया है और वह मुझे देख रहा है। देखने के बाद उसने अपनी कोई औषधि मुझे खिलाई। उसको खाते ही मुझे उलटी हो गयी और लेटने के साथ ही मुझे मूर्छा आ गयी। उसके बाद मैं सो गया। रात को मुझे बहुत पसीना आया। उस समय मेरे शरीर में पीड़ा न रह गयी थी।

मेरी बीमारी के सम्बन्ध में लोग तरह-तरह की बातें कर रहे थे। चिकित्सक का अनुमान था कि मुझे किसी ने विष खिला दिया है। मैंने इस बात पर विश्वास नहीं किया। मेवाड में आने के बाद से लेकर अब तक चार बार मेरी यह दशा हो चुकी थी। २ अक्टूबर को मुझे ज्वर बहुत अधिक था। शरीर में भी पीड़ा थी। इसलिए मैं पालकी में लेटकर चला। खजूरी नामक स्थान पर कुछ मीना लोग भेंट करने के लिए मेरे पास आये। मैंने उनके सरदार को लाल पगड़ी और रूमाल उपहार में दी। यहाँ के बहुत से ग्राम ब्राह्मणों को दान में दे दिये गये थे।

मैं कई दिनों तक बुखार में रहा और घोड़े पर न बैठ सकने के कारण पालकी पर यात्रा करता रहा। १७ अक्टूबर को मण्डल गढ़ से चलकर एक मील की दूरी पर मैंने मुकाम किया। वहाँ पर मण्डलगढ़ के कुछ लोग मुझसे भेंट करने को आये। उस दिन विजयादशमी थी। इसलिए आने वालों ने विजयादशमी का मुझे निमन्त्रण दिया। लेकिन अपनी बीमारी के कारण निमन्त्रण से अनुसार मैं उनके यहाँ जा न सका।

मैंने नौ दिनों से कुछ खाना नहीं खाया था। मेरे साथ के सभी लोग बहुत चिन्तित हो रहे थे। आज मेरी पसली में जोंक लगवाई गयी। इसके बाद भी मेरी बीमारी में कोई अन्तर न पड़ा। फिर भी मेरे मन में किसी प्रकार की घबराहट न थी।

सम्बत् १७५५ में बादशाह औरंगजेब ने पिसानगढ़ के दूदा जी राठौर को मण्डलगढ़ दे दिया था। यह इलाका इसके कई भाइयों में विभाजित किया गया। लेकिन उसके बाद राणा ने उन पर अपना अधिकार कर लिया।

१८ अक्टूबर को एक नदी के किनारे वजीत नामक स्थान पर हम लोग पहुँचे और १९ तारीख को परसलबास नामक स्थान पर पहुँच गये। हम लोगों के आने का समाचार पाकर वहाँ का शासक भेंट करने के लिए हमारे स्थान पर आया। उसके अधिकार में पाँच सौ ग्राम हैं। बात-चीत से मैंने उसकी योग्यता को अनुभव किया।

लगातार परिश्रम करने और राजस्थान की बिगड़ी हुई राजनीतिक परिस्थितियों से चिन्तित रहने के कारण मेरा स्वास्थ्य खराब हुआ। सन् १८२१ ईसवी में मैं बहुत निर्बल पड़ गया। निरंतर बीमारी के कारण यात्रा करने का साहस अब बहुत क्षीण पड़ गया था और अपनी

जन्मभूमि लौट जाने का बार-बार ख्याल मेरे मन में पैदा होने लगा था। लेकिन इतने दिनों तक राजस्थान में रहकर उसके साथ जो मेरा माया-मोह पैदा हो गया था, उसको एक साथ छोड़ देना भी मेरे लिए आसान न था। वहां रहकर राजस्थान में जो सुधार करने का मैंने निश्चय किया था, उसमें अभी तक मैं कुछ न कर सका था। यहां की परिस्थितियों के साथ मेरे जीवन का ऐसा सम्बन्ध हो गया था कि उनसे छुटकारा पाना इतना जल्दी मुझे सम्भव नहीं मालूम होता था। यही कारण था कि अपनी बीमारी के दिनों में भी मैं यहाँ के ग्रामों और नगरों में लगातार घूमता रहा, उससे मेरी बीमारी निरंतर बढ़ती रही और बहुत दिनों के बाद उसने मुझको निर्बल बना दिया।

राजस्थान के राज-परिवारों के साथ मेरे घनिष्ट सम्बन्ध हो गये थे, जिनसे भाई, मामा, चाचा आदि के द्वारा मैं स्थान-स्थान पर पुकारा जाता था। अपने शरीर की दशा को देखकर सन् १८२१ ईसवी के जुलाई महीने में अपने देश चले जाने का मैंने निश्चय किया। उस समय मैं उदयपुर में था। उसके बाद ही बूंदी के राजा की मृत्यु का समाचार मुझे मिला और यह भी मैंने सुना कि मृत्यु के समय वहां के राजा ने अपने राज्य के भविष्य का उत्तरदायित्व मेरे ऊपर छोड़ दिया है। मृत्यु का समाचार पाकर मैं बूंदी के लिए रवाना हुआ।

उन दिनों में हैजा की बीमारी बूंदी-राज्य में बड़े जोर के साथ चल रही थी। वहाँ जाकर मैंने देखा कि उस बीमारी को शान्त करने के लिए स्थान-स्थान पर हवन किये जाते हैं और मन्त्र पढ़े जाते हैं। राजधानी के बाहर दक्षिण की तरफ गंगाजल छिड़का जाता है।

२५ जुलाई—बरसात के दिन थे। आसमान पर रोज ही बादल रहते थे और किसी भी समय पानी बरसने लगी था। इसी दशा में आज मैं उदयपुर से बूंदी के लिए रवाना हुआ। मेरी अभिलाषा भीलपाड़ा देखने की थी। इसलिए २६ जुलाई को मैं वहाँ पहुँच गया। बहुत से स्त्री-पुरुषों ने आकर मेरा स्वागत किया। स्त्रियों के सिर पर पानी से भरे हुए कलसे थे। जो लोग मार्ग में आकर मुझसे मिले वे मुझे अपने नगर में ले गये। मेरे आगमन की खुशी में वहां का बाजार सजाया गया था। वहाँ घूमकर हम लोग लौट आये। हमारे भोजन के लिए बड़ी अच्छी व्यवस्था की गयी थी। भोजन करने के बाद हमारे पास फिर कुछ लोग आये और वे मेरे साथ बातें करते रहे। लोगों के आग्रह पर २८ जुलाई को भी मुझे वहां पर रहना पड़ा। २९ जुलाई को हम सब लोग वहां से विदा हुए। रवाना होने के समय पानी बरस रहा था और चलने का रास्ता बहुत खराब हो गया था। इसलिए बार-बार पैर फिसलते थे। किसी प्रकार गिरते-पड़ते हम लोग जिहाजपुर पहुँच गये। पानी लगातार बरस रहा था। ३० जुलाई को हम लोग बूंदी पहुँच गये और सबसे पहले अपनी यात्रा की पोशाक में मैं सीधे राजमहल पहुँचा। राजा की मृत्यु पर दुख प्रकट करते हुए मैंने सबको धैर्य से काम लेने की बात कही। महल में राज्य का उत्तराधिकारी मौजूद था। मैंने उसके छोटे भाई गोपाल सिंह से बातचीत की। वहां सभी लोग राजा की मृत्यु से दुखी थे। फिर भी मेरे साथ उन्होंने सम्मान प्रकट किया।

राजमहल में सब से मिलकर मैंने उनको शान्त होने के लिए कहा और अपनी बातचीत के सिलसिले में मैंने उनको बताया कि राजा की मृत्यु का समाचार सुनकर अंगरेज-सरकार को बहुत आघात पहुँचा है। मेरी बातों को सुनने के बाद राज्य के उत्तराधिकारी ने मेरी तरफ देखकर कहा: "मरने के समय मेरे पिता ने मेरी रक्षा का भार आपको सौंपा है।

इस बात को सुनकर मैं बहुत प्रभावित हुआ। उसको धैर्य देते हुए मैंने उत्तर दिया: "भगवान आपकी रक्षा करेगा, आप जरा भी घबरायें नहीं।"

इसके बाद कुछ आवश्यक बातों पर मैं सामन्तों के साथ परामर्श करता हुआ अपने ठहरने के स्थान पर—जो राज महल से थोड़ी ही दूरी पर था, चला गया। वहां पर मेरी आवश्यकता की चीजें पहुँच गयी थीं और जैसे ही मैं वहां पर गया, राजमाता का भेजा हुआ भोजन मेरे लिए आता हुआ दिखायी पड़ा। राजमाता ने ताजा बना भोजन एक ब्राह्मण के हाथ से रवाना किया था और जो ब्राह्मण भोजन ला रहा था, उसके आगे-आगे एक दूसरा ब्राह्मण गंगाजल छिड़कता हुआ आया था। मैंने सबके साथ अपने ठहरने के मुकाम पर शान्ति पूर्वक भोजन किया।

बूंदी में मेरे पहुँचने के बाद राजमाता ने राज्य के उत्तराधिकारी के अभिषेक का निश्चय किया। राजमाता ने अभिषेक सम्बन्धी तैयारी आरम्भ कर दी। तीज के दिन उस राज्य में एक पर्व हुआ करता है। उस दिन मुझे उत्तराधिकारी के साथ यात्रा करने के लिए राजमाता ने मेरे पास संदेश भेजा। इस सदेश को पाने के बाद नवीन राजा के लिए मैंने कीमती वस्त्रों और पगड़ी का प्रबन्ध किया।

निश्चित दिन अभिषेक का कार्य आरम्भ हुआ। इसके लिए मैं राजमहल में गया। रास्ते में मुझको एकत्रित राज्य की प्रजा मिली। वे सभी लोग नमस्कार करके मेर स्वागत कर रहे थे। महल के सामने बहुत बड़ी संख्या में राजपूत एकत्रित थे। वे एक साथ जय जयकार कर उठे। महल के भीतर अभिषेक के स्थान पर राज्य के सामन्त उपस्थित थे। वहां पहुँचकर मैं उन सामन्तों के साथ बातचीत करने लगा। पास ही एक कमरे में हवन हो रहा था। पूजा का कार्य समाप्त होने पर नवीन राजा को बुलाया गया। मैंने उसे बुलाकर एक कमरे में पहुँचाया। वहाँ पर अभिषेक सम्बन्धी कुछ कार्य हुआ। नवीन राजा ने पुरोहित के मस्तक पर टीका लगाया। इसके बाद आदेश मिलने पर प्रसन्नता के साथ मैं उसे राजसिंहासन की तरफ ले गया। सिंहासन इतना ऊँचा बना हुआ था कि राजकुमार उस पर चढ़ न सका। इसलिए मैंने उस कोउठाकर सिंहासन पर पहुँचा दिया। पुरोहित ने उसके माथे पर चन्दन लगाया। मैंने अपनी उँगली से नवीन महाराज के मस्तक पर तिलक किया। इस के पश्चात उसकोकमर में तलवार बांधकर मैंने अभिनन्दन करते हुए ऊँचे स्वर में कहा: "हमारी सरकार बूंदी राज्य के लिए शुभ कामना करती है।" मेरी इस बात को सुनकर वहां का एकत्रित समुदाय बहुत प्रसन्न हुआ और मेरी बात के समाप्त होते ही तारागढ़ के दुर्ग से तोपों के छूटने की आवाजे सुनायीं पड़ी। इसके पश्चात मैंने महाराज के सिर पर पगड़ी में हीरों का शिरपेंच, गले में मोतियों की माला हीरा और जवाहिरात जड़े हुए खड़ुवे और कुछ दूसरे बहूमूल्य पदार्थ देकर इक्कीस कीमतीदुसाले एवम् मूल्यवान वस्त्र उपहार में दिये। चांदी से सजा हुआ एक हाथी और काले रंग के दोघोड़े भी मैंने नवीन महाराज को भेंट में दिये। इसके पश्चात् उसके लिए मंगल कामना करता हुआ कुछ दूरी पर जाकर मैं खड़ा हो गया।

मेरे बाद एक-एक सामन्त उपहार लेकर उस स्थान पर पहुँचा और सभी ने अपने-अपने उपहार देकर नवीन राजा का अभिनन्दन किया। इसी अवसर पर नवीन राजा का भाई गोपाल सिंह मेरे पास आया और बहुत गम्भीर हो 'कर उसने मुझसे कहा: "आप के सिवा दूसरा कोई हम लोगों का संरक्षक नहीं है।"

इस बात को सुनकर और सचेत होकर मैंने गोपाल सिंह की तरफ देखा। मैं उसे कुछ उत्तर न दे सका था। उसी समय राज्य के सामन्त कई एक मेरे पास आये और उन्होंने अंगरेज सरकार के प्रतिनिधि के रूप में मुझे बहुमूल्य उपहार दिये। इसके पश्चात् मैं सामन्तों को नमस्कार करके वहां से चला आया।

दूसरे दिन राजमाता का एक नया संदेश मुझे मिला । वह बलवन्त सिंह की तरफ से कुछ भयभीत थी । बारह वर्ष पहले उसने बूंदी पर आक्रमण किया था । राजमाता ने उसके सम्बन्ध में मेरे पास एक संदेश भेजा । उसका उत्तर देकर मैंने राजमाता को उसके सम्बन्ध में आश्वासन दिया ।

राज्य में कई एक ऐसे अधिकारी थे, जिनके प्रति राजमाता को आशंकायें बनी रहती थीं । उनके सम्बन्ध में भी राजमाता ने मुझसे कहा और मैंने उसकी इच्छा के अनुसार प्रबन्ध करा दिया ।

इस प्रकार की अनेक बातों के साथ-साथ मैंने आदेश दिया कि राज्य में आमदनी का जितना धन एकत्रित हो, वह सब राज्य के खजाने में रखा जाय । उस आमदनी का जो रुपया खर्च किए जायँ, नियमित रूप से उनका हिसाब रखा जाय । बिना रसीद के एक भी रुपये का खर्च मंजूर न किया जायगा । इस प्रकार मैंने राज्य की व्यवस्था करादी ।

इन्हीं दिनों में राखी का त्यौहार आया । रक्षा बन्धन के नाम से यह त्यौहार प्रसिद्ध है । राजमाता ने मुझे अपना भाई मानकर अपने एक पुरोहित द्वारा मेरे पास राखी भेजी । मैंने उसे स्वीकार किया । उसका ग्यारह वर्षीय बालक सिंहासन पर बैठा था । राखी को स्वीकार करने के बाद मैंने उसको अपना भाञ्जा समझा । राजमाता मेरा बड़ा विश्वास करती थी । राज्य के बाद आवश्यक प्रश्नों पर बातचीत करने के लिए मैं कुछ विश्वासी राज्य के आदमियों के साथ महल में गया और राजमाता के साथ बातें करता रहा । राजमाता एक परदे की आड़ में बैठकर मुझसे बात कर रही थी । उसकी बातों को सुनकर मैंने उसकी योग्यता को अनुभव किया ।

जयसलमेर के इतिहास में तक्षक और क्याक के युद्ध का वर्णन पढ़ने को मिलता है । तक्षक और क्याक तातारी भाषा के शब्द हैं । तक्षक लोगों के पूर्वज सांपों की पूजा करते थे । इसीलिए इस जाति का नाम तक्षक पड़ा था । वे लोग पश्चिमी भारत में पाये जाते हैं ।

२६ फरवरी—बेगू के सामन्त के प्रदेश को तीन वर्ष पहले वापस लेकर उसके अधिकारों से उसको वंचित कर दिया था । लेकिन इधर कुछ दिनों से उसका प्रदेश देकर उसे फिर से सामन्त के रूप में स्वीकार करने का विवाद चल रहा है । इसके सम्बन्ध में मुझे बेगू के किले की तरफ जाना पड़ा । मेरे आने का समाचार सुनकर कालामेघ के वंश के लोग अपने-अपने स्थानों से आकर वहां पर एकत्रित होने लगे । :-:

बेगू के क़िले के चारों तरफ गहरी खाइयां हैं और उन खाइयों के ऊपर काठ का एक पुल महल में आने-जाने के लिए बना हुआ है । उस पुल के सामने एक फाटक है । मेरे साथ के सैनिक उस फाटक से निकल कर पुल की दूसरी तरफ चले गये । मुझे भी उसी रास्ते से जाना था, लेकिन मेरे महावत ने कहा कि हौदे के साथ आप का हाथी उस फाटक से निकल नहीं सकता । इसलिए कि वह फाटक इतना ऊंचा नहीं है । महावत के इस प्रकार कहने पर मैंने कुछ ख्याल नहीं किया और उसको आगे चलने के लिए आज्ञा देते हुए मैंने उससे यह भी कहा कि अगर तुम किसी प्रकार

:-: टॉड साहब की ऐतिहासिक यात्रा के वर्णन की कुछ अंतिम तारीखें मैंने छोड़ दी हैं । इसलिए कि कुछ तारीखों में मुझे महत्वपूर्ण ऐतिहासिक घटनायें नहीं मालूम हुई और पहले की लिखी हुई बातें बार-बार आती थीं । दूसरा कारण यह भी है कि पुस्तक में स्थान का अभाव था । इसलिए इस यात्रा की कुछ तारीखें मुझे छोड़ देनी पड़ी हैं । —अनु०

के भय से हाथी पर बैठकर न चलना चाहो तो उतर जाओ। महावत ने मेरी बात का कुछ उत्तर न दिया और उसने हाथी को आगे की तरफ बढ़ाया। काठ के पुल पर हाथी के चलते ही कुछ जोर की आवाज होने लगी। उसको सुनकर और गहरी खाइयों को देखकर हाथी भयभीत हो उठा। तेजी के साथ चलने के कारण वह फाटक से निकल न सका। महावत ने हाथी को सम्हालने की चेष्टा की लेकिन वह हाथी को अपने नियंत्रण में न ला सका। फाटक में प्रवेश करने के पहले ही मुझे आभास हुआ कि फाटक की ऊँचाई काफी नहीं है और हाथी नियंत्रण में नहीं है। ऐसी दशा में हौदे के टूट जाने की पूरी सम्भावना है। उस समय अपनी रक्षा का कोई उपाय न देखकर मैं जोर के साथ उछला और अपने दोनों हाथों से मैंने फाटक को पकड़ लिया। फाटक के जिस स्थान को मैंने अपने हाथों से पकड़ा था, वह एकाएक टूट गया और मैं हौदा के बाहर अलग जाकर गिरा। हाथी तेजी पर था वह फाटक को पार करके निकल गया।

चित्तौर की राजधानी के कितने ही स्थान आक्रमणकारी बादशाहों के अत्याचारों का आज भी इजहार कर रहे हैं। इसको मैंने अच्छी तरह अनुभव किया। बादशाह अकबर ने आक्रमण करके चित्तौर राजधानी में जिस स्थान पर अपनी विजय का झण्डा गाड़ा था और चित्तौर पर अधिकार करने के लिए उसने अपने सेनापतियों को आदेश देकर इस गौरवशाली राजधानी को विध्वंस करवाया था, उन सभी बातों का स्मरण करते हुए मैंने इस प्रसिद्ध राजधानी के सभी स्थानों को देखा। बादशाह अकबर के उस चिरागदान को भी देखा, जो इतिहास में आज तक प्रसिद्ध है। अकबर वह का चिरागदान बड़े-बड़े पत्थरों के टुकड़ों से पैंतीस फुट ऊँचा बनाया गया है। उसका नीचे का भाग मोटा और ऊपर का पतला है। उसके मस्तक पर एक बड़ा दीपक रखा हुआ है। उस दीपक को देखकर अनुभव किया जा सकता है कि बादशाह अकबर ने इस स्थान पर मुकाम किया था।

इसके भीतरी भाग में सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। वे सीढ़ियाँ ऊपर तक चली गयी हैं। बादशाह अकबर उन सीढ़ियों पर चढ़कर जरूर ऊपर गया होगा, यह अनुमान लगाकर मैंने भी उन सीढ़ियों के रास्ते से ऊपर जाने का इरादा किया। लेकिन स्वास्थ्य अच्छा न होने के कारण मैं ऊपर जा नहीं सका। इससे बाद किले से निकलकर अपने घोड़े पर सवार होकर मैं चित्तौर चला गया। सूर्यकुण्ड के पास मेरा कैम्प लगा था। वहाँ जाकर मैंने विश्राम किया।

इन दिनों में यात्रा करते हुए मेरा स्वास्थ्य बहुत बिगड़ गया था। शरीर की शक्ति नष्ट हो गयी थी और हड्डिया बाकी रह गयी थीं। मुझे देखकर उदार चिकित्सक ने मुझे अपने देश लौट जाने की सलाह दी। उसकी इस बात को सुनकर राणा के हृदय को बहुत आघात पहुँचा। लेकिन मेरे शरीर की अवस्था देखकर राणा ने तीन वर्ष की मुझे अपने देश जाने के लिए छुट्टी दी। उस समय मैंने अनुभव किया कि मेरे साथ राणा को कितना अधिक स्नेह है।

उदयपुर से चुपचाप अपने देश चले जाने का मैंने विचार किया था। लेकिन अपनी ममता के कारण मैं ऐसा कर न सका। इसलिए रवाना होने के पहले मैं राणा भीम से मिलने के लिए गया। राणा के साथ-साथ, राजकुमार जवानसिंह और समस्त सीसोदिया सामन्तों से भेंट हुई। राणा ने मुझे उपहार में अपना प्रसिद्ध घोड़ा बाजराज दिया था। मेरे साथ उसे न देखकर राणा ने पूछा और जब उन लोगों ने सुना कि उस घोड़े की मृत्यु हो गयी है तो सभी लोग बहुत दुखी हुए। बाजराज से संबंध में हम लोग बड़ी देर तक बातें करते रहे। उस घोड़े के मरने के समय मेरे सिपाहियों और कर्मचारियों ने बहुत शोक किया था। उस घोड़े का शव जब समाधि में रखा

गया, उस समय उपस्थित लोगों के नेत्रों से आँसू गिरने लगे थे। एक नवीन और मूल्य वान कपड़े में घोड़े के शव को लपेटकर समाधि में रखा गया था। उस घोड़े के सईस ने उसकी समाधि पर बैठ कर बड़ी देर तक अश्रुपात किया था। मेरे नेत्रों से भी उस समय आँसू गिर रहे थे। इतना अच्छा घोड़ा मैंने कभी नहीं देखा था, बाजराज की समाधि पर जालिम सिंह ने उसकी एक प्रस्तर मूर्ति बनवाकर लगवाई थी और उसके नाम का एक मंदिर बनवाने के लिए जालिम सिंह ने निश्चय किया था। उस समय मुझे एक हाड़ा राजपूत की बात याद आयी, जो उसने लोदी बादशाह से कही थी—किसी राजपूत से उसकी तीन चीजें कभी कोई मांगने का साहस न करे—उसकी स्त्री, उसकी तलवार और उसका घोड़ा!

राजस्थान से इंगलैण्ड के लिए रवाना होने के समय मुझे उस हाड़ा वंशीय राजमाता की याद आयी, जिसने मुझे 'अपना भाई बनाया था। राजस्थान के समस्त आचार-व्यवहार, उसकी सहानुभूति और ममता ने मुझे अपना बना लिया था। यहां की भूमि मुझे जन्मभूमि की तरह प्यारी हो गयी थी। मैं जहां कहीं जाऊँगा, कहीं भी रहूँगा, इसको अपने जीवन काल में कभी भूल न सकूँगा। मैं एक दिन मर जाऊँगा, लेकिन मेरी यह पुस्तक राजस्थान की स्मृतियों को अनन्तकाल तक जीवित रखेगी!

समाप्त